भावार्थ रामायण

(हिन्दी)

विषय-सूची

अध्याय	पृष्ठ-संख्या

अनुक्रम

बालकाण्ड

अयोध्याकाण्ड

संतश्रेष्ठ श्री एकनाथ महाराज
कृत

भावार्थ रामायण

बालकाण्ड

अध्याय १

[स्तवनात्मक प्रस्तावना; अयोध्यापति दशरथ की विजय-यात्रा]

राम रघुओं के वंश में जन्म को प्राप्त हुए। मुनिवर विश्वामित्र के कथन (आदेश) के अनुसार, ताड़का को (उसका वध करते हुए) दण्ड देकर और (गौतम ऋषि की अभिशप्त स्त्री) अहल्या को पावन करके, जिन्होंने (स्वयंवर- सभा में) शिवजी के धनुष्य को भग्न किया, वे राम मैथिली सीता के पति हो गए। (तदनन्तर) अयोध्या में आकर वे अपने पिता दशरथ के आदेश से वन के प्रति गये। (और सीता के अपहरण के पश्चात् उसकी खोज करते हुए वे किष्किन्धा गये, जहाँ उन्होंने सुग्रीव से मित्रता के सम्बन्ध स्थापित किये। और) उन्होंने बाली का संहार करके तथा (वानरों द्वारा) समुद्र को आबद्ध करके दशमुख रावण का निर्दलन किया। अन्त में वे (पुनः) सीता से मिलन को प्राप्त हुए। रघुनाथ राम का चरित्र शत कोटि (श्लोकों, छन्दों के) विशिष्ट विस्तार से युक्त है। उसका एक-एक अक्षर लोगों के महापापों का नाश करनेवाला है।

श्रीगणेश-वन्दना– ॐ नमः (ॐ कारस्वरूप ब्रह्म को नमस्कार है)। जो अनादि ब्रह्म हैं, जो (सबके लिए) आदि-बीजस्वरूप हैं, जो वेदों और वेदान्त के लिए (वा उनके द्वारा ही) वेद्य (ज्ञेय) हैं, जो वन्द्यों (वेदों, ऋषियों, देवों) के लिए भी परम वन्द्य हैं, जो स्वयं अपने आपके द्वारा ही (पूर्णतः) ज्ञात होने योग्य हैं, ऐसे हे ब्रह्म-स्वरूप श्रीगणेशजी, (आपको) नमस्कार है। आपके रूप का निर्धारण करने लगने पर (ध्यान में आता है कि) आपका यह रूप विशुद्ध अरूप (ब्रह्म) का अपना स्वयं का रूप है। (अर्थात् विशुद्ध अरूप निराकार ब्रह्म ही आपके रूप में स-रूप, साकार स्वरूप को प्राप्त हुआ है)। तब वहाँ (उस स्थिति में) आपके विभिन्न अनेक अवयवों की कल्पना करने लगते ही, आपके स्वरूप में कल्पना का लोप हो जाता है। (आपके रूप के विषय में कल्पना तक नहीं की जा पाती)।

इसलिए आप साकार हों या निराकार हों, अरूप हों या सरूप हों, आप साकार दिखने पर भी वस्तुतः निराकार हों, आप जैसे भी हों, आपको नमस्कार है। जब तदात्म भाव से भक्ति की जाती है, तो अंगत्व अंग को खो देता है, अंग का अंगत्व ही लुप्त हो जाता है और भज्य तथा भजक (भक्ति का विषय और भक्त दोनों) में अद्वैत (एकत्व) स्थापित हो जाता है। (हाथ में धारण किया हुआ आपका आयुध) परशु ज्ञान के तेज से तेजोयुक्त है। (साधकों द्वारा) नित्य किया जानेवाला (आपका) स्मरण (उनके लिए आपके हाथ में धारण किया हुआ) अंकुश (-स्वरूप) है (नित्य स्मरणरूपी अंकुश साधक के मन रूपी हाथी को इधर-उधर होने और बहकने नहीं देता; उसे आपके वश में रखता है)। आप अपने भक्तों के मुख में (अपने हाथ में रखे हुए) आत्मानन्द स्वरूप सुरस (से युक्त, अतिमधुर) मोदक का ग्रास (कौर) डालते हैं। (श्री एकनाथ महाराज कहते हैं–) मेरे द्वारा किया हुआ ऐसा स्तवन (स्तुति) सुनकर श्रीगजानन गणेशजी सन्तोष को प्राप्त हुए। मेरे मुख को बसाकर (उसे अपना निवासस्थान बनाकर) वे स्वयं वक्ता और वचन (दोनों) हो गए। (अर्थात् यहाँ पर कही जानेवाली बात स्वयं गणेशजी द्वारा ही कथित है)। वे (मेरे प्रति) इस प्रकार सुप्रसन्न हो गये और उन्होंने विघ्न को ही निर्विघ्न (बाधा को बाधा उत्पन्न करने की शक्ति से रहित) कर दिया (मेरा मार्ग पूर्णतः निर्विघ्न हो गया)। वे स्वयं (ज्ञान-स्फुरण से) प्रकट रूप में (मुझसे) बोले– तुम श्री भावार्थ रामायण (की रचना) को वेगपूर्वक चलाओ (तुम इस ग्रन्थ की रचना द्रुतगति से करो)।

श्रीसरस्वती-वन्दना– अब देवी सरस्वती की वन्दना करें, जो (साक्षात्) चित्त की चेतना (स्वरूप) तथा चैतन्य शक्ति हैं, जो समस्त प्रेरणाओं के लिए प्रेरणा (स्वरूप) हैं, जिनका स्वरूप अमूर्त (ब्रह्म) की मूर्ति (स्वरूप) है। (हंस सरस्वती देवी का वाहन है; अतः) उनके लिए (उपाधि-स्वरूप) 'हंस-वाहिनी' शब्द रूढ़ है। फिर भी वे परमहंस, अर्थात् परमब्रह्म पद पर आरूढ़ हैं (वा महान ज्ञानियों के मन में उनका निवास है)। जो अर्थ (भाव, विचार) गहन हैं, अति गूढ़ (अतएव मुझ जैसे कवि के लिए पूर्णतः समझ के परे) हैं, उनको (कृपा-पूर्वक) वे (कवि द्वारा रचे जानेवाले) ग्रन्थ के अर्थ में स्पष्ट (प्रकट) कराकर दिखाती हैं। वे अंश-अंश में परमहंस (स्वरूप) हैं। उनकी शोभा दिन-रात शोभायमान है। वे शुद्धता-उज्ज्वलता में (उस) सत्त्व गुण के परे हैं। (जिनका वर्ण विशुद्ध श्वेत-उज्ज्वल माना जाता है) उनके अपने शरीर का वही (विशुद्ध उज्ज्वल) शुभ्र (गौर) वर्ण है। ॐ-कार (ध्वनि) उनका (हाथ में धारण किया हुआ वाद्य) वीणा है। उस (ॐ-कार ध्वनि) की 'अ,' 'उ' और 'म्' नामक तीनों गहन मात्राएँ उस (वीणा) के तन्तु हैं। समझिए कि वेद-उपनिषदें उनके हाथ में पुस्तक-रूप में विराजमान हैं। वे (उस पुस्तक द्वारा) परमार्थ, अर्थात् ब्रह्मज्ञान के नाना अर्थों को अर्थ प्राप्त कराती हैं। वे इस प्रकार अथाह रूप से अति सुन्दर हैं। उनकी प्रभा (कान्ति) परम अर्थ में (सचमुच) मनोहर है, जिससे यह चराचर (विश्व) प्रकाश को प्राप्त हो जाता है। उनकी वह प्रभा जगत् के दृश्य-रूप विस्तार को मिथ्या सिद्ध कर देती है। (श्री एकनाथ महाराज कहते हैं– मेरे द्वारा की हुई) ऐसी स्तुति सुनकर देवी सरस्वती (मुझपर) बहुत प्रसन्न हो गईं। स्वाभाविक रूप से तो उनका निवास मुख में होता है। उन्होंने वाणी (शब्दों) द्वारा यह कथन करा दिया। वे बोलीं, 'तुम राम-कथा का गान करो (राम-कथा की रचना करो)। उस (की रचना) को वेग-पूर्वक श्रद्धा के साथ चलाओ। वह सद्भाव (के बल) से पूर्णता को प्राप्त होगी। मैं उसे सन्तों को प्रिय बना दूँगी'।

सन्त-सज्जनों की वन्दना– अब सन्त-सज्जनों की वन्दना करें, जो दु:ख-पीड़ित जन रूपी चातकों के लिए चिच्छक्ति रूपी मेघ होते हैं, जो (उन लोगों के) तीनों प्रकार के तापों का (अपनी कृपा की वृष्टि से) उपशमन (करते) हैं, जो साधकों के लिए अपने जीवन-स्वरूप हैं। जिनकी सहजतया, अर्थात् यों ही संगति (प्राप्त) होने पर समस्त (सांसारिक दृष्टि से लाभप्रद अथवा हानिकारी) कर्मों से निवृत्ति (की प्राप्ति) हो जाती है, स्वधर्म तथा उत्तम (प्रकार की मानसिक-आत्मिक) शान्ति का आगमन हो जाता है और सचमुच परमार्थ (ब्रह्म-ज्ञान, आत्मज्ञान) की प्राप्ति हो जाती है। सत्संगति के नित्य योग से परमार्थ विस्तार को प्राप्त हो जाता है; वह (सत्संग) आत्मानन्द रूपी फलों की बहार (समृद्धि) पर आ जाता है, वह समस्त काल उत्तम फलों से युक्त बना रहता है। (ब्रह्मस्वरूप वृक्ष के) बीजत्व के डण्ठल को न काटिए। (ऐसा करने पर भी) उसके आदि (आरम्भ, मूल-स्रोत, उस वृक्ष की जड़), मध्य और अन्त का ज्ञान नहीं हो सकता। सन्तों की संगति से यह स्पष्ट रूप से अनुभव हो जाता है कि स्वानन्द (आत्मानन्द, ब्रह्मानन्द रूपी) फल का घूँट कैसा रसभीना (अत्यधिक मधुर) होता है। (तात्पर्य यह है– ब्रह्म से अपना कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसा समझकर उससे अपने आपको भिन्न नहीं मानना चाहिए।) ब्रह्म रूपी यह वृक्ष अनादि, अनन्त है। हमारी आत्मा उस अनादि, अनन्त ब्रह्म का अभिन्न अंग है। परन्तु हम अज्ञान-वश इस अद्वैत का अनुभव नहीं करते। सन्तों की संगति से उस ब्रह्म के साथ हम एकात्मता की, अद्वैत अवस्था की अनुभूति करते हैं और उस वर्णनातीत आत्मानन्द को प्राप्त कर सकते हैं। मुझे ऐसा ज्ञान कहाँ (से प्राप्त हो सकता) है कि जिससे उन सन्तों की महिमा की जानकारी मेरी समझ में आ सकती है। फिर भी मैंने बाल-भाव से जो कहा है, वह न्यून (बहुत अल्प) है। (इसे ध्यान में रखते हुए, हे सन्तो !) आप कथा की ओर ध्यान दें। (श्री एकनाथ महाराज कहते हैं– मेरे द्वारा प्रस्तुत) ऐसे स्तुति-वचन सुनकर सन्त-सज्जन सुख को प्राप्त हुए। (और बोले–) 'तुम्हारे मनोगत भाव के प्रति हमारा मन (ध्यान) है। हम (तुम्हारे द्वारा रचे जानेवाले) ग्रन्थ के अर्थ या भाव के प्रति नित्य सावधान (अवधान-युक्त) रहेंगे। हमें राम-कथा प्रिय लगती है; फिर वहाँ (तिस पर) तुम उनके रसिक (काव्य-मर्मज्ञ, सहृदय अथवा रसात्मक वाणी वाले) वक्ता (कथन-कर्ता) हो। अत: अब स्तुति को छोड़कर ग्रन्थ के भाव को अन्वय के साथ (उचित सुसंगतिपूर्ण रूप से) कह दो'।

कुलदेवी की वन्दना– अब (अपनी उन) कुल-देवी की वन्दना करें, जो नाम और रूप से (मुझ) एकनाथ का, अपने भक्तों का सम्बन्ध विशेष के योग से एकत्व के माथे पर निवास कराती हैं (अपने भक्तों को वे प्रेरित करती हैं कि वे अपने आपको उससे अभिन्न, एकात्म समझें)। सद्गुरु की उक्ति सुनकर भगवान् परशुराम की माता रेणुकादेवी (जो रचनाकार श्री एकनाथ की कुल-स्वामिनी देवी हैं) सन्तोष को प्राप्त हुईं। वे अनेकत्व (द्वैत) भाव को छोड़कर तत्काल स्वयं अद्वैत-भाव से उठ गईं। वे रेणुकादेवी, जो मूलत: (आदिकुल, जन्म के) सम्बन्ध से मेरी कुल-देवी हैं, एकरूपता के (एकत्व, अद्वैत के) अतिरिक्त, द्वैत की कोई बात मुझे करने नहीं देतीं, वे जन में तथा वन में एकपन (एकत्व) को, मन में तथा नयन (दृष्टि) में एकपन को, त्रिभुवन में (मेरे द्वारा) निवास कराती हैं। (मैं चराचर को उसी का अभिन्न रूप समझता हूँ)। अत: (इस दृष्टि से) वे मेरी कुल-देवी हैं। ब्रह्मा, हरि (विष्णु) और हर (शिव क्रमश: सत्त्व, रजस् और तमस्– इन) तीनों गुणों के प्रतीक-स्वरूप देव उस ब्रह्म के अवतार हैं। (परन्तु) इन तीनों गुणों का मैं प्रियकर होने पर भी सचमुच ब्रह्म के साथ एकात्मता को प्राप्त कराया गया। यह जगदाडम्बर (जगत् का दिखायी देनेवाला यह विस्तार) ब्रह्मा, विष्णु और शिव का तथा

उनका अपना खिलौना है। परन्तु उन (कुल-देवी) ने मुझे (उस जगत् के माया-मोह में उलझाये न रखते हुए) चिदम्बर (चैतन्य-स्वरूप आकाश) खेलने के लिए देकर मुझे अपना (सर्वाधिक) प्रिय बना लिया। उन कुल-देवी जगदम्बा (जगन्माता) की जय हो, जय हो। (मेरे द्वारा) ग्रन्थ (की रचना) का आरम्भ करने पर वे बोलीं- "(तुम्हारी) जय हो (तुम सफलता को प्राप्त हो जाओ)। मुझे श्रीराम-कथा की सुन्दरता अतिप्रिय है। तुम्हारे द्वारा उसी कथास्वरूप 'भावार्थ-रामायण' का निरूपण करने पर, उसमें जो-जो न्यून रहेगा (त्रुटियाँ रहेंगी), उस-उसकी पूर्ति मैं करूँगी। तुम उस सम्पूर्ण कथा को सम्पादित करो"।

श्रीसद्गुरु की वन्दना– अब सद्गुरु की वन्दना करें, जो (मानो) आत्मानन्द और आत्मज्ञान रूपी वज्र का पिंजड़ा हैं, जिस (के आधार) से इस संसार (सागर) को तैरकर जाने (उद्धार द्वारा सद्गति पाने) का साधनमार्ग सुखकारी (सुविधा-पूर्ण) हो जाता है। सद्गुरु द्वारा मस्तक पर हाथ रखने से (साधक के) अहंकार का नाश हो जाता है और उसे 'सोऽहम्' भाव ('मैं वह ब्रह्म हूँ'– यह भाव, अनुभूति) प्राप्त हो जाता है तथा वह (अब तक) अप्राप्त रहे अद्वयानन्द (जीव और ब्रह्म के एक ही होने के ज्ञान से उत्पन्न आनन्द) को (अनुभव कराकर) दिखाता है। 'जन' (व्यक्ति, लोक या जगत्) ही 'जनार्दन' है (जगदीश्वर है) और 'जनार्दन' ही 'जन' है 'जगदीश्वर और जगत्, ब्रह्म और जीव एक-दूसरे से भिन्न नहीं हैं, दोनों एकरूप हैं)। यह एकनाथ (स्वयं ग्रन्थ का रचयिता, अपने गुरु) जनार्दन की शरण में स्थित है। ज्ञान के योग से (शिष्य के मन में स्थित द्वैतभाव अर्थात्) 'मैं'–'तू' भाव (यह धारणा है कि यह 'मैं हूँ' और वह 'तू है', 'मैं' और 'तू' भिन्न-भिन्न हैं, द्वैतभाव) नष्ट हो जाता है। गुरु जनार्दन स्वामी को (जीव-ब्रह्म का एकत्व भाव, अर्थात्) अद्वैत भाव प्रिय है। (मुझ) एकनाथ को गुरु जनार्दन प्रिय हैं। हम दोनों (अद्वैत भाव की दृष्टि से) एक-स्वरूप (-धारी) हैं, यद्यपि हमारे नाम ('जनार्दन' और 'एकनाथ') भिन्न हैं। इस भाव का नाम (शिष्य के सब कुछ का गुरु में एकात्म रूप हो जाने की अनुभूति का नाम) 'अनन्य-शरण' भाव है। गुरु जनार्दन मेरा मन हैं; गुरु जनार्दन मेरे नयन हैं। मेरा वदन गुरु जनार्दन के रूप में बोलता है। (वस्तुतः) वक्ता (मैं) और वचन (मेरा कथन) दोनों श्रीगुरु जनार्दन हैं। गुरु जनार्दन गति की गति (सद्गति की सद्गति, मुक्ति की मुक्ति) हैं। गुरु जनार्दन मति (बुद्धि) की मति हैं। गुरु जनार्दन स्फूर्ति (प्रेरणा) को प्रेरणा प्राप्त कराते हैं। गुरु जनार्दन ही समस्त व्युत्पत्ति (आत्म-ज्ञान) हैं, जो अपने अंग रूप में समस्त लोक (ही बन गए) हैं अतः (इस दृष्टि से) जो 'जनार्दन' नाम से युक्त हो गए हैं, वे 'लिंगदेह' का अर्दन, संहार करते हैं। इसलिए उनके 'जनार्दन' नाम की व्युत्पत्ति और व्याख्या उचित सिद्ध हो जाती है। यहाँ पर (इस स्थिति में) यह भी कहना अति मूर्खता (का लक्षण) है कि वे (गुरु) कर्ता हैं और मैं अ-कर्ता हूँ; (उसी प्रकार) यह भी (कहना) विशुद्ध परम मूर्खता है कि मैं कर्ता (ग्रन्थ का रचनाकार) हूँ और वे (गुरु) अ-कर्ता हैं। (अर्थात्, गुरु जनार्दन स्वामी ही सब कुछ करनेवाले तथा करानेवाले हैं। वे जो भी कर रहे हैं, करा रहे हैं, वह मेरे माध्यम से प्रकट हो रहा है। इस दृष्टि से मुझे इस ग्रन्थ का कर्ता मानकर, उन्हें कुछ भी न करनेवाले समझना, अथवा मुझे अ-कर्ता समझते हुए उनको कर्ता मानना व्यर्थ हो जाता है। लौकिक दृष्टि से, वे कुछ न करनेवाले 'अ-कर्ता' हैं, फिर भी वे वस्तुतः मेरे द्वारा ही सब कुछ करा रहे हैं। इस ग्रन्थ का कर्ता लौकिक दृष्टि से मैं हूँ; फिर भी वास्तव में मैं उसका कर्ता नहीं हूँ, वे ही कर्ता हैं– वे मेरे हाथों उसका निर्माण करा रहे हैं)। तिस पर गुरु जनार्दन 'मैं'–'तू'-पन भाव को, द्वैतभाव को भगाकर दूर कर देते हैं और (मेरे द्वारा) 'भावार्थ रामायण' का कथन करा रहे हैं, वे ही कथा के निरूपण को चला रहे हैं।

राम के जन्म का हेतु– (रघुवंशीय) राजा अज से (दशरथ के) जन्म ग्रहण करने का यह प्रयोजन है। उन (अज राजा) से दसों इंद्रियों में अति सामर्थ्यवान् राजा दशरथ जन्म को प्राप्त हुए, वे तीनों लोकों-स्वर्ग, मृत्युलोक और पाताल में अतिविख्यात हो गए। दशरथ के (इस प्रकार के) मूलस्वरूप 'अजत्व (अज राजा से जन्म को प्राप्त होने की स्थिति)' को दृष्टिगत करके अजन्मा (ब्रह्म) राम उनसे जन्म ग्रहण करेंगे (करनेवाले थे)। रामायण में राम-जन्म सम्बन्धी मूल बात (धारणा) यह (बतायी गई) है। शास्त्र द्वारा प्रतिष्ठित परिपाटी (के अनुसार यह धारणा) विशुद्ध सत्य-रूप है। (कहा जाता है कि) बड़े-बड़े देव (तक) रावण के नित्य अंकित (अधीन रहनेवाले सेवक) बन गए, तो ब्रह्मा आदि को अद्भुत चिन्ता अनुभव हुई। उन्होंने रमानाथ भगवान् विष्णु से प्रार्थना की। (फलस्वरूप भगवान् ने उन्हें यह अभिवचन देते हुए आश्वस्त किया कि) राक्षसों का संहार करने के लिए मैं रघुनाथ राम के रूप में अवतरित हो जाऊँगा। (मेरी यह स्त्री लक्ष्मी) रमा मुख्य (रूप से) कलह का हेतु बन जाएगी। इसके कारण ही निशाचरों का अन्त हो जाएगा। तुम सभी बड़े-बड़े देव वेगपूर्वक वानर हो जाओ (शीघ्रतापूर्वक पृथ्वी पर वानरों के रूप में जन्म ग्रहण करो)। इन दोनों अवतार ग्रहण करके अपने अभिवचन के उद्देश्य को सत्य सिद्ध कर देंगे (पूर्ण करेंगे)। देवों के संकट का निराकरण करने के हेतु, स्वधर्म (सद्धर्म) के उत्कर्ष की (द्रुत गति से) वृद्धि करने के निमित्त तथा (राम-) नाम से मुक्ति की ध्वजा उभारकर फहराने के उद्देश्य से (भगवान् विष्णु जिस वंश में अवतरित होनेवाले थे, उस) सूर्यवंश को उत्तम अवस्था प्राप्त हो गयी।

राजा दशरथ की व्यथा– अहमात्मा दशरथ (अर्थात् जो मैं ही परम आत्मा, ब्रह्म हूँ या 'सोऽहम्'– इस अनुभूति को प्राप्त हुए थे, वे राजा दशरथ) सूर्यवंश में अज राजा के पुत्र के रूप में जनमे। उनका परिचय सुनिए। वे आचरण सम्बन्धी अपने धर्म में कर्तव्य-विचार से युक्त थे। उनके तीन बुद्धिमती चतुर रानियाँ थीं। वे असाधारण (रूप आदि से युक्त) तथा विख्यात थीं। उनकी वे धर्मपत्नियाँ (आचरण आदि में) विशुद्ध (निर्मल, पवित्र) थीं। उनके नामों की व्याख्या को ध्यान से सुनिए। ज्येष्ठ रानी कौशल्या (मूर्तिमती) सद्विद्या थी। (मझली रानी) सुमित्रा शुद्ध बुद्धि (-स्वरूपा) थी; तो (तीसरी तथा कनिष्ठ रानी) कैकेयी (साक्षात्) अविद्या (अर्थात्, अज्ञान स्वरूपा माया) थी। मन्थरा रूपी कुविद्या उसके पास (दासी के रूप में रहती) थी। (आगे चलकर) आदि (-ब्रह्म-) मूर्ति भगवान् विष्णु (राजा दशरथ से) जन्म ग्रहण करनेवाले थे; (परन्तु तब तक) उसके पहले, नृपति दशरथ के कोई संतान नहीं (उत्पन्न हुई) थी। इस पुत्र-हीन स्थिति में राजा पुत्र-प्राप्ति के लिए उत्कण्ठित थे। राज-भुवन (प्रासाद) उन्हें सुख प्रदान नहीं कर रहा था। सिंहासन (राजपद, राज्य) उन्हें सुख प्रदान नहीं कर रहा था। भोग-स्थान (सुखोपभोग जहाँ किया जाता है, वे स्थान अथवा सुखोपभोग के विषय) उन्हें सुख प्रदान नहीं कर रहे थे। आभूषण तथा (उत्तम) वस्त्र उन्हें सुख प्रदान नहीं कर रहे थे। मैथुन-भोग तथा स्त्री उन्हें सुख प्रदान नहीं कर सकते थे। राजा (दशरथ) मन में (सुख के) उपभोग के प्रति विरक्त हो गए थे। इसीलिए तो रघुनाथ राम उनसे जन्म ग्रहण करनेवाले थे। जो (मनुष्य) अत्यन्त विषयासक्त होता है, उसे भगवान् स्पर्श तक नहीं करते। जिस प्रकार अन्धा (बालक) अपने पिता को देख नहीं सकता, उसी प्रकार विषयी अर्थात् भोग्य वस्तुओं के प्रति आसक्त मनुष्य भगवान् को नहीं जान सकते। (वस्तुतः) वही उनका प्रतिपालन-कर्ता होता है। फिर भी उन्हें ज्ञान-दृष्टि से युक्त स्थिति प्राप्त नहीं होती (उसका ज्ञान नहीं होता)। दशरथ को जन-स्थान अर्थात् लोगों के निवास-स्थान (नगर) में चैन नहीं आता था। (अतः एक दिन) वे मृगया के

लिए वन के अन्दर जा निकले। वे (वन में) एकाकी होकर (अकेले) विचरण करते रहे, उन्हें निर्जन स्थान में रहना अच्छा लग रहा था। दूसरे प्राणी का अविवेक से वध करना दशरथ को बिलकुल अच्छा नहीं लगता था उस स्थिति में रघुनाथ (रघुकुलोत्पन्न राजा) दशरथ हृदय में व्याकुल हो उठे (फलत:) वे सब अर्थों में (पूर्णत:) विरक्त हो गए। (उस स्थिति में) वे वन में अकेले विचरण करते रहे वे वन्य फलों का आहार करते थे। उन्हें उन दिनों राजोचित उपभोग, आदर-सत्कार अच्छा नहीं लगता था। वे पुत्र प्राप्ति की कामना (विचार) में बहुत तल्लीन हो गए।

श्रवण की कथा– जैसी होनी, वैसी बुद्धि (मौयत)। राजा दशरथ ने रात के समय मृगया आरम्भ की वे मृगया के लिए सुसज्जित हो गए। उन्होंने अँधेरे में श्रवण का वध किया। उसके कन्धे पर काँवर में उसके माता-पिता (बैठे हुए) थे। लोक में यह जनवार्ता (प्रचलित) है कि श्रवण द्वारा माता-पिता को काँवर में (बैठाकर दूर) रख दिये जाने पर उनका वध हुआ। परन्तु (वस्तुत:) यह तो भ्रमपूर्ण कथा है। यह माता-पिता को कभी भी दूर नहीं रखता था। यह वार्ता मिथ्या है कि उसने अपने अन्धे माता-पिता को झाड़ी-झुरमुट में रख दिया था। वह (माता-) पिता (वाली काँवर) को कन्धे पर रखे हुए पानी के लिए वहाँ आ गया था। (पानी भरने के लिए अपने) कमण्डलु (को पानी में डालने पर उस) के बुडबुड़ शब्द से उस जलाशय (के जल) में ध्वनि उत्पन्न हुई। राजा दशरथ विशुद्ध (सच्चे) शब्द-वेधी (बिना प्रत्यक्ष देखे, ऐसे लक्ष्य का बाण से वेध करने में निपुण थे, जहाँ से कोई शब्द उत्पन्न होकर सुनायी दिया हो) थे। उन्होंने (तत्क्षण) उस शब्द से सूचित लक्ष्य पर बाण से आघात किया। (शरीर पर) सम्पूर्णत: आघात हो जाने पर श्रवण क्या बोला (सुनिए)- 'मेरे द्वारा राम का स्मरण करते रहते, किस भाग्यवान का बाण आ गया (आकर लग गया) ?'। श्रवण को बाण लगने पर अपने माता-पिता का स्मरण नहीं होता रहा, उसे देह-ममता (अपनी देह का ममत्व-भाव से ज्ञान) का अनुभव नहीं हो रहा था उसने राम का स्मरण करते-करते देह को त्यज दिया। (मृत्यु के समय) उसके अंत:करण में श्रीराम का स्मरण (चल रहा) था। यह परम भाग्य (की बात) है, कल्याण (-प्रद) है, उसके लिए (वस्तुत:) वह बाण नहीं था, वह तो पूर्णब्रह्म (-स्वरूप) था। (पूर्णब्रह्म राम का) स्मरण करते हुए उसने प्राणों को त्यज दिया। श्रवण के शब्दों को सुनकर दशरथ स्वयं बोले- 'किस साधु पुरुष का यह वचन है ? (उसके द्वारा उच्चारित) राम-नाम (के श्रवण) ने मेरे पाप का सम्पूर्ण निर्दलन कर डाला'। श्रीराम का नाम स्वयं सुनने से राजा को ब्रह्म-हत्या कोई बाधा नहीं पहुँचा सकी। (इधर) राम का स्मरण करते हुए देह को त्याग देने से श्रवण को नित्य (सदा के लिए) मुक्ति प्राप्त हुई। राम-नाम (के श्रवण, उच्चारण आदि) से मनुष्य नित्य शुद्ध (पाप आदि दोष से रहित) हो जाता है। (उस राम-नाम के बल पर उधर) एक (श्रवण) मुक्त हो गया, तो (इधर) एक (दशरथ) पापातीत (पाप से मुक्त) हो गया राम-नाम से दशरथ ब्रह्म-हत्या (के पाप) से अति अलिप्त (पूर्णत: अछूता, मुक्त) हो गए। जब दशरथ ने वहाँ आकर देखा, तो (उन्हें दिखायी दिया कि) श्रवण बाण से बींधा हुआ था, उसके माता-पिता ने पुत्र-मोह से राजा को झट से (यह) अभिशाप दिया। 'हमें' तुमने पुत्र (का वध करके) दु:ख दिया। (अत:) तुम भी पुत्र-शोक को प्राप्त हो जाओगे'। राजा को (यह सुनकर इस विचार से) उस अभिशाप से परम हर्ष हुआ कि मैं (निश्चय ही) पुत्र-मुख देखूँगा। ब्राह्मण द्वारा दिया हुआ अभिशाप व्यर्थ नहीं हो जाता। मैं निश्चय ही पुत्र को प्राप्त हो जाऊँगा। (इस विचार से) दशरथ को परम आह्लाद अनुभव हुआ उसका आनन्द उनके चित्त में उमड़ उठा। (उन्हें जान पड़ा–) यह अभिशाप नहीं

है, परम अमृत है। अतः राजा का चित्त उल्लसित हो उठा। 'रघुनाथ राम मुझसे प्रकट हो आएँगे–' इससे यह अभिशाप दशरथ के लिए सुख-रूप प्रतीत हुआ। दशरथ ने इसका यह निर्धारित अर्थ माना कि अब ऐसा घटित हुआ, तो पुत्र उत्पन्न हुए (ही समझना चाहिए)। उनके हृदय में (इस विचार से) रघुनाथ राम संचरित हुए। इस कारण वे (तत्काल) दुःख रहित हो गए। ऐसा दारुण अभिशाप देने के पश्चात्, (श्रवण के माता-पिता) दोनों ने प्राणों को त्यज दिया। (तदनन्तर) राजा ने उन तीनों को अग्नि-दान देकर (उनका दाह-संस्कार करके) उनकी उत्तर-क्रिया करवायी।

श्रवण की पूर्वजन्म-कथा– (पूर्वकाल में) जलचर पक्षियों का एक युग्म (जोड़ा एक जलाशय में रहता) था। उन (पक्षियों) की एक मछली से मित्रता थी। उन तीनों को एक ही समय पर मृत्यु की अवस्था प्राप्त हुई। यह उनका (अर्थात् श्रवण तथा उसके माता-पिता का) पूर्वजन्म था। (बात यह है– जिसमें वे पक्षी और वह मत्स्य रहते थे) उस सरोवर को सूखता हुआ देखकर एक ठण्डी रात उस मकर (मत्स्य) को (अपनी-अपनी) चोंच के बल पकड़कर वे दोनों (पक्षी) स्नेह-पूर्वक अथाह जल के (स्थान के) प्रति ले जाने लगे। तब मार्ग में एक नव-खण्ड (अर्थात् नौ खण्डों में फैला हुआ, अति विशाल) वन था। उसमें से एक बाँस का काण्ड बहुत ऊँचा उभरा हुआ था। उसके नोकदार (पैने) अग्र के उस मत्स्य को लगते ही वह दो-खण्ड होकर धरती पर गिर पड़ा; उससे उन दोनों गिद्ध पक्षियों ने दुःख को प्राप्त होकर उस कारण अपनी-अपनी देह को त्यज दिया। उन तीनों ने ही पूर्वजन्म के इस सम्बन्ध के योग से (फल-स्वरूप) नर-देहों को धारण किया। वही मत्स्य इस लोक में श्रवण (के रूप में उत्पन्न) था; वे पक्षी उसके जनक-जननी (हो गये) थे। वे तीनों (पूर्वजन्म की भाँति इस नर जन्म में भी) एक ही समय मृत्यु को प्राप्त हुए। (उनके विषय में) पुराणों में (कही हुई) मूल कथा ऐसी है।

ब्रह्म-हत्या का परिणाम– राम-नाम (के प्रभाव) से राजा दशरथ (ब्रह्महत्या के पाप-) दोष से मुक्त हो गए; फिर भी, लोक में प्रचलित कर्ममार्ग शास्त्र की दृष्टि से (पाप-क्षालन के हेतु) उन्होंने गुरु वसिष्ठ द्वारा निर्धारित विधान के अनुसार अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किया। ब्रह्म-हत्या के पाप-रूपी कलंक को धोकर दूर करने के लिए राजा दशरथ ने अश्वमेध यज्ञ किया। उससे वे पूर्णतः शुद्ध (पाप-मुक्त) हो गए। फिर भी उनके राज्य में अकाल (अवर्षण, सूखा) पड़ गया। (शास्त्र- संकेत यह है कि) जिस राज्य में ब्रह्म-हत्या होती है, उस राज्य में वर्षा नहीं होती। (उधर) दैत्यगुरु शुक्र ने जलराशि (अर्थात् मेघ-घटा) को पकड़कर (रोक) रखा। (अतः) बहुत समय तक (अवर्षण के कारण) सूखा पड़ गया। घास का तिनका (तक) नहीं मिल रहा था। गरमी से झाड़-झंखाड़ झुलसकर जल गए। वृक्ष अग्र भाग में सूख गए। नदियों के जल-स्रोत शुष्क हो गए। घर-घर प्रजा रो रही थी। गायें (पीड़ा से) रँभा-चिल्ला रही थीं। ब्राह्मणों के नित्यकर्म धरे रह गए, अर्थात् नहीं हो सकते थे। पृथ्वी पर प्राणी-मात्र (समस्त प्राणी) हाहाकार करने लगे।

दशरथ का दैत्य शुक्राचार्य से युद्ध– प्राणियों की ऐसी दशा को देखकर राजा दशरथ मन में करुणा को प्राप्त हुए। (उन्हें विदित हुआ कि) शुक्र ने जलराशि (जल-युक्त मेघ-समूह) को पकड़ रखा था। (अतः) वे (उसको मुक्त करने हेतु) उससे युद्ध करने के लिए चले। दशरथ की कैसी (अद्भुत) शक्ति थी ? उन्होंने रथ को स्वर्ग की ओर चलाना आरम्भ किया। (उस समय) राजा के साथ कैकेयी भी चली। उसे ठहराने पर भी उससे (घर पर) नहीं रहा जा रहा था। (वह बोली-) 'आप स्वर्ग के प्रति जाएँगे, तो मैं भी (आपके साथ चलकर) स्वर्ग-सम्पत्ति को देखूँगी'। (यह देखकर) वसिष्ठ होनी को

जानकर बोले 'इसे अवश्य ले जाइए' राजा को उससे अति प्रीति थी। (अत: उसकी बात मानकर) उन्होंने उसे प्रीति-पूर्वक रथ में बैठा लिया। (अनन्तर) राजा दशरथ क्षणार्द्ध में युद्ध के लिए इन्द्रलोक आ गए। श्रीराम जनक दशरथ परम (महान) योद्धा थे। उन्हें देखकर शुक्र ने आतंक अनुभव किया। अनेक (प्रकार के) सेना दल उसकी सहायता करने के लिए (सिद्ध हो गये) थे। दशरथ ने (युद्ध में) एक-एक (योद्धा) को बाण से कील डाला। दैत्यराज वृषपर्वा तेजोराशि था। राजा दशरथ ने (उससे लड़ते हुए) उसे रथहीन बना दिया और उसके मुकुट को भूमि पर गिराते हुए उसे खुले बालों (नंगे सिर) भगा दिया। वृषपर्वा नामक जो दैत्यराज था, वह युद्ध में घायल एवं जर्जर हो गया। यह देखकर समस्त दैत्य-सेना कूँथती कराहती हुई उस घमासान लड़ाई में से भाग गयी। दैत्यगुरु शुक्र ने अनेक लड़ाइयाँ लड़ी थीं। (वह बहुत अभ्यस्त योद्धा था)। दशरथ भी अति अमोघ शस्त्रधारी, अचूक आघात करनेवाले योद्धा थे। देखिए, सिंह का-सा गर्जन करते हुए वे शुक्राचार्य के सामने लपक गए। शुक्राचार्य ने एक अद्भुत बात की- उसने राजा दशरथ के रथ के धुरे को तीर से छेद डाला। तो देखिए कैकेयी ने (यह देखकर बेहिचक) उसमें अपना हाथ डाला (और रथ को गिरने से बचा लिया) इससे राजा दशरथ युद्ध से विमुख नहीं हुए। (वस्तुत: इसका यह कारण था कि) दशरथ (के हृदय) में श्रीराम का प्रताप (तेज) था। उससे शुक्राचार्य की आँखें आच्छादित हो उठीं (चौंधिया गईं)। इसलिए वह आतंक से तत्काल भागने लगा। उसने युद्ध-भूमि में (प्रतिद्वन्द्वी से) पीठ फेरी।

दशरथ की विजय– शुक्राचार्य ब्राह्मण थे, इसलिए राजा दशरथ ने हाथ रोक लिया। नहीं तो वे उसको तत्काल मार डालते। वे इस प्रकार विजेता हो गए, तो देवा नरों का अद्भुत हर्ष हो गया जब जलाशय (मेघघटा में संचित जल) मुक्त हो गया, तो उससे तत्काल वर्षा हो गई। फलत: गायों का संकट नष्ट हुआ। ब्राह्मणों ने उसी समय यज्ञ करना आरम्भ किया। स्वाहा कार, स्वधा-कार (स्वाहा, स्वधा शब्दों से युक्त) मंत्रों का पाठ चलने लगा। उससे देव और पितर आनन्दित हुए और उन्होंने दशरथ राजा पर पुष्प-राशियाँ बरसा दीं उन सबने जय जयकार किया। तब इन्द्र को अपार हर्ष हुआ। बड़े बड़े दैत्यों को (राजा दशरथ ने) पराजित कर दिया। उससे देवराज इन्द्र सन्तुष्ट हो गया। इन्द्र ने राजा दशरथ को अनगिनत दिव्य वस्त्र और आभूषण प्रदान किये और उनका बड़ा सम्मान किया, समस्त देव तुष्ट हो गए राजा दशरथ ने दैत्यगुरु शुक्राचार्य को पराजित किया। अत: देवगुरु बृहस्पति को अति आनन्द हो गया उन्होंने दशरथ का सम्मान किया और अतिशय आनन्द के साथ उन्हें गले लगा लिया।

बृहस्पति द्वारा दशरथ को वरदान– फिर वर दाता देवगुरु बृहस्पति बोले- 'हे नृपवर , यह निश्चय ही समझ लीजिए कि जो-जो आप की मनोकामनाएँ हैं, वे सब सिद्धि को प्राप्त हो जाएँगी। जिससे आपके पुत्र उत्पन्न होंगे, वह श्रेष्ठ उपाय मैं आपको बता दूँगा। आप अयोध्या में ऋषि विभाण्डक के करो द्वारा पुत्रकामेष्टि यज्ञ करा लें। विभाण्डक ऋषि नित्य वन में निवास करते हैं। वे आपको मिलने (का अवसर) नहीं देंगे उनके मृगी से उत्पन्न एक पुत्र हैं। उनका नाम ऋष्यशृंग है उन्हें प्रमदाओं के काम-मद (काम विकार) से आकर्षित करके छल प्रपंच से नगर में लिवा लाइए उनके आते ही आप उनका विवाह अपनी कन्या से करा लें। हे राजा, आपके कोई संतान नहीं है। इसलिए आपके अपने मित्र राजा शान्तनु ने आपको अपनी रत्न सी कन्या प्रदान की। उसी शान्ता नामक अपनी (पोष्या, मुँह-बोली) कन्या से उनका विवाह सम्पन्न करा दें'। (यह सुनकर) इन्द्र ने दशरथ से कहा '(विभाण्डक के पुत्र) ऋष्यशृंग को लिवा लाने के लिए मैं आपके पास अप्सराओं को भेज दूँगा। वे उन्हें (काम-मोहित करके) तत्काल ले आएँगी'।

राजा दशरथ द्वारा कैकेयी को वर देना– कैकेयी ने युद्धभूमि में रथ के अक्षस्थान में अपना हाथ टिका दिया (और उसे टूटने से बचा लिया) था। इससे राजा दशरथ कैकेयी से बहुत सन्तुष्ट अर्थात् प्रसन्न हो गए थे। अतः वे उससे बोले– 'तुम जो-जो माँग लोगी, वही मैं तुम्हें दे दूँगा'। इस प्रकार राजा दशरथ ने उसे अभिवचन दिया। तब वह स्वयं बोली– 'आपके होते हुए मुझे क्या बात अधूरी (क्या कमी) है ? मैं आप ही के कारण दिव्य आभूषण, स्वर्ग (-सुख) आदि का स्वयं उपभोग कर रही हूँ। कल्पतरु और पारिजात के फूलों की मालाएँ आप ही के कारण मेरे गले में शोभायमान हैं। मैं आप ही के कारण स्वर्ग-सुख के आनन्द (-उत्सव) का बहुत आसानी से उपभोग कर रही हूँ। मैं इसी (मर्त्य) शरीर से स्वयं आप ही के कारण स्वर्ग-लोक (का आनन्द लूट रही हूँ) में रह रही हूँ। आपके होते हुए मुझे क्या कमी है ? मैं आप ही के कारण सुख-सम्पन्न हूँ'। फिर हँसते मुस्कराते हुए वह राजा से बोली– 'आपने मुझे (जो) वचन दिया है, वह मैं समय विशेष पर माँग लूँगी। जैसे समय अनुकूल होगा, वैसे माँग लूँगी'। तो राजा ने कहा - 'मेरा यह वचन सत्य होगा। मेरा यह कथन वरदान है। समझ लो कि जब तुम स्वयं माँग लोगी, तब मैं तत्काल (तुम्हारी माँगी हुई बात) दूँगा'।

राजा दशरथ की कीर्ति का इस प्रकार देव स्वर्ग में बखान किया करते थे. दिग्गज (दिक्पाल) दिशाओं के अन्त तक उसका वर्णन किया करते थे। इस प्रकार दशरथ की कीर्ति त्रिभुवन में विस्तार को प्राप्त हो गई। देव स्वर्गलोक में दशरथ की सफलता, कीर्ति, उदारता, गुण, गाम्भीर्य (गुणों की अथाह गरिमा), अत्यधिक धैर्य, वीरता और शूरता की सराहना करते थे। देवों के लिए दैत्यगुरु शुक्राचार्य अजेय (दुर्दम्य) था। फिर भी राजा दशरथ ने उसके ऐसे श्रेष्ठ प्रताप का हरण किया। इस प्रकार श्रेष्ठ योद्धा के रूप में वीर दशरथ की कीर्ति का पाठ (नित्य प्रति) त्रिभुवन में चलता रहा। (भविष्य काल में) उनके रघुनाथ राम नामक पुत्र उत्पन्न होनेवाला था। इसलिए समस्त सम्पदाएँ यहीं (उनके पास, उनमें) आ गई थीं। समस्त स्त्रियाँ अर्थात् वैभव उनमें विराजमान थीं। इसलिए राजा दशरथ (सच्चे अर्थों में) श्री-मान् (सिद्ध हो गए) थे। इन्द्र ने राजा दशरथ को स्वर्ग लोक में बहुत समय तक ठहरा दिया। उनके प्रति इन्द्र में प्रीति की बहुत बड़ी बाढ़ आयी थी। अतः उसने उन्हें समस्त प्रकार के दिव्य (पदार्थों, सुखों के) उपभोग करा दिये।

अयोध्या में दशरथ का अद्भुत स्वागत– बहुत सम्मान एवं ऐश्वर्य के साथ राजा दशरथ अयोध्या में लौट आये। (लोगों ने उनके स्वागत के लिए) चारों ओर झाँकियाँ बना दीं, तोरण (बन्दनवार) सजा दिए। उन्होंने घर घर ध्वज खड़े कराकर फहरा दिये। वे पग-पग पर राजा की आरतियाँ उतार रहे थे। बन्दी जन उनकी कीर्ति का गान कर रहे थे और धन-धान्य निछावर कर रहे थे। ब्राह्मणों ने शान्ति मंत्र का पठन शुरू कर दिया। भाट जन ऊँचे स्वर में गरज-गरज कर कीर्तिगान करते थे। बड़ी भीड़भाड़ मचाते हुए नर-नारियाँ उनके दर्शन कर रहे थे। उन्होंने राजा के पदमार्ग पर पाँवड़े बिछाये थे। कवि कहता है कि वस्तुतः राजा दशरथ का प्रताप अथाह था। (फिर भी) समझिए कि मैंने थोड़ा-सा ही (संक्षेप में ही) कहा है। क्योंकि समस्त बातों का विवरण समाविष्ट करने पर कथा असाधारण रूप में विस्तार को प्राप्त हो जाएगी। (वस्तुतः) ग्रंथ को अति विशाल न बनने दें, उसमें मुख्य अर्थयुक्त बात ही कही जाए। उसके पद-पद में परमार्थ का निर्देश किया जाए। कवि के अपने कृतित्व में मतलब की (महत्वपूर्ण) बात (लक्षण) यही होनी चाहिए। मैं (कवि) एकनाथ (अपने गुरु) श्री जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित

हूँ। मेरे द्वारा कही जाने वाली राजा दशरथ के प्रताप के लक्षणों (परिचय) की यह कथा यहाँ पूर्ण हुई. अब श्रीराम के आगमन (जन्म) की कथा सुनिए।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ-कृत 'श्रीभावार्थ-रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत बालकाण्ड का 'दशरथ-विजयाभिगमन' शीर्षक प्रथम अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय २

[ऋष्यशृंग का अयोध्या में आगमन; पुत्र-कामेष्टि यज्ञ; यज्ञदेवता द्वारा दिये हुए पायस का विभाजन]

कोशल देश की सुसम्पन्नता– राजा दशरथ ने अपने समस्त राज्य को देखा, तो (उन्हें दिखायी दिया कि) तब (जीवित रहने के लिए तब तक चला हुआ) संघर्ष, दुःख तथा अकाल (सूखे से उत्पन्न दुःख) नष्ट हो गया था उन्होंने सर्वत्र अच्छी स्थिति (आवश्यक वस्तुओं की बहुतायत) देखी. जो वृक्ष फलहीन थे, वे फलयुक्त हो गए थे। प्रजा आन्तरिक आनन्द (से) विभोर थी गायों और गोपालों को बड़ा आनन्द हो रहा था। घर-घर अग्निहोत्र चल रहे थे। समस्त पृथ्वी धन और अनाज से भरीपूरी (परिपूर्ण) थी किसी को भी दुःख एवं दीनता (दरिद्रता) अनुभव नहीं हो रही थी। घर-घर वेदों का अध्ययन चल रहा था, हरि कीर्तन और हरि-भक्ति चल रही थी। अहो ! भूमि पर भगवान् राघव राम अवतरित होनेवाले हैं। इसलिए (देवों ने) वैकुण्ठ लोक का समस्त वैभव आगे (धरती पर) भेज दिया था। इससे अयोध्यानगरी को अभूतपूर्व शोभा प्राप्त हुई थी।

इन्द्र की अप्सराओं का अयोध्या में आगमन– राजा दशरथ सिंहासन पर शोभा को प्राप्त हुए थे। राजभुवन में बहुत आनन्द छा गया था। (वस्तुतः) दशरथ के इस प्रकार सम्मानित होने और देश के समृद्धि को प्राप्त हो जाने से) आनन्द त्रिभुवन में समा नहीं रहा था। उस समय स्वर्गलोक से देवांगनाएँ (अप्सराएँ) वहाँ आ गईं। उन्होंने राजा को नमस्कार किया और कहा- 'हमें महाराज इन्द्र ने आपके पास भेज दिया है। हमें आपकी क्या आज्ञा है ? जो कार्य करना हो, हमें उसके लिए आप (आदेश द्वारा) प्रेरित करें' यह सुनकर राजा दशरथ उन अप्सराओं से बोले- 'ऋषि ऋष्यशृंग को मोहित करके ले आओ यह (बात उनके पिता ऋषि) विभाण्डक को विदित न होने देना इस कार्य को बिना किसी त्रुटि के सिद्ध कर देना'।

अप्सराओं को देखते ही ऋष्यशृंग का विचित्र स्थिति को प्राप्त होना– विभाण्डक तप आदि के अनुष्ठान के लिए जब चले गये, तो ऋष्यशृंग गुफा में अकेले रह गए (यह देखकर कामोद्दीपक) हाव-भाव से युक्त वे प्रमदाएँ उनके पास आ गयीं। उन्हें आँखों से देखते ही ऋष्यशृंग ने अपनी पर्णकुटी छोड़ दी। उन अप्सराओं की आँखों से आँखों के मिलते ही, देखते ही वे हिरन की-सी भयाकुल मनोदशा से तत्काल भागने लगे। वे (बार-बार) मुँह फेरकर पीछे देख रहे थे; बारबार मानों लौटकर उनकी ओर देख रहे थे। फिर वेगपूर्वक आगे दौड़ते जाते थे; पूरा बल लगाते हुए उड़ान भर रहे थे (तदनन्तर) उन्होंने दूर से ही अपनी आँखों से देखा और सोचा कि फिर उनसे कैसे भेंट होगी।

बोलने की बातें ही कट गयीं (अब उनसे बात करना तो दूर !)। वे मृग की- सी चपलता चंचलता के कारण आँखें भी नहीं मिला रहे थे। (कुछ समय के पश्चात्) जब विभाण्डक के लौटने का समय हो गया, तो वे सब प्रमदाएँ चली गयीं। (इधर) ऋष्यशृंग बहुत व्याकुल हो उठे और तत्काल अपनी गुफा में लौट आये। अपने पिता की सेवा करते समय उनके मन में उन अप्सराओं का स्मरण हो रहा था। उन्हें लगता, कैसे (अद्भुत) तापस पधारे थे। (इस विचार से) वे ऋषिवर (मन में) दुःख से छटपटा रहे थे (यह देखकर) पिता विभाण्डक ने अपने पुत्र से पूछा– 'तुम मन में आज चिन्तातुर क्यों हो।' वे बोले- 'आप से मिलने के लिए तापस आये थे। वे बड़े सत्पुरुष (जान पड़ते) थे। उनकी जटाओं में चिकनाहट थी। उनके अंग (-अंग) मनोहारी, उज्ज्वल थे। मेरे (यहाँ से) भाग जाते ही वे उसी समय झट से ओझल हो गये। मैंने उनके (ठीक से) दर्शन नहीं किये। मैंने व्यर्थ ही पलायन किया। फिर भी मुझे क्षण-क्षण उनका स्मरण हो रहा है। इसलिए मैं उन्हीं के (स्मरण के) कारण पूर्णतः उद्वेग को प्राप्त हो गया हूँ।' फिर भी उन्होंने अपने मन की बात नहीं कही। (वस्तुतः) उनके अपने मन में उनके प्रति लगाव हो गया था। (लगता था, मेरी उनसे कब भेंट होगी ?) उन्हें मन में बड़ी चिन्ता एवं पछतावा इस विचार से अनुभव हो रहा था। (उन्हें लगता था-) जब आश्रम में अतिथि आते हैं, तब उनका बड़े प्रेम से पूजन किया जाए। परन्तु मैं तो देह-गत भय और दुर्बलता के कारण, इस कर्तव्य-पूर्ति से वंचित हो चुका हूँ। अब मुझसे उनकी भक्ति (पूर्वक सेवा) नहीं हो पाएगी। मैंने उनसे यह नहीं पूछा कि उनका यहाँ आगमन कैसे हुआ; मैं उनके स्वागत-सम्मान हेतु उठकर खड़ा भी नहीं हो गया। मैंने उनका विधिवत् पूजन (यथाविधि पूजनकर्म) तक नहीं किया। अहो ! मैंने उन सज्जनों को विमुख कर दिया (बिना आतिथ्य किये लौटा दिया)। मैंने न उनका नमन किया, न ही उनसे कोई मृदु-मधुर बात कही। मैं अपनी देह के लोभ के कारण (लाभ से) पूर्णतः वंचित हो गया। मैंने सज्जनों को विमुख कर दिया (बिना आतिथ्य किये लौटा दिया)। अब यदि फिर से उनसे भेंट हो जाय, तो मैं उनसे गुह्य-गूढ़ (मेरी अपनी समझ में न आनेवाली) बातें पूछ लूँगा। उनके प्रति मेरे मन में बड़ी चाहत हो गयी है। मैं उन्हें अपनी आँखों से कब देख सकूँगा- इस प्रकार छटपटाहट अनुभव करते रहते, सवेरा हो गया। विभाण्डक ऋषि तप-अनुष्ठानशील थे। अतः वे तत्काल स्नान के लिए चले गये।

ऋष्यशृंग का मोह-जाल में फँस जाना– (ऋषिवर विभाण्डक के) पुत्र ऋष्यशृंग को पर्णकुटी में अकेले स्थित देखकर वे प्रमदाएँ तत्काल लौट आयीं। उन्हें अपनी आँखों से (आयी) देखकर वे (ऋष्यशृंग) उनसे बात करने में भय से हिचक रहे थे। (फिर भी) वे धैर्य धारण करके खड़े हो गए। अपने मृग के-से (चंचल-कायर) स्वभाव के कारण (भाग जाने की इच्छा से) वे पीछे मुड़ गए। परन्तु लगाव के कारण (फिर) अटक गए (रुक गये)। साथ ही वे समझते हुए धैर्यहीन हो गए। (उस समय) उन अप्सराओं ने वीणा पर झनकार किया (वीणा के तारों को छेड़ना आरम्भ किया)। वह स्वर उन (ऋष्यशृंग) के कानों में संचरित हुआ, तो उनके अन्तःकरण में (उनके प्रति) मोह उत्पन्न हुआ। वे अपना आना-जाना भूल गए। जिस प्रकार कोई बहेलिया मृग के मन को मधुर स्वर से मोहित करके पाश में डाल देता है। (उलझा देता है), उसी प्रकार वे (ऋष्यशृंग वीणा के मधुर स्वर को सुनकर) वैसी ही (मन्त्र-मुग्ध) अवस्था को प्राप्त हो गए। उन्होंने कर्ण-पुटों को खड़ा कर दिया (उनके कान खड़े हो गये, वे अति ध्यान से सुनने के लिए अधीर हो उठे)। गरदन को उठाकर (ऊपर देखकर) उन्होंने उन स्त्रियों को दृष्टि (ध्यान) से देखकर अपना गला उनके गले में डाल दिया (वे उनके गले लग गये)।

ऋष्यशृंग का अप्सराओं के अधीन हो जाना– मृग का स्वभाव है - नाद के पूर्णतः अधीन हो जाना। (उसी प्रकार, ऋष्यशृंग जो मृगी के पुत्र थे, अप्सराओं और वादन तथा गायन के स्वर के पूर्णतः अधीन हो गये और) वे जैसे-जैसे गायन को सुनते रहे, वैसे-वैसे स्वयं (विमोहित होकर मंत्र-मुग्ध-से) नाचने लगे। (उन्होंने पूछा–) 'आपका कौन निवास-स्थान है ? आपका किस हेतु यहाँ आगमन हुआ है ? आपके हृदय में कौन व्यथा है ? आपके गण्ड अतितीक्ष्ण (नुकीले शिखर वाले, उत्तुंग) दिखायी दे रहे हैं'। (यह सुनकर अप्सराएँ बोलीं-) ''आपके सिर पर तीक्ष्ण (पैने, लम्बे) सींग हैं, इसलिए आपका नाम 'ऋष्यशृंग' है। (इधर) हमारे हृदय (स्थल) पर तीक्ष्ण (उत्तुंग ऊँचे) गण्ड हैं। इसलिए समझिए कि हमें 'गण्डऋषि' कहते हैं हमारा (निवास) स्थान 'रति-रमण' (कहाता) है। अहो, यहाँ का जीवन (जल) चखकर तो देखिए।'' ऐसा कहकर उन्होंने उनका चुम्बन किया और उन्हें अधरामृत का पान करा दिया। (वे बोलीं-) ''हमारा अनुष्ठान 'सर्वांग-सिद्ध' है (समस्त अंगों से सिद्ध किया जानेवाला है) हमारे गण्डों को स्पर्श करने से सुख और सन्तोष प्राप्त हो जाता है।'' यह कहकर उन्होंने उनका आलिंगन किया। 'यह है हमारे वन का परिपक्व फल'– ऐसा कहकर उन्होंने उनको शक्कर के लड्डू दिये 'इस वन में यह सुख नहीं है (ऐसा फल देनेवाला) अनुष्ठान अतिदुर्लभ है। यह है हमारी समाधि अवस्था' कहकर उन्होंने रति-मुद्रा धारण की और उन्हें (ऋष्यशृंग को) रति-आसन (सम्भोगासन) में बैठा लिया तो वे उनके वशवर्ती (पूरे अंकित, अधीन) हो गए। (फलस्वरूप) वे (ब्रह्मचर्य-) आश्रम की स्थिति को भूल गए। वे अपनी गति को भूल गए। वे निश्चय ही यह भूल गए कि (उस स्थिति से) लौटकर फिर पीछे आ जाएँ। वे सन्ध्या स्नान को भूल गए; वे अनुष्ठान को भूल गए। वे जप और ध्यान को भूल गए और गमनागमन (अर्थात् कहाँ जाएँ– कहाँ नहीं जाएँ, किसका संग करें किसका नहीं करें आदि) को भूल गए। वे स्थिति गति (क्या स्थिर-स्थायी, क्या अस्थिर अस्थायी है, इस) को भूल गए। वे प्राप्ति-अप्राप्ति (लाभ और हानि) को भूल गए। वे पितृ भक्ति को भूल गये और उन स्त्रियों के अधीन होकर (व्यवहार करते हुए) रह गये। वे अपनी अवस्था को भूल गए; वे अपने स्वार्थ (अभीष्ट अर्थ, लाभ, उद्देश्य) को भूल गए। वे अपने पिता को भूल गए इस प्रकार उन स्त्रियों ने उन्हें सचमुच अपने अधीन कर लिया। वे वेदाध्ययन को भूल गए; वे शास्त्र-पठन को भूल गए। वे 'मैं'- 'तू' (के अन्तर) को भूल गए (अपने-पराये के अन्तर को भूल गए। वे यह भूल गए कि मैं स्वयं कौन हूँ)। वे (इस प्रकार पूर्णतः) स्त्रियों के अधीन हो गए।

स्त्री-संगति का परिणाम– स्त्रियों की क्षणार्द्ध की संगति (का प्रभाव ऐसा होता है कि उस) से (ऋष्यशृंग जैसा) वनवासी (तापस) भी उनका वशवर्ती हो जाता है। फिर जो स्त्रियों की नित्य सेवा करते रहते हैं, उनकी मुक्ति किस प्रकार हो सकती है। स्त्रियों ने वन में रहने, तपस्या करने वालों को अपने वश (अंकित) कर लिया है। स्त्रियों ने ग्राम में रहनेवाले, अर्थात् घर गृहस्थी करने वालों को अपने सेवक बना लिया है। स्त्रियों के पास (रहने से) नाश (अधःपात) हो जाता है। स्त्रियों की संगति से मुक्ति (के मार्ग, साधन आदि) का नाश हो जाता है। स्त्रियों का जो दर्शन, स्पर्शन है, स्त्रियों का जो भाषण है, स्त्रियों का जो स्मरण है, वह नाशकारी होता है। (फिर) स्त्री संग तो सम्पूर्ण अधःपात (कराता) है। (अतः) स्त्रियों की न संगति (करनी) चाहिए; स्त्रियों से न एकान्त में बात करनी चाहिए, स्त्रियों के प्रति कोई कामना न करनी चाहिए, उससे पुरुष का विनाश (अधःपात) हो जाता है। इस प्रकार स्त्रियों की संगति (हानिकारिणी) होती है। ऋष्यशृंग स्त्रियों के प्रति मोहित होकर उनके अधीन हो गए, वे उनको निश्चयपूर्वक नगर में ले आयीं।

ऋष्यशृंग-शान्तना विवाह– वे ऋष्यशृंग को अयोध्या में ले आयीं। यह देखकर दशरथ को परम आह्लाद हुआ। उन्होंने नगर को सजवा लिया; चारों ओर ध्वजाएँ खड़ी करवा लीं। झाँकियाँ और तोरण (वन्दनवार) बनवाये; तिलक लगाये; समस्त लोगों को मालाएँ वस्त्र, आभूषण (धारण करने के लिए) दिये गायों और ग्वालों को सजवा लिया। यह साज-शृंगारयुक्त आनन्दोत्सव विभाण्डक द्वारा देखने के लिए (सम्पन्न किया जा रहा) था। गुरु वसिष्ठ ने ऋषियों और (नगर के अन्यान्य) सज्जनों को इकट्ठा करके लग्न (विवाह मुहूर्त) निर्धारित किया। उन्होंने ऋष्यशृंग को कन्या-दान देते हुए उनका शान्तना से मंगल-विवाह करा दिया। शान्तना के पिता राजा शान्तनु राजा दशरथ के जीव-प्राण (-से) मित्र थे। शान्तना के विवाह के लिए उन्हें (गुरु वसिष्ठ और राजा दशरथ) बुलाकर ले आए। राजा दशरथ (साक्षात्) भाग्य-निधि थे; तो कुलगुरु वसिष्ठ (मूर्तिमान) सद्बुद्धि थे। उन्होंने विवाह-होम सम्पन्न कराते हुए विवाह-विधि को समाप्त कराया। इस प्रकार का कार्य उन्होंने तीन बार संकल्प को शपथ-पूर्वक कहकर निर्धारित रूप से सफलता के साथ सिद्ध किया। (इधर जब) विभाण्डक ऋषि आश्रम आ गए, तो उन्होंने अपने पुत्र ऋष्यशृंग को (वहाँ) नहीं देखा (पाया)। (उन्हें पता चला कि) दशरथ उसे ठगकर ले गये, तो वे अति क्रोध के साथ चले। वे अयोध्या भूमि (के पास) आ गये तो उन्होंने देखा कि नगर को सजाया है। साजशृंगार से युक्त गायें और ग्वाले उन्हें मार्ग में मिल गए। वे समस्त पथिकों से मिले, उन्होंने ग्वालों से पूछा- 'मेरे बच्चे को ठगकर (राजा दशरथ) लाये हैं, तो इस नगर में यह कौन-सा समारोह (चल रहा) है'। (तब) उन्होंने ऐसा समाचार कहा- '(कोई) मृगी-सुत ऋष्यशृंग (ऋषि) हैं। दशरथजी ने उन्हें अपनी कन्या प्रदान की है। उस विवाह के निमित्त यह आनंद समारोह नगर में हो रहा है। विभाण्डकजी को निमंत्रण भेजा था, परन्तु वे वनवासी तपस्वी उनसे नहीं मिले। (अत:) दशरथ जी ने उल्लास के साथ विधि-युक्त विवाह करा लिया (जिससे मुहूर्त टल न जाय)'।

विभाण्डक ऋषि का संतुष्ट हो जाना– पुत्र के विवाह (के समाचार) को सुनकर विभाण्डक अति उल्लसित हो गए। उन्हें मन में संतोष हुआ। वे प्रसन्नता को प्राप्त हुए। (विभाण्डक के आगमन का समाचार सुनकर) राजा दशरथ वेगपूर्वक (उनकी अगवानी के लिए) सामने आ गए और दौड़कर उनके पाँव लगे, तो ऋषि ने उनका अति प्रीति से आलिंगन किया और कहा 'हे दशरथजी, साधु ! साधु !' साधु !'। समस्त अलंकार तथा आभूषण नवदम्पति को समर्पित किये देखकर विभाण्डक सुख के साथ सन्तुष्ट हुए। वे दशरथ के प्रति (भी प्रसन्न) सन्तुष्ट हुए। वे बोले– ''हे राजा, आपके जो-जो मनोरथ हैं, मैं उनको पूर्ण करूँगा''। यह कहते हुए वे आनन्द से युक्त हो गये। उनके इस पुत्र-प्रेम के कारण वे दशरथ को भी प्रिय हो गये। आसन विधि (-मंत्र) पढ़ते हुए उन्होंने ऋषिवर को उत्तम आसन प्रदान किया; उनका सोलह उपचारों से पूजन किया; उनके चरणों के तीर्थ-जल को पी लिया। ऋषि विभाण्डक भी राजा दशरथ पर प्रसन्न हो गए।

लोमपाद के राज्य में विभाण्डक द्वारा यज्ञ करना– राजा शान्तनु राजा दशरथ के बड़े (घनिष्ठ) मित्र थे। उन्हें लोमपाद कहते थे। उनके देश में अवर्षण (सूखा) पड़ा हुआ था। उन्होंने दशरथ से प्रार्थना की। 'मेरे पास विभाण्डकजी को (भेज) दीजिए। मैं उनसे पर्जन्येष्टि यज्ञ कराऊँगा। वे प्राणियों की (यज्ञविधि को सम्पन्न करके) पीड़ा का निवारण करेंगे, गायों ब्राह्मणों को सुखी कर देंगे'। दशरथ की मनोदशा उदार थी, वे अवंचक, अर्थात् किसी की वंचना न करनेवाले तथा अपने मित्रों के कार्य को पूर्ण करने के अभिलाषी थे (अत:) उन्होंने विभाण्डक से लोमपाद के कार्य को सम्पन्न करने के विषय में

निश्चयपूर्वक प्रार्थना की। तो विभाण्डक स्वयं प्रेम से बोले- 'मैं श्रद्धा-भाव से आपके अधीन हूँ। हे राजा, मैं आपके वचन (आदेश) का उल्लंघन नहीं करूँगा। मैं राजा लोमपाद के यज्ञ को सम्पन्न करूँगा'। (इसके अनुसार) विभाण्डक द्वारा यज्ञ करने पर राज्य में पानी बरसा। (फलस्वरूप) पृथ्वी तृण तथा धान्य से भरी-पूरी हो गयी, तो गो-ब्राह्मणों को आह्लाद हुआ। विभाण्डक का पूजन करके वे उन्हें दशरथ के पास ले आये। अयोध्या में ऋषि (विभाण्डक) के आते ही राजा ने यज्ञ का आरम्भ किया।

ऋष्यशृंग द्वारा पुत्रकामेष्टि यज्ञ सम्पन्न करना– वसिष्ठ श्रेष्ठ कुलगुरु थे; दूसरे विभाण्डक ऋषीश्वर थे (इधर) ऋष्यशृंग हर्ष-विभोर थे। उन्होंने यज्ञ-कार्य (करने के अनुरोध) को स्वीकार किया ऋष्यशृंग राजा से बोले- 'मैं आपको पुत्र प्रदान करूँगा'। ऐसा कहकर अति उल्लास से वे स्वयं यज्ञ करने लिए प्रवृत्त हो गए। अपने पिता का नमन करके और वसिष्ठ का तत्त्वतः वन्दन करके ऋष्यशृंग दशरथ के अपने उद्देश्य (की पूर्ति) के लिए यज्ञ करने लगे। कुण्ड, मण्डप और (यज्ञ-) वेदिका को सुलक्षणों से युक्त (विधि के अनुसार शुभसामग्री से युक्त) बनाया गया। 'इध्मा' (समिधाएँ) और 'बर्हि' (दर्भ) लाकर 'त्रिसन्धान' (तीन गाँठों से युक्त दर्भ-रज्जु) करके उन्होंने 'परिस्तरण' (दर्भ बिछा दिये) किया। (तदनन्तर) उन्होंने (यज्ञ-कुण्ड में) अग्नि की स्थापना की। 'प्रणीतापात्र' (यज्ञ कर्म में आवश्यक पात्र) परिपूर्ण (भरे हुए) थे 'आज्यस्थाली' (घी की थाली) सिद्ध थी। 'बर्हि-आस्तरण' (दर्भासन) तथा 'स्रुक् स्रुवा' (काठ के चम्मच) को परिमार्जित (धोकर स्वच्छ) किया (गया)। (तदनन्तर) उन्होंने यज्ञ की साधन-सामग्री का (मंत्र-पाठ करते हुए) अभिसिंचन किया।

यज्ञकुण्ड में से यज्ञ-पुरुष का प्रकट होना– ऋष्यशृंग का (यज्ञ-सम्बन्धी) अनुष्ठान अत्यधिक (सामग्री से) श्रेष्ठ था वह सम्पन्न हो गया। मुख्य होम करने पर स्वयं यज्ञ पुरुष (यज्ञ देवता) प्रकट हुए। (उनके प्रकट हो जाते ही) आकाश देदीप्यमान (अति तेजस्वी, जगमगानेवाला) हो गया। परन्तु (उनके) उस तेज का यह लक्षण था कि वह न अति शीतल था, न अति उष्ण, वे (यज्ञ-पुरुष) अपने तेज और आनन्द (प्रसन्नता) से परिपूर्ण (दिखायी दे रहे) थे। वसिष्ठ को पूर्णतः आश्चर्य हुआ। स्वयं ऋष्यशृंग भी विस्मय को प्राप्त हुए। ऋषिगण आश्चर्य को प्राप्त हुए। अयोध्या के (दर्शक) लोग (मारे आश्चर्य के) चकित-स्तब्ध हुए। उनकी साँस-उसाँस की गति कुण्ठित हो गयी (रुक-सी गयी) नेत्रों की पलकें झपना भूल गई। (वे एकटक, अपलक देखते रहे)। ऋष्यशृंग के तप की ख्याति (मानों) यज्ञ (-देवता की) मूर्ति के रूप में प्रकट हुई, इससे पहले बहुतों ने यज्ञ किये; उससे वे फल-प्राप्ति को भी प्राप्त हुए। परन्तु यह ख्याति (केवल) ऋष्यशृंग ने (ही प्राप्त) की कि यज्ञकुण्ड में यज्ञ (-देवता की) मूर्ति प्रकट हो गई

पायस-दान– (राजा दशरथ से) रघुपति राम जन्म ग्रहण करेंगे (करनेवाले थे), इसलिए यज्ञ में यज्ञ-मूर्ति (देवता) ने हाथ में प्रसाद पात्र लिये हुए (प्रकट होकर) ऋष्यशृंग को दे दिया। (यज्ञ-देवता बोले–) 'यह सम्पूर्ण यज्ञ-पुरोडाश विभाजित करके राजपत्नियों को प्रदान कीजिए। समझिए कि इस पुरोडास (के सेवन) से उनके पुत्र-सन्तान उत्पन्न होंगे। इस प्रसाद से (राजा दशरथ को) पुत्रों की प्राप्ति हो जाएगी। उससे स्वर्ग, मृत्युलोक तथा पाताललोक, अर्थात् त्रिभुवन पावन हो जाएगा राजा के ऐसी पुत्र संतान का निश्चय ही निर्माण (जन्म) हो जाएगा अब आधा क्षण (तक) विलम्ब न करें। तत्काल उसे प्राशन करें। विलम्ब हो जाने पर विघ्न उत्पन्न हो जाएगा'। यह कहकर वे स्वयं अदृश्य हो गये। यज्ञ-पुरुष

की उस मूर्ति के अदृश्य हो जाने पर ऋष्यशृंग ने यह पायस-पात्र हाथ में लेकर पुत्र की कामना करनेवाले राजा को उसे प्रसाद के रूप में प्रदान किया। उन्होंने वसिष्ठ से यह गुह्य (रहस्य-भरी) बात कही- 'इसमें विलम्ब न करें। रानियों को सम-समान भाग दीजिए। विलम्ब होने पर बड़ी बाधा उत्पन्न हो जाएगी'.

श्लोक– फल, मूल तथा तीर्थ और राघव राम के प्रसाद का शीघ्रतापूर्वक सेवन करना चाहिए। इसमें (किया जानेवाला) विलम्ब, कार्य का नाश करनेवाला सिद्ध हो जाता है।

गुरु वसिष्ठ द्वारा यज्ञ-प्रसाद का विभाजन करना– इसलिए इस महान् कार्य को सम्पन्न कीजिए। इसे इष्ट विभागों में विभाजित कीजिए। आपका नाम वसिष्ठ है- आप अतिश्रेष्ठ कुलगुरु हैं भविष्य (होनी) की स्थिति को जानकर वसिष्ठ ने इस पायस को हाथ में लेते हुए उसके यथायोग्य (रीति से) भाग बना दिये। उन विभागों का स्वरूप सुनिए। कौशल्या को दिया जाने वाला भाग परब्रह्म (स्वरूप) था; सुमित्रा को दिया जानेवाला भाग उत्तम भक्ति (स्वरूप) था, तो कैकेयी का भाग परमधर्म (स्वरूप) था। विभाग (की महत्ता) की दृष्टि से यह भागों का अनुक्रम रहा। कौशल्या धर्म-पत्नी थी। राजा ने सुमित्रा का वरण उसके साध्वी होने के कारण किया था। कैकेयी का उसकी सुन्दरता के कारण वरण किया था। वह रूप और यौवन से अहंकारी हो गई थी।

कैकेयी द्वारा प्रश्न करना और वसिष्ठ द्वारा प्रत्युत्तर देना– कैकेयी वसिष्ठ से बोली- 'मैं राजा की प्यारी (रानी) हूँ। इसलिए ज्येष्ठ भाग (सबसे बड़ा भाग) मुझे दीजिए' तो उन्होंने स्पष्ट रूप से उसे रोक लिया (उसके कथन को काट दिया)। (वे बोले-) ज्येष्ठ भाग ज्येष्ठा रानी (पटरानी) के लिए होता है। यह कनिष्ठा (सबसे छोटी) के प्रति कैसे आएगा (दिया जाएगा) ? जिस प्रकार हाथी के आभूषण का स्वरूप बकरी के लिए अति भार-रूप हो जाता है, उसी प्रकार, ज्येष्ठा रानी का यह भाग सबसे छोटी रानी के लिए भार-भूत सिद्ध हो जाएगा। यद्यपि हीरे अनमोल होते हैं, तथापि वे शालिग्राम के समान पूज्य (पूजनीय) नहीं होते। तुम प्रिय होने पर भी ज्येष्ठ भाग (पाने) के लिए, अयोग्य हो' (यह कहकर) उन्होंने कौशल्या को सबसे बड़ा भाग दिया, दूसरा सुमित्रा को दिया और तीसरा कैकेयी को दे दिया। तो उसके मन में बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ। वसिष्ठ के सामने उसकी एक नहीं चलती थी। (इसलिए) वह क्रोध-पूर्वक गुरु (वसिष्ठ) से द्वेष करती थी। हाथ में (पायस का) विभाग आ जाने पर भी अन्तःकरण में सुख नहीं (हो रहा) था। (उसे लगा-) मैं (राजा दशरथ के साथ) स्वर्ग के प्रति गयी थी, मैंने स्वर्ग की सम्पत्तियों का उपभोग किया है। (फिर भी पायस का) ज्येष्ठ भाग मेरे हाथ नहीं आ सका। इससे उसके मन में गुरु के प्रति द्वेष उत्पन्न हुआ। (उधर कौशल्या और सुमित्रा) दोनों ने (पुरोडाश के) पिण्ड को खाने के लिए (पहले यथाविधि) शुद्धाचमन किया; (परन्तु इधर) कैकेयी राजा के मुख की ओर देखती रही। त्यों ही विलम्ब के कारण विघ्न आ पड़ा।

चील की पूर्वजन्म कथा– जो गुरु के वचन को नहीं मानते, उनके लिए तत्काल बाधा उत्पन्न हो जाती है। इस अर्थ (वाली बात) का यह निरूपण है। (उस दृष्टि से) इस कथा का पृष्ठभूमि-स्वरूप सन्दर्भ सुनिए- सुवर्चसा नामक एक बड़ी नर्तकी थी। वह मद्य का सेवन करके (ब्रह्मदेव की सभा में) नृत्य करने के लिए आ गई। ताल के चूकते ही उसे ब्रह्माजी ने (यह) अभिशाप दिया। 'जान ले, मर्त्यलोक में मद्यपान अत्यन्त निन्द्य है। तु स्वयं ताल को चूक गई है– यह मद्य (पीने) का लक्षण [illegible]) है री निर्लज्ज, उन्मत्त सुन्दरी, री मुई पापिणी, तू चील बन जा। जिस प्रकार ताल को चूककर

तू झूमती-लड़खड़ाती जा रही है उसी प्रकार तू (आकाश में) परिभ्रमण करती रह'। उस दारुण अभिशाप को सुनकर उसने अति दुखी होते हुए शापमोचन का उपाय माँगा (पूछा)। उसने चतुरानन ब्रह्मा को प्रसन्न कर लिया, तो उन्होंने वर देनेवाली (वरदान देते हुए यह) बात कही- 'दशरथ के लिए पुत्र को जन्म दिलाने वाला पुत्र-कामेष्टि नामक यज्ञ होगा; वहाँ परमान्नस्वरूप यज्ञ-पुरोडाश होगा। उस अन्न को तीन भागों में वे विभक्त करेंगे। उसमें से एक भाग को तू खा लेना. ज्येष्ठ भाग के प्रति तेरी गति (पहुँच) नहीं हो सकती। मध्यम भाग (की प्राप्ति) के लिए तू शक्ति को प्राप्त नहीं होगी। (तुझ जैसी) कनिष्ठा (सबसे छोटी, नीच) को तो कनिष्ठ भाग की प्राप्ति हो जाएगी। उससे अपने (प्राप्त किये) अभिशाप से तुझे मुक्ति प्राप्त होगी, वह अयोध्यानगरी में होगा। इसलिए उसे (अयोध्या को) मोक्ष प्रदान करनेवाली प्रथम अर्थात् सर्वश्रेष्ठ पुरी जान ले। वेदों और शास्त्रों में कहा गया है– उसकी अपनी कीर्ति की ऐसी (गर्जनयुक्त घोषणा) हो रही है', (कवि कहता है-) 'देखिए, काशी मुक्ति (प्रदान करनेवाला तीर्थ) क्षेत्र तो है। परन्तु उस स्थान पर मर जाने पर (ही) मुक्ति मिलती है। वह समस्त वैकुण्ठ के प्रति नहीं गई। (परन्तु) अयोध्या का अनोखापन अद्भुत है। वह काशी से बड़ी (अच्छी) है अयोध्या की उदारता (अधिक) अच्छी बड़ी है तीन बार वह नगरी वैकुण्ठ में ले ली गई। उसे न मरने पर भी सपरिवार मुक्त किया गया। (सर्व-) प्रथम रुक्मांगद राजा उसे (वैकुण्ठ में) ले गए। दूसरी बार शिवि राजा ने उसको इस प्रकार ख्याति कर दी। तीसरी बार श्रीराम अपनी कीर्ति के गर्जन के साथ वैकुण्ठ में ले गए। और चौथी बार यह अयोध्या फिर से वैकुण्ठ में जाएगी। अयोध्या के सम्बन्ध में वसिष्ठ आदि की ऐसी ख्याति है। इसलिए यह जान ले कि मुक्ति दिलानेवाले (पवित्र) क्षेत्रों के सिर पर अयोध्या सर्वप्रथम (सर्वोपरि) पुरी है। वह जड़ जीवों का उद्धार करती है; मात्र स्नान से (अभिशप्त प्राणी के) शाप का निवारण कर देती है'। (ब्रह्मा सुवर्चसा से बोले–) 'उस अयोध्या में (पुरोडाश के) भाग को खा लेने पर तुझे अभिशाप से मुक्ति मिलेगी'। चतुरानन ब्रह्मा जब ऐसा बोले, तो वह अप्सरा स्वयं (उसे दिये हुए अभिशाप के फल-स्वरूप) चील बन गयी।

चील द्वारा झपटकर कैकेयी के हाथ से प्रसाद को छीन लेना– वह अस्सी सहस्र वर्ष तक अयोध्या के महाद्वार पर मँडराती रही। (एक दिन) यज्ञ (पुरोडाश के) भाग को (कैकेयी के) हाथ में देखते ही उसने तत्काल झपट्टा मारा। कौशल्या वस्तुतः पतिव्रता रूपा थी; इसलिए (उस चील द्वारा) उस पर झपट्टा बिलकुल मारा नहीं जा सकता था। सुमित्रा शुद्ध सात्त्विकता (-स्वरूपा) थी; (अतः) उसपर भी सचमुच (झपट्टा) नहीं मारा जा पाता था। कैकेयी अति क्रोधायमान हो गई थी। अपने भाग में उसका मन नहीं (लग रहा) था। वह क्रोध से राजा के मुख को निहार रही थी, तब वह चील उसके अंश को छीनकर ले गयी। उसने उसके मुख पर अपना पंख मारा, उसके हाथ को नखों से नोच लिया और उस (पुरोडाश के) टुकड़े को मुँह में डालकर (लेकर) वह यकायक आकाश में गयी (यह देखकर) लोग हाहाकार करने लगे कुछ एक ने वेग-पूर्वक तीर मारे। सब सिर ऊपर उठाये देख रहे थे। सबको यह बड़ा चमत्कार प्रतीत हुआ। पंख का झपट्टा लगते ही कैकेयी उलटकर भूमि पर गिर पड़ी, (पुरोडाश का) अंश (हाथ से) चला गया। फिर वह राजा की ओर देखकर रोने लगी वह राजा से बोली देखते क्या हैं ? तो वे बोले- 'मैं क्या करूँ ? तुम्हारा अहंकार आड़े आकर तुम्हारे लिए बाधक हो रहा है। यहाँ (अन्य) उपाय नहीं चलते'। चील द्वारा उस के अंश को खा लेने पर उसको

देह का बन्धन टूट गया। उसका गमनागमन (इस संसार में जन्म ग्रहण करके आने और मृत्यु द्वारा चले जाने का क्रम) समाप्त हुआ उससे वह सुख-सम्पन्न हो गई। (परन्तु) उसी अंश की उपेक्षा करनेवाली कैकेयी में बड़े (तीव्र) अहंकार की चरम अवस्था (कोटि) हो गयी थी। (मनुष्य की) अति अहंकार युक्त स्थिति उसके अपने हेतु की बड़ी हानि करने वाली होती है जिस प्रकार (साधक द्वारा) आत्मज्ञान की उपेक्षा करने पर उसके अंग (मन) से अज्ञान टकराता है (वह अज्ञान द्वारा पराजित होकर उसके अधीन हो जाता है) और विषयी जन (उस अहंकार और उससे निर्मित अज्ञान के कारण) अधःपात को प्राप्त हो जाते हैं; उसी प्रकार (अहंकार और तज्जन्य अज्ञान के वश में होने पर) कैकेयी की अवस्था पूर्ण रूप से वैसी हो गई।

कैकेयी का आक्रोश– यदि पुत्र उपहास के साथ उपेक्षा कर रहा हो, तो माता-पिता के बहुत दिन जीवित रहने से क्या होता है ? उनके मर जाने पर वह रोता है और (पुत्र द्वारा) तर्पण करने पर, पिण्ड दान करने पर वे सद्‌गति को प्राप्त हो जाते हैं। कैकेयी को वैसी अवस्था प्राप्त हुई। उसने अपने अंश की उपेक्षा की और (हाथ से निकलकर) गये हुए पर कुढ़ती जलती रही। वह दहाड़ मारते हुए सुबक (सुबक) कर रोने लगी। (वह बोली) 'जो मैं राजा की प्यारी (रानी) रही, वह मैं अब इस धरती पर अभागिन (सिद्ध) हो गयी हूँ। मेरे (अब) पुत्र सन्तान नहीं उत्पन्न होगी, मैं समस्त अर्थों से (सब दृष्टियों से) निन्द्य हो गई। राजा को मेरे प्रति अति लाड़-प्यार है; वह किसी को अच्छा नहीं लगता। जल जाए मेरा यह काला मुँह। लोग मेरी बहुत ही निन्दा करते हैं। प्रेम से (मेरे द्वारा) बड़ा अंश माँगने पर तो मुझ कनिष्ठा (सबसे छोटी रानी) पर विपत्ति आ गई। मेरे लिए न यह पार रहा, न वह पार। मैं स्पष्ट रूप से निन्द्य हो गई। स्वार्थ के कारण मैं पूरी-पूरी लुट गई। लोक-भय से मैं जीवित रहने का धीरज धारण नहीं कर पाती। अहो, क्या मुझे मौत (नहीं) आएगी ?' (इस प्रकार कहते कहते) वह दारुण सन्ताप से रो रही थी। 'मैं, जो स्वर्ग में देवों के लिए वन्दनीय थी, वह मैं (आज) मृत्युलोक में निन्द्य (ठहर गयी) हूँ। यज्ञ-पायस के विभाजन में मेरा भाग्य मन्द रहा। मैं (अब) पाषाणवत् (सिद्ध) हो गयी हूँ। मैं जो राजा की प्यारी हूँ, उसी कारण से जगत् के लिए अप्रिय हो गयी हूँ। मेरी स्थिति पत्थर की-सी हो गई है। मैं देवों और पितरों की दृष्टि से अति निन्द्य हो गई हूँ। अन्धे के हाथ का रत्न गिर जाता है, तो वह उसे अपने को नहीं मिलता। कैकेयी भी उसी के समान हो गई। वह रो रही थी, (लुढ़ककर) गिर जाती थी; वह अति दुःखी थी। उसके बाल खुल गये। वह भूमि पर लोट-पोट रही थी। उसके नयन आँसुओं की धाराएँ बहा रहे थे। वह व्याकुलता से छटपटा रही थी। देखिए, कौशल्या कैकेयी के दुःख को देखकर व्याकुल हो उठी। वह उसके असुख (दुःख) का हरण करते हुए उसका उपकार करने के लिए (किस प्रकार) प्रवृत्त हुई। यह श्रीभावार्थ रामायण (नामक ग्रन्थ) है (रचनाकार) एकनाथ अपने गुरु जनार्दन के आश्रय में स्थित हैं। यहाँ तक निरूपण हुआ। अब (रानियों द्वारा) पुरोडाश के पिण्ड के भक्षण (किये जाने) की कथा सुनिए।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ-कृत 'श्रीभावार्थ-रामायण' नामक टीका के बालकाण्ड के अन्तर्गत 'पुरोडाश विभाजन' नामक यह द्वितीय अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय ३

[कौशल्या सुमित्रा द्वारा कैकेयी को आधा-आधा भाग देना; रानियों द्वारा पायस-सेवन]

कौशल्या द्वारा कैकेयी को सान्त्वना देना– कैकेयी को हृदय से लगाकर कौशल्या ने उसे (यह कहते हुए समझाया और) सान्त्वना दी– "तुम व्यर्थ ही दुःखी क्यों हो रही हो ? हम दोनों का एक (ही सम-समान, एक-सा) दुःख है। (मान लो, कोई-कोई दो) सहोदरा सगी बहनें होती हैं। वे दोनों जनी दो (अलग-अलग पुरुषों) से ब्याही गयी हैं और वे कहीं (एक-दूसरी से कभी भी) नहीं मिल रही हैं – क्योंकि वे सगी होने पर भी अति दूरस्थ नगरों में रह रही हैं। दोनों को नित्यप्रति (एक-दूसरी से) भेंट नहीं हो रही है। दोनों में नित्यप्रति कोई बात (-चीत) नहीं हो रही है। दोनों नित्यप्रति एक दूसरी को दृष्टिगत नहीं हो रही हैं। इस (स्थिति) में (उनके) सगेपन की निरर्थक बकवास होगी (वे सगी बहनें हैं – यह कहना निरर्थक है)। दोनों में कोई नित्य सम्बन्ध नहीं रहा है, दोनों में कोई नित्यप्रति सम्भाषण (या मेल-मिलाप) नहीं हो रहा है। दोनों को नित्य (एक-दूसरी का) ज्ञान (कोई खोज खबर) नहीं रहा है। (इस दशा में) वह सगेपन का (कहा जानेवाला) सम्बन्ध अति मिथ्या (झूठा, अयथार्थ, निरर्थक) है। दोनों को कोई (एक सा) सुख नहीं (मिलता) है। (फिर भी) मूर्ख लोग उन्हें सगी (सहोदरा) मानते हैं। तुम व्यर्थ ही दुःख मान रही हो, हमें तो एकत्व (एक स्थान पर एक ही नाते के सूत्र में बँधे रहने) में सुख है। हमें तुम्हें एक ही सुहाग (सौभाग्य) है (एक ही पति होने के कारण हमारा-तुम्हारा सुहाग एक ही है)। हमारे और तुम्हारे लिए एक ही (पति-रूप) आभूषण है। हमारे और तुम्हारे लिए एक ही शोभादायी वस्तु है, हमारे तुम्हारे लिए सब कुछ के एक ही होने की स्थिति से सगापन (सहोदरत्व) है। हमारे-तुम्हारे लिए एक ही की संगति है। हमारे-तुम्हारे लिए भोग की एक ही वस्तु है। हमारे तुम्हारे एक ही पति हैं। एक ही (से) मित्रता है तथा मित्रता के लिए एक ही वस्तु (व्यक्ति) है। हमारे तुम्हारे एक ही पति हैं। हमारे तुम्हारे लिए एक ही सद्भाव (भक्ति, प्रेम का विषय) है। हमारे-तुम्हारे लिए एकात्म कर देनेवाला स्नेह है। हम और तुम में सख्यता अर्थात् सगेपन का, मित्रता का सच्चा सम्बन्ध है। हमारा (दोनों का) एक ही निवास-स्थान है। हमारा सुखोपभोग का एक ही स्थान है। हम एक ही सुख से सम्पन्न हैं (इस दृष्टि से) हमारे तुम्हारे बीच सच्चा सगापन (निकट-सम्बन्ध, सहोदरत्व) है। हमें नित्य रूप से एक ही चलानेवाला है। हमारा नित्य रूप से एक ही पालन कर्ता है। हमारी नित्य रूप से देखभाल करनेवाला (हमारा ध्यान रखनेवाला) एक ही है। (इस प्रकार) हमारी तुम्हारी नित्य रूप से मित्रता है, हमारे तुम्हारे एक ही स्वामी (पति) हैं। हमें तुम्हें वे एक ही शान्ति को प्राप्त कराते हैं। हमें तुम्हें एक ही भाँति जीवित रख रहे हैं। मित्रता-सगेपन का यह सच्चा एकमात्र पदाधिकार है। हमारे तुम्हारे एक ही (-में) पंच भूतों से निर्मित शरीर है। एक ही (-से) हाथ पाँव आदि (अंग) हैं। हमारा-तुम्हारा एक ही लक्ष्य (लक्ष्य) है। (अतः) हमारा अपना यह सख्य असाधारण है। यह सत्यरूप से जान लो कि दशरथ (जैसे) हमारे तुम्हारे एक ही पति हैं, तो (इस स्थिति में) तुम व्यर्थ खेद अनुभव कर रही हो। हे सजनी, यह समाचार (बात) सुनो। दूसरे के दुःख को देखकर परम मूर्ख ही सुख मानते हैं। (अतः) दूसरे के असुख को दूर करके शुद्ध भाव से उसे सुख दें। जो दूसरे के दुःख से सुखी हो जाता है वह इन तीनों लोकों में ब्रह्मराक्षस (माना जाता) है। शास्त्रों द्वारा वह नित्य निन्द्य (समझा जाता) है; (क्योंकि) वह विशुद्ध सात्त्विक गुण से युक्त नहीं होता। यदि तुम पुत्र-हीन अवस्था में रहोगी और हम पुत्रवती स्थिति

में रहते हुए सुख को प्राप्त हो जाएँगी, तो (अपने) पूर्वज अधःपात को प्राप्त हो जाएँगे (नरक में पड़ जाएँगे)। हमारा वह दोष (पाप) त्रिभुवन में नहीं समा पाएगा। जन्म को प्राप्त हमारा पुत्र यदि (हम तुम्हें) प्रदान करने लगें, तो उसे सचमुच पोष्य (गोद में लिया पुत्र, दत्तक पुत्र) कहेंगे (अतः हमें ऐसा करना नहीं चाहिए)। (इसलिए) हम दोनों अपने-अपने उद्देश्य को सिद्ध कर लें। अवंचकता (दूसरे को धोखा न देना ही) परमार्थ है।

श्लोक– पानी का रस (-सुख-आनन्दप्रद) -तत्त्व उसकी शीतलता है; अन्न का रस तत्त्व उसकी अच्छी रुचि है; स्त्रियों का सद्धर्म-तत्त्व (उनकी अपने-अपने पति के प्रति) अनुकूलता है; मित्र का सद्धर्म-तत्त्व उसका अवंचक होना है।

''उदक की मधुरता (आनन्द प्रद सार तत्त्व) उसकी शीतलता में है; अन्न की मधुरता (उसकी) आर्द्रता (रसमयता) में है; स्त्रियों की मधुरता उनकी (पति सम्बन्धी) अनुकूलता में है और मित्र (के स्वभाव-धर्म) की मधुरता उसकी अवंचकता में है। हम तुम (मानो) सगी बहनें हैं। ऐसी बात कही जाती है; उसे कृति करके ही दिखा दें। नहीं तो वे बातें (ऐसी कही जानेवाली बातें) अति झूठी (सिद्ध) हो जाती हैं जो जैसा बोलता है, वैसा करता हो, तो भगवान् शिव और विष्णु (भी) उसका वन्दन करते हैं। अन्य लोगों की वह उक्ति (जिसे वे कार्यान्वित करके नहीं दिखाते) ज्ञान की बात होने पर भी प्रचण्ड बकवास ही (मानी जाती) है। वह (ऐसी बकवास करनेवाला) व्यक्ति संसार में पढ़ा लिखा (होने पर भी) मूर्ख (समझा जाता) है। जैसा बोला गया हो, (यदि) वैसा कर्म-रूप हो, तो ही इसका नाम मुख्य रूप से परमार्थ है। वह अन्य प्रकार से बोलना तो व्यर्थ होता है उसका उद्देश्य सच्चे अर्थ में स्वार्थ (सिद्धि) होता है।''

कौशल्या और सुमित्रा द्वारा अपने-अपने प्रसाद पिण्ड से आधा-आधा भाग कैकेयी को देना– ''मेरा कहना (समस्त) अंगों (पक्षों) सहित अर्थात् पूर्णतः सत्य है हे सजनी, मेरे अंश का आधा भाग झट से ले लो। इससे हम दोनों का सगापन (सहोदरत्व, घनिष्ठ मित्रता) अटूट (सिद्ध) हो जाएगा'' कौशल्या के इस वचन को सुनकर कैकेयी को सन्तोष हुआ। उसने शुद्धाचमन करके स्वयं आनन्द पूर्वक आधा भाग लिया। (यह मानो ऐसा ही हो रहा था, जैसे) मृत को अमृत पीने को प्राप्त हो गया हो, प्यासे के मुख में (उसके लिए आवश्यक) पानी पड़ गया हो, अन्धे के नयन खुल गए हों (और उसे दिखायी देने लगा हो)। कौशल्या का वचन (कैकेयी के लिए) वैसा ही था। रंक को (अकस्मात्) धरोहर मिल गयी हो, अकर्मण्य व्यक्ति (सहसा) ब्रह्मज्ञान को प्राप्त हो गया हो, अकाल-पीड़ित को मिष्टान्न मिल गया हो। कौशल्या का वचन (कैकेयी के लिए) वैसा ही था। कौशल्या की बुद्धि (सबके प्रति) समभाव से युक्त थी; इसलिए उसने स्वयं सम-समान विभागों में (पुरोडाश को) विभक्त करके कैकेयी को (उनमें से एक भाग) दिया। इस समत्व भाव से वह सुखसम्पन्न हो गई। कैकेयी को वह अंश देते हुए कौशल्या अति उल्लसित हुई थी। उसके मन में कोई सौतिया (डाह जैसा) भाव नहीं था। (अतः) उसने उल्लास-पूर्वक अपने भाग का अंश (कैकेयी को) दे दिया। कौशल्या की जैसी करनी थी, वैसी ही सुमित्रा की सद्बुद्धि थी सत्संग के फल-स्वरूप होनेवाली सिद्धि बड़ी होती है। उसने (अपने को प्राप्त) आधे भाग का आधा अंश (कैकेयी को) दिया। सत्संग के कारण अपनी महिमा प्रकट करते हुए कौशल्या ने अपने अंश का समान अर्थात् आधा भाग (कैकेयी को) दिया। समझ लीजिए कि कौशल्या के साथ ही सुमित्रा ने भी स्वयं अपने भाग का आधा भाग उसे दिया। उसमें कौशल्या के प्रति सुष्ठु (उत्तम)

मित्रता थी, इसलिए (मानो) उसको 'सुमित्रा' कहते थे। इसलिए सुमित्रा ने प्रेमभाव से कैकेयी को (अपने भाग का) आधा भाग दे दिया। जिसे जैसी संगति प्राप्त हो, उसकी बुद्धि वैसी हो जाती है। उसी प्रकार, कौशल्या की संगति (के प्रभाव) से सुमित्रा ने कैकेयी को आधा भाग दे दिया।

वसिष्ठ ऋषि का हर्षविभोर हो जाना– कौशल्या के वचन के अर्थ को (अर्थपूर्ण बात को) सुनकर तथा उसके द्वारा इस प्रकार अपने अंश के भाग को देने में अपना हेतु (सफल होते) देखकर वसिष्ठ ऋषि आनन्द से नाचने लगे। वे स्वयं आत्मानन्द-पूर्वक डोलते रहे। (उन्होंने सोचा-) पुरोडाश के अंश का सेवन करने पर (समझिए कि कौशल्या के गर्भ से) रघुनन्दन राम जन्म को प्राप्त हुए (हो जाएँगे)। अयोध्या का यह राज-भुवन धन्य है। (यहाँ अब) आत्मानन्द के घन-स्वरूप राम क्रीड़ा (लीला) करेंगे। आत्मानन्द की ध्वजा फहराते हुए नारद ऋषि वहाँ आ गये। वे (बड़े) चाव से नाचने लगे (उन्हें जान पड़ा, अब) सूर्य वंश को उत्तम स्थिति प्राप्त हो आयी है। (अब) देवों का बन्धन छूट जाएगा; नवग्रहों की बेड़ी टूट जाएगी, मुक्ति उत्कट सुख को प्राप्त होगी; सुख सुख-पूर्वक पल्लवित हो जाएगा। (मेरे द्वारा प्रेरित होने पर राम-चरित्र का वर्णन राम के जन्म से पहले ही कहनेवाले) वाल्मीकि का वचन (कथन) प्रत्यक्ष प्रमाणित (सत्य सिद्ध) हो गया है। अपनी धरोहर जैसे श्रीराम अयोध्या में प्रकट हो गए (हो जाएँगे)। अयोध्या के लोग धन्य हैं। लंका के समीप राम दारुण युद्ध करेंगे। मैं उसे स्वयं देखूँगा। (ऐसा सोचते हुए) नारद ऋषि ने (आनन्द-पूर्वक) उड़ान भरी (वे उछल पड़े)। खाने का (स्वाद से आनेवाला) आनन्द खाने वाला ही जानता है। उसी प्रकार वसिष्ठ और नारद का नाच उठना है उनके (द्वारा अनुभव किये हुए) सुख को उनके द्वारा ही भोगा (जाना) जाए। दूसरे तो एकटक देखते रहें। विभाण्डक ऋषि मन में आनन्द को प्राप्त हुए। कौशल्या सत्त्व गुण से युक्त स्त्रियों में शिरोमणि थी। (सर्वोपरि थी)। इसके कारण यह पृथ्वी पावन हो गई। (अत:) यह कौशल्या त्रिभुवन में धन्य है। उस समय ऋष्यशृंग ऋषि सुख की लहरों में (डूबते-उतराते हुए) सुख को प्राप्त हुए। उन्होंने उड़ान भरते हुए चिल्लाकर घोषणा की– 'कौशल्या राम को इस भू तल पर ले आएँगी'। कौशल्या का भाव शुद्ध था। उस भाव से राजा राम प्रकट हुए (होंगे)। महाबाहु दशरथ धन्य है। उनका गर्भ-सम्बन्ध असाधारण है। ऋषीश्वर (बड़े बड़े ऋषि) आश्चर्य कर रहे थे। देव चकित होकर ठहर गए। सब जय-जयकार करने लगे रघुवीर राम को चार भागों में (इस प्रकार) विभक्त किया गया। (यदि यज्ञ-पुरोडाश का सेवन एक ही स्त्री द्वारा किया जाता, तो अकेले राम अवतरित होते परन्तु यहाँ उसके चार भाग किये गए। एक का सेवन कौशल्या ने और दूसरे का सुमित्रा ने किया। इन दोनों को प्राप्त अंशों को विभक्त करके दो भाग कैकेयी को दिये गए। इस प्रकार, भगवान् ने दशरथ के चार पुत्रों के रूप में अवतार धारण किया। भगवान् विष्णु-स्वरूप रघुवीर राम के ये चार अंश मानों एकात्म हैं– चारों बन्धु मिलकर एक परिपूर्ण राम हैं)। मुख्य द्वेष सौतिया डाह में होता है। वैसा डाह कौशल्या में नहीं था। इसलिए श्रीराम उसकी कोख (गर्भ) में आ गए। उस गर्भ के विषय में स्पष्ट रूप से सुनकर जान लीजिए। कैकेयी में सौतिया डाह था। इसलिए उसने अपने (पुरोडाश के) अंश को खो दिया। कौशल्या में शुद्ध भाव था। इसलिए उसके गर्भ में श्रीराम आ गए। यज्ञ के हविष्यान्न के अवशिष्ट भाग से भरा हुआ एक थाल आ गया था (यज्ञदेवता स्वयं उसे लाये थे)। निश्चय ही वही गर्भ था। वह चार अंशों में विभक्त हो गया। अत: उसे चार प्रकार से कहिए मुख्य आधा भाग कौशल्या के पास था। समझिए कि उस भाग का आधा भाग सुमित्रा के पास था। (फिर) उन दोनों के भागों के आधे आधे भाग कैकेयी को प्राप्त हुए। उसका अपना

स्वतंत्र रूप से कोई भाग था ही नहीं (रहा था)। (वस्तुत: जो उसे पहले मिला था, उसे चील द्वारा छीना गया था)। इसलिए आगे चलकर उसके जो (दो) पुत्र उत्पन्न होंगे, वे (वस्तुत:) स्वतंत्र रूप से उसके अपने नहीं होनेवाले थे। इसलिए उन्हें परतंत्र (पराधीन) कहा जाए। उन्हें कैकेयी का चरित्र (करनी, स्वभाव) नहीं भाता था। अस्तु। (अब) आगे की कथा यह है– वसिष्ठ ऋषि ने उन तीनों (स्त्रियों) को बुलाते हुए उन्हें एक एक भाग विभाग देकर कहा– '(अब) विलम्ब न करें'.

कैकेयी का उद्विग्न हो जाना– दोनों ने (कौशल्या और सुमित्रा ने) दाँत न लगाते हुए (दन्त-स्पर्श न करते हुए) अपने अपने अंश का सेवन किया (निगल लिया)। (परन्तु) कैकेयी अपने प्राप्त अंश का सेवन करते (समय) उद्विग्न हो उठी। उसने जब उन आधे (-आधे) अंशों को निलगना चाहा, तब वे उसके कण्ठ में (अटककर) बैठ गए। उन्हें निगलने जाने पर वह अति संकट में पड़ गयी। निगले जाने लगते ही वे घूँट (कौर) के रूप में निगले नहीं जा रहे थे (गले के नीचे नहीं जा रहे थे)। (वस्तुत:) वे उसके अपने (स्वतंत्र रूप से) भाग नहीं थे। उसका मुख दूसरे के भाग को निगल नहीं पा रहा था। उसके नेत्र (कष्ट से) श्वेत हो गये (उलट गये)। उसके मुँह से वमन की (-सी) ध्वनि निकलने लगी। दूसरे के भार को वहन करना अपने स्वयं को कष्टकारी होता है. उसी प्रकार उसके द्वारा दूसरे के भाग को निगलने लगने पर वह जी-जान से (सम्पूर्ण शक्ति लगाने पर भी) निगला नहीं जा रहा था। उस विभाग ने उसके गले को अवरुद्ध कर दिया। वसिष्ठ ने जब अपनी आँखों से ऐसा देखा, तो उन्होंने झट से मंत्रोदक (अभिमंत्रित जल) दिया, तो उसने उस अंश को निगल डाला। उस मंत्रोदक का सेवन करते ही उसकी शंका-अनिष्ट की भीति नष्ट हुई और वह सुख को प्राप्त हुई। वह पुत्र-गर्भ के अत्यधिक सन्तोष को (गर्भ में पुत्र के आ जाने के सन्तोष को) प्राप्त कर गयी।। अपने निकट साधु (पुरुष) के होने पर (उसके प्रभाव से) अनिष्ट संकट दूर हो जाता है। कैकेयी का उदर गर्भ से सुशोभित हुआ। इससे उसको बड़ा सुख अनुभव हुआ। (जिस प्रकार) किसी को खोया हुआ रत्न मिल जाए, मरनेवाले को अमृत का पान करने को मिले, उसी प्रकार, समझिए कि कैकेयी को (खोयी हुई वस्तु) वसिष्ठ द्वारा प्रदत्त (अभिमंत्रित) जल से (मिलने पर) परम सुख प्राप्त हो गया।

सत्संग-महिमा– इसलिए (कहते हैं) सत्संग से न दु:ख होता है, न अध:पात होता है। सत्संग की परम ख्याति है। (हम) नहीं जानते कि उससे कितने (लोग) उद्धार को प्राप्त हुए हैं।

श्लोक– सत्संग से ही दैत्य, यातुधान (राक्षस), पक्षी, मृग, गन्धर्व, अप्सराएँ, नाग, सिद्ध चारण, गुह्यक उद्धार को प्राप्त हो गए हैं।

इस सृष्टि में करोड़ों दैत्य, दानव, राक्षस-सृष्टि (समाज), गन्धर्वगण, असंख्य मृग, पक्षी पुष्टि अर्थात् वृद्धि (उत्कर्ष) को, तथा सिद्ध, चारण, गुह्यक उद्धार को प्राप्त हो गये हैं। मनुष्य-लोक की तो यह बात है कि सत्संग के प्राप्त हो जाने से कोटि-कोटि लोग उद्धार को प्राप्त हो गए हैं। यह सृष्टि (संसार) सत्संग से भाग्यवान् हुई है। वे राजा दशरथ धन्य थे, धन्य थे, जिनको पुरोहित (के रूप में) वसिष्ठ ऋषि का सत्संग प्राप्त हो गया था। सूर्य (तक जिनका) आदेश (शासन) मानता था, वे वसिष्ठ उनके अपने घर में उनके सखा थे। उन वसिष्ठ ऋषि ने स्वय उन तीनों (रानियों) को पुरोडाश के पिण्ड (भाग) का सेवन करा दिया। कवि एकनाथ गुरु जनार्दन स्वामी से विनती करते हैं अब जान लीजिए गर्भावधारणा की कथा को।

॥ **इति** ॥ यह श्रीभावार्थ रामायण नामक ग्रन्थ है। इसके रचनाकार एकनाथ अपने गुरु जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हैं। पुरोडाश के पिण्ड (भाग) के विभाजन तथा उसके अंशों के सेवन का कथन हो गया। सुनिए, यह सम्पूर्ण हो गया।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ-कृत 'भावार्थ रामायण' नामक टीका के बालकाण्ड के अन्तर्गत 'पुरोडाश-पिण्ड-प्राशन' नामक यह तृतीय अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय ४

[रानियों के दोहद; कौशल्या का आत्मानन्द]

कार्तिक स्वामी और पार्वती की राम के सम्बन्ध में जिज्ञासा– कथा का श्रवण करके उसे जाननेवाले (ज्ञानी) श्रोताओं ने कहा, 'तुम जो कह रहे हो, वह प्रमाण-रहित है। यह तो मूल (राम) कथा का निरूपण नहीं है'। (यह सुनकर एकनाथ बोले-) "(जो ऐसा मानते हैं) वे शिव-रामायण देख लें। (उसमें कहा है कि) स्कन्द (कार्तिक स्वामी) ने अगस्त्य ऋषि से कहा 'शिवजी और भवानी पार्वती राम (नाम) का जाप करते हैं। वे राम कौन हैं ? इस त्रिभुवन में उनकी जो स्थिति (स्थान, माहात्म्य) है, उसे वैसे ही (यथार्थ रूप में) मुझसे कहिए'। इस पर वे (अगस्त्य ऋषि) बोले, 'उसे कहने के विषय में मैं बहुत दीन (अक्षम, असमर्थ) हूँ, जहाँ वेदों को मौन धारण करना पड़ता है, उसे बताने के लिए मुझे मुँह (में वाणी-सामर्थ्य) नहीं है। जान लो कि स्वयं पार्वती ने तुम्हारे प्रश्न-सा प्रश्न सदाशिवजी से पूछा था– मुझे बताइए कि राम कौन हैं ? श्रीराम की क्या स्थिति (प्रतिष्ठा) है ? श्रीराम की क्या कीर्ति है ? - जगदम्बा पार्वती ने अति प्रीति के साथ (शिवजी से) कहा कि यह मुझे मूल-सहित (आदि से अन्त तक) बताइए। श्रीराम की क्या कीर्ति है ? श्रीराम की क्या गति है ? श्रीराम की क्या उत्पत्ति है (श्रीराम का आविर्भाव कैसे और क्यों हुआ ?) इस त्रिभुवन में श्रीराम (सचमुच) कौन हैं ? (पार्वती ने इस प्रकार पूछा)। जहाँ सदाशिवजी स्वयं जिस कथा के वक्ता हैं और पार्वती स्वयं मुख्य रूप से जिसकी श्रोता हैं, वह है यह शिवरामायण में कही हुई (राम की) कथा। श्रोताजन अपने सन्देह के लिए उसे देख लें"।

श्रीराम द्वारा एकनाथ को भावार्थ रामायण की रचना के लिए प्रेरित करना– हे (सन्त श्रोताओ) आप पूछेंगे– तुम वक्ता कैसे हुए हो ? आप मेरी योग्यता (कथा कथन का अधिकार) पूछेंगे मैं उसी को सच्चे रूप में कहूँगा। हे श्रोताओ, उसे अवधान पूर्वक सुनिए मैं मूल संस्कृत (में लिखित कथा) को नहीं जानता। मूर्खता मेरी बपौती है। फिर भी श्रीराम (स्वयं) इस मूर्ख के मुख द्वारा अपनी ऐसी कथा कहला रहे हैं। मुझमें जो मूर्खता है, उस (अपनी मूर्खता) को मैं सम्पूर्ण (रूप से) जानता हूँ मैंने (जब) कहा मैं रामायण की रचना (कथन) नहीं करूँगा, (तब) श्रीराम ने स्वयं मुझे उस कथा (निरूपण) के लिए प्रेरित किया। यह जान लीजिए कि प्रेरित करने पर भी मैं उस कथा की रचना नहीं कर रहा था। तब श्रीराम ने स्वप्न में (मेरे लिए) रामायण का सम्पूर्ण विस्तार किया। (अर्थात् श्रीराम ने स्वप्न में आकर रामायण विस्तार-पूर्वक कही)। इस ग्रन्थ (रचना) का यही रहस्य है। (तदनन्तर)

जाग्रत अवस्था में रहने पर, राम कथा मेरे सामने प्रकट होती रही। उसकी ओर ध्यान न देकर मेरे द्वारा उसे (मानों) वैसे ही रखने पर, राम ने सचमुच मुझे रामायण दिखा दिया। (इधर उधर की) व्यर्थ बातें मेरे द्वारा करने पर उनमें से राम कथा उभरती रही। राम ने इस प्रकार पीछे पड़े रहकर (मेरी) सहायता की, (फल-स्वरूप) मेरी दृष्टि रामायण पर जम गयी (केन्द्रित हुई)। इस (स्थिति) में मेरे द्वारा यह कहने पर कि मैं (कथा का निरूपण) नहीं करूँगा, राम (अपने कार्य-सम्बन्धी) अहंकार के सिर (शिखर) पर चढ़ गए (राम अपनी बात पर हठपूर्वक डटे रहे)। उन्होंने अपने आप के अधिकार के बल से मेरे द्वारा बलात् (हठपूर्वक) कथा कहलवा ली। समझिए कि मेरे सोये रहने पर राम स्वयं मुझे थपकाने लगे और बोले उठो; रामायण की रचना करो। वहाँ (उस स्थिति में) मैं न करनेवाला कौन (ठहरा) ? इसलिए समझिए कि इस कथा के (कथन, रचना के) दोष तथा आभूषण अर्थात् गुण मुझे नहीं लगेंगे (मेरे नहीं हैं) इस कथा के कर्ता स्वयं श्रीराम हैं। वे मेरा अपना रूप (स्वयं बन गए)। ग्रन्थ की जो निन्दा करते हैं अथवा उसकी वन्दना (अर्थात् प्रशंसा) करते हैं, वे दोनों (प्रकार के लोग) हमारे लिए ब्रह्म स्वरूप हैं। यह तो गुरु जनार्दन स्वामी की कही हुई युक्ति (चतुराई, बुद्धिमानी की बात) है। उन्होंने अपनी गूढ़ बात का मुझे एकान्त में उपदेश दिया है। अस्तु। राम कथा दोषयुक्त (रूप में कथित या विरचित) होने पर भी उसका गान करने पर अथवा श्रवण करने पर (गानेवाले को या श्रोता को) पावन कर देती है। यह जो नहीं (सत्य) मानता हो, जिसे सन्देह हो, उसको सचमुच दण्डवत् प्रणाम है।

श्लोक– जिसमें सुन्दर रचना नहीं है और जो दूषित शब्दों से युक्त है, परन्तु जिसका प्रत्येक श्लोक भगवान् के सुयश सूचक नामों से युक्त है, वह वाणी लोगों के पापों का नाश कर देती है। सत्पुरुष ऐसी ही वाणी का श्रवण किया करते हैं, गान और कीर्तन किया करते हैं

असम्बद्ध (दोषपूर्ण) राम कथा का (भी) श्रवण करने से श्रोता और वैसी कथा का वक्ता (दोनों) तत्क्षण पावन हो जाते हैं। वक्ता द्वारा सदोष वाणी में पठन (या कथन) करने पर भी उसके श्रोताओं के पापों का क्षय हो जाता है। असंगतिपूर्ण होने पर भी राम-चरित्र (का श्रवण, कथन, पठन) बड़े बड़े पापियों को पावन कर देता है। फिर ज्ञानी जन यह किस प्रकार कह सकते हैं कि राम के चरित्र का गान करनेवाला मेरा यह मुख अपवित्र है। लोगों में जो इस कथा की निन्दा करते हैं और इसकी वन्दना करते हैं, वे दोनों मेरे लिए माता (जैसे) हैं। वे निन्दक तो मेरी सगी जननी (-से) हैं, वे मेरे प्रति कृपालु हैं। जिस प्रकार जननी के करतल ऊपर ऊपर से (बालक के अंग को मल मलकर) बाहरी मैल को धो डालते हैं, उसी प्रकार निन्दक अपने मुख से (मेरे शरीर में लगी हुई) बाहर की मैल के साथ ही (अन्दर मन में) कलियुग (के प्रभाव से उत्पन्न विकारादि) की मैल को (अपनी वाणी से धोते हुए) हटाकर (मेरे मन को) निर्मल बना देता है। इसलिए निन्दक ही सचमुच परमार्थ के मार्ग में सहायकारी सखा होता है। उस निन्दक की निन्दा करने पर मनुष्य स्वयं सब प्रकार से दोषी हो जाता है। निन्दा परम अमृत कहलाती है। सुख सम्बन्धी स्वार्थ की पूर्ति स्वरूप है। निन्दक अपने स्वार्थ को नहीं देखता। वह (इस दृष्टि से) अति सामर्थ्यशील परोपकार-कर्ता है। जहाँ (जिस व्यक्ति में) निन्दा मुख सहित समायी हुई रहती है, मैं मस्तक झुकाकर उसके पाँवों का वन्दन करता हूँ। जो निन्दा को बिना कलह आदि किये सहन करता है, उसकी माता धन्य है, धन्य है अब निराकरण के कितने उपाय सुना दूँ ? ऐसा निराकरण करना ही अहंकार है। मेरा यह बड़ा अपराध है कि मैं बड़ा कवि होना चाह

रहा हूँ। (परन्तु) यदि आप झट से मुझे रोकने लगेंगे, तो भी मैं अब रामकथा-रामायण की रचना करने में कोई अपराध नहीं मानूँगा ! मुझे (राम) कथा रूपी अमृत से तृप्ति प्राप्त करने दीजिए।

श्रोताओं द्वारा कवि से आगे की राम-कथा सुनाने की प्रार्थना करना– तब श्रोताओं ने कहा- 'अहो आश्चर्य है ! आपने ग्रन्थ के विशुद्ध अन्वय को सिद्ध किया। निराकरण के बहाने, अहो देखिए, ग्रन्थ को सन्देह-रहित कर दिया है। (इस ग्रन्थ में प्रस्तुत रामकथा के कर्त्ता स्वयं राम हैं, यह कहते हुए तथा शिवरामायण का आधार बताते हुए आपने श्रोताओं द्वारा किसी संदेह-शंका को प्रस्तुत करने की कोई गुंजाइश ही नहीं रहने दी)। इनकी उक्तियाँ मराठी भाषा में हैं, फिर भी वे (मधुरता में) अमृत को व्यर्थ कर देती हैं आत्मानन्द तथा सुख को प्रदान करनेवाली इसकी नित्यप्रति नयी-नयी जान पड़नेवाली उक्ति क्षीरसागर से भी अति गहन है। इनके द्वारा प्रस्तुत कथा का कानों से श्रवण करते ही (श्रोताओं के) मन में सुख उत्पन्न हो जाता है। धन्य हैं, धन्य हैं– आप रसमय अर्थात् अति मधुर बात करनेवाले वक्ता हैं। आपके द्वारा कही जानेवाली कथा का परम महान अर्थ (हमारे लिए) अति पूजनीय है। आपके मुख द्वारा स्वयं श्रीराम रामायण कहला रहे हैं। हमारी शंकाओं के परिहार से वह हमें पूर्ण ब्रह्म सी हो गयी है (अब) राम-कथा का निरूपण (आगे) चला दीजिए (करने लगिए)'। सन्तों की इस बात को सुनकर गुरु जनार्दन स्वामी के शरणागत रचनाकार एकनाथ शान्ति को प्राप्त हो गए (और बोले)- मैं आप (श्रोताओं, सन्तों) के चरणों को सिर से वन्दना करके कहता हूँ, ग्रन्थ (कथा) को ध्यान पूर्वक सुनिए। आगे की कथा का पूर्वापर सम्बन्ध यह है– पुरोडाश के पिण्ड का सेवन करने पर वे तीनों रानियाँ सुख-सम्पन्न हो गयीं। उन तीनों में गर्भ-स्थापना (गर्भ-धारण) हो गई।

दशरथ का कैकेयी के समीप दोहद पूछने के हेतु आगमन– गुरु वसिष्ठ राजा दशरथ से बोले- धर्मशास्त्र का नियम यह है कि स्त्रियों से उनके दोहद पूछे जाएँ और वे जो माँग लें, वह उन्हें दें। (उस कथन को) ब्रह्मवाक्य (समझते हुए उस) को शिरसा वन्दन करके राजा वेगपूर्वक चले गये। पुत्र प्राप्ति के अभिलाषी वे बड़े उल्लास के साथ कैकेयी के भवन में आ गए। कैकेयी गर्भ धारणा के कारण आनन्द के साथ पलंग पर बैठी हुई थी। राजा को आते हुए देखकर वह अपनी शय्या पर लेट गयी। जहाँ पति पर स्त्रियों को प्रभुता प्राप्त हुई हो, वहाँ आचार-व्यवहार की मर्यादा को कौन निभाये ? कैकेयी को (अपनी) सुन्दरता पर पूर्ण अहंकार था। तिस पर समझिए कि वह गर्भवती थी। देखिए कि अमावस्या के दिन रात अँधियारी तो होती ही है। तिस पर, उसमें कुहासा घने रूप से छा जाय, तो उस अन्धकार की घनता के कारण कुछ भी नहीं दिखायी देता. देखिए, कैकेयी की वही दशा हो गयी थी। राजा ने उससे दोहद पूछे तो वह हँसकर उनसे बोली- 'यदि आप उन्हें निश्चय पूर्वक पूर्ण करनेवाले हों, तो ही मैं आपको बताऊँगी'। राजा बहुत प्रेम से बोले 'तुम्हारी कही हुई बात का विरोध न करते हुए मैं तुम्हें स्वर्ग के प्रति ले गया था और इन्द्र आदि के हाथों मैंने तुम्हें गौरवान्वित करा दिया था। इस प्रकार इससे पहले मैंने स्वयं तुम्हारी बात का उल्लंघन कभी नहीं किया। आज के आये हुए इस (शुभ) अवसर पर मैं तुम्हारे सम्पूर्ण दोहदों को पूर्ण करूँगा'।

कैकेयी के दुष्टता-पूर्ण दोहद– वह राजा से बोली– 'मेरे मन में ये दोहद हैं– आप राज्य अपने कनिष्ठ पुत्र को दें और ज्येष्ठ को वनवास के लिए भेज दें। उस ज्येष्ठ पुत्र को बहुत दूरी पर भेज दें जहाँ वह अयोध्या के किसी समाचार तक को नहीं सुन सके और जहाँ से उसके सम्बन्ध में कोई समाचार अयोध्या तक बिलकुल नहीं आ पाए। ऐसा विपरीत काम करने पर आप कहेंगे कि यह

अधर्म, धर्म-शास्त्र के प्रतिकूल काम (पाप) है; फिर भी वेद शास्त्रों के विचार से जो अति निन्द्य है, ऐसे उस पाप को मेरे सिर पर रख दीजिए। निन्दा की ताली बजाना (निन्दा करने अथवा सुनने में रस लेते हुए हर्षपूर्वक ताली बजाना) अति निन्द्य होता है। ऐसी वह ताली मेरे सिर पर बज जाए (लोग मेरी निन्दा करें और उसे सुनते सुनाते हुए ताली बजाएँ)। समस्त लोग मेरी निन्दा करें। मेरे दोहदों में यह अपूर्वता है'. उसके दोहदों को सुनते हुए राजा सब अंगों अर्थात् सब प्रकार से उकता उठे। उनके नेत्र आँसुओं से भरे-पूरे हो गए। वे तत्काल कम्पायमान हो उठे। उनका मन, बुद्धि, चित्त भ्रम में पड़ गया। उनका निश्चय सिहर उठा। इन्द्रियों के द्वार रुँध गए। प्रलय की महान बाढ़ (रेले) में उनका धैर्य (बहकर) चला गया. (उन्हें लगा-) इसके दोहदों को पूर्ण करने पर स्वार्थ और परमार्थ का विनाश होगा। अन्त में जीवन शेष नहीं रह जाएगा। सब (कार्यों, आशा-आकाक्षाओं) का सब प्रकार से बड़ा विनाश होगा। राजा को ऐसी व्यथा का अनुभव हुआ। अनन्तर वे उससे फिर से बोले (तक) नहीं। मन में अत्यन्त आशंकित होकर उकताते हुए वे वहाँ से चल पड़े।

सुमित्रा द्वारा राजा दशरथ का हर्षपूर्वक स्वागत करना– साथ ही (तत्काल) वे सुमित्रा के भवन की ओर चले। तब (वहाँ आते ही) वह सामने (अगवानी के लिए) आ गयी। उसने उनके चरणों में सिर झुकाया और (अनन्तर) राई-नोन उतारते हुए उनकी आरती उतारी। अपने प्राणों के स्वामी को आये देखकर उसे मन में अति अद्‌भुत उल्लास हुआ। वह आनन्द से पूर्ण भर उठी। उसके मन में प्रेम की अत्यधिक बाढ़ आ गई। उसने उत्तम आसन बिछाकर (उसपर) अपने पति को बैठाया और उनके चरणों को भक्ति पूर्वक धो लिया। उसने चरण-तीर्थ का पान किया और फूल, चन्दन आदि से उनका पूजन किया। उसने सुगन्ध-युक्त पुष्प मालाएँ अपने पति के गले में पहना दीं। उस समय हाथ जोड़े वह सुन्दरी खड़ी रह गई– न (अति) निकट, न (अति) दूर। गर्भ (के तेज) से उसका मुखकमल पूर्ण प्रफुल्लित था। उसका समस्त शरीर उज्ज्वलता से शोभा दे रहा था। गर्भ की अपनी निर्मल कान्ति के साथ वह सुन्दरी शान से भक्तिभावपूर्वक चल रही थी। जो भक्तिभाव उसे अपने पति के प्रति था, वही भाव सबके प्रति था। उसी भक्तिभाव के साथ उसने उल्लासपूर्वक सम समान रूप से अपने स्वामी (दशरथ) राजा का पूजन किया। भक्तिभाव ही उसका अंश (पूर्वजन्म कृत कर्म का फल) उसने अपने हृदय में उसका संग्रह कर लिया था। उसकी बाह्य चेष्टाएँ भी वैसी ही थीं। दर्शक बनकर राजा उसे देख रहे थे। उसकी भक्ति को देखकर राजा अत्यन्त सुख को प्राप्त हुए। (उन्होंने इच्छा की) इसका गर्भ सफलता को प्राप्त हो जाए, इस दृष्टि से देवाधिदेव प्रतिपालन करें। (इसके फलस्वरूप) कैकेयी के दोहदों के दुःख को राजा पूर्णतः भूल गए। उसके मुख का चुम्बन करके उन्होंने दोहद के रूप में उसे प्रिय लगनेवाली बात पूछी (वे बोले-) 'तुम्हारे मन में क्या चाह है ? मुझे अपने मन की बात कह देना'। तो वह लज्जा के साथ अधोदृष्टि होकर (सिर झुकाये) खड़ी रही। उसने अर्थहीन बड़ी-बड़ी बातें नहीं कहीं।

सुमित्रा के दोहद– (सुमित्रा ने कहा-) 'हे नरदेव (नरपति), अपने ज्येष्ठ पुत्र की जो ज्येष्ठ (सबसे बड़ी) सेवा हो, वह मुझे प्रदान कीजिए, (करने को कहिए)। मेरे जी की, सत्य का पालन करने के मेरे स्वभाव के अनुसार यही चाह है। ज्येष्ठ पुत्र की सेवा मुझे अत्यधिक सुखद है। आप मुझे यही एक प्रदान करें। मुझे (सुखोपभोग का) कोई और विषय नहीं अच्छा लगता। बिना ज्येष्ठ की सेवा के मुझे न दिव्य (असाधारण) अन्न, वस्त्र, भाता है, न त्रिभुवन का राज्य अच्छा लगता है, न ही स्वर्ग (या) ब्रह्मलोक पसन्द आता है। हे स्वामी, हे प्राण-पति, आपके चरण सेवा करने योग्य हैं। मुझे ज्येष्ठ पुत्र की

सेवा करने में बहुत प्रीति (रुचि, चाव) है। निश्चय ही ये मेरे ऐसे दोहद हैं'। ऐसी बात सुनकर राजा का मन विस्मित हुआ, (उन्हें लगा) इसके दोहद अद्भुत हैं। यह सब अर्थों में (दृष्टियों से) अच्छे लक्षणों से युक्त है। पायस का थाल एक ही था। गुरु वसिष्ठ ने उस (पायस) के विशुद्ध रूप से भाग बना लिये थे (जिनका सेवन इन सबने किया था)। फिर उस (कैकेयी) के दोहद विकट (विकृत, क्यों हैं ? और इसके तो सचमुच अतिश्रेष्ठ (क्यों) हैं। (बात यह है) उसके (द्वारा खाये हुए) अंश स्वतंत्र (पहले से स्वतंत्र रूप से दिये हुए) नहीं थे। उसके उदर में स्थित गर्भ तो सापत्न (सौतिया) है इसलिए कैकेयी को ये अपवित्र दोहद हो रहे हैं। सापत्न (बच्चे) तो माता को कष्ट पहुँचाते हैं। शनि (ग्रह) छाया को लात जमाता है। यह (जब) सूर्य को विदित हुआ, तो (उसने छाया से कहा) तू इसकी माता बिलकुल नहीं हो सकती। इसी प्रकार, इसके तो सापत्न गर्भ है। इसलिए उस (कैकेयी) के दोहद अधम कोटि के हैं गर्भ में निवास करनेवाला सापत्न पुत्र कहता (उससे कहलाता) है- मैं (कैकेयी) जगत् के लिए निन्द्य हो जाऊँ। सुमित्रा को प्राप्त भाग स्वतंत्र था। इसलिए उसके दोहद अति पवित्र हैं. (इस विचार से) राजा का अन्तःकरण शान्त (चिन्ता की आग से मुक्त) हुआ और वे हर्ष-विभोर हो गए तब उन्होंने उठकर उल्लासपूर्वक सुमित्रा को हृदय से लगाते हुए उसका आलिंगन किया; (और वे बोले-) 'तुम्हारे मन में जो जो दोहद हैं, उनको सुन मेरे अनुग्रह से पूर्ण रूप से प्राप्त हो जाओगी'। फिर राजा ने उसपर निछावर करके नाना वस्त्र और आभूषण वार दिये। उसपर से राई नोन उतरवा दिया। ब्राह्मणों को अनेक वस्त्र दान में दिये।

कौशल्या का आत्मानन्द में लीन हो जाना– अब (इधर) राजा दशरथ की ज्येष्ठ रानी कौशल्या थी जो उनकी धर्मपत्नी थी। जो त्रिभुवन में नहीं समा पाते, वे श्रीराम (स्वरूप ब्रह्म) उसके गर्भाशय में (स्थित) थे। समझिए कि जो त्रिभुवन में नहीं समा पाता, वह स्वयं श्रद्धा भाव में समा जाता है। (साधक के मन में) सम्पूर्ण अच्छी (विशुद्ध) भक्ति उत्पन्न हो जाने पर (उसे अनुभव हो जाता है कि) हृदय रूपी आकाश में सम्पूर्ण ब्रह्म (व्याप्त हो गया) है। वहाँ से (सुमित्रा के भवन से) राजा तत्क्षण चल पड़े। उन्हें कौशल्या को देखने की उत्सुकता थी। (वहाँ आ जाने पर) उन्होंने राजपत्नी (पटरानी कौशल्या) को नहीं देखा न वे उसे शयन गृह में शय्या पर (पलंग पर) देख पाए। (अब) कौशल्या के सम्भ्रम को तो सुनिए। उसके उदर में (स्वयं) श्रीराम गर्भ रूप धारण किये हुए हैं उससे दोहदों की कामना (अभीष्ट कामना, इच्छा) पूछने पर उस घर में अनन्य (अनोखी) बात घटित हुई। कौशल्या की अवस्था (के बारे में) सुनिए। वह निरन्तर एकान्त में रहती थी। वह किसी की संगति, किसी साथी-संगिनी (के अस्तित्व) को सहन नहीं कर सकती थी। वह गर्भ में श्रीराम के होने की अनुभूति कर रही थी। उसे वस्त्र और आभूषण नहीं भाते थे, फूल और चन्दन नहीं भाता था। उसे न (सुख) भोग और दिव्य आसन अच्छा लगता था, न पलंग पर शयन करना। उसमें देह के प्रति निर्लोभ (अनासक्त) होने का लक्षण (दिखायी दे रहा) था। यही अत्यधिक दृढ़ वैराग्य (का लक्षण) होता है। श्रीरघुनन्दन राम के रूप में पूर्णब्रह्म पूर्ण रूप से उसके गर्भ में आ गए थे। समझिए कि उसने (अन्यान्य बातों के प्रति) आत्मीयता का त्याग करके प्रेम से विजन (निर्जन, एकान्त) स्थान को बसा लिया (एकान्त में रहने लगी)। उसने गर्भ स्वरूप दिव्य अंजन लगा लिया। राम स्वरूप (दिव्य) धरोहर उसके उदर (गर्भाशय) में स्थित थी। (जिसे उस दिव्य अंजन के लगाये रहने के फल-स्वरूप वह अपनी आँखों से देख रही थी)। अपनी कल्पना का दमन करके (मन को इधर-उधर भटकने न देते हुए) उसने निर्विकल्प

कल्पतरु का सेवन (आश्रय ग्रहण) किया था। (निर्विकल्प कल्पतरु जैसे राम का आश्रय ग्रहण किया था, निर्विकल्प समाधि अवस्था को वह प्राप्त हुई थी)। उस (कल्पतरु) के तले वह सुन्दरी (स्त्री) सहजतया आसन लगाकर बैठी हुई थी।

उसकी दृष्टि गर्भ से युक्त अपने उदर पर (स्थिरता के साथ) लगी हुई थी। उसकी प्रवृत्ति उलट गयी थी, अर्थात् सांसारिक बातों से विमुख होकर परमार्थ की ओर लगी हुई थी वह सृष्टि को अपने समान-आत्मवत् देखने समझने लगी थी। स्वाभाविक रूप से गर्भ (धारणा) के फलस्वरूप वह (उसकी देह) पुष्टता को प्राप्त हुई थी। तिस पर उस राज-महिला ने शुद्ध (निर्मल, पवित्र) सुमन-शाला बना ली थी। अर्थात् एक तो उसने अपने उस निवास-स्थान को पुष्प गृह सा बना लिया था, फूलों से सजा लिया था, मानो वह फूलों से निर्मित स्थान हो; दूसरे, लाक्षणिक रूप में यह भी कहा जा सकता है कि वह मानो अपने अच्छे, शुद्ध पवित्र अन्तःकरण रूपी गृह में बैठी हुई थी, बाह्य जगत् की ओर उसका ध्यान नहीं था; वह अपनी अन्तःकरण रूपी सृष्टि में लवलीन होकर बैठी थी. उसकी आँखों में द्वैत-भाव की दृष्टि नहीं आ रही थी। वह अपने को ब्रह्म (राम) से भिन्न नहीं देख रही थी। (आत्मा परमात्मा की) अद्वैत अवस्था में उसे सुख और आनन्द का उत्सव दिखायी दे रहा था। (कौशल्या के भवन के समीप आकर) राजा ने उसे भोग (विलास के लिए निर्मित और काम में लाये जानेवाले) भवन के अन्दर देख-खोज लिया, परन्तु वह पत्नी वहाँ नहीं मिली। अति लोभ (लालसा) से (वहाँ से) देखने पर भी वह उनकी आँखों को नहीं दिखायी दी। (तदनन्तर) उन्होंने वैखरी में देखा, पर उस सुन्दरी (स्त्री) को वे (वहाँ) देख नहीं पाये (वह वहाँ नहीं मिली)। फिर मध्यमा-स्वरूपा मध्य गृह (मझले कक्ष) में देखने पर भी वह उनकी दृष्टि से दूरी पर ही रही (अनन्तर) उनके द्वारा पश्यन्ती रूपी ओसारे या कोठी में देखने पर भी वे वहाँ अपनी स्त्री को नहीं देख सके। अतः परा रूपी ऊपर के खण्ड (मंजिल) में चढ़ गए। परन्तु निश्चय ही (सचमुच) उसकी कोई खोज (खबर) नहीं प्राप्त हुई। तब द्वैत की अर्गला (अगरी, अवरोध) को हटाकर और शब्दों की शृंखला (जंजीर) को काटकर उन्होंने निश्चय पूर्वक गुरु के वचनों के समूह के बल पर अद्वैत रूपी सुमन-शाला (के द्वार) को खोल लिया। वहाँ पैठने में बहुत बाधाएँ आ गयीं। फिर उन्होंने रजोगुण और तमोगुण के वस्त्र उतार डाले वे शुद्ध सत्त्व गुण रूपी आभूषणों को चाव से धारण किये हुए थे। परन्तु उन्होंने उन्हें भी तत्काल उतार डाला। इस प्रकार वे अकेले एक राजा उस सुमन-शाला में प्रविष्ट हो गए (सत्त्व रज तम जैसे गुणों तथा द्वैतभाव को भी उन्होंने त्याग दिया)। उन्होंने उस गर्भवती स्त्री को स्वयं खोजा, तब वह वहाँ भी उनकी आँखों को नहीं दिखायी दी अनन्तर अपने नेत्रों को विवेकबुद्धि से भरकर जब उन्होंने देखा, तब उन्होंने अपने निर्विकल्प आत्मसुख स्वरूपा कौशल्या को देख लिया। देखिए, उस (निर्विकल्प कल्पतरु) के तले अति सुन्दर कौशल्या बैठी हुई थी। राजा ने अपनी स्त्री को (वहाँ) देखा। (उन्हें दिखायी दिया कि) उसकी देह का तेज उसके अंग में नहीं समा रहा था। इस जगत् में यही (अवस्था) धन्य है। वह गर्भ (-धारण) के लक्षणों से, विशेष चिन्हों से युक्त (दिखायी दे रही) थी। (बिना किसी प्रयत्न के) वह सहजासन पर बैठने की स्वाभाविक मुद्रा में इस प्रकार बैठी थी जैसे किसी योगी को उन्मनी अवस्था प्राप्त हुई हो अपनी उस प्रकार बैठी हुई गर्भवती धर्मपत्नी को आँखों से देखकर वे शान्त हुए (उनकी आँखें ठंडी हो गयीं प्रसन्न एवं तृप्त हुई. उसे ध्यान से देखने पर वे आनन्दित हुए। उनका आनन्द सकल सृष्टि में उमड़ रहा था। उससे सुख के साथ बातें करते करते वे आत्मानन्दपूर्वक उसके गले लग गए। अनन्तर

उसे अपने पास सटाकर बैठाते हुए, वे उसकी ठोडी को हाथ से पकड़कर बोले– 'कदाचित् मेरी नज़र लग जाएगी। मन में जो दोहद हों, उन्हें बता दो'। (फिर भी) उसने ऊपर नहीं देखा। उसने दृश्य (देखने योग्य वस्तु) तथा द्रष्टा (देखनेवाले) की स्थिति को न देखा (उनके अस्तित्व को नहीं देखा)। उसकी मनोवृत्ति राम-रूप में लवलीन हुई थी। इसलिए वह व्यक्त (प्रकट, सामने उपस्थित) तथा अव्यक्त (अप्रकट) को नहीं देख रही थी। फिर राजा अति प्रीति से लबालब भर उठे। उन्होंने उसे दोनों बाहुओं में लेकर उसका आलिंगन किया। (फिर भी) उसे तो विदेह अवस्था प्राप्त हुई थी। (इसलिए) उसे अपनी देह सम्बन्धी भावना का कोई स्मरण (ज्ञान) नहीं हो रहा था। उसके उदर में विदेह (देह-रहित, निराकार) ब्रह्म गर्भ-रूप में उदित था। इसलिए उसे देह (के विषय) में कोई स्मृति नहीं हो रही थी। वह तो बाह्य सहित अन्दर में भी (अन्तर्बाह्य रूप से स्वतंत्र रूप से) शेष नहीं रही थी। वह स्तब्ध होकर श्रीराम को देख रही थी। (यह देखकर) राजा ने कहा– 'हाय, यह सुन्दरी किस प्रकार भूत पिशाच की पकड़ में आकर बहक गयी है ? अथवा इसके उदर (गर्भ) में कोई महद्भूत (बड़ा पिशाच) आ गया है, इसके नयनों में तनाव आ गया है (आँखें उलट गयी हैं)। (अब) घनश्याम भगवान् (मेरा हित) किस प्रकार करेंगे ? पुत्र-प्राप्ति की मेरी कामना किस प्रकार पूरी होगी ? पुरुषोत्तम आत्माराम रघुवीर उसे (किस प्रकार) सिद्धि को प्राप्त करा देंगे'। राम नाम को अपने कानों से सुनते ही उस गोरी (स्त्री) ने आँखों को खोलकर देखा तो उसने सृष्टि को राममय देखा। जब राजा ने आदर-पूर्वक देखा, तो (तब) उसका अपना तेज आँखों में नहीं समा रहा था। उसे देह के विषय में यह भी स्मरण नहीं हो रहा था कि मैं यहाँ एक गर्भवती (स्त्री) हूँ। जब उसने नीचे भूमि को देखा, तब वह (भूमि) राम रूप हो गई थी उसका पार्थिव से (भौतिक वस्तु, सृष्टि से) सम्बन्ध टूट गया था। देह में विदेह (ब्रह्म) राम (व्याप्त) थे। जब उसने दसों दिशाओं की ओर देखा, तब (उनमें) राम-रूप की मुद्रा (रूप) अंकित हुई दिखाई दी। आकाश की ओर देखने पर, वह (अपने नित्य के भौतिक रूप में) दिखाई नहीं दे रहा था। उसकी साँस-उसाँस में राम (व्याप्त) थे। वृक्ष, लताएँ और मण्डप सबको वह रामरूप देख रही थी। अशोक और नागचम्पक को देखने पर भी वहाँ उनके रूप में एक राम ही दिखाई दे रहे थे। जो उदर (गर्भ) में उत्पन्न हुए थे, वही समस्त अंगों में छलक रहे थे। उसकी देह की अभिलाषा पूरी हुई। समस्त संसार ब्रह्म (राम) -रूप हो गया था। उसने क्रीड़ा अर्थात् मनोविनोद के लिए पालित (मृग-) शावक को देखा, तो देखते ही (उसे प्रतीत हुआ कि) उसमें राम ही प्रकाशित (प्रकट) हो गए हैं। वह जिस-जिसको देखती रहती, उसे वह श्रीराम स्वरूप देखती रहती। (उसके लिए) रज्जु (रस्सी, डोर) सर्प नहीं हुआ; न ही सर्प रज्जु में मिला (पाया गया)। रज्जु में सर्प को नहीं देखा। (फिर भी अज्ञान से लोग) भ्रम से रज्जु को भुजंग (सर्प) मानते हैं, उसी प्रकार (अज्ञान के कारण) ब्रह्म में उसने जगत् नहीं देखा; ब्रह्म में जगत् का आस्वाद नहीं ग्रहण किया (ब्रह्म में जगत् को आभासित नहीं पाया)। ब्रह्म में जगत् (का अस्तित्व) नहीं सुना। लेकिन, भ्रम के कारण ही ऐसा माना गया (कि ब्रह्म में जगत् और जगत् में ब्रह्म है)। यह तो बड़ी भ्रान्ति है। जगत् कुछ एक (ब्रह्म) हो गया था– यह तो मूलतः मिथ्या बात है। वह आगे (भविष्य में) फिर हो जाएगा कल्पान्त समय तक में यह भी कभी नहीं घटित होगा। इस विषय में गुरु वसिष्ठ ने एक अलौकिक (दिव्य) श्लोक कहा है। सात्त्विक वृत्ति से युक्त सज्जन उसके तत्त्वार्थ को सुन लें।

श्लोक– (माया-जन्य अज्ञान से उत्पन्न) भ्रम के कारण 'मैं' (ब्रह्म से भिन्न अस्तित्ववाला) 'मैं' माना जाता हूँ और ऐसे भ्रम के कारण ही 'तू'– (स्वतंत्र अस्तित्ववाला) 'तू' माना जाता है भ्रम

के कारण ही उपासक जन (उपास्य से) भिन्न माना जाता है। भ्रम के कारण ही किसी ईश्वर विशेष का (ब्रह्म से भिन्न) अस्तित्व माना जाता है। इस प्रकार, यह जगत् भ्रममूलक (भ्रम रूपी जड़ से उत्पन्न) है.

भ्रम के कारण श्रेष्ठत्व में ईश्वर (का अस्तित्व) माना जाता है। भ्रम के कारण कर्म, धर्म, सदाचार माना जाता है। यह स्वयं सत्य है कि यह संसार भ्रम मूल है। जनक आदि लोग (वस्तुतः) मुक्त थे। फिर भी वे जगत् में रहते थे। उनके जगत् की (सांसारिक आचार व्यवहार की) स्थिति कैसी थी ? -वसिष्ठ ने इस सम्बन्ध में श्लोक रूप में जो बात कही है, उसे सुन लीजिए।

श्लोक– (जब साधक को ज्ञान प्राप्त हो जाता है, तो उसे अनुभव हो जाता है कि) ब्रह्मत्व, ब्रह्म-भवन (ब्रह्माण्ड) तथा ब्रह्म से उत्पन्न पचमहाभूत तथा जीव-अजीव की परम्परा (ब्रह्म से) भिन्न नहीं है। तब वह अनुभव करता है कि मैं ब्रह्म हूँ, मेरा शत्रु भी ब्रह्म है, मेरे सन्मित्र, बन्धुजन ब्रह्म ही हैं।

जिस प्रकार, सोने का कण (गोला, पिण्ड) लेकर उससे गढ़े हुए समस्त आभूषण वस्तुतः सुवर्णत्व ही धारण करते हैं, उसी प्रकार मुक्त व्यक्ति के व्यवहार परब्रह्म के कारण ही घटित माने जाते हैं। मुक्त जीव के लिए 'मैं' और 'तू' दोनों रूप ब्रह्म-रूप होते हैं; उसके लिए शत्रु और मित्र पूर्णब्रह्म होते हैं; यह त्रिभुवन ब्रह्मरूप होता है; भूत मात्र सनातन (शाश्वत) ब्रह्म-रूप होते हैं। ऐसी है मुक्त (जीवों) की ब्रह्मस्थिति। (मुक्त जीव इस प्रकार की ब्रह्म स्थिति को, ब्रह्म के साथ अद्वैत भाव को प्राप्त हो जाते हैं)। उसी स्थिति में वे संसार में रहते हैं। उनके ऐसे ब्रह्म-रूपत्व के कारण उनके चित्त में जीवित रहने तथा मृत्यु को प्राप्त होने की स्थिति में कोई भ्रान्ति नहीं होती। श्रीराम गर्भ में होने के कारण कौशल्या भ्रम से मुक्त थी। (उधर) राजा पुत्र-प्राप्ति की इच्छा को धारण करते रहने के कारण कर्म- भ्रान्त, अर्थात् कार्य के सम्बन्ध में भ्रम में पड़े हुए थे। इसलिए वहाँ (कौशल्या के भवन में) राजा उससे दोहद पूछ लेने पर घटित विनोद (हास्यरसात्मक घटना) के कारण भ्रमित हो गए।

॥ **स्वस्ति** ॥ यह श्री (भावार्थ) रामायण है। यह एकनाथ (स्वयं) गुरु जनार्दन की शरण में स्थित है। (हे श्रोताओ, अब) कौशल्या के गर्भ में परब्रह्म के स्थित हो जाने पर उसे जो दोहद अनुभव हो रहे थे, उनका निरूपण, वर्णन विनोद पूर्ण (मनोरंजनात्मक, हास्यरस से युक्त) है।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की श्री एकनाथ-कृत 'श्रीभावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत बालकाण्ड का 'राज्ञी दोहद-निरूपण' नामक यह चतुर्थ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय ५

[कौशल्या के दोहद]

कौशल्या से राजा द्वारा उसके दोहद-सम्बन्धी पूछताछ करना– पूर्व-कथित कथा का सन्दर्भ यह है– समझ लीजिए कि कौशल्या ने (जब) आँखें खोलीं, तो राजा दोहद पूछने के लिए स्वयं सतर्क हो गए। (ब्रह्म) राम गर्भस्थ होने पर कौशल्या (इधर) तत्स्वरूप अर्थात् ब्रह्म की स्थिति को प्राप्त थी, तो (उधर) राजा (सांसारिक) प्रवृत्ति धर्म के कारण पुत्र-प्राप्ति के अभिलाषी थे। उन दोनों के संवाद (बातचीत) में उनकी प्रीति अभिव्यक्त (हो रही) थी। (अब) निश्चित रूप से उसके दोहद सुन लीजिए.

राजा बोले 'हे कान्ता, तुम अपने मुख से बता दो, तुम्हें क्या चाव (रुचि) है अपने दोहद झट से कह दो। फिर अन्यान्य भ्रम को छोड़ दो'। तो वह बोली- 'मैं तो परिपूर्ण (यथार्थ रूप से) राम हूँ। मुझमें (मेरे विषय में) आपको फिर कैसा भ्रम है ? देवों के कष्टों का निराकरण करने के हेतु मैं पुरुषोत्तम (राम) अवतरित हूँ'। यह सुनकर राजा आशंकित हुए और बोले 'इसे क्या हुआ ? हे प्रिये, तुम स्वयं अपने आपको देख लो (जान लो), तुम होश में आ जाओ'। तो वह बोली 'मैं न स्त्री हूँ, न पुरुष; न नर या वानर हूँ न राक्षस ईश्वर के जो ईश्वर हैं, वे परमपुरुष श्रीराम- मैं हूँ'। राजा बोले 'हे तन्वंगी, तुम्हें क्या हुआ ? तुम्हारे मन में कैसा भ्रम भर गया (व्याप्त हुआ) ? झट से देख लो कि मैं कौन हूँ'। इस पर वह बोली 'मुझमें (मेरे लिए) अब 'मैं-तू' का अन्तर शेष नहीं रहा। जो विदेही परमात्मा (परब्रह्म) सबका अधिष्ठान है, उस (मुझ) श्रीराम को देखिए'। तो दशरथ बोले- 'हे कौशल्या, मेरा-तुम्हारा जो विवाह हुआ, उसमें रावण ने बहुत बड़ा विघ्न उत्पन्न किया था - उसे तुम कैसे भूल गईं ?

रावण का नाम सुनने का परिणाम– 'रावण' का नाम सुनते ही वह बोली, 'धनुष-बाण दे दो। लंका का अन्त (विनाश) कर देंगे। भयावह राक्षसों को मार डालेंगे। वन के वन्यजनों (वानरों, रीछों) को बुलाओ। उनके राजा सुग्रीव को मुकुट, कुण्डल और आभूषण दे दो। उसे राज्य देकर उसपर (राज) छत्र धरवाकर वानर-दल को चला दो। अरे, हनुमन कहाँ गया ? अंगद, सुग्रीव, जाम्बवान् कहाँ गये ? अब भी जगत् में रावण की बात (कैसे) शेष रही है ? अहो वज्रदेही हनुमान, रावण के अपने दुर्ग के चारों ओर अपनी पूँछ से घेरा डालकर, अहो, लंका को भड़भड़ाकर जला डालो और राक्षसों को तड़तड़ाहट के साथ गिरा दो। असंख्य वानरों को बुला लो और सागर को शिलाओं से पाट डालो। अरे, जो निशाचरों का निवास-स्थान है, उस नगर का पतन (नाश) कर दो। अरे, योद्धा कहाँ गये ? हाथों हाथ (देखते देखते, तुरन्त) लंका को उलट डालो। चारों दीवारों (प्राचीरों) को गिरा दो हमारे लिए दुर्ग कितने (बड़े) हैं (वे हमारे लिए कुछ भी नहीं हैं)। अरे, चहारदीवारी और चौक को भेद डालो। हम लंका के त्रिकूट को अर्थात् वह पर्वत जिस पर लंका बसी हुई है) गिरा देंगे। हमारे धर्म मार्ग को जो रोक रहा है, उस अति दुष्ट रावण को मार डालेंगे। हम अपने हाथ में बाण लेकर कुम्भकर्ण के मस्तक को छेद डालेंगे; रावण के सब अंगों को काट देंगे (युद्ध में शत्रु से) भिड़ जाने पर मैं पीछे नहीं हटता। हम राक्षसों के मस्तक-कमल लेकर लंका के सामने (समीप) गेंद बल्ला खेलेंगे। ताज़े रक्त की (गरजती हुई) लहरों में आज हम कंकालियों (पिशाचियों, क्षुद्र देवियों) को तुष्ट कर लेंगे। नवों ग्रहों की बेड़ियों को काट दो (और उन्हें मुक्त करो)। देवों के बन्धनों को खोल दो। रामराज्य की ध्वजा खड़ी करो (फहरा दो)। (हमारी) आज्ञा झट से तीनों लोकों में (पहुँच) जाएगी। पवित्र (शुद्ध) आचरण करनेवाले विभीषण को बुला लो। उसका राज्याभिषेक सम्पन्न करो और उसपर (राज) छत्र धर लो। उसे यावच्चन्द्रसूर्य अर्थात् जब तक चन्द्र और सूर्य रहेंगे, तब तक उसे स्वतंत्र लंका दी है। अरे, जगत् के दुःखों को नष्ट करो; त्रिभुवन को हर्ष से भर दो। परमपुरुष श्रीराम (के प्रताप) के कारण विश्व सुख से गूँजता रहे। (मेरे) नाम से कलिकाल को दण्ड प्राप्त हो जाता है। अर्थात् कलियुग में पाप, दुराचार आदि करनेवाले दुर्जनों को दण्डित हो जाना पड़ेगा तुम यमदूतों की ओर ध्यान तक न दो मेरे नाम के दो अक्षरों से यम और उसके दूत आतंक को प्राप्त कराये गए हैं; वे पराङमुख होकर (मेरी ओर पीठ फेरकर) काँप रहे हैं। जो वाणी (जिह्वा, मुख) से राम-नाम का उच्चारण करता है, उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करें; उनके

जन्म मृत्यु के कष्टों का हरण करें। उनको आसानी से शान्त-तृप्त करें। जो (मेरे) नाम का नित्य जाप करता है, उसे मेरे ही समान जान लें; समझ लो कि उसने समस्त नियम व्रतों का निर्वाह किया है, अत: वह पुरुषों (नरों) में पुरुषोत्तम (सर्वश्रेष्ठ) है'। (यह सुनकर) राजा को आशंका हुई– देखिए, इसके पेट (गर्भ) में पिशाचिनी आ गयी, अथवा गर्भ में ही ताड़का राक्षसी उदित हुई है। मैं (अब) अच्छी स्थिति और सुख से अन्तर को प्राप्त हो गया हूँ। (इतने में फिर) वह बोली- 'अरे, भले सौमित्र (लक्ष्मण), अब (तक) ताड़का कैसे (जीवित) है ? वह भले मनुष्यों के सुख में बाधा उत्पन्न कर रही है। उसे एक बाण से छेद डालता हूँ।' (यह सुनकर) राजा बोले- '(अब) इसपर कोई मंत्र नहीं चलेगा। फिर भी मंत्रों के ज्ञाता विश्वामित्र ऋषि को बुला लो'। तब वह बोली- 'सौमित्र लक्ष्मण कहाँ गया ? वे ब्राह्मण (ऋषि) यज्ञ करने के लिए आ गये हैं। मुझे झट से बहुत से बाण क्यों न दे दो ? हम मारीच और सुबाहु को बाँधकर मार डालेंगे और राक्षसों का विनाश करेंगे। वे हा हा, हू हू कर रहे हैं'। तब राजा को यह स्मरण हुआ (वे बोले) 'समझ लो कि परशुराम भगवान् विष्णु के अवतार हैं। इसमें महापिशाच का संचार हुआ है, समझो। उस परशुराम के नाम से उस दारुण पिशाच का नाश हो जाए'। (यह सुनकर) वह बोली 'अहो जामदग्न्य (जमदग्नि के पुत्र परशुराम), सुनो। हे प्राज्ञ (ज्ञानी पुरुष), मैंने तुम्हारे धनुष को भग्न किया है, हे सर्वज्ञ ब्राह्मण, तुम विचार करके समझ लो। हे अज्ञ, तुम तप करने के लिए चले जाओ'। (इसपर) राजा ने सोचा, 'इसकी देह में पिशाच के संचरण से ज़ोर-तनाव उत्पन्न हुआ है इसकी जिह्वा ढीली हो गयी है। इसके ये दोहद कैसे विकट हैं ? नहीं जान पाता कि इसके पेट (गर्भ) में क्या आया है, झट से गुरु वसिष्ठ को बुला लो। वे प्रकाण्ड मंत्रवेत्ता हैं। वे श्रेष्ठ ऋषि (इस ज्येष्ठ रानी की) परीक्षा करेंगे। वे समस्त वरिष्ठ लोगों के गुरु हैं'। जब वसिष्ठ ने वहाँ आकर देखा, तब (उनकी समझ में आया कि) वह राममय हो गई है। वे बोले 'हे माता, हे स्वता, धन्य हो, धन्य हो। इसके चरणों का वन्दन करें'। जब उन्होंने आदरपूर्वक ध्यान से देखना चाहा, तो चित्त और चैतन्य (मानों) गले लगकर एक हो गए। उनका मन ब्रह्म के साथ एकरूप हो गया। उनके नेत्रों में आँसुओं की धाराएँ बहने लगीं। रोम रोम पर स्वेद की बूँदें चमकने लगीं। उनका शरीर थरथर काँपने लगा। इस प्रकार मुनिवर वसिष्ठ को अदम्य अवस्था प्राप्त हुई। (यह देखकर) राजा बोले, 'यहाँ (किसी की) कुछ (भी) नहीं चल रही है। मंत्र-वेत्ता ही भूत से ग्रस्त हुए हैं। (अब) इन्हें कौन छुड़ाएगा ?' ऐसा कहते हुए (सोचते हुए) वे मन में व्याकुल हो उठे

दशरथ की कौशल्या के सम्बन्ध में चिन्ता– दशरथ ने कहा (सोचा) -मैं कौशल्या को सम्हालूँ या वसिष्ठ को होश में लाऊँ (इस दुविधा से) राजा बहुत कष्ट को प्राप्त हुए। (अत:) वे सहायता के लिए बहुत पुकारने लगे (दुहाई देने लगे)। (उन्हें जान पड़ा-) मैंने श्रवण के वध के कारण असह्य क्लेश सहन किये आगे चलकर (अब) वसिष्ठ की हत्या के कारण वही बड़े क्लेश (सहन करने) होंगे। हे श्रेष्ठ विधाता, तुमने अदृष्ट (दैव) में क्या लिखा है। भूत ने वसिष्ठ को ग्रस्त किया है। इनका बड़ा दोष (पाप) मुझपर घटित है। मैंने (पुत्रकामेष्टि नामक) पवित्र यज्ञ सम्पन्न किया– (उसके फल स्वरूप) मैं अपने कुल में सुपुत्र को प्राप्त हो जाऊँगा (होनेवाला हूँ)। तब बीच में यह लीला (घटना) कैसे घटित हुई।

दशरथ को कुलगुरु वसिष्ठ द्वारा आश्वस्त करना– उस अवस्था (रूपी लहर) को पेट अर्थात् मन में दबाकर नष्ट करते हुए वसिष्ठ ने आँखें खोलीं। (यह देखते ही) राजा उनके गले लग गए। उनके लिए (समस्त) सृष्टि विपरीत हो गई थी। (वे बोले) 'हे स्वामी वसिष्ठ, आपको भी यह (किस प्रकार) पीड़ा हुई ? यह ऐसी बात तो कभी घटित नहीं होती है। हम (जैसे) मन्द भाग्यशालों के पुत्र से प्राप्त होनेवाले सुख में ऐसी विपदा आड़े आ गई है'। तो वसिष्ठ बोले "तुम्हारे भाग्य श्रेष्ठ हैं"- (इसलिए) वैकुण्ठ पीठ के स्वामी भगवान् विष्णु गर्भ में आ गये हैं- भगवान् पुरुषोत्तम प्रकट हो गए हैं, भाग्य की दृष्टि से कौशल्या सर्वोपरि है। उसने जो जो कुछ कहा है, उसे अहो, ब्रह्म की उक्ति समझिए। वह ख्याति दिलानेवाली भली (भली) बात कर देगी। (अब) सूर्यवंश की अच्छी स्थिति आ गयी है। श्रीराम साक्षात् मुनिजनों के ध्येय और ध्यान का विषय हैं; देवों के पूजनीय देवता हैं, जगत् के जीवन हैं, साक्षात् निधि हैं। हे राजा, आपकी समझ में यह रहस्य बिलकुल नहीं आ रहा है कि परब्रह्म (कौशल्या के) गर्भ में आ गया है। हमारा कर्म (पूर्वकृत कर्म, दैव) धन्य है, धन्य है। इस (सूर्य) वंश का हमारा पौरोहित्य धन्य है, धन्य है। वे (परब्रह्म स्वरूप) राम अपने चरण (स्पर्श) से शिला के (रूप में स्थित अहल्या) का उद्धार कर देंगे। वे जनक की कन्या से परिणय करेंगे। वे समस्त लोगों को अभिनन्दित कर देंगे। राम सबके प्राणों के लिए आत्मीयता-पूर्ण हैं। इनके नाम (स्मरण आदि के प्रभाव) से फोकट में मुक्ति प्राप्त होगी। ये (अयोध्या) नगरी को वैकुण्ठ ले जाएँगे। 'राम' बोलने पर (राम-नाम का उच्चारण करने पर) वे पापी को उत्तम गति प्रदान करेंगे। सूर्यवंश धन्य है, धन्य है। अयोध्या का देश (राज्य) धन्य है, धन्य है। कौशल्या के जन्म का फेरा धन्य है, धन्य है। उसके गर्भाशय में जगन्निवास भगवान् स्वयं निवास करने आ गए हैं। यहाँ के लोग धन्य हैं, धन्य हैं। हे दशरथ, आपका मन धन्य है, धन्य है। हमारे नयन, जो राम-स्वरूप निधि को देखते रहेंगे, धन्य हैं, धन्य हैं"।

दशरथ का आनन्दित हो जाना– वसिष्ठ द्वारा ऐसा कहने पर दशरथ को शान्ति प्राप्त हुई पुत्र सम्बन्धी ऐसी वार्ता सुनने पर उनके चित्त को धैर्य तथा सुख प्राप्त हुआ। उन्हें किसी (अन्य बात) का स्मरण नहीं हो रहा था। जिनके बारे में (केवल) कानों से सुनते ही तन-मन को ऐसा भुलावा पड़ गया, उनके दर्शन से क्या होगा ? उस सुख को वही (देखनेवाला ही) एक जानता होगा। बिना राम-नाम के कथाएँ अनाथ हो गई थीं। उनको कौशल्या-सुत राम के नाम ने सनाथ बना दिया। कौशल्या के ऐसे दोहद सुनकर दशरथ को सुख और आनन्द हुआ। उससे (उनके हृदय-सागर में) परमानन्द उमड़ पड़ा। उन्होंने तत्काल वसिष्ठ का वन्दन किया। जनार्दन स्वामी के शिष्य एकनाथ ने सन्तों (श्रोताओं) से विनती की– जिनके गर्भ में आने से कौशल्या माता को जो दोहद हुए, उन्हें सुनने पर चित्त को उल्लास अनुभव होता है, उन (राम) के जन्म की कथा का (अब) श्रवण कीजिए। एकनाथ कहते हैं, परम जनार्दन ब्रह्म के विषय में दोहदों का ऐसा बड़ा भ्रम उत्पन्न हुआ। जो वस्तुतः अजन्मा (अज) ब्रह्म हैं, वे श्रीराम जन्म को प्राप्त होंगे (हुए)। उनके जन्म सम्बन्धी संभ्रम की कथा (अब) सुनिए। (वे जन्म को प्राप्त हुए यह आभास या भ्रम मात्र है)।

॥ स्वस्ति ॥ श्रीमद्रामायण की श्री एकनाथ कृत 'श्रीभावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत बालकाण्ड का 'कौशल्या दोहद-निरूपण' नामक यह पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

❊❊❊❊

अध्याय ६

[रानियों की प्रसूति और पुत्र-जन्म]

श्रीराम की जन्म-वेला– (सुनिए) श्रीराम के जन्म की (कैसी) विशिष्ट बड़ाई (महत्ता, असाधारणता) थी। अजन्मा (ब्रह्म) रामराज (के रूप में नर-) जन्म को प्राप्त होनेवाले हैं- (यह जानकर) उन्हें देखने के लिए देवों और मनुष्यों का समुदाय आ गया। वे यह आश्चर्य (-कारी घटना) देखने के लिए आ गए। कौशल्या की प्रसूति का समय आ गया, तो (देवों के) विमान आकाश में (घनी भीड़ में) इकट्ठा हुए। देव (विमानों में विराजमान होकर) वेगपूर्वक आ गए। रघुनाथ राम सूर्यवंश में जन्म को प्राप्त होनेवाले थे इसलिए सूर्य सिर पर आ गया। श्रीराम के जन्म के समय लग्न में अभिजित मुहूर्त सिद्ध हुआ। ग्रहगण वक्र होकर तथा अतिचार करते हुए, वेगपूर्वक चलकर स्वयं, जहाँ उनका अपना अपना केन्द्र तथा उच्च स्थान है, वहाँ पर आ गये। वह शुद्ध (निर्मल) सुमनों से युक्त वसन्त ऋतु थी। मास अतिविख्यात मधु (चैत्र) मास था। उसका शुक्ल पक्ष था और उसकी नवमी तिथि थी जब रघुनाथ राम जन्म को प्राप्त हुए।

कौशल्या का सुख पूर्वक प्रसूत होना तथा श्रीराम का आविर्भाव– श्रीराम स्वयं अयोनिज हैं (उनका जन्म किसी मानव स्त्री के गर्भ तथा योनि से नहीं हुआ)। उन्होंने जन्म ग्रहण करते समय (माता की) योनि को स्पर्श तक नहीं किया। कौशल्या ने उन्हें अपने नयनों से अपने सम्मुख (प्रकट हुए) देखा, तो वह आश्चर्य से चकित हो गई। उसे प्रसूति के समय की सी तीव्र वेदना नहीं हुई। गर्भ से युक्त उदर में दर्द नहीं हुआ। (इस स्थिति में) राम स्वयं प्रकट हो गए। उनका अपना तेज अति प्रखर था। अपने आपके प्रकाश से वे अपनी लीला प्रकट कर रहे थे। वे अपने तेज से अति उज्ज्वल दिखाई दे रहे थे। कौशल्या ने अपनी आँखों से आँखों को चकाचौंध कर देनेवाले उन (मूर्तिमान) घनश्याम को (अपने पास आविर्भूत) देखा। जिस तेज के विस्तारस्वरूप विलास से (दर्शन या भक्त के मन में स्थित) 'मैं-तू' का अर्थात् द्वैतभाव का ठौर-ठिकाना ही पुँछ जाता है, जिससे जगत् आत्मभाव से (अपने रूप आकार-प्रकार से) प्रकट हो जाता है और सुख (के अनुभव) से परम आनन्द से उल्लास को प्राप्त हो जाता है। जिस तेज के अपने निश्चित स्वरूप से अहं सोऽहम् (यह मैं हूँ, मैं ही वह ब्रह्म हूँ) भाव मूल-सहित नष्ट हो जाता है, त्रिलोक ब्रह्मत्व से अवतरित हो जाता है, (ब्रह्म से त्रिभुवन आकार प्रकार रूप से युक्त अस्तित्व को प्राप्त हो जाता है) और (भक्त के) सर्वांग में आत्मानन्द भरकर व्याप्त हो जाता है

जिस तेज की अपनी निष्ठा (प्रतिष्ठित होने) से (भोग-विलास के भौतिक रूप, रस, गन्ध आदि विषयों का विषयत्व) विशिष्ट भोग्य गुणधर्म सूखकर नष्ट हो जाता है, जिससे जीव के जन्म-मरणस्वरूप बन्धन तथा मोक्ष का पाश टूट जाता है और उसमें स्वयं परब्रह्म पूर्णतः व्याप्त हो जाता है। जिस तेज की दीप्ति के सामने सूर्य और चन्द्र स्वयं लुप्त हो जाते हैं, वह तेज ब्रह्म के स्फुरण से राम के रूप में प्रकट हो गया। उससे मानों भोग्य विषयों के अस्तित्व अर्थात् योग्यता से रहित स्थिति को प्राप्त होने पर आत्म-सुख व्याप्त हो गया। इस प्रकार के स्वाभाविक (स्वयम्भूत) सहज तेज का जो ब्रह्मस्वरूप अपना तेज है, उसकी (सगुण-साकार) चार हाथों से युक्त मूर्ति और उसकी कौतुक-लीला को कौशल्या (अपने निकट) देख रही थी। उसने 'ठ' अक्षर के आकार-सा पैंतरा जमकर धारण किया हुआ देखा। उस मनोहर

पैंतरे में स्थित राम दो हाथों में धनुष बाण धारण किये हुए थे; वे राक्षसों का निर्दलन करने के लिए धनुष की डोरी को खींचकर विशिष्ट विन्यास में विराजमान थे। देवों, नरों और (सूर्य, चन्द्र आदि) ग्रहों के बन्धन को छुड़ाने के लिए, उन्हें अभय दान देने के लिए सम्पूर्ण अभय दिलानेवाले हाथों से युक्त रघुवीर श्रीराम (वहाँ) विराजमान थे। राम-नाम का स्मरण करने पर जीवों को (उसके फलस्वरूप) पूर्ण ब्रह्मरूप बना देने का आश्वासन स्वयं कृपालु राम वरद हस्त से परिपूर्ण रूप में प्रदान कर रहे थे।

श्रीराम के सामुद्रिक लक्षण– श्रीराम के चरणों के तलुओं में ऐसी आरक्त (लालिमा से युक्त) शोभा (सुन्दरता) विराजमान थी। वह बालसूर्य की प्रभा को लुप्त कर सकती थी। (जो) जगन्माता जगत् को मोहित कर देती है, वह भी (श्रीराम के) उन चरणों के रंग के प्रति मोहित हो गयी। माया सबके लिए अतर्क्य है– वेद-शास्त्र में उसकी ऐसी ख्याति (वर्णित) है। (फिर भी) वह भी उनके चरणों के प्रति विमोहित हुई और सदा के लिए वह उनकी दासी बन गयी। सनक आदि अतिविरक्त (अनासक्त) पुरुष (माने जाते) हैं; वे भी उनके चरण कमलों में आसक्त हो गए और (मानो) भ्रमर बनकर आत्मानन्द पूर्वक उनकी सुगन्ध का नित्य सेवन करते हैं। वेदों तथा शेष द्वारा (श्रीराम के) सामुद्रिक चिह्नों का वर्णन नहीं किया जा पाता। देखिए, उनके चरणों में ध्वज, वज्र, अंकुश, ऊर्ध्व रेखा है, पद्म है और वे यव-चिह्न से अंकित हैं। उनके चरणों में आरक्त शोभा (विद्यमान है। उनकी सुरम्य विशुद्ध श्याम कान्ति है। जैसे आकाश में इन्द्रधनुष शान के साथ विराजमान होता है, वैसे ही (श्रीराम के आकाश के-से श्याम वर्ण से युक्त शरीर में) शोभा सुशोभित (दिखायी दे रही) है। उपासकों के पास कोई पूर्ण (अभिमन्त्रित) यंत्र होता है, वैसे ही (दिखायी देनेवाले) उनके त्रिकोणाकार नीलवर्ण टखने दोनों पाँवों में विराजमान होकर शोभा दे रहे हैं उस यंत्र के पृष्ठ भाग में कोई गहन वर्ण (अक्षर) अंकित हो, वैसे ही (श्रीराम के टखनों रूपी यंत्रों के पृष्ठ भाग में उनकी सीधी पिण्डलियाँ (जान पड़ती) हैं वे (मानो) निर्दोष (मंत्र) अक्षर रूप में (विद्यमान) हैं। वे अति निर्मल तथा सुकुमार हैं। उनके जानु-चक्र (चक्राकार घुटने) अति अर्थात् पूर्ण वृत्ताकार हैं। वे (मानो) स्वयं निर्मल दर्पण हैं। उनका अपना समस्त रूप वहाँ पर तत्काल प्रतिबिम्ब स्वरूप हो जाता है। कदली (केले) के तने का विशुद्ध सार भाग (गूदा) बहुत सुकुमार होता है परन्तु श्रीराम की जाँघें उससे भी अधिक सुकुमार हैं। उनके जघनद्वय (कटि-प्रदेश) ऐसे मृदु हैं कि उनमें चन्द्र की किरणें लगते ही गड़ जाती हैं। श्रुतियाँ (वेद) और स्मृतियाँ उनके दोनों पाँवों में धारण की हुई बाँकें हैं, जो गर्जन कर रही हैं। यह निश्चय ही समझिए कि उनमें जंजीरें- अपने अपने स्थान (अधिकार स्थिति) के अनुरूप (स्थित) उपभेद हैं। वेदान्त (वस्तुतः) विशुद्ध महान शास्त्र है, जिस (के सिद्धान्तों) का गर्जन (ज़ोर शोर से वर्णन, व्याख्या) पाँवों में पहने हुए तोड़र (छोटे-छोटे) घुँघरू कर रहे हैं। दैत्यों के वे प्रचण्ड शरीर धन्य हैं, जो श्रीराम के चरणों में धारण किये हुए तोड़रों में अनवरत अच्छी तरह बैठे हुए हैं। ब्रह्म स्वरूप श्रीराम जगत् का पूर्ण गुह्य (रहस्य) है। उस गुह्य का लक्षण गुह्य (गूढ़) है वहाँ तक कोई भी पहुँच नहीं पाता। (परन्तु) वहाँ तक पहुँचने के (और निवास करने के) सुख का सम्पूर्ण उपभोग जानकी करती है। स्वयं जो छिद्र हीन (निर्दोष) रहते हुए मनोहारी है और जो पास आनेवाले के दोष को छिपा देता है, वही पीताम्बर (श्रीराम की) कटि में विराजमान है। वह असह्य तेज से देदीप्यमान है। वह पीताम्बर (मानो) अपनी भक्तिभावना के साथ श्रीराम की कटि में लगा हुआ है इसीलिए वह बिना किसी प्रयत्न के (जगत् तथा ब्रह्म के) गूढ़ गुह्य को प्राप्त हो गया है। उनकी नाभि अति गहरी है एक सहस्र वर्षों तक उसमें डूबे रहने पर भी ब्रह्मा को उसकी थाह नहीं

लग सकी। (अतः) वे व्याकुल होकर ऊपर आ गये। तब नारायणस्वरूप श्रीराम ने उन्हें आश्वस्त करके (अपनी नाभि में उत्पन्न) कमलस्वरूप आसन पर बैठा लिया और उन्हें चार श्लोकों के रूप में उपदेश देते हुए, श्रेष्ठ बनाते हुए वहाँ उनको प्रस्थापित किया। श्रीराम का ऐसा वह नाभि-स्थान है, जहाँ ब्रह्मा बैठे हैं और देख रहे हैं। फिर भी (उन्हें भी नहीं) वेदों और शास्त्रों को (तक) उनके हृदयस्थ महिमामय गुह्य (रहस्य) का कथन (वर्णन) करते करते मौन धारण करना पड़ता है। जिनके हृदय स्वरूप चिदाकाश में (पंचमहाभूतों में से) आकाश (समस्त भूतमात्र को व्याप्त करने के) अपने कार्य में हार जाता है, उस स्थान तक सिद्ध पुरुष चिदंशस्वरूप ब्रह्म के साथ एकात्म होकर पहुँच गए। वहाँ मुनिजन अनन्य (भक्ति) भाव से जुड़कर उस ब्रह्म स्वरूप राम के साथ अभिन्न (एकात्म) हो गए हैं वही (ब्रह्म के साथ) एकात्म होनेवाले उन मुनिजनों के प्रतीक रूप में परिपूर्ण पदीक है, जिसे वे श्रीराम बिना किसी डोर के अपने हृदय-स्थल पर धारण किये हुए हैं। अपनी कटि की सूक्ष्मता (पतलापन) सिंहों के लिए अति नशीले घमण्ड का कारण होती है। सिंहों को उस पर घमण्ड था परन्तु श्रीराम के (शरीर के) मध्य भाग अर्थात् कटि (की सूक्ष्मता) को देखकर वे (सिंह) मारे लज्जा के भागकर वन के अन्दर चले गये। (तब) श्रीराम के मध्य भाग (कटि) की रचना देखने के लिए सिंहों को अपने घमण्ड का त्याग करना पड़ा और वे मेखला के अधीन और अनुकूल होकर (आकार प्रकार में छोटे होकर) उनके मध्य भाग (कटि) में चित्र रूप में (जड़ होकर) जुड़ गये हैं। (मतलब यह है कि राम की मेखला में सिंहाकृतियों को जड़ दिया गया है)। (वस्तुतः) जो (ब्रह्म) अपार असीम है, अनन्त है, उसे (मुनिजन, सिद्ध, योगी पुरुष) अनुभव के रूप में जान पाते हैं। उसी प्रकार, ब्रह्मस्वरूप रघुनाथ राम मेखला द्वारा सम्पूर्ण आबद्ध दिखायी दे रहे हैं। निज वस्तु अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति हो जाते ही समस्त (विकारादि) प्रवृत्तियाँ उपशम को प्राप्त हो जाती हैं (शान्त हो जाती हैं); उसी प्रकार, (मेखला में जुड़े हुए) घुँघरुओं की पंक्ति अधोमुख हुई है (मेखला में जुड़े हुए घुँघरू मानों सिर झुकाये बैठे हैं)। नाना प्रकार के दार्शनिक सिद्धान्तों का समुदाय हो (मेखला में बँधी हुई) ज्वालाओं की माला-सी जगमगाती हुई किंकिणियाँ हैं, इस प्रकार की विचित्र लीला प्रदर्शित करती हुई श्रीराम की कटि में शोभा दे रही है।

(देखिए) पीताम्बर के वे दोनों भाग (छोर)– उन दोनों छोरों में मोतियों के गुच्छे लगे हुए हैं। उससे (मानों) उसके अंग की कामनाएँ पूरी हो गयीं। (क्योंकि) अंग अर्थात् उसे धारण करनेवाले उनके शरीर की स्वाभाविक शोभा निर्दोष है। बाह्य रूप सहित उनके पूर्णतः सुगठित वक्ष-स्थल को देखने पर निर्जन (वन-) स्थल के निवासी तपस्वी (उनके प्रति मोहित होकर मन से वहाँ निवास करने लगते हैं, यद्यपि उनके लिए समस्त जन-समाज और वन (निर्जन स्थान) दोनों सम समान ही होते हैं। उनके कम्बु (शंख) से कण्ठ को देखकर लगता है कि वह तो वेदों की चलती बाट है (कण्ठ ऐसा मार्ग है, जहाँ से वेदों का प्रकटन होता है)। वहाँ से वरिष्ठ मर्यादा से युक्त (वेदों के) स्वर वर्ण प्रकट होते हैं। ॐकार के अन्दर (समस्त) वर्णों (ध्वनियों) की अभिव्यक्ति (मानी जाती) है। उसी प्रकार, उनके मुख में (दोनों) दन्तपंक्तियाँ स्थित हैं। दूध के चार-चार दाँत शोभा के साथ झलक रहे हैं। उनमें विशुद्ध चिदानन्द की दीप्ति स्थित है। जन में 'जीव' और 'शिव' (जीवात्मा और परमात्मा) दोनों विभक्त रूप में आभासित होते हैं। देखिए, वैसे ही उनके दोनों होंठ हैं। फिर भी, जिस प्रकार 'जीव' और 'शिव', अलग-अलग आभासित होने पर भी (वस्तुतः) एक ही हैं, उसी प्रकार वे दोनों होंठ श्रीराम के वदन में (जीव-शिव के-से) एकत्व को प्राप्त हुए हैं, एकात्म कर देनेवाले मिलन में जुड़ गए हैं। नास्तिक मत को नष्ट

करनेवाला जो सरल सीधा आस्तिक भाव (ब्रह्म, वेद आदि सम्बन्धी श्रद्धा) है, वही श्रीराम की सीधी नाक है। वह सुन्दरता के सौन्दर्य बल को अपनी सुन्दरता से सुशोभित कर रही है। समझिए कि जितना वायु, (महाभूत, तत्त्व) चल रहा है, वही समस्त श्रीराम का मुख्य प्राण है। वही वेदों का जन्म-स्थान है, वह अपने त्रिकाण्ड में परिपूर्ण है। चैतन्य की दृक्-शक्ति (स्वरूप सुन्दरता) उनके नेत्रों की शरण में आयी है। दर्शन (देखना) श्रीराम के रूप में स्वयं दर्शक बनकर सबाह्य दृश्य (स्वरूप) हो गया है। उनकी दृष्टि आत्मानन्द से परिपक्व हो गई है। वह सृष्टि को चित्स्वरूप मात्र देख रही है। उसने दृष्ट रूप को (सृष्टि को) पुष्टि प्राप्त करा दी है। इस प्रकार (जान पड़ता है) द्रष्टा ही पीछे और आगे (सर्वत्र) दृश्य को ही देख रहा है। जिस प्रकार दीप के पीछे (तले) छाया होती है, उसी प्रकार उनके नेत्रों के पृष्ठ-भाग में भृकुटियाँ हैं। देखिए, वे अपनी वक्रता (कुटिलता) को छोड़कर श्रीराम की देह में शोभायमान हो गई हैं। जिनकी भृकुटि का विक्षेप (दृष्टि-पात) कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों का निर्माण करता है, वहीं पर श्रीराम की अथाह बाँकी दृष्टि लगी रही है। पूर्व-मीमांसा और उत्तर-मीमांसा (वेदान्त) ही श्रीराम के पूर्णत: मुख्य रूप से कान हैं, श्रवणों (कानों) का आभूषण (वेदान्तादि का) वह श्रवण है, जो (श्रवण किया जाना) वेदान्त के लिए अपना आभूषण है। कहते हैं, कुण्डल साकार हैं; कोई एक कहते हैं कि वे मकराकार (मत्स्याकार) हैं परन्तु वे सत्य रूप से निर्विकार हैं। श्रवण से आकार आदि विकार नष्ट हो जाते हैं। श्रवण (क्रिया) के लिए सम्पूर्ण सावधानी अपना आभूषण होती है। समझिए कि बिना सावधानी (बिना ध्यान या अवधान) के श्रवणों (कानों) के लिए अन्यान्य (कुण्डलादि) आभूषण दूषण (स्वरूप) हो जाते हैं। श्रीराम के अपने श्रवण (कान) वेदों और शास्त्रों के लिए अपने स्वयं के आभूषण हैं। वहाँ तो (उन कानों में) कोई दोष पैठ ही नहीं सकता। श्रीराम पावन के लिए पावन ही हैं। जिस प्रकार (वेद आदि का) अधिष्ठान निर्मल होता है, उसी प्रकार, देखिए, उन श्रीराम का विशाल भाल (निर्मल अधिष्ठान) है, जिनके मस्तक की वेला (सीमा) की कामना समस्त देवता करते हैं। 'अहंभाव' को घिस (घिस) कर (नष्ट करके) उसमें से 'सोऽहम्' रूपी विशुद्ध चन्दन निकाला गया है। वह चन्दन भी अर्चन के समय श्रीराम के ललाट में चर्चित कर समर्पित किया गया है। पहले ही (एक तो) वे घनश्याम हैं। तिस पर (उनके मस्तक में) पीत वर्ण का तिलक अंकित किया हुआ है। उससे मानों शोभा ही उनके भाल पर सुशोभित हो गयी है। यह देखकर समस्त देवों को आत्मानन्द हो रहा है। सत् चित् और आनन्द- (तीनों) एक रूप में प्रतिष्ठित हो जाएँ– वैसी हो जान पड़ती है उनके ललाट में स्थित त्रिगुणात्मक (त्रि-रेखात्मक) त्रिवलि (पेट पर नाभि से कुछ ऊपर पड़ने या बनने वाली तीन रेखाएँ, जो सौन्दर्य की सूचक मानी गई हैं)। ज्ञान स्वरूप चन्दन की सुगन्ध से उनके अपने निर्मल (अन्त:करण वाले) सद्भक्तों ने उनका पूजन किया है। (कवि एकनाथजी कहते हैं–) मैं उनकी भृकुटि की महिमा का (स्तुति युक्त कैसे) वर्णन कर सकूँगा ? उपमा रहित (अनुपमेय) की उपमा कैसी ? उनके मुकुट की मणि के गौरव को ब्रह्मा (तक) समझ नहीं पाते। जो श्रीराम आभूषण धारण करने से शोभायमान दिखायी दे रहे हैं, वे श्रीराम स्वयं आभूषणों के आभूषण हैं। जैसे सोना सुवर्ण-मुद्रा में परिवर्तित होने पर (सुवर्ण रूप में) समाप्त हो जाता है (फिर भी वह तो सुवर्ण ही है), अथवा सुवर्ण-मुद्रा सुवर्ण रूप में सर्वत्र समाप्त ही हो जाती है, (फिर भी सुवर्ण समान ही समादृत होती है); वैसे ही आभूषण अपने सगुण साकार रूप को झलकाता रहता है, फिर भी निर्गुण आभूषण के लिए भी आभूषण होता है। मूलत: निर्गुण से ही सगुण शोभायमान होता है, जैसे आभूषण सुवर्ण से अभिन्न होने के कारण शोभायमान समझा जाता

है। इस प्रकार (के रूप में स्थित) श्रीराम (के उदर) में सृष्टि को राम-रूप देख लें और सबाह्य सृष्टि (श्रीराम रूप) सम्पुट में देखें। श्रीराम (इस प्रकार) सृष्टि की ओर देख रहे थे। इस प्रकार के (रूपधारी) श्रीराम को देखकर कौशल्या के मन में प्रेम उमड़ उठा। उस सुख के सुखद सम्भ्रम में वह देह धर्म को भूल गई। उसका शरीर समस्त अंगों-प्रत्यंगों में रोमांचित हो उठा। उसमें बड़े-बड़े स्वेद-बिन्दु उत्पन्न हुए, उसका चित्त चैतन्य में विराम को प्राप्त हुआ। उसके नेत्रों से आनन्दाश्रु झरने लगे। उसका आत्मिक आनन्द उसके उदर में, अर्थात् देह और मन में नहीं समा रहा था (वह फूली नहीं समा रही थी)। (उसके हृदय सागर में उत्पन्न) सुख की उर्मियाँ (ऊपर आते हुए) कण्ठ में अटक गईं उसका गला भावातिरेक से रुँध गया। उसकी दृष्टि उन्मीलित हो गई और वह मूर्च्छित होते हुए धरती पर गिर पड़ी। जैसे केले के पौधे से पवन भिड़ जाए, तो वह कम्पित हो जाता है, वैसे ही उसका (कदली सा) कोमल शरीर कम्पायमान हो उठा। उसकी जिह्वा पर महामौन स्थानापन्न हुआ (वह मूक हो गई)। वह देहाभिमान को (देह के अस्तित्व आदि को) भूल गई। (इस प्रकार) उसमें कुछ समय तक सत्त्वगुण की बाढ़ उफान पर रही। (अनन्तर) वह (बाढ़) अपने आप घटती उतरती गई। फिर उस चमत्कार पूर्ण स्थिति से सचेत होकर उसने (अपने सम्मुख) उपस्थित उस मूर्ति को राम का रूप ही निश्चय पूर्वक मान लिया।

कौशल्या द्वारा श्रीराम से शिशु-रूप धारण करने की विनती करना– (कौशल्या चतुर्भुजधारी भगवान् से बोली-) 'हे रघुनाथ, इस रूप में तुम्हारे (मेरे) यहाँ प्रकट होने पर जन-समाज में यह बात बिलकुल (सत्य) नहीं मानी जाएगी कि तुम मेरे पुत्र हो। मैं कौशल्या का पुत्र (स्वरूप अवतरित) हो जाऊँगा– पूर्वकाल में दिये हुए अपने इस अभिवचन का स्मरण करो।' यह सुनकर रघुनन्दन श्रीराम हँस पड़े। वे इस चमत्कार से पूर्णतः तृप्त हो गए। (अतः) इस बात को सुनकर तत्काल (चतुर्भुजधारी) श्रीराम स्वयं नवजात शिशु (रूप में परिवर्तित) हो गए। उनकी कान्ति बाल सूर्य की सी तथा सुन्दर नील वर्ण की थी। उसे देखने पर लोगों के नेत्रों में सुख की बाढ़ आ जाती है। (उन्होंने सोचा) मेरे भक्त मेरे ऐश्वर्यों का उपेक्षा-पूर्वक त्याग करते हैं, पर मेरे चरणामृत की ओर अधीरता के साथ लपककर भीड़ मचाते हैं। अतः यह जानने के हेतु कि वहाँ (चरणांगुष्ठ में) कैसी मधुरता है, वे (शिशु राम) बड़े चाव से उसे चखने की कामना कर रहे थे (चखने लगे)। अपने कमल-से चरण के अँगूठे को अपने कमल-से हाथ में स्पष्टतः पकड़कर उन्होंने उसे अपने कमल-से मुख में पैठा लिया, तो उन्हें उसमें बहुत मधुरता लगी। अपने अँगूठे की मधुरता उन्हें स्वाभाविक रूप से सचमुच (चखने के लिए) प्राप्त हुई। तो वे मुँह में से अँगूठा नहीं हटा रहे थे– वे उसे रुचि के साथ चखने, चरचर चूसने लगे। (उन्हें जान पड़ा-) भक्तों ने मेरे स्वरूप की मधुरता का सचमुच सेवन-आस्वादन किया– मेरे चरणामृत में सुख की कोड़ियाँ, अर्थात् बीसियों या कोटि-कोटि प्रकार के सुख हैं। (यह सोचते हुए) वे अपने अँगूठे को बड़े चाव के साथ चूसने लगे। (कवि एकनाथ कहते हैं-) देखिए, वही लक्षण बालक में आज भी आभासित होता है। वह अपने अँगूठे को मुँह में डालकर आत्मानन्द के साथ झट से चूसने लगता है (चूसता रहता है)।

चारों ओर आनन्द का छा जाना; श्रीराम का जात-कर्म– इस प्रकार श्रीरघुनन्दन के बाल रूप को देखकर कौशल्या के स्तनों में दूध भर आया। वह अपने जी को राई-नोन के रूप में उसपर उतारना चाहती थी। देव दुन्दुभियाँ और भेरियाँ बजाने लगे। वे जय जयकार करते हुए गरज रहे थे वे फूलों की मालाएँ बरसाने लगे चराचर में आल्हाद छा गया। आनन्द से उत्पन्न उतावली में नारद कूद गए सनकादिक धाँधली में तत्काल आत्मानन्द के साथ नाचने लगे। श्रेष्ठ श्रेष्ठ सिद्ध आ गए, ऋषि

सगर्जन वेग-पूर्वक आ गए। वेद स्वयं भाट बनकर (श्रीराम की) अत्यधिक जोर से स्तुति करने लगे। पुण्य पर्वकाल पर के-से योगियों और सन्यासियों के घन-घने समुदाय इकट्ठा हुए। वहाँ पर (मानों) तीर्थ-जल को (बहने के लिए) मार्ग नहीं मिल रहा था। उन लोगों ने सरयू नदी के तटों को बसा लिया (वे तटों पर बस गए)। स्वयं महासिद्धियाँ अयोध्या के बाज़ारों और रास्तों को (झाड़ू लगाकर) साफ़ करने लगीं, (फिर उन) सिद्धियों ने रंगावलियाँ सजा दीं। समाधियों ने आत्मिक आनन्द के साथ ध्वज फहरा दिये। महान् सामवेद सुरस (मधुर रस-भीने) गीत गा रहा था। चारों मुक्तियाँ नर्तकियाँ बन गईं, छहों शास्त्र दर्शन के लिए उपस्थित हो गए। शब्द समुदाय (राम के) अपने (पक्ष का समझकर स्वयं) साथ में उपस्थित हो गए। धर्म की मानों यह पहली पहँट थी। (लोगों को) आत्मानन्द के लिए खुला मार्ग मिल गया। श्रेष्ठ मंगल समय साधकर सुख बहार पर आ गया। कौशल्या के पुत्र उत्पन्न हुआ- धर्म (स्वयं) यह शुभ समाचार ले आया। तो (उसे जानकर) राजा दशरथ हर्ष से परिपूर्ण रूप से भर उठे। वे आत्मानन्द से उमड़ उठे। उन्होंने निशानों और भेरियों को बजा (बजवा) दिया। मंगल तूर्यों (तुरहियों) से गगन गरज-गूँज उठा। त्रिभुवन जय-जयकार से गरज उठा, घर-घर उल्लास छा गया। राजा दशरथ ने अपने निर्णय के अनुसार बड़े चाव के साथ मंगल जल में स्नान किया। उससे उछले हुए छींटे जहाँ-जहाँ गिर पड़े, उधर उधर उनके पूर्वज (श्रीराम के) जन्म के शुभ समाचार को जानकर सुखी-सकुशल हो गए। पूर्वज स्वयं सुखपूर्ण हो गए, मैं इसी आश्चर्य को कितना बड़ा कहूँ ? उस जल से तीनों लोक आत्मिक आनन्द के साथ उल्लसित हो गए। पुत्र जन्म के आनन्द से राजा दशरथ की दृष्टि (अधिक) उदार हो गई उनके द्वारा सवत्स गायों के समुदाय, करोड़ों अश्व, रथ, गज तथा धन बाँटते रहने पर सृष्टि में याचक शेष नहीं रहे। रघुनाथ श्रीराम जन्म को प्राप्त हुए- इसलिए दशरथ उदारता-पूर्वक दान दे रहे थे। मँगते अपनी माँग को हार जाते थे; वे कृतार्थ होकर माँग करने को भूल जाते थे। दशरथ बोले- 'देखो, इस समय जो जो (कुछ) माँग ले मैं वह दूँगा।' तब कोई याचक ही नहीं (बने) रहे। याचकों को (राम के जन्म के फल स्वरूप) अपने-अपने शरीर में संतुष्टि अनुभव हो गयी। अपने पुत्र श्रीराम के मुख को इस प्रकार देखने पर राजा को परम हर्ष हुआ। देखिए, उन्होंने (दान आदि से) ब्राह्मणों को संतोष से परिपूर्ण कर दिया। बहुत दानों से (समस्त) याचक तृप्त हो गये। दशरथ ने श्रीराम का अद्भुत रूप से जात कर्म सम्पन्न किया। तब, देखिए, उन्हें दूसरे पुत्र के जन्म से आनन्द हो गया। सद्भावना (मित्रता उनके लिए उस पुत्र के रूप में) ध्वज ले आयी।

सुमित्रा का प्रसूत हो जाना और उसके पुत्र का जन्मोत्सव– (उधर) सुमित्रा ने स्वप्न में देखा कि उसके एक पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ। जाग्रत होने पर जब उसने ध्यान पूर्वक देखा (तो उसे दिखायी दिया कि) वह पुत्र रूपी धन भण्डार (उसके समीप) विराजमान था। (भगवान् विष्णु स्वरूप) श्रीराम (जब) क्षीरसागर से निकले और कौशल्या के गर्भ में आ गये, तो उनका पृष्ठाधार शेष उनके पीछे-पीछे (सुमित्रा के गर्भ में आकर यथासमय) जन्म को प्राप्त हुआ। वह उनका अनुज सौमित्र अर्थात्, सुमित्रा के पुत्र के रूप में प्रकट हुआ। श्रीराम से वह 'सुष्ठु' (उत्तम) मित्रता का निर्वाह निश्चयपूर्वक करनेवाला था। इससे उसे 'सु मित्र' कहना (चरितार्थ) है। वह सुमित्रा के उदर (गर्भ) से जन्म को प्राप्त हुआ। वह (सुमित्रा) कौशल्या से 'सुष्ठु' (उत्तम) मित्रता निभा रही थी– इसलिए वह सुमित्रा (कहाने योग्य) थी। यह (शेष-स्वरूप लक्ष्मण) भी उससे जन्मा। इससे ही वह (श्रीराम का) सच्चा सुमित्र (सिद्ध होने वाला) था। लक्ष्मण शेष का अवतार था। वह भी निश्चय ही अयोनिज स्वरूप जन्म को प्राप्त हुआ। उसने

भी (माता के) योनिद्वार को नहीं छुआ। उसके जन्म का यह व्यवहार उसकी अपनी लीला थी। अपने पुत्र के मुख को देखकर सुमित्रा आठों अंगों में तृप्त हुई। उसका मन आनन्दस्वरूप घन हो गया। सुमित्रा सम्पूर्ण रूप से सुखयुक्त हो गयी। इसके पश्चात् बढ़ते हुए आनन्द के साथ, हर्ष-भरी शीघ्रता से उसने सद्भाव-पूर्वक ध्वजा फहरायी और राजा से उसने पुत्र जन्म से प्राप्त सुख (का समाचार) बड़े आत्मीयता से कहा। दूसरे पुत्र के जन्म (के समाचार) को सुख के साथ सुनकर राजा सुख को प्राप्त हुए। वे ऋषिसमुदाय को (साथ में) लेकर पुत्र के जात-कर्म को देखने के लिए आत्मिक आनन्द के साथ आ गये। उन्होंने धन के भण्डार खोल दिये; धान्य की कोठियाँ खुली कर दीं। गायों के झुण्ड (के झुण्ड) दान के हेतु छोड़ दिए। दानार्थी लोभी जन दान (में प्राप्त वस्तुओं) के बोझ से मूर्च्छित हो गए (सुध-बुध खो बैठे), उनकी याञ्चा दान-समुद्र में डूब गयी (दान पाने की लालसा विपुल मात्रा में दान पाकर नष्ट हो गई)। दातृत्व की बाढ़ में दरिद्रता डूब गई।

कैकेयी का प्रसूत होकर दो पुत्रों को जन्म देना– कैकेयी दो पुत्रों को जन्म देकर पुत्रवती हो गई उसकी प्रसूति की बड़ाई, जो अतिशय आश्चर्यकारी है, निश्चित रूप से सुनिए। कैकेयी को सुषुप्ति (नींद) लगी थी। उसके द्वारा यह स्थिति अनदेखी रही कि उसके पुत्र किस रीति से जन्मे, पुत्रों के उस जन्म-ग्रहण की क्या बड़ाई है। उनमें से एक श्रीराम का अंश था, दूसरा लक्ष्मण का विभाग (अंश) था। वे दोनों पूर्णतः लीलाविग्रही थे। उन दोनों ने (जन्मते समय माता की) योनि को स्पर्श नहीं किया (वे अयोनिज थे)। सखियों ने कैकेयी को जगा दिया और उसे विदित कराने के लिए कहा– तुम्हारी कोख से दो पुत्र जन्मे हैं। तुम्हारी यह निद्रा कैसी है कि जिससे तुम पुत्र-(जन्म के) सुख को नहीं जान रही हो (अनुभव कर रही हो)। कैकेयी ने अपने पुत्रों के मुख को देखा; फिर भी उसके हृदय में हर्ष नहीं उमड़ आया। देखिए, वह तो सापत्न भाव का सुख था– उसे (कैकेयी की इस स्थिति को) लोगों की दृष्टि न देख सकी। उसके मन में कोई भरी पूरी आत्मीयता नहीं थी– आत्मिक आनन्द तथा उनके प्रति स्नेह नहीं था। इसलिए उसके स्तनों में दूध नहीं भर आया। उसने किसी धाय की भाँति उन दोनों पुत्रों को स्तन-पान कराने के लिए स्तनों से लगा लिया। उसके गर्भाशय में स्थित गर्भ पिण्ड उसका अपना नहीं था। उसने दूसरों के अंशों को गर्भाशय में सौतिया भाव से ही स्थापित किया था। देखिए, उसके द्वारा स्तन-पान कराने से वह तो स्वाभाविक रूप से उन पुत्रों की धाय ही हो गयी। आगे (चलकर) उन सौतेले पुत्रों ने स्वाभाविक रूप से ही उसकी बात नहीं मानी। कैकेयी अपने पुत्रों के संतोष को नहीं जान पाती थी। गर्भ के विषय में कैकेयी की यह स्थिति थी। उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए, इस प्रकार उसकी प्रसूति हुई, तो उसने यह शुभ समाचार राजा के पास भेज दिया स्नेह-जन्य शीघ्रता से कैकेयी ने सकाम (विशिष्ट अभिलाषा से प्रेरित) कार्य सम्बन्धी रुचि तथा दो पुत्रों के उत्पन्न हो जाने के कारण अनुभव होनेवाले मधुर (सुखप्रद) अभिमान को (पुत्र जन्म सम्बन्धी सन्देश के रूप में) राजा के पास भेज दिया। दो पुत्रों का प्रिय (लगनेवाला) जन्म हुआ (यह सुनते ही) उससे राजा को परम सुख हुआ। उन्होंने उदार हाथों से दान देकर उनका जात कर्म सम्पन्न किया।

दशरथ के चार पुत्रों का स्वरूप– जिस प्रकार, चारों पुरुषार्थ एक ही समय घर आ गये हों, उसी प्रकार दशरथ को एक ही समय (एक साथ) चार पुत्र प्राप्त हुए। (वस्तुतः) चारों मुक्तियों का सुख एक ही (प्रकार का) होता है। वही चतुर्विध होकर, देखिए, दशरथ को सुख प्रदान करने हेतु आ गया (उसके रूप में) चार असाधारण पुत्र जन्मे। जान लीजिए कि सत्, चित् और आनन्द तीन भाव हैं और

उनकी प्रकाशक वस्तु उनको प्रकट करानेवाली वस्तु अर्थात् चिद्घन ब्रह्म है। वैसे ही परिपूर्ण रूप से (सत् चित् आनन्द और ब्रह्म स्वरूप) चारों पुत्रों को दशरथ राजा ने स्वयं प्राप्त किया। चारों वेद ही (वस्तुतः) प्रणव अर्थात् ॐकार हैं। उसी प्रकार एक ब्रह्म नामक वस्तु चार प्रकार के (रूपों) से दशरथ के घर पुत्रत्व भाव से (उनके पुत्ररूप में) सबको सुखप्रद सिद्ध हो गयी। निश्चय ही एक सुख नित्य होता है। उसे चतुर्विध अर्थात् सुख-चतुष्टय कहते हैं। वहीं ये चारों पुत्र रूप थे। दशरथ तो पुत्र सुखार्थी (पुत्र सुख पाने के अभिलाषी) थे। जो सकल जगत् के लिए उसके अपने विश्रामस्वरूप हैं, जो सकल सुखों का आराम (विश्राम) स्वरूप हैं, जो निष्काम (निरीहता-पूर्वक, निष्काम भाव से भक्ति करनेवालों) के लिए पूर्णकाम (कामना की पूर्ति स्वरूप) हैं, वे श्रीराम दशरथ के पुत्र (रूप में उत्पन्न हो गए) थे। जो सकल लक्षणों का आलक्षण दृश्य स्वरूप (दर्शन) हो, जो सकल लक्षणों से परिपूर्ण हो, समझिए कि वही सुमित्रानन्दन, दशरथात्मज लक्ष्मण था। जिससे सभी पदार्थ सदा सर्वदा (नित्यप्रति) सम्पूर्ण रूप से भरे-पूरे रहते हैं, उसी वस्तु (ब्रह्मांशोत्पन्न पुत्र) को , कैकेयी-सुत, दशरथात्मज को भरत कहते हैं। मनुष्यों के शत्रु का हन्ता तो छोटा 'शत्रुघ्न' शत्रु को मारने (की सामर्थ्य रखने) वाला व्यक्ति कहाता है। परन्तु संसार रूपी (सांसारिक दुःखों) का निर्दलन तो दशरथात्मज शत्रुघ्न ही करता है। कनिष्ठा रानी कैकेयी के जो (दो) पुत्र हुए, उनके नाम भरत और शत्रुघ्न हैं। इस प्रकार वसिष्ठ ने चारों जनों– दाशरथियों का नामाभिधान (निर्धारित) किया।

चारों पुत्रों का नामकरण– श्री वसिष्ठ ने, जो संस्कार की दृष्टि से आवश्यक है, वह चारों पुत्रों का जात कर्म सम्पन्न किया। देखिए, उन्होंने उनकी जन्म-पत्री बनायी। उनके निर्दोष तथा जगत् के लिए वन्द्य स्वरूप नाम रखे। इस प्रकार वे चारों दशरथ नन्दन श्रीराम और लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न जैसे जगद्वन्द्य नामाभिधान के धारी हो गये। इसके पश्चात् (गुरु वसिष्ठ ने जन्म-पत्री को देखकर) श्रीराम के जन्म का फल, भविष्य अनुक्रम से कहा; उनके जन्म कर्म का निरूपण किया। (कवि एकनाथ कहते हैं– अब) उनके चरित्र का अनुक्रम सुनिए। यहाँ से (आगे) श्रीराम का चरित्र अथाह, अनुपमेय, पवित्र है महर्षि वाल्मीकि का वह मुख धन्य है, जिसने शत कोटि श्लोकों में निबद्ध करते हुए पवित्र (राम-) कथा का वर्णन किया।

रचनाकार एकनाथ अपने गुरु जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित है। (वे कहते हैं– अब) राम के जन्म के विषय में कथन पूर्ण हुआ। आगे चलकर आत्मानन्द (दिलानेवाली कथा) का निरूपण है, श्रोता मेरे (कथन के) प्रति ध्यान दें।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की श्री एकनाथ-कृत 'श्रीभावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत बालकाण्ड का 'श्रीराम (तथा अन्य पुत्रों) का जन्म-प्रसंग-निरूपण' नामक यह छठा अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय ७

[श्रीराम की तीर्थ-यात्रा]

कवि की श्रोताओं से प्रार्थना– जगत् में रामायण धन्य है। वाल्मीकि द्वारा की हुई वाणी-स्वरूप वर्षा धन्य है। अक्षरों (शब्दों, वाङ्मय में) वह एक ऐसी अक्षर (अविनाशी) व्यवस्था है,

जिससे (उसका पठन, श्रवण करनेवालों के) कोटि-कोटि दोष या पाप नष्ट हो जाते हैं। उससे महापाप नष्ट हो जाते हैं; उससे कलह-संघर्ष, दुःख नष्ट हो जाते हैं। रामकथा का श्रवण करने पर, सुख, आनन्द महासुख (आत्मिक सुख) में परिणत होते हुए वृद्धि को प्राप्त हो जाता है। श्रीराम-चरित्र अपवित्र (पापी) को अति पवित्र (पावन) बना देता है। (श्रीराम की) वह विस्मयकारी कथा अति विचित्र है। श्रोता यहाँ से (आगे) उस कथा का आदरपूर्वक श्रवण करें।

श्रीराम-जन्म के अवसर पर लंका में घटित अशुभ घटनाएँ– श्रीराम अयोध्या में जन्मे; तब लंका पर बिजली गिर गई। (लंका) नगरी के द्वार में भूमि फट गयी। त्रिकूट पर नगर में भूचाल हो गया। जब रावण सिंहासन पर चढ़ रहा था, तब उसका मुकुट सीढ़ी पर गिर पड़ा। वायु के आघात से छत्र टूट गया। सभा गृह के बुर्ज ढह गये। कुम्भकर्ण के भवन पर उल्लू घुघुआने लगा। इन्द्रजित् ने दर्पण के अन्दर अपने शरीर (के प्रतिबिम्ब) को मस्तक रहित देखा। मन्दोदरी का (सुहाग चिह्नस्वरूप) मंगलसूत्र टूटकर आग के अन्दर गिर पड़ा। जब तक उस स्त्री ने उसे बाहर निकाला, तब तक अग्नि ने उसे (जलाकर) भस्म कर डाला। विघ्नों का इस प्रकार भँवर चलने लगा। उससे रनिवास में बावेला मच गया इससे राक्षस कुल का विनाश (होना सूचित) हुआ, तो निशाचर हाहाकार को प्राप्त हुए। रावण ने भय अनुभव करते हुए कहा- 'अहो, नगर में दृढ़तापूर्वक (अविचल) जमकर रहो। यहाँ से कोई भी दूर न जाए। दिन रात सावधान रहना। राजसभा के मंत्री आदि नेताओं ने बहुत आतंक अनुभव किया। अत्यधिक बड़ा संकट देखकर रावण को भय से धड़कन अनुभव हुई।

राजपुत्रों के व्रतबन्ध आदि संस्कार और विद्याध्ययन– समझिए कि दूसरी ओर अयोध्या में श्रीगुरु वसिष्ठ ने स्वयं चारों कुमारों की (परम्परागत धार्मिक) विधियों को संस्कारों सहित पूर्ण करवा लिया। उन्होंने सम्पूर्ण विधियों के साथ उनका जात-कर्म, नामकरण, कटि-सूत्र-बन्धन, अन्न-प्राशन, चौलकर्म, वायन-दान कर लिया। नृपवर दशरथ ने ऐश्वर्य को प्रकट करते हुए व्रतबन्ध (जनेऊ) संस्कार को वाद्य-गर्जन के साथ सम्पन्न करके सुयोग्य व्यक्तियों को दान और सम्मान से सब प्रकार सुख-पूर्ण बना दिया, श्रीराम का व्रतबन्ध संस्कार करके उन्होंने विप्र समुदाय को सुखी बना दिया। आत्मिक आनन्द अनुभव करने से उनकी तोंद निकल आयी। डोलते-झूमते हुए वे परम आनन्द को प्राप्त हुए। राजा दशरथ ने श्रीराम का व्रत-बन्धन किया और (दान देकर) दरिद्रों को सुखी कर दिया। पेट के लिए कुछ पाने के हेतु इधर-उधर दर दर घूमने में उन्हें होनेवाला कष्ट पूर्णतः नष्ट हुआ। उनकी याचक वृत्ति छूट गयी। (चारों राजपुत्रों का) व्रतबन्धन संस्कार होने के पश्चात् वे चारों जने वसिष्ठ ऋषि के पास गये और उन्होंने वेदों का अध्ययन तथा वेदान्त (आदि) शास्त्रों का अर्थ-विवेचन करना आरम्भ किया। (वस्तुतः मूर्तिमान ब्रह्म होने के कारण) श्रीराम तो वेदों के जन्म-स्थान हैं। फिर भी समझिए कि उन्होंने मंत्रयुक्त संस्कार से वेदों और शास्त्रों का सम्पूर्ण पठन (अध्ययन) किया। उनकी प्रज्ञा का (बुद्धि का) अथाह रूप दिखायी दिया। समझिए कि इस प्रकार, रघुनाथ राम (की अवस्था) के सोलह वर्ष पूर्ण हुए तब वे रघुनन्दन श्रीराम तीर्थ-यात्रा करने के लिए तैयार हुए। (इस सम्बन्ध में) वसिष्ठ से प्रार्थना करके, उन सद्गुरु की अनुमति से, वे पिता दशरथ से आज्ञा लेकर तीर्थ-यात्रा के लिए निकले (प्रस्थान करने के लिए उद्यत हुए)। राजा दशरथ ने शुभ दिन खोजवाते हुए स्वस्ति-मंत्र पठन तथा पुण्याहवाचन करवाया और सुमंत नामक मंत्री-सहित सेना उनके साथ भेज दी। उन्होंने श्रीराम के द्वारा दान के रूप में वितरित कराने हेतु अक्षय (धन) भण्डार, सवत्स गायों के समुदाय और नाना प्रकार के वस्त्र उनके साथ भिजवा दिये।

तीर्थयात्रा-वर्णन– उन्होंने सरोवरों, नदियों, उनके समुद्र के साथ संगमस्थलों को, पुण्यप्रद पवित्र स्थानों एवम् पवित्र आश्रमों की यात्रा की। प्रयाग आदि पंच ग्रामों की यात्रा करके वे दुर्गम मार्ग से हिमालय की ओर गये। वे बदरी (नाथ और बदरी-केदार) के मार्ग में स्थित पाँचों प्रयाग तीर्थस्थलों में गये। ये पंच प्रयाग हैं देवप्रयाग, शिवप्रयाग (रुद्रप्रयाग), कर्णप्रयाग, ब्रह्मप्रयाग और पाँचवाँ है गुप्तप्रयाग। सरयू, गंगा और सुवर्णभद्रा (सोन, सोनहा) के संगम स्थान को पूर्वप्रयाग कहते हैं। इन तीन नदियों के संयोग से वह (पूर्व) त्रिवेणी बनी। उसमें स्नान करके माघ मास में उन्होंने गंगा-यमुना-सरस्वती के संगमवाले प्रयाग में स्थित त्रिवेणी में मुख्य स्नान किया। उन्होंने उससे पहले कार्तिक मास में, कृष्णा-वेण्णा (महाराष्ट्र) में भी स्नान किया। उन्होंने उन वनों, तपोवनों, पर्वत शिखरों तथा ऊसर स्थानों की यात्रा की जो परमपावन बताये जाते हैं। उन्होंने तीनों पुष्कर स्थानों (पश्चिम रेलवे की अहमदाबाद दिल्ली लाइन पर स्थित अजमेर स्टेशन से लगभग तेरह कि०मी० दूर एक पावन सिद्धतीर्थ; पुष्कर सरोवर तीन हैं– ज्येष्ठ, मध्य और कनिष्ठ पुष्कर) की तथा अन्य तीर्थ-स्थलों की यथाविधि यात्रा की। वे नैमिषारण्य (जिला सीतापुर, उत्तर प्रदेश), धर्मारण्य, चम्पकारण्य (रायपुर म.प्र. से लगभग १२८ कि०मी० दूर), ब्रह्मारण्य (गया के निकट) तथा महापन्थ के उस वेदारण्य में भी गये, जहाँ वेद-वेत्ता ऋषि रहते थे। वे मन्दराद्रि और विन्ध्याद्रि तथा मूलपीठ स्थान सह्याद्रि गये। वे गंगा नदी के तट पर स्थित उस ब्रह्माद्रि भी गये, जो अद्‌भुतता की दृष्टि से श्रेष्ठ है। वे प्राची (जगन्नाथपुरी से लगभग चौंसठ कि०मी० दूरी पर स्थित काकटपुर ग्राम के पास से बहने वाली पवित्र नदी), सरस्वती (सिद्धपुर के निकट से बहने वाली नदी जो कच्छ की मरुभूमि में लुप्त हो जाती है) जैसी नदियों के तट पर (स्नानार्थ) गये। बिन्दुसर (पश्चिम रेलवे की अहमदाबाद-दिल्ली लाइन पर स्थित मेहसाणा स्टेशन से लगभग चौंतीस कि०मी० दूर स्थित सिद्धपुर के पास का एक पवित्र सरोवर), धर्मालय (धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र) गये। वे दुर्धर ज्वालाओं से युक्त ज्वालामुखी तीर्थस्थल (पंजाब के पठानकोट से जोगिन्दरनगर जानेवाली रेलवे लाइन पर लगभग अस्सी कि०मी० दूर स्थित ज्वालामुखी रोड स्टेशन से लगभग बीस कि०मी० दूर, हिमाचल प्रदेश में) गये, जहाँ का जल तीर्थोदकों में अति पवित्र मानते हैं। उन्होंने तीनों गया तीर्थों (आदिगया, रामगया, भीमगया) के दर्शन किये, धर्मस्तम्भ को स्पर्श किया और ब्रह्मयोनि (गया-बोधिगया रास्ते के समीपस्थ एक पहाड़) के दर्शन किये और संध्यावट में गायत्री का ध्यान किया। वे ब्रह्मावर्त (कानपुर से लगभग १५ कि०मी०, उत्तर प्रदेश) गये, गोमती तट पर गये। फिर उन्होंने हिरण्य क्षेत्र सहित सागर की तथा सागरतटवर्ती शंखोद्धार नामक उस क्षेत्र की यात्रा की, जहाँ भगवान् हरि ने वेदों का उद्धार किया था। तीर्थयात्रा के मार्ग से जाते हुए उन्होंने (अयोध्या, मथुरा, माया अर्थात् हरिद्वार, काशी, कांची, अवंतिका अर्थात् उज्जयिनी और द्वारका नामक) सप्त पुरियों और बारहों ज्योतिर्लिंगों की यात्रा की। वे सोमनाथ के साथ प्रभास (समुद्र तट पर स्थित सौराष्ट्र, गुजरात) में गये। उन्होंने इस प्रकार मूलमाधव के दर्शन भी पाँचों कृष्णों के अन्तर्गत कर लिये। द्वारका में स्थित कल्याणकृष्ण प्रथम कृष्ण हैं; दूसरे हैं शंखनारायण; कालकृष्ण नामक तीसरे कृष्ण पिण्डारक क्षेत्र में हैं। समझिए कि चौथे कृष्ण गरुडदामोदार क्षेत्र में विराजमान हैं। कृष्ण का मूल स्थान मूलमाधव कहाता है– वहाँ के मूलमाधव कृष्ण पाँचवें कृष्ण हैं। इस भूमण्डल की यात्रा करते हुए इन स्थानों पर जाना पुण्य प्रद है, यात्री को पावन कर देनेवाला है। गण्डकी, यमुना, सुर-सरिता गंगा, ताप्ती, नर्मदा, मत्स्योदरी, कृष्णा, भीमा, गोदावरी जैसी वे नदियाँ हैं, जिनकी यात्रा करने से यात्रियों के पाप दूर हो जाते हैं, (श्रीराम ने उनकी अर्थात् उनके तट पर स्थित पवित्र स्थलों की यात्रा की)। वे

मत्स्यतीर्थ (त्रिवेन्द्रम केरल से लगभग पाँच कि०मी० दूर), पक्षितीर्थ (मद्रास धनुषकोटि रेलवे लाइन के चेंगलपट्टु स्टेशन से लगभग पन्द्रह कि०मी० दूर), विष्णुकांची सहित शिवकांची (तमिळनाडु के कांचीपुरी अर्थात् कांजीवरम् स्टेशन के समीपस्थ उसी नगरी के दो भाग) गये। वे तीर्थ-स्वरूप बने हुए श्रीकालहस्ति क्षेत्र (तिरुपति-पूर्व से लगभग तैंतीस कि.मी. दूर) तथा विख्यात् तीर्थ भूमि कुम्भकोणम् (मद्रास-धनुषकोटि रेलवे लाइन पर मद्रास से लगभग ३१३ कि०मी० दूर कावेरी नदी के तट पर) गये। श्रद्धालु जनों की यह मान्यता है-) प्रतीची, कावेरी, ताम्रपर्णी, कृतमाला और पयस्विनी, इन पाँच नदियों में स्नान करने से भगवद्भजन में भक्तिभाव दृढ़ हो जाता है। (श्रीराम ने इन पाँचों नदियों के जल में स्नान किया)। वे कन्याकुमारी गये; जनार्दन क्षेत्र (त्रिवेंद्रम से लगभग चालीस कि०मी० दूर स्थित वरकला रेलवे स्टेशन के समीप समुद्र तट पर) गये; वे शेषशायी भगवान् अनन्त विष्णु के शयनस्थान तिरुअनन्तपुरम् (त्रिवेंद्रम-केरल) गये। उन्होंने कावेरी नदी के उभय प्रवाहों के तथा श्रीरंगम् क्षेत्र के दर्शन किये। (मद्रास धनुषकोटि रेलवे लाइन पर स्थित त्रिचिनापल्ली अर्थात् तिरुचिरापल्ली नगर का एक भाग श्रीरंगम् कहलाता है। यहाँ से ऊपर लगभग आठ कि०मी० दूरी पर कावेरी नदी का प्रवाह दो धाराओं में विभक्त हो जाता है और वे धाराएँ मंदिर के आगे लगभग बीस कि०मी० की दूरी पर परस्पर मिल जाती हैं.) वे परमपावन अगस्त्याश्रम (कर्णाटक में समुद्र तट पर स्थित) गये। देखिए (यह एक मान्यता है-) चिदम्बरम् क्षेत्र (मद्रास- धनुषकोटि रेलवे लाइन पर स्थित एक प्रमुख स्टेशन) में जाकर भगवान् नटराज शिवजी के दर्शन करने से मुक्ति की प्राप्ति होती है; कमलालय तीर्थक्षेत्र में जन्म ग्रहण करने से मुक्ति मिलती है, तो काशी तीर्थ क्षेत्र में मृत्यु होने से मोक्ष लाभ होता है। (कहना न होगा कि श्रीराम ने इन स्थलों की यात्रा की)। अरुणाचल क्षेत्र (तमिळनाडु में तिरुवण्णमलै रेलवे स्टेशन के निकट) भी वे गये। (कहते हैं) वहाँ पर भगवान् अरुणाचलेश्वर का (दर्शन तथा) स्मरण करना मुक्ति-प्रद है।

श्रीराम द्वारा लोक-संग्रह हेतु यात्रा करना– श्रीराम (वस्तुत: स्वयं) तीर्थक्षेत्रों के लिए तीर्थक्षेत्र बने हुए थे। श्रीरघुनाथ मोक्ष के लिए मोक्षरूप थे। फिर भी उन्होंने तीर्थ-यात्रा की पूर्ति के लिए अपनी लीलाएँ प्रदर्शित कीं। जिस तीर्थक्षेत्र में जो (पूजन आदि सम्बन्धी) विधि निर्धारित है, जिस तीर्थक्षेत्र जल में जिस प्रकार का स्नान इष्ट (माना जाता) है, उस-उस स्थान पर वैसा करके श्रीराम ने दान दिये, सम्मान किया और लोगों को सुखी कर दिया। श्रीराम ने महाऋषियों को सुखी किया; सन्यासियों को सुखी किया, तीर्थ-वासियों को सुखी किया, वनवासियों को सुखी किया। श्रीराम ने (सांसारिक भोग विलास का त्याग करनेवाले) त्यागी लोगों को सुखी किया, (भोग-विलास का) उपभोग करनेवाले लोगों को सुखी बनाया; (सांसारिक भोग-विलास से) विरक्त लोगों को सुखी बना दिया। श्रीराम (इसी में) आनन्द तथा सन्तोष का उपभोग करनेवाले थे। श्रीराम ने ब्रह्मचारियों को सुखी किया; व्रत-धारियों को सुखी किया; नर-नारियों को सुखी किया। श्रीराम सबके सुख कर्ता थे। श्रीराम ने तपस्या करनेवालों और जाप करने वालों को सुखी किया; निर्विकल्पियों (ऐसी समाधि लगाने वालों को जिसमें ज्ञेय और ज्ञाता का कोई भेद नहीं रह जाता) को सुखी किया। श्रीराम (सबके लिए) सुख-स्वरूप थे। श्रीराम ने दिगम्बर विरागियों को सुखी किया; वल्कल धारी तापसों को सुखी किया; सदाचारी लोगों को सुखी किया। श्रीराम सचमुच (साक्षात् सबके लिए) सुख-स्वरूप थे। श्रीराम ने अयाचक वृत्ति से रहने वाले को सुखी किया; अतिविरक्त लोगों को सुखी किया; धर्म के प्रति आसक्ति रखने वाले लोगों को सुखी किया। श्रीराम सबके लिए सुखकारी थे। श्रीराम ने अकिंचन (दरिद्र) लोगों को सुखी किया; अति दीन लोगों को सुखी किया;

अज्ञान लोगों को सुखी किया। श्रीराम समस्त सुजनों के लिए सुखकारी थे। श्रीराम ने तीर्थ क्षेत्रों की यात्रा करनेवाले लोगों को सुखी किया; असहाय लोगों को सुखी किया; दीन-दुर्बलों को सुखी किया। श्रीराम (स्वयं) सुख के साक्षात् कुरुक्षेत्र थे। श्रीराम ने सेवकों को सुखी किया; विशुद्ध भक्तों को सुखी किया। श्रीराम ने उन लोगों को सुखी किया, जो श्रद्धा भाव से उससे मिलने के लिए सामने आ गए। श्रीराम ने विवेकवान् लोगों को सुखी किया; अकेले (बिना किसी आधार के) रहनेवालों को सुखी किया। श्रीराम ने त्रिलोक में सबको सुखी किया। उन्होंने (इस प्रकार) यात्रा में अपनी लीला दिखायी (और दर्शकों को सुखी किया)। रघुवीर राम ने विधियुक्त रीति से यात्रा करते हुए अपनी लीला प्रदर्शित की। उन्होंने चारों समुद्रों तक जाकर लोगों को नाना प्रकार के दान देकर सुखी किया। द्वारका के पास पश्चिम समुद्र, जगन्नाथपुरी के पास पूर्व समुद्र है। मानससरोवर स्वरूप उत्तर समुद्र और श्रीसेतु-बन्ध वाला दक्षिण समुद्र है। (वहाँ तक श्रीराम गये)। इस प्रकार चारों समुद्रों द्वारा वेष्टित भारत भूमि में स्थित समस्त तीर्थों की यात्रा करके श्रीरघुनाथ सुमुहूर्त पर आनन्द पूर्वक अयोध्या आ गए। नृपवर दशरथ ने (इस अवसर पर) नगर को सजवा लिया। ध्वज, तोरण और झाँकियाँ रचीं। जय जयकार से गगन गूँज रहा था। (इस प्रकार) गाजे बाजे के साथ वे (दशरथ) श्रीराम को (नगर के अन्दर) ले आये। भाटजन गम्भीर वचनों से गर्जन कर रहे थे। आगे आगे नर्तिकाएँ नाच रही थीं। बन्दीजन कीर्ति का बखान कर रहे थे। अयोध्या भुवन में उल्लास छा गया था। पद-पद पर आरतियाँ उतारी जा रही थीं। पद-पद पर सौभाग्यवती नारियाँ (सुहागिनें) खड़ी थीं पद-पद पर अक्षय वचन दिये जा रहे थे। (मधुर गम्भीर) स्वरों के साथ मंत्र-पठन की ध्वनि सुनायी दे रही थी। श्रीराम ने गुरु वसिष्ठ को दण्डवत् प्रणाम किया; दशरथ को साष्टांग नमस्कार किया। उन्होंने अपने चारों पुत्रों का आलिंगन किया। तब राजा को परम सन्तोष हो गया। उन पुत्रों ने तीनों माताओं का अभिवादन किया। दशरथ के मन को आनन्द हुआ। उन्होंने श्रीराम को गोद में बैठा लिया। सबको अपार सुख हो गया। उन चारों (राजपुत्रों) को मंगलस्नान कराया गया, दिव्य वस्त्र धारण कराये गए; दिव्य आभूषण पहनाये गए। चन्दन तिलक लगाया गया। फूलों से सुमनों ने सुमनों का अर्थात् सद्भाव से युक्त मन से लोगों ने साक्षात् सद्भावस्वरूप मन के राजपुत्रों का शृंगार करवा लिया। गुरु वसिष्ठ के कथन को प्रमाण मानकर उन्होंने व्रत का समापन किया। समापन समारोह सम्पन्न करते हुए उन्होंने ब्राह्मणों को दान से सम्मानित करते हुए भोजन कराया। इस प्रकार तीर्थ-यात्रा करके रघुनन्दन श्रीराम (लौट) आये। इसके पश्चात् स्वयं श्रीराम ने पूर्ण वैराग्य का आचरण व्यवहार प्रदर्शित किया। यहाँ से आगे की कथा मनोहारी है, गुह्य ज्ञान से युक्त ज्ञान गम्भीर है। (उसमें) स्वयं श्रीराम मुमुक्षु जनों के लिए वैराग्य विचार का निरूपण करेंगे। मुमुक्षु जनों को संसार-सागर तैरकर पार कराने के हेतु श्रीराम ने वैराग्य का तात्पर्य (स्पष्ट करके) दिखा दिया। वे सचमुच धर्म-लक्षणों की दृष्टि से सच्चे अवतार थे, (कवि कहता है-) यह एकनाथ गुरु जनार्दन का अनन्य भाव से शरणागत है परन्तु वह कवीश्वर वाल्मीकि की तुलना में अत्यधिक दरिद्र है। फिर भी, देखिए– श्रीराम अपनी अलौकिक कथा उस मूर्ख के मुख से कहलवा रहे हैं।

॥ स्वस्ति ॥ श्रीमद्रामायण की श्री एकनाथ कृत 'श्रीभावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत 'श्रीराम तीर्थयात्रा गमन' नामक यह सप्तम अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय ८

[विश्वामित्र का दशरथ की राजसभा में आगमन]

श्रीराम की अनासक्ति– श्रीराम सत्, चित् और आनन्द के (साक्षात्) मेघ थे। उन्होंने भी स्वयं दीन लोगों का उद्धार करने के हेतु, लोक-संग्रह के हेतु वैराग्य के लक्षण प्रदर्शित किये। श्रीराम तो स्वयं विशुद्ध वैराग्य के फल थे। उन्होने भी बहुत बड़े लोकोपकार हेतु वैराग्य-युक्त आचरण करके प्रदर्शित किया। तीर्थ (यात्रा) से लौटने के पश्चात् रघुनाथ राम को राज्य और राजकाज नहीं भाता था, लोक-समाज और लोगों के विषय में कार्य नहीं भाते थे। उन्हें (सुखोपभोग के) विषय तथा उनका अपने लिए उपयोग अच्छा नहीं लगता था। उन्हें इंद्रियों (के सुख के विषयों) का साथ भाता नहीं था, इन्द्रियों (को सुख प्रदान करनेवाले विषयों) का उपभोग अच्छा नहीं लगता था। उन्हें (सुख-प्राप्ति हेतु) अपनी इन्द्रियों का उपयोग करना नहीं भाता था। वे अति विराग से युक्त होकर अनुतप्त (बहुत खिन्न) रहते थे। उन्हें प्रवृत्ति मार्ग के, अर्थात् सांसारिक कर्म नहीं भाते थे, देह आदि तथा देह-धर्म नहीं भाते थे, न (भोग) विलास तथा सम्मान समारोह अच्छे लगते थे। वे वैराग्य से युक्त होकर परम अनुतप्त रहते थे। उन्हें स्त्रियों से मिलना नहीं भाता था, स्त्रियों से बात करना नहीं भाता था-- न आँखों से स्त्रियों को देखना अच्छा लगता था। उनके मन में (भोग विलास के) विषयों के प्रति विरक्ति उत्पन्न हो गई। उन्हें व्यर्थ व असभ्य बातें करना नहीं भाता था, उन्हें चातुर्य (व्यक्त करनेवाली बातें करना) तथा वाचालता नहीं भाती थी-- न वितण्डवाद तथा परिश्रम (का काम) अच्छा लगता था। वे निष्ठापूर्वक मौन धारण करके अनुतप्त रहते थे। उन्हें अच्छी कलाएँ और मनोविनोद की बातें नहीं भाती थीं; गीत, नृत्य और सुन्दर रूप नहीं भाता था; न ही आखेट जैसी राजाओं के योग्य क्रीड़ा अच्छी लगती थी। वे पूर्णतः वैराग्य युक्त और अनुतप्त रहते थे। उन्हें धन धान्य तथा सांसारिक उपयोग की वस्तुओं का संग्रह (करना) नहीं भाता था; सम्पत्ति और पद का अभिमान, अर्थात् ऐसा उच्च अच्छा पद जिसे करने पर अभिमान का अनुभव हो, नहीं भाता था न उन्हें मान-सम्मान अच्छा लगता था। वे वैराग्य से युक्त तथा पूर्णतः अनुतप्त रहते थे। उन्हें (मनोवांछित वस्तुएँ प्रदान करनेवाला) कल्पतरु नहीं भाता था, वह तो तब उनके लिए कल्पना-निर्मित सागर (जैसा प्रतीत होता) था। (उनके मत में) संसार बहुत बड़ी कल्पना (आभास) है, जन्म-मृत्यु (के चक्र) से युक्त यह संसार (रूपी सागर) तैरकर पार करने की दृष्टि से अति कठिन है। चिन्तामणि नामक रत्न (जिसे प्राप्त करने पर समस्त चिन्ताएँ दूर होती हैं) विशुद्ध रूप से चिन्ता-युक्त होता है। चिन्ता और चिता दोनों समान हैं, चिता निर्जीवों (मृतों, प्राण-हीनों) को जलानेवाली होती है; तो चिन्ता प्रतिदिन जीवित प्राणी को जलाती रहती है। उन्हें (स्पर्श मात्र से लोहे को स्वर्ण में परिवर्तित कर देने वाला) पारस, (लौह, स्वर्ण जैसी उपयोगी या मूल्यवान) धातुएँ, धन नहीं भाता था; (क्योंकि) जितना अर्थ (धन) हो, वह समस्त अनर्थ (अर्थात् विपत्ति) होता है। जिसके मन में धन की स्वार्थ-युक्त इच्छा हो, उसे परमार्थ (ईश-कृपा, मुक्ति) कभी भी नहीं प्राप्त होता। उन्हें मन से कामधेनु अच्छी नहीं लगती थी। वह कामना का अधिष्ठान होती है और काम की कामना से सांसारिक बन्धन उत्पन्न हो जाता है। वे श्रीराम वैराग्य पूर्ण थे, अतः उन्हें वह (काम भाव) भी नहीं भाता था। इस प्रकार के जो-जो समस्त दिव्य भोग हैं, उनके प्रति श्रीराम अनासक्त थे। वे सदा एकान्त स्थान को बसाते रहे, अर्थात् एकान्त स्थान में रहते थे- वे (वस्तुतः) अनन्त, अव्यक्त ब्रह्म होने पर भी (इस जगत् के) निवासी हो गए थे।

विश्वामित्र का आगमन– विश्वामित्र, जो श्रेष्ठ-श्रेष्ठ ऋषियों में पवित्र (पुण्यवान) माने जाते थे, दशरथ के सुपुत्रों की बात सुनकर, यज्ञ को सम्पन्न सिद्ध कराने हेतु झट से आ गये। विश्वामित्र आ गये हैं- यह सुनते ही नृपवर दशरथ अगवानी के लिए सम्मुख दौड़े। दण्डवत् नमस्कार करके वे उन्हें हर्षित होकर अपने घर ले आये। राजा ने श्रेष्ठ आसन बिछाकर विधि-विधान के अनुसार मधुपर्क किया। (अनन्तर) उन्होंने विश्वामित्र का सुवर्ण सुमनों से पूजन किया, तो वे ऋषिवर सुख-सम्पन्न हो गए, जब वसिष्ठ और विश्वामित्र की भेंट हुई, तो उनका दृढ़ आलिंगन हुआ, वे दोनों अत्यधिक प्रेम से एक दूसरे के गले लग गए। उन दोनों का एकत्व के विचार से एक ही दृष्टि-बिन्दु था। दोनों के मन में सुख (का) एक (मात्र विषय) था। (दोनों की राम सम्बन्धी धारणा एक ही थी और उनके लिए राम ही एक मात्र सुख के कारण थे)। उन दोनों का (अभीष्ट) कर्म तथा (उसकी सिद्धि के लिए किया जानेवाला) आचरण एक (ही स्वरूप का) था; दोनों का अनुष्ठान एक था, दोनों का प्राप्त ब्रह्मज्ञान एक था। इस दृष्टि से एकत्व अर्थात् अद्वैत भाव से दोनों ही परिपूर्ण थे। वे दोनों दशरथ के सभास्थान (गृह) में एक आसन पर विराजमान हो गए। उनसे वह भूमि शोभायमान हो गई। जैसे गगन में चन्द्र-सूर्य शोभायमान होते हैं, वैसे ही वे उस भूमि पर (शोभायमान) दिखायी दे रहे थे। दशरथ विश्वामित्र से बोले- "आप प्रतिसृष्टि के विधाता (निर्माता) हैं। हे परम पवित्र, आप मेरे कुल-गोत्र का उद्धार करने के लिए पधारे हैं। आप जो व्रत, तप से भी नहीं मिल सकते, (हम पर) कृपा करके आये हैं; इसलिए आज भाग्यवान् होने से हम धन्य हैं, अयोध्या की यह भूमि धन्य है। जहाँ तुष्ट होकर साधु पुरुष आ गये हों वहाँ मानों कल्याण साँचे में ढलकर इकट्ठा हो गया है। जो तीर्थक्षेत्र (की यात्रा) का फल हो, वह भी प्राप्त हो गया है। ऐसे साधु जनों का आगमन संसार-सागर के पार लगानेवाला अच्छा साधन है, जहाँ आपकी कृपा भरी आँखें देखती हैं, वहाँ अवश्य भगवान् होते हैं, आपके चरण जगत् के लिए वन्दनीय हैं। मैं (इससे अधिक) विस्तार-पूर्वक क्या कहूँ ?"।

दशरथ द्वारा विश्वामित्र को अभिवचन देना– सन्तुष्ट होकर दशरथ बोले 'हे विश्वामित्र, मैं आपको समस्त इच्छा- हेतु को प्राप्त कराऊँगा। मेरी यह बात निश्चित अर्थ में, अर्थात् सत्य है। आपकी जो जो अभिलाषाएँ हों, समझिए कि मैंने उनको परिपूर्ण कर दिया'. इस उक्ति से सन्तुष्ट होकर विश्वामित्र स्वयं बोले।

दशरथ की प्रशंसा– 'हे दशरथ, आपकी उदारता, धैर्य, वीर्य, गुण-गाम्भीर्य, आपके पुरुषार्थ में प्रकट शौर्य की स्वर्ग में बड़े-बड़े देव सराहना करते हैं। आपने युद्ध में (दैत्य गुरु) शुक्र को जीतकर देव-गुरु बृहस्पति को सुखी कर दिया; इन्द्र को सफलता (एवं कीर्ति) प्रदान की। आप सूर्यवंश के लिए आभूषण हैं'। ऋषि की यह उक्ति सुनकर राजा मन में सुख को प्राप्त हुए उस सुख की मुख्य युक्त प्रेरणा से वे ऋषि के प्रति क्या बोले ? (सुनिए)। अति विनम्र होते हुए दोनों हाथों को जोड़कर उन्होंने ऋषि द्वारा संकल्पित अद्भुत कार्य (के विषय में) आत्मिक आनन्द के साथ पूछ लिया। 'गायत्री मंत्र को पढ़ते हुए अद्भुत कार्य करनेवाले हे ऋषिवर विश्वामित्र, आप किस काम से पधारे हैं ? हे महाधैर्यवान्, मुझसे कहिए'।

विश्वामित्र द्वारा दशरथ से उनके सुपुत्र श्रीराम को सहायता के लिए माँगना– वे बोले 'हे सूर्यवंशीय महान पुरुष, सुनिए, हे परोपकारकर्ता नृपति, हे देवों के लिए कृतकार्य, हे राजा ! मेरी माँग सुनिए। मेरी माँग धन (सम्बन्धी) नहीं है। मेरी माँग साधारण (वस्तु सम्बन्धी) नहीं है। हे कृतकार्य, यज्ञ

की सिद्धि के लिए मेरी माँग है श्रीरघुनाथ राम (के विषय में)'। ऋषि की यह उक्ति सुनकर राजा का मन घबराहट के कारण असमंजस में पड़ गया। उनकी धीरता (मानों) अपहृत हो गई। वे समस्त अंगों में कम्पायमान हो उठे। (जिस प्रकार) सर्प के मस्तक में वेगपूर्वक काँटा घुस जाए, अथवा गिरगिट की पूँछ टूट जाए, या मछली जल से अलग हो जाए (तो उसे जैसे दुःख होता है) उस प्रकार (ऋषि की उक्ति सुनते ही) राजा को दुःख हुआ। जैसे बन्दर के गाल के अन्दर से (मुँह में से) चने निकाल लिये गए हों, अथवा कृपण मनुष्य का धन छीना गया हो, अथवा किसी ने भिखारी से उसका पात्र (बलात्) ले लिया हो, वैसे ही राजा को लग गया– उनका मन श्रीराम में वैसे ही लगा था। प्राणों के निकल जाने पर देह जैसे विकल और तेज हीन हो जाती है, अथवा मूर्च्छित हो जाने पर मन और इन्द्रियाँ विकल हो जाती हैं, वैसे ही राम के निकलकर (दूर) जाने (के विचार) से ही राजा को (वैसी ही) दीनता अनुभव हुई उनकी वाणी (या जिह्वा) दृढ़ मौन को प्राप्त हुई। उन्होंने ऋषि को कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। (अनन्तर) समय के अनुकूल चातुर्य और ज्ञान (सूझ-बूझ) से विचार करके वे बोले-

दशरथ का प्रत्युत्तर– वे बोले ''यज्ञ (कार्य) में राक्षस विघ्न उत्पन्न करते हैं। वे मनुष्यों के संहारक और क्रूर-निर्दय होते हैं। (इधर) राम तो विशुद्ध बाल-स्वरूप है, राजस है। उसने धनुर्विद्या का कोई अध्ययन नहीं किया है। उसने कोई रणांगण नहीं देखा है, न ही उसका किसी से पहले युद्ध हुआ है। (अतः) उसके द्वारा राक्षसों से पहला युद्ध किस प्रकार कराया जा सकता है। मैं तो पुत्र के विषय में केवल कृपण हूँ। श्रीराम मेरी अपनी धरोहर है। श्रीराम मेरा जीवन-स्वरूप धन है। मुझसे उसे राक्षसों के भक्ष्य-स्वरूप दान में नहीं दिया जा पाता। (युद्ध के क्षेत्र में) श्रीराम का प्रथम सम्बन्ध वह भी राक्षसों से द्वन्द्व-युद्ध-स्वरूप ! आप विशद विवेक से युक्त हैं, ज्ञान प्रबुद्ध हैं। श्रीराम तो केवल बालक है। वह शस्त्र-विद्या में प्रबल नहीं है; वह मंत्रस्वरूप शस्त्र से युक्त नहीं है। उससे प्रबल राक्षसों के साथ किस प्रकार युद्ध हो सकेगा। आप समर्थ हैं। आप जो जो माँग लेंगे, वह राज्य, राजा के योग्य वस्तुएँ मैं दूँगा। अन्ततः मैं अपना जीवन (प्राण) तक दूँगा। पर मुझसे रघुनाथ राम नहीं दिया जा सकेगा''।

विश्वामित्र का क्रोध– राजा की यह बात सुनकर विश्वामित्र कोपायमान हो उठे। जान लीजिए कि अत्यधिक क्षुब्ध होकर वे स्वयं क्या बोले- ''हे दशरथ- मैं आपसे मिला, तो आपने सभा (गृह) में ऐसी जल्पना (बकवास) की हे द्विज, आपकी इच्छाएँ आज भी अशेष पूर्ण हो गयीं। (परन्तु) वही दान माँगने पर आप (अब) स्वयं कहते हैं– 'नहीं दिया जा सकता'। मुख्य रूप से यही तो कुल-दूषण (कुल के लिए कलंक) है- जो आप कह रहे हैं कि (शब्द-रूप में) दिया हुआ दान (प्रत्यक्ष) नहीं दिया जा सकता (दान सम्बन्धी दिया हुआ अभिवचन पूरा नहीं किया जा पाएगा)''।

विश्वामित्र द्वारा सूर्यकुलोत्पन्न दानवीर राजाओं का दशरथ को स्मरण दिलाना– ''सूर्य-वंश में, समझिए कि जो-जो धर्म-भूषण राजा हो गए, उनमें आप धर्म के लिए दूषण (स्वरूप) हैं, जबकि आप कह रहे हैं कि (शब्दों में) दिया दान नहीं दिया जा सकता। हरिश्चन्द्र ने स्वप्न में दान दिया; उसे उन्होंने जाग्रत होने पर सम्पूर्ण रूप से सत्य किया। उन्होंने दक्षिणा के सम्बन्ध में (स्वप्न में दिये हुए) अभिवचन को सत्य (सिद्ध) कर देने के लिए अपने आपको स्वयं बेच डाला। उसी वंश में आप जनमे, फिर भी जो दान शब्दों में दिया गया, वह नहीं दे रहे हैं। हे सूर्य-वंश को इस प्रकार निन्दा-योग्य बना देनेवाले दशरथ, ऐसा सामर्थ्य आप ही के पास है। समझिए कि इसी वंश में राजा शिवि हो गये, जिन्होंने स्वयं पक्षी के (भार के) बराबर (अपने शरीर के) मांस को तौल लिया। परन्तु उन्होंने अपने वचन को

मिथ्या (सिद्ध) नहीं होने दिया। जान लीजिए कि इसी वंश में राजा मुचकुन्द हो गये। उन्होंने स्वयं इन्द्र को सहायता की। उन्होंने तारकासुर से युद्ध भूमि में भयानक संग्राम किया। जान लीजिए कि उसी वंश में जन्म लेकर आप स्वयं कह रहे हैं कि दान नहीं दिया जा सकता। (इस प्रकार) आपने उस वंश के यश में पूर्ण कलंक लगा दिया। इसी वंश में रुक्मांगद हो गए। मोहिनी द्वारा उनकी वंचना करने पर उन्होंने उसे अपने पुत्र का मस्तक (काटकर) दिया और अपने एकादशी व्रत का निर्वाह किया आप भी उस वंश में जनमे और स्वयं कह रहे हैं कि पुत्र को नहीं दिया जा सकता। आपके कारण सूर्य-वंश को दोष लग गया। (इसी वंश में जन्म ग्रहण करनेवाले) ककुत्स्थ इन्द्र के कन्धे पर बैठ गए और युद्ध में उन्होंने दैत्यों को पराजित कर डाला। यह विचार सत्य है कि उसी वंश के (जनमे) आप कह रहे हैं कि युद्ध के लिए पुत्र को नहीं दूँगा''।

श्रीराम को 'बालक' कहने के कारण दशरथ को विश्वामित्र द्वारा दोष देना– ''आप राम को 'बच्चा' कह रहे हैं। आपकी यह ऐसी बुद्धि (नीयत) अतिमूर्खतापूर्ण और खोटी है। जान लीजिए कि श्रीराम तो केवल देवों की सहायता करने के लिए (भगवान् के) दोष-हीन (विशुद्ध) अवतार हैं। श्रीराम बालक नहीं हैं। वे राक्षस-कुल के लिए काल अर्थात् संहार-कर्ता हैं, वे अपने धर्म की संस्थापना करनेवाले (प्रतिष्ठाता) हैं; साधुओं के लिए आवश्यक सहायक हैं। आपका यह कथन ही अति अप्रमाणित है कि श्रीराम धनुर्विद्या नहीं जानते। राम तो समस्त विद्याओं के उत्पत्ति-स्थान हैं; राम शस्त्रास्त्र सम्बन्धी (व्यवहार रूपी) जीवन के अपने बीज (स्वरूप) हैं। श्रीराम (वस्तुतः) रण-रंग-धीर अर्थात् घमासान युद्ध में अविचल रहनेवाले धीर पुरुष हैं; गुण से युक्त (सगुण) होने पर भी अगुण (निर्गुण) ब्रह्म हैं, (समस्त) सद्‌गुणों में अथाह हैं, वीरों के अधिराज हैं। श्रीराम महावीर हैं, परम् शूर हैं। देखिए, श्रीराम मनुष्य नहीं हैं। श्रीराम देह-धारी होने पर भी विदेही (देह-हीन) हैं, साकार सरूप होने पर भी निराकार अरूप (ब्रह्म) हैं। श्रीराम चैतन्य विग्रही हैं। श्रीराम अपनी देह के धारी होने पर भी परब्रह्म हैं– वे देहधारी परब्रह्म हैं। हे राजा, आप निश्चय ही (कुछ) नहीं जानते। इसलिए श्रीराम को प्राकृत, अर्थात् साधारण (बालक) समझ रहे हैं। आप यह समाचार (घटना) वसिष्ठ से पूछ लीजिए वे यथार्थ रूप से बता देंगे। अब आपका कल्याण हो। श्रीराम को सकल कल्याण प्राप्त हो। मैं अपने आश्रम के प्रति जाऊँगा।''– यह कहकर ऋषि विश्वामित्र चले जाने लगे।

कुलगुरु वसिष्ठ का उपदेश दशरथ के प्रति और दशरथ द्वारा अपने पुत्र विश्वामित्र को समर्पित करना– तब वसिष्ठ बोले, 'हे नृपवर, विश्वामित्र को क्षुब्ध न कर दीजिए। ये ऋषि प्रतिसृष्टि के निर्माता हैं। ये क्षणार्ध में कुल-गोत्र को (अभिशाप देकर) भस्म कर डालेंगे'। वसिष्ठ का हेतु धन्य है। उन्होंने सूक्ष्म रूप से निर्वाह, अर्थात् समस्या का समाधान सूचित किया। जिससे ऋषि विश्वामित्र और राजा दशरथ सुख को प्राप्त हों, वैसा उपाय उन्होंने सोच लिया। वसिष्ठ ने राजा को रहस्य बता दिया और (उधर) विश्वामित्र को शान्त (तृप्त) कर दिया। (उन्होंने राजा से कहा) 'आप (अपने) दो पुत्र उन्हें दे और दो पुत्र क्रीड़ा-मनबहलाव के लिए आपके पास रहें'। गुरु की आज्ञा का सिर से वन्दन करके (उसे शिरोधार्य समझकर) दशरथ ने विश्वामित्र को दण्डवत् नमस्कार किया (और कहा)- 'मैंने राम लक्ष्मण आपको दिये; (भरत शत्रुघ्न) दो मेरे पास रहने दें'। तो विश्वामित्र बोले- 'साधु ! साधु ! एक राम ने क्या नहीं किया (एक राम द्वारा क्या नहीं किया जा सकता) ? फिर साथ में आपने लक्ष्मण भी दिया। मेरा भाग्य फल को प्राप्त हुआ'।

विश्वामित्र का सन्तुष्ट और सबका आनन्दित होना– विश्वामित्र वसिष्ठ से बोले- 'यह सत्य है कि आप सूर्य वंश के सद्‌गुरु हैं। आपने (हम) दोनों के धर्म की रक्षा की। (श्रीराम के अवतार के सम्बन्ध में) ज्ञान होने से आप (सच्चे ब्रह्म) ज्ञानी हो गये हैं'। अहो, देखिए– वसिष्ठ, विश्वामित्र और राजा (दशरथ) अपने-अपने स्थान पर बैठे। गाधि पुत्र विश्वामित्र सन्देह-रहित हो गए। वे आत्मिक आनन्द से परम उत्साहयुक्त हो उठे। राजा ने प्रिय गुरु से कहा- 'ऋषि विश्वामित्र से मिलने के लिए राम को बुलाइए'। तब वे राजा की आज्ञा के अनुसार नम्रता के साथ अति वेग-पूर्वक (वहाँ) आ पहुँचे। उन्होंने वसिष्ठ को दण्डवत् प्रणाम किया; राजा को साष्टांग नमस्कार किया और विश्वामित्र के चरणों में माथा टेका, तो उन्होंने उन्हें हृदय से लगाते हुए उनका आलिंगन किया। ऋषि (विश्वामित्र) और राम की भेंट हुई, तो विश्वामित्र के मन में आनन्द हुआ। श्रीराम को आँखों से देखकर वे जय-जयकार करते हुए गरज उठे।

एकनाथ गुरु जनार्दन की शरण में स्थित है। (वे श्रोताओं से बोले–) गुरु और शिष्य के (परस्पर) दर्शन हुए। इसके आगे (पश्चात्) स्वयं श्रीराम अपने वैराग्य का पूर्ण निरूपण करेंगे।

॥ **स्वस्ति** ॥ रामायण की एकनाथ-कृत भावार्थ रामायण नामक टीका के अन्तर्गत बालकाण्ड का 'विश्वामित्रागमन' नामक आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय ९

[श्रीराम द्वारा वैराग्य का निरूपण करना]

विश्वामित्र का अपने को कृतार्थ मानना– श्रीराम को अपने सम्मुख देखकर विश्वामित्र की मनोवृत्ति सुख को प्राप्त हुई और वे प्रेम तथा परम आनन्द के साथ उनसे बोले- 'आज मेरा कर्म सार्थक हुआ; आज मेरा धर्म सफल हुआ। आज मेरा कार्य पूर्ण हुआ। (क्योंकि) राजा ने यज्ञ (की रक्षा करने) के लिए श्रीराम को (मुझे सौंप दिया) है'। ऋषि विश्वामित्र ने श्रीराम से फिर कहा, 'अब मेरे आश्रम के प्रति चलिए। मेरे धर्म को सिद्धि (सफलता) प्राप्त करा दो। तुम समस्त कर्म के लिए मोक्ष (अशेष पूर्ति) स्वरूप हो'। इस पर श्रीराम बोले- 'हे समर्थ ऋषि, मैं अपने विचारों को लेकर कुछ पूछूँगा। हे कृपालु, आप कृपा करें। मैं तो सचमुच आपके आदेश (के पालन) का अभिलाषी हूँ'

विश्वामित्र से श्रीराम द्वारा देह-धर्म के विषय में प्रश्न करना– देह तो अत्यधिक अबल होती है। देह द्वारा किये जानेवाले कर्म नाशवान् होते हैं। कर्म से प्राप्त होने वाला फल क्षय को प्राप्त होनेवाला होता है। (इसलिए) यहाँ (इस संसार में) देह सम्बन्धी अहंकार से कौन सुख होता है ? देह सम्बन्धी लोभ से (मनुष्य) दुःखी हो जाता है। वह जिस भोग्य विषय का सेवन करता है, वह तत्काल विष्ठा (में रूपान्तरित) हो जाता है। इसलिए यहाँ (इस संसार में) देह सम्बन्धी अहंकार से कौन सुख होता है ? देह के साथ नित्य प्रति काल लगा रहता है वह दिन रात उसका क्षय करता रहता है। अन्त में (फल स्वरूप) वह जीवन-मरण के भँवर को घुमवाता है। इसलिए यहाँ देह-सम्बन्धी अहंकार से कौन सुख होता है ? देह पर क्षुधा का नित्य आघात होता है। प्यास पानी के लिए उसे पीड़ित करती

है देह के रहते हुए (उसके विषय में) उसे निःसंशय भय बना रहता है। (इसलिए) यहाँ देह सम्बन्धी अहंकार से कौन सुख होता है ? हे स्वामी, सुनिए, देह तो सचमुच दुःख का पहाड़ है। देह विकल्प (भ्रम) का सागर है। देह अत्यधिक तृष्णा की बड़ी बाढ़ है। देह (को होता) है नित्य मूत्र का स्नान। देह तो नरक की खान है। देह गन्दगी का गढ़ा है। यह देह रोगों की पंक्ति है। देह सन्देह का साफ (विशुद्ध) रूप है। देह अहंकार का साँचे में ढला रूप है देह (भोग्य) विषयों का ठोस रूप है, यह देह कृमियों की कोठी है। देह (सुख दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय जैसे) द्वन्द्वों की अपनी भूमि है। देह दुःख का अपना चिह्न या सोपान (निसेनी) है। देह विकल्प की पूर्ण भरनी है। देह संकटों के साथ किये जानेवाले युद्ध की भूमि है। देह आशा का लाड़-प्यार है। देह अहंकार का साथी-संगी है। देह अह-ममता (अपने प्रति आत्मीयता) का ठाटबाट (से युक्त उत्पन्न) है। यह देह विकारों का खेल है देह अविद्या का अधिष्ठान है। देह संकल्पों का सुन्दर वन है। देह मोहक (आकर्षक) का मोहन है ऐसी वह देह मुख्यतया अज्ञान (स्वरूप) है। देह काम का गूढ़ पर्वत है। देह क्रोध का दुर्गम गढ़ है। देह लोभ का दुस्तर अथाह जल है। वह देह विनाश का मठ है। देह अपवित्रता की जड़ है। देह गन्दी वस्तुओं में अति गन्दी है। देह अमंगलों में (सर्वाधिक) अमंगल है। (सबमें) मुख्य छूतवाली (अपवित्र, दोषमय, अशुचि युक्त) वस्तु है यह देह, देखिए, जो उत्तम वस्तु हो, यदि उसे देहलोभ से उपभोक्ता खा ले, तो वह पहर मात्र में विष्ठा बन जाती है। देखिए देह का यह परिणाम है। देखिए पहर मात्र न लगते, वह तत्काल वमन करानेवाली अर्थात् घिनौनी बन जाती है। देह की संगति नरक से भी अधिक घिनौनी होती है। (भोग्य) विषय का नित्य पूरा सेवन करते रहने पर नित्य नयी (नयी) कष्टप्रद दौड़ धूप बढ़ती जाती है। जान लीजिए कि कल्प काल के अन्त तक (भोक्ता को) तृप्ति नहीं हो पाती। तो देह सम्बन्धी अहंकार से कौन (-सा) सुख है ? शरीर में भूख नित्य पीड़ा उत्पन्न करती रहती है। प्यास उसी प्रकार पीड़ित करती है निद्रा पूर्णतः मूढ़ बना देती है। इस प्रकार की देह सम्बन्धी अहंकार से कौन सुख है ?

देह की उत्पत्ति और स्थिति (अस्तित्व, भरण-पोषण) की घृण्यता का राम द्वारा वर्णन करना– उस देह की (जिस प्रकार) उत्पत्ति होती है, वह मैं (आप) स्वामी को बता दूँगा। देह की उत्पत्ति समस्त अर्थों में अपवित्र वस्तुओं में से (सर्वाधिक) अपवित्र उस मूर्तिमान वस्तु (देह की संगति) से होती है। (लोक में) रजस्वला के आँचल का स्पर्श होने को ही सचैल स्नान का कारण मानते हैं। अहो देखिए, यह देह तो उस रक्त की जड़-मूल सहित (साँचे में) ढली हुई अपवित्र (वस्तु) होती है। रजस्वला चौथे दिन शुद्ध मानी जाती है। वह रज गर्भ (के मूल) में रहता है, वही विकसित होते-होते नौ महीनों में गोत्र को सूतक ही प्राप्त कर देता है। देह की उत्पत्ति की सम्भावना रज (आर्तव) से होती है। उसी रज से देह की उत्पत्ति होती है। उस रज से देह को शान्ति प्राप्त होती है और (अन्त में) देह भस्म बनकर सूतक का कारण बन जाती है। देखिए, देह की अस्थियों और राख को गंगाजल में छोड़ते हैं। फिर पिण्ड और तिलोदक अर्पित करने पर भी देह सम्बन्धी सूचक नहीं छूटता।

राम द्वारा गर्भ के दुःख का वर्णन करना– इस प्रकार देह तो मुख्यतया रज (आर्तव) है– अपवित्र है। देह ही प्रबल दुःख है अब शान्त होकर गर्भ के दुःख की अधिकता (का) विस्तार सहित (वर्णन) सुनिए। रजस्वला के परिपूर्ण रुधिर में पिता का वीर्य मात्र मिल जाता है। वही जम जाने पर शरीर (गठित) होता है। (इस प्रकार) देह की संगति मुख्यतया अपवित्र होती है, माता के पेट के अन्दर, विष्ठा की गर्मी में मूत्र के उबाल में नौ महीनों तक वह (गर्भ) उबलता रहता है। जठराग्नि के मुँह में गर्भ

के गोले के उबाले और सीजे जाने पर रस साँचे में ढलकर पिण्ड बन जाता है। और (हस्त पाद मुख आदि) आठों अवयवों की सलाइयाँ व्यक्त आकार को प्राप्त हो जाती हैं। उसके चारों ओर विष्ठा का लेप लगा रहता है। नाक, मुँह में जन्तु और कीड़े भरे रहते हैं। उस दु:ख को भोगते रहते जीव रोता रहता है। वह व्याकुलता से अति छटपटाता रहता है। गर्भ के वेष्टन के त्वचा नहीं होती। तब माता को अति (कष्टप्रद) दोहद होते हैं। उससे वह कटु, आम्ल (खट्टे) और खारे पदार्थों का सेवन करती है (फलत:) गर्भ का समस्त अंग झुलस जाता है। माता को (सुबह, दुपहर, शाम) त्रिकाल जो भोजन प्राप्त होता है, वह तीनों काल गर्भ के लिए दु:ख (स्वरूप) हो जाता है उसे भोगते-भोगते उसे छटपटाहट होती है, वह उसे किसको बताएगा ? वहाँ वायु का आगमन नहीं होता; माता तथा धाय द्वारा सान्त्वना नहीं दी जा पाती– न ही आत्मीय जनों द्वारा दु:ख का निराकरण करते हुए धीरज बँधा जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण दु:ख से वह अति दु:खी बना रहता है। उसके वे माता-पिता (तक) उसको उस समय की व्यथा को नहीं जानते। वहाँ उससे यह कहनेवाला नहीं होता कि मत डरो। वह स्वय अपनी दु:खद स्थिति का भोग करता रहता है।

प्रसूति समय के कष्ट– प्रसूति के समय माता के उदर से (गर्भस्थ शिशु के बाहर आने में) अति रुकावट (बाधा) होती है। देखिए, गुद द्वार को ओर अधोमुख हुए शिशु को योनि के द्वार में लाते समय वह परम वेदना उत्पन्न करता है। प्रसूति के समय वायु अति प्रबल होती है। समस्त अंग में अनोखी वेदना होने लगती है। वह योनि द्वार में छटपटाने लगता है। प्रसूति तत्काल नहीं हो पाती। वेदना पर वेदना आती रहती है। उससे (गर्भस्थ जीव और माता) दोनों को दु:ख होता है। गर्भ का हिलना-फिरना उस समय होता रहता है। इससे माता द्वारा वेदना सही नहीं जा पाती। उस समय वह (गर्भ-स्वरूप जीव) पूर्णत: यह सोचता है कि अब स्वयं जन्म को प्राप्त हो जाने पर, यदि मैं (पुनश्च) भोग्य विषयों का सेवन करने लगूँ, तो (पुनश्च) गर्भ (गृह) में मुझे गमन करना पड़ेगा। इसलिए मैं उन विषयों का सेवन नहीं करूँगा मैं सद्गुरु की शरण में जाकर और (देह आदि सम्बन्धी) अहंकार का निर्दलन करते हुए जन्म और मृत्यु का निवारण करूँगा। (परन्तु आगे चलकर) देहधारी जीव उस बात का स्मरण भी भूल जाता है

बाल्यावस्था का दु:ख– गर्भ जब (शिशु के रूप में) बाहर निकलता है, तो उसका 'सोऽहम्' भाव (मैं ही ब्रह्म हूँ, अर्थात् ब्रह्म से एकत्व का भाव) तत्काल नष्ट हो जाता है। (फिर) वह 'कोऽहम्' (मैं कौन हूँ ? इस प्रकार अपने आपको भी न जाननेवाले अज्ञान जीव के रूप में) भाव से बहुत रोता है (इस स्थिति में) जो जन्म को प्राप्त हुआ है, उसके सामने (आगामी जीवन में) क्या सुख हो सकता है, देखिए, जन्म काल से लेकर अनमोल आयु बीतती जाती है। इसलिए हर कोई उसका जातक (भविष्य) पूछता है– (जिससे यह सूचित होता है कि हर कोई उसके यहाँ से जाने के बारे में पूछता है) कोई उसके यहाँ रहने के बारे में नहीं पूछता। देह की उत्पत्ति, अर्थात् प्राणी के जन्म के साथ अखण्डित रूप से, आवश्यक रूप से (इस संसार से) 'जाना' (अर्थात् मौत) लगा है। इसलिए समस्त लोग मृत्यु का आतंक वहन करते रहते हैं देखिए, मृत्यु की कोई सीमा (बँधी हुई) नहीं है। गर्भावस्था में तो गर्भ के गिर जाने का आतंक छाया रहता है। जन्म को प्राप्त होते ही छठी देवी जैसी डाइन का आतंक अनुभव होने लगता है। (इस स्थिति में) जन्म को प्राप्त होने का क्या सुख है। बचपन के दु:ख और शोक उनके असंख्यत्व के कारण गिनने में नहीं आ सकते। उस (दु:ख-शोक) को भी सावधान होकर सुनिए। वह (शिशु) अपनी नरकस्वरूप विष्ठा को स्वयं खा लेता है। जिस स्थान (अंग) का नाम

तक न लें, जो स्वयं ही (कभी किसी को) न दिखाएँ, उस योनि के द्वार से ही उसकी उत्पत्ति होती है फिर जन्म को प्राप्त होने में क्या गौरव है ? फिर है लार, थूक, विष्ठा, और मूत्र। इनमें वह नित्य क्लेश को प्राप्त होता रहता है। वही श्लेष्मा (बलगम) को खाता है, (इस स्थिति में) बचपन में यहाँ कौन सुख है, (भूख के कारण जब) पेट में दर्द होता है, तब माता उसके मुँह में स्तन पैठाती है। (उस शिशु द्वारा) अपनी व्यथा पूर्णतः नहीं कही जा पाती (इस स्थिति में) बचपन में कौन सुख है। (अनन्तर) दाँत, दोनों दाढ़ें, नयन आदि सात महीनों के अन्त में निकलते हैं। दुध-मुँहा होने की अवस्था में दुःख के आवेग (तीव्र उर्मियाँ) अनुभव होते हैं। (अतः) बचपन में कौन सुख फल-युक्त हो जाता है। बचपन में असह्य दुःख होता है। वहाँ (उसमें) सुख का (अत्यल्प) अंश तक नहीं होता। देखिए, तरुणाई (युवावस्था) पुरुष को (मानव) को वैसी ही दुःखदायी होती है।

युवावस्था और अहंकार– युवावस्था की मार बड़ी होती है। वह मनुष्य के (सच्चे) स्वार्थ अर्थात् हित को अशेष डुबो देती है। उसे परमार्थ जरा भी याद नहीं आता। वह (युवावस्था से) अति उन्मत्त और विषय (सुख) का अभिलाषी बना रहता है। वह थका माँदा होते हुए विषय (सुख) का भोग पूरा करे, तो नित्य प्रति (अधिकाधिक सुख की प्राप्ति के लिए) उसकी दौड़ धूप बढ़ती जाती है। आग में ईंधन (डालने पर जिस प्रकार उस) में वह भभक उठती है, उसी प्रकार तृप्त होने की दृष्टि से बहुत कठिन होने के कारण विषय (सुख) भोग दारुण होता रहता है। (लोक) नित्य विषयों का सेवन करते रहते हैं, परन्तु किसी भी समय उनकी तृप्ति नहीं हो जाती। (इस प्रकार करते करते) आयु हाथों-हाथ (देखते-देखते) बीत जाती है पर तरुणाई की (ऐसी स्थिति की) ओर वह (तरुण पुरुष) नहीं देखता। विषय सुख का लोभ (इस प्रकार) बढ़ाते जाने पर आयु का नित्य प्रति नाश होता रहता है। उधर परमार्थ सूना पड़ जाता है। (इस प्रकार) तरुणाई में सुख का लेश (तक) नहीं है। आयु का नित्य विनाश होता रहता है। उससे परमार्थ अशेष नष्ट हो जाता है। (उस विनाश का कारण) वह है यह विषयों का समुदाय। फिर तरुणाई में जोश होता है। जवानी के (उदर के) अन्दर दुःखों के अनेक भेद होते हैं, जिन्हें धन-धान्य की दृष्टि से लालुप होने से स्त्री पीछे लगा देती है तरुणाई के मार्गों द्वारा (मनुष्य में) अहंकार से अकड़ घमण्ड चढ़ जाता है। उससे किये न जाने योग्य कामों के प्रति ले जानेवाले रास्ते निकलते हैं फिर उसमें अहंकार का निरर्थक झूठा विकास (झूठी शान) हो जाता है। (वह मनुष्य इस अवस्था में यह मानने लगता है कि) मैं एक मात्र चातुर्य सम्पन्न व्यक्ति हूँ, मैं अद्वितीय स्वयंपाकी हूँ, अच्छा ब्राह्मण हूँ। मैं एक मात्र समर्थ तथा धनवान् हूँ। मैं पूर्ण रूप से, एक मात्र पवित्र (व्यक्ति) हूँ यह समस्त जगत् अपवित्र है, मैं ही एकमात्र श्रेष्ठ और पवित्र हूँ। तरुणाई में अहंकार के कारण इस प्रकार यह विचित्र विनाशकारी (विचार) सूत्र बन जाता है।

स्त्री की संगति का प्रभाव– स्त्री तो अस्थि-मांस की थैली है। स्त्री विष्ठा का गोला मात्र है। स्त्री रज का (अर्थात् गन्दी अपावनता का) निवास स्थान है। स्त्री-सुख अर्थात् विषय भोग में (मानों) नरक का आनन्दोत्सव होता है। ऐसी स्त्री की संगति में तरुणाई पुरुष को दास बना देती है। (फलतः) वह उसकी निरन्तर सेवा करता है। उसकी होनेवाली (दयनीय) दशा (के वर्णन) को सुनिए। युवावस्था रूपी (अर्थात् युवक रूपी) बन्दर स्त्री के सामने वैसे ही उछलता (कूदता) है, जैसे वह उसे नचाती है, जहाँ वह उसे गिरा देती है, वहाँ वह गिर जाता है। वह उसे अपने शौक के अनुसार स्पष्ट रूप से (खुले रूप से) नचाती है। युवावस्था (युवक) रूपी गधा अपनी स्त्री के समीप (रहते हुए) उसके प्रति अपना

स्नेहभाव सिर पर (उठाकर) वहन करता है (स्त्री प्रेम को ही शिरोधार्य तथा सर्वोपरि मानता है)। युवावस्था रूपी कुत्ता स्त्री की आज्ञा में रहता है और (अपने अन्य) मित्र जनों को आतंकित बनाये रखता है। युवावस्था रूपी बिल्ली स्त्री के गृह में रहते हुए उसके पाँवों के पास म्याऊँ-म्याऊँ अर्थात्, मैं आऊँ' करती रहती है। वह स्त्री के अधरामृत को चाटने के लिए दिन-रात मौका ताकती रहती है। युवावस्था रूपी (युवक रूपी) चूहा स्त्री के घर में आठों पहर छिद्र (बिल) खोदता रहता है। देखने पर उस छिद्र के भीतर छिप जाता है। (अतः) ऐसी युवावस्था में क्या सुख है। तरुणाई (भोग-विलास के) विषयों के प्रति लोलुप होती है। तरुणाई स्त्री सम्बन्धी अभिलाषा की दासी होती है। तरुणाई अहंकार से जोश में आती रहती है। ऐसी तरुणाई में क्या सुख है।

वृद्धावस्था की व्याधि-जर्जरता– युवावस्था की ऐसी स्थिति है, तो बुढ़ापे को (वृद्धावस्था में) किस प्रकार सुख हो सकेगा ? उसे बुढ़ापे की स्थिति (की दयनीय दशा) सुनिए। मैं (उसके बारे में) निश्चित रूप से कहता हूँ। वृद्धावस्था में व्याधियाँ (मनुष्य-जीवन को) व्याप्त कर देती हैं। वृद्धावस्था में पीड़ाएँ उसे व्याप्त कर देती हैं। वृद्धावस्था में बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। यह सत्य है, सत्य है, सत्य है कि वहाँ (उसमें) कैसे सुख होगा। जरा (वृद्धावस्था बुढ़ापे) से बहुत भय होता है। जरा शरीर के दृश्य (आभासित) रूप को नष्ट कर देती है, आतंक से बाल (रंग) बदल देते हैं। वहाँ (उसमें) सुख का लेश तक नहीं होता। वृद्धावस्था तो विशुद्ध पाप होता है। उससे समस्त अंग में कँपकँपी होती है डर के मारे होंठ लपलप हिलते-काँपते रहते हैं और शब्दों का प्रताप खोखला हो जाता है (शब्दों में कोई जोश नहीं प्रकट होता)। बुढ़ापे को आते देखकर दाँत जड़-मूल-सहित पलायन करने लगते हैं इन्द्रियों की सत्ता (शक्ति) क्षीण हो जाती है। वहाँ (उस स्थिति में) सुख की वार्ता (नाम तक) नहीं होती युवावस्था (युवक) के पास समस्त धन होता है। जो स्त्री उस समस्त धन का उपभोग कर लेती है, वही बुढ़ापे में विमुख हो जाती है यही है बुढ़ापे का यह बड़प्पन। बुढ़ापे में अन्न नहीं पचता, तो भी खाने की तृष्णा अर्थात् इच्छा अपार हो जाती है। बूढ़े का मन तो सदा चिन्ता युक्त होता है। ऐसे बुढ़ापे में कौन सुख है ? वृद्धावस्था में शोक का समुदाय अर्थात् आधिक्य होता है। (फिर भी) वृद्धावस्था में बहुत ममता होती है। बच्चे बूढ़े को हौआ कहते हैं। यह है बुढ़ापे का सुख और गौरव। जोरू कही बात सुनती (मानती) नहीं। बच्चे मुँह बना लते रहते हैं, हर कोई बच्चों को उकसाता है, जिससे वे बूढ़े को हँसी ठठोली में बौखला देते हैं। वृद्धावस्था का ऐसा बड़ा बल होता है कि (वृद्ध के) पास में कोई मनुष्य नहीं बैठता, उसे बहुत खाँसी आती रहती है। उससे चारों ओर थूक और झाग आदि के छिटकने से गन्दगी हो जाती है। जरा से उत्पन्न होनेवाली जर्जरता की अधिकता से शरीर की शक्ति भाग जाती है। नयन (सफेद चिकने आवरण के फैलने के कारण) निस्तेज हो जाते हैं। मुँह में से छाती पर लार झरती रहती है। मृत्यु (की छाया) ने शरीर को व्याप्त कर लिया हो, तो वह (मनुष्य) कहता है– यह मेरी स्त्री है, यह मेरा घर है; ये मेरे पोते हैं, ये मेरे पुत्र हैं। यह ममता उसे अधिक नहीं छोड़ जाती। यद्यपि उसे अर्द्ध)-जल में डाल दिया हो, तो भी वह अपने स्त्री-पुत्रों को निहारता रहता है (और कहता है) 'अरे नाती-पोतों को मेरे पास ले आओ'। (इस प्रकार) ममता से इकट्ठा किये हुए अपनों के समुदाय के मध्य उसे मौत आती है।

भोग्य विषयों के लोभ से नर-देह का व्यर्थ हो जाना– नर-देह की आयु के सार- भूत तत्त्व को (मनुष्य ने) भोग्य विषयों के लोभ से मिट्टी बना डाला है। इससे परलोक (स्वर्ग) के मार्ग

पर पत्थर पड़ गया है; अत: वह नरक के द्वार के प्रति गमन कर जाता है। देह बुद्धि (यह धारणा देह को सब कुछ है; उससे देह के प्रति अहंकार अनुभव होता है) की उर्मियों में (कोलाहल में) मोह ममता की महान ज्वालाओं में परमार्थ की होली हो गई (परमार्थ जलकर भस्म हो गया)। (इस प्रकार) नर-देह की कुचौवल एवं दुर्दशा हो जाती है। देह में विषय सुख (की कामना) व्यर्थ है। देह ने स्वर्ग-सुख का नाश कर डाला है. देह ने मोक्ष के सुख को छल कपट से छीन लिया है। (इस प्रकार) देहाभिमान से दु:ख मात्र होता है। सौ वर्ष विषय सुख के प्रति आसक्ति हो, तो भी (उसका उपभोग करने पर) एक अंग भी तृप्ति को प्राप्त नहीं हो जाता। (इस प्रकार) उत्तम आयु की मिट्टी हो गई (समझिए) देहाभिमान मात्र अध:पात कर देनेवाला होता है। जो देह सम्बन्धी अभिमान से उसका साथ देते रहने में सुख मानते हैं, वे निरे मूर्ख हैं। देह का साथ देना विशुद्ध रूप में दु:ख (स्वरूप) है। वह गर्भ नरक का भोग कराता है, (यह कहकर) श्रीराम बोले - हे गुरु, हे नाथ, मन में देह सम्बन्धी अहंकार (पूर्ण आत्मीयता) के रहने पर राज्य के उपभोग की कामना से कौन सुख होगा ? विषय सुख के स्वार्थ में क्या सुख होगा ?

अहंकार-महिमा– यह आत्म स्वरूप के निर्धारण की दृष्टि से निश्चित नियम है कि अहंकार जैसे शत्रु के, (मनुष्य के) हृदय पर बैठे रहने पर जगत् में सुख नहीं होगा। जीव में अहंकार जुड़ गया हो, तो वह साधना में प्रविष्ट होकर उलझन पैदा करता है। यह अहंकार जीव के विचार से जगत् को खुले रूप में धोखा देकर नँगियाता है। (साधना और परमार्थ-प्राप्ति में) अहंकार मुख्य बाधा उत्पन्न करनेवाला होता है. ममता के उसके सहायक हो जाने पर, अहं-ममता को जीत न ले तो सुख बिलकुल नहीं (प्राप्त) होता शास्त्रों के श्रवण से (मन के) शुद्ध हो जाने पर दोनों प्रकार के भोगों की ओर ऐसे देखा जाए– उसे वैसा ही माना जाए, जैसे कुत्ते द्वारा कुछ खा लिये जाने पर उसने उसे अभी वमन कर दिया हो कुत्ता स्वयं वमन किये को खा जाता है; उसी प्रकार सम्पूर्ण ऐहिक सुख-भोग हो जाता है। यदि ज्ञानी जन उस भोग की कामना करते हों, तो उनका ज्ञानी होना लोक व्यवहार में नष्ट हुआ (समझिए)।

अहंकार-निन्दा– हे ऋषिवर, आत्म स्वरूप के निर्धारण में यह अहंकार (साधक का) मुख्य वैरी होता है। फिर विषय भोग सम्बन्धी लोभ उसके सिर चढ़ जाए, तो संसार (रूपी सागर) उससे बहुत दुस्तर हो जाता है। इसलिए, जब तक अहंकार का निराकरण नहीं हो जाता, तब तक मैं (विविध) रसों का पान (सेवन) नहीं करूँगा। मैं न मिष्ठान्न भोजन करूँगा, न दिव्य वस्त्रों को धारण करूँगा मैं कोई क्रिया-कर्माचार नहीं कर रहा हूँ। कर्म तो मात्र शरीर के लिए आधार स्वरूप होता है। वहाँ इस अहंकार का संचारण होता है कि मैं अति पवित्र वेद वेत्ता हूँ।

श्रीराम द्वारा इस संकट से मुक्ति पाने का उपाय सुझाने की प्रार्थना करना– हे कृपा की (साक्षात्) मूर्ति (स्वरूप) ऋषिवर, जिससे ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हो सकती है, यदि ऐसी कोई युक्ति हो, तो मुझे बता दीजिए। यदि मुझे (ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने का) अधिकार न हो, तो आप सन्त तो सबके लिए आधार (स्वरूप) हैं सन्तों का सचमुच यह ध्येय वाक्य है कि सत्संगति ही दीनों का उद्धार (करनेवाली होती) है। (जिस प्रकार) चन्दन की संगति में खैर, धौ (जैसे वृक्ष) चन्दन (से सुगन्धित युक्त) हो जाते हैं उसी प्रकार सन्तों की संगति में दीन मनुष्य को (भी) ब्रह्म (ज्ञान) की प्राप्ति हो जाती है। इस प्रकार कहकर श्रीरघुनाथ (यों ही) चुप तथा स्तब्ध हो गए। उस समय ऋषि, राजा और समस्त लोग विस्मित हो गए।

उपर्युक्त प्रश्न से सबका तुष्ट हो जाना– श्रीराम द्वारा वैराग्य सम्बन्धी ऐसी बात करते समय बड़े-बड़े ऋषि समुदाय में भू तल पर इकट्ठा हुए। सिद्ध नभो मण्डल में इकट्ठा हुए। उस समय मुमुक्षु जन (मानों) चातक बन गए। श्रीरघुनाथ वैराग्य से (प्रेरित होकर उपर्युक्त बात) बोले। उससे देव और मनुष्य चकित (एवं अविचल) हो गए। समस्त सिद्ध विस्मय को प्राप्त हुए। सुरवर विस्मित हो गए। श्रीराम की बात सुनकर सिद्धों को मन में सुख (अनुभव) हुआ। उन्होंने आत्मिक आनन्द से श्रीराम के मुकुट पर पुष्प-वृष्टि की। आकाश में सिद्धों द्वारा जय-जयकार किया गया। भूमि पर ऋषीश्वरों ने (जय-जयकर करते हुए) गर्जन किया। मनुष्यों ने भू-तल पर जयजयकार किया। सभा सुख से परिपूर्ण (सम्पन्न) हो गई। सिद्धों ने आत्मानन्द पूर्वक कहा– हमने ऐसी वैराग्य सम्बन्धी बात, त्रिभुवन में भ्रमण करते हुए (कहीं अन्यत्र) नहीं सुनी। श्रीराम ने हमें सचमुच सुखी कर दिया। इस प्रकार सिद्ध आत्मानन्द के साथ (नभोमण्डल से) दशरथ की सभा में श्रीराम और ऋषि विश्वामित्र के संवाद का तथा गुह्य बात का श्रवण करने के लिए आ गए। राजा दशरथ ने मन में हर्ष से परिपूर्ण होकर सन्तुष्ट होते हुए वसिष्ठ और विश्वामित्र- दोनों (ऋषियों) का तथा सिद्धों, साधकों, मुनियों का पूजन किया। श्रीरघुनाथ ने स्वयं (वहाँ) आकर श्रद्धा के साथ सिद्धों का पूजन किया; समस्त ऋषियों का पूजन किया, परमार्थ बुद्धि से दशरथ का पूजन किया। सुरों, नरों, ऋषियों, सिद्ध-गणों की वह सभा सावधान होकर बैठ गयी (तब) एकनाथ ने गुरु जनार्दन स्वामी (स्वरूप श्रोताओं) से यह विनती की– हे श्रोताओ, (अब) ब्रह्मज्ञान सुनिए।

॥ **स्वस्ति** ॥ रामायण की श्री एकनाथ कृत भावार्थ-रामायण नामक टीका के अन्तर्गत बालकाण्ड का श्रीराम-वैराग्य निरूपण नामक यह नवम् अध्याय समाप्त हुआ॥

अध्याय १०

[राजा जनक और शुक्राचार्य का संवाद]

विश्वामित्र का कथन राम के प्रति– विश्वामित्र ने कहा

श्लोक– हे राघव राम, हे ज्ञानी पुरुषों में श्रेष्ठ (राम), वस्तुतः तुम्हारे लिए जो ज्ञेय न हो, ऐसी कोई भी बात (अब) शेष नहीं है। तुमने अपनी सूक्ष्म बुद्धि से सब कुछ का ज्ञान प्राप्त किया है।

विश्वामित्र ने कहा– 'हे रघुनाथ, तुम सूक्ष्म (पैनी, प्रखर) बुद्धि से युक्त हो, तुम्हारी बुद्धि में बड़ा पैनापन है। तुम स्वयं ज्ञान अर्थात् ज्ञेय परमार्थ अर्थात् ब्रह्म सम्बन्धी विचार से स्वभावतः ही परिपूर्ण हो ज्ञानी लोगों में से ज्ञान वरिष्ठ जनों को जो शुद्ध तथा विशद ज्ञानानुभव होता है, वह तुम्हारे द्वारा प्राप्त किया हुआ स्पष्ट रूप से दिखायी दे रहा है। हे ज्ञान गर्भ, तुममें बड़ा वैराग्य (पाया जा रहा) है जो वैराग्य ज्ञानस्वरूप गर्भ से उत्पन्न होता है वही ज्ञान की उपलब्धि की प्रारम्भिक साधन-सामग्री है। वैराग्य के अभाव में ज्ञान पाना कठिन होता है परन्तु तुममें वही वैराग्य स्वाभाविक रूप से विद्यमान है।

श्लोक– (तुमने ज्ञेय को जान लिया है। फिर भी) तुम्हारी बुद्धि भगवान् व्यास के पुत्र शुक्र की-सी हो गयी है उसकी बुद्धि की भाँति तुम्हारी बुद्धि को भी केवल विश्रांति अर्थात् दृढ़ता की अपेक्षा (आवश्यकता) है।

जिस प्रकार श्री व्यास के पुत्र शुक जन्म से ही स्वभाव सुलभ काम क्रोधादि विकारों से मुक्त थे उसी प्रकार हे रघुनाथ, तुम भी विकारों से मुक्त हो; अतः स्वभावतः ही परमार्थ ज्ञान को प्राप्त हो गए हो। उन शुक मुनि का ज्ञान भ्रम के कारण लय को प्राप्त हुआ था; परन्तु आगे चलकर गुरु के उपदेश के वचनों से वे पुनः ज्ञान को प्राप्त कर सके।

श्लोक– श्रीराम ने कहा– हे भगवान्, भगवान् व्यास के सुपुत्र शुक ने ज्ञेय तत्त्व को जान लिया था, फिर भी आरम्भ में उसका चित्त स्थिरता को प्राप्त क्यों नहीं था ? और वह फिर किस प्रकार स्थिर हो गया ? (कृपया मुझे यह समझा दीजिए)।

श्रीराम की जिज्ञासा– (यह सुनकर) श्रीराम बोले- हे ऋषिवर, मैंने (आपसे) यह परम आश्चर्यकारी बात सुनी। (कहिए कि) ज्ञान को प्राप्त हो जाने पर श्रेष्ठ (मुनिवर) शुक के लिए (पुनः) भ्रम को धारण करने का क्या कारण हुआ ? हे स्वामी-नाथ, उन शुक मुनि की कथा आरम्भ से लेकर मुझसे कहिए। ज्ञान को प्राप्त करने के पश्चात् शुक मुनि के मन में (पुनश्च) भ्रम किस प्रकार जमकर बैठ गया ? वही भ्रम आगे चलकर उनके मन के अन्दर कैसे नष्ट हुआ ? मुझसे यह कहिए कि वह किस प्रकार विश्राम (शमन) को प्राप्त हुआ ?

श्लोक– विश्वामित्र बोले हे राम, तुम्हारी अपनी स्थिति से मिलती जुलती स्थिति जिन व्यास-पुत्र शुक की हो गयी थी, उन्हीं शुक की स्थिति का वर्णन मेरे द्वारा किया जा रहा है। वह जन्म (मृत्यु-परम्परा) का अन्त कर देनेवाला, अर्थात् मोक्ष कारक है। तुम उसे सुन लो।

(इसपर) विश्वामित्र बोले– हे श्रीराम, श्री व्यास के उन सुपुत्र की ज्ञान-गरिमा की, उनके अथाह विचार की महिमा की कोई सीमा नहीं थी। वह (सचमुच) अनुपमेय थी। मैं तुम्हें श्री शुक का अपना ज्ञान-विचार तथा उस विचार का तात्पर्य सचमुच बताऊँगा। उसे सविस्तार सुनो।

शुक मुनि का आख्यान– शुक मुनि जन्म से ही (विकार, अज्ञान आदि से) स्वभावतः मुक्त थे वे विवेक तथा वैराग्य से भरे पूरे थे। वे (अपने पिता) श्रीव्यास से न पूछते (कहते, आज्ञा लेते हुए) अपनी इच्छा के अनुसार वन में जाने के लिए चले

श्लोक– जिस समय श्रीशुक का यज्ञोपवीत (जनेऊ) संस्कार भी नहीं हुआ था, (लौकिक वैदिक) कर्मों के अनुष्ठान का अवसर भी नहीं आया था, उन्हें अकेले ही संन्यास लेने के लिए जाते देखकर उनके पिता द्वैपायन व्यास जी विरह से कातर होकर पुकारने लगे– 'हे पुत्र, हे पुत्र'। उस समय तन्मय होने के कारण श्रीशुकजी की ओर से वृक्षों ने उत्तर दिया। इस प्रकार सबके हृदय में विराजमान मुनि श्रीशुकजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

समझ लो कि श्रीशुक ने विवाह नहीं किया था, न ही उन्होंने सम्पूर्ण रूप से संन्यास ग्रहण किया था। सर्वस्व का त्याग करके, वे, समझ लो कि बिना श्रीव्यास से (अनुमति माँगते हुए) कहते हुए (वन की ओर) जाने के लिए निकले। शुक में विरक्ति की पूर्णावस्था को देखकर श्रीव्यास को उनके प्रति बड़ी प्रीति हुई थी। उस कारण से, वे शुक के प्रति अनुभव होनेवाली (अपने मन को) पुत्र-सम्बन्धी आसक्ति से सुख पूर्वक (उनके पीछे) दौड़े। पुत्र-प्राप्ति का सुख व्यास को प्राप्त हुआ था। उसका मुख देखने में व्यास को असीम हर्ष होता था। वे (उसके पीछे दौड़ते हुए) शुक से कह रहे थे- 'अरे, अवश्य (लौट) आओ'। 'मैं शुक अल्प व्यापी नहीं हूँ, मैं (ब्रह्म के साथ एकात्म हूँ, अतः) समस्त भूतों पदार्थों

के अन्दर निवास करनेवाला हूँ'- व्यास को इसका अनुभव कराने के हेतु से वृक्ष उनसे (प्रत्युत्तर में) 'हाँ' कहते थे। (इधर) व्यास अपने पुत्र को सम्बोधित करते हुए बुला रहे थे; (और उधर) वृक्ष प्रत्युत्तर में बोल रहे थे। उससे सुख को प्राप्त होते हुए व्यास पुत्र के आगमन के विषय में (अधिकाधिक) यत्न करने लगे। जान लो कि 'रे शुक' कहते ही, वृक्ष स्वयं 'हाँ' कहते थे। उससे शुक की पूर्णावस्था व्यास की समझ में पूर्णतः आ गयी। (शुक को इस प्रकार का) पूर्णत्व प्राप्त होने पर भी उसके अन्दर विकल्प (भ्रम) की स्थिति उत्पन्न हुई। मुख्यतया स्त्रियों की वाणी का श्रवण करने से श्रीशुक मुनि को पूर्ण भ्रम हो गया। शुक ने न आँखों से स्त्रियों को (कभी) देखा था, न स्त्रियों से संगति और भेंट हुई थी। (वस्तुतः) उनके द्वारा दूसरे से कही हुई बात को सुनने पर शुक के मन में भ्रम उत्पन्न हुआ। कोई प्रमदा परमार्थ (सम्बन्धी बात) पूछने आ गयी हो, तो (समझो कि) गुरुत्व के लिए मोहिनी (भुलावा उत्पन्न करनेवाली बात) उत्पन्न हो गयी (गुरु भुलावे में आ गये)। प्रमदा मात्र प्रमाद (भ्रम, मतता) में गिरा देती है। उसकी बात से भ्रम उत्पन्न होता है। प्रमदाओं (स्त्रियों) को परमार्थ बताना- यही गुरुत्व के लिए बड़ी विपदा होती है। उस विपदा का आघात होने से श्रीशुक में भ्रम उत्पन्न हुआ। (वस्तुतः) परमार्थ (ज्ञान) और गुरुत्व के लिए जो विपदा स्वरूप (भ्रम) होता है, उस विपदा का पूरा नाश करानेवाला ज्ञान श्रीशुक में सुख-सुविधा के साथ रहता था।

जलाशय में स्नान करनेवाली अप्सराओं की शुक और व्यास को देखकर होनेवाली भिन्न-भिन्न स्वरूप की मनःस्थिति– (मार्ग में पड़नेवाले) सिद्ध (नामक) सरोवर में अप्सराएँ नग्नावस्था में स्नान कर रही थीं। ब्रह्मस्थिति में मग्न हुए शुक को (उस मार्ग से) जाते देखकर भी वे लज्जा न अनुभव करते हुए अपनी इच्छा के अनुसार (जल में) क्रीड़ा करती रहीं। परन्तु जब उन्होंने उनके पीछे-पीछे व्यास को आते देखा, तब वे अप्सराएँ अति लज्जित हुईं। किसी किसी ने वस्त्र को आड़े धर लिया तो कोई-कोई पानी में बैठी रहीं। (व्यास ने सोचा) शुक तरुण है, वह नग्नावस्था में है। (पास होकर) उसके जाने पर ये अप्सराएँ नहीं लजा गयीं। मैं वृद्ध इनके लिए दादा के स्थान पर (दादा जैसा) हूँ। फिर ये देवांगनाएँ मेरे प्रति क्यों लज्जित हुईं। (जान पड़ता है कि) शुक के प्रति उन्हें आसक्ति है। वे निर्लज्ज उसे अपने अंग दिखा रही थीं। मैं वृद्ध उन्हें चित्त में अच्छा नहीं लगा। इसलिए वे स्वर्गांगनाएँ (मुझे देखकर) लज्जित हुईं। यह उन अप्सराओं का विचार होगा। व्यास का यह अभिप्राय था (धारणा थी) कि उनके पास यह पूछने के लिए जाएँ। (जाकर) उन्होंने उनसे प्रश्न किया। तुम शुक (को देखकर उस) से लज्जायमान क्यों नहीं हुईं ? मुझसे किस अर्थ (कारण) से तुम लजा गईं ? यह तो निश्चय ही प्रमाण-भूत है। मेरे प्रश्न का उत्तर बता दो'।

अप्सराओं द्वारा व्यास को प्रत्युत्तर देना– व्यास का प्रश्नार्थक वचन (प्रश्न) सुनकर अप्सराएँ हँसते हुए बोलीं– 'जिसकी जैसी मनोवृत्ति होती है, वैसा ही हम उसके साथ बर्ताव (व्यवहार) करती हैं। हे मुनि, आपका ज्ञान भेद (भाव) से सम्बद्ध है। (परन्तु) शुक में तो (सबके विषय में) अभेद वृत्ति है। अभेद-वृत्ति के होने पर लज्जा की अप्राप्ति होती है (अर्थात् उससे कोई नहीं लजाता), जब कि भेद भाव (रखनेवाले) के प्रति सलज्जता पैदा होती है'। (यह सुनकर व्यास ने पूछा) 'तुम्हें यह कैसे विदित हुआ कि शुक अभेद-वृत्ति वाला है ? तुमने मुझमें भेद-भाव कहाँ देखा ?' (तो अप्सराएँ बोलीं-) 'जब आपने (हमारी) लज्जा के बारे में प्रश्न किया, तब उसी ने आपका भेद भाव दिखा दिया। आपकी दृष्टि

से व्यक्तियों में स्त्री-पुरुष का अन्तर है। इसलिए आपने प्रश्न किया। (उधर) शुक में सूक्ष्म अभेद भाव स्थित है। अतः वह स्त्री और पुरुष को अलग-अलग व्यक्तियों के रूप में नहीं देखता'।

शुक द्वारा अपने आपको ज्ञाता समझकर अहंकार करना— उन स्त्रियों की ऐसी बात सुनकर शुक को अपने ज्ञान के विषय में यह अहंकार हुआ कि मैं ज्ञाता हूँ और व्यास अज्ञान हैं। यह (अहंकार) उनके हृदय में पूर्णतः प्रविष्ट (होकर व्याप्त) हुआ। स्त्री की बात की बड़ी ख्याति है, उसने (शुक के) ब्रह्मज्ञान का शमन (लोप) किया। उनके चित्त में विकल्प (भ्रम) को बढ़ा दिया। (फल-स्वरूप) उन (के मन) में यह (भाव) स्फुरित हुआ कि मैं ज्ञाता (ज्ञानी) हूँ। जहाँ यह भाव स्फुरित होकर (किसी को) प्रेरित करता है कि मैं ज्ञाता हूँ और वह (कोई दूसरा) अज्ञान है, वहाँ (उस साधक) से ब्रह्मज्ञान भाग जाता है और उसकी देह (हृदय) में ज्ञानाभिमान शेष रहता है। (मीठे जल के) घड़े में हींग के पड़ते ही मीठा जल हींग के उग्र स्वाद वाला बन जाता है। उसी प्रकार ज्ञान के अन्दर भ्रम के प्रविष्ट होते ही ज्ञान सम्बन्धी अहंकार (ब्रह्म) ज्ञान उड़कर लुप्त हो जाता है, दूध में यदि काँजी की बूँद पड़ जाए तो उसके फल-स्वरूप दूध में गुठलियाँ पैदा हो जाती हैं (दूध फट जाता है)। उसी प्रकार जब ज्ञान (के क्षेत्र) में भ्रम बढ़ने लगे, तो ज्ञान सम्बन्धी अहंकार से (ब्रह्म) ज्ञान उड़कर लुप्त हो जाता है। सावधानी से युक्त (अर्थात् सचेत, विवेकवान्) व्यक्ति यदि धतूरे का बीज खा ले, तो वह क्षणार्द्ध में भ्रम-पूर्ण हो जाता है। उसी प्रकार, विकल्प के सम्बन्ध से ज्ञाता को अपने ज्ञान पर अहंकार हो जाता है। शुक के मन में यह भ्रम (मिथ्या धारणा) स्त्रियों के कथन के (फल-स्वरूप) दृढ़ हुआ कि व्यास अज्ञान तथा भेद-दृष्टि से युक्त हैं और मैं ज्ञान युक्त तथा अभेद (अद्वैत) दृष्टि से पुष्ट हूँ। दीप को बुझा देने के पश्चात् काजल की दुर्गन्धि फैल जाती है। उसी प्रकार, ज्ञान के (नष्ट हो) जाते ही अन्त में ज्ञान सम्बन्धी अहंकार के कारण (शुक के मन में) घमण्ड छा गया।

गुरु के उपदेश की महत्ता— आत्मबुद्धि से प्राप्त विवेक (तथा) ज्ञान भ्रम मात्र से क्षीण हो जाता है। वह निश्चय ही श्रीगुरु के अति निपुण उपदेश वचन से यह ज्ञान पूर्ण अर्थात् परमोच्च हो जाता है। जिस ज्ञान की अनुभूति गुरु के उपदेश से प्रेरित ज्ञान में होती है, वह ज्ञान अति अक्षय (अविचल) होता है, उस (स्थान) में विकल्प नहीं बैठ सकता। गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान अति अनपायी अर्थात् अक्षय होता है। बिना गुरु के उपदेश वचन के जो ज्ञान प्राप्त हुआ होता है, उसे क्षय रोगी के रूप में जन्मा समझ लो, वह भ्रम मात्र से प्राण त्याग देता है। वह अति क्षीण, हानिकारी होता है। यह वेद-वचन विख्यात है कि आचार्यवान् पुरुष ही साक्षात् वेद-स्वरूप है। गुरु के उपदेश से ज्ञान विशुद्ध होता है गुरु के उपदेश से प्रज्ञा प्रबुद्ध होती है। बिना गुरु के उपदेश के ज्ञान सब प्रकार से नष्ट होता है और भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती है। शुक की यही अवस्था (दशा) व्यास की समझ में पूर्णतः आ गयी। शुक का ब्रह्मज्ञान विकल्प वचन से क्षीण हो गया। (फल स्वरूप) शुक-हीन हो गए। व्यास की समझ में (शुक में दिखायी देनेवाला) यह लक्षण आ चुका। व्यास को भेद ज्ञान विदित था। परन्तु वे ही उस भेद (दृष्टि) के अन्दर अभेद स्थिति की जानकारी रखनेवाले सर्वज्ञता थे (अनेकों के भीतर जो एक सर्वव्यापी तत्त्व है, उसे वे जानते थे) शुक की समझ में (व्यास में स्थित) यह लक्षण नहीं आया। उसने तो उनके मन में पूर्ण भ्रम दृढ़ता के साथ धारण किया गया। व्यास शुक के प्रति अति आसक्त थे वे (उसके पीछे-पीछे चलते हुए) क्षण-क्षण कह रहे थे (हे शुक) लौट आ। परन्तु (उन्होंने यह जाना कि) वही शुक विकल्प युक्त हुआ है। तो तदनन्तर, व्यास ने उससे 'लौट आ' नहीं कहा। व्यास स्वयं अन्तर्यामी थे। यह जानकर कि

शुक का ज्ञान क्षीण हुआ है, उन्होंने स्वयं कृपा-पूर्वक उससे वह सत्संग (मार्ग) कहा, जिससे (साधक को) सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

श्लोक (पूर्वार्द्ध)– भू–तल पर (उस समय) जनक नामक एक राजा विद्यमान थे।

व्यास द्वारा शुक को राजा जनक के पास जाने का सुझाव देना– व्यास श्री शुक से बोले, तू तो अपनी इच्छा से जा रहा है। (फिर भी) तू राजा जनक के पास अवश्य जा। उन (के उपदेश) से तू निश्चय ही (सन्देह और भ्रम से मुक्त होकर) स्थिर भाव को प्राप्त होगा। पृथ्वीतल पर जनक नामक राजा हैं। वे राज्य (शासन) करते हुए (भौतिक, सांसारिक कार्य करते हुए) भी विदेही (देह तथा सांसारिक भोग-विलास आदि के प्रति पूर्णत: अनासक्त तथा ब्रह्म ज्ञान में मग्न) हैं। तू देख ले (जान ले) कि उन्हें ज्ञान और विज्ञान सभी प्राप्त हैं, वे पूर्ण रूप से उनसे परिपूर्ण हैं तेरे अपने मन में जो सन्देह (विकल्प, भ्रम) है, उसका उनके द्वारा निराकरण कर दिये जाने पर तू उन्हीं (के उपदेश) से सन्देह-रहित हो जाएगा। जनक के पास तेरा शंका समाधान है। उनके पास परमार्थ (प्राप्ति) के लिए परमार्थ ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) है। (व्यास ने सोचा) मैं स्वयं उसे (शुक को) ज्ञान बता दूँ, पर शुक के मन में यह (धारणा) है कि व्यास अज्ञान हैं। इसलिए उन्होंने शुक को (भ्रम का निराकरण कराकर) निश्चित रूप से ज्ञान प्राप्त कराने के उद्देश्य से जनक के पास भेज दिया। शुक की यह मनोवृत्ति (धारणा) हो गयी थी कि व्यास के ज्ञान की अवस्था (स्वरूप) मुझे विदित हो चुकी है; अब जनक की ज्ञान सम्बन्धी बात को निश्चित रूप से देख लूँ। मन में इस प्रकार सोचकर वे (शुक मुनि) मेरु गिरि से उतरकर, तत्क्षण जनक की नगरी (मिथिला) के समीप पहुँच गए। (उन्हें लगा कि) नगर के अन्दर नंगे जाने पर लोगों के लिए मेरा उपहास करने के लिए कारणस्वरूप स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। इसलिए उन्होंने मार्ग में लोक लज्जा-रक्षणार्थ वस्त्र का सचमुच कौपीन (लँगोटी) बनाकर पहन लिया।

श्लोक (उत्तरार्ध)– राजा, देवता और गुरु के पास रिक्त हस्त (खाली हाथ) न जाएँ।

शुक का राजा जनक के प्रासाद में प्रवेश करना– केवल रिक्त हाथ से राजा से न मिले; वैसे ही रिक्त हाथ से मन्दिर में (देवता के दर्शन के लिए) न जाएँ। जो (साक्षात्) कृपा की मूर्ति है, उसी सद्गुरु से खाली हाथ न मिले। बूढ़े-बूढ़े (बड़े बड़े) लोग यही सिखाते हैं (सीख देते हैं) धर्मशास्त्र में भी निश्चय ही वही नीति (बतायी गयी) है। बड़ाई के विचार से राजा जनक जगद्गुरु थे। वे ही राजाओं के लिए राजा थे। उन्हें जो रिक्त हाथों से नमस्कार करे, वह मनुष्य अपने (कर्त्तव्य) धर्म की दृष्टि से मन्द (शिथिल आचरण से युक्त) है। मन में ऐसी निश्चित धारणा लेकर कि जनक द्रव्य की दृष्टि से (धन आदि के प्रति) लोभहीन हैं, इस दृढ विश्वास से उन्होंने जनक से मिलने जाने के समय हाथ में राख ले ली। वस्त्र के नाम पर कमर में लँगोटी थी, जो करधनी में बँधी थी और उनके हाथ में राख थी। (इस प्रकार) वे झट से राजद्वार आ गए। द्वारपाल ने उन्हें देखा (तो उसे लगा) जनेऊ के न होने से यह कोई ब्राह्मण नहीं हो सकता; हाथ में दण्ड भी नहीं है, यह सन्यासी नहीं है। यह सम्पूर्ण रूप से दिगम्बर भी नहीं (कहा जा सकता) है। इस प्रकार वे अति विचित्र वेश के धारी जान पड़ते थे।

जनक द्वारा शुक को संग-त्याग का सन्देश देना– इसलिए द्वारपाल ने श्रीशुक को रोक लिया। तो उन्होंने कहा- (जाकर) राजा से कहो कि मैं शुक (उनसे) मिलने आया हूँ। इसमें शुक की यह धारणा थी कि मैं ब्रह्मसुत (ब्राह्मण-पुत्र) आया हूँ, अत: राजा अगवानी करने के लिए यहाँ सामने

आएँगे और मुझे सम्मानपूर्वक ले जाएँगे। इस प्रकार ज्ञान सम्बन्धी बड़े अहंकार ने श्रीशुक के अन्दर घर बना लिया था। राजा को मन में शुक का हृदयस्थ (अहंकार नामक यह) विकार विदित हुआ। उन्होंने सोचा कि शुक से स्वय मिलने पर वे मन में भ्रान्ति धारण करेंगे। व्यास ने जिस बात के लिए (शुक के भ्रम को दूर कराने की दृष्टि से) कहा है, (यदि) मैं उनसे इस स्थिति में मिलूँ, तो शुक उस भ्रम को पुष्ट करके सुखपूर्वक रहेंगे। अत: शुक से स्वयं (इस समय) न मिलते हुए मैं उनसे (उस अहंकार) संग के त्याग करने की बात कहूँगा, जिससे उनके (हृदयस्थ) भ्रम की गाँठ घुलकर नष्ट हो जाएगी और वे (शुक) आत्मज्ञान की दृष्टि को प्राप्त हो जाएँगे। स्वयं शुक से न मिलने पर भी वे जिससे सन्तोष को प्राप्त हों, ऐसी कृति को सिद्ध (निर्धारित) करके (उचित समझकर) राजा जनक द्वारपाल से बोले- द्वार पर जो महापुरुष खड़े हैं, उनसे यह विचार (बात) कह दो कि संग का त्याग करके सुखी हो जाओ'। उससे (उन्हें लगा कि) वे आत्मानुभव प्राप्त कर लेंगे।

जनक द्वारा दूसरा सन्देश देना– 'संग त्यागे सुख प्राप्ति:' उसके अनुसार द्वारपाल ने श्रीशुक से कहा, 'राजा ने आपसे यह कहा है कि आपको संग का त्याग करने से सुख की प्राप्ति हो जाएगी।' (यह सुनकर) वे अपने मन में क्षुब्ध हो उठे। (वे बोले) देखो, राजा से यह कहो कि मैं क्या राज्य के बोझ को वहन कर रहा हूँ ? क्या मुझे स्त्री की संगति (प्राप्त) है ? मैं तो अपने कर्तव्य कर्म का निर्वाह करते हुए संग-हीन हूँ। (यह कहते हुए) उन्होंने हाथ में रखी हुई राख फेंक दी और (पहनी हुई) लँगोटी काट दी (उतारकर फेंक दी)। (उन्हें लगा) मैं सृष्टि में एक (मात्र) संग हीन व्यक्ति हूँ। मुझे अपनी आँखों से देखने के लिए राजा आ जाएँ।

जनक द्वारा देह ममता के विषय में प्रश्न करना और शुक का चकित हो जाना– द्वारपाल ने शुक द्वारा कही बातें राजा से कहीं, तो राजा ने फिर से उनके प्रति वही (कहने को) बता दिया (कहलवा दिया) 'संग-त्याग से (मनुष्य को) सुख की प्राप्ति हो जाती है'। (उसके अनुसार) द्वारपाल ने (शुक से) राजा का यह कथन कहा– 'संग त्याग से सुख की प्राप्ति होती है'। (यह सुनकर शुक बोले), 'राजा आकर सुख पूर्वक देख लें कि मुझे कौन संग है'। (तदनन्तर शुक सोचने लगे) राजा बार-बार मुझसे संग त्याग के विषय में किस हेतु से (किस अर्थ में) कह रहे हैं ? मुझे कौन संग है ? शुक ने उसे निश्चित रूप से देखना आरम्भ किया। मैं शुक यहाँ कौन हूँ ? मेरे शुकत्व का (शुक-रूप में अस्तित्व का) क्या कारण है ? ब्रह्म तो पूर्णत: नाम और रूप के परे (अनाम और अरूप) होता है। मुझ शुक में यह शुकत्व (शुक होने की स्थिति) इस देह के कारण है। जिस देह के सिर पर (आधार पर) मेरा शुकत्व स्थित है, उस देह का क्या लक्षण है ? देह तो पूर्णत: पंच-भौतिक (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश नामक) पाँच तत्वों से निर्मित होती है। खोजकर देख लूँ कि उनमें से मैं कौन (तत्त्व) हूँ। देह तो (वस्तुत:) पंच भूतों से निर्मित आभास (मात्र) है। अपने स्वरूप को सिद्ध अर्थात् निर्धारित करने के लिए मैं आराम के साथ पंच भूतों के उस (देह स्वरूप) विलास की विवेचना करूँगा। मैं जड़त्व के विचार से पृथ्वी नहीं हूँ (पृथ्वी जड़, अचेतन है; मैं उस दृष्टि से जड़ नहीं हूँ, इसलिए मैं पृथ्वी-तत्त्व नहीं हूँ)। (जल अधोगामी होता है। उसके) अधोगमन के स्वभाव की दृष्टि से (मेरे वैसा न होने के कारण) मैं जल (तत्त्व) नहीं हूँ। (तेज दाहक होता है।) दाहकत्व के विचार से (उसका मुझमें अभाव होने के कारण) मैं तेज (अग्नि) तत्त्व नहीं हूँ (वायु चचल है) उस चंचलत्व के विचार से (मुझमें वैसा चंचलत्व न होने के कारण) मैं वायु नहीं हूँ। जो (आकाश) जहाँ-तहाँ (सर्वत्र) रिक्त दिखायी देता है,

मेरे शुक-रूपधारी होने के कारण मैं यह आकाश तत्त्व नहीं हूँ। (इस विचार से) मैं वे पंच तत्त्व नहीं हूँ। उनसे परे जो कुछ है, मैं स्वयं वह हूँ। देह-ममत्व के विचार से मैं (शुक) 'अहं' नहीं हूँ (मैं, 'अहं' अर्थात् यह अपनी देह नहीं हूँ)। माया रूप के कारण विचार से (मेरे इस मायाजन्य रूप के कारण) मैं 'सोऽहम्' कहने योग्य अर्थात् ब्रह्म नहीं हूँ। जो 'अहं' तथा 'सोऽहम्' (कहने से सूचित होनेवाले 'मैं' और 'वह' दो अलग-अलग रूपों से परे) है। मैं निश्चित रूप से उस अपने ब्रह्म रूप का धारी हूँ। इस प्रकार अपने सच्चे रूप की विवेचना करने पर शुक की प्रवृत्ति (स्वरूप आत्म रूप) ब्रह्म रूप को प्राप्त हुई। उससे उनकी अवस्था स्थिर हो गई और इन्द्रियों की प्रवृत्ति निश्चेष्ट हो गई (इन्द्रियाँ अचंचल, स्थिर हो गई)। शुक, इस प्रकार राजद्वार पर सात रात निश्चेष्ट खड़े रहे। मच्छरों और खटमलों के द्वारा काटे जाते हुए भी वे सात रात अचंचल रहे। शुक को निर्विकल्प समाधि लगी। तो द्वारपाल ने राजा से पहले कहा- शुक सचमुच पूर्ण (ब्रह्म स्वरूप) हो गए हैं। उनकी अहंबुद्धि नष्ट हुई है'।

शुक की अविचल स्थिति; उन्हें राजा जनक द्वारा अन्तःपुर में ले जाना– द्वारपाल द्वारा ऐसा कहने पर राजा जनक अत्यधिक आनन्दित हुए। वे तत्काल शुक के सामने जाकर उन्हें झट से अपने अन्तःपुर में ले आये। उन्हें उठाकर राजा ने रनिवास में रखा। (तदनन्तर यथासमय) राजा ने स्वयं रानियों से पूछा कि श्रीशुक की अवस्था कैसी है। नाना (प्रकार के) भोग-विलास के बीच (रनिवास में रहते हुए भी) शुक में द्वन्द्व रहित अवस्था (बनी रही) थी। (यह जानकर) राजा को यह निश्चित रूप से विश्वास हुआ कि उन (शुक) में विदेहत्व (शरीर के रहने पर भी विकारों से विरक्ति) जमकर बैठा है। राजा को यह जानकर सन्तोष हुआ कि योगिराज शुक में ब्रह्मत्व स्थिरता से जमकर बैठा है, तो उन्होंने शुक को आदरपूर्वक सिंहासन पर बैठाकर उन्हें ब्रह्म समझकर उनका पूजन किया। फिर उन्होंने श्रीशुक से कहा 'मैं जनक आपसे मिलने आया हूँ'। इस उक्ति से शुक आनन्दित हुए और उन्होंने पूर्ण श्रद्धा भाव से राजा को नमस्कार किया। श्रीजनक राजा के चरणों को नमस्कार करके शुक पूर्ण रूप से स्तब्ध हो गए। उनके उस लक्षण को देखकर, राजा ने यह माना कि उनका वह ज्ञान अपूर्ण है। जो समस्त इन्द्रियों में मग्न हो, उसका ज्ञान नित्य मुक्त नहीं होता। वह ज्ञान शंका से युक्त होता है। अतः वहाँ पूर्णत्व नहीं हो सकता। पेड़ में आम्र फलों के पक्वावस्था को प्राप्त होने पर भी, पाल में उनके रस-भीने (परिपक्व) हो जाने तक उनमें मधुरता नहीं पैदा होती। सन्देह रहित ज्ञान का योग न होने पर (केवल) स्तब्धता (स्थिरता, वस्तुतः) बहुत बड़ी अपरिपक्वता (का रूप) होती है। दही को मथकर मक्खन निकाल लें और उसे वैसे ही रखने पर वह सड़ियल स्थिति में (सड़ान्ध तथा) दुर्गंध धारण करता है। उसी को आग की संगति में रखते हुए तप्त करने पर (घी के रूप में) अपने सुगन्धित रूप में वह सुस्थिरता को प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार, किसी के सम्पूर्ण रूप से अति स्तब्ध रह जाने को ही मुख्य रूप से उनकी अपरिपक्वता (का लक्षण) समझिए। समस्त इन्द्रियों के विषय में चित्त के सन्देह-हीनता को प्राप्त होने को ही अति शुद्ध ज्ञान और विज्ञान (माना जाता) है। यह सोचकर कि शुक की स्तब्धता नष्ट हो जाए और उन्हें शुद्ध ज्ञान प्राप्त हो जाए, राजा जनक अपने लिए कुछ निर्णय करके तत्काल बोले। राजा बोले- 'हे शुक, आप स्तब्ध अवस्था में हैं। हे शुक, आपकी वृत्ति (स्वाभाविक मनोधर्म) कहाँ है ?' (इसपर) वे बोले, 'मेरी मनोदशा आत्मानुभव में निश्चय ही सुख सहित (विराजमान) है'। जिनकी ऐसी आत्मानुभूति की अवस्था हो, वह जब अपनी स्थिति को आँखों से देखने लगता हो, तब दृश्य तथा (स्वयं) दर्शक ज्ञान-स्वरूप हो जाते हैं। वह आत्मज्ञान का इस प्रकार अनुभव देखकर पाता है। शुक ने

जब आत्मस्थिति को देखा, तब वे विस्मय-चकित हो गए। उन्हें अनुभव हो गया कि अपनी कोई देह नहीं है। वे पूर्णब्रह्मत्व (को प्राप्त होकर उस) के अधीन स्थित हैं। वे अपनी आँखों से जो-जो देखने जाते (लगते) वह-वह आत्मत्व भाव (ब्रह्मत्व) से व्याप्त हो उठता। (अहो) गुरु के (उपदेश) वचन की यह परीक्षा है– उसके फल-स्वरूप दृश्य (वस्तु) के अन्दर परब्रह्म का निवास (अस्तित्व) अनुभूत होने लगता है (अथवा नहीं)। पूर्णब्रह्मत्व की अनुभूति से (साधक को) जान पड़ता है कि स्त्रियों और पुरुषों के रूप में (प्रकट रूप में) अलग-अलग आकार-रूप-धारी, नाना जातियों के पशु-पक्षी– समस्त जगत् आत्म (ब्रह्म) रूप में सुख-पूर्वक रह रहा है।

सद्गुरु-महिमा का शुक को प्राप्त अनुभव– (साधक शिष्य) जो-जो देखता है, वह उसे आत्म-स्थिति स्वरूप (अपने ही समान ब्रह्ममय) दिखायी देने लगता है। तब (वैसे-वैसे) उसकी समस्त इन्द्रियों को ब्रह्ममय स्थिति प्राप्त हो जाती है। गुरु के (ज्ञानोपदेश) वचन की ऐसी परम ख्याति है भाग्यवान् (साधक, शिष्य ही गुरु कृपा से) ऐसी स्थिति को आनन्द-पूर्वक प्राप्त हो जाते हैं। सद्गुरु की महिमा अथाह होती है। (सद्गुरु के ज्ञानोपदेश से) शिष्य की इन्द्रियों और कर्मों को ब्रह्मत्व प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार देह-धर्म के ज्ञानमय हो जाने से (उस साधक की) परब्रह्म से आसानी से भेंट हो जाती है (उस स्थिति में योग) निद्रा (समाधिस्वरूप निद्रा) के लिए शय्या-गृह ऐसा होता है कि न उसे नीचे भूमि (आधारभूत) होती है, न ऊपर आकाश होता है। वहाँ उस स्थिति में चेतन और अचेतन के अपने-अपने स्वभाव के अनुसार उसपर मार्दव के साथ पौढ़ना पड़ता है। शुक मुनि (समस्त अहंकार आदि) समस्त शेष विकारों को भुला कर शान्त तृप्त हुए। उन्होंने (ब्रह्म-स्थिति की) स्मृति का ठौर-ठिकाना पूछा (जानना चाहा), तो वे स्वाभाविक सुख (आत्मिक सुख) से सुखमय हो गए। फलतः उनमें अहंदेह-भाव अकाल को (विनाश को) प्राप्त हुआ उनकी जागृति-अवस्था ब्रह्मभाव से भरी पूरी हो गई; स्वप्न-स्थिति चैतन्य घनरूप हो गई; सुषुप्ति अवस्था (ब्रह्म) सुख से सम्पन्न हो गई। यह सब गुरु की (उपदेश-स्वरूप) आज्ञा का प्रताप (प्रभाव) था। गुरु की आज्ञा से यह चमत्कार हो गया कि उसके अक्षर कानों में पड़ते ही (शुक के लिए) समस्त संसार सुख-रूप हो गया, चराचर (जगत्) ब्रह्ममय हो गया। गुरु के (उपदेश) वचन के गौरव का शुक को स्वाभाविक रूप से अनुभव हो गया. उससे, देखिए, उन्होंने बहुत आनन्द से और श्रद्धा के साथ राजा को साष्टांग नमस्कार किया। तो राजा ने उनका आलिंगन किया। उन दोनों का द्वैतभाव नष्ट हो गया। चैतन्य रूपी घन (मानों) उन दोनों के रूप में साँचे में ढल गया (फल-स्वरूप) शुक मुनि पूर्णत्व के विचार से पूर्णतः परिपूर्ण (ज्ञानस्वरूप ब्रह्म स्वरूप) हो गए। उस पूर्णत्व से तुष्टि को प्राप्त हो जाने पर स्वाभाविक रीति से उनका आलिंगन खुल गया (वे दोनों अलग हो गए)। फिर भी अखण्डित रूप से एकात्मता पूर्णतः प्राप्त होने के कारण उन दोनों का एक-दूसरे से अलग (भिन्न) होना नहीं दिखायी दे रहा था (ब्रह्म-ज्ञान के प्रभाव से एक-दूसरे से दूर होने पर भी उनमें अद्वैतभाव बना रहा) (अनन्तर) शुक ने जनक से कहा- 'स्वाभाविक (ज्ञान स्वरूप यथार्थ) स्थिति के विदित न होने के कारण मैंने चित्त में भ्रम को धारण किया। (वस्तुतः) श्रीव्यास पूजनीय (देव-) मूर्ति हैं। (परन्तु) अप्सराओं की यह बात सुनकर कि श्रीव्यास को स्त्री-पुरुष के भेद भाव से दोनों भिन्न (दिखायी देते) हैं, मेरा मन भ्रम से व्याप्त हुआ और मैंने व्यास को निश्चित रूप से अज्ञान माना। अहो देखिए, आपके (उपदेश) वचन ने ऐसे भ्रम को मूल-सहित जला दिया। ज्ञान का यह अनुभव धन्य है। आपके (उपदेश) कथन से मैं सन्देह-हीन हो गया हूँ। द्वारपाल

द्वारा दिलाये गए सन्देह से माया, अविद्या, भ्रम का नाश हुआ। आपके (ज्ञान) वैभव का यह बड़प्पन बड़े-बड़े देवों के लिए भी सर्वत्र (नित्य) वन्दनीय है। आपके (उपदेश) वचन के बाण बहुत पैने हैं। उन्होंने बिना आघात किये प्राणों (के अहंकार) को छेद डाला। जीव के अहंभाव को पूर्णत: मारकर मुझे पूर्णता के साथ पूर्ण (ब्रह्म-स्वरूप) बना दिया'। शुक की यह उक्ति सुनकर राजा जनक सुख-सम्पन्न हो गए। यहाँ से (अब से) शुक भी (आत्म) सुख से परिपूर्ण हो गए। तृप्त होकर जनक स्वयं क्या बोले (सुनिए)।

जनक द्वारा शुक को ज्ञानोपदेश देना– जनक बोले- 'धन्य हो, धन्य हो। आपकी जो तुष्टि हुई, वही गुह्य के ज्ञान से हुई। उसका नाम ब्रह्म-तुष्टि है। (वस्तुत:) आप पहले ही ज्ञान-निधि-स्वरूप थे। आपने ब्रह्म का ज्ञान-ग्रहण अपनी आत्म-बुद्धि से प्राप्त किया। सचमुच गुरुवचन ही निजात्म सिद्धि को निश्चित रूप से करानेवाला होता है। (गुरु के उपदेश से आत्म ज्ञान की उपलब्धि हो जाती है)। आप जिस समाधि-अवस्था को प्राप्त हुए और उसके फल-स्वरूप इसके पश्चात् आत्म-ज्ञान की उपलब्धि की अहो, यह सचमुच ऐसा नहीं है। उसे ही (वस्तुत:) निजात्म बुद्धि नाम प्राप्त है। आपको जिस आत्म-ज्ञान की प्राप्ति हुई, (वस्तुत:) वही भगवान् नारायण के द्वारा कथित ज्ञान है। वही ज्ञान भगवान् श्रीकृष्ण स्वामी में है। ज्ञान-सम्बन्धी वही स्थिति नारद की भी रही है। याज्ञवल्क्य ऋषि को वही स्थिति प्राप्त हुई है। वही स्थिति व्यास की है और यह निश्चय ही निश्चित है कि मेरी भी वही स्थिति है। (सम्पूर्ण वस्तु और उसके अंश को अलग-अलग मानने की दृष्टि से) तेल, बाती और दीप (एक-दूसरे से) भिन्न-भिन्न (पदार्थ) होते हैं; फिर भी उन तीनों के समन्वय से उत्पन्न होनेवाला प्रकाश एकत्व के विचार से उनसे अभिन्न होता है। उसी प्रकार ज्ञाता के कर्म का लक्षण (पहचान) विचित्र (भिन्न) होने पर भी ज्ञेय वस्तु और ज्ञान एक ही होते हैं। नारद मुनि को नित्य लंगोटी (जैसा तुच्छ वस्त्र) ही धारण करनी पड़ती है, जब कि भगवान् कृष्ण सृष्टि में वैभव से सम्पन्न हैं। फिर भी दोनों के ज्ञान की परीक्षा करने पर विदित होता है, वह एकत्व के विचार से पुष्टता में समता रखता है। जड़भरत को (लोग) जड़ (बुद्धिहीन) कहते हैं; याज्ञवल्क्य ऋषि ज्ञान पर आरूढ़ हैं। फिर भी उन दोनों का ज्ञान एकत्व के विचार से मधुर ही (माना जाता) है। उनके ज्ञान में (न्यूनाधिक के विचार से) तुलना नहीं करनी चाहिए (दोनों को सम-समान माना जाता है)। देह को देखने पर उसमें एक करोड़ दोष पाये जाते हैं; परन्तु आत्मत्व के विचार से (समस्त) सृष्टि अदोष दिखायी देती है। इसलिए देह पर दृष्टि न लगाएँ। देहात्मता, अर्थात् देह को आत्मा मानने की प्रवृत्ति से कोटि-कोटि दोष दिखायी देने लगते हैं'। जनक द्वारा कही हुई बात सुनकर शुक के मन में सुख उत्पन्न हुआ; उनका संशय (भ्रम) तत्काल नष्ट हो गया और सदा के लिए उनमें आत्मानन्द की वृद्धि हो गई। इस प्रकार राजा जनक ने श्रीशुक मुनि को विशुद्ध ज्ञान समझाया (उपदेश द्वारा प्रदान किया)। उससे राजा जनक को भी विश्रान्ति (शान्ति) प्राप्त हुई। उस सुख को वाणी द्वारा कहा नहीं जा सकता। शुक मुनि के मन में सम्पूर्ण सुख उत्पन्न हुआ। उसके संशय-भ्रम का दहन हुआ। उनकी वाक् (वाणी, जिह्वा) पर महामौन आरूढ़ हुआ। उनके भय और शोक (जैसे विकार) पूर्णत: अस्त हो गए, उनके हृदय के दु:ख और शारीरिक व्यथा का शमन हुआ। सुख के ज्ञान से इन्द्रियाँ शान्त हो गईं। उन्हें सचमुच विश्राम प्राप्त हुआ। सुख के ज्ञान (की उपलब्धि) से उन्हें (सच्चा) सुख हुआ; वे सन्तुष्ट हो गए।

शुक का मेरु पर्वत के प्रति गमन– (तत्पश्चात्) शुक मुनि राजा जनक से बोले- 'मुझे परम विश्राम प्राप्त हुआ है'। उस विश्राम का एकान्त में उपभोग करने के उद्देश्य से वे मेरु पर्वत की ओर गये। निर्विकल्प (भ्रम-रहित) तथा अहंकार रहित होकर श्रीशुक मेरु पर्वत के शिखर पर आत्मानन्द-पूर्वक योग-मुद्रा में आसन लगाये हुए समाधि अवस्था में बैठ गए। जिस प्रकार वायु-हीन अवस्था में दीप तेल के न होने पर भी प्रकाश-स्वरूप बना रहता है, उस प्रकार, शुक की समाधि का स्वरूप रहा ऐसी समाधि को 'निर्विकल्प समाधि' नाम प्राप्त है। (वैसे तो) शुक ने कहा कि मैं मेरु के शिखर पर 'क्षण भर' ही सुख के साथ बैठा रहा। फिर भी बाहर के जगत् के संख्या-शास्त्र के अनुसार उन्हें समाधि की अवस्था में बैठे हुए दस सहस्र वर्ष हो गए। इस प्रकार, ब्रह्म-स्वरूप में उदय और अस्त बिल्कुल नहीं होता देखिए, वहाँ काल की भी रोक टोक होती है। वह निर्धारित स्थान से विचलित नहीं होता। हे कृपा मूर्ति श्रीराम, सुनो। इस प्रकार, शुक को ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति हुई। (उनके भटक जाने पर) राजा जनक उन्हें यथायोग्य स्थिति में ले आये; तब आत्मानुभव होने पर वे समाधिस्थ हो गए। जान लो, समाधि और उत्थान (जागृति)– दोनों अवस्थाओं को विदा करके, श्रीशुक ज्ञान को प्राप्त होकर पूर्ण अवस्था के विचार से परिपूर्ण (ब्रह्म-स्वरूप) हो गए। कवि एकनाथ अपने गुरु जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित है। (उन्होंने कहा कि) शुक मुनि सुख के साथ ब्रह्म-ज्ञान से सम्पन्न हो गए। आगे चलकर, श्रीगुरु वसिष्ठ श्रीराम के पूर्णत्व का निरूपण करेंगे।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ-कृत श्रीभावार्थ रामायण नामक टीका के बालकाण्ड के अन्तर्गत 'शुक-जनक-संवाद' नामक यह दशम अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय ११

[श्रीराम को गुरु द्वारा उपदेश देना]

पृष्ठभूमि– श्लोक– विश्वामित्र ने कहा- व्यासजी को उन पुत्र शुक की शुद्ध बुद्धि पर स्थित मैल को दूर करना था। हे राम ! (तुम्हारी भी वैसी ही स्थिति है; अतः) जो अपने लिए उपयुक्त हो तुम उसी का अवलम्बन कर लो।

मैंने श्रीव्यास मुनि के विरक्त पुत्र शुक का चरित्र कहा; (और उसमें यह भी बताया कि) राजा जनक ने (किस प्रकार) द्वारपाल द्वारा उसके भ्रम मात्र को दूर करके उनको अहंकार-रहित बना दिया। जान लीजिए, ज्ञानी जनक ने कृपा से प्रेरित अपने (उपदेश) वचन से द्वारपाल द्वारा श्रीशुक के भ्रम का दहन कराकर उन्हें पूर्ण समाधान को प्राप्त करा दिया। शुक में जैसी विरक्ति थी, वैसी ही विरक्ति श्रीराम को भी अनुभव हो रही थी। उन्हें राज्य वैभव अच्छा नहीं लगता था। वे (भोग्य) विषयों के प्रति नित्य विरक्त बने रहे थे। (यह देखकर विश्वामित्र ऋषि बोले–) हे श्रीराम, तुम्हारी (मुख) मुद्रा गम्भीर हो गई है (अथवा तुम्हारा चिन्तन गम्भीर, गहन है)। तुम्हारा अपना (जीवन जगत् सम्बन्धी) विचार (मान्यता) शुक का-सा हो गया है। अतः तुम भी सचमुच (किसी को) गुरु मान लेना। (सच्चे) विश्राम (मनःशान्ति) का घर विवेक में होता है।

श्लोक– ज्ञानी जनों द्वारा कहा जाता है कि वासना के क्षय का नाम 'मोक्ष' है तथा (भोग्य) पदार्थ सम्बन्धी वासना से उत्पन्न आसक्ति 'बन्धन' कहलाती है।

मुख्यतः समस्त (सांसारिक सुख भोग सम्बन्धी) वासना के शमन का नाम 'मुक्ति' है और निश्चय ही (भोग्य) विषयों की वासना की उत्पत्ति का नाम 'बद्धावस्था' है, देह-स्वरूप अस्तित्व में होने पर भी जिसको विदेहावस्था प्राप्त हुई हो, जिसमें (भोग्य) विषयों के प्रति आसक्ति शेष न रही हो, उस (व्यक्ति) की उस स्थिति को 'जीवन-मुक्ति' कहते हैं। हे रघुनाथ, इसे निश्चित रूप से जान लो।

विश्वामित्र द्वारा श्रीराम को स्वकुल गुरु वसिष्ठ से ही ज्ञानोपदेश ग्रहण करने का सुझाव देना– इसके अतिरिक्त (उन्हें दिखायी दिया कि) श्रीराम की यह मनोधारणा हो गयी है कि विश्वामित्र (ही) मुझे शुक को जनक द्वारा बताये हुए ज्ञान सा सम्पूर्ण ज्ञान बताएँ, उनके उस भाव को जानकर विश्वामित्र ऋषि बोले-

श्लोक– समस्त रघुओं (रघु वंशोत्पन्न पुरुषों) के नित्य कुल-गुरु प्रभु वसिष्ठ हैं। वे सर्वज्ञ हैं, सर्वसाक्षी हैं और जिनके दर्शन (प्रातः, मध्याह्न, तथा सायं) तीनों कालों में (अर्थात् नित्य) पवित्र (माने जाते) हैं

'हे राम, (तुम्हारी शंकाओं का समाधान करके) तुम्हें तृप्ति प्रदान करने और ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश देने के लिए ज्ञानी तथा छहों प्रकार के ऐश्वर्य से नित्य सम्पन्न कुल गुरु वसिष्ठ (समर्थ) हैं श्रीवसिष्ठ भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों के ज्ञाता हैं, सर्वज्ञ हैं। वे अन्तर्यामी हैं, ब्रह्म स्वरूप के पूर्णतः साक्षी (साक्षात्कार किये हुए) हैं; गुरुता अर्थात् गुरु-पद के लिए आवश्यक योग्यता में अथाह हैं। सूर्यवंश में जो-जो उत्पन्न होते हैं, उन्हें वसिष्ठ ही ज्ञान बताते अर्थात् ज्ञानोपदेश देते हैं। श्रीवसिष्ठ के ज्ञान की महिमा का (महिमामय ज्ञान का) स्वयं भगवान् विष्णु तथा शिवजी वन्दन करते हैं। हे रघुनाथ, तुम्हारे ऐसे कुलगुरु के रहते हुए मुझे तुम्हें उपदेश देना नहीं चाहिए। इसलिए तुम ज्ञान की प्राप्ति के हेतु अनन्य भाव से श्रीवसिष्ठ की शरण में जाओ। जो गुरु दूसरे के अति वरिष्ठ शिष्य को विचलित करता है (बहकाकर अपने वश में कर लेता है), वह गुरु भ्रष्ट होता है। उस (शिष्य) को जो उपदेश देता है वह (गुरु) ज्ञान नष्ट, अर्थात् ज्ञान के विनाश को प्राप्त हो जाता है वह ऐसे प्रलोभन से बड़ा पापी हो जाता है, कुल में ज्ञानी गुरु के रहने पर भी जो मनुष्य उसका त्याग करता है, वह मनुष्य पापी होता है। ज्ञानोपदेश (के सम्बन्ध) में यह निर्धारित मान्यता है कि जो गुरु दूसरे के शिष्य को उपदेश देता है, उसका वह कार्य पाप का आचरण (माना जाता) है। सूर्यवंश में (जनमे व्यक्तियों) को ज्ञान प्रदान करनेवाले गुरु हैं वसिष्ठ। उनके शिष्य को जो उपदेश देता है, उसने गुरु रूप से उस शिष्य को उपदेश देकर पाप की राशियों को जोड़ लिया (समझिए)। इसलिए, हे रघुपति, ब्रह्म (ज्ञान) की प्राप्ति कर लेने के लिए तुम गुरु वसिष्ठ से प्रार्थना करो। उससे तुम सुख-पूर्वक विश्राम (मनःशान्ति) को प्राप्त कर पाओगे। श्रीराम से इस प्रकार कहकर विश्वामित्र वसिष्ठ से बोले- 'रघुनाथ राम को आपसे उपदेश ग्रहण करने का पूर्ण अधिकार है। फिर भी आप उन्हें उपदेश देने में उदासीन क्यों हैं ? हे वसिष्ठ, आपको ऐसी किसी बात का स्मरण है ? पूर्वकाल में हम आप में वैर था। परन्तु उस वैर का शमन करने के हेतु ब्रह्मा ने (हम दोनों को) अपने गुह्य ज्ञान का उपदेश दिया। उस गुह्य ज्ञान की प्राप्ति की स्थिति में 'मैं'-'मेरे' 'तू'-'तेरे' भाव का अस्त हो जाता है। (फल स्वरूप) हमारा वैर तत्काल शमन को प्राप्त हुआ और हम दोनों के आत्मानन्द की पुष्टि (वृद्धि) हो गयी। जिस (ज्ञान के फल स्वरूप उत्पन्न)

आत्मानन्द की अवस्था में हमें और आपको (एक-दूसरे से) बहुत प्रेम हो गया और जिसके कारण कल्पान्त काल तक में हमारे मन में भ्रम उत्पन्न नहीं हो सकता, उसी का श्रीराम को उपदेश दीजिए। (यदि आप कहें कि) मैं उस ज्ञान को भूल गया हूँ, तो (मेरे मन में) स्मरण स्वयं विस्मरण को ग्रस लेता है; विस्मरण को प्राप्त न होते हुए उस ज्ञान का स्मरण दिन-रात बना रहता है, इसके पास विस्मरण नहीं होता।

गुरु शिष्य का परस्पर सम्बन्ध– वैराग्य-युक्त शिष्य के (मन-रूपी) उत्तम क्षेत्र में (गुरु के दिये ज्ञानोपदेश के फल स्वरूप) ज्ञान-गाम्भीर्य (गहन ज्ञान) प्रतिष्ठित हो जाता है। यही गुरु की सच्ची महिमा है। काम-क्रोध आदि मनोविकार स्वरूप (अग्नि की) बड़ी ज्वाला में जिसके शिष्य का ज्ञान झुलस नहीं जाता, (समझिए कि) उसे उस गुरु ने सच्चाई और उज्ज्वलता (पवित्रता) से युक्त गुरु-पद को सम्हालते हुए वह अदग्ध (विशुद्ध) ज्ञान प्रदान किया। जो ज्ञान शिष्य के समस्त विकल्पों (भ्रान्ति युक्त तर्कों) का खण्डन करके उसे निर्विकल्प (सन्देह या भ्रम-रहित) कर देता है, उसी को अखण्डित (शुद्ध, अकाट्य सम्पूर्ण) ज्ञान कहते हैं। इसका नाम शुद्ध शास्त्रार्थ-जनित ज्ञान अथवा (अध्यात्म) शास्त्र का अर्थ-स्वरूप शुद्ध ज्ञान है। जो शुद्ध शास्त्र के अर्थ का प्रतिपादन करते हैं, वे ही सद्गुरु (शिष्यों को सच्चा) उपदेश देते हैं (देने के अधिकारी) हैं। ऐसे ज्ञान का अनुभव जिस शिष्य को हो जाता है, उसके गुरु की ख्याति श्रीविष्णु तथा शिवजी के लिए भी वन्दनीय होती है (परन्तु) ऐसे गुरु के उन शिष्यों को यदि उस (ब्रह्म) ज्ञान की अनुभूति न हो, जिन्हें केवल ज्ञान शब्द ज्ञान से तेजस्वी (प्रबल, अत्यधिक प्रभावकारी) युक्ति विदित हुई हो, और जिन्हें मन में भोग्य विषय के प्रति आसक्ति होती हो, उन्हें निश्चित रूप से अशिष्य (कुशिष्य, अनधिकारी शिष्य) समझिए।

श्लोक– ज्ञान सम्बन्धी जो अल्प सा उपदेश भी किसी अयोग्य तथा अविरक्त शिष्य को दिया जाता हो, वह कुत्ते के चमड़े के पात्र में डाले हुए गाय के दूध की भाँति अपवित्रता को प्राप्त हो जाता है।

अशिष्य के लक्षण– जिसके चित्त में ऐसा विवेक नहीं होता कि मनुष्य देह की प्राप्ति हो जाने पर संसार (सागर) को तैरकर जाने के लिए गुरु भक्ति आवश्यक (साधन) है, उसे निश्चित रूप से अनधिकारी शिष्य समझिए। जिसके चित्त में भोग्य विषयों के प्रति अभिलाषा होती है, जिसे घर गृहस्थी के प्रति आसक्ति होती है, जिसे लोकेषण अर्थात् लोगों में प्रिय हो जाने अथवा स्वर्गलोक आदि के विषय में बड़ी प्रीति (चाव, आसक्ति) होती है, उसे निश्चय ही अविरक्त (अर्थात् उसके फल-स्वरूप अनधिकारी) शिष्य समझिए।

दूसरे के शिष्य को उपदेश देना निन्द्य है– ऐसे (शिष्य) को जो (गुरु) उपदेश देने के रीति-धर्म की दृष्टि से वैसे ही अपवित्र (काम करते) हैं, जैसे वे कुत्ते की खाल के बने पात्र में गाय का धारोष्ण दूध भर देते हों। दूसरे के शिष्य को उपदेश देना गुरु पद की दृष्टि से बड़ा दोष है। उसी प्रकार, अनधिकारी शिष्य को (ब्रह्म) ज्ञान बता देना सब अर्थों में पूर्णतः निन्द्य है। सद्गुण देखकर ही सच्छिष्य को गुह्य ज्ञान बता दें। ऐसे गुरु का गुरुत्व धन्य है; वह (गुरु) परमार्थ (के क्षेत्र) में परम पावन (माना जाता) है।

वसिष्ठ ऋषि की योग्यता– विश्वामित्र के इस अति गहन कथन को सुनकर (वहाँ उपस्थित) सिद्धों, साधकों और ऋषिजनों ने 'धन्य, धन्य' कहते हुए उनकी प्रशंसा की। व्यास, नारद, याज्ञवल्क्य,

शुक, शौनक जैसे (समस्त) प्रमुख ऋषियों ने अपने मुख से विश्वामित्र की पुनःपुनः सराहना की। (तदन्तर) जो ब्रह्म ज्ञान के महामेरु पर्वत थे, जो आत्मानन्द से प्राप्त सुख के महासागर थे, जिनकी उक्ति (श्रोताओं के) चित्त को चमत्कारपूर्ण प्रतीत होती थी, वे ऋषीश्वर वसिष्ठ बोले। वसिष्ठ को साक्षात् ब्रह्मा से ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति हुई थी; फिर भी उनकी ज्ञान रूपी शक्ति ब्रह्मा की ज्ञान शक्ति के बराबर थी। उनके (उपदेश) वचन मात्र से सच्छिष्य आत्मानन्दपूर्वक ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त हो जाते थे वसिष्ठ को ज्ञान, वैराग्य, औदार्य, ख्याति, यश और श्री नामक छहों ऐश्वर्य गुण (अर्थात् गुणऐश्वर्य) प्राप्त थे। इसलिए उन्हें भगवान् (भग– ऐश्वर्य; उससे युक्त) कहते थे। अपने सम्मान की दृष्टि से जो सूर्य-वंश में गुरु के नाते मुकुट-मणि (माने जाते) थे, जो श्रेष्ठ आसन (पद) पर विराजमान रहते थे, उन वसिष्ठ ऋषि का (सूर्यवंशोत्पन्न) राजाओं ने प्रतिदिन पूजन किया था। वसिष्ठ द्वारा उपदेश दिये जाने पर शिष्य तत्काल निरीह हो जाता था। उस निरीहता का आश्रय जिन्होंने आराम के साथ ग्रहण किया है, वे श्रीराम (शिष्यों में योग्यता की दृष्टि से) अधिकारी शिरोरत्न हैं। फिर भी उपदेश देने के क्षेत्र में यह मुख्य लक्षण (संकेत) है कि (शिष्य द्वारा) बिना पृच्छा किये (प्रार्थना करके याचना किये) उसे ब्रह्म-ज्ञान न कहें

शिष्य द्वारा प्रार्थित न होने पर उसे उपदेश देना व्यर्थ है– वसिष्ठ ने सूर्य को दण्ड-शक्ति से जीत लिया था– उनकी ऐसी बड़ी ख्याति थी। वे उपदेश देने की रीति नीति के विषय में विश्वामित्र से बोले। शिष्य द्वारा सद्गुरु से प्रार्थना न करने पर, आदर-पूर्वक न पूछने, अर्थात् जिज्ञासा का समाधान कराने की इच्छा को व्यक्त न करने पर, उससे (ब्रह्म) ज्ञान (की बातें) बिलकुल न कहें। जो गुरु कहे, वह सचमुच मूर्ख होगा। जब गुरु शिष्य से यह कहता है कि तुम मुझसे उपदेश ग्रहण करो, तब (समझिए कि) गुरुत्व लोभ को प्राप्त हो गया; गुरुत्व के लोभ में उसमें लालच की वृद्धि हो गई। इसलिए, समझिए कि शिष्य द्वारा न पूछे जाने पर स्वयं उससे ब्रह्म ज्ञान न कहें। यद्यपि श्रीराम (ज्ञान प्राप्त करने के) अधिकारी रत्न हैं, तो भी बिना उनके द्वारा पूछे, उनसे ब्रह्म ज्ञान न कहें। यदि शिष्य उपदेश के विषय में विरक्त (अनुत्सुक) हो और गुरु उसको उपदेश देने के लिए यत्नशील (हठी) हो गया हो, तो (समझिए कि) अविवेक से तथा शिष्य बना लेने के विचार से लोलुप बनने से गुरुत्व पर आघात हुआ.

वसिष्ठ द्वारा विश्वामित्र की प्रशंसा करना– 'हे विश्वामित्र, मुझसे आपकी आज्ञा का अवमान नहीं किया जा पाता। इसलिए मैं (श्रीराम से) ब्रह्म ज्ञान कहूँगा। साधु पुरुष की आज्ञा मेरे लिए वन्द्य है। हे विश्वामित्र, आप साधु पुरुष रूपी रत्न हैं, आप महिमाशाली पुरुष देवों के लिए भी वन्द्य हैं। आप क्षत्रिय होने पर भी ब्राह्मण हैं। आपने स्वयं अपने ज्ञान के बल पर सम्पूर्ण जगत् को वश में रहने योग्य कर लिया है। ऐसे आप सत्पुरुष की आज्ञा का अवमान विष्णु और शिवजी द्वारा भी नहीं किया जा सकता। इसलिए मैं रघुनन्दन श्रीराम को गुह्य ज्ञान बता दूँगा। हमारे आपके वैर का शमन हो गया है. पद्मासनी ब्रह्मा ने जिसका उपदेश दिया, सांसारिक प्रवृत्ति का निवारण करनेवाले उस ज्ञान का स्मरण मुझे अनुराग के साथ अनवरत रूप से है। उस ज्ञान के आधार पर मैं रघुनन्दन को ऐसा (ज्ञान) उपदेश दूँगा, जिसे समझिए कि कोई भी विघ्न कल्पान्त काल तक बाधा नहीं पहुँचा सकता। उसमें विघ्न ही विघ्न रहित (विघ्न उत्पन्न करने की शक्ति से रहित) हो जाएगा। संसार (जगत्, सृष्टि) चैतन्य का मेघ बन जाएगा शिष्य पूर्ण ब्रह्म स्वरूप बन जाएगा और जो अज्ञान है, वह ज्ञान (मूर्ति) बनकर खड़ा (प्रस्तुत) हो जाएगा। उस गुह्य ज्ञान की ऐसी स्थिति है। मैं श्रीराम को उसका उपदेश दूँगा'। वसिष्ठ की यह उक्ति सुनकर श्रीराम निश्चय ही सुख को प्राप्त हो गए. अनन्तर श्रीराम ने स्वयं वसिष्ठ को सद्भाव

(श्रद्धा) पूर्वक साष्टांग नमस्कार किया (और कहा-) 'मैं अनन्य भाव से आपकी शरण में आया हूँ। हे गुरुवर, मैं आपका पूर्ण (अनन्य भाव से) शिष्य (होना चाहता) हूँ'। गद्गद होकर श्रीराम ने (गुरु की) कृपा चाहते हुए दीनता-युक्त मुँह से बात कही (और गुरु वसिष्ठ से प्रार्थना की) 'स्वामी, मुझपर कृपा करें और मुझ दीन का उद्धार करें। जिस प्रकार, दीप से खिड़कियों को दीप्ति (तेज, प्रकाश) प्राप्त होती है, पर वे खिड़कियाँ दीप को नहीं जानतीं, उसी प्रकार, आप से सूर्यवंश को ज्ञान (के प्रकाश) की प्राप्ति होती रही है, फिर भी मैं आपके ज्ञान की स्थिति को नहीं जानता। आपका ब्रह्म ज्ञान अथाह है, फिर मैं अज्ञान उसे नहीं जानता। आप सनातन कुल गुरु हैं।' ऐसा कहते हुए श्रीराम ने गुरु वसिष्ठ के चरण दृढ़ता-पूर्वक पकड़ लिये।

श्रीराम की योग्यता– श्रीराम स्वयं चैतन्य घन थे। वे देवों का कार्य सिद्ध करने और धर्म की रक्षा करने के हेतु भगवान् के पूर्ण अवतार के रूप में धरती तल पर आये थे। उनका यह मनुष्य-रूप किसी अभिनेता द्वारा प्रस्तुत नाट्य (अभिनय) था। (बात यह नहीं है कि) उनके द्वारा अपने आपको अज्ञान कहने पर ब्रह्म में ब्रह्मत्व की कुछ कमी हो, अथवा अपने आपको सज्ञान (ज्ञानी) कहने पर ब्रह्म में अधिक पूर्ण ब्रह्मत्व आ जाता हो। इस प्रकार श्रीराम स्वयं नित्यज्ञान और अज्ञान के परे थे। तो भी वे लोक (रीति के) रक्षण के लिए गुरु-रूप में वसिष्ठ की वन्दना कर रहे थे। श्रीराम द्वारा सद्गुरु का सम्मान न करने पर और उनसे ब्रह्म-ज्ञान के विषय में न पूछने पर उनके द्वारा स्वयं ही ज्ञान मार्ग को विच्छिन्न कर देने जैसा हो जाता। दोनों का उद्धार करने में, गुरु-शिष्य परम्परा को प्रतिष्ठित कर देने में रघुवीर राम को ज्ञान-मार्ग के प्रति पूरी आस्था थी।

श्रीराम द्वारा गुरु वसिष्ठ से प्रार्थना करना– इसलिए श्रीराम ने स्वयं विशुद्ध रूप से (पूर्ण) अज्ञान बनकर वसिष्ठ का गुरु के रूप में सम्मान करते हुए उनसे ब्रह्म-ज्ञान के विषय में नम्रता पूर्वक पृच्छा की। रघुपति ने स्वयं अज्ञान का आवरण (स्वाँग) लेकर विशुद्ध अज्ञान मूलक प्रश्न किये। इस सम्बन्ध में भी उपपत्ति (कार्य कारण भाव) सुनिए। श्रीराम बोले–

श्लोक– भाग्य द्वारा जिस प्रकार वासनाओं का जाल पहले से बना हुआ है, वही मुझसे कार्य करा ले रहा है हे मुनि, इस स्थिति के कारण मैं कृपण अर्थात् असहाय बना हुआ हूँ। फिर मैं क्या कर सकता हूँ।

हे मुनि, सावधानी से सुनिए। मेरा पूर्व जन्म में किया हुआ जैसा कर्म हो (जिसका फल मुझे इस जन्म में भोगना है), मैं उस कर्म (प्रारब्ध) के अधीन हूँ। इसलिए मुझे स्वयं में कर्ता की स्थिति प्राप्त नहीं है। उस प्रारब्ध (पूर्वकृत कर्म या दैव) की ओर देखने पर मैं तो केवल असहाय (जान पड़ता) हूँ। मुझे यह निश्चित रूप से नहीं दिखायी दे रहा है कि मुझे आगे क्या करना है देह के (इस प्रकार) प्रारब्धाधीन (दैवाधीन) होने पर आप, जो ज्ञान और अध्यात्म (ब्रह्म-ज्ञान) के क्षेत्र में परिपूर्ण अवस्था को पहुँचे हैं, मुझपर ऐसी पूर्ण कृपा करें, जिससे मुझे ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जाए। (यह सुनकर) गुरु वसिष्ठ बोले–

श्लोक– हे राम, अन्त में तुम्हें जीवन में शाश्वत श्रेयस् की प्राप्ति होगी और वह होगी तुम्हारे अपने प्रयत्न द्वारा किये हुए पुरुषार्थ से ही, न कि किसी अन्य (उपाय) से।

मनुष्य अपनी देह का उपयोग ब्रह्म-ज्ञान और ब्रह्म की प्राप्ति के लिए करे– (वस्तुतः) मनुष्य-देह को धारण करने पर ही (जीव को) ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है। फिर भी (मनुष्य के) मन में देहाभिमान या देहासक्ति न होनी चाहिए। विदेहावस्था (देह तथा सांसारिक विषयों की अनासक्त अवस्था) में ही परमार्थ गति (ब्रह्मज्ञान की स्थिति) प्राप्त होती है। (सदसद्) विवेक तथा युक्ति (निष्काम वृत्ति से कर्म करने की सत्प्रवृत्ति) से मनुष्य का अपना पुरुषार्थ सिद्ध होता है। त्रिभुवन में खोज करने पर भी नर-देह जैसी सुन्दर वस्तु (कोई अन्य) नहीं मिलेगी और (यह भी सत्य है कि) देह जैसी बुरी और असीम खोटी कोई अन्य वस्तु नहीं है। परन्तु यदि उसे बुरा कहकर उसका त्याग करे, तो मोक्ष-सुख से वंचित हो जाना चाहिए (पड़ता है)। और यदि उसे सुन्दर कहकर उसका उपभोग करें, तो (उसके फल स्वरूप) अवश्य ही अधःपात को प्राप्त करने जाएँ (नरक गमन करें)। इसलिए उसका न उपभोग किया जा पाता है, न परित्याग किया जा सकता है। अतः अपने पुरुषार्थ को चतुराई से भगवान् (ब्रह्म) की प्राप्ति के मार्ग में लगायें (चला दें) तो ही मनुष्य को परम सुख प्राप्त हो पायेगा। हे तात-रघुनाथ, सुनो। इस युक्ति संगत पुरुषार्थ को साध्य करके (निष्काम कर्म करते हुए) परमार्थ को प्राप्त हो जाएँ, (जिसको) कोई अन्य प्रकार का उपाय नहीं है।

श्लोक– शुभ और अशुभ (मनोवृत्यों) के दो मार्गों से वासना रूपी नदी बहती रहती है। मेरी यह मान्यता है कि अपने उसी मन को अपने पुरुषार्थ से ही नियोजित, नियंत्रित कर देना ही योग्य है। (अशुभ मार्ग से बहनेवाली वासना सरिता को शुभ मार्ग की ओर मोड़ लिया जाए)

सर्वप्रथम मन पर विजय प्राप्त करें और उसके हेतु वासनाओं का नियत्रण करें– मन में (अनेकानेक) अभिलाषाएँ (आकांक्षाएँ) होती हैं, नाना प्रवृत्तियाँ होती हैं। उनका नाम 'वासना-सरिता' बताया जाता है। न जाने इसमें कितने डूब गए हैं परन्तु जो बलवान् होते हैं, वे अपने प्रताप से उसमें तैरकर जाते हैं। वासनाओं के शुभ-अशुभ (भले बुरे) अनेक प्रबल प्रवाह तेज बहते रहते हैं। उन्हें विवेक से पूर्णतः (आत्म-कल्याण के मार्ग की ओर) मोड़ कर भला पुरुषार्थ (प्रदर्शित) करें। उस पुरुषार्थ का यह लक्षण है- अशुभ वासनाओं का त्याग करके अपने मन को परमार्थ मार्ग में दृढ़तापूर्वक लगा लें। परमार्थ (मार्ग पर चलते रहने) का यह मुख्य लक्षण है। बालक को अध्ययन करने में लगा लें, तो धीरे धीरे उसे योग्यता प्राप्त हो जाती है। उसी प्रकार आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के हेतु मन का ध्यान धीरे-धीरे लगाये रखें। अवधान (ध्यान) के छूटते ही उसे मोड़कर फिर से परमार्थ के प्रति लगावें। इस सम्बन्ध में मन की विजय के लिए यत्न पूर्वक पुरुषार्थ करें। दाँत होंठ आवेग पूर्वक चबाकर (दाँत पीसते हुए, क्रोध से) मनोविजय (की प्राप्ति) के (लिए) पीछे लग जाएँ। क्रोध से हाथ मलते हुए झट से आँखों में मनोविजय को लक्ष्य करें। अंग से अंग को कसकर रोकते हुए पूर्ण रूप से मन पर विजय प्राप्त करें हे रघुनाथ, परमार्थ का यही अति निर्दोष मार्ग है। दिन-रात सावधान रहते हुए मन से चिन्मात्र (परब्रह्म) को लक्ष्य करें। अति पवित्र परब्रह्म-निष्ठा ही परमार्थ-प्राप्ति का सूत्र (मार्ग नियम) है। मन से मन को सावधान रखें। मन से मन (की कुप्रवृत्तियों, वासनाओं) का निर्दलन करें। मन से ही मन का अवधान बनाये रखें। इसका नाम पूर्ण पुरुषार्थ है। (अन्य) सबकी व्युत्पन्नताएँ (ज्ञानावस्थाएँ) अभ्यास के अभाव में नष्ट हो जाती हैं। परन्तु ज्ञान की स्थिति ऐसी नहीं है। (एक बार) उसकी प्राप्ति हो जाने पर वह स्वयं उत्तरार्द्ध में प्रबलता को प्राप्त होता जाता है।

वेदों और शास्त्रों के अध्ययन से ज्ञानार्जन और साधना– वेदों, शास्त्रों, श्रुतियों और पुराणों का ज्ञान, नाना (प्रकार की) कलाओं में (अभ्यासपूर्वक प्राप्त) कौशल अभ्यास के अभाव में क्षीण हो जाता है परन्तु ब्रह्म-ज्ञान का लक्षण (स्वरूप) ऐसा नहीं है। समझ लो कि ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त होते समय ही बिना अभ्यास के वह पूर्णतः वृद्धि को (चरम स्थिति को) प्राप्त हो जाता है। वह जन्म मरण (सम्बन्धी विचार, चिन्ता) को क्षीण कर देता है, तब वैसे ही उस ज्ञान की प्रबलता (गहनता अनुभव) होती जाती है। यदि साधक उसका त्याग करना चाहे, तो भी त्याग दिये जाते-जाते ही वह अधिक (अधिक) होता जाता है ब्रह्म-ज्ञान-कला की ऐसी अनुकूल व्यवस्था है कि वह (साधक के लिए) सुलभता के साथ सुख स्वरूप की उपलब्धि भी कर देती है। अब यदि ज्ञान सुलभता के साथ ही (साधक को) सुख की प्राप्ति करानेवाला होता है, तो साधक नित्य प्रति श्रम को क्यों प्राप्त हो जाते हैं (उन्हें उसकी प्राप्ति के लिए थकान उत्पन्न करनेवाला परिश्रम क्यों करना पड़ता है) ? (इसका कारण यह है कि) उनको मन में कोई अनुताप नहीं अनुभव होता रहता– वैराग्य के अभाव में ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए हम अपने बड़प्पन (के विचार, अहंकार) का पूर्णतः त्याग करके समझ लो कि रंक से रंक होकर ब्रह्म ज्ञान की खोज करें। जिसे पेट में भूख न हो, वह पंचामृत तक को पाँव से धकेल देता है, उसी प्रकार खोटे लोगों (सुखासक्त लोगों) की वैराग्य के अभाव में, परिश्रम (साधना) करते रहने पर भी, विशुद्ध ब्रह्म-ज्ञान से भेंट नहीं होती (प्राप्ति नहीं होती)।

श्लोक– हाथ में थाली लेकर चाण्डालों की बस्ती की गलियों में भिक्षा माँगना अच्छा होगा। परन्तु हे राम, माया या अज्ञान जन्य मूर्खता में जीवन (बिताने की स्थिति) को प्राप्त होना कदापि अच्छा नहीं माना जाएगा।

हाथ में खप्पर (जैसा भिक्षा पात्र) लेकर ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति के लिए चाण्डालों के घर-घर (जाकर) भीख माँगना अधिक अच्छा है। पर मूर्ख शरीर के लिए सुख सुविधा प्राप्त करने का यत्न उससे निन्द्य होता है। मूर्खता में सार्वभौम सम्पूर्ण राज्य प्राप्त हो जाए, तो भी वह विशुद्ध दारुण दुःख (रूप) होता है। समझ लो, जो ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने पर भी अकिंचन रहा हो, वह ब्रह्मा आदि देवों के लिए भी वन्दनीय होता है। ऐसे उस आत्म ज्ञान को प्राप्त करने के लिए (सदसद्) विवेक-वैराग्य तथा उस ज्ञान से सम्पन्न सद्गुरु की शरण में जाने पर वह मूर्खत्व लुप्त हो जाता है (यह सुनकर) श्रीराम बोले–

श्लोक– अज्ञान-जन्य बन्धन में इस प्रकार मनुष्य के आबद्ध रहने की स्थिति में गुरु के उपदेश का आयोजन उसके लिए आत्म-ज्ञान की उपलब्धि का साधन (किस प्रकार) हो सकता है.

सच्चे ज्ञान के लिए गुरुशिष्य में आत्मैकता होना आवश्यक है– हे आचार्य, ऐसी स्थिति में रहने पर जगत् जलस्वरूप माया को कैसे तैरकर पार कर जाएँ ? हे गुरुवर, आत्म ज्ञान की प्राप्ति के उस उपाय को बता दीजिए। श्रुतियाँ और शास्त्र गरज गरजकर ऐसा कहते हैं कि गुरु के उपदेश (वचन) से ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति होती है, हे गुरुराज, आप ऐसा (उपदेश) दीजिए, जिसमें मैं उस आत्म ज्ञान की प्राप्ति की विशिष्ट स्थिति को निश्चित रूप से प्राप्त हो जाऊँगा। वसिष्ठ बोले–

श्लोक– हे राम, गुरु के उपदेश का आयोजन केवल परम्परागत व्यवस्था का मात्र निर्वाह करना है। (वस्तुतः) शिष्य की मात्र शुद्ध (निर्मल) प्रज्ञा (बुद्धि) ही ज्ञान-ग्रहण का साधन है।

गुरुपदेश (की बात) कोई ऐसी ब्रह्म-ज्ञान से भरी हुई वाटी (कटोरी) नहीं है, जिसे वह शिष्य के होंठों से लगाता (लगाकर उसे पिलाता) हो और फिर वह (शिष्य) तत्काल ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त हो जाए। गुरु के पास ज्ञान का कोई ऐसा गोला (कौर) नहीं है, जिसे वह तत्काल शिष्य को निगलवा देता हो। गुरु-स्वरूप में कोई ऐसा ज्ञान-धन से भरा थैला नहीं है, जिसे वह स्वयं शिष्य को प्रदान करे। ब्रह्म ज्ञान कोई ऐसा (पदार्थ) नहीं है कि गुरु स्वयं प्रदान करे और शिष्य उसे अंजलि भर-भरकर ले ले। ज्ञान-प्राप्ति की स्थिति-गति अतर्क्य है। हे रघुनाथ, गुरु द्वारा दिये जानेवाले उपदेश का क्रम (स्वरूप) ऐसा है कि उसे न कहते हुए भी कहता है और उसे शिष्य बिना कानों के ही सुन लेता है तथा उसे उस परमार्थस्वरूप ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है।

अवधान और चित्त की शुद्धि की आवश्यकता– कूर्मी (मादा कछुआ) अपने बच्चों की ओर आँखों से अवधान-पूर्वक देखती रहती है; वही (इस प्रकार देखना ही) उन बच्चों को अमृत-पान (कराने जैसा) हो जाता है। परन्तु उसकी दृष्टि के विचलित होते ही, समझ लो कि उसके बच्चों को लंघन (अनशन) हो जाता है। उसी प्रकार, गुरु और शिष्य की एकात्मता हो जाए। उससे शिष्य परमार्थ ज्ञान को प्राप्त हो जाता है। परन्तु उस (एकात्मता भाव) के अणु तक बदल जाते ही शिष्य ज्ञानोपदेश-रहित हो जाता है। गुरु गुह्य ज्ञान बताता है और शिष्य गुण-वर्ण का परित्याग करके उसका सेवन (स्वीकार) करता जाता है। वर्ण-अवर्ण, देह सम्बन्धी उसके अहंकार के नष्ट हो जाने के पश्चात् ज्ञान स्वयं उसको मिल जाता है। गुरु सत्-चित्-आनन्द स्वरूप ब्रह्म की बात शिष्य को उसके हित के विचार से बताता है। पर यदि शिष्य अपने स्वार्थ सम्बन्धी चिन्ता को छोड़ दे, तो ही वह परमार्थ ज्ञान को प्राप्त हो पाता है। जिस शिष्य के चित्त में (अपने लाभ-हानि सम्बन्धी) चिन्ता रहती है, देह-गेह (घर) आदि के प्रति अति ममता होती है, वह गुरु के उपदेश (के क्षेत्र) में नित्य रिक्त बना रहता है और वह परमार्थ को कभी भी प्राप्त नहीं हो पाता। जिसके चित्त में भोग्य विषयों के बारे में स्वार्थ का भाव होता है, वह यद्यपि आस्था की दो-चार बातें कहता भी हो, तो भी उसकी बुद्धि अत्यधिक खोटी, वंचक होती है। वह उसकी भेंट परमार्थ से नहीं होने देती। इसलिए ब्रह्म (ज्ञान) की तत्काल (झट से) परिपूर्ण (स्थायी) प्राप्ति के लिए गुरु के साथ शिष्य की प्रज्ञा की एकात्मता होनी चाहिए। मात्र उसी से परमार्थ ज्ञानस्वरूप फल का उसे लाभ हो जाएगा। यदि शिष्य में चित्त की शुद्धि न हो, तो शास्त्रों (के उस अध्ययन) से आत्मैक्य बुद्धि (गुरु के साथ एकात्म भाव) नहीं हो सकती। वह तो शास्त्र (ज्ञान) को बेचकर भोग्य विषयों को साध्य कर लेगा। (केवल) शास्त्र ज्ञान से उसका हित बिलकुल नहीं होगा (नहीं होगा, नहीं होगा)। यदि शिष्य के चित्त में भोग्य विषयों के प्रति आसक्ति हो, तो गुरु के उपदेश से उसे परमार्थ-ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। अन्त में वह उपदेश व्यर्थ हो जाता है। वह (शिष्य) ज्ञान सम्बन्धी अहंकार के उत्पन्न हो जाने से उलटी बात ही कर देगा। (समझो कि) उपदेश आप ही व्यर्थ हो गया; साथ ही वह ज्ञान सम्बन्धी अहंकार को ले आया; उसपर ज्ञानी होने की अवस्था में घमण्ड सवार हो गया और फलतः वह श्रेष्ठ पुरुषों (गुरुजनों) की बात को नहीं मानता। (इधर) गुरु ने उसे व्यर्थ ही उपदेश दिया; परन्तु उससे अनर्थ अत्यधिक बढ़ गया (समझो)। उसमें सचमुच चित्त-शुद्धि नहीं होती। अतः वहाँ (उस स्थिति में) शिष्य को परमार्थ का लाभ (प्राप्त) नहीं हो पाता। जिसके चित्त में मन में शुद्धि (अहंकार आदि विकारों के मैल का अभाव) होती है, वह पाषाण की-सी बुद्धि को जड़

अवस्था में भी परमार्थ को प्राप्त हो जाता है। उसे चित्त शुद्धि की करनी (महत्ता) विदित हो जाती है और वह उसे जन-समाज में और वन में (भी) जनार्दन (ब्रह्म) के दर्शन कराती है। इस प्रचण्ड ब्रह्माण्ड का ज्ञान-ग्रहण कैसे होगा ? इसपर श्रीराम बोले–

श्लोक– (श्रीराम बोले)– हे मुनि, मनुष्य के मन में ब्रह्माण्ड का दृश्य जगज्जाल समाविष्ट हो जाना कैसे सम्भव है ? राई के उदर में मेरु पर्वत का स्थित हो जाना कैसे सम्भव हो सकता है ?

साधकावस्था में चित्त के अन्दर दृश्य जाल-स्वरूप करोड़ों ब्रह्माण्ड तत्काल विलीन हो जाते हैं। (परन्तु) राई के पेट के भीतर मेरु पर्वत कैसे समा सकता है ? ब्रह्म (स्वरूप) की अवस्था परम सूक्ष्म होती है (फिर भी) जो चराचर के रूप में जगत् का यह विस्तार दिखायी दे रहा है, वह कैसे लय को प्राप्त हो जाता है ? मच्छर महापर्वत को कैसे निगल सकेगा ? (यह सुनकर) वसिष्ठ बोले–

श्लोक– हे राम, यदि तुम साधु पुरुष की संगति में सच्छास्त्र-परायण बने रहोगे, तो तुम अधिक दिनों या मासों के न लगते ही, आत्मज्ञान के उत्तम भण्डार को प्राप्त हो जाओगे।

कुलगुरु का उत्तर (कथन)– साधुत्व की दृष्टि से साधु से साधु पुरुष को देखने से ध्यान में आता है कि साधुत्व तो मुख्यतः सद्गुरु में होता है। वह (सद्गुरु) जिस आत्म-ज्ञान का उपदेश देता है ज्ञाता लोग उसे सद्शास्त्र (अध्यात्म शास्त्र) कहते हैं। गुरु के उस उपदेश-वचन के साथ एकात्म हो जाते ही, शिष्य सर्वात्मता को प्राप्त होता है, यह दिन, मास न लगते (शीघ्रता से) तत्काल परमार्थ की प्राप्ति के योग्य हो जाता है। उसमें तत्काल योग्यता आ जाती है। (वस्तुतः) यही विलम्ब वह बिलकुल सहन नहीं कर पाता। उसके हृदय में निजात्मता (ब्रह्मावस्था) सिद्ध ही हुई होती है। अतः गुरु का उपदेश प्राप्त करते ही उसे निरीहता (निष्कामता) प्राप्त हो जाती है। उसी प्रकार सूक्ष्म ब्रह्म को (मन की) दृष्टि से देखने पर कोटि कोटि ब्रह्माण्ड लय को प्राप्त हो जाते हैं। जो (शरीर की दृष्टि से) मरकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता हो, वह तो फिर से जनमता है। परन्तु जो जीवित रहते हुए जीव (मन की आशा-आकांक्षाओं की दृष्टि) से शमन को प्राप्त हुआ, वह सत्संग से सुखी हो गया (समझो) अवधान के साथ सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर, शून्य (ब्रह्माण्ड) का शून्यत्व लुप्त हो जाता है। उसी प्रकार, वह (साधक, सच्छिष्य) साधु-सज्जन की संगति के फलस्वरूप पूर्ण ब्रह्म हो जाता है। जब (तक) यह नश्वर देह नष्ट नहीं हो जाती (देह बुद्धि, आशा-आकांक्षाएँ बनी रहती हैं) तब (तक) सुखों का उत्सव चलता रहता है। पर अहो, जब देह का (देह भाव, देह-बुद्धि का) पूर्णतः अस्त हो जाता है, तब सत्संग से उत्पन्न परमानन्द को देख लो (अनुभव कर लो)।

सत्संग-महिमा– जिसे सत्संग के फल स्वरूप अकिंचनता (धन-वैभव कीर्ति आदि सम्बन्धी अभिलाषा का पूरा अभाव और उससे उत्पन्न धन आदि का अभाव) आयी हो, वह ब्रह्मा आदि के लिए भी वन्दनीय होता है। त्रिलोक के वैभव को लात मारकर भी सत्संग से ऐसी प्रसन्नता प्राप्त हो जाती है। यह (ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति में, ऐसी साधना में) ऐसे सत्संग से कोई अन्य साधन श्रेष्ठ नहीं है। सुनो, मैं उस सत्संग की महिमा को निश्चय ही बता दूँगा। सत्संग के फल स्वरूप द्रष्टापन (दर्शक की स्थिति) नहीं (शेष) रहती। समझ लो कि सामने कोई दृश्य भी नहीं (शेष) रहता। हे रघुनाथ, वहाँ बिना देखे ही दर्शन हो जाते हैं वही पूर्णब्रह्म (ज्ञान की स्थिति को प्राप्त) होता है।

दृश्य-द्रष्टा-दर्शन की एकता– दृश्य और द्रष्टा दोनों ही को निश्चित रूप से दर्शन प्रकाश

को प्राप्त कराता है। वह दर्शन जिसे प्राप्त होता है, उसे अविच्छिन्न रूप से ब्रह्म स्थिति प्राप्त हुई (समझो)। शक्कर के छोटे-छोटे कण (एक-दूसरे से) भिन्न-भिन्न होते हैं। फिर वे कण स्वयं शक्कर ही होते हैं उसी प्रकार चराचर (पदार्थ भिन्न भिन्न रूप में) दृश्यमान होते हैं, फिर भी वे पूर्णरूप से पूर्णब्रह्म ही हैं। आभूषण ऊँच-नीच (छोटे-बड़े) होते हैं, परन्तु वे एक ही स्वर्ण (स्वरूप) होते हैं। उसी प्रकार देखने से (ध्यान में आएगा कि) चराचर वस्तुएँ (वस्तुतः) परात्पर परब्रह्म ही हैं। कहते हैं, यह घटाकाश (घड़े में प्रतिबिम्बित आकाश) है, यह मठाकाश (मठ, घर में प्रतिबिम्बित) आकाश है। परन्तु ये (दोनों ही) स्वाभाविक रूप में महदाकाश (विश्व को आवृत करनेवाले आकाश) ही होते हैं (द्रष्टा दृश्य में उसे यद्यपि अलग अलग रूप में देखता है)। उसी प्रकार (सर्वव्यापी) चिन्मय (ब्रह्म) स्वरूप के कारण (अलग-अलग) दृश्य के दर्शन में द्रष्टा को चित् (ब्रह्म) का (अलग-अलग) विलास आभासित होता है। (फिर भी वस्तुतः समस्त वस्तुओं में एक ही ब्रह्म व्याप्त है)। इस एकात्म दृष्टि से देखने पर (समझ में आता है कि) दृश्य (स्पृश्य, श्रव्य आदि) विषयों तथा द्रष्टा (स्पर्शकर्ता, श्रोता आदि) विषयों में ब्रह्म के रूप के होने की स्थिति ही उत्पन्न हो जाती है। हे रघुनाथ, सुनो। मैं सचमुच वही कार्य कारण-भाव प्रतिपादित करूँगा।

पाँच प्रकार के विषयों के त्याग की रुचि ही आनन्द है– (सुखोपभोग के आधार स्वरूप) मुख्य विषय पाँच प्रकार के हैं। वे प्रकार हैं– शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। आत्मज्ञानी लोग जानते हैं कि इनकी (मधुरता के आस्वादन सम्बन्धी) रुचि ही परम आनन्द (स्वरूप) है। विषयों में माधुर्य होता है। वही माधुर्य ही पूर्ण ब्रह्म है। उस माधुर्य का जो ज्ञातारूप है, उसे चैतन्य-घन (ब्रह्म) समझें। इसलिए हे रघुनाथ, जो भोग्य विषयों के स्वाद की सच्ची स्थिति को जानता है (अर्थात् यह समझता है कि वे विषय भ्रम मात्र हैं, स्वाद भी भ्रम मात्र है) और वह ज्ञान जिसके हाथ लगा हो, समझ लो कि वह सचमुच अपनी देह में स्थित ब्रह्म है। इसलिए हे रघुनाथ, जिससे विषयों का स्वाद स्वरूप जानते हैं, वह ज्ञान जिसके हाथ आया हो, समझ लो कि वह अपनी देह में सचमुच ब्रह्म है। (यह सुनकर) श्रीराम बोले–

श्लोक– हे भगवन्, हे ब्रह्मन्, आप मुझे यह बताइए कि आत्मबोध किन शास्त्रों से प्राप्त होता है ? उन शास्त्रों में से उत्तम शास्त्र कौन-सा है, जिसे जान लेने पर प्राणी सचमुच शोक रहित होकर रहते हैं।

विशोक (शोक के अभाव की) अवस्था किससे प्राप्त होती है ?– परमार्थ (के क्षेत्र) में इससे पहले कई धीर वीर व्यक्ति शोक हीन होते हुए ब्रह्म (-ज्ञान) की प्राप्ति कर चुके हैं। वह विशोकावस्था मुझमें स्थिर रूप से क्यों नहीं प्रकट हो रही है ? आप मुझे ऐसे ज्ञान की स्थिति का उपदेश दीजिए, जो धैर्य में धैर्य को उत्पन्न कर दे सकता है, जिससे देह स्वयं देह-भाव (देह को सब कुछ मानने की प्रवृत्ति) का निराकरण करा दे सकती है और जिससे मैं सब बातों में विशोक (अवस्था को प्राप्त) हो जा पाऊँ। ब्रह्म ज्ञान की उपलब्धि के लिए अनेकानेक युक्तियाँ कही हैं। हे स्वामी, उनमें से जिससे मैं तत्काल ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति कर सकूँ, वही मुझे निश्चित रूप से बता दीजिए।

गुरु वसिष्ठ बोले–

श्लोक– तुम सर्वश्रेष्ठ ज्ञान सुन लो। उसे सुन लेने पर और उसे ठीक से समझ लेने पर तुम शोक-मुक्त हो जाओगे। (वस्तुतः) भोग की इच्छा ही बन्धन और उसका त्याग ही मोक्ष कहा जाता है।

कुल-गुरु वसिष्ठ का उत्तर– हे तात रघुवीर, सुनो, सुनो। मैं ब्रह्म-ज्ञान का समस्त सार तत्त्व कह दूँगा। (तुम जैसा) श्रवण के हेतु जो सच्चा चातक हो, वह मेरे कथन के सुख-प्रद सार-तत्त्व को झेलकर पकड़ लेता है। ज्ञान की कथा (कहनी, बात) सुनते हैं, पर वे (सब के सब) जो सुनते हैं, उसके अनुसार आचरण नहीं करते। इसलिए उनका वह श्रवण मिट्टी हो जाता है। उसे परमार्थ की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?।

अवधान-पूर्वक श्रवण न करने से होनेवाली हानि– पावन कथा और ज्ञानगुरुता-पूर्ण उक्ति जो अवधान पूर्वक नहीं सुनते, वे तुष्टि को नहीं प्राप्त होते। फिर वे चित्त में शान्ति को कैसे प्राप्त होंगे ? उनके मनन (चिन्तन, ध्यान) की बस्ती नित्य ही उजाड़ बनी रहती है। आत्म ज्ञान की ऐसी बात को जो सुनकर भी नहीं सुनते (समझ नहीं सकते), उन्हें परमार्थ की प्राप्ति कभी कल्पान्त तक में नहीं हो पाती। हे श्रीराम, ध्यान से सुनो। यहाँ (संसार में) सुखोपभोग की इच्छा मुख्य बन्धन होती है। उसका जो त्याग कर सकता हो, वह पूर्ण ज्ञाता हो जाता है। वहाँ सहजतया मुक्ति की स्थिति बन आती है। सुखोपभोग की इच्छा का त्याग अति कठिन होता है। जो उसका त्याग कर सकता है, वही अनोखा (ज्ञानी सिद्ध) होता है, उस त्याग के लक्षण (स्वरूप) को, सर्वोपरि लक्षण को सुन लो।

मन द्वारा ही मन का निग्रह– मन से मन को रोक लें। मन से मन का निग्रह (नियंत्रण) करें। मन से मन को पकड़ लें (वश में रखें)। मन से मन (के भ्रम तथा विचार आदि) को मार लें। मन से मन का (जहाँ) ऐसा निग्रह हो, वहाँ (उस स्थिति में, उस व्यक्ति में) (सुखोपभोग सम्बन्धी) आशा (अभिलाषा) मूल-सहित नष्ट हो जाती है। चैतन्य का देह-स्वरूप (मानों उसके रूप में) ढल जाता है और संसार अपने आप परब्रह्म (स्वरूप) हो जाता है। इस प्रकार की अति सूक्ष्म युक्ति (योजना) से (साधक को) तत्काल परब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। तुम तो (वस्तुतः) परब्रह्म ही हो। इसलिए प्राप्ति या अप्राप्ति (वस्तुतः) भाव या अभाव (स्वरूप में ही) है। हृदय में स्वयम्भूतस्वरूप ब्रह्मावस्था होती है। उसमें ब्रह्म की कान्ति इन्द्रियों की वृत्ति अर्थात् देह स्वरूप अस्तित्व में होती है। परन्तु उसके ज्ञान के अभाव में ब्रह्म को देह-स्थित नहीं कहते, जब कि (साधक) सद्भाव (श्रद्धा) से परब्रह्म हो जाते हैं। हे रघुपति, इस सद्भाव की उत्पत्ति (कैसे हो जाती है, यह) मैं अवश्य बता दूँगा (उसे सुनने के लिए) दृढ़ अवधान धारण करो। यह ब्रह्म (स्वरूप) अवस्था अभंग होती है। जहाँ काम, क्रोध, लोभ-युक्त स्थिति पूर्ण नष्ट नहीं होती, वहाँ ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के फल-स्वरूप अनुभव होनेवाली शान्ति नहीं होती, वह शान्ति ब्रह्म की स्वभाव-रूपा है, जो (ज्ञान की प्राप्ति होने पर) समस्त देह में सबाह्य पूर्ण रूप से विद्यमान होती है। जिसे हम 'मैं' कहते हैं, उस मैं-रूप (अहंता) से ही शरीर चैतन्य-रूप होता है, इन्द्रियों द्वारा किसी कर्म का जो आचरण होता है, वही आचरण पूर्ण परब्रह्म से ही होता है। काया (शरीर), वाक् (वाणी) और मन से जो-जो आचरण हो जाता है, वह सहज रूप से पूर्ण ब्रह्म स्वरूप होता है। यह लक्षण (संकेत) जिसे अवगत हो जाए, वह समझ लो कि तत्काल परब्रह्म हो जाता है, ऐसा कहते हुए मेरा कथन लज्जा को प्राप्त हो रहा है कि वह तत्काल परब्रह्म हो जाता है। (वस्तुतः) वह तो स्वयं ब्रह्मरूप से व्याप्त हो जाता है- वह न ज्ञान से वैसा हुआ, न अज्ञान से। इसलिए हे रघुनाथ, ब्रह्म-रूपता स्वयंसिद्ध होती है, वह स्वयं स्वयम्भूत स्वरूप में हाथ आती है। श्लोक के इस अर्थ के अनुसार इन्द्रियों द्वारा किये हुए कर्म का आचरण समस्त देह में सम-समान होता है। उस कर्म-योग में सावधान होकर अपनी निष्ठा के साथ ब्रह्म के प्रति, परमार्थ सम्बन्धी सत्य की ओर ध्यान दें, योगी अपने धर्म के अनुसार कर्म करते

है, उनके द्वारा किये जानेवाले उस कर्म में ब्रह्म (ज्ञान) की अनुभूति स्फुरित होती है। परमात्मा की वही भक्ति अवधान-पूर्वक करने से नित्य स्वरूपा मुक्ति (सांसारिक विकारों के बन्धन से मुक्ति) सिद्ध हो जाती है। योगी जागृतावस्था में सावधान रहते हैं। चित् (ब्रह्म) के प्रति सावधान होने से वे स्वप्न देखते हैं (स्वप्न में ब्रह्मावस्था को अनुभव करते हैं)। सुपुप्ति अवस्था में सुख तथा सन्तोष को प्राप्त होते हुए वे सदा चिद्रूप (ब्रह्म) अवस्था का भोग करते हैं। इस प्रकार की जागृति-सुषुप्ति और स्वप्न नामक तीनों अवस्थाओं में ब्रह्म के प्रति अवधान रखने की स्थिति ही भगवान् की भक्ति (कहाती) है। यही परमात्मा का पूजन है। यही (साधक के) जीव और शिव (ब्रह्म) की एकात्म स्थिति है। इस प्रकार की सद्भावना से जो सचमुच अनवरत सावधान रहता है, उसे चराचर (विश्व) ब्रह्म रूप और (समस्त) विषय चिद् (ब्रह्म)-रूप अनुभव होते हैं।

श्लोक– यह जो कुछ आभासित हो रहा है, जगज्जाल दिखायी दे रहा है, (वस्तुतः) वह सब निर्मल ब्रह्म ही है; (सृष्टि की) अन्तर्बाह्य व्यवस्था में जो भी दिखायी देता है, वह सब निर्मल ब्रह्म ही है।

दृश्य जगत् आदि सब ब्रह्म है– जो वस्तु दृश्य है, जो जगत् दिखायी देता है, जो-जो वस्तु रूप उपभोग का आधार-स्थान है, उस उसको निर्मल ब्रह्म, सबाह्य पूर्ण परब्रह्म समझो। फिर मैं इसे एक-एक (वस्तु-रूप में अलग अलग करते हुए) कितना बता दूँ ? उस (ज्ञानी) के लिए यह त्रिलोक ब्रह्म-रूप (जान पड़ता) है। हे रघुपति, जिससे यह बात (उसके चित्त में) स्वाभाविक रूप से जमा दी जाए, वही उपपत्ति सुन लो। दृश्य, द्रष्टा और दर्शन ब्रह्म स्वरूप हैं। चौदह भुवनों से युक्त यह ब्रह्माण्ड, (समस्त) भूत- (वस्तु) परम्परा (वस्तुतः) पूर्णब्रह्म है। जिसके आधार से कोई अपने को 'मैं' कहता है, उसका यह कहना, उसका यह 'अहं रूप' उसके परब्रह्मत्व के आधार से ही होता है। (ज्ञानी) को मित्र ब्रह्म रूप आभासित होते हैं; पुत्र ब्रह्म-रूप आभासित होते हैं; शत्रु चिद्स्वरूप ब्रह्म मात्र आभासित होते हैं; सुहृद्जन (सुहृदय आत्मीय जन) पूर्ण सत्स्वरूप ब्रह्मत्वमय जान पड़ते हैं। शत्रु, मित्र, सखा, बन्धु– इस प्रकार के अन्तर का भाव परब्रह्मसम्बन्धी धारणा का दोष है। ब्रह्म मात्र आत्मानन्द-कन्द है; वह परिपूर्ण परम आनन्द स्वरूप है। किसी ने ब्रह्म में (अलग रूप से) संसार का अस्तित्व नहीं सुना, न ब्रह्म में संसार का (अलग से) अस्तित्व होता है; न ही ब्रह्म को (अलग से) संसार का स्पर्श होता है। अर्थात् ब्रह्म और संसार के अलग होने की धारणा भ्रम के कारण ही (अज्ञान लोगों में) उत्पन्न हो गई है। यह जगत् भ्रम में पड़े हुए के लिए दुःख का अनुभव (करानेवाला) होता है; परन्तु ज्ञानी के लिए यह विश्व रूप सुख-स्वरूप होता है। अन्धे को त्रिजगत् घना अँधेरा (शून्य) प्रतीत होता है; परन्तु आँखों से देख सकनेवाले उसे उसके अपने प्रकाशित करनेवाले के कारण (ठोस रूप से) देख सकते हैं। इसलिए जिन्हें परमार्थस्वरूप को जानने की बुद्धि (इच्छा) है, वे भेद (द्वैत) विचार पद्धति को छोड़ देते हैं और उस भेद भावना को काट देने के लिए निश्चय ही सब स्थान पर भगवद्भक्ति (की इच्छा या रुचि आवश्यक) साधन है। जिन्हें समस्त भूतों के सम्बन्ध में ब्रह्म-भावना होती है, वे स्वयं परब्रह्म होते हैं। द्वैत भावना स्वरूपी भ्रम को काटनेवाले वे लोग पहले ही से ब्रह्म (स्वरूप) बने हुए होते हैं, जो अमृत का सेवन करता है, वह स्वयं अमर हो जाता है। जिसे समस्त भूतों में भगवज्जन (भगवान् या ब्रह्म के अंश को धारण करते) दिखायी देते हैं; वह स्वयं पूर्ण परब्रह्म हो जाता है। हे श्रीराम, जगत् की (स्वरूप) स्थिति के बारे में सुनो। वह किसी के लिए या तो परब्रह्मस्वरूप होता है अथवा परम भ्रम (आभास)

होता है (उसे वह भ्रम से सत्य मानता है)। इसमें तीसरे स्वरूप का निवास (अस्तित्व) नहीं होता, हे रघुनाथ, इसे निश्चित रूप में जान लो। किसी किसी को यह विश्वास होता है कि यह जगत् नाना आकार प्रकार में विद्यमान है। पर यह तो उसकी मुख्य रूप से विशुद्ध भ्रान्ति है। सुनो, अब उस भ्रान्ति के अपने स्वरूप को मैं तुम्हें बता दूँगा।

श्लोक– भ्रम के कारण ही 'मैं' (ब्रह्म से अलग स्थित) जान पड़ रहा हूँ; भ्रम के कारण ही 'तू' (ब्रह्म से तथा मुझसे अलग स्थित) जान पड़ रहा है। भ्रम के कारण ही उपासक लोग (उपास्य ब्रह्म से भिन्न) जान पड़ते हैं, भ्रम के कारण अलग ईश्वर का अस्तित्व माना जाता है इस प्रकार यह जगत् भ्रम्-मूलक, भ्रम से उद्भूत है।

अहंबुद्धि भ्रान्ति का आद्य लक्षण है– 'अहंबुद्धि के रूप में जो 'मैं पन (अहंता)' है, वही भ्रम का अपना मुख्य कारण है (निर्माता है)। (दूसरे को अपने से भिन्न) 'तू' कहना दारुण भ्रम (स्वरूप) है, 'मैं तू' के द्वैत की भावना भ्रम-मूलक है। जो उपासना पद्धति ऐसा समझती है कि देव और (उसका) भक्त दोनों (एक-दूसरे से) भिन्न हैं, वह तो ब्रह्म-ज्ञान के विचार से मुख्य अज्ञानावस्था है, वह अतर्क्य रूप से पूर्णतः सूक्ष्म (यों ही ध्यान में न आनेवाला दृढ़) भ्रम है। (वस्तुतः) ब्रह्म अखण्डित रूप में पूर्णावस्था को प्राप्त है (पूर्णतः अखण्डित है) तो वहाँ (उस स्थिति में कुछ लोग) देव और उसके भक्त को भिन्न भिन्न मानते हैं। यह तो उस गुह्य ब्रह्म-ज्ञान के सम्बन्ध में बहुत बड़ी भ्रान्ति है। ज्ञाता की दृष्टि से निश्चय ही यह (द्वैत विचार) अतर्क्य है। यह (धारणा) तो भ्रम से निर्मित बड़ी उलझन भरी झंझट है कि ईश्वर अति वरिष्ठ है और अन्य पंचमहाभूतों से निर्मित भौतिक (सांसारिक) वस्तुएँ अति हीन हैं यहाँ इस सम्बन्ध में भ्रम ने तो बड़े बड़े तक को भ्रम में डाल दिया है रस्सी में साँप जनमा नहीं है फिर भी वह भ्रान्ति के कारण उत्पन्न हो जाता है (रस्सी में साँप का अस्तित्व दिखायी देता है)। उसी प्रकार, ब्रह्म में जगत् नहीं है– परन्तु अज्ञजन भ्रम के मूल से उत्पन्न उसको आभासित देखते हैं (ब्रह्म से भिन्न) जगत् को देखना परम भ्रम है। जगत् (स्वतंत्र अस्तित्वधारी) न देखना परब्रह्म (ज्ञान का फल है)। इस गुह्य ज्ञान की मार्मिक बात (रहस्य) को समझ लो। तुम तो पुरुषोत्तम हो, परमात्मा हो। मैं तुम्हें बता रहा हूँ फिर भी तुम परमात्मा हो; तुम स्वयं अपनी महिमा को देख लो। हे रघुनाथ, तुम्हारे स्वरूप की कोई सीमा नहीं है। वह अपार है, अप्रमेय (नाप के परे) है। तुम आत्मतत्त्व के विचार में परिपूर्ण परमात्मा (ब्रह्म) हो, तुम कर्म और अकर्म से परे हो। तुम्हारा कोई (सीमित) स्थान तथा मान (प्रमाण) नहीं है। अपने इस ब्रह्मत्व के लक्षण को सुन लो। तुम्हारे ब्रह्म स्वरूप के स्थान में (अन्दर) आकाश (न जाने) किस कोने में लोप को प्राप्त हो जाता है। किसी के द्वारा देखने पर भी वह आँखों को नहीं दिखायी देता, वह अपने मिथ्या रूप के कारण लय को प्राप्त हो गया है, वह (आकाश) शुद्धत्व से परिपूर्ण तुम्हारे ब्रह्म स्वरूप को देखते ही और सत्त्व की दृष्टि से खोज करने लगते ही लज्जित हो गया। वह अपनी महत्ता के साथ उसमें समा गया। माया का अस्तित्व अभाव को प्राप्त हो गया। राई के एक-एक करोड़वें अंश पर वस्तुएँ आराम से रहती हैं; अणु के अन्दर ब्रह्म सुखस्वरूप स्थिति में विश्राम करता है जो नित्यत्व के विचार से नित्य तथा अक्षर (अविनाशी) है, वह परब्रह्मरूप सार तत्त्व सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। वस्तुतः वह तुम्हारा रूप है। इस दृष्टि से जीव, शिव (ब्रह्म) के स्वरूप सम्बन्धी (द्वैत का) विचार से उस अव्यय (शिव ब्रह्म) में विलीन हो जाता है।

ब्रह्म के कोई माता पिता नहीं हैं, अतः उसका जन्म मरण भी नहीं होता– वस्तु (ब्रह्म) के कोई माता पिता नहीं है। इसलिए उसके जन्म सम्बन्धी कोई कथा (घटना) घटित नहीं होती। उस आत्म-तत्त्व ब्रह्म के विषय में जन्म के अभाव के कारण मृत्यु की बात बिलकुल् नहीं होती। इस प्रकार वह (ब्रह्म) जन्म तथा मृत्यु के परे है। वह सुख में नित्य अपार (अनन्त) है हे श्रीराम, यह निश्चित रूप से जान लो कि उस ब्रह्म-स्वरूप का नाम 'रघुनाथ श्रीराम' है। हे रघुनाथ, वेदों, वेदागों, पुराणों श्रुतियों, स्मृतियों, शास्त्रों का, विज्ञान (परमार्थ शास्त्र) का, इतिहास का गुह्य ज्ञान यहाँ है। उसी का यह निरूपण हुआ। समस्त सार-भूत तत्त्वों का जो मुख्य सार-रूप है, वह सचमुच यह इतिहास है। समस्त ज्ञान का गह्वर स्वरूप-रहस्य यही है। यह मुक्त रूप से अति उदार है। जब यह (ज्ञान) निरूपण जीव के अन्दर स्थिरता के साथ एकात्म हो जाता है, तब भोग्य विषयों का ऋण दूर हो जाता है; उससे जन्म-मृत्यु का दस्तावेज फट जाता है और मृग-मरीचिका के स्वरूप का सा संसार सम्बन्धी भय नष्ट हो जाता है. इस इतिहास (निरूपण) की मार्मिक बात यह है कि कर्म ही परब्रह्म है, साधक (उसे करने का अभिलाषी) आत्माराम (ब्रह्मस्वरूप राम से एकात्म) हो जाता है और वह कर्म कर्त्ता साधक मोक्ष को नित्य रूप में प्राप्त कर लेता है। मैंने जो निरूपित किया (कहा), वह जीवन्मुक्त (जीवनधारी होकर भी मुक्तावस्था को प्राप्त) का लक्षण है। तुम स्वयं आत्माराम (ब्रह्म) हो, तुम पूर्णत्व के विचार से पूर्ण परमात्मा (पूर्णब्रह्म) हो।

श्रीराम की पूर्णब्रह्मानन्दमय अवस्था-- गुरु वसिष्ठ द्वारा कथित बात को सुनकर श्रीराम ने स्वयं अपने पूर्ण ब्रह्मत्व को, स्वानन्द-घन रूप को, (शाश्वत) सुख-रूप को देखा। अपने ब्रह्म-रूप से भेंट होते ही चित्त और चैतन्य गले लगकर एकात्म हो गए। हर्ष से उद्भूत भाव रूप शब्द गले में अवरुद्ध हो गए; उनके उदर में (हृदय में) आनन्द नहीं समा रहा था आनन्द हृदय में नहीं समा रहा था। वह नेत्रों द्वारा उमड़कर (अश्रु रूप में) प्रकट हुआ चाहता था। वे (श्रीराम) विस्मय से व्याप्त हुए, उन्हें देह की स्थिति समझ में नहीं आ रही थी। उनके प्राण जहाँ के तहाँ कुण्ठित हुए, वे गद्‌गद हो उठे- उनका गला रुँध गया। समस्त इन्द्रियाँ उपरम (शान्ति, विश्राम) को प्राप्त हुईं। चिद्रूप ने उनमें स्तब्धता उत्पन्न कर दी। समस्त शरीर पर रोम-रोम के मूल में निर्मल स्वेद कणिकाएँ उत्पन्न हुईं। मानों उन्होंने अपने अस्तित्व से उन पर खुले रूप में मोतियों का जाल उढ़वा दिया। उन्हें 'मैं' 'तू' (द्वैतभाव) का स्मरण बिलकुल नहीं हो रहा था। उनकी वाणी कुण्ठित हुई; वे मौन को प्राप्त हुए। जीव-शिव के अलग-अलग होने का विचार पुँछ गया और (उसके फल स्वरूप) चित तृप्ति को प्राप्त हुआ चैतन्य घन श्रीराम (इस प्रकार) अपने आप के ब्रह्म रूप में लीन हो गये। तब श्रीगुरु वसिष्ठ ने स्वयं उन्हें व्यवहार कर्म-प्रवीण किस प्रकार कर दिया ? भरद्वाज ने स्वयं वाल्मीकि से ऐसा पूछा, तब वाल्मीकि ने भी बड़े प्रेम से उनके (समाधान के) लिए सुसंगतिपूर्ण-रूप यह कथा कही। वाल्मीकि बोले

श्लोक– (जिसका चित्त अपरिच्छिन्न ब्रह्माकार हो गया है, ऐसे) राम जब आत्मस्वरूप में (ब्रह्म-स्वरूप) भली भाँति परिणत हो गये, तो विश्वामित्र ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठ से बोले-

श्रीराम को स्तब्ध हुए देखकर विश्वामित्र व्याकुल हो उठे। उन्होंने आकुल व्याकुल होकर वसिष्ठ से अपना (अभीष्ट) कार्य कहा। विश्वामित्र बोले

श्लोक-- हे वसिष्ठ, हे महाभाग, हे ब्रह्मदेव के पुत्र, महामुनि, आपने शक्तिपात द्वारा क्षण मात्र में ही अपने (गुरु-पद) की महानता को प्रदर्शित किया।

विश्वामित्र द्वारा श्रीराम की समाधि उतार देने की वसिष्ठ से बिनती करना– हे स्वामी वसिष्ठ, आप ब्रह्मा के पुत्र हैं। आप की गुरुता का चरित्र (स्वरूप) अति विचित्र है, अनुपम है। आप ब्रह्म (ज्ञान) को प्राप्त होने से अतिपावन हैं। आपके गुरु पद का यह रहस्य है कि (आपके उपदेश से) आपका शिष्य देह आदि को तथा इन्द्रियों द्वारा किये जानेवाले कर्मों को मिथ्या समझने लगता है और वह (स्वयं) पूर्णब्रह्म (स्वरूप को प्राप्त) हो जाता है। श्रीराम में वैसी ही परम समाधि (अवस्था) उत्पन्न हो गई है। आपने शक्ति-पात कराते हुए अपने शिष्योत्तम श्रीराम को बिना कोई परिश्रम किये ब्रह्म-स्वरूप (तथा समाधि-अवस्था) को प्राप्त करा दिया। यह है आपके गुरु-पद की गरिमा। आपकी महिमा तीनों लोकों में अथाह है। आप अपने शिष्य की समस्त प्रवृत्तियों को उपदेश-वचन से ब्रह्म स्थिति में लगा देते हैं और फल स्वरूप वह शिष्य ब्रह्मावस्था को प्राप्त हो जाता है। निश्चय ही इसका नाम 'शक्ति पात' है। निमेष के अंश में एक घटिका मुहूर्त (समय) तक शिष्य में यह स्थिति जमकर स्थिर हो गयी है। निश्चय ही यह शक्ति-पात है, आप गुरु के उपदेश वचन की ऐसी ख्याति है। आप अपने कथन से (शिष्य के) संशय को नष्ट कर देते हैं; बिना किसी के सामर्थ्य से शिष्य को परम अर्थ में (सच्चे अर्थों में) सुखी कर देते हैं अस्तु शिष्य को दर्शन देने से, (वरद हस्त के) स्पर्श से और मुख्य रूप में आपके कृपा-भरे अवलोकन (कृपा-दृष्टि से देखने) से शिष्य को स्वाभाविक तृप्ति प्राप्त हो जाती है और वह चित्सुख (ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति के सुख) से चैतन्य-घन-स्वरूप हो जाता है। आपकी कृपा का यह निवास-स्थान चित्सुख से सम्पन्न होता है। श्रीराम में आपकी कृपा के कारण ब्रह्म-ज्ञान से उत्पन्न पूर्ण सन्तोष का अनुभव हो रहा है। श्रीराम में पूर्ण समाधि अवस्था उत्पन्न है उनकी कर्म-क्रिया कर्तव्य की प्रवृत्ति लुप्त हो गई है। परन्तु हे वसिष्ठ, उनकी कर्म-कर्त्तव्य प्रवृत्ति को भविष्यकाल के उनके अवतार-कार्य की दृष्टि से व्यर्थ न होने दें। हे स्वामी वसिष्ठ, सुनिए। हम पर कृपा कीजिए। आप अपनी सत्ता (अधिकार) तथा युक्ति (उपाय) का निरूपण कीजिए, जिससे श्रीराम देह-सम्बन्धी सुध-बुध को पुनश्च प्राप्त हो जाएँ। श्रीराम को आप ऐसा उपदेश दीजिए जिससे वे समस्त ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेंद्रियों में नित्य जाग्रत, सचेत रहें, वे कर्त्तव्य और अकर्तव्य के विषय में नित्य सावधान बने रहें और उनके संरक्षण में मेरा यज्ञ सम्पन्न हो जाए। आपको समाधि लगने और उससे मुक्त होकर जाग्रत होने- दोनों अवस्थाओं का ज्ञान है। आप शिष्य के सन्देह, भ्रम आदि का निराकरण करके उसे तृप्त कर सकते हैं और उसके साथ ही कर्तव्य-अकर्तव्य (आदि) के प्रयोजन के विषय में भी आप उसको ज्ञान प्राप्त करा सकते हैं। देवों के कार्य को सम्पन्न कर देने हेतु श्रीरघुनाथ राम अवतरित हो गए हैं। फिर भी आपने उन्हें समाधि-अवस्था में मग्न करके बैठा रखा है। इससे वे अकर्मण्यता को प्राप्त होकर उदासीन हो गए हैं श्रीराम के इस प्रकार उदासीन अकर्मण्य (निश्चेष्ट) हो जाने पर उनके अवतार-कार्य का हेतु ही समाप्त-सा हो गया है। उसी प्रकार, यहाँ पर मेरा स्वीकृत कार्य का, यज्ञ की परिपूर्णता का प्रयोजन ही धरा रहा है। हे वसिष्ठ, मेरे उस कार्य का ध्यान रखिए, जिसके लिए आपने यहाँ स्वयं आकर (मेरे साथ राम को भेज देने की) राजा दशरथ से प्रार्थना की। हे वसिष्ठ, आप ही ने दशरथ से प्रार्थना करके मेरे यज्ञ की रक्षा करने के लिए राम लक्ष्मण को मुझे दिलवा दिया। (यदि अब राम समाधि अवस्था को त्यागकर जाग्रत एवं कर्त्तव्योन्मुख न हो जाएँ, तो) आपका यह कथन झूठा हो जाएगा और देवों के कार्य सम्बन्धी हेतु सब प्रकार से धरा रह जाएगा। इसलिए आप श्रीरघुनाथ को कार्य को पूर्ण करने के उद्देश्य से उपदेश दीजिए। (यह सबको विदित है कि) भविष्य में घटित होनेवाली घटनाओं के भाष्य के रूप

में वाल्मीकि ऋषि ने स्वयं शत कोटि (छन्दों वाले) रामायण की रचना की। आप उनकी (निम्नलिखित) उक्ति को असत्य न होने दें- इसके लिए श्रीरघुनन्दन का प्रबोधन कीजिए।

श्लोक– सिद्धाश्रम के प्रति मेरे द्वारा लिवा लिये जाने पर श्रीराम राक्षसों का संहार करेंगे; अनन्तर (गौतम ऋषि की पत्नी) अहल्या को (उनके अभिशाप से) मुक्ति प्रदान करके वे राजा जनक की सुकन्या का पाणि-ग्रहण करेंगे।

वाल्मीकि ऋषि ने अपने श्रीमुख से इस प्रकार अति पवित्र भविष्य-भाष्य (कथन) किया है। श्रीराम के अति विचित्र लीला-चरित्र को ध्यान से सुनिए। ताड़का राक्षसी अति विकराल है। वे उस क्रूर राक्षसी का वध कर डालेंगे और जन-समाज तथा वन को बाधा-रहित कर देंगे। उसके फल-स्वरूप अब लोग सिद्धाश्रम में सुख-पूर्वक बस जाएँगे। उस सिद्धाश्रम में मेरा निवास-स्थान है, मैं वहाँ श्रीराम को ले आऊँगा। वे राक्षसों का संहार करके उनपर सम्पूर्ण विजय प्राप्त करेंगे। वे अहल्या का उद्धार करेंगे, शिवजी के धनुष को तोड़ डालेंगे और जानकी का पाणि ग्रहण करेंगे। जनक के भवन में श्रीराम आदि चारों बन्धुओं का आत्मिक आनन्द के साथ विवाह सम्पन्न हो जाएगा। जमदग्नि ऋषि के सुपुत्र (परशुधर) राम और दशरथ-नन्दन श्रीराम युद्ध में परम सुख को प्राप्त हो जाएँगे। श्रीराम के (दर्शन के) कारण परशुराम को परम शान्ति प्राप्त हो जाएगी। तदनन्तर श्रीराम का वन में गमन होगा। उससे दण्डकारण्य पावन हो जाएगा। वहाँ के तीर्थस्थल पूर्ण पवित्रता को प्राप्त हो जाएँगे। श्रीराम के चरण शिवजी के लिए वन्द्य हो जाएँगे। समुद्र में शिलाएँ स्वयं तैरने लगेंगी। विभीषण को लंका की प्राप्ति हो जाएगी। श्रीराम के नाम की ख्याति हो जाएगी और उससे तीनों भुवनों का उद्धार हो जाएगा। सीता की खोज (तथा पुनःप्राप्ति) के बहाने श्रीराम राक्षस-कुलों का निर्दलन करेंगे। कलिकाल राम का वन्दन करेंगे। हे वसिष्ठ, (वाल्मीकि ऋषि द्वारा भविष्यवाणी के रूप में कथित) इस श्रीराम-चरित्र को आप स्पष्ट अर्थात् यथार्थ कर दीजिए।

श्लोक– जिनके द्वारा श्रीराम के दर्शन किये गए हों, अथवा जिन्होंने श्रीराम का स्मरण किया हो, अथवा जिन्होंने उनके विषय में ज्ञान प्राप्त कर लिया हो, अथवा जिन्होंने उनके चरित्र को सुना हो, उनके समस्त अवस्थाओं को प्राप्त होते रहने पर भी, श्रीराम-चरित्र उन्हें उनके अपने जीवनकाल में ही मुक्ति प्रदान करता है।

जिन्होंने अत्यन्त आदर के साथ श्रीरामचन्द्र के चरित्र का श्रवण किया हो, जो दिन-रात श्रीराम का स्मरण किया करते हों, उन्हें बिना किसी यत्न करने के मुक्ति प्राप्त हो जाती है। जो स्वयं किसी हेतु के साथ श्रीराम नाम का स्मरण करते हों, जो किसी हेतु के साथ स्वयं नित्यप्रति उसका श्रवण करते हैं समझिए कि वे सब इन्द्रियों द्वारा आचार-व्यवहार करते रहने पर भी, जीवित रहते हुए भी मुक्त हो जाते हैं। जिनके मुख में राम-नाम का निवास होता है, जो नित्य राम-नाम का जाप करते रहते हैं, उनको इन्द्रियों के विषयों में रमण करते रहने पर भी, उनके अपने शरीर को धारण किये रहने पर भी निजस्वरूप मुक्ति प्राप्त हो जाती है। जो जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति जैसी तीनों अवस्थाओं में (सांसारिक दुःखोपभोगों से) नित्य मुक्त रहते हैं, जो नित्य राम नाम का जाप करते हैं, उनके यहाँ श्रीराम स्वयं आत्मिक आनन्द स्वरूप में लीला करते रहते हैं। त्रिभुवन की ऐसी स्थिति है उनमें रहनेवाले समस्त जीव श्रीराम-चरित्र (के पठन, श्रवण, मनन आदि) से (भवसागर को) तैरकर उद्धार को प्राप्त हो जाते हैं। हे कृपा की मूर्ति-स्वरूप वसिष्ठ, श्रीराम से ही मेरे कार्य की पूर्ति हो जानेवाली है। श्रीराम पुरुषोत्तम हैं।

श्रीराम सर्वश्रेष्ठ परमोच्च हैं। वे श्रीराम पूर्णब्रह्म हैं। श्रीराम नित्य अकाम हैं, फिर भी सिद्धि-स्वरूप हैं। हे वसिष्ठ, राम की स्थिति-गति आपके हाथों में है। हमें अपनी कृपा में स्थित कराकर (हमपर कृपा करके) आप मूर्तिवत् अचल बने हुए श्रीराम का प्रबोधन कीजिए। श्रीराम नित्य दैव-हीन हैं, फिर भी उनके पास दैन्यावस्था (पहुँचती) नहीं है। इसलिए जगत् के भाग्य (के उदय) के लिए आप श्रीरघुनन्दन का प्रबोधन कीजिए। दैव के न होने पर भी जगत् में एक श्रीरघुनाथ ही भाग्यवान् हैं। वे यहाँ (आपके उपदेश) जाग्रतावस्था को प्राप्त होकर अपने अभीष्ट चरित्र की सिद्धि को सम्पादित करें। जो समस्त जगत् में विजयी हैं, जो जगत् के 'जगज्जीवन' हैं, ऐसे उन रघुनन्दन राम में मेरा मन मग्न हुआ है। हे वसिष्ठ, आप कृपा करके श्रीरघुनाथ का प्रबोधन कर दें, जिससे वे अवतार ग्रहण करने के हेतु के अनुसार लीला प्रदर्शित कर सकें। उन्हें आप इस (यज्ञ-रक्षण के कार्य में) व्यवहार में चला दें (कार्य करने की प्रेरणा दें)।

श्लोक– इस प्रकार कहकर महामुनि विश्वामित्र मौन को प्राप्त हो गए। (तदनन्तर) महातेजस्वी वसिष्ठ ऋषि रामचन्द्र के प्रति बोले।

वसिष्ठ द्वारा श्रीराम की समाधि-अवस्था को दूर करने का यत्न करना– वाल्मीकि ने भरद्वाज से कहा– श्रीराम को समाधि-मग्न, निश्चेष्ट देख कर विश्वामित्र ने वसिष्ठ को श्रीराम का प्रबोधन करने के कार्य में लगा दिया। तब विश्वामित्र ने स्वयं राम सम्बन्धी (वाल्मीकि द्वारा कथित) भाव्य को बताते हुए अपने कार्य के विषय में मौन धारण किया। उसे सर्वज्ञ वसिष्ठ ऋषि ने समझकर (श्रीराम से) कहा।

श्लोक– हे राम, हे राम, हे महाबाहु (रघुनाथ) हे महापुरुष, हे चिन्मय (स्वरूप) यह कोई विश्राम करने का समय नहीं है। इसलिए तुम लोगों को आनन्द प्रदान करनेवाले सिद्ध हो जाओ।

समाधि-लक्षण– हे तात रघुनाथ, तुम्हारी यह कैसी समाधि अवस्था है ? तुम तो चिदानन्द स्वरूप में रहते हुए काल को भी अपने वश में कर लेनेवाले हो। हे आजानु बाहो, हे महा (अर्थात् दीर्घ तथा बलशाली) भुजाओं के धारी, सुन लो। तुम्हारे लिए यह कोई समाधि लगाने का समय नहीं है। तुम त्रिभुवन के अधिराज हो। तुम समस्त देवसमुदाय को सुख सम्पन्न बना दो। अवतार धारण करने पर तुम्हें जो लीलाएँ प्रदर्शित करनी हैं, उन्हें करते हुए क्रम के अनुसार तुम साधु-सन्तों को सुखी कर दो; अपने भक्तों को सुखी कर दो; समस्त लोगों को सुखी कर दो। वैसे निष्कर्म (बिना कोई काम किये) मात्र रहना जीव की समाधि-अवस्था का एक लक्षण तो है; फिर भी वह (साधक की) अपरिपक्व अवस्था है। अतः तुम परिपक्व (पूर्ण समाधि) अवस्था के लक्षण सुन लो। समस्त भूलों, प्राणियों के गुणों और अवगुणों के, जगत् के दोषों के दिखायी पड़ने पर भी ब्रह्मावस्था को प्राप्त होकर विचलित न होना ही पूर्णता के विचार से पूर्ण समाधि है। प्राणियों के दूषित या निषिद्ध कर्म के दिखायी देने पर भी वह (साधक) चैतन्यघन ही आभासित होता रहता है। उसी का नाम विशुद्ध सन्तोष है उसी अवस्था का नाम सम्पूर्ण समाधि है इस प्रकार का सन्तोष अनुभव न होने पर भी जो केवल उदासीनता अनुभव होती है वह तो मुग्धावस्था (मूढ़ता की अवस्था) का लक्षण है। वह अवस्था सम्पूर्ण समाधि-अवस्था नहीं है। प्राणियों की समस्त मलिनताएँ जिसकी दृष्टि में नष्ट हो जाती हैं, वह साधक (सम्पूर्ण) समाधि-अवस्था की लहर को प्राप्त हुआ ही होता है। अन्य अवस्था तो साधारण प्राणी की-सी ही स्थिति होती है (माननी चाहिए)।

राम की शंका और उसका समाधान– (श्रीराम ने कहा-) हे गुरुदेव ! आप कह रहे हैं कि यह संसार मिथ्या है (भ्रम से निर्मित भ्रम मात्र है)। आप कहते हैं- तूने ही यह यहाँ बना लिया है। (फिर कहिए तो)- यहाँ कैसे देव हो सकता है और कैसे उसका कोई भक्त। अवतार लीला भी कैसे होगी ? जहाँ 'मैं' और 'तू' का भाव नहीं है (जहाँ 'मैं' और 'तू' दोनों एक ही हों, ब्रह्म के ही अभिन्न अंग हो) वहाँ कर्म कैसे और क्रिया का आचरण भी कैसे हो सकता है ? समझिए कि कोई भी लौकिक अर्थात् सांसारिक नहीं है, तो लोगों का संरक्षण भी कैसे कर रहे हैं ? (श्रीराम की यह बात सुनकर वसिष्ठ ने कहा-) हे रघुनाथ, सुन लो। ब्रह्म के अवतार की स्थिति, (साधारण) जीवों को प्राप्त हो ही नहीं सकती, यद्यपि वे सचमुच मुक्त हो भी गए हों। जिनको सत्त्व-रजस् तमस् नामक तीन गुणों से जीव-दशा प्राप्त हुई और जो माया जन्य भ्रम से स्वयं कहते हैं कि ब्रह्म क्या है और कैसा है, उनका उद्धार तुम्हारे हाथों ही होने वाला है अवतार का सामर्थ्य पूर्ण होता है। वह सांसारिक तथा पारमार्थिक व्यवहार में सावधान होता है– इन दोनों के विषय में वह कोई भी त्रुटि (अपने व्यवहार में) होने नहीं देता। यह तो तुम्हारा अपना लक्षण है, जिसे तुम ध्यान से सुन लो।

श्लोक– वह (ब्रह्म का अवतार, ब्रह्म रूप में स्थित व्यक्ति) अन्दर से सबके साथ एकात्म होता है; फिर भी बाह्य-व्यवहार में भिन्न होता है। वह अन्दर के ब्रह्म ज्ञान से युक्त होता है पर बाह्य व्यवहार में जड़ भी हो सकता है। वह तो अन्दर से सर्व-संग परित्यागी होता है, फिर भी बाह्य जगत् में सबका संगी-साथी होता है। हे राघव, तुम इसी प्रकार जगत् में विहार करते रहो।

बाह्य तथा आन्तरिक स्थिति का विचार– मनुष्य के अन्दर स्थित आत्मा तथा (ब्रह्माण्ड में व्याप्त) परमात्मा अर्थात् ब्रह्म में अद्वैत है। अतः जड़-मूल-सहित समस्त जगत् मिथ्या है। फिर भी जगत् के अन्दर रहने के कारण किये जाने योग्य (कर्त्तव्य) कर्मों को मात्र बाह्य अर्थात् सांसारिक जानकर वह आत्मज्ञानी वेदों में बतायी विधि के अनुसार सम्पन्न करता रहता है. वह अन्दर उसी प्रकार मात्र शुद्ध बुद्धि रखता है, जिस प्रकार वह बाह्य रूप से सांसारिक भोग्य विषयों में बँधा दिखायी देता है। वह ऐसी बाह्य जड़ बुद्धि के कारण मूढ़ जैसा, विषय भोगों का शुद्ध (पूरा) अभिलाषी जैसा दिखायी देता है। वह अन्दर में सुखभोगों के विषयों का पूर्णतः त्याग करता है; परन्तु (लोक-व्यवहार की दृष्टि से) उन विषयों के समस्त अंगों का इन्द्रियों द्वारा बाह्य रूप से भोग करता दिखायी देता है। फिर भी उसके अन्तःकरण को उन भोग्य विषयों का कोई भी अंग छूता तक नहीं (वह भोग करते रहने पर भी उसमे अलिप्त रहता है)। जिस प्रकार, मशक के फूल जाने पर उसके अन्दर आकाश अटका हुआ सा दिखता है (लेकिन वस्तुतः वैसा नहीं होता), उसी प्रकार बाह्य व्यवहार में वह व्यक्ति लोलुपता के साथ सुखोपभोग आदि की अभिलाषा करता है, फिर भी वह अन्तःकरण में पूर्णतः निरीह होता है वह अन्दर से निरिच्छ, परन्तु उन अनेकानेक बातों में उत्कट लगाव होता है। जिस प्रकार, कोई चालाक मनुष्य सब लोगों को धोखा देता है, उसी प्रकार मुक्त व्यक्ति में भोगों के प्रति आत्मीयता दिखायी देती है (जिससे लोग उसे भोगी, लोलुप समझते हैं)। उसके अन्दर काम, क्रोध जैसे विकार शमन को प्राप्त हुए होते हैं। मनःशान्ति के कारण उसमें सच्चे कल्याण का उदय हो जाता है। मानो कोई मृग मरीचिका में मछलियाँ पकड़ना चाहता है उसी प्रकार बाह्य व्यवहार में वह क्रोध रूपी आग से प्रक्षुब्ध हुआ सा दिखायी देता है। वह बाह्य व्यवहार में कार्य के निमित्त बाघ जैसा गुर्राता रहता है, फिर भी वह अन्तःकरण में मक्खन जैसा मृदु रहता है। वह अपने व्यवहार से किसी को नहीं चुभता अखरता बाह्य व्यवहार में वह कार्य करनेवाला

दिखायी देता है, पर अन्तःकरण से आत्म-ज्ञान में लीन रहने के कारण वह अकर्ता (कुछ भी न करनेवाला, अकर्मण्य) बना रहता है। जैसे कुम्हार के चक्र पर बैठी हुई मक्खी उसके घूमते रहने से घूमती हुई दिखायी देती तो है, परन्तु वह वस्तुतः हिलती तक नहीं। (उसी प्रकार सांसारिक क्रिया-व्यवहार में आत्मज्ञानी व्यक्ति कुछ करता सा दिखायी देता है, फिर भी) वस्तुतः वह कुछ भी नहीं करता)। वह सांसारिक व्यवहार तथा परमार्थ दोनों में सावधानी की अवस्था को प्राप्त होता रहता है। यह भगवान् के अवतार की अपनी विशिष्ट शक्ति होती है। हे रघुनाथ, वह शक्ति तुम्हारे रूप में ठोस मूर्तिमान बनी हुई है (तुम उसी शक्ति का साकार रूप हो)। इसी प्रकार की स्थिति में संसार के अन्दर तुम अपने लौकिक आचार व्यवहार के द्वारा अविकलरूप से क्रीड़ा (लीला) प्रदर्शित करते रहो। जिस प्रकार खिलाड़ी, यह, जानते हुए भी शतरंज का राजा झूठा है, वजीर झूठा है, हाथी घोड़े झूठे हैं, बड़े चाव के साथ आगे खेलते ही रहते हैं, उसी प्रकार मुक्त मनुष्य का सांसारिक स्थिति-गति सम्बन्धी वैसा ही भाव होता है (उसे मिथ्या समझते हुए वह उसके अनुरूप व्यवहार करता रहता है)। देखिए, शतरंज की उन गोटियों में जीव का अस्तित्व नहीं होता; फिर भी खिलाडी कहते हैं– हमने (उन्हें) मार डाला, उसी प्रकार, देह रूप में अस्तित्व में होने पर भी मुक्त व्यक्ति विदेह (देह-भाव-विकार से पूर्णतः मुक्त) बना रहता है। उसे मौत के प्रति भय का भाव नहीं होता। किसी गोटी के इस प्रकार मर जाने के बाद उसके रूप में मारा हुआ कौन धर्मात्मा पुरुष वैकुण्ठलोक की सीढ़ियाँ चढ़ जाता है ? कौन (दुष्टात्मा) नरकलोकस्वरूप संकट में पड़ जाता है ? उसी प्रकार आत्मज्ञानी की दृष्टि से संसार मिथ्या होता है। ऐसी स्थिति में, हे श्रीराम, तुम भी इस संसार में सुख पूर्वक आत्मानन्द के साथ जीवनस्वरूप क्रीड़ा करो; इस विषय में कोई भय धारण न करो। शतरंज के खेल में राजा, मंत्री, (हाथी घोड़े-ऊँट जैसे) पशु, प्यादे, सेना मात्र काठ हैं, फिर भी खेल के प्रति लोग चाव (रुचि) अनुभव करते हैं। उसी प्रकार, मुक्त मनुष्य के सांसारिक कार्य (मिथ्या) होते हैं। हे रघुनाथ, हे रघुपति, मन की अवस्था (संयोग से) ऐसी ही होती है, इसलिए तुम भी संसार के प्रति ऐसा ही विचार करते हुए आत्मिक आनन्द के साथ जीवन-कार्यस्वरूप क्रीड़ा करते रहो.

श्लोक– इसलिए हे पुत्र, राज्य आदि नश्वर विषयों को तथा देवों के कार्य आदि के भार को ध्यान से देखकर तुम समाधि अवस्था का त्याग करो और सुखी हो जाओ।

जादूगरी से निर्मित आम का पेड़ फलयुक्त हो, उस फल का रस मधुर जान पड़े, तो भी वह सब मूल से ही मिथ्या, आभास होता है। उसी प्रकार समस्त सांसारिक बातें (मधुर-सुन्दर आभासित हों, तो भी) मिथ्या होती हैं। इसे ठीक से जानकर तुम काम-क्रोध आदि विकारों से रहित हो जाओ और लोगों की (यथाविधि) रक्षा करो। बहुरूपिया द्वारा प्रस्तुत राजा और रानी, यथार्थ रूप से अस्तित्व में न होने पर भी, स्वाँग मात्र रचा करते हैं। उसी प्रकार, हे श्रीराम, तुम राजा के रूप में वेदों में बताये अनुसार राजपद के योग्य, लोक-व्यवहार की प्रतिष्ठा के रक्षण हेतु कार्य करो तुम भी अपने अवतारस्वरूप में सांसारिक बातों में सुखी रहो. पुराणों में कहे अनुसार धर्म की प्रतिष्ठा का ध्यान रखते हुए आत्मानन्द के साथ लीला करो (रावण द्वारा कृत) नौ ग्रहों के बन्धन को काट डालो; देवों के बन्धन को छुड़ा दो। राम राज्य की ध्वजा फहरा दो और तीनों लोकों में अपनी आज्ञा को यथाशीघ्र प्रतिष्ठित कर दो। समाधि की इस भ्रमपूर्ण अवस्था का त्याग कर दो। हाथों में धनुष बाण धारण करके 'राम' नाम की ध्वनि फैला दो और त्रिजगत् का उद्धार कर दो। वसिष्ठ द्वारा ऐसा कह देने पर भी राम परब्रह्मानन्द

में तल्लीनता को प्राप्त बने रहे वाल्मीकि ने उनके जाग्रत हो जाने की कथा (इस प्रकार) कही है। वाल्मीकि ने कहा--

श्लोक-- (वसिष्ठ द्वारा) ऐसा कहने पर भी राम समाधि अवस्था में कुछ कम तल्लीन नहीं बने रहे (उनकी समाधि नहीं उतरी)। तब वसिष्ठ ऋषि ने उनकी सुषुम्ना नाड़ी द्वारा उनके हृदय में प्रवेश किया।

वसिष्ठ द्वारा राम को प्रबोधित करना और सबका आनन्दित हो जाना-- इस प्रकार वसिष्ठ द्वारा श्रीरघुनाथ को उपदेश देने पर भी वे (राम) परम आत्मानन्द में मग्न बने रहे। उन्हें इसका ज्ञान नहीं हो रहा था कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं किया जाए। उनकी इस स्थिति को पूर्णतः जानकर फिर स्वयं वसिष्ठ ने श्रीराम की सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करके उनका प्रबोधन किया। वसिष्ठ स्वयं चैतन्यस्वरूप थे। उन्होंने श्रीराम के अन्दर चेतनाशक्ति को पूर्णतः प्रज्वलित कर दिया। उस चेतनाशक्ति ने प्राणों को स्फूर्ति कर डाला, ताकि उनका हृदय सचेत सावधान हो जाए। इसके फल-स्वरूप उनके प्राण सोलहों अवकाशों, भूतों (रिक्त स्थानों) में प्रविष्ट हो गए। उसने समस्त नाड़ियों को प्रज्वलित अर्थात् चैतन्यमय कर दिया। उसके फल-स्वरूप दृढ़ता से मूँदी हुई नयनों की पलकों को उन्होंने धीरे धीरे खोल दिया। उनके दोनों नयन (कमल) अधखुले हो गए; कान शब्दों के (ग्रहण) स्थान हो गए (अर्थात् वे सुनने की क्षमता को प्राप्त हो गए) शरीर सचेत हो गया; फिर भी उसमें जीव-तत्त्व नहीं था। श्रीराम के अपने शरीर में (साधारण मनुष्य का-सा) जीव-तत्त्व बिलकुल नहीं था; क्योंकि वे देह के अस्तित्व में होने पर भी विदेही थे। (वस्तुतः) श्रीराम चैतन्य के साक्षात् रूप थे। जीव-तत्त्व तथा शिव-तत्त्व के द्वारा इस प्रकार अछूते रहते हुए भी श्रीराम स्वयं सचेत हो गए। तब वसिष्ठ ने उनको पूर्ण रूप से जाग्रत कर दिया। वसिष्ठ ने श्रीरघुनाथ को प्रबोधित करके उनकी आँखों को खुलवा दिया, तब विश्वामित्र को अति आनन्द हुआ। देवगण सन्तोष को प्राप्त हो गए। ऋषिवर सुख को प्राप्त हो गए, मुनिवर आनन्दित हो गए। तब श्रीरामचन्द्र के जाग्रत हो जाने पर सबने उनका जय-जयकार किया। (इस अवस्था में) श्रीराम किसी के गुणों या दोषों को नहीं देख सकते थे; कार्य सम्बन्धी विधि-निषेध के लक्षण नहीं देख सकते थे। श्रीराम के जाग्रत हो जाने पर वे कर्म-अकर्म की स्थिति को नहीं देख सकते थे। इस प्रकार श्रीराम स्वयं (समाधि-अवस्था को त्यक्त करके) सचेत हो गए। तब वे शास्त्र आदि के संकेत के अनुसार किये जानेवाले या न किये जानेवाले कर्म के विषय में जो बोले, उसी बात को सुनिए।

श्रीराम द्वारा गुरु की आज्ञा की महिमा का गान-- श्रीराम बोले--

श्लोक-- (हे गुरुदेव) आपके कृपा प्रसाद से मैं न कोई विधि अर्थात् शास्त्र-संगत व्यवहार [illegible] (मानता) हूँ, न कोई निषेध अर्थात् शास्त्र के प्रतिकूल समझता हूँ (मैं विधि-निषेध का विचार नहीं कर रहा हूँ)। फिर भी आपकी आज्ञा ही नित्य कार्यान्वित करने योग्य है।

हे समस्त (सज्जनो), मेरी बात सुनिए। मेरी निश्चित रूप से सुनिर्धारित बात (निश्चय) सुनिए। [illegible] कल्याण हो। आत्मज्ञान से तथा आत्मज्ञानी गुरु से बड़ी कोई भी बात नहीं है।

हे महामुनि वसिष्ठ, सुनिए। आपके कथन (आदेश) का पालन करना ही मेरे लिए प्रताप की [illegible] है मैं इसके अतिरिक्त किसी बात को विधि या निषेध दोनों के रूप में न मन में मानता हूँ न आँखों [illegible] हूँ। हे स्वामी, हे मुनिनाथ, सुनिए। आपके कथन का (गुरु के आदेश का) सामर्थ्य ऐसी है कि

उसके सामने मेरे लिए कर्म, कार्य तथा कर्तव्य का कोई विचार बिलकुल शेष नहीं रहा है (अर्थात् आपकी आज्ञा ही मेरे लिए सब कुछ है)। हे गुरुनाथ, कर्म, कार्य और कर्तव्य सम्बन्धी विचार मेरे लिए सचमुच शेष नहीं रहा, इसलिए आपका कथन मेरे लिए सब प्रकार से अनुल्लंघ्य है (उसे किसी भी प्रकार टाला नहीं जा सकता)। आपका जैसा भी आदेश हो, आप जो भी सहजतया कहते हैं, वह मेरे लिए प्रयत्न पूर्वक, अति विश्वास के साथ, सब प्रकार से करने योग्य है। शिष्य अपने सद्गुरु के आदेश का प्राणों के निकल जाने की स्थिति में भी बिलकुल उल्लंघन नहीं करे। गुरु के आदेश का परिपालन करना ही शिष्य का अपना लक्षण (धर्म) है। वेदों, शास्त्रों, स्मृतियों, पुराणों में शिष्य का यही मुख्य लक्षण बताया गया है, जिस व्यवहार द्वारा गुरु के आदेश का परिपालन किया जाता है, वही व्यवहार विधि युक्त है। गुरु के आदेश का उल्लंघन करना ही (शिष्य की दृष्टि से) दारुण महापाप है। (वस्तुतः) महापाप के लिए (शास्त्रों में) प्रायश्चित्त की अवस्था निर्धारित है। परन्तु गुरु के आदेश की अवज्ञा करना पूर्ण रूप से वज्र (जैसा अभेद्य) पाप है (जिसका किसी भी प्रायश्चित्त से परिहार नहीं होता)। जिसके अँगूठे पर (अर्थात् जिसके हाथों किये हुए) महापाप हैं, उसके उन पापों के करोड़ों गुना अधिक पाप गुरु की अवज्ञा करने पर होते हैं। गुरु की (आज्ञा की) अवज्ञा करना वज्र-से कोटि-कोटि पापों के बराबर होता है। गुरु की अवज्ञा की बात (व्यवहार) शिष्य के अपने धर्म तथा कर्तव्य कर्म का नाश कर देती है। उससे उसे स्पष्ट, ठोस हानि पहुँचती है और उसको अनिवार्य रूप से नरक में गिर जाना पड़ता है। इसलिए सूक्ष्म (गूढ़) बातों के सार का सार भूत यह गुण (महत्त्व) है, समस्त निश्चयों का यह पूर्ण निश्चय है। आप सब सावधान होकर सुनिए कि आत्मज्ञान ही सबसे बड़ा लाभ है। बिना आत्मज्ञान के समस्त चौदह विद्याएँ तथा चौंसठ कलाएँ दुःख स्वरूप हो जाती हैं, वे सब विकृत हीन हो जाती हैं। (वस्तुतः) आत्मज्ञान (की प्राप्ति) में सुख का समारोह-सा होता है। आत्मज्ञान की विद्या समस्त सिद्धान्तों की (चरम) सीमा है। आत्मविद्या ज्ञान ही मुख्य ज्ञान है। जो अन्य चौदह विद्याएँ (विद्याओं के नाम से) विख्यात हैं, वे सब अविद्याएँ ही हैं। उस आत्मज्ञान का सद्गुरु से अधिक बड़ा ज्ञाता कोई नहीं है। किसी देवता में भी उससे अधिक बड़ाई नहीं है। समस्त गुणों से परे स्थित मुख्य गुरु ही है, वही वन्दनीय है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी (अपने अपने) सद्गुरु के सेवक हैं। तीनों लोकों में सद्गुरु से बड़ा, अधिक योग्य कोई भी नहीं है। इस प्रकार कहते-कहते रघुनन्दन श्रीराम (गुरु) प्रेम से उमड़ उठे। उन्होंने पूर्ण भक्तिभाव से श्रीगुरु वसिष्ठ के चरणों का सिर टिकाकर वन्दन किया। श्रीराम द्वारा चरणों का अभिवन्दन करने पर वसिष्ठ ने उनका आलिंगन किया, तो गुरु और शिष्य को पूर्ण तृप्ति हो गयी। (कवि कहता है कि) उसी प्रकार, मैं शिष्य (एकनाथ) श्रीगुरु जनार्दन की शरण में स्थित (एवं तृप्त) हूँ।

उपसंहार– श्रीराम की इस प्रकार की बात सुनकर तथा उनके मुँह से उज्ज्वल गुरु-महिमा (का वर्णन) सुनकर चौदह भुवनों सहित वैकुण्ठलोक में सबने तत्काल तालियाँ बजायीं। उससे सिद्ध और बड़े-बड़े ऋषि सुख को प्राप्त हो गए; देव सुख को प्राप्त हो गए। सबने जयजयकार किया और फूलों की राशियाँ बरसा दीं, दिव्य पुष्पों की बौछार हो गई- वह चारों ओर शोभायमान थी। उसमें श्रीराम, जो चिन्मय मात्र थे, शुद्ध आभूषणों से विभूषित थे, बहुत ही शोभायमान हो गए।

वाल्मीकि द्वारा वसिष्ठ श्रीराम संवाद-श्रवण की फलश्रुति कहना–

श्लोक– हे भरद्वाज (वसिष्ठ) श्रीरामचन्द्र की समस्त कथा मैंने इस प्रकार तुम्हें सुनायी। उसमें बतायी हुई बातों के क्रमगत योग से तुम सुख को प्राप्त हो जाओ।

वाल्मीकि ने स्वयं कहा हे भरद्वाज, तुमने श्रीरघुनाथ राम की आत्मज्ञान प्राप्ति तथा जागृति सम्बन्धी बातें ध्यान से सुनी हैं। तुमने ज्ञान-प्राप्ति सम्बन्धी जो सुना है, उसके क्रमगत मार्ग को अपनाकर तुम भी अपने आपको सम्पूर्ण रूप से सुखी कर लो। भरद्वाज से इस प्रकार कहते हुए वाल्मीकि ऋषि स्वयं सन्तुष्ट हो गए। उन्होंने वसिष्ठ द्वारा कही हुई बात की स्तुति अति उल्लास के साथ की। वसिष्ठ की वह लीला धन्य है, जो समस्त देवों तथा नरों के लिए वन्दनीय है। उस लीला द्वारा उन्होंने शाश्वत मूल्य के वचन स्वरूप रत्नों की माला श्रीराम के गले में पहना दी (श्रीराम को शाश्वत सत्य का उपदेश द्वारा दृढ़ अनुभव करा दिया)। उसके शाश्वत स्वरूप की सुगन्ध को प्राप्त करके कविजन दिन रात भ्रमर हो गये हैं और उसके रस तथा सुगन्ध का सेवन करते हैं। उस उपदेश-स्वरूप रत्नों की संगति को प्राप्त होकर योगी जनों ने योग्यता प्राप्त की। उससे वे दिन-रात सुख सम्पन्न होकर (अहं) देह-भाव को भूल गए गुरु के श्रेष्ठ (उपदेश) वचन की दृष्टि के फल-स्वरूप शिष्य बिना आँखों के उस अलक्ष्य ब्रह्म को देख सकता है। (इस कथा के सन्दर्भ में यह कहना है कि) गुरु वसिष्ठ ने अपने पक्ष में (अपनी दृष्टि से) श्रीराम को जीवित रहते हुए भी मुक्तावस्था में निवास करा दिया (श्रीराम जीवित थे, फिर भी उन्हें 'विदेही', 'जीवन मुक्त' बना दिया)। श्रीराम-वसिष्ठ की यह कहानी मोक्ष मार्ग की सीढ़ी है। मानो इसका श्रवण करने पर मोक्ष आकर जीवन में प्रविष्ट हो जाता है। इसलिए (श्रोतागण) इस कथा को ध्यान से सुन लें।

श्लोक– श्रीराम-वसिष्ठ के इस गुह्य (रहस्यात्मक) संवाद को जो नित्य सुनता है, वह समस्त अवस्थाओं में इसके श्रवण मात्र से मुक्तावस्था के प्रति गमन करता है।

वेदान्त तथा वार्तिकों का जो जीवनस्वरूप है, जो उपनिषदों का पूर्ण सार स्वरूप है, जो ओम्-कार की अर्द्ध मात्रा का लक्षण-स्वरूप है, वही यह 'योग वासिष्ठ रामायण' के रूप में प्रस्तुत गुह्य ज्ञान है। श्रीराम-वसिष्ठ के संवाद के रूप में जो गुह्य ज्ञान प्रस्तुत किया गया है, उसका ध्यान से जो नित्य आदरपूर्वक श्रवण करता है, वह जीवन की समस्त अवस्थाओं में पूर्ण रूप से मुक्त बना रहता है। जो श्रीराम-वसिष्ठ-संवाद-स्वरूप इस योग-वासिष्ठ रामायण का नित्य श्रवण किया करते हैं, समझिए कि वे संसार में रहते-व्यवहार करते रहते भी आकाश जैसे पूर्णतः अलिप्त (सांसारिक बातों से अप्रभावित) रहते हैं। सांसारिक कर्मों (को करते रहने पर भी उन) के बन्धन उन्हें आबद्ध नहीं कर सकते वसिष्ठ ऋषि की गुरु-पद की दृष्टि से यह ख्याति है कि श्रीराम से उन्होंने जो कहा (योगवासिष्ठ रामायण), उसका जो नित्य श्रवण करता रहता है, उसका जागृति, स्वप्न तथा सुषुप्ति नामक तीनों अवस्थाओं में मुक्ति नित्य वरण करती है। इस योगवासिष्ठ प्रकरण का जाग्रत अवस्था में श्रवण करें; उससे ही (श्रोताओं को) सुषुप्ति अवस्था में सन्तोष प्राप्त हो जाता है। वसिष्ठ ऋषि द्वारा इस 'योग-वासिष्ठ' ग्रन्थ में कथित यह ज्ञान अथाह है।

कवि-कृत उपसंहार– यह योगवासिष्ठ ग्रन्थ एक शत सहस्र अर्थात् एक लाख श्लोकों से युक्त है। उनमें से (चुने हुए) सतहत्तर श्लोकों (छन्दों) के ज्ञानार्थ को स्पष्ट करनेवाली यह टीका श्रीजनार्दन स्वामी के शिष्य (रचनाकार) एकनाथ ने प्रस्तुत की है। श्लोक (छन्द) के अन्वय (क्रमगत) रचना से उसका यथार्थ अर्थ प्रस्तुत किया गया है। वस्तुतः उसके कर्त्ता सामर्थ्यशील गुरु जनार्दनस्वरूप परब्रह्म हैं उस ग्रन्थ के अन्दर जो अर्थ (भाव, विचार) है, उसे श्रीजनार्दन स्वामी ने ही स्पष्ट कर दिया है यह कथा उस योग-वासिष्ठ ग्रन्थ के अर्थ को उसमें समाविष्ट करने के कारण अर्थ अर्थात् महत्त्व

को प्राप्त हुई है श्रीराम के नाम से वह विस्तार को प्राप्त होते हुए पल्लवित हुई है। वह मानो मोक्षमार्ग में धरोहर हो चुकी है। यहाँ पर मैं इस कथा के अन्तर्गत प्रस्तुत 'ज्ञानकाण्ड' की समाप्ति कर रहा हूँ। इसके अन्तर्गत पदों का लालित्य तथा प्रमेय (सिद्धान्त) उथले गहरे हैं (पदों का) लालित्य उथला है, परन्तु सिद्धान्त अथाह गहरे हैं। (वस्तुतः) गुरु जनार्दन ही अपनी मति से मुझे चला रहे हैं। इस कविता-रचना में जो गहन बात आयी है, उसे श्रीगुरु जनार्दन स्वामी ही अविकल रूप से (मेरे द्वारा) कहलवा रहे हैं। रचयिता एकनाथ श्रीगुरु जनार्दन की शरण में स्थित हैं। वसिष्ठ ऋषि द्वारा श्रीराम को उपदेश देने हेतु जो ज्ञान निरूपण किया गया था, उसका यहाँ पर प्रस्तुत कथन, समझिए कि उन्हीं की कृपा से, पूर्णतः सम्पूर्ण हो गया।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ कृत 'भावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत बालकाण्ड का यह 'श्रीवसिष्ठ-राम-सवाद' नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय १२

[ताड़का-वध]

पृष्ठभूमि-- इस रामायण के अन्दर प्रस्तुत आध्यात्मिक कथा को जो श्रोता आदर से सुनता हो, वह अपने पापों तथा पुण्यों का विलय कर लेगा और वह स्वाभाविक रूप से नित्य मुक्त सिद्ध हो जाएगा। इस कथा के श्रवण से वह नित्य-मुक्त हो जाएगा, यह इस जगत् में कोई आश्चर्य नहीं है। श्रीरघुनाथ की इस कथा के अक्षरों में (अध्यात्म सम्बन्धी) अक्षर अर्थात् नित्य सत्य, शाश्वत अर्थ प्रस्तुत है। श्रीरघुनाथ राम के इस चरित्र का पठन करने पर उसके पाठक, वक्ता तथा उसके श्रोता नित्य पावन हो जाते हैं। जो उसका श्रवण करते हैं, उनके कान धन्य हैं; उसका जो वक्ता (कथा वाचक) है, उसका मुख धन्य है। वे मुनि वाल्मीकि धन्य हैं, धन्य हैं, जिनकी वाणी ने अर्थात् जिन्होंने अपने मुख से श्रीराम की कथा कही। यह कथा त्रिभुवन को पावन करनेवाली है, सांसारिक बन्धनों से मुक्त करनेवाली है, इसलिए सचमुच चरितार्थ (सफलता, सार्थकता को प्राप्त) है एक कुटनी को 'राम' नाम के दो अक्षरों के बल पर बड़े-बड़े देवों द्वारा वन्दना की जाती है। इस राम-कथा की ऐसी अथाह बड़ाई है; तो उसकी सराहना कौन करे ? अस्तु ! यह है पूर्व-कथित कथा की बात (पृष्ठभूमि)। (यह कहा जा चुका है) श्रीराम को समाधि लगी; तब स्वयं गुरु वसिष्ठ ने उन्हें (उपदेश द्वारा) जागृत कर दिया। उस सम्बन्ध में कथा विधान (कथा में प्रस्तुत घटना-क्रम) सुन लीजिए। श्रीराम सचेत हो गए। फिर भी वे सांसारिक तथा पारमार्थिक बातों के विषय में समान, एक-से दृष्टिकोण का भाव रखते थे। (वस्तुतः) यह तो वसिष्ठ के व्यक्तित्व का पूर्णत्व (चरम बड़प्पन) था, जो श्रीराम में पूर्ण रूप से विम्बित हुआ। उस अवस्था में श्रीराम समस्त इन्द्रियों के विषयों में अक्षय तृप्ति एवं सन्तोष को प्राप्त हो गए थे। अतः समाधि का उतर जाना मिथ्या ही कहना चाहिए। वे कर्म तथा क्रिया (व्यवहार) में पूर्ण ब्रह्ममय हो गए-- इस प्रकार (समाधि के उतर जाने पर) श्रीराम (सच्चे अर्थों में) सचेत हो गए।

श्रीराम के सचेत होने पर सबका आनन्दित हो जाना-- श्रीराम को सचेत हुए देखकर विश्वामित्र को अथाह आनन्द हो गया, देवगणों ने सुख को प्राप्त होकर सम्पूर्ण (अर्थात् अत्यधिक)

पुष्प वृष्टि की देवों ने दुन्दुभियाँ तथा भेरियाँ बजा दीं। राज द्वार पर नगाड़े बजाये जाने लगे। जय जयकार की ध्वनि से गगन गूंज उठा। देवों और नरों (के हृदय) में आह्लाद पूर्ण से छा गया। (अब यह कहना है) विश्वामित्र के यज्ञ (की रक्षा) के लिए स्वयं रघुनाथ राम जाएँगे। इसके लिए वसिष्ठ के द्वारा शुभ मुहूर्त खोजने पर, राजा दशरथ ने श्रीराम (लक्ष्मण) का प्रयाण करा दिया (उन्हें विदा कर दिया)। राजा ने पुण्याहवचन विधि सम्पन्न की। उन्होंने अपनी समस्त सेना श्रीराम के साथ भेज देना चाहा परन्तु वसिष्ठ ने उन्हें ऐसा करने से रोककर श्रीराम और लक्ष्मण को रथ में आरूढ़ करा दिया।

राजा दशरथ का विश्वामित्र के प्रति अनुरोध– राजा दशरथ ने विश्वामित्र से कहा– 'मैंने अपनी आस्था आपके हाथों में रख दी है। फिर आप कृपा की मूर्ति हैं, आप जिस प्रकार जानते (चाहते) हैं, उसी रीति से उसकी रक्षा कीजिए। तो वसिष्ठ ने विश्वामित्र से कहा– 'सूर्यवंश में आपको गुरु-पद प्राप्त हो जाए। इसलिए आप श्रीराम को बीज मंत्र-सहित धनुर्विद्या का उपदेश अर्थात् शिक्षा दीजिए'। वसिष्ठ की यह बात सुनकर विश्वामित्र ने उनको नमस्कार किया (और कहा)- आप स्वयं अन्तरात्मा के ज्ञाता (अन्तर्यामी) हैं। मेरे मन का भाव आप पूर्ण रूप से जानते हैं। मेरे मन के विचार को जानते हुए भी आप यह कह रहे हैं कि श्रीराम को शिष्य बना लिया जाए। (आश्चर्य है !) आपसे अधिक बड़ा ज्ञाता कोई भी बिल्कुल नहीं है। हे वसिष्ठ, यदि आप यह कहते हैं कि मेरे अपने सच्छिष्य को कोई अन्य उपदेश न दें, तो यह आपको शोभा देता (फिर भी आप उदारता के साथ ऐसा सुझा रहे हैं)। इस बात में अन्य ऋषियों को बड़ा अहंकार होता है (जिससे वे नहीं चाहते कि उनके अपने शिष्य को कोई दूसरा उपदेश दे)'।

श्रीराम को धनुर्विद्या सिखाना– वसिष्ठ ने विश्वामित्र से कहा हम और आप में 'मैं' और 'तू' का विचार (अन्तर) नहीं है (हम-आप एक ही हैं)। इसलिए आप निश्चय ही श्रीराम के गुरु पद पर प्रतिष्ठित गुरु हो जाएँ। उन दोनों मुनियों की बात को सुनकर, बात के अर्थ को समझकर श्रीराम को आनन्द हुआ। उन दोनों मुनियों की एकता को देखकर रघुनाथ राम आनन्द के साथ रथ पर आरूढ़ हो गए, जैसे जीव के साथ प्राण होता है, वैसे ही राम के साथ लक्ष्मण रहते थे। धनुष बाण और तरकस सहित वे भी रथ पर आरूढ़ हो गये।

श्रीराम के प्रयाण के समय घटित शुभ शकुन– श्रीराम के प्रयाण करने पर दशरथ ने स्वयं शुभ शकुन देखे। उन्होंने देखा कि (दिखायी दिया कि उनसे) दो पूर्ण-प्रसन्न-वदन ब्राह्मण (हाथों में) फल लिये हुए मिले। आगे चलकर (तदनन्तर) पाँच नारियाँ (पानी से) पूर्ण भरे कलश लिये हुए तथा आभूषणों से विभूषित मिल गईं। फिर सिर पर दही, दूध तथा मक्खन के पात्र लिये हुए आनेवाली ग्वालिनें (गोपियाँ) मिलीं। आगे एक ऐसी स्त्री मिली, जिसके हाथ में अमृत-से अद्भुत मधुर फल थे, जल भरी गगरी थी, दूध-भात का वायन भी था और जो एक लड़के का हाथ थामे हुए थी और गोद में (कमर पर) उसकी दुलहन को बैठाये हुए थी। कौए दायीं ओर चले गये; चाम (चाहा नामक नीले रंग के) पक्षी बायीं ओर चले गये; सामने मोतियों के गुच्छे मुँह (चोंच) में लिये हुए राजहंस पक्षी मिले। श्यामवर्ण के हिरन दक्षिण दिशा में गये; बायीं ओर से हिरनी चली गयी। भरद्वाज पक्षी ने बायीं ओर उड़ान भरी; नेवला भी स्वयं बायीं ओर से सरक गया।

वसिष्ठ द्वारा शकुनों का स्पष्टीकरण– दशरथ द्वारा (श्रीराम-लक्ष्मण को) विदा कर देने पर (लौटते समय) मार्ग में ब्रह्म-स्वरूप वसिष्ठ ने स्वयं श्रीराम को हुए शकुनों का स्पष्टीकरण (उन्हें) इस

प्रकार सुनाया। समझिए कि सबसे पहले ब्राह्मण के मिलने पर वह (शकुन का देखनेवाला) व्यक्ति ब्रह्मा की सृष्टि में सम्पूर्ण रूप से विजेता हो जाता है और सुर तथा असुरगण उसका वन्दन करते हैं। जब पूर्ण कलश (धारण की हुई नारियाँ) मिलती हैं, तब वह अपने मन की आशा-आकांक्षाओं में नित्य पूर्णत्व सिद्धि को प्राप्त हो जाता है। दही, दूध तथा मक्खन के मिलने पर (दिखायी देने पर) उसे पूर्ण ऐश्वर्य की प्राप्ति हो जाती है, कौर द्वारा उसकी दाहिनी ओर गमन करने पर वह सब स्थानों में सफलता (तथा कीर्ति) को प्राप्त हो जाता है। चाष पक्षी के बायीं ओर जाने से, उसके शत्रु पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। देखिए, मुँह में मोतियों का गुच्छा लिये हुए यदि सामने हंस मिलता है, तो वह व्यक्ति सब स्थानों में सुख को प्राप्त हो जाता है; सपने में भी वह दुःख को नहीं देखता। हिरनों के झुण्ड द्वारा दाहिनी ओर गमन करने पर उसे दुर्लभ लाभ पूर्णतः प्राप्त हो जाता है और जब हिरनी बायीं ओर गमन करती है, तो उस व्यक्ति को नक्षत्रवधू स्वयं वरमाला पहना देती है। बायीं ओर नेवले के जाने पर, वह व्यक्ति विकट युद्ध में विजयी हो जाता है (यह शकुन सूचित करता है कि) वह शीघ्र गति से शत्रु का संहार करेगा, इससे उसका यश (कीर्ति) त्रिभुवन में नहीं समाएगा। भरद्वाज पक्षी द्वारा बायीं ओर गमन करने पर वह व्यक्ति अपने कार्य को सफल कर लेता है। वह अपने वैरियों को लज्जा को प्राप्त कराते हुए बड़े आनन्द के साथ अपना कृतित्व (प्रताप) बड़ी शान से प्रदर्शित करता है। वसिष्ठ द्वारा शकुनों का इस प्रकार फल कहने पर राजा दशरथ स्वयं सन्तुष्ट हो गए। उनके मन में यह विश्वास दृढ़ हो गया कि रघुपति विजय को प्राप्त हो जाएँगे सरयू नदी के तट पर छः कोस दूर स्थित जहाँ कामाश्रम था, वहाँ तक विश्वामित्र (दोनों राज) कुमारों सहित रथ को अद्भुत गति से ले गये। उस आश्रम की महत्ता अत्यधिक थी।

कामाश्रम में निवास– कामाश्रम में यदि श्रीराम निवास करें, तो उस (के फल स्वरूप समस्त कामनाएँ सिद्धि को प्राप्त हो जाएँगी- विश्वामित्र की यह अपनी चातुर्ययुक्त धारणा थी। इसलिए अपने कार्य की सिद्धि के उद्देश्य से उन्होंने श्रीराम (-लक्ष्मण) को वहाँ ठहराया। श्रीराम और लक्ष्मण अपने-अपने तेज से वहाँ विराजमान (शोभायमान) थे। उनकी अँगुलियों में अगुश्ताने थे। वे (दोनों) हाथों में धनुष-बाण लेकर सुसज्जित थे। वे काक-पक्ष तथा चुटिया के धारी थे। वे कवच तथा खड्ग धारण किये हुए महावीर थे। जिस प्रकार अग्निदेव प्रखर तेजस्वी होता है, उसी प्रकार वे (वीरता और तेज से) दुर्धर थे उनके उस स्वरूप को देखकर विश्वामित्र को असीम सुख हो गया। श्रीराम तो लावण्य के (साक्षात्) दीप थे; चित्स्वरूप परमात्मा, अतएव सुखकर्ता थे। विश्वामित्र ऋषि ने उनसे कहा 'आज की रात यहाँ रहें'। तो राम ने कहा– 'आपकी आज्ञा का निश्चय ही पालन होगा'। फिर वे सुख के साथ (वहाँ) रह गए।

विश्वामित्र से राम को सिद्ध मंत्र की प्राप्ति हो जाना– विश्वामित्र की संगति में (उनके निकट रहते हुए) श्रीराम लक्ष्मण ने सुख के साथ सोये हुए रात व्यतीत की। फिर सूर्य के उदित हो जाने पर विश्वामित्र ऋषि ने श्रीराम को जगा लिया। तब उन्होंने यथाविधि स्नान करके प्रातःसन्ध्या का पाठ किया, गायत्री मंत्र का बार बार जाप किया और विश्वामित्र को नमस्कार किया– उन्होंने आत्मानन्दपूर्वक उनके चरणों का वन्दन किया। श्रीराम की यह विनम्रता देखकर विश्वामित्र के चित्त को प्रसन्नता हुई। श्रीरघुनाथ को गले लगाकर वे कृपालु ऋषि कृपाभाव से बोले 'हे तात रघुनाथ, मैं अब तुम्हें सिद्धिप्रद मंत्र प्रदान करूँगा'। तो उन दोनों ने उनके चरणों पर मत्था टेका। वे मंत्र प्राप्ति के लिए अवधान से युक्त हो गए। (ऋषि बोले)- 'मंत्र का अर्थ (मन के अन्दर) दृढ़ता के साथ जम जाए तो उसके धारक के मन में राक्षसों से भय नहीं पैदा होता। उसे थकान बिल्कुल बाधा नहीं पहुँचा सकती। वह (जागृति, सुषुप्ति तथा

स्वप्न) तीनों अवस्थाओं में सावधान बना रहता है। इस मंत्र के बड़े बल (प्रभाव) से रणागण में करोड़ों राक्षसों को मार डालने के लिए आधी घड़ी तक नहीं लगती। मैं तुम्हें वही मंत्र युक्ति पूर्वक बता (सिखा) दूँगा। (जिसके प्रभाव से) भूख, प्यास, नींद, सुस्ती तथा शरीर की कृशता बाधा नहीं पहुँचा सकती, उस मंत्र का रहस्य मैं तुम्हें अवश्य बता दूँगा। अपने उद्देश्य की पूर्ति कर लेने के लिए मैंने परम उग्र तपस्या से जो युक्तियाँ (कौशल) प्राप्त की हैं, मैं तुम्हें स्पष्ट रूप से दे दूँगा (सिखाऊँ दूँगा)'। ऐसा कहते हुए उन्होंने श्रीराम को बड़े प्यार से गले लगा लिया। श्रीराम और लक्ष्मण दोनों ने अपने प्रति विश्वामित्र की इस प्रकार सम्पूर्ण कृपा हुई देखकर उनके चरण दृढ़ता पूर्वक पकड़ लिये। फिर वे सद्गुरु (विश्वामित्र) के कथन (शिक्षा-वचन) के अर्थ को ग्रहण करने के लिए सावधान हो गए।

मंत्र-सिद्धि का प्रत्यक्ष अनुभव– (विश्वामित्र द्वारा) कहे गये मंत्र के अक्षर कानों में पहुँचते ही श्रीराम के अन्तःकरण के अन्दर मंत्र पूर्ण रूप से सिद्धि को प्राप्त हो गया। उस मंत्र की शक्ति (किसी दासी सी) उनके पाँव लगी। श्रीराम (मानो) मंत्र शिरोमणि (मंत्र-वेत्ताओं में सर्वश्रेष्ठ) हो गए। 'श्रीराम' नाम के अन्दर ही मंत्र के अक्षर (विद्यमान) हैं। श्रीराम स्वयं क्षरता (क्षयावस्था) और अक्षरता (अक्षयता, शाश्वतता) के परे हैं। श्रीराम स्वयं ॐकार हैं; श्रीराम स्वयं मंत्र के सार तत्त्व हैं। श्रीराम (स्वयं) किसी भी मंत्र की (मूर्तिमान) शक्ति हैं। श्रीराम मंत्र की मंत्र (शक्ति) मूर्ति हैं। उनके चित्त में मंत्र का अर्थ जम गया। इस आश्चर्य को कितना (कहाँ तक) बता दें ? मंत्र के अन्दर उसके अपने अर्थ के बीज के रूप में जो कुछ होता है, वही स्वाभाविक रूप में स्वयं श्रीराम ही तो हैं। उन श्रीराम ने सद्गुरु विश्वामित्र के चरणों के धूलि-कणों की वन्दना करके शिष्य पद की रीति को सेवक-भाव-रूप में (प्रदर्शित कर) दिखा दिया। सद्गुरु की स्वयं सेवा ही समस्त देवों (को वश में कर लेने) के लिए बीजस्वरूप है (मूलाधार है)। वह श्रीराम को विदित हुआ था इसलिए उन्होंने (स्वयं को) गुरु की आज्ञा (पालन) के लिए बेच दिया (समर्पित कर लिया)। श्रीराम और लक्ष्मण दोनों में मंत्र का अर्थ (रहस्य) पूर्ण रूप से जम गया। इसका लक्षण विश्वामित्र को विदित हुआ, तो दोनों की पीठ को अपने हाथ से थपथपाते हुए वे स्वयं सुख-सम्पन्न हो गए।

गंगा-सरयू-संगम के पास एक रात निवास करके दूसरे दिन नदी को पार करना– स्वयं विश्वामित्र (तदनन्तर) रघुनाथ श्रीराम से बोले– 'अब' यहाँ से प्रयाण करें'। तो श्रीराम ने कहा– 'आपकी आज्ञा प्रमाण-स्वरूप है'। फिर वे तीनों जने रथ में विराजमान हो गए। विश्वामित्र द्वारा अनेकानेक आश्चर्यकारी कथाओं का कथन तथा श्रीराम लक्ष्मण द्वारा उनका श्रवण करते-करते वे रास्ता तय करते गए। वे सरयू नदी के मनोरम तट पर आ गये। आगे चलकर उन्होंने गंगा और सरयू नदी के अतिउत्तम (कीर्त्तिवाले) संगम को देखा। (विश्वामित्र ने कहा) 'यह सरयू नदी मानसरोवर से निकली; इसलिए यह सरयू नाम को प्राप्त हुई। अयोध्या नगरी के पास से बहते हुए सरयू गंगा में मिलने के लिए (यहाँ) आ गयी'। उन्होंने (उन नदियों के) संगम के दर्शन करके उसे दण्डवत् नमस्कार किया। तदनन्तर उसमें स्नान करके मंत्र का पठन करते हुए जाप किया; (देवता का) ध्यान धारण किया। विश्वामित्र ने श्रीराम को उस संगम के पास एक रात ठहरा लिया और यह तय किया कि प्रातःकाल होने पर नदी के दूसरे तट पर चले जाएँ। फिर, समझ लीजिए, सवेरे उठकर विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण को नाव में बैठा लिया और उन्हें व स्वयं दूसरे तट के प्रति ले गए। उस पार जाने पर उन सबने स्नान, सन्ध्या, जाप, भगवद्ध्यान जैसी विधियाँ सम्पन्न कीं। तब उस तट पर स्थित वन के विपरीत रूप को स्वयं रघुनन्दन ने देखा।

ताड़का राक्षसी के भयकारी उपद्रव का स्वरूप और श्रीराम की तत्सम्बन्धी जिज्ञासा– (वहाँ) उग्र स्वरूप के पक्षियों को उकताने (सहमाने) वाली ध्वनियाँ सुनायी दे रही थीं। क्रूर हिंस्र पशुओं की भीड़ थी। उल्लुओं का घुघुत्कार चल रहा था। सियार भयानक रूप में बोल रहे थे। मादा भौंरों और झींगुरों की झनझनाहट उस वन के भीतर गूँज रही थी। (यह देखकर) श्रीराम ने पूछा कि यह वन (इस प्रकार) भीषण क्यों है। तब प्रत्युत्तर के रूप में विश्वामित्र ने आरम्भ से यह बात कही। (वे बोले) 'यह वन भयानक आभासित हो रहा है। यहाँ ताड़का का भवन है। वह राक्षसी अति भयावह है। वह प्राणियों के झुण्ड (के झुण्ड) का भक्षण करती है। उसी के कारण यह वन उजाड़ हो गया है। उसने मालव, कौशिक कारूप नामक देशों को क्षणार्द्ध में उजाड़ कर डाला। ऐसी है वह अति दुर्धर्ष, कर्कश, राक्षसी। वह दसों दिशाओं के मार्गों को रोके हुए रहती है। इसलिए कोई भी मनुष्य उसके भय से (इस स्थान पर) नहीं रह सकता। (वस्तुत:) हम लोग उस मार्ग से कदापि न जाएँ। यहाँ से आधे योजन अन्तर पर ताड़का का भवन है। वह मार्ग में (हमारे) प्राणों का हरण कर डालेगी। इसलिए हम वहाँ से बिलकुल न जाएँ'। (यह सुनकर) श्रीराम बोले– 'वह ऐसी कैसी (भयावह) है ? वह कहाँ से आयी है ? वह किसकी (स्त्री) है ? उसमें इतनी शक्ति कैसे आ गई है ?' तब विश्वामित्र ऋषि ने उसकी कथा (इस प्रकार) कही–

ताड़का कथा– (पूर्वकाल में) सुकेतु नामक एक पवित्र (आचरण वाला) यक्ष था। उसके कोई सन्तान नहीं थी। तब उसने स्वयं तप का अनुष्ठान करके ब्रह्मा को प्रसन्न कर लिया। फिर उसने उससे पुत्र सन्तान की याचना की, परन्तु समझ लो, ब्रह्मा ने उसे एक कन्या रत्न प्रदान किया। जान लो कि वह कन्या कुछ थोड़ी शक्ति से युक्त नहीं थी, अर्थात् अत्यधिक शक्तिशालिनी थी। यही उसके स्वाभाविक भयावह कार्य का कारण है। (ब्रह्मा ने उस यक्ष से कहा-)' तुम्हारे कोई पुत्र-सन्तान नहीं होगी। परन्तु सहस्रों हाथियों के बल से युक्त एक कन्या निश्चय ही उत्पन्न होगी'। ब्रह्मा इस प्रकार वरदान की बात कर चुके। यह ताड़का (ब्रह्मा के वरदान के फल-स्वरूप सुकेतु यक्ष को प्राप्त) वह कन्या-रत्न है। सुन्द और उपसुन्द नामक दो जने बन्धु थे। उनमें से बड़े बन्धु, अर्थात् सुन्द से (सुकेतु ने) ताड़का का ब्याह बड़े सुन्दर समारोह के साथ करा दिया। सुन्द से ताड़का के जो गर्भ उत्पन्न हुआ, उससे (ताड़का के) मारीच और सुबाहु नामक दो पुत्र, एक दूसरे के बन्धु जन्म को प्राप्त हो गए। उन दोनों बच्चों के जन्म के अशुभ फल-स्वरूप पाश पिता के नाश का कारण सिद्ध हुआ। अत: उस पिता की बुद्धि उस समय मौत से मिलने की दृष्टि से बलवती हो गई। वैसे तो सुन्द और उपसुन्द महावीर थे, (परम प्रतापी) अति दुर्धर्ष योद्धा थे। उन्होंने देवों को पराजित करके, उनके (राज्य आदि के) अधिकार स्वयं ग्रहण किये।

तिलोत्तमा-कथा– उन (दोनों) का वध करने के लिए विधाता ने एक विचित्र युक्ति का आयोजन किया। (उसके फल-स्वरूप) उन दोनों बन्धुओं ने तिलोत्तमा नामक एक सुन्दर कन्या को देखा। उस सुन्दरी को देखते ही वे दोनों झट से उठकर चले। उसका वरण करने के लिए वे अति उत्कण्ठित हो उठे। वे अति कामाधीन होकर उसे प्राप्त करने की अभिलाषा से युक्त हो गए। तब छोटे भाई उपसुन्द ने बड़े से कहा 'तुम इसे अपनी अपनी भाभी समझ लो'। तो उसने (प्रत्युत्तर में) कहा- तुम इसे अपने बड़े भाई की पत्नी-सी मान लो'। (इस पर सुन्द से उपसुन्द बोला-) 'ज्येष्ठ बन्धु कनिष्ठ बन्धु से लाड़-प्यार करे, उसके आनन्द का ध्यान रखे। इसलिए, हे कृपालु (बन्धु), कृपा करके तुम इस सलोनी को अपनी भाभी समझ लो'। (तब सुन्द ने उत्तर में कहा) 'ज्येष्ठ बन्धु की महत्ता को कनिष्ठ शिरोधार्य

समझो। इसलिए, तुम यह निश्चयपूर्वक मान लो कि यह सचमुच ज्येष्ठ बन्धु अर्थात् मेरी पत्नी होगी' (उपसुन्द बोला) 'छोटा भाई जिसे पत्नी के रूप में पाने की इच्छा करे, उसे, उस भाभी को तुम कन्या मान लो'। (तो सुन्द ने कहा-) 'बड़े भाई की स्त्री तुम्हारे लिए माता (जैसी) ही है सचमुच इसे तुम उसी रूप में मान लो'। इस प्रकार विवाद करते-करते वे दोनों दुर्दम्य क्रोध को प्राप्त हुए। फिर दोनों अपने अपने हाथ में गदा लेकर एक दूसरे से निर्णयात्मक युद्ध करने लगे। वे दोनों युद्ध में अति दुर्धर्ष थे; दोनों गदा-युद्ध-कला में अति प्रवीण थे। उन दोनों ने अति विकट संघर्ष आरम्भ किया। वे एक दूसरे को रोककर अपने-अपने वश नहीं कर पा रहे थे। (अन्त में) छोटे भाई उपसुन्द ने गदा युद्ध में (चतुराई से) बड़े का नाश करने के लिए उसपर आघात किया, त्यों ही बड़े ने प्रक्षुब्ध होकर छोटे पर गदा पटक दी और इस प्रकार बड़े ने छोटे का नाश कर डाला।

स्त्री-सम्बन्धी कामासक्ति का परिणाम– (देखिए, एक स्त्री सम्बन्धी कामासक्ति के फल-स्वरूप किस प्रकार) भाई-भाई के परस्पर शस्त्राघात से ये दोनों जने भूमिपर (मरकर) गिर गए। देखिए, स्त्री सम्बन्धी अभिलाषा का यह आश्चर्य (कारी फल) है कि उस (स्त्री) के दृष्टि-पात से ही उन दोनों का देहान्त हो गया (यहाँ तो बात ऐसी है कि उन दोनों में से किसी ने भी) उस स्त्री से कामभाव से न एकान्त में सम्भोग किया, न उस स्त्री से कोई बात की, न ही उस स्त्री को हाथ लगाया; फिर भी उस स्त्री के दृष्टि-पात से ही ऐसी बुरी घटना घट गयी। इसलिए स्त्रियों से (कामासक्ति से) भेंट न हो; स्त्रियों से बात तक न करें। स्त्रियों को (ऐसी) आँखों से देखते ही तत्काल आत्मनाश हो जाता है, वे दोनों एक दूसरे के सगे बन्धु थे। उनके द्वारा अपनी-अपनी आँखों से एक स्त्री को देखते ही वे एक दूसरे के आघात से रणभूमि में मरकर सो गए। स्त्री के दर्शन के फलस्वरूप यह बुरी घटना हो गई। स्त्री के दर्शन से देह का नाश हो जाता है; स्त्री के स्पर्श से नरक रूपी भँवर में (फँसकर) गिरना पड़ता है। अतः स्त्रियों की संगति पुरुषों के लिए अति हानि स्वरूप सिद्ध हो जाती है। (राम) कथा के कथन में सुन्द-उपसुन्द की बात मैंने कही इसमें तो कथा से (कुछ पूर्वापर) सम्बन्ध लगा रहा। इसलिए मैंने उसकी व्याख्या की। श्रोता (कृपा करके) इसे अप्रस्तुत विवेचना (जल्पना) न कहें। इसके द्वारा मैंने परम अर्थ (महत्ता) की यह बात कही है कि स्त्रियों की सगंति के कारण अति हानि हो जाती है। अब कथा की आगे की बात कहता हूँ (हे श्रोताओ, कृपा करके) आदर पूर्वक उस बात का श्रवण करें, (सुन्द तथा ताड़का के) मारीच और सुबाहु नामक जो पुत्र थे, उन्हें मार डालने की ताक में इन्द्र था। इसलिए उसके भय से आकुल-व्याकुल होकर ताड़का इस वन में आ गई।

यक्षिणी ताड़का राक्षसी क्यों हो गयी ?– (यह सुनकर) फिर श्रीराम बोले– '(हे ऋषि!) उसे राक्षसत्व क्यों प्राप्त हो गया ?' इसपर विश्वामित्र ऋषि ने तत्सम्बन्धी कथा का सम्पूर्ण निरूपण किया। "उस वन में अगस्त्य ऋषि के आश्रम के पास ताड़का बस गयी। फिर वह दोनों पुत्रों को लेकर विदेशों में अर्थात् अन्यान्य स्थानों में विचरण किया करती थी। (कहा जा चुका है कि) वह दस सहस्र हाथियों के बल से युक्त थी। उस बल के कारण उसमें उन्मत्तता आई थी। वह दुर्मति (ताड़का) उस बल से (प्रेरित होकर) अगस्त्य ऋषि को कष्ट पहुँचाने लगी। समझ लो कि अपने पुत्रों को साथ में लेकर, मुँह को विकराल बनाये हुए उसके अगस्त्य को कष्ट पहुँचाने लगते ही, उन मुनि ने उसे दारुण अभिशाप दिया (वे बोले) 'मुँह को विकराल बनाये जब कि तुम मुझे कष्ट पहुँचाने के लिए आयी हो, तो तुम अपने पुत्रों सहित विकराल प्रचण्ड राक्षसीय देह को प्राप्त हो जाओगी'। वही ताड़का अगस्त्य ऋषि के

शाप से दग्ध (फल को प्राप्त होकर) राक्षसी हो गई है और प्राणिगणों की विरोधिनी बनकर उन्हें बाधा पहुँचाया करती है। उसी ने यह मार्ग रोक रखा है। जिस मार्ग में वह राक्षसी स्थित हो, उस मार्ग में हमें जाना नहीं चाहिए (हम जा नहीं सकते)''। ऋषि विश्वामित्र की यह बात सुनते ही श्रीराम को हँसी आयी। (वे बोले) 'ताड़का- एक स्त्री से डरकर यदि हम पलायन करें, तो आपके यज्ञ की रक्षा हम कैसे कर पाएँगे ? हे स्वामीनाथ, आप यदि आज्ञा दें, तो मैं अब उस राक्षसी का वध कर डालूँगा'. (श्रीराम की) ऐसी बात सुनकर विश्वामित्र ने सचमुच आनन्द-पूर्वक उनका आलिंगन किया। (फिर वे बोले-) 'तुम्हारे पुरुषार्थ की परख करने के लिए ही मैंने मार्ग-सम्बन्धी भय की बात सूचित कर दी थी। पर अब हे रघुनाथ, तुम निर्भय सिद्ध हुए। तुम निर्भयता से युक्त अपने वंश के सच्चे योद्धा सिद्ध हो गए हो, हे रघुनाथ, उसे मार डाला जाए। शास्त्र का अर्थ (संकेत, आज्ञा) है कि स्त्री का वध न करें; परन्तु दुष्ट का दमन करने की दृष्टि से यह शास्त्र वचन व्यर्थ है। इसलिए, इसी को सच्चे अर्थों में मार डालो'। (इस पर राम बोले) 'हे स्वामी, गुरु की अवज्ञा न करें- यह समस्त शास्त्रों की प्रतिज्ञा (आज्ञा) है। गुरु वसिष्ठ तथा पिता राजा दशरथ की भी यह आज्ञा है कि आप (के आदेश) की अवज्ञा न करें। समस्त शास्त्रों के अर्थ सिद्धान्त स्वयं गुरु के चरणों की शरण में आ जाते हैं (गुरु की शरण में जाने का आदेश देते हैं)। गुरु की महिमा अपार है। उसे कौन अन्यथा (निरर्थक, व्यर्थ) सिद्ध कर सकता है ?'

ताड़का का वध– रघुनन्दन ने ऐसा कहते हुए सद्गुरु विश्वामित्र के चरणों को नमस्कार किया और समझिए कि धनुष सुसज्जित करके दृढ़ता के साथ पैंतरा ग्रहण कर लिया। उस समय श्रीराम के स्वरूप को देखकर काल-देवता तक काँप उठा (होगा)। (वस्तुतः) श्रीराम युद्ध के लिए आवश्यक वीर्य, धैर्य तथा परम प्रताप (के मूर्तस्वरूप) थे। उनके द्वारा धनुष की टंकार करते ही मेरु मन्दार पर्वत गूँज उठे। सातों सागर क्षुब्ध हो उठे। पाताल के अन्दर विषैले सर्प बौखला उठे। उस धनुष की टंकार ध्वनि से सृष्टि काँप उठी; वैकुण्ठलोक में उस टंकार की प्रतिध्वनि हो गई। कैलासलोक में शिवजी ध्यान करते-करते चौंक गए। देवों में बड़ी हड़बड़ी मची उस ध्वनि से आकाश व्याप्त हो गया। (समस्त) दिशाएँ मानों ध्वनिमय हो गई। उससे ताड़का का अन्तःकरण धड़कन के साथ थरथर काँप उठा। उससे वह हड़बड़ाहट के साथ उठ गई, तो उसने उन दोनों राजकुमारों को अपनी आँखों से देखा। फिर उन्हें निगल डालने के लिए वह अपनी जिह्वा चटखाने लगी और क्रोध के साथ जोश से खड़ी हो गई। भयावह रूप से चीखते चिल्लाते हुए, अपने विकराल मुँह को फैलाकर वह श्रीराम के सामने दौड़कर लपकी, परन्तु वे तो उसका वध करने के लिए निश्चयतापूर्वक (बिना किसी सन्देह आशंका के) खड़े थे श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा– 'इस पूर्ण रूप से भयानक राक्षसी को देख लो। इसे देखते ही प्राणी प्राण त्याग देते हैं इसके सामने किसी से खड़ा तक नहीं रहा जाता। पर अब मेरा कौशल देख लो, मेरा हस्त चापल्य और आयोजन तो देख लो। मैं एक आघात से इसके प्राणों को छीन लूँगा', यह कहते हुए उन्होंने बाण चला दिया। धनुष की डोरी को कानों तक खींचते ही उन्होंने (मानो) ताड़का के प्राणों को भी खींच लिया। उनका बाण उसके हृदय पर टकरा गया और वह उसके वक्षःस्थल को पूर्णतः बेध गया, बाण के जोर के साथ टकराते ही, ताड़का चीख चिल्लाकर जोर से जमीन पर गिर गई, तब पाताल में घोर ध्वनि (व्याप्त) हो गई, ताड़का के अपने भारी शरीर के (भूमि पर) गिर जाने से पर्वतों और घाटियों में (घोर शब्द की) प्रतिध्वनि छा गयी (गूँजती रही)। मेरु पर्वत के शिखर डगमगाते हुए काँप उठे। वन्य प्राणी भय से मूर्च्छा को प्राप्त हो गए। (जहाँ वह गिर गई) उसके नीचे पाषाण चूरचूर हो गए, वृक्ष जड़ों

सहित उखड़ गए। पक्षी आकाश में भ्रम में पड़कर विचरण करने लगे। दिग्गजों के कानों के पर्दे फट गए। ताड़का के गिर जाने से भूचाल हो गया। समुद्र का जल उछलता उमड़ता रहा। नर-नारियों में हाहाकार मचा। असुर थर्राहट के साथ काँप उठे। श्रीराम ने उसे मारकर उसके (अनुभूत) तीनों प्रकार के तापों (आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक तापों) को छिन्न विच्छिन्न कर डाला; उसके संकल्पों-विकल्पों (इरादों तथा भ्रान्त धारणाओं) को काट डाला। उसके पुण्यों तथा पापों (के बन्धनों) को काटकर उसे निर्विकल्प (हेतु-रहित, भ्रम-रहित) बनाते हुए मार डाला। उसके अपने देह-सम्बन्धी अहंकार को नष्ट कर दिया। जीवन्त अवस्था में अनुभव होनेवाले जीव के प्राणों के बन्धन काट दिए। इस प्रकार ताड़का के अपने सम्पूर्ण अहंभाव को जड़-सहित काटकर श्रीराम ने मार डाला।

तीनों लोकों में सबको आनन्द होना– पृथ्वी (तल) पर ताड़का के गिर जाते ही देवों के कोटि कोटि विमान घने समुदाय में इकट्ठा हो गए (उनकी घनी भीड़ मची)। देवों ने पुष्पों की बौछार की। देवों ने नगाडे बजाये; शंख, दुन्दुभियाँ, निशान, भेरियाँ बजायीं। उनके किये जयजयकार से गगन गरज उठा। देवों ने श्रीराम की कीर्ति का बखान किया। योगी (साधना करते हुए विशिष्ट अवस्था में) जीव जगत् आदि सम्बन्धी अपनी धारणाओं को काट डालता है और उसके फल-स्वरूप उसके जीव और मन को सुख प्राप्त हो जाता है। उसी प्रकार, समझिए कि श्रीराम द्वारा ताड़का का वध करते ही त्रिभुवन को सुख प्राप्त हो गया। भक्त भय (और सन्देह) को नष्ट कर देता है, (उससे मुक्त हो जाने पर ही) वह आत्मिक सुख को प्राप्त हो जाता है। उसी प्रकार, श्रीराम द्वारा ताड़का को मार डालते ही समस्त लोगों को सुख प्राप्त हो गया। देवाधिराज इन्द्र ने स्वयं विश्वामित्र के गुणों की प्रशंसा की। (उसने कहा-) 'समझिए कि आपके धर्म-कर्म के बल से श्रीराम ने इस दुष्टा का संहार किया'। श्रीराम द्वारा ताड़का के मारे जाते ही तत्काल विश्वामित्र आनन्दातिरेक से नाचने लगे। उन्होंने श्रीराम की अपने प्राणों से आरती उतारी। ऋषियों के समुदाय ने तालियाँ बजायीं। (तदनन्तर) इन्द्र ने विश्वामित्र से कहा- 'आप श्रीराम को अस्त्र-विद्या (की शिक्षा) प्रदान करें। ये तो देवों के कार्य में सहायक होंगे; आपके यज्ञ की सिद्धि (पूर्ति) में सहायक होंगे हे गुरुवर विश्वामित्र, श्रीराम जैसे सुयोग्य शिष्य को अस्त्र (शस्त्र) विषयक सद्शास्त्र सिखाएँ; आप उन्हें बीज मंत्रों सहित (अस्त्र) विद्या सिखाएँ'। देवों की यह बात सुनकर विश्वामित्र ने सन्तुष्ट होते हुए श्रीराम को गले लगाया और अपने सब कुछ से राई-नोन उतार दिया। वे बोले 'यहाँ राम द्वारा ताड़का का वध कर दिये जाने पर देवों को अपार सुख हो गया है। उससे पथिकों के लिए मार्ग (बाधाओं से) पूर्ण मुक्त हो गया है। यह तो सामर्थ्यशील श्रीराम का प्रताप है'। (उपसंहार-) श्रीरामनाथ राम के जीवन-चरित्र की प्रथम अवस्था (चरण) की यह कथा तीनों लोकों में अति विख्यात है। आगे की कथा (इससे भी) परम अद्‌भुत है। श्रोता उसका सावधान चित्त से श्रवण करें। यह ऐसी कथा है, जिसके ध्यान-पूर्वक किये श्रवण (पठन आदि) से जन्म-मरण का बन्धन अर्थात् उन्हें धारण करने की परम्परा टूट जाती है, भोग्य विषयों के आय-व्यय के विवरण की पुस्तक फाड़ डाली जाती है, और वैकुण्ठ लोक में उस पुण्यवान व्यक्ति के नाम की ध्वजा फहरायी जाती है। वैकुण्ठ लोक में मुक्त रूप से निवास करने की योग्यता पाये हुए तथा पाने के अभिलाषी व्यक्ति ही राम-कथा के श्रवण के लिए आ जाते हैं। कथा की इस प्रकार महिमा है इसलिए यह (राम) कथा सबका प्रिय करनेवाली है।

(इस कथा का वर्णन कर्त्ता) एकनाथ अपने गुरु जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित है। अब तक कथाक्रम के अनुसार ताड़का का निर्दलन हो गया (कहा गया)। अब आगे श्रीराम द्वारा धनुर्विद्या

तथा अस्त्र-विद्या का ज्ञान ग्रहण करने तथा विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करने की घटनाओं का निरूपण किया जाएगा।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ-कृत 'भावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत बालकाण्ड का 'ताड़का-निर्दलन' नामक यह बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय १३

[श्रीराम द्वारा सुबाहु आदि राक्षसों का संहार तथा विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करना]

सिद्धाश्रम में निवास करना– विश्वामित्र ने कहा–

श्लोक– हे शुभ-दर्शन श्रीराम, आज की रात हम यहाँ ठहरेंगे। यह आश्रम तुम्हारी कृपा से 'सिद्धाश्रम' नाम से युक्त होगा (उसे सिद्धाश्रम नाम प्राप्त हो जाएगा)।

विश्वामित्र ने राम से कहा– 'इसका नाम सिद्धाश्रम है। आज की रात यहाँ रहें। इसमें (मानो) सिद्धाश्रम को उसकी अपनी सिद्धि प्राप्त हो जाएगी। इसमें हमारे और तुम्हारे निवास करने से इस सिद्धाश्रम की ख्याति त्रिभुवन में विस्तार को प्राप्त हो जाएगी। फिर सवेरे हम (लोग) मेरे आश्रम के प्रति गमन करेंगे।

अस्त्र-विद्या-ग्रहण– वहाँ सुख के साथ रात बिताकर विश्वामित्र ने सवेरे स्नान तथा सन्ध्या विधि सम्पन्न की और वे स्वयं राम से बोले- 'हे राम, अब अस्त्रों का ग्रहण कर लो'। तो राम ने कहा 'गुरु वसिष्ठ की आज्ञा से यही निर्धारित कर दिया गया है। धनुर्विद्या के आप ही सद्‌गुरु हैं। इसलिए मुझे बड़ा आनन्द हुआ है'। यह कहते हुए रघुनाथ राम (विश्वामित्र से अस्त्र विद्या की शिक्षा प्राप्त करने के लिए) श्रद्धा तथा आदर के साथ तैयार हो गए। फिर राम और लक्ष्मण ने सद्‌गुरु विश्वामित्र के चरणों की वन्दना करके हाथ जोड़े (हाथ जोड़कर वे तैयार हो गए)। तब स्वयं विश्वामित्र ने उन्हें अस्त्र विद्या (का ज्ञान) प्रदान करना आरम्भ किया। वे बोले- '(अब) अस्त्रों को ग्रहण करो। उससे पहले निश्चयपूर्वक सावधान हो जाओ। बीज सहित मंत्रों को जगाना, अस्त्रों को चलाना और पुनश्च उन्हें प्राप्त करना है'। विश्वामित्र ऋषि ने निःसन्देह रहस्यों सहित ऐसे बीज (मंत्र) बताये जिससे अस्त्र को छोड़ते ही वह तत्काल (लक्ष्य के प्रति) चला जाए और अपना (निर्धारित) कार्य सिद्ध करके वह फिर हाथ आ जाए।

श्रीराम को प्राप्त अस्त्रों-शस्त्रों तथा शक्तियों के नाम– पन्नगास्त्र (सर्पास्त्र), गरुड़ास्त्र, आग्नेयास्त्र, पर्जन्यास्त्र, वायव्यास्त्र (वायु अस्त्र), पर्वतास्त्र तथा (पर्वतों को चूर-चूर कर डालने के लिए अपनी) दुर्धरता की दृष्टि से विख्यात वज्रास्त्र। सोमास्त्र, हिमास्त्र, क्रोधास्त्र, नन्दिकास्त्र, गन्धर्वास्त्र, आदित्यास्त्र (सूर्यास्त्र), हयशिरस् नामक दारुण अस्त्र, वीरघ्नास्त्र, विरोधास्त्र, दुर्मनास्त्र, सर्वघ्नास्त्र, घोरास्त्र, अघोरास्त्र, घोरघोरास्त्र जैसा अति ताप पैदा करने वाला अस्त्र। सन्तापास्त्र, अतितापास्त्र, धर्षणास्त्र दानवास्त्र, पिशाचिकास्त्र, पिपिलिकास्त्र, विद्याधरास्त्र जैसे मारक (नाशकारी) अस्त्र। वृकास्त्र (भेड़िया अस्त्र), जम्बुक (सियार) अस्त्र, जम्भकास्त्र, शुचिकास्त्र, मानवास्त्र, वृश्चिकास्त्र, त्वष्टा जैसा बिजली-सा अस्त्र। कंकाल, कालिका, सूचिका, विशूचिका, चण्ड, प्रचण्ड, विलण्ड नामक दाहक अस्त्र। संवर्तक, शलभ, विखण्ड, दण्डन शीतक (ठण्ड पैदा करने

वाला), वात, वंशिक नामक विध्वंस करनेवाले अस्त्र। माया, मोहन, पातन (गिरा देने वाला), घातन, मातंगी-दहन, रक्त प्राशन करने वाला ब्रह्मकपाल नामक अस्त्र। भीम, भयानक, शृंग, भृंग, क्रूर, भैरव, उग्रता से युक्त कराल नामक अस्त्र। वारुण, दारुण, कालरुद्र, कार्तिकेय, कपाल, भद्र, विघात करने वाला वीरभद्र नामक अस्त्र। संकर्षण, नारायण, शंकर, नृसिंह, वामन, प्रद्युम्न, प्रतापवान मदन नामक अस्त्र। ईषिका (झाड़ू जैसा अस्त्र विशेष), तृण-शलाका तथा जिनसे प्रचण्ड हानि होती है, ऐसे अनेक अस्त्र विश्वामित्र से श्रीराम को प्राप्त हो गए। देखिए उस पाशुपत अस्त्र की महिमा, जिसे तीनों लोकों में रोका नहीं जा पाता (जिसका किसी से निवारण नहीं किया जा सकता)। विश्वामित्र ने श्रीराम को उस ब्रह्मशिरस् नामक अस्त्र का मंत्र पढ़ाया, जिसे प्रेरित कर लिये जाने पर वह चराचर को छेद डाल सकता है। इस सम्बन्ध में ऐसी धारणा है। इसलिए विश्वामित्र ने श्रीराम से कहा- 'इस अस्त्र को यत्न-पूर्वक रख लो। ब्रह्मशिरस् अस्त्र मंत्र का ज्ञाता अति विकट निर्णयात्मक युद्ध के शुरू होने पर भी, इस अस्त्र का प्रयोग बिलकुल नहीं करते; क्योंकि यह अस्त्र परम दारुण तथा निवारण करने के लिए असम्भव होता है जो इस अस्त्र का पालन एवं प्रयोग करना जानता हो, उसको समस्त अस्त्रों की सामर्थ्य प्राप्त हो जाती है; इसलिए समझदार व्यक्ति (योद्धा) इस अस्त्र को अति यत्नपूर्वक रखते हैं'। इस प्रकार अस्त्रों की सीमा (संख्या की मर्यादा) पूर्ण हो गई अब मैं उन शस्त्रों की विधि के बारे में कहूँगा, जिनका स्मरण करते ही वे स्वयं युद्ध के समय उस (शस्त्र धारक) के पास आ जाते हैं। वायुचक्र, विष्णुचक्र, कूर्मचक्र, कालचक्र, अतिवक्रनक्रचक्र जो अति दुर्धर (धारण करने के लिए अति कठिन) एवं मानों विनाश के मूर्त आकार अर्थात् रूप थे देखिए शूल, त्रिशूल, महाशूल (श्रीराम को) प्राप्त हुए, जो युद्ध में (स्थूल, सूक्ष्म कारण और महाकारण नामक) चारों प्रकार के देहों में गड़ (चुभ) सकते हैं। उनके धारी के सामने कौन खड़ा रह सकता है ? कलिकालदेव डर के मारे आतंक के काँपता रहता है। (श्रीराम को विश्वामित्र से) कौमोदकी और शिवोदकी नामक दोनों असाधारण गदाएँ प्राप्त हो गईं, जो मोह तथा ममता को छेद डालती हैं। तीनों लोकों में उनका अति आतंक छाया रहता है। दोनों खड्ग अति शुद्ध स्वरूप के थे। उनमें से एक जीव को काटनेवाला तथा दूसरा कल्पना का काटने वाला था। उनसे मारे डर के समस्त लोक काँपते रहते हैं। इनके अतिरिक्त श्रीराम को शिवशक्ति और विष्णुशक्ति, जो अनादि आदिशक्ति के ही रूप हैं, प्राप्त हुईं। वे (भौतिक) देह सहित लिंग-देह (सूक्ष्म शरीर) को भी काट डालती हैं। उनके तेज से कलिकाल भी भाग जाता है

धनुर्विद्या का प्रभाव– (श्रीराम को धनुर्विद्या का ज्ञान प्राप्त हुआ) तो विश्वामित्र ने उनसे कहा- इसके फल स्वरूप, धनुष की डोरी को कान तक खींचते ही उसकी टंकार-ध्वनि से कोटि-कोटि राक्षस मृत्यु को प्राप्त हो सकते हैं। माया अपने (विकारादि से बने) अपने परिवार सहित प्राणों को त्याग देती है तुम यह अत्यधिक बलवती धनुर्विद्या को दृढ़ता-पूर्वक ग्रहण करो। तूणीर को कसकर बाँधकर रखने, फिर भी (लौकिक) बन्धनरहित प्रबुद्ध (महाबुद्धिमान) हे श्रीराम, जो अपने तेज से नित्य तीक्ष्ण प्रखर बना रहता है, जो आशा अभिलाषा को पूर्णतः काटकर नष्ट कर सकता है, ऐसे उस दिव्य बाण को तुम स्वीकार करो।

मल्ल विद्या– शस्त्रास्त्रों (के प्रयोग) की विधि की शिक्षा पूर्ण हो जाने पर कृपानिधि गुरु विश्वामित्र की कृपा से (अथवा गुरु विश्वामित्र की कृपा से कृपानिधि) सच्छिष्य श्रीराम में मल्ल- विद्या का कौशल सचमुच सम्पूर्ण सिद्धिसहित उत्पन्न हो गया। विश्वामित्र द्वारा उपदेश (शिक्षा) के दिये जाने

पर शस्त्रास्त्र-विद्या और धनुर्विद्या श्रीराम को प्राप्त हो गई, तो श्रीरामचन्द्र ने यह मल्ल विद्या पल मात्र में गुरुपदेश से आत्मज्ञान-सी ग्रहण की।

मंत्र-देवताओं द्वारा श्रीराम की सेवा की स्वीकृति-- मंत्रों की मंत्रशक्तियों ने और समस्त मंत्र-मूर्तियों ने स्वयं सचमुच श्रीराम का वन्दन किया (और कहा-) 'हमारी सामर्थ्य आपके कारण ही (अस्तित्व में) है। हमारा स्वभाव भूत मात्र के लिए छेदक, अर्थात् वस्तुमात्र को नष्ट करना है। परन्तु यह छेदक (नाशक) शक्ति आपके हाथों में है। मरनेवाले और मारनेवाले को (आपको इच्छानुसार) अमृत की (अमरता की) प्राप्ति हो जाती है। इसलिए ऐसी पावनता के कारण हम आपका वन्दन करती हैं। आप अधर्म का, धर्मविरुद्ध आचरण करनेवाले का निर्दलन करते हैं; अपने धर्म का प्रतिपालन करते हैं (अपने धर्म, कर्त्तव्य का निर्वाह करनेवाले का पालन करते हैं)। हमें वही कीर्ति प्राप्त हो जाती है-वस्तुतः वे सब आपके कारण ही पावन हो जाते हैं (अथवा इससे आपके हाथों में, आपके वश में रहने से हम पावन हैं)। आपके द्वारा हमको हाथों में लिये जाते ही, हम आपकी ख्याति के प्रभाव से पावन हो जाती हैं। कवि पुराणों में आपके किये युद्ध की कीर्ति की सराहना करते हैं। हमारा कार्य तो प्राणियों का नाश करने के क्षेत्र में निर्धारित है, फिर उनका नाश हो जाने पर आप उन्हें मुक्ति प्रदान करते हैं; इससे हमारी कीर्ति पावन हो जाती है। फिर स्वयं विप्र और देव आप का वन्दन करते हैं। इस प्रकार स्तुति करके, समझिए कि वे मंत्र रूपी देवियाँ श्रीराम के चरणों में नत हुईं। जान लीजिए, अनन्तर उनकी परिक्रमा करके वे श्रीराम के हृदय में प्रविष्ट हुईं। वे शस्त्रों की देवियाँ दिन-रात श्रीराम के चरणों के पास हाथ जोड़े खड़ी रह गईं। उनका पठन अथवा चिन्तन करना उनके लिए आवश्यक नहीं था। वे सर्वज्ञ श्रीराम को बिना किसी प्रयास के प्राप्त हो गई थीं। इसलिए उन्हें युद्ध (में प्रयुक्त करने) के लिए जो जो शस्त्र आवश्यक हो जाता, वह शत्रु का विनाश करने के लिए स्वाभाविक रूप से उनके हाथ आ जाता। इस प्रकार उन शस्त्रों अस्त्रों को भी श्रीराम के प्रति भक्ति थी और श्रीराम के हृदय में उन शस्त्रों (अस्त्रों) का निवास था। इस प्रकार की अभिनव गति-स्थिति युद्ध-प्रसंग में श्रीराम के लिए उपलब्ध थी। इस प्रकार विश्वामित्र द्वारा श्रीराम और लक्ष्मण को (शस्त्र-अस्त्र विद्या सम्बन्धी) उपदेश (शिक्षा) प्रदान करने पर, शस्त्रास्त्रों को भी निशाचरों का वध करने की दृष्टि से आनन्द हो गया।

श्रीराम के विद्या सम्पन्न हो जाने पर विश्वामित्र का आनन्दित होना-- विश्वामित्र ऋषि द्वारा श्रीराम के मस्तक पर हाथ रख देते ही उनमें (अस्त्र शस्त्र) विद्या जड़ें जमाकर बैठ गईं। उससे वे ऋषि सचमुच उल्लास को प्राप्त हुए और स्वयं आत्मिक आनन्द के साथ नाचने लगे। शिष्य (के हृदय) में विद्या के जमकर बैठ जाने पर गुरु को आनन्द की अनुभूति हो जाती है। यह बात शाब्दिक रूप में समझ में नहीं आ सकती। (वस्तुतः) यही तो ज्ञानोपदेश की अनुपम कसौटी है। शब्दों के आधार से ही ज्ञान आदि की बातें करनेवाले लोगों का ज्ञान (सच्चा ज्ञान नहीं होता; वह तो) विशुद्ध अज्ञान होता है, और वही साधकों के लिए आत्मबन्धन जैसा हो जाता है। श्रीराम तो (इस श्रेणी के) ऐसे साधक नहीं थे। रघुनाथ तो (साक्षात्) विद्याओं के अधिष्ठान हैं, विश्वामित्र की समझ में उनका यह विशेष लक्षण आया। फिर वे आनन्द के साथ स्वयं बोले '(अब) यहाँ से प्रयाण करें'।

विश्वामित्र के आश्रम में आगमन-- गुरु विश्वामित्र की ऐसी बात (आज्ञा) सुनकर आनन्द के साथ उन्हें नमस्कार करते हुए श्रीराम-लक्ष्मण रथ में आरूढ़ हो गए, आगे (चलकर) उन्होंने एक

शोभायमान वन (उसमें स्थित एक आश्रम) देखा। राम बोले 'हे ऋषिवर, यह निर्मल, शोभायमान आश्रम किसका है ?' तो वे बोले– 'हे घननील राम, यह उज्ज्वल (निर्मल, पवित्र) आश्रम मेरा ही है'। जब रघुपति उस आश्रम के पास आ गए, तो ऋषिगण आनन्दित हो उठे। फिर विश्वामित्र ने धर्म (कर्त्तव्य) के अनुसार अत्यधिक प्रेम से श्रीराम का पूजन किया। तदनन्तर उत्तम योद्धा श्रीराम को (आश्रम के अन्दर) लाकर उन्होंने श्रेष्ठ मुनियों को आदर-पूर्वक बुला लिया और अपने शास्त्र में बताये हुए नियम के अनुसार उन्होंने (यज्ञ के लिए) अग्नि की स्थापना की। उन्होंने (होम आदि के लिए) गढ़ा, वेदी, कुण्ड, मण्डप, तोरण (बन्दनवार), ध्वजारोहण यथाविधि कर लिया। इन सबके लिए मुख्य यूप (आधार-स्तम्भ) तो मानों स्वयं श्रीराम थे। वे यज्ञ (देव) के साक्षात् अपने रूप ही थे। अग्निप्रतिष्ठा और पूजन, परिसमूहन (अग्नि के चारों ओर जल सिंचन), परिस्तरण (चारों ओर दर्भ बिछाना), प्रणीता-पात्र (यज्ञ-पात्र) तथा होम के लिए इध्मा-विसर्जन अर्थात् समिधाओं को खोलकर रखना जैसे कार्य पूर्ण किये गए। दर्भों को बिछाकर, घी के पात्र (भरकर) रखे। होम को प्रज्वलित कराने के लिए सींचा जानेवाला घी लेकर मंत्रों का पठन करके होम की प्रमुख क्रिया की जाने लगी।

श्रीराम की जिज्ञासा और विश्वामित्र द्वारा उसका समाधान करते हुए कर्मयाग तथा क्षात्रयाग का विवेचन करना– ॐकार, वषट्कार से युक्त मंत्रों का पठन करते हुए ऋषि यज्ञ सम्पन्न करने ही जा रहे थे, तो रघुनन्दन राम ने उनसे पूछा– 'राक्षस कहाँ से आकर यज्ञ को उद्ध्वस्त कर देते हैं ?' रघुनाथ द्वारा इस प्रकार पूछने पर समस्त मुनिवरों को आनन्द हुआ। तब स्वयं कौशिक (विश्वामित्र) ने सिर हिलाकर धैर्य धारण करके राक्षसों (द्वारा यज्ञ-विध्वंस करने) की कथा कही। (वे बोले) 'यज्ञ के आरम्भ से छठी रात को राक्षस अदृश्य रूप से आ जाते हैं और यज्ञ के पास जाकर (यज्ञ स्थान में घुसकर) वे दुर्दम्य राक्षस उसका विध्वंस कर डालते हैं। जो स्वयं निर्विकार रहता है, निद्रा के सम्बन्ध में जो दिन-रात सावधान (सजग) रहता है, अर्थात् नहीं सो जाता, उसके हाथों ही वे राक्षस वध्य होते हैं (राक्षसों का वध किया जा सकता है)'। गुरु विश्वामित्र की यह बात सुनकर श्रीराम, जो (वस्तुतः) नित्य सावधान रहा करते थे, झट से धनुष बाण लेकर यज्ञ (मण्डप) के द्वार पर स्वयं खड़े हो गए। विश्वामित्र कर्म याग (यज्ञ) के कर्त्ता थे, तो रघुवीर श्रीराम क्षत्रिय धर्म रूपी यज्ञ के कर्त्ता थे। श्रोता इन दोनों यज्ञों के सम्बन्ध में सच्ची मान्यता सुन लें। कर्मयोग में साधना-क्षेत्र यज्ञ-कुण्ड होता है, जब कि क्षत्रिय धनस्वरूप याग में रणांगण का विकट युद्ध ही साधना स्वरूप होता है। कर्मयाग में वेदों के अनुसार कर्म-विधान होता है, जब कि क्षत्रिय के रण रूपी यज्ञ में अपलायन (रणभूमि से भागकर न जाना) ही कर्म-विधान होता है. ऋषियों द्वारा किये जाने वाले यज्ञ में ब्रह्मा श्रेष्ठ माना जाता है, तो रण-याग में क्षत्रिय क्षात्र तेज (बल) सर्वश्रेष्ठ होता है। यज्ञ-याग में (यथाविधि) क्रियाओं के करने में परिश्रम करने (या कष्ट उठाने) पड़ते हैं, तो वहाँ (क्षात्र-याग) में शस्त्रों की खनखनाहट होती रहती है। यहाँ यज्ञ याग में काष्ठ की करछुलियों का परिमार्जन (धोकर साफ) करना पड़ता है, तो वहाँ क्षात्र याग में धनुष पर बाण चढ़ाने पड़ते हैं; बाण स्वरूप दर्भ बिछाने पड़ते हैं और धैर्य स्वरूप जल का सिंचन (प्रदर्शन) करना पड़ता है। यज्ञकर्म में अग्नि की प्रतिष्ठापना करते हैं, तो रण याग में कालदेव स्वरूप अग्नि ही होमाग्नि होता है। वहाँ करछुलो से अन्न (की आहुतियों) का हवन करते हैं, तो यहाँ (युद्ध याग) में बाण के फल-भाग से (शत्रु के) माँस का अवदान (आहुति समर्पण) किया जाता है। ऋषियों के यज्ञ में घी की धारा प्रवाहित होती है, तो यहाँ (युद्ध-याग में) रक्त का प्रवाह चलता है। वहाँ ॐकार तथा वषट्कार

ध्वनियाँ होती है, तो यहाँ वीरों का हाहाकर होता है। यज्ञ कर्म में बड़ी-बड़ी (ऊँची) ज्वालाएँ निकलती हैं, तो यहाँ शस्त्रों की खनखनाहट चलती है। यज्ञ में अपार प्रचण्ड धुआँ निकलता है, तो यहाँ वीरों का श्रम और कष्टजन्य पसीना बहता है। यज्ञ में हवन करते समय अग्नि के बढ़ जाने पर दही से युक्त घी का अभिसिंचन करते हैं, तो युद्ध याग में दारुण रूप से राक्षसों के बढ़ जाने पर उनपर अस्त्रों का सिंचन कर लेते हैं. यज्ञ में दीप प्रज्वलित करके बलि समर्पित करते हैं; तो यहाँ युद्ध याग में (अस्त्र-शस्त्र) ज्ञान-दीप को प्रदीप्त करके (विपक्षी) राक्षसों के जीवों की बलि चढ़ायी जाती है। वहाँ यज्ञ में यज्ञ-फल की प्राप्ति सम्बन्धी लोभ से हीनस्वरूप के बलिपशु को ले जाते हैं तो यहाँ देह सम्बन्धी हीन प्रकार के लोभ से कोई भागकर जीवन की रक्षा करता है। श्रीराम से विमुख होकर जो युद्ध (भूमि) से पलायन करते हैं, उनके अपने देह-सम्बन्धी बन्धन नहीं टूटते (उन्हें मुक्ति नहीं मिलती)। जीवों को (यज्ञ में) बलि चढ़ाकर उनका भक्षण करने से (यज्ञ कर्ता का) अधःपात हो जाता है (उसे नरक में जाना पड़ता है)। इस यज्ञ में नारियल फल से पूर्णाहुति समर्पित हो जाती है, तो यहाँ युद्ध याग में शत्रु के मस्तक से पूर्णाहुति प्रदान करते हैं। वहाँ यज्ञ में मंत्र पठन के घोष के साथ परिक्रमा करते हैं, तो यहाँ युद्ध भूमि में मचे हुए कोलाहल के साथ परिक्रमा हो जाती है। यज्ञ कर्म में धन दक्षिणा स्वरूप प्रदान किया जाता है, तो यहाँ युद्ध याग में अपना पद अपना अस्तित्व ही दक्षिणा के रूप में प्रदान करना पड़ता है। वहाँ (यज्ञकर्म में सहयोगी) ब्राह्मण अभिसिंचन करने पर पुष्प वृष्टि करते हैं, तो यहाँ युद्ध याग में देवगण फूलों की बौछार करते हैं। इस यज्ञ कर्म का श्रेय विश्वामित्र द्वारा सम्पादित किया जाने वाला था, तो संग्राम रूपी यज्ञ का श्रेय श्रीरामचन्द्र को प्राप्त होने वाला था। उस यज्ञ के श्रेय के प्राप्त हो जाने से यज्ञ कर्ता के गोत्र वालों को आनन्द हो जाने वाला था, तो इस युद्ध रूपी यज्ञ से चराचर जगत् को उल्लास होने वाला था। यज्ञ कर्म में ब्राह्मणों को भोजन कराया जाने वाला था, तो रण याग में समस्त प्राणियों को तृप्त किया जानेवाला था, दोनों यागों की समसमान रूप से सम्पूर्ण सिद्धि श्रीरामचन्द्र से ही होनेवाली थी (अर्थात् विश्वामित्र का यज्ञ श्रीराम द्वारा रक्षा करने से पूर्ण होने वाला था, तो युद्ध में राक्षसों को मार डालकर श्रीराम ही सफलता को प्राप्त हो जाने वाले थे)। यज्ञ के अन्त में हवनाग्नि का शमन किया जाने वाला था। पर युद्ध यज्ञ में रघुनन्दन वैसा नहीं करने वाले थे। पूर्ण रूप से भोजन करने के लिए वे काल रूपी अग्नि को नये सिर से निमंत्रित करने वाले थे। इस युद्ध याग में ताड़का के वध से भोजन-पात्रों का प्रोक्षण (मंत्रोक्त जल से सिंचन) हो गया था; अब सुबाहु के वध से चित्राहुति की पूर्णता होने वाली थी। समझ लीजिए कि त्रिशिरा और खर-दूषण के रूप में, प्रथम प्राणाहुति की जाने वाली थी, कुम्भकर्ण-वध रण-याग के भोजन में कढ़ी-भात होने वाला है; इन्द्रजित का वध पूर्ण मिष्ठान्न-सा होगा; रावण-वध दही भात होगा और रण-भूमि से निकलना तक रण याग में कराये जानेवाले भोजन समारोह में उत्तरापोशन स्वरूप (भोजन के अन्त में किया जानेवाला आचमन स्वरूप) हो जाएगा। रावण के मंत्री और अन्य राक्षसगण उस भोजन में सब्जियाँ और नमक होंगे। और यह पूर्ण रूप से समझिए कि रावण के अक्षय आदि पुत्र पूर्ण रूप से अचार माने जाएँगे। इतने की पूर्ति हो जाने पर ही कालरूपी अग्नि देव भोजन की तृप्ति को प्राप्त हो जानेवाला है (यही भोजन कालाग्नि को तृप्त करने वाला होगा)। यह तृप्ति दिलाने वाला भोजन (कालाग्नि को) कराने के लिए रघुनन्दन श्रीराम युद्ध के कार्य में सावधान हो गए.

कवि की श्रोताओं से विनती— रामायण के अन्तर्गत विश्वामित्र के यज्ञरक्षण सम्बन्धी कथा को छोड़कर मैंने बीच में व्यर्थ ही यह कथन किया। श्रोता उसे पूर्ण रूप क्षमा करें। मैं तो (आप जैसे) सन्तों

(श्रोताओं) का लाड़ला हूँ, मेरी बातों के प्रति उन्हें प्यार, आत्मीयता है। इसलिए (मुझे आशा है) मेरी यह बड़बड़ाहट (बकवास) साधु जनों को मीठी (प्यारी) ही लगेगी। साधुओं के लिए तो मैं उनका अपना दुधमुँहा बच्चा हूँ। मैं जड़ मूल से गुण-हीन, मूर्ख हूँ। फिर भी मुझ जैसा मूर्ख रामकथा कहता है, यह (तो मेरा, उस मूर्ख का बड़प्पन नहीं है) उन साधुओं की कृपास्वरूप अमृत (का प्रभाव) है। तब (यह सुनकर) सन्तों ने कहा– 'यह तो आश्चर्य की बात है कि आपकी बात में दोनों प्रकार के यज्ञों (यज्ञकर्म तथा युद्धयज्ञ) का अभिप्राय स्पष्ट हुआ। इससे शुद्ध आत्मानुभव सिद्ध हो गया है, यह बात वेदों के कथन के विरोध में भी नहीं है। आपके निरूपण से यह लक्षण विदित हुआ कि आपका श्रीराम के प्रति (कितना) अथाह (गूढ़) प्रेम है। अब आगे रामायण कहिए, ग्रन्थ के मूल भाव का निरूपण करते चलिए, श्रोता साधुओं की यह सम्मति सुनकर कवित्व अर्थात् कवि को परमानन्द हुआ। गुरु जनार्दन द्वारा एकनाथ के मुँह से कहे जानेवाले कथा सम्बन्ध को (कथा-प्रसंगों को) सुनिए।

श्रीराम द्वारा दिये जानेवाले पहरे का परिणाम– श्रीराम विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करने में स्वयं सतर्क थे; इसलिए राक्षसगण (उस स्थान के अन्दर) नहीं पैठ पा रहे थे, तब (अन्त में ताड़का और सुन्द का पुत्र) सुबाहु स्वयं आ गया। यज्ञ (मण्डप) के द्वार पर श्रीरघुपति (पहरा दे रहे) थे। अतः वहाँ राक्षसों की कोई गति (चाल) नहीं चल रही थी। फिर जब वे अँधेरे में (धोखा देते हुए) कष्ट पहुँचाने आ जाते, तो श्रीराम स्वयं प्रत्यक्ष सावधान (सावधानी के मूर्तिस्वरूप) प्रस्तुत थे। यदि दिन में वे उपद्रव पहुँचाने आ जाते, तो तब भी वहाँ श्रीराम सावधान (खड़े) थे। जब सुबाहु स्वयं चक्कर काटने लगा तो श्री रघुनन्दन धोखे में नहीं आ रहे थे। श्रीराम तो स्वयं अन्धकार को पूर्णतः मिटा देने वाले तेज स्वरूप थे और दिन के अपने बीज स्वरूप में दशरथात्मज श्रीराम सशरीर उपस्थित थे। जब रघुनाथ स्वयं यज्ञ के रक्षक थे, तब वहाँ छल-कपटयुक्त उपद्रव पहुँचानेवालों की कष्टकर बात नहीं चल सकती थी। ये राम तो बचपन में ऐसे प्रतापवान थे कि सुबाहु चौंककर रह गया। जब उसने दुर्दम्य रूप से आतंक दिखाना (फैलाना) चाहा, तब राम तो बिलकुल आतंक मानते ही नहीं थे। फलस्वरूप निशाचरों को सुस्ती आ गई; श्रीराम तो उन्हें यज्ञ स्थान में बिल्कुल प्रवेश करने नहीं दे रहे थे। श्रीराम नित्यप्रति सावधान थे; वे समस्त अंगों में पूर्ण रूप से सलोने दर्शनीय थे। (इस स्थिति में) सुबाहु का मन छटपटाने लगा। (उसे जान पड़ा कि) मैं इस ऋषि द्वारा पूरा-पूरा तंग किया जा रहा हूँ। (फिर उसने सोचा-) अब मैं (डटकर) विकट युद्ध करूँगा; ताड़का (के वध) का बदला ले लूँगा। ऐसा (मन में) कहते हुए वह असुर आकाश में मेघ-सा गड़गड़ाहट के साथ गरजने लगा। तब रक्त की धाराएँ बरसने लगीं। वह (सुबाहु) ब्राह्मणों को भय से आतंकित कर रहा था, तो उन्होंने श्रीरघुवीर से कहा, 'सम्हाल लो, सुबाहु सामने आ रहा है'।

राक्षसों का आक्रमण और श्रीराम द्वारा सुबाहु का वध करना– (यह सुनकर) रघुवीर को हँसी आ गई। उन्होंने अपने बाणों से सुबाहु को पूर्णतः पीड़ित कर डाला। तब (उसका भाई) मारीच उसकी सहायता करने के लिए दौड़ा और उसने श्रीराम को (ललकारकर) भगाने का यत्न किया। लम्बे-लम्बे बालों के झोंटों से युक्त मस्तक वाले उस राक्षस मारीच ने घोर ध्वनि में पुकारा और वह अपने मुँह को विकराल रूप में फैलाकर श्रीराम के सामने दौड़ा आया। उस राक्षस की आवाज़ (चीख) सुनते ही ब्राह्मण मारे डर के भू-तल पर गिर पड़े। कुछ एक की घिग्घी बन्द हो गयी, तो कुछ एक थर्राहट के साथ काँपने लगे। कुछ के पहने वस्त्र (धोती) छूट गए; कुछ एक ने तो धोती में पेशाब किया; कुछ

का तो अधोवात (पाद) छूटने लगा; तो कुछ एक जोर-जोर से शब्द करने लगे (पुकारने, चीखने-चिल्लाने लगे)। कुछ एक आक्रन्दन करने, चीखने-चिल्लाने लगे। कुछ एक तारस्वर में रुदन करने लगे। कुछ एक नंगे बदन गिर पड़े, तो कुछ एक अत्यधिक आतंक से छटपटाने लगे। कुछ एक के दाँत (मारे डर के) बज रहे थे, कुछ एक के होंठ (जोर के साथ दाँतों से दबाने से) फट गए। कुछ एक का पेट भय से फूल गया। इस प्रकार उन ब्राह्मणों पर बड़ा संकट आ गया। (यह देखकर) राम ने लक्ष्मण से कहा– 'अरे, झट से इन ब्राह्मणों को अभय-दान दो। वे बुरी तरह छटपटा रहे हैं। अब मैं राक्षसों का संहार कर डालूँगा'। तब निशाचर झुण्ड में हाहा हूहू करते हुए दौड़ आये। वे विकराल थे, घमण्डी थे, अति दुर्धर्ष (दुर्दम्य) थे, वे युद्ध में अति भयंकर थे। (उनके द्वारा) कता, त्रिशूल, तोमर, गदा, मुद्गल, प्रचण्ड चक्र, बाण, खड्ग भड़ी लोहाँगी (आदि)- शस्त्रों के ढेर के-ढेर चलाये जाने लगे। बड़े-बड़े शस्त्रों की जगमगाहट हो रही थी। बड़े बड़े खड्गों की खनखनाहट हो रही थी। झनझनाहट करते हुए बाण (धनुषों से) निकल रहे थे। बड़े-बड़े योद्धा (शस्त्रों से) आघात कर रहे थे। श्रीराम ने बार-बार शूर राक्षस वीरों को (बाणों के) आघात से बलहीन बना डाला। (बार बार) वे राक्षस वीर क्रोधपूर्वक गरज-गरजकर (एक दूसरे से) कह रहे थे 'मत भागो, धीरज धारण कर लो'। तब राम ने एक बाण चलाकर (राक्षसों के) समस्त शस्त्रों को चूर-चूर कर डाला। बल-सम्पन्न राम ने उनकी ढालों को (छिन्न-भिन्न करके) तिल-तिल कर डाला। श्रीराम के बाणों को रोकने के लिए राक्षस जो-जो शस्त्र चलाते, वे सब चूर-चूर होते गये। राम के बाणों ने भयानक रूप में राक्षस वीरों को कोंच डाला। यह देखकर सुबाहु पूरा-पूरा क्षुब्ध हो उठा। तब सुबाहु हाथ में गदा लेकर मल्लयुद्ध करने के लिए दौड़ा। राम तो नित्यप्रति सावधान थे; उनकी समझ में आया कि यह राक्षस द्वंद्व युद्ध करने के लिए आ रहा है। तब उन्होंने सुबाहु की गदा को पीसकर उसका आटा (भूसा) बना डाला; मारीच के मुद्गल को कूट डालकर भूसा बना दिया। उनके शूल-त्रिशूल अति पैने थे। श्रीराम ने उन्हें मटियामेट कर डाला।

श्रीराम ने बाण के परों से मारीच को शतयोजन दूर उड़ा दिया– श्रीराम ने बाण (के अग्र भाग) में अग्नि-अस्त्र की स्थापना की और उसके आघात से सुबाहु को पूर्णतः नष्ट कर डाला। मारीच को पीछे भगा दिया। उसके भागते रहते उसे श्रीराम के बाण के पर लग गए (छू गए)। बाण का पर उसके सिर पर तालू (चाँदिया) में लग गया, उससे सिर चकरा कर उसे मूर्च्छा-सी आ गई। हाथों-पाँवों के ऐंठ जाने से वह लोटपोट हो गया। मुँह से रक्त की धाराएँ बहने लगीं। श्रीराम के बाण के पर से उत्पन्न हवा (की लहर) ने मारीच को घास (के तिनके)-सा उड़ा डाला। आँधी में फँसा कोई पत्ता जैसे चक्कर खाता रहता है, वैसे ही वह आकाश में चक्राकार भ्रमण करता रहा। बाण के पर से उत्पन्न हवा के झोंके ने मारीच को (उछालकर) आकाश में उड़ा दिया। फिर उसने उस निशाचर को सौ योजन की दूरी पर वहाँ गिरा दिया, जहाँ समुद्र तट था। श्रीराम ने स्वयं लक्ष्मण से कहा– 'मारीच को बाण नहीं लगा; इसलिए उसके प्राण नहीं निकले। फिर भी पर से उसे पूरा पूरा (निर्बल बनाकर) उड़ा दिया। (समुद्र तट पर गिर जाने से) मारीच को दारुण मूर्च्छा आ गई; उसकी आँखों की पुतलियाँ फैलकर बाहर निकल आईं। कण्ठ से घरघराहट होने लगी। इस प्रकार उसपर प्राण-संकट आ गया (उसके प्राण संकट में फँस गए)। सौभाग्य से मारीच सचेत हो गया; पर उसपर बड़ा आतंक छा गया। (देखिए, सिर्फ बाण के) पर की ऐसी मार रही, तो फिर युद्ध में (श्रीराम के) सामने कौन खड़ा रहकर मार को सहन कर सकता है।

जब श्रीराम को देखते ही प्राण निकल जा सकते हों, तो उनके बाण का प्राणान्तक आघात कौन देहधारी (प्राणी) झेल सकता है ? श्रीराम तो महाभय के लिए भी भय स्वरूप थे।

राक्षसों की दुर्दशा– श्रीराम के चरणों को देखने पर मारीच का युद्ध सम्बन्धी घमण्ड भाग गया। उसने युद्ध करना नहीं चाहा और शपथ करके वह अपने घर में चुपचाप रहने लगा। श्रीराम के अपने विशिष्ट बाण ने सुबाहु के मन (के उत्साह, प्रताप) को नष्ट कर डाला, उसके चित्त और बुद्धि को, अहंकार को पूर्णतः काटकर उसे मार डाला। देखिए, उन्होंने उसे इस प्रकार ठीक से मार डाला, जिससे उसे मौत का दुःख याद नहीं रह गया। उन्होंने उसे इस प्रकार पूर्णतः मार डाला, जिससे उसे फिर से जन्म का मुख तक नहीं देखना पड़ा (श्रीराम ने उसका वध करके उसे मुक्ति प्रदान की)। मारीच और सुबाहु के जो अनेक राक्षस सेवक (विश्वामित्र के यज्ञ को ध्वस्त करने के लिए उनके साथ) आये थे, उन्हें एक-एक करके श्रीराम ने मार डाला। श्रीराम (सच्चे अर्थों में) राक्षसों का अन्त (विनाश) करनेवाले थे। राक्षसों के प्रचण्ड शरीर, शव (बनकर विश्वामित्र के) आश्रम में गिर पड़े थे। बेचारे शिष्य (इस विचार से) आतंकित हो उठे कि इन बड़े-बड़े शवों को कौन हटा लेगा। उन शिष्यों के ऐसे संकटों को श्रीराम ने आधी घड़ी न लगते तक स्पष्ट रूप से दूर कर डाला। (श्रीराम से प्राप्त प्रेरणा से) देवी जगदम्बा करोड़ों भूतों (पिशाचों) को लेकर आ गई.

देवी जगदम्बा और ऋषि विश्वामित्र द्वारा श्रीराम का अभिनन्दन करना– देवी भद्रकाली माई तीन करोड़ भूतों के समुदाय सहित वहाँ आ गई। उसने स्वयं उज्ज्वल रूप से श्रीराम की आरती उतारी। सबके द्वारा आँखों से देखते रहते भूतों का समुदाय उन राक्षस-शवों को लेकर चला गया। इससे आश्रम अति पावन हो गया। फिर उन भूतों ने उस स्थान पर अभिसिंचन करके रंगावलियाँ बना लीं (चौक पूरे) ऋषि राक्षसों के से भय-भीत होकर (उनमें से कुछ) मूर्च्छित भी हो गए थे। उन्हें लक्ष्मण ने सचेत करके स्नान करने हेतु भेज दिया। वे स्नान कर शीघ्रता से लौट आये। आश्रम शोभायमान दिखायी देने लगा। रघुनन्दन राम बड़े प्रतापी (सिद्ध हुए) थे। ऋषियों ने आत्मिक आनन्द के साथ उनकी स्तुति की। इस प्रकार रघुवीर विजयी हो गए। ऋषिवर सुखी हो गए। जिस प्रकार देव भगवान् विष्णु का पूजन करते हैं, उसी प्रकार ऋषियों ने श्रीरामचन्द्र का पूजन किया। अपनी आँखों से श्रीराम के प्रताप को देखने पर विश्वामित्र को अन्यों से करोड़ों गुना अधिक आनन्द हुआ। उन्होंने श्रीराम की पीठ पर थपकी देते हुए हाथ फेरा। उनका आनन्द जगत् में समा नहीं रहा था। (वे बोले -) 'तुमने अपने गुरु की आज्ञा का पालन किया, गुरु की (तुम्हारे द्वारा की हुई) सेवा तुम्हारे लिए फल को (इस प्रकार) प्राप्त हुई। तुमने गुरु की चिन्ता का हरण कर लिया। इस प्रकार तुमने यथार्थ रूप से अपने गुरु का पूजन किया है। तुम अपने सद्गुरु का गुरुत्व (बड़प्पन) गौरव (सिद्ध हो गए) हो। तुम निश्चय ही गुरुत्व का गुह्य ज्ञान हो, अर्थात् निश्चयपूर्वक गुरु की सेवा तथा आज्ञा का पालन कैसे करें, इसके साक्षात् ज्ञान के गौरवशाली स्वरूप हो। तुम गुरु के उपदेश रूप मंत्र के अपने बीज स्वरूप हो। तुम्हारे कारण ही गुरु का गुरुत्व (बड़प्पन, गुरुपद) सच्चा, सार्थक (सिद्ध) हो गया है'। श्रीराम गुरु-पद के गुरुत्व स्वरूप हैं, श्रीराम गुरुत्व की महिमा हैं। श्रीराम गुरुत्व की (चरम) सीमा हैं। श्रीराम के द्वारा ही ब्रह्म ब्रह्मत्व को प्राप्त हो गया है श्रीराम गुरुत्व के अपने वीर्य-स्वरूप हैं। श्रीराम गुरु के अपने धैर्य स्वरूप हैं। श्रीराम गुरुत्व के लिए भी श्रेष्ठ गुरु स्वरूप हैं। श्रीराम साक्षात् गुरु पद के गाम्भीर्य (गहनता) स्वरूप हैं। श्रीराम गुरुत्व के अपने तेजोरूप हैं। श्रीराम गुरुत्व के अपने बीज-स्वरूप हैं। श्रीराम गुरुत्व के गूढ़, अगम्य

रहस्य-स्वरूप हैं। श्रीराम स्वयं आत्मानन्द की मूर्ति हैं। श्रीराम गुरुत्व की उत्पत्ति (के स्थान-स्वरूप) हैं। श्रीराम गुरुत्व की अपनी शान्ति (के रूप) हैं। श्रीराम गुरु की साक्षात् अपनी मूर्ति हैं। श्रीराम स्वयं निश्चय ही गुरु की कृपा से ज्ञेय (समझे जाने योग्य) हैं। श्रीराम गुरुत्व के अपने प्रताप स्वरूप हैं। श्रीराम गुरु का सद्रूप ही हैं। श्रीराम स्वयं ब्रह्म रूप हैं। श्रीराम स्वयं चित्स्वरूप हैं। विश्वामित्र ने स्वयं इस प्रकार श्रीराम की स्तुति करके आनन्द के साथ उनका आलिंगन किया। इससे गुरु और शिष्य को सन्तोष हो गया।

श्रीराम की विजय के उपलक्ष्य में विश्वामित्र द्वारा दान देना– विश्वामित्र आनन्द विभोर हो गए थे। उन्होंने ब्राह्मणों को सहस्रों ऐसी गायें प्रदान कीं, जिनके सींग सोने से और खुर चाँदी से मढ़े हुए, अर्थात विभूषित थे, जिनकी पीठ पर ताँबे और काँसे के दुग्ध पात्र रखे गए थे। उन गायों की पूँछें प्रवाल (मूँगा) आदि रत्नों तथा मोतियों से विभूषित थीं। विश्वामित्र ने ऐसी गायों के कुछ (झुण्ड समुदाय) दान में देकर ब्राह्मणों के कुलों को सुख-सम्पन्न कर दिया। विश्वामित्र ने स्वर्ण राशियाँ तथा सहस्रों (मुद्राएँ) दक्षिणा के रूप में प्रदान कीं; याचकों को दान देकर हर्ष-विभोर बना दिया, मँगतों (भिखमंगों) को यज्ञ के अवसर पर सम्पन्न बना दिया। श्रीराम ने राक्षसों के समुदायों का संहार कर दिया। ऋषियों का यज्ञ सिद्धि को प्राप्त हो गया। (तदनन्तर) ब्राह्मणों को भोजन कराया गया। इस प्रकार रघुवीर श्रीराम अपने (लिए निर्धारित) काम में विजयी हो गए। श्रीरघुनाथ राम विजय को प्राप्त हो गए, तो त्रिभुवन में उनका यशोगान हो गया। उसे सुनकर रावण विस्मय चकित हो गया, तो देवों को अद्‌भुत आनन्द हुआ।

एकनाथ अपने गुरु श्रीजनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हैं। (उनके द्वारा रामकथा के अन्दर अभी यह कहा गया -) सुबाहु का निर्दलन हुआ; गुरु विश्वामित्र का यज्ञ सिद्धि को प्राप्त हुआ। अब अहल्या के उद्धार की कथा का श्रवण कीजिए।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ कृत 'श्रीभावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत बालकाण्ड का 'सुबाहु-निर्दलन' नामक यह तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय १४

[अहल्या का उद्धार]

राजा जनक द्वारा विश्वामित्र आदि से सीता की स्वयंवर-सभा में उपस्थित रहने की विनती करना–

श्लोक– उन दोनों (राजपुत्रों) द्वारा ऐसी बात कहने पर समस्त महर्षियों ने विश्वामित्र को अगुवा बनाते हुए श्रीराम से यह बात कही। हे नरश्रेष्ठ, परम धर्मशील मिथिलाधिपति जनक के यहाँ यज्ञ होनेवाला है। हम लोग (वहाँ) जा रहे हैं। हे नरशार्दूल, तुम भी हमारे साथ चलना। वहाँ तुम एक अद्‌भुत धनुष रूपी रत्न (श्रेष्ठ धनुष) देख सकोगे।

सभा में प्रसन्नता तथा उत्सुकतापूर्वक बैठकर ऋषि रघुकुल तिलक श्रीराम (के गुणों) का वर्णन कर रहे थे। तब राजा जनक के दो सेवक एक कुंकुमांकित पत्र लेकर आ गए। (उसमें लिखा था)

विश्वामित्र ने अपने यज्ञ के लिए समस्त ऋषियों को (बुलाकर) इकट्ठा किया है। स्वामी (विश्वामित्र) उनके सहित (सीता) स्वयंवर स्वरूप यज्ञ के लिए आ जाएँ। तब विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण को सम्मान-पूर्वक बुला लिया। तो उन दोनों ने साष्टांग नमस्कार करके हाथ जोड़कर कहा- 'हम निश्चय ही आपके अपने नित्य अंकित (अधीन) सेवक हैं। आपका यज्ञ सम्बन्धी हेतु (कार्य) सिद्धि हो प्राप्त हुआ। (अब) आगे का अभीष्ट कार्य बताइए। हे स्वामी, आप जो आज्ञा देंगे, उसके अनुसार वह कार्य हम क्षणार्द्ध में (पूर्ण) करेंगे। गुरु कृपा की ऐसी महिमा है कि (उसके बल से) समस्त कार्यों को अपनी सिद्धि प्राप्त हो जाती है'। रघुवीर राम बचपन में (इतने) धीर तथा शूर हैं कि उन्होंने उद्भट (दुर्धर्ष) निशाचरों को मार डाला। फिर भी वे अहंकार नहीं कर रहे हैं- (यह देखकर) इससे विश्वामित्र सुखी हो गए। (उन्हें विश्वास हुआ कि) अब उनमें वीर्य और धैर्य के साथ विशुद्ध ज्ञान भी है। जब ऐसा अहंकारहीन शिष्य मिलता है, तब उससे गुरु को सुख और आनन्द का अवसर प्राप्त हो जाता है। उसके इस सुख के तुल्य कोई (अन्य) वस्तु नहीं है।

विश्वामित्र द्वारा श्रीराम से मिथिला चलने की विनती करना– इस प्रकार सुख को प्राप्त होकर विश्वामित्र ने श्रीराम-लक्ष्मण का आलिंगन किया और कहा– 'राजा जनक का आमंत्रण-पत्र आया है। (अतः अब) झट से मिथिला जाना है। जनक मिथिला के श्रेष्ठ राजा हैं। (उनके यहाँ) सीता-स्वयंवर के हेतु धनुर्यज्ञ (आयोजित किया जा रहा) है। वहाँ देव और नर (वीर, राजा) इकट्ठा हुए हैं। इसलिए उन्होंने (जनक ने) बड़े-बड़े ऋषियों को बुलाया है। उन्होंने देश देश के समस्त राजाओं को आमंत्रण भेजा है। राजा दशरथ को (भी) आमंत्रण भेजा था; पर वे नहीं आ रहे हैं। वे श्रीराम के विरह से व्याकुल हैं. हम समस्त ऋषि वहाँ अवश्य जाएँगे। तुम भी हमारे साथ आ जाना। इसपर श्रीराम ने कहा– 'आपकी आज्ञा उचित है'।

श्रीराम की स्वीकृति और सबका मिथिला के प्रति प्रयाण करना– (श्रीराम बोले) 'गुरु की आज्ञा का परिपालन करना समस्त भाग्य के लिए अपना आभूषण स्वरूप है। शिष्य के लिए अपने गुरु के वचन (आज्ञा) का पालन समस्त कल्याणों का कल्याण होता है'। (यह सुनकर) विश्वामित्र ने कहा– 'तुम्हारे शिष्यत्व (मेरे शिष्य होने) से मेरी बड़ाई हो गई है। तुम वहाँ तक अवश्य आ जाना। सभा में समस्त राजा (उपस्थित) होंगे। (उन सबमें) तुम मुख्य (श्रेष्ठ सिद्ध) हो जाओगे'। गुरु की ऐसी बात सुनकर श्रीराम लक्ष्मण सद्गुरु (विश्वामित्र) के साथ रथ में आरूढ़ हुए और उन्होंने बड़े उत्साह के साथ मिथिला की ओर प्रयाण किया। श्रीरामचन्द्र रथ में आरूढ़ हो गए, तब सबने जय-जयकार किया। तब रघुवीर राम ऋषियों सहित अति शीघ्रता-पूर्वक चले। मिथिला से पाँच योजन इस ओर मुनि एक कुशोपवन में ठहर गए। फिर ऋषियों की पंक्तियाँ लग गईं (ऋषि पंक्तियों में विराजमान हो गए)। राम सुखप्रद आसन पर बैठ गए।

मार्ग में एक निर्जन आश्रम का दिखायी देना– (उस उपवन में चलते रहते) श्रीराम ने उसी उपवन के एक कोने में अपनी आँखों से एक आश्रम देखा। (आस पास के) वृक्ष फलों और पत्तों से हीन थे। उस आश्रम में कोई नहीं था ऐसा देखकर रघुनाथ राम ने ऋषि विश्वामित्र से (उस सम्बन्ध में) जानकारी पूछी। वे बोले– 'यह उपवन कान्तिहीन क्यों दिखायी दे रहा है ? (इसके विषय में) मुझे जानकारी दीजिए। यहाँ किसी मनुष्य का निवास नहीं है। पक्षियों ने वृक्षों को त्यज दिया है। इस आश्रम में चिउंटी-मक्खी (तक) नहीं (दिखायी दे रही) हैं। (यहाँ) ऐसी दुरवस्था क्यों दिखायी दे रही है ?'।

इस प्रकार पूछने पर ऋषि विश्वामित्र ने एक पूर्वकथा श्रीराम से कही। 'इस आश्रम में (अपनी स्त्री) अहल्या सहित गौतम ऋषि रहते थे। (एक समय) इन्द्र ने अहल्या को कपटवेश धारण करके धोखा (देते हुए भ्रष्ट कर) दिया। इसलिए गौतम ने उन दोनों को अभिशाप दिया। तब से इस आश्रम में किसी का निवास नहीं है'।

अहल्या के विषय में श्रीराम की जिज्ञासा– श्रीराम ने पूछा 'वह अहल्या कौन थी ? इन्द्र द्वारा उसे धोखा देने का क्या कारण है ? कृपा करके इस सबको आरम्भ से लेकर कहिए'। श्रीराम की यह बात सुनकर विश्वामित्र ने स्वयं कहा (सोचा) - इस प्रसंग (घटना) से जान पड़ता है कि अहल्या का उद्धार हो जाना पूर्णतः निकट आ गया है।

अहल्या की सुन्दरता का वर्णन– त्रिलोक की सुन्दरता को इकट्ठा करके ब्रह्मा ने स्वयं एक कन्या का निर्माण किया। जान लो कि उसका नाम अहल्या है। उसका शरीर अत्यन्त सुकोमल है- (मानो) चन्द्र की किरणें तक उसके चुभ सकती हैं। उसके सामने (तुलना में) नाग स्त्रियाँ गँवार (जान पड़ती) हैं। वह अपने शरीर से आकाश-सी कोमल है। उसका स्पर्श हो जाने पर मन आदि इन्द्रियों को पूर्णतः गुदगुदाहट (अनुभव) हो जाती है। उसके (रूप) माधुर्य को देखकर अमृत की मधुरता फीकी (जान पड़ती) है। उसके मुख को देखने से आँखों को अत्यधिक सुख हो जाता है। उसके मुख के विषय में संन्यासी क्षेत्र संन्यासी हो गए। (किसी तीर्थ क्षेत्र में जाकर रहने पर वहाँ से कहीं अन्यत्र न जाने का संकल्प करके रहने वाला संन्यासी 'क्षेत्र संन्यासी' कहाता है। इस दृष्टि से संन्यासियों ने अहल्या के मुख को देखकर यह व्रत रखा कि वे उसके मुख को आँख ओट करके कहीं नहीं जाएँगे, आजीवन उसे देखते ही रहेंगे)। उन्हें किसी अन्य (के मुख) को देखना अच्छा नहीं लग रहा है। उसकी असीम सुन्दरता की शोभा से चन्द्र के अंग की प्रभा तक लुप्त हो जाती है। लावण्य (सलोने रूप) के उस सारभाग को देखकर विवेक के प्राण सीधे (पूर्णतः तत्काल) निकल जाते हैं। उसकी आँखों से आँखें मिलने पर धैर्य की गाँठ खुल जाती है (धीरज लुप्त हो जाता है)। सुन्दरता में वह असीम रूप से सम्पन्न थी। उसे देखने पर दृष्टि उस पर से नहीं टल पाती। इस प्रकार वह असीम सुन्दर थी। दिन प्रतिदिन वह बड़ी होती गई। तो अपनी कन्या को विवाह योग्य हुई देखकर ब्रह्मा उसके योग्य वर के विषय में विचार करने लगे।

अहल्या की प्राप्ति के लिए इन्द्र आदि में होड़ लगना– इन्द्र (अहल्या को) अपनी रानी बनाने के लिए दृढ़ता के साथ यत्नशील था। चन्द्र उसे अपनी पत्नी बनाने के लिए दृढ़ता के साथ यत्नशील था। सूर्य स्वयं उसका वरण करने के विषय में प्रतिदिन अनुनय-विनय कर रहा था। वरुण, वायु, यम, कुबेर, स्कन्द (षडानन कार्तिकेय) आदि समस्त देव अहल्या का वरण करने के लिए आतुर (उत्कट अभिलाषी) थे। (यह देखकर) ब्रह्मा सोच में पड़ गए। ब्रह्मा ने यह विचार किया– 'अहल्या का वरण करने के लिए सब आतुर अधीर हैं। पर मैं उसके लिए वर के रूप में किसका निर्धारण (चयन) करूँ ?' (इसपर सोचकर) उन्होंने भिन्न मार्ग को अपना लिया।

ब्रह्मा का प्रण– ब्रह्मा ने एक युक्ति (मार्ग) का आयोजन किया। (उन्होंने तय किया कि) जो दो पहरों के अन्दर स्वयं पृथ्वी की परिक्रमा कर आएगा, उसे अहल्या कन्यादान के रूप में दी जाएगी। ब्रह्मा का यह कथन सुनकर इन्द्र ने ऐरावत के साथ गमन किया; चन्द्र (अपने वाहन) मृग के साथ स्वयं निकला; अग्नि भेड़ पर बैठकर (परिक्रमा के लिए) निकल पड़ा। यम समस्त जगत् का नियन्ता है; वह (भी) काम भाव से प्रभावित होकर जल्दी में भैंसे को जीन आदि से सजाकर शीघ्रता से चला। स्कन्द

ने मोर को (सवारी के रूप में) सुसज्जित किया; कामदेव ने मत्स्य को सजा लिया (और पृथ्वी प्रदक्षिणा के लिए चल पड़ा)। उसी प्रकार बड़े-बड़े देव (पृथ्वी) परिक्रमा करने के लिए शीघ्रतापूर्वक निकल गए। छोटे-बड़े ऋषिवर मेरु पर्वत की तलहटी में (यह सोचकर) दौड़ने लगे कि हम अपनी तपोनिष्ठा से, अपने बल पर परिक्रमा करेंगे।

गौतम द्वारा ब्याती हुई गाय की परिक्रमा करके प्रण को जीतना– समझ लो कि गौतम ऋषि अनुष्ठान कर रहे थे। तब एक गाय के ब्याने के समय, उस 'उभयतोमुखी' (गाय) को देखकर उन्होंने उसकी तीन बार पूर्ण परिक्रमा की। (जब कोई गाय बच्चे को जन रही हो और जिस समय उस बच्चे का मुख गो-योनि से बाहर निकला हो, जिससे उस गाय के दोनों ओर एक-एक मुख दिखायी देता रहा हो, उस अवस्था वाली गाय को 'उभयतोमुखी' गाय कहते हैं। परम्परागत मान्यता के अनुसार ऐसी उभयतोमुखी गाय की परिक्रमा पृथ्वी परिक्रमा के बराबर मानी जाती है)। 'उभयतोमुखी' गाय की परिक्रमा पृथ्वी-परिक्रमा के बराबर होती है- ब्रह्मा ने ऐसा जानकर गौतम ऋषि को कन्यादान दिया।

इन्द्र का कपटाचार के लिए प्रेरित होना– इन्द्र (जब पृथ्वी-परिक्रमा करके) पहले पहर आ गया, तब (उसने देखा कि) अहल्या के लिए गौतम ऋषि वर (निर्धारित) हुए हैं। उन वधू-वर को विवाह वेदी पर देखकर वह अन्तःकरण में क्रुद्ध हो गया। (तदनन्तर) परिक्रमा करके जो जो आ गए, वे भी (यह देखकर) लम्बी साँस लेते रहे। (वे नहीं जान पा रहे थे कि) गौतम को अहल्या की प्राप्ति कैसे हो सकी। (तब) इन्द्र ने ब्रह्मा से पूछा- 'यदि अहल्या गौतम को देनी थी, तो हमें (पृथ्वी) परिक्रमा के लिए भेजकर आपने हमारी वंचना क्यों की ?' तो ब्रह्मा स्वयं बोले 'गौतम द्वारा तीन बार सम्पूर्ण परिक्रमा घटित हो गयी, तब मैंने कन्यादान दिया'। इन्द्र बोला- 'यह नहीं जाना जा पाता कि गौतम में चलने की शक्ति हमसे अधिक कहाँ से (आयी) है और उनसे तीन बार प्रदक्षिणा कैसे घटित हुई ?' तो ब्रह्मा बोले- 'मैं कोई छल (कपट) नहीं कर रहा हूँ। उभयतोमुखी गाय की परिक्रमा पृथ्वी परिक्रमा के समान होती है; यह जानकर मैंने कन्यादान दिया'। इन्द्र ने वेदों की उक्तियों में इस वचन को देखा। फिर भी उसके चित्त में क्रोध बहुत बढ़ गया। उसने कहा (सोचा)- मैं अनेक (प्रकार की) छलयुक्त उक्तियों से अहल्या को स्वयं अपने लिए प्राप्त करूँगा। जिस प्रकार चन्द्र ने गुरु की पत्नी का उपभोग किया, उसी प्रकार मैं अहल्या का उपभोग कर लूँगा। इस प्रकार इन्द्र ने अपने मन में इस निश्चय को दृढ़तापूर्वक धारण किया।

(ब्रह्मा द्वारा) गौतम को इन्द्र से सावधान रहने की सूचना देना– ब्रह्मा ने गौतम से कहा– इन्द्र अहल्या (के उपभोग) की अभिलाषा कर रहा है। इसलिए आप दिन रात अहल्या की अति यत्नपूर्वक रखवाली करें। गौतम तप (के बल) से तेजःपुंज थे। वे अहल्या को आश्रम ले आये। वर्ष-अनुवर्ष कष्ट को प्राप्त होते हुए भी इन्द्र को अहल्या प्राप्त नहीं हुई। एक दिन पूर्ण खग्रास सूर्यग्रहण था (उस अवसर पर) गौतम स्वयं अहल्या सहित गंगा-स्नान करने के लिए गये। वे इन्द्र के विषय में बहुत सावधान थे। ग्रहण सम्बन्धी विधि का विधान हो गया, तो अहल्या ग्रहण के छूट जाने पर किया जाने वाला स्नान करके स्वयं ब्राह्मण भोजन बनाने के लिए आश्रम में आ गई। गौतम स्वधर्म सम्पन्न थे। व (ग्रहण के निमित्त) दान और तर्पण करने के लिए (पीछे) रह गए। तो पूरा अवसर पाकर इन्द्र स्वयं (आश्रम के पास) आ गया।

गौतम-रूप धारण करके इन्द्र का अहल्या के समीप आगमन– गौतम के रूप में इन्द्र अहल्या के समीप आ गया। उसे एकान्त स्थान पर ले जाकर उसने स्वयं झट से सम्भोग की याचना की तो वह बोली- 'यह अचरज की बात (स्थिति गति) है। आप दिवस में सम्भोग की माँग कैसे कर रहे हैं ? आज पर्वकाल है, पितृ (श्राद्ध) तिथि है। इसलिए काम (भोग) सब अर्थों में निषिद्ध है'। (तो गौतम-रूप धारी इन्द्र बोला-) 'पति के अनुचित वचन (आदेश) का भी पतिव्रता स्त्रियाँ पूर्णतः पालन करती हैं। पति की बात को (अनुचित समझकर) दोष देने में स्त्री का अधःपतन होता है। वह पति के वचन के अर्थ का सब प्रकार से अनुसरण करे। यह वेद-शास्त्र द्वारा प्रतिपादित सदाचार है। इसलिए उसमें (पति के वचन में) दोष बिलकुल न देखे। जो पति की बात में दोष देखती है उसे आकल्प (कल्पान्त तक) अधःपात को प्राप्त होना पड़ता है। अब तुम ज्ञानी (सज्ञान, सयानी) हो गई हो। इसलिए पति की बात को नहीं मान रही हो। मेरा जो-जो नीति धर्म विरुद्ध आचरण हो, उस (से प्राप्त पाप) का मैं स्वयं अपने तप से तत्काल निराकरण कर दूँगा। यहाँ (इसमें) तुम्हें क्या सन्देह हो रहा है ?' (यह सुनकर) अहल्या की स्वधर्म-निष्ठा संकोच को प्राप्त हो गई, उससे कुछ भी बोला नहीं जा रहा था। अनन्तर एकान्त में जाकर सम्भोगार्थ उसने उसका अनुसरण किया। जब इन्द्र अहल्या की शय्या पर था, तब गौतम (आश्रम के) बाहर आ गए। अपनी स्त्री पर पुरुष के साथ रत हो गई है, यह जानकर वे द्वार पर गुप्त रूप से ठहर गए।

इन्द्र के कपटाचार को जानने पर अहल्या का क्रुद्ध हो जाना– अहल्या बोली- 'मेरे पति का रूप धारण करके यहाँ एकान्त स्थान में तुम कौन आये हो ? (आने वाले तुम कौन हो ?) तुम कपट से पर स्त्री का उपभोग कर रहे हो'। अहल्या ने इन्द्र का हाथ पकड़ लिया। (वह बोली) 'मेरे पति के रूप का स्वाँग रचकर तुमने मुझे धोखा देते हुए सम्भोग की याचना की। रे पाप-मूर्ति, तुम कौन हो ?' तो वह बोला 'मैं अमर-पति (इन्द्र) हूँ'। तब वह बोली- 'सम्भोग पूर्ण हुआ। अब तुम शीघ्र गति से जाओ (नहीं तो) ऋषि (हम) दोनों को नष्ट कर डालेंगे। रे पापिष्ठ, रे चण्डाल, मर जाओ, मर जाओ। तुम्हें पाप (करने) से कोई उकताहट नहीं हो रही है। तुमने दोनों कुलों में कलंक लगा दिया। रे दुष्ट, रे दुःशील, झट से निकल जाओ। जल जाए तुम्हारी महिमा। तुमने निन्द्य कर्म किया; मुँह को काला किया यहाँ से शीघ्र गमन करो। देखने पर ऋषि (हमें तुम्हें क्रोधाग्नि में) जला डालेंगे। तुम जो देवों के अधिपति हो, वह तुम तो परदारा सम्बन्धी कामासक्ति के कारण अचूक अधोगति (अधःपात) को (प्राप्त हो) गये हो। निकल जाओ, फिर से मुँह न दिखाओ'।

गौतम ऋषि द्वारा अहल्या और इन्द्र को अभिशाप देना– लज्जित होकर इन्द्र (आश्रम के) बाहर निकला, तो उसने द्वार पर गौतम ऋषि को देखा। वह अन्तःकरण में भय से काँपते हुए बीरबहूटी के रूप में भागने लगा। तब गौतम ने उसकी गति को कुण्ठित कर दिया; (फलतः) वह अपनी शक्ति (के आधार) से (आगे दूर) जा नहीं पाया। (देखिए) आज भी बीरबहूटियों में तेज गति नहीं है। (फिर गौतम ऋषि बोले-) 'जिनसे तुम पर स्त्री गमन करते हो, वे तुम्हारे वृषण झड़ (कर गिर) जाएँगे। परस्त्री-योनि में तुम्हारा मन आसक्त है; अतः तुम्हारे समस्त अंग में पूर्ण भग (योनिचिह्न उत्पन्न) हो जाएँगे'। इस प्रकार गौतम ने इन्द्र को अभिशाप दिया। जब उन्होंने अन्दर देखा, तब अहल्या अपने वस्त्रों को सँवार रही थी। (वह देखकर) वे बोले 'री दुराचारिणी, तू (उससे) कैसे रत हुई ?'

श्लोक– हे नारद, अनुकूल क्षण (समय) के न रहने से, एकान्त स्थान के न रहने से तथा याचना करने वाले परपुरुष के न रहने से ही नारियों में पतिव्रता धर्म (सम्पादित) होता है।

अहल्या का निवेदन– ''स्मृतियों, वेदान्त और वेदों के वचनों के अनुसार परपुरुष द्वारा एकान्त में प्रार्थित होने पर सती स्त्री धीरज धारण नहीं कर सकती। (यहाँ तो) इन्द्र जैसे परपुरुष ने मेरे पति के रूप में कहकर मुझे धोखा दिया। आपके रूप की स्थिति में उसने मुझसे सम्भोग की याचना की। मैं आपसे ही रत हो गई। निश्चय ही उसके कपट को मैं नहीं जानती थी। आपके कथन के सम्बन्ध में सचमुच 'न' नहीं कहें। पर इसके कपट की बात को मैं बिलकुल नहीं जानती थी। अपने स्वामी के वचन का उल्लंघन करना ही मेरे लिए अधःपात (स्वरूप) हो जाता। इस भय से मैंने स्वयं अपने धर्म (कर्तव्य) के अनुसार आचरण किया''। (परन्तु) गौतम ऋषि ने इन्द्र और अहल्या की एकान्त में गुप्त रूप से की हुई बातें सुनी थीं। (गौतम बोले-) 'वही (बातचीत) सचमुच यह कह रही है कि तूने अपने काम-भाव से उससे रमण किया'।

गौतम द्वारा अहल्या को अभिशाप देना– (गौतम बोले-) 'सम्भोग करते समय पर-पुरुष को पहचानते ही यदि तू उसे लातें जमाकर उठ जाती, तो भी मैं तुझे पतिव्रता मानता। परन्तु तू तो काम की पूर्ति होने तक उससे रत रही। उसका पर पुरुष होना पहचानकर भी तूने यह कहा कि उपभोग करते हुए तुम्हारी इच्छा पूरी हुई; ऋषि के न आते (आने से पहले) तुम भाग जाओ। उसके पर-पुरुष होने की जानकारी पाने पर भी तेरा मन उपभोग से नहीं ऊब उठा। अतः समझ ले, वही तू (अब) जड़तायुक्त पाषाण शिला हो जाएगी। जिस (तुझे) को पर-पुरुष के साथ काम भाव (की तुष्टि) का आनन्द आ गया, वही तू महाशिला बन जाएगी। अपनी आँखों से तुझे कोई भी नहीं देख सकेगा। प्राणी (मात्र) तेरे स्पर्श आदि को छूत मानेंगे। (यहाँ के) वृक्ष फूलों-फलों को नहीं प्राप्त होंगे (न फूलेंगे, न फलेंगे)। उसकी छाया में किसी को विश्राम नहीं अनुभव होगा। आश्रम में प्राणी नहीं बस पाएँगे। इस प्रकार तू अपने पाप के कारण दुरवस्था का भोग करेगी'। (यह सुनकर) वह स्वयं बोली- 'पति के विषय में भ्रम होने से मुझे दोष लग गया है, अतः स्वामी (मेरे प्रति) पूर्ण कृपा करें और शाप मोचन (की स्थिति, उपाय) बता दें'।

गौतम द्वारा शाप-मोचन (का मार्ग) बताना– उसकी यह दीनता युक्त बात सुनकर गौतम ऋषि दया से पूर्णतः द्रवित हो उठे। वे बोले- 'जान ले कि श्रीराम के चरणों के छूते ही तू उद्धार को प्राप्त होगी। जब तक तुझे श्रीराम के चरण नहीं मिलते (स्पर्श करते), तब तक तू राम का स्मरण करती रह। समझ ले कि राम नाम से बढ़कर कोई अन्य (ऐसे पाप के लिए) प्रायश्चित्त नहीं है। राम नाम के आवर्तन (जाप) से पापों की पंक्तियाँ (राशियाँ) जल जाती हैं। शिला रूप (की स्थिति) में तेरी मति लोप को प्राप्त होगी, फिर भी अपने चित्त से राम को न भुला देगी'। (यह कहकर) गौतम ऋषि उससे विमुख हुए, तब अहल्या शिला (रूप में परिवर्तित) हो गयी। वह आश्रम निस्तेजता को प्राप्त हो गया। प्राणी तत्काल भाग गये। अभिशाप में कैसी बड़ी शक्ति होती है। (देखिए उसके प्रभाव से एक-एक) चिउँटी, मक्खी (तक) उस स्थान को छोड़कर गयी। समस्त पक्षी भाग गए। श्वापदों के समूह वेग सहित (भागकर) चले गये।

अभिशाप देने के कारण गौतम ऋषि का पछताना– क्रोधपूर्ण दृष्टि से अभिशाप देकर गौतम ऋषि ने उस पर्णकुटी को छोड़ दिया तो साथ ही उन्हें मन में परिताप होने लगा। उन्होंने कहा (सोचा)- क्रोध ने तत्काल मुझे जीत लिया। अहल्या और इन्द्र द्वारा अति प्रेम से एकान्त में सुखोपभोग करते रहते

हो मुझमें शान्ति क्यों नहीं उत्पन्न हुई ? मैं (वस्तुतः) स्त्रीकामासक्ति के कारण क्रोध से पीड़ित हुआ। रति सम्भोग करते हुए एकान्त स्थान में इन्द्र के अहल्या के पास रहते उन्हें अनुद्वेग (उद्वेग रहित स्थिति में) से छोड़कर मैं तपस्या के लिए क्यों नहीं गया? देखिए, जो मैं इस तथ्य का ज्ञाता हूँ कि सबका अन्तरात्मा एक (मात्र समस्त सुख-दुःख आदि का) भोक्ता है उसी मुझको इन्द्र द्वारा (मेरी स्त्री से) सम्भोग करने का दुःख हुआ। क्रोध ने (इस प्रकार मेरे) ज्ञान-सहित विवेक को निगल डाला। यह मेरी स्त्री है, यह मेरा घर है, यह (धारणा) काम क्रोध (जैसे विकारों) का अपना घर है। यहाँ (इस सम्बन्ध में) बड़े बड़े ठगे गए हैं। मुझे ही सचमुच क्रोध ने पीड़ा पहुँचाई। यह मेरी स्त्री है, इस धारणा में जो यह अहंकार है, वही समस्त दुःख का आश्रय स्थान (घर) है। यही धारणा (जन्य अहंकार) क्रोध का जन्म स्थान है। मैं उससे पूर्णतः पीड़ित हुआ। पुराणों में ऐसी उक्ति है कि गौतम ऋषि त्रिभुवन में पावन है; मैं वही गौतम, स्त्री सम्बन्धी लोभ से अनुवर्तन करता हुआ विवेक रूपी सम्पत्ति (के विषय) में क्रोध से पीड़ित हुआ। मैंने- इस गौतम ने मध्याह्न (दोपहर) के समय नित्य शाली (धान विशेष) उगाकर अकाल में ऋषियों की रक्षा की थी। मैं- वह गौतम- क्रोध से तत्काल पीड़ित हुआ। मुख्यतया स्त्री सम्बन्धी कामाभिलाषा के साथ क्रोध नित्य उफनता उमड़ता रहता है। उसने मुझ गौतम को कष्ट को प्राप्त करा दिया। मैं (अब यह) किससे कहूँ ?

काम-क्रोध का प्रभाव– यदि कोई माता को लेकर गाली दे, तो साधारण मनुष्य उसकी उपेक्षा (उसके प्रति आनाकानी) करके उसे सह लेता है; परन्तु समझिए कि स्त्री को लेकर गाली देने पर वह (गाली देनेवाला) तत्काल उसके शस्त्र या अभिशाप से मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। क्रोध की अपनी बड़ी ख्याति है। उन दोनों की (काम और क्रोध ने) दुरवस्था कर दी। (इधर) मुझे ज्ञान और विरक्ति होते हुए भी उन्होंने कष्ट पहुँचा दिया। इस प्रकार क्रोध परमार्थ का घात (हानि नाश) होनेवाला होता है। क्रोध तो केवल महाचण्डाल होता है। उसने वैराग्य को जी जान से मारा है। उसने समस्त योग को भग्न कर डाला। क्रोध से समस्त अंग अति अपवित्र हो जाता है। मातंग (चण्डाल) की छूत से (उत्पन्न दोष का) जल (में स्नान करने) से निराकरण हो जाता है, (वह तो बाह्य दोष होता है परन्तु) क्रोध का निवास चित्त के अन्दर होता है। उसको धो डालने में कोई उपाय नहीं चलता। इस प्रकार क्रोध समस्त अर्थों में घात करनेवाला होता है। मैंने शास्त्र में ऐसा पढ़ा है - कौन तेरी स्त्री है ? कौन तेरा पुत्र है ? (स्त्री, पुत्र आदि सम्बन्धी नाते-रिश्ते व्यर्थ हैं।) परन्तु वह तो पुराणों के पृष्ठों में व्यर्थ ही रह गया (इस सत्य की अनुभूति मैं नहीं कर पाया)। क्रोध ने मुझे अपवित्र कर डाला। जो काम (विकार) के अधीन हो जाते हैं, वे तो कुछ न कुछ भोगों का उपभोग कर लेते हैं। परन्तु जो क्रोध के हाथों में फँस जाते हैं, वे (सुख) भोग और मोक्ष (दोनों ही) से वञ्चित हो जाते हैं। मर्मस्थल (हृदय, अन्तःकरण) में क्रोध जैसे वैरी के बैठे रहने पर जो उसकी महानता मानता (स्वीकार करता) है, वही चराचर (वस्तुओं) में अति मूर्ख होता है।

श्लोक– यद्यपि अपकार कर्ता पर क्रोध किया जाता है, तथापि क्रोध के प्रति क्रोध किसी के द्वारा कैसे नहीं किया जाता ? क्रोध (वस्तुतः) धर्म, अर्थ काम और मोक्ष जैसे पुरुषार्थों का बलात् शत्रु बना रहता है।

अपकार करनेवाले पर (सब कोई) कोप करते हैं; परन्तु कोई भी कोप पर कोप नहीं करते। क्रोध निश्चय ही बटमार है, जो (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जैसे) चारों पुरुषार्थों में (क्रोध करनेवाले का) सब कुछ लूटकर नंगा कर देता है। जिससे उस क्रोध का शमन हो जाए, मैं उस प्रकार का तपस्या स्वरूप आचरण करूँगा। मन में ऐसा निश्चय करके गौतम ऋषि तप करने के हेतु चले।

श्लोक– ऐसी बात कहकर ऋषिश्रेष्ठ महातेजस्वी गौतम पवित्र देश में सिद्ध-चरणों के निवास स्थान रमणीय हिमालय के शिखर पर चले गये और उन्होंने वहाँ बड़ा तप किया।

सिद्ध और चारण लोकों के ऊपर, मेरुपर्वत के पृष्ठभाग में हिमालय के शिखर पर गौतम ऋषि ने तप करना आरम्भ किया। गौतम ने निर्विकार बैठकर अथाह निष्ठा को धारण किया (निष्ठा पूर्वक तपस्या करना आरम्भ किया)। उनमें काम और क्रोध का अंश तक शेष नहीं रहा। (फलत:) उस तपस्या की महत्ता, महत्ता को प्राप्त हुई (बहुत बढ़ गयी)।

गौतम ऋषि के अभिशाप का इन्द्र पर प्रभाव– ब्राह्मण का दिया हुआ अभिशाप दारुण होता है। (उसके फल स्वरूप) इन्द्र के वृषण झड़ (कर गिर) गये। (उसके शरीर में) भग (चिह्न) पूर्ण रूप से अंकित हुए। उसी के लक्षण को सुनिए। परदारा का (पाप बुद्धि से) अवलोकन करने से (इन्द्र के) नयन भग-चिह्नों से अंकित हो गए। उसने पर-दारा के मुख का चुम्बन किया, (फलत:) उसका बदन भग चिह्नों से अंकित हो गया। जान लीजिए कि उसने परदारा का आलिंगन किया; इससे उसके हृदय-स्थल (वक्ष) पर भग-चिह्न उत्पन्न हो गए। समझिए कि उसके बाहु भग चिह्नांकित हो गए। उसकी उँगलियाँ भगचिह्नांकित हो गयीं। (इन्द्र ने) परदारा का अधर-पान (चुम्बन) किया, उससे, समझिए कि उसकी जिह्वा भग-चिन्हांकित हो गई। जिन भौंहों से संकेत किया, वे भौंहें सम्पूर्ण रूप से भग-चिह्नांकित हो गई (इन्द्र ने) पर-दारा के प्रति (अपने चरणों से) गमन किया; अत: उसके चरण भग चिह्नांकित हो गए। जान लीजिए कि नीचे तलुओं पर भी सम्पूर्ण भग चिह्न अंकित हो गए। परदारा से उसने काम (भोग) सम्बन्धी बातें कीं, इसलिए वह (इन्द्र) दोनों ओठों में भग-चिह्नांकित हो गया। उसके ललाट पर भग चिह्न उत्पन्न हो गए। उसकी पीठ भग चिह्नों से पूर्णत: भर गई। इस प्रकार इन्द्र भ्रष्टता को प्राप्त हो गया। उसके समस्त शरीर में भग (चिह्न) झर रहे थे। अपने किये कर्म के कारण खेद करते हुए अपने इस अध:पात पर वह विलाप करता रहा। इन्द्र सब अंगों में भग चिह्नांकित हो गया। (मारे लज्जा के) वह पक्षियों में छिपा रहा। समस्त देवों और ऋषियों द्वारा (उसे खोजने के हेतु) देखने पर भी वह स्पष्ट रूप से दिखायी नहीं दिया। इन्द्र ने (जब) देव-मण्डल को छोड़ दिया, तो मेघ (स्वतंत्रता पाकर) उच्छृंखल (निरंकुश, स्वैराचारी) हो गये। पृथ्वी मन्द-फल हो गई, अर्थात् पृथ्वी में खाद्य, फल आदि उत्पन्न करने की शक्ति क्षीण हो गई; अत: उनकी उपज बहुत कम होने लगी। सब के सब अपने-अपने (निर्धारित) कर्त्तव्य कर्म कुण्ठित हो गए (नियम के अनुसार उनका निर्वाह करने में बाधा आने लगी)। इसलिए देव और ऋषि इन्द्र को यत्न-पूर्वक खोजते रहे। तब (गुरु-देव) बृहस्पति ने उनसे कहा– 'गौतम ऋषि से शाप मोचन की याचना करें'। तब सब देव और ऋषि इकट्ठा होकर गौतम के पास गये। उन सबने इन्द्र का उद्धार करने की उनसे प्रार्थना की। समझिए कि (तब तक) गौतम ने पछतावे से क्रोध का विनाश किया था। समझिए कि देवों द्वारा प्रार्थित होते ही वे करुणा से पूर्णत: उमड़ उठे। इन्द्र भ्रष्टता को प्राप्त हुआ है; फिर भी मैं उसकी महिमा पहले की भाँति बहुत (मात्रा में) बढ़ाऊँगा– इस विचार से वह स्वयं वरदान प्रद बात बोले। (तब) इन्द्र मोर के रूप में (रहता) था। शाप-मोचन होते ही वह सुन्दर आँखोंवाला (मोर) समस्त अंगों के पर उभारकर अति उल्लास के साथ नाचने लगा। (पहले) इन्द्र पूर्णत: भग चिह्नों से अंकित था। (शाप मोचन के फल स्वरूप) वे भग-चिह्न नयन बन जाने वाले थे। (वे भग-चिह्न नयनों में परिवर्तित हो गए)। तब से इन्द्र 'सहस्र-नयन' नामाभिधान (उपाधि) को प्राप्त हो गया।

इन्द्र द्वारा गौतम की स्तुति करना और गौतम द्वारा इन्द्र को शाप-विमोचन का उपाय बताना– इन्द्र ने (गौतम ऋषि की स्तुति करते हुए) कहा– 'हे गौतम जय हो, जय हो। हे पुरुषों में उत्तमोत्तम (श्रेष्ठों में भी श्रेष्ठ पुरुष), आपकी महिमा (किसी को भी) समझ में (पूर्ण रूप से) नहीं आती। आपकी ऐसी अथाह महिमा है। (वस्तुतः) आपने मुझे अभिशाप नहीं दिया। मेरे अपने किये कर्म के फल का उपभोग मैंने किया है। जो (वस्तुतः) दुराचारी है, आपने उसे महान् श्रेष्ठ बना लिया- यही आपकी बड़ी लीला है'। इन्द्र ने गौतम की ऐसी स्तुति की, तो वहाँ पर देवों ने भी गौतम की स्तुति (इस प्रकार) की– '(हे ऋषिवर) आपकी ख्याति अलौकिक (असाधारण) है। आपने निश्चय ही एक अपराधी का उद्धार कर लिया है'। इन्द्रत्व का जो लक्षण है, वही मोर में पूर्ण रूप से आभासित होता है उसके तो वृषण थे ही नहीं- मोर को (प्रत्यक्ष) स्त्री-रमण (अपनी मादा से सम्भोग) करना नहीं आता, मोर आनन्द के साथ नृत्य करने लगता है, तो उसके नेत्रों से वीर्य का स्राव होता है। मोरनी उसे पकड़कर ले जाती है। उसी से उसके पेट में गर्भ उत्पन्न हो जाता है। (बात यह है कि) इन्द्र को पूर्ण महत्ता तो प्राप्त हो गई; लेकिन उसमें पुरुषत्व का कोई ठिकाना (चिह्न) नहीं रहा था। तब हाथी ने उसे अपने वृषण प्रदान करके उसमें पुरुषत्व की सम्पूर्ति कर दी। हाथी की देह में वृषण नहीं रहे। इसलिए वीर्य के विषय में वह क्षीण (दुर्बल) हो गया, तब इन्द्र ने उसमें वृषण उत्पन्न कर दिए। उन्हें उसने सिर से वन्दन किया– अर्थात् सिर पर उन्हें धारण किया।

इन्द्र को प्राप्त अभिशाप का मोर और हाथी पर प्रभाव– इसलिए अब भी हाथी की देह में लिंग स्थान में वृषण नहीं होते। वे उसके मस्तक पर आभासित होते हैं। देखिए इसी कारण से उसे कुम्भेभ (कुम्भ से गण्डस्थल से युक्त) कहते हैं। (परन्तु विचित्र बात यह है कि) सम्भोग के समय उसके वृषण अपने आप लिंग के पास आ जाते हैं। अन्य समय समझिए कि वे उसके मस्तक पर स्थित होते हैं। इस प्रकार वह पूर्ण रूप से कुम्भेभ आभासित होता है। हाथी के वृषणों के कारण (उनके हाथी को प्राप्त होने के कारण) इन्द्र को ऐश्वर्य की प्राप्ति हो गई, इसलिए समस्त देवों ने उसका नाम ऐरावती (निर्धारित कर) रखा। इन्द्र के पास (शरीर में) हाथी के वृषण हैं। इससे उसे सम्पूर्ण बल प्राप्त हुआ है। उधर हाथी में इन्द्र के (द्वारा निर्मित) वृषण हैं; इसलिए उसे इन्द्र का-सा बल प्राप्त हो गया है। हाथी में इन्द्र के समान बल (विद्यमान) है। गज-दल से सेना दल शोभायमान होता है। नहीं तो सेना-दल को दुर्बल सेवकगण (दुर्बलों के सिरों का समूह) समझिए। इस प्रकार गजेन्द्र (श्रेष्ठ हाथी) को मानों राज्य की प्राप्ति हो गयी। इसलिए उसे लोग 'गजान्त-लक्ष्मी' कहने लगे। समस्त प्रजाजन उसे नमस्कार करते हैं। वही धन सम्पत्ति की देवी लक्ष्मी का पूर्ण मूर्त स्वरूप है। इस प्रकार गौतम ऋषि के अभिशाप वचन से इन्द्र (पहले) अपमान और निस्तेजता को प्राप्त हो गया था। फिर भी उसे ऐरावत पर विराजमान कराकर देव उसका जय-जयकार करते हुए स्वर्ग के प्रति ले गए, ऋषि विश्वामित्र ने इस प्रकार इन्द्र-अहल्या का सम्पूर्ण आख्यान सुनाया और कहा- 'हे श्रीराम, अहल्या का पाषाण रूप से उद्धार करो'।

अहल्या का उद्धार– सद्गुरु विश्वामित्र की बात सुनकर रघुनन्दन झट से उठ गए और अहल्या का उद्धार करने के लिए उन्होंने स्वयं उस आश्रम में प्रवेश किया। ऋषिवर विश्वामित्र के हाथ को थामकर वे आश्रम में अहल्या को देखने (खोजने) लगे। समस्त ऋषियों को भी वह दिखायी नहीं दी। चारों ओर देखने पर भी वह उन्हें कहीं दिखायी नहीं दी। आश्रम में (इधर उधर) घूमते रहने पर अचानक (एक पाषाण को) श्रीराम का पाँव लग गया, तो (पाषाण बनी) अहल्या का उद्धार हो गया। तब उसने तत्काल

श्रीराम को साष्टांग नमस्कार किया। उसने श्रीराम के चरणों पर अपना मस्तक रखा। उसकी आँखों से पूर्ण रूप से (उमड़कर) आनन्दाश्रु बह रहे थे। उनसे श्रीराम के चरणों का प्रक्षालन हो गया। इस प्रकार अहल्या (के मन) में श्रीराम के प्रति सम्पूर्ण (गहरा, अथाह) प्रेम भर पड़ा था।

कवि द्वारा श्रीराम की स्तुति करना-- कवि ने कहा-- हे रामचन्द्र, जय हो, जय हो। आपने अपनी चरण-मुद्रा (चिह्न) से, शिला बनी हुई स्त्री का उद्धार किया. हे जगत् के उद्धारकर्त्ता, संसार-स्वरूप सागर को आपके चरण का स्पर्श होते ही, वह उसका उद्धारकर्त्ता सिद्ध हो जाता है। आपके श्रीचरण के लगते ही शिला का उद्धार हो गया, यह कौन-सा आश्चर्य है ? उससे (उस चरण-स्पर्श से अहल्या के) कर्म अकर्म की विदाई हुई (वह अपने किये कर्म से या प्रत्यक्ष न किये कर्म से, पूर्व-कर्म से मुक्त हो गई)। उसके लिए उसकी घर-गृहस्थी (उसमें किया व्यवहार) पूर्ण परमार्थ (पारमार्थिक लाभ) सिद्ध हो गई है। आपके चरणों से भेंट न होने पर मायामय घर-गृहस्थी की बातें (प्रवृत्तियाँ) बल को प्राप्त होती रहती हैं। परन्तु आपके चरणों को आँखों से देखते ही वह संसार (जगत्) ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है, उसका उद्धार हो जाता है, माया के जाल से मुक्त होकर ऊपर उठ जाता है। आपके श्रीचरण के लगते ही, समझ लीजिए कि स्थूल, लिंग, कारण तथा महाकारण नामक चारों देहों का जगत् परिपूर्ण रूप से परब्रह्म ही हो जाता है। आपके चरण के लग जाते ही देह विदेह हो जाती है (देह की सांसारिक विकारादि प्रवृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं)। (जीव जगत् ब्रह्म आदि सम्बन्धी) सन्देह (भ्रमपूर्ण धारणाएँ) सन्देहहीन हो जाते हैं (ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होने पर माया-जन्य भ्रम दूर हो जाता है)। जीव शिव का (सच्चे कल्याण का ब्रह्म का) दर्शक हो जाता है। आपके चरणों की ख्याति अथाह है। उसका वर्णन करते-करते श्रुतियाँ (वेद) मौन को प्राप्त हो गईं। (वे उसका वर्णन करने में पूर्णतः असमर्थ होकर मौन धारण कर बैठीं)। आपकी कथा (लीला) को पुनःपुनः कहते और उसकी व्याख्या करते हुए आपके चरणों की शरण में चारों मुक्तियाँ आयी हुई हैं (आपकी शरण में आने पर चारों मुक्तियाँ सहजतया प्राप्त हो जाती हैं)। रामकथा पुनःपुनः कहने पर (वक्ता के सामने) पापों का देवता या यमदेवता भी अपना मस्था (आगे बढ़ाते हुए) झुकाता है। उसके चरणों के तीर्थ (जल) का (अन्यान्य) तीर्थक्षेत्र (जल) वन्दन करते हैं। उस कथा का श्रवण करने पर देव शान्ति को प्राप्त हो जाते हैं। (किसी के द्वारा) प्रेमपूर्वक रामायण का गान करने से श्रीराम स्वयं सुख को प्राप्त हो जाते हैं। रामकथा के वक्ता का जन्म-मरण (चक्र) समाप्त हो जाता है (उसे मुक्ति मिलती है)। उसके श्रोता स्वयं पूर्णब्रह्म (मय) हो जाते हैं।

श्रीराम के नाम का माहात्म्य-- (हे श्रीराम !) आपकी ऐसी कथा समस्त लोगों को पावन बना देती है। कथा-कथन-सम्बन्धी यह बात करते रहने से मनुष्य मुक्ति को प्राप्त हो जाते हैं। श्रीराम के नाम का नित्य स्मरण करने से वह (नाम-स्मरण) समस्त पापों को भस्म कर देता है। हरि अर्थात् श्रीराम के नाम (स्मरण) से (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक) चारों पुरुषार्थों (की प्राप्ति) का कार्य आसान हो जाता है। राम-नाम का स्मरण करने से जन्म-मरण को ही मरण आ जाता है। (स्मरण करनेवाले को मुक्ति प्राप्त हो जाती है)। उसका 'मैं-तू' के अन्तर सम्बन्धी विचार जड़-मूल सहित नष्ट हो जाता है। उसे संसार के बन्धन बाधा नहीं पहुँचा सकते। उसे माया, मोह बाधा नहीं पहुँचा सकते (अथवा उसे माया का उन्हें मोह अनुभव नहीं होता)। (पूर्वकृत तथा इस जन्म के उसके किये) कर्म के बन्धन उसे बाधा नहीं पहुँचा सकते। उसे राम-नाम स्मरण करते ही (आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक नामक) तीनों प्रकार के तापों का (अथवा कायिक, वाचिक और मानसिक तीनों प्रकार के तापों का)

छल-कपट-धरा कौशल बाधा नहीं पहुँचा सकता। राम नाम का स्मरण करने से (साधक को नामस्मरण-कर्त्ता को) दृश्य द्रष्टा तथा दर्शन, ध्येय ध्याता तथा ध्यान और ज्ञेय ज्ञाता तथा ज्ञान जैसी त्रिपुटियों का कोई ध्यान शेष नहीं रहता। उसमें देह के विषय में आत्मीयता (अर्थात् अहंदेह भाव, देह ही सब कुछ है जैसी धारणा) शेष नहीं होती। जीव के विषय में जीव-भाव (अर्थात ब्रह्म से जीव के अस्तित्व को स्वतन्त्र मानने की प्रवृत्ति) नहीं शेष रहता। 'मैं-तू' के भाव का कोई ठौर ठिकाना उसमें शेष नहीं रहता। नाम स्मरण से श्रीराम द्वारा साधक का इस प्रकार (जीवन) निर्वाह चलता रहता है। राम नाम का घोष (गर्जन) करते रहने से नाम स्मरण करनेवाले की शरण में काल तक आ जाता है। श्रीराम के (नाम के) प्रभाव से सांसारिक भय जड मूल-सहित भाग जाता है और सुख समारोह (सम्पन्न) होता रहता है। श्रीराम नाम का गर्जन करते रहने पर ब्रह्म आत्मानन्द के साथ (स्वीकृति-सूचक) हुँकारी भरता है। जिस प्रकार गाय अपने बछड़े के पीछे-पीछे जाती है, उसी प्रकार नाम के उच्चारण से (स्वयं) श्रीराम (नाम लेनेवाले का) अनुसरण करते हैं. श्रीराम नाम के ये अक्षर क्षर (क्षय को प्राप्त होनेवाले नाशवान) तथा अक्षर (अविनाशी अक्षय) के परे हैं। श्रीराम नाम ही परात्पर (सर्वोपरि) परब्रह्म है। श्रीराम नाम स्वरूप मंत्र शिवजी के लिए सेव्य (सेवा अर्थात् जाप करने) योग्य है। पण्डित जनों ने कहा है कि पुराणों में कहे अनुसार राम नाम के पास अर्थात् राम नाम में सद्यःमुक्ति, तत्क्षण मुक्ति प्रदान करने की शक्ति है। मैंने जो कहा है, वह तो मेरा अनुभव है। राम-नाम निश्चय ही तारक अर्थात् भवसागर से उद्धार करनेवाला है। नाम से भुक्ति (भोग, आत्मानन्द का उपभोग) मिलती है, नाम से मुक्ति मिलती है। नाम में ब्रह्म को प्राप्त कराने की शक्ति है। जो राम-नाम का जाप करते हैं, वे ही त्रिभुवन में वन्द्य (माने जाते) हैं। राम-नाम परम श्रेष्ठ जप (का विषय) है। राम नाम परम तप है। राम नाम पुण्य और पाप का निराकरण करता है। (साधक को) निर्विकल्प समाधि अवस्था में पहुँचा देता है। नाम के विषय में अनध्याय नहीं है, अर्थात् नाम स्मरण के क्षेत्र में ऐसा कोई दिन नहीं है कि जिसमें वह नहीं किया जाए। नाम के लिए नित्यप्रति स्वाध्याय (नाम स्मरण या जाप करने) का उचित समय होता है। देखिए, नाम तो प्रत्यक्ष परब्रह्म ही है। परन्तु अभागे मनुष्य में नाम स्मरण या उसका जाप करनेकी इच्छा नहीं पैदा होती। नाम के विषय में अनध्ययन नहीं है (नाम का किसी भी समय अध्ययन, स्मरण किया जा सकता है)। नाम के जाप, स्मरण आदि के लिए कोई निर्धारित विधि (पद्धति) की व्यवस्था नहीं है। नाम के स्मरण आदि में कर्म का कोई बन्धन नहीं है (किसी भी काम के करते रहते नाम स्मरण किया जा सकता है; नाम के प्रभाव से कर्म सम्बन्धी बन्धन टूट जाते हैं)। महापापी लोग भी नाम (के प्रभाव) से पावन हो जाते हैं। यद्यपि कोई दुराचरण करनेवाला हो, तथापि वह जब अनुताप (ग्लानि, पछतावे) से व्याप्त होकर जीव-प्राण से नाम का जाप करे, तो भगवान् के कहे वचन के अनुसार इस संसार में वह साधु समझा जाने लगता है।

अहल्या-कृत श्रीराम की स्तुति– श्रीराम की कृपा स्वयं एक ऐसा दीपहै कि उसके प्रकाश से अहल्या द्वारा किया गया कल्प भर का पाप रूपी अँधेरा नष्ट हो गया। उसके तप का ऐसा प्रभाव था कि उसने उसके पाप को अपाप कर दिखाया (उसके पाप को धो डाला)। (उसने सोचा) यदि इन्द्र मेरे साथ व्यभिचार न करते, और उसके फल-स्वरूप ऋषिवर (मेरे पति) अभिशाप न देते, तो मैं रामचन्द्र (की कृपा) को कैसे प्राप्त हो जाती। ऋषि के अभिशाप से मेरा भाग्य बड़ा (सिद्ध) हो गया। गौतम ऋषि का अपना दिया हुआ शाप मेरे लिए अमृत-स्वरूप हो गया। मेरे पुण्य और पाप (धुल) गए

और मैं शुद्ध (पावन) स्वरूप को प्राप्त हो गई हूँ। इन्द्र ने व्यभिचार नहीं किया- उन्होंने तो (उसके बहाने) मेरे जन्म का उद्धार ही किया। गौतम का वह शाप नहीं था- वह तो वर सिद्ध हो गया। उसने मेरी रघुवीर श्रीराम से भेंट करा दी. गौतम मेरे अपने पति हैं; गौतम मेरे अपने सद्गुरु हैं. गौतम मेरे अपने आत्म-स्वरूप का निर्धारण करनेवाले सिद्ध हुए; उन्होंने मुझको रघुवीर से मिला दिया। जगत् में वीर तो असख्य हैं; पर वे अहंकार को काट नहीं डाल सकते. श्रीरामचन्द्र ही ऐसे परम महान योद्धा हैं, जिन्होंने मेरे अहंकार को सपरिवार छिन्न-भिन्न कर डाला। इस प्रकार अहल्या द्वारा श्रीराम की स्तुति करने पर गौतम ऋषि को अपनी (अन्तर) ज्ञान-शक्ति से उसके उद्धार की बात विदित हुई तो उन्होंने शीघ्रतापूर्वक आकर स्वयं श्रीराम का पूजन किया। (उधर) गौतम ने तो पहले ही काम क्रोध जैसे विकारों का निर्दलन (दमन) किया था। (इधर) श्रीराम ने अहल्या (का उद्धार करते हुए उस) को निष्काम अर्थात् विकारहीन कर दिया था। इस प्रकार उन दोनों की मनोवृत्ति स्वाभाविक रूप से सम-समान हो गई। फल-स्वरूप वे राम (की कृपा) से परब्रह्म को प्राप्त हो गए।

गौतम-अहल्या-पुनर्मिलन– श्रीराम ने इस प्रकार, उन दोनों से मिलकर उन दोनों के लिंगशरीर (वासनात्मक देह) की गाँठों को खोल लिया। सच्चिदानन्द राम के दर्शन से उन दोनों के स्नेह तथा [illegible] की पुष्टि हो गई। वे दोनों ब्रह्मज्ञान सम्बन्धी समभाव के कारण समसमान दृष्टि को प्राप्त हो गए। उन दोनों का दृष्टिकोण एक ही हो गया। उन दोनों ही में राम-कथा आदि के श्रवण में सम-समान [illegible] थी दोनों ही का मन एक-सा उन्मन अवस्था को प्राप्त हो गया। श्रीराम की कृपा से दोनों चैतन्य शक्ति के घन स्वरूप हो गए। उन दोनों की आत्मा एक ही हो गई; दोनों के प्राण एकरूप हो गए उन दोनों का अन्तःकरण एक ही हो गया। उन दोनों को एक-सा आत्म ज्ञान प्राप्त हो गया। इस प्रकार एकात्मता के कारण गौतम ऋषि और अहल्या दोनों (पुनश्च) सुख सम्पन्न हो गए। उन दोनों के शब्दों की सिद्धि एक ही थी; अर्थात् दोनों के द्वारा शब्दों में एक ही भाव व्यक्त हो जाता था दोनों के मन विचार एकात्म थे और वे उसी रूप में व्यक्त हो जाते थे. वे दोनों अपनी-अपनी इन्द्रियों से एक सा कार्य करते थे, दोनों का कार्य समान था। घर गृहस्थी अर्थात् सांसारिक बातों में तथा पारमार्थिक बातों में उनकी बुद्धि (विचार, दृष्टि) एक-सी थी। उन दोनों को साधना क्षेत्र में आराध्य-उपास्य के भक्ति-भाव [illegible] समाधि-अवस्था प्राप्त हो जाती थी। वे दोनों इस प्रकार ऐहिक-पारलौकिक विषय में एकात्म [illegible] परस्पर बँधे हुए थे। उन दोनों के मस्तक पर कुंकुम, अक्षत आदि लगा दिया गया। गौतम ऋषीश्वर पतिधर्म में वरिष्ठ थे, तो अहल्या श्रेष्ठ पतिव्रता थी। वे दोनों इस प्रकार की एकात्मता से परिपूर्ण थे। श्रीराम ने स्वयं अहल्या का उद्धार कर लिया और गौतम ऋषि को सम्पूर्ण रूप से सुख को प्राप्त करा दिया। (उसे देखकर) समस्त बड़े-बड़े ऋषि (अथवा ऋषीश्वर गौतम) सुखी एवं सम्पन्न हो गए। सब ऋषि विभोर हो गए उन्होंने फूलों की राशियाँ बरसा दीं। तो (चारों ओर) जयजयकार हो गया। उन्होंने [illegible] में भेद-भावपूर्ण दृष्टि और विषयासक्ति से ये दोनों एकात्मता के कारण तैरकर पार हो गए- मुक्त हो गए। इस प्रकार की मुक्ति की बात सुनकर ज्ञानी श्रोता जन हँसने लगे

कवि की काव्य-रचना सम्बन्धी मान्यता– जो कवि बिना भक्तिभाव के (भक्तिभाव-ज्ञान) [illegible] काव्य रचना करते हैं, वे अपने पूर्वजन्मकृत पापों के फल-स्वरूप कष्ट को प्राप्त हो जाते हैं वे लोग उन कवित्व (काव्य) के श्रवण-पठन आदि को झंझट समझते हैं और उसके प्रति उकताहट का ही अनुभव करते हैं। जिस काव्य रचना में (केवल) शब्द-चातुर्य तथा शाब्दिक सुन्दरता होती है,

यह सिर्फ शब्द-ज्ञान रखनेवाले को (शब्दों का, वर्णोंका महत्त्व माननेवाले को) अति प्रिय लगती है। परन्तु जो कथा (काव्य आदि) परमार्थ (अध्यात्म, भक्ति, दर्शन आदि) के ज्ञान से युक्त होती है, वह कथा रूपी देवी जगदम्बा जगत् के (सब प्रकार के) कष्टों का शमन कर देती है। (अध्यात्म, परमार्थ विद्या आदि के) ज्ञानी जन परमार्थ बोध से शान्ति को प्राप्त होते हुए प्रसन्न हो जाते हैं। पण्डितजन पद-बन्ध (शब्दों, पदों आदि की वैशिष्ट्यपूर्ण रचना, चित्रकाव्य आदि) से आनन्दित हो जाते हैं। जनसामान्य विनोद-युक्त कथा (काव्य आदि से) तृप्त हो जाते हैं– साधारण जगत् के लोग ऐसे ही ग्रन्थ के सम्बन्ध (परिचय आदि) से आनन्द को प्राप्त हो जाते हैं। (रचनाकार तथा श्रोता को) मुख्यतया ग्रन्थ के अर्थ के प्रति आत्मीयता होनी चाहिए (काव्य के बाह्य लक्षणों के प्रति नहीं)। कवित्व का अर्थात् काव्य-रचनाकार प्रत्येक पद पद पर परब्रह्म का प्रतिपादन करे। ऐसे काव्य से ही श्रोता प्रेम करते हुए सुख को प्राप्त हो जाते हैं। रामायण कथा रम्य है। (उसका रचनाकार) एकनाथ अपने गुरु श्रीजनार्दन स्वामी की शरण में स्थित है। उसके द्वारा यहाँ अहल्या उद्धार की कथा प्रस्तुत हुई। (अब श्रीराम) जानकी के विवाह की कथा सुनिए।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ कृत "श्रीभावार्थ रामायण" नामक टीका के अन्तर्गत बालकाण्ड का 'अहल्योद्धरण' नामक यह चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय १५

[सीता की जन्म-कथा]

श्रीराम के चरण-स्पर्श की महिमा–

श्लोक– (हे श्रीराम) जिसकी देह पाषाण-रूप बनी थी, वह गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या धर्मपत्नी के रूप में स्वीकृत हुई। फिर विंध्य पर्वत की तलहटी में (विंध्य पर्वत पर) आपके विचरण करते रहते (न जाने) कितने बिखरे हुए पाषाणों से (उद्धार को प्राप्त होनेवाली स्त्रियों को स्वीकार करके) कितने-कितने तपस्वीजन नारी-युक्त (गृहस्थाश्रमी) हो जाएँगे।

श्रीराम के चरणों के रज-कणों के लगने से पाषाण का पाषाणत्व नष्ट होकर अहल्या का उद्धार हो गया। तब गौतम ऋषि ने उसे पत्नी रूप में (पुनश्च) स्वीकार किया। श्रीराम के चरणों की धूलि के प्रताप से अहल्या निष्पाप हो गई (पावन हुई)। अपने पति गौतम के विरोधभाव (प्रतिकूल भाव) का निराकरण होने पर वह स्त्री उनके अनुरूप पतिव्रता (सिद्ध) हो गई श्रीराम के चरणों की ऐसी अथाह महिमा को देखकर ऋषिजन विस्मय-चकित हो गए। स्वर्ग में रहनेवाले देवों ने श्रीराम का स्तवन किया। (तभी तो) श्रीराम-नाम तीनों लोकों में पावन सिद्ध हुआ है। देखिए, आगे चलकर (सम्भव है) विंध्य पर्वत पर जो-जो पाषण श्रीराम के चरणों के स्पर्श को प्राप्त होंगे, वे पूर्णतः नष्ट होकर सुन्दरता से युक्त स्त्री-देहों में परिवर्तित होकर उठ जाएँगे। उन स्त्रियों को देखकर अनेकानेक तपस्वी जन ब्रह्मचर्य का त्याग करते हुए उनको पत्नी रूप में स्वीकार करेंगे।

ऋषि मुनियों का मिथिला नगरी के प्रति प्रयाण– इस प्रकार (आश्चर्य के साथ सोचते-सोचते) बड़े बड़े ऋषियों का समुदाय श्रीराम-नाम का एक साथ (एक स्वर में) मिलकर यशोगान करते हुए

अत्यधिक आनन्द के साथ चला जा रहा था। आगे उन्होंने मिथिला नगरी को देखा। मिथिला विदेहराज जनक की विदेहपुरी थी। (जान पड़ता था कि राजा जनक की भाँति वह नगरी, अर्थात् वहाँ के लोग देह धारण करते हुए भी देह के साथ आनेवाले काम-क्रोधादि विकारों से मुक्त हो गये थे)। उस नगर में फहरने वाली ध्वजाएँ चिन्मय आकाश में चमक-दमक रही थीं। भवनों के रत्नकलशों की पंक्तियाँ अपनी कान्ति से सूर्य-चन्द्र की कान्तिस्वरूप महिमा को लुप्त करती हुई शोभायमान थीं। वहाँ की वनश्री की शोभा अपने पूर्णत्व (चरम शोभायमान रूप) से आकाश को पूर्णरूप से व्याप्त किये हुए थी। उस शोभा को देखकर दर्शकों के प्राण विस्मय से चकित होकर अविचल हो जाते थे विश्वामित्र आदि को ऐसी नगरी में प्रवेश करते समय आनन्द हो गया। (अथवा समस्त लोगों को नगरी में प्रवेश करते समय आनन्द हो जाता था)।

प्रकृति-सौन्दर्य– जड़ मूलों तथा पत्तों के साथ वृक्ष मधुर अर्थात् शोभायमान एवं आनन्ददायी थे बीज रहित फलों के गुच्छे (शोभायमान) थे। उन्हें देखते ही पथिकों की चाह पूरी हो जाती थी (उनका मन अघा जाता था)। उन वृक्षों की छाया में बैठने पर (शीतल छाया में रहने की) इच्छा स्वयं इच्छा-रहित हो जाती थी (इच्छा निःशेष पूरी हो जाती थी)। उस छाया में (पथिकों को) प्राप्त होने वाला विश्राम स्वयं एक आश्चर्य ही था। उससे काम-क्रोध का शमन हो जाता था। तीनों प्रकार के ताप स्वयं शान्ति को प्राप्त हो जाते थे। किसी के मन में कोई भ्रम हो, तो वह स्वयं दूर होकर विच्छक्ति में परिवर्तित हो जाता था। उन (वृक्षों) के फलों के स्वाद का सेवन करने पर भूख प्यास की बाधा नष्ट हो जाती थी (दर्शकों, पथिकों सेवन करनेवालों के) अन्दर बाहर परमानन्द घने रूप में छा जाता था। फलों का वह बड़ा मधुर स्वाद कभी कम नहीं होता था (उसका सेवन करने से लोगों को कभी उकताहट नहीं अनुभव होती थी)। उन फलों की मधुरता को जानकर तोते उनकी ओर शीघ्र गति से लपक जाते थे। उन्हें चखने से उन्हें अथाह तृप्ति हो जाती थी और उड़ने की प्रवृत्ति (इच्छा) भुला दी जाती थी। विदेह नगरी के वन में निवास करनेवाले हंसों को वहाँ पर (प्रति क्षण) नयी-नयी (प्राकृतिक) लीला दिखायी देती थी। फिर (जान पड़ता था कि) वे अपने दोनों पंखों को छोड़कर चिदाकाश में उड़ान भरते रहते थे (संन्यासी, विरक्त तापस इहलोक-परलोक को भुला देकर चित्स्वरूपा सुन्दरता में ही मग्न रहते थे)। उन उपवनों को देखकर मुमुक्षु (मोक्ष पाने के अभिलाषी) जन-स्वरूप मोर आत्मिक आनन्द के साथ अपने मखमली स्वरूप परों को फैलाकर (अद्भुत आनन्द से पुलकित होकर) उस सुखद सुवेला में (सुन्दर समय पर) नाचते थे। विदेह नगरी के वन (के पुष्पों) की सुगन्ध को प्राप्त करते ही (पथिकों को) परम आनन्द का अनुभव होता था। देहधारी अर्थात् वे मनुष्य आनन्द को प्राप्त हो जाते थे। उस आत्मिक आनन्द की स्थिति में वे आत्मज्ञान को प्राप्त करते थे। आत्मिक आनन्द के साथ जब वे मोर (ब्रह्मनाद के रूप में) गर्जन करते थे, तो वेदार्थ चकित हो जाते थे और कर्मवाद की प्रवृत्ति को छोड़कर मौन धारण करते हुए निश्चल हो जाते थे। (मतलब यह कि मोरों का बोलना सुनकर वेदों का पठन तथा कर्मकाण्ड सम्बन्धी चर्चा करने वाले वेदवेत्ता विस्मित होकर मौन धारण करते और निश्चल बैठ जाते थे)। उस वन के अन्दर जब परेवे (कबूतर) बोलते थे, तब गन्धर्वों के गीत या गन्धर्व गीत गाते-गाते (उनके गान को सुनते-सुनते) पागल-से हो जाते थे। सामवेद की स्वाभाविक गायन-प्रवृत्ति शान्ति को प्राप्त हो जाती थी। उस वन के पक्षी उस प्रकार अनुपम रूप में गाते थे। जब राम के चरण उस वन के अन्दर पैठने लगे, तब वह उपवन ऐसी स्थिति को प्राप्त हो गया। यह तो विदेहराज जनक का विदेह वन था

उसकी अथाह महिमा का वर्णन कौन कर सकता है ? अपने कर्म-धर्म के अनुसार जिस नगरी में रहते हुए (वेश्या-वृत्ति करनेवाली) पिंगला समाधि अवस्था को प्राप्त हुई, तो उस विदेह की विदेहपुरी मिथिला की बड़ाई का वर्णन कौन कर सकता है ? जिनके द्वारपालों के वचनों (कथन)ने शुक को समाधान (तथा सन्तोष) प्रदान किया, उन जनक की महिमा बहुत बड़ी अथाह है। परमार्थ (ब्रह्मज्ञान) आदि सम्बन्धी उनके बड़प्पन का यह लक्षण है।

स्वयंवर-मण्डप का रूपकात्मक वर्णन– उसी मिथिला नगरी के बाह्य प्रदेश में एक स्थान पर श्रीराम ने राजा जनक के यज्ञ को देखा, जिसका आयोजन सीता के स्वयंवर के उपलक्ष्य में बहुत परिश्रम-पूर्वक किया जा रहा था। उस यज्ञ के मण्डप के लिए निश्चय ही धैर्य रूपी स्तम्भ निर्मित थे। उनपर धर्म रूपी बल्लम (शहतीर) बैठाये गए थे। उस मण्डप के अन्दर यज्ञ भूमि को शान्ति ने अपने कौशल से सजा दिया था। वहाँ धूम्र-रहित, अति प्रखर तेजोमय अग्नि था। बिना ईंधन के भी उसमें बड़ी जगमगाहट हो रही थी। उसकी ज्वालाएँ अत्यधिक स्वच्छ-उज्ज्वल थीं। उन अग्नि-ज्वालाओं का प्रकाश (सबको) सुखद तथा रोचक प्रतीत होता था। ओम् ध्वनि की अर्द्ध-अर्द्ध मात्राएँ, अर्थात् अ उ, म् वर्ण, जो अपने-अपने अर्थ को परमार्थ के संदर्भ में जानकर उसे अभिव्यक्त करते हैं, उस यज्ञ कर्म के क्रमशः होता (वह विशिष्ट ऋत्विज या पुरोहित जो ऋग्वेद के मंत्रों का पठन करता है), पोता (यज्ञकर्म करानेवाले ब्रह्मन, उपाधिकारी प्रमुख ऋत्विज के सोलह सहायकों में से एक) और उद्गाता (यज्ञ के चार विशिष्ट ऋत्विजों में से एक जो सामवेद के मंत्रों का पठन करता है) थे। वैसे तो ओम् ध्वनि के अ, उ, म् अंगभूत वर्ण वाच्यार्थ में प्रयुक्त होकर यज्ञ-मण्डप के द्वारपाल नियुक्त हो चुके थे। सत्व, रजस, तमस् नामक तीन गुण स्वरूप सूत्र आपस में (एकात्म) बटे जाकर निर्गुण रूप धारण करते हैं वही तीन सूत्रों का एकात्म त्रिसन्धान सूत्र शुल्ब नामक रज्जु था (जो यज्ञ कर्म में प्रयुक्त होता है)। विवेक रूपी दर्भों का परिस्तरण (यज्ञ के चारों ओर किया हुआ बिछावन, आच्छादन) बना था, तो नैराश्य अर्थात् निरीहता रूपी पवित्र जल का परिसमूहन (चारों ओर सिंचन) किया गया था। काँटों से पूर्णतः रहित इध्माएँ (समिधाएँ) काम में लायी जानेवाली थीं। उन समिधाओं स्वरूप भूतों-प्राणियों को कुशों अर्थात् दर्भों के बन्धन में बाँधकर एकात्म बना दिया गया था। श्रद्धा रूपी शुद्ध घी की थाली की यथोचित स्थापना करके पलाश तथा खदिर के काठ की बनी कलछियों से उस घी का पुनः पुनः सिंचन किया जाता था। वक्रोक्तियाँ, जिनसे खलता अशुभता- सूचक चमत्कार- भरी बुद्धि सूचित है, मानों शुद्ध घी की आहुतियों का सिंचन-समर्पण कर रही थीं, फिर मंत्र पाठ करनेवाले ऋत्विज मुख्य होम में प्रकृति तथा पृथ्वी, आप (जल), तेज और वायु नामक पंच महतत्त्वों को लक्ष्य करके हवन करते थे। युक्ति-प्रयुक्ति द्वारा प्रकट होनेवाले ज्ञान सम्बन्धी अहंकार का, धन-स्त्री-ममता तथा सम्मान का गुरु द्वारा पढ़े जानेवाले मंत्र के साथ हवन किया जाता था (ऐसे अहंकार आदि को जलाकर नष्ट किया जाता था)। फिर उसमें न अलगाव की भावना रहती थी, न महत्त्व की, ('इदं न मम' कहते हुए उनका हवन द्वारा परित्याग किया जाता था)। वे यज्ञ के कर्ता सावधानी के दृश्यस्वरूप (मूर्त-रूप) थे। यज्ञ सम्बन्धी कर्म करते समय वे ब्रह्म के रहस्य को जानते थे। यज्ञ की समाप्ति के पश्चात् किये जाने वाले अवभृत कहाने वाले स्नान के समय वे मानों उस स्नान विधि से एकरस हो जाते थे; वे उस जल में डुबकी लगाने में प्रसन्नता को प्राप्त हो जाते थे। ये समस्त कर्म वे परम आनन्द के साथ सम्पन्न करते थे। चिद्घन ब्रह्म जगत् रूपी क्षेत्र का क्षेत्रपाल (क्षेत्र-रक्षक) है, वह इस भूमि का सम्पूर्ण प्रतिपालन करता रहता है। यज्ञकर्ता उसे प्रसन्न कर

लने के हेतु भोग्य विषयों और भोग की वासनाओं को उनकी स्मृतियों के साथ बलि के रूप में समर्पित करते थे (वे सांसारिक भोगों की लालसा तथा स्मृति तक का त्याग करते थे)। इसलिए उस बलिदान की ओर पीछे मुड़कर तक न देखें; मन में उसकी स्मृति तक न रहे। इस प्रकार शुद्ध (शास्त्र विधि के अनुसार) बलिदान (उस यज्ञ मण्डप में) किया जा रहा था। अखण्डित रूप में चलनेवाले सदाचार की प्रवृत्ति ही दिन-रात प्रवाह देनेवाली घी की धारा थी। उस यज्ञ में अहंकार की यज्ञ कर्म से प्राप्य फल के साथ ही पूर्णाहुति समर्पित की गयी। यज्ञकर्ता यजमान द्वारा 'मैं-तू' की भेद -भावना (द्वैत भावना) का स्वयं त्याग करना ही उसे प्राप्त होने वाला श्रेय होता है। आत्मत्व अर्थात् स्वार्थभाव का दिया जाना, त्याग कर देना ही अति अथाह दान होता है। उससे आत्मिक आनन्द के कारण (सच्ची) तृप्ति हो जाती है। परम आत्मिक आनन्द के साथ अभिसिंचन किया जा रहा था; साथ ही सांसारिक विषयों के सम्बन्ध से अनुभव होनेवाले भय का विलय किया जाता था। इस प्रकार सम्पन्न किये जाने वाले विदेहराज जनक के यज्ञ को स्वयं श्रीराम ने देखा। वहाँ अनेकानेक देशों के ब्राह्मण उपस्थित थे। वे नाना भाषाओं (के भाषण आदि व्यवहारों) में अति प्रवीण थे। वे वेदों तथा शास्त्रों के अर्थ ज्ञान से सम्पन्न थे। वे देदीप्यमान, तेजस्वी थे। विदेहराज के यज्ञ-मण्डप में ऐसे ब्राह्मणों की पंक्तियों को (समुदायों को) अपनी आँखों से देखकर श्रीराम मन में असीम सुख को प्राप्त हो गए।

विश्वामित्र आदि द्वारा यज्ञ भूमि के समीप निवास करना– श्रीराम ने विश्वामित्र से विनती की– 'स्वामी यज्ञ मण्डप भूमि के समीप निवास करें'। विश्वामित्र को यह बात अच्छी लगी; इसलिए उन्होंने उसी स्थान पर निवास किया। महीवती नदी का जल स्वच्छ था उसके तट पर विशाल गहन उपवन था। वहाँ के वृक्ष नित्य फलयुक्त तथा शोभायमान थे। श्रीराम के लिए वह निवास स्थान निर्धारित हो गया। बड़े बड़े ऋषियों का समुदाय साथ में लेकर विश्वामित्र आ गए हैं, यह सुनकर राजा जनक भावना से दौड़े और सद्भाव आदर के साथ उन्होंने उनको नमस्कार किया उन्होंने सहर्ष उनको एक सौ गायें दान में प्रदान कीं, मधुपर्क करते हुए उनका पूजन किया। उसी प्रकार, राजा जनक ने आनन्दपूर्वक अन्यान्य ऋषियों तथा साधु सज्जनों का पूजन किया। समझिए कि राजा आनन्द के साथ कहने- आज मेरा यज्ञ भलीभांति सफल हुआ; साधु पुरुषों के दर्शन करके मेरे नयन अच्छे फल (पुण्य) को प्राप्त हो गए। साधुओं का कुशल-क्षेम के साथ आलिंगन करने से शरीर पावन हो जाता है। साधुओं से मृदुवाणी में भाषण करने के फलस्वरूप वाक् (जिह्वा, वाणी) पावन हो जाती है साधुओं के चरण तीर्थ जल का सेवन करने से अन्तःकरण पावन हो जाता है। यह सुनिश्चित बात है कि भक्तिशील व्यक्ति को साधुओं की संगति के फलस्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। यथाविधि बहुत काल से यज्ञ करने पर भी मेरे यज्ञ को सिद्धि प्राप्त नहीं हो रही थी आप कृपानिधि के आ जाने से निश्चय ही यज्ञ सिद्धि को प्राप्त हो गया है'। कौशिक विश्वामित्र ने राजा से पूछा, 'आपका राज्य, आपका चित्त सकुशल तो है न?' तो उन्होंने कहा- 'हे कृपालु, समर्थ (ऋषिवर), समस्त अर्थों में निश्चय ही वह सकुशल है'।

राजा जनक की श्रीराम-लक्ष्मण के विषय में जिज्ञासा– राजा जनक ने विश्वामित्र से पूछा कि ये अग्नि के से तेज में विराजमान हैं। हाँ यह अग्नि तेज की उपमा तक इनके लिए गौण (घटिया, अल्पतर) क्यों जान पड़ती है ? इसके लक्षण (कारण) को सुनिए। अग्नि की निकटता (अग्नि के पास जाना) सबको तप्त कर देती है। परन्तु इनका पास रहना सब (के दुःख रूपी ताप) का शमन कर देता है (शान्ति पहुँचाता है)। इनकी बड़ाई (अधिकार) को देखने से प्राणों के प्राणों में आनन्द छा जाता है,

इनके दर्शन करने पर आँखों को किसी अन्य का दर्शन अच्छा नहीं लगता। उनके स्वरूप में चित्त (ब्रह्म का चिन्तन) भूलकर जड़ जकड़ गया है। ये सुन्दर हैं, सुकुमार हैं। इनकी रूपरेखा (रूप, आकृति) मनोहर है। इनकी ठवनी (डीलडौल) अति गम्भीर है'। यह कहते हुए राजा जनक ने पूछा- 'ये किसके सुपुत्र हैं ? यहाँ का मार्ग अति दुर्गम है, दारुण (विकट) है। फिर (इस मार्ग से यहाँ तक) इनका आगमन कैसे हुआ ? आपकी संगति (निकट रहने की स्थिति) इन्हें क्यों प्राप्त हुई ? मुझे इस (सब) का आदि से (अन्त तक) कारण बताइए'।

विश्वामित्र का प्रत्युत्तर– विश्वामित्र ऋषि बोले- 'ये राजा दशरथ के राम-लक्ष्मण नामक महावीर सुपुत्र हैं. हे राजा, मैं इनका अतिपवित्र जीवन-चरित्र कहता हूँ। उसे सुनिए। मेरा यज्ञ सिद्धि को नहीं प्राप्त हो पाता था। मारीच और सुबाहु उसमें नित्य बाधा पहुँचाते थे। उनकी माता ताड़का समस्त मार्गों को रोक लेती थी और आश्रम को निश्चयपूर्वक अपवित्र बना देती थी। इसलिए मैंने तप का अनुष्ठान करके शिवजी को प्रसन्न कर लिया। उन्होंने मुझे सावधान बनाते हुए यह गुह्य (गूढ़) ज्ञान बता दिया कि दाशरथी श्रीराम के रूप में पूर्ण परब्रह्म (पृथ्वी-तल पर) अवतरित हो गया है, उन (की सहायता) से होम (यज्ञ) सिद्धि को प्राप्त होगा; वे राक्षसों को भस्म (नष्ट) कर देंगे। श्रीशिवजी के कथन के प्रति विश्वास करके मैं राजा दशरथ के पास गया और अपने यज्ञ की पूर्ति (सिद्धि) के हेतु उनसे श्रीराम को माँगकर (अपने साथ) ले आया। उन्होंने मार्ग में ताड़का को छिन्न-भिन्न करके मार डाला और पथिकों को लिए मार्ग मुक्त कर दिया। फिर सिद्धाश्रम में हमारा निवास हो गया। इस प्रकार श्रीराम ने राक्षसों को अपनी वीरता प्रदर्शित कर दिखायी। उन्होंने बाण के अग्रभाग की धार से सुबाहु को मार डाला। उनके बाण के पर मारीच को लग गए; उसे उन्होंने समुद्र के (पार दूसरे) तट पर उड़ा (कर गिरा) दिया। वैसे ही उन्होंने अन्यान्य निशाचरों का निर्दलन कर डाला। शिला (स्वरूप अहल्या) को सहसा पाँव लगते ही अहल्या तत्काल उद्धार को प्राप्त हो गई। इस प्रकार राम की करनी अथाह है। यह वेदों-पुराणों में तथा (समस्त) जगत् में वन्दनीय बनी हुई है। वे हैं ये राम, जो शिवजी के धनुष के दर्शन की इच्छा से हमारे साथ आ गए हैं। श्रीराम की आन-बान को देखकर राजा जनक के मन को आनन्द अनुभव हुआ। (उन्हें जान पड़ा-) ये श्रीराम ही सीता के लिए योग्य वर निर्धारित हो सकते हैं। फिर भी धनुष सम्बन्धी प्रण तो धनुर्धारी महावीरों को बड़ा भारी आतंक पहुँचा रहा है।

सीता की जन्म-कथा– जनक बोले- हे ऋषिराज, सीता मेरी अपनी कन्या (कही तो जाती) है; फिर भी वह मुख्यतः 'अयोनिजा' है। हे महाविप्र (ऋषि), उस बात को सुन लीजिए।

श्लोक– (एक समय) खेत में हल को ले जाकर जब मैं उसे जोत रहा था, तब हल के अग्रभाग (फाल) के लगने से एक पिटारी ऊपर आ गयी। उसमें से निकली हुई समस्त शुभ लक्षणों से युक्त यह कन्या 'सीता' या 'हराई' से उत्पन्न होने के कारण 'सीता' नाम से जानी जाने लगी।

खेत में हल ले जाकर उससे (खेत को) जोते जाते समय हल के दाँत (फाल) से एक मंजूषा (सन्दूक) लग गयी। उसे खोलने पर यह उसके अन्दर पायी गई- यही रूपवती कन्या मेरी कन्या (मानी जाती) है।

शतानन्द द्वारा (सीता की उत्पत्ति सम्बन्धी) कथा का कथन– अहल्या के शतानन्द नामक सुपुत्र राजा जनक के सुविख्यात पुरोहित थे। राजा की ऐसी बात सुनकर उन्होंने वह (सीता की उत्पत्ति

सम्बन्धी) पूर्वकथा कहना आरम्भ किया। (वे बोले) ब्रह्म-शाप अर्थात् ब्रह्मर्षि गौतम के क्रूर अभिशाप के फल-स्वरूप अज्ञान अवस्था को प्राप्त होकर मेरी माता अहल्या उसमें डूबी रही। श्रीराम के चरण के उसे लगते ही वह उद्धार को प्राप्त होकर जगत् के लिए वन्दनीय हो गई। श्रीराम के चरण के लगते ही स्वयं पाषाण उद्धार को प्राप्त हो जाते हैं। पर समझ लीजिए कि यही कोई आश्चर्य नहीं है। श्रीराम तो स्वयं जगत् के उद्धार के लिए अवतरित हैं उद्धार स्वरूप हैं।

राम-नाम-महिमा– श्रीराम का नाम अथाह (महिमाशाली) है। राम नाम क्रोध-काम (जैसे विकारों) को नष्ट कर देता है। वह नाम जन्म मरण का निवारण (करते हुए मनुष्य को मोक्ष-लाभ) कर देता है। नाम ही निर्द्वंद्व (भेद भाव, द्वैत भाव-रहित) ब्रह्म है। दोषयुक्त पद्धति से वेद का पठन करने से पठन-कर्ता को निषिद्ध स्वरूप पठन करने के कारण तत्काल बाधा पहुँचती है। परन्तु यह विख्यात बात है कि दोषमय पद्धति से नाम लेने पर भी महापापी शुद्ध (पावनता को प्राप्त) हो जाते हैं। मंत्रों का सदोष रूप से आवर्तन-पठन करने के कारण, न जाने, कितने जपकर्ता बहककर सन्मार्ग-भ्रष्ट हो गए हैं। परन्तु (राम) नाम का दोष युक्त पद्धति से उच्चारण करने पर भी वाल्मीकि की कीर्ति अथाह हो गई है। ब्रह्मर्षि नारद द्वारा कहने पर 'राम' 'राम', के स्थान पर 'मरा' 'मरा' जैसा उच्चारण करते रहने वाले वाल्मीकि की मनोवृत्ति 'राम' नाम में लीन हो गयी और उसके फलस्वरूप वाल्मीकि के पापों का क्षालन (नाश) हो गया। दोष युक्त ढंग से नाम पठन करने पर भी वाल्मीकि स्वयं उद्धार को प्राप्त हो गए। फिर उन्होंने शत कोटि अर्थात् एक सौ करोड़ (श्लोकों में) रामायण का कथन किया। वही पावन राम-कथा शिवजी के लिए वन्दनीय हो गई। श्रीराम के उसी मूर्त स्वरूप को देखते ही आनन्द को प्राप्त होकर चित्त की (सांसारिक) प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है। आनन्द त्रिभुवन में उमड़ उठता है। श्रीराम के स्वरूप की यही (प्रभावशाली) स्थिति है। श्रीराम के नाम के साथ एकात्म भाव हो जाता है, उससे जड़ (अज्ञान जीव, पाषाण से) जीव उद्धार को प्राप्त हो जाते हैं। राम तो विशुद्ध रूप से ब्रह्म की मूर्ति (मूर्त रूप) हैं और सीता तो आदि शक्ति है। (इस प्रकार राम नाम की महिमा का गान करके शतानन्द बोले-) उसी सीता की उत्पत्ति की कथा- उसके पूर्वजन्म की स्थिति-गति की कथा मैं कहूँगा। मैंने ब्रह्मर्षि नारद के कथन के रूप में जो कथा सुनी है, वही (कथा) मैं आपको बता दूँगा।

राजा पद्माक्ष का यज्ञ-अनुष्ठान और भगवान् विष्णु से वरदान को प्राप्त करना– पूर्वकाल में पद्माक्ष नामक बहुत पुण्यवान राजा था। उसने यज्ञ का अनुष्ठान सम्पन्न करते हुए लक्ष्मी को प्रसन्न कर लिया और उससे यह वर माँग लिया- 'तुम मेरी कन्यास्वरूपा रत्न (के रूप में उत्पन्न) हो जाओ। इस पर वह बोली- 'हे नृपवर, मेरे लिए तो बिना भगवान् (विष्णु) से सम्बन्ध स्थापित होने के, जन्म ग्रहण करने की घटना घटित नहीं हो सकती। हे नरवर, इस बात को सत्य समझ लो'। ऐसी बात को सुनकर राजा ने दृढ़ (अविचल) ध्यान धारण करके भगवान् विष्णु को (अपने प्रति) बहुत प्रसन्न कर लिया और उनसे कन्या के रूप में लक्ष्मी को प्रदान करने का वर माँग लिया। (भगवान् ने कहा, सुख भोग के) रुचियों के लिए (धन की देवी) लक्ष्मी की कृपा पुष्टि-स्वरूप होती है। रमा (लक्ष्मी) प्रथम दर्शन में ही मधुर (फल देने वाली) होती है। ऐसी लक्ष्मी के विमुख हो जाने पर धनवान् को भी करोड़ों दुःख प्राप्त हो जाते हैं। फिर भी लक्ष्मी के (घर) आ जाने पर जो सुख होता है, वह तो (सच्चा) सुख नहीं होता वह तो विशुद्ध दुःख ही होता है। उसके प्राप्त हो जाने में जो सुख मानते हैं, हे नृपवर, समझ लो कि वे निश्चय ही विशुद्ध मूर्ख होते हैं तो राजा पद्माक्ष ने कहा 'हे श्रीहरि, जिससे रमादेवी मेरी गोद

में खेलें, ऐसी ही मुझ पर कृपा करें'। यह कहते हुए राजा ने निश्चयपूर्वक उनके पाँव पकड़े, समझ लीजिए कि राजा पद्माक्ष का यही विचार था। उसे जानकर उन्होंने स्वयं राजा को एक मातुलुंग (बिजौरा नामक) फल दिया और कहा 'समझ लो कि इसमें रमा को तुम कन्या के रूप में प्राप्त कर पाओगे'। उस मातुलुंग फल को दो टुकड़ों में काटने पर राजा ने उसके अन्दर एक असीम रूपवती कन्या को देखा, तो यह सोचकर कि यही मेरी कन्या है, राजा के मन में उसके प्रति ममता उत्पन्न हुई उसका जन्म पद्माक्ष के यहाँ (घर में) हुआ, इसलिए उसे पद्मावती नाम प्राप्त हुआ। उसके उत्तम रूप (सौन्दर्य) को देखकर राजा को परम आनन्द हुआ। वह कन्या मातुलुंग फल में उत्पन्न हुई, तो फिर उस फल के दोनों टुकड़े (पुनश्च) एक-रूप हो गए। 'दुर्गा सप्तशती' ग्रन्थ में देवी ने स्वयं यह कहा है कि वही मातुलुंग नाम फल शक्ति देवी के हाथ में विराजमान है।

पद्मावती के स्वयंवर का आयोजन और भयानक युद्ध में सर्वनाश– वह कन्या समस्त अंगों में मनोहारी थी, रूप में असीम सुन्दर थी। साथ ही (यथाकाल) जब वह विवाह योग्य हुई, तो (अनेकानेक) श्रेष्ठ राजा उस पर मोहित हो गए। कन्या को स्वयंवर का आयोजन करने योग्य हुई जानकर राजा ने उसके विवाह के हेतु समस्त यथायोग्य अंगों (विधियों) के अनुसार स्वयंवर का आयोजन कर दिया तो (उस कन्या के प्रति) मोहित होकर ऋषिगण आ (कर इकट्ठा हो) गए। वे अपनी अपनी योग्यता को यथायोग्य रूप से प्रदर्शित करते हुए ठाठबाट से विचरण करते रहे। (स्वयंवर स्थान के प्रति) देव, दानव, मानव आ गए; किन्नर, गन्धर्व आ गए। समस्त नृपति वहाँ आ पहुँचे, सेनाओं सहित दैत्यगण आ गए। उस सुन्दर कन्या को देखकर (जानकर) राक्षस वेगपूर्वक वहाँ आ गए- उसकी असीम सुन्दरता को देखकर (उस कन्या की प्राप्ति के हेतु) अत्यधिक भयानक संग्राम करने के लिए वे (सुसज्जित होकर) आ गए। राजा पद्माक्ष ने क्षोभ-भरी दृष्टि से यह देखकर यह प्रण (घोषित) किया कि जिसकी देह में आकाश के सुनील वर्ण का सलोना विलेपन शोभायमान हो, उसी का यह गोरी वरण करेगी। राजा के ऐसे दुर्धर प्रण को सुनकर समस्त सुर और असुर क्षुब्ध हो उठे, कन्या का अपहरण करने के लिए उत्सुक होकर वीर नर (नृपति) भी सुसज्जित हो गए। यक्ष और राक्षस पद्मावती को पकड़ने के लिए दौड़े, तो उन्हें देखकर राजा पद्माक्ष (मारे क्रोध के) क्षुब्ध हो उठा। उसने उन्हें लक्ष्य करके बाण चला दिए; उस विपक्षी दल को पीड़ा को पहुँचा दिया। बाणों के आघात से निशाचर कष्ट को प्राप्त हो गए। राजा ने उनके दलों को भगा दिया। देव (मारे डर के) आकाश को लाँघकर (पार करके भाग) गए। फिर दैत्यों ने विकट युद्ध किया। राजा ने उन दैत्यों के गणों (दलों) को भगा दिया, फिर भी शत्रु के बाण राजा के शरीर में गड़ गए उसके फल-स्वरूप उसने रणांगण में स्वयं क्षत्रिय धर्म के अनुसार (लड़ते-लड़ते) प्राण त्याग दिए।

पद्मावती का अग्नि में कूदना और फिर बाहर आ जाना– (राजा के गिर जाने पर) युद्ध समाप्त हुआ। फिर (शत्रुदल के योद्धाओं के) कन्या पद्मावती को पकड़ने जाते ही उसने चपलतापूर्वक उठकर अग्नि के अन्दर छलाँग लगायी। जब वह वधू प्राप्त नहीं हुई, तो राक्षस अत्यधिक अद्भुत रूप से बौखला उठे, उन्होंने (मारे क्रोध के) समस्त घरों को ढहाकर नगर को उद्ध्वस्त कर डाला। राजा पद्माक्ष ने देवों, नरों असुरों से युद्ध करते हुए प्राणों का त्याग कर दिया; तो रानियाँ सती हो गईं। लक्ष्मी श्रीमान् अर्थात् धनवान् लोगों को इस प्रकार विघ्नस्वरूप सिद्ध हो जाती है। लक्ष्मी के पालनकर्ता प्राणों से हाथ धो बैठे; उसके अभिलाषी युद्ध में (मरे जाकर) गिर गए। जो (बचकर) शेष (जीवित) रहे,

व रोते-रोते लौट गये लक्ष्मी की करनी ऐसी होती है। फिर भी वह वधू पद्मावती (वस्तुत:) आदिशक्ति लक्ष्मी ही थी, वह अग्नि कुण्ड से बाहर निकल गई। तो बाहर चारों ओर विनाश का दावानल फैला हुआ था फिर वह उस अग्नि कुण्ड के किनारे सहसा बैठ गई।

रावण द्वारा उसे ले जाने का यत्न करना; पद्मावती का अग्नि प्रवेश– (उस समय) रावण विमान में विराजमान होकर विचरण कर रहा था, तो सारण नामक उसके मंत्री ने कहा 'जान लीजिए (देखिए), जिसके कारण विकट युद्ध हुआ, वही यह वधू (कन्या) है। सुरों और असुरों द्वारा इस पकड़ने का यत्न करने पर यह आग के अन्दर कूद पड़ी। वही यह कन्या कुण्ड के बाहर आकर (अब) उसके किनारे बैठी है'। उसकी सुन्दरता को देखते ही रावण को उसे प्राप्त करने की पूरी पूरी अभिलाषा हुई परन्तु जब वह स्वयं उसे पकड़ने गया, तो उस वधू (कन्या) ने फिर से आग में प्रवेश किया। तब हँसकर रावण बोला– अग्नि के अन्दर तू छिपी हुई है, इसे कोई भी देव नहीं जानता अब मैं ही तुझे खोजकर पकड़ लूँगा।

कुण्ड में रावण को पाँच रत्नों की प्राप्ति होना– वहाँ रावण अति क्षुब्ध हो उठा। उसने उसे अग्नि को बुझा दिया पर समझिए कि खोजने पर भी वह वधू नहीं मिली। परन्तु जान लीजिए कि उसे वहाँ पाँच रत्न प्राप्त हो गए, उन रत्नों की शोभा (कान्ति) को देखने पर उसे जान पड़ा कि सूर्य की कान्ति लुप्त हो गयी है। मानों वे रत्न महातेज का अपना पुञ्ज ही थे। उसे देखकर रावण विस्मय चकित हो कर खड़ा-का-खड़ा रह गया। उसने अपने मन को सम्हाल लिया; फिर उन दिव्य रत्नों को अतीव यत्न-पूर्वक लेकर वह अपने विमान में चढ़ बैठा और लंका में लौट आया, वे रत्न अति सुन्दर थे। रावण ने वे रत्न मन्दोदरी को उपहार के रूप में देने के हेतु उन्हें एक मंजूषा में (रखकर) देवगृह में रख दिया। फिर वह तत्काल शयन मन्दिर में चला आया। उसने अपनी स्त्री मन्दोदरी से यह गूढ़ बात बता दी कि ये रत्न असीम सुन्दर हैं। वे तुम्हारे गले (के हार) में तथा मुकुट में शोभायमान होंगे। वह (रत्न) मंजूषा मैंने देवगृह में रखी है। मन्दोदरी द्वारा उस मंजूषा को उठाने का यत्न करने पर वह उससे बिलकुल नहीं उठायी जा रही थी। तो अपनी पत्नी का उपहास करते हुए (हँसी उड़ाते हुए) रावण स्वयं उसे उठा लेने के लिए आ गया। अपनी समस्त शक्ति के साथ उसके द्वारा अपने बीसों हाथों से उठाने का यत्न करने पर भी वह उससे बिलकुल उठायी नहीं गई। इस प्रकार जब उसके अपने बल की गति (सीमा) कुण्ठित हो गयी, तो रावण चित्त में काँप उठा। फिर वहाँ उसके मंत्री इकट्ठा हुए; उसके मित्रजन वेगपूर्वक आ गए तब स्वयं उसने यह देखना चाहा कि उस मंजूषा के अन्दर कौन धरोहर है

रत्न-मंजूषा के अन्दर एक तेजस्विनी कन्या का दिखायी देना– उस मंजूषा को खोलते ही उनकी आँखें तेज से चौंधिया गईं। उसमें एक सुन्दर सलोनी कन्या रूपी अनमोल रत्न को देखकर वे चमत्कृत हो उठे। तब लंकापति रावण ने सावधान होकर (होश सम्हालकर) उस कन्या की पूर्वकथा कही तो मन्दोदरी बोली– 'यह तो निश्चय ही कोई कृत्या (तांत्रिक अनुष्ठान से उत्पन्न कोई विनाशकारी शक्ति) है, आप इसे अपने कुल का नाश करने के लिए (इस प्रकार) क्यों लाये? इसका लालन-पालन करने पर इसने अपने पिता और माता का निर्दलन कर डाला। इसपर मोहित होकर सुर और असुर युद्ध में चिरशान्ति को प्राप्त हो गए। इसी के कारण दानवों और मानवों के दल रणांगण में मारे जाकर गिर गए'

मन्दोदरी द्वारा उस रत्न-मंजूषा को भूमि में गड़वा देने का परामर्श देना– फिर मन्दोदरी ने भविष्य कथन किया (होनी को स्पष्ट करते हुए कहा) 'इसने परिपालन करनेवाले का संहार कर

डाला तो कल वह हमारा भी विनाश कर डालेगी। इसलिए इसे देश के बाहर (ले जाकर) फेंक दिया जाए। इसको ऐसी शिशु अवस्था में नाश कर डालने से अभी विपत्ति पैदा होगी। इसलिए इसे अपने राज्य में न रखा जाए, किसी दूसरे देश में ले जाकर छोड़ दिया जाए। इसकी यह मंजूषा रावण द्वारा बड़ी कठिनाई से भी उठायी नहीं जा सकी। अतः इसे क्रोध से निर्दयतापूर्वक मार डालने पर करोड़ों संकट आ जाएँगे। अचेतन खम्भे में लात जमाने पर (प्रह्लाद का पिता दैत्यराज) हिरण्यकशिपु विनाश को प्राप्त हो गया। यहाँ भी वही घटना घटित हो जाएगी। इसलिए उसका सचमुच त्याग कर दिया जाए'। लंकापति को यह कथन जँच गया। अन्य समस्त लोगों को भी यह युक्ति अच्छी लगी। तो रावण ने उस मंजूषा को पूर्ण रूप से कहीं डाल देने के लिए दूतों को झट से बुला लिया। उस कन्या का त्याग कराने के हेतु (दूत) वेगवान विमान को झट से ले आए, तो मन्दोदरी ने उन दूतों से कहा– 'इस मंजूषा को (कहीं) भूमि के अन्दर गाड़ दें। यदि इस मंजूषा को जहाँ कहीं बाहर खुले में रखेंगे, तो वहाँ तत्काल घोर उपद्रव संकट उत्पन्न हो जाएगा। इसलिए अत्यधिक गुप्त रीति से भूमि के अन्दर गाड़कर रख दें. जो व्यक्ति गृहस्थाश्रमी होकर भी ब्रह्मचारी (ब्रह्मचर्य व्रत का निर्वाह करता) हो, उसी के घर यह लालित पालित होकर बड़ी हो जाएगी. जो आत्मज्ञान से युक्त होकर चराचर जगत् में व्यवहार करता हो, उसी के घर यह सुख के साथ रहेगी'।

मंजूषा में से भविष्यवाणी का सुनायी देना– उस मंजूषा को विमान में रख देते ही उसमें से यह ध्वनि उत्पन्न हुई (ये शब्द सुनायी दिए)– 'मैं राक्षसों को जला डालने के उद्देश्य से लंका भुवन में फिर आ जाऊँगी। मेरे प्रति अभिलाषा धारण करने पर रावण को मौत आएगी और मेरे कारण राक्षसों का सम्पूर्ण संहार हो जाएगा'। ऐसे शब्द सुनते ही रावण अत्यधिक स्तब्ध हो उठा। (रावण तथा अपने) विरोध में ऐसी भविष्यवाणी सुनकर राक्षस भी आतंकित हो गए। दूतों ने उस मंजूषा को विमान में रखा और वे (उसे गाड़ डालने के लिए उचित स्थान को) खोजते खोजते इस वन में आ गए। विदेहराज जनक की राजधानी (मिथिला नगरी) की सीमा को देखकर वे उस मंजूषा को वहाँ भूमि में गाड़कर चले गए।

एक ब्राह्मण को उस मंजूषा की प्राप्ति होने पर उसके स्वामित्व के विषय में चर्चा हो जाना– (पूर्वकाल में) राजा जनक ने धार्मिक भावना से वह भूमि खेती करने के लिए एक ब्राह्मण को प्रदान की थी। वह भी खेती में हल चलाने के लिए अति उत्कण्ठा के साथ सुमुहूर्त की प्रतीक्षा कर रहा था। सुमुहूर्त की बेला प्राप्त होते ही उसने खेत में हल जोतकर चलाना शुरू किया, तो पहली ही हराई में उसके हल के फाल के अग्रभाग में एक मंजूषा लग गयी। (यह देखकर) उसकी खेती में सहायता करनेवाले ने कहा– 'हे स्वामी, आपका शुभ मुहूर्त धन्य है, धन्य है। देखिए, (कैसी) अद्भुत फसल पक्व हो आयी है– निश्चय ही यह अद्भुत निधि है'। समझिए गुप्त धरोहर है- राजा की सम्पत्ति है। यद्यपि राजा ने यह खेत मुझे दान में दिया है, तो भी इस धरोहर को मुझे नहीं लेना चाहिए. (यह सोचकर) वह ब्राह्मण हाथ में वह मंजूषा लेकर राजसभा में आ गया और बोला- 'हे भूपति, आपके खेत में यह गुप्त भण्डार (के रूप में पड़ा) था। आप स्वयं इसे स्वीकार करें'। तो राजा (जनक) ने धर्म-नीति के अनुकूल यह बात कही– 'मैंने आपको वह भूमि दान में दी है हे द्विजवर, उसमें जो धन और धान्य (अनाज) हो, वह तो ब्रह्मार्पण (अर्थात् आप जैसे ब्रह्म स्वरूप ब्राह्मण को ही अर्पित है') है। ब्राह्मण धर्म के विषय में बहुत प्रवीण था। वह बोला 'आपने मुझे दान के रूप में वह खेत समर्पित किया– उसमें गुप्त रूप से रहा धन तो (दान में) नहीं दिया था। अतः इसे मैं छू भी नहीं सकता', उस

ब्राह्मण को धन के प्रति कोई लोभ नहीं था, न ही भूपति (जनक) को धन सम्बन्धी लोभ था। इससे राजा जनक परम संकट (दुविधा) में पड़ गए। यह बात साधु समाज के ध्यान में आयी, तो वहाँ (राजसभा में) एक साधु पुरुष ने यह बात कही- 'इस मंजूषा में कौन धन है ?- उसे निकालकर स्वयं देख लीजिए। फिर शास्त्र-विधान का विचार करें'। उस मंजूषा को खोलते ही-सौन्दर्य दीप्ति (तेजस्वी कान्ति) स्वरूप एक सलोनी कन्या को देखा। इससे सबके मन में आश्चर्य छा गया। देखिए, उस कन्या को आँखों से देखते ही सबकी टकटकी बँध गई। उस अनन्य साधारण (दिव्य) सुन्दरता को देखकर सब बहुत विस्मय-चकित हो गए।

मंजूषा में स्थित कन्या को राजा जनक द्वारा स्वीकार करना– लावण्य की साक्षात् निधि (रूपा कन्या को) देखकर राजा जनक ने स्वयं उसे उठा लिया और कहा– 'यह मेरी रत्न स्वरूपा कन्या है ' फिर उन्होंने भेरियाँ तथा नगाड़े बजवा दिए। मंगल भेरियों तथा नगाड़ों की ध्वनि से गगन गरज उठा (गूँजता रहा)। सभा (जनों) ने जयजयकार का गर्जन किया। ऋषीश्वरों ने वैदिक मंत्रों से युक्त शान्ति (मंत्रों) का पठन किया। उस कन्या का लालन-पालन राजा जनक ने किया, इसलिए वह जनकात्मजा (जनक-कन्या, जानकी) कहलायी। पृथ्वी (भूमि) ने उसे बहुत यत्नपूर्वक सुरक्षित रखा था, इसलिए उसे धरणिजा (भूमिजा, भूमिकन्या) कहते हैं। फिर भी वह वस्तुत: अयोनिजा जगदम्बा थी। हल चलाते समय वह उसके फाल में लग गई, अत: कहते हैं कि सीता का जन्म खेत (भूमि) में हुआ। मैंने यह जो पूर्व-कथा कही, वही वस्तुत: देवर्षि नारद की ही उक्ति (कथित कथा) है। सीता के जन्म सम्बन्धी यहाँ जो स्थिति (विवरण) कही है, उसका स्कन्द पुराण मूल-स्रोत है। इस घटना का निरूपण उस पुराण के कालिका खण्ड में किया गया है। वहीं यह कथा आदि से लेकर अन्त तक सम्पूर्ण रूप में लिखी हुई है। अहल्या के शतानन्द स्वामी नामक सामर्थ्यशील ज्येष्ठ सुपुत्र राजा जनक के पुरोहित थे। उन्होंने सीता की उत्पत्ति सम्बन्धी यह कथा कही। (कवि कहता है-) मैंने सीता की उत्पत्ति (की कथा) कही। अब यह सुनिए कि सीता के स्वयंवर के लिए राजा जनक को शिवजी के धनुष की प्राप्ति किस प्रकार हुई। कवि एकनाथ गुरु जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित है। (उन्होंने श्रोताओं से निवेदन किया-) सीता के जन्म की कथा का कथन हुआ। अब आप सज्जन (श्रोता) अवधानपूर्वक शिव-धनुष-प्रकरण (कथा) सुन लीजिए।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ-कृत 'भावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत बालकाण्ड का 'जानकी (सीता)- जन्म-कथा' नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय १६

[परशुराम का प्रताप]

राजा जनक के शिव-धनुष सम्बन्धी प्रण की पृष्ठभूमि– जान लीजिए कि सीता के स्वयंवर के इच्छुक (उसके अभिलाषी को) शिवजी के धनुष पर डोरी चढ़ाना आवश्यक था। राजा जनक ने यह जो प्रण किया था, उसका क्या कारण था ? उसे सुनिए। पूर्वकाल में परशुराम ने कैलास पर्वत पर शिवजी से धनुर्वेद की तथा गणेशजी से परशु विद्या की सूक्ष्म कौशल-सहित शिक्षा प्राप्त की थी। परशुराम

शिवजी की सेवा करने के लिए कैलास पर रह गए थे। वे दिन-रात उसमें तत्पर रहते थे। उसके साथ ही, उन्हें गणेशजी के प्रति समसमान श्रद्धा थी। तब (एक समय) माता रेणुका ने अत्यधिक ज़ोर से आक्रन्दन किया। परशुराम ने उसकी उच्च स्वर में यकायक की हुई पुकार सुनी। उसे सुनकर उन्हें कुछ सन्देह हुआ। फिर शिवजी के पास आकर उन्होंने कहा- 'माता रेणुका आक्रन्दन करते हुए चिल्ला रही है। मैं आप स्वामी से अपनी माता के पास जाने की आज्ञा माँग रहा हूँ'।

रेणुका की कथा– रेणुका की वह पुराण (में कही) कथा सुनिए जो अति पावन है। उस कथा का श्रवण करते ही (श्रोता के) दारुण दोषों (पापों) का नाश हो जाता है, परशुराम की उस बात को सुनकर रुद्र (शिवजी) कोपायमान हो उठे। (उन्हें विदित हुआ कि) जगत् में अधर्म (धर्महीनता, असदाचरण) पूर्णत: वृद्धि को प्राप्त हो गया है- दानवों ने (आज) अहंकार से ब्राह्मण का वध किया है। तो शिवजी जमदग्नि ऋषि के सुपुत्र (जामदग्न्य परशुराम) से बोले- 'हे सर्वज्ञ, मैं तुमपर प्रसन्न हो गया हूँ। हे विद्याओं से सम्पन्न परशुराम, दुष्टों का वध करने की दृढ़ से प्रतिज्ञा कर लो', शिवजी उन्हें अपना धनुष देते हुए बोले- 'ब्राह्मणों का वध करनेवालों का निर्दलन कर डालो। क्षत्रिय वैभव के घमण्ड से उन्मत्त हो गए हैं। एक-एक करके उनका भी विनाश कर डालो। इस (शिव) धनुष के बाणों से धरती को नि:क्षत्रिय बना दो'। (तदनन्तर) गणेशजी ने अपना परशु देकर परशुधर (हाथ में परशु धारण करनेवाले) राम (परशुराम) को विद कर दिया। तब से (गणेशजी से प्राप्त परशु धारण करने के कारण) जामदग्न्य राम को 'परशुराम' उपाधि प्राप्त हुई। वरदाता गणेशजी ने उन्हें पूर्णरूप से यह वर प्रदान किया- समझ लो कि जिस काम को आरम्भ करोगे, उसे मैं विघ्नरहित (सफल) बना दूँगा। परशुराम के वेगपूर्वक जाते रहने, उनसे मार्ग में आश्रमवासी (विप्र, ऋषि) मिले। उन्होंने परशुराम से कहा- '(दुष्टों द्वारा) अत्यधिक मार काट करते हुए तुम्हारे पिता का वध किया गया है। तो परशुराम ने उनसे यह प्रश्न किया- 'मेरे पिता के वध का क्या कारण है ?' (यह सुनकर) उन आश्रमवासी लोगों ने संघर्ष का मूल (आदि) कारण कहा।

जमदग्नि के वध का कारण– (एक समय महिष्मती नगरी का राजा) सहस्रार्जुन वन क्रीड़ा के लिए जमदग्नि ऋषि के आश्रम के समीप आ गया। तो रेणुका ने अपने पति (जमदग्नि) से प्रार्थना करते हुए (उनके द्वारा) राजा सहस्रार्जुन को सेना सहित (अपने यहाँ आश्रम में) आमन्त्रित करा दिया। ऋषि बोले- 'फल-मूल मात्र लाकर हम राजा को भोजन करा दें'। इसपर वह बोली- 'इससे आश्रम-धर्म को शिथिल समझा जाएगा (आश्रमवासियों को अतिथि सत्कारादि में शिथिल, उदासीन हुए माना जाएगा)। इसलिए उन सबको पूर्ण अन्न देकर तृप्त करें। जो जो आश्रम में आ जाते हैं, उन सबको तृप्त करें। आप सामर्थ्य की दृष्टि से अत्यधिक समर्थ (क्षमतायुक्त) हैं, इसलिए आतिथ्य सम्बन्धी परमार्थ धर्म को शिथिल न कर दें। हाँ, केवल कामधेनु आ जानी चाहिए। उसे लाकर (उन सबको) दिव्य अन्न प्रदान करें। राजा विभूति से युक्त श्रीभगवान् ही होता है। अत: उसका (धर्मशास्त्र में) कहे अनुसार पूजन करें'।

सहस्रार्जुन का आतिथ्य– अपनी स्त्री की आतिथ्य-धर्म सम्बन्धी विधि के अनुकूल बात सुनकर ऋषि सुख को प्राप्त हो गए। उन्होंने कामधेनु की प्राप्ति के हेतु एकान्त स्थान में (आकर तप का) अनुष्ठान करना आरम्भ किया। उधर राजा सहस्रार्जुन ने अपने दूतों को यह देखने के लिए भेजा कि ऋषि जमदग्नि ने पाक-सिद्धि करायी है या नहीं। तब (दूतों को दिखायी दिया कि) चूल्हे में आग भी (प्रज्वलित) नहीं की गई है। फिर रसोई बनाने की बात ही क्या हो सकती है। उन ऋषि की पत्नी

रेणुका बातों से श्रोता को प्रसन्न करनेवाली तथा अत्यधिक उदारता से युक्त थी। उसकी गूढ़ महिमा आश्चर्यकारी थी। उसे मन में कोई चिन्ता नहीं अनुभव हो रही थी। वह ऋषि पत्नी, जो एक राजकन्या थी, चित्र-विचित्र रंगावलियाँ सजा रही थी (चौक पूर रही थी)। राजा सहस्रार्जुन के पूजन (आतिथ्य) का समारोह होने जा रहा है, इससे उसे अनोखा उत्साह अनुभव हो रहा था। (इसे देखकर) राजा के दूत लौट गए। तब ऋषि कामधेनु को ले आये और उसे उन्होंने रेणुका के हाथों सौंप दिया (और कहा)- 'राजा के लिए सुयोग्य भोजन बनवा लो। मुझसे कोई कष्ट सहा नहीं जाता। फिर राजा का आदर-सत्कार, भोजन आदि सम्बन्धी सेवा कार्य अति निर्दोष तथा उत्तम होना चाहिए। जो-जो उत्तम (वस्तु) तुम माँग लोगी, उसे यह कामधेनु तुम्हारी इच्छा के अनुसार (विपुल मात्रा में) प्रदान करेगी'। ऋषि के प्रति सन्तुष्ट होकर वह धेनु कृपा करके प्रसूत हुई उसने (थाली) उत्पन्न की। उससे पैदा हुई पहली थाली को ऋषि-पत्नी ने अपनी आँखों से देखा, त्यों ही उसी थाली से छोटी-छोटी थालियाँ उत्पन्न हुईं। ऋषि जमदग्नि ने क्रोध का त्याग किया। उन्हें न कोई संकल्प करना पड़ा, न कोई भ्रम (सन्देह, दुविधा) अनुभव हुआ। उन्हें लोगों के से कार्य न करते हुए विशेष उत्साह के साथ कोई कष्ट उठाने या यत्न नहीं करने पड़े। राजा (तथा उसके साथ आये हुए लोगों) को भोजन कराने का कर्तव्य (उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य भार) उन्होंने रेणुका के मत्थे थोप दिया। फिर सावधानी के साथ यह सुनिए कि आगे क्या घटना हुई।

जमदग्नि ने क्रोध का त्याग क्यों किया ? – श्रोताओं ने (कवि से) यह प्रश्न किया कि जमदग्नि ने स्वयं क्रोध का त्याग क्यों किया ? उसी (के कारण) के कथन (कथा) को सुनिए। ब्रह्माण्ड पुराण के एक खण्ड में मार्कण्डेय ऋषि ने जो कथा कही है, उसी का निरूपण साधु सज्जन (श्रोता) सुन लें। सहस्रार्जुन का वध करने के हेतु इन्द्र जमदग्नि ऋषि के समीप आया। उसने दीन (दैन्य-सूचक) वेश धारण किया था, वह प्यासा था। यथायोग्य अवसर देखकर तथा अतिथि के आगमन के लिए उचित वेला (मुहूर्त) साधकर वह (दीन-वेश-धारी इन्द्र) जमदग्नि ऋषि से केवल जल माँगने के लिए तत्काल पहुँच गया। उसका मुँह सूखा हो गया था। उसके दोनों होंठ सूख गए थे। उससे शब्दों में कुछ बोला नहीं जा रहा था। अत: उसने हाथ के अग्रभाग अर्थात् उँगली से पानी (की ओर संकेत करके) दिखा दिया।

रेणुका की दुविधा-अवस्था– जमदग्नि ऋषि ने रेणुका से कहा– 'इस अतिथि को झट से पानी दो'। परन्तु उसने कपट-वेश को जान लिया और मन में वह सन्देह को प्राप्त हो गई इसे मेरे द्वारा पानी देते ही, यह उसे कटु विष-स्वरूप बना देगा। (इधर उसे लगा कि झट से अतिथि को जल न देने पर) ऋषि अपार क्रुद्ध हो जाएँगे; इस स्थिति में उसका मन धड़कने लगा इधर उदक देते ही यह अतिथि छल-कपट से धोखा देगा और उधर न देने पर जमदग्नि कोप को प्राप्त हो जाएँगे– इससे उसे बहुत संकोच (घबराहट) हो गया उसे कर्तव्य (क्या करें, क्या नहीं करें) बिलकुल याद नहीं आ रहा था (सुझाई नहीं दे रहा था)। जमदग्नि अति समर्थ थे, सर्वज्ञ थे। वे आश्रम-धर्म का पालन करना जानते थे। इसलिए उन्होंने कर-तल पर रखा आचमन जल अतिथि को पिला दिया। इस प्रकार जमदग्नि ने स्वयं अतिथि को पानी पिला दिया, तो रेणुका ने कहा (सोचा)- मुझे पूर्णतः धोखा दिया गया। अब मुझपर दारुण संकट आ गया। ऋषि ने रेणुका से कहा- 'तुम तो मात्र कृत्या हो कर्कशा हो। (मेरे कहने पर भी) तुमने अतिथि को पानी नहीं दिया तुम अपने पति की आज्ञा (पालन) से विमुख हो गई हो। (अतिथि के आगमन के) समय पर कोई कपट वेशधारी चोर, चण्डाल आश्रम के प्रति आ जाए, तो भी वह जो-जो माँग ले, वह उसे अवश्य समर्पित किया जाए। पानी (वैसे तो) मूल्यहीन है; फिर तुम वह

भी न देते हुए (कर्तव्य से) विमुख हो गई हो। तुम्हारा यह काला मुँह जल जाए, मुझे तुमसे कोई सुख नहीं प्राप्त हुआ। गृहस्थाश्रम तो गृहिणी के बल से चलता है; पर जब वह आश्रम-धर्म का पालन नहीं करे, तो उसका सम्मान कैसा ?' यह कहते हुए जमदग्नि ऋषि असह्य रूप से क्रोध को प्राप्त हो गए।

अपने पुत्रों को रेणुका का वध करने का जमदग्नि द्वारा आदेश देना– ऋषि द्वारा कोप रोका नहीं जा रहा था। उन्होंने अपने पुत्रों को बुलाकर कहा- 'मेरी आज्ञा से तुम झट से, अति शीघ्रतापूर्वक इसका वध कर डालो' तो पुत्र बोले 'हे स्वामीनाथ, (हमारे लिए) जैसे पिता हैं, वैसी ही माता (पूजनीय) है। वह हमारे द्वारा वध किये जाने के बिलकुल योग्य नहीं है आप सचमुच इसका विचार कीजिए' (ऐसा कहते हुए) उन पुत्रों ने अपने पिता की बात नहीं मानी। तो पिता जमदग्नि ने उन्हें यह अभिशाप दिया- 'तुम पाँचों एक दूसरे के समसमान (पितृ-द्रोही) हो। अभी तुम्हारे प्राण निकल जाएँगे और तुम पूर्णतः शव रूप को प्राप्त हो जाओगे'। ऋषि का ऐसा कथन सुनते ही वे पाँचों ही शवावस्था को पूर्णतः प्राप्त हो गए। ऋषि के भय से उनके प्राण भाग गए। (उन पुत्रों के) प्राणों ने यह कहा (सोचा) 'इनकी आयु के शेष रहते हुए हमें निकल जाना नहीं चाहिए; फिर भी इस कारण से हमारे (इनकी देह में) रहने पर ऋषि का अभिशाप हमारे सिर पर बैठा रहेगा'। इस शाप के आतंक से उनके प्राण सचमुच निकलकर भाग गए। जमदग्नि ऋषि के भय से उनके पुत्रों के प्राण भाग गए तो वे पाँचों ही जन शवावस्था को प्राप्त हो गए। फिर भी ऋषि का कोप दारुण बना रहा, वे ऋषि अपनी क्षुब्धता को छोड़ नहीं पा रहे थे उसी समय जमदग्नि के पुत्र परशुधर राम झट से फूल लेकर आ गए। उन्होंने ऋषि को नमस्कार किया तो उन्हें भी उन ऋषि ने अति कठोर आज्ञा दी। 'तुम रेणुका का वध कर डालो'। तो परशुराम ने तत्काल उसका मस्तक (धड़ से) काट डाला। उससे ऋषि के चित्त को आनन्द तथा प्रसन्नता हुई; वे सन्तुष्ट हो गए।

पिता (जमदग्नि) की आज्ञा का पालन करने पर परशुराम को उनसे वरदान की प्राप्ति– ऋषि ने प्रसन्नता पूर्वक गरजकर यह कहा 'तुम जो माँग लोगे, मैं वह तुम्हें अब दूँगा' इसपर (परशुराम ने उनके चरणों पर मत्था टेका (और कहा) 'हे स्वामीनाथ, मेरी विनती सुन लीजिए (स्वीकार कीजिए), मेरी इस माता को (पुनः जीवित रूप में) उठा लीजिए, मेरे इन बन्धुओं की शवावस्था को दूर कर दीजिए। हे गुरुनाथ, मैं यही माँग रहा हूँ'। तो ऋषि बोले (समझ लो-) सचमुच मैंने तुम्हारी माँगी हुई बात प्रदान की है। तुम्हारे हाथ के लगते ही तुम्हारे बन्धु शवावस्था से मुक्त हो जाएँगे; चेतनावस्था के सुख को प्राप्त होकर सावधान चित्त के साथ अपनी पूर्ववर्ती जीवित अवस्था में रहने लगेंगे। रेणुका के शरीर के बने दो खण्ड तुम्हारे हाथ (के स्पर्श) से पूर्ववत् एकाकार अभिन्न हो जाएँगे। शान्ति तथा सुख की अनुकूलता को प्राप्त होकर वे (सब) बिना किसी यत्न या कष्ट के (जीवन लाभ करके) उठ जाएँगे'। (यह सुनकर) परशुराम ने कहा– 'मैंने अपनी माता (के शरीर) को काट डाला, इसका स्मरण मेरी माता के मन को न हो जाए मुझे ऐसा वरदान दीजिए'। (यह कहते हुए) उन्होंने पिता के चरणों में मत्था टेका तब जमदग्नि ने कहा - 'तुम्हारे द्वारा छेदे जाने की स्थिति का स्मरण उसे नहीं होगा; शरीर में शस्त्राघात से हुए घावों के चिह्न दिखायी नहीं देंगे। वह ऐसे लक्षण (स्थिति) को प्राप्त हो जाएगी, जैसे वह स्वयं नींद से जगकर उठी हो'. पिता के ऐसे वर देनेवाले वचन को सुनने के बाद परशुराम ने उनके चरणों का वन्दन किया और अपनी माता का उद्धार करने के लिए वे हर्ष से सम्पूर्ण व्याप्त होकर उठ गए। (परशुराम द्वारा) काट दिये जाने के बाद आदिशक्ति रेणुका से मिलने आ गई वह बोली– 'तुम जिस

करने के हेतु जन्म को प्राप्त हुई, उसके विषय में तुम विरक्त क्यों हुई हो ? तुम्हें सहस्रार्जुन का वध करना (करवाना) है- इसे तुम भूल गई हो। उसका स्मरण दिलाने के लिए इन्द्र ने स्वयं तुम्हें धोखा दिया'। इसपर रेणुका ने कहा 'उस कार्य की सिद्धि (पूर्ति) गूढ़ बुद्धि से (युक्ति से) करानी होगी। [illegible] (लोगों द्वारा की जानेवाली निन्दा) के बहाने उसे किसी को विदित नहीं होने दें। विरोध या [illegible] द्वारा एकता स्थापित करना) न देखने दें, लोगों को यह बात विदित न होने दें। न ही पति जमदग्नि को अवगत होने दें। इस प्रकार प्रतिदिन देखते (सोचते) रहने से मेरे द्वारा विरोध में कोई काम करना नहीं [illegible]'। तब आदिशक्ति उससे बोली 'परशुराम को प्राप्त होनेवाली वरदान वाली बात से तुम्हें फिर [illegible] जो प्राप्ति हो जाएगी, वह इसी कार्य के हेतु की पूर्ति करने के लिए ही होगी'। इस पर रेणुका ने यह बात कही- '(हे देवी), तुम्हीं उसकी कर्त्री हो। इसलिए तुम जैसी (जैसी) युक्ति बताओगी, उसी के अनुरूप स्थिति-गति को मैं सिद्ध कर लूँगी'। तो आदिशक्ति जगदम्बा ने रेणुका से कहा- 'सहस्रार्जुन [illegible] करने के निमित्त तुम्हारे आश्रम के समीप आ जाएगा। अपने कार्य की पूर्ति कर लेने की दृष्टि से [illegible] आतिथ्य) पूजन कर लो। ऋषि के द्वारा समस्त सेना सहित उनको आमंत्रित करवा लो। ऋषि [illegible] इस काम के लिए कामधेनु को वे लिवा लाएँ। त्रिभुवन में जो जो भोज्य पदार्थ, आतिथ्य के लिए आवश्यक सामग्री सम्बन्धी उपचार दुर्लभ (समझे जाते) हैं, उन्हें कामधेनु से माँग लो और अपने [illegible] में सफलता पाने के लिए नृपति सहस्रार्जुन का आदरपूर्वक (अतिथि के रूप में) पूजन करो। इस [illegible] इन दोनों शक्तियों (शक्ति स्वरूपा रेणुका और आदिशक्ति जगदम्बा) का सम्भाषण (पूरा) हुआ, तब [illegible] ने स्वयं अपने पिता का वरदान प्राप्त करके अपनी माता रेणुका को सावधान अर्थात् सचेत (पुनः [illegible]) कर लिया। परशुराम द्वारा हाथ लगाते ही उसके बन्धु सचेत हो गए। वे माता के वध की बात नहीं [illegible] और उसे भी अपनी हत्या के विषय में कोई स्मृति नहीं रही। रेणुका को यह देखकर (पूर्ण) [illegible] आनन्द हुआ कि उसके अपने पुत्रों को इस प्रकार (परशुराम ने) शाप से मुक्त किया है, तो उसने [illegible] को गले लगाते हुए युद्ध में विजय को प्राप्त होने के विषय में वरदान दिया। परशुराम ने [illegible] यह बात सुनकर शुभशकुन रूपी गाँठ को दृढ़ता से बाँध लिया (उसे पूर्ण विजय सूचित [illegible] शुभशकुन माना)। अब कथा का आगे का घटना क्रम अवधान पूर्वक सुन लीजिए।

जमदग्नि द्वारा क्रोध की निन्दा करना– अपनी स्त्री और पुत्रों के सचेत (पुनर्जीवित) हो जाने पर जमदग्नि ऋषि उद्विग्न हो उठे। (उन्होंने सोचा) क्रोध की लीला कैसी अधःपातकारी है। स्त्री और पुत्रों का विनाश करने से मेरे लिए यहाँ नरक में निवास प्राप्त हो गया। वह पुत्र परशुराम धन्य है, धन्य है [illegible] संकट को टाल दिया। मेरा वरदान प्राप्त करके उसने मेरे नरक में गिर जाने को टाल दिया। [illegible] क्षण में क्रोध ने ठग लिया। इसलिए मैं उसका निर्दलन कर दूँगा। क्रोध तो केवल चण्डाल [illegible]) है वह मुझमें अपने (समस्त) अंगों (पहलुओं) सहित निवास कर रहा है, मेरी [illegible] यज्ञ (आदि से प्राप्त पुण्य, शक्ति) जल जाएँ। क्रोध अपवित्र कलंक है, हृदय में क्रोध [illegible] के बैठे रहने पर जो अपने ज्ञान को बड़प्पन मानता है, उसे संसार में महामूर्ख माना [illegible] अन्य या अन्याय देखते ही उस (व्यक्ति) पर क्रोध करता है। वह तो क्रोध के समान [illegible] होता है लेकिन लोग क्रोध पर क्रोध नहीं करते। क्रोध करने जैसे अपराध की बड़ाई अतर्क्य है [illegible] हृदय में बैठकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जैसे चारों पुरुषार्थों को नाना प्रकार से [illegible] कर देता है। ऐसे विकट क्रोध के आ जाने पर काम (नामक पुरुषार्थ) तत्काल भाग जाता

है; धर्म (नामक पुरुषार्थ) बारह बाट भाग जाकर नष्ट हो जाता है। क्रोध से अर्थ नामक पुरुषार्थ की प्राप्ति में बाधा आती है। क्रोध अन्तःकरण में प्रवेश करके मुख्य (सर्वोपरि) पुरुषार्थ मोक्ष को प्राणों से मार डालता है। क्रोध इस प्रकार मेरा वैरी है। मैं उसका सच्चे रूप से संहार करूँगा। ऐसा कहते हुए जमदग्नि ऋषि स्वयं दृढ़ मुद्रा (योगासन) धारण करके बैठ गए और उन्होंने प्राण-अपान को रोककर क्रोध का दहन करना चाहा (उसे जला देने का वे यत्न करने लगे)।

क्रोध की अहंकार-भरी उक्ति– क्रोध ने कहा– 'हे ऋषि, विचार कर लीजिए। आपकी देह में से मेरे निकल जाने पर आपका बड़प्पन व्यर्थ सिद्ध हो जाएगा। लोग आपको घास के तिनके जैसा तक नहीं मानेंगे। मेरे निवास के माहात्म्य को सुन लीजिए। मैंने नृसिंह के शरीर में प्रविष्ट होकर नाखूनों की नोक से हिरण्यकशिपु जैसे वैरी का संहार कर डाला। मैंने शिवजी के रूप में (शरीर में) आसन जमाकर एक ही बाण से त्रिपुर का विनाश कर डाला। मेरे ही योग (सहयोग, बल) से त्रिनयन शिवजी ने जलन्धर को जान से मार डाला। मैंने भगवान् विष्णु, की देह में बैठकर मधु और कैटभ को उसी स्थान पर मार डाला। देखिए, मैंने कुमार की देह में संचरण करके लवणासुर का मर्दन कर डाला। इसी प्रकार, देखिए, मेरे ही सहयोग से देवों ने दुष्टों का निर्दलन किया। हे ऋषिराज, आप स्वयं विचार कीजिए– मेरे अभाव में आप घास बराबर हो जाएँगे। हे ऋषि, मुझे (शरीर में से) भगा देने पर आपकी कैसी अवस्था होगी ? मैं वही आपसे कहूँगा। उसे ध्यान से सुन लीजिए। देह के बाहर मेरे निकल जाने पर स्त्रियाँ भी तुम्हें टालती रहेंगी या ताने मार देंगी। आपके मुँह में थप्पड़ लगा देने पर भी आपके अपने शरीर में कोई रोष, आवेग (रोष) नहीं रहेगा'।

जमदग्नि का उत्तर क्रोध के प्रति– इस प्रकार का उसका (अहंकार भरा) कथन सुनकर ऋषिवर जमदग्नि पर पूर्ण रूप से व्याकुलता छा गई। (वे उससे बोले-) 'मैं अब तुझे मार डालूँगा'।

श्लोक– काम, क्रोध और लोभ (नामक विकार) आत्मशक्ति का विनाश करनेवाले, नरक के (अन्दर ले जानेवाले) तीन प्रकार के द्वार हैं। इसलिए इन तीनों का त्याग करना चाहिए। जिस भाग्यशाली मनुष्य की उक्ति में अहंकार प्रकट होता है, जिसके शरीर अर्थात् मन के अन्दर काम, क्रोध, लोभ (जैसे विकार) होते हैं, उसका निवास नरक में होता है– अर्थात् उसके घर में नित्य नरक ही होता है। उसे (मौत के बाद) नरक में जाने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि वह स्वयं ही (साक्षात्) नरक की गन्दगी, घिनौनी प्रवृत्तियों की राशि होता है। हे क्रोध, तेरी ऐसी ही स्थिति है। तू बढ़ बढ़कर व्यर्थ ही बकवास कर रहा है। क्रोध काम का समर्थक होता है; क्रोध अहंकार का सहायक होता है। क्रोध लोभ के बाहर-भीतर भरा रहता है। मनुष्य के लिए उसका अपना क्रोध पापों का कर्ता सिद्ध होता है। उसकी देह में क्रोध का संचरण हो जाने पर उसका अणु मात्र भी हित नहीं होता। देखिए, क्रोध (युक्त मनुष्य) के पाँवों में पापों की पंक्तियाँ तोड़रें (तोड़ों) के रूप में (बजती) रहती हैं। इस प्रकार कहते हुए जब जमदग्नि ने योगाग्नि को प्रज्वलित करना चाहा, तब भयभीत होकर क्रोध उन ऋषि के शरीर को छोड़कर जाने लगा। क्रोध बोला- 'हे ऋषिवर, आपकी आज्ञा का सिर से वन्दन करके मैं सचमुच जा रहा हूँ। अब मैं कहाँ रहूँ ?। (यह सुनकर) जमदग्नि ऋषि सोचने लगे– 'मेरे क्रोध की स्थिति धारण (सहन) करने के लिए कैसी कठिन है ? इसके लिए (कहीं भी) निवास (करने योग्य स्थान) बिलकुल नहीं दिखायी दे रहा है। अब मैं इससे क्या कहूँ ?'

क्रोध को स्वीकार करने के लिए परशुराम का तैयार होना– जमदग्नि के इस प्रकार चिन्ता करते रहते, परशुराम को यह बात सचमुच विदित हो गई, तब उनके चरणों पर मत्था टेकते हुए वे अति नम्रतापूर्वक बोले - आप स्वामी का क्रोध अत्यधिक दारुण है। यह सर्वत्र (सब कुछ) जला डालेगा। इसलिए हे स्वामी, कृपा करके इसे मुझे सौंप दीजिए'। (यह सुन कर जमदग्नि ऋषि ने विचार करके तय किया कि) मेरे क्रोध को रखने के लिए अति योग्य पात्र (स्थान) यह परशुधारी राम है- यह सम्पूर्णतः शुद्ध (प्रवृत्ति वाला) है। अतः यह क्रोध इस राम को ही समर्पित करें।

क्रोध का लक्ष्य की सिद्धि में सहायक या बाधा-स्वरूप होना– ऋषि जमदग्नि बोले- 'जो नित्य (आजीवन) ब्रह्मचारी हो, जिसमें धन के प्रति कोई लोभ न हो, जो ब्राह्मणों से द्वेष न करता हो, उनके अन्दर क्रोध शान्ति के साथ रह सकता है। परन्तु इससे दूसरी (विपरीत) स्थिति हो, तो क्रोध उनका नाश करता है। इसलिए वह तुम्हें सचमुच छेड़ भी सकता है, तो भी मैं अब तुम्हें (क्रोध) सौंप दूँगा जिसे धन और स्त्री के प्रति लोभ (आसक्ति) हो, वहाँ (उसमें) क्रोध नित्य पनपता रहता है। जिसके मन में ज्ञान सम्बन्धी घमण्ड हो, क्रोध उसके मन में जाग्रत रहते हुए चुभता-उकसाता रहता है। ज्ञान सम्बन्धी घमण्ड, धन तथा स्त्री (सम्बन्धी आसक्ति)- इनके स्वरूप द्वारों से क्रोध की मार (आक्रमण, [illegible]न) होती रहती है। हे परशुधारी (राम), इन्हें जीत लेने से क्रोध उसका कार्य-साधक होता है'.

परशुराम द्वारा क्रोध को स्वीकार करना– परशुराम बोले- 'हे पिताजी, आपके चरणों का तीर्थ-जल लेने से मुझमें सामर्थ्य आ जाती है इसलिए क्रोध को रखने में मुझे कोई भय नहीं अनुभव होता' यह कहते हुए उन्होंने अपने पिता को नमस्कार किया और उनसे प्रार्थना करके उनके चरण तीर्थ जल को प्राप्त किया। तदनन्तर स्वयं उन्होंने उस तीर्थ-जल के साथ क्रोध को पी डाला। तब क्रोध स्वयं बोला- 'हे भार्गव हे, भृगु कुल-वीर, दुष्टों का निर्दलन करने के लिए आप जो युद्ध करेंगे, उनमें मैं आपका सहायक हो जाऊँगा'। परशुराम ने जब क्रोध को (तीर्थ जल के घूँट के साथ) पी डाला, तब उनकी देह में पुष्टि और तुष्टि (तृप्ति) ने आसन जमा लिया। उनके उदर में वह चौगुनी वृद्धि को प्राप्त हुआ, जिससे युद्ध करने में उपयुक्त सिद्ध होनेवाली उनकी वीर-वृत्ति दुर्दम्य बन गई। क्रोध को पी लेने पर परशुराम को सन्तोष हुआ। दुष्टों का निर्दलन करने के लिए (आवश्यक) वीर वृत्ति उनकी देह में अविचल रूप में जम गई। (श्री एकनाथ ने श्रोताओं से कहा-) जमदग्नि ने क्रोध का त्याग (किस प्रकार) किया, इसका मैंने निरूपण किया; मैं एकनाथ अपने गुरु श्रीजनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हूँ जिनकी कृपा से मैं रामकथा का वर्णन कर रहा हूँ)। अब आप इस कथा का तत्सम्बन्धी अंश सुन लीजिए

सहस्रार्जुन का आतिथ्य– जमदग्नि ऋषि ने स्वयं कामधेनु लाकर जब रेणुका को प्रदान की, तो रेणुका ने उस (काम) धेनु का पूजन किया और राजा के आतिथ्य के लिए उचित उपचार (साधन सामग्री) देने की उससे याचना की। तो उस कामधेनु ने तत्काल ऐसे अच्छे अच्छे उपचार प्रदान किये, जिन्हें राजा सहस्रार्जुन ने न कभी देखा था, न कभी जिनके बारे में कुछ सुना था, न ही कभी जिनका स्वाद ग्रहण किया था। उस कामधेनु ने प्रेमपूर्वक एक ऐसी थाली को जन्म दिया, जिसमें (विपुल मात्रा में) दिव्य अन्न, आभूषण थे, साड़ियाँ थीं। उसी थाली में से लाखों करोड़ों थालियाँ निकलीं; थालियों के [illegible] ढेर उत्पन्न हो गए। उधर राजा सहस्रार्जुन के दूत ने उनसे कहा, इन ऋषि के यहाँ अन्न सामग्री कैसे [illegible] सकती है ? उनके यहाँ चूल्हे में आग तक नहीं है। फिर रसोई की क्या बात। यह सुनकर

राजा ने अपने मंत्री को यह बताकर भेज दिया 'देखिए, आश्रम में रसोई घर है या नहीं। यदि कोई सामग्री न हो, तो उन ऋषि को हम स्वयं अन्न सामग्री तथा धन प्रदान कर दें'। यह बात सुनकर मंत्री स्वयं ऋषि के आश्रम में आ गया। (उसी समय) ऋषि जमदग्नि ने (शिष्यों द्वारा) आमंत्रण भेजा, उनसे उस मंत्री ने कहा '(बहुत) देर हो गई'। तो उन शिष्यों ने कहा 'धीरज धारण कीजिए। कई प्रकार की भोज्य सामग्री तैयार हो गई है- अब झट से आ जाइए। फिर मंत्री ने राजा को विदित करा दिया कि ऋषि जमदग्नि ने आपको बुलाने के लिए भेजा है। तो राजा सबको तैयार कराकर सेना सहित भोजन करने के लिए आ गया। राजा को आते देखकर ऋषि उनकी अगवानी के लिए स्वयं प्रेमपूर्वक आ गए। उन्होंने मधुपर्क सिद्ध किया और (समस्त) उपचारों के साथ राजा का पूजन किया। राजा सहस्रार्जुन और उनके मंत्री ने देखा- उन्हें दिखायी दिया कि वहाँ (आश्रम के समीप दिव्य भवन शोभायमान है) सबके लिए सम-समान (एक-सा) दिव्य अन्न सोने की थालियों में सजा दिया गया है। ऋषि ने उन अतिथियों को पंक्तियों में बैठा लिया। (यह देखकर)- राजा सहस्रार्जुन मन में अति विस्मय चकित हो उठा। (उसे जान पड़ा-) ऋषि जमदग्नि की सम्पत्ति धन्य है; उनकी क्षमता तथा सामर्थ्य अथाह है वे सब लोग पंक्तियों में (भोजन के लिए) बैठ गए। भोज्य सामग्री उन्हें फिर से माँगनी नहीं पड़ी- न कोई सामग्री फिर से परोसनी पड़ी। सबको एक-सी, सम समान तृप्ति हो गई। तदनन्तर ऋषि ने दिव्य आभूषण, दिव्य वस्त्र तथा परिधान (ओढ़ावन) देते हुए उन सबको आदर के साथ गौरवान्वित किया। यह देखते हुए वे सभी मन में विस्मय को प्राप्त हो गए। तदनन्तर राजा सहस्रार्जुन अपने मंत्री से बोले- 'हम तो चक्रवर्ती राजा हैं, फिर भी हमारे पास ऐसी सम्पत्ति नहीं है, ऋषि के पास यह कैसे आ गयी ?'

राजा सहस्रार्जुन द्वारा ऋषि से कामधेनु देने की प्रार्थना करना– राजा सहस्रार्जुन के पुरोहित ने ऋषि जमदग्नि की महिमा (इस प्रकार) कही 'उनके घर में कामधेनु है। उसकी सामर्थ्य के प्रभाव से (उनके आश्रम में) दिव्य (अन्न, वस्त्र आदि) उपचारों की वृष्टि हो जाती है'। ऋषि जमदग्नि के पास कामधेनु है, यह सुनते ही राजा सहस्रार्जुन ने मन में अहंकार के साथ यह दृढ़ विचार किया कि उसे हम ऋषि से माँग लेंगे। फिर राजा जमदग्नि से बोला– 'आपने हमें बहुत सुख सम्पन्न कर दिया है। फिर भी मैं आपसे कोई एक बात माँगना चाहूँगा– आप वह मुझे अवश्य दें'। इसपर ऋषि ने कहा- 'आप असाधारण रूप से महान् राजा हैं'। तो उसने कहा 'फिर भी आपके लिए याचक हूँ, मैं आपसे कुछ माँग लूँगा- आप मुझे अवश्य प्रदान करें। आपके आश्रम में कामधेनु है। कृपा करके वह मुझे दीजिए'। यह बात सुनकर जमदग्नि स्वयं बहुत खिन्न और व्याकुल हो उठे। (उन्होंने कहा-) 'कामधेनु तो स्वर्ग का आभूषण होती है। समझिए, मृत्युलोक में वह (उपलब्ध) नहीं होती। फिर भी मैं उसे इन्द्र से (माँगकर) लाया हूँ। दूसरे की वस्तु दान में किस प्रकार दें ? हे राजा, (मेरा यह विचार है कि) आपका आतिथ्य पूजन करने के पश्चात् यह कामधेनु लेकर इन्द्र के पास पहुँचा दी जाए'। और इस प्रकार (कहकर राजा का) पूजन समाप्त करके वे झट से गाय को आश्रम के पास ले आए।

राजा सहस्रार्जुन द्वारा बल-प्रयोग करना तथा जमदग्नि का वध हो जाना– राजा सहस्रार्जुन ने मन में यह विचार (तय) किया कि इस कामधेनु को मैं बलपूर्वक ले जाऊँगा और यदि इन्द्र उसकी रक्षा के लिए दौड़ता हुआ आ जाए, तो मैं उसे दण्ड दूँगा। (ऐसा निर्णय करके) राजा ने गाय को छुड़ाने (खोलकर लाने) के लिए अपने मंत्री को (योद्धाओं सहित) भेज दिया। तो देदीप्यमान तेजस्वी ऋषि जमदग्नि बीच में उसे रोकने के लिए अड़े खड़े हो गए। जमदग्नि के तेज के सामने (प्रभाव से) वह

मंत्री भागकर पीछे लौट गया। (उसी प्रकार) बड़े-बड़े धैर्यशाली योद्धा भाग गए। फिर बेचारी सेना कितनी शक्तिशाली हो सकती है। समझिए कि यह देखकर राजा सहस्रार्जुन स्वयं दौड़ा। (उसने देखा कि) सामने जमदग्नि खड़े हैं- वे अणु भर तक टस (हिल) नहीं रहे हैं। उन्हें इस स्थिति में (खडे) देखकर राजा ने शस्त्र चलाना शुरू किया। लेकिन वे ऋषि को लग नहीं रहे थे। तब उसने अन्तिम अमोघ खड्ग हाथ में ग्रहण किया। जहाँ सुखभोग के विषय के प्रति अति स्वार्थ विचार होता है, वहाँ (ऐसे स्वार्थी व्यक्ति का) कर्तव्य सम्बन्धी विवेक-अविवेक विचार का स्मरण नहीं होता। उसके फलस्वरूप उस स्वार्थ-परायण राजा के हाथों ऋषि जमदग्नि का वध हुआ। इस प्रकार बड़ी बुरी घटना घटित हुई। राजा सहस्रार्जुन अति क्रुद्ध हो गया था। वह अन्तिम समय में प्रयुक्त करने के लिए रखे अमोघ शस्त्र चलाने लगा। उसने ऋषि जमदग्नि को आहत कर डाला। फलस्वरूप वे अचेत होकर गिर पड़े। (यह कहा जा चुका है कि) जमदग्नि ने क्रोध का त्याग कर दिया था। इसलिए उनसे राजा को शाप देते नहीं बनता था। उसी कारण से तो राजा का प्रताप प्रदर्शित हो रहा था और उसके शस्त्रों का ऐसा अहंकारमय व्यवहार (प्रयोग) चल सका था।

रेणुका द्वारा राजा का मूर्च्छित कर दिया जाना– जमदग्नि के प्राण निकल गए, तो आश्रम में रहनेवाले ब्राह्मण भाग गए। (यह देखकर) राजा (सहस्रार्जुन) स्वयं बोला– अब कामधेनु को ले आओ। (राज) सेवक उस धेनु को खोलने के हेतु आ गए, तो रेणुका असीम क्षुब्ध हो उठी। अपने (कर्णभूषण) ताटंक को चक्र बनाकर वह युद्ध करने के लिए सामने सिद्ध हो गई। उस ताटंक चक्र के [illegible] में राजा के मंत्री तत्क्षण भाग गए। सेना की जान लिये भागने लगी, (राजा की) वह (सेना) बारह [illegible] भाग गयी। उस ताटंक चक्र की धार तेज थी। उसने निडर महान वीरों को गिरा डाला। रुधिर के [illegible] बहने लगे। उस (रेणुका) के सामने कौन टिककर खड़ा रह सकता था। (यह देखकर) उस कामधेनु को खोलने के लिए राजा स्वयं तत्क्षण दौड़ा। पर रेणुका द्वारा अपने बाहु को ज़ोर से हिलाते ही राजा सहस्रबाहु मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। तब उस राजा सहस्रार्जुन के पुत्र क्रोध के साथ दौड़ते हुए आये। उन्होंने अति अद्भुत युद्ध किया; तब तक राजा सचेत हो गया। उस राजा ने फिर अमोघ शस्त्र चलाना शुरू किया। पर देखिए, वे उसे लग नहीं रहे थे। यह देखकर राजा व्याकुल हो उठा। मुझ सहस्रार्जुन का [illegible] देवों-दानवों द्वारा तक सहन नहीं किया जाता। फिर मनुष्यों को क्या सामर्थ्य ? ऐसे मुझे एक स्त्री [illegible] को प्राप्त (कैसे) करा दिया। फिर राजा सहस्रार्जुन ने चामुण्डास्त्र की प्रलयकारी मार बलपूर्वक [illegible] (उससे आघात करना शुरू किया)। उससे इक्कीस आघात सहन करके फिर जगदम्बा रेणुका मूर्च्छित हो गयी।

कामधेनु द्वारा राजा की पराजय हो जाना– जमदग्नि की आज्ञा का बन्धन कामधेनु पर पूर्णतः [illegible] था। अतः समझ लीजिए कि उन ऋषि के निधन को प्राप्त होते ही वह धेनु स्वयं बन्धन-हीन हो गयी। रेणुका के युद्ध भूमि में (अचेत होकर) गिर जाते ही राजा ने दौड़कर स्वयं उस धेनु को पकड़ लिया। पर उससे टकराते टकराते वह (मुक्त होकर) बाहर निकल गई- वह राजा के एक सहस्र हाथों से रोकी नहीं जा रही थी। तो राजा ने उसके खुर पर आघात किया। उससे उस खुर से रक्त बह निकला। [illegible] रक्त से 'खुरासनी' जाति के आरक्त वर्णवाले लोग उत्पन्न हुए। वे राजा से लड़ने के लिए आ [illegible]। उन खुरासनी लोगों को भगाकर राजा ने उसके सींग पर प्रहार किया। उससे 'सिंगाल' जाति के लोगों की उत्पत्ति हुई। उन्होंने राजा सहस्रबाहु को भगा दिया। जिस स्थान पर वह धेनु आक्रन्दन करके

रैभा रही थी, उस स्थान पर 'कालेमसी' तथा 'हबशी' जातियों के लोग जन्म को प्राप्त हो गए। उन्होंने सहस्रबाहु को भगा दिया।

कामधेनु का स्वर्ग के प्रति प्रयाण– इतना विनाश करके वह कामधेनु स्वर्ग के प्रति चली गई। (यह देखकर) राजा उद्विग्न हो गया। ग्लानि अनुभव करते हुए उस राजा का मुख मुरझा गया। वह बोला (उसे लगा), इसमें न स्वार्थ सिद्ध हो गया, न परमार्थ। मैंने उसपर व्यर्थ ही शस्त्र से आघात किया। मेरे हाथों ब्राह्मण का वध हो गया। अपने लोभ के विचार से अन्य अनिष्ट बात घटित हुई। राजा इस प्रकार मन में पश्चात्ताप कर रहा था। उसने किसी से कुछ नहीं कहा। फिर वह अपनी सेना को लेकर अपने नगर चला गया। (उस समय) रेणुका रणभूमि में मूर्च्छित हो पड़ी थी। वह स्वयं सचेत होकर प्राणों को सम्हालते हुए अन्त में पूर्ण रूप से चेतना को प्राप्त हुई। (अपने चारों ओर) अपार विनाश को देखकर उसने आक्रोश करते हुए चिल्लाकर कहा– 'हे परशुराम, तुम (यहाँ) मेरे दुःख का निवारण करने के हेतु अवश्य आ जाओ'। माता का यह उच्च स्वर कैलास पर तुम्हारे कानों तक पहुँचा, तो तुम तत्क्षण आ सकते हो। माता के वचन (आज्ञा) के प्रति तुम्हें अति भक्ति है। इतिहास में अर्थात् पूर्वकाल में यह कथा (घटना) जिस प्रकार घटित हुई थी, उसी प्रकार आश्रमवासी ब्राह्मणों ने परशुराम से कही।

रेणुका के प्रति परशुराम का आगमन– इस प्रकार का समाचार सुनते ही परशुराम अपनी माता को देखने के लिए वेगपूर्वक आ गया। उसे आहत देखकर वह आक्रन्दन करने लगा, उसका गला रुँध गया। रेणुका अपने पुत्र से बोली 'क्या तुम यहाँ रोने के लिए आये हो ? तुम्हारे पास पराक्रम-शीलता नहीं है, फिर तुम मेरे सहायक कैसे हो सकते हो'। माता का ऐसा कथन सुनकर परशुराम शीघ्रता से उसके पाँव लगा (और बोला) –'मुझे झट से अनुज्ञा दो, तो मैं सहस्रार्जुन को छिन्न-भिन्न कर डालूँगा'। (यह सुनते ही) क्षोभपूर्वक रेणुका ने पालन करने में अत्यधिक कठिन यह आज्ञा दी- 'सहस्रार्जुन के सहस्र हाथों को छेदकर उसका सिर काट दो। समस्त दानवों का निर्दलन करो। उस क्षत्रिय ने मुझे युद्ध में शस्त्रास्त्र से घायल कर डाला; इसलिए तुम खोज-खोजकर पृथ्वी को निःक्षत्रिय कर दो। सहस्रार्जुन के साथ ही उसके समस्त पुत्रों को खोज-खोजकर मार डालो। दैत्य उन्मत्त हो गए हैं। इसलिए उनका जड़-मूल-सहित नाश कर डालो'।

रेणुका की परशुराम को आज्ञा– 'मेरा शरीर मानो धरती है। उस क्षत्रिय ने उसपर इक्कीस प्रहार किये हैं। अतः मेरी यह आज्ञा है कि तुम पृथ्वी को इक्कीस बार निःक्षत्रिय कर डालो'। (यह सुनकर) कोप को प्राप्त परशुराम माता के चरणों का वन्दन करके हाथों में धनुष्यबाण तथा दारुण (अत्यधिक तीक्ष्ण) परशु लेते हुए चला गया।

जमदग्नि की अन्त्येष्टि-क्रिया और रेणुका का सहगमन– माता की आज्ञा (परशुराम के लिए) असीम थी (सर्वोपरि थी)। (वह बोली) मूल पीठ स्वरूप परम पवित्र जो यह स्थान है, वहाँ मैं (पति के साथ) सहगमन करूँगी। फिर तुम उत्तर-क्रिया कर दो। देखिए, इस प्रकार बोलते ही रेणुका ने जमदग्नि की देह में प्रवेश किया। (फलस्वरूप वस्तुतः) उसका शव शेष नहीं रहा। जगदम्बा (रेणुका) देह के रहते भी विदेही थी। (यह देखकर) परशुराम सिर पीटने लगा। वह बोला- 'हे माँ, मुझसे क्यों नहीं मिल रही हो ?' (उसपर रेणुका का यह कथन उसे सुनायी दिया) 'वह तो मूल पीठ में विलीन हो चुकी है। अब मेरी कही हुई बात कर दो'।

सहस्रार्जुन पर परशुराम का आक्रमण– तदनन्तर सह्य पर्वत पर परशुराम ने अपने पिता और माता दोनों का (दाहक्रिया आदि) उत्तर कर्म किया और उसके बाद राजा सहस्रार्जुन से संग्राम में अपना युद्ध सम्बन्धी कर्तव्य आरम्भ किया। जहाँ वह राजा रहता था, उस महिकावती (माहिष्मती नामक) नगरी के पास वह पहुँच गया। हाथ में धनुष लेकर वह उस नगरी के प्रति आया था। उसने सोचा मैं (यदि) राजनगरी को उध्वस्त करने लगूँ, तो समस्त प्रजा पीड़ा को प्राप्त हो जाएगी, फिर जब (यह जानकर) राजा नगर के बाहर निकले, तो मैं उसे सपरिवार मार डालूँगा। पर (ऐसा ही क्यों न करूँ) क्षत्रिय धर्म के अनुसार यह सन्देश किसी के द्वारा कहलवाया जाए कि वह (राजा) नगर के बाहर आकर युद्ध करे। (क्योंकि) मैं नगर के अन्दर उससे भिड़कर लड़ूँ, तो प्रजा का नाश होगा। फिर समझिए कि ऐसा सुनने-जानने पर भी वह राजा यदि मेरे भय से (नगर से बाहर) न आए, तो मैं राजभवन को लक्ष्य करके नगर में पैठ जाऊँगा। मैं प्रजा को अभयदान देते हुए गायों-ब्राह्मणों को सकुशल (सुरक्षित) रखूँगा और राजभवन में प्रविष्ट होकर सहस्रार्जुन का वध करूँगा। पर राजा को किसके द्वारा यह सन्देश भेज दूँ कि मुझसे लड़ने के लिए वह आये ? वह यह सोच ही रहा था कि उसे राजा का माली दिखायी दिया। राजा का वह माली अंजुलि में राजा के देव पूजन के लिए फूल लिये हुए जा रहा था। उस ब्राह्मण (परशुराम) का अनोखा ढंग देखकर वह उसे निकट से देखने के लिए उसके पास आ गया तो परशुराम ने उससे पूछा - 'तुम ये फूल किसके लिए ले जा रहे हो?' तो वह बोला, 'मैं राजा का विश्वास-पात्र हूँ, देव-पूजन के लिए फूल ले जा रहा हूँ'।

युद्ध के लिए राजा को चुनौती– परशुराम उस पुष्पधारी माली से बोला- 'जाकर राजा से कह दो- समस्त सेना से सुसज्जित होकर मुझसे लड़ने के लिए आ जाओ'। परशुराम की इस बात को सुनकर माली ने उसका उपहास करते हुए कहा- ''मौत के लिए धरना देकर क्यों बैठ रहे हो ? राजा से युद्ध करना क्यों चाहते हो ?। तुम्हारे शरीर पर तो तुम्हारे ब्राह्मण होने के लक्षण दिखायी दे रहे हैं। फिर तुम्हारे पास ये धनुष बाण कैसे आये ? यह परशु-धारण करने के लिए कौन सा कार्य कारण हो गया है ? (वस्तुत:) तुम्हें तो वेदों का पठन करना उचित है (लड़ना नहीं)। राजा सेना से सुसज्जित, बलवान् होता है। (इधर) तुम तो अकेले (असहाय) ब्राह्मण पुत्र (जान पड़ रहे) हो। तुम उससे बड़ा युद्ध करना चाह रहे हो, पर यह युद्ध रूपी प्रलयंकरी ज्वार कैसे हो सकता है ?''। राह चलनेवाले जो जो लोग उस (परशुराम) को देखते, वे कहते (समझते)- यह ब्राह्मण तो आत्मघाती ठहरा। राजा से युद्ध करने का अवसर पाना चाहता है- यह तो मौत के लिए उत्कण्ठित हो उठा है। क्षत्रिय का बल युद्ध (विद्या) में होता है, तो ब्राह्मण अभिशाप देने की शक्ति से बलवान् माना जाता है। पर तुम तो घोर युद्ध करना चाहते हो। तुम पूर्णत: विवेकहीन मात्र हो। फूलवाले माली ने परशुराम से कहा- मेरे द्वारा राजा से (तुम्हारा सन्देश) कहने पर वह तो तुम्हारा वध कर डालेगा और मेरे सिर पर ब्रह्महत्या बैठेगी-चढ़ेगी इसलिए यह तो बिलकुल नहीं कहूँगा। तब परशुराम ने मन ही-मन कहा (सोचा)- साधुता से (कहने पर) यहाँ कोई नहीं मान रहा है। पुरुषार्थ शौर्य देखने पर किसी का कहना लोगों द्वारा अद्‌भुत (प्रभावशाली) माना जाता है परशुराम ने इस प्रकार निष्कर्ष निकाला और उस माली की पिटाई की। उसके हाथ से फूल छीन लिये, तो वह चीखते-चिल्लाते हुए राज द्वार के प्रति चला गया।

चुनौती सुनकर राजा का भयभीत हो जाना– माली को परशुराम ने घूँसे के आघात से पीड़ित कर दिया, तो राजद्वार पर जाकर वह चीखने पुकारने लगा। उसकी चीख-पुकार सुनकर नर-नारी प्रजाजन

आतंकित हुए- उन्हें आशंका हुई राजा प्रसाद के अन्दर जीवित है या मौत को प्राप्त हुआ। सहस्रार्जुन के राज्य में कभी किसी का सपने तक में चीखना-चिल्लाना सुनायी नहीं देता था। फिर राज द्वार में यह चीख पुकार कैसे हो रही है ? अवश्य अन्दर राजा की मौत हुई है। सबकी जिह्वा पर यह बात हो गयी थी- तो मानो वाग्देवी ने भविष्य कथन ही किया हो। उस चीख़ को सुनकर राजा का मन काँप उठा। (उसने सोचा-) मैंने उस गाय पर शस्त्र से आघात किया और उस ब्राह्मण का वध किया। मैंने (इस प्रकार) बहुत पाप किया है अत: निश्चय ही मुझे विजय नहीं प्राप्त होगी। इधर मंत्री ने माली से पूछा- 'तुझे चीख़ने-चिल्लाने के लिए क्या कारण हुआ ?' तब वह बोला 'धनुष बाण और परशु साथ में लेकर एक ब्राह्मण आया है। वह बलशाली विप्र सेना-सहित राजा से युद्ध करना चाहता है। उसने मुझसे कहा- (जाकर) राजा से यह कह दो। मैंने उसकी उक्ति को उपेक्षा के साथ तुच्छ माना काट दिया। (मैंने कहा-) राजा और ब्राह्मण का (कैसा) युद्ध ? तुम्हारा यह कहना बहुत असंगति-पूर्ण (बेढंगा) है। (मेरे) इस (कथन) से उस ब्राह्मण को क्रोध आया और उसने मुझे भली भाँति पीट दिया। उसने मेरे हाथ से फूल छीनकर मेरे मुख पर आघात किया। उससे मेरे प्राणों पर बीती। इसलिए मैं चीख़ रहा हूँ'।

राजा की सेना की दुर्दशा– तब मंत्री ने सेनापति को बुलाकर उसे आदेश दिया- उस ब्राह्मण को पकड़कर ले आएँ तो उस (सेनापति) ने पहरेदार को बुलाकर कहा 'उस ब्राह्मण को बाँधकर (बन्दी बनाकर) लिवा लाया जाए'. स्वाभाविक रूप से (जिज्ञासा से) नगरवासी लोग वहाँ आ गए. (उन्होंने सोचा) ये बहुत हैं वह अकेला ही है। इनकी युद्ध लीला तो देख लें। वह पहरेदार बाहर चला। उसके आगे पदाति सैनिकों की कतारें (चल रहीं) थीं। उनमें से कई एक हा: हा: करते हुए गरज रहे थे कुछ एक शस्त्र तौल रहे थे। (उन्हें देखकर) परशुराम ने सोचा ये तो दीन (दुर्बल, दास) हैं। इन्हें मारने में कौन पराक्रम (सिद्ध) होगा ? जिससे राजा के अपशकुन होगा, इनको ऐसे लक्षणों से युक्त बना लूँगा। ऐसा सोचकर उसने एक बाण चला दिया। सबके नाक कान छीलते हुए वह बाण लौटकर तरकस में पैठ गया। (उन लोगों में से) कोई किसी का समधी था, कोई किसी का दामाद था। किसी से उसका अपना कोई भाई मिलने आया हुआ था। देखिए, यह (युद्ध) लीला देखते-देखते, तो अपने-अपने नाक-कानों से वंचित हो गए। कोई किसी के अतिथि के रूप में आया था, तो कोई किसी का बहनोई था। कोई उनमें से किसी का दामाद के रूप में दीवाली के त्योहार के निमित्त आमंत्रित कर लाया था। वे सब नाक-कानों से वंचित हो गए। उस स्थिति में वे मुँह दिखाने में लज्जित होने लगे। वे आक्रन्दन करते हुए चीख़ने पुकारने लगे। नाक-कान, दोनों कट गए, तो बोलने लगते ही फें: फें: जैसी ध्वनि निकल रही थी। युद्ध की यह कैसी विडम्बना थी। युद्ध में सामने-सामने लड़ते हुए प्राण निकल जाएँ, तो वीरों के लिए वह उत्तम मृत्यु (वीरगति) मानी जाती है। पर (इस प्रकार) जीते-जागते नाक कान कट जाएँ, तो वह साधारण मौत से भी चौगुनी निन्द्य बात होती है इस प्रकार अनेक वीर लज्जा को प्राप्त कराये गए। नगर में चीख-पुकार मची। तो राजपुत्र अत्यधिक क्रुद्ध हो उठे उन्होंने सेना सुसज्जित कर ली। छ: करोड़ हाथी, कोटि-कोटि रथ, असंख्यात घुड़सवार चले। (अनगिनत) पदाति गरजने लगे। सेना के अग्रभाग में सेनापति था मध्यभाग में राजपुत्र थे; दक्षिण में (दाहिनी ओर) और बाईं ओर, दोनों ओर चण्ड प्रचण्ड नामक पुरुषार्थी मुकुट मणियों- मे श्रेष्ठ (मांडलिक) राजा थे। (यह देखकर) राजा सहस्रार्जुन भी वेगपूर्वक चला, तो राजपुत्रों और मंत्रियों ने उससे प्रार्थना करके उसे

(रोककर) ठहरा दिया और कहा- 'उस ब्राह्मण को हम बाँधकर ले आएँगे हम इतने जनों के रहते हुए और ब्राह्मण के अकेले होते हुए आप उसपर चढ़ दौड़ें ? हे राजा, यह कोई युद्धभूमि नहीं है'.

अपशकुन– इस प्रकार मंत्रियों और राजपुत्रों ने राजा सहस्रार्जुन को नगर में ठहराया और वे सेना दल सहित नगर के बाहर निकल पड़े। तो आगे उनसे नासिका हीन (नक कटे) लोग मिले. यह तो अत्यधिक बड़ा अपशकुन था- उससे यह शास्त्रार्थ निकलता था कि यह तो राजा के लिए अवश्य ही हानिकारी बात है। (मंत्री और राजपुत्र बोले-) तुम्हारा ये निन्द्य मुख जल जाए। शुभ मुहूर्त पर तुम सब नाक-कान-हीन लोग इस प्रकार सामने क्यों आये हो ? यह बात सुनकर उन घायल लोगों को अति दुःख हुआ। फिर वे आहत लोग स्वयं बोले- 'वह ब्राह्मण किसी के प्राण नहीं छीन लेता। यदि तुम अपने नाक-कान बचा लोगे, तो ही तुम्हारा प्रताप हमें अवगत होगा'। तो मंत्री स्वयं बोला 'अरे, अपशकुन के भय से लौट नहीं जाना चाहिए। लौट जाना ही अपशकुन होगा- वह जगत् में अति निन्द्य सिद्ध होगा। दो दलों के परस्पर लड़ते समय किसी एक की जय होती है, तो दूसरे की हार होती है। यह बात (होनी) तो टलेगी नहीं। शकुन का महत्त्व मूर्खों की दृष्टि में होगा। यदि शरीर में (स्वयं योद्धा में) वीरता न हो तो उसको शुभ शकुन भी क्या विजय प्रदान करेगा ? जो ऐसा मानते हैं, वे पूर्णतः मूर्ख हैं. शूरों का (ऐसा मानना) वह लक्षण नहीं है। दैव (सौभाग्य) शकुन में है, तो क्या वह अपशकुन में नहीं हो सकता ? देखिए, निडर लोग शकुन-अपशकुन की कोई महत्ता नहीं मानते'। मंत्री ने ऐसा कहते हुए भेरियों और ढोलों को बजवा दिया। आगे ब्राह्मण को लक्ष्य करके उसने समस्त सेना को चला दिया

यह एकनाथ गुरु जनार्दन की शरण में स्थित है, वह कहता है- दानवों का युद्ध दारुण होगा (दानव भीषण युद्ध करेंगे)। परन्तु परशुराम उनका निर्दलन करेगा। युद्ध में किये गए उस संहार का वर्णन (अब) सुनिए।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ कृत 'भावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत बालकाण्ड का 'परशुराम-युद्ध-प्रभाव' नामक यह सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय १७

[परशुराम द्वारा सहस्रार्जुन का वध और शिवधनुष की पूर्वकथा]

परशुराम द्वारा राजा चण्ड और प्रचण्ड तथा राजपुत्रों का वध– परशुराम ने दूर से देखा, तो उसे दिखायी दिया कि सेना नेता-विहीन है, अर्थात् सेना का मुख्य नेता (राजा) उसके साथ नहीं है स्वयं राजा सहस्रार्जुन नहीं आया है। (पर) उसने सभी राजपुत्रों को आये देखा उसे माता रेणुका की यह स्पष्ट आज्ञा थी कि राजा सहस्रार्जुन के सब पुत्रों को खोज-खोजकर मार डाला जाए। अतः परशुराम ने यह तय किया था कि इस आज्ञा के अनुसार मैं अपना कार्य पूर्ण करूँगा। उसने अपने धनुष की टंकार की तो उसकी ध्वनि से देव मूर्च्छित हो गए; पर्वतों की कन्दराएँ गूँज उठीं। राजकुमार आतंकित हो उठे। मारे डर के सहस्रार्जुन का मंत्री चौंक उठा फिर भी धीरज धारण करके वह खड़ा रहा। परन्तु सेना दलों अर्धांश सैनिकों ने खड़े-खड़े प्राण त्यज दिये। उस धनुष की टंकार ध्वनि से समस्त आकाश व्याप्त हो गया (तदनन्तर) परशुराम ने सिंहमुख बाण चला दिया और उससे समस्त हाथी मार डाले। उसने रथों

की धुराएँ काटते हुए घोड़ों के सिर तोड़ डाले। उस बाण के परों से ऐसी हवा चली कि वह कोटि कोटि रथों को उड़ाकर आकाश में ले चली। उनपर विराजमान वीर हवा के आवर्त (आँधी) में फँस गए रथों में बैठे वीर ऊपर से भू तल पर गिरने लगे। रथों की धुराएँ कटकर भूतल पर (पड़ते ही) चूरचूर होने लगीं। रथ अपने भार के कारण एक दूसरे से टकराने लगे। उससे शूर (सैनिक) पीसे जाते रहे। जब परशुराम ने और बाण चला दिए, तो सम्पूर्ण सेना आँधी में फँस गई जो कोई बाण को टालकर खिसक जाता, तो उसी ओर बाण उससे टकरा जाता। जिन सैनिकों ने डरके मारे, आघात होने के भय से ढालें आड़े पकड़ रखीं, उनकी उन ढालों को परशुराम के बाणों ने भेदकर उनके सम्पूर्ण शरीरों को छेद डाला (इस प्रकार) परशुराम ने रणक्रीडा आरम्भ की। शत्रु सैनिकों के (कटे) मस्तकों को गेंदें समझकर उसने कन्दुक क्रीड़ा शुरू की. उसने अत्यधिक बलशाली राजाओं को मार डाला। (रणभूमि में बहते) रुधिर को भूत (पिशाच) अंजुलियाँ भर-भर पीने लगे। अपनी सेना पर ऐसी (बड़ी भारी) मार के पड़ते देखकर राजकुमार क्षुब्ध हो उठे। मंत्री सामने दौड़ा। वे अपने अपने युद्ध कौशल की दृष्टि से बहुत दुर्धर्ष थे। तो भी परशुराम ने बाण के झपट्टे से साक्षात् मंत्री का तत्क्षण उड़ा दिया और उसे सीधे ले जाकर राजा सहस्रार्जुन के सामने गिरा दिया। उसके मस्तक में दरार-सी पड़ने से वह मौत को प्राप्त हुआ। राजा चण्ड और प्रचण्ड ने फिर घमासान युद्ध किया। परशुराम ने उन के बाहुओं को काटते हुए उन दोनों के भी सिर छेदकर गिरा दिए। जब परशुराम ने इन दो दुर्धर्ष वीरों को गिरा डाला, तब रणभूमि में हाहाकार मचा। परशुराम ने तब चीखने-चिल्लानेवालों के मुखों को छिन्न-भिन्न कर डाला। इस प्रकार वीर परशुराम ने सहस्रार्जुन के पक्ष के इन वीरों को विनाश को प्राप्त करा दिया. फिर परशुराम ने राजकुमारों को लक्ष्य किया। वे अति दुर्धर्ष वीर (राजपुत्र) लड़ने के लिए चले आए। शस्त्रास्त्रों को चलाने के कौशल से (दोनों पक्षों में) भीषण घमासान युद्ध शुरू हुआ। वे वीर (परशुराम और विपक्षीय राजकुमार) एक दूसरे के बाण को बाण से काट देते थे, शस्त्र की पिटाई कर रहे थे; अस्त्र से अस्त्र को भग्न कर रहे थे। फिर अन्त में उन्होंने अन्तिम समय के लिए सुरक्षित रखे अमोघ शस्त्रों को निकाला। तब परशुराम ने उन राजकुमारों के रथों को छिन्न कर डाला; सैकड़ों सैकड़ों सारथियों को मार डाला, (अनेकानेक) वीरों को वहाँ मार गिराकर कई वीरों को रथहीन कर दिया। फिर परशुराम ने अन्तक के भी अन्त अर्थात् काल देवता का भी अन्त कर सकनेवाले अर्ध चन्द्र बाण से उन वीरों के समस्त शस्त्रों को छेद डाला; साथ ही उनके सिर काट डाले। भूमि पर रक्त बहने लगा राजपुत्रों के (इस प्रकार) धरती पर गिर जाने पर अन्य वीरों की पंक्तियाँ, अर्थात् वीरों के समूह (मरकर) गिर पड़े। परशुराम ने रणभूमि में इस प्रकार ख्याति प्राप्त की उसने सब को शान्त किया (सबकी प्राण-ज्योति को बुझा दिया)। जो जो रणभूमि में आये थे, उन सबका परशुराम ने पूर्णत: निर्दलन किया। (यह दु:खद) समाचार (राजा को) बताने के लिए भी कोई शेष नहीं रहा परशुराम ने इस प्रकार रणभूमि को क्षत्रिय हीन कर डाला। अश्वों, गजों, रथों को लेकर युद्ध के लिए जो जो आये, जो जो पदाति सैनिक आ गये, अतिरथी-महारथी जो जो युद्धार्थ आये, उन सबको भार्गव परशुराम ने जड़-मूल सहित चिरशान्ति को प्राप्त करा दिया।

राजा सहस्रार्जुन की चिन्तातुरता और प्रतिज्ञा–(परशुधारी उस ब्राह्मण ने) मंत्री को राजभवन में (मृत) गिरा डाला फिर राजपुत्र रणांगण में गिर गए, यह सुनकर राजा सहस्रार्जुन क्षुब्ध हो उठा, तो वह युद्ध करने हेतु उठ गया। समस्त सेना मृत्यु को प्राप्त हुई। अब तो (केवल) पाँच सौ सेवक शेष रहे थे इस स्थिति में राजा युद्ध के लिए अकेला चलकर झट से रथ में बैठ गया। उसने मन में यह

सोचा–मैंने गाय (कामधेनु) और ब्राह्मणों को शस्त्र से छू लिया। उसमें मैं अपयश भाजन हो चुका हूँ। फिर भी अब क्षत्रिय के धर्म की दृष्टि से मुझे अपने क्षात्र धर्म का निर्वाह करना चाहिए। मैं युद्ध में क्षात्रधर्म को प्रदर्शित करूँगा–परशुराम को बाणों से पीड़ित भयभीत कर दूँगा। पूरे बल के साथ मैं उससे रणांगण में युद्ध करने की इच्छा से निरुपाय होकर अन्तिम समय भिड़ जाऊँगा। वह पिता (के वध) का बदला लेना चाहेगा, तो मैं अपने पुत्रों (के वध)का उससे प्रतिशोध लेना चाहूँगा। हम दोनों का पराक्रम तो देख लें। (इस प्रकार प्रतिज्ञा करके)वह मुख से गर्जन करके उठ गया (सिद्ध हो गया)।

परशुराम द्वारा राजा का धिक्कार करना– (राजा सहस्रार्जुन को आते देखकर) परशुराम क्रोध के साथ बोला– घर में भोजन करके किसी (कोई जिस थाली में खाए, उसी में छेद कर दे) ने मानो उसे मोल लिया और फिर नष्ट किया। हे दुष्ट, उस बात को तुमने ही सत्य सिद्ध (प्रमाणित) किया है। तुम्हारे अपने प्रति वैरहीन मेरे पिता जमदग्नि को तुमने मार डाला। जमदग्नि ने क्रोध का त्याग किया था, फिर तुमने उनपर वीरता प्रदर्शित की। तुम व्यर्थ ही अपने बल की जल्पना (वाचालता-पूर्वक बातें) कर रहे हो। तुम नीचता की दृष्टि से अत्यधिक नीच हो। स्त्रियों पर तुम्हारा पराक्रम सिद्ध हुआ। मेरी माता अचेत होकर गिर गयी। ऐसा करनेवाले तुम यहाँ मुझे मिल गए हो। मैं तुम्हारा निःपात कर डालूँगा।

परशुराम और सहस्रार्जुन का युद्ध– इस प्रकार की ढेर सारी बातों को सुनते ही सहस्रबाहु क्रोध के साथ चला, तो उस ओर द्वि-बाहु (परशुराम) वैसे ही चढ़ दौड़ा लपका, जैसे सिंह हाथी को पकड़ने के लिए दौड़ता है। जमदग्नि का विख्यात बड़ा भारी क्रोध परशुराम में (मानो उत्तराधिकार स्वरूप) विद्यमान था। वह राजा सहस्रार्जुन की युद्ध सम्बन्धी उमंग भग्न कर देने के हेतु उसके विरुद्ध उठा। उसने धनुष पर क्रोधपूर्वक डोरी चढ़ा दी; अति प्रखर तीक्ष्ण बाण निकाल लिये। (उधर से) सहस्रार्जुन भी आगे बढ़ा और उसने दारुण युद्ध आरम्भ किया। उन दोनों के बाण पैने थे। उनके बल में कठोरता के साथ परों की फड़फड़ाहट भी (भयावह) थी। आकाश में बाणों की खनखनाहट भर गयी। (क्रोध की) आग प्रज्वलित हो उठी। एक वीर दूसरे के बाण का अपने बाण से निवारण कर रहा था। शस्त्र से शस्त्र का संहार करने लगा। अस्त्र से अस्त्र को रोकने लगा। (इस प्रकार) वे दोनों शस्त्रास्त्र (विद्या) में प्रवीण थे। सहस्र भुजाओंवाला वह राजा (श्रेष्ठ) धनुर्धर था तो इधर दो ही भुजाओंवाले परशुराम ने धनुष पर डोरी चढ़ा दी। उसने राजा पर बाणों की जोरों की बौछार आरम्भ की, तो उस राजा को उस संकट से बचने का कोई उपाय नहीं सुझायी दे रहा था। उसी परशुराम ने, देखिए बड़े कौशल से राजा के रथ की धुरा छेद डाली। सारथि को पूर्णतः मार डाला और अनमोल घोड़ों को रणभूमि में गिरा दिया। पीछे रथों की पंक्ति थी। उनमें आरूढ़ वीरों को भी परशुराम ने बाणों से छेद डाला। (इस प्रकार सबके मारे जाने पर) राजा सहस्रार्जुन के लिए कोई भी सहायक शेष नहीं रहा, रणभूमि में अकेला राजा ही (बचा) रहा। वह राजा स्वयं रथहीन होकर शेष रहा था। उसे क्रोध से ऐसे अनिवारणीय अस्त्रों का प्रयोग करते हुए घमासान युद्ध आरम्भ किया, जिनका (रोककर, काटकर) निवारण करना कोई नहीं जानता था। उसने दण्डास्त्र और चण्डास्त्र चला दिए, उसके साथ ही प्रचण्डास्त्र चला दिया। उसने वेगपूर्वक विखण्डास्त्र, रोके जाने में असम्भव घोर घोरास्त्र छोड़ दिया। परशुराम तो (धनुर्विद्या में) प्रवीण धनुर्धर था। उसने उन शस्त्रों के समुदाय को देखकर जिस प्रकार शस्त्रों द्वारा उनका संहार किया, उसे ध्यान से सुनिए। उसने दण्ड से दण्डास्त्र को दण्ड दिया (काट दिया); खण्ड अस्त्र से खण्डास्त्र के टुकड़े-टुकड़े कर डाले; चण्ड नामक अस्त्र से प्रचण्डास्त्र को छेद डाला; अघोर अस्त्र से घोरास्त्र को छिन्न कर डाला। परशुराम ने

निर्वाणास्त्र से (अन्य) समस्त अस्त्रों को तितर-बितर करके नष्ट कर डाला। तब राजा सहस्रार्जुन ने अत्यधिक दुर्धर चामुण्डास्त्र उठा लिया। पूर्वकाल में जिससे देवी कालिका ने चण्ड-मुण्ड दैत्यों का मर्दन किया गया था, वह चामुण्डास्त्र राजा ने हाथ में धारण किया। (यह देखकर) परशुराम ने देवी कालिका का आवाहन किया। चामुण्डा उसकी दासी थी।

देवी चामुण्डा का लौट आना– देवी कालिका चामुण्डा से बोली (परशुराम की माता) रेणुका तो मेरा ही रूप थी। उसके पति के वधिक का तू अवश्य निर्दलन कर चामुण्डा देवी कालिका की दासी है, इस तथ्य को जो नहीं स्वीकार करते, वे 'दुर्गासप्तशती' नामक ग्रन्थ का अवलोकन करें, जिसमें इसका वर्णन किया गया है कि किस प्रकार देवी (कालिका) ने चण्ड और मुण्ड नामक दैत्यों का वध किया देवी कालिका को नमस्कार करते हुए उसकी आज्ञा लेकर चामुण्डा स्वयं राजा सहस्रार्जुन का निर्दलन करने के लिए लौटी। चामुण्डा (परशुराम की ओर से) विमुख होकर लौटी, तो सहस्रार्जुन को दिखायी दिया कि मेरे अपने अस्त्र फिर मुझे ही लग रहे हैं। अतः वह आतंक से मन में व्याकुल हो उठा। (उसने सोचा) चामुण्डा (अस्त्र) का निवारण करना मैं स्वयं नहीं जानता इसलिए निश्चय ही मेरी मृत्यु होगी, मारे डर के वह पूर्ण रूप से काँपने लगा। परशुराम ने उसी क्षण हाथ में परशु धारण किया और उससे राजा के एक सहस्र बाहुओं को पोरों के समान काटकर भूमि पर गिरा दिया।

सहस्रार्जुन का वध तथा मृत्यु से पहले उसके द्वारा परशुराम की स्तुति करना– परशुराम ने अपना सम्पूर्ण बल जुटाकर फिर राजा के सिर पर प्रहार किया। देखिए, उस प्रहार से वह महाबाहु योद्धा सहस्रार्जुन पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसका सिर आकाश में उड़ गया। मानों राजा ने अपने जीव (रूपी दीप) से परशुराम की आरती उतारी हो फिर वह सिर चरणों की धूलि की वन्दना करने के लिए परशुराम के चरणों के समीप (आकाश से) उतर गया। उसने सद्भाव अर्थात् श्रद्धा से (यह कहते हुए) परशुराम की स्तुति करना आरम्भ किया– (हे भगवान्) मैं गायों और ब्राह्मणों का बड़ा हत्यारा हूँ ऐसे (परम पापी) मेरे पापों का क्षालन आपने अपने हाथों से शस्त्रों के धारा तीर्थ में कर दिया है। आपने मेरी सहस्र भुजाओं का भार (क्या) छिन्न-भिन्न कर डाला ? आपने तो (वस्तुतः) मेरे अहंकार का उच्छेद कर डाला, मेरी वासनाओं (विकारों) के समुदाय को ही नष्ट किया है। (इस प्रकार) आपने मेरे जीव का उद्धार किया है आपने मेरे कर्म अकर्म को छेद डाला है, मेरे धर्म-अधर्म को काट डाला है। मेरे (माया-जन्य) मोह, भ्रम को नष्ट करके मुझे परमब्रह्म स्वरूप बना दिया है। आपने मेरे नाम रूप को तथा मेरे पुण्य-पाप को छेद डाला है आपने मेरे संकल्प-विकल्प को काटते हुए मुझे निर्विकल्प ब्रह्म स्वरूप बना दिया है। आपने मेरा अहंभाव सोऽहम् भाव (जीव तथा ब्रह्म सम्बन्धी विचार) काट दिया; मेरा 'मैं-पना' अर्थात् 'अहंदेहभाव' ('मैं और मेरी यह देह'- यही सब कुछ है, यह विचार) पूर्णतः नष्ट कर दिया है। वैसे ही जीव को एक स्वतंत्र वस्तु मानने की तथा जीव को ही एक मात्र अर्थात् सब कुछ मानने की मेरी प्रवृत्ति को नष्ट करके आपने मुझे परिपूर्ण ब्रह्म स्वरूप बना दिया है। इस प्रकार जब वह स्तुति कर रहा था, तब उसके नयन भगवत् प्रेम से पूर्ण भर उठे। फिर सहस्रार्जुन ने परशुराम के चरणों पर मस्तक रखते हुए वन्दन किया और प्राण त्याग दिये। माता रेणुका की परशुराम को पूर्ण रूपसे स्पष्ट आज्ञा थी कि वह पहले राजा सहस्रार्जुन के सहस्र हाथ छेद दे, तदनन्तर उसका मस्तक काट दे। परशुराम ने उसी प्रकार उसका वधकार्य (सम्बन्धी अपना कर्तव्य) पूर्ण किया। सहस्रार्जुन रणक्षेत्र में इस प्रकार गिर गया। उसके साथ ही परशुराम ने अपनी माता के आदेश के अनुसार पृथ्वी को इक्कीस बार निःक्षत्रिय कर डाला।

मैं एकनाथ गुरु जनार्दन की शरण में स्थित हूँ। मैंने रेणुका (सम्बन्धी) पुराण में प्रस्तुत आख्यान कहकर पूर्ण किया। अब जानकी के विवाह के विषय में अवधान पूर्वक सुनिए। शिव-धनुष का वर्णन करते-करते घटना-प्रसग-क्रम के अनुसार यह रेणुका-आख्यान कहा गया। इससे इस (राम) कथा में अनोखी विचित्रता आ गयी। (इससे मुख्य विषय को छोड़कर जो बात मैंने कही) उसके लिए श्रोता-जन मुझे क्षमा करें.

परशुराम का मिथिला में आगमन– पृथ्वी को क्षत्रिय-हीन करने के पश्चात् परशुराम सहसा (अनपेक्षित रूप से) मिथिला आ गया। उसने ऋषिगण से पूछा– यहाँ कौन राजा (राज्य कर रहा) है ? तो ऋषियों ने परशुराम से कहा– यह (अर्थात् यहाँ का) राजा सार्वभौम अर्थात् चक्रवर्ती सम्राट है, वह धर्मात्मा है। देह धारण करते हुए भी वह विदेही है (शरीर के होने पर भी उसके साथ आनेवाले काम-क्रोधादि विकारों से वह पूर्णतःमुक्त है)। इसकी महिमा अथाह है।

जनक द्वारा परशुराम का आतिथ्य करना– उन ब्राह्मणों ने इस प्रकार उत्तर दिया; तब राजा जनक शीघ्रता से परशुराम का स्वागत करने के लिए सामने आये। उन्होंने परम आदर के साथ उसका आलिंगन किया और वे परशुराम को समस्त ऋषियों सहित अपने प्रासाद में ले गये। राजा जनक (क्षत्रिय होने पर भी) ब्रह्म विद्या के अधिकारी थे (अधिकारी ज्ञाता थे), इसलिए परशुराम ने उन्हें नहीं मारा। ब्रह्मज्ञान से उत्पन्न जनक के प्रति अनुभूत एकात्मता भावना और प्रेम के साथ परशुराम उनके प्रासाद में ठहर गया। जनक ने परशुराम को (अपने यहाँ) भोजन के लिए ठहरा लिया। परशुराम के साथ अनगिनत ऋषि भी थे। जनक ने उन्हें भी आमन्त्रित किया। परशुराम ने अपने धनुष बाण (एक स्थान पर) रख लिये और उसने स्नान सन्ध्या कर्म पूर्ण किया। तदनन्तर (प्रासाद के) अन्दर समस्त ऋषि एक पंक्ति में भोजन के लिए बैठ गये।

भोजन-वर्णन– निर्मल थालियाँ सजायी गयीं। (भोज्य वस्तुओं के) समस्त रसों की मधुरता अर्थात् उनका स्वाद अद्भुत, अनोखा था। राजा जनक ने अत्यधिक प्रेम से भृगुकुलभूषण परशुराम के लिए असंख्य उपचार (भोज्य, पेय पदार्थ) बनवा लिए थे। उन परिपक्व अन्नों (पकवानों तथा) मिष्टान्नों को देखते ही ऐसा जान पड़ा कि ऋषियों के नयन अपने (दृश्य) सुन्दर विषय (ब्रह्म) को ही देख रहे हैं। प्रतीत हो रहा था कि दृश्य, द्रष्टा (देखनेवाला) और दर्शन तीनों एक ही हो गए हैं। ऐसी समरसता, एकरसता के कारण देखनेवालों के नयन सुख को प्राप्त हुए। आन्तरिक आनन्द के साथ भोज्य पदार्थों को आत्मसात् किया जा रहा था। भोजन-कर्ता और भोज्य पदार्थ एकात्म हो रहे थे, शब्दों में निःशब्दता आ गयी थी, अर्थात् भोजन-कर्ता मौन स्वीकार करके भोजन कर रहे थे। वह शब्दाभाव, मौन शान्ति मानों मन में व्याप्त हो उठी थी। उसमें श्रवण क्रिया के अन्दर भी सुख-सन्तुष्टि और आत्मिक आनन्द व्याप्त रहा। इस प्रकार, उन पकवानों मिष्टान्नों की गन्ध बाह्य इन्द्रियों सहित अन्तःकरण में भी एकरस-सी हो गई, मानों वह परमात्मा के साथ एकरस करानेवाली थी। ऐसी सुगन्ध के आते ही नाक को सच्चा सुख और उल्लास अनुभव हुआ। उस उत्तम अन्न को स्पर्श करते ही हाथों को अकर्म अवस्था आ गयी, स्पर्शेन्द्रियाँ मानों आत्मानन्द से अकर्मण्यता को, स्थिरता को प्राप्त हो गईं। क्षुधा, तृषा, नित्य के रूप से अपने लक्ष्य को प्राप्त हुई अर्थात् न भूख शेष रही, न प्यास। बस ! नित्य परिपूर्ण तृप्ति ही बनी रही। खान-पान के आस्वादन की क्रिया स्वयं चित्सना, शाश्वत सत्ता के साथ एकात्म हो गयी। सब कुछ ब्रह्ममय हो गया। उन रसों का आस्वादन सेवन करते ही जान पड़ा कि जिह्वा ने आत्मानन्द के रस का

ही सेवन किया है। इससे भोजन कर्ता ऋषियों के उदर में परम आत्मानन्द ही समा गया। मन आत्मानन्दमय हो गया। इस प्रकार उस भोजन सामग्री के रसास्वादन में भोजन-कर्ताओं को ब्रह्मानन्द, आत्मानन्द अनुभव हुआ। इस प्रकार का भोजन करने पर वे (ऋषि) मन में उन्मनी अवस्था को प्राप्त हुए। सन्तोष या तुष्टि समाधि अवस्था को प्राप्त हुई। वह अन्न स्वयं चैतन्य (ब्रह्म रूप) ही हो गया। समस्त भोज्य सामग्री में लवण (नमक) का स्थान सर्वोपरि होता है। उसके ठीक से होने के कारण सब भोजन कर्ता ऋषियों को परिपूर्ण तृप्ति अनुभव हुई, मानों साधकों को ब्रह्मानन्द की अनुभूति से आत्मतुष्टि हुई। परशुराम जिस पंगत में हो, उस पंक्ति में बैठनेवालों के लिए अर्पित भोज्य वस्तुओं में किसी भी प्रकार का अधूरापन, अभाव हो ही नहीं सकता। इस प्रकार परशुराम और समस्त ऋषिवर स्वयं (इस प्रकार) तृप्त हुए कि वे (उसके फलस्वरूप) सांसारिक आस्वाद प्रवृत्ति से विरक्त हो गए। वे ऐसी अद्भुत तृप्ति के सुख से सच्चे ब्रह्म सुख को प्राप्त हो गए, अपने अपने स्थान पर शान्त हो गए।

ताम्बूल-सेवन– उन्होंने फल-प्राप्ति की आशा स्वरूप को काटकर वासनाओं रूपी (पान के) रेशों को मूल से निकाल लिया और शान्ति से परिपक्व बने हुए पान के ब्रह्मानन्द लीला स्वरूप बीड़े को मुँह में डाला। (बीड़े का सेवन करनेवालों में स्वकृत कर्म के फल की प्राप्ति की आशा का तथा सांसारिक सुखोपभोग सम्बन्धी वासनाओं का पूरा अभाव हो गया था)। उन्होंने अहंकार की कठोरता को जलाकर 'सोऽहम्' भाव को भली भाँति छानकर विशुद्ध चूना बना लिया और आत्मशान्ति स्वरूप परिपक्व पान में लगा लिया। इससे उस ताम्बूल-सेवन में उन्हें ब्रह्मानन्द का सर्वोत्तम स्वाद अनुभव हुआ। कैथा वस्तुतः समस्त सार तत्त्वों का सार तत्त्व है। उन ऋषियों ने उस खदिर तत्त्व को पान में लगाकर सेवन किया। वह ताम्बूल अति पवित्र था उसकी कान्ति भगवान् श्रीरंग की सी थी। वे भगवत्प्रेम में रँगकर उनसे एकाकार हो गए। राजा जनक ने अतिथियों को फूल और चन्दन समर्पित किया, दीपों को पंक्ति में रखते हुए उन्हें जलाकर उनकी आरती की। इस प्रकार शास्त्रोक्त विधि से पूजन करने पर भार्गव परशुराम सुख-सम्पन्न हो गया।

सीता द्वारा धनुष को घोड़ा बनाकर (समझकर) खेलना– (इधर) सीता ने स्वयं परशुराम के उस धनुष को घोड़ा माना। धनुष की डोरी को लगाम और बाण को चाबुक समझ लिया। (धनुष स्वरूप) घोड़े पर सवार होकर वह उस (घोड़े) को राज प्रासाद के आँगन में नचाने-दौड़ने लगी। वह उससे अपनी इच्छा के अनुसार राजभवन में खेल रही थी। वह उसे राजमार्ग में भी दौड़ाने लगी। (भोजन के पश्चात्) परशुराम वहाँ उस स्थान पर आया, जहाँ उसने धनुष रखा था। जब उसने स्वयं उस स्थान पर धनुष न देखा, तो फिर वह राजा के प्रति क्रुद्ध हो उठा। उसने क्या बात कही ? (सुनिए)। (यहाँ) ऐसा कौन बलवान क्षत्रिय है, जो मेरे धनुष को चुरा सकता हो ? (हे जनक !) तुमने उसे अपने घर में छिपा लिया है। झट से मुझे वह दिखा दो। जो धनुष पाँच सौ (बलशाली) वीरों द्वारा तिल भर भी उठाया नहीं जा पाता, उसे जिसने चुरा लिया हो, (हे राजा !) मुझे झट से वह दिखा दो। परशुराम के ऐसे कठोर वचन को सुनकर राजा जनक कम्पायमान हो उठे। (उन्हें जान पड़ा) क्षत्रियों का वध करनेवाले परशुराम क्रुद्ध हो उठे हैं, तो (समझिए कि) मुझपर बहुत बड़ा संकट आ गया है। फिर राजा जनक स्वयं उस धनुष की भली भाँति खोज करने लगे। राजभवन के आँगन में (अंकित खोज) रेखा देखकर वे टोह लेते लेते (आगे) आ गए, तो उन्होंने सामने देखा कि सीता उस धनुष को घोड़ा बनाकर खेल रही है। वह बाल क्रीड़ा करते करते राजमार्ग पर दूर तक पहुँची थी। (यह देखकर) राजा ने कहा– अरी बिटिया,

तूने यह बड़ा अन्याय (अपराध) किया है। रख दे यह धनुष (यहाँ) भूमि पर। (फिर सीता द्वारा वैसा करने पर) राजा जनक के यत्न करने पर भी वह हाथों नहीं उठाया जा रहा था। तब राजा जनक ने सीता को बड़े प्रेम से गले लगाया और कहा कि घोड़े पर बैठ जा। तो वह आनन्द के साथ उसपर बैठ गयी।

परशुराम का आश्चर्य-चकित हो जाना–और सीता के स्वयंवर हेतु प्रण को निर्धारित करना– धनुष को घोड़ा बनाकर उसे थप् थप् नचाते हुए सीता जब परशुराम के सामने आ गई, तो उसे देखकर वह अत्यधिक आश्चर्यचकित हो उठा। वह बोला यह तो आदिशक्ति ही है। किसी अन्य से यह धनुष यों हाथ से उठाया जा नहीं सकता। आदिपुरुष ही इसका पति होगा–कोई अन्य इसे प्राप्त नहीं कर सकता। (यह सोचकर) परशुराम ने राजा से यह बात पूछी–क्या इसके लिए कोई वर निश्चय किया है ? तो वे बोले, (अब तक) किसी को नहीं निर्धारित किया है। इसका स्वयंवर आयोजित करना है। तब परशुराम ने राजा से कहा–सीता का स्वयंवर उस प्रकार (अवश्य) आयोजित करें, जिस प्रकार मैं कहूँगा। पर वह सबके लिए कठिन होगा। यह तो आदिशक्ति का अवतार है। आदिपुरुष ही इसका वर (पति) होगा, मैं जिस प्रकार प्रण बताता हूँ, उसे आदर पूर्वक सुनो। स्वयंवर के लिए यही प्रण (निर्धारित) हो जो इस धनुष पर डोरी चढ़ाएगा, उसी को यह (कन्या) दी जाएगी। (समझ लो कि) भार्गव परशुराम की यह सुनिर्धारित आज्ञा है। (यह कहकर) परशुराम ने सीता के स्वयंवर के लिए वह धनुष राजा जनक के पास रख दिया, जिससे एक ही बाण द्वारा शिवजी ने त्रिपुर को छिन्न-विच्छिन्न कर डाला था। शिवजी ने इसी धनुष से प्रजापति दक्ष के यज्ञ को ध्वस्त कर डाला था। देवों, नरों, ऋषियों को भगाकर उस यज्ञ का विध्वंस किया था। परशुराम ने इसी शिवधनु को लेकर पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रिय-विहीन कर डाला था। वही यह धनुष स्वयंवर (सभा) में रखा है। धनुष की यही मूल कथा है (इतिहास है)। (जनक के पुरोहित) शतानन्द ने वह बहुत रसमय कथा सुनाई, जिसे सुनकर सबको आश्चर्य हुआ।

उपसंहार– अब (सुनिए) जनक के प्रासाद में स्वयंवर-सभा किस प्रकार आयोजित हुई। उस महती सभा में धनुष को भग्न कर देने से श्रीराम के पराक्रम की बड़ाई सिद्ध हुई। यह एकनाथ अपने गुरु जनार्दन की शरण में स्थित है। वह उस स्वयंवर का निरूपण करते हुए उस रसमय कथा की मधुरता का वर्णन करने जा रहा है। ज्ञानी श्रोता जन उसकी ओर ध्यान दे रहे हैं।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ कृत 'श्रीभावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत बालकाण्ड का 'चाप-निरूपण' नामक यह सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय १८

[शिव-धनुष का प्रताप और स्वयंवर-सभा में रावण की दुर्दशा]

स्वयंवर-सभा में उपस्थित राजा महाराजा– देव विमानों में बैठकर स्वर्ग लोक से स्वयंवर सभा की स्थिति गति देख रहे थे। छियानवे कुलों के भूपति उस सभा स्थान में भीड़ मचाते हुए ससम्मान उपस्थित थे। वहाँ बड़े बड़े तपस्वी तथा ऋषि आ गए थे। यक्ष, गन्धर्व और किन्नर आ गए थे, उस स्वयंवर (सभा) में भाग लेने के लिए राक्षस, दैत्य महावीर भी आ गए थे। ऐसे बड़े बड़े राजा वहाँ आ

गए थे, जो धैर्य वीर्य महान शौर्य से युक्त थे, जो (सुन्दर) रूप तथा सद्गुणों से युक्त थे, जिनमें गुणों की अथाहता थी, धर्म-अधर्म का विवेक तथा अत्यधिक उदारता थी। ऐसे भी राजा स्वयंवर में (भाग लेने के लिए) आ गए थे, जो गो ब्राह्मणों की सहायता करने के अभिलाषी, अर्थात् सहायक थे, जिनकी सफलता और कीर्ति की महान ख्याति (स्थापित हो गई) थी, जिनके प्रताप का (महिमा-) गान स्वर्ग में स्वयं देव किया करते थे। वे राजा भी वहाँ पधारे थे, जो (समय-समय पर) अपना-अपना सब कुछ दान में दिया करते थे, जिनकी बड़ाई (महिमा) का बखान वैकुण्ठ लोक तक में (देव, ऋषिमुनि आदि) किया करते थे, जिनका बड़प्पन त्रिभुवन में विख्यात (हो चुका) था। वे बड़े बड़े राजा भी वहाँ आ गए थे, जिनके शस्त्रों की बड़ी (संहारक) मार को सुर तथा असुर सहन नहीं कर सकते थे, जो दान देने में सदा तत्पर रहा करते थे। दान, सेनादल तथा बल में जो प्रबल (बलशाली, श्रेष्ठ) थे, ऐसे मात्र सीता की प्राप्ति की इच्छा करनेवाले छियानबे कुलों के समस्त राजा वहाँ स्वयंवर में (भाग लेने हेतु) आ गए थे। (वे कहते थे-) 'स्वयंवर के लिए जिस धनुष के सम्बन्ध में प्रण किया गया है, उसे राजा जनक स्वयं ले आएँ और जिसमें बल तथा धैर्य हो, वह उसपर प्रत्यंचा (डोरी) चढ़ा ले'।

राजा जनक की मंत्री को सभा (मण्डप) में शिव-धनुष को ले आने की आज्ञा– उन राजाओं की ऐसी उक्ति सुनकर राजा जनक ने मंत्री को बुला लिया और उन्होंने उसे स्वयं आदेश दिया कि वह स्वयं धनुष ले आए तब महर्षियों ने कहा 'पहले वधू को लाएँ; फिर धनुष को ले आएँ'। उनका यह कथन सबने स्वीकार किया (उचित मान लिया)। (वस्तुतः) सीता कर्म-बन्धनों (पूर्वजन्म कृत कर्मों के बन्धनों) में बँधी हुई न थी। गर्भाशय में रहकर उसने (किसी मानव स्त्री की योनि से) जन्म ग्रहण नहीं किया था। जिसका निर्माण (सृष्टि का निर्माता) ब्रह्मा तक नहीं कर सका था, उस सीता का प्रभाव राम के प्रभाव के सम-समान था। श्रीराम चैतन्य थे, सीता का प्रभाव राम के प्रभाव के सम-समान था श्रीराम चैतन्य (स्वरूप ब्रह्म) की कला (मूर्त स्वरूप लीला) थे, तो जनक कन्या सीता (साक्षात्) चिच्छक्ति ही थी। उसके अपने सुन्दर रूप के सुन्दर शोभायमान दृश्य स्वरूप को कोई-कोई भाग्यवान ही अपनी आँखों से देख सकते थे।

सीता का आगमन, उसकी महिमा और उसकी चन्द्र से तुलना– नववधू सीता (समस्त) आभूषणों से विभूषित (होकर) हाथी पर विराजमान थी। उसकी सुन्दरता की बड़ाई (कैसे कहें ? वह तो) चराचर सृष्टि में अनुपम (अद्वितीय) थी। शून्यत्व (निराकारत्व, रिक्तता) ने (मानो) आकाश को छोड़ दिया, तो वह सीता की शरण में आया। वह (आकाश) राम का शान्ति के साथ वन्दन करने के हेतु सीता के मस्तक पर केश (बाल) स्वरूप हो गया। वह शून्यत्व (आकारहीनता) का तत्काल त्याग करके (सीता के) मस्तक पर घुँघराले केश बन गया। वही है यह सुन्दर नील वर्ण से युक्त आकाश, जहाँ सीता का वह मुख-चन्द्र ही चन्द्र मण्डल है। (वस्तुतः) चन्द्र पूर्णिमा के दिन ही पूर्ण होता है; परन्तु सीता का मुख-चन्द्र नित्य सम्पूर्ण (विकसित) होता है। विशिष्ट पूर्व काल में ही राहु द्वारा चन्द्र का ग्रहण होता है; परन्तु यहाँ तो श्रीराम द्वारा सीता का नित्य (कर-) ग्रहण होता है। (आकाशस्थ) चन्द्र के बिम्ब में कलंक (लगा दिखायी देता) है, जब कि (सीता का) यह मुख-चन्द्र नित्य कलंक-हीन बना रहता है। ऐसी उस सीता के श्रीमुख (रूपी चन्द्र) को देखकर भक्तिशील लोग दुःख से मुक्त हो जाते थे। चन्द्र के आगे पीछे तारे (शोभायमान) होते हैं, उसी प्रकार सीता के मुख चन्द्र के (दोनों ओर) मोती जड़े ताटंक (शोभायमान) थे। (सीता द्वारा प्रयुक्त) कुंकुम राम के (प्रेम के) रंग में रँगकर अत्यधिक सुन्दर

रंग को धारण कर गया था सीता ने अपने भाल प्रदेश में जो कुंकुम लगाया था, वह वही राम रंग में रँगा हुआ कुंकुम था। राम को देखते ही वह परिक्रमा करना भूल गई। (वस्तुतः) सीता स्वयं (आदि) माया है। वह अपने बल से सबको जन्म-मरण द्वारा भ्रमण कराती रहती है उसके हाथों में पड़े रहने से (माया के अधीन रहने से) सबको चक्कर लगाने पड़ते हैं। उसने अपनी माया से प्रभावित करके (वहाँ) उपस्थित राजाओं को भ्रम के चक्र में उलझा दिया। सीता की मिथ्या आसक्ति में, भ्रम-जन्य प्रेम में, भ्रम के चक्कर में रावण फँस गया। सीता सम्बन्धी ऐसे भ्रम-जन्य प्रेम के कारण उसने स्वयं विपदा का वरण किया, जिसके फलस्वरूप वह (आगे चलकर) बड़ी विपत्ति का भोग करनेवाला (सिद्ध) हो जानेवाला था। भ्रम (माया) के कारण संसार में जीव को जन्म मृत्यु द्वारा आवागमन स्वरूप भ्रमण का नाश (अन्त) कर देने के लिए स्वयं श्रीराम ही अन्तिम आधार हैं। उन्हीं के नाम के बल से, श्रीराम के बल से धीरे धीरे उस भ्रम अर्थात् माया के प्रभाव का नाश हो जाता है। श्रीराम के नाम के प्रताप से माया जन्य भ्रम नष्ट हो जाता है। इसलिए तो सीता को भ्रमण करने, परिक्रमा करने की भ्रमपूर्ण इच्छा बिलकुल नहीं हुई। उसने परिभ्रमण का नाम तक नहीं लिया (कल्पना तक नहीं की)। जानकी का अपना भाल-प्रदेश श्रीराम के चरण स्पर्श से नित्य सफल (चरितार्थ) बना रहा था। उसी का मस्तक (भाल) धन्य था समस्त ऋषिवर (इसी प्रकार) उसकी प्रशंसा करते थे। चन्द्र-बिम्ब में जिस प्रकार कालिमा का घना स्तर (पुट) लगा हुआ है, उसी प्रकार सीता के मुख-चन्द्र में (भालप्रदेश में) कस्तूरी लगी हुई थी। यह (कस्तूरी-पुट) उसके मुखचन्द्र में स्वच्छ शुद्ध रूप में सुशोभित था। उसपर कुंकुम उँगली से लगाया गया था। श्रीराम का रंग (वर्ण) तो अति सुन्दर रंग-युक्त है। उसके रंग से सीता का कुंकुम भली भाँति रँगा हुआ था। उसका सौभाग्य (सुहागन होने की अवस्था) पूर्णतः अविच्छेद्य है। इस प्रकार के कुंकुम से युक्त (सीता का) वह अग, अर्थात् भालप्रदेश (अपनी सुन्दरता से) शोभा को भी शोभायमान बना रहा था। चन्द्र नित्य क्षय रोग से पीड़ित है; अतः वह नित्य नीरोग बने रहने के लिए सीता की देह में जुड़ गया। उससे वह वेगपूर्वक अर्थात् शीघ्र ही अर्धचन्द्र स्वरूप बन गया। श्रीराम के होंठों के अमृत रस का सेवन करने के हेतु वह चन्द्र अपने आधे रूप को ही लेकर (अर्द्ध चन्द्र के रूप में) वहाँ उन प्रकृति पुरुष अर्थात् सीता-राम को देखने के मौके की ताक में निर्धारित एकान्त स्थान पर (बैठा) रहा है। (सीता के भालप्रदेश स्वरूप) उस अर्द्ध चन्द्र के ऊपर माँग में सिन्दूर (कुंकुम) की लालिमा थी। रघुपति राम को वह मानों भक्तिभाव से मोहित कर रही थी। उस चन्द्रमा ने अत्यधिक प्रेम भाव से सीता स्वरूप माया का पूजन किया था। साधक के भ्रम के फल-स्वरूप, माया उसे अविद्या (अज्ञान) प्रदान करती है (अर्थात् अपने सच्चे रूप को न जाननेवालों में वह माया अज्ञान उत्पन्न कर देती है)। परन्तु भक्तिशील (श्रद्धालु) जनों की दृष्टि में सीता तो शुद्ध सद्विद्या थी। ऐसी उस जानकी की बुद्धि श्रीराम में ही लगी रही। अतः वह (स्वभाविक रूप में) श्रीराम के चरणों में ही आसक्त बनी रही। (अथवा समझिए कि) माँग में (दिखायी देनेवाली) लालिमा सिन्दूर का रूप नहीं है, मानों उस (प्रवाह) मार्ग से सरस्वती देवी श्रीराम से भक्ति-पूर्वक मिलने आयी हो। वह विरक्ति के प्रेम से ही अनुरक्त हो गयी हो। उस (सरस्वती) के दोनों ओर स्थित हंसियाँ दो हँसलियाँ (आभूषण विशेष स्वरूप)-सी शोभायमान होती हैं वे भी तब श्रीराम के ध्यान में मग्न होकर बैठ गईं। इसलिए ऐसा जान पड़ता था कि वे हँसलियाँ मोतियों से शोभा को प्राप्त हो गईं और सीता की बाँहों के रूप में स्थित हो गईं. जिस प्रकार आकाश-मण्डल में तारे शोभायमान होते हैं, उसी प्रकार सीता के मस्तक पर (तारों से

जगमगानेवाले) मोतियों का जाल शोभा दे रहा था। वे तारे प्रेम सूत्र में मोतियों के रूप में गुँथे जाकर उसके मस्तक पर विराजमान हो गए थे। उस पर नौ प्रकार के भक्ति भाव स्वरूप रत्नों की पंक्ति शोभायमान थी। वे नव रत्न मानो स्वर्ग में विराजमान देवों को मुँह चिढ़ा कर यह बता रहे थे कि अक्षय कल्याण के लिए रघुनाथ राम की भक्ति करो।

श्रीराम को अपनी आँखों से सीता की भौंहों की गाँठ खुल गई (सांसारिक दुःखों की उलझन-भरी स्थिति दूर हो गई) और उन भौंहों की स्वाभाविक वक्रता को छोड़कर श्रीराम को देखते हुए वह अपने ही स्वाभाविक आत्मिक आनन्द-स्वरूप को प्राप्त हो उठी। जगत् अर्थात् संसार में रहनेवालों की देखने की जो शक्ति या दृष्टि है, वह नित्य प्रति सांसारिक (दुःखमय) दृश्य को देखते रहते मानों थक गई, इसलिए वह रघुनाथ राम को देखने के हेतु सीता की आँखों की शरण में आ गयी। श्रीराम के समस्त क्षेत्रों (अंगों) में पूर्णत्व को देखते ही दर्शक के नयन सुख से सम्पन्न हो जाते थे इसीलिए ही जगत् की सुन्दरता अथवा देखने की शक्ति स्वयं सीता की शरण में आ गई जगत् की सलोनी स्थिति को देखने की आँखों की शक्ति (दृष्टि) श्रीराम की सुखदायिनी सुन्दरता को देखने के लिए सचमुच अति आदर के साथ (सीता की आँखों में) उपस्थित हो गई इस प्रकार सीता के नयन देखने में 'सुलोचन (अति सुन्दर नयन)' थे। इसके अतिरिक्त, उनमें श्रीराम स्वरूप (संगति रूपी) निधान (धन राशि) को प्राप्त कर लेने के उद्देश्य से अंजन लगाया हुआ था। (मतलब यह कि विशेष प्रकार से बनाया हुआ ऐसा अंजन लगाया हुआ था, जिसके प्रभाव से श्रीराम रूपी अद्‌भुत धन को सीता देख सके और उसे सिद्ध अर्थात् प्राप्त कर सके।)। साधु व्यक्ति की भगवान् सम्बन्धी श्रद्धा जिस प्रकार अकुटिल, सीधी, सरल होती है, सीता की नाक उसी प्रकार अवक्र (सीधी, सरल) रूप में शोभायमान थी। उस नाक ने नास्तिकता को नष्ट किया; अतः श्रीराम ने उसके प्राणों के साथ मित्रता का भाव (सम्बन्ध) स्थापित किया। वैसे तो प्राण नामक वायु नित्य मनचाहा भ्रमण करती रहती है, परन्तु सीता के (पंच प्राणों में से) हृदयस्थ प्राण नामक वायु ने उसकी नाक को बसा लिया था। इससे श्रीराम की सन्निधता (निकटता, संगति) के प्राप्त होते ही, उसके प्राणों को तृप्ति अनुभव हो जानेवाली थी। श्रीराम के अधरों के अमृत का सेवन करने की उत्कट अभिलाषा से सीता के अधर अति आरक्त (लालिमा को प्राप्त) हो गए थे। उसी उत्कट इच्छा से वे इतने अति आरक्त हो उठे थे कि वे (लालिमा में) प्रवाल (मूँगा नामक रत्न) को लज्जित करा रहे थे। यदि सीता के होंठों की प्रवाल से उपमा देनी हो, तो (कहना पड़ता है कि) वे प्रवाल अति कठोर होते हैं, जब कि सीता के अधर गगन से भी मृदु (मुलायम) थे। सीता के ऐसे होंठों का पान (अधरामृतपान) करने का आनन्द स्वयं राम मात्र जानते थे। सब लोगों के दाँत रस (के आस्वाद के विषय) में अति अदन्त (अर्थात् किसी रस का आस्वादन करने में सहायक होते हुए भी उसकी मधुरता आदि को जानने में पूर्णतः असमर्थ, अतएव अति अतृप्त रहते हैं, असहाय) रहते हैं; लेकिन सीता के मुख के दाँत 'दान्त' अर्थात् पूर्ण तृप्त (अतएव) संयमित थे, (आकार में लावण्य से युक्त थे); इसलिए रघुनाथ उसके मुख के प्रति मोहित हो उठे थे। देखिए, अधरों के नीचे ठुड्डी राम के से रंग में (श्याम वर्ण में) गोदी हुई थी। उसकी सलोनी साँवली कान्ति रघुकुल-तिलक श्रीराम को मोहित कर रही थी। मोती निकलकर सुवर्ण के तार के बन्धन में आबद्ध होकर उस स्त्री की नाक के पास आ गया (नाक में धारण किये हुए आभूषण में विराजमान रहा) जानकी की नाक के आधार से उसे श्रीराम के दर्शन करने पर मुक्ति को प्राप्त होने का सा सुख अनुभव हुआ (सूर्य की) बारह

कलाओं अथवा बारह अप्सराओं अथवा स्त्रियों के बारह आभूषणों अथवा बारह साध्वी स्त्रियों को और सोलह कलाओं को चन्द्रकलाओं (अथवा सोलह मातृकाओं अथवा सोलह तेज-स्थानों) को (कान्ति में) लज्जायमान करते हुए (अद्भुत) कान्ति सीता के गालों पर शोभायमान हो रही थी, उसे देखते ही सब के नेत्र चकित स्तब्ध हो जाते थे। अतः सबकी आँखों में टकटकी बँधी थी, सब एकटक देखते रहे चन्द्रमा जानकी के मुख-चन्द्रमा को देखकर लज्जा को प्राप्त हो गया। मारे लज्जा के वह आधा (आधे रूप से युक्त) होकर जानकी के भाल प्रदेश में अर्द्धचन्द्र बनकर विराजमान हो गया। (आकाशस्थ) चन्द्र को नक्षत्रों के कारण नित्य गति प्राप्त होती है, तो सीता का मुखचन्द्र श्रीराम (के मुख) रूपी चन्द्र के कारण गति को प्राप्त हुआ। चन्द्र (अपने भक्त, प्रेमी) चकोरों का प्रतिपालन करता है, तो सीता के उस मुखचन्द्र से जीव-शिव का ही पालन होता है अथवा जीव को शिव (शाश्वत कल्याण) की प्राप्ति हो जाती है। चन्द्र का दिन और रात में (सृष्टि के नियमानुसार) उदय और अस्त हुआ करता है, परन्तु सीता के इस मुखचन्द्र ने उदय और अस्त नामक प्रवृत्तियों को ही निगल डाला। वह नित्य उदित ही रहता है। इस मुखचन्द्र को ऐसी कान्ति प्राप्त हुई है, जिससे जीव तथा शिव को प्रकाश प्राप्त होता है। श्रीराम के वर्ण में विशुद्ध श्यामता (श्याम आभा) विद्यमान है वही सुन्दर नील वर्ण आकाश के नील वर्ण से तुलना करने योग्य है। श्रीराम रूपी आकाश के अन्दर यह सीता का मुखचन्द्र शोभा के साथ विचरण कर रहा है (अर्थात् सीता की आँखें श्रीरामचन्द्र की ओर लगी हुई थीं)।

स्मरण रूपी सुन्दर मंगलसूत्र (मंगल करनेवाला स्मरण आराध्य राम से) एकात्म भाव के साथ गूँथा हुआ था; सीता ने उसकी गाँठ के या धागे के न टूटते, अपने गले में धारण किया था—वह एकात्म भाव से श्रीराम का अनवरत स्मरण कर रही थी, जो मंगलकारी माना गया है हाँ, वह मंगलसूत्र लोगों की दृष्टि के लिए (अब तक) अदृश्य है (सीता राम का जन्म जन्मान्तर का सम्बन्ध है, परन्तु लौकिक दृष्टि से इस जन्म में उनका विवाह अभी तक नहीं हुआ है; इसलिए सीता के गले में इस समय विवाह विधि में महाराष्ट्र परम्परा के अनुसार पति द्वारा पहनाया जानेवाला मंगल-सूत्र बँधा हुआ नहीं था) जब कि सीता के कण्ठ में रामनाम की मुद्रा अंकित है, तब चिंताक नामक (कण्ठ में पहना जानेवाला पट्टदार) स्वर्ण-आभूषण कैसे आ जाए ? (उसकी कोई आवश्यकता नहीं है)। इसलिए चिंताक नामक ऐसा आभूषण सीता के लिए दुरवस्था, कुरूपता का लक्षण होगा; क्योंकि सीता के मन के लिए श्रीराम ही आभूषण है। देखिए, जीव-शिव-पद सम्बन्ध का त्याग करते हुए श्रीराम के पद-चिह्न को वक्षःस्थल पर धारण किया जानेवाला पदीक जैसा आभूषण मानना चाहिए सीता ने अपने लिए वही राम पद चिह्न रूपी पदीक आवश्यक माना था। हृदय में धारण किये हुए पदीक की क्या महिमा है ? वह पदीक 'चित्' रूपी रत्न में पूर्णतः जड़ा हुआ था। मुक्त जीव रूपी मोती बिना किसी धागे में पिरोकर सीता ने धारण किये थे। सत्त्व, रजस् और तमस् नामक जिन तीनों गुणों की विशिष्टताओं को नष्ट करके उन्हें निर्गुण स्वरूप को प्राप्त करा दिया, वे ही निर्गुणत्व को प्राप्त गुण सीता की बाँहों के लिए बाजूबन्द नामक आभूषण बने हुए थे श्रीराम की कीर्ति स्वरूप कीर्तिमुख चिह्न उनमें जड़े हुए थे। वे ही उसकी दोनों बाँहों के लिए आभूषण बने हुए थे। सीता के हाथों में जो कंगन थे, वे वेदों के अर्थ स्वरूप थे उनकी घण्टियों के रूप में ॐकार के अन्दर की श्रुतियाँ और कर्मकाण्ड की क्रियाओं की उपपत्तियाँ आत्मिक आनन्द के साथ रुनझुना रही थीं। उसकी दसों उँगलियों में दस अँगूठियाँ थीं, जिनके रूप शोभा में बढ़ने-बढ़ती, अर्थात् अधिकाधिक विकसित होती जानेवाली मोतियों की चौकड़ियाँ जड़ी हुई थीं। उनमें

दसों अवतारों को माणिक रत्नों के द्वारा जीव की जीवत्वशक्ति के साथ जड़ा गया था सीता की एक-एक मुट्ठी की पाँच-पाँच उँगलियों में मानो पाँचों महाभूत पृथ्वी, जल, आकाश, वायु और तेज नामक पंचतत्व एकात्म हो गए थे। उस मुट्ठी में श्रीराम तो धनैश्वर्य की सूचक धनरेखा स्वरूप थे, जो तीनों लोकों में वन्द्य माने जाते हैं। तात्पर्य यह कि त्रिभुवन में वन्दनीय माने जानेवाले श्रीराम स्वरूप धन सीता की मुट्ठी में बसे हुए थे धागे में मुक्ता-फल अर्थात् मोती पिरोये गए थे; परन्तु वे मुक्ति के प्रति कोई आत्मीयता नहीं अनुभव कर रहे थे मुक्ति को प्राप्त जीव मोतियों के रूप में श्रीराम की अपनी लीलाओं का सेवन (अनुभव) कर लेने के हेतु आकर सीता के गले में (आबद्ध होकर) रह गए थे। सुमन अर्थात् फूल फलों की प्राप्ति के प्रति विमन (उदासीन, विरक्त) हो गए और श्रीराम के जीव के प्रति आत्मीयता का अनुभव कर लेने के हेतु धागे में बँध गए। इस प्रकार वे सुमन सीता के गले में माला के रूप में बने रहे। सद्प्रवृत्तियों से युक्त मनवाले राम भक्त निष्काम भक्ति भावना से प्रेरित होकर सीता के गले में पहनी हुई माला के फूलों के रूप में विराजमान हो गए।)।

सीता (जो धरणी से उत्पन्न होने के कारण धरित्री पृथ्वी के प्रति विशेष प्रकार का स्नेह अनुभव कर रही थी) भूमि तल पर खड़ी थी। फिर भी जन्म-दात्री धरती के स्नेह रूपी रंग में रँगी होने के कारण उस जनक कन्या ने सुन्दर नीले रंग की चोली पहनी थी। भक्तों की सकाम अर्थात् भक्ति के फल रूप में कुछ पाने की प्रवृत्ति भक्ति अति उत्पीड़ित हो उठी थी। इसलिए किसी भौतिक भोग आदि की इच्छा न करनेवाले श्रीराम की सेवा करने के हेतु वह तत्काल सीता के अंग में प्रविष्ट हुई और (कपड़े के) नौ खण्डों से बनायी जानेवाली विशिष्ट प्रकार की चोली के रूप में उसकी देह में विराजमान हो गई (सीता के माध्यम से भक्त जन अपनी अपनी नवधा भक्ति निष्काम रूप से प्रकट कर रहे थे)। भक्ति नित्य प्रति नौ प्रकार की होती है, (स्मरण कीर्तन, वन्दन आदि) नौ प्रकार से उसके प्रकट होते रहने पर भी (वस्तुतः) वह अखण्डित, एक स्वरूपा है। फिर सीता के रूप में आडम्बर-पाखण्ड मुक्त उन नव विधाओं से वह युक्त हुई और श्रीराम की भक्ति द्वारा वह सीता के रूप में अखण्डित एकनिष्ठ स्वरूप से प्रकट हुई। पृथ्वी अपने नौ खण्डों में अस्तित्व में रह रही है, फिर भी जड़ तथा अजड़ (अचेतन अज्ञान और सचेतन ज्ञानयुक्त से प्रेरित मगर दिखावटी) रूपों में प्रकट भक्ति भाव से ऊब गई तब वह नौ खण्डों में विभक्त होने पर भी अखण्डित एकरूपा हो गई और सीता की चोली के रूप में प्रकट हुई (चोली कपड़े के जिन नौ टुकड़ों से बनायी गयी थी, वे नौ खण्ड पृथ्वी के नौ खण्डों के प्रतीक ही थे)। (श्रीराम से मिलन की) ऐसी ही स्वार्थ युक्त भावना से भूमि ने सीता को अपने उदर में धारण कर रखा था। (तदनन्तर यथासमय) उस (सीता) के बाह्य जगत् में अन्दर से प्रकट होते ही श्रीराम की संगति से धरती उद्धार को प्राप्त हो गई। भक्ति भाव के रूप में नवखण्डों से बनी उस चोली में सचमुच गाँठ लगायी गई (और एकात्मता स्थापित की गई)। अब श्रीराम (अनेकत्व सूचित करनेवाले पाखण्डों को, भेदभाव स्वरूप) संकट को नष्ट कर देंगे, जिससे नवखण्ड पृथ्वी में वह (पाखण्ड रूपी संकट) पुनश्च उत्पन्न नहीं होगा। विभिन्न अंगों (अवयवों, इन्द्रियों) से बने शरीर में भिन्नता अभिन्नत्व (अनेकता एकता) में अभिव्यक्त हो जाती है। उसी प्रकार जीव और शिव (आत्मा और परमात्मा, ब्रह्म यद्यपि अलग-अलग समझे जाते थे, तो भी) सीता के हृदय-स्थान में एकात्मरूप में ही वृद्धि को, विकास को प्राप्त हो गए थे। उसी से स्तनों के भार से वह कामिनी (स्तनों के प्रकट रूप से) शोभायमान हो गयी थी देखिए विद्या और अविद्या (माया के) ये दोनों पक्ष। उस चोली ने उन दोनों को स्तनों के रूप में

प्रकट हुए उन दोनों के रूपों को दोनों ओर से आच्छादित करके छिपाकर रखा था. एक (जीव) देहधारी है, तो दूसरा (शिव, ब्रह्म, परमात्मा) देह-रहित है। फिर भी माया ने गुण तथा अगुण (सगुणता निर्गुणता) के सम्बन्ध रूपी बन्धनों के डोरों से उन्हें बाँध दिया था। जीव शिव-भाव रूपी बन्धन में आबद्ध हो गए। सत्त्व-रजस् तमस् नामक तीन प्रकार के धागों के लच्छे, जो सीता की चोटी में बँधे थे, सुन्दर सुडौल थे; वे सीता की पीठ पर सुहावने रूप से शोभायमान थे। वे श्रीराम के साथ एकात्म हो जाने के लिए उत्कण्ठित होते हुए सीता की पीठ पर मनोहारी रूप में शोभायमान थे। इन तीन गुणों की गाँठ भयावह विकट होती है-वह जीव में पड़ी रहती है. परन्तु श्रीराम स्वयं उसे काट देंगे। इस (कार्य) में दूसरों का ज्ञान, चातुर्य नहीं चलता, किसी काम में नहीं आता। घमण्ड तथा अहंभाव के कारण वे अपने (सद्) गुणों को भी निगलकर नष्ट कर डालते हैं।

भक्ति तथा वैराग्य (विरक्ति) नित्य प्रदीप्त तथा उज्ज्वल होते हैं। ये भी (सीता के मन में) राम सम्बन्धी प्रेम से अनुरक्त हो गए थे। उसी अनुराग स्वरूपा सिन्दूरी रंग को, लालिमा वर्ण से युक्त साड़ी सीता ने आनन्दपूर्वक पहनी थी। शुद्ध सत्त्व गुण का सत्त्वमय उज्ज्वल वर्ण, क्षीरसागर के दुग्ध स्वरूप जल का उज्ज्वल शुभ्र वर्ण सीता के ओढ़े हुए शुभ्र रंग के आच्छादक वस्त्र में अत्यधिक विशुद्ध रूप में शोभायमान था। उसके तेज (कान्ति) से बाह्य जगत् में फैला हुआ प्रकाश लुप्त हो रहा था, निस्तेज एवं फीका जान पड़ता था। धारण किये हुए वस्त्रों के सूत्रों के समान ही सुन्दर उज्ज्वल सूत्रों से जानकी की मेखला (करधनी) बनायी गई थी उसी के कारण उसकी महिमा अपार हो गई थी। ऐसी मेखला से सीता की सुन्दरता की महिमा शोभायमान थी। उस मेखला में जिन किंकिणियों की जाल-माला जुड़ी हुई थी, वे (किंकिणियाँ वस्तुत: किसी भौतिक तत्त्व से बनी नहीं थीं, बल्कि साक्षात्) समस्त सिद्धियाँ थीं, उस कटि-मेखला में जड़ी हुई क्षुद्रघण्टिकाएँ (घुँघरू) वस्तुत: प्रबल ऋद्धियाँ ही थीं, जिससे वह (मेखला) शोभायमान हो गयी थी। उसकी पीठ पर वेणी शोभायमान थी, उस (वेणी) में अनमोल श्याम वर्ण का रत्न जुड़ा हुआ था। चित्स्वरूप रत्नों से जटित कलश या मोदक के-से आकारवाला आभूषण विशेष शोभायमान हो रहा था। इस प्रकार, सौभाग्य से मण्डित वह कामिनी शोभा सुन्दरता से युक्त थी। उनके द्वारा पहनी हुई साड़ी के वैराग्य स्वरूप दामन में मुक्त जीव रूपी मोती किस प्रकार चमक रहे थे? उसे देखकर सन्यासी तक मोहित हो गए, दिन रात वे उसकी ओर ध्यान दृष्टि लगाये हुए थे। इसलिए तो सीता के स्वयम्वर (मण्डप) में असंख्य संन्यासी इकट्ठा हो गए थे। उसकी साड़ी के पल्लव (दामन) पर वे मोहित हो गए थे और दिन रात (मानों) उसकी ओर दृष्टि (ध्यान) लगाये रहे थे। [illegible] के अन्दर सूचित गान प्रणाली के अनुसार जो गायन होता है, उसमें स्वर (ध्वनि) गम्भीर होता है इसी प्रकार सीता द्वारा धारण किये हुए तोड़ों का गर्जन (गम्भीर) हो रहा था। उस स्वर से राजकुमार [illegible] हो गए थे, (मुग्ध) मोहित होकर (अनेकानेक) भूपति सीता का वरण करने के लिए उत्सुक हो नर व देव कह रहे थे कि यह सीता हमारी पत्नी हो जाए। दैत्यों और दानवों के मन में यह विचार था कि यह हमारे हाथ आ जाए। (तदनन्तर) यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, गण, नर, किन्नर, सिद्ध, चारण सब उन्होंने यह पूछा (और जानना चाहा) कि सीता-स्वयंवर में कौन-सा प्रण निर्धारित है

विश्वामित्र द्वारा धनुष लिवा लाया जाना– विश्वामित्र ने राजा जनक से कहा–अब धनुष ले आएँ। तब उन राजा ने अपने मंत्री को आदेश देकर (धनुष को लिवा लाने के लिए) प्रेरित किया। तब [illegible] उसने सेवक वृन्द को साथ लेकर चला गया। जिस पिटारे में धनुष रखा था, वह आठ पहियों से

युक्त था। पाँच सौ महान (बलशाली) वीरों द्वारा खींचे जाते रहने पर भी वह अणुमात्र (तनिक भी) नहीं खींचा जा रहा था। फिर उसे पीछे से हाथियों का दल धकेलने लगा। उन्हें मार्ग में जो जो मिल जाते, उनको वे (मंत्री तथा उसके सेवक) पिटारे को खींचकर ले जाने के काम में लगाते थे। इस प्रकार अत्यधिक प्रयत्न (तथा परिश्रम) से वह धनुष उस सभा (मण्डप) में वे लोग ला पाए।

धनुष का प्रताप– (उस पिटारे में से) धनुष को बाहर निकालते ही (उसके प्रभाव से) दैत्य और दानव कम्पायमान हो उठे। (सीता की प्राप्ति के अभिलाषी) राजाओं ने मानों अपने प्रताप को त्याग दिया। अपनी अपनी महत्ता सम्बन्धी घमण्ड को सब ने छोड़ दिया। (तदनन्तर) राजा जनक ने सब से (निवेदन करते हुए) यह कहा शिवजी ने अपने त्र्यम्बक नामक इसी धनुष से चलाये हुए बाण से त्रिपुर को भेद डाला था और प्रजापति दक्ष के यज्ञ का विध्वंस इसी से कर डाला था। (तदनन्तर) भगवान् परशुराम ने पृथ्वी को (जिससे) इक्कीस बार क्षत्रिय-हीन कर दिया था, वही है यह धनुष, इसे स्वयम्बर सम्बन्धी प्रण के रूप में निर्धारित करके (हम) लाये हैं इस धनुष को उठाकर जो अपने पुरुषार्थ बल से इस पर डोरी चढ़ाएगा, जान लीजिए कि सीता का पाणिग्रहण निश्चय ही उसी के द्वारा होगा. इसे मैं तीन बार कहकर अर्थात् निश्चय के साथ यह घोषित कर रहा हूँ। राजा जनक की इस उक्ति को सुनकर सब लोग चौंककर स्तब्ध हो उठे। फिर उनमें से कुछ पुरुष सिंह धनुष पर डोरी चढ़ाने के हेतु उठे। जिन राजाओं की महत्ता बड़ाई अति बलवती थी, जो रणभूमि में प्रलय मचा सकते थे, वे बलशाली राजा (धनुष पर डोरी चढ़ाने की इच्छा से) उठकर खड़े हो गए। उन सब के नाम सुनिए।

उपस्थित शक्तिमान राजा-महाराजा– शिखिध्वज, कुशध्वज, ताम्रध्वज, गजध्वज (धारी या नामक) राजा वहाँ आये थे गरुड़ध्वज धारी राजा (दशरथ का पुत्र) राम उन राजाओं को लज्जित कर देने के लिए आया था। सुरथ, भरत, विदुरथ, विचित्ररथ, चैत्ररथ, नामक राजा आ गए थे (परन्तु) गुप्त रूप से (मानों पहले आगमन का हेतु सीता के स्वयंवर में भाग लेना न रहा हो) रघुनाथ राम सीता का पति होने के लिए आये थे। वीरसेन, वीरघ्न भारसेन, भद्रघ्न जैसे राजा जहाँ उपस्थित हो गए थे, वहाँ रघुनन्दन श्रीराम सीता का वरण करने के लिए आ गये थे। जयपाल, अजयपाल, वीरपाल, विजयपाल जैसे राजा आये थे, वहाँ शरणागतों का पालन रक्षण करनेवाला राम उस धनुष के बल (मजबूती) को भग्न करने के लिए आया था चित्रकेतु विचित्रकेतु, श्वेतकेतु, धूम्रकेतु जैसे राजा आये थे, वहाँ भक्तों की रक्षा की सूचक ध्वजा के प्रतीक स्वरूप राम रावण के घमण्ड को नष्ट करने के लिए आये थे। केशी कारूष, कलिंग, मद्र, माथुर (मथुरा प्रदेश), अंग, वंग जैसे देशों के राजा आ गए थे। वहाँ श्रीरंग (लक्ष्मीपति विष्णु के अवतार) राम धनुष को तोड़ डालने के लिए आये थे। वे (भिन्न भिन्न) राजा बल और आवेश से युक्त होकर उस धनुष पर डोरी चढ़ाना चाहते थे। तब (वहाँ) अति अहंकारी रावण बिना किसी निमंत्रण के आ पहुँचा।

रावण का आगमन और उसकी अहंकार-युक्त उक्ति– रावण को आते हुए देखकर उन समस्त राजाओं को कँपकँपी छूटी। देवों, दैत्यों, दानवों को आतंक अनुभव हुआ। मानवों के लिए तो उस विवाह स्थान पर संकट (जैसा) आया, (उसे देखते ही) लोग आतंकित होकर हाहाकार करने लगे। राजा जनक भी आशंका से सहम उठे। परन्तु राम तो अविचल और सावधान बैठे रहे। वे (वस्तुतः) रावण का अन्त करके कृतार्थ होनेवाले थे। तब रावण ने अहंकार के साथ कहा– 'मेरे द्वारा सीता का अपहरण करने लगने पर भी यहाँ मुझे कौन रोक पाएगा ? फिर भी मैं यह पूछना चाहता हूँ इस स्वयंवर के

लिए क्या प्रण निर्धारित है'। फिर रावण ने जनक से पूछा– 'इस स्वयंवर के लिए कौन सा प्रण निर्धारित है ?' तब वे बोले– 'जो इस धनुष पर डोरी चढ़ाएगा, सीता उसी का वरण करेगी'। (तब रावण ने कहा–) धनुष पर डोरी चढ़ाना छोटी बात है– मैं तो यहाँ बड़ा युद्ध (भी) तत्काल करना चाहूँगा। और यदि उसमें मेरे शरीर की दुर्दशा न होगी, तो मैं सीधे (बिना रोक-टोक के) इस जानकी से परिणय करूँगा'। इस प्रकार घमण्ड के साथ (शेखी बघारते हुए) बोलकर रावण झट से उठा, वह (उछलकर) सभा स्थान में कूद पड़ा और धनुष को पकड़कर उठाने के लिए शीघ्रता पूर्वक चला (वह उठाने का यत्न करने लगा)। तब उस धनुष का अग्रभाग तो उस पिटारे के तल पर ही रहा और उसका निचला भाग ऊपर उसके हाथ आया। लंकापति रावण के ध्यान में यह बात घमण्ड के कारण नहीं आयी (कि वस्तुतः धनुष उठाया नहीं गया है)। वह चारों ओर सभा (स्थान) को देखने लगा। वह बोला– '(देखिए) मैंने डोरी चढ़ा दी। अब सीता का हाथ पकड़कर ले आइए– इस (स्वयंवर) सभा में रावण ने प्रण को जीत लिया'। उसी प्रकार धनुष पकड़े हुए वह स्वयं गरजकर बोला।

सीता की मनःस्थिति तथा उसकी देवी-देवताओं से प्रार्थना– यह देखकर सीता मन में बहुत भयभीत हो उठी। वह (मन ही-मन) बोली 'हे उमाकान्त (शिवजी)! आपका धनुष इसके द्वारा बिलकुल उठाया नहीं जा पाए। हे माता धरित्री (पृथ्वी), इस समय तुम रावण के लिए पाँवों तले आधार न देना। तुम उसे तो रसातल में ले जाओ। धनुष के मूल में अर्थात् धनुष में (अधिक) भार डाल देना (उत्पन्न कर देना)। (हे पृथ्वी) जब रावण उसे उठाने लगे, तो अपना समस्त (भूमि का) भार धनुष के अन्दर डाल दो। वह मारे भ्रम के मोहित हो जाए, इस प्रकार तुम इस कार्य सम्बन्धी (मेरा) हेतु सिद्धि को प्राप्त करा दो। रावण को पूर्ण रूप से धोखा दे सके, वह कंकाली नामक देवी मुझे झट से प्राप्त हो (मुझपर कृपा करे)। हमारी कुल-स्वामिनी देवी भद्रकाली इस धनुष को मूल-सहित पकड़े रखे। इन्द्रियों की अधिष्ठात्री समस्त देवियाँ मेरे लिए सहायक हो जाएँ, जिससे लंकापति रावण द्वारा यह धनुष उठ न पाए। इस (रावण) में ऐसी अशक्तता (शक्तिहीनता) आ जाए। रावण के शरीर में जो प्राण हैं, वे भी मुझे पूर्णतया सहायक हो जाएँ। (हे इन्द्रियों की अधिष्ठात्री देवियो ! इसको तुम वैसा दुर्बल बना दो, जिससे इसके द्वारा धनुष पर प्रत्यंचा (डोरी) चढ़ न पाए। त्रिनयन भगवान् शिवजी अपने धनुष को भूलकर (भूल से यहाँ रखकर) कैसे चले गये ? श्रीशंकर रावण का पूरा पूरा मुँह काला बना दें। सीता (वस्तुतः) भगवान् की अपनी शक्ति (स्वरूपा) थी, आदिमाता थी। उसके द्वारा की हुई स्तुति, प्रार्थना की ऐसी उक्ति सुनकर इन्द्रियों की अधिष्ठात्री देवियाँ उसकी सहायक हो गईं और उन्होंने रावण के प्राणों में शक्ति में कमी उत्पन्न कर दी। इस प्रकार के साढ़े तीन करोड़ भूतों का समुदाय लेकर देवी भद्रकाली आयी। महोदय शिवजी ने अपनी जटाएँ खोल दीं और वे धनुष के पास आ गए।

वे बोले– 'मेरे स्वामी भगवान् राम की कान्ता रावण के हाथ कैसे लग सकती है ?' वे स्वयं क्रूर कालाग्नि के अधिकार-स्वरूप थे। उन्होंने धनुष के अन्दर प्रवेश किया। (उसके फलस्वरूप) रावण के अशुभकारी भाग्य से वह धनुष उलटा हो गया, उसके अग्रभाग (छोर कोटियाँ) पिटारे के तलभाग में बैठ गए। उस अहंकारी रावण ने उसका तलभाग हाथ से पकड़ लिया।

रावण की दुर्दशा, अप्रतिष्ठा और अधःपात– जहाँ अहंकार और घमण्ड होता है, वहाँ अपमान (अप्रतिष्ठा) अवश्य निवास करती है (हो जाती है)। ऐसे घमण्ड के साथ ही रावण उस धनुष पर डोरी चढ़ाने लगा। तब वह तो पहले ही उलटा था; फिर जब वह उसे बलपूर्वक सीधा करने लगा,

तब वह धनुष उसके बीसों हाथों से घुमाने का यत्न करने पर भी बिलकुल (सीधा होने की दृष्टि से) मुड़ नहीं रहा था। बल्कि वह तो रावण के चारों ओर घूमने लगा। अपने बीसों हाथों से पकड़ने का प्रयास करते रहने पर भी वह बड़ा भारी धनुष रावण द्वारा पकड़ा नहीं जा रहा था। बीसों हाथों से धकेलते रहने पर भी वह धकेला नहीं जा रहा था। फिर वह उसके वक्षःस्थल से टकरा गया, जिसके फलस्वरूप रावण पीठ के बल सिरों सहित गिर पड़ा। रावण के इस प्रकार भूमि पर गिर जाते ही (उसकी ध्वनि की) प्रतिध्वनि पाताल में गूँज उठी। उसके दसों मुँहों में धूल भर गयी। (इस स्थिति में) रावण व्याकुलता से तड़पता पड़ा रहा। स्वयंवर सभा का आँगन ही (स्थान ही मानों) सिल था, धनुष ही बट्टा था। रावण ऐसा प्रचण्ड था; फिर भी उस सभा स्थान स्वरूप चौराहे में (सबके सामने खुले में) वह पीसा गया। रावण के नीचे (भूमि पर) पड़ जाते ही सभा-स्थान में धूल उछल गई; वह मिट्टी (अन्यान्य) राजाओं के मुँह में पड़ गई (रावण की ऐसी दुर्दशा होते ही अन्य राजाओं की भी अप्रतिष्ठा अपने आप हो गई)। इससे जानकी के मन को आनन्द हो गया। रावण के दसों कण्ठ घरघरा रहे थे उसकी बीसों आँखें खुली की-खुली विस्फारित रहीं; उसके मुँहों से लार झर रही थी; उसके (समस्त) अंग विकल निस्तेज (एवं शक्तिहीन) हो गए। (यह देखकर) रावण का मंत्री पक्षपात पूर्वक (उसकी सहायता के लिए, उसे सम्हालने के लिए) दौड़ा, उसके द्वारा धनुष को एक ओर हटाने का यत्न करने पर रावण की हड्डियाँ रौंदी गईं (फलतः मारे दर्द के) वह आक्रोश करते हुए अत्यधिक तड़पने लगा (वह बोला) 'तुम लोग मेरे सहायक नहीं हो, साथी संगी नहीं हो। तुम मेरे मंत्री नहीं हो, मेरे नाशकर्ता (हत्यारे) हो'। इस प्रकार रावण क्रोध के साथ अपने मंत्रियों पर बौखला उठा। उसकी शक्ति क्षीण हो रही थी, फिर भी वह (इस प्रकार) बक रहा था। फिर रावण जनक से बोला- 'इस धनुष से मेरे प्राणों के निकल जाने पर भी इन्द्रजित् और कुम्भकर्ण तुम्हारे कुल का निर्दलन (विनाश) कर डालेंगे। मैं रावण (वस्तुतः) अति कृतान्त काल सा विनाशकारी हूँ; फिर भी इस धनुष ने मेरा घमण्ड छुड़ा डाला। हे जनक, अब तुम्हें जो उचित लगता हो, उसे तुम निश्चय ही कर लेना'।

जनक द्वारा रावण का इलाज करना– जनक (के मन) में प्राणी मात्र के प्रति बहुत दया थी। चोट खाकर संकट में फँसे हुए वैरी का भी उपकार कर्ता (सहायक) होना चाहिए- संसार में ऐसा ही व्यक्ति परमार्थी (सद्गति को प्राप्त करने वाला श्रेष्ठ पुरुष) होता है। (तदनन्तर) राजा जनक महान वीर पुरुषों को साथ में लेकर झट से दौड़े। उन्होंने रावण (की देह) पर से धनुष ऊपर ही ऊपर से उठा लिया और उसको सचेत कर लिया। उन्होंने उसके मुख-कमलों पर पानी सींच लिया; तब फिर उसे उठाकर बैठा दिया। तत्पश्चात् शुद्ध पानी लाकर दिया, तो रावण ने कुल्ला किया। फिर उसने शुद्ध जल का आचमन करके पानी पी लिया। (फल स्वरूप) ठीक से होश में आने पर वह अपने आसन पर बैठ गया। (रावण ने सोचा कि) मेरा (यहाँ पर) अपमान हुआ, अब धनुष पर कौन डोरी चढ़ा सकता है ? उसका चमत्कारपूर्ण कौशल्य देखने के लिए रावण क्रोध के साथ बैठा रहा। (उसने तय किया कि) किसी के द्वारा भी धनुष पर डोरी के न चढ़ाये जाते भी यदि जनक किसी को अपनी कन्या दे तो मैं उसका वध कर डालूँगा ऐसी क्षुद्र कृति को घटित होते देखने के लिए वह क्रोध के साथ बैठा रहा।

रावण की दुरवस्था का परिणाम और कथा का उपसंहार– तब रावण की ऐसी दुर्दशा को देखकर (अन्यान्य) समस्त राजाओं ने धीरज छोड़ दिया। उस धनुष का झपट्टा कुछ ऐसा दुर्धर था कि उन्होंने जानकी को प्राप्त करने की आशा छोड़ दी। (उन्होंने सोचा) इस धनुष पर तो डोरी बिलकुल नहीं

चढ़ पाएगी; चढ़ाने का यत्न करने पर प्राण ही निकल जाएँगे। सभा स्थान पर इस प्रकार अपमान हो जाने पर उस जानकी का उपभोग कौन कर सकेगा। इस प्रकार समस्त नरवीर, राजा धनुष को चढ़ाने के विषय में विरक्त हो गए। अब (देखिए) श्रीरघुनाथ राम उठेंगे और धनुष पर डोरी चढ़ाने सम्बन्धी प्रण की पूर्ति कर देंगे।

(कवि कहता है) मैं रचनाकार एकनाथ सद्गुरु जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हूँ। (मैं अब कहूँगा कि) जिस धनुष ने रावण को (इस प्रकार) अपमानित किया, उसपर श्रीराम (किस प्रकार) डोरी चढ़ाएँगे और अन्त में उस धनुष के ही (किस प्रकार) प्राण लेंगे (उसे तोड़ डालेंगे)। रामकथा अति रसमय (मधुर) है। उसका श्रवण (सेवन) करते-करते कानों के मुख में लार टपकने लगती है। सुख के साथ जिह्वा चलने-मचलने लगती है, तो जीव ने अर्थ ग्रहण करने के लिए अपने मुख कमल को खोल दिया। रामकथा के अक्षरों को प्राप्त करने अर्थात् देखने के हेतु आँखों ने अपनी टेढ़ी भौंहें मोड़ दीं, श्रोता एकटक देखते रहे। उस कथा के अक्षरों का आलिंगन करने के हेतु बाहु आठों अंगों, भावों सहित स्फुरित (उत्कण्ठित, अति घीर) हो उठे। जिह्वा द्वारा इस रामकथा के रस को चखने पर उसके लिए अन्य रस रसहीन हो जाते हैं। रामकथा ऐसी सु-रसमयी है। श्रोता मुझे उसका कथन करने का समय (अवसर) प्रदान करें। (वस्तुतः) मैं रामकथा के प्रताप (प्रभाव, बड़प्पन) का वर्णन करने के काम की दृष्टि से अति छोटा (दुर्बल) हूँ। फिर भी सद्गुरु जनार्दन स्वामी अपनी कृपा स्वरूप दीपक लिये हुए हैं और स्वयं मुझे बड़े सुख के साथ यह कथा दिखा रहे हैं।

मैं रचनाकार एकनाथ सद्गुरु जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हूँ। रामायण तो अति रमणीय है। (अब श्रोता सज्जनों से निवेदन है कि वे) सज्जन ध्यान पूर्वक उस कथांश का श्रवण करें कि श्रीराम ने धनुर्भंग किस प्रकार किया।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ कृत 'भावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत बालकाण्ड का 'चाप (प्रताप) कथा' निरूपण शीर्षक यह अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय १९

[श्रीराम-स्वरूप-वर्णन]

श्रीराम के सम्बन्ध में सीता की उत्कण्ठा– सीता की सखियों ने उससे कहा– 'रावण का विघ्न टल गया। (अतः) तुम सौभाग्य से पूर्णरूप में भाग्यवती हो। जो राजा तुम्हें अच्छा लगे, उसे स्वयं देख लो'। सेना-दल, बल, अत्यधिक धन सम्पत्ति, धैर्य, वीर्य, साफल्य तथा कीर्ति इनसे युक्त नृपतियों को (एक-एक करके) उन सखियों ने सीता को दिखाया। परन्तु सीता ने उन नृपतियों को (अपने लिए योग्य) नहीं माना (पसन्द नहीं किया)। सीता ने मन में यह निश्चित किया था, श्याम वर्ण से युक्त सुन्दर मूर्ति-से राम, एक मात्र रघुपति श्रीराम ही मेरे लिए (योग्य) पति हैं। अतः किसी अन्य को वह निश्चय ही (वरण करने योग्य) नहीं मान सकती थी। (सीता ने सोचा) सभा में रावण बैठा था, वह तो धनुष पर डोरी चढ़ा नहीं पाया था। फिर राम भी उसका वरण नहीं कर सकते हैं। मेरे पिता राजा जनक ने प्रण कठिन (दारुण, पूर्ति की दृष्टि से असम्भव-सा) किया है।

धनुर्भंग के प्रण के विषय में राजाओं के प्रति आह्वान (निवेदन)– जो धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाएगा, मैं उसी का पाणिग्रहण करूँ– पिताजी ने यह जो प्रण किया है, वह अति दारुण है, अति निष्ठुर (कठोर) है। (उधर) यह धनुष्य कछुए की पीठ के समान कठिन है और (इधर) ये राम अति सुकोमल हैं। (वे इस धनुष सम्बन्धी प्रण की पूर्ति नहीं करें, तब तक) उनका मैं स्वयं वर के रूप में चयन कैसे कर सकूँगी ? सीता की यही बड़ी चिन्ता थी। रावण के अपमानित (अप्रतिष्ठित) होने के कारण अन्य वीर राजाओं के मन में आतंक (छा गया) था। इसलिए धनुष पर डोरी चढ़ाने के लिए कोई भी नहीं उठना चाहता था। सभा में विराजमान राजाओं की टकटकी बँधी थी। सभा में विराजमान राजाओं के समुदाय को इस प्रकार चकित स्तब्ध (बैठे) देखकर राजा जनक बोले 'शिव धनुष को जो डोरी धारण करा सके, ऐसा बलवान (व्यक्ति) यहाँ कोई नहीं है। (जान पड़ता है कि) भूमि-मण्डल वीर हीन हो गया है'।

श्रीराम के प्रति विश्वामित्र की आज्ञा– राजा जनक का ऐसा वचन सुनकर रघुनन्दन राम उत्कण्ठित हो उठे। वे उठना चाहते थे। सो उन्होंने धनुर्भंग करने (का यत्न करने) को गुरुदेव विश्वामित्र से आज्ञा प्राप्त करने की दृष्टि से पूछा (अनुज्ञा प्राप्त करना चाहा)। राजा राम जनक की यह उक्ति कि पृथ्वी तल निर्वीर (वीर-हीन) हो गया है, सहन कर नहीं सके। उन्होंने कहा 'गुरु की आज्ञा के प्राप्त हो जाते ही, मैं इस प्रबल धनुष को तत्काल (डोरी चढ़ाकर) सुसज्जित कर लूँगा'। यह सुनकर विश्वामित्र को प्रसन्नता हुई (और वे बोले), 'हे रामचन्द्र ! झट से धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा दो। देवों को, वीरों को, राजाओं को समस्त धनुर्धारियों को नीचा दिखाओ (न्यूनत्व को, लज्जा को प्राप्त कराओ)'। गुरु की इस प्रकार सीधी स्पष्ट आज्ञा के (प्राप्त) हो जाते ही, रामचन्द्र (मानों) कूद पड़े। लक्ष्मण ने भी अति शीघ्रता से दृढ़ता पूर्वक कमर कस ली। (उन दोनों को लगा) धनुष एक है और हम हैं दो जने सभी राजा हँस देंगे–सीता भी स्वयं हँसने लगेगी (अतः) यह वीर पुरुष का लक्षण नहीं है। तब राम बोले - 'हे लक्ष्मण, जिस धनुष से रावण पीडित हुआ, उस धनुष पर मैं आधे पल में, समस्त राजाओं के, रावण के देखते रहते, मैं डोरी चढ़ा लूँगा'। श्रीराम के इस वचन को सुनकर रावण आदि (राजा) विस्मित होकर चौंक उठे (सहम उठे)। (उन्हें लगा) देखने में यह तो बच्चा दिखायी दे रहा है, पर उसका अपना धैर्य अलौकिक (असाधारण) जान पड़ता है। आँखों से जिस शिव धनुष को देखते ही सब के रोंगटे खड़े हो जाते हैं उसपर डोरी चढ़ाकर सुसज्जित करने का जगत् श्रेष्ठ श्रीराम ने मन में धैर्यसहित निश्चय कर लिया।

प्रण को पूर्ण करने के लिए श्रीराम का आगमन– कुछ एक लोग बोले–'ये ऋषीश्वर विश्वामित्र नासमझ (मूढ़, पागल) जान पड़ते हैं। अपनी प्रतिष्ठा की (रक्षा करने की) चिन्ता के कारण लोगों के प्यारे लाड़ले बच्चों को इस धनुष के सामने डाल रहे हैं'। कुछ एक बोले– 'यह लड़का कैसा श्याम वर्ण से युक्त एवं सलोना है, इसकी सुन्दरता मनोहारी है। इसलिए (अच्छा होगा यदि) इस धनुष पर डोरी चढ़ाने (के प्रण) की बात को त्याग कर सुन्दरी सीता (विवाह में) इसे प्रदान करें'। (वहाँ उपस्थित) समस्त पुरुष तथा स्त्रियाँ यह बोल (मान) रही थीं– इसे सीता अवश्य दी जाए। अब धनुष पर डोरी चढ़ाने की बात कोई भी बिलकुल न करे। श्रीराम और सीता की यह उत्तम जोड़ी भगवान् ने ही मिला दी है (निर्मित कर दी है)। जनकराज तो मात्र नासमझ (जान पड़ते) हैं, जो विषय में धनुष सम्बन्धी प्रण को लगाये (निर्धारित कर) बैठे हैं।

जनक और सीता की मनोदशा– (इधर) सीता निश्चय करके स्वयं श्रीराम पर मोहित हो गईं, तो (उधर) राजा जनक का मन भी श्रीराम में उलझकर मुग्ध हो गया। (निश्चय ही) जनक को राम प्रिय लग रहे थे। पिता और पुत्री के मन की इच्छाएँ श्रीराम (के विषय) में एक ही हो गईं। उनकी इच्छा के स्वरूप का पूर्ण अर्थ यही था कि वे दोनों एकमत होकर राम की ओर देख रहे थे। (फिर भी) श्रीराम की अपनी स्थिति (रूप) कैसे थी ? वे (वस्तुत:) मात्र चित् की चैतन्य की, एक मूर्ति थे, उनके रूप में अव्यक्त परमात्मा (ब्रह्म) व्यक्त (साकार-दृश्य) रूप हो गया था; स्वयं भगवान् भक्त की भक्ति-भावना के हेतु साकार रूप धारण किये हुए थे। जिस प्रकार कपिला (काले वर्ण की) गाय के विशुद्ध दूध को जमाकर दही स्वरूप बनाते हैं और उसी को वस्तुत: मथकर सार-स्वरूप में नवनीत (मक्खन) निकालते हैं, फिर उस नवनीत को वैसे ही रख देने पर उसमें विकृति (खराबी) आने लगती है, इसलिए उसे आग से तपा लेते हुए उससे (जिस प्रकार) मधुर (स्वादिष्ट) घी बना लेते हैं, तदनन्तर उस (द्रव रूप) घी के जमकर गाढ़ा हो जाने पर उसकी अविकार प्रवृत्ति स्वय साकार ठोस रूप में आभासित होने लगती है, उस घी के कणों के रूप में अनेकता दिखायी देने लगती है, फिर भी उसका स्वाभाविक घृत रूप, अनेक कणों में स्थित होने पर भी, जमकर गाढ़े बने रहने पर भी उस घी में बना रहता है, उसी प्रकार, जो लोग वैराग्य सम्बन्धी विवेक से चतुर (समझदार) होते हैं, वे नित्य अनित्य (शाश्वत अशाश्वत, अविनाशी नाशवान) ब्रह्म तथा जगत् सम्बन्धी विचार करके, केवल चित् और अचित् स्वरूप का विचार करके शुद्ध सत्य रूप को जान लेते हैं। उसी प्रकार वैराग्य विवेकवान लोग यह समझ सकते थे कि वही चित् स्वरूप (ब्रह्म) स्वाभाविक रूप से (निराकार निर्गुण स्वरूप से) साकार सगुण (दाशरथी राम के) रूप को प्राप्त हो गया है। वह सगुण (साकार) मूर्त रूप कैसा आभासित हो रहा था ? चित् स्वरूप के विलास के रूप में प्रकट श्रीराम कैसे दिखायी दे रहे थे ? जो ब्रह्म प्रत्येक वस्तु को अन्दर और बाहर व्याप्त किये रहता है, जो ब्रह्म अर्थात् परमात्मा चराचर में व्याप्त है, वही ब्रह्म श्रीराम के रूप में कौशल्या के गर्भाशय में (साकार) स्थित हुआ और (यथाकाल) वही ब्रह्म राजा दशरथ के भवन में अवतार धारण करके प्रकट हुआ। (ब्रह्म) राम तो स्वयं अवतारों के धारक अर्थात् अवतारी पुरुष हैं– वे अवतारी पुरुष स्वयं सीता के स्वयंवर स्थान में आकर उपस्थित हो गए। सीता वस्तुत: उनकी अपनी शक्ति-स्वरूपा थी। उस सीता रूपधारिणी शक्ति को वधूरूप में परिणत करने के लिए वे श्रीराम आनन्द-लीला प्रदर्शित करने जाएँगे। उस वधू की यह स्वाभाविक इच्छा थी कि सुन्दर सलोना वर उसके हाथ आए। सीता ने श्रीराम को अंग-उपांग सहित अर्थात् समस्त सद्गुणों (एवं सत्प्रवृत्तियों) से सम्पन्न होना निश्चय ही निर्धारित किया इस दृष्टि से श्रीराम के पूर्णत्व को सीता ही पूर्णत: जानती थी (क्योंकि ब्रह्म राम की वह तो आदि शक्ति ही थी)। इसलिए उनके समस्त अंगों में उनकी सगुणता (एवं गुण सम्पन्नता) को उसने देखा.

श्रीराम के स्वरूप का स्तुति-युक्त वर्णन– श्रीराम की श्री (गुण सौन्दर्यमयी) मूर्ति का वर्णन करते-करते (उसे असम्भव जानकर) श्रुतियाँ मौन को प्राप्त हो गयीं। (उनके स्वरूप वर्णन करने में) वेदों ने 'न इति, न इति' (ऐसा नहीं है, ऐसा नहीं है) कहा, क्योंकि श्रीराम के स्वरूप का वर्णन करने, अर्थात् भाव, अर्थ को ठीक से वर्णन करने के लिए उन्हें सार्थक शब्द नहीं मिल सके। (शब्दों द्वारा वर्णन करना असम्भव था)। (काठ या धातु से निर्मित) कलछी (थालियों में) मधुर रस (से युक्त खाद्य या पेय पदार्थ) तो परोसती है, परन्तु वह कलछी स्वयं रस को चख नहीं सकती, दूसरों द्वारा उस पदार्थ को खाते-खाते वह स्वयं मधुर रस का लाभ प्राप्त नहीं कर सकती। उसी प्रकार, वर्णन करने हेतु शब्दों

सम्बन्धी लगाव का त्याग करके मनुष्य स्वयं श्रीराम की सुन्दरता ही देख ले। शब्दों में बताते समय श्रीराम को 'परेश (सर्वोपरि परमात्मा)' कहते हैं, लेकिन बोलनेवाले के ऐसे शब्द उजाड़ अर्थात् अर्थहीन सिद्ध हो जाते हैं, (उन शब्दों में श्रीराम की सुन्दरता की अल्प सी झलक तक नहीं प्रकट हो पाती)। आकाश को कपड़े मे बाँधने का यत्न करने पर उसमें आकाश तो आ ही नहीं सकता, हाथों में केवल चौछोरों वाला कपड़ा ही धरा रह जाता है। आकाश को थैली में बाँध लेने का यत्न करने में उस यत्नकर्ता को कष्ट (प्रयास, परिश्रम) व्यर्थ हो जाते हैं। उसी प्रकार शब्दों द्वारा वर्णन करने का प्रयास करने पर भी किसी के द्वारा श्रीराम (के स्वरूप) को स्पष्ट रूप से बताया नहीं जा सकता। जो (दाशरथी) राम सगुण थे, वे वस्तुत: निर्गुण (ब्रह्म राम ही) थे। राम परिपूर्ण परमात्मा थे, राम एक मात्र चित्स्वरूप थे, चैतन्य स्वरूप घन (मेघ) थे, अथवा अरूप चैतन्य स्वरूप घन (मेघ) थे अथवा अरूप चैतन्य का ठोस घन रूप थे, श्रीराम जगत् के जीवन (स्वरूप) थे। ऐसे उन श्रीराम के सगुण रूप का वर्णन करने में मैं अत्यधिक दीन (दरिद्र) हूँ। वाणी (अर्थयुक्त ध्वनियों) को प्रकट करानेवाले तो मेरे गुरु जनार्दन स्वामी हैं, जो स्वयं परमात्मा राम स्वरूप हैं। वे ही अपने स्वरूप का वर्णन मेरी वाणी द्वारा करा रहे हैं। राम अपने समस्त अंगों में निर्मल थे; उस निर्मलता (युक्त अंगों) में सुन्दर नील वर्ण युक्त आकाश प्रतिबिम्बित था, इसलिए उनके अंगों का श्याम वर्ण स्वच्छ उज्ज्वल दिखायी देता था- वह उनके भक्तों को निर्मल स्वच्छ उज्ज्वल आभासित हो रहा था। श्रीराम श्याम वर्ण की दृष्टि से मेघ श्याम (मेघ-से-श्याम) थे, उस श्यामता युक्त मेघ के अन्दर 'अहं ब्रह्म (मैं ब्रह्म हूँ)' स्वरूप ध्वनि गरज रही थी, इसलिए उन (दाशरथी) राम को वेद और श्रुतियाँ, शास्त्र 'मेघश्याम राम' कहते हैं। निर्मलता में राम परम अर्थात् सर्वोपरि हैं, यह रहस्य बड़े बड़े देवों की भी समझ में नहीं आता था। इसलिए श्रीराम के निर्मल अंगों में (नील) आकाश को प्रतिबिम्बित देखकर उनको वे मेघश्याम राम कहते थे। इस प्रकार स्वयं श्रीराम मेघ की-सी श्याम कान्ति युक्त शोभा से शोभायमान थे। उनके पदों के पराक्रम को त्रिविक्रम (वामन स्वरूपधारी श्रीविष्णु) ही क्रमबद्ध रूप से दिखा सकते थे (वे तीन पदों में ब्रह्माण्ड को व्याप्त करने में समर्थ थे)। शेषनाग के मुख असंख्य हैं। उसने श्रीराम के चरणों का वर्णन करने के लिए हठ पूर्वक यत्न किया। इसमें उसकी जिह्वाएँ दो दो खण्डों में विभक्त हो गईं (इस प्रकार सहस्र मुखों से युक्त शेष के द्वारा अपने दो सहस्र जिह्वा खण्डों द्वारा, भी श्रीराम के चरणों (के पराक्रम) का वर्णन नहीं हो पाता, ऐसी अवस्था में मेरी वाणी की युक्ति (वाक्चातुर्य) कितनी है ? वह श्रीराम के चरणों का वर्णन योग्य रीति से करने में किस प्रकार समर्थ हो सकती है ? फिर भी बालक की तोतली बोली की स्थिति को समझकर साधु पुरुष सुख के साथ तृप्त हो जाते हैं।

श्रीराम के सामुद्रिक (अंगोपांग-लक्षण-शास्त्र की दृष्टि से) लक्षण– देखिए, श्रीराम के दोनों चरणों में ध्वज, वज्र, अंकुश के (शुभलक्षणात्मक) रेखा चिह्न थे, पद्म (कमल चिह्न) थे। उनके चरणों के ऐसे सामुद्रिक चिह्नों को देखकर विदित होता था कि वे चरण महापापियों तक का उद्धार करनेवाले हैं। उनके चरणों में, चारों प्रकार की मुक्तियों से लज्जा को प्राप्त कर देनेवाली भक्ति का सूचक वज्र चिह्न था वह वज्र (सूचित करता था कि साधक के पूर्वजन्म कृत) कर्मों के बीजों को नष्ट करनेवाला होता है। अंकुश साधक द्वारा (नित्य प्रति) श्रीराम का स्मरण करने में स्वभावत: नित्य अंकुश रखनेवाला होता है (जिससे वह इधर-उधर भटक न जाए)। ध्यान से देखते ही समझ में आता था कि सत्त्व गुण की अधिकता से, उनके दोनों चरणों में पद्म चिह्न कान्ति के साथ शोभायमान थे। संध्याकालीन

रंग स्वरूप, प्रेम स्वरूप रंग में रँगे हुए तत्त्व आरक्त वर्ण के थे। उनकी वर्णशोभा से कुंकुम लज्जा को प्राप्त हो जाता था, सत्त्व रजस्-तमस् नामक तीनों गुण श्रीराम के उन टखनों में पूर्ण रूप से जटिल थे, जो त्रिकोणाकार थे। उनके ऐसे चरण जड़ मति लोगोंकी माया जन्म जड़ता (मूढ़ता, अज्ञान) का निर्दलन करनेवाले थे। चित्स्वरूप कलाएँ (लोगों को) समझ में आने की दृष्टि से आबद्ध होकर उज्ज्वलता के लिए जीवन-स्वरूपा होती हैं, साधकों के लिए अपने (परमात्मा सम्बन्धी) प्रेम स्वरूप होती हैं श्रीराम द्वारा धारण किये हुए तोड़र अपने बजते रहने पर ध्वनि में प्रलय काल का-सा कोलाहल उत्पन्न कर रहे थे। उनके गर्जन से कलिकाल पुरुष तक काँप उठता था। उनके बाँकों एवं तोड़ों का खनत्कार मानों 'अहं सोऽहम् (मैं वही ब्रह्म हूँ)' शब्द उत्पन्न करते हुए सुख की तेज लहर उत्पन्न करता था। युद्ध में जो काल चक्र कष्ट को प्राप्त (पीड़ित) हो गया था, वही श्रीराम के शरीर में जानुचक्र (घुटना स्वरूप मण्डल) के रूप में प्रकट हो गया था। उनके चरणों में सुख सर्वस्व (समस्त सुखों) का सार प्राप्त करके स्वयं बड़े-बड़े देव उनका वन्दन करते थे। श्रीराम के जानु मण्डलों को देखते ही, काल का चक्र तक उनके भक्तों की वन्दना करता है (काल श्रीराम-भक्तों को हानि नहीं पहुँचा सकता है)। श्रीराम के चरणों का सामर्थ्य वेदों के लिए भी अदृश्य, अज्ञेय बना रहा था। श्रीराम के चरण कमलों से लग जाते ही (छू जाते ही) शिला बनी हुई (गौतम ऋषि की स्त्री) अहल्या झट से उद्धार को प्राप्त हो गई थी। जिन्होंने राम के उन चरणों के (दर्शन, स्पर्श स्वरूप) प्रसाद को ग्रहण किया हो, वे कलि काल पुरुष को लूटकर नष्ट कर सकते थे श्रीराम के ऊरु (जाँघें) सीधे थे तथा अपनी मृदुता से शोभायमान थे। उन्होंने अपनी मृदुता (कोमलता) तथा सरलता से कदली (केले) के स्तम्भ (तने) को लज्जित कर दिया। केले (के तने) के अन्दर गूदा टेढ़ा होता है, परन्तु श्रीराम के ऊरुओं (जाँघों) में टेढ़ेपन के अभाव के कारण (विशेष) सुन्दरता थी। श्रीराम के गुह्य स्थान को प्राप्त करने की, उसे देखने की सीता ही अधिकार-सम्पन्न थीं उसका वर्णन करने में वेद लज्जा से युक्त ठहरे हैं और अन्य शास्त्र पूर्ण रूप से हिचक जाते हैं। जो लोग भोग विलास की कामना रूपी वस्त्र का त्याग करते हैं, जो लोक लज्जा (मर्यादा आदि) के विषय में लज्जाहीन हो जाते हैं, वे ही राम के गुह्य स्थान के, रहस्य के दर्शन और ज्ञान को प्राप्त हो सकते हैं और दिन-रात सुख सहित रह सकते हैं श्रीराम एकपत्नी व्रत धारी हैं; फिर भी जो भक्त उस राम स्वरूप पति की पत्नियाँ स्वयं हो जाते हैं, उन्हीं को श्रीराम के गुह्य (गूढ़) रूप के गुह्य (रहस्य) का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार भक्त की भक्ति भावना का अर्थ (अनुभव, ज्ञान) अलौकिक (दिव्य) है (भक्त अपनी आत्मा को परमात्मा ब्रह्म-स्वरूप श्रीराम की स्त्री समझे, तो) वह ऐसी मधुरा भक्ति द्वारा श्रीराम के गुह्य (रहस्य) का साक्षात्कार कर सकता है। बिजली प्रतिक्षण उदय को और अस्त को प्राप्त हो जाती है (वह एक क्षण भर दिखायी देकर दूसरे ही क्षण अदृश्य हो जाती है) परन्तु वह स्वयं श्रीराम के पहने हुए वस्त्र की लाँग में आकर (सदा के लिए) जड़ गयी है। (उसने स्वयं बलशाली श्रीराम का आश्रय स्वीकार किया है) वह अपने नित्य के चरनु धर्म को छोड़कर दिन-रात तेजस्वी बनी रहती है, अर्थात् श्रीराम द्वारा पहना हुआ पीताम्बर बिजली सा नित्य चमक रहा था। इसलिए उस जगमगाते हुए पीताम्बर के कारण श्रीराम की कटि में सूर्य तथा चन्द्र की किरणें आभासित होती थीं। इसलिए श्रीराम के सभी अंगों के अपने सौन्दर्य में उनका अपना सौन्दर्य अधिक मनोहारिता उत्पन्न कर रहा था। जिसके बन्धन में श्रीराम पूर्णतः बँधकर (भक्त को) प्राप्त हो जाते हैं, उस बन्धन स्वरूप भक्ति भावना रूपी मेखला को उन्होंने स्वयं धारण किया था। समस्त विद्याएँ किंकिणियों की जाल-माला के रूप में उस (भक्ति मेखला) में शोभायमान थीं।

श्रीराम के मुख के दर्शन को प्राप्त होकर क्षुद्रघण्टिकाएँ (घुँघरू) अधोमुख हो गई थीं। दिव्य मोतियों से जुड़ी हुई होने के कारण श्रीराम की कटि मेखला पूर्णत: दोषहीन होकर शोभायमान थी। अपने मध्यभाग अर्थात् कटिभाग का प्रमाण (घेरा) अति सूक्ष्म है, इस विचार से सिंहों को घमण्ड होता था; लेकिन वे भी श्रीराम की कटि का प्रमाण देखकर (लज्जित होकर, घमण्ड को त्यागकर) वन में रहने के लिए भाग गए। उस मेखला में जड़े गए सिंह ऐसे थे कि वे श्रीराम के कटि-भाग को देख लें (और चले जाएँ) परन्तु वे श्रीराम को देखते ही उनपर मोहित हो गए और आवागमन (आने जाने) को भूल गए (पौराणिक मान्यता के अनुसार भगवान् विष्णु या नारायण की नाभि में उत्पन्न कमल में से ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ। इस दृष्टि से) भगवान् विष्णु की अपनी नाभि में आकाश निमग्न अर्थात् समाया हुआ है उधर पूर्वकाल में ब्रह्मा कमल के गर्भ (मध्य भाग, कोष) में रहते हुए थकावट को प्राप्त हो गया; तब भगवान् ने उसे 'भय मत मानो' कहकर (अभयदान देकर अपनी नाभि में (उस कमल के साथ) स्थापित कर लिया भगवान् विष्णु की उस नाभि के प्रतीक स्वरूप उनके अवतार श्रीराम के पेट में आरम्भ से, मूल से वर्तुल (वृत्त) बना हुआ है (उनकी नाभि वृत्ताकार एवं गहरी है)। ज्ञेय (ब्रह्म), ज्ञाता और ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) की वह त्रयी ही श्रीराम के उदर के अन्दर त्रिवलि स्वरूप दिखायी दे रही थी पुण्यात्मा लोगों के सत्कर्म (पुण्यप्रद कर्म) मानों उन रोमों की पंक्तियाँ थीं, जो श्रीराम के वक्षःस्थल पर शोभायमान थीं। श्रीराम के हृदय का रिक्त स्थान घने (अत्यधिक) आनन्द से या आनन्द रूपी घनों से भरा हुआ था, अत: वह रिक्त नहीं था। उसमें धीरे-धीरे सन्त जुट गए और रह गये। इसलिए वे कल्प के अन्त में भी नाश को प्राप्त नहीं होंगे। साधक को समाधि अवस्था से जो विशुद्ध सुख अनुभव होता है, वही श्रीराम के वक्षःस्थल पर पदक के रूप में स्थित था। देखिए सन्त स्वरूप अनेक छोटे छोटे माणिक रत्न उन श्रीराम के वक्षःस्थल पर स्थित पदक के सम्पुट में जड़े हुए थे। वहाँ अनन्य, एकनिष्ठ भक्ति भाव शुद्ध भगवत्प्रेम के साथ वैजयन्ती माला के रूप में शोभायमान था। (सन्तों, भक्तों) सज्जनों के मन स्वरूप पुष्पों की मालाएँ तुलसी (पत्रों-) सहित वहाँ पर शोभायमान थीं। मुक्ति को प्राप्त भक्तों की सद्भक्ति रूपी मोती पूर्ण (अखण्ड) इक-लड़िया माला के रूप में पिरोयी हुई थी। ऐसी वह मोतियों की इक-लड़िया माला श्रीराम के गले में शोभायमान थी।

श्रीराम का शंखाकार कण्ठ ही (वस्तुत:) वेदों का आदिपीठ (उद्गम स्थान) है, उससे स्वर (ध्वनि) वर्णों की बाट निकली (स्रोत चला); उसी से परम अर्थ प्रकट हो गया। जो ब्रह्म राम मूलत: बाहुहीन हैं वे दाशरथी राम के रूप में अवतरित हुए। उन राम के घुटनों तक लम्बे हाथ शोभायमान थे, उनके बाहुओं का प्रताप बहुत बड़ा है। वे दैत्यों के स्थानों को (दैत्यों को, दैत्यकुलों को) निर्दलित करनेवाले थे। उनके बायें हाथ में जो उनका अपना धनुष था उससे वे पुण्यों और पापों का पूर्णत: विनाश करनेवाले थे, लोगों के संकल्प-विकल्पों को नष्ट करनेवाले थे; कामदेव के घमण्ड को मूल से छिन्न भिन्न कर देनेवाले थे। उनके दायें हाथ में जगमगानेवाला जो बाण था, वह आघात करने में भक्तों का वैरी था। वह अहंकार युक्त ममत्व को प्राणों सहित मार डालता था और द्वैत भाव के साहस बल को शेष रहने नहीं देता था (उसके स्थान को नष्ट कर डालता था)। जो भाव चैतन्य के तेज से अत्यधिक तेजस्वी होता है, जिससे 'अहं सोऽहम्' भाव तक पूर्णत: नष्ट हो जाता है, वही भाव श्रीराम के बाजूबन्दों के रूप में प्रकट था। उनमें उपनिषदें विशुद्ध कीर्तिमुखों के रूप में प्रस्तुत थीं। समझिए कि वीर्य और धैर्य ही श्रीराम के हाथ के कंकण स्वरूप में पूर्णत: जमकर बैठे थे। वस्तुत: श्रीराम तो आभूषणों के

आभूषण ही थे जिसके हाथों में राम मुद्राएँ अर्थात् श्रीराम नामांकित मुद्रिकाएँ विराजमान हों, वह तीनों लोकों में वन्द्य हो जाता है कलिकाल उसके पाँव लगता है। चारों प्रकार की मुक्तियाँ उसके अधीन रहती हैं। श्रीराम की दसों अँगुलियों में ऐसी दस मुद्रिकाएँ थीं, जो मानो दसों अवतारों का पालन कर रही थीं। ऐसे वे श्रीराम लंकानाथ रावण को पराजित करके सुन्दरी सीता का हाथ थाम लेंगे (सीता का पाणि-ग्रहण करेंगे)। आजानुबाहु श्रीराम स्वयं सिंह थे, नृसिंह थे। वे स्वयंवर सभा में शिवजी के धनुष को तोड़ते हुए स्वयंवर में रावण को (अपमान स्वरूप) कष्ट पहुँचाकर सीता का पाणिग्रहण करेंगे। श्रीराम के कानों में मकराकार कुण्डल थे। इस प्रकार के साकार आभूषण धारण करना वस्तुत: लौकिक बाह्य (दिखावटी) आचरण था। वस्तुत: वे श्रीराम आकार युक्त होने पर भी निराकार थे। नामादि के श्रवण करने पर वे क्रोध, मोह आदि विकारों को कुचलकर नष्ट कर देते हैं। देखिए, श्रीराम के मुख को, यह तो छानकर शुद्ध बनाये हुए आनन्द का साँचा है; अथवा वह तो विशुद्ध सुख के लिए सुख स्वरूप है। श्रीराम का श्रीमुख वही है, जो दर्शकों को निर्दोष, पापहीन कर देता है। श्रीराम के कानों की सुन्दरता अद्‌भुत थी। उनके नामादि के श्रवण से श्रोता का नित्यप्रति परमात्मा से मिलन होता है श्रीराम के नाम का श्रवण, उनका दर्शन श्रोता तथा दर्शक को पापादि के दोष से हीन (मुक्त) कर देता है। इस प्रकार श्रोता और दर्शक श्रीराम के साथ अंश-अंश में पूर्णरूप से समरस-एकरस हो जाते हैं श्रीराम का मुख-चन्द्रमा पूर्ण रूप से नित्य प्रति कलंकहीन होता है। इससे (आकाशस्थ) चन्द्रमा, (जो कलंक से युक्त दिखायी देता है) श्रीराम के मुखचन्द्र को देखकर लज्जा को प्राप्त होकर स्वयं अधोमुख हो गया (सिर झुकाये रहा) (महीने के) एक पक्ष में चन्द्र वृद्धि को प्राप्त हो जाता है (आकार में बढ़ता जाता है), जो दूसरे पक्ष में घटता जाता है। चन्द्र के लिए यह बड़ा दु:ख (का कारण ही) था। इसलिए वह स्वयं आकर श्रीराम के पाँव लगकर उनके पाँवों के अँगूठों में जुड़ गया। जगत् (के लोग) श्रीराम के चन्द्र-से तेजोमय नखों से युक्त पाँव लग जाता है। श्रीराम के चरणों के अँगूठों में जड़ जाने पर चन्द्र को पुष्टि एवं तुष्टि अनुभव हो गई। श्रीराम के ऐसे चरणों मे कोटि कोटि सुख (निवास करते) हैं। उन चरणों को आँखों से देखने पर (दर्शकों को) आह्लाद हो जाता है। श्रीराम के श्रीमुख को देखते ही दर्शक के जन्म (जन्म के अथवा जन्म मृत्यु के चक्कर में फँसे रहने) के दु:ख जड़-मूल सहित नष्ट हो जाते हैं उसका सुख परम आनन्द से लबालब भर जाता है, हर्ष हर्ष से उफान में आकर उमड उठता है। 'ओम्' के रूप में 'अ'-कार, 'उ'-कार और 'म्'-कार ध्वनियाँ (समाविष्ट) हैं। उस ओंकार (ओम्) में कर्म और अकर्म स्वरूप श्रुतियाँ विद्यमान हैं। उसी प्रकार श्रीराम के मुख के अन्दर (ऊपरवाले और नीचेवाले) दो भागों मे दो दन्त पंक्तियाँ हैं। उन दो दन्त-पंक्तियों में स्थित चौकड़ी के चारों दाँत (मानों) चारों वेदों की उक्ति स्वरूप हैं. जगत् के लोगों के अधर (होंठ) तो अधर (अतएव निराधार) मात्र होते हैं, परन्तु श्रीराम के मुख के अधर सधर अर्थात् स्थिर दृढ़ हैं; वे परमश्रेष्ठ अमृत के मात्र घर (मैका) हैं; सीता के लिए उसके अपने हृदय (आत्मा) हैं। श्रीराम की ठोढ़ी को देखते ही दर्शक के लिए सृष्टि मानों उमड़-उमड़कर सुख उछालने लगती है। (वस्तुत: श्रीराम की ऐसी ठोढ़ी को) देखने वाले की वह दृष्टि (आँखें) धन्य है (श्रीराम भक्त) हनुमान ही उस हनु (ठोढी की महत्ता) को जानता है। जगत् के लोगों की सुन्दरता को सुन्दरता प्रदान कर देनेवाली यदि कोई वस्तु हो, तो वही है श्रीराम की नाक. श्रीराम (के आदेश से लक्ष्मण) नासिक नगरी में (स्थित पंचवटी में) शूर्पणखा को अवश्य (उसकी नाक को काटकर) निर्नासिक (नाकहीन, नककटी) बना देंगे। समझिए कि श्रीराम के प्राणों (की शक्ति के आधार) से संसार

के लोगों के प्राण संचरण करते रहते हैं। उन प्राणों के साथ वहाँ पर बसे रहने से वायु जीवन में सन्तोष को प्राप्त हो रही है– वस्तुतः वायु के लिए श्रीराम के प्राण ही अपने जीवन स्वरूप हैं।

चैतन्य का जो विश्राम स्थान है, वही श्रीराम के नयन हैं। (वस्तुतः) श्रीराम तो बाह्य सहित अर्थात् अन्दर (अन्तःकरण) और बाहर देखने की दृष्टि के धारक हैं। इस दृष्टि से उनका देखना अपने द्वारा अपने को देखना ही है (श्रीराम ब्रह्माण्ड व्यापी हैं; अतः वे अपने नयनों से अपने ब्रह्माण्ड रूप को ही अन्तर्बाह्य देखते हैं)। श्रीराम के द्वारा देखने पर दर्शक का जीव ब्रह्मानन्द से भर उठता है, दृश्य, द्रष्टा (दर्शक) और दर्शन का त्रिपुट अलग-अलग इकाइयों में नहीं दिखायी देता। उनके द्वारा देखने पर सृष्टि आत्मानन्द से उमड़ उठती है। श्रीराम की भृकुटी (भौंह) उनके संकेत से कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों का निर्माण करती है, उनकी भौंह का विक्षेप (शर जैसे चलना) कलिकाल (के कण्ठ) को चीर सकता है और (स्थूल, सूक्ष्म आदि) चारों प्रकार की देहों की गाँठ (बन्धन) को काट देता है। नयन कानों की तुलना में अधिक सुन्दर होते हैं। इसी का नाम दर्शन शक्ति है। वे (नयन) साधारण पदार्थ में परम अर्थ के (ब्रह्म के) दर्शन कर सकते हैं, नयनों को इसी का सन्तोष प्राप्त होता है (जो कानों को नहीं हो सकता)। श्रीराम का भालप्रदेश श्रेष्ठ है; उसी कारण उनका अधिष्ठान बलशाली बना है। उसमें सत्, चित् और आनन्द की रेखाएँ सीधी अंकित (दिखायी देती) हैं। उनका भालप्रदेश ऐसी त्रिवलि से (रेखा त्रय से) शोभायमान है। भक्त मात्र के अहंभाव स्वरूप कठिनता को छानकर, घिसकर (अहंकार को नष्ट करके) 'सोऽहं' स्वरूप शुद्ध चन्दन को निर्मित किया गया। श्रीराम को वही समर्पित किया, वही आत्मा-परमात्मा की एकता भावना का समर्पण श्रीराम के लिए गन्ध युक्त पूजन है। भक्तों की श्रद्धा स्वरूप केसर के लेपन से श्रीराम के भालप्रदेश पर पीतवर्ण तिलक अंकित हुआ है। उस सुन्दर रंग की छटा से प्रेम के साथ भगवत्प्रेम में रँगी हुई है। ऐसे उस भालप्रदेश पर अक्षत शोभायमान है। श्रीराम सबके लिए मानों मुकुटमणि (मुकुट में लगाये जाने योग्य रत्न) हैं। राजाओं के स्थान में (समूह में) श्रीराम शिरोरत्न (शिरोमणि, सर्वश्रेष्ठ) हैं। ऐसे श्रीराम के मस्तक पर मुकुटमणि के रूप में जो हो सके, ऐसा कोई भी नहीं दिखायी दे रहा था। श्रीराम के मुकुट में उनकी अपनी सुन्दरता (समाप्त) थी। श्रीराम तो समस्त लोगों के शिरोरत्नों के अपने गर्भ स्थान थे। उन श्रीराम के मुकुट की कान्ति का वर्णन करने की दृष्टि से उक्ति (कथन) का आरम्भ करना कठिन हो गया है। यदि श्रीराम के मस्तक पर ऐसा कोई रिक्त शेष रहता, तो अच्छा होता। तो उस स्थिति में मुकुट का वर्णन किया जा सकता और वाणी के लिए वह अवसर सुखपूर्वक प्राप्त हो जाता। श्रीराम के शरीर में वर्णन करने योग्य कोई रिक्त वस्तु शेष नहीं रही। फिर उस मुकुट का सराहना-युक्त वर्णन कहाँ से करें ? उसके सम्बन्ध में वाणी क्या बोल सकती है ? श्रीराम का अपना स्वयं का प्रताप नित्य रूप से निर्विकल्प था। वही प्रताप सुन्दर रूप धारी मुकुट के रूप में सिर पर विराजमान था। वह चित्स्वरूप शोभायमान था। इसलिए श्रीराम के मस्तक पर आभूषणों का पूर्ण स्वरूप आभूषण बनकर वह मुकुट अपने अंग की शोभा को शोभायमान बना रहा था। जिस प्रकार सोने के (आभूषण के) लिए सोने का ही सम्पुट (आधार) योग्य होता है, उसी प्रकार श्रीराम श्रीराम के अपने ही आभूषण स्वरूप थे, इसे तो स्वयं सीता ही देखना जानती है– अन्य लोगों का जानना प्रकाशमय दिवस को जुगनू द्वारा देखने जैसा है। सीता की सद्रूपता को श्रीराम स्वयं ही जानते हैं और श्रीराम की पूर्णता को सीता स्वयं पूर्ण रूप से जानती है, इस प्रकार एक दूसरे के चिह्नों (लक्षणों) को

वे दोनों सम्पूर्ण रूप से जानते हैं। रचनाकार एकनाथ अपने गुरु जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हैं। इसके अनन्तर धनुर्भंग की कथा का श्रवण कीजिए।

॥ स्वस्ति ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ कृत 'भावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत बालकाण्ड का 'श्रीराम स्वरूप-वर्णन' शीर्षक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय २०

[श्रीराम द्वारा धनुर्भंग और सीता का वरण]

प्रस्तावना– श्रीराम में डीलडौल (की हृष्ट-पुष्टता) और स्वाभाविक रूप गुण-विशेषता तथा लावण्य की स्थित परिपूर्णता को देखकर सीता का मन उनके प्रति आकर्षित हो गया। अत: उसे अन्य (राजाओं, वीरों में से) कोई भी अच्छा नहीं लग रहा था। जिस प्रकार चकोर चन्द्र से झरनेवाले अमृत को छोड़कर किसी अन्य वस्तु का सेवन नहीं करता, उसी प्रकार रघुनाथ श्रीराम को छोड़कर सीता का मन किसी अन्य पुरुष को (वरण करने योग्य) नहीं मान रहा था। रघुनाथ को देखते ही राजा जनक मन में अत्यधिक आनन्द को प्राप्त हो गए थे और उन्हें निश्चय ही लग रहा था कि उन्हें जानकी प्रदान की जाए; लेकिन धनुष सम्बन्धी प्रण के (पूर्ण करने के) बारे में वे दुविधा में पड़े थे।

श्रीराम को देखकर सभा (मण्डप) में उपस्थित लोगों की मनःस्थिति– सभा में विराजमान लोगों के नयन राम के रूप (सौन्दर्य) में अत्यधिक डूब गए (लीन हो गए, उलझ गए) थे रावण भी मोह को प्राप्त हो उठा। (समस्त) लोग श्रीराम (को देखने) से चकित-मुग्ध हो गए श्रीराम को देखकर पंक्ति में बैठे हुए समस्त ऋषि आश्चर्य को प्राप्त हुए। उन सब ने मन में (यही उचित) मान लिया कि सीता रघुपति राम को प्रदान की जाए। (क्योंकि) सामने (प्रण द्वारा निर्धारित) अत्यधिक कठिन कार्य था श्रीराम धनुष पर डोरी कैसे चढ़ा पाएँगे ? फिर धनुष सम्बन्धी यह प्रण विवाह के लिए निर्धारित बन्धन (कारी शर्त) था। (इस विचार से) समस्त लोग व्याकुल हो गए थे। परन्तु सीता के मन का विचार सत्य था। उसके अनुसार श्रीराम मन से समर्थ (आत्मविश्वास युक्त) थे। वे सबके मनभाये विचार को पूर्ण करने के हेतु धनुष को चढ़ाते हुए उसे तोड़ डालने के लिए चले। लक्ष्मण को पीछे (स्थान पर बैठे) छोड़कर राम द्रुत गति से चलने लगे। यह देखकर रावण (इस विचार से) मन में चौंक उठा कि यह लड़का) धनुष पर डोरी चढ़ाएगा यह तो बच्चा दिखायी दे रहा है; पर इसका पराक्रम (प्रताप) असाधारण है इसने आतंकित करके मारीच को दण्ड दिया और मारीच को पूर्णत: मार डाला। दशमुख (रावण) को ग्लान (उत्साह उमंग से हीन) देखकर विश्वामित्र को अत्यधिक आनन्द हो गया। (वे मन ही मन) 'हे रामचन्द्र' जल्दी करो (शीघ्रता बरतो)। (अन्य समस्त) धनुर्धारियों को लज्जित कर दो'।

उपस्थित लोगों को नमस्कार करके श्रीराम का धनुष की ओर गमन– इससे रघुवर श्रीराम हर्ष को प्राप्त हो गए। उन्होंने विश्वामित्र को नमस्कार किया, ब्राह्मणों (को नमस्कार करके उन) का आशीर्वाद प्राप्त किया। इस प्रकार उन्होंने सभा (में उपस्थित लोगों) को समादृत किया। जनक तो अपार मन से सज्जन थे। श्रीराम ने उनका नमन किया; तो उनके बाहु धनुष को (उठा) लेने के लिए तत्पर

हो गए। समस्त सभा (जनों) की उपेक्षा (अवमान) करते हुए रावण ने यह माना था कि मैं समस्त प्रकार की सामर्थ्य में समर्थ हूँ (सबसे श्रेष्ठ, समर्थ) हूँ - रावण को जो ऐसा अत्यधिक घमण्ड हुआ था, वैसा श्रीराम नहीं अनुभव कर रहे थे। सबके प्रति यथोचित आदर भाव प्रकट करके, वृद्ध वृद्ध लोगों को नमस्कार करके श्रीराम अत्यधिक विनम्रपूर्वक धनुष को उठाने के लिए (आगे) चले.

धनुष की तपस्या– उस धनुष में अत्यधिक भार था। मैं उसके सम्बन्ध में भी निरूपण करूँगा, श्रोताजन ध्यान दें। उसके (भार सम्बन्धी) लक्षण को स्पष्ट करनेवाली पूर्वकथा (पृष्ठभूमि स्वरूप स्थिति) यह है (पूर्वकाल में) वह धनुष भगवान् शिवजी के हाथों में था। अतः उसके भारी होने का कारण शिवजी की शक्ति है जो लोग यह कहते हैं कि उस चाप में ही मूलतः भारीपन (भारी होने की अवस्था) था वे महापापी हैं। उस चाप ने अत्यधिक दुष्टों का निर्दलन किया है- उनका वध करने से कोई भी पाप उसके पास नहीं आ पाया। (वस्तुतः) शिवजी रामनाम (के बल) से (मनुष्य-वध से लगनेवाले) ऐसे पाप को जला देते थे, फिर वह धनुष (या वे धनुष से) दुष्टों का निर्दलन कर देता था उस धनुष ने (वस्तुतः) बहुत तपस्या की थी; इसलिए तो वह शिवजी के हाथ (के आधार, आश्रय) को प्राप्त हो सका था। वह शिवजी के हाथों (के स्पर्श, आश्रय) से अत्यधिक पवित्र हो चुका था, इसलिए श्रीराम ने उसे हाथ से उठा लिया। शिवजी का वह अपना धनुष (इस प्रकार) अपूर्व (उसके समान कोई अन्य धनुष नहीं हुआ) था। उसे (साधारण) जीव (मनुष्य) किस प्रकार उठा सकेंगे ? वहाँ (उस धनुष में) शिवजी का अधिष्ठान अर्थात् (मानों) निवास था। इसलिए उस धनुष में शिवजी की शक्ति के कारण भारीपन रहा था (वस्तुतः) शास्त्रों ने यही मर्यादा अर्थात् संकेत स्थापित किया है कि जो जड़ (मति) हो वही (मानो) पाप-पुंज होता है, परन्तु ऐसा जड़त्व (मूढ़भाव, अज्ञान अवस्था) उस धनुष में नहीं था। शिवजी की शक्ति के सयोग से उसमें वह भारीपन (भारी होने का गुणधर्म) आ गया था। रावण के धनुष को उठाने लगते ही, स्वयं त्रिनयन (शिवजी) उसमें प्रविष्ट हो गए। उससे वह (रावण) पूर्णतः अपमानित हो गया। इस प्रकार उस धनुष को शिवजी की शक्ति के कारण ही भार प्राप्त हो गया था। उस कोदण्ड (धनुष) का मनोभाव यह था कि मैं शिवजी के हाथों (के आश्रय) से (पहले ही) अत्यधिक पुनीत हो गया हूँ; (अब) स्वयंवर प्रसंग में श्रीराम के हाथों (के आधार) से परम (पूर्णतः) मुक्त हो जाऊँगा। श्रीराम नित्य शिवजी का स्मरण करते हैं और शिवजी श्रीराम के चरणों का वन्दन करते हैं। इसलिए उस धनुष की भारमय होने की अवस्था नष्ट हो जाएगी। इस प्रकार वह (पहले से ही) पुण्य स्वरूप हो गया था। अस्तु उस धनुष की कथा ऐसी है। श्रीराम का कार्य यही (निर्धारित) रहा है कि वे स्वयंवर में (प्रण को जीतकर) सीता का वरण करें। वह धनुष (मानों) उस कार्य की सिद्धि की प्रतीक्षा कर रहा था।

श्रीराम द्वारा धनुष की शक्ति का अपहरण हो जाना– श्रीराम द्वारा देखे जाते ही (लौकिक रूप से) वह धनुष पाप रहित हो गया। अज्ञान स्वरूप भार से अनुभव होनेवाला सन्ताप नष्ट हो गया। अतः वह स्वय (श्रीराम द्वारा) सुख के साथ (आसानी से, बिना कोई कष्ट किये) उठाया जा सका। (वस्तुतः) श्रीराम जिसकी ओर देखते हैं, उसका अस्वास्थ्य, जड़ता (अज्ञान आदि) यथेष्ट रूप से चला जाता है वहाँ (ऐसी स्थिति में) बेचारा धनुष तो क्या (महत्ता रखता) है। उसका जड़त्व (भारीपन) उसके आगे क्या शेष रहेगा ? वाणी (जिह्वा) से श्रीराम (का नाम) बोलने से (राम नाम का उच्चारण करने से जड़ (अज्ञान व्यक्तियों की घरगृहस्थी का) संसार का सचमुच उद्धार हो जाता है। फिर उन्हीं श्रीराम

के दर्शन हो जाने पर धनुष में जड़ता कैसे शेष रह सकती है। धनुष्य के मन का भाव भी यही रहा कि श्रीराम के हाथों के मुझे लगते ही मैं कृतार्थ, चरितार्थ हो जाऊँगा। श्रीराम (स्वयं) तो (समस्त) कर्मों से पूर्णतः मुक्त हैं। श्रीराम का प्रताप ऐसा है कि उससे धनुष में अनुताप (ग्लानि, व्याकुलता) उत्पन्न हुई। श्रीराम ने उसकी ओर कृपापूर्वक देखा तो उस अनुताप के कारण धनुष का पाप एवं जड़त्व नष्ट हो गया। इस प्रकार श्रीराम ने धनुष को देखकर उसे (बाण चढ़ाकर) सुसज्जित कर लेने के लिए अपने बायें हाथ से पकड़ लिया।

श्रीराम की कुमारावस्था को देखकर जनक का शंका युक्त हो जाना और विश्वामित्र द्वारा उन्हें आश्वस्त करना– श्रीराम द्वारा धनुष को हाथ में लेते ही, जनक के मन में बड़ी आशंका (उत्पन्न) हुई। वे मुनि विश्वामित्र के पास आकर अत्यधिक व्याकुलता के साथ बोले। राजा जनक बोले– 'हे महर्षि, राम तो सुकुमारता (कोमलता) की राशि हैं। जिस धनुष ने रावण को लुढ़काकर लोटपोट कर डाला, वह इनके द्वारा कैसे सुसज्जित कर दिया जाएगा।'

श्लोक– जनक द्वारा कही हुई उस बात को सुनकर धर्मात्मा विश्वामित्र ने अन्तःकरण में प्रसन्न होकर कहा।

विश्वामित्र द्वारा राम को आदेश देना– राजा जनक ने अपने सन्देह को व्यक्त करते हुए जो बात कही, उसे विश्वामित्र ने सुना। परन्तु वे पूर्णतः सन्देह रहित थे (मुनिश्) सभा में बैठे हुए लोगों को सुनाते हुए वे (राम के प्रति) क्या बोले। 'सुनो हे ताप रघुनन्दन ! हे पुरुषसिंह, मनोवृत्ति में सावधान रहते हुए तुम अपने बल-बूते धनुष को चढ़ा दो। तुम तो, हे रघुनाथ, पुरुषार्थी पराक्रमी (बलवान) हो आधे पल में धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा दो और जनक तथा जानकी की अभिलाषा को पूर्णतः सफल कर दो'।

श्रीराम का आत्मविश्वास– अपने सद्गुरु का आदेश सुनते ही रघुनन्दन ने धनुष की ओर देखा और उसे बायें हाथ में पकड़कर उसपर डोरी चढ़ाने के लिए वे भली भाँति तैयार हो गए फिर वे ऋषि विश्वामित्र से बोले - 'आपकी आज्ञा से (मानों) मुझे आपकी कृपा ही प्राप्त हुई है। अब धनुष को उठाकर उसपर डोरी चढ़ाना कितना (बड़ा) काम हो सकता है ? वे बड़े बड़े (वीर) पुरुष व्यर्थ ही कष्ट को प्राप्त होकर कूँथते रहे। शिवजी के इस दिव्य धनुष पर डोरी चढ़ाना तो छोटा सा काम है अब देखिए मेरा प्रताप मैं डोरी चढ़ाते हुए बाण लगाकर खींच लूँगा'। रामचन्द्र द्वारा इस प्रकार (आत्मविश्वास के साथ) कहने पर विश्वामित्र आनन्दित, उल्लसित हो उठे। वे बोले– (हे राम !) धन्य है, धन्य है तुम्हारा मुख (कथन) ! तुम रविकुल में प्रताप के सागर (-से शोभायमान) हो'।

श्लोक– तब राजा जनक और मुनि विश्वामित्र एक साथ बोले 'हाँ, ऐसा ही करो'। तो मुनि के आदेश से (धर्मात्मा रघुनन्दन) राम ने धनुष को लीलया (खेल की-सी आसानी से) बीच में पकड़ा और उठा लिया।

श्लोक– फिर खेल की भाँति उसपर अनेक सहस्र मनुष्यों के देखते रहते, धर्मात्मा रघुनन्दन ने डोरी चढ़ा दी।

श्रीराम ने एक हाथ से ही धनुष को उठा लिया– (विश्वामित्र ने कहा 'हे राम !) तुम्हारे इस कथन के द्वारा मुझे अयुत कोटि (दस सहस्र करोड़) वीरों का बल सा दिया गया' मुट्ठी में धनुष पकड़कर खींच लो'। राजा जनक बोले– 'हे रघुनाथ ! मुझे ही ऐसा भ्रम हुआ था कि इस शिव-धनुष

को उठाकर अपने वश में करनेवाला कोई भी वीर पुरुष सचमुच (बिलकुल) नहीं होगा। पर तुमने समस्त सभाजनों के देखते, कीर्ति का मस्तक उज्ज्वल कर दिया। मैं तुम्हारे पराक्रम की कितनी प्रशंसा करूँ ? हे रघुनाथ ! तुम्हारी कीर्ति धन्य है। हे श्रीराम, तुमने अपने प्रताप की जो गरिमा बता दी है, उसे यथार्थ कर दिखा दो। हे पुरुषोत्तम रघुवीर ! धनुष सम्बन्धी कार्य को झट से पूर्ण सिद्ध कर दो'। गुरु विश्वामित्र और श्वसुर राजा जनक दोनों की बात को सुनकर धनुष को उसपर डोरी चढ़ाने के हेतु पूर्णतः खींचकर उठा लिया। रघुनाथ राम तो बलवानों में भी महा बलवान थे। उन्होंने धनुष को दूसरे हाथ से न छूते हुए एक ही हाथ से डोरी चढ़ा दी। इसमें सुर और असुर विस्मय को प्राप्त हुए। फिर कर तल (मुट्ठी) में पकड़कर धनुष की (राम द्वारा) टंकार करते ही उसकी उस ध्वनि से रावण की घिग्घी बँध गयी। अन्य राजा मूर्च्छित होकर भू-तल पर लुढ़क पड़े। दिग्गजों की बोलती बंद हो गई। धनुष को खींचते हुए राम ने उसे पूर्णतः खींचा भी नहीं था कि वह मुट्ठी में (मध्य भाग से) तड़तड़ ध्वनि करने लगा। फिर डोरी को पूर्ण रूप से खींचते ही वह बड़ी कड़कड़ाहट के साथ भग्न हो गया।

धनुर्भंग की ध्वनि का भयावह परिणाम— उस घनघोर कड़कड़ाहट के कारण वीरों की घिग्घी बँध गई। घोड़ों और हाथियों के खड़े शरीर किरकिराहट के साथ उलट गए। धनुष के भग्न होते समय की उस कड़कड़ाहट ध्वनि से सृष्टि गूँज उठी। मेरु पर्वत की पीठ पर दरार पड़ने जा रही थी। काल की दृष्टि दबकर फट-सी गई, कोटि-कोटि बिजलियाँ टूट पड़ी हों, वैसी ध्वनि के समान चाप ने कड़कड़ाहट की। सुर, नर, किन्नर (उस ध्वनि को सुनते ही) पागल हो गए। उस आवाज़ (के झपट्टे) के कारण वायु मानों उड़ने लगी, प्रलयकर वेग से बहने लगी। उस ध्वनि की अत्यधिक घोरता के कारण पृथ्वी (मानों) फटकर टुकड़े टुकड़े हो गई। आकाश से नक्षत्र (तारे) पेड़ों के पत्तों-से गिरने लगे। वे डगमगाते हुए नीचे गिरने लगे। उस प्रचण्ड ध्वनि की गति कैसी थी ? पक्षी तो उड़कर दूर भाग जाना भूल गए। वे भ्रमित होकर आकाश में भ्रमण करते रहे। उन सब की अपनी गति कुण्ठित हो गई। काल प्राणियों के प्राण छीन ले तो कैसे ले ? उस ध्वनि के भय से वह स्वयं भाग गया। अब वहाँ (किसको) कौन मारनेवाला हो ? (वस्तुतः) राम ही काल के लिए आकर्षण रूप हैं, राम ही काल को वश में करते हैं। उस धनुष के टुकड़ों के नीचे भूमि पर गिर जाते ही (भूमि का आधार स्वरूप) शेष अत्यधिक तिलमिला उठा। वराह की दाढ़ें (एक दूसरी से टकराकर) तड़तड़ बजने लगीं। कूर्म (कछुए) ने (डर के मारे अपनी) पीठ को सिकोड़ लिया। इस प्रकार सातों पाताल दब गए। समुद्र जल उमड़ उठे। शेष की शय्या (बैठने की मुद्रा) हिल उठी। मेरु आदि कुलपर्वत काँप उठे। स्वर्गलोक कम्पन को प्राप्त हुआ। भूमि में कम्पन आया। सत्यलोक थरथर कम्पित हो उठा। राम ने शिव धनुष को भग्न कर दिया, तो तीनों लोकों में उनका प्रताप छा गया। जनक और विश्वामित्र के, राम और लक्ष्मण के ही नेत्र सावधान थे (देख रहे थे)। अन्य सब लोग मूर्च्छित हो गए। इन चारों से ही अलग (दूरी पर स्थित) जनक कन्या सीता (यह सब) ध्यान से देख रही थी। राम के ऐसे बड़े प्रताप को देखकर वह उनका वरण करने के लिए अधीर हो उठी। शिव-धनुष के मन में यह बात आयी कि मैं राम के हाथों के स्पर्श से पूर्णतः मुक्ति को प्राप्त हुआ हूँ। इस दृष्टि से उसकी कड़कड़ाहट अर्थहीन नहीं थी। वह धनुष तो इस ध्वनि के रूप में आत्मानन्द के साथ गरज उठा था। आनन्द से उत्पन्न वह ध्वनि अति प्रचण्ड थी। उस ध्वनि से वैकुण्ठ लोक गूँज उठा। वैसे ही कैलास लोक भी उससे व्याप्त हो गया। उस ध्वनि को सुनते ही नीलकण्ठ शिवजी डोलने लगे। धनुष को इस प्रकार मुक्ति प्राप्त हुई। इससे क्षीरसागर का आनन्द उसके

कण्ठ तक भर आया और वह लबालब ज्वार को प्राप्त होकर उफनने लगा। शेषशायी भगवान् विष्णु को अतीव आनन्द हुआ स्वर्गलोक में देव जयजयकार करने लगे. राम के ऐसे प्रताप के कारण आनन्द से अ कार, उ कार म-कार और अर्द्धमात्रा से युक्त साक्षात् ओम् कार-स्वरूप शब्द ब्रह्म आनन्द से व्याप्त हो उठा। रघुवीर राम के ऐसे प्रताप से राजा जनक को वही अनुभव हुआ श्रीराम के हाथ के लगते ही शिव-धनुष परम मुक्ति को प्राप्त हुआ। श्रीरघुनाथ के प्रताप से मुक्ति का अर्थ मानों सार्थक हुआ। जिन श्रीराम के चरणों के लगने से पाषाण भी तत्काल मुक्त हो जाते हैं, उन्हीं के हाथों ने धनुष को उठा लिया। एसे श्रीराम के स्पर्श के कारण उसे पूर्ण मुक्ति प्राप्त हुई. जिन श्रीराम के नाम का स्मरण करने से स्वयं मुक्ति जड़ जीव का भी वरण करती है, उन्हीं के हाथों ने धनुष को उठा लिया ऐसे श्रीराम के स्पर्श के कारण उसे पूर्ण मुक्ति प्राप्त हुई। इस प्रकार शिव धनु को परम मुक्ति प्राप्त हुई। जनक का सन्देह पूर्ण मुक्ति को अर्थात् निराकरण को प्राप्त हुआ। जानकी की आँखों को नित्य की तृप्ति प्राप्त हुई. जिनके कारण यह हुआ वे श्रीराम स्वयंवर सभा में मूर्तरूप में उपस्थित थे। रावण के घमण्ड का नाश हुआ। इसकी आशाओं के पाश कटकर पूर्णतः छूट गए। (स्वयंवर सभा में उपस्थित) राजाओं का बल प्रताप सम्बन्धी घमण्ड सदा के लिए छूट गया। जिनके कारण यह सम्भव हुआ, वे श्रीराम स्वयं मूर्तिमान स्वयंवर सभा में उपस्थित थे। जिनके कारण वेदों द्वारा (ब्रह्म स्वरूप सम्बन्धी) की जानेवाली व्याख्या के शब्द कुण्ठित हो जाते हैं ('नेति', 'नेति' कहकर मौन धारण कर रहते हैं), शास्त्रों द्वारा इसमें आयोजित की जानेवाली युक्ति-प्रयुक्ति युक्त चर्चा समाप्त हो जाती है, जिनके रूप में जानकी के नयनों के अन्य दृश्य पदार्थ समाप्त हो जाते हैं (एक मात्र राम रूप ही दृश्य स्वरूप बना रहता है), वे श्रीराम स्वयंवर सभा में मूर्त रूप में उपस्थित थे। सीता किसका वरण करेगी, इस विषय में जन समुदाय को जो सन्देह था, वह नष्ट हुआ। सुर समुदाय को अपने बन्धन से मुक्त हो जाने के विषय में विश्वास हुआ, भक्तों को उनके अपने सन्ताप से (जिनकी कृपा से) मुक्ति मिलती है, वे श्रीराम स्वयं स्वयंवर सभा में उपस्थित थे।

सीता की मनोदशा-- श्रीराम के प्रताप के ऐसे आनन्दोत्सव को देखने का सौभाग्य सबको कैसे प्राप्त हो सकता है ? (अहंकार, अज्ञान आदि के कारण) उनकी आँखों में अन्धता उत्पन्न हुई थी परन्तु जनक कन्या स्वयं राम को और उनके प्रताप को देखने के सुख का उपभोग कर रही थी। श्रीराम के दर्शन स्वरूप सुख का आनन्दोत्सव सा देखते हुए जानकी की आँखों को तृप्ति हुई। वह अपने प्रेमभाव के विचार से उनके गले में वरमाला पहनाने के लिए अधीर हो उठी। धनुर्भंग से उत्पन्न करोड़ों ध्वनि प्रतिध्वनियाँ आकाश के अन्दर धीरे-धीरे शान्त हो गई। फलस्वरूप समस्त सृष्टि सचेतावस्था को प्राप्त हुई। लोगों की आँखें खुल गयीं, लोग सचेत सावधान हो गए। सभा में उपस्थित लोग अपने-अपने स्थान पर बैठ गये। धनुष को टूटा हुआ देखकर सबका मन विस्मय-चकित हो गया। जनक का सन्देह दूर हो गया। राम बड़े शक्तिशाली बाहुवाले, महाबलवान हैं, इस सम्बन्ध में राजा जनक सब प्रकार से सन्देह रहित हो गए। यह जानकर राजा जनक बोले ·

अत्यधिक उल्लास के साथ, आनन्द के साथ जनक विश्वामित्र से बोले 'इससे पहले बहुत ऋषियों ने मुझसे यह कहा था कि सूर्यवंश परम्परा में राम नामक दशरथ के पुत्र हैं, वे अपने तेज में अत्यधिक अद्भुत हैं; वे अचिन्त्य अर्थात् कल्पनातीत, अनन्त सामर्थ्यवान हैं। मैंने अपनी आँखों से अब इस रूप में देखा है कि श्रीराम (सचमुच) प्रतापशाली हैं जिन्होंने शिवजी के धनुष को लीलया दो खण्डों में तोड़ डाला, उन श्रीराम का प्रताप प्रचण्ड है। इससे रावण का मुँह काला हो गया। डोरी पूर्ण रूप से

खींची भी नहीं गयी थी कि शिव धनुष कड़कड़ाहट के साथ भग्न हो गया। उनके प्रताप की बड़ाई की सराहना कौन करे, कितनी करे। जनक कुल की कन्या श्रीराम की भार्या हो जाएगी। उससे मेरा कुल सार्थक हो जाएगा। हे ऋषिवर, आपका ही यह महत्कार्य है; हे विश्वामित्र, आप धर्मात्मा हैं। आपके ही ऐसे कार्य से श्रीराम से भेंट हुई। आपके कारण ही समस्त कार्य पूर्ण हो गए। परमात्मा राम मेरे सुहृद (सखा) सिद्ध हो गये हैं। आपका लोक में 'विश्वामित्र' नाम प्रचलित है, पर आप (वस्तुतः) मेरे परम 'मित्र' हैं। राम परम पवित्र हैं, परमात्मा हैं, सखा हैं। मेरा पहले से ही किया हुआ यह संकल्प (दृढ़ निश्चय) है; सीता का विवाह इस अमूल्य धनुष के प्रताप के अधीन रहा। आपने उसे बिना किसी सन्देह के पूर्ण किया। श्रीराम उस संकल्प को पूर्ण सत्य सिद्ध करनेवाले ठहरे। इस स्वयंवर के लिए कठोर प्रण निर्धारित था। रावण सहित (बड़े-बड़े) राजा भग्न मनोरथ असफल हो गए। श्रीराम ने सीता द्वारा वरण किये जानेवाले के लिए अपने को प्रतापवान सिद्ध करते हुए उस धनुष पर डोरी चढ़ा दी। अब श्रीराम सीता के पति सिद्ध हो गए हैं। आप विश्वामित्र इस कार्य को सम्पन्न करनेवाले हो गये हैं। हे ऋषिवर, ब्रह्मा द्वारा प्रस्तुत सूत्र को आप भली भाँति जानते हैं'। विश्वामित्र के चरणों पर मस्तक टिकाते हुए जनक बोले, 'सीता मेरे लिए प्राणों के समान प्यारी है. उसे मैंने रघुनाथ राम को समर्पित कर दिया। मेरा यह धनुर्यज्ञ आज सफल हो गया। आज मेरा कुल पावन हुआ। आज सीता का भाग्य उसके अपने अनुकूल हो गया। श्रीराम के कारण सुख में ज्वार आ गया। मेरी यह कन्या सीता गुणहीन हो, वा गुणवती हो, मैंने राम को समर्पित की है। हे विश्वामित्र, आप ज्ञानी हैं। आप झट से यह विवाह सम्पन्न करा दें। विश्वामित्र ने जनक की ऐसी विनती सुनकर प्रत्युत्तर में उल्लसित होते हुए कहा- 'ठीक है'।

सीता द्वारा राम को वरमाला समर्पित करना- विश्वामित्र ऋषि और राजा जनक की यह बात सुनते ही सीता हाथी पर विराजमान हुई और उस हाथी को (राम के प्रति) चलने को प्रेरित किया गया। इस प्रकार (गजारूढ़ होकर) गौर-वर्णा सुन्दरी सीता बड़े उल्लास के साथ श्रीराम के गले में वरमाला पहनाने के लिए आ गई। सीता के मन में जो बात थी, उसी को श्रीराम ने सम्पन्न किया था। अतः अद्भुत आनन्द के साथ सीता उनका वरण करने के लिए झट से आ गई। जनक-कन्या सीता हाथ में चित्स्वरूप रत्नों की माला लेकर आनन्द के साथ आगे आ गई और समस्त राजाओं के देखते रहते, उसने श्रीराम के गले में माला पहना दी। श्रीराम और सीता की दृष्टि-भेंट होते ही (आँखों के मिलते ही) लज्जा भावना विमुख होकर नष्ट हो गई। समस्त सृष्टि आनन्द से उमड़ उठी। स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण- इन चारों देहों की गाँठें खुल गईं। उन दोनों का आत्मिक मिलन हो गया। साथ ही वह ध्यान से देखने लगी। आँखों ने आँखों का वरण किया। दोनों की आँखें मिल गयीं, प्राणों ने प्राणों का वरण किया और इस प्रकार (सीता-स्वरूप) जीव तथा राम-स्वरूप परमात्मा शिव का विवाह हो गया। उस धनुष को श्रीराम द्वारा भग्न कर डालते ही सीता का पाणिग्रहण करने की इच्छा करनेवाले अन्यान्य वीरों के अभिमान का अन्त हुआ। उस मध्याह्न के समय सूर्य तप रहा था। उस शुभ अभिजित मुहूर्त पर सीता का वरण करने के हेतु (सूर्यकुल-भूषण) श्रीराम आ गए। (कुलस्वामी आदिपुरुष) सूर्य ने लग्न घटिका (मुहूर्त की वेला) ठीक से देखी, तो समस्त लोगों की वाणी ने मौन धारण किया। आत्मबोध (ज्ञान) ने सावधान होने की सूचना की। दोनों पक्षों के लोगों के मन सावधान हो गए- लोग ध्यान से देखने लगे। (वस्तुतः) धनुष के भग्न होते ही जो गर्जन हुआ, उसी में राम और सीता के बीच जो अन्तर-स्वरूप पट था वह दूर हो गया (विवाह निर्धारित न हुआ था, अतः दोनों में जो मानसिक दुराव था, वह नष्ट

हो गया। (गुरु द्वारा) 'ॐ पुण्याहम्' कहते हुए सीता के प्रति झट से श्रीरघुनाथ राम का वरण करने का विचार व्यक्त किया गया। इस प्रकार उचित मुहूर्त प्राप्त करके, दोनों पक्षों के हेतु निःशेष रूप से पूर्ण होने के कारण अपनी अभिलाषा करनेवाले अन्य सब लोगों के घमण्ड को नष्ट करके सीता ने श्रीराम का वरण किया। वे दोनों एक दूसरे को अत्यधिक प्रेम से देख रहे थे। चित् और अचित् (शिव और जीव) के बीच जो बड़ी गाँठ लगी हुई थी (अन्तर था), वह खुल गई। वे दोनों आत्मिक एकता-एकात्मता के साथ वेदी पर बैठ गए। वधू-वर एक दूसरे को देख रहे थे, तो वधू में वर दिखायी दे रहा था और वर के रूप में सुन्दरी वधू (प्रतिबिम्बित) दिखायी दे रही थी। इस स्थिति में वधू ने वर का वरण किया। (वे दोनों एकात्म होकर एक-दूसरे में रूपांकित दीख रहे थे)। जिस क्षण सीता ने श्रीराम को वरमाला पहना दी, उसी समय दुर्दशा ने रावण का वरण किया और उसके भाल पर कलंक का तिलक लगा दिया। दुर्दशा के इस प्रकार पीठ पर आरूढ़ हो जाते ही, रावण सृष्टि में अपमान को प्राप्त हुआ। श्रीराम के प्रताप को अपनी आँखों से देखने पर रावण के मन में घबराहट छा गई।

अन्य उपस्थित लोगों का परम आनन्दित हो जाना— जब रामचन्द्र धनुर्भंग करते हुए प्रण जीतकर विजयी हुए, तो विश्वामित्र ऋषि-वृन्दसहित आत्मिक आनन्द और तृप्ति से सहर्ष नाचने लगे (उनका मन नाचने लगा)। कोई एक दुबले पतले थे, कोई एक नंगे सिर थे। कुछ एक वृद्ध लंगोटी लगाये हुए थे। सब हर्षपूर्वक इसलिए नाचने लगे कि रघुकुल तिलक राम का सीता से परिणय हो गया। सीता से राम ने परिणय किया; इसलिए सब आनन्दपूर्वक नाच रहे थे। कुछ एक गोपी-चन्दन की डालियाँ उछालते हुए झेल रहे थे, तो कुछ एक धोतियाँ, उनके तह किये पल्लव झुला रहे थे, सब आनन्द के साथ नाच रहे थे। कुछ एक ने अपने अपने उपरने (दुपट्टे) निछावर किये; कुछ एक ने पुरानी धोतियाँ ही निछावर कीं। कुछ एक ने दर्भ तथा जनेऊ (अथवा दर्भ से बनायी अंगूठियाँ) निछावर किये। उन्होंने यह इसलिए किया कि रामचन्द्र ने सीता को जीत लिया था, प्रण जीतकर उसे विवाह में प्राप्त किया था। रघुनन्दन राम स्वयं विजयी हुए, इसलिए कुछ एक ने कौपीन लुटा दिये, कुछ एक कुश के आसन, तो कुछ एक ने कृष्णाजिन (मृगचर्म के बने आसन) निछावर कर दिये। बड़े बड़े ऋषि मंत्र पाठ करते हुए गर्जन कर रहे थे— उच्च स्वर में मंत्र पढ़ रहे थे। स्वर्ग लोक में देव जय जयकार कर रहे थे। श्रीराम विजय को प्राप्त हुए, इसलिए पुष्प-राशियों की बौछार कर रहे थे। सुख की अधिकता से देव झट से उठ गए। उन्होंने हर्ष को सूचित करनेवाले ध्वज फहरा दिये क्योंकि (उन्हें विश्वास हो गया कि) राम उनके बन्धन खोल देंगे (रावण की बन्दीशाला से मुक्त कर देंगे)। राजा जनक के (प्रासाद के) महाद्वार पर नगाड़े और तूर्य बज उठे। आकाश मंगलतूर्यों की ध्वनि से तथा (सबके द्वारा किये हुए) जयजयकार के गर्जन से गरज-गूँज उठा। इतने में विश्वामित्र ने उल्लासपूर्वक राम और सीता को रथ में बैठा दिया और वे राजा दशरथ से मिलने के लिए वेगपूर्वक निकल पड़े (निकल जाना चाहते थे)। सीता को हमने जीत लिया, इससे लक्ष्मण उल्लासपूर्वक नाच रहा था। (यह देखकर) वह घोड़ों की लगाम पुनः सम्हालते हुए रथ पर आरूढ़ हो गया। राजा जनक ने यह देखा कि श्रीराम और सीता का प्रस्थान करना ऋषिवर विश्वामित्र पर अवलम्बित है, तो विनम्र होकर उन्होंने उनके चरणों में दण्डवत् नमस्कार किया। (वे बोले—) 'हे विश्वामित्र, आप गुरु के नाते पूर्णतः श्रेष्ठ हैं, सर्वोपरि हैं। स्वयंवर सभा में सीता ने श्रीराम का वरण किया है। हे ऋषिवर, अब श्रीराम और सीता का आप विवाह द्वारा यथाविधि पाणिग्रहण करा दें'। फिर जनक बोले— 'हे विश्वामित्र ! आप दोनों पक्षों के आप्तजन हैं। शास्त्र-विचार

का ध्यान रखते हुए आप वधू और वर को यहाँ (विवाह होने तक) ठहरा दें'। राजा जनक के सुमेधा नामक सती पतिव्रता धर्मपत्नी थी। वह श्री राम को देखने के लिए दौड़ी। (जनक बोले) 'आप सीता को वाम भाग में बैठाइएगा। आप राजा दशरथ को लिवा ले आएँ और उत्साह एवं सम्मान के साथ विवाहोत्सव सम्पन्न कराएँ। हे अनघ ऋषिवर ! हे कृपालु ! आप इस प्रकार दोनों कुलों को सुख प्रदान करें'। राजा जनक की यह विनती सुनकर कौशिक कुलोत्पन्न विश्वामित्र मन में सुख को प्राप्त हुए, इसलिए उन्होंने श्रीराम को ऋषि वृन्द सहित ठहरा लिया।

उपसंहार– (कवि कहता है - प्रण के अनुसार) श्रीराम द्वारा धनुष को तोड़ डाले जाने पर सीता ने उनका वरण (किस प्रकार) किया, इसका आरम्भ से अब निरूपण किया है। अब राम सीता का पाणिग्रहण करेंगे। इस विवाह विधि के विषय में अब सुनिए। मैं एकनाथ अपने गुरु जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हूँ। इसके पश्चात् (उस विवाह का) रसात्मक निरूपण किया जा रहा है। ज्ञानी श्रोता उसका श्रवण करें।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ-कृत 'भावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत बाल-काण्ड का 'धनुर्भंग एवं सीतावरण' शीर्षक यह बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय २१

[राजा दशरथ का मिथिला के प्रति आगमन]

रावण आदि के चले जाने के पश्चात् दशरथ-वसिष्ठ को जनक द्वारा आमंत्रित करवाना– सीता का राम से विवाह हो रहा है, यह बात सुनते ही रावण ने अपना काला मुँह नहीं दिखाया (दिखाना ही नहीं चाहा)। वह सिर झुकाकर चला गया। श्रीराम का प्रताप देखकर अन्य राजा कम्पायमान हो उठे। वे राजा घमंड का त्याग कर अपने-अपने नगर के प्रति चले गये। इस प्रकार राम ने अनेक राजाओं, राक्षसों (राक्षस राजाओं) को विमुख कर दिया। उससे राजा जनक को अत्यधिक सुख हुआ। इस विवाह के कारण उन्हें परम हर्ष हुआ। राजा जनक ने विश्वामित्र से कहा– 'मैं शीघ्र ही राजा दशरथ को लिवा लाने के लिए अपने मंत्री को भेज रहा हूँ। पर वे इस (आमंत्रण) को स्वीकार नहीं करेंगे'।

श्लोक– हे ब्रह्मन् कुशिक नन्दन, आपका कल्याण हो। आपकी अनुमति हो, तो मेरे मंत्री रथारूढ़ होकर बड़ी उतावली (उत्सुकता) के साथ अयोध्या जाएँगे।

राजा जनक के द्वारा आज्ञा देने पर उनके दूत अयोध्या के लिए रवाना हो गए। रास्ते में वाहनों (घोड़ों) के थक जाने से तीन दिन में (रात को) विश्राम करके वे चौथे दिन अयोध्यापुरी में प्रविष्ट हो गए।

हे ऋषिवर कुशिक नन्दन ! सुनिए। आपका पत्र न हो, तो दशरथ राजा ब्रह्मा आदि (की बात) को भी नहीं स्वीकार करेंगे। इस स्थिति में मुझ मच्छर (-से तुच्छ व्यक्ति) को कौन पूछेगा ? आपकी पहचान देनेवाला चिह्न न प्राप्त होने पर वसिष्ठ इस विवाह में नहीं आएँगे। हे सर्वज्ञता ऋषिवर ! पत्र द्वारा अनुज्ञा दीजिए। हमारी आपकी एकात्मता सूचित करते हुए विनम्रता के साथ पत्र लिखें श्रीराम का

बड़ा पराक्रम देखकर (राजा जनक ने) सीता उन्हें विवाह में देना चाहा है। राम पराक्रम की दृष्टि से सबसे श्रेष्ठ हैं। अतः आप स्पष्ट रूप में (यह बात) पत्र में लिखिए, जिससे श्रीवसिष्ठ ऋषि सुख को प्राप्त हो जाएँ और अजराज के सुपुत्र राजा दशरथ सुख के साथ सन्तोष को प्राप्त हो जायँ। राजा जनक की यह बात सुनकर विश्वामित्र सुख सम्पन्न हो गए। उन्होंने अपने मंत्री को बुलाकर उससे आमंत्रण पत्र लिखाया। (वस्तुतः) अन्य किसी का लिखा पत्र तो प्राणहीन ही होगा। पर यहाँ तो मंत्री ही स्वयं पत्र स्वरूप थे (पत्र लेकर जा रहे थे)। और वरिष्ठ ऋषिवर विश्वामित्र पत्र लिखनेवाले थे अतः वह पत्र उस (कारण) से ही परम पवित्र था श्रीराम का अपना मूर्त स्वरूप क्षर अक्षर (नाशवान-अविनश्वर) के परे था। विश्वामित्र ने पत्र लिखकर मंत्री के हाथ में थमा दिया। उस पत्रिका का महत्त्वपूर्ण अर्थ (गूढार्थ) पढ़ना (समझना) अकेले वसिष्ठ ऋषि ही जानते थे, उसे समझ लेने का यत्न करने में अन्य लोगों को बड़ा कष्ट ही हो जाना। समस्त बात अयोध्या में स्पष्ट (रूप से विदित) हो सकती थी, अत्यधिक प्रीति के साथ प्रेमरूपी कुंकुम से वह पत्रिका अंकित थी। वह शोभादायी स्थिति में शोभायमान थी (विश्वामित्र जैसे ऋषिवर द्वारा राजा जनक की इच्छा से लिखा होना और मंत्री के हाथों पहुँचाया जाना, यही उसकी सच्ची शोभा, सुन्दरता थी) जिसकी प्रधानता (बड़ाई) त्रिभुवन में छायी हुई थी, ऐसे उस मंत्री के हाथ में विश्वामित्र ने वह पत्रिका थमा दी।

राजा जनक के दूतों का अयोध्या में आगमन– (वह रथ कैसा अद्भुत था ?) वह मंत्री मनोरथ रूपी रथ में आरूढ़ हुआ। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चारों पुरुषार्थ उसके चार घोड़े थे। जिसके कारण मन की-सी गत उस रथ को प्राप्त होती हो, ऐसा ही सारथी उस रथ की धुरा पर विराजमान हो गया। इस प्रकार जो अपनी स्थिति-गति-विधि में सन्नद्ध सुसज्जित था, उसी सारथी को रथ लेकर शीघ्र गति से भेजा गया। वह तीसरे दिन के निवास स्थान (मुक्काम) के बाद (तीन दिन बाद) अयोध्या में पहुँच गया। अब इन निवासस्थानों की स्थिति (स्वरूप) के विषय में सुनिए। प्रथम निवास श्रवण तथा मनन नामक पुरी में हुआ। दूसरा हुआ निदिध्यास (अनवरत, अखण्ड ध्यान) नामक नगरी में और तीसरा निवासस्थान था साक्षात्कार नगरी में। तदनन्तर थी अयोध्यापुरी। वहाँ मंत्री पहुँच गया। (विश्व-विख्यात सप्त पुरियों में) अयोध्या सर्वप्रथम मानी जानेवली मुक्तिदात्री पुरी है। उसमें इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न राजा अज के सुपुत्र दशरथ राज कर रहे थे। श्रीराम की वही अपनी नगरी थी। मंत्री वहाँ तक पहुँच गया।

राज-सभा में मंत्री द्वारा निवेदन करना– दशरथ की राजसभा गुरु वसिष्ठ के (अस्तित्व के) कारण श्रेष्ठ थी। उसके सामने देवराज इन्द्र की तुच्छ सभा क्या है ? जनक राजा के मंत्री ने उसे देखकर (मानो) श्रीराम की विजय की ध्वजा खड़ी करवायी, फहरा दी। सीता अत्यधिक सुन्दर है। श्रीराम द्वारा शिवजी के धनुष को भग्न कर देने से उसने उनका वरण किया। मंत्री उनके विवाह में उपस्थित रहने के हेतु आमंत्रित करने के लिए आया है– यह जानकर घर-घर में आह्लाद छा गया। श्रीराम ने शिव धनुष (की डोरी) को पूरा खींचा भी नहीं था– खींचते रहते ही वह कड़कड़ाहट के साथ भग्न हो गया। रावण मारे आतंक के नीचे गिर पड़ा। बेचारे सभा जन मूर्च्छित हो गए। धनुष की कड़कड़ाहट के साथ बीसियों राजा मूर्च्छा को प्राप्त हो गए। कालपुरुष मारे डरके लोट-पोट होकर लुढ़क गया। कलिकाल भी मन के अन्दर घबड़ा उठा। सद्गुरु कुशिक-नन्दन विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण को (धनुर्वेद आदि भली भाँति सिखाकर) अभ्यास कराया। वे विद्याओं में प्रवीण हो चुके हैं। वीरों में श्रेष्ठ वे वीर पुरुष लोकों में यश को प्राप्त हो गए हैं। राजा जनक का प्रण अति कठिन था, सीता के विवाह के हेतु

वीरों को शिव धनुष के बल की परख करनी थी। प्रण यह था जो कोई बलवान पुरुष उसे डोरी चढ़ाकर सुसज्जित करेगा उसको जानकी वरमाला पहनाएगी। सामर्थ्यशील श्रीराम ने राजा जनक के उस प्रण को सिद्ध किया- जीत लिया। समस्त सभाजनों को कष्ट पहुँचाते हुए (आतंकित करके) श्रीरघुनाथ राम ने सीता को जीत लिया।

राजा दशरथ और उनकी प्रजा का आनन्दित हो जाना– मंत्री की सुखदायिनी ऐसी बात सुनकर सभाजन जयजयकार करते हुए गरज उठे। नगाड़े और भेरियाँ बजायी जाने लगीं। मंगल तूर्य की ध्वनि से आह्लाद प्रकट किया जाने लगा। घर घर ध्वज खड़े करवाये गए। नर नारियाँ परम आनन्द के साथ यह बात करने सुनने लगे कि जनक राजा द्वारा आयोजित शील के स्वयंवर में राम ने सुन्दरी सीता का वरण किया मंत्री ने श्रीराम की ख्याति का, श्रीराम की कीर्ति का बखान करके उस सभा को भूमि पर दण्डवत् लेटकर प्रणाम किया राजा दशरथ को अति आह्लाद हो गया। उन्होंने मंत्री को सम्मानित किया। उन्होंने उसे मुकुट और कुण्डल प्रदान करके गुरु वशिष्ठ के समीप बैठा दिया। राजा दशरथ ने (धन धान्य के) भण्डारों को खोलकर उदार हाथों से दान दिये। ब्राह्मणों को गायों के झुण्ड और अन्न के भण्डार दान में प्रदान किये। राजा दशरथ परम आनन्द में डूबे रहे। गुरु वशिष्ठ सचमुच सुख को प्राप्त हो गए। वह मंत्री भी अत्यधिक बुद्धिमान था। उसने उचित समय पर वह पत्र राजा को दिया विश्वामित्र की युक्ति चतुराई ऐसी थी कि समस्त सिद्धियों की सिद्धि के हेतु सर्वप्रथम सद्गुरु वशिष्ठ से विनती करने के पश्चात् उन्होंने राजा जनक का कार्य सम्बन्धी विचार बताया

विश्वामित्र द्वारा प्रेषित आमंत्रण पत्रिका को देखकर गुरु वसिष्ठ का आनन्दित हो जाना– वसिष्ठ ने पत्र पढ़ा, तो राम का अति अद्भुत प्रताप उनको विदित हुआ। उससे उनकी आँखें सजल हो गईं। वे बोले धन्य हैं विश्वामित्र राजा दशरथ के भाग्य भी धन्य हैं हम सौभाग्य की दृष्टि से भाग्यशाली हैं। जानकी के आठों अंग धन्य हैं जिससे वह राम के अर्धांग को प्राप्त हुई, राम की अर्धांगिनी (पत्नी) सिद्ध हुई। भगवान् के पूर्ण अवतार श्रीराम की यह तो बाललीला है। बाल्यावस्था में ही उनका प्रताप अनोखा सिद्ध हो गया है, जिसके पति ब्रह्म की साक्षात् मूर्ति ही है, वह जनक-कन्या जानकी धन्य है'। वसिष्ठ ने इस प्रकार बहुत प्रेम के साथ उस पत्रिका की (पत्रिका के केन्द्रीय विषय बने हुए राम और जानकी की) स्तुति की। पत्रिका में क्या विचार लिखा गया है, उसे श्रोतागण ध्यान से सुनें। 'ओम् नमः। हे स्वामी वसिष्ठ ! आपको नमस्कार है, हे आत्मज्ञान की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ ! परम आत्मानन्द (की अनुभूति) से आपकी प्रतिष्ठा (महत्ता, आदर) बड़ी है हे वसिष्ठ ऋषिवर, मेरी विनती सुनिए। राजा जनक की यह उत्कट बड़ी आकांक्षा है कि आपसे आह्लाद के साथ भेंट हो। आप कृपा-पूर्ण नेत्रों से वधू वर को देखें (सबको) इस विवाह से सन्तोष आप (के दर्शन और आशीर्वाद) से ही होगा, श्रीराम ने धनुष पर बाण चढ़ाने के हेतु उसकी डोरी को खींचते ही सीता को स्वयंवर सभा में जीत लिया। हे कृपानिधि, आपके आगमन करने पर विवाह की विधि सिद्ध सम्पन्न हो जाएगी। आपके कारण ही सीता राम स्वरूप प्रकृति पुरुष का विवाह पूर्ण सम्पन्न होगा। आप तो कारण कार्य के हो आदि कारण हैं। विवाह आपके कारण ही शुभ मंगल सिद्ध होगा राजा दशरथ की दसों इन्द्रियों के आप ही कर्ता और नियन्ता हैं। श्रीराम सीता के पाणि ग्रहण संस्कार के मुख्य कर्ता कुलगुरु आप ही हैं। आपकी आज्ञा अति सामर्थ्यशील (अनुल्लंघनीय) होती है। आकाश में सूर्य ने आपका (रघुई) अंगोछा स्थापित करवाकर वन्दन किया है। यह रघुवंश आपके कारण ही सनाथ है। आपके हाथों ही यह विवाह समाप्त (पूर्ण)

होनेवाला है')। इस प्रकार विश्वामित्र ऋषि ने अपनी स्थिति स्थान के अनुसार वसिष्ठ ऋषि के प्रति पत्र में विनती की थी फिर राजा जनक ने राजा दशरथ से पत्र द्वारा (इस प्रकार) प्रार्थना की ।। स्वस्ति।। हे श्री अजराज के सुपुत्र राजा दशरथ ! हे सूर्यवंश के वंशध्वज ! हे महाराज दशरथ ! आपके सुपुत्र श्रीराम विजयी हो गये हैं। श्रीराम प्रताप में अद्वितीय सिद्ध हो चुके हैं। उन्होंने मेरी कन्या का स्वयंवर के प्रण को जीतकर वरण किया है। हे भूपाल ! आप उनके विवाहोत्सव को देखने के लिए पधारें। श्रीराम की माताओं को सुखासनों (पालकियों) में (विराजमान कराकर) ले आएँ। भरत और शत्रुघ्न दोनों को हाथी पर बैठाकर ले आएँ। छोटे-बड़े सेवकों, मित्रों को, सेनापति को, समस्त आप्तजनों को सपरिवार स्वयंवर विवाहोत्सव देखने के लिए ले आएँ राजा जनक के ऐसे आमंत्रण पत्र को देखकर दशरथ को बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने रथों, हाथियों को झट से सजाने को प्रेरित किया, आदेश दिया। (वे बोले) 'सद्गुरु विश्वामित्र धन्य हैं उनकी धनुर्विद्या (-प्रवीणता) अति विचित्र है। उन्हीं विश्वामित्र के प्रताप ने रघुवीर राम को तथा हम को उपकृत किया है। (उन्हीं की कृपा से) राम ने ताटिका का वध किया; यज्ञ (स्थान) में घोर भीषण राक्षसों को मार डाला। गुरु द्वारा दी हुई ऐसी धनुर्विद्या के प्रयोग से (मेरा पुत्र) रामचन्द्र शिवधनुष को भग्न करके सुन्दरी सीता का वरण कर सका है। सद्गुरु विश्वामित्र ने अपनी सुविद्या प्रवीणता इस प्रकार देकर रघुपति राम को प्रतापवान बना दिया। उन ऋषि (विश्वामित्र) की यह आज्ञा है कि हम राम-सीता के विवाह में आ जाएँ। अतः हमें सब प्रकार से वहाँ जाना है'।

मिथिला नगरी के प्रति गमन करने के हेतु राजा दशरथ द्वारा तैयारी करना—

श्लोक— तदनन्तर रात के बीत जाने पर पुरोहित और बन्धु-बान्धवों सहित राजा दशरथ आनन्दित होकर सुमंत्र से यह बोले-

श्लोक— आज हमारे समस्त धनाध्यक्ष बहुत-सा धन लेकर विविध प्रकार के रत्नों से सम्पन्न होकर सुविहित (रक्षा आदि की निर्धारित व्यवस्था के साथ) सब के आगे चलें।

नगर में रात बिताकर राजा दशरथ मंत्री सुमंत्र से बोले— श्रीराम और सीता के विवाह के लिए हमें अति शीघ्रता से मिथिला जाना है। झट से भाण्डार खोल दें; कोटि-कोटि (मुद्राओं का) धन निकाल लें उसे हाथियों और घोड़ों की पीठ पर लाद दें और जो शेष रहे, उसे गाड़ियों में भर दें। मुकुट कुण्डल, (विविध) आभूषणों, रत्नों और मोतियों की राशियाँ, (रूई के) सूत्रों, पट-सूत्रों और रोम (ऊन के) सूत्रों के बने (विविध प्रकार के) चित्र विचित्र वस्त्र सब साथ में लें राजरानियाँ अत्यधिक सुकोमल हैं। उन्हें अलंकारों, वस्त्रों से विभूषित, कोमल पत्रों से आच्छादित छत्रों सहित, वाद्यों के गर्जन के साथ अति शीघ्रतया ले चलें राजा दशरथ को बहुत आनन्द हुआ था। उन्होंने अपने पुत्रों, भरत और शत्रुघ्न को मनोहारी आभूषणों से विभूषित करके झट से रथ में बैठा दिया। वीर्यशाली सेनापति ने वीर सैनिकों के समूह सजा लिये, अस्त्र शस्त्रों तथा आभूषणों से विभूषित कर दिये। साथ में ध्वज, पताकाएँ, गरजनेवाले वाद्य थे, रथ और हाथी घडघड़ाहट के साथ चले। सेना की पंक्तियाँ एक साथ चलीं विविध प्रकार के तूर्य (तुरहियाँ) बज रहे थे। बड़े उम्दा हाथी गरज रहे थे। भाट स्तुति पाठ गरज गरजकर (उच्च स्वर में) कर रहे थे, वीरों ने उच्च स्वर में नारे लगाये। सिंह के-से गम्भीर स्वर के साथ उन्होंने तालियाँ बजायीं इस प्रकार राजकुल (राजपरिवार) जनक कन्या सीता से राम का विवाह कराने के लिए चला। उत्तम रथ लाकर उनमें राजा दशरथ ने वसिष्ठ, वामदेव, मार्कण्डेय, जाबाली (आदि) महर्षियों को बैठा दिया। कात्यायन आदि असीम गहन ज्ञानी, ब्रह्म निष्ठावान् उन श्रेष्ठ ऋषियों को रथों में विराजमान कराया

गया, जो राजा दशरथ के समीप नित्यप्रति रहा करते थे। जिनके वचनों की महानता के कारण कलिकाल पुरुष भी उनके पाँव लगता था, ऐसे निर्भय प्रभावशाली श्रेष्ठ ऋषि भी राम की बारात में (सम्मिलित होने के लिए) आये। इस प्रकार सामने और बड़े बड़े ऋषि थे मध्य भाग में अपने पुत्रों सहित स्वयं राजा दशरथ थे। पीछे सेना सम्भार (दल था) ये सब शीघ्रगति से मिथिला के प्रति आ गए। नामकीर्तन, विरक्ति और भक्ति रूपी इन तीन मुकामों पर उन्होंने (रात को) निवास और चौथे मुकाम में उन्हें अपने भगवत्प्रेम के कारण रघुपति श्रीराम मिले। (भावार्थ यह कि साधक को नाम कीर्तन, वैराग्य और भक्ति के द्वारा ही उसके अपने भगवत्प्रेम के बल पर ब्रह्म का साक्षात्कार हो सकता है)। 'अहम्' अर्थात् 'मैं' ('यह मैं हूँ मेरा अस्तित्व स्वतंत्र है', यह द्वैत भाव), 'सोऽहम्' अर्थात् 'वह ब्रह्म मैं ही हूँ' (ऐसी अद्वैतानुभूति), 'कोऽहम्' अर्थात् 'मैं कौन हूँ' यह साधक की जिज्ञासा वृत्ति इन तीनों मुकामों, अवस्थाओं में से जो साधक गुज़रता है, जिसकी वहाँ तक पहुँच होती है उसे श्रीराम स्वरूप ब्रह्म निश्चय ही मिलेंगे। (भावार्थ यह कि साधक को उत्कट जिज्ञासा– अभिलाषा के साथ द्वैत स्थिति से अद्वैत भाव की ओर बढ़ना पड़ता है। अन्त में उसे भगवान् का साक्षात्कार हो जाता है)। दृश्य, द्रष्टा और दर्शन की अवस्था– इन तीनों मुकामों पर निवास करते हुए आगे साधना पथ पर चलने से चौथी अवस्था में भगवान् राम (साधक से) अवश्य मिलेंगे। विदेह नगरी में, विदेह स्थिति में राम स्वाभाविक स्थिति में रहते हैं। वहाँ तक जाकर जो निवास कर सकता है, उसे निश्चय ही राम मिलेंगे। (भावार्थ यह है कि ब्रह्म राम के वहीं दर्शन होंगे, उसी से वे मिलेंगे, जो देह के रहने पर भी दैहिक राग लोभादि विकारों, सांसारिक सुखोपभोग की इच्छाओं से मुक्त रहता हो)। देह के रहने पर भी जो विदेह-से हैं, निरूपाधिक, निर्विकार हैं, ऐसे राम उसे झट से मिल सकते हैं, जिसने साधना पथ के वीर के रूप में वस्तु विवेक, वैराग्य, शम आदि गुण और मुमुक्षुता नामक चार साधनाओं को शृंगार (आभूषण) मानकर अपना लिया हो जिसने चारों पुरुषार्थों - धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की आकांक्षाओं के आभूषण लक्ष्य करके धारण किये हों। इस प्रकार बाराती मुकाम पर मुकाम करते हुए अति शीघ्र ही विदेहनगर पहुँच गये। वह मनोहारी सुन्दर नगरी शोभायमान थी।

उपसंहार– मूल आधार ग्रन्थ में चार मुकामों में बारातियों द्वारा निवास करने का उल्लेख है। ऐसे स्थलों में रहते हुए वे विदेहपुरी मिथिला पहुँच गये। ग्रन्थ के आधार से मैंने उसी का वर्णन किया है। इसलिए श्रोता जन इसे दोषरूप मानकर मेरा उपहास न करें - मेरी हँसी न उड़ाएँ। जानकी जिनकी सुन्दर कन्या है, ऐसे राजा जनक से राजा दशरथ की भेंट हुई। उन दोनों की ऐसी भेंट की कथा (घटना) मधुर है, सुख सन्तोष आह्लाद प्रदान करनेवाली है। रामायण का जो सारभूत तत्त्व है, वह है यह सीता स्वयंवर। वस्तुतः प्रकृति और पुरुष इस मंगल विवाह के द्वारा एकाकार, एकात्म हो रहे हैं। जिससे नौ खण्डोंवाली यह पृथ्वी पावन हुई है, जिससे पिण्ड और ब्रह्माण्ड (व्यष्टि और समष्टि) पावन हुए हैं, उन (राम) के विवाह की लीला कथा वर्णन करने में अति मधुर है। मैं एकनाथ गुरु जनार्दन की शरण में स्थित हूँ। अब मैं प्रकृति पुरुष का परिणय अर्थात् श्रीराम सीता के उस विवाह का वर्णन करूँगा, जो जीव-शिव को तुष्टि प्रदान करनेवाला है।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ-कृत 'भावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत बालकाण्ड का 'दशरथागमन' यह इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय २२

[राजा दशरथ का मिथिला में आगमन और वसिष्ठ ऋषि द्वारा सूर्यवंश-वर्णन]

राजा दशरथ का मिथिला में आगमन– जिसमें जीव और शिव के मिलन की बात कही गई है, वही यह रामायण की कथा है। यह कथा पवित्र है, सुन्दर है, पावन है। इस (के श्रवण पठन) से जड़ जीव उद्धार को प्राप्त हो जाते हैं। सीता का श्रीराम में संलग्न (मिलकर एकात्म) हो जाने, समस्त अंगों (जीवन के पक्षों) के साथ उनसे समरसता, एकरसता को प्राप्त करने का नाम ही 'सुलग्नता' अर्थात् मंगल विवाह है। अब उस विवाह की कथा का श्रवण कीजिए। मार्ग में चार स्थानों पर निवास करके राजा दशरथ शीघ्र गति से विदेहनगरी में आ गये, जहाँ (स्वयंवर सभा में) विजय को प्राप्त रघुपति राम रह रहे थे। जो विदेहपुरी में निवास करने आते हैं, (समझ लीजिए कि) वे त्रिभुवन में विजयी हो जाते हैं। (देह के रहते, उसके साथ आनेवाली सुख-भोग आदि की कामनाओं से मुक्त हो जाना ही मुक्ति है।) विश्वामित्र ऋषि ने राजा दशरथ और राजा जनक में मित्रता प्रतिष्ठित की, तो महत्ता प्रदान की गुरु वसिष्ठ ने। श्रीवसिष्ठ ने विश्वामित्र को श्रीराम का धनुर्विद्या में गुरु बना दिया और वे स्वयं उनके ब्रह्म विद्या में गुरु हो गए (इन दो महान गुरुओं की कृपा से) रामचन्द्र विजय सिद्ध हो गये। दशरथ में स्वयं गुरु वसिष्ठ के प्रति निश्चयपूर्वक निष्ठा (श्रद्धा) थी। इसलिए वे विदेहपुरी पहुँच सके। वहाँ रत्न जटित (प्रासाद) कलशों की पंक्तियाँ लगी थीं। उनसे आकाश में सूर्य तेज की दृष्टि से लुप्त हुआ-सा प्रतीत हो रहा था। विदेहनगरी में (वस्त्र) छत्र, पल्लव छत्र छाये हुए थे। राजा जनक ने अपनी नगरी में दशरथ को आये देखा, तो उन्होंने नगाड़ों और भेरियों को बजवा दिया। वहाँ मंगलसूचक तूर्य (तुरहियाँ) भी बजने गरजने लगे।

राजा जनक द्वारा सबकी अगवानी करके स्वागत करना– यह सुनते ही कि राजा दशरथ पधारे हैं, राजा जनक उनकी अगवानी के लिए आगे दौड़े। उनके साथ उनके समस्त मंत्री और पुरोहित शतानन्द थे। राजा जनक ने जब सामने वसिष्ठ को अपनी आँखों से देखा, तो दौड़ते हुए उनके पास जाकर वे उनके चरणों में लिपट गए, उन्हें जान पड़ा कि इन वसिष्ठ ऋषि के चरण के अँगूठे के स्पर्श से जगत् का उद्धार हो जाता है (जगदुद्धारक राम उनके सेवक शिष्य हैं); इसलिए जगत् के सौभाग्यशाली लोगों में से मैं एक हूँ। आज मैं वसिष्ठ के चरणों (के स्पर्श) को प्राप्त कर सका हूँ, इससे आज मेरा कुल पवित्र हो गया है। आज मेरे पितर तृप्त हो गए हैं। आज मेरा वंश सनाथ हो गया है। वसिष्ठ के मिलने पर अभीष्ट (कल्याण) की प्राप्ति हो जाती है। वसिष्ठ के मिलने पर (सब के लिए) 'अनिष्ट' बात भी 'इष्ट' सिद्ध हो सकती है। वसिष्ठ के मिलन पर भाग्य वरिष्ठ (उच्चतम) हो जाते हैं। गुरु वसिष्ठ के कारण उनका अपना कोई सेवक भी श्रेष्ठ सिद्ध हो जाता है। वसिष्ठ असीम ज्ञानी थे, तो जनक सद्भाव श्रद्धा से भरे-पूरे थे। उन दोनों ने एक दूसरे को देखते ही एक दूसरे का आलिंगन किया। इससे दोनों को तृप्ति हुई, दो दीप अर्थात् दीपों की बातियाँ एक करा दी जाएँ, तो उनका अलग-अलग अस्तित्व लुप्त हो जाता है; उनका तेज एकत्रित (होकर अद्भुत) हो जाता है। उसी प्रकार जनक और वसिष्ठ ने एक-दूसरे का आलिंगन किया। उनमें अभेद (अद्वैत) भाव पैदा होने पर उन्हें (अद्भुत) आनन्द आया। वसिष्ठ देह के रहने पर भी देह वृत्ति से मुक्त, 'विदेही' थे; जनक स्वाभाविक रूप में ही विदेही थे। दोनों निःसन्देह विदेही थे। देखिए, उन्होंने एक-दूसरे का आलिंगन किया। वसिष्ठ से इस

प्रकार मिलने पर जनक का आनन्द विश्व में समा नहीं रहा था– वे फूले न समा रहे थे। फिर उन्होंने सामने राजा दशरथ को देखा, तो झट से उनका आलिंगन किया। देखिए, जानकी-जनक (राजा जनक) और श्रीराम-जनक (राजा दशरथ) इस प्रकार मिले। उससे सबको सन्तोष हुआ; तीनों लोक आनन्द को प्राप्त हुए। एक ओर जनक थे, तो दूसरी ओर दशरथ दोनों समस्त बातों में सामर्थ्यशील थे। यहाँ तो एक सामर्थ्यशील व्यक्ति ने दूसरे सामर्थ्यशील व्यक्ति को गले लगाया था। (उससे वे दोनों एकात्म हो गये थे।) उससे रघुनाथ राम सुख को प्राप्त हुए और सीता का मनोरथ पूर्ण हुआ। दोनों ने एक-दूसरे का अति प्रेम से आलिंगन किया था, वे दोनों राजा सुख से सम्पन्न हो गये थे, उन्हें लगा कि अब सीता और रघुनाथ राम का मंगल विवाह यथाशीघ्र सम्पन्न किया जाए। उधर भरत और शत्रुघ्न को देखकर राजा जनक और उनके मंत्री चकित हो उठे। मिथिला के प्रजाजन भी विस्मित हो उठे। (उनकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि यहाँ) राम और लक्ष्मण कैसे आ गये)। क्या उनका कोई कहीं अपमान तो नहीं हुआ ? अथवा किसी विधि (कार्य) रीति में कोई गलती तो नहीं हुई ? ये दोनों किसी कारण से रूठकर तो नहीं आये ? यह सोचते हुए राजा जनक बहुत व्याकुल हो उठे। जब मैं विश्वामित्र ऋषि से आज्ञा लेकर आया, तो देखा था कि वे दोनों अपने गुरु (विश्वामित्र) की सेवा में उपस्थित थे। वे ही दोनों शीघ्र गति से दशरथ के पास क्यों आये हैं ? फिर जनक ने स्वयं वसिष्ठ से पूछा– 'राम लक्ष्मण दोनों जने रूठकर यहाँ क्यों आये हैं ? मैंने किस बात में त्रुटि बरती है'?

वसिष्ठ ऋषि द्वारा दशरथ के सुपुत्रों का वर्णन– इसपर वसिष्ठ ऋषि ने जनक से कहा– 'राम लक्ष्मण तो बड़े हैं, ये भरत-शत्रुघ्न छोटे हैं'। इस प्रकार कहने पर भी यह बात जनक की समझ में स्पष्ट रूप से नहीं आ रही थी। (क्योंकि वे देख रहे थे कि-) इनकी (शारीरिक) रूप-रेखा (रूप और मुखमुद्रा, डीलडौल) बैठने-चलने का ढंग, गुण, लावण्य (सलोनापन) सम-समान है। यदि ये दोनों राम लक्ष्मण हैं, तो भरत शत्रुघ्न कौन हैं। विदेहराज जनक द्वारा ऐसा कहने पर वसिष्ठ ऋषि को हँसी आयी। फिर उन्होंने उन्हें बैठाते हुए धीरे धीरे उनसे (उन चारों की) पूर्वकथा कही। 'पायस के जिस अंश से राम का जन्म हुआ, उसके अर्द्ध भाग से भरत जनमे; इसलिए वे अंगोपांग में राम-से दिखायी देते हैं, उसी प्रकार, सौमित्र लक्ष्मण जिस पायसांश से उत्पन्न हुए, उसी के भाग स्वरूप शत्रुघ्न (जनमे) हैं। अत: उनका समस्त अंग लक्ष्मण का-सा है। ये चार बन्धु चार मूर्तियों से अलग अलग तो हैं फिर भी वस्तुत: वे एक रूप हैं। (इसलिए कि वे एक ही भगवान् विष्णु के चार अंश रूप ही हैं) परन्तु वे चार (भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के रूप में) आभासित हो रहे हैं।' इस प्रकार की बात सुनकर राजा जनक मन में विस्मय चकित हो उठे। उसी समय विश्वामित्र ऋषि अपने साथ राम और लक्ष्मण को लेकर आ गए। (अब सामने) वे दशरथ के चारों पुत्र थे, जो एक से होते हुए विचित्र शोभा को प्राप्त थे। देखने पर तो ये चार मूर्तियों से व्यक्ति चार (भिन्न-भिन्न) सूर्य (-से तेजोमय) थे परन्तु विशिष्ट दृष्टि से देखने पर वे चारों एक ही थे। वसिष्ठ की ऐसी बात सुनकर जनक को परम सुख हुआ। उन्हें प्रतीत हुआ कि ये चारों परम पुरुष हैं (ब्रह्म के अंश हैं)।

राजा दशरथ के पुत्रों के विवाह का राजा जनक द्वारा सुझाव प्रस्तुत करना– राजा जनक ने कहा– 'कुशध्वज नामक मेरे छोटे बन्धु हैं। उनकी (दो) कन्याएँ मानों सुन्दरता के सागर हैं। इन दो कन्याओं को भरत और शत्रुघ्न की वधुएँ बना दें और मेरी कन्या उर्मिला का विवाह स्वरूप सम्बन्ध लक्ष्मण से हो', राजा जनक की यह अभिलाषा थी। उन्होंने चारों बन्धुओं को इस प्रकार एक साथ ही

दामाद बनाना चाहा। श्रीराम को इस प्रकार दामाद बनाकर इन चारों से सम्बन्ध स्थापित कर दें इस विचार से राजा जनक आत्मिक आनन्द में उल्लसित हो गए।

विश्वामित्र की राजा दशरथ द्वारा प्रशंसा– विश्वामित्र ऋषि स्वयं श्रीराम और लक्ष्मण को लेकर वहाँ आ गए, तो राजा दशरथ ने दण्डवत् प्रणाम करते हुए (विश्वामित्र के) चरणों का सहर्ष वन्दन किया. राजा दशरथ फिर आनन्दपूर्वक बोले '(हे ऋषिवर !) आपकी धनुर्विद्या (में प्रवीणता) बलवती (अद्वितीय) है। आप के कारण श्रीराम विजयी हो गया है। आपके कारण उसकी कीर्ति विशेष रूप से सर्वविदित हो गयी है। आपके कारण उसके द्वारा ताड़का की मृत्यु हो सकी आपके कारण उससे सुबाहु का वध हो सका। आपकी कृपा से उसे जानकी प्राप्त हो गयी है। हे ऋषिवर ! आप बहुत सामर्थ्यशील हैं। मेरी यह अत्यधिक कृपणता रही कि मैंने आपसे कहा कि आपको राम और लक्ष्मण नहीं दूँगा, पर आपने उन्हें यहाँ ले आकर स्वयं उनको यश रूपी आभूषण प्रदान किया। आपके अपने शिष्य होने के कारण वे (दोनों) उस यश रूपी आभूषण को धारण करके तीनों लोकों में शोभा के साथ विचरण कर रहे हैं। आपने अपने शिष्यों के कण्ठ में ऐसे आभूषण धारण कराये हैं।

विश्वामित्र ऋषि का उत्तर– ऐसी प्रशंसा और स्तुति को सुनकर विश्वामित्र ऋषि हँसते हुए बोले– 'मैं तो रामचन्द्र के कारण पवित्र हो गया हूँ। वस्तुतः श्रीराम परब्रह्म के ब्रह्म हैं, ब्रह्म रूप मूल तत्त्व हैं। श्रीराम द्वारा मेरा शिष्यत्व स्वीकृत होने के कारण मेरे गुरु पद का तीनों लोकों में वन्दन हो रहा है। श्रीराम के कारण मेरा जीवन सनाथ, सफल हो गया है। मेरे जीवन तथा मरण का (अन्यथा) कोई महत्त्व नहीं है। पहले मैं यज्ञ करने के समय अनाथ, असहाय था; पर उसी मुझको श्रीराम ने सनाथ, सफल (सामर्थ्यशील) कर दिया। मेरे कर्म और अकर्म का नाश करके श्रीराम तुष्टि को प्राप्त हुए हैं। (मेरे कृतित्व और अकर्मण्यता की भावना को उन्होंने नष्ट किया। मुझे ऊपर उठाते हुए उन्हें तृप्ति प्राप्त हुई। श्रीराम के मेरे शिष्यत्व की यह अभिनव विशेषता है कि मुझ देहधारी का वन्दन विदेह (जनक) भी कर रहे हैं। मैं राम की कीर्ति क्या कहूँ ? उनके चरण (स्पर्श) से तो पाषाण भी पावन हो जाता है। जिसके चरण (स्पर्श) से पाषाण भी तैरते हैं, उस (राम) के गुरुत्व के कारण मैं धन्य हूँ यह समझिए कि मेरे यज्ञ की सफलता का कारण ही ये परब्रह्म श्रीराम हैं'। विश्वामित्र द्वारा ऐसा कहने पर देवों और सिद्धों ने जय जयकार किया और पुष्पों की राशियों की बौछार की। विश्वामित्र तो प्रेम (की अधिकता) से मूर्च्छा को प्राप्त हो गए। तब वसिष्ठ ने वहाँ आकर विश्वामित्र को सचेत कर दिया और कहा– 'आपने जो कहा कि श्रीरघुनाथ राम परब्रह्म हैं, वह ऐसा ही सत्य है'। तदनन्तर दशरथ ने आनन्द के साथ उठकर श्रीराम और लक्ष्मण को गले लगा लिया फिर रत्न, धन और धान्य को निछावर करके श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चारों को बैठा लिया। 'श्रीराम परिपूर्ण ब्रह्म हैं'– वसिष्ठ और विश्वामित्र के इस कथन से जनक को परिपूर्ण आनन्द हुआ। फिर वे विवाह कार्य सम्पन्न करा देने के लिए उद्यत हो गए।

राजा दशरथ के चारों सुपुत्रों के विवाह को निर्धारित कराने के हेतु जनक द्वारा कुशध्वज को आमंत्रित करना– राजा जनक ने अपने पुरोहित शतानन्द को (अपने बन्धु) कुशध्वज के पास यह कहकर भेज दिया कि उन्हें यथशीघ्र ले आएँ। (वे बोले) 'मैंने अपने बन्धु कुशध्वज को संकाशा नामक नगरी के राज पद पर ससम्मान प्रतिष्ठित कर दिया है। उनके दो लावण्य की मानों राशियों स्वरूप दो सुन्दर कन्याएँ हैं। रघुनन्दन राम से जो हमारा सम्बन्ध स्थापित हुआ है, वह प्रशंसनीय है। अब कुशध्वज की वे दो कन्याएँ भरत और शत्रुघ्न को विवाह में दी जाएँ। इसलिए मंगल विवाह के मुहूर्त को प्राप्त

करने की दृष्टि से उन्हें शीघ्रता से ले आएँ। राजा जनक का आमंत्रण सुनकर राजा कुशध्वज शीघ्र गति से स्वयं (मिथिला) आ गए। राजा को नमस्कार करके उन्होंने गले लगाया। जनक ने यथासमय राजा दशरथ के पास दूत को भेजा और विवाह का दिन निर्धारित करने के लिए राजसभा में उन्हें बुला लिया।

राजा दशरथ का ऋषियों सहित जनक के यहाँ आगमन– ऋषि वृन्द सहित राजा दशरथ वहाँ जनक राजा के पास आ गए। उनके साथ तपोबल सम्पन्न वसिष्ठ, वामदेव, कश्यप, कात्यायन, जाबालि और मार्कण्डेय ऋषि थे। वहाँ जनक के सखा आये, मित्र आये। जनक ने ध्यानपूर्वक उन सबका सम्मान करके विवाह दिन निर्धारित करने के लिए बैठा लिया। विवाह अच्छे कुल के वर के साथ हो इस विचार से दोनों राजाओं की वंशावलियों को आरम्भ से खोजने, ध्यान से देखने के लिए उन्होंने ऋषियों को बैठा दिया। वर की समस्त कुल-परम्परा बताने के लिए कुलदेवता सदृश कुलगुरु वसिष्ठ थे। (यह तय हुआ कि) वे आदि से लेकर अन्त तक रवि वंश का पूरा-पूरा, जैसा है वैसा, विवरण प्रस्तुत करें।

वसिष्ठ द्वारा सूर्य-वंश का विवरण– ऋषियों की बात सुनकर वसिष्ठ ने (सबको) नमस्कार किया और कहा– 'अति पवित्र सूर्यवंश का (उसमें उत्पन्न) राजाओं द्वारा जो विस्तार हुआ, उसे सुनिए। सूर्यवंश की ऐसी ख्याति है कि उसका श्रवण करके महापापी भी मुक्ति को प्राप्त हो जाते हैं। उसमें एक एक ऐसे चक्रवर्ती राजा हो गये हैं, जो त्रिभुवन के आभूषण (माने जाते) हैं। भगवान् सूर्यदेव के मनु नामक प्रमुख पुत्र थे। मनु के इक्ष्वाकु नामक पवित्रनामा पुत्र थे। उन्होंने अयोध्या नामक मुक्ति दिलाने वाली नगरी अपने निवास के लिए निर्धारित की। इसलिए समझिए कि सूर्यवंश-परम्परा में उत्पन्न पुत्रों को इक्ष्वाकु सन्तान-परम्परा में जनमे पुत्र कहलाने का यही कारण है। उन इक्ष्वाकु की परम्परा में उत्पन्न राजाओं के पद (महिमा, क्रमानुसार स्थान और कार्य) का वर्णन इस प्रकार (किया जाता) है। इसी वंश में पृथु नामक चक्रवर्ती राजा हो गये। (एक समय) क्षिति (धरती) पाताल में धँसने लगी, तो राजा पृथु ने उसे आत्मबल से सम्हाले रखा। इस कारण से 'क्षिति' को 'पृथ्वी' कहते हैं। उन्होंने पृथ्वी का दोहन किया और उससे समस्त प्रजाजनों को सुख-सम्पन्न बना दिया। वे भगवान् की भक्ति और पूजा से पूर्णत: पावन हो गए थे। वे (राजा पृथु) सूर्यवंश में उत्पन्न अनर्घ्य रत्न थे। इसी वंश में उत्तानपाद राजा हो गए। जान लीजिए कि ध्रुव उनके वही पुत्र थे, जिन्होंने बचपन में ही भगवान् को अपने प्रति सुप्रसन्न कर लिया और उसके फल स्वरूप वे स्वयं अविचल (पद के अधिकारी) हो गए। आगे चलकर सूर्यवंश में मान्धाता नामक राजा हुए, जो (माता की) योनि से नहीं जनमे, पिता की कोख से ही जन्म को प्राप्त हो गये, फिर भी उन्होंने अपने जन्मदाता को मरने नहीं दिया। इसी वंश में चक्रवर्ती शिबि हुए। उन्होंने एक (कपोत, कबूतर) पक्षी को (श्येन अर्थात् बाज से) बचाने के लिए अपने शरीर का मांस काट-काटकर उसके साथ तोला था। देखिए कि वे सत्त्वगुण राशि शिबि अपनी नगरी को वैकुण्ठ लोक के प्रति ले गये थे। इस अति पवित्र सूर्यवंश में हरिश्चन्द्र जन्म को प्राप्त हुए। उन्होंने सपने में (विश्वामित्र को) जो दान दिया, उसे जगने पर यथाविधि आचरण द्वारा पूरा किया। (दान के पश्चात्) दक्षिणा देने के लिए (यह देखकर कि कुछ शेष नहीं रहा तो) वे डोम के घर पराधीन अर्थात् दास हो गए। उन्होंने अपनी स्त्री तारामती तथा पुत्र रोहित को बेचकर (दान माँगनेवाले) विश्वामित्र को सुख सम्पन्न बना दिया)। इसी वंश में राजा रुक्मांगद हो गए। अपने एकादशी व्रत का निर्वाह करने के लिए वे अपनी नगरी को वैकुण्ठ लोक ले गये। उनके उस व्रत (पालन) से जगत् का उद्धार हो गया। जब सुरों तथा असुरों को धुंधु नामक

दैत्य शत्रु बहुत कष्ट दिया करता था और वह धुएँ से भरे वालुकामय विवर-स्वरूप पाताल में छिपा रहता, तब उसको खोजकर जिन्होंने मार डाला, वे धुन्धुमार इसी रवि वंश में जन्मे थे। उनके धर्मांगद नामक पुत्र थे। उन्होंने एकादशी व्रत का निर्वाह करते हुए, उसका निर्वाह करने के लिए अपना मस्तक निछावर करने में दुःख नहीं माना वे उसमें परम आनन्द को ही प्राप्त हुए। इस सूर्यवंश के राजाओं में से एक की उन्नति ख्याति इस सूर्यवंश के दूसरे राजाओं की ख्याति से बढ़कर होती गई। उसके श्रवण से लोग पावन हो जाते हैं। इस वंश की सन्तान-परम्परा (की उत्पत्ति, विस्तार) और भी सुनिए। इसी वंश में राजा अम्बरीष हुए उन्होंने द्वादशी व्रत का पालन किया और भगवान् नारायण को गर्भवास भोगने को बाध्य किया (ताकि वे उनकी सन्तान-परम्परा में जन्म ग्रहण करें)। उन्होंने दुर्वासा ऋषि की भगवान् विष्णु के चक्र से रक्षा करायी।

इसी वंश में राजा सगर हो गये, जिनके नाम से जलाशय 'सागर' नाम को प्राप्त हुए। उनके पुत्र कपिल मुनि के शाप से जलकर भस्म हो गये, तो इसी वंश के शूर (प्रतापी) राजा भगीरथ ने उनका (उस शाप से) उद्धार किया। राजा भगीरथ अपने तपोबल से प्राप्त आत्मबल से गंगा (जो उनके नाम से भागीरथी कहलाने लगी) को स्वर्ग से पाताल लोक ले आये। अपने पूर्वजों (पिता और चाचाओं) का उद्धार किया न जाने यह गंगा कितने लोगों का उद्धार करती रही है। भगीरथ के एक पुत्र युद्ध कला में प्रवीण थे। देवों दैत्यों के युद्ध में इन्द्र उन्हें अपने कन्धे (ककुद्) पर बैठाकर सन्मुख युद्ध करने के लिए ले गये। वे इन्द्र के 'ककुद्' पर बैठे थे, इसलिए उन्हें 'ककुत्स्थ' कहने लगे उनके नाम की ख्याति के फलस्वरूप उनके वंशज श्रीराम को भी 'काकुत्स्थ' कहते हैं। इसी रवि वंश में एक दिलीप नामक निष्पाप राजा जनमे उन्होंने पुत्र प्राप्ति के उद्देश्य से कामधेनु की तत्परता-निष्ठापूर्वक उपासना की। अन्ततः कामधेनु उनके प्रति पूर्णतः प्रसन्न हुई। उस (की कृपा) से उनके रघु नामक शुभ लक्षणों से युक्त पुत्र उत्पन्न हुए, (जिनके नाम पर उनका वंश 'रघुवंश' कहलाने लगा) उनकी वंश परम्परा में जनमे श्रीराम, समझिए कि 'रघुनन्दन' कहाने लगे। रघु के पुत्र अज महाबलशाली थे। वे भूमण्डल में परम बली (माने जाते) थे। शत्रु उनके पाँवों (लगकर भेड़ों की भाँति) दीनता के साथ मिमियाते थे। उन अज राजा के पुत्र हैं दशरथ। उन्होंने (दैत्य कुल गुरु आचार्य) शुक्र को युद्ध में जीत लिया। फलस्वरूप स्वर्ग में वे कीर्तिवान (विख्यात) हो गए, देवेन्द्र इन्द्र से सम्मानित हुए। जब उन्होंने दैत्य-गुरु को पराजित किया तो देवगुरु बृहस्पति को बहुत प्रसन्नता हुई। अतः उन्होंने दशरथ को गले लगाकर उनके अपने नगर अयोध्या के प्रति लौटा दिया। उनके चार सुपुत्र हैं श्रीराम और लक्ष्मण बड़े हैं, तो छोटे हैं भरत और शत्रुघ्न। (वस्तुतः) ये विश्व के आदिकारण (स्रोत) ब्रह्म के ही चार अंश हैं।

(इनमें से) श्रीराम ने ताड़का का संहार किया, राक्षस दल सहित उन्होंने सुबाहु को मार डाला और इस प्रकार अपने बल से रावण को अपमान को प्राप्त करा दिया। उन्होंने शिला (स्वरूप बनी अहल्या) का उद्धार किया। वसिष्ठ ऋषि ने गरजते हुए अर्थात् उच्च स्वर में सूर्यवंश (परम्परा) का आनन्द के साथ वर्णन किया, तो देवगण ने पुष्पों की बौछार की और (इन सबसे) जनक राजा का मन आनन्दित हुआ। सूर्यवंश में उत्पन्न सन्तान-परम्परा का वर्णन सुनकर (वहाँ उपस्थित) महान सिद्ध पुरुषों ने तालियाँ बजायीं। (उन्हें जान पड़ा कि) राजा जनक की यह कन्या धन्य है, धन्य है, जिसका उस सूर्यवंश में जनमे श्रीराम के साथ मंगल विवाह होने जा रहा है। अपने कुल का वर्णन सुनकर राजा दशरथ को अत्यधिक आनन्द हुआ। तो उन्होंने गुरु वसिष्ठ पर निछावर करते हुए लाख-लाख,

कोटि-कोटि गायें दान में दीं। अनन्तर महर्षियों ने गुरु वसिष्ठ को (सम्मानपूर्वक) उठाकर (उचित स्थान पर) बैठा दिया और कहा- आप सूर्यवंश के सद्गुरु हैं, आप रविकुल के आभूषण हैं। सूर्यवंश में जो-जो राजा हो गये, जिनके महान प्रतापों का वर्णन आपने किया, वे आप ही के कारण निष्पन्न हैं। (सचमुच) आप उनके सच्चे रूप में सद्गुरु हैं। जिस प्रकार अपने ही तेज से, अपनी ही कान्ति से सूर्य (विश्व में) तेज को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार आप ही के अनुग्रह से सूर्यवंश प्रताप को प्राप्त हो गया है। प्रताप को प्रकट कर वह (सूर्य के स्थान पर प्रतिष्ठित होकर सूर्य सदृश) तपता रहा (तेजोमय बना रहा)। आपसे अनुग्रह को प्राप्त होने के कारण आपके शिष्य जगत् में विजय को प्राप्त होते आये हैं। वसिष्ठ ऋषि आत्मिक सुख एवं आत्मिक आनन्द के साथ, (सूर्य-वंश का वर्णन करते हुए) वक्ता हो गए थे, उनके वक्तव्य को सुनकर सभाजनों को परम आनन्द हुआ। (उन्हें प्रतीत हुआ कि) श्रीराम से सीता का विवाह-सम्बन्ध स्थापित हो रहा है, इसलिए राजा जनक असीम भाग्यशाली हैं।

मैं एकनाथ अपने गुरु श्री जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हूँ। सूर्यवंश का वर्णन-स्वरूप आख्यान यहाँ पूर्ण हो गया। अब आप जनक-वंश का वर्णन ध्यान से सुनिए।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ कृत 'भावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत बालकाण्ड का '(दशरथ मिथिलागमन और) सूर्यवंश निरूपण' नामक यह बाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय २३

[सीमान्त-पूजन और भोज]

पृष्ठभूमि– (गुरु वसिष्ठ बोले)– सूर्यवंश परम्परा में अनगिनत राजा हो गए। वे अथाह कीर्ति से विभूषित थे, उनके विषय में मैंने संक्षेप में कहा। श्रोता मुझे क्षमा करें।

श्लोक– इस प्रकार जिनसे कहा गया, वे राजा जनक हाथ जोड़कर उन (ऋषि) से बोले– हे धर्मज्ञ तथा श्रेष्ठ (महर्षि) ! आप मेरे कुल के बारे में श्रवण करने की कृपा करें।

हे मुनिश्रेष्ठ ! (कन्या-) दान देते समय कुल में उत्पन्न (श्रेष्ठ) व्यक्ति को अपने कुल के बारे में सम्पूर्ण बात कहना उचित होता है, हे नरेश्वर ! उसे जान लीजिए।

जब ऋषि वसिष्ठ ने सूर्य वंशावली का बहुत स्पष्ट रूप में वर्णन किया, तो उस समय राजा जनक ने खड़े होकर हाथ जोड़ते हुए यों विनती की।

जनक द्वारा कुल-वर्णन– मेरे कुल के भूपाल कीर्तिमान तथा अति प्रबल थे। राजा दशरथ उस कुल की सम्पूर्ण परम्परा को (सविस्तार) सुनने की कृपा करें। कन्यादान के समय स्वयं (कन्या के) पिता को अपने कुल का समस्त परिचय आरम्भ (कुल के आदि पुरुष) से कहना पड़ता है। मेरे कुल में सबसे पहले निमि नामक राजा हो गए। उनकी कीर्ति तीनों लोकों में महान (समझी जाती) थी। ऋषि वसिष्ठ के शाप के कारण संसार के (समस्त लोगों के) नेत्र ही जिनके निवास-स्थान बन गये और जिस (घटना) के कारण नेत्र देखनेवाले सिद्ध हो गये हैं, इस कारण उन्हें 'निमि' कहते हैं।

प्रत्येक निमिष अर्थात् पल की गति दिन रात उन्हीं (राजा निमि) के कारण कार्यान्वित होती रहती है। हे राजा ! आप यह निश्चय ही समझ लें कि इसी के कारण उन्हें 'निमि' कहते हैं, राजा निमि के मिथि नामक उज्ज्वल चरित्रवान् (अनघ, अनिन्द्य) पुत्र थे। उन्होंने अपने महत्कार्य स्वरूप (लीला स्वरूप) इस नगरी को बसा लिया, इसलिए इसे 'मिथिला' कहते हैं। उनकी अपनी कीर्ति के प्रतीक स्वरूप उनकी नगरी में (मानों) आनन्दोत्सव सम्पन्न किया जाता रहा। उन राजा मिथि के पुत्र जनक प्रथम थे, जो अत्यधिक सात्त्विक गुणों के धारी (गुणों से सम्पन्न) थे, उन्होंने प्रजाजनों का अपने पुत्रों का-सा पालन किया। इसलिए उनका 'जनक' नाम सार्थक रहा। उनके पुत्र थे, धृष्टकेतु, जो जनक वंश में अति विख्यात थे, वे सेना दल और समस्त प्रकार के (राज-) बल से युक्त अर्थात् प्रतापवान् थे, वे अपने राजधर्म के (निर्वाह के) कारण राजधर्म के क्षेत्र में 'धर्मसेतु' ही (समझे जाते) थे (जिसके आधार पर लोग संसार सागर को पार करने में समर्थ थे)। देखिए, उनकी परम्परा में 'जनक' नामक अनेक राजा हो गए। कहने में वे असंख्यात हैं। उनकी महत्ता की कथा (अथाह है-जिस) का वर्णन करने का प्रयास करने से यह (कथा) अत्यधिक बढ़ जाएगी बहुलाश्वजनक, स्वकीर्तिजनक, स्वदेहजनक, विदेहजनक आदि जो अनेकानेक 'जनक' नामधारी राजा हो गए, उनमें से मैं भी 'जनक' नामक एक राजा हूँ, वही मैं आपका सेवक हूँ। इस वंशावली का सविस्तार वर्णन करने से, बढ़ाने से यह कथा अपार वृद्धि को प्राप्त हो जाएगी। (उसका वर्णन विस्तार-सहित करने की अपनी इच्छा को मैं इसलिए रोक रहा हूँ कि मुझ जनक की यह उत्कट अभिलाषा है कि (अधिक समय व्यतीत न किया जाए और) श्रीराम के विवाह का मुहूर्त साध्य किया जाए (टल न जाए)। (फिर भी एक घटना का उल्लेख करना चाहता हूँ) हमारे राज्य को जीत लेने और सीता का हरण करके ले जाने हेतु सुधन्वा (नामक एक राजा) बड़े क्रोध से चढ़ दौड़ा। उसने इस नगरी के चारों ओर घेरा डाला। तब मैंने सुधन्वा से युद्ध किया; युद्धभूमि में उसका वध किया। तदनन्तर उसके राज्यासन पर (अपने बन्धु) कुशध्वज को प्रतिष्ठित कर दिया। कुशध्वज मेरे छोटे बन्धु हैं वे राजप्रताप और प्रताप (राजतेज एवं वीरता) के सागर हैं उनके दो कन्याएँ हैं। मैं उनका वधुओं के रूप में आपके दो सुपुत्रों स्वरूप वरों से विवाह-सम्बन्ध स्थापित कर देना चाहता हूँ।

राजा जनक द्वारा चारों कन्याओं को राजा दशरथ के चारों सुपुत्रों को विवाह में प्रदान करने का संकल्प करना– तत्पश्चात् राजा जनक बोले (समझिए कि) मैं सीता श्रीराम को विवाह में प्रदान कर रहा हूँ, (मेरी पुत्री) उर्मिला लक्ष्मण को देता हूँ और कुशध्वज की एक कन्या माण्डवी भरत को तथा दूसरी कन्या श्रुतकीर्ति शत्रुघ्न को प्रदान करूँगा। (यह सुनकर वसिष्ठ आदि) ऋषियों ने कहा- 'यह विवाह-सम्बन्ध (-विचार) सराहनीय है'। अतः सबने उसे निश्चय स्वरूप, वचन-स्वरूप स्वीकार किया। अब विवाह-विधि का वर्णन सुनिए।

कुलगुरु वसिष्ठ, ऋषि विश्वामित्र तथा राजा दशरथ की स्वीकृति– वसिष्ठ, विश्वामित्र, वामदेव (आदि) सबने कहा– 'यह अति अद्भुत संयोग है। यह (विवाह-) सम्बन्ध स्तुत्य और गौरवमय है उनमें भाव स्वरूप वैभव सम-समान सिद्ध होगा। आज से तीसरे दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के शुभ दिन पर अभिजित नामक मध्याह्न समय का मुहूर्त साधकर चारों (राजपुत्रों का उन चारों राजपुत्रियों से) विवाह सम्पन्न करें'। वसिष्ठ और विश्वामित्र (आदि ऋषियों) के इस कथन को राजा दशरथ ने शिरोधार्य मानकर कहा- 'आपका कथन (आदेश) परम प्रमाणभूत (सत्य रूप) है, चारों पुत्रों का विवाह (उसी

मुहूर्त पर) अवश्य सम्पन्न करें। राजा जनक और कुशध्वज दोनों ही मेरे परम अर्थ (-लाभ) को प्राप्त समधी हों' (राजा जनक के प्रण के विषय में) रघुपति राम विजेता (सिद्ध) हो गया है। वह तो आप ही के कारण ऐसी अत्यधिक कीर्ति को प्राप्त हुआ है'। विवाह का सम्पन्न होना प्रमाणभूत बात है। (यह जानकर) ढोल और नगाड़े बजाये जाने लगे। दोनों राजाओं का परिपूर्ण हर्ष हुआ तथा अन्य प्रियजन (उतने ही) आह्लाद को प्राप्त हुए'

कोहबर में मातृकाओं (एवं कुलदेवताओं) की प्रतिष्ठापना– राजा दशरथ जनकराज से विदा लेकर वेगपूर्वक जनवास के प्रति आ गये, उन्हें मातृकाओं एवं कुलदेवताओं की प्रतिष्ठापना (विधि) का आरम्भ करना था, तब जनक समस्त श्रेष्ठ ऋषियों को हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए बोले– 'मैं अपने बन्धुजनों तथा सेनासहित आपका शिष्य और सेवक हूँ'। यह कहते हुए वे सबको विदा करके लौटे। अब श्रीराम का विवाह महोत्सव सम्पन्न होनेवाला है– इसमें दोनों मण्डपों (दोनों पक्षों के निवास-स्थानों) में उत्साह छा गया, ऋषियों का समुदाय इकट्ठा हो गया। इस विवाह के रूप में एक अद्भुत अभिनव बात ही घटित होने जा रही थी।

विवाह-मण्डप का वर्णन– स्वयंसिद्ध अर्थात् अपौरुषेय चारों वेद श्रीराम के विवाह-मण्डप के खम्भे बन गए। उसमें धैर्य स्वरूप प्रदीर्घ धरन था और विवेक के अंकुर बल्लों के रूप में लगाये हुए थे। स्मृतियाँ और पुराण उसपर आच्छादन-से छाये हुए थे। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चारों पुरुषार्थ तोरण-स्वरूप थे। अपनी दीर्घता या लम्बाई के साथ धर्मद्वार मोतियों के गुच्छों से शोभायमान थे। वे धर्मद्वार नित्य खुले रहते थे। वहाँ उन द्वारों के अन्दर प्रवेश करना किसी के लिए भी मना नहीं था। इसलिए दीन, दुःखी, दरिद्र जन (बिना किसी रोकटोक के) वर श्रीराम के पास पहुँच पाते थे और तत्काल सुख को प्राप्त हो जाते थे। स्वयं सद्बुद्धि पुरोहित ऋषि वसिष्ठ के रूप में वहाँ विद्यमान थी। वह विवाह मण्डप उपनिषत्स्वरूप कपड़े से आच्छादित था। वह मण्डप चित् और आनन्द में स्थित था, अतः उसमें साक्षात् शोभा ही शोभायमान थी। (यह शोभा कैसी शोभा को प्राप्त थी ? कहना असम्भव है।) चित्स्वरूप आकाश में पताकाएँ शोभायमान हो रही थीं। उसे देखते ही देखनेवालों की आँखों को सुख प्राप्त होता था। उस मण्डप में विराजमान होनेवालों को आह्लाद हो रहा था। कन्या पक्ष के मण्डप के खम्भे भक्ति भाव से निर्मित थे। उसका धरन विशुद्ध सत्त्वगुण से बना हुआ था। उसपर (नीति न्याय धर्म मंगल) विधि का आच्छादन था। उसकी देहलियाँ सद्बुद्धि की बनायी हुई थीं। धर्म कन्या पक्ष के मण्डप का चँदोवा था, तो वरपक्ष के मण्डप में ब्रह्म (स्वयं) छत रूप में छा गया था। कन्या पक्ष के घर में बड़ा कर्म चल रहा था, तो वरपक्ष के घर में कर्म निष्कर्म के रूप में ही चल रहा था। अर्थात् सीता स्वयं आदिमाया मूल प्रकृति थी। अतः उसके घर में माया से प्रेरित कई प्रकार के कार्य धूमधाम के साथ चल रहे थे, जबकि श्रीराम ब्रह्म हैं, पुरुष हैं, जिससे उनके यहाँ कर्माभाव ही कर्म है। कन्या के घर में साधनाओं की पंक्ति-सी लगी थी, जबकि वर के घर में शान्ति स्वरूपा साधना विद्यमान थी। कन्या-गृह में रत्नों की ज्योति (कान्ति, प्रकाश) शोभायमान थी, तो वर के घर में स्वयं वर श्रीराम की कान्ति थी। कन्या गृह में नव रसों के साथ अथवा अभिनव रसात्मक प्रीति विद्यमान थी, तो वर-गृह में नवविधा भक्ति विराजमान थी। कन्या-गृह में समस्त अर्थों के (माहात्म्य आदि के) साथ (विवाह सम्बन्धी धार्मिक) विधियाँ सम्पन्न हो जानेवाली थीं, तो वर-गृह में सब विधियाँ मुक्ति को प्राप्त थीं– अर्थात् केवल लौकिक औपचारिकता के निर्वाह हेतु उन्हें किया जाएगा; पारमार्थिक रूप में उनका कोई महत्त्व नहीं था।

कन्या गृह में नृत्य स्वरूपा ध्यानस्थ स्थिति थी। वर गृह में भगवन्नाम के कीर्तन का गर्जन चल रहा था। कन्या गृह में भाटजन राजा (आदि की महिमा) के समर्थक, प्रशंसक थे, तो वर-गृह में श्रेष्ठ वेदों की महत्ता प्रतिष्ठित थी। कन्यापक्ष के मण्डप में चार वधुएँ शोभायमान थीं, जबकि वर मण्डप में जो नर-नारी दिखायी दे रहे थे वे वस्तुतः माया-जनित, अतएव मिथ्या ही थे (क्योंकि ब्रह्म श्रीराम ही सत्य हैं, जगत् के अन्यान्य स्त्री-पुरुष मिथ्या, आभास मात्र हैं)। फिर भी दोनों मण्डपों में साक्षात् ब्रह्म स्वरूप श्रीराम और माया स्वरूप सीता के अस्तित्व के कारण अथाह बड़ाई एवं सामर्थ्य विद्यमान थी। (इधर वरपक्ष के मण्डप में) गुरु वसिष्ठ ने राजा दशरथ को बैठाकर मातृकाओं एवं कुलदेवताओं की स्थापना की, पुण्याहवाचन विधि तथा नान्दी श्राद्ध सम्पन्न कराकर बहुत-सा सोना दान के रूप में वितरित करवा दिया।

श्लोक– (तदनन्तर) राजा दशरथ ने अपने घर (निवासस्थान) जाकर यथाविधि नान्दीश्राद्ध किया और दूसरे दिन सबेरे उठकर अपने पुत्रों के लिए उत्तम गोदान संस्कार किया,

धर्मनिष्ठ राजा दशरथ ने कहा– राजा जनक से पूछकर (अनुज्ञा लेकर) अपने पुत्रों के (कल्याण के) हेतु (कर्तव्य के अनुसार एक-एक पुत्र के लिए) (नाम से) एक एक लाख गायें धर्मबुद्धि से मैं दान दूँगा।

उन रघुकुलनन्दन पुरुषश्रेष्ठ राजा ने स्वर्णशृंगों और विपुल दूध से युक्त चार लक्ष सवत्स, कांस्य के दोहनपात्रों सहित गायें तथा बहुत-सा अन्य प्रकार का धन ब्राह्मणों को प्रदान किया।

मण्डप-रक्षण के लिए देवताओं और क्षेत्रपालों का आगमन– गुरु श्रीवसिष्ठ द्वारा आवाहन करने पर नलिनी, नन्दिनी, उमा आदि समस्त मण्डप की (रक्षा करनेवाली) देवियाँ स्वयं मण्डप में आ गईं। श्रीराम के विवाह में उपस्थित रहने के हेतु नव ग्रह तथा अन्य समस्त ग्रह आदि अपने-अपने अधिकार-मण्डल क्षेत्र को छोडकर झट से मण्डप में आ गए। उन मण्डप देवताओं और ग्रह पंक्ति (समुदाय) ने प्रेमपूर्वक श्रीराम का वन्दन किया। (उन्हें विश्वास था कि) श्रीराम हमारी बेड़ियों को काट देंगे और लंका के राजा रावण के बन्धन (दासता) से छुड़ा देंगे। क्षेत्रपाल दिन रात नित्य प्रति मण्डप के द्वारों पर जागृत रहते थे। (उन्हें विश्वास था कि) रावण ने हमारी जिन क्षेत्रवृत्तियों का हरण किया है, उन्हें रघुपति श्रीराम मुक्त कर देंगे। श्रीराम ने इस प्रकार आचार धर्म के वचनानुसार राजा दशरथ के हाथों मातृकाओं और कुलदेवताओं की प्रतिष्ठापना करवा दी। उससे दशरथ के चित्त को आह्लाद अनुभव हो गया।

राजा दशरथ के हाथों गोदान करवाना– (गुरु वसिष्ठ की आज्ञा के अनुसार) राजा दशरथ ने ब्राह्मणों को आमंत्रित करके श्रीराम को लक्ष्य बनाकर (श्रीराम के नाम पर) कई सौ गायें प्रदान कीं। उस दान विधि का स्वरूप सुनिए। उन्होंने लतहा (लात जमाने की आदतवाली) तथा मरकहा (सींग आदि से मारनेवाली) गायें बिलकुल नहीं दीं; न ही उन्होंने अत्यधिक भड़कैल, पेन्हाई चोर, बहुत खाऊ गायें दीं, निर्बल तथा कमजोर गायें भी नहीं दीं। ऐसी गायें दान में देने पर (दाता को) अनपेक्षित रूप से गोहत्या (का पाप) घटित हो जाता है (पाप लगता है)। अतः नृपनाथ दशरथ ने दान में अति शान्त दुधारू गायें प्रदान कीं। उन्होंने न ही पहलौठी गाभिन गायें दीं, न ही बूढ़ी बहुब्याऊ गायें दीं। उन्होंने तरुण दुहने में आसान, मुस्तनी, बहुमोल तथा बढ़िया (जाति, नस्ल की) गायें दीं। उनके द्वारा दी हुई गायें सोने से मढ़े सींगों तथा चाँदी से मढे खुरों वाली थीं। वे काँसे के दोहनपात्रों सहित दी गयी थीं, सन आदि के मोटे कपड़े से आच्छादित थीं। वे रत्नजटित पूँछवाली, सुकुमार थीं, (विविध प्रकार के) आभूषणों

से विभूषित होने से शोभायमान थीं। जैसी (उत्तम) गायें थीं वैसे ही (बढ़िया) उनके आभूषण थे। वैसी ही बड़ी भरी-पूरी दक्षिणा दी गयी थी। इस प्रकार राजा दशरथ ने अपने पुत्र के विवाह के समय दान दिया और ब्राह्मणों को सुख प्राप्त करा दिया। नृपवर दशरथ ने तथा श्रीराम ने उत्साहपूर्वक तिल के, घी के पात्र दिये। दूध भरे पात्रों सहित भोजन पात्र (थालियाँ) प्रदान किये। श्रीराम सम्बन्धी प्रेम भावना से उन्हें प्रिय मानकर समस्त लोग दान दे रहे थे। उधर श्रीराम ने स्वयं अपने आपको राजा दशरथ का दान स्वरूप अर्पित करके (पहले ही) उन्हें सौभाग्य-सम्पन्न बना दिया था।

भरत के मामा युधाजित का आगमन– वाद्यों के बड़े गर्जन के होते रहते, नृपवर दशरथ जब सहर्ष दान दे रहे थे, उसी समय रानी कैकेयी का शूर सहोदर (सगा) ज्येष्ठ बन्धु युधाजित वहाँ आ गया। भरत का वह मामा मित्रता के सम्बन्ध का निर्वाह करने में अति कुशल था। वह अपनी भगिनी के पुत्र के प्रति अत्यधिक स्नेह से युक्त था। उससे मिलकर राजा ने तत्काल उसका आलिंगन किया. दशरथ से उनका वह श्यालक (साला) बोला– 'केकयराज' ने प्रेमपूर्वक आपके दोनों पुत्रों (भरत और शत्रुघ्न) से मिलने हेतु आपके पास भेजा है जब मैं अयोध्या पहुँचा, तो आप विवाह के लिए यहाँ आ गये थे, विवाह (उत्सव) की यह बात उत्साह के साथ सुनकर मैं अति शीघ्रता से यहाँ आ गया हूँ'। (तदनन्तर) सबके खड़े होने के बाद राजा ने उसका बड़ा सम्मान किया; फूल दिये और चन्दन तिलक लगा दिया और बैठने के लिए उत्तम आसन दिया। वर को अभ्यंग स्नान कराया गया। तब तूर्य आदि मंगल वाद्यों की ध्वनि आकाश में समा रही थी। राजा ने दासों और दासियों को आभूषण प्रदान किये– महान ऋषियों का पूजन किया। अद्भुत प्रेम-विनोद के साथ सबको राजा ने वस्त्र, आभूषण दिये, सुगन्धित तिलक और अक्षत लगाकर सुमन-मालाएँ दीं; सुगन्धित (मसालों से युक्त) ताम्बूल दिये। इस प्रकार दान की लीला शोभायमान हो गयी।

चारों जामाताओं का सम्मान– (राजा जनक ने) रघुनन्दन श्रीराम को लोकाचार के अनुसार प्रीतिपूर्वक भोजन कराया। तब वहाँ कोई भी दीन, (सुख-धन) हीन नहीं (दिखायी दे रहा) था। सभी लोग प्रसन्न वदन दिखायी दे रहे थे। राजा दशरथ अति प्रसन्न थे। वस्त्र, आभूषण अत्युत्तम थे। सभा स्थान में घनी भीड़ इकट्ठा हुई थी। राजा जनक ने वहाँ मानों वैकुण्ठ लोक का ही निर्माण किया था। उसकी अपनी शोभा अपार थी। श्रीराम के अपने तेज (कान्ति) से वह सभा-मण्डप भी शोभा को प्राप्त हुआ था। भगवान् विष्णु की पत्नी रमा से भी श्रेष्ठ दासियाँ श्रीराम के पास शोभायमान (दिखायी दे रहीं) थीं। राजा दशरथ ने गुरु वसिष्ठ का हाथ थामकर (विवाह-) यज्ञ की प्रतिष्ठा (शुभारम्भ) की। हवनीय द्रव्य डालकर होम प्रज्वलित कर लिया और ज्येष्ठ और श्रेष्ठ जनों का पूजन किया। राजा जनक वाद्यों के बड़े गर्जन के साथ (राजा दशरथ आदि को) सीमान्त पूजन के लिए ले आये। वह सभा-स्थान कैसे शोभायमान था ? मानों वे नरपति दशरथ वैकुण्ठ लोक के ही निवासी हों (भगवान् विष्णु ही हों)। राजा जनक वैकुण्ठ की समस्त सामर्थ्य (वैभव-सम्पदा यहाँ अपनी नगरी में) ले आये। वे स्वयं अपने सौभाग्य से समर्थ (सम्पन्न) थे; (क्योंकि) श्रीरघुनाथ राम उनके जामाता हो गए थे। चारों मोक्ष ही मानो चतुष्कोण पीढ़ा थे। उसपर राजा जनक ने अपने दामाद श्रीराम को विराजमान करा लिया। उसी सम्मान के साथ उन्होंने अन्य तीनों को भी यथोचित स्थानों-आसनों पर बैठा दिया। समझिए कि वे तीनों (लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न मानों) सत्, चित् और आनन्द थे। सच्चिदानन्द ब्रह्म स्वय गुणातीत होता है, फिर भी वह स्वयं श्रीराम के रूप में सगुण-साकार होकर शोभायमान था। उसी प्रकार वे तीनों सत्-चित्-आनन्द स्वरूप

बन्धु, ब्रह्म स्वरूप श्रीराम के कारण पूर्ण शोभायमान हो गए थे। उन्होंने मुकुट, कुण्डल तथा रत्न-मेखला को धारण किया था। उनके हाथों (करांगुलियों) में अंगूठियाँ थीं, प्रत्येक के गले में रत्नमाला थी. उनके हृदय (वक्ष-स्थल रूपी) कमल पर गले में पहना हुआ भावरूपी पदीक शोभायमान था। विदेह वंशोत्पन्न वीर जानकी जनक राजा जनक मानों विशुद्ध चैतन्यस्वरूप वस्त्र ले आये थे। वे वस्त्र श्रीरामचन्द्र ने अत्यधिक आदर के साथ धारण कर लिए। राजा जनक ने इसी प्रकार से अन्य (तीनों) वरों को अति प्रेम के साथ गौरवान्वित कर लिया। रघुपति श्रीराम विदेहराज जनक की भक्ति देखकर उल्लास को प्राप्त हुए।

ऋषिपूजन तथा विश्वामित्र को अग्रपूजन का सम्मान प्राप्त होना– ऋषि वसिष्ठ बोले- हे विदेहराज ! पहले ऋषिवर विश्वामित्र का पूजन करें। राजेन्द्र जनक को यह आज्ञा अच्छी (उचित) लगी, उन्होंने उसे स्वीकार किया। उन्होंने उन ऋषिश्रेष्ठ का सर्वप्रथम पूजन किया। तदनन्तर वसिष्ठ, वामदेव, कश्यप आदि ऋषिवृन्द का पूजन किया; भरत के महाबाहु (बलवान) मामा युद्धाजित का पूजा की राजा दशरथ का पूजन किया। सीता के जनक राजा अत्यधिक श्रद्धावान थे। उन्होंने (श्रद्धा के साथ) श्रीराम के पिता राजा दशरथ का पूजन किया; एक-एक सगे-सम्बन्धी का, समस्त सेवकों का (यथोचित) सम्मान करके सन्तुष्ट किया। ऋषि ऋष्यशृंग की धर्मपत्नी शान्ता प्रमुख वरभगिनी थी। जनक ने उसका दिव्य वस्त्र और विविध रत्नभूषण देकर पूजन किया। तीनों वर-माताएँ- कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, तीनों रानियाँ मानों सुविद्या और अविद्या (माया स्वरूपा) तथा श्रद्धा ही थीं। रानी सुमेधा उनके पाँव लगी और उसने उन्हें रत्न-आभूषण अर्पित करके उनका पूजन किया। राजा जनक की पतिव्रता स्त्री, सीता की माता सुमेधा ने श्रद्धापूर्वक श्रीराम का वन्दन करके उनके चरणों में मत्था टेका। वृद्धजनों अर्थात् गुरुजनों की परिपाटी का पूर्णत: निर्वाह करते हुए वधू-माता रानी सुमेधा ने वर श्रीराम के चरणों में उबटन लगा लिया और विशुद्ध पवित्र बुद्धि से उनके चरणों का पूजन किया।

(भोजन-) पंगत तथा पकवानों-मिष्टान्नों का वर्णन– रानी सुमेधा ने लाज संकोच का सीधे (स्पष्टतया) त्याग करके अत्यधिक आनन्द और प्रेम के साथ विनती की– 'हे स्वामी, मेरे द्वारा आयोजित कलेवा के विविध भोज्य पदार्थों की मधुरता, अच्छा स्वाद चख लें। (हे स्वामी !) आपको अर्पित करने के स्थायी उद्देश्य से मैंने बहुत से भोज्य पदार्थ बना लिये हैं। (मेरे मत में) श्रीरघुनाथ श्रद्धाभाव के (सच्चे) भोक्ता हैं। हे श्रीराम, आप मेरी इच्छाओं की पूर्ति करें। उसकी इच्छा को समझकर श्रीरघुनाथ उसके भक्ति भाव से तृप्त हुए। उधर राजा जनक ने राजा दशरथ से कलेवा के समय भोजन करने की प्रार्थना की। सबके मध्य (केन्द्र) स्थान पर मात्र श्रीराम विराजमान थे। समस्त अन्यान्य राजा चारों ओर पंक्तियों में बैठे थे। श्रीराम के रूप में मानों अपने प्रखर प्रकाश से कोई दीप जगमगा रहा था। रानी सुमेधा का सौभाग्य (इस प्रकार) अच्छे फल को प्राप्त हुआ था। (सबके लिए) समसमान (प्रेम, आदर) भाव से मानों चैतन्य के विशुद्ध तेज से चमकनेवाली सुवर्ण थालियाँ सजायी हुई थीं। बड़े बड़े कटोरे विविध रसों के पदार्थों से पूर्णत: भरे हुए थे। इसमें किसी प्रकार की कोई अपूर्णता अर्थात् त्रुटि नहीं रही थी। (अब साग-तरकारियों के बारे में सुनिए)।

कुछ एक साग (ज़मीन में से) खोदकर निकाले जानेवाले पौधों की जाति के थे; तो कुछ एक केवल उनकी टहनियों, पत्तों को खोंटकर बनाये गए थे। कुछ एक डंठलों सहित काटकर बनाये हुए थे, तो कुछ एक सुन्दर सुगन्धित वनस्पतियों को छीलकर तैयार किये गए थे। कुछ एक कड़वे एवं ऊब-खुरदरे थे, तो कुछ एक तीखे अतएव खाने पर मुँह में जलन पैदा करनेवाले थे। कुछ एक सीधे

पतले लम्बे थे, कुछ एक तो ऐसे होने से गोलाकार होकर उलझकर गाँठ-से बननेवाले थे। कुछ एक हरे रंग के, खाते समय करकराव वाले थे तो कुछ एक कठोर परन्तु रसमय थे, जो खाते समय कचकच ध्वनि उत्पन्न करते थे। कुछ एक बहुत बीजोंवाले अतएव खाते समय बुजबुज ध्वनि पैदा करनेवाले थे; तो कुछ एक सूखे थे। उन्हें चबाते समय हस्हस ध्वनि पैदा होती थी। कुछ एक अत्यधिक खट्टे थे, तो कुछ एक अन्दर-बाहर से तीखे लगनेवाले थे। कुछ एक समस्त भागों में कड़वे थे, तो कुछ एक कसैले, खाते समय समसम ध्वनि पैदा करनेवाले थे। कुछ एक सब्जियाँ गोलाकार एवं सख्त बनी हुई थीं, तो कुछ एक पुष्ट-मोटी और रसेदार थीं। कुछ एक मरोड़वाली थीं, काफी दुबली-पतली थीं। कुछ एक के हिस्से एक-दूसरे से कटे हुए थे। इस प्रकार (रसोइयों ने) फलसमूहों, फलों की बहुतायत से युक्त 'साम्बार' (कुछ खटाई-युक्त विशिष्ट प्रकार की दाल) तैयार किया था। थालियों में समस्त साग-तरकारियों के पिण्डे या ढेर लगे थे, जब वे (थाली में) प्रवहमान-से हो जाते थे, तब श्रीराम उन्हें थामते हुए स्थिर-से करते थे। इस तरह नाना प्रकार की साग-तरकारियाँ बनायी गई थीं। उनसे रघुनायक श्रीराम को तुष्टि प्रदान की गई। देखिए, श्रीराम (तथा अन्य लोग) उस अद्भुत स्वादयुक्त भोज्य पदार्थों का सेवन करने लगे। वस्तुत: खानेवाले (लोग) भी अच्छी तरह भोजन करनेवाले थे। कुछ एक केलों के परिपक्व होने पर छिलके फट से गए, वे स्नेहमय (स्निग्ध) डण्ठल से अलग हो गए, रसोई बनानेवाली स्त्री के हाथ से छूट गए। ऐसी स्थिति में उनकी बनी सिखरन अच्छे स्वाद को प्राप्त हो गई थी। पेड़ों में डण्ठलों के आधार से लटकते रहते हुए आम पक गए। फिर भी वे खट्टे ही थे। अत: उन्हें एकान्त स्थान पर पाल में रखा गया; जहाँ उनमें मधुरता ज्यादा हो गयी। फलस्वरूप उन्हें न चखने पर भी खानेवालों को नाक से सूँघने से उनका स्वाद विदित हो जाता था। ऐसे आम्र फलों के बाह्य रूप से आँखें तृप्त हो जाती थीं, सुगन्ध से नाक सन्तुष्ट हो जाती थी, वाणी (जिह्वा) कानों को बता देती थी कि ये फल अच्छे हैं। वे फल त्वचा को अपने स्पर्श से शान्त तृप्त कर देते थे। जिह्वा द्वारा मात्र उनके रस को चखते ही, उसकी मधुरता से खानेवाले का मन सुख को प्राप्त हो जाता था। वीर श्रीरामचन्द्र ऐसे फलों का सेवन करते करते अन्दर-बाहर (मन और शरीर से) सुख-सम्पन्न हो गए, अकेला एक आम्रफल खानेवाले को समस्त इन्द्रियों को तृप्त कर देता है। परन्तु जहाँ पर श्रीरामचन्द्र की पंक्ति में बैठकर भोजन-कर्ता समस्त जगत् मानों अच्युत फल अर्थात् जहाँ से कोई भी स्थान भ्रष्ट नहीं हो सकता ऐसे मोक्षपद को प्राप्त करता था। जो कचरियाँ (थालियों में परोसी हुई) थीं, वे वैराग्य के ताप (अग्नि) में तप्त की हुई थीं, अनुताप (पश्चाताप) रूपी तेल में तली हुई थीं। (भोजन करने के लिए) श्रीराम के वहाँ आ जाने के कारण वे (अभिनव) स्वाद को प्राप्त हुई थीं। कुछ भोजन-कर्ता खाते समय अविवेक से दूसरों की निन्दा स्वरूप रायते का सेवन कर रहे थे। पर भोज्य वस्तु के स्वाद को चखते ही उसकी उग्र गन्ध नाक में व्याकुलता पैदा करने लगी, तो वे सिर पीटने लगे। उनके नाक-मुँह में मानों धुआँ भर गया। इससे वे सिर पीटते रहे। उनकी आँखों को राम नहीं छू रहे थे अर्थात् उन्हें दिखाई नहीं दे रहे थे। इस प्रकार से उनका भोजन चल रहा था। अनेक प्रकार के अचार परोसे गए थे। वे मानों (भोजन कर्ताओं, रसोइयों तथा यजमानों की) भक्ति और प्रेम के रंग में रँगे हुए थे। श्रीराम समस्त भागों में लवण से युक्त उनमें से प्रत्येक अचार के स्वाद का सेवन करें। मनुष्य का अहंभाव (मैं ही सब कुछ हूँ- यह भाव) मानों कटहल का कच्चा फल है। पर वह अहंभाव स्वरूप कच्चा कटहल सोऽहं (मैं वही ब्रह्म हूँ- इस) भाव स्वरूप नमकीन अचारों में रँग गया। (भोजन-कर्ता ब्रह्म राम की भक्ति में रँग गए)। उनमें मिलकर

समस्त वैराग्य स्वरूप लसोढ़े नमकीन स्वाद में रँग गए। उसी भाव भक्ति के अन्दर लवलीन होकर वे मुक्ति को प्राप्त होकर उसी में उत्साह के साथ विचरण करने लगे। स्वबोध अर्थात् आत्मज्ञान रूपी अदरक के साथ अहंभाव रूपी आँवला मिल गया वे भोजन कर्ता अपने अहंभाव को त्यज कर आत्मज्ञान को प्राप्त हुए। वह मूली के मूलों के साथ एकात्म हो गया– वे एकात्म भाव को प्राप्त हुए। ये पदार्थ उन्हें भोजन करते समय अनोखा स्वाद अनुभव करा रहे थे। भोजन करानेवालों के इस भाव को जानकर श्रीराम ने स्वयं उन पदार्थों का (प्रेम से) सेवन किया। सत्त्व-रजस्-तमस् भावों को उत्पन्न करने वाले तीन प्रकार के पदार्थों के समुदाय (मिश्रण) के अन्दर रामभक्ति से उत्पन्न निर्गुण ब्रह्म का विचार व्याप्त हो गया। इसलिए ऐसे भोज्य पदार्थ (अचार) श्रीराम की भक्ति से बड़े चटपटे महकदार तथा स्वादिष्ट (जायकेदार) हो गए थे। न जाने ऐसे कितने अचार बनाये (और परोसे) गए थे। (उस समय) श्रीराम को करेला फल का स्मरण हुआ। उसके उस विशिष्ट स्वाद को श्रीराम ही जानते थे, इसलिए जो लोग उनके साथ पंगत में बैठे थे, वे धन्य थे।

सूक्ष्म अर्थात् अत्यंत उत्कट, विशुद्ध श्रद्धाभाव से की जानेवाली सेवा रूपी समस्त पतली सेंवई तोड़कर दूध शक्कर में सान दी गई थी। ऐसी सेवई का सेवन स्वयं राम ने किया। सेंवई के तन्तु अन्दर से पोले थे। उनमें से कुछ मोड़दार थे, तो कुछ सीधे थे उसके कुछ एक लच्छे गोलाकार थे, तो कुछ लम्बगोलाकार थे। विशुद्ध सेवाभाव के साथ समस्त अंग उस सेंवई में मानों एकत्रित हो गए थे। वे सब श्रीराम को उस स्थान पर प्राप्त हो गए। शक्कर परम स्वादयुक्त थी। शक्कर, दूध, दही, घी, शहद (मिला) पंचरसात्मक उपचार परोसा गया। समस्त सत्त्वों से युक्त घी में पाँच उँगलियों को डुबाकर उसे सींचा गया, उसके स्वाद से प्रसन्न होकर श्रीराम डोलने लगे। अनुताप की आँच से अभी तपाकर बनाया हुआ वह घी समस्त सुन्दर तत्त्वों का सार था। (सुमेधा) स्वयं उसकी अखण्डित धारा (भोज्य पदार्थों पर) गिरा रही थी। श्रीराम स्वयं ऐसे विशुद्ध श्रद्धा भाव रूप घृत के भोक्ता थे। (पाक) शास्त्र में बतायी पद्धति के अनुसार नाना प्रकार की युक्तियों से कौशल से पापड बनाये गए थे। उन्हें आँच पर सेंकते समय बहुत छटपटाहट हो रही थी जलते रहने से उन पर फोड़े निकल आये इससे वे दबाने चखने पर कड़कड़ ध्वनि करते हुए टूट रहे थे इसलिए तो उन्हें सबके पश्चात् थालियों में डाला गया, फिर भी उन्हें भजनभक्ति, प्रेम में आँच में से खींचकर सभी ओर ठंडा कर दिया था। श्रीराम को अर्पित किये जानेवाले भोग स्वरूप भोजन में वे बड़े स्वादिष्ट हो गए थे श्रीराम और सीता की प्रीति सदा (सुबद्ध) थी उसमें कुम्हड़ौरियाँ बेढंगी जान पड़ती थीं। इसलिए सुमेधा ने वृद्ध गुरुजनों का विचार जानकर वे नहीं बनायी थीं। 'कुरवंडी' या 'कुरडई' नामक मोटी किस्म की सेंवई- विशेष (अर्थात् सेवड़ा) मूलसहित समस्त बहुत उलझी हुई थी। वह स्वयं सुलझ नहीं रही थी फिर भी वह शान्ति और तुष्टि की प्रतीक-सी थी, वह कुरकुरी–कुरमुरी थी वह श्रीराम का सुख देने में सीधे काम आयी। लड्डू मानों भोग्य विषयसम्बन्धी वासना के बने थे। उन फोड़ों फुंसियों-से दानों से भरे लड्डुओं को विवेक के साथ थालियों में परोसा गया था। उनकी तुलना में उनके साथ जो तिल के लड्डु जोड़ या रखे गए थे, उनमें श्रीराम भक्ति की स्निग्धता के कारण मीठा स्वाद था। कढ़ी वैराग्य की आँच में उबालकर बनायी गयी थी। उसमें माया रूपी मूँग की टिकियाँ डाली गई थीं। घुल मिल जाने से वह बढ़िया स्वाद को प्राप्त हो गई। उसका स्वाद स्वयं राम ही जानते थे। उस कढ़ी में जीरा, काली मिर्च और कपूर मिला दिया गया था इसलिए उसकी सुगन्ध आकाश तक चढ़कर फैल गई थी। श्रीरामचन्द्र के धर्म अर्थात् उसकी

कृति के अनुसार भोजन रस के (मर्म के) ज्ञाता फुरफुर ध्वनि करते हुए उसका सेवन कर रहे थे। उस भोज्य सामग्री में माँडे जाति की पूरियाँ; क्षीरसागर के उज्ज्वल धवल रंग की दुग्ध-पूरियाँ अन्तर्बाह्य मीठे स्वादवाली गुड़-बड़ियाँ (गुड़-मिली टिकियाँ) और गुड़-दाल के मीठे मसाले से परिपूर्ण भरी हुई पूरियाँ थीं। भगवद्भजन के विशिष्ट प्रकार रूपी मधुर सुधाफेनी थी; उसमें भागवत्प्रेमरूपी शक्कर भरी हुई थी। अमृत जैसे मधुर फल को माधुर्य में लज्जित करनेवाले आम से बनाये हुए बड़े (बड़ी टिकियाँ) थालियों में परोसे गए थे। केवल मधुरता की बनायी हुई खण्डबड़ियाँ परोसी गयीं। माँडों में ऐसी तह पर तह बैठायी गई थी, जो चन्द्रबिम्ब से निकाली गई जान पड़ती थीं; उन माँडों की अद्भुत विशेषता सुनिए - चारों वेद मानों उनकी धारें तहें थीं। अन्त में उनमें गुड़-शक्कर से परिपूर्ण भरी गुझियाँ भी थीं। श्रीराम में उनके स्वाद की परख निहित थी।

विवेक (रूपी मूसल) से कूट-पीसकर धान से बनाये चावल रंग में अत्यधिक उज्ज्वल थे, और बाहर भीतर दोनों भागों में तेजोयुक्त थे। उन्हें उबालकर विशिष्ट प्रकार की थाली में डालकर हिलाते हुए उसकी माँड या पसावन निकाली गई और दोनों ओर नोंकदार चावल छोड़े गए। वे उन्हें पकानेवालों के भक्तिभाव से मुलायम बन गए थे। (अन्न ब्रह्म ही) जिसके स्वामी साथ में हैं, उस चावल का सोऽहं स्वरूप (भात आदि को आम तौर पिण्डा बनाकर जिससे परोसा जाता है ऐसी) कटोरी में युक्त विशिष्ट प्रकार की कलछी में निर्लेप भाव से (अर्थात विकारादि के सम्पर्क या प्रभाव से मुक्त) भात भर लिया गया। वह पिण्डा यथास्थान थाली में ठीक से रखा गया, जिससे वह (पिण्डा) टूट-फूट न जाय। उस अन्न के भोक्ता स्वयं श्रीराम थे, अन्न (चावल) को 'सगन्न' (मूँग अरहर आदि की, हल्दी, थोड़ा-सा नमक डालकर बनायी दाल) से श्रेष्ठता प्राप्त होती है। उस मूँग आदि के छिलके पूर्णतः निकाले गए थे। वह वरान्न थाली के मध्य में, अन्य पदार्थों के बीच में रखे हुए अन्नों के नायक स्वरूप भात के पिण्डे के माथे पर विराजमान हो गया। इसलिए भोजन कर्ताओं के नायक स्वरूप रघुनाथ को वह प्रिय लगा। वस्तुतः समस्त स्वादों के कारण अर्थात् कर्ता-निर्माता स्वयं श्रीराम ही थे। (नमक न हो तो समस्त स्वादों में कमी ही रहती है) इसलिए सब के बाद नमक (थाली में) डाला गया, जिससे वह जो भी कमी हो, उसे दूर कर के भोज्य पदार्थों को पूर्ण कर देगा। श्रीराम की पंक्ति में बैठकर भोजन करने वाले मानों अमृत रस का सेवन कर रहे थे। जिनको श्रद्धा रूपी अत्यधिक भूख लगी हो उनका प्रत्येक कौर के साथ सुख बढ़ रहा था। इसलिए उनको यही समृद्धि प्राप्त हो रही थी। भोजन करने वालों को किसी प्रकार की कमी नहीं अनुभव हो रही थी। वे भोजन करते-करते ही उस स्वाद को जान सकते थे। उसी प्रकार बड़ी रुचि (प्रेम, लगन) के साथ समझदार परोसिये खाना परोस रहे थे। इस परोसने के सम्बन्ध में राजा जनक बड़े सावधान थे। रानी सुमेधा भी नित्य प्रति सावधान थी। वे प्यासों के लक्षण को जानती थी। वह उन जीवों को जीवन रूपी जल पीने को दे रही थी। इस प्रकार वह उनको प्यास को अन्तर्बाह्य रूप से - शरीर की तथा मन की प्यास को भी बुझा रही थी। उनकी प्यास बुझाते हुए उनके मन को तृप्त कर रही थी। सुमेधा स्वयं परसनेवालों को संकेत से समझा देती थी। चारों प्रकार की मुक्तियाँ मानों खाना परोसते हुए स्वयं कष्ट उठा रही थीं। जो जो कोई मन में चाहता था, उसे वही पदार्थ (उसी समय) उसी स्थान पर दिया करती थीं। (मानों इस प्रकार भोजन कर्ता सांसारिक भूख-प्यास से मुक्ति को प्राप्त करते थे)। प्रथम नौ प्रकार की भक्ति-स्वरूपा परोसने वाली स्त्रियाँ भोक्ताओं की भूख-प्यास स्वरूप भक्ति को बढ़ा रही थीं; तो तदन्तर चार प्रकार की मुक्ति-स्वरूपा स्त्रियाँ उन्हें भोज्य पेय पदार्थ देकर उनकी सांसारिक

भूख-प्यास को, लालसाओं को पूर्ण किया करती थीं, जिस पंक्ति में श्रीराम स्वयं भोजन करते थे, उसमें किसी को कोई कमी नहीं रह सकती थी। इस प्रकार भोजनकर्ताओं का अन्तःकरण तृप्त हो गया। वे आत्मानन्द के साथ (प्रशंसा के) वचन बोल रहे थे वहाँ श्रीराम स्वयं उनके साथ भोजन कर रहे थे इसलिए वे (उनके मन) आत्मानन्द से भर उठे। रानी सुमेधा ध्यान से (सावधानीपूर्वक) परोस (-परोसवा) रही थी। इससे समस्त राजपुरुष अपनी प्राप्त समृद्धि से अघा उठे। ब्राह्मणों को पूरी-गहरी तृप्ति हुई। (अति खाने से उनके पेट फूल गए जिससे) उन्होंने अपनी धोतियों को (कमर में) ढीला कर दिया। ऐसे भोजन से सब तृप्ति को प्राप्त हुए अन्त में देखिए रघुकुलतिलक श्रीराम ने उस स्थान पर जूठन (युक्त थाली) में अपने नाम से अंकित (रामनाम अंकित) अँगूठी छोड़ दी। श्रीराम नाम अंकित मुद्रिका को देखकर सुमेधा के चित्त को आनन्द हुआ। वह लज्जा-संकोच को पूर्णतः भूल गई और श्रीराम के चरणों में लग गई। संतोष को प्राप्त होकर रघुपति राम ने उसे पुष्पमाला प्रदान की। उसका हर्ष त्रिभुवन में नहीं समा रहा था। उसे विश्वास हुआ कि सती (सत्त्वशील) कन्या सीता भाग्यवती है।

ताम्बूल-वर्णन और दान– श्रीराम के साथ पंगत में बैठकर जिन्होंने भोजन किया, वे मानों सांसारिक (घर गृहस्थी) की आसक्ति से मुक्त हुए। वे श्रीराम नाम (के स्मरण श्रवण-वचन) से प्राप्त सुख में रँग गए लवलीन हुए। उनके मुख में रंगदार बीड़े शोभायमान दिखायी देने लगे किये कर्म से फल-प्राप्ति की आशा को काट-काटकर (छोड़कर) शान्ति स्वरूप पक्व पान के डंठल को काटते हुए, उसके भोगविलास सम्बन्धी वासनाओं रूपी रेशों को निःशेष निकाल दिया और ऐसे पान से बना बीड़ा परमेश्वर श्रीराम को दिया। अहंकार स्वरूप कठिनता को जलाते हुए छानकर बनाया हुआ सोऽहं भाव रूपी विशुद्ध चूना तैयार किया गया था। श्रीराम के लिए दिये जानेवाले पान में उसके लगाये जाने पर, वह श्रीराम के मुख को सुस्वाद प्रदान करनेवाला सिद्ध हुआ जो समस्त सार तत्त्वों का सारतत्व (सर्वोपरि तत्त्व) होता है, वही मानों खदिर सार अर्थात् कत्था है। वह श्रीराम के मुख में रंग-स्वरूप बन गया। वह उनके होंठों पर बहुत शोभायमान हो रहा था। श्रीराम के उनकी अपनी मुद्रिका-स्वरूप प्रसाद के सुमेधा के हाथ आने पर वह उल्लास को प्राप्त हो गई। जब उसने वह मुद्रिका सीता के हाथ में थमा दी, तो उसने भी माथे से लगाकर उसका वन्दन किया सीता ने श्रीरामचन्द्र का (मन-ही-मन) वन्दन करते हुए वह 'राम मुद्रा (श्रीराम के रूप का प्रतीक)' अपने हृदय में धारण कर ली। उस मुद्रिका स्वरूप प्रसाद का सेवन (स्वीकार) करते ही वह शुभलक्षणधारिणी कन्या सीता राजा दशरथ के पुत्र वर राम को विपुल अंगों से (अनेक प्रकार से) प्रिय लगने लगी। श्रीराम की तेजोमय कान्ति के परिणाम-स्वरूप किसी को भी सूर्य का उदय और अस्त को प्राप्त हो जाना ध्यान में नहीं रहा। ऐसी स्थिति में पुरोहितों ने राजा जनक से कहा कि अब सूर्य उदय को प्राप्त हुआ चाहता है। (हे राजा !) अब शीघ्रता से विवाह-मण्डप के प्रति चलें। फिर पहले घटिका-पात्र की स्थापना करें और राजा दशरथ अपनी रुचि एवं युक्ति के अनुसार चुनकर झट से फल ले आने की कृपा करें। कवि कहता है– मैं एकनाथ गुरु जनार्दन की शरण में स्थित हूँ। यहाँ पर कलेवा का वर्णन पूर्ण हुआ। अब आगे चलकर श्रीराम द्वारा सीता के पाणि ग्रहण की कथा को ध्यान देकर सुनिए

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ कृत 'श्रीभावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत बालकाण्ड का 'सीमान्तपूजन और कलेवा सेवन' नामक यह तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

अध्याय २४

[विवाह–मण्डप में श्रीराम का आगमन]

गुरु वसिष्ठ द्वारा विवाह-मुहूर्त के निकट आने की सूचना देना– श्रीराम के प्रसाद को स्वीकार करने पर अब समाधि अवस्था का सुख भी फीका जान पड़ने लगा। श्रीरघुनाथ द्वारा जूठन में रखी उनकी नाम मुद्रिका को प्रसाद स्वरूप प्राप्त करने से सीता इस प्रकार उल्लसित हो उठीं। तदनन्तर, परात्पर सद्गुरु ऋषि वसिष्ठ ने सबको सावधान होने की सूचना की और मुहूर्त की घटिका, पल आदि की गिनती करने के विचार से इसी अवधि में पानी पर घटिका पात्र रख दिया। अक्षर अक्षर, पल पल के बीतते रहते घटिका पात्र के भर जाने (अर्थात् मुहूर्त की घटिका के निकट आने) में मानों अधिक समय नहीं लगा। लोग इस व्यवहार को देखने, मुहूर्त की प्रतीक्षा करने में व्याकुल बने रहे। अतः यह भी जान नहीं पाये कि समय (कब और कैसे) व्यतीत हो गया। (नियुक्त व्यक्तियों ने) समय सूचक घटिका-पात्र पर आघात किया (मानों घण्टा-सा पात्र बजाया), यह सूचित किया जा रहा था कि समय व्यर्थ ही बीतने न दिया जाय। इस प्रकार समय के व्यर्थ बीतने से कालदेवता काल का भी अन्त कर देता है, ऐसी स्थिति में (समझिए कि) प्राप्त पूँजी ही डूब गई। कैसा आश्चर्य है ! लोगों में यह अद्भुत प्रवृत्ति है कि काल उन्हें निगल डालता है, फिर भी उनके ध्यान में यह बात नहीं आ पाती। देखिए, वे दोमासी, चौमासी हिसाब के लिए खाता-बहियाँ तो रखते हैं और ऐसे (केवल) रुपये पैसे का, सांसारिक धन-दौलत का हिसाब रखने से ही लूटे जाते रहे हैं। उधर सद्गुरु कहते हैं कि घड़ी पूरी हो गई, फिर भी बाराती (-घराती) यों ही देखते रहते हैं। पर जिन्हें अपने सच्चे कार्य की जल्दी होती है, वे ही घड़ी घड़ी का हिसाब सिद्ध करते हैं। (कवि यह सूचित करना चाहता है कि आत्मलाभ प्राप्त करने का उचित समय आ गया है, उससे लाभ उठाएँ– गुरु द्वारा ऐसा कहने पर संसार में कई लोग बारातियों जैसे यों ही मज़ा लूटने में ही तत्पर रहते हैं। वे सावधान होकर समय पर आत्मलाभ प्राप्त नहीं करते)। परन्तु श्रीराम के भक्त सावधान रहते हैं। वे प्रतिक्षण का ध्यान रखते हुए उसे व्यर्थ नहीं बीतने देते ऐसे ही लोगों के किये कर्म के फल को श्रीरघुनाथ वृद्धि को प्राप्त करा देते हैं। उससे उन लोगों के समस्त हेतु सफल होते रहते हैं।

कन्या के वस्त्राभूषण और उसके पक्ष का कलेवा– सीता के पास पहनने के लिए चिदम्बर (चैतन्य स्वरूप वस्त्र) था, नाना प्रकार के रत्नों के आभूषण थे। हृदय स्थान धारण करने के लिए बनाये पदीक में मनोहारी नील रत्न था (जो नीलवर्ण युक्त श्रीराम की ओर संकेत करता है)। गले में पहनने के लिए मोतियों से युक्त अद्भुत हार थे। (कलेवा कैसे पदार्थों से युक्त था ?) सुगृहिणियों ने अहंकार स्वरूप बीज दाने पीस डाले– फिर मोह ममता का भूसा (चोकर) उसमें से हटा दिया; विशुद्ध श्रद्धा आदि भाव स्वरूप भली भाँति धोयी हुई दाल से डलियाँ भरकर रख दीं। उन सुगृहिणियों ने विवेक रूप छलनी लेकर कणिक छान लिया; इस प्रकार भूसा छानकर त्यज दिया और उस दाल में माधुर्य का गुण मिला दिया। वे ऐसे फल लायी थीं, जो पेड़ में ही परिपक्वता को पहुँच चुके थे; डंठल के मूल से अपने आप कट चुके थे, जो फल, फिर भी, मद उत्पन्न करने की प्रवृत्ति से अछूते रहे थे, ऐसे फल वे स्त्रियाँ कर्म सिद्धि स्वरूप फल-प्राप्ति के लिए लायीं। केले वैसे तो परम पवित्र होते हैं फिर भी उनमें जो वक्र,

टेढ़े मेढ़े होते हैं वे अपवित्र माने जाते हैं। श्रीराम ने छीलकर उन्हें त्यज दिया और केवल सरल-सीधे केलों को स्वीकार किया लोगों की दृष्टि में फलों में चूलफल अर्थात आम्रफल श्रेष्ठ होता है; परन्तु उसके अन्दर का भाग गुठलियों से युक्त होता है– मन के अन्दर मायाजन्य बड़ी गाँठ स्वरूप गुठली होना साधक के लिए अच्छा नहीं होता। क्योंकि राम स्वयं अच्युत फल को, अपने स्थान से कभी भ्रष्ट या नष्ट नहीं होने वाले, चिरशान्ति प्रदान करनेवाले मोक्ष–फल को प्रशस्त कर देते हैं। विदेही (देह धारण करते रहने पर भी सांसारिक विकारों मोह ममतादि विकारों से मुक्त) व्यक्ति ऐसे फल से ही सफल होता है। सौभाग्य की दृष्टि से शुभ अभीष्ट समझे जानेवाले पदार्थ पहले से रखे हुए थे- जैसे धान और हल्दी जैसे सद्बुद्धि में विवेक मिला हो, वैसे ही उनमें जीरा मिला दिया गया, वस्तुत: श्रीराम ही सौभाग्य-सूत्र (मंगल के सूत्र) हैं। वे स्वयं धागे में श्याम वर्ण के मनके पिरोने लगे अर्थात् सीता के लिए बनाये ऐसे मंगलसूत्र में श्रीराम नाम संकेतिक था, जो सीता के कण्ठ में अकेला विराजमान था। धागे में जो गाँठें थीं या गाँठों-से उलझे तन्तु थे, उन्हें खोलकर, सुलझाकर जगत् श्रेष्ठ श्रीराम ने सीता के गले में पहनाने के लिए सुन्दर मंगलसूत्र तैयार किया। उन्होंने उसमें स्वयं स्मरण स्वरूप मनका गूँथ दिया श्रीराम ने सभी ओर (प्रकार से) अनमनेपन का त्याग करके शुद्ध मन के, मनोभाव रूप अच्छे फूलों के हार बना लिए– अर्थात् एकनिष्ठ एकाग्र मन से हार बना लिए। इन विशुद्ध मनोभाव पुष्पों को श्रीरामचन्द्र ने बिना किसी धागे के आधार से गूँथ दिया। मूर्त स्वरूप पुष्प निर्गुण अमूर्त भावों के प्रतीक थे। उन हारों के पहनने से सीता मनोहारी रूप से शोभायमान थी। जो बीच-बीच के भागों में गाँठों से युक्त नहीं थे, जो अन्दर बाहर अति रसमय मधुर थे, ऐसे फलों के साथ श्रीराम बहुत उज्ज्वल दिखाई देनेवाले ईख के टुकड़े ले आये वे ऐसे ईख (इक्षुदण्ड) लाये, जिनके अग्र भाग में मौर आये थे वे मौर कुछ काले-से, जूही-से कुछ सफेद रंग के थे। वे चारों वर्णों से न्यारे (दिखाई दे रहे) थे। सीता को प्रदान करने हेतु वे फलों के साथ प्रेमपूर्वक ऐसे इक्षुदण्ड ले आये। उनमें से कुछ फल बीजहीन थे– कुछ एक छिलकों सहित थे, मधुर रसमय थे। कुछ एक बाह्य भाग सहित अन्दर से निर्मल थे। श्रीराम दस प्रकार के फल सीता को देने हेतु लाने में सफल हो गए थे। चारों प्रकार की मुक्तियों स्वरूप धागों की सुन्दर संवई बनायी हुई थी। श्रद्धा स्वरूप डालियाँ उनमें भरकर सजाई हुई थीं। उन्हें नौ प्रकार की विधियों के हाथों में थमाकर श्रीराम ने मुख्य फल बाहर निकाल लिया। ऋषि ऋष्यशृंग की धर्मपत्नी शान्ता विवाह विधि में वरभागिनी थी। मंगल वाद्य गरज रहे थे। उस गर्जन के साथ सौभाग्य से परिपूर्ण वह वरभागिनी इधर-उधर शोभा के साथ घूमती-फिरती रही। सूर्य की अपनी कान्ति जिस प्रकार शोभायमान होती है, उसी प्रकार सूर्यवंशोत्पन्न राजा दशरथ की पत्नियाँ अपनी-अपनी कान्ति से शोभायमान थीं। चारों पुत्रों रूप वेदों को जिन्होंने धारण करके रखा था, ऐसी वे श्रुतियाँ ही प्रकट रूप में वहाँ उपस्थित थीं, श्रीराम की विवाह विधि में देखने के लिए श्रुतियाँ तथा स्मृतियाँ बारात में आयी स्त्रियों एवं बारातियों के रूप में वहाँ आयी थीं वे मानों कर्मकाण्ड की विधियों का वेश धारण करके गर्जन के साथ इधर उधर चल रही थीं।

राजा जनक द्वारा बारातियों का स्वागत– राजा दशरथ ने ऋषिवृन्द को साथ में लेकर प्रस्थान किया। उनके साथ समस्त राजपुरुष तथा मित्र जन चल रहे थे। उस समय वाद्य ज़ोर-ज़ोर से गर्जन करने लगे, तो राजा जनक ने उनकी अगवानी के लिए सामने आये। उन्होंने ऋषियों को नमस्कार किया और राजा दशरथ को उन श्रेष्ठ ऋषियों के साथ विवाह मण्डप में विराजमान करा दिया, कन्या को बैठने के लिए वस्तुत: प्रकृति निर्मित मूलपीठ (आद्य आसन) भूमि ही योग्य था (क्योंकि वह भूमि कन्या थी;

भूमाता की गोद ही उसके लिए उचित आसन हो सकता है)। उस पर श्रेष्ठ पुरोहित शतानन्द ने स्वच्छ धृत वस्त्र बिछा दिया था। समस्त कन्याओं को बाहर लाया गया– उन्हें उनके हाथों में वस्त्र समर्पित करते हुए उन्हें पुनश्च अन्दर ले लिया गया (वहाँ उन्होंने अद्भुत वस्त्रों को धारण किया)। उन चारों कन्याओं ने माया-जन्य मलिन वस्त्रों को उतारते हुए राम-नाम से पवित्र हुई मनोहर चुनरियों, चैतन्यमय वस्त्रों को पहन लिया तो लोगों द्वारा जयजयकार करते रहते वे (बाहर विवाह-मण्डप में) लायी गईं।

सीता तथा अन्य कन्याओं का विवाह मण्डप में आगमन– जिस प्रकार चारों मुक्तियाँ अपने ब्रह्म स्वरूप पति का वरण करने हेतु शृंगार सजती हैं, उसी प्रकार वस्त्रादि समस्त शृंगार धारण करके चारों कन्याएँ मण्डप में आ गईं उनमें सती सीता प्रधानतया शोभायमान थी। सीता की चुनरी का पल्लव (दामन), अपनी कान्ति से चमक-दमक रहा था। उससे उस मण्डप में प्रकाश फैल गया। अपनी उस बहू को देखकर राजा दशरथ बहुत आश्चर्यचकित हो गए, (उन्हें जान पड़ा कि) यह सीता तो आभूषणों का ही आभूषण है; उसी के कारण आभूषण शोभा को प्राप्त हो गए हैं। सीता के ही अपने गुण के (माया जन्य सगुण रूप धारण करने के) कारण वे सब सगुण आभासित हो रही थीं, (वस्तुत: वे माया स्वरूपा अतएव निर्गुण, निराकार थीं)। सीता की देह की कान्ति किरण से अन्धकार का जीवन (अस्तित्व) लज्जित हो गया। फलस्वरूप प्रखर धूप और शीतल चाँदनी लुप्त हो गई (धूप की गरमी तथा चाँदनी की मन्द कान्ति का लोप हो गया)। समस्त प्राणी प्राणों को थामे ठिठककर रह गए। समझ में नहीं आ रहा था कि यह दिन है या रात। आँखों की पलकें (अपना स्वाभाविक गुणधर्म) झपकना भूल गईं (सब एकटक देखते रह गए थे), समस्त शब्द (ध्वनियाँ) शान्ति (मौन) को प्राप्त हो गए सब लोग टकटकी लगाकर देख रहे थे।।

चारों कन्याओं को फल प्रदान करना– सावधान ! हे राजा दशरथ ! आपने अपनी बहू (बहुओं) को देख लिया। अब श्रीराम के विवाह मुहूर्त को सिद्ध करने की दृष्टि से बहुओं को फल प्रदान कीजिए। श्रीराम का विवाह सम्पन्न करने में अब कोई बाधा शेष नहीं है। अत: सीता रूपी रत्ननिधि की प्राप्ति हेतु उसे शीघ्रतापूर्वक फल अर्पित कीजिए। पहले ही फल अर्पित करने से कार्य तत्काल सिद्धि को प्राप्त नहीं होता। परन्तु समस्त फल को (बिना किसी प्राप्ति की आशा से) पूर्णत: अर्पित करें तो (अभीष्ट) फल की प्राप्ति हो जाती है। वसिष्ठ की बात में जो गूढ़ार्थ भरा संकेत था उसे राजा दशरथ समझ गए। तदनंतर वसिष्ठ के अपने कथन के अनुसार, समझिए कि उन्होंने चारों बहुओं को अपने सामने बैठाकर वस्त्र-आभूषण सहित समस्त (इच्छाओं के प्रतीक स्वरूप) फल प्रदान किया फिर दशरथ जनक ऋषियों के पुरोहित शतानन्द को बुलाकर ले आये। वे (वस्तुत:) धन के विषय में अनासक्त थे, राजा दशरथ ने करोड़ों रुपये मूल्यवाले पदार्थ एवं धन कलश में डालकर उन्हें अर्पित किया। तब शतानन्द बोले– 'हे राजा दशरथ, श्रीराम के दर्शन कर लेने पर अब किसी भी प्रकार के धन के प्रति कोई लोभ शेष नहीं रहा है'। (यह कहकर) उन्होंने राजा के चरणों में मत्था टेका। फिर राजा ने द्विजवर (शतानन्द) को सर्वप्रथम पूजन करके सम्मानित किया, सबको फूल प्रदान करके चन्दन तिलक लगा लिया, सभी प्रकार से परिपूर्ण ताम्बूल दिये। इस प्रकार वधुओं को फलार्पण करने की विधि सम्पन्न हो गयी तत्पश्चात् वसिष्ठ ने जनक से कहा कि वरों को यथाशीघ्र आमन्त्रित किया जाए। (विधि-अनुसार) वरों के आमंत्रित हो जाने पर राजा दशरथ सहित ऋषि स्वयं जनवासे के प्रति आ गए। बारात में आयी हुई स्त्रियों ने कहा (कन्याओं की प्रशंसा की)– इन सुन्दर कन्याओं को देखने से हम सबको प्यास भूख

का स्मरण भी नहीं रहा। वे कन्याएँ सौभाग्य की अद्भुत कला-कान्ति से युक्त थीं। वे चारों जनीं (कन्याएँ) अत्यधिक रूपवती थीं। वे जड़मूल सहित अर्थात् पूर्ण रूप से सौन्दर्य की खानें थीं। वे मानों लावण्य के अधिष्ठान पर विराजमान दिव्य योगिनियाँ थीं, सद्गुणों की साक्षात् गुण-रूप-धारिणी थीं समझिए कि नवरत्न-निधि सीता को प्राप्त करने हेतु ज्ञान स्वरूप श्रीराम ने शिवधनुष को भग्न कर डाला और सीता स्वरूपा उस दिव्य रत्न से परिणय किया। समझिए कि आदि शक्ति ने स्वयं अदृश्य रूप में आकर श्रीराम के हाथों में जड स्वरूपा दृश्य सृष्टि रूपी कंकण धारण करा दिया अपने सगुण-साकार रूप सीता को श्रीराम से विवाह बन्धन में आबद्ध किया और अपना जीव स्वरूप राईनोन उतारते हुए वह उनपर निछावर करके चली गयी।

रानी सुमेधा द्वारा 'तेल-फल' अर्थात् तेलवाई करना- राजा जनक वरों को बहुत सम्मानपूर्वक आमंत्रित करने के लिए चले, तो रानी सुमेधा ने अत्यधिक उल्लास के साथ तेलवाई नामक लौकिक आचार की सामग्री को अनेक प्रकार से समृद्ध करा दिया। गहरी भक्ति स्वरूपा महीन सेंवई के लड्डू उसने बना लिये, जो श्रीराम को अत्यधिक प्यारे लगते थे। उसमें वैराग्य रूपी अति मधुर शक्कर मिलायी हुई थी। अत्यधिक स्वादिष्ट तिल की बरियाँ भी तैयार करके तेलवाई की सामग्री में रखी गईं शास्त्रों के प्रत्येक शब्द को लेकर विवाद करने वालों के उच्च स्वर रूपी खसखस को साफ धोकर उसमें से अप्रिय स्वाद को हटा दिया और शुद्ध खसखस स्वरूप तत्त्वों के रसमय लड्डू बाँध दिए। उनमें शुद्ध चित्तत्त्व रूप गुड़ की मधुरता व्याप्त थी आचार-व्यवहार सम्बन्धी चार्वाक के मत स्वरूप फोड़ों को काट चीरकर, अचेतन तत्त्व के समर्थक मत का खण्डन करते हुए विशुद्ध चैतन्य तत्त्व सदृश चिरौंजी निकाली और उसमें चित्-स्वरूपा शक्कर मिलाकर लड्डू बाँध लिए जो श्रीराम के लिए सुख की बहुतायत उत्पन्न करने वाले थे। सुमेधा ने अष्टांग योग के आठ दलों (पँखुड़ियों) वाले कमल के बीजों को लेकर उन्हें भी छीलते हुए उनका सारतत्त्व निकाल लिया और उसके सुगन्धयुक्त लड्डू आसानी से बाँध लिए। उसने तेलवाई की सामग्री में एक प्रकार की विशेष व्यवस्था (उच्च स्तर) प्रदर्शित की कटहल के ऊपर समस्त छिलके में तो काँटे होते हैं, परन्तु उसका अन्तर्भाग (गरी) सुखदायी मधुर होता है। गरी के अन्दर से यत्नपूर्वक सुमेधा ने बीज निकालकर उनके मधुर लड्डू प्रेमपूर्वक बना लिए। विदेहराज जनक की भार्या सुमेधा बहुत समझदार थी, ज्ञानी थी। उसने गंगाफल अर्थात कद्दू के बीज छीलकर (शुद्ध तत्त्वमय उन बीजों के) अपनी प्रतिष्ठा के अनुकूल तेलवाई के लिए लड्डू बाँध लिए काँटों के बीच दाम्भिक, पाखण्डी बेर पाये जाते हैं, वे पाखण्डियों की भाँति बाह्य रूप से सलोने होते हैं, पर अन्दर से खट्टे (अवगुणमय) होते हैं। रानी सुमेधा ने निश्चयपूर्वक उनके बीजों को काटकर अन्दर से उनकी गरी निकाल ली। उनमें सद्भाव का मीठा गुड़ मिलाकर उनके लड्डू बाँध लिए (उसे विदित था कि) श्रीराम स्वाद को परखना जानते हैं। इस प्रकार सद्भाव स्वरूप तेलवाई की महत्ता ही सर्वोपरि होती है। वस्तुतः कठोर वैराग्य से स्नेह-सम्बन्ध, व्यवहार टूट जाता है, बिगड़ जाता है पर सद्बुद्धि-स्वरूपा रानी सुमेधा श्रीराम को देने के उद्देश्य से ऐसी तेलवाई ले आयी थी कि उस गुण विशेष के कारण उस व्यवहार का किसी प्रकार टूटना फटना या उसमें बिगाड़ या विकृति का आना सम्भव नहीं था। जो अपने घर-गृहस्थी सम्बन्धी व्यवहार से ऊब गये हों, वे ही वस्तुतः टेढ़ी मेढ़ी गुझियों जैसे होते हैं। फिर भी वे सद्भाव या श्रद्धा से मुड़े मोड़े अर्थात् सीधे सरल बने माने जाते हैं। श्रीराम को ऐसे लोगों के अकुटिल स्नेह स्निग्ध व्यवहार अच्छे लगे। सन्देह, अश्रद्धा या दुविधा से युक्त तेलवाई कहने के लिए तो बहुतों

को अनुकूल जान पड़ती हो, श्रीराम को वश में नहीं कर सकती। परन्तु वह तो विदेहराज (सांसारिक भोग, लोभ आदि से पूर्णतः मुक्त व्यक्ति) की ओर से की जानेवाली तलवाई थी स्नेह भरा व्यवहार था। अर्थ लगाते हुए उसकी व्याख्या करते हुए उसके रहस्य को समझना अति कठिन था।

गुरु गम्भीर वाद्य गर्जन में राजा जनक अति आदर के साथ वर श्रीराम को आमंत्रित करके ले जाने हेतु आ गए। उसी प्रकार रानी सुमेधा अपने ढंग से गाजे-बाजे के साथ सुहागिन स्त्रियों के वृन्द सहित आ गयी, तो राजा दशरथ ने उनका सम्मान किया। दोनों पक्षों के मित्र-सज्जन सभास्थान में बैठ गए। उनके मुख प्रसन्नता से शोभायमान थे, मण्डप में सन्तोष छा गया था। वर श्रीराम उस स्थान के अन्तर्भाग में विराजमान थे। उन्हें प्रेम भाव पूर्वक सभास्थान में ले आने हेतु सद्गुरु वसिष्ठ ने उनका हाथ थाम लिया, तो श्रीराम उनके साथ बाहर प्रकट हो गए। (वैसे तो ब्रह्म सबके भीतर होता ही है, पर सद्गुरु के मार्गदर्शन में उसका साक्षात्कार किया जा सकता है)। श्रीराम लावण्य की राशि हैं उन्हें जनसामान्य की भाँति वस्त्र बदलने नहीं पड़ते वस्तुतः उन्हीं के कारण जगत् को सुन्दरता प्राप्त हुई है, इसलिए उनके सुन्दर रूप का वर्णन करते हुए उसकी सीमा दर्शायी नहीं जा पाएगी। गुरु वसिष्ठ के कहने पर श्रीराम सभास्थान में आ गये तो उनके तेज से आकाश और पृथ्वी दोनों व्याप्त हो गए, उन्होंने उनको श्रेष्ठ आसन पर विराजमान कर दिया। श्रीराम के मुख को देखते ही समस्त लोग विस्मय मुग्ध हो उठे उनकी आँखों में टकटकी बँध गई और अन्तःकरण में आत्मिक सुख व्याप्त हो गया। श्रीराम के दर्शन से उनकी आँखें अघाकर ठंडी हो गईं। इन्द्रियाँ पूर्णतः सुख को प्राप्त हो गईं, उनका बोलना चालना बंद हो गया। तब वसिष्ठ ने कहा- 'सावधान शीघ्रता पूर्वक तलवाई की सामग्री समर्पित करो'। तो सुमेधा ने स्वयं आकर वर श्रीराम को देखा श्रीराम के मुख को देखते ही उसके नेत्र परम आनन्द से अघा उठे। तृप्ति की सूचक डकार देते रहने पर भी वे अपार भूखे जान पड़ रहे थे। वह बारबार उनके मुख को निहार रही थी। उसने आनन्द के साथ राईलोन उतार लिया और सब के बीच विराजमान (सब के भीतर व्याप्त परब्रह्म स्वरूप) श्रीराम को देखकर अपने-अपने जीव (प्राणों) से उनकी आरती उतारी या उसने श्रीराम पर अपने जीव-प्राणों को निछावर कर डाला, (उसे जान पड़ा) श्रीराम तो सबके भीतर परिपूर्ण रूप से समाये हुए हैं; इस स्थिति में मैं तलवाई किसे अर्पित कर दूँ ? तब वसिष्ठ ने स्वयं आकर उसे संकेत में श्रीराम का परिचय करा दिया। उनका यह मतलब था कि जिनके दर्शन करने से जो सबके पूर्णतः व्याप्त दिखायी देते हैं, उन्हीं को मुख्य अर्थात् प्रत्यक्ष श्रीराम समझ लो और उन्हें तलवाई अर्पित कर दो गुरु वसिष्ठ के उस संकेत स्वरूप वचन को सुनकर सुमेधा सचेत हो गयी और उसने श्रीराम को तलवाई की सामग्री, वस्त्र और आभूषण समर्पित कर दिये। तब बारातियों ने कहा-'आश्चर्य है ! कन्या की साक्षात् माता ही अपने दामाद को नहीं पहचान पा रही है, तब हम लोग क्या करें ? अब वर ही की इट से चलने दें'। जिस प्रकार श्रीराम को तलवाई प्रदान की गई उसी प्रकार लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न का दिव्य वस्त्र और आभूषण देकर (सुमेधा ने) समसमान रूप से पूजन किया।

चारों राजपुत्रों का अश्वारूढ़ होकर विवाह-मण्डप के प्रति आगमन-- शुद्ध सत्त्वगुण से निर्मित श्वेतवर्ण के अश्व पर रघुवीर राम आरूढ़ हो गए। वह घोड़ा सत्त्वगुणमय, अपार धैर्ययुक्त (दृढ़, मजबूत) था। इसलिए वह श्रीराम के भार को उठाते हुए सहन कर सका। उन चारों ही वरों को समसमान गुण एवं शक्ति से युक्त बैठने के लिए वाहन रूप चार सफेद रंग के घोड़े थे। उनपर वे चारों दूल्हे शोभायमान थे। वे लोगों के नयनों को आह्लाद अनुभव करा रहे थे। पूर्ण परम ब्रह्मानन्द का अनुभव कराने

का लक्ष्य निर्धारित करके ही सच्चिदानन्द भगवान् श्रीराम प्रकट हो गए थे। उसी प्रकार श्रीराम के साथ तीनों बन्धु जन्म को प्राप्त हुए थे। श्रीराम के साथ इस प्रकार की एकात्मता के कारण वे आत्मज्ञान के बोधस्वरूप थे। जिस प्रकार ॐकार ही मूलतः मुख्य वेद स्वरूप है और वही-चतुर्विध वेदों के रूप में आभासित होता रहता है, उसी प्रकार ये ही चारों बन्धु परस्पर एकात्म होने के कारण आत्मज्ञान स्वरूप थे। एक ही साधु पुरुष में चारों पुरुषार्थ जैसे आभासित होते रहते हैं, वैसे ही इन चारों बन्धुओं की स्थिति गति थी। वे चारों अलग-अलग दिखाई देते थे, फिर भी चारों एक ही ब्रह्म के अंगभूत थे। इसलिए आत्मबोध की दृष्टि से वे एक (श्रीराम) के रूप में ही समाविष्ट थे। जिस प्रकार एक श्लोक (छन्द) के चार पाद होते हैं, फिर भी वह वस्तुतः एक ही इकाई होता है, वैसे ही चारों बन्धु एकात्म, अद्वैत अवस्था को प्राप्त थे। उस श्लोक (छन्द) के अक्षरों में जैसे 'श्रीराम' अर्थ स्वरूप होते हैं, उसी प्रकार इन चारों बन्धुओं के अन्दर एक ही ब्रह्मतत्त्व विद्यमान था। वे चारों वर शान-शोभा के साथ इकट्ठा चलते शोभायमान थे। उनपर लोगों की तन्मयता (श्रीराम स्वरूप में एकात्मता) के छत्र धरे हुए थे। उनपर आत्मज्ञान रूपी चँवर झुलाये जा रहे थे। उस समय दस प्रकार के वाद्य बजाये जा रहे थे। (ये दस वाद्य कौन-से थे, कैसे बज रहे थे ? सुनिए।) घण्टों और किंकिणियों के स्वर साक्षात् मधुर ध्वनियों के ही प्रतिरूप थे। वीणा, वेणु (मुरली), मृदंग और ढोल की ध्वनियाँ, ध्वनियों के शुद्ध रूप ही प्रकट कर रही थीं। तूर्य और काहल भारी– गम्भीर गर्जन कर रहे थे। उस गर्जन में नगाड़े पर भी चोट करके उसे बजाया जा रहा था। मंगल बीन की ध्वनि गूँज रही थी। उस नाद ध्वनि समुदाय को सुनकर मन शान्ति को प्राप्त हो रहा था। जिस प्रकार अनहद ध्वनि का गर्जन (योगी के मन भीतर) होता रहता है, उसी प्रकार वाद्यों का गर्जन हो रहा था। उस ध्वनि से आकाश व्याप्त हो गया था। मानों वह शब्दाकार अर्थात् ध्वनि-रूप ही हो गया था। श्रीराम के वर्णन करने में चारों वेद रूपी चतुर अति गम्भीर भाट जुट गए थे। अठारह पुराणों के रूपधारी अठारह अनोखे मागध रघुकुल के वीर पुरुषों के प्रताप का वर्णन कर रहे थे। तर्क-शब्द की व्याख्या करने में अपार सामर्थ्यशील षट्-शास्त्रों स्वरूप छः विद्वज्जन तार स्वर में वाद-विवाद कर रहे थे। वस्तुतः शब्द रूप में छल-प्रपंच लीला ही कर रहे थे। उन्हें अपने अपने ज्ञान का अहंकार था। आठों (आध्यात्मिक) भाव अपार प्रेम से सत्त्वगुण स्वरूप अश्व को हाथों से थामकर श्रीराम के साथ नित्य प्रति चल रहे थे। नहीं तो, उनके कोई अपनी स्थिति-गति नहीं रहती। सूर्यचिह्न से शोभायमान आत्मसुख स्वरूप आतपत्र (छत्र), चित्स्वरूप चन्द्र के बने पल्लव छत्र मानों साक्षात् तेजाकार बनकर चमक-दमक रहे थे। वे श्रीराम के कारण उल्लास को प्राप्त जान पड़ रहे थे। आत्मानुभव तथा आत्मानन्द से शक्तिशाली बने भाट अति गम्भीर ध्वनि (में स्तुति पाठ) करते हुए गरज रहे थे। दोनों ओर हाथियों के दल श्रीराम के कारण ही मन्द गति से चल रहे थे। श्रीराम ने उपहार देकर जिन आठों सिद्धियों को त्यज दिया था, वे आठों (अणिमा आदि) महासिद्धियाँ नर्तकियों के रूप में मोह लेने, भुलावे में डालने के लिए चपलता के साथ नाच रही थीं। योगी तथा साधक श्रीराम को देखना भूलकर जहाँ सिद्धियों को नृत्य करते देखते रहते हों, वहाँ (उसी समय) वे छल में आ जाते हैं, घमण्ड के कारण ज्ञानी भी भुलावे में आ जाते हैं। वस्तुतः श्रीराम चैतन्य स्वरूप अंजोर बिखेरते रहते हैं; जिसे वह लग (प्राप्त हो) जाए, वह जगत् में धन्य है। वे तो ज्ञान स्वरूप वैसा ही दान देते रहते हैं, जिससे याचक का चित्त तृप्त होते हुए शान्त (तृष्णा आशा रहित) होता है। जनक पुरोहित शतानन्द हाथ में विवेक रूपी दीप लेकर अपनी आँखों से जगत्-श्रेष्ठ (स्वामी) श्रीराम को देखने हेतु ऐसे सांसारिक दृश्यों (सम्बन्धी

मोह आदि विकार-समुदाय) को पीछे हटा रहे थे। वैष्णवों को श्रीराम के रूप के प्रति अपार प्रीति होती है। अतः वे उनके सामने (भक्ति एवं आनन्द से) नाच रहे थे 'अहं सोऽहं' अर्थात् 'यह मैं हूँ' और 'वह ब्रह्म स्वरूप श्रीराम हैं', ऐसे द्वैतभाव का त्याग करके वे आत्मानन्द के साथ नृत्य कर रहे थे। (बारातियों की उस शोभायात्रा में) श्रीराम के साथ ब्रह्मविद्या-धारिणी ब्राह्मण स्त्रियाँ सुहागिनें, जो आत्मबोध की साक्षात् माताएँ थीं, पालकियों में बैठकर शान-शोभा के साथ जा रही थीं। ऐसी ये समस्त सुवासिनी स्त्रियाँ आत्मज्ञान के अक्षत चावल आदि बिखेरते हुए श्रीराम के मस्तक पर डाल रही थीं - वे अपने लक्ष्य (श्रीराम के मस्तक) को बिल्कुल नहीं चूक रही थीं। श्रीराम के सगे सम्बन्धी आप्त जन वस्तुतः योगी थे, आत्मानुभव को प्राप्त थे, आत्मज्ञानी (अतएव सांसारिक बन्धनों से) मुक्त थे। फिर भी श्रीरघुनाथ ने उन्हें उपहार स्वरूप जो वाहन प्रदान किये, उनका विवरण सुनिए। कुछ एक को उन्होंने सलोकता मोक्ष रूपी घोड़ दिये, तो कुछ एक को समीपता मोक्ष स्वरूप सुन्दर रथ दिये। कुछ एक को स्वरूपता मोक्ष रूपी भारी (मूल्यवान उम्दा) हाथी दिये, जो संसार रूपी रणभूमि में विपक्ष को (सांसारिक मोह आदि विकारों को) नष्ट कर देते थे। सायुज्यता मुक्ति स्वरूप अम्बारी (हौदे) में उन्होंने अपने को प्राप्त करने के अधिकारी अपने भक्तों को बैठा दिया। उन्हें वे क्षणभर के लिए भी अपने धाम से दूर जाने नहीं दे रहे थे। बारातियों में कुछ एक ने आतशबाजी के अग्नियंत्रों में रजस् तथा तमस् गुणों से युक्त मसाले भरकर सिद्ध किया था। उनमें से कुछ एक ज्ञाता जन श्रीराम को अपार तमाशे (मन बहलाव के हेतु) दिखा रहे थे। उन्होंने उन यंत्रों के देह स्वरूप ढाँचे में चैतन्य स्वरूप अग्नि डालकर (उन्हें जलाकर) ममता रूपी चन्द्रज्योति प्रज्वलित कर दी। देखिए वह उछलकर गगन में गयी और जहाँ के तहाँ स्थान पर बुझ गई।

लोभ से युक्त, लोभ नामक विकार स्वरूप छछूँदरों को कुछ एक ने विवेक रूपी आग में जलाकर दूर उछाल दिया। उराभाग और मस्तक (बुद्धि) को जलाते हुए उनपर गिर रहे थे। प्रत्यक्ष आग का उपशम करके उन्होंने क्रोध रूपी भूमिनल (जैसे अग्नियंत्र) को सुलगा दिया। फलस्वरूप इनमें साँय साँय करती हुई ज्वालाएँ उत्पन्न हो उठीं। फिर वह भी (यथासमय) बुझ गया। श्रीराम की योजना-स्वरूप अपनी लीलाओं ने काम विकार-स्वरूप हस्तनल (पटाखे जैसा अग्नियंत्र) जला डाला। वस्तुतः उस शक्तिहीन को भी जनसाधारण जला डालना नहीं जानते, इसलिए वह प्राणी मात्र के कलेजे को झुलसाता रहता है। देखने में जो अपार कठिन-तीक्ष्ण जान पड़ता है, ऐसे अहंकार स्वरूप अग्नियंत्र बाणों में कुछ एक ने अल्प सी चित्स्वरूप आग लगाकर पूर्णतः जला डाला। उससे जीवतत्त्व बिचककर भाग गया। (इस प्रकार) अहंकार, ममता, काम क्रोध का शमन करते हुए रघुपति श्रीराम (विवाह स्थान के प्रति) आ रहे थे। श्रोता सन्त सज्जन यह न कहें कि मैंने यह कहते हुए व्यर्थ ही युक्ति-युक्त चतुराई से बातों का विस्तार कर दिया है।

इस प्रकार श्रीराम के आगमन से अहंकार, ममता आदि विकारों का शमन हो गया; फलस्वरूप लोगों के आत्मस्वरूप चन्द्र की (ज्ञान-स्वरूपा) ज्योति (किरण) उज्ज्वल रूप में प्रकट हुई। फलतः परम तेजोमय कान्ति प्रकट हो गई। उसकी उस अवस्था का वर्णन सुनिए, वहाँ पर अज्ञान स्वरूप अन्धकार जड़-मूल तक से शेष ही नहीं रहा, आत्मिक शान्ति स्वरूप चाँदनी ने समस्त धूप को नष्ट कर डाला, उससे (प्रत्येक के मन में) आत्म-तेज अति अद्भुत रूप में प्रकट हुआ। यह देखकर श्रीराम सुख के

साथ डोल झूम रहे थे। पद पद पर श्रीराम नाना प्रकार के उपहार वितरित करते जा रहे थे। जीव मात्र, समस्त लोग उनकी आरती उतार रहे थे। इस प्रकार स्वयं श्रीराम (विवाह-मण्डप के प्रति) पधारे

कन्या के (गृह के) द्वार के पास एक ओर सिद्धियाँ दासियों के रूप में उपस्थित थीं। वे श्रीराम के लिए शुभ शकुन सूचित कर देने हेतु जल से पूर्ण भरे कलशों को लेकर खड़ी थीं। उस द्वार के दूसरी ओर श्रीरघुपति को अपने प्राणों से आरती उतारने हेतु स्वयं श्रद्धा, कीर्ति, धृति, विरक्ति सदा (कब से दीर्घ काल) प्रतीक्षा करती हुई खड़ी थीं। कुछ एक ने निःशेष रूप से वायन-उपहार अर्पित किया; कुछ एक ने परम आत्मानन्द प्रदान किया; कुछ एक ने अनन्त आत्मसुख प्रदान किया, तो कुछ एक ने आवश्यक अपने आप के हृदयस्थल में निवास के लिए स्थान दे दिया। रानी सुमेधा ने जीव-भाव स्वरूप चावल पिण्डे निछावर करके उछाल दिये। इस आनन्द प्रसंग को देखकर वह मौन को प्राप्त हुई, परम आत्मानन्द को प्राप्त हुई। जब श्रीराम अपने तीनों बन्धुओं के साथ द्वार (की सीमा) में प्रविष्ट हुए, तो सब जयजयकार करते हुए उनको मण्डप के अन्दर ले आये। हृदय को आबद्ध करनेवाले अज्ञान-स्वरूप बन्धन को काटने के लिए गुरु के उपदेश-वचन में से ज्ञानबोध प्रकट हो जाता है। उसी प्रकार अपने तीनों बन्धुओं को लेकर कीर्तिमान श्रीराम स्वयं (मायास्वरूप कन्या के विवाह मण्डप में) आ गए (उनके पिता) वही राजा दशरथ थे, जो अपनी दसों इन्द्रियों में सामर्थ्यशाली थे; फिर भी दसों इन्द्रियों के भोग्य विषयों से अति अलिप्त थे। यह समस्त आनन्दोत्सव उन्हीं के कारण हो रहा था

(कवि कहता है-) मैं एकनाथ अपने गुरु श्रीजनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हूँ अब श्रोता जन श्रीराम के विवाह मण्डप के प्रति आगमन का और तदनन्तर मधुपर्क विधि का वर्णन (जो मैं अपने गुरु की कृपा से करने जा रहा हूँ) अवधानपूर्वक सुनें।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ-कृत 'श्रीभावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत बालकाण्ड का 'श्रीराममण्डपागमन' नामक यह चौबीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय २५

[जानकी का पाणिग्रहण]

राजा जनक द्वारा श्रीराम का स्वागत करते हुए उन्हें आसन आदि प्रदान करना– अन्य तीन वरों सहित श्रीराम विवाह-मण्डप में पधारे। राजा दशरथ भी ऋषियों सहित आ गए। तब राजा जनक को बहुत हर्ष हो गया। राजा जनक ने सभा मण्डप में ऋषियों सहित सबका (स्वागत-) सम्मान करते हुए उन्हें (विराजमान होने के लिए) मुलायम गद्दियाँ, गलीचों जैसी छोटी-छोटी गद्दियाँ आदि बढ़िया आसन और गावतकिये प्रदान किये।

मधुपर्क-विधि– तदन्तर मधुपर्क नामक विधि सम्पन्न की गई उस समय, समझिए कि (चारों दूल्हों के लिए) चारों पुरुषार्थ चौकियाँ बने हुए थे। उन पर चारों के लिए समाधि स्वरूप आत्मिक आनन्द अनुभव करानेवाले सुखप्रद बढ़िया आसन बिछाये गए थे। जो ब्रह्म (स्वरूप श्रीराम) नित्य सर्वत्र उदित अर्थात् विद्यमान हो, उसे प्रार्थना करके (कैसे) आमंत्रित किया ? उसके बैठने के लिए (कैसे) आसन

प्रदान किया। जो वस्तुत: समस्त क्रियाकर्मों से रहित-मुक्त हो, उसे (कैसे) आचमन कराया गया, जो अ-चरण है, उनके चरणों का क्षालन (कैसे) किया गया। श्रीराम तो आभूषणों के आभूषण थे। उन्हें आभूषण आभरण प्रदान किये गए, जो आवरण आच्छादन रहित (ब्रह्म स्वरूप) थे, उन्हें ओढ़ने के हेतु ओढ़ावन अर्पित किया गया। जो सब स्थानों में आगत स्थित थे, उनके आगमन के हेतु वाहन आदि का प्रबन्ध हो गया था। जो सहज स्वयंभूत हो, उसके पंटपीठ की कल्पना करें; जो अखण्ड हो, उसके लिए बैठने-रहने के लिए छोटे टुकड़े-सी चौकी प्रस्तुत करें; जो शब्द-रहित हो, उसको स्पष्ट शब्दों में आमंत्रित-उल्लिखित करें ऐसी अद्भुत बातें जैसे ही की गयीं, वैसे ही जो निरन्तर हों (किसी से कोई अन्तर या अलगाव नहीं रखते हों), उन श्रीराम के लिए (विवाह-वेदी पर कन्या से आँख ओट रखने हेतु) विवाह विधि सम्पन्न कराने हेतु अन्तर्पट धरा गया। श्रीराम (वस्तुत:) परब्रह्म थे, स्व-तंत्र थे परन्तु उन्होंने भी ब्रह्मसूत्र-तन्तुओं से निर्मित जनेऊ धारण किया। (कहना यह कि ब्रह्म स्वरूप होने पर भी श्रीराम ने वेद-विधान के अनुसार आचारों का निर्वाह किया)। अस्तु, इस अथाह परम भावार्थ (की बात) को छोड़ दीजिए। राजा जनक मधुपर्क विधि सम्पन्न करने के लिए जब आ गए, उनके श्रद्धा भाव का हेतु जानकर श्रीराम ने (समस्त) विधियों को स्वीकार किया। सर्वसमभाव, सबके प्रति सम-सम्मान अर्थात् उच्च-निम्न भेदभाव रहित विचार ही श्रीराम के लिए (यथोचित) आसन था। आशा-निराशा का अर्घ्य देकर त्याग दिया जाना आशा निराशादि द्वन्द्वों का त्याग स्वरूप दान ही सच्चा अर्घ्यदान है। उसी प्रकार के अद्भुत दान से श्रीराम के चरण अर्घ्य को प्राप्त हुए। पाद्यार्घ्य (पाँवों पर समर्पित करने हेतु) श्रीराम की दृष्टि से उचित तीर्थ जल (कौन सा होगा, वह तो) त्रिगुण स्वरूपा होने पर भी उनसे परे रहनेवाली गंगा-यमुना सरस्वती अर्थात् त्रिवेणी का ही हो। वह चैतन्य के प्रवाह से युक्त अतएव पवित्र हो वह वस्तुत: चित्स्वरूपा गंगा नदी का ही जल हो। (अस्तु) रानी सुमेधा स्वयं ऐसा उदक डाल रही थी और राजा विदेह जनक श्रीराम के चरण धो रहे थे। श्रीराम के पाँवों तले समस्त तीर्थस्थलों के पवित्र जल निश्चय ही उपस्थित हो गए थे (श्रीराम का चरणतीर्थ जल ऐसा पवित्र था)। श्रीराम के चरणतीर्थ जल का सेवन करने से समस्त तीर्थक्षेत्र पवित्र हो जाते हैं। ऐसे उन श्रीराम के दर्शन करने हेतु देवता, मनुष्य सिद्ध उनके विवाह में वहाँ पर आ गए। रानी सुमेधा ने अपने जीवन (प्राण) रूपी शुद्ध जीवन (जल) को आचमन कराने हेतु हथेली में डाल दिया श्रीराम ने (सन्ध्या विधि में पठन किये जानेवाले) केशव, नारायण आदि चौबीसों भगवन्नामों का पठन करते हुए समस्त कर्मों का आचमन करके नष्ट किया, अपना लिया। जो श्रीराम परब्रह्म के भी अधिष्ठाता (ब्रह्म के ब्रह्म) थे, उन्हें ब्रह्मसूत्र (जनेऊ) धारण कराया गया। इस प्रकार श्रीराम ने वृद्धों पूर्वजों की परम्परा का वेद-विहित व्यवहार का परिपालन एवं रक्षण किया। राजा जनक ने श्रद्धा भावना से उन वरों को तिलक लगाकर, पवित्र पुष्प और मालाएँ, चिद्स्वरूप रत्न तथा दिव्य आभूषण और पीताम्बर एवं (अन्य) वस्त्र देते हुए श्रीराम का पूजन किया जिस प्रकार वृक्ष के जड़मूलों में पानी पर उसकी शाखाएँ और पत्तियाँ हरी-भरी, लहलहानेवाली हो जाती हैं, उसी प्रकार श्रीराम का पूजन करने से ही चारों बन्धु (पूजित एवं) आभूषणों से विभूषित हो गये। स्वाद को चखकर जिह्वा रस को पी डालती है; उससे (समस्त) इन्द्रियों को पुष्टि एवं तुष्टि प्राप्त हो जाती है। उसी प्रकार जगद्श्रेष्ठ-स्वामी रघुनन्दन का पूजन करने से ही तीनों बन्धु यथोचित रूप से पूजित हो गये। श्राद्ध विधि में यथाविधि अग्नि में और ब्राह्मणों के हाथों में आहुतियाँ अर्पित करके अर्थात् 'अग्नौकरण' नामक विधि मुख्य स्थान पर करने से देव और ब्राह्मण मुख को प्राप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार श्रीराम का पूजन करने

से ही ये चारों बन्धु सम्पूजित हो गये। मात्र एक मन को सम्बोधित (-आश्वस्त, तृप्त) करने पर समस्त इन्द्रियाँ तुष्टि को प्राप्त हो जाती हैं, उसी प्रकार सबके लिए अधिष्ठान स्वरूप श्रीराम का पूजन आदि करने से उनके अन्य बन्धु भी स्वयं सन्तुष्ट हो गए। तदनन्तर विदेहराज जनक ने दधि और मधु को मिलाकर उन चारों दूल्हों के हाथों में अर्पित किया। उनके श्रद्धाभाव भरे हेतु को जानकर श्रीरघुनाथ को उनके प्रति बड़ी प्रीति अनुभव हुई यह बात वेद विधान के विपरीत जान पड़ती है कि रघुनन्दन राम ने उस दधि मधु के मिश्रण का सेवन किया. (श्रीराम ब्रह्म हैं तो ऐसे कर्म जाल में वे कैसे उलझ गए ?) वस्तुत: जो कर्म-रहित अकर्ता थे, वे कर्मबन्धन में (कैसे) बँध गए। यह देखकर समस्त लोग, सुर तथा सिद्ध विस्मय चकित हो गए। जनक ने उनसे बिनती की-'इसे ग्रहण करें', तो पुरोहित द्वारा श्रीराम से कहलवाया गया कि मैं इसे ग्रहण करता हूँ। विदेहराज ने अपनी अहन्ता (मैं कोई हूँ- इस भाव) का त्याग किया था, तब भी उनके द्वारा स्वीकार कराने की प्रवृत्ति लौकिक रूप में व्यक्त ही हुई थी। नरेन्द्र जनक के द्वारा संकल्प का उच्चारण करने पर रामचन्द्र ने दधि-मधु का सेवन किया, तो रानी सुमेधा ने उनके हाथों पर पानी डाला और उन्होंने हाथ धो लिए। उसके साथ ही उन्होंने शुद्ध जल का आचमन किया। सद्गुरु वसिष्ठ ने तब कहा- सावधान ! कोई विलम्ब न हो, अब कोई अड़चन भी नहीं है। शीघ्रतापूर्वक सुमुहूर्त साधकर विवाह सम्पन्न करें। फिर श्रीराम चलने लगे। उनका कोई भी पग रिक्त अर्थात् निरर्थक नहीं हो पा रहा था-प्रत्येक हेतु और कार्य की पूर्ति या सिद्धि पग-पग पर होती जा रही थी। उनके दोनों ओर सद्गुरु वसिष्ठ और विश्वामित्र थे, जो उन्हें प्यार से चला रहे थे।

सीता आदि चारों कन्याओं द्वारा गौरी-हर-पूजन करना– सती सीता गौरी और शिवजी का पूजन करने बैठी। उसने (तथा अन्य कन्याओं ने) उन दोनों पर जल सिंचन किया शिवजी को श्रीराम के प्रति बहुत प्रीति थी, इसलिए वे साक्षात् पार्वती सहित विवाह में उपस्थित रहने हेतु पधारे। वस्तुत: जीव और ब्रह्म के बीच माया ही मुख्य रूप से अन्तर्पट (व्यवधान स्वरूप) होती है श्रीराम ऐसी माया को दूर करनेवाले थे (जीव स्वरूपा सीता को ब्रह्म राम अपनानेवाले थे)। श्रीराम उनके श्रेष्ठ सगे-स्वजन (सम्बन्धी) होने जा रहे थे। इस दृष्टि से राजा जनक भाग्य के विचार से श्रेष्ठ थे। जिन श्रीराम के नाम का नित्य स्मरण करते रहने पर साधक के मायाजन्य अज्ञान स्वरूप अन्तर्पट का निवारण हो जाता है समझ लीजिए (कि यह कैसी विचित्र बात है) वेदवेत्ता ब्राह्मणों ने उनके सामने भी अन्तर्पट धर दिया। उन्हीं के बन्धन को छुड़ा देने हेतु मुख्य रूप से सीता ही निमित्त होनेवाली थी। उसके विवाह हेतु शुभ मुहूर्त का साधने-प्रमाणित करने के लिए स्वयं सूर्यदेवता ने घटिका (घटिका पात्र द्वारा सूचित होनेवाले समय) का ध्यान रखा था।

घटिका पात्र के जल से भर जाते ही (पुरोहित द्वारा) 'सावधान' शब्द का उच्चारण करना– घड़ी भरते या पूर्ण होने में क्षण मात्र का भी विलम्ब नहीं होता। इसलिए ज्ञानी जन कहते हैं- (समय अथवा काल सम्बन्ध में) सदा सावधान रहो। यह सच है कि जल घटिका पात्र में वेगपूर्वक चढ़ता भरता जाता है- उसमें किसी की इच्छा या आदेश स्वरूप किसी शब्द की कोई बाधा उपस्थित नहीं हो सकती (समय किसी के वश में नहीं होता) परा आदि चारों वाणियों की बकझक अथवा चलाचली को उपेक्षापूर्वक जाने दो। एकात्मता या समाधि अवस्था के महामौन को अपना लो पूर्णत: मौन धारण करो। जीवन स्वरूपा घटिका शीघ्रता से भरती जा रही है। अत: अपनी-अपनी दृष्टि से कार्य में सजग रहो। जिनके मन में माया जन्य अज्ञान का अन्तर्पट पड़ा हुआ हो, उसे पहले सावधान बना दो,

क्योंकि एक-एक मात्रा, पल के साथ, श्वास और उच्छ्वास के साथ वेगपूर्वक जीवन स्वरूपा घटिका पूर्ण भर जाती है इसलिए नित्य प्रति सचेत रहो। सद्गुरु स्वयं यही कह रहे हैं– उनकी बात का कोई प्रत्युत्तर न दें (विरोध न करें) वरन् स्वयं अपने सम्बन्ध में सावधान रहें। शब्द के सच्चे अर्थ में जो महामौन धारण करता है, वही नित्य प्रति सावधान रह सकता है। जिसे शब्द-शब्द के अपनी दृष्टि से गृहीत अर्थ के विषय में अभिमान होता है, वह (विवाद आदि का अभिलाषी होने के कारण) नित्य असावधान ही रह जाता है। जिनके मन में सच्चे ज्ञान का भाव होता है, वे किसी बात का प्रत्युत्तर नहीं देते उनके इस प्रकार कुछ कहने से या श्रोताओं के प्रत्युत्तर देने से उनको दोष ही लगता है। इसलिए वे सावधान अवस्था को प्राप्त नहीं हो पाते। अब समय बहुत हो गया; विवाह का मुहूर्त निकट आ गया। दोनों पक्ष सावधान हो जायँ। अच्युत भगवान् या ब्रह्म राम के ध्यान में मन लगाये रखकर आत्मानन्द के साथ शुभ विवाह मुहूर्त का ध्यान रखें, ॐ-पुण्याहम्– यह मंत्रान्ति मानों पूर्णता को भी पूर्णता सूचित करती है। उस विवाह घटिका (मुहूर्त) को पूर्णतः सिद्ध कर देने वाले स्वयं श्रीराम ही थे। वे स्वयं अपने विवाह का सुमुहूर्त साध लेने जा रहे थे।

अन्तर्पट के हटा लिए जाने पर कन्या और वर द्वारा एक दूसरे का वरण करना– 'ॐ-पुण्याहम्' मंत्र, आदिमंत्र (ब्रह्म) है। उसमें मानों शब्द (ध्वनि) ॐ-कार में लय को प्राप्त हो जाता है। उसका उच्चारण किये जाते ही तत्काल कन्या और वर के बीच से अन्तर्पट हट गया, तो सुन्दरी सीता ने श्रीराम का वरण कर लिया। सीता के नयन श्रीराम के नयनों से मिल गए– उन दोनों की दृष्टियाँ (आँखें देखने की शक्ति) एक हो गईं। सीता द्वारा अपने प्राण स्वरूप पति का या प्राणों के स्वामी का वरण करते ही मानों उन दोनों के प्राण एकत्व को प्राप्त हो गए, गुरु वसिष्ठ ने विवाह में समर्पित किये जानेवाले चावल आदि के अक्षत (अखण्डित दाने) श्रीराम और सीता के मस्तक पर डाल दिए उसके कारण पृथ्वी, आकाश आदि पंच महाभूतों में एकात्मता हो गई– श्रीराम ने इस प्रकार सीता का वरण किया, तो उन दोनों में विवाह द्वारा एकात्मता सिद्ध हो गई। उनमें से एक (श्रीराम) अवयवी अर्थात् अवयवों इन्द्रियों के निर्माता एवं धारक हैं, तो अन्य एक (सीता) अवयव हैं, इस प्रकार श्रीराम और सीता के विवाह के रूप में 'अवयवी' में 'अवयव' एकरूप हो गए। गुरु श्री वसिष्ठ द्वारा इस प्रकार अद्‌भुत रूप से विवाह सम्पन्न कर देने से सीता और राघव, जीव और भाव एक हो गए। श्रीराम ने सीता के मस्तक पर विवाह के सूचक-प्रतीक अक्षत डाल दिए। श्रीराम के इसी हाथ के आश्रय को सीता प्राप्त हो गई इस प्रकार आत्मानन्द पूर्वक सुख की स्थिति का अनुभव करने लगी। जब सीता श्रीराम के मस्तक पर मंगल अक्षत डालना चाहती थी, तो उसने श्रीराम को समस्त भूतों-वस्तुओं में व्याप्त देखा, तो अपने कर्तव्य की पूर्ति करने में वह लज्जायमान हो उठी पाणिग्रहण द्वारा श्रीराम को प्राप्त करने में जो-जो कर्म उसे करने पड़े, वे सब तब समाप्त हो गए, श्रीराम को अपनाने से वह स्वयं निष्कर्मता को प्राप्त हो गयी। अर्द्धनारी नटेश्वर के रूप में जो पुरुष है, वही नारी भी है, उसी प्रकार श्रीराम ने अपने ही आत्म स्वरूप सीता का वरण किया। श्रीराम स्वयं चैतन्य की मूर्ति थे, तो सीता स्वयं चिच्छक्ति थी। एक-दूसरे सम्बन्धी एकात्मता और प्रीति के साथ दोनों का विवाह सम्पन्न हो गया। उन दोनों के ऐसे विवाह के विषय में चतुर जनों में ऐसी ही बातें चल रही थीं। सीता ने श्रीरामचन्द्र का वरण किया, तो उर्मिला ने सुमित्रा तनय लक्ष्मण का, माण्डवी ने वीर भरत का और श्रुतकीर्ति ने शूर शत्रुघ्न का वरण किया इस प्रकार चारों कन्याओं और वरों का प्रशस्त विधियों पूर्वक विवाह सम्पन्न हुआ। चारों दम्पति मनोहारी रूप से शोभायमान थे। (उस समय) उनका जयजयकार हो गया,

जयजयकार, मंगलवाद्यों का वादन, संगीत-नृत्य आदि के साथ आनन्दोत्सव– ऋषि जयजयकार कर रहे थे। वे फूल बरसाने लगे। नगाड़े आदि मंगल वाद्य बज रहे थे। इन (सब ध्वनियों) से आकाश व्याप्त हो गया। देवों ने दुन्दुभियाँ बजा दीं। भेरियों और मृदंगों का तार स्वर चल रहा था। उसकी ध्वनि आकाश के अन्दर समा नहीं पा रही थी। उसकी प्रतिध्वनियाँ वैकुण्ठ लोक में हो रही थीं। रम्भा, उर्वशी आदि (स्वर्गलोक की) नृत्यांगनाएँ जनक के सभा-मण्डप में नृत्य कर रही थीं। गन्धर्व मधुर गायन कर रहे थे। दोनों पक्षों में आरतियाँ उतारी जा रही थीं अथवा वस्तुएँ निछावर की जा रही थीं.

पाणि-ग्रहण और कंकण-बन्धन– (इस प्रकार) यह पाणि-ग्रहण समारोह सम्पन्न हो गया तब गुरु वसिष्ठ ने स्वयं वहाँ पर आकर दम्पतियों के हाथों कंकण धारण कराने हेतु वस्त्रों के-से धागों को गूँथ लिया। आकाश के गर्भ भाग से सूक्ष्म तन्तु लेकर उन्होंने उसे आठ प्रकार से आवेष्टित किया; तब उस (सूक्ष्म, अदृश्य-से तन्तु) ने स्थूल रूप के घमण्ड के साथ दृश्य रूप धारण किया। तो उन्होंने उसे दो भागों में काट डाला जो (तन्तु) पहले अखण्ड था, समझिए कि उसके उन्होंने खण्ड खण्ड बना लिए। फिर सत्त्वादि त्रिगुणयुक्त धागा लपेट लिया। उनमें से अर्द्ध भाग स्त्री-स्वरूप कंकण था, शेष अर्द्ध भाग पुरुषत्व का परिपूर्ण रूप था उन चारों कन्याओं ने अपने अपने माया स्वरूप वस्त्र उतार लिये और श्रीराम ने उनके वस्त्रों को अच्छिद्र अर्थात् दोष-रहित देखा। फिर उन दम्पतियों में से वधुओं ने किनारी [illegible] हल्दी लगाये शुभ वस्त्र और दूल्हों ने पीताम्बर पहन लिए माया से मलिन हुए उन कन्या वस्त्रों को गुरु शतानन्द ने स्वीकार नहीं किया; वे वस्तुतः उदासीन अर्थात् अनासक्त थे। उधर गुरु वसिष्ठ ने भी इन्हीं के उत्तम वस्त्रों को नहीं लिया। वे दोनों पुरोहित इस प्रकार अनासक्त थे। परन्तु माया से मलिन हुए वस्त्रों को लेने के लिए कन्या पक्ष गोत्रज लोभ के कारण झगड़ा करने लगे; अपने-अपने-आत्मतत्त्व को भूलकर देह सम्बन्धी लोभ के कारण आपस में लड़ने लगे। अपना करोड़ों-करोड़ों धन राजा जनक ने [illegible] दक्षिणा (दायज) के रूप में प्रदान किया। उसी प्रकार उन्हें सौभाग्यद्रव्य वायन के रूप में दिये जाने [illegible] नारी जनों ने राईनोन उतार लिया इस विवाह के कारण कन्या के जीव का वर के जीव के साथ [illegible] हुआ, मिलन हुआ। फिर भी बाह्य (लौकिक) रूप से उनके धारण किये वस्त्रों के छोरों में गाँठ [illegible] गई। अपनी आँखों से श्रीराम को इस प्रकार अपने साथ गाँठ में आबद्ध देखकर सीता के मन [illegible] प्रसन्नता अनुभव हुई।

विवाह-होम इत्यादि– परम्परा के अनुसार निर्धारित विवाह होम के हेतु कहा गया कि [illegible] दम्पतियों को विवाह वेदी पर लाया जाए। तो स्त्री-पुरुषों ने श्रीराम को घेरकर कहा कि तुम अपनी [illegible] को गोद में उठाकर चलो। यह देखकर कि यह बात लौकिक आचार की है, वेद विहित विधि [illegible] भिन्न है, रघुनाथ को हँसी आयी तो गुरु वसिष्ठ बोले– हे श्रीराम, बड़े-बूढ़ों से चलते आये आचार [illegible] निर्वाह करो तब स्वयं श्रीराम ने सोचा–(मैं ब्रह्म हूँ,) सीता मेरी प्रकृति ही है–वह तो मेरे अन्दर [illegible] है फिर (इतने में) उसे न उठाने पर भी वह गोद में बैठ गयी– श्रीराम को लगा कि यह मुझसे [illegible] हो जाना चाहती ही नहीं है, (वस्तुतः) यह तो न उठा लेकर भी, गोद में न बैठाने पर भी बैठ [illegible] है जीव प्राणों से मेरे लिए वह प्रिय है। केवल नाम रूप से मेरे लिए यह छादन-सी है। अतः [illegible] क्रीड़ा करके ही यह निवास करके रहेगी। यह तो मुझसे ही रूपवती, शोभायमान है। मेरे ही कारण इस [illegible] स्थिति प्राप्त है। मेरे ही कारण इसको गमन-आगमन की गति प्राप्त है तो फिर उसे गोद में [illegible] हुए मैं लौकिक आचार का निर्वाह करने में कितना (और क्यों) लज्जा अनुभव करूँ यह

सोचकर श्रीराम ने उसे हाथ न लगाते हुए ही उठा लिया और उसे अनासक्त मन से ले आये। उससे ऋषि वृन्द विस्मय को प्राप्त हुआ। जैसे धर्म अर्थ आदि चार पुरुषार्थों के साथ सायुज्यता आदि चारों मुक्तियाँ शोभा देती हैं वैसे ही ये चारों दम्पति शोभायमान थे, वरों ने उन्हें गोद में किस प्रकार से उठा लिया उस स्थिति को ध्यान से सुनिए, सती सीता (साक्षात्) सायुज्यता नामक मुक्ति थी, रघुपति श्रीराम ने उसे उठा लिया। उर्मिला स्वरूपता मुक्ति जैसी शोभायमान थी; लक्ष्मण ने उसे प्रीति के साथ उठा लिया। माण्डवी स्वयं समीपता नामक मुक्ति स्वरूप थी। भरत ने उसे सचमुच उठा लिया। श्रुतकीर्ति सलोकता मुक्ति थी, उसे शत्रुघ्न ने उठा लिया। इस प्रकार विवाह वेदी के प्रति चारों दम्पति आ गए। तो गुरु शतानन्द ने वेदोक्त विधि के अनुसार विवाह-होम को सम्पन्न कर लिया। तदनन्तर राजा जनक ने यह आयोजन किया (और कहा) कि यहाँ पर ही चतुर्थ होम सम्पन्न किया जाय चारों दिन यह आनन्दोत्सव ससम्मान संपन्न किया जाय।

'धेंडा' नचाना– लोगों ने कहा - 'कोई यहाँ धेंडा (कोई हट्टाकट्टा तगड़ा आदमी कन्या और वर को कन्धे पर लेकर बहुत जोरशोर के साथ)' नाचे। उसे देखने के लिए लोग उत्कण्ठित हैं परन्तु होनी को जानकर श्रीराम ने उनकी बात नहीं स्वीकार की, (स्वयंवर-मण्डप में) धनुष के भग्न हो जाने के क्रमागत फल-स्वरूप परशुराम क्रोध को प्राप्त हो जाएँगे; उनसे अति दारुण दुर्धर संग्राम हो जाएगा एक तो उनके पिता जमदग्नि का भय,वह आग-सा क्रोध और दूसरे स्वयं परशुराम का विकट क्रोध– (परशुराम में एकत्रित) इन दोनों क्रोधों की आग में परशुराम प्रबल अहंकार से इस नगरी को तत्काल जला डालेंगे, फलत: समस्त प्रजाजन पीड़ित हो उठेंगे– श्रीराम का (लोगों के सुझाव को स्वीकार न करने में) यही हेतु था और गुरु वसिष्ठ श्रीराम के मन की बात को भी जानते थे। बारातियों की (इच्छा से) अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य भविष्य में करना है, फिर अयोध्या में जाने के पश्चात् वनवास के लिए अचानक जाना होगा। यहाँ मेरा और सीता का पाणिग्रहण हुआ है; फिर भी (सच्चे अर्थों में) लंका में रावण को मार डालने के अनन्तर ही सीता और मेरा विवाह (मिलन) होनेवाला है– उसके निमित्त पूर्णविनाशकारी युद्ध का आनन्दोत्सव होनेवाला है। वहाँ (युद्ध भूमि में) रण स्वरूप 'धेंडा' नाचेगा। राक्षसों के उन असंख्यात मस्तकों को आरती उतारकर निछावर कर दिया जाएगा। जो प्रचण्ड बाणों के आघात के साथ (फलस्वरूप) कटकर गिर जाएँगे। सीता से यहाँ सम्पन्न विवाह तो छोटा-सा उत्सव हुआ। अब तो वहाँ (युद्ध स्वरूप) अनोखा आनन्दोत्सव उत्साह के साथ सम्पन्न किया जाएगा, जिसका उद्देश्य अब देवों की बन्दीशाला को तोड़ना गिराना और वहाँ की बेड़ी काट देना है। श्रीराम के इस विचार को यथासमय जानकर गुरु वसिष्ठ ने राजा जनक से विनती की कि अब शीघ्रतापूर्वक दम्पतियों को विदा करें। श्रीराम कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं। उनकी बात ब्रह्माजी द्वारा लिखित बात-सी अटल है। जनक ने गुरु वसिष्ठ के इस कथन को स्वीकार करके हर्ष के साथ दम्पतियों को विदा करना तय किया

कन्याओं और वरों को वस्त्राभूषण आदि दायज के रूप में प्रदान करना– राजा ने दायज के रूप में कन्याओं और वरों को विविध प्रकार के दिव्य अलंकार-आभूषण, वस्त्र बहुत-सा सुवर्ण हाथियों की पीठ पर लादकर प्रदान किया। अति सूक्ष्म (पतले, महीन) धागों के बने ऊनी वस्त्र, रेशम के वस्त्र (जरी के) पीताम्बर दिये; नाना प्रकार के अति मूल्यवान विचित्र वस्त्र प्रदान किये, मोतियों की झालरें लगाये हुए रथों की पंक्तियाँ प्रदान कीं। उन्हें प्रदत्त हस्तिदल में बड़े प्रचण्ड हाथी गरज चिंघाड़ रहे थे और आभूषणों के बोझ ढोते हुए झूम रहे थे। रत्नों के आभूषणों को धारण करने से मनोहारी बने

हुए असंख्यात (घोड़ों, हाथियों पर, रथों में विराजमान) सवार अर्थात् सैनिक प्रदान कर दिए, पदिकों, कण्ठहारों, नवलड़े हारों से शोभायमान असंख्यात दासियाँ प्रदान कर दीं। (इस प्रकार) दायज देने में और श्रीराम की सेवा करने में राजा जनक को अति प्रसन्नता हो रही थी उन्होंने (हर्ष के साथ) बड़े विश्वास के साथ उन्हें मुकुटों एवं कुण्डलों के गट्ठर प्रदान कर दिये। रानी सुमेधा श्रद्धा और प्रेम से बोली– 'हम अनन्य भाव से आपकी शरण में आये हैं। हमने अपना जीव ही श्रीराम को दायज में दिया है, तो (सुवर्ण-दान आदि के) बाह्य आभूषणों की क्या महत्ता है ? फिर राजा जनक सहर्ष बोले 'हे सुमेधा, यह निश्चय ही समझ लो कि हमने देह, गृह, वित्त, जीवन सब कुछ श्रीराम को अर्पित कर दिया है'। इस प्रकार दोनों ने अति उल्लास के साथ दम्पतियों को दायज दिया। फिर राजा जनक श्रीराम को बिदा करते हुए बहुत दूर तक स्वयं चले।

प्रयाण के समय श्रीराम द्वारा गुरु विश्वामित्र का आशीर्वाद ग्रहण करना– समझिए कि विदाई के पहले ऋषि विश्वामित्र ने वसिष्ठ को नमस्कार करके दोनों राजाओं से आज्ञा माँगी और वे अपने आश्रम के प्रति प्रस्थान कर जाने लगे। (उस समय) श्रीराम और लक्ष्मण दोनों जनों ने ऋषि विश्वामित्र को साष्टांग नमस्कार किया, तो उन्होंने उनको आशीर्वाद देते हुए अपने आश्रम की ओर गमन किया फिर श्रीराम ने कहा हे मिथिलाधिपति, अब आप यहाँ से लौट चलें तो उन्होंने गुरु वसिष्ठ के चरणों में मत्था टेका और अपने समधी से विदा लेनी चाही। तब राजा दशरथ ने उनका बड़ा सम्मान करके उनका आलिंगन किया। फिर राजा जनक ने सद्भावपूर्वक स्वयं श्रीराम को दण्डवत् प्रणाम किया। तदनन्तर उन्होंने कुशध्वज के साथ चारों दामादों का आलिंगन किया। फिर अत्यधिक हर्ष के साथ राजा जनक झट से अपने नगर की ओर चले गये।

सब का अयोध्या के प्रति गमन– (कवि कहता है-) अयोध्या के प्रति जाने लगने पर वहाँ उन परशुराम का आगमन हुआ, जो (क्रोध से) अति कठोर और भयावह थे, जिनसे विश्व (भय से) कम्पायमान होता था। परशुराम के कारण श्रीराम को बड़ाई प्राप्त होने वाली थी। परशुराम से श्रीराम का बड़ा भारी युद्ध होनेवाला था। परशुराम से फिर श्रीराम को मधुर प्रेम की प्राप्ति होने वाली थी। इस सम्बन्ध में विचित्रता-पूर्ण कथा का श्रवण करें।

मैं कवि एकनाथ गुरु जनार्दनस्वामी की शरण में स्थित हूँ। (अब तक आपने यह सुना कि) श्रीराम द्वारा जानकी का पाणिग्रहण (कैसे) हुआ। अब (सुनिए कि) श्रीराम द्वारा परशुराम तुष्टि को प्राप्त (कैसे) कराये जाएँगे। यह कथा अति गहन एवं मधुर है

॥ स्वस्ति ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ कृत 'श्रीभावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत बालकाण्ड का 'जानकी-पाणिग्रहण' नामक यह पचीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय २६

[परशुराम का अहंकार-परिहार]

बारात का अयोध्या प्रस्थान– समझिए कि अन्य तीन बहनों सहित (उपर्युक्त के अनुसार) सीता का पाणि-ग्रहण हो गया। (तदनन्तर यथासमय) राजा जनक ने उनकी विदाई की। राजा दशरथ को

इससे पूर्णतः सुख हो गया। (उन्हें जान पड़ा कि) ये मेरे चार पुत्र हैं और चार बहुएँ हैं– इनसे (हमारे कुल की) कीर्ति त्रिभुवन में भी नहीं समा रही है। (इस प्रकार सोचते सोचते) राजा दशरथ अयोध्या नगरी की ओर चले। सेना-दल को सुसज्जित किया, तो बड़े मद के साथ हाथी गरजने लगे। वे घण्टों एवं किंकिणियों तथा अन्य आभूषणों से सुशोभित थे। ध्वजा से आकाश भी शोभायमान हो गया था। 'जी जी, थय्, थय्' कहते हुए वीर पुरुष घोड़ों को नचा रहे थे उनके साथ ही अश्वारोही भी मनोहारी ढंग से नाच रहे थे। बरछैत और भालाबरदार वीर अपने-अपने शस्त्रों को उछालकर झेलते आ रहे थे ढैंसियों के धारी, धनुर्धर, अग्रगामी पदाति सैनिक शेखी बघारते हुए चल रहे थे। थय् थय् ध्वनि करते जा रहे थे– कुश्ती लड़नेवाले वरिष्ठ मल्ल चमकते-दमकते जा रहे थे। इस प्रकार सेना आगे चली जाने लगी, तब भाट अपने स्वामी के पक्ष की बड़ाई गाते हुए गरज रहे थे। मुकुटधारी वरिष्ठ राजपुरुष (दशरथ के पीछे-पीछे) भीड़ मचाते हुए चल रहे थे, अतिरथी (योद्धा) अपने अपने रथों को घड़घड़ाहट के साथ चला रहे थे (यह देखकर) राजा दशरथ को अत्यधिक सुख अनुभव हो गया

राजा दशरथ का मार्ग में हो रहे अपशकुनों से आशंकित हो जाना– राजा दशरथ, गुरु वसिष्ठ (आदि) समस्त (मान्यवर) जन समसमान रथों में विराजमान होकर सुख-सम्पन्नता के साथ आ रहे थे; तब उन्होंने आगे अपशकुनों को घटित होते देखा। चाहा (नीलकण्ठ) नामक पक्षी दाहिनी ओर जा रहे थे। कौए बायीं ओर चले जा रहे थे। मोर अपने अपने पर गिरा रहे थे। साँप और नेवले लड़ रहे थे। भालू (अथवा बूढ़ी सियारियाँ) सामने भौंकते हुए रो रहे थे अग्निमुख नामक पक्षी किरा रहे थे इससे राजा दशरथ को यह बड़ी आशंका हुई कि निश्चय ही अब युद्ध हो जानेवाला है परन्तु श्रीराम तो दोनों शकुनों और अपशकुनों को समसमान रूप में देखते थे। वे किसी भी भय से कम्पायमान नहीं थे, क्योंकि वे निर्भयता के साथ नित्य प्रति सावधान रहा करते थे। तब राजा दशरथ ने वसिष्ठ से पूछा– 'हमें अपशकुन क्यों हो रहे हैं ? चारों दिशाएँ धूमिल (एवं कोलाहल भरी) लग रही हैं चन्द्र सूर्य की कान्ति मन्द जान पड़ रही है, दिन के समय आकाश में रहने वाले ग्रह समुदाय में से कोई एक पूर्व की ओर जा रहा है–तो कोई एक पश्चिम की ओर। सूर्य-चन्द्र अति उत्पात उत्पन्न कर देने वाले जान पड़ते हुए वृत्ताकार चलते दिखाई दे रहे हैं। सामने आकाश में देखनेपर आँखें अन्धी-सी हो रही हैं, हे गुरु वसिष्ठ, आप इस संसार में सर्वज्ञ माने जाते हैं इसलिए इस बात को मुझे यथार्थ रूप से समझाकर कहिए'।

गुरु वसिष्ठ द्वारा राजा दशरथ को विश्वास दिलाना– (वसिष्ठ ने कहा–) 'हे राजा, जो जो संकेत (लक्षण) दिखाई दे रहे हैं, उनसे दुस्तर विघ्नों का आना ही सूचित हो रहा है। परन्तु हमारे साथ (साक्षात्) शान्ति ही चल रही है। इसलिए विघ्न हमसे विमुख हो जाएँगे। ये संकेत पूर्व में जानेवाले को अपशकुन हैं, जब कि पश्चिम दिशा में जानेवाले को वे शुभशकुन ही सिद्ध होंगे। उसी प्रकार समस्त भूतों में जिसे भगवद्भाव (भगवद्रूप) दिखायी देता हो, उसे ये विघ्न ही उसकी अपनी विजय को प्राप्त करानेवाले हो जाएँगे। फिर भी ये लक्षण विघ्नों के आगमन के सूचक हैं सीधा दारुण युद्ध होगा, परन्तु रघुकुल-तिलक श्रीराम विजेता होंगे, अपने विचार से यह बात अवश्य होगी। जिन श्रीराम के नाम के उच्चारण से विघ्न, राम नाम का जाप करनेवाले के चरणों की शरण में आ जाते हैं, वे श्रीराम हमारे साथ हैं इससे विघ्नों का प्रस्तुत हो जाना ही उनपर (श्रीराम द्वारा) विजय प्राप्त करना है'।

परशुराम का प्रचण्ड आँधी में से आगमन– जब इस प्रकार, वे दोनों ऐसी बातें कर ही रहे थे कि आँधी आ उठी। धूल से आकाश व्याप्त हो गया सेना की सुध बुध खो गई, उस प्रभंजन का

झपट्टा लगते ही सप्त सागर और सप्त द्वीप विचलित हो उठे। उसके फल-स्वरूप पृथ्वी कम्पायमान हुई और मेरु पर्वत को भी कँपकँपी छूटी। इसी में विकट चीख-पुकार उत्पन्न हुई, तो सम्पूर्ण सेना बेहोश हो गई। राजा दशरथ आशंका को प्राप्त हुए। परन्तु श्रीराम तो बड़े धैर्यशाली थे, अतएव आशंकाहीन भयरहित रहे (तब दिखायी दिया कि) परशुराम धनुषबाण लेकर श्रीराम की ओर लपके रहे हैं। उनके सिर पर बिजली-सी जटाएँ थीं, तेजोमय परशु कन्धे पर था।

ऋषि वसिष्ठ द्वारा परशुराम का स्वागत करना और राजा दशरथ द्वारा भयभीत होकर परशुराम से प्रार्थना करना– परशुराम को देखकर ऋषि वसिष्ठ ने उनका पूजन किया। उस पूजन को स्वीकार करके स्वयं परशुराम श्रीराम की ओर चले। उनके अपार पराक्रम को देखकर राजा दशरथ कम्पायमान हो उठे वे उन्हें दण्डवत् नमस्कार करते हुए दीनतापूर्वक बोले- 'हे परशुराम आपकी यह बड़ाई है कि आपने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियहीन करके उसे ब्राह्मणों को सौंप दिया। फिर आपने हाथों से शस्त्र का त्याग कर दिया। आप क्षत्रियों के लिए विनाश के देवता काल-स्वरूप हैं। आपके प्रण की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है। परन्तु मेरा श्रीराम तो केवल बालक है। उसपर कोई बड़ा क्रोध न करना आप यदि श्रीराम को मार डालें, तो (समझिए कि) वही हम सबकी मौत होगी। हे स्वामी, इतना विनाश करना आपके लिए उचित नहीं है मैं पुत्रार्थी– पुत्र का अभिलाषी हूँ, अति दीन हूँ। पुत्र की मृत्यु की आशंका से मैं अति कृपण बन गया हूँ – आप मुझे पुत्र-दान दें'। यह कहकर राजाओं के स्वामी (राजा) दशरथ ने उन्हें दण्डवत् नमस्कार किया।

परशुराम द्वारा श्रीराम को चुनौती और दोनों का संग्राम– राजा दशरथ की इस प्रकार कही समग्र बात की उपेक्षा करके जहाँ श्रीराम थे, वहाँ स्वयं परशुराम आ गए। अब श्रीराम और परशुराम दोनों की लड़ाई होनेवाली थी। उसमें श्रीराम परशुराम (के शस्त्रों) का निवारण करनेवाले थे। फिर परशुराम को श्रीराम के प्रति पूर्ण गहरी प्रीति होनेवाली थी, जो उन दोनों में एकात्मता उत्पन्न कर देनेवाली थी। उन दोनों में होनेवाला युद्ध सुर-नर वीरों के लिए भी अत्यधिक दुर्गम सिद्ध होनेवाला था फिर युद्ध में अपने सम्बन्ध में रहस्य के ज्ञान को प्राप्त हो जाने पर आत्मज्ञान से परशुराम के क्रोध का शमन हो जानेवाला था. श्रीराम को देखकर भार्गव परशुराम ने दारुण बाण चला दिए, तो श्रीराम ने उन्हें (बीच में ही) काटकर गिरा डाला उससे जामदग्न्य परशुराम क्रोध से पूर्णतः व्याप्त हो उठे। परशुराम ने तब दिव्य अस्त्र छोड़ दिए, तो श्रीराम ने उनका क्षण मात्र में निवारण कर दिया। फिर परशुराम ने जब क्रोधपूर्वक अमोघ शस्त्र चला दिए, तब श्रीरघुवीर ने उनको भी रोककर नष्ट कर डाला। (पूर्वकाल में) माता रेणुका ने अपने पुत्र भार्गव राम के हाथों अपनी दोनों शक्तियाँ सौंप दी थीं, ताकि वे उन्हें समस्त अन्य शस्त्रों के (व्यर्थ सिद्ध होने के) बाद अन्तिम अमोघ अस्त्रों के रूप में प्रेरित कर दें। काली और कराली नामक वे दोनों शक्तियाँ (परशुराम को भगवदवतार एवं) अपने को धारण करने योग्य समझकर उनके पास रह गई थीं परन्तु रघुपति श्रीराम की आरती उतारते हुए वे उनके तरकस में प्रविष्ट हो गईं

श्रीराम की सामर्थ्य की तुलना में तेजोहीन होने से परशुराम का व्याकुल हो जाना– यह आश्चर्य है कि जिन मेरी शक्तियों को लौटकर मेरे ही हाथ आना चाहिए, वे श्रीराम के तरकस में प्रविष्ट हो गईं और श्रीराम की सहायक हो गईं, मेरी अन्तिम अमोघ शक्तियाँ जाकर श्रीराम के पास रह गईं। इसे मन में आश्चर्य मानकर छलपूर्वक परशुराम ने यह बात कही। 'मैंने जो जो शस्त्र प्रेरित किये थे, उन-उनका तुमने निवारण किया, परन्तु तुमने अपने शस्त्र नहीं चलाये । हे रघुनाथ, इस (युद्ध) में यह

त्रुटि रही है, (मुझे जान पड़ता है कि) तुम शस्त्रों का निवारण करना जानते हो, पर शस्त्रों को चलाना नहीं जानते, यही तुम्हारी (शस्त्रास्त्र विद्या में) त्रुटि है। सम्पूर्ण शौर्य तुम्हें प्राप्त नहीं हुआ है'। परशुराम की यह बात सुनकर श्रीराम ने उन्हें नमस्कार किया (और कहा)- 'समझिए, ब्राह्मण के सामने (तुलना में) सब प्रकार से हममें न्यूनता है'।

श्रीराम ने कहा (श्लोक)– 'यह (मेरा) कण्ठ है और यह आपका कुठार है। अतः आप जो उचित हो, सो कर लें। हाँ ! हम रघुकुलोत्पन्न अर्थात् राघव वीर गायों और ब्राह्मणों का वध करने में शूर नहीं हैं'।

श्रीराम द्वारा परशुराम को उत्तर : हमारे लिए गो-ब्राह्मण अवध्य हैं– 'हे भार्गव, आपके हाथ में परशु है, और मैंने आपका अपना कण्ठ सौंप दिया है। आपके मन में जो करना हो उसे आप निश्चय ही कर लें। हमारे स्वप्न में भी गो-ब्राह्मणों का वध करने की इच्छा नहीं उत्पन्न होती। शस्त्र पकड़कर जो उनपर हाथ उठा ले, ऐसा शूर सूर्यवंश में कोई भी (जनमा) नहीं है। गायों और ब्राह्मणों के सामने शूरता असहाय हो जाती है। मैंने तो (केवल) आपके कुठार का निवारण करने हेतु ही धनुष-बाण आगे धर रखे थे'।

परशुराम द्वारा श्रीराम को चुनौती– श्रीराम की बात सुनकर परशुराम के मुख पर हँसी झलक उठी। (वे बोले-) 'तुम्हारे हाथों शिवजी के धनुष के भग्न हो जाने का समाचार सुनकर, समझ लो कि मैं तुम्हें ही लक्ष्य करके आ गया हूँ। युद्ध का प्रचण्ड परिश्रम रहने दो। शस्त्र धारण करने की बात (शर्त) भी मैंने छोड़ दी। मेरे हाथ में भगवान् विष्णु का यह धनुष है। हे जगत् श्रेष्ठ (स्वामी), इसे सुसज्जित कर दो। यदि इसे तुम पूर्ण रूप से (बाण चढ़ाकर) सुसज्जित कर दोगे, तो समझ लो कि तुमने मुझे जीत लिया'। इस पर श्रीराम ने कहा- 'आपका यह कथन मेरे लिए ब्राह्मण के विषय में दूषण ही है। आप अथाह शक्तिशाली ब्राह्मण हैं, ब्रह्मचारी हैं। आपको अपने पिता की सेवा करने का परम गौरव प्राप्त है। आपकी आज्ञा मेरे लिए शिरसा वन्द्य है'। (यह कहकर) उन्होंने भगवान् विष्णु का धनुष हाथ में धारण किया'। श्रीराम ने कहा– 'हे भार्गव राम, आपके चरण तीर्थ जल से हमें प्रताप (बड़प्पन) प्राप्त है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मण, उसी प्रताप से मैं धनुष सम्बन्धी अपने कर्तव्य कार्य के अनुसार सुसज्जित कर लूँगा'। शिव धनुष की भाँति श्रीविष्णु-धनुष भारी था, उसकी गुरुता थी। फिर भी श्रीराम ने उसे हाथ में पकड़कर एक क्षण के अन्दर सुसज्जित कर दिया। भार्गव परशुराम की आँखों के सामने श्रीराम ने भगवान् विष्णु का धनुष उठा लिया और उन निर्भय ने पैंतरा लेकर बड़ा भारी बाण उसपर चढ़ा दिया। श्रीराम मानों अन्तक (कालदेवता) के भी अन्तक (नाश करने वाले) हैं, वे कलिकाल के जड़-मूल सहित विनाशक हैं, यह देखकर भार्गव परशुराम आतंकित हो उठे। (सचमुच) श्रीराम ऐसे असाधारण (सिद्ध हो गए) हैं। श्रीराम के प्रताप की बड़ाई के सामने, श्रीराम के तेज से (आँखों के चौंधिया जाने से) परशुराम को अन्धता आ गयी। डोरी के खींचे जाने पर वह वैष्णव धनुष कड़कड़ा उठा।

परशुराम को सच्चे स्वरूप के ज्ञान की प्राप्ति– अतिशीघ्रता के साथ परशुराम ने वेगपूर्वक छलाँग लगायी और श्रीराम (के हाथ) को थामकर विनती की कि वे वैष्णव धनुष को न तोड़ें। आपने जैसे क्षण के अन्दर शिव-धनु को तोड़ डाला, उसी प्रकार इस वैष्णव धनु की स्थिति न करें। आपके प्रताप की गुरुता चराचर सृष्टि में बेजोड़ है। आपका बल अति अद्भुत है। कलिकाल आपके नित्य प्रति वश में है। हे श्रीरघुनाथ, मुझे निश्चय ही स्वीकार है कि आप भगवान् के प्रति अवतार हैं। मैं आपको

कष्ट पहुँचाने आया था परन्तु आपका स्वाभाविक शील देखकर मेरे मन के क्षोभ का शमन हो गया। आप तो मात्र परमात्मा हैं, इस प्रकार कहकर परशुराम ने प्रेम से श्रीराम का आलिंगन किया। तब दोनों को एक दूसरे के मूल स्वरूप का परिचय प्राप्त करने पर सन्तोष हुआ।

परशुराम और श्रीराम द्वारा एक-दूसरे का अभिनन्दन– परशुराम को श्रीराम से मिलने पर संतोष हुआ। श्रीराम (की भेंट) से परशुराम सुख सम्पन्न हो गए। श्रीराम से मिलने पर परशुराम को परिपूर्ण आनन्द हो गया। परशुराम श्रीराम के कारण चैतन्यघन हो उठे। श्रीराम के कारण परशुराम को अति आह्लाद अनुभव हुआ। श्रीराम (के परिचय) से परशुराम को परम आत्मिक आनन्द हुआ। श्रीराम को पहचानने पर परशुराम को आत्मज्ञान प्राप्त हो गया। इस प्रकार श्रीराम से परशुराम की एकात्मकता हो गयी। (दोनों के एकात्म हो जाने से) श्रीराम को इसका स्मरण नहीं रहा कि मैं कोई भिन्न एक दाशरथी राम हूँ। उसी प्रकार परशुराम के मन में यह स्मरण नहीं रहा कि मैं भृगुकुलपति भार्गव कोई एक भिन्न व्यक्ति हूँ। दोनों का ऐसा दृढ़ आलिंगन हो गया कि दोनों में चैतन्य रूप बादल ठूँस-ठूँसकर व्याप्त हो गया। उनकी वाणी कुण्ठित हो गई, वैसे ही मौन भाव भी छूट गया (मतलब यह कि बोलने और मौन रहने की प्रवृत्तियाँ स्वतंत्र रूप से अस्तित्व में नहीं रहीं)। दोनों एक दूसरे के पूर्ण चैतन्य भाव में परिपूर्ण चैतन्य रूप हो गए. तत्पश्चात् अपने अवतरित हो जाने के हेतु रूप कार्य को सिद्ध करने के लिए श्रीरघुनाथ श्रीराम सावधान सचेत हो गए और उन्होंने स्वयं ज्ञानोपदेश संस्कार से परशुराम को उद्‌बोधित कर दिया। रघुनन्दन श्रीराम ने जब उन्हें सचेत कर दिया, तब वे सावधान हो गए (होश में आये), तो (ब्रह्माण्ड-) शिरोरत्न स्वरूप श्रीराम को देखकर वे पूर्णतः विस्मयचकित हो उठे। कर्म और ब्रह्म स्वरूप के विचार से स्वयं श्रीराम और परब्रह्म समसमान हैं, श्रीराम उस ब्रह्म के अवतार शिरोरत्न (चूड़ामणि) हैं, इसे पूर्णरूप से जानकर और श्रीराम द्वारा उन्हें वैसा ज्ञान कराने पर भार्गव परशुराम पूर्णरूप से सुख को प्राप्त हो गए।

श्रीराम द्वारा धनुष सुसज्जित किये बाण का प्रयोग– श्रीराम बोले– 'मेरा यह अमोघ बाण (आप ही के कारण) धनुष पर चढ़ाया गया है। जान लीजिए कि उसे फिर से उतारा नहीं जा सकता। अतः हे स्वामी उसे कहाँ चला दूँ ?'। श्रीराम द्वारा इस प्रकार पूछने पर परशुराम अति विस्मित हो उठे। उन्होंने सावधानी से उस बाण के लक्ष्य के बारे में विचार करते हुए उसे जान लिया। (परशुराम जानते थे कि) श्रीराम का अपना बाण अत्यधिक दुर्धर होता है। इसलिए वे बोले– 'उससे मेरे गत्यन्तर (परलोक के प्रति जाने की गति) को रोक लीजिए'। श्रीराम का बाण जहाँ गिर जाएगा, वहाँ वह विनाश कर डालेगा, इसे जानते हुए वे बोले– इससे मेरे अहंकार को नष्ट कर दीजिए। फिर मेरे लिए (परलोक-इहलोक में) जाना आना कैसे शेष रहेगा। (हे श्रीराम,) मैं अत्यधिक बड़ा, श्रेष्ठ तपस्वी हूँ। तप के बल मैंने वरिष्ठ लोकों को जीत लिया है। फिर भी आप किसी दूसरे लोक के प्रति गमन करने के मेरे मार्ग को इस बाण से नष्ट कर दीजिए। मैं वीर हूँ, धीर हूँ। मैं बड़ा शूर हूँ, रणभूमि में मैं अति दुर्धर्ष हूँ, शत्रु-निर्दलन में अकेला अनोखा वीर हूँ- मेरे इस अहंकार को भी नष्ट कीजिए। मेरे इस अहंकार को नष्ट कर देने पर मेरे लिए एक लोक से दूसरे लोक में जाना कैसे सम्भव होगा ? इस प्रकार मेरा गत्यन्तर आसानी से रुक जाएगा। हे श्रीराम, मेरे इस कथन को सचमुच (कार्यान्वित) कर दीजिए। कोई (सामान्य) योद्धा अपने बाह्य शत्रु का संहार करता है; पर श्रीराम तो अन्दर के (विकारों आशा-आकांक्षाओं, द्वंद्वों के) शत्रुओं का विनाश करते हैं। धनुर्धारी श्रीराम जीवों के अहंभाव-ममत्व को मार डालते हैं। समझिए कि श्रीराम के व्यवहार का रहस्य (पूर्वापर सम्बन्ध) वीर शूर पुरुषों की भी समझ में नहीं आता। शिवजी

स्वयं धनुष धारण करते हैं, पर उन्हें भी श्रीराम की यह बात पूर्ण रूप से दिखाई नहीं देती। हे रघुनाथ, अहंकार को काट देनेवाला (सिवा आप के) कोई अन्य नहीं है। इसलिए आप अब इस बाण से मेरे अहंममत्व भाव को छिन्न भिन्न कर डालिए। मैंने ऋषि कश्यप को पृथ्वी दान में दी; मैं अहंकार-रहित होकर यहाँ रहूँगा हे श्रीराम, लोक लोकान्तर करने के विषय में मुझे अहंकार है। आप उसे नष्ट कीजिए, हे रघुपति, अहंकार रहित होकर भूमि पर (कहीं भी) बस जाने में कोई दोष नहीं होगा इसलिए मेरी लोक-लोकान्तर करने की गति-शक्ति का निश्चय ही निर्दलन कर डालें। परशुराम ने इस प्रकार (जो) कहा, वही तो श्रीराम करना चाहते थे। फिर श्रीराम ने यह कैसा बड़ा चमत्कार कर दिया कि उन्होंने (परशुराम की) लोक-लोकान्तर करने की गति के रहस्य को ही नष्ट कर डाला। श्रीराम ने निश्चयपूर्वक धनुष पर बाण चढ़ा दिया ही था अब जो वस्तुत: अलक्ष्य (अमूर्त, अदृश्य) है, उस अहंकार को लक्ष्य करके उस अर्द्धचन्द्राकार अग्र वाले बाण को चलाकर उन्होंने पूर्णत: नष्ट कर दिया. जब श्रीराम ने श्रीविष्णु के उस धनुष पर डोरी चढ़ा दी, तभी परशुराम के अहंकार की विदाई हो चुकी थी। वह (अहंकार) परशुराम के पास पुनश्च आ सकता था; परन्तु उसे श्रीराम ने आधे क्षण में ही नष्ट कर दिया ताकि वह वैसा न कर सके। अहंकार का निर्दलन हो जाते ही अब परशुराम का एक लोक से दूसरे लोक के प्रति कैसा गमन ? एक गति (अवस्था, स्थिति) से दूसरी गति को कैसा प्राप्त कर जाना ? (इस प्रकार, श्रीराम ने परशुराम को स्थिर-गति कर दिया उनकी न मृत्यु होगी न उन्हें मुक्ति मिलेगी इस प्रकार श्रीराम ने अपने बाण को चलाकर परशुधारी राम को उनकी स्वर्ग आदि की ओर जाने की गति एवं वहाँ की स्वर्गवास, मुक्ति जैसी गति का कुण्ठित करते हुए सुख-सम्पन्न कर दिया इस कथा के अन्दर इसका वर्णन किया गया कि श्रीराम ने स्वयं बाण चलाकर क्षण मात्र में परशुराम का स्वर्ग के प्रति जाना (कैसे) रोक लिया क्या श्रीराम न स्वर्ग की ओर जानेवाले मार्ग में बाण से बाड़ लगा दी अथवा क्या चारों ओर दीवार बनवा दी जिससे परशुराम की गति इस प्रकार कुण्ठित हो गयी। (परन्तु यह सत्य है कि) इस प्रकार की सूक्ष्म गति विधि को देखने पर भी वहाँ की अन्दर की वृत्ति (स्थिति) समझ में नहीं आ सकती, पण्डित जनों की युक्तिपूर्ण बातें (तर्क, दलीलें) केवल बाह्य स्थिति सम्बन्धी होती हैं लौकिक मात्र होती हैं, बात इतनी सत्य है कि श्रीराम ने परशुराम के स्वर्ग की ओर जाने की गति को, स्वर्गवास की गति को रोक डाला वस्तुत: श्रीराम न बाण से परशुराम की स्वर्ग की ओर जाने की गति को रोक लिया यह तो लोक में प्रचलित किंवदन्ती है। बात यही है कि श्रीराम ने परशुराम का अहंकार नष्ट कर दिया और उस विषय में उन्हें जो अहंकार था, उसको नष्ट करके स्वर्गादि अन्य लोक में उसके गमन करने की शक्ति को नष्ट कर डाला। श्रीरामचन्द्र जिसे लक्ष्य करते हैं, ध्यान से देखते हैं, उसका अहंकार छूट जाता है; फिर आसानी से उसका गत्यन्तर कुण्ठित हो जाता है। इस प्रकार रघुवीर राम (परशुराम जैसे अहंकारयुक्त) व्यक्ति के स्वर्ग-गति-स्थिति को प्राप्त होने को रोक लेते हैं। यह निश्चय ही यथार्थ है कि श्रीराम ने इसी रीति से परशुराम की स्वर्ग गति को रोक दिया। ग्रन्थ के इस कथन का यही गूढ़ अर्थ है। जब श्रीराम ने परशुराम को जीत लिया, तो आकाश में (देखने के लिए उपस्थित) देवों ने (जयजयकार का) गर्जन किया, पृथ्वी-तल पर बड़े बड़े ऋषि गर्जन कर रहे थे। इस प्रकार श्रीरघुवीर अपने आपके वीर्य से विजेता सिद्ध हो गए, श्रीराम ने शिवजी के और भगवान् विष्णु के दोनों धनुषों के घमण्ड को निर्वीर्य रूप, अशक्तिमय बना डाला। इस प्रकार श्रीराम का प्रताप विजय को प्राप्त हुआ।

परशुराम का गर्व-परिहार और क्रोध-त्याग– श्रीराम और परशुराम दोनों अद्भुत रूप से महान वीर थे। उनके द्वारा की जानेवाली युद्ध-क्रीड़ा देखने के लिए ब्रह्मा आदि समस्त देव विमानों में बैठकर (आकाश में) आ गए। श्रीराम स्वयं निश्चय ही विजेता सिद्ध हो जानेवाले थे। अतः वे देव आकाश में गर्जन कर रहे थे। (अनन्तर) परशुराम ने श्रीराम से कहा– आपने मुझे सचमुच जीत लिया है। इसमें मुझे किसी प्रकार से कोई लज्जा बिल्कुल नहीं अनुभव हो रही है। वरन् आपके कारण मुझे अधिक स्तुत्य अवस्था प्राप्त हुई है। जिस प्रकार 'गुड़' और 'मधुरता' नामक दो शब्द दो वस्तुएँ सूचित करते हैं, फिर भी उनके अपने स्वरूप में दो अलग-अलग गुणधर्म सूचित नहीं होते– (गुड़ को उसकी मधुरता से अलगाया नहीं जा सकता) उसी प्रकार मुझमें और आप में एक ही आत्माराम– ब्रह्म है। फिर किससे किसे लज्जा आ जाए। देह अपनी इन्द्रियों से लज्जित नहीं होती (देह का) रूप देहभाव से लज्जित नहीं होता। उसी प्रकार हे राघव, मुझे आपसे लज्जित हो जाने की हविस नहीं है तत्वत: इस प्रकार बोलकर परशुराम ने पुनश्च कहा– 'हे रघुनाथ, आपके माथे पर धर्म की रक्षा (का उत्तरदायित्व) है। आप लोगों का भी परिपालन करें'। परशुराम में उनके अपने पिता जमदग्नि का क्रोध था और अपना अहंकार भी था। श्रीराम ने उनका निर्दलन कर डाला तब परशुराम सुख की अवस्था को प्राप्त हो गए फिर श्रीराम स्वयं परशुराम के पाँव लगे; परशुराम ने श्रीराम की परिक्रमा की तदनन्तर समझिए कि श्रीराम नाम का गर्जन करते हुए वे अपने (निर्धारित) स्थान के प्रति चले गये। श्रीराम जब इस प्रकार असाधारण रूप से विजेता हुए, तो गुरु वसिष्ठ को बहुत आनन्द हुआ। उन्होंने उन रघुकुलतिलक श्रीराम को गले लगा लिया। दशरथ की आशंका भी दूर हो गयी। तत्पश्चात् श्रीराम ने गुरु वसिष्ठ को दण्डवत् नमस्कार किया, पिता दशरथ को साष्टांग नमस्कार किया। राजा दशरथ ने तब श्रीराम को गले लगाया। उनका मन शान्त हो गया था श्रीरामचन्द्र विजयी हो गए, तो ऋषिवरों को बड़ा आनन्द हो गया। उन सबने जयजयकार किया और उनके समुदाय आत्मानन्द के साथ चले गये।

मैं कवि एकनाथ अपने गुरु श्रीजनार्दनस्वामी की शरण में स्थित हूँ। (उनकी कृपा से) मैंने कहा कि परशुराम (किस प्रकार) विदा हो गए। अब श्रीराम आनन्द के साथ गमन करके अयोध्या में प्रवेश करेंगे।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ-कृत 'श्रीभावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत बालकाण्ड का 'श्रीराम-परशुराम एकात्मबोध-निरूपण' नामक यह छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ

अध्याय २७

[श्रीराम और जानकी का अयोध्या में प्रवेश]

श्रीराम द्वारा भगवान् विष्णु का धनुष वरुण को देना– परशुराम जब अपने स्थान की ओर चले गये, तो राजा दशरथ के मन को शान्ति प्राप्त हुई। समझिए कि रघुनाथ श्रीराम के विजयी हो जाने के कारण उनका आनन्द चौगुना वृद्धिंगत हो गया। वैष्णव धनुष को वहीं छोड़कर भार्गव परशुराम अपने आश्रम की ओर चले गये उन्होंने वह धनुष श्रीराम को दिया, तो श्रीराम ने वह वरुण को प्रदान किया।

(श्रीराम ने सोचा-) यद्यपि मैं अपनी शक्ति से युद्ध में राक्षसों के समूहों (सेना) को जीत लूँ तथापि जब तक यह वैष्णव धनुष मेरे हाथ में रहेगा तब तक लोग कहेंगे कि यह धनुषबल (का ही प्रताप) है। मेरी सफलता की समस्त बड़ाई धनुष्य को दी जाएगी। इस (विचार) से जगत् के स्वामी ने उसे स्वयं तत्काल त्याग दिया। जिसमें अपना स्वयं का सामर्थ्य न हो, तो उसे धनुष के बल सफलता कैसे मिलेगी ? इसलिए श्रीराम उस धनुष के अभिलाषी नहीं थे अत. उन्होंने वह वरुण को दे दिया.

(दशरथ आदि का) अयोध्या में प्रवेश और प्रजाजनों द्वारा स्वागत– राजा दशरथ अयोध्या में झट से प्रविष्ट करने के लिए उल्लसित हो उठे थे। हाथियों का दल आनन्द के साथ गरज रहा था। सेनादल आह्लाद को प्राप्त था. अनेकानक नगाड़े, भेरियाँ, मृदंग, शंख, ढोल, डंके, काहल (नामक चर्मवाद्य) बज रहे थे। ये सब (बाराती) जयजयकार करते हुए नगर के प्रति चल रहे थे। ऋषि शान्ति मंत्र का पाठ कर रहे थे। भाट विरुदावली (प्रशस्ति, स्तुति) का गर्जन कर रहे थे और जन सिंहनाद कर रहे थे। रथों की घर्राहट हो रही थी। गुरु वसिष्ठ ने पहले ही (नगर में) दूतों को नगर को (नागरिकों द्वारा) उत्साह-उमंग से सजवाने, स्थान स्थान पर रंगावलियाँ सजाने, कुंकुम मिश्रित जल सिंचवाने और झाँकियाँ एवं तोरण बनवाने हेतु भेजा। (उसके अनुसार) घर घर ध्वज खड़े करवाये गए। आकाश में पताकाएँ झलक रही थीं, दिव्य आभूषणों और दिव्य वस्त्रों को धारण करने से नर नारियाँ शोभायमान थे नागरिक जनों ने कुंकुम तथा केसर के तिलक लगाये थे। गले में पुष्पमालाएँ, रत्नदीक तथा कटि में रत्नमेखलाएँ धारण की थीं। उनके गले में नवरत्नों के हार लटकते शोभायमान हो रहे थे। इस प्रकार लोगों (के आभूषित होकर उत्साह-उमंग के साथ घूमने-फिरने) की लीलाएँ शोभा को प्राप्त थीं. द्वार द्वार पर जल से पूर्ण भरे कलश स्थापित थे। उनके अन्दर दही, दूर्वा, फूल, डाले हुए थे। दीप जलाकर पंक्तियों में रखे थे। घर घर में आह्लाद छाया हुआ था राजगृह में अति उत्साह दिखायी दे रहा था देखिए, वहाँ के लोगों ने ध्वज खड़े किये थे, झाँकियाँ सजायी थीं क्योंकि उनके प्रिय श्रीरामराज, आजानुबाहु, प्रतापवान श्रीराम विजयी हो गए थे (होकर आ रहे थे) सब की जबान पर यही बात थी कि श्रीराम शिव-धनु को भग्न करके, परशुराम को जीतकर, सीता से परिणय करके उसे ला रहे हैं। कुछ एक कह रहे थे- गुरु विश्वामित्र के यज्ञ के समय श्रीराम ने रणरंग में राक्षसों को मार डाला, सुबाहु के समस्त अंग छेद डाले और मारीच पर आघात करके उसे घायल कर डाला। और कुछ कह रहे थे– ताड़का नामक दुष्ट राक्षसी अनेकानेक लोगों को नित्य प्रति पीड़ित किया करती थी। उसे देखते ही श्रीराम ने एक ही बाण से मार डाला। कोई एक कहते थे- श्रीराम ने शिला स्वरूप अहल्या का अपने चरण (के स्पर्श) से लीलया उद्धार किया श्रीराम सचमुच परब्रह्म के मूर्त रूप हैं. सत् चित् (और आनन्द) की कला (मूर्ति) हैं. श्रीराम स्वयं साकार तथा निराकार ब्रह्म हैं. चित्स्वरूप मात्र हैं। जो लोग श्रीराम के मुख को देखते हैं, उनके नेत्र धन्य हैं, धन्य हैं। श्रीराम के मुख को देखते ही दर्शकों की प्यास और भूख पूर्णतः नष्ट हो जाती है। सुख स्वयं परम आनन्द से व्याप्त हो जाता है, हर्ष हर्ष से उमड़ उठता है। लोग घर-घर श्रीराम की ऐसी कीर्ति का बार बार बखान कर रहे थे। यह सुनकर कि श्रीराम आ रहे हैं नगर निवासी जन उनके सन्मुख आ गए। छत्र चामर को उठाये हुए हाथियों के दल शोभायमान थे। नाना प्रकार के वाद्य बज रहे थे। चारों दम्पति शोभायमान थे. इस प्रकार रघुवीर राम वाद्यों एवं जयजयकार के गर्जन के साथ (अयोध्या के प्रति) लौट आये। अपने चारों पुत्रों और चारों बहुओं को देखते रहते राजा दशरथ का मन अघा नहीं रहा था। उनकी आँखों को उन्हें देखते रहने से तृप्ति हो रही थी वे अपने सद्भाग्य की

भावना को उत्कटता के साथ सँजाये हुए थे। श्रवण के पिता से प्राप्त शाप का राजा दशरथ को सुख स्वरूप (वरदान-सा) सिद्ध हो गया था तभी तो सत् चित् (और आनन्द) के रूप श्रीराम के पुत्र रूप में प्राप्त हुए थे। जिस प्रकार माता का (अपने बच्चे के प्रति) क्रोध ऊपर से कठोर जान पड़ता है, अन्दर से वह (बच्चे के हित की दृष्टि से) सुखस्वरूप होता है, उसी प्रकार (श्रवणे नामक) उस ब्राह्मण का शाप (ऊपर मात्र से) कठोर था उसने शाप देते हुए (ब्रह्महत्या सम्बन्धी) पाप से मुक्त मात्र राजा दशरथ को (पुत्र प्राप्ति स्वरूप) सुख ही प्रदान किया था। श्रावण के पिता (श्रवण) के शाप के कारण राजा दशरथ की श्रीराम स्वरूप पुत्र से भेंट हुई। इसलिए वे आनन्द का उपभोग (अनुभव) कर रहे थे। (सचमुच) राजा दशरथ संसार में भाग्यवान् थे।

लोगों की श्रीराम के दर्शन के लिए उत्कण्ठा– जब रघुपति श्रीराम ने नगर में प्रवेश किया तो (जान पड़ रहा था कि) सलोकता आदि चारों मुक्तियाँ सामने नृत्य कर रही थीं और पाँवड़ों की अवस्था (रूप) में (धर्म आदि चारों) पुरुषार्थ लोट रहे थे (योगी के अन्दर होनेवाले) अनहद नाद की सगत में नाना प्रकार के वाद्य बज रहे थे। उस (सम्मिलित) नाद से आकाश अर्थात् (योगी के) शून्य स्थान में चित्स्वरूपा शक्ति व्याप्त हो गई- वह मात्र चिद्रूप हो गया। कुछ एक नारियाँ श्रीराम को अति प्रेम के साथ देखने के लिए 'परा' अवस्था के ऊपर चढ़ गईं, तो कुछ एक गोपुर स्वरूप समस्त इन्द्रियों के शिखर पर चढ़ गईं। कुछ एक समस्त लोगों के अन्दर ही श्रीराम को देख रही थीं (खोज रही थीं)। कुछ एक लज्जा से एकान्त स्थान में बैठकर खिड़कियों में से (झाँककर) श्रीराम को देख रही थीं, तो कुछ लोग एक-दूसरे का हाथ थामकर श्रीराम को (संकेत से) दिखा रहे थे। कोई किसीसे कहता-- अरे, ये नहीं हैं, वे भी नहीं हैं, उस ओर वे देखो··· वे देखो श्रीराम हैं। इस प्रकार श्रीराम को देखनेवाला किसी दूसरे को दिखा रहा था। कुछ जीव (अथवा प्राणी) के माथे चढ़कर श्रीरघुनाथ को आदरपूर्वक देख रहे थे, तो कुछ प्राण प्रिय का भी त्याग करके श्रीराम से मिल रहे थे (मिलना चाहते थे)। कुछ एक को जीव और शिव दो तत्वों का साथ (दोनों के अलग-अलग होने का विचार, द्वैतभाव) अच्छा नहीं लगता था। वे श्रीराम को अकेले एकत्व के रूप में अपने भीतर आह्लाद तथा आत्मानन्द के साथ परिपूर्ण रूप से देख रहे थे। कुछ एक प्रेम की परमोच्च स्थिति में श्रीराम के सामने आनन्द के साथ नाच रहे थे, तो कुछ ऐसे अपार निर्भयता के साथ श्रीराम को चारों ओर (छाये) देख रहे थे। कुछ एक को श्रीराम अपने साथी जान पड़ते थे, कुछ एक को श्रीराम ही नित्य गति (लक्ष्य, आश्रय) लगते थे, कुछ एक स्वयं श्रीराम में ही, उनके साथ एकात्मक होकर नित्य प्रति रहते थे, कुछ एक निश्चय ही ऐसे सांसारिक बन्धनों से मुक्त (संग हीन) थे कि लोगों की समस्त स्थिति-गतियों में स्वयं वे श्रीराम को व्याप्त) देख रहे थे। उन्हें (कहीं) कोई आशंका या संदेह नहीं हो रहा था। कुछ एक की ऐसी अद्भुत स्थिति थी कि वे कोलाहल से बिल्कुल नहीं डरते थे (कोलाहल का उन्हें कोई ध्यान नहीं था)। वे स्थान-स्थान पर श्रीराम को ही देखते थे। कहीं भी कोई बात उनके लिए आड़े नहीं आ सकती थी। ऐसे ही लोगों की पंक्तियाँ अर्थात् झुंड के झुंड, समुदाय, श्रीराम को देखने के लिए आ रहे थे श्रीराम को देखने का प्रयास करते समय सभा मण्डप में बहुत बड़ी भीड़ मची थी। वहाँ पर पाँवड़े बिछे थे, पद-वाहन (पाँव रखने के लिए मृदु पुष्पासन) तैयार थे। दीपों की मालाएँ, नीराजनों में ज्योतियाँ प्रज्वलित थीं। लोग धनधान्य न्यौछावर कर रहे थे। इस प्रकार लोगों को श्रीराम को देखने हेतु उल्लास अनुभव हो रहा था।

परन्तु श्रीराम द्वारा नगर में पहुँच जाने पर भी अग्निहोत्री उन्हें देखने के लिए नहीं आ गए, उन्हें जान पड़ रहा था कि हम (अग्निहोत्री व्रत-धारियों)को श्रीराम के दर्शन मात्र से भारी छूत लगेगी। इसके

कारण राम (परब्रह्म) उनसे दूर हो रहे, वे लोग (परब्रह्म के सगुण साकार रूप) राम के दर्शन से वंचित रहे। स्वयंपाकी श्रोत्री (वेदवेत्ता यज्ञकर्ता) जन समझते थे कि केवल श्रीराम के दर्शन से छूत का दोष लग जाएगा। परन्तु इससे वे तत्काल उबलते पानी में चावल डालना भूल गए। इस प्रकार की छूत (सम्बन्धी धारणा) के कारण उनके लिए श्रीराम उनसे दूर के दूर रह गए और वे उनके दर्शन से वंचित हो गए। वे चिकनी चुपड़ी भोज्य सामग्री के अन्दर कर्मकाण्ड सम्बन्धी अहंकार के कारण उलझे रहे। उनको लग रहा था कि हम उत्तम आश्रम के धारी हैं (सन्यासाश्रमी हैं) और यह श्रीराम लोगों के निवास स्थान में आ रहा है। उसको देखते ही हमें छूत लग जाएगी। इसलिए उन सन्यासियों ने यह कहा कि हम उसे दूर से देख लें। छूत की आशंका से श्रीराम को दूर से देखने जाने पर वे बिलकुल दिखायी नहीं दे रहे थे। बात यह है कि अपने आश्रम-धर्म के अहंकार से देखने जाने पर श्रीराम सचमुच उन्हें दिखायी नहीं दिये।

वेश्या पिंगला द्वारा श्रीराम के दर्शन– श्रीराम को लक्ष्य करके पिंगला नामक एक वेश्या उल्लासपूर्वक उनकी ओर दौड़ी। वह मार्ग में किसी संन्यासी को छू गई, परन्तु इसका उसे कोई ध्यान नहीं था। 'यह राँड मुझे छू गयी है'– इस विचार से उस संन्यासी ने क्रोधपूर्वक अपने दण्ड से उसपर आघात कर दिया। पर श्रीराम के मुख को देखने पर वह ऐसे दण्डाघात के होने पर भी बहुत सुख को प्राप्त हुई। (वह बोली-) 'हे स्वामी, आपके दण्ड का आघात मुझपर तो हो ही गया। पर उसने मेरे अहंकार को ठोंक पीटकर नष्ट कर दिया। अहो देखिए (आश्चर्य है कि) वह आपको कोई दण्ड नहीं दे रहा है। आपने तो महाराज श्रीराम को देखने में छूत ही देखी। श्रीराम के दर्शन करने से छूत का दोष उड़कर भाग जाता है, परन्तु वही छूत का दोष संन्यासी में बैठकर छिप जाता है। इसलिए संन्यासी के पास छूत सम्बन्धी संकट नित्य प्रति आ जाता है। वस्तुतः श्रीराम के दर्शन करने पर किसी प्रकार के विकल्प (भ्रम, सन्देह) की छूत का भाव भक्त के मन में तिल मात्र भी नहीं रह जाता परन्तु वह भक्तिभाव रूपी सुगन्ध संन्यासी के अन्दर अहंकार रूप में केवल उसके आश्रम में ही रह जाती है। (यह विचित्र बात है कि) जिसने समस्त प्राणियों को यह कहकर अभयदान दिया कि मैं सर्वभूतों में उसी परमात्मा के अंश आत्मा के रूप में पूर्णतः व्याप्त हूँ, (अतः सब सम-समान हैं) और स्वयं सन्यासाश्रम स्वीकार किया, वही स्वयं दूसरे के स्पर्श में छूत का दोष देखने लगता है। (जान पड़ता है,) ये श्रोत्री, स्वयंपाकी, सन्यासी छूत का मायका (बने) हैं। उसी के अन्दर वह नित्य उमड़ती है। वे जगत् को अपवित्र मानते हैं, इस प्रकार जब वह वेश्या संन्यासी से प्रतिवाद करते हुए उसे समझा रही थी, तो श्रीराम अपने स्थान के प्रति चले गये। (उधर) छूत के दोष से मुक्त होने हेतु जब उस संन्यासी ने मृत्तिका स्नान (पवित्र होने हेतु शरीर में मिट्टी लगाते हुए स्नान करने की एक विधि) किया, तो उसके हाथ मिट्टी ही आई। (दुर्भाग्य से) स्वयंपाक व्रत को स्वीकार करनेवाले का यह मुख्य सिद्धान्त व धारणा सूत्र बना रहता है कि मैं पवित्र हूँ और जगत् अपवित्र है वस्तुतः इस छूत के विचार से उस स्वयंपाकी से श्रीराम अधिक दूर चले गये और वह उनके दर्शन लाभ से वंचित हो गया। वर्ण, आश्रम, कर्म, धर्म सम्बन्धी अपने अभिमान का समस्त अभिमान का त्याग न करने पर श्रीराम कभी नहीं मिलते। इस प्रकार की अच्छी (दलील, युक्ति संगत) बात उस वेश्या ने कही। आप पूछेंगे कि वह पिंगला नामक वेश्या कौन थी, वह वही कथा है जो अवधूत श्री दत्तात्रेय ने अपने चौबीस गुरुओं के (तथा उनसे प्राप्त शिक्षा के) विषय में ययाति के पुत्र यदु से कही थी। (अस्तु) श्रीराम राजप्रासाद पहुँच गए, तब स्वयं शान्ति ने वहाँ आकर उन दम्पतियों की आरती उतारते हुए जीव-भाव स्वरूप राईनोन निछावर किया

श्रीराम का राजप्रासाद में आगमन– गुरु वसिष्ठ ने राजा दशरथ के चारों पुत्रों और चारों वधुओं के हाथ थामकर उन्हें राजप्रासाद में प्रविष्ट करवा दिया, तो अन्तःपुर की स्त्रियों को बहुत बड़ा आनन्द हो गया। उस समय मंगल वाद्य मधुर ध्वनि में बज रहे थे। ब्राह्मण जयजयकार करते हुए गरज रहे थे उन मनोहारी दम्पतियों को (आये जानकर उन्हें) देखने हेतु रानियाँ आदर के साथ गयीं। पहले दम्पतियों ने कौसल्या को नमस्कार किया तो उसने चारों बहुओं (में से एक-एक) को गोद में बिठा लिया और स्वयं आनन्द के साथ उन्हें, बाहुभूषण, कंकण, पदीक (आदि) आभूषण प्रदान किये। जब वे बहुएँ सुमित्रा के पाँव लगीं, तो उसने उनका सहर्ष आलिंगन किया और उन्हें कटि में धारण करने के लिए मेखमालाएँ और हाथों में पहनने के लिए कंकण प्रदान किये। जब उन्होंने कैकेयी को नमस्कार किया, तो उसने उन चारों का चुम्बन किया। समझिए कि उनमें से दो को अपनी बहुएँ मानकर उन्हें पुष्पमालाएँ पहना दीं। अन्तःपुर की अन्य नारियों ने भी दम्पतियों को प्रेम के साथ गले लगाया, उनकी नाना प्रकार से आरती उतारी। अन्तःपुर में बड़ा आनन्द छा गया।

गृह प्रवेश के समय अन्तर्गृह में कृत्रिम (माया स्वरूपा) लक्ष्मी थी। परन्तु श्रीराम के सामर्थ्य को देखकर पूर्णकलाओं से युक्त साक्षात् देवी लक्ष्मी वहीं पर प्रकट हो गई। वस्तुतः (प्रतिमा रूप) कृत्रिम लक्ष्मी में साक्षात् देवी लक्ष्मी प्रविष्ट हो गई थी। अतः उसका जो रूप मूलतः मनोहारी था, वह अधिक सुन्दर आभासित हो रहा था धनुष को भग्न करके एक सीता (प्रण को जीतकर उसके फलस्वरूप) का पाणिग्रहण करते हुए ले आये, तो फिर दूसरी सीता अन्तर्गृह में कैसे आयी है ?– हर किसी को यही आश्चर्य हो रहा था। ऋषि भी मन में विस्मयचकित हो उठे। उस लक्ष्मी को देखते ही स्वयं सीता भी मन में आशंकित हो उठी। वह सोचने लगी घर में रहनेवाली इस स्त्री के होने पर श्रीराम ने मुझसे क्यों परिणय किया। हम दो स्त्रियों के होने पर श्रीरघुनाथ का कैसा एक पत्नीव्रत ? रहने दो वह एकपत्नीत्व की कथा– पर सचमुच यह मेरी सौत तो ठहरी, भाग्य में मेरे लिए सौत बदी है , (यह सोचकर) वह उसकी ओर बौखलाहट के साथ देखने लगी। तब देवी लक्ष्मी सीता के पाँव लगी और बोली हे जानकी ! मैं आपकी दासी हूँ फिर जब उन्होंने एक-दूसरी को गले लगा लिया, तो उन दोनों के रूप-द्वैत का लोप हुआ और वे दोनों एक-दूसरी में पूर्ण अद्वैत रूप देखने लगीं उन्होंने स्वयं अपने आप को ही एक दूसरी में देखा। जो देवी लक्ष्मी थी, वही स्वयं सीता थी समझिए कि जो सीता थी, वही लक्ष्मी थी। तब सीता के ध्यान में श्रीराम का एकपत्नीत्व पूर्ण रूप से आ चुका। सीता और देवी लक्ष्मी की ऐसी एकरूपता को केवल वे दोनों ही जानती थीं। और गुरु वसिष्ठ उसे पूर्णतः जानते थे। परन्तु ब्रह्मा आदि की समझ में भी यह चमत्कार नहीं आ सका था।

लक्ष्मी-पूजन; अपनी-अपनी पत्नी सहित चारों बन्धुओं का पिता दशरथ और गुरु वसिष्ठ की सेवा में तत्पर रहना– (तदनन्तर) गुरु वसिष्ठ ने स्वयं देवी लक्ष्मी का पूजन किया। फिर गृह-प्रवेश की विधि शास्त्रोक्त विधि के अनुसार पूर्ण सम्पन्न करायी श्रीराम ने अस्त्र शस्त्र विद्या शुद्ध रूप में अर्जित की, अपार गर्जन (गाजेबाजे) के साथ वे अपने तथा अन्य बन्धुओं के लिए स्त्रियाँ ले आये। इससे उनकी कीर्ति लोगों में व लोक-लोकान्तर में प्रतिष्ठित हो गई। यह कीर्ति श्रीराम द्वारा उपार्जित सामग्री थी। वे चारों बन्धु चारों अर्थात् अपनी अपनी स्त्री सहित पिता दशरथ की सेवा में दिन रात जैसे सावधानी के साथ रहते थे, वैसे ही वे गुरु वसिष्ठ के पास दास्य भाव से रहते थे। यह समझिए कि उनमें से श्रीराम गुरु वसिष्ठ को पूर्ण रूप से प्रिय लगते थे। वे ही पिता दशरथ के जीव प्राण थे। वैसे

वे सबको पूर्णतः प्रिय लगते थे। श्रीराम समस्त प्राणियों को प्यारे लगते थे- क्योंकि उन्हीं सब के लिए सुखरूपता (सुख सम्पन्न स्थिति गति) थी। वे श्रीराम गुरु वसिष्ठ की आज्ञा दास्यभाव से वन्दन (पूर्वक स्वीकार) करते थे। गुरु की महिमा अति महती होती है। श्रीराम उसका पालन, निर्वाह किया करते थे, सचमुच लोक-संग्रह हेतु वे गुरु-भक्ति का आचार-विचार प्रदर्शित किया करते थे।

श्रीराम और सीता का एक-दूसरे के प्रति प्रेम– सीता श्रीराम के मन की बात (इच्छा) के अनुकूल ही व्यवहार करती थी। वैसे ही सीता की इच्छा श्रीराम के कारण पूर्ति को प्राप्त होती थी। सीता का प्रेम भाव श्रीराम में पूर्ण रूप से स्थित था, जब कि श्रीराम सीता में प्रेम भाव से पूर्ण रूप से व्याप्त थे। सीता श्रीराम के कारण सुख-सम्पन्न थी, तो श्रीराम सीता के कारण। श्रीराम की रसना (जिह्वा) से सीता रस का ज्ञान प्राप्त करती थी, तो सीता की रसना से श्रीराम (विविध रसों के) भोक्ता थे। श्रीराम नेत्र थे, तो सीता उनके नेत्रों का नेत्रत्व (दृष्टि शक्ति) थी। इसलिए उसी के द्वारा श्रीराम दर्शक बन सके थे। श्रीराम के कारण सीता (अन्तर्बाह्य जीवन में) पूर्णतः सुन्दर थी, तो सीता के सहयोग से श्रीराम गुणों से युक्त होकर शोभायमान जान पड़ते थे। श्रीराम के आश्रय से सीता सुलक्षणा बनी थी, तो श्रीराम को दर्शनीय लक्षण सीता के कारण प्राप्त थे। श्रीराम ही सीता के लिए जीवनानन्द के भोग स्वरूप थे, तो सीता के कारण श्रीराम जीवन में अच्छे अच्छे रंगों से (आनन्द, सुख आदि से) युक्त हो गए थे। श्रीराम के कारण सीता सर्वांगों में शोभा को प्राप्त थी, तो श्रीराम के लिए सीता ही जीवन के समस्त अंगों-सी बनी थी। सीता रस थी तो श्रीराम उस रस का स्वाद थे। श्रीराम पुष्प थे, सीता उसकी सुगन्ध थी। सीता बुद्धि थी, तो श्रीराम (बुद्धि द्वारा प्राप्त) ज्ञान थे। इस प्रकार वे एक-दूसरे के लिए सिद्धि-स्वरूप थे, सीता वचन थी, तो श्रीराम उस वचन का अर्थ थे, सीता (वाक्य में प्रयुक्त शब्द अर्थात्) पद थी, तो श्रीराम उस पद का अर्थ थे। सीता मुक्ति थी, तो श्रीराम उस मुक्ति का अर्थ (रहस्य, यथार्थ रूप) थे। इस प्रकार वे एक-दूसरे की दृष्टि से अपने-अपने जीवन का हेतु बने हुए थे। सीता जीव-स्वरूपा थी, तो श्रीराम जीवन स्वरूप थे, सीता मन थी, तो श्रीराम उस मन के ज्ञाता थे। सीता चित्त थी, तो श्रीराम चैतन्य थे। वे एक-दूसरे के लिए आनन्द के घन (बादल) बने थे। सीता धरा (पृथ्वी, भूमि) थी, तो श्रीराम उसके धारक अतएव आधार थे। सीता चलन संचरण क्रिया स्वरूपा थी, तो श्रीराम उसके चलानेवाले, प्रेरक थे। सीता व्याप्त किये जाने योग्य वस्तु थी, तो श्रीराम व्यापक थे। इस कारण एक-दूसरे को एक-दूसरे से सुख और सन्तोष प्राप्त हो जाता था। सीता क्रिया या कर्म थी, तो श्रीराम कर्ता थे; सीता भोग्य वस्तु थी, तो श्रीराम भोक्ता थे। सीता ज्ञान थी, तो श्रीराम ज्ञाता थे। इस प्रकार वे दोनों एक दूसरे सम्बन्धी अति प्रेम के कारण एकात्मता को प्राप्त थे, सीता शक्कर थी, तो श्रीराम उसकी मधुरता थे। सीता व्यवसाय स्वरूपा थी, तो श्रीराम उसके लिए आवश्यक मूलभूत की धन राशि तथा लाभ थे।

एक-दूसरे सम्बन्धी अत्यधिक लगन से वे एकात्म हो गए थे। श्रुतियों और शास्त्रों की समझ में उनके जीवन का एकात्मता का यथार्थ रूप नहीं आ रहा था। समझिए कि वे बिना एक दूसरे के साथ के पानी नहीं पीते थे, बिना एक-दूसरे के साथ के पान (बीड़ा) नहीं खाते थे। इस प्रकार उन्हें एक-दूसरे से अनन्य प्रीति थी। वे दोनों आधे क्षण के लिए भी एक-दूसरे से अलग नहीं होते थे, मानों वे दोनों जैसे एक ही अणु के अन्दर पूर्णत्व के साथ, पूर्ण रूप से निवास कर रहे थे। (अर्थात् एक अणु के भीतर जिस प्रकार जीव और शिव, आत्मा और परमात्मा दोनों अद्वैत रूप से पाये जाते हैं, उसी प्रकार जीवन की अति छोटी बात में भी वे दोनों एकात्म रूप रहा करते थे)। इस प्रकार एकगुण विशिष्ट सीता और

वैसे ही श्रीराम के जीवन की एकात्म स्थिति-गति थी। श्रीराम सती सीता का अर्थात् जीवन के सभी सुखों, रसों का (उसी एकात्म भाव से) भोग किया करते थे। सीता के ऐसे आत्मिक प्रेम से श्रीराम मूर्त रूप से साक्षात् उल्लास को प्राप्त हो रहे थे। सीता के सम्पूर्ण प्रेम भाव को देखकर श्रीरघुनन्दन उल्लसित हो जाया करते थे। तो इसके फलस्वरूप सीता उनके प्रति दोगुना प्रेम करने लगी-- श्रीराम में उसके प्रति चौगुनी प्रीति हो गई जैसे-जैसे सीता राम के प्रति अधिकाधिक प्रेमभाव अनुभव करती थी, वैसे-वैसे श्रीराम में भी उसके कारण सुख उमड़ उठता था। उनमें यह कैसी अपार असाधारण प्रीति थी वे एक दूसरे के प्रति अनन्य, सम्पूर्ण निष्ठा के साथ एकात्म हो गए थे (उपर्युक्त समस्त बातों का यह भाव है कि श्रीराम और सीता वैसे ही एकात्म थे जैसे शब्द और उसका अर्थ, जल और उसकी आर्द्रता, शक्कर और उसका माधुर्य होता है)।

(कवि कहता है) जिसे श्रीराम के प्रति जैसा प्रेम हो, उससे श्रीराम का वैसा ही प्रेम होता है, यह तो बहुत ग्रन्थों में कहा जा चुका है। फिर मैं उसे पुनःपुनः कहते हुए कितना स्पष्ट करता रहूँ जैसा (श्रद्धा) भाव, वैसा ही (भक्त के प्रति भगवान्) प्रेम होना है; जैसी भगवत्प्रीति होती है, वैसी ही (भगवत्कृपा की) प्राप्ति होती है जैसी भगवत्कृपा की प्राप्ति होती है, वैसी ही (साधक की) स्थिति-गति होती है। इस सबके कहने का परमार्थ की दृष्टि से यही प्रमुख अर्थ है। ग्रन्थ में गूढ़ भाव प्रतिष्ठित करते हुए (कवि उसके द्वारा) मुख्य रूप से उसका परमार्थ दिखा दे। कवित्व का यही प्रमुख प्रयोजन है इस प्रकार की (कविकृत रचना से) श्रीरघुनाथ श्रीराम सन्तुष्ट हो जाते हैं।

बालकाण्ड का उपसंहार

रामचन्द्र की महिमा-- श्रीराम चरित्र अर्थात् रामायण ऐसा ग्रन्थ है कि उसके श्रोता उसका श्रवण करते हुए, उसके वक्ता उसका वर्णन करते हुए, उसकी कथा का कथन व रचना करनेवाले कथाकार (ग्रन्थ-कर्ता आदि) सन्तुष्ट हो जाते हैं, समझ लीजिए कि रामायण कथा का श्रवण करने पर (श्रोताओं के) पूर्वज उद्धार को प्राप्त हो जाते हैं। पूर्वजों के उद्धार में ही कैसा चमत्कार ? उससे सम्पूर्ण त्रिभुवन उद्धार को प्राप्त हो जाता है। श्रीरामकथा का यही चमत्कार है कि वह (कथा) भगवान् शिवजी के लिए जाप करने की माला (सुमिरनी) ही है। यह सत्य समझें कि अन्तकाल अर्थात् मृत्यु की दृष्टि से वह साधक के लिए मणिकर्णिका घाट है, शिवजी जिसका जाप किया करते हैं, वही यह ब्रह्म है। समझिए कि अपने मन को सावधान करना ही सच्चे अर्थों में मणिकर्णिका है। अतः आदरपूर्वक रामायण का श्रवण करना ही पूर्ण ब्रह्म स्वरूप तारनहार है। रामकथा का आदर के साथ श्रवण करने से यह (रामायण) स्वयं तारनहार ब्रह्म रूप हो जाता है। उस स्थान पर (रामायण का श्रवण करनेवाले के विषय में) वही काशी और मणिकर्णिका पावन तीर्थक्षेत्र हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं। वहाँ चारों मुक्तियाँ (उस कथा की दासियाँ हो जाती हैं। इसलिए उल्लास के साथ कथा के श्रवण से श्रोता को परमानन्द की प्राप्ति हो जाती है रामायण की कथा अथाह गहन है। उसमें पद पद पर परमानन्द का अनुभव होता रहता है। उसके श्रवण करने से श्रोता में परम (आत्मिक) आनन्द उमड़ उठता है। श्रीराम की कथा श्रवण से आत्मज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। रामायण की कीर्ति को जानकर श्रीशिवजी आदि आनन्द में डोलते-झूलते रहते हैं। उस कथा से त्रिभुवन पावन हो जाता है। कथा का श्रवण करने से अभिलाषी के प्रति श्रीराम सन्तुष्ट बने रहते हैं।

बालकाण्ड कथासार– इस प्रकार अयोध्या में रघुपति श्रीराम सीता के अनन्य प्रेम के साथ बस गए, यहाँ बालकाण्ड समाप्त हुआ। (श्रीराम ने) परम कठोर वैराग्य को वश में करके (अपनाते हुए) अखण्ड ब्रह्मज्ञान को प्राप्त किया। पिण्ड और ब्रह्माण्ड को एकात्म करके उन्होंने बाल-काण्ड अर्थात् बाल-लीला स्वरूप प्रकरण समाप्त किया। उन्होंने परमोच्च शस्त्रास्त्र विद्या का अर्जन किया। गुरु विश्वामित्र का महान यज्ञ सिद्धि (पूर्णता) को प्राप्त करा दिया। अहल्या के पाप-समुदाय का निराकरण किया। इस प्रकार बाल-लीला प्रकरण स्वरूप काण्ड समाप्त किया। श्रीराम ने ताड़का और सुबाहु को दो-दो खण्ड करके अर्थात् छिन्न भिन्न करके मार डाला; मरीच के मुख को रौंद दिया। मिथिला में बड़े-बड़े अनेकानेक राजाओं को लज्जा को प्राप्त कराकर बाललीला प्रकरण स्वरूप काण्ड को समाप्त किया। उन्होंने शिवजी के धनुष को भग्न करते हुए सीता की आशंका व सन्देह को दण्ड देकर दूर किया। अहंकार स्वरूप रावण के मुँह को काला कराते हुए उन्होंने बाललीला प्रकरण-स्वरूप काण्ड को समाप्त किया, वास्तव में परशुराम का प्रताप प्रचण्ड (अति उग्र) था। परन्तु श्रीराम ने उसे चूरचूर करके भगवान् श्री विष्णु के प्रताप का भी दमन किया। इस प्रकार उन्होंने अपनी बाललीला प्रकरण-स्वरूप काण्ड समाप्त किया।

कवि का निवेदन– इस प्रकार बालकाण्ड समाप्त हुआ। अब आगे चलकर श्रीराम के प्रचण्ड प्रताप का वर्णन करना है। वे प्रचण्ड भयावह राक्षसों का वध करेंगे। उसे काण्ड काण्ड रूप में सुनिए। मैं एकनाथ अपने गुरु श्रीजनार्दनस्वामी की शरण में स्थित हूँ, रामायण कथा रम्य है। मेरे द्वारा उसका समाप्त हो जाना, यह सन्तों की परिपूर्ण कृपा है। परन्तु रामायण कथा अथाह है। उसका कथन करने (की क्षमता की) दृष्टि से मैं बहुत दीन, शक्तिहीन हूँ। फिर भी ब्रह्मस्वरूप गुरु जनार्दनस्वामी उसे कहला रहे हैं। वस्तुत: स्वयं श्रीराम ही, इस ग्रन्थ के कथन-कर्ता हैं; श्रीराम ही इस ग्रन्थ के कर्ता हैं। श्रीराम ही मेरे द्वारा इस ग्रन्थ को लिखवाने वाले हैं। श्रीराम ही मेरे मुख से इस कथा को कहलानेवाले हैं।

मैं एकनाथ अपने गुरु श्रीजनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हूँ। इस प्रकार स्वयं रामायण कथा की रचना मेरे द्वारा करा रहे हैं। मैंने (उनके कहे अनुसार) बालकाण्ड को पूर्ण किया।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ कृत 'श्रीभावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत बालकाण्ड का 'श्रीराम-जानकी-अयोध्या-प्रवेश' नामक यह सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

॥ इति बालकाण्ड ॥

अयोध्याकाण्ड

अध्याय १

[श्रीराम-लक्ष्मण द्वारा शस्त्रास्त्र-विद्या-निपुणता को प्रदर्शित करना]

श्लोक– विघ्न-स्वरूप अन्धकार को दूर करनेवाले, अथाह करुणा के (साक्षात्) मूर्ति-स्वरूप, समस्त ज्ञान के दर्शन-कर्ता (नेत्र-रूप) उन महान देवता गजानन गणेशजी को नमस्कार है।

रघुनाथ श्रीराम का चरित्र शत कोटि (श्लोकों, छन्दों के) विशिष्ट विस्तार से युक्त है। उसका एक-एक अक्षर लोगों के महापापों का नाश करनेवाला है।

रामायण-रूपक– (अपने सहस्र मुखों से) शेषनाग पाताल में श्रीरामकथा की मधुरता और अद्भुता का वर्णन करता रहता है। श्रीशिवजी बड़े प्रेम के साथ उसका वन्दन करते रहते हैं। यह कथा पृथ्वी में (जगत् के) समस्त लोगों के लिए वन्द्य है। फिर भी शत कोटि छन्दों में प्रस्तुत रामायण का वर्णन (पूर्ण रूप से) कौन कर सकेगा ? इस बात में मैं तो अपर्याप्त (अपूर्ण शक्ति से युक्त) दीन अतएव असहाय हूँ। फिर भी उसे मेरे गुरु श्री जनार्दन स्वामी स्वरूप ब्रह्म स्वयं मेरे द्वारा कहलवा रहे हैं। फिर श्रीराम का स्वरूप वस्तुत: चिद्रूप है; सीता चैतन्य की शोभा से युक्त है। तो (चिद्स्वरूप ब्रह्म होने पर) भी वे मानवीय जड़ देह धारण करके अवतरित हो गए हैं। अर्द्धनारीनटेश्वर में वस्तुत: जो पुरुष है, वही नारी (-स्वरूप) है, उसी प्रकार श्रीराम ने निश्चय ही सीता का वरण करके उसे एकात्मता को प्राप्त करा लिया है– अत: जो पुरुष राम हैं, वे ही दूसरी दृष्टि से स्त्री सीता हैं (वे अर्द्धनारी नटेश्वर-से हैं)। जिस प्रकार बहुरूपिया कभी राजा बन जाता है, तो कभी रानी, फिर भी उसके मन में उस पुरुष (राजा) या स्त्री (रानी) का भाव (मैं वही राजा या रानी हूँ, यह धारणा) नहीं होता, उसी प्रकार निराकार निर्गुण ब्रह्म राम की स्थिति है। वे सचमुच लोकरक्षण के हेतु उसी प्रकार का रूप (स्वाँग) धारण करते हैं यह वेदों की उक्ति है कि वह (ब्रह्म) अकेला सानन्द रह नहीं सकता था। इसलिए उसको किसी दूसरे की संगति की इच्छा हुई। यह तो बृहदारण्यक नामक वैदिक साहित्य के अंश स्वरूप उपनिषद् का कथन है। साधारण कोटि के लोग स्वयं भले ही यह कहें कि एक से दो के होने पर उनमें सौतिया डाह-सा भाव होता है, फिर भी ज्ञानी जन द्वैत में अद्वैत भाव की ही कल्पना करते हैं, उपर्युक्त विचार के फल-स्वरूप, जो परब्रह्म सर्वोपरि है, उसने आलिंगन-बद्ध जोड़े जैसा अपने आपको स्त्री-पुरुष स्वरूप बना लिया– वह दो भागों, स्त्री-पुरुष रूपों में विभक्त हो गया। फिर भी वेदान्त शास्त्र का यह भाव है कि अद्वैत परब्रह्म में ही लोग द्वैत की कल्पना करते हैं। इस प्रकार श्रीराम और सीता दोनों एकात्म होकर सुख के साथ रहते थे। जैसे अभिनेता नाट्य रूप में किसी व्यवस्था या कर्ता और उसके कार्य को (मंच पर) अवतरित या प्रस्तुत करता है, वैसे ही ब्रह्म (राम) और माया (सीता) द्वारा आयोजित यह क्रिया-कलाप है। पर ऐसा आयोजन विधिवत् आधिकारिक माना जाता है। वैसे ही अपने भक्तों को अपने पदों में सुख के साथ रहने दिया जाए, इस दृष्टि से निश्चय ही ब्रह्म राम ने दाशरथी राम

का अवतार ग्रहण किया है– यह सत्य है, सत्य है, सत्य है। गन्ने को कोल्हू में डालकर पेरते हुए उससे रस निकाल लीजिए; फिर उस रस को पूर्णत: तपाते हुए उबालकर उससे अति मधुर शक्कर बना लीजिए। उसी का निर्मल अंश लेकर मिस्री बना लीजिए। ऐसा करने के पश्चात् भले लोग उस मिस्री से, उसे नारियल की गरी में मिलाकर अति मधुर मिष्टान्न बना लेते हैं। परन्तु उसमें भी कपित्थ (कैथ) फल लेकर मिलानेवाले होते हैं। सचमुच ऐसे लोग अपने स्वाद विषय में अभागे समझे जाएँगे। उसी प्रकार परब्रह्म स्वरूप रस को देहाकार घरिया या साँचे में ढाले जाने पर वह परब्रह्म रस श्रीराम रूप में साँचे ढले हुए ठोस रूपाकार को प्राप्त हो गया– वह परब्रह्म राम के रूप में अपने रूप के समान चित्स्वरूप ही है। इस प्रकार परब्रह्म-रस से निर्मित श्रीराम स्वरूप विशुद्ध चैतन्य मूर्ति त्रिभुवन में सुन्दरता को ही शोभायमान बना दे रही थी। (दाशरथी राम के इस प्रकार परब्रह्म होने पर भी) जो लोग उनमें स्थूलत्व की कल्पना करते हैं, वे निश्चय ही खोटे, अभागे हैं। जिनके नाम से जगत् सम्बन्धी भ्रम का नाश हो जाता है, उन परब्रह्म स्वरूप श्रीराम को जो मनुष्य मानते हैं, उसे श्रीराम द्वारा मानव वेश में की हुई महिमा लीलाओं को बताये ही नहीं। श्रीराम की ऐसी रूप-महिमामयी स्थिति है कि श्रीशिवजी और देवी भवानी उनके नाम का जाप किया करते हैं। लक्ष्मण उन्हीं श्रीराम के प्रति अपना सब कुछ अर्पित करके उनके अनुसरण करनेवाले थे, वे उनके सखा एवं साथी संगी बने रहनेवाले थे।

व्यूह-चतुष्टय-वर्णन– फिर लक्ष्मण श्रीराम के साथ एकात्मकता को प्राप्त होकर उनके अधीन रहनेवाले थे–वे 'एकात्मता' रूप थे तो भरत केवल भक्तिभाव स्वरूप थे और शत्रुघ्न धैर्य भाव से युक्त थे श्रीराम आदि के व्यूह चतुष्टय का तात्पर्य यही है जहाँ मूलत: एक ही प्रमुख मूर्ति या रूप ही वही चार प्रकार से, चार आकारों, रूपों में अभिव्यक्त हो जाए, तो उन (समष्टि) को 'व्यूह-चतुष्टय' कहते हैं। उसमें एक ही वस्तु चार विभागों में प्रस्तुत होती है। समझिए कि वस्तुत: श्रीराम पूर्णत: आनन्द-विग्रही (रूप धारी) थे, इस विग्रह में लक्ष्मण आत्मज्ञान थे। भरत को भक्तिभाव रूप समझिए। शत्रुघ्न निश्चय ही अपने निर्धारित दृढ़ भाव का रूप थे। राजा दशरथ 'अहमात्मा' (मैं ही परमात्मा का एकात्म अंश हूँ-यह) भाव स्वरूप थे, वे श्रीराम स्वरूप में ब्रह्म राम के प्राकट्य का मुख्य हेतु थे। अत: श्रीराम के उनसे दूर चले जाने पर वह 'अहमात्मा' उनकी देह से निवृत्त हुआ। अर्थात् दशरथ निधन को प्राप्त हुए। तो उसे धारण करके रहनेवाला दशरथ नामधारी शरीर विलय को प्राप्त हो गया। अब जैसे सद्विवेक और आत्म विचार होते हैं वैसे ही गुरु वसिष्ठ और गुरु विश्वामित्र उनके मूर्त रूप थे। सचमुच उन्हीं से श्रीराम ने शस्त्रास्त्र विद्या का दृढ़, अविचल उपार्जन किया। कौसल्या सुविद्या थी, तो सुमित्रा विशुद्ध बुद्धि थी, कैकेयी बड़ी अविद्या अज्ञान स्वरूपा थी, तो मन्थरा के रूप में कुविद्या थी। उस कुविद्या ने अविद्या को प्रक्षुब्ध करके श्रीराम को वनवासी बना दिया। तब सीता अनन्य पति-प्रेम भाव से श्रीराम के साथ चली, जैसे सूर्य के साथ उसकी प्रभा (अभिन्न रूप से) चलती है; वसन्त ऋतु के साथ उसकी शोभा वन में स्थित होती है, वैसे ही जगदम्बा जानकी (श्रीराम के जीवन में थी। वह) अपने प्राण वल्लभ श्रीराम के साथ चली जिस प्रकार शक्कर को उसकी मधुरता नहीं छोड़ती, उसी प्रकार सीता ने श्रीराम को नहीं छोड़ा (अपने से अलग होने नहीं दिया)। उसे तो केवल श्रीराम की सेवा करने में रुचि थी, वन में उनकी दासता करने की सीधी स्पष्ट इच्छा थी (उसे जान पड़ा कि) श्रीरघुनन्दन राज्य में, राजप्रासाद में, राजसिंहासन पर विराजमान हों, तो उनकी सेवा का कार्य सेवकों में बँटा रहेगा, अत: यदि मैं अकेली वन में जाऊँ, तो मैं उनकी समस्त सेवा करने के पात्र (एवं अधिकारिणी) हो जाऊँगी। श्रीराम की सेवा

किसी के हाथ आए (उसका अवसर प्राप्त हो जाए), तो वह भाग्य पूर्ण दुर्लभ माना जाएगा। अब सीता को ऐसा दुर्लभ भाग्य प्राप्त था, इसलिए वह उनकी सचमुच सेवा करने हेतु वन में पैदल आ गई। सीता की यह (सद्‌भाग्य पूर्ण) स्थिति थी। तो लक्ष्मण की भी वैसी ही स्थिति थी। वे श्रीराम की सेवा करने हेतु निश्चय ही समस्त श्रद्धा-प्रेम भाव के साथ वन के प्रति चले आए। जैसे (ज्ञाता के) आत्मा के साथ आत्मज्ञान होता है, वैसे ही श्रीराम के साथ उनके अपने बन्धु लक्ष्मण थे। दोनों में एक प्रकार का सुसंवाद था। अतः वनवास के दिनों में उनको परम आह्लाद हो रहा था। जिस प्रकार परमार्थ (के साधक) के पास आत्मबोध तथा वैराग्य होता है, वैसे ही श्रीराम के पास सीता और लक्ष्मण थे। इस प्रकार ये तीनों किये जाने योग्य कार्य को लक्ष्य करके वनवास के लिए चले गये। भविष्य में किये जानेवाले कार्य को ध्यान में रखकर श्रीरघुनाथ वन के प्रति जाने निकले। (कवि कहता है) यहाँ से इस ग्रन्थ में जो भाव प्रस्तुत किया जानेवाला है, श्रोता जन उसके भावार्थ को ध्यान देकर सुन लें। रामायण ग्रन्थ का एक विशिष्ट (बाह्य, लौकिक) अर्थ है। उसमें जो भावार्थ है, श्रोता उसे सावधान होकर देख लें। उस (अन्दर के) भावार्थ को (समझने पर ही) आसानी से सच्चे अर्थों में परमार्थ की प्राप्ति होगी।

मैं एकनाथ अपने गुरु जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हूँ। मैंने इस भावार्थ रामायण के अन्तर्गत श्रीराम के स्वरूप का निरूपण करते हुए 'व्यूह चतुष्टय' के लक्षण एवं स्वरूप का वर्णन किया है।

श्रीरामकथा के श्रवण-पठन का फल— श्रीरामकथा का (प्रत्येक) अक्षर क्षर और अक्षर अर्थात् नाशवान और अविनाशी परमेश्वर के भी परे है। जो मनुष्य सौभाग्य से भाग्यवान् होते हैं, वे ही उस कथा का आदर-सहित श्रवण कर सकते हैं। इस कथा के श्रवण से (सांसारिक सुखभोग आदि से) विरक्ति उत्पन्न होती है। अतः इस कथा के श्रवण से परमानन्द (ब्रह्मानन्द) की प्राप्ति हो जाती है। इस कथा के श्रवण से महापापी उद्धार को प्राप्त हो जाते हैं। वाल्मीकि (पहले) चोर और महापापी थे। वे रामनाम के (जाप के) फलस्वरूप पाप-मुक्त हो गए। वे श्रीराम की कथा का नित्य प्रति जाप अर्थात् कथन-मनन किया करते थे। श्रीशिवजी के बोलने-कहने में यह कथा आती रहती है। वह यही श्रीशिवजी द्वारा कथन-श्रवण स्वरूप सेवा की जाने योग्य कथा समझी जाती है। उसके श्रवण से मृत्यु को मृत्यु आती है। उसके साथ ही जन्म ग्रहण करने की स्थिति को विदाई होती है। अर्थात् जीव जन्म मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है। इसके श्रवण से ब्रह्म की परिपूर्ण प्राप्ति हो जाती है। परिपूर्ण ब्रह्म से एकरूप होकर जीव को मुक्ति प्राप्त हो जाती है। श्रीराम के नाम का नित्य प्रति जाप करते रहने से वक्ता अर्थात् जाप करनेवाला स्वयं पूर्ण ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। उनकी कथा का नियमित रूप से श्रवण-पठन आदि करना व्यक्ति के कर्म अकर्म (के बन्धन) को काट देनेवाला सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार (श्रवण-पठन करने से रामकथा कर्म-अकर्म का निर्दलन करती है। उसके श्रोता स्वयं परब्रह्म-स्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं। यह तो वाल्मीकि का किया हुआ परम उपकार ही है कि उन्होंने रामकथा की रचना करके परमार्थ (का मार्ग, लाभ-प्राप्ति) आसान बना दिया। इस प्रकार रामकथा से परमार्थ को प्राप्त करना आसान हो गया है। उस रामायण कथा के बालकाण्ड को समाप्त करते हुए यह कहा गया कि राजा दशरथ श्रीराम को विजय सम्बन्धी लोगों द्वारा गर्जन करते उन्हें नगर के अन्दर (किस प्रकार) ले आये। उस अयोध्या में राजा दशरथ तदनन्तर सुख और आत्मानन्द के साथ निवास करने लगे। अपने बन्धुओं सहित श्रीराम उनकी सेवा नित्य सहर्ष किया करते थे।

भरत का अपने मामा के घर जाना– भरत के मामा युधाजित उसे ननिहाल में ले जाने के लिए आये थे (वे एक दिन) एकान्त में राजा से बल देकर (इस विषय में) बोले– भरत की इच्छा को जानकर, उसे ननिहाल जाने के लिए उत्सुक देखकर राजा दशरथ ने स्वयं उसे सहर्ष भिजवा दिया। अश्वदल, गजदल, रथदल और पदाति-दल अर्थात् चतुरंग सेना और (विपुल) धन के साथ राजा ने भरत और शत्रुघ्न को गाजे-बाजे के साथ उनके मामा के घर भेज दिया। वे दोनों कैकेयी पुत्र उल्लास के साथ जाकर अपने मातामह (नाना राजा अश्वपति) से मिले, फिर अपनी नानी को नमस्कार करके आनन्द के साथ मामा के घर रहने लगे। नित्य प्रति उनके लिए विविध प्रकार के नये-नये सुख भोग (के पदार्थ) प्राप्त होते थे, लाड़प्यार से प्रेरित एवं सम्पन्न आनन्दोत्सव, उपभोग्य पदार्थ उनके लिए प्रस्तुत हो जाते थे इसलिए वे दोनों वहाँ बिना किसी उद्वेग या बेचैनी से, वैभव, सद्भाग्य एवं प्रसन्नता के साथ रहते थे।

राजा दशरथ की इच्छा के अनुसार कुलगुरु वसिष्ठ द्वारा अपने शिष्य श्रीराम की अस्त्र-शस्त्र विद्या के कौशल को प्रदर्शित करवाना– इधर अयोध्या में श्रीराम और लक्ष्मण अति उल्लास के साथ, गुरु वसिष्ठ की सेवा में सर्वसमर्पण भाव से तत्पर रहते थे उसी प्रकार वे दिन-रात राजा दशरथ के निकट आदर के साथ उनकी सेवा के लिए (उपस्थित) रहते थे। राजा को जो-जो किसी कार्य सम्बन्धी इच्छा होती थी, उस-उस कार्य को पूर्ण करने में वे दोनों प्रवीण थे श्रीराम राजा के मन की बात को जानने में अति समर्थ थे। इसलिए राजा द्वारा न कहने पर भी, उनके मन में जिस किसी कार्य का विचार आ जाता, श्रीराम उसे पूर्ण कर देते थे। श्रीराम राजा के अत्यधिक प्रिय (पुत्र) थे; गुरु वसिष्ठ के प्रिय (शिष्य) थे। श्रीराम सबको प्यारे लगते थे मानों वे समस्त भूतों-महाभूतों (प्राणियों) के वल्लभ (प्रियतम) थे। जैसे प्राणी मात्र को जीवन स्वरूप जल (आवश्यक) होता है– वैसे ही श्रीराम सबके लिए (जीवन स्वरूप ही जान पड़ते) थे। श्रीराम दिन-रात अखण्डित रूप में समस्त प्राणियों को उल्लास प्रदान करनेवाले उनके उल्लास स्वरूप ही बने थे।

चन्द्र-किरन चकोरों को जैसी (जितनी) प्यारी होती है, श्रीराम चराचरों को वैसे ही प्यारे लगते थे। वे समस्त नारियों, पुरुषों को अच्छे लगते थे, समस्त जीव धारियों को अति प्रिय थे। गुरु वसिष्ठ ने राजा दशरथ से कहा कि राम शस्त्रास्त्र विद्या की साक्षात् राशि अर्थात् मूर्ति हैं यह सुनकर राजा के मन में उस विद्या-निपुणता को देखने की उल्लास के साथ इच्छा हुई। राजा की उस इच्छा को जानकर गुरु वसिष्ठ ने श्रीराम को यह कहकर आदेश दिया कि राजा दशरथ तुम्हारी अस्त्रशस्त्र विद्या को देखना चाहते हैं, (अतः उसको प्रदर्शित करो)। तो श्रीराम ने कहा– आपकी आज्ञा समर्थ अर्थात् उचित, सर्वोपरि है (अतः शिरोधार्य है)। जो गुरु के तथा पिता के आदेश का, साधु सज्जन की आज्ञा का उल्लंघन करता है वह तो पूर्णतः अभागा होता है; वह नरदेहधारी पाषाण ही होता है। गुरु द्वारा आज्ञा देकर कही बात को सुनते ही उसे शीघ्र पूर्ण करे, जो उस काम को करने हेतु मुहूर्त खोजने लगता (और फलस्वरूप विलम्ब करता), है वह पामर होता है; जो विचार करने में समय गँवाता है वह मूर्ख होता है। श्रीरघुवीर राम बोले– 'मैं तो आपका केवल आज्ञाकारी हूँ'। फिर उन्होंने झट से कछौटा कस लिया और वे लक्ष्मण के पास आ गए, गुरु की आज्ञा का ऐसा प्रभावकारी चमत्कार था कि श्रीराम की दोनों बाँहों में फुर्ती आ गई, उसके शरीर में बल एवं आवेग समा नहीं रहा था। वे गुरु की आज्ञा के फलस्वरूप प्रताप से पूर्ण सम्पन्न हो उठे। गुरु की बात (आज्ञा) को सुनकर उससे जो प्रसन्न तथा तुष्ट नहीं होता वह तो निरा पशु होता है। जिसे गुरु द्वारा कही बात को करने में आलस्य अनुभव होता है, वह उसके अपने शिष्यों

में गर्दभ-स्वरूप ही होता है। श्रीराम को उत्साह युक्त देखकर गुरु वसिष्ठ को वैसे ही बड़ी प्रसन्नता हुई, जैसे पूर्ण चन्द्र को देखकर क्षीरसागर ज्वार से उमड़ उठता है। उसी प्रकार गुरु वसिष्ठ को आनन्द हुआ। दशरथ को परम आह्लाद हुआ अपने पुत्र को उत्साहयुक्त देखकर उन्होंने रंगमंच को सजवा लिया। राजा दशरथ ने सभा-मण्डप को इस प्रकार सजवा लिया कि उसे देखकर विश्वकर्मा को (अपने सामर्थ्य, कौशल के विषय में) सन्देह अनुभव हुआ। उस (मण्डप की शोभा) ने स्वर्ग को तेजोहीन कर दिया और कैलास पर्वत को लज्जित कर डाला। देवराज इन्द्र की नगरी अलकावती का सुन्दर होने में बड़ा भाग्य माना जाता है। परन्तु अयोध्या के उस सभा मण्डप की सुन्दरता की तुलना में उसकी सुन्दरता और उसके सौभाग्य की बड़ाई शेष न रही। ऐसे उस सभा-मण्डप में श्रीराम प्रताप के अनोखे रंग के धारी सिद्ध हो गए समझिए कि गुरु वसिष्ठ की आज्ञा के अनुसार श्रीराम अद्भुत विद्याओं को अवश्य प्रदर्शित करते जा रहे थे- (उदाहरणार्थ) धनुर्विद्या, अलक्ष्य (अदृश्य लक्ष्य को बाण आदि भेदने की) विद्या, छत्तीस प्रकार के दण्डों और आयुधों को प्रयुक्त करने की विद्या, लक्ष्य को अपने सम्मुख तथा विमुख कर लेने की विद्या, मल्लविद्या, सुन्दर लघुविद्या, गज-अश्व-रथ पर आरोहण करने की विद्या, बिना किसी आधार के (अन्तरिक्ष में) युद्ध करने की विद्या, आकाश को भेदकर अस्त्र को पार चला ले जाने की विद्या, मेरु (जैसे) पर्वत को अस्त्र से घास (के तिनके)- सा उड़ा देने की विद्या···· (इत्यादि)। इस विद्या प्रदर्शन को देखने हेतु वहाँ नागरिक जन आ गए, साधु (-सन्यासी) पुरुष भीड़ मचाते हुए इकट्ठा हो गए। उस सभा-स्थान में श्रीरघुवीर खड़े होकर समग्र विद्या कौशल को प्रदर्शित कर रहे थे। तब देव उसे देखने हेतु आ गए उनके विमानों से आकाश पूर्णतः व्याप्त हो गया। उस समय श्रीराम और लक्ष्मण ने स्वयं धनुर्विद्या की समस्त बारीकियाँ तथा अपनी वीरश्री की झलक प्रदर्शित की। श्रीराम के पैंतरे को देखकर सुर और असुर कम्पायन हो उठे। मनुष्यों के नयन उन देदीप्यमान तेजस्वी मूर्ति को देखकर चौंधिया जाकर अन्धे-से हो गए। तेजस्वी बाण से श्रीराम ने मानों गगन को छेद डाला गगन के उदर का मार्ग चिह्न वैसे तो अदृश्य है, परन्तु स्वयं राम ही उसे देखना जानते थे इस प्रकार श्रीराम का शर सन्धान अमोघ था। बाणों के परों से शत्रु सहित बड़े-बड़े रथों को उड़ा दिया। फिर उन्हें आकाश में उसी प्रकार चक्राकार घुमा दिया, जिस प्रकार आँधी घास के अंकुरों को घुमाती है। श्रीराम के बाणों का प्रताप ऐसा था कि उनसे मेरु-मन्दर पर्वत थरथराहट के साथ काँप उठे। उसके भय से सहस्रमुख शेष हाँफने लगा और पृथ्वी का आधार स्वरूप कूर्म (कछुआ) अपने शरीर के पूर्ण विस्तार-सहित लड़खड़ाने-छटपटाने लगा। उस सिंहनाद का गर्जन अपार था। उससे शत्रु का हृदय छिन्न भिन्न हो गया शत्रु दल में हाहाकार मचा उसके सैनिक वहीं मूर्च्छित हो गए श्रीराम शत्रु का दमन करने हेतु परशु, पट्टिश तोमर, गदा, मुद्गर, लांगली, चक्र (आदि) शस्त्रों की बहुत भारी मार करने का प्रदर्शन कर रहे थे शत्रु के सभार (दल, समुदाय) के निर्दलन हेतु असि (तलवार), पाश, शूल, शक्ति जैसे शस्त्रों के धारी श्रीराम छत्तीस प्रकार के दण्डों एवं आयुधों, शस्त्रों का चमत्कार दिखाते हुए बड़ी भारी मार प्रदर्शित कर रहे थे। ढाल और खड्ग को धारण करनेवाले श्रीराम आगे बढ़ने और आघात करने की कला प्रदर्शित कर रहे थे। वे आतंकित करते हुए शत्रु से टकरा रहे थे उससे श्रीराम एक एक वीर को मूर्च्छित करके गिरा रहे थे। वेगपूर्वक उड़ान भरकर श्रीराम ने सामनेवाले शत्रुसमुदाय का मर्दन कर डाला, तो पीछे खड़े, शत्रुपक्ष के वीरों को उलटी उड़ान से रौंद दिया। सामनेवाले पर आघात से उन्होंने उसके पीछे खड़े रहे वीर को गिरा दिया, जब कि पीछे आघात करते हुए उसके सामनेवाले को काट डाला इस तरह

श्रीराम ने युद्धभूमि में विपक्षी मार करने के विविध प्रकार कौशल के साथ प्रदर्शित कर दिए श्रीराम ने अन्तिम निर्णयात्मक युद्ध-नीति का निर्वाह करते हुए पीछे के और आगे के वीरों पर एक ही आघात किया। देखिए वे उस प्रकार से (किस प्रकार) वीरता प्रदर्शित कर रहे थे। उसे देखकर ऋषि वसिष्ठ तथा राजा दशरथ विस्मय को प्राप्त हो गए।

श्रीराम मल्ल विद्या के कौशल को भी जानते थे। (कुश्ती लड़ने में) वे विपक्षी के सीने पर, मस्तक पर कुहनी से आघात करने लगे। नीचे पड़े हुए विपक्षी को ऊपर उठाकर उन्होंने उसे (उछालकर) चक्राकार घुमा दिया। वे आठों अंगों के मर्मस्थानों को जानते थे। वे चतुराई से मर्म स्थान को दबाकर उसमें वेदना उत्पन्न करके विपक्षी के प्राणों को छीन लेना, एक अँगूठे से दबाना और उससे महावीरों को जी-जान से मार डालना जानते थे। वे इट से आघात करके हाथीसहित उसपर बैठे वीर योद्धा को गिराते थे; कड़कड़ाहट के साथ रथ को तोड़ डालकर रणभूमि में पगडंडी सी बनाते हुए पैदल जाकर रौंद डालते थे वे रथ पर आरूढ़ होना जानते थे। वे यह भी जानते थे कि मार के लिए शस्त्र-अस्त्र को (किस प्रकार) चलाया जाए। रथ की गति बढ़ाना, कम करना, रथ का (विविध प्रकार से) भ्रमण कराना, रथ को चक्राकार चलाना भी वे जानते थे। वे वेग के साथ रथ चलाते थे। शत्रु के रथ की दायीं ओर जाकर उसकी उलटी परिक्रमा करके वे अपने रथ को चला सकते थे। इस प्रकार उन्होंने रथ चलाने की विद्या में प्रावीण्य प्रदर्शित किया, समझिए कि वे अन्तरिक्ष में ले जाकर बिना किसी आधार के रथ को चलाना जानते थे, उनके द्वारा चलाये जानेवाले रथ की गति को देखकर सुरों और सिद्धों के मन को आश्चर्य हो गया। चिंघाड़ते हुए हाथी के सम्मने आ जाने पर वे उछलकर उसके कुम्भ पर बैठे फिर हाथी पर विराजमान होकर उन्होंने गज युद्ध के दौरान महाप्रलय मचा दिया। अपने हाथी से वे विपक्षी की सेना को रोककर वश में कर लेते थे; हाथी को हाथी के पैरों तले रौंदते हुए नष्ट करते थे उन गजारूढ़ योद्धा ने रणभूमि में घूमते हुए विपक्षी के रक्त आदि से रंगावली सजा ली।

श्रीराम घोड़े पर सवार होना जानते थे अश्वारूढ़ होकर उन्होंने युद्ध-भूमि में महाप्रलय मचा दिया। वे घोड़े को चारों पैरों से नचाते हुए रणभूमि में विचरण करने लगे घोड़ों के खुरों से उछले विपुल धूलिकणों से शत्रुवीर भय को प्राप्त हो गए। श्रीराम द्वारा अपने घोड़े को चलाने लगते ही वे व्याकुल होकर अपने शस्त्रों को ही भूल गए अश्वों की बड़ी दौड़ और टकराहट शुरू हो गई, तो विपक्षीय सेना के मानों दो टुकड़े हो गए (सेना के बीच में से अपने अश्व को दौड़ाते हुए जाकर उन्होंने शत्रु के अश्व दल के दो भाग बना लिए)। वे वीरों के सिर तोड़ते जा रहे थे, इस प्रकार उस युद्ध लीला में शत्रु के वीरों के शरीर दो-दो खण्डों में (सिर और धड़) कटकर गिर गए। इस प्रकार अश्व, गज, रथ के संचारण के विविध स्वरूपों और शस्त्रास्त्रों के बड़े आघातों के विविध स्वरूपों द्वारा श्रीराम ने युद्ध-भूमि में चमत्कार प्रदर्शित कर लिया। युद्ध भूमि में आकर श्रीराम अति दारुण प्रताप को अनुक्रम से प्रदर्शित करने लगे, तो विपक्षी के कुछ एक वीर मूर्च्छित हो गिरे; कुछ एक तो प्राणों को त्याग देने को थे कुछ एक अपार आतंक को प्राप्त हो गए कुछ एक धड़कन अनुभव करते रहे। कुछ एक डर के मारे मूत्र-त्याग कर बैठे देखिए तो, कुछ एक नंगे गिर पड़े। श्रीराम के प्रताप को देखकर सुरों और सिद्धों को कँपकँपी छूटी; दैत्यों दानवों को कम्पन अनुभव हो गया। इस प्रकार का योद्धा-रूप दुर्धर्ष था। जो ज्ञानी जन भूत, भविष्य और वर्तमान को जानते थे, वे श्रीराम के दारुण प्रताप को देखकर मारे आतंक के कम्पायमान हो उठे। श्रीराम के ऐसे अति दुर्धर्ष प्रताप को देखकर राजा दशरथ सुख सम्पन्न हो गए।

उन्हें यह दृढ़ विश्वास हो गया कि उनके वे दोनों पुत्र अस्त्र-शस्त्र विद्या में निपुण हो गए हैं। राजा दशरथ ने अपार हर्ष विभोर होकर अनेक प्रकार की वस्तुओं को उनपर निछावर किया। देवों ने जयजयकार किया और उनपर फूलों की राशियाँ बरसा दीं। श्रीराम के दुर्धर प्रताप को देखकर गुरु वसिष्ठ के अन्तःकरण को हर्ष हुआ। तो उन्होंने उनका आनन्द के साथ आलिंगन किया। वे श्रीराम सम्बन्धी प्रेम और सद्भाव से आह्लाद को प्राप्त हो गए। (वे बोले 'हे श्रीराम !) तुमने शस्त्रास्त्र विद्या का व्यावहारिक प्रयोग अच्छे रूप में प्रदर्शित कर दिखाया तुम्हारी विजय और उसका प्रताप धन्य है, धन्य है'। यह कहते हुए वे उनके प्रति कृपा भाव भरी दृष्टि को प्राप्त हो गए। (वे बोले-) 'मेरे वरदान स्वरूप ये दस बाण तुम दोनों प्रयास पूर्वक रख लो। विकट युद्ध के प्रारम्भ होने पर इन्हीं बाणों से तुम्हें पूर्ण विजय प्राप्त हो जाएगी। इन बाणों के अन्दर कोटि-कोटि शस्त्रास्त्र हैं वे (आवश्यकता के अनुसार) निकलकर शत्रु स्वरूप समुद्र को सुखा डालेंगे। यह रहस्य की बात मैंने तुमसे कही है'। ऋषि वसिष्ठ ने इस प्रकार उनका वात्सल्य भाव से सम्मान करके उन दोनों को विश्वास दिला दिया और जयजयकार स्वरूप के गर्जन के होते रहते वे सब लोग राजप्रासाद के अन्दर प्रविष्ट हुए। राजा दशरथ को श्रीराम की विद्या-निपुणता का यह लक्षण विदित हो गया। उन्हें विश्वास हुआ कि वे समस्त सद्गुणों से सम्पन्न हो गए हैं फिर उन्होंने स्वयं वही बात गुरु वसिष्ठ को बताते हुए उनसे एक गुह्य बात पूछी (उनसे परामर्श प्राप्त करना चाहा)। वे बोले– 'मेरा यह दृढ़ विचार है कि राज्यासन पर श्रीराम को अभिषिक्त कर लिया जाय आप स्वामी स्पष्ट रूप से अपना मत कह दें– मैं वही कार्य सम्पन्न करूँगा'। (कवि कहता है-) गुरु वसिष्ठ स्वयं श्रीराम के अभिषेक की बात कहेंगे। मैं एकनाथ गुरुजनार्दन (स्वरूप श्रोताओं) से प्रार्थना करता हूँ कि वे अभिषेक सम्बन्धी उस मनोज्ञ कथा का ध्यान से श्रवण करें।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ कृत 'श्रीभावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत अयोध्या काण्ड का 'श्रीराम-लक्ष्मण-शस्त्रास्त्र-विद्या-दर्शन' शीर्षक यह प्रथम अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय २

[श्रीराम के राज्याभिषेक का शुभारम्भ]

श्रीराम के राज्याभिषेक की तैयारियाँ; सभा का आयोजन– राजा दशरथ को श्रीराम का राज्याभिषेक करने के विचार से प्रसन्नता हो गई। उन्होंने ज्येष्ठ-ज्येष्ठ नागरिकों, राजपुरुषों को आमंत्रित करके मन की गुह्य (रहस्य भरी) बात कही। उन्होंने वसिष्ठ आदि महर्षियों से पृथ्वी पालक राजाओं से, सेनापति आदि समस्त ज्येष्ठ अधिकारी व्यक्तियों से अपने मन की गुह्य बात कही। अठारह जातिविशेष के अपने प्रजाजनों को आमंत्रित करके उन्होंने उन्हें सम्मानपूर्वक बैठा दिया फिर वे उनसे क्या बोले ? (सुनिए)।

श्लोक– जगत् के (राज-) धर्म के अनुसार रक्षण (एवं पालन) का बड़ा भारी भार राजाओं को शौर्य आदि प्रभावों से ही उठाना सम्भव होता है। अजितेन्द्रिय पुरुषों के लिए इस भार को वहन करना अति कठिन होता है फिर भी मैं दीर्घ काल से इस भारी (उत्तरदायित्व स्वरूप) बोझ को वहन करते करते थक गया हूँ

अतः यहाँ अपने पास विराजमान इन सम्पूर्ण श्रेष्ठ द्विजों की अनुमति प्राप्त करके मैं प्रजाजनों के हित में अपने पुत्र श्रीराम को नियुक्त करते हुए राजकार्य से विश्राम कर लेना चाहता हूँ

मेरे पुत्र श्रीराम मुझसे समस्त गुणों में श्रेष्ठ हैं। परमे अर्थात् शत्रु के नगर को जीतकर नष्ट कर लेनेवाले श्रीराम वीरता में पुरन्दर देवराज इन्द्र के समान हैं।

पुष्य नक्षत्र से युक्त चन्द्र के समान (शीतल) समस्त कार्यों को सम्पन्न करने में कुशल धर्मात्माओं में उन श्रेष्ठ पुरुष को मैं कल प्रातःकाल (पुष्यनक्षत्र से युक्त मुहूर्त पर) युवराज के पद पर नियुक्त करूँगा।

लक्ष्मण के अग्रज और श्री अर्थात् लक्ष्मी से युक्त श्रीराम आप लोगों के लिए सुयोग्य स्वामी सिद्ध होंगे। उन जैसे स्वामी से सम्पूर्ण त्रिभुवन भी परम सनाथ हो सकता है।

वे श्रीराम कल्याण स्वरूप हैं इनको शीघ्र ही अभिषिक्त करके मैं इस भूमि को तत्काल कल्याण की भागिनी बना दूँगा मैं अपने इन पुत्र को (राज्यभार) सौंपकर सब प्रकार से क्लेश-मुक्त हो जाऊँगा।

राजा दशरथ द्वारा ऐसी बात कहने पर वहाँ उपस्थित राजाओं ने अति आनन्दित होकर उनका वैसे ही अभिनन्दन किया, जैसे मोर अपनी मधुर ध्वनि फैलाते हुए वर्षा करनेवाले महामेघ का अभिनन्दन करते हैं।

राजसभा में दशरथ का वक्तव्य– राजा दशरथ ने सब लोगों से कहा, 'यह मेरा दृढ़ निश्चय है कि राज्यासन पर श्रीराम को अभिषिक्त किया जाए। (कहिए कि) मेरा यह विचार आपको अच्छा लगता है या नहीं जो कार्य सबके द्वारा स्वीकृत हो, वही करें; तो ही वह कार्य करने का निर्णय दृढ़ हो जाता है आप मेरे परम आप्त जन (हितैषी) हैं। इसलिए अपना विचार निश्चित रूप से कहिए हे विशेष (धर्मकर्म के) ज्ञाता गुरु वसिष्ठ, मेरी देह में वृद्धावस्था नामक अवस्था व्याप्त हुई है। हे सर्वज्ञ! अब भी मुझे राज्योपभोग करने की क्या कामना होगी दुष्टों के निर्दलन मे बड़ा पुरुषार्थ प्रदर्शित करते हुए मैं गो ब्राह्मण आदि समस्त प्रजा का नित्य प्रति रक्षण करके सुख और स्वार्थ-सिद्धि को प्राप्त कर चुका हूँ। राज्य (शासन) का भार उठाते हुए मैं थक गया हूँ श्रीराम का राज्याभिषेक करने से उस शान्ति को विश्राम प्राप्त हो सकता है। उन श्रीराम की योग्यता वैसे तो आप सबको विदित है ही। श्रीराम मेरे ज्येष्ठ पुत्र हैं- मेरे लिए वे ज्येष्ठों में ज्येष्ठ हैं (सर्वोपरि हैं)। श्रीराम मेरे लिए वरिष्ठजनों में वरिष्ठ (सर्वोपरि) हैं श्रीराम बलिष्ठों में बलिष्ठ हैं, श्रीराम वरिष्ठ (वरिष्ठों के लिए भी) वन्दनीय हैं। श्रीराम समस्त सद्‌गुणों (की दृष्टि) से पूर्ण सम्पन्न हैं। राज्यकर्ता के शुभ लक्षणों की दृष्टि से सुलक्षण-सम्पन्न हैं उन्हें साधुजनों की सेवा में पूर्ण आह्लाद हो जाता है। उनके लिए गुरु की आज्ञा ब्रह्म-वाक्य के समान है। श्रीराम की बड़ाई की तुलना में, यम, इन्द्र वरुण दीन दुर्लभ सिद्ध हैं। श्रीराम के प्रताप (सूर्य) के तेज के सामने चन्द्र और सूर्य जुगनू जैसे हैं। श्रीराम की सुन्दरता के लावण्य से कामदेव मारे लज्जा को प्राप्त होकर खड़े खड़े गल घुल जाता है। श्रीराम तो प्रियजनों के ही प्रिय हैं। श्रीराम लावण्य के सार-रूप ही हैं, श्रीराम निर्भय हैं, युद्धभूमि मे धीरवीर हैं। उन्होंने अति दुर्धर्ष राक्षस सुबाहु को मार डाला। शिवजी के धनुष को तोड़कर उन्होंने अत्यधिक बलवान सिद्ध होते हुए बड़प्पन प्राप्त किया। इस प्रकार श्रीराम शूरवीर हैं, (बलवान्) हैं। श्रीराम के बाहुओं के प्रताप की राशिस्वरूप महिमा ऐसी है कि उन्होंने प्रतापवान द्विज (कुल-शिरोमणि) भार्गव परशुराम को जीत लिया। श्रीराम के विषय में मुझे परशुराम से जो भय अर्थात् आशंका हुई, उसी से मैं निर्भयता को प्राप्त हुआ (श्रीराम ने उस भय के कारण रूप

विषय को ही जीतकर सबको उसके भय से मुक्त कर दिया)। ऐसे श्रीराम को राज्य देकर मैं त्रिभुवन में पूजनीय समझा जाऊँगा। (कल) चैत्र मास के दिन पुष्य नक्षत्र है; इस शुभ दिन श्रीरामचन्द्र का अभिषेक हो। श्री गुरु का इस सम्बन्ध में निश्चय ही ऐसा कथन है कि (इस मुहूर्त पर) अभिषिक्त राजा तीनों लोकों के राज्य के उपभोग को प्राप्त होगा। ऋषि वसिष्ठ मेरे गुरु हैं। उनकी आज्ञा मेरे लिए सबसे बड़ी है। अतः कल प्रातःकाल श्रीराम को राजपट्ट देकर अभिषिक्त किया जाए, इसका निर्धारित अर्थ यह है कि कल प्रातःकाल श्रीराम का अभिषेक सम्पन्न करना है'। राजा दशरथ ने गरजकर अर्थात् उच्च स्वर में जब यह कहा, तो उससे समस्त लोग प्रसन्न हो गए।

सभाजनों द्वारा एकमत से अनुमति प्रदान करना- राजा दशरथ की ऐसी उक्ति को सुनकर राजा, प्रजाजन, सैनिक, मंत्री अयोध्या नगरी के नागरिक जन श्रीराम के राज्य सम्बन्धी विचार से हर्षविभोर हो उठे। मेघ गर्जन को सुनकर जिस प्रकार मोर केकाध्वनि करते हुए नाचने लगते हैं, उसी प्रकार श्रीराम को राज्य प्रदान किये जाने की घोषणा सुनकर सबके सब नागरिक जन आनन्दित हो उठे (और उनके मन-मयूर नाचने लगे)।

श्लोक– इस लोक में सत्यव्रत का निर्वाह करनेवाले श्रीराम के सद्गुणों के समान गुणवाला कोई अन्य पुरुष नहीं है। ऐसा विशिष्ट गुणयुक्त व्यक्ति अन्यत्र कहाँ हो सकता है

वे बहुश्रुत (ज्ञानी) जनों के, बड़े बूढ़ों के तथा ब्राह्मणों के उपासक हैं (उनकी सत्संगति में रहते हैं)। अतः इस लोक में उनकी अनुपम कीर्ति, यश और तेज की वृद्धि हो रही है

सम्पूर्ण सुख को प्राप्त होकर वे समस्त लोग स्वयं बोले– 'श्रीराम राजाओं में शिरोरत्न (चूड़ामणि, सर्वश्रेष्ठ) हैं, गुण निधान हैं। श्रीराम सत्यवादी हैं, परम पवित्र हैं। असत्यवादी लोग श्रीराम के नाम का जाप करने से असीम रूप से पवित्र हो जाते हैं। श्रीराम के रूप में सत्य को विश्राम (-स्थान) प्राप्त हुआ है। श्रीराम परम धीर धर्मात्मा हैं, धर्म के ही विश्राम-स्थान हैं, श्रीराम धर्मशील हैं, धर्म की आत्मा स्वरूप हैं। श्रीराम धर्म के आश्रम ही हैं। (स्वयं ब्रह्म होने के कारण) श्रीराम सगुण (गुणधर्मों से युक्त) हैं और गुणों के परे भी हैं। श्रीराम (समस्त) गुणधर्मों के अपने निवास स्थान हैं, वे अप्रमेय (अमित) आत्माराम (ब्रह्म) हैं। (लोक में) श्रीराम सर्वोत्तम पुरुष हैं। श्रीराम में यह अद्भुत स्थिति-प्रवृत्ति है कि उनमें नित्य प्रति नयी नयी (विशेषता युक्त) ब्राह्मण भक्ति दिखाई देती है। उसके फलस्वरूप ऐश्वर्य आदि छहों गुण उनकी शरण में आ जाते हैं और यश कीर्ति अतुल्य रूप में प्राप्त हो जाती है, श्रीराम के सम-समान कोई अन्य व्यक्ति तीनों लोकों में दिखाई नहीं दे रहा है। फिर भी उनसे अधिक (यशस्वी, कीर्तिमान) कौन हो सकता है ? श्रीराम किसी भी प्रमाण परिणाम के परे हैं, उनके लिए (महानता में) कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। हम श्रीराम को इस रूप में जानते हैं, इसलिए श्रीराम ही हमारे राजा हों। (हे अयोध्यापति !) यह निश्चय ही समझ लीजिए कि हमने पहले ही मन से श्रीराम को अभिषिक्त कर लिया है। उस अभिषेक की सत्यता इससे प्रमाणित हो रही है कि घर-घर में यही बात (सुनाई दे रही) है कि श्रीराम सचमुच हमारे राजा हैं– जनसमाज में रामराज्य की बात (चर्चा) चल रही है। आप प्रातःकाल में श्रीराम का अभिषेक सम्पन्न करें। सुमहूर्त पर वेदोक्त विधि से वह समारोह सम्पन्न करें। हम श्रीराम के अनुगत (सेवक, अनुयायी)- रूप में उन्हें सब कुछ अर्पित करते हुए उसे देखने के लिए सानन्द उपस्थित होंगे'। इस प्रकार सबने कहा तो राजा दशरथ ने अपने पुत्र श्रीराम

के अभिषेक समारोह के निमित्त उत्साह-उमंग अनुभव करते हुए लोगों के वचन स्वरूप पुष्पों की माला बड़े प्रेम से अपने गले में पहन ली।

राजा दशरथ द्वारा गुरु वसिष्ठ आदि से अनुरोध करना–

श्लोक– (राजा ने कहा– आप मेरे ज्येष्ठ श्रीराम को युवराज पद पर अभिषिक्त देखना चाह रहे हैं। इससे मेरा प्रभाव अतुलनीय हो गया है।) इस प्रकार की बातें कहकर नगरवासियों और अन्यान्य सदस्यों का राजा दशरथ ने सम्मान करके, उनके सुनते हुए, वामदेव और वसिष्ठ (आदि) ब्राह्मणों से कहा।

यह चैत्रमास बड़ा वैभवसम्पन्न और पवित्र है। इसमें वन में पुष्प खिले हुए हैं। इसलिए श्रीराम के यौवराज्य अभिषेक हेतु आप समस्त सामग्री इकट्ठा करवा लीजिए।

राजा दशरथ के इस कथन के पूर्ण होने पर समस्त लोग सहर्ष बड़ा घोष-गर्जन करने लगे। धीरे धीरे उस जनघोष के शान्त हो जाने पर लोकाधिपति दशरथ बोले

राजा ने मुनिश्रेष्ठ से कहा श्रीराम के अभिषेक के लिए जो कर्म आवश्यक है, उसके समस्त पक्षों (अंगों) सहित कहिए हे भगवन्, उस सबको सिद्ध करने को आज ही सबको आज्ञा दीजिए। भूपाल दशरथ की वह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ ने आज्ञा पालन में तत्पर सेवकों से कहा तुम लोग सुवर्ण आदि रत्न, देवपूजन की सामग्री, सब प्रकार की औषधियाँ एकत्रित करो (और प्रातःकाल राजा की अग्निशाला में पहुँचा दो)।

हर्षविभोर राजा दशरथ– हे ऋषिश्वर वसिष्ठ और वामदेव । आप मेरी समस्त बात सुनिए। श्रीराम के अभिषेक के विषय में मेरा दृढ़ निश्चय है। यह अति पवित्र चैत्र मास है। वसन्त ऋतु के (आगमन के) कारण वन में अद्‌भुत शोभा (दिखायी दे रही) है। फिर (कल) गुरुवार में नक्षत्र पुष्य आगत (गुरु पुष्य शुभ योग) है। अतः श्रीरामचन्द्र का अभिषेक सम्पन्न हो इस प्रकार मेरा यह निर्णय है। (मुझे आशा है कि) वह आपको सचमुच अच्छा लगेगा। इसलिए (कल) प्रातःकाल में आप सब श्रीराम का अभिषेक सम्पन्न करें। राजा दशरथ की यह बात सुनकर उपस्थित नृपतिगण प्रजाजन, अयोध्यानगरी के नागरिक बोले– 'हमने सचमुच मन से, वचन से श्रीराम का राजा के रूप में अभिषेक (पहले ही) कर लिया है।' सब लोगों ने इस प्रकार कहकर सहर्ष जयजयकार किया उसकी ध्वनि से आकाश व्याप्त हो गया। वह शब्द (ध्वनि) सर्वत्र सुख के साथ गरजते हुए गूँजता रहा उस ध्वनि के साथ सब लोग सुख में मग्न हो उठे। वे सब हर्षविभोर होकर बैठे रहे उस समय राजा दशरथ ने खड़े होकर सद्‌गुरु वसिष्ठ को नमस्कार किया। वसिष्ठ के चरणों का वर्णन करके वे बोले– 'श्रीराम के अभिषेक के लिए क्या (सामग्री) चाहिए ? देखिए इसे बताने की क्षमता आपमें है। मेरे सहित समस्त नृपगण, मंत्रियों सहित प्रजाजन ? हम सब आपके आज्ञाकारी हैं। आप रघुनाथ श्रीराम का अभिषेक (सम्पन्न करने की कृपा) करें राजा दशरथ की यह बात सुनकर वसिष्ठ सन्तोष को प्राप्त होते हुए उठकर खड़े हुए, सभाजन यह देख रहे थे। वे भी हाथ जोड़कर खड़े हो गए। राजा दशरथ विभिन्न देशों के जिन जिन राजाओं मुकुट-कुण्डल धारी छत्रपति राजाओं (-सामन्तों) को अभिषेक समारोह में भाग लेने हेतु आमंत्रित कर लाये थे उन-उन राजाओं के नाम सुन लीजिए। पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं में अवस्थित देशों के चक्रवर्ती राजा रघुपति श्रीराम के अभिषेक समारोह में भाग लेने हेतु पधारे

थे। न जाने पर्वतीय प्रदेशों के निवासियों के (पर्वतीय कुल के) कितने अधिपति, कितने म्लेच्छ राजा, कितने विविध द्वीपों के भूपति, कितने दुर्गराज, दुर्गपालक (राजपुरुष, सामन्त) आमंत्रित होकर आ गए थे। श्रीराम के वीरतामय कार्य को और भार्गव परशुराम पर विजय प्राप्त करने में प्रदर्शित उनके प्रताप को जिन्होंने देखा-सुना, वे सभी राजा उससे आतंकित होकर अपने आप (बिना किसी आमंत्रण के) आ गए थे वे समस्त राजा भी गुरु वसिष्ठ की आज्ञा का पालन करने हेतु हाथ जोड़कर उनके आदेश को सुनने की दृष्टि से सावधान होकर खड़े हो गए थे। गुरु वसिष्ठ अपने श्रीमुख से जो कोई भी आदेश देंगे, सम्पूर्ण रूप से आज्ञा पालन के अभिलाषी वे राजा, उस को कार्यान्वित कर लेने हेतु सावधान थे। और भी देश-देश के समस्त राजा, प्रजाजन, मंत्री रघुकुलतिलक श्रीराम के राज्याभिषेक के समय गुरु वसिष्ठ के वचन रूपी मेघ के चातक बनकर उपस्थित थे।

वसिष्ठ द्वारा अभिषेक समारोह की तैयारियाँ– यह देखकर कि सब लोग सावधान हैं, वसिष्ठ ने अति उच्च स्वर में, मानो गर्जन करते हुए कहा 'श्रीराम के पट्टाभिषेक के लिए सब लोग वायन और उपहार ले आएँ स्वयं राजा सैकड़ों सुवर्ण कुम्भ नाना रत्नों से परिपूर्ण भरकर रघुनाथ श्रीराम के पट्टाभिषेक हेतु ले आएँ। आपश्वेत वर्ण के घोड़े, श्वेत वर्ण के हाथी ले आएँ और अयोध्यापति दशरथ सहित समस्त नृपति हाथों में श्वेत रंग के चामर लेकर श्रीराम के पूजन के लिए खड़े रहें। देखिए देश-देश के प्रजाजन और मंत्रीगण रघुकुलतिलक श्रीराम के राजपट्टपूजन के लिए अपने-अपने यहाँ का यथाशक्ति स्वर्ण ले आएँ। सपुच्छ-सनख व्याघ्रचर्म ले आएँ; सुवर्ण से मढ़े शृंगों वाले उत्तम बैल ले आएँ। श्वेत-सा मनोहारी अति उत्तम छत्र लाएँ। श्रीराम के अभिषेक हेतु प्रातःकाल के सुमुहूर्त पर, उन समस्त उपचारों (साधनों, आवश्यक पदार्थों) को ले आएँ, जो जो वेदों में बताये गए हैं। ब्राह्मणों को आमंत्रित करें उनके लिए बढ़िया मिष्टान्न बनवाया जाए। समस्त विधियों में ब्राह्मणों को भोजन कराना विघ्न-बाधा रहित सिद्धि को प्राप्त कराता है। रथों, हाथियों, घोड़ों को सैनिकों को अनोखे आभूषणों से सजाया जाए। देवालय अति पवित्र होते हैं (उनका ध्यान रखें)। श्रीराम-मन्दिर अर्थात् श्रीराम के निवास स्थान प्रासाद को सजा दें'। वसिष्ठ ने इस प्रकार सबको आज्ञा दी, तो लोगों ने उस उस कार्य को आनन्द के साथ शीघ्रता के साथ पूर्ण कर दिया। राजप्रसाद को सजाकर उसमें ऐसी शोभा निर्मित की गई कि वह वैकुण्ठ जान पड़ता था। वह सभा-स्थाल चैतन्य के तेज से झलक रहा था और उसे देखकर शिवजी का निवास-स्थान कैलास लज्जायमान होकर स्थिर रहा। देव मन्दिर में सर्वप्रथम शुभ कार्य का आरम्भ हुआ उसके गर्भ (-गृह) में स्वयंभूत प्रकाश व्याप्त था। चिदानन्द के साथ मानों सुन्दरता ही शोभा को प्राप्त थी। ऐसे उस मन्दिर के गर्भगृह में पद्मनाभ भगवान् विष्णु का महापूजन आयोजित था।

अयोध्या नगरी को नागरिकों द्वारा आनन्द और उत्साह के साथ सुशोभित किया जाना– राजप्रासाद की (शोभा की) बड़ाई (महत्ता) अथाह थी। उस प्रासाद के शिखरों पर ध्वज और पताकाएँ फहर रही थीं अयोध्या के घर घर में महोत्सव सम्पन्न होने लगा था। उनके द्वार-द्वार रत्नदीप प्रज्वलित किये गए थे। राजभवन के आँगन में चाव से, उत्साह और प्रेम से कुंकुम और चन्दन का सिंचन किया गया था नाना प्रकार के रंगों की पुष्पमालाएँ चारों ओर शोभायमान थीं। उन्हें देखकर वसन्त (अपनी न्यूनता से) लज्जा को प्राप्त हो गया था। राजसभा का स्थान ऐसा शोभायमान था कि नन्दवन उसकी शोभा की शरण में आया जान पड़ रहा था। लगता था कि श्रीराम के निवास के सम्मान स्वरूप वहाँ चित्ररथवन ही दण्डवत् नमस्कार किये हुए विराजमान हो गया है। वस्तुतः श्रीराम वैकुण्ठ-राज भगवान् विष्णु ही थे।

इसलिए उनके अभिषेक समारोह के प्रति समस्त वैकुण्ठ निवासी गणों को उत्साह अनुभव हो रहा था देखिए, वे अयोध्या के प्रति आ गए। दास-दासियाँ, नागरिक, राजा (राजपुरुष), सेना, मंत्री एवं अन्य प्रजाजन (बढ़िया) वस्त्रों और आभूषणों को धारण किये थे, जिससे अयोध्या की शोभा वैकुण्ठ लोक की शोभा ही जान पड़ती थी। राजमार्ग के दोनों ओर नाना प्रकार के कला-कौशल के कारण स्वयं शोभा ही शोभायमान हुई थी। ध्वजों, पताकाओं की सजावट के साथ दीपमालाएँ पंक्ति-बद्ध की गईं कस्तूरी और चन्दन के सुगन्धयुक्त मिश्रण से मार्गों को सींचा गया। उसकी सुगन्ध (की अपूर्वता से) मानों ऋतुराज वसन्त मूर्च्छा को प्राप्त हो गया। इस प्रकार रघुनाथ श्रीराम की अपनी सुन्दरता ही वहाँ छा गई थी, देखिए हाटों के दोनों भागों में (दोनों ओर) चित्स्वरूप रत्नों के जड़ रहने से शोभा छा गई। स्थान-स्थान पर श्रीहरि का नामसंकीर्तन चल रहा था। लोग श्रीहरि का नाम ले-लेकर गरज रहे थे। झाँकियाँ कलाकौशल से शोभा दे रही थीं। द्वार-द्वार पर मोतियों की पंक्ति (मालाएँ) पुष्पमालाएँ, आम्र पल्लवों से बनाये हुए वन्दनवार शोभायमान थे। द्वार द्वार पर जल से परिपूर्ण भरे कलश रखे गए थे, उनपर दीपों के प्रकाश से शोभा झलक रही थी। घर घर (पात्र और पुष्पमाला से युक्त विशिष्ट) ध्वज फहराये गए थे इस प्रकार पुरुष और स्त्रियाँ उत्साह-उमंग-निर्भर थे। कहीं अभिषेक के बारे में चर्चा चल रही थी, तो कहीं श्रीरामकथा की अर्थात् श्रीराम के किये महत्कार्य सम्बन्धी बात चल रही थी। हर कोई रघुनाथ श्रीराम के दर्शन के लिए अत्यधिक एकाग्र-चित्त हो गया था।

चिन्ता से व्याकुल राजा दशरथ द्वारा श्रीराम को बुलाना– अपना नगर शोभायमान हो रहा है, समस्त लोग उल्लास को प्राप्त हो उठे हैं– यह देखकर राजा दशरथ अपने मन में आशंकित हो उठे (उन्हें लग रहा था) क्या मैं श्रीराम के अभिषेक के आनन्दोत्सव को देख सकूँगा ? मेरे भाग्य में उसे देखने का सौभाग्य दुर्लभ ही जान पड़ता है। (इस विचार से) उनकी आँखों में आँसू आ गए। उन्होंने श्रीराम को बुलाकर उनसे एक रहस्य कहना चाहा, वे बोले प्रातःकाल गुरुपुष्य योग के शुभ मुहूर्त पर तुम युवराज पद स्वीकार करो यह सुनकर श्रीराम ने उनके चरणों पर मत्था टेका तब राजा दशरथ गद्‌गद हो उठे (और बोले-)- हे तात, सुनो ! मैं एक भेद भरी बात कहना चाहता हूँ।

अशुभ ग्रहों के फेर– जब से मैंने तुम्हारे अभिषेक के विषय में निर्णय कर लिया, सचमुच तब से मुझे आकाश में क्रूर ग्रह अति उग्र रूप में आभासित हो रहे हैं,

श्लोक– श्रीराम ! दैवज्ञाता अर्थात् ज्योतिषियों का कहना है कि मेरे जन्म नक्षत्र को सूर्य, मंगल और राहु नामक भयंकर ग्रहों ने आक्रान्त कर दिया है हे राघव, आजकल मुझे बड़े अशुभ स्वप्न दिखायी दे रहे हैं। दिन में वज्रपात के साथ-साथ बड़ी भयावह ध्वनि करती हुई उल्काएँ भी गिर रही हैं। ऐसे अशुभ लक्षणों के प्रकट होते रहने पर प्रायः राजा घोर संकट में पड़ जाता है और मृत्यु को भी प्राप्त हो सकता है।

ग्रह-ज्योतिष के वेत्ता कहते हैं कि मेरी राशि में शनैश्चर ग्रह का आगमन हुआ है, वह अति क्रूर है; इसलिए उसकी पीड़ा असह्य जान पड़ती है। मेरा जो जन्म-नक्षत्र है, उस मृग नक्षत्र में मंगल और शनि वक्र बनकर स्थित हैं तिस पर, देखिए कि गुरु भी अतिचार से अर्थात् अपना राशिक्रम छोड़कर दूसरी में शीघ्र गति से प्रविष्ट होकर उनके साथ मिला हुआ है। मेरा जन्म मृग नक्षत्र में हुआ; पुनर्वसु नक्षत्र में तुम जन्म को प्राप्त हुए। इस विचार से हम दोनों के लिए ग्रहस्थिति प्रतिकूल है। हे रघुनाथ, इसे निश्चित रूप जान लो सूर्य सहित राहु रोहिणी नक्षत्र में स्थित है; केतु विशाखा में बैठा है ये दोनों

(राहु और केतु) सूर्य के शत्रु हैं इसलिए वे रवि और रोहिणी को ग्रस लेना चाहते हैं (लेने की ताक में हैं)। मेरा नक्षत्र मृग है; राशि मिथुन है। रवि और राहु वृषभ राशि के लिए बारहवें हैं। इससे यह ग्रहस्थिति मेरे लिए क्रूर एवं विनाश के जड़मूल-स्वरूप है. शनि और मंगल दोनों वक्र गति को अपनाते हुए पिछली राशि में आ गये हैं, तो गुरु अतिचारी होकर वहीं आ गया है यह ग्रहस्थिति मेरी राशि के लिए क्रूर अर्थात् कष्टप्रद है। वे सब तुम राम स्वरूप चन्द्र के लिए बारहवें स्थान पर हैं

अनिष्ट स्वप्न और उसके अशुभ फल– और भी एक अपशकुन मुझे हुआ है. मैंने यह अनिष्ट स्वप्न देखा कि मेरे सामने थाली सम्पूर्ण सजायी गई, तो एक चील उसपर लपककर उसे ले गयी। बिना बादल के आये, अत्यधिक कड़कड़ाहट करते हुए अत्यधिक तेज गति से बिजलियाँ गिर रही हैं। फलस्वरूप उस कड़कड़ाहट मे प्राण निकल जाने को हो गए। इस प्रचण्ड उत्पात से अपार विनाश सूचित हो रहा है। मेरु कुलाचल सहित पृथ्वी अति प्रचण्ड कम्पन को प्राप्त हुई। हे श्रीराम, समझ लो कि इस अपशकुन का फल मात्र अनिष्ट हो जाता है। इन अपशकुनों का अपना लौना स्वरूप फल राज्य त्याग या वनवास हो जाता है. इससे प्राणी (मनुष्य) की मृत्यु होती है और आप्तजनों को परम कष्ट हो जाता है। इसलिए हे रघुनाथ, प्रातःकाल में पुष्यनक्षत्र मे मुहूर्त पर यौवराज्य अभिषेक (सम्बन्धी निर्णय) को अति शीघ्रतापूर्वक स्वीकार करो।

श्रीराम का कौशल्या के प्रासाद में आगमन– श्रीराम बोले– 'आपकी आज्ञा मेरे लिए प्रमाणभूत (अतएव शिरोधार्य) है'। यह कहकर उन्होंने दशरथ के चरणों का वन्दन किया. तदनन्तर समझिए कि राजा दशरथ ने तुष्ट होकर उन्हें उनके अपने निवास स्थान के प्रति भेज दिया। श्रीराम राजा से विदा लेकर माता कौशल्या के प्रासाद में आ गए। तो वह अपनी आँखों से श्रीराम को देखकर (मन की) शान्ति को प्राप्त हो गई। श्रीराम ने उनसे कहा कि राजा ने प्रातःकाल मेरा यौवराज्य अभिषेक आयोजित किया है। इस (समाचार) से कौशल्या प्रसन्न हो उठी।

कौशल्या और सुमित्रा का राज्याभिषेक के समाचार से आनन्दित हो जाना– श्रीराम के राज्याभिषेक के समाचार से कौशल्या को परम हर्ष हो गया। उसने विप्रों को गायें, भूमि, रेशम के वस्त्र, सुवर्ण जैसी अनेक वस्तुएँ दान में प्रदान कीं। तब लक्ष्मण वहाँ आ गए, तो श्रीराम ने स्वयं कहा (कल पिताजी मेरा राज्याभिषेक करना चाहते हैं। उससे मुझे जो राज्य प्राप्त होने वाला है) उस मेरे राज्य को तुम अपना ही समझना हम दोनों में 'मैं-तू', 'मेरा-तेरा' इस प्रकार का कोई अन्तर नहीं है. गुड़ और उसकी मधुरता के सम्बन्ध में विचार करने पर समझ में आता है कि ये दोनों नाम अलग अलग हैं, फिर भी उनसे एक ही स्वरूप सूचित होता है। उसी प्रकार समझ लो कि हम तुममें कोई अलगाव या भिन्नता नहीं है. आभूषण और सुवर्ण आकार और विकार में दो जान पड़ते हैं, परन्तु वे वस्तुतः एक ही हैं। उसी प्रकार समझ लो कि हम और तुममें समस्त कर्मों के विषय में नित्य प्रति एकात्मकता होती ही है। जैसे जीवधारी और प्राण नित्य एक ही हैं, बिना प्राणों के, देह का अस्तित्व नहीं हो सकता, उसी प्रकार लक्ष्मण और श्रीराम हैं। इस प्रकार की बात सुनकर कौशल्या ने उन दोनों पर राईनोन उतार लिया। सुमित्रा को भी परिपूर्ण प्रसन्नता हुई। उसने भी श्रीराम और लक्ष्मण को देखकर उन दोनों की आरती उतारी और हर्ष के साथ स्वयं धन दान में वितरित कर दिया। तदनन्तर लक्ष्मण ने श्रीराम को दण्डवत् नमस्कार करके कहा 'तुम्हारी सेवा में ही मुझे परिपूर्ण सुख प्राप्त होगा इसके लिए तुम्हारे चरण ही प्रमाण स्वरूप हैं हे श्रीराम, मैं तुम्हारी शपथ करके कहता हूँ कि बिना तुम्हारी सेवा के सम्पूर्ण राज्य भी मेरे

लिए किसी ब्राह्मण के धन सदृश स्वीकार करने के अयोग्य है'। लक्ष्मण की यह बात सुनकर श्रीराम ने उनका आलिंगन किया और कहा '(हे बन्धु !) तुम सम्पूर्ण रूप से मेरे प्राणप्रिय हो, सर्वस्व के साथ सखा हो, सज्जन (सन्मित्र) हो'।

श्रीराम का अपने भवन में जाना और व्रत-परिपालन– इसके पश्चात् श्रीराम ने कौशल्या और सुमित्रा को नमस्कार किया और लक्ष्मण को विदा करके वे स्वयं अपने भवन में आ गए। राजा दशरथ ने गुरु वसिष्ठ को श्रीराम के पास यह कहने के लिए भेज दिया कि प्रातःकाल में अभिषेक होनेवाला है, इसके निमित्त श्रीराम और सीता दोनों व्रत का पालन करें। श्रीराम ने सद्गुरु वसिष्ठ को अपने घर पधारे देखकर अत्यधिक प्रसन्नता के साथ उन्हें दण्डवत् नमस्कार किया। फिर वे उनके पाँव लगे। तदनन्तर श्रीराम ने उनका पूजन करके मधुपर्क विधि सम्पन्न की; आभूषणों से सुशोभित एक सौ गायें दान में दीं और उनके पाँव धोकर उस जलतीर्थ का सेवन किया। उस समय वसिष्ठ ने स्वयं पुण्याहवाचन विधि सम्पन्न कराते हुए पूर्ण रूप से संकल्प घोषित किया और श्रीराम तथा सीता को अनशन करने को कहा। उन्होंने अभिषेक के निमित्त होम सम्पन्न किया। श्रीराम और सीता को होम में अर्पित आहुतियों में से शेष घृत का सेवन कराते हुए भूमि पर बिछायी कुशशय्या पर शयन करने को कहा। गुरु वसिष्ठ के लौटने पर राजा दशरथ ने नमस्कार करके कहा– 'हे गुरुवर, इसे सत्य समझिए कि श्रीराम का अभिषेक करने से मैं तीनों प्रकार के ऋणों से मुक्त हो जाऊँगा'। तो वसिष्ठ बोले– 'हे राजा, श्रीराम के राज्याभिषेक के फलस्वरूप आप स्वर्ग-सुख देखेंगे - अर्थात् स्वर्गसुख को प्राप्त हो जाएँगे' इस बात को सुनकर दशरथ उल्लसित हो गए।

श्रीराम के राज्याभिषेक के कारण इन्द्र आदि समस्त देवों को अपार चिन्ता हुई तो उन्होंने ब्रह्मा से यह प्रार्थना की। (कवि कहता है) उसके उत्तर स्वरूप चतुरानन ब्रह्मा अब यह युक्ति बताएँगे, जिससे दशानन रावण के वध के हेतु श्रीराम के अभिषेक में उनके घर ही में विघ्न उपस्थित हो जाए। मैं एकनाथ अपने गुरु जनार्दन की शरण में स्थित हूँ। ब्रह्म रूप राम की भक्ति के रस से युक्त यह कथा नवरसात्मक है। इस विघ्न से श्रीरघुनाथ सुख को ही (किस प्रकार) प्राप्त हो गए, उस कथा का निरूपण अब ध्यान से सुनिए।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ कृत 'श्रीभावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत अयोध्या काण्ड का यह 'श्रीरामाभिषेक-प्रारम्भ' शीर्षक द्वितीय अध्याय समाप्त हुआ

अध्याय ३

[मन्थरा द्वारा कैकयी को उपदेश देना]

इन्द्र आदि देवों की चिन्ता और ब्रह्माजी से विनती– श्रीराम के राज्याभिषेक (सम्बन्धी राजा दशरथ के निर्णय) से इन्द्र आदि देवों को अपार चिन्ता हो गयी, तो समझिए कि समस्त देवों ने इकट्ठा होकर चतुरानन ब्रह्माजी से यह विनती की। देव ब्रह्माजी से बोले 'आपने हमें यह विश्वास दिलाया था कि श्रीराम सूर्यवंश में अवतरित हो गये हैं (हो जाएँगे) और वे रावण का वध करेंगे। श्रीराम रावण

के पुत्रों, बन्धुओं मंत्रियों सहित राक्षसों का संहार करेंगे। उससे देव रावण के बन्धन (बन्दीगृह) से मुक्ति को प्राप्त हो जाएँगे। परन्तु आपकी वह बात असत्य सिद्ध हुआ चाहती है। अत: अपने अभिवचन को आप सत्य सिद्ध करें और हमें बन्धन से मुक्त कर दें। आप हमारी विपदा की विचित्र स्थिति गति को ध्यान देकर सुनिए। (हमारे राज) इन्द्र रावण के यहाँ तमोली है। चन्द्र उसका छत्रधारी है। यम उसके घर पानी भरता है। वायुदेव नित्य प्रति उसके प्रसाद के ओसारे में झाड़ू लगाने का काम करता है, तो विधाता वहाँ पर पिसाई कुटाई करता रहता है। दोनों अश्विनीकुमार उसकी स्त्रियों को सुगन्धियुक्त द्रव्य ला देते हैं। इस काम में आधे क्षण का भी विलम्ब होने पर दासी दौड़ते हुए उनको पीटती हैं 'माको' नामक देव बेगार में पहरा देता है 'सटवी' अर्थात् छठी देवी प्रसूति के समय जच्चा-बच्चे को नहलाती है। कराली देवी रात को उसकी प्रसन्नता हेतु विशिष्ट समय तक रतजगा करती है, तो 'मेसको' देव गोबर के उपले-कण्डे आदि बनाते हैं 'मैराल' जैसे कर्नाटकीय देव राक्षसों की दाढ़ियाँ बनाते हैं। जिसके सामने वे आईना नहीं थमा लेते, वही उन्हें ठीक से सीधे घूँसे जमाते हुए कुचल देता है। वैसे तो सूर्य आदि नौ ग्रहों से बड़ी पीड़ा पहुँचती है; पर रावण ने उन्हें बन्दी बनाया और उनके पाँवों में बेड़ियाँ डालकर उन्हें सीढ़ियों के तले उलझा डाला। राहु, केतु, शनि, मंगल ग्रहों से वैसे तो सुरों और असुरों को भी पीड़ा पहुँचती है परन्तु रावण उनको सीढ़ियाँ स्वरूप बनाकर उनपर पाँव रखते हुए पलंग पर चढ़ जाता है जिसके सामने कोई भी विघ्न नहीं टिक पाता, वही गणेश असहाय होकर गधों के बड़े-बड़े झुण्ड चारों ओर हाँकता- चलाता है। अग्नि के लिए तो बड़ी विपत्ति है। रावण के यहाँ अपार मैल है, जिसके स्पर्श से नाना प्रकार के दोष, रोग उत्पन्न होते हैं। अग्निदेव रावण की ऐसी मैल (मैले कपड़ों) को दिन-रात साफ सुथरा धोता रहता है। वरुण के हाथों पानी भरने का काम सौंपा हुआ है। वसन्त नित्य प्रति पंखा झलते हुए हवा करता रहता है। बृहस्पति सन्देश वहन करने के लिए नियुक्त है, तो प्रजापति शान्ति मंत्र का पठन करता है। हम समस्त देव इस प्रकार रावण के नित्य प्रति वशवर्ती दास बने हुए हैं (हमें आशा है कि) श्रीराम लंका के प्रति आ जाने पर हमें रावण के बन्धन से मुक्त करेंगे। श्रीराम का राज्याभिषेक होने पर उनका लंका के प्रति जाना घटित नहीं हो सकता। फल स्वरूप बन्धन से हमें मुक्ति भी नहीं मिल पाएगी' इस प्रकार देवों ने अत्यधिक दीन स्वरूप में कहा.

ब्रह्माजी द्वारा विघ्न उत्पन्न करने का 'विकल्प' को निर्देश– देवों की विनती को सुनकर ब्रह्माजी ने मन में कुछ विचार किया और राज्याभिषेक में बाधा उत्पन्न कर देने के बारे में दृढ़ युक्ति आयोजित की। देखिए, उसके अनुसार उन्होंने अविद्या के अत्यधिक लाड़ले तथा अच्छे कार्य को बिगाड़ देने में निपुण 'विकल्प' देव को भेज दिया।

विकल्प की कठिनाइयाँ– विकल्प ने ब्रह्माजी से कहा 'श्रीराम का जो पट्टाभिषेक किया जाने वाला है, वहाँ जाने के लिए मुझमें क्या शक्ति है ? वहाँ किसी भी प्रकार से मेरा प्रवेश बिल्कुल नहीं हो पाएगा। जहाँ श्रीराम का नाम हो, वह स्थान मेरे लिए अति दुर्गम होता है रामराज्य के स्थापित किये जाने में बड़ी बाधा उत्पन्न करने का कार्य मुझसे नहीं बन पाएगा। जहाँ श्रीराम का राज्य हो, वहाँ पर विकल्प कैसे पहुँच पाएगा ? हे श्रेष्ठ सर्वज्ञ देव, आप सब कुछ जानने में समर्थ हैं। श्रीराम के सम्बन्ध में मेरा पुरुषार्थ नहीं चल पाएगा'।

ब्रह्माजी द्वारा रहस्य का उद्घाटन करना– ब्रह्माजी ने विकल्प से यह रहस्य भरी बात कही कि श्रीराम को दिखायी न देते हुए वह मन्थरा के उदर में प्रविष्ट हो जाए। उसमें तुम विकल्प को प्राप्त

हो जाओगे। मन्थरा कैकेयी को दायज में मिली दासी है। वह दासी चाहती है कि भरत को राज्य प्राप्त हो। वह नित्य श्रीराम से द्वेष करती है। वह सौतिया डाह से अति दुष्ट बनी हुई है, जहाँ पर श्रीराम के प्रति दुष्ट भाव विद्यमान हो, वहाँ विकल्प का निवास आराम के साथ हो सकता है। इसलिए तुम उसमें प्रवेश करके अभिषेक समारोह को भग्न कर डालो। अभिषेक को भग्न करके तुम भरत का राज्याभिषेक करवा लो और श्रीराम को वनवास दिलवा दो। इस कार्य को शीघ्रता से पूर्ण कर लो।

कलिंग फल के माध्यम से विकल्प का मन्थरा के शरीर में पैठ जाना और मन्थरा को प्रभावित करना– विकल्प ने कहा– 'आपकी बात सत्य है। फिर भी मन्थरा अयोध्या में रहती है, वहाँ मेरी पैठ नहीं हो पाएगी तो कार्य सम्बन्धी हेतु किस प्रकार सिद्धि को प्राप्त होगा'। तब ब्रह्माजी ने विकल्प से कहा– 'मन्थरा नगर के बाहर उद्यान में वन क्रीड़ा करने के लिए आ जाएगी। तब वहाँ तुम्हें अन्दर प्रवेश करने का मौका मिलेगा'। इस पर विकल्प ब्रह्माजी से बोला– 'मैं मन्थरा की देह में पैठ पाऊँगा कैकेयी को अपने वश में कर लूँगा, तो भी भरत को राज्य नहीं मिलेगा। श्रीराम ज्येष्ठ (राजपुत्र) हैं, भरत कनिष्ठ हैं; तो उनका राज्याभिषेक कैसे हो जाएगा, ज्येष्ठ श्रेष्ठ वरिष्ठ आत्मज्ञानी जन ऐसी बात को नहीं मानेंगे'। तब ब्रह्माजी ने विकल्प से कहा– 'जिससे तुम सर्वज्ञ हो जाओगे ज्ञानी हो जाओगे और भरत रघुकुल (परम्परागत) राज्य (अधिकार) को प्राप्त हो जाएँगे, वह रहस्य मैं तुम्हें बता दूँगा। राजा दशरथ ने स्वयं शपथ करते हुए कैकेयी को दो वर प्रदान किये हैं, उनमें से एक वर से श्रीराम को वनवासी बनाकर दूसरे वर से भरत को सिंहासन दिलवा दिया जाए'। ब्रह्माजी की यह बात सुनकर विकल्प ने शुभ शकुन मानकर तय कर लिया, फिर भी वह बड़े संकट (कठिनाई) के साथ मन्थरा के उदर में प्रवेश हेतु चला। अयोध्या के पास आते हुए देखकर श्रीराम के प्रताप के कारण आतंक से थरथर काँपने लगा। श्रीराम के प्रताप की उग्रता से वह आशंकित होकर वह जहाँ था, वहीं छिप गया। गुप्त रहने हेतु वह 'हिंवर' नामक वृक्ष विशेष के तने में जड़ों के समीप छिप गया। नील के पौधों की सुन्दर नीली झाड़ी देखकर वह स्वयं चोरी छिपे उसमें पैठते हुए छिपा रहा। समझिए कि उसी के कारण भले लोग (आज भी) उन वृक्षों को अपवित्र मानते हैं। उसको विकल्प का निवास स्थान, अतएव शुभ कार्य के लिए विनाशरूप मानते हैं। इन पेड़ों के अतिरिक्त विकल्प के द्वारा स्पर्श करने के लिए कोई अन्य स्थान नहीं है। इसलिए समझिए कि वे पेड़ निन्द्य हैं, समस्त कार्यों की सिद्धि की दृष्टि से अपवित्र हैं। विकल्प का कलिंग जैसे अपवित्र फल में निवास होता है। जो उसे खाते हैं, उन्हें विकल्प (सन्देहात्मक दुर्बुद्धि) की प्राप्ति हो जाती है। मन्थरा को वह फल प्रेम के साथ अच्छा लगता था, उसने सहसा उद्यान में उसे देखा। मन्थरा जब उद्यान में आयी, तो उस कलिंग फल को देखते ही वह अति उल्लसित हो उठी। वह उसे खाने के लिए तत्पर हो उठी। उसे कलिंग फल अधिक अच्छा लगता था। उसे प्रेम के साथ खाते ही उसके अन्दर विकल्प संचरित हो गया। वह क्षण में उसके प्रभाव से व्याप्त हो गई। फिर उसने मन में इस बात के मर्म पर विचार किया कि भरत मेरी प्रिय स्वामिनी के पुत्र हैं। उन्हें छोड़कर श्रीराम को राज्य प्राप्त हो रहा है, यह अनुचित है। कनिष्ठ पुत्र भरत को मामा के यहाँ भेजकर, उनकी अनुपस्थिति में राजा श्रीराम का अभिषेक करने जा रहे हैं– अरे, ये राजा दशरथ केवल दुष्ट हैं, हमारे लिए इससे बहुत अनिष्ट विपत्ति आनेवाली है। श्रीराम को राज्य प्राप्त हो जाने पर भरत तो परदेसी, पराये सिद्ध होंगे कैकेयी कौशल्या की दासी हो जाएगी। फिर हमें कौन, कैसा सुख होगा।

मन्थरा का श्रीराम से मत्सर करना– उसे 'कुब्जा' क्यों कहते हैं ऐसी कल्पना करने पर

मन्थरा के मन में राम राज्य के प्रति द्वेष उत्पन्न हुआ। तो उसने क्रोधाग्नि-स्वरूप होकर कैकेयी के प्रासाद में प्रवेश किया। मन्थरा 'पहले से' यों ही श्रीराम से द्वेष करती थी। (पूर्वकाल में) एक समय जब वह आँगन में झाड़ू लगा रही थी, तो श्रीराम सामने खड़े थे। तब उसने द्वेषभाव से धूल (कूड़े करकट) को श्रीराम के पास उछालते हुए धकेल दिया। तो श्रीराम ने मन्थरा से कहा 'अरी जो तू द्वेष के कारण ऊपर नहीं देख रही है, वही तू अधोमुखी कुब्जा हो जाएगी'। इस प्रकार श्रीराम ने उसे शाप दिया। उस शाप के मिल जाते ही वह झट से कुब्जा हो जाने के (शारीरिक दोष के) आघात को प्राप्त हो गयी। इसलिए स्वाभाविक रूप से उसका अपना नाम भी 'कुब्जा' हो गया।

राज्याभिषेक का आनन्दोत्सव देखकर मन्थरा का छटपटा उठना– श्रीराम के राज्याभिषेक समारोह (की कल्पना करते हुए) मन्थरा जब जब उसे अपनी आँखों से देखती, तब तब उसका क्रोध वृद्धिगत हो जाता था। फलस्वरूप उसके द्वेष का आवेग (जोश) अजीब हो गया। वैसे तो कैकयी अपने प्रासाद में श्रीराम के राज्य की कल्पना से प्रसन्न हो गई थी। मन के सद्भाव से फूलों को सजाकर फहराये हुए ध्वजों, पताकाओं, और वन्दनवारों को देखते ही मन्थरा बहुत क्रुद्ध हो उठी। (उसने देखा कि) श्रीराम के राज्य के विचार से उल्लसित होकर कैकेयी आभूषणों से विभूषित है, वह पलंग पर गावतकिये से टेककर विश्राम कर रही है। दो दासियाँ उसे पंखा झलाती हुई हवा कर रही हैं। तब (यह देखकर) मन्थरा वहाँ आ गई। वह क्रोध से आँखें तरेरती हुई देखने लगी– वह द्वेष से थर्राहट के साथ काँपने लगी।

मन्थरा का कैकेयी के पास जाना और क्रोध व्यक्त करना– मन्थरा बोली–

श्लोक– हे मूढ़ (महिषी) ! उठ जाओ। हे अपने सौभाग्य के बल से गर्व करनेवाली (रानी), तुम क्यों सो रही हो ? अरी, (गर्व करनेवाली) तुम (रानी) पर संकट का पर्वत टूट पड़ा है। फिर भी तुम्हें अपनी इस दुःखद दुरवस्था की कोई जानकारी (क्यों) नहीं होती ?

वस्तुतः अनिष्ट करनेवाले, परन्तु सुन्दर रूप धारण करनेवाले अपने पति के प्रेम को सौभाग्य समझकर तुम उसकी डींग हाँका करती हो। पर यह तुम्हारा सौभाग्य ग्रीष्मकाल में नदी के बहते हुए स्रोत की भाँति अब क्षीण हो रहा है।

मन्थरा अत्यधिक क्रोध से कैकेयी से क्या बोली ? (सुनिए)। हे मूढ नारी, उठ जाओ सो क्या रही हो ? तुम जिसे सुख समझ रही हो, वह दुःख ही है। तुम रामराज्य में सुख मान रही हो, ध्वज, वन्दनवार (आदि) खड़े करके अति आनन्द अनुभव कर रही हो। परन्तु वह (रामराज्य) तुम्हारे लिए बड़े दुःख का विषय होनेवाला है। फिर भी तुम मूर्ख उसे नहीं जान रही हो। (तुम समझ रही हो कि) 'मैं राजा की लाडली हूँ'– इस धारणा से उत्पन्न गर्व के कारण तुम्हें भ्रम हो रहा है। पर यह सौभाग्य कौशल्या के पास चला गया है, तुम उसे निश्चय ही नहीं जान रही हो। जल से केले और सुपारी के पेड़ पनपते हुए विकसित हो जाते हैं, परन्तु उसी जल के (बड़े स्रोत के) उनकी जड़ों के पास आने पर वे वृक्ष उखड़ जाते हैं। विनाश की वही स्थिति (आज) तुम्हारे लिए उत्पन्न हो गई है। मन्थरा की इस कठोर बात को सुनकर सौभाग्य-शिरोमणि कैकेयी उसे आश्वस्त करते हुए बोली– 'अरी, तुझे क्रोध कैसे आ गया'

कैकेयी का आश्चर्य और जिज्ञासा–

श्लोक– कैकेयी बोली– री मन्थरा, कुछ अकुशल तो नहीं है न ? मैं तुम्हें विषण्ण-वदना और बहुत दुखी देख रही हूँ

क्या किसी ने तेरा कुछ अपमान किया है ? क्या किसी ने तुझे कोई कष्ट देकर पीड़ा को प्राप्त करा दिया है ? क्या किसी ने तुमसे कुछ (अप्रिय) कहा है। अगर (ऐसा हो), तो मुझे पहले बता देना। तू मेरी प्राण-प्रिय है। मैंने तुझे कभी क्रोध को प्राप्त हुई नहीं देखा। जो तू मुझसे कहती है कि क्रोध का त्याग करें, वही तू अत्यधिक क्रोध मे दुःखी (क्यों) हो गई है। जान पड़ता है कि तुझे मन में भयावह चिन्ता हो रही है। चिन्ता से तेरा मुख मलिन दिखायी दे रहा है। तुझे ऐसा कौन दुःख हो रहा है ? मुझे वह पूरा-पूरा बता तो दे। किसने तुझसे कोई बुरी बात कही है ? किसने तुझपर हाथ उठाया है ? मैं उसका वध कर दूँगी। पर (इससे पहले) तू मुझसे पहले से बात कह देना।

मन्थरा द्वारा श्रीराम सम्बन्धी अपना द्वेष प्रकट करना–

श्लोक– कैकेयी की ऐसी (सहानुभूति और स्नेह भरी) मीठी बातें सुनकर मन्थरा, जो बात बनाने-कहने में चतुर थी, क्रोध के साथ बोली अथाह भय में डूबी हुई और दुख तथा शोक की आग में जलती हुई यह मैं तुम्हारे हित के लिए यहाँ आयी हूँ।

कैकेयी की बात को सुनकर मन्थरा क्रोधित हो उठी (और बोली) 'अहो, तुम्हारे लिए विकट संकट आ गया है। पर तुम उसे स्वयं नहीं जानती हो। राजा दशरथ तुम्हें स्वयं पूर्णतः धोखा दे रहे हैं तुम उनकी लाड़ली हो, इसका तुम्हें अत्यधिक घमण्ड हो गया है। इसलिए उनके व्यवहार सम्बन्धी ऐसे लक्षण नहीं जान पायी हो। तुम्हें राज्य के जिस वैभव (को प्राप्त होने) का घमण्ड है, वह राज्य राजा दशरथ स्वयं श्रीराम को देने जा रहे हैं। (समझ लो कि) वह वैभव कौशल्या के पास जा चुका है। तुम अपनी मूर्खता के कारण इसे नहीं समझ पायी हो। तुम्हारे पास अपार दुःख आ रहा है। उस (के विचार) में मैं अत्यधिक डूब गयी हूँ। तुम्हारी मूर्खता को देखते हुए तुम्हारे दुःख की आग में मैं जल रही हूँ। तुम्हारे उत्कर्ष से मैं वृद्धि-उत्कर्ष को प्राप्त होती हूँ; तुम्हारे सुख से मैं सुख सम्पन्न हो जाती हूँ समझ लो कि मैं तुम्हारे दुःख के कारण दुःख को प्राप्त हो गई हूँ। मैं तुम्हारे निमित्त ही क्रुद्ध हो उठी हूँ। राजा दशरथ वैभव के लोभ के साथ तुमको लाड़प्यार करते रहे थे, उन्हीं राजा द्वारा तुम ठगी जा रही हो। भरत को ननिहाल भेजकर वे उनकी पीठ पीछे (उनकी अनुपस्थिति में) श्रीराम को सिंहासन (राज्यासन) देने जा रहे हैं श्रीराम को राज्य के दिये जाने पर भरत को तो उनकी दासता का भोग करना पड़ेगा। कौशल्या को अधिकार-सामर्थ्य की प्राप्ति हो जाएगी। और तुम मूर्खता से उनकी प्रशंसा करने में अपने आपको धन्य समझ रही हो। तुम मेरे कहने पर विवेक के साथ सोच लो और भरत की सहायक (समर्थक) हो जाओ। अपना हित स्वयं कर लो। घमण्ड में चूर होकर धोखा न खाओ।

श्रीराम के राज्याभिषेक (के आयोजन) से कैकेयी का परम आनन्द को प्राप्त हो जाना– मन्थरा की यह बात सुनकर कैकेयी सुख-सम्पन्न हो गई उसने (तत्काल) मन्थरा को रत्नजटित कण्ठाभूषण प्रदान कर दिया देखिए अपने गले का अमूल्य पदीक (जड़ा आभूषण) मन्थरा को देकर वह बोली– श्रीराम के राज्य में सबको सुख प्राप्त होगा फिर तू ही उसमें दुःख मान रही है।

श्लोक– मैं राम और भरत में कोई विशेष अन्तर नहीं देखती (मानती)। अतः यदि राजा श्रीराम को राज्य दे रहे हों, तो मुझे उससे सन्तोष है।

(समझ लो कि) श्रीराम मुझे भरत से अत्यधिक, अपार प्रिय है। मुझे श्रीराम के राज्य में बड़ा सुख होगा। पर तू मूर्खता के कारण उसमें दुःख मान रही है। जो मानते हैं कि भरत अभीष्ट है और राम

अनिष्ट (-प्रद) है, वे महापापी हैं। (वस्तुत:) राम ज्येष्ठ जनों में अत्यधिक श्रेष्ठ है। श्रीराम राज्य का हितकर्ता (सिद्ध) होगा। फिर भी मेरे लिए जैसा भरत है, वैसा ही राम है। मेरे लिए दोनों सम समान हैं फिर री कुब्जा, तू इसमें बुरा (उनमें न्यूनाधिक) क्यों मानती है ? तू अकेली परम मूर्ख जान पड़ती है'।

मन्थरा-कैकेयी-संवाद– कैकेयी का यह कथन सुनकर मन्थरा क्रोध के मारे मूर्च्छित-सी हो गई (होश खो बैठी)। उसने अत्यधिक क्रोध में गले में पहना वह आभूषण उतारकर फेंक दिया, वह बोली– 'राज्य श्रीराम के प्रति चला गया, वैभव कौशल्या के प्रति चला गया। राजा दशरथ ने तुम्हें ठग लिया है (और इधर) तुम मूर्खता से इसी में सुख मान रही हो'। कुब्जा जब क्रोध से ऐसा कह रही थी, तो कैकेयी ने उसे सम्बोधित करके समझाते हुए कहा– 'राम राजा का ज्येष्ठ पुत्र है। इसलिए उसे राज्याधिकार प्राप्त है। राम गुणवान है, गुणों से गम्भीर स्वभाव वाला है। वह त्रिलोक में महाशूर (सिद्ध हो चुका) है उसे राज्य प्राप्त करने का अधिकार है। तू पामर (व्यर्थ ही क्षुद्र विचार से) राम से द्वेष करती है। यह तो त्रिकाल में कभी नहीं घटित होगा कि राम भरत का कुछ बुरा करे। री कुब्जा ! तू जितना कहती है, उतना सब झूठ है तू हठ पूर्वक (जान-बूझकर) श्रीराम से द्वेष करती है'। कैकेयी का यह कथन सुनकर कुब्जा मन्थरा ने क्रोधपूर्वक सिर पीट लिया। (वह बोली– 'इस संसार में तुम एक ऐसी मूर्ख हो, जो श्रीराम को राज्यासन पर बैठा रही हो')। मन्थरा को यह निश्चित रूप से विदित हुआ कि कैकेयी मेरी बात नहीं मानेगी। फिर वह बोली– 'तुम्हारा दुख मुझसे देखा-सहा नहीं जा रहा है। इसलिए मैं अपने प्राणों को त्यज दूँगी। यह कहकर वह (भूमि पर) तेजी से लुढ़कते हुए लोटने-पोटने लगी। उसके बाल खुलकर मुक्त हो गए। तब कैकेयी ने उस समय उसे उठाते हुए प्रेमावेग से गले लगा लिया, उसका आलिंगन करते ही यह कैसा आश्चर्य हो गया ? विकल्प जो मन्थरा के पेट में था, क्षण के अन्दर बड़े वेग के साथ कैकेयी के अन्दर पैठ गया। देखिए वक्षःस्थल के लगते ही उन दोनों के अन्दर विकल्प अत्यधिक अद्भुत वृद्धि को प्राप्त हो गया, वह श्रीराम के राज्याभिषेक को लेकर दोनों के मन में दृढ़ द्वेष पैदा करनेवाला था। फिर मन्थरा कैकेयी से बोली– 'राम का राज्य तुम्हारे लिए बुरी स्थिति उत्पन्न करनेवाला सिद्ध हो जाएगा, इसे तुम मन में क्यों नहीं समझ रही हो ? मैं तुम्हें कितना सिखा दूँ ? तुम्हारे अनेक दास हैं, दासियाँ हैं, पर वे सब दशरथ के सेवक ठहरे मैं ही अकेली अपनेपन से तुम्हारी हूँ। पर तुम मुझे ही मूर्ख कह रही हो।

सापत्न भाव का शब्दों में अंकित चित्र– 'सौतेले भाई तो शत्रु मात्र होते हैं। परन्तु तुम मेरी इस मंत्रणा को ठीक नहीं मान रही हो, स्वीकार नहीं कर रही हो। इसी विषय में मैं पूर्वापर सम्बन्ध के आधार से आचार-व्यवहार शास्त्र का मत बता दूँगी। एक-दूसरे के सापत्न बन्धु देव और दैत्य महर्षि कश्यप से उत्पन्न थे पुराण यह बात गरज-गरजकर कहते हैं कि उन्होंने एक-दूसरों का विनाश करना चाहा इस अर्थ का एक वेदवचन है। ज्ञान-स्वरूप मूर्तिमान याज्ञवल्क्य ने उपनिषद् में जो कहा है, उस अनुभव (की बात) को ध्यान से सुनो।

श्लोक– तुमने देवों और असुरों के बहुत प्रकार के युद्धों के बारे में सुना है (एक) स्वार्थी बन्धु ने स्वार्थ (सिद्धि) के उद्देश्य से अपने (दूसरे) भाई को बहिष्कृत कर दिया है। (अपने स्थान से निष्कासित कर दिया है।

एक ही माता (-पिता) से जनमे एक ही धन द्रव्य की अभिलाषा करनेवाले, दुष्ट (हितशत्रु बने) भाइयों में क्वचित् भी अच्छा बन्धुभाव मैं नहीं देख पा रहा हूँ।

इस प्रकार वेदशास्त्र के विचार से भी सौतेले बन्धु ही किसी के प्रमुख वैरी होते हैं, तुमने भी अपने घर में पुराण सुना है, परन्तु अहंकार के कारण तुम्हें वह याद नहीं आ रहा है देव अपने स्वार्थ को सिद्ध करना चाहते थे। अतः उन्होंने महायुद्ध में दैत्यों को मार डाला, दैत्य भी अपना भला करके अपना हित सिद्ध करने के विचार से देवों को निगल डालना अर्थात् मार डालना चाहते थे। देखो, कुत्तों की भाँति एक आहार (लाभ) के हेतु वे लडने लगे। उसी प्रकार इन राजपुत्रों में कलह हो जाएगा। सौतेले भाइयों में कैसी मित्रता ?

दिति से इन्द्र द्वारा कपट-पूर्वक व्यवहार करना– दिति देवों की सौतेली माता थी। जब वह गर्भवती थी, तब उसके गर्भ का विनाश करने हेतु इन्द्र (छलकपट-पूर्वक) विनम्रता से उसकी सेवा करने लगा उसके लिए प्रतिकूल अवसर देखकर इन्द्र ने उसके गर्भ को नष्ट किया। उसने उसे अपने वज्र से छेदकर सात बार सात-सात (कुल उनचास) टुकडे कर डाले। इन्हीं उनचास टुकड़ों से विशुद्ध मरुद्गण उत्पन्न कर दिए। (इससे स्पष्ट है) सौतेले भाइयों में से जो बडे होते हैं, वे (छोटों के प्रति) स्वभावतः नित्य प्रति वैर भाव धारण करते हैं। इस बात को तुम नहीं समझ रही हो और मुझे ही पामर कह रही हो।

कैकेयी पर इस कथन का विपरीत प्रभाव हो जाना– मन्थरा की बात सुनकर कैकेयी को आनन्द हो गया (उसे ज्ञात पड़ा कि) श्रीराम का राज्याभिषेक (भरत के लिए अच्छा सिद्ध नहीं होगा, इसलिए उसने श्रीराम के प्रति दृढ़ द्वेष धारण किया श्रीराम ज्येष्ठ है तो भरत कनिष्ठ है। परन्तु राज्य व्यवहार शास्त्र के ज्ञान से वसिष्ठ भी श्रेष्ठ हैं। वे मेरा यह कथन कि कनिष्ठ (होने पर भी) भरत को राजसिंहासन दिया जाए, नहीं स्वीकार करेंगे। यद्यपि मैं राजा को भी अपने वश में कर लूँ तो भी वसिष्ठ मेरी बात नहीं मानेंगे। वे कहेंगे कि शास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार कनिष्ठ पुत्र को ज्येष्ठ के पहले राज्यासन देना उचित नहीं कहा गया है। जब वसिष्ठ शास्त्र की बात करेंगे, तो उसमें राजा दशरथ क्या कहेंगे ? वेदों के कहे अनुसार बन्धन के आने पर भरत राज्य को कैसे प्राप्त कर सकेगा।

मन्थरा द्वारा सूचित युक्ति मन्थरा कैकेयी से बोली 'यदि तुम मेरा कहना स्वीकर (कर उसके अनुसार व्यवहार) करोगी, तो एक क्षणार्द्ध में भरत के लिए राज्य प्राप्त करा दूँगी'। फिर इस पर कैकेयी बोली 'तू किस उपाय से भरत को राज्य प्राप्त करा देगी, वह मुझे जैसा है, वैसा स्पष्ट रूप से कह दे जिससे वसिष्ठ, वामदेव आदि ऋषि भरत को राज्य देना स्वीकार करेंगे, वह तेरी युक्ति कैसी है, कौन-सी है, इसे तू मुझे यथार्थ रूप से बता दे'।

मन्थरा द्वारा कैकेयी को (राजा दशरथ के दिये हुए) दो वरों का स्मरण कराना– इसपर मन्थरा स्वयं बोली, 'राजा ने शपथपूर्वक तुम्हें जो पूर्ण असंदिग्ध वर दिये थे' (जान पड़ता है) उनका तुम्हें स्मरण नहीं है। इस अवसर पर तुम राजा से उन वरों को माँग लेना, एक से राम को वनवासी बना देना और दूसरे से भरत को राजपद दिलवा लेना। इस प्रकार (राजा द्वारा) पहले दिये हुए वरों को हमसे माँग लिए जाने पर वसिष्ठ द्वारा कोई (आपत्तिकारी) बात नहीं कही जा पाएगी वैसे ही राजा दशरथ द्वारा यह नहीं कहा जा पाएगा कि मैं नहीं दूँगा वे तो अपनी शपथ में उलझे हुए हैं' मन्थरा की यह बात सुनकर कैकेयी को पूरा-पूरा आश्चर्य हो गया वह बोली- 'अरी कुब्जा तू तो अत्यधिक समझदार सिद्ध हो गई तभी तो तुझे उन दिये हुए वरों का स्मरण हो गया। मुझे राजा से वरदान प्राप्त है; पर मुझे

स्वयं को उसका स्मरण नहीं रहा, उसका (ठीक) समय पर तुझे अभिज्ञान (स्मरण) हुआ—अरी कुब्जा, तू तो बड़ी सयानी है'. फिर मन्थरा ने कैकेयी से कहा– 'तुम्हारे ही कारण (देवासुर संग्राम में) राजा दशरथ को विजय प्राप्त हुई थी. तुमने रथ की धुरा मे हाथ डाला था। (न जाने) तुमसे उस पीड़ा को कैसे सहन किया जा सका। युद्ध मे रथ का पहिया तेज गति से चल रहा था, तो तुम्हारा बाहु उसमें दबकर चूरचूर हो जाता। इतना धैर्य बल तुममें कैसे धारण किया गया ? मुझे वह स्पष्ट रूप से बता तो देना'।

अपमानित ऋषि द्वारा कैकेयी को बचपन में शाप और मुक्ति का बताना—कैकेयी मन्थरा के इस प्रश्न को सुनकर पूर्णतः प्रसन्नता को प्राप्त हो उठी। फिर उसने ऋषि द्वारा शाप और वरदान के दिये जाने की बात कही। 'बचपन में मैं पिताजी के प्रासाद में जब रहती थी, तब वहाँ एक ज्ञानी ऋषि पधारे। उनका आसन कुश (दर्भ) का बना था, उनका उद्वासन कुश का ही था और आभूषण भी कुश से ही निर्मित था। वे वृद्ध थे, जटाधारी थे, शरीर रोममय था। अरी, मैंने वहाँ एक अनुचित बात की। मैंने उस महर्षि के प्रति अत्यधिक निन्द्य रूप में मुँह बनाया; फिर भी वे क्षमा से युक्त रहे। इतना करने पर भी ऋषि को चुप बैठे देखकर मैंने उनकी नाक में कालिमा लगा दी। तब अति क्षोभ को प्राप्त होकर उन तपस्वी ने अत्यधिक आवेश के साथ मुझे शाप दिया। वे बोले—तूने नाना प्रकार से मेरे साथ निन्द्य व्यवहार किया है। (फलस्वरूप) तू स्वयं जगत में निन्द्य हो जाएगी। पर उनसे शापमुक्ति सम्बन्धी वरदान माँगना मैं बचपन के कारण नहीं जानती थी। वे बोले– तूने मेरे मुँह में कालिमा लगा दी है इसलिए तू भी संसार में कलमुँही हो जाएगी। तू अपयश का झण्डा खड़ा करके ऐसे निन्द्य स्वरूप के साथ खुले रूप में रह जाएगी। भारे क्षोभ के बोलते समय वे देवपूजन की सामग्री को भूल गए। (यह देखकर) मैंने वह उनके हाथ में दे दी। उसने वर देते हुए जो बात बोले, उसे मैं तुझसे कहती हूँ। सुन ले। उन्होंने कहा 'री राजपुत्री, इसी हाथ से तू युद्ध में अपने पति की सहायक हो जाएगी। फलतः उनसे तू दो वर प्राप्त करेगी। युद्ध में रथ के पहिए मे लगाने से तेरा यह हाथ व्यथा वेदना को प्राप्त नहीं होगा, फिर तेरा पति विजयी होगा। उन ऋषि ने इस स्वरूप का वर (वता) दिया। अरी मन्थरा, अब इसके पश्चात् मुझे क्या काम करना है ? तू जो-जो बात कहेगी, वह मैं सचमुच कर लूँगी'।

कुब्जा द्वारा कैकेयी को सीख देना— कैकेयी की इस बात को सुनकर कुब्जा ने उसे एक गम्भीर कार्य सम्बन्धी विचार बताया। वह बोली– 'तुम मुख्यतया अपने पति पर बड़ा क्रोध करना। अपने दिव्य आभूषणों का त्याग करके तुम बालों को भी खोल देना। फिर मलिन वस्त्र धारण करके तुम दो वरों को माँगने के उद्देश्य से मृत्यु को प्राप्त होने तक अनशन करने के लिए तैयार हो जाओ। जब राजा तुम्हारे पास आएँगे, तब तुम उन्हें अपना मुँह न दिखाना। उनसे कुछ भी न बोलना और उन्हें निश्चयपूर्वक क्षुब्ध करा देना यद्यपि राजा तुम्हें मेरु नामक सुवर्ण पर्वत दें अथवा रत्नों से भरा सागर दें, तो भी वरदान सम्बन्धी विचार का त्याग करके तुम उनमें से कोई भी बात स्वीकार न करना। तुम उनसे यह कहना– भरत को सिंहासन दो और श्रीराम को वनवास दो। अब सुनो, उस वनवास सम्बन्धी विचार भी मैं कहती हूँ। यदि श्रीराम अयोध्या के पास ही वनवासी बनकर रहे तो, समस्त प्रजाजन वहाँ जाएँगे। फिर भरत उस उजाड़ स्थान का राजा कैसे (शोभायमान) होगा। राम समस्त प्रजाजनों का प्रिय है। वह मंत्रियों को भी प्यारा लगता है। इसलिए वे सब राम के पास चले जाएँगे। फिर भरत को कैसा राज्य ? दण्डकारण्य जैसे दूरस्थ देश में गंगा (गोदावरी) नदी के तट पर श्रीराम वनवासी के रूप में रहें, जहाँ से उनके विषय में कोई भी समाचार किसी भी समय अयोध्या में न आ जाए उसी प्रकार अयोध्या सम्बन्धी कोई भी

समाचार श्रीराम तक कभी भी नहीं सुनाया जाए। इस प्रकार की व्यवस्था के हो जाने पर ही राज्य का उपभोग भरत को प्राप्त हो सकेगा'।

कैकेयी द्वारा मन्थरा को पुरस्कार प्रदान करना– मन्थरा द्वारा कही हुई ऐसी युक्ति को सुनकर कैकेयी को मन में आनन्द हो गया। उसने उसे अत्यधिक प्रेम और सद्भाव से दोनों बाहुओं में लेकर गले लगा लिया। देखिए, मन्थरा ने जो पदक क्रोध से फेंक दिया था, उस कैकेयी ने स्वयं उसके गले में पहना दिया। उसे कानों के अनमोल कुण्डल निश्चय ही अत्यधिक प्रेम से प्रदान किये। वह बोली- 'भरत के अभिषिक्त हो जाने के पश्चात् मैं तेरी पीठ (के कूबड़) को सुवर्ण से मढ़ दूँगी। तेरे माथे पर रत्नजटित तिलक लगा दूँगी और तेरे गले में मोतियों की मालाएँ पहना दूँगी'।

कैकेयी का कोपभवन के अन्दर प्रवेश करना– कैकेयी मन्थरा की कही बात को स्वीकार करके आमरण अनशन करने हेतु चली गयी। उसने आभूषणों और उत्तम वस्त्रों का त्याग करके, मलिन वस्त्र पहन लिये और वह भूमि स्वरूप शय्या पर लेट गयी।

(कवि कहता है कि इसके पश्चात्) अब राजा दशरथ आकर कैकेयी से उसकी इच्छा के बारे में पूछ लेंगे श्रीराम वन के प्रति जाने हेतु (अयोध्या से) चलेंगे। उस कथा को ध्यान से सुनिए मैं एकनाथ गुरु जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हूँ। (उनकी प्रेरणा से मैं कहूँगा कि श्रीराम देवों के कार्य को पूर्ण करने और (उसके निमित्त) दशवदन रावण का वध करने हेतु प्रयाण करेंगे।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ कृत 'श्रीभावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत अयोध्या काण्ड का 'कैकेयी के प्रति मन्थरा का उपदेश' शीर्षक यह तृतीय अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय ४

[कैकेयी-दशरथ-संवाद]

राजा दशरथ का कैकेयी के भवन में आगमन और वहाँ की विपरीत स्थिति को देखना–

श्लोक– महाराजा दशरथ ने श्रीराम के अभिषेक की तैयारियाँ करने की (मंत्रियों को) आज्ञा देकर और समस्त उपस्थित सभाजनों को विदा करके रनिवास में प्रवेश किया।

(उन्होंने सोचा कि श्रीराम के अभिषेक सम्बन्धी बात जनसाधारण में प्रसिद्ध अर्थात् सबको विदित हुई ही है; फिर भी रानियों को वह नहीं बतायी गयी है अतः) यह प्रिय बात अपनी प्यारी रानियों से कहने हेतु वे अपनी इन्द्रियों और मनोवृत्तियों को अपने वश में रखनेवाले राजा रनिवास में गये सर्वप्रथम वे महायशस्वी राजा रानी कैकेयी के सर्वोत्तम भवन में प्रविष्ट हुए। परन्तु वहाँ उत्तम शय्या पर राजा ने अपनी प्रिया कैकेयी को न देखा (पाया)। वे नृपति वहाँ काम की प्रबलता से युक्त होने से रति (सम्भोग) की इच्छा से (प्रेरित होकर) गये थे।

अपनी प्रिय भार्या को न देखकर उन्होंने पूछताछ करने हेतु पुकारा; परन्तु (प्रत्युत्तर न पाकर) वे उदास हो गए। इससे पहले महाराजा की रति के समय वह देवी कैकेयी कहीं अन्यत्र नहीं जाती थी

(उन्होंने उसके विषय में) पहरेदारिन (से पूछा तो वह) डरते डरते, परन्तु हाथ जोड़कर बोली– 'हे देव, देवीजी अपार क्रुद्ध होकर कोप-भवन में चली गयी है'।

श्रीराम के अभिषेक के लिए प्रातःकाल में पुष्य नक्षत्र का सुमुहूर्त निर्धारित था। राजा ने समस्त सामग्री को तैयार करने की यथोचित आज्ञा दी। तदनन्तर वे कामभाव से युत होकर सम्भोग के उद्देश्य से कैकेयी के भवन में आ पहुँचे परन्तु उसे भवन में न पाकर उन्होंने सबसे पूछताछ की, मेरी प्रिया कहाँ है'। वहाँ उपस्थित दास, दासियाँ, सेवक राजा के सामने (प्रत्युत्तर में) कुछ नहीं बोले। वे सब सिर झुकाये खड़े रहे थे। उससे राजा आशंकित हो उठे। तब दूर खड़ी रही कुब्जा मन्थरा ने छत्रधारी सेविका को संकेत से सुझा दिया, तो उसने राजा को नमस्कार किया, पर बोलने में वह बहुत भयभीत जान पड़ रही थी। राजा ने उसे अभय दान देकर समाचार पूछा, तो वह बोली– 'रानी कैकेयी मारे क्रोध के मूर्च्छित हैं, अर्थात् सुध बुध खो बैठी हैं। व सुख भोग का त्याग करके अपार (क्रोध एवं) शोक को प्राप्त हैं'। कैकेयी उत्तम वस्त्रों और आभूषणों को उतारकर मलिन वस्त्र धारण करके अन्धकारमय स्थान पर भूमि स्वरूप शय्या में लेटी हुई थी। वह सेविका राजा को वहाँ ले गयी।

राजा दशरथ की बेचैनी और उनके द्वारा कैकेयी का अनुनय करना– कैकेयी की उस स्थिति को देखकर राजा दशरथ को बड़ा दुःख हुआ। वे बोले 'अब तुम्हें किसने क्या किया ? मुझे तुम वह सही-सही बता देना। जिस किसी ने तुम्हारा अनिष्ट करने हेतु हाथ दिखाया बढ़ाया हो, उसका मैं जड़ मूल सहित नाश कर दूँगा। जिन्होंने तुम्हारे विरोध में कुछ कहा हो उनकी जिह्वा को मैं दाँतों सहित छेद डालूँगा. जिसे तुम सामर्थ्ययुक्त बनाने को कहोगी, उसे मैं वहीं पर गजान्त लक्ष्मी प्रदान करूँगा। जिसे तुम मुक्त करने को कहोगी, उसे मैं बन्धन-मुक्त कर दूँगा। मेरे तुम्हारे सामने पति के रूप में जीवित रहते, तुमने मंगलसूत्र क्यों तोड़ डाला ? किसी शव की भाँति तुम भूमि पर क्यों लेटी हो ? यह लक्षण अशुभ सूचित कर रहा है

रानी कैकेयी द्वारा राजा दशरथ की भर्त्सना करना– राजा द्वारा उसे हाथ लगाने लगते ही उसने राजा (के हाथ) को झंझोड़कर हटा दिया। (अपने हाथ से उठाकर) राजा द्वारा उसके मुख को देखने का प्रयास करते ही उसने उन्हें अपना मुख बिलकुल नहीं दिखाया। अपनी प्रिया मुख भी देखने नहीं दे रही है, यह देखकर राजा को रुलाई आयी उन्होंने दौड़कर उसके पाँव पकड़े और कहा 'अरी प्यारी, मैं तेरे बिना परदेसी हो गया हूँ। तो उसने पाँव झटक दिये और कहा, 'उठिए, यहाँ से लौट जाइए आप मुझे किसलिए मुँह दिखा रहे हैं ? मैं देख रही हूँ– आप एक लज्जाहीन व्यक्ति हैं' कुत्ते के पास में आने पर कुत्ती झल्ला उठती है; उसी प्रकार कैकेयी राजा दशरथ के प्रति झल्लाकर गुर्राने लगी स्त्री-सम्बन्धी लोभ-लालसा से ऐसी ही दशा हो जाती है। स्त्री सम्बन्धी लोभ पुरुष का अधःपात कर देता है। सूर्यवंशोत्पन्न राजा दशरथ की स्त्री-लालसा के कारण ऐसी स्थिति हो गयी थी, फिर अन्य पुरुष तो स्त्रियों की दासियाँ ही बन जाते हैं। स्त्री सम्बन्धी लोभ में यह ऐसा बल (प्रताप) होता है वह बोली 'मेरे लिए कैसा मंगल सूत्र ? आप मेरे लिए कैसे जीवित शिरोभूषण (रक्षक, त्राता) पति ? मैं अभी तुरन्त प्राण त्याग कर दूँगी। आपको मुझसे बहुत प्रीति तो है'। इसपर राजा दशरथ प्रेम से बोले– अरी, अपने मन की बात तो बता दे, मैं उस सबको पूर्ण कर दूँगा। (फिर भी बता दे) तुझे अत्यधिक क्रोध क्यों आया है'।

दो स्त्रियों की दयनीय अवस्था– (कैकेयी बोली) 'जो पुरुष दो स्त्रियों का पति हो, शास्त्रों की दृष्टि से उसकी कोई सच्ची महत्ता नहीं होती। सत्पुरुष उसकी साक्षी या साख (प्रणामस्वरूप) नहीं मानते। बता दीजिए, आपकी मेरे प्रति जो प्रीति है, वह सच्ची कहाँ तक है, जो व्यक्ति दो स्त्रियों का पति हो, वह तो शठ होता है। आप तो तीन के पति हैं, अतएव अति पापिष्ठ हैं। स्पष्ट रूप से मेरा अपमान करते हुए आप राज्याधिकार कौशल्या को दे रहे हैं आपसे मेरी अत्यधिक प्रीति को देखकर स्वर्ग में इन्द्र आदि ने आपका पूजन किया था; उसी मुझसे आप प्रीति हीन होकर कौशल्या को राजपट्ट दे रहे हैं।

आपने मुझसे बैर ठाना है, मेरे पुत्रों को ननिहाल भेजकर श्रीराम को आप राजा बना रहे हैं। आप सचमुच बड़े अनोखे कपटी हैं'।

राजा दशरथ द्वारा दोषारोप का निराकरण करना– राजा दशरथ कैकेयी से बोले 'अरी, तूने ही हठ करते हुए अपने पुत्रों को ननिहाल भेज दिया और अब अकड़ के साथ मुझे कपटी कह रही है। राज्याधिकार तो ज्येष्ठ पुत्र को प्राप्त है। वह कनिष्ठ को कैसे प्राप्त हो सकता है ? तुझमें कोई विवेक नहीं रहा फिर व्यर्थ ही अपार क्रोध क्यों कर रही है ? यद्यपि स्वयं ब्रह्माजी आ जाएँ, तो भी वे अनधिकारी व्यक्ति को राज्याधिकार नहीं दिला पाएँगे क्या तुझमें किसी भूतपिशाच का सचरण हुआ है ? तेरा यह क्रोध अत्यधिक अविवेक (का सूचक मात्र) है

क्रोध-महिमा– क्रोध पिता और पुत्रों के स्नेह सम्बन्ध में बाधा उत्पन्न करता है। क्रोध स्त्री पुरुष (या पत्नी और पति) में विरोध उत्पन्न करता है। वह पिता की सन्तानसम्बन्धी प्रीति (बन्धन) को काट देता है। इस प्रकार वह अन्त में निश्चय ही विपदा, हानि सिद्ध हो जाता है। क्रोध आत्मज्ञान का निर्दलन करता है; वह तपस्वियों को धोखा देकर कष्ट पहुँचाता है। वह व्यक्ति के स्वार्थ हित में आग लगा देता है। वह महा बलिष्ठ अनर्थकारी है। क्रोध काम सहायक होता है। अन्त में क्रोध के आने पर वह स्वयं कार्य का नाश करता है क्रोध विवेक को निगल डालता है वही, क्रोध तेरे पास बड़ी मात्रा में है। तुझे श्रीराम से निश्चय ही प्रेम था। पर उस तेरी बुद्धि को किसने धोखा दिया ? अब तुझमें ऐसी दारुण दुर्बुद्धि पैदा हुई है, जो तुझे श्रीराम का विरोधक बना चुकी है। श्रीराम का विरोध करने पर तू इहलोक और परलोक के सुख को खो बैठेगी। तू इससे संसार में अत्यधिक निन्द्य सिद्ध हो जाएगी, मैं तेरे हित की दृष्टि से यह सोच दे रहा हूँ, तुझमें मेरे सम्मान प्रतिष्ठा का बड़ा ध्यान था। तू मेरी कही बात का तिल-भर भी उल्लंघन नहीं करती थी। वही तू आज मेरा अत्यधिक धिक्कार करते हुए बकवास कर रही है। तेरी बुद्धि (नीयत) पलट गई है। यहाँ से (अब से) तेरे-मेरे सम्बन्ध का अन्त हो चुका है और तू स्पष्ट रूप से अपार क्रोध के कारण दुःख के राज्याधिकार को प्राप्त हो जाएगी।

श्लोक– पानी की (मधुरता अच्छाई) उसकी शीतलता है। अन्न की रम्यता उसे बड़े आदर के साथ देने में है। स्त्री की अच्छाई उसकी अपने पति विषयक अनुकूलता है, तो मित्र की अच्छाई उसकी अवंचकता है।

पानी की अच्छाई शीतलता है। मिष्टान्न का अच्छा स्वाद उसका आदर सहित सेवन कराने में पाया जाता है। परन्तु उसका अनादर के साथ सेवन कराने पर उसकी श्रेणी (स्थान) तुलना में विष की-सी हो जाती है। सम्पूर्ण अवंचकता ही मित्रता की मधुरता (की आधार शिला) है, उसमें वचना करने की प्रवृत्ति आ जाने पर मित्रों की मित्रता की अप्रतिष्ठा हो जाती है

विकल्प का बुरा प्रभाव– स्त्री अपने पति के प्रति बड़ी अनुकूल रहे। तब स्त्री-पुरुष सम्बन्ध में बड़ी मधुरता होती है। परन्तु उसमें विकल्प को प्रविष्ट हो जाने का अवसर मिले, तो स्त्री पुरुष में स्पष्ट रूप से वैर पैदा हो जाता है। री, कैकेयी, मन में (राजा के विषय में विकल्प अर्थात्) संशय धारण करने से स्त्री-पुरुष में शत्रुता आ जाती है। मैं तुझे प्रेम के बल से यह बात बता रहा हूँ, सद्विवेक की दृष्टि से इसपर विचार कर। (मुझे जान पड़ता है कि) तेरी यह अपनी बुद्धि (विचार) नहीं है। मैं नहीं जानता कि तुझे यह कुबुद्धि किसने प्रदान की है ? अत: तू क्रोध का त्याग करके भोग्य सामग्री की सम्पन्नता का सुख के साथ उपभोग कर ले। श्रीराम सबका प्यारा है, तुझे भी श्रीराम के साथ एकात्मकता अनुभव होती थी। पर (न जाने) किसने तेरे मन में संशय पैठा दिया ? री कैकेयी, तू उसका पूर्णत: त्याग कर दे। तुझे मेरे प्रति पूर्ण प्रीति है। समझ ले कि जो तू माँग लेगी, मैं वह तुझे दूँगा। मैं श्रीराम की शपथ ग्रहण करता हूँ– इसे तू मेरी बात का प्रमाण मान ले'।

कैकेयी का हृदय-परिवर्तन– राजा की यह बात सुनकर कैकेयी ने अपने मन से संशय को हटा दिया। (उसने सोचा जब कि कुल-परम्परा के अनुसार) भरत राज्याधिकार के लिए अयोग्य (अनधिकारी) है, तो उसके लिए राज्य की माँग करने से मैं संसार में निन्द्य हो जाऊँगी। राज्य के उत्तराधिकार-भार को अनधिकार माँगने पर बड़े-बड़े ऋषि मेरी निन्दा करेंगे, छोटे-बड़े (प्रजाजन) मेरा उपहास करेंगे। इसलिए (भरत के लिए राज्याधिकार माँगने का) यह विचार अत्यधिक निन्दनीय है।

मन्थरा द्वारा किये गए संकेत का कैकेयी पर अभीष्ट प्रभाव हो जाना– जब मन्थरा के ध्यान में कैकेयी के हृदय-परिवर्तन का लक्षण आ गया, तो उसने (मन-ही-मन) कहा, राजाधिराज ने इसके मन में विवेक उत्पन्न करके इसे पिशाची बना दिया। मैंने इसे हित की बात सिखायी थी, फिर भी इसकी समझ में अपना स्वार्थ-लाभ नहीं आ रहा है। मेरी सीख व्यर्थ हो चुकी है। इस प्रकार सोचते हुए वह बहुत झुँझला उठी। नीति, धर्म, सद्विवेक की बात सुनने पर दुष्ट (पापी) के मन में अपार क्रोध पैदा हो जाता है। उसी प्रकार, (राजा दशरथ की बात के प्रभाव से) कैकेयी के मन को पिघलते देखकर मन्थरा सचमुच झल्ला उठी। वह मन ही-मन झल्लाते हुए हाथ मलने लगी। उसने सोचा, अब क्या करें ? राजा ने राम के हाथों राज्य सौंप दिया है, अब तो देश निकाला ही हमारे भाग्य में बदा है। समझिए कि राम में स्नेह भाव नहीं है। वह हमारे प्रति पूर्णत: कठोर है। उसका अभिषेक हो जाए, तो हमें (यहाँ) लौट आना सम्भव नहीं होगा। इस अवसर पर मन्थरा ने कैकेयी को इशारा किया और कहा (सूचित किया)– अपने पूर्वनिर्धारित निर्णय का त्याग मत करो। उस विचार को अन्यथा न होने दो। झट से दोनों वर माँग लो। मन्थरा को आँखों से (इस प्रकार) संकेत करते देखते ही कैकेयी के मन में विकल्प प्रबल हो उठा। फिर उसने क्रोध भरी दृष्टि से देखकर राजा के सामने ये बातें प्रस्तुत कीं।

कैकेयी द्वारा राजा को वरदान की पूर्ति कराने का आग्रह– (कैकेयी बोली-) 'आपने राम की शपथ ग्रहण की है- मैं उसे प्रमाण मानती हूँ। तो मैं जो माँग लूँगी, वही मुझे दें। अपने अभिवचन को अन्यथा (व्यर्थ) न सिद्ध करें। आप ने मुझे जो वरदान पहले ही दिया है, वही मैं माँग रही हूँ'। इस बात से राजा सुख को प्राप्त हो गए और उससे बोले, 'पहले झट से माँग तो लो'। (कैकेयी बोली - (पूर्वकाल में) 'आप ही ने युद्ध में सुख को प्राप्त होकर मुझे दो वर प्रदान किये थे। मैं स्वयं वही माँग लूँगी, अब कृपणता न बरतें'। इसपर राजा बोले– 'अवश्य ! देखो, तुम जो जो, असाधारण बात भी माँग लोगी, वही सब मैं तुम्हें दूँगा, मेरा दिया वचन पूर्ण सत्य होगा। यदि पहले दिया हुआ वचन पूर्ण न करें,

तो राजा हरिश्चन्द्र आदि मेरे पूर्वज मेरा उपहास करते हुए हँसने लगेंगे; वे मुझे निश्चय ही शाप देंगे और मुझी को नरकवास घटित होगा।

कल्पतरु, कामधेनु, पाताल में स्थित अमृत का पान– तुम जो माँग लोगी, मैं वह सब दे दूँगा। मैं अपने वचन का पूर्णतः सत्य सिद्ध करूँगा। श्रीराम के मेरा सहायक होने पर मेरे लिए तुम्हें देने हेतु क्या दुर्लभ होगा'। फिर राजा दशरथ अत्यधिक प्रसन्नता के साथ कैकेयी के प्रति सन्तोष को प्राप्त हुए। भोलेपन के तकाज़े से वे झट से हाथ उठाकर गरजते हुए इस प्रकार बोले परन्तु पुरुषों को यह विदित नहीं है कि स्त्रियों का हृदय कृत्रिम (दिखावटी) होता है। सज्जन और चोर की संगति जैसी होती है, वैसी ही बात भोले साधु पुरुषों और स्त्रियों की होती है। वे पुरुषों को सबकुछ ठगकर उनका विनाश करना चाहती हैं। स्त्री की संगति से पुरुष को नरक में जाना पड़ता है राजा की कही बात सुनकर कैकेयी उनसे बोली– 'मैं अपने लिए प्राप्त वरों को माँग रही हूँ। सुनिए, उन्हें निश्चित रूप से माँग रही हूँ'।

दो वरों से दो हेतुओं (इच्छाओं) की पूर्ति हो जाना– (कैकेयी ने कहा-) 'एक वरदान से आप स्वयं भरत को अपना राज्य दें। राम के अभिषेक में आपको जो उल्लास हो रहा है उसी प्रकार के उल्लास के साथ भरत का अभिषेक सम्पन्न कर लें दूसरे वरदान के फलस्वरूप श्रीराम को दण्डकारण्य के प्रति भेज दें वहाँ गोदावरी नदी के तट पर वह वनवासी बनकर चौदह वर्ष निवास करें मुझे बहुत स्वार्थ सिद्ध नहीं करना है। चौदह वर्ष की अवधि यथोचित है। तब तक मेरा पुत्र भरत राज्य करेगा, तदनन्तर राम राज कर ले'। (कैकेयी ने यह सोचा-) भरत चौदह वर्षों के अन्दर चौदहों भुवनों को अपने अधिकार में (सुस्थिर) कर लेगा। फिर लौटने पर राम किस प्रकार राज्य प्राप्त कर सकेगा ? । दण्डकारण्य में राक्षसों से अत्यधिक धोखा रहेगा। वे राम को निगल डालेंगे। फलस्वरूप भरत राज्यासन पर अक्षय (अनवरत) रूप में विराजमान रहेगा। राम के साथ लक्ष्मण जाए, तो राक्षस उसे भी खा डालेंगे तब भरत स्वयं पूर्ण रूप से अकण्टक राज्य का भोग करेगा। कैकेयी के मन में यह विचार पक्का था फिर भी दशरथ को केवल आश्वस्त कर देने के हेतु उसने स्वयं चौदह वर्षों की लम्बी अवधि (की सीमा) बता दी, जो यथोचित (न अति छोटी, न अति लम्बी) मानी जा सकती है। (उसे जान पड़ रहा था) श्रीराम अयोध्या के निकटवर्ती प्रदेश में वनवासी हो जाए, तो (समस्त) अयोध्या (की प्रजा) उसके पास जाएगी। फिर भरत के लिए उजाड़ देश का राज्य कैसे (शोभा देगा)। राम प्रजाजनों को प्यारा लगता है; राम मंत्रियों को अच्छा लगता है; राम सेना को भी भाता है। अतः वे (सब लोग) उसके पास चले जाएँगे। वे सब राम के पास जाएँगे, फिर यह अयोध्या उजाड़ (जन-शून्य) नगरी हो जाएगी और वहाँ भरत राज्याधिकारी (राजा, शासक) हो जाए, यह विचार जड़ मूल से ही खोटा (अर्थहीन) है इसलिए कैकेयी बोली– 'श्रीराम को दण्डकारण्य अवश्य भेजा जाए वह गोदावरी के तट पर वल्कल स्वरूप वस्त्र धारण करके वनवासी के रूप में निवास करे। राज्य (के धन में) से अणु प्रमाण भी श्रीराम को आप न दें। वह जटाधारी होकर वल्कल वस्त्र धारण करके गोदावरी के तट के प्रति गमन करे'

श्लोक– संगति करने की दृष्टि से अयोग्य व्यक्ति के साथ रहने के दोष के फल-स्वरूप साधु पुरुष हानि को प्राप्त हो जाते हैं। (उदाहरण स्वरूप देखिए कि किस प्रकार) एक रात (किसी स्वैराचारी गाय) की संगति में रहने पर (एक भली गाय के) गले में अड़गोड़ा पड़कर उसकी दुर्गति हुई।

किसी स्वैराचारी (बदमाश) गाय के साथ एक भली गाय खेत में चरती रही, तब वह (दुर्मति) गाय अनपेक्षित रूप से वहाँ से भाग गयी और (बेचारी) भली गाय के गले में अड़गोड़ा पड़ गया।

समझिए कि उसी प्रकार मन्थरा सम्बन्धी आत्मीयता कैकेयी के लिए (हानिप्रद) सिद्ध हो गई। भरत के लिए राज्य-प्राप्ति स्वरूप आभूषण के स्थान पर उसे सम्पूर्ण अर्थात् आजीवन वैधव्य का अड़गोड़ा स्वीकार करना पड़ा। (मन्थरा जैसी) दुष्ट (स्त्री) की संगति का ऐसा परिणाम होने जा रहा था कि अपने पति का अवमान करते हुए और श्रीराम से द्वेष करते हुए कैकयी को वैधव्य की उपलब्धि होने जा रही थी।

कैकेयी की वर पूर्ति सम्बन्धी हठ-पूर्वक माँग देखकर राजा दशरथ का मूर्च्छित हो जाना– कथा के इस अत्यधिक विस्तार को रहने दें। कैकेयी की वर-वचन सम्बन्धी बात सुनकर राजा दशरथ मूर्च्छित होकर भूमि पर लुढ़क पड़े। उनके लिए प्राणों के निकल जाने की अवस्था आ गई। श्रीराम के वियोग के बाण उनके हृदय में भयावह रूप में गड़ गए, श्रीराम के दर्शन करने हेतु उनका कलेजा मुँह को आ गया। कैकेयी का कथन वज्र था। राम का वियोग उसकी तेज धार थी। उसका जानलेवा बड़ा आघात उनपर हुआ। उस घाव से राजा मूर्च्छित हो गए। वे इस प्रकार मन में व्याकुल हो उठे, उन्हें राम-वियोग (के विचार) से छटपटाहट हो रही थी। आँखों से अश्रु-जल बहने लगा और बड़ी मात्रा में उनके पसीना छूटा। (यह ऐसी स्थिति थी कि जैसे) कोई वैद्य (रोगी के) शरीर में कोई घाव नहीं देख रहा हो और इसलिए कोई औषधि काम नहीं आ रही हो। (जान पड़ रहा था कि) वह बाण हृदय के बहुत अन्दर गड़ गया था और उसके फल स्वरूप बहुत रक्त बह रहा हो। (फिर कुछ समय पश्चात्) राजा दशरथ सचेत होकर बोले– 'क्या मैं कोई सपना देख रहा हूँ ? श्रीराम तो सबके लिए जीवन-स्वरूप है। उसका वनगमन कौन निर्धारित करे ? कैकेयी से मुझे प्रेम है। उसी ने मेरे लिए मोह लेनेवाला मद्य खोल (प्रस्तुत कर) रखा है। वह उसे वनवास के लिए भेज रही है। मेरी प्रिया ही मुझपर धावा बोल रही है।

स्त्री-लोभ के कारण दशरथ का पश्चात्ताप करना– जो स्त्री को आत्मीयता के कारण प्रिया मानता है, वह निरा मूर्ख होता है। (मेरी वैसी ही मूर्खता के कारण) श्रीराम को वनवास के लिए जाना पड़ रहा है। स्त्री लोभ के कारण (इस प्रकार) मुझे हानि हो गई है। अतः कोई भी पुरुष (स्त्री के) प्रलोभन से (किसी स्त्री को) वचन न दे। देखिए, जो स्वयं कभी माँगना (उचित) नहीं हो, स्त्री अवसर से लाभ उठाते हुए वचन में फँसाकर वही नरक के प्रति ले जाने वाली माँग करेगी। सदा से ही वेदशास्त्र यही कहता आया है कि स्त्रीचरित्र दुष्टता-पूर्ण अतएव दुर्धर होता है। परन्तु मैं पामर ने उसे (सही) नहीं माना और (फलस्वरूप) अति दुःख प्राप्त करने योग्य हो गया। जिस प्रकार जूठन खिलाते हुए कोई व्यक्ति कुत्ते को पाल ले, उसी प्रकार (मैं पाला जाकर) स्त्रियों के अधीन हो गया हूँ। उसके पूर्ण फल के रूप में मैं श्रीराम के वनगमन (वनवास) को प्राप्त हो चुका हूँ।

राजा दशरथ का कैकेयी के प्रति क्रुद्ध हो जाना– कैकेयी के वदन को देखकर राजा दशरथ को भयावह क्रोध आ गया और वे बोले- 'अरी मरमिटी, दुष्टा, अभागिन, देख ले, तू तो श्रीराम से पूरा-पूरा द्वेष करती है। राम ने तेरा क्या अपराध किया है, जिससे तुझे उसपर ऐसा दुर्धर क्रोध हो रहा है और तू उसके विरुद्ध होकर उसे वनवास के लिए दण्डकारण्य में भेज रही है। वहाँ से समाचार के आने-जाने पर भी तू पाबन्दी लगा रही है। (वस्तुतः) तुझे भरत की भाँति श्रीराम से भी अत्यधिक प्रेम था। फिर तेरे मन में किसने सन्देह पैदा किया, जिससे तू श्रीराम से बहुत द्वेष करने लगी है। श्रीराम तो कौशल्या के समान ही तेरा बड़ा सेवक (आज्ञाकारी) रहा है। जो तेरी कभी वंचना न करते हुए तेरी सेवा करता रहा है, तू उसे दुःख देना चाहती है। मुझसे वचन (पूर्ति की शपथ लिवा) लेकर तू मुझे ही दुःख

देना चाहती है. जल जाए तेरा यह काला मुँह, जो तू उस दुःख को ही सुख मान रही है। अरी, श्रीराम परमात्मा है, परमेश्वर है। उससे द्वेष करने पर तेरे सब कुछ का नाश होगा और तू निन्दा के कष्ट को प्राप्त हो जाएगी'।

राजा दशरथ का कैकेयी से अनुरोध– 'तेरी इच्छा के विरुद्ध ही यह कार्य ऐसा सिद्ध हो जाएगा कि तेरे लिए न भरत रहेगा, न श्रीराम। इसलिए कठोर द्वेष को छोड़कर तू इस क्रोध, दुःख आदि का शमन कर ले। श्रीराम सम्बन्धी अपने द्वेष का तू त्याग कर दे, मैं इस हेतु तेरे पाँव पकड़ता हूँ। वरदान (पालन) सम्बन्धी मेरे दृढ़ व्यवहार का (और उसके परिणाम का) विचार करके तू मुझे पूर्णतः क्षमा कर दे'।

कैकेयी द्वारा वचन-पालन सम्बन्धी हठ करना और (पूर्वकाल में घटित बातों का) इतिहास बताना– राजा की ऐसी बात सुनकर कैकेयी बोली 'आप तो सर्वज्ञ हैं। सूर्यवंश के किसी राजा ने अपने वरदान को झूठा नहीं किया है। राजा हरिश्चन्द्र ने स्वप्न में भी (विश्वामित्र को) दिये हुए वचन को पूर्ण किया, अपने साथ ही अपनी स्त्री और पुत्र को बेचकर उन्होंने अपने वरदान को सत्य सिद्ध किया। (जान पड़ता है कि) आप सूर्यवंश में जन्म को प्राप्त होकर नपुंसक हैं, क्योंकि आपके द्वारा राम को वनवास के लिए नहीं भेजा जा रहा है। दिये हुए वचन को पूर्ण न करते हुए आप अपने पूर्वजों को न्यूनता लज्जा को प्राप्त करा रहे हैं। (जानते हैं न कि आपके एक पूर्वज) राजा शिबि ने शरणागत की रक्षा करने के वचन को पूर्ण करने हेतु (उसके भार बराबर) अपने शरीर में से मांस को (काटकर) तौल दिया और अपने वचन को पूर्ण करके, उसके फलस्वरूप अपनी इस अयोध्या नगरी को वे वैकुण्ठ लोक ले गये। अयोध्या के एक राजा हुए रुक्मांगद, जिनके धर्मांगद नामक पुत्र थे। उन्होंने सातों द्वीपों को जीतकर नाना प्रकार के धन अपने पिता को श्रद्धापूर्वक समर्पित कर दिये, समुद्र से घिरी हुई समस्त पृथ्वी के राजा रुक्मांगद नामक उन पिता के धर्मांगद एक मात्र पुत्र थे। वे पिता की सेवा में अत्यधिक तत्पर रहते थे और तिस पर वे सब कुछ के साथ भगवान् विष्णु के भक्त थे मोहिनी को दिये हुए वचन की पूर्ति करने की दृष्टि से पिता रुक्मांगद ने अपने पुत्र धर्मांगद का वध किया। उसके फलस्वरूप एकादशी व्रत के बल पर वे अपनी नगरी अयोध्या को वैकुण्ठ लोक ले जा सके। हे राजा दशरथ, उसी सूर्यवंश में उत्पन्न आपसे, अपने पुत्र राम को वन में नहीं भेजा जा रहा है। आप कह रहे हैं कि वर स्वरूप दिये दान को अब आप से नहीं दिया जा सकता है यह नपुंसकता आप ही को शोभा दे रही है'। उस स्त्री का यह कथन अपार पैना, कठोर था, उसे सुनते ही राजा दशरथ के प्राण व्याकुल हो उठे और वे मूर्च्छित हो गए। उनकी चेतना (दुःख-सागर में) पूर्णतः डूब गई। स्त्री सम्बन्धी सुख की कामना पूर्ण रूप से विष होती है- वह अपनी दुर्धर स्थिति से भयावह होती है उसका सेवन करने पर वह मृत्यु को अवश्य ले आती है कैकेयी ने इस बात को पूर्ण रूप से सत्य सिद्ध किया।

राजा दशरथ द्वारा कैकेयी से पुनः प्रार्थना करना– राजा दशरथ अपार दुःख से मूर्च्छित हो गए; फिर (कुछ समय के पश्चात्) वे पूर्णतः सचेत हो गए, तो वे स्वयं करुणा के साथ विनीत होकर कैकेयी से बोले– 'श्रीराम पर तेरी पूरी कृपा थी, तो इस स्थिति में तेरे लिए अति दारुण दयाहीनता के साथ अत्यधिक कठोरता धारण करने का क्या कारण हुआ यह राजीवनयन श्रीराम सुन्दर है, सुकोमल है, सुख स्वरूप एक मात्र धन (आधार) है। उसके द्वारा पैदल जाते हुए दुर्धर वन में निवास के कष्ट कैसे उठाये जाएँगे। श्रीराम सुख देनेवाले वस्त्र धारण करता है, उसे अब वल्कल वस्त्र धारण करने हैं।

यह रामचन्द्र (वन में रहते हुए) अत्यधिक दुःसह ठण्ड और गर्मी कैसे सहन कर सकेगा मृदु कोमल, सुखप्रद शय्या पर भी जिस श्रीराम को फूल चुभते हैं, वही श्रीराम पत्तों पर सो जाने के कष्ट को कैसे सहन कर सकेगा। श्रीराम का मन अत्यधिक शुद्ध पंचामृत का सेवन करने से भी उकता जाता है वह तीखे, खट्टे, कसैले, फल-मूल कैसे खा सकेगा। यहाँ श्रीराम के साथ सेना है, मंत्री हैं, सेवक तथा आप्तजन हैं, उन्हीं के साथ वह (इधर-उधर) भ्रमण करता है। वह अब अकेला वन मे चौदह वर्ष कैसे रह सकेगा। मेरा यह काला मुँह जल जाए। मैंने मोह पैदा करनेवाली प्रमदा को जो गुप्त रूप से वचन दिया था, उससे श्रीराम के गले में दृढ़ बन्धन आ गया'। यह कहते हुए राजा दशरथ रोने लगे।

राम के वनवास के बुरे परिणाम– (राजा दशरथ बोले-) श्रीराम वन के प्रति जब प्रयाण करेगा, तब उसके साथ लक्ष्मण भी जाएगा। री कैकेयी, इसे सत्य समझ ले कि उसके साथ मेरे प्राण निकल जाएँगे कौशल्या मारे दुःख के प्राण त्याग देगी। यह सत्य समझ कि सुमित्रा (मारे दुःख के) मर जाएगी। इतने विनाश के घटित हो जाने पर तू सुख-सम्पन्न हो जाएगी। दुर्धर आक्रोश करते हुए तू भरत को राज्यासन पर प्रतिष्ठित करना चाह रही है। मैं तेरी शरण में आया हूँ– तू इतना विनाशकारी काम न कर'। यह कहते हुए उन्होंने उसके चरणों पर मत्था टेका। फिर वे बोले– 'मुझ दशरथ को क्षमा करना वर स्वरूप अपनी माँगी हुई बात न माँग और राम को वन में न भेज। राम को मेरे पास रहने दे; मैं भरत को राज्य देता हूँ। इस विषय में प्रतिभू अर्थात् उत्तरदायित्व को निर्वाह कराने की दृष्टि से गुरु वसिष्ठ को नियुक्त करता हूँ। वे ही हमारा नियमन करनेवाले हैं'।

राजा द्वारा दण्डवत् प्रणाम करना और कैकेयी द्वारा उनका धिक्कार करना– यह कहते हुए राजा दशरथ ने कैकेयी को दण्डवत् नमस्कार किया और अपने माथे पर उसके चरणों को उठाकर रखा। तब वह भयानक रूप से क्षुब्ध हो उठी और बोली– 'अहो शठ ! यह ऐसी नीचता (बदमाशी) क्यों कर रहे हो। तुम बहुत हीन-दीन हो गए हो। तुमने सूर्यवंश को लज्जित कर दिया है। अपनी कही बात से विमुख हो रहे हो। हे नृपवर! तुम कृपण हो गए। तुम्हारे पाँव पड़ने से मैं वरदान की बात को नहीं छोड़ दूँगी। तुम्हारे मन में वह बात नहीं देनी है। हे राजा, तुम बड़े हठी हो गए हो। तुम तो वर में दी हुई बात स्वयं नहीं दे रहे हो और (उलटे) मुझे महाविघ्न (-कारी) कह रहे हो। इसलिए मैं अपने प्राण त्यज दूँगी। तदनन्तर तुम सम्पूर्ण सुख को प्राप्त हो जाओ। मेरा यही परम महान उद्देश्य है कि मेरे पति सुखी हो जाएँ अब हे राजा दशरथ, मेरा नाश करके तुम यहाँ पर सुख सम्पन्न हो जाओ वरदान की बात को झूठी सिद्ध करने पर तुम्हें मेरी हत्या घटित होगी, फिर तुम राम का अभिषेक कर लो, जिससे सब को सुख हो जाएगा'।

राजा दशरथ की विकट अवस्था– कैकेयी की बात अत्यधिक उग्र (कठोर) थी। उससे राजा दशरथ को रुलाई आ गई। साथ ही उनका मन भ्रम में पड़कर झकझोर उठा और वे मूर्च्छित हो गए। (उन्हें जान पड़ा) राम के अभिषेक समारोह में मैं आमंत्रित करके देश-देश के राजाओं को ले आया हूँ। वे यह कहकर दिशाओं की सीमा तक निन्दा करते रहेंगे कि राजा दशरथ स्त्री के वश हो गए, स्त्री द्वारा जीत लिये गए। मेरे मंत्री तथा समस्त प्रजाजन घर-घर में मेरी बहुत निन्दा करेंगे। श्रीराम को वन में भिजवा देने के कारण मैं निश्चय ही निन्दा का पात्र हो चुका हूँ। (भरत को राज्य प्राप्त हो जाने से) कैकेयी को परम सुख होगा। फिर भी उसके लिए वस्तुतः न इहलोक के सुख का लाभ होगा, न परलोक कैकेयी परम सुन्दर स्त्री के रूप में संसार को दुःख देने हेतु बड़ा विष ही है कैकेयी काल स्वरूपा रात्रि

ही है, जिसको मैंने अत्यधिक प्रेम से पाल रखा है। पर मैं यह किससे कहूँ कि वह मेरी काल-रात्रि स्वरूपा स्त्री मुझे ही मेरे चारों ओर से कष्टदायिनी ठहरी है। राम को वन के प्रति भेज दें-कैकेयी की ऐसी उक्ति (माँग) से राजा के छटपटाते रहते, दुःख सहन करते रहते रात समाप्त होने जा रही थी और सूर्य उदय को प्राप्त होने जा रहा था।

(कवि कहता है-) श्रीमान दशरथ के जाग जाने पर कैकेयी अनिष्ट बात करेगी और (उसके फल-स्वरूप) समस्त राक्षसों का वध करने हेतु श्रीराम वन के प्रति चलेंगे। मैं एकनाथ अपने गुरु श्री जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हूँ (मेरे द्वारा कही जा रही) यह रामायण कथा रम्य है। मैं अब श्रीराम के वन की ओर प्रयाण करने के विषय में कहने जा रहा हूँ। श्रोता जन उसकी ओर ध्यान दें.

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ कृत 'श्रीभावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत अयोध्या काण्ड का 'कैकेयी-दशरथ-संवाद' शीर्षक यह चौथा अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय ५

[कैकेयी के भवन में श्रीराम का आगमन]

प्रातःकाल मंत्री का राजा दशरथ को जगाने हेतु जाना–

श्लोक– महात्मा राजा दशरथ के कैकेयी से इस प्रकार बातें करते-करते ही चन्द्रमा और तारों से सुशोभित वह पुण्यमयी रात बीत गई और प्रभात काल का आगमन हुआ

(प्रभात काल के आगमन को) देखकर, बुद्धिमान सूत (सारथि) सुमन्त पहले (अर्थात् पूर्वकाल से चली आयी रीति) के अनुसार राजा के प्रासाद में उन्हें जगाने हेतु प्रविष्ट हो गए

श्रीरघुनाथ राम के अभिषेक के लिए प्रातःकाल का शुभ मुहूर्त निर्धारित था (सूर्योदय से पहले) गुरु एवं पुष्य नक्षत्रों के साथ चन्द्रमा को देखकर मंत्री सुमन्त झट से उठ गए। बुद्धिमान मन्त्री सुमन्त राजा श्रीमान दशरथ को जगाने हेतु उस राजभवन में आ गये, जहाँ वे कैकेयी के साथ रहे थे।

राजा दशरथ की चिन्ता– 'रघुनन्दन राम का अभिषेक सम्पन्न कराने हेतु जाग जाइए', मंत्री सुमन्त के इस वचन को सुनकर राजा दशरथ मूर्च्छा को प्राप्त हो गए। यह बात मैं किस मुँह से कहूँ कि राम अब वन में जाएगा। रघुनाथ राम अब हाथ से (मेरे पास से) निकल जाएगा– इस दुःख से राजा मूर्च्छित हो गए। (वे जानते थे-) यह बात सुनते ही कि पिताजी दशरथ मुझे वन में भेज रहे हैं राम उस आज्ञा का उल्लंघन नहीं करेगा, वह तत्काल वन में चला जाएगा। राम को राज्य प्राप्त करने की कोई अभिलाषा नहीं है उसे सुखोपभोग के विषयों से भी प्रेम नहीं है। उसे मेरी बात अति मधुर लगती है इसलिए वनवास के प्रति आकर्षित होगा, वह चला जाएगा। मेरी इस बात से कि मैं उसे वन में भेज रहा हूँ, उसके कान की भेंट होते ही वन के प्रति तत्काल चला जाएगा। वनवास सम्बन्धी इस कथा (घटना) को अपने कानों से सुनते ही वह सचमुच वन की ओर जाने हेतु प्रस्थान करेगा, इस सम्बन्ध में (उपाय की दृष्टि से) अब मैं क्या करूँ विशेषतः रघुकुलतिलक राम मेरे वचन को मिथ्या होने नहीं देगा। वह वन में अवश्य जाएगा इस विचार से राजा दशरथ दुःख और शोक को प्राप्त हो गए। फिर

कैकेयी भी (स्वभाव से) खोटी (दुष्ट) है। वह हठ के साथ इस बात को बढ़ा देगी इससे वह हमें श्रीराम के विछोह को प्राप्त कराएगी। (इस विचार से समस्त) सृष्टि ही मूर्च्छित हुई जान पड़ी।

कैकेयी द्वारा सुमन्त को राम को बुलाकर लाने की आज्ञा देना– कैकेयी सुमन्त से बोली– 'राजा को गहरी नींद लगी है। मुझे राजा की यह आज्ञा प्राप्त है कि रघुपति राम को वेगपूर्वक लाया जाए' (मंत्री सुमन्त ने सोचा-) यह कैसी प्रगाढ़ निद्रा है ? राजा तो भू-तल पर लोट रहे हैं (लेटे हैं)। इसलिए (कैकेयी की बात को) मन में झूठ समझकर सुमन्त लौट जाने लगे। तब स्वयं ऋषि वसिष्ठ अभिषेक के लिए आवश्यक सामग्री को, नाना प्रकार के उपचारों (साधनों, उपकरणों) को बहुतायत से इकट्ठा करवा रहे थे

गुरु वसिष्ठ द्वारा अभिषेक की समस्त तैयारियों के विषय में राजा दशरथ से निवेदन करके उन्हें बुला लाने की सुमन्त को आज्ञा देना– गुरु वसिष्ठ ने सुमन्त से कहा– 'समस्त सामग्री के विषय में राजा से निवेदन करें और उन्हें शीघ्रता से बुला लें। (कहें कि) अभिषेक का सुमुहूर्त समीप आ रहा है (उनको इससे अवगत करा दें कि) सदाफल वृक्ष उदुम्बर (गूलर) की लकड़ी का श्रीरामचन्द्र के अभिषेक हेतु अति सुन्दर मनोहारी भद्रपीठ (चौकी, मंगल राज्यासन, सिंहासन) सुसज्जित किया गया है। (वहाँ) अखण्डित अर्थात् नख-पुच्छ-युक्त समग्र व्याघ्रचर्म उस भद्रपीठ अर्थात् सिंहासन पर श्रीराम के विराजमान होने हेतु उत्तम आसन के रूप में शोभायमान है। शत-शत स्वर्ण कुम्भ प्रस्तुत हैं। बड़े-बड़े ककुद से युक्तश्वेत वृषभ, सुवर्णशृंगी दुधारू गायें, अति शुद्ध (पवित्र) अखण्डित वस्त्र लाये गए हैं। सिन्धु संगम, सुधा-संगम, गंगा-यमुना-सरस्वती के अर्थात् त्रिवेणी संगम स्थान से परम पवित्र जल रघूत्तम राम के अभिषेक हेतु लाये गए हैं। सात प्रकार के दर्भों और सात प्रकार की मृत्तिकाओं को लाया गया है। देखिए, सात ऋषियों को आमंत्रित करके लाया गया है। चारों समुद्रों का जल अभिषेकार्थ लाया गया है। सिंहों सदृश (बलवान) श्वेत अश्वों से जुता हुआ रथ, चन्द्र सदृशश्वेत छत्र, रत्न-जटितश्वेत चामर और शोभायमान् पंखे लाये गए हैं। गौरवमय (उत्तम) गोरोचन, हल्दी, क्षीरवृक्षों और आम्रवृक्ष के पल्लव, कमल-पत्र मँगवाकर रखे गए हैं अत्यधिक अद्भुत वन्दनवार बँधवा दिये जा चुके हैं समस्त राजा प्रतीक्षा करते हुए खड़े हैं। दही, मधु, घी से भरे, अक्षत से युक्त पूर्ण कलश लेकर आभूषणों से अलंकृत आठ कन्याएँ मंगल उपचारों को लेकर अभिषेक के अवसर पर प्रदान करने हेतु प्रतीक्षा में खड़ी हैं मुकुट, कुण्डल, रत्न-मेखलाएँ, बाहु अंगद, कण्ठ-मालाएँ जैसी सुसज्जित सामग्री लेकर ब्राह्मण गण प्रतीक्षा कर रहे हैं। (कहिए कि) आप (प्रासाद से) बाहर आकर रघुनन्दन को अभिषिक्त करें' गुरु वसिष्ठ की इस सम्पूर्ण आज्ञा को विदित कराते हुए सुमन्त ने (राजा को) नमस्कार किया। गुरु वसिष्ठ की आज्ञा सुनकर राजा दशरथ अति व्याकुल हो उठे। (उन्हें लगा-) मैं अपना यह काला मुँह कैसे दिखाऊँ ? फिर वे अत्यधिक दुःख से मूर्च्छित हो गए।

कैकेयी द्वारा सुमन्त को वरों का इतिहास बताना– राजा दशरथ की यह दशा देखकर सुमन्त को कँपकँपी छूटी। फिर कैकेयी ने उन्हें आरम्भ से समस्त बात बता दी वह बोली- 'राजा व्यर्थ ही क्यों दुःख अनुभव कर रहे हैं ? उन्होंने पूर्वकाल में वचन दिया था, उसके आधार से मैंने भरत के लिए राज्य और राम के लिए वनवास माँग लिया। फिर इसमें वे बड़ा दुःख कर रहे हैं। हे सुमन्त, आप निश्चित रूप से यह समझिए कि मेरे पुत्र भरत को राजपट्ट और श्रीराम को दण्डकारण्य में निवास दिया जाना चाहिए। मैं उस वचन (माँग) को अन्यथा नहीं करने दूँगी'।

सुमन्त द्वारा कैकेयी का धिक्कार करना– कैकेयी की ऐसी बात को सुनकर सुमन्त मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। (फिर सचेत होने पर) वे आक्रन्दन करते हुए सिर पीटने लगे और बोले– 'हे पापिणी, आपने यह क्या कहा। श्रीराम सब को परम प्रिय हैं, प्राणों से प्यारे हैं। उन श्रीराम से आपके द्वारा द्वेष करने से आपको भाग्यहीन अवस्था आ रही है'। (उन्हें जान पड़ा-) इसकी बात अत्यधिक अनिष्ट स्वरूप है। राजा इसका वध कर दें। (नहीं तो) राम को वन में भेज दिये जाने से बड़ा शोककारी अनिष्ट हो जाएगा। (फिर) वह बोली– 'अपने पहले दिये हुए वचन को पूरा न करने पर राजा को नरक वास प्राप्त होगा'। (यह सुनकर) सुमन्त को बड़ा दुःख हो गया। वे सिर झुकाकर विलाप करने लगे। उन्हें सम्बोधित एवं आश्वस्त करके राजा दशरथ बोले– 'यह बात बाहर किसी को विदित न होने दें। श्रीराम को झट से बुलाइए। फिर पूरा इतिहास अवगत हो जाएगा'।

सुमन्त का श्रीराम के भवन में आगमन– सुमन्त राजा दशरथ की आज्ञा के अनुसार वेग पूर्वक श्रीराम के भवन के प्रति आ गए। उस भवन की सुन्दरता वैकुण्ठ लोक को भी शोभा दे सकती थी। उसे देखकर कैलास लोक लज्जित हो जाता। उस भवन में मोर नृत्य कर रहे थे; उसे देखकर शिवजी अपने ताण्डव नृत्य को भूल गए थे। कबूतर मीठे स्वर में बोल रहे थे। उसे सुनने पर मन में सामवेद के स्वर चौंक गये थ। कबूतरों की अमृत-सी मधुर वाणी को सुनकर गन्धर्व मूढ़ होकर (चुप) रह गए थे। चारों वेदों ने मौन धारण किया था। श्रीराम के भवन में प्रसन्नता छायी हुई थी। श्रीराम के भवन में तोते सूक्तियाँ बोल रहे थे। उसे सुनकर वेदान्त (के वचन) कितने मुग्ध-मूढ़ हो उठे थे ! उपनिषदें उस पर मधुर ध्वनिमय रस का सेवन कर रही थीं। मैनाएँ मधुर बोली बोल रही थीं। उससे देवी सरस्वती लज्जा को प्राप्त हो गई थीं। बृहस्पति को आश्चर्य अनुभव हो रहा था। इस प्रकार मोर, शुक आदि पक्षी परमार्थ का समर्थन करते हुए उसके पक्ष में सम्मिलित हो गए थे। अंगूर के गुच्छे जो रस निःसृत करा रहे थे। वह सबसे अधिक मधुर था। रस के लोभी जन उसे प्राप्त कर उसकी प्राप्ति के प्रति निर्लोभ हो गए थे। मोक्ष के अभिलाषी जनों की इच्छा उससे पूर्ण हो गई थी। श्रीराम के आँगन में उत्पन्न कमलिनियों को देखकर कमलासना लक्ष्मी लज्जा को प्राप्त हो गई थीं उसे जान पड़ा, मेरा निवास जिनके चरणों में है, उनके हृदय स्थान में ये कमलपुष्प आभूषण स्वरूप शोभायमान होने योग्य हैं। श्रीराम के भवन में ऐसे फूल थे कि जिनकी सुगन्ध से मन उन्मनी अवस्था को प्राप्त हो गया था। उनकी सुगन्ध से वायु भी सुस्त बन गई थी और चिद्रूप में घुल मिलकर रह गई थी। श्रीराम के भवन में लगी पताकाएँ चित्स्वरूप आकाश में चमक दमक रही थीं। उनकी बड़ाई को जो कोई देखता था, वह चराचर में धन्य समझा जाता था। राजभवन में ऐसे 'चूत' (आम्र) वृक्ष थे कि उनके फलों को प्राप्त होनेवाले सब लोग 'अच्युत' (अर्थात् मोक्ष-लाभ करके भगवत्स्वरूप से 'च्युत' अर्थात् भ्रष्ट नहीं) हो जाते थे। फलों से युक्त होकर वे (विनम्रता-पूर्वक) बहुत झुक गये थे और परिपक्व फलों को गिराते हुए त्यज रहे थे। (वे अपने फलों सम्बन्धी घमण्ड से अकड़ते नहीं थे और उनका स्वयं सेवन करते थे, दूसरों को सेवन के लिए दे देते थे)। स्वर्ग के पारिजात वृक्ष के फूल मानों अपनी सुगन्ध के साथ (अयोध्यावासियों के) पैरों तले लोटते-पोटते रहे, फिर भी उन्हें कोई नहीं पूछता था। श्रीराम के भवन में रहनेवाले समस्त लोग उनके प्रति उदास थे। सप्तावरण मानों उस भवन की ड्योढ़ियाँ बने थे वहाँ पर जो द्वारपाल थे, वे बड़े ज्ञानी थे। वे ऐसे बड़े प्रतापवान थे कि वे कलिकाल पर भी लाठियाँ चला सकते थे। (उनमें से प्रत्येक) द्वारपाल के हाथ में धरे बेंत को देखकर सबका अन्त करनेवाला (साक्षात्) यम

भी थरथर काँपता था। स्वयं काल देवता श्रीराम का सेवक बना हुआ था। देखिए, श्रीराम के ऐसे भवन को देखते ही सुमन्त को परम हर्ष हुआ। वे पहले दुःख को भूल गए और परम सुख को प्राप्त हो उठे

सप्त द्वारों का पारमार्थिक रूपक– सुमन्त पहले दरवाज़े पर रथ को छोड़कर अन्दर गये; दूसरे पर उन्होंने छत्र और चामर त्याग दिये। उनकी पादत्राण (जूते) आदि सामग्री तीसरे द्वार पर रखी रही। चौथे द्वार पर उन्होंने अपने धन सम्बन्धी हेतु का त्याग किया; पाँचवें द्वार पर अपना स्वार्थ अशेष रूप से छोड़ दिया, तो छठे द्वार पर सभी साधन स्वरूप साधनाएँ स्वयं उनके द्वारा परित्यक्त होकर रह गईं। 'मैं तू'-भाव का, द्वैत भाव का साथ छोड़कर सातवें द्वार के अन्दर पैठ जाएँ। (सुमन्त ने वैसे ही किया)। तभी तो श्रीरघुनाथ राम उनसे मिले। श्रीराम से हुई ऐसी भेंट ही साधक के जीवन के मुख्य लक्ष्य स्वरूप परमार्थ है। (कवि कहना चाहता है कि साधना पथ पर चलते समय एक एक पग पर सांसारिक साधन-सामग्री, वैभव, लोभ-लालसा आदि का निःशेष त्याग करें; भगवान् से एकात्म हो जाएँ, तभी परमार्थ की उपलब्धि हो जाती है)। (यह हुई साधना-पथ में स्थित सप्त आवरण स्वरूप द्वारों की बात। अब सात दहेलियों का स्वरूप देखिए)। पहली देहली है श्रवण दूसरे द्वार की देहली है साधना। तीसरे द्वार में देहली है, नित्य और अनित्य (नश्वर और अनश्वर) का ज्ञान। चौथी देहली है मनन। पाँचवीं है अनवरत ध्यान छठी है पूर्ण वैराग्य, तो समझिए कि सातवीं है (परमात्मा का) साक्षात्कार। (कवि ने साधना के पथ पर जिस क्रम से जाने से प्रगति होती है और अन्त में परमात्मा के दर्शन होते हैं, उसका उल्लेख यहाँ किया है)। इसी मार्ग के अनुसरण से श्रीराम से भेंट हो सकती है। यदि जीव (साधक) किसी टेढ़े मार्ग को अपनाये तो उसकी पीठ पर यम दण्ड का आघात होगा।

श्रीराम-स्वरूप-वर्णन– (श्रोताओं ने कहा-) अपनी रचना में प्रस्तुत अत्युक्ति सहित भावार्थ को रहने दीजिए। अब ग्रन्थ रचना अर्थात् कथा-कथन को आगे बढ़ाइए। (कवि ने कहा) मंत्री सुमन्त श्रीराम को बुलाने हेतु, वेगपूर्वक आ गए। सुमन्त नामक वे मंत्री अन्तःकरण से शुद्ध (अकुटिल) थे। वे श्रीराम के भवन के सातवें द्वार के अन्दर आ गए तो उन्होंने श्रीरघुनाथ राम को देखा, जो सुन्दर रूप की दृष्टि से अनुपमेय थे। वे कमल-से नेत्रोंवाले थे, वर्ण में मेघ की भाँति साँवले थे। उनके बाहु अति विशाल अर्थात् घुटनों तक पहुँचनेवाले थे। उन्होंने मुकुट, कुण्डल, विचित्र (अनोखी) मालाएँ और गले में अनमोल पदीक धारण किया था। उनके कछौटे में, (उसकी चमक दमक के कारण) जान पड़ता था कि बिजली लगी हुई है; अतः वह अस्त हो जाना भूल गई थी। उसी प्रकार उनके कटिप्रदेश में तेज से चमकता दमकता हुआ पीताम्बर धारण किया हुआ था। उनके श्याम अंग में सुगन्धित अंगराग लगाया हुआ था। बाहुओं में बाहुभूषण धारण किये हुए थे। पीला तिलक भालप्रदेश में अंकित था उसे देखते ही मन शान्त हो जाता था कटि में धारण किये गये पीताम्बर को तथा मेखला का विराजमान देखते हुए दर्शक की भूख प्यास का शमन हो जाता था। श्रीराम मानों आनन्द के घन ही थे (जो आनन्द की वृष्टि किया करते थे) बाँकों और अंदुवों का गर्जन हो रहा था। पाँवों में पहने तोड़र गरज रहे थे, इस प्रकार रूप-धारी श्रीराम सुवर्णपलग पर विराजमान थे। उन्हें देखकर सुमन्त को बड़ी प्रसन्नता हुई। (उन्होंने देखा कि) सुन्दरता की असीम सीमा स्वरूप सीता श्रीराम की सेवा कर रही थी। भगवान् विष्णु की स्त्री देवी लक्ष्मी जिस प्रकार शोभा देती है, उसी प्रकार साक्षात् सुन्दरता की प्रतिमा सीता शोभायमान हो रही थी.

राजा दशरथ द्वारा बुलाए जाने पर श्रीराम का उनके पास गमन करना– इस प्रकार (के रूप से सम्पन्न) श्रीराम को देखकर मंत्री सुमन्त ने उन्हें नमस्कार किया और कहा 'आपसे एकान्त में

मिलने हेतु नृपवर अत्यधिक उत्कण्ठित हैं'। सुमन्त को बात को सुनकर सुहास्यवदना सीता बोली– 'राजा ने आपका राज्याभिषेक कराने हेतु (बुलाने के लिए) मंत्री को प्रेषित किया है'। पिता की आज्ञा को सुनकर श्रीराम झट से उठ गए। तो सीता ने उनका नमन करते हुए नीराजन प्रज्वलित करके उनकी आरती उतारी श्रीराम द्वार के समीप आये, तो सुमन्त झट से रथ ले आये और उन्होंने उसपर उन्हें आरूढ़ करा दिया। श्रीराम तेजस्वी सूर्य-से दिखायी दे रहे थे। लक्ष्मण ने (श्रीराम पर) छत्र धारण किया सुमन्त के हाथ में चामर थे। इस प्रकार जब श्रीराम अपने भवन से बाहर चले, तो जयजयकार स्वरूप मेघ गर्जन करता रहा। आगे-आगे वेत्रधारी वीर चले रहे थे। वाद्यों का वादन चल रहा था। मुकुट-मणियों जैसे बड़े-बड़े राजा (राजपुरुष) श्रीराम के पाँव लगे। श्रीराम के पीछे रथों के चलते रहने से धड़ धड़ाहट हो रही थी। उनमें श्रेष्ठ-श्रेष्ठ युवराज विद्यमान थे। दोनों ओर हाथी ठाटबाट के साथ चल रहे थे आगे-आगे बड़े बड़े महावीर चल रहे थे। वहाँ घुड़सवारों के दल थे। उनके घोड़े लाघवता के साथ (लीलया) नाच रहे थे। महामाण्डलिकों (सूबेदारों, सामन्तों) के समुदाय जयजयकार करते हुए गरज रहे थे, अश्वों, गजों, रथों के समुदाय चल रहे थे। पदाति सैनिक चल रहे थे। इस प्रकार है है कर, थय-थय ध्वनि उत्पन्न करती हुई चतुरंग सेना जयजयकार करती हुई चल रही थी। अनगिनत संख्या में ध्वजाएँ, पताकाएँ फहर रही थीं। तुरों के समूह डोल रहे थे, वीर सिंहनाद कर रहे थे। भाट श्रीराम के समर्थन में स्तुतिपाठ कर रहे थे। अयोध्या के समस्त नागरिक जन (यह जानकर एक-दूसरे से) सहर्ष कह रहे थे कि देखिए राजा ने श्रीराम को अभिषिक्त कराने हेतु आमंत्रित किया है। स्वयं नर-नारी जन घर-घर में यही समाचार कहते थे कि श्रीराम अपने जयजयकार के गर्जन के साथ राज्याधिकारी अर्थात् राजा बनाये जा रहे हैं। मार्ग सुगन्ध युक्त जल से सींचे गए थे। नाना प्रकार की वन्दनवारों, झाँकियों से लाड़-प्यार, परम आनन्द और प्रसन्नता के साथ नगर को सजाया गया था। (सब ओर) बड़ी भारी भीड़ में कन्धे से कन्धे छिल रहे थे श्रीराम के दर्शन करने हेतु कुछ एक ऊपरवाले खण्डों और गोपुरों में चढ़ गए कुछ उन्हें खिड़कियों-द्वारों से देख (लेने का प्रयास कर) रहे थे। उन्हें श्रीराम से बहुत प्रेम था। नगर के अन्दर आह्लाद छा गया था। घर-घर (स्वर्ण वर्तन एवं पुष्पमाला सहित) ध्वज-विशेष खड़े कर दिये गए थे। नर नारी जन हाथों में निछावर करने हेतु वस्तुओं को लेकर दीप से श्रीराम की आरती उतार रहे थे। श्रीराम के मुख को देखते ही दर्शकों को परमानन्द सहित सुख हो रहा था उनके नेत्र अपलक अवस्था को प्राप्त हो गए थे (उनकी टकटकी बँध गयी थी)। उनकी दृष्टि (आँखों) को और कोई (देखना) अच्छा नहीं लग रहा था श्रीराम स्वरूप मूर्ति को अर्थात् मूर्तिमान श्रीराम को देखकर देखनेवालों के नेत्रों की पलकें झँपना भूल गईं, उनके प्राण अपनी स्थिति में सुप्त-मुग्ध हो गये। समस्त इन्द्रियाँ श्रीराम में एकरस हो गई थीं रघुपति श्रीराम को आदर-पूर्वक देखने पर त्रिभुवन आनन्द से व्याप्त हो उठा। मूर्तिमान श्रीराम को देखने पर लोगों को अपने-अपने शरीर और घर का स्मरण नहीं हो रहा था, श्रीराम के मुख को देखते ही दु:ख का शमन हो गया और सुख तीनों लोकों में समा नहीं रहा था। (जान पड़ता था कि) हर्ष से हर्ष ही व्याप्त हो चुका था श्रीराम के मुख को देखकर दर्शकों का जीव भूख-प्यास को भूल गया (दर्शकों में कोई इच्छा शेष नहीं रही)। श्रीराम को देखकर आँखें आनन्द से ठण्डी हो गयीं। (कवि कहता है) श्रीराम के स्वरूप को देखकर, दर्शक के, अथवा नाम (का श्रवण उच्चारण करने) से (श्रोता-वक्ता के) तीनों प्रकार के ताप तत्काल नष्ट हो जाते हैं।

श्रीराम को देखकर राजा दशरथ की (दयनीय) अवस्था– राजा ने विविध प्रकार के स्वर उत्पन्न करनेवाले वाद्यों को सुना और अपने नाम के गर्जन के साथ श्रीराम आ पहुँचे। उस गर्जन को सुनकर रोने लगे। उन्होंने (अपने आप से) कहा– अब मुँह कैसे दिखाऊँ। जहाँ श्रीराम से जगत् को सुख होता था, उनके आने से वहाँ दशरथ को अत्यधिक दु:ख हो गया। कैकेयी ने (वर माँगकर) ऐसी रोक लगायी थी कि वे उनके मुख को नहीं देख सकते थे। जो श्रीराम सबके दु:ख आदि दूर करके शान्ति प्राप्त करते थे, उन्हीं से दशरथ को अत्यधिक ताप (जला देने वाला दु:ख) हो रहा था। वर वचन सम्बन्धी मेरी शपथ में मुझे ही उलझाकर कैकेयी ने मुझे अपार भ्रम में डाल रखा है। संसार में स्त्री का चरित्र अगम्य (समझा जाता) है। कैकेयी ने अपने को प्राप्तवरों के सम्बन्ध में बलात् हठ करते हुए पिता और पुत्र में शीघ्रतापूर्वक फूट पैदा की है। स्त्रियों का कृतित्व भयावह होता है श्रीराम का वन के प्रति गमन करना ही मुझ दशरथ की मृत्यु है। (फलस्वरूप) वह स्वयं वैधव्य से कष्ट को प्राप्त होने जा रही है। इस प्रकार की स्थिति को (सम्भव) जानकर राजा दशरथ अपार विलाप करने लगे तब श्रीराम वहाँ आ पहुँचे। उनके साथ लक्ष्मण थे।

(प्रासाद के अन्दर आते ही) श्रीराम द्वारा दशरथ और कैकेयी को नमस्कार करना– दशरथ को दण्डवत् नमस्कार करने के पश्चात् श्रीराम ने कैकेयी के चरणों पर मत्था टेका तब वह बोली– 'हे रघुनाथ, विजयी भव'। (उसे सुनकर श्रीराम को जान पड़ा कि माता कैकेयी के मुख से वाग्देवी सरस्वती सत्य ही कह रही है। अत: कैकेयी के दिये आशीर्वाद को (सूचित) जानकर श्रीराम ने शुभ शकुन से अभिव्यक्त इस बात के विषय में गाँठ बाँध ली कि मैं अब संसार में विजेता सिद्ध हो जानेवाला हूँ। (इस प्रकार से) उन्होंने आत्मानन्द के साथ अपने बाहुओं को ठोंका। श्रीराम के ऐसे उल्लास को देखते ही राजा दशरथ को भयावह मूर्च्छा आ गयी, वे श्रीराम के वियोग की अवस्था को समझ गए और उनसे बिलकुल बोला नहीं जा रहा था। (उन्हें इसका स्मरण हुआ कि दशकण्ठ रावण का वध करने हेतु गुरु वसिष्ठ ने मुहूर्त बता दिया है; अयोध्या का राज्य प्राप्त करना उसकी तुलना में सबसे छोटी बात है, तीनों लोकों में 'राम राज्य' ही श्रेष्ठ है समझिए कि राजा दशरथ द्वारा श्रीराम से बात करते नहीं बन रहा था। कैकेयी ने उनका मुँह बन्द कर दिया था। उनके द्वारा श्रीराम से वन गमन सम्बन्धी बात कही नहीं जा रही थी। उनसे यह नहीं कहा जा रहा था कि यहाँ (अयोध्या में) रहो न ही बोला जा रहा था कि वन के प्रति चले जाओ। वे श्रीराम के चरणों की ओर देख रहे थे और अपार दु:ख से दु:खी हो रहे थे। राजा को परम व्यथा हो रही थी। अत: उनका गला रुँध गया। उसमें से भीषण घर्राहट ध्वनि निकल रही थी। उनकी आँखों की पुतलियाँ अविचल हो गई।

श्रीराम द्वारा कैकेयी से प्रार्थना करना– राजा को व्यथित हुए देखकर श्रीराम ने कैकेयी से पूछा– राजा को किससे ऐसा अद्भुत दु:ख हो गया है, अथवा उनमें किसी भूत का संचार हो गया है, अथवा क्या मेरे अनजाने में मुझसे कोई अपराध घटित हुआ है ? अथवा क्या भरत ने कोई समाचार भेजा है ? अथवा शत्रुघ्न ने बात करते-करते कोई अन्याय किया है। (फिर भी लगता है कि) यह देह सम्बन्धी कष्ट का परिणाम नहीं है; न ही भूत के संचार से उत्पन्न तनाव है। वैसे ही कफ, वात, पित्त जैसे तीन प्रकार के दोषों में से किसी का उद्भव स्वरूप विस्तार (परिणाम) नहीं है। फिर श्रेष्ठ राजा को यह कौन व्यथा हुई है। फिर भी मैं तुमसे ठीक से पूछ रहा हूँ कि राजा को किस प्रकार का दु:ख हो रहा है– दैविक, दैहिक या मानसिक ? अथवा (कहो) क्या कोई (अन्य प्रकार का) असाधारण दु:ख है राजा

ने मुझको मंत्री सुमन्त को भेजकर बुला लिया है, अब मुझको उनकी क्या आज्ञा है, वह भी तुम पूछ लेना।

श्रीराम के क्रोध के विषय में कैकेयी की आशंका– तब कैकेयी बोली– 'रघुनाथ, तुम्हारे कारण ही राजा को सब प्रकार से व्यथा हो रही है। अब मैं वह भी बता दूँगी, पर तुम क्रोध बिलकुल न करो। मेरी बात को सुनकर तुमको अत्यधिक क्रोध आएगा। इसलिए पहले घटित बात बताने में मेरा मन आशंकित हो रहा है' कैकेयी की यह बात सुनकर श्रीराम ने उसके पाँव पकड़े और कहा– 'ऐसा कौन महापापी है, जो माता के वचन का विरोध करेगा। इसे निश्चय ही सत्य समझना कि तुम्हारी बात (आज्ञा) मेरे लिए प्रमाणभूत (सत्य) है, मैं गुरु वसिष्ठ की शपथ करता हूँ– हे माँ, इस विषय में कोई सन्देह हो, तो उसका पूर्णतः त्याग करो' श्रीराम का यह निर्णय सुनकर कैकेयी स्वयं उल्लसित हो गई और वह पिता के वचन सम्बन्धी पुत्र के कर्तव्य का उपदेश देने लगी, जिससे वह वन के प्रति गमन करे।

(कवि कहता है– हे श्रोता सज्जनो, आप सुनने की कृपा करें कि) कैकेयी की वह युक्ति क्या थी ? (वह जानती थी कि किसी प्रकार) श्रीराम को वनवासी बना लिया जाए (अतः वह चाहती थी कि) श्रीराम को पितृ वचन के पालन सम्बन्धी पुत्र के कर्तव्य के पाश में दृढ़ता से बाँध लिया जाए वर का वह उत्तम (धर्म) बन्धन है, जिससे राजा दशरथ को अपार दुःख हो रहा है रघुनन्दन श्रीराम वनवास सम्बन्धी प्रतिज्ञा करेंगे और पिता के दुःख का पूर्ण परिहार करेंगे। राज्य का त्याग करके वन की ओर जाने में श्रीराम को कोई दुःख नहीं होगा। वरन् लंकापति रावण का वध करने हेतु वन के प्रति जाने में उन्हें प्रसन्नता ही होगी।

मैं रचनाकार एकनाथ अपने गुरु श्रीजनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हूँ श्रीराम के कैकेयी के भवन में आगमन सम्बन्धी कथा का कथन अब तक हो गया। अनन्तर श्रीराम वन के प्रति गमन करेंगे, उसकी कथा आप ध्यान से सुनिए।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ-कृत 'श्रीभावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत अयोध्याकाण्ड का 'श्रीरामागमन' शीर्षक यह पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय ६

[कौसल्या-सान्त्वना]

श्रीराम के शपथ-पूर्वक विश्वास दिलाये जाने पर कैकेयी द्वारा वरों का उनसे इतिहास-कथन–

श्लोक– हे राम, राजा न तुमपर क्रुद्ध (अप्रसन्न) हैं, न ही उनके लिए कोई संकट प्रस्तुत है परन्तु इनके मन में तुम्हारे बारे में एक बात है। (फिर भी) वे उसे तुम्हारे भय से नहीं कह रहे हैं तुम इनके बड़े प्यारे हो। इसलिए तुमसे अप्रिय बात कहने में इनकी वाणी प्रवृत्त नहीं हो रही है। परन्तु तुम्हें उसके अनुसार वह कार्य करना उचित है, जिसकी उन्होंने मुझसे प्रतिज्ञा कर दी है। पूर्वकाल में इन्होंने मुझे आदरपूर्वक वर दिया था, पर अब वे इसके लिए किसी गँवार मनुष्य की भाँति शोक कर रहे हैं।

इस प्रसग के सन्दर्भ में (कहा गया है कि) इससे पहले श्रीराम ने स्वय गुरु वसिष्ट की शपथ ली। अतः कैकेयी सुख-सम्पन्न होकर पूर्वघटित बात को कहने लगी। वह बोली– 'राजा की ज्वर आदि के कारण कोई (बुरी) अवस्था नहीं हुई है। न किसी भूत का संचरण हुआ है, न ही कोई अन्य व्यथा है तुम्हारे सम्बन्धी ममता ने ही उनके लिए बहुत कठिनाई उत्पन्न कर दी है। राजा द्वारा अपनी इच्छा को तुमसे कहने पर, तुम्हारा मन झुलस उठेगा– इसलिए नृपवर कहने में आशंका कर रहे हैं। तुम राजा को पूर्णतः प्रिय हो। समझ लो कि अपने प्रिय व्यक्ति से उसके विषय में कोई भी अप्रिय बात किसी से बिल्कुल नहीं कही जा पाती। इसलिए राजा ने मौन धारण किया है राजा द्वारा पूर्वकाल में दिये हुए वचन को तुम अवश्य पूर्ण कर दो, तो तुम पितृ-वचन के परिपालन कर्ता का तीनों लोक वन्दन करेंगे सूर्यवंश में जनमे राजा रुक्मांगद द्वारा एकादशी व्रत का अपालन हो जाने पर उनके पुत्र धर्मांगद ने उन्हें अपना मस्तक अर्पित कर दिया तब वे बैकुण्ठ लोक में निवास करते हुए जगत् के लिए वन्दनीय सिद्ध हो गए। हे रघुनाथ राम, तुम तो सत्यवादी हो। जगत् में तुम्हारा प्रताप बड़ा (समझा जाता) है। इसलिए तुम पिता के वचन को सत्य सिद्ध कर दो, पिता के वचन का परिपालन कर लो राजा ने मुझे वरदान दिया था। पर समझ लो कि मेरी याचित बात उनके द्वारा मुझे नहीं दी जा रही है, फिर उनके द्वारा तुम्हें यह कैसे बताया जा सकता है कि तुम उसे दे दो ? उससे राजा लज्जायमान हो गए हैं राजा ने जो तुम्हें देना चाहा था, उसे अब वे कैसे कह सकते हैं कि मैं नहीं दूँगा। फिर तुमसे क्या कहा जाए, इस विचार से नृपवर मन में लज्जा को प्राप्त हो गए हैं' कैकेयी की यह बात सुनकर सत्य (वचन)-पालन कर्ताओं में शिरोमणि श्रीराम माता के पाँव लगकर गरजते हुए (उच्च स्वर में) क्या बोले ? (सुनिए)।

श्रीराम द्वारा कैकेयी को पितृ-वचन-पूर्ति का विश्वास दिलाना– श्रीराम बोले–

श्लोक– हा ! देवी ! धिक्कार है ! ऐसी बात कहना तुम्हारे लिए उचित नहीं है। मैं महाराज के कहने पर आग में गिर पड़ने को तैयार हूँ परम गुरु और हित कर्ता पिता के कहने पर मैं प्रखर (दाहक) विष पी लूँगा, समुद्र में भी कूद पडूँगा'। अतएव हे देवी, राजा द्वारा जिसकी कामना की गई है, वह बात कह दो। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ मैं (उनकी आज्ञा का पालन) करूँगा और यह बात नित्य प्रति ध्यान में रखो कि राम (परस्पर विरोधी) दो बातें कहना नहीं जानता।

जो गुरु-वचन और पितृ-वचन (आज्ञा) को पूर्ण नहीं कर सकता वह पूर्णतः पापी होता है वह मनुष्य के वेश (रूप) में कुत्ता ही है। उसका मुँह काला है। गुरु की बात (आज्ञा) के बहुत प्रतिकूल होने पर भी, जिसका मुँह यह कहता है कि मैं उसे (स्वीकार) नहीं करूँगा, वह मुँह नहीं, रौरव नरक कुण्ड है। वह व्यक्ति भारी पापी होता है, गुरु की बात का अविश्वास करनेवाला ऐसा मनुष्य जीवित हो, तो भी वह नरक वासी ही समझा जाए। प्रेत तक छूने से उससे डरते हैं। वह महापाप की राशि ही होता है। इसलिए (हे माता), मैं पितृ-वचन को अन्यथा (झूठा) बिलकुल नहीं करूँगा। यह निश्चय ही सत्य है, सत्य है। इस सम्बन्ध में मन में कोई सन्देह धारण न करो। यह बात मुझसे कृपा करके कह दो, राजा ने स्वयं तुम्हें कौन-से वरदान दिये हैं ? आरम्भ से उनको कह दो' श्रीराम की वचन को सत्य सिद्ध करने के विषय में ऐसी बात को सुनकर कैकेयी मन में उल्लास को प्राप्त हुई। तब वह वरदान सम्बन्धी उस प्रताप-पूर्ण बात को गरजकर अर्थात् उच्च स्वर में कहने लगी।

दो वरों की कथा–

श्लोक– हे राघव श्रीराम, पूर्वकाल में देवों और असुरों के महासंग्राम में बाण के लगने से

घायल हुए तुम्हारे पिता की मेरे द्वारा रक्षा की गयी, तो उन्होंने मुझे दो वर दिये थे हे राघव, यहाँ आज मैंने (उन दो वरों में से एक से) भरत का राज्याभिषेक और (दूसरे से) तुम्हारा दण्डकारण्य में गमन करना माँगा है। पूर्वकाल में देवो दैत्यों के युद्ध में समस्त दैत्य गुरु शुक्राचार्य के सहायक थे। तब राजा दशरथ देवों की सहायता के लिए और शुक्राचार्य से युद्ध करने के लिए मुझे साथ में लेकर गये देवों और दैत्यों में पूर्ण युद्ध हुआ; युद्ध में बहुत संहार भी हुआ; तो राजा दशरथ ने अपने दारुण (तीक्ष्ण) बाणों से दैत्यों को पूर्णतः नष्ट किया। राजा ने दैत्यराज वृषपर्वा को युद्ध-भूमि में रथ हीन कर डाला। फलस्वरूप रणभूमि में पैदल भागते हुए उसे राजा दशरथ ने बाणों से (आहत एवं) मूर्च्छित करके गिरा दिया। जब राजा ने वृषपर्वा को इस प्रकार मार से मूर्च्छित कर गिरा डाला, तो शुक्राचार्य ने उन्हें अपने (पीठ) पीछे (ओट में) रखकर दशरथ से क्रोधपूर्वक अत्यधिक विकट युद्ध आरम्भ किया। तब शुक्राचार्य ने चतुराई से बाण चलाते हुए राजा दशरथ के रथ की धुरा को छेदकर उन्हें रथहीन (-सा) बना दिया। वे युद्धभूमि में इस कारण कष्ट को प्राप्त हुए, इसलिए मैंने अपना बाहु चक्र में (धुरा के स्थान पर) डाल दिया। मेरे बाहु के अपने आधार से रथ धड़धड़ाहट के साथ चलता रहा। फिर राजा ने शुक्राचार्य के रथ को पीसकर चूरचूर कर डाला। उसके मस्तक से मुकुट गिर पड़ा। (वास्तव में) राजा दशरथ ने शुक्राचार्य को युद्ध में मार डालना चाहा, पर वह ब्राह्मण था, इसलिए उसकी रक्षा की (नहीं मार डाला)। इससे राजा दशरथ को सफलता प्राप्त हो गई; मेरे ही कारण राजा को जय प्राप्त हो गई।

वरों का विवरण– 'उस समय राजा ने अत्यधिक सन्तोष को प्राप्त होकर मुझे शपथपूर्वक दो वर प्रदान किये, उनमें से एक से मैंने भरत के लिए राज-पट्ट माँग लिया और एक से (दूसरे से) श्रीराम को वनवासी बनाना चाहा। मैंने राम के (तुम्हारे) लिए दण्डकारण्य वन के अन्दर गोदावरी के तट पर वल्कल स्वरूप वस्त्र धारण करके, जटाधारी बनकर निवास करना माँग लिया। ज्येष्ठ बन्धु को दूर भेजकर भरत सदा के लिए राज्य करता रहे- ऐसा विचार करनेवाली मैं कोई वैसी पापाचारिणी नहीं हूँ तुम मेरे निर्धारित किये हुए नियम (लक्ष्य) को सुन लो। मेरा ऐसा कोई अत्यधिक स्वार्थ-भरा विचार नहीं है। मेरा पुत्र भरत मध्यम स्वरूप की, चौदह वर्षों की अवधि में राज्य करेगा और तत्पश्चात् तुम्हें श्रीराम को अपना राज्य प्राप्त होगा। तुम स्वयं राज्य से अणु-भर- भी (धन आदि) साथ में नहीं ले जाओगे। यदि तुम्हें पिता का वचन प्रमाण-स्वरूप हो, तो तुम आज ही वन की ओर प्रयाण करो। (मृग-) चर्म लेकर वल्कल धारण करके जटाधारी हो जाओ और झट से वन के प्रति जाने के लिए (घर से) निकल जाओ। कन्द-फल स्वरूप आहार करते हुए तुम गोमती गोदावरी के तट पर निवास करो'।

पितृ-वचन के परिपालन के विषय में श्रीराम द्वारा अनुभूत एवं प्रदर्शित उत्साह– कैकेयी के उत्तर स्वरूप कथन को सुनकर श्रीराम हर्ष विभोर हो उठे। झट से वन के प्रति जाने हेतु निकलने में उन्हें हृदय में अपार प्रसन्नता हुई। श्रीराम के मन को यह सन्देह भी नहीं हुआ कि कैकेयी एक कपटी स्त्री है। उसकी बात को सत्य मानकर वे जगत् श्रेष्ठ श्रीराम विश्वासपूर्वक वन की ओर जाने हेतु चले। उन्हें (हाथ से) राज्य के चले जाने का कोई दुःख नहीं हो रहा था वरन् वन के प्रति जाने में (जाने के विचार से) परम सुख हो रहा था। उनका हर्ष बाहुओं के फड़क उठने में प्रकट हो रहा था वे वन के प्रति जाने के विचार से भी प्रसन्नमुख बने रहे थे। साथ ही उन्होंने माता से पूछा 'राजा मुझसे क्यों नहीं बोल रहे हैं ?' तो वह बोली– 'उन्हें अत्यधिक लज्जा आ रही है। उन्होंने पहले तुम्हें राज्य देना चाहा, फिर यह वे कैसे कहें कि तुम वन में चले जाओ। इस लज्जा के कारण उन्हें मौन स्वीकार करना

पड़ा इसलिए वे मुँह नहीं दिखा रहे हैं'। इस पर श्रीराम बोले– 'पिता के वचन को (सत्य समझकर) स्वीकार किया जाना चाहिए। तुम तो मेरी अपनी माता हो। तुम्हारी बात को न मानने पर मैं वेदों और शास्त्रों की दृष्टि से निन्द्य हो जाऊँगा। संन्यास परम्परा के अनुसार यह सीधी, अकुटिल बात है कि पिता के समान माता भी श्रेष्ठ होती है। इसलिए तुम्हारी बात भी मुझे सब तरह से बड़ी है। फिर वनवास में बड़ा सुख भी है। (पुत्र द्वारा) संन्यास ग्रहण करने पर पिता अपने पुत्र को नमस्कार करता है। पर संन्यासी तो अपनी माता का सिर झुकाकर वन्दन करता है। वह उसका आज्ञाकारी होता है' फिर श्रीराम बिना किसी सन्देह (और आशंका) से बोले– 'जिससे तुम माता को सुख हो जाए और पिता के वचन का भी पालन हो जाए, मुझे यह करना आवश्यक है।। जो तुम सचमुच मेरी पिता की (सर्वाधिक) प्रिय (पत्नी) हो, वही तुम मेरी (जन्मदात्री न होने पर भी) सगी माता (के बराबर) हो। तुम मन में कोई सन्देह धारण न करना। तुम्हारे कहने की दृष्टि से यह अनुकूल ही है'।

कैकेयी द्वारा अत्यधिक आनन्द से श्रीराम को गले लगाने पर उसका हृदय-परिवर्तन हो जाना– श्रीराम की ऐसी बात सुनते ही कैकेयी सुख-सम्पन्न हो उठी। उसके नयनों में आनन्दाश्रु उमड़ आये और उसने श्रीराम को गले लगाया। श्रीराम को गले लगाने से उसके अन्दर से विकल्प बाहर निकल गया, तो उसमें सद्भावना उत्पन्न हो गयी। (फलतः) उसने उसी भाव को प्रकट करने वाली यह बात कही। वह बोली– 'हे राम, तुम मन से निर्मल (छल कपट रहित) हो अब कुछ अन्य बोलते नहीं बन रहा है। मेरे आशीर्वाद से तुम्हारे अपने वनवास में तुम्हें पूर्ण विजय प्राप्त होगी' (उसने सोचा) राम अब सिंहासन पर नहीं बैठेगा, फिर मैं व्यर्थ ही क्यों कोई बात कह दूँ ? अपने पिता के (वचन की पूर्ति) हेतु यह अब शीघ्र ही वन की ओर चला जाएगा। राम अपने निर्णय में सत्यवादी है आज उसकी बड़ाई मेरी समझ में आ गई। यह पिता के वचन से दण्डकारण्य नामक वन के अन्दर चला जाएगा श्रीराम के वन-गमन (के निर्णय) को सुनते ही राजा दशरथ अचेत हो गए। उनके चरणों को नमस्कार करके राम स्वयं वन में रहने हेतु चले (जाने को उद्यत हो गए)। उन्होंने कैकेयी के चरणों पर मत्था टेका और कहा '(हे माता,) तुमने मुझपर पूरी कृपा की है, अब तुम मेरी माता कौशल्या को सान्त्वना देते हुए शान्त कर लेना और पिता दशरथ को कोई चिन्ता न करने देना', तदनन्तर उन दोनों की परिक्रमा करके वे वन के प्रति जाने के हेतु वहाँ से चले। कैकेयी का गला रुँध गया। राजा दशरथ उच्च स्वर में रुदन करने लगे। राजा की ग्लानि (भरे रुदन) को सुनकर भी धीरज धारण करते हुए श्रीराम वहाँ से चले। उनके मन में वन को ओर जाने के विचार से प्रसन्नता थी और सौतेली माता की बात के प्रति विश्वास था।

लक्ष्मण का अत्यधिक क्रुद्ध हो जाना–(यह देखकर) लक्ष्मण के मन में क्रोध आ गया। भौंहों को ऐंठते हुए वे श्रीराम के पीछे-पीछे चले। उनकी आँखों में क्रोध भरा था वे क्रोध की आग में तप्त हो उठे थे।

श्लोक– यह सोचकर कि बिना श्रीराम के जीवित रहने में कोई उत्साह अनुभव नहीं होगा, लक्ष्मण ने वनवास के लिए (श्रीराम के साथ) चले जाने का विचार (निर्णय) कर लिया।

लक्ष्मण का उद्देश्य (निर्णय) था कि श्रीराम के वन के प्रति जाने लगने पर मैं भी उनके साथ चला जाऊँगा। लक्ष्मण का यह निर्धारित विचार था। उन्होंने अपने मन में दृढ़ निश्चय किया कि मैं श्रीराम से अलग होकर आधा क्षण भी जीव-प्राणों सहित (अर्थात्) जीवित नहीं रहूँगा। उस राजभवन की सीमा को लाँघकर, श्रीराम अभिषेक पात्रों की परिक्रमा करके वन की ओर चले, तो लोग हाहाकार करने लगे

कैकेयी के भवन में अन्य रानियों का विलाप करना–

श्लोक– हाथ जोड़कर तब उन नरश्रेष्ठ के चले जाने पर अन्तःपुर में स्त्रियों के रुदन की आर्तध्वनि उत्पन्न हो गई।

कैकेयी के भवन में अन्य नारियाँ उसे कोसते हुए रोने लगीं। उन्होंने कहा 'यह कैकेयी दृढ़ता के साथ (हठपूर्वक) बुरा आचरण-व्यवहार करनेवाली है; (तभी तो) उसने श्रीराम को वन में भेज दिया' (मारे शोक के) कुछ एक अपने कानों को मरोड़ने लगीं, बालों को खींचकर तोड़ने लगीं कुछ एक अत्यधिक दु:ख से चीखती-चिल्लाती रहीं। (उन्होंने कहा–) 'राजा तो स्त्री से जीत लिये गए हैं (स्त्री के वश में हो गये हैं नहीं तो) उन्होंने श्रीराम को वन में कैसे भेज दिया।

श्रीराम का कौशल्या के भवन में आगमन और पिता दशरथ द्वारा कैकेयी को प्रदत्त वरों के विषय में कहना– उन स्त्रियों के रुदन को सुनकर श्रीराम वहाँ से वेगपूर्वक चले। वे वन-गमन सम्बन्धी समाचार कहने के लिए माता कौशल्या के भवन आ पहुँचे, यह मानकर कि माता की आज्ञा (अनुज्ञा) को प्राप्त न करने से (निर्धारित) कार्य बिना किसी बाधा के सफल नहीं हो पाएगा, वे स्वयं अपनी माता के भवन के प्रति आ गए (उस समय) समस्त श्रेष्ठ नागरिक जनों ने सोचा कि ऋषि वसिष्ठ राजा दशरथ के नियन्ता हैं। अत: वे वरिष्ठ गुरु के अधिकार बल से श्रीराम का राज्याभिषेक करें। वसिष्ठ की आज्ञा के सामने कैकेयी कैसी दीन है। राजा स्वयं अपने मुख से नहीं बोल पा रहे हैं। उन्हें भी निश्चयात्मक रूप में कोई कह दे। (किसी ने कहा–) श्रीराम के वन में जाने पर उनकी कीर्ति बड़ी वृद्धि को प्राप्त हो जाएगी। गुरु वसिष्ठ ने इसे निश्चय ही जानकर श्रीराम से गमन करते समय नहीं कहा कि वन की ओर न जाओ। (उसी समय) श्रीराम अपनी माता से यह कहने हेतु उनके भवन में आ गए कि वे शीघ्र ही वन के प्रति गमन करनेवाले हैं। उनको मन में वन गमन (के निर्णय) से आनन्द हो रहा था। श्रीराम ने अपनी माता को नमस्कार किया, तो उसने उन्हें प्रसन्न होकर गले लगाया (और कहा)– 'गुरु-पुष्य मुहूर्त पर अभिषेक के सम्पन्न होने से तुम त्रिभुवन के राजा हो जाओगे'। गुरु-पुष्य शुभ मुहूर्त किसी भाग्यवान् को ही प्राप्त हो पाता है, उसी मुहूर्त पर राजा दशरथ तुम्हारा अभिषेक कर रहे हैं अत: तीनों लोकों में तुम श्रीराम (श्रेष्ठ) राजा सिद्ध हो जाओगे। उस मुहूर्त का ऐसा कार्य-फल है कि जगत् में राम-का राज्य स्थापित होगा। निश्चय ही मुझे यह विदित हो गया है– तभी तो देव और मानव आनन्द मनाते हुए नाच रहे हैं। गुरु वसिष्ठ जिस अभिषेक-जल को (सिंचन करने हेतु) लाये हैं, उसमें ऐसा बल-प्रभाव है कि हे श्रीराम, उससे अभिषिक्त होने पर तुम्हारा राज्य त्रिभुवन में अविचल बना रहेगा' कौशल्या द्वारा इस प्रकार बताने पर श्रीराम ने कहा– 'जो बात हुई है, उसे तुम नहीं जानती हो, उसे धीरे से सुन लो। पूर्वकाल में राजा दशरथ ने प्रतिज्ञा (शपथ) पूर्वक कैकेयी को दो वर दिये थे। उनमें से एक से भरत को राज्यासन दिया है, तो एक से मुझ श्रीराम को वनवासी बना दिया है। कैकेयी ने शपथ में राजा दशरथ को उलझा दिया और अपने स्वार्थ को सिद्ध किया है, उसने राज्याभिषेक के लिए भरत को नियुक्त किया है और मुझे वन में भेज दिया है। उसने (वनवास की) काल मर्यादा निर्धारित कर दी है- मैं चौदह वर्ष की अवधि में दण्डकारण्य नामक निर्जन प्रदेश में फल मूलों का सेवन करते हुए गोदावरी नदी के तट पर निवास करूँ। राज्य (के धन आदि में) से अणु मात्र भी साथ में नहीं ले जाया जाए। (मूल्यवान) वस्त्रों और आभूषणों का त्याग करके मुझे कृष्ण वर्ण का मृगचर्म, वल्कल-स्वरूप वस्त्र स्वीकार करके जटाधारी वनवासी हो जाना है। राजा ने मेरे वन की ओर गमन करने

हेतु यथोचित मुहूर्त निर्धारित किया है। (यह तय है कि) मैं आज ही झट से यहाँ से निकल जाऊँ। मैं तुमसे आज्ञा लेने के लिए यहाँ आया हूँ'।

कौशल्या का विलाप– श्रीराम द्वारा कही ऐसी बात को सुनकर कौशल्या के जी (प्राणों) और मन में क्लेशमय शुष्कता छा गई। वह अचेतन होकर भूमि पर लुढ़क पड़ी अत्यधिक दुःख से उसकी वाणी कुण्ठित हो गई। आँखों की पुतलियाँ चक्राकार घूमने लगीं। उसका गला रुँध गया। साँस की तेज गति से पेट फटने जा रहा था। इस प्रकार उसके प्राणों पर संकट आ गया। देखिए, पुत्र-वियोग का यह आघात उसके कलेजे में ज़ोर के साथ थँम गया। पुत्र विरह के ऐसे शोक से उसकी देह मूर्च्छा को प्राप्त होकर गिर गयी। उस समय श्रीराम ने अपनी माता को भूमि पर मूर्च्छित पड़ी देखकर उठा लिया। उसके शरीर में कपड़ों में लगी मटमैली धूल को झाड़कर हटा लिया और फिर उसे अपने हृदय-कमल से अर्थात् गले लगा लिया श्रीराम द्वारा सचेत कर देने पर वह बोली 'हे राम, मुझे मरने दो। बेटे से बिछुड़कर जीवन बिताने में माँ को (कैसी) अत्यधिक व्यथा होती है'। देखो तो अब से आगे मैं श्रीराम का मुख फिर से कब देख सकूँगी। इस विचार से वह आक्रन्दन करते हुए चीख उठी उसके हृदय में दुःख व्याप्त हो गया था। साँप के सिर में काँटा गड़ जाए, पल्ली की पूँछ टूट जाए, मछली पानी से दूर (करायी) जाए, तब (वे प्राणी जिस प्रकार छटपटाएँगे) उसी प्रकार कौशल्या (को अनुभव हुआ और वह) छटपटाने लगी। (उसने सोचा) यदि मैं राजा को कपटी कहूँ, तो मेरा पातिव्रत्य व्यर्थ सिद्ध हो जाएगा। पति (की आज्ञा) का अवमान करना (उनके साथ) बड़ा अन्याय होगा। मैंने तो पति के वचन पर अपनी देह (उनके साथ) बेच दी है। कैकेयी पति को (मुझसे अधिक) प्यारी है। उससे मत्सर करने लगना मैं अपना ही बड़ा अपराध मानती हूँ। हे राम, मेरे लिए यह स्थिति पार करने (सहन करने) में अत्यधिक कठिन है। आज तक मुझे कैकेयी से तिल भर भी द्वेष नहीं रहा। पति की जिसपर कृपा हो, वह निश्चय ही मेरे लिए पूजनीय है। जब चील कैकेयी पर झपट-लपककर (उसके हाथ से) गर्भ उत्पन्न कर देने वाले प्रसाद को लेकर आकाश में चली गयी, तब मैंने अपने पति को सन्तोष प्राप्त करने हेतु अपने (प्रसाद-) पिण्ड में से आधा उसे दिया। तब से राजा दशरथ मुझपर असीम कृपा करते रहे हैं इस सम्बन्ध में राजा अन्याय-कर्ता नहीं (माने जा सकते) हैं। हे राम, यहाँ पर मैं ही अभागिनी हूँ कैकेयी को अपने पुत्र के प्रति मोह है। (यह स्वाभाविक है, अतः यदि उसने उसके लिए राज्य माँग लिया है, तो) इसमें उसने क्या अन्याय किया है। पर देखो, राम के वन में जाने के कारण मैं अकेली अभागिनी सिद्ध हो गयी हूँ'।

पितृ-वचन और माता की आज्ञा का पालन करने के विषय में कौशल्या का युक्ति-संगत सुझाव– हे राम, राजा के अभिवचन को शिरसावन्द्य मानकर, तुम वन में जाने के लिए प्रस्थान कर रहे हो। पर अब तुम मेरी बात (आज्ञा) का भी पालन करना चाहोगे, तो मैं अत्यधिक रहस्यमय बात कहूँगी। राजा का वचन सिद्धि को प्राप्त हो जाए। पर जिससे मेरे वचन का भी तुमसे पालन हो जाए, ऐसी कोई एक रहस्यमय बात है। देखो, मैं वह तुम्हें बता दूँगी। उससे पिताजी के वचन का परिपालन किया जाएगा और उसी से माता सुख को प्राप्त हो जाएगी। मुझे वह सब प्रकार से कहना है (या तुम मेरे लिए वही सब प्रकार से कर दो)'। (यह सुनकर) श्रीराम ने उसके चरणों पर मत्था टेका। (फिर वह बोली-) 'भरत को राज्य देकर तुम मेरे पास रहो। मेरी श्रृंगार-वाटिका में तुम चौदह वर्ष वनवास कर लोगे। समस्त सेवकों को दूर करके, राज्य और वैभव का त्याग करके तुम मेरी श्रृंगार-वाटिका में चौदह वर्ष वनवास

कर लोगे। तुम मंत्रियों से न मिलोगे, अपने प्रजाजनों से न मिलोगे और (इस प्रकार) मेरी शृंगार वाटिका में चौदह वर्ष वनवास करोगे। तुम घर की स्त्रियों से नहीं मिलोगे, अपने प्रिय जनों से नहीं मिलोगे। मेरी शृंगार वाटिका में रहकर चौदह वर्ष वनवास कर लोगे। राजा दशरथ से न मिलना। गुरु वसिष्ठ से न मिलना (इस प्रकार) तुम मेरी शृंगार वाटिका में चौदह वर्ष वनवास कर लोगे। राजा की आज्ञा तो अत्यधिक बड़ी होती है। अतः तुम (इन राजसी) वस्त्रों का त्याग करके वल्कलवस्त्र धारण करोगे; आभूषण उतारकर जटा भार धारण करोगे। (इस प्रकार यहाँ रहकर) हम दोनों फलों का सेवन करेंगे। तुम अकेले के साथ रहने पर मुझे घास का सेवन करने में भी परम सुख होगा। तुमसे अलग रहने पर मेरे लिए अमृत भी विष मात्र हो जाएगा'।

कौशल्या की युक्ति का राजाज्ञा में बाधाकारी होना– माता कौशल्या की इस बात को सुनकर श्रीराम उसके पाँव लगे और उसको आश्वस्त करते हुए अपने कर्तव्य को स्पष्ट करते हुए बोले– 'राजा की यह आज्ञा है कि मैं दण्डकारण्य में चला जाऊँ। तुम्हारी शृंगार-वाटिका में मेरा रहना पिता की आज्ञा का विरोधी होगा। तुम माया मोह से उत्पन्न भ्रम के कारण इस प्रकार कह रही हो। मुझे पिता की आज्ञा परम पूज्य है। इसलिए तुम मोह, ममता-जन्य भ्रम का त्याग करके मुझे परम (धर्म-संगत) आज्ञा दो। यदि तुम्हारी आज्ञा (अनुज्ञा) न हो, तो मुझे यश बिलकुल नहीं मिलेगा। इसलिए मुझे प्रसन्नता के साथ (वन के प्रति) जाने को प्रेरित करो'। यह कहते हुए श्रीराम ने उसके चरणों पर मत्था टेका। तब कौशल्या बोली– 'पिता की आज्ञा का उल्लंघन न करो, पर उससे भी माता (की बात को) अधिक बड़ी समझ लो। हे राम, मेरी बात को ध्यान से सुनो। यह वेदशास्त्र द्वारा भी अनुमोदित है'।

पिता की आज्ञा से माता की आज्ञा की महिमा का श्रेष्ठ होना–

श्लोक– दस ब्राह्मणों से एक उपाध्याय गौरव में अधिक बड़ा होता है। वैसे ही दस उपाध्यायों से गुरुता में पिता बड़ा होता है। दस पिताओं तथा समस्त पृथ्वी से भी एक माता जगत् में गौरव की दृष्टि से बड़ी होती है। (वस्तुतः) माता के समान कोई अन्य गुरु (बड़ा) नहीं हो सकता।

तदनन्तर कौशल्या स्वयं बोली– 'हे श्रीराम, ध्यान से सुनो ! मैं माता की वही महिमा बताऊँगी, जो वेदों द्वारा कही गयी है, अतएव अति गहन (अथाह) है। आचार्य की महिमा इस प्रकार (कही जाती) है कि एक आचार्य, अपने धर्म-कर्म में जो निपुण हैं, अति ज्ञानी हैं, ऐसे दस ब्राह्मणों के समान होता है। अपने-अपने कर्तव्य-धर्म-कर्म करने में श्रेष्ठ दस आचार्यों से जिसकी शक्ति अधिक (मानी जाती) है, वह एक ऐसा पिता है, जो (कर्तव्य के पालन हेतु) अपने पुत्र को बेच सकता है अथवा अपने से दूर भेज दे सकता है। इस नियमन शक्ति के विचार से यह निश्चय ही अधिक बड़ा होता है। विशेष गुणों से युक्त दस आचार्यों की तुलना में ऐसा पिता गुरुता के विचार से अधिक गौरव का पात्र होता है और ऐसे पिता से भी बड़प्पन के विचार से माता को दस गुना अधिक भक्ति करें। गर्भधारण, शिशु-पोषण की दृष्टि से माता का विशेष रूप से बड़प्पन होता है, इसलिए माता का पूजन करने की दृष्टि से गौरव पृथ्वी का-सा माना जाता है। यदि पिता पतित हो जाए, तो पुत्र निश्चय ही उसका त्याग करे। फिर भी यदि माता पतित हो जाए, तो भी शास्त्रों का मत उसके पूज्य होने का ही प्रतिपादन करता है। यदि पुत्र संन्यासी हो जाए, तो वह पिता का त्याग अवश्य करे। परन्तु शास्त्रों का मत यह है कि संन्यास धर्म के अनुसार भिक्षा माँगकर पुत्र माता का भरण-पोषण करे। हे राम, इस प्रकार माता, पिता की भाँति पूज्य होती है, इसलिए मेरी बात को भक्तिपूर्वक स्वीकार करो और वन के प्रति बिलकुल न जाओ। यदि तुम

मातृ-वचन को गौण (साधारण) समझकर पिता की आज्ञा का परिपालन करोगे, तो वह तुम्हारे लिए, मेरे वचन का उल्लंघन करने के कारण परम दूषण हो माना जाएगा'।

श्रीराम का उत्तर– इसपर श्रीराम कौशल्या से बोले– 'तुम श्रेष्ठता के कारण पूज्य हो इस विषय में मैं तुम्हें एक बात बताऊँगा। पूर्वकाल में पिता की आज्ञा के अनुसार परशुराम ने माता का वध किया उन्होंने पिता की आज्ञा का इसलिए उल्लंघन नहीं किया कि पिता अधिक पूजनीय होता है। पुत्र ने अपनी माता का वध किया– फिर भी इससे रेणुका अपने पुत्र परशुराम के प्रति क्षुब्ध क्रुद्ध नहीं हुई उसने पति की आज्ञा का पालन किया। इस कथा को तुम भी जानती हो, मेरे लिए पितृ-वचन पूर्णतः पूज्य है, वैसे ही तुम्हें भी पति की बात प्रमाण स्वरूप है। इसलिए उसका उल्लंघन करने से हम दोनों का अधःपात हो जाएगा'।

कौशल्या का विलाप–अपने पुत्र की बात को सुनकर कौशल्या बोली– 'हे राम, तुम्हारा वियोग मेरे लिए चौगुना बड़ा होगा। इसलिए मुझे तुम अपने साथ वन में ले चलो। इसलिए मेरी इस आज्ञा का तो पालन करो और मुझे अपने साथ वन में ले चलो'। यह कहते हुए वह श्रीराम के पाँव लगी और अत्यधिक दयनीय अवस्था में विलाप करने लगी। वह बोली 'हे राम, मैं क्या करूँ ? मुझे तो अभी मौत भी नहीं आ रही है– न ही मुझसे वियोग का दुःख सहा जा रहा है। इसलिए हर प्रकार से मुझे वन में ले चलो'। इसपर श्रीराम ने कहा 'माता को पुत्र के साथ वनवास के लिए बिल्कुल नहीं जाना चाहिए। (तुम्हारे वनगमन की) ऐसी बात को सुनते ही गुरु वसिष्ठ ऋषि क्षुब्ध हो उठेंगे। इसलिए मैं तुम्हें वनवास के लिए कैसे ले जाऊँ'। इस प्रकार अपने पुत्रधर्म की दृष्टि से श्रीराम ने अपनी माता को सान्त्वना दी, उसके चरणों में मत्था टेका और कहा– 'मुझे सब प्रकार से क्षमा करो'।

लक्ष्मण का क्रोधाविष्ट होकर उपाय सुझाना– कौशल्या की यह करुणाकुल उक्ति सुनकर लक्ष्मण स्वयं क्षुब्ध हो उठे। वे बोले– हे श्रीराम, मेरी बात सुनो (मान लो); वन के प्रति गमन मत करो। मेरे पास वह मार्मिक उपाय स्वरूप कवच है, जिससे दशरथ को परम सुख प्राप्त होगा, कौशल्या अपने मानसिक सुख को प्राप्त हो जाएगी और तुम्हें वन में नहीं जाना पड़ेगा। हे श्रीराम, तुम आज्ञा दोगे, तो मैं इस कार्य को सम्पन्न करूँगा। उस आयोजन को सुन लो। मैं तुम्हें अभी बता दूँगा। मैं कैकेयी का वध करूँगा, जिससे पिताजी राजा दशरथ को परम सुख प्राप्त होगा, जिससे माता कौशल्या सुख को प्राप्त होगी और तुम श्रीराम सिंहासन पर अभिषिक्त हो जाओगे। यदि कैकेयी के पक्ष में उसकी सहायता के लिए बड़े-बड़े देव भी आ जाएँ, तो भी मैं उनको नष्ट करूँगा। युद्ध में असुरों का निर्दलन कर डालूँगा और उनके रक्त (-मांस) से समुद्र को भर दूँगा। मैं लौह-शस्त्र से उसमें मांस को (काट काटकर) मिला दूँगा। पृथ्वी को नर हीन कर दूँगा यम लोक को उजाड़ कर डालूँगा और कलिकाल को डराते हुए कष्ट को प्राप्त करा दूँगा। यदि तुम श्रीराम मेरे साथ सहायक के रूप में हो, मैं कृतान्त के दाँतों को उखाड़कर गिरा दूँगा (खट्टे कर दूँगा); समस्त दुष्टों का निर्दलन कर दूँगा। मुझे निश्चय ही कोई भय नहीं (आ रहा) है। (हे राम), यदि तुम कहोगे कि यह (मेरा कथन धर्म-नीति-शास्त्र आदि से) प्रमाण रहित है, तो मैं कहता हूँ कि मेरा कथन श्रेष्ठ प्रमाण से युक्त है। वह प्रमाण यह है कि तुम श्रीराम ही दुष्टों का निर्दलन करने हेतु ब्रह्म के पूर्ण अवतार के रूप में भूतल पर आ गए हो। समझ लो कि मुख्यतः कैकेयी ही समस्त दुष्टों में पूर्ण रूप से अत्यधिक दुष्ट है। सुहृद्श्री अर्थात् सुहृदयता रूपी धनवैभव-शोभा का विध्वंस करनेवाली वही कैकेयी है, राजा दशरथ की प्रिया ही उनके प्राणों का संहार करनेवाली अर्थात् प्राणों का

हरण करनेवाली सिद्ध हो रही है। दुष्टों का निर्दलन करने के लिए यह शुभ मुहूर्त है, उसमें इस कैकेयी से सर्वप्रथम बोहनी (कार्यारम्भ) हो जाए। यह तो माता-पुत्र के (सम्बन्ध) में विघटन करनेवाली है, महापापिणी एवं दूसरों को कष्ट देनेवाली है। उधर वे राजा दशरथ दुःख से रो रहे हैं यह उनकी बात को नहीं मान रही है। अपने पति उन नृपवर द्वारा उसके पाँव लगने पर भी वह उनकी बात नहीं स्वीकार कर रही है। कैकेयी के मन में पिता पुत्रों में फूट डालने की दृष्टि से दृढ़ दुष्टत्व भरा है, श्रीराम को वह अन्य दिशा (में स्थित देश) में भेज रही है– यह अकेली ही परम खोटी दुष्ट है, इसका वध करने से जगत् में (सबको) सुख प्राप्त होगा, कौशल्या को राजा दशरथ प्राप्त होंगे और राम सिंहासन पर अभिषिक्त होंगे। अपने पति की बात को यह ठीक से नहीं देख रही है यह श्रीराम से द्वेष करनेवाली है, बड़ी हठीली है इसे मार डालने से पुण्यराशि प्राप्त होगी और तीनों लोकों में आत्मिक आनन्द की पुष्टि (विकास, उत्कर्ष) हो जाएगी। इसलिए हे राम, इस सम्बन्ध में मुझे अब आज्ञा दो'। यह कहकर लक्ष्मण ने उनके चरणों पर मत्था टेका। उनको अदम्य क्षोभ उत्पन्न हो गया था।

श्रीराम द्वारा लक्ष्मण को उपदेश देना– लक्ष्मण के लक्षण देखकर श्रीराम ने उन्हें (यह उपदेश देते हुए) सान्त्वना दी– 'मैं स्वयं तुम्हारे बल और शौर्य को पूर्णतः जानता हूँ। (हमें) तुम्हारी अद्भुत वीरवृत्ति (वीरता) का अनुभव प्राप्त है। चारों पुरुषार्थ तुम्हारे हाथों में हैं इतना होने पर भी तुम अपकीर्ति को अपने पास मत आने दो। पुरुषार्थ की दृष्टि से जो अति बलवान है, यदि वह माता को मार डाले, पिता को दुःख दे, तो यही हमारी अपकीर्ति (की बात) है। पिताजी की जो सब प्रकार से प्रिय है, वह तो हमारी सगी माता ही है उसका वध करना शास्त्रों के विचार से अधर्म है। यदि पिता दासी का हाथ थाम ले, तो वह भी पुत्र के लिए माता (के समान) ही होती है, इसलिए कैकेयी के विरोध में कुछ भी नहीं किया जाए। फिर उसे मार डालना कैसे चाहते हो। एक तो इसमें पिता की आज्ञा का उल्लंघन होगा, तिस पर माता का वध करना वह तो जगत् में घृणास्पद कर्म होगा; इससे तीनों लोकों में हमारी अपार निन्दा होगी। हे लक्ष्मण, सूर्यवंश में जन्म को प्राप्त होकर इतनी अपकीर्ति (कैसे) प्राप्त कर लें– यदि ऐसा आयोजन घटित हो, तो अपने स्वर्गवासी पूर्वज क्षुब्ध हो उठेंगे। छह (छः) महीने छुरी को शान पर चढ़ा (कर पैनी कर) लिया जाए और उससे घर की बुढ़िया को भोंककर मार डाले ! यदि कैकेयी को मार डालें, तो (समझ लो) वही अपकीर्ति हमों ने प्राप्त की।

शूरता ही प्रदर्शित करनी हो, तो उसे राक्षसों के सामने दिखा दें–(माना कि) तुममें पूरा-पूरा बल है, फिर भी स्त्री को मार डालने में कौन पुरुषार्थ (प्रदर्शित) होगा, पिता को भी दारुण दुःख देने में हमारा (नैतिक दृष्टि से) अधःपात ही हो जाएगा यदि मन में बल सम्बन्धी अविचल बड़ाई (का विचार) हो, तो फिर वन में जाने में कौन विपत्ति है ? (अतः हम वन में जाएँगे और) राक्षसों की टोलियों को मार डालेंगे और देवों के बन्धन खोल देंगे। हम स्वधर्म स्वरूप सेतु का निर्माण करेंगे, लंकापति दुष्ट रावण का निर्दलन करेंगे। तो हमारी कीर्ति त्रिभुवन में न समा पाएगी। (हे लक्ष्मण !) हम इस पुरुषार्थ को सिद्ध करें।

लक्ष्मण द्वारा श्रीराम से वन में ले जाने की प्रार्थना– श्रीराम की यह बात सुनकर सौमित्र लक्ष्मण ने श्रीराम को दण्डवत् नमस्कार किया, तो उन्होंने उनको गले लगा लिया। उससे लक्ष्मण को बड़ा सन्तोष हो गया। उन्होंने फिर से श्रीराम को दण्डवत् नमस्कार किया फिर से उनके चरणों का वन्दन किया और कहा 'मैं तुम्हारी सेवा करने और दुष्टों का संहार करने के लिए वन में (तुम्हारे साथ) आ

आऊँगा', वे फिर से नाचने लगे, पुनःपुन. श्रीराम के चरणों का वन्दन करते रहे। वे आत्मिक आनन्द के साथ गरजते हुए बोले– 'तुम ही मेरे पिता हो, तुम ही माता हो। हे श्रीराम, मुझे यह वचन दो। मुझे वन में ले चलो, वनवास में तुम्हारी सेवा करने के विचार से मुझे मन में आनन्द हो रहा है'

कौशल्या का सन्तोष और उसके द्वारा श्रीराम को वन में जाने की अनुज्ञा देना– श्रीराम की युक्ति (तर्क) संगत बातों को सुनकर कौशल्या मन में सुख को प्राप्त हो गयी और उसने श्रीराम के वन में न जाने के सम्बन्ध में अपनी हठ-भरी अवस्था (दृष्टि) का त्याग किया। श्रीराम द्वारा स्वयं कही हुई बात से लक्ष्मण को सुख और सन्तोष हो गया। लक्ष्मण इस प्रकार सुख-सम्पन्न हो गए, कौशल्या भी सुख-सम्पन्न हो गई इस प्रकार माता कौशल्या और बन्धु लक्ष्मण दोनों में सुख-संवाद हो गया। श्रीराम को भी इससे परम आनन्द हो गया।

(कवि कहता है कि मैं) एकनाथ ने अपने गुरु श्री जनार्दनस्वामी की कृपा से ब्रह्म स्वरूप जनार्दन श्रीराम की यह विनोद भरी बात कही। मैं एकनाथ अपने गुरु श्री जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हूँ, (उनकी प्रेरणा से) मैंने कहा कि किस प्रकार शोकावस्था में कौशल्या को सम्पूर्ण सुख प्राप्त हो गया। (अब मैं कहूँगा कि) कौशल्या सुख को प्राप्त होकर स्वयं श्रीराम का प्रयाण करा देगी। पुण्याहवाचन करके कौशल्या अब श्रीराम का वन के प्रति प्रयाण करा देगी। वह स्वस्तिवाचन कर देगी। उस कथा को ध्यान से सुनिए।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ कृत 'श्रीभावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत अयोध्याकाण्ड का 'कौशल्या-सान्त्वना' शीर्षक यह छठा अध्याय समाप्त हुआ

अध्याय ७

[सीता और लक्ष्मण का वन-गमन सम्बन्धी निर्णय]

श्रीराम के वनगमन सम्बन्धी निश्चय को देखकर कौशल्या द्वारा उनका स्वस्त्ययन करना– (श्रीराम की बात को सुनकर) कौशल्या बहुत प्रसन्न हो गई। श्रीराम के वन के प्रति (विधिवत्) गमन (का आयोजन) कराने हेतु उसने पुण्याहवाचन विधि सम्पन्न की। उस स्वस्त्ययन विधि के विषय में ध्यान से सुनिए।

श्लोक– श्रीराम को वन गमन के विषय में निश्चित रूप से उत्सुक जानकर कौशल्या ने उनके प्रस्थान की दृष्टि से 'स्वस्त्ययन' नामक विधि सम्पन्न करने का आयोजन किया। बुद्धिमती माता कौशल्या ने शोक का त्याग करके पवित्र जल से आचमन किया और वह श्रीराम के मंगल के उद्देश्य से मंगलाचार करने लगी। विशाल लोचना कौशल्या ने श्रीराम के मस्तक पर चन्दन (तिलक) लगाया और प्रत्यक्ष शुभ फल देनेवाली विशल्यकारिणी नामक औषधि भी (उनके पास) रख दी। तदनन्तर कौशल्या ने श्रीराम की रक्षा के लिए मन्त्रों का जाप किया। उस शुभ व्रत-धारिणी ने देवों का विधिवत् पूजन किया और उन्हें नमस्कार किया।

श्रीराम को वन में निवास करने (वनवासी होने के बारे) में अत्यधिक आनन्द हो रहा है, यह निश्चित रूप से जानकर कौशल्या ने उन्हें स्वस्त्ययन नामक विधि सम्पन्न करते हुए वन में भेज दिया।

हाथ पाँव धोकर कौशल्या ने शुद्ध जल का आचमन किया और श्रीराम को विजय-प्राप्ति हेतु देवताओं का पूजन करवाया। अत्यधिक भक्तिपूर्वक उसने फूलों तथा चन्दन से भगवान् विष्णु का पूजन किया. गरुड़ ध्वज भगवान् नारायण को साष्टांग नमस्कार करके वह बोली– 'हे भगवान्, वन में तुम मेरे राम की रक्षा करो'। उसने उन औषधियों को झट से लाकर श्रीराम की बाँहों में बाँध दिया, ताकि (उनके प्रभाव से) अनेकानेक स्थानों के जल का सेवन करने पर भी कोई रोग पैदा ही न हो पाए। उसने श्रीराम के हाथों में उन औषधियों को भी लाकर बाँध दिया, जिन्हें देखते ही राक्षस जी-जान लेकर निश्चय ही भाग जाते हैं। कौशल्या ने स्वयं समस्त देवताओं से इस हेतु से प्रार्थना की कि श्रीराम वनवास (की अवधि) में नित्य बिना किसी विघ्न-बाधा के रहते हुए विजय को प्राप्त हों।

कौशल्या द्वारा श्रीराम की रक्षा करने की ब्रह्मा आदि देवों से प्रार्थना करना– ब्रह्माजी जो जगत् के (निर्माता होने कारण) गुरु अर्थात् सर्वश्रेष्ठ देव हैं, वे श्रीराम की रक्षा करें। देवी पार्वती सहित भगवान् शिवजी मेरे श्रीराम की रक्षा करें। तीनों लोकों के जो स्वामी हैं, वे भगवान् विष्णु मेरे राम की रक्षा करें। वन के अन्दर उसके विचरण करते रहते, वे अनवरत दिनरात उसके सहायक बने रहें. श्रीराम के वनवास (की अवधि) में ऋषिगण उसके सहायक हो जाएँ, सिद्धचारण उसके सहायक हो जाएँ, मरुद्गण उसके सहायक हो जाएँ। पूषा, भग, अर्यमा, धाता, मित्र, चन्द्र, यम आदित्यदेव, वरुण, सद्भाग्य देव, विधाता (जैसे देव) श्रीराम की वन में रक्षा करें।

कौशल्या द्वारा एकादश रुद्र आदि देवों से प्रार्थना करना– ग्यारह रुद्र, चौदह इन्द्र, भगवान् उपेन्द्र विष्णु पद-पद पर उसका रक्षण करें। सात समुद्र और (क्षीरसागर में शेष पर शयन करनेवाले) भगवान् नारायण उसके सहायक हों। चारों वेद, चौदहों विद्याएँ नित्य श्रीराम के सहायक बनें (समस्त) मन्त्रों के अधिष्ठाता देव, उनकी मूर्तियाँ, मंत्रों के अनुवाद (व्याख्याकार देव) श्रीराम की नित्य रक्षा करें वेदों में से अथर्व वेद के मंत्र अत्यधिक कठोर हैं। वे श्रीराम को विघ्न रहित बनाने हेतु वन में पूर्णतः सहायक हो जाएँ। सप्तर्षि, ब्रह्मर्षि और देवर्षि श्रीराम की रक्षा करें। हे (देवर्षि) नारद, मैं आपके पाँव लगती हूँ। आप मेरे श्रीराम की रक्षा करें। महाक्रूर शनि और मंगल, राहु और केतु तथा गुरु, शुक्र ग्रह श्रीराम के लिए वक्र (-दृष्टि अतएव कष्टप्रद) न हों। वे दिन-रात उसकी रक्षा करें। नक्षत्र और नक्षत्र-पति चन्द्रमा और ध्रुव श्रीराम की रक्षा करें। हे सप्तर्षियों सहित अरुन्धती, आप श्रीराम स्वरूप मूर्ति की रक्षा करें। गिड़गिड़ाहट को प्राप्त होकर, मैं बिजलियों से प्रार्थना करती हूँ– आप श्रीराम पर न गिरें; नाना प्रकार के दिव्य तेज के साथ आप श्रीराम की रक्षा करें। भेड़िये, सियार, सिंह, बाघ, रीछ, लकड़बाघे, वन्य गधे, (वन्य) भेड़े, सर्प, शार्दूल (जाति के बाघ विशेष) और वानर भी रामचन्द्र की रक्षा करें उन्मत्त भैंसे, उन्मत्त हाथी, हिरन, सूअर और दिग्गज (दिक्पाल हाथी), (स्वाँग धारण करके) सानन्द नृत्य करनेवाले विविध प्रकार के वनदेव भी रघुराज राम की रक्षा करें। अग्नि-मुख (मुख में से आग की लपट निकालनेवाले) कठोर नखों के धारी अति महापक्षी, बाज़ गीध, उल्लू, चील भी रामचन्द्र का रक्षण करें। पानी में रहनेवाले मत्स्य, घड़ियाल बड़े बड़े मकर वनवास (की अवधि) में मेरे श्रीराम की निरंतर रक्षा करें। यक्ष, राक्षस, शिवजी के (जो) सेवक (हैं, वे) पिशाच भी मेरे रघुकुलतिलक राम का अवश्य रक्षण करें. रघुकुलतिलक श्रीराम के मार्ग में चलते रहते, काँटे नुकीली नोक से रहित (कण्टक हीन) हो जाएँ मच्छर, मक्खियाँ, बर्रें, बिच्छू विषयुक्त होते हैं, वे उससे मुक्त होकर श्रीराम के लिए विषहीन बन जाएँ। गमन, शयन, भोजन में पृथ्वी श्रीराम की सहायक हो जाए और समझिए कि

स्नान, प्राशन (पान), मार्जन (धुलाई-पुँछाई) में जल उनका सहायक हो जाए। रघुनन्दन श्रीराम के लिए अन्धकार को दूर करने में प्रखर प्रकाश तथा जठराग्नि को प्रदीप्त अर्थात् भूख को वृद्धिगत करने और वन के अन्दर ठण्ड को दूर करने में अग्नि पूर्णतः सहायता प्रदान करे। श्रीराम द्वारा वनवास के लिए प्रयाण करने पर पाँचों प्राण (-देवता) उसके सहायक हो जाएँ। उनके द्वारा विकट युद्ध करने लगने पर वायुदेव अपने सम्पूर्ण बल के साथ उसकी सहायता करें। हे आकाश, श्रीराम के वनवास में तुम उसकी सम्पूर्ण सहायता करो। उसके मन में अल्प-सी चिन्ता का फेरा (चक्कर) प्रविष्ट न होने दो। दिशाएँ और उपदिशाएँ परमेश्वर श्रीराम को सहायक हो जाएँ। उनके हृदय में अपने चित्स्वरूप विलास को प्रदर्शित करते हुए तुम चिन्ता का गला घोंट दो। ऋतुएँ, महीने, संवत्सर, लव-निमेश आदि (कालांश), तिथियाँ, होरा (घण्टा), दिन, मुहूर्त, दिनरात श्रीरामचन्द्र की रक्षा करें। इनके अतिरिक्त, जो-जो देवी-देवता सृष्टि तत्त्व हों, वे अपनी सामर्थ्य सहित वनवास में श्रीराम के सहायक हों। मैं तुम्हारी दासी हो गयी हूँ। (हे श्रीराम !), जब इन्द्र वृत्रासुर का वध करने हेतु चले, तो देवगुरु बृहस्पति ने उनके विजयार्थ (जो जो) स्वस्त्ययन आदि मंगल विधियाँ सम्पन्न कीं, वे सब मंगल की कामना-विधियाँ तुम्हारे पास दिन-रात रहें, गरुड़ जब अमृत (की प्राप्ति एवं वहन) के हेतु चला– तब उसकी माता विनता ने उसके लिए मंगल विधियाँ सम्पन्न कीं; वे मंगल विधियाँ तुम्हारे पास दिन रात रहें। शिवजी जब त्रिपुर का संहार करने हेतु चले, तब देवी उमा ने उनके विजयार्थ मंगल आचार सम्पन्न किये, वे सब मंगल आचार तुम्हारे पास दिन-रात रहें। भगवान् विष्णु ने मुर दैत्य का मर्दन किया। तब उससे पहले देवी रमा ने उनको लक्ष्य करके जो-जो मंगल विधियाँ सम्पन्न कीं, वे सब (मंगल विधियाँ) तुम्हारे पास दिन-रात रहें। श्रीशिवजी अपने उग्र महाक्रूर जलचर, भूचर, खेचर (आकाशगामी) अनुयायियों सहित श्रीराम की सहायता करें। मैं उनकी दासी हूँ (हे श्रीराम !) वामन तुम्हारी वन में रक्षा करें, श्रीजनार्दन जन-समाज में रक्षा करें, मधुदैत्य का वध करनेवाले भगवान् मधुसूदन (विष्णु) निरंजन (अरण्य या उजाड़ प्रदेश) में सम्पूर्ण रूप से तुम्हारी रक्षा करें। भगवान् नारायण (जो जल में निवास करते हैं) तुम्हारी जल में रक्षा करें। संकर्षण स्थान (भूमि) पर रक्षा करें। जो अभक्तों को विदीर्ण, छिन्न-भिन्न कर डालते हैं, वे सिंहवदन अर्थात् नृसिंह युद्ध में तुम्हारी रक्षा करें। शेषशायी भगवान् विष्णु शयन में (निद्रा में), शय्या में तुम्हारी रक्षा करें। शिवजी श्मशान स्थल में रक्षा करें। देखो, विदेह चित्सुख स्वरूप भगवान् सुषुप्ति अवस्था में तुम्हारी रक्षा करें। तुम रघुनाथ राम जब वन में निवास करते रहोगे, तब तुम्हारा वीर्य और धैर्य नष्ट न हो, इस दृष्टि से भगवान् अच्युत तुम्हारे वन में विचरण करते रहते तुम्हारी रक्षा करें। आगम-निगम (वेद आदि धर्मग्रन्थ) तुम्हारी रक्षा करें, स्थावर-जंगम (अचल चल के रक्षक देव) तुम्हारी रक्षा करें, भगवान् पुरुषोत्तम तुम्हारे दुर्गम संकटों का निवारण करें। जन-वनों (जनसमाज और वन के निवासियों) के लिए जो जीवन-स्वरूप हैं, जो निरंजन के अपने जीवन स्वरूप हैं, वे भगवान् जनार्दन तुम्हारी रक्षा करें। मैं इनको दण्डवत् नमस्कार करती हूँ।

माता कौशल्या का करुणा कोमल हृदय– (कौशल्या बोली,) वन में रघुनाथ राम की रक्षा करने की प्रार्थना मैंने समस्त देवों देवताओं से की है, समस्त भूतों (पंच महाभूतों, प्राणियों) से की है, अतिरिक्त भगवान् अच्युत (नारायण) से की है। (कवि कहता है– इस प्रकार प्रार्थना करते हुए) कौशल्या की आँखों में आँसू पूर्णतः भर आये। वह बार-बार उन्हें गले लगाती रही। (एक तो) श्रीराम तो जगत् के लिए अपने आत्मीयता-स्वरूप थे और (दूसरे) तिस पर कौशल्या माता को मन में अनुभव होनेवाला

प्यार (और दयाभाव) था। वह उनकी कृपालु माता थी। इसलिए श्रीराम को देखते रहते उसकी इच्छा पूरी नहीं हो रही थी। वह उनकी ऐसी कृपालु माता थी कि (अत्यधिक आत्मीयता के कारण) उनके मुख को सहेलते रहते उसका मन सन्तोष को प्राप्त नहीं हो रहा था। मुख का चुम्बन करते रहते उसका मन अघा नहीं रहा था, उन्हें हृदय से (गले) लगाते रहते उसे तुष्टि नहीं हो रही थी। मुँह से उनका गुणगान करते रहते उसकी इच्छा पूरी नहीं हो रही थी। आँखों से उनको देखते रहते उसकी मनोकामना पूर्ण नहीं हो रही थी। वह ऐसी पुत्र सम्बन्धी कृपा-भरी माता थी कि हृदय में उनका ध्यान करते रहते उसका मन अघा नहीं रहा था।

श्रीराम द्वारा माता को दण्डवत् नमस्कार करना– (तदनन्तर) श्रीराम ने स्वयं (कौशल्या के) पास आकर उसकी तीन बार परिक्रमा की और उसके चरणों का वन्दन करके वन की ओर प्रयाण किया। माता के मुख को देखकर वे पुनःपुनः उसको नमस्कार करते हुए पुनःपुनः आगे चले जाते, फिर दण्डवत् प्रणाम करते आगे बढ़ जाते थे। उनके मन में अपनी माता से अपार प्रेम था।

कौशल्या की आत्मीयता (श्रीराम के प्रति)– श्रीराम का मन तो प्रेम और दया से कोमल था। इसलिए माता को ऐसी आत्मीयता को देखकर उनकी आँखों में आनन्दाश्रु भर आये और भावावेग से उनका गला रुँध गया। यह देखते ही कौसल्या ने झट से श्रीराम को गले लगाया। फिर उनके भालप्रदेश पर भाल घिसकर उनके चरणों से वह दृढ़ता से लिपट गई। (वह बोली-) 'हे राम, विजयी होकर तुम वन से अयोध्या आ जाओगे। पर क्या मैं तुम्हारे इस श्रीमुख को (तब) देख सकूँगी ? मैं तुम्हारे श्रीमुख को फिर से देख लूँगी, तभी मेरे नयनों को सन्तोष होगा' यह कहते हुए उसने जी-प्राणों से उनको गले लगा लिया। उससे श्रीराम का इस प्रकार वियोग कर देनेवाला गमन सहा नहीं जा रहा था। माता कौशल्या का श्रीराम से परिपूर्ण प्रेम था; इससे उसकी आँखों में आँसू पूर्णतः उमड़ आये। उनसे श्रीराम के चरणों का मानों प्रक्षालन हो गया; वैसे ही उसके अपने दुःख को भी धोया अर्थात् आँसू बहाते हुए अन्दर से प्रकट किया गया, वह उससे मुक्त हुई।

आकाशवाणी से गर्जन– तब आकाशवाणी का गर्जन हुआ- 'हे जननी, श्रीराम वन में अपने कार्य में विजय प्राप्त करेंगे, वे त्रिभुवन के महान राजा सिद्ध होंगे। अतः तुम दुःख न अनुभव करो। श्रीराम ब्रह्माजी आदि देवों के लिए वन्द्य हैं; श्रीराम दैत्यों-दानवों के लिए वन्द्य हैं, श्रीराम समस्त मनुष्यों के लिए वन्द्य हैं। श्रीराम स्वयं ही परब्रह्म हैं। श्रीराम स्वयं परत्पर परमात्मा हैं। श्रीराम स्वयं स्वतन्त्र अर्थात् किसी के अधीन नहीं हैं। श्रीराम स्वयं मात्र चित्स्वरूप हैं। श्रीराम स्वयं परब्रह्म हैं। श्रीराम सगुण हैं, वैसे ही गुणातीत (निर्गुण) हैं। श्रीराम जीव तथा शिव (की सीमाओं) से परे हैं। श्रीराम स्वयं नित्य हैं। निश्चय ही श्रीराम परब्रह्म हैं। श्रीराम के लिए न कोई सुख है, न दुःख है। जो उन्हें सुख-दुःख अनुभव करनेवाले मानते हैं, वे निरे मूर्ख हैं' ऐसी आकाशवाणी को सुनकर कौशल्या को सुख हो गया। उसके हृदय में हर्ष पूर्णतः छा गया।

कौशल्या द्वारा श्रीराम का आनन्द के साथ स्वस्त्ययन करना– इस प्रकार की आकाशवाणी को सुनकर माता कौशल्या और पुत्र श्रीराम को परम सुख हो गया। कौशल्या के मन को संघर्षमय दुविधा तथा उससे उत्पन्न दुःख दूर हो गया। इसलिए यह उन्हें प्रसन्नता पूर्वक वन में भेजने के लिए तैयार हुई उसके मन के संकल्प और विकल्प (सन्देह) लोप को प्राप्त हो गए; उसके मन का द्वन्द्व और उससे उत्पन्न दुःख का लोप हो गया। इसके फलस्वरूप कौशल्या को श्रीराम के वन के प्रति जाते समय परम

हर्ष अनुभव हुआ। (कवि कहता है-) मैं अपने गुरु-स्वरूप ब्रह्म श्री जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हूँ. (मैं इस कथा का कथन करते हुए यह बता रहा हूँ कि) कौशल्या ने स्वयं श्रीराम की आरती उतारकर आनन्द के साथ श्रीराम का वन के प्रति प्रयाण करा दिया। जिस प्रकार कौशल्या ने श्रीराम के लिए स्वस्त्ययन विधि की, उसी प्रकार लक्ष्मण के लिए भी की और उन दोनों को वन में भेज दिया। अपनी माता के पाँव लगकर और उसकी परिक्रमा करके श्रीराम शीघ्रतापूर्वक वन के प्रति जाने हेतु अपने भवन आ गए।

श्रीराम द्वारा सीता को वनवास सम्बन्धी समाचार बताना– सीता की यह धारणा कि श्रीराम राज्याभिषेक समारोह के लिए गाजे-बाजे के साथ आएँगे, तो उनकी आरती उतारने के हेतु सीता स्वयं उसकी सामग्री सजाकर प्रतीक्षा कर रही थी। तब उसने श्रीराम को देखा– उनके साथ न छत्र था, न चामर थे न ब्राह्मणों द्वारा उनका जयजयकार किया जा रहा था, न ही उसने वाद्यों का गर्जन सुना। श्रीराम के पाँव लगकर उसने आदरपूर्वक उनसे पूछा– 'मैं राज्याभिषेक के तिलक आदि किसी चिह्न को नहीं देख रही हूँ, फिर आपको विलम्ब क्यों हुआ। हे रघुनाथ, मैं देख रही हूँ कि आपका अभिषेक तो सचमुच नहीं हुआ है; पर बिना राज्य के आपको प्रसन्नता हो रही है। इस सम्बन्ध में आप बताइये। श्रीराम का राज्याभिषेक तो होने से रहा। फिर उन्हें अति दूर वन में गमन करना पड़ रहा था। फिर भी श्रीराम अनमने नहीं हो गए थे। उन्हें पिता के वचन की पूर्ति से प्रसन्नता हो रही थी। (एक तो) श्रीराम के अकेले वन में (जाने के निर्णय) से माता कैकेयी सुख को प्राप्त हो गई थी; (दूसरे) पिता दशरथ अपने वचन का निर्वाह कर सके थे। श्रीराम को यही आनन्द (का विषय) था। श्रीराम ने कहा 'हे सीता, सुन लो। (पूर्वकाल में) पिताजी श्रीदशरथ ने माता कैकेयी को शुक्राचार्य से किये युद्ध में विजय प्राप्त करने पर दो वर दिये थे। दैत्यगुरु शुक्र ने राजा के रथ को भग्न कर डाला, तो कैकेयी ने उसके पहिये (की धुरा) में अपना हाथ डाला। उससे राजा दशरथ विजयी हो गए, तब उन्होंने वर देने की बात कही थी। कैकेयी ने आज उन्हीं वरों को स्वयं माँग लिया। उनमें से एक के अनुसार मुझे वन के अन्दर जाना (जाकर रहना) है। मुझे शीघ्रता से आज ही प्रयाण करना है। (उसकी माँग के अनुसार) मुझे अपने साथ राज्य (के धन आदि में) से अणु भर भी नहीं लेना है। राजा की इसी आज्ञा को प्रमाण-भूत समझकर मुझे आज शीघ्र ही प्रयाण करना है। कैकेयी ने दूसरे वर में राजा से भरत का राज्याभिषेक करने की माँग की। उसी की कालावधि चौदह वर्ष है। तदनन्तर मुझ राम को राज्य मिलेगा। हे जानकी, यह यही बात हुई है अब मुझे वन में निवास करने हेतु (आज के) गुरु-पुष्य सुमुहूर्त पर निकलना है। इसलिए मैं सचमुच तुमसे विदा लेने आया हूँ'।

श्रीराम द्वारा सीता को उपदेश देना– 'तुम माता कौशल्या के पास रहो। माता कैकेयी से द्वेष न करना। मैं तुम्हें यह रहस्य बता रहा हूँ कि उसी के कारण हमें बड़ी कीर्ति प्राप्त होनेवाली है। कैकेयी का वरदान मेरे लिए प्रसन्नता का विषय है. (आगे चलकर) समुद्र-जल पर पाषाण तैर जाएँगे। हमें उसी के कारण यह महत्ता प्राप्त होनेवाली है। इसने मुझे वन में भेज दिया है सही, पर इसके द्वारा मुझे इसने प्रताप का भण्डार प्रदान किया है। (समझ लो कि) इसके ऐसे कहने से ही वनवास के समय त्रिभुवन में राम का राज्य ही प्रतिष्ठित होनेवाला है। इस प्रकार की स्वार्थ भरी अर्थात् अपने लाभ की बात को जानकर मुझे वन में जाने में आनन्द हो रहा है। तुम इसे निश्चय ही समझकर माता कैकेयी से बिलकुल द्वेष न करना। अपने श्वसुर और सास को श्रीनारायण-लक्ष्मी जैसे मानकर उनकी ध्यान से और सद्भाव

से स्वयं सेवा करो। लक्ष्मण की सगी माता सुमित्रा को तुम कौशल्या से अधिक (बड़ी) मान लो और श्रद्धापूर्वक उसकी प्रतिदिन सेवा करते हुए उसे सुख सम्पन्न कर देना। मेरी आज्ञा को तुम जैसे प्रमाण मानती हो, वैसे ही भरत की आज्ञा को समझ लो। मन में कोई सन्देह न रखना पति और देवर में कोई अन्तर न मानना। मेरी ऐसी आज्ञा है कि तुम अपने मायके न जाओ; अपने प्रासाद में भी अलग न रहो नित्य माता कौशल्या के पास ही रहो। जब मेरा यहाँ पर पुनः आगमन हो तब तक मेरा ध्यान करती रहो मुख से मेरे नाम का उच्चारण (जाप) एवं स्मरण करती रहो; विस्मरण न होने दो रात दिन मेरा ध्यान करने से तुम्हें जो सुख होगा, उसकी उपमा किसी से नहीं दी जा सकती मेरे ही नाम के स्मरण से तुम विरह के दुःख को भूलती हुई सुख को प्राप्त हो जाओगी'।

सीता का दुःख और उसकी श्रीराम से विनती; वनवास के कष्टों का श्रीराम द्वारा वर्णन करना– सीता ने श्रीराम की यह बात सुनी तो उसके हृदय में वह वचन रूपी बाण लग गया। उसने सिर झुका लिया। उसके नयन आँसुओं से भर आये पतिवियोग के दुःख से उसका मुख सूख गया। उसका समस्त सुख नष्ट हो गया और उसपर अपार दुःख आ बीता। वह दुःख से व्याकुल हो उठी। फिर पति के पाँव लगी तदनन्तर वह श्रीराम से क्या बोली, उसे धीरे से ध्यानपूर्वक सुनिए 'आप श्रीराम के राज्य के अन्दर रहते आपकी सेवा का कार्य (अनेकानेक) सेवकों में बँटा रहता है। परन्तु वनवास में तो मैं अकेली आपके साथ रहूँगी। तब मैं आपकी सेवा अपने सर्वस्व के साथ कर सकूँगी। समस्त सेवा करने की मेरी स्वार्थमय जो इच्छा है, उसकी पूर्ति (करने का अवसर) मुझे वन के अन्दर ही मिलेगी हे सर्वज्ञ श्रीरघुनाथ, मेरी यह अभिलाषा आप पूर्ण करें'. तब श्रीराम बोले– 'तुम वनवास के लक्षणों (स्थिति, स्वरूप) को नहीं जानती हो। वनवास में जो दारुण दुःख होते हैं, उन्हें ध्यान से सुन लो। (कैकेयी द्वारा यह कहा गया है कि) हम राज्य से अणु-भर भी (धन आदि साथ में) नहीं ले जाएँ। वस्त्र-आभूषणों का त्याग कर दें। जूतों को भी त्यज दें। हमारे लिए वल्कल ही वस्त्र और आभूषण हों; कृष्ण मृगाजिन ही प्रावरण (ओढ़ावन) हो। फिर तुम तो पूर्णतः सुकुमार (कोमलांगी) हो और वनवास में दारुण दुःख है। दण्डकारण्य दुर्धर (निवास आदि में होनेवाली कठिनाइयों को सहन करने की दृष्टि से अत्यधिक कठिन) वन है वहाँ हम बस जाएँ। पैदल जाने में दारुण दुःख होगा। (वन के अन्दर) सिंह, शार्दूल, बाघ, भेड़िये, लकड़बग्घे, वनसूअर, (उग्र वन) हिरन, सियार, रीछ, वानर, सर्प, बिच्छू होते हैं इससे वन में अपार दुःख होगा। उसमें क्रूर पतंगे, भौंरे, (काटनेवाले) मच्छर (या बड़े दाँतों-डाढ़ोंवाले प्राणी), नक्र (नाक), घड़ियाल, मछलियाँ, मगर मच्छ, कंक (सफेद चील), बगुले जैसे भयावह (पशु-) पक्षी होते हैं अतः वनवास में असह्य दुःख होगा। हमें वन में वन्य फलों का आहार करना है, घास और पत्तियों की शय्या होगी; अनवरत ठण्ड और गरमी रहेगी। इससे वनवास में असह्य दुःख होगा। तुम तो राजा की (राजसी) कन्या हो, (सबकी) अत्यधिक लाड़ली (सुन्दरी) हो। अतः तुम अबला वन में ठण्ड गरमी आदि के दुःखों की तीव्र लहरों को कैसे सहन कर सकोगी'।

सीता द्वारा बाधाओं की आशंका की हँसी उड़ाना– शीत-गरमी आदि द्वन्द्वमय स्थिति से उत्पन्न विघ्नों की बात सुनकर सीता के वदन पर मुस्कराहट छा गयी। वह बोली 'आप श्रीरघुकुलनन्दन के मेरे पास में होने पर ऐसे द्वन्द्व का बन्धन मुझे बाधा नहीं पहुँचा पाएगा। आपका नामस्मरण करने से द्वन्द्व दुःख का विनाश होता है, तो आपके मेरे पास में रहते, मुझे कैसा द्वन्द्व-बन्धन हो सकेगा। आप रघुनन्दन भेड़ियों बाघों सिंहों को तो आत्मा हैं आपके स्वयं मेरे पास में रहने पर मुझे कैसा द्वन्द्व-बन्धन

हो सकता है। पास में आप रघुकुलतिलक के होने पर कण्टक तो स्वयं कण्टकहीन (बाधा पहुँचाने की शक्ति से हीन, मुक्त) हो जाएँगे। विष भी अमृत हो जाएगा। अत: (मेरे मत में) वनवास में परम सुख ही होगा'।

सीता द्वारा पति के साथ निवास करने का महत्त्व बताना और स्वयं को वनवास के लिए ले जाने की श्रीराम से प्रार्थना करना– 'आपके साथ वन में रहना मेरे लिए वैकुण्ठ लोक या कैलास पर्वत पर निवास करने के बराबर है। आपसे अलग रहने से मुझे यह घर गृहस्थी या जगत् उजाड़ जान पड़ेगा तब उस स्थिति में मुझे वह (विरह-) दु:ख अत्यधिक कष्टप्रद, असह्य होगा। हे रघुनाथ, आप मेरे स्वमी हैं। मेरा विचार सुन लीजिए। आपसे अलग होकर जीवित रहने से यह संसार मेरे लिए दु:ख से परिपूर्ण होगा। पति ही उसकी प्रिय पत्नी का जीवन होता है। पति ही स्त्री का अपना धनभण्डार होता है पति स्त्री का अपना आभूषण होता है। बिना उसके वह स्त्री अति दीन दयनीय हो जाती है. पति स्त्री के लिए अपनी (आराध्या) देव-मूर्ति होती है। पति स्त्री के लिए उसके अपने जीवन की स्थिति गति, आत्मा-स्वरूप स्थिति होती है। पति स्त्री के लिए (समस्त दु.ख द्वन्द्वों से) मुक्ति-स्थान होता है। बिना पति के स्त्री का विनाश होता है। पति स्त्री का अपना शोभा स्थान होता है। पति स्त्री का अपना सौन्दर्य (-प्रद स्थान) होता है। पति स्त्री का सौजन्य (-दाता) होता है। उसके अभाव में वह अति दीन हो जाती है। पति स्त्री का अपना वैभव होता है। पति स्वयं ही स्त्री का सुख (-स्वरूप) होता है। पति स्त्री का नित्य गौरव होता है. उसके अभाव में वह (कैसी) अत्यधिक दीन हो जाती है। आप तो मेरे प्राणों के स्वामी हैं। आपसे अलग होते ही मेरी मौत हो जाएगी। सुनिए, आप रघुनाथ ही मेरे हृदयस्थ परमात्मा हैं। जब आपका वन के प्रति प्रयाण होगा, तभी मेरे प्राण आपके साथ चलेंगे। हे श्रीराम, समझिए कि मुझे यहाँ पर आपके पीछे (आपसे अलग रखकर) रहने देने से मुझे निश्चय ही मृत्यु आएगी। हे हृषीकेशी, आप कृपालु हैं। आप स्वयं ऐसी यश और कीर्ति की उपाधियों (अभिधानों) को धारण कर रहे हैं। इसलिए मुझे अपनी दासी के रूप में अपनी सेवा करने हेतु वन में ले चलिए'। यह कहकर उसने श्रीराम के दोनों चरणों को पकड़ लिया। उसका गला रुँध गया। नयन आँसू बहा रहे थे. उससे वे पूर्णत: सन्तुष्ट हो गए (वे बोले) 'किसी से न पूछते, अनुज्ञा न लेते हुए अपने साथ तुम्हें मेरे द्वारा वन में ले जाने पर लोग कहेंगे कि श्रीराम स्त्री द्वारा जीत लिया गया है अर्थात् स्त्री-वश हो गया है। यह तो काम-लोलुपता है, उसी के कारण श्रीराम सीता को वन में ले जा रहा है। मैं अपने विचार से तुम्हें ऐसी बात बता दूँगा, जिससे लोक-निन्दा टल जाएगी और जिससे स्वार्थ और परमार्थ भी सिद्ध हो जाएगा। तुम उसे शीघ्रता के साथ कर लो। मैं तुम्हें ऐसी भेद-भरी बात (युक्ति) बता दूँगा, जिससे लोक-विचार से वह सबको स्वीकार होगी और स्वार्थ अर्थात् तुम्हारा-मेरा कार्य परमार्थ स्वरूप को प्राप्त हो जाएगा। तुम उस कार्य को सम्पन्न कर लो'।

श्रीराम द्वारा गुरु वसिष्ठ से आज्ञा प्राप्त करने को सीता से कहना– 'गुरु वसिष्ठ को भूत, भविष्य तथा वर्तमान का ज्ञान है। वन में (मेरे साथ) चलने की दृष्टि से तुम उनकी शरण में जाना और अनुज्ञा प्राप्त करना। सद्गुरु की शरण में जाने पर विघ्न ही स्वयं बाधा रहित (नष्ट) हो जाता है। ऐसा कौन है जो गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करे ? भगवान् विष्णु और शिवजी भी उनका पूर्ण भक्तिभाव से वन्दन करते हैं। गुरु वसिष्ठ से आज्ञा प्राप्त कर लेने पर दशरथ द्वारा 'नहीं' नहीं कहा जा पाएगा। गुरु की कही बात, आज्ञा जगत् के लिए (शिरसा-) वन्द्य होती है। अत: मुझसे भी उनकी आज्ञा का

उल्लंघन नहीं किया जा पाएगा। समझ लो कि जिनकी आज्ञा के पालन हेतु, जिनका मधुवा अंगोछा (वस्त्र) सूर्य मण्डल में तेज के साथ तपता रहा, वे ही इतने बड़े गुरु हमारे पास हैं। इसलिए तुम उनसे यह रहस्यमय बात (युक्ति) पूछ लो'।

सीता द्वारा प्रार्थना करने पर गुरु वसिष्ठ की अनुज्ञा उसे प्राप्त हो जाना– श्रीराम की बात सुनकर सीता पूर्णतः हर्ष-विभोर हो गई। फिर उसने वनगमन सम्बन्धी आज्ञा प्राप्त करने हेतु गुरु वसिष्ठ के चरणों को पकड़ा। (वह बोली-) 'हे गुरुवर, आप तो सबके हृदय (मन) की बात को जानते हैं, आप सर्वज्ञ हैं। अतः श्रीराम को अपने साथ मुझे वनवास के लिए ले जाने की आज्ञा दीजिए'। तो गुरु वसिष्ठ बोले– 'हे श्रीराम, तुम सीता को वन में अवश्य ले जाना। तुम इसी के निमित्त पुरुषार्थ को प्राप्त हो जाओगे। इसी के कारण तुम्हें सब प्रकार से सफलता एवं कीर्ति मिलेगी। इसी के द्वारा तुम्हें इतनी कीर्ति मिलेगी कि तुम्हारी महिमा का गान देव और मनुष्य करेंगे। इसलिए इसे आगे करके (साथ में लेकर) तुम सीधे वन की ओर चलो'। तदनन्तर कौशल्या ने कहा– 'हे श्रीराम, तुम अपने साथ सीता को वनवास के लिए ले जाओ। इसे यहाँ पर हमारे पास रखने पर, हमें उसे देखकर नित्य प्रति दुःख ही होगा। स्त्री और पुरुष (पति) का एक दूसरे से अलग हो जाना तो मौत से भी बड़ी मौत है। स्त्री के लिए अपने पति से अलग शय्या प्राप्त हो जाना ही सबसे दारुण दुःख है। अयोध्या के लोगों का भी विचार (मत) यही है कि श्रीराम सीता को वन में ले जाएँ'। श्रीराम को यह बात जँच गयी और उन्होंने अपनी स्त्री को वन में ले जाना चाहा (स्वीकार किया)। अहो, श्रीराम की यह अनोखी करनी है। उन्होंने (एक ओर) गुरु की आज्ञा प्राप्त करते हुए (दूसरी ओर) स्वयं लोक-मत भी सम्पादित समादृत किया, इस प्रकार वे अपनी पत्नी को वन में ले जाने को तैयार हो गए। वे सीता से बोले– 'वस्त्रों और आभूषणों को यहाँ त्यजकर वल्कल वस्त्र धारण करके झट से वन के प्रति चलें'। वस्त्रों और आभूषणों का त्याग करने में सीता के मन को आनन्द अनुभव हो गया। फिर उसने धन, अनाज आदि वस्तुओं को लाकर श्रीराम के सामने रख दिया।

लक्ष्मण द्वारा श्रीराम से विनती करना– (तत्पश्चात्) लक्ष्मण श्रीराम से बोले– 'आपने सीता को अपने साथ लिया (लेना चाहा है), तो मैं भी अपने हित की रक्षा करने के लिए अब वन में आऊँगा'। तो श्रीराम ने कहा- 'हे लक्ष्मण, तुम मेरे प्राणों के सगे सम्बन्धी (प्रिय) हो। मेरे पीछे राज्य का भार वहन करने के लिए मुझे (सिवा तुम्हारे) कोई तीसरा अर्थात् अन्य व्यक्ति नहीं दिखायी दे रहा है'। श्रीराम की यह बात सुनकर लक्ष्मण ने प्राणान्तक हठ ठान लिया और कहा– 'हे श्रीराम, आपकी सौगन्ध है– मैं आपसे अलग हो जाने पर प्राणों का त्याग कर दूँगा। इस प्रकार अपरिहार्य शपथ करके उन्होंने श्रीराम के पाँवों को दृढ़तापूर्वक पकड़ा। जान लीजिए कि छुड़ाने का प्रयास करने पर भी वे उन्हें नहीं छोड़ रहे थे। फिर वे व्याकुल होकर बोले-

स्त्री को प्रमदा क्यों कहते हैं– 'तुम दोनों वनवासी हो जाओगे, तब तुम सीता को आश्रम में रखकर वन्य फल (आदि) लाने के लिए जाओगे। फिर पीछे (तुम्हारे जाने पर) इसकी रक्षा कौन करेगा। स्त्री की आरम्भ (बचपन) से ही रक्षा करनी चाहिए (रक्षा करने की आवश्यकता होती है)। माता उसकी बचपन में रक्षा करती है, कौमार्यावस्था में पिता उसकी रक्षा करता है और (पिता द्वारा) विवाह करा देने पर उसके सास ससुर उसकी रक्षा करते हैं। (ससुराल में) सास, ससुर, जेठ तथा देवर होते हैं; ननदें, देवरानियाँ आदि असहयोग हो सकती हैं। फिर भी उसका प्रमुख रक्षक तो उसका पति ही होता है, वही

उसकी अनवरत रक्षा करे। जिस घर में स्त्री की रक्षा का अभाव हो, उसपर विपत्ति आ जाती है। वह (अरक्षित) स्त्री उस कुल में कलंक लगाएगी। उसका अपना नाम तो प्रमदा ही है। वह अपने पति पुत्रों को प्रलोभन में उलझा देती है; कुल और गोत्र (के लोगों) को मोह में फँसा देती है। इसलिए उसे प्रमदा नाम प्राप्त है। यह बात वेदों और शास्त्रों द्वारा सम्मत (स्वीकृत) है'।

लक्ष्मण द्वारा श्रीराम के साथ चलने का हठ करना– 'आप दोनों जब वन में निवास करेंगे, तब मैं आपके पास रहते हुए, आपके लिए फल-मूल-पुष्प ले आऊँगा दिन-रात आपकी रक्षा करूँगा। मैं आपके धनुष और बाणों को उठाकर ले चलूँगा; (वन में से) लकड़ी (ईंधन) और पानी ले आऊँगा आपके शयन के लिए मैं घास और पत्तों से शय्या तैयार कर लूँगा (बिछा लूँगा)। मैं आपका रंक से रंक (दीन-दरिद्र), बिना वेतन पाये, सेवक बन जाऊँगा। मैं आप वनवासियों का सेवक, स्वाभाविक रूप से विश्वास पात्र रक्षक हो जाऊँगा। हे रघुनाथ, सीता को वन में अकेली रहने देने पर बड़ी विपत्ति आ सकती है। इस विचार के विषय में सामर्थ्यशील श्रीगुरुवर वसिष्ठ से पूछताछ करें'। लक्ष्मण द्वारा प्रस्तुत अपनी युक्ति-युक्त यह बात सबने सत्य मानी कि वन में सीता को अकेली रहने देने से निश्चय ही संकट आ सकता है

गुरु वसिष्ठ की अनुज्ञा– लक्ष्मण की यह बात सुनकर सर्वज्ञ गुरु वसिष्ठ ने सर्वज्ञ श्रीराम को यह आज्ञा दी। उन्होंने श्रीराम को संकेत किया कि वे स्वयं लक्ष्मण को वन में ले जाएँ। श्रीगुरु की बात सुनकर श्रीराम लक्ष्मण से बोले 'यदि तुम्हें वन में चलना हो, तो हम अपने धन-अनाज आदि का वितरण करें'। श्रीराम की यह बात सुनकर लक्ष्मण हर्ष-विभोर हो उठे। मैं रचनाकार एकनाथ अपने गुरु श्री जनार्दन की शरण में स्थित हूँ। (उनकी प्रेरणा से) मैं अब श्रीराम-सीता-लक्ष्मण के वन प्रयाण की कथा कहूँगा। आप उसका ध्यान से श्रवण करें।

॥ स्वस्ति ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ कृत 'श्रीभावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत अयोध्या काण्ड का '(श्रीराम-सहित) जानकी-लक्ष्मण-वनाभिगमन' शीर्षक यह सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय ८

[श्रीराम का वन की ओर प्रयाण]

श्रीराम द्वारा लक्ष्मण से माता सुमित्रा का आशीर्वाद लेकर आयुध ले आने हेतु भेज देना–

श्लोक– लक्ष्मण की इस बात से श्रीराम बहुत प्रसन्न हुए और उनसे बोले 'हे सुमित्रानन्दन, जाओ, (अपनी माता तथा) समस्त सुहृज्जनों से मिलकर अपने वनगमन के सन्दर्भ में पूछ लो, अर्थात् उनकी अनुमति ले लो।

हे लक्ष्मण, राजा जनक के महायज्ञ के समय स्वयं महात्मा वरुण ने जो भयंकर दिखायी देनेवाले दो धनुष दिये थे, साथ ही दो अभेद्य कवच, अक्षय बाणों से भरे हुए दो दिव्य तरकस और सूर्य की भाँति निर्मल दीप्ति से चमकने दमकनेवाले जो दो सुवर्ण भूषित खड्ग प्रदान किये थे, उन समस्त आयुधों को लेकर तुम शीघ्र लौट जाओ।

(श्रीराम की इस आज्ञा को सुनकर) लक्ष्मण चले गये और सुहृज्जनों की अनुमति लेकर वनवास के लिए निश्चित रूप से तैयार होते हुए इक्ष्वाकु कुल के गुरु वसिष्ठ के यहाँ आये। उन्होंने वहाँ से वे समस्त दिव्य आयुध ले लिये।

क्षत्रिय (राज कुल) शार्दूल सुमित्रा नन्दन लक्ष्मण ने सत्कार पूर्वक रखे हुए उन माल्य-विभूषित समस्त दिव्य आयुधों को लाकर श्रीराम को दिखा दिया।

श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा 'यदि तुम वन में (मेरे साथ) आना चाहते हो तो अपनी माता से पूछकर (विदा लेकर) और अपनी पत्नी से मिलकर आ जाओ। और भी जो सम्बन्ध की दृष्टि से सुहृज्जन हों, उनसे भी सम्बन्ध स्वरूप से मिलकर विदा हो आओ। मेरे दिव्य आयुध ले आओ। वे युद्ध के कार्य की दृष्टि से अत्यधिक शुद्ध अर्थात् महत्त्वपूर्ण हैं। पिताश्री दशरथ ने उन्हें वरुण द्वारा दिया हुआ धनुष मुझे दिया था। उसके साथ दो अक्षय तूणीर ले आओ अभेद्य कवच भी लाओ। शत्रु को मार डालने में जो अत्यधिक तीक्ष्ण है, उसकी धार अत्यधिक तेजोयुक्त है वह खड्ग भी अति शीघ्रता से ले आओ। यह मुझ राम की गम्भीर आज्ञा है। सद्गुरु वसिष्ठ के घर में जो मेरे आयुध तथा उनसे सम्बन्धित सामग्री है उसे ले आओ और वन के अन्दर आने की दृष्टि से शीघ्रता बरतो'। (उसके अनुसार जाकर) लक्ष्मण माता सुमित्रा से बोले 'राम और सीता वन की ओर जा रहे हैं। मैं भी उनकी सेवा करने हेतु जा रहा हूँ'। यह कहकर उन्होंने अपनी माता को नमस्कार किया। इस पर सुमित्रा ने कहा– 'तुम्हारे श्रीराम की सेवा करते रहने से मेरे मन को सुख होगा। तुम्हारे द्वारा श्रीराम को सुख सम्पन्न करने पर, मेरी कोख धन्य होगी। ज्येष्ठ बन्धु श्रेष्ठ सद्गुरु ही होता है। ज्येष्ठ बन्धु पिता के समान होता है। ज्येष्ठ बन्धु साक्षात् आत्माराम होता है और तुम्हारा ज्येष्ठ बन्धु श्रीराम तो पुरुषोत्तम हैं। श्रीराम की सेवा परम दान-स्वरूप है श्रीराम की सेवा ही परम ध्यान है। श्रीराम की सेवा परम सन्तोष-रूप है। श्रीराम की सेवा ब्रह्मज्ञान ही है। जो मनुष्य श्रीराम की सेवा का आदर करता है, अर्थात् आदरपूर्वक श्रीराम की सेवा करता है, वह नित्य प्रति सुख सम्पन्न बना रहेगा' इस प्रकार माता सुमित्रा ने लक्ष्मण को वरदान देते हुए वन के प्रति भेज दिया। इस प्रकार लक्ष्मण ने अपनी माता को वन्दन करके अपनी धर्मपत्नी उर्मिला को आश्वस्त किया और वे साथ में दिव्य आयुध लेकर दौड़ते हुए श्रीराम के पास लौट आये। लक्ष्मण को आये देखकर स्वयं सीता को अति प्रसन्नता हुई, श्रीराम को परम सुख हुआ। फिर उन्होंने लक्ष्मण को गले लगा लिया जो अपनी पत्नी का त्याग कर सकता है, जो धन तथा भोग्य विषयों का त्यज सकता है, वही श्रीराम को प्यारा लगता है, वह जीव प्राणों से उनका दिन-रात प्रिय बना रहता है।

श्रीराम, सीता और लक्ष्मण द्वारा अपना समस्त धन ब्राह्मणों और दरिद्रों को दान में देना–

श्लोक– तब मनस्वी श्रीराम ने वहाँ आये हुए लक्ष्मण से प्रेम के साथ कहा– 'हे सौम्य, हे लक्ष्मण, तुम ठीक समय पर आ गए हो। इस समय तुम्हारा आगमन मुझे अभीष्ट था, हे शत्रुओं को सन्ताप देनेवाले (वीर) मेरा जो यह धन है, इसे मैं तुम्हारे साथ रहकर तपस्वी ब्राह्मणों को प्रदान करना चाहता हूँ

श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा 'तुम ठीक समय पर शीघ्रतापूर्वक आ गए हो। मैं अपना धन दीन-दरिद्रों को दान में देना चाहूँगा। यह (दान सम्बन्धी) कार्य तुम सम्पन्न कर लो वनवास में तुम मेरे सखा और सहायक हो तुम मेरे कर्तव्य (के निर्वाह) में मेरे मित्र हो, तुम मेरे अपने कार्यों (की पूर्ति)

में सहायक हो। इस प्रकार तुम मेरे कार्य में समस्त अर्थों में सहायक हो। मैं अपना सम्पूर्ण धन अपने कर्तव्य के विचार से दान में देने जा रहा हूँ तुम ध्यान से यह सुन लो कि वह किस विधि (पद्धति, नियम) से वितरित किया जाए। जो समस्त अर्थों (की प्राप्ति) में सुहृद् एवं सहायक हैं, उन श्रीगुरु वसिष्ठ का सबसे पहले पूजन करें, उन्हें हम सब कुछ समर्पित करें। यह हमारा अपना कर्तव्य है अमित धन धान्य (अनाज आदि), गायों के अनेकानेक झुण्ड श्रीगुरु के पास भेज दिये जाएँ। अनमोल वस्त्र उन्हें समर्पित करें। उन्हें असाधारण रथ और घोड़े समर्पित करें। अमूल्य रत्नों की राशियों से काँवरों को भरकर उनके पास भेज दें। अपने कर्तव्य (के निर्वाह) की यह पद्धति है कि सद्गुरु का इस प्रकार प्रेम से पूजन करें। तुम स्वयं साथ में जाकर इस सबको सद्गुरु को समर्पित कर दो। फिर गुरुदेव के ज्येष्ठ पुत्र सुयज्ञ से प्रार्थना करके यहाँ पर ले आओ'। श्रीराम की यह बात कि वसिष्ठ को धन अर्पित कर दिया जाए, सुनकर लक्ष्मण को पूर्णतः आनन्द हुआ। उन्होंने स्वयं उनके यहाँ जाकर उनका पूजन किया, तो गुरु वसिष्ठ प्रसन्नता से बोले 'श्रीराम को तीनों लोकों पर विजय प्राप्त होनेवाली है। इसलिए तो उनको ऐसी सद्बुद्धि अर्थात् ऐसा सद्विचार प्राप्त हुआ। यह उनको (भविष्य में) प्राप्त होनेवाले सम्पूर्ण भाग्य का प्रकाशक (सूचक) है'। तदनन्तर लक्ष्मण ने गुरु सुपुत्र सुयज्ञ के घर जाकर या उत्तम यज्ञ गृह में आकर सुयज्ञ का वन्दन किया (और निवेदन किया कि) श्रीराम वन में जा रहे हैं। उन्होंने आपको मिलने हेतु आमंत्रित किया है'। श्रीराम के वन गमन के सम्बन्ध में (यह बात) सुनकर सुयज्ञ मन में उद्विग्न हो उठे, (क्षणभर के लिए) आँखों को मूँदकर वे स्वयं भौंचक बैठे रहे। फिर सन्ध्या विधि, वन्दन आदि करके वे स्वयं श्रीराम के समीप आ गए। श्रीराम ने उन सद्गुरु-पुत्र को देखते ही उन्हें दण्डवत् नमस्कार किया। उन्होंने यथाविधि मधुपर्क किया, शास्त्रोक्त नियम के अनुसार उन गुरु पुत्र का पूजन किया और आभूषण उन्हें समर्पित कर दिये। श्रीराम ने रत्न जटित कुण्डल और मुद्रिकाएँ गुरुपुत्र को अर्पित करते (पहनाते) हुए उन्हें उनसे विभूषित करा लिया। तदनन्तर श्रीराम ने स्वयं सीता से कहा- 'तुम भी सुयज्ञजी का पूजन करो'। तो उसने भी सहर्ष उन्हें अमूल्य आभूषण समर्पित किये और उनका यथाविधि पूजन किया। श्रीराम के साथ वन में जाते हुए (जाने का सौभाग्य प्राप्त होने से) सीता को परम प्रसन्नता हो रही थी। फिर अपना सब कुछ सुयज्ञ को प्रदान करते हुए उसे मन में आनन्द हुआ सीता के पास जो अमूल्य वस्त्र थे, उन्हें भी उसने सुयज्ञ को प्रदान कर दिया रत्न जटित शय्या (पलंग) और आस्तरणों सहित अपनी दासियाँ उन्हें अर्पित कर दीं श्रीराम के पास उनके अपने मामा द्वारा दिया हुआ जो हाथी था, उसे आभूषणों से उन्होंने सजा लिया और उसपर सुयज्ञ को विराजमान कराकर गाजेबाजे के साथ उन्हें विदा कर दिया। (श्रीराम यह मानते थे कि) जो प्रसन्नतापूर्वक गुरु का पूजन नहीं करता, जो सत्पात्र (आदर-भाजन) व्यक्ति की भक्तिभाव से सेवा नहीं करता, वह जिस दोष (पाप) को प्राप्त हो जाता है, वही दोष सत्पात्र को दान न देनेवाले को लगता है। इसलिए हम महान ऋषियों का पूजन करें। फिर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- 'महर्षि अगस्त्य, शाण्डिल्य, गार्ग्य, वामदेव, कौशिक आदि के पास बहुत सा धन भाण्डार भेज दें, वेदपाठकों, अग्निहोत्रियों, सत्कर्म का नित्य प्रति आचरण करनेवालों, श्रोत्रियों, वेदज्ञों, महान मंत्रवेत्ताओं का धन भण्डार देते हुए पूजन करें। ऐसे व्यक्तियों को दान देने से वह अत्यधिक पवित्र माना जाता है। अन्य प्रकार का जो दान भी सत्पात्र दान समझा जाता है, उसे ध्यान से सुनो।

दान किसे दें और क्या दें– किसी सत्पात्र द्वारा कोई वस्तु दान में नहीं माँगी गई हो, तो भी ऐसे अयाचक व्यक्ति को वह अयाचित वस्तु भी उसकी आवश्यकता को देखकर भगवदर्पण भाव से

प्रदान करें। फिर याचकों के पास स्वयं साथ में जाकर (हे लक्ष्मण) तुम उनको धन अर्पित कर दो। (ध्यान में रखो कि) जो बाल-बच्चों वाला हो और धनहीन हो, जिसके बहुत सन्तानें हों, पर जो अत्यधिक दीन हो, उसे इतना धन अर्पित किया जाए, जिससे उसका मन सुख-सम्पन्न हो जाए। जो शिलवृत्ति (एक एक दाना चुन कर जीविका चलानेवाले) तथा उंछवृत्ति (खेत में फसल के काटे जाने पर गिरे हुए दानों को चुन-चुनकर उदरनिर्वाह) व्यक्ति हों, उनके घर तुम जाकर, वे जितना धन माँग लें, उसका चौगुना धन उन्हें दे दो। उन्हें जीविका-यापन करने की दृष्टि से जैसी साधन सामग्री आवश्यक है वह सब शाक (-सब्जी आदि) उन्हें दें। उन्हें सवत्स सहस्र सहस्र गायें प्रदान करें, उनके लिए आवश्यक घी, दही, छाछ जैसी सामग्री भोजन के लिए दें। माता कौशल्या के घर धन, धान्य पहुँचवा दें। फिर भी पहले धर्म के अनुसार आचरण करनेवालों, सन्यासियों, मधुकारियों कर-पात्रियों अर्थात् हाथों को ही भोजन पात्र के रूप में काम में लानेवालों, भिक्षार्थी ब्रह्मचारियों को (धन आदि) दिया जाए। माता कौशल्या के जो निजी सेवक हों और उसके उपासक अर्थात् आश्रय में रहनेवाले हों वैसे ही देख लो कि जो माता सुमित्रा के सेवक उपासक हों, उन्हें भी अनेक प्रकार का धन दिया जाए। हमारे जो सुहृज्जन और सेवक हैं परिचारक और सन्देशवाहक दूत हैं, कथा-वाचक और पुराण-वाचक हैं उन्हें अनेक प्रकार का धन दें जो हमारे जासूस हैं, सुगन्धयुक्त तिलक लगानेवाले हैं, सभास्थान में (मनोविनोद आदि के हेतु मज़ेदार बातें करके लोगों को हँसानेवाले) मसखरे हों, उनको जितना आवश्यक धन हो, उतना दो। इससे वे परम सुख को प्राप्त होंगे। छत्रकर्ताओं, चामरधारियों, ताम्बूल देनेवालों, (दोने पत्तल आदि बनानेवाले) बारियों और व्यापारी आदि व्यवसायियों, पीने को पानी देनेवालों, धूप आदि देनेवालों, (फूल लानेवाले) फुलहारों मालियों को धन के दान से सुख-सम्पन्न कर दो। मल्लों, (खेल-तमाशे प्रदर्शित करनेवाले) नटों तथा अभिनेताओं को, अश्ववाहकों (साईसों) धोबियों भाँड़ों-बहुरूपियों, उपहासकों (विदूषकों) तथा शिल्पियों को (दान देकर) सुख-सम्पन्न कर दो। चित्ररथ नामक मेरा सारथि है। उसे अपार धन अर्पित कर दो। जो जो दीन (असहाय) हों, दरिद्र हों, उन सबको तुम धनवान कर दो। हमारे जो संगी साथी हैं, सुहृज्जन हैं, भक्त हैं, जो हमारे नित्य प्रति आश्रित हैं, जो-जो दुःख आदि से आर्त होकर आये हैं, उन सबको धन दान से सुखी कर दो। हमें धन आदि कुछ भी शेष रखना नहीं है। इसलिए धर्मसंगत मार्ग से उसी सबका पूर्णतः (दान में) व्यय कर दो। देखो, और भी जो जो आवश्यक हो, वह सब मैं दूँगा'।

कोष (ख़ज़ाने) के धन के उचित उपयोग आदि सम्बन्धी प्रबन्ध– अनन्तर श्रीराम ने कोषागार के व्यवस्थापक को बुलाकर कहा, 'समूचा धन बाहर निकालो। हे लक्ष्मण, उसके उचित व्यय आदि सम्बन्धी (निर्धारित) पद्धति (के बारे में) ध्यानपूर्वक सुन लो। कृपण, अनाथ, अत्यधिक दीन, अन्ध, पंगु, (उपजीविका के) साधन हीन लोग जो-जो माँग लें, वह धन आदि उन्हें दें और उन्हें अत्यधिक सम्मानपूर्वक सुख-सम्पन्न करें। दान देने से सुख उत्पन्न होता है, उससे भी अधिक व्यक्ति को प्राप्त हो जाता है सम्मान (पूर्वक उसे देने) से। ऐसे उस सुख से भगवान् सुख (प्रसन्नता) को प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए इस प्रकार दिया हुआ दान अति श्रेष्ठ होता है। जो बहुत बालकों से युक्त परन्तु निर्धन हों उनको, वृद्धों, ब्राह्मणों, तरुण स्त्रियों, बालकों को सम्मान पूर्वक धन सूक्ष्मदान नाम से प्रदान किया जाए। ऐसे ब्राह्मणों के स्थानों पर सहस्र सहस्र सवत्स, दुधारू गाएँ प्रदान करो गायों के झुण्डों में कोई भी शेष न रहने दो। दीन दरिद्रों को इतना धन दान में दो, जितना मेरे पुनरागमन होने तक खाने के लिए पर्याप्त

होकर रहे। ऐसे दान देना हमारे लिए सनातन धर्म है। मेरे वन में जाने के पश्चात् कोई भी किसी कष्ट को प्राप्त न हो जाए, कोई किसी विपत्ति में न फँस जाए। (ध्यान रखो कि) ऐसे लोगों को धन अथाह सन्तोष प्रदान करता है'। श्रीराम ने जो (जैसी) आज्ञा दी, उससे भी अधिक (धन) लक्ष्मण ने लोगों को दिया। ऐसे दान देने में उनके मन को प्रसन्नता हो गई।

श्रीराम द्वारा अपने सब कुछ को दान में देते हुए पिता दशरथ से विदा होना; समस्त लोगों द्वारा दुःख अनुभव करना– अपने धन को अशेष रूप से दान में बाँटकर श्रीराम, सीता और लक्ष्मण स्वयं वन की ओर प्रयाण करने की दृष्टि से राजा दशरथ से विदा लेने चले। जब श्रीराम और सीता (प्रासाद के) बाहर निकले, तो उन्हें देखने के लिए पुरुष और नारियाँ दौड़ीं। कुछ एक उच्च स्थान पर चढ़ गए, तो कुछ एक ऊपरवाले खण्डों में और गोपुरों में गये। श्रीराम जब राजमार्ग से चल रहे थे, तो उनके साथ लोगों के समुदाय भीड़ मचाते हुए इकट्ठा हो गए। (लोग एक दूसरे से कह रहे थे कि) कैकेयी तो नीयत से ही दुष्ट है, फिर भी राजा ने बुद्धिहीन होकर उसकी बात क्यों मान ली। जो श्रीराम प्रतिदिन (राजपथ में) रथों, हाथियों, चतुरंग सेना सहित गाजे-बाजे के साथ चले जाते थे, वे आज बिना जूतों को पहने, पैदल ही वनवास के लिए जा रहे हैं। श्रीराम को देखते ही लोगों की आँखें ठंडी हो जाती हैं; श्रीराम को देखते ही मन शान्ति को प्राप्त हो जाता है; श्रीराम को देखते ही जन (-मानस) शान्त तृप्त हो जाते हैं। ऐसे श्रीराम जगत् के लिए जीवन स्वरूप हैं। श्रीराम जगत् के लिए जल-स्वरूप हैं; उस जल में लोग (मानों) मछलियाँ ही हैं। समझिए कि ऐसे वन श्रीराम के चले जाते ही लोगों के प्राण ही निकल जाएँगे। राजा दशरथ ऐसे उन लोगों के लिए सुख-स्वरूप श्रीराम को वन में भेज रहे हैं (जान पड़ता है कि) कैकेयी रूपी किसी (दुष्ट) ग्रह ने उन्हें ग्रस लिया है। राजा पर स्त्री सम्बन्धी पागलपन सवार हुआ है। सीता सुकुमारी है, महासती (साध्वी) है। जिसे इन्द्र आदि देव तक देख नहीं सकते थे, उसी को आज भूमि पर पैदल चले जाते हुए मार्ग में आने-जानेवाले लोग देख रहे हैं'। लोगों द्वारा इस प्रकार बोलते रहते, श्रीराम, सीता और लक्ष्मण तीनों मन में बिना किसी खेद को अनुभव किये राजा दशरथ से विदा लेने हेतु वेगपूर्वक राजगृह के पास आ गए। सुमन्त राजा दशरथ के बड़े विश्वास-पात्र मंत्री थे उन्होंने राजा से कहा कि श्रीराम वनवास के लिए जा रहे हैं और आपसे आज्ञा लेने हेतु पधारे हैं। श्रीराम ने अपना धन दान में वितरित किया है और सेवकों, सुहज्जनों, ब्राह्मणों को और दीन लोगों को वन के प्रति गमन करने के सुमुहूर्त पर सुख सम्पन्न कर दिया है। मंत्री सुमन्त की इस बात को सुनते ही राजा को रुलाई आ गयी; (और वे बोले-) 'जल जाए उस कैकेयी का मुँह, जो श्रीराम को वनवास के लिए भेज रही है'।

राजा दशरथ द्वारा श्रीराम से वन-गमन सम्बन्धी निर्णय को बदल देने की विनती करना– श्रीराम को आँखों से देखते ही राजा दशरथ मूर्च्छित होकर भूमि पर लुढ़क पड़े। तो श्रीराम स्वयं उन्हें उठाकर पलंग पर लिटाते हुए उनकी पीठ पर थपथपाते रहे। राजा सचेत होकर श्रीराम से स्वयं बोले 'तुम वन की ओर प्रयाण न करो। मेरे प्राण निकला चाहते हैं। वह कैकेयी ऐसी कौन मच्छर है ? मैं तुम्हें सम्पूर्ण राज्य देता हूँ- अभी मैं ऋषियों के द्वारा तुम्हारा अभिषेक कराता हूँ'।

वचन के भंग हो जाने के विचार से श्रीराम द्वारा उस विनती को अस्वीकार करना– श्रीराम पिताश्री दशरथ के पाँव लगे और बोले 'आप मेरा अभिषेक न कराएँ, अपने वचन को अन्यथा कर देने से हम दोनों वेदों के मत के अनुसार दोषी सिद्ध हो जाएँगे। अब मेरे द्वारा राज्य को स्वीकार

कर लेने पर संसार सब प्रकार से मेरी निन्दा करेगा और आपके वचन को मेरे द्वारा मिथ्या सिद्ध कर देने के कारण मैं अधःपात को प्राप्त हो जाऊँगा। वेदवचन और गुरुवचन से पितृवचन बड़ा होता है अतः जो पितृवचन का जीवन के अन्त तक पालन करता है, उसका वचन अनुल्लंघ्य समझा जाता है मैं आपके कहने से अपनी धर्मपत्नी सीता का त्याग करूँगा। आपके वचन से मैं अपने जीवन का त्याग करूँगा परन्तु वनवास की निर्धारित बात का मैं बिलकुल त्याग नहीं करूँगा। यद्यपि मेरे प्राण चले जाएँ, तथापि मैं वनगमन के विचार को नहीं छोड़ूँगा। हे राजा, मैं आपकी सौगन्ध लेता हूँ ' यह कहते हुए श्रीराम ने अपने पिता के चरण दृढ़तापूर्वक पकड़ लिए।

श्रीराम के दृढ़ निश्चय को देखकर राजा दशरथ द्वारा उन्हें अपने साथ सेना को ले जाने का सुझाव देना– श्रीराम के दृढ़ निश्चय को देखकर राजा दशरथ ने बड़ी देर तक रुदन किया। वे बोले– 'कैकेयी ने मुझे लूट लिया। श्रीराम-स्वरूप निधि से मैं वंचित हो गया। अपने कार्य का बगैर विचार किये स्त्रियों को कोई वचन न दें। ऐसे ही मेरे द्वारा दिये वचन में मुझे उलझाकर (मेरी स्त्री ने) श्रीराम को वनगामी बना दिया वन-गमन के बारे में श्रीराम के अत्यधिक दृढ़ निश्चय का और उसकी दृढ़ता का समाचार जानकर राजा दशरथ ने स्वयं अपने मंत्री को यह आदेश दिया 'रघुनन्दन श्रीराम के साथ वन में सुसज्जित चतुरंग सेना दिलायी जाए। वन में खर्च करने की दृष्टि से उसके साथ में अपार धन दिला दें धूप (और गरमी) से श्रीराम पीड़ा को प्राप्त होगा इसलिए उसे साथ में छत्र और चामर दिलाएँ। उसके साथ अत्यधिक अनोखे तम्बू और गायों के झुण्ड भेज दें'।

कैकेयी का क्रुद्ध हो जाना; उससे राजा दशरथ का भी कुपित हो उठना– राजा की इस बात को सुनकर कैकेयी क्षुब्ध हो उठी। आँखों को लाल करते हुए वह स्वयं क्या बोली, (सुनिए)। 'हे राजा, जिस प्रकार कोई स्वयं गन्ने का रस लेकर दीन दरिद्र को चिप्पड़ दे दे, उसी प्रकार आप श्रीराम को राज्य की लक्ष्मी (सम्पत्ति) देकर भरत को शून्य अर्थात् पूर्णतः धन वैभवहीन राज्य देने जा रहे हैं, किसी ब्राह्मण को उत्तम हाथी दिखाकर उसके हाथ पर जल के साथ कोई दान का संकल्प करे और तदनन्तर उसे चित्रांकित हाथी प्रदान कर दे, उसी प्रकार से भरत को राज्य देने के सम्बन्ध में बात होने जा रही है। आप मेरे मुँह को काला कह रहे हैं, पर आप ही दुष्ट हैं, विवेकभ्रष्ट हो गए हैं अपने वचन को असत्य कर देने पर आप निश्चय ही नरक वास का भोग करेंगे' कैकेयी की इस कठोर बात को सुनते ही राजा दशरथ कोपायमान हो उठे। (वे बोले–) 'तू नष्टबुद्धि है, दुष्ट है, अत्यधिक कठोर हो गई है (तभी तो) तू मर्मस्थान पर वाग्बाण चलाकर उसे छिन्न-विच्छिन्न कर रही है'।

श्रीराम द्वारा साथ में सेना-दल को ले जाने के सुझाव का विरोध करना– श्रीराम राज्य के स्वामी दशरथ से बोले 'साथ में सेना और सम्पत्ति ले जाने से मेरे सिर पर राज्य (-कार्य के उत्तरदायित्व का) भार आ जाएगा। उसे मैं बिल्कुल नहीं स्वीकार करूँगा। गंगाजल तो अति शुद्ध होता है। पर उसमें मद्य की बूँद पड़ जाए तो वह समस्त जल अशुद्ध हो जाता है। उसी प्रकार, दुष्ट (दोषमय वस्तु आदि के अनधिकार) साथ में रखना कर्तव्य पालन के विरुद्ध माना जाता है। आपने (वचन से) भरत को राज्य दिया है। इसलिए उसमें से अणु भर मात्र धन आदि लेने पर मेरे वनवास के व्रत में सचमुच दोष लग जाएगा' श्रीराम द्वारा इस प्रकार कहते ही कैकेयी ने उसे वल्कल प्रदान किये और कहा– 'इन्हें लपेटकर शीघ्रतापूर्वक वन के प्रति प्रयाण करो, वस्त्रों और आभूषणों का त्याग करके वल्कल वस्त्रों को धारण कर लो माथे पर जटाभार बना लो'। और वनवास (-काल) में वन में भ्रमण

करनेवाले वन्य जन बन जाओ'। तब राजा दशरथ के स्वयं देखते रहते, श्रीराम ने वल्कलों को लपेट लिया। फिर वहाँ तत्काल आकर लक्ष्मण ने भी स्वयं वल्कलों को लपेट लिया। फिर कैकेयी ने सीता को भी वल्कल दिये; परन्तु उसे उन्हें पहनना नहीं आता था। तो श्रीराम ने स्वयं उसके पास जाकर उसे युक्ति पूर्वक (कौशल के साथ) वल्कल पहना दिये। तब कैकेयी ने श्रीराम, लक्ष्मण और सीता के (उतारे हुए उन) वस्त्रों को (उठाकर अपने पास रख) लिया। यह देखकर राजा को क्षुब्धता के साथ क्रोध आ गया। तो उन्होंने क्रोध के साथ कैकेयी की बहुत भर्त्सना की।

गुरु वसिष्ठ द्वारा क्रुद्ध होकर कैकेयी का धिक्कार करना– (यह देखकर) गुरु वसिष्ठ को भी क्रोध आ गया और उन्होंने कैकेयी की (यह कहते हुए) भर्त्सना की– 'तुम मरमिटी, दुष्ट, खल स्त्री हो गयी हो, अत्यधिक स्वार्थ-विचार से तुम लज्जा को भी प्राप्त नहीं हो रही हो। तुम्हारे प्राप्त वरदान के नियम के अनुसार श्रीराम ही अकेले, एकमात्र वनवासी होनेवाले हैं। फिर तुम सीता को वल्कल क्यों दे रही हो ? तुम दुष्ट एवं अभागिन हो गयी हो। सभाजनों के देखते रहते, तुम अब उनके वस्त्रों और अलंकारों को क्यों ले रही हो ? सचमुच तुम्हारा मुँह काला हो गया है। उस मुख को यहाँ पर दिखा देने में तुम लज्जित नहीं हो रही हो'।

दशरथ का क्रुद्ध हो जाना– राजा दशरथ को अदम्य क्रोध आ गया, तो वे कैकेयी को लातें जमाने के लिए दौड़े। वे बोले - 'न तू मेरी पत्नी है, न मैं तेरा पति हूँ, तू मेरे बच्चों के वस्त्र ले रही है। तू स्त्री तो बाजार की वेश्या है। घर में रहकर ऊधम मचा रही है। चली जा और खुले बाजार में बैठ जा'। क्रोध के साथ इस प्रकार बोलते रहते राजा दशरथ का गला रुँध गया। फिर उन्होंने सीता को हृदय से लगाकर आभूषण दिये।

सीता को राजा दशरथ द्वारा वस्त्र (और आभूषण) दिलवा देना– राजा दशरथ ने मंत्री सुमन्त को यह आदेश दिया कि वन में चौदह साल के लिए पर्याप्त हों, उतने वस्त्र और आभूषण सीता को दे दें। उस समय मंत्री सुमन्त ने (राजा के आदेश के अनुसार) जनक कन्या सीता को वस्त्र और आभूषण दे दिये। फिर उसने राजा दशरथ का और गुरु वसिष्ठ का वन्दन किया। तो गुरु वसिष्ठ ने यह आशीर्वाद दिया– 'तुम वन के अन्दर अपने सतीत्व का निर्वाह कर सकोगी; रघुनन्दन श्रीराम विजयी हो जाएँगे और त्रिभुवन तुम्हारा वन्दन करेगा'। तब राजा ने सुमन्त को आदेश दिया, आप सीता और लक्ष्मण सहित श्रीराम को बैठने के लिए मेरा रथ ले आयें।

श्रीराम, सीता और लक्ष्मण का पिताश्री दशरथ को नमस्कार करना; सभी ओर लोगों का शोकाकुल होकर चीखना-रोना– श्रीराम और लक्ष्मण अपने पिताजी की परिक्रमा करके उनके पाँव लगे। समझिए कि उनके जो सात सौ (सौतेली) माताएँ थीं, उनकी भी उन्होंने अभिवन्दना की। तब उन्होंने चीखते रोते कोलाहल मचा दिया। सबने अद्‌भुत आक्रन्दन करना आरम्भ किया। तब श्रीराम तत्काल चले. सभी लोग शोक विह्वल हो गए थे। श्रीराम को जाते देखकर राजा दशरथ मूर्च्छित हो गए। सभी लोग रो रहे थे। (समस्त) अयोध्या दीनवदन हो गई थी। समस्त अयोध्यावासियों के मुख पर असहायता एवं दु:ख छा गया। कुछ एक माताएँ सिर पीटती रहीं; कुछ एक ऊँचे स्वर में चीख़ती-पुकारती रहीं, तो कुछ एक छाती पीट रही थीं और बहुत सी माताएँ मूर्च्छित हो गईं। (यह देखकर) श्रीराम ने (मन-ही-मन) कहा यहाँ अधिक समय रहने से माया-ममता बढ़ जाएगी। इसलिए वे सीता को रथ में बैठाकर तत्काल प्रयाण कर गए। उनकी अपनी माता कौशल्या चीख़ती-चिल्लाती हुई रो रही थी। वह

बोली 'हे श्रीराम, (एक बार) मुँह तो दिखा। मैं फिर से कब देख सकूँगी ? अरे श्रीराम मुँह तो दिखा। आ, मेरे श्रीराम, आ जा। अरे मेघश्याम श्रीराम, हमें यहाँ पर व्याकुल बनाते हुए तू दुर्गम वन में कैसे जा रहा है ? अरे वन की ओर जाने लगते ही मुझे प्रेम से पेन्हाई आयी (स्तनों में दूध भर आया) है। अरे रघुनन्दन मैं किसे पिला दूँ ? अपना मुँह तो दिखा दे'। श्रीराम के वन की ओर जाते समय गायों की आँखें आँसू बहा रही थीं; घोड़े और हाथी रो रहे थे। पाषाण भी दुःख से पसीज रहे थे। दह के पानी के सूख जाते ही जिस प्रकार मछलियाँ छटपटाने लगती हैं, उसी प्रकार श्रीराम के अभाव में (अयोध्या में न रहते) लोग आकुल व्याकुल होकर छटपटा रहे थे। (कोई एक बोले-) 'कैकेयी तो बहुत कठोर हो गयी है उसने सीता के वस्त्रों और आभूषणों को भी छीन लिया। अब उसके अधीन होकर कौन रह सकता है ? हम वनवास के लिए प्रयाण करें'.

श्रीराम-सीता-लक्ष्मण तीनों के पीछे-पीछे समस्त नागरिकों का गमन– (श्रीराम, सीता और लक्ष्मण के पीछे) ज्योतिषि, वेद पाठक चले; अग्निहोत्री अग्निसहित चले। देखिए, उनके साथ एक एक करके अन्य लोग भी चले। बढ़ई, नाई चले। नट और अभिनेता चले। धोबी, रंगरेज, चमार, अनामिक (अर्थात् 'महार' नामक एक अछूत जाति विशेष के लोग) चले। परचूनिए, जुलाहे, माली, बजाज, भाट, तेली, तमोली निकल पड़े। बुनकर, सुनार, दर्जी, ग्वाले, मछुए, कुँजड़े चलने लगे वे यह मान रहे थे कि कैकेयी दुष्ट है, बाधा उत्पन्न करनेवाली (उपद्रवी, कष्टप्रद) है। वह हमें नित्य प्रति पीड़ा पहुँचाती रहेगी। (इसलिए हम चलें) जहाँ श्रीराम हों, वहीं अयोध्या होगी। इस प्रकार सबके मन में वनवास सम्बन्धी श्रद्धा उत्पन्न हुई। श्रीराम ने जब पीछे देखा तो उन्हें दिखायी दिया कि नागरिक जन तेज दौड़ रहे हैं। तब उन्होंने सुमन्त से कहा 'रुक जाइए। हम देख लें कि लोगों के झुँड के झुँड क्यों आ रहे हैं'।

श्रीराम द्वारा नागरिक जनों से अयोध्या लौट जाने का अनुरोध करना– श्रीराम ने स्वयं उन लोगों से विनती की 'मुझे दण्डकारण्य वन के प्रति जाना है। वह स्थान बहुत दूर है, मार्ग भी अत्यधिक कठिन (दुर्गम) है। आपका वहाँ आगमन (पहुँच जाना) नहीं हो पाएगा। मुझपर कृपा करके आप अपने नगर में ही रहें। आपके सिर पर (छत्र के रक्षक के रूप में) राजा दशरथ हैं। वहाँ आप आनन्द और सुख के साथ रह जाएँ, भरत मेरी आज्ञा का पालन करेंगे– आप चिन्ता-रहित होकर रह जाएँ'. इस प्रकार कहते हुए श्रीराम ने उन समस्त लोगों को ठहरा दिया। जिसे मेरा दिन रात स्मरण होता रहे, मैं अनवरत उसी के पास रहूँगा। अपने मन से मुझे भुला न दें। तो (समझ लीजिए कि) मैं नित्य प्रति आपके पास ही हूँ। इस प्रकार उन लोगों को वहीं (अर्थात् अयोध्या में) ठहराकर श्रीराम ने वन की ओर प्रयाण किया। (कवि कहता है-) मैं एकनाथ अपने गुरु श्री जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हूँ (उनकी कृपा और प्रेरणा के बल पर मेरे द्वारा) आगे के कथांश का निरूपण रसमय अर्थात् मधुर होगा रामायण की कथा रसात्मक (रसभीनी, मधुर) है। उसे महर्षि वाल्मीकि की वाणी ने सुनाया है. मैं एकनाथ अपने गुरु श्री जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हूँ। आप सज्जन श्रोता मुझपर (अनुग्रह करते हुए उस कथा को सुनने की) कृपा करें।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ-कृत 'श्रीभावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत अयोध्याकाण्ड का 'श्रीराम-वन वनाभिगमन' शीर्षक यह आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ

❧❧❧❧

अध्याय ९

[श्रीराम का चित्रकूट के प्रति गमन]

श्रीराम के प्रयाण के पश्चात् राजा दशरथ और रानियों का उनके पीछे दौड़ते हुए जाना– श्रीराम के वन की ओर प्रयाण करने पर राजा दशरथ मोह-जन्य अति शोक से मूर्च्छित हो गए। सचेत होने पर उन्होंने पूछा– 'श्रीराम कहाँ है', तो स्त्रियों ने उनसे कहा कि आपने श्रीराम को अपना रथ दिया था, उसमें विराजमान होकर वे निश्चय ही वनवास के लिए गये हैं। कुछ एक ने राजा दशरथ को बता दिया 'श्रीराम लोगों को विश्वासदर्शक सान्त्वना दे रहे हैं। वे नगर के द्वार के पास हैं' तो राजा दशरथ वेगपूर्वक दौड़े।

श्लोक– तब स्त्रियों से घिरे हुए, आशंकित और मन में व्याकुल हुए राजा यह कहते हुए चले गये कि मैं अपने वन की ओर जानेवाले प्रिय पुत्र को देख लूँगा।

सात सौ रानियों सहित राजा दौड़ते चले। सबसे पूछते रहे कि मेरा श्रीराम कहाँ है, फिर उन्होंने आक्रन्दन के साथ (श्रीराम को) पुकारा (और कहा–) 'अरे श्रीराम, अपना मुँह तो दिखा दो। मुझसे तुम्हारे विमुख हो जाने पर सबको अपार दुःख होगा। कैकेयी ने मुझसे वचन लेकर मुझे बड़ा दुःख दिया है। फिर भी तुम्हारे श्रीमुख को देखने से मुझे बड़ा सुख होगा। हृदय से (मन में, मनःपूर्वक) श्रीराम का स्मरण समस्त दु:खों का अन्त हो जाता है। मैं दशरथ, भाग्य के विचार से अभागा हूँ। तभी तो मैंने श्रीराम को वन में भेज दिया। हे राघव, दौड़ो और यहाँ पहुँच जाओ। अपार दया करते हुए मुझसे मिल लो। उससे मेरे मन को सुख होगा'। यह कहकर उनकी दुहाई देते हुए वे उन्हें पुकारने लगे 'अरे रघुनाथ श्रीराम चले गये, चले गये' - यह कहते हुए वे चीख़ते-पुकारते गर्जन करते रहे। रोते-रोते गिर पड़ते; फिर उठकर दौड़ने लगते। फिर अति दुःखी होकर मूर्च्छा को प्राप्त हो गए। (यह देखकर) श्रीराम ने कहा– 'हे सुमन्त्रजी, यहाँ रहने से (रुक जाने से) मोह ममता बढ़ जाएगी राजा के मेरे पास न आते अर्थात् आने से पहले रथ को वेगपूर्वक चला दीजिए। श्रीराम नहीं लौट रहे थे फिर भी दशरथ रथ को अपनी आँखों से देख सकते थे। इसलिए उनकी आँखें उस ओर मुड़ नहीं रही थीं। वे श्रीराम के रूपमें जुड़ी रहीं।

समस्त लोगों द्वारा विलाप करना–

श्लोक– जब तक श्रीराम के रथ के पहियों से उड़ती उछलती धूल दिखायी देती रही, तब तक उन इक्ष्वाकु कुल के श्रेष्ठ राजा ने दृष्टि नहीं फेरी (अर्थात् वे उस ओर ही देखते रहे)। जब तक राजा दशरथ को अपने अत्यधिक प्रिय और धर्मशील पुत्र श्रीराम दिखायी देते रहे, तब तक वे भूमि से बारबार उठकर उनको देखते रहे। परन्तु जब रथ के पहियों से उड़ती हुई धूल को भी वे न देख सके (धूल न दिखायी देने लगी), तब राजा दशरथ आर्त और विषण्ण होकर धरा तल पर गिर पड़े.

(कवि इसके बारे में कहता है) श्रीराम के आँखों से दिखलायी देते रहने तक राजा दशरथ की दृष्टि उनकी ओर लगी रही। पर अन्त में श्रीराम को आँखों से न देखने पर उनकी दृष्टि उनके रथ के ध्वज स्तम्भ पर टिकी रही। आँखों से ध्वज के भी अन्तर को प्राप्त होने अर्थात् न दिखने पर राजा दशरथ श्रीराम के रथ के पहियों से उछलती-उड़ती धूल की ओर देखते रहे। फिर श्रीराम की ऐसी धूल को भी न देख पाने पर राजा मूर्च्छित होकर गिर पड़े। श्रीराम का स्मरण करते हुए राजा अपनी देह को

भूल गये। उससे उन्हें मूर्च्छा आ गई। वे देह सम्बन्धी विचार को भूल गए। राजस्त्रियाँ उच्च स्वर में रुदन कर रहीं थीं। सब लोग रुदन कर रहे थे। गायें घास और जल का सेवन नहीं कर रही थीं और उनके बछड़े उनके थनों का दूध नहीं पी रहे थे। घोड़े खाद्य चारा और पानी का सेवन नहीं कर रहे थे हाथी अपने खाद्य पदार्थ का एक कौर तक मुँह में नहीं डाल रहे थे। नगर जनों ने आहार को त्याग दिया (श्रीराम के वन-गमन के फलस्वरूप उधर) अयोध्या में बवैला मच गया। (इस प्रकार की स्थिति में) दिवस का अर्थात् सूर्य का अस्त हुआ, तो रानियों ने राजा दशरथ को सचेत कर दिया। उनके द्वारा अयोध्या में प्रवेश कर देने पर उन्हें स्वप्न में भी सुख नहीं दिखाई दे रहा था। कहीं भी दीप-दीपिकाएँ (जलती) नहीं दिखाई दे रही थीं बाजार और चौराहे निर्जन दिखाई दे रहे थे। (लौटते समय) रास्ते में हर कोई (मिलने वाला) पूछता था कि श्रीराम कहाँ है। उधर श्रीराम के वन में प्रविष्ट हो जाने के कारण घर घर में उच्च स्वर में रुदन चल रहा था। अयोध्या-भुवन में (सभी ओर) रोना-चिल्लाना चल रहा था। किसी ने भी खाना नहीं खाया.

गुरु वसिष्ठ द्वारा धीरज बँधाने पर समस्त लोगों का अयोध्या की ओर लौटना– राजा दशरथ, समस्त रानियों और (प्रजा) जनों द्वारा श्रीराम के वियोग से उत्पन्न दुःख सहा नहीं जा रहा था उन सबने कहा 'अब विष खा लें', तब गुरु वसिष्ठ ने उन्हें रोक लिया। (वे बोले-) 'वन में रहते हुए श्रीराम चौदह वर्षों (की अवधि) को आधे क्षण-सा व्यतीत कर देंगे। त्रिभुवन की सफलता एवं कीर्ति को प्राप्त करके वे अयोध्या के प्रति लौट आएँगे। करोड़ों राक्षसों (या राक्षसों के अनेक समुदायों) को मार डालकर वे देवों के बन्धन को खोल देंगे। रामराज्य के ध्वज को खड़े फहराकर वे शीघ्र ही लौट आएँगे. मेरी बात को प्रमाण (सत्य मानिए)। मैं श्रीराम की शपथ ग्रहण करता हूँ। विष खाकर प्राणत्याग कर देने से आप अधःपात को प्राप्त हो जाएँगे'। गुरु वसिष्ठ की ऐसी बात सुनकर राजा दशरथ राजभवन में प्रविष्ट हो गये। परन्तु श्रीराम का मन में स्मरण होते ही वे मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े।

ब्राह्मणों का श्रीराम के पीछे दौड़ते हुए आना– दूसरी ओर, श्रीराम स्वयं वन की ओर शीघ्र गति से जा रहे थे, तो ब्राह्मण उनके पीछे (दौड़ते हुए) जाने लगे। समझिए कि उन्हें रोकने का प्रयास करते रहने पर भी वे रुक नहीं रहे थे। श्रीराम ने रथ को तेज गति से चलवा दिया। फिर भी वे ब्राह्मण उनके पीछे दौड़ते जा रहे थे। श्रीराम से उन्हें बहुत प्रेम था, उनके मन में श्रीराम के प्रति अदम्य प्रेम था।

श्लोक– उस समय लक्ष्मण सहित श्रीराम ने उन रोनेवाले दुःखी नगरवासियों को मानों डोरी में बाँधकर अपनी ओर खींच लिया अर्थात् अपने वश में कर लिया

उन लोगों में तीन प्रकार के वृद्ध ब्राह्मण थे– अर्थात् उनमें से कोई एक वयोवृद्ध थे, कोई एक ज्ञानवृद्ध थे और कोई एक तपोवृद्ध थे। इनमें से जो वयोवृद्ध थे और बुढ़ापे के कारण जिनका सिर कम्पायमान था, वे दूर से ही यह बात बोले– हे वेगवान् और अच्छी जाति के घोड़ो ! लौट आओ, लौट आओ ! अब तुम्हें आगे नहीं जाना चाहिए। अपने स्वामी के हितैषी हो जाओ (अर्थात् तुम्हारे आगे बढ़ जाने से उनका हित नहीं होगा)। वे विशुद्धात्मा, वीर और उत्तम व्रत का दृढ़ता से निर्वाह करनेवाले हैं। अतः तुम्हें उनका उपवहन करना चाहिए, इन्हें वाहन से नगर की ओर ले जाना चाहिए, न कि अपवहन करना अर्थात् नगर से वन की ओर ले जाना (तुम्हारे लिए कदापि उचित नहीं है)। इस प्रकार उन वृद्ध ब्राह्मणों को आर्त भाव से प्रलाप करते देखकर, श्रीराम सहसा रथ से नीचे उतर गए।

श्रीराम के साथ वन में निवास करने हेतु वे ब्राह्मण रथ पर दृष्टि लगाये वेगपूर्वक दौड़ रहे थे। इन वृद्ध-वृद्ध वेदपाठकों, तपस्वियों, अग्निहोत्रियों, याज्ञिकों और उनके साथ दौड़नेवाले बहुत-से लोगों ने श्रीराम को उच्च स्वर में पुकारा। (वे बोले-) 'हम श्रीराम को शीघ्रता से ले जानेवाले (तुम) घोड़ों की शरण में आये हैं। (हे अश्वो,) तुम श्रीराम को हमारे पास ले आओ। उन्हें वेगपूर्वक वनवास के लिए न ले जाओ। जो इस रथ को अद्‌भुत रूप से (अथवा जो इस अद्‌भुत रथ को) चला रहा है उस सारथि को हम नमस्कार करते हैं (हे सारथि, तुम रथ को नगर की ओर (घुमाकर) चला लो। श्रीराम को वन की ओर न ले जाना' जब श्रीराम ने पीछे देखा, तो (उन्हें दिखायी दिया कि) लोक-समुदाय दौड़ रहा है। तब वे झट से रथ में से नीचे कूद पड़े और उन लोगों के चरणों को नमस्कार करके बोले- 'हे स्वामियो ! बहुत दूर तक आने में आप कष्ट को प्राप्त हो गए हैं'। यह कहकर वे ब्राह्मणों के चरण दबाने लगे (और फिर बोले) 'मुझे दण्डकारण्य के अन्दर वनवास करना है। आप यहाँ कैसे आ सकते हैं'। इस पर वे ब्राह्मण बोले- 'हे श्रीराम, आपकी संगति में रहकर हम ब्रह्म को प्राप्त करेंगे यह तुच्छ वनवास तो कितने दिन का है ? हमें निश्चय ही कोई भय नहीं लग रहा है। हे रघुपति निश्चय ही हमें लौटकर पीछे (नगर में) नहीं जाना है। आप स्वामी हमें वन की ओर ले जाएँ। हम वनवास में आप के वन के साथी बनकर रहेंगे। आप यदि हमें छोड़कर दूर चले जाएँगे, तो हम प्रपलायी (फरार होकर भटकनेवाले) हो जाएँगे। आप हमपर कृपा करें और हम दीन-दुखियों का उद्धार करके चलें'। ब्राह्मणों की इस बात को सुनकर श्रीराम ने मन में विचार किया कि कोई ऐसी युक्ति आयोजित करें कि जिससे ये लोग स्वयं अपने नगर के प्रति लौट जाएँ। फिर श्रीराम ने लक्ष्मण को यह कहकर आदेश दिया- 'ये ब्राह्मण चलते-चलते बहुत थक गए हैं। आज हम तमसा नदी के तट पर रह जाएँ, तुम सीता को (रथ से) किसी वृक्ष के तले उतार देना'। (उस रात को) श्रीराम ने अन्न ग्रहण नहीं किया। उन सबने केवल जल-प्राशन किया श्रीराम ने सीता सहित साँथरी (तृणशय्या) पर ही शयन किया। फिर (सब के सोने के कुछ समय बाद उठकर) श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- 'ये ब्राह्मण यहाँ ठहराने का प्रयास करने पर भी नहीं रुक रहे हैं। इसलिए जब तक वे सोये हुए हैं, तब तक यहाँ से हम लोग शीघ्र गति से चल दें'। तदनन्तर सुमन्त ने रथ सुसज्जित किया और उसे मार्ग पर अयोध्या की ओर चला (देना प्रदर्शित किया) दिया। फिर (वहाँ से लौटते हुए) तमसा नदी में से चलकर वे उस पार चले गये। सवेरे ब्राह्मणों ने (जागकर) देखा तो (श्रीराम आदि कहीं नहीं दिखायी दिए, पर) रथ की खोज (चलने के चिह्न आदि) अयोध्या की ओर जाती दिखायी दी। तब वे सब अयोध्या नगर में लौट आये। तब तक श्रीराम (तमसा के पार वन की ओर) आगे बढ़ गये थे। नगरवासियों ने उनसे पूछा- 'श्रीराम कहाँ हैं ?' तो उन्होंने कहा कि वे तो यहाँ लौट आये हैं। यह सुनकर लोग उन ब्राह्मणों को हँसने लगे। बहुत-से लोगों को मोह-भ्रम में डालकर श्रीराम हाथों (चतुराई से दूर) चले गये। (वस्तुतः ब्रह्मस्वरूप) श्रीराम की गति-स्थिति अगम्य है। वह वेदों का पठन-कथन करनेवाले ब्राह्मणों की समझ में नहीं आयी। आत्माराम ब्रह्मस्वरूप श्रीराम के प्रत्येक के हृदय में ही रहने पर भी उन लोगों को मोह स्वरूप अज्ञानवश भ्रम हो गया वे सब सांसारिक विषयों के अभिलाषी हो गए। ऐसे लोगों को कल्पकाल के अन्त तक ब्रह्म राम नहीं मिल पाएँगे जो राम-नाम (वस्तुतः जाप या स्मरण करने की दृष्टि से) बिना किसी व्यय या परिश्रम के मुफ्त में ही उपलब्ध अर्थात् सबके लिए सुलभ है, उसका जो उच्चारण नहीं करते, वे परम अभागे हैं जो हृदयस्थ परमात्मा (आत्माराम) का स्मरण नहीं करते, वे घोर अन्धकारमय नरक को प्राप्त हो जाते हैं.

गुहराज का गंगा तट पर आगमन– अस्तु (तमसा नदी के उस पार शृंगवेरपुर पहुँचकर) श्रीराम ने दूसरे दिन के अन्त में अर्थात् शाम को इंगुदी (हिंगोट) वृक्ष के तले निवास किया। पास में ही भागीरथी की धारा (बह रही) थी। यह सुनकर कि साक्षात् श्रीराम वन में आये हैं, निषादराज गुह अत्यधिक प्रेम से श्रीराम से मिलने आ गए। (उनके समीप पहुँचकर, उन्होंने श्रीराम को भूमि पर दण्डवत् नमस्कार किया। श्रीराम के मुख को देखकर गुह को परम हर्ष हो गया, श्रीराम द्वारा गले लगाने पर वे (जीवन के लाभ-हानि आदि) द्वन्द्वों को तथा उनसे उत्पन्न दुःख को भूल गए। वे धर्म-अधर्म को भूल गए, वे यह भूल गए कि क्या उत्तम है और क्या अधम है। श्रीराम को सद्भाव अर्थात् प्रेम और श्रद्धा से देखते ही उन्हें जन्म एवं मरण का विस्मरण हो गया। वे कर्म के कर्ता की स्थिति भूल गए, 'मैं'-'तू' के द्वैतभाव को भूल गए। श्रीराम के चरणों को देखते ही गुह को सन्तोष हो गया। श्रीराम का नाम-स्मरण करने पर जन्म और मृत्यु (के फेर) का जड़-मूल सहित निर्दलन हो जाता है। उनके श्रीचरणों के दर्शन होने पर सांसारिक (हानि-लाभ, सुख भोगेच्छा आदि) भाव विदा हो जाते हैं। निषादराज गुह फलों के ढेर (के ढेर) ले आये, पर श्रीराम ने फलों का सेवन नहीं किया। उन्होंने जल मात्र का प्राशन करके उस इंगुदी वृक्ष के तले (तृण-) शय्या पर शयन किया। सीता ने भी वैसी ही शय्या पर शयन किया, पर लक्ष्मण तो सोये ही नहीं, वे तो श्रीराम की सेवा करने में दिन-रात सावधान एवं तत्पर रहनेवाले थे। श्रीराम और गुहराज एकान्त में बड़े प्रेम से बातें करते रहे। रात (मानों) आधे पल में बीत गई और अरुणोदय हो गया।

श्रीराम द्वारा वहाँ से बढ़ने से पहले मंत्री सुमन्त को वापस भेजना– (प्रातःकाल) श्रीराम ने गुहराज से कहा, 'शीघ्रतापूर्वक नौका ले आना। हमें (यथाशीघ्र) उस पार जाना है। आज प्रयाग में हमारा निवास होगा'। जब सुमन्त ने रथ सुसज्जित किया, तो श्रीराम उनसे बोले– 'अब आप यहाँ से ही जल्दी अयोध्या लौट जाइएगा। (वस्तुतः) यह बात निर्धारित थी कि रथ तमसा-तट से ही लौट जाए। पर उन ब्राह्मणों की संगति को त्यज देने (टालने) हेतु आपको यहाँ तक मैं ले आया'।

सुमन्त का अनुरोध– श्रीराम की यह बात सुनकर सुमन्त मूर्च्छित होकर गिर पड़े। फिर (सचेत होने पर) बहुत चीखते-चिल्लाते रुदन करने लगे। (उन्हें विदित हुआ कि) सच्चिद्घन श्रीराम अब मुझसे दूर होने जा रहे हैं, (वे बोले–) 'अयोध्या में रथ को रिक्त आये देखकर बवैला मचेगा। राजा दशरथ प्राण त्याग करेंगे। इसलिए मुझे वहाँ न भेजिएगा। हे रघुनाथ, आपको छोड़कर अयोध्या में जाने से मुझे सुख बिल्कुल नहीं प्राप्त होगा'। यह कहते हुए उन्होंने श्रीराम के चरणों पर मत्था टेका। 'हे रघुपति, मुझपर कृपा कीजिए, मैं आपके साथ वन में आ जाऊँगा, आपकी दिन-रात सेवा करूँगा और (मार्ग में) आनेवाली बाधाओं का रथ को चलाते हुए निवारण कर दूँगा'।

श्रीराम का उत्तर– (यह सुनकर) श्रीराम बोले– 'हे सुमन्तजी, मैं आप से एक रहस्य भरी बात कहूँगा। आपके अयोध्या न लौट जाने पर कैकेयी राजा दशरथ को पीड़ा पहुँचा देगी। (वह सोचेगी,) राजा ने रथ दिलाकर श्रीराम को कहीं भेज दिया है, फिर राजा दशरथ मेरे सम्बन्ध में (घटित बात से) क्रोध को प्राप्त होकर भरत का वध करा देंगे। (कैकेयी को जान पड़ेगा कि) श्रीराम को पैदल ही वनवास के लिए जाना चाहिए था, फिर हठपूर्वक उसे राजा ने रथ क्यों दिया, अवश्य भरत को मार डालने के लिए राम को भेज दिया है। (राजा ने यह सोचा होगा–) भरत को मार डाले जाने के पश्चात् श्रीराम को सिंहासन पर बैठाया जाए। कैकेयी के मन में इस प्रकार का सन्देह (आशंका) बन रहा होगा। आपके

लौटने पर उसे वह छोड़ देगी। रथ को रिक्त लौटे देखकर कैकेयी को यह सत्य स्वीकार होगा कि राम अब निश्चय ही वनवासी हुआ है। इसलिए इस कार्य को दृष्टि से आप वहाँ लौट जाएँ। मेरी ऐसी आज्ञा है कि आप अयोध्या के प्रति लौट जाएँ। पिताश्री राजा दशरथ को, माता कौशल्या को और उन ब्राह्मणों को ऐसा उपदेश दें, जिससे वे सुख को प्राप्त हों'। यह संकट में डालनेवाली (टेढ़ी) बात सुनकर सुमन्त को संकोच हो गया। वे रोने लगे। उनसे इसपर कुछ कहा ही नहीं जा पा रहा था। फिर उन्होंने बड़े दुःख से रथ को (अयोध्या की ओर) घुमा लिया।

श्रीराम का गुहराज द्वारा वृक्ष का दूध लिवा लाकर जटा-बन्धन– श्रीराम ने गुहराज से कहा 'आप बरगद के पेड़ का दूध लिवा लाइए। हम राम और लक्ष्मण वनवासी हैं, अत: झट से जटाओं के सम्भार को बाँध लें'। तब गुह उस पेड़ का दूध ले आये और उन दोनों की जटाओं को अति सुन्दर मनोहारी रूप से मुकुटाकार बाँध लिया। उससे श्रीराम और लक्ष्मण शोभायमान दिखायी दे रहे थे। फिर श्रीराम सुमन्त को विदा करके नाव के पास आ गए। उन्होंने झट से लक्ष्मण को उसमें चढ़ाकर बैठा दिया और उनके पास सीता को भी (नाव में) बैठा दिया।

गुहराज की माता द्वारा श्रीराम से प्रार्थना करना–श्रीराम के नाव में बैठ जाने पर निषादराज गुह की माता रुदन करते-करते उच्च स्वर में बोली - 'हे रघुनाथ, हम सबको इस प्रकार मार न डालिए। आपकी लीला अथाह है। हम आप श्रीराम की महिमा को (पूर्णत:) नहीं जानते। फिर भी (हम इतना जानते हैं कि) आपके चरणों (के स्पर्श) से पत्थर उद्धार को प्राप्त हो गए हैं आप श्रीराम जड़ (अचेतन) का उद्धार करके उसे सचेतन कर देते हैं। हमारी जीविका नाव पर निर्भर है। पर वह आपके चरण (स्पर्श) से उद्धार को प्राप्त हो जाएगी, तब हमें क्या करना होगा। हमारा नदी के इस पार- उस पार आना-जाना ही रुक जाएगा'।

श्लोक– (वह बोली) 'हे नाथ, मैं आपके चरण कमलों को धो लेती हूँ। काठ और पत्थर में क्या अन्तर है ? ऐसी विख्यात बात है कि आपके चरण (रज) मानुषीकरण चूर्ण (पत्थर आदि को मनुष्य बनानेवाला दिव्य चूर्ण) हैं।

आपके चरण (-रज) ऐसी महिमा से युक्त हैं। आपके चरणों के रज:कणों के लगते ही जड़ वस्तुओं का (मानव रूप में) उद्धार हो जाता है। इसलिए मैं उन्हें धो लूँगी'।

श्रीराम का सन्तुष्ट हो जाना– उस निषाद स्त्री की श्रद्धा को देखकर श्रीरामराज सन्तुष्ट हो गए। देखिए श्रीराम का वन में जीवन-यापन दीनों के उद्धार के लिए ही होने जा रहा था। रचनाकार मैं एकनाथ अपने गुरु जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हूँ। (उनकी प्रेरणा से रामायण की यह टीका प्रस्तुत करते हुए मैं कह रहा हूँ कि) श्रीराम तो (दीनों-भक्तों को) संसार रूपी सागर के पार लगानेवाले अर्थात् तारनहार हैं। दीनों के उद्धार के लिए उन्होंने वन की ओर प्रयाण किया है।

श्रीराम का गंगा नदी को पार करके उस दिन रात को निवास करना, त्रिवेणी-दर्शन; गंगा-यमुना का आनंदित हो जाना– इस प्रकार श्रीरामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण तीनों एक साथ गंगा नदी को पार करके आगे चले। आगे चलकर उन्होंने एक कमल पुष्करिणी अर्थात् कमल पुष्पों के तटाक को देखकर वहाँ (उसके तट पर) उस रात को निवास किया। वहाँ कमलों के परागों एवं तन्तुओं का सेवन करके प्रभात वेला में त्रिवेणी संगम के समीप पहुँच गए श्रीराम सीता और लक्ष्मण– तीनों को

देखकर श्रीत्रिवेणी में से गंगा के मन में श्रीराम के चरणों में शरण लेकर शोभायमान होने के विचार से प्रसन्नता छा गई। गंगा ने कहा- 'मेरा सौभाग्य अथाह है'। यमुना ने कहा- 'मैं (श्रीराम के दर्शन से) अति पवित्र हो गयी हूँ,' तो सरस्वती ने कहा- 'श्रीराम के चरणों से मैं धन्य हो गयी हूँ।' उन तीनों ने कहा- 'श्रीराम के चरणों में लग जाते ही हम तीनों जनों पावन हो गई हैं'। इसलिए त्रिवेणी अर्थात् वे तीनों नदियाँ आनन्दित हो गईं। वे तीनों जनी सनाथ हो गईं। प्रयाग तीर्थ स्थल को अपने आगमन से पावन करते हुए श्रीराम ने सीता और लक्ष्मण सहित स्नान, सन्ध्या और जप विधियों को शास्त्रों में बताये अनुसार सम्पन्न किया।

श्रीराम-सीता-लक्ष्मण का नित्य-विधियों को सम्पन्न करके ऋषि भरद्वाज के आश्रम के प्रति जाना; ऋषि द्वारा उनसे वहीं रहने का अनुरोध करना- सीता और लक्ष्मण को साथ में लेकर श्रीराम ऋषि भरद्वाज के आश्रम के प्रति गये तो ऋषि उनको देखते ही (अगवानी के लिए) दौड़ते हुए सामने आ गए। स्वयं श्रीराम ने उनको दण्डवत् नमस्कार किया; लक्ष्मण ने भी उनको साष्टांग नमस्कार किया। सीता ने भी उनके चरणों का वन्दन किया। श्रीराम को पधारे देखकर ऋषि भरद्वाज को अद्भुत आनन्द हो गया। उन्होंने माना कि आज मेरा कुल पावन हो गया; मेरे पितर आज तृप्त हो गए। (वे बोले-)

श्लोक- जब कि आप यहाँ मेरे घर पधारे हैं, तो (मैं मानता हूँ कि) आज मेरे पितर तृप्त हो गए, मेरा कुल पावन किया गया। आज से आगे होनेवाले मेरे समस्त वंशज पवित्र हो जाएँगे।

आज मेरा वंश (कुल) धन्य हो गया। आज मेरा आश्रम पावन हो गया। आज मेरे किये हुए यज्ञ तथा मेरा ध्यान करना सम्पूर्ण सफलता को प्राप्त हो गए। आज मेरे नयन धन्य हो गए। आज मेरे यहाँ सन्तोष ही विश्राम करने हेतु आ गया। आप श्रीराम के चरणों को देखकर मेरा ध्येय (लक्ष्य), मैं ध्यान-कर्ता और मेरा ध्यान करना- सब कुछ सम्पन्नता अर्थात् परिपूर्ण सिद्धि को प्राप्त हो चुका। वैसे तो स्वाभाविक रूप से श्रीराम के दर्शन करने पर ज्ञानी पुरुष को विज्ञान अर्थात् आध्यात्मिक अथवा ब्रह्मज्ञान की उपलब्धि हो जाती है। मूर्तिमान् ब्रह्मस्वरूप श्रीराम को देखकर आज जीव और शिव को विश्राम प्राप्त हुआ। ऋषिवर भरद्वाज ने श्रीराम की हर्षपूर्वक स्तुति की, तो उनके नयन आँसुओं से पूर्णतः भर गए। श्रीराम को हृदय से लगाने से उन्हें सन्तोष हो गया। ऋषि भरद्वाज ने सन्तोष को प्राप्त होकर श्रीराम का अर्घ्य, पाद्य आदि को अर्पित करते हुए पूजन किया; फल लाकर उन्हें सम्पूर्ण फलाहार स्वरूप भोजन करा दिया। ऋषिवर ने निर्मल (स्वार्थ आदि के विचार से रहित) सद्भाव अर्थात् श्रद्धा से श्रीराम को फल अर्पित किये, तो उनकी अपनी देह तथा घर (आश्रम, घरगृहस्थी) श्रीराममय हो गए; समस्त फल सुफलता अर्थात् अच्छे परिणाम की दृष्टि से श्रीराममय जान पड़े, इस प्रकार पूर्ण समाधि अवस्था को प्राप्त हो जाने पर भी ऋषि भरद्वाज के मन की इच्छा पूरी नहीं हुई। श्रीराम की सेवा से प्राप्त सुख का अनुभव करते रहने पर वह समाधि अवस्था भी उन्हें तुच्छ जान पड़ी। फिर उन ऋषिवर ने श्रीराम से कहा- 'आप वनवास के लिए दूर क्यों जा रहे हैं ? यह प्रयाग समस्त तीर्थों का राजा है। इसलिए आप चौदह वर्ष यहीं रहें।

अपने यहाँ निवास करने पर अयोध्या के नागरिकों के यहाँ आने के कारण शान्ति के भंग होने आदि सम्भाव्य बाधाओं का श्रीराम द्वारा उल्लेख करना- श्रीराम ऋषिवर से बोले- "मेरे यहाँ रहने से अयोध्या के समस्त प्रजाजन निकटता को देखकर यहाँ निश्चय ही दौड़कर आ जाएँगे। मैं ब्राह्मण गण को टालकर (धोखा देकर, भ्रम में डालकर) यहाँ आया हूँ, वे ब्राह्मण अवश्य आएँगे। अति

दीन (असहाय) वृद्ध जन, नारियाँ सब लोग आ जाएँगे। (यहाँ) पुरोहित, मंत्री आएँगे। नट, स्वाँग आदि रचकर खेल-तमाशा दिखानेवाले लोगों के समुदाय आ जाएँगे। समस्त वारांगनाएँ आएँगी। सेवक भी आ जाएँगे। एक तो वे मानेंगे कि श्रीराम से भेंट हो जाएगी और दूसरे इस अत्यधिक पावन पर्वकाल में प्रयाग में स्नान करने का सौभाग्य प्राप्त होगा। फिर राजा जनक भी शीघ्रतापूर्वक आ जाएँगे और सीता का अपने मायके में जाना भी हो सकता है। (राजा जनक कहेंगे कि) 'सीता को आप वनवास के लिए क्यों ले जा रहे हैं ? इसे मायके भेज दीजिए'। तब मैं राजा जनक से क्या कहूँ ? यह तो वनवास के विषय में मुख्य विघ्न होगा, यहाँ पिताजी दशरथ आ जाएँगे, तब तो उनका वचन ही अर्थहीन सिद्ध हो जाएगा। इसलिए (अच्छा तो यही होगा कि) यहाँ से गुप्त रूप से वन में निवास करने हेतु चले जाएँ"।

ऋषि भरद्वाज द्वारा इस सुझाव को स्वीकार करके चित्रकूट का नाम सुझाना– 'आपके कहने का तात्पर्य सत्य है। यहाँ से चित्रकूट पर्वत निकट है, जो पुष्पों से प्रफुल्लित तथा फलों से सम्पन्न है वहाँ के वन में आप निवास करें। वह पर्वत पुण्यशील (पुण्यप्रद) है; सज्जनों के निवास (-स्थान) की भाँति निर्मल (दोषहीन) है। वहाँ सदाफल वृक्ष हैं। आप वहाँ सभी सुखों को प्राप्त करेंगे। मार्ग में विख्यात सिद्धवट है। आप श्रद्धाभाव के साथ उसका वन्दन करें। (वनवास के) विघ्न-रहित होने की दृष्टि से उसका वन्दन करें। उससे आपके समस्त पुरुषार्थ सफल हो जाएँगे'।

सिद्धवट-दर्शन, सीता द्वारा प्रार्थना करना– तदनन्तर भरद्वाज को नमस्कार करके उन तीनों ने वहाँ से प्रयाण किया। ऋषिवर उनको विदा करते-करते स्वयं आधा योजन उनके साथ चले। फिर श्रीराम ने उन्हें वहीं (तट पर) ठहरा दिया और वे तीनों यमुना को पार करके उस नये वन की शोभा को देखते देखते सिद्धवट के पास पहुँच गये। उस वृक्ष की शाखाएँ बड़ी सीधी थीं। वे उसके तले आ पहुँचे। श्रीराम और लक्ष्मण ने उस वृक्ष को मत्था टेककर नमस्कार किया, तो सीता स्वयं उसके तले खड़ी होकर बोली 'श्रीरघुनन्दन के वन में विजय प्राप्त करके हमारा यहाँ पुनः आगमन होने पर मैं एक लाख गायें दान में प्रदान करूँगी; वैसे ही एक लक्ष ब्राह्मणों को भोजन कराऊँगी। वटवृक्ष में सती सावित्री का निवास है। मैं उनको आभूषण एवं वस्त्र अर्पित करते हुए उनका पूजन करूँगी'। इस प्रकार बोलकर सुन्दरी सीता ने उस वृक्ष को नमस्कार किया।

श्रीराम-लक्ष्मण सीता का चित्रकूट पर आगमन– वे वहाँ से शीघ्रता से चित्रकूट पर्वत पर जा पहुँचे। वहाँ की अति अद्भुत शोभा देखकर श्रीराम सुख को प्राप्त हुए। उस शोभायमान पर्वत को देखते ही मार्ग में उन्हें जो कष्ट हुए थे, वे नष्ट हो गए। वे तीनों वहाँ सुख-सम्पन्न हुए। उन्हें लगा कि हम यहीं रहें।

श्रीराम द्वारा लक्ष्मण को आश्रम बनाने की आज्ञा देना– श्रीराम लक्ष्मण से बोले- 'यहाँ पर वेगपूर्वक आश्रम का निर्माण कर लो। हाथियों द्वारा ध्वस्त किये वृक्षों (की शाखाओं, टहनियों, पत्तों) को लाकर पर्णशाला का निर्माण कर लो'। तदनन्तर लक्ष्मण ने श्रीराम के लिए अति मनोहर शय्यागृह (आश्रम, पर्णशाला) बना दिया। फिर बड़े-बड़े ऋषीश्वरों के निवास हेतु एक अन्य विशाल पर्णशाला का निर्माण किया। (प्रतिदिन) जल और फल लाकर लक्ष्मण सीता को दिया करते थे। वे दिन-रात जाग्रत रहते हुए श्रीराम की सेवा में तल्लीन हो जाया करते थे। उसके मुँह में (जिह्वा पर) नित्य राम नाम था। उसकी समस्त इन्द्रियाँ श्रीराम के लिए काम करने में लगी रहती थीं। उनके हृदय में परमात्मा का (नित्य) निवास था। लक्ष्मण श्रीराम के श्रेष्ठ भक्त थे। इस प्रकार की सेवा अत्यधिक दृढ़ निश्चय के साथ

करने का अवसर लक्ष्मण को पूर्णतः प्राप्त हुआ। मैं रचनाकार एकनाथ अपने गुरु श्री जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हूँ (उनकी प्रेरणा से) मैं अब आगे का कथाँश कहने जा रहा हूँ। अब भरत के चित्रकूट आगमन की घटना के विषय में ध्यान से सुनिए।

॥ स्वस्ति ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ कृत 'श्रीभावार्थ-रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत अयोध्या काण्ड का 'श्रीराम-सीता लक्ष्मण-चित्रकूट-पर्वत-गमन' शीर्षक यह नवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय १०

[राजा दशरथ का देहान्त]

गुहराज के यहाँ सुमन्त का निवास करना— उधर श्रीराम के चले जाने पर सुमन्त और गुह दुःख को प्राप्त हुए। उस सम्बन्ध में आदिकवि द्वारा लिखित श्लोक सुनिए।

श्लोक— इधर श्रीराम के गंगा नदी के पार जाने पर दुःख से व्याकुल होकर सुमन्त के साथ देर तक बातचीत करते रहे। तदनन्तर वे सुमन्त को साथ में लेकर अपने घर चले गये।

श्रीराम का प्रयाग में भरद्वाज के आश्रम पर जाना, मुनि के द्वारा किया सत्कार-आतिथ्य प्राप्त करना तथा चित्रकूट पर्वत पर पहुँचना— ये सब वृत्तान्त शृंगवेरपुर के गुप्तचरों ने देखे और लौटकर गुह को इन बातों से अवगत कराया। इन सब बातों को जानकर सुमन्त ने गुह से विदा लेकर अपने उत्तम घोड़ों को रथ में जोत लिया। वे मन में बड़े उदास थे। उस स्थिति में वे अयोध्या की ओर ही लौट पड़े।

श्रीराम सुमन्त और गुह से विदा होकर नाव में बैठे और गंगा के उस पार चले गये। तब वे दोनों श्रीराम की ओर एकटक देखते रहे। उनकी आँखों की पलकें, पलकों से नहीं मिल रही थीं। वे दोनों श्रीराम को अपलक देख रहे थे। श्रीराम के दृष्टि से दूर हो जाने पर वे दोनों मूर्च्छित होकर गिर पड़े। तदनन्तर यद्यपि वे सचेत हो गए, तो भी श्रीराम के विरह से वे अति व्याकुल हो उठे। उनके नयन अश्रुधाराएँ बहा रहे थे। वे श्रीराम के नाम का स्मरण कर रहे थे। जिह्वा से वे श्रीराम का नाम स्मरण (जाप) कर रहे थे। उनके नयन श्रीराम के रूप में जुड़े हुए थे। हृदय में श्रीराम को धारण कर लेने पर, जो दुखी हों, वे भी श्रीराम (की कृपा के प्रभाव) से मन में सानन्द हो जाते हैं. फिर गुह ने सुमन्त से कहा– 'श्रीराम से केवल एक रात भर मिलने से हमारी यह (दयनीय) अवस्था हुई है, तो (जिन्होंने श्रीराम को देखते अनेक वर्ष बिताये हैं,) उन अयोध्या-वासियों का क्या होगा'।

दूतों द्वारा श्रीराम के निवास सम्बन्धी समाचार बताना— गुहराज ने अपने दूतों को इस सम्बन्ध में समाचार लाने के लिए भेजा था कि श्रीराम ने वन में कहाँ (-कहाँ) निवास किया, वे वन के किस भाग में रहेंगे फिर गुहराज सुमन्त को आदर सहित अपने ग्राम में ले आये। जब दूत समाचार ले आनेवाले थे तब तक उन्होंने सुमन्त को (अपने यहाँ) ठहरा लिया। फिर दूतों ने (लौटकर) गुहराज से कहा 'श्रीराम प्रयाग जाकर ऋषि भरद्वाज से मिले। तदनन्तर चित्रकूट पर्वत पर (जाकर) उन्होंने वहाँ स्थायी रूप से निवास किया'। सुमन्त ने यह समाचार सुनकर रथ को जोत लिया। फिर वे सन्मुख गुहराज से विदा होकर अयोध्या के प्रति चले।

सुमन्त का अयोध्या में लौट आना, वहाँ के लोगों द्वारा विलाप करना–

श्लोक– सुमन्त को देखकर सैकड़ों, हज़ारों नागरिक जन दौड़े आये और 'श्रीराम कहाँ हैं ?' यह पूछते हुए उनके साथ दौड़ने लगे।

सुमन्त को आये देखकर नागरिक जन दौड़े। उन्होंने उनसे पूछा 'हे सुमन्त, आप श्रीराम को किस स्थान पर छोड़कर (विदा करके यहाँ) आ रहे हैं'। सुमन्त जब उनमें से किसी एक से कोई बात कहने लगे तब वहाँ पर सैकड़ों, सहस्रों, लाखों, करोड़ों लोग आ गये। आँखों से रथ को रिक्त देखकर वे मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर गए। नर-नारियों ने आक्रन्दन करते हुए कहा- "यह 'सुमन्त (सुमंत्र)' नहीं है, 'कुमन्त (कुमत्र)' है। तभी तो यह कलमुँहा श्रीराम को वन में छोड़कर यहाँ आया है", सुमन्त के लौट आने के बाद नगर में बवेला मच गया। नर-नारियाँ छटपटाने लगे। घर घर में वे आक्रन्दन करते रहे वे बोले– 'इसका काला मुँह जल जाए। यह हमें दुःख देने के लिए नगर में लौट आया है'। इस प्रकार कहते हुए सब लोग सुमन्त के सामने उनकी निन्दा करने लगे, तो वे सिर झुकाये खड़े रहे। राजा दशरथ के सात सौ स्त्रियाँ थीं। वे भी रथ को रिक्त (लौटा) देखकर सुमन्त की यह कहकर निन्दा करने लगीं कि यह (सुमन्त) श्रीराम को (वन में) छोड़कर क्यों आ गया। तब सुमन्त ने सोचा, मैं अभागा श्रीराम से पीठ फेरकर (विमुख होकर) क्यों लौट आया ? हे निर्लज्ज ! हाय रे दैव ! तुझे धिक्कार है, धिक्कार है श्रीराम का त्याग करने पर जगत् में समस्त मनुष्य निन्दनीय सिद्ध हो जाते हैं। श्रीराम से दृष्टि के विचलित हो जाने पर पद पद पर करोड़ों पाप लग जाते हैं।

सुमन्त को देखकर राजा दशरथ का सुध-बुध खो बैठना– अपने निन्दा का विषय हो जाने से सुमन्त स्वयं अपनी निन्दा करने लगे। उसी दुःख से वे अति दुःखी हुए। फिर (प्रासाद के) महाद्वार के पास रथ को खोलकर वे राजभवन में गये. (उन्होंने देखा कि) पुत्र के (विरह जन्य) दुःख से नृपनाथ दशरथ पूर्णतः दुःखी हो गए हैं, अत्यधिक व्याकुल हो गए हैं। उनकी कान्ति (तेज) नष्ट हो गयी है; वे दीन हीन (बहुत असहाय) हो चुके हैं। सुमन्त को अकेले (आये) देखकर वे बोले– 'श्रीराम क्यों नहीं आया ?' ऐसा पूछते हुए राजा दशरथ मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े

सुमन्त द्वारा राजा से समाचार कहना– तब सुमन्त ने राजा को आश्वस्त करके (धीरज बँधाते हुए) उन्हें सचेत सावधान कर लिया। तो सुमन्त को आये देखकर वे स्वयं क्या बोले ? (सुनिए)।

श्लोक– राजा दशरथ ने देखा, सारथि का शरीर धूल से भर गया है वह सामने खड़ा है उसका मुख आँसुओं से सराबोर हुआ है। वह अत्यधिक दीन है। राजा ने अत्यन्त आर्त होकर पूछा– हे सूत, धर्मात्मा श्रीराम वृक्ष की जड़ का आश्रय आधार लेकर कहाँ निवास करेगा ? हे सुमन्त, वन में पहुँचकर श्रीराम ने तुमसे क्या कहा ? और लक्ष्मण ने भी क्या कहा। और मिथिलेश कुमारी सीता ने क्या कहा ? हे सूत, तुम श्रीराम के बैठने, सोने और खाने-पीने के बारे में कहो।

राजा दशरथ सुमन्त से बोले– 'श्रीराम ने किस स्थान पर निवास किया श्रीराम ने तुमसे क्या कहा और मेरे पास तुम्हें भेज दिया। सती (साध्वी) सीता श्रीराम को अत्यधिक प्यारी है। वह क्या बोली ? लक्ष्मण ने (इन समस्त घटनाओं के विषय में) क्या कहा ? इस सम्बन्ध में वह समस्त वृत्तान्त मुझे बता दें। जो राजसी भोगों को, अपनी पत्नी को, अपने माता पिता को छोड़कर श्रीराम की सेवा करने हेतु वन में गया है, उस लक्ष्मण से अधिक धन्य (कृतार्थ) कोई नहीं है। वह सती सीता धन्य है। वह

भाई लक्ष्मण धन्य है, वह श्रीराम धन्य है, जो पिता के वचन का प्रतिपालन कर रहा है। उन तीनों को खाना कहाँ मिला ?' उन्होंने भोजन कहाँ किया ? यह पूछते हुए उनकी आँखों से आँसुओं की धाराएँ बह रही थीं। वे बार-बार मूर्च्छित भी होने रहे। (वे बोले-) 'वे कहाँ सोये ? उन्हें क्या क्या बिछावन और उढ़ावन मिला ? उनके पाँवों को किसने दबाया ? उन्हें सवेरे किसने जगाया इन सबका आदि से लेकर वृत्तान्त बता दो, हे सुमन्त, मैं क्या करूँ ? बिना श्रीराम के (मेरे पास रहते) मेरे मन से धीरज धारण नहीं किया जा रहा है। श्रीराम और सीता पैदल चले गये। (वस्तुतः) यह कार्य मैंने नीति-धर्म के विरुद्ध ही किया है'। कैकयी ने तो (हमसे) वैर ठान लिया है। यह कहते हुए वे भूमि पर लोटते-पीटते-लुढ़कते रहे, जब-जब वे श्रीराम को याद करते, तब-तब उनका आवेग मन द्वारा रोका नहीं जा रहा था। उनसे धीरज बिल्कुल नहीं धारण किया जा रहा था। (मानों) उनका हृदय फटा चाहता था। वे बोले- 'हे सुमन्त, उनके वनवास का वृत्तान्त झट से बता दो, श्रीराम की कथा अर्थात् समाचार को सुनकर मन को कुछ तो सुख होगा'। तब सुमन्त बोले-

श्लोक- गंगा को पार करने पर मैंने श्रीराम से बिदा ली और उन धर्मशील महात्मा द्वारा अनुज्ञा को प्राप्त हुआ मैं यहाँ लौटा हूँ। सुमन्त राजा से बोले- 'श्रीराम ने गंगा के उस पार जाने पर आपके पास रथ को लौटा दिया और वे वन में निवास करने हेतु पैदल चले गये। वे बोले- जान लीजिए, मेरे पिता अति वृद्ध हैं। मेरे विरह के दुःख में वे अत्यधिक डूबे हैं। हे सुमन्त, यह कहकर उन्हें आश्वस्त कर लीजिए (सान्त्वना दे दीजिए) कि मैं नियम के (अनुसार निर्धारित अवधि के) अन्त में शीघ्र ही (अयोध्या में) आ जाऊँगा। चौदह वर्षों के वनवास के अनन्तर मैं शीघ्र गति से (आपके पास लौट) आऊँगा। श्रीराम ने मेरे द्वारा आपसे इस प्रकार कहला दिया है'।

वनवास में निराहार रहते हुए केवल जल-प्राशन करके श्रीराम-सीता-लक्ष्मण का रहना- 'उनके वन में रहने का ढंग यह है, उनको घास और पेड़ों की पत्तियों का बिछावन और वल्कलों का ही उढ़ावन प्राप्त था। पक्षियों द्वारा सवेरे उनको जगाया जाता था। उन तीनों जनों ने तीन (दिन) रात न भोजन किया, न फलों का सेवन किया। वे दिन के अन्त में (शाम को) केवल जल प्राशन करते थे'

दशरथ का प्राणान्तक विलाप करना- ऐसी बात को सुनते ही राजा दशरथ मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। दुःख से मानों उनका हृदय फटता जा रहा था। वे आवेग के साथ सिर पीटने लगे। जैसे किसी के गले के अन्दर मछली फँस गयी हो, तो वह (व्यक्ति) छटपटाते हुए जीवित रहता है, मरता नहीं; राजा दशरथ की अवस्था वैसी ही हुई। वे मोह के फंदे में फँसकर विलाप कर रहे थे। वे बोले- 'हे सुमन्त, यदि सचमुच पहले कभी मेरे हाथों तुम्हारा उपकार हो गया हो, तो तुम श्रीराम को रथ में बैठाकर झट से मेरे पास ले आओ, परन्तु श्रीराम अपने प्रण का त्याग बिल्कुल नहीं करेगा; वह फिर लौटकर नहीं आ सकेगा, इसलिए तुम मुझे ही उठा लो और रथ में बैठाकर सचमुच वनवास के लिए ले चलो। हे सुमन्त, मैं क्या कर सकता हूँ ? श्रीराम को न देखने पर मेरे प्राण सचमुच निकल जाएँगे। मुझे इसकी अत्यधिक चिन्ता हो रही है। श्रीराम के साथ मेरी मति चली गयी; श्रीराम के साथ मेरी चित्त-वृत्ति चली गयी, श्रीराम के साथ मेरी मति चली गयी; अब श्रीराम के पास मेरे प्राण जाना चाहते हैं। मेरे नयन श्रीराम के रूप में जुड़ गये हैं, श्रीराम के रूप में मेरा मन जुड़ गया है, अतः हे सुमन्त, यह सत्य समझ लो कि मेरे प्राण भी श्रीराम के पास जाएँगे।

'राम', 'राम' बोलते हुए राजा दशरथ का दुःखद निधन– श्रीराम के रूप और गुणों का स्मरण करते हुए राजा दशरथ को पूर्ण मूर्च्छा आ गयी। श्रीराम का स्मरण करते हुए ही आयी मूर्च्छा की अवस्था में ही दशरथ के प्राण निकल गये। 'राम', 'राम' कहते हुए, उनका स्मरण करते-करते स्वयं दशरथ ने प्राणों को त्यज दिया। समझिए कि उन्होंने (श्रीराम पर) अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियों को समर्पित कर दिया। मन में श्रीराम से ही प्रेम धारण करके, वाणी से 'राम', 'राम' कहकर जाप करते हुए राजा दशरथ ने श्रीराममय जगत् में देह-त्याग कर दिया और वे वैकुण्ठ लोक में प्रविष्ट हो गए। दशरथ ने प्रेम के साथ श्रीराम को अपनी रुचि में धारण किया था; उनकी दृष्टि भी श्रीराम के रूप में लगी रही वे वाणी से श्रीराम नाम का स्मरण अर्थात् जाप कर रहे थे इसी प्रकार की मृत्यु को प्राप्त हो जाना ही राजा दशरथ का धर्म था उनके मन में और ध्यान में श्रीराम थे; उनके नयनों में और मुख में श्रीराम बसे हुए थे इस प्रकार श्रीराम का स्मरण करते-करते ही राजा दशरथ के प्राणों का उत्क्रमण (स्वर्ग-गमन) हुआ। श्रीराम का स्मरण करते-करते विस्मरण ही स्मरण को प्राप्त हुआ (विस्मरण का पूर्णतः लोप हुआ; वे मानों राम-स्मरण रूप रह गए), तब श्रीराम में उनके प्राण जुड़ गए और राजा दशरथ का देहावसान हुआ। श्रीराम सम्बन्धी अत्यधिक प्रेम से राजा दशरथ ने देह का त्याग किया। कौशल्या और सुमित्रा ने जब देखा, तब उन्हें दिखायी दिया कि राजा दशरथ मृत्यु को प्राप्त हुए थे। जैसे किसी के द्वारा आईने को उलटा करते ही देखनेवाले को अपना प्रतिबिम्ब नहीं दिखायी देता, उसी प्रकार श्रीराम के वन में जाते ही राजा दशरथ को मृत्यु आयी। घड़े में रखे जल के अशेष झर जाते ही, जैसे उस घड़े (के जल) में दिखायी देनेवाला चन्द्र का प्रतिबिम्ब तत्काल लुप्त हो जाता है, उसी प्रकार श्रीराम के मुख कमल के न दिखायी देते ही राजा दशरथ तत्काल मृत्यु को प्राप्त हुए। सूर्य के अस्त हो जाते ही, जैसे आकाश में अन्धकार व्याप्त हो जाता है, उसी प्रकार श्रीराम के दूर हो जाते ही राजा दशरथ मृत्यु को प्राप्त हुए।

कौशल्या का विलाप– श्रीराम के विरह के फलस्वरूप राजा दशरथ ने संसार का तत्काल त्याग किया अर्थात् विदा ली। तो ही अन्तःपुर में वावैला मचा। कौशल्या सिर पीटने लगी। (उसने सोचा) कैकेयी ने श्रीराम को संकटमय वन में भेज दिया, तो इधर दशरथ ने वैकुण्ठ लोक के प्रति प्रयाण किया। इससे कैकेयी सुख और तुष्टि को प्राप्त हुई, तो वही अब सिंहासन पर बैठ जाए। जब उसने श्रीराम को वन में भेज दिया, राजा दशरथ (सदा के लिए) अशेष (चिर) शान्ति को प्राप्त हुए तो कैकेयी की इच्छा, सुख एवं स्वार्थ की दृष्टि से सफलता को प्राप्त हुई।

कैकेयी का धिक्कार किया जाना– (वस्तुतः) राज्य सम्बन्धी लोभ के कारण (सबको) अपार दुःख हुआ है; पर उसी से कैकेयी को हर्ष हुआ है। उसके सिर को छुरे से मुँडाकर उसका राज्यसुख का उपभोग करने हेतु अभिषेक सम्पन्न कर दें। पति की मृत्यु के समय उसका मुख काला हो गया- उसी मस्तक पर छत्र धारण करा दो, उसके मस्तक को सचमुच मुँड़ाकर उसपर दो चामर झुला दो। पहले पति (के शव) को अग्नि में डालकर कैकेयी को हाथी पर विराजमान करा दो और चीख चिल्लाहट, हाय-पुकार की ध्वनि में सिंहासन पर उसको अभिषिक्त कर दो। उसके दोनों पुत्रों को गाजेबाजे के साथ विचरण कराकर कैकेयी को सिंहासन पर बैठा दो। राजा को पिण्डदान कराते हुए कैकेयी को राजभवन में रहने दो। राजा के नाम, दाह क्रिया के समय घट को तोड-फोडकर कैकेयी के लिए बड़ी थाली भोज्य सामग्री से सजायी जाए। शुद्ध छहों रसों से युक्त पदार्थों से भरकर बत्तीस कटोरियों से वह सजायी जाए। राजा को तिलांजलि अर्पित करते समय गोत्रीय और कुटुम्बीय जनों को जैसे-जैसे

(अधिकाधिक) दुःख होगा, वैसे वैसे राज्य सम्बन्धी सुख का भोग की दृष्टि से कैकेयी को अधिकाधिक हर्ष होता जाएगा कैकेयी के सम्बन्ध में ऐसे कथन को जाने दो। कौशल्या ने यह विचार किया कि श्रीराम वन की ओर गया है; राजा मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं। अब मैं सहगमन करूँगी, अर्थात् सती हो जाऊँगी। राज्य (के वैभव आदि) का उपभोग करने के लिए कैकेयी (यहाँ पर) रहेगी। मैं पति के साथ चली जाऊँगी। वैधव्य की अवस्था में आधे क्षण भी रहना पापों की राशियों को पद पद पर जुटाना होगा। पति (के शव) के चिता में जलते रहते जो मूर्ख राँडें उस अग्नि में नहीं प्रविष्ट होतीं, उनका मंगलसूत्र काट दें, चूड़ियाँ फोड़ दें आगे इसे सुन लें कि उनका सुखोपभोग कैसा होता है। ऐसी विधवा को काजल, कुंकुम (सिन्दूर) चन्दन नहीं लगाना है। वह अपना काला मुँह नहीं दिखा दे। प्रतिमास उसका मुण्डन कराया जाए। विधवा शोभायुक्त (मंगल) स्थान पर शोभा न देनेवाली अर्थात् अशुभ अमंगल समझी जाती है। समझिए कि विधवा सर्वत्र शव ही है। विधवा मुख्य रूप से अपशकुन (करानेवाली) होती है। ऐसी स्थिति में जीवित रहने में क्या सुख होगा। केवल देह सम्बन्धी लोभ-आसक्ति से जो विधवा पीछे पर बैठती है, उसे स्वप्न में भी सुख की प्राप्ति नहीं होती। उसे अटल रूप से करोड़ों प्रकार के दुःख (अपार दुःख) प्राप्त होते रहते हैं। एक मात्र कैकेयी ही वैधव्य के महादुःख को सहन कर सकती है। राज्य (प्राप्ति) के सुख का उपभोग करने के हेतु उसे वैधव्य के प्रति अपार प्यार हुआ है।

कौशल्या का सहगमन के लिए तैयार हो जाना और रानियों का शोक करना– (कौशल्या बोली) 'वैधव्य के दारुण दुःख को मैं आधा क्षण भी नहीं सहन कर पाऊँगी। अतः राजा की देह के अग्नि संस्कार के समय मैं सहगमन करूँगी' कौशल्या के रुदन को देखकर सुनकर राजा दशरथ की स्त्रियों ने रोना पीटना शुरू किया। कुछ एक (भारी दुःख के) बाल खींचकर उखाड़ती रहीं, कान ऐंठती रहीं, कुछ एक मूर्च्छित हो गईं कुछ एक स्वयं सिर पीटती रहीं, तो कुछ एक छाती पीटने लगीं। कुछ एक अत्यधिक दुःख से (सुधबुध खोकर) लुढ़क पड़ीं, तो कुछ एक अति शोकाकुल होकर रो रही थीं। (उन्होंने कहा) एक तो श्रीराम के वियोग का दुःख है; दूसरे राजा का निधन हो गया। तीसरे सिर पर (भाग्य में) वैधव्य आ गया। इस अनर्थ की जड़ कैकेयी है। राज्याधिकार का उपभोग करने हेतु कैकेयी को दशरथ से प्राप्त वर सम्बन्धी हठपूर्वक निष्ठा रही। इसलिए उसने तीनों को तीन मार्गों से अलग-अलग भेज दिया वस्तुतः ये मुख्यतः मन्थरा के काम हैं एक तो श्रीराम को वन की ओर प्रयाण करना पड़ा; दूसरे (उसके फलस्वरूप) दशरथ की शीघ्र ही मृत्यु हुई इसका मुख्य कारण मन्थरा है। इसलिए उसके कान-नाक छेद डालें। राजा की स्त्रियाँ अत्यधिक बड़े दुःख से रोते-पीटते बावैला मचा रही थीं। वहाँ समस्त नागरिक जन आ पहुँचे। (समस्त) नगर में रोना-कलपना चलता रहा। चीख़ते-चिल्लाते नर-नारियाँ घर-घर शोक से विलाप कर रहे थे। राज द्वार पर चीख़ पुकार मची, हाँ सेनानी और मंत्री छटपटाने लगे

नागरिक जनों द्वारा कैकेयी का धिक्कार करना– (नागरिक जनों ने कहा) श्रीराम को नगर के बाहर भेज देते ही नगर के अन्दर दुर्दैवमय दुरवस्था आ गई, राजा मारे दुःख के मृत्यु को प्राप्त हुए, फलस्वरूप घर घर में रोना कलपना चल रहा है। कैकेयी का मुँह काला हो गया है उसी ने तो वर सम्बन्धी हठ को बढ़ाकर ऐसा विद्रोह किया। उसके साथ बदमाश मन्थरा हो गई (मन्थरा ने उसका साथ देकर उसे उकसा दिया)। उन्होंने दुःख को प्रचण्ड रूप में बढ़ा दिया जिसके कारण उसके अपने पति मृत्यु को प्राप्त हुए, उस कैकेयी का वध कर डालें मन्थरा को चूने के (जलते) कंकड़ों रोड़ों में डाल दें (डालकर मरवा डाले, और राज्यासन पर श्रीरामचन्द्र को अभिषिक्त कर दें। झट से लक्ष्मण को यहाँ

ले आओ। वे समस्त कार्य को सफलता के साथ पूर्ण करेंगे'। इस प्रकार समस्त लोग बोल रहे थे और अति दुःख के मारे छटपटा रहे थे। उस लज्जाहीन कैकेयी की (स्थिति-गति की) बात को देखिए– उसके लिए न श्रीराम रहे, न दशरथ। अन्त में निश्चय ही भरत भी उसे छोड़ देंगे उसने व्यर्थ ही यह अनर्थ कर डाला। भरत स्वधर्म-कर्तव्य निष्ठ हैं, सात्त्विक मनोवृत्तिवाले हैं। वे श्रीराम के प्रेम पूर्ण सेवक हैं (या प्रिय सेवक हैं) वे इसके काले मुँह को देखेंगे भी नहीं। उन्हें भी दुःख दिया। कैकेयी ने जो काम किया है उसे भरत अपवित्र ही मानेंगे। इसके पति तो मर गए, अब पुत्र भी उसका त्याग करेंगे। इसने अपने सगे और सौतेले पुत्रों को दुःखी बना दिया यह समाचार सुनकर कि श्रीराम वन के अन्दर गये हैं, भरत एक क्षण भर के लिए (यहाँ) नहीं रह सकेंगे। उन्हें भी इसी ने दर दर घूमनेवाला फरार (होने को बाध्य) कर दिया। जल जाए उसका काला मुँह, जिसने अपने पति को पूरा मार डाला और अदोष पुत्रों को दूर कर डाला। इसके कारण जगत् को दुःख हो रहा है।

कैकेयी जिनकी ओर देखती वे उससे कहते 'छिपा दो अपने अपवित्र मुँह को'। उसके सामने सभी ओर (के लोग) सब थूकते थे। नर-नारियाँ कह देते थे– 'मर जा, तू मर जा'। 'अरी राँड़', 'अरी मूर्ख', 'अरी कलमुँही कैकेयी' कहकर उसे सब बहुत बुरी तरह कोसते वे उसकी बहुत निन्दा करते थे। इससे कैकेयी परम दुःख को प्राप्त हो गई। वह किसी को मुँह नहीं दिखा सकती थी। देखिए कि वह उल्लू की भाँति अँधेरे में निर्भय होकर छिपी रही। इधर राजभवन में रोना-पीटना चल रहा था। नर-नारियाँ अत्यधिक दुःखी हो गये थे। वहाँ समस्त सुहृज्जन आ गए। (समस्त) ऋषि भी आ गए।

राजा दशरथ के निधन के पश्चात् अनेकानेक ऋषियों का राजप्रासाद में आगमन–

श्लोक– मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव और कश्यप, कात्यायन, जाबालि (जाबलिक याज्ञवल्क्य) और गौतम जैसे महाकीर्तिशाली ऋषि आ पहुँचे।

राजा दशरथ ने (अपने शासन-काल में) बड़े-बड़े ऋषियों को अयोध्या नगरी में ठहरा लिया था (उनका निवास करा दिया था)। वे समस्त अति पवित्र चरितवाले ऋषि झट से आ गए। उनके नाम सुनिए जिनके नाम परम पवित्र (समझे जाते) हैं, वे मार्कण्डेय, मौद्गल्य, कात्यायन, जाबालि (जाबलिक), गौतम, कश्यप, वामदेव जैसे समस्त ऋषि वेगपूर्वक राजसभा (स्थान) में आ गए। राजा के शव की दाह क्रिया कराने के विचार से मंत्री उनके पास (परामर्श प्राप्त करने हेतु) आ गए। कुछ एक ने कहा– 'राजा के शव को दहन करा दें' तो कुछ एक बोले, 'बिना पुत्र के उनको अग्नि और जलांजलि कौन दे सकता है ? यह अधिकार तो पुत्र का ही होता है'।

मंत्री आदि का आगमन, दाह-क्रिया के विषय में चर्चा– (किसी ने कहा-) राजा के जो मंत्री होते हैं, वे राजपुत्रों के समान होते हैं। परन्तु सपुत्रिक मंत्री द्वारा सन्तानहीन व्यक्ति की (अर्थात् सन्तान के होने पर भी उसके पास में दाहक्रिया आदि करने हेतु उपस्थित न रहने पर) दाह-क्रिया कराना अनुचित माना जाता है। यदि धर्मपत्नी इस कर्म करने हेतु तैयार हो, तो उसे पति की दाह-क्रिया कराने का अधिकार है। पर यह अधिकार वंध्या को प्राप्त है, न कि सपुत्रिक को। माता बनी स्त्री को यह अधिकार देना अनुचित होता है'। (इस प्रकार जब चर्चा चल रही थी, तो) ज्ञानी ऋषि बोले 'यहाँ तो ऋषि वसिष्ठ की प्रधानता (महत्ता, सर्वोपरि अधिकार) माननी चाहिए। पर वे तो राजा की दाह-क्रिया के विषय में कोई भी बात नहीं कह रहे हैं'। तब कुछ प्रकाण्ड बुद्धिमान व्यक्तियों ने कहा 'जब तक

आगे चलकर कैकेयी का कोई पुत्र आ जाएगा, तब तक तो राजा की देह में कीड़े पड़ जाएँगे। इसलिए सीधे (यथाशीघ्र) दहन करा लें'। इस प्रकार ऋषियों में बातचीत चल रही थी कुछ (एकमत होकर) बातचीत कर रहे थे, तो कुछ विभिन्न मतों को व्यक्त करते हुए विवाद कर रहे थे। परन्तु गुरु वसिष्ठ की अधिकार-सीमा अथाह थी, कार्य करने के सम्बन्ध में वे उचित ज्ञान रखते थे वे धर्म-कर्म सम्बन्धी यथोचित मत जानते थे, वेद-शास्त्र द्वारा निर्धारित व्यवस्था को जानते थे; वे ब्रह्मकर्म सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करना जानते थे। उनके समान वहाँ पर कोई अन्य ज्ञाता नहीं था। जिनके कहने की पूर्ति करने हेतु सूर्य-मण्डल में उनका मधुवा अँगोछा सूर्यसदृश तपता रहा है, उनके ज्ञान की गहराई (का पार) अथाह थी; उनके समान कोई दूसरा (समस्त) जगत् में नहीं था.

वसिष्ठ द्वारा तेल-भरी नौका में राजा का शव रख देना– उन ऋषि वसिष्ठ ने स्वयं वहाँ आकर राजा (के शव) को तेल-भरी द्रोणी में रख दिया, जिससे कि वह देह बिना किसी विकार-विकृति के पैदा हुए रह जाए। उन्होंने इस प्रकार बड़े यत्नपूर्वक उस देह की (सड़ने आदि से) रक्षा करना चाहा जिससे भरत का यथाशीघ्र आगमन हो सकता है, उस सम्बन्ध में मंत्री सुमन्त बहुत जानकार थे। गुरु वसिष्ठ ने उनका सम्मान करते हुए उनका शीघ्रता से प्रयाण करा दिया (उन्हें भेज दिया)

वसिष्ठ द्वारा भरत को लिवा लाने हेतु सुमन्त को भेजा जाना– (गुरु वसिष्ठ बोले, 'हे सुमन्त, इस समय आप ही एक मात्र आप्तजन (हितैषी) राजा के पास हैं। जो अपने मामा के घर ननिहाल में हैं, उस भरत को आप झट से लिवा लाएँ। आप शीघ्र ही रथ में बैठकर गिरिव्रज नगर जाएँ। केकय देश के राजा (अश्वपति) से मिलकर भरत को रात की रात में ले आएँ'। गुरु वसिष्ठ को नमस्कार करके सुमन्त झट से चले। श्रीराम के गुणों को मार्ग में याद करके वे बार-बार रो पड़ते थे। उन्हें श्रीराम के विरह से पूर्ण अर्थात् अपार दुःख अनुभव हो रहा था। श्रीराम के रूप और गुणों का स्मरण करते हुए वे जा रहे थे (कवि कहता है) मैं एकनाथ अपने गुरु जनार्दन की शरण में स्थित हूँ। (उनकी कृपा से मैं यह रामकथा कह रहा हूँ।) उसके आगे के कथांश का निरूपण आप ध्यान से सुनें।

॥ **स्वस्ति**॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ कृत 'श्रीभावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत अयोध्याकाण्ड का 'दशरथ प्राणोत्क्रमण' शीर्षक यह दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय ११

[श्रीराम की पादुकाओं का पट्टाभिषेक]

श्रीराम की त्यागशीलता को देखकर सुमन्त का व्यथित हो जाना– वन की ओर प्रयाण करते समय श्रीराम की जो अलौम वृत्ति (दिखायी दी) थी, उसका स्मरण स्वयं सुमन्त को हो रहा था। उससे श्रीराम में उनका मन दृढ़ता से जुड़ गया। श्रीराम अपनी त्यागशीलता (के स्वरूप) को प्रदर्शित करते हुए चले गये। उस त्याग का स्वरूप ऐसा था कि सुमन्त उसका स्मरण अत्यधिक प्रेम के साथ करते जा रहे थे। (सत्यनिष्ठ) पवित्र आचरण करनेवाला मनुष्य जिस प्रकार असत्य का त्याग करता है, उसी प्रकार श्रीराम ने वन की ओर जाते समय राजकुल के व्यक्ति द्वारा धारण किये जानेवाले आभूषणों और वस्त्रों का त्याग किया और वल्कल वस्त्र धारण किये। जिस प्रकार साधु पुरुष और सन्त निन्दा का

त्याग करते हैं, उसी प्रकार समस्त राज्य सम्बन्धी वैभव और सम्पत्ति का त्याग करके श्रीराम वल्कल वस्त्र पहनकर वन के प्रति चले। धोबी द्वारा छुए हुए पानी को जिस प्रकार साधु जन नहीं छूते, उसी प्रकार राज्य, धन-सम्पत्ति, मान-सम्मान आदि का त्याग करके श्रीराम वनवास के लिए चले गये। समझिए कि राज्य (के धन आदि) से अणु भर भी श्रीराम ने (साथ में) नहीं लिया. (यहाँ तक कि) जूतों तक का त्याग करके वे स्वयं वनवास के लिए चले। श्रीराम का वनगमन (के लिए तैयार होना) देखकर, उससे पहले ही सीता और लक्ष्मण ने वल्कल धारण किये। वे (श्रीराम के साथ वन में जाने हेतु) मन में उल्लसित हुए थे। जैसे-जैसे सूर्य प्रखरता से तपता जाता है, वैसे वैसे कमलपुष्प में अधिकाधिक शोभा निखरती जाती है, उसी प्रकार जब श्रीराम अकेले वन में जाने चले, तो लक्ष्मण और सीता अत्यधिक उल्लास को प्राप्त हो गए।

लक्ष्मण और सीता द्वारा श्रीराम की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त करना; उससे वंचित होने से सुमन्त का विषाद को प्राप्त हो जाना– जिस प्रकार पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र को देखकर चकोरों को अपार आनन्द होता है, उसी प्रकार श्रीरामचन्द्र को वन के प्रति गमन करते देखकर (और उनकी वन में सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त होते देखकर) सीता और लक्ष्मण प्रसन्न हो उठे (उन्होंने सोचा-) श्रीराम अकेले वन में जा रहे हैं, तो वन में (उनके पास रहकर) हमारे द्वारा उनकी की जानेवाली सेवा अब सफल अर्थात् सार्थक हो जाएगी। इस विचार से लक्ष्मण और सीता उनके साथ सानन्द वन में गये। श्रीराम का वन के प्रति जो गमन हुआ, वही राजा दशरथ का प्राणों का निर्गमन सिद्ध हुआ। किसी स्थल के पानी के सूख जाते ही, उसके अन्दर वाली अन्य वस्तुओं का प्रतिबिम्ब पूर्णतः लुप्त हो जाता है किसी व्यक्ति के सामने रखे हुए आईने को हटाकर ले जाते ही उस व्यक्ति के मुख का (प्रतिवदन स्वरूप) प्रतिबिम्ब स्वयं लुप्त हो जाता है। उसी प्रकार श्रीराम के वन के प्रति चले जाते ही दशरथ ने प्राणों को त्यज दिया। पानी के पूर्णतः सूख जाते ही (उसमें रहनेवाली) मछली पल न लगते मर जाती है उसी प्रकार राम के वन के प्रति जाने मात्र से दशरथ ने प्राणों का त्याग किया। श्रीराम जगत् के जीवन स्वरूप थे, अतः वे (अपने वन-गमन से) उनकी मृत्यु का कारण हो गए। समझिए कि 'राम', 'राम' रटते हुए राजा दशरथ ने स्वयं प्राणों का त्याग किया। (सुमन्त को जान पड़ा कि) भरत और शत्रुघ्न अपने मामा के घर हैं यदि श्रीराम द्वारा वन की ओर जाकर, उसमें प्रवेश करते समय वे यहाँ उनके पास होते तो वे भी तत्काल वनवास के लिए चले जाते मैं ही ऐसा पूर्णतः अभागा हूँ। श्रीराम की सेवा को छोड़कर मैं अयोध्या क्यों लौट आया ? यह कहते (सोचते) हुए वे मार्ग में रुदन करते जा रहे थे। जिसे श्रीराम की सेवा (का अवसर) प्राप्त हो, उसका भाग्य अति बलवान होता है। पर मैं अभागा (रिक्त) रथ लेकर लौट आया। इस प्रकार सोचते हुए वे रास्ता तय कर रहे थे।

भरत द्वारा मातुल-गृह में अशुभ सपना देखना– अब इस कथा का यथाक्रम अगला आख्यान देखिए. भरत-शत्रुघ्न अपने मामा के घर में थे। एक रात भरत ने दुष्ट अर्थात् अशुभ सूचक सपना देखा उसी के विषय में सुनिए। भरत ने मामा के घर में (रहते) यह सपना देखा कि किसी मस्तक रहित शरीर में तेल आदि लगाकर उसका मर्दन किया जा रहा है। भरत स्वप्नों के स्वरूप लक्षण अर्थात् उससे सूचित अर्थ को जानते थे, वे चीख-पुकारकर रोने लगे। (रुदन स्वर को सुनते ही) उनके मामा युधाजित सहमते हुए तत्काल वहाँ आये। उन्होंने पूछा– 'तुम्हारे रोने का क्या कारण है ?' तो भरत बोले– 'मेरे रुदन का बड़ा भारी दुःखप्रद कारण है। मैंने जो स्वप्न देखा है, उससे ऐसा अर्थ सूचित होता है कि हम

(चार भाइयों और पिता, कुल) पाँचों में से निश्चय ही कोई एक मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा। मेरा स्वप्न अर्थहीन (झूठा) नहीं सिद्ध होगा राजा दशरथ अथवा श्रीराम का, लक्ष्मण वा शत्रुघ्न अथवा मैं भरत–इनमें किसी एक का प्राण-घात (निधन) होनेवाला है। और अपने आप्त सज्जनों की भेंट में बहुत काल तक अन्तर आ जानेवाला है'। यह कहते हुए उनका गला रुँध गया और वे मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। आक्रन्दन करते हुए वे दीर्घ स्वर में बोले '(अब) मैं श्रीराम को अपनी आँखों से कैसे देख सकूँगा ? पिताश्री दशरथ से कैसे भेंट हो सकेगी ?' यह कहते हुए भरत रोते-बिलखते सिर पीटने लगे। यह सुनकर मामा युधाजित बोले- 'शुभ मुहूर्त खोजवाकर हम तुम्हें वहाँ (अयोध्या में) भेज देंगे'। तो भरत बोले- 'निश्चय ही किसी एक की मौत हुई है। फिर सुमूहूर्त और कुमुहूर्त किसके लिए हो'।

गुरु वसिष्ठ कृत आयोजन– तब अयोध्या में श्रीवसिष्ठ ने यह नीतिधर्म संगत स्पष्ट विचार किया वे अति वरिष्ठ कुलगुरु थे। श्रेष्ठ (यथोचित) आचार विचार-धर्म को एवं परमार्थ को जानते थे। भरत का बिना राज्याभिषेक किये राजा की दाह क्रिया नहीं की जा पाएगी। इसलिए वे यह देख रहे थे कि भरत का अयोध्या में आगमन यथाशीघ्र कैसे हो सकता है। (उन्हें यह उचित जान पड़ा कि) भरत को राजा के देहान्त का समाचार न बताया जाए; विशेष रूप से श्रीराम के वन-गमन सम्बन्धी कुछ भी नहीं बतायें। समझिए कि अचानक इसे सुनते ही वे तत्काल प्राण-त्याग कर देंगे इसलिए गुरु वसिष्ठ ने यह तय किया कि बढ़िया वस्त्र और आभूषण साथ में देकर मंत्री सुमन्त को भेज दिया जाए। वे झट से (जाकर) भरत से मिलें और अत्यधिक शीघ्रता-पूर्वक उन्हें यहाँ ले आएँ

सुमन्त का भरत के यहाँ जाना– मामा युधाजित प्रेम से रसभीनी बातें कहते हुए भरत को सान्त्वना दे रहे थे। तब उसी क्षण सुमन्त वहाँ ऐसे जा पहुँचे कि (देखनवाले को जान पड़े कि) अयोध्या नगरी में सब सकुशल हैं। भरत ने सुमन्त की ओर देखा और कहा– 'आपकी कान्ति क्षीण अर्थात् फीकी क्यों हो गई है ? (जान पड़ता है कि) आपके हृदय में कोई तीव्र दुःख है और वही आपके मुख पर दिखायी दे रहा है। आपके नयन आँसुओं से भरे पूरे रह जान पड़ते हैं, आप मार्ग में रोते-रोते आ रहे हैं। समाचार कहने में आप लज्जायमान हो रहे हैं। आपका मुख तेजोहीन एवं दीन दिखायी दे रहा है अपने माथे पर अँगूठा टिकाकर वे बोले– '(जान पड़ता है कि) आपको तिल भर भी सुख शेष नहीं रहा है। मानों आप दुःखसागर में डूब गए हैं'। यह कहते हुए दुःख से बहुत प्रभावित होने से उनकी वाणी (स्वर, ध्वनि) कम्पायमान हो गई।

भरत और शत्रुघ्न का सुमन्त के साथ अयोध्या के प्रति आना– 'आपके दुःख की कथा रहने दें, मुझे ही अब (यहाँ से अयोध्या) आना है। आप बिलकुल विलम्ब न करें।' (यह कहते हुए) भरत शत्रुघ्न सहित रथ में आरूढ़ हो गए सुमन्त ने झट से (तेज गति से) रथ को हाँक लिया। तो वे सीधे (बिना कहीं रुके) चलकर अयोध्या पहुँच गये। अयोध्या में चारों ओर देखते ही भरत पर दुःख छा गया। (उन्होंने देखा कि) जहाँ पर शोभा और वैभव सहित श्रीराम निवास करते हैं, जहाँ पृथ्वीपति दशरथ रहते हैं, वह अयोध्या उजाड़ दिखायी दे रही है मानो पक्षी का घोंसला उजड़ गया हो।

अयोध्या का बदला हुआ स्वरूप– जब भरत ने अयोध्या के शोभा युक्त स्वरूप को देखना चाहा, तो उन्हें दिखायी दिया कि (उस नगरी पर) आकाश में लाल-सा कोहरा छा गया है। आकाश में मृग सहित रोहिणी और वृषभ नक्षत्रों को भेदकर ग्रहमण्डल में शनि खड़ा है और मंगल वक्र हुआ है।

अयोध्या के ऊपर आकाश मण्डल में ग्रहगण असाधारण रूप से क्रूर आभासित हो रहे हैं। उससे अयोध्या का लक्षण (स्वरूप) दुर्भाग्य से अति विपरीत जान पड़ रहा था। (इमसे भरत को जान पड़ा कि) तभी तो राजद्वार पर छत्र भग्न हुआ होगा; लोगों के व्यवहार का ढंग मृतों का-सा हुआ होगा। राजभवन में बड़ा शोक छाया होगा और राज स्त्रियों का सुहाग लुट गया होगा। आगे चलकर उन्होंने राजभवन में देखा कि राजा को तेल-भरी द्रोणी में रखा है। इससे मन में वे अत्यधिक घबड़ाकर व्याकुल हो उठे। उनकी आँखों में आँसू उमड़ आये। (उन्होंने स्पष्ट रूप से जाना कि) राजा संसार को छोड़कर चले गये हैं। तो उन्होंने सोचा कि मैं अब श्रीराम के चरणों से लिपट जाऊँगा। इसलिए वे झट से दौड़े, तो वे (श्रीराम) भी आँखों को कहीं नहीं दिखायी दे रहे थे।

सुमन्त द्वारा समाचार कहना; भरत का विलाप करना– तब मंत्री सुमन्त ने यह रहस्य-भरी बात भरत के कान में कही– 'कैकेयी ने श्रीराम को वन में भेज दिया है। मुख्य रूप से यह तो मन्थरा की करनी (चाल) है। सीता को भी वन के प्रति पैदल भेजा गया है'। तदनन्तर भरत ने रोते पीटते चीत्कार किया और कहा– हे श्रीराम, अपना मुँह तो दिखा दो। तुम तो मेरे सुख के सुख हो। देखो तो, मुझे छोड़कर तुम चले गये हो। मैं तुम्हारी संगति छोड़कर मामा के घर चला गया। मेरी ऐसी अभक्ति को देखकर निश्चय ही तुमने मुझे छोड़ दिया है। मैं तुम्हारा संग छोड़कर मामा के घर सुखप्रद भोग्य विषयों का उपभोग करता रहा उसी के कारण मुझसे तुम्हारा वियोग हो गया है। हे श्रीराम, मैं परम अभागा हूँ। भोग्य विषयों के प्रति किसी को जितनी आसक्ति हो, उसके सामने श्रीराम (की कृपा) की प्राप्ति करने में उतनी ही कठिनाइयाँ होती हैं। ऐसे भोग्य विषय ही संसार सम्बन्धी बन्धन की प्राप्ति (का कारण) है। ऐसे विषयों की अपनी आसक्ति से वह नरक गति को प्राप्त हो जाता है। विष और भोग्य विषय की स्थिति समान होती है। फिर भी विष की तुलना में भोग के विषय की शक्ति अधिक होती है। विष खानेवाला एक बार ही मरता है, परन्तु विषयों (की आसक्ति, के भोग) से जन्म-मरण की पंक्ति (फेर) लगी रहती है। भोग्य विषयों के जो सुखोपभोग होते हैं, वे ही इन्द्र आदि को उनके अपने मुख्य रूप से क्षयरोग है। विषय (-भोग) ही नित्य होनेवाला आघात है। अस्तु अन्य लोगों की स्थिति-गति अन्य प्रकार की हो सकती है (उसे जाने दीजिए)। मैं ही विषय सम्बन्धी आसक्ति से ठगा गया मातुल-गृह में भोग्य विषयों का भोग करते रहने से मैं हाथों हाथ श्रीराम से अन्तर को प्राप्त हो गया। श्रीराम ने मातुलगृह की माया-ममता की स्थिति का निश्चय ही त्याग कर दिया। किसी को जहाँ तक विषय-सुख के प्रति प्रेम होता है, उसे श्रीराम की (कृपा, प्रेम की) प्राप्ति कभी भी नहीं होती। यह साक्षात् प्रमाण मुझपर घटित हो चुका है कि किसी को जितना मान-सम्मान (की आकांक्षा) तथा अहंकार होता है, जिसको अपना ज्ञान सम्बन्धी अपार घमण्ड होता है, उसकी श्रीराम के चरणों से भेंट नहीं हो सकती। मुझसे अत्यधिक दोष (पूर्ण व्यवहार) घटित हो गया है, मुझमें कालिमा लग चुकी है। मेरा बन्धुत्व जल जाए– क्योंकि मुझसे श्रीराम के चरण अन्तर को प्राप्त हो गये हैं। मैं जो (वस्तुतः) श्रीराम का अपना आत्मीयतापूर्ण बन्धु था, वही मैं आज बड़ा अबन्धु (शत्रु) सिद्ध हो गया हूँ। तभी तो कृपासिन्धु श्रीराम मुझसे अन्तर को प्राप्त हो गए हैं। मैं मन्दभाग्य (अभागा) हूँ, अतः अत्यधिक दुःखी हूँ। कैकेयी अविद्या स्वरूप (मार्गस्थ) बाधा है, उसने बन्धु को अबन्धु अर्थात् शत्रु बना डाला उसने हममें सौतिया सम्बन्ध स्थापित किया। इसलिए कृपासिन्धु श्रीराम मुझसे अन्तर को प्राप्त हो गए हैं सुख के यथार्थ ज्ञान-स्वरूप श्रीराम मुझसे दूर गये; आत्मानन्द के साक्षात् कन्द मुझसे दूर गये। मेरे आत्मा स्वरूप बन्धु मुझसे दूर

हो गए मेरे परमानन्द स्वरूप श्रीराम मुझसे दुराव को प्राप्त हो गए। पिताश्री दशरथ ने परलोक के प्रति प्रयाण किया; श्रीराम के दूर जाने के साथ ही उन्होंने प्राण त्यज दिये। परन्तु मैं तो पाषाण हूँ, इसलिए बच गया हूँ मेरा हृदय अति कठिन पाषाण है, जो फट नहीं रहा है। श्रीराम के वन के प्रति गमन करते ही, राजा दशरथ देह का त्याग कर गये। देखिए, मैं महापापी उनके पीछे (शेष, जीवित) रहा हूँ, इसलिए देह सम्बन्धी मोह (स्वरूप बन्धन) मुझसे काटा नहीं जा रहा है। श्रीराम के दूर चले जाते ही पिताश्री दशरथ ने देह को तत्काल त्यज दिया। पर मैं पापी भरत जीवित रहा हूँ। मुझे अब तक मौत नहीं आ पायी। श्रीराम के दूर जाने पर पिताश्री दशरथ ने देह को छोड़ दिया; परन्तु मैं पापों की राशि स्वरूप भरत कई प्रकार के द्वन्द्वों से उत्पन्न दुःखों का उपभोग करने के लिए शेष जीवित रहा हूँ। जब कि अभी तक मुझे मृत्यु नहीं आ रही है, तो मृत्यु ही स्वयं शान्त (मृत्यु को प्राप्त) हो गयी है कालदेव का मुख काला हो गया है, तभी तो मेरे देह बन्धन को उसके द्वारा नहीं काटा जा रहा है। श्रीराम के विरह से मृत्यु भी सचमुच शान्त हो गई (तभी तो मेरे पास वह नहीं आयी)। मैं अब कालदेव के चाबुक का छोर (या मशाल) के रूप में शेष हूँ, मानों अत्यधिक दु:खी बना दुःख का बुर्ज हूँ (जो टूट नहीं रहा है)। समझिए कि श्रीराम के वन के प्रति जाते ही मृत्यु ने अपने प्राणों को त्याग दिया। तो अब मुझे कौन मार डालेगा ? तभी तो मैं पापी पूर्णतः शेष जीवित रह रहा हूँ। जीवित रहने पर भी बिना श्रीराम के मुझे जीवित नहीं रहा जा रहा है (मुझसे न ठीक से जीया जा रहा है, न मरा जा रहा है)। स्वयं काल ही मृत्यु को प्राप्त हुआ; इसलिए मुझे मौत नहीं आ रही है। (इस स्थिति में) हे रघुनाथ श्रीराम, मेरा दुःख असीम रूप से दारुण है। उसका निवारण कौन करेगा ?

श्रीराम के वियोग से भरत द्वारा आवेग सहित आक्रन्दन करना— इस प्रकार की बातें कहते-कहते भरत ने अपने आपको भूमि पर लुढ़का दिया। (वे बोले-) 'श्रीराम मेरी अपनी माता ही है। वह मुझे टालते हुए यहाँ छोड़कर कहाँ गयी ? हे श्रीराम, आप मुझसे मिल लें। तो मैं मन की रहस्य भरी बातें कहूँगा। पर मैं अपनी आँखों से आप श्रीराम के चरणों को नहीं देख रहा हूँ'। यह कहकर वे सिर पीटने लगे। श्रीराम मेरी अपनी आत्मा हैं; श्रीराम मेरे जीवात्मा हैं; श्रीराम मेरे परमात्मा हैं। फिर वे हमें क्यों भूल गए। हे श्रीराम, आप कहाँ गये हैं ? हे मेघश्याम श्रीराम, मुझसे मिल लीजिए हे पुरुषोत्तम दौड़ते हुए आ जाइए। मुझसे मिल लीजिए। मेरे संसार सम्बन्धी भ्रम को दूर कर दीजिए। हे श्रीराम, झट से दौड़कर आ जाइए, मुझसे मिल लीजिए। यथाशीघ्र वेगपूर्वक आकर मुझसे मिलिए। मेरे लिए कूदते-फाँदते आकर मेरे दुःख की राशियों को हटा दीजिए। हे राघव, आप वेग-पूर्वक आइए, आइए। मुझ (बालक) को उठाकर गोद में लीजिए। मैं आपका लाड़ला (बच्चा) दु:ख के अत्यधिक बोझ से पीड़ा को प्राप्त हो गया हूँ। अहो, श्रीराम तो मेरी गति की गति हैं; श्रीराम मेरी स्थिति की स्थिति हैं; श्रीराम मेरी मुक्ति की मुक्ति हैं। वे मुझसे हाथों हाथ दूर चले गये। श्रीराम की संगति बहुत मधुर है। (उसे प्राप्त होकर) लक्ष्मण तो चरम सीमा तक सुख-सम्पन्न हो गए हैं। परन्तु मैं मूढ़ (भरत) बिना श्रीराम की संगति के (लाभ के) मूँग (की दाल) में कंकड़ जैसा रह गया हूँ। श्रीराम के अपने साथी होकर लक्ष्मण तो त्रिजगत् में धन्य (कृतार्थ) हो गए हैं। पर मैं मामा के घर ममत्व से उन लोगों की संगति में रहते हुए दु:ख के आवर्त (भँवर) में (फँसकर) अत्यधिक दुःखी हो गया हूँ। बन्धुभाव के विचार से लक्ष्मण बहुत भाग्यवान् ठहरे, तो उसी बन्धुभाव के विचार से मैं बहुत अभागा हूँ। दुःख ने मेरे समस्त अंग को व्याप्त कर डाला है; तो भी मेरा अंग भग्न नहीं हो रहा है, अर्थात् मेरा देह पात नहीं हो रहा है। तूँबे

के फल (एक प्रकार के कद्दू) की स्थिति ऐसी होती है कि किसी एक को भिक्षा पात्र के रूप में हाथ में रखा जाता है, कोई दूसरा फल (डूबते को बचाने की दृष्टि से) उबारने के काम आता है, तो तीसरे में (विशिष्ट सम्प्रदाय के तांत्रिक) रक्त डालकर पीते हैं। कोई एक गायक वाद्यवादक की अकुटिल संगति में रहते हुए, (उस फल से बनाये) वाद्य से निर्मित मधुर स्वरों को सुनाते हुए श्रोता के मन को विश्राम दिलाता है। उसी प्रकार किसी की संगति की स्थिति प्राप्ति के विचार से अपवित्र अर्थात् कुटिल होती है, तो किसी को पवित्र फलदायी होती है। लक्ष्मण तो श्रीराम की पवित्र, अकुटिल संगति को प्राप्त हुए हैं, तो मेरा मातुल गृह में रहना रुधिर-प्राशन के समान तथा दुःख की प्राप्ति करानेवाला ठहरा है।

भरत द्वारा माता कैकेयी की भर्त्सना करना– श्रीराम मुझे नित्य प्रति शान्ति प्रदान कर देनेवाले रहे। श्रीराम मेरे लिए जीव तथा शिव के स्वामी हैं। श्रीराम (वस्तुतः) आत्मसुख एवं आत्मानन्द प्रदान करनेवाली गंगा नदी ही हैं; परन्तु कैकेयी ने उसे पूर्णतः सुखा डाला। श्रीराम मुझे अपने आप में अपने अहेतुक प्रेम में चिन्तारहित करते हुए (मानों अपनी गोद में माता की भाँति) सुलानेवाले हैं। श्रीराम किसी के जीव न होने पर, किसी के उत्साह-हीनता आदि से निर्जीव-सा होने पर उसे जीवित (उत्साह आदि से युक्त) कर देनेवाले हैं। श्रीराम मुझे आत्मानन्द देनेवाले पद या स्थान ही हैं। पर कैकेयी ने भेदभाव से इन बातों को मुझसे वंचित कर डाला (छीन लिया)। श्रीराम तो मेरे लिए मुख्य धन हैं; श्रीराम तो मेरे लिए नित्य रहनेवाली पूँजी हैं। श्रीराम मेरे अपने बल हैं। पर कैकेयी ने मात्र भेदभाव के विचार से उस धन-बल आदि को मुझसे छीन लिया मुझे उससे वंचित कर डाला। श्रीराम मेरे अपने जीवन ही हैं। श्रीराम मेरे अपनी आँखों में डाले जानेवाले (दिव्य, सिद्ध) अंजन हैं। श्रीराम मेरे अपने धनकोश हैं। पर कैकेयी भेदभाव से उसे चुराकर ले गयी है।

मन्थरा के प्रति भरत का क्रोध-भरी दृष्टि से देखना– हम श्रीराम और मैं भरत एक दूसरे के अत्यधिक आत्मीयता से युक्त (मानों) सगे बन्धु हैं। परन्तु कैकेयी ने हममें व्यर्थ ही भेदभाव पैदा किया। हममें सौतेले भाव की दृष्टि से विरोध मुख्यतया मन्थरा ने सुनियोजित रूप से बढ़ा दिया बेचारी कैकेयी भोली है; पर मन्थरा ने उसमें खोटी नीयत पैदा कर दी। फलतः श्रीराम को उसने निष्कासित कराकर अयोध्या को सीधे दुःख (-सागर) में डाल दिया। मैं उसका वध कर दूँगा। इस विचार से भरत वेगपूर्वक दौड़े और मन्थरा को उसके बाल पकड़कर (घसीटकर) ले आये। फिर उन्होंने क्रोध पूर्वक खड्ग हाथ में उठा लिया। (वे बोले) इसी के कारण श्रीराम बनवासी हो गए। इसी के कारण राजा दशरथ मृत्यु को प्राप्त हुए। इसी के कारण अयोध्या में रोना-पीटना मच गया। इसी के कारण जगत् में दुःख स्वरूप भँवर उत्पन्न हुआ। इसने सौतिया डाह से विद्रोह उत्पन्न करके उसे प्रचण्ड रूप से बढ़ा दिया। इसी के कारण कैकेयी का मुँह काला हो गया। इसे मारकर मैं इसके दो टुकड़े कर डालूँगा। यह मन्थरा सूर्यवंश में लगी दुःख की आग है। यह सगों, सुहृदों के मेल-मिलाप को भग्न कर डालनेवाली है। इसी के कारण जगत् में निन्द्य ठहरी। इसलिए मैं इसे झट से छेद (मार) डालूँगा. इसने सीता को (वन में) पैदल भिजवा दिया। इसी के कारण बन्धु लक्ष्मण मुझसे दूर हुए। इसने हमारे पिताश्री दशरथ को निगल डाला। इसे मैं अस्त्र (-शस्त्र से) काटकर मार डालूँगा। इसने बड़ा संकट उत्पन्न कर दिया इसके कारण माता के सिर वैधव्य आ गुजरा। इसी ने मुझे भी दुःख के भँवर में डाल दिया। इसलिए मैं इसे अस्त्र शस्त्र से काटकर मार डालूँगा। इसके कारण हम और श्रीराम में फूट पैदा हुई इसके कारण

हम बच्चे अनाथ हो गए। इसने हमें जगत् में दीन (असहाय) बना दिया। इसलिए मैं इसका अब झट से वध कर डालूँगा।

गो-ब्राह्मण-स्त्री को अवध्य बताते हुए गुरु वसिष्ठ द्वारा भरत को इस विचार से परावृत्त करना– (इस प्रकार) भरत हाथ में खड्ग लेकर मन्थरा का वध करने को तैयार हुए, तो गुरु वसिष्ठ ने दौड़ते हुए आकर उनका हाथ पकड़ लिया और कहा– 'स्त्री का वध न करें (करना उचित नहीं है) स्त्री का वध न करें। अपनी माता की उपेक्षा न करें। यदि अपने पिता सचमुच अपण्डित अर्थात् मूर्ख हों, तो भी पिता को मूर्ख न कहें। ब्राह्मण के स्पर्श को छूत न मानें। अतिथि को भूखा (उसे भोजन न कराते हुए) न लौटा दें, साधु (-सन्त) को पीड़ा न पहुँचा दें (अथवा धोखा न दें)। वैसे ही स्त्री पर शस्त्राघात न करें। यदि गो ब्राह्मण स्त्री तथा बन्धु का वध करने योग्य समझें तो वह (धर्मशास्त्र-न्याय नीति के विचार से) अपराध होगा। इसलिए इनका वध न करें और भरत, तुम तो सुविख्यात विवेकशील हो। गुरु के आदेश (वचन) का बिलकुल उल्लंघन न करें'। भरत द्वारा (यह गुरूपदेश सुनने पर भी) क्रोध भरी मनःस्थिति को रोका (दबाया) नहीं जा पा रहा था। इसलिए उन्होंने बहुत कठोरतापूर्वक मन्थरा को कई बार अचूक लातें जमा दीं। लात के आघात के होते ही वह भूमितल पर गिर पड़ी। उस कठोर आघात से उसकी कमर टूट गयी, उसका शरीर तीन स्थानों में टेढ़ा हो गया। उससे (तब से) उसका नाम 'त्रिवक्रा' पड़ गया (कवि कहता है इसमें रहस्य यह है कि) जब श्रीराम राक्षसों को जीतकर अयोध्या लौटेंगे, तो मन्थरा उनके पाँव लगेगी और तब कहेगी– 'स्वामी श्रीराम, मेरी (शारीरिक) दशा ऐसी अर्थात् पहले जैसी हो'। तब श्रीराम कहेंगे, 'तुम्हें ठीक अर्थात् अवक्र करने पर बन्धु भरत को बुरा लगेगा। इसलिए मैं (श्रीकृष्णावतार काल में) स्वाभाविक रूप से मथुरा की ओर जाते समय तुम्हारी इच्छा को पूर्ण करूँगा'। फिर तब से मन्थरा दिन रात राम नाम का जाप करती रही। (श्रीकृष्णावतार काल में यथासमय) वह सुगन्धित चन्दन ले आयी, तब श्रीकृष्ण ने उसे अपनी देह में मलते हुए लगा लिया और इस प्रकार श्रीकृष्ण ने निम्न श्रेणी की कुब्जा नामक दासी का उद्धार किया। यह बात मैंने आगे होनेवाले प्रसंग के सन्दर्भ में कही है। वस्तुतः (त्रेता युग की) मन्थरा ही द्वापर युग की कुब्जा थी। अब भरत के विषय में आगे चलकर क्या घटित हुआ, उस सम्बन्धी कथा का श्रवण करें।

राज्याभिषेक करवा लेने सम्बन्धी गुरु वसिष्ठ के सुझाव को भरत द्वारा अस्वीकार करना– तब वसिष्ठ ने भरत से यह बात कही– '(उत्तराधिकारी के) राज्याभिषेक के सम्पन्न न होने तक (होने से पहले पूर्ववर्ती अर्थात् स्वर्गवास को प्राप्त) राजा की दाह क्रिया नहीं करनी चाहिए इसलिए हम तुम्हारा राज्याभिषेक सम्पन्न करेंगे'। ऐसी बात को सुनते ही भरत रोने लगे। उनके मन में दुःख का दारुण ज्वार आया और उन्होंने तत्काल प्राणों का त्याग करना चाहा। (वे बोले-) 'श्रीराम के (वन में) जाने पर यदि मैं राजसिंहासन पर बैठ जाऊँ, तो संसार में जितनी ब्रह्महत्याएँ हुई हों, वे सब (अर्थात् उनका पाप) मेरे माथे पर आ जाएँ, यदि मुझ भरत का राज्याभिषेक सम्पन्न हो जाए, तो समझिए कि महापाप लगानेवाली जो जो बातें संसार में हुई हों, वे सब मैंने ही कीं श्रीराम के वन के प्रति चले जाने पर यदि मैं अपना राज्याभिषेक करवा लूँ, तो मैं उस गर्भाशय से स्थापित हुआ होऊँ, जिससे ऐसा कोई शूद्र जन्म को प्राप्त हुआ हो, जिसने ब्राह्मण विधवाओं का उपभोग (करने का महापाप) किया हो। (चाहें तो) रजस्वला स्त्री के समस्त रक्त को लेकर उससे मेरे शरीर का अभिसिंचन कर लें, पर मैं राज्याभिषेक के उस जल को ज़रा भी स्पर्श नहीं करूँगा। श्रीराम की राजधानी (अयोध्या) मेरी माता ही है, यदि मैं

अभिषेक कराकर उसका राज्योपभोग कर लूँ, तो मैं मातृगमनी हुआ समझिए। हे गुरु वसिष्ठ, मैं आपका चरण-स्पर्श (चरणों का वन्दन) करता हूँ। मैं रघुनाथ श्रीराम की सौगन्ध लेता हूँ कि मैं प्राणों के निकल जाते भी अपना राज्याभिषेक नहीं कराने दूँगा'।

शत्रुघ्न की (शोकाकुल) अवस्था– तत्पश्चात् गुरु वसिष्ठ ने शत्रुघ्न की ओर देखा। तब वे कुछ भी नहीं बोल रहे थे, परन्तु रोते ही रहे। वे श्रीराम के विरह के कारण मूढ़ हो गए थे उन्हें आगा-पीछा याद नहीं आ रहा था। वे घरबार को भूल गए। इन्द्रियों के व्यवहार को वे भूल गए अपने शरीर को भी वे भूल गए। वे तो श्रीरामाकार अर्थात् श्रीराम के रूप में स्थित हो चुके थे। श्रीराम का स्मरण करते ही शत्रुघ्न योगमुद्रा को प्राप्त हो गए। फल-स्वरूप वे निद्रा और तन्द्रा (निश्चेतन अवस्था) को भूल गए। उनके अपने स्वामी श्रीरामचन्द्र की उनपर ऐसी कृपा हो गयी थी। दृश्य, द्रष्टा (दर्शक) और दर्शन का, कर्म (करना), क्रिया तथा कर्ता का भाव शत्रुघ्न को याद नहीं आ रहा था। वे स्वयं अपने आपको ही विस्मृत कर चुके थे। शत्रुघ्न के मन में किसी बात के करने या न करने का विचार आ ही नहीं रहा था। देखिए, धीरज को धारण करके वे श्रीराम का स्मरण करते करते, देह के रहते, (देह सम्बन्धी भाव, विचार, क्रिया कर्म को भूलकर) विदेह हो गए थे। (कवि कहता है, गुरु वसिष्ठ के कथन के उत्तर में) भरत ने अपने विचार को कह दिया। उनका भावार्थ मैंने यथार्थ रूप से बता दिया शत्रुघ्न तो मूर्तिमान धैर्य थे। उनके धैर्य के विषय में मैंने वृत्तान्त-निरूपण किया है। इधर शत्रुघ्न की ऐसी स्थिति थी, तो उधर भरत की वैसी अवस्था थी। (यह देखकर) वसिष्ठ मन में विचार करने लगे कि अब राज्य की स्थिति-गति क्या होगी।

गुरु वसिष्ठ द्वारा उपाय सुझाना– तदनन्तर वसिष्ठ ने भरत से कहा 'यहाँ तुम व्यर्थ ही क्यों खेद कर रहे हो ? मैं जो यथोचित रूप से कहूँगा, वह तुम निश्चय ही कर लो श्रीराम की पादुकाओं को अभिषिक्त करके राजा दशरथ की दाह-क्रिया कर लें। तत्पश्चात् हम लोग श्रीराम से मिलने हेतु वन में जाएँ'। गुरु वसिष्ठ की इस बात को सुनते ही भरत को (मानों) अमृत पान ही हो गया। तब उन्होंने गुरु वसिष्ठ को दण्डवत् नमस्कार करके अपने माथे को उनके चरणों में लगाकर उनका वन्दन किया।

कौशल्या का सहगमन सम्बन्धी विचार; गुरु वसिष्ठ द्वारा श्रीराम से मिलने हेतु जाने का निर्णय बताने पर उसका मन:शान्ति को प्राप्त हो जाना– भरत द्वारा राजा (के शव) की दाहक्रिया करते रहते कौशल्या ने सहगमन करना अर्थात् सती हो जाना चाहा। तब वसिष्ठ ने स्वयं आकर उसे रोक लिया. (वे बोले-) 'प्रतिकूल परिस्थिति में पति के साथ सहगमन करने की अपेक्षा, श्रीराम से मिलना अधिक महत्त्वपूर्ण है'। तो कौशल्या ने कहा– 'चौदह वर्ष के बाद (चौदह वर्ष तक) जीवित रहना मेरे लिए कठिन बात है। श्रीराम के नगर लौट न आते अर्थात् लौटने से पहले यदि मुझे मौत आ जाए, तो मेरे सम्बन्ध में ऐसी बुरी घटना हो जाएगी कि मेरे लिए न पुत्र श्रीराम रहा, न पति दशरथ रहे'। कौशल्या के इस कथन को सुनकर गुरु वसिष्ठ मन में व्याकुल हो उठे। (वे बोले-) 'राजा दशरथ की उत्तर-क्रिया के पश्चात् मैं श्रीराम से आपको मिला दूँगा', तो कौशल्या ने कहा– 'हे गुरुनाथ, आप मुझे अभी वचन दीजिए कि आप मुझे श्रीराम से मिला देंगे। तभी मैं जीवित रहना चाहूँगी। श्रीराम को आँखों से देखते संसार के द्वन्द्वों से निर्मित दु:खों की राशियाँ नष्ट हो जाएँगी श्रीराम से मिलने पर जो सुख और सन्तोष होता है, उससे होनेवाला आनन्द सृष्टि में समा नहीं पाता। संकट के समय श्रीराम से भेंट हो जाना (मेरे लिए) अति दुर्लभ भाग्य ही सिद्ध होगा। आप सद्गुरु की कृपा-दृष्टि से यदि मैं उसे प्राप्त हो जाऊँ

तो मैं जगत् में अति धन्य सिद्ध हो जाऊँगी'। कौशल्या की वृत्ति विशुद्ध सात्त्विक थी। उसे देखकर गुरु वसिष्ठ को परम सुख हुआ। उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक श्रीराम की माता कौशल्या को अभिवचन देते हुए (सहगमन के विचार से परावृत्त करके) निश्चयपूर्वक (रोककर) ठहरा लिया।

श्रीराम की पादुकाओं का अभिषिक्त हो जाना और राजा दशरथ की उत्तर-क्रिया संपन्न होना– तदनन्तर भरत ने स्वयं उठकर श्रीराम की पादुकाओं को (सिंहासन पर) अभिषिक्त कर लिया और राजा दशरथ की दाह-क्रिया, और्ध्वदैविक क्रिया पूर्ण की। (कवि कहता है-) जब तक भरत (मातुल-गृह से) अयोध्या लौट आये, तब तक श्रीराम ने (वन के अन्दर दूर तक गमन किया था मैं रचनाकार एकनाथ अपने गुरु जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हूँ। अब (आप श्रोताओ) आगे की रसमय (मधुर) कथा के निरूपण का श्रवण करें।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ-कृत 'श्रीभावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत अयोध्याकाण्ड का ''श्रीरामपादुका पट्टाभिषेक' शीर्षक यह ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय १२

[भरत का वन के प्रति गमन; भरत-गुह-संवाद]

कैकेयी का भरत को उपदेश देना– लोगों के चले जाने पर मध्य रात में कैकेयी फिर भरत के पास आयी और उसने उनसे जो कार्यकारण विचार कहा, उसको सुनिए।

श्लोक– (देवतुल्य भरत शोकाकुल होकर फरसे से काटे गए साखू के तने की भाँति पृथ्वी पर पड़े थे। मतवाले हाथी के समान पुष्ट तथा चन्द्रमा या सूर्य की भाँति तेजस्वी) अपने शोकाकुल पुत्र को (इस प्रकार भूमि पर पड़ा देखकर) माता कैकेयी ने उठाते हुए ये बात कही– 'हे पुत्र, उठो। हे राजपुत्र, तुम्हारा कल्याण हो। मेरी बात को समझ लो। सभाओं में सम्मानित होनेवाले तुम्हारे जैसे सत्पुरुष शोक नहीं किया करते हैं। अपना यह राज्य स्वीकार करो और मेरे परिश्रम को सफल बना दो, हे प्रियदर्शन अपने मित्रों के तथा मेरे मन को प्रसन्न कर दो। तुम्हारे लिए ही मैंने इस प्रकार से यह सब कुछ किया है। अत: हे पुत्र, अब विधि विधान के ज्ञाता गुरु वसिष्ठ आदि प्रमुख श्रेष्ठ ब्राह्मणों के साथ तुम उदार हृदय महाराज दशरथ का अन्त्येष्टि संस्कार कर लो और पृथ्वी के राज्य पर अपना अभिषेक करवा लो'

अपने पुत्र को उठाकर कैकेयी ने उन्हें यह उपदेश (परामर्श) दिया, 'राम वनवास के लिए गया है तो तुम (व्यर्थ ही) उनके लिए शोक क्यों कर रहे हो। किसी विधवा स्त्री की भाँति जन-सभा में रोते रहने में तुम्हें लज्जा (क्यों) नहीं आयी ? झट से उठो। धीरज धारण कर लो और अयोध्या के राज्य को अपना बना लो (स्वीकार कर लो)। मुख्य रूप से जो राज्य ज्येष्ठ पुत्र का ही होता है, उसे मैंने विपत्ति को स्वीकार करके (झेलकर) तुम्हारे लिए प्राप्त कर लिया है। पर अन्त में (अकड़कर) तुम मेरी बात को नहीं मान रहे हो और वन में जाने हेतु हर्ष के साथ नाच रहे हो। आयु के समाप्त हो जाने पर मेरे पति चिर शान्ति को प्राप्त हुए। पिता की आज्ञा से राम को वनवास मिला है। फिर भी तुम अपना दोष मुझपर थोप रहे हो और अपने हित को नहीं समझ रहे हो'।

सापत्न भाव का वेदकालीन इतिहास- 'इस संसार में आरम्भ से ही जो-जो सौतेले (बन्धु) हुए, वे तो (एक-दूसरे के) प्रमुख वैरी ही ठहरे। मैं उस वेदशास्त्र-सम्मत बात को अवश्य कहूँगी। दिति और अदिति दोनों सौतें थीं– दैत्य और देव उनसे उत्पन्न एक ही पिता की सन्तानें थे, पर देव और दैत्य एक दूसरे के प्रति वैर-भाव को प्राप्त हुए और एक-दूसरे का विनाश करने (की ताक में रहने) वाले सिद्ध हुए। इसी भाव को स्पष्ट बतानेवाला वेद-वचन बृहदारण्यक की प्रथम श्रुति में उपलब्ध है देव और दैत्य शत्रु थे। इस विषय में वेदों की मान्यता सुनिए। वेदों और शास्त्रों की कही बातों में सौतेलों में बड़ी प्रीति होने का कोई भी उदाहरण नहीं है। गरुड़ और सर्पों में वैर उत्पन्न हुआ था। क्या वे एक-दूसरे के अपने-अपने बन्धु नहीं थे'।

तुम राजा हो जाओ और शत्रुघ्न युवराज हो जाए– 'तुम मेरी युक्ति-युक्त बात सुन लो। तुम वन में न जाना। तुम गुरु वसिष्ठ आदि ऋषिगण को बुला कर अभिषेक द्वारा राज्य प्राप्त कर लो। हे भरत, तुम तो पूर्णतः भाग्यवान् हो। अभागा लक्ष्मण वन में गया है। समझ लो कि यदि वह यहाँ पर होता, तो राज्य के लोभ में युद्ध करता। मैं तुम्हारे हित की बात कह रही हूँ। उसे (अपने हित को) देखकर (समझकर) तुम सम्पूर्ण अधिकार से राजा हो जाओ, शत्रुघ्न को युवराज बना लो। मेरी बात का (आज्ञा का) प्रतिपालन करो'।

भरत द्वारा क्रुद्ध और उद्विग्न होकर माता कैकेयी की भर्त्सना करते हुए उसे घर के बाहर हटाना– माता कैकेयी की इस बात को सुनकर भरत पूर्णतः क्रुद्ध हो उठे। क्रोध के साथ ही उन्हें रुलाई आयी। वे अति दुःखी होकर अनुताप करने लगे। किसी के (शरीर में बने) घाव पर कोई लातें जमा दे, तो उसकी जो स्थिति होगी, वैसी ही भरत की स्थिति हुई। वे बोले तू तो मेरी माँ ही नहीं है, तू परिपूर्ण पाप-रूपा ही है। अपने पति के निधन का तुझे जरा भी न दुःख है, न लज्जा है। राज्य के सुख के उपभोग को प्राप्त हो जाने (की कल्पना) से तू निर्लज्ज अत्यधिक आनन्दित होकर नाचने लगी है। (तू चाहती है कि) तेरी बात को मानकर मैं श्रीराम से द्वेष करने लगूँ, स्वजनों के सामने (कारण-सी) दुःखद बात प्रस्तुत करके मैं अधःपतित होकर नरक में चला जाऊँ। अपनी माँ के हितोपदेश की बात को मानकर मैं अवश्य ही रौरव नरक में चला जाऊँ। देख तो ले, उसके साथ ही, मैं अपने पूर्वजों को नरक में ले जाऊँ, लोगों को दुःख दूँ। तू स्वपति घातिनी है। श्रीराम सम्बन्धी द्वेष रूप जल से भरा धोबी का (कपड़े धोने का) जल पात्र है। तू सुहृज्जनों के लिए दुःखकारिणी है। तू पापिनी है, अति निन्द्य है। (यहाँ से) चली जा। जल जाए यह तेरा काला मुँह। तूने श्रीराम को दुःख दिया। तुझसे मुझे कोई सुख भी नहीं प्राप्त हो रहा है। जगत् को तेरे कारण असुख (सुख का अभाव अर्थात् दुःख) हो रहा है। कोई अपनी माता का वध न करे– इसी (धर्म-संकेत के) कारण मैं तेरा वध करने से रहा। तूने श्रीराम और दशरथ में विघटन (अलगाव) पैदा किया। इसलिए तेरे कारण मुझे दुःख की अवस्था प्राप्त हुई है। तुझे सामने देखते हुए मुझे बड़ा दुःख हो रहा है। री अत्यधिक मरमिटी, निःशेष रूप से निन्द्य (स्त्री), अपना काला मुँह मत दिखा दे'। अत्यधिक क्रुद्ध होकर भरत ने अनेक प्रकार से कैकेयी की भर्त्सना की और उसे घर से बाहर भगा दिया। उसके कारण ही वे अत्यधिक दुःखी हुए थे। (उन्हें जान पड़ा कि) जिसके कारण मुझसे श्रीराम दुराव को प्राप्त हुए, वह माँ नहीं है, वह तो बड़ी घातिनी है। जगत् में इसका नाम निन्द्य सिद्ध हुआ है। यह कैकेयी साँचे में ढला हुआ ठोस दुःख ही है।

श्रीराम आदि चारों बन्धुओं का एक-पिण्ड-बीजत्व– श्रीराम और भरत का बीज स्वरूप पिण्डा एक ही था। देखिए कि उस एक बीज पिण्ड के ही अंश थे। इसलिए वे एक-दूसरे के दुःख को अपना समझ कर अनुभव करते थे। उसी प्रकार एक-दूसरे से ही उन्हें परम सुख प्राप्त हो जाता था। वे एक-दूसरे के जीव तथा प्राण थे, एक-दूसरे के जीवन स्वरूप थे। उन्हें एक-दूसरे से सन्तोष प्राप्त हो जाता था। इस प्रकार श्रीराम और भरत एक-दूसरे से सुख-सम्पन्न थे। भरत को श्रीराम से सुख प्राप्त होता था। श्रीराम में भरत का हर्ष निहित था। वे दोनों (बाह्य रूप से दो थे, फिर भी एक दूसरे की दृष्टि से) एक ही थे। परन्तु मूर्ख कैकेयी उसे नहीं जानती थी। श्रीराम का स्मरण करते ही भरत परम सुख से सुख को प्राप्त हो जाते थे, श्रीराम में ही वे परम अमृत मानते थे। इसलिए उनमें राज्य सम्बन्धी कोई स्वार्थ भाव उत्पन्न नहीं था। भरत के लिए श्रीराम के चरणों के पर कोई परम सुख नहीं था। इसलिए (प्राप्त होते रहे) राज्य का त्याग करके वे श्रीराम से मिलने चले। देवों और दैत्यों में अति उग्र वैर था– वस्तुतः उनका बीज एक नहीं था। राज्य के लोभ के कारण उन्हें बहुत बड़ा दुःख हो गया। उनमें अखण्डित रूप से वैर बना रहा। भिन्न-भिन्न बीजों से उत्पन्न होने के कारण गरुड़ और सर्पों में शत्रुता की उत्पत्ति हुई। श्रीराम और भरत के विषय में ऐसी स्थिति नहीं थी। वे (वस्तुतः) पायस के एक ही पिण्डे से उत्पन्न थे– एक ही पिण्डे के चार अंश थे। समझिए कि लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न– इन तीनों के साथ चौथे श्रीराम थे। इन चारों अंश रूपा मूर्तियों से एक श्रीराम-मूर्ति गठित थी। इसे 'सम्पूर्ण व्यूह' नाम प्राप्त है। व्यक्ति-देह के विचार से चारों बन्धु भिन्न भिन्न व्यक्ति थे। पर उन चारों से मिलकर श्रीराम नामक एक ही मूर्ति होती है। धर्मशास्त्र और वेदों के कहे अनुसार इसे 'व्यूह-चतुष्टय' कहते हैं। ऐसी एकात्मता के कारण भरत श्रीराम स्वरूप मूर्ति से अत्यधिक प्रेम से मिलना चाहते थे। अतः सूर्य के उदित हो जाते ही वे प्रयाण करने के लिए तैयार हो गए।

भरत का श्रीराम से मिलने का दृढ़ निश्चय, गुरु वसिष्ठ द्वारा भरत के मन की परीक्षा करना– भरत ने मंत्री को बुलाकर कहा– 'झट से सेना को सुसज्जित कर दीजिए। श्रीराम से मिलने हेतु वन में निश्चय ही जाना है'। तब गुरु वसिष्ठ स्वयं आकर भरत के मन के भाव की परख करने की दृष्टि से बोले। उन्होंने पुत्र के (पिता सम्बन्धी) कर्तव्य का उल्लेख करते हुए अपनी बात (इस प्रकार)कही– '(हे भरत) तुम तो चारों ही जने पितृ-भक्त हो। (तुम्हारे पिताश्री) राजा दशरथ यह आज्ञा निर्धारित करके (स्वर्ग) चले गये कि भरत को सिंहासन पर अभिषिक्त करें और श्रीराम वनवासी हो जाएँ। समझ लो कि तुम्हारी माता को (तुम्हारे पिता से प्राप्त) वरदान के अनुसार उसकी माँग भी यही है कि भरत का राज्याभिषेक सम्पन्न हो और श्रीराम वनवासी हो जाएँ। श्रीराम पितृ-वचन का विश्वास करनेवाले हैं। वे वनवास के लिए वेगपूर्वक चले गये। तुम भी पिता की आज्ञा का परिपालन कर लो और अभिषेक (सम्बन्धी हम लोगों के निर्णय) को स्वीकार करो। श्रीराम का अभिषेक करने हेतु जो सामग्री निर्धारित रूप से पहले सिद्ध की गयी थी, वह मेरे घर में तैयार है। अतः अभिषेक (सम्बन्धी निर्णय) को स्वीकार करो। पितृवचन की अवज्ञा करने पर मनुष्य नरक की ओर अधःपात को प्राप्त हो जाता है। हे भरत, (इस विषय में) कोई हठ न करो। मैं अब तुम्हारा अभिषेक कराना चाहूँगा'।

गुरु वसिष्ठ के सुझाव को सुनते ही भरत का मूर्च्छित हो जाना; (फिर सचेत होने पर) उनके द्वारा विलाप करते हुए माता की निन्दा करना– गुरु वसिष्ठ की बात को सुनकर भरत मूर्च्छित होकर गिर गए। (फिर सचेत होने पर) उन्होंने दीर्घ स्वर में रुदन शुरू किया। अपार आक्रन्दन करते

हुए वे बोले– 'कैकेयी (मेरी राज्य-प्राप्ति की कल्पना से) आनन्दित होकर (अन्त में) विधवा हो गई। जल जाए उसका काला मुँह। वनवास सम्बन्धी पाखण्ड (अर्थात् न्याय-धर्म के विरुद्ध विद्रोह) को उसी ने बहुत बढ़ा दिया। कैकेयी तो परम नष्ट (-बुद्धि) स्त्री मात्र ठहरी। उसने अपने श्रेष्ठ पति को वचन में उलझा डाला। उसकी माँग स्पष्ट रूप से पाप है। मैं राज्याधिकार (सिंहासन) स्वीकार नहीं करूँगा'।

भरत द्वारा राज्याभिषेक को अस्वीकार करना; उससे गुरु वसिष्ठ का आनन्दित हो जाना– (भरत बोले-) 'हे गुरु वसिष्ठ, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। मेरे मन को आप कितना परख हैं ? (यह निश्चय ही समझिए कि) श्रीराम को छोड़कर मैं अभिषेक नहीं स्वीकार करूँगा। श्रीराम को वन में छोड़कर यदि मैं राजसिंहासन पर अभिषेक के लिए बैठ जाऊँ, तो मैं मद्यपी, मातृगमनी, अति नष्ट-भ्रष्ट-बुद्धि हो गया होऊँ (समझिए)। आपके चरणों को छोड़कर मैंने पहले ही श्रीराम की सौगन्ध ली है। मेरे लिए वही अत्यधिक प्रमाण है। इससे मुझसे आप कोई भी बात न पूछें (कहें)'। यह कहते हुए भरत ने उनके चरणों पर मत्था टेका और कहा- 'हे गुरुनाथ, इसके पश्चात् मुझसे आप राज्याभिषेक सम्बन्धी कोई भी बात न पूछें (न कहें)'। भरत की यह बात सुनकर गुरु वसिष्ठ सुख सम्पन्न हो गए। उन्होंने भरत को हृदय से लगाकर कहा– 'तुम बड़े ज्ञानी (सिद्ध हो गए) हो'।

गुरु वसिष्ठ सहित सबका श्रीराम के दर्शन हेतु प्रयाण करना– (गुरु वसिष्ठ बोले-) 'मैं समस्त माताओं को साथ में लेकर श्रीराम से मिलने के लिए चलूँगा'। यह सुनकर भरत ने उनके चरणों पर मत्था टेका और कहा- 'आज मेरा सौभाग्य है'। सद्गुरु वसिष्ठ सुप्रसन्न हुए हैं, यह देखकर भरत ने नगाड़े बजवा दिये और कहा- 'सम्पूर्ण सेना को सुसज्जित करा दीजिए। वनवास के लिए शीघ्र ही प्रयाण करना है। (यह कहकर) भरत महर्ष नाचने लगे। (उन्होंने कहा–) 'आज श्रीराम को देखते ही मेरी अभिलाषाएँ पूर्ण होंगी और मैं कृतार्थ सिद्ध हो जाऊँगा'। श्रीराम से मिलने के लिए भरत सेना-सहित तत्काल चले। नगर के लोगों ने हर्षपूर्वक तालियाँ बजायीं (और सूचित किया कि) वे सब वन के प्रति जाने के लिए तैयार हैं। वन में श्रीराम के दर्शन होंगे- यह सोचकर समस्त व्यवसायी (पेशेवर) चलने को तैयार हुए। (इसके अतिरिक्त उन्हें व्यावसायिक लाभ भी होगा।) इस प्रकार दोनों प्रकार के लाभ को ध्यान में रखकर अयोध्या के समस्त लोग चले।

श्रीराम के दर्शन के लिए उत्कण्ठित लोगों की धाँधली और दौड़धूप–

श्लोक– (ब्राह्मण आदि त्रैवर्णिक) आर्यों के समूह, मन में आनन्दित होकर लक्ष्मण सहित श्रीराम का दर्शन करने के लिए उन्हीं के विषय में विचित्र बातें कहते सुनते हुए यात्रा करते रहे। (वे आपस में कहते जा रहे थे-) दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रत के पालनकर्ता, संसार के दुःख को दूर करनेवाले, स्थितप्रज्ञ, मेघश्याम, महाबाहु श्रीराम का हम कब दर्शन कर सकेंगे। जैसे उदित हो जाते ही सूर्य समस्त जगत् का अन्धकार दूर कर लेता है, वैसे ही श्रीराम, हमारी आँखों के सामने आते ही हम लोगों का सारा शोक सन्ताप (रूपी अन्धकार) दूर कर देंगे। इस प्रकार की बातें कहते और अत्यन्त हर्षविभोर होकर एक-दूसरे को गले लगाते हुए (अयोध्या के) नागरिक उस समय यात्रा कर रहे थे। उस नगर में जो दूसरे सम्मानित पुरुष थे, वे सब व्यापारी और शुभ विचारवाले प्रजाजन भी बड़े हर्ष के साथ श्रीराम से मिलने के लिए चले।

बनियों (पंसारियों) ने अपने (विक्रय हेतु वस्तुओं के सविस्तार) बड़े-बड़े ढेर तैयार किये, [illegible]ंधक मार्गदर्शक, सुनार, ज्योतिषी, महाजन जैसे व्यवसायी (पेशेवर) चले, बजाजों ने कपड़ों की

बड़ी बड़ी गाँठें (थान) लीं। (अथवा इन लोगों ने तम्बू साथ में ले लिये) ग्वालों ने गायों आदि के झुण्ड साथ में लेकर उनको तेज चलाने हेतु उनकी पीठ पर थपथपी लगाना आरम्भ किया। हलवाई पकवानों-मिष्टान्नों के ढेर लिये जा रहे थे। दूध, दही से भरी काँवरें ली जा रही थीं। तेलियों ने तेल का बड़ा संचय साथ में ले लिया। बजाजों के कपड़ों से लदे घोड़े जा रहे थे। तमोलियों ने पान, सुपारी आदि के थैले भरकर उन्हें ठीक से बाँध लिया। ब्राह्मणों ने अपनी अपनी सामग्री के गट्ठर बाँधकर तैयार किये कुछ एक माता-पिता की बिना अनुमति लिये चले, कुछ एक चोरी-छिपे रास्ता तय करने लगे। कोई माता अपने पुत्र को श्रीराम के दर्शन के लिए जाते देखकर उसके पीछे दौड़ी, अपनी स्त्री और पुत्र के कारण पिता भी चला। भतीजे को जाते देखकर उसके पीछे-पीछे श्रीराम को देखने हेतु उसका चाचा चला भाड़ा (मज़दूरी) लेकर बोझ ढोनेवाले, बैल, घोड़े, गधे आदि जानवरों पर सामान रखकर ले जानेवाले दर्जी नट तथा स्वाँग लेकर खेल-तमाशा दिखानेवाले चले। मनिहार, धोबी, नाई चले; पानी में तैरने-तैरानेवाले (तैराक) चले। बढ़ई, शस्त्र बनानेवाले, रस्सियाँ बटनेवाले चले। मोची, चमार जूतों के ढेर लेकर इसलिए चले कि मार्ग में उन वस्तुओं का अपार विक्रय होने की सम्भावना थी। सब लोग सपरिवार चले। भारवाहकों को लगा कि कोई पैसा न दे, तो भाड़ा (मज़दूरी) भी नहीं मिलेगी। कोई-कोई कह रहे थे, झट से चलो, भरत (हमसे) बहुत दूर चले गये हैं। घर में कोई रखवाला नहीं रहा। कुछ लोग एक दूसरे पर रूठकर चले (क्योंकि जानेवाले एक दूसरे की पूछताछ, प्रतीक्षा नहीं कर रहे थे)। अपनी-अपनी आँखों से श्रीराम को देखने की आशा से सब के मन में आनन्द छा गया था। कुम्हारों की स्त्रियाँ गधों पर बैठकर सहर्ष चलीं। अपनी आँखों से श्रीराम को देखने के लिए वे (गधों पर बैठकर चलने के कारण लोगों द्वारा किये जानेवाले) अवमान को मन-ही-मन सुखपूर्वक सहन कर रही थीं। भाड़ा लेकर जानेवाले (गाड़ीवान) अपनी अपनी गाड़ियों को लेकर सबके आगे चले जा रहे थे। (जिन्हें कुछ नहीं मिला ऐसे) बेचारे राजस (लोभी) लोग उनसे भाड़ा प्राप्त करने की आशा में पीछे पीछे जा रहे थे। ब्राह्मणों के समुदाय चले। असंख्यात संन्यासी चले नग्न अर्थात् दिगम्बर लोगों ने श्रीराम को देखने के लिए प्रस्थान किया।

भरत की सेना का वर्णन-

श्लोक- सबश्वेत घोड़ों से जुते हुए उत्तम रथ में विराजमान होकर भरत ने श्रीराम के दर्शन की इच्छा से प्रस्थान किया। एक लाख घुड़सवार भरत के पीछे पीछे जा रहे थे। (उनके साथ) साठ सहस्र रथ (रथों में विराजमान) धनुर्धर तथा विविध प्रकार के आयुधों के धारी योद्धा भी जा रहे थे। उन (भरत) के आगे-आगे समस्त मंत्री और पुरोहित घोड़ों से जुते हुए रथों पर बैठकर यात्रा कर रहे थे। वे रथ सूर्य के रथ के समान (कान्ति युक्त) थे। यात्रा करते हुए यशस्वी राजपुत्र भरत के पीछे-पीछे यथाविधि सुसज्जित (सजाये हुए) नौ सहस्र हाथी जा रहे थे।

श्वेत वर्ण के घोड़ों से जुते हुए रथ पर भरत सहर्ष विराजमान हो गए (उस रथ के चलने लगते ही) शत्रुघ्न ने श्री श्रीराम से मिलने के लिए जाने हेतु अपने रथ को हाँक लिया। एक पालकी में (एक) माता कौसल्या को और दूसरी में दूसरी माता सुमित्रा को वहन किया जा रहा था। श्रीराम के दर्शन के लिए तैयार होकर राजा दशरथ की अन्य स्त्रियाँ भी चलीं। माता कैकेयी तो जाने को बिल्कुल तैयार नहीं हुई- वह नहीं जा रही थी। देखिए, उसे इसका अपार दुःख हो रहा था कि न उसे श्रीराम प्राप्त हुआ, न भरत। उसे लगा कि मैं यह काला मुँह कैसे दिखाऊँ। वसिष्ठ आदि समस्त ऋषियों को, सुमन्त आदि महान मंत्रियों को बढ़िया रथ दिये गए थे। वे भी (भरत के साथ) चले जा रहे थे। भरत के दोनों ओर,

साठ-साठ वर्ष अवस्थावाले, अनेकानेक घण्टों, घुँघरुओं और पताकाओं से युक्त दस सहस्र मत्त हाथी शोभायमान हो रहे थे। (आरोहियों सहित) साठ सहस्र हाथी उनके साथ जा रहे थे। जिनपर अतिरथी, महारथी योद्धा आयुधों से सुसज्जित होकर आरूढ़ थे, ऐसे रथ भरत के पीछे घड़घड़ाहट के साथ दौड़ रहे थे। वे (रथों के चालक, सारथि) रथों को विविध प्रकार की एक से एक अद्भुत गतियाँ-विगतियाँ प्रदर्शित करते जा रहे थे। उनमें जो धनुर्धारी थे, वे अपनी शस्त्र-विद्या का प्रावीण्य उत्साह के साथ प्रदर्शित कर रहे थे। अच्छी जाति के एक लाख घोड़ों को लेकर वीर सैनिक का (अश्व) दल चल रहा था। अनेक प्रकार के आभूषणों से वे मनोहारी दिखायी देनेवाले वीर दुर्धर सिंहनाद करते जा रहे थे। उन घोड़ों के मुखाभूषण शोभायमान थे। अंग रक्षक कवच भी जालीदार झूल उनकी पीठ पर बिछायी गई थी। उस झूल के कान्तियुक्त पाखर चमक रहे थे। ऐसे घोड़ों पर महाबलशाली वीर आरूढ़ हो गए थे। वे घोड़े तीन टाँगों पर नाचते जा रहे थे। घुड़सवार हो-हो, मा-मा, जो जो ध्वनि (करते हुए उन्हें प्रोत्साहित) कर रहे थे। वे महावीर घोड़ों की अन्तरिक्ष में (भूमि के ऊपर से चलने-दौड़ने की) विविध प्रकार की गतियाँ प्रदर्शित करा रहे थे और उन्हें थपथपा रहे थे। पदाति सैनिक बड़े बड़े गँड़ासे, त्रिशूल, तोमर, गेंदें (गोलाकार पत्थर आदि), चक्र, गदाएँ, मुद्गर, लोहाँगियाँ साथ में लेकर आये थे। असंख्यात पदाति सैनिक ढालों और भालों को लेकर आगे आगे बढ़ते जा रहे थे। परशुधारी वीर गर्जन करते हुए चले आये थे। दुर्धर्ष मल्ल अपनी कान्ति से चमक-दमक रहे थे। शक्तियुक्त (मज़बूत, न टूटनेवाले) रस्से, पाश बाण, गँड़ासे, कटारें हाथों में लेकर चपलता या लाघवता के साथ चलनेवाले पहरेदार उनके साथ चले जा रहे थे, छोटे-छोटे हाथियों और ढालों के धारी पदाति सैनिक भी आ धमके। उनके चलते रहते उनके करतल चमक रहे थे। वे हय्-हय् थय्-थय् ध्वनि कर रहे थे। इस प्रकार पदाति सैनिक गर्जन करते चले जा रहे थे। इस प्रकार का राघव भरत का चतुरंग सेना-सम्भार अत्यधिक दुर्धर्ष (सामना करने में अति कठिन, दुर्दम्य) था। भरत ऐसी सेना के साथ शीघ्र गति से जाने लगे, तो वाद्यों का गर्जन आरम्भ हुआ। मार्ग बनानेवाले अथवा दिखानेवाले सेवक हाथों में कुल्हाड़ियाँ, आरे-दराँतियाँ, गँड़ासे हँसिये लेकर सेना के आगे-आगे जाते हुए वन के वृक्षों को काटते जा रहे थे। मिट्टी सम्बन्धी न जाने वे कितने काम करना जानते थे। वे इन लोगों के चलने के लिए योग्य भूमि (-पथ) तैयार करते जा रहे थे।

भरत की सेना को देखकर गुहराज का गलत धारणा के कारण युद्ध करने के लिए गंगा-तट पर सुसज्जित हो जाना– इस प्रकार (भरत की) वह अति दुर्धर सेना जा रही थी। फिर वे सब लोग गंगा नदी के तट पर रुककर खड़े हो गए। भरत की उस सेना को देखकर गुहराज बहुत क्षुब्ध हो उठे। (उन्हें लगा कि) यह कैसा अत्यधिक दुर्धर राज्य-लोभ है, जिससे सगे भाई से बैर ठान लिया गया। ये भरत सेना को सुसज्जित करके श्रीरामचन्द्र को मार डालने जा रहे हैं। श्रीरघुनाथ राम मेरे स्वामी हैं। ये भरत उनका वध करना चाहते हैं। तो मैं भी (उन सबका सामना करके) भरत को युद्ध में मार डालूँगा, उनकी समस्त सेना को छिन्न-भिन्न कर डालूँगा।

श्लोक– जब कि निश्चय ही दुर्बुद्धि भरत स्वयं आ गए हैं, (मैं समझता हूँ कि) यह पहले हमें पाशों से बँधवाएँगे अथवा हमारा वध कर डालेंगे। तदनन्तर जिन्हें पिता ने राज्य से निकाल दिया है, उन दशरथ नन्दन श्रीराम को राज्य-लोभ से मार डालने को ही भरत अपने मंत्रियों सहित तैयार हो गए हैं। परन्तु आज मेरे धनुष से निःसृत बाणों की मार उनके अंग-अंग पर, सैनिक जनों पर गजदल के योद्धाओं पर पड़ेगी। जहाँ घोड़ों, रथों, हाथियों सहित वह सेना खड़ी है, उस भूमि को मैं बाणों से रक्त (और मांस)

के कीचड़ से युक्त कर दूँगा। दाशरथी श्रीराम मेरे स्वामी हैं, बन्धु हैं, मित्र हैं, गुरु हैं। मैं उनके हित (की रक्षा) के लिए अत्यधिक दुष्कर (युद्ध) करूँगा।

श्रीराम मेरी माता हैं, पिता हैं श्रीराम मेरे मित्र हैं, बन्धु हैं। श्रीराम मेरे लिए भक्ति या आत्मीयता के विषय-स्वरूप गुरु हैं. श्रीराम निश्चय ही मेरी आत्मा हैं. ये भरत उनका वध करने हेतु सेना-सहित चले आये हैं। अतः मैं उनका नि.पात कर डालूँगा। मैं श्रीराम का सच्चा भक्त हूँ। श्रीराम का मैं प्रहरी हूँ मुझे उन्होंने (मानों) गंगा तट पर (नियुक्त कर) रखा है। (इस स्थिति में) मैं देखूँगा कि भरत यहाँ आकर किस प्रकार इस पार उतर सकेंगे। (यह सोचकर) गुह राज ने निषादों से कहा 'यदि भरत सेना सहित आ जाए, तो तुम गंगा तट की दृढ़ता से रक्षा करो उन्हें गंगा-जल को छूने तक न देना। ये सब यदि युद्ध करने हेतु आ जाएँ, तो मैं भी उनके सामने अपनी वीरता प्रदर्शित करूँगा। मैं आधे क्षण में इस पृथ्वी को उनके धड़ों और मुंडों से भरकर अंकित कर दूँगा। मैं युद्ध में रथों, घोड़ों, हाथियों (पर आरूढ़ योद्धाओं) को (और पदाति) नरवीरों को मार डालूँगा। जिससे (युद्धभूमि पर) रक्त के रेले बहेंगे, ऐसा क्षत्रिय धर्म का प्रदर्शन (युद्ध) मैं करूँगा। श्रीराम के अपने कार्य में मैं अपने सम्पूर्ण जीवन को अर्पित करूँगा। भरत के सामने आ जाने पर मैं उन्हें आगे (श्रीराम की ओर) बिल्कुल जाने नहीं दूँगा। (यह कहकर) निर्भीक, निःशंक (आशंकारहित) निषादों की अपनी सेना को इकट्ठा करके स्वयं गुहराज सुसज्जित होते हुए (भरत की सेना के सामने) आ गए।

भरत-गुह मिलन– (यह देखकर) सैनिकों ने भरत से कहा 'गुह युद्ध के लिए (तैयार होकर) आया है। गंगा के तट को घेरकर वह हमें गंगा जल को छूने भी नहीं दे रहा है'। कुछ एक ने कहा 'राजा दशरथ निश्चय ही निधन को प्राप्त हो गए, (यह जानकर) गुह हमारे लिए पराया हो गया। हम लोग प्यासों मर रहे हैं, पर यह हमें गंगा जल को छूने नहीं दे रहा है' तब सेनापति ने भरत से यह क्रोध के साथ कहकर आज्ञा माँगी कि बेचारा गुह तो क्या (शक्ति रखता) है, यदि आप हमें आज्ञा दें, तो क्षणार्द्ध में मैं उसे अपनी वीरता दिखाते हुए मार डालूँगा। (यह सुनकर) भरत सोचकर बोले– 'गुहराज श्रीराम के अति प्रिय (हितैषी) हैं। उनके विषय में जानकर प्राप्त न करते हुए उनके नाश के हेतु युद्ध न करें. फिर भरत ने गुह से पूछा– 'तुम युद्ध क्यों करना चाहते हो'। तो वे बोले– 'आप सी भारी (बलवती) सेना लेकर उनको क्यों मार डालने जा रहे हैं ? मेरे स्वामी श्रीराम वनवासी हो गये हैं। बलशाली सेना के साथ आकर आप उन्हें मार डालना चाहते हैं। आपके और हमारे बीच यही बैर है यही बड़े युद्ध का कारण है'। (फिर गुह बोले–) 'सद्गुरु से जो द्वेष करता है, वही हमारा मुख्य बैरी है, मेरी इसी प्रतिज्ञा को सत्य समझ लीजिए कि मैं उसका शस्त्र की धार से वध करूँगा'।

गुह की बात को सुनकर भरत रथ से नीचे गिर पड़े, वे मारे दु.ख के लोटने पोटने लगे। उनपर प्राणों के निकल जाने की स्थिति आ गई। फिर भरत ने गुह से कहा– 'अहो, झट से मुझ पापी का वध कर डालो कैकेयी ने पापों की राशियाँ इकट्ठा कर लीं और मुझे जगत् की दृष्टि से अति निन्द्य बना दिया कैकेयी के राज्य सम्बन्धी लोभ की यह बड़ाई रही कि उसने मुझे श्रीराम का बैरी बना डाला। उसके कारण मैं चराचर सृष्टि में निन्द्य ठहरा और दु.ख-सागर में डूब गया। स्वयं जो श्रीराम से द्वेष करता है, उसमें तीनों प्रकार की कालिमा लग जाती है. कैकेयी तो ऐसी (पिताजी द्वारा की हुई अयोग्य) स्त्री को खुशामद से निर्मित (स्त्री की दासता–स्वरूपा) कालिमा, ठहरी, जो मेरे मुख में लग गई। इससे मैं काल मुँहा सिद्ध हो गया। अब मैं लोगों को मुँह नहीं दिखा सकता। हे गुहराज, कैकेयी ने मुझे जो अपार

दु:ख दिया, उसे मैं किससे कहूँ। हे गुहजी, मैं तुम्हारे पाँव पकड़ता हूँ। झट से तीक्ष्ण बाण चलाकर मेरे देह स्वरूप बन्धन काट दो। उससे मेरे पाप के निराकरण के लिए (प्रायश्चित्त स्वरूप) अनुष्ठान हो जाएगा। तुम श्रीराम के आत्मीय जन हो; इसलिए निश्चय ही मेरे भी सखा हो। मेरी बात को सत्य सिद्ध कर लो और प्रायश्चित के रूप में मेरी देह को छेद डालो'। भरत की इस बात को सुनकर गुह ने उनको दण्डवत् नमस्कार किया। उनके चरणों को अपने माथे पर दृढ़ता के साथ पकड़कर रखा। फल-स्वरूप उन दोनों ने आत्मीयता-पूर्वक एक-दूसरे को गले लगा लिया। दोनों को एक-दूसरे के प्रति सम्पूर्ण प्रेम अनुभव हो गया। उनके नयनों में आत्मानन्द से आँसू आ गए। तो गुह ने भरत को फिर से दण्डवत् नमस्कार किया। फिर वे क्या बोले– 'श्रीराम के प्रति जिसे पूर्ण भक्ति हो, वह मेरा त्रिभुवन में (सच्चा) आत्मीय जन है। वही मेरा अपना संगी-साथी है और मैं उसके चरणों की सेवा का अभिलाषी हूँ'।

सुमन्त द्वारा भरत का सही दृष्टिकोण गुह को समझा देना– तब सुमन्त ने गुह से कहा- 'राज्य के दिये जाने पर भी भरत ने उसे स्वीकार नहीं किया। (उनके मत में) राज्य-सिंहासन पर रघुनाथ श्रीराम को ही अभिषिक्त किया जाना चाहिए। इसलिए वे उन्हें लौटा लाने के लिए वन में जा रहे हैं'। सुमन्त की यह बात सुनकर और स्वयं भरत का श्रीराम सम्बन्धी प्रेम देखकर गुह भरत के चरणों में लिपटे और बोले– 'हे भरत, जगत् में आप धन्य हैं'। तदनन्तर गुह को साथ में लेकर भरत ने स्नान और सन्ध्या विधि की। फिर पितृ-तर्पण करके उन्होंने स्वयं गुह से कहा 'श्रीराम ने गंगा-तट पर एक रात निवास किया था, तो उन्होंने जिस स्थान पर (जिस स्थिति में) शयन किया था, वह मुझे दिखा दो'।

गुहराज द्वारा भरत को श्रीराम के रात्रि-निवास का स्थान दिखाना, भरत-गुह-संवाद– निषादपति गुह भरत के हाथ को थामकर उस स्थान के पास ले आये, जहाँ श्रीराम ने निवास किया था। फिर गुह भरत से बोले– 'इसी इंगुदी वृक्ष के तले महाबलशाली श्रीराम ठहरे थे। उन्होंने गंगा के इसी जल में स्नान किया, इसी तृण-शय्या (साँथरी) पर रघुनन्दन श्रीराम ने सीताजी-सहित शयन किया। मैंने बहुत प्रार्थना की, फिर भी लक्ष्मणजी सोये ही नहीं। उन्होंने कहा कि श्रीराम की सेवा में सन्तोष होता है, मैं जड़-मूढ मनुष्य की भाँति नहीं सो जाऊँगा'। यह सुनते ही भरत को रुलाई आयी, फिर मूर्च्छित होकर वे गिर पड़े। जब भरत मूर्च्छित हो गए, तो शत्रुघ्न बहुत व्याकुल हो उठे। राजस्त्रियाँ कौशल्या और सुमित्रा दोनों हड़बड़ाहट के साथ वहाँ दौड़ी आयीं। जब भरत और शत्रुघ्न ने श्रीराम के वनवास का समाचार (पहले) सुना था, तब वे अत्यधिक दु:खी हो गए थे। अब उन्हें विदित हुआ कि वन में श्रीराम सकुशल हैं; लक्ष्मण और सीता सुखसम्पन्न हैं। अब कौशल्या और सुमित्रा ने गुह से पूछा– 'हे गुहराज, वनवास सम्बन्धी क्या समाचार है ? उसे सचमुच (ठीक से) झट से बता दीजिए'। श्रीराम के विरह के कारण वे दोनों माताएँ दु:ख से रो रही थीं। गुहराज भी कहते समय रो रहे थे। (वे बोले-) 'इस पेड़ के तले श्रीरघुनन्दन राम ठहरे थे। सीता-सहित उन्होंने यहीं शयन किया, इसलिए यह साँथरी पवित्र है। मैं भक्ति के साथ इस वृक्ष को नमस्कार करता हूँ; इस तृणशय्या का नित्य पूजन करता हूँ। मुझे रघुराज श्रीराम के चरणों के प्रति निष्ठा (भक्ति) है, अत: मैं इस मार्ग की धूल को नमस्कार किया करता हूँ।

श्रीराम के वनवास से सबका उद्विग्न हो जाना– गुहराज की बात सुनकर भरत उनके पाँव लगे और बोले– 'हे गुहराज, श्रीराम के भक्तिपूर्वक नाम स्मरण आदि से तुमको विशुद्ध प्रेम है। इसलिए तुम त्रिभुवन में धन्य हो। श्रीराम की सम्पूर्ण (एकनिष्ठ) भक्ति से तुम वृक्ष और तृण का वन्दन करते हो, सूक्ष्म अर्थात् गहरी भक्ति करनेवाले को इससे अधिक क्या लाभ हो सकता है। हे गुहराज, तुम्हारा

भक्तिभाव धन्य है, धन्य है। तुमपर राजा श्रीराम सन्तुष्ट (प्रसन्न) हैं। अपनी सन्देह रहित (एकनिष्ठ)
राम-भक्ति के कारण, तुम्हारा (अहं-) देह-भाव और सन्देह (अज्ञान जन्य) भ्रम नष्ट हो चुका है। वैसे
तो गुह एक अति अपवित्र निषाद थे। परन्तु वे श्रीराम-भक्ति से पवित्र हो गए। श्रीरामचन्द्र दीन-दयालु
थे। उनके नाम से महापापी भी पावन हो जाते हैं। गुह की ऐसी अनन्य भक्ति को देखकर भरत को उनके
प्रति अत्यधिक प्रेम अनुभव हुआ। मन के विषाद का त्याग करके वे दोनों एक-दूसरे के प्राण-प्रिय साथी
हो गए। श्रीराम और सीता की उस तृण-शय्या को देखकर, कौशल्या के मन में सचमुच असह्य दुःख
व्याप्त हो गया। उसने तब क्या बात कही ? (सुनिए)। 'सती सीता सुकोमल है, श्रीराम सुकोमलों में
अति सुकोमल हैं। उन्हें सचमुच फूलों का बिछौना चुभता था। देखिए, (कैसा दुर्भाग्य है कि) उन्हीं को
(आज) तृण शय्या प्राप्त हुई। जो (राज-प्रासाद में) राजाओं के लिए योग्य, सेवनीय पवित्र (शुद्ध) अन्न
का सेवन करते थे, उन्हें तीन रात अनशन हुआ। कैकेयी ने यह (कैसी) विचित्र बात कर दी कि अपने
सगे और सौतेले पुत्रों को दुःखी बना दिया'।

गुहराज द्वारा सब लोगों को नौका में बैठाकर गंगा के उस पार ले जाना– इस प्रकार की
युक्ति संगत बातों के चलते रहते, (जान पड़ा कि) आधे पल में रात बीत गई। सूर्य उदय हुआ, तो गुहराज
निषादों से बोले– 'अरे बहुत झट से नौकाओं को ले आओ। वे घण्टाओं, पताकाओं, आभूषणों (सजावट
की सामग्री) से युक्त हों बैठने के लिए मुलायम और कोमल आसन हों। भरत उस पार जाएँगे। रथों, घोड़ों,
हाथियों सहित समस्त सेना एवं जन-समुदाय जहाँ जैसे हों वहीं वैसे ही नदी को पार करेंगे' इस बात
से भरत अत्यधिक विस्मित हुए। निषादों के जो राजा थे, वे गुह स्वयं अपने हाथों खेते हुए नावों को भरत
के पास ले आये और उन्होंने प्रार्थना की– 'आप (नौका में) बैठ जाइए। गुह ने ऋषि वसिष्ठ के चरणों
को दण्डवत् नमस्कार किया और कहा– 'आप भवसागर के तारनहार हैं। हे स्वामी, आप नौका में बैठें',
ऋषि वसिष्ठ ने गुह को देखकर बड़ी आत्मीयता और प्रेम से उन्हें गले लगा लिया और कहा– 'आज
तो तुम ही उस पार ले जाने की दृष्टि से हमारे लिए तारनहार हो'। इसपर गुह बोले– 'हे गुरुनाथ, आपकी
कृपा ही वास्तव में तारनेवाली है। आप कृपा करके मेरे सिर पर हाथ रखिए, फिर मैं सबको उस पार
ले जाऊँगा'। गुह द्वारा ऐसी बात कहने पर गुरु वसिष्ठ ने उन्हें ठीक से पहचाना और हर्ष के साथ ताली
बजाकर वे नौका के पास आ गए। गुह ने वसिष्ठ आदि बड़े बड़े महात्माओं को स्वतंत्र नौका दी, जो
स्वयं संसार-सागर के पार लगानेवाले थे, वे परतंत्र (दूसरों के अधीन होकर चलनेवाले) नहीं थे। राजा
दशरथ की स्त्रियाँ अत्यधिक कोमल थीं। उनको गुह ने एक बड़ी नाव दी, जिसमें सुन्दर बिछावन पड़ा
था उसमें सबको बैठा दिया। भरत और शत्रुघ्न नाव में चढ़ बैठे, तो नगाड़े और भेरियाँ बजायी जाने लगीं।
वे समस्त लोग जयजयकार करते हुए नाना प्रकार के वाद्यों के गर्जन के साथ दूसरे किनारे पर उतर गए।

तदनन्तर भरत ने गुह से पूछा– 'सेना को किस मार्ग से चला दें ?' तो गुह बोले– 'मैं मार्गदर्शकों
को साथ में लेकर आपके साथ आ रहा हूँ। फिर गुह अपनी आँखों से श्रीराम के दर्शन करने हेतु बाह्य
अर्थात् सांसारिक स्वार्थों का त्याग करके अत्यधिक हर्ष के साथ भरत के साथ चले, जिस प्रकार मुमुक्षु
(मोक्ष-लाभ के अभिलाषी साधक) को (जप-तप आदि) साधना के विषय में अति आत्मीयता (निष्ठा)
होती है, उसी प्रकार गुह को श्रीराम के प्रति भक्ति थी। वे ऐसे मार्गशोधन करनेवाले पथदर्शकों को साथ
में लेकर चले जा रहे थे, जो अत्यधिक भक्तिभाव-पूर्वक (वन में) मार्ग-शोधन (मार्ग खोजकर अथवा
चलने योग्य बनाते हुए) जा रहे थे।

(कवि कहता है, यह कहा जा चुका है कि पहले) किस प्रकार भरत और गुह में विवाद हुआ; फिर दोनों को अनुताप हुआ और दोनों का मनोमिलन हो गया। मैं एकनाथ गुरु जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हूँ; उसके फल-स्वरूप, मुझे परमानन्द प्रदान करनेवाली श्रीराम की कथा का ज्ञान हो गया।

॥ स्वस्ति ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ-कृत 'श्रीभावार्थ-रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत अयोध्या-काण्ड का 'भरत-वनाभिगमन (एवं भरत-) गुह-संवाद' शीर्षक यह बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय १३

[भरत का चित्रकूट पर आगमन]

भरत द्वारा स्नान-सन्ध्या तर्पण विधियाँ सम्पन्न करना; त्रिवेणी को दण्डवत् नमस्कार करना– भरत ने गंगा नदी को पार करके स्नान, सन्ध्या और तर्पण विधियाँ सम्पन्न कीं और कहा कि आज का निवास तीर्थस्थान प्रयाग में हो। यह कहते हुए उन्होंने नगाड़ों पर चोट करवा दी। रथदल, गजदल, अश्वदल और पदाति वीरों के दल जब चलने लगे तो भूमि पर उनके लिए मार्ग पर्याप्त नहीं जान पड़ रहा था। आगे चलकर जब दूतों ने त्रिवेणी को देखा तो उन्होंने उच्च स्वर में कहकर उसकी सूचना दी। भरत और शत्रुघ्न दोनों ने त्रिवेणी को देखते ही उसे दण्डवत् नमस्कार किया और फिर जूतों को उतारकर वे नंगे पाँव उसकी ओर चले। ऋषिवर वसिष्ठ आदि द्रुत गति से पैदल चले। उन्होंने त्रिवेणी के तट को देखते ही उसका जयजयकार किया।

भरत द्वारा गोदान, पिण्डदान और धनदान देना– लाख-लाख गायों को दान में प्रदान करके भरत और शत्रुघ्न ने स्नान किया। तत्पश्चात् उन्होंने तीर्थ-स्थल में किया जानेवाला श्राद्ध कर्म किया तथा पिण्डदान करते हुए पितृ-तर्पण विधि सम्पन्न की। तीर्थ स्थल पर किये जानेवाले उपवास, मुण्डन (क्षौरकर्म) के नियम सम्बन्धी कोई बन्धन राजा के लिए नहीं होता। (इसलिए भरत शत्रुघ्न ने न उपवास किया, न क्षौरकर्म करवा लिया)। परन्तु (धर्म-) ज्ञानी गुरु वसिष्ठ ने तीर्थ-स्थल में किये जानेवाले क्रिया-कर्मों का विधान (यथाविधि) उनके द्वारा करवा लिया। उन दोनों ने उतना धन दान में वितरित करवा दिया, जिससे याचकों का मन तुष्ट हो गया; तीर्थ-निवासी ब्राह्मणों को सुख-सम्पन्न कर दिया, दीन जनों को भी (दान आदि से) सुखपूर्ण कर दिया। भरत द्वारा धन के बाँटे जाने पर याचक कृतार्थ हो गए। उन्होंने इस आशा के साथ तीर्थ-निवासी लोगों को सुख-सम्पन्न कर दिया कि श्रीरघुनाथ राम मुझसे मिल सकें। कुछ ब्राह्मण अन्य ब्राह्मणों से बोले– 'श्रीराम भी इस तीर्थभूमि में पधारे थे। पर उनके पास धन बिलकुल नहीं था। वे तो वल्कल वस्त्रों और जटाओं के धारी थे। फिर भी उनके श्रीमुख को देखते ही समस्त तीर्थों (के निवासियों) को ऐसा सुख हुआ कि उन्हें धन तुच्छ जान पड़ा, श्रीराम के दर्शन मात्र से असाधारण (दिव्य) सुख प्राप्त हो गया।

ऋषि भरद्वाज के सामने आ जाते ही भरत द्वारा उनका वन्दन करना– ऋषि भरद्वाज श्रीराम की अगवानी के लिए सामने आकर उन्हें अपने आश्रम में ले गए थे। वे ही श्रीराम की महिमा को जानते हैं, हम जैसे मूर्खों की समझ में वह नहीं आ सकती। तीर्थक्षेत्र के ब्राह्मण अति लोलुप थे उन्होंने सोचा

कि श्रीराम यद्यपि वल्कलधारी हैं, तो भी यह राजपुत्र हैं, ये धन दान में बाँट देंगे; इनके पास गुप्त रूप से (छिपाकर) रखा हुआ धन तो होगा ही। श्रीराम अत्यधिक सामर्थ्य सम्पन्न हैं, वे वन में रीते हाथों नहीं आएँगे। तीर्थक्षेत्र में ये धन (अवश्य) बाँट देंगे। वे ब्राह्मण इस प्रकार धन के लोभी (तथा अभिलाषी) थे। जहाँ (जिस व्यक्ति को) धन, स्त्री सम्बन्धी अहंकार होता है, जिसको अपने ज्ञान के सम्बन्ध में बड़ा अहंकार होता है, समझिए कि वह श्रीराम की महिमा सपने में भी नहीं देख (समझ) पाएगा। फिर भी, हमें श्रीराम के मुख को लोभ से देखने पर भी सुख प्राप्त हुआ। किन्तु हम मूर्ख जन श्रीराम की (यथार्थ) महिमा को नहीं जानते, वे तो (सबके लिए) सुख के दाता हैं। इधर ऋषि भरद्वाज ने स्वयं ब्रह्मज्ञान सम्बन्धी विवरण का महर्षि वाल्मीकि से अत्यधिक श्रद्धा के साथ ध्यानपूर्वक श्रवण किया था। उस श्रवण (भक्ति) की फल-निष्पत्ति स्वरूप वे समस्त भूतों में श्रीराम को देख रहे थे। इसलिए (साक्षात् ब्रह्म) श्रीराम में उनकी भक्ति थी। वे भक्ति भाव के साथ श्रीरघुपति श्रीराम को अपने आश्रय में ले गये। उन ब्राह्मणों की ऐसी बात (स्थिति) को सुनकर (जानकर) भरत की यह अवस्था हो गयी कि उन्हें जान पड़ा (वस्तुतः) श्रीराम तो सबके लिए सुख दाता हैं, पर मैं तो माया-मोह के कारण दुर्भाग्य को प्राप्त हुआ हूँ। तब वसिष्ठ को नमस्कार करते हुए भरत स्वयं बोले– 'ऋषिश्वर भरद्वाज ने श्रीराम का पूजन किया था। हम उनके दर्शन करें', तो वसिष्ठ बोले– 'तुम्हारी वाणी धन्य है। मेरे मन में यही बात आयी थी। भरद्वाज तो ऋषियों में शिरोमणि (सर्वश्रेष्ठ) हैं। उनसे मिलने हेतु (उनके दर्शन के लिए तत्क्षण) इसी क्षण चलें'। सेना को गंगा-तट पर ठहराकर भरत वसिष्ठ आदि महान ऋषियों के साथ ऋषि भरद्वाज के दर्शन के लिए उनके आश्रम में आ गए।

भ्रान्त धारणा के कारण भरद्वाज द्वारा भरत पर दोषारोपण करना– स्वयं ऋषि भरद्वाज ने उठकर वसिष्ठ को दण्डवत् नमस्कार किया, तो वसिष्ठ ने उनको गले लगा लिया। इससे दोनों को सन्तोष हुआ। फिर स्वयं भरद्वाज ने अन्य ऋषियों का वन्दन किया। तदनन्तर भरत और शत्रुघ्न ने भरद्वाज को दण्डवत् नमस्कार किया। भरद्वाज ने उन दोनों को हृदय से लगा लिया और उनका स्वागत करते हुए (क्षेम कुशल सम्बन्धी प्रश्न पूछकर) उनसे क्या कहा ? (उसे सुनिए।) भरद्वाज बोले–

श्लोक– धार्मिक मनोवृत्तियों, क्षमाशील उन श्रीराम का कोई दोष नहीं है। तो भी उनसे अपने स्नेह का त्याग करते हुए राज्य-लोभ से (प्रेरित होकर) यहाँ तुम उनका वध करने तो नहीं आये हो। उन निरपराध श्रीराम और उनके छोटे भाई लक्ष्मण का तुम राज्य का अकण्टक भोग करने की इच्छा से कोई अनिष्ठ तो नहीं करना चाहते हो। जब कि आज तुम्हारे पिता ने ही उन्हें वनवास के लिए (घर के) बाहर भेज दिया है, तो उसमें उन महात्मा का कोई दोष नहीं है। इसलिए तुम्हें ऐसा अयोग्य काम नहीं करना चाहिए।

भरद्वाज भरत से बोले– 'राज्य के (भोग सम्बन्धी) लोभ का विचार करके तुम समस्त सेना को सुसज्जित करके श्रीराम का वध करने हेतु वन में जा रहे हो। कण्टकहीन (बिना किसी बाधा के) राज्य का भोग करने की दृष्टि से तुम रघुकुलतिलक श्रीराम का वध करना चाहते हो। तुम तो अति मूर्ख, पापी हो। इससे तुम अत्यधिक दुःख को प्राप्त हो जाओगे। देव दैत्य, दानव, यक्ष, राक्षस, मनुष्य मिलें (मिलकर आ जाएँ), तो भी वे युद्ध में श्रीराम को जीत नहीं पाएँगे। फिर तुम तो किसी बच्चे-से (अज्ञान एवं बचकाने) होकर उनका वध कैसे कर सकोगे। श्रीराम की क्रोध से युक्त भौंह समस्त सृष्टि को युद्ध में नष्ट कर सकती है। वहाँ ऐसी स्थिति में तुम्हारी क्या बल (हस्ती) है ? तुम इस भयावह संकट में जीवित

रह नहीं पाओगे। समस्त सेना श्रीराम की है। समझ लो कि वह तो तब युद्ध नहीं करेगी। फिर लक्ष्मण क्षुब्ध होकर तुम दोनों के प्राण छीन लेंगे। हे भरत, इस बात को मान लो। तुम अयोध्या में लौट जाओ, तदनन्तर चौदह वर्ष राज्य करके श्रीराम की शरण को प्राप्त हो जाओ'।

यह सुनकर भरत का उद्विग्न हो जाना– भरद्वाज का यह वचन वज्र-सा कठोर था। वह भयावह रूप से भरत के हृदय में लगकर उसे छिन्न-विच्छिन्न कर गया। इसके फल-स्वरूप भरत ने प्राण-त्याग करना चाहा। भरद्वाज की ऐसी बात को सुनते ही वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े। (सचेत होने पर) वे बोले– 'मुझे मौत क्यों नहीं आ रही है' ? फिर वे अत्यधिक दुःख से रोने लगे। उन्होंने कहा– 'कैकेयी के राज्य (प्राप्ति) सम्बन्धी लोभ की यह बड़ाई है कि मैं जगत् में श्रीराम का वैरी सिद्ध हो गया। संसार यह कहने लगा कि भरत वन में जाकर श्रीराम को मार डालेगा (मार डालना चाहता है)। माता कैकेयी ने यह बहुत अनिष्ट बात की कि लोग यह समझने लगे हैं, भरत वन में जाकर श्रीराम का वध करेगा। जगत् में मुझपर ऐसा अपकीर्तिकारी दोषारोप आ गया। आप जैसे साधु सन्त भी यह कहने लगे कि भरत वन में जाकर श्रीराम का वध करेगा। फिर भी मुझे मौत नहीं आ रही है क्या मैं वज्र से निर्मित हूँ अथवा क्या मैं अपयश के साँचे में ढाला गया हूँ। मैं दुर्धर दुःख के लिए जन्म को प्राप्त हुआ हूँ (या दुर्धर दुःख से बना हूँ)। मैं निन्दा का महामेरु जैसा हो गया हूँ मैं तो अपयश का निवास स्थान हूँ, अपकीर्ति का अधिष्ठान हूँ। जल जाए मेरा काला मुँह ! मेरा देह-बन्धन (क्यों) काटा नहीं जा सका है (मुझे मौत क्यों नहीं आ रही है)। मैं श्रीराम का द्वेष्टा, अतएव परम पापी हूँ; मैं राज्य-लोभी, अतएव अति अधम हूँ। (हे ऋषिवर !) आप मुझे दारुण शाप देकर झट से (जलाते हुए) भस्म कर दें'। इस प्रकार कहते हुए स्वयं भरत ने उनके पाँव पकड़े। वे फिर बोले– 'मेरे पाप का नाश करने हेतु आप स्वामी का शाप (उसके प्रायश्चित स्वरूप) यथाविधि अनुष्ठान हो जाए'। यह कहते हुए भरत को रुलाई आयी वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े। भरत के ऐसे (श्रीराम के प्रति) प्रेम को देखकर ऋषि भरद्वाज सिसक-सिसककर रोने लगे।

भरत के अकुटिल हृदय को पहचानकर ऋषि भरद्वाज का सन्तुष्ट हो जाना– ऋषि भरद्वाज का सम्पूर्ण शरीर रोमांचित हो गया। वे प्रेम-विह्वल होकर थरथर काँपने लगे। वे बोले 'हे भरत, हे भरत, तुम्हें श्रीराम से अद्भुत प्रेम है। तुम धन्य हो, धन्य हो।' फिर उन्होंने भरत को दोनों हाथों से उठाकर अत्यधिक प्रेम से गले लगाया और कहा– 'मैं श्रीराम के भक्त के चरणों की धूलि का दिन-रात वन्दन करता हूँ। जिसे श्रीराम से एकनिष्ठ प्रेम हो, श्रीराम ही जिसके लिए एकमात्र गति (आधार, लक्ष्य) हो, श्रीराम के प्रति जिसे परम भक्ति हो, वह मेरा अपना साथी होता है। जो श्रीराम की ही एकनिष्ठ ध्यान, स्मरण आदि स्वरूप भक्ति करता है, उसका हम ध्यान एवं पूजन करते हैं उसके कारण हमें सन्तोष होता है। मेरी यह बात सत्य है'। भरत और भरद्वाज के एक दूसरे के प्रति ऐसे प्रेम को देखकर ऋषिगण हर्ष को प्राप्त हुए। उन्होंने जयजयकार स्वरूप गर्जन किया। यह देखकर ऋषि वसिष्ठ को परिपूर्ण सुख अनुभव हो गया।

गुरु वसिष्ठ द्वारा विश्वास दिलाना– फिर गुरु वसिष्ठ स्वयं बोले– ''यह जान लीजिए कि मेरे द्वारा भरत को राज्य दिलाने जाने पर उन्होंने मेरे चरणों को स्पर्श करते हुए यह अति दृढ़ शपथ ग्रहण की। 'यदि श्रीराम को छोड़कर मुझ भरत का राज्याभिषेक हो, तो (समझिए कि) मैं अपने माता पिता का वध करनेवाला, अपने सद्गुरु का वध करनेवाला (पापी) सिद्ध हो जाऊँगा श्रीराम की जो राजधानी

है, वह अयोध्या नगरी मेरी सगी माता है यदि मैं अभिषिक्त होकर उसके राज्य का उपभोग कर लूँ तो मैं मातृगमनी सिद्ध हो जाऊँगा'। समझिए कि इस प्रकार सौगन्ध लेकर भरत ने राज्य स्वीकार नहीं किया। उनके द्वारा शीघ्रतापूर्वक वन के प्रति प्रयाण करने का जो कारण है, उसे ध्यान से सुन लीजिए। रघुपति श्रीराम के पास जाकर उन्हें राज्य अर्पित करने के लिए उन्हें अयोध्या में लौटा लाने हेतु भरत ऐसे प्रेम से (वन में) जा रहे हैं"।

ऋषि वसिष्ठ के ऐसे कथन के फल-स्वरूप भरद्वाज का मत-परिवर्तन– ऋषि भरद्वाज को भरत का यह अविचल निर्णय सुनकर परिपूर्ण आश्चर्य हुआ। हर्ष-पूर्वक (मानों) नाचते हुए अर्थात् अत्यधिक अधीरता से उन्होंने भरत को गले लगा लिया। भरत ने उनके चरणों को पुनः नमस्कार किया, तो उन्होंने भरत को पुनश्च गले लगा लिया। फिर भरत ने उनके चरणों का वन्दन किया। फल-स्वरूप भरद्वाज को भरत से अपार प्रेम अनुभव हुआ और वे अपने आपको भूल गए। महर्षि गुरु वाल्मीकि की (अपने शिष्य भरद्वाज को) यह आज्ञा (सीख) थी कि भगवद्भक्त को गले लगाया जाए; इससे शरीर अत्यधिक पावन हो जाता है, जीव और शिव (परमात्मा) की तुष्टि हो जाती है। भरत के श्रीराम सम्बन्धी ऐसे अनन्य प्रेम के फलस्वरूप ऋषि भरद्वाज की भरत का पूजन करने के विषय में भक्ति अर्थात् श्रद्धा वृद्धिगत हो गयी। तदनन्तर उनके मन को साक्षात् ब्रह्म-स्वरूप गुरु वसिष्ठ का पूजन करने के उद्देश्य से आनन्द हुआ। (उनका विश्वास था कि) ऋषि वसिष्ठ पूर्ण ब्रह्म मात्र हैं, मेरे परम भाग्य से (मेरे आश्रम में) उनका आगमन हुआ है। भरत तो श्रीराम के अनन्य भक्त हैं; अतः उनका भी यथाविधि पूजन (स्वागत-सम्मान) करें।

ऋषि भरद्वाज द्वारा भरत और वसिष्ठ को सेना-सहित स्वागत के लिए आमन्त्रित करना– ऋषि भरद्वाज ने वसिष्ठ को नमस्कार करके उनसे अनुरोध किया कि मेरे द्वारा किये जानेवाले पूजन को आप स्वीकार करें; ऋषियों सहित आप मेरे आश्रम में भोजन करें। जिनका नाम स्मरण करना महादोषों का क्षालन करने की दृष्टि से अनुष्ठान सिद्ध हो जाता है, ऐसे कौन-कौन ऋषि वसिष्ठ के साथ वहाँ आ गए थे। वे थे कश्यप, कात्यायन, वामदेव, जाबालि, मुद्गल, मार्कण्डेय, गौतम आदि महान-महान ऋषि। भरद्वाज ने उन ऋषियों को आमन्त्रित किया। तदनन्तर वे भरत से बोले– 'आप सब (मेरे यहाँ) भोजन के लिए पधारें' तो भरत बोले– 'हम दोनों ऋषिवृन्द के साथ आयेंगे।' इस पर भरद्वाज ने पूछा आपको बहुत-से लोगों के (सबके) आने में क्या चिन्ता हो रही है ? हे भरत, देखिए, आपकी जितनी सेना है, उसके अश्वों, गजों के आरोही समस्त सैनिक श्रीराम के सेवक हैं, वे मेरे लिए अवश्य पूजन करने योग्य, पूजनीय हैं। उन सबको आप ले आएँ। मेरे आश्रम में उन सबके ठहरने के लिए (पर्याप्त) स्थान है'। इस प्रकार ऋषि भरद्वाज ने अत्यधिक प्रसन्नतापूर्वक, प्रेम के साथ भरत को आज्ञा दी अर्थात् भरत से अनुरोध किया।

ऋषि भरद्वाज द्वारा तपोबल से स्वागत की तैयारी करना; स्वागत-समारोह का वर्णन– (ऋषि भरद्वाज ने विचार किया कि) यदि मैं ऋषियों का पूजन करने के लिए (उसके लिए आवश्यक सामग्री इकट्ठा कर लेने के लिए) कामधेनु को माँगकर लाऊँ, तो (बहुत सम्भव है,) ऋषि जमदग्नि के यहाँ घटित-सी बात (यहाँ पर भी) हो जाएगी। उसे देखकर राजा उसकी (प्राप्ति की) अभिलाषा करने लगेंगे।

श्लोक– आज (भरत के साथ) वसिष्ठ प्रभृति ब्राह्मण (ऋषि) मेरे आश्रम में पधारे हैं। (यह देखकर) भरत के पूजन (स्वागत, सम्मान) के लिए और उन ऋषियों के आतिथ्य के लिए दिव्य ज्ञान से युक्त उन मुनि भरद्वाज ने समाधि लगायी और उसके फलस्वरूप (अयोमणि की सी चुम्बकीय शक्तिवाला कोई अद्‌भुत) रत्न प्राप्त करके उसके बल से वे स्वर्ग में से भोग्य सामग्री लिवा लाये।

महामुनि भरद्वाज समाधि लगाने हेतु अनुष्ठान करके बैठे और वे (अपने तपोबल से) स्वर्ग को ही आकर्षित करते हुए (भरत तथा वसिष्ठादि के) पूजन, आतिथ्य के लिए अपने आश्रम में ले आये। (फलस्वरूप) उनके आश्रम में घर और आँगन (चौक) बनाये गए, चित्र-विचित्र पट्टशालाएँ (तम्बू) अश्वशालाएँ (घुड़साल, अस्तबल), गजशालाएँ और लोगों के लिए विश्राम के साथ रहने हेतु विश्राम-शालाएँ बनायी गईं जहाँ (स्वर्ग के) चैत्रवन, नन्दनवन बस गए थे, वहाँ वे खाण्डववन ले आये। उससे भरद्वाज आश्रम शोभायमान हो गया। उसे देखकर राजा (राजपुरुष), ऋषि (आदि लोग) विस्मय को प्राप्त हुए। विपुल घी, मधु और आम्र रस से कुएँ भर गये। द्राक्षा (अंगूर) रस से (रस की) नदियाँ भर-भरकर बहने लगी। दही और दूध से नदियाँ भर गईं (उनकी नदियाँ बहने लगीं)। नाना प्रकार की सिखरनें बनायी गईं। उनसे पुष्करिणियाँ (जलाशय-जैसे बड़े-बड़े हौज़) भर दी गईं। भूमि पर शक्कर के पर्वत बनाये गए। स्वादिष्ट फलों की राशियाँ भी तैयार की गईं। वहाँ पर चम्पक, मन्दार, पारिजात आदि कल्पवृक्ष से पुष्प-वृक्ष थे। उनके सुगन्ध युक्त फूलों के हारों की राशियाँ ऋषियों और राजकुमारों के पूजन के लिए तैयार की गईं। शुद्ध चन्दन घिसकर उससे स्वर्ण-घट भर दिये गए। वहाँ पर छहों रसों से युक्त, नाना प्रकार के पकवानों एवं मिष्टान्नों के ढेर के ढेर सिद्ध किये गए। ऐसे दिव्य अन्न (भोज्य पदार्थ) सोने की थालियों में तथा नाना प्रकार के रस कटोरियों में पूर्ण रूप से (आकण्ठ) भर दिये गए। नाना प्रकार की साग-सब्जियाँ तथा अचार प्रस्तुत किये गए। इससे भोजन-कर्ता उनके प्रति परम आनन्द से मानों लिपटने (अपनाने, सेवन करने) जाते रहे। स्थान-स्थान पर अत्यधिक निर्मल, सुगन्धित और शीतल जल रखा गया। ऐसे (खाद्य पदार्थों एवं) जल का सेवन करने लगते ही सब लोग अन्तर्बाह्य रूप से (शरीर से और मन से) तुष्ट हो गए। अत्यधिक सुन्दर दिव्यांगनाएँ (अप्सराएँ) हाथों में पंखे लेकर उन्हें धीरे-धीरे हिलाकर हवा कर रही थीं। भोजन-कर्ता उनपर आसक्त मोहित हो गए। उनके मुख की ओर देखने के पश्चात् वे भोजन करने से रह गए। उन अंगनाओं की ओर देखते ही भोजन कर्ता पागल हो उठे। उनके मुख की रचना (गठन) को देखकर, उनके हावभाव विलास को देखने पर भोजन-कर्ताओं के हाथ में लिये हुए कौर हाथ में ही धरे रहे। फिर उस अन्न सामग्री को काक-स्पर्श हो गया (कौए छू गये)। फल-स्वरूप तदनन्तर वे (इस अनिष्ट बात के कारण) भोजन करने से वंचित रह गये उन्हें (शुद्ध होने के हेतु) सचैल स्थान घटित हुआ (करना पड़ा)। ऐसे अभिलाषी (भोगासक्त) लोग स्पष्टतया ठगे गए इसलिए (न भोजन मिलने से, न ही उन स्त्रियों के मिलने से) वे अत्यधिक व्याकुलता के साथ छटपटाते रहे। परन्तु जो लोग श्रीराम के अपने सच्चे भक्त थे, वे उन स्त्रियों के मुख पर आसक्त नहीं हुए। वे तो प्रत्येक कौर के साथ श्रीराम का स्मरण कर रहे थे। इसलिए वे आत्मिक आनन्द से तृप्त हो गये।

श्रीराम के नाम-स्मरण से भोजन-कर्ताओं का जन्म-मरण-चक्र से मुक्त हो जाना–

श्लोक– योगी जन प्रत्येक कौर के साथ श्रीराम का स्मरण करते हुए भोजन करते हैं, वहाँ पर साक्षात् भगवान् हरि (श्रीराम) भोजन कर्ता होते हैं। अतः वे योगी जन (भोजन करने के फल-स्वरूप) मुक्त हो जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

जो भोजन-कर्ता प्रत्येक कौर के साथ श्रीराम का स्मरण करते हैं, उस भोजन के समय (पंगत में) श्रीराम स्वयं भोक्ता के रूप में उपस्थित रहते हैं। इसलिए वे भोजन-कर्ता नित्य-मुक्त हो जाते हैं। बात धर्मशास्त्र की दृष्टि से श्रुति-सम्मत (एवं स्वीकृत) है। ऐसे उस भोजन की यही स्थिति रही कि जिनको जिस जिस पर में जो-जो आसक्ति (रुचि, लगाव) रही, उसी के मिल जाने से वे भोजन कर्ता उस-उस रस का सेवन कर सके। यद्यपि इस प्रकार की कृति सकाम (विशिष्ट उद्देश्य से) रही, तो भी श्रीराम के स्मरण के साथ उसके किये जाते रहने से वह निष्काम प्रयुक्ति (आयोजन, व्यवस्था, रीति) ही मानी जाए। ऋषि वसिष्ठ की थाली में जो बढ़िया (त्रुटि-रहित) मिष्टान्न (आदि परोसे-सजाये गए) थे, उसी प्रकार की थाली अर्थात् भोज्य सामग्री का सेवन रंक जनों ने भी किया. देखिए, उस (भोजन स्थान) में ऊँच-नीच का कोई भेद नहीं था। समस्त सेना ने समान तृप्ति को प्राप्त होते हुए भोजन किया। (उस पंगत में) न (अधिक, पुनःपुनः) माँगना-मँगाना (आवश्यक) रहा, न परोसना। उस स्थान पर थालियों में परोसे हुए भोज्य पदार्थ समाप्त होना ही नहीं जानते थे। जिस किसी रुचि के साथ जिसे जो-जो वस्तु अच्छी लगती थी, उस उस का सेवन वह उसी रुचि के साथ करता था। वहाँ वह भूख मिट गयी; प्यास-प्यास (के भाव) के शमन को प्राप्त हुई (प्यास शेष ही नहीं रही)। इस प्रकार समस्त सेना भोजन करके तृप्त हुई। उसमें से कोई भी अतृप्त नहीं रहा। घोड़ों और हाथियों ने घास नहीं खायी; क्योंकि उन्हें भी मिष्टान्न परोसकर खाना दिया गया। परोसियों ने केवल (निरा) जल उन्हें नहीं पिलाया। (उन्हें दूध पीने को दिया गया)। उन्होंने स्वादिष्ट दूध का सेवन किया। समस्त बजाज, (शकुन-फल, मुहूर्त आदि बतानेवाले) पण्डे पुरोहित, बनिये, महाजन, धोबी, चमार आदि समस्त उद्यमी (पेशेवर) लोगों में से प्रत्येक भोजन करके तृप्त हो गया। वसिष्ठ तथा अन्य ऋषियों ने, भरत और शत्रुघ्न ने (भोजन के समाप्त होने पर) शुद्ध आचमन किया। फिर समस्त सभा-जन प्रसन्न-मुख बैठ गए, क्योंकि उसको सम्पूर्ण सुख प्राप्त हो गया था। तदनन्तर अक्षत-सहित सुगन्धियुक्त तिलक लगाया गया; पुष्पमालाएँ पहनायी गईं। सबको ताम्बूल दिये गए। इस प्रकार श्रीराम के भक्तों का पूजन करने में ऋषि भरद्वाज को प्रसन्नता अनुभव हो गयी।

इस समारोह में भ्रमरों, तोतों, सारिकाओं, कोयलों तथा वन-शोभा द्वारा सुसंगतिपूर्ण सुस्वर अर्थात् मधुर संगत करना– (चारों ओर) वन को महकती हुई मनोहारिणी शोभा छायी हुई थी। वृक्ष, लताएँ, पुष्प पराग कणों को अत्यधिक विपुल मात्रा में लुटा रहे थे। भ्रमर वैसे ही रुनझुन ध्वनि कर रहे थे, जैसे साम-गायन मधुर स्वर-युक्त होता है। कोकिल वेदों के स्वर में कूजन कर रहे थे। कबूतर वेदान्त के-से स्वर में गुटरगूँ ध्वनि कर रहे थे। जैसे उमापति शिवजी ताण्डव नृत्य करते हैं, वैसे ही मयूर नृत्य कर रहे थे। शुक (तोते जो आश्रमस्थ ऋषियों की ब्रह्मज्ञान के विषय में युक्ति-युक्त बातों को सुनकर बोलते थे) फल-प्राप्ति की आशा का त्याग करके ब्रह्मज्ञान के विषय में अपनी-अपनी तर्क-संगत बातों को बोलते थे। पिंगल (एक प्रकार के सारस पक्षी) उनको सुसंगतिपूर्ण रूप से कहते जाते थे। सारिकाएँ भी श्रोताओं को अपने शब्दों से सन्तुष्ट कर देती थीं। विवेक रूपी अंगूरों के गुच्छों को देखकर आँखों की चाह पूरी हो जाती थी (आँखें अघाती थीं)। समस्त मधुर वस्तुओं में वे सर्वाधिक मधुर थे। उनका सेवन करने पर सेवन करनेवाले के लिए सुख सम्पन्नता की विपुलता का समय आ जाता था। (अर्थात् विवेकवान जन अत्यधिक सुख-सम्पन्नता) को प्राप्त हो गए)। हाहा और हूहू नामक दोनों गन्धर्व मधुर स्वर में गीत गा रहे थे। रम्भा और उर्वशी जैसी विलासिनी अप्सराएँ आनन्द की उमंग के साथ नाच रही

थीं। वहाँ ऐसे उज्ज्वल रत्न-दीप जल रहे थे कि उनका प्रकाश सूर्य के प्रकाश से लुप्त नहीं हो रहा था वे बड़ी प्रसन्नता से जलाये जाकर चारों ओर चमक-दमक के साथ प्रज्वलित से जान पड़ रहे थे जिन दीपों के जलते रहने से आँच छा जाती है और ऊपर (बाती के सिर पर) कालिख (के कण) तथा लौ के सिरे पर कालिमा (-युक्त लपट) दिखायी देती है, उन सबको बुझाकर चिद्रत्न-स्वरूप दीप जलाये गये थे। प्रत्येक पुरुष को अलग-अलग कक्ष दिया गया था। उसके अन्दर रत्न (-जटिल) पलंग रखा गया था। वहाँ प्रत्येक पुरुष की सेवा करने हेतु पाँच-पाँच नारियाँ (अप्सराएँ) नियुक्त की गयी थीं। (तैयार थीं) उनमें से एक अतिथि स्वामी के चरणों को धो रही थी; एक उसके चरणों को दबाती थी एक उसके शरीर में (शीतलता के लिए) चन्दन लगाती थी। एक दिव्य पंखा झलकर हवा करती थी, तो समझिए कि एक उसे ताम्बूल देती थी। उन अप्सराओं ने अपने अपने स्वामी पुरुष से कहा– 'हम अयोध्या में नहीं आएँगी। आज की रात के व्यतीत हो जाने पर हम स्वर्ग में लौट जाएँगी। ऋषिवर भरद्वाज के ध्यान और ज्ञान के बल से हमारा यहाँ आगमन हो गया; तो समझिए कि कल सूर्य के उदित हो जाने पर हमें (भरद्वाज की आज्ञा के अनुसार) स्वर्ग के प्रति गमन करना है'। पास में अप्सराओं के होने पर भी श्रीराम के भक्त उनके प्रति उदासीन (अनासक्त) रहे। वे समस्त भूतों (प्राणियों, वस्तुओं) में भगवान् को ही देखते थे। इसलिए उनके लिए स्त्री-पुरुष भेद का अभाव रहा। परन्तु जो मूलत: आत्मा में परमात्मा को नहीं देखते थे, (आत्मा-परमात्मा को अलग-अलग मानते थे) देखिए, वहाँ पर उन्हें स्त्री-पुरुष में अन्तर दिखायी देता था, जो वस्तुत: अज्ञान के कारण मिथ्या ही है। उन्हें देहधारियों में स्त्री और पुरुष अलग-अलग आभासित होते रहे। परन्तु श्रीराम के भक्तों में ऐसी देहबुद्धि (स्त्री-पुरुष-अन्तर की भावना) नहीं थी। वैसे तो भोग्य विषयों के प्रति आसक्त पुरुष और नारियाँ एक दूसरे की संगति में घर-घर में स्वर्ग सुख का उपभोग करते जान पड़ते हैं। (पर श्रीराम-भक्त ऐसे नहीं थे।) ऋषिवर भरद्वाज ने ऐसे (श्रीराम-भक्त) भरत का पूजन किया।

समस्त उपस्थित जनों का तृप्त हो जाना– (भरत के साथ चित्रकूट जाने हेतु आगत लोगों में से) कोई भी वहाँ मलिन वस्त्रों से युक्त न था; कोई भी मलिन केश-धारी नहीं था; न ही कोई मलिन देह (-कान्ति) वाला था। सबको स्वर्गीय आनन्द अनुभव हो रहा था। तृणचर (घास खानेवाले पशु) घोड़ों, हाथियों, गधों, ऊँटों ने मिष्टान्नों का सेवन किया। पानी-पीने के बदले उन्होंने दूध पी लिया। ऋषि भरद्वाज ने इस प्रकार विचित्र (चमत्कारमय) बात की। (कवि कहता है-) महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में (उन लोगों द्वारा किये) स्वर्गीय भोगों-से बहुत-से भोगों को लिखा (उल्लिखित किया) है परन्तु मैंने उन सबका उल्लेख न करते हुए अपने ग्रन्थ का विस्तार नहीं किया है– मैंने उन बातों को संक्षेप में कहा है। ऋषि भरद्वाज का ज्ञान असीम था। अत: उन्होंने अपने ही आश्रम में एक क्षण ध्यान धारण करते हुए स्वर्ग के समस्त भोगों को आकर्षित करके (धरा-तल पर ला दिया और) सब (अतिथियों) का पूजन (एवं आतिथ्य) किया। भरद्वाज ने राजाओं (अर्थात् धनवानों) और रंकों (दरिद्रों) का सम समान रूप से (आतिथ्य-स्वरूप) पूजन किया। उसे देखकर समस्त लोग आश्चर्य अनुभव कर रहे थे। भरत और शत्रुघ्न भी विस्मय-मुग्ध हो गए। स्वर्ग में तो सेवन करने के लिए अमृत ही उपलब्ध है। इसलिए स्वर्ग में देवों को (अन्य अन्न) भोज्य पदार्थ नहीं मिलते। परन्तु भरद्वाज ने (अपने आश्रम में सबको) अमृत और मिष्टान्नों सहित भोजन करा दिया। वे स्वर्ग से कामधेनु को नहीं ले आये, न ही उन्होंने अपने इकट्ठा किये हुए धन का व्यय किया (पुण्य रूपी धन का भी व्यय नहीं किया)। परन्तु आधे क्षण के लिए ध्यान

धारण करके वे स्वर्ग को आकर्षित करके (अपने आश्रम में) ले आये थे। जब ऋषि इस प्रकार बोल रहे थे, तो (उसे सुनकर) भरत और शत्रुघ्न मन में विस्मय-चकित हो गए। फिर उनके आपस में बातचीत करते रहते, रात बीतने को हुई और सूर्य उदय को प्राप्त होने की वेला आ गई

ऋषि भरद्वाज द्वारा भरत को प्रेमपूर्वक आशीर्वाद देना– भरत ने भरद्वाज से कहा– 'आप स्वामी हमें अब आज्ञा दें। हम श्रीराम से मिलने के लिए जाना चाहते हैं'। यह कहकर वे ऋषि भरद्वाज के पाँव लगे। तब भरद्वाज ने आनन्द और प्रेम के साथ उनका आलिंगन किया और कहा– 'चित्रकूट पर श्रीराम तुमसे निश्चय ही मिलेंगे, भरद्वाज की यह बात सुनकर भरत ने उसे शुभ शकुन के रूप में गाँठ में बाँध लिया। फिर उन्होंने माथा टेककर भरद्वाज के चरणों का वन्दन किया, तो भरद्वाज ने उसकी पीठ पर थपकी लगा दी (उनको साधुवाद दिया)।

ऋषि भरद्वाज द्वारा समस्त ऋषियों का वन्दन करना और ऋषि वसिष्ठ द्वारा उन्हें आशीर्वाद देना– भरद्वाज ने स्वयं आकर वसिष्ठ आदि ऋषि जनों को नमस्कार किया और वसिष्ठ के चरणों का वन्दन किया। (भरद्वाज बोले-) 'स्वर्ग में इन्द्र वसिष्ठ के चरणों से वंचित रहते हैं। (हे ऋषिवर वसिष्ठ) समझिए कि आपके चरणों के प्रभाव के फलस्वरूप मैं भरत का (आतिथ्य एवं) पूजन कर सका हूँ'। तो वसिष्ठ भरद्वाज से बोले– 'जो अहंकारहीन होता है, उसके पास समस्त सिद्धियाँ आ जाती हैं। ऐसी ही अहंकारहीनता के साथ आप (सुख-सुविधा-पूर्वक) निवास कर रहे थे, इसलिए आप तीनों लोकों के लिए वन्दनीय हैं'।

सब लोगों का चित्रकूट के प्रति प्रयाण– भरद्वाज की प्रशंसा करते हुए समस्त ऋषि उनसे बिदा होकर चले तब भरत ने उन सबको रथों में बैठाकर अपनी सेना को (प्रयाण के लिए) सिद्ध करवा लिया। वे दोनों बन्धु समस्त माताओं को पालकियों में विराजमान कराकर रथ पर बैठ गए। वाद्यों की ध्वनि (वादन) आरम्भ हुई, बड़े गर्जन के साथ वे (सब) चले। यमुना नदी के उस पार जाकर वे गिरिवर चित्रकूट के पास पहुँच गए। चित्रकूट पर्वत को देखकर भरत आनन्द के साथ नाचने लगे (उन्हें विश्वास था कि) आज श्रीराम मिलेंगे। शत्रुघ्न भी प्रसन्न हो गए।

उपसंहार– श्रीराम के दर्शन से भरत को जो सुख होगा, उसे कौन बता सकेगा ? वे एक-दूसरे के जीव-प्राण ही थे। मैं एकनाथ अपने गुरु जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हूँ। भरत और श्रीराम की जब भेंट होगी तब हर्ष से (समस्त) सृष्टि आनन्द से उमड़ उठेगी। उस सुख को शब्दों में नहीं कहा जा पाएगा। उस स्थिति में (जीव-स्वरूप) भरत का परब्रह्म श्रीराम से एकात्मता पूर्ण गले लगना होगा।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ-कृत 'श्रीभावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत अयोध्याकाण्ड का 'भरत-भरद्वाआश्रम गमन; चित्रकूट पर्वत प्रवेश' शीर्षक यह तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय १४

[श्रीराम द्वारा एक दुष्ट काक को दण्ड देना]

चित्रकूट पर श्रीराम की दिनचर्या; लक्ष्मण द्वारा श्रीराम और सीता की सेवा करना– इधर श्रीराम चित्रकूट पर्वत पर अग्निहोत्र कर्म को वेदोक्त विधि के अनुसार सीता सहित नित्य परिपालन किया

करते थे। श्रीराम द्वारा की जानेवाली (देवता-पूजन आदि) सेवा के लिए लक्ष्मण ने एक विचित्र (असाधारण रूप से सुन्दर) पर्णशाला का निर्माण किया था। वे उसके अन्दर श्रीराम द्वारा सम्पन्न किये जानेवाले अग्निहोत्र की दिन-रात रक्षा करते थे। वे नित्य उनके लिए बढ़िया फल और मूल लाया करते थे, जल लाकर दिया करते थे। वे अग्निहोत्र व्रत के निर्वाह के लिए बड़ी-बड़ी लकड़ियाँ लाकर अग्नि को भली-भाँति प्रज्वलित रखवाते थे और स्वयं उसकी रक्षा करते थे। लक्ष्मण श्रीराम और सीता के चरणों को नित्य नियमपूर्वक धोया करते थे। वे दोनों लक्ष्मी-नारायण ही हों, इसी पूर्ण श्रद्धा भाव से उनका पूजन करते थे। अग्निहोत्र विधि सम्बन्धी (वेदोक्त) विधान को श्रीराम जानते थे। वे उसके अनुसार प्रतिमास अमावस और पूर्णिमा के दिन होम किया करते थे। लक्ष्मण होम की निर्धारित सामग्री के अनुसार यत्नपूर्वक मृग-मांस लाकर देते थे– इस प्रकार वे व्रत सम्बन्धी नियम का पालन करते थे। श्रीराम की सेवा करने में वे शरीर अर्थात् शारीरिक श्रम करने में तिल-भर भी त्रुटि नहीं रखते थे। वे हाथ में धनुष-बाण लेकर होम के लिए मृगों को मार डालते थे। उन मृगों के मांस से (मांस की आहुतियाँ चढ़ाते हुए) श्रीराम होम सम्पन्न करते थे। धन्य है उन मृगों का जीवन जिनके मांस से वे हवन करते थे। जिन वृक्षों के फलों का सेवन स्वयं श्रीराम करते थे वे, नित्यमुक्त हो जाते थे। जिससे उन्होंने सुविधाएँ प्राप्त कीं, दर्भ और दर्भासन प्राप्त किया, उन टहनियों और दर्भ (कुश, मूँज) जैसे तृण का श्रीराम ने उद्धार किया। समझिए कि जो पाषाण उनके पाँवों तले आ जाते, वे भी (उनके चरण-स्पर्श से) नित्यमुक्त हो गए (नदी के) जिस निर्मल जल से श्रीरामचन्द्र स्नान करते थे, उसमें रहनेवाली मछलियों और मगरमच्छों का उन्होंने उद्धार किया; वन में निवास करनेवाले श्रीराम ने वन में रहनेवाले प्राणियों का उद्धार किया। श्रीराम का वन के प्रति प्रयाण जगत् का उद्धार के करने के लिए ही हो गया था। इसलिए समझिए कि जिनको श्रीराम के दर्शन प्राप्त हुए, जिनको श्रीराम ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्पर्श किया, वे सब उद्धार को प्राप्त हो गए। कोई अपनी आँखों से श्रीराम को देखना चाहता हो, तो उसके पास राशि-राशि सद्भाग्य होना चाहिए। जिनको श्रीराम से भेंट होती है, वे ही संसार में धन्य हैं, धन्य हैं। जो श्रीराम की कथा का नित्य श्रवण करता है, जो ध्यानपूर्वक सुनता है, वह धन्य है, धन्य है। जो निष्काम भाव से श्रीराम-कथा का पठन करता है, तो उस पठन से जड-मूढ़ मनुष्य भी पावन हो जाता है। जिसके मुँह में श्रीराम-नाम रहता हो, उसका जन्म धन्य है, धन्य है। जो लोग श्रीराम के नाम का नित्य स्मरण करते हैं, श्रीराम उनका उद्धार करते हैं। श्रीराम की महिमा ऐसी गहन (अथाह) है। उसे कहते-कहते वेदों को भी मौन घटित हो गया, उसे मैं दीन-दुर्बल कैसे कह सकता हूँ ? (अस्तु ! अब श्रीराम की) कथा को क्रमानुसार आगे सुन लीजिए। श्रीराम के अग्निहोत्र को चलाते रहने में लक्ष्मण अत्यधिक तत्पर रहते थे, (एक दिन) पवित्र मृगों को मारकर झट से ले आये। (कहा जा चुका है कि) पूर्णिमा और अमावस्या आदि यज्ञ के विशिष्ट दिन श्रीराम लक्ष्मण द्वारा ऐसे मृगों का वध करवाते थे। फिर उन्होंने यज्ञ में आहुति अर्पित करने हेतु उनके खण्ड खण्ड बना लिए। तो उस मांस के अभिलाषी कौए वहाँ आ गए।

एक गन्धर्व का काक रूप में सीता पर आक्रमण करना– इधर लक्ष्मण फल लाने के लिए चले गये थे। उधर मांस पाने के हेतु कौए ताक में रहे थे। (वह देखकर) श्रीराम सीता से बोले– 'हे अबला (स्त्री), इन पक्षियों के समुदाय का निवारण कर लो'।

श्लोक– (श्रीराम और लक्ष्मण द्वारा भोजन कर लेने पर स्वयं सीता ने प्राण पोषक अन्न का सेवन किया।) सुखाकर सुरक्षित रखने के लिए थोड़ा-सा (जो निकृष्ट) मांस शेष था, श्रीराम के आदेश

के अनुसार सीता बैठकर उसकी रक्षा करने लगी। तब श्रीराम ने देखा कि एक स्वेच्छाचारी कौआ उसके (गले में पहने हुए) हार पर मँडरा रहा है और इस प्रकार उसे बहुत कष्ट पहुँचा रहा है। उस समय, पति-प्रेम के बल पर अभिमान करनेवाली और अदोष अंगों से युक्त सीता को श्रीराम ने उस कौए के उपद्रव से अत्यधिक व्याकुल होकर भयभीत हुई देखा। इधर-उधर से उस कौए को भगाने का प्रयास करनेवाली कोपाविष्ट सीता को उस कौए ने पंखों, चोंच और नखाग्रों के (आघात से) बहुत व्याकुल एवं क्षुब्ध बना दिया। (भगा देने का यत्न करनेवाले) श्रीराम के भी शब्दों की ओर ध्यान न देते हुए वह ढीठ पक्षी सीता की ओर लपका। इससे श्रीराम अत्यधिक क्रुद्ध हो उठे।

सुकुमार राजपुत्री सीता श्रीराम की आज्ञा के अनुसार झट से बाहर आयी और स्वयं उस कौए का निवारण करने लगी। सुदसुव नामक एक गन्धर्व उस सुन्दरी को देखकर उसको चाहने लगा (सीता पर कामासक्त हो गया)। वह काक-वेश धारण करके सीता के पास आ गया। स्वयं सती सीता द्वारा भगाये जाने पर अन्य कौए तत्काल भाग गये। परन्तु वह काक (वेशधारी गन्धर्व) कामासक्ति के कारण नहीं भाग रहा था, वह तो आगे-आगे लपकता रहा। उस काक को क्रोधपूर्वक भगाते रहते सीता की कञ्चुकी के (गाँठ बद्ध) डोर खुल गये, उसके शरीर के ज़ोर से हिलते ही उसका आँचल (अपने स्थान छाती पर से) हट गया। तब उस कौए ने उसके वक्षःस्थल को देखा। वह सुन्दरी खुले स्तनों सहित दिखायी दे रही थी। (गले का) हार कुचों पर झूल रहा था। यह देखकर वह स्वेच्छारूपधारी काक (रूप गन्धर्व) सीता के वक्षःस्थल की ओर लपका। उसने अपने पंखों से उसपर झपट्टा मारकर चोंच से उसके होंठों का चुम्बन करके सीता को व्याकुल बना दिया। उस कौए के पंखों के झपट्टे के ज़ोर से सीता चीखती चिल्लाती हुई भूमि पर गिर पड़ी। तब वह अधर्मी (अधम) कामाचारी कौआ उसके वक्षःस्थल पर विचरण करने लगा। जब वह कौआ छाती पर बैठा, तो सीता अपने करतल से उसे हटाने (का प्रयास करने) लगी। परन्तु जब उस कौए ने चोंच की मार से उसके हाथ को क्षत-विक्षत किया, तो वह उद्वेगपूर्वक चीखने-चिल्लाने लगी।

सीता की चीख़-पुकार को सुनकर श्रीराम द्वारा कौए की ओर इषीकास्त्र चला देना— सीता का दीर्घ स्वर (पुकार, चीख़-चीत्कार) सुनकर रघुकुलतिलक श्रीराम वेगपूर्वक वहाँ आ गए। उन्होंने उस दुष्ट कौए को देखकर उसकी ओर (सरकण्डे के-से) दर्भ का तिनका चला दिया।

श्लोक— तब पुरुषश्रेष्ठ वीर श्रीराम ने सरकण्डे या कुश के तिनके को ऐषीकास्त्र-मन्त्र से अभिमंत्रित करके उस कौए को लक्ष्य करते हुए उसकी ओर चला दिया। उससे वह कौआ इषीकास्त्र से भयभीत होकर तीनों लोकों में जहाँ-तहाँ बुरी तरह भागने लगा। परन्तु वह जहाँ-जहाँ जाता, वहाँ वहाँ वह अपने पीछे आनेवाले उस इषीकास्त्र को देखता रहा। जहाँ तहाँ किसी पिशाच की भाँति पीछा करनेवाली इषीका को देखकर वह फिर से श्रीराम के प्रति लौट आया और सीता को देखते रहते, मनुष्य-वाणी में बोला। श्रीराम द्वारा चला देने पर उसको इषीकास्त्र मन्त्र से अभिमन्त्रित वह दर्भ-शिखा सूर्यके समान दहकती हुई उस कौए के पीछे जाने लगी। उस कौए के वेगपूर्वक दौड़ते रहते, वह इषीकास्त्र उसका पीछा करने लगा। तीनों लोकों में भ्रमण करने पर भी उस कौए का पीछा वह नहीं छोड़ रहा था।

नारद के कहने के अनुसार श्रीराम की शरण में जाना— श्रीराम की इषीका को देखकर इन्द्र ने अपने सिंहासन का त्याग किया (और पलायन किया)। उस स्थिति में उस कौए को अपने पास कौन रख सकता था ? वह देवों के पास दौड़ा। श्रीराम की इषीका को देखकर इन्द्र, कुबेर, वरुण मारे आतंक

के भाग गये स्वयं यम भी थरथर काँपने लगे। श्रीराम की इषीका को देखकर कुल-पर्वत कम्पायमान हो उठे चतुरानन ब्रह्मा ने उस इषीका का वन्दन किया, तो शिवजी और भवानी ने उसको दण्डवत् नमस्कार किया। वह कौआ जिस जिस स्थान पर चला जाता, वहाँ वहाँ इषीका झट से पहुँच जाती। उस कौए के तीनों लोकों में (आश्रयार्थ) घूमते-फिरते रहने पर भी उसे रहने के लिए कहीं स्थान नहीं मिला। वह कौआ मारे आतंक के पाताल में पैठ गया, पर वहाँ भी दैत्य और दानव थर्राहट के साथ काँपने लगे। उन्होंने उसे इस आशंका से तत्काल भगा दिया कि श्रीराम की इषीका इस लोक को होली की भाँति जला डालेगी। दसों दिशाओं में भ्रमण करते रहने पर कौआ अत्यधिक व्याकुल हो गया। उसे कहीं भी आश्रय नहीं मिल रहा था। (इस स्थिति में) उसने देवर्षि नारद को देखा। उसने नारद के पाँव पकड़े और कहा– 'हे देवर्षि, आप इस इषीका का निवारण (करने की कृपा) करें'। तब उन्होंने कहा– 'तुम श्रीराम की शरण में जाओ, वे शरणागत को नहीं मार डालते'। नारद की इस बात को सुनकर (परामर्श को स्वीकार करके) कौआ फिर से श्रीराम के पास आ गया और बोला– 'हे श्रीराम, मैं आपके चरणों की शरण में आया हूँ, मेरे प्राणों की रक्षा कीजिए'। श्रीराम को दण्डवत् नमस्कार करते हुए कौआ इस प्रकार मनुष्य-वाणी में बोला। उस दहकती हुई इषीका को देखकर सीता आश्चर्य को प्राप्त हुई।

कौए द्वारा मनुष्य-वाणी में श्रीराम से प्रार्थना करना– कौआ बोला– 'हे रघुनाथ ! मेरे सिर पर बड़ा अपराध है। मैं पूर्णतः आपकी शरण में आया हूँ। हे राघव, अब मुझे न मार डालें। सद्गुरु नारद की आज्ञा को मैंने स्वीकार किया। उसके अनुसार मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप शरणागत की रक्षा करें। मेरी मृत्यु को टेक लें। हे रघुनाथ, मौत के भय से दौड़ते-भागते मैं बहुत थक गया हूँ। मेरे माथे पर सद्गुरु नारद ने हाथ रखा, इसलिए अब आपकी शरण में आया हूँ। महर्षि नारद ने मेरे कान में कहा कि जानकीजी माता हैं, जगज्जननी हैं। (तब मेरी समझ में आया कि) काम-भाव से (जब कि) मैंने उनकी अभिलाषा की है तो मैं मातृगमनी हूँ, महादोषी (सिद्ध हुआ) हूँ। जिसके सिर पर महापाप लगे होते हैं, आप श्रीराम का स्मरण करने से उसके पाप भी सचमुच नाश को प्राप्त हो जाते हैं और वह वैकुण्ठ लोक में (जाकर) वन्द्य माना जाता है। 'रा', 'म'– इन दो अक्षरों (के स्मरण के प्रभाव से) कोटि-कोटि पाप जल जाते हैं और वह मनुष्य वैकुण्ठ लोक में जाकर वन्द्य माना जाता है; वह ब्रह्माजी के बराबर (पंक्ति में) स्थान को (सम्मान को) प्राप्त हो जाता है। श्रीराम के नाम के प्रताप से कल्पान्त तक के पाप नष्ट हो जाते हैं। मेरा पाप तो बहुत छोटा है। मैं श्रीराम नाम से अपाप (पाप से मुक्त) हो जाऊँगा। (कहते हैं,) किसी के द्वारा श्रीराम के नाम का स्मरण वा जिह्वा द्वारा जाप करने पर कलियुग के पापों का क्षय होता है; फिर मेरे द्वारा आप श्रीराम के दर्शन करने से मेरे लिए पाप की कोई बात (दोष) शेष नहीं रह सकती। श्रीराम की मूर्ति को मन में प्रतिष्ठित करके उनका ध्यान करने के फलस्वरूप समस्त पापों का क्षालन हो जाता है, आप श्रीराम के, अपने नयनों से मेरे दर्शन करने पर मेरा कोई भी पाप त्रिभुवन में शेष नहीं रहेगा'। इस प्रकार कहते हुए काक ने स्वयं श्रीराम के चरणों का वन्दन किया; सीता को दण्डवत् नमस्कार किया और उनसे प्रार्थना की– 'मुझपर पूर्ण रूप से कृपा करें'।

काक द्वारा सीता से क्षमा-याचना करना– काक बोला 'हे जानकीजी, आप इसे निश्चय ही समझिए कि बालक को माता के कुचाग्र में हाथ लगाने का बड़ा अधिकार (प्राप्त) है, मैं वैसी ही आपकी श्रेष्ठ (ज्येष्ठ) सन्तान हूँ। बच्चे का यह विख्यात (जाना माना) अधिकार है, जिससे वह माता के एक कुच को हाथ में पकड़कर दूसरे को अपने मुँह में पैठाता है; मैं ने बालक के उस अधिकार के

प्रताप के बल आपके साथ वही (आचरण) किया है। पति का स्त्री के स्तनों पर एकान्त में ही अधिकार होता है; परन्तु शिशु को वह समस्त लोगों के देखते-रहते प्राप्त है। हे जानकीजी, यह निश्चय ही समझिए कि मैंने आपके साथ उसी प्रकार से आचरण किया है। स्त्री के रजस्वला हो जाने पर पति उसको बिलकुल न छू ले परन्तु उस स्थिति में भी शिशु उसकी देह को बलपूर्वक पकड़ सकता है। मैंने सचमुच वैसा ही किया है। समझिए कि शिशु हाथ में पकड़कर माता के स्तन का दुग्ध-पान करता है। हे माता, वैसे ही मैंने भी पूर्ण रूप से हाथों में पकड़कर आपका स्तन-पान किया। गाय का बछड़ा (अपनी माता) गाय पर उमड़ता है, पर उसमें माता पर क्रोध नहीं सवार होता। वह तो कहती है कि यह बच्चा पागल है। हे माताजी, उसी दृष्टि से मेरी ओर देखिए। आप तो चराचर सृष्टि की जननी हैं. आपकी हम सन्तानें पशुओं के समान हैं। आप हमारी सगी जननी हैं। अतः हमपर आप मन में क्षोभ धारण न करें'

सीता द्वारा श्रीराम से प्रार्थना करना– काक का यह कथन सुनकर सीता अपने मन में व्याकुलता के साथ दयार्द्र हो उठी (और उसने श्रीराम से विनती की) 'हे श्रीराम, आप कृपा करें और इसके जीव प्राणों की रक्षा करें'। (तो श्रीराम बोले–) 'तुम्हारे ही कहने से मैंने इसपर अमोघ अस्त्र चला दिया है। हे जानकी, उसका निवारण किया जाना, उसे लौटा लिया जाना सम्भव नहीं है, (फिर भी अब तुम्हारे कहने से) उसके (लक्ष्य को प्राप्त हो) जाने में रुकावट आ गई है (विलम्ब हो रहा है)'। तो सीता ने कहा– 'हे स्वामी रघुनाथ, सुनिए (मान जाइए)। शरणागत को मार डालना (उचित) नहीं है। फिर आप इसका वध कैसे कर रहे हैं ? इसकी सब प्रकार से रक्षा करें। आप सर्वशक्तिमान हैं, सर्वसत्ताधिकार-धारक हैं। मनुष्य स्वयं शरणागत की रक्षा करें। हे रघुनाथ, आपकी ऐसी प्रतिज्ञा (व्रत) है। तो अब इसका किस प्रकार (आधार से) वध करने जा रहे हैं। (आपके द्वारा चलाई हुई यह) इषीका निश्चय ही अनिवार्य है; फिर भी आप शरणागत की रक्षा करें। वह आपका सच्चे अर्थों में व्रत है। इसी में आपका यथार्थ प्रताप है'। श्रीराम ने सोचा– 'इस काम को करवा डालने के लिए जिसने प्रेरित किया, वही अब कह रही है, उसे बचा लें.' इसलिए श्रीराम ने ऐसा युक्तियुक्त आयोजन किया और वे स्वयं उस कर्म (दोष) से अलिप्त बने रहे। उन्हें काक-कृत व्यवहार सम्बन्धी वृत्तान्त विदित हुआ और उन्होंने सीता की इच्छा को भी जान लिया। तो श्रीराम जो कुछ बोले, उसे ध्यान देकर सुनिए।

श्रीराम द्वारा काक की एक आँख को फोड़ डालना–

श्लोक– (श्रीराम ने काक से कहा) इस इषीकास्त्र को अमोघ बनाये रखने के हेतु तुम अपने किसी एक अंग का त्याग करो। मुझे बता दो कि यह बाण (अर्थात् सरकण्डे या मूँज की शिखा) तुम्हारे किस अंग को काटकर नष्ट कर दे। हे पक्षी, तुम्हारा ऐसा इतना ही प्रिय मैं कर सकता हूँ। मौत को प्राप्त होने की अपेक्षा इस अस्त्र (के आघात) से किसी एक अंग से रहित होकर जीवित रहना अच्छा होगा।

सीता की बात को सुनकर श्रीराम ने कौए से कहा 'न डरो, अपने प्राणों की रक्षा करने के विचार से, तुम्हारे हित की एक बात मैं बता दूँगा। उसे सुन लो। यह इषीका निश्चय ही अनिवार्य है, उससे तुम्हारा वध ही करना चाहिए। परन्तु तुम शरण में आये हो इसलिए वह रुकी है। यह इषीका अनिवार्य है, दारुण है। अपने प्राणों की रक्षा करने की दृष्टि से यह तुम अपना कोई भी अंग (इसके लक्ष्य-स्वरूप) दोगे, तो उससे इसका निवारण हो जाएगा। समझ लो कि तुम्हारे हित के लिए स्वयं यह कर रहा हूँ कि तुम अपने किसी एक अंग को क्षीण अर्थात् नष्ट कराते हुए अपने प्राणों को बचा लो'। तो काक बोला– 'हे श्रीरघुनाथ, आपकी आज्ञा का मैं शिरसा वन्दन करूँगा। आप सुखपूर्वक मेरे एक अंग

को (इसके लक्ष्य के रूप में) ले लें और इस इषीकास्त्र के आघात को टाल दें (उसका निवारण कर दें)'। इसपर श्रीराम ने काक से कहा- 'तुम कौन सा अंग (बता) दे रहे हो ? उसे इषीकास्त्र को लक्ष्य स्वरूप दे दो, तो मैं निश्चय ही तुम्हारी रक्षा करूँगा'। तब काक बोला-- '(मेरे अपराध की दृष्टि से) मेरी इन्द्रियों की स्थिति के बारे में सुन लीजिए। अब जिसपर यह अपराध (का उत्तरदायित्व) है, उसका नाश इस इषीकास्त्र से कर लीजिए। मेरे दायें नेत्र की दृष्टि से जानकीजी माता ठहरीं। पर सचमुच बायें नेत्र ने उसकी (कामभाव से) अभिलाषा की। इसलिए हे रघुनाथ, उसपर इषीका का आघात करते हुए उसको दण्ड दीजिए'। काक की ऐसी उक्ति सुनते ही वह इषीका उसके बायें नेत्र में प्रविष्ट हो गयी। इससे वह मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा तो श्रीराम ने उसे तत्काल सचेत किया। पर उस कौए को यह ज्ञात नहीं हुआ कि मेरा बायाँ नयन उस (अस्त्र) ने छीन लिया है। वह यह बात भी नहीं जानता कि मैं किसी एक अंग से (नेत्र से) विहीन हो गया हूँ। उस काक ने जब पीछे (मुड़कर) देखा, तो इषीका के न दिखायी देने पर उसने परम आनन्द के साथ उन रघुकुलतिलक श्रीराम का वन्दन किया, जिन्होंने उसकी मौत के दुःख का निवारण किया। देखिए कौए की देह की यह आश्चर्यकारी स्थिति है कि वह जरा-जर्जर होकर भी मृत्यु को प्राप्त नहीं हो जाता। जब किसी श्वापद द्वारा पकड़कर वह मारा जाए अथवा उसकी देह पर प्राणान्तक आघात हो जाए, तो वही उसकी मृत्यु का कारण हो जाता है।

कौए के दोनों नेत्रों के कार्य का एक नेत्र द्वारा हो जाना-- इस प्रकार श्रीरामराज ने उस काक की मृत्यु-अवस्था का निवारण किया। इससे सबको आश्चर्य हो गया। देखिए, श्रीराम कैसे कृपालु हैं। हर कोई कहता (मानता) है कि काक काना (एकाक्ष) होता है। कौए के मन को इसका दुःख होता है। फिर भी समझिए (उसने कहा-) 'संसार मेरी निन्दा करता है, पर मैं आप श्रीराम द्वारा काना बनाया गया हूँ। आपकी कृपा ने मुझे पूर्णतः बचा लिया; पर उसी कृपा के फल-स्वरूप मुझे (नेत्र का) तिरछापन (एकाक्षत्व) प्राप्त हुआ'। यह सुनकर श्रीराम हँसने लगे। फिर उन्होंने क्या बात कही ? (सुनिए)। '(हे काक !) मैं तुम्हारी दाहिनी पुतली को ऐसी सामर्थ्य प्रदान करता हूँ कि वह एक पुतली तुम्हारी दोनों आँखों की हो जाए। (आँखों के काम आ जाए) तुम्हारी देखने की कला (शक्ति) इससे बढ़ जाएगी। तुम समस्त प्राणियों में अधिक देखनेवाले (दृक् शक्ति से युक्त) हो जाओगे'। इस प्रकार समझिए कि कृपा का जो टेढ़ापन था (अर्थात् जो अवकृपा थी), स्वयं श्रीराम ने उसका निवारण किया और कौए में जो (विशिष्ट-सूक्ष्म) दृक्शक्ति होती है, उसकी हर कोई प्रशंसा करता है। (मृत व्यक्ति के) दसवें दिन अर्पित किये जानेवाले पिण्ड को (दूर से ही) देखने की शक्ति कौए में होती है। वह पापी और पुण्यवान् मनुष्य के अन्तर को देख सकता है। जिस (व्यक्ति) को वह पाप की राशि जैसा देखता है, उसके पिण्ड को वह नहीं छूता। समझिए कि श्रीराम की कृपा के फल स्वरूप ही पाप पुण्य के अन्तर को देखने की शक्ति सम्पूर्ण रूप से कौए को प्राप्त हो गई है। वैसे तो दशक्रिया विधि के चिह्न स्वरूप पिण्ड को सारा संसार देख सकता है (पर वह पिण्ड पुण्यवान व्यक्ति का है या पापी का, इसे तो कौआ ही देख सकता है)।

श्रीराम द्वारा कौए को शाप देना-- कौए ने सीता का चुम्बन अपनी जिस चोंच से किया था, उसी (मुख) से वह नरक प्राय घिनौनी वस्तुओं को खा लेता है। परन्तु श्रीराम ने जिस आँख को देखने की शक्ति दी, उससे वह पाप पुण्य को देख (कर पहचान) सकता है। इस प्रकार श्रीराम ने कौए की मौत को तो रोक लिया। उन्होंने उसकी दृक्शक्ति की रक्षा की और इसी प्रकार का सन्तोष उसे दिलाते

हुए उसे सुख-सम्पन्न कर दिया। श्रीराम ने कौए को शरण में आ जाने को बाध्य करके सीता को सुख सम्पन्न कर दिया! वैसे ही उन्होंने कौए पर कृपा करके उस महापापी को सुख को प्राप्त करा दिया।

उपसंहार– तब उधर भरत श्रीराम से मिलने हेतु तैयार होकर हाथियों के दल-सहित आ रहे थे। (हे श्रोताओ !) उस कथा को भी आप सुनिए। श्रीराम और भरत का जो आलिंगन होनेवाला है, उससे भरत स्वरूप जीव और परमात्मा शिव स्वरूप श्रीराम का सन्तोष होगा। मैं एकनाथ अपने गुरु श्री जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हूँ। उनकी कृपा से मैं आनन्द घन-स्वरूप श्रीराम की कथा का निरूपण कर रहा हूँ।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ-कृत 'श्रीभावार्थ-रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत 'काक निग्रह' शीर्षक यह चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ

अध्याय १५

[श्रीराम-भरत-भेंट]

भरत का चित्रकूट के प्रति प्रयाण– चित्रकूट पर्वत को देखते ही भरत अत्यधिक हर्षविभोर हो गए। सब लोगों को श्रीराम के दर्शन करने (के सौभाग्य को प्राप्त होने) की आशा से अद्भुत प्रसन्नता अनुभव हो गई. (भरत के आदेश के अनुसार) सेना को मनोहारी रूप से सजाया गया था। वीर सैनिकों ने भी नाना प्रकार से शृंगार (सुन्दर वस्त्र आदि) सजा लिया था। फिर साथ में गज-दल को लेकर गर्जन करते हुए (गाजे-बाजे के साथ) भरत तेज गति से चल रहे थे। (मार्ग-शोधक, मार्ग-निर्माता तथा) मार्गदर्शक गँडासों, हँसियों और कुल्हाड़ियों को लेकर सेना के आगे आगे चलते हुए वन के वृक्षों को काटते थे और हाथियों, रथों, घोड़ों के चलने के लिए योग्य (मार्ग) बनाते जा रहे थे। घोड़ों और हाथियों के चलते कड़कड़ाहट ध्वनि हो रही थी। घड़घड़ाहट करते हुए रथ चल रहे थे। सेना के चलने के लिए मार्ग पर्याप्त नहीं हो रहा था: उछलती हुई धूल ने वैकुण्ठ लोक को व्याप्त किया। उनके चलने से उड़ती धूल अत्यधिक प्रचण्ड थी। उसका निश्चय ऐसा जान पड़ता था कि समस्त लोकों-लोकान्तरों को स्पष्ट रूप से त्याग कर (पार करके) वह सीधे वैकुण्ठ लोक पहुँच जाए। हाथी गम्भीर रूप से चिंघाड़ रहे थे; घोड़े एक साथ ज़ोर से हिनहिना रहे थे। अनगिनत तूर्य बज रहे थे और वीर सैनिक गम्भीर स्वर में गर्जन करते जा रहे थे नगाड़े, भेरियाँ, ढोल, डमरू, सुरंगे (वाद्य विशेष) आदि वाद्य ऐसा घोर शब्द कर रहे थे कि मानों वे एक साथ तड़तड़ाहट के साथ फटते से जान पड़ रहे थे। उस ध्वनि से पर्वत एवं कन्दराएँ गूँज रही थीं।

सेना के कोलाहल से वन्य जीवों और वन्य जनों का (भय से) हड़बड़ा जाना–

श्लोक– तब श्रीराम के बैठे रहने और लक्ष्मण के देखते रहते उस सेना की बहुत रौद्र ध्वनि हो रही थी। उस बहुत बढ़ती हुई ध्वनि के साथ जाग्रत होकर भड़क उठे। (क्षुब्ध हो गए) वे गुहाओं को छोड़कर बड़े-बड़े विवरों में आकर छिप गए। और रीछों ने (अपने आश्रय स्थान) वृक्षों को छोड़ दिया (और पलायन किया)। सिंह गुहाओं में भाग गये, तो पक्षी आकाश में उड़ गये। उसी प्रकार हिरन भी दूर भाग गये।

श्रीराम और लक्ष्मण के सुनते रहते भरत की सेना का बड़ा कोलाहल हो रहा था। उससे पर्वत और कन्दराएँ गूँज उठीं। क्रूरश्वापद भयभीत हो उठे। वह ध्वनि आकाश में नहीं समा रही थी। उससे पृथ्वी कम्पायमान हो गई।श्वापद जी जान लेकर भागने लगे। पक्षी भी भय एवं कष्ट को प्राप्त होकर कलकल ध्वनि करने लगे बाघ झाड़ियों-गुफाओं को छोड़कर भाग गये। सूअर भूमि के अन्दर बिलों में जाकर छिप गए। साँप बाँबियों से निकले और पाताल में जाकर छिप गए। लकड़बग्घे, वन्य भेड़े, हिरन, नेवले मारे आतंक के अपने आप भाग गये। पानी के अन्दर मछलियाँ भय से व्याकुल हो गईं। समस्त प्राणी उद्वेग के साथ धड़कन अनुभव करने लगे। मारे आतंक के अन्य जानवरों द्वारा की जानेवाली ऐसी दनदनाहट को सुनते ही रीछ भी गुनगुनाहट करना भूल गए और जी-जान लेकर भाग गये उन्होंने गुफाओं और वन को छोड़ दिया। (वन में रहनेवाले) मनुष्य और वानर आतंक से भागने लगे। वन्य हाथियों के झुण्ड भाग गये। सिंह भी बहुत आतंक को प्राप्त हो गए और वे उन हाथियों को मार डालना भूल गए। बनभैंसे मारे डर के भाग गये। उनके भागते दौड़ते रहते उन्हें आगे पीछे कुछ दिखायी नहीं दे रहा था (आगा पीछा सुझायी नहीं दे रहा था)। वन्य गायें व्याकुल होकर भागने लगीं; बछड़े रँभाने-चीखने लगे।

श्लोक— विविध जातियों के पक्षी भयभीत होकर अपने-अपने निवास स्थानों में पैठकर (चुपचाप) छिपे रहे। विद्याधर आकाश की ओर चले गये, तो किन्नरों ने (विभिन्न) दिशाओं में आश्रय ग्रहण किया। उस प्रदेश में चलने-फिरने के अभ्यास के कारण लक्ष्मण ने किसी सेना के चलने से आनेवाली ध्वनि से उसे जानकर श्रीराम से कहा।

वन्य प्राणी थरथर काँप उठे। वन्य चमगादड़ पेड़ों के खोंडरों में चले गये। वृक्ष जड़ मूल सहित उखड़कर गिर जाने लगे। सब जानवर भय से चीखने-पुकारने लगे। ब्राह्मणों के बहुत सारे शिष्य आतंकित होकर थरथर काँपने लगे। कुछ एक धोतियों में मूतते रहे। कुछ एक का अधोवात (अपानवायु, पाद) छूटता रहा सब बहुत बड़े आतंक को प्राप्त हो गये। उनके दाँत मारे डरके कटकट बजने लगे। मारे आतंक के कुछ एक के पेट फूल गए। तो कुछ एक के गले सूख गए। जो ब्राह्मण शान्ति (मन्त्र)-पाठ करने लगे, वे भी मन में धीरज धारण नहीं कर पाये। तब वे सब श्रीराम को छोड़कर गुहाओं में जाकर छिप गए। विद्याधरों और किन्नरों ने मारे आतंक के (भागकर) दिशाओं (की सीमाओं) को पार किया। इस घोर ध्वनि से भयभीत और पीड़ित होकर वन के निवासी लोग भाग गये। उस ध्वनि से आतंकित होकर भील आये और श्रीराम से बोले— 'आप सीता को झट से उठाकर ले जाइए वन पर शत्रु की सेना दौड़ी आ रही है (धावा बोल रही है)। वे लोग सुन्दर जानकी को देखकर क्षण के अन्दर उसका हरण करके ले जाएँगे, इसका हाथ थामकर आप पहाड़ की गुफा के अन्दर चले जायें। आप केवल दो ही जने हैं। यद्यपि आपके पास धनुष-बाण हैं; फिर भी आप कितनी वीरता प्रदर्शित करेंगे ? (इधर) भयावह सेना आ रही है'।

श्रीराम द्वारा उस सेना के विषय में पता लगाने का लक्ष्मण को आदेश देना—

श्लोक— हे लक्ष्मण, इस जगत् में माता सुमित्रा तुमसे ही श्रेष्ठ पुत्रवती सिद्ध हुई है। देख तो लो— भयकर गर्जना के साथ यह कैसा गम्भीर तुमुल नाद सुनायी दे रहा है।

श्रीराम बोले— 'हे लक्ष्मण, यह किस राजा की सेना गरजती हुई आ रही है ? इसे मन में लाकर अर्थात् इसकी जानकारी पाकर मुझे बता दो। हे चतुर सुमित्रानन्दन, तुम राज चिह्नों (ध्वज आदि पर अंकित चिह्नों को) पहचानते हो। इसलिए इसकी जानकारी प्राप्त कर (उसे पहचानकर) मुझे बता दो कि

कौन राजा वन में आ रहा है। इस वन के अन्दर ऋषि वाल्मीकि का आश्रम है, उनसे मिलने (उनके दर्शन) हेतु अनेक राजा आते हैं। अथवा कोई शिकार के लिए आ रहे हैं, इसे जान पहचानकर मुझे बता दो', श्रीराम की आज्ञा को स्वीकार करते हुए लक्ष्मण उनके चरणों का वन्दन करके वेगपूर्वक उस राज-सेना को देखने आये। वे राज चिह्नों को देखने लगे।

अयोध्या की सेना को पहचानकर लक्ष्मण का क्रुद्ध हो जाना- उस सेना के ध्वज पर अंकित दशरथ के चित्र को तथा दशरथ के राजचिह्न को देखकर लक्ष्मण ने जान लिया कि यह समस्त राघव-सेना है। (उन्होंने माना कि भरत श्रीराम का वध करने के लिए सेना-सहित आ रहा है यह राज्य सम्बन्धी लोभ से उत्पन्न स्वार्थभाव है कि जो हमारा सगा भाई हितैषी (माना जाता है) वही भरत (मन में) वैरभाव की अग्नि से युक्त हो गया है और श्रीराम को मार डालने हेतु वन में आ गया है वह पहले तो श्रीराम के प्रति प्रेम दिखाता था, आँखों में आँसू भरता था, अंग-अंग में वह रोमांचित हो जाता था वही भरत स्वयं अब अधम होकर श्रीराम को मार डालने के लिए वन में आ गया है। मैं श्रीराम का अनन्य भक्त हूँ। मेरे जीवित रहते, वह श्रीराम को कैसे मार सकेगा ? मैं भरत को सेना-सहित नष्ट कर डालूँगा, आज मैं अपने पैने बाणों से (उसके सैनिकों को मारकर) इस भूमि को धड़ों और मुण्डों से अंकित कर डालूँगा। मैं इन भरत और शत्रुघ्न दोनों को आधे क्षण में मार डालूँगा। श्रीराम का स्वयं जो वधिक हो, उस बन्धु को मार डालने से मैं पापी नहीं हो जाऊँगा। उससे तो मेरा यश ही तीनों लोगों में शोभा के साथ फैल जाएगा। इस प्रकार लक्ष्मण ने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया। फिर उन्होंने क्रोध-पूर्वक धनुष पर डोरी चढ़ा दी और चीखते चिल्लाते हुए वे अमोघ दारुण बाण को सुसज्जित करके स्वयं सेना के सामने आ गए। लक्ष्मण की वाणी के ऐसे गर्जन से पर्वत और कन्दराएँ गूँज उठीं, मेरु पर्वत के शिखर विचलित हो गए और भूमि उनके वेग से काँपने लगी। एक तो वह पहले शेष के अवतार थे; फिर (दूसरे) वे श्रीराम के विरह (की आशंका) से क्रुद्ध हो उठे। उसमें उनके नेत्रों से क्रोधाग्नि की दुर्धर ज्वालाएँ निकलने लगीं। तब देव और मानव काँप उठे। लक्ष्मण को सामने देखते ही सेना के सैनिक व्याकुल हो गए। वे एक दूसरे से बोले 'ये भी हमारे स्वामी हैं। जैसे भरत और शत्रुघ्न हैं, वैसे ही (हमारे लिए) श्रीराम और लक्ष्मण हैं। यहाँ (इस स्थिति में) कौन किससे जूझेगा ? बड़ा संकट आ बीता है। आगे तो जिनसे लड़ना है, वे हमारे ही सब प्रकार से स्वामी हैं और पीछे भाग जाएँ, तो कीर्ति में न्यूनता आ जाएगी, इधर लक्ष्मण ने तो धनुष बाण सुसज्जित किया है, तो अब हम क्या करें, श्रीराम से मिलना तो दूर रहा, पर इन्होंने झट से युद्ध ही ठान लिया। अब तो संग्राम की बात ही समाप्त हो गई- अतः अपने शस्त्र नीचे डाल दें । हम सामने लड़ने पर स्वामी श्रीराम से दुराव को प्राप्त हो जाएँगे, और इधर युद्ध (भूमि) में पीठ दिखाकर विमुख न होना चाहिए। क्षात्रधर्म का यह बड़ा बन्धन है। इसलिए शस्त्र डाल दें। अब श्रीराम के दर्शन हमारी आँखों में नहीं होंगे। फिर तो विचार-विवेक की बात (गति) ही कुण्ठित हो गई। क्षात्रधर्म का यह बड़ा बन्धन है। इसलिए शस्त्र डाल दें।

श्रीराम-लक्ष्मण संवाद- लक्ष्मण के सिंहनाद को सुनकर श्रीराम (युद्ध के लिए) तैयार हो गए। (उन्हें जान पड़ा कि) लक्ष्मण ने दारुण युद्ध ठान लिया होगा- इसलिए वे क्रोध के साथ चले श्रीराम ने जब अपनी आँखों से योद्धाओं को ध्यान से देखा, तो उन्हें राजा दशरथ की सेना दिखायी दी तब वे बोले- 'हे लक्ष्मण, यह आपस में युद्ध कैसा। यह हमारी सेना है, ये हमारे मंत्री हैं। ये हमारे बन्धु भरत और शत्रुघ्न हैं। फिर तुम्हें लड़ने का क्या कारण है ? तुमने अमोघ दारुण बाण क्यों (सन्धान कर) लिया है ? (यह सुनकर लक्ष्मण ने क्रोधपूर्वक कहा)-

श्लोक- निश्चय ही यह कैकेयी का पुत्र भरत है, जो अयोध्या में अभिषिक्त होकर अपने राज्य को निष्कण्टक बनाने की इच्छा से हम दोनों को मार डालने के लिए यहाँ आ रहा है।

लक्ष्मण ने श्रीराम से कहा– 'सेना को बुलाकर (सुसज्जित करते हुए) भरत हम दो जनों को मार डालने के लिए आया है। स्वर्ण-परों से युक्त अपने बाणों से मैं उन वीरों के समुदायों को मार डालूँगा। मैं युद्ध (भूमि) में भरत-शत्रुघ्न को मारकर गिरा डालूँगा और रक्त से भूमि को नहला दूँगा। जो श्रीराम को कष्टप्रद शोक को प्राप्त करा दे, उस बन्धु को मार डालने में कोई पाप नहीं है। श्रीराम की रक्षा के कार्य में मैं अच्छा जानकार व्यक्ति हूँ। अब घमासान लड़ाई में मेरा प्रताप देख तो लें। मैं तो आपका अनन्य सेवक हूँ। आपके पास मेरे जीवित रहते, भरत आपको कैसे मार डाल सकता है ? मैं सबका वध कर डालूँगा।'। इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मण विनाशकारी युद्ध करने चले; तब श्रीराम ने दौड़कर उन्हें पकड़ (रोक) लिया और कहा– 'हमें ऐसा नहीं करना चाहिए। उनकी ओर से युद्ध के लिए कौन (आगे) आया है ? समझ लो कि जब तक वह बाण नहीं चलाता, तब तक हमें दारुण युद्ध नहीं करना चाहिए'।

श्रीराम द्वारा लक्ष्मण को फटकारना-

श्लोक– लक्ष्मण भरत के प्रति रोष के कारण, क्रोधवश होकर अपना विवेक खो बैठे थे। उस अवस्था में श्रीराम ने उन्हें समझा-बुझाकर शान्त किया और इस प्रकार कहा-'लक्ष्मण, महाबली और महान उत्साही भरत जब स्वयं यहाँ आ गया है, तब इस समय यहाँ धनुष अथवा ढाल-तलवार से क्या करना है।

भरत ने तुमसे पहले कब और क्या अप्रिय व्यवहार किया है, जिससे तुमको इस प्रकार का भय हो रहा है और तुम उसके विषय में ऐसी आशंका कर रहे हो। भरत के आने पर तुम उनसे कोई कठोर या अप्रिय बात न कहना। यदि तुम उससे कोई अप्रिय बात कहोगे, तो वह मेरे ही प्रति कही मानी जाएगी'।

(श्रीराम बोले-) 'हे लक्ष्मण, तुम्हें क्या हो गया है ? कहो तो तुम कैसा भय बता (मान) रहे हो। भरत तो हमारा दुध-मुँहा बच्चा है और जो सेना आयी है, वह हमारी ही है, यहाँ कौन (किसके लिए) पराया (शत्रु) है ? तुम किसके प्राण लेना चाहते हो ? तुम कह रहे हो कि मैं दारुण युद्ध करूँगा, यह तो क्रोध के कारण उत्पन्न मूर्खता ही है। भरत ने पहले से ही सपने में भी कभी हमारे विरोध में कुछ नहीं कहा है। वह वन में आकर हमारा वध करेगा– यह तो तुम मिथ्या बात बक रहे हो। इस स्थिति में यहाँ तुमने धनुष-बाण क्यों धारण किया है ? किसके लिए तुमने तलवार और ढाल ली है ? भरत मेरा जीव-प्राण है उससे दारुण युद्ध करने की बात न करो। सेना तो हमारे अधीन है। तुम्हें उसका विनाश नहीं करना चाहिए। क्रोध का त्याग करके शान्त हो जाओ और मेरी बात सुन लो (मान लो)। तुम्हें मन में इस भय (आशंका) से तनाव अनुभव हो रहा है कि भरत हमारा वध करेगा। परन्तु (विश्वास करो कि) भरत द्वारा हमारे विरोध में कोई भी कृति जागते रहते या सपने में (सोते रहते) नहीं घटित होगी। हे लक्ष्मण, तुम्हें एक बात का ज्ञान नहीं है। इसलिए तुम क्रोधायमान हो गए हो। इसलिए मैं तुम्हें हमारे जन्म सम्बन्धी संकेत बताता हूँ उसे ध्यान से सुन लो।

श्रीराम द्वारा जन्म के विषय में रहस्य का कथन करना- मैं राम और भरत दोनों निश्चय ही एक ही पायस-भाग से उत्पन्न हैं। अतः तुम्हारे द्वारा भरत का वध करने पर मेरा भी अनिष्ट घटित हो सकता है। हम दोनों एक ही प्राण हैं। इसलिए स्वयं तुम भरत के विरोध में कोई बात उससे न कहना।

मेरी इस सीख को मान लो। तुम भरत के विरोध में जो बात कहोगे, वह मेरे ही सिर आ बैठेगी। इसे जानकर तुम उसके विरोध में कोई बात न कहना इसी प्रकार ज्ञानी जन समस्त प्राणियों में भगवान् को देखते हैं और उनमें किसी के विरुद्ध कोई बात नहीं कहते। उससे उन्हें सन्तोष हो जाता है। और एक संकेत है। हम चारों के प्राण एक ही हैं। उसी के लक्षण (स्वरूप) को भी मैं बता दूँगा। उसे ध्यान से सुन लो। (यह सब जानते हैं कि) राजा दशरथ ने पुत्रकामेष्टि यज्ञ सम्पन्न कराया था। वहाँ पर उसके कर्ता ऋषि ऋष्यशृंग थे। उस अवसर पर अग्निपुरुष ने (प्रकट होकर) निश्चय ही पायस-भरी एक थाली प्रदान की थी। उस पायस के चार भाग बना लिये गए थे। उसमें से एक भाग से हम दोनों उत्पन्न हुए। इसलिए सपत्नी को प्रदत्त विभाग से उत्पन्न विकल्प (संशयात्मक विरोधभाव) हम दोनों में नहीं हो सकता। पहले उस पायस के तीनों रानियों को देने के लिए तीन भाग बनाये गए थे। उनमें से माता कैकेयी को दिये हुए भाग को एक चील ले गयी। तब शेष दो भागों के चार भाग बनाये गए। उससे उत्पन्न हम चारों बन्धु एक पिण्ड-बीज से उत्पन्न सिद्ध हुए हैं। (कैकेयी को प्राप्त) पाँचवें पायसांश को एक चील ले गयी थी। वह (पूर्व- संकेतानुसार) शाप-मुक्त हो गई और ब्रह्माजी की कृपा से वह (वानर केसरी की स्त्री) वानरी अंजनी के रूप में जन्म को प्राप्त हो गई। वह पायसांश उसके उदर में था। यह निश्चय ही जान लो कि हनुमान उस भाग के फल-स्वरूप जन्म को प्राप्त हुआ। इसलिए उसे अंजनी सुत कहते हैं। यही हनुमान वायु-पुत्र कहा जाता है, जो अंजनी को प्राप्त उस पाँचवें पायसांश से उत्पन्न है। (तीन भागों में से दो के चार अंश हुए- इसलिए हमारा जन्म वस्तुतः आधे -आधे अंश से हुआ जब कि) अंजनी के उदर में (तीन में से) सम्पूर्ण भाग पहुँचा था। समझ लो कि यज्ञपुरुष का सम्पूर्ण प्राण-तत्त्व उसके अन्दर (उक्त पायसांश द्वारा) प्रविष्ट हो गया। उसका हेतु (जन्म के दाता) वायुदेव थे। इसलिए हनुमान (वास्तव में) वायुपुत्र है इस प्रकार आधे-आधे भाग से हमारा जन्म हुआ, तो एक पूर्ण भाग से हनुमान जन्म को प्राप्त हुआ। इसलिए त्रिभुवन में वह बल के विषय में अद्भुत और साहस -युक्त सिद्ध होनेवाला है। हे सुमित्रा-नन्दन पायस पिण्ड के एक सम्पूर्ण पाँचवें अंश से उत्पन्न हनुमान तुमको ज्ञात होना चाहिए। देखो, यह हमारा पाँचवाँ (अंश स्वरूप) मित्र हनुमान आगे हमसे मिलेगा और वह हमारा सहायक सिद्ध हो जाएगा। पायस-भाग के विषय में इस गुह्य ज्ञान को मैं श्रीराम जानता हूँ। वेद-शास्त्रों के लिए वह अगम्य है। अतः मैंने इसे तुम्हें बता दिया है।

लक्ष्मण का विस्मित हो जाना-

श्लोक- अपने धर्मनिष्ठ बन्धु के ऐसा कहने पर उन्हीं के हित में तत्पर रहने वाले लक्ष्मण लज्जावश होकर मानों अपने ही अंगों में समा गए (लाज से गड़ गए)। इस प्रकार लक्ष्मण से बातचीत करते रहते श्रीराम ने तब सहसा हर्षविभोर हुई उस सेना को देखा। लक्ष्मण ने लज्जायमान होकर धनुष-बाण उतारकर रख दिये और वे श्रीराम के पीछे जाकर सिर झुकाये खड़े रहे।

श्रीराम की यह बात सुनकर लक्ष्मण आश्चर्य-चकित हो गए और बोले-'तो हम चारों बन्धुओं के प्राण एक ही हैं अतः भरत और शत्रुघ्न भिन्न अर्थात् पराये नहीं हैं' लक्ष्मण द्वारा ऐसा विचार करने पर वे लज्जायमान हो गए और उन्हें जान पड़ा कि क्रोध से युद्ध करने का विचार मेरी मूर्खता ही थी। इसलिए अति लज्जायमान होकर उन्होंने धनुष से डोरी उतार दी और श्रीराम के चरणों का वन्दन किया। वे तब बहुत शान्त हो गए। वे सोचने लगे- यह मेरी कितनी बड़ी मूर्खता रही। जो भरत और शत्रुघ्न हमारे प्राण हैं, उनसे मैं युद्ध करने लिए क्यों तैयार हुआ ? श्रीराम का ज्ञान धन्य है, धन्य है। वे भूत, भविष्य और

वर्तमान तीनों (की बातों) को जानते हैं। उन्होंने मेरे अज्ञान को दूर करके मुझे सन्तोष को प्राप्त कराया। उन्हें नीति-धर्म विरुद्ध ऐसा काम करने को तैयार हो जाने का बहुत दुःख हुआ। उन्होंने पूरा क्रोध त्यज दिया और वे (जाकर) श्रीराम के पीछे सिर झुकाये खड़े रहे।

सेना द्वारा श्रीराम का जयजयकार करना- श्रीराम ने सचमुच लक्ष्मण को (युद्ध करने से) रोक लिया है, यह देखकर सेना हर्षविभोर हो उठी और समस्त सैनिकों ने (श्रीराम का) जयजयकार किया। (उन्होंने सोचा-) हम न तो युद्ध करते, न (भागकर) पीछे ही लौट जाते। लक्ष्मण के बाणों को झेलकर (बाणों के आघात से) क्षात्रधर्म के अनुसार प्राणों का त्याग कर देते परन्तु हमारे इतने बड़े अनिष्ट को टाल देने में श्रीराम समर्थ हुए। श्रीराम दीनों के प्रति कृपालु हैं। उन्होंने अपने धर्म का रक्षण किया। युद्ध करने से हम सब स्वामी द्रोही सिद्ध हो जाते और पीछे भाग जाने पर नरक पतन को प्राप्त हो जाते। इस प्रकार श्रीराम ने क्षत्रिय धर्म की दृष्टि से होने वाली अनिष्ट बात को निश्चय ही टाल दिया। श्रीराम के नाम का स्मरण करने से अनिष्ट बात का तत्काल निर्दलन हो जाता है। समझिए कि उन्हीं श्रीराम को हम अपनी आँखों से देख रहे हैं; अतः हमें जन्म और मृत्यु नहीं घटित होगी (अर्थात् हम मुक्त हो जाएँगे) सैनिक इस प्रकार बोले। श्रीराम की प्रशंसा करते हुए वे सब आनन्द के साथ नाचने लगे। श्रीराम इस प्रकार (उनके प्रति) कृपालु सिद्ध हो गए। भरत (हमसे) मिलने हेतु वन में आये हैं; इससे सीता के मन को आनन्द हुआ। अपनी सेना को भी देखकर उसे चौगुनी प्रसन्नता हुई। सीता का यह विचार था (सीता ने यह सोचा) कि भरत यहाँ श्रीराम से मिलकर उन्हें अयोध्या में ले जाएँगे और वे अपने (अधिकार के) राज्य को प्राप्त हो जाएँगे।

श्रीराम के दर्शन के लिए भरत की उत्सुकता-

श्लोक- तब सेना के ठहर जाने पर शत्रुघ्न सहित भरत ने बन्धु श्रीराम को देखा और वे दोनों हर्षविभोर हो गए।

भरत ने यह सुनकर कि श्रीराम आ रहे हैं, समस्त सेना को ठहरा लिया और वे रथ में से उतरकर नंगे पाँव पैदल (श्रीराम की ओर) दौड़े। जिस प्रकार कोई कंजूस मनुष्य धन को पाने के लिए अकाल ग्रस्त (फलस्वरूप अत्यधिक) भूखा मनुष्य मिष्टान्न के लिए उत्कण्ठित हो जाता है, उसी प्रकार भरत का मन श्रीराम के दर्शन के लिए उत्सुक हो गया था।। चकोर के लिए जैसे चन्द्र-किरन (प्यारी) होती है, मछली पानी के लिए जैसे व्याकुल होती है, उसी प्रकार भरत के लिए श्रीराम का दर्शन प्रिय था, अतएव वह उसके लिए व्याकुल हो उठा। किसी माता का अपना बच्चा खो गया हो, तो वह उससे मिलने के लिए चिन्तातुर एवं व्याकुल हो जाता है, उसी प्रकार श्रीराम से तत्काल मिलने के लिए भरत व्याकुलता अनुभव कर रहे थे। बड़े समय (अन्तराल) के पश्चात् पति के आ जाने पर पतिव्रता स्त्री उससे आनन्द के साथ मिलती है। श्रीराम से मिलने के लिए भरत के मन को वैसी ही प्रसन्नता हो रही थी वानर को चने अच्छे लगते हैं, इसलिए वह उन्हें मुँह में गालों के अन्दर भर रखता है। उसी प्रकार परिपूर्ण प्रेम से दौड़ते जाकर श्रीराम से मिले। छीले हुए केले को देखकर वानर तत्काल उसकी ओर कूदकर लपकता है, उसी प्रकार आनन्द के ज्वार के कारण भरत प्रेमपूर्वक श्रीराम के पास (दौड़ते-कूदते) पहुँच गये। जैसे प्राणी के साथ प्राण होते हैं, उसी प्रकार भरत के साथ शत्रुघ्न थे। उन दोनों के मन श्रीराम से मिलने के लिए अत्यधिक उत्कण्ठित हो उठे थे। शक्कर के साथ जैसे उसकी मधुरता होती है, फूल के साथ जैसे उसकी सम्पूर्ण सुगन्ध होती है, उसी प्रकार श्रीराम के दर्शन के लिए

शत्रुघ्न भरत के साथ (अभिन्न रूप से प्रस्तुत) थे। पानी के साथ जैसे शीतलता होती है, चन्द्र के साथ जैसे उसकी कान्ति होती है, उसी प्रकार श्रीराम के दर्शन प्राप्त करने के लिए शत्रुघ्न (अभिन्न रूप से) भरत के साथ प्रस्तुत थे।

सबका (एक-दूसरे से) मिल जाना और अपने-अपने भावों को अभिव्यक्त करना-

श्लोक- तब दु:ख, शोक भय, (आशंका) में डूबे हुए भरत ने श्रीराम को सीता और लक्ष्मण से साथ बैठे देखा। तब जो श्रीराम सुख-प्राप्ति के योग्य हैं, वे मेरे कारण दु:ख को प्राप्त हो गए हैं, (इस प्रकार सोचते विलाप करते हुए) भरत आगे बढ़कर श्रीराम के चरणों में गिर पड़े। रुदन करने वाले शत्रुघ्न ने भी श्रीराम के चरणों का वन्दन किया। तो श्रीराम भी उन दोनों को गले लगाते हुए आँसू बहाने लगे।

भरत ने श्रीराम, लक्ष्मण और सीता को देखा। तब उनका उल्लास मन में समा नहीं रहा था। उनके द्वारा प्रेम की आवेग-भरी अवस्था को रोका नहीं जा रहा था। उन्होंने दौड़ते हुए श्रीराम के चरणों को दृढ़ता के साथ पकड़ा; फिर साथ ही उन्हें दण्डवत् नमस्कार किया। उनके नयन आँसुओं की धाराओं को बहा रहे थे। तब शत्रुघ्न भी श्रीराम के पाँव लगे। उन दोनों के नयनों से अश्रु बह रहे थे। श्रीराम के नेत्र भी आँसू बहा रहे थे। उन तीनों का आलिंगन घटित हो गया। इस प्रकार उन तीनों के आँसुओं की त्रिवेणी प्रवाहित हो गई। श्रीराम (के आँसू) स्वयं पूर्ण रूप से गंगा-जल थे। भरत (के आँसू) अति पवित्र यमुना जल थे तो शत्रुघ्न (के आँसू) सरस्वती थे। इस प्रकार उन तीनों के मिलने से त्रिवेणी पूर्ण होकर प्रवाहित हो गई। संगम-स्थल पर गंगा यमुना-सरस्वती का त्रिवेणी रूप स्पष्ट दिखायी देता है तदनन्तर तो केवल पवित्र गंगाजल ही होता है (अर्थात् यमुना और सरस्वती दोनों गंगा के साथ एकात्म होकर गंगारूप ही हो जाती हैं) उसी प्रकार श्रीराम से मिलकर भरत और शत्रुघ्न समाधि अवस्था को प्राप्त हुए, अतः वे वैसे ही श्रीराम-रूप हो गये जिस प्रकार नमक और पानी के मिलने पर (उनको एकात्म बनानेवाला) सिद्ध हो गया। वे मानों पिघलकर एक दूसरे के (मन के) अन्दर जाकर एकप्राण, एकात्म होकर उससे तृप्ति और सुख-स्वरूप को प्राप्त हो गए। अग्नि और कपूर के आलिंगन अर्थात् मिलन से वे दोनों परम प्रेम से अधिक देदीप्यमान सिद्ध हो जाते हैं। वे दोनों एक-दूसरे के अलग अलग अस्तित्व को खोकर निर्विकार (अपने-अपने स्वतंत्र रूप, आकार आदि को खो देकर) एकत्व को प्राप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार भरत और शत्रुघ्न द्वारा श्रीराम का आलिंगन करते ही उन दोनों के लिए श्रीराम से द्वैतभाव शेष नहीं रहा। वे श्रीराम के साथ एकात्म होकर परिपूर्णावस्था को प्राप्त हो गए। काष्ठ (लकड़ियाँ, ईंधन) आग से मिलते हैं, तब वे स्वयं अग्नि रूप हो जाते हैं, उसी प्रकार भरत और शत्रुघ्न की श्रीराम से मिलने पर स्थिति हो गई। वे स्वयं श्रीराम स्वरूप हो गए। सीता और लक्ष्मण ने उनके आलिंगन को देखा, तो उन्हें दिखायी दिया कि उन तीनों में एकात्मतामय आलिंगन हो गया है; उन्हें उनमें कोई भिन्नता (भिन्नरूपता) नहीं दिखायी दी। जब भरत और शत्रुघ्न ने लक्ष्मण का वन्दन किया, तो उन तीनों का भी एकात्मता के साथ आलिंगन हुआ। उनमें भिन्नता (अलग अलग अस्तित्व) नहीं दिखायी दी। वे चारों एक ही पायस स्वरूप पिण्ड-बीज में जनमे, उनका एक दूसरे के गले लगने पर एकात्म आलिंगन हुआ। तब श्रीराम से मिलने के कारण भरत (तथा शत्रुघ्न) दु:ख-राशि को भूल गए और सुख एवं सन्तुष्टि को प्राप्त हो गए। पूर्वकाल में रघुकुलतिलक श्रीराम के समीप रहते हुए एक-दूसरे का (कारणवश) दूर होकर, एक दूसरे के ध्यान से हट जाना स्वाभाविक था। पर अब विशिष्ट कारण से घटित (दु:सह) वियोग के बाद उन्हें मिलन का सुख हो गया। इससे वे मिलने बिछुड़ने की द्वन्द्वावस्था

से उत्पन्न दुःख को भूल गए। व्यक्तियों के नित्य प्रति एक दूसरे के निकट रहने पर (कारण वश) स्वाभाविक रूप से कभी कभी उपेक्षा अनवधान की स्थिति उत्पन्न हो सकती है, पर ऐसी दुराव की स्थिति में एक दूसरे के गुण-दोषों को वे सम्पूर्ण रूप से स्वभावतः देखते-समझते हैं।

श्लोक- (व्यक्तियों में) अति परिचय से अवज्ञा, उपेक्षा की स्थिति आ जाती है। किसी के यहाँ अनवरत जाते रहने से अनादर हो जाने लगता है (उदाहरणार्थ) मलय पर्वत पर भील स्त्री (नित्य प्रति चन्दन को देखती रहती है, आसानी से प्राप्त करती रहती है; अतः वह) चन्दन वृक्ष की लकड़ी को ईंधन बना लेती है।

चन्दन वृक्ष के चारों ओर स्थित बेर, बबूल आदि- से कँटीले पेड़ (उससे सुगन्ध को अपनाते हुए) चन्दन हो जाते हैं। उनका (तिलक के रूप में) ब्राह्मण और देव शिरसा वन्दन करते हैं (माथे पर आदरपूर्वक धारण करते हैं) धनवान् लोग उन्हें बड़ा मूल्य देकर खरीद लेते हैं। लोगों को चन्दन के प्रति इतना अधिक प्रेम होता है। उसकी अथाह महिमा द्वीप द्वीप में फैली हुई है। उसी चन्दन वृक्ष की लकड़ियों को बहुत निम्न श्रेणी की अधर्मशील (अर्थात् अच्छे बुरे के विवेक से रहित) भील स्त्रियाँ जलाकर कोयला बनाकर (घर में ईंधन के रूप में प्रयुक्त करने के लिए) लाती हैं। वह (वृक्षों में) वैशिष्ट्यपूर्ण चन्दन मलय पर्वत पर होता है। वहाँ भीलों की अधम (विवेक हीन) स्त्रियाँ होती हैं, वे उस चन्दन को आग में जलाकर उसकी आँच से काँजी और साग-तरकारी बना लेती हैं, निकट रहने के कारण (आसानी से उपलब्ध होते रहने के कारण) उन्हें उस चन्दन के प्रति उकताहट हो गई। इसलिए उसकी सुगन्ध की उपेक्षा करते हुए वे व्यावहारिक उपयोग का ही विचार करनेवाली स्त्रियाँ अपना काम बना लेने हेतु चन्दन जला लेती हैं। चन्दन में क्या (विशिष्ट) गुणधर्म होता है ? उसे जलाने पर भी वह सुगन्ध ही प्रदान करता है। उस भीलनी के ध्यान में उसका वह गुण विशेष नहीं आता। वह तो (अपने हेतु की पूर्ति के लिए) उसकी लकड़ियों (को जलाकर उनकी आँच) से काँजी बना लेती हैं। वैसे ही साधु के पास कुछ एक लोग (नित्य) रहते हैं। उसके गुण को देखने पर भी वे उसका अनादर करते हैं। फिर अपने उद्देश्य की पूर्ति करने की स्वार्थमय इच्छा से वे उसके दोष को स्पर्श करते हुए उसे जलाने (हानि पहुँचाने) दौड़ते हैं। परन्तु किसी सत्पुरुष की संगति में दिन-रात रहते हुए जो उसके दोष को नहीं देखते (उसके दोष की ओर ध्यान नहीं देते) वे लोग त्रिलोक में धन्य हैं, धन्य हैं। शिवजी इन्द्र (आदि देव भी) उसका वन्दन करते हैं। साधु पुरुषों की संगति में दिन-रात रहते हुए जो उनके गुण-दोषों को नहीं देखते, स्वयं अवतार स्वरूप पुरुष उनके पास उपदेश ग्रहण करने हेतु आ जाते हैं। श्रीवामन भगवान् विष्णु के अवतार स्वरूप थे। ऋषि कश्यप ने उन्हें (अध्यात्म) ज्ञान का उपदेश दिया। साधु पुरुष की महिमा अथाह होती है। ऐसा सज्जन पुरुष तीनों लोकों में पूज्य माना जाता है। (कवि कहता है- इसी भावार्थ-रामायण के अन्दर कहा जा चुका है कि रघुराज श्रीराम ने गुरु वसिष्ठ से विनम्रता-पूर्वक उपदेश ग्रहण किया। (सन्दर्भ के लिए देखिये बालकाण्ड, अध्याय ९ से १०) वस्तुतः साधु-सन्त अति पूजनीय होते हैं।

उपसंहार– किसी द्वारा सज्जन के गुण दोष की उपेक्षा करने के दोष को दूर करने में, सज्जन के वियोग (के दोष) को दूर करने में पश्चाताप काम आता है- वही उस दोष का निराकरण कर डालता है तदनन्तर सज्जन की भेंट से उसे आत्मिक आनन्द प्राप्त हो जाता है श्रीराम को छोड़कर भरत मातुल-गृह में जाकर रहे थे। उस वियोग के कारण उत्पन्न अनुताप (के जल) में वे नहा चुके- उनके रूप दुःख का क्षालन हो गया। तदनन्तर श्रीराम से भेंट होते ही भरत को तत्काल (आत्मिक) सुख का

लाभ हो गया। वियोग के पश्चात् जब संयोग (मिलन) होता है तब (वियोग-जन्य) पाप का नाश होकर सुखोपभोग की प्राप्ति हो जाती है. इस प्रकार भरत सांगोपांग सुख-सम्पन्न हो गए। शत्रुघ्न का भी अंग-प्रत्यंग शान्ति को प्राप्त हो गया। (कहा जा चुका है) श्रीराम, भरत और शत्रुघ्न का एकात्म भाव से आलिंगन घटित हुआ उस आलिंगन में वे सुख-सम्पन्न हो गए। श्रीराम तो स्वयं आत्मानन्द-घन ही थे। एक दीप से अनेक दीप प्रज्वलित किये जाते हैं। परन्तु उन अनेक दीपों में एक ही दीप्ति (प्रकाश, तेज) होती है भरत-शत्रुघ्न इसी प्रकार वस्तुतः श्रीराम से भिन्न थे, फिर भी उस भिन्नता में वे अभिन्नता की स्थिति को प्राप्त हो गए (श्रीराम के साथ एकात्म हो गए)। उन्हें श्रीराम से मिलने पर जो सुख हुआ उसे शब्दों-उक्तियों द्वारा कहा नहीं जा सकता (वह शब्दातीत था) इस प्रकार एक-एक विशिष्ट जीव जनार्दन स्वरूप ब्रह्म श्रीराम से आलिंगन द्वारा मिल गये। श्रीराम ने उन्हें सुख सन्तुष्टि को प्राप्त करा दिया। श्रीराम और भरत के संवाद को बारबार विशद रूप से कह देने से परमानन्द उमड़ उठेगा। मैं (एकनाथ) ने अपने गुरु जनार्दन स्वामी से ऐसे ज्ञान को प्राप्त किया है। इस कथा को पुनःपुनः कहना सुख का सेवन (उपार्जन अनुभव) करना ही है।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ-कृत 'श्रीभावार्थ-रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत अयोध्याकाण्ड का 'श्रीराम भरत-शत्रुघ्न-संयोग' शीर्षक यह पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय १६

[श्रीराम द्वारा पिण्डदान देना]

श्रीराम द्वारा भरत से अयोध्या के विषय में कुशल प्रश्न करना-

श्लोक- श्रीराम ने अपने बन्धु भरत (को हाथ से पकड़कर उठाया और उन) का मस्तक सूँघकर उन्हें हृदय से लगा लिया। तदनन्तर भरत को अपनी गोद में बिठाकर श्रीराम ने बड़े आदर से उनसे पूछा- हे तात, जब कि तुम इस वन में आ गये हो तो पिताजी कहाँ हैं ? उनके जीवित रहते तुम्हें वन नहीं आना चाहिए था। हे वीर, इस महारण्य में तुम्हारे आने का क्या कारण है ? क्या सत्यप्रतिज्ञ राजा दशरथ सकुशल तो हैं। हे तात, क्या पुत्रवती कौशल्या और सुमित्रा सुखी हैं ? और क्या आर्य देवी कैकेयी आनन्दित तो हैं ?

रघुनन्दन श्रीराम ने प्रेमपूर्वक भरत और शत्रुघ्न का आलिंगन करते हुए उन्हें हृदय से लगा रखा। उससे वे दोनों सुख-सम्पन्न हो गए। (इस आलिंगन से) श्रीराम के हृदय से भरत और शत्रुघ्न का हृदय एक हो गया इससे उनमें सुख का ज्वार आ गया। उनका दुःख पूर्णतः नष्ट हो गया और (हृदय-रूपी) सागर आत्मिक आनन्द से भर गए उन्हें परम आनन्द से गहरी तुष्टि हो गई। द्वन्द्व-दुःख भाग गया (नष्ट हुआ) हर्ष की राशियाँ पैदा हुईं (असीम विपुलता हुई)। प्रेम के योग से श्रीराम ने उनको अपने साथ जोड़ लिया। फिर श्रीराम ने भरत का मस्तक सूँघ लिया और देखिए कि उन्हें गोद में बिठाकर उन्होंने स्वयं उनसे क्या पूछा ? (सुनिए)। तुम्हारा राज्य-सिंहासन पर अभिषेक न होने का क्या कारण है ? वहाँ (उसके सम्पन्न होने में) क्या बाधा आ गई ? वह भी मुझसे पूर्ण रूप से बता दो। हमारे पिता जी राजा दशरथ सुखी एवं मन से स्वस्थ तो हैं ? मेरे वन के प्रति चलते समय उन्होंने बहुत दुःख-शोक किया

था। वन स्थल के प्रति मेरे प्रयाण करते समय तुम पास में नहीं थे। बिना जल के जैसे मछली तड़पती है, वैसे वे मेरे लिए छटपटा रहे थे। राजा के दुःख की अपारता को देखकर मैं झट से चल पड़ा। मैं न उनसे ठीक से मिला, न ही कोई बात कह पाया। दुःख से प्राप्त ऐसे उन राजा को छोड़ तुम यहाँ वन में आये हो, यह तो तुम्हारा करना अनुचित है। (जान पड़ता है) तुम बुद्धिमान (इस व्यवहार में) विवेकशील नहीं रहे। समझ लो कि यह अनुचित है। दुःखी राजा को छोड़कर स्वयं तुम दोनों मार्ग तय करके इतनी दूर क्यों आये हो ? उसका कारण भी मुझे बता दो। जान लो कि तुम एक दूसरे को छोड़कर नहीं रह रहे थे। फिर तुम दोनों ने वन के प्रति आना क्यों स्वीकार किया ? तुम्हारा राज्याभिषेक होने से क्यों रहा ? उसका भी कारण मुझे बता दो। मेरी और तुम्हारी सगी माताएँ सुख से साथ, सकुशल (स्वस्थ) तो हैं न ? क्या पतिव्रता माता सुमित्रा सुख-सम्पन्न तो हैं ? गुरु स्वामी वसिष्ठ के वहाँ रहते तुम यहाँ क्यों आ गए ? अपने विषय में इसका समस्त वृत्तान्त मुझसे अथ से इति तक बता दो।

भरत के असमंजस में पड़ने के कारण शत्रुघ्न द्वारा वृत्तान्त कथन– श्रीराम द्वारा इस प्रकार कहने पर भरत को उसे सुनकर रुलाई आयी। उनके द्वारा कोई बात उत्तर के रूप में नहीं कही जा रही थी। वे तो मूर्च्छित होकर गिर पड़े। तब शत्रुघ्न ने दुःख की स्थिति का कारण आदि बता दिया। (वे बोले–) 'आपके वनवास के लिए चले जाते ही, हमारे अयोध्या में न पहुँचते अर्थात् पहुँचने के पहले राजा दशरथ को प्राणान्तक व्यथा हुई। यह देखकर कि (आपको विदा करके) सुमन्तजी रिक्त रथ ले आये हैं, राजा दशरथ अत्यधिक दुःखी हो गए। हे श्रीराम, आप के विषय में समाचार पूछते-पूछते वे मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर गए। (उन्हें लगा कि) श्रीराम से (पुनः) कोई बात नहीं हो सकेगी, उनसे भेंट नहीं होगी, मैं अपनी आँखों से श्रीराम को देख ही नहीं सकूँगा। आप श्रीराम का स्मरण करते हुए अर्थात् वे 'राम', 'राम' कहते हुए मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। उस मूर्च्छा की अवस्था में वे बोले 'हे श्रीराम, अपना मुँह तो दिखा दो'। वे आप श्रीराम का पूर्ण रूप से स्मरण कर रहे थे और स्मरण करते-करते प्राण त्यज दिये'। (कवि कहता है-) उनकी आँखों में श्रीराम का रूप छा गया था। उनके मुख में श्रीराम का नाम था। श्रीराम ही उनके मन में थे, ध्यान में थे। इस प्रकार श्रीराम को ही चित्त में धारण करके राजा दशरथ देह छोड़कर चले गये। (शत्रुघ्न बोले–) समझिए कि आपने वन के प्रति गमन किया, हम भी उनके पास नहीं थे। इस स्थिति में आप श्रीराम का (नाम-) स्मरण करते राजा ने प्राण त्याग दिया।

श्रीराम, लक्ष्मण, सीता तथा अन्य सब के द्वारा शोक करना- यह कहते हुए शत्रुघ्न दुःख से मूर्च्छित होकर गिर गए। पिताजी की मृत्यु का समाचार सुनकर श्रीराम भी मूर्च्छित हो गए मारे दुःख के सीता रोने लगी, तो लक्ष्मण दुःख से अचेत हो गए। राजा दशरथ के वे चारों पुत्र अत्यधिक दुःख को प्राप्त हो गए। श्रीराम के अश्रु-बिन्दुओं के गिर जाते ही (मृत) राजा दशरथ (की आत्मा) को आत्मिक सुख एवं आनन्द हुआ। श्रीराम को सुख का अवबोध हुआ और दशरथ (की आत्मा) को परमानन्द हुआ। (मृत्यु के समय दशरथ के पास श्रीराम नहीं थे। तब भरत-शत्रुघ्न से समाचार सुनकर श्रीराम ने मानों अपने दिवंगत पिता को अश्रु जलांजलि अर्पित की, जिससे उनकी आत्मा को शान्ति मिली श्रीराम वस्तुतः सुख-स्वरूप थे, स्वतंत्र (बन्धनहीन) थे। श्रीराम तो सुख के सागर थे फिर भी उन्होंने सचमुच पिता दशरथ को (अश्रुजल प्रदान करके) सुख सम्पन्न बना दिया। श्रीराम जब सचेत हो गए, तो भरत और शत्रुघ्न ने उनसे कहा- 'हमने राजा की उत्तरक्रिया की है; अतः अब आप स्नान और पिण्डदान करें। आप झट से स्नान करें, पिण्डदान और तिलांजलि के साथ तर्पण कर लें। सपिण्डी (मृतक

का बारहवें दिन किया जानेवाला श्राद्ध कर्म जिसमें वह अन्य पितरों या परिवार-परम्परा के मृत प्राणियों के साथ पिण्डदान द्वारा मिलाया जाता है) करके, (और्ध्वदैहिक) कर्म कर लें। हे श्रीराम, दशरथ को आपके प्रति अपार आत्मीयता थी। इसलिए आपके द्वारा अपने हाथों से पिण्डदान करने पर वे सुख स्वरूप को प्राप्त हो जाएँगे'। श्रीराम द्वारा रुदन करने पर उनके समस्त पितर शाश्वत रूप से सुख सम्पन्न हो गए। यह गुह्य ज्ञान सबकी समझ में नहीं आ सकता। (श्रीराम का रुदन द्वारा पिता सम्बन्धी प्रेम व्यक्त हुआ। ब्रह्म-स्वरूप श्रीराम के द्वारा ऐसी आत्मीयता प्रकट करने पर दशरथ तथा समस्त पितर चिरशान्ति को प्राप्त हुए, क्योंकि वे ब्रह्मश्रीराम द्वारा अपनाये गए।

राजा दशरथ की उत्तर-क्रिया- श्रीराम के गुह्य ज्ञान को, उनके रहस्य को कर्मकाण्ड के आचरण कर्ता और ज्ञानमार्ग के अनुयायी समझ नहीं सकते। ऐसे लोग श्रीराम से कर्म विधान करने को कह रहे थे। वे बोले 'हे श्रीराम, आप स्नान करके पिण्डदान करें। श्रीराम वस्तुतः अथाहज्ञानी थे फिर भी (लोक में प्रचलित) कर्म करते हुए उन्होंने परम्परा का निर्वाह किया और इसमें उस ब्रह्म से साक्षात्कार की अनुभूति प्राप्त की स्वयं ब्रह्म होने पर भी अपनी मानवावस्था में उन्होंने उस क्रिया कर्म सम्बन्धी व्यवहार रीति का निर्वाह किया, जो वेदों द्वारा कथित (प्रतिपादित) एवं निर्धारित है। जो यह कहते हैं कि कर्म ही ब्रह्म है, ब्रह्म-साक्षात्कार का अनुभव कर्म ही है, अर्थात् जो कर्मकाण्ड को ही सब कुछ मानकर उसका समर्थन करते हैं, (कवि कहता है कि) वे परम मूर्ख हैं। परन्तु श्रीराम (मानवरूपधारी होने पर भी) यह रहस्य जानते हैं कि कर्म ही सम्पूर्ण ब्रह्म है, ब्रह्म और कर्म में कोई अन्तर नहीं है। श्रीराम की कृपा से ही कर्म करने में कर्म का लक्ष्य सिद्ध होता है और उन्हीं से कर्म करने में ही ब्रह्म की स्थिति निहित है। श्रीराम के कारण ही कर्म से (उनके उपासक भक्त को) नित्य-मुक्ति प्राप्त हो जाती है श्रीराम निश्चय ही परब्रह्म हैं। इस प्रकार जो श्रीराम स्वयं साक्षात् ब्रह्म थे, वे भी वेदोक्त पद्धति से अपने कर्तव्य का पालन करते थे (करना चाहते थे)। इसलिए पिता दशरथ के निधन का समाचार सुनकर वे स्नान के लिए मन्दाकिनी नदी के पास आ गए। लक्ष्मण और सीता, भरत और शत्रुघ्न को साथ में लेकर श्रीराम तथा समस्त लोग राजा दशरथ की मृत्यु के उपलक्ष्य में किये जानेवाले कर्म करने के उद्देश्य से स्नान के लिए मन्दाकिनी नदी के पास आ गए। वसिष्ठ आत्मज्ञानी थे, समस्त बातों के सर्वोपरि ज्ञाता थे वे श्रीराम की कौशल्या सुमित्रा आदि समस्त माताओं को राजा के दुःखद निधन के निमित्त किये जाने वाले स्नान के लिए एक साथ ले आये जब श्रीराम को देखते ही दीर्घ अर्थात उच्च स्वर में (देर तक) चीखते-चिल्लाते रुदन करती हुई वे सब श्रीराम से मिलीं, तो दुःख से पूर्णतः व्याप्त होकर वे अत्यधिक दुःखी हो गईं।

श्रीराम का कौशल्या आदि माताओं से मिलना- श्रीराम ने जब माता कौशल्या को नमस्कार किया, तो उसने उनका प्रगाढ़ आलिंगन किया। उस माता (के हृदय) में सम्पूर्ण प्रेम उमड़ उठा, उसकी आँखें अश्रुधाराओं को बहाने लगीं। श्रीराम ने जब माता सुमित्रा के चरणों में मत्था टेका, तो उसने भी आलिंगन किया उसी प्रकार श्रीराम ने अन्य समस्त माताओं का वन्दन किया। लक्ष्मण द्वारा कौशल्या को नमस्कार करने पर उसने भी प्रेम से उनका आलिंगन किया और कहा- हे लक्ष्मण, तुम्हारे चरणों को अपने केशों से झाड़ूँगी (साफ करूँगी)। तुम इस अवस्था में भी श्रीराम की रक्षा कर रहे हो तुम अपने माता पिता का त्याग करके और अपनी सुन्दर कान्ता तथा अपने सुखोपभोग को छोड़कर वन में श्रीराम की रक्षा कर रहे हो, अतः मैं तुम्हारी सब प्रकार से दासी हूँ तुम श्रीराम को स्वादिष्ट फल अर्पित

करते हो, उनके लिए सिर पर जल-घट उठाकर ले आते हो। बड़ी-बड़ी अर्थात् विपुल मात्रा में लकड़ियाँ लाकर (आवश्यकता के अनुसार) पूर्ति करते हो। अत: मैं तुम्हारी पूर्ण रूप से दासी हूँ। यह सुनकर लक्ष्मण बोले 'हे माता, मैं तो यहाँ पर आपका पोष्य बालक हूँ। श्रीराम ने मेरा उद्धार किया है.' तदनन्तर उन्होंने फिर से उसके चरणों का वन्दन किया। लक्ष्मण ने अपनी माता सुमित्रा को नमस्कार किया तो उसने अपने पुत्र का आलिंगन किया और कहा 'तुमने श्रीरामचन्द्र की सेवा करते हुए अपने दोनों पितरों (पिता और नाना, दोनों ओर के पितरों) को उद्धार को प्राप्त कराया है'। तत्पश्चात् स्वयं लक्ष्मण ने अपनी अन्य समस्त माताओं का वन्दन किया। कौशल्या ने सीता को गले लगाया और कहा, 'अरी माँ, तुम सब प्रकार से पतिव्रता हो'। तब सीता ने उसे दण्डवत् नमस्कार किया। उसने सुमित्रा के चरणों को नमस्कार किया, तो उसने उसे हृदय से लगा लिया। फिर वे चीखती पुकारती हुई रोने लगीं। श्रीराम को गले लगाने से उनकी समस्त माताएँ दु:ख को भूल गईं। उनके पहने हुए वल्कल और माथे पर जटाओं को देखकर वे अत्यधिक विस्मय को प्राप्त होकर भौचक हो गई श्रीराम के श्रीमुख को देखकर माताएँ समस्त दु:ख को भूल गईं और परम सुख को प्राप्त हो गईं। इस प्रकार श्रीराम सबके लिए सुख के दाता सिद्ध हुए। गुरु वसिष्ठ ने कहा– हे श्रीरघुनन्दन, झट से स्नान करके पिता को पिण्डदान करो- यही अपने पिता के प्रिय तथा ज्येष्ठ पुत्र के लिए उचित कर्म है'। तब अपने तीनों बन्धुओं, समस्त माताओं और सीता को साथ में ले जाकर श्रीराम ने पिता दशरथ के उद्धारार्थ स्नान किया।

श्रीराम द्वारा पिण्डदान और गया-गदाधर-दर्शन करना- स्वयं भरत श्रीराम द्वारा पिण्डदान कराने हेतु तिल,चावल, जौ झट से ले आये; परन्तु श्रीराम ने उन्हें स्वीकार नहीं किया। वे बोले– मैं (चावल आदि से बने) अन्न का सेवन नहीं करता। मैं वन्य फलों को खा लेता हूँ इसलिए मैं अपने पिता के लिए उन्हीं फलों का स्वयं पिण्डदान करूँगा। मैंने बनवास में यह दृढ़ व्रत रखा है मैं हाथ से अन्न को छूता भी नहीं। इंगुदी, पुन्नाग अत्यधिक पवित्र होते हैं (जिनके फल मैं खाता हूँ) उन्हीं के (फलों के) पिण्ड बनाकर मैं पिता (एवं पितरों) को अर्पित करूँगा।

श्लोक- हे महाराज, आप यह भोजन प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कीजिए, जो (इन दिनों) हम लोगों का आहार है। (यह स्मृति-वचन है-) मनुष्य के लिए (जिस काल में) जो अन्न (प्राप्त) होता है, वही अन्न उसके देवताओं (और पितरों) के लिए भी (अभीष्ट) होता है। (वे उसे ग्रहण करते हैं)।

जिस समय मनुष्य को जो अन्न रूप में प्राप्त होता है, उसी से वे देवों का पूजन करें, उसी से पितरों को पिण्डदान दें।यह वेदों द्वारा कथित स्मृति का (निर्णय-स्वरूप) कथन है तदनन्तर लक्ष्मण ने इंगुदी वृक्ष के फलों को पीस लिया। और सीता ने उनके पिण्ड बना दिये। तब श्रीराम ने भूमि पर बिछे दर्भों का दक्षिण दिशा की ओर अग्रभाग करके उनपर रखे पिण्डों को अर्पित किया।

वे वन्य तिल लाये और सबने तिलांजलि अर्पित की। काले तिल लेकर श्रीराम द्वारा तर्पण करते समय वहाँ पर एक आश्चर्य घटित हुआ। 'आब्रह्मादिभुवन, सर्व ऋषि, पितृ-मानव' जैसे शब्दों का उनके द्वारा (आवाहन हेतु) उच्चारण करते ही वहाँ पर एक आश्चर्य घटित हुआ। श्रीराम द्वारा पिण्ड प्रदान करते ही गयागदाधर ने हाथ आगे बढ़ाकर उससे पिण्ड ग्रहण किया और ब्रह्मा आदि समस्त कुलदेवता श्रीरघुनाथ द्वारा पिण्डदान करने पर सदा के लिए तृप्त हो गए। (तब गयागदाधर बोले-) 'तुम्हारे द्वारा तिलोदक देने पर आब्रह्म भुवन के समस्त लोग नित्यमुक्त हो गए हैं, परम (ब्रह्म) सुख को प्राप्त हो गए हैं। इस प्रकार वचन कहकर गयागदाधर आँखों से ओझल हो गए। तो गुरु वसिष्ठ ने यह कहकर

जयजयकार किया कि श्रीराम ने (समस्त) पितरों का उद्धार किया। श्रीराम स्वयं आत्माराम-परमात्मा, परब्रह्म हैं। उनका किया कर्म तो परब्रह्म (कृत कर्म ही) है। अतः श्रीराम ने जिनके नाम का उच्चारण किया, वह विश्रामधाम अर्थात मुक्ति को प्राप्त हुआ।

उपसंहार– श्रीराम के नाम का उच्चारण करते हुए जो जाप करता है, उसके चरणों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जैसे चारों पुरुषार्थ लग जाते हैं (शरण में आते हैं)। सलोकता, समीपता, सरूपता और सायुज्य नामक चारों मुक्तियाँ उसकी दासियाँ हो जाती हैं राम-नाम की इतनी ख्याति (महिमा) है। श्रीराम का वनगमन (वस्तुतः) दीनों का उद्धार करने हेतु ही हुआ। (मैं एकनाथ अपने गुरु जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हूँ। उनकी कृपा से मैं श्रीराम की कथा का निरूपण करते हुए) ब्रह्म जनार्दन श्रोताओं से विनती कर रहा हूँ कि श्रीराम द्वारा पितृतर्पण किया गया। अब आगे की कथा श्रवण करें।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ कृत 'श्रीभावार्थ-रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत अयोध्या काण्ड का 'श्रीराम-दशरथ-पिण्डीकरण' शीर्षक यह सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय १७

[भरत का सन्तोष]

लक्ष्मण द्वारा निर्मित पर्णशाला की सबके द्वारा सराहना करना– श्रीराम ने अपने पितरों का उद्धार किया, तो वे (स्वर्ग की ओर गमन करते हुए) आकाश में जयजयकार करने लगे। देवों ने जगदोद्धारक श्रीराम पर पुष्पवर्षा की। लोगों ने राह चलते हुए उन मनोहारी पर्णशालाओं को देखा, तो जनककन्या सीता ने स्वयं उनसे कहा कि इन विशाल पर्णशालाओं का निर्माण सुमित्रानन्दन लक्ष्मणजी ने किया है। उन्हें देखकर माताओं ने कहा– सुमित्रानन्दन का जीवन धन्य है। (उन्हें विदित हुआ कि) समझिए कि सचमुच इसी के कारण वन में श्रीराम-सीता सुख-सम्पन्न हैं। इसके द्वारा की जानेवाली सेवा अत्यधिक उच्च, बढ़िया है। इसने श्रीराम के चरणों में अपने प्राणों को बेच दिया है। यह सिर पर जल (-घट) वहन करके लाता है। यह (आवश्यक) समस्त लकड़ियाँ लाता है। यह श्रीराम और सीता के चरणों को धोता है। उन्हें समस्त स्वादिष्ट फल उपलब्ध कराता है। यह नित्य प्रति यथोचित (समीचीन) कार्य स्वयं करता है और दिन-रात जाग्रत रहता है। श्रीराम के वन में निवास करते रहते, इसने उन्हें माता-पिता का विस्मरण करा दिया। उन्हें माता-पिता का स्मरण करने की आवश्यकता नहीं रहने दी उन्हें राज्य के सुखोपभोगों का विस्मरण करा दिया। श्रीराम को इसी के कारण सुख प्राप्त हो रहा है । उन सबने लक्ष्मण की स्थिति (वन में श्रीराम के साथ रहने की पद्धति) के बारे में सुना, आश्रमों (पर्णशालाओं) को देखा, अद्भुत कौशल से निर्मित वे मनोहारी पर्णशालाएँ शोभा दे रही थीं। उन्होंने भूमि का सिंचन, सुन्दर चौक रंगावलियाँ, वृन्दावन (तुलसीचौरा) पुष्पशालाएँ (पुष्पवाटिकाएँ) देखीं। उस आश्रम को अपनी आँखों से देखते हुए उन सबको सुख अनुभव हुआ।

गुरु वसिष्ठ ने मन में सुख को प्राप्त होकर लक्ष्मण का असीम प्रेम से आलिंगन किया और कहा 'हे लक्ष्मण, तुम्हारी श्रीराम सम्बन्धी भक्ति धन्य है, श्रीराम सम्बन्धी तुम्हारी सद्भावना धन्य है। तब स्वयं लक्ष्मण ने गुरु वसिष्ठ के चरणों का वन्दन किया और कहा– 'आपके (आगमन के) कारण

तीर्थक्षेत्र भी परम पावन हो जाते हैं। (उसी के कारण) मुझे श्रीराम के प्रति अनन्य भक्ति के साथ रहने और उनकी ऐसी सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ है। आपकी कृपा अत्यधिक समर्थ अर्थात् प्रभावकारी है। आपकी कृपा से ही मैं श्रीराम के साथ इस प्रकार जुड़ गया हूँ। इस प्रकार कहते-सुनते आत्मानन्द के साथ डोलते झूमते हुए वे आश्रम के अन्दर (पहुँचकर) बैठ गए।

समस्त मन्त्रियों और सेना का श्रीराम से मिलना- जयजयकार को सुनते ही समस्त मन्त्री, सेनानी, सेना-दल श्रीराम से मिलने के लिए झट से चले। अश्वों और हाथियों के चलने से खड़खड़ाहट हो रही थी, रथ घड़घड़ाहट करते हुए चलने लगे। घनी (भीड़ मचाती हुई) सेना श्रीराम और गुरु वसिष्ठ का वन्दन करने हेतु चली, श्रीराम के मुख के दर्शन करके उनमें से हर एक व्यक्ति सुखी हो गया। इस प्रकार अयोध्या के समस्त लोग परम सुख को प्राप्त हो गए। अपनी आँखों से श्रीराम को देखने से (उनकी आँखों के मिलने से) उनका आनन्द उनके मन में समा नहीं रहा था। श्रीराम की दर्शन स्वरूप दृष्टि-भेंट होने से उनका जगत् आनन्द से उमड़ उठा। श्रीराम ने उठकर मन्त्री आदि समस्त जनों को गोरक्षक (चरवाहे) आदि को गले लगाया।श्रीराम के दर्शन के लिए दुःख से व्याकुल होकर समस्त (अयोध्यावासी) लोग उत्कण्ठा के साथ वन में आ गए थे, (पाठक या श्रोता) इस ग्रन्थ का यह भावार्थ नहीं मानें कि श्रीराम (उनसे मिलकर)उन्हें गले नहीं लगाएँगे। जो रघुनाथ श्रीराम सबके हृदय में अवस्थित हैं, जो श्रीराम सबके हृदय में नित्य व्याप्त हैं, वे दीनों से नहीं मिलेंगे- इस ग्रन्थ का ऐसा भावार्थ नहीं समझा जाए। समस्त लोग उस आश्रम को अत्यधिक मानसिक विश्राम (शान्ति को प्राप्त हो गए। श्रीराम को वन्दन करने के पश्चात् वे सभाजन चकित चुप होकर बैठे।

भरत द्वारा श्रीराम से अयोध्या में लौट आने की प्रार्थना करना- (अयोध्या से वन में चित्रकूट पर आगमन करने के लिए हुई यात्रा) आदि कार्य के विषय में कहने का सामर्थ्य किसी में नहीं था। तब भरत ने वहाँ पर उठकर श्रीराम का वन्दन किया। फिर वे बोले- 'हे श्रीरघुनाथ, अब आप अयोध्या चलिए और राज्य-कार्य का भार सिर पर लेकर अर्थात् स्वीकार करके हम सबका प्रतिपालन कीजिए। यही मेरे यहाँ शीघ्रतापूर्वक आने का हेतु है। हे श्रीरघुनाथ, आप सर्वज्ञ हैं; आप सत्य-असत्य को जानते हैं।

श्रीराम द्वारा पितृ-वचन के भंग (अवज्ञा) होने के विचार से भरत की प्रार्थना को अस्वीकार करना- भरत द्वारा ऐसा कहने पर श्रीराम हँस पड़े और बोले- 'पिताश्री दशरथ जिस कार्य-भाग को निर्धारित कर गए हैं उसे स्वीकार करके उनकी आज्ञा का प्रतिपालन कर लो। तुम्हारे लिए अयोध्या का राज्याभिषेक निर्धारित हुआ है, तो मेरे लिए वन-गमन। पिता की आज्ञा परम प्रमाण होती है, उसे अन्यथा कौन कर सकता है। पिताजी की अपनी आज्ञा के अनुसार मैंने वन की ओर प्रयाण किया है; अब तुम राज्य को स्वीकार करो और पिताजी की आज्ञा का प्रतिपालन करो। उनके जीवित रहते उनकी आज्ञा का मैंने पालन किया; अब तुम उनके निधन को प्राप्त हो जाने पर उनकी आज्ञा की अवज्ञा न करो। हे भरत, तुम सर्वज्ञ हो, विचार करो और पिताजी की आज्ञा का प्रतिपालन कर लो। जो वेदवचन, पितृवचन अथवा गुरुवचन का प्रतिपालन नहीं करता, वह अधःपात को प्राप्त हो जाता है। इसलिए तुम वैसा (अनादर) न करना। हे भरत, पिताजी की आज्ञा को शिरोधार्य मानकर राज्य को स्वीकार करो। मैं तुम्हारा अब (यहाँ पर ही) अभिषेक कराता हूँ। इस विषय में बिलकुल हठ न करना। तुम्हें मेरे हाथों द्वारा अभिषेक करा लेना तुम्हारे मन को अच्छा लगेगा। इसलिए तो तुम वन में आये हो। हे भरत, यह सत्य है कि तुम सर्वज्ञ हो।

भरत द्वारा श्रीराम से मनःपूर्वक साग्रह हठ करना- श्रीराम की बात सुनकर भरत ने प्राणों का त्याग करना चाहा। (वे बोले) यह कोई राज्य नहीं है मुझपर पूर्ण रूप से महाविघ्न ही आ बीता है। मेरे द्वारा वन के प्रति आ जाने पर हर कोई कहता रहा कि यह श्रीराम को मार डालने चला है और अन्त में श्रीराम भी मुझ ही को भगा दे रहे हैं। राज्य के प्राप्त हो जाने में जो सुख मानता है, अत्यधिक मूर्ख होता है देखिए राज्य सम्बन्धी लोभ के फल स्वरूप महाविष मुझे कैकेयी ने दिया है। श्रीराम की सेवा करने में जो सुख एवं सन्तुष्टि है, उसका त्याग करके जो लोभ से राज्य की ओर आँख लगाते हैं (राज्य का लोभ धारण करते हैं), वे अभागे व्यक्ति दुःख की पंक्तियों का (एक एक) करके भोग करने के लिए संसार में जनमे हैं। संसार में मैं (लोगों के) इस कथन द्वारा अत्यधिक निन्दा (निंद्यता) को प्राप्त हो चुका हूँ कि यह भरत श्रीराम को मार डालने के लिए वन में जा रहा है। और मैं (वही भरत) वनवास में आपकी शरण में आने हेतु आ गया हूँ और आप भी कह रहे हैं कि यह अभिषेक कराने हेतु आ गया है आपके हाथों जो अपना राज्याभिषेक करना चाहेगा, वह तो अन्त्यज(अछूत) ही होगा यह अछूतों में सर्वाधिक अछूत ही माना जाएगा। वह तो आत्मघाती होगा, महापापी होगा। हे रघुनाथ, आप के अतिरिक्त जिसके मस्तक पर राज्याभिषेक होगा, वह तो सचमुच कोई महापापी होगा। हे श्रीराम, यह सब प्रकार से सत्य है। वृद्ध अर्थात् गुरुजनों (पूर्वजों) से चली आयी यह परम्परा है कि राजपद मुख्य रूप से ज्येष्ठ (पुत्र) को दिया जाता है, उसी का राज्याभिषेक होता है। उसे कनिष्ठ पुत्र कैसे प्राप्त कर सकता है। हे (सर्व-) श्रेष्ठ श्रीराम, आप इसका विचार करें। जो भार हाथी को ही शोभा देता है, उसका वहन करते हुए बकरी मर जाएगी उसी प्रकार, हे रघुराज आप के राज्य-सिंहासन पर मेरे अभिषिक्त हो जाते ही मेरा प्राणान्त हो जाएगा। यदि आप मेरा वध करना चाहते हों, तो आप अभी मुझ भरत को अभिषिक्त करा दें। आपको देखते रहते, मेरे जीवन का अन्त होने से मैं परम मुक्ति को प्राप्त हो जाऊँगा इस प्रकार, मेरा अभिषेक कार्य हो जाए, तो मुझसे आसानी से पिताश्री राजा दशरथ मिलेंगे। मैं उनसे यह समस्त वृत्तान्त कहूँगा और दिखा दूँगा कि अभिषेक के होते ही मुझे मृत्यु आ गई।

भरत द्वारा माया के विषय में युक्ति-युक्त वचन (तर्क प्रस्तुत करना)- आप ऐसा कह रहे हैं कि मेरे राज्याभिषेक के विषय में पिताजी की आज्ञा है परन्तु मैं उसे नहीं स्वीकार करना चाहता, उसका सम्मान नहीं करना चाहता, यह सत्य है। उसका कारण भी सुन लीजिए. राजा दशरथ ने इस प्रकार बँटवारा किया कि आपको वनवास और मुझे राज्याधिकार दिया जाए। परन्तु तब मैं उनके पास में नहीं था। अतः वह आज्ञा मेरे द्वारा बिलकुल सुनी नहीं गई है। जो मैंने (स्वयं पिता द्वारा देते) न देखी है, न सुना है, (मैं मानता हूँ कि उस वचन के आधार से) वह राज्य मुझे नहीं दिया गया है आप कहेंगे कि माया द्वारा दिया गया है; तो वह भी कैसे मिथ्या है, इसे ध्यान से सुनिए। आप कहते हैं कि जिसने मुझे राज्य दिया, वह है माया (स्वरूपा माता कैकेयी)। परन्तु माया मिथ्या होती है। मैं आपके चरणों का स्पर्श करके कहता हूँ कि माया द्वारा किये कार्य को मैं स्वीकार नहीं करूँगा। आप माया (स्वरूपा माता) द्वारा किये कार्य का अर्थ तो सुनिए- उसने आप रघुनाथ श्रीराम को वन में भेज दिया (दूसरे) राजा दशरथ के प्राणों को छीन लिया और (तीसरे) मुझ भरत को दुखी बना दिया। माया-कृत कार्य ऐसा ही घटित हो गया है कि एकपिण्ड-बीज वाले (एक ही पिता से उत्पन्न पुत्रों में) बन्धुओं में वैर उत्पन्न हुआ और बहू और पुत्र को उखाड़कर (निराधार बनाकर) सीधे वन में भेज दिया। माया में अत्यधिक निर्दयता होती है। उसने श्रीरघुनाथ को दुःखी किया, सीता को पैदल (वन में) भेज दिया और सबको अत्यधिक दुःखी

बना दिया। माया स्वरूपा माता ने (वस्तुतः न्याय-नीति-कर्तव्य की दृष्टि से) अत्यधिक विपरीत आचरण करते हुए (वरदान स्वरूप) माँग की। उसने अपना स्वयं का सुहाग भग्न कर डाला। वह निन्द्यत्व को प्राप्त होकर भी चुप नहीं रह रही है। माया का लक्षण (स्वरूप) अगम्य होता है माया स्वरूपा मेरी माता अपने आपके लिए वैधव्य ले आयी। अपने मुँह को काला बनाकर उसने सगों और सज्जनों को दु.खी बना दिया, ऐसी वह माया बहुत भारी बाधा उत्पन्न करने वाली ठहरी। हे श्रीराम, उसके अपने राज्य की बड़ाई को मैं तो अपने निर्णय के अनुसार बिलकुल स्वीकार नहीं करूँगा। इस प्रकार कहकर साथ ही भरत ने स्वयं श्रीराम को दण्डवत् नमस्कार किया और उनके चरणों को माथे पर धरा रखा उनकी आँखों में आँसू भर आये। श्रीराम भरत के ऐसे ढंग को देखकर स्वयं बोले - 'राजा दशरथ के अन्तिम वचन को हम कभी भी अन्यथा न करें 'राम' 'राम' कहते मेरा स्मरण करते हुए राजा ने मेरे लिए प्राण त्यज दिये। उन्होंने मेरा वन के प्रति गमन करा दिया। उसे मैं तो बिल्कुल झूठा सिद्ध करूँगा मैंने पिता दशरथ के सामने वनवास सम्बन्धी दृढ़ व्रत ग्रहण किया है। हे भरत तुम निश्चय ही समझ लो कि मैं सचमुच उसे अन्यथा नहीं करूँगा।

भरत का आमरण अन्नत्याग (अनशन) करने के निश्चय से बैठ जाना- श्रीराम के इस कथन को सुनकर भरत ने दुर्दम्य हठ ठान लिया। आमरण अनशन करते हुए उन्होंने प्राणत्याग करना चाहा। (तत्काल उन्होंने सुमन्त से कहा–)

श्लोक- हे सारथि सुमन्तजी, आप इस वेदी पर शीघ्र ही बहुत से कुश बिछा दीजिए। जब तक आर्य श्रीराम मुझपर प्रसन्न नहीं होंगे, तब तक मैं यहीं इनके पास धरना दूँगा। जिस प्रकार (साहूकार या महाजन द्वारा) धनहीन किया हुआ ब्राह्मण उसके घर के द्वार पर निरालोक (मुँह ढँककर प्रकाश से वंचित) निराहार पड़ा रहता है, उसी प्रकार मैं भी निराहार (अनशन करते हुए) निरालोक (मुँह पर आवरण डालकर) इस कुटिया के सामने लेटा रहूँगा। जब तक मेरी बात श्रीराम स्वीकार करके अयोध्या नहीं लौटेंगे, तब तक मैं इसी प्रकार पड़ा रहूँगा। यह सुनकर सुमन्त श्रीराम का मुँह ताकने लगे। उन्हें इस अवस्था में देखकर भरत के मन में बड़ा दुःख हुआ और वे स्वयं ही कुश की चटाई बिछाकर भूमि पर बैठ गए।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि श्रीराम अयोध्या नहीं जाएँगे। उससे भरत दुःखी हो गए और फलस्वरूप प्राणत्याग करने के लिए तैयार हो गए। उन्होंने स्वयं सुमन्त से कहा– 'मन्दाकिनी नदी का तट पवित्र है। वहाँ पर मेरे अपने प्राणत्याग करने हेतु (बैठने के लिए) कुश बिछा दीजिए। श्रीराम से अलग होकर रहने का अर्थ है सब प्रकार से निन्दास्पद जीवन बिताना इसलिए श्रीराम के देखते देह त्याग करके मर जाने का अर्थ है परिपूर्ण ब्रह्म को प्राप्त हो जाना। श्रीराम को अयोध्या ले आने की प्रतिज्ञा करके मैं यहाँ आ गया हूँ परन्तु श्रीराम मेरी प्रिय इच्छा को (लाड़-चाव को) पूर्ण नहीं कर रहे हैं। इसलिए मैं अब प्राणों का त्याग करूँगा ' सुमन्त के मन में यह विचार आया कि भरत के प्राण त्याग करने चलते ही श्रीराम अयोध्या लौट आएँगे, इस लालसा से भरत ने (स्वयं) कुश बिछा दिये। 'उन कुशों की चटाई पर बैठकर मैं स्वयं न अन्न का सेवन करूँगा, न जल पीऊँगा। समझिए कि जैसे कोई एकाकी और दीन ब्राह्मण करता है, उसी प्रकार मैं उसपर पड़ा रहूँगा। जब तक श्रीराम मुझपर कृपा नहीं करेंगे तब तक मैं यहाँ पड़ा रहूँगा उनके द्वारा मुझपर कृपा न करने का अर्थ निश्चय ही मेरा प्राणान्त है। श्रीराम का मैं लाड़ला (बच्चा) हूँ पर वे ही मेरा लाड़-चाव पूरा नहीं कर रहे हैं। इसलिए मुझे अपनी देह की

कोई परवाह नहीं हैं। मैं इस देह का त्याग करके निर्भय (आशंका हीन) सिद्ध हो जाऊँगा। यहाँ जिसे श्रीराम के प्रति प्रेम हो, वह मैं उनका ध्यान करते रहते यदि मृत्यु को प्राप्त हो जाऊँ, तो मैं नित्यमुक्त हो जाऊँगा। अथवा यदि मरणोपरान्त मुझे परलोक की प्राप्ति हो वहाँ पिताश्री राजा दशरथ मुझपर कृपा करेंगे।' जान लीजिए कि इस प्रकार कहते हुए भरत ने श्रीराम के देखते रहते शुद्धाचमन किया और वे कुश की चटाई पर आसन लगाकर आँखों को बन्द करके बैठे। इस सबको देखकर समस्त लोग हाहाकार को प्राप्त हो गए। उन्हें जान पड़ा कि भरत असत्यवादी नहीं है। (असत्य नहीं बोलते) वे निश्चय ही प्राणत्याग कर देंगे बिना श्रीराम की कृपा के भरत आधे क्षण भी जीवित नहीं रहेंगे। वे श्रीराम के ध्यान में लवलीन होकर आधे पल में प्राणों को त्यज देंगे ऐसी स्थिति को देखकर श्रीराम स्वयं भरत से बोले– 'तुम्हें न यह काम करना उचित है, न निश्चय ही यह राजधर्म है। अन्ध, पंगु श्वेतकुष्टरोगी, अपनी किसी दुर्दम्य कामना के पूर्ण न होने से दुःख को प्राप्त व्यक्ति जैसे लोग इस प्रकार देह त्याग करते हैं। यह ज्ञान (विवेक) का विचार (मार्ग) नहीं है.' यह सुनकर भरत बोले– आपकी हमपर कृपा के न होते हमें ज्ञान की कैसी बात सुझायी देगी ? यद्यपि मेरे सिर पर करोड़ (करोड़) अधर्म (जन्य पाप) आ जायें फिर भी मैं जीवित रहना बिलकुल नहीं चाहूँगा।

श्रीराम द्वारा प्रतिज्ञा -पूर्ति का वज्र -कठोर निश्चय करना- भरत के इस अत्यधिक दृढ निश्चय को देखकर श्रीराम ने भी यह सौगन्ध ली कि मैं गुरु वसिष्ठ के चरणों को प्रमाण मानकर दण्डकारण्य (-निवास) का त्याग नहीं करूँगा।

श्लोक- चन्द्रमा से उसकी लक्ष्मी (शोभा, कान्ति) दूर हो जाए, हिमालय हिम का त्याग कर दे अथवा सागर अपनी सीमा को लाँघकर आगे बढ़ जाए, तो भी मैं पिता की प्रतिज्ञा (आज्ञा) की अवज्ञा नहीं करूँगा पूर्णचन्द्र की शोभा नष्ट हो जाए, मेरु पर्वत पृथ्वी के अन्दर खड़े खड़े विलय को प्राप्त हो जाए, सुवर्ण कालिमामय कान्ति को प्राप्त हो जाए, तो भी मैं आरम्भ अर्थात् स्वीकार किये हुए व्रत का त्याग नहीं करूँगा सूर्य (भले ही पश्चिम में उदित हो जाए, सातों सागर (मिलकर) एक हो जाएँ, रुद्र अब प्रलय मचा दे, तो भी मैं राजा के वचन का उल्लंघन (अवमान, त्याग) नहीं करूँगा। पतिंगा दीप को घूँट में निगल डाले, कोई बच्चा आकाश का गट्ठर बाँध ले, चूहा रुद्र को सुखपूर्वक निगल डाले, फिर भी मैं व्रत सम्बन्धी अपने विचार को नहीं छोड़ूँगा। सूर्य (अवरोध के कारण) लड़खड़ाकर कुएँ में गिर पड़े, मेरु पर्वत मृगमरीचिका में डूब जाए, मक्खी अपने परों के बल आकाश में उड़ जाए (ये असम्भव बातें भले ही घटित हो जाएँ,) मैं (अपनी प्रतिज्ञा के पालन से पीछे मुड़ नहीं जाऊँगा। इधर श्रीराम ने दृढ़तम शपथ ग्रहण की, तो उधर भरत कुश की चटाई पर दृढ़तम प्रतिज्ञा करके बैठ गए। सब लोग हाहाकार के साथ गरजने (रोने-पीटने) लगे। सभी लोग रोने लगे।

दोनों के निर्णय से वंश-क्षय के होने की आशंका से सबका रोना-पीटना– एक साथ (यकायक) वावैला मचा। हाय-पुकार करते हुए स्त्री-पुरुष रोने लगे। वहाँ (ऐसी स्थिति में) कौन किसको दुहाई देते हुए किसे सान्त्वना दे। (उन्होंने सोचा) श्रीराम को अयोध्या लौटा ले जाने हेतु भरत बड़े हर्ष के साथ वन में आ गए। पर अब अपनी अपनी प्रतिज्ञा से, प्रण से दोनों का अन्त होने जा रहा था। इस प्रकार बड़ा संकट आ गुजरा। अब तो सूर्यवंश की कीर्ति डूब ही जाएगी, बड़ी अपकीर्ति हो जाएगी। कैकेयी का ऐसा प्रताप सिद्ध हो रहा है कि उसने सबको चिरशान्ति को प्राप्त करा दिया। राजा दशरथ श्रीराम का स्मरण करते-करते सदा के लिए शान्त हो गए, श्रीराम और भरत अपनी-अपनी प्रतिज्ञा और (उसे

पूर्ण करने के) दृढ़ निश्चय से चिरशान्ति को प्राप्त होने जा रहे हैं. फल-स्वरूप लक्ष्मण प्राण-त्याग कर देंगे, सीता और शत्रुघ्न भी मृत्यु को अपना लेंगे। तब यहाँ से कौन अयोध्या की ओर लौट जाएगा ? जब कि सब इस प्रकार चिरशान्ति को प्राप्त हो जाएँगे, तो अपने आपको कैकेयी ही स्वयं राज्यासन पर नियुक्त करेगी। परन्तु वसिष्ठ ने सम्पूर्ण भविष्य को जानते हुए कोई भी बात नहीं कही। समस्त लोगों को दारुण दुःख अनुभव हो रहा था। फिर किसको कौन सान्त्वना प्रदान करेगा। श्रीराम और भरत दोनों पूर्णतः सत्यवादी थे, दोनों ही की प्रतिज्ञा दुर्दम्य ठहरी फिर उन दोनों को कौन समझाता-बुझाता ? सबको दारुण दुःख हो रहा था। निःसन्देह किसी का कोई उपाय नहीं चल रहा था सबके लिए बड़ी बाधा उत्पन्न हुई। तब वहाँ एक आश्चर्य घटित हो गया। महर्षि वाल्मीकि अन्यान्य श्रेष्ठ ऋषियों सहित वहाँ आ गए।

महर्षि वाल्मीकि द्वारा वहाँ आकर रहस्य को स्पष्ट करना-

श्लोक- तब वहाँ महर्षि वाल्मीकि ने अन्य ब्राह्मणों (ऋषियों सहित) आकर उन दो काकुत्स्थ वंशोत्पन्न महान वीर बन्धुओं की प्रशंसा की। (वे बोले–) तुम दोनों धर्मज्ञानी और सत्य धर्म के मार्ग पर चलने वाले धन्य हो, धन्य हो। तुम दोनों की बात चीत को सुनकर हमें उसे बारबार सुनते रहने की इच्छा होती है।

तब श्रीराम और भरत के पास शीघ्रता से आकर महर्षि वाल्मीकि प्रसन्नतापूर्वक उनसे बोले– 'तुम दोनों साक्षात् पुण्य की राशियाँ (अपार पुण्यवान हो) पुण्यशाली पुरुष हो। तुम्हारे पिता राजा दशरथ धन्य हैं। तुम्हारी माताएँ धन्य हैं धन्य हैं; तुम्हारे किये कार्य (की कथाएँ) धन्य हैं, धन्य हैं। समस्त लोगों के उद्धारकर्ता हो। तुमसे ही धैर्य को धैर्य प्राप्त है, तुमसे ही वीरता को वीरता प्राप्त है, तुमसे ही शूरता को शूरता प्राप्त है, सत्य को तुमसे ही सत्यता प्राप्त है। सूर्यवंश में जनमे तुम दोनों धन्य हो, धन्य हो। तुम दोनों को राज्य के प्रति कोई लोभ नहीं है। इसलिए मैं तुमसे मिलने आया हूँ।' (वास्तव में) चित्रकूट पर ही महर्षि वाल्मीकि का आश्रम था। पर वे अब तक श्रीराम से मिलने नहीं आये थे, परन्तु उन दोनों बन्धुओं को (धर्म) संकट में स्थित देखकर वे उनको सन्तुष्ट कर देने, (समस्या का समाधान कर देने) के लिए तत्काल आ गए। दोनों को सन्तुष्ट कर देने के लिए महर्षि वाल्मीकि स्वयं वहाँ आ गए अनागत काल अर्थात भविष्य को (होनी को) जानकर वे क्या बात बोले ? (सुनिए)। 'हे स्वामी रघुनाथ, सुनो। हे धर्मज्ञ भरत, तुम भी ध्यान से सुन लो। हम तुम्हारे हित के विचार से श्रीराम के अति रहस्य भरे कुछ चरित को (जीवन घटित होनेवाली घटनाओं को) बताना चाहते हैं।'

श्लोक- तदनन्तर दशग्रीव रावण के वध की अभिलाषा रखनेवाले ऋषियों ने मिलकर राजसिंह भरत से तत्काल ही यह बात कही। (हे भरत) तुम अपने व्रत को परिपूर्ति के लिए शीघ्रता से (अयोध्या के प्रति) लौट जाओ। महात्मा श्रीराम को देवों का अभीष्ट कार्य करना है। इतना कहकर वहाँ आये हुए समस्त गन्धर्व महर्षि और राजर्षि सब अपने-अपने मार्ग से (अपने-अपने) स्थान के प्रति चले गये।

(वाल्मीकि बोले-) 'समझ लो कि मेरे साथ इन ऋषियों के आ जाने का यही कारण है- मैं श्रीराम के चरित्र सम्बन्धी एक रहस्य की सम्पूर्ण जानकारी तुम्हें कराना चाहता हूँ। ये तपोधन ऋषि श्रीराम-चरित्र के रहस्य सम्बन्धी भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों की अपार जानकारी रखते हैं। वे तुमसे कहने के हेतु यहाँ आये हैं। देवर्षि राजर्षि और तपोधन ऋषि श्रीराम के चरित्र के विषय में एक रहस्य की जानकारी तुमसे कहने हेतु आये हैं। वैसे तो तुम दोनों बड़े हठीले हो। तुम प्राणों के लिए संकट

उत्पन्न कर बैठे हो। यह देखकर तुमपर कृपा भरी दृष्टि से देखते हुए तुम्हें रहस्य भरी बातें बताने आये हैं। हे भरत, तुम ध्यान से सुन लो। श्रीराम, सीता और लक्ष्मण के वन में आकर बस जाने का यही कारण (उद्देश्य) है कि श्रीराम रावण का वध करें। देवों की यही इच्छा है। यही ऋषियों द्वारा सम्मत है। सबका यही सिद्धान्त (स्वीकृत मत) है कि श्रीराम लंकापति रावण का वध करें। श्रीराम के राज्य के स्थापित हो जाने में विघ्न उत्पन्न होने का यही (रावण का जीवित रहना ही) कारण है। तुम इस रहस्य को नहीं जानते हो और दारुण प्राणान्तक हठ कर रहे हो। यह भविष्य में घटित हो जानेवाली रहस्यमय बात के विषय में जानकारी है। मेरी बात को सत्य मान लो और हठ को छोड़कर स्वयं अयोध्या में चले जाओ। समझ लो कि देवों के कार्य (की पूर्ति) के लिए श्रीराम, सीता और लक्ष्मण को वन में रहने देकर तुम स्वयं अयोध्या के प्रति प्रयाण करो। तुम स्वयं यह पूछ सकते हो कि श्रीराम कहाँ (रहते) हैं और रावण कहाँ है, उसका वध करने का क्या कारण है। इसी बात को ध्यान से सुन लो। अयोध्या के प्रति तुम्हारे गमन करने के पश्चात् श्रीराम दण्डकारण्य में जाकर रहेंगे। गोदावरी गंगा नदी के तट पर स्थित नासिक नामक अत्यधिक पावन स्थान पर उनका निवास होगा, उस गोदावरी नदी के तट पर पंचवटी में उनके वनवास हेतु पर्णकुटी तैयार होगी। जगत्श्रेष्ठ(स्वामी, जगदीश्वर) श्रीराम लक्ष्मण और सुन्दरी सीता सहित वहाँ रहेंगे। वहाँ वे तेरह वर्ष और छः महीने तक सुख के साथ निवास करेंगे। फिर शेष अन्तिम छः महीनों में श्रीराम राक्षसों का निर्दलन करेंगे। अपने पुत्र (के वध) के कारण वैर से शूर्पणखा नामक राक्षसी सुन्दर कन्या के रूप में वहाँ धोखा देकर कष्ट पहुँचाने हेतु जाएगी। वह अपनी आँखों से लक्ष्मण को देखकर विवाह करने के उद्देश्य से आकर उपस्थित हो जाएगी। नासिक में लक्ष्मण उसे निश्चय ही (नाक काटकर) नासिकाहीन बना देंगे। तदनन्तर रघुकुलतिलक श्रीराम उसके पक्ष को लेकर आये हुए राक्षसों का वध कर डालेंगे। तब श्रीराम के मृग का पीछा करते हुए (दूर) जाने पर रावण पंचवटी में आ जाएगा और सीता का अपहरण करके उसे (ले जाकर) त्रिकूट पर लंका में रख देगा। सीता की खोज करने के उद्देश्य से श्रीराम पम्पा आ जाएँगे। वहाँ उनसे उनके परम हितैषी सखा हनुमान मिलेंगे। हनुमान स्वयं श्रीराम और सुग्रीव में मित्रता स्थापित करेंगे। तत्पश्चात् (यथासमय) अपार वानर-सेना को लेकर श्रीराम को लंका के प्रति जाना होगा। अत्यधिक बलशाली वानर इकट्ठा होकर समुद्र को शिलाओं से आबद्ध करेंगे, अर्थात् उस पर सेतु का निर्माण करेंगे। वे लंका के समीप विनाशकारी युद्ध करेंगे। (युद्ध कला में) चतुर (प्रवीण) लक्ष्मण अकेले अपने हाथों से अनेक राक्षस वीरों को मार डालेंगे। और श्रीरामचन्द्र रावण के सिरों को काटकर विजय को प्राप्त हो जाएँगे। वे इसके फल स्वरूप देवों के बन्धन को खोल देंगे, नव-ग्रहों की बेड़ियों को काट देंगे और राम राज्य के ध्वज को फहराते हुए शीघ्रता से अयोध्या लौट आएँगे। वन में निवास करने से श्रीराम को त्रिलोक को पावन करने वाली कीर्ति प्राप्त होने वाली है। इसलिए तुम उन्हें वन में रहने देकर शीघ्रतापूर्वक अयोध्या लौट जाओ।

महर्षि वाल्मीकि के इस वक्तव्य से भरत का सन्तुष्ट हो जाना- महर्षि वाल्मीकि का यह कथन सुनकर भरत को आनन्द और उत्साह प्राप्त हुआ। अतः उन्होंने कुश के बिछावन को छोड़कर ऋषि वाल्मीकि को नमस्कार किया। अनन्तर भरत उनसे बोले- '(हे ऋषीश्वर !) मैं आपके कथन से सुखसम्पन्न हुआ हूँ। मैं श्रीराम को वन में रहने देकर शीघ्र गति से अयोध्या चला जाऊँगा'। भरत के उल्लास को देखकर महर्षि वाल्मीकि ने उनका आलिंगन किया। भरत ने तदनन्तर उनको दण्डवत् नमस्कार किया। इससे श्रीराम सुख-सम्पन्न हो गए।

श्लोक- इस बात से शुभदर्शन श्रीराम प्रसन्न हो गए। तब प्रसन्नवदन श्रीराम ने उन ऋषियों का अभिवादन किया।

महर्षि वाल्मीकि ने स्वयं वहाँ पर आकर भरत (की समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हुए उन) को सन्तुष्ट कर दिया फलतः भरत ने इस बात को स्वीकार किया कि श्रीराम वनवासी बने रहें, उसे सुनकर श्रीराम अत्यधिक सुख-सम्पन्न हो गए और उनमें इतना उत्साह उत्पन्न हुआ, जिससे वे त्रिभुवन को अपने वश में कर सकेंगे।

सब लोगों का आनन्दित हो जाना- ऋषि वाल्मीकि की बात को सुनकर लक्ष्मण के मन में सुख सम्पूर्णतः व्याप्त हो गया। उनके बाहु उत्साह से फड़कने लगे और वे आनन्द से नाचने लगे। श्रीरघुनन्दन राम ने परम आनन्द के साथ वाल्मीकि को नमस्कार किया, तो उन्होंने आशीर्वाद देते हुए अपने आश्रम के प्रति प्रयाण किया। ऋषि वाल्मीकि की बात को सुनकर (एवं स्वीकार करके) भरत सन्तोष को प्राप्त हुए। मैं एकनाथ अपने गुरु श्री जनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हूँ (उनकी प्रेरणा से मेरे द्वारा कही जानेवाली) इस कथा की भरत के अयोध्या के प्रति प्रयाण करने की घटना के वर्णन को (आप श्रोता जन) ध्यान से सुनें।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ-कृत 'श्रीभावार्थ रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत अयोध्याकाण्ड का 'भरत समाधान' शीर्षक यह सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय १८

[भरत का श्रीराम की चरण-पादुकाओं सहित अयोध्या में पुनरागमन]

भरत द्वारा श्रीराम से क्षमा-याचना करना- तदनन्तर भरत स्वयं श्रीराम के पास दौड़ते हुए गये और उन्होंने उनके चरण दृढ़ता के साथ पकड़े। उनकी आँखों से परिपूर्ण रूप से आँसू बह रहे थे। उस अश्रु जल से श्रीराम के चरणों का क्षालन हो गया

श्लोक- भरत का सारा शरीर (उनके मन के तुष्ट हो जाने से) स्वस्थ एवं स्थिर हो गया। फिर भी वे सद्गदित (कम्पायमान, लड़खड़ाती हुई) वाणी में, हाथ जोड़कर, श्रीराम से फिर बोले।

भरत का सारा शरीर पसीने से भरकर तर एवं रोमांच से पूरा अंकित हो उठा। उनका मन हर्ष से उत्कण्ठित हो गया। उनकी वाणी सद्गदित हो गई। देखिए, उनकी वाणी क्षीण (अतएव कम्पायमान) हो गई वे उस स्थान पर श्रीराम के चरणों के समीप तल्लीन होकर बैठे और हाथ जोड़कर झट से उन्होंने उनसे विनती की। (वे बोले-) 'मैं यहाँ पर (आमरण अनशन करने हेतु) कुश की चटाई बिछाकर आप पर प्राणार्पण करने आ रहा था। हे स्वामी, मेरे इस घोर अपराध को आप पूर्णतः क्षमा कीजिए। लोग (बैल जैसे) प्राणियों को हल में जोतकर भूमि को जोतते हैं, उसमें घास-फूस डालकर उसे जला देते हैं। फिर पानी डालते हुए पैरों से कुचल रौंदकर उसका कीचड़ के रूप में नाश कर देते हैं। परन्तु भूमि (मनुष्यों के) उस अपराध की ओर ध्यान नहीं देती; वह तो परिपालन- रक्षण करने वाले और वैसे ही जला देनेवाले लोगों को दिव्य खाद्यान्न देकर पूर्ण रूप से सुख-सम्पन्न कर देती है। उसी प्रकार, आप मुझे क्षमा कीजिए। आप श्रीराम हमारी जननी हैं। हम आपके दुध-मुँहे शिशु हैं। आप मेरे अपराध की ओर ध्यान

न दीजिए। इसलिए तो मैं आपको दण्डवत् नमस्कार करते हुए आपके पास आया हूँ। आपके चरणों का वन्दन करते हुए मैं अयोध्या में चला जाता हूँ। इस प्रकार बोलते हुए भरत रोने लगे। फि वे अचेत होकर गिर गए।

श्रीराम द्वारा भरत को सान्त्वना देना– भरत के ऐसे प्रेम को देखकर श्रीराम मन में दयार्द्र हो उठे। फिर दौड़ते हुए (आगे बढ़कर) उन्होंने स्वयं भरत को उठा लिया और उनको आश्वस्त करते हुए कहा– हम-तुम चारों जने एक ही पायस-पिण्ड से उत्पन्न हुए। अत: कौन किसका अपराध मान ले ? तुम व्यर्थ ही चिन्तातुर क्यों हो रहे हो। किसी को क्रोध आने पर वह अपने ही दाँतों तले अपनी जीभ को मसलता है, मानों यह जीभ को काटता है, दाँतों को उखाड़कर गिरा देता है। वैसी ही स्थिति हमारी-तुम्हारी हो रही है। करतल से करतल को पीटकर ताली बजाने में दु:ख होता है या सुख ? तुम्हारे हमारे लिए यहाँ ऐसी ही बात हो रही है। वस्तुत: हमारी तुम्हारी एकात्मता से हमें-तुम्हें अद्भुत प्रसन्नता ही होनी चाहिए, इस प्रकार श्रीराम ने भरत को पूर्णत: आश्वस्त करते हुए उनका आलिंगन किया और कहा– 'हे भरत, तुम अब अयोध्या के प्रति प्रयाण करो।' तो उन्होंने श्रीराम की इस आज्ञा को शिरसा वन्दन करके स्वीकार किया

श्रीराम के विरह के दुख से भरत का आगे चले जाने में असमर्थ हो जाना– श्रीराम की आज्ञा का तत्काल पालन करना अत्यधिक आवश्यक था। इसलिए भरत झट से चले, परन्तु उनके पाँव लड़खड़ाने लगे। फिर वे लोटते-पोटते रहकर मूर्च्छित हो गए। भरत का मन श्रीराम में उलझा रहा; उनकी आँखें श्रीराम के रूप में उलझी रहीं, उनके पाँव श्रीराम के दर्शन के लिए उन्हें खींचने लगे, तब उनकी गति कुण्ठित हो गई। उनकी वाणी श्रीराम के नाम (उच्चारण) में अटकी रही। उनकी श्रवण क्रिया श्रीराम के नाम संकीर्तन में लगी रही। उनकी समस्त क्रियाशीलता श्रीराम की भक्ति में फँसी रही। भरत की गति इससे कुण्ठित हो गई भरत के प्राण श्रीराम में अटके रहने से पंगु हो गए। उनका जीव श्रीराम में लीन हो गया। उनकी इन्द्रियाँ उनके लिए परायी हो गईं। इसलिए गति अवरुद्ध हो गई। भरत की श्रीराम से एकनिष्ठ प्रीति थी। फल-स्वरूप उनकी ऐसी अगम्य स्थिति को देखकर श्रीराम मन में सुख को प्राप्त हुए और उनसे क्या बोले ? (सुनिए)। (वे बोले–) 'हे भरत, एक भेद-भरी बात सुन लो। तुम्हारे जिस मन में मुझसे ऐसा प्रेम है, उसी मन में उसी हृदय में ऐसी गाँठ बाँधकर न रखना कि कैकेयी खोटी है। तुम्हारे मन में यह बात-स्वरूप शल्य (काँटा) दिन-रात टीस उत्पन्न कर रहा है कि कैकेयी ने मुझे वनवास के लिए भिजवा दिया, सीता को पैदल वन में भिजवा दिया। जिस हृदय में मेरे प्रति ऐसा भरापूरा (एकनिष्ठ) प्रेम हो, उसमें किसी के प्रति ऐसा कठोर द्वेष न हो' श्रीराम द्वारा ऐसा कहने पर भरत बिना किसी भ्रम के आगे बढ़े।

गुरु वसिष्ठ का युक्ति -युक्त आयोजन और श्रीराम की चरण-पादुकाएँ भरत को अर्पित करा देना-

श्लोक- (भरत के प्रति) इस प्रकार कहने वाले श्रीराम से गुरु वसिष्ठ ने यह बात कही- 'हे पुत्र ! महात्मा भरत को तुम अपनी दोनों चरण-पादुकाएँ दे दो।' गुरु वसिष्ठ द्वारा इस प्रकार कहने पर श्रीराम उनकी ओर उन्मुख हो गए और भरत से बोले '(हे भरत !) मेरी ये दोनों सुवर्ण भूषित चरण पादुकाएँ अपने (प्रतीक स्वरूप) राज्य के लिए मैंने तुम्हें दे दीं। तदनन्तर भरत ने श्रीराम की

चरण पादुकाओं को अपने मस्तक पर धारण करते हुए उनकी आज्ञा को शिरोधार्य माना। वे बोले - 'आपकी इन शुभ (फल-प्रद) चरण-पादुकाओं को लेकर मैं अयोध्या के प्रति चला जाता हूँ।'

भरत श्रीराम के प्रेम से भावुक हो उठे। वे श्रीराम के विरह (के विचार) से अत्यधिक व्याकुल हो उठे। तब इन्हें इस प्रकार विकल देखकर कृपालु गुरु वसिष्ठ बोले। उन्होंने देखा कि साक्षात् श्रीराम को छोड़कर (अयोध्या के प्रति) लौट जाने को भरत में शक्ति नहीं है। तो उन पर कृपा करते हुए उन्होंने एक युक्ति युक्त बात श्रीराम से कही। (वे बोले-) 'हे श्रीराम, एक ऐसी युक्ति है, जिससे भरत अयोध्या के प्रति अति प्रसन्नता-पूर्वक शीघ्र गति से चले जाएँगे। तुम निश्चय ही उसे आयोजित कर लो। हे रघुनाथ तुम अपनी चरण पादुकाएँ भरत के माथे पर रख दो। समझ लो कि उससे भरत सचमुच प्रसन्नता के साथ अयोध्या लौट जाएँगे, उसमें आनन्द हो होगा'। श्रीराम वैसे तो (वनवास में) जूते नहीं पहनते थे वे दीनों का उद्धार करने, वृक्षों लताओं-पाषाणों का उद्धार करने हेतु वन में नंगे पाँव विचरण किया करते थे। देखिए, श्रीराम के पाँवों में काँटे नहीं चुभते थे। उनके पाँवों (के स्पर्श) से काँटे उद्धार को प्राप्त हो जाते थे। जो पत्थर स्थान-स्थान पर अवरोध स्वरूप बन जाते थे, उनका भी उद्धार हो जाता था। श्रीराम की चरण-पादुकाएँ सुवर्ण विभूषित थीं। उन्हें लक्ष्मण अपने पास (नित्य) रखते थे। श्रीराम ने गुरु वसिष्ठ की आज्ञा को शिरोधार्य समझकर अपनी चरण-पादुकाएँ भरत को अर्पित कर दीं

भरत द्वारा माता कैकेयी को दोष न लगाने का श्रीराम को विश्वास दिलाना- श्रीराम की चरण-पादुकाओं के प्राप्त हो जाने पर भरत के मन को प्रसन्नता हुई। वे उन चरण-पादुकाओं को अपने सिर पर स्थापित करके आनन्दपूर्वक क्या बोले ? (सुनिए)। 'श्रीराम की चरण पादुकाओं को माथे पर रखने से जगत् में किसी के भी प्रति मेरा द्वेष और परायापन नष्ट हो गया अब मैं अपनी माता से द्वेष करने हेतु उसे कैसे (और कहाँ से) ले आऊँ। कैकेयी ने स्वयं को प्राप्त वरदान से श्रीराम का वन के प्रति प्रयाण करा दिया। (वस्तुतः) वह श्रीराम के लिए दूषण नहीं, भूषण है। महर्षि वाल्मीकि के कथन से यह रहस्य मुझे विदित हुआ। अब उससे कौन द्वेष करेगा' ? तत्पश्चात् स्वयं भरत और शत्रुघ्न ने गुरु वसिष्ठ के चरणों का वन्दन किया, श्रीराम को नमस्कार किया। फिर भरत ने स्वयं क्या कहा ? (सुनिए) 'हे रघुनाथ, आपकी चरण-पादुकाएँ मैंने माथे पर रखी हैं। बिना आपसे फिर से मिले, उन्हें किसी भी प्रकार से (बिल्कुल) नहीं उतारना है। जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति- इन तीनों अवस्थाओं में प्रातःकाल-सायंकाल और रात- इन तीनों काल में इसी अवस्था में (मेरे माथे पर) रहेंगी। ये चरण-पादुकाएँ ही मेरा जीवन हैं; ये चरण-पादुकाएँ ही मेरे लिए देवता (और उनका) पूजन-स्वरूप हैं, मुझे इन चरण-पादुकाओं का नित्य पूजन करना है। (इनके द्वारा) मुझे आप श्रीराम के चरणों का नित्य ध्यान करना है। हे श्रीराम, आपकी जो ये चरण-पादुकाएँ हैं, वे तो मेरे लिए साक्षात् परमात्मा हैं'। इस प्रकार भरत ने उन चरण-पादुकाओं की महिमा का वर्णन किया और वे श्रीराम को नमस्कार करके चले चलते समय दण्डवत् नमस्कार करके स्वयं भरत क्या बोले ? (सुनिए)। 'हे गुरु वसिष्ठ, बन्धुवर श्रीराम और आप सब ध्यान से सुनिए।'

भरत की प्रतिज्ञा और नन्दिग्राम में निवास करते हुए उनका शत्रुघ्न द्वारा अयोध्या का राजकाज करवाना-

श्लोक- 'मैं बिना माता कैकेयी और बन्धु शत्रुघ्न को साथ में लिए नन्दिग्राम जाऊँगा और वहाँ पर श्रीराम के बिना (श्रीराम की अनुपस्थिति में) इस समस्त दुःख को सहन करूँगा। राजा दशरथ स्वर्ग

में गये हैं। मेरे गुरु सदृश (ज्येष्ठ) बन्धु श्रीराम वनवासी हो चुके हैं। इसलिए मैं (शत्रुघ्न द्वारा) पृथ्वी (राज्य) का परिपालन कराते हुए श्रीराम के आगमन की प्रतीक्षा करता रहूँगा।'

(भरत बोले-) 'मैं श्रीराम की अनुज्ञा से अयोध्या के प्रति प्रयाण कर रहा हूँ परन्तु मैं वहाँ जाने पर भी श्रीराम की अनुपस्थिति में अयोध्या नगरी में नहीं रहूँगा। अपने राज्य का त्याग करके पिताश्री राजा दशरथ वैकुण्ठ लोक में प्रविष्ट हो गए हैं, फिर श्रीराम को वन में छोड़कर (रहने देकर) मैं राज-भवन में नहीं रहूँगा। मैं आप सब लोगों से निवेदन करता हूँ- मैं अब नन्दिग्राम में रहूँगा। मैं सचमुच अयोध्या के राजकारोबार को वहाँ से चला दूँगा। सिंहासन पर श्रीराम को विराजमान न देखते रहते, मुझे इस दुःख भरी मन-स्थिति को अपने वश में नहीं किया जा पाएगा। अतः मैं अयोध्या में न जाकर शत्रुघ्न के माथे पर राज्य-कार्य-भार सौंप दूँगा। बिना श्रीराम के अयोध्या को आँखों से देखने से मुझे अपार दुःख होगा। इसलिए मैं उससे नहीं मिलूँगा। उसके अन्दर नहीं जाऊँगा। वहाँ के निवास-सम्बन्धी कोई भी बात मुझे अच्छी नहीं लगेगी। समझिए कि मैं नन्दिग्राम में निवास करूँगा और अपनी अनुमति के अनुसार अयोध्या के राज्य का प्रबन्ध शत्रुघ्न के हाथों करा लूँगा। इस प्रकार हम दोनों भरत और शत्रुघ्न श्रीराम की चरण-पादुकाओं को सामने (उन्हें सर्वोपरि मानकर) रखेंगे और ये चरण-पादुकाएँ ही अपनी नगरी अयोध्या के राज्य का सम्पूर्ण प्रबन्ध कर लेंगी। (मुझे विश्वास है-) चरण-पादुकाओं का ऐसा पूर्ण प्रताप है कि (उनके सिंहासन पर रहते) कौन (टेढ़ी दृष्टि से) अयोध्या की ओर देख सकेगा ? इन चरण-पादुकाओं द्वारा किये जानेवाले राज्य-प्रबन्ध का ऐसा स्वरूप होगा कि कलिकाल में भी उससे कुछ छीन लेने हेतु किसी से लिपटने की, पास में आने की शक्ति नहीं होगी। श्रीराम की इन चरण-पादुकाओं की ध्वनि को कानों से सुनते ही यमदेव, कालपुरुष (विनाश के देवता) उन्हें दण्डवत् नमस्कार करते हुए (उनकी शरण में) आ जाएँगे। इन चरण पादुकाओं की राज्य व्यवस्था का स्वरूप ऐसा होगा कि इन्द्र आदि देव भी उनके (अर्थात् श्रीराम के) पाँव लग जाएँगे। जिन चरण-पादुकाओं की सामर्थ्य ऐसी है, उन्हीं की उस (कृपा) सामर्थ्य से, मेरे सौभाग्य से वे मेरे हाथ आयी हैं। हे कृपालु श्रीराम ! उन्हें मैंने अपने माथे पर दृढ़ता के साथ स्थापित किया है। इन चरण-पादुकाओं को प्राप्त करते ही श्रीराम के वियोग का दुःख पूर्णतः नष्ट हुआ है। श्रीराम ! इन पादुकाओं के दर्शन से मुझे अपार आत्मिक सुख प्राप्त हुआ है आगे चलकर जब श्रीराम मुझसे पुनश्च मिलेंगे, तब तक मेरा यही व्रत होगा- मैं आत्मिक आनन्द के साथ इन चरण-पादुकाओं को अनवरत अपने मस्तक पर वहन करूँगा। श्रीराम वन में रह रहे हैं। इसके दुःख को मैं भूल गया हूँ; क्यों कि श्रीराम अपनी चरण-पादुकाओं के रूप में दिन-रात मेरे पास रहनेवाले हैं हे रघुनाथ, यहाँ से अब मुझे आपसे कोई वियोग अनुभव नहीं हो रहा है। भरत ने आत्मानन्द के साथ गरजकर (उच्च स्वर में) यह कहा। उनके मन को प्रसन्नता हुई। भरत की बात को सुनकर श्रीराम सुख-सम्पन्न हो गए। उन्होंने भरत और शत्रुघ्न दोनों ही का आलिंगन किया, तो वे भी सुख सम्पन्न हो गए।

श्रीराम द्वारा वन से लौट आने का भरत को अभिवचन देना– (श्रीराम भरत से बोले) 'चौदह वर्ष और चौदह दिन के पश्चात् मैं नियम (शर्त) के अनुसार निश्चय ही तुम्हारे पास लौट आऊँगा। इस सम्बन्ध में तुम अपने मन में कोई सन्देह न रखना'। श्रीराम ने इस प्रकार कहा– तो उसे भरत शत्रुघ्न ने यथार्थ (सत्य) मान लिया और उन्होंने अपने अपने दोनों हाथ जोड़कर फिर दण्डवत् नमस्कार किया। इस प्रकार बन्धु बन्धु में एकात्मता हो गयी। बन्धु-बन्धु में अद्भुत प्रेम प्रतिष्ठित एवं सिद्ध हो गया। इस कारण से श्रीराम ने चित्रकूट का नाम 'बन्धु' रखा। चारों बन्धुओं की एकात्मता चित्रकूट पर्वत पर उनके

हाथ आयी, अर्थात् उसका प्रतिष्ठित होना अनुभव हो गया। इसलिए चित्रकूट का एक नाम (वन्धु) स्वाभाविक रूप से सचमुच यथोचित जान पड़ता है।

भरत-शत्रुघ्न का अयोध्या के प्रति प्रस्थान– श्रीराम के पाँव लगकर भरत और शत्रुघ्न ने लक्ष्मण और जानकी को नमस्कार किया और उन तीनों की परिक्रमा की। इससे भरत और शत्रुघ्न को प्रसन्नता हुई। श्रीराम की चरण पादुकाओं के (भरत द्वारा अपने) माथे पर रखने के पश्चात् भरत और शत्रुघ्न दोनों रथ पर आरुढ़ हो गए। नगाड़ों और भेरियों को बजाया जाने लगा। इस प्रकार गाजे-बाजे के साथ वे चले। श्रीराम ने अपनी समस्त माताओं को सान्त्वना देते हुए सुख-सम्पन्न कर दिया, फिर उनके चरणों में माथा टेककर उन सबको विदा किया। सैनिकों, सेनानियों, मन्त्रियों ने भी श्रीरघुनन्दन राम का वन्दन किया और उससे सुख-सम्पन्न होकर वे भी अयोध्या के प्रति चले। गाजे-बाजे के साथ भरत अत्यधिक प्रसन्नता से प्रयाग आ गए। उन्होंने ऋषि भरद्वाज से मिलकर उन्हें समस्त वृत्तान्त बता दिया। श्रीराम अपनी चरण-पादुकाओं को भरत के माथे पर प्रतिष्ठित देखकर ऋषि भरद्वाज हर्ष को प्राप्त हो गए और बोले– 'हे भरत, तुम तीनों लोकों में धन्य हो। परम हर्ष विभोर होकर उन्होंने भरत का आलिंगन किया और उन्हें आशीर्वाद देते हुए उनका अयोध्या के प्रति प्रस्थान करा दिया। गज दल द्वारा गर्जन करते रहते, भरत गंगा नदी को झट से पार करके गुहराज की नगरी शृंगवेरपुर में आ गए, उनके माथे पर श्रीराम की चरण पादुकाओं को देखकर गुहराज ने भरत को दण्डवत् नमस्कार दिया। तदनन्तर उनके चरणों का शिरसा वन्दन करके वे हर्षविभोर होकर नाचने लगे। (वे बोले-) 'हे भरत, आप को श्रीराम की चरण-पादुकाएँ प्राप्त हुईं और आपने उन्हें माथे पर प्रतिष्ठित कर लिया। आपका भाग्य धन्य है। आप (तभी तो) श्रीराम के प्यारे हैं'। भरत को गुहराज से मिलकर- उन्हें गले लगाते हुए परम सुख अनुभव हुआ। फिर वे अपनी सेना सहित शीघ्रता से अयोध्या की ओर चले। अयोध्या को देखकर भरत के चित्त को सुख अनुभव हो गया। वहाँ समस्त माताओं को ठहराकर वे नन्दिग्राम के प्रति चले.

भरत द्वारा नन्दिग्राम में श्रीराम की चरण-पादुकाओं की सेवा करना–

श्लोक– धर्मात्मा भ्रातृवत्सल वीर भरत ने अपने मस्तक पर श्रीराम की चरण-पादुकाओं को स्थापित किया था। वे रथ पर विराजमान होकर नन्दिग्राम में प्रविष्ट हो गए।

भ्रातृ-वत्सल वीर भरत शीघ्रता से रथ पर विराजमान हो गए। उनका मस्तक श्रीराम की चरण-पादुकाओं से शोभायमान था। वे शीघ्र गति से नन्दिग्राम आ गए। नन्दिग्राम के बाह्य भाग में अपने मस्तक पर श्रीराम की चरण-पादुकाओं को स्थापित किये हुए राजपुत्र (पूर्वघटित बातों के कारण) अनुताप को प्राप्त हुए थे। वे वहाँ पर अनुताप से तापस हो गए- राजर्षि हो गए। उन्होंने समस्त माताओं को तथा (अपने प्रति सब प्रकार से) अनुकूल (पति परायण) अपनी पत्नी को अयोध्या नगरी में रखा और बिना किसी राज-भोग का स्पर्श किये वे (नन्दिग्राम में) श्रीराम की (पादुकाओं की) सेवा के व्रत का निर्वाह करने लगे। वन में रहते हुए श्रीराम जिस-जिस व्रत का पालन करते थे उस-उस व्रत को भरत ने स्वीकार किया। इस विषय में (आदिकवि वाल्मीकि-विरचित) श्लोक ध्यान से सुनिए।

श्लोक– सेनासहित प्रभावशाली धीर-वीर भरत ने उस समय वल्कल और जटा धारण करके मुनिवेषधारी होकर नन्दिग्राम में निवास किया। भरत राज्य शासन का समस्त कार्य श्रीराम की चरण पादुकाओं से निवेदन करते हुए किया करते थे तथा स्वयं ऊपर छत्र धारण करते थे और चँवर डुलाते थे।

भरत ने राज्य वैभव को दूर (अयोध्या में ही) छोड़ दिया। उन्होंने जटा और वल्कल धारण किये। श्रीराम की चरण-पादुकाओं को मस्तक पर प्रतिष्ठित कर वे जल और फलों का सेवन करके रहने लगे।। (उन्होंने यह निर्णय कर लिया था कि) जब श्रीराम का (अयोध्या में) आगमन होगा, तब तक मुझे न भोजन करना है न आँखों से खाद्यान्न (भोज्य पदार्थ) देखना है; जल-प्राशन तथा फलों के आहार से देह धारण करना है। वे श्रीराम की चरण-पादुकाओं का भजन भक्ति करते थे, उन्हीं का पूजन करते थे उन्हीं का ध्यान करते थे। वे नित्य श्रीराम का ही स्मरण-चिन्तन करते थे। वे श्रीराम की चरण-पादुकाओं के ऊपर छत्र धारण करते थे, मोतियों से जटित झालर से युक्त आतपत्र को उसका सुवर्ण-दण्ड हाथ में लेकर अनवरत डुलाते रहते थे। श्रीराम के नाम का स्मरण करते हुए जब भरत का जी नहीं भरता था, तब वे साधु-सन्तों को इकट्ठा करके श्रीराम की कथा का (व्याख्या-स्वरूप) कथन करते थे। श्रीराम की आज्ञा को स्वीकार करके भरत फिर से अयोध्या लौट आये। पर तब भी वे श्रीराम की चरण-पादुकाओं का अत्यधिक प्रेम के साथ एकाग्रचित से भजन (भक्ति, सेवा) करते रहते। श्रीराम की आज्ञा के (पालन के) लिए उन्होंने सब कुछ समर्पित करते हुए मानों अपने प्राणों को ही बेच दिया। उधर भरत को आज्ञा के अनुसार शत्रुघ्न अयोध्या के राज्य की सुरक्षा (आदि का प्रबन्ध) करने लगे। शत्रुघ्न आठों पहर अनवरत भरत के अत्यधिक आदर एवं तत्परता के साथ आज्ञाकारी बने रहे। वे उनकी आज्ञा का अणु मात्र भी उल्लंघन (उपेक्षा, अनादर, अवज्ञा) नहीं करते थे। वहाँ बहुत से तापस थे, अनुष्ठान-कर्ता थे। परन्तु उन सब में भरत महान ऋषि (सिद्ध हो गए) थे। वे प्रतिदिन, तल्लीन होकर श्रीराम की भक्ति में ही रँगे रहते थे।

श्रीराम-चरणपादुकाधारी भरत का प्रभाव–

श्लोक– नन्दिग्राम (जाति, व्यवसाय आदि की दृष्टि से) विविध प्रकार के जन समुदायों से व्याप्त रहता था। भरत प्रति दिन और रात श्रीराम की चरण-पादुकाओं का पूजन किया करते थे। श्रीराम के (गुणादि में) श्रेष्ठ, परन्तु अवस्था में कनिष्ठ बन्धु शत्रुघ्न विविध प्रकार के राज कार्यों को उनकी चरण-पादुकाओं की आज्ञा के अनुसार यथाविधि सम्पन्न किया करते थे।

नन्दिग्राम के बाह्य भाग में भरत मुनि-वेष धारण करके रहते थे, दूर दूर रहने वाले योगी, दिगम्बर संन्यासी वहाँ पर उनके पास आते रहते थे। वहाँ उनके पास तपोराशि ऋषिगण आ गए, आगम-निगमों के बड़े-बड़े ज्ञाता आ गए; जाप करने वाले, ध्यान धारण करनेवाले, मुमुक्षु जन, साधु-सज्जन आ गए, देश-देश के प्रजाजन आ गए, मन्त्री आ गए। श्रीराम की कथा का श्रवण करने में श्रद्धाशील बहुत-से लोग आ गए। भरत की आज्ञा की प्रतीक्षा में शत्रुघ्न हाथ जोड़े खड़े रहते थे। भरत के मुख से (वर्णित) श्रीराम की कथा को सुनकर लोगों को सन्तोष होता था। इसी प्रकार भरत द्वारा की जानेवाली चरण पादुकाओं की पूजा (आदि भक्ति) को देखकर समस्त लोग विस्मय को प्राप्त होते थे। नित्य प्रति भरत की संगति में रहकर श्रीराम की कथा का श्रवण करते हुए लोग दिन रात श्रीराम का स्मरण करते थे। भरत की रामभक्ति को देखकर वे सुख-सम्पन्न हो जाते थे। जब भरत श्रीराम की चरण-पादुकाओं को मस्तक पर स्थापित करके ले आये, तब से (उन्हें दिखायी दिया कि) राज्य में अधर्म की (धर्म के विरोधी) कोई घटना नहीं हो रही थी। उसी प्रकार कहीं कोई अकर्मण्य (अनुचित, धर्म-प्रतिकूल) कार्य के किये जाने का कोई समाचार नहीं मिलता था। (देखिए) राजा की आज्ञा किस

प्रकार समर्थ (अर्थात् सर्वोपरि मानी जाती) थी उससे समस्त प्रजाजन सत्यवादी हो गए थे। वे अपने धर्म (कर्तव्य) कर्म करने में नित्य लीन रहते थे। वे सब श्रद्धाशील श्रीराम-भक्त हो गए थे। राज्य के निवासी जन (नागरिक) स्वभावतः ही श्रीराम-नाम का स्मरण किया करते थे। वे अपनी जीविका चलाने हेतु कोई काम करते समय दिन-रात श्रीराम (के नाम, कर्म आदि) का चिन्तन करते रहते थे।

भरत की भक्तिशीलता को देखकर देश-देश के समस्त राजा उनसे मिलने हेतु बड़े-बड़े वायन (उपहार) लेकर आते थे। वे राजा उपहार स्वरूप में भरत को देने के लिए रत्न, धन, हाथी, अश्व लेकर आते थे। परन्तु भरत अपने मन में निरीह थे। इसलिए वे उन्हें स्पर्श तक नहीं करते थे। श्रीराम के नाम का स्मरण करते रहने से भरत के क्रोध, काम जैसे विकार अस्त को प्राप्त हो गए; उनका लोभ, संभ्रम अर्थात् सम्मान-प्राप्ति सम्बन्धी लोभ नष्ट हो गया। इस प्रकार भरत निष्काम हो गए। उन्होंने समस्त उपहार लौटा दिये। उन्होंने स्वयं समस्त राजाओं का सम्मान पूर्वक गौरव किया। श्रीराम के प्रताप से भरत तीनों लोकों मे अत्यधिक उदारचरित व्यक्ति के रूप में विख्यात हो गए। श्रीराम के छोटे बन्धु भरत श्रीराम का स्मरण करते रहने के फल स्वरूप प्रज्ञा प्रबुद्ध आत्मज्ञान में वरिष्ठ सिद्ध हो गए। उन्हें श्रीराम की भजन भक्ति से अथाह (आत्म-) ज्ञान प्राप्त हो गया। फलतः नन्दिग्राम में आत्मिक आनन्द का ही निवास था (आत्मानन्द छाया हुआ था)। इस प्रकार अथाह भक्ति और श्रद्धा की स्थिति में भरत नन्दिग्राम में निवास करते थे। अब उधर वन में रहते हुए श्रीराम जो ख्याति प्राप्त करेंगे (जो शौर्य प्रदर्शित करेंगे), उसके विषय में सुन लीजिए।

अयोध्याकाण्ड का उपसंहार

राज्य प्राप्ति सम्बन्धी लोभ का रघुपति श्रीराम ने पूर्णतः त्याग करके वन में जाकर निवास किया इस प्रकार श्रीराम ने अयोध्या में घटित और उसके फल स्वरूप अन्यत्र घटित घटनाओं की समाप्ति के साथ (अयोध्या में घटित एवं तत्सम्बन्धित घटनाओं के प्रकरण स्वरूप) अपने जीवन के अयोध्याकाण्ड को समाप्त किया। अपनी सौतेली माता कैकेयी की आज्ञा का अत्यधिक प्रेमपूर्वक प्रतिपालन करते हुए श्रीराम ने वन में जाकर निवास किया। इस प्रकार श्रीराम ने (अयोध्या एवं तत्सम्बन्धित घटनाओं के प्रकरण स्वरूप अपने जीवन के) अयोध्याकाण्ड को समाप्त किया। पिताश्री राजा दशरथ के देहावसान के घटित हो जाने पर भी रघुपति श्रीराम ने अपने वचन का त्याग नहीं किया और वन में जाकर उन्होंने निवास किया। इस प्रकार श्रीराम ने (अयोध्या में घटित एवं तत्सम्बन्धित घटनाओं के प्रकरण स्वरूप अपने जीवन के) अयोध्याकाण्ड को समाप्त किया। माता कौशल्या द्वारा गिड़गिड़ाते हुए प्रार्थना करने पर भी श्रीराम ने निश्चय ही मौन धारण किया और वन में जा कर निवास किया। इस प्रकार श्रीराम ने (अयोध्या में घटित एवं तत्सम्बन्धित घटनाओं के प्रकरण स्वरूप अपने जीवन के) अयोध्याकाण्ड को समाप्त किया। सीता अपने पति के साथ वन के प्रति पैदल जा रही थी, फिर भी उसके पति श्रीराम ने इसमें दुख नहीं माना और वन में जाकर निवास किया। इस प्रकार श्रीराम ने (अयोध्या में घटित एवं तत्सम्बन्धित घटनाओं के प्रकरण स्वरूप अपने जीवन के) अयोध्याकाण्ड को समाप्त किया। क्षोभ को प्राप्त होकर लक्ष्मण ने (कैकेयी आदि के विषय में) जो कहा, उससे रघुपति श्रीराम ने कोई क्षोभ नहीं माना और वन में जाकर निवास किया। इस प्रकार श्रीराम ने (अयोध्या में घटित एवं तत्सम्बन्धित घटनाओं

के प्रकरण स्वरूप अपने जीवन के) अयोध्याकाण्ड को समाप्त किया। भरत अत्यधिक प्रेमपूर्वक श्रीराम को (अयोध्या में लौटा) ले जाने के लिए (चित्रकूट पर) आ गए। परन्तु उन्होंने भरत को सुख-सम्पन्न अवस्था प्राप्त कराकर विदा किया और स्वयं वन में निवास किया। इस प्रकार श्रीराम ने (अयोध्या में घटित एवं तत्सम्बन्धित घटनाओं के प्रकरण-स्वरूप अपने जीवन के) अयोध्याकाण्ड को समाप्त किया। श्रीराम ने अपने प्रचण्ड (बहुत बड़े विस्तार से युक्त) राज्य का त्याग करते हुए (मानों) वैभव (की लालसा) को दण्ड दिया, नाना प्रकार के सुखोपभोगों के मुँह को कुचल डाला (भोग-लालसाओं को नष्ट किया)। इस प्रकार श्रीराम ने (तापस रूप में वन में जाकर निवास किया और अयोध्या में घटित एवं तत्सम्बन्धित घटनाओं के प्रकरण स्वरूप अपने जीवन के) अयोध्याकाण्ड को समाप्त किया। (अयोध्या में रहते और तदनन्तर श्रीराम के जीवन में दारुण दुःख आ गया; परन्तु उन्होंने स्वयं उसको छिन्न-विच्छिन्न अर्थात् उसका निराकरण किया; मोह के मुँह को काला बना दिया (और वन में निवास किया) इस प्रकार श्रीराम ने (अयोध्या में घटित एवं तत्सम्बन्धित घटनाओं के प्रकरण-स्वरूप अपने जीवन के) अयोध्याकाण्ड को समाप्त किया। अहंकार अत्यधिक कठोर होता है परन्तु श्रीराम ने उसे उस प्रकार पीस डाला जैसे मूँग के साथ कंकड़ पीसा जाता है। फिर उसे परिणाम स्वरूप में मधुर बना दिया। इस प्रकार श्रीराम ने (अयोध्या में घटित एवं तत्सम्बन्धित घटनाओं के प्रकरण-स्वरूप अपने जीवन के) अयोध्याकाण्ड को समाप्त किया। वन (में निवास करना) दुस्तर (पार करने, निवास करने की दृष्टि से अति कठिन) होता है, अतः वहाँ रहने में दुर्दम्य भय होता है। परन्तु श्रीराम ने उस भय के मुँह को कुचल डाला और अपने वनवास को मधुर बना दिया। इस प्रकार श्रीराम ने (अयोध्या में घटित एवं तत्सम्बन्धित घटनाओं के प्रकरण-स्वरूप अपने जीवन के) अयोध्याकाण्ड को समाप्त किया।

(कवि कहता है कि मैंने उपर्युक्त घटनाओं का वर्णन करते हुए श्रीभावार्थ-रामायण नामक अपनी रचना के अयोध्याकाण्ड को समाप्त किया।)

(कवि कहता है कि) इसके पश्चात् रघुनन्दन श्रीराम (सीता और लक्ष्मण सहित) दण्डकारण्य में जाकर रहेंगे। वे वहाँ त्रिशिरा, खर और दूषण नामक राक्षसों का (उनकी सेना सहित) निर्दलन कर डालेंगे। मैं एकनाथ अपने गुरु श्रीजनार्दन स्वामी की शरण में स्थित हूँ (उन्हीं की प्रेरणा एवं कृपा से कही जाने वाली) यह रामायण-कथा अथाह है। वह परम आनन्दप्रद तथा परिपूर्ण रूप से रसमय (रसात्मक) है। उसके अन्तर्गत अब श्रीराम के दण्डकारण्य-निवास के विषय में कहा जाएगा।

॥ **स्वस्ति** ॥ श्रीमद्रामायण की एकनाथ-कृत 'श्रीभावार्थ-रामायण' नामक टीका के अन्तर्गत 'भरत अयोध्यागमन नन्दिग्रामवास' शीर्षक यह अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

॥ इति अयोध्याकाण्ड ॥

अरण्यकाण्ड

अध्याय १

[जाबालि ऋषि का निवेदन तथा श्रीराम का जनस्थान की ओर प्रस्थान]

श्रीराम एक बृहद् आम्रवृक्ष के समान हैं। उस पर वाल्मीकि रूपी कवि कोकिल भी विद्यमान हैं नारद रूपी बसन्त का कला-तेज प्रस्फुटित हो रहा है। मधुर स्वरों में आलाप की ध्वनि गुंजायमान हो रही है उन मधुराक्षरों में श्रीराम का मधुर नाम विद्यमान है, जो समस्त सुखों का सार है और जिसने इस चराचर जगत् को सुखी किया है। उस सुख से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर डोल रहे हैं। राम शब्द का उच्चार बार बार करने से मरा-मरा शब्द उसकी प्रतिध्वनि के रूप में सुनाई देते हैं इन्हीं दो अक्षरों से नारद ने वाल्मीकि को उपदेश दिया और उसका उद्धार हो गया। नाम शुद्ध हो अथवा अशुद्ध, जो उसका जाप करता है वह स्वयं शुद्ध और पवित्र हो जाता है। श्रीराम का नाम इस संसार में वंदनीय है परमानन्द की प्राप्ति हरिनाम से ही सम्भव है। इस नाम की इतनी महिमा है कि वाल्मीकि जैसा डाकू इस संसार से तर गया। यह नाम पवित्र और संसार का उद्धार करने वाला है। यह नाम महापापियों का भी उद्धार करता है। अन्य कवि यदि गर्जन करने वाले गज हैं तो वाल्मीकि कवि वनराज सिंह के सदृश हैं, जो श्रीराम के नाम का सिंहनाद करता है और सम्पूर्ण वन को नौरसों से परिपूर्ण करता है। नौरसों का रसिक नवरंगों से युक्त रघुकुलतिलक जिनके नाम से युक्त एक एक श्लोक सुखदायक है, हास्यादि नौरसों से युक्त श्रीराम-रस से उन्हें सुख की प्राप्ति होती है। इसी कारण वाल्मीकि नाम के उच्चारण से कविकुल पवित्र होते हैं। श्रीराम के नाम के बिना यह मुख मात्र चर्मकुंड के समान है और जीभ चमड़े का टुकड़ा मात्र है, वह भी कविता के काँटों से कटी हुई। राम कथा सुनने से पापों का प्रक्षालन होता है। नाम के प्रभाव से वेश्या का भी उद्धार हो गया। राम के नाम से वाणी पवित्र होती है। इस राम कथा की महिमा ही है कि भगवान् शिव भी प्रेमवश उसकी वंदना करते हैं। सम्पूर्ण पृथ्वी पर यह कथा वंदनीय है। मेरे सदृश दुर्बल दीन के लिए अत्यन्त विषद रामायण का आकलन असम्भव है परन्तु सदगुरु जनार्दन की महती कृपा ही मेरे द्वारा उसका वर्णन करवा रही है। जो लिंग देह का नाश करता है, जिसके कारण उसे जनार्दन नाम से विभूषित किया गया है, जो शास्त्रार्थों की व्याख्या करता है। परन्तु हम लोगों को यहाँ शास्त्रार्थ से कोई प्रयोजन नहीं है। हमें मात्र राम कथा का श्रवण और मनन करना है। अतः सावधानीपूर्वक सुनें–

भरत अयोध्या वापस लौट आये और श्रीराम वन में ही रह गए। वहाँ एक दिन क्या घटित हुआ, वह वृत्तान्त सर्व प्रथम सुनिये। भरत के अयोध्या वापस जाने के पश्चात् चित्रकूटवासी ऋषिवर अत्यन्त उद्वेगपूर्वक एक दूसरे को कुछ बता रहे थे। वे श्रीराम की ओर इंगित कर परस्पर कुछ बोल रहे थे। यह देखकर रघुपति का मन सशंक हो उठा। वह विचार करने लगे– "भरत सैन्य सहित आया था, ऋषियों को इस कारण तो कोई कष्ट नहीं हुआ होगा ? अथवा मेरे द्वारा कोई अधर्मपूर्वक आचरण तो नहीं हो

गया ? या फिर लक्ष्मण ने तो इनका कोई अपमान नहीं कर दिया ? अथवा सीता द्वारा कोई अधर्म तो नहीं घटित हुआ ? ऐसी चिंता श्रीराम के मन में व्याप्त हो गई। जब जाबालि ऋषि को इस बात का पता चला तो वे तुरन्त श्रीराम के पास आये।

जाबालि ऋषि का निवेदन– जाबालि ऋषि अत्यन्त वृद्ध एवं एक प्रसिद्ध तपस्वी थे, उन्होंने अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की थी। वे अत्यन्त ज्ञानी एवं प्रबुद्ध ऋषि होने के साथ-साथ समस्त विद्वानों में प्रसिद्ध थे। उन्होंने हाथ जोड़कर अत्यन्त मृदु स्वरों में श्रीराम से नम्र निवेदन किया– "श्रीराम ! आपके द्वारा जाग्रत अवस्था में, स्वप्न में अथवा सुषुप्तावस्था में भी कभी कोई दुष्कृत्य होना सम्भव नहीं है, वरन् आपका तो मात्र नाम स्मरण करने से सारे पापी इस भवसागर से तर जाते हैं, फिर आप सशंकित क्यों हैं ? आपका मुख निष्कलंक चन्द्र के समान है। आपके श्रीमुख के दर्शन मात्र से करोड़ों जन्मों के दुःख दूर हो जाते हैं और परमसुख की प्राप्ति होती है। लक्ष्मण द्वारा कुछ अनुचित घटित हो सकता है यह बात किसी अज्ञानी को भी सच नहीं लगेगी। हे श्रीराम, आपके भक्तों से कभी दुष्कृत्य घटित हो ही नहीं सकता यह निश्चित है। अगर कभी भक्त के द्वारा ऐसा कोई अपवित्र कार्य घटित हो भी गया तो आप उसे भी अपनी कृपा दृष्टि से पवित्र कर देते हैं। प्रह्लाद के द्वारा अपने पिता की हत्या करवाने का अत्यन्त अपवित्र कार्य घटित हुआ परन्तु प्रह्लाद का पितृघात तीनों लोकों में वदनीय सिद्ध हुआ। जिनके द्वारा अपनी माँ की हत्या हुई, ऐसे भक्त को आपने अपना आप्त स्वकीय माना वे तीनों लोकों में परम पवित्र सिद्ध हुए। मातृघातकी परशुराम, पितृघातकी प्रह्लाद इन दोनों का नाम लेने मात्र से स्वानन्द की अनुभूति होती है तथा श्रीराम से मिलन होता है। प्रह्लाद तो भक्तों का मुकुटमणि और प्रातः स्मरणीय सिद्ध हुआ तथा ब्रह्मचारियों में श्रेष्ठ भार्गव, जिसकी वेद पुराणों में भी स्तुति की गई है, उनसे भी श्रेष्ठ सौमित्र है जो आपका परम भक्त है, सखा है। वह अत्यन्त पवित्र है; उसके द्वारा तो निश्चित रूप से कुछ अनुचित घटित हो ही नहीं सकता।

अयोनिजा जनकनन्दिनी सीता आपकी धर्मपत्नी हैं– उनके द्वारा जाग्रत अवस्था में, स्वप्न में अथवा सुषुप्तावस्था में कोई अधर्मपूर्ण कार्य नहीं हो सकता। आप में से किसी के द्वारा अधर्म-पूर्ण आचरण होने की आशंका भी किसी के मन में नहीं है। वे ऋषि जो कह रहे थे, उस विषय में मैं आपको बताता हूँ, वह ध्यानपूर्वक सुनें। जनस्थान में रहने वाले ऋषि राक्षसों द्वारा तपस्वियों की प्रताड़ना देखकर भयभीत हो गए हैं। उस भय के विषय में आपको बताने हेतु ऋषियों का मन सशंकित हो रहा है। अतः उन्होंने मेरे द्वारा आपको इस कथा को सुनाने का निश्चय किया है। आप उसे सुनें रावण का खर नामक छोटा भाई तपस्वियों के कार्य में बाधा डाल रहा है। वह भयानक राक्षस है। त्रिशिर, खर और दूषण ये तीनों राक्षस अपने चौदह हज़ार राक्षसों के सैन्यबल के साथ उस जनस्थान में रह रहे हैं। उन राक्षसों से भयभीत ऋषि, आपका आश्रम यहाँ होने की बात सुनकर, आप उन राक्षसों का अंत करेंगे इस भावना से यहाँ पर आये हुए हैं।

राक्षसों का भय और गुप्त स्थान की सूचना– आज एक नयी वार्ता आने के कारण ये ऋषि भयग्रस्त हो गए हैं। हे रघुनाथ, इसी कारण वे आपको छोड़कर दूसरे पर्वत पर जाने की बात सोच रहे हैं। राक्षसों ने खर से कहा है कि ऋषिगण श्रीराम के साथ चित्रकूट में रह रहे हैं। अतः वह स्वयं यहाँ आकर अपने दोनों भाइयों एवं सेना के साथ धावा बोलकर राम-लक्ष्मण को मारकर सीता का अपहरण कर ले जायेगा। आप परमपुरुषार्थी होने के कारण आपके सामने आने की उनकी हिम्मत नहीं है क्योंकि

आपकी ख्याति से वे अवगत हैं। एक ही बाण से आपने त्राटिका (ताड़का) का वध कर दिया, सुबाहु और मारीच को मार गिराया अतः आपसे युद्ध करने का तात्पर्य उनका प्राणान्त ही है, इस तथ्य से वे भलीभांति अवगत हैं, जिस धनुष ने रावण को भी त्रस्त कर दिया था, उसे सहज ही हाथ में लेकर आपने दो टुकड़े कर दिये, ऐसे पराक्रमी से युद्ध न करना पड़े इस हेतु से निद्रा में ही आपको मारने की उनकी योजना है और इसी कारण ये ब्राह्मण और ऋषि भयग्रस्त हैं। आपको ये बताने में उन्हें संकोच हो रहा है, इसी कारणवश मैं आपको यह बता रहा हूँ। हे श्रीराम ! यहाँ पर एक गुप्त वन है, ये भयभीत ऋषि वहीं जा रहे हैं। आप भी शीघ्र वहाँ के लिए प्रस्थान करें। यहाँ से निकट होते हुए भी यह वन अत्यन्त गहन होने के कारण एक गुप्त स्थान के समान है। वहाँ फल-मूल, गंगाजल एवं विश्राम स्थल तीनों ही उपलब्ध हैं। ऋषिवरों की यह इच्छा है कि आप तीनों उनके साथ वहाँ के लिए प्रस्थान करें। ऋषिवर इसी विषय पर विचार विमर्श कर रहे थे, जिससे आपके मन में शंका का भाव उत्पन्न हुआ।

श्रीराम ने यह सुनकर समस्त ऋषियों को हाथ जोड़कर नमन किया और विनती की– "आप सब आश्रम में सुख से रहें, उन राक्षसों को मैं देखता हूँ। गौ, ब्राह्मणों की रक्षा करना ही हमारा व्रत और धर्म है। मेरे द्वारा आपका रक्षण करने पर आपको भयभीत होने का कोई कारण नहीं। मैं बाणों से मेरु पर्वत भेद डालूँगा और राक्षसों का संहार कर दूँगा। मैं रघुवीर आपका सेवक हूँ, मेरे होते हुए आपको कैसा भय ?" श्रीराम के ये वचन सुनकर समस्त ऋषिगण सोचने लगे 'सैन्यबल सहित तीनों राक्षसों का ये दोनों किस प्रकार सामना करेंगे ? इनमें से एक सीता की रक्षा करेगा; राक्षसों का सामना करने के लिए अकेले राम ही बच जायेंगे, वे अकेले उनका सामना किस प्रकार कर पाएँगे ? इससे पूर्व जब इन्होंने सुबाहु को मारा था, उस समय सीता नहीं थी, दोनों भाइयों ने एकात्मता से सुबाहु को मार गिराया था। स्त्री की चिन्ता के कारण पुरुषार्थ में धैर्य नहीं रह पाता, स्त्री के प्रति आसक्ति मन में रहने पर सर्वथा विजय नहीं प्राप्त हो सकती'।

वे तीनों राक्षस-बंधु हाथी के समान बल शाली हैं। उनसे अकेले राम कैसे युद्ध करेंगे ? उनके बाण समाप्त हो जाएँगे और उन्हें पीछे लौटना पड़ेगा। मन में स्त्री लोभ होने पर युद्ध में एकाग्रता असम्भव है, फिर विजय कैसे प्राप्त होगी ? ये तीनों वन में गुप्त हो गये तो राक्षस हमें खा जायेंगे ? अतः इनका साथ छोड़कर निश्चय ही हमें यहाँ से प्रस्थान करना चाहिए। फिर वे ऋषि एक उपाय सुझाते हुए बोले– "आप दोनों ही पुरुषार्थी हैं, अतः यहाँ निवास न कर हमारे साथ हो चलें राक्षस धर्म-युद्ध नहीं करते, छलपूर्वक युद्ध ही उनकी शक्ति है। नाना प्रकार की युक्तियाँ कर वे छलपूर्वक देवताओं को मारते हैं। राक्षस निशाचर होते हैं, वह शत्रु को निद्रावस्था में ही मारते हैं उनके सम्मुख कोई शक्ति काम नहीं आती।" ऋषियों के ये वचन सुनकर राम ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। ब्राह्मणों के मन में धैर्य न था वे दुविधा से ग्रसित थे अगर इन ब्राह्मणों को विश्वास ही नहीं है तो इन्हें मेरा सान्निध्य नहीं प्राप्त हो सकता। श्रीराम को वहीं छोड़कर एक रात्रि का भी विलम्ब किये बिना उन ऋषिवरों ने भिन्न मार्गों से तुरन्त वहाँ से प्रस्थान किया।

श्रीराम का जनस्थान की ओर प्रस्थान– श्रीराम को नमन कर वे भयभीत ब्राह्मण श्रीराम की आज्ञा माँग रहे थे। श्रीराम ने उनको प्रसन्नतापूर्वक जाने की अनुमति दी। और इस प्रकार अविश्वास से सम्पूर्ण द्विज मंडली ने अपनी पत्नी व बच्चों सहित दूसरे आश्रम के लिए प्रस्थान किया।

श्रीराम ने विचार किया कि जनस्थान में राक्षसों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हो गई है। अतः उनके समूल नाश के लिए आज ही यहाँ से प्रस्थान करना चाहिए। सीता ने भी राम को समर्थन देते हुए कहा– "ऋषिवरों के यहाँ से प्रस्थान के बाद अब यहाँ अच्छा नहीं लगता अतः आज ही यहाँ से चलें।" लक्ष्मण बोले- "ऋषीश्वर भयभीत होकर यहाँ से गये हैं अतः उनके भय निवारण हेतु यहाँ से शीघ्र प्रयाण ही उचित होगा।" राक्षसों के दमन के विचार मात्र से ही श्रीराम उल्लसित हो उठे। उनमें प्रचंड स्फूर्ति जागृत हुई। दंडकारण्य को शुद्ध एवं भयरहित करने हेतु वे तत्पर हुए। उनकी भुजाएँ फड़कने लगीं, सम्पूर्ण शरीर रोमांचित हो उठा श्रीराम राक्षसों के सर्वनाश हेतु प्रस्थान के लिए सिद्ध हुए एवं अत्यन्त उत्साहित होकर लक्ष्मण से बोले– "समस्त आयुधों से सुसज्जित हो सीता सहित त्वरित प्रस्थान करो."

अध्याय २

[सती अनुसूया की पूर्वकथा; विराधवन-प्रसंग]

ऋषिवर्य अत्रि का निवास-स्थान दुखियों का विश्रांति स्थल भी था। उस पर्वत पर, सीता एवं लक्ष्मण सहित श्रीराम आ पहुँचे। यहाँ अत्रि ऋषि के समक्ष श्रीराम ने साष्टांग प्रणाम किया। ऋषि अत्रि ने श्रीराम को आलिंगन बद्ध किया तथा उनके ध्येय से अवगत होकर वे सन्तुष्ट हुए सीता और लक्ष्मण ने भी ऋषि की साष्टांग वंदना की। ऋषि अत्यन्त प्रसन्न हुए। श्रीराम ने ऋषि पत्नी अनुसूया की भी चरण वंदना की। अत्रि ऋषि बोले 'ये तुम्हारी माता ही हैं। ऋषि के ये वचन सुनकर लक्ष्मण एवं सीता ने भी उनके चरणों पर मस्तक रख चरण-वंदना की। अनुसूया ने सीता को हृदय से लगा लिया। सीता को देखकर आनन्दित हो वे बोलीं "अत्यन्त पतिनिष्ठ पतिव्रता हे सुन्दरी ! तुम धन्य हो। तुममें बाल सुलभ सरलता विद्यमान है। पतिव्रत-धर्म का पालन करते हुए पैदल हो वन में पति का अनुगमन कर रही हो, पति के वचनानुरूप आचरण करते हुए जो सती स्त्री पतिव्रत-धर्म का पालन करती है, वही स्त्री वास्तव में पतिव्रता होती है। हे सीते, तुम वैसी ही पतिव्रता हो। इस प्रकार सीता की स्तुति करते हुए ऋषि पत्नी अनुसूया ने प्रेममय आनन्द से विभोर हो उन्हें हृदय से लगा लिया सीता का मनोगत जानकर अनुसूया ने अत्यन्त कृपायुक्त होकर अपने पतिव्रत धर्म से सीता को अवगत कराया।

सीता को पतिव्रत-धर्म का ज्ञान एवं दिव्य वस्त्र की प्राप्ति– अनुसूया द्वारा अत्यन्त उल्लसित हो सीता को पतिव्रत-धर्म की शिक्षा प्रदान करते समय आनन्दपूर्वक दिव्यवस्त्र एवं उबटन देने की सम्पूर्ण कथा को श्रवण करें।

अत्यन्त कृपालु अनुसूया ने सीता को दिव्य वस्त्र पहनाये। दिव्य-चन्दन का टीका लगाया एवं दिव्य पुष्पों की मालाएँ पहनाईं। उन्होंने अत्यन्त प्रेमपूर्वक सीता को एक ऐसा अलंकार प्रदान किया, जिसके प्रकाश के समक्ष चन्द्र एवं सूर्य का प्रकाश भी मात्र जुगनू की चमक के सदृश दिखाई पड़े ऐसा उसका प्रकाश था. अनुसूया स्वयं भी पतिव्रता नारी थी, पतिसामर्थ्य उसके व्रत का आधार था। उसके हाथ के स्पर्शमात्र से तीनों देव बालक रूप में परिणित हो गए, ऐसा उसमें अद्भुत सामर्थ्य था, वही सामर्थ्य सीता को प्रदान करते हुए वह बोली– "मेरे ये दिव्य वस्त्र उपयोग करने के पश्चात् भी मैले नहीं होते, ये वस्त्र आत्मतेज से ही निर्मल रहते हैं।"

मेरे द्वारा लगाया हुआ चन्दन का टीका धोने के पश्चात् भी मिटता नहीं है। इस दिव्य चन्दन की महिमा ऐसी है कि अभ्यंग स्नान के पश्चात् भी उसकी सुगंध शरीर में विद्यमान रहती है। यह दिव्य पुष्पमाला कभी मुरझाती नहीं है और हमेशा सुगंध से युक्त रहती है। हे सीते, तुम अत्यन्त सावधानीपूर्वक सुनो । मेरे इस प्रसाद की प्राप्ति के पश्चात् तुम राक्षसों के भय से मुक्त हो जाओगी, रघुनाथ का वियोग तुम्हारे चित्त को विचलित नहीं करेगा। यह पूर्व कथा श्रीराम ही तुम्हें बतायेंगे, ये कहते हुए अनुसूया ने सीता के मस्तक पर हाथ रखकर उन्हें अनुग्रहीत किया। इस उपदेश की प्राप्ति से सीता को अत्यन्त सुख एवं आनन्द की अनुभूति हुई। अनुसूया महापतिव्रता थी। उन्होंने भविष्य में होने वाले लंकापति रावण के वध के लिए सीता को अनुग्रहीत किया। श्रीराम, सौमित्र लक्ष्मण एवं सीता को देखकर अत्रि ऋषि का मन प्रसन्न हो उठा और वे श्रीराम द्वारा प्रेरित हो पूर्वापर कथा का वर्णन करने लगे।

सती अनुसूया की पूर्वकथा– अनुसूया महापतिव्रता तपस्विनि वृद्धा है। उसका मस्तक चन्द्र-किरणों के समान शोभायमान है। पतिव्रत-धर्म के अनुकूल उसका आचरण है। गिरि कन्दराओं में न जाकर घर में रहते हुए उसने दस हज़ार वर्षों से अधिक अवधि तक तपस्या की, ऐसी उसकी महानता है। घर में रहते हुए उसने किस प्रकार तपस्या की, इस प्रश्न का तुम्हारे मन में उठना स्वाभाविक है, तो सुनो । उस तप का स्वरूप अत्यन्त निष्कपट था उसने कभी किसी से ईर्ष्या नहीं की, इसी कारण उसका नाम अनुसूया पडा। काम, क्रोध और लोभ से जो परे होता है, वह महातप कहलाता है। कुछ तपस्वी कठोर तप करते हैं परन्तु क्रोध के कारण उनकी तपश्चर्या व्यर्थ हो जाती है। काम, क्रोध और लोभ इन तीनों का त्याग, जो तपस्वियों में दुर्लभ होता है, वह सती अनुसूया ने घर में रहकर ही सुलभ कर दिखाया है। जहाँ लोभ होता है, वहाँ ईर्ष्या का वास होता है। लोभ का अंत ही तपस्या है। हे रघुवीर, यह निश्चित समझो। पति के वचनों का उल्लंघन न करने का परमतप स्त्रियों को करना पड़ता है। अनुसूया ने वह तप दस हज़ार वर्षों तक किया। पति के वचनों के उल्लंघन से पतिव्रतधर्म में कमी आ जाती है तथा न तो सामर्थ्य ही प्राप्त होता है और न ही समाधान। स्त्री-पुरुष श्वानसदृश व्यवहार करने लगते हैं। दस हज़ार वर्षों तक इसने मेरे वचनों का उल्लंघन नहीं किया, उस तप से उसके सामर्थ्य की वृद्धि हुई। उसके सामर्थ्य के विषय में सुनो ।

"सृष्टि में एक बार दस वर्षों तक वर्षा के अभाव के कारण अकाल पड़ गया। शस्यश्यामला धरती सूख गई. ऐसे कठिन समय में अनुसूया ने फलमूल देकर लोगों की क्षुधा शांत की। गौतम और अहिल्या ने भी भोजन देकर ऋषि मुनियों के प्राण बचाये थे लेकिन अनुसूया ने तो वर्णभेद न करते हुए मानव-मात्र के साथ-साथ पशु-पक्षियों सहित सभी प्राणियों को भोजन देकर उनके प्राण बचाये। द्वार पर याचक के आते ही अनुसूया का उत्साह बढ़ जाता था। पृथ्वी पर वृक्षों का अभाव होने पर भी सबको फलमूल प्रदान करने का अनुसूया का अगाध सामर्थ्य देखकर देवों एवं ब्राह्मणों को आश्चर्य हुआ। गंगा के अक्षुण्ण प्रवाह के समान सबको निरन्तर फल-फूल प्रदान किये। उसका ये सामर्थ्य सभी ब्राह्मणों एवं देवों के लिए अतर्क्य था। अनावृष्टि के समय सबको तृप्ति योग्य भोजन देने के उसके व्रत के विषय में सुनकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये त्रिदेव उसकी परीक्षा लेने हेतु पधारे।"

दत्तात्रेय अवतार की कथा– ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीनों देव ब्राह्मण वेश धरकर याचक के रूप में अनुसूया के पास आये और इच्छा व्यक्त की कि अनुसूया नग्न रूप में उन्हें इच्छा-भोजन कराये. त्रिदेवों की यह इच्छा सुनकर अनुसूया के मन में किसी प्रकार की दुविधा उत्पन्न नहीं हुई और

उन्होंने अत्यन्त शान्त भाव से स्वीकृति प्रदान की। अनुसूया ने तत्पश्चात् मेरा चरणतीर्थ हाथ में लेकर तीनों ब्राह्मणवेशधारी देवों पर उसका अभिसिंचन किया। ऐसा करते ही तीनों देव छह माह के शिशु रूप में परिवर्तित हो गए। इसके पश्चात् तीनों बालकों को नग्न-रूप स्तनपान कराकर पालने में लिटा दिया।

लक्ष्मी, सावित्री और पार्वती इन तीनों देवियों में सामर्थ्य को लेकर हमेशा विवाद होता रहता था उन्हें अनुसूया का सामर्थ्य दिखाने हेतु त्रिदेवों ने ऐसा किया था। अनुसूया की परीक्षा लेने आये देव स्वयं ही अज्ञानावस्था को प्राप्त हुए। वे छह महीने के बालक के रूप में परिवर्तित हो गए। लक्ष्मी, सावित्री और पार्वती-ये तीनों देवियाँ अपने पतियों की अवस्था देखकर विचलित हो रही थीं। सती अनुसूया के सामर्थ्य के सामने उनका सामर्थ्य टिक नहीं पा रहा था। जिस प्रकार सूर्य के समक्ष जुगनू तेजहीन हो जाता है, उसी प्रकार अनुसूया के समक्ष तीनों देवियों का गर्व चूर हो गया था। वे अनुसूया के पैरों में पड़कर अपने पतियों को पूर्ण रूप में परिवर्तित करने के लिए विनती करने लगीं। अनुसूया बोली- "आप ऋषिवर्य से पूछें। वे देवियाँ फिर अत्यन्त अधीर होकर ऋषि से विनती करने लगीं- 'हे ऋषिवर, कृपा-मूर्ति, आप पतियों की मुक्ति का कोई मार्ग बतायें।' पतिव्रता अनुसूया ने मेरी आज्ञा प्राप्ति के पश्चात् ही उन त्रिदेवों का अज्ञान दूर किया और उन्हें सावधान करते हुए उन्हें पूर्वरूप प्रदान किया। तीनों ने अनुसूया की स्तुति की। तीनों अत्रिगोत्री पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए। ब्रह्मा चन्द्र हुए, रुद्र दुर्वासा हुए और विष्णु दत्तात्रेय हुए। इसी कारण हे राम, ये अनुसूया तुम्हारी जननी आदिमाता हैं, हे रघुनाथ ! इसके चरणों पर मस्तक रखने से आपका वनवास निर्भय होगा। अनुसूया परमश्रेष्ठ पतिव्रता है, उन्होंने सीता को भी अनुग्रहीत किया है अत: आपका वनवास यशस्वी एवं जगत् में वंदनीय होगा"। तत्पश्चात् तीन रात्रि वहीं निवास कर फलमूलों का सेवन कर उन्होंने आगे के लिए प्रस्थान किया।

श्रीराम ने अत्रिऋषि और अनुसूया का अभिवादन किया और दण्डकारण्य के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में ऋषियों के आश्रम, यज्ञकुंड और यज्ञ की विशुद्ध पद्धति का अवलोकन करते हुए वे आगे बढ़ने लगे।

विराध-वन प्रसंग- श्रीराम का वन भ्रमण आनन्दपूर्वक चल रहा था। कहीं तीन दिन, कहीं पांच दिन व कहीं सात दिन रुकते हुए वे तत्परता से आगे बढ़ते जा रहे थे। आगे एक दुर्गम वन दिखाई दिया। वहाँ सिंह, हाथी, बाघ, मृग, खरगोश, स्याही, भेड़िये, लोमड़ी इत्यादि प्राणी भयभीत हो भागते हुए दिखाई दिए। सिंह, हाथी, बाघ, हिरन इत्यादि प्राणियों को एक साथ एक ही दिशा में भागते हुए देखकर श्रीराम बोले हे सौमित्र ! ये श्वापद भयग्रस्त हैं अत: ये आपसी वैर-भाव भुलाकर आक्रोश करते हुए भाग रहे हैं। ये इतने भयभीत क्यों है ? रघुनन्दन ये बोल ही रहे थे कि उसी समय विराध ने दौड़ते हुए आकर सीता हरण कर लिया। श्रीराम और लक्ष्मण आगे चल रहे थे सीता उनके पीछे थी। सीता के सौन्दर्य पर मोहित हो विराध ने तत्काल उनका अपहरण कर लिया ।

सीता को दोनों हाथों से पकड़कर उसे अपनी जंघा पर बैठाते हुए वह बोला- तुम चिन्तित न हो, मैं तुम्हारा पति बनूँगा हे सुन्दरी ! तुम अप्सरा, वनदेवी, देवेश्वरी कोई भी हो, सौभाग्य से मुझे प्राप्त हुई हो, अत: सुखपूर्वक मेरे घर में निवास करो। तुम्हारे समान सुन्दरी अगर मेरे घर में आयी तो मैं हाथी के गंडस्थल के मोतियों के अलंकारों से तुम्हारा श्रृगार करूँगा। सीता जैसी सुन्दरी की प्राप्ति की कल्पना मात्र से ही राक्षस का चित्त उल्लसित हो उठा। परन्तु सीता तनिक भी विचलित नहीं हुई। राम की अपार शक्ति का बल उसके पास था। श्रीराम के बाणों से ये कहीं पर भी बच नहीं पायेगा वह वन अत्यन्त

गूढ़ और गहन होने के कारण राम और लक्ष्मण आगे बढ़ गये, उन्हें विराध दिखाई नहीं पड़ा; सीता भी राम व लक्ष्मण को न देख पाई।

अनुसूया द्वारा अनुग्रहीत होने के कारण सीता लेश मात्र भी भयभीत न थी। उन्होंने रघुनाथ का स्मरण करते हुए कहा– "हे कृपानिधान ! राम मुझे प्राप्त हों।" राम स्मरण सुनकर राक्षस भय से कम्पित होते हुए सीता से बोला– "इन तीक्ष्ण शब्दों का स्मरण न करो, इनसे मुझे बाधा हो रही है। इस बार सीता के वचन सुनकर राम और लक्ष्मण पीछे लौटे परन्तु उस गूढ़ गहन वन में उन्हें सीता के दर्शन नहीं हुए। लक्ष्मण ने अत्यन्त क्रोधित हो, अपने एक बाण द्वारा उस वन को स्वच्छ किया तब उन्हें वह पापी विराध दिखाई दिया। वह राक्षस अत्यन्त क्रूर, पर्वत के समान विशालकाय, टेढ़ी नाक, टेढ़े मुँह वाला एवं अत्यन्त भयानक था। आठ सिंहों के मस्तक अपने भाले में लगाकर भाला कंधे पर रखे हुए था। मृग, सर्प और चीतलों के झुंड के झुंड वह मार डालता था। वह इतना बलशाली था कि दाँत सहित हाथियों के मस्तक रक्त से लथपथ गज चर्म एवं पाँच पाँच बाघों को मारकर वह अपने कंधे पर ले जाता था। उसकी जिह्वा अत्यन्त लाल थी, उसकी आँखें भी आरक्त थीं। कोई प्राणी दिखते ही उसे मारने के लिए वह स्वयं दौड़ पड़ता था।

श्रीराम-विराध संघर्ष– विराध को श्रीराम और लक्ष्मण दिखाई पड़ते ही उसने सीता से पूछा कि ये दोनों कौन हैं। इस पर सीता बोली– "श्रीराम मेरे पति और लक्ष्मण देवर हैं, वे दोनों मुझे मुक्त करने के लिए आये हैं।" विराध बोला– "अब तुम मेरी पत्नी हो, मैं तुम्हें कभी नहीं छोड़ूँगा इन दोनों को मैं अभी खा डालता हूँ, तुम तनिक मात्र चिन्तित न हो।" इतना कहकर विराध भयंकर गर्जना करते हुए श्रीराम के सम्मुख जा खड़ा हुआ। वह अनर्गल प्रलाप करते हुए बोला "सीता अब मेरी पत्नी है, मैं तुम्हें मारूँगा नहीं लेकिन तुम लोग अपनी जान बचाकर यहाँ से भाग जाओ। अगर तुम युद्ध करोगे तो क्षणार्द्ध में ही तुम्हें मारकर खा जाऊँगा। मैं महाबली विराध हूँ। वन में रहता हूँ। तुम दोनों मूर्ख हो क्योंकि पत्नी को लेकर वन में आये हो। वेश से तपस्वी लगते हो फिर धनुष-बाण क्यों रखते हो। तुम अपने बारे में मुझे विस्तार से बताओ।" श्रीराम बोले- "जिस धनुष ने रावण को भी त्रस्त कर दिया था, उस धनुष को भंग करने वाला श्रीराम मैं ही हूँ। सुबाहु, मारीच एवं ताटिका का वध करने वाला श्रीराम मैं ही हूँ। इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से विरहित करने वाले परशुराम का अपने शौर्य के बल से गर्व हरण करने वाला श्रीराम मैं ही हूँ। मैं सूर्यवंश के विख्यात राजा दशरथ का पुत्र श्रीराम वन में राक्षसों का संहार करने हेतु ही आया हूँ। सीता मेरी धर्मपत्नी है तथा लक्ष्मण मेरा अनुज है। अब तुम अपने बारे में विस्तार से बताओ।" राक्षस विराध बोला– "मेरे पिता जगाद और माँ शतरदा हैं, उनका पुत्र मैं विराध, तुम्हें मारने के लिए आया हूँ।" उसके वचन सुन लक्ष्मण क्रोधित हो उठे। उन्होंने धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर कंकपत्री, बर्हपत्री, सुवर्णपंख, चौधारी इत्यादि तीक्ष्ण बाणों से विराध पर प्रहार किया। इसके [illegible] राक्षस अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने लक्ष्मण को मारने हेतु गरजते हुए शूल से प्रहार किया। [illegible] को बीच में ही तोड़ते हुए श्रीराम ने विराध को ललकारा एवं रुक्मपुंख नामक अत्यन्त तीक्ष्ण [illegible] बाण चलाया। उस बाण के परिणामस्वरूप विराध की विचारशक्ति क्षीण हो गई। उसे कुछ सूझ नहीं रहा था कि वह क्या करे।

विराध को आत्म-बोध एवं रामस्तुति– श्रीराम के बाण के तेज से विराध अचानक सम्मोहित [illegible] अपना राक्षस धर्म, राम से युद्ध, कुछ भी स्मरण नहीं रहा राम के बाण से उसके सारे

भ्रम दूर हो गए, उसका अभिमान दूर हुआ। हृदय-शुद्धि के पश्चात् ही राम का बाण विराध के हृदय को भेदता हुआ निकल गया और विराध ने प्राण त्याग दिये। श्रीराम का बाण धन्य है, जिसके द्वारा राक्षस को ज्ञान प्राप्त हुआ। राम के बाण द्वारा विराध का हृदय भेदते ही रक्त की नदी बह चली, शरीर शिथिल हो गया। परन्तु उस घाव ने विराध के सम्पूर्ण दुःख हर लिये और उसे अलौकिक सुख प्रदान किया। "धन्य है श्रीराम, जिनके स्पर्श से राक्षसत्व से मुक्ति मिली।" लक्ष्मण के क्रोध ने सघन वन को स्वच्छ कर मेरे मोक्ष का मार्ग दोष-रहित किया। लक्ष्मण वास्तव में सौमित्र हैं जिन्होंने अपनी शुद्ध मैत्री निभाई और मेरे जैसा निशाचर सुखी हुआ। मैं अत्यन्त अपवित्र राक्षस था परन्तु राम के बाण से मैं पवित्र हुआ। अब सुरवर भी मेरी वंदना करते हैं। बाण के अन्तर्बाह्य श्रीराम- नाम से ओतप्रोत होने के कारण मुझे परम सुख की प्राप्ति हुई है। मुझे शाप के कारण अधर्म राक्षस का शरीर प्राप्त हुआ था। उस शाप को भस्म कर श्रीराम ने मुझे अत्यन्त सुख दिया है। अब मुझे मेरा स्थान पुनः प्राप्त होगा। यह घाव जन्म-मरण का भय दूर करेगा। राम ने जो आत्मसुख दिया है उसके समक्ष जीवन-मरण का सुख दुःख कोई स्थान नहीं रखता," विराध के इस कथन पर राम ने प्रश्न किया– "कैसा शाप ? तुम कौन हो ? " तब विराध ने अपना पूर्ववृत्त बताया।

विराध का पूर्ववृत्त शाप-उःशाप कथन– "पूर्वजन्म में मेरा नाम तुंबरु था। धन-देवता कुबेर ने मुझे एक बार गायन के लिए आमन्त्रित किया। मैं रंभा के प्रति आसक्त था तथा मद्यपान के कारण उन्मत्तावस्था में भी था। वैसी स्थिति में ही बलपूर्वक वहाँ ले जाया गया। मेरी मदगर्वित अवस्था देखकर कुबेर ने क्रोधित हो मुझे शाप दिया कि तुम उन्मत्त राक्षस होकर घोरवन में अघोरी के रूप में रहोगे। वह अद्भुत शाप सुनकर मैं भयभीत हो गया और कुबेर के पैरों पर पड़कर शाप से मुक्ति की प्रार्थना की। उस समय मुझे कहा गया कि 'श्रीराम, लक्ष्मण और सीता के वनवास में होने पर तुम सीता का हरण करोगे फिर भीषण युद्ध होगा और श्रीराम का बाण लगने से तुम प्राण त्याग दोगे। उस समय शाप मुक्त होकर तुम्हें आत्म-ज्ञान की प्राप्ति होगी।' मेरी ये शाप से मुक्ति की कथा आज तत्त्वतः पूर्ण हुई। हे श्रीराम, तुम्हारा बाण लगते ही मुझे अलौकिक सुख की प्राप्ति हुई है। आत्मानन्द मिला है। तुम्हारा बाण लगते ही मेरे जन्म मरण का चक्र समाप्त होकर मेरा उद्धार हो गया, वहाँ शाप की क्या बिसात। मुझे जो सम्पूर्ण सुख मिला है, उसमें न विकृति है, न समाप्ति है और न ही अधःपतन है मुझे पुनः गंधर्व-स्थिति प्राप्त हुई है। तुम्हारे बाण से मुझे मुक्ति मिल गई है।"

राम का शरभंग ऋषि के आश्रम की ओर गमन– विराध ने राक्षस-देह पृथ्वी पर त्याग दी और विमान में बैठकर प्रस्थान किया। जाते हुए उसने श्रीराम को बताया– "यहाँ से अर्द्धयोजन की दूरी पर तपस्वी शरभंग का निवास है। वे तप के तेज से देदीप्यमान हैं। आप वहाँ अवश्य जायें वे आपके वनवास की निश्चित स्थिति बतायेंगे तथा आपके दर्शनों से उन्हें नित्य मुक्ति भी प्राप्ति होगी "

"इन्द्रदेव शरभंग ऋषि के पास उन्हें सत्यलोक ले जाने के लिए आये थे परन्तु शरभंग आपसे भेंट होने की इच्छा के कारण सत्यलोक जाने का प्रस्ताव टाल कर वन में ही रह रहे हैं। श्रीराम के दण्डकारण्य-आगमन एवं विराध-वध का वृत्तान्त जानकर और आपके महाप्रताप को सुनकर वे आपसे मिलने हेतु रुके हैं। राम-मिलन के सुख के समक्ष सत्यलोक भी तुच्छ है, इसका ज्ञान उन्हें है। आपसे मिलने की उत्कंठा से वे आतुर हो आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। जैसे आपने मुझ राक्षस को सुखी किया, वैसे ही ऋषिवर शरभंग को भी कीजिये।" इतना कहकर विराध ने राम, लक्ष्मण व सीता- तीनों की

वंदना कर विमान से आत्म भुवन की ओर प्रस्थान किया। श्रीराम की लीला देख विस्मित देव गण श्रीराम की जय-जयकार करने लगे। उस विकट राक्षस विराध का वध कर, श्रीरामचन्द्र के विजयी होने का उन्हें अत्यधिक आनन्द हुआ। जिस विराध के गहन वन में किसी का प्रवेश भी असम्भव था, उस विराध का वध कर श्रीराम ने उसे तार दिया। श्रीराम कृपानिधान हैं, यह कहते हुए सब उनकी वंदना करने लगे।

अध्याय ३

[शरभंग ऋषि का उद्धार]

महाभयानक विराध का क्षणार्द्ध मात्र में वध करने वाले दोनों प्रतापी भाइयों को देखकर सीता परमानन्दित हुई। तत्पश्चात् तीनों ने शरभंग ऋषि के आश्रम की ओर प्रस्थान किया। दो कोस मार्गक्रमण करने के पश्चात् उन्हें वह आश्रम दिखाई पड़ा। उस समय शरभंग ऋषि को ब्रह्म-लोक ले जाने के लिए ब्रह्मदेव ने हंसयुक्त विमान लेकर इन्द्र को भेजा था।

शरभंग-श्रीराम की भेंट– हंसयुक्त विमान में बैठकर आने का सामर्थ्य इन्द्र में नहीं था अतः विमान को आगे भेजकर इन्द्र अपने रथ से आश्रम में आये। जिस विमान में बैठने का सामर्थ्य स्वयं इन्द्र में नहीं था, ऐसा विमान शरभंग ऋषि के लिए भेजा गया। इससे यह स्पष्ट होता है कि शरभंग की निष्ठा ब्रह्मादिकों के लिए कितनी पूजनीय थी। इन्द्रादि देव उस आश्रम में शरभंग ऋषि को साष्टांग नमन कर विनती कर रहे थे। इन्द्र मधुर शब्दों में बोले– "ब्रह्म-देव की आज्ञा से हम आपको लेने के लिए आये हैं। हंसयुक्त विमान में बैठकर ब्रह्म भुवन में प्रवेश करें।" तब शरभंग ऋषि बोले– "इस वन में रघुनाथ का निश्चित ही आगमन हो चुका है। विराध का वध करके वे यहाँ आते ही होंगे। श्रीराम के दर्शन किये बिना मुझे ब्रह्म-लोक नहीं जाना है। आप विमान ले जाएँ, मैं स्वयं वहाँ आ जाऊँगा। श्रीराम-भेंट के समक्ष मेरे लिए ब्रह्म-भुवन का कोई महत्त्व नहीं है। आप ब्रह्म-देव को मेरा सन्देश बतायें। शरभंग ऋषि और इन्द्रदेव के मध्य जब यह वार्तालाप हो रहा था उसी समय वहाँ श्रीराम ने प्रवेश किया। उन्होंने इन्द्र को देखा। इन्द्र का सौन्दर्य सूर्य की प्रभा एवं अग्नि के तेज के समान शोभायमान हो रहा था। पृथ्वी को स्पर्श किये बिना चलने वाले उनके रथ के घोड़े थे, मस्तक पर चन्द्रमा के तेज के समान छत्र था, चँवर डुलाया जा रहा था तथा उनके साथ ही सिद्ध, भाट, देवगण, मरुद्‌गण, देव गुरु बृहस्पति इत्यादि विद्यमान थे। इन्होंने रघुनन्दन को देखा। सीता, लक्ष्मण एवं श्रीराम के तेज के समक्ष सब निष्प्रभ हो रहे थे। श्रीराम के अद्‌भुत तेज को देखकर देवता चकित हुए। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश के समक्ष दिये का प्रकाश मन्द पड़ जाता है उसी प्रकार देवों की स्थिति राम के समक्ष हो रही थी, वे अपने आप में लज्जा का अनुभव कर रहे थे श्रीरघुनाथ को देखकर उन्हें सुख की अनुभूति हुई, उन्होंने श्रीराम का जय जयकार करते हुए प्रस्थान किया। ऋषिवर्य शरभंग देवताओं से बोले– "श्रीराम के दर्शनों से जन्म-मरण का चक्र समाप्त होकर पुनरावृत्ति रुक जाती है। राम के दर्शन से अक्षय सुख की प्राप्ति होती है अतः इसी कारण मैं आपके कथन की उपेक्षा कर ब्रह्म सदन न जाकर श्रीराम के दर्शनों के लिए रुका हूँ।"

ऋषिवर्य के वचन सुनकर इन्द्रादिदेव वापस लौट गये। तत्पश्चात् श्रीराम ने आश्रम में प्रवेश कर शरभंग ऋषि की वंदना की; उनका चरण-स्पर्श कर नमन किया। सीता और लक्ष्मण ने उन्हें दण्डवत्

प्रणाम किया। ऋषि ने उन्हें आशीर्वाद दिये। ऋषि ने मधुपर्क विधि से रघुनाथ की पूजा की और चित्त एकाग्र कर बैठ गए. श्रीराम ने ऋषि से इन्द्रदेव के आश्रम में आगमन का प्रयोजन पूछा. श्रीराम का प्रश्न सुनकर शरभंग आश्चर्य चकित हुए। किसी भी प्रकार का ध्यान, जप, तप किये बिना ही श्रीराम के दिव्य दर्शन होते हैं। अखिल सृष्टि को देखने की क्षमता हो ऐसी विशाल ब्रह्म दृष्टि है। श्रीराम स्वयं परब्रह्म होकर मात्र दीनों को तारने हेतु वनवास के लिए आये हैं. श्रीराम स्वय विश्राम-धाम हैं, जिसका आज मुझे अनुभव हुआ।

शरभंग ऋषि का स्ववृत्त-कथन एवं प्रयाण– श्रीराम को अपनी पूर्व स्थिति के विषय में बताते हुए शरभंग ऋषि बोले– "मैंने जो-जो भी प्राप्त किया, वह सामान्यजनों के लिए अत्यन्त कठिन था। उन धर्मों की आत्म-स्थिति मैं यथाक्रम बताता हूँ। मैंने पितृलोक प्राप्त किया परन्तु मैं सुखी न हुआ अत: मैंने उसे पूर्णरूपेण त्याग दिया। तत्पश्चात् शत सामयाग करके स्वर्गभोग प्राप्त किया परन्तु वह मुझे क्षयरोग के समान प्रतीत हुआ अत: मैंने उसका भी त्याग किया। फिर महर्लोक जनलोक, तपोलोक प्राप्त करके भी मुझे सुख की अनुभूति नहीं हुई तब मैंने उन्हें भी त्याग दिया। ब्राह्मण भक्ति और सत्यव्रत आचरण से सत्यलोक प्राप्त किया। इसी कारण इन्द्रादि देव मुझे ले जाने हेतु स्वयं यहाँ पधारे थे."

चतुरानन ब्रह्मदेव ने उसके लिए हंसयुक्त विमान भी भेजा। परन्तु आपके आगमन हेतु मैंने ब्रह्म सदन भी त्याग दिया। मैंने आज तक इहलोक और परलोक भी प्राप्त हो जायँ, इतने पुण्य प्राप्त किये हैं. वे अद्‌भुत पुण्य मैं आज आपको समर्पित कर रहा हूँ। मुझे आपका प्रेम प्राप्त हो, यही इच्छा है। कर्म यदि ब्रह्मार्पण न किया तो जन्ममरण का चक्र बढ़ता जाता है। मैंने अपने समस्त कर्म आपके चरणों पर अर्पित कर दिये हैं। मेरा ये भ्रम था कि पुण्य से ब्रह्म-प्राप्ति होती है और राम-मूर्ति के दर्शन होते हैं परन्तु लोकलोकान्तर पुण्य प्राप्ति से न तो दु:ख समाप्त होते हैं न ही सुख की प्राप्ति होती है, परन्तु हे श्रीराम, तुम्हारे दर्शन-मात्र से अलौकिक सुख की प्राप्ति होती है। निष्काम पुण्य की प्राप्ति तुम्हारे मिलन से होती है। इसी कारण तुम्हारे दर्शनों के लिए मैंने सत्यलोक-गमन भी टाल दिया। श्रीराम के दर्शन से जीव-शिव दोनों सन्तुष्ट होते हैं।"

"श्रीराम के दर्शन से सर्वेन्द्रियों को विश्राम प्राप्त होता है। इसे मैंने स्वयं अनुभव किया है।" ऋषि के वचन सुनकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए। शरभंग ऋषि की अद्‌भुत शक्ति देखकर उन्होंने ऋषि से पूछा– "दण्डकारण्य एक महावन है। अपने वनवास की अवधि में मैं अपना निवास किस स्थान पर करूँ ?" इस प्रश्न को सुनकर शरभंग ऋषि बोले– "इसी वन में रहने वाले सुतीक्ष्ण महाऋषि हैं, आप उनके पास जायें: इस विषय में वे आपको योग्य मार्ग-दर्शन करेंगे। आपकी तीनों लोकों में कीर्ति फैलेगी। हे प्रजावंत राम ! इसी मार्ग से आप आगे जायँ, आपको सुतीक्ष्ण ऋषि के दर्शन होंगे। हे सर्वज्ञ राम, परन्तु इसके पूर्व आप मेरी एक विनती सुनें।

शरभंग का आत्मदहन और सत्यलोक को प्रयाण– हे श्रीराम, आपके चरणों के दर्शन के पश्चात् अब कुछ भी देखने की इच्छा शेष नहीं रही, भव-भय, गमनागमन-भय सब समाप्त हुए। इस सृष्टि में ऐसा कुछ भी शेष नहीं बचा है, जिसका वाणी द्वारा वर्णन किया जा सके। मेरे भाग्य में सत्यलोक गमन है, संभवत: इसी कारण ब्रह्मदेव ने मुझे ले जाने के लिए विमान भेजा होगा परन्तु वह विमान मैंने वापस भेज दिया क्योंकि मुझे आपके दर्शन की प्रतीक्षा थी। आपके मिलन के पश्चात् ही देह की मुक्ति होती है। हे श्रीराम, अत्यन्त सजग होकर आपके दर्शन करने के पश्चात् अपने देह का

स्वतः दहन कर सत्यलोक में चिर विश्राम की मेरी इच्छा है। हे श्रीराम, मेरे लिए आप कुछ समय रुक जायें सौंप जिस प्रकार अपनी केंचुल छोड़ देता है, उसी प्रकार मैं भी अपनी स्थूल देह को त्याग दूँगा. योगाग्नि प्रज्वलित कर देह को भस्म कर आत्मस्थिति में सत्यलोक को प्रस्थान करूँगा। आपकी कृपा से जन्म, कर्म, मृत्यु-इन तीनों का ही मुझे भय नहीं है। रस्सीरूपी देह से सर्प का जन्म हुआ। कुछ समय तक रहकर स्वयं ही समाप्त हो गया परन्तु रस्सी उससे भयभीत नहीं हुई, उसी प्रकार मुझे भी इस देह की प्राप्ति हुई। जिस प्रकार शरीर की छाया सत्य नहीं होती, उसी प्रकार जो मुक्त हैं, उनके लिए देह सत्य नहीं है। अब मात्र वह अदृष्ट को भोगने के लिए रुकी हुई है।" यह कहकर शरभंग ऋषि ने श्रीराम के समक्ष आसन मुद्रा में बैठकर योगाग्नि की सहायता से अपनी देह का दहन किया। योगाग्नि से देह दहन करने के कारण सत्यलोक का उपभोग करने के लिए उन्हें तेजस्वी कुमार देह प्राप्त हुई।

यज्ञ कर्मी स्वर्ग की साधना करते हैं। सत्यलोक की महिमा उससे भी श्रेष्ठ है। पितृस्थान, स्वर्ग और देवसदन पारकर शरभंग सत्यलोक में विराजमान हुए। सत्यलोक में शरभंग को रामकृपा प्राप्त हुई। वहाँ भी उन्हें अहम् तृणमात्र भी न था। सबके लिए पूजनीय हुए. ब्रह्मदेव के सम्मान करने पर भी गर्व का अनुभव न कर, उसे राम-कृपा का ऋण माना। अपने भाग्य का विदेह रूप में उपभोग करते हुए वे वहाँ रहे श्रीराम नाम का स्मरण देह बंधन में बाँध नहीं सकता। श्रीराम के चरणों का दर्शन कर शरभंग देह सहित मुक्ति का भोग करने लगे। दीनों को तारने के लिए ही श्रीराम वन में आये थे। उन्होंने शरभंग ऋषि को शुद्ध स्वरूप में विदेह मोक्ष प्रदान किया।

अध्याय ४

[मंदकर्णी ऋषि का उद्धार]

विराध जैसे भयंकर राक्षस का वध एवं शरभंग उद्धार के विषय में जानकर अनेक मुनि श्रीराम के पास आये। उनमें वानप्रस्थ के वालखिल्य, अग्निहोत्री, शुद्धशील ऐसे अनेक व्यक्ति राक्षसों के भय से व्याकुल होकर श्रीराम के पास आये। जलाहारी, फलाहारी, जटाधारी, ब्रह्मचारी, पत्राहारी, वायुआहारी एवं निराहारी ऋषि राम के पास आये। भगवावस्त्रधारी, दिगम्बर, वल्कलधारी, मलिन वेषधारी अनेक ऋषि राक्षसों के भय से भयभीत हो, राम द्वारा रक्षा के हेतु से राम के पास आये। इनमें कुछ ऋषि एकांगुष्ठव्रतधारी, वृक्षमूलनिवासी, एक पैर पर खड़े होकर तपस्या करने वाले तपस्वी थे। कुछ संन्यासी तो भय के कारण अन्न ही नहीं। उनमें जलवासी, आकाशवासी, विवरवासी तथा श्मशान-वासी संन्यासी थे। राक्षसों के भय से व्याकुल सपत्नीक, अपत्नीक एवं विधुर ऐसे अनेक ऋषि राम से संरक्षण माँग रहे थे। उनमें कुछ अत्यन्त वृद्ध थे, जो अत्यधिक दयनीय होकर श्रीराम से विनती कर रहे थे कि वे राक्षसों से उनकी रक्षा करें। कुछ तो इतने वृद्ध थे कि उनके दाँत गिर चुके थे और फलाहार करने में भी समर्थ न थे। इस प्रकार उत्साही, व्याकुल एव समाधानी सभी ऋषि-मुनि एकत्र होकर राक्षसों से भयभीत होकर श्रीराम के पास आये

श्रीराम के समक्ष तपस्वियों द्वारा विनती– श्रीराम के समक्ष तपस्वियों ने राक्षसों के दुष्कृत्यों का वर्णन करते हुए कहा– "उन राक्षसों ने तपस्वियों के समूह के समूह मार डाले हैं और उनका माँस

खाकर उन्हें वैसे ही छोड़ दिया है। वे शव संस्कार के बिना पड़े हुए हैं। जो लोग उनके दाह-संस्कार के लिए उनके पास जाते हैं, उन्हें भी वे मार डालते हैं। ऐसे अनगिनत शव ज़मीन पर पड़े हुए हैं। उन राक्षसों ने हमें संत्रस्त कर दिया है। हे श्रीराम ! हमारा रक्षक कोई नहीं, हम आपकी शरण आये हैं- हमारी रक्षा करें। हमारे भाग्य से ही आज आपका आगमन हुआ है। हम सभी शरणागत हैं। हे धनुर्धर, हमारे रक्षण के लिए सुसज्ज हों। हे कृपालु रघुनाथ ! हम गो ब्राह्मण मनसा, वाचा, कर्मणा आपकी शरण आये हैं। हम दीन अनाथों का हे दीनानाथ, आप संरक्षण करें।"

श्रीराम का नम्र आश्वासन– अपने पास आये हुए ब्राह्मणों की पुकार सुनकर राम ने अत्यन्त सहृदयतापूर्वक आश्वासन देते हुए उन्हें कहा- "मैं तो एक सामान्य सेवक हूँ, आपके दास के समान हूँ, आप वयोवृद्ध तपोवृद्ध, ज्ञानी और बुद्धिमान हैं; आप महासिद्ध एवं ज्येष्ठ हैं, मेरे लिए सम्मानपूर्वक वचन न बोलें। आपसे अपना सम्मान करवाना मेरे लिए विष प्राशन के समान होगा, आप मेरे लिए पूजनीय हैं। ब्राह्मण-रक्षा हमारा धर्म है। इसी उद्देश्य से मैं वन में आया हूँ। मुझे खर-दूषण का संहार कर साधुओं का संरक्षण करना है। आपके आशीर्वादों के बल पर रणभूमि में पराक्रम कर कुछ ही समय में राक्षसों के समूह नष्ट कर डालूँगा।" राम के वचन सुनकर मुनिगण हर्षित हुए, उन्होंने श्रीराम का जय जयकार करते हुए अपने आशीर्वचनों से उनका अभिषेक किया। तत्पश्चात्, सीता लक्ष्मण और श्रीराम के साथ सभी मुनिगणों ने शरभंग ऋषि द्वारा बताये गए सुतीक्ष्ण ऋषि के आश्रम की ओर प्रस्थान किया।

सुतीक्ष्ण ऋषि के आश्रम में श्रीराम का स्वागत– महाश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण ऋषि तप के तेज से अत्यन्त तेजस्वी दिखाई दे रहे थे। उनका आश्रम सुखदायक था। दुःख एवं संकटों के लिए वहाँ कोई स्थान नहीं था। इस आश्रम का वैशिष्ट्य था कि वहाँ के फल-मूल सुगंध एवं सुस्वाद से परिपूर्ण थे, वहाँ के जल का प्राशन करने से सभी श्रम दूर होते थे। अतः इसी कारण आश्रम में आते ही सबको परमसुख की अनुभूति हुई। श्रीराम भी सुख से परिपूर्ण हो ऋषि के पास आये। उन्हें देखते ही ऋषि अपना जप एवं ध्यान छोड़कर राम से मिलने के लिए आगे आये। जिनके लिए जप, तप, ध्यान, अनुष्ठान, वेद पठन, शास्त्र-श्रवण, योग-साधन रुद्र-जप किये जाते हैं, ऐसे श्रीराम चिद्रत्न के समान हैं, चित्स्वरुप हैं। शिवभवानी जिनका प्रतिदिन चिन्तन करते हैं, ऐसे त्रिभुवन के परमात्मारूपी राम के उन्होंने दर्शन किये, 'जिनकी प्राप्ति की इच्छा तापसी वन वासियों को थी, वो श्रीराम अनायास ही हमारे भाग्य से आश्रम में आये हैं' ऋषि का ये मनोगत जानकर श्रीराम प्रसन्न हुए और उन्होंने ऋषि के चरणों की वंदना की। ऋषि का मनोगत जानने वाले श्रीराम परब्रह्म हैं, यह ऋषि आत्मज्ञान से जानते थे। जिनके पास तीक्ष्ण अन्तर्दृष्टि थी, उनका नाम सुतीक्ष्ण था। श्रीराम के द्वारा चरण वंदना करने पर उन्होंने राम को आलिंगनबद्ध किया, तत्पश्चात् ऋषि बोले "दण्डकारण्य में स्थित मेरे इस आश्रम में भवबन्धन नहीं है, राम, लक्ष्मण और सीता यहाँ सुख सम्पन्नतापूर्वक निवास करें, मेरे आश्रम में राक्षसों के घातक-कृत्यों का भय नहीं है आप यहाँ निर्भय होकर रहें। सीता के साथ सुख एवं आनन्दपूर्वक निवास करें।" सुतीक्ष्ण ऋषि ने प्रेमपूर्वक राम और लक्ष्मण की पूजा की और छः महीनों तक अपने आश्रम में रोक लिया।

दण्डकारण्य में स्थान चयन– श्रीराम ने तपोतेज युक्त सुतीक्ष्ण ऋषि से पूछा- "मैं अपना निवास किस स्थान पर करूँ ? शरभंग ऋषि ने मुझे आपके द्वारा बताये गए स्थान पर निवास करने के लिए कहा है।" श्रीराम के वचन सुन ऋषि आनन्द विभोर हो उठे। श्रीराम को हृदय से लगाकर उन्होंने असीम शांति का अनुभव किया। तत्पश्चात् वे बोले– "दण्डकारण्य में अनेक ऋषियों के आश्रम हैं,

वे आश्रम आप देखें; जिस आश्रम में आपका मन आल्हादित हो, आपको विश्रान्ति मिले, उसमें आपके निवास की व्यवस्था होगी। आप सभी ऋषियों के आश्रम देख यहाँ आयें, तत्पश्चात् आपके निवास के लिए योग्य स्थान मैं बताऊँगा." तीनों ने उन्हें नमन किया और दण्डकारण्य में प्रस्थान किया।

दण्यकारण्य-भ्रमण– मार्ग में चलते हुए लक्ष्मण श्रीराम से बोले– "हम दोनों आगे और सीता पीछे इस क्रम में चलने से विराध द्वारा अपहरण जैसी घटना की पुनरावृत्ति हो सकती है।" राम द्वारा लक्ष्मण से क्रम पूछे जाने पर सीता को बीच में कर वे महाबली धनुर्धर शीघ्रता से आगे बढ़े। सीता के साथ ऋषिगण तपस्वी, ब्रह्मचारी ब्राह्मण भी श्रीराम के संरक्षण में चल पड़े। वन-उपवन ऋषि आश्रम देखते हुए वे आगे बढ़ने लगे। वहाँ तपस्वी अनुष्ठान कर रहे थे, वेदाध्ययन एवं अग्निहोत्र के कार्य सम्पादित हो रहे थे। दण्डकारण्य में घूमते हुए एक सरोवर के पास श्रीराम व लक्ष्मण को सुस्वर गायन सुनाई पड़ा। उस पवित्र सरोवर में नृत्य एवं गायन हो रहा था परन्तु गायक एवं नर्तक दिखाई नहीं दे रहे थे। श्रीराम अत्यन्त आश्चर्य चकित हुए। उन्होंने ऋषियों से पूछा कि यहाँ गायन और नृत्य कौन कर रहा है ? इस पर ऋषियों ने बताया–

सरोवर एवं मंदकर्णी वृत्तान्त– पंचाप्सर नामक यह अत्यन्त प्राचीन सरोवर है मंदकर्णी नामक ऋषि ने अत्यन्त तीव्र तप कर इसका निर्माण किया। दस हजार वर्षों तक निराहार रहकर मात्र वायु भक्षण करने वाले ऋषि की बुद्धि अत्यन्त स्थिर थी। काम का उन्हें स्पर्श भी न था। उनके अनुसार स्वर्ग एवं सत्यलोक के उपभोग मरण मार्ग की ओर अग्रसर करते हैं। जब तक विषयासक्ति है तब तक पुनरावृत्ति निश्चित है। इसी कारण अत्यन्त निश्चयपूर्वक मंदकर्णी ऋषि ने तप के मार्ग का अनुसरण किया। उनकी तीव्र तपश्चर्या देखकर स्वर्ग में हाहाकार मच गया। देवता चिंतित हुए और इन्द्रदेव ने मंदकर्णी ऋषि के तप में विघ्न डालने के लिए पाँच अप्सराओं को भेजा। रूप-यौवन से मनोहारी, नृत्य-संगीत में निपुण ये अप्सराएँ उन्हें प्रभावित करने लगीं। उनके प्रभाव स्वरूप ऋषीश्वर पूर्णतय: काम मोहित हो गए। ऋषि की कामासक्ति देखकर अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। ऋषि भी कामपूर्ति हेतु नृत्य करने लगे। उन्होंने अप्सराओं से रतिसुख की याचना की तब अप्सराएँ ऊर्ध्वगति से जाने लगीं, ऋषि इनसे रति सुख प्राप्ति के लिए विनती करने लगे और बोले "मैं एक अतिथि के रूप में तुमसे रतिसुख की याचना कर रहा हूँ, एक अतिथि को विमुख करना उचित नहीं। मैं तुम्हारा परमार्थी धर्म का साथी हूँ तुम मुझे रति-सुख प्रदान करो।" यह सुनकर अप्सराएँ उनको उपेक्षा कर वहाँ से चली गईं

जब तक कोई सुन्दर स्त्री दिखाई नहीं पड़ती तभी तक वैरागी का वैराग्य टिकता है। एकांत में उपलब्ध होते ही वैरागी भी भोगी हो जाता है स्त्री के सहवास से तपों का निर्दलन हो जाता है। जब तक पुरुष विरक्त होता है तभी तक उसके पास सिद्धियाँ रहती हैं। जब पुरुष कामासक्त होता है, सिद्धियाँ उससे मुख मोड लेती हैं। यही स्थिति मंदकर्णी ऋषि की हुई थी। स्त्री संगीत उनके कानों में पड़ते ही उनका वैराग्य समाप्त हो गया। स्त्री गीत सुनते ही उनका वैराग्य और विवेक उन्हें छोड़ गए, इसी कारण ऋषि-समाज में उनका नाम मंदकर्णी पड़ गया।

मंदकर्णी को इन्द्र का वरदान– इन्द्र द्वारा भेजी गई अप्सराएँ ऋषि को काम-पीड़ित कर उनको [illegible] में बाँधकर वापस लौट गईं। यह विघ्न कृत्य इन्द्र द्वारा करवाया गया है, ऋषि अगर इससे अवगत हो गए तो वह क्रोध से भयानक श्राप दे देंगे, यह सोचकर इन्द्र भयभीत हुए। वे त्रिकालज्ञानी क्योंकि [illegible] हैं। दस हजार वर्षों तक उन्होंने उग्रतपश्चर्या की है। वे काम वासना से संतप्त होकर

दुर्धर शाप देंगे, यह सोचकर भय से त्रस्त इन्द्र ऋषि के पास आकर बोले "हे ऋषि ! मैं आपका आज्ञाकारी हूँ, जो वर आप माँगेंगे मैं आपको दूँगा।" तब ऋषि बोले "पांच लावण्यमयी अप्सराएँ नित्य उपभोग के लिए मुझे दो।" इन्द्र ने पाँच अप्सराएँ ऋषि को प्रदान कीं।

दस सहस्त्र वर्षों तक तप करने से वृद्ध और जर्जर हुए ऋषि अप्सराओं को अच्छे नहीं लगते थे अत: वे उनकी उपेक्षा करने लगीं। उन अप्सराओं का मनोगत जानकर ऋषि ने अपना स्वरूप बदलकर तारुण्य से परिपूर्ण मोहक स्वरूप धारण कर लिया। ऋषि के बदले हुए स्वरूप से प्रसन्न हो वे मन:पूर्वक उनसे समरस हुईं। सामर्थ्यवान् ऋषि ने कालान्तर में उस तड़ाग में ही जल-मन्दिर का निर्माण किया और उन अप्सराओं के साथ वे वहीं निवास करने लगे। हे श्रीराम, उन्हीं के गीतों एवं नृत्य के स्वर आपके कानों में पड रहे हैं।" मुनि द्वारा किया गया विस्तृत निवेदन सुनकर राम विस्मय चकित हुए। कुछ देर तक विचार कर, उन्होंने उस सरोवर के जल से आचमन किया। इसके साथ ही उन्हें ऋषिभुवन दिखाई दिया। मंदकर्णी ऋषि भी श्रीराम को देखकर आनन्दित हुए।

मंदकर्णी ऋषि द्वारा श्रीराम का स्वागत– मंदकर्णी ऋषि श्रीराम को अत्यन्त आदरपूर्वक जलमन्दिर में ले गये। सीता, राम व लक्ष्मण को अनेक वर्षों तक उन्होंने अपने यहाँ रोक लिया। ऋषिवर्य एवं अप्सराएँ राम की सेवा एवं भक्ति में तत्पर रहते थे। पूर्व समय में किये गए निष्काम तपोव्रत के फल स्वरूप ऋषि के घर में श्रीराम का आगमन हुआ; ये ऋषि के अहोभाग्य ही थे। श्रीराम की प्रेममय भक्ति में वे मग्न हो गए। मुख से श्रीराम का जाप करने से उनका उद्धार हुआ। श्रीराम के प्रेम की प्राप्ति से उन्हें ब्रह्मसन्तोष की प्राप्ति हुई। श्रीराम की भक्ति के कारण मंदकर्णी को नित्यमुक्ति प्राप्त हुई उनके साथ रहने वाली पाँच अप्सराओं को भी आत्म मुक्ति मिली। जिस श्रीराम के नाम का जाप करने से जड जीवों का उद्धार हो जाता है, उस श्रीराम के प्रेममय दर्शन से ऋषि को ब्रह्मसमाधान प्राप्त हुआ। अप्सराएँ सुख सम्पन्न हुईं। श्रीराम ने दोनों का उद्धार कर वहाँ से प्रस्थान किया।

मंदकर्णी ऋषि की प्रेमभावना देखकर उस आश्रम में श्रीराम को अत्यन्त सुख की अनुभूति हुई। ऋषि एवं अप्सराओं को भी परमसुख की प्राप्ति हुई। लक्ष्मण और सीता भी सुखी हुए, तत्पश्चात् अन्य आश्रम देखने हेतु ऋषि से आज्ञा लेकर श्रीराम ने प्रस्थान किया। अन्य ऋषियों के आश्रम देखते हुए श्रीराम कहीं एक मास, कहीं दो और कहीं चार, पाँच और छ: मास रुकते थे किसी स्थान पर तो उन्होंने डेढ़ वर्ष तक निवास किया। इस प्रकार वन-भ्रमण करने के पश्चात् वे पुन: सुतीक्ष्ण ऋषि के आश्रम में लौट आये

श्रीराम के पुनरागमन से सुतीक्ष्ण हर्षित हुए। श्रीराम और लक्ष्मण को गले लगाकर उन्होंने अपना आनंद व्यक्त किया। उन्होंने श्रीराम का नित्यपूजन कर उन्हें फलाहार देकर कुछ अवधि तक अपने आश्रम में ही रोक लिया। श्रीराम ने आदरपूर्वक सुतीक्ष्ण ऋषि से कहा - "आप हमें अगस्त्य ऋषि के आश्रम में भेजें " श्रीराम के वचन सुनकर सुतीक्ष्ण आनन्दित हो बोले– "अगस्त्य ऋषि का आश्रम परमपवित्र है, आप वहाँ पर अवश्य जायें।" श्रीराम ने कहा "आगे सघन वन होने के कारण सहज रूप से मार्ग दिखाई नहीं देता अत: कृपा कर आप ही मार्ग-दर्शन करें वहाँ जाने की अत्यन्त उत्कट् इच्छा है।" यह सुनकर सुतीक्ष्ण आश्चर्यचकित हो बोले– "हे श्रीराम, आप स्वयं सबके मार्ग-दर्शक होकर हमसे मार्ग पूछते हैं। यहाँ से आधे-योजन पर अगस्त्य का आश्रम है इसी मार्ग पर आप आगे जायँ।" श्रीराम लक्ष्मण एवं सीता ने सुतीक्ष्ण ऋषि की वंदना कर अगस्त्य ऋषि के आश्रम की ओर प्रस्थान किया,

अगस्त्य ऋषि महिमा– अगस्त्य ऋषि महान तपस्वी थे, उनकी महिमा सर्वत्र व्याप्त थी। उनसे सम्बन्धित एक घटना श्रवणीय है। वातापी और इल्वल दो भाई थे। वे ब्राह्मणों को मारकर खाने की योजना बनाते रहते थे। वातापी ब्राह्मण-वेश धरकर रहता था और इल्वल कपटपूर्वक अन्न-रूप हो जाता था। तत्पश्चात् ब्राह्मणों को श्राद्ध, भोजन का निमन्त्रण देकर बुलाया जाता था। वे ब्राह्मण तृप्त होने तक अन्न खाते थे। अन्नरूप में इल्वल ब्राह्मणों के पेट में चला जाता था। तत्पश्चात् वातापी अपने भाई को आवाज़ देकर बुलाता था, उस समय इल्वल ब्राह्मण का पेट फाड़कर बाहर आ जाता था। इस प्रकार ब्राह्मणों को मारकर वे राक्षस उन्हें खा जाते थे। उन राक्षसों के इस कपट-पूर्ण कृत्य से ब्राह्मण संत्रस्त थे। उन ब्राह्मण-घातकी राक्षसों के कृत्य के बारे में अवगत होने पर स्वयं अगस्त्य उन राक्षसों के पास आये। उन्होंने चावल के रूप में इल्वल को खा लिया। उस चावल के प्रत्येक कौर के साथ अगस्त्य अपनी जठराग्नि प्रज्वलित कर उस कौर को जला देते थे। हमेशा की तरह वातापी ने अपने भाई को आवाज देकर बुलाया लेकिन इल्वल तो समाप्त हो चुका था। वह पेट फाड़कर किस प्रकार आता। अगस्त्य ऋषि बोले– "मैंने उसे समाप्त कर दिया है।" इस उत्तर से अत्यन्त क्रोधित हो वातापी विकट राक्षस-वेश धारण कर दारुण गर्जना करते हुए विकराल मुख फैलाकर अगस्त्य को निगलने के लिए दौड़ा। उसी समय अगस्त्य ने अपने नेत्रों की क्रोधाग्नि से उसे क्षणार्द्ध में ही भस्म कर दिया। इस प्रकार दोनों ब्राह्मणघाती राक्षस जलकर भस्म हो गए। ऐसे प्रतापी महामुनि के दर्शन अवश्य करें,– ऐसा श्रीराम से कहा गया।

स्वयं सुतीक्ष्ण श्रीराम से कह रहे थे– "आगे वन अत्यन्त गहन है, सहज रूप से अगस्त्य का निवास-स्थान दिखाई नहीं देता। उस विषय में मैं कुछ चिह्न बताऊँगा, वे ध्यान से सुनें– ज्येष्ठ भ्राता अगस्त्य हैं और कनिष्ठ भ्राता महामती हैं। यहाँ से आधे योजन की दूरी पर उनका आश्रम है। उनके आश्रम में जाकर आज रात्रि वहीं निवास करें। प्रातःकाल आपकी अगस्त्य ऋषि से भेंट होगी। महामती की वनस्थली की महिमा ऐसी है कि वहाँ बिना बोये स्वयं ही धान तथा कदली, पीपल, नागवेली, सुपारी इत्यादि वृक्ष शोभायमान हैं। ऋषि श्रेष्ठ महामती, अगस्त्य ऋषि से मिलने हेतु जो मार्ग बतायें, आप उसी मार्ग से जायें।" सुतीक्ष्ण ऋषि का नमन कर तीनों ने आगे प्रस्थान किया। वन-उपवन से सुशोभित महामती का आश्रम देखकर तीनों सन्तुष्ट हुए। आश्रम में रघुपति के आगमन से ऋषि महामती अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अत्यन्त प्रेमपूर्वक उन्हें आश्रम में रोक लिया और श्रीराम का पूजन किया।

अध्याय ५

[अगस्त्य ऋषि द्वारा श्रीराम को शस्त्र-प्राप्ति]

श्रीराम ने ऋषि महामती से पूछा– "आपके ज्येष्ठ भ्राता अगस्त्य के दर्शनों के लिए उत्सुक होकर हम आपके पास आये हैं। कृपा कर उनके पास पहुँचने का मार्ग हमें बतायें।" महामती बोले– "जिस मार्ग से जाने पर आप कभी पंथ नहीं भूलेंगे तथा जिस मार्ग पर चलते हुए आपका मन प्रसन्न होगा वह मार्ग मैं आपको बताता हूँ; कृपा कर सावधानीपूर्वक सुनें।" शिवादि देवों ने वहाँ पर एक भुवन का निर्माण किया है। ऐसा अगस्त्य-आश्रम अत्यन्त पवित्र है। वहाँ वे अनुष्ठान भी करते हैं तथा रामकथा का श्रवण भी करते हैं। जिन देवों का कभी पृथ्वी पर आगमन नहीं होता, वे देव भी अगस्त्य आश्रम

में बैठकर उनके जैसे रसिक वक्ता के मुख से श्रीराम की पवित्र कथा अत्यन्त प्रेमपूर्वक सुनते हैं। अगस्त्य ऋषि के आश्रम में किस किसने देवस्थान निर्मित किये हैं, उनके विषय में मैं आपको बताता हूँ, वे मार्ग-चिह्न के रूप में भी आपकी सहायता करेंगे।"

मार्ग में स्थित सुचिह्न हमेशा ही निर्विघ्न मार्ग के प्रतीक होते हैं। ब्रह्मस्थान सौब्रह्मण्य, शिवस्थान शिवशक्ति, इन्द्र, चन्द्र, कुबेर स्थान, अग्निस्थान, भृगु-स्थान, यम स्थान, धर्म-स्थान ये सब राम-कथा के श्रवणार्थी स्थान हैं। धाता विधाता तथा अपनी चपलता त्यागकर वायु भी अत्यन्त तल्लीनतापूर्वक रामायण का श्रवण करते हैं, शिवपुत्र कार्तिक स्वामी भी यहाँ रहकर ऋषि से परमार्थ चर्चा करते रहते हैं। ऋषि भी उन्हें आनन्दपूर्वक बताते रहते हैं। काशीखंड, केदारखंड, श्रीशैलखंड इत्यादि की चर्चा हो चुकी है। परन्तु रामायण कथा अत्यन्त मधुर एवं सुखद प्रतीत होती है। भविष्य की घटनाओं पर किये गए भाष्य के रूप में रामायण सुनने के लिए आश्रमों में देवता एवं ब्राह्मण निवास करते हैं, अगस्त्य का महिमा सम्पन्न आश्रम देवों तथा ब्राह्मणों के निवास से पवित्र हो गया है। हे श्रीराम, उन सुचिह्नों को देखते हुए आप शीघ्र वहाँ आयें।" ऋषि के वचन सुनकर श्रीराम अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने अगस्त्य ऋषि के आश्रम की ओर प्रस्थान किया।

अगस्त्य ऋषि द्वारा श्रीराम का स्वागत एवं वंदना– श्रीराम एवं लक्ष्मण ने महामती ऋषि को वंदना करके सन्मार्ग के चिह्न देखकर शीघ्र अगस्त्य ऋषि के आश्रम की ओर प्रस्थान किया। अगस्त्य ऋषि अत्यन्त ज्ञानी थे, वे अपने शिष्यों को बता रहे थे– "अभी श्रीरघुनाथ आयेंगे। उनके साथ सीता और सौमित्र भी होंगे।" उन्होंने अपने आश्रम को उनके स्वागतार्थ सुसज्जित किया। वे अत्यन्त आल्हादित हो कह रहे थे "मूर्तिमंत परब्रह्म ही स्वयं यहाँ आ रहे हैं। आज मेरा परम सौभाग्यशाली दिवस है आज मैं जी भरकर श्रीराम के दर्शन करूँगा श्रीराम राम-राज्य की स्थापना के लिए ही वन में आये हैं। करोड़ों राक्षसों का संहार करने के लिए, नव ग्रहों के बंधन तोड़ने के लिए, देवों के बंधन को मुक्त करने के लिए वे वन में आये हैं। स्वधर्म-रक्षण और दुष्टों का संहार करने के लिए कृपानिधान श्रीराम स्वयं यहाँ आये हैं। आज त्रिलोकों में मैं ही सबसे भाग्यवान् हूँ क्योंकि वेद शास्त्रों के लिए जो अव्यक्त हैं, ऐसे कृपामूर्ति राम मेरे सौभाग्य से मेरे आश्रम में आये हैं।

राम की ऐसी स्तुति करते हुए ऋषियों को एकत्र कर शिष्य समुदाय के साथ अगस्त्य ऋषि राम के स्वागतार्थ आगे आये, ऋषि को आते हुए देखकर श्रीराम, लक्ष्मण से बोले "तपोतेज से परिपूर्ण अगस्त्य ऋषि हमारे स्वागत के लिए आ रहे हैं। जिन्होंने एक आचमन से सागर समुद्र सोख लिया, ऐसे महान् ऋषि हमारे लिए अत्यन्त कृपालु होकर आ रहे हैं।" ऐसा कहकर स्वयं श्रीराम ने साष्टांग दंडवत् कर ऋषि के चरणों पर माथा टेका, ऋषि ने श्रीराम को उठाकर गले से लगा लिया। जानकी और लक्ष्मण ने भी मुनि की चरण वंदना की। तत्पश्चात् हाथ जोड़कर तीनों खड़े हो गए। श्रीराम को देखकर ऋषि आनन्द से परिपूर्ण हो गए उनका जय-जयकार करते हुए, मन्त्रोच्चार के साथ उनको आश्रम में लाकर मधुपर्क से[१] श्रीराम की पूजा की और शतसंख्य गोदान दिये। श्रीराम बोले– "मैं एक सामान्य सेवक हूँ आपके समक्ष एक रंक के समान हूँ; आप मेरी पूजा कर, यह मेरे लिए उचित नहीं है।"

अगस्त्य द्वारा श्रीराम स्तुति एवं महिमा वर्णन– श्रीराम के नम्रतापूर्वक वचन सुनकर अगस्त्य ऋषि प्रसन्न होकर बोले– "श्रीराम आपकी महिमा वेद शास्त्रों को भी अगम्य है। आपके सम्बन्ध में

टिप्पणी १. *किसी का सम्मान करने के लिए दही शहद इत्यादि सामग्री से उसका पूजन करने की विधि।*

नेति-नेति की उक्तियाँ ही विद्यमान है। तीनों लोकों में ब्रह्मरूप में आपको पूजनीय माना जाता है। अविनाशी परब्रह्म आप ही हैं। भक्तों पर कृपा करने के लिए आपने साकार रूप धरा है। सचमुच मैं बहुत भाग्यशाली हूँ। अन्य राजा मात्र भूपालक हैं परन्तु राम तीनों लोकों के स्वामी हैं, आपके ही कारण पृथ्वी का अस्तित्व है, चन्द्र और सूर्य की गति है। आपकी आज्ञा के कारण सागर भी अपनी मर्यादा का उल्लघन नहीं करता है। इन्द्रादि देव आपके सेवक हैं। आपके कारण ही शेषनाग भूमि का भार वहन किये हुए हैं। काल भी आपकी आज्ञा शिरोधार्य करता है। भूतमात्र में आप ही विद्यमान हैं। सभी के लिए आप पूजनीय हैं।"

"आज तक अनेक उत्तमोत्तम अवतार हुए हैं। हे राम, आप उनमें से ही हैं। आप परब्रह्म हैं, परम पूजनीय हैं, आपकी आत्मस्थिति ऐसी है तथापि आपने धर्म व्रत धारण किया है। पितृवचनों का पालन करते हैं, दुष्टों का निर्दलन करते हैं। हे रघुनाथ, आप माता पिता तथा गुरु से भी अधिक पूजनीय हैं। वेद आपका ही वर्णन करते हैं। शास्त्र आपके चरणों में शरण लेते हैं और शिव, ब्रह्मदेव आपके चरण स्पर्श करते हैं। हे श्रीराम, आप परमपूजनीय हैं। आपका जितना भी सम्मान किया जाय, कम ही है। आप मानापमान से परे हैं। हे श्रीराम, आपकी महिमा का वर्णन वेदों के लिए भी असम्भव है। आज आप स्वयं मेरे आश्रम में आये हैं, मैं धन्य हो गया हूँ। हे रघुराज, मैं आपकी जो कुछ भी पूजा अर्चना करूँगा, वह आप स्वीकार करें क्योंकि वह राक्षसों का वध करने के लिए है।"

"हे श्रीराम, आप मेरे प्रिय अतिथि हैं। हे कृपा मूर्ति, आपके आश्रम में आने पर जो आपको नहीं पूजते, वे अभागे हैं। उनका अधःपतन होगा। अतिथि अगर विमुख होकर चला गया तो गृहस्थ करोड़ों पापों का भागी बनता है। क्योंकि यजमान का पुण्य, अतिथि के साथ चला जाता है और उसके पास मात्र अधोगति ही रह जाती है। इसीलिए हे रघुनाथ, अतिथि की पूजा अवश्य करनी चाहिए। आप मेरी आत्मा हैं अतः मेरी पूजा स्वीकार करें।" अमृत सदृश फलमूल, सुगन्धित पुष्प तथा मधुपर्क विधिविधानों से अगस्त्य ऋषि ने श्रीराम की पूजा की। श्रीराम को चराचर जगत् का परमात्मा मानकर जय-जयकार एवं वेदोक्त महामन्त्रों से ऋषिवर ने श्रीराम की पूजा की, वे बोले- "हे रघुराज ! अब मैं आपको दिव्य अस्त्र प्रदान कर आपकी पूजा करूँगा। इन आयुधों से आप शत्रु समाज का निर्दलन करें।"

अगस्त्य ऋषि द्वारा शस्त्र प्रदान करना एवं लोपामुद्रा द्वारा सीता पूजन– अगस्त्य ऋषि ने श्रीराम को दिव्य धनुष एवं असख्य बाण दिये, सुवर्ण की म्यान सहित खड्ग प्रदान किया। शस्त्रास्त्र जिसे छेद न सकें, ऐसा सूर्य के तेज के समान दैदीप्यमान तेजस्वी कवच दिया और कहा- "यह कवच, धारण करने वाले को विश्रांति प्रदान करता है। उसका तेजस्वी प्रकाश शत्रु को सन्त्रस्त कर देता है। अतः शत्रु का संहार करने के लिए आप इसे स्वीकार करें। आपको जब रथ एवं सारथी की आवश्यकता होगी उस समय रावण का संहार करने के लिए मातलि नामक सारथी इन्द्र का रथ लेकर आयेगा। ऋषि के वचन सुनकर श्रीराम एवं लक्ष्मण ने ऋषि की वंदना की। ऋषि ने प्रसन्न हो उन्हें गले से लगाया। श्रीराम ने सन्तुष्ट हो, युद्ध में राक्षसों का संहार करने के लिए उन्हें दिव्य आयुध अर्पण किये। उस समय अत्यन्त आल्हादित हो वे बोले- "इन शस्त्रों के द्वारा आप युद्ध में राक्षसों का सिर धड़ से विच्छिन्न करेंगे।" इस वरद वाक्य से श्रीराम भी सन्तुष्ट हुए।

उसी समय लोपामुद्रा ने आकर सीता की पूजा की और बोली- "श्रीराम की ओर अपना सारा ध्यान केन्द्रित कर उनका अनुगमन करते हुए तुम वन में आयीं, तुम धन्य हो, पतिव्रता हो, तुम्हारे कारण

हम पवित्र हुए। तब श्रीराम अगस्त्य ऋषि से बोले "हे महाऋषि, इस वन को दण्डकारण्य क्यों कहते हैं, आप मुझे विस्तारपूर्वक बतायें। इस पर ऋषि बोले "तो सुनें !'

दण्डकारण्य की पूर्वकथा– इस प्रदेश का दण्डक नामक राजा अत्यन्त अभिमानी था। वह अपने प्रदेश में उन्मत्त व्यवहार करता था। एक बार जब वह शिकार के लिए वन में विहार कर रहा था उसने भृगुवंशी च्यवन ऋषि का घोर अपमान किया। उस कारण ऋषि ने उसे शाप दिया कि राज्य सहित तुम भस्म हो जाओगे और ऐसा ही हुआ। विन्ध्यपर्वत का दक्षिण दिशा में सेतुबन्ध तक का भाग दण्डकारण्य है, जो ऋषि के शाप से भस्म हुआ है। राजा उसकी सेना, मनुष्य, वृक्ष, घास, पशु, पक्षी सब पूर्ण रूप से भस्म हो गए। यहाँ तक कि नदियाँ, सरोवर, मृग, सर्प सभी भस्म हो गए। ऋषि के भयंकर क्रोध से शापित वन-प्रदेश कुछ समय तक बंजर पड़ा रहा, जिसके कारण इसका नाम दण्डकारण्य पड़ा भार्गव के शाप भय से यहाँ वर्षा नहीं हुई। चन्द्र व सूर्य भी अपना प्रकाश नहीं देते थे, उसी कारण दिन-रात यहाँ अंधकार विद्यमान रहता था ऐसा बहुत वर्षों तक रहा " इस पर राम ने ऋषि से पूछा कि दण्डकारण्य पुनः कैसे बसा ? तब अगस्त्य ऋषि ने बताया कि दण्डकारण्य बसाने के लिए नारद ने विन्ध्यपर्वत एवं मेरु पर्वत से विनती की।

मेरु पर्वत, जो स्वयं चराचरों का आधार है, वह स्वयं महामेरु हुआ। मेरु से बलशाली कोई बड़ा पर्वत नहीं था। नारद की विनती सुनकर मेरु से स्पर्धा करने के लिए विन्ध्यपर्वत ऊँचे बढ़ता चला गया। इस कारण चन्द्र, सूर्य की गति बाधित हो गई। सारे जगत् व्यवहार रुक गए। देव, पितृ, कर्म बन्द होने के कारण देव एवं पितृ क्षुधा से मरणासन्न हो गए। सन्ध्या पूजा के बिना आहार न ग्रहण करने के कारण ऋषिगण क्षुधा से व्याकुल हो गए। गायें, चरने नहीं गयीं, बछड़े भूख से चीत्कार करने लगे तीनों लोकों में हाहाकार मच गया। विन्ध्याद्रि पर्वत सूर्य को उदित ही नहीं होने दे रहा था। ऐसा होने पर ऋषिगण ब्रह्मदेव के पास गये और अपनी व्यथा सुनायी। तीनों देव सूर्य को दक्षिण की ओर किस प्रकार भेजा जाय, इस सम्बन्ध में विचार करने लगे। तत्पश्चात् देवों ने मेरी विनती की कि मैं वाराणसी छोड़कर विन्ध्याद्रि का नियमन करने के लिए तुरन्त दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान करूँ और विन्ध्याद्रि को पृथ्वी पर ले आऊँ तथा दिवस रात्रि की गति नियमित करने के लिए चन्द्र एवं सूर्य को मुक्त करूँ. देव मुझसे बोले– "हे ऋषि, इसका तुम्हें पुण्य प्राप्त होगा। देव एवं पितृ तृप्त होंगे और ब्राह्मण स्वधर्म-पालन कर सकेंगे। तुम सामर्थ्यवान् हो। तुमने आचमन से समुद्र-प्राशन कर लिया था तुम्हारे समक्ष विन्ध्याद्रि तुच्छ है। अतः परोपकार के लिए तुम प्रस्थान करो और विन्ध्याद्रि पुनः सिर न उठा सके, ऐसी व्यवस्था करो।" देव एवं ब्राह्मणों की पुनर्स्थापना करने के लिए दक्षिण की तरफ प्रस्थान करने का देवों ने मुझे आदेश दिया।

"मैं देवों के कहने पर नारद की इच्छा के अनुरूप दण्डकारण्य बसाने के लिए दक्षिण की ओर आया। हे रघुपति, मेरा यहाँ आगमन किस प्रकार और किस परिस्थिति में हुआ, यह मैं आपको बता रहा हूँ। मैं जलभरे मेघों को लेकर विन्ध्याद्रि के समीप आया। विन्ध्यपर्वत ने मुझे देखते ही साष्टांग दंडवत् किया। उसने मेरी यथास्थिति पूजा की और बोला - महाऋषि, उत्तर दिशा की ओर से क्या वार्ता है, मुझे बतायें। आप यहाँ से कहाँ जा रहे हैं, कौन सी इच्छा लेकर मेरे पास आये हैं ? मैं आपको वचन देता हूँ कि आपकी इच्छा मैं अवश्य पूर्ण करूँगा। विन्ध्याद्रि के ऐसा कहने पर मैंने उसे उत्तर की तरफ की वार्ता सुनाई, वह मैं आपको भी बता रहा हूँ।"

"मैंने विन्ध्याद्रि से कहा– ''विन्ध्याद्रि तुम्हारा महाप्रताप देखकर मेरु कम्पित हो रहा है। सुर और असुर क्रोधित हो रहे हैं। तुम्हारा स्वरूप अतिशय श्रेष्ठ है। हे विन्ध्याद्रि सुर-असुर तुम्हारी महानता का बखान करते हैं मेरु पर्वत तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकता है।' मेरे वचन सुनकर विन्ध्याद्रि प्रसन्न हुआ। उसने मेरे चरणों पर साष्टांग दंडवत् हो, प्रणाम किया। आप भाग्यशाली हैं विन्ध्याद्रि बोला। उसके द्वारा मेरा गतव्य पूछने पर मैंने कहा– मैं दक्षिण के तीर्थों की यात्रा करने निकला हूँ, तुम पृथ्वी पर लेटकर मेरे लिए मार्ग सुगम करो, यह तुमसे विनती है। तुम महान् हो क्योंकि चन्द्र सूर्य से भी ऊँचे हो, इतनी ऊँचाई पर मेरा चढ़ना सम्भव नहीं है अत: मेरा मार्ग प्रशस्त करने के लिए तुम भूमि पर शयन करो। विन्ध्याद्रि ने मेरी आज्ञा का पालन किया। तीर्थ यात्रा करके वापस आने तक न उठने की आज्ञा देकर मैं यहाँ आया हूँ।"

विन्ध्याद्रि के शयन करते ही सूर्य एवं चन्द्र का मार्ग खुल गया। द्विज और देवों के कष्ट समाप्त हुए। दिवस और रात्रि का चक्र चलने लगा। मेरे यहाँ आते ही भृगु ऋषि का श्राप भी समाप्त हो गया। वर्षा हुई, पृथ्वी धनधान्य से परिपूर्ण हुई। मेरे मन में चिन्तन करते ही प्रदेश में महामेरु के वृक्ष फलों फूलों से लद गए। नदियाँ प्रवाहित होने लगीं। सरोवरों में कमल खिल गए। विभिन्न पक्षी, गज, सिंह, मृग मुक्त रूप से विहार करने लगे। मेरे साथ अनेक ऋषि दण्डकारण्य में निवास करने लगे इस प्रदेश में कोई राजा न होने से राक्षस इस आरण्य में फैल गए। दण्डक को मिले हुए शाप के कारण इसका दण्डकारण्य नाम पड़ा। हे रघुनन्दन, राक्षसों का नाश कर इसे पवित्र करने के लिए आप यहाँ आये हैं। आपके प्रताप से राक्षसों का नाश होकर यह वन पवित्र होगा। पुराणों में रामक्षेत्र दण्डकारण्य, ऐसा इसका गौरव होगा। ब्राह्मण इस क्षेत्र के लिए यही नाम प्रयोग करेंगे। राम द्वारा राक्षसों का वध होकर इन क्षेत्र का पवित्र पुराणों में हमेशा रामक्षेत्र के नाम से उल्लेख होगा।" अगस्त्य ऋषि द्वारा बतायी गई कथा सुनकर राम आश्चर्यचकित हुए। उन्होंने ऋषि की चरण-वंदना कर पूछा "दण्डकारण्य में लक्ष्मण एवं सीता सहित मैं कहाँ पर निवास करूँ, आप मुझे बतायें। आपके वचन मेरे लिए ब्रह्म-वचन सदृश हैं, मैं उनका पालन करूँगा।"

श्रीराम के प्रश्न का उत्तर देते हुए ऋषि कृपापूर्वक बोले "गंगा* के किनारे पंचवटी नामक पवित्र स्थान है वहाँ पर्णकुटी निर्मित कर आप समाधानपूर्वक रहें। पंचवटी गंगा के किनारे है, यह सुनकर सीता हर्षित हुई। श्रीराम भी सन्तुष्ट और प्रसन्न हुए। पंचवटी में निवास से आपकी तीनों लोकों में कीर्ति फैलेगी अत: आप निश्चय ही वहाँ जायें।" ऋषि के आश्वासन के पश्चात् राम, सीता तथा लक्ष्मण ने ऋषि की वंदना की। ऋषि ने हृदय से लगाकर उनसे विदा ली। पंचवटी में आश्रम बनाने के लिए श्रीराम ने आनन्दपूर्वक वहाँ से प्रस्थान किया। लक्ष्मण भी श्रीराम को देखकर उल्लसित हुए।

अध्याय ६

[कश्यपवंश वर्णन; अमृत की प्राप्ति हेतु गरुड़ द्वारा प्रस्थान]

ॐ अगस्त्य ऋषि की वंदना कर श्रीराम, सीता और लक्ष्मण ने शीघ्रता से पंचवटी की ओर प्रस्थान किया। पंचवटी नामक रमणीय स्थल गंगा के किनारे स्थित था। अत: वे वहाँ जाने के लिए अति

* टिप्पणी– गोदावरी के स्थान पर गंगा शब्द का प्रयोग पवित्र नदी के संदर्भ में किया गया है।

उत्सुक थे। अरुणा एवं वरुणा का संगम होने के पश्चात् सरस्वती उसमें इसी स्थान पर मिली थी। इसी कारण तीनों लोकों में पवित्र तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध थी। श्रीराम को वहाँ निवास करना था गया। अत्यन्त भयानक राक्षसों का वहाँ निवास होने के कारण भय से वह स्थान निर्जन हो गया था, लोगों ने वहाँ तीर्थ-यात्रा पर जाना भी बन्द कर दिया था क्योंकि त्रिशिर एवं खर-दूषण इत्यादि राक्षसों का वहाँ निवास था। अत: तीर्थयात्रा के लिए वहाँ कोई जा ही नहीं सकता था। राक्षसों का संहार करने में एवं उनका समूल नाश करने में समर्थ होने के कारण ही ऋषि अगस्त्य ने श्रीराम को वहाँ भेजा।

जटायु से भेंट एवं कश्यप वंश का वृत्तान्त– पंचवटी की ओर शीघ्रता से जाते हुए श्रीराम ने पर्वत के समान प्रचंड जटायु नामक गिद्ध पक्षी को देखा। उसके रक्तरंजित नेत्र एवं भयानक चोंच देखकर श्रीराम एवं लक्ष्मण ने उसे भयानक राक्षस समझा। अपने धनुष को सुसज्ज कर दोनों उस पक्षी की दिशा में आगे बढ़े। राम ने शौर्यपूर्वक धनुष पर बाण को सुसज्ज किया और पक्षी को ललकारा। अरे गिद्ध रूपी राक्षस ! वहीं रुको। अगर तुमने हमारा मार्ग रोका तो इस बाण से क्षण मात्र में ही तुम्हारा वध कर दूँगा। मेरे बाणों के आगे तुम्हारा बल टिक नहीं पाएगा। मैं युद्ध में तुम्हें मार गिराऊँगा। गिद्ध रूप में तुम कौन हो और मार्ग रोकने का क्या कारण है। अपने विषय में विस्तार से बताओ अन्यथा बोले बिना ही तुम्हारे प्राण हर लूँगा। मैं दशरथ पुत्र राम हूँ; सीता मेरी पत्नी है और लक्ष्मण मेरा बन्धु। हम पंचवटी की ओर जा रहे हैं, तुम हमारा मार्ग क्यों रोक रहे हो ?

श्रीराम के वचन सुनकर जटायु राम के चरणों पर गिरकर बोला "हे दशरथ-पुत्र रघुनन्दन, मैं आपकी महिमा जानता हूँ। पंचवटी में आप निवास के लिए आयेंगे, यह जानकर आपके दर्शनों के लिए मैं बहुत समय से प्रतीक्षा कर रहा हूँ। आपके पिता व मेरे मित्र दशरथ जब इन्द्र की सहायता करने के लिए गये और नमुचि दैत्य पर वार किया, उस समय आकाश से झपट कर मैंने उसका शिरकवच गिरा दिया, तब दशरथ ने बाणों से वेधकर उस दैत्य का नाश किया उसी दशरथ के आप ज्येष्ठ पुत्र और पूर्ण ब्रह्मस्वरूप रघुनाथ हैं। आपकी सेवा करने के लिए ही मैं यहाँ आया हूँ। आप स्वामी हैं, मैं आपका दास हूँ। मुझे राक्षस न कहें। कश्यप वंश में मेरी उत्पत्ति हुई है, उस कश्यप वंश के विषय में मैं आपको बताता हूँ। आपने मुझे राक्षस नाम से सम्बोधित किया, परन्तु मैं राक्षस न होकर कश्यप वंश का हूँ, मेरी वंशावली बहुत बड़ी है। आप धैर्यपूर्वक सुनें। मनु से क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व ब्राह्मण की उत्पत्ति हुई। अन्य सृष्टि कश्यप की उत्पत्ति है। उसके लक्षण भी सुनो। अदिति से देव उत्पन्न हुए, दिति से दैत्य। दनु से दानव और मनु से मानव उत्पन्न हुए। समस्त मानवी वैभव मनु का है। स्वसा से रुद्रोत्पत्ति हुई। ये रुद्रगण रुद्र के अनुयायी हैं। भद्रा से गंधर्व का जन्म होता है। ये गन्धर्व मधुर गायन करते हैं सन्ध्या की मैथुन स्थिति से राक्षसों का जन्म हुआ। इस कारण राक्षसों की उत्पत्ति सन्ध्या से मानी जाती है। जो राक्षस वेद-शास्त्रों की उत्पत्ति की चर्चा करने वाले ब्राह्मणों की भर्त्सना करते हैं, उन्हें ब्रह्म राक्षस कहते हैं। रावण ने भी सज्जन ऋषियों की भर्त्सना की अत: वह भी ब्रह्म राक्षस की श्रेणी में सम्मिलित किया गया। ज्ञान गर्व की अधिकता एवं ब्रह्मद्वेष के कारण ब्रह्म राक्षसत्व की प्राप्ति होती है। क्रोधवशता से सिंह बाघ, वराह इत्यादि तथा मृग, खरगोश, वृक, जम्बूक, गौरादि पशु हुए। वारुणी से ऐरावती का जन्म हुआ। उससे गज और दिग्गज की निश्चित रूप से उत्पत्ति हुई।

शरमा का ज्येष्ठ पुत्र श्याम शबल यम का दूत जिससे कुत्ते बिल्ली इत्यादि उत्पन्न हुए, वृक्षा से विद्याधर, किन्नर आदि पुरुष, तपस्वी दुर्धर, निरंकुश बली, अनाड़ी, घमंडी, जागला से वन, उपवन

कंटकयुक्त अरण्य, बेलें औषधि एव वनस्पतियों से युक्त वनों का निर्माण हुआ। कामधेनु से कामधेनु सदृश गायें, बैल आदि पशुओं की निर्मिती हुई। वडवा से अश्व संभूति उच्चैश्रवा, स्वर्ग-सम्पत्ति, श्याम-कर्ण आदि भिन्न जातियों के अश्वों की उत्पत्ति हुई। इसी से भारवाहक गधे, ऊँट आदि का जन्म हुआ। गधे और घोड़े के संयोग से खच्चर निर्मित हुए। श्येनी, धृतराष्ट्री गृध्री, शुकी, क्रौंची इन पांच नारियों से पक्षी जन्मे। उनसे ही मछलियाँ, मगर इत्यादि जलचर निर्मित हुए। गृध्री से गिद्ध, चील, उल्लू, घमगादड़ और गंडभैरव इत्यादि दुर्धर और क्रूर प्राणियों की निर्मिती हुई। श्येन, तीतर, लावक, कपोत, कुक्कुट, काक, गिरगिट, मेंढक इत्यादि को श्येनी ने जन्म दिया। क्रौंची से ढोक, टिटवी इत्यादि रात्रि कीटकों का जन्म हुआ। तोता, मैना, चाप, भारद्वाज मोर, चिड़िया पिंगला इत्यादि की उत्पत्ति शुकी से हुई। धृतराष्ट्री ने हंस, बगुला, चकोर, चक्रवाक, मछली इत्यादि जलचरों को जन्म दिया। कद्रू से काल कर्कोटक, भुजंग, शेष, वासुकी इत्यादि नाना प्रकार के नाग और पाताल पन्नग इत्यादि की निर्मिती हुई।"

"कश्यप से सुर, असुर, नर, किन्नर इत्यादि समग्र चराचर सृष्टि कश्यपी हुई। अंडज, स्वेदज, जटायुज और वनस्पति इत्यादि सभी कश्यप के तेजस्वी बीज से उत्पन्न हुए। जलचर, भूचर, नभचर इत्यादि जो भी चराचर सृष्टि है, कश्यप की ही रचना है। जिनका कुल गोत्र न पता चल रहा हो, उन्हें कश्यप गोत्र से उत्पन्न मानते हैं और कश्यप गोत्र से जुड़ने मात्र से वे पावन हो जाते हैं, ऐसी कश्यप की ख्याति विद्यमान है। जो कश्यप गोत्र से जुड़ जाता है, उसके लिए मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। सृष्टि कर्ता और सृष्टि हर्ता के रूप में कश्यप की प्रसिद्धि होने के कारण उसे भुक्ति और मुक्ति का दाता मानते हैं" "वास्तव में कश्यप की सृष्टि का वर्णन करने योग्य कोई वक्ता ही नहीं है। मैंने अत्यन्त संक्षेप में यह कथा कही है।" ऐसा कहकर संत एकनाथ सज्जनों से क्षमा माँगते हैं।

जटायु आगे बोला– "मैं कश्यप का नाती हूँ तथा जटायु नाम से प्रसिद्ध हूँ। अब मैं अपना वृत्तान्त सुनाता हूँ।"

जटायु द्वारा पूर्ववृत्त-कथन– "मैं अपना वृत्तान्त आरंभ से अंत तक सुना रहा हूँ। कश्यप की अनेकों पत्नियाँ थीं, जिनमें मुख्य अदिति, दिति, दनी, और चौथी मेरे पिता की जननी विनता नाम की पतिव्रता थी। विनता के अरुण और गरुड़ नामक दो पुत्र थे, वे अत्यन्त पवित्र एवं भगवद् भजन में लीन रहने वाले थे। अरुण सूर्य के रथ का सजग सारथी था तो गरुड़ श्रीविष्णु का वाहन था। गरुड़ की अमृत-हरण कर्ता के रूप में ख्याति थी।" इस पर श्रीराम के प्रश्न पूछने पर कि गरुड़ ने स्वतः अमृत हरण क्यों किया, जटायु उस विषय में बताने लगे–

कद्रु और विनता का प्रण– विनता और कद्रु दोनों सौतें थीं। सौतिया-डाह के कारण कपट की भावना से कद्रु ने विनता से पूछा कि सूर्य के रथ के घोड़े कैसे हैं ? विनता ने उत्तर दिया- वे घोड़े सफेद रंग के हैं। कद्रु ने कहा कि वे घोड़े नीलवर्णी हैं। इस मतभेद ने उग्र रूप धारण कर लिया और दोनों ने शर्त लगायी। कद्रु बोली कि घोड़े सफेद हैं, अगर ऐसा सिद्ध हुआ तो सर पर पानी का घड़ा रखकर हजारों वर्षों तक तुम्हारे घर पानी भरूँगी। विनता ने भी कहा कि अगर घोड़े नीले सिद्ध हुए तो हजार वर्षों तक तुम्हारे घर में दासी बनकर मैं पानी भरूँगी। इस प्रकार दोनों ने प्रण किया। कद्रु ने इसमें कपट करने की सोची।

विनता को अरुण ने ही बताया था कि सूर्य के घोड़े सफेद हैं। अतः उस पर विश्वास के कारण विनता के मन में किसी प्रकार की शंका न थी कद्रु द्वारा अपने सर्प-पुत्रों से पूछे जाने पर उन्होंने भी

सूर्य के घोड़ों का रंग सफेद बताया अतः इस कारण कद्रु अत्यन्त दुखी थी। उसने अपने पुत्रों को अपने प्रण के विषय में बताकर कहा– अब मैं विनता के घर हजार वर्षों तक पानी भरने वाली दासी रहूँगी सर्पपुत्रों ने उससे पूछा कि "तुमने पता न होते हुए भी नील रंग के घोड़े होने की शर्त क्यों लगायी अब तुम्हें इस सौतिया डाह का फल भोगना ही पड़ेगा। विनता जैसी सती पतिव्रता से तुमने व्यर्थ में ही छल किया। अब तुम्हें दासीत्व स्वीकार करना ही पड़ेगा। कोई कुछ भी नहीं कर सकता।" पुत्रों का कथन सुनकर कद्रु बोली– "तुम लोग पुत्र न होकर पाषाण हो, जो अपनी माता का पक्ष नहीं लेते। तुम सब मिलकर घोड़ों को विषैला बनाओ जिससे उनका रंग नीला हो जाय।"।

सर्प अपनी माता से बोले– "कपट करने से सबका सर्वनाश हो जाएगा, कपट करना अच्छा नहीं है।" पुत्रों का कथन सुनकर कद्रु क्रोधित हो उठी। उसने उन्हें अग्नि में जलकर भस्म होने का श्राप दिया। अतः सर्पों ने एकत्र होकर घोड़ों को काटा और अपने विष से उन्हें नीलवर्णी बना दिया; फिर माता से बोले "अब अति शीघ्र विनता को घोड़े दिखाओ, विलम्ब होने पर सूर्य विष सोख लेंगे और विनता पर विजय प्राप्त नहीं होगी। कपट से कोई कार्य साधना है तो तुरन्त साधना चाहिए, विलम्ब से विजय प्राप्त नहीं होती कद्रु ने पुत्रों का कहना मानकर विनता को बुलाकर सूर्य के रथ के नीले घोड़े दिखलाये, विनता को सभी घोड़े नील वर्णी दिखे। कद्रु ने विनता से कहा– "मैंने शर्त जीत ली है, अब तुम मेरी दासी हो।" और फिर कद्रु अत्यन्त उत्साह से घर वापस लौटी। माँ को प्रसन्न देखकर सभी पुत्रों ने उःशाप देने की विनती की कद्रु ने प्रसन्न होकर उःशाप दिया कि कन्या जरत्कारी के उदर से जरत्कारु से आस्तिक का जन्म होगा। वह ब्रह्मचारी शापरूपी अग्नि प्रलय से तुम्हारी रक्षा करेगा।

कद्रु के उःशाप के अनुसार सर्व प्रथम भीषण अग्नि में सभी सर्प जलेंगे। वहाँ पर आस्तिक आकर अग्नि से उनकी रक्षा करेगा। मातृपक्ष का कुल शापाग्नि में जलने पर मातुल आस्तिक, तपोबल से उनकी रक्षा करेगा। इस उःशाप से माता और पुत्र दोनों प्रसन्न हुए परन्तु कद्रु की चिंता फिर भी दूर नहीं हुई। उसे सुख और सन्तोष का अनुभव नहीं हो रहा था उसने कपट से विनता पर विजय तो पा ली थी परन्तु वही कपट उसके पुत्रों का घात भी करेगा, यह चिन्ता उसे सताये जा रही थी। यद्यपि कपट से कपटी व्यक्ति विजित होता है परन्तु उस कपट का डर उसमें समाया रहता है और अन्त में कपटी व्यक्ति दुःखी ही होता है कपट की चिन्ता से कद्रु का सुख नष्ट हो गया। इधर विनता अपने पुत्र अरुण से पूछ रही थी कि "तुमने मुझे निश्चयपूर्वक यह क्यों बताया कि सूर्य के घोड़े सफेद रंग के होते हैं। मैंने तो स्वयं उन्हें नीले रंग का देखा है नीलवर्णी घोड़े देखकर मैं कद्रु की दासी हो गई इसी कारण दिन-रात सिर पर पानी का घड़ा लेकर मुझे पानी भरना पड़ेगा" इस पर अरुण ने बताया-" सर्पों ने स्वयं का विष घोड़ों को देकर उन्हें नीलवर्णी बनाया, इसमें कोई शक नहीं परन्तु इस कपट का फल वे अवश्य भोगेंगे।

सूर्य अपने रथ के घोड़े नील वर्ण के देखकर क्रोधित हुआ। उसने क्रोध में सर्पों के पंख एवं पैर तोड़ दिये। इसके पूर्व सर्पों को पंख और पैर भी होते थे। पंखों एवं पैरों के अभाव में तभी से सर्प जमीन पर पेट और उर घिसते हुए चलने लगे। इसी कारण उन्हें उरग कहा गया। कपट के परिणाम स्वरूप उन्हें यह दुःख भोगना पड़ा। सूर्य ने सर्पों को शाप देते हुए कहा था कि तुमने जिस उदर में कपट धारण किया था, उस उदर में तुम्हें नित्य उदर शूल भोगना पड़ेगा। इस प्रकार पंख और पैर खोकर सर्प रात-दिन उदर शूल भोगने लगे। कपट करने के कारण उनकी यह दशा हुई। इतना होने पर भी कपट

ने सर्पों का पीछा नहीं छोड़ा, अन्त में उन्हें अग्नि में गिरना ही पड़ा। कपट करने वाला हमेशा दुःख ही भोगता है। सूर्य ने घोड़ों का विष खींच लिया; मात्र कानों में विष रहने दिया। इसी कारण वे श्वेत रंग के घोड़े काले कानों के कारण श्याम-कर्ण नाम से जग में प्रसिद्ध हुए। तभी से श्याम-कर्ण घोड़े संसार में यज्ञ के लिए शुभ माने गए और तीनों लोकों में प्रसिद्ध हुए।

अरुण माता से बोला– "माता मेरे आधीन सूर्य की गति होने के कारण मैं रथ में जाकर बैठने के लिए बाध्य हूँ। गरुड़ बंधन मुक्त है; उसका सामर्थ्य इतना है कि वह त्रिलोकों का भी आकलन कर सकता है। वह सहिष्णु है, शांत है अतः वही तुम्हें बंधन मुक्त कर सकता है। मुझे सूर्य की आज्ञा है कि मैं प्रातःकाल उठकर माता-पिता की वंदना करूँ अतः मैं तुम्हारी वंदना करने के लिए आया हूँ। मुझे अब रथ चलाने के लिए जाना चाहिए; गरुड तुम्हें बंधन मुक्त करेगा। माँ की आज्ञा लेकर अरुण सूर्य के रथ में जाकर बैठा। गरुड़ भी अत्यन्त मातृ भक्त था। विनता ने गरुड़ को बताया– "कद्रु ने कपट कर शर्त जीत ली और मुझे एक हज़ार वर्षों के लिए पानी भरने वाली दासी बना दिया। अरुण ने मुझे बताया कि मेरी बंधन-मुक्ति गरुड़ से होगी। अतः अब तुम मुझे बताओ कि तुम मुझे मुक्ति दिलाने के लिए क्या उपाय कर रहे हो।" यह सुनकर गरुड़ अत्यन्त क्रोधित हुआ और बोला– "कपट करके तुम्हें जीतने वाली उस कपटी को मैं समाप्त कर दूँगा। सर्पों का मैं नाश कर दूँगा। क्रोध पूर्ण वचनों के पश्चात् गरुड़ ने शांत होकर माता की वंदना की और कहा– "तुम्हारे बंधन मुक्त होने के लिए तुम कद्रु से पूछो कि उसे उसके बदले में कोई वस्तु तो नहीं चाहिए ? कोई भी उत्तम वस्तु चाहिए हो तो वह भी मैं ला दूँगा। माँ को बंधन मुक्त करने के बदले में कोई भी दुर्लभ वस्तु चाहिए तो मैं लाने के लिए तैयार हूँ।" तत्पश्चात् विनता कद्रु के पास गई।

कद्रु द्वारा अमृत की माँग– विनता ने कद्रु को बताया कि 'गरुड़ ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। तुम अगर मेरे बंधन खोलने के बदले में कोई वस्तु माँगोगी तो वह तुम्हें लाकर देगा। उसने माता को बन्धन मुक्त करने के लिए कल्पतरु, चिंतामणि, कामधेनु- जो तुम्हें अच्छा लगे, माँगने के लिए कहा है।' इस पर कद्रु ने सोचा कि गरुड़ का सामर्थ्य अपार है, उसकी शक्ति भी अपार है अतः उसके माध्यम से अमृत प्राप्त करना उचित होगा। फिर कद्रु विनता से बोली– "मेरे शाप के कारण मेरे पुत्र शाप के बंधन में बँध गए हैं। उन्होंने अगर अमृत-पान किया तो उनकी जरा, जन्म तथा मरण से मुक्ति हो जाएगी। उनकी ये बाधाएँ दूर हो सकें, ऐसा कुछ माँगने की मेरी इच्छा है। अतः तुम गरुड से कहो कि अगर वह परमामृत लाकर देगा तो तुम्हारे बंधन से तुम्हें मुक्त करूँगी। मेरे पुत्र अखंड रूप से पाताल में रहकर अमृत की रक्षा करते हैं। लेकिन उन्हें अमृत प्राप्त नहीं होता, अतः अगर गरुड़ अमृत देता है तो तुम बंधन-मुक्त हो जाओगी।"

जटायु अमृत के विषय में बताते हुए बोला– "स्वादामृत, उन्मादामृत, सुप्तामृत तृप्तामृत छलावे के लिए हैं तथा पाँचवाँ परमामृत विशेष होता है। स्वादामृत अप्सराओं के लिए होने के कारण उसकी [illegible] [illegible] अनुभव की जा सकती है। देवों को तृप्तामृत मिलने के कारण उन्हें क्षुधा का अनुभव नहीं होता। उन्मादामृत मिलने के कारण दैत्य हमेशा ही उन्मत्त आचरण करते हैं। सुषुप्ति अमृत दिग्गजों के लिए होने के कारण वे सुख से परिपूर्ण रहते हैं। निद्रामग्न मनुष्य जिस प्रकार डोलता है, उसी प्रकार [illegible] [illegible] रहते हैं इस प्रकार इन झूठे छलपूर्ण अमृतों से देवताओं ने सबको भुलावे में डाल दिया [illegible] तब और दैत्यों ने समुद्र-मंथन किया तो अमृत की प्राप्ति हुई। उसके लिए देवताओं और असुरों

में लड़ाई हुई और अमृत मोहिनी के हाथ में सौंपा गया। मोहिनी रूप में श्रीविष्णु ने अमृत सबको परोसा। उस समय अन्य लोगों को झूठे अमृत देकर परमामृत नामक विशेष अमृत अपने पास रखा। जिस परमामृत से वृद्धावस्था एवं मृत्यु से बचा जा सकता है, वह परमामृत श्रीविष्णु के पास है, वह गरुड़ द्वारा लाकर दिये जाने पर ही तुम्हारी बन्धन मुक्ति हो सकती है। कद्रु के ये वचन सुनकर विनता गरुड़ से बोली– "तुम्हारे द्वारा परमामृत लाने पर ही मुझे बन्धन से मुक्ति प्राप्त होगी। माता के वचन सुनकर उसे बन्धन मुक्त करने के लिए अमृत लाने का निश्चय कर, माता की वन्दना कर गरुड़ उड़ने के लिए तैयार हुआ। तब विनता के मन में कृपा उत्पन्न हुई। वह उसे हाथों से पकड़कर कश्यप के पास ले गई और कश्यप को पूरा वृत्तान्त सुनाया।"

कश्यप को गरुड़ की मातृभक्ति देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई, अपनी कृपा से अभिषिक्त कर उसे अपने पास बुलाकर अपने आनन्द को व्यक्त किया, तत्पश्चात् हर्षपूरित मन से गरुड़ को आशीर्वाद प्रदान करते हुए वर दिया - "तुम अपने पराक्रम से परमामृत प्राप्त कर लोगे। युद्ध में विष्णु भक्ति प्राप्त कर अपनी माता को नित्यमुक्ति प्रदान करोगे' परमामृत श्रीविष्णु के पास है अतः उनका नामस्मरण करो। नामस्मरण से हरिभक्तों को निश्चित रूप से विजय प्राप्त होती है अच्युत नाम को बार-बार लेने से सृष्टि के अन्त में प्रलय के समय भी अपना नाश नहीं होता, युद्ध सामर्थ्य से अच्युत पद की प्राप्ति भी होगी।' इन शब्दों द्वारा गरुड़ को कृपापूर्वक अच्युत नाम का उपदेश देकर कश्यप ने उसे अमृत लाने के लिए भेजा तथा उसको यह विश्वास दिलाया कि नाम स्मरण से अवश्य ही विजय की प्राप्ति होती है उसने तत्काल माता पिता की वंदना की, उनके चरण तीर्थ का प्राशन किया और हरिनाम स्मरण के विषय में सावधान होकर प्रसन्नतापूर्वक आकाश मार्ग को पार करने के लिए उड़ान भरी। विनता की दासी नकुला का पुत्र नकुल भी उसकी सहायता के लिए उसके साथ निकला, नकुल सर्प का शत्रु था। उस दिन से ही सर्प और नेवले की शत्रुता है। उनकी एक दूसरे से भेंट होते ही सर्प प्राणत्याग देते हैं।"

गरुड़ अपने मुख से नाम-स्मरण करते हुए अमृत लाने के लिए निकला था। कश्यप द्वारा दिये गए उपदेश के कारण उसे युद्ध में विष्णु की प्राप्ति हुई।" उस गरुड़ द्वारा किये गए प्रयत्नों की विस्तार पूर्वक वार्ता जटायु ने बतायी।

श्रीसंत एकनाथ इस स्थान पर नाम की महत्ता बतलाते हुए कहते हैं - "नाम स्मरण की इतनी महत्ता है कि श्रीराम नाम-स्मरण करने से भगवत् प्राप्ति तथा असीम ज्ञान की प्राप्ति होती है। नाम स्मरण में भोग, मोक्ष, यश, कीर्ति, विजय, कर्मों से मुक्ति इत्यादि देने का सामर्थ्य होता है। निरन्तर नाम-स्मरण करने से निवृत्ति तथा शान्ति की प्राप्ति होती है, सबको बुद्धि से युक्त नामस्मरण करना चाहिए, जिससे सहज ब्रह्म की प्राप्ति होती है, नाम-स्मरण से पापी भी पवित्र हो जाते हैं, प्रपंच भी ब्रह्ममय हो जाता है क्योंकि भगवत् नाम स्वयं ही परब्रह्म है।

अध्याय ७

[श्रीराम का जटायु सहित पंचवटी में आगमन]

"मन में निरन्तर अच्युत नाम का जाप करते हुए गरुड़ ने अमृत प्राप्ति के लिए प्रस्थान किया। कश्यप की पूर्ण भक्ति-भावना से वन्दना करने के कारण सप्तऋषियों की भी उसे सहायता प्राप्त हुई,

आकाश मार्ग को पार करने के पश्चात् फिर गरुड ने सूक्ष्मरूप धारण किया और परमामृत को ढूँढने लगा। तब उसने देखा कि परमामृत को रक्षा बड़ी सावधानीपूर्वक की जा रही है। अमृत के चारों ओर सात रक्षक शृंखलाएँ हैं। पहले रक्षक सर्प, दूसरे वरुण, तीसरे यक्षगण, चौथे मरुद्गण, पांचवे यमदूत, छठे शिवदूत तथा सातवीं शृंखला में स्वयं विष्णुदूत सतर्कतापूर्वक उसका रक्षण कर रहे थे"

गरुड़ का आक्रमण और देवताओं से युद्ध– "गरुड़ ने अवसर देखकर कुंड में छलाँग लगाकर अमृत सोख लिया और शीघ्रता से अत्यन्त साहसपूर्वक वापस लौटा। तब सर्वत्र हाहाकार मच गया। पक्षी नहीं, यह अमृत चोर है- ऐसे क्रोधपूर्ण उद्गार चारों ओर से सुनाई देने लगे। उसके पीछे शस्त्रों से युक्त रक्षक दौड़े, गरुड़ के पंखों के फटकार से रक्षक मूर्च्छित हो गए उनके शस्त्र गिर गए। सर्प क्रोधित हो गरुड़ की ओर दौड़े। क्रोध से भरे उन विषैले सर्पों को गरुड़ ने अपने नखों के अग्रभाग से घायल कर दिया। इतने में उसकी सहायतार्थ नकुल आया, उसने सर्पों का बीच में ही छेदन किया। इतने में वरुण ने अपने पाश में गरुड़ को जकड़ लिया। उसके पंख बँध गए परन्तु नकुल ने पाश के टुकड़े कर गरुड़ को मुक्त किया। फिर गरुड़ ने वरुण को अपने पंखों की फटकार से आकाश में उड़ा दिया। दसों दिशाओं में चक्कर लगाकर अन्त में वरुण पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। वरुण के रक्षकों को भी नखाग्रों से घायल कर दिया। नकुल ने अपने शत्रु स्वरूप अनेक सर्पों को मार डाला। इस प्रकार युद्ध करते हुए गरुड़ सर्पों के साथ आकाश में ऊपर चढ़ता चला गया। अमृत पान करके वह बलशाली वापस जाने लगा। उस समय स्वर्ग में हाहाकार मच गया। शंकर क्रोधित होकर निकले, करोड़ों देव अमृत के लिए दौड़े। इन्द्र शीघ्रता से ऐरावत पर बैठकर आये। उन्होंने गरुड़ पर अपना वज्र फेंका जिसे वह गरुड़ निगल गया। गरुड़ के पंखों की फटकार से इन्द्र हतबल हो गए। उनके हाथी भाग खड़े हुए। देवता भी भागे। गरुड़ के पंखों से निर्मित वायु के कारण देवताओं को अपना निवास स्थान सूझ नहीं रहा था किसी बवण्डर में उड़ते हुए धूल कणों के समान देवता भ्रम चक्र में फँस गए। यम क्रोधित हो, दौड़कर आया उसने गरुड़ पर अपने दंड से वार किया। गरुड़ ने वह यमदंड निगल कर यम को प्रताड़ित किया। यम ने अनेक लोगों को त्रस्त कर दिया था परन्तु इस बार गरुड ने यम को संत्रस्त कर दिया। गरुड़ ने यम को भयभीत कर धूल में मिला दिया। उसे गरुड़ ने अनेक प्रकार से संत्रस्त किया परन्तु यम के पक्ष में उसकी सहायता के लिए कोई नहीं आया। कुबेर तो दूर भागा। वह गरुड़ से नम्रतापूर्वक व्यवहार करते हुए बोला– "तुम्हारी माँ के बन्धन मुक्त होने के लिए मैं मणिमय कलश में कद्रु के लिए अमृत भेजूँगा। गरुड़ के पंखों की फडफड़ाहट से भयभीत हो दिग्गज जंगलों मे भागे. गरुड़ ने सुरों एवं असुरों के समूह को ठिकाने लगा दिया। महाबली दैत्य और दानव युद्ध में मारे गए सर्प भय से पाताल में चले गए। विनता के पुत्र गरुड़ ने इस प्रकार अपना पराक्रम प्रदर्शित किया। उसके पश्चात् मंत्रयुक्त जल-शक्ति लेकर प्रजापति युद्ध के लिए आये। गरुड़ ने उनके हाथ से कमण्डल छीनकर अच्युतशक्ति से निगल लिया प्रजापति अपने परदादा हैं, यह ध्यान में रखते हुए वह थोड़ी नम्रता से प्रस्तुत हुआ अन्यथा गरुड़ ने क्षणान्त्र में ही ब्रह्मदेव को पराभूत कर दिया होता।"

"महादेव क्रोधित हो रण-भूमि में आये और गरुड़ पर अपना त्रिशूल फेंका। वह त्रिशूल गरुड ने निगल लिया। यह देखकर शिव आश्चर्यचकित हुए। त्रिशूल निगलने की शक्ति गरुड़ को कैसे व कहाँ से प्राप्त हुई यह जानने के लिए सदाशिव ने गरुड की ओर ध्यानपूर्वक देखा। तब उन्हें उसके हृदयस्थित श्रीराम के दर्शन हुए। श्रीराम नाम के कारण ही गरुड़ तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करने में सफल हुआ,

यह उन्हें स्पष्ट हुआ। हृदय में अमृत और मुख में राम नाम होने पर उससे कौन युद्ध कर सकता है, शिव का पराक्रम भी राम नाम सुनकर कुंठित हो गया। श्रीराम का नाम सुनकर गरुड़ के प्रति प्रेम से परिपूर्ण होकर वह मूर्च्छितावस्था में विश्राम करने लगे और संग्राम करना भूल गए। कश्यप के उपदेश के अनुसार नाम-स्मरण की महत्ता ने भगवान् शंकर पर भी विजय प्राप्त कर ली। हरिभक्तों के मार्ग में बाधा डालने की क्षमता कलिकाल में भी नहीं है। इतना होने पर अपने भक्त से मिलने के लिए श्रीविष्णु हाथ में चक्र लेकर कृपापूर्वक तुरन्त वहाँ उपस्थित हुए।"

श्रीविष्णु का आगमन; वरदान-संवाद– श्रीविष्णु यद्यपि लोगों को दिखाने हेतु युद्ध के प्रयोजन से आये थे परन्तु वास्तव में वे भक्त के प्रेमवश वहाँ आये थे। गरुड़ द्वारा उनका नाम नित्य स्मरण किये जाने के कारण पुरुषोत्तम पूर्णरूप से सन्तुष्ट थे। जो प्रेम से नामस्मरण करता है, पुरुषोत्तम उसके वश में हो जाते हैं वे आत्माराम भक्त की मनोकामना पूर्ण करने वाले कृपालु नाम-स्मरण से प्रसन्न हो जाते हैं। जो श्रद्धापूर्वक सहजभाव से नाम का स्मरण करता है उस भक्त का नाम, श्रीविष्णु अपने हृदय में धारण करते हैं। नाम-स्मरण में निष्ठा रखने वाले भक्त की इच्छा पूर्ण करते हैं और नामस्मरण से ही उनकी प्राप्ति भी होती है। ऐसा होते हुए भी लौकिक कर्त्तव्य निभाने के लिए उस वनमाली ने अमृत को छुड़ाने के लिए गरुड़ की ओर अपना चक्र फेंका। गरुड़ ने वह चक्र भी निगल लिया यह देखकर सभी आश्चर्यचकित हुए। दैत्य और दानवों में भी विष्णुचक्र को निगलने का सामर्थ्य रखने वाला कोई बलशाली नहीं है। यह गरुड़ वास्तव में पराक्रमी वीर है विष्णुचक्र का महा प्रहार ऐसा है कि उसके घाव से असुरों का भी नाश हो जाता है। तीनों लोकों में अजेय चक्र को भी गरुड़ ने सहज रूप से निगल लिया। राम, हरि, गोविन्द इन नामों का स्मरण करने वालों को परमानंद की प्राप्ति होती है और उसे कोई भी दुविधा बाँध नहीं सकती है। हरिनाम से द्वंद्व निर्द्वन्द्व हो जाता है जहाँ प्रतिदिन नाम का जयघोष चलता रहता है, चक्रधर ईश्वर उसके आधीन हो जाता है। भक्तों को यह चक्र बाधा नहीं पहुँचा सकता। हरि वास्तव में उनके पास निवास करते हैं। नित्य निरन्तर नाम स्मरण करने वाले भक्त के पास विष्णु सदैव विद्यमान रहते हैं तथा भयंकर विघ्नों को दूर करते हैं

ईश्वर व भक्त में कोई अन्तर नहीं होता, ईश्वर सदैव उसके पास विद्यमान रहते हैं इसीलिए उसे चक्र बाधा नहीं पहुँचा सकता। चक्र अभक्तों के लिए भयंकर होता है। विष्णु बोले "हे गरुड़ ! मेरा चक्र निगलकर तुम पूर्ण रूप से विजयी हो गए हो, मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ, तुम शीघ्र ही मुझसे वरदान माँगो। जो भी वरदान तुम माँगोगे, मैं अत्यन्त उत्साहपूर्वक तुम्हें प्रदान करूँगा।" श्रीविष्णु के ये वचन सुनकर गरुड़ हँसकर विष्णु से बोला– "आपने मुझ पर विजय नहीं प्राप्त की है तो मुझे वर किसलिए दे रहे हैं, मैं ही आप पर प्रसन्न हुआ हूँ, आप जो माँगोगे मैं दूँगा मेरे मस्तक पर कश्यप गुरु का हाथ है। उसके अतिरिक्त आपके अच्युत नाम का निरन्तर स्मरण करने से मेरे पास किसी वस्तु का अभाव नहीं है। अतः आप जो माँगेंगे, वह मैं दूँगा।" गरुड के ये वचन सुनकर विष्णु ने उसे शपथपूर्ण वचनों में बाँधते हुए उससे वर माँगा।"

श्रीविष्णु वर माँगते हुए बोले- "हे गरुड़ ! तुम मेरा वाहन बनो, मेरी आज्ञा के आधीन रहो- यही वरदान मुझे दो।" विष्णु के वचन सुनकर गरुड़ ने विचार किया कि वचन देकर भी माँगा हुआ वरदान न देना तीनों लोकों में निन्दनीय होगा। दिया हुआ वचन मिथ्या होने पर देवता और पितर दोनों हमेशा के लिए विमुख हो जाएँगे। इस लोक में और परलोक में अपयश की प्राप्ति होगी। नरक का दुःख

भोगना पड़ेगा। मिथ्या वचन निरर्थक होते हैं और उसके परिणामस्वरूप नरक में जाने वाले षंढ* कहलाते हैं। उनका मुख नरककुंड के समान अदर्शनीय होता है। झूठ बोलने वाले मुख को पितृ भी देखना नहीं चाहते। झूठ बोलना एक प्रकार से नरक ही है। ऐसी अनेक बातों का मन में विचार कर गरुड़ ने निश्चय किया कि वह स्वयं को विष्णु को समर्पित कर दे। शरीर विष्णु का वाहन हो, कर्म विष्णु के वचनों का उल्लंघन न करें। इस प्रकार काया, वाचा और मन से विष्णु के आधीन रहकर तीनों लोकों में पवित्र कहलाऊँगा। मन में ऐसा निश्चय करते ही हृदय में सद्गुरु प्रकट हुआ और विवेक जागृत हुआ।

गरुड़ को कश्यप के वचन स्मरण हो आये। श्रीविष्णु परमात्मा एवं पूर्ण ब्रह्म हैं, कश्यप के ये वचन गरुड़ को सत्य अनुभव हुए और उसे समाधान प्राप्त हुआ। गुरु के वचन ज्ञान प्रदान करने वाले, भय का निवारण करने वाले, यशकीर्ति और विजय देने वाले होते हैं, यह उसने अनुभव किया। विष्णु ही अपने मन का संचालक और इन्द्रियों का नियामक हैं, यह उसने जाना। सर्वत्र विष्णु की ही सत्ता एवं एकात्मता है। अतः देने वाले और माँगने वाले में कोई भेद नहीं है। यह सब विचार कर गरुड़ ने श्रीविष्णु के चरणों पर अपना मस्तक रखा और विष्णु से बोला- "मुझे देने वाला, न देने वाला- सब आपके आधीन है। मेरा सत्त्व एवं तत्त्व सब स्वयं आप हैं। मेरा सम्पूर्ण जीवन मेरा स्वत्व सब आप ही हैं। जिस प्रकार शक्कर और उसकी मिठास एक ही है, उसी प्रकार तुम स्वामी और मैं सेवक हूँ। मैं आपसे अभिन्न हूँ केवल व्यवहार में दोनों भिन्न हैं। श्रीविष्णु के सेवक होने का गरुड़ को अत्यन्त हर्ष हुआ। 'मुझे आपकी सेवा में सुख प्राप्त होता है। आप मुझे सतत् अपनी दृष्टि के सामने रखना, आपका श्रीमुख देखते ही समाधि का सुख भी फीका पड़ जाता है। मैं आपके चरणों पर मस्तक रखता हूँ। मुझे नित्य अपनी दृष्टि के समक्ष रहने दें।' गरुड़ ने ऐसी प्रार्थना की।

गरुड़ के वचन सुनकर श्रीविष्णु को सन्तोष हुआ। उन्होंने गरुड़ को ऐसा स्थान दिया, जिससे वह नित्य उनकी दृष्टि के समक्ष रहे। गरुड़ ने भगवान् विष्णु को अपना पीठ रूपी आसन दिया। भगवान् ने गरुड़ को दृष्टि दी। देव और भक्त दोनों को आनन्द की प्राप्ति हुई। गरुड़ हरिसेवा में मग्न होकर काया, वाचा और मनसा विष्णु का आज्ञा-धारक बनकर दोनों हाथ जोड़कर ईश्वर के द्वार पर खड़ा हो गया। ईश्वर एवं भक्त का युद्ध हुआ परन्तु वास्तव में वह युद्ध न होकर महाबोध था। श्रीविष्णु बोले- "हे खगेश्वर, तुम मेरे आज्ञापालक हो अतः युद्ध में निगले हुए समस्त शस्त्र तुरन्त शिवादिकों को दे दो। ये शस्त्र तीनों लोकों में अत्यन्त भयंकर हैं, सुरअसुरों द्वारा जो सहन नहीं किये जाते हैं, वे तुमने निगल लिये हैं। दंड, त्रिशुल, वज्र, चक्र इत्यादि दुरूह शस्त्र निगलकर तुमने अपार यश एवं कीर्ति अर्जित की है। तुम शूरवीर एवं धैर्यवान हो, श्रेष्ठ यश की प्राप्ति करने वाले हो। अब देवाधिदेवों को उनके शस्त्र अर्पण कर दो। तुम्हारे दोनों पंखों का प्रहार ही प्रभावशाली होता है। तुम्हें शस्त्रों की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारा प्रशंसनीय पराक्रम देखकर देवता तुम्हारा यशगान करते हैं।' इस प्रकार श्रीहरि द्वारा यशगान कर सान्त्वन करने पर गरुड़ ने विष्णु के चरणों पर दंडवत् प्रणाम करते हुए कहा- "आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।"

तत्पश्चात् यम को दंड, इन्द्र को वज्र वापस कर गरुड ने श्रीशंकर की त्रिशूल से तथा श्रीविष्णु की चक्र से पूजा की। प्रजापति को विशेष रूप से आमन्त्रित कर उनके हाथ में कमण्डल दिया। सबने गरुड़ की जय-जयकार कर उसे हृदय से लगा लिया। फिर इन्द्र ने अत्यन्त भावमग्न होकर अमृत की

*कलावक, डरपोक, नपुंसक

कथा सुनाई सर्पों को यदि अमृत पिलाया जाय तो तत्त्वतः उसकी परिणति विष में ही होगी और अमृत का विष में रूपान्तरण होने के कारण अमृत के बिना वे मृत्यु को प्राप्त होंगे। देवताओं की क्षुधा शान्त करने के लिए ईश्वर ने अमृत का निर्माण किया। सर्पों द्वारा अगर यह अमृत विष में परिवर्तित हो गया तो सब अमर मृत्यु को प्राप्त होंगे सर्पों को अमृत दिया तो स्वर्ग के देव-गण उपवास से मर जाएँगे इसी कारण गरुड़ से बलपूर्वक युद्ध कर सर्प अमृत उसके पास से छीन लेना चाहते थे। परन्तु गरुड़ ने उभयपक्षों से युद्ध कर स्वयं सुरासुरों से बाज़ी जीतकर उनके समस्त शस्त्रों को निगल कर अमृत लेकर प्रस्थान किया पर उसी समय सुबुद्धिपूर्वक भगवान् विष्णु ने युद्ध में गरुड़ को न जीतते हुए दृढ़ अपनत्व स्थापित किया क्योंकि उन्हें देवताओं का कार्य सिद्ध करना था। श्रीविष्णु की महानता ही है कि उन्होंने गरुड़ जैसे महापराक्रमी से अपने वचनों द्वारा अपनत्व निर्माण कर हम देवताओं के शस्त्र वापस दिलवाये, जिसके कारण हमें आधार प्राप्त हुआ। अब श्रीविष्णु ही अमृत के लिये, कुछ उपाय गरुड़ को बतायेंगे। लेकिन इतना मात्र सत्य है कि अगर अमृत नहीं मिला तो सभी अमर मृत्यु को प्राप्त होंगे और फिर गरुड़ की यश एवं कीर्ति ही उसके अपयश का कारण होगी ' इस प्रकार कहकर इन्द्र ने श्रीविष्णु को सूचना दी।

श्रीविष्णु की गरुड़ को सूचना— श्रीविष्णु ने इन्द्र की विनती सुनकर गरुड़ से कहा– "हे खगेश्वर मैं तुम्हें ऐसी युक्ति बताता हूँ, जिससे तुम्हारे दोनों कार्य सिद्ध होंगे, अर्थात् तुम्हारी माता भी बन्धनमुक्त होंगी एवं सर्प भी अमृत पान नहीं कर पायेंगे। इसके लिए अत्यन्त कुशलतापूर्वक सर्पों को ज्ञात हुए बिना तुम कद्रु को अमृत दो। अत्यन्त भक्तिभाव से कद्रु को प्रणाम करते हुए तुम कद्रु से कहना– कि 'अपवित्र होने से यह अमृत गुप्त हो जायेगा अतः आप सुस्नात् होकर ही अमृत ग्रहण करें, अमृत कलश मैंने दूर्वांकुरों के मध्य गंगा के तट पर रखा है। अब आप मेरी माता को बन्धन मुक्त करें ' तुम्हारे द्वारा नम्रतापूर्वक नमन करने पर कद्रु सन्तुष्ट होकर तुम्हारी माता को बन्धन मुक्त कर देगी। तुम्हारा कार्य सम्पन्न होने पर तुम लौट जाना। तत्पश्चात् देवसमुदाय काक के रूप में वहाँ जाकर सर्पों द्वारा अमृतपान करने से पूर्व ही अमृत-कुंभ पर झपट कर उसे ले जायेंगे। विष्णु द्वारा यह युक्ति बताते ही अपनी दैवी गति से उनके अनुसार कार्य सम्पन्न करने के लिए गरुड़ सिद्ध हुआ। कुबेर ने रत्नकुंभ अमृत से भरकर यह कुंभ गरुड़ को दिया और विष्णु द्वारा बतायी गई युक्ति ध्यान में रखते हुए गरुड़ कद्रु के पास आया कद्रु गरुड़ से सन्तुष्ट हुई। गरुड़ ने माता को बुलाकर उसके समक्ष कद्रु को अमृत दिया। विनता बन्धन-मुक्त होने से अत्यन्त प्रसन्न हुई। कद्रु विनता से बोली– "तुमने गरुड़ जैसे पुत्र को जन्म दिया, जिसने अमृत लाकर माता को मुक्त किया, तुम धन्य हो।" कद्रु के ये वचन सुनकर गरुड़ ने उसे साष्टांग नमन किया। कद्रु ने गरुड़ को पास बुलाकर हमेशा विजयी होने का आशीर्वाद दिया "

गरुड़ ने विष्णु के कथनानुसार कद्रु से कहा कि, 'अपवित्र स्थिति से स्पर्श होते ही अमृत अदृश्य हो जाता है। अतः व्यवस्थित रूप से सुस्नात होने के पश्चात् ही आप सब अमृत को स्वीकार करें। मैं यह अमृत कुंभ गंगा के किनारे दूर्वांकुरों के मध्य रख रहा हूँ, आप सब स्नान करने के पश्चात् अमृत पान करें। इतनी कहकर अमृतकलश दूर्वांकुरों में रखकर गरुड़ ने आकाश की ओर प्रस्थान किया। विनता मुक्त हो अपने घर गयी। अमृतपान की आशा से सर्प आनन्दपूर्वक स्नान करने लगे। इतने में अमृत की आशा से सभी कौए वहाँ एकत्र हुए। इन्द्र को अमृत की अत्यधिक चिन्ता होने के कारण वह डोमकौआ*

*एक विशिष्ट जाति का कौआ

बनकर वहाँ आया और झपट कर अमृत कलश उठाकर ले गया। सर्प यह देखकर हाहाकार करने लगे। अत्यन्त वेग से शीघ्रतापूर्वक अमृत ले जाने के कारण उसकी कुछ बूँदें दूब पर छलक गईं इसी कारण पृथ्वी पर दूब आज भी हरी-भरी है एवं अमर है। डोमकौए द्वारा अमृत ले जाते हुए देखकर सर्पों ने विष उगलना प्रारम्भ किया। उस समय नकुल ने देवताओं की सहायतार्थ आकर सर्पों पर आक्रमण किया गरुड़ ने आकाश से तथा नकुल ने पृथ्वी से, सर्पों से युद्ध शुरू किया। विष से भरे फनों से फुफकराते हुए नागसर्प अमृत की लालसा से दौड़े तब गरुड़ ने नकुल को भेजा, उस पराक्रमी नकुल ने सर्पों से युद्ध कर उनके पराक्रमी सर्प वीरों को खंड-विखंड कर दिया। सर्प जब चारों तरफ से दौड़कर नकुल पर आक्रमण करते, उस समय गरुड़ उसका रक्षक बन जाता था। आकाश से वार करने के कारण सर्पों को उसे नियन्त्रित कर पाना कठिन हो जाता था। इसके अतिरिक्त चील, गिद्ध इत्यादि गरुड़ सेना सर्पों पर झपट कर उन्हें आकाश में ले जाकर मारकर फेंक रही थी इस प्रकार युद्ध में व्यस्त हो जाने के कारण सर्प अमृत-पान नहीं कर पाए। नकुल ज़मीन से वार कर रहा था तो गरुड़ चील एवं गिद्ध आकाश से लड़ रहे थे और सर्पों का नाश कर रहे थे। अतः प्राणों की रक्षा के लिए सर्प पाताल में चले गये।"

सर्पों को वास्तविक स्थिति का ज्ञान होते ही वे आपस में कहने लगे- "गरुड़ ने चतुराई से अवसर साधते हुए अपनी माता को मुक्त करा लिया और नकुल द्वारा हमें प्रताड़ित भी किया, यद्यपि प्रत्यक्ष रूप में अमृत प्राप्ति कौओं को हुई है परन्तु वास्तव में वे कौए न होकर देवता ही थे। इसीलिए गरुड़ ने उनका पक्ष लेकर नकुल से हमारा संहार करवाया।" तत्पश्चात् दर्भ (कुश) पर छलक कर गिरे हुए अमृत को सर्प मुँह से चाटने लगे जिससे उनकी जिह्वा छिल गई और उन्हें अपार कष्ट हुआ। अमृत के रसास्वादन के लोभ से दुर्वांकुर चाटने से जीभ कट गई और अन्त में व्यथा ही प्राप्त हुई यह उन्हें स्वयं द्वारा किये गए कपट का दण्ड ही था। पितृभक्ति एवं मातृभक्ति के कारण गरुड़ को अमृत प्राप्ति हुई और कद्रु के कपट के कारण सर्पों को दुःख भोगना पड़ा। सद्भावना से ईश्वर की प्राप्ति होती है और असद्भाव से अधोगति मिलती है। भगवद्भक्तों को सुख-प्राप्ति तथा अभक्तों को दुःख प्राप्ति निश्चित ही है। सर्पों से अमृत लेकर गरुड़ ने देवों को उपलब्ध कराया और इन्द्र आदि सभी देवों को [illegible] और सुखी किया देवताओं ने अमृत की प्राप्ति के पश्चात् वह कुंड में भरकर पाताल में रखकर उसकी रक्षा की पूर्ण व्यवस्था की। जिससे देवगण सुखी हुए और गरुड़ की ख्याति तीनों लोकों पर विजय प्राप्त [illegible] धीर, उदार, महावीर के रूप में हुई गरुड़ के कारण पिता कश्यप, माता विनता, समस्त सुरगण और [illegible] रूप से श्रीविष्णु सुखी हुए। हे रघुपति, वह गरुड़ मेरे चाचा हैं। हम अरुण की संतान हैं

जटायु द्वारा राम को आश्वासन– "मैं जटायु और संपाती दोनों अरुण की संतानें हैं। हमें अपने [illegible] की स्पष्ट आज्ञा है कि हम सूर्यवंश के सेवक हों। वहाँ रघुकुल तिलक, विश्वतारक तथा जग में [illegible] का जन्म होगा। इसीलिए सूर्यवंशी दशरथ से मित्रता की। उनके वंशज हे श्रीराम ! आपसे [illegible] मैं धन्य हुआ। इतना कहकर जटायु ने श्रीराम के समक्ष साष्टांग दंडवत् किया। राम ने उसे [illegible] लिया सन्तुष्ट होकर जटायु बोला- "श्रीराम, आप पंचवटी में रहेंगे तब मुझे अपनी सेवा [illegible] दें पंचवटी में सीता को छोड़कर आप व लक्ष्मण जब मृगया के लिए जायेंगे तो मैं सीता [illegible] मेरे होते हुए राक्षसों का डर कैसा ? मेरे पराक्रम के समक्ष राक्षसों का बल तुच्छ है [illegible] कोई दुष्ट देख भी न सकेगा। मैं चारों ओर से रक्षा करूँगा। मैं आश्रम का सेवक बनकर [illegible] बनना रहूँगा, आप सुखपूर्वक रहें। मैं विघ्नों का प्रवेश भी यहाँ नहीं होने दूँगा।"

श्रीराम नाम के स्मरण से विघ्न भी निर्विघ्न हो जाते हैं। मेरी सेवा की आवश्यकता ही नहीं है परन्तु फिर भी मैं सद्भावना से अवश्य सेवा करूँगा। आप अवश्य पंचवटी जायें। मैं मार्गदर्शक सेवक हूँ, आपको सुखपूर्वक वहाँ पहुँचाऊँगा। जटायु का निवेदन सुनकर श्रीराम, सीता व लक्ष्मण-तीनों तुरन्त पंचवटी आये। गंगा नदी* के किनारे स्थित पंचवटी को देखकर तीनों को ही आनन्द हुआ। श्रीराम ने पंचवटी में निवास-स्थान निर्मित किया। श्रीराम की दृष्टि के समक्ष उनके समीप रहने की इच्छा से जटायु पर्वत पर रहकर रात-दिन उस स्थान की प्रदक्षिणा करने लगा।

अध्याय ८

[राक्षस साम्ब का वध; शूर्पणखा को दण्ड]

गंगा के किनारे पचवटी में आने पर जो दृश्य राम ने देखा, उससे वे अति प्रसन्न हुए, सीता और सौमित्र भी प्रसन्न हुए। श्रीराम को देखकर कोयल भी आनन्दित होकर पंचम स्वर में कुहुकने लगी, हौंको पक्षी आनन्द से घूमने लगे और आपस में सुखपूर्ण वार्तालाप करने लगे। कपोत पक्षी पुण्य पुरुषार्थ प्राप्ति के लिए वन में कलरव कर रहे थे। बहिर्साक्ष्य और अन्त:साक्ष्य के आधार पर स्थलानुसार और कालानुसार परिवर्तनशील कौन है ? तथा उसका प्रयोजन क्या है ? इस विषय में शुक और सारिका में विवाद प्रारम्भ हुआ। शुक विश्लेषक के रूप में बोला- "यहाँ आत्मा स्वत: प्रमाण है। वह स्थल कालानुसार परिवर्तनशील नहीं है। हम लोग श्रीराम पर अपना सारा ध्यान केन्द्रित करें।" इस प्रकार पक्षियों में चर्चा प्रारम्भ होने से श्रीराम प्रसन्न हुए, लक्ष्मण को यह चमत्कार प्रतीत हुआ। सीता आनन्दपूर्वक चर्चा सुनने लगी। मोर प्रसन्न हो नृत्य कर रहे थे। शुक और पिंगला परस्पर एक दूसरे को बता रहे थे कि श्रीराम इस वन में रहे तो उन्हें पुण्य पुरुषार्थ की प्राप्ति होगी। यह पंचवटी मूल रूप में ही पवित्र है। उस पर श्रीराम द्वारा यहाँ निवास करने से उनके हाथों राक्षस समूह मारे जाएँगे और लोग सुखी तथा सन्तुष्ट होंगे।" पक्षियों का यह कलरव सुनकर श्रीराम प्रसन्न हुए और सन्तुष्ट होकर लक्ष्मण से वहीं आश्रम बनाने के लिए कहा।

आश्रम स्थापना, दिन-चर्या एवं लक्ष्मण की प्रशंसा– अरुणा-वरुणा संगम का सार, पवित्र सरस्वती सुन्दर कपालेश्वर को देखकर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- "गंगातीर सरल और समतल है। वृक्ष फूलों एवं फलों से परिपूर्ण हैं। मलय पर्वत से आने वाली सुगंधित हवा प्रवाहित हो रही है। अत: ये वन अत्यन्त सुखद प्रतीत हो रहा है। तुम मेरे प्रिय सखा हो और पूर्ण रूपेण सुलक्षण भी हो। हम सब यहीं सुखपूर्वक निवास करेंगे, तुम यहीं आश्रम तैयार करो। लक्ष्मण के स्वभाव का यही शुभ लक्षण था कि वह राम के द्वारा कही बात को कभी अस्वीकार नहीं करते थे। उन्होंने श्रीराम के चरणों की वंदना कर आश्रम तैयार किया। यज्ञशाला, द्विजशाला, जीवनशाला, शयनशाला, पर्णशाला, इत्यादि का निर्माण कर फिर एक विशाल ऋषिशाला तैयार की। वृंदावन तथा पुष्पों के वृक्षों से सुसज्जित वन उपवन शोभायमान दृष्टिगत होने लगे। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर छोटे-छोटे वृक्षों के समूह, बेल, वट, मधुवन, आम्र वृक्षों की सुगध सर्वत्र फैली हुई थी। गंगा तट की शोभा के साथ पंचवटी की शोभा द्विगुणित हो रही थी।

*पवित्र नदी के सन्दर्भ में गोदावरी के लिए 'गंगा' शब्द का प्रयोग किया गया है।

वह शोभा देखकर मन प्रसन्न हो रहा था। अरुणा-वरुणा एवं सरस्वती का त्रिवेणी प्रवाह आश्रम के निकट से प्रवाहित हो रहा था। सुन्दर कपिलेश्वर की स्थिति भी आश्रम के सामने निकट ही थी।

पंचवटी में सुशोभित आश्रम सिद्ध कर लक्ष्मण ने अपनी सद्भावना से श्रीराम के सुख की कामना करते हुए, उनकी सेवा ही की। उत्तमोत्तम सुविधायुक्त आश्रम देखकर रघुपति अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रेमपूर्वक लक्ष्मण को सुखानुभूति कराते हुए हृदय से लगा लिया। स्वयं राम ने भी वहाँ अनेक प्रकार के फूल-फल एकत्र करने में आश्रम में सहयोग दिया। उस समय सीता भी उनके साथ थीं। श्रीराम एवम् सीता के आश्रम देखकर प्रसन्न होने के कारण लक्ष्मण को अपार सम्पत्ति एवं सुख प्राप्त होने का सन्तोष प्राप्त हुआ। उन्हें रात-दिन उनकी सेवा करने में ही आनन्द का अनुभव होता था. दर्भ, पुष्प, स्वादिष्ट फल, शीतल सुगंधित जल- इन सब वस्तुओं को उपलब्ध कराने के लिये उन्हें सेवाभाव के कारण उत्साह की अनुभुति होती थी। लक्ष्मण को श्रीराम की सेवा में अत्यन्त सुख की अनुभूति होने के कारण, वह द्वन्द्वदुःख भूलकर सेवा में ही परम हर्ष का अनुभव करते थे। सौमित्र नित्य राम एवं सीता के चरणों के तीर्थ का प्राशन करते थे। अपना सम्पूर्ण जीवन सेवा के लिए ही समर्पित करने के कारण उसके प्रति वह सजग रहते थे।

एक दिन सीता के संरक्षण के लिए लक्ष्मण को रखकर राम स्नान करने के लिए गये, उस समय एक अद्भुत घटना घटित हुई। श्रीराम के समक्ष सीता कभी भी निद्रामग्न नहीं होती थीं। उस दिन राम स्नान हेतु गये थे अतः सीता थककर सो गईं। लक्ष्मण के समक्ष उस दिन स्वाभाविक रूप से सोते समय उसके शरीर के वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गए। लक्ष्मण उस समय श्रीराम के ध्यान में मग्न थे अतः सीता के आवरण रहित शरीर की ओर उनका ध्यान ही नहीं गया। श्रीराम जब स्नान कर लौटे तो सीता की अवस्था देखकर स्वयं ही लक्ष्मण से बोले- "स्त्री अग्निकुंड के समान है तथा पुरुष घी के पात्र के समान है। स्त्री की अनावृत अवस्था देखकर पुरुष विचलित हो उठता है। इस प्रसंग में कौन ऐसा व्यक्ति है, जिसका मन विचलित नहीं होगा ? इस पर लक्ष्मण ने उत्तर दिया कि 'जिसका पिता पवित्र है माता पतिव्रता है, जो राम की सेवा में नित्य मग्न रहता है, उसका मन कभी विचलित नहीं होगा। हे श्रीराम ! जो व्यक्ति श्रीराम का भक्त है, उसकी आत्मस्थिति ऐसी होती है कि गुप्त स्थलों को देखकर भी उसकी चित्तवृत्ति विचलित नहीं होती। शरीर व मन के विकार स्त्री पुरुष भेद की अभिव्यक्ति से परे जाकर वे भक्त देहातीत व निस्पृह रहकर अपने मन को विचलित नहीं होने देते। सीता तो स्वयं जगदम्बा स्वरूप थीं। उन दोनों का संवाद सुनकर तथा लक्ष्मण की परीक्षा लेकर वे सलज्जतापूर्वक उठीं। सीता ने लक्ष्मण की ध्यान-स्थिति के प्रति आदर व्यक्त करते हुए उसके चरणों पर अपना मस्तक रखा। श्रीराम ने स्वयं लक्ष्मण को परमपूज्य मानकर उसकी वंदना की। इसके पश्चात् लक्ष्मण ने भी राम व सीता को साष्टांग प्रणाम कर उनके चरणों पर मस्तक रखा एवं बोले- "श्रीराम पूर्ण रूप से पूजनीय हैं। वे मुझे अखंड रूप से सेवा करने का सुख प्रदान करें।" सौमित्र के ये वचन सुनकर श्रीराम ने उन्हें आलिंगनबद्ध कर लिया। इस प्रकार दोनों में विभेद समाप्त हुआ और वे परिपूर्ण परब्रह्मत्व को प्राप्त हुए। लक्ष्मण को पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हुई तथा सेवा का सुख भी मिला। वह सेवाकार्य के लिए सजग हुए। लक्ष्मण वन में जाकर नित्य फल लाते थे। एक दिन जब वह रोज की तरह वन में गये हुए थे तब उन्होंने एक आश्चर्य-जनक घटना का अनुभव किया।

राक्षस साम्ब का वध, लक्ष्मण का सन्देह– शूर्पणखा का प्रिय पुत्र साम्ब राक्षस कालखड्ग की प्राप्ति के लिए वन में तपस्या कर रहा था। अपने तप के तेज से वह महापराक्रमी साम्ब राक्षस ध्यान लगाकर मन्त्रमूर्ति का आकलन कर सकता था। जब वह एकाग्रता से तपस्या कर रहा था उसके शरीर पर वृक्ष लताएँ चढ़ जाने से वृक्षों का एक जाल ही निर्मित हो गया। कुछ दिनों के पश्चात् उसके शरीर के चारों ओर एक बाँबी निर्मित हो गई। साम्ब की तपस्या इतनी अद्भुत एवं एकाग्र मन से हो रही थी कि अन्त में उसे काल-खड्ग की प्राप्ति हुई। परन्तु दुर्भाग्य से उस सम्बन्ध में एक चमत्कार पूर्ण घटना घटित हुई। खड्ग जब नीचे उतरा तो शस्त्र-देवता विचार करने लगे कि साम्ब एक भयंकर राक्षस है, यह खड्ग का उपयोग जघन्य कृत्य करने के लिए करेगा। वह गो ब्राह्मण व दीन दुर्बलों का वध करेगा अतः उसके हाथ को स्पर्श नहीं करने दूँगा। उसकी अपेक्षा मैं लक्ष्मण की शरण जाऊँगा क्योंकि वह धर्म का सहायक है, दीन-दुर्बलों का पक्षधर है। लक्ष्मण सबका उद्धारकर्ता है। अतः मैं लक्ष्मण के हाथों में जाकर ही पवित्र होऊँगा।' साम्ब जिन वृक्ष लताओं के जाल में तपस्या कर रहा था उसी स्थान पर लक्ष्मण फल तोड़ने के लिए आये। उस समय काल खड्ग आकर त्वरित गति से लक्ष्मण के हाथ में प्रवेश कर गया। वन में फल तोड़ते हुए अचानक कालखड्ग हाथ में आने से चकित होकर उसके दाता को आस-पास देखने लगे परन्तु उन्हें कोई भी दिखाई नहीं दिया फिर उन्होंने हाथ में स्थित खड्ग के भार का अनुमान लगाया और उसकी धार की परीक्षा करने हेतु सामने जाल पर वार किया। उस वार से उस जाल के नीचे स्थित साम्ब मारा गया।

लक्ष्मण द्वारा किया गया खड्ग का वार इतना तीव्र था कि उस जाल के साथ ही साम्ब का सिर भी कट कर अलग हो गया। रक्त की तेजधार बहने लगी। वह देखकर सौमित्र चिन्ता-मग्न हो गए उसके मन में विचार आया कि सम्भवतः यहाँ कोई तपस्वी था। अतः निश्चित ही मेरे द्वारा ब्रह्म हत्या हुई है अब स्वर्ग में पिता दशरथ दु खी होंगे। रघुनाथ भी क्षुब्ध होंगे। जाने कहाँ से यह खड्ग मेरे हाथ में कैसे आया, जिसके कारण मेरे द्वारा ब्रह्म हत्या हुई। अब श्रीराम से मिलूँ भी तो कैसे ? लक्ष्मण अत्यन्त चिन्तामग्न हुए। श्रीराम ब्रह्म हत्या करने वाले का मुँह भी नहीं देखेंगे, अपने समक्ष भी नहीं आने देंगे। इसी भय से लक्ष्मण अत्यन्त दु:खी हुए। श्रीराम ही मेरे पिता व बन्धु हैं, सर्व दृष्टि से समर्थ हैं। उन्हें सब घटित हुआ वृत्तान्त बताकर प्रायश्चित के लिए उन्हीं से सलाह लूँगा। श्रीराम-नाम के स्मरण से ही करोड़ों दोषों का नाश हो जाता है अतः उनकी शरण जाकर क्षण मात्र में ही हत्या दोष का निवारण हो जाएगा। मुख से श्रीराम-नाम का उच्चार, हृदय में श्रीराम की मूर्ति, पग पग पर राम की उपस्थिति का चिन्तन होने पर श्रीराम द्वारा दोष-निवृत्ति होती है. श्रीराम की ओर उन्मुख होते ही समाधि-सुख का अनुभव होता है श्रीराम की ओर देखते ही स्वयं प्रायश्चित भी दीन हो जाता है यह विचार कर लक्ष्मण हत्या के भय से प्रायश्चित के विषय में विचार करने हेतु श्रीराम के पास आये। लक्ष्मण की उद्विग्नता देखते हुए सीता श्रीराम से बोलीं– "सम्भवतः, स्त्री के बिना लक्ष्मण अत्यन्त अस्वस्थ हो गया है, उसके मुख पर दीनता दिखाई दे रही है।" श्रीराम ने सीता को बताया– "लक्ष्मण विषय-लोलुप नहीं है। उसे नये खड्ग की प्राप्ति हुई है, अतः निश्चित ही वन में कुछ घटित हुआ होगा।" तभी लक्ष्मण आये और साष्टांग दंडवत् कर राम से बोले "मुझसे कुछ पाप हो गया है। आप मुझ पर कृपा करें." हे रघुनाथ अनाथ बंधु दीनों के स्वामी ! मुझ पर दया करें। आपके अतिरिक्त अन्य कोई मेरा रक्षक नहीं है पृथ्वी, आकाश तथा दसों दिशाओं में ढूँढकर भी आपके अलावा मुझे कोई अन्य दिखाई नहीं देता मेरे लिए

माता-पिता, बन्धु भगिनी सब आप ही हैं। अन्य किसी को मैं नहीं जानता हूँ। वन में आते समय कौशल्या माँ ने भी यही कहा था। आप ही मेरे रक्षणकर्ता हो।" लक्ष्मण के अत्यन्त दीनतापूर्ण वचन सुनकर श्रीराम ने लक्ष्मण के व्यथित होने का कारण पूछा। तब सिर झुकाकर लक्ष्मण बोले– "वन में फल तोड़ते हुए अकस्मात् मेरे हाथों में एक खड्ग आ गया। उसकी धार देखने के लिए मैंने वृक्ष लताओं से निर्मित जाल पर वार किया उस जाल के नीचे बनी हुई बाँबी में एक तपस्वी बैठा था, मेरे द्वारा उसकी हत्या हो गई। आप मुझे उसका प्रायश्चित बतायें।"

श्रीराम द्वारा लक्ष्मण को सांत्वना– सौमित्र द्वारा बताई घटना सुनकर श्रीराम उससे बोले– लक्ष्मण ! तुम्हारे द्वारा जिसका घात हुआ वह शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण कौन था, यह निश्चित किये बिना प्रायश्चित बताना सम्भव नहीं है। अतः तुम पहले उस शव को देखकर आओ।" यह सुनकर लक्ष्मण शीघ्रता से उस जाल के समीप गये। वहाँ एक विकृत मुख वाली, बड़े दांतों वाली, काली, अग्नि के समान नेत्रों वाली प्रचंड राक्षस देह पड़ी हुई थी। वापस लौटकर लक्ष्मण ने राम को बताया– "मेरे द्वारा एक राक्षस की हत्या हो गई है।" श्रीराम यह सुनकर हँसे और बोले– "अरे यह तो अपना प्रमुख धर्मार्थ-कर्त्तव्य ही है। तुम्हें स्वयं विषय-संज्ञान नहीं था लेकिन शस्त्र देवता को इसका ज्ञान था अतः उसने स्वतः ही दुष्ट का संहार किया, क्योंकि अगर वह राक्षस सजग होता तो उसने तुम्हारी हत्या कर दी होती। शस्त्रदेवता तुम पर प्रसन्न थे, अतः उसने तुम्हारे द्वारा बिना युद्ध के ही उसकी हत्या करवाई। वह राक्षस महापराक्रमी, भयंकर तथा तप द्वारा शस्त्र प्राप्ति करने वाला, होने के कारण शस्त्र देवता ने उस दुष्ट पर क्रोधित हो उसकी ही हत्या करवाई। अतः तुम्हारे द्वारा तपस्वी की हत्या हो गई और उसका तुम्हें पाप लगा है, ऐसा भाव मन में भी मत लाना। उस हत्या के लिए स्वयं को दोषी मत मानना।"

उसके पश्चात् श्रीराम लक्ष्मण को सांत्वना देते हुए बोले "हे लक्ष्मण ! राक्षसों के नाश के लिए ही तो हम लोग वन में आये हैं। शस्त्र देवता ने तुम्हारे हाथों में शस्त्र देकर दुष्ट के प्राण हरे हैं, इस कर्म के कर्ता तुम हो ही नहीं। तुम्हारें हाथों द्वारा शस्त्र-देवता ने दुष्ट का संहार किया है उसका दोष तुम्हारे ऊपर नहीं है। अतः तुम्हारे प्रायश्चित पूछने का कोई प्रयोजन ही नहीं है।" श्रीराम द्वारा दिये गए स्पष्टीकरण को सुनकर सौमित्र प्रसन्न हुए, वे बोले "हे श्रीराम आप धन्य हैं, आपने घटना की वास्तविकता स्पष्ट की कि मैं कर्मकर्ता नहीं हूँ अतः उसका मुझे दोष भी नहीं लगता। श्रीराम की कृपा धन्य है जिसने मेरी शंका को ही निःशंक कर दिया। इसका मुझे पुण्य अथवा पाप कुछ भी नहीं लगेगा।" ऐसा कहकर लक्ष्मण ने श्रीराम के चरणों पर अपना मस्तक रख दिया। श्रीराम ने उसे हृदय से लगा लिया, जिससे सौमित्र को समाधान प्राप्त हुआ। श्रीराम के भक्त कर्म करते हुए भी उससे अलिप्त रहते हैं। ऐसे हरिभक्तों के चरित्र का पठन करने से महादोषी भी दोष मुक्त होते हैं राक्षसों का वध सम्भव करने के लिए जिस काल खड्ग की प्राप्ति हुई थी, उसकी राम ने श्रद्धापूर्वक पूजा कर प्रार्थना की कि 'काल हमेशा हमें सहायक हो।' काल वास्तव में स्वाभाविक रूप से स्वयं ही सहायक हुआ था क्योंकि बिना प्रार्थना के ही काल-खड्ग हाथों में देकर उसने राक्षसों का संहार करने का अवसर प्रदान किया। श्रीराम ने ऐसा लक्ष्मण को बताया और कहा- "राक्षसों का रण में संहार करने का यह प्रारम्भ है यहाँ से आगे वन में मार्ग क्रमण करते हुए सावधान रहना चाहिए, यह भी ध्यान में रखो। इस राक्षस के वध का बदला लेने के लिए अनेक राक्षस यहाँ योगी, संन्यासी, तापसी का कपटवेश धरकर आयेंगे, उन पर विश्वास मत करना। उनके द्वारा कुछ करने के लिए आग्रह करने पर भी मुझसे

पूछना। मुझसे पूछे बिना छोटा सा कार्य भी मत करना।" श्रीराम द्वारा बताये गए इन वचनों को शिरोधार्य कर लक्ष्मण सावधान होकर रहने लगे।

शूर्पणखा का प्रतिशोध के लिए आगमन– साम्ब की माता शूर्पणखा लंका में थी उसे वहाँ एक दुःस्वप्न आया। उस स्वप्न में उसने देखा कि साम्ब का पट्टाभिषेक हो रहा है। इस अवसर पर उसे लात मारकर दूर कर दिया गया है। उसके मस्तक पर सिन्दूर का टीका है। गले में लाल कनेर की माला है, चेहरा काजल से पुता हुआ है। उसके चारों ओर वानरों का समूह एकत्रित है। सारे शरीर में तेल लगा हुआ है उसे गधे पर बैठाया गया है। वह दक्षिण दिशा की ओर जा रहा है और अन्त में गोबर में प्रवेश कर गया है। शूर्पणखा ने रावण को साम्ब के विषय में देखा हुआ अपना दुःस्वप्न बताया। तुरन्त वह विमान से पद्मपुर की ओर निकली। सर्व प्रथम वह त्रिशिरा, खर व दूषण से मिली और फिर साम्ब को देखने के लिए आई। उसने साम्ब का सिर कटा हुआ देखा और दहाड़ मारकर आक्रोश करने लगी यह क्या असंभव घटित हो गया। किस जादूगरनी ने इसकी हत्या की। काल भी, जिससे भय खाता था, वह स्वयं ज़मीन पर पड़ा हुआ है। जिसकी सहज दृष्टि पड़ते ही सुर असुर दसों दिशाओं में भागने लगते थे। कलि काल की दृष्टि समाप्त हो जाती थी। ऐसा अद्भुत वीर भूमि पर पड़ा हुआ है "हे बच्चे ! तुम्हारे लिए मैंने कितनी मानताएँ मानीं। अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष की सेवा की, व्रत किये। तुमसे मुझे कितनी आशाएँ थीं और तुम ऐसे रूठ गए। तुम्हारा मुख कमल देखते ही मेरा वात्सल्य उमड़ पड़ता था। मुझसे रूठकर मेरा साम्ब परलोक सिधार गया" इस प्रकार विलाप करते हुए उसने साम्ब के मुख पर अपना मुख रखा. "अरे रे, किसने मेरे बच्चे का वध कर मुझे यह घोर दुःख दिया है ? अब यहाँ विलाप करते हुए बैठकर मैं क्या करूँगी ? मेरे पुत्र के हत्यारे को ढूँढ़ने के लिए मैं सारा वन ढूँढ़ डालूँगी।"

शूर्पणखा जिस समय वन में घूम रही थी, उसे खड्ग एवं धनुष बाण धारण किये हुए लक्ष्मण दिखाई दिए। 'यही मेरे साम्ब का हत्यारा होगा, इसे मैं खा डालूँगी। मेरा साम्ब ध्यान-मग्न था, इसी कारण वह मारा जा सका। अगर वह सावधान होता तो इसे एक घूँट में निगल डालने का बल साम्ब के पास था। महापराक्रमी साम्ब को इसने ध्यान-मग्न अवस्था में मारा है। अतः अब मैं इसको पूरा निगल कर इसकी हड्डियों को चकनाचूर कर डालूँगी। इसने मेरे साम्ब को मारा, यह खर आदि को बताना अत्यन्त लज्जास्पद होगा, उसकी अपेक्षा मैं ही इसे मारकर उनके पास ले जाऊँ, यह अधिक उचित होगा। इसके अत्यन्त बलवान् होने के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। इसके दोनों नेत्र सहस्र नयन इन्द्र के समान हैं। इसकी भुजाओं पर नाग चिह्न हैं नेत्रों में कच्छप की दृष्टि है, कलिकाल भी इसकी पुष्टि के कारण विचलित नहीं होते शेषशायी विष्णु का चिह्न इसके पृष्ठ पर है। इसका सम्पूर्ण शारीरिक वैशिष्ट्य सृष्टि में दुर्लभ है यदि मैं इसे बलपूर्वक निगलने जाऊँगी तो यह मुझे मार डालेगा। अतः इसकी पत्नी होकर तत्पश्चात् इसको छल से मारना चाहिए," सब दृष्टियों से विचार कर शूर्पणखा ने ऐसा निश्चय किया।

इसके पश्चात् शूर्पणखा ने अपना वास्तविक क्रूर रूप त्याग कर अति सुन्दर रूप धारण किया। मनोहारी अलंकार धारण कर पायलों को खनकाती हुई सौमित्र के समक्ष आकर खड़ी हो गई इस समय उसने शीर्ष फूल, राखड़ी*, कमरपट, कुंडले, सुपाड़ी चम्पा केतकी के बाजूबंद, दोनों हाथों में रत्नजड़ित चूड़ियाँ और मुख में सुरंग पान* धारण किया था। शरीर में कंचुकी गले में एक लड़ी का हार, बालों

---

* एक प्रकार का अलंकार।

* सौन्दर्य प्रसाधन के रूप में प्रयुक्त होने वाला पान।

की सुन्दर चोटी और उसमें फूलदार चुटीला शोभायमान था। वह समुद्री नील-वर्ण के वस्त्र धारण किये हुए थी। उसकी कमर में रत्नजड़ित मेखला थी। हल्दी का मुख लेप और आँखों में भड़कीला काजल लगा हुआ था। इस प्रकार वेशांतरण से सुन्दर बनी शूर्पणखा विभिन्न प्रकार की रिझाने वाली भाव-भंगिमाएँ करती हुई लक्ष्मण के समीप आकर उनके चरणों पर गिर पड़ी।

लक्ष्मण-शूर्पणखा तथा श्रीराम की चालें एवं वार्तालाप– शूर्पणखा लक्ष्मण के पैर छूकर लज्जा का नाटक करती हुई, पीठ करके खड़ी हो गई तथा लुभाने वाली भावभंगिमाएँ करती हुई लक्ष्मण से बोली– "मैं कुबेर की बहन हूँ, आपकी प्राप्ति के लिए मैंने अनुष्ठान किया था मैं आपकी धर्मपत्नी बनूँगी।" यह सुन्दरी लक्ष्मण के मन को भा गई, परन्तु उन्हें श्रीराम की आज्ञा स्मरण हो आई कि 'राक्षस कपटवेश में आयेंगे, उनका विश्वास मत करना।' तभी कमल की माला लाकर लक्ष्मण के गले में डालने के लिए वह स्त्री आगे आई। परन्तु उसके स्पर्श से बचने के लिए लक्ष्मण पीछे हटे. इस पर वह स्त्री बोली– "मेरे समान सुन्दर स्त्री वन में एकान्त में मिलने पर, कोई नपुंसक व्यक्ति भी पीछे नहीं रहेगा। फिर तुम्हारे सदृश पौरुषवान व्यक्ति इतना भयभीत क्यों है ? मैं तो केवल तुम्हारी चरण दासी बनकर सम्पूर्ण दिन रात तुम्हारी सेवा करूँगी। मन में किसी प्रकार की शंका न रखकर पर्ण शैय्या पर शयन करें। मेरा उपभोग करने पर तुम्हें सभी भावनाओं का ज्ञान हो जाएगा। मुझसे तुम्हारे पुरुषार्थ का संयोग होते ही तुम्हारी संसार में ख्याति फैल जाएगी।"

शूर्पणखा के वचन सुनकर लक्ष्मण बोले– "अब मेरे वचन सुनो– "श्रीराम मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं। उनकी आज्ञा के बिना मैं तुम्हें स्वीकार नहीं करूँगा।" यह सुनकर शूर्पणखा ने श्रीराम के विषय में पूछा– "ज्येष्ठ भ्राता श्रीराम कैसे हैं, उनके पुरुषार्थ के विषय में मन:पूर्वक जानकारी प्राप्त कर उन तक पहुँचने का मार्ग पूछा। लक्ष्मण ने उत्तर दिया कि– "इसी मार्ग पर गंगा के किनारे पंचवटी में श्रीराम का आश्रम है। वहाँ श्रीराम अपनी पत्नी सीता के साथ निवास करते हैं।" शूर्पणखा ने यह सुनकर मन में सोचा कि ये दोनों मेरे पुत्र के बैरी, गंगा के तट पर रम्य आश्रम बनाकर, सुखपूर्वक निवास कर रहे हैं। सीता जैसी अत्यन्त सुन्दर स्त्री उनकी प्रियतमा है। श्रीराम और लक्ष्मण दोनों को मैं छलपूर्वक मारूँगी और सीता सुन्दरी को स्वयं ले जाकर लंकेश को अर्पित करूँगी।" तत्पश्चात् शूर्पणखा पंचवटी गयी श्रीराम को साष्टांग नमन कर बोली - "भ्राताश्री मैं आपकी चरण वंदना करती हूँ और जिठानी जी को भी नमन कर उनकी शरण जाती हूँ। मैं आपकी देवरानी हूँ। मुझ पर कृपा करें। आपके छोटे भ्राता आपकी आज्ञा के बिना मुझसे विवाह करने हेतु अपनी स्वीकृति देने के लिए तैयार नहीं है। आप ज्येष्ठ श्री से कहकर सौमित्र से मेरा विवाह करवा दें।" सीता, उसकी विनती से द्रवित होकर श्रीराम से बोली– "सौमित्र दिन-रात कष्ट करते हैं; उन्हें यह सुन्दर स्त्री प्राप्त होगी और मुझे भी वनवास की अवधि में सखी मिल [illegible]।"

श्रीराम ने जब उस स्त्री की ओर ध्यान से देखा तो उन्होंने उसकी आँखों से पहचान लिया कि यह कोई निशाचरी राक्षसी है और यहाँ कपट करने के लिए आई है। उसका उद्देश्य जानकर श्रीराम [illegible]– "हे सुन्दरी, मेरा और लक्ष्मण का एक विशिष्ट संकेत है उसे पत्र द्वारा या मौखिक रूप से आज्ञा देने पर वह नहीं मानता है। केवल पीठ पर लिखे हुए अक्षरों की आज्ञा ही सौमित्र स्वीकार करता है।" इस पर शूर्पणखा ने विचार किया "मैं राम की आज्ञा लेने के लिए आयी तो उन्होंने मुझे

विमुख कर दिया। अब लक्ष्मण का पति रूप में पाने के लिए पत्र-रूप में आज्ञा दिखाने हेतु फिर मुझे पीठ दिखाने के लिए मुँह घुमाना पड़ेगा। विमुखता ही मेरा दुर्भाग्य है। राम जो पत्र पीठ पर लिखेंगे वह मैं देख नहीं सकूँगी। श्रीराम निश्चय ही भोले नहीं हैं। मेरी इच्छा दोनों से छल करने की थी पर श्रीराम से छल करना सम्भव नहीं दिखाई देता। श्रीराम के मन में क्या है, यह समझना सम्भव नहीं है क्योंकि वे पत्र पीठ पर लिखेंगे अतः पीठ पर विवाह की आज्ञा ले जाकर वन में ही लक्ष्मण का घात करूँगी, उसके पश्चात् श्रीराम का वध करने के लिए खर व दूषण दोनों को ले आऊँगी यहाँ पद्मपुर के समीप वे राक्षसवीर श्रीराम का वध कर देंगे। तत्पश्चात् सीता सुन्दरी को ले जाकर लंकेश्वर को अर्पित कर दूँगी, ऐसा करने में कोई अड़चन नहीं है, श्रीराम एक साधारण व्यक्ति हैं तो खर-दूषण उग्र राक्षस हैं राम का वध करने में उन्हें क्षण मात्र नहीं लगेगा। फिर लंकेश सीता का उपभोग करेंगे पुत्र के शत्रु का वध बाद में करना चाहिए, ऐसा मन में निश्चय कर शूर्पणखा लज्जा का नाटक करती हुई सीता से बोली "मेरे समक्ष यह बड़ा संकट उपस्थित हो गया है मैंने मन से जो निश्चय किया है, वह विवाह-पत्रक पीठ पर लिखा होगा लेकिन उनकी तरफ पीठ कर मैं कैसे बैठूँ ? आप ही ज्येष्ठ श्री को बताइये कि पीठ कर बैठते समय लज्जा से मेरे प्राण ही निकल जाएँगे। अतः आप ही उनसे पत्र लिखाकर मेरे हाथ में देने का आग्रह करें। स्त्रियों का जीवन कितना लज्जापूर्ण होता है यह तो आप जानती ही हैं इसीलिए आप श्रीरघुनाथ से प्रार्थना कर पत्र लिखकर देने हेतु कहें"

शूर्पणखा का आग्रह सुनकर श्रीराम ने विचार किया "पत्र लिखकर देने से यह पत्र पढ़ेगी और फिर अनर्थ हो जाएगा। क्योंकि पत्र में उसकी इच्छा के विपरीत लिखा होगा तब श्रीराम ने शूर्पणखा से स्पष्ट शब्दों में कहा "अगर तुम सौमित्र से विवाह की इच्छा रखती हो तो पीठ पर पत्र लिखने की स्वीकृति दो, अन्यथा वन में जाकर, जो अच्छा लगे उससे विवाह कर लो।" श्रीराम के स्पष्ट वचन सुनकर वह विलाप करने लगी और बोली "श्रीलक्ष्मण ही मेरे पति हैं, ज्येष्ठ श्री, मैं आपके चरण स्पर्श कर कहती हूँ कि मैं पूर्ण पतिव्रता हूँ, मेरे पति लक्ष्मण ही हैं अतः आप कठोर वचन न कहें।" तब श्रीराम ने उससे कहा– "धर्मशास्त्र की ऐसी मान्यता है कि बड़ी भावज माँ समान होती है और छोटी पुत्री समान, अतः लज्जा का कोई औचित्य नहीं है " फिर शूर्पणखा ने विनयपूर्वक कहा कि मैं राम की आज्ञा का पालन कर रही हूँ और श्रीराम की ओर पीठ कर बैठ गई,

लक्ष्मण द्वारा श्रीराम की आज्ञा का पालन– श्रीराम ने शूर्पणखा की दृष्टि से परे उसकी पीठ पर पत्र लिखकर लक्ष्मण को सावधान रहने के लिए कहा तथा आज्ञा दी कि 'इसके नाक और होंठ पूरी तरह से काट दिये जायँ, यही इसका दण्ड है। स्त्री-हत्या नहीं करनी चाहिए इस लिए इसे जीवित रखा जाय,' पीठ पर लिखे पत्र में क्या लिखा है यह न समझ सकने के कारण राम सीता की वन्दना कर, वह लक्ष्मण के पास आयी। पुष्पमाला लेकर लक्ष्मण का वरण करने के लिए जैसे ही शीघ्रता से वह आगे बढ़ी, लक्ष्मण ने उसका प्रतिकार करते हुए कहा "तुम कितनी निर्लज्ज हो। श्रीराम की आज्ञा के बिना मैं तुम्हारा पाणिग्रहण नहीं करूँगा। राम की आज्ञा के बिना तुम मुझसे विवाह करने क्यों आयी "
लक्ष्मण के क्रोध को देखकर शूर्पणखा बोली– "ज्येष्ठ श्री और जिठानी वास्तव में कृपालु हैं उन्होंने आज्ञा दी है परन्तु आप अत्यन्त कठोर व्यवहार कर रहे हैं अब मैं आपको पहचान बताती हूँ उसे सुनिये - "ज्येष्ठ श्री श्याम, सुन्दर तथा संसार में सर्वश्रेष्ठ हैं और जिठानी जी चंपा की कली के समान सुकोमल हैं उन दोनों से पंचवटी में मेरी भेंट हुई। उन्होंने मुझसे कहा है कि मैं आपका वरण करूँ "

सौमित्र बोले "मुख से दी गई आज्ञा मैं नहीं स्वीकार करता, मैं भी तुम्हें मात्र मुख से ही स्वीकृति देता हूँ। सौमित्र के ये वचन सुनकर शूर्पणखा बोली– "मुझ पर आपको विश्वास नहीं परन्तु आपके चरणों मे मुझे जीवन व्यतीत करना है। अगर मैं झूठ बोली तो श्रीराम को मुँह दिखाने योग्य नहीं रहूँगी। आप वन में भ्रमण कर अत्यन्त थक गए हैं। आपके पैर दबा देती हूँ। चलिये, एकांत में शयन करें, जिससे आपको आराम मिलेगा।" लक्ष्मण बोले "तुम मूर्ख हो अनवरत प्रलाप कर रही हो, मैं तुम्हारे मुख पर ही प्रहार करूँगा। तुम वेश्या हो, व्यभिचारिणी हो, श्रीराम के हस्ताक्षर देखे बिना मैं तुम्हारा स्पर्श भी नहीं करूँगा। अनावश्यक आग्रह करोगी तो तुम्हारी हत्या कर दूँगा। यह कहते हुए लक्ष्मण ने खड्ग हाथ में ले लिया अन्त मे भयभीत हो शूर्पणखा बोली "मैं ही अभागिनी हूँ कि मेरे वचनों पर आपको विश्वास नहीं होता, अतः अब श्रीराम की लिखित आज्ञा ही देखें" यह कहकर शूर्पणखा ने अपनी पीठ दिखाई।

सौमित्र ने श्रीराम के हस्तलिखित पत्र को पढ़कर शूर्पणखा की वेणी और हाथ पकड़कर उसे ज़मीन पर गिरा दिया। एक छोटी सी कुमारी की तरह मुझे आप पृथ्वी पर क्यों लिटा रहे हैं, मैं स्वयं ही लेट जाती हूँ, आप पुरुषार्थ करें।" शूर्पणखा के ये वचन सुनकर लक्ष्मण ने क्षण-मात्र में ही उसको पैरों से दबाकर उसके नाक और होंठ काट दिए और स्वयं दूर खड़े हो गए। लक्ष्मण के वार से उसका कपट रूप दूर हुआ और वह कुरूप विकराल राक्षसी के रूप में परिवर्तित हो गई। नाक के अभाव में वह अत्यन्त भयंकर दिखाई दे रही थी तथा उसकी चीखने की ध्वनि भी विचित्र सी सुनाई दे रही थी। उसे सौमित्र पर अत्यन्त क्रोध आया। उसे निगलने के लिए अपना भयानक मुख फैलाकर वह लक्ष्मण की ओर आगे बढ़ी, यह देखकर लक्ष्मण ने उस पर प्रहार करने के लिए अपना शस्त्र उठाया। लक्ष्मण को शस्त्र उठाती हुई भाव-भंगिमा देखकर वह राक्षसी भाग गई।

सौमित्र और श्रीराम का मिलन तथा आगे की योजना– शूर्पणखा के भागने के पश्चात् सौमित्र पंचवटी में वापस लौटे। उन्होंने श्रीराम को सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उस राक्षसी के कपट के विषय में जानकर दोनों ने उस घटना के विषय में बातें की।" सूर्यवंशी श्रीराम धन्य हैं, जिन्होंने उस कपटी राक्षसी को पहचाना, उसकी पीठ पर पत्र लिखा तथा उसे पढ़कर मैंने कपट के लिए उसे दण्ड दिया अगर यह पत्र उसके हाथ में पड़ा होता तो हमें उसकी हानि भोगनी पड़ती। श्रीराम आपके द्वारा की गई जुगत से ही मैं उस राक्षसी को दण्ड दे पाया। उसके होंठ और नाक काटकर उसे विकृत कर दिया उसके नख सूप जैसे हैं अतः उसे शूर्पणखा नाम मिला। उसके नाक और होंठ काटकर मैंने उसे [illegible] में डाल दिया। उस स्थान की मछलियाँ भी नाक रहित हो गईं। उसका प्राण न लेने की आपकी आज्ञा के कारण उसे जीवित छोड़ दिया। अब वह पद्मपुर भाग गई है।" लक्ष्मण से सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर श्रीराम सीता से बोले– "सौमित्र इस विवाह की विधि को सावधानीपूर्वक निपटाकर वापस लौटे हैं अब इस विवाह का समारम्भ रणवेदी पर होगा। बाणों का उबटन लगेगा। रक्त से और शस्त्र से सारे विवाह की विधियाँ सम्पन्न होंगी, रणभूमि में नृत्य होगा। राक्षसों के मुंडों से न्योछावर दी जायेगी। दोनों ओर से शस्त्रों की वर्षा होगी। क्योंकि कलह के लिए कारण उत्पन्न हो गया है। यदि उस कलह से क्रुद्ध हुए तो खर दूषण को मैं मारूँगा।" यह बोलते समय उनकी भुजाएँ फड़कने लगीं। शत्रुओं का मर्दन करने के लिए उन्होंने धुनष-बाण उठा लिये।

❧❧❧❧

अध्याय ९

[खर एवं दूषण से युद्ध]

लक्ष्मण ने शूर्पणखा की जो दुर्दशा की उससे अत्यन्त भयभीत होकर वह तुरन्त लौट गई। नाक कटने के कारण विद्रूप हुई शूर्पणखा के नाक से रक्त की धारा बह रही थी। ऐसी अवस्था में जब वह राक्षसों के मध्य पहुँची तो उस महापराक्रमी शूर्पणखा की दुर्दशा देखकर सबको अनुभव हुआ कि यह राक्षस जाति का अपमान है। उस भयंकर राक्षसी की ऐसी अवस्था करने वाले महावीर के विषय में सोचकर राक्षसगण भय से काँपने लगे। उस समय खर और दूषण राक्षस शूर्पणखा की विकृत अवस्था देखकर अत्यन्त क्रोधित हुए और गर्जना करते हुए उससे सम्पूर्ण वृत्तान्त पूछा। वह पीड़ा से छटपटाती हुई मूर्च्छित हो गई। उसका विकृत चेहरा देखकर खर चकित हुआ। होठों सहित नाक काटकर दंत पंक्ति को अनावृत करने वाला यह महापराक्रमी कौन है, जिसने उसे रक्त-स्नान करा दिया है। बलशालियों में श्रेष्ठ राक्षसी शूर्पणखा जिससे इन्द्र एवं कलिकाल भी डरते हैं, वह तीनों लोकों में अजेय थी। उसके द्वारा किये गए काम-रूपी कपट के कारण उसकी ऐसी अवस्था करने वाला वह वीर श्रेष्ठ कौन है ? अपनी बहन के विषय में अत्यन्त आत्मीयता रखने वाले खर ने उसे पुनः सम्पूर्ण वृत्तान्त बताने के लिए कहा। तब वह क्रोध एवं दुःख मिश्रित स्वर में बोली–

शूर्पणखा का निवेदन व श्रीराम का स्वरूप वर्णन– "उन तपस्वियों से मैं संत्रस्त हो गई। वे तपस्वी ब्राह्मण नहीं हैं, क्षत्रिय हैं पर वे साधारण क्षत्रिय नहीं हैं। वैश्य और शूद्र तो निश्चित ही नहीं हैं वे महावीर योद्धा हैं। सम्भवतः वे राजकुमार हैं। गौर और श्यामलवर्ण के सुदर्शन, कमल के समान नेत्रों वाले वे राज घराने से सम्बन्धित प्रतीत होते हैं, पर उन्होंने मृगचर्म धारण किया है। उनमें ज्येष्ठ का नाम रघुनन्दन और कनिष्ठ का नाम लक्ष्मण है। उन दोनों की सुन्दरता अतुलनीय है। इन्द्रदेव एवं साक्षात् मदन भी उनके समक्ष जुगनू के सदृश हैं। दानव, मानव अथवा अन्य किसी भी प्राणी की अपेक्षा उनका सौन्दर्य अद्भुत है। ज्येष्ठ राजकुमार की पत्नी सीता लावण्यमती है। स्वयं लक्ष्मी भी सौन्दर्य में उनके समक्ष टिक नहीं सकतीं, उसका सौन्दर्य अतुलनीय है। सीता के दर्शन कर मेरी आँखें तृप्त हुईं। राम तथा लक्ष्मण को देखकर मुझे सन्तुष्टि प्राप्त हुई परन्तु पुत्र की हत्या के कारण बदले की भावना से मैंने उनके साथ कपट किया। उनके समक्ष मेरे कपट का प्रभाव टिक नहीं सका। उनके प्रति क्रोध और वैर-भावना बलवती न हो सकी। इसके विपरीत उन्होंने ही मेरी यह अवस्था की। लक्ष्मण ने मेरी छाती पर पैर रखकर मेरी नाक काट ली और बोला– "जाओ किसी बलवान् को बताओ।" अब मैं तुम्हारे पास आई हूँ। उन तपस्वियों ने इस प्रकार मेरा अपमान किया है, अब मेरी रक्षा करो।" इतना कहकर खर दूषण के पैरों के समीप बैठकर वह रोने लगी और बोली– "तुम उन्हें युद्ध में परास्त करो, जिससे मैं उनकी छाती पर बैठकर उनका रक्तपान कर सकूँ। मैंने अपने मन में ऐसा दृढ़ निश्चय किया है "

बहन शूर्पणखा द्वारा कहा गया वृत्तान्त सुनकर खर और दूषण अत्यन्त क्रोधित हुए। उन्होंने चौदह राक्षस वीरों को चुनकर उन्हें आज्ञा दी "पंचवटी जाकर राम और लक्ष्मण का वध कर सीता को यहाँ ले आओ। तत्पश्चात् शूर्पणखा राम और लक्ष्मण का रक्तप्राशन करेगी " शूर्पणखा का रक्तपान का प्रण पूर्ण करने के लिए वे दूत तत्काल भेजे गए। वे राक्षस भयानक गर्जना करते हुए निकले। उन चौदह

भयंकर राक्षसों के समक्ष रघुनाथ क्या टिक पायेंगे, निमिष मात्र में ही ये राक्षस वीर उसे मार डालेंगे, यह सोचकर उनका रक्तपान करने के लिए शूर्पणखा को भी साथ ही भेजा गया।

राक्षसों के दूत और श्रीराम के मध्य संघर्ष– शूर्पणखा ने चौदह दूतों के साथ जाकर उन्हें श्रीराम सहित पंचवटी स्थान दिखलाया। वे चौदह राक्षस कातिया, तोमर इत्यादि शस्त्र लेकर राम पर वार करने हेतु बढ़े। उनमें से एक बोला– "मैं राम को मुद्गर से मारूँगा' दूसरा बोला- 'मैं लक्ष्मण को पट्टे से मारूँगा' और एक राक्षस बोला- 'मैं उन दोनों को शस्त्र सहित निगल जाता हूँ ' तब दूसरा उससे बोला-'तुम अकेले ही खाने वाले कौन होते हो ? हमें भी हिस्सा चाहिए।' एक अन्य राक्षस बोला- 'इन वीरों की जोड़ी को मारने के पश्चात् शूर्पणखा उनका रक्त-प्राशन करेगी और हम सब उनके मांस का बँटवारा कर आराम से खायेंगे।' अन्य कोई बोला- 'इन दोनों को खर के पास ले जायेंगे, वह बहन को रक्त देकर माँस का स्वयं भक्षण करेगा।" वे दो हैं, और हम तो अनेक हैं, व्यर्थ विचार क्यों करें, ऐसा कहकर वे राक्षस आश्रम की ओर दौड़े।

श्रीराम, सीता और लक्ष्मण- ये तीनों आश्रम में हमेशा ही सावधान रहते थे। इन चौदह राक्षसों को आया देखकर श्रीराम हँसते हुए लक्ष्मण से बोले– "अरे लक्ष्मण ! ये चौदह राक्षस आये हैं, उनका एक ही बाण से मैं प्राण हर लूँगा। शीघ्र मेरा धनुषबाण दो। मेरे बाणों का प्रहार तुम स्वयं ही देखोगे।" यह कहकर श्रीराम ने धनुष पर बाण चढ़ाया और राक्षसों से पूछा– "हम गंगा के किनारे रहने वाले तपस्वी हैं, तुम हमारा वध करने के लिए क्यों आये हो ? तुम्हें किसने भेजा है ?" राक्षस दूत श्रीराम के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए बोले– "तुम दोनों ने खर की बहन शूर्पणखा की दुर्दशा की और तपस्वियों का ढोंग करते हो, हम तुम्हें नहीं छोड़ेंगे। तपस्वी होकर धनुष्य बाण रखते हो। स्त्री की दुर्दशा करते हो। कैसे तपस्वी हो तुम ? तुम्हें लज्जा नहीं आती ? यह कहकर उन्होंने अनेक शस्त्रों से वार किया। धनुर्धारी श्रीराम ने वे शस्त्र तुरन्त नष्ट कर दिए। श्रीराम के बाणों के वार से वे राक्षस भयभीत होकर मूर्च्छित होने लगे। उनकी स्थिति दयनीय हो गई। फिर श्रीराम ने सोनपंखी बाण लेकर उसे चौदह [illegible]षियों के विधान से अभिमन्त्रित कर राक्षसों पर वार किया और उन चौदह राक्षसों का वध कर दिया। [illegible] बाण ने उन सभी राक्षसों का शरीर भेद दिया। और धराशायी हो गए। चौदह राक्षसों का वध कर [illegible] विजयी श्रीराम का बाण आकाश में भ्रमण करने लगा, मानों वह खर-दूषण का वध करने के लिए उन्हें ढूँढ़ रहा हो। जब खर-दूषण नहीं मिले तो वह बाण पुनः वापस लौटकर श्रीराम के तरकश में प्रवेश कर [illegible]। श्रीराम का यह हस्तकौशल देखकर सीता विस्मय चकित हो गई। देवादिक और नभचर भी [illegible]चकित हुए। श्रीराम का रण-कौशल और सर्वश्रेष्ठ वीरता उन्होंने स्वीकार की। उन चौदह राक्षसों [illegible] नाक विहोन शूर्पणखा को देखकर लक्ष्मण उसे मारने के लिए दौडे। शूर्पणखा आक्रोश करती [illegible] लगी। श्रीराम ने लक्ष्मण का हाथ पकड़कर रोका। उस समय लक्ष्मण ने मन में विचार किया [illegible] इतने हठी क्यों हैं ? शूर्पणखा को देखते ही मैं उसे मारने के लिए दौड़ा लेकिन वह भयभीत [illegible] लगी। नासिकाविहीन मुख लेकर वह हमारा रक्त-प्राशन करने हेतु आयी थी अतः बाण से [illegible] वध कर दिया होता परन्तु श्रीराम ने मुझे रोक दिया।" लक्ष्मण का मनोगत समझकर श्रीराम ने [illegible] में निहित नियमों से अवगत कराया।

[illegible] बोले- "हे सौमित्र ! शास्त्रों में लिखा है कि स्त्री का वध नहीं करना चाहिए। उसके [illegible] और बात ध्यानपूर्वक सुनो। जिस प्रकार संड़सी को अग्नि के समीप रखकर तपाकर फिर

उसे पीटते हैं उसी प्रकार शूर्पणखा राक्षसी राक्षस कुल का सर्वनाश कराने वाली है। इसके कारण रावण एवं कुंभकर्ण का वध होगा अत: उन राक्षसों के वध के कारण को रक्षा करनी चाहिए। इसके कारण ही राक्षसों का सर्वनाश होगा अत: इसे मत मारो। जिस प्रकार चक्की के पास बैठी हुई स्त्री, चक्की में पीसने के लिए लगातार सामग्री डालती जाती है, उसी प्रकार शूर्पणखा एक के बाद एक राक्षस को हमारे समीप लाती रहेगी। पहले खर-दूषण फिर लंका का प्रधान उसके पश्चात् कुंभकर्ण चौथा इन्द्रजित् तथा पांचवीं बार में पुत्र एवं सेना सहित रावण राक्षसी शूर्पणखा द्वारा ही लाये जाएँगे। हे सौमित्र ! यह सत्य तुम अवश्य ध्यान में रखना।" श्रीराम के ये वचन सुनकर लक्ष्मण ने धनुष बाण नीचे रखा और श्रीराम की चरण वंदना कर बोले– "श्रीराम समस्त ज्ञान विज्ञान के ज्ञाता हैं, जो चौदह विद्याओं से अज्ञान का नाश करते हैं। श्रीराम के बाण से परमात्मबोध जागृत होकर परमानन्द की प्राप्ति होती है."

रामबाण के परिणाम और राम का सामर्थ्य-वर्णन– श्रीराम के बाण से शरीर का नाश अवश्य होगा इसमें कोई शंका नहीं है। वे चौदह राक्षस रामबाण से जरा, जन्म एवं मरण से मुक्त होकर सुखी हुए। उस बाण के संकल्प विकल्प से मन, चित्त-चिन्तन, मान अभिमान विषय-ज्ञान, भव-बन्धन, देह-बन्धन, कर्म अकर्म बन्धन, कार्य-कारण, स्व, पर भाव इत्यादि समाप्त होकर वे चौदह राक्षस सुखी हुए। शूर्पणखा अभागी होने के कारण रामबाण से उसकी मृत्यु न होकर शरीर के लोभ से आर्त्तनाद करती हुई भाग गई। श्रीराम मोक्ष प्रदान करने वाले हैं, वे शत्रुओं का वध कर उन्हें मुक्त करते हैं श्रीराम के नाम से जड़-जीवों का उद्धार होता है। उनके स्मरण से सभी मुक्त होते हैं

चौदह राक्षसों का वध हुआ देखकर शूर्पणखा स्वयं को बचाने के लिए आक्रोश करती हुई खर आदि राक्षसों के समीप पहुँची। खर अत्यन्त आवेश में आकर बोला "मैंने तुम्हारे साथ चौदह महापराक्रमी रणशूर राक्षस दिये थे। उन राक्षसों का क्रोध चौदह भुवनों के सुर-नरों को भयाकुल करने वाला था। उन्होंने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया। क्या इसीलिए तुम विलाप कर रही हो ? उन चौदह राक्षसों की करनी कहते हुए तुम क्यों रो रही हो ? या तुम मेरे लिए शोक कर रही हो।" खर के वचन सुनकर शूर्पणखा ने सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। "तुम्हारे चौदह राक्षस अत्यन्त कठोर और महापराक्रमी थे वे सब कातिया, त्रिशूल, फरसा और पट्टे आदि अस्त्र लेकर निकले। उनमें से कोई राम को निगलने की और कोई लक्ष्मण को मारने की बातें कर रहा था। कोई मांस खाने की, रक्त पीने की और दोनों को निगलने की बातें कर रहा था, उनमें से कुछ यह भी कह रहे थे कि शूर्पणखा को इन दोनों का रक्त पिलाकर फिर स्वयं मांस खाएँगे। उन राक्षसों की जब यह चर्चा चल रही थी उस समय वीर श्रीराम धैर्य धारण कर खड़ा था। वह शूरवीर उन राक्षसों की चर्चा सुनकर भी उनके वार सहन करने के लिए शान्त, गम्भीर होकर खड़ा था। फिर जब वे राक्षस उस पर वार करने के लिए आगे बढ़े तो वह जगज्ज्येष्ठ श्रीराम उठा और धनुष पर बाण चढ़ाकर युद्ध के लिए सुसज्जित हुआ। नक्षत्रों को मिटाने के लिए सूर्य जिस प्रकार आकाश में आता है ठीक उसी प्रकार वह सूर्यवंशी राक्षसों को मारने के लिए आगे आया. वे चौदह राक्षस, 'श्रीराम अकेला है और हम अनेक हैं। इस दीनदुर्बल को तो आधे क्षण में ही समाप्त कर देंगे'- यह कहते हुए आगे बढ़े। श्रीराम के समक्ष आते ही उसे बलशाली देखकर उन्होंने अनेक प्रबल शस्त्रों से वार किया। उनको श्रीराम ने तत्काल नष्ट कर सबको नि:शस्त्र कर दिया। अत्यन्त विकट गर्जना करते हुए विकराल मुख फैलाकर वे सभी राक्षस राम को निगलने के लिए उसकी ओर दौड़े। श्रेष्ठ धनुर्धर श्रीराम ने मात्र एक ही बाण प्रत्यंचा पर चढ़ाकर उन सभी राक्षसों को छेद डाला, उस

भयंकर वार से वे राक्षस पानी भी न माँग सके और मृत्यु को प्राप्त हुए। ''लक्ष्मण मुझ पर क्रोधित होकर, 'यह नकटी ही युद्ध छेड़ने के लिए आई है'- ऐसा कहते हुए शस्त्र लेकर मेरे पीछे दौड़ा उस संकट से बचकर मैं भागकर आयी हूँ। वह श्रीराम बहुत पराक्रमी है। तुम सबको हराकर एवं वध कर वह तुम्हारा जनस्थान अवश्य जीत लेगा। श्रीराम के बाण राक्षसों को भस्म कर देंगे। तुम्हारे स्वयं के पराक्रमी होने के भ्रम को वह दूर कर देगा।" शूर्पणखा के ये वचन सुनकर खर अत्यन्त क्रोधित हुआ।

खर-दूषण-त्रिशिर का सेना सहित प्रस्थान– शूर्पणखा द्वारा कहा गया वृत्तान्त सुनकर खर इतना क्रोधित हुआ कि उसने तुरन्त दूषण को बुलाकर रणदुंदुभी बजाने की आज्ञा दी। चौदह हज़ार अत्यन्त क्रूर राक्षस तत्काल एकत्रित हुए और खर ने रथ में बैठकर युद्ध के लिए प्रस्थान किया। खर की दाहिनी ओर दूषण तथा बाईं ओर त्रिशिर और खर के सामने आगे चार युद्धकुशल महायोद्धा थे। सेना के चौदह हज़ार राक्षसों में से बारह राक्षस वीर इतने पराक्रमी थे कि उनसे देवता भी घबराते थे इन्द्र तो उनके समक्ष थर थर काँपता था। उनकी विकरालता से सारा संसार भयभीत था, उनके क्रोध से वीर भी भयभीत रहते थे वे कठिन से कठिन मांस निगल जाते थे और रक्तपान के लिए लालायित रहते थे। उनकी गर्जना लोगों को कंपित कर देती थी। विकराल मुख से युक्त वे अति भयंकर राक्षस तीनों लोकों को अपना ग्रास बनाने के लिए तत्पर रहते थे। ऐसे भयंकर रणकुशल बारह रणवेताल राक्षस सेना का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। उनके नाम इस प्रकार थे–

पहला दुर्गगामी, दूसरा पृथुबल, तीसरा यज्ञ भोक्ता, चौथा महाविष, पाँचवाँ दुर्जय। इसके अतिरिक्त [illegible]रिघ्न परुष, मेघमाली तथा काल कार्मुक नामक और चार राक्षस थे। इनके साथ अलौकिक महायोद्धा महाबाहु, महास्य और लोहितांबर थे। ये बारह राक्षस दुःसह विकट तथा जुझारू वीर थे, इन्हीं के बल [illegible] राक्षस खर, सुरासुरों की चिन्ता नहीं करता था। इन पर खर को पूरा भरोसा था। इन्हीं के बलबूते वह [illegible] को भी महत्व नहीं देता था। श्रीराम द्वारा मारे गए चौदह राक्षसों का बदला लेने के लिए ये बारह [illegible] अत्यन्त आवेश से आगे बढ़कर श्रीराम से युद्ध के लिए तत्पर थे, शरीर मानव का और मुख गर्दभ का होने के कारण उनका नाम खर पड़ा था और नाक पूरी तरह शुभ्र सफेद होने के कारण दूसरा दूषण नाम से जाना जाता था। अत्यन्त दुष्ट चार राक्षस दूषण के साथी थे वे युद्ध में कभी पीठ न दिखाने वाले [illegible] दूर तक देख सकने की क्षमता होने के कारण 'दूराकृति' कहलाने वाले थे। दूषण के प्राणप्रिय [illegible] इन राक्षसवीरों का नाम महाकाल, स्थूलनयन, प्रमाथी और त्रिदशार्दन था उनके सामर्थ्य [illegible] पर दूषण यम से भी नहीं डरता था। ये चारों अत्यन्त घातक रणकुशल राक्षस भी युद्ध के लिए [illegible] तीन पुत्र एक ही समय जन्म लें तथा तीनों को एक ही कार्य सौंपा जाय, ऐसी विशेषता [illegible] त्रिशिरा का पुत्र त्रिशिर खर तथा दूषण ने एकत्र हो श्रीराम से युद्ध के लिए प्रस्थान किया। [illegible] रथ तैयार किये। उनके साथ चौदह हज़ार सैनिक थे। उनमें किसी के द्वारा नियन्त्रित न हो [illegible] बारह वीर और अत्यन्त भयंकर तथा घातक चार राक्षस भी सम्मिलित थे। ऐसी भीषण सेना [illegible] ध्वनि एवं शंखनाद करती हुई आगे बढ़ी। जय-जयकार की गर्जना करते हुए चारण, भाट [illegible] उत्साहवर्धन कर रहे थे, खर अत्यन्त उत्साहित था, उसने अपना रथ आगे बढ़ाया।

[illegible] की सेना के प्रस्थान करते ही मार्ग में अनेक अपशगुन होने लगे। अच्छे सपाट मार्ग पर [illegible] खाकर रथ पलटने लगे। ध्वजस्तम्भ पर बैठकर उल्लू बोलने लगे। इन बुरे चिह्नों से खर [illegible] सेना चौंक गई और उस में उथल पुथल मच गई। उसी समय ध्वज स्तम्भ से उतरकर

उल्लू ने खर के माथे पर वार कर घाव कर दिया। उसके पश्चात् भूकम्प, धरती फटना, उल्कापात तथा बिजली गिरना प्रारम्भ हो गया। उसके कारण सभी राक्षस गण हाहाकार करने लगे। सभी चिंतामग्न हुए तभी खर ने सावधानीपूर्वक अपना रथ सम्हाला और सबको धीरज बँधाते हुए बोला - "ये उत्पात मेरे समक्ष नगण्य हैं। मात्र थोड़े अपशगुन होने के कारण केवल दो व्यक्तियों से डरकर युद्ध से पलायन कायरता है। हम सब जग जीतने वाले महावीर योद्धा हैं। हमारा शत्रु भी बहुत बड़ा नहीं है, मात्र दो राजकुमार हैं। उनके लिए हम इन अपशगुनों पर क्यों ध्यान दें।"- ऐसा कहते हुए खर ने शीघ्रता से अपना रथ आगे बढ़ाया, जिससे उत्साहित हो राक्षस-सेना भी आगे बढ़ी। खर शूर्पणखा से बोला- "मैं तुम्हें श्रीराम और लक्ष्मण का रक्तपान कराऊँगा" शूर्पणखा यह सुनते ही अत्यन्त आनन्दित हुई। युद्ध एवं रक्तप्राशन की इच्छा से शूर्पणखा सेना में सबसे आगे चलने लगी। पचवटी देखते ही वे जगत को जीतने वाले राक्षस वीर हाथ में शस्त्र सुसज्जित कर क्रोध से आगे बढ़े।

श्रीराम का राक्षस-सेना के साथ संघर्ष– श्रीराम के साथ रहने के लिए आये हुए ऋषिजन वनवासी तथा तपस्वी राक्षसों के भय से भागकर गुफाओं में जाकर छिप गए। श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- "हे सौमित्र ! तुम सावधान होकर सीता के पास रुको। मैं राक्षसों का संहार करूँगा। अपने बाणों से उनका छेदन करूँगा। मेरे शस्त्र के भय से भागने वाले राक्षसों पर प्रहार कर उन्हें मारूँगा और युद्ध में सतर्कतापूर्वक उन्हें परास्त करूँगा। वायु अपने अनुकूल एवं राक्षसों के लिए प्रतिकूल है। उनके समक्ष जाकर सियार हमें विजय मिलने की सूचना चिल्ला चिल्लाकर दे रहे हैं। इतना कहकर श्रीराम ने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर आगे बढ़कर बाण सुसज्जित किया। जिस प्रकार हाथियों के समुदाय को तितर-बितर करने के लिए अकस्मात् सिंह उठ खड़ा होता है। उसी प्रकार राक्षस सेना का विध्वंस करने के लिए अकेले रघुनंदन आगे बढ़ रहे थे. जुगनुओं का नाश करने के लिए जिस प्रकार आकाश में सूर्य उदित होता है उसी प्रकार श्रीराम राक्षसों का अन्त करने के लिए प्रवृत्त हुए। जिस प्रकार सूर्योदय के पश्चात् जुगनू अदृश्य हो जाते हैं, चन्द्र एवं नक्षत्र अस्त हो जाते हैं, उसी प्रकार श्रीराम द्वारा राक्षसों का निर्दलन हो रहा था। अनेक राक्षस युद्ध भूमि में ही नष्ट हो रहे थे।

श्रीराम को युद्ध करते हुए देखने के लिए सीता उत्सुक हैं, यह लक्ष्मण ने पहचाना। सीता की यह इच्छा पूर्ण करने के लिए श्रीराम की शय्या को ऊपर उठा दिया। वहाँ से सीता रणभूमि का दृश्य देख सकती थीं। एक कथा यह भी है कि 'सीता और लक्ष्मण को गुफा में भेजकर राम अकेले ही राक्षसों से युद्ध के लिए रुके' परन्तु इस कथा के विषय में एक प्रतिवाद यह भी है कि राम राक्षसों से भयभीत नहीं थे तो वह सीता को क्यों छिपायेंगे। श्रीराम द्वारा बाण चलाते ही राक्षस-सेना में खलबली मच जाती थी और राक्षस अपनी प्राण-रक्षा के लिए एक दूसरे के पीछे छिपने लगते थे, श्रीराम को प्रत्यक्ष देखकर राक्षस भय से काँप उठे। कुछ राक्षसों का मूत्र-प्रवाह होने लगा। शस्त्र हाथ से गिर पड़े। जिस प्रकार बाघ को देखते ही भयभीत होकर भेड़ें एकत्र हो जाती हैं, उसी प्रकार महापराक्रमी श्रीराम को देखते ही समस्त राक्षस एकत्र हो गए अपनी भयंकर एवं बलवान् राक्षस-सेना को इस प्रकार निष्क्रिय हुआ देखकर खर अत्यन्त क्रोधित हुआ। वह दूषण से बोला "अरे हमारी सेना पर्वत के समान निश्चल क्यों दिख रही है ? आगे कोई भी बाधा न होते हुए भी यह सेना एक स्थान पर एकत्र हो, रुक क्यों गई है ? कोई हिंसक पशु दिखाई देते ही जिस प्रकार भेड़ें एकत्र हो जाती हैं उसी प्रकार ये सेना आगे न बढ़कर स्थिर क्यों हो गई है ? खर के वचन सुनकर दूषण ने रथ को आगे बढ़ाया परन्तु आगे सेना की भीड़ होने

के कारण इसे आगे बढ़ने के लिए मार्ग ही नहीं मिल पा रहा था। रथ के वीर गर्जना कर रहे थे परन्तु आगे नहीं बढ़ रहे थे। दूषण सेना के आगे की ओर आया तब उसे श्रीराम दिखाई दिए।

राक्षसों को श्रीराम के स्वरूप का दर्शन– यद्यपि श्रीराम वनवासी-वेश में थे परन्तु राक्षसों को उनका अलग ही स्वरूप दिखाई पड़ा मुकुट, कुण्डल, रत्नमेखला एवं पीला तिलक धरण किये, आजानुबाहु, श्यामलवर्ण, गले में कमलों की माला, शरीर पर चन्दन का लेप और विद्युत सदृश सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए धनुषबाण से सुसज्जित जगत् श्रेष्ठ श्रीराम रणभूमि में खड़े थे, जिनके चरण रक्तवर्णी एवं अत्यन्त सुकुमार थे। रणदुंदुभी बज रही थी, जिसकी ध्वनि से सुर नर भी काँप जाते थे. ऐसे श्रीराम के समक्ष कौन टिक सकता था। उनको देखकर दूषण थरथर काँपने लगा। 'यह निश्चित ही मेरे प्राण ले लेगा'– इस भय से भयभीत हो वह खर के पास भाग गया। श्रीराम सेना के अग्रभाग के समक्ष आकर खड़े हो गए। उस समय वे क्रोधित दिखाई दे रहे थे। राक्षसों की सेना थर थर काँप रही थी। राम के समक्ष, उनका पुरुषार्थ टिक नहीं पा रहा था। श्रीराम के बाण प्रलय-अग्नि की ज्वाला के सदृश थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों मात्र दृष्टि-क्षेप से ही वे सम्पूर्ण सेना को भस्म कर डालेंगे। श्रीराम जैसा पराक्रमी वीर मात्र दृष्टि से ही प्राण हर लेगा, ऐसा अनुभव होते हुए उनके आगे कौन टिक सकता था। श्रीराम के दर्शन मात्र से अपने प्राणों को बचाने के लिए भयभीत हो स्वयं प्राण भी पलायन कर जायें तो अन्य कोई उनसे कैसे टक्कर ले सकता है। दूषण द्वारा श्रीराम के विषय में सुनकर उनके दर्शन के लिए खर ने अपना रथ आगे बढ़ाया।

अध्याय १०

[श्रीराम द्वारा दूषण का वध]

खर युद्ध के लिए आगे आया। उसने देखा कि श्रीरघुवीर सामने खड़े हैं। उनको देखते ही राक्षसों में खलबली मच गई। उनके हाथ से शस्त्र छूटकर गिर पड़े। क्रूर राक्षसों से मिलकर बने हुए उस सेना समूह ने असंख्य अस्त्र बरसाये। गदा, मुद्गर, तोमर इत्यादि फेंककर श्रीराम पर प्रहार किया। उन शस्त्रों द्वारा श्रीराम के ढँक जाने के कारण राक्षस अनेक प्रकार की अटकलें लगाने लगे। किसी ने कहा– 'श्रीराम अकेला था, चल बसा, उसका मनोबल टूट गया। कोई कह रहा था कि शस्त्र-प्रहार से उसकी मृत्यु हो गई, वह टुकड़े टुकड़े होकर पड़ा होगा। कुछ राक्षस सोचने लगे कि इधर महावीरों के शस्त्र-प्रहार के कारण उसे पलायन के लिए भी मार्ग न मिल सकने के कारण वह वहीं धराशायी होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ। शूर्पणखा यहाँ बड़ी आशा से उसका रक्त पीने के लिए आयी थी। परन्तु श्रीराम का रक्त धरती द्वारा सोखे जाने के कारण अब उसे निराशा ही होगी। राम का सम्पूर्ण पराभव होने पर [illegible] होने के कारण राक्षस निरर्थक ही अब शस्त्र प्रहार कर रहे हैं- ऐसा कहा जाने लगा। जिस प्रकार वर्षा की धाराओं से पर्वत ढँक जाता है, उसी प्रकार राक्षसों की शस्त्र वर्षा से श्रीराम ढँक गए [illegible] चित्पर्वत के समान, श्रीराम को महामेघ रूपी राक्षस की शस्त्र धाराओं ने ढँक लिया है, ऐसा अनुमान हो रहा था। परन्तु वे मूर्ख राक्षस स्वयं को यशस्वी समझ आनन्दित हो रहे थे। जिस प्रकार हृदय में सूक्ष्म रूप से आत्मा का निवास होता है अथवा बादलों में सूर्य छिपा रहता है, उसी प्रकार श्रीराम उस

शस्त्र-संभार से आच्छादित थे परन्तु वे धनुष बाण से सुसज्ज, सतर्क-मुद्रा में थे। जिस प्रकार मेघाच्छादित बादलों को आँधी तूफान छिन्न भिन्न कर देता है, उसी प्रकार श्रीराम उन शस्त्रों के आच्छादन को दूर कर सूर्य के समान प्रकट हुए।

श्रीराम द्वारा राक्षसों का संहार– राक्षसों के बल को आँक कर श्रीराम ने शरजाल नामक बाण रूपी जाल राक्षसों की ओर छोड़ा जिसने उनके शस्त्रों का छेदन करते हुए राक्षसों को उनके स्थान पर ही गाड़ दिया। इस प्रकार एक के पश्चात् एक-एक कर लाखों की संख्या में बाण निकले, जिन्होंने शत्रु के शस्त्रों को नष्ट कर दिया और राक्षस भयाकुल हो गए। राक्षसों के हृदय, मस्तक एवं दोनों भुजाओं को बाणों से छेद दिया। कितने ही राक्षसों के देह क्षत विक्षत हो गए। राम उन राक्षसों के लिए घातक सिद्ध हुए। जिसे राक्षस मृत समझ रहे थे, उसी वीरों के वीर श्रीराम ने राक्षसों का संहार किया। राक्षसों का अन्त हुआ। राक्षस जब वार करने के लिए तत्पर होते, श्रीराम उनके शस्त्र तोड़कर उनके हाथ ही तोड़ देते थे। जो अपनी वीरता का बखान करते हुए आगे बढ़ते श्रीराम द्वारा मारे जाते। अगर वीर पीछे हटते तो बाण उनके मस्तक पर लगते। राम के समक्ष आते ही उनके प्राण हर लिये जाते थे। अगर कोई राक्षस वीर गर्जना करते तो राम उनके दाँतों सहित जीभ काट डालते थे। इस प्रकार राम के बाणों ने त्राहि-त्राहि मचाई थी। वह राम विख्यात वीर थे। कंकपत्र, बर्हपत्र, हंसपत्र, सुवर्णपत्र, इत्यादि बाणों द्वारा वीरों का नाश करते हुए रणभूमि पर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों मोर नाच रहे हैं। चारों ओर बाणों की शृंखला पड़ी हुई सी प्रतीत हो रही थी। धारदार बाणों ने सम्पूर्ण राक्षस सेना को धराशायी कर दिया। महावीर राक्षस भी भयभीत हो गए थे। श्रीराम के बाण राक्षसों को रक्त से स्नान कराते हुए उन्हें मोक्ष प्रदान कर रहे थे। समस्त पापी-जन उनके कारण पवित्र हुए। रणरंगधीर श्रीराम ने राक्षस सेना को मार गिराया, चारों ओर हाहाकार मच गया; यह देखकर खर अत्यन्त क्रोधित हुआ।

श्रीराम का पराक्रम और पुरुषार्थ देखकर खर ने अपने सारथी से रणभूमि में जहाँ श्रीराम खड़े थे, वहाँ अपना रथ ले चलने को कहा। खर का क्रोध बढ़ता जा रहा था। उसने शीघ्रता से धनुष पर बाण चढ़ाया और यह कहते हुए कि "अब श्रीराम से मैं युद्ध करूँगा, अब मेरा पराक्रम देखना", वह आगे बढ़ा। सारथी द्वारा घोड़े को चाबुक की फटकार लगाते ही रथ तेजी से आगे बढ़ा। सामने ही श्रीराम खड़े दिखाई दिए। आजानुबाहु धनुर्धारी श्रीराम राक्षस वीरों पर वार कर ही रहे थे कि उन्होंने रथ पर आरूढ़ खर को देखा। श्रीराम ने धनुष की टंकार की। उस टंकार की ध्वनि गिरि-कंदराओं तथा आकाश में गुंजायमान हुई। राक्षस भयभीत हुए। भय से कुछ विक्षिप्त हो गए, कुछ मूर्च्छित हो कर गिर पड़े। श्रीराम का ऐसा पराक्रम देखकर खर को अनुभव हुआ कि यह कार्य अत्यन्त कठिन है। उस खर की सेना के बारह वीर राक्षस उसकी सहायता के लिए दौड़े। वे राक्षस अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध थे, कृतांत काल उनसे डरता था। उन्होंने श्रीराम को ध्यान से देखा और अपने स्वामी की सहायतार्थ वे योद्धा आगे आये।

खड्ग और ढाल लेकर सर्व प्रथम उग्रनामा आगे आया। स्वामी के लिए प्राण न्योछावर करने के लिए युद्ध प्रवीण उन वीरों में यज्ञ का विध्वंस करने वाला पृथुलव, महाविष तथा दुर्जय धनुषबाण सुसज्ज कर युद्ध के लिए श्रीराम के सामने आये। उनके साथ ही परवीरघ्न पुरुषबली, कालकार्मुक, मेघमाली नामक चार राक्षस शूल त्रिशूल लेकर आगे आये। महाबाहु, लोहिताम्बर महाआस्य नामक राक्षस योद्धा गदा मुद्गर लेकर रण में रघुवीर से युद्ध करने आये। श्रीराम का राजसरूप देखकर उन्होंने अनेक प्रकार के शस्त्रों से वार किया। ये बारह राक्षस अत्यन्त कपटी होने के कारण खर को प्रिय थे। उनके

कपट की कथाएँ विचित्र हैं। वे गुप्त रूप से घात करने वाले थे, आकाश-पाती थे। उनमें से एक इतना विघातक था, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। एक क्षण मात्र में घात करने वाला था, पंचप्राणों का हरण करने वाला था। एक नेत्रों के मार्ग से अन्दर प्रवेश कर शूल से हृदय को भेदने वाला था, तो एक कानों से प्रवेश कर शस्त्रों से वर्मस्थल पर आघात करने वाला था। एक हाथ में तलवार लेकर मन की गति से अन्दर प्रवेश कर हृदय पर शस्त्र से वार करता था और अनेक वीरों को इस तरह से मारता था। अन्य चार कपटी राक्षस शत्रु को चारों तरफ से घेरकर गुप्त शस्त्रों से परेशान कर मारते थे। कपट युद्ध में प्रवीण वे बारह राक्षस श्रीराम को मारने के लिए तत्पर हुए। उनके साथ अन्य राक्षस सैनिक भी 'पकड़ो मारो' की गर्जना करते हुए श्रीराम के सामने आये। श्रीराम कुशल धनुर्धारी थे। अतः उन्होंने उन बारह राक्षसों को मारने के लिए दारुण दमन शक्ति बाण प्रयोग करने का निश्चय किया तथा उसके अनुरूप शक्ति से अभिमन्त्रित कर बाण को राक्षसों की तरफ छोड़ा। उस शक्ति से सम्मोहित होकर कपटी राक्षस प्रभाव-रहित हो गए। उनके नाक, मुँह, कान, आँखें, व हृदय बाणों से आच्छादित हो गए और उन बारह राक्षसों का अपने स्थान से हिलना तक असम्भव हो गया। श्रीराम के बाणों की वर्षा के [illegible] उन्हें मार्ग नहीं दिखाई पड़ रहा था। शस्त्रों सहित ही वे राक्षस, प्राण विहीन हो गए, कुछ अपनी [illegible] सहित छाती के बल गिर पड़े। कमर में लगी कटार से किसी की कमर कट गई, मुकुट सहित [illegible] धड़ से अलग हो गया, और शस्त्र धारण किये हुए हाथ टूट गए, तब श्रीराम ने पूर्णरूप से उन्हें [illegible] पुनर्जन्म के कारण को समाप्त करते हुए उन बारह राक्षसों को मुक्त किया।

छल-कपट द्वारा श्रीराम पर विजय प्राप्त करने की इच्छा करने वाले स्वयं भी कपट से मारे गए। [illegible] जैसे महान् एवं प्रतापी योद्धा को वे अपने वश में न कर सके। बारह महावीरों का संहार करने के पश्चात् श्रीराम ने राक्षसों की सेना में प्रवेश किया। अपने चारों तरफ बाणों का घेरा बनाकर उन्होंने अनेक राक्षसों का संहार किया। अनेक राक्षसों को बाणों के घेरे में लेकर मारा, कोई अपने स्थान पर ही बाणों के प्रहार से मारा गया, किसी को पैर कटने से वह धराशायी हो गया और किसी का मस्तक कट गया। चारों ओर रक्त का छिड़काव दिखाई दे रहा था। रक्त-रंजित बाण पलाश के पुष्प सदृश दिखाई दे रहे थे। अनेक वीर कराह रहे थे। श्रीराम के बाणों के प्रखर वार से छोटे बड़े अनेक राक्षस धराशायी हो [illegible] रहे थे। श्रीराम के बाणों का वार न झेल पाने के कारण अनेक राक्षसों ने भागना प्रारम्भ किया। तब [illegible] दूषण स्वयं आगे बढ़ा। उसने राक्षसों को रोकते हुए कहा– "रणभूमि से कैसे भाग रहे हैं। [illegible] आश्वासन देकर सभी सैनिक एकत्र किये। सेना सुसज्जित कर वह बोला– "आप सब मेरे [illegible] मैं राम का वध करता हूँ" ऐसा कहते हुए वह आगे दौड़ा। दूषण के आश्वासन से आश्वस्त हो [illegible] हुई राक्षस सेना वापस लौटी। शाल वृक्ष, तालवृक्ष और शिला हाथ में लेकर राक्षस-योद्धा श्रीराम का [illegible] करने के लिए निकले। श्रीराम और दूषण का युद्ध प्रारम्भ हुआ। उस समय राक्षसों ने द्वेषपूर्वक [illegible] पर पत्थर और वृक्ष डाले परन्तु रणकुशल श्रीरामचन्द्र ने तुरन्त कुशलतापूर्वक बाण चलाकर वे [illegible] और वृक्ष तोड़ दिए। दूषण हतबल हो गया। वह जब तक एक बाण का निवारण करता, उतने में [illegible] के अनेक बाण आ जाते थे। दूषण का धनुष एवं तूणीर टूट गया और वह मूर्च्छित हो कर [illegible]। श्रीराम के तूणीर से बाण निकालकर उसे धनुष द्वारा चलाने की गति इतनी तीव्र थी कि उसे [illegible] अत्यन्त कठिन कार्य था। अतः राक्षस लगातार मरते जा रहे थे। दूषण का बल व्यर्थ सिद्ध हुआ, एक भी वार उसे सहन नहीं हो रहा था। वह अत्यन्त लज्जित हुआ; साथ ही उसे क्रोध भी आया और वह [illegible] उठकर पुनः युद्ध करने के लिए निकला।

श्रीराम दूषण संग्राम; दूषण वध– श्रीराम द्वारा राक्षस सेना की दुर्दशा हुई देखकर दूषण अत्यन्त क्रोधित हुआ उसने रथ में बैठकर राम पर सहस्त्रों बाण छोड़े। श्रीराम ने वे बाण क्षणार्द्ध में तोड़ डाले। उन्होंने दूषण का धनुष भी तोड़ दिया। इस पर दूषण का क्रोध और बढ़ गया। उसने शक्ति और गदा हाथ में ले ली। श्रीराम ने प्रतिउत्तर स्वरूप दस भीषण बाण चलाये. उनमें से चार बाणों द्वारा दूषण के रथ के चार घोड़े मरे गए, तीन बाणों ने रथ के दोनों पहिये और धुरी तोड़ डाली। एक बाण द्वारा रथ की ध्वजा टूटकर नीचे गिर पड़ी। अन्त में एक बाण ने रथ और एक ने सारथी का नाश कर दिया। श्रीराम के पराक्रम द्वारा दूषण रथविहीन हो गया। दूषण पैदल ही गदा लेकर श्रीराम की ओर दौड़ा। "राक्षसों का पराक्रम ज्ञात होते हुए भी अपने यश पर आनन्दित हो रहे हो ? मेरी गदा को सहन करो। तभी मैं तुम्हें योद्धा मानूँगा। मेरे साथ युद्ध करो, मैं रण-भूमि में ही तुम्हारे प्राण हर लूँगा और तुम्हारा व्यर्थ का अभिमान चूर-चूर कर दूँगा।" यह कहते हुए दूषण श्रीराम की ओर प्रहार करने के लिए बढ़ा.

श्रीराम बोले– "अपना नाम दूषण बताते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती ? दूषण तो खर का आभूषण होता है दोनों के मुख निन्दनीय हैं। धर्म, कर्म, नाम व काम भी तुम्हारे दूषण नाम से सम्बद्ध हैं। दूषण का बल भी दूषण ही है, तुम्हारे पास पराक्रम कहाँ से आया ?" श्रीराम के ये वचन सुनकर दूषण बोला "कितना व्यर्थ प्रलाप करते हो ? और यह कहकर जिस प्रकार पतंगा दिये के पास झपट कर जाता है, उसी प्रकार दूषण हाथ में गदा लेकर श्रीराम की ओर दौड़ा। उसके द्वारा गदा का प्रहार करते ही राम ने सुवर्णपखी बाण से बेधकर गदा चूर चूर कर डाली। इस पर अत्यन्त क्रोध से दाँत पीसते हुए रघुवीर को मारने के लिए आवेश से भरकर, थर-थर काँपते हुए उसने शूल फेंका। तीन धाराओं का बाण चलाकर श्रीराम ने वह शूल आकाश में उड़ा दिया। शूल के बारह टुकड़े होकर राक्षसों पर गिर पड़े। इस प्रकार एक के पश्चात् एक, अपने शस्त्रों को नष्ट होते हुए देखकर दूषण क्रोध से भर गया। उसने वज्रप्राय नामक परिघ हाथ में उठाया। युद्ध में संहारक के रूप में यह शस्त्र अत्यन्त भयकर था। वीर भद्र का उसे वरदान था कि शस्त्र चलते ही वह निश्चित रूप से प्राण हर लेगा उस शस्त्र को रोकना असम्भव था। वीरों के रक्त से रंजित उस शस्त्र को हाथ में लेकर दूषण राम का वध करने के लिए दौड़ा। उस अनिवार शस्त्र को देखकर स्वर्ग में देवता हाहाकार करने लगे। सबके मन में भयकर विचार उठने लगा कि श्रीराम कैसे बच सकेंगे श्रेष्ठ धनुर्धर श्रीराम तनिक भी विचलित नहीं थे। दूषण द्वारा परिघ शस्त्र के चलाते ही श्रीराम ने योग बाणों से उसके बाहु बेध दिए। बाहुओं को बेधने के बाद वे बाण दूषण के हृदय में घुस गए और उसे रणभूमि में गिरा दिया। दूषण के ज़मीन पर गिरते ही उस बाण ने राम के तरकश में जाकर आश्रय लिया। वीर भद्र नामक शस्त्र देवता राम पर प्रसन्न था अतः यह अमोघ अस्त्र श्रीराम को प्राप्त होकर शत्रु का वध करने में सहायक हुआ।

श्रीराम द्वारा अन्य राक्षस वीरों का वध– युद्ध भूमि में दूषण के गिरते ही राक्षस गगन भेदी हाहाकार करने लगे। सभी भय से कंपित हो उठे। श्रीराम रणरुद्र के आवेश में खड़े थे। उनसे युद्ध करने के लिए दूषण के तीन हितैषी राक्षस आगे आये। महाकपाल, स्थूलाक्ष और प्रमाथी नामक तीनों राक्षस, राम को युद्ध का आह्वान कर, कर्कश स्वर में गर्जना करते हुए राम के समक्ष आये। वे तीनों राक्षस अत्यन्त विकट समझे जाते थे। वे शूल, पट्टे, परशु इत्यादि विभिन्न शस्त्र लेकर राम की तरफ आये और यह कहते हुए कि "तुमने जैसे हमारे स्वामी को युद्ध भूमि में गिराया, वैसे ही इन शस्त्रों द्वारा तुम्हें भी धराशायी कर देंगे," श्रीराम के ऊपर शस्त्रों से वार किया। तीनों मिलकर श्रीराम से युद्ध करने लगे।

एक आगे से एक पीछे से तो तीसरा आकाश से शस्त्र-वर्षा करने लगा। श्रीराम पीछे से होने वाले आघातों को देखने का सामर्थ्य रखते हैं, किसी को इसका ज्ञान नहीं था। राम ने विकट बाण चलाते हुए प्रमाथी को रणभूमि में ला खड़ा किया। महाकपाल द्वारा शूल चलाते ही श्रीराम ने बाणों से उसे छलनी करते हुए महाकपाल का कंठ भी छेद दिया। आकाश से गर्जना करने वाले स्थूलाक्ष का वक्ष छेद कर बाण से उसे रणभूमि में गिराते हुए उसका भी नाश किया। जिस प्रकार चक्र, शनि, भौम केतु तथा सूर्योदय का अस्त होता है, उसी प्रकार श्रीराम, राक्षसों के अन्त के रूप में रणांगण में खड़े थे। कोई गृहस्थ जिस प्रकार किसी अतिथि का सम्मानपूर्वक आवभगत करता है, उसी प्रकार श्रीराम ने तीनों को शयासन देकर सुखी किया। स्वर्णपत्र शर संधान कर श्रीराम ने प्रमाथी का मथन किया। दस बाणों से वे महावीर राक्षस त्रस्त हो गए। उन बाणों ने अन्य कई राक्षसों को भगा दिया। श्रीराम ने एक-एक बाण से अनेक राक्षसों को मारा, उनको राम ने कुंडलसहित सिर छेद कर आयुधों सहित हाथ और कवच सहित शरीर छेद कर मृत्यु प्रदान की। श्रीराम ने राक्षसों के रक्त की धाराएँ प्रवाहित कीं। उनके बाणों से राक्षस वीर भयभीत हुए। कुछ भाग खड़े हुए तो कुछ भय से विक्षिप्त हो गए और कुछ अपने ही स्थान पर कुछ न कर सकने की स्थिति में तड़पते रहे।

श्रीराम रथ के बिना पैदल ही युद्ध कर रहे थे। उन्होंने अत्यन्त भयंकर चौदह सहस्र राक्षसों का संहार किया। उन राक्षसों में दूषण अत्यन्त बलवान था, जिससे रावण भी भयभीत रहता था। श्रीराम ने उसके पास विद्यमान अत्यन्त अकाट्य और महत्वपूर्ण परिघ को तोड़कर दूषण का वध कर दिया। राक्षसों की असीमित हानि देखकर खर अत्यन्त क्रोधित हुआ। त्रिशिरा भी सन्तप्त हो उठा। राम के समीप जाकर वह बोला– "राक्षसों का घात कर तुम कहाँ और कैसे बच पाओगे ? राक्षसों का, उनके मुख्य वीरों का रण में नाश करने का अगर तुम्हें गर्व हो गया तो मैं त्रिशिरा तुम्हारा सारा गर्व दूर कर दूँगा। श्रीराम व त्रिशिरा एक दूसरे के समक्ष आये और क्रोधपूर्ण दृष्टि से एक दूसरे को देखा। दोनों ने अपने धनुष बाण उठा लिए और उन महावीरों का युद्ध प्रारम्भ हो गया। उस समय त्रिशिरा को खर के वचन स्मरण हो आए।

अध्याय ११

[त्रिशिरा एवं खर नामक राक्षसों का वध]

श्रीराम द्वारा राक्षस सेना का वध किये जाने से खर अत्यन्त क्रोधित था। उसे पूछकर ही त्रिशिरा, राम पर चढ़ाई करने आया था, उस समय खर बोला, "त्रिशिरा ! राम ने दूषण को रण में मारा अतः तुम बिलकुल भी भयभीत न हो। मैं तुम्हारे साथ हूँ। मनुष्य राक्षसों का खाद्य-पदार्थ है। उनमें कैसा भय ? कटहल के काँटे देखकर उसे खाने वाला भयभीत नहीं होता। कटहल के काँटे काटकर उन्हें निकालकर अन्दर के मधुर कोये सरलता से खाये जाते हैं। श्रीराम के साथ युद्ध करना उसी के सदृश है। श्रीराम अन्य राक्षसों के लिए कितना भी कठिन सिद्ध हुआ हो फिर भी अपने खाने के लिए वह खाद्य ही है। अतः रण में उसका वध करो।" खर के वचन सुनकर, जिस प्रकार एक गर्दभ के चिल्लाने के साथ ही दूसरा गर्दभ चिल्लाकर उसका साथ देता है, उसी प्रकार त्रिशिरा भी अपने तीनों मुखों से

गर्जना करते हुए, रथ में बैठकर अत्यन्त वेग से श्रीराम पर आक्रमण करने के लिए दौड़ा। उसने अपने धनुष से असंख्य बाणों की वर्षा की।

त्रिशिरा व श्रीराम का संग्राम– त्रिशिरा खर से बोला– "अरे, उस राम की रण में योग्यता नगण्य है। अभी अपने बाणों से उसे बेध डालता हूँ। मेरे शस्त्रों की वर्षा तुम देखते जाओ।" फिर इसने राम से कहा– "अरे, रघुनाथ अनेक राक्षसों का वध कर अब तुम कायरों की भाँति पलायन मत करो। मैं तुम्हारा वध करूँगा। जिस प्रकार बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है उसी प्रकार तुमने राक्षसों के साथ किया। अब तुम्हें निगलने के लिए मैं आया हूँ तो मैं तुम्हें पूरा निगल जाता हूँ।" इस पर प्रत्युत्तर स्वरूप श्रीराम बोले– "अरे, गधे और घोड़े से तुम्हारा जन्म हुआ। तुम खर के साथी, तुम भी बोझ ढोने वाले खच्चर ही हो। तुम तीन सिरों का बोझ वहन करते हो। तीन मुखों से बे लगाम बोलते हो। तुम्हारे पास विचार करने वाला एक भी मुख नहीं है। विजातीय तीन शिरों से युक्त तुम एक राक्षस हो तीन मुखों से एक मुखी युद्ध सम्भव ही नहीं है। उस खर के पास शीघ्र ही तुम भी पलायन कर जाओगे तथा व्यर्थ में ही भौंकते रहोगे।" श्रीराम का प्रत्युत्तर सुनकर त्रिशिरा ने असंख्य बाण चलाकर रघुनन्दन को आच्छादित कर डाला। आकाश में बाण ही बाण दिखाई देने लगे। श्रीराम को बाणों द्वारा ढँका हुआ देखकर राक्षसों की बची हुई सेना फिर गर्जना करती हुई वापस लौटी और 'राम मारा गया' ऐसा कहने लगी सैनिक राक्षस त्रिशिरा से बोले "त्रिशिरा, तुम वास्तव में महान योद्धा हो। तुमने रण में राम को परास्त कर दिया।"

श्रीराम राक्षसों की गर्जना सुनकर अत्यन्त क्रोधित हुए। उन्होंने शत्रु के बाणों को अपने बाणों से छिन्न भिन्न कर डाला। बाणों से बाण टकराने लगे। वे बाण किसी के मस्तक पर गिरने लगे। बाणों के घर्षण से उड़ी चिंगारियों से आकाश आच्छादित हो गया। कड़कड़ाहट की ध्वनि चारों ओर व्याप्त हो गई। इस प्रकार श्रीराम और राक्षसों के बाणों के संघर्ष से अग्नि निर्मित हुई। दो महायोद्धाओं का द्वन्द्व प्रारम्भ हुआ। गरुड़ अपने नाखूनों से जिस प्रकार सर्प को फाड़ देता है उसी प्रकार राम के बाणों ने त्रिशिरा के बाणों को तोड़ दिया। वे टूटे हुए बाण भूमि पर सर्प के सदृश बिखर गए। जिस प्रकार वायु बादलों को छिन्न-भिन्न कर देती है उसी प्रकार श्रीराम ने राक्षसों के बाणों के जाल को छिन्न-भिन्न कर दिया इस पर त्रिशिरा अत्यन्त क्रोधित हुआ उसने राम पर तीन बाण छोड़े। वे राम के मस्तक से जा टकराये परन्तु उन बाणों से किसी प्रकार की चोट नहीं आई। वे बोले– "तीन बाणों से मुझे चन्दन, अक्षत और पुष्प समर्पित किये, अब मैं बाणों के जाल से तुम्हारी पूजा करता हूँ।" महाबली श्रीराम आवेशपूर्ण स्वर से बोले "तुम्हारे तीन बाण मैंने सहन किये, अब मेरे भयकर बाण तुम सहन करो।" यह कहते हुए श्रीराम ने चौदह बाण छोड़े। चौदह विद्याओं की गति के सदृश उन बाणों की गति थी। उन बाणों के निवारण का कोई उपाय नहीं था। त्रिशिरा के हाथों में स्थित धनुष टूट गया। चार बाणों ने चार घोड़े और एक बाण ने सारथी की जीवन लीला समाप्त कर दी। एक बाण से ध्वज स्तम्भ टूट गया और दूसरे बाण से तो रथ ही टूट गया। त्रिशिरा रथ से जमीन पर आ गया। वह पैदल ही राम पर चढ़ाई करने गया परन्तु राम के समक्ष उसका सामर्थ्य टिक नहीं पा रहा था। अन्तिम प्रयास के रूप में कार्तिक स्वामी द्वारा वर में प्राप्त शक्ति को त्रिशिरा ने हाथों में लेकर राम की ओर प्रहार किया।

त्रिशिरा के हाथ में वह शक्ति देखकर देवगण काँप उठे। ऋषि भागने लगे सबको चिंता होने लगी कि श्रीराम कैसे बच पायेंगे। उस शक्ति के प्रहार के भय से इन्द्र, रुद्रगण, यम, वरुण- सभी भय

से काँपने लगे। वह शक्ति श्रीराम किस प्रकार सहन कर पायेंगे, इस चिंता से सुरासुर, यक्ष, किन्नर भयभीत हुए। तीनों लोकों में अत्यन्त प्रभावशाली समझी जाने वाली यह शक्ति, त्रिशिरा ने क्रोधावेश में श्रीराम का नाश करने के लिए छोड़ी। श्रीराम सर्व शक्तियों में श्रेष्ठ होने के कारण उन पर उस शक्ति का कोई प्रभाव न पड़ सका। इसके विपरीत उस शक्ति ने श्रीराम की वंदना करते हुए उनके चरण स्पर्श किये और उनकी शरण ली। वह शस्त्र-देवी श्रीराम से बोली- "आपके दर्शनों से मैं बंधन मुक्त हुई। उस दुष्ट त्रिशिरा से मेरा सम्बन्ध समाप्त हुआ।" यह कहते हुए वह शक्ति राक्षसों का संहार करने के लिए श्रीराम के तूणीर में जा बैठी। यह विचित्र घटना देखकर चिन्ताग्रस्त होकर त्रिशिरा बोला– "अरे, जो मेरी आत्मशक्ति थी, वह श्रीराम के वशीभूत हो गई। अब मेरी गति अवरुद्ध हो गई। श्रीराम निश्चित रूप से रण में राक्षसों को समाप्त कर देंगे।" अन्त में रण में ही मरने मारने का विचार कर त्रिशिरा एक चमकता हुआ खड्ग हाथ में लेकर श्रीराम का आह्वान करने लगा।

श्रीराम ने तीन धारों का बाण चलाकर उस खड्ग को धार-विहीन कर दिया और त्रिशिरा को पंख सदृश बाण से आकाश में पहुँचा दिया। वह बाण अत्यन्त प्रभावशाली था, जिसने त्रिशिरा को रविचन्द्र मंडल, ऋषिमंडल और ध्रुव मंडल में अत्यन्त तीव्र गति से घुमाया, जिससे त्रिशिरा चेतना विहीन हो गया। उसके नाक एवं मुख से रक्त बहने लगा। उस छोटे से बाण ने त्रिशिरा को इस प्रकार दण्डित किया कि शरीर पर कहीं घाव न होने के कारण चेतनावस्था में आने पर वह समझ नहीं पा रहा था कि उसे क्या हुआ है। राम से भय क्यों करूँ। यह सोचते हुए वह शस्त्रों से सुसज्जित होकर अत्यन्त क्रोधपूर्वक श्रीराम का वध करने के लिए तत्पर हुआ। जिस प्रकार पतंगा दिये के पास से पीछे नहीं हटता है, उसी प्रकार त्रिशिरा भी पीछे न हटते हुए आवेशपूर्वक राम को निगलने के लिए आगे बढ़ा। श्रीराम को पुकारते हुए अपने तीनों मुख खोलकर श्रीराम के सम्मुख जा खड़ा हुआ। उस समय वह जिस प्रकार प्रलय के अवसर पर यम दिखाई देता है, उसी प्रकार प्रतीत हो रहा था। श्रीराम को निगलने के लिए उसके खुले हुए मुख काम, क्रोध, एवं लोभ की गुफाओं के सदृश प्रतीत हो रहे थे। निर्गुण को निगलने के लिए जिस प्रकार त्रिगुण लालायित रहते हैं, उसी प्रकार श्रीराम को निगलने के लिए उसके तीनों मुख फैले हुए थे त्रिशिरा की स्थिति देखकर रघुवीर के मुख पर हास्य उमड़ पड़ा। उन्होंने धनुष पर तीन बाण सज्जित कर निर्धारपूर्वक त्रिशिरा के मस्तक पर वार किया। त्रिशिरा उन बाणों की कठोरता को न समझकर हँसते हुए बोला "वाह । ये तो पुष्पाक्षतों के समान हैं, राम के बाणों में तो तीव्रता ही नहीं है। ये तो फूलों के सदृश लगे हुए हैं।" फिर जब उसने उन बाणों को निकालने का प्रयत्न किया तब उसे उनकी कठिनता का अनुभव हुआ। मस्तक में लगे उन बाणों को निकालने में उसका पराक्रम और सामर्थ्य अपर्याप्त लगने लगा। जैसे-जैसे वह उन बाणों को निकालने का प्रयत्न करता, वैसे वैसे वे बाण उन घावों में घुसते चले जाते थे। श्रीराम के उन प्राण-हर्ता बाणों की कीर्ति ऐसी ही थी, उसका पुरुषार्थ समाप्त हो चला। वे बाण मस्तक में घुमकर ब्रह्मांड भेदने लगे। जिस प्रकार वज्राघात से पर्वत में भी उथल-पुथल हो जाती है, उसी प्रकार श्रीराम के बाणों ने त्रिशिरा को धराशायी कर दिया, त्रिशिरा के ज़मीन पर गिरते ही पाताल से भयंकर ध्वनि प्रस्फुटित हुई। राक्षस-दल भय से काँपने लगे। प्राणहर्ता श्रीराम के भय से राक्षस भागने लगे, श्रीराम के बाण राक्षसों को प्रलय के समान प्रतीत होने लगे। चौदह सहस्र राक्षसों की सेना में से राक्षसों की संख्या सौ से भी कम शेष रह गई। श्रीराम के बाणों के भय से शेष राक्षस भाग खड़े हुए। राक्षस-सेना का राम ने सर्वनाश कर दिया। श्रीराम की बाण-वर्षा के समक्ष

कौन टिक सकता था दसों दिशाओं में पलायन करते हुए राक्षस एक दूसरे से कह रहे थे कि हम सभी खर के पास चलें, वही हमारी रक्षा कर सकता है. राक्षस गणों को भयभीत होकर इधर उधर भागते देखकर खर ने उन्हें अभय-दान देते हुए रोका।

खर एवं श्रीराम का युद्ध– राक्षस खर सैनिकों को एकत्र कर स्वयं श्रीराम के सामने आया। श्रीराम को देखते ही खर भयभीत हो उठा। 'राम ने दूषण को मारा, त्रिशिरा का वध किया। अकेले श्रीराम ने बड़े-बड़े राक्षस वीर मार डाले। सेना को तहस-नहस कर दिया। निश्चित ही यह राम कोई श्रेष्ठ धनुर्धर है निर्भीक योद्धा है। उसका युद्ध कौशल अद्भुत है।' यह विचार करते हुए धनुष सज्ज कर खर रथ आगे ले आया। वह श्रीराम को सम्बोधित कर बोला– "हे वीर ! तुम धैर्य धारण करो, मेरे आगे तुम्हारा बल नगण्य है। मेरा वार सहन कर पाये, ऐसी संतान को किसी माँ ने जन्म नहीं दिया है अचानक बाण लगने से दूषण और त्रिशिरा मृत्यु को प्राप्त हुए, मेरे सामने रहकर मेरे बाण सहन करोगे, तभी तुम्हारे पराक्रम को सत्य मानूँगा। मेरे रण में उपस्थित होने की सूचना मिलते ही काल भी धैर्य नहीं धारण कर पाता। मैंने आज तक अनेक सुरासुरों का वध किया है। हे रघुवीर ! उसकी तुलना में तुम कितना टिक सकोगे ? मेरे बाण छूटते ही कोदंड तोड डालेंगे, तुम्हारे प्राण भी हर लेंगे। मेरा पराक्रम तुम देखते जाओ।"

श्रीराम ने खर के वचन सुनकर हँसते हुए कहा "चर्मकुंड में भीगे हुये धोबी के यहाँ के मलिन वस्त्रों का बोझ खर वहन करता है, कभी कुम्हार की मिट्टी खर की पीठ पर ले जाई जाती है। ऐसी तो खर की प्रसिद्धि है। काले कोयले कुम्हार के घर ढोकर ले जाने के लिए खर का प्रयोग करते हैं और घूरे पर लोटने वाले के रूप में भी खर की प्रसिद्धि है। पत्थर तोड़ने का कार्य करने वाले खर पालते हैं, जिससे पत्थरों को ढोकर ले जाने में सुविधा होती है। उस बोझ को ढोते हुए पीठ पर घाव पड़ जाते हैं. उन घावों पर मक्खियाँ भिनभिनाती रहती हैं। दूर किसी गधी को देखकर खर दीर्घ स्वर में चिल्लाता है। गधी द्वारा छाती पर लात मारे जाने में ही वह सुख का अनुभव करता है। इधर उधर लोटना उसका मुख्य आभूषण है समस्त संसार की विष्ठा उसका प्रिय भोजन है, यही उसकी महिमा है दुःशील पापी खर, तुम्हारी ऐसी प्रतिष्ठा होने के कारण तुम मृत्यु के योग्य हो। तुमने ऋषिवर्यों का वध किया, उनकी ओर से इसका बदला लेते हुए बाणों से मैं तुम्हारा मुख तोडता हूँ। मेरे बाणों के समक्ष तुम बचकर कहाँ जाओगे ? मक्खी द्वारा पीछा करने पर खर जिस प्रकार चारों तरफ भागता फिरता है, उसी प्रकार मेरे बाण लगते ही, हे खर ! तुम भी उनकी भाँति भागते फिरोगे।" श्रीराम के इन वचनों से खर अत्यन्त क्रोधित हुआ।

खर ने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर क्रोधपूर्वक असंख्य बाणों की वर्षा की, जिससे समस्त दिशाएँ बाणों से भर गईं। यह देखकर श्रीराम क्रोधित हुए और धनुष लेकर आगे आये। जिस प्रकार हाथी पर सिंह झपट कर जाता है, उसी प्रकार श्रीराम राक्षसों की ओर झपटे और जिस प्रकार प्रलय के समय मेघ-वृष्टि होती है, उसी प्रकार वे शर वृष्टि करने लगे। श्रीराम के द्वारा बाणों की वर्षा करते ही उनके वेग से ज़ोर से हवा बहने लगी, जिससे राक्षस भयभीत हुए। रण में हवा भी स्तब्ध रह गई प्रचंड धूल उड़ने लगी। समस्त आकाश बाण मय हो गया। खर एवं राम के बाणों की टंकार सुनाई देने लगी, उन बाणों के घर्षण से अग्नि प्रज्वलित हो उठी। खर की आँखें धुएँ से भर गईं। भूमि और गगन मंडल बाणों से भर गया। श्रीराम के बाणों से सूर्य मंडल आच्छादित हो गया। सर्वत्र बाण ही बाण दिखाई देने लगे

बाणों से राक्षस संत्रस्त हो गए। खर भयभीत हो गया। रण-क्षेत्र में अंधेरा फैलाने का श्रीराम का हस्तकौशल अलौकिक था। इस समय दोनों ही महावीर युद्ध में अपने कौशल दिखा रहे थे।

खर राक्षस बोला- "श्रीराम ! अब मैं अन्तिम निर्णायक शस्त्र के रूप में वरद्‌बाण चला रहा हूँ। मेरा हस्तकौशल तुम देख ही लो।" ऐसा कहते हुए उस महाहठी खर ने सधान साधते हुए वरद्‌बाण चलाकर श्रीराम का धनुष नीचे गिरा दिया और तत्काल सात बाण लेकर श्रीराम के हृदय को लक्ष्य बनाकर चलाये। श्रीराम का कवच अभेद्य था अतः वे बाण उसे बेध नहीं पाये परन्तु उस वरद् शक्ति ने कवच के बन्धन खोल दिए और कवच निकलकर भूमि पर गिर पड़ा। धनुष और कवच के गिरते ही तीनों लोक भयभीत हो उठे। आकाश में देव एवं इन्द्र अत्यन्त दुःखी हुए। कवच के भूमि पर गिरते ही जिस प्रकार बादलों के पीछे से सूर्य प्रकट होता है वैसे ही श्रीराम रणभूमि में शोभायमान हुए। उन्होंने गर्जना करते हुए कहा "तुम्हारे समस्त वरद् बाण क्रोधपूर्वक छोड़े जाने के कारण व्यर्थ हो गए हैं। तुम्हारा समस्त पुरुषार्थ समाप्त हो गया है। अब मैं निश्चित रूप से तुम्हारा वध करूँगा। फिर राम ने अगस्त्य द्वारा दिया गया धनुष सुसज्ज किया वह गर्जना करते हुए शरवर्षा करने लगा। खर के समस्त प्रबल बाण श्रीराम ने निष्प्रभ कर दिये। कृषक जैसे कँटीले झाड़ खेत में से निकाल कर बाहर फेंक देता है, उसी प्रकार श्रीराम ने खर के बाण छेद दिये। बीज मन्त्र के साथ सुवर्णपत्री बाण चलाकर श्रीराम ने खर को भयभीत कर दिया। उसके रथ का ध्वज स्तम्भ तोड़ दिया। जिस प्रकार स्वर्ग भोगों से भ्रष्ट होकर पुण्य-क्षय के कारण किसी व्यक्ति का पतन होता है वैसे ही स्तम्भ पर से ध्वज नीचे आ गिरा। तत्पश्चात् एक बाण से खर का मुकुट गिरा दिया उसका धनुष तोड़ दिया। इस प्रकार श्रीराम ने खर को रण में संकट में डाल दिया। खर ने इस संकट से मुक्त होने व श्रीराम का नाश करने के लिए श्रेष्ठ बाण सुसज्जित किये। शक्तिवरद् नामक निर्णायक बाण अत्यन्त भयंकर एवं विकट होते हैं, जो मार कर दूसरों का प्राण हर लेते हैं। वही चार बाण लेकर बीजमन्त्र द्वारा आवाहन की हुई शक्ति सहित खर ने श्रीराम पर चलाये। वे तेज युक्त बाण देखकर भूतल के ऋषि गण और स्वर्गलोक के देवगण भय से काँपने लगे भयंकर शक्तिवरद् बाण से श्रीराम कैसे बच सकेंगे, सब इसी चिन्ता से व्याकुल हो गए। खर का बाण चलते ही देव स्तम्भित रह गए और ऋषिगण मूर्च्छित हो गए।

श्रीराम के हृदय पर बाण लगते ही उनके हृदय में स्थित शस्त्र-देवता चारों बाण धारण कर उनके तूणीर में प्रवेश कर गए। यह देखकर खर बोला- "यह कैसा विपरीत घटित हो गया। वरद् शक्ति श्रीराम में ही मग्न हो गई। उसने हमारा घात किया। श्रीराम का अन्त अब कैसे सम्भव हो सकेगा।" श्रीराम की महत्ता देखकर ऋषि और देवों ने राम का जय-जयकार किया। श्रीराम पर छोड़े गए चारों बाणों का निवारण हो गया परन्तु वे अत्यन्त क्रोधित हुए। उन्होंने खर पर तीन महातीव्र बाण छोड़े श्रीराम के बाण देखकर उनके निवारण के लिए खर चिन्तित हुआ एक बाण से उसका धनुष खंडित हो भूमि पर गिर पड़ा। ध्वज टूट गया। रथ का दंड टूट गया, दोनों पहिये टूट गए, धुरी टूट गई, दूसरे बाण से चारों घोड़े एवं रथ का विध्वंस हो गया। एक बाण खर को लगने से रक्त प्रवाहित होने लगा। इस प्रकार घोड़े, रथ एवं सारथी को मारकर खर को विरथ करने पर वह गदा लेकर राम पर प्रहार करने के लिए आगे बढ़ा और बोला- "मैं गदा के प्रहार से राम को मार डालूँगा।" वह सरक, थरक, दीप्ती, गती, विगती इत्यादि प्रकार के वारों द्वारा अपना गदा युद्ध का कौशल दिखाने लगा।

श्रीराम तब खर से बोले "रथ, सारथी, सेना सभी का नाश हो जाने पर भी निर्लज्जतापूर्वक गदा के वार क्यों दिखा रहे हो। तुम्हारे पास से शक्ति भी अब चली गई है। अब व्यर्थ ही हाथ में गदा क्यों उठाये हो। गदा सहित मैं तुम्हें धराशायी कर दूँगा। तुम पापमूर्ति पापात्मा हो। अनेक श्रेष्ठ ऋषि तुमने मारे हैं, ज्येष्ठ तपस्वियों का भक्षण किया है। उन पापों का फल तुम भोगो। तुम्हें मैं बाणों से दण्ड दूँगा। अनेक ब्राह्मण तुमने खाये हैं। तुम्हें ब्रह्म हत्या का पाप लगा है। अब मैं बाणों से तुम्हें प्रायश्चित कराऊँगा। इस दण्डकारण्य में तुम कंटक के समान हो। मैं बाणों से तुम्हारा छेदन कर वन को पूर्ण रूप से निष्कंटक करूँगा, ऋषि निःशंक रूप से पुनः यहाँ विचरण करने लगेंगे। नासिका विरहित व्यक्ति के दर्शन के उपरान्त यश की अपेक्षा निरर्थक है। उस नकटी से मिलने के उपरान्त तुम्हारे सेनापति सैन्य सहित मारे गए। वह तुम्हारे साथ होने पर तुम्हें यश कैसे प्राप्त होगा ? उस नासिका विहीन की संगति से तुम्हारा सर्वनाश हो रहा है। हे खर ! यह बात तुम्हें समझ में नहीं आ रही है। तुम नाम एवं रूप से खर हो; शस्त्रों का बोझ वहन करने वाले तुम वास्तव में खर हो। तुम्हारे पास बुद्धि एवं विचार-शक्ति कहाँ से होगी ? तुम वास्तव में अत्यन्त मूर्ख हो।" श्रीराम के मर्म को आहत करने वाले वचन सुनकर खर क्रोधित हुआ। भूमि पर हाथ पैर पटकते हुए गदा लेकर वह श्रीराम की ओर दौड़ा।

श्रीराम को प्रत्युत्तर देते हुए खर बोला– "हे रामचन्द्र ! तुम अत्यधिक प्रलाप कर रहे हो ? अधिक बोलना वीरों को शोभा नहीं देता। तुम युद्ध का विचार करो। तुमने अनेक वीरों का वध किया, अब मैं तुम्हारे रक्त से उन वीरों का समाधान करूँगा। तुम्हारे रक्त द्वारा तर्पण करने से राक्षसगण तृप्त होंगे। गदा के एक ही प्रहार से मैं तुम्हारा प्राण हर लूँगा, यह मैंने प्रण किया है। अतः हे राम ! तुम सावधान हो" यह बोलते हुए वह क्रोध से दाँत पीस रहा था। गदा को तीव्र गति से घुमा रहा था। उसकी आँखों से धुआँ निकल रहा था। वह क्रोध से थर थर काँप रहा था। श्रीराम को दबाकर उनके कंठ का रक्त पान करने का अवसर वह देख रहा था। खर बोला– "तुम्हारी शिराओं से रक्त प्राशन करके ही मैं तृप्त हो सकूँगा।" श्रीराम की ओर वह क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखने लगा। उनका वध करने के लिए खर ने मातंगास्त्र का आवाहन किया। बीज मन्त्र एवं घातक मन्त्र का जाप कर उसने अस्त्र का शस्त्र पर संधान किया। जिसके परिणामस्वरूप वृक्ष एवं घास मुरझा गई, पृथ्वी कंपायमान हुई और पशु-पक्षी मूर्च्छित हो गए।

खर की गदा तेजस्वी एवं भयंकर थी, अतः तृण भस्मीभूत हो गए। पर्वत कंपायमान हुए, वृक्ष टूटकर गिर पड़े, गदा गगनपर्यंत पहुँचने के कारण देवगण विमानों से भागने लगे, सूर्य और नक्षत्र, अस्त्र और मन्त्र के भय से थर-थर काँपने लगे, खर के भयंकर अस्त्र को देखकर श्रीराम ने रुद्रमंत्र का जाप किया और भीषण बाण चलाये। उन बाणों को देखकर मातंगास्त्र अपने प्राणों को बचाने की प्रार्थना करते हुए श्रीराम के चरणों पर गिर पड़ा। तीव्र बाणों से गदा सौ टुकड़ों में खंडित हो गई। समस्त वैकुंठ उसकी ध्वनि से गूँज उठा। गदा के प्रभावहीन होते ही खर रणोन्मत्त हो उठा, उसका मन अनियन्त्रित हो गया। श्रीराम के बाण से गदा का नाश हो गया और बची हुई सेना मारी गई, सारी शस्त्र सामग्री व्यर्थ हो गई। उन सबके पश्चात् ही वह बाण राम के तूणीर में वापस लौटा। अब युद्ध भूमि में मात्र खर ही शेष था, उसे राम ने बाणों से जर्जर कर दिया परन्तु खर ने बाणों की चिन्ता नहीं की। वह पुनः राम को एक ही ग्रास में निगलने का विचार करते हुए राम की ओर दौड़ा।

श्रीराम ने खर की सम्पूर्ण शस्त्र सामग्री विनष्ट कर दी। जब उसे कोई शस्त्र नहीं दिखा तो वह एक विशाल वृक्ष उखाड़कर उससे प्रहार करने के लिए आगे दौड़ा। 'इस वृक्ष के प्रहार से राम को

निश्चित ही मृत्यु होगी'– यह कहते हुए उसने वृक्ष राम की ओर फेंका श्रीराम ने बाण द्वारा उस प्रचंड वृक्ष के सौ टुकडे करते हुए उसे गिरा दिया। वृक्ष नष्ट हो गया। खर के शरीर में बाण लगने से रक्त प्रवाहित होने लगा अब खर का नाश करने का निश्चय कर श्रीराम ने बाण पर अंतकास्त्र का आवाहन किया और प्रलयरुद्र के महामन्त्र का जाप कर वह बाण चलाया। उस समय खर की अवस्था ऐसी थी कि उसे देह, बुद्धि किसी का भी स्मरण नहीं रहा। जूझना, भागना सब भूल गया पकड़ने और मारने का विचार भी भूल गया। जिस प्रकार ज्ञानी नित्य आत्मा की सिद्धि का अनुभव करता है और राम के चरणों में निश्चयपूर्वक निवास करता है, उसी प्रकार श्रीराम को त्रिशुद्धि की अवस्था में देखकर खर भी रण-समाधि में लीन हो गया। कोई मुनीश्वर तत्वों के विकार का निरसन होने के पश्चात् जिस स्थिति में रहता है, श्रीराम के दर्शन कर खर भी उसी निर्विकार स्थिति को प्राप्त हुआ। राम का बाण आकर प्राण हर लेगा, इसकी भी सुधि उसे न रही। श्रीराम रणसुखकारी हैं। उन्होंने विकट बाण द्वारा खर का सिर धड़ से अलग कर दिया रण में वह महावीर खर गिरते समय 'धन्य रघुवीर' इतना ही बोला।

खर द्वारा रामस्तुति व उत्तम गति की प्राप्ति– श्रीराम द्वारा खर का सिर धड से अलग करते ही वह राम की स्तुति करने लगा। वह बोला– "श्रीराम ने शराघात से दुःखों का छेदन कर आत्म सुख प्रदान किया। उसने जन्म-मरण, तृष्णा-क्षुधा आदि दुःखों को समाप्त कर दिया। जीवन का भय समाप्त कर आत्म-सुख की प्राप्ति करा दी। मेरे मन, देहाभिमान, ज्ञान अज्ञान इत्यादि का छेदन कर मुझे सुख सम्पन्न कर दिया। श्रीराम के बाणों की महिमा ऐसी है कि उससे मेरे पाप-पुण्य, संकल्प विकल्प, सुख रूप हो गए। तेज युक्त राम-बाणों ने स्थूल अहम् भाव छेदकर अपना-पराया का भेद समाप्त कर दिया। मेरी राक्षस योनि, मेरी व्याधियाँ, देह बुद्धि इत्यादि का नाश होने से मैं शुद्ध एवं सुखी हुआ। श्रीराम एक रणवीर योद्धा है अस्त्र-शस्त्रों के घाव पड़ने पर भी वह सुख-मग्न रहता है।" श्रीराम की ऐसी स्तुति करने के पश्चात् वह मस्तक उनके चरणों के समीप आया। श्रीराम द्वारा मरण प्राप्त खर को उत्तम गति प्राप्त हुई। जो गति तपस्वियों को अथवा योगी-संन्यासियों को भी दुर्लभ होती है, वह गति श्रीराम ने खर को प्रदान की। जो गति सर्वत्याग करने वालों को भी दुर्लभ है, वह खर ने प्राप्त की। वेद-विधि, शस्त्र-सिद्धि द्वारा भी जो गति मिलनी असम्भव थी, वह गति बाणों द्वारा विद्ध खर को घावों से प्राप्त हुई कर्मों द्वारा तथा ध्यान धरकर जो गति अप्राप्य थी वह बाणाग्रों के घाव से खर को श्रीराम की कृपा से प्राप्त हुई। जो-जो रण भूमि में श्रीराम की दृष्टि में आता है वह मुक्ति प्राप्त करता है. राक्षस भाग्यवान् थे अतः उन्हें रण में स्पष्ट मुक्ति प्राप्त हुई।" सुर एवं नरों के लिए खर अत्यन्त विकट था। दशानन रावण भी उसे शंका की दृष्टि से देखता था परन्तु श्रीराम द्वारा मृत्यु को प्राप्त होते ही देव और ब्राह्मणों ने उनका जय-जयकार किया।

श्रीराम की सबके द्वारा स्तुति व अभिनन्दन– श्रीराम व राक्षस वीरों का युद्ध देखने हेतु आकाश में देवादिकों के विमानों की भीड़ एकत्र थी। श्रीराम को विजय प्राप्त होते ही उन्होंने जय-जयकार सहित पुष्प वृष्टि की। यह युद्ध देखने हेतु ब्रह्मा एवं भगवान् शिव भी पधारे थे। रण-भूमि में राम की विजय होते ही उन्होंने भी जय-जयकार किया। आकाश में सिद्धों ने ताली बजाकर सम्मान अर्पित किया भूतल पर ऋषियों द्वारा जय जयकार की ध्वनि गूँजने लगी। श्रीराम ने बलवान् वीर राक्षसों का वध किया जिससे सभी सन्तुष्ट हुए। स्वर्ग में सभी ने हर्ष से भरकर नृत्यकर समाधान व्यक्त किया। श्रीराम द्वारा निश्चित ही रावण-वध होगा इसके प्रति सभी आश्वस्त हो गए।

पर्णकुटी में ऊँची शय्या पर आरूढ़ होकर युद्ध देखने वाले सीता एवं लक्ष्मण दोनों आनन्दित हुए। उन्होंने श्रीराम के चरणों पर साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया। अत्यन्त उल्लसित होकर सीता ने उन्हें आलिंगन दिया। राम ने सीता को आश्वासन देकर लक्ष्मण को भुजाओं में भर लिया। तत्पश्चात् उन्होंने ऋषिगणों को आमन्त्रित कर साष्टांग नमन किया व बोले "राक्षसों द्वारा सताये गए ब्राह्मणों को मुक्त करने में मैं सफल हो सका। राक्षसों के भय का निवारण करने की आज्ञा शिरसावंद्य मानकर आपकी कृपा से मैंने राक्षसों का नाश किया। आपकी कृपा से मुझे यश प्राप्त हुआ और राक्षसों के विनाश से मुझे कीर्ति प्राप्त हुई, सत्संगति से ऐसा ही बल प्राप्त होता है। ब्राह्मणों का सम्बल एवं अभय जिसके साथ होता है वह अकेला ही ब्राह्मणों की कृपा से चराचर पर विजय प्राप्त कर सकता है। ब्राह्मणों की चरण रज से ही सद्गुण रूपी सम्पत्ति की प्राप्ति सम्भव है। बड़ी आपत्तियों का समूल निर्दलन द्विज पदों के रज-कणों की कृपा से ही सम्भव है। अपार भव सागर में ब्राह्मणों की चरण-रज सशक्त सेतु के समान होती है, जिसकी कृपा से गिरने एवं डूबने का भय समाप्त हो जाता है द्विज-चरणों की कृपा से मनोवांछित सुख की प्राप्ति होती है। ब्राह्मणों के चरणतीर्थ से गंगा आदि तीर्थ पवित्र हो जाते हैं। चारों मुक्तियाँ दासी हो जाती हैं। मेरे सौभाग्य से ऐसे द्विजवर्यों की नित्य संगति मुझे प्राप्त हुई। उसी कारण मैं अगाध कीर्ति प्राप्त कर सका। ऐसे ब्राह्मण श्रेष्ठों की महिमा का जितना वर्णन करूँ, अल्प ही होगा। आपको कुछ दान देने की मन में उत्कट इच्छा है। यह जनस्थान आपको अर्पित करता हूँ। यहाँ स्वधर्म अनुष्ठान करते हुए सुख-सम्पन्नतापूर्वक निवास करें। अरुणा, वरुणा, सरस्वती, ब्रह्मगिरि इत्यादि अष्टतीर्थ करते समय मन में किसी प्रकार की शंका को धारण न करें, मैं आपका आज्ञा पालक हूँ।" ये कहते हुए श्रीराम ने साष्टांग नमन किया। सभी ब्राह्मण सुखी हो श्रीराम का गुणगान करने लगे।

श्रीराम की कीर्ति का वर्णन करते हुए उनकी मूर्ति की वन्दना करते हुए, राम का गुण गान तथा राम नाम की गर्जना करते हुए ब्राह्मणों ने जनस्थान स्वीकार किया। राक्षसों की पत्नियाँ वहाँ से चली गयीं उनका आरोप था कि 'गंगातीर के ब्राह्मण अत्यन्त कठोर हैं। उन्होंने धन-धान्य ले लिया, वस्त्राभूषण हरण कर लिये, हमें सम्पूर्ण रूप से लूट लिया। अब उनका निवारण कौन करेगा ? हमारे पुरुषों को राम ने रण में समाप्त कर दिया। अब हम विधवाओं को ब्राह्मण लूट रहे हैं।" ऐसा वे राक्षस पत्नियाँ शूर्पणखा को बता रहीं थीं। वे ब्राह्मणों द्वारा भय दिखाते ही शूर्पणखा के साथ विमान में बैठकर अपने प्राण बचाने के लिए भागीं। तदुपरान्त ऋषिवरों ने जनस्थान में निवास किया तथा श्रीराम अपने आश्रम में रहने लगे।

❁❁❁❁

अध्याय १२

[शूर्पणखा व रावण का वार्तालाप]

श्रीराम ने खर दूषण, त्रिशिरादि राक्षसों का राक्षस सेना सहित रण में वध किया। अकेले श्रीराम ने हाथों में धनुष लेकर रण-भूमि में शरघातों से राक्षसों का संहार किया। इसका समाचार पहुँचाने के लिए कोई भी राक्षस शेष नहीं बचा। सब बाणों के आवर्त में फँसकर मृत्यु को प्राप्त हुए। यह वार्ता सुनने के लिए मात्र शूर्पणखा ही शेष बची थी। वह लक्ष्मण के भय से चीखते हुए भागी। रण में हुए राक्षसों के विनाश पर वह आक्रोश करती हुई जनस्थान पहुँची। शूर्पणखा की कटी हुई नाक को देखकर खर

आदि राक्षसों की पत्नियाँ उस पर हँसने लगीं। उन दोनों मानवों का वधकर खरादि राक्षस अवश्य वापस लौटेंगे, ऐसा उनका दृढ़ विश्वास था इसीलिए वे शूर्पणखा पर हँस रही थीं। "रघुनाथ ने बाणों का आवर्त छोड़ते हुए राक्षसों का पूरी तरह से निःपात कर दिया है। त्रिशिरा, खर, दूषण और चौदह सहस्त्र राक्षस-गणों का वध कर उनका जनस्थान ब्राह्मणों को दे दिया।" यह वार्ता सुनते ही जनस्थान में हाहाकार मच गया

राक्षस स्त्रियाँ कहने लगीं– "अगज्जेते वीरों का सर्वनाश कराकर यह नकटी क्यों वापस आयी? इस नकटी की ओर से लड़ने गये त्रिशिरा, दूषण और खर चौदह सहस्त्र राक्षस मारे गए और यह नकटी हमसे मिलने के लिए आयी है। हमारी समस्त पुरुष-जाति के लिए इसने अपशगुन किया है और अब हमारे साथ रोने के लिए आयी है।" प्रत्येक घर की स्थिति समान ही थी, वे सभी नारियाँ रो-रो कर आक्रोश कर रही थीं। सभी सम दुःखी थीं, कौन किसकी सान्त्वना करता। वे कह रही थीं - "हम सभी घर में विलाप कर रही हैं। हमारी रक्षा करने वाला कोई हितैषी शेष नहीं बचा है। द्विज घर-घर में घुसकर लूट रहे हैं राक्षसों द्वारा द्विजों का भक्षण किये जाने के कारण दोनों की आपस में कट्टर शत्रुता थी। अतः वे आवेश में आकर हमें लूट रहे हैं। उन्हें जनस्थान प्राप्त हुआ और हमें वैधव्य। हम ब्रह्मदंड भोग रही हैं। उस कलमुँही शूर्पणखा के कारण हम सभी विधवा हो गईं।" इस प्रकार चिल्लाते, रोते एवं बाल खींचते हुए वे राक्षस पत्नियाँ आक्रोश कर रही थीं।

शूर्पणखा का कृत्य उसकी दुर्दशा– शूर्पणखा ने राक्षस स्त्रियों से कहा– "तुम यहाँ रो रही हो, द्विज आने पर सभी को लूट लेंगे। एक बार उनके द्वारा बन्दी बनाये जाने पर फिर मुक्त होना सम्भव नहीं है, फिर हतबुद्धि होकर हम कुछ सोच भी नहीं पाएँगे।" इस पर राक्षस स्त्रियाँ बोलीं "इसने यहाँ पर महाबलवान राक्षसों का वध करवाया, अब लंका की होली जलवाने के लिए तत्पर है। यह नकटी राक्षसों के लिए अपशकुनी है; यह रावण का भी कुल सहित सर्वनाश कर देगी।" सभी द्विजों को जनस्थान मिलने के कारण वे अपने शिष्यों सहित दौड़कर आये। राक्षसियाँ भयभीत होकर भागने लगीं। ब्राह्मण अपनी पुरानी शत्रुता का स्मरण कर उनकी सम्पत्ति को हस्तगत करने के विचार से दौड़कर आये। राक्षसियाँ भयभीत होकर शूर्पणखा से विनती करने लगीं। ब्राह्मणों की संख्या बढ़ती ही जा रही थी। तब नकटी शूर्पणखा विकराल रूप धारण कर, "तुम सबको मैं अभी खा डालूँगी।" कहते हुए उनकी तरफ बढ़ी। उसका भयंकर विकराल स्वरूप देखकर द्विज भय से भागने लगे। अत्यन्त अस्त-व्यस्त स्थिति में वे राम के पास आये। शूर्पणखा के कारण उनकी यह स्थिति हो गई है '- यह बताते हुए वे हाँफ रहे थे। ब्राह्मणों की स्थिति देखकर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा– "इन ब्राह्मणों को जनस्थान हमने दान स्वरूप दिया है। अतः इनकी रक्षा करो। गो ब्राह्मणों की दुर्दशा रामराज्य पर संकट के समान है अतः उनका भय दूर करो।"

शूर्पणखा ने प्रारम्भ में ब्राह्मणों को भगाया परन्तु बाद में उसे उनके मांस -भक्षण का लोभ उत्पन्न हुआ। अतः वह उन्हें खाने के लिए आगे बढ़ी- यह लक्ष्मण ने देखा। स्वयं की नाक कट गई, राक्षसों का संहार हो गया- यह सब भुलाकर भी वह ब्राह्मणों का मांस भक्षण करने के लिए लालायित है. जिस प्रकार कोई मछली लालचवश काँटे में लगा हुआ मांस खाती है और काँटा खींचे जाने पर तड़पती है, उसी प्रकार ब्राह्मणों का मांस खाने के मोह से वशीभूत होकर शूर्पणखा आयी। विषयों में रुचि रखने वाले विषयों के मोह में फँसकर होने वाले दुःखों को भूल जाते हैं। मृत्यु को भूलकर विषयों की मिठास का

हो उन्हें स्मरण रह जाता है। वही स्थिति शूर्पणखा की हुई। लक्ष्मण ने बाणों द्वारा उसके कान काट लिए, स्त्री की हत्या न करने की राम की आज्ञा का, उसने इस प्रकार पालन किया। दोनों कान कट जाने से शूर्पणखा वहाँ से भाग गई।

राक्षस स्त्रियों का लंका में प्रवेश, रावण से भेंट— जन स्थान से भागकर आने के पश्चात् शूर्पणखा राक्षस-स्त्रियों सहित विमान में बैठी और उसने लंका की ओर प्रस्थान किया। विमान में प्रमुख रूप से बैठी हुई शूर्पणखा के नाक एवं कान पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। साथ बैठी राक्षस स्त्रियाँ आक्रोश कर रही थीं, वे कह रही थीं– "इस नकटी ने यहाँ असंख्य राक्षसों का वध करवाया, अब आगे करोड़ों राक्षसों को मरवाएगी। यह कुलक्षिणी रावण को संकट में डालने के लिए जा रही है पहले स्वयं की नाक कटवायी, फिर खरादि राक्षसों का वध करवाया, कान भी गँवा बैठी। अब रावण के पास आ रही है, वह किस प्रकार बच पायेगा ? इसने ही युद्ध प्रारम्भ करवाया, चौदह सहस्र वीरों की होली जलवायी है। यह नकटी राक्षसों का अनिष्ट करने के लिए आयी है। अब रावण के कुल का विनाश करने के लिए निकली है।" वे स्त्रियाँ अत्यन्त कष्टमय स्थिति में दुःख एवं क्रोध से ऐसा बोल रही थीं

विमान लंका के समीप आया। लंकाभुवन के पास रुकते ही अपने विरुद्ध राक्षस-स्त्रियों द्वारा किये गए वार्तालाप से उद्विग्न शूर्पणखा रावण के पास पहुँची। लंकाभुवन में रावण जिस सभा में बैठा था वहाँ वह मरुद्गणों के मध्य बैठे हुए इन्द्र के समान शोभायमान हो रहा था। उसके परिवार के प्रधान चारों ओर बैठे थे तथा रावण सिंहासन पर विराजमान था। रावण को देखते ही विमान की स्त्रियाँ आक्रोश करने लगीं। तब रावण ने विमान की ओर देखा और उसे नाक कान कटी हुई शूर्पणखा दिखाई दी। शूर्पणखा विलाप करते हुए रावण के समीप आई और उसके पैर पकड़कर बैठ गई। वह अत्यन्त दुःख के कारण मूर्च्छित हो गई। रावण उसकी स्थिति देखकर बोला - "ऐसा कौन महाबली है, जिसने इसके नाक होंठ काटकर दाँतों को अनावृत कर दिया है ? इसके कान भी काट दिये हैं. शूर्पणखा की दुर्दशा देखकर रावण विचलित हो उठा। प्रधान मंडल कंपित हो गया। लंका के लोग चकित थे। रावण के परिवार में शूर्पणखा महाबली मानी जाती थी उसकी ऐसी दुर्दशा करने वाला महावीर कौन होगा, इस विचार में सब मग्न हो गए।

शूर्पणखा की मूर्च्छा टूटने पर वह सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन करने लगी "हे रावण ! तुम्हारे समान ज्येष्ठ भ्राता के होते हुए मेरी यह दुर्दशा हुई; त्रिशिरा, दूषण एवं खर को श्रीराम ने रण-भूमि में मार डाला। चौदह सहस्र पराक्रमी महावीरों को राम ने अपने बाणों के आवर्त में घेरकर समाप्त कर दिया, रण समाप्त होने तक राम ने राक्षस पुरुषों की एक जाति ही नष्ट कर डाली। शास्त्रों के अनुसार उसने राक्षस स्त्रियों को जीवित रखा। वह सब वृत्तान्त सुनाने के लिए एकमात्र मैं ही शेष हूँ। श्रीराम शास्त्रों का मर्मज्ञ है, स्त्री-हत्या वर्ज्य होने के कारण मेरे द्वारा उनको संत्रस्त किये जाने पर भी, राम लक्ष्मण ने मेरे केवल नाक कान काट डाले। दूसरों के साथ छल करने पर स्वयं अपने साथ ही छल हो जाता है, इसका मुझे प्रमाण मिल गया मेरी दुर्दशा हो गई। मेरा मुख इतना विद्रूप हो गया कि किसी को दिखा नहीं सकती। श्रीराम की राक्षसों के संहारकर्ता के रूप में ख्याति है उसने मेरे नाक-कान काट लिये और जनस्थान ब्राह्मणों को दे दिया। वे ब्राह्मण विमान भी लेने ही वाले थे परन्तु उसी समय मैं उसे यहाँ ले आई। वह श्रीराम अत्यन्त निर्लोभी है उसने जनस्थान लेकर ब्राह्मणों को दान दे दिया श्रीराम की महिमा अगाध है। उसके शौर्य का तेज देखकर मुझे तो ऐसे चिह्न दिखाई दे रहे हैं कि तुम्हारा लंकाभुवन भी

लेकर वह किसी को दान में दे देगा। घमंड में अज्ञान के कारण तुम्हें पता भी न चल सकेगा परन्तु तुम्हारे राज्य पर यह विकट संकट मंडरा रहा है। मेरे वचन सुनकर तुम्हें सावधान हो जाना चाहिए- ऐसा मुझे लगता है।

शूर्पणखा का निवेदन सुनकर रावण को सीता स्वयंवर के अवसर का उपस्थित श्रीराम का स्मरण हो आया। उसकी स्मृति से ही वह भय से कंपित हो उठा। जिस धनुष ने मुझे धराशायी कर दिया, उसी धनुष का श्रीराम ने भंग कर दिया। उस समय तो वह बालक था अब तो एक युवा शौर्य उसमें विद्यमान होगा। उसके बाणों का प्रताप सहन करने के लिए चौदह सहस्र राक्षस त्रिशिरा तथा खर-दूषण भी निर्बल सिद्ध हुए, इस विचार से ही रावण भयभीत हो उठा। शूर्पणखा के निवेदन से रावण के मन में राम का भय व्याप्त हो गया। परन्तु लोगों में अपना पराक्रम दिखाने के लिए वह अत्यन्त क्रोधपूर्वक उठा और बोला- "मेरी प्रिय बहन की दुर्दशा करने वाला यह राम कौन है, उसके विषय में मुझे विस्तारपूर्वक बताओ उसका धैर्य, उसकी शक्ति तथा उसकी सेना कितनी है, उसका सारथी कौन है और वह दंडकारण्य में क्यों निवास कर रहा है- यह बताओ। उसके पास कौन से अस्त्र शस्त्र हैं ? त्रिशिरा व खर-दूषण को उसने क्यों मारा ? तुम्हारी दुर्दशा उसने क्यों की- इस विषय में मुझे आरम्भ से बताओ।" लंकापति रावण द्वारा रघुनाथ के विषय में उसके स्वरूप के विषय में पूछे जाने पर शूर्पणखा ने श्रीराम के विषय में सम्पूर्ण जानकारी दी।

शूर्पणखा द्वारा श्रीराम का वर्णन– शूर्पणखा व्यथित थी। दुर्दशा के कारण क्रोधित भी थी। वह श्रीराम के विषय में यथाक्रम निवेदन करने लगी - "श्रीराम श्यामवर्णी पर अत्यन्त सुन्दर है। रमारमणीय, मनोहर, सुस्वरूप, सुखसार राम साकार ब्रह्म स्वरूप है। कमल के समान सुन्दर नयन एवं मुख अपार सुख प्रदान करने वाला है। उसके मुख के दर्शन-मात्र से आँखें तृप्त होती हैं। जटारूपी मुकुट पहनने के साथ ही वल्कल एव मृगचर्म उसके वस्त्र हैं। वह धनुर्धर आजानुबाहु होने के साथ-साथ उसका तूणीर अक्षय बाणों से भरा रहता है। कर्पूरयुक्त पीला तिलक, कर्ण कुंडल, कमल की माला, कमर में सुनहरी करधनी धारण किये श्रीराम मंगलकारी एवं परमवीर है। ध्वजवज्रांकुश रेखा, दोनों चरणों पर कमल चिह्न, सुकुमार-चरण-ऐसा वह रघुकुल तिलक राम है। उसके चरण कमल अत्यन्त सुन्दर हैं। उसके साँवले शरीर पर शुभ्र चन्दन का तिलक शोभायमान रहता है, जिस पर से दृष्टि हटने को तैयार ही नहीं होती। मन एवं नेत्र- दोनों ही आनन्द प्रदान करने वाले जगत्-ज्येष्ठ राम का स्वरूप ऐसा है। वह इतना सुकुमार है कि चन्द्रकिरणें भी उसे चुभती हैं परन्तु युद्ध-भूमि पर वह रणरंगधीर राम परम शूर है, इन्द्रधनुष के समान उसका धनुष स्वर्णभूषित प्रतीत होता है। श्रीराम का शौर्य देखकर वह सत्य संकल्प स्वरूप दिखाई देता है। उसका स्वरूप देखकर करोड़ों कामदेवों का गर्व-हरण हो जाता है। वह राम लावण्यमय परम स्नेही एवं सुखस्वरूप दिखाई देता है।"

श्रीराम अपना बाण कब जोड़ते और छोड़ते हैं, इसका ज्ञान ही नहीं हो पाता है। उसने युद्ध कौशल प्रदर्शित कर करोड़ों राक्षसों को मार डाला। उसके पास रथ, सारथी, सेना, सम्पत्ति, किसी वस्तु की भी सहायता नहीं है। वह अकेला पैदल ही रणभूमि में रहकर राक्षसों का अंत करता है। त्रिशिरा, खर दूषण इत्यादि शूरवीर और उनके रक्षक चौदह सहस्र राक्षस, श्रीराम ने अन्य किसी शस्त्र को सहायता न लेकर, मात्र बाणों से मार डाले। राक्षसों की सम्पूर्ण पुरुष जाति उसने युद्ध में समाप्त कर दी है। यह वार्ता सुनाने के लिए तुम्हारे पास आयी हूँ। जैसा श्रीराम वैसा ही सौमित्र लक्ष्मण है वह भी

रणधीर परमशूर योद्धा है। बल और शील में दोनों भ्राता समान हैं। दोनों का स्वरूप निर्मल है। वे कुशल एवं प्रबल हैं। पिता का दिया वचन पालन करने हेतु वे दण्डकारण्य में आये हैं; उनके साथ परमसती सीता भी है। लक्ष्मण राम का भक्त है। वह अनन्य भाव से राम पर प्रेम करते हुए उसकी सेवा में लीन रहता है परन्तु अत्यन्त सतर्क भी रहता है। उसने मेरी दुर्दशा कर आपका स्थान हिला दिया। अब आपका जीवन कठिन है, ससैन्य आक्रमण कीजिए। वैसा आक्रमण करके ही उन्होंने चौदह सहस्र राक्षस मार गिराये। मेरी स्थिति उतनी दयनीय नहीं है परन्तु राम को वश में करना कठिन है। शूर्पणखा के समस्त वचन सुनकर रावण ने पूर्णरूप से विचार किया। उसने तुरन्त आक्रमण करने के लिए प्रस्थान नहीं किया। उसने शूर्पणखा की बातों की पूरी तरह से उपेक्षा की। रावण का यह व्यवहार देखकर शूर्पणखा उद्विग्न हो उठी। फिर रावण को प्रलोभन दिखाने एवं उत्तेजित करने के लिए, काम सम्मोहन हेतु सीता का वर्णन किया।

शूर्पणखा द्वारा सोद्देश्य किया गया सीता वर्णन– श्रीराम के साथ सुन्दरी सीता भी वन में आयी है। उसके समान कोई दूसरी स्त्री नहीं है। सम्पूर्ण चराचर जगत् में ऐसी अन्य कोई स्त्री नहीं दिखाई दी, जिससे उसकी तुलना सम्भव हो सके। रमा, उमा भी उसकी बराबरी नहीं कर सकतीं, फिर सावित्री से कैसे तुलना हो सकती है। देव, गंधर्व एवं असुर स्त्रियों का तेज उसके समक्ष जुगनू के सदृश प्रतीत होता है, पद्मिनी स्त्रियों का शरीर सुकोमल होता है परन्तु सीता के नख भी उनसे अधिक सुकोमल हैं, जानकी ऐसी सुन्दर सुकुमार एवं मनोहारी है। उसके गुण-लक्षण एवं लावण्य देखकर एवं उसका मुख निहार कर स्वयं मदन भी मूर्च्छित हो सकता है। उसके गोल मुख एवं विशाल नेत्र देखकर भूख-प्यास सब विस्मृत हो जाती है। उसका सौन्दर्य देखकर विरक्तों के मन में भी मोह जागृत हो जाता है। ऐसी सौभाग्ययुक्त सीता के सम्मुख पंचामृत भी फीके लगते हैं। चित्त उसके पास से हटकर अन्यत्र जाता ही नहीं, उसके लिए मन में मोह उत्पन्न होता है। उसका श्रीमुख देखकर दसों इन्द्रियों को हर्ष होता है। मन की चंचलता रुक जाती है, आँखें एकटक उसे निहारती रहती हैं। वास्तव में श्रीराम के विरक्त योगी होने के कारण सीता उसके साथ शोभायमान नहीं होती, वह पत्नी रूप में तुम्हारे योग्य ही है हे लंकानाथ ! तुम्हीं उसका उपभोग करो। तुम्हें देखने के पश्चात् मेरे मन में यही विचार आ रहे हैं कि सीता को तुम अवश्य देखो। जब तुम स्वयं सीता रूपी रत्न देखोगे तो मेरी बातों पर विश्वास करोगे। और उसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करोगे।" शूर्पणखा द्वारा किया गया वर्णन सुनकर रावण को यह अनुभव हुआ कि सीता-स्वयंवर के प्रसंग में उसने जैसी देखी थी, सीता वैसी ही है। उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि चंपाकली सदृश लावण्यराशि सीता उसके मन में बसी हुई है।

रावण की अवस्था एवं भावी योजना– शूर्पणखा द्वारा किया गया वर्णन सुनकर और सीता का स्मरण होते ही रावण का शरीर रोमांचित हो उठा। उसे सीता की धुन लगने लगी, उसका मन सीता का ही विचार करने लगा। भोजन करते समय, शयन के समय भी वह सीता का ही अखंड ध्यान करने लगा; स्वप्न में भी उसे सीता ही दिखाई देने लगी और उसे प्राप्त करने की चिंता उसे व्याकुल करने लगी। श्रीराम परमप्रतापी हैं। अतः उनसे युद्ध करने की अपेक्षा, छल कपट से ही सीता को प्राप्त करने का उसने निश्चय किया। रघुनंदन से कपट कर उसकी पत्नी को लाने के विचार को अत्यन्त गुप्त रखते हुए, प्रधानों को भी यह विचार न बताने का निश्चय कर रावण ने सभास्थान से प्रस्थान किया, अपने भवन में आने के पश्चात् भी सीता प्राप्ति के विचारों से वह मुक्त न हो सका। उसके मन में निरन्तर वही विचार चल रहे थे।

रावण को शयनगृह में शांत-निद्रा भी नहीं आई। उसने तुरन्त सारथी को बुलाकर उसे रथ सिद्ध करने के लिए कहा। रथ में पिशाचखर जोड़े और रावण ने मारीच के यहाँ जाने के लिए प्रस्थान किया। रावण और मारीच की भेंट में माया-मृग की योजना तय हुई और सीता हरण के सम्बन्ध में विचार-विमर्श किया गया।

❧❧❧❧

अध्याय १३

[रावण व मारीच का पंचवटी में आगमन]

लंकानाथ रावण सीता की प्राप्ति के लिए अत्यन्त उद्विग्न था। वह शीघ्र ही वेगवान् रथ से मारीच के आश्रम में पहुँचा। मारीच वल्कल एवं जटा धारण किये हुए, फलाहार कर एकांत में नियमपूर्वक वनवासी जीवन व्यतीत कर रहा था। मारीच और रावण की भेंट होते ही दोनों ने परस्पर एक दूसरे को प्रेमपूर्वक आलिंगनबद्ध किया। फिर एक दूसरे का कुशल मंगल पूछने के पश्चात् रावण ने उसकी पूजा की।

रावण का मारीच से निवेदन– रावण ने मारीच को एकांत में ले जाकर राम एवं सीता के विषय में तथा राक्षस संहार के सम्बन्ध में निवेदन किया। वह बोला हे मारीच ! उस राम ने जितनी दुर्दशा की है, उसका जितना वर्णन किया जाय, कम ही होगा। पद्मपुर, जो मेरा दूसरा स्थान कहलाता है, वहाँ त्रिशिरा, खर, दूषण एवं चौदह सहस्र अति भयंकर राक्षस-गण थे। श्रीराम ने बाण-वर्षा से सबका नष्ट कर दिया है। मेरी छोटी बहन शूर्पणखा के नाक-कान काटकर उसे विद्रूप कर दिया है। करोड़ों राक्षस लज्जित हो जायँ, ऐसे वीरतापूर्वक कार्य उसने किये हैं। शूर्पणखा को विद्रूप करने का प्रतिशोध लेने के लिए राम की पत्नी सीता का मुझे हरण करना है। सीता इतनी सुन्दर है कि उसके सौन्दर्य की तुलना करने के लिए अन्य कोई स्त्री विद्यमान नहीं है। उस लावण्यमयी की तुलना रमा, उमा से भी नहीं की जा सकती। मेरे अन्तःपुर की सुन्दरियाँ भी उसके सामने जुगनू के सदृश हैं। मुख्य मन्दोदरी भी उसके समक्ष सौन्दर्य में, उसके अंगूठे के बराबर है। उस सीता का मैं हरण करूँगा। अतः कृपाकर आप मेरी सहायता करें। आप अनेक विचित्र क्रियाएँ जानते हैं, नाना प्रकार के रूप धारण कर सकते हैं। आप स्वर्ण-मृग का रूप लेकर सीता के पास जायँ। सीता को पंचवटी में छोड़कर श्रीराम स्वर्ण-मृग के वध हेतु उसके पीछे दौड़ेगा, इस बहाने राम को बहुत दूर ले जायें। तत्पश्चात् "हे लक्ष्मण ! अत्यन्त वेग से दौड़कर आओ" इस प्रकार लक्ष्मण को पुकारें। कृपाकर आप कुशलतापूर्वक इतना कार्य सम्पन्न करें।"

रावण ने मारीच को अत्यन्त महत्त्व प्रदान करते हुए अपनी योजना बताकर कहा– "मारीच, तुम [illegible] हो। तुम्हारी महानता मैं जानता हूँ। अगर तुम मेरे सहायक हो गए तो मैं चराचर जगत् में विजयी सिद्ध हो जाऊँगा। सीता हरण के विषय में मैं अत्यन्त उत्सुक हूँ। मेरी यह इच्छा पूरी करने में तुम समर्थ हो। [illegible] पूरा कर मेरा उद्देश्य पूर्ण करो। अगर तुम मेरे सहायक हो गए तो सभी देवों, दैत्यों [illegible] में विजय प्राप्त कर सकूँगा। फिर उस बेचारे राम की क्या बिसात ! राम व लक्ष्मण को कुटी से दूर ले जाने के पश्चात् मैं सीता का हरण कर लूँगा। मुझे कोई रोक नहीं सकता। राहु जिस

प्रकार चन्द्रमा को ग्रस लेता है, उसी प्रकार मैं जनक-नन्दिनी सीता को हर लूँगा; अगर मारीच मेरा सहायक हो गया तो कलिकाल भी मेरा कुछ अनिष्ट नहीं कर सकता"।

रावण की बातों में श्रीराम का उल्लेख आते ही मारीच चौंक गया, वह कुछ बोल नहीं पा रहा था। उसके मन में भय उत्पन्न हो गया था।

मारीच की प्रतिक्रिया– श्रीराम का नाम सुनते ही मारीच चौंक गया। उसकी वाचा बन्द हो गई। वह भयभीत हो गया। श्रीराम के वनागमन के विषय में सुनकर मारीच का मन सशंकित हो उठा। भय से उसका मुँह सूखने लगा, वह मूर्च्छित हो गया। रघुनाथ का नाम सुनते ही मारीच की अवस्था देखकर रावण आश्चर्य-चकित हो गया। मारीच महावीर, शूर, रणभूमि का जुझारू योद्धा एवं विचारवान व्यक्ति है। भयभीत होने पर इसी मारीच का सहारा अनुभव होता था। इसी के बल पर मैंने चराचर एवं सुरासुरों पर विजय प्राप्त की। किसी भी कठिन कार्य में विचलित हुए बिना गूढ़ गुत्थी को सुलझाने वाले विचारवान साहसी एवं दृढ़ योद्धा मारीच को मात्र राम का नाम सुनते ही मूर्च्छा आ गई, वह भयग्रस्त हो गया; कानों से रघुनन्दन का नाम सुनते ही वह अचेत हो गया। उसका मुख मंडल तेजहीन हो गया। साँस बोझिल हो गई। किसी जड़ पाषाण सदृश मारीच पड़ा हुआ था। रावण ने स्वयं मारीच को चैतन्यावस्था में लाने का प्रयत्न करते हुए पूछा– "कोई घाव नहीं है, आघात भी नहीं है, फिर मात्र राम का नाम सुनकर तुम्हारी ऐसी मरणासन्न अवस्था क्यों हो गई है ?"

मारीच चैतन्यावस्था में आते ही रावण के चरणों पर गिरते हुए बोला– "श्रीराम के विरोध में आप कुछ भी न करें। श्रीराम क्रुद्ध होते ही आपका सपरिवार, सप्रधान, ससैन्य सर्वनाश कर देंगे। त्रिशिरा, खर, दूषण और चौदह सहस्त्र राक्षसों के समान वह बाणों से आपका भी नाश कर देंगे। उनका बाण छूटने पर उसका निवारण कौन करेगा ? क्षण मात्र में वह सम्पूर्ण राक्षसकुल का विनाश कर देंगे। आपकी सद्बुद्धि का किस क्रूर ने हरण कर लिया है, जो आप राम-पत्नी का हरण करने का विचार कर रहे हैं। वह आपके द्वारा कैसे सम्भव हो सकेगा। शेषनाग के मस्तक पर विद्यमान मणि कोई कैसे ला सकता है ? उसी प्रकार राम से सीता को अलग कर लाना कैसे सम्भव होगा ? जिस प्रकार सूर्य का तेज उससे विलग करना किसी महाबली के लिए भी सम्भव नहीं है, उसी प्रकार जानकी को भी राम से अलग नहीं किया जा सकता। जैसे आकाश से उसकी नीली आभा दूर नहीं की जा सकती, उसी प्रकार सीता को श्रीराम से अलग करना असम्भव है और अगर फिर भी आपने सीताहरण किया तो आपकी और मेरी मृत्यु निश्चित है। इसके साथ ही सम्पूर्ण कुल का भी विनाश हो जाएगा। शूर्पणखा पहले स्वयं नकटी हुई, फिर उसने खर का युद्ध में सर्वनाश करवाया। उसी शूर्पणखा के कारण आप भी अपने प्राण गँवा देंगे। सहस्त्रार्जुन द्वारा गर्व से ऋषि की कामधेनु का हरण करते ही परशुराम ने उसका सेना सहित संहार कर दिया। पर स्त्री का हरण करने पर हमारा भी मरण निश्चित है।"– यह बताकर मारीच ने रावण के चरण पकड़ लिए।

मारीच के वचन सुनकर रावण क्रोधित होकर बोला– "अरे, दो वनवासी मनुष्य जिनके पास सैन्य सामग्री भी नहीं है, उनका भय तुम मुझे दिखा रहे हो; तुम निश्चित ही नपुंसक हो गए हो। तुम्हारा बल एवं पुरुषार्थ कहाँ चला गया है ? राम का नाम लेने मात्र से ही भय से काँप रहे हो ? मैं रावण हूँ। मैंने सभी ग्रहों एवं सुरवरों को बन्दी बनाया है, फिर वह बेचारा राम मेरा क्या अनिष्ट कर लेगा। उसका भय क्यों दिखा रहे हो ? अरे, मैंने अनेक महान योद्धाओं पर विजय प्राप्त की है। उनके समक्ष

राम की क्या योग्यता है ? मुझ निशाचर को तो वह बालक ही लगता है। तुम पूर्णरूप से धैर्य धारण कर मेरी सहायता करो।" रावण के यह वचन सुनकर मारीच हँसकर बोला–

"हे रावण, अभिमान मत करो। मैं अपना एक पूर्वानुभव बता रहा हूँ, वह ध्यानपूर्वक सुनो। पहले मैं भी तुम्हारे समान अपने बल पर अभिमान किया करता था। मैं भी राम को बालक समझकर उसका घात करने गया था। मेरे पास दस हज़ार हाथियों का बल है, मैं राम को निगल जाऊँगा और फिर विश्वामित्र आदि सभी ऋषियों को मारकर खाऊँगा- यह विचार कर मैं आश्रम के पास गया। तब वह धनुर्धर राम अपना बाण-कौशल दिखाने लगा। सुबाहु, मैं और मेरे साथ के राक्षस वीर सभी पर राम ने तीक्ष्ण बाण छोड़े। क्रूर राक्षसों को देखकर भी राम विचलित नहीं हुआ। उसने असंख्य बाणों का वार कर वीरों को बन्दी बना लिया। मेरा मुद्गर और सुबाहु की ढाल चूर चूर हो गई, तथा सभी राक्षसवीर रण में धराशायी हुए। राम ऐसा वीर योद्धा है। उसके द्वारा चलाया गया तीन धारों वाला बाण मैंने खड्ग से तोड़ा तो उसकी नोंक से सुबाहु मारा गया। मेरे नाक व मुँह से रक्त बहने लगा, हाथ-पैर ऐंठने लगे। उस वार ने मुझे आकाश में फेंक दिया और सौ योजन दूर समुद्र तीर पर मैं मूर्च्छित होकर आ गिरा। मेरी आँखें फटी रह गईं, गले में घरघराहट होने लगी। भय से मेरी धड़कन बढ़ गई। मेरे प्राण संकट में थे मेरी आँखें आधी खुली थीं। शरीर अचेत हो गया, प्राण क्षीण हो गए बाण के आधे टुकड़े ने ही मुझे मृत्यु के समीप पहुँचा दिया। मेरी आयु का जो भाग शेष बचा था उससे मैं फिर चेतनावस्था में लौटा परन्तु मेरे घावों से मेरा पराक्रम जा चुका था। धैर्य पूर्ण रूप से समाप्त हो गया था। हे रावण ! राम के बाणों का भय इतना अधिक था कि मुझे चराचर में सर्वत्र 'राम' ही दिखाई देने लगा।

"वल्कल और जटा मुकुट धारण किये हुए धनुर्धर और प्रलय रुद्र के समान संहारक श्रीराम मुझे हर वृक्ष में दिखाई देने लगा। मुझे बाणों से भय लगने लगा। सर्वत्र करोड़ों 'राम' दिखाई देने लगे। सारी सृष्टि राम-मय हो गई है, ऐसा मुझे अनुभव हुआ। वन में पक्षी एवं प्राणियों की हलचल होते ही 'राम आ रहा है'-ऐसा समझकर मैं चौंक उठता था। मुझे छोटे-बड़े सभी 'राम' स्वरूप दिखाई देने लगे। नयन वृक्षों में भी 'राम' दिखाई देता था ; मन में समाये भय के कारण मैं सहम गया था। राम हमेशा मेरा पीछा करता रहता था। स्वप्न में भी राम ही दिखाई देता था। श्रीराम के बाणों से मुझे भय लगने लगा था। अब श्रीराम का विरोध करने से मैं शेष नहीं बच सकता। जिस राम का इतना भय मेरे मन में बसा हुआ है उसी राम के पास आप मुझे भेज रहे हैं। हे रावण ! उसे देखते ही मेरे प्राण पखेरू उड़ जाएँगे। 'र' वर्ण मात्र सुनाई देते ही मैं काँप उठता हूँ। श्रीराम नाम का उच्चारण मुझे भय ग्रस्त कर देता है।"

हे लंकाधीश रावण ! पहली बार तो राम के बाणों से, अपने दैवी गुणों की कृपा से मैं बच गया। परन्तु अब उसके पास जाने से वह मुझे जीवित नहीं छोड़ेगा। पहले जब उसने बाणों से प्रहार किया तब वह बाल्यावस्था में था अब तो वह बलशाली युवक है। उसके प्रहार से तो प्राणों से भी हाथ धोना पड़ेगा रघुनाथ को देखते ही मैं मृत्यु को प्राप्त होऊँगा। अतः मैं वहाँ कदापि नहीं जाऊँगा, मेरा यह वचन त्रिवार सत्य है।

रावण द्वारा प्रलोभन, तत्पश्चात् भय– मारीच पूर्ववृत्त कहते-कहते विलाप करने लगा। तब रावण ने उसे अपने समीप लेकर उसको सांत्वना देते हुए कहा– "हे मारीच ! अरे मनुष्य अपना खाद्य है उसका भय कैसा ? देखो, अगर सीता मुझे प्राप्त हुई तो मैं अपना आधा राज्य तुम्हें दे दूँगा मेरे ज्येष्ठ पुत्र से भी अधिक राज्याधिकार तुम्हें दूँगा। छत्र, चामर, सैन्य संभार, हाथी-घोड़े सब कुछ तुम्हें प्रदान

करूँगा। राम का भय अपने मन से दूर करो। निर्भय और नि:शंक होकर मेरी सहायता करो। मैं तुम्हें आधा राज्य देने की शपथ लेता हूँ।"

रावण द्वारा दिया गया प्रलोभन सुनकर मारीच उससे बोला– "अरे, मृत व्यक्ति के पीछे पिंडदान करने से कम से कम कौए, कुत्ते तो उसे खाते ही हैं। श्रीराम ने अगर मेरा प्राण हर लिया तो फिर वह राज्य कौन भोगेगा ? हे रावण, तुम्हारी बुद्धि देखकर मुझे ऐसा लग रहा है कि श्रीराम अपने बाणों से रावण और मारीच- दोनों को समाप्त कर देगा। सम्पूर्ण राक्षस-कुल का संहार हो जाएगा। उस नकटी शूर्पणखा की दुर्बुद्धि सुनकर तुम्हारी बुद्धि भी भ्रष्ट हो गई है। दूसरे की पत्नी के हरण का प्रयत्न करने वाला निश्चित ही महामूर्ख होता है। उस नकटी का मुख देखने मात्र से ही तत्काल बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है तुम उसी प्रकार शठ, महापापी और स्त्री-लम्पट हो गए हो। देखो, उस नकटी के दर्शन होते ही खर आदि सभी समाप्त हो गए। अब वह तुम्हारा अन्त करने के लिए तत्पर है। जब स्वयंवर में सीता का वरण करने के लिए तुम स्वार्थवश धनुष उठाने गए परन्तु तुम उसे उठा नहीं सके। वही धनुष राम ने उठाकर तोड़ दिया। तब तुम्हारा पराक्रम व पुरुषार्थ कहाँ गया था। उसी समय तुमने सीता का हरण क्यों नहीं किया। उस सभा में अपमानित होकर तुम भाग गए। तुम विराध के भय से भागते हो लेकिन उसी विराध को राम ने क्षण भर में मार डाला। अत: राम के समक्ष तुम अत्यन्त दुर्बल सिद्ध होगे। शूर्पणखा की दुष्ट बुद्धि से प्रेरित होकर यदि तुम राम की सीता का हरण करते हो तो राम बाणों से तुम्हारे दसों मस्तक विच्छिन्न कर देगा और तुम निश्चित ही मारे जाओगे। हे रावण ! स्वामी की वासना-पूर्ति में सहायक अनेक मिलेंगे परन्तु यथार्थ धर्म और परमार्थ बताने वाले दुर्लभ होते हैं। हे लंकानाथ, मैंने तुम्हें यथार्थ सत्य बताया है। अगर तुम्हें मेरी ये बातें स्वीकार नहीं हैं तो मेरा विचार सुनो। श्रीराम के दर्शन होते ही मेरे प्राण तत्काल चले जाएँगे, अत: मैं यह शपथ लेता हूँ कि मैं तुम्हारे साथ वहाँ नहीं आऊँगा।"

मारीच के वचन सुनकर रावण अत्यन्त क्रोधित होकर कहने लगा कि तुम इस बात से भयभीत हो कि राम तुम्हारे प्राण हर लेगा तो मेरे द्वारा मारे जाते समय तुम्हारी रक्षा करने के लिए कौन आयेगा। रावण अत्यन्त तीक्ष्ण शब्दों में बोला– "तुम्हारा अन्त मेरे द्वारा ही होगा। सेवक अगर राजा की आज्ञा का उल्लंघन करता है तो राजा को निश्चय ही उसका हनन कर देना चाहिए। सेवक अगर स्वामी के वचन नहीं मानता तो शास्त्रों के विधि-विधान का तात्पर्य ही है कि सेवक का अन्त कर दिया जाये। अत: हे मारीच, तुम यह निश्चित जान लो कि तुम्हारी मृत्यु मेरे द्वारा ही होगी। श्रीराम एक मनुष्य और दरिद्र तापसी है, तुम उसका भय मुझे दिखाते हो ? अरे, मैं उसको एक कौर में निगल जाऊँगा। उस लक्ष्मण को भी उसी कौर में निगल जाऊँगा। यह रावण अगर एक बार क्रोधित हो जाता है तो उस क्रोध के समक्ष ही राम-लक्ष्मण झुक जाएँगे। तब मैं अपने शौर्य से सीता का हरण कर लूँगा।

मारीच को राम द्वारा वध स्वीकार– मारीच ने विचार किया कि, 'अगर मैं पंचवटी में गया तो श्रीराम अवश्य वध करेंगे। अगर वहाँ नहीं गया तो लंकानाथ वध करेगा। रावण के हाथों मरना, अपना अध:पतन करना है। अगर श्रीराम का बाण लगा तो कल्याण ही होगा। श्रीराम के कठोर बाणों के घाव से जन्म-मृत्यु का चक्र समाप्त होगा। जिसको वह बाण लगता है वह सुख सम्पन्न होता है तथा उसका कल्याण होता है।' मन में यह विचार कर मारीच ने रावण से कहा– "हे लंकानाथ ! श्रीराम के भय की चर्चा तो मैंने मात्र आपका पुरुषार्थ देखने के लिए की। श्रीराम से युद्ध करने के तुम्हारे सामर्थ्य को मैंने देखा और और मैं तुम्हारे पराक्रम के प्रति आश्वस्त हो गया। अत: मैं तुम्हारी पूरी सहायता करूँगा।

सीता का हरण करने के कार्य में आवश्यकता होने पर अपने प्राण भी दे दूँगा। मृग रूप में जाकर निमिष मात्र में सीता को आकर्षित कर लूँगा।" मारीच का यह कथन सुनकर रावण प्रसन्न हुआ। उसने मारीच को आलिंगनबद्ध कर अपने गले का हार मारीच के गले में डाल दिया। फिर दोनों ने थोड़ी देर गुप्त बातें की और रथ में बैठकर पंचवटी आ पहुँचे। श्रीराम के निवास स्थान की ओर जाते समय उन्होंने रथ और सारथी दूर खड़े किये और वे दोनों पैदल हो वन में आये।

"मारीच अब अपना कार्य प्रारम्भ करो, विलासी लोगों की रुचि के अनुसार मृग का रूप धारण कर सीता में प्रलोभन उत्पन्न कर श्रीराम को दूर ले जाओ। उसके साथ ही सौमित्र को भी ले जाओ। श्रीराम के बाण आते ही अदृश्य हो जाना। तब तक मैं सीता का हरण करता हूँ। फिर हम दोनों लंका की ओर प्रस्थान करेंगे।" अपनी यह इच्छा व्यक्त कर रावण ने मारीच की पीठ थपथपाई। अत्यन्त प्रेम से वे दोनों पंचवटी में आये।

अध्याय १४

[हरिण-रूपी मारीच का वध]

**श्रीराम का आश्रम रावण ने स्वयं देखा। श्रीराम ने करोड़ों राक्षसों का संहार किया। है, इसका स्मरण होते ही वह मन ही मन चौंका। राक्षसों के असंख्य शवों के टुकड़े पड़े देखकर मारीच स्तब्ध रह गया। वह भयभीत होकर सिर खुजलाने लगा। पहले से ही मारीच के मन में श्रीराम का भय विद्यमान था। उस पर राक्षस-संहार को देख कर वह थर-थर काँपने लगा। उसकी यह दृढ़ विचारधारा बन गई कि श्रीराम राक्षसों का अंत करने वाला है। वहाँ राक्षसों का संहार देखकर रावण ने मारीच के वचन सत्य जानकर उसके पैर पकड़ लिए और कहा कि, स्वामी-सेवक, भाव भुलाकर सीता-हरण को ही निर्णायक कार्य समझकर कृपा कर जानकी-हरण का कार्य सम्पन्न करें। जिस उद्देश्य से हम यहाँ आये हैं, वह कार्य साधने हेतु मायावी-मृग-मोहिनी दिखाकर मुझे सीता हरण करने दें।

मारीच द्वारा हिरन का रूप-ग्रहण तथा सीता का सम्मोहित होना– रावण के वचन सुनकर मारीच को यह अनुभव हुआ कि उसकी मृत्यु समीप है। श्रीराम के बाण से प्राण जाने से मैं धन्य हो जाऊँगा। जीवन के अन्तिम क्षणों में जो राम-नाम का स्मरण करता है, वह स्वयं पूर्ण ब्रह्म हो जाता है। श्रीराम के बाण लगने से जीवन सफल हो जाएगा- ऐसा उसे अनुभव हुआ। राम के बाण के आघात से मुक्तियाँ दासी हो जाती हैं और अनायास ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है, श्रीराम की मूर्ति देखकर श्रेय निश्चय है। मन में यह विचारकर रावण को सन्तुष्ट करने के लिए अन्त में मारीच ने एक आश्चर्यजनक मृग का रूप धारण किया। वह देखकर रावण भी आश्चर्यचकित हो गया। बिना किसी कृत्रिमता के अत्यन्त मोहक मृगशोभा देखकर रावण अचम्भित रह गया।

मारीच ने मनोहारी स्वर्ण-कांति से युक्त शरीर धारण किया। उसके रोम रत्नबिंदु के सदृश चमक रहे थे। पीठ मोतियों से शोभायमान थी। उसके खुर मूँगे के सदृश रक्तवर्णी थे। ऐसा वह हिरन शोभायमान था। उसके जोड़ मरकत मणि के सदृश दिखाई दे रहे थे। कान ऐसे लगते थे मानों पन्ने जड़े हुए हैं।

इन्द्रनील सींग के घुमावों पर रत्न जड़े थे। आरक्त नेत्र और जिह्वा लाल थी। उसके खड़े रहने की ओजस्वी मुद्रा उसकी शोभा को बढ़ा रही थी। सींगों के सिरों पर मणियाँ चमक रही थीं। सिंदूराकृति पूँछ सुन्दर दिख रही थी। उसके पेट का रंग हंस के सदृश शुभ्र था। ऐसे विचित्र शरीर वाले उस मृग के प्रगल्भ तेज के समक्ष रवि व चन्द्र का तेज भी फीका पड़ रहा था। सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति के रूप में वह मृग सुशोभित था। थोड़ा डरते हुए, बिदकते हुए, चपल दृष्टि से इधर उधर देखते हुए, कभी चरते कभी उछलते कूदते वह मृग श्रीराम के आश्रम में आया। पंचवटी में प्रवेश कर सीता व श्रीराम का ध्यान अपनी ओर केन्द्रित करने के लिए वह उनके आस-पास घूमने लगा। राम से दूर व सीता के समीप उछलते-कूदते हुए जाकर मृग ने अपना सुन्दर सर्वांग दिखाया। सीता उस पर मोहित हो गई। उस सुन्दर मृग को देखकर सीता को समाधान का अनुभव हुआ। वह सीता के मन को भा गया। सीता के मन में इस प्रकार के भाव उमड़ते देख मृग, सीता के अत्यधिक समीप आने लगा। सीता ने मृग को निहार कर उसे सहलाते हुए उसके कोमल शरीर एवं मुलायम त्वचा पर हाथों से थपथपाकर अपना मन तृप्त किया। उस मृग का सौन्दर्य देखकर स्वर्ग में देवता भी भ्रमित हो गए। यह महा अद्भुत मृग कहाँ से आया ? किसका है ? वे उसके विषय में सोचने लगे। ऋषिवर्य एक टक उसे देखने लगे। मृग के दर्शन एवं स्पर्शसुख का अनुभव होते ही सीता की दृष्टि उसकी ओर आकृष्ट हुई। उसके सौन्दर्य ने उनका ध्यान अपनी ओर केन्द्रित कर लिया और वह उसका ही विचार करने लगी।

सीता अत्यन्त आनन्दपूर्वक श्रीराम और लक्ष्मण को उस मृग के विषय में बताने लगी "यह मृग कितना सुन्दर है ? सोने के समान शरीर, बाल ऐसे मानों रत्न की पंक्तियाँ हों। इसे देखकर ऐसा लगता है कि वनों में घूमकर असंख्य मृग देखकर भी इसके सदृश मृग मिलना सम्भव नहीं है। मुझे लगता है, सम्पूर्ण सृष्टि में इसके समान दूसरा मृग नहीं होगा। यह ब्रह्मदेव द्वारा निर्मित नहीं है, कर्मों द्वारा उत्पन्न भी नहीं है। यह लावण्य की प्रतिमूर्ति ईश्वर ने ही मेरे लिए निर्मित की होगी।" यह कहकर सीता ने अति आदरपूर्वक श्रीराम से कहा- "आप उदार चक्रवर्ती हैं। जो अपूर्वदान मैं आपसे प्रेमपूर्वक माँग रही हूँ, वह आप मुझे प्रदान करें।" कृपा मूर्ति श्रीराम की ओर सलज्ज दृष्टि से देखते हुए वे बोलीं- "इस मृग की त्वचा अत्यधिक सुकोमल है। स्वर्ण, रत्न और मोतियों से वह सुशोभित है। मैं जब अयोध्या वापस लौटूँगी तो इसकी कंचुकी बनाऊँगी। अब अयोध्या में प्रवेश करने में मात्र छह मास की अवधि शेष है। अतः इस कंचुकी की इच्छा पूरी करने के प्रति आप उदासीन न हों। दिव्य अलंकार एवं आभूषणों की अपेक्षा इस मृग की त्वचा अधिक सुन्दर है। उसके समक्ष नवरत्न भी जुगनू के सदृश हैं।" सीता का यह मनोगत एवं मृग का हृदयगत जानकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए। आगे आने वाले कर्तव्य एवं उसका अर्थ समझकर राम इस विषय में लक्ष्मण से विचार-विमर्श करने लगे।

सीता की इच्छा-पूर्ति के लिए श्रीराम की सिद्धता– श्रीराम सौमित्र से बोले- "लक्ष्मण ! यह मृग कितना सुन्दर है। इसकी चर्या कितनी गंभीर है। रत्न-जड़ित स्वर्ण-शरीर युक्त यह मृग इसके पूर्व नन्दनवन, चित्ररथवन अथवा त्रिभुवन में कहीं नहीं दिखाई दिया। आठों दिशाओं में वन में भ्रमण करने पर भी कहीं नहीं दिखा। इस लावण्यमृग से तुलना की जा सके, ऐसा कोई भी मृग नहीं है। इस मृग की त्वचा की कंचुकी बनाने की इच्छा अत्यन्त प्रेमपूर्वक जानकी ने व्यक्त की है। अयोध्या प्रवेश के समय वह कंचुकी उसे धारण करनी है। मुझे जो कार्य सिद्ध करना है, उसमें सीता द्वारा अभिव्यक्त इच्छा की पूर्ति न करना लज्जास्पद होगा। अतः मृग चर्म के लिए मृग को मारना ही अभीष्ट है।" श्रीराम

सीता की इच्छा-पूर्ति के लिए मृग का वध करने हेतु हाथों में हेमाभरणी धनुष्य और पीठ पर बाणों से युक्त तूणीर धारण कर निकले। श्रीराम ने धनुष की प्रत्यंचा चढ़ायी और उस पर बाण का निशाना साधकर मृग का पीछा करते हुए निकले। श्रीराम लक्ष्मण से जाते समय बोले– "लक्ष्मण, सुनो ! एक बाण से मृग को मारकर सीता के सुख एवं समाधान के लिए सुन्दर मृग-चर्म लाऊँगा। मृग चर्म मिलने से वह प्रसन्न होगी। उसकी इच्छा है कि वह मृग चर्म दो भागों में विभक्त कर आधे चर्म की कंचुकी और आधे चर्म से मेरे लिए आसन बनाये, अयोध्या प्रवेश के समय दोनों उससे शोभायमान होंगे। पति द्वारा पत्नी की वंचना नहीं की जानी चाहिए। उत्तम अन्न, उत्तम पकवान, वस्त्र, अलंकार एवं आभूषण पति के अतिरिक्त किसी से लेने पर वह स्त्री वेश्या कहलाती है। अब मैं जो बता रहा हूँ वह ध्यान से सुनो।"

"हे सौमित्र ! मेरे मृग मारकर लौटने तक क्षण-मात्र भी कहीं नहीं जाना। मृग को मैं निश्चित ही मारूँगा। तीनों लोकों के सब दैत्य भी यदि एकत्र हो गए तो भी मैं पीछे नहीं हटूँगा, इसमें तनिक भी शंका नहीं है। राक्षस अपने कट्टर शत्रु हो गए हैं अतः तुम असावधान मत रहना। शस्त्रास्त्रों से सज्ज होकर सावधानीपूर्वक सीता की रक्षा करना।" इसके पश्चात् श्रीराम ने लक्ष्मण से कानों में गुप्त रहस्य बताते हुए कहा "इस वन में मायावी राक्षस हैं। वे सीता को छल-पूर्वक हर ले जाएँगे अतः अत्यन्त सावधान हो, उसकी रक्षा करना। जब तक मैं मृग को मारकर वापस नहीं लौट आता, तब तक यहाँ से क्षणभर भी दूर मत जाना। प्राणों पर संकट आने पर भी अत्यन्त धैर्य धारण कर उसे सहना, मेरे विषय में तनिक भी चिन्ता मत करना। मैं बार-बार सीता की रक्षा के लिए कह रहा हूँ। बड़े से बड़ा संकट सामने आने पर भी पर्णकुटी छोड़कर मत जाना, सीता की रक्षा करना। यह गूढ़ बातें मैं तुम्हें बता रहा हूँ, तुम्हारी दृष्टि के समक्ष राक्षसों का समूह आने पर भी स्वयं युद्ध के लिए जाने को तत्पर मत होना क्योंकि सीता को वे उतनी देर में ही हरकर ले जाएँगे। तुम्हें युद्ध में व्यस्त कर वे सीता को ले जाएँगे। तुम्हारे सीता से दूर जाते ही यह निश्चित ही घटित होगा। तुम संग्राम में आगे जाओगे, तुम्हें सीता का [illegible] नहीं रहेगा। फिर सीता को पर्णकुटी में अकेली पाकर कपटी राक्षस उसका हरण कर लेंगे। मैंने तुम्हें जो युक्तियाँ बतायीं, उन्हें दृढ़तापूर्वक ध्यान में रखना और सीता की रक्षा करना।" इतना कहकर श्रीराम ने शीघ्रता से मृग की दिशा में प्रस्थान किया तथा पीछे मुड़कर पुनः सीता की रक्षा करने के लिए [illegible] मृग का पीछा करने आगे बढ़े।

मारीच द्वारा श्रीराम को छकाते हुए दूर तक ले जाना– धनुष-बाण लेकर मृग पर निशाना [illegible] श्रीराम आवेशपूर्वक मृग के वध के लिए निकले। श्रीराम के हाथ में धनुष देखकर वह उछला एवं [illegible] दृष्टि से पंचवटी के बाहर तेजी से भागने लगा। जहाँ शूर्पणखा की नाक काटी गई थी, मृग वहाँ [illegible] पहुँचा। श्रीराम को आते हुए देखकर, मृग ने वहाँ से भी पलायन किया। राम के दूर से आते हुए दिखाई देने पर मृग अपनी पीठ चाटते हुए खड़ा रह जाता था। गंगा* किनारे का वह स्थान इसीलिए [illegible] नाम से प्रसिद्ध हुआ। श्रीराम का मुख चन्द्र देखते हुए मृग खड़ा रह जाता था, उस स्थल का नाम [illegible] है। श्रीराम को बहुत दूर ले जाने के हेतु से वह मृग अलग-अलग मार्गों से दूर जाता रहा। श्रीराम [illegible] हुए मृग छलाँग लगाते हुए मध्यमेश्वर की तरफ गया। पंचवटी से राम को दूर ले जाते हुए [illegible] गंगा के किनारे से जा रहा था और राम पीछे-पीछे दौड़ रहे थे। श्रीराम का धनुष सुसज्जित था। मृग [illegible] दिखाई देता, कभी ओझल हो जाता था। मृग अपने स्वभावानुसार कुलाँचें भरते हुए आगे बढ़ रहा

* गोदावरी के लिए गंगा शब्द का प्रयोग पवित्र नदी के संदर्भ में है।

था। राम आवेश से सपिच्छ बाण लेकर उसका वध करने हेतु उसके पीछे दौड़ रहे थे। श्रीराम का बाण देखकर मृग वेग से अपने स्थान बदल रहा था। उसके द्वारा बदले गए स्थानों के नाम भी उसी अनुसार पड़ गए। कुंकुमठाण, मातुलठाण, नाग ठाण, बादामठाण और पाँचवाँ भौमठाण। धनुष द्वारा राम ने मृग का पाप छेदन किया। वह स्थान छिन्नपाप देह गाँव नाम से प्रसिद्ध है। राम ने जिस स्थान पर मृग के कंठ पर बाण चलाया वह नेऊरगाँव नाम से प्रसिद्ध है। जहाँ पर मस्तक में बाण लगा, वह गंगा के तटपर स्थित भालगाँव नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस समय मृग लक्ष्मण को पुकारते हुए ज़ोर से चिल्लाया– 'हे लक्ष्मण, शीघ्र आओ।'

मारीच द्वारा लक्ष्मण को पुकारना एवं उसकी मृत्यु– श्रीराम का बाण लगते ही ऊँची छलाँग लगाते हुए प्राण त्यागते समय मारीच ने श्रीराम के स्वरों में लक्ष्मण को ज़ोर से पुकारा। मारीच महामायावी था अतः राम के सदृश स्वर में लक्ष्मण को पुकारना उसके लिए सम्भव हो पाया। आक्रंदन करते हुए दीन स्वर में वह बोला– "हे लक्ष्मण, शीघ्र आओ ! राक्षस समुदाय ने मुझे युद्ध में प्रतिबंधों से जकड़ लिया है। हे महाबाहु ! तुम शीघ्र ही दौड़कर आओ। तुम तो मेरे सखा व रणभूमि में मेरे रक्षक हो। राक्षस मेरा वध कर देंगे, मुझे मुक्त करो।" चतुरतापूर्वक लक्ष्मण को बुलाकर वह मृग रूप धारी मारीच राक्षस के स्वरूप में परिवर्तित हो गया। तब राम के बाण ने उसका प्राण हर लिया। मृग देह एवं राक्षसरूपी स्थूल देहों का बाणों से छेदन करते हुए श्रीराम ने मारीच का वध कर दिया। सम्पूर्ण माया का नाश कर पुनर्जन्म से मुक्त करते हुए उसे सुख-शान्ति प्रदान की। श्रीराम का बाण जिसे लगता है, वह भाग्यशाली हो जाता है। उसके लिए वह बाण वर्षा न होकर आनन्दघन-वर्षा होती है। राम की कृपा से वह सुख सम्पन्न हो जाता है। स्थूल देह को छेदने वाले योद्धा बहुत होते हैं परन्तु श्रीराम एक ऐसे योद्धा हैं, जो जीवों के जैवीय गुणों का नाश कर उसे पूर्ण रूप से मुक्त करते हैं। भयाभय, शोक, दुख-द्वन्द्व का नाश कर श्रीराम ने मारीच को महासुख प्रदान किया। श्रीराम स्वयं ही सुखस्वरूप व सुखों के आगार हैं। राम के बाणों से मृत्यु-प्राप्ति की मारीच को इच्छा थी, श्रीराम ने उसकी इच्छा के अनुरूप उसे सुख प्रदान किया। राम के लिए शत्रु और सेवक दोनों समान ही हैं। जो सुख सनकादिक भोगते हैं, वही सुख मारीच को श्रीराम ने प्रदान किया। इस प्रकार रघुकुल तिलक, कृपालु, संग्राम में सुखदायक श्रीराम ने अपने बाणों से बेधकर मारीच का वध कर दिया।

मारीच की पुकार से श्रीराम के मन में शंका उत्पन्न होना– मारीच द्वारा दी गई, अत्यन्त आक्रंदनयुक्त स्वरों में 'हे लक्ष्मण दौड़ो' की पुकार इतनी तीक्ष्ण थी कि तीनों लोकों में वह आवाज़ गूँज उठी। अतः लक्ष्मण वह पुकार सुनकर अवश्य दौड़कर आयेगा और लक्ष्मण के आते ही भयंकर अनर्थ घटित हो जाएगा। रावण आकर सीता का हरण कर लेगा। अगर लक्ष्मण स्वयं यहाँ पर नहीं आया तो सीता उसे वहाँ नहीं रहने देगी, वह लक्ष्मण पर क्रोधित होगी एवं हठपूर्वक उसे यहाँ भेजेगी। इस मायावी मृग ने कल्पनातीत योजना बनाकर कुशलतापूर्वक लक्ष्मण को यहाँ बुलाकर उधर सीता हरण साध लिया होगा। उस राक्षस के मायावी कृत्य को समझकर राम ने वहाँ से अविलम्ब वापस लौटने का निश्चय किया। 'लक्ष्मण के यहाँ आने से पूर्व ही मुझे वहाँ पहुँचना चाहिए। विलम्ब करने पर रावण सीता का हरण कर लेगा, लक्ष्मण तुरन्त वहाँ से नहीं निकलेगा' अतः उसके निकलने से पूर्व पंचवटी पहुँचने का निर्णय कर राम ने शीघ्रता से वहाँ से प्रस्थान किया।

अध्याय १५

[सीता की रक्षा के लिए लक्ष्मण रेखा खींचकर लक्ष्मण का श्रीराम के पास जाने के लिए प्रस्थान]

मारीच द्वारा लक्ष्मण को दी गई करुण पुकार सुनकर सीता विलाप करने लगी क्योंकि वह पुकार श्रीराम के स्वर जैसी ही थी। श्रीराम रणरणधीर महापराक्रमी योद्धा होते हुए भी इतने दीन स्वर में आक्रंदन करते हुए लक्ष्मण को पुकार रहे हैं, निश्चित ही वे संकट में फँस गये हैं- सीता को ऐसा विश्वास हो गया था परन्तु श्रीराम का करुण क्रंदन सुनकर भी लक्ष्मण क्यों स्तब्ध हैं ? उसका मन क्यों नहीं द्रवित हुआ ? ये विचार उनके मन में उठने लगे।

सीता व लक्ष्मण में मतभेद– सीता लक्ष्मण से बोली– "आज तुम ऐसे निष्ठुर क्यों हो गए हो ? श्रीराम राक्षसों द्वारा बन्दी बनाये गए हैं फिर भी तुम उनकी सहायतार्थ नहीं जा रहे हो तुम राम के परमप्रिय सखा, बंधु एवं रक्षक होते हुए भी उनकी पुकार सुनकर उनके पास नहीं जा रहे हो। जिस प्रकार व्याधिग्रस्त सिंह वन में वानरों द्वारा घेर लिया जाता है, उसी प्रकार श्रीराम वन में राक्षसों द्वारा घेर लिये गए हैं। श्रीराम पूर्णरूपेण रणधीर होते हुए भी आक्रांत करते हुए तुम्हारी शरण आये हैं, तुम स्वयं आगे बढ़कर उनकी रक्षा क्यों नहीं कर रहे हो ?" ये कहते हुए सीता ने लक्ष्मण के चरणों पर अपना मस्तक रखकर विनती की कि "श्रीराम संकट में घिरकर आक्रंदन कर रहे हैं, तुम उनकी रक्षा हेतु जाओ। सीता के ये वचन सुनकर लक्ष्मण ने उन्हें साष्टांग नमन करते हुए कहा–"माते, रघुनंदन की महिमा सावधानीपूर्वक सुनें। श्रीराम के बाण से देवता, नर, किन्नर, दानव, मानव, निशाचर, राक्षस, यक्ष, विद्याधर तुरन्त भाग जाते हैं। पिशाच, गुह्यक, गंधर्ववीर, तीनों लोकों के समस्त वीर पक्षी विषैले सर्प भी तत्काल पलायन कर जाते हैं। ब्रह्मदेवादि श्रेष्ठ देव राम के बाण के सम्मुख काँपने लगते हैं। पिनाकपाणि भगवान् शंकर भी राम के बाणों के समक्ष टिक नहीं सकते। ऐसे श्रीराम को कौन मारेगा ? आप व्यर्थ ही क्यों रो रही हैं ? आपके सामने ही श्रीराम ने खर, त्रिशिरा और चौदह हज़ार राक्षसों को मार गिराया। उस राम को एक छोटा सा मृग कैसे मार सकेगा ? श्रीराम के बाणों से वेधे जाने पर मेरु मंदार पर्वत टूट जाते हैं। कलिकाल का पेट बाणों के घावों से फट जाता है, समस्त ब्रह्मांड हिल उठता है एक क्षुद्र सा मृग ऐसे श्रीराम को कैसे मार सकेगा ? आप वृथा ही दुःख कर रही हैं। श्रीराम द्वारा सबका वध सम्भव है परन्तु श्रीराम का वध किसी के द्वारा सम्भव नहीं है। श्रीराम मृत्यु से परे हैं। श्रीगुरु वसिष्ठ ने यह गूढ़ रहस्य पहले ही बता दिया था कि श्रीराम अजरामर परब्रह्म हैं। क्या आपको यह स्मरण नहीं है ? विलाप करना व्यर्थ है। 'लक्ष्मण शीघ्र आओ' ये स्वर राम के नहीं हैं। राक्षसों की मायावी शक्ति से निकले हुए स्वर को आप सत्य मान रही हैं। अब मेरी सुनें। हे जानकी माते मृग का वध कर आपके पति शीघ्र वापस लौटेंगे। आप धैर्य धारण करें।"

"मायावी राक्षस के पुकारने पर, आपको इस वन में अकेला छोड़कर मैं श्रीराम की सहायता के लिए कदापि नहीं जाऊँगा, ये मेरे सत्य वचन हैं। श्रीराम ने जाते समय मुझे बार-बार कहा था कि प्राण संकट में आने पर भी सीता को छोड़कर मत जाना। आपके समक्ष भी उन्होंने मुझे कहा था– हे लक्ष्मण ! मेरे विषय में चिंतित न होकर सावधानीपूर्वक सीता की रक्षा करना। उन्होंने पुनःपुनः कहा था कि 'इस वन में मायावी राक्षस हैं। वे कपटपूर्वक सीता का हरण कर लेंगे अतः सावधान होकर

उसकी रक्षा करना। अपने साथ छल करने के लिए शूर्पणखा सुन्दरी का वेश धरकर आयी थी। उसी प्रकार राक्षस वेश बदलकर आयेंगे अत: सीता को तिल मात्र भी दूर मत करना।' श्रीराम के ऐसे निर्देश होने पर मैं आपकी आज्ञा का पालन कैसे करूँ ? आपको वन में अकेला छोड़कर मैं राम के पास नहीं जाऊँगा। श्रीराम के वचनों का उल्लंघन कर आपकी आज्ञा का पालन करते हुए अगर मैं गया और राक्षसों ने आपका हरण कर लिया तो मेरी मृत्यु निश्चित है।"

आत्मबुद्धि हितकारक, श्रीसद्गुरु की बुद्धि सुख की राशि प्रदान करने वाली, परबुद्धि विनाशकारी और स्त्री-बुद्धि प्रलय का कारण होती है। स्त्री के वचन सुनकर जमदग्नि क्रोधित हुए रेणुका घायल हो धराशायी हो गई। तब क्षत्रियों को युद्ध में मार डाला गया। इक्कीस बार क्षत्रियों का वध होकर धरित्री ने रक्त स्नान किया। स्त्री के वचनों के परिणामस्वरूप चराचर आक्रंदक्रंदन कर उठा अत: स्त्री के वाक्यों से अनर्थ घटित हो जाता है। अत: आपको गुफा में अकेला छोड़कर मैं तिलमात्र दूर नहीं जाऊँगा, मेरी भावना अत्यन्त कठिन है। क्या मुझे श्रीराम से प्रेम नहीं है ? पर आपको अकेली छोड़कर मैं राम को ढूँढ़ने नहीं जाऊँगा। मुझे गुफा से बाहर करने के लिए राक्षस बुला रहा है। वह मायावी आवाज़ दे रहा है, परन्तु मैं आपसे दूर नहीं जाऊँगा। लक्ष्मण द्वारा यह कहते ही सीता अत्यन्त क्रोधित हो उठीं।

सीता स्त्रीत्व की मर्यादा का उल्लंघन कर लक्ष्मण से कठोर वचनों में बोली– "प्रत्यक्ष श्रीराम का स्वर सुनते हुए भी, उसे मायावी कहते हो। तुम्हारे मन में मेरे प्रति लोभ उत्पन्न हो गया है। मेरा लोभ मन में धारण कर तुम वन में आये हो। उस समय तुमने सेवक का भाव प्रदर्शित किया परन्तु श्रीराम का राक्षसों द्वारा वध होते ही तुम्हारी मुझे पत्नी बनाने की इच्छा है। सौतेले भाइयों की बुद्धि ऐसी ही होती है। भाई ही भाई का छल से वध करता है। उसकी भोग समृद्धि का स्वयं उपभोग करने की तुम्हारी दुष्ट इच्छा है।"

साहूकार का रूप धर कर चोरी करने वाले विश्वास घातकों के समान, हे लक्ष्मण ! तुमने सेवा की अब श्रीराम के वध हेतु अनेक प्रकार की युक्तियाँ कर मेरा उपभोग करने के लिए यहाँ रुके हो। श्रीराम की तुमने जो सेवा की, उसके फल के रूप में तुम मुझे जनकनन्दिनी को पत्नी के रूप में प्राप्त करना चाहते थे। हे परस्त्री की कामना करने वाले दुष्ट, सेवा के पीछे छिपी हुई तुम्हारी धूर्तता, तुम्हारा भाव मुझे आज स्पष्ट हुआ है तुम महान् पापी हो। श्रीराम के समीप रहने पर तुम कहते थे कि जानकी मेरी जननी है। अब श्रीराम का राक्षसों द्वारा वध करते ही, सीता को पत्नी बनाना चाहते हो मैं श्रीराम की ही दासी हूँ, परपुरुष को स्पर्श भी नहीं करूँगी। मेरी अभिलाषा करने वाले तुम जलकर भस्म हो जाओ। तुम इसी अभिलाषा के कारण मुझसे दूर नहीं जा रहे हो। अत: अब मैं ही श्रीराम के पास जाकर देखती हूँ कि किस संकट में फँसे हैं।"

"हे लक्ष्मण ध्यान से सुनो, श्रीराम से अलग होते ही मैं गंगा में जलमग्न होऊँगी अथवा अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगी, मैं विष-प्राशन कर लूँगी अथवा पर्वत से कूद जाऊँगी या फिर वृक्ष से लटककर प्राण त्याग दूँगी परन्तु तुम्हारे साथ विषयभोग नहीं करूँगी। मैं अपना यह वचन सत्य कर दिखाऊँगी। तुम विषय भोग की कामना रखने वाले हो। पर मुझे श्रीराम को छोड़कर अन्य कोई स्पर्श नहीं कर सकता, मैं एकान्त भाव से श्रीराम का भजन कर रही हूँ।" जानकी के ये वचन हृदय पर आघात करने वाले थे, लक्ष्मण ने उद्विग्न हो कान बंद कर लिये और श्रीराम-नाम का जप करने लगा। सीता के वाग्बाण

उसके अन्तःकरण तक चुभ गये, उसको अपार दुःख हुआ। लक्ष्मण की भर्त्सना करने के पश्चात् सीता विलाप करने लगी। उसका आक्रोश देखकर लक्ष्मण स्तब्ध रह गए।

लक्ष्मण से न रहा गया वह सीता को उद्दिष्ट कर बोला– "वास्तव में स्त्री-स्वभाव अत्यन्त दुष्ट होता है, जिसको वह नौ महीने अपने गर्भ में रखती है, उसको वही पुत्र पराया हो जाता है। स्त्री भाइयों में द्वेष का निर्माण करती है और उस द्वेष को बढ़ाकर उन्हें अलग कर देती है। मैंने जो कहा था, वह सत्य एवं निष्पाप भावना से कहा था। आप श्रीराम के प्रताप के प्रति सन्देह कर मेरी निंदा कर रही है, यह महापाप है। स्त्रियाँ अपनी धर्मरूप मर्यादा का उल्लंघन कर उच्छृंखल कैसे होती हैं, यह मैंने आज अपनी आँखों से देख लिया है। मेरा आचरण जानकी की अभिलाषा रखते हुए नहीं है, इसके लिए सम्पूर्ण प्राणि मात्र साक्षी है। श्रीराम की आज्ञा का उल्लंघन मेरे द्वारा हो, इसके लिए मैं अभिशप्त हूँ। आपको वन में अकेला छोड़कर मैं दूर न जाऊँ- श्रीराम की इस आज्ञा को शिरोधार्य कर मैंने धर्म का पालन किया, जिसके लिए आपने नाना प्रकार से मुझे प्रताड़ित किया और बिना कारण मुझे अभिशाप दिया, अतः यह पाप अवश्य फलीभूत होगा। श्रीराम आपको सद्रूप में नहीं मिलेंगे। आप छह मास तक यह संताप वहन करेंगी। हे जननी, मैं आपका अपत्य हूँ। यह मेरा दृढ़ भाव है। आपके वचन फलीभूत होने पर अनर्थ को भोगना पड़ेगा।"

लक्ष्मण-रेखा खींचकर लक्ष्मण का राम की ओर प्रस्थान– आप जननी हो, मैं आपका पुत्र हूँ, यही सद्भाव मेरे मन में है। मृग का वध करने पर श्रीराम से भेंट होते ही द्वन्द्व बन्धन से मुक्ति मिलेगी। श्रीराम ने आपकी रक्षा करने की आज्ञा की, उसी का पालन करते हुए मैं आपके पास रुका। [illegible] वन में जाते ही राक्षस आपका हरण कर लेंगे। फिर श्रीराम की आपसे दृष्टिभेंट नहीं होगी। करोड़ों [illegible] सहन करने के पश्चात् ही आप राम को देख सकेंगी। आपको असुरक्षित छोड़कर मुझसे जाया नहीं [illegible]। मेरा सम्पूर्ण सत्व आपकी रक्षा करे। आप मेरी भावना न समझ सकती हैं और न ही उसे मानती हैं परन्तु श्रीराम मुझसे पूछेंगे अतः मैं आपकी रक्षा के उपाय करके जा रहा हूँ। अगर मैं श्रीराम का [illegible] निर्विकल्प शुद्ध एवं योग्य हूँ तो मेरी ये मर्यादा रेखा ब्रह्मादिक भी नहीं लाँघ पाएँगे कलिकाल [illegible] भी यह अवरुद्ध करेगी तथा क्षुद्र राक्षस तो इसका उल्लंघन कदापि नहीं कर सकेंगे। राक्षस [illegible] हरण न कर पायें, इसके लिए यह आत्मरक्षण का उपाय आपके लिए किये जा रहा हूँ कृपा [illegible] मेरे द्वारा किये गए इस बन्धन का पालन अवश्य करें; इस रेखा का उल्लंघन न करें। योगी [illegible] एवं तापसी का वेश धरकर भिक्षा माँगने के बहाने वे आश्रम के पास आयेंगे। उन पर विश्वास [illegible] के बाहर न जायें अगर इस रेखा का उल्लंघन कर आप भिक्षा देने हेतु जायेंगी तो राक्षस [illegible] निश्चित ही हरण कर लेंगे और आप अत्यंत दुःखी होंगी" यह बताकर लक्ष्मण ने श्रीराम को [illegible] लिए धनुष बाण सुसज्जित कर शीघ्रता से प्रस्थान किया।

लक्ष्मण की श्रीराम से भेंट व सीता के विषय में कथन– देवताओं में भी राज्यवैभव का [illegible] होता है परन्तु मात्र पितृवचन पालन के लिए राम सबका त्याग कर वन में आये। सीता [illegible] वचन सुनकर मायामृग का पीछा करते हुए निकले। ऐसे श्रीराम को सौमित्र ने चरण वन्दना की। [illegible] ने विद्यमान ध्वज, वज्र अंकुश रेखा देखते हुए लक्ष्मण आनन्दमग्न हो गए। श्रीराम के चरणों [illegible] करने वाले सौमित्र ने श्रीराम को साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया। श्रीराम के चरण स्पर्श होते [illegible] जीवन धन्य होने की सन्तुष्टि प्राप्त हुई। श्रीराम के चरणों का स्पर्श होते ही दूब, पत्ते

तथा मिट्टी भी उसके रजकण मस्तक पर धारण कर उनको वन्दना करते हैं। धन्य हैं श्रीराम के श्रीचरण लक्ष्मण आनन्द-विभोर होकर जब रामनाम गाते एवं नाचते हुए जा रहे थे तो उन्हें श्रीराम दिखाई दिए। मृग का वध कर गंगा के तट पर अश्वत्थ वृक्ष के नीचे श्रीराम विश्राम करते हुए बैठे थे। राम के विरोधियों को जो करोड़ों कल्पांतरों के पश्चात् भी दिखाई नहीं देता, वह सौमित्र को सहज रूप में दिखाई दिया। लक्ष्मण बहुत आनन्दित हुए। वहाँ राक्षस नहीं थे, कोई बन्धन नहीं था। नित्यमुक्त रघुनन्दन सुख सम्पन्न स्थिति में बैठे हुए थे। आक्रंदन युक्त लक्ष्मण को पुकारने का स्वर मायावी था। यह ज्ञात होते ही लक्ष्मण ने श्रीराम की वन्दना की।

श्रीराम और लक्ष्मण की दृष्टि मिलते ही सृष्टि आनन्द से परिपूर्ण हो गई चरण स्पर्श करने के पश्चात् दोनों गले मिले। दो दीपकों के परस्पर मिलने पर दोनों का प्रकाश एक ही होता है। उसी प्रकार राम और लक्ष्मण ने एकात्म-भाव से परस्पर एक दूसरे को क्षेमालिंगन दिया। समुद्र में नमक मिलने पर वह भी समुद्र बन जाता है, उसी प्रकार राम लक्ष्मण पूर्णत्व से परिपूर्ण हुए। दोनों अपना स्वत्व खो बैठे। राम और लक्ष्मण दोनों को अपने विषय में कुछ स्मरण नहीं रहा, दोनों मौन होकर नित्यानंद में मग्न हो गए। सीता द्वारा बुराभला कहा जाना लक्ष्मण भूल गए और पंचवटी जाना भूल गए। स्वानन्द में दोनों लीन हो गए यह तल्लीनता कुछ कालावधि पश्चात् सृष्टि के संरक्षण हेतु टूटी। श्रीराम ने तब लक्ष्मण से पूछा "सीता को अकेली छोड़कर तुम यहाँ क्यों आये हो ? मुझे शीघ्र बताओ। श्रीराम द्वारा सीता की रक्षा के विषय में पूछते ही लक्ष्मण स्तब्ध हो गये। वह कुछ बोल न सके। दुःख से उनका मुख अश्रुपूर्ण और मलिन हो गया। सीता के विषय में पूछते ही लक्ष्मण का दुःखी व म्लान मुख देखकर श्रीराम का मन आशंकित हो उठा। स्वयं सीता ने सौमित्र को दुर्वचनों से संत्रस्त कर मेरे पास भेजकर दुःख दिया 'सौमित्र मेरे वचनों का कभी भी उल्लंघन नहीं करेगा' परन्तु सीता ने मर्मस्पर्शी वचन बोलकर उसे आज्ञा दी यह सर्वज्ञ श्रीराम को ज्ञात हो गया, स्त्री वचनों के तीक्ष्ण बाणों से अन्तःकरण बिंध जाने पर अत्यन्त दुःखी होकर लक्ष्मण मेरे पास दौड़कर आया है, यह भी राम समझ गए। राम द्वारा यह पूछने पर, कि सीता को छोड़कर तुम यहाँ क्यों आये हो ? लक्ष्मण राम के पैर पकड़कर विलाप करने लगे, फिर उन्होंने बताया "करोड़ों विघ्न आने पर भी मैं पंचवटी कदापि न छोड़ता, परन्तु सीता के अभिशाप युक्त वचनों को सुनकर मैं वहाँ से निकल पड़ा उनके कठोर वचन ऐसे थे कि तत्काल मृत्यु हो जाती परन्तु आपका नाम स्मरण करने से मेरे प्राण शेष रह सके। अब आपके चरणों के दर्शन कर मुझे समाधान प्राप्त हुआ। सीता माँ द्वारा बोले गए वाग्बाण समग्र रूप में इस प्रकार थे "हे लक्ष्मण, दौड़ो"। उस माया मृग का यह आक्रंदन सुनकर वह विलाप करने लगीं। श्रीराम युद्ध में बन्दी बना लिये गए हैं अतः शीघ्र दौड़ो- ऐसा जानकी बोलीं फिर उन्होंने कहा "राक्षसों ने राम को घेर लिया है उनका उद्धार करो तुम उनके रक्षक बंधु हो, शीघ्र जाओ।" यह उन्होंने ज़िद की। इस पर प्रत्युत्तर स्वरूप मैंने कहा

"श्रीराम की महिमा ऐसी है कि उनके समक्ष राक्षस मशक के समान हैं। उनके लिए श्रीराम को मारना असंभव है, करोड़ों दैत्य-दानव भी अगर मिलकर राम का सामना करें फिर भी राम को वश में करना उनके लिए सम्भव नहीं है। श्रीराम बाणों द्वारा सबका कंठ छेदन कर देंगे ऐसा बताने पर भी जानकी आपका शौर्य स्वीकार करने को तैयार न थी। उन्होंने विलाप कर, क्रोधित हो मुझे बारंबार जाने की आज्ञा दी। इस पर मैंने यह भी कहा कि श्रीराम की ऐसी आज्ञा है कि मैं आपसे तिल भर भी दूर न जाऊँ अतः मैंने निश्चयपूर्वक जाने के लिए मना किया।मैंने उनसे यह भी कहा कि आप अकेली स्त्री

को यहाँ छोड़कर जाने पर राक्षस आपका हरण कर लेंगे और हम तीनों की निन्दा होगी।' मेरा यह निश्चय सुनकर सीता ने अत्यन्त क्रुध होकर तीक्ष्ण वचन बोलते हुए कहा कि श्रीराम की पुकार सुनकर तुम नहीं जा रहे हो। मुझसे दूर नहीं हो रहे हो अर्थात् राम का राक्षसों द्वारा वध होते हुए मुझे पत्नी बनाने का तुम्हारा विचार है। मेरी अभिलाषा मन में रखते हुए आज तक सेवा का ढोंग रचाकर विश्वास घातक के समान व्यवहार किया। वन में राक्षसों द्वारा श्रीराम के मारे जाने पर तुम मुझे पत्नी बनाना चाहते हो। पर-स्त्री की कामना रखने वाले अति लम्पट, दुष्ट, पापी तुम मुझे अपना काला मुख मत दिखाओ। तुम दुष्ट, भ्रष्ट, चांडाल हो। श्रीराम के शत्रु के रूप में ही तुम वन में मेरे साथ आये हो।" इन वचनों के कारण ही मैं सीता को छोड़कर आपके पास आया हूँ। हे रघुनाथ ! महामारक विष भी मुझे अमृत के सदृश प्रतीत होगा परन्तु सीता के इन वचनों से मुझे परम दुःख हुआ। हे श्रीराम ! अगर पिता क्रोधित होता है तो माता बच्चे को शान्त करती है और अगर माता क्रोधित होती है तो पिता बालक को शांत करता है। इसी भावना से मैं आपके पास आया हूँ।" सौमित्र के ये वचन सुनकर श्रीराम ने उन्हें हृदय से लगा लिया, जिससे लक्ष्मण को पूर्ण सुख सम्पन्नता प्राप्त हुई। दोनों ही सन्तुष्ट हुए। जिस प्रकार शक्कर के पानी में घुल जाने से पानी मीठा हो जाता है, उसी प्रकार राम लक्ष्मण एक दूसरे के सान्निध्य से सुखी हुए। जिस प्रकार पारस के सान्निध्य से लोहे की कालिमा दूर हो जाती है, उसी प्रकार श्रीराम के मिलने से सौमित्र का दुःख दूर हो गया।

सर्वज्ञ श्रीराम को रहस्य का पूर्व ज्ञान– श्रीराम को सीता के वचन सुनकर विस्मय का अनुभव हुआ। माया-मृग की कुशलता का उसे ज्ञान था। माया मृग द्वारा आक्रंदन कर लक्ष्मण को बुलाने के पश्चात् पीछे रावण आकर सीता का हरण करेगा। यह सब कार्य पूर्वनिश्चित रूप से सम्पन्न हुआ। यह जानकर रघुनाथ सन्तुष्ट हुए। राक्षसों के सर्वनाश के लिए उपयुक्त कारण सिद्ध हुआ। माया-मृग के विषय में अवगत होते हुए भी पत्नी के अनुरोध पर राम, मृग का पीछा करते हुए मात्र स्त्री प्रेम एवं आसक्ति के कारण नहीं गये थे। उसके पीछे जो गूढ़ार्थ था वह सुनें।

सीता केवल पत्नी ही नहीं थी, वह परम भक्त थी। अतः राम की सेवा के लिए वे पैदल चलती हुई वन में आयीं। राम अगर राजा होते तो उनकी सेवा का कार्य सेवकों में विभाजित हो जाता परन्तु वन में वह स्वयं सेवा करने के लिए उत्साहपूर्वक आयी थी। सीता के निर्विकार भक्त होने के कारण, राम उनका मनोगत जानते थे। उनका भावार्थपूर्ण करने हेतु वे स्वयं मृग के पीछे भागे थे। भक्त के वचनों को पूर्ण करने हेतु कष्टपूर्वक (खम्भे से नरसिंहावतार) प्रकट हुए, वही श्रीराम सीता के सुख संतोष हेतु मृग के पीछे दौड़े। भक्त की भावना की उपेक्षा न करते हुए उनके वचन की पूर्ति करने वाले श्रीराम इस हेतु मृग के पीछे गये। भक्त की भावना के अनुरूप उसे भगवान् की प्राप्ति होती है– इस कथन में तनिक मात्र भी सन्देह नहीं है। सीता की सद्भावना देखकर ही वे मृग के पीछे भागे। माया मृग का भागना, सीता द्वारा लक्ष्मण की भर्त्सना ये सब उन्हें ज्ञात था।

त्रैलोक्यपावन श्रीराम की कीर्ति का प्रसार करने हेतु सीता ने लक्ष्मण को बाहर भेजा। इसके लिए व अनेक अपशब्द भी बोलीं। सीता की प्रमुख इच्छा यह थी कि श्रीराम लंकाधीश रावण का वध करें। यही उद्देश्य उन्हें पूरा करना था। इसीलिए उन्होंने सौमित्र को अपशब्द कहे। श्रीराम, सौमित्र व सीता ये तीनों पवित्रता की प्रतिमूर्ति थे। यह विचित्र कथा श्रीराम का चरित्र प्रकट करने के लिए ही प्रस्तुत की है। अवतारों का नाट्य प्रकट करने हेतु एवं स्पष्ट करने के लिए कथानुवाद विकट होता है परन्तु

वही निर्दिष्ट परमार्थ है। सीता सती एवं सद्रूप होते हुए भी लक्ष्मण को अभिशाप देती है, यह मूर्खतापूर्ण विधान कहा जा सकता है परन्तु यही कथा के मर्म के अनुरूप है। श्रीराम परस्पर एक दूसरे का मनोगत जानकर ही स्वयं तद्नुरूप व्यवहार करते हैं और अपार यश का सम्पादन करते हैं। श्रीराम के नाम से यह संसार पवित्र होता है। श्रीराम-कथा के अक्षर, परम अक्षर है। इस कथा के चरित्रानुवाद से श्रोता और वक्ता दोनों ही पवित्र होते हैं। श्रीराम-नाम का जाप करने से वक्ता परब्रह्म हो जाता है।

अध्याय १६

[सीताहरण]

लक्ष्मण के श्रीराम के पास जाने के पश्चात् सीता अकेली गुफा में थी। यह अवसर देखकर रावण भिक्षुक के वेष में सीता के पास आया। किसी निर्जन घर में जिस प्रकार कुत्ता प्रवेश कर जाता है, उसी प्रकार राम-लक्ष्मण की अनुपस्थिति में रावण गुफा में सीता हरण के लिए आया।

रावण का आगमन, सीता दर्शन एवं उससे प्रश्न– सीता गर्भ से जन्मी नहीं थी वरन् देह से विदेही थी। लंकानाथ रावण उसका हरण करने के लिए शीघ्रतापूर्वक आया। सीता हरण करते समय उसके भाग्य में भिक्षा माँगना बदा था, उसके हाथों में झोली और वदन में अशुभ चिह्न स्पष्ट दिखाई देने लगे। रावण का विशाल साम्राज्य होते हुए वह क्षणमात्र में भिखारी हो गया। सीता का आश्रम देखते ही राज वैभव दूर भाग गया और दुर्भाग्य से उसे भिक्षा माँगनी पड़ी। सीता का सामर्थ्य ऐसा था कि उसकी अभिलाषा करने वाले को उसने भीख माँगने के लिए बाध्य कर दिया। सीता को लंका में ले जाने पर वह राक्षसों का सर्वनाश कर लंका जला देगी। जिस प्रकार से ओलती में दिये की ज्योति रखने पर वह क्षण मात्र में सम्पूर्ण घर जला देती है, उसी प्रकार सीता भी क्षण मात्र में समस्त राक्षस कुल की होली कर देगी। कामधेनु की अभिलाषा करने के कारण सहस्रार्जुन का नाश हुआ, उसी प्रकार रावण द्वारा सीता का हरण करने पर उसके सम्पूर्ण कुल व राक्षस कुल का नाश होगा।

रावण को सीता के दर्शन होते ही उसका पुरुषार्थ समाप्त हो गया; वह संन्यासी के रूप में दीन हीन भिखारी हो गया। स्वयंवर के प्रसंग में रावण ने सीता को देखा तब भी उसका अपमान हुआ था और अब भिक्षुक का रूप स्वीकार कर उसने स्वतः अपना अपमान कर लिया। सीता की दृष्टि मात्र से ही रावण निष्प्रभ हो गया। वह दीन मुख भिक्षार्थी बन गया। सीता का सम्पूर्ण आकलन उसे हो ही नहीं पाया। शुभ-अशुभ चिह्न वह समझ नहीं पाया। भिक्षु-वेश में दीन हीन भिखारी बनकर वह सीता के पास आया था। छह महीने में अपना घात होगा, यह न समझने के कारण सीता की अभिलाषा रखकर वह अपना कुल सहित आत्मघात करने को उद्यत हुआ था। रावण भिक्षुवेश धरकर नारायण का स्मरण करते हुए स्वयं आश्रम के समीप आया। सीता सुन्दरी को देखते ही रावण की दृष्टि बँध गई। उसके मन में अभिलाषा जागृत होकर अत्यन्त सुन्दर राम की पत्नी को पाने की इच्छा बलवती हो उठी। सगुण स्वरूप सुन्दरी, लावण्यवती जानकी सुखनिधान एवं सुखदायक थी। पवित्र सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति सीता की सुन्दरता से रावण की आँखें तृप्त हुई। वह भूख प्यास सब भूल गया। केवल जानकी के दर्शन मात्र से उसका मन तृप्त हुआ।

सीता को देखते ही उसे अति आनन्द की अनुभूति हुई। इसके सान्निध्य से मुझे सुख और सन्तोष की प्राप्ति होगी। इतना आनन्द तो सृष्टि में अन्यत्र कहीं नहीं होगा। ऐसे सौन्दर्य का तो वर्णन भी नहीं सुना था। सीता को देखकर उसकी इन्द्रियाँ सम्मोहित हो गईं। देवी, गंधर्व-स्त्रियाँ, सुरेश्वरी किसी की इससे तुलना नहीं की जा सकती। रंभा, उर्वशी, किन्नरी इत्यादि का सौन्दर्य तो इसके नख से भी तुलनीय नहीं है। दैत्य-स्त्रियों एवं दानव स्त्रियों से इसकी तुलना नहीं की जा सकती। सावित्री की योग्यता भी इसके सदृश नहीं है। वनदेवी उमा, रमा उसके समान सुस्वरूपा नहीं है। मन्दोदरी भी इसके सामने सूर्य के समक्ष जुगनू के समान है। लावण्य-राशि सीता के रूप की कोई सीमा नहीं है। इसकी वाणी अमृत के सदृश है। चाल हंस से भी सुन्दर। इसके कारण मन और बुद्धि दोनों ही अनियन्त्रित हो जाती है। मनोहारी सीता इतनी सुकुमार है कि चन्द्रकिरणें तक इसे चुभती हैं

रावण विचार करने लगा कि कविजन अन्य स्त्रियों के सुन्दर होने का वर्णन करते हैं परन्तु सीता ही वास्तव में मनोहारी है। इसने मुझे अपना दास बना लिया है। मैंने सम्पूर्ण सृष्टि में भ्रमण किया परन्तु इसके सदृश सुन्दरी नहीं देखी। अगर मेरा इससे मिलन हो गया तो मुझे सुख, सन्तोष एवं स्वानन्द की प्राप्ति होगी सीता के उपभोग की सृष्टि में तुलना नहीं है। यदि मेरे भाग्य में होगा तो सीता मुझे अवश्य प्राप्त होगी। स्वयंवर-प्रसंग में मुझसे धनुष उठ गया होता तो उसी समय सीता ने मेरा वरण कर लिया होता परन्तु वह धनुष ही मेरे दुर्भाग्य का कारण बना। उसके समक्ष मेरे सामर्थ्य की एक भी न चली। अब ये वन में अकेली होने के कारण अत्यन्त संकट में है। अगर श्रीराम यहाँ उपस्थित हो गए तो मेरी गरदन ही तोड़ देंगे। श्रीराम का मन में भय समाया था और उसे ज्ञात था कि राम सीता को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाते। इसीलिए कपट से सीता का हरण करने हेतु रावण भिक्षुक के रूप में आया था और कपटवेश धारण कर संन्यासी बना था।

सीता के समीप आकर सद्भावपूर्वक उसने पूछा– "वन में तुम अकेली क्यों रहती हो ? तुम्हारे साथ कोई दिखाई नहीं देता। तुम अपने विषय में मुझे बताओ। तुम कौन हो ? यहाँ किस प्रकार आयीं एकाकी वन में रहना उचित नहीं है। यहाँ अकेले रहना कठिन है। दण्डकारण्य में अति भयानक राक्षस रहते हैं। वे स्त्रियों को उठाकर ले जाते हैं ब्राह्मणों को मारकर खा जाते हैं। तुम तो राजकन्या के सदृश दिखाई देती हो ? फिर इस भयानक वन में एकाकी क्यों निवास कर रही हो। मुझे सम्पूर्ण वृत्तान्त बताओ।"

सीता द्वारा वृत्तान्त कथन– अतिथि का प्रश्न सुनकर सीता ने विस्तारपूर्वक अपने विषय में कहा– "मैं दशरथ की पुत्रवधू और जनक की कन्या हूँ। मेरे स्वयंवर में रावण से स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध कर श्रीराम ने शिवधनुष को भंग किया। परशुराम को परास्त किया तथा मेरा पाणिग्रहण किया। श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न एक दूसरे पर प्राण तक न्योछावर करते हैं। कैकेई को दिये हुए वचन के कारण राजा दशरथ ने श्रीराम को वन में भेजा। राम के साथ लक्ष्मण भी वन में आये हैं। उस वचन के अनुसार चौदह वर्षों तक राम को वन में रहना है। राम की सेवा के लिए मैं भी वन में आयी हूँ। सावधानी-पूर्वक राम की सेवा एवं मेरी रक्षा करने के लिए प्रतापी वीर लक्ष्मण भी यहाँ विद्यमान है। श्रीराम ने ताड़का का वध किया, सुबाहु को मारा, और मारीच को अपने बाण से आकाश में उछालकर उसका वध किया। [illegible] मेरा स्पर्श करते ही श्रीराम ने बाण के एक ही प्रहार से उसका वध कर दिया। श्रीराम दुष्टों का [illegible] हैं विराध जैसे महाबली राक्षस को एक ही वार में समाप्त कर देने के कारण राक्षस

उनसे थर-थर काँपते हैं। श्रीराम महावीर पराक्रमी हैं। गंगा के किनारे पंचवटी आश्रम का निर्माण कर, अपने वनवास का काल वे सुख, सन्तोष एवं आनन्दपूर्वक व्यतीत कर रहे हैं. अब वनवास के साढ़े तेरह वर्ष श्रीराम ने पूर्ण कर लिये हैं शेष छह महीने समाप्त होने पर वह अयोध्या में प्रवेश करेंगे। अभी स्वर्ण-मृग के वध के लिए वे वन में गये हैं। लक्ष्मण भी उनके साथ गये हैं, तभी आपको यहाँ मैं अकेली दिखाई दे रही हूँ।"

"मुझे अकेला मत समझिये। मेरी रक्षा के लिए राम और लक्ष्मण जैसे दो अत्यन्त पराक्रमी वीर हैं वे थोड़ी देर में मृग का शिकार कर यहाँ आ जाएँगे। तब तक आप यहाँ रुकें। फिर राम आपको पूर्ण भिक्षा देंगे। श्रीराम याचकों के सेवक हैं, आपको देखकर उन्हें आनन्द की अनुभूति होगी। आप क्षणभर रुकें। वे आपको अवश्य भिक्षा देंगे।" सीता के ये वचन सुनकर रावण भय से काँप उठा। इधर उधर देखकर वह भागने का विचार करने लगा परन्तु सीता-हरण की तीव्र इच्छा के कारण वह रुक गया। सीता का विश्वास प्राप्त करने के लिए वह बोला "इस वन में हिंसक पशु बाघ, सिंह, सर्प, जंगली सुअर, भेड़िये, लकड़बग्घे तथा मनुष्य का भक्षण करने वाले राक्षस हैं। स्त्री-स्वभाव के अनुरूप उनसे तुम्हें भयभीत होना चाहिए लेकिन तुम इस भयंकर वन में अत्यन्त निर्भयपूर्वक निवास कर रही हो यह निर्भयता तुम्हें किस प्रकार प्राप्त हुई। तुम इतनी निःशंक कैसे हो ? रावण के इस प्रश्न के उत्तर स्वरूप वह बोली– "हे अतिथि सुनें ! श्रीरघुनाथ वन में हैं। वे महापराक्रमी व तेजस्वी हैं। अपने भक्तों की वे रक्षा करते हैं। एक बार मेरे हृदय पर नख से वार कर एक कौए ने मेरी कामना की। मैंने इस घटना के विषय में श्रीराम को बताया तो उन्होंने दर्भ का एक तिनका उस कौए की तरफ फेंका। उस छोटे से तिनके से ब्रह्मा एवं शिव भी उस कौए को नहीं बचा पाये। वह कौआ त्रिभुवन में भागता रहा। उस छोटे से तिनके से भयभीत हो इन्द्र, वरुण, कलिकाल, यम इत्यादि सभी देव भागते हुए शरण आये। उस तिनके पर नियन्त्रण करना किसी को भी सम्भव नहीं हो पा रहा था। अंत में वह कौआ श्रीराम की ही शरण में आया। उस तिनके से कौए की मात्र बायीं आँख फोड़ते हुए श्रीराम ने स्वयं उसकी रक्षा की। तभी से कोई भी हिंसक प्राणी मेरी ओर बुरी दृष्टि से नहीं देखता। फिर राक्षसों का मेरे समक्ष आना कैसे सम्भव है। श्रीराम ने प्रतिज्ञा की है कि जो भी सीता-हरण का प्रयत्न करेगा, श्रीराम तीक्ष्ण बाणों के वार से उसका प्राण हर लेंगे।"

"आपके मन में यह शंका उठ सकती है कि मात्र पक्षियों पर पुरुषार्थ दिखाने से ही श्रीराम को प्रतापी किस प्रकार माना जा सकता है तो उनके द्वारा रण भूमि में किया गया पराक्रम भी सुनें। श्रीराम को कपट नहीं भाता। वह धूर्त शूर्पणखा जब कपट द्वारा हमें छलने आयी तब सौमित्र ने उसकी नाक काट ली शूर्पणखा का बदला लेने के लिए उसकी ओर से आये त्रिशिरा, खर, दूषण और चौदह सहस्र राक्षसों का श्रीराम ने सम्पूर्ण निर्दलन कर दिया। लक्ष्मण ने अभी युद्ध में भाग नहीं लिया है। उसने अपना पुरुषार्थ इन्द्रजित् के वध के लिए सुरक्षित रखा है। जिस समय खर, त्रिशिरा और दूषण का वध किया, उसी समय श्रीराम ने प्रतिज्ञा की थी कि कुम्भकर्ण और रावण का वध कर के ही वे अयोध्या में प्रवेश करेंगे। श्रीराम के इस शौर्य के कारण समस्त पशु-पक्षी उनसे डरते हैं और इसीलिए मैं वन में सुखपूर्वक बिना भय के विचरण करती हूँ।" अपने विषय में बताकर सीता ने अतिथि के लिए आसन बिछाया तभी वह सीता-हरण की इच्छा से आगे बढ़ने लगा।

लक्ष्मण रेखा; रावण आश्चर्यचकित; सीता का बाहर जाना– रावण को लक्ष्मण द्वारा खींची गई मर्यादा रेखा के कारण आगे जाना असंभव हो गया। बल का प्रयोग करके भी वह उसे लाँघ नहीं पा रहा था। तब रावण को अनुभव हुआ कि यह रेखा सात पातालों के तल तक गहरी है तथा ऊपर नभ-मंडल के अन्तराल तक ऊँची है। उस रेखा को लाँघने के लिए रावण ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति भी लगा दी परन्तु वह सफल नहीं हुआ। उस रेखा के कारण उसकी सफलता का मार्ग बाधित हो गया और वह सीता के समीप पहुँच न सका। वह सोचने लगा कि अगर मैं सीता तक पहुँच ही नहीं सकता तो उसका हरण कैसे करूँगा। लक्ष्मण, सीता को छोड़कर गया है परन्तु उसकी रक्षा के लिए दृढ़ रेखा खींच दी। रावण के लिए अथक प्रयास के पश्चात् भी रेखा को लाँघकर दूसरी ओर जाकर सीता का हरण करना सम्भव न हो सका। 'मारीच मार डाला गया, मैं रेखा के उस पार नहीं जा सकता। अगर इतने में श्रीराम आ पहुँचे तो मेरे दसों मस्तक छेद दिए जाएँगे।' ऐसे विचार रावण के अन्त:करण में निरन्तर चल रहे थे। सीता को देखते ही उसके संयम का बाँध टूट गया और उसने पूर्ण रूप से कपट करने की योजना बनायी। वह सीता से बोला– "संन्यासी अगर स्त्रियों के पास जाता है तो उसे महापापी समझना चाहिए। वह यतिधर्म के बिलकुल अयोग्य होता है। स्त्री दर्शन, स्त्रियों से वार्तालाप, स्त्रियों का सामीप्य भी निन्दनीय मानना संन्यासी का परम धर्म है। श्रीराम ने परमार्थ साधक होते हुए भी धर्म में बाधा डालने वाली यह रेखा क्यों बनायी है ? इस विषय में मुझे संदेह है। अत: इसके कारण ही मैं जा नहीं सकता इस वन में रहने वाले राक्षसों के कारण डरते हुए ही मैं इस वन में आया हूँ और तुम्हें मनुष्य रूप में देखकर भिक्षा माँगने आया हूँ। तुम सम्भवत: मनुष्य वेश में राक्षस सुन्दरी हो। मेरा वध करने के लिए मुझे अत्यन्त आदरपूर्वक बुला रही हो।"

अतिथि के वचन सुनकर सीता बोली "हम निशाचर नहीं हैं अतिथियों के सेवक हैं।" तब सीता को बाहर बुलाने के लिए रावण ने एक चाल चली। वह सीता से बोला- "मैं क्षुधा से अत्यन्त पीड़ित हूँ। आँखों के आगे अँधेरा छा रहा है। अगर तुम्हें अतिथि पर कृपा करनी ही है तो बाहर आकर भिक्षा दो। फिर मैं गंगा के तट पर जाकर शान्तिपूर्वक अपना आहार लूँगा तुम्हारी वाणी अमृत सदृश मीठी है परन्तु इस समय अगर तुमने मुझे भिक्षा नहीं दी तो मुझे क्षुधा सहन नहीं होगी। अत: मैं विमुख हो वापस जाता हूँ।" इस पर सीता बोली– "हे स्वामी, आप विमुख न लौटें, मैं इस रेखा को लाँघकर अपने स्वार्थ के लिए आपको भिक्षा दूँगी। अगर अतिथि विमुख चले गये तो राम-लक्ष्मण रण में कदापि विजयी नहीं होंगे और उनका घात होगा। अतिथि को सुखी करने से भगवान् सुखी होंगे राम लक्ष्मण युद्ध में विजयी होंगे। लक्ष्मण की मर्यादा-रेखा का पालन करने से अतिथि विमुख होंगे। उस पाप का दुःख मेरे पति को भोगना पड़ेगा अत: मैं आपको अवश्य भिक्षा दूँगी।" मन में ऐसा विचार कर निश्चयपूर्वक वह अतिथि के लिए भिक्षा लाने के लिए गुफा में गयी

सीता और देवताओं का संवाद– सीता का मनोगत समझते ही देवताओं में हलचल मच गई। स्वर्ग में वे भयभीत हो उठे। सभी देवता और ऋषि ब्रह्मा जी के पास आये। वे बोले– "देवताओं के बंधनमुक्त होने के लिए यह घड़ी सबसे उपयुक्त है अत: बुद्धि से विचारपूर्वक देवताओं के बंधनमुक्त होने के लिए क्या घटित होना चाहिए यह तय करें। रावण को भिक्षा देते समय रावण सीता को हाथों से स्पर्श करेगा और सीता सती उसे भस्म कर देगी। वह आदिशक्ति जगदम्बा का ही रूप है। जिस प्रकार दीपक का आलिंगन देते ही पतंगे भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार सीता को हाथों से स्पर्श करते ही रावण

भस्म हो जाएगा। रावण के भस्म होने के पश्चात् श्रीराम लका नहीं जाएँगे और इसके परिणामस्वरूप इन्द्रजित् देवताओं को बन्धन से मुक्त नहीं करेगा। यह विचार कर देवता गुफा में आये व सीता की चरण-वदना कर बोले– "अतिथि रावण को भिक्षा न दें।" इस पर सीता बोली– "अतिथि अगर विमुख चला गया तो राम और लक्ष्मण को दुःख होगा। आप सभी देव सर्वज्ञ होते हुए भी मुझे यह कैसा ज्ञान बता रहे हैं," तब देवताओं ने कहा कि– "अतिथि रूप में आकर यह रावण आप का हरण कर लेगा। अतः आप उसे भिक्षा न दें।" सीता ने इसका प्रत्युत्तर देते हुए कहा– "अगर रावण ने मुझे हाथ लगाया तो मैं उसे दंडित करूँगी। मुझे उसका भय कैसा ? वह निरीह रावण दस मुखों वाले कीड़े के सदृश तुच्छ है, आप मुझे उसका भय क्यों दिखा रहे हैं ?" तब देवों ने कहा– "सुनो माते ! हम सब रावण के बंदी हैं अगर आप रावण का नाश कर देंगी तो इन्द्रजित् हमें नहीं छोड़ेगा। हम देवताओं को बंध न मुक्त करने के लिए ही तो आप दोनों ने अवतार लिया है। आप विचार कर पहले की घटनाओं का स्मरण करें।"

देवताओं की विनती सुनकर सीता ने स्मिति बिखेरी। उन्हें वास्तविकता का स्मरण हो आया। उन्होंने प्रश्न किया– "अगर मैं गुप्त स्थिति में रहूँगी तो रावण, जो भिक्षा माँगने हेतु आया है, उसका क्या करेंगे ?" सीता के प्रश्न का उत्तर देते हुए देवता बोले– "रावण को भिक्षा देने के लिए हम मायावी सीता का निर्माण करेंगे।" जानकी हँसते हुए बोली– "साकार और सचेतन रामपत्नी सीता का मायावी रूप निर्मित करना स्वय विधाता को भी सम्भव नहीं है। आप तत्वतः अज्ञानी हैं। पर्जन्य की जलधार का निर्माण अत्यन्त चतुर व्यक्ति भी नहीं कर सकता उसी प्रकार ब्रह्मा एव देव-गण कृत्रिम अवतार का निर्माण नहीं कर सकते। जैसी मेरी सगुणात्मक काया है, वैसी ही मेरे स्वरूप की परछाईं भी है, देवताओं का अभीष्ट सिद्ध करने के लिए मैं उसे भिक्षा देने के लिए भेजती हूँ।" सीता का विचार सुनकर देवगण आश्वस्त हुए। उन्होंने साष्टांग दंडवत् कर सीता की चरण वंदना की और सभी विमान में छिपकर बैठ गए।

मायावी सीता का रावण द्वारा हरण– रावण को भिक्षा देने के लिए सीता की छाया बाहर आयी। उन्हें देखकर सबको ऐसा लगा मानों यही वास्तविक सती सीता हैं स्वरूप, गुण, लक्षण, रूप-रेखा दोनों की समान ही थी। सिद्ध, ऋषि, सुरवर इन सबको वास्तविक सीता का ज्ञान था। यक्ष, राक्षस, दैत्य, दानव तथा मानव जानकी का कौशल देख चकित हुए। जानकी ने अपनी छाया को सजीव किया। सद्भाव समर्थ जानकी ने स्वय अग्निमुख में रहकर अपनी छाया को भिक्षा देने हेतु भेजा। उसे आते हुए (जानकी के रूप में) सबने देखा भिक्षा लेकर शीघ्रता से मर्यादा-रेखा लाँघकर वह रावण के समीप आयी। तब रावण उसकी अभिलाषा से उसका हरण करने का विचार करने लगा। जिस प्रकार छाया स्वरूप के समीप नहीं रहती है, उसी प्रकार मर्यादा-रेखा लाँघकर सीता बाहर आयी। जैसे ही वह भिक्षा देने लगी, रावण ने उसे अपने समीप खींचा। भिक्षा देते हुए सीता का अतिथि द्वारा हाथ पकड़ते ही, उसने हाथ छुड़ाकर उसे भूमि पर गिरा दिया और वह तुरन्त मर्यादा-रेखा के अन्दर जाने लगी। तब रावण ने उसे बाहर खींचा। उसने तत्काल भिक्षु वेश त्यागकर मूल राक्षस का अद्भुत रूप प्रकट किया। दस सिरों एवं बीस हाथों से युक्त रावण सीता के समक्ष खड़े होते हुए बोला– "मैं लंका का राजा, तुम्हें मैं अपनी रानी बनाऊँगा। मेरे सुखभोगों का तुम उपभोग करना।"

"राम दीन हीन तपस्वी है। वन में रहकर तुमने अत्यन्त कष्ट सहन किये। मैं तुम्हें पटरानी बनाऊँगा और मन्दोदरी मुख्य विलासिनी होगी। तुम मेरी गोद में विराजमान होगी और मन्दोदरी मुख्य

सेविका बनेगी। ऐसी हज़ार रानियों को तुम्हारी दासी बनाऊँगा। मैं ब्रह्मा का नाती तथा कुबेर का कनिष्ठ भ्राता हूँ। मेरा वंश अत्यन्त शुद्ध है। अतः श्रीराम की धुन छोड़ दो। मेरे तुम्हारे शयनगृह में वसंत सेवक होगा, स्वयं कामदेव शय्या सज्जित करेगा, चन्द्र अपनी शीतल किरणों से शांति प्रदान करेगा और देवों एवं सिद्धों को भी मैं सेवक बनाऊँगा। इन्द्रादि सुर श्रेष्ठ तुम्हारे दास होंगे। मैं स्वयं तुम्हारा मुख्य सेवक बनूँगा इन अलौकिक उपभोगों को तुम प्राप्त करो। मेरा अशोक-वन देखकर तुम्हारा तन-मन शान्त होगा। लंका भुवन देखकर मेरी महानता स्वीकार करोगी।" जब रावण यह सब कह रहा था, सीता 'राम-राम' कहती हुई आक्रोश कर रही थी। रावण काम-भावना से प्रेरित होकर उसे अपने बाहुपाश में लेने का प्रयत्न कर रहा था। सीता रावण का तिरस्कार करती हुई बोली– "जिस प्रकार दीमक अग्नि को चखना चाहती है, उसी प्रकार तुम्हारी काम-भावना मेरा उपभोग करना चाहती है मेरे प्रति काम भावना रखने के कारण दीमक सदृश तुम भी जलकर भस्म हो जाओगे, पतगा दीपक के समीप जाते ही जलकर भस्म हो जाता है, उसी प्रकार जनक पुत्री सीता के उपभोग की कामना करने के कारण तुम्हारा कुल सहित विनाश हो जाएगा। अहिल्या की अभिलाषा करने वाले सुरेन्द्र के सम्पूर्ण शरीर पर दाग़ पड़ गए थे, उसी प्रकार मेरी अभिलाषा करने के कारण राम के बाणों से तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी। श्रीराम सूर्य सदृश हैं तो तुम मात्र तुच्छ जुगनू हो। हे रावण तुम काजी और श्रीराम अमृत सदृश हैं। श्रीराम क्षीर-सागर हैं और तुम मूत्र से भरे गड्ढे के समान हो। तुम भोग-तत्पर नरदेहधारी शूद्र शूकर के समान हो। श्रीराम जग के जीवन हैं और रावण दूषित जल भरे गड्ढे के सदृश है, जिसके समीप धूर्त ढोंगी बगुले ही निवास करते हैं, श्रीराम के समीप साधुओं का निवास होता है। अतिथि के वेश में कपट करके संन्यासी बनकर आये हुए तुम कपटी, स्त्री-लंपट हो और विषयों के प्रलोभन की बातें करते हो। तुम लालच के वशीभूत होकर मरने वाली मछली के सदृश हो।"

"हम जब वन में आये, उस समय श्रीराम सताइस वर्ष के और मैं अठारह वर्ष की थी। महर्षि वसिष्ठ के मुख से ऐसा सुना था। तुम तो कई वर्षों के बूढ़े हो। विषयों का उपभोग करते-करते वृद्ध हो गये हो फिर भी मेरी कामना करते हुए हे राक्षस, तुम क्यों मरना चाहते हो। मुझे ले जाने का बल तुम्हारे पास है ही कहाँ ? निष्फल दुस्साहस कर रहे हो, श्रीराम अभी दौड़ते हुए आकर एक ही बाण में तुम्हें समाप्त कर देंगे। श्रीराम के बाणों से बचने के लिए तुम कहाँ भागोगे। बाणों के वार से वे तुम्हारा शरीर टुकड़े-टुकड़े कर गिरा देंगे।" श्रीराम का आना निश्चित जानकर उस दुर्बुद्धि रावण ने सीता को उठाकर कंधे पर बिठा लिया और शीघ्रता से वहाँ से चल पड़ा। पिशाचमुख वाला खरसंयुक्त नामक सारथी रथ आगे ले आया। रावण के सीता सहित उसमें बैठते ही रथ ने लंका की ओर प्रस्थान किया।

अध्याय १७

[जटायु-रावण युद्ध]

रावण सीता का हरण करके शीघ्रता से वहाँ से निकला। सीता को रथ में बिठाते समय वह धरती पर गिर पड़ी। रावण ने उसे बालों से पकड़कर रथ पर खींच कर अपनी गोद में बिठा लिया। रावण अत्यन्त प्रसन्न हुआ परन्तु सीता अत्यधिक दुःखी हो आक्रोश करने लगी।

लक्ष्मण के साथ किये गए व्यवहार का सीता को पश्चाताप– सीता आक्रोश करते हुए कहने लगी "हे रघुवीर, हे लक्ष्मण, शीघ्र आइये। भिक्षा माँगने का ढोंग कर, रावण मुझे भगाकर लंका की ओर ले जा रहा है। कहाँ श्रीराम, कहाँ रावण ? उसने कैसे मेरा हरण कर लिया। मैंने लक्ष्मण को अभिशाप दिया, उस पाप का फल मैं भुगत रही हूँ। सौमित्र निष्पाप हरिभक्त था। उसको मैंने संत्रस्त किया। अब मैं कैसे श्रीराम की आस करूँ ? मैंने अपने कर्मों से अपनी दुर्दशा की। सौमित्र की श्रीराम पर अनन्य भक्ति थी। मैंने उस पर मिथ्या आरोप लगाये। इन पापों का ही फल है कि मैं रावण के चंगुल में फँस गई लक्ष्मण को श्रीराम ने मेरी सुरक्षा की आज्ञा दी थी लेकिन मैंने ही उसे तीक्ष्ण वचन बोलकर दूर भेज दिया। अब यह रावण मेरी वेणी खींचते हुए मुझे ले जा रहा है। लक्ष्मण मुझे माता मानता था पर मैंने ही उस पर यह आरोप लगाया कि "तुम मुझे पत्नी बनाओगे। मेरे इस पाप से पृथ्वी भी फट जाय, ऐसी महापापी हूँ मैं। मैंने लक्ष्मण को अकारण अभिशाप दिया, वही मेरा पाप आज फलीभूत हो रहा है मैं स्वयं ही अपने दुःख एवं क्लेश का कारण बनी। कोई दूसरों के साथ छल करता है तो स्वयं भी उस छल के परिणाम को भोगता है। रावण ने मेरे केश खींचकर मुझे इसका पूर्ण अनुभव करा दिया है।"

"क्लेश का अनुभव मुझे शीघ्र ही प्राप्त हुआ। सौमित्र को श्रीराम की प्राप्ति हुई और मैं रावण के चगुल में फँस गई। मैं इस तरह से बँध गई। मैं छल छद्म और वक्र दृष्टि से युक्त महापापिनी सिद्ध हो गई। अब मुझे श्रीराम कहाँ प्राप्त होंगे। केवल दुःख ही मेरे भाग्य में शेष रह गया है। श्रीराम की भेंट तो नहीं हुई, नेत्रों को उनके दर्शन भी नहीं होंगे। सौमित्र को क्लेश देने के कारण ही यह दुःख मेरे दुर्भाग्य से मुझे प्राप्त हुआ। मेरे समान क्लेशदायिनी का मुख भी श्रीराम नहीं देखेंगे। मेरे दुःख का कारण मैं ही हूँ।"

मुख नीचे कर सीता पश्चाताप करती हुई विलाप करती जा रही थी। "महापापी द्वारा श्रीराम नाम का जाप करने से अन्त में उसे परमगति की प्राप्ति होती है। श्रीराम उसे मुक्त करते हैं। वैसी ही अब मेरी गति होगी। सौमित्र को क्लेश देते समय मेरी मति मारी गई थी। अब हे कृपा निधान मुझ पर कृपा करें, इतनी ही इच्छा है। मैं श्रीराम की दासी होते हुए भी राक्षसों ने मुझे दुःखी कर दिया है। आप अपने स्वभाव को सच करते हुए हे श्रीराम, मेरी रक्षा के लिए शीघ्र आयें। हे लक्ष्मण, मैं तुम्हारे चरणों पर अपना मस्तक रखती हूँ। अगर तुम मुझे अपनी माता मानते हो तो तुम्हें दुःख पहुँचाने के लिए मैंने जो वचन कहे उनके लिए मुझे क्षमा करो। हे लक्ष्मण, तुम्हीं श्रीराम के निष्पाप भक्त हो। तुम्हारे हृदय में क्रोध नहीं है। अतः मेरे ऊपर के अपने क्रोध को कृपा कर तुम त्याग दो।"

"हे लक्ष्मण, अब शीघ्र आओ। राघव को साथ लेकर आना। अपने प्रताप से इस रावण का गर्व हरण कर, इसका वध करो। तुम मुझ पर इतने क्यों रूठे हो ? मैं तुम्हारे चरण अपने केशों से पखारूँगी। इस राक्षस ने मुझे अत्यधिक सन्त्रस्त किया है, ये मैं किससे कहूँ। मेरे समान स्त्री जिसने कभी परपुरुष की बात तक न की हो, उसे आज इस रावण ने स्पर्श किया। मैं दुःख से विलाप कर रही हूँ पर रघुनाथ क्या आपने मुझे भुला दिया ? मिथ्या आरोप लगाकर सौमित्र को मैंने दूर भेज दिया, अतः आपके मन में मेरे प्रति क्रोध होगा। परन्तु हे राम, मैं अत्यन्त दीन स्वरों में आपकी विनती करती हूँ, आप शीघ्र आयें। इस वनवास की अवधि में तुम मेरे लिए जनक, जननी, सखा, साथी तथा प्राणों से भी प्रिय थे अतः

मेरे लिए सहानुभूति रखते हुए शीघ्र आकर मुझे छुड़ायें। जिस बाण से आपने विराध का वध किया, वही बाण प्रत्यंचा पर चढ़ाकर शौर्ययुक्त तेज से गरजते हुए आकर मुझे मुक्त करें।"

"हे श्रीराम, मैं पापी हूँ तथापि मेरी उपेक्षा न करें। मैं श्रीराम-नाम का स्मरण कर रही हूँ, श्रीरामनाम के स्मरण से असंख्य पाप भी क्षण में धुल जाते हैं। अतः शीघ्रता से आकर मुझे बंधन मुक्त करें। आपने देवताओं को बंधन मुक्त करने के लिए वन में पदार्पण किया। अब मेरा संकट दूर करने के लिए शीघ्र आयें। हे श्रीराम, मैंने आपको मृग के पीछे जाने के लिए उद्यत किया। वही मेरी दुर्बुद्धि थी। इसीलिए मेरा श्रीराम से वियोग हुआ। यह दुःख मैंने स्वयं ही अपने लिए निर्मित किया है। मैंने ही मृगचर्म की कंचुकी की इच्छा की और मेरे समस्त सुखों का सर्वनाश हो गया। मैंने लक्ष्मण को अपने वचनों से दूर कर दिया अतः महाबली श्रीराम भी मुझसे दूर हो गए। जो स्त्री अपने पति से कुछ माँगती है, उसका जीवन निंद्य होता है। उस लोभ के कारण ही रावण ने मेरे प्रति आकर्षित हो मुझे बन्दी बना लिया। पति स्वयं सन्तुष्ट होकर जो दे, उसे पवित्र मानकर पत्नी को स्वीकार करना चाहिए। मैंने स्वयं अपने मुख से माँगा और यह भयानक दुःख मेरे भाग में आया। मेरे माँगने से मेरा ही घात हुआ। मैं लंकाधिपति रावण की बन्दिनी होकर श्रीराम से दूर हो गई।"

सीता का पश्चाताप उसका सन्देश और विश्वास– सीता स्वयं किये हुए अपराध पर स्वयं ही संतप्त हो रही थी। वह दुःख के अतिरेक से पीड़ित हो कह रही थी "श्रीरघुनन्दन उससे दूर हो गए। लक्ष्मण भी उनके पास से चला गया था। वे दोनों ही मेरा यह आक्रंदन सुन नहीं रहे हैं। मेरा आक्रोश अगर उनके कानों में पड़ गया होता तो वे दोनों शीघ्र ही गरजते हुए अवश्य आते और रावण का बाणों से संहार कर मुझे छुड़ा कर ले जाते।" श्रीराम को सन्देश भेजने हेतु सीता ने द्विज और उनके शिष्यों को ढूँढ़ा पर वे भयभीत होकर भाग गये थे। अतः ऐसे प्रसंग में सीता ने वृक्ष एवं लताओं से ही शरण [illegible] तथा उनसे विनती की कि वे श्रीराम को अवश्य बतायें कि मुझे रावण ले जा रहा है। सीता ने जनस्थान के सभी लोगों से कहा– "मैं जनस्थान के सभी लोगों के चरणों में विनती करती हूँ कि वे श्रीराम को बतायें कि रावण ने सीता का हरण कर लिया है। कर्णिकार, बिल्व, आम्र इत्यादि समस्त वृक्षों को मेरा प्रणाम है। पुष्प, लता, तृण, पाषाण, दैव, पशु-पक्षियों को मैं साष्टांग दंडवत् प्रणाम करती हूँ। [illegible] बाघ इत्यादि क्रूर पशुओं की मैं वन्दना करती हूँ और उनसे विनती करती हूँ कि रावण मुझे ले [illegible] है इसकी सूचना वे श्रीराम को अवश्य दें। काक, बक, हँस, कारंडक, चातक, शुक इत्यादि [illegible] को अवश्य बतायें कि दशानन मुझे ले जा रहा है। जल देवता, वन देवता, आकाश के गुप्त देवता [illegible] सभी श्रीराम से रावण के वध के लिए कहें और बतायें कि रावण सीता को ले गया है। श्रीराम [illegible] संदेश देने के लिए इन सबमें बोलने की शक्ति आ जाय। पंचभुतों से मेरी विनती है कि वे [illegible] को शीघ्र रावण-वध करने के लिए कहें।" इस प्रकार सीता ने जनस्थान के सभी निर्जीव एवं [illegible] प्राणियों को विनतीपूर्वक संदेश दिया।

[illegible] को पूर्ण विश्वास था कि श्रीराम को अगर जानकी नहीं मिली तो श्रीराम स्वर्ग, मृत्यु एवं [illegible] तीनों लोकों में सर्वत्र ढूँढ़कर उन्हें वापस ले जायेंगे। सीता का हरण हो गया है, यह ज्ञात होते ही [illegible] क्रोधित होकर शीघ्र जाकर रावण का वध करेगा इसके लिए उसे क्षण मात्र भी नहीं लगेगा। जब [illegible] को मेरे हरण का वृत्तान्त मिलेगा तब वे जहाँ होंगे, वहीं से बाण छोड़कर उसके प्रहार से [illegible] के [illegible] हर लेंगे और मुक्त करेंगे। इस जानकी को लोक अलोक कहीं पर भी छिपाया गया, राम

उसे फिर भी ढूँढ़कर राक्षसों का संहार कर देंगे और उसे मुक्त करा लेंगे। रावण ने अगर मेरी हत्या की तो वे महाप्रतापी रघुनाथ, यम के दाँत तोड़कर भी मुझे निश्चित रूप से वापस ले जायेंगे। मुझ पर प्रेम के कारण राम, काल को भी परास्त कर सकते हैं, राक्षसों की क्या बिसात ? राम अपने बाणों से निश्चित ही उनका वध करेंगे। ऐसे प्रतापी रघुनाथ, मेरे करुण आक्रंदन के पश्चात् भी क्यों नहीं आते– यह कहते हुए वह पुनः विलाप करने लगी।

सीता स्वयं अत्यन्त दीन-स्थिति में प्रत्येक से अपने विषय में बताकर राम को रावण वध के लिए शीघ्र आने की प्रार्थना करने को कहती। "हे श्रीराम, सौमित्र शीघ्र आओ, मुझे राक्षस ने पीड़ित किया है। हे कृपासागर, मुझे शीघ्र क्यों नहीं मिलते ? हे मेरे पापी प्रारब्ध, दुष्ट दुःख-भोग तुम मर क्यों नहीं जाते मेरा राम मुझ से दूर कर मुझे दुष्ट के वश में कर दिया। मैं जनक-कन्या जानकी, श्रीराम की सेविका होते हुए भी उस दुष्ट दशमुख रावण ने मुझे अपने बन्धन में बन्दी बनाकर दुःखी किया है। हे श्रीराम, तुम्हारी महिमा अगाध होते हुए भी तुम्हारा देहरूपी घर तोड़कर चोर ने तुम्हारी पत्नी की चोरी की है। इससे चराचर में तुम्हारी निन्दा होगी। अपनी लज्जा-रक्षण के लिए तो मेरी पुकार सुनो"। विलाप करती हुई सीता दैन्य-स्वरों में यह प्रार्थना कर रही थी। उसका तीव्र आक्रंदन सुनकर बाघ, सिंह आदि दुःखी हुए। वृक्ष तथा पक्षीगण भी विलाप करने लगे, पृथ्वी का दुःख से हृदय फटने लगा। पाषाण दुःख से द्रवित होने लगे। ऋषि-जन त्राहि-त्राहि करने लगे। सीता के हरण से सभी दुःखी थे। उनका दुःख इतना अधिक था कि आकाश की सीमा में भी नहीं समा रहा था।

सीता का विलाप सुनकर रावण कम्पित हुआ। अगर यहाँ पर शीघ्र ही रघुनन्दन आया तो मेरे प्राण हर लेगा, यह सोचकर वह भयभीत हुआ। जिस श्रीराम ने खर-दूषण आदि का वध किया, बाणों से विद्ध कर मारीच और विराध को मारा और ताड़का व सुबाहु का वध किया, वही श्रीराम क्षण भर में मेरे भी प्राण हर लेगा। रावण को यह सोचकर भय लगने लगा। रोती हुई सीता को अपने बाहुपाश में जकड़े हुए रथ में बैठकर रावण आकाश मार्ग से रथ को ले जाने लगा। रावण का सामर्थ्य ऐसा था कि वह आकाश से रथ को ले जा रहा था। सीता अनवरत आक्रोश कर रही थी। वह आक्रोश जटायु ने सुना तो वह क्रोध से आगे बढ़कर रावण से बोला "मेरे स्वामी की ये पत्नी है, इनकी दुर्दशा करने वाले तुम कौन हो" ?

जटायु द्वारा रावण को रोकना– जब रावण ने सीता का हरण किया तब जटायु वन-विहार के लिए गया था, उसने जानकी का आक्रोश सुना और वह अत्यन्त वेग से उड़ते हुए वहाँ पहुँचा। तीनों लोकों के स्वामी श्रीराम का भक्त होने के कारण, उसने रावण को रोका और बोला "अरे उन्मत्त रावण, तुम सीता को कैसे ले जा रहे हो। मैं पर्वत के समान महाबली मेरे इस वन में होते हुए तुम जानकी को कैसे ले जा सकते हो ? मैं युद्ध करूँगा। पंचवटी आश्रम के पास, मेरे पहरा देने के अनेक स्थान हैं। हे महादुष्ट, तुम दूसरों के द्वार पर आ गये हो परन्तु अब वापस जाने का रास्ता तुम्हें नहीं मिलेगा। श्रीराम की पत्नी को चुराकर ले जाना चाहते हो पर मैं तुम्हारा वध कर दूँगा। जैसे चोरों के पास का सामान छुड़वाकर चोर को मारते हैं उसी प्रकार मैं सीता को छुड़ाकर तुम्हें मारूँगा। चौदह बुर्जों से युक्त राज्य होने का घमंड दिखाते हो और यहाँ चोरी करने के लिए आते हो। हे रावण, तुम्हारे बड़प्पन का घमंड व्यर्थ है। तुम पापी व महाधूर्त हो। श्रीराम की पत्नी को चुराकर ले जाने वाले चोर, मैं तुम्हारा घात करूँगा। श्रीराम तीनों लोकों के स्वामी हैं। मैं रामभक्त उनके लिए तुम्हारा विध्वंस कर दूँगा। जिस प्रकार

पके हुए फल हवा के कारण डंठल सहित टूट जाते हैं। उसी प्रकार दस सिर एवं कंठनाल समूल छेद दूँगा।" जटायु के पंखों के हिलने से जो हवा चल रही थी, उसके कारण रावण का रथ चल न सका। उस रथ में जुते हुए खर पीछे हट गए। तब रावण क्रोधित हुआ। उसने धनुष पर डोर चढ़ायी, जटायु को देखा फिर नालीक और नाराच नामक दो बाण जटायु पर छोड़े। जटायु ने निडरतापूर्वक कहा– " तुम्हारे शस्त्रों को अपने नाखूनों एवं पंखों से तोड़ दूँगा। मेरी चोंच अत्यन्त तीक्ष्ण है, तुम्हारे दसों कंठ उससे काट डालूँगा। अरे रावण, अब तक मैं जटायु यहाँ नहीं था तब तक तुम्हारा दुस्साहस चल गया। अब श्रीराम की पत्नी को चुराकर ले जाते समय मैं तुम्हें मार डालूँगा। रावण तुम दस मुख वाले एक कीड़े के समान हो। अपनी चोंच के प्रहार से मुँह सहित तुम्हारी सभी हड्डियाँ तोड़ दूँगा। श्रीराम की पत्नी को चुराने से तुम्हारा अपयश फैलकर अब कीर्ति क्षीण हो गई है। पापकृत्य के कारण तुम्हारी शक्ति भी चली गई है। हे लंकानाथ, अब तुम्हारा वध करने में एक क्षण भी नहीं लगेगा। पाप के कारण तुम वीरता रहित हो गए हो। तुम्हारे अन्दर अब युद्ध करने का धैर्य ही कहाँ ? सभी राक्षसों को मारकर मैं राम का कार्य पूर्ण करता हूँ।"

रावण का जटायु से युद्ध– रावण ने जटायु पर भयकर बाणों की वर्षा की। जटायु ने अपने पंखों से उन सबको उड़ा दिया। बाणों का प्रभाव क्षीण होता देखकर उसे अत्यन्त क्षोभ हुआ। जटायु के पंखों की फटकार से रावण के बीसों हाथों में चोटें आईं। दसों सिर काँपने लगे। धनुष खींचा नहीं जा रहा था। जटायु के पंखों के आवर्त में फँसा लंकानाथ रथ आगे न ले जा सका। अत्यन्त क्षुब्ध होकर वह जटायु पर आक्रमण करने का मात्र विचार ही करता रहा। जटायु रावण का रथ हिलने ही नहीं दे रहा था। अतः रावण चिल्लाने लगा क्योंकि उसे भय लगने लगा कि अगर पीछे से श्रीराम पहुँच गया तो वह उसे मार डालेगा। मारीच ने कहा था कि 'सीताहरण करने के लिए जाने पर दोनों ही मारे जाएँगे'। ऐसा लगता है कि वही अब सत्य होने जा रहा है। मेरी सहायता करने के लिए इन्द्रजित्, कुंभकर्ण, प्रधान, सेना, कोई भी तो नहीं है। फिर मेरी रक्षा कर, मुझे मरने से बचाएगा कौन ? इस प्रकार स्वतः विचार करते हुए रावण उद्विग्न हो उठा। 'अत्यन्त कष्ट से सीता की प्राप्ति हुई है। इसे लेकर अगर लंका में पहुँच गया तो वहाँ राम नहीं आ सकेंगे। वह कठिन मार्ग राम नहीं पार कर सकते। लंका के चारों ओर किला है। वह दिखाई देने वाला नहीं है। इसके अतिरिक्त उसके चारों ओर समुद्र है। श्रीराम जड़ मानव है, वह उस कठिन मार्ग को लाँघ न सकेगा परन्तु इस समय इस जटायु ने आकर बीच में एक विघ्न खड़ा कर दिया है। शंकर इसका निवारण करें और मैं लंका पहुँच सकूँ। आगे जटायु मार्ग रोके खड़ा है, अगर पीछे से श्रीराम आ गया तो मेरे प्राण ही ले लेगा' रावण के मन में यह डर लगातार बना हुआ था।

रावण ने लगातार सैकड़ों बाण जटायु पर चलाये। जटायु तत्परतापूर्वक उनसे बचते हुए पंख फड़फड़ा कर रावण की ओर झपटा। रावण का मोतियों की झालर एवं सोने तथा रत्नों से मढ़ा हुआ धनुष, अपने नाखूनों से झपट कर जटायु ने नीचे गिरा दिया। रावण के मस्तक में लगा मुकुट, ध्वज, चन्द्रांकित छत्र सभी नीचे गिरा दिये और रावण के शरीर पर अपने नाखूनों से घाव कर दिये। जटायु के पंखों की हवा सहन न होने से रावण थरथर काँपने लगा। जटायु ने चोंच से रावण के रथ को धक्का दे दिया। रावण सीता को पकड़कर रथ से कूद पड़ा। फिर जटायु ने अपने नखों से प्रहार कर रथ में जुते हुए खरों को मार कर और सारथी समेत रथ को चूर-चूर कर अपना पराक्रम दिखाया तो रावण भय से काँप उठा। अपने छत्र, धनुष और रथ का विध्वंस होने से रावण घबरा गया। जटायु ने अत्यन्त वीरतापूर्ण कार्य

किया था जटायु का आवेश देखकर स्वर्ग में देवताओं ने भी उसके शौर्य की प्रशंसा करते हुए कहा "धन्य हो जटायु जिसने राम के हेतु इतना पराक्रम कर दिखलाया।"

रावण ने अपने मन से विचार किया कि, 'जटायु के आ जाने से अब मुझे सीता की प्राप्ति नहीं हो सकती, परन्तु उसे छोड़ दिया तो तीनों लोकों में निन्दा होगी उमा-शंकर सहित मैंने कैलाश पर्वत को आन्दोलित कर दिया। कुबेर को जीतकर उसका विमान छीन लिया असंख्य देवता मेरे पास अभी भी बन्दी हैं इन सब के कारण मेरे मन में बहुत अभिमान था परन्तु उस गर्व को इस पक्षी ने चूर-चूर कर रख दिया। इस जटायु की चोंच अत्यन्त तीक्ष्ण है। उसने सभी शस्त्रों को व्यर्थ कर दिया। अत्यन्त दुःखी होकर रावण इस संकट से उबरने का मार्ग सोचने लगा। अन्त में उसने कपट-मार्ग अपनाने का निश्चय किया। वह राक्षसी गुप्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए सीता को कंधे पर बैठाकर गुप्त रूप से आकाश मार्ग से चल पड़ा। परन्तु जटायु को अरुण की भेंट से दिव्य-दृष्टि प्राप्त हुई थी। सीता को ले जाते हुए रावण उसे सहज रूप से दिखाई दिया। उसने रावण का पीछा किया और उसी दिशा में तेजी से उड़ चला। इसके लिए उसने अपने सबल पंखों का उपयोग किया। उसने रावण के दसों मुखों पर नखों से नोचकर उसे घायल कर दिया। तीक्ष्ण नखों से नोचने के कारण उसके सर्वांग से रक्त प्रवाहित होने लगा। नखों, पंखों एवं तीक्ष्ण चोंच के घावों से रावण बुरी तरह घायल हो गया था। कोई सहायक न होने से रावण को लगा कि अब उसके प्राण नहीं बचेंगे। यह जटायु भीषण योद्धा है। जटायु आकाश में उड़ते हुए रावण के केश, दाढ़ी मूँछें नोचने लगा। भयभीत होकर रावण ने अपने जीवन की आशा छोड़ दी।

रावण मन में सोचने लगा– "मरीच ने कहा था कि जानकी का हरण करोगे तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है।" ऐसा प्रतीत होता है कि उसके वचन सत्य ही होंगे। जानकी को ले जाते हुए यह जटायु मेरा वध कर देगा।' अतः रावण ने भयभीत हो सीता को छोड़ दिया और भागने लगा। भागते हुए रावण कह रहा था- "जटायु ने मुझे संत्रस्त कर दिया है, कोई मेरी रक्षा करो।" इस प्रकार आक्रन्दन करते हुए रावण जब सीता को छोड़कर भागा तो जटायु बोला– "हे लंकानाथ, अगर तुम सीता को मुक्त करोगे तो मैं तुम्हें न मारकर जीवन दान दूँगा।" रावण द्वारा सीता को छोड़ते ही वह अत्यन्त सुखी हुई। जटायु तीनों लोकों में बलवान् है उसे मात्र पक्षी कहना योग्य नहीं है। सीता हरण करने वाले पापी रावण की दाढ़ी मूँछें खींच कर उसे सबक सिखाने वाला जटायु धर्मात्मा ऋषि ही है, परन्तु जटायु द्वारा सीता को मुक्त कराते ही स्वर्ग में देवता चिन्तातुर हो उठे क्योंकि सीता यदि लंका नहीं गयी तो राम द्वारा बन्धन से उनकी मुक्ति सम्भव नहीं होगी, उन्हें यह भय सताने लगा। देवताओं के मन में उथल पुथल मचते ही रावण पुनः सतर्क हो उठा।

रावण ने जटायु को युद्ध के लिए ललकारा। वह बोला "मेरे पास सीता होने के कारण तुम मुझे संत्रस्त कर सके, अब दोनों स्वतन्त्र होकर युद्ध करेंगे और एक दूसरे का पराक्रम और पुरुषार्थ देखेंगे।" इस पर जटायु ने प्रतिउत्तर देते हुए कहा– "गुफा में श्रीराम और लक्ष्मण की अनुपस्थिति में, जिस प्रकार किसी निर्जन घर में कुत्ता प्रवेश कर जाता है, उसी प्रकार तुमने प्रवेश किया और सीता का हरण कर चोरों के समान डर कर भागने लगे। यह तुम्हारी कैसी महानता है ? राम से भयभीत होकर भाग रहे थे, अब मुझसे युद्ध के लिए कह रहे हो, देखें तुम्हारा पराक्रम।" दस मुख और बीस हाथों से युक्त राक्षसराज रावण एक पक्षी के साथ युद्ध के लिए तैयार हुआ। यह पक्षी बलवानों के समाज में वरिष्ठ रूप में प्रतिष्ठित जटायु था। रावण के शस्त्र अर्थात् बाणों को जटायु ने पहले ही ध्वस्त कर दिया

था। अतः रावण जटायु पर मुष्टि प्रहार करने के लिए दौड़ा। अत्यन्त क्रोधपूर्वक अपनी सम्पूर्ण शक्ति को समेटकर रावण ने जटायु पर हाथों से प्रहार किया। जटायु ने अपने नखों से उसके हाथ को विदीर्ण कर डाला। फिर रावण ने दृढ़तापूर्वक लात से प्रहार किया। तब जटायु ने चोंच के आघात से घायल कर रावण को अस्त-व्यस्त कर दिया। अतः रावण भय चकित हो गया। आकाश में उड़ते हुए जटायु रावण के दसों मुखों पर पंखों से प्रहार कर रहा था। चोंच के प्रहार से मस्तक और नखाग्रों से मुख नोंचकर जटायु ने रावण की दुर्दशा कर दी

रावण को जटायु द्वारा लगे घावों के साथ ही, उसके पंखों से उत्पन्न हवा की फटकार भी पड़ रही थी जिससे भयभीत हो वह इधर-उधर सरक रहा था। जटायु नखाग्रों से उसे मार रहा था। जटायु ने पंखों के आघात से रावण को आकाश में फेंक दिया, जिससे आवर्त में ही चक्कर खाकर रावण मूर्च्छित हो पृथ्वी पर मुख के बल गिर पड़ा। उस स्थिति में उसके मन में विचार आया कि 'गिड़गिड़ाकर जटायु से कहे कि अब युद्ध बहुत हो गया। मुझे लगा था कि यह एक क्षुद्र पक्षी है परन्तु यह तो महापराक्रमी धैर्यवान् वीर है। मेरे बीस हाथों को इसने चूर-चूर कर दिया। यह जटायु भयंकर योद्धा है।' जटायु ने रावण को कठोर दंड दिया; रावण के दसों मुख विदीर्ण कर उसे अधोमुख नीचे गिरा दिया और रावण के प्राणों को संकट में डाल दिया।

रावण द्वारा कपट-पूर्वक जटायु को घायल करना– रावण का सामर्थ्य जब जटायु के समक्ष प्रभावहीन हो गया तब अत्यन्त दुःखी होकर उसने जटायु से कपट करने का निश्चय किया। मन में कुछ विचार कर वह तुरन्त जटायु से बोला– "हम दोनों बारी-बारी से वार कर युद्ध करेंगे।" इस पर जटायु बोला– "तुम्हारे पास तो शक्ति ही नहीं है तो वार का प्रत्युत्तर किस प्रकार दोगे ? हृदय पर वार किये जाने पर जो विचलित नहीं होता तथा पलायन नहीं करता, वही सच्चा योद्धा कहलाता है. तुम तो युद्ध धर्म भी नहीं जानते और व्यर्थ ही अपने बल की बड़ाई कर रहे हो।" तत्पश्चात् रावण ने जटायु को श्रीराम की सौगन्ध देते हुए पूछा– तुम्हारी मृत्यु किस स्थान पर है, यह मुझे सच-सच बताओ। बड़े से बड़ा संकट आने पर भी हरिभक्त असत्य नहीं बोलते। हे पक्षिराज, यह ध्यान में रखो कि जो दुष्ट मीठे वचनों में असत्य बोलते हैं, उनका मुख नरककुंड के समान है, उन्हें कालेमुख वाला कहा जा सकता है। इस पर जटायु ने प्रतिउत्तर दिया कि तुम अपनी मृत्यु बताओगे तभी मैं तुम्हें बताऊँगा- ये उन दोनों में तय हुआ.

जटायु बोला, "तुमने मुझे श्रीराम की सौगन्ध दी है अतः मेरे प्राण जाने पर भी मैं असत्य नहीं बोलूँगा। मेरी मृत्यु मेरे दोनों पंखों में निहित है।" पक्षिराज ने सच बता दिया। रावण कपटी और पातकी था उसने झूठ बोलते हुए बताया कि उसकी मृत्यु बायें अंगूठे के नाखून में है। जटायु सत्यवादी सात्विक योद्धा था। उसने उछलकर रावण के बायें अंगूठे का नख छेद दिया। उस समय जटायु के पंख रावण के हाथों में आ गए। उसने वे जड़ सहित उखाड़ दिए। रावण का अँगूठा छेदन होकर, जिस स्थान पर गिरा उसका नाम अखंडापट्टा पड़ा। यह स्थान त्र्यंबक की घाटी के समीप है। जटायु की मृत्यु समीप आते ही वह पड़े पड़े राम के नाम का स्मरण करता रहा। दुष्ट रावण ने कपट किया अतः उसके कुल का सर्वनाश होगा। कपटी, दुष्ट, अत्यन्त पापी, परस्त्री का हरण करने वाला रावण कपट का फल अवश्य भोगेगा। रावण के कपट से जटायु मूर्च्छित होकर ज़मीन पर गिर पड़ा, फिर भी राम से भेंट हेतु उसने आत्मा, कंठ में रोक कर रखी। वह मुख से स्मरण, मन से चिन्तन और आँखों से अवलोकन करते हुए

सतत श्रीराम का ध्यान हृदय में धरे हुए था। जटायु को पाषाण, तृण, वृक्ष, बेल, उपवन इत्यादि सभी स्थानों पर श्रीराम का स्वरूप दिखाई दे रहा था। उसको भावना थी कि मैंने श्रीराम के कार्य हेतु अपने प्राण समर्पित किये अत: कृपालु श्रीराम स्वयं सभी रूपों में प्रेमवश मुझसे मिलने आये हैं।

जटायु के मन में यही इच्छा थी कि जीवन के अन्तिम क्षणों में श्रीराम के दर्शन हों। देह गिरते समय अपने भक्त से मिलने श्रीराम आये हैं। रावण को मैं अपना वैरी नहीं मानता, उसने ही तो परमार्थ में सहायक होकर चराचर में श्रीराम के दर्शन करवाये और मुझे सुख सागर में डुबोकर सुखी किया। अपने भक्तों का मनोगत पूर्ण करना श्रीराम ही जानते हैं। जटायु को जन्म मृत्यु के चक्र से मुक्त कर श्रीराम ने आनन्दमय व सुखी कर दिया।

अध्याय १८

[रावण द्वारा सीता को अशोक-वन में भेजना]

जटायु को रावण ने कपटपूर्वक मार डाला। यह देखकर सीता बहुत दु:खी हुई। जब जटायु के पंख रावण ने खींचकर तोड़े तब वह मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़ा। उसका कष्ट देखकर सीता को अपार दु:ख हुआ। सीता को आशा थी कि 'अगर श्रीराम और लक्ष्मण नहीं भी आये तो जटायु उसे रावण से मुक्त करा लेगा' परन्तु वह स्वयं मृत्यु को प्राप्त हुआ। वह जटायु से बोली "तुम्हारा मरण मुझे ही क्यों नहीं आ जाता। रावण कपटी दुष्टात्मा है, तुम अत्यन्त बलशाली हो और मेरे लिए तुमने अपने प्राण भी दाँव पर लगा दिए। युद्ध में रावण को परास्त कर मुझे छुड़ाया परन्तु उस महापापी रावण ने तुम्हें कपट कर मार डाला।" ऐसा कह अपने दुर्भाग्य को कोसते हुए सीता बोली– "जो मेरा सहायक बना, उसे निशाचर ने मार डाला, अगर श्रीराम त्वरित आते तो तुम्हारे प्राण बच जाते। श्रीराम ने रण में रावण को मारकर मुझे उससे मुक्त कर तुम्हारे प्राण बचा लिये होते। जटायु अपने सम्पूर्ण सामर्थ्य से मुझे बचाने के लिए मेरी सहायता करने आया, मेरा रक्षक बना। उसे भी इस दुष्ट निशाचर ने मार डाला।" उस समय रावण विचार कर रहा था कि सम्पूर्ण चराचर श्रीराम की सहायता कर रहा है। इससे पूर्व कि कोई भी आकर सीता को मुझ से छुड़ा ले, इसे शीघ्र लंका ले जाना चाहिए। भगवान् शंकर ने जटायु का विघ्न तो टाल दिया परन्तु अब दूसरा कोई आ गया तो मेरा लंका पहुँचना असम्भव हो जाएगा अत: शीघ्र यहाँ से लंका को प्रस्थान करना चाहिए।

सीता द्वारा प्रताड़ना; रावण का सीता सहित लंका की ओर प्रस्थान– जटायु का घात हो जाने से सीता व्यथित हो आक्रंदन करने लगी। उसे पकड़ने के लिए रावण फिर दौड़ा। तब सीता रावण से बोली– "तुम मुझे लंका ले गये तो सम्पूर्ण राक्षस-कुल का नाश करोगे एवं तुम स्वयं भी नष्ट हो जाओगे। जटायु से युद्ध करते समय तुम्हें अपने प्राणों की रक्षा करना कठिन हो गया था और तुम अपनी जान बचाकर भागे थे। अब श्रीराम के आने पर तुम्हारे सहित तुम्हारे कुल का नाश भी हो जाएगा। श्रीराम के समक्ष अपार समुद्र और लंका का त्रिकूट कुछ भी नहीं है। वह मात्र एक बाण से ही तुम्हारे सहित समस्त राक्षसों का नाश कर देंगे।" सीता के ये वचन सुनकर रावण क्रोधित हुआ उसने दौड़कर सीता के केश पकड लिये जैसे अतक प्राणी को पकड़ लेता है। रावण के सीता को पकड़ते ही सीता ने क्रोध

से धक्का देकर उसे दूर कर दिया, जिससे रावण लड़खड़ा कर मुँह के बल गिर पड़ा। वह फिर उठकर उसे पकड़ने के लिए दौड़ा जिस प्रकार मेंढक के समीप साँप के आते ही मेंढक थरथर काँपने लगता है, उसी प्रकार सीता का शौर्य देखकर रावण कम्पित हुआ। सीता अगर युद्ध करने को उद्यत हुई तो उसके लिए सामना करना असम्भव हो जाएगा, यह सत्य रावण को समझ में आ गया। श्रीराम की पत्नी अत्यन्त विकट है, यह रावण को अनुभव हुआ। अत: रावण ने अपने बीसों हाथों से उसे कसकर पकड़ लिया। जिस प्रकार स्वप्न में धन के अपार भंडार को कोई पकड़ कर रखता है, उसी प्रकार उसने सीता को पकड़ कर रखा था। 'मुझे सीता प्राप्त हो गई है'- ऐसा रावण का विचार स्वप्न के समान व्यर्थ था। अगर सीता निर्बल होती तो वह उसका बलपूर्वक उपभोग करता परन्तु उसकी सबलता देखकर अन्तत: उसकी शरण आकर रावण ने प्रार्थना की। सीता को रावण के चंगुल में न फँसकर स्वयं को मुक्त करा लेना सम्भव था परन्तु सभी दुष्टों का संहार करने के लिए अपने हरण की विवशता पर वह आक्रन्दन कर रही थी। वह दूसरी सीता (माया सीता) थी, जिसको रावण हरण कर, लंका ले जा रहा था।

अपने अलंकार गिराते हुए सीता द्वारा मार्ग दर्शन– जटायु द्वारा रथ तोड़े जाने पर रावण ने विमान नहीं मँगवाया। वह सीता को लेकर आकाश मार्ग से जाने लगा जटायु द्वारा सीता की मुक्ति से प्रसन्न हुए ऋषिगण पुन: सीता हरण देखकर छटपटाने लगे। रावण द्वारा सीता को ले जाते हुए देखकर प्राणिमात्र दु:खी हुए सीता को कंधे पर डालकर रावण लंका पहुँचने के लिए वेगपूर्वक आकाश मार्ग से जाने लगा। जिस मार्ग से वह सीता को ले जा रहा था, वह मार्ग श्रीराम को अवगत कराने के लिए सीता अपने चिह्न नीचे फेंकती जा रही थी। अपनी माला के फूल गिराते हुए वह मार्ग दिखाने का प्रयत्न कर रही थी। सीता को आशा थी कि उसकी पुकार सुनकर राम अवश्य आयेंगे। इसीलिए मार्ग में स्थान-स्थान पर वह अपने चिह्न डालती जा रही थी। बड़े पर्वत पार करते हुए अति कठिन मार्ग से जाने के कारण श्रीराम को उसे ढूँढना सम्भव हो सके, इसके लिए सीता ने अपने कुछ वस्त्र भी मार्ग में नीचे गिराये। बड़े पर्वत तथा कृष्णा, वेण्या, तुगभद्रा आदि नदियाँ पार कर रावण उसे लंकापुरी ले जा रहा है और उसकी पुकार सुनकर श्रीराम नहीं आ रहे हैं, उसे छुड़ाने वाला कोई भी नहीं है यह विचार कर सीता अत्यन्त दु:खी हुई। श्रीराम को उसे ढूँढ़ने में क्या सहायक हो सकता है यह जानने के लिए सीता जब चारों तरफ देख रही थी, उस समय एक पर्वत के शिखर पर पाँच वानर बैठे हुए उसे दिखाई दिये। ये पाँचों वानर श्रीराम को परम प्रिय होंगे ऐसी उसे दृढ अनुभूति हुई। अत: उसने कुछ वस्त्र वहाँ डाले। बार-बार वस्त्र डालना यद्यपि योग्य नहीं था परन्तु फिर भी अवतार कार्य की महत्ता समझते हुए अपने प्रिय पति को मार्ग बताने के लिए वह वस्त्र डाल रही थी। स्वर्णिम शोभा से युक्त पीताम्बर, दिव्य अलंकार वह मार्ग ढूँढ़ने के लिए छोड़ रही थी। वानरों के मध्य नील, पीत एवं आरक्त जो वानर सखा हैं वे श्रीराम को मार्ग बतायेंगे। जिन पर श्रीराम-नाम अंकित था, ऐसे आभूषण, अँगूठी, कंगन इत्यादि सब पीताम्बर में बाँधकर उन्होंने नीचे डाले। सीता द्वारा डाले गए अलंकार हनुमान के हाथ में पड़े इन्होंने मस्तक से स्पर्श कर उनके प्रति आदर व्यक्त किया और सुग्रीव को इस विषय में बताया। तब सुग्रीव ने हनुमान से कहा– "तुम इन्हें अपने पास रखो। आकाश से ये कैसे आये ?" सुग्रीव ने इस पर आश्चर्य व्यक्त किया। जिनका भाग्य अच्छा होता है, उनके ही हाथ में श्रीराम की अँगूठी आती है। हनुमान आनन्दित होकर रामकार्य के लिए सिद्ध हुए। तभी 'श्रीराम शीघ्र आओ' ऐसे सीता द्वारा उच्चरित शब्द उनके कानों में पड़े। आकाश में कौन बोल रहा है ? इस अद्भुत घटना से वानर चकित हुए। श्रीराम

का अमृतमय नाम नभ से गूँजता हुआ सुनकर, वानर ऊपर दृष्टिकर देखने लगे परन्तु बोलने वाला व्यक्ति उन्हें दिखाई नहीं दिया। शब्द स्पष्ट रूप से कानों में पड़ रहे हैं परन्तु बोलने वाला व्यक्ति दिखाई नहीं देता अगर आकाशवाणी कहें तो शब्द तो आक्रोश युक्त हैं- यह कैसे घटित हो रहा है ?

हनुमान सीता का आक्रोश सुनकर उत्तेजित हो उठे और सीता को मुक्त कराने के लिए आकाश में उड़ान भरी। दोनों मुट्ठियाँ भींचते हुए आँखें फैलाकर क्रोध से थरथराते हुए, पूँछ भूमि पर पटककर रावण के वध हेतु वह देदीप्यमान कालाग्निरुद्र मानों आकाश निगलने के लिए ही आवेशपूर्वक उड़ चला। दस मुखों वाले रावण पर दाँत पीसते हुए, रोम-रोम थरथराते हुए, अत्यन्त भयानक दिखाई देने वाला वह वानरवीर अत्यन्त क्रोधित था। उस वानरवीर की उड़ान की सामर्थ्य ध्रुवलोक तक पहुँचने की है यह देखकर रावण नीचे आकर सीता सहित लंका चला गया। हनुमान द्वारा उसे देखते ही रावण भयभीत हो समुद्र के उस पार शीघ्रता से भागने लगा। जटायु से समान ही यहाँ पर भी भयानक विघ्न उपस्थित होगा, इस भय से रावण ने भागते हुए लंका में प्रवेश किया। रावण को लंका में जाते हुए देखकर हनुमान ने अपने क्रोध को नियन्त्रित किया। उसी समय उसने लंका जलाने तथा राक्षसों के समूह का वध करने का मन में निश्चय कर स्वयं को शांत किया।

लंका में पहुँचने के पश्चात् सीता प्राप्त होने की कल्पना से उल्लसित होकर रावण नाच रहा था। इसके अतिरिक्त 'श्रीराम यहाँ कैसे आयेगा, मात्र छटपटा कर रह जाएगा क्योंकि लंका अत्यन्त दुर्गम है। चारों ओर समुद्र का घेरा है। यहाँ पहुँचने का मार्ग अत्यन्त कठिन है। श्रीराम का यहाँ कोई उपाय नहीं चल सकता'- इस विचार से ही वह प्रसन्न था। सीता को उसने बताया "तुम्हें मैं आकाश मार्ग से लेकर आया हूँ। राम और लक्ष्मण पैदल चलने वाले हैं, वे इस स्थान तक कैसे पहुँचेंगे ? मार्ग के वन में भयंकर हिंसक पशु हैं। दुर्गम पर्वत हैं, नदियों का भीषण प्रवाह है। अतः राम यहाँ किस प्रकार आ पाएँगे ?"

रावण द्वारा विनती; सीता द्वारा उसे धिक्कारना– रावण सीता से पहले घमंडपूर्वक और बाद में विनती करते हुए बोला– "हे सीते, श्रीराम का यहाँ आना सम्भव नहीं; परन्तु विशेष प्रयत्न कर अगर वह आ भी गया तो राम और लक्ष्मण दोनों सामान्य मानव हैं, उन्हें वध करने में कितना समय लगेगा अतः अब तुम उनकी आस्था छोड़ दो। उन दोनों के मिलाकर चार भुजाएँ हैं, परन्तु मुझ अकेले की बीस भुजाएँ हैं, जानकी ! तुम्हारे उस राम का मैं निश्चित वध कर दूँगा। अतः रघुनाथ का यहाँ आना सम्भव नहीं है, ऐसा विचार कर तुम अब मुझसे विवाह कर सुख से राज भोगों का उपभोग करो।"

"पवित्र रत्नों के अलंकार, मनोहारी दिव्य वस्त्र, पैरों की जड़ाऊ पैंजन, मोतियों के चित्रविचित्र हार, चन्दन, अगरु, कस्तूरी, कुंकुम केशर इत्यादि उबटनों का विलेपन और सुखद पुष्प तुम्हें यहाँ प्राप्त होंगे। हम दोनों विमान से नन्दनवन जाकर क्रीड़ा करेंगे अथवा लंकाभुवन, अशोक-वन कहीं भी जाकर सुखों का उपभोग करेंगे। इन्द्रादि देवताओं को तुम्हारी आज्ञा का पालन करने वाले सेवक बनाऊँगा मन्दोदरी सहित मेरी सभी स्त्रियों को तुम्हारी दासी बनाऊँगा, मृग की कंचुकी से बढ़कर तुम्हें मोतियों की कंचुकी धारण करने के लिए, माथे पर लगाने के लिए अर्द्धचन्द्र और हाथी के गंडस्थल से लायी गई मोतियों की जाली मस्तक पर धारण करने के लिए दूँगा। श्रीराम की प्रिया का उपभोग रावण कर रहा है और रावण ने सुन्दरी सीता का हरण किया- इन वाक्यों का उद्घोष सुनने का सुअवसर आदि ऐश्वर्य तुम्हें प्राप्त होगा। पैरों की पैंजन गरजकर कहेगी कि सीता रावण की पटरानी है," रावण अत्यन्त घमंडपूर्वक बोला।

सीता रावण के वचन सुनकर क्रोधित हो उठी। वह उसका धिक्कार करते हुए बोली "हे निर्लज्ज रावण, तुम मरो ! हे दुष्ट, तुम यह क्या कह रहे हो तुम्हारे सदृश निर्लज्ज इस संसार में कोई नहीं होगा। तुम स्वयवर के प्रसंग मे धनुष से प्रताड़ित हुए। भरी सभा में तुम अपमानित हुए श्रीराम द्वारा धनुष का भंग करने से तुम्हारा मुख काला हुआ, फिर उस समय मेरा हरण न कर अपना काला मुख ले वहाँ से पलायन क्यों किया ? तुम भी उस नाक विहीन शूर्पणखा के समान ही हो। तुम्हारा कोई सम्मान नहीं है, व्यर्थ में प्रलाप कर रहे हो। राम के समक्ष तुम्हारा काला मुख रह ही नहीं पाएगा। मेरी अभिलाषा कर भीख माँगने आये, उस समय तुमने मुझे माता कहा, अब पत्नी बनाना चाहते हो। तुम्हारे समान भ्रष्ट त्रिभुवन में कोई नहीं है। संन्यासी बनकर चोरी करते हो, यति बनकर दूसरों के द्वार पर आते हो, तुम अनेक दृष्टियों से मातृगमनी हो, यही तुम्हारी महानता है। जटायु से युद्ध करते समय मृत्यु के भय से अपने प्राण बचाकर मुझे छोड़कर भागे, उस समय तुम्हारा पराक्रम कहाँ गया था ? श्रीराम की सौगन्ध देते ही जटायु ने सच बता दिया और तुमने कपट से जटायु के प्राण ले लिये। मेरे उपभोग की इच्छा करने वाले हे रावण ! यह ध्यान रखो कि कौए को विष्ठा ही भक्षण करनी पड़ती है। अमृतपान तो चकोरों के लिए होता है। उसी प्रकार रावण को राक्षसियों का ही भोग करना पड़ेगा, सीता श्रीराम के लिए ही है। जानकी की अभिलाषा करके व्यर्थ ही मृत्यु का वरण करोगे। हाथी का आभरण गर्दभ पर डालने से, गर्दभ प्राण गँवा देता है। उसी प्रकार सीता की अभिलाषा करने वाले रावण के कुल का ही नाश होगा। जिस प्रकार सभी रस चखने वाले कीटक के दीप चखने पर उसकी मृत्यु निश्चित होती है, उसी प्रकार राज्य का उपभोग करने वाले रावण का सीता की अभिलाषा करते ही प्राणान्त निश्चित है। स्तनपान करने वाला बालक पकवान नहीं पचा सकता वैसे ही हे लंकानाथ, सीता तुम्हें नहीं प्राप्त हो सकती। रत्न अनर्घ्य पवित्र होते हुए भी शालिग्राम की योग्यता नहीं ले सकता। वैसे ही श्रीराम के लिए बनी सीता, हे दशमुख वाले रावण, तुम्हें कैसे मिलेगी ? ऐरावत पर इन्द्र बैठता है, वहाँ अगर गर्दभ बैठेगा तो अवश्य मरेगा। उसी प्रकार सीता की अपेक्षा रखने वाला रावण अपने कुल सहित अवश्य नष्ट होगा। सुन्दर व्यक्ति को दर्पण सुखी करता है जबकि वही नकटे कुरूप व्यक्ति को व्यथित कर देता है। रावण नकटे कुरुप व्यक्ति के सदृश है अतः सीता उसे कभी सुख प्रदान कर ही नहीं सकती। इस प्रकार अनेक उदाहरण देकर युक्तिवादों द्वारा सीता ने रावण की भर्त्सना की। सीता द्वारा किये गए उपहास से क्रोधित हो रावण ने अपने आठ बलवान् कपटी राक्षसों को बुलाकर कहा– "तुम लोग भयंकर राक्षस हो। जनस्थान में राम और लक्ष्मण का वध करने के लिए शीघ्र जाकर रहो। त्रिशिरा, दूषण एवं खर का वध करने वाला राम हमारा शत्रु है। अतः तुम आठों वीर वहाँ जाकर गुप्त रूप से यह कार्य पूरा करने का प्रयत्न करो। राम से सामने सामने युद्ध करने पर, वह सबको मार डालेगा। अतः गुप्त वेश में जाकर उनका वध करो। राम को मारने के लिए जाने पर लक्ष्मण तुम्हें मार डालेगा। अतः दोनों को एक ही साथ मारने का प्रयत्न करो वन में सुप्तावस्था में उन्हें मारना, अथवा भोजन करते समय, विश्राम करते समय पानी पीते समय अवसर देखकर उन्हें मारना। श्रीराम अगर तुम्हें देख लेगा तो तुम बच नहीं सकोगे, वह अपने बाणों की प्रभावी वृष्टि से तुम आठों को नष्ट कर डालेगा। अतः स्वयं को छिपाते हुए वन में सावधानीपूर्वक रहना। सीता को ढूँढ़ते हुए वन में घूमते राम का घात करना। छल, बल, कपट किसी भी तरह दोनों का एक-साथ वध करना। इस कार्य के लिए तुम समर्थ हो, फिर भी अपना कार्य निश्चयपूर्वक सिद्ध करना अगर तुमने राम और लक्ष्मण का वध किया तो वह जनस्थान तुमको ही दूँगा, फिर वहाँ सुख एवं आनन्दपूर्वक रहना।"

सीता रावण के महल में– रावण ने अपने आठ राक्षसों को राम को मारने का काम सौंपा तदुपरान्त वह सीता को अपने भुवन में ले जाने हेतु आया। उसने भुवन को चारों तरफ से सुसज्जित किया। गुढ़ी* तोरण पताकाएँ आदि लगवायीं। उसकी कल्पना थी कि सुन्दर गृह देखकर सीता उसके वश में हो जाएगी। रावण सीता को हाथ पकड़कर अपने भुवन का अपूर्व सौन्दर्य एवं अपना सामर्थ्य दिखाने के लिए एकांत में ले आया। अन्य किसी की नज़र सीता पर न पड़े इसकी सावधानी बरतते हुए वह शीघ्रता से सीता को उस एकांत-स्थल पर ले आया। सीता रावण के साथ उस एकांत स्थल पर अत्यन्त निःशंक रूप से आयी। उसने अपने मन में निश्चय किया कि 'रावण ने अगर मुझसे कोई दुर्व्यवहार किया तो मैं उसका संहार कर दूँगी। जगदम्बा ने जिस प्रकार शुभ-निशुभ और चंडमुंड को दो भागों में विभक्त कर मार डाला, उसी प्रकार इस रावण के बल को मैं खंड खंड कर दूँगी। श्रीराम की सेवा से प्राप्त गहन बल मुझमें है। यह दशमुख वाला रावण नामक कीटक मुझे हाथ तक नहीं लगा सकता। इसके बीसों हाथ मैं अपने बायें हाथ से दबा दूँगी। उसके कुंडल धारण किये हुए दस सिर मैं पल मात्र में कुचल दूँगी। उसकी कंठनाल छेदने के लिए मुझे शस्त्रों की भी आवश्यकता नहीं है। रावण घास के बोझे के समान है, उसका सिर मैं नाख़ून से ही खुरच दूँगी।" सीता ने आगे का भी विचार किया– "अगर इन्द्रजित् और कुम्भकर्ण आते हैं तो उन्हें एक थप्पड़ में मार गिराऊँगी। कुमार, सेना, प्रधान इत्यादि को क्षण-मात्र में समाप्त कर दूँगी। मेरा लंका में आगमन रावण का सेना सहित संहार करने के लिए है, फिर एकांत में मिले इस सुअवसर से भय कैसा ?" श्रीराम की सेवा के सम्पूर्ण फल का तात्पर्य ही है कि भक्त द्वारा भीषण द्वंद्व का नाश सम्भव हो सके। अगर यह सम्भव नहीं हो सकता तो वह सच्चा भक्त कहलाने के योग्य नहीं है। सीता श्रीराम की आत्म-शक्ति होने के कारण वह रावण के हाथों पड़ ही नहीं सकती– इन विचारों का सम्बल होने के कारण एकांत में भी सीता निःशंक रही।

रावण का अनुनय, सीता द्वारा धिक्कार– सीता को मात्र अपने बल पर नहीं प्राप्त किया जा सकता, यह रावण पूरी तरह समझ गया था। अतः उस विषयासक्त रावण ने सीता को प्रेमपूर्वक अपने वश में करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। प्रथम उसने उसके चरणों की वंदना की। उसके चरणों पर अपना मस्तक रखते हुए वह बोला– "विषयासक्त होकर शरण आये हुए मुझ पर, हे सीते, तुम कृपा करो; श्रीराम का त्याग कर मेरा वरण करो। यह मेरी प्रार्थना व्यर्थ मत करो। शरणागत की उपेक्षा न करो। मैंने तुम्हारे चरणों पर मस्तक रखा। तब वे अत्यन्त मुलायम हैं- ऐसा मुझे अनुभव हुआ। हाथों को यह स्पर्श अत्यन्त मृदु लगा, जिसके कारण मेरा मन उपभोग के लिए आतुर है। जिसके सुकोमल चरण इतने सुखदायी हैं, उसका सम्पूर्ण उपभोग अगर प्राप्त हो सका तो अत्यन्त सुख की अनुभूति होगी अतः मेरा निवेदन स्वीकार कर मुझ पर कृपा करो। अन्यथा मैं रावण अत्यन्त गर्वीला हूँ, ब्रह्मादि देवों की शरण भी मैं नहीं जाता। दानव और मानव तो मेरे समक्ष तुच्छ हैं परन्तु मैं तुम्हारे चरणों की वन्दना कर कहता हूँ कि 'मैं तुम्हारा आज्ञाकारी सेवक बनूँगा, नित्य तुम्हारी कृपा-याचना कर भोग करूँगा'- यह कहकर रावण ने सीता के पैर पकड़कर अत्यन्त दीन स्वरों में विनती की कि 'भोग के लिए मुझे स्वीकार करो।'

सीता रावण के वचन सुनकर एवं व्यवहार देखकर हँसी और उसको झटकारते हुए बोली– "श्रीराम सुरवरों के लिए भी वन्दनीय हैं। उनके समक्ष राक्षसों का राजा तुच्छ है। जिस प्रकार से आरोहण

---

* स्वागत का प्रतीक

के लिए गजेन्द्र को छोड़ कर कोई गर्दभ को चुने, उसी प्रकार मेरे समक्ष तुम हो। रघुपति छोड़कर तुच्छ रावण का भोग करना अमृतपान छोड़कर कौए की विष्ठा-भक्षण करने के सदृश है परन्तु यह कैसे सम्भव है ? सत्संगति छोड़कर सुअरों की पंक्ति में बैठने के सदृश, रघुनन्दन छोड़कर दुर्मति रावण का उपभोग करना है। अरे, कौए के घर श्राद्ध होने पर पितृतर्पण के लिए विष्ठा का ही प्रयोग होगा, पर क्या ऋषिजन उस कौए के खाद्य को स्वीकार करेंगे ? ऐसा कहते हुए सीता ने अनेक प्रकार से रावण को धिक्कारा।

रावण का क्रोध, पुनः सीता द्वारा धिक्कार– सीता द्वारा किये गए अपमान से रावण अत्यधिक क्रोधित हुआ और निश्चयपूर्वक बोला– "अब मैं कल्पान्त तक भी तुम्हें श्रीराम के दर्शन नहीं होने दूँगा। राम से भेंट और वार्तालाप तो मैं करने ही नहीं दूँगा। हे सीते, सावधानीपूर्वक सुनो ! मैं तुम्हारा वध करूँगा अथवा तुम्हारे मेरी शरण आने तक तुम्हें संत्रस्त कर दूँगा। जब तक तुम मेरी शरण नहीं आतीं, तब तक तुम्हें अन्न, जल, अभ्यंग स्नान, सुखासनों पर निद्रा इत्यादि कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। जब तक तुम मेरी पत्नी होना स्वीकार नहीं करतीं, तब तक तुम्हारे मस्तक पर विभिन्न प्रकार के प्राणी भ्रमण करेंगे और वस्त्र वज्र के समान प्रतीत होंगे। तनिक उस तरफ देखो ! इन्द्रजित्, कुंभकर्ण, कुमार, प्रधान और करोड़ों राक्षस-गण विद्यमान हैं। उनके समक्ष श्रीराम एक तुच्छ कीटक के समान है। श्रीराम और लक्ष्मण तो राक्षसों की खाद्य-सामग्री हैं। तुम्हें कौन मुक्त करायेगा ? लेकिन तुम मूर्ख और हठी हो. अरे, मेरे राक्षसों द्वारा आक्रमण करते ही राम-लक्ष्मण का अन्त हो जाएगा। अतः हे सीते ! अपना दुराग्रह छोडकर मुझे अंगीकार करो। तुमने अपने महापापों का फल भोगने के लिए वन में राम के साथ कष्ट उठाये और अब तुम्हारे पुण्यों के फलस्वरूप तुम्हें लंकेश प्राप्त हुआ है। अतः जानकी, तुम इस सुख का उपभोग करो। अगर तुम्हारे भाग्य में पाप ही होगा तो तुम लंकानाथ का त्याग कर श्रीराम का उपभोग करने का हठ करोगी। परन्तु वह तो अब मर चुका है"- रावण ने सीता को भयभीत करने के लिए कहा।

परन्तु सीता रावण के वचन सुनकर ज़ोर से हँसी और बोली– "अरे, तुम्हीं मेरा उपभोग करने का निमित्त बनाकर मृत्यु के समीप धरना देकर बैठे हो। पतंग दीपक का आलिंगन करते ही तेल के साथ ही जलकर मर जाता है। मेरे उपभोग की इच्छा करने के कारण हे रावण, तुम उसी दुर्दशा तक पहुँच रहे हो। परस्त्री की इच्छा रखने के कारण चोरी करने से आयु, यश, कीर्ति इत्यादि बातें तुमसे दूर हो गईं। तुम्हारी मृत्यु से निश्चित ही लंका को वैधव्य की प्राप्ति होगी। श्रीराम को मारने के तुम्हारे वचन निःसंशय ही असत्य हैं। अतः जो मैं कह रही हूँ वह ध्यान से सुनो ! श्रीराम की महानता को तुम नहीं जानते। मृत्यु स्वयं श्रीराम की आज्ञा का पालन करती है। दशानन की कुल-सहित मृत्यु और राक्षसों का संहार राम के बाणों से होने वाला है। उनका बाण अत्यन्त तीक्ष्ण होता है। अतः समुद्र भी उसे मार्ग देगा। पर्वत श्रेणियाँ उन बाणों से भेद दी जाएँगी और अन्त में तुम्हारे दसों कंठों का छेदन होगा. लक्ष्मण क्षणार्द्ध में ही सबल एवं रण प्रवीण इन्द्रजित् का वध करेगा तथा युद्ध में घायल होकर कुमार, वीर, प्रधान, सैन्य इन सभी के प्राण पखेरू उड़ जाएँगे। श्रीराम का बाण लगते ही कुंभकर्ण के नाक-कान कटकर वह खड़े खड़े ही प्राण त्याग देगा।"- यह बताकर सीता ने रावण की ओर क्षुब्ध दृष्टि से देखा रावण उसे देखकर कम्पित हो उठा। उसने तुरन्त कुछ क्रूर दूतों को बुलवाया।

रावण ने विचार किया 'इसके साथ एकान्त में रहना योग्य नहीं है क्योंकि यह क्रोधवश मेरा वध कर देगी।' तत्पश्चात् वह अपना हेतु कैसे सिद्ध करे, इस विषय में सोचने लगा। इसका बलपूर्वक

उपभोग नहीं किया जा सकता। विनती करके भी यह मुझे स्वीकार नहीं करती अतः यह वास्तव में पतिव्रता है। राजभोग से भी इसे वश में करना सम्भव नहीं है। रावण ने सीता का पतिव्रत स्वीकार किया। अपने स्वार्थ के लिए उसने जानकी को जीवित रखा। उसने अपनी बहन त्रिजटा से कानों में, सीता को अशोक-वन में ले जाकर रखने के लिए कहा।

अशोक-वन के विषय में सुनते ही सीता को शुभ-शकुन दिखाई दिए और उसका दुःख समाप्त हुआ। अब उसे ऐसा लगा कि अवश्य उसकी श्रीराम से भेंट होगी। अशोक-वन के विषय में सुनाई देते ही वह नेत्रों के समक्ष अशोक-वन की कल्पना करने लगी। श्रीराम के हृदय-भुवन में भी अशोक दिखाई दिया, अतः सीता वहाँ जाने के लिए उत्सुक हुई। सीता को अशोक-वन में रखा गया। अशोक में श्रीराम का निवास होता है अतः वे सीता के समीप ही रहेंगे। जहाँ अशोक होता है वहाँ श्रीराम का निवास होता है अतः सीता स्वयं भी अ-शोक स्थिति को प्राप्त हुई।

अध्याय १९

[श्रीराम का सीता के लिए शोक]

सीता को अशोक वन में भेजने के पश्चात् रावण ने अनेक दुष्ट एवं भयानक राक्षसियों को सीता को भयभीत करने के लिए भेजा। उसे ऐसा विश्वास था कि भयभीत होकर ही सीता उसके वश में हो जाएगी। सीता के साथ रावण ने उस पर पहरा देने हेतु अत्यन्त विकट, विकराल, कुरूप एवं विकृत राक्षसियों को रखा।

राक्षसियों द्वारा सीता को भयभीत करना– सीता के संरक्षण के लिए रखी गई दासियाँ अत्यन्त भयानक दिखाई देती थीं। विभिन्न रूपों की विभिन्न आकारों की भयानक, विद्रूप राक्षसियाँ सीता के समीप आयीं। एक का मुख अत्यन्त विकराल था। एक राक्षसी के एक ही कान था। वह कराल नामक राक्षसी नग्न थी। उस पर उसके विशाल कान का ही आवरण था। उसके कान के फटकने से नक्षत्र ओलों की भांति नीचे गिरते थे। सुरासुर भी जिससे भयभीत रहते थे, ऐसी भयानक राक्षसियाँ सीता को भयभीत करने हेतु आयीं। एक राक्षसी के केश काँटे के सदृश तथा फैले हुए थे, वे लोकपालों को भयभीत करते थे एक के नेत्र मस्तक पर थे। ऐसी राक्षसियाँ जानकी को सताने के लिए आयीं, एक के कान उसके लिए शय्या के समान थे एक कानों के आवरण में ही थी। उन कानों से त्रिभुवन भयभीत था। एक के स्तन इतने भयानक और बड़े थे कि उनके आघात से राक्षस भी मृत्यु को प्राप्त हो जाएँ, विकराल मुख, फैली हुई दंत-पंक्ति कि दाँतों से ही दिग्गजों का चूर्ण बना दे। अनेक वीर उस दंतपंक्ति के नीचे आकर अपने प्राण गँवा बैठे। एक राक्षसी के केश इतने लम्बे थे कि वे ही उसके वस्त्र एवं बिछावन थे। वे केश बाण के अग्रभाग के सदृश तीक्ष्ण थे कि उनके भय से भयभीत हो उसके सामने कोई टिक नहीं सकता था। उन राक्षसियों के समूह में कोई घोड़े के सदृश मुखवाली, कोई अजामुखी तो कोई गजमुखी, सिंहमुखी, श्वानमुखी, शूकरमुखी आदि विकराल राक्षसियाँ भी थीं। ऊँट के सदृशमुख लम्बे होंठ वाली एक ही घूँट में प्राणी को निगलने का सामर्थ्य रखने वाली राक्षसियाँ थीं अत्यन्त मोटी

घमडी, लाल कँटीली जीभ वाली एक ऐसी राक्षसी भी थी, जिसे देखने मात्र से प्राणी प्राण त्याग दे। मरे हुए राक्षस उसका भोजन थे। ऐसी सब राक्षसियाँ सीता के समीप आकर उसे भय दिखाती थीं

राक्षस मनुष्यों को खाते हैं परन्तु राक्षसों को भी खाने वाली विकराल राक्षसियाँ रावण ने सीता के पास भय दिखाने के लिए भेजीं। उनसे भयभीत होकर सीता उसके वशीभूत हो जाएगी ऐसी रावण की कल्पना थी। टेढ़ामुख, लम्बी नाक, उस नाक की लम्बाई और बढ़ा सकने वाली ऐसी राक्षसी थी कि उस राक्षसी की साँसों के आवर्त में संसार सैकड़ों वर्षों तक शतकानुशतक छटपटाता रहे। उसकी नाक में विद्यमान बालों में फँसे हुए भैंसे चिल्लाते थे, सिंह तड़पते थे। उसके भयानक आकृति वाले मुख में हाथी चक्कर खा जाते थे। अपने नखों का आयुध के रूप में प्रयोग करने वाली उस क्रूर राक्षसी के नख अत्यन्त तीक्ष्ण और लम्बे थे। उन नखों से इन्द्रादि देव भी डरते थे। उन नखों का आघात इतना भयकर था कि उससे शस्त्र चूर्ण-चूर्ण हो जाते थे। पर्वत मैदान में बदल जाते थे। इस प्रकार नखों के आयुध से युक्त अनेक दुष्ट राक्षसियाँ थीं। एकपाद, त्रिपद, पंचपाद, हस्तपाद इत्यादि राक्षसियाँ भी शस्त्रों से सुसज्जित थीं। वे अत्यन्त उन्मादित थीं।

श्री वाल्मीकि रामायण में अनेक राक्षसियों का वर्णन है परन्तु वह विस्तारपूर्ण मुझसे नहीं किया जाता क्योंकि उसके कारण यह कथा और ग्रंथ बढ़ता जाएगा। आगे की कथा की तारतम्यता न टूटे इसीलिए कृपाकर साधु संत क्षमा करें। स्वयं रावण उन राक्षसियों को क्या कह रहा था वह सुनें "सीता को भयभीत करो, अत्यन्त तेज़ आवाज़ में गर्जना करो, आवेशपूर्वक अपशब्दों का उच्चार करो, जिससे भयभीत होकर वह थरथर काँपे, उद्विग्न हो, भय से मूर्च्छित होकर गिर पड़े। जब तक वह स्वयं यह नहीं कहती कि 'मैं रावण को स्वेच्छा से स्वीकार करती हूँ' तब तक उसे भयभीत करती रहो।"

राक्षसियों का प्रयत्न, सीता पर परिणाम न होना– रावण ने राक्षसियों को अशोक वन में भेजने से पहले कहा कि "तुम्हारे भय दिखाने पर अगर अनन्य भाव से सीता मेरी शरण में आने के लिए तैयार हो तो उसे समझाते हुए सुखी और शान्त करो। उससे कहो कि हे सीते, तुम भाग्यशाली हो कि तुम्हें दशानन जैसा पति मिला. वश में होते ही उसे आनन्दपूर्वक मेरे पास लाओ " रावण की आज्ञा सुनने के पश्चात् सब राक्षसियाँ एकत्र होकर गड़ासे, मुद्‌गर, त्रिशूल इत्यादि शस्त्र हाथों में लेकर भयंकर गर्जना करती हुई अशोक-वन में आयीं। उनकी गर्जनाओं से आकाश गूँज उठा. स्वर्ग में देवता काँपने लगे। पृथ्वी पर नर, किन्नर, ऋषिगण भयभीत होकर चिल्लाने लगे। राक्षसियाँ गरज कर कह रही थीं– "हे सीते तुम्हें मारकर हम तुम्हारा माँस खाएँगे। तुम्हारे कंठ का रक्तपान करेंगे। तुम्हारी हड्डियों की माला बनाकर धारण करेंगे, तुम्हारे शरीर की शिराएँ निकाल कर उनकी खीर बनाकर खाएँगे और तुम्हारा यकृत बाहर निकालकर उसका भक्षण करेंगे। ऐसा कोलाहल मचाते हुए वे सीता के समीप आयीं। सीता [illegible]-मात्र भी भयभीत नहीं हुई। श्रीराम का स्मरण करते हुए वह निःशंक होकर शांत भाव से बैठी रही। राक्षसियों ने जब सीता को समक्ष देखा तो वह स्वयं ही भय से काँप उठी। सीता की क्रोधपूर्ण दृष्टि ही प्राण हर लेगी, इस भय से वे भयभीत हो गई और तेजी से भागने लगीं। सीता को भयभीत करने के चिन्तन में वे स्वयं ही भयभीत हो गई क्योंकि श्रीराम स्मरण की महिमा ही ऐसी है, जिससे भक्तों को किसी प्रकार के द्वन्द्व की बाधा नहीं रह जाती। राक्षसियाँ रावण के पास लौट गयीं और उसे बताने लगीं–सीता हमसे तनिक भी भयभीत नहीं हुई इसके विपरीत सीता ने ही हमें भयभीत कर दिया।"

रावण यह सुनकर स्वयं अपने आप से ही बोला "सती सीता वास्तव में निःशंक, धैर्यवान्, और बड़ी पतिव्रता है। मुझे वह उपभोग हेतु कभी प्राप्त नहीं होगी, मेरा सम्पूर्ण कष्ट व्यर्थ हो गया।"

राम-लक्ष्मण का सीता की खोज हेतु प्रस्थान; लक्ष्मण को दोष देना– इधर श्रीराम और लक्ष्मण ने एक दूसरे से मिलने पर आश्रम में सीता अकेली होने के कारण शीघ्रता से आश्रम की ओर प्रस्थान किया। श्रीराम की बायीं आँख फड़ककर अशुभ संकेत दे रही थी। मार्ग में श्रीराम को बार बार ठोकर लग रही थी। अतः वे लक्ष्मण से बोले– "हे सौमित्र ! सावधानीपूर्वक सुनो। अशुभ संकेत लगातार मिल रहे हैं, मुझे आशंका है कि सीता के दर्शन होंगे या नहीं। लक्ष्मण, आश्रम में क्या सीता अकेली होगी ? सीता की चिन्ता के कारण श्रीराम बार-बार यही प्रश्न पूछ रहे थे। फिर उन्होंने लक्ष्मण को दोष देना प्रारम्भ किया।

"आश्रम में सीता को अकेली छोड़कर तुम यहाँ क्यों आये ? मेरी पत्नी राक्षसों द्वारा हर ली गई तो उसे कौन मुक्त कराएगा ? स्त्री के कुछ कहने मात्र से क्रोधित हो, तुमने पंचवटी क्यों छोड़ी ? अब वह हठी रावण सीता का हरण कर लेगा। तुमने बहुत बड़ी भूल की है। निरन्तर अशुभ और बुरे शगुन हो रहे हैं। अतः सीता वहाँ आकर दिखाई देंगी, यह मानने को मेरा मन तैयार नहीं है।" वहाँ आश्रम के आसपास सीता कहीं भी दिखाई नहीं दे रही थी। पंचवटी में सर्वत्र ढूँढ़ा, गंगा के दोनों किनारे तथा वन में चारों तरफ ढूँढ़ने पर भी सीता कहीं दिखाई नहीं दी। उसे ढूँढ़ने के लिए ऋषिजनों से पूछना भी सम्भव नहीं था क्योंकि भय से वे पहले ही भाग चुके थे। सम्पूर्ण परिसर में मनुष्य कहीं नहीं दिखाई दे रहा था। तब लक्ष्मण का मन आशंकित हुआ। उसके मन में विचारों का बवंडर उठने लगा। 'श्रीराम को जिसका भय था, वही यहाँ घटित हुआ है। इस सृष्टि में इस अपयश के लिए मैं ही एकमात्र कारण हूँ। इस अपयश का कलंक मेरे ही माथे पर लगेगा। सीता ढूँढ़ने पर भी दिखाई नहीं देती, अब मैं श्रीराम से क्या कहूँ ?'

वन में सीता को ढूँढ़ते समय वृक्ष, फल, फूलों के माध्यम से अपना दुःख व्यक्त कर रहे थे। जिस प्रकार माता के अभाव में सन्तानें दीन-दुःखी हो जाती हैं, वैसी ही उन वृक्षों की स्थिति हो गई थी। वृक्षों के समान ही पशु-पक्षी भी दुःख से विलाप कर रहे थे। वनश्री के अभाव में वन निष्प्राण दिखाई दे रहे थे। पक्षिणी के पारधी के जाल में फँसने पर उसके बच्चे, जिस प्रकार तड़पते हैं, उसी प्रकार सीता के जाने पर सर्वत्र उदासीनता की छाया फैली हुई थी। सीता के दुःख से पाषाण भी द्रवित होने लगे थे। घास में से जलबिन्दु प्रवाहित होने लगे थे। सभी दुःखी थे। इस प्रकार की उदासी देखकर राम सन्तुष्ट हुए और वह अपने अवतार के उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए पुरुषार्थ हेतु प्रवृत्त हुए।

श्रीराम के मन में विचार आया– "मेरी पत्नी सीता स्वयं ज्ञानी है। रावण का ससैन्य-वध का उद्देश्य परिपूर्ण करने के लिए वह स्वयं ही लंका गयी है। राक्षसों के सर्वनाश हेतु ही वह गयी है। मैं पाषाण-सेतु से समुद्र को पारकर लंका आकर रावण व कुंभकर्ण का वध करूँगा' इस विचार से श्रीराम के मन में स्फूर्ति का संचार हुआ। राक्षसों का संहार करने के पश्चात् क्या करना है, इसका श्रीराम ने निश्चय किया। राक्षसों को नष्ट कर, देवताओं को बंधन मुक्त करके, रामराज्य की स्थापना उनका परमउद्देश्य था। श्रीराम सर्वज्ञ होने के कारण उनको भविष्य का पूरा ज्ञान था परन्तु सीता को ढूँढ़ने के लिए भटकना उनके अवतार की दृष्टि से अवश्यंभावी था। अतः इस भूमिका का निर्वहन करने के लिए श्रीराम विलाप करते हुए सीता की खोज हेतु निकले। श्रीराम निश्चित रूप से अवतार होते हुए भी

लोककल्याण के लिए गुरु वसिष्ठ ने उनके लिए जो परमार्थयुक्त कार्य निश्चित किये थे, राम तदनुरूप आचरण करते हुए उनका पालन कर रहे थे। श्रीराम की स्थिति दोहरी थी। एक ओर तो उस परब्रह्म को अन्तर्मन में सर्व ज्ञान था परन्तु बाह्य जगत् में वे सीता के लिए विरह जन्य व्यवहार कर रहे थे। अन्तर्मन में वे निष्काम ब्रह्म, बाह्य जगत् में सीता के लिए दुःखी होने का भ्रम उत्पन्न कर रहे थे। वे अन्तर्यामी श्रीराम बाह्य रूप में अत्यन्त दयनीय अवस्था में जीवों, वृक्षों तथा बेलों से अत्यन्त व्याकुल होकर, 'सीता कहाँ है ? मुझे कृपाकर बतायें' ऐसी विनती कर रहे थे। एक ओर निज बोध श्रीराम अति सुखद और दूसरी ओर दुःख से बोझिल, हृदय में आनन्द तथा बाह्य रूप में अत्यन्त दुःख, अद्वैतानुसार अन्तर्मन में सर्व-त्याग परन्तु बाह्य रूप में सीता के प्रति आसक्ति, अन्तर्मन में निश्चिंत परन्तु बाह्य रूप में विचलित होकर भटकना, अन्तर्मन में विरक्त परन्तु बाह्य रूप में छटपटाहट अर्थात् अन्तर्मन में आत्म-सुख से परिपूर्ण परन्तु बाह्य रूप में नैराश्य से अत्यधिक दुःखी दृष्टिगत हो रहे थे। अन्तर्मन में निराशा का लेशमात्र न होते हुए भी सीता के दुःख में सन्त्रस्त होने का आभास वे संसार को करा रहे थे।

श्रीराम मूलतः संताप से परे निर्मुक्त होते हुए भी स्वयं को संताप से युक्त विषयासक्त होने का आभास करा रहे थे। अन्तर्यामी एवं प्राणिमात्र के प्रति कृपालु होते हुए भी युद्ध में पराक्रम द्वारा राक्षस-गणों का नाश कर रहे थे। अकर्मात्मता, सर्व ज्ञानी और अन्तर्यामी ऐसे श्रीराम का व्यक्तित्व युद्धकर्त्ता, राक्षस संहारकर्ता तथा रावण के निर्दलनकर्ता के रूप में बाह्य रूप में प्रकट हो रहा था। सद्‌गुरु श्री वसिष्ठ की योजनानुसार श्रीराम आत्म-स्थिति के रूप में आचरण कर रहे थे, जो लोगों की समझ में परे था। ऐसे परब्रह्म श्रीराम थे। श्रीवाल्मीकि की भविष्यवाणी सत्य करने के लिए रघुनाथ विलाप कर सीता को ढूँढ़ते हुए लक्ष्मण से स्वयं कह रहे थे "हे लक्ष्मण ! तुम सीता को शीघ्र बुलाओ। मेरी आज्ञा तुम क्यों नहीं मान रहे हो ? क्या तुमने सीता से न बोलने की ठानी है ? अगर तुम सीता पर क्रोध के कारण उससे नहीं बोल रहे हो तो मैं ही उसे बुलाता हूँ।" तत्पश्चात् आवेशपूर्वक 'सीते, सीते' कहते हुए राम विलाप करने लगे।

सीता के लिए श्रीराम के शोक की पराकाष्ठा– श्रीराम भाव विह्वल होकर कहने लगे– "हे सीता सुन्दरी, मैं तुम्हें ढूँढ़ रहा हूँ। तुम मुझसे दूर दूर क्यों जा रही हो, वृक्षों के झुंड में प्रवेश कर आँखों से ओझल क्यों हो रही हो ? तुम मेरी प्रतीक्षा करो। तुम जहाँ जाओगी मैं तुम्हारे साथ आऊँगा। तुम मुझे छोड़कर मत जाओ। क्या तुम मृगकंचुकी के लिए मुझसे रूठी हो ? क्या इसीलिए मेरे समक्ष नहीं आ रही हो। मेरा कहा क्यों नहीं मान रही हो ? मेरी सेवा करना तुम्हें भाता है। क्षणार्द्ध को भी मुझसे दूर नहीं होती थीं, फिर अब तुम क्यों कटाक्षपूर्वक वृक्षों के पीछे छिप रही हो ? मृग का आखेट कर मुझे आने में विलम्ब हुआ यह सत्य है; इसलिए तुम्हारे मन में क्षोभ उत्पन्न हुआ हो तो मुझे क्षमा करो। लक्ष्मण ने तुम्हारी आज्ञानुसार आचरण नहीं किया इसीलिए यदि तुम क्षुब्ध हो तो मैं तुम्हारे चरणों पर वन्दन करता हूँ, तुम मुझे पूर्ण रूप से क्षमा करो। कृपा कर मुझसे मिलकर मुझे अपने मन की बातें बताओ। तुम्हारे लिए मेरे इतना व्याकुल होने पर भी तुम कहाँ जा रही हो ? तुम इतनी निष्ठुर क्यों हो, कृपा कर मेरी करुण पुकार सुन लो। श्रीराम ने सीता के न मिलने पर वृक्ष, लताओं व पशु पक्षियों से सीता के विषय में पूछा। श्रीराम बोले– "क्या तुम सब क्रोध वश नहीं बोल रहे हो ? मैं तुम्हारे चरणों पर मस्तक रखता हूँ, कृपाकर मेरी सीता कहाँ है– इस विषय में मुझे बताओ।" पर्वत, पाषाण इन सभी को साष्टांग प्रणाम कर श्रीराम ने कहा– "आप कृपा कर मुझे सीता को ढूँढ़ने का मार्ग बतायें " सीता

के कहीं दृष्टिगत न होने पर श्रीराम चिंतातुर होकर लक्ष्मण से बोले "सीता अकेली होने के कारण राक्षसों के भय से भयभीत हो कहीं चली गयी अथवा अपने स्थान पर ही मृत्यु को प्राप्त हुई ? अथवा राक्षसों ने उसे मारकर अपनी इच्छा से उसका भोजन कर लिया ?" इतना कहकर श्रीराम दुःख से मूर्च्छित हो उठे। 'सीता सीता' नाम के सतत् उच्चारण से राम के होंठ एवं गला सूख गया। आँखें अश्रु से भर उठीं। जानकी के विषय में पता न चलने के कारण रघुनाथ सीता के विरह के दु:ख से भर उठे। पुनः उठकर लड़खड़ाते हुए सीता को ढूँढ़ने निकले। सीता के विरह में विक्षिप्त होकर बार-बार यही पूछ रहे थे कि मेरी सीता कहाँ है ?

सीता से मिलन की आशा न दिखने के कारण राम हताश मन से दसों दिशाओं में भटकते रहे। सीता के लिए विक्षिप्त होकर आक्रोश करते रहे। 'हा- सीते, हा-सीते' कहते हुए आकाश में व चारों तरफ दृष्टि घुमाते हुए सीता न दिखने के कारण इधर उधर भटकते रहे बार-बार सीता को पुकारते हुए श्रीराम विलाप कर रहे थे एवं बीच में लक्ष्मण से पूछ रहे थे कि हे लक्ष्मण, तुम मेरे सखा होते हुए भी मात्र देख क्या रहे हो ? फिर सीता को सम्बोधित कर कह रहे थे– "हे सीते, तुरन्त आकर मुझसे मिलो। मैं तुम्हें पुकार रहा हूँ, फिर भी तुम्हें मुझ पर दया क्यों नहीं आती ? हे सखी सीते ! मुझसे क्यों रूठी हो ?"-ऐसा शोक करते हुए वे भूमि पर गिर पड़ते थे फिर उन्मादपूर्वक जंगल में उसे ढूँढ़ते हुए दौड़ने लगते थे। गिरि कदराओं, पर्वत शिखरों और गुफाओं में सीता को ढूँढ़ने में जब श्रीराम और लक्ष्मण असफल हो गए, तब श्रीराम लक्ष्मण से बोले "हे सौमित्र, यहाँ के समस्त पर्वतों में ढूँढ़ने पर भी सीता दिखाई नहीं दी अब उसे ढूँढ़ने के लिए किससे पूछें ? यह वन तो निर्जन है, यहाँ कोई मनुष्य नहीं दिखाई देता। अब क्या करें ?" ऐसा कहकर राम फिर भावविह्वल होकर पर्वत और उन पर स्थित वृक्षों से पूछने लगे कि क्या उन्होंने सीता को कहीं देखा है ?

श्रीराम बोले– "हे पर्वत के मस्तक पर विद्यमान वृक्षो ! आप दूर तक देख सकते हैं अत: मेरे मन की शंका का निराकरण करें. आप मेरा परिचय पूछेंगे तो सुनें– "मैं दशरथ-पुत्र राम हूँ सीता के विरह वियोग का पर्वत के सदृश विशाल दुःख मुझ पर आन पड़ा है। सीता के विषय में अगर जानना चाहें तो उसके स्वरूप के विषय में मैं आपको अत्यन्त योग्य एवं अल्प शब्दों में परिचय देता हूँ। उसके नेत्र और होंठ आरक्त हैं सुन्दर सुकुमार नासिका है। कमर में रत्न-जड़ित कटिसूत्र है, जानकी पीताम्बर धारण किये हुए है। ऐसी लावण्यवती सीता अगर आपने देखी हो तो मुझे बतायें, मैं उस दिशा में शीघ्र प्रस्थान करूँगा।" वन के वृक्ष हवा के झोकों से दोलायमान हो रहे थे। श्रीराम को ऐसा आभास होता था कि वे उन्हें ही बुला रहे हैं। इस कल्पना से वे अत्यन्त वेग-पूर्वक उनकी ओर दौड़कर जाते थे परन्तु वहाँ सीता को न देखकर अत्यन्त दुःखी होकर मूर्च्छित हो जाते थे 'सीता-सीता' कहते हुए वे निरन्तर विलाप कर रहे थे। सीता के विषय में पर्वत कुछ कहते नहीं, इसीलिए क्षुब्ध होकर श्रीराम ने पर्वतों को भस्म करने के लिए धनुष सुसज्जित कर वज्रबाण को प्रत्यंचा पर चढ़ाया, तब लक्ष्मण श्रीराम के पैर पकड़ते हुए बोले - "आप यह अनुचित कर रहे हैं। ये पर्वत निरपराध हैं अत: इनका घात न करें." इन शब्दों द्वारा श्रीराम को शान्त कर लक्ष्मण ने उनके साथ आगे प्रस्थान किया।

श्रीराम को मार्ग-दर्शक चिह्न दिखाई पड़ना– लक्ष्मण सहित आगे जाते हुए श्रीराम को एक स्थान पर सीता का सुवर्णभूषण दिखाई पड़ा। उसे देखकर लक्ष्मण को शीघ्र अपने समीप बुलाते हुए श्रीराम बोले– "लक्ष्मण सीता को इसी मार्ग से ले जाया गया है, हे सौमित्र ! अब हमें उचित मार्ग मिल

गया है। अत: इसी मार्ग से हम शीघ्र प्रस्थान करेंगे।" थोड़ा आगे बढ़ने पर उन्हें भूमि पर रक्त गिरा हुआ दिखाई दिया। श्रीराम चिंतित हो उठे उन्हें लगा कि कहीं कपट रूप में राक्षसों ने सीता को यहाँ लाकर मार तो नहीं दिया। तत्पश्चात् वे उसका भक्षण कर गये होंगे। सीता जैसे रत्न के जाने की अनुभूति मात्र से वे अत्यन्त दु:खी हो उठे। इतने में कुछ दूरी पर उन्हें वीरों के आपस में युद्ध होने के चिह्न दिखाई दिए। उस रण-भूमि को ध्यान से देखने पर उन्हें दिखाई दिया कि स्वर्ण से अलंकृत धनुष टूटकर गिरा हुआ है। भूमि पर कवच पड़ा हुआ है। वह कवच मोतियों से जड़ा है। रथ टूटकर उसके पहिये भी ध्वस्त हो गए हैं। पिशाच के समान मुख वाला एक खर मरा हुआ पड़ा है। ध्वज भी टूटकर गिरा है। उससे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि अत्यन्त विचित्र ढंग से वीरों का युद्ध हुआ है। तूणीर के बाण बिखरे पड़े हैं। दैदीप्यमान मुकुट गिरा हुआ है। यहाँ पर भयंकर युद्ध होकर सीता का वध हुआ होगा– ऐसा श्रीराम को अनुभव हुआ अत्यन्त सुन्दर होने के कारण राक्षस सीता को प्राप्त करने के लिए आपस में युद्ध हेतु सिद्ध हुए होंगे। उस युद्ध में सीता की हत्या हुई होगी क्योंकि महाकपटी राक्षसों ने माँस का भक्षण करने के लिए उसे मारा होगा। सीता का अगर राक्षसों ने वध कर दिया होगा तो अयोध्या में मैं किस प्रकार मुख दिखाऊँगा ? राजा जनक को क्या कहूँगा ? धर्म की दृष्टि से यह लज्जास्पद है। श्रीराम ऐसा विचार कर दु:खी हो गए। सीता की माता को, मेरी माताओं को, अन्य सुहृदयों को मैं क्या कहूँगा ? वनवास की अवधि में सीता का हरण हो गया यह कैसे कहूँ ? मेरा यश, कीर्ति, क्षत्रिय वृत्ति सीता हरण के कारण लज्जित हुई। मेरा पुरुषार्थ लज्जित हुआ है। श्रीदशरथ स्वर्ग में लज्जित होंगे। तीनों लोक भी लज्जा का अनुभव करेंगे। यह विचार करते हुए श्रीराम का दु:ख बढ़ता गया। सौमित्र मेरा पराक्रम देखो- यह कहते हुए धनुष-बाण हाथों में लेकर श्रीराम ने कहा "मैं सीता के लिए बाणों से तीनों लोकों का संहार कर दूँगा।"

श्रीराम का क्रोध, लक्ष्मण द्वारा सान्त्वना– श्रीराम को लगा कि सीता हरण का घोर कृत्य राक्षसों ने ही किया है। वे संतप्त होकर बोले - "राक्षसों ने अगर सीता का हरण किया होगा तो मैं राक्षसों को सकुल, सपुत्र तथा सपरिवार मारकर इस पृथ्वी को शरवर्षा से राक्षस-रहित कर दूँगा। सीता को अगर पाताल लोक ले गये होंगे, तो समस्त सर्प-जाति का नाश कर दूँगा। दानव, मानव सबको छेद डालूँगा। राक्षसों द्वारा सीता को मारने पर अगर यम उसे ले जाने लगेंगे तो यम-दूतों सहित यम को मैं मार डालूँगा। वह सम्पूर्ण संसार को दंड देता है, मैं उसे ही दंडित करूँगा। उसने अगर सीता को वापस नहीं दिया तो मैं उसे बाण से दंडित करूँगा उसकी गरदन मोड़ दूँगा, कलिकाल का मुख तोड़ दूँगा। अखिल सृष्टि का दमन कर सीता को वापस लाऊँगा। मैं तो काल को आज्ञा देने वाला हूँ, सबका निर्दलन कर सीता को क्षण-मात्र में वापस ले आऊँगा।" श्रीराम इतने क्रोधित थे कि ऐसा लग रहा था मानो उनकी आँखों से अग्नि की ज्वालाएँ निकल रही हों। उन्होंने अपना विकराल धनुष सुसज्जित किया और स्वर्ग में देवताओं में खलबली मच गई। देव, दानव एवं ऋषि भय से थर-थर काँपने लगे। चराचर आन्दोलित हो उठा। श्रीराम का क्रोध अनियन्त्रित हो रहा था। सीता की खोज न होने से वह सम्पूर्ण सृष्टि को भस्म करने के लिए तत्पर हुए। यह देखकर सदाशिव भगवान् शंकर आशंकित हो उठे। उमा भयभीत हो गईं। श्रीराम का वह क्रुद्ध कालाग्नि स्वरूप देखकर लक्ष्मण भी भयभीत हुए, उनका कण्ठ सूखने लगा।

लक्ष्मण भयभीत होकर स्वयं ही विचार करने लगे कि जब श्रीराम ने ताड़का एवं सुबाहु का वध किया, उस समय भी वे इतने भयंकर क्रुद्ध नहीं थे। विराध ने सीता को पकड़ा तब भी श्रीराम इतने

क्रोधित नहीं हुए। कैकेयी ने जब राज्य और वस्त्राभूषण ले लिये तब भी रघुनन्दन इतने क्रोधित नहीं हुए। त्रिशिरा और खर-दूषण को अकेले श्रीराम ने मारा, उस प्रसंग में भी श्रीराम को इतना क्रोध नहीं आया था परन्तु सीता को ढूँढते समय श्रीराम सृष्टि पर इतने क्रुद्ध हैं कि स्वर्ग स्थित देवताओं में खलबली मच गई। कलिकाल स्वयं भयभीत हो उठा। दानव, मानव ऋषीश्वर भय से काँपने लगे सृष्टि कंपित हो उठी, श्रीराम को अत्यन्त क्रुद्धावस्था में देखकर लक्ष्मण ने श्रीराम के पैर पकड़कर विनती की।

लक्ष्मण बोले- "श्रीराम, कृपामूर्ति, क्षमा करें, हे रघुपति ! आपने ही प्राणि, सृष्टि का सृजन किया है अत: प्राणि-मात्र के प्रति आप कृपालु हो। वायु की गति, चन्द्रसूर्य का तेज, सर्व प्राणियों का भार वहन करने वाली पृथ्वी-इस सबका सामर्थ्य आपके ही कारण है समुद्र की मर्यादा, काल, अनावृष्टि, प्रलय- ये सब आपके वश में है। श्रीराम अब आप ही काल को असमय प्रलय करने की अनुमति दे रहे हैं, यह कैसे सम्भव है ? अपने मन में विचार कर क्रोध को भी क्षमा करें। आप सृष्टि के आरम्भकर्ता हैं। आपके समक्ष ब्रह्मदेव भी बालक सदृश हैं अत: हे रघुनाथ, अपनी परिपूर्णता स्मरण करें।" लक्ष्मण की यह विनती सुनकर श्रीराम ने अपना क्रोध त्याग दिया और संतोषपूर्वक लक्ष्मण को भुजाओं में भर लिया, अपने प्रिय बंधु की विनती सुनकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए। उन्होंने क्षोभ का त्यागकर सुख शांति को अंगीकार किया। दोनों पूर्णमासी की रात्रि में शांत होकर बैठ गए, चन्द्रोदय होने पर तृण-शय्या पर श्रीराम ने सुख शान्तिपूर्वक विश्राम किया।

अध्याय २०

[उमा एवं श्रीराम संवाद]

श्रीराम पूर्णमासी की उस सुखद रात्रि में तृण-शय्या पर शयन कर रहे थे, लक्ष्मण उनकी चरण सेवा कर रहे थे। चन्द्रोदय के उस मनोहारी दृश्य और सुकुमार चन्द्र किरणों के स्पर्श का अनुभव लेते हुए श्रीराम अचानक उठ कर बैठ गए और लक्ष्मण से बोले - "सूर्य की असहनीय किरणों से मुझे वेदना हो रही है। हम दोनों एक वृक्ष के नीचे बैठें।" राम के ये विचित्र वचन सुनकर लक्ष्मण बोले- "श्रीराम रात्रि की बेला में सूर्य-किरणों के विषय में क्या कह रहे हैं ? यह तो अमृत समान शीतल किरणों से युक्त चन्द्र है यह सबको शांति प्रदान करता है।" इस पर श्रीराम ने प्रश्न किया- "अगर यह चन्द्र बिम्ब है तो तुम्हारा ज्ञान निरर्थक है। चन्द्रबिम्ब में मृग चिह्न देखकर मैं भी चन्द्र बिम्ब पहचानता हूँ परन्तु अगर मृग चिह्नांकित चन्द्र बिम्ब हम दोनों ही देख रहे हैं तो मृगनयनी, चन्द्रवदना, जनकनन्दिनी कहाँ है ? अगर तुम मृग चिह्नांकित चन्द्र देख रहे हो तो मुझे कृपा कर सीता के दर्शन कराओ।" यह कहकर श्रीराम विलाप करते हुए शोक करने लगे। वे कह रहे थे- "हे प्रियकांता सीता, सुखरूपा, जनककन्या तुम कहाँ हो ? हे लक्ष्मण, सीता कहाँ है ? मेरी सीता मेरे पीछे है, नहीं-नहीं, वो आगे चली आ रही है। हे लक्ष्मण, शीघ्र जाओ। मेरी सीता मुझसे रूठी है उसे मना कर मेरे पास लाओ। चन्द्र भी मुझसे क्रुद्ध है। देखो उसकी किरणें मुझे तप्त कर रही हैं।" दु:ख के आवेग से श्रीराम असम्बद्ध वचन बोल रहे थे।

सीता के वियोग से श्रीराम की भ्रमित स्थिति- श्रीराम भ्रमित स्थिति में कह रहे थे- "लक्ष्मण तुम सावधानीपूर्वक सुनो, उस चन्द्र को वापस भेज दो, अगर वह गया नहीं तो मैं उसका घात

करूँगा। यह मुझे संतप्त कर रहा है। हे लक्ष्मण, मुझे पंखा झल कर शीतल हवा प्रदान करो। सौमित्र, तुम ही मेरे विरुद्ध हो गए हो। मुझे वज्रधार से आहत कर रहे हो। तुम उस दशशिरों वाले रावण से मिल गए हो। जाओ, यहाँ से चले जाओ। तुम मेरा घात करने के लिए आये हो," सीता के विरह ज्वर से पीड़ित श्रीराम, लक्ष्मण से और बुरा भला कहते हुए बोले– "शीतल कमलों से युक्त सुमन शय्या पर तुमने मुझे सुलाया है फिर मेरे सारे शरीर में सुइयाँ क्यों चुभ रही हैं। तुम मेरे सगे भ्राता सौमित्र हो तो मुझसे दोहरा व्यवहार क्यों कर रहे हो ? तुम बदल गये हो। सुइयों से मेरा सारा शरीर छलनी हो रहा है। तुम मुझसे वृथा वैर क्यों कर रहे हो ? श्रीराम के शरीर की ज्वाला को शान्त करने के लिए चन्दन का लेप लगाने पर श्रीराम क्रोधित होकर बोले– "मेरा सम्पूर्ण शरीर जल रहा है। मैं सीता के विरह से व्याकुल हूँ और तुम मेरे शरीर पर अंगारे लगा रहे हो। जनक नन्दिनी मुझे न मिलने से मेरे लिए प्रलय काल ही आ गया है। मुझे लगता है कि सीता के विरह-वियोग से ही सूर्य अस्त हो गया है। रात्रि मेरे लिए एक कल्प के सदृश दीर्घ हो गई है। हे सौमित्र ! मैं क्या करूँ। चन्द्र मुझसे वैर कर रहा है, तुम मेरे शत्रु हो गए हो, वायु द्वेष कर रही है। वज्रधार से मैं आहत हूँ। सीता के विरह वियोग से मेरे प्राण जा रहे हैं। हे सौमित्र ! मेरे लिए शीघ्र चिता सुसज्जित करो, मेरी मृत्यु समीप ही है " श्रीराम बोलते-बोलते बीच में ही जाकर 'सीते-सीते' कहते हुए वृक्षों को सीता समझकर अपनी भुजाओं में भर आलिंगन दे रहे थे। सीता का आभास अनुभव कर पाषाण का चुम्बन ले रहे थे। कभी तृण को हृदय से लगाकर 'यही मेरी सीता है' कह रहे थे तो कभी लक्ष्मण से कह रहे थे कि तुम्हीं मेरी सीता हो। इस प्रकार श्रीराम पूर्ण रूप से भ्रांत-स्थिति में थे। उन्होंने पूछा 'सौमित्र मैं कौन हूँ ?' लक्ष्मण बोले आप मेरे श्रेष्ठ सखा और स्वामी हैं, इस पर श्रीराम बोले– "श्रीरामचन्द्र अयोध्यापति हैं , मैं कैसे स्वामी हो सकता हूँ ? तुम मेरे समीप कैसे और कौन हो ?" इस पर लक्ष्मण बोले– मैं लक्ष्मण आपका नित्य अनुसरण करने वाला सेवक हूँ, आज्ञाधारक हूँ। वन में अकेले क्यों घूम रहे हो ? श्रीराम द्वारा ऐसा पूछे जाने पर लक्ष्मण कहते हैं– "आपकी पत्नी जनककन्या को ढूँढकर उसे प्राप्त करना है।" लक्ष्मण के स्पष्टीकरण में जानकी का उल्लेख आते ही श्रीराम को पुनः उसकी स्मृति हो आई और वे बोले "हे लक्ष्मण, मेरी सीता कहाँ गई ? सौमित्र, मुझे सीता से मिलाओ।" यह कहते हुए श्रीराम फिर शोकाकुल अवस्था में पहुँच गए।

श्रीराम की स्थिति पर उमा–महेश्वर की चर्चा– श्रीराम की ऐसी भ्रांतिपूर्ण अवस्था देखकर उमा भगवान् शंकर से बोलीं– "मुझे आपसे कुछ शंकाओं का समाधान पूछना है। उसका निश्चित उत्तर आप मुझे बतायें, यह मेरी आपसे विनती है। आपने मुझे पहले बताया था कि श्रीराम पूर्ण ब्रह्म हैं। उनका स्वरूप कौन सा है, कृपा कर मुझे बतायें। ऐसा कहकर उमा ने शिव को साष्टांग दंडवत् किया। उनके चरणों पर अपना मस्तक रखा। शिव जी उन्हें उठाते हुए बोले "हे पार्वती ! वन में सीता के लिए व्याकुल होकर जो भटक रहा है वह पूर्णब्रह्म रघुनाथ है। यह तुम निश्चयपूर्वक मान्य करो।" इस पर पार्वती ने कहा– ''वह तो विषयासक्त, स्त्री कामार्थी, लोलुप पुरुष है''। "हाँ, वही परब्रह्म रघुनाथ है " शिव ने उत्तर दिया। उमा ने फिर प्रश्न किया - "वही जो विलाप करते हुए सम्पूर्ण रात्रि सीता के लिए तड़प रहा है ?" शिव बोले– "हाँ वही रघुनाथ परब्रह्म है।" शिव के ऐसा बताने पर पार्वती बोलीं– "क्या यही आपका ध्यान और चिन्तन है ? उमा की इस प्रतिक्रिया पर शिव इतना ही बोले कि मेरा ज्ञान-विज्ञान मुझे यही बता रहा है कि श्रीराम पूर्णब्रह्म है। अब उमा उपहासपूर्वक हँसते हुए बोली–

"धन्य है दोनों की देवभक्ति।" शिव ने एक बार फिर निश्चयपूर्वक कहा "रघुनाथ ब्रह्म ही है विलाप करते हुए तड़पते हुए विषयकामी, विषयासक्त कैसा भी हो, पर हे पार्वती, यह तुम निश्चित समझो कि ये रघुनाथ परमब्रह्म ही हैं।"

'श्रीराम परब्रह्म है''- यह शिव का कथन उमा सहज रूप में स्वीकार नहीं कर पा रही थीं। अन्त में वे शर्त रखते हुए बोलीं, "अगर मैंने राम को भुलावे में डाल दिया तो ?" महेश बोले "फिर उनमें ब्रह्मत्व नहीं, यह मैं मान लूँगा।" 'अगर आपकी आज्ञा हो तो क्षणार्द्ध में राम को मैं कपटपूर्वक भुलावे में डाल दूँगी।'- उमा के इस कथन पर महेश बोले- "वह नित्य सावधान हैं तुम निश्चिंत होकर इच्छापूर्वक कपट करो।" शिवजी की स्वीकृति पाकर उमा स्वयं सीता का रूप लेकर बड़ी चतुराई से राम की छलपूर्वक परीक्षा लेने निकलीं। वन में 'हा सीते' 'हा सीते' कहते हुए श्रीराम घूम रहे थे। तब उमा ने उनके पास जाकर प्रतिउत्तर दिया। उनके सामने आते ही सीता को पुकारते हुए राम दूसरी ओर चले जाते वे भी उनके साथ उस तरफ चली जाती थीं। जैसे ही उमा उनके सामने आतीं, श्रीराम मुँह मोड़कर दूसरी तरफ हो जाते तथा मुँह नीचा कर सीता को पुकारते हुए विलाप करने लगते। यह देखकर लक्ष्मण आश्चर्यचकित हुए व विचार करने लगे कि वृक्ष पाषाण को सीता कहने वाले श्रीराम, जानकी के समक्ष होते हुए भी शोक क्यों कर रहे हैं ? लक्ष्मण ने श्रीराम से फिर कहा "हे श्रीराम, अब सीता के मिलने पर भी शोक क्यों कर रहे हैं ?" तब श्रीराम क्रोधपूर्वक उन्हें मारने के लिए बढ़े लक्ष्मण फिर बोले- "यह व्यर्थ कोप किसलिए ? सीता तो आपके समीप खड़ी है।" यह सुनकर राम शस्त्र से लक्ष्मण का घात करने के लिए आगे बढ़ते हुए बोले "सौमित्र ! हम दोनों सगे भाई होते हुए भी तुम मुझसे वैर क्यों कर रहे हो, यहाँ सीता कहाँ है, मुझे भयंकर दु:ख हुआ है।" लक्ष्मण को लगा कि श्रीराम को भ्रम हुआ होगा क्योंकि 'सीता है' कहने पर वह क्रोधित हो रहे हैं। अत: अब मौन ही उचित है सीता समक्ष उपस्थित है अब वही उन्हें समझायेंगी ऐसा निश्चय कर वह चुप हो गए।

जिन लोगों का ध्यान श्रीराम की मन:स्थिति पर केन्द्रित था, उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि लंकानाथ रावण के बन्धन से मुक्त होकर सीता यहाँ कैसे पहुँची। सीता के लंका से वापस आने की कल्पना से ही स्वर्ग के सुरवरों को एक प्रकार का दु:ख ही हुआ। 'दशानन रावण से बचकर सीता वन में कैसे वापस आ गई, विधाता ब्रह्मा यह सोचकर आश्चर्यचकित हुए कि कैसे लंकानाथ को भस्म कर सीता वापस लौट आयी। आश्चर्य ऋषिवरों को भी हुआ। पार्वती ही सीता का रूप लिये हैं, यह ब्रह्मादिकों को भी ज्ञात न हो सका परन्तु श्रीराम को सर्वज्ञाता होने के कारण पूर्णज्ञान था। श्रीराम द्वारा अलिप्त ज्ञानी एवं ज्ञाता होते हुए भी उन पर शंका करने के कारण आगे जो घटना घटित हुई वह सुनें। जब लक्ष्मण मौन धर कर बैठ गए, तब सीता का रूप धरे हुए पार्वती सीता के रूप में श्रीराम से बोलने लगीं। तब श्रीराम तीव्रगति से उनकी ओर बढ़े और उन्हें पकड़ लिया। इस पर (पार्वती) सीता बोलीं "मैं आपके समीप खड़ी होते हुए भी व्यर्थ ही 'सीता' 'सीता' की पुकार क्यों कर रहे हैं ? पत्नी के विरह में विलाप कर रहे हैं। इसके लिए आप लज्जा का अनुभव क्यों नहीं करते ? पहले तो अपने विषय में बड़ी-बड़ी बातें करते थे कि मैं श्रीराम, नित्य सजग रहता हूँ। अब पत्नी के विरह से आपका ज्ञान कहाँ गया ? आप अत्यन्त अज्ञानी हो गए हैं। अपने अज्ञानवश आप प्रपंच और परमार्थ दोनों से दूर हो गए हैं। सखा, बंधु और भक्त आपकी विनती कर रहे हैं, आप उनका ही घात करने के लिए उद्यत हैं लक्ष्मण आपका सखा, बन्धु और अनन्य भक्त है और आप उसे ही मारने के लिए उद्यत हैं। आपने

अपना प्रपंच ज्ञान ही खो दिया है तो आपको ब्रह्मज्ञान कहाँ से होगा ? मेरे क्षण भर दिखाई नहीं देने पर आपकी जड़ मूढ़ होकर भ्रमित अवस्था हो गई। आपको प्रापंचिक ज्ञान ही स्मरण नहीं रहा तो परमार्थ कहाँ से स्मरण होगा। मैं जानबूझ कर वन में गुप्त रूप में रही और आपका आचरण देखा परन्तु आपके अत्यन्त भ्रमित स्थिति में पहुँचने पर मैं शीघ्र लौट आयी।"

सीता के रूप में उमा आगे बोलीं "आप कहते थे कि तत्वतः आप आत्मा ही हैं परन्तु पत्नी के विरह में आपमें अकर्मण्यता और जड़मूढ़ता उत्पन्न होकर आप भ्रमित स्थिति में पहुँच गए हैं। यद्यपि वियोग के कारण आपमें भ्रांतिपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गई है। परन्तु अब मेरा आपसे मिलन हो गया है अतः अब मन का भ्रम त्याग दें। हम दोनों पंचवटी प्रस्थान करें। चौदह वर्ष की वनवास की अवधि में से अब मात्र छः महीने ही शेष हैं, तत्पश्चात् हम अयोध्या वापस लौटेंगे।" उसके इस कथन का प्रत्युत्तर देते हुए श्रीराम बोले तुकाई माँ,* आप यहाँ कैसे ? श्रीराम हँसकर बोले– "माँ मैं आपको साष्टांग प्रणाम करता हूँ। कृपा कर मुझे न छलें। मैं दीन, शिव के समक्ष अनन्य भाव से समर्पित हूँ।" श्रीराम सीता को माँ कह रहे हैं, यह सुनकर लक्ष्मण आश्चर्यचकित हुए। देवता भी चकित हुए। ऋषि बोले– "श्रीराम अपनी पत्नी को भी नहीं पहचानते।"

उमा द्वारा श्रीराम की शरण आना; श्रीराम द्वारा संज्ञान दान– श्रीराम ने उमा से प्रश्न किया कि शिव को अकेला छोड़कर सीता रूप में मुझे संत्रस्त करने का प्रयोजन क्या है ? यह प्रश्न सुनते ही सीता का रूप त्याग कर उमा राम के चरणों पर गिरकर सोचती हैं– 'शिव ने कहा था, वही सत्य है कि श्रीराम नित्य एवं सावधान हैं। उनके समक्ष तुम्हारा छलकपट टिक नहीं पाएगा। इसका मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया है। मैं शिव की शिवशक्ति हूँ। मैंने जब अतर्क्य युक्ति से सीता का रूप धारण किया तब ब्रह्मादि देवों ने भी मुझे नहीं पहचाना परन्तु श्रीराम ने मुझे पहचान लिया। उनके अगाध ज्ञान के समक्ष मेरा छल टिक नहीं सका।' उमा ने यह अनुभव कर श्रीराम के चरण स्पर्श किये और उनसे पूछा "हे राम ! आप सर्वार्थ ज्ञानी हैं, सम्पूर्ण सर्वज्ञता आप में विद्यमान होते हुए भी प्रीतिपूर्वक तृण पाषाणों को आलिंगन दे रहे हैं, इसका क्या कारण है ? सीता के विरह से आपकी कामवासना वृद्धिगत हुई हो, इस शंका के भी कोई प्रमाण नहीं मिलते। आप परिपूर्ण ब्रह्मज्ञानी हैं, इसका मुझे प्रमाण मिल गया है लेकिन फिर भी ऐसा रूप बनाकर सीता का विरह सहन न होने का आभास देते हुए वन में इस प्रकार विलाप कर भटकते हुए दुःख करने का कारण क्या है ?" उमा फिर बोलीं– "हे श्रीराम अपनी सम्पूर्ण स्थिति के विषय में कृपाकर मुझे बतायें। इसका प्रति उत्तर देते हुए श्रीराम ने उमा से कहा– "मेरी स्थिति एवं गति सदाशिव पूर्णरूपेण जानते हैं, वे उसके विषय में आपको बतायेंगे।"

उमा का पश्चाताप; श्रीराम का उपदेश– श्रीराम उमा से बोले– "सदाशिव मेरी स्थिति से निश्चित रूप से अवगत हैं, वे आपको अवश्य बतायेंगे। अपने मुख से अपनी कीर्ति नहीं कहनी चाहिए परन्तु अगर किसी को उस विषय में बताया ही जाय तो जिसे बताना है, वह शुद्ध मन का और सुपात्र है अथवा नहीं, यह अवश्य देखना चाहिए। श्रवणकर्ता कपटी, एवं वितंडावादी नहीं होना चाहिए। कपट से ज्ञान की वंचना करने वाला, नास्तिक, अर्थ का अनर्थ करने वाला आलसी एवं नीति सम्बन्धी कुतर्क करने वाला नहीं होना चाहिए। जो धन एवं स्त्री का त्याग करने को उत्सुक हो, सात्त्विक सत्य का

---

*दण्डकारण्य का यह पवित्र स्थान जगदम्बा का स्वयंभू स्थान माना जाता है और इनकी पूजा होती है। श्रीराम को वर देने वाली जगदम्बा माता ही इस क्षेत्र में 'तुकाई माँ' के नाम से विख्यात हैं।

शोधकर्ता हो, पूर्ण विवेकी एवं परमार्थ करने वाला हो, उसे ही तत्त्व का ज्ञान कराना चाहिए। आपमें ज्ञान का अभिमान निहित है। शिव का कहा न मानकर आप कपटपूर्वक मुझे छलने आयी हैं अतः मैं आपसे क्या कहूँ ? आपने पति वचनों को महत्व नहीं दिया, गुरु वचनों का भावार्थ नहीं जाना अतः गूढ़ ज्ञान सुनने की पात्रता आपमें नहीं है।"

श्रीराम के वचन सुनकर उमा व्यथित हो गईं- 'मैंने पतिवचन एवं गुरुवचनों का उल्लंघन किया। शिव का कहा न मानकर रघुनन्दन का छल करने के लिए प्रवृत्त हुई, मेरे ज्ञान-गर्व को धिक्कार है'- ऐसा मन में विचारकर उमा विलाप करने लगीं, उन्हें पूर्ण पश्चाताप हुआ। ज्ञान का गर्व करने वाले का यही लक्षण होता है कि साधु सज्जनों से भेंट होने पर उनको संत्रस्त करने के लिए उनके दोषों को ही वह ज्ञानाभिमानी देखता रहता है। उमा राम का छल करने में सफल नहीं हुईं तब वह पश्चाताप करते हुए बोलीं "मैं आपसे छल करने आयी परन्तु वह मुझसे सधा नहीं। हे श्रीराम, ऐसा होते हुए भी आप मुझ पर क्रोधित नहीं हुए। आपकी इस महानता ने मुझे प्रभावित किया है, आपके दर्शन होते ही मेरे ज्ञान का अभिमान समाप्त हुआ, कपट-बुद्धि नष्ट हुई। हे श्रीराम, मैं आपकी सौगंध लेकर यह कह रही हूँ।" उमा के पश्चातापपूर्ण वचन सुनकर श्रीराम उन पर द्रवित हुए और उन पर कृपा कर सद्भावपूर्वक अतर्क्य गूढ़ ज्ञान प्रदान करने का निश्चय किया।

श्रीराम बोले- "उमा, सावधानीपूर्वक सुनो, बहुत पहले ऋषिजनों ने मेरी प्राप्ति के लिए निष्काम बुद्धि से अनुष्ठान किया। मेरे चरणों की प्राप्ति के लिए समस्त अभिमान त्याग कर पूर्ण सद्भावना से तृण, पाषाण हो गए। एक वृक्ष हुआ, दूसरा पर्वत हुआ तो कोई तृण बना, कोई पाषाण। इसीलिए मैं स्वयं वहाँ उनके समीप जा रहा था। उनके भाव देखकर अत्यन्त प्रेमवश उन्हें आलिंगन दे रहा था। उन्हें तुम मात्र तृण पाषाण समझकर मुझे विक्षिप्त समझ रही थीं। वास्तव में वे मेरे निरभिमानी भक्त हैं और उन भक्तों से मिलने के लिए मैं स्वयं वन में भटकते हुए उन्हें ढूँढ़ रहा था। उन भक्तों के उद्धार के लिए ही मेरा वह वन में विलाप करते गिरते पड़ते हुए दर-दर भटकना था। पर्वतों के समीप जाना, वृक्षों को आलिंगन देना इत्यादि भक्तों के लिए ही था। उमा ! यह निश्चित है कि मेरे पग कहीं भी व्यर्थ नहीं पड़ते। सदाशिव यह जानते हैं परन्तु आपकी भावना तद्रूप नहीं है।

सभी भावों का निचोड़ यही है कि सभी प्राणिमात्र में ईश्वर का वास होता है। यही प्रमुख परमार्थ है। अपना स्वार्थ ही परमार्थ होता है। गुड़ को अगर करेले का आकार दिया जाता है तो वह कड़वा नहीं हो जाता। जितना दृश्य जगत् है वह ब्रह्म है- यह धारणा रखकर उसके अनुरूप कर्म करने पर सभी बन्धनों से मुक्ति होती है। शक्कर द्वारा कमंडल फल का निर्माण करने पर उसे कड़वा कहने वाले स्वयं अपने आपको छलते हैं। साधुओं के कर्मों की जिनके द्वारा निन्दा की जाती है, वे सभी अपने कर्मों द्वारा अपना अधःपतन करवा लेते हैं साधुओं के सच्चित की महानता, उनका कर्म व प्रेम अतर्क्य होने के कारण, वे कभी मोह भ्रम में नहीं फँसते। साधुओं की महिमा अपरम्पार होती है। तुम जिन्हें तृण-पाषाण कह रही हो वे तो ब्रह्मत्वपूर्ण साधु हैं।" श्रीराम का यह स्पष्टीकरण सुनकर पार्वती मूर्च्छित हो गईं। उस अवस्था में उन्हें शक्ति एवं शिव का पूर्ववत् स्मरण नहीं रहा। श्रीराम का स्वरूप एवं नाम भी विस्मृत हो गया, वह पूर्ण रूप से अपना अस्तित्व ही भूल गईं। आप-पर भाव का नाश होकर सर्वत्र परिपूर्ण ब्रह्म की उपस्थिति का बोध ही शेष रह गया। तब शिवप्रिया पार्वती सन्तुष्ट हुईं। श्रीराम से छल-कपट युक्त

व्यवहार करने वाली पार्वती समाधि में लीन हुई। संतों की संगति की ऐसी महानता है कि वे अपकार करने वाले पर भी उपकार ही करते हैं। पूर्णरूप से सन्तुष्ट उमा जब समाधि-अवस्था के बाहर आयीं तब उसे तीनों लोक चैतन्य से परिपूर्ण होने का अनुभव हुआ। श्रीराम भी सन्तुष्ट हुए।

श्रीराम के उपदेशों का सब लोगों पर परिणाम– श्रीराम उमा से बोले "हे माते, मैं तुम्हें कुछ कहना चाहता हूँ।" उमा बोलीं- "आपकी आज्ञा का मैं सर्व प्रकार से पालन करूँगी." फिर श्रीराम के चरणों पर मस्तक रखकर बोलीं– "आपके कारण मुझे सुख की प्राप्ति हुई है। अब कुछ कहने को शेष नहीं है।" उसके वचन सुनकर श्रीराम बोले– "शिव के वचन कभी असत्य न मानें तथा किसी से छल-कपट न करें- यही मैं आपसे माँगता हूँ, मुझ पर इतनी कृपा करें।" उमा ने श्रीराम को आश्वासन देते हुए कहा– "श्रीराम, आपके चरणों के दर्शन-मात्र से मेरी कपट की वृत्ति समाप्त हो चुकी है। अब भविष्य मे मैं शिव की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करूँगी। मुझे पूर्ण ब्रह्म की प्राप्ति हुई, यही इसका परिणाम है। श्रीराम, आपके स्पष्टीकरण से मेरी समस्त अविद्या जलकर भस्म हो गई, छल-कपट सब समाप्त हो गया। आपकी शपथ लेकर कहती हूँ कि आपके उपदेशों से मुझे सुख समाधान की प्राप्ति हुई है " यह कहकर राम की चरण वंदना कर उमा कैलास वापस लौट गईं।

श्रीराम और उमा का संभाषण सुनकर और उमा द्वारा की गई चरण-वंदना देखकर सौमित्र दौड़कर राम के चरणों पर गिर पड़े और बोले– "मैं इन्हें ही सीता समझ रहा था परन्तु यह तो शिव-पत्नी पार्वती थीं। श्रीराम आप उन्हें पहचान गए, आप वास्तव में सर्वज्ञ हैं।" उमा का स्वरूप एवं व्यवहार देखकर ब्रह्मादि भी आश्चर्यचकित हुए। मैं भी उन्हें सीता ही मान रहा था लेकिन श्रीराम ने माता पार्वती को पहचान लिया। मुझे लग रहा था कि सीता के विरह में श्रीराम भ्रमित अवस्था में हैं परन्तु श्रीराम सर्वज्ञानी हैं, नित्य ब्रह्म हैं। श्रीराम के हाव-भाव देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था, वे विक्षिप्त हो गए हैं परन्तु जगत्-उद्धार करने के लिए श्रीराम परब्रह्म रूप में ही आचरण कर रहे थे।" सभी देव आपस में इसी विषय पर चर्चा कर रहे थे। उन्होंने श्रीराम की वन्दना की और अपने स्थानों पर वापस लौट गये। देवताओं के भ्रम का निराकरण हुआ। लक्ष्मण शांत हुए। श्रीराम की महिमा असीम है, उनके नाम मात्र से बद्ध-जीवों का उद्धार होता है। राम और लक्ष्मण ने पुनः सीता को ढूँढ़ने के लिए प्रस्थान किया।

एकनाथ का शिवरामायण पर भाष्य– श्रीराम एवं उमा के मध्य हुए संवाद का जो यहाँ पर वर्णन किया गया है, उसका मूल आधार है- शिवरामायण। श्रीरामायण का जो मूल ग्रन्थ था वह शतकोटि का था। सुर, नर, पन्नग आपस में हमेशा कलह करते रहे। इस कलह का मूल कारण रामायण का स्वामित्व था। देवों ने कहा– "श्रीराम सुरवरों के राजा हैं अतः इस कथा पर देवताओं का ही अधिकार है।" इस पर पन्नग बोले– "शेषशायी राम हमारा है, आपका अधिकार कैसा ?" मानव बोले "श्रीराम मानव स्वरूप में हैं, इस रूप में उन्होंने अगाध ख्याति अर्जित की है। अतः श्रीराम की कीर्ति हमारा हिस्सा है। आप उसके लिए क्यों लड़ रहे हैं ? श्रीराम ने वैकुंठपति होते हुए भी, वैकुंठ में पराक्रम नहीं किये तथा शेषशायी होते हुए भी उस रूप में उन्होंने कीर्ति नहीं अर्जित की। श्रीराम ने मनुष्य लोक में आकर ही महान् ख्याति प्राप्त की है। उन्होंने मृत्यु लोक में ही कीर्ति सम्पादित की है। फिर आप उसके लिए क्यों लड़ रहे हैं, आप में से एक ऊपर स्वर्ग-लोक के तथा दूसरे नीचे पाताल-लोक के हैं, फिर मृत्युलोक मे आकर हिस्सा माँगने में संकोच का अनुभव क्यों नहीं हो रहा है ? आपका इससे कोई भी सम्बन्ध नहीं है।" मानवों ने ऐसा कहकर देवों और पन्नगों को निरुत्तर कर दिया।

श्रीराम कथा में इतनी मधुरता थी कि वह किसी के द्वारा छोड़ी नहीं जा रही थी। उन्हें राम कथामृत का पान करना था। इस विचार को सुलझाने के लिए ब्रह्मदेव ने अपनी बुद्धि का प्रयोग कर एक उपाय ढूंढ़ा। तीनों हिस्सेदारों को समझा कर उनमें सुलह कराने के लिए उन्होंने शिव के पास भेजा। तीनों शिव के पास पहुँचे। शिव ने एक मार्ग सुझाया। शिव ने स्वयं अपने पास कथासार रखकर उनमें विभाग कर तीनों का विवाद सुलझाया। शिव उनसे बोले "तुम तीनों में से किसी को भी मैं विमुख करके नहीं भेजूँगा। सबको समान भाग दूँगा।" शिव का यह कथन तीनों ने मान्य किया। मूल रामायण ग्रन्थ की संख्या शतकोटि थी, उसका तीनों लोकों में शिव ने बँटवारा इस प्रकार किया। तैंतीस कोटि, तैंतीस लाख, तैंतीस सहस्र, तीन सौ तैंतीस श्लोकों को विभक्त करने पर जो एक श्लोक बचा, उसके बत्तीस अक्षर शंकर ने तीनों में बाँट दिए। अक्षरों का यह बँटवारा सबने आदरपूर्वक स्वीकार किया। प्रत्येक के हिस्से में दस-दस अक्षर आये और दो अक्षर शेष बचे। तब शिव ने कहा "अक्षर दो और हिस्सेदार तीन, यह समस्या है। इसका समाधान कैसे किया जाय ? अत: इसका बँटवारा करने वाले के रूप में दो अक्षर मुझे दें।" यह सुनकर उन तीनों ने उत्साहपूर्वक शिव का कहना मान्य किया और शिव को दो अक्षर प्रदान किये। शिव ने वे अक्षर हृदय से लगाये और रात-दिन राम का नाम जपते रहे। रामायण कथा का यह सार है कि शिव के अन्तर्मन में राम बस गए। वे दो अक्षर परिपूर्ण ब्रह्म का ही अवतार थे।

श्रीराम कथा के विविध नाम एवं रूप-- **[संत एकनाथ ने अपने निवेदन में कहा है कि 'मृत्यु लोक को जो भाग मिला, उसमें तैंतीस कोटि, तैंतीस लक्ष, तैंतीस सहस्र, तीन सौ श्लोक और दस अक्षर हिस्से में आये। उस विभाग का वर्णन करने वाला बहुविध कवित्व, रामायण नाम से ही उल्लिखित है। उसका विवरण आगे दिया गया है।']**

शिव रामायण, शैव-रामायण, आगम-पचरात्र रामायण, गुह्य गुह्यक रामायण हनुमंत रामायण नाटक, मत्स्य, कूर्म वराह रामायण, कालिका खंडी रामायण, महाकाली रामायण, स्कंद रामायण, अगस्त्य रामायण, पौलस्त्य रामायण, पद्मपुराण रामायण, रवि, अग्नि, वरुण रामायण, जटायु द्वारा कथित रामायण नन्दिग्राम में भरत कथित भरत रामायण, महाभारत का व्यास कथित रामायण, क्रौंच द्वीप में क्रौंच ऋषि द्वारा सुनायी गई पवित्र रामायण कथा। यह अत्यन्त अनुपम और पवित्र है विभीषण को धर्मऋषि जो नित्य कथा सुनाते थे, वह धर्म रामायण, श्वेत द्वीप में सुनायी गई श्वेत-केतु रामायण- इसकी अद्भुत कथा त्रिलोक में पवित्र मानते हैं। शंकर स्वयं वक्ता और सजग श्रोता भवानी ऐसी शिव-भवानी रामायण। कथन की कुशलता उसमें विद्यमान थी। सदाशिव वक्ता और श्रीराम स्वयं श्रोता हैं ऐसी शिव-रामायणी कथा सुनकर स्वानन्द की प्राप्ति होती है। स्वयं श्रीराम आनन्द से परिपूर्ण होकर स्वयं का मधुर निरूपण करते हैं। वह कथा आत्म रामायण के नाम से प्रसिद्ध है। अपूर्व कथन कौशल से युक्त आश्चर्यमय चरित्र का अलौकिक निरूपण जैमिनी कृत रामायण में विद्यमान है। मूल रामायण के चुने हुए अंशों को लेकर आध्यात्मिक दृष्टि से निरूपण किया वह आध्यात्म रामायण है जो ऋषिकृत नहीं है। मृत्युलोक में भावुक श्रद्धालुओं ने असंख्य रामायण बनाये हैं। उन सबका आकलन मेरे लिए सम्भव नहीं हो सका। उनमें से थोड़े ही यहाँ बताये हैं। 'उमा श्रीराम दर्शन' इस विषय से सम्बन्धित मूल निरूपण मैंने स्वामी जनार्दन की शरण जाकर किया, यह कथन बीच में ही आने के कारण श्रोता मुझे क्षमा करें।

यह उमा राघव संवाद सुनकर जीवशिव को विश्रांति, देह विदेहों को परम विश्रांति मिलती है यह बीसवाँ अध्याय त्रिविध तापों एवं देहभाव को विश्रांति देने वाला है। इस उमा राघव-संवाद से युक्त बीसवें अध्याय से अहभाव दूर होता है और अहमात्म भाव एवं ब्रह्मभाव की प्राप्ति होती है।

अध्याय २१

[जटायु-उद्धार]

उमा महेश के पास वापस लौट गयीं। श्रीराम और लक्ष्मण सीता की खोज के लिए मार्ग में प्राप्त चिह्नों को देखते हुए आगे बढ़े। वे मार्ग ढूँढ़ते हुए आगे बढ़ रहे थे कि अचानक उन्हें अत्यन्त अद्‌भुत प्रकार का राक्षस के पैरों का निशान दिखाई दिया। वह निशान बारह हाथ लम्बा और चार हाथ चौड़ा था। उसके पास ही कमलाकार कुमकुम युक्त सीता के पैरों का निशान दिखाई पड़ा। वह चिह्न देखकर श्रीराम प्रसन्न हुए क्यों कि उस मार्ग से सीता को ढूँढ़ने के लिए वे निशान सहायक सिद्ध होते। श्रीराम ने तत्काल लक्ष्मण से कहा– "लक्ष्मण शीघ्र जाओ, राक्षस सीता को लिये जा रहा है। तुम यह मार्ग पहचान लो कदाचित् उससे तुम्हारा प्रायश्चित होगा।" उस भयंकर पैरों का निशान देखकर लक्ष्मण आश्चर्यचकित हुए। वह इस शंका से भयभीत हुए कि कहीं राक्षस ने सीता का भक्षण तो नहीं कर लिया होगा। तत्पश्चात् उसी मार्ग से ढूँढ़ते हुए वे दोनों तीव्र गति से आगे बढ़े। आगे उन्हें घायल जटायु दिखाई दिया।

श्रीराम और जटायु की भेंट– मार्ग में रक्त से भरा हुआ क्षत विक्षत जटायु श्रीराम को दिखाई दिया। वह ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों किसी विशालकाय पर्वत पर किसी ने सिन्दूर का लेप कर दिया हो राम ने लक्ष्मण से कहा– "सौमित्र ! सीता का भक्षण कर उसका रक्त पीने के कारण यह राक्षस रक्त से सना हुआ दिखाई दे रहा है। फिर श्रीराम धनुषबाण सज्जित कर क्रोधित कृतान्त के सदृश उस राक्षस का घात करने के लिए निकले। सीता की खोज में निकले हुए प्रतापी राम बोले– "मेरी पत्नी का भक्षण करने वाले इस वन में कौन हो तुम ? मैं अभी तुम्हारा वध करता हूँ," राम के इन गर्जनायुक्त शब्दों को सुनकर पृथ्वी पर घायल पड़ा हुआ जटायु अत्यन्त दीन होकर बोला– "मैं धन्य हूँ। मेरा उद्धार करने के लिए स्वयं श्रीराम पधारे हैं। श्रीराम का आगमन सीता के लिए शोधार्थ नहीं वरन् दीनों का उद्धार करने के लिए हुआ है। इसीलिए वे वन में आये हैं।' इस समय जटायु के मुख से रक्त और झाग निकल रहा था, उसके प्राण पखेरू उड़ने ही वाले थे परन्तु श्रीराम के वचन सुनकर वह अत्यन्त भक्तिभाव से 'श्रीराम जयराम, जय-जयराम' कहते हुए श्रीराम का नामस्मरण कर रहा था। मेरा देह-भ्रम समाप्त करने के लिए श्रीराम का आगमन हुआ है। धन्य हैं श्रीराम, जो स्वयं औषधि रूपी वृक्ष बेल हैं कृपानिधि भगवान जिसके समीप जायेंगे, वह सत्यत: पावन हो जाएगा। फिर जटायु बोला "हे श्रीराम, जो मैं कह रहा हूँ वह ध्यान से सुनें ! जिस सीता को तुम वन में ढूँढ़ रहे हो, उसे मैंने देखा है। उसे निश्चित रूप से रावण ले गया है। सीता मुझे गुरु पत्नी के रूप में पूज्य हैं। अपने बड़प्पन के कारण वह मुझे प्राणों से भी प्रिय है। आश्रम में कोई नहीं था तब रावण उसे चुरा कर ले गया है। आप मृग के पीछे गये तत्पश्चात् लक्ष्मण भी पर्णकुटी से चले गये। उस समय वह कपटी रावण आकर सीता सुन्दरी को ले गया उसने बलपूर्वक उसका हरण कर लिया। उस समय आप दौड़कर नहीं आये। सीता आक्रंदन करती

रही और रावण उसे ले गया। मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा है। मेरे वचन सुनकर तुम मुझे नपुंसक समझोगे लेकिन मैंने सीता को बचाने के लिए लंकानाथ की कैसी दुर्दशा की, वह सुनो।"

"रावण ने सीता का हरण किया उस समय मैं वन क्रीड़ा के लिए गया हुआ था। सीता का आक्रोश सुनकर मैं वेग से उड़ते हुए वहाँ आया। रावण से भीषण युद्ध किया। उधर रक्तरंजित भूमि दिखाई दे रही है, वह देखो। रावण का छत्र मैंने तोड़ डाला, उसका धनुष नखों से टुकड़े-टुकड़े कर दिया, उसके रथ में जोते हुए खरों को मार डाला। हम दोनों के मध्य भीषण युद्ध हुआ। मैंने उसका ध्वज तोड़ दिया, रथ और सारथी को नष्ट कर दिया, उसके सिर से मुकुट गिरा दिया। युद्ध में रावण पराभूत हुआ। मेरे समक्ष उसका पराक्रम टिक नहीं पा रहा था। तब उसने मेरी दृष्टि से बचकर सीता को ले जाने का प्रयत्न किया। वह राक्षसी माया का प्रयोग कर सीता को बगल में दबाकर गुप्त रूप से पशु-पक्षियों को भी पता लगे बिना आकाश मार्ग से जाने लगा। मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूँ। मेरे समक्ष रावण सीता को उठा ले गया, अब श्रीराम से क्या कहूँगा ? यह विचार कर लज्जित हुआ। उतने में रावण सीता को आकाश मार्ग से ले जाते हुए दिखाई दिया। मैं तत्काल भागा और एक झड़प से ही सीता को छुड़ा लिया। अत्यन्त वेग से दौड़कर अनेक घावों से रावण को घायल कर उसका शरीर नखों से छिन्न-विछिन्न कर दिया। उसके शरीर से रक्त प्रवाहित होने लगा। अपने मुख, नख एवं पंखों से प्रहार कर रावण को अस्त-व्यस्त कर दिया। तब भयभीत हो सीता को छोड़कर रावण भागने लगा।"

"परन्तु एक पक्षी ने परास्त कर सीता को उससे छुड़ा लिया, इससे लज्जित हो वह पुनः युद्ध के लिए आया और युद्ध करने लगा। उसने क्रोधपूर्वक मुझ पर पैरों से प्रहार किया जिसे मैंने अत्यन्त चपलतापूर्वक असफल कर दिया। उसने मुष्टियों से आघात किया, जिसका मैंने भी प्रतिउत्तर दिया। इस प्रकार मेरे पंखों द्वारा उत्पन्न हवा के आवर्त, नखों एवं मुख के आघात ने रावण को पुनः अस्त-व्यस्त कर मूर्च्छित कर दिया। मेरे दोनों पंखों से उत्पन्न वायु ने उसे आकाश में उड़ा दिया। वहाँ से जब वह नीचे गिरने लगा तो फिर मैंने उड़ान भर उसे पंखों से प्रताड़ित किया। मेरा पराक्रम देखकर रावण भयभीत हो मेरी शरण आया और अत्यन्त दीन होकर युद्ध बन्द करने के लिए कहा। एक पक्षी को युद्ध में न हरा सकने के कारण रावण के अहंकार को ठेस पहुँची। सबके समक्ष जाने में उसे लज्जा का अनुभव हुआ। तब वह फिर युद्ध के लिए आया। वह मुझसे छल करने के लिए वापस आया था। वह मुझसे बोला- "हम लोग आमने-सामने युद्ध करेंगे।" मैंने वह भी मान्य कर लिया।

"रावण के मन में कपट था। हे श्रीराम, उसने मुझे तुम्हारी सौगन्ध देकर पूछा कि मेरे प्राण किसमें निहित हैं। प्राण-हानि होते हुए भी झूठ न बोलने और तुम्हारी शपथ न तोड़ने का निश्चय कर तुम्हारी भक्ति से, सत्य और सात्त्विक भावना से, मेरी मृत्यु दोनों पंखों में निहित है-यह मैंने उसे बताया। तत्पश्चात् मैंने उससे पूछा कि तुम्हारी मृत्यु किसमें है ? उस झूठे, पापी, कपटी ने कहा कि उसकी मृत्यु बायें पैर के अँगूठे के नाखून में है। वह महापातकी झूठा रावण आकाश में संचार करने वाला (खेचर) और मैं पक्षी (खग) दोनों का युद्ध प्रारम्भ हुआ। हम दोनों एक दूसरे के मर्मस्थल का लक्ष्य बनाकर आकाश में ही युद्ध करने लगे। मैंने पंखों से रावण को झड़पें दीं। उसके बायें पैर का नाखून भेद दिया फिर भी रावण मरा नहीं क्योंकि उसने झूठ बोला था, वह कपटी था। मुझे लगा रावण ने भावार्थ रूप में नख कहा होगा अतः मैंने पुरुषार्थ दिखाते हुए उसका अगूँठा ही छेद डाला। ऐसा करते हुए मेरे पंख रावण के हाथ लग गए और उसने उन्हें उखाड़ दिया। मुझे बहुत दुःख हुआ। मेरे पंख उसने उखाड़े,

इसका मुझे लेश-मात्र दु:ख न था परन्तु रावण सीता को ले गया और मेरे समक्ष ले गया इसका मुझे अत्यन्त दु:ख हुआ। इस प्रकार रावण ने दुस्साहस किया। तुम्हारी कृपा दृष्टि मुझ पर न पड़ने के कारण मुझे यश मिलना असम्भव ही था। इसीलिए रावण सीता को ले जाने में सफल हुआ। पंख टूटने का मुझे कोई दु:ख नहीं लेकिन हे श्रीराम, तुम्हारे शीघ्र न आने के कारण रावण सीता को ले गया इसका मुझे दु:ख है। मेरे देखते-देखते विलाप करती हुई सीता को रावण ले गया। हे रघुनाथ, मुझे इसका अत्यन्त कष्ट है। अब मैं और तुम्हें क्या कहूँ।"

जटायु का कथन सुनकर श्रीराम ने उसे कृपापूर्वक गले से लगा लिया। इस समय श्रीराम की आँखों में आँसू भर आये। जिस प्रकार रणभूमि में अपना कोई सखा, बंधु, पुत्र घायल होकर गिरने पर दु:ख की अनुभूति होती है, जटायु को पड़ा हुआ देखकर उसी प्रकार दु:खी हो कृपालु राम विलाप करने लगे। युद्ध में रावण को परास्त कर सीता को जिसने मुक्त किया वही जटायु कपटपूर्वक मारा गया। इस कारण दु:खी हो लक्ष्मण भी विलाप करने लगे। 'अगर युद्ध के समय पहुँच जाते तो रावण सीता को न ले जा पाता और मेरा जटायु भी बच गया होता। इस प्रकार दु:ख से सौमित्र बोले-- "किसी के द्वारा मार्ग न बताये जा सकने के कारण व्यर्थ ही इधर-उधर घूमना पड़ रहा है। सही मार्ग ज्ञात होने पर उस मार्ग से जाना सम्भव हो सकता है।" ऐसा कहकर व्यथित होते हुए जटायु का घात हुआ देखकर मित्र का पतन हो गया कहते हुए लक्ष्मण विलाप करने लगे। तत्पश्चात् श्रीराम जटायु से बोले "अगर तुम्हारे कंठ में बोलने की शक्ति हो तो सीता को ढूँढ़ने के लिए इस समय मैं जितना पूछूँगा उसका उत्तर दो। सीता का हरण कर रावण किस दिशा में गया ? उसका ठिकाना उसका भवन कहाँ पर है, इस विषय में मुझे बताओ।"

श्रीराम का प्रश्न सुनकर जटायु अत्यन्त आनन्दित हुआ। वह बोला-- "श्रीराम के मुझे दर्शन हुए मैं अब धन्य हो गया। रावण सीता को ले गया, इस विषय में विस्तृत कथन करने के लिए मैंने अपनी आत्मा को कंठ में रोक रखा है। मेरे मूर्च्छित होने के पश्चात् रावण किस दिशा में गया ? उसके भुवन भवन इत्यादि के विषय में मुझे कोई जानकारी नहीं है।" यह कहते हुए जटायु के नेत्र विस्फारित हुए। वह बोला-- "श्रीराम, सत्य कहता हूँ अब मुझसे बोला नहीं जाता। तुम्हारे चरणों पर मस्तक रखकर मैं अपना जीवन समाप्त करता हूँ।" इस पर श्रीराम बोले- "हे लक्ष्मण ! सीता हरण का दु:ख मुझे उतना दुखदायी नहीं है, जितना जटायु की मृत्यु का दु:ख है। मेरे लिए इसने अपने प्राण न्योछावर कर दिये अत: इसके ऋण से मुक्त होना चाहिए। इतना कहकर श्रीराम ने जटायु को आश्वासन दिया। कुलनन्दन श्रीराम बोले- "तुम भयभीत मत हो, मैं तुम्हारे प्राणों की रक्षा करूँगा। प्राण त्याग मत करो, मैं तुम्हारे दु:खों का निवारण करूँगा। मैं तुम्हें तुम्हारे दोनों पंख प्रदान करूँगा। असंख्य वर्ष तुम जीवित रहो। तुम मरणोन्मुख क्यों हो रहे हो ? हम तीनों मिलकर रावण को ढूँढ़कर उसका वध करेंगे। तुम युद्ध में सहभागी होने के पश्चात् ही प्राण त्यागना। जिस समय स्वर्ग में दशरथ नमुची से युद्ध करने के लिए सिद्ध हुए उस समय तुमने उनकी सहायता की, वैसे ही अब भी सहायक बनकर लंकानाथ के वध के लिए हमारी सहायता करो।"

श्रीराम के वचन सुनकर जटायु हँसा और बोला- "तुम मुझे बचाओगे, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है तुम अखिल सृष्टि के स्रष्टा हो। तुम्हारे अस्तित्व में ही सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय होता है। तुम्हारी आज्ञा ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी मानते हैं- ऐसा तुम्हारा सामर्थ्य है। तुम्हारे द्वारा रावण

को मारे जाने में निमिषार्द्ध भी नहीं लगेगा। वहाँ मेरी क्या आवश्यकता है ? मेरी विनती सुनो, मेरे जीवन की मर्यादा पूर्ण होने तक मैं तुम्हारे चरणों का चिन्तन करता रहूँ, यह मेरी इच्छा है। अतः मेरा जन्म-मृत्यु का चक्र समाप्त करो। जीवन के अन्तिम क्षणों में श्रीराम के दर्शन हों ऐसी योगी सन्यासियों की सतत इच्छा रहती है। हे कृपा मूर्ति, मुझे तो तुम्हारे साक्षात दर्शन हुए हैं। अब मुझे अपनी देह का लोभ शेष नहीं है। हे श्रीराम, मेरी बात सुनो ! ऐसी मृत्यु मुझे फिर कभी प्राप्त न हो सकेगी। मुख से श्रीराम का नाम स्मरण आँखों से श्रीराम के दर्शन, हृदय में श्रीराम का ध्यान, ऐसी स्थिति होते हुए मृत्यु का कोई दुःख नहीं। हे श्रीराम, अन्त में तुम्हारा नामस्मरण करने से तुम भक्तों को मुक्ति देते हो। ऐसे पूर्ण ब्रह्म के आज मिलन पर मुझे देह-लोभ शेष नहीं रहा। मेरा भाग्य फलीभूत हो कर मुझे श्रीरामरूपी परब्रह्म के दर्शन हुए। अतः अब मेरा देह लोभ समाप्त कर मुझे कृपा दृष्टि से देखें। रावण द्वारा पंख तोड़ने पर अब पंखों का अभिमान भी नष्ट हो गया है। इसी कारण श्री रघुनन्दन सन्तुष्ट हुए। अतः अब मेरा जीवन बहुत हो गया, मेरे भाग्य से मुझे कृपामूर्ति श्रीराम मिले हैं। अतः दोनों चरण पकड़कर मैं विनती करता हूँ कि मुझे जन्म-मरण से मुक्त करो।" जटायु का निवेदन और उसकी विनती सुनकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए।

श्रीराम कृपा से जटायु को उत्तम गति की प्राप्ति– सीता के लिए जटायु ने अपने प्राण न्यौछावर कर दिये, यह स्मरण कर श्रीराम सन्तुष्ट हुए। उन्होंने जटायु को उत्तम गति प्रदान की. सोमयाग, श्येनयाग, अश्वमेध याग और नाना प्रकार के दान जटायु के लिए गौण हैं। यह श्रीराम ने अनुभव किया। शरण आने वालों को शरणागति, धर्मशील होने वालों को धर्म गति, पुनः जन्म न प्राप्त करने की गति को भी श्रीराम गौण समझते थे. संन्यासियों की ब्रह्मसदन प्राप्ति अथवा योगियों की योगमुक्ति भी श्रीराम की दृष्टि से गौण ही थी. अतः उन्होंने जटायु से स्पष्ट कहा– "इन सब गतियों से श्रेष्ठ उत्तमोत्तम स्थिति परात्पर परम-गति मेरी आज्ञा की शक्ति से तुम्हें प्राप्त होगी।" इस पर जटायु ने पूछा– "तुम्हारी आज्ञा की आत्मशक्ति तुम्हारे पास है, वहाँ मेरी पहुँच किस प्रकार सम्भव है ?"

श्रीराम ने उसे बताया– "तुम किसी प्रकार की शंका अपने मन में मत रखो। अरे, योगयाग धर्म पालन करने वाले धार्मिक जो गति प्राप्त करते हैं, उसका उपभोग से क्षय हो जाता है। पुनरावृत्ति सभी के लिए अनिवार्य है। मेरे दर्शन का पुण्य, कल्प व्यतीत हो जाने पर भी क्षीण नहीं होता। ऐसा ही शाश्वत स्थान तुम्हें प्राप्त होगा। ये मेरे सत्य वचन हैं, जिन्हें तुम ध्यान में रखो। सामान्य व्यक्ति के सहज रूप में बोलने की तरह ये मेरे वचन नहीं है। तुम शीघ्र प्रस्थान करो।" श्रीराम के द्वारा ऐसा कहते ही वैकुंठवासी, चतुर्भुज, पीतांबर एवं शंख-चक्र व गदा धारण किये हुए विमान में बैठकर कोई एक व्यक्ति वहाँ आया और श्रीराम का हाथ जोड़कर नमन कर खड़ा हो गया। श्रीराम उस पुरुष से बोले– "यह मेरा जटायु पुण्यवान् है, आप उसे वैकुंठ ले जायें और अक्षयवासी के रूप में उसकी वहाँ स्थापना करें विमान देखते ही जटायु दिव्य-देही हो गया। उसने श्रीराम के चरण स्पर्श किये और बोला– "किस प्रकार तुम्हारी वंदना करूँ ? तुम्हारी वंदना करते हुए वेद-शास्त्र भी मौन हो जाते हैं, उनके शब्द भी अधूरे पड़ जाते हैं। मैं तो दीन पक्षी हूँ। तुम्हारे गुण वर्णन मैं क्या कर पाऊँगा। कुछ न बोलना ही स्तुति है। कुछ न करना ही भजन है, कुछ न होने का अर्थ है सर्वस्व प्राप्त होना क्योंकि हे श्रीराम, परिपूर्ण ब्रह्म तुम स्वयं ही हो " तत्पश्चात् तीन बार प्रदक्षिणा कर, श्रीराम की चरण-वंदना कर, जटायु ने विमान में बैठकर वैकुंठ की ओर प्रस्थान किया। वैकुंठवासी उस पुरुष को भी श्रीराम का स्वामित्व मान्य है यह देखकर जटायु चकित हुआ। इसीलिए पुनः प्रदक्षिणा और चरण वंदना करने के पश्चात् ही जटायु ने विमान में

बैठकर वैकुंठ की ओर प्रस्थान किया। उस समय श्रीराम ने उससे कहा– "स्वयं के तेज से देदीप्यमान, शोभायमान होकर क्षण में ही तुम वैकुंठ जाओगे। हे जटायु, तुम्हारा कल्याण हो।"

श्रीराम ने पवित्र जटायु को वैकुंठ भेजा। वे बोले- "वैकुंठ में तुम्हारी अगाध कथा सुनकर त्रिलोक में तुम्हारी ख्याति होगी। वैकुंठ में मेरे पिता दशरथ तुम्हें मिलेंगे। मेरे वनवास के विषय में तुमसे पूछेंगे। तब रावण ने सीता का हरण किया है, यह उनसे कदापि मत बताना। राम ने जटायु का उद्धार किया, यह सुनकर दशरथ को परम आनन्द की प्राप्ति होगी; सीता हरण का वृत्तान्त सुनकर उनको अपार दुःख होगा सूर्यवंश में जन्म लेकर, वनवास में सीता का हरण हुआ इसी कारण मैंने सूर्य वंश को लज्जित किया, ऐसा कहते हुए आवेश से अत्यन्त सन्तप्त होकर लंकानाथ का वध करने के लिए स्वयं दशरथ आयेंगे। इतना अनर्थ घटित हो जाएगा। अतः सीता हरण के विषय में उनसे मत कहना।" इस पर जटायु बोला "श्रीरघुनाथ, तुमने मुझे यह बताया, उचित ही किया अन्यथा मैंने दशरथ को सारा वृत्तान्त कह दिया होता क्योंकि उसके पीछे जो गूढ़ार्थ है, वह मैं समझ ही नहीं पाता।" पिता को इस विषय में कैसे ज्ञान होगा, इस सम्बन्ध में श्रीराम के विचार थे कि रावण स्वयं जाकर अपने मुख से सम्पूर्ण वृत्तान्त बतायेगा।

श्रीराम ने बताया– "जिसका मैं उद्धार करूँगा, वह स्वयं आकर सीता हरण, कुल के निर्दलन इत्यादि के विषय में कहेगा। सीता हरण करते ही श्रीराम ने रावण का पुत्र, बंधु, प्रधान एवं सैन्य सहित बाणों के प्रहार से वध कर दिया यह वार्ता सुनते ही दशरथ को सुख का अनुभव होगा। समस्त पूर्वज आनन्दित होंगे। वे मेरा पुरुषार्थ देखकर आल्हादित होंगे।"

श्रीराम ज्ञान विज्ञानघन हैं। तुम्हारे वचन ब्रह्म-लिखित हैं ऐसा कहकर जटायु ने साष्टांग दंडवत् कर वैकुंठ प्रस्थान किया। श्रीराम स्वतः पूर्ण ब्रह्म हैं, जिसका सम्पूर्ण भक्त जटायु सुख से सम्पन्न हुआ।

अध्याय २२

[राक्षस कबंध का उद्धार]

जटायु का उद्धार करने के पश्चात् श्रीराम लक्ष्मण के साथ सीता को ढूँढते हुए वन-उपवन में भ्रमण कर रहे थे। एक वन में घूमते हुए लक्ष्मण को कुछ अपशगुन अनुभव हुए। उसने भयभीत हो रघुनन्दन को बताया। सौमित्र तेजस्वी महावीर थे। परस्त्रियों को भगिनी के समान मानने वाले, सत्यवादी, पवित्र और राम भजन में एकाग्र होकर रहने वाले थे। धन, मान का त्याग कर अपनी पत्नी को छोड़कर रघुनन्दन की भक्ति को श्रेष्ठ समझने वाले थे। उन्होंने अशुभ अपशगुन के चिह्न श्रीराम को बताये, वह बोले– "मेरे बाहु-स्फुरण होते समय दुःख रहे हैं। आँखें अशुभ सूचक फड़क रही हैं। अतः श्रीराम, आप [illegible] यहाँ आगे किसी विघ्न की संभावना है। बायीं तरफ से चाष जा रहे हैं। कौओं का कुशब्द सुनाई दे रहा है दिशाओं में मानों वायु के अभाव से घुटन हो रही है, पशु-पक्षी संत्रस्त हैं।" ये अशुभ चिह्न [illegible] दोनों सावधान हो, आगे बढ़ने लगे। तभी विकट विघ्न आन पड़ा। श्रीराम और लक्ष्मण के समक्ष जोर से चिल्लाने की आवाज़ें सुनाई देने लगीं। तीनों लोक उन आवाज़ों से गूँज उठे। वनचर भयभीत हो

गए। श्वापद आक्रोश से चिल्लाने लगे। कुछ तारस्वर में चीखने लगे कुछ मूर्च्छित हो गए। वृक्ष समूल धराशायी हो गए। यह सब देखकर उन्होंने अपने धनुषबाण सज्ज किये और वन में उत्पन्न विघ्न निवारण हेतु वे आगे बढ़े।

श्रीराम और कबंध राक्षस की भेंट– श्रीराम ने लक्ष्मण को बताया कि 'दण्डकारण्य शुद्ध और बाधा रहित' करने की मेरी प्रतिज्ञा है अतः सर्वप्रथम यहाँ के विघ्नों का निराकरण करके ही हम आगे बढ़ेंगे।' फिर श्रीराम विघ्नों को दूर करने के लिए लक्ष्मण सहित आगे बढ़े। वहाँ वन में उन्हें एक अत्यन्त अद्‌भुत राक्षस दिखाई दिया। उसके कंठ के ऊपर सिर नहीं था। आकाश के समान विशाल उसका शरीर था, पेट में उसका क्रूर मुख दिखाई दे रहा था। उसकी दाढ़ें उग्र और अति भयंकर थीं। लाल लाल क्रोध से भरे हुए नेत्र थे। क्रोधपूर्ण उसकी दृष्टि थी। पैरों के अभाव में वह एक स्थान पर बैठा हुआ था। उसके हाथ इतने लम्बे थे कि एक योजन की दूरी तक उनकी पहुँच थी। उन हाथों को दसों दिशाओं में घुमाकर उनसे पशु पक्षी पकड़ कर वह खाता था। उन्मत्त हाथियों के झुंड के झुंड भी उसके मुख में जा सकते थे। वैसी ही अवस्था बाघ, सिंह, भालू इत्यादि की भी होती थी। आकाश में उड़ने वाले पक्षियों वन में चरने वाले पशुओं को हाथों से पकड़कर वह मुँह में डाल लेता था। उसके लम्बे हाथों की उपस्थिति से अवगत न होने के कारण प्राणी उसकी पकड़ में आसानी से आ जाते थे और वह उन्हें खा जाता था। यह कबंध राक्षस किसी पर्वत के समान ही था।

रावण ने राम और लक्ष्मण को मारने के लिए जिन आठ राक्षसों को भेजा था, उन राक्षसों के कबंध वन में आते ही कबंध राक्षस ने उन आठों राक्षसों को पकड़कर खा डाला। फिर राम और लक्ष्मण को पकड़ने के लिए उन पर ध्यान केन्द्रित किया। सिर और चरण रहित होने और मात्र मध्य भाग होने के कारण उसे कबंध नाम से जाना जाता था। राम और लक्ष्मण को पास आते हुए देखकर उन्हें पकड़ने के लिए वह तैयार हुआ। उन दोनों को उसने दोनों हाथ फैलाकर पकड़ लिया। उन्हें खाने के लिए वह अपना समस्त बल एकत्र कर उन्हें अपने पास खींचने लगा परन्तु श्रीराम को वह अणुमात्र भी खींच न सका, अतः वह राक्षस सशंकित हुआ। वह सोचने लगा– "मैं कबंध इतना बलशाली होते हुए भी ये दो व्यक्ति मुझसे खींचे नहीं जाते, उनके पास इतनी भयंकर शक्ति कहाँ से आयी ? यह जानने के लिए अनेक प्रश्न और विचार उसके मन में आये कि उनका कुलगोत्र क्या है ? वह कौन है ? यहाँ आने का क्या प्रयोजन है ? क्योंकि यहाँ आने वाले तो सब उसके भक्ष्य ही होते हैं, फिर ये यहाँ क्यों आये ?

श्रीराम से लक्ष्मण बोले– "इस राक्षस ने तो हमें दृढ़ बन्धन में बाँध दिया है। शक्तिमात्र से इस बन्धन से मुक्त होना असम्भव दिखाई दे रहा है। अब क्या करें ?" इस पर श्रीराम ने कहा– "लक्ष्मण। अगर दृढ़ बन्धन से मुक्त होना है तो स्वयं ही प्रयत्न करना चाहिए। जो दूसरों से सहायता की आशा करता है, वह हीन, दीन और नपुंसक ही कहलाएगा। सौमित्र, सावधानीपूर्वक सुनो । मुझे इसके विषय में जानकारी हेतु इसका वृत्तान्त पूछने दो फिर मैं इसका वध करने में क्षण भर भी नहीं लगाऊँगा।" कबंध ने उन दोनों को धमका कर कहा– "अगर तुम दोनों ने मुझे अपने विषय में नहीं बताया तो मैं तुम्हारा वध कर दूँगा," तब रघुनाथ हँसकर अपना वृत्तान्त कहने लगे– "मैं दशरथ पुत्र हूँ। रावण ने सीता का हरण किया है अतः उसे ढूँढ़ते हुए हम इस वन में आये हैं। तुम दीर्घ लम्बी भुजाओं से युक्त हो, तुम्हारा

सिर नीचे है। विकराल स्वरूप वाले तुम कौन हो ? हमारा मार्ग रोकने का कारण क्या है ? अपने विषय में बताओ।" कबंध क्रोधित होकर बोला "मेरा परिचय मात्र इतना है कि हाथों से खींचकर तुम दोनों को मुँह में डालते हुए खा जाऊँगा।" फिर कबंध ने बलपूर्वक क्रोधित हो, उन दोनों को खींचना प्रारम्भ किया परन्तु उन दोनों भाइयों को खींचना उसे कठिन लगने लगा, उसकी दोनों भुजाएँ कंधे से उखड़ने लगीं।

उस समय लक्ष्मण श्रीराम से बोले– "रघुनाथ, यह तो हमें मारने के लिए तत्पर है। अत: इसका शीघ्र वध करें, विलम्ब न करें।" श्रीराम ने कहा– "इसके पैर नहीं है परन्तु यह भुजाओं से ही पूर्ण बलवान् है अत: इसके बाहु तोड़ने चाहिए। हम दोनों को पकड़े हुए इसके हाथ अभी व्यस्त हैं। अत: इसके दोनों हाथों को खड्ग से सावधानीपूर्वक विच्छेदित करना चाहिए।" श्रीराम ने इतना कहकर तुरंत खड्ग निकालकर कबंध का दाहिना हाथ तोड़ डाला; उसी समय लक्ष्मण ने बायाँ हाथ तोड़ दिया। कबंध की महाभुजाएँ तोड़ते ही रक्त की धाराएँ बहने लगीं। वह राक्षस आक्रंदन करने लगा, उसके आक्रोश से समस्त चराचर एवं आकाश-पाताल गूँज उठे, पशु पक्षी, हिंसक पशु सभी भागने लगे। दिग्गज भय चकित हो गए। राक्षस स्वयं कंपित होकर बोला– "क्या आप ही राम, लक्ष्मण हैं। मेरी भुजाओं को तोड़ना अन्य किसी के लिए सम्भव नहीं था मेरी अतर्क्य भुजाएँ केवल राम लक्ष्मण ही तोड़ सकते थे। अन्य तो देखकर ही मूर्च्छित हो जाते थे। अन्य लोगों को मेरा हृदयगत समझ में नहीं आता था मुझे देखते ही वे मूर्च्छित हो जाते थे और मैं तुरन्त उन्हें खा जाता था। मेरी सम्पूर्ण शक्ति लगने के पश्चात् भी आप खींचे नहीं गए। इसके विपरीत मेरी ही दोनों भुजाएँ तोड़ डालीं। इससे ऐसा लगता है कि आप दोनों अवश्य ही राम-लक्ष्मण होंगे। आपके वार से मुझे दु:ख न होकर सुख की ही अनुभूति हुई अत: आप ही श्रीराम और लक्ष्मण होंगे। आप अलौकिक हैं।"

कबंध द्वारा स्ववृत्तान्त कथन– कबंध का कथन सुनकर लक्ष्मण बोले– "हम ही श्रीराम और लक्ष्मण हैं हम दोनों सीता को ढूँढते हुए यहाँ पहुँचे हैं। अब तुम कौन हो ? इस वन में सिर और पैरों के बिना कबंध रूप में निवास कर रहे हो। तुम्हारा प्रचंड पेट, पैरों का अभाव तथा पेट में ही मुख, इस प्रकार तुम्हारी सम्पूर्ण आकृति विकराल दिखाई दे रही है। अपने हाथों से पकड़कर इतने सारे पशु-पक्षियों का भक्षण करते हो। तुम्हारी भूख विलक्षण ही है।" कबंध से उसके विषय में पूछने पर वह सन्तोषपूर्वक अपना पूर्व वृत्तान्त बताने लगा–

"कश्यप की पत्नी दनी साक्षात् लक्ष्मी सदृश थीं। यह दनी ही मेरी माता है इस दनी का पुत्र होने के कारण मुझे दनु कहा गया। मैं अत्यन्त रूपवान सतेज और बलवान युवक था। अपनी इन विशिष्टताओं के कारण मुझमें घमंड उत्पन्न हो गया और मैं सबसे उद्दंडतापूर्वक व्यवहार करने लगा। वन में घूमते हुए विविध प्रकार की मुखाकृति बनाकर विचित्र व्यवहार से ऋषियों को डराने लगा। एक बार महाऋषि स्थूलशिर वन में फल चुन रहे थे। मैंने अपना मुख नीचे कर उन्हें भयभीत कर दिया, इस पर उन्होंने क्रोधवश मुझे श्राप दिया कि तुम विकराल मुख, चार कोस लम्बे हाथ, पैर विहीन शरीर और पेट में घुसे हुए सिर से युक्त भयंकर राक्षस बन जाओगे। फिर उनके पैर पकड़कर मैंने उ:शाप देने की विनती की तब वे बोले– "सीता को ढूँढते हुए श्रीराम और लक्ष्मण वन में आयेंगे। तुम उनका भक्षण

करने के लिए उन्हें पकड़ोगे तब वे तुम्हारे दोनों हाथ तोड़ेंगे और तुम्हारा उद्धार होगा।" मेरी एक अन्य उद्दंड कृति के विषय में आपको बताता हूँ–

"मैंने प्रदीर्घ तप कर प्रजापति ब्रह्मा को सन्तुष्ट कर लिया। मेरी तपस्या द्वारा विधाता के प्रसन्न होने पर मैंने उन्हें ब्रह्मशाप का निवारण करने की विनती की। इस पर वे बोले कि द्विज द्वारा दिये गए शाप पर किसी का सामर्थ्य नहीं चलता। ऋषि के वचन एवं उनके शाप का निवारण नहीं किया जा सकता, उनके वचन झूठ नहीं सिद्ध होते। विधाता के द्वारा ऐसा कहने पर मैंने उनसे दीर्घायुषी होने की प्रार्थना की। उन्होंने तत्काल वह वर दिया और उसी समय अदृश्य हो गए। तत्पश्चात् मुझे लगने लगा कि मैं श्रेष्ठ हूँ। मैं गर्वपूर्वक विचार करने लगा कि मैं तीनों लोकों में चिरंजीव हूँ। इन्द्र मेरे समक्ष नगण्य हैं। मैं इतना अभिमानी हो गया कि मैंने इन्द्र की स्वर्ग सम्पत्ति हस्तगत करने का निश्चय किया मैं इन्द्रपद की प्राप्ति का भी विचार करने लगा। मेरे इन विचारों एवं कृति से इन्द्र क्रुद्ध हुए। मुझे दीर्घायु प्राप्त होने के कारण इन्द्र मुझे एक कीटक के समान क्षुद्र लगने लगे। हमारा युद्ध हुआ। इन्द्र के प्रहार से मैं निष्प्रभ हो गया। उनके वज्र के आघात से मेरा शरीर घायल हो गया। सिर नीचे आ गया और पैर वज्र के प्रहार से कट गए। मैं अत्यन्त दुःखी होकर उनसे बोला "मेरा घात न करें।" इस पर इन्द्र बोले– "अरे तुम तो चिरंजीव हो, तुम्हारा जीवन समाप्त नहीं हो सकता।" इन्द्र द्वारा ऐसा कहते ही मुझे ब्रह्मशाप की प्राप्ति होकर मैं उन्मत्त राक्षस हो गया। मेरा मुख पेट में आ गया। मेरा स्वरूप विकराल एवं विकट राक्षस का हो गया। मेरे दोनों हाथ योजन भर लम्बे हो गए। जो उन हाथों को मिलता, वह सब मैं खाने लगा। मेरी क्षुधा अन्तहीन हो गई। मेरे खाने की कोई मर्यादा ही शेष नहीं रही। हे रघुनाथ, अपने उदर की इस अवस्था से मैं बहुत दुःखी हो गया। पेट की चिन्ता में पड़कर सबको चिन्तित कर दिया। हृदय ने कभी राम का स्मरण नहीं किया। इस पेट ने मुझे दुःखों के चक्र में फँसा दिया। मैं स्वयं को वेदशास्त्र सम्पन्न ज्ञानी समझता था और दूसरों को सामान्य, विषयासक्त, लोभी और क्षुद्र कीटक के समान समझता था। परन्तु अब मेरी स्वयं की यह अवस्था हो गई है। उस विषय में मैं जो कह रहा हूँ वह, हे श्रीराम, आप सावधानीपूर्वक सुनें।"

"हे श्रीराम, इस देह की संगति से मैं अपार दुःखी हूँ। एक मिट्टी के लोंदे के समान मेरी स्थिति हो गई है। मुझमें गति नहीं है। मेरा अन्त नहीं है। मेरा अन्तर्मन सर्वथा अशुद्ध है। बाह्य आचरण सब प्रकार से निन्दनीय है। जीवों को मारकर खाते समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र– यह विचार न करने वाला मैं एक अपवित्र राक्षस हूँ। मेरी इस भयंकर दुःख से पीड़ित अवस्था में, मेरे मूल शाप के भाग्य के कारण आज आप दोनों यहाँ आये हैं। आप सीता की खोज के लिए नहीं अपितु मेरा उद्धार करने के लिए यहाँ आये हैं। आपने जब मेरे हाथ तोड़े, उसी समय मेरा देहाभिमान नष्ट हो गया। मेरे ऊपर वार कर, हे श्रीराम, आपने मुझे सावधान कर सुख सम्पन्न बना दिया। आप दोनों सुख सम्पन्न, पूर्ण पुरुष, सत्वनिष्ठ, सद्विवेकी और सात्विक हैं। आपके चरण सुखदायक हैं। आप दोनों धैर्यवान, वीर, सत्स्वरूप, शूर, आत्मधर्मज्ञ, चिद्चिन्मात्र स्वरूप हैं। आपके दर्शन कर अज्ञान और पापों का नाश हो गया है। आपकी भेंट से सुख की प्राप्ति हुई है। अखिल सृष्टि में कृपालु श्रीराम ही हैं। आप दोनों अलौकिक पुरुषों की चरण सेवा करने से दुःखों का नाश होकर सुख की प्राप्ति होती है मुझ जैसे पापी, निंद्य,

राक्षस योनि में अधः पतन हुए को मुक्त करने वाले आप ही परब्रह्म महात्मा हैं।" ऐसा कह कर कबंध श्रीराम के चरणों पर गिरते हुए बोला "आपने मेरे देह का दहन कर दिया तो सीता को ढूँढ़ने के विषय में मैं आपको बताऊँगा।" यह सुनकर श्रीराम अत्यन्त सावधानीपूर्वक उसके वचन सुनने लगे।

श्रीराम ने कबंध से पूछा कि सीता के विषय में बताने के लिए कह रहे हो तो उसे कौन ले गया ? किस स्थान पर किस देश में ले गया, इस विषय में बताओ। बुद्धि को सतर्क कर, मन को शांत कर, सीता को कहाँ ले जाया गया है, इस विषय में मुझे बताओ।" श्रीराम के वचन सुनकर कबंध बोला– "मुझे जितना ज्ञात है, उतना बताता हूँ।" फिर लक्ष्मण को खड़ा कर गरजते हुए कबंध बोला, "श्रीराम की धर्मपत्नी रावण ले गया है। उसका नाम मैंने सुना है परन्तु उसे देखा नहीं है। वह आकाश मार्ग से कहाँ गया, किस ओर गया- यह मुझे मालूम नहीं है। उसका रहने का ठिकाना जनवास में है कि वन में है, यह भी मुझे ज्ञात नहीं। हे श्रीराम, मेरा शुद्ध ज्ञान ब्रह्मपाश के कारण विच्छिन्न हो गया है। इस राक्षस-देह के दहन बिना मेरा ज्ञान मुझे प्राप्त नहीं होगा। मेरे ज्ञान पर मेरे देह के बन्धन का आवरण चढ़ गया है। अगर मेरे इस देह को जला दिया तो मेरा ज्ञान मुक्त हो जाएगा। अतः मेरी इस राक्षसी-देह को एक गड्ढे में डालकर उसमें सूखी लकड़ियाँ डालकर उस देह का, हे सौमित्र ! तुम दहन करो। अन्तकाल में जो मैत्री का निर्वाह करता है, वही सुमित्र होता है। मैं तुम दोनों की कृपा का पात्र हूँ, श्रीरामचन्द्र कृपालु हैं। सौमित्र, सावधानीपूर्वक सुनो ! मेरे इस देह को प्रेतत्व नहीं है क्योंकि श्रीराम के हाथों के स्पर्श से यह देह पवित्र हो गया है। हे स्वामी, कृपा कर मेरे देह का दहन करो। इस राक्षस-देह के जलते ही सीता की प्राप्ति का विधान मैं उचित रूप से बताऊँगा। हे श्रीराम, मेरा यह सत्यवचन है।"

कबंध का देह-दहन; उसके द्वारा मार्ग दर्शन– श्रीराम कबंध का निवेदन सुनकर सन्तुष्ट हुए उन्होंने लक्ष्मण से कहकर कबंध का देह-दहन करवाया। चिता में कबंध का देह-दहन होते ही उसने निद्य राक्षस देह का त्याग किया और दिव्य देह धारण किया। दिव्य-वस्त्र, परिधान एवं अनेक दिव्य-आभूषण धारण किये हुए तथा चन्दन, मंदार, पारिजात इत्यादि सुगंधित पुष्पों की माला पहने हुए वह दनुदानव राक्षस-देह त्याग कर प्रसन्न हो बोला– "श्रीराम, आपकी कृपा से मैं क्षण-मात्र में सुखी हुआ आपका नाम स्मरण करने से सुरासुर शरणागत होते हैं। आपके चरणों के दर्शन कर स्वयं सायुज्य मुक्ति इन चरणों की शरण आती है। आज आपका मुझे पूर्ण-दर्शन हुआ है। इतना कहते हुए कबंध श्रीराम के चरणों पर गिर पड़ा। उस समय हंसयुक्त विमान वहाँ आया। अत्यन्त उल्लसित होकर कबंध बोला– "धन्य हो उस द्विज का, जिसके शाप से मैं निष्पाप हुआ। मेरी चित्स्वरूप श्रीराम से भेंट हुई। इस कारण मैं सुखी हुआ। समस्त चराचर जगत् मुझे चित्स्वरूप अनुभव हो रहा है, सुख का सागर प्रतीत हो रहा है। श्रीराम भी सन्तुष्ट हुए फिर हँसयुक्त विमान में बैठकर कबंध ने उत्साहपूर्वक सीता की प्राप्ति का मार्ग बताना प्रारम्भ किया।

"श्रीराम मेरे सत्यवचन सुनें। सीता की शीघ्र प्राप्ति के लिए आप सुग्रीव से मैत्री करें, सुग्रीव नामक वानर महाबलवान् और वीर है। यह वानर पेड़ों के पत्ते खाने वाला सामान्य वानर नहीं है। वह किष्किंधा का राजा है। उसके पास अपार सेना है। उसके चार प्रधान हैं। वे राजनीति जानने वाले,

पराक्रमी, सज्ञान और बलवान हैं। समान शीलयुक्त जीव, योग्य मैत्री करने में सफल होते हैं, वे एक दूसरे के लिए सहायक सिद्ध होते हैं। आपकी और सुग्रीव की समान योग्यता है। वह कैसे, यह भी मैं बताता हूँ। "आपकी पत्नी का रावण ने हरण किया। सुग्रीव की पत्नी का बालि ने हरण किया है। आप दोनों की अवस्था स्त्री-विरह से एक समान है। आप राजत्याग कर वनवास कर रहे हैं, वह भी राजत्याग कर ऋष्यमूक पर्वत पर रह रहा है। दोनों का दुःख समान है, दोनों ही दीन अवस्था में हैं। आप नरपति हैं, सुग्रीव वानरपति है, दोनों वीर हैं। उससे मैत्री कर सीता की प्राप्ति सम्भव है।"

श्रीराम को कबंध का मार्ग-दर्शन उचित लगा। उन्होंने कबंध द्वारा सुग्रीव के निवास स्थान तथा वहाँ पहुँचने के मार्ग की जानकारी प्राप्त की। कबंध उस विषय में विस्तार से जानकारी देते हुए बोला- "रघुपति, इस मार्ग से आगे जाने पर सुप्रसिद्ध पम्पा सरोवर दिखाई देगा। उस स्थान पर तपस्वी शान्तिपूर्वक निवास करते हैं। पम्पासरोवर के दर्शन से दुःखी मनों को पूर्ण सुख-शान्ति प्राप्त होती है वही उन वानरों का स्थान है, वहाँ वे आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करते हैं। आपकी और सुग्रीव की भेंट होने पर दोनों का दुःख दूर होगा। सुग्रीव करोड़ों वानरों द्वारा सीता को ढूँढ़ने में मदद करेगा। महाबलवान वानरों को तीनों लोकों में घर घर में सीता को ढूँढ़ने के लिए भेजा जाएगा। वे वानर सीता के ठिकाने की खोज कर शीघ्र वापस आयेंगे। सीता के विरह में आप स्वयं गिरिकंदराओं और वनों में सीता को ढूँढ़ेंगे परन्तु वे वानर अति शीघ्र उन्हें ढूँढ़ लेंगे। सुग्रीव और बालि की स्त्री के कारण ही परस्पर लड़ाई है। छह-छह महीने बाद दोनों में युद्ध होता रहता है। आपके द्वारा बालि का वध होगा, यह मुझे पूर्ण रूप से ज्ञात है। अतः शीघ्र सुग्रीव के पास जाकर बालि का वध करें। उनके परस्पर युद्ध के समय उपस्थित होकर बालि का वध करने से सुग्रीव आनन्दित होगा और उससे आपका भी कल्याण होगा, ये मेरे सत्यवचन हैं। सुग्रीव की मैत्री से आपको सीता की प्राप्ति होगी।"

यह बताकर कबंध विमान से आकाश की ओर उड़ चला। श्रीराम और लक्ष्मण ने वहाँ से पम्पा-सरोवर की दिशा में आगे प्रस्थान किया।

अध्याय २३

[शबरी का उद्धार; श्रीराम का ऋष्यमूक पर्वत की ओर गमन]

श्रीराम और लक्ष्मण धनुष-बाण सुसज्जित कर पम्पा सरोवर की दिशा में आगे बढ़े। वे सरोवर के पश्चिमी तटपर पहुँचे, सरोवर का पवित्र जल पीकर जब वह विश्राम के लिए रुके थे, उन्हें शबरी का अत्यन्त मनोरम आश्रम दिखाई पड़ा। वे वहाँ गये। श्रीराम और लक्ष्मण को स्वयं वहाँ आया हुआ देखकर शबरी को परमानन्द हुआ। वह श्रीराम के चरणों पर गिर पड़ी। लक्ष्मण की सद्भावपूर्वक वन्दना की। श्रीराम के दर्शन से उसे आनन्द की प्राप्ति हुई, शबरी ने मातंग ऋषि की अत्यन्त भक्ति भाव से नित्य सेवा की थी अतः उसकी बुद्धि शुद्ध थी। सब प्राणियों में भगवद्भाव रखने वाली शबरी श्रीराम की अनन्य भक्त थी। मातंग ऋषि के शिष्य निर्मल मन वाले थे। एक बार जब अकाल पड़ा हुआ था

तब वह गुरु के लिए फलमूल लाया करते थे। उस समय उनके शरीर से जो स्वेद बिन्दु गिरे थे, उसका सरोवर में रूपान्तरण हो गया। उस पवित्र सरोवर का जल कभी भी कम नहीं होता, वह नित्य शुद्ध जल से परिपूर्ण रहता है उस सरोवर का जल श्रद्धापूर्वक ग्रहण करने से त्रिविध तापों का शमन होता है दूसरे शिष्य के स्वेद बिन्दुओं के भूमि पर गिरने से नाना प्रकार के फूल खिल गए। ये पुष्प हमेशा सुगंधयुक्त रहते हैं, कभी मुरझाते अथवा सूखते नहीं हैं। उन फूलों की सुगंध से मन को होने वाला त्रिगुणों का क्लेश समाप्त हो जाता है और उसे परमेश्वर की प्राप्ति होती है। जीव और शिव उल्लसित हो जाते हैं ऐसी उन फूलों से सजी हुई वनश्री, सौन्दर्य व सौभाग्ययुक्त होने के कारण उनके दर्शनों से श्रीराम सन्तुष्ट हुए। उन्हें शबरी के सन्तोषदायक भाव का अनुभव हुआ। फिर उन्होंने शबरी से उसका वृत्तान्त पूछा। उसके समाधान के लिए उन्होंने उसे उपदेश भी दिया।

श्रीराम बोले– "शबरी, मैं जो कह रहा हूँ, वह सावधानीपूर्वक सुनो। स्वयं को ज्ञाता और जग को अज्ञानी समझने के इस महाविघ्न रूपी भाव पर विजय प्राप्त करनी चाहिए. अपने ज्ञान के लिए अभिमान करना ही तपस्वियों के लिए महाविघ्न है जिसने अपने ज्ञान के अभिमान पर विजय प्राप्त की उसका तप बढ़ता जाता है। उसके तप की महत्ता इतनी है कि स्वयं भगवान् भी उनकी आज्ञा का पालन करते हैं। इस संसार में उसे ही सच्चा तपस्वी माना जाता है और सभी देव उसकी वंदना करते हैं। अद्वैत भाव से अपने स्वरूप की कल्पना करने पर क्रोध पर विजय प्राप्त होती है। इसके विपरीत द्वैत–भावना होने पर क्रोध पर कभी विजय प्राप्त नहीं होती। जो दूसरे का धक्का लगने से गिरता है, वह अत्यन्त कुपित होकर क्रोध व्यक्त करता है। परन्तु जो स्वयं फिसल कर गिरता है, वह इधर-उधर देखकर चुप रह जाता है। अपनी जीभ अपने दाँतों तले आ जाने पर जो क्रोध आता है, उसे व्यक्त करते समय क्या कोई दाँत तोड़ने या जीभ तोड़ने की बात करता है। उसी प्रकार अद्वैत भावना के पास क्रोध के लिए कोई स्थान नहीं है। जिस समय मन में द्वन्द्व भाव रहता है तब माया-मोह पर विजय नहीं प्राप्त की जा सकती है। अद्वैत भावना के आते ही मोह–माया नष्ट हो जाती है। वृत्ति चित्स्वरूप होने पर मन सुखी हो जाता है। मन में अगर दुःख और क्रोध विद्यमान है तो किया हुआ तप भी मिथ्या सिद्ध होता है।"

"अगर सद्गुरु की सेवा सफल हो गई तो यह संसार मृग-जल के समान हो जाता है। जो सफलता नहीं प्राप्त करते, उनकी सेवा व्यर्थ का प्रलाप होती है। वे श्रीमुख को पहचान भी नहीं पाते हैं। जो गुरु को सामान्य मनुष्य मानते हैं, उनकी गुरुभक्ति मिथ्या होती है। उनको कल्पांत तक भी समाधान और विश्रांति नहीं मिलती। उपदेश उनके लिए भ्रांति सिद्ध होता है। जो मंत्र-तंत्र बताते हैं, वे मात्र मुख से ही उपदेश करते हैं, उन्हें आन्तरिक आत्मानुभव नहीं होता। वे उपदेश के विषय में भी भ्रम में ही रहते हैं। जिस प्रकार सोने का नाग कहने पर वह वास्तव में नाग नहीं होता, सोना ही होता है। दृश्य और द्रष्टा के सद्रूप होने पर ही उपदेश परिपूर्ण होता है। इस आत्मानुभव से ही सर्वदा गुरु- भक्ति करनी चाहिए। उसके लिए ज्ञान का गर्व और उद्दंडता त्याग कर सभी प्राणियों के प्रति निःस्वार्थ नम्रता का भाव रखना चाहिए। इन्द्रियकर्म की प्रवृत्ति है कि मैं कर्म का कर्ता नहीं। यह अनुभव गाँठ बांध लेने से वासना शांति और स्वानंद की सुखपूर्ण स्थिति प्राप्त होती है। इस प्रकार आत्मानंद की अनुभूति होने पर उसे ही वास्तविक तपस्थिति कहा जा सकता है। जो स्वयं के देह को मिथ्या समझते हैं, वही सच्चे

परमार्थी होते हैं।" ऐसा श्रीराम द्वारा बताने पर शबरी को पूर्णावस्था प्राप्त हुई. इसके पश्चात् उसने श्रीराम के चरणों पर अपना मस्तक रखा और तात्विक दृष्टि से अपना वृतान्त बताने लगी।

"श्रीराम, तुम्हारे दर्शन होते ही मेरा तप और ज्ञान सफल हुआ; ध्येय, ध्याता और ध्यान सफल हुआ और मेरा अनुष्ठान भी आज सफल हुआ। हे रघुपति, तुम्हारे आगमन से मेरी वृत्ति भक्ति, स्थिति सब सफल हुई। तुम्हारा नाम स्मरण करने से पूर्वजों का उद्धार हुआ और तुम्हारे दर्शन से मेरा जन्म सार्थक हुआ तुम्हारे चरणों के दर्शन से मेरे जन्म-मृत्यु के चक्र का अन्त हुआ। स्व और परभाव समाप्त हुआ। मैं सुख सम्पन्न हुई। तुमने चित्रकूट की ओर आते समय मार्ग में मुनियों का उद्धार किया। शरभंग के विमान से जाते समय मैंने उससे विनती की तब उसने मुझे बताया कि "श्रीराम तुम्हारे आश्रम में आयेंगे तब से अहोरात्र मैं तुम्हारे चरण मन में धारण किये हूँ। मेरी एक निष्ठ भक्ति जानकर तुम कृपावन्त होकर आये अतः आज यहाँ निवास करो और मेरी पूजा को स्वीकार करो। अल्प लेकिन पवित्र सामग्री मैंने एकत्र की है। हे रघुनाथ, तुम उसको स्वीकार करो। तुम्हारे साथ सखा सौमित्र भी है।" शबरी के ये कथन सुनकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए। उन्होंने विधियुक्त पूजा स्वीकार कर, वहाँ वन भोजन भी किया।

श्रीराम सन्तुष्ट होकर शबरी से बोले- "हमें दनुज (कबंध) ने तुम्हारे सामर्थ्य के विषय में बताया था। इसीलिए हम यहाँ आये हैं। तुम्हारा व्यवहार हमें देखना था। दनु दानव ने जितना बताया था उससे अधिक हमें अनुभव हुआ।" श्रीराम के वचनों को सुनकर शबरी के मन में आनन्द का अनुभव हुआ। शबरी बोली- "तुम्हारे वचनों से मेरा मन आनन्दित हुआ है. सद्गुरु के पूर्ण मन्त्र-सामर्थ्य से यह वन कभी कुम्हलाता नहीं है। यहाँ के फूल सूखते नहीं हैं। यहाँ का पानी कालावधि बीत जाने पर भी सूखा नहीं सद्गुरु का सामर्थ्य महान ही है। उनका कहना मानने पर मुझे आज ये सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनके वचनों का पालन करने से मुझे तुम्हारे चरणों के दर्शन हुए" ऐसा कहकर उसने श्रीराम के चरणों पर अपना मस्तक रखा और बोली- "अब मैं तुमसे कुछ माँग रही हूँ। हे दयावंत ! तुम मुझे वह प्रदान करो. तुम्हारे दर्शन के लिए आज तक यह देह धारण की। अब इन चरणों के दर्शन के पश्चात् देह का कुछ कार्य शेष नहीं रहा. तुम्हें देखने पर मेरी देह ममता समाप्त हो गई। हे कृपावंत अब इस जीव का त्याग करने की आज्ञा दो। देह की संगति से असंख्य दोषों का निर्माण होता है। यह संगत श्वान की उल्टी की तरह महा नारकीय और दुःखदायी है। देह संगति कितने ही दोषों और दुःखों का निर्माण करती है। अतः कृपा कर इस देह से निवृत्ति की मुझे आज्ञा दो." यह प्रार्थना कर उसने राम के चरणों पर साष्टांग दंडवत् किया।

शबरी को श्रीराम का उपदेश- श्रीराम शबरी का कथन सुनकर सन्तुष्ट हुए। उन्होंने उल्लसित होकर आज्ञा देते हुए कहा- "शबरी तुम अवश्य ही देहलोभ त्यागकर सुखपूर्वक परलोक प्रस्थान करो।" श्रीराम की यह आज्ञा सुनकर शबरी ने आसन लगाया और आत्मतेज से अग्नि प्रज्जवलित कर देह का दहन किया। श्रीराम की भक्ति से देह का दहन कर शबरी किस लोक में गई, इसका श्रवण करें।

अपने पुण्य के सामर्थ्यानुसार ऋषिगण विभिन्न लोकों को प्राप्त करते हैं। शबरी पाप और पुण्य से परे अत्यन्त समर्थ थी क्योंकि उसे श्रीराम के दर्शन हुए थे। श्रीराम के दर्शन का पुण्य दिव्य भोगों से भी क्षीण नहीं होता। शबरी को अक्षय स्थान प्राप्त हुआ। अतः जन्म-मृत्यु का चक्र समाप्त हुआ।

ऋषिवरों की पुण्य सम्पत्ति भोग-क्षय से कम होती है और उन्हें जन्म मरण की पुनरावृत्ति प्राप्त होती है। शबरी उस पुनरावृत्ति से मुक्त हुई। जहाँ श्रीशुक सनकादिक का निवास था, उसी लोक में शबरी को स्थान प्राप्त हुआ। इस स्थान में रहने वाले शिवादिकों को भी पूजनीय होते हैं। श्रीराम की कृपादृष्टि से परिपूर्ण पुण्य का लाभ मिलता है। देह-दहन से दैदीप्यमान हुई शबरी विमान के बिना निजगति को प्राप्त हुई। जो विमान के द्वारा जाता है, उनकी पुनरावृत्ति होती है। शबरी पुनरावृत्ति से मुक्त हो अगम्य गति को प्राप्ति हुई।

श्रीराम का दर्शन होने से पुण्य-सम्पत्ति अक्षय-सुख और कल्पान्त तक तनिक भी क्षय न होने वाली आत्मप्राप्ति शबरी को मिली। श्रीराम के दर्शन होते ही पाप-पुण्य से सम्बन्ध समाप्त हुआ। जन्म-मृत्यु का चक्र बन्द हुआ। शबरी को अक्षय संतोष की प्राप्ति हुई। श्रीराम स्वयं कृपामूर्ति होने के कारण शबरी सुखानुभव करती हुई तर गई। स्वर्ग में उसका जय जयकार कर सुर-सिद्धों ने पुष्प-वृष्टि की। इस प्रकार श्रीराम ने शबरी का उद्धार किया। शबरी के आश्रम में विश्राम करते समय वन शोभा देखते हुए राम लक्ष्मण को अपूर्व दृश्य दिखाई दिए मृग शावकों की आँखें और मुख देखकर श्रीराम को मृगनयना सीता की स्मृति हो आई। उनके मन में काम भावना उत्पन्न हुई। मनमोहन श्रीराम नित्य निष्काम होते हुए भी उनके मन में काम भावनात्मक क्षोभ उत्पन्न हुआ। काम का निष्काम पर आक्रमण हुआ तथा काम संभ्रम से राम ग्रस्त हुए।

प्राणियों की कामक्रीड़ा से श्रीराम प्रक्षुब्ध-- वसंत के आगमन से वनों की शोभा बढ़ गई थी, कोकिला पंचम स्वर में कूक रही थी, वह सुनकर सीता की स्मृति में राम पूर्ण सकाम हुए। उन्हें अनुभव हुआ जैसे कोयल का कूजन न होकर मदन के तीक्ष्ण बाण हैं। वे बाण हृदय में चुभकर वैरी हो गए। अतः श्रीराम लक्ष्मण से बोले-- "लक्ष्मण इन कोकिलों का निवारण करो। वे मेरा कहना नहीं मान रहीं हैं तथा अपना कूकना बन्द नहीं कर रही हैं।" श्रीराम ने संतप्त होकर विचार किया कि उन पक्षियों का बोलने वाला मुख बन्द होना चाहिए और सतप्त होकर उन्होंने वैसे शाप का उच्चारण किया। तब कोकिलों ने अत्यन्त दीन स्वर में विनती करते हुए कहा-- "हम मात्र वसन्त ऋतु में मधुर स्वरों में कूजन कर अन्य ऋतुओं में मौन धारण करेंगी।

श्रीराम फिर लक्ष्मण से बोले-- "सौमित्र, मेरी दृष्टि के समक्ष मृगी पर आसक्त मृग को देखकर मेरे मन में काम भावना का प्रक्षोभ हो रहा है। इसीलिए मुझे वह वैरी के समान लग रहा है यह मृग मेरी मूर्खता पूर्ण बातें मृगी के कानों में कह रहा है। उसमें सीता-हरण और राम की मूर्खता का निरूपण वह कर रहा है। पशु, पक्षी, और कौए भी अपनी स्त्री से विलग नहीं होते और यह राम, सीता को वन में अकेली छोड़कर गया यही राम की मुख्य मूर्खता है। अपने समीप स्थित सीता को खोकर यह राम वन में विलाप कर भटक रहा है उसके समान मूर्खता मैं कभी नहीं करूँगा, ऐसा वह मृग कह रहा है। इस मृग द्वारा मृगी से मेरी मूर्खतापूर्ण बातें कहकर मेरी निंदा की जा रही है।" श्रीराम ने मृग के वार्तालाप की ऐसी कल्पना करने के पश्चात् संतप्त हो मृग को शाप दिया "जब तुम्हारा अपनी स्त्री के साथ सहवास होगा तब घाव पड़कर तुम मृत्यु को प्राप्त होगे।" श्रीराम का यह शाप सुनकर अति दीन होकर मृग राम से विनती करने लगा। कृपामूर्ति श्रीराम ने फिर संतोषपूर्वक शापनिवृत्ति बतायी--

"जब शिकारी रात्रि के समय मृगों को संगीत से सम्मोहित कर जाल में पकड़कर, घायल कर मारेंगे, तभी तुम्हारे प्राण जाएँगे। अन्यथा तुम मृगों के साथ आनन्द एवं सुखपूर्वक सहवास करते हुए वन में विचरण करोगे।"

कुछ आगे बढ़ने पर श्रीराम को काम-वासना से उन्मत्त हाथी, हथिनी के साथ रमण करता दिखाई दिया। श्रीराम को लगा जैसे वह उन्हें सीता के विषय में लज्जित कर सुख से उपभोग कर रहा है। जिस प्रकार से मैं प्रेम से सीता को आश्वासन देता था, उसी प्रकार यह हाथी अपनी सूँड हथिनी के मस्तक पर रख रहा है। स्त्री विषयक काम भावना से उन्मत्त होकर मेरा उपहास कर रहा है। श्रीराम के मन में यह विचार आने पर उन्होंने हथिनी से काम-क्रीड़ा करने वाले हाथी से सीता के विषय में पूछा। उस समय हाथी के कुछ भी उत्तर न देने के कारण श्रीराम क्रुद्ध हुए और उन्होंने हाथी को कठोर शाप दिया कि हथिनी से काम-क्रीड़ा करते समय उसके साथ ही तुम्हारे प्राण जाएँगे।" श्रीराम का यह शाप सुनकर हाथी और हथिनी अत्यन्त दीन होकर श्रीराम से प्रार्थना करने लगे। उस विनती से सन्तुष्ट होकर श्रीराम ने शाप मुक्ति बतायी- "हथिनी से काम-क्रीड़ा करते हुए तुम अचेतन होकर गिर पड़ोगे तब हथिनी तुम्हारे मस्तक पर जल डालेगी, जिससे तुम्हारे प्राण बचेंगे ; तत्पश्चात् वह तुम्हें घास खाने के लिए देगी, फिर सात दिनों के पश्चात् तुम स्वस्थ होकर वन विहार करोगे। इस क्रिया को गजोपशोज कहा जाएगा। इस प्रकार सुखानन्दपूर्वक सेवा तुम्हें प्राप्त होगी।" श्रीराम के वचन सुनकर हाथी सुखी हुआ। आज भी हाथी व हथिनी की काम क्रीड़ा में यह विचित्र घटना घटित होती है। श्रीराम के विनोद में बोले गए इन वचनों से संसार में विचित्र प्रकार के घटनाक्रम घटित होते हैं।

श्रीराम और लक्ष्मण आगे जा रहे थे कि एक स्थान पर मयूर और मयूरी का जोड़ा उन्हें दिखाई दिया। श्रीराम उन्हें देखकर लक्ष्मण से बोले- "देखो लक्ष्मण, मोर मोरनी दोनों काम भावना से उन्मत्त होकर नृत्य कर रहे हैं और मुझे भी काम-पीड़ा से पीड़ित कर रहे हैं। यह मोर, उसकी मोरनी को राक्षस नहीं ले गये- यह कह कर वन में नाचते हुए मुझे चिढ़ा रहा है। मैं वन में सीता को खोकर दु:खी हूँ- यह देखकर दोनों नृत्य कर रहे हैं। ऐसा कहकर राम ने उन मोर मोरनी को संतप्त होकर शाप दिया- "मुझे दु:खी देखकर तुम दोनों उन्मत्त होकर नृत्य कर रहे हो, अत: तुम नपुंसक हो जाओगे, तुम्हारा सहवास होगा ही नहीं। श्रीराम की शाप-वाणी सुनकर वह मोर अत्यन्त दीन होकर राम के पैर पकड़ कर विनती करने लगा। मोर बोला- "हे श्रीराम, शाप मुक्ति दो। सीता के वियोग से तुम दु:खी हो रहे हो तो हम पक्षियों की क्या स्थिति होगी। हम यह दारुण दु:ख कैसे सहन करेंगे ?" मोर के करुण वचन सुनकर राम को दया आ गई। वे प्रसन्न होकर बोले- "तुम दोनों नृत्य करते हुए सुख सम्पन्न रहोगे और नेत्रों से वीर्य मिलकर तुम्हें पूर्ण सुख की अनुभूति होगी।

इसके पश्चात् श्रीराम ने एक कौवे को कौवी के साथ देखा। वे लक्ष्मण से बोले- "लक्ष्मण, यह विपरीत स्थिति देखो, वह काला कौवा अपनी पत्नी से क्रीड़ा करते हुए मुझे चिढ़ा रहा है। श्रीराम ने कौवे से सीता के विषय में पूछा। तब कौवे व कौवी दोनों राम से कुछ नहीं बोले। इस पर क्रोधित हो राम ने आवेशपूर्वक दोनों को शाप दे दिया। तुम दोनों का सम्पूर्ण जीवन में मात्र एक बार मिलन होगा। अभी भी कौवों की देह में दूसरा गर्भ नहीं रहता। इसीलिए तीनों लोकों में कौवों को काकवंध्या कहा जाता

है। और आगे बढ़ने पर श्रीराम को चकोरों की जोड़ी दिखाई दी। क्षणार्द्ध को भी एक दूसरे से विलग न होकर दोनों एक साथ इधर उधर घूम रहे थे। इस लोक में चक्रवाक अत्यन्त सुखी थे। जिस प्रकार शरीर के पीछे परछाईं चलती है, उसी प्रकार चक्रवाक के पीछे मादा चक्रवाक घूम रही थी। चक्रवाक, चक्रवाकी को कथा सुना रहा था कि राम ने सीता को खो दिया, परन्तु मैं अपनी प्रिया को छोड़कर नहीं जाता क्योंकि मैं राम के समान मूर्ख नहीं हूँ। वन में पत्नी को अकेली छोड़कर जाना, यही उसकी मुख्य मूर्खता है। यह ज्ञान उस श्रीराम को नहीं है। इसीलिए अपनी मूर्खता के कारण अब विलाप कर रहा है। यह मूर्ख अपनी पत्नी को छोड़कर गया ही क्यों ? अब उसके लिए दु:खी होकर वन में घूम रहा है।" उस चक्रवाक को अपनी पत्नी के साथ एकांत में काम-क्रीड़ा करते हुए देखकर राम अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उनसे शान्त नहीं रहा जा रहा था। श्रीराम ने उस चक्रवाक से सीता के विषय में पूछा तो उसने भी कुछ उत्तर नहीं दिया। श्रीराम ने उन्हें भी शाप दिया कि तुम्हारा वियोग होगा। चक्रवाक तड़पने लगे। दीन होकर गिड़गिड़ाते हुए उन्होंने राम से विनती की।

चक्रवाक बोला– "हमारी विनती सुनो ! हे कृपामूर्ति श्रीराम, सीता की वियोगावस्था तुमसे भी सहन नहीं की जाती तो यह वियोग हम कैसे सह पाएँगे। हे श्रीराम, उसकी अपेक्षा तुम हमारा वध कर दो। तुम्हारे हाथों मरने पर हम सुखी होंगे। हमारे देह का भंग होने पर भी उसे सहन कर लेंगे परन्तु स्त्री-वियोग हम नहीं सहन कर पाएँगे।" चक्रवाक के वचन सुनकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए। उन्होंने उ:शाप दिया– "तुम दोनों दिन में एक दूसरे के साथ रहोगे लेकिन रात्रि में तुम्हें वियोग प्राप्त होगा।" इस प्रकार राम शाप-मुक्ति देकर आगे बढ़े। अन्तर्मन में सीता का विरह होने के कारण पम्पासरोवर के तट पर श्रीराम ने चातुर्यपूर्वक यह बातें कहीं। श्रीराम लीला अवधारी थे। वास्तव में सीता-वियोग अथवा विरह स्थिति यह सब मिथ्या ही था। प्रत्यक्ष रूप से वास्तविक व्यवहार की सत्यता यह थी कि इन विभिन्न शापों का उद्धार उन्होंने किया था। श्रीराम समस्त प्राणियों में सद्रूप ही थे वियोग, शाप, विरह यह सब मिथ्या थे। श्रीराम स्वयं चित्स्वरूप थे। श्रीराम अर्थात् ज्ञान विज्ञान की अभिव्यक्ति, निर्विकल्प ब्रह्ममूर्ति, वह स्वयं परब्रह्म थे। सीता ध्येय हैं तो श्रीराम ध्यान हैं, सीता ज्ञेय हैं तो श्रीराम ज्ञान हैं। सीता चेतना स्वरूप हैं तो श्रीराम चैतन्य स्वरूप हैं अर्थात् दोनों अभिन्न रूप से एक ही हैं। श्रीराम के चित् स्वरूप होने के कारण उनका वर्णन करते हुए शास्त्र मौन हो जाते हैं। श्रुति 'नेति-नेति' कहते हुए वापस लौट जाती हैं। मेरी कथन-शक्ति भी असीमित है अत: ये वर्णन अब यहीं समाप्त करें और आगे की कथा को देखें।

श्रीराम का ऋष्यमूक पर्वत की ओर गमन– श्रीराम को ऋष्यमूक पर्वत की ओर जाकर सुग्रीव से मैत्री करने की उत्कंठा थी। श्रीराम लक्ष्मण के साथ आगे बढ़े। श्रीराम बोले– "लक्ष्मण, सावधानीपूर्वक देखो, यह ऋष्यमूक महापर्वत समीप ही दिखाई दे रहा है। यह फल फूलों से शोभायमान है। यहाँ ऋषियों ने यज्ञ किये अत: इसका ऋष्यमूक नाम पड़ा। सुग्रीव यहाँ पर प्रधानों के साथ निवास कर रहा है।"

वालि के भय से सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वत पर निवास कर रहा है। ऋषियों के शाप के कारण वालि में यहाँ आने का सामर्थ्य नहीं है। श्रीराम ने सुग्रीव से मिलने के लिए तुरन्त प्रस्थान किया। सुग्रीव

को बालि के भय से मुक्त कर, उसे सुख-सन्तोष प्रदान करना उनका मनोगत था। सुग्रीव की पत्नी का हरण कर बालि ने उसे दुःखी कर दिया था। ऐसे दुखियों के प्रति वह कृपालु धनुर्धारी श्रीराम परम हितैषी थे।

एकनाथ कृत अरण्यकाण्ड का समापन– अरण्यकाण्ड का वर्णन यहाँ समाप्त होकर आगे मधुर किष्किंधाकाण्ड का सुख विद्यमान है। भरत का हठ पूरा करने के लिए उसे पादुकाएँ दीं। रावण भी जिससे भयभीत हो, ऐसे कबंध राक्षस का वध किया। श्रेष्ठ शरभंग महामुनि से भेंट कर उनका कार्य किया। अनेक राक्षसों का संहार किया। माया मृग मारीच का वध किया, रावण द्वारा जटायु की हत्या हुई। सीता की खोज और दुःखपूर्वक विलाप करने वाले श्रीराम ने पार्वती की जिज्ञासा शान्त की, शबरी का उद्धार किया, कबंध को मुक्ति दी। ऐसी अनेक घटनाएँ अरण्य काण्ड में पूर्ण हुईं।

॥ इति अरण्यकाण्ड ॥

किष्किंधाकाण्ड

अध्याय १

[श्रीराम-हनुमान भेंट]

श्रीसंत एकनाथ लिखित प्रस्तावना– अरण्यकाण्ड का निरूपण श्रीराम की कृपा से मेरे द्वारा पूर्ण हुआ। अब उन्हीं की कृपा से किष्किंधाकाण्ड की कथा प्रारम्भ होती है। मेरे मूर्ख होते हुए भी श्रीराम, मेरे द्वारा स्वयं ही रामायण की कथा का पाठ करवा रहे हैं। यह राम-कथा कहते हुए यदि मैं विषयान्तर कर इधर-उधर भटक गया तो वही मेरा मार्ग दर्शन कर रामायण पर पूर्ण प्रकाश डालते हैं। श्रीराम ही अपने स्वभावानुसार एक के पश्चात् दूसरी ओवी छन्दों की रचना करवा कर राम-कथा को आगे बढ़ा रहे हैं। मैं अगर व्यर्थ का कुछ वार्तालाप करता हूँ तो वही राम मेरी वाणी में राम-कथा को भरकर मेरी वाचा रामायणमय कर डालते हैं। इसीलिए मुख से सतत राम का ही उच्चार होता है। मुझे निद्रावस्था में स्वप्न में श्रीराम, रामायण के ही दर्शन कराते हैं तथा मैं गहन ज्ञान का किस प्रकार निरूपण करूँ, यह भी बताते हैं। जब मैं सुप्तावस्था में होता हूँ तो मेरी पीठ थपथपा कर मुझसे कहते हैं– "उठो, शीघ्र रामायण लिखना आरम्भ करो, वृथा सोने से क्या लाभ ?" इस प्रकार रामायण लिखने के लिए वे मुझे सतत प्रेरित करते हैं। श्रीराम मेरे अन्तर्मन में पैठकर मुझसे शीघ्रता से राम-कथा का लेखन करवा रहे हैं। मैं आत्म निद्रा में डोल रहा हूँ। ग्रंथ लिखाने वाले श्रीराम ही हैं। मेरे कवित्व का सार यही है कि इस लेखन के कर्ता समर्थ श्रीराम ही हैं। श्रीरघुनाथ को मराठी में कही गई यह कथा भा गई है अतः वे पूर्ण सामर्थ्य से मुझसे लिखवा रहे हैं। थोड़ा भी समय वे व्यर्थ नहीं गँवाने देते।

श्रीराम का किष्किंधा की ओर प्रस्थान; सुग्रीव भयभीत– श्रीराम ने शबरी का उद्धार करने के पश्चात् लक्ष्मण के साथ किष्किंधा की ओर प्रस्थान किया। वे दोनों वीर शस्त्रों से सुसज्जित होकर भयंकर वनों को पार करते हुए धैर्यपूर्वक आगे बढ़ते रहे। इन्द्रादि देवों के लिए दुर्गम इस वन को उन दोनों ने पैदल पार किया। जब सुग्रीव ने यह देखा, तब वह बोला– "जिस वन को पार करना देवताओं के लिए भी कठिन है उस वन को इन दोनों योद्धाओं ने पैदल ही पार कर लिया, अतः ये दोनों सामान्य से कुछ अलग ही हैं। हम वानरों को देखकर मानव थर-थर काँपते हैं और ये बिल्कुल निःशंक होकर हमारे सामने आ रहे हैं। अतः ये दोनों सम्भवतः विशेष शक्तिशाली होंगे। ये दोनों तापसी वेश में हैं फिर भी ऐसा लगता है कि बालि ने उन्हें मुझे मारने के लिए भेजा है।" अपने प्रधानों को यह कहकर भयभीत सुग्रीव पम्पा छोड़कर वहाँ से भागने का विचार करने लगा। उसके प्रधानों को भी यह विचार उचित जान पड़ा।

श्रीराम और लक्ष्मण को पास आता हुआ देखकर सुग्रीव ने वेग से उड़ान भरी और गिरि कन्दरा में भाग गया। सुग्रीव के चारों प्रधान और अन्य छोटे बन्दर तीव्र गति से वन उपवन को पार करते हुए भागे। कोई पर्वत की गुहा में तो कोई शिखर पर जा छिपा। श्रीराम को धनुष धारण किये हुए

देखकर वानर इधर-उधर भागने लगे। इन बलवान वानरों के उड्डान भरने से वृक्ष नीचे टूटकर गिर पड़े, पर्वतों के किनारे ढहने लगे। राजा सुग्रीव राम के भय से जिस गुफा में बैठा था, वहाँ उसके नल, नील, जाम्बवंत और हनुमान नामक चारों प्रधान आये। हनुमान बलवंत नाम से प्रसिद्ध थे। उन्होंने सुग्रीव से पूछा– "हे राजा, तुम सम्पूर्ण सृष्टि में बलशाली के रूप में प्रसिद्ध होते हुए भी उन दो व्यक्तियों को देखकर शीघ्रता से भागे क्यों ? तुम्हारे भय का क्या कारण है, मुझे बताओ।" तब सुग्रीव बोला– "इस कठिन वन में प्रवेश करना जहाँ सुरासुरों के लिए भी सम्भव नहीं है, वहाँ वे दोनों वीर पैदल यहाँ तक आ गए। इससे ऐसा लगता है कि वे धनुर्धारी महाबलवान् हैं। वे मृगचर्म ओढ़े तथा वल्कल पहने हुए कोई सुन्दर तपस्वी हैं- ऐसा दिखाई देता है। लेकिन उनके पास धनुष बाण देखकर ऐसी शंका उत्पन्न हुई कि ये कपट वेश में बालि द्वारा मुझे मारने के लिए भेजे गए व्यक्ति हैं। इस भय से मैं तुरन्त भागा। उसकी स्मृति भी मेरा प्राण हर लेगी, इस भय से मैं भागा। हे हनुमान, यह बिलकुल सत्य है। एक बात और ध्यान देने योग्य है। बालि का शाप मिला है कि अगर वह ऋष्यमूक पर्वत की ओर आता है तो उसे मृत्यु प्राप्त होगी। अत: इन दोनों वीरों को धनुष बाण लेकर निर्भयतापूर्वक इधर आते हुए देखकर 'निश्चय ही ये बालि के सहायक होंगे' इस विचार से मेरा धैर्य टूट गया और मैं भयभीत होकर इधर भागा।"

सुग्रीव का स्पष्टीकरण सुनकर हनुमान हँसे और बोले– "राजा, मेरे सदृश बलवान् मन्त्री तुम्हारे पास होते हुए तुम्हें भय कैसा ? अगर तुम मुझे आज्ञा दो तो मैं उनके पास जाकर, उनसे सारा वृत्तान्त पूछकर, वे किस कार्य के लिए यहाँ आये हैं, यह भी जान लूँगा।" हनुमान के वचन सुनकर सुग्रीव सन्तुष्ट हुआ। वह हनुमान से बोला– "उन दोनों से वृत्तान्त पूछकर विस्तारपूर्वक मुझे बताओ। तुम इस बात का ध्यान रखना कि वे दोनों धनुर्धारी हैं और बाणों से बींधकर तुम्हें मार देंगे। अत: तुम स्वयं के प्राणों की रक्षा करते हुए उनका सम्पूर्ण वृत्तान्त पूछकर आओ। तुम उन्हें साधारण कह रहे हो, पर वे अत्यन्त निष्णात महायोद्धा हैं। उनका पराक्रम और पुरुषार्थ मैंने सुना है। ताड़का और सुबाहु को उन्होंने मारा है, मारीच को बाणों से छेद दिया है। त्रिशिरा, खर, दूषण और विराध का उन्होंने वध किया है। उन दोनों ने मिलकर कबंध को भी क्षणभर में मार डाला। ऐसे उन दोनों भयंकर योद्धाओं को देखकर मैं भागा, अत: अत्यन्त सावधानीपूर्वक उनके पास जाओ तथा स्वयं के प्राण बचाते हुए उनका वृत्तान्त लाओ।"

हनुमान का श्रीराम के पास आना– सुग्रीव द्वारा आज्ञा देते ही वीर हनुमान तुरन्त चलकर श्रीराम के समक्ष आये। उस समय एक विचित्र घटना घटित हुई। अंजनी के गर्भ से जब हनुमान का जन्म हुआ तब वह पुष्ट और सबल था। श्रीराम की हनुमान से भेंट नहीं हुई तो वह सम्पूर्ण सृष्टि हिला देगा, ऐसी उसकी सबलता होने के कारण ब्रह्मदेव चिन्तित हो उठे। ब्रह्मदेव ने एक उपाय सोचा- ब्रह्मदेव ने हनुमान को वानर बनाकर उसकी शक्ति निकाल दी और ऐसी योजना की कि श्रीराम से भेंट होने के पश्चात् ही उसकी शक्ति पुन: प्राप्त हो। श्रीराम को देखते ही बलशाली होने वाला हनुमान जब वास्तव में श्रीराम के समक्ष आया तब उसकी सबल शक्ति उसे पुन: वापस मिल गई। तीनों लोकों में कोई उस पर नियन्त्रण नहीं कर सकता था, वह इतना सबल हो गया। सुग्रीव का कार्य सिद्ध करने के लिए हनुमान श्रीराम के पास आये और उन्हें पुरुषार्थ, पराक्रम, सामर्थ्य और शक्ति प्राप्त हुई। हनुमान को उस समय अंजनी माता से हुआ वार्तालाप स्मरण हो आया। "मैं किसे स्वामी मानूँ ? वीर सुग्रीव को स्वामी मानता हूँ तो वह पर्ण खाने वाला भोंदू है। इस पर अंजनी ने कहा था "जब तुम गर्भ में थे तब तुम्हारी जो लंगोटी थी, वह कठोर ब्रह्मचर्य की कसौटी थी, वह जिसे आत्म दृष्टि से दिखाई देगी, वही तुम्हारा इस

सृष्टि का स्वामी होगा।" यह वार्तालाप उसे स्मरण हो आया और हनुमान उड़ान भरकर, जहाँ पर श्रीराम और लक्ष्मण थे, वहाँ आये।

श्रीराम और लक्ष्मण दोनों धनुर्धारी बंधु उस समय एक वृक्ष की छाया में विश्राम कर रहे थे। लक्ष्मण की गोद में सिर रखकर राम सो रहे थे। हनुमान गुप्त रूप से आकर उसी वृक्ष पर बैठ गए। उन दोनों के विषय में जान लेने के लिए हनुमान वहाँ बैठे हुए थे। तब श्रीराम लक्ष्मण को एक आश्चर्य बताने की दृष्टि से बोले– "लक्ष्मण ऊपर देखो, उस वानर को ब्रह्मचर्य की कसौटी है। वह गर्भ के समय से ही है ऐसा प्रतीत होता है।" श्रीराम के ये वचन सुनकर हनुमान आनन्दित होकर हँसने लगे। "ये दोनों मानव दुःखी और दीन दिखाई दे रहे हैं, उन्हें स्वामी कैसे मानूँ ? सेवक सबल और स्वामी दुर्बल होने पर स्वामित्व विफल ही होगा। अतः उनके सामर्थ्य की परीक्षा लेकर देखता हूँ।" ऐसा हनुमान ने अपने मन में विचार किया।

श्रीराम की हनुमान द्वारा शक्ति परीक्षा– श्रीराम को स्वामित्व प्रदान करें अथवा नहीं, उनका पुरुषार्थ देखा जाय इसके लिए हनुमान शालवृक्ष हाथों में लेकर श्रीराम के समक्ष आये। श्रीराम के चरण देखते ही उन्हें पूर्ण स्मरण हो आया वह अजर अमर हैं उन्हें जन्म मरण नहीं है। श्रीराम को देखते ही हनुमान को आनन्द का अनुभव हुआ। पूर्ववृत्त पूछते समय उनके हर्ष की सीमा न थी। फिर भी उन्होंने पूछा– "आप दोनों कौन हैं ? कहाँ के हैं ? यहाँ आने का क्या कारण है ? यह सब समूल बतायें अन्यथा मैं आप पर वार कर प्राण हर लूँगा।" यह सब प्रश्न पूछते समय हनुमान ऊपर से कठोर दिखाई दे रहे थे परन्तु अन्तर्मन में प्रेम उमड़ रहा था। श्रीराम इससे अवगत थे परन्तु उन्होंने अपना वृत्तान्त सुनाया, "मैं दशरथ पुत्र राम, यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण, सीता मेरी पत्नी है। पिता के वचनों को सच करने के लिए हमने वनवास स्वीकार किया है। हम पंचवटी में रहते थे। उस समय आश्रम में कोई नहीं है यह देखकर रावण ने सीता का हरण कर लिया अतः सीता को ढूँढ़ते हुए हम लोग यहाँ आ पहुँचे हैं।" श्रीराम का कथन सुनकर हनुमान के सम्पूर्ण शरीर में उल्लास का संचार हो गया। दोनों के विषय में जानने के पश्चात्, उनका पुरुषार्थ देखने का उन्होंने विचार किया। उन दोनों का धैर्य, वीरता, शौर्य और स्वभाव जानने के लिए हनुमान ने प्रचंड युद्ध करने का विचार किया।

श्रीराम की ओर देखकर वानर रूप हनुमान भीषण गर्जना करते हुए शाल-वृक्ष सहित क्रोध से दौड़े तब लक्ष्मण ने शीघ्र धनुष-बाण सुसज्जित किया। उन्होंने अनुभव किया कि वानर सबल है। परन्तु श्रीराम लेटे रहे उन्होंने लक्ष्मण को भी उठने नहीं दिया। राम ने लेटे लेटे ही बाण चलाकर शाल-वृक्ष के टुकड़े-टुकड़े कर दिए इस पर हनुमंत ने क्रोधित हो सैकड़ों विशाल वृक्ष तोड़कर राम की ओर फेंके। राम ने शरसंधान कर लेटे लेटे ही सभी वृक्ष तोड़ डाले। इस पर हनुमान को बहुत क्रोध आया। उन्होंने एक पूँछ पर, दो हाथों में और दो कंधों पर पर्वत लेकर राम पर आक्रमण किया। राम ने अपनी [illegible] न छोड़ते हुए बाणों से छेद कर पांचों पर्वत चूर चूर कर दिये। इस प्रकार श्रीराम ने अपना [illegible] किया। श्रीराम उनका वध कर देंगे, यह भय हनुमान को नहीं था और हनुमान उनका वध कर देंगे यह भय श्रीराम को नहीं था। पांच पर्वतों को राम के बाणों ने चूरा कर दिया और उन बाणों के इस लगने से हनुमान आकाश में उड़कर गोल-गोल घूमने लगे। जिस प्रकार बवंडर में तिनका गोल घूमता रहता है। उनका बल काम नहीं कर रहा था। उनकी शक्तियाँ क्षीण हो गई, हाथ पैर लटपटाने लगे, अपनी पूँछ दबाकर हनुमान ने मुँह बिचकाया, उसे देखकर हनुमान के पिता पवनदेव वहाँ आये। वे

हनुमान से बोले- "हनुमान, तुम सावधान हो। तुम्हारे राम के साथ संग्राम में शयनावस्था न त्यागते हुए उन्होंने वृक्ष और पर्वत तोड़ डाले। अरे, श्रीराम तो तीनों लोकों के स्वामी हैं। उनके पुरुषार्थ की परीक्षा मत देखो। वह क्षण मात्र में तीनों लोकों का घात कर सकते हैं। तुम अनन्य भाव से उनकी शरण में जाओ। श्रीराम को सेवा में अपने प्राण समर्पित करो और श्रीराम को अपना स्वामी स्वीकार करो।"

हनुमान एवं श्रीराम की मैत्री– हनुमान ने पिता के वचन सुनने के पश्चात् श्रीराम के चरण स्पर्श किये और बोले- "मैं तुम्हारी शरण आया हूँ। मैं तुम्हारा दास हूँ। हे रघुनाथ, मेरे मनोगत को तुम जानते हो। तुम्हारे स्वामित्व की परीक्षा के लिए मैंने तत्वत: अनुचित संग्राम किया, वह मेरा अपराध तुम क्षमा करो, मैं तुम्हारी शरण आया हूँ। तुम्हारे चरणों पर मैंने अपना मस्तक रखा है। तुम शरणागत की उपेक्षा मत करो। हनुमान के इस व्यवहार और उसके संग्राम - इन दोनों की विसंगति को ध्यान में रखकर सौमित्र श्रीराम से बोले– "हे रघुनाथ, यह धैर्यशाली जुझारू वानर अब आपके चरणों पर मस्तक रख रहा है। अत: इसका विश्वास न करें। रावण ने ऐसा ही विश्वास दिखाकर जटायु का घात किया। वैसा ही यह हमारे साथ करेगा। हे राम, आप अत्यन्त प्रतापी महावीर हैं। इसीलिए पांचों पर्वतों को चूर-चूर कर दिया अन्यथा उसने हम लोगों को चूर-चूर कर दिया होता। अत: उस पर विश्वास न करें। सौमित्र की शंका और उसकी सलाह सुनकर श्रीराम उससे बोले– "सौमित्र, तुमने इसे पहचाना नहीं, अरे, इसका और हमारा पिंड एक ही है। उसके सम्बन्ध में एक पूर्वकथा मैं तुम्हें सुनाता हूँ, तुम सावधानीपूर्वक सुनो।"

"मैं जब चित्रकूट में था और तुम भरत से युद्ध के लिए तत्पर हुए थे, तब मैंने तुम्हें वह कथा बतायी थी, अब फिर सुनाता हूँ, सुनो ! पुत्र कामेष्टि यज्ञ से प्रकट हुए यज्ञ-पुरुष ने पिता दशरथ को प्रसाद की थाली दी थी। उस प्रसाद के तीन भाग कर तीनों रानियों को एक-एक भाग दिया परन्तु पूर्व शाप के प्रभाव से कैकेई का भाग चील ले गई। तब वह छटपटाने लगी। उस समय दो भाग शेष थे। कौशल्या और सुमित्रा ने कृपा कर अपना आधा-आधा भाग उसे दे दिया, जिससे कैकेई सन्तुष्ट हुई, हम चारों भाई एक ही पिंड से हैं-- श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न। कैकेई का भाग जिस समय चील खा रही थी, उसे अंजनी का जन्म प्राप्त हुआ और यज्ञ का भाग उसके उदर में ही रहा। और यज्ञ-पुरुष भी विद्यमान रहा। यज्ञ पुरुष भी स्वत: का प्राण उससे एक रूप हो गया। उसके द्वारा ही अंजनी को गर्भधारणा हुई और वही यह वायु पुत्र हनुमान है। इन सबका विचार करने पर अन्तर्मन में यह बात उचित प्रतीत होती है कि अंजनी का पति केसरी होते हुए भी यज्ञ पुरुष के प्राणों के कारण हनुमान का जन्म हुआ। राम, लक्ष्मण, भरत व शत्रुघ्न हम चारों आधे आधे पिंड के हैं। और सम्पूर्ण एक पिंड का यह मारुति हनुमान है, इसी कारण यह अत्यन्त बलवान् और समर्थ है तथा इसीलिए हममें और हनुमान में एकात्मता है; भिन्नता है ही नहीं। हे सौमित्र, तुम यह समझ लो।"

श्रीराम लक्ष्मण को जो बता रहे थे, उसे सुनकर हनुमान को अत्यधिक आनन्द हुआ। उसका सर्वांग रोमांचित हो उठा। उसे पसीना आ गया तथा आँखों से आनन्दरूपी अश्रु बहने लगे। उसने राम की चरण वन्दना की, राम-हनुमान का भिन्नत्व समाप्त हुआ। मौन टूट गया, एकत्व की स्थापना हुई, क्षेम की स्थापना हुई। जिस प्रकार गंगा, यमुना व सरस्वती मिलकर भागीरथी बन जाती हैं, उसी प्रकार श्रीराम, लक्ष्मण और हनुमान मिलकर चिन्मय स्वरूप हुए। अनेक नदियों का पानी एकत्र होकर समुद्र बन जाता है। उसी प्रकार श्रीराम के कारण सौमित्र और मारुति मिलकर चिन्मात्र हुए। उसमें से एक की, जनार्दन

(एकनाथ के गुरु पर्याय स्वरूप स्वयं एकनाथ) विनती करते हैं तब तीनों को पूर्ण समाधान की प्राप्ति होती है। श्रीरघुनन्दन स्वामी, और दोनों उनके सेवक हैं। जिस प्रकार गुड़ और मिठास में नाम की भिन्नता होते हुए भी स्वरूप की एकात्मता होती है, उसी प्रकार लक्ष्मण और हनुमान के सेवाभाव की श्रीराम में एकात्मता है।

श्रीसंत एकनाथ कहते हैं कि यह पिंड भाग-व्यवस्था शिवरामायण की कथा पर आधारित है। अतः श्रोता उसे व्यर्थ का अनुवाद न मानकर उस ग्रंथ को स्वयं देखें।

अध्याय २

[सुग्रीव की जन्म-कथा]

श्रीराम और हनुमान की परस्पर भेंट होने पर दोनों को ही अत्यन्त आनन्द की अनुभूति हुई आगे उनका जो संवाद हुआ, उसे श्रवण करें।

हनुमान द्वारा सुग्रीव का वृत्तान्त-कथन- श्रीराम को हनुमान ने बताया कि "सुग्रीव ने मुझे उन्होंने पास आपका वृत्तान्त जानने के लिए भेजा है तथा आपसे मैत्री करने के लिए भी कहा है। इस वन में प्रवेश करना देवों, दैत्यों एवं दानवों के लिए भी असम्भव है और आप मानव होते हुए भी यहाँ तक पहुँचे, इससे वानरों को अत्यन्त आश्चर्य हो रहा है। घोर, वीर एवं गभीर मुद्रा में आप दोनों को आते हुए देखकर सुग्रीव के मन में भय और आश्चर्य का निर्माण हुआ। सुग्रीव, जिसकी पत्नी और धन दोनों का हरण हो चुका है, बालि के भय से वह भयभीत है और आपकी सहायता चाहता है। मुझे इसीलिए उसने भेजा है। आप दोनों साहसी, निःशंक एवं पराक्रमी वीर हैं। बालि से भयभीत सुग्रीव को आपकी सहायता मिले, इसके लिए आपसे मैत्री करने का विचार कर आपसे पूछने के लिए ही मैं आया हूँ। आप सुग्रीव के विषय में जानना चाहते हैं तो वह वानरों का स्वामी है। मैं उसका विश्वासपात्र होने के कारण उसका प्रधान हूँ अत्यन्त आदरपूर्वक उसने मुझ पर विश्वास किया है। आपसे वह मैत्री करना चाहता है अतः हे स्वामी, आप अभयदान दें; मैं तो आपका बालक हूँ। सुग्रीव अपनी वानर-सेना सहित आपका सेवक बनना चाहता है। अतः हे श्रीराम, आप उस पर अवश्य कृपा करें।"

श्रीराम हनुमान के वचनों से सन्तुष्ट होकर उन्हें अपनी कार्य सिद्धि का लक्षण मानकर लक्ष्मण से कहा- "सौमित्र, हमारी सुग्रीव से मैत्री करने की इच्छा थी तो उसने ही हमारे पास प्रधान को भेजा है। वह प्रधान भी हमारा आप्त स्वकीय और परम प्रिय है। यहाँ हनुमान के आने से अब हमें कष्ट नहीं करना पड़ेगा। अत्यन्त सुलभता से सीता की प्राप्ति होगी, यह निश्चित समझो।" तत्पश्चात् राम ने हनुमान से कहा- जो भी तुम कह रहे हो, वह मैं निश्चित ही करूँगा। तुम्हारे वचनों का उल्लंघन नहीं करूँगा, तुम कहते तो एक ही बाण से बालि का वध कर दूँगा। सुग्रीव को उसकी पत्नी सहित राज्य दिलवा दूँगा। बालि और सुग्रीव ये दोनों कौन हैं ? इन सबके विषय में मुझे जानकारी प्रदान करो। हे हनुमान, बालि और सुग्रीव का पिता ऋक्षराज होने की कथा मैंने सुनी है लेकिन इनकी माता कौन है ? वानरों को सम्पूर्ण सेना इनके अधीन किसने की ? यह सम्पूर्ण कथा विस्तारपूर्वक कहो। इनका पहले का

निवास कौन सा था ? उन्हें इस स्थान की प्राप्ति कैसे हुई ? और किष्किंधा का राज्य किसने दिया। हे हनुमान, यह सब विस्तारपूर्वक मुझे बताओ।

श्रीराम की उत्सुकता जानकर हनुमान उनसे बोले– "हे रघुनाथ, वालि और सुग्रीव के जन्म की वार्ता अगस्त्य के मुख से मैंने सुनी है। वही मैं आपको बताता हूँ। ब्रह्मा के नेत्रों से वानर-जन्म की कथा मैं सुना रहा हूँ, वह आप सावधानीपूर्वक सुनें। ब्रह्मा आत्मयोगासन में बैठे थे और आत्मचिन्तन कर रहे थे, उस समय उनकी आँखों से आनन्दाश्रु बहने लगे। उन्होंने वे अश्रु अंजुलि में लेकर पृथ्वी पर डाले। उनके पृथ्वी पर गिरते ही उसमें से उसी क्षण वानर का जन्म हुआ। ब्रह्मा ही वानर की माता और पिता हुए। उन्होंने ही वानर का पालन- पोषण किया। ब्रह्मा ने उसको प्रेमपूर्वक सँभाला। उसको फलमूल खाने के लिए दिये, अपने पास सुलाया। वह वानर ब्रह्मा के आसन के समीप नृत्यांगना को नृत्य करते हुए देखता था। उस नृत्यांगना को पूँछ से पकड़कर वह भी ताल पर नाचता था। नृत्यांगना को गिरा देता था। ऋषियों के सिर पर कूदता था। सुरवरों को चिढ़ाता था। उसके ये खिलवाड़ देखकर ब्रह्मा को आनन्द होता था और वानर के प्रति प्रेम का अनुभव होता था। अपने पुत्र का जिस प्रकार कोई दुलार करता है, उसी प्रकार ब्रह्मा उसका दुलार करते थे। उसके हठ पूरे करते थे। उसकी विनोदपूर्ण क्रीडाओं का कौतुक करते थे। उस वानर का नाम ऋक्षराज रखकर ब्रह्मा ने उसका अत्यन्त वैभवपूर्ण ढंग से पालन-पोषण किया। कालान्तर में एक अपूर्व घटना घटित हुई।"

"वानर नित्य वन में विचरण कर ब्रह्मा के पास लौट आता था। वह एक दिन दूर वन में गया और सत्य लोक छोड़कर कैलास पर्वत पर घूमने लगा। वहाँ कैलास के बाहर के प्रदेशों में घूमते हुए उसने वहाँ स्थित सरोवर में स्नान किया। यह सरोवर पार्वती द्वारा शापित था। अतः उस वानर को स्त्रीत्व की प्राप्ति हुई। इस शाप का कारण यह था कि इस उमावन के निर्मल जल में शिव और भवानी नग्नावस्था में क्रीड़ा करते थे। एक दिन अत्यन्त उत्साह एवं आनन्द से दोनों जलक्रीड़ा कर रहे थे, उसी समय सप्तर्षि वहाँ आये। उन्हें देखते ही उमा लज्जित हो गईं और शिव सहित पानी में छिप गईं। उस समय उमा ने क्रोधित होकर शाप दिया था कि सदाशिव को छोड़कर अन्य कोई नर यहाँ स्नान करेगा तो उसे पूर्ण स्त्रीत्व की प्राप्ति होगी। यह भयंकर शाप सुनकर ऋषि ने आचमन किये बिना ही वहाँ से पलायन किया परन्तु वह सरोवर शापित हो गया। इसी कारण वानर को स्त्रीत्व की प्राप्ति हुई"।

"ऋक्षराज को स्त्रीत्व की प्राप्ति के पश्चात् उस वानरी बने वानर ने स्वयं को फूलों से सजाया और सरोवर के समीप आया। उसने अपना प्रतिबिम्ब देखा। उस प्रतिबिम्ब को चिढ़ाकर वह मारने दौड़ा। उस समय उस प्रतिबिम्ब ने भी वही क्रियाएँ दोहराईं। इस पर क्रोधित हो, वानर ने आवेशपूर्वक 'यही मेरा प्रमुख शत्रु है, जो पानी में रहकर मुझे डरा रहा है। मैं इसका पूर्ण नाश ही कर डालता हूँ'- ऐसा कहकर सरोवर में कूदकर वह प्रतिबिम्ब पकड़ने के लिए बढ़ा। क्रोधपूर्वक मुट्ठियाँ भींच कर पूँछ को घुमाकर प्रतिबिम्ब पर आघात करने लगा। परन्तु उसका शत्रु दिखाई ही नहीं दे रहा था क्योंकि वह तो उसका ही प्रतिबिम्ब मात्र था। फिर वह बाहर आया। उसका पुरुषत्व नष्ट हो गया। स्त्री- सुलभ भाव एवं शारीरिक परिवर्तन उसमें उत्पन्न हुए। स्तन, योनि, कटाक्ष, हावभाव सहित वह पूर्ण-स्त्री हो गया। वह एक सुन्दर स्त्री बन गया। उसके सौन्दर्य पर सूर्य, इन्द्र, कामभावना से आसक्त हुए, उस स्त्री से संभोग की इच्छा उनमें जागृत हुई।"

"ऋक्षराज वानर शारीरिक दृष्टि से यद्यपि स्त्री हो गया था तथापि मन से उसे स्त्रीत्व का स्मरण नहीं था। परन्तु उसका सुन्दर रूप देखकर इन्द्र और सूर्य दोनों कामातुर होकर उसकी प्राप्ति के लिए भागे। तब ऋक्षराज भयभीत होकर ब्रह्मा के पास जाने के लिए पृथ्वी पर दौड़ने लगा। इन्द्र और सूर्य कामातुर होकर अन्तरिक्ष में दौड़ने लगे। उस सुन्दरी से संभोग के लिए उनमें प्रभावपूर्ण कामभावना उत्पन्न होकर उनका एक ही समय वीर्य स्खलन हुआ, इन्द्र का वीर्य उसके बालों में गिरा। उस व्यर्थ न जाने वाले वीर्य के कारण बालों से बालक का जन्म हुआ। अतः उसे बालि नाम दिया गया यह बड़ा ही पराक्रमी वानर था। ऋक्षराज वानर ने सिर पर क्या गिरा, यह देखने के लिए ऊपर देखा, उस समय उसके कंठ पर सूर्य का वीर्य गिरा उस वीर्य के कारण कंठ के पास एक बालक का जन्म हुआ। इस कारण उसका नाम सुग्रीव पड़ा। इस प्रकार इन दोनों बंधुओं के जन्म से सम्बन्धित वृत्तान्त अपूर्व है।"

ऋक्ष की शापमुक्ति; बालि-सुग्रीव को शक्ति-प्राप्ति– "ऋक्षराज स्त्रीवेश में दोनों पुत्रों सहित ब्रह्मदेव के पास आया। ऋक्ष का वह रूप देखकर ब्रह्मा विस्मित हुए। उन्होंने विचार किया– 'इस परम सुन्दरी को देखकर दुष्ट जन तथा पराक्रमी देवता योग्य अयोग्य का विचार न करते हुए वेश्या के सदृश इसके साथ व्यभिचार करते हैं। व्यर्थ न जाने वाले वीर्य के साथ प्रत्येक देवता इसके साथ रममाण होंगे तो अनेक बच्चे उत्पन्न हो जाएँगे। मुझसे इसका जन्म हुआ और मूर्खता से उसे स्त्रीत्व की प्राप्ति हुई' अब इसे शाप मुक्त करने हेतु कैलास पर्वत पर जाने का विचार कर ब्रह्मा कैलास पर गये। उन्होंने पार्वती से ऋक्षराज को शापमुक्त करने की विनती की। पार्वती ने सदाशिव से पूछकर वानर को शापमुक्त किया। जिस प्रकार भुजंग होने का भ्रम दूर होने पर सर्प की रस्सी बन जाती है उसी प्रकार स्त्री का रूप छोड़कर ऋक्षराज फिर से वानर हो गया। जिस प्रकार किसी ब्राह्मण को अस्पृश्य होने का स्वप्न दिखे और फिर जागृत होने पर उसे स्वयं के ब्राह्मण होने की अनुभूति हो, उसी प्रकार स्त्रीत्व और स्त्री स्वरूप जाने के पश्चात् ऋक्षराज फिर से वानर हो गया। संत की संगति की बड़ी महिमा होती है, वानर को तुरन्त शाप मुक्ति हुई। प्रजापति सुखी हुए। ऋक्षराज भी सुखी हुआ। ऐसे पराक्रमी पुत्रों को देखकर इन्द्र और सूर्य भी सन्तुष्ट हुए।"

"इन्द्र ने बालि के समान पुत्र को देखकर सुख का अनुभव किया। उसने अपनी सोने की माला बालि के गले में डाल दी। इस माला के गले में रहने तक कृतान्त से युद्ध करते हुए सौ वर्षों तक जूझते रहने पर भी, अन्न और जल न मिलते हुए भी उसे श्रम की अनुभूति नहीं होती थी। आगे फिर एक बार दुंदुभी के पीछे पड़ कर अन्न-जल न ग्रहण करते हुए बालि ने युद्ध किया; फिर भी उसे श्रम की अनुभूति नहीं हुई क्योंकि वह माला उसके गले में थी। उस माला के गले में रहते हुए महाबलवानों से युद्ध करने पर भी बालि की पराजय नहीं होती थी। इस माला के कारण हमेशा विजय ही होती थी। बालि और सुग्रीव बल में समान होते हुए भी माला के कारण बालि अधिक बलवान सिद्ध होता था इस कारण रणभूमि में वह सुग्रीव को धराशायी कर देता था। वह स्वयं युद्ध करते समय जो माला गले में पहनता था शत्रु को उसकी कल्पना न होने के कारण जो भी योद्धा युद्ध के लिए आता था, वह उस माला के कारण विमुख हो जाता था। यह वही माला थी जो वृत्रासुर के वध के लिए इन्द्र के जाने के समय इसका सामर्थ्य बढ़ाने के लिए कश्यप ने उन्हें दी थी। अपनी विजय के लिए कश्यप द्वारा दी गई जय सामर्थ्य की माला को इन्द्र ने बालि के गले में पहना दिया था, जिससे उसकी शक्ति बढ़ने के कारण वह कलिकाल के भी वश में नहीं रहा था।"

"इन्द्र द्वारा वालि को माला देकर उसका सामर्थ्य बढ़ाते ही सूर्य ने सुग्रीव को हनुमान को साथ दिया। हनुमान के सामर्थ्य का अनुभव सूर्य को था ही क्योंकि बाल्यावस्था में ही राहु को भगाकर सूर्य को निगलने के लिए हनुमान तत्पर हुए थे। वह ध्यान में आते ही सूर्य ने हनुमान को सुग्रीव को सौंप दिया था। 'हनुमान के कारण श्रीराम से मैत्री होकर तुम्हारी कीर्ति बढ़ेगी। हनुमान श्रीराम का भक्त होगा और उसके कारण तुम सनाथ हो जाओगे'- ऐसा सूर्य ने सुग्रीव को बताते हुए हनुमान को उसे सौंप दिया। वालि को माला देकर इन्द्र अपने स्थान को वापस लौट गये तथा हनुमान को सुग्रीव को सौंपकर सूर्य आकाश में लौट गये। इन्द्र और सूर्य दोनों के जाने के पश्चात् ब्रह्मदेव ने स्वयं ऋक्षराज और उसके दोनों पुत्रों को एक राजधानी दी।"

किष्किंधा नगरी की निर्मिति; वानरों का राजा बनना– ऋक्षराज के माता पिता, स्वयं विधाता ही थे। उन्होंने ऋक्ष का गया हुआ पुरुषत्व फिर से प्राप्त करा दिया। ब्रह्मदेव उसके पालनकर्ता भी थे। उन्होंने विश्वकर्मा को बुलाकर उसे किष्किंधा नगरी बसाने के लिए कहा। तत्पश्चात् उसे नाना प्रकार के वृक्षों एवं फलों से सुशोभित किया और विविध प्रकार के रत्नों से समृद्ध किया। वहाँ पर दैत्य और दानव को जिसकी थाह भी न लग सके, ऐसे दुर्गम दुर्गों की रचना की। वहाँ का आवागमन का मार्ग अत्यन्त कठिन था। यह सब ब्रह्मा ने पुत्र के लिए किया। फिर मरीच्यादि ब्रह्मदूत ऋक्षराज के अभिषेक के लिए किष्किंधा आये। ब्रह्मा की आज्ञा होते ही देश विदेश के सभी वानर, उनके सेनापति राज्याभिषेक के लिए आये। ऋक्षराज मुकुट, कुंडल, रत्नमेखला, बाजूबंद, रत्नमाला इत्यादि सब धारण करके राजा की तरह सुशोभित हो रहे थे। पुत्रों सहित यह समारम्भ सम्पन्न हुआ, अब किष्किंधा राजधानी बन गई और उसके श्रेष्ठ सिंहासन पर ऋक्षराज का अभिषेक हुआ। वानरों ने जय जयकार किया, देवताओं ने पुष्पवर्षा की। ब्रह्मदेव सन्तुष्ट हुए। महाबली ऋक्षराज राजा बन गया। वालि का युवराज के रूप में अभिषेक हुआ, सुग्रीव महाबली ऋक्षराज का सेनापति नियुक्त हुआ। इस प्रकार ऋक्षराज को दोनों पुत्रों सहित किष्किंधा का समर्थ राज्य प्राप्त हुआ। दरिद्र रूप में रहने वाले वानर राज्य के अधिकारी हुए सुरवर उनका वंदन करने लगे। पितृभाग्य से वे भाग्यवान हुए। त्रिलोकों के वानर वालि, सुग्रीव के आज्ञाधारी हुए। ऋक्षराज वानरों की सेना पाकर बलवान हुआ।"

"ऋक्षराज की कालान्तर में मृत्यु हो गई। दोनों पुत्रों ने उसका दहन कर उसकी उत्तर-क्रिया की उसके पश्चात् प्रधानों ने एकत्र होकर वालि का राज्याभिषेक और सुग्रीव का युवराज्याभिषेक किया। वालि ने बल, नीति, धर्म एवं नियमपूर्वक आचरण देखकर नील को सेनापति बनाया। हे रघुनाथ, तत्वतः ऋक्षराज, वालि-सुग्रीव का पिता नहीं था, दोनों की माता एक एवं पिता भिन्न भिन्न थे। एक इन्द्रपुत्र एवं एक सूर्यपुत्र के रूप में जग में प्रसिद्ध है। यह दोनों का पूर्ववृत्तान्त है।" हनुमान ने आदि से लेकर अन्त तक यह पूर्ववृत्त कहकर श्रीराम को साष्टांग दंडवत् किया। "श्रीराम, कृपाकर सुग्रीव से मैत्री करें वे केवल वन के वनचर अथवा फल-फूल खाने वाले वानर नहीं हैं, वे ब्रह्मकुल से सम्बन्धित महावीर योद्धा हैं।" हनुमान द्वारा यह प्राचीन कथा सुनकर श्रीराम सुखी हुए। उन्होंने हनुमान को हृदय से लगाकर आनन्द प्रकट किया।

अध्याय ३

[श्रीराम की सुग्रीव से भेंट]

श्रीराम ने हनुमान द्वारा कही गई बालि-सुग्रीव की जन्मकथा सुनकर सुखी हो सन्तोष प्रकट किया। फिर उन्होंने सुग्रीव से मैत्री करने का निश्चय कर हनुमान से कहा– "सुग्रीव से मैत्री करना हमारा प्रमुख कर्त्तव्य है। तुम भी मैत्री करने हेतु आये हो, इससे हमें प्रसन्नता हुई। कबंध ने हमसे कहा था कि सुग्रीव, पत्नी के हरण से दु:खी है अत: उसे सुखी करने के लिए ही मैं ऋष्यमूक पर आया हूँ। जो अनन्य भाव से मेरी शरण मे आता है, उसका दु:ख दूर कर उसे सुखी करना मेरा कर्त्तव्य समझो। दु:ख दूरकर सुख देने के लिए मैं वनवास में आया हूँ। अतः शीघ्र सुग्रीव को बुलाओ और उसे बताओ कि मैं उसे सुखी करूँगा। श्रीराम के आश्वासन से सुखी होकर हनुमान ने श्रीराम की वन्दना की और उडान भरकर वहाँ से प्रस्थान किया। वह सुग्रीव के पास आया और बोला - "तुम भाग्यवान हो, रघुनन्दन तुमसे सन्तुष्ट हैं। राम और लक्ष्मण दोनों महावीर नि:संशय ही साहसी धनुर्धारी हैं तुमसे मैत्री हेतु ही वे ऋष्यमूक पर आये हैं, इसका शोध मैंने किया है। उस सम्बन्ध में सुनो।"

हनुमान ने श्रीराम का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुग्रीव को सुनाया– "दाशरथी श्रीराम महावीर हैं, धनुर्धर लक्ष्मण उनके भाई हैं। श्रीराम की सुन्दर पत्नी सीता हैं। वे तीनों पिता की आज्ञा से वनवास के लिए आये हैं। पिता की आज्ञा से वे दण्डकारण्य में निवास हेतु आये। उनको फलमूल खाकर चौदह वर्ष वन में बिताने की आज्ञा थी। एक बार पंचवटी आश्रम में जब सीता अकेली थी, रावण ने उसका हरण कर लिया। उसे ढूँढ़ने के लिए जगजेठी श्रीराम ऋष्यमूक पर्वत पर आये हैं। श्रीराम ने कबंध का उद्धार कर उसे शाप मुक्त किया उस समय उसने श्रीराम को बताया कि सुग्रीव को प्रसन्न करो। जिस प्रकार श्रीराम को सीता हरण का दु:ख है, उसी प्रकार तुम्हें भी तुम्हारी पत्नी के हरण का दु:ख है। तुम दोनों का दु:ख समान है अत: एक दूसरे को सुखी करो। बालि को मारकर पत्नी सहित सुग्रीव को राज्य दिलाकर, उसे सुखी करने के लिए श्रीराम किष्किंधा आये हैं। सीता की खोज रोककर तुम्हारा कार्य पूर्ण करने के लिए कृपालु श्रीराम आये हैं। हे सुग्रीव, यह तुम्हारा सौभाग्य ही है। श्रीराम अत्यन्त प्रेमपूर्ण भक्त-वत्सल, निष्पक्ष एवं स्नेह से परिपूर्ण हैं। भक्त के कार्य के सम्बन्ध में वे अत्यन्त कृपापूर्ण और दीन दयालु हैं।"

हनुमान का निवेदन सुनकर सुग्रीव, अत्यन्त आनन्दित हुए। उन्होंने हनुमान की पीठ थपथपाई। उनको प्रेम एवं सन्तोष से परिपूर्ण हो हृदय से लगा लिया। मेघगर्जना सुनकर जिस प्रकार मोर नाच उठते हैं उसी प्रकार सुग्रीव हर्ष से भर उठे। "हनुमान बड़ा भाग्यवान् है, उसका वर्णन मैं क्या कर पाऊँगा। मेरा कार्य करते हुए वह श्रीराम का प्रिय हो गया। श्रीराम की कृपा से यह भाग्यवान् समर्थ हो गया और मैं भी कृतार्थ हुआ।" तत्पश्चात् जिस प्रकार कोई फूलों की माला सूखने के पश्चात् फेंक दी जाती है, उसी प्रकार सुग्रीव ने श्रीराम से सम्बन्धित भय का त्याग किया। श्रीराम से भेंट करने के लिए सुग्रीव ने निर्भय हो प्रस्थान किया। हनुमान का हाथ पकड़ कर वह श्रीराम जहाँ थे, वहाँ आया। उसने श्रीराम को सम्बोधित कर कहा "मैं तुम्हारी शरण आया हूँ। तुम सत्प्रतिज्ञ रघुवीर हो, मुझे स्वीकार करो। मैं तुम्हारा दास बनकर तुम्हारी शरण में आया हूँ।" सुग्रीव के वचन सुनकर, श्रीराम आनन्दित हुए। उन्होंने स्वयं सुग्रीव को गले लगाने के लिए हाथ आगे किये। उस समय सुग्रीव ने श्रीराम के चरण स्पर्श किये।

श्रीराम ने उसे उठाते हुए हाथ पकड़कर गले से लगा लिया। हृदय से हृदय मिलते ही दोनों के हृदय एकात्म हुए और उनमें सद्भाव का निर्माण हुआ।"

श्रीराम और सुग्रीव की मैत्री– सर्द्चित आनन्द की प्रतिमूर्ति होने के कारण श्रीराम के आलिंगन से सुग्रीव को हृदय में पूर्ण समाधान की अनुभूति हुई। उसके मन में बालि का जो भय व्याप्त था, वह नष्ट हुआ। नर और वानर एकत्र हुए। समस्त व्याधियों का नाश हुआ। परिचय की प्रक्रिया सम्पन्न हुई, सुग्रीव आनन्दित हुआ। इस अलौकिक मैत्री के साक्षी अग्नि तथा सूर्य थे। दोनों के हृदय एक हुए। आत्माओं की परस्पर मैत्री को श्रीराम और सुग्रीव दोनों ने अनुभव किया। किसी लौकिक शपथ प्रक्रिया को गौण अनुभव कर सुग्रीव ने श्रीराम की मैत्री को अन्तर्मन से पूर्णतः स्वीकार किया। श्रीराम से मैत्री की महिमा सम्पूर्ण चराचर में अपरम्पार होने के कारण उस मैत्री की प्राप्ति होने पर वानरों ने जय जयकार किया। श्रीराम नरपति एवं सुग्रीव वानरपति होने के कारण दोनों को ही इस मैत्री के कारण अनन्य प्रेम एवं आह्लाद की प्राप्ति हुई। जिस प्रकार पुष्प और सुगंध, जीव और मन में परस्पर प्रेम होता है, उसी प्रकार सुग्रीव और रघुनन्दन के एक होने से दोनों को अनन्य प्रेम की प्राप्ति हुई। जिस प्रकार गुड़ में मिठास होती है, उसी प्रकार राम और सुग्रीव में प्रेम का निर्माण हुआ। दोनों एक दूसरे को ओर प्रेममय दृष्टि से निहारते हुए अपने हृदय के अतृप्त प्रेम को नेत्रों से व्यक्त करते रहे। जैसे चन्द्र और चकोर का अथवा जल और जलचर का प्रेम होता है, वैसा ही प्रेम उन दोनों को परस्पर अनुभव हो रहा था। श्रीराम को सुग्रीव के प्रति प्रेम की अनुभूति हो रही थी और सुग्रीव को राम के प्रति अनन्य भक्तिमय प्रेम अनुभव हो रहा था। दोनों यह प्रेमभावना नेत्रों से व्यक्त कर रहे थे फिर भी उन्हें तृप्ति नहीं हो रही थी। कुछ समय पश्चात् श्रीराम, हनुमान और सुग्रीव एकत्र बैठे और फिर आगे की कार्य योजना से सम्बन्धित चर्चा आरम्भ हुई।

श्रीराम और सुग्रीव की सीता को ढूँढ़ने से सम्बन्धित चर्चा– श्रीराम और सुग्रीव की मैत्री के पश्चात् उनका प्रत्यक्ष वार्तालाप प्रारम्भ हुआ। सुग्रीव बोला– "हे रघुपति, आप जिसे ढूँढ़ने के लिए आये हैं, उस सीता को मैंने गगन-मार्ग से ले जाते हुए देखा है। रावण को, उसे कंधे पर बैठाकर आकाश मार्ग से अत्यन्त वेगपूर्वक ले जाते हुए हम वानरों ने देखा है। उस समय वह 'श्रीराम' का उच्चार करते हुए आक्रन्दन कर रही थीं। वह कह रही थीं– 'हे श्रीराम, शीघ्र आओ!' उसी समय वह लक्ष्मण का नाम लेकर भी विलाप कर रही थीं। राम का नाम लेने वाली सीता का स्वर हम सब वानरों ने तो सुना ही परन्तु उससे भी अपूर्व एक घटना और घटित हुई, इसी पर्वत शिखर पर जब हम पाँचों वानर बैठे हुए थे, उसी समय सीता ने अलंकारों सहित अपना उत्तरीय नीचे डाला। हनुमान को देखकर उनके द्वारा नीचे डाले हुए उत्तरीय और अलंकार राम के नाम सहित हनुमान को बड़े भाग्य से प्राप्त हुए। श्रीराम-नाम युक्त उत्तरीय वस्त्र एवं श्रीराम के नाम से अंकित अलंकार हनुमान ने हमें दिखाये, वे उसी के पास हैं। जो राम-नाम में विश्वास रखते हैं, वे भाग्यवान् होते हैं। उन्हीं को श्रीराम का सान्निध्य प्राप्त होता है। हनुमान वैसा ही श्रेष्ठ भाग्यशाली है।" सीता को ऊँचे स्वर में राम का नाम लेकर आक्रंदन करते हुए हम सभी वानरों ने सुना, उस समय हनुमान क्रोधित हुआ और उस भयंकर राक्षस को मारकर दीन का उद्धार करने के लिए सीता को मुक्त कराने हेतु उसने शीघ्र उड़ान भरी, क्रोध से पूँछ पटकते हुए आँखें लालकर वज्र के समान मुट्ठियाँ भींच कर वह आकाश की ओर उड़ा। जब हनुमान ने उड़ान भरकर

[illegible] पर किया, तब रावण भयभीत हो, सागर लांघ कर भाग गया। तत्पश्चात् हनुमान अपना क्रोध [illegible] कर वापस लौट आये।"

सुग्रीव द्वारा बताया गया वृत्तान्त सुनकर श्रीराम आश्चर्यचकित हो गए। सौमित्र भी चकित हुए और उन्होंने शीघ्र अलकार देखने के लिए उन्हें लाने को कहा। हनुमान ने श्रीराम को वस्त्रालंकार लाकर दिखाये। वे देखकर उनको हृदय से लगाकर श्रीराम शोक करने लगे– "हे सीते, तुम मुझसे क्यों रूठी हो ? पहने का प्रेम क्यों भूल गई हो ? क्या तुम क्रोधवश मुझसे बोल नहीं रही हो ? हे प्रिये, तुम कहाँ हो ? ऐसा कहते हुए अन्त में दुःख से मूर्च्छित हो, वे गिर पड़े। श्रीराम की अवस्था देखकर सुग्रीव अत्यन्त दुःखी हुए। उन्होंने श्रीराम की मूर्च्छा दूर करते हुए कहा– "स्वामी, आपकी हमारी मैत्री होते हुए अगर मैं आपके दुःख दूर न कर सका तो इस मैत्री के लिए यह अत्यन्त लज्जास्पद बात होगी। मैं अवश्य ही सीता को ढूँढ़ कर लाऊँगा। हे श्रीराम, मेरे चारों प्रधान स्वयं कलिकाल की ग्रीवा मरोड़ने का सामर्थ्य रखते हैं। इसके अतिरिक्त मैं असंख्य वानरों की सेना एकत्र करूँगा और सीता को ढूँढ़ कर लाऊँगा। स्वर्ग, मृत्यु एवं पाताल लोक कहीं भी उसे ले जाया गया होगा, मैं सारे संसार में उसे ढूँढ़ लाऊँगा। हे श्रीराम, मैं तुम्हारी शपथ लेकर तुम्हारे चरण स्पर्श कर, कहता हूँ कि मैं सीता को अवश्य ढूँढ़ लाऊँगा। तुम इसे प्रमाण मानो।"

श्रीराम को फिर भी दुःखी देखकर सुग्रीव उनसे बोला– "हे श्रीराम, दुख न करें। मैं यह प्रतिज्ञापूर्वक कह रहा हूँ कि अगर मैं सीता को न ला सका तो हम वानरों का अधःपतन हो जाएगा, अगर मैं सीता को ढूँढ़ने के कार्य के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य में व्यस्त हुआ तो मेरा जन्म ही धिक्कार पूर्ण होगा। अतः आप सीता के वियोग का दु.ख न करें। मेरा प्रताप देख लें; अगर मैं सीता को नहीं ढूँढ़ पाता हूँ तो मैंने अपने दादा-परदादाओं के क्षत्रिय धर्म को लज्जित किया– ऐसा समझ लें।" सुग्रीव के ये वचन सुनकर श्रीराम स्मित करते हुए बोले– "मैं भी तुम्हें वचन देता हूँ कि तुम्हें राज्य और पत्नी प्राप्त कराये बिना मैं सीता का स्मरण नहीं करूँगा। मित्र के कार्य के समक्ष मैं सीता को ढूँढ़ने के कार्य को गौण समझूँगा। मैं दशरथ की शपथ लेकर यह कह रहा हूँ, अतः तुम इसे सत्य मानो। तुमने जो अभी कहा, उसे मैं प्रमाण मानता हूँ। अतः तुम्हारा कार्य जब तक पूर्ण नहीं हो जाता तब तक सीता के आगमन का विचार भी मैं निंद्य समझता हूँ। जिस प्रकार वैश्वदेव और बलि विधान* के बिना भोजन करना निन्दनीय है उसी प्रकार तुम्हारे कार्य की सिद्धि के बिना सीता का आगमन मेरे लिए निन्दनीय है। जिस प्रकार घर की अग्नि की वन्दना कर पूजा किये बिना, स्वयं की पत्नी के पास जाना वेश्या के पास जाने के समान है, उसी प्रकार तुम्हारा कार्य हुए बिना, सीता का आगमन मेरे लिए निन्दनीय कार्य है। अतिथि की पूजा छोड़कर स्वयं भोजन करना, संध्या-स्नान किये बिना यज्ञादि कर्म करना– यह सब जितना निन्दनीय है उतना ही तुम्हारा कार्य किये बिना सीता का आगमन होना मैं निन्दनीय समझता हूँ।"

श्रीराम आगे बोले– "सुग्रीव यदि तुम्हारा कार्य पूर्ण हुए बिना तुम सीता को यहाँ लाते हो तो मैं दशरथ की शपथ लेकर कहता हूँ, मैं उसकी ओर देखूँगा भी नहीं। सीता कहाँ थी, यह देखकर उसकी शुद्धि के पश्चात् ही उसका आगमन होगा। बालि के वध के लिए ऐसा कोई भी व्यवधान नहीं है। सर्वप्रथम मित्र-कार्य करूँगा फिर उसके पश्चात् ही सीता को ढूँढ़कर लाऊँगा।" ऐसा कहकर श्रीराम

* भोजन प्रारम्भ करने से पूर्व की क्रियाएँ।

धनुष-बाण लेकर निकले। उन्होंने बालि का वध करने का निश्चय किया और वे सुग्रीव से बोले– "सुग्रीव, ''ध्यान देकर सुनो, जिसने तुम्हारी पत्नी का हरण किया है, उस बालि पर तीक्ष्ण बाण चलाकर मैं उसके प्राण हरूँगा। मेरे बाण अत्यन्त तीक्ष्ण हैं, जिन्हें अभिमन्त्रित कर मैं चलाऊँगा। बालि का कंठ-छेदन करते हुए एक ही बाण से उसे धराशायी कर दूँगा। जिस प्रकार वज्राघात से पर्वत पृथ्वी पर बिखर कर गिर जाता है, उसी प्रकार बालि का वध कर यहाँ रक्त की नदी बहते हुए तुम देखोगे।" श्रीराम का क्षोभ देखकर सुग्रीव ने उनके चरणों पर मस्तक रखा। फिर सुग्रीव ने श्रीराम को बालि का पुरुषार्थ बताते हुए सावधानी बरतने को कहा। "बालि सूर्योदय से पूर्व श्रम का अनुभव किये बिना सातों समुद्रों का स्नान करता है जिसके लिए उसे क्षणार्द्ध भी नहीं लगता बालि दाहिने हाथ में पर्वत उठाकर आकाश में उछालता है तथा बायें हाथ से वह पर्वत पकड़ता है- ऐसा उसका सामर्थ्य है।"

बालि का सामर्थ्य वर्णन– सुग्रीव ने राम को बालि का सामर्थ्य का अनुमान लगाने के लिए कुछ घटनाएँ बतायीं। "हे श्रीराम, महिषासुर का ज्येष्ठ पुत्र दुंदुभी अत्यन्त प्रसिद्ध महिष था। वह नित्य युद्ध के लिए उत्सुक रहता था, वह त्रिलोक में घूमता रहता था। एक बार जब वह पाताल लोक गया था, उसने वरुण को युद्ध के लिए ललकारा। वरुण ने उसे मेरु पर्वत के पास भेजकर उससे युद्ध करने के लिए कहा। दुंदुभी ने उसके अनुसार मेरुपर्वत को युद्ध का आह्वान देकर युद्ध करने के लिए बुलाया। तब मेरु ने उससे कहा 'अरे मैं तो युद्ध की दृष्टि से कमज़ोर हूँ। तुम इसके लिए यम के पास जाओ।' दुंदुभी ने यम के पास आकर युद्ध का आह्वान किया। इस पर यम ने सोचा कि दुंदुभी की मृत्यु बालि के हाथों होनी है अतः इसे वहीं भेजें, यम ने फिर दुंदुभी से कहा– "मैं तुमसे युद्ध नहीं कर पाऊँगा तुम बालि के पास जाओ। वह तुम्हारे समान बलवान है। बालि नामक वानर, महाबलवान एवं पराक्रमी के रूप में समस्त भूमंडल में प्रसिद्ध है, वह युद्ध करेगा। इसके अतिरिक्त बालि की भी युद्ध की इच्छा है और तुम भी युद्ध के लिए उत्सुक हो। अतः तुम शीघ्र जाकर बालि से युद्ध कर अपना पुरुषार्थ दिखाओ। तुम बालि का परिचय चाहते हो तो वह किष्किंधा का राजा है। तुम इस बालि से युद्ध करके दिखाओ तो तुम्हारा बल और पराक्रम पता चल जाएगा।"

यम के वचन सुनकर दुंदुभी तुरन्त किष्किंधा की ओर गया और उसने गर्जना की– "यहाँ कौन बालि नामक बलशाली है, वह शीघ्र बाहर आये और मुझसे युद्ध करे। मैं युद्ध में उसका नाश करूँगा।' दुंदुभी का युद्ध का आह्वान सुनकर बालि उछलकर दुंदुभी के समक्ष आया। बालि ने क्रोधपूर्वक गर्जना की। उसकी गर्जना सुनकर दुंदभी के कान गूँजने लगे। दुंदुभी मन ही मन बोला– "यह वानर तो अत्यन्त बलशाली है, युद्ध में यह मेरे हाथों कैसे परास्त होगा ? फिर दुंदभी पर बालि ने मुष्टिका से आघात किया, जिससे दुंदुभी का हाथ उखड़ गया और भयभीत होकर वन की ओर भागा। वह अपने गुप्त स्थान पर स्थित गुहा में जाने लगा। बालि ने उसे पकड़कर उस पर प्रहार किया जिससे दुंदुभी को रक्त की उल्टी हुई और वह मर गया। दुंदुभी का कैलास जितना प्रचंड शरीर उठाना देवताओं के लिए असंभव था उसका शव उठाना मात्र बालि के लिए ही सम्भव था। उसके अतिरिक्त वानर वीर सुग्रीव उसे उठा सकता था। दुंदुभी का प्रचंड देह उठाने वाला इन दोनों बंधुओं को छोड़कर तीनों लोकों में कोई नहीं मिल रहा था अब जो भी इस देह को उठायेगा उसके हाथों बालि की मृत्यु होगी ऐसी भविष्य वाणी

मातंग ऋषि ने की थी। ऐसा वह बालि बलवान् के रूप में प्रसिद्ध है। हे श्रीराम ! उसके पराक्रम के विषय में मैं तुम्हें सम्पूर्ण परिचय देता हूँ सुनो।"

सुग्रीव श्रीराम से बोला– "एक बार जब बालि अनुष्ठान के लिए बैठा था, रावण उसे पकड़ने के लिए आया। उसने अपने बीस हाथ फैलाकर बालि को कसकर पकड़ने का प्रयत्न किया। तब बालि ने अपना बायाँ हाथ फैलाकर रावण को बीसों हाथों सहित पकड़ कर अपनी काँख में दबा लिया। इस घटना से उनके अनुष्ठान में बाधा आने के कारण वह तुरन्त स्नान के लिए निकला। उसकी काँख में रावण यथा स्थिति में था। उस स्थिति में ही बालि ने सप्त सागरों में स्नान किया। रावण के नाक-मुँह में पानी भर जाने से वह घबरा गया परन्तु वह अपने को छुड़ा न सका। बालि काँख में दबाये हुए रावण को भूल गया। बालि जब स्नान कर वापस लौटा तब एक घटना घटित हुई। उसने अपने पुत्र अंगद को प्रेमवश जब उठाया तो काँख में दबा हुआ रावण नीचे गिरा। रावण को देखने के लिए सब वानर एकत्र हो गए। रावण के दस सिर और मुकुट देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ उन्होंने रावण को उठाया और अंगद के पालने के ऊपर खिलौने के रूप में बाँध दिया। उस समय अंगद ने पालने में पड़े-पड़े उसे पैर मारे। अंगद का मूत्र रावण के मुख में गया वानरों के शिशुओं ने उसे चिकोटियाँ काटकर सताया। इन सब से रावण की मुक्ति सम्भव नहीं, यह जानकर पुलस्त्य ऋषि ने वहाँ आकर बालि के समक्ष गिड़गिड़ाकर रावण को मुक्त कराया। वानरों ने रावण को बहुत चिढ़ाया। किसी ने उसके मुख में काजल लगाया तो किसी ने उसका मुकुट छीन लिया। इस प्रकार अत्यन्त लज्जित होकर रावण की मुक्ति हुई और वह लंका वापस लौटा वह बालि इतना पराक्रमी है अत: उसके बल का पूर्ण विचार कर यदि उसे मारना सम्भव हो तभी यह कार्य स्वीकारें" इस प्रकार श्रीराम को सावधान कर फिर सुग्रीव ने बताया कि "बालि और मैं स्वयं बल में समान हैं परन्तु बालि के पास वह कश्यप द्वारा दी गई माला होने के कारण उसकी शक्ति अधिक है, इसी कारण वह युद्ध में मुझसे जीत जाता है. उस माला के कारण जो उसके समक्ष आता है, अपयश का भागी बनता है और विजय बालि की होती है।"

श्रीराम का सुग्रीव को आश्वासन– श्रीराम को सुग्रीव द्वारा बालि के सामर्थ्य का सम्पूर्ण निवेदन सुनने को मिला, फिर श्रीराम ने स्वयं विचार कर देखा "बालि के सम्मुख न जाकर दूर से ही उस का वध करना चाहिए। कश्यप का वरदान अवतारी पुरुष द्वारा भी व्यर्थ नहीं किया जा सकता। अत: दूर रह कर ही बालि का वध कर मित्र का कार्य सम्पन्न करना चाहिए।" इस आशय का विचार कर श्रीराम ने बालि के वध का निश्चय किया। सुग्रीव ने जो बताया उसमें अवश्य अतिशयोक्ति होगी, यह सोचकर श्रीराम सुग्रीव से बोले "सुग्रीव, मैं एक ही बाण से बालि को मारूँगा। बालि और सुग्रीव ये दोनों दुंदुभी का कलेवर उठाने वाले बलवान् वानर हैं, तीसरा मैं स्वयं हूँ। मैं दुंदुभी का देह उठाऊँगा, निश्चय मेरे द्वारा बालि का वध होगा। मुझे दुंदुभी का कलेवर दिखाओ। अरे, दुंदुभी का शरीर मेरे लिए तृण-कुसुम के समान है। बायें अंगूठे से मैं उसे सहज ही उठाऊँगा। उन सप्ततालों का भी छेदन कर दूँगा" यह कहकर श्रीराम ने धनुष पर बाण चढ़ाया। "वह तालवन मुझे दिखाओ" यह कहकर श्रीराम ने धनुष सुसज्जित किया श्रीराम बालि का अवश्य वध करेंगे, यह जानकर सुग्रीव आनन्दमग्न हो नाचने लगा। रघुनाथ की कृपा से सुग्रीव सन्तुष्ट हुआ।

ॐॐॐॐ

अध्याय ४

[बालि एवं सुग्रीव के वैर की मूलकथा]

बालि का वध कर सुग्रीव को पत्नी और राज्य प्राप्त कराने के मित्र-कार्य के लिए श्रीराम उत्सुक थे। स्वयं का कार्य एक ओर रखकर मित्र भावना से अभिभूत होकर मित्र-कार्य पूर्ण करने के लिए श्रीराम प्रयत्नशील थे। परन्तु श्रीराम को शुद्ध विचारवन्त होने के कारण उन दोनों बंधुओं में द्वेष क्यों उत्पन्न हुआ, इस विषय में सोचकर आश्चर्य हो रहा था। अतः उन्होंने सुग्रीव से पूछा कि- "तुम दोनों सहोदर सगे भाई होते हुए भी तुम दोनों में वैर क्यों है ? वैर भी चरम सीमा पर पहुँचा हुआ और अत्यन्त घातक एवं तीव्र क्यों है ?"

सुग्रीव द्वारा वैर का कारण बताना– श्रीराम द्वारा सुग्रीव से वैर का मूल कारण पूछने पर सुग्रीव बताने लगा– "पिता-पुत्र और सहोदर में परस्पर अच्छे सम्बन्ध होते हैं परन्तु उनमें आपस में वैर का प्रधान कारण धन और स्त्री ही होते हैं। द्रव्य और स्त्री के लोभ से सहृदय भी वैर-भाव से भर जाते हैं। इसके अतिरिक्त अहंकार भी सहृदयों के मन में वैर-भाव का निर्माण करता है. लोभ के कारण ही हम दोनों में परस्पर वैर की भावना उत्पन्न हुई है। यह लोभ किसका था और वैर किसलिए हुआ, यह मैं विस्तारपूर्वक बताता हूँ, ध्यान से सुनो "स्त्री और राज्य के लोभ से बालि ने मुझे बाहर निकाल दिया जिस समय हमारे पिता जीवित थे, उस समय बालि को युवराज पद और मुझे सेना का अधिपति जैसे सम्माननीय पद प्राप्त थे और हम एकजुट थे। पिता के निधन के पश्चात् सब प्रधानों ने मिलकर बालि को ज्येष्ठ होने के नाते राज-पद दिया, मुझे युवराज बनाया और शान्त सुबुद्धि और बलशाली नील को सेनाधिपति बनाया। वानर सेना उसी कारण सामर्थ्यशाली हुई। हम दोनों मिलजुलकर रहते थे। पानी भी एक दूसरे से कहे बिना नहीं पीते थे। हम दोनों एक-दूसरे के बिना भोजन भी नहीं करते थे। एकत्र शयन, आसन भोजन के साथ ही एक दूसरे के लिए प्राण तक देने को तत्पर रहते थे, इस प्रकार मिलजुल कर विकल्परहित राज्य का कार्यभार चल रहा था लेकिन फिर एक प्रसंग से विघ्न उत्पन्न होकर हमारी एकात्मता भंग हो गई। वह कैसे हुई, यह सुनो "

मयासुर द्वारा बालि को ललकारना– दुंदुभी का ज्येष्ठ पुत्र मयासुर पिता के वध के कारण शत्रु बनकर बालि का वध करने की इच्छा से आया। किष्किंधा उध्वस्त कर बालि का वध करने की उसकी प्रतिज्ञा थी पिता के वध का बदला लेने के लिए वह आया था। एक दिन मध्यरात्रि के समय मयासुर किष्किंधा के महाद्वार पर आया। उसकी भयंकर गर्जना से आसमान गूँज उठा। उसकी गर्जना से भयभीत होकर वानर थर थर काँपने लगे, उनका धैर्य खोने लगा। मयासुर गरज रहा था– "वानरों का राजा बालि कौन है ? वह मुझसे युद्ध करने के लिए वीरतापूर्वक युद्ध भूमि में आये।" उस समय बालि उस असुर से युद्ध करने के लिए निकला। बन्धु प्रेम के कारण मैं भी उसके पीछे बाहर आया, उसी समय 'मेरा पिता दुंदुभी मारा गया उसका बदला लूँगा'– मय ऐसा कह रहा था, जिसे सुनते ही बालि क्रोधित हो आगे आया और उसने आह्वान करते हुए गर्जना की। उसके साथ मय का उत्साह ठंडा हो गया। हम दोनों को देखकर वह भय से भागने लगा। मैं अकेला हूँ, ये दोनों हैं, अतः वार करके ये प्राण ले लेंगे– इस भय से वह भागने लगा, बालि ने निश्चय किया कि 'इसका वध किये बिना खाली हाथ

नगर में नहीं लौटूँगा मय का वध करने के लिए बालि उसका पीछा करने लगा। बालि को पीछा करते हुए देखकर मय भयभीत होकर गिरिकंदराओं में भागा और अपनी गुफा में घुसकर बैठ गया।"

सुग्रीव आगे बताने लगा– "मयासुर जिस गुफा में घुसा, वह अत्यन्त दुरूह थी। अंधेरे में उसे उस गुफा में घुसते हुए देखकर हम दोनों वहाँ पहुँचे। उस समय बालि ने मुझसे कहा कि उसके अन्दर जाकर, वैरी को मार कर वापस आने तक मैं सावधानीपूर्वक गुफा के बाहर रुकूँ. मैंने बालि से कहा कि 'मैं भी तुम्हारी सहायता के लिए आता हूँ।' बालि ने मुझे आज्ञा देते हुए कहा कि 'उस कीटक को मारने के लिए तुम्हारी सहायता की क्या आवश्यकता है, तुम द्वार पर सावधानीपूर्वक रुको'। बालि के गुफा में प्रवेश करने पर मयासुर उसे पाताल लोक ले गया। वहाँ असंख्य दानव थे। वहाँ भीषण युद्ध होगा– यह सोचकर बालि सावधान हुआ। अपने गले में वरदमाला है कि नहीं– यह देख लिया। इन्द्र द्वारा दी गई कश्यप विजय वरद– माला बालि के गले में थी। फिर वह वैरियों के समूह में घुस गया। उस माला के गले में होने के कारण या तो वैरी वापस लौट जाते थे अथवा युद्ध के लिए आये तो उनका वध हो जाता था। अगर बालि कई वर्ष भी निराहार तथा पानी के बिना युद्ध करता था तो उसे भूख प्यास का अनुभव नहीं होता था। माला के कारण वह थकता भी न था। माला साथ में होने पर बालि एक अजेय वानर वीर सिद्ध होकर शत्रु पर विजय प्राप्त करता था। इस समय भी उसने अनेक दानवों का युद्ध में वध किया। उनकी सेना, प्रधान, पुत्र इत्यादि अनेक, दानव मार दिए। मुख्य महत्वपूर्ण दानवों के खून की नदियाँ बहा दीं। जो बच गए वे सब भाग गये। फिर दुंदुभी पुत्र मय बालि के साथ युद्ध करने लगा अनेक महीनों तक भूख प्यास के बिना और थके बिना बालि ने युद्ध किया। शिव ने मयासुर को श्राप दिया था कि उसकी मृत्यु बालि के हाथों होगी। पन्द्रह महीनों तक भीषण युद्ध होने के पश्चात् मयासुर के शरीर से रक्त प्रवाहित होने से सम्पूर्ण गुफा में रक्त भर गया। वह रक्त बहते हुए गुफा के द्वार तक आया मैं गुफा के द्वार पर ही बैठा हुआ था अन्दर क्या घटित हो रहा है, यह मुझे समझ में नहीं आ रहा था। मैं सवा वर्ष वहीं रुका हुआ था।"

बालि के वध की आशंका– मैं बाहर सुनाई देने वाली आवाज़ सुन रहा था। रण-भूमि में वीरों [illegible] क्रोधपूर्ण गर्जनाओं के शब्द सुनाई दे रहे थे। 'रुको, लो। भागो मत, पकड़ो' इन शब्दों सहित [illegible]पूर्वक किये गए वार और वीरों के हुंकार सुनई दे रहे थे। किसी को रोते हुए, गिरते हुए और [illegible] हुए आवाजें सुनाई दे रही थीं। यह शब्द सुनते समय ही गुफा से रक्त का प्रवाह बाहर आया। [illegible] उफान वाले उस रक्त को देखकर बालि की मृत्यु हुई होगी- ऐसा मुझे लगा और दुःख के [illegible] के कारण मैं मूर्च्छित हो गया। बालि जैसा श्रेष्ठ भाई रणभूमि में धराशायी हो गया- इस अनुभूति से [illegible] करते हुए उसके वध का बदला लेने के लिए मैंने गुफा में प्रवेश किया। तभी लोमेश ऋषि [illegible] उन्होंने बताया कि 'इस स्थान से किष्किंधा नगरी बहुत दूर रह गई है। मयासुर गुफा के [illegible] है तुम दोनों यहीं व्यस्त हो गए। उधर नगरी में कोई राजा नहीं है– यह जानकर विद्याधर गंधर्वों [illegible] नगरी को घेरकर वह राज्य ले लेने का विचार किया है. सम्पूर्ण नगरी में हाहाकार मचा है।' [illegible] प्रधान भी आ गए। उन्होंने भी गुफा में जाने से रोका. वे बोले "गुफा में बालि का अन्त [illegible] है तुम्हें भी मार दिया जाएगा और राज्य भी व्यर्थ ही हाथ से निकल जाएगा। अत: यह अनर्थ [illegible] निश्चित ही मारा गया है क्योंकि वह झागयुक्त रक्त यहाँ प्रवाहित हो रहा है। तुम और

अन्दर मत जाओ।" ऋषियों ने और अन्य सभी ने मुझे बताया कि, ''सर्वप्रथम शत्रुओं को लौटाकर नगरी की रक्षा कर शान्ति स्थापित होने दो तत्पश्चात् बालि को ढूँढ़ने के लिए सभी इस गुफा में जायेंगे "

गुफा के मुख पर आया हुआ रक्त-प्रवाह देखकर असुरों द्वारा बालि मारा गया होगा- ऐसा मैंने भी निश्चित समझ लिया। फिर दु:खावेश पर नियन्त्रण कर मैंने उठकर स्नान किया और बालि के उद्धार हेतु ऋषियों द्वारा बताये गए मन्त्रानुसार उसे मन्त्रयुक्त तिलांजलि दी। फिर अपनी किष्किंधा नगरी पर आये हुए संकट और स्त्रियों और बच्चों के बन्धन के विषय में सुनकर मुझे क्रोध आ गया। मैंने नगरी को जकड़े उस घेरे को तोड़ने का निश्चय किया। उस समय ऋषियों ने मुझे बताया कि, 'विद्याधर ने नगरी घेर ली है। इधर असुर विवर से बाहर आ गया तो दोनों ओर युद्ध का संकट खड़ा हो जाएगा" इसका विचार करना चाहिए। ऋषियों की यह सलाह मुझे उचित लगी। मैंने एक प्रचंड पर्वत लाकर गुफा के द्वार पर रख दिया, जिससे वैरी बाहर न आने पाये. फिर एक ही उड़ान से किष्किंधा पहुँचा। अभी प्रधान नगरी में पहुँचे नहीं थे, मेरी उड़ान की गति तीव्र होने के कारण प्रधान पीछे रह गए थे। मैंने अकेले ही विद्याधर को परास्त किया। शत्रु मेरे पराक्रम और मेरी गर्जना से भयभीत होकर भाग गये। किसी ने प्राण त्याग दिए। स्त्रियों और बालकों को बंधन मुक्त कर नगरी को सुखी किया मेरा पराक्रम देखकर ऋषियों को सन्तोष हुआ। फिर प्रधानों ने आकर देखा तब तक मैं शत्रुओं को समाप्त कर चुका था। वे अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए। मेरा पराक्रम देखकर उन प्रधानों एवं ऋषियों ने विचारपूर्वक किष्किंधा के राजा के रूप में मेरा अभिषेक कर दिया। सम्पूर्ण छह महीने मैंने धर्मयुक्त राज्य किया और समस्त प्रजा को सुखी किया।"

बालि का पुनरागमन; सुग्रीव पर रोष– बालि ने इक्कीस महीनों तक युद्ध कर मयासुर का वध कर दिया और उसका सिर लेकर गुफा का दरवाजा खोलकर गर्जना की। बालि की गर्जना सुनकर मुझे आनन्द ही हुआ। जिस प्रकार किसी मृत शरीर में प्राणों का आगमन हो जाय उसी प्रकार बालि के आगमन से अनुभव हुआ। किसी मृत को अमृत मिल जाय, अंधे को दृष्टि मिल जाये, अकाल की अवस्था में मेघों की वर्षा हो, उसी प्रकार बालि के आगमन से मुझे प्रसन्नता हुई। पतिव्रता को प्रिय के दर्शन होने से साधक को ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति से जैसे सुख का अनुभव होता है, वैसे ही सुख की अनुभूति मुझे बालि के आगमन से हुई। बालि को आया हुआ देखकर ऋषि, प्रधान, नागरिक, स्त्रियाँ, बालक सभी सुख-सम्पन्न हुए। उन्होंने तोरण, पताकाएँ बाँधकर, ढोल ताशे बजाकर बालि का स्वागत किया उसका जय जयकार किया। मैंने स्वयं जाकर उसे साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया। उसके चरणों पर मस्तक रख प्रणाम किया फिर जब उसे आलिंगनबद्ध करने लगा तब मुझे समक्ष देखकर क्रोध से उसने मुख फेर लिया। वह मेरा मुख भी देखना नहीं चाहता था। मुझे अत्यन्त दु:ख हुआ। मेरा राज्याभिषेक होने के कारण बालि क्रोधित हुआ था। जिन प्रधानों ने यह किया था, उनकी ओर भी वह क्रोधपूर्ण दृष्टि से देख रहा था। फिर मैंने ही हाथ जोड़कर, आगे बढ़कर बालि से विनम्र स्वर में पूछा– 'मेरा क्या अपराध है ? तुम मन में क्रोध क्यों धारण किये हो। हम तुम्हारे बिना अनाथ हो जाएँगे तुम तो मेरे बड़े भाई हो, तुम्हारे कारण ही हम लोग सनाथ होकर कृतार्थ हुए बड़े भाग्य से ही तुम शत्रु को जीतकर वापस लौटे हो। यह हमारा भाग्य ही था कि तुम हमें मिल गए।"

"मेरी बातें सुनकर बालि और अधिक क्रोधित हुआ। आँखें लाल कर अत्यन्त कठोर शब्दों में अपनी सहृदयता त्यागकर वह बोला– "तुम मेरे बंधु नहीं मेरे शत्रु हो। मैंने अनेक शत्रु देखे हैं पर तुम्हारी

शत्रुता मेरे लिए सबसे बड़ी है। तुमने मेरे साथ छल किया है। मैं गुफा में गया तब मैंने तुमसे गुफा के द्वार पर सावधान रहने को कहा और तुमने द्वार पर पर्वत रख दिया सुग्रीव, तुम्हारा मनोगत था वह असुर मेरा वध कर दे, जिससे तुम राज्य का उपभोग करो। इसीलिए तुमने गुफा बन्द की दी। मुझे ढूँढ़ने के लिए गुफा में आना छोड़कर तुमने राज्य उपभोग का स्वार्थ पूरा किया। तुम्हें सहृदय किस प्रकार कहा जाय ? तुम स्वयं राज्य का उपभोग करो और मेरी मृत्यु हो जाय यही तुम्हारे मन में था। तुमने इसी उद्देश्य से गुफा का द्वार बन्द किया। अब कपटपूर्वक व्यर्थ में ही विनती कर रहे हो।"

बालि अपनी कथा बताते हुए बोला 'मैंने गुफा में प्रवेश कर सभी दानवों को मार दिया सम्पूर्ण सेना एवं दानव पुत्रों का भी वध कर दिया। इसीलिए गुफा से रक्त का प्रवाह बह निकला; वीरों से संघर्ष करते हुए रक्त भरकर गुफा के द्वारा तक पहुँच गया। भयंकर, मायावी असुरों से निराहार निर्जल रहकर इक्कीस महीने युद्ध करते हुए आखिर मैंने मयासुर का अन्त कर ही दिया। फिर मुझे बाहर आने का मार्ग दिखाई नहीं दे रहा था। मैं व्याकुल हो गया। तुम्हारे द्वारा गुफा बन्द कर दी गई थी- मैं उस गुफा में घूमता फिर रहा था। कहीं गुप्त रूप से आकर दानव उस गुफा में मेरा घात न कर दें यह भय मुझे इस अंधेरे में घूमते हुए संत्रस्त कर रहा था। मैंने मन मे विचार किया कि सुग्रीव द्वार के बाहर निकाल गया। अतः मैंने 'सुग्रीव, सुग्रीव' ऐसा लगातार पुकारा। जब तुम्हारा कोई प्रत्युत्तर नहीं आया, तब मुझे अपार दुःख हुआ। मैंने उसे अकेले ही द्वार पर बैठाया था। दानवों ने छलसे उसका घात कर दिया होगा। वह तो कलिकाल के लिए भी अजेय है, दानवों ने छल कपट से ही उसकी हत्या की होगी। सुग्रीव मारा गया, इस विचार से मैं अत्यन्त व्यथित हुआ। बन्धुप्रेमवश अपार दुःखी हुआ। मैं रोता बिलखता रहा। हम दोनों में परस्पर अत्यन्त प्रेम भाव था; अणुमात्र भी विरोध नहीं था। मुझसे सुग्रीव जैसा भाई बिलग हो गया- यह सोचकर, 'सुग्रीव तुम कहाँ गये' कहकर मैं व्यथित हो अपना दुःख व्यक्त करने लगा, 'अरे तुम मेरे हृदय की शान्ति हो। मैं दैत्य का वध कर के आया हूँ, मुझे आलिंगन दो क्या तुम बन्धु का गौरव करना भूल गए ? मुझे पूरा विश्वास था कि मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर सुग्रीव लघुशंका हेतु भी नहीं जायेगा अतः दानवों ने ही उसका वध कर दिया होगा- यह कहकर मैं फूट फूट कर रो रहा था। बालि अन्य कई स्मृतियाँ भी सुनाता रहा।

'सुग्रीव, वानर युवराज मेरा प्राण है, मेरी आत्मा है। उसे अगर दैत्यों ने युद्ध में मार डाला होगा तो मेरा जीवित रहना व्यर्थ है। अगर वह मेरे साथ आया होता तो बच जाता। मैंने ही उसे द्वार के पास रखकर उनका घात किया है। मुझे दानवों ने गुफा में बन्द कर दिया है। अतः हे मेरे भाई, मुझे छुड़ाने के लिए आओ। तुम और मैं कभी अलग नहीं रहते थे। इस समय मुझे कैसी दुर्बुद्धि हुई कि तुम्हें द्वार पर रखकर मैंने युद्ध के लिए प्रस्थान किया। मुझे अधिक समय लग गया। तुम मेरे बिना फल और जल नहीं ग्रहण करते थे अतः क्षुधा से मूर्च्छित हो तुमने प्राण त्याग दिये होंगे यह विचार कर मैं शोक करते हुए जब अंधेरे में गुफा में घूम रहा था तब छिद्र से आते हुए सूर्य प्रकाश के कारण मुझे पता चला कि गुफा के द्वार पर पर्वत है।"

बालि का आरोप; तारा द्वारा स्पष्टीकरण– सुग्रीव का मनोगत मुझे गुफा में बन्द कर मार डालना ही था, इसीलिए उसने गुफा के द्वार पर पर्वत लगा दिया क्योंकि उसे राज्य का उपभोग करना था। गुफा के छिद्र से मुझे सूर्य की किरण दिखाई दी तब मैंने प्रहार कर पर्वत दूर किया और मैं गुफा के बाहर निकला सुग्रीव को यहाँ बैठाया था, उसका क्या समाचार होगा यह मैं सोच रहा था कि मुझे

सब कुछ विपरीत दिखाई दिया सुग्रीव किष्किंधा का राजा बनकर मेरी पत्नियों का उपभोग कर रहा है। उसने निश्चित ही मुझसे शत्रुता की। यह मेरा शत्रु हो गया। जिस सुग्रीव के लिए मैं तड़प रहा था, वही मुझसे विश्वासघात कर रहा था। यह कितना विपरीत था और यह सब राज्य की प्राप्ति के लिए था। गुफा में मुझे ढूँढ़ने की सद्‌बुद्धि त्याग कर सुग्रीव दुष्ट, दुरात्मा राज्यपद पर आसीन था।" बालि के सुग्रीव पर किये आरोप मिथ्या हैं- यह बालि की पत्नी तारा ने बताने का प्रयत्न किया सुग्रीव निर्दोष है- यह बताते हुए तारा बोली- "किष्किंधा का राज्य जब डूब रहा था तब किस प्रकार सुग्रीव ने उसे अपने पराक्रम से बचाया, यह मैं बताती हूँ।"

"सत्य तो यह है कि आप दोनों वीरों को गुफा के पास व्यस्त देखकर विद्याधर ने राज्य हड़पने के लिए सम्पूर्ण नगरी घेर ली। नागरिकों का विरोध कर स्त्रियों और बच्चों को संत्रस्त किया। यह सब देखकर ऋषिवरों को चिन्ता हुई। वानर सेना एवं सेनापति को उतना ज्ञान न था। अत: पहले चारों प्रधान आपके पास आये। आप दोनों को वापस लाने के लिए ऋषि एवं प्रधान गुफा के समीप गये। तब गुफा से रक्त प्रवाहित हो रहा है और सुग्रीव विलाप कर रहा है यह दिखाई दिया। वह फेनयुक्त रक्त देखकर सुग्रीव बोला "मैं बालि के शोध हेतु जा रहा हूँ तुम लोग द्वार के पास रुको।" बालि का दानवों द्वारा वध हुआ है, ऐसा इस रक्तप्रवाह से दिखाई देता है। अत: मैं उसे ढूँढ़ने के लिए जा रहा हूँ प्रधान जी, आप सब नगरी की रक्षा कीजिये।" इतना कहकर सुग्रीव गुफा में प्रवेश करने वाला है, यह देखकर ऋषियों ने उसे रोका। ये पूर्ववृत्तान्त ध्यानपूर्वक सुनें आपको ढूँढ़ने के लिए प्रधान वन उपवन में गये। राजधानी में कोई भी नहीं है यह देखकर गंधर्वों ने किष्किंधा को घेर लिया। स्त्रियाँ, बालक आक्रंदन करने लगे। तब ऋषि दौड़ते हुए सुग्रीव के समीप गये और गंधर्वों की वार्ता बतायी तथा कहा कि राज्य जा रहा है, उसकी रक्षा के लिए कोई रक्षक ही नहीं है। उन्होंने सुग्रीव से कहा कि रक्त प्रवाह से ऐसा लगता है कि बालि की मृत्यु हो गई है। अत: मृत के पीछे हमें मरना नहीं चाहिए। ब्रह्मा द्वारा दिये गए अपने राज्य की पहले रक्षा करो। स्वराज्य की रक्षा के पश्चात् शान्ति स्थापित होने पर बालि को ढूँढ़ने के लिए जाओ। तब तक इस गुफा के द्वार पर पर्वत रख दो। यह भी ध्यान रखो कि कदाचित् विद्याधर से युद्ध करते समय शत्रु गुफा से आ सकते हैं, ऐसे प्रसंग में दोनों ओर से संकट उत्पन्न हो सकता है। इसलिए गुफा के द्वार पर पर्वत रख दो। सुग्रीव ने ऋषि का कहना मानकर गुफा के द्वार पर पर्वत रख दिया और वह महावीर विद्याधर से युद्ध करने के लिए आया।" तारा ने यह पूर्ववृत्त कथन कर बाद में क्या घटित हुआ यह भी बताया।"

"सुग्रीव जैसा धैर्यवान जुझारू वीर विद्याधर से युद्ध में विजयी हुआ। उस अकेले वीर को विजयी हुआ देखकर ऋषियों ने उसका जय-जयकार किया। फिर राजधानी पुन: राजा से वंचित न रहे, ऋषियों एवं प्रधानों ने यह विचार कर सुग्रीव को रोककर उसका राज्याभिषेक किया। स्वयं सुग्रीव ने राज्य नहीं लिया। उसे बलपूर्वक राज्य सिंहासन पर बैठाया गया। अत: उसके प्रति क्रोध न कर आप उसे क्षमा करें।" तारा द्वारा यह स्पष्टीकरण दिये जाने पर भी बालि का क्रोध शान्त नहीं हुआ। वह तारा से बोला- "अरे, तुम्हें उसकी कपट कुशलता की जानकारी नहीं है। यह मेरा पूर्ण शत्रु है मुझे शत्रु से लड़ता हुआ छोड़कर स्वयं इसने राज-पद ले लिया। इसे मेरा स्मरण क्यों नहीं हुआ ? क्योंकि यह मुझसे द्वेष करता है। मेरा क्या हुआ, इसका विचार भी न कर, छ: महीनों से सुखपूर्वक राज्य कर रहा है। मेरी मृत्यु से ही इसे सुख प्राप्ति होनी थी। इसीलिए इसने गुफा का मुख बंद कर दिया। राज्य की रक्षा करते हुए अगर

इसने गुफा के द्वार पर रखा पर्वत हटा दिया होता तो भी मैं इसके बंधुत्व पर विश्वास करता परन्तु यह तो पूर्ण रूप से मेरा शत्रु ही है।" क्रोधपूर्वक इतना कहकर बालि सुग्रीव को मारने के लिए दौड़ा। उस समय तारा ने उसे रोका और 'स्वयं भाई का वध नहीं करना चाहिए'- यह बताया।

बालि द्वारा सुग्रीव को नगर से बाहर निकालना- सुषेण की कन्या बालि की पत्नी तारा अत्यन्त पतिव्रता थी सुग्रीव की पत्नी रुमा का बालि ने हरण किया तारा के कहने से सुग्रीव के प्राण बच गए। बालि ने सुग्रीव की पत्नी, वस्त्र, आभूषण लेकर सुग्रीव को वस्त्र-रहित अवस्था में नगर से बाहर कर दिया मात्र एक लंगोटी पहनने के लिए देकर बालि ने सुग्रीव को गिरि कन्दराओं में भेज दिया। फिर बालि ने प्रधानों की ओर क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखा। तब प्रधानों ने बालि का राज्याभिषेक किया। और अब उन्हें भी बालि दण्डित करेगा इस भय से सभी प्रधान शीघ्रता से बाहर भागे और सभी मेरे पास आये हम दोनों भाइयों में प्रेम होते हुए भी शत्रुता होने का कारण मैंने बताया। हे श्रीराम, हम दोनों की ये वार्ता मैंने तुम्हें बतायी। हे श्रीराम, मेरा युवराज पद, मेरी युवा पत्नी का बालि द्वारा हरण किये जाने से मैं अत्यन्त दुःखी हूँ सारी रात मुझे नींद नहीं आती। आपकी शपथ लेकर कहता हूँ कि ये सच है। सुग्रीव ने जो कहा उसे सुनकर श्रीराम को दया आई और उस पर कृपा करने के विचार से उन्होंने सुग्रीव से कहा- "मैं निश्चित ही बालि का वध करूँगा।" इतना कहकर श्रीराम ने सुग्रीव के मस्तक पर अपना हाथ रखा।

अध्याय ५

[बालि द्वारा सुग्रीव का पराभव]

सुग्रीव ने बालि द्वारा संत्रस्त किये जाने की वार्ता को आगे बताना प्रारम्भ किया "हे श्रीराम, राज्य [illegible] और हम वनवास में गुप्त रूप से रह रहे हैं। परन्तु बालि यहाँ भी हमें मारने के लिए आता है [illegible] जहाँ भी जाते हैं, बालि हमारे पीछे आ जाता है। हमारे प्राण ले लेने का वैर-भाव उसने अपने मन में धारण किया है। बालि के भय से भयभीत होकर हम यहाँ गुप्त रूप से निवास कर रहे हैं। परन्तु [illegible] क्रूर दृष्टि रखे हुए बालि के दूत हमारा शोध लेकर उसे बता देते हैं हम इस प्रकार भयभीत [illegible] दस दिशाओं में घूम रहे थे कि हमारी नारद से भेंट हुई। उन्होंने हमें ऋष्यमूक पर्वत पर निवास करने के लिए कहा क्योंकि इस स्थान पर बालि नहीं आयेगा, उसे शाप मिला हुआ है।"

मातंग ऋषि के शाप का वृत्तान्त- बालि को मातंग ऋषि ने शाप दिया, यह मैं बताता हूँ। [illegible] [illegible] से उन्मत्त हो गया था। वह बालि के पास आया और उसे आह्वान देकर युद्ध करने लगा। [illegible] ने दुंदुभी को पकड़कर जोर से ज़मीन पर पटका, उस आघात से दुंदुभी की मृत्यु हो गई और वह [illegible] में विलीन हो गया बालि ने बायें पैर से ठोकर मारकर दुंदुभी को आकाश में उछाल दिया। [illegible] से दुंदुभी मातंग ऋषि के आश्रम में जा गिरा, वहाँ उसका रक्त बहने लगा। वह बहता हुआ [illegible] [illegible] ऋषि क्रोधित हो उठे। उन्होंने क्रोध में चिल्लाकर बालि को शाप दिया। वे बोले "जिसकी [illegible] के [illegible] से यह रक्त इस आश्रम में बहा है, वह इस पर्वत प्रदेश में प्रवेश करेगा तो उसी क्षण [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।" यह शाप होने के कारण ऋष्यमूक पर पैर रखते ही बालि की मृत्यु हो

जाएगी। नारद ने यह बताकर हमें ऋष्यमूक पर भेजा है। नारद यह भी बोले कि "तुमने ऋष्यमूक पर निवास किया तो बालि के भय से भी निर्भय होगे। तुम्हें महान यश और कीर्ति प्राप्त होगी क्योंकि श्रीराम की कृपा का प्रसाद तुम्हें प्राप्त होगा।" नारद के कहने पर हम ऋष्यमूक पर निर्भय और सुखी होकर रह रहे हैं। बालि का भय समाप्त हो गया है। बालि अपने शाप के भय से ऋष्यमूक की ओर दृष्टि भी नहीं उठाता है, फिर यहाँ आने की बात तो दूर ही है। हम यहाँ सुख सम्पन्न और सन्तुष्ट हैं। अब नारद के वचनों की साक्षात् प्रतीति आपकी भेंट से हो रही है। हे कृपामूर्ति राम, हमारी तीनों लोकों में विजय होगी।"

बालि-सुग्रीव संघर्ष का निवेदन– सुग्रीव ने बालि से वैर होने का कारण बताते हुए निवेदन किया कि "हमारे आपसी वैर का मुख्य कारण उसके द्वारा मेरी पत्नी का हरण करना है। मुझे मेरी पत्नी रुमा अत्यन्त प्रिय है। अपनी आत्मा के समान ही, वह मुझे प्रिय है। अगर उसकी मुक्ति हो गई तो मैं अत्यन्त सुखी होऊँगा। तारा बालि की पत्नी है। वह उसे सुखपूर्वक भोगे और मेरी रुमा मुझे गौरवपूर्वक वापस लौटा दे, जिससे हमारा आपस में कोई वैर नहीं रहेगा। हम दोनों में स्त्री के हरण के कारण व्यर्थ में ही वैर उत्पन्न हो गया है। इसी स्त्री लोभ के कारण छह महीनों से हमारा युद्ध चल रहा है लेकिन मैं अपनी पत्नी को मुक्त नहीं करा सका हूँ।" ऐसा कहते हुए सुग्रीव विलाप करने लगा। श्रीराम से सुग्रीव का दुःख देखा नहीं जा रहा था। श्रीराम ने निर्वाण-बाण निकालते हुए कहा, "एक ही वार से मैं बालि के प्राण हर लूँगा। यह तुम निश्चित समझो।" बालि सबल और श्रीराम अजेय पराक्रमी, दोनों समान थे। उनमें कोई कमी नहीं थी।

श्रीराम का आश्वासन सुनकर सुग्रीव आगे बताने लगा कि "उस ओर दुंदुभी का शव पड़ा हुआ है, जो उसे उठा लेगा उसके हाथों बालि की मृत्यु होगी। ऐसा मतंग ऋषि ने कहा है। एक ही बाण से जो सात विषम ताड़ के वृक्षों को छेद देगा, उसके ही हाथों बालि मारा जाएगा, ऐसा भी ऋषि ने कहा है।" सुग्रीव का यह कथन सुनकर श्रीराम हँसते हुए दुंदुभी का पर्वत के समान शरीर देखने गये। उन्होंने बायें अँगूठे से तीन बार उसे उठाया और फिर लीलापूर्वक उसे उछालकर दस योजन दूर फेंक दिया। दुंदुभी का शरीर अत्यन्त भारी था फिर भी सुग्रीव सशंकित था। वह भयभीत होकर बोला– "बालि ने दुंदुभी को, जब वह रक्त, माँस हड्डियों से युक्त था, तब आकाश में उड़ा दिया था, यह हमने देखा है। हे रघुनाथ, दुंदुभी का शरीर अब सूखकर सिकुड़ गया है, जिसे तुमने पैर से उड़ाया है। अतः यह देखकर भी बल में कौन कैसा है, यह हम निश्चित नहीं कर पा रहे हैं। इसलिए यदि तुम उन विशाल ताड़ों को एक बाण से छेद दो तभी तुम बालि के हनन में समर्थ सिद्ध होगे। सुग्रीव के यह भय एवं संदेह से युक्त वचन सुनकर श्रीराम ने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ायी और एकपर्णी बाण उस पर लगाकर विषम ताड़ को छेदने के लिए सुसज्जित हुए। उस ताड़ की वह विषम स्थिति शेषनाग के पीठ पर विद्यमान थी। उसको छेदने के लिए राम ने युक्ति लगायी। उन्होंने धनुष की प्रत्यंचा खींचते हुए लक्ष्मण का पैर दबाया। उन्होंने अपना शरीर झुकाया। लक्ष्मण शेषावतार होने के कारण उनके द्वारा शरीर को मोड़ते ही वह विषम ताड़ का पेड़ सम हो गया। श्रीराम ने उसका छेदन करने के लिए अपने धनुष पर अमोघ बाण लगाकर चलाया। इसी समय बड़ी विचित्र घटना घटित हुई। सात ताड़ों को छेद कर, पर्वतों का विदीर्ण करते हुए सात पातालों को भेद कर शेष के शरीर में स्थित ताड़ की जड़ों का समूल छेदन के पश्चात् बाण फिर से राम के हाथ में आकर तूणीर में प्रवेश कर गया।

श्रीराम द्वारा सात विषम ताड़ों का छेदन करने के कारण सुग्रीव को अत्यधिक आनन्द हुआ। सब ने श्रीराम की जय-जयकारयुक्त गर्जना की। 'श्रीराम के कारण हम लोग सबल हुए'- ऐसा सभी कहने लगे भव-भयरूपी ताड़ों की विषमता राम की दृष्टि से समता बन गई विषम ताड़ों का राम द्वारा छेदन करने के कारण सम्पूर्ण वानरकुल सुखी हुआ। 'श्रीराम हमें सुख सम्पत्ति, आत्म विश्रांति, सहायता और साथ देने वाला है, वह हमारा प्राणप्रिय, सगा सम्बन्धी, वानरों की आत्मा, चराचरों का स्वामी और सुरवरों का वंदनीय है।' सुग्रीव ने ऐसा कहते हुए साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीराम ने उसे उठाकर आलिंगनबद्ध किया, जिससे जीव और शिव दोनों सन्तुष्ट हुए।

फिर श्रीराम सुग्रीव से बोले- "तुम आगे किष्किंधा जाकर बालि को युद्ध के लिए आमन्त्रित करो। मैं तुम्हारे पीछे हूँ। बालि के संग्राम के लिए आते ही क्षणार्द्ध में ही मैं उसे बाण से मार दूँगा। तुम उससे डरना नहीं, नि:शंक होकर युद्ध करना। सुग्रीव, तुम जब बालि से युद्ध करोगे तो मुझे भूलना मत। तुम अवश्य विजयी होगे " सुग्रीव ने राम के वचनों को शिरोधार्य किया और गर्जना की श्रीराम कौतुकपूर्ण दृष्टि से देख रहे थे। बालि वानर का वध वे करेंगे, ऐसा उन्होंने कहा। 'बालि बलवानों में श्रेष्ठ है तो श्रीराम अजेय, महावीर,। आज बालि की मैं होली जला डालूँगा, मेरा रणकौशल देख ही लेना।' ऐसा विश्वास सुग्रीव को देकर, राम सौमित्र सहित तुरत उठ खड़े हुए। सखा, प्राणप्रिय सौमित्र तथा मित्र सुग्रीव के साथ श्रीराम बालि के वध के लिए किष्किंधा की ओर अग्रसर हुए। नर और वानर एक हुए। वानरवीरों का समूह श्रीराम की जय-जयकार करते हुए किष्किंधा के द्वार के समीप पहुँचा। श्रीराम, सुग्रीव और सौमित्र साथ-साथ चल रहे थे। वानर आनंदपूर्वक गर्जना कर रहे थे। सभी किष्किंधा के द्वार के समीप आ पहुँचे। जिस प्रकार देह में विद्यमान होते हुए भी आत्मा सबके लिए अदृश्यस्वरूप होती है उसी प्रकार श्रीराम उस जनसमूह में होते हुए भी लोगों के लिए अदृश्य थे। बालि और सुग्रीव का [illegible] युद्ध देखने के लिए श्रीराम वन में होते हुए भी दिखाई नहीं दे रहे थे। नर वानर उन्हें देख नहीं सकते थे। पास होते हुए भी वह नरवीर ऋषियों को भी दिखाई नहीं दे रहा था तो बालि वानर उसे कैसे देख सकता था। गोचरों को उस अगोचर का न दिखना स्वाभाविक ही था क्योंकि वह तो मूलत: ब्रह्मसूत्र है [illegible] श्रीराम किसी को स्पष्ट दिखाई नहीं देते, यह बात साधु और सज्जन जानते हैं श्रीरामचन्द्र गुप्त [illegible] थे।

सुग्रीव और बालि का युद्ध– श्रीराम की प्रेरणा से उत्साहित होकर सुग्रीव ने गर्जना कर समस्त [illegible] को गुंजायमान कर दिया और वह युद्ध के लिए तैयार हुआ। सुग्रीव की गर्जना से दिन में नक्षत्र [illegible] लगे। मेरुपर्वत के शिखर आंदोलित हो उठे। गिरिकंदराएँ गूँज उठीं। दिग्गज भयभीत हो उठे। [illegible] गर्जना से बालि चौंक उठा कि ऐसी प्रलयकारी गर्जना करने वाला बलवान् कौन है ? तब उसे दूत [illegible] कि सुग्रीव युद्ध के लिए आया है। बालि बोला "उसमें उतना सामर्थ्य नहीं है। उसे कोई [illegible] मिल गया होगा। उसी के बल पर यह महागर्जना कर रहा है।" इतना कहकर बालि तत्काल [illegible] आज का संकट बड़ा दीख पड़ता है, ऐसा कहते हुए बालि ने गले में विजयमाला पहनी [illegible] उत्पन्न करने वाली गर्जना उसे भयभीत कर रही थी। तत्पश्चात् मारने अथवा मरने तथा [illegible] पूर्ण रूप से समाप्त करने का निश्चय कर बालि क्रोधित हो युद्ध के लिए निकला

सुग्रीव की भयप्रद गर्जना सुनकर क्रोधित हो युद्ध के लिए आया। बालि सीधे सुग्रीव से जा [illegible] बलवान् वानर आवेशपूर्वक एक दूसरे से जूझते रहे। बालि और सुग्रीव में युद्ध हो रहा है,

यह सुनकर ब्रह्मादि देव युद्ध देखने के लिए पधारे, जिससे आकाशमंडल विमानों से भर गया. दोनों की शक्ति एवं सामर्थ्य का सबको कौतूहल था क्योंकि दोनों ही समान बलवान् एवं युद्ध-कुशल होने के कारण, कौन जीतता है- इस विषय में देवताओं को उत्सुकता थी। दोनों बन्धुओं ने परस्पर एक दूसरे को देखा और दोनों की बन्धुत्व-भावना समाप्त हो आई दोनों क्रोधित हो उठे। यह अपघात स्त्री-लोभ के कारण हुआ था। जिस प्रकार ग्रहण पर्व में राहु सूर्य को ग्रसन के लिए दौड़ता है, उसी प्रकार बालि सुग्रीव का संहार करने के लिए दौड़ा। बालि पर्वत से भीषण आघात करता था। और सुग्रीव अपनी मुट्ठी के आघात से उस पर्वत को चूर-चूर कर देता था। शाल, ताल किसी की भी परवाह न करते हुए दोनों ही रण के मद से उन्मत्त थे। दोनों के कठोर शरीर रण करते-करते अभ्यस्त हो गए थे। एक दूसरे पर किये गए उनके आघात, मारे हुए वार इतने कठोर थे कि भीरुओं के प्राण ही उड़ जाते। वज्र के समान हाथों के वार, निष्ठुरतापूर्वक मुट्ठियों से सिर पर किये गए प्रहार, एक दूसरे को मारी गई चोटें इत्यादि उनके घातक वार हो रहे थे। हाथ, सिर, छाती मस्तक और पेट पर आघात किये जा रहे थे। घुटनों से और कोहनियों से वे एक दूसरे को मार रहे थे। दोनों ही पूँछ की फटकार से मार रहे थे। एक दूसरे को टक्कर दे रहे थे। बीच में ही हवा में छलाँग लगा रहे थे। ज़मीन पर एक दूसरे को ऊपर-नीचे उठा पटक करते हुए चक्र के समान घूम रहे थे। कभी दोनों उछलकर भिड़ पड़ते थे। उन महाबलियों द्वारा किये गए आघातों की ध्वनि पाताल-लोक में भी गूँज रही थी। उनके द्वारा गर्जना करते ही कृतान्त भयभीत हो उठता था। क्षण में भूमि पर तो क्षण में अंतरिक्ष में -ऐसा वे युद्ध कर रहे थे। उन वानर वीरों का युद्ध-कौशल सुरासुरों को चकित कर रहा था। वे दोनों महाबली वानरवीर धैर्य तथा शौर्य में अति विलक्षण थे तथा एक दूसरे के वश में न आने वाले थे।

श्रीराम को बालि को पहचानने में होने वाला संभ्रम– बालि और सुग्रीव दोनों ही रणप्रवीण थे। दोनों का युद्ध देखकर और उनकी बल में समानता देखकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए दोनों वानर एक समान तथा समान बलशाली हैं यह ज्ञात होने पर राम ने बालि पर निशाना साधने के लिए धनुष बाण सुसज्जित किया। उस समय बालि और सुग्रीव दोनों रंग से, शरीर से और रूप से इतने समान दिखाई दे रहे थे, मानो समरूप समभाव वाले अश्विनी कुमार ही हों। श्रीराम बाण सुसज्जित किये हुए थे लेकिन बाण किसे मारें ? इस भ्रम में पड़े थे। दोनों में से बालि कौन है ? किसे मारूँ ? अगर बिना निश्चित किये हुए बाण छोड़ा और भूलवश सुग्रीव को लग गया और उसकी मृत्यु हो गई तो मैं विश्वासघाती कहलाऊँगा। मेरी शपथ झूठी हो जाएगी। राम ने शरणागत का ही वध कर दिया ऐसा कहकर निंदा होगी और पूर्वज मेरे ऊपर क्रोधित होंगे। विशेष रूप से हरिश्चन्द्र मेरे ऊपर क्रोधित होंगे। शिवि, भगीरथ पृथु राजा और काकुत्स्थ, दिलीप आदि नृपश्रेष्ठ सभी क्रोधित होंगे, रुक्मांगद, धर्मांगद, सूर्यवंश के सभी वीर व ज्ञानी मुझसे क्षुब्ध होंगे; कहेंगे "राम ने धर्म के विरुद्ध कार्य किया। शरणागत पर वज्राघात कर व्यर्थ ही रामचन्द्र स्वयं को श्रेष्ठ समझते हुए घूम रहा है।" इस प्रकार सर्वत्र निंदा होगी, ये विचार कर श्रीराम ने तीर चलाया ही नहीं। उतने में बालि ने एक अलग ही युक्ति प्रयुक्त की. वीरता, धैर्य और पराक्रम में दोनों समान बलशाली हैं, यह पहचान कर और सुग्रीव मात्र उसके बल से वश में आने वाला नहीं है, यह देखकर प्रत्यक्ष युद्ध का अनुभव ध्यान में रखकर बालि ने अपनी विजय प्रदान करने वाली वरदमाला दिखाई। यह युद्ध अनेक वर्षों तक चलने पर भी किसी को श्रम अथवा खेद नहीं होगा, ऐसा विचार कर बालि ने माला का उपयोग किया। उस वरद माला के दर्शन होते ही सुग्रीव की शक्ति क्षीण हो गई। उसको चक्कर आ गया लेकिन उसने अपने आपको सँभाला और वह ऋष्यमूक पर जा गिरा।

श्रीराम को अपयश और उसका स्पष्टीकरण– सुग्रीव के ऋष्यमूक पर गिरने के कारण बालि को उसका वध करना सम्भव नहीं हुआ। अपनी विजय की गर्जना करते हुए बालि बोला: "सुग्रीव, व्यर्थ ही तुमने राम की सहायता ली। राम के बल पर मुझसे युद्ध करने के लिए आये। युद्ध में विफल हो गए। अब व्यर्थ ही क्यों तड़प रहे हो। मुझसे संग्राम करने हेतु राम भी सामने नहीं आ सकते। अतः सुग्रीव, स्त्री और राज्य का भ्रम छोड़ दो। व्यर्थ हो श्रम मत करो। सुग्रीव ऋक्षराज की शपथ मैं तुम्हें मारूँगा नहीं, तुम्हें जीवनदान देता हूँ।" ऐसी गर्जना करते हुए बालि किष्किंधा वापस लौट गया। वह विजय का जय-जयकार करते हुए नगरी में गया। इधर सुग्रीव ऋष्यमूक पर दु:खी मन से विलाप करता रहा। वह मूर्च्छित हो गया। उसको मूर्च्छित हुआ देखकर वानर हाहाकार करने लगे और बालि के भय से ऋष्यमूक पर्वत पर भागे। बालि द्वारा दिये गए घावों से जर्जर होकर रक्त से रंजित सुग्रीव दुःख में विलाप कर रहा था। राम सहायक तो नहीं हो हैं और बालि के वध का उपक्रम श्रीराम ने ही अपना पराक्रम व तैयारी दिखाकर किया तथा युद्ध करने के लिए बाध्य किया परन्तु बालि अजेय सिद्ध हुआ। सुग्रीव के मन में राम विरोधी विचार निर्मित हो गया। बालि का वध करने के लिए श्रीराम के संबल को निश्चित मानकर बिना किसी शंका के उस बालि जैसे बलवान् के साथ भीषण युद्ध किया परन्तु राम ने भी मेरे सामर्थ्य की सीमा देखने में समय व्यतीत किया। अन्त में मैं घायल होकर गिर पड़ा। बालि ने मुझे जर्जर कर दिया फिर भी राम की सहायता प्राप्त नहीं हुई। सौभाग्य से ऋष्यमूक में आ गया अन्यथा प्राण ही चले जाते। ऋष्यमूक के बाहर गया तो बालि क्षण मात्र में वध कर देगा। श्रीराम सहायक होंगे यह विचार कर युद्ध किया और दुःखी हुआ। श्रीराम का सहायक बल रण में विफल हो गया। उनकी कृपा न मिलने से पीड़ित हुआ। श्रीराम स्वयं की ही पत्नी खो बैठे हैं, वे मेरी क्या सहायता करेंगे। श्रीराम के व्यर्थ के वचन मुझे तत्त्वतः सत्य जान पड़े। श्रीराम सत्यवान और सर्वज्ञ हैं, सर्वस्व त्याग कर के वन में आये हैं लेकिन वे भी मेरी रक्षा के विषय में झूठी प्रतिज्ञा करने वाले निकले। सुग्रीव दुःखपूर्वक यह कह रहा था तभी लक्ष्मण और हनुमान सहित श्रीराम वहाँ आये, उस समय सुग्रीव श्रीराम को सम्बोधित कर मन के विचार प्रकट करने लगा।

"श्रीराम ने स्वय कहा था कि 'बालि को युद्ध के लिए बुलाओ उसके दिखते ही तुम्हारे लिए मैं उसका वध करूँगा।"– ऐसा कहकर राम ने हम दोनों का युद्ध करवाया परन्तु प्रत्यक्ष में मेरी मृत्यु समीप आने पर भी सहायता नहीं की। अब यहाँ आकर कौन सा कार्य सिद्ध करेंगे बालि विजयी होकर अपनी नगरी में लौट गया। बालि द्वारा अत्यन्त कुशलतापूर्वक युद्ध करने पर भी मैं अणुमात्र भी विचलित नहीं हुआ। परन्तु उसके द्वारा वरदमाला दिखाई जाने पर मैं मूर्च्छित हो गया, भाग्य से ऋष्यमूक पर गिरने के कारण बच गया अन्यथा बालि ने निश्चित ही मेरा वध कर दिया होता। तुमने सहायता तो की ही नहीं बल्कि मुझे दुःख ही प्रदान किया। मैं मूर्च्छित हुआ तब बालि का सामना न कर मुझे अति दुःख दिया हे श्रीराम, तुम्हारी सत्यवादी रूप में तीनों लोकों में ख्याति है परन्तु दुःख देने से तुम्हारी कीर्ति झूठी सिद्ध हुई।" सुग्रीव को अत्यन्त दुःखी देखकर श्रीराम व्याकुल हो गए। सुग्रीव का दुःख और आक्रोश सुनकर कृपालु राम उसे सान्त्वना देने के लिए स्पष्टीकरण देने लगे।

श्रीराम सुग्रीव से बोले– "हे सुग्रीव, क्रोध त्याग कर शांतिपूर्वक मेरी बातें सुनो। तुम्हारी सहायता करने के पीछे जो चमत्कार है, वह समझो। धनुष पर बाण लगाकर मैं बालि का वध करने के लिए

तैयार था परन्तु तुम दोनों भाई बिलकुल समान दिख रहे थे। वस्त्र, अलंकार, रूप शरीर इतना समान था कि मैं बालि को पहचान ही नहीं पा रहा था, इसीलिए मैंने बाण नहीं चलाया। समझो, अगर बिना पहचाने मैंने बाण चला दिया होता और वह तुम्हें लग गया होता तो 'राम ने शरणागत को मार दिया' ऐसी तीनों लोकों में मेरी निंदा होती। अगर अचानक तुम्हें बाण लग गया होता तो फिर मैंने भी अपने प्राण त्याग दिये होते। यह सोचकर मैंने बाण नहीं चलाया। इसके अतिरिक्त तुम्हारा पक्ष लेकर अचानक बालि से युद्ध करने में उस वरदमाला का सामना करने की बाधा थी ही। जो भी युद्ध करने के लिए उसके सामने आयेगा, वह विमुख हो जाएगा, ऐसी वरदमाला के समक्ष आकर मुझे विमुख नहीं होना था। यह भी एक प्रतिबंध लगाने वाला कारण था। तुम्हारी सहायता करता तो तुम दोनों बंधु एक जैसे दिख रहे थे, इसीलिए मैंने बाण नहीं चलाया। हे सुग्रीव, यह बिलकुल सत्य है। तुम व्यर्थ में दु:ख क्यों कर रहे हो। यह निश्चित ही तुम्हारा प्रारब्ध भोग ही था। उसी प्रकार बालि का कुछ जीवन शेष होने के कारण यह सब घटित हुआ होगा। बाणों के वार से उस बालि का प्राण लेने के लिए मैं तुरंत धनुष लेता हूँ। उसे मारने के लिए मुझे एक क्षण भी नहीं लगेगा। तुम युद्ध का आरम्भ करने के लिए बालि का आह्वान करो।"

सुग्रीव बोला "मुझमें अब शक्ति ही नहीं है फिर मैं बालि को युद्ध के लिए कैसे बुलाऊँ ?" इस पर श्रीराम ने सुग्रीव को आलिंगन में लेकर अमृतमय हाथों से उसे स्पर्श किया। आलिंगन के बहाने और हाथों के स्पर्श से श्रीराम ने सुग्रीव को सम्पूर्ण शक्ति प्रदान की, जिससे पहले की अपेक्षा सौगुना अधिक शक्ति सुग्रीव को प्राप्त हुई। सुग्रीव द्वारा सूक्ष्मतापूर्वक देखने पर भी उसे शरीर में कहीं घाव या निशान नहीं दिखाई दिया। उसके अन्दर बालि से युद्ध करने के लिए पूर्ण पराक्रम निर्मित हुआ। फिर सुग्रीव उठा और प्रतापी वीर के सदृश श्रीराम से बोला "आज मैं युद्ध में बालि को धराशायी कर दूँगा।" इतना कहकर तत्काल सुग्रीव तेजी से बालि से युद्ध करने के लिए आकाश में उड़ा। श्रीराम ने उसे वापस बुलाकर कहा– " तुम दोनों में समानता है अत: हे सुग्रीव, तुम अपने गले में गजकमल माला पहनो"। श्रीराम ने सुग्रीव के गले में स्वयं गजकमल माला पहनायी। इस प्रकार युद्ध के समय सुग्रीव को पहचानने का उपाय ढूँढ़ लिया। गजांत लक्ष्मी अर्थात् शक्ति का आगमन हो इसलिए गजकमल माला सुग्रीव को पहनायी और उसे रणभूमि में पहचानने का चिह्न बना लिया। इसी कारण बालि का वध सम्भव हो सका। श्रीराम की आज्ञा में इतना सामर्थ्य था कि वह माला युद्ध के आघात से भी न टूटती। लक्ष्मण ने कुशलतापूर्वक उस माला के कमलों की आठ पंखुड़ियों पर अन्तर्बाह्य श्रीराम नामावलियाँ लिख दीं, जिससे सुग्रीव महापराक्रमी हो गया। बिना धागे के कमलों को निर्गुण रूप में गूँथकर माला तैयार करने के कारण सुग्रीव द्वारा उसे धारण करने पर वह कलिकाल के वश में भी न रहा। सुग्रीव द्वारा कंठ में वह माला पहनने से वानर-समुदाय हर्षित हुआ। नल, नील, ताल, तरल और सम्पूर्ण सेना आनंदित हुई। इतना होने के पश्चात् श्रीराम, सौमित्र, हनुमान और सुग्रीव वानरों सहित किष्किंधा तक आये। सुग्रीव ने आक्रोशपूर्ण गर्जना की। वह सुनकर बालि क्रुद्ध हुआ तथा महाभयंकर युद्ध करने के लिए आया। दोनों भाई क्रुद्ध होकर अद्भुत युद्ध करने लगे। अब श्रीराम बालि का निश्चित ही वध करेंगे ऐसा सुग्रीव सहित सबको दृढ़ विश्वास था।

-ॐ-ॐ-ॐ-ॐ-

अध्याय ६

[बालि का वध]

सुग्रीव की गर्जना सुनकर बालि क्रोधित हो उठा। उस वीर वानर की क्रोधवश अग्नि के समान लाल हुई आँखें बाल सूर्य के समान दिखाई दे रही थीं। बालि के मन में विचार आया कि 'अभी युद्ध में जर्जर कर सुग्रीव को मूर्च्छित कर धराशायी किया था और तुरन्त यह गरजते हुए कैसे आ गया ? मेरे दिये गए घावों के कारण महीनों ही नहीं वरन् सालों तक कराहने वाला सुग्रीव इस प्रकार तुरन्त उत्साहपूर्वक गर्जना करते हुए कैसे आ गया। अभी यह विचार व्यर्थ है। वह मेरा सच्चा शत्रु है, उस महाशूर ने मुझे रण में बुलाया है अतः तुरन्त मुझे युद्ध के लिए प्रस्थान करना चाहिए।'

तारा की विनती और बालि का प्रत्युत्तर– बालि युद्ध के लिए निकला तब तारा ने उसके चरण पकड़ते हुए कहा– "मैं आपको अपने हित में कुछ कह रही हूँ, उसे विवेकपूर्वक सुनिये। आपके घावों की पीड़ा से कराहता हुआ सुग्रीव तुरन्त आकर युद्ध के लिए आमन्त्रित कर रहा है, यह मात्र सुग्रीव की स्वयं की शक्ति के कारण नहीं है, वरन् उसने रघुपति से सहायता ली है; उन्हीं के बल पर यह युद्ध के लिए फिर से गर्जना करते हुए आया है। आपका वध करने के लिए सुग्रीव को श्रीराम की सहायता प्राप्त है। आपको इसका गूढ़ार्थ समझ में न आने के कारण बलोन्मत्त होकर युद्ध के लिए शीघ्रता से प्रस्थान कर रहे हैं। आपने सुरवरों को जीता है। दैत्य दानवों का मर्दन किया है। रावण को काँख में दबोचा है परन्तु श्रीराम के समक्ष आपका कुछ चलने वाला नहीं है। श्रीराम प्रतापवान् तेजराशि एवं सूर्यवंश का पूर्ण अवतार हैं। उनके प्रताप के विषय में बता रही हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनें। जो ताड़का तीनों लोकों के लिए बधन उत्पन्न करती थी, उसका राम ने वध कर दिया। सुबाहु का मस्तक काट डाला, मारीच को मार दिया, चौदह हज़ार राक्षसों एवं खर-दूषण का वध कर दिया। यह सब उन्होंने बाणों से बंध कर किया। एक ही बाण से विराध का प्राण हर लिया। काल के सदृश प्रतापी कबंध को राम ने मार दिया। जिस धनुष ने रावण को संत्रस्त कर दिया, उस धनुष को श्रीराम ने सहज ही तोड़ दिया। जानकी के साथ विवाह किया, परशुराम को परास्त किया। श्रीराम के बाणों के भय से ही रावण भिक्षुक बना। रावण ने मारीच की बलि देकर सीता का चोरी से हरण किया। श्रीराम आते ही एक बाण से प्राण हर लेंगे, इस भय से फिर रावण लंका में भाग गया। ऐसे भीषण पराक्रमी राम के समक्ष आप फलमूल खाने वाले वानर युद्ध के लिए जा रहे हैं। एक ही बाण से राम आपका प्राण हर लेंगे। मेरे इन वचनों को सत्य मानकर आप युद्ध के लिए न जायें। श्रीराम का विरोध न कर उनसे मैत्री सम्बन्ध स्थापित करें। मेरा कहा मानकर अपना युद्ध से सम्बन्धित क्रोध त्याग दीजिए।"

बालि ने तारा के वचन सुनकर प्रत्युत्तर देते हुए कहा– "तुमने जो बताया, वह सर्वथा योग्य और सत्य है। मेरे मन में श्रीराम के प्रति अणुमात्र भी वैर भाव नहीं है जो राम का विरोध करेंगे, श्रीराम उनका वध करेंगे। यह शुद्ध ज्ञान मुझे प्राप्त हो गया है, पर मेरी कथा क्या है वह ध्यानपूर्वक सुनो। जब ताड़का लोगों को त्रस्त करती थी, सुबाहु यज्ञ में बाधा डालता था, विराध ने सीता का हरण* किया था कबंध ने दोनों को पकड़ लिया था। शूर्पणखा का पक्ष लेकर सीता का हरण करने के लिए खर और

* अरण्यकांड के विराध-वन प्रसंग में इस घटना का उल्लेख है।

त्रिशिरा आये थे। इसीलिए श्रीराम ने उन सबका वध किया परन्तु मेरा उनसे कोई भी वैर नहीं है। मारीच को उन्होंने मारा क्योंकि वह कपटी था। रावण ने सीता का हरण कर श्रीराम से वैर किया। इस प्रकार के विरोधपूर्ण लक्षण मुझमें नहीं हैं। मैं तो निरपराध हूँ, अतः श्रीराम मेरा किसलिए वध करेंगे ? सुग्रीव से युद्ध करने पर श्रीराम से शत्रुता क्यों होगी ?" इस पर तारा बोली– "सुग्रीव, श्रीराम की शरण में गया है। श्रीराम शरणागतों की रक्षा करने वाले हैं। अतः शरणागत का विरोध करने वाला श्रीराम का भी शत्रु होता है। ऐसे लोगों का श्रीराम स्वयं वध करते हैं, यह आप अवश्य ध्यान में रखें। हे वानरराज, शरणागत का वध श्रीराम नहीं होने देंगे। इसी कारण श्रीराम से वैर आपके आत्मघात का प्रमुख कारण होगा। सुग्रीव से वैर समाप्त होकर श्रीराम से स्नेह सम्बन्ध बने। मेरी इन बातों को ध्यान में रखकर आप स्वयं जो उचित हो, वह करें।"

तारा का उपदेश; बालि द्वारा अपने प्रताप की प्रशंसा– तारा ने बालि के हित को ध्यान में रखते हुए आगे कहा– "मैं आपको फिर वही कह रही हूँ क्योंकि यह आपके हित में है। श्रीराम से मैत्री की तो तीनों लोकों में पवित्र हो जाएँगे राम से मैत्री किस प्रकार हो अगर यह प्रश्न आपके मन में आया होगा तो मेरे कहे अनुसार करने पर वह क्षण में साध्य हो जाएगा।" इस पर बालि ने कहा "श्रीरघुनाथ मेरे आप्त हों, इसके लिए जो उपाय तुम्हारे मन में है, कहो।" प्रसन्न होकर पूर्ण हितकारी वचन तारा बोलने लगी– "आप दोनों भाइयों का परस्पर विरोध समाप्त हो गया तो श्रीराम से मैत्री स्थापित हो सकेगी। आप युवराज-पद सुग्रीव को दे दें क्योंकि उसमें आपकी ही भलाई है। सुग्रीव को युवराज पद मिलने से श्रीरघुनाथ सन्तुष्ट हो जाएँगे। उससे तुम दोनों में एकता और एकात्म प्रेम निर्माण होगा. जिस प्रकार आपको पुत्र अंगद प्रिय है उसी प्रकार सुग्रीव कनिष्ठ बन्धु है। उससे अपना विरोध त्याग देंगे तो श्रीराम से आपके मैत्री सम्बन्ध स्थापित होंगे।" ऐसा कहकर तारा ने बालि के चरण पकड़कर विनती की– "श्रीराम से मैत्री होने में ही सुख है। अतः हे कपिराज, आप इतना तुरन्त करें।"

तारा पुनः बोली अंगद को रत्नालंकार धन वस्त्र इत्यादि लेकर श्रीराम के पास भेजे तथा श्रीराम की शरण जाकर स्वयं को बचायें। श्रीराम की शरण जाने से आपको जन्म मृत्यु के चक्र से मुक्ति मिलेगी। दोनों भाइयों का समझौता होने से कल्याण होगा। इसके विपरीत अगर श्रीराम से कपट करेंगे तो किष्किंधा त्याग कर पलायन करना पड़ेगा क्योंकि युद्ध में श्रीराम बलशाली हैं। श्रीराम के समक्ष जाने का धैर्य स्वयं सुरासुरों को भी नहीं हो पाता। आप तो फलमूल खाने वाले साधारण वानर हैं, आप उनके समक्ष किस प्रकार टिक सकेंगे ? अतः श्रीराम से मैत्री करें अथवा यहाँ से पलायन कर जायें उनसे युद्ध करेंगे तो मृत्यु ही प्राप्त होगी। श्रीराम के बाण मेरु मंदारादि पर्वतों को भी विदीर्ण कर देते हैं, वहाँ आप कहाँ टिक पायेंगे। व्यर्थ ही हठपूर्वक प्राण न दें। मेरा कहा न मान कर मृत्यु का ही वरण करेंगे। अगर श्रीराम का विरोध करेंगे तो आपके प्राण बच न सकेंगे।"

तारा के वचन सुनकर बालि क्रुद्ध हुआ। वह बोला– "तुम स्त्रियाँ भीरु स्वभाव की होती हो दूसरों का शौर्य देखकर काँपने लगती हो। सुग्रीव को युवराज पद मैं कदापि नहीं दूँगा। उसकी राम ने सहायता की तो भी उसे राज्य नहीं दूँगा। उस राम का बल देखकर इस वानर को निर्बल कहती हो। प्रबल भय के कारण मुझे किष्किंधा छोड़कर भागने को कहती हो। तारा, मैं अपनी शक्ति के विषय में थोड़ा बताता हूँ, वह सुना। श्रीरघुपति युद्ध करने के लिए आ जायँ तो भी मेरे मन में किसी प्रकार की शंका नहीं है। अपने बाहुबल से रघुनाथ ने विंध्य पर्वत उखाड़ दिया, समुद्र वलयांकित पृथ्वी एक बाण

से भस्म कर दी। चन्द्र, ताराओं सहित गंभीर गगन और सप्त सागर एक बाण से सोख लिये तो भी इस वानरवीर के मन में शंका उत्पन्न नहीं होगी। ऐसा पुरुषार्थ मेरी आँखों के समक्ष रघुनाथ ने किया तब भी मुझे भय-बाधा बाधित नहीं करेगी। इसके विपरीत संग्राम में ही उल्लास का निर्माण होगा जो रण भूमि में मृत्यु का भय रखता है, उसे न तो यश की प्राप्ति होती है और न ही पुरुषार्थ की। मैं वैसा बालि नहीं हूँ, रण-भूमि में श्रीराम को सुखी करूँगा। सुग्रीव बिचारा दास है, श्रीराम रणवीर योद्धा है उस राम को मैं वानर होते हुए भी टक्कर दूँगा। मेरा भयंकर युद्ध तुम देखना। मेरा पराक्रम पर्याप्त है ऐसा कौन योद्धा है, जो मुझसे युद्ध करेगा ? मेरे बाहुओं में स्फुरण हो रहा है। श्रीराम अपनी प्रतिज्ञा के कारण सामने आया तो पीठ न फेर कर युद्ध करूँगा।" ऐसा तारा को कहकर बालि युद्ध के लिए आया।

बालि सुग्रीव युद्ध; राम-बालि संवाद– सुग्रीव और बालि, दृष्टिभेंट होते ही दोनों मुट्ठियाँ भींचकर क्रोधपूर्वक तुरन्त एक दूसरे से भिड़ गए। सिर पर मुट्ठियों से वार करते हुए, दौड़ कर एक दूसरे पर पूँछ से आघात करते हुए और एक दूसरे को थप्पड़ मारते हुए ज़मीन पर गिराकर वे हठी महावीर युद्ध कर रहे थे। सोने का मुकुट और गले में सोने की माला पहने हुए बालि शोभित हो रहा था तो सुग्रीव के गले में कमलमाला शोभायमान थी। उन वीरों का युद्ध चल रहा था। एक दूसरे पर निष्ठुरतापूर्वक मुट्ठियों से प्रहार किये जा रहे थे। किसी पर्वत को गेरू से रंगने के सदृश वे दोनों रक्तरंजित वीर दिखाई दे रहे थे। वसंत ऋतु में टेसू पुष्पित होता है, उसी प्रकार रक्तरंजित होकर वे वीर रण भूमि में दृष्टिगत हो रहे थे। दोनों ही क्रोध से भरे हुए एवं बलोन्मत्त थे। सुग्रीव को देखकर बालि ने वज्रमुष्टि से प्रहार किया तब सुग्रीव को मूर्च्छा आने लगी परन्तु धैर्यपूर्वक उठकर उसने क्रोध से शालवृक्ष से बालि पर प्रहार कर दिया। उस घाव से महाबली बालि ज़मीन पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ा महावीर बालि के गिरते ही वानर हाहाकार करने लगे। उस गर्जना को सुनकर बालि शीघ्र उठ खड़ा हुआ और भुजाएँ थपथपाकर गर्जना करने लगा। क्रोधाग्नि प्रज्वलित होने के कारण सुग्रीव भी रण में भीषण युद्ध के लिए आगे आया। दोनों वीर एक समान दाँवपेंच दिखाते हुए क्षण में भूमि पर, क्षण में आकाश में उड़ते हुए अपना युद्ध कौशल दिखा रहे थे। दोनों अत्यन्त समर्थ बलवान् एक दूसरे के वश में नहीं हो रहे थे किसी का भी सामर्थ्य विजयी नहीं हो पा रहा था। वरदमाला के कारण बालि बलवान् हो गया था। समान बल से दोनों में युद्ध हो रहा था। भीषण युद्ध के श्रम से दोनों को पसीना आने के कारण क्षीण हुआ देखकर राम ने बाण सुसज्जित किया। उतने में बालि ने सुग्रीव को ज़मीन पर पटक दिया। यह देखकर श्रीराम को लगा कि अब अगर बालि को नहीं मारा जायगा तो पहले युद्ध के समान घटित होगा।

सुग्रीव पर आक्रमण कर उसे मारने के लिए बालि आकाश में उड़ा, उसी समय श्रीराम ने उस पर बाण चलाया सपिच्छ बाण के लगते ही बालि धराशायी हो गया। जिस प्रकार सर्प अपने बिल मे प्रवेश करता है, उसी प्रकार श्रीराम का बाण बालि के हृदय-कमल में प्रवेश कर गया और अन्त समय आने के कारण वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। जिस प्रकार ईश्वर गुप्त रहकर निमिष-मात्र में संहार करता है, उसी प्रकार श्रीरघुनाथ के अकाट्य बाणों का वार बालि पर पड़ा। जिसके ज्ञान के सम्बन्ध में तर्क को कोई सम्भावना नहीं रहती है, ऐसे सद्गुरु के वचन सुनकर शिष्य को जैसी सन्तुष्टि मिलती है उसी प्रकार श्रीराम के बाण से बालि सुख सम्पन्न हुआ। जिस प्रकार दहकती हुई अग्नि सती को स्पर्श कर सुख प्रदान करती है, उसी प्रकार राम के बाण से बालि सुखी हुआ। जिस प्रकार शुद्ध सात्त्विक ईख (गन्ने) के ऊपर से कठोर होने पर भी अन्दर मिठास होती है, उसी प्रकार राम का कठोर बाण दोनों

के लिए सुखद सिद्ध हुआ। सुग्रीव को अलौकिक सुख तथा बालि को उससे भी अधिक सुख की प्राप्ति हुई। इस प्रकार एक बाण से श्रीराम ने दोनों को सुख प्रदान किया। श्रीराम के बाण की महिमा ऐसी थी कि भयकंपित सुग्रीव सुखी हुआ। श्रीराम कृपालु और चिद्स्वरूप थे। श्रीराम के बाण की नोक के चुभते ही दु:ख होने पर भी अन्त में वही परम सुखदाता सिद्ध होता है, यह बालि के मुख से ही श्रोता श्रवण करें।

बालि श्रीराम से बोला "तुमने अधर्मपूर्ण कृत्य किया है। मैं जब किसी अन्य व्यक्ति से युद्ध कर रहा था, उस समय तुमने गुप्त रूप से, मेरे तुम्हारे समक्ष न आने पर भी मेरा घात किया। यह तुम्हारा कैसा पुरुषार्थ है ? एकाएक मुझे न बुलाते हुए मेरी समझ में आने से पहले तुमने घात किया, यह तुम्हारा अधर्म देखकर मेरे मन को अत्यन्त दु:ख हो रहा है। मुझे राज्य जाने का दु:ख नहीं है तथा तारा का वियोग होने का भी दु:ख नहीं है परन्तु तुम्हारी अधर्मता देखकर मुझे दु:ख हो रहा है। सुहृदयों के दु:ख की मुझे चिन्ता नहीं है। पुत्र अंगद का शोक मुझे बाधित नहीं कर रहा है लेकिन अधर्म देखकर मुझे परम दु:ख हो रहा है किसी की सुप्त अवस्था में, अपनी प्रिय पत्नी के साथ रममाण होने की अवस्था में, किसी के द्वारा ललकारे न जाने पर अथवा किसी का ध्यान न होने पर उसका वध नहीं करना चाहिए। श्रीराम तुम सर्वज्ञ हो, शास्त्रों के ज्ञाता हो फिर भी अधर्म से मेरा घात किया है, चन्द्र से निर्मल, नित्य, निर्दोष ऐसी तुम्हारी ख्याति होने पर अधर्म से घात करने का कलंक तुमने अपने ऊपर लगाया है। वह बेचारा सुग्रीव सीता की खोज में तुम्हारी क्या मदद करेगा। वही अगर तुमने मुझे कहा होता तो मैंने कैसे यश प्राप्त किया होता, यह सुनो।

"हे श्रीराम, रावण तो मेरी काँख में समाने वाला है। उसको गले में बाँधकर पलभर का भी विलम्ब न करते हुए मैं उसे ले आता। तुम मेरा बल जानते नहीं हो। समुद्र के तल से, सात पातालों से, लोक, अलोक, पर्वत कहीं से भी जानकी को ढूँढ़कर क्षण भर में तुम्हारे पास ले आता। प्रात: काल चार समुद्रों का स्नान करने में मुझे क्षण मात्र की अवधि भी नहीं लगती। मेरे बल के समक्ष रावण तुच्छ है, मैं सीता को लाकर तुम्हें देता। मुझे अगर तुमने अपना यह विचार बताया होता तो सीता को, रावण के सम्पूर्ण परिवार सहित लंका को ही यहाँ उखाड़ कर ले आता। सुग्रीव से पक्षपात करते हुए अधर्मपूर्वक मेरा घात कर हे श्रीराम, तुम्हारे माथे पर अपयश ही लगा है। कीर्ति के मस्तक पर अपकीर्ति का कलंक आया। हे रघुपति, इसके बाद अगर तुमने कितना भी यश अर्जित किया फिर भी इस अधर्म से घात करने की तुम्हारी अपकीर्ति तिलमात्र भी कम नहीं होगी। मैं राज्य-हरण अथवा अपने मरण का शोक नहीं करूँगा श्रीराम के चरणों के समीप अधर्म घटित हुआ, इसलिए मेरा मन दु:खी है। सेवक ऐसी कीर्ति अर्जित करे, जिससे संसार स्वामी व सेवक की वंदना करे। सुग्रीव ने श्रीराम को ऐसा गौरवान्वित किया कि उस कीर्तिवान् को अपकीर्ति मिली। हे श्रीराम, सुग्रीव ने तुम्हारे ऊपर कैसा उपकार किया अथवा मैंने कौन सा तुम्हारा अपकार किया, यह विचार न करते हुए तुमने इतनी शीघ्रता से मेरा वध क्यों किया ? समक्ष आकर युद्ध में मुझे मारा होता तो मुझे मरने का आनन्द होता। तुम्हें त्रिलोक में कीर्ति मिली होती। इससे तुम चूक गए। अधर्म से मेरा वध करने के कारण तुमने मेरा तो उद्धार कर दिया अत: मुझे यश की प्राप्ति हुई परन्तु तुम्हें अपयश मिला। यह कैसी विचित्र कीर्ति तुमने अर्जित की। श्रीराम के हाथों मृत्यु प्राप्त होने के कारण मैं तीनों लोकों में पवित्र कहलाऊँगा। परन्तु हे श्रीराम, तुमने स्वयं को कलंक लगा लिया क्योंकि तुमने अधर्मपूर्वक बाण चलाया है" बालि के निंदा करने वाले वचन सुनकर श्रीराम दु:खी नहीं हुए। इसके विपरीत उन्होंने गहन और हितकारी धर्म-वचन बालि को सुनाये।

श्रीराम बोले– "दूसरों को धर्म सिखाने वाले तथा स्वयं अधर्मपूर्ण आचरण करने वाले मूर्खों के वचनों को सत्य मानने वाला महामूर्ख होता है। मेरे बाण मारने के सन्दर्भ में स्वधर्म की बातें करते हो परन्तु अपने अधर्मपूर्ण आचरणों के प्रति आत्म-दृष्टि से क्यों नहीं देखते ? कन्या, भगिनी, भाभी, ये सब कन्या के सदृश ही होती हैं। तुमने भाई की पत्नी का हरण कर उसका उपभोग किया। तारा सदृश पतिव्रता एवं सुन्दर तुम्हारी पत्नी होते हुए भी तुमने भाई की पत्नी के साथ अधर्मपूर्वक सम्बन्ध रखा, यह तुम्हारी अशुद्धता क्या तुम्हें शुद्ध प्रतीत हुई ? जिस प्रकार स्फटिक मूलरूप से निर्मल होता है परन्तु उसका काजल से सम्पर्क आने पर उसकी शुद्धता समाप्त होकर वह काला दिखाई देने लगता है; परन्तु काजल के कारण काला दिखाई देने पर भी वह कालेपन से अलग ही होता है उसी प्रकार पाप पुण्य से राम अलग ही हैं क्योंकि वह सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। नभ में तनिक मात्र भी नीलापन नहीं है। हमारी आँखों की पुतली नीली होने के कारण नभ नीला दिखाई देता है। अर्थात् आँखों के रंग नभ में दिखाई देते हैं। मैं राम, नित्य शुद्ध आत्मास्वरूप होते हुए भी तुम मुझे अधर्मकर्मी कहते हो। तुम्हारे पाप-भ्रम का छेदन करने के लिए वह अगाध महिमा से युक्त बाण है। तुम्हारे अन्दर दोष व पाप निहित होने के कारण मैं तुम्हारे सम्मुख कैसे आ सकता हूँ ? तुम्हारे महादोष नष्ट करने के लिए ही मैंने अतर्क्य बाण तुम्हारे ऊपर चलाया है।"

"मैं विश्वात्मा, विश्वतोन्मुख साधु सन्तों के सतत् सन्मुख रहता हूँ परन्तु तुम पापात्मा होने के कारण हमेशा विमुख रहते हो। इसीलिए बाण से तुम्हें दोष-रहित किया. अतर्क्य रहकर बाण से तुम्हारे पापों का छेदन किया। कृपापूर्वक तुम्हें तारने के लिए तुम्हारे समक्ष खड़ा हूँ। तुम्हें तारने का यही कारण है कि तुम सुग्रीव के बन्धु हो। तुम्हें नरकवास से बचाने के लिए बाण से तुम्हारे पापों का निर्दलन किया। मेरे शरणागत के भाई को नरकवास होना मेरे लिए असहनीय था, इसीलिए मैंने बाण से तुम्हें शुद्ध किया। विकल्प वृत्ति त्यागकर जो जो मेरे भक्तों के सान्निध्य में रहेगा, मैं उनका उद्धार करता हूँ. हे बालि, यह तुम निश्चित समझो। भयंकर पाप के भागी होने के कारण यम ने तुम्हें पूर्ण दंड दिया होता परन्तु उस दंड से बचाने के लिए मैंने तुम्हें बाण से मारा। जो महापापी होता है, उसे जप करना पड़ता है।" इस प्रकार श्रीराम की कृपा की महिमा से बालि के पाप समाप्त हुए और उसका पश्चाताप पूर्ण हुआ।

तत्पश्चात् बालि श्रीराम से बोला "राज्यमद से चूर होकर मैं पूर्णतः पाप ही करता रहा तुमने बाण चलाकर अकल्पित रूप से पाप का नाश किया। तुम्हारे बाण से मेरे त्रिविध अभिमान, कुलाभिमान, कर्माभिमान और शौर्य के गर्वाभिमान का छेदन हुआ– यह तुम्हारी ही कृपा है। तुम्हारे बाण की महिमा से मेरे सकल्प, पाप-पुण्य इत्यादि का छेदन होकर मैं नित्य निष्पाप हुआ। मुझे मेरे भीषण पराक्रम का गर्व था इसी कारण समक्ष युद्ध न कर मेरे जैसे दुश्चित्त को मारने को अकर्म तथा अधर्म मानकर मैंने श्रीराम को दोष दिया। मैं पूरी तरह से महापापी हूँ। श्रीराम जो परब्रह्म परमात्मा हैं, उनका मर्म न जानकर मैंने उन्हें अधर्मी कहा। श्रीराम स्वयं धर्मकर्म से परे हैं, यह मुख्यार्थ न जानकर मैंने प्रवृत्तिमूलक ज्ञान से उसे अधर्मरत माना। हे राम, तुम्हारा बाण हृदय में जाने से वह पूर्णतयः शुद्ध हो गया। अब अनुभव हुआ कि श्रीरघुनाथ ही परब्रह्म हैं। सीता हरण, राम का शोक- यह सर्व मिथ्या है। वह मात्र दीनों का उद्धार करने के लिए ही वनवासी रूप में वन में विचरण कर रहे हैं। हे रघुनन्दन, तुमने वन में आकर तृण-पाषाणों का उद्धार किया। दीनजनों को पवित्र किया। हे राम, तुम जगत् के उद्धार कर्ता हो। ईश्वर माया पर नियन्त्रण करता है, तुम उससे भी परे हो। तुम्हारे स्वरूप की स्थिति श्रुति, शास्त्रों से भी परे

है। हे रघुनाथ, कर्म व ज्ञान की योग्यता से अवगत होने के कारण अधर्म से तुमने मेरा घात किया परन्तु यह मैं समझ न सका अत: मुझे क्षमा करो। पानी के समीप नमक आने से वह पानी में ही घुल मिल जाता है परन्तु मोती कठोर होने के कारण पानी में घुलता नहीं है। वे मोती मूल्यवान सिद्ध होकर स्त्री के होठों के समीप फाँसे में फँस जाते हैं। मोती के नाक के समीप आते ही उस कठोर मोती में अभिमान समाविष्ट हो जाता है। यह कर्म, धर्म, अभिमान, ज्ञानी होने का ज्ञानाभिमान भस्म हो जाय, उस अभिमान के बन्धन के कारण ही मैंने तुम्हारी निंदा की। दुष्टतापूर्वक तुम्हें बुरा-भला कहा, तुम्हारी भर्त्सना की। हे कृपालु कृपामूर्ति श्रीराम, मुझे क्षमा करो।" यह कहकर वालि ने राम को साष्टांग दंडवत् प्रणाम करते हुए उनके चरणों पर मस्तक रखा और क्षमा करने की विनती की।

वालि की राम से विनती; राम का आश्वासन– "हे श्रीराम, मेरे मन में जो है, वह मैं तुम्हें बताता हूँ। मेरे मन में अंगद के विषय में जो विचार हैं, वह सुनें। मेरा पुत्र अंगद भी मेरे समान ही बलवान् है। मेरे इस प्रिय पुत्र को युद्ध में रुचि है। उस रुचि को तुम पूर्ण करना। यह सुवर्णाभूषण पहने हुए मेरा पुत्र युद्ध में तुम्हारी सहायता करेगा, इसलिए उसे तुम्हारे चरणों में समर्पित करता हूँ। हे कृपासागर, उस पर कृपा करना।" तत्पश्चात् अंगद को राम के चरणों पर अर्पित कर वालि सावधान हुआ। श्रीराम का मुख देखकर उल्लसित होकर बोला- "तुम्हारे शाश्वत् चरण सच्चिदानन्द घन हैं, तुम्हें प्राप्त करने के लिए मैं प्राणों का त्याग करता हूँ "- यह कहकर वालि ने नेत्र राम के चरणों पर स्थिर कर दिए। वालि का प्रेम देखकर रघुनन्दन कृपापूर्ण दृष्टि से भर उठे। स्वयं श्रीराम वालि से बोले- "वालि, मैं तुम्हारे शरीर का बाण निकाल कर अपने सामर्थ्य से तुम्हारे प्राण बचाऊँगा। फिर सम्पूर्ण सुखों का उपभोग करोगे। सीता को ढूँढ़ने में तुम अवश्य मेरे सहायक होगे। तुम तारा, अंगद एवं राज्य इत्यादि का सुख भोगो। मृत्यु की इच्छा मत करो। 'रावण को गले से बाँधकर लाऊँगा, सीता को मुक्त कराकर लाऊँगा' इत्यादि तुम्हारे वचन सत्य कर तुम मेरी सहायता करो।"

श्रीराम के वचन सुनकर वालि के चेहरे पर हास्य उभर आया। वह राम से बोला- "मेरा पहले विद्यमान बल का गर्व तुम्हारे समक्ष शेष ही नहीं बचा है, सूर्य के समक्ष जिस प्रकार जुगनू की स्थिति होती है, उसी प्रकार राम को देखकर मेरा सम्पूर्ण बल समाप्त हो गया क्योंकि तुम्हारे पास अद्भुत तेज है। तुम्हारे शौर्य के समक्ष रावण दस मुख वाला कीड़ा है। अत: मेरे सदृश क्षुद्र कीटक तुम्हारी क्या सहायता करेगा ? तुम्हारे अन्दर ही अपार सामर्थ्य निहित है। तुम्हारे बाणों के समक्ष उस दीन हीन रावण की क्या बिसात ? तीनों लोकों का संहार करने का सामर्थ्य भी तुम्हारे पास विद्यमान है। स्त्री और पुत्र के सुख का उपभोग करने के लिए अगर मैं जीवित रहने की इच्छा करूँ तो स्त्री परम दु:ख का कारण है, यह मैंने निश्चित समझ लिया है। तुम्हारी भृकुटि भी अगर क्रोध से वक्र होगी तो अखिल सृष्टि नि:शेष हो जायेगी। अत: वानरों की सहायता की कोई आवश्यकता ही नहीं है। वह कपटी रावण भी क्यों शेष रहेगा ? स्त्री-भोग का परिणाम अपने सगे भाई से वैर ही है। स्वार्थ अत्यन्त घातक होता है, उससे भयंकर क्रोध उत्पन्न होता है अत: वह विषय ही नहीं चाहिए। श्रीराम तुम नित्य विवेकी हो। विषयोपभोगों के कारण दोनों लोकों में क्या कोई सुखी हो पाया है ? विषयोपभोग मूल में ही दु:खदायी है। योग साधना न करते हुए तुम्हारे समक्ष अगर मेरा देहत्याग होगा तो मैं कृतज्ञ हो जाऊँगा। तुम पूर्णत्व को प्राप्त परिपूर्ण ब्रह्म हो। अन्तकाल में अयाचित् ही अगर रामनाम-स्मरण किया तो परमपद की प्राप्ति

होती है। इस पूर्णता के पश्चात् जन्म मरण का अस्तित्व ही नहीं रहता है। हे रघुनाथ, आज के सदृश मृत्यु मुझे आगे प्राप्त नहीं होगी। मेरे हित का विचार कर मेरा कहा मान लें।"

बालि राम की स्तुति करते हुए बोला "राम नाम के उद्‌घोष से समस्त दोष भस्म हो जाते हैं, अन्त में परमपद की प्राप्ति होती है। राम-नाम की यह विशेषता ही है। जिनके नाम की इतनी ख्याति है, उस रघुपति से कृपापूर्वक मेरी भेंट हुई अत: अब मैं जीवित रहना नहीं चाहता। मुझे विषयोपभोग और जन्म-मरण नहीं चाहिए।" इन शब्दों द्वारा अपना मनोगत व्यक्त कर बालि ने भक्तिपूर्वक राम के चरण स्पर्श कर विनती की– "तुम्हारा बाण लगते ही मैं पवित्र हो गया। तुम्हारे कर कमलों का स्पर्श होते ही सुखपूर्वक मृत्यु की इच्छा जागृत हुई है। मैं नित्य मुक्त हो गया हूँ। तुम्हारी कृपा से मुझे अवश्य ही सच्चिदानन्द-पद की प्राप्ति होगी।"

श्रीराम ने बालि के वचन सुनकर उसके हृदय में लगा हुआ बाण अपने हाथों से खींच कर निकाला। फिर राम ने अपने अमृतसदृश हाथों से उसे स्पर्श किया। श्रीराम का हाथ लगते ही बालि देहातीत हो गया। श्रीराम ने बालि को बन्धन एवं मुक्ति से परे कर दिया। श्रीराम द्वारा अपना हाथ बालि के मस्तक पर रखते ही उसके लिए सम्पूर्ण सृष्टि सुखमय हो गई। राम की कृपा से वह परमानन्द में एकाकार हो गया। "मैंने सुग्रीव से वैर लिया परन्तु सुग्रीव मेरा सच्चा सगा भाई है। उसी के कारण मुझे परमानन्द परमसुखपूर्ण श्रीराम की प्राप्ति हुई है। यह विचार करते हुए बालि ने वानर देह का त्याग किया और राम की कृपा से आत्मपद की प्राप्ति की। बालि ने विरोध होते हुए भी राम को अपना बना लिया और राम ने उसका उद्धार किया।

❋❋❋❋

अध्याय ७

[सुग्रीव का राज्याभिषेक]

श्रीराम के बाणों के आघात से बालि को गिरा हुआ देखकर वानरसेना भय एवं संकट से घबराकर तुरन्त भाग खड़ी हुई। बाण से छेद कर बालि को मारा, उसी प्रकार सेना पर बाण चलाकर श्रीराम सबके प्राण ले लेंगे इस भय से वानर भागे। श्रीराम के बाण अत्यन्त भयंकर हैं, उनके वार से त्रिशिरा, खर तथा चौदह हजार राक्षसों का निर्दलन हुआ। श्रीराम किसी को नहीं छोड़ते, जो दिखाई दे उसका वध कर देते हैं– यह सोचकर भयग्रस्त वानर समुदाय किष्किंधा की ओर भागा, थर-थर काँपते हुए वे सभी वानर किष्किंधा आये। उनके द्वारा, श्रीराम द्वारा बालि के वध की सूचना मिलते ही नगरी में हाहाकार मच गया।

तारा का सहगमन का निश्चय; राम को दोष– किष्किंधा के बड़े-बड़े योद्धाओं ने तारा से पुरी की सुरक्षा की, चारों द्वारों को बंद करने की तथा अंगद को राज्य पर बैठाने की विनती की। बालि की मृत्यु का समाचार आने पर अंगद के हाथ पकड़कर आक्रन्दन करते हुए तारा निकली। बालि की मृत्यु के पश्चात् अंगद और राज्य का क्या करूँगी ? मैं तत्काल अपनी देह का त्याग करूँगी। घर, द्वार, पुत्र, सभी प्रधान तथा परिवार मेरे लिए कोई महत्त्व नहीं रखते। मैं मृत्यु ही चाहती हूँ।" श्रीराम ने बालि के हृदय का भेद करने वाले बाण से प्राण हर लिये। मृत बालि को देखकर तारा को मूर्च्छा आ गई और

वह धरणी पर गिर पड़ी। फिर वह आक्रंदन करती हुई उठी तथा दुःख से मस्तक पीटने लगी। वह पृथ्वी पर आक्रोश करती हुई छाती पीटने लगी। उसके केश खुले हुए थे। आँखों से अश्रु बह रहे थे। बार-बार वह जमीन पर लोटते हुए दुःख से विलाप कर रही थी। "मेरा पूरा वैभव चला गया। भोग विलास गया, सुख सौभाग्य लुट गया। मेरे पति मुझसे दूर चले गए। जिसका पति चला जाता है, उस स्त्री का नाश हो जाता है वह धर्म कार्य के उपयुक्त नहीं रह जाती। शुभ कार्य में अशुभ मानी जाती है।" ये कहते हुए तारा ने अलंकार, वस्त्र एवं आभूषणों का त्याग किया तथा पति के साथ सहगमन करने के लिए मंगलसूत्र शेष रखा। उसे अनेक वृद्ध स्त्रियों ने समझाया कि "अंगद के समान पुत्र के होते हुए समस्त राज्य प्राप्त होने पर भी व्यर्थ में देहत्याग क्यों कर रही हो ?" इस पर तारा ने कहा– "पति के सुख के समान तुलनीय कुछ भी नहीं है। इस सम्बन्ध में जो बता रही हूँ, वह सुनें।"

तारा आगे बोली– "पिता अगर समर्थ होगा तो वह अपनी कन्या को निश्चित सीमा तक कुछ देगा। भाई को राज्य प्राप्त होने, पर उसमें कुछ ही सम्पत्ति बहन को प्राप्त हो सकती है। पुत्र के राज्याधिकारी होने पर वह माता को निश्चित मात्रा में कुछ प्रदान करेगा लेकिन पति, पत्नी को समस्त सत्ता प्रदान करता है। अतः उसके बिना मैं अपना अस्तित्व क्यों बचाऊँ ? पति के कारण पत्नी को सम्पूर्ण लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और वह स्वयं को स्वामिनी कहती है। यह पिता अथवा पुत्र के द्वारा सम्भव नहीं है। पति के साथ सहगमन न करने पर बाद में जो मृत्यु प्राप्त होती है, वह निन्दनीय है। वह विधवा का अधःपतन है धर्म कर्म-अर्थ विहीन विधवा स्त्री जीवित रहते हुए भी मृत के समान ही है– यह श्रुति-शास्त्रों के वचन हैं फिर वैधव्य का क्या सुख ? पति के साथ सती होने पर इस लोक में पुण्य और परलोक में मुक्ति की प्राप्ति होती है। वह छोड़कर राज्य, पुत्र इत्यादि से कौन-सा सुख मिलने वाला है तत्पश्चात् जब तारा पति की देह के समीप गयी, उस समय उसे श्रीराम का बाण बालि के हृदय में चुभा हुआ दिखाई दिया, जिससे तारा उद्विग्न और दुःखी हो गई। अपना पति मृत्यु को प्राप्त हुआ ही, अब उसके मृत शरीर को आलिंगनबद्ध करना भी राम ने शत्रुतापूर्वक असंभव कर दिया"– क्रोधित होकर तारा बोली।

पति के निधन के कारण दुःख के आवर्त में घिरी हुई तारा अत्यधिक क्रुद्ध हुई। उसने श्रीराम को शाप दिया, उसकी वार्ता सुनें– "श्रीराम, तुम लंकापति को युद्ध में परास्त कर सीता को प्राप्त करोगे लेकिन वह तुम्हारे साथ न रहकर फिर वनवास में जायेगी। श्रीराम तुम बलपूर्वक उसका अयोध्या में रहना अस्वीकार कर उसे वन में भेजोगे। तत्पश्चात् मेरे सदृश ही दुःख भोगोगे। वनवास की अवधि में वह वन में ही लव और कुश इन दो पुत्रों को जन्म देगी। बारह वर्ष श्रीराम अयोध्या में दुःख भोगेंगे। लंका में अग्निपरीक्षा देकर सीता को तीनों लोकों में मान्यता मिलेगी और फिर उसे वन में भेजने के कारण लोग तुम्हें अन्यायी कहेंगे। बालि का अकारण ही वध करने का अपयश तो तुम्हें मिला ही है। हे रघुनाथ, आगे सीता को वन में भेजकर तुम दूसरे अपयश के भागीदार बनोगे। पुत्रों से युद्ध के पश्चात् सीता को तुम अयोध्या में लाओगे परन्तु वह तुम्हारे साथ न रहकर धरणी में वापस लौट जायेगी।"

बालि द्वारा तारा को उपदेश– "तारा ने श्रीराम को शाप दिया, यह सुनकर बालि पुनः सावधान हुआ और तारा को सम्बोधित कर बोला "हे मूढ़मति पतिव्रते, तुम महासती हो, अतः राम को शाप न दो। वह तो परमात्मा परब्रह्म है। मुझमें जब तक विषयासक्ति थी, तब तक श्रीराम मूर्तब्रह्म ही है। यह मैं समझ न सका परन्तु उनके बाणों से मेरी विषयासक्ति दूर हो गई और मुझमें स्फूर्ति का संचार

हुआ। श्रीराम के बाण की हृदय से भेंट होते ही संसार के दोष और गुण विचलित नहीं करते। श्रीराम पूर्ण ब्रह्म और सम्पूर्ण जग श्रीराम-स्वरूपमय दिखाई देता है। वह बाण न होकर आत्म बोध है। उसने मेरे मन का अन्तर सम्पूर्ण नष्ट कर दिया है। उसी कारण मुझे परमानन्द आनन्दकंद श्रीराम की प्राप्ति हुई है. तुम्हें भी अगर बाण लगा होता तो तुम्हारा भी कल्याण हो गया होता और तुमने संसार के गुण-दोष न देखकर पूर्ण परमात्मा स्वरूप श्रीराम के दर्शन किये होते।"

तत्पश्चात् बालि ने तारा से कहा कि मेरे साथ तुम सती मत हो। तुम अपना जीवन श्रीराम को अर्पित करो। यही पातिव्रत धर्म तीनों लोकों में सत्य सिद्ध होगा। मृत व्यक्ति के साथ मृत्यु मत स्वीकारो। मृत व्यक्ति के प्रेम के कारण अग्नि में प्रवेश करने पर वे सतियाँ प्रेत-योनि में आती हैं तत्पश्चात् डाकिनी की योनि भोगकर फिर से जन्म लेकर विषयों का उपभोग करती हैं, वैसा तुम न करो। अपना जीवन राम को अर्पित कर दो। राम के वचनों को प्रमाण मानकर उनका उल्लंघन मत करो। अंगद को यहाँ लाकर उसे भी राम को अर्पित कर दो। श्रीराम की कृपा होने से तुम्हें सम्पूर्ण सुख की प्राप्ति होगी " तारा को इस प्रकार युक्तिसंगत आचरण करने का उपदेश देकर बालि, सुग्रीव से आनन्दपूर्वक बोला– "तुम राम को प्राप्त कर उसके प्रिय सहायक बने। मैंने तुमसे वैर किया लेकिन तुम मेरे प्रिय बन्धु हो इसीलिए तुमने मेरी रामचन्द्र से भेंट कराकर मुझे यम-प्रहार से मुक्त करा दिया। मेरा भय-शोक मेरा जन्म मृत्यु का दुःख दूर किया और श्रीराम-प्राप्ति का परमसुख प्राप्त कराकर मुझे अलौकिक वस्तु प्रदान की। मैं कैसे तुम्हारे ऋण से मुक्त होऊँगा। तुम्हारे कारण मुझे अगाध सुख की प्राप्ति हुई है। अब मैं जो कुछ अल्प-सा तुम्हें प्रदान कर रहा हूँ, कृपा कर उसे स्वीकार करो।"

"मैं ऋण मुक्त होने के लिए किष्किंधा का सम्पूर्ण राज्य देता हूँ, उसे स्वीकार करो। तुम मेरे प्रिय सखा हो. सुषेण की कन्या तारा सारासार का विचार करने वाली व चतुर है। उसके विचारों को ध्यान में रखते हुए राज्य का कारोबार चलाना। अंगद को युवराज पद देकर उसे प्रेमपूर्वक सँभालो। तुम्हीं उसके पिता व माता हो। उसे श्रीराम की भक्ति में लीन करो। बडे शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए महावीर अंगद तुम्हारे आगे रहेगा। लंका को जीतकर युद्ध में राक्षसों का संहार करेगा। श्रीराम का हमें बल प्राप्त है, हम उन्हीं के कारण सबल हैं। तुम सब श्रीराम का नाम-स्मरण करना क्योंकि वह परब्रह्म हैं. श्रीराम सद्गुरु हमारे आप्त, स्वकीय, हमारे सर्वस्व, हमारे कुल-देवता हैं- यह निश्चित समझो। तारा अंगद और सुग्रीव तीनों भक्तिपूर्वक श्रीराम का नाम-स्मरण करें, जिससे उनकी तीनों लोकों में कीर्ति फैलेगी। यह कीर्ति ही हमारे लिए अपूर्व सिद्ध होगी।"

सुग्रीव ने बालि के वचन सुनने के पश्चात् उसे साष्टांग दडवत् प्रणाम किया। उसके चरणों पर मस्तक रखकर बोला "तुम्हारे वैर के कारण हमारा वियोग हुआ। परन्तु इसी कारण स्वामी श्रीराम से संयोग हुआ, जिससे हमारा वर-भाव पूर्णरूपेण शान्त हो गया तुम्हारे मुझ पर कितने उपकार हैं। मेरी अपने पराये की भावना समाप्त हो गई और मैं सुखपूर्वक इस भवसागर को पार करने के लिए सक्षम हो गया। अपने वंश का उद्धार हुआ। हे बालि, तुम्हारे ही ये सब उपकार हैं। तारा के वचनों का उल्लंघन मैं नहीं करूँगा। अंगद को युवराज पद दूँगा तथा श्रीराम की पूर्णरूपेण भक्ति करूँगा- यह मैं तुम्हें शपथपूर्वक वचन देता हूँ. हम वन में रहने वाले, फल-मूल खाने वाले विषयोन्मत्त वानर होते हुए भी हम राम से सम्बन्ध स्थापित कर सके. हे बालि, ये भी तुम्हारे ही उपकार हैं। सुग्रीव के वचन सुनकर बालि सुखी हुआ और अपनी विजय-माला सुग्रीव को देने के लिए उत्साहित हुआ.

बालि का निधन, तारा का विलाप— "कश्यप ने वृत्रासुर के प्रसंग पर इन्द्र के गले में यह वरद् माला पहनायी थी। इसे देखकर शत्रु विमुख हो पलायन करते हैं। इस माला को सामने देखते ही भय से शत्रु विमुख होंगे। इसके कारण विजयश्री प्राप्त होकर तीनों लोकों में प्रशंसा होगी। ऐसी ये माला इन्द्र ने मुझे प्रदान की थी- यह बताकर वह सुवर्णमय माला बालि ने सुग्रीव को प्रथम आलिंगन देकर अर्पण की। तत्पश्चात् बालि बोला- "हे सुग्रीव, यह विजयमाला मैंने तुम्हारे गले में डाली है। अब तुम कलिकाल के वश में भी नहीं आओगे। अब वानरों के राज्य के सुख का उपभोग करो। इस विजयमाला की प्राप्ति, श्रीराम के प्रति सेवा-भाव इत्यादि के कारण तुम्हारी कीर्ति त्रिभुवन में फैलेगी। तुम श्रीराम के सेवक बने रहना"— ऐसा सुग्रीव को बताकर, श्रीराम को नमस्कार कर राम स्मरण करते हुए हुए बालि ने देह त्याग दिया; वह परमगति को प्राप्त हुआ। बालि द्वारा प्राण त्यागने पर तारा अत्यन्त दु:खी होकर श्रीराम के पास आयी और बोली— "हे श्रीराम ! वैधव्य का दु:ख मुझे क्षणार्द्ध के लिए भी सहन नहीं होता। अत: मैं जो माँग रही हूँ, वह मुझे अवश्य देने की कृपा करो। मेरी यह अन्तिम याचना है। तुम कृपण होकर इसे अस्वीकार न करते हुए मेरे प्रति उदार होकर कृपा करो। तुमने जिस बाण से बालि का वध किया, उसी बाण से मेरा भी वध करो। हम दोनों एक साथ हो जायेंगे। कृपाकर हमारा वियोग न होने दो। पत्नी के वियोग का दु:ख तुमने भी भोगा है। मेरा बाण से वध कर मुझे मेरे पति के पास भेजो। बालि मेरी राह देख रहा होगा। अत: मुझे भी वहाँ भेजो। हे राम, उसका तुम्हें अद्‌भुत पुण्य मिलेगा। मुझे बालि के पास भेजा तो तुम्हें पत्नी-दान का फल मिलेगा। पत्नी को पति से मिलवाने पर पुण्य की राशि प्राप्त होती है।" तारा के ये वचन सुनकर प्रवृत्ति शास्त्र को मिथ्या बताते हुए श्रीराम ने तारा को समझाया।

श्रीराम द्वारा तारा को सान्त्वना तथा उपदेश— श्रीराम तारा से बोले "तारा, तुम देह को पति मानती हो या जीव को पति कहती हो, यह मुझे स्पष्ट बताओ। अगर तुम देह को पति मानती हो तो वह तुम्हारे पास ही है। ऐसा होते हुए शंका क्यों कर रही हो ? अत्यन्त उल्लासपूर्वक उसका उपभोग करो। अगर जीव को पति मानती हो तो वह तुमने देखा ही नहीं है, 'फिर वह गया गया' ऐसा क्यों कह रही हो ? व्यर्थ ही मूर्खतापूर्वक वैधव्य का विचार कर रही हो। जीव को जन्म-मृत्यु, खाना उपभोग करना, आना जाना कुछ भी नहीं होता। अत: उसे 'गया' कहना भी मिथ्या ही होगा। वह सर्वत्र परिपूर्ण होता है। उसे गमनागमन की बाधा नहीं होती फिर तुम वृथा शोक क्यों करती हो ? घट की गढ़ाई अनेक बार तथा अनेक प्रकार से होने पर भी घट में जो आकाश होता है। उसकी गढ़ाई कभी नहीं होती। उसी प्रकार देह का नाश होने पर जीव नित्य अविनाशी होता है। घट में घी अथवा मद्य कुछ भी भरने पर उसका घटाकाश को स्पर्श नहीं होता। उसी प्रकार देह का पापपुण्य जीवात्मा के आत्मप्रकाश रूप में प्रवेश नहीं करता। आत्मा सर्वदा परिपूर्ण रहती है। कर्म, धर्म से विरहित तथा सुख-दु:ख से अलिप्त रहती है। फिर तुम व्यर्थ ही क्यों दु:ख करती हो ?"

फिर तारा ने श्रीराम से पूछा "देह तो लकड़ी के सदृश जड़ है। उसे सुख-दुख का साक्षात् स्पर्श नहीं है। आत्मा भी अन्तर्बाह्य चैतन्य स्वरूप होने के कारण वहाँ भी सुख-दु:ख समाविष्ट नहीं होता। हे राम, फिर ये सुख दु:ख के परिणाम किसको बाधित करते हैं। यह मुझे तुम स्पष्ट कर बताओ तथा मैं दु:ख से पार किस प्रकार हो सकती हूँ ? ऐसा कुछ उपाय भी बताओ।" तारा के प्रश्न एवं उसकी विनती सुनकर श्रीराम उससे बोले— "जब तक देह में अभिमान होता है तब तक उस अविवेकी के पास दु:खों का बन्धन रहता है। अगर देह का अन्तर्बाह्य चैतन्य का ज्ञान हो जाता है तो उस

देहाभिमान मिथ्या प्रतीत होता है।" जिस प्रकार रस्सी के स्थान पर सर्प का आभास होता है, उसी प्रकार इसका अनुभव होता है। और देह भी पूर्ण रूप से मिथ्या है। जन्म मरण देहभ्रम है।, भूख, प्यास, प्राण धर्म है। विषयों का उपभोग इन्द्रिय कर्म है। सुख दुख, भय-शोक- ये सब मनोधर्म है। हरि, हर, ब्रह्मा त्रिगुणात्मक हैं। संसार कल्पना-निर्मित है। आत्मा गुणों में गुणातीत है. देह में रहते हुए देह बाधा से अलिप्त होता है। अब विषयों के सम्बन्ध में दृष्टांत बताता हूँ, यह मन लगाकर सुनो।"

"स्फटिक कृष्ण वर्ण की आभा से काला, पीतवर्ण से पीला और आरक्त वर्ण से लाल रंग की आभा वाला दिखाई देता है लेकिन वास्तविक रूप में वह इन तीनों रंगों से अलग होता है। उसी प्रकार यद्यपि यह आत्मा संसार में त्रिगुणात्मक दिखाई देती है फिर भी वास्तविक रूप में गुणातीत होती है। जिसने परमार्थ की साधना की हो, उसे सुख-दुःख नहीं प्राप्त होता है। आत्मप्राप्ति के लिए सत्संगति अत्यन्त आवश्यक है। उस संगति से विषय-विरक्ति आती है तथा परमार्थ पर अधिकार प्राप्त होता है। संशय निवारण करने वाले नित्य परमानंद में मग्न सद्गुरु के उपदेशों से सुनिश्चित परमार्थ की साधना करनी चाहिए। वेदों के कहे अनुसार प्रमाणपूर्ण सद्गुरु के वचन सुनकर देह का अस्तित्व मिथ्या मानकर चैतन्य पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।" श्रीराम का यह उपदेश सुनने के पश्चात् तारा ने अपना ध्यान चैतन्य पर केन्द्रित किया, जिसके कारण वह परमानन्द की स्थिति प्राप्त होकर एक प्रकार की मूर्च्छितावस्था को प्राप्त हुई श्रीराम की कृपा से वह पूर्णरूपेण अपना देहाभिमान भूल गई। फिर उसने राम को साष्टांग दंडवत् करते हुए उनकी चरण वंदना की। वह बोली– "बालि ने स्वयं बताया था कि श्रीराम के वचन ब्रह्मस्वरूप हैं। यह बात मुझे आज स्वयं अनुभव हो रही है। श्रीराम वास्तव में परिपूर्ण परब्रह्म हैं."

श्रीराम ने तारा को जो उपदेश दिया, वह सुग्रीव ने सुना, जिससे वह भी अपना देहाभिमान भूल गया और सुख संपन्न हुआ। राम के कहने पर तारा और सुग्रीव दोनों ही सुखी और ज्ञान सम्पन्न हुए। उनमें एक दूसर के प्रति प्रेम की भावना जागृत हुई और उनके मन में किसी प्रकार का विकल्प शेष नहीं रहा। दोनों को परम श्रेष्ठ सन्तोष प्राप्त हुआ। तब रघुनन्दन श्रीराम ने कहा "अब बालि के देह का दहन कर उसे तिलांजलि देकर पिंडदान करें।" अंगद, सुग्रीव और प्रधानों ने बालि को पालकी में रखा उसे पम्पातीर पर ले जाकर उसका दहन संस्कार किया। उसके लिए बेल, चन्दन इत्यादि की लकड़ियों का प्रयोग किया। तत्पश्चात् बालि की उत्तर क्रिया, तिलांजलि, पिंडदान आदि सम्पन्न कर सुग्रीव और प्रधान अंगद को ले आये। सब लोगों के आने के पश्चात् सुग्रीव अंगद सहित हाथ जोड़कर श्रीराम के समक्ष खड़ा हुआ। श्रीराम हनुमान से बोले "अब तुरंत सुग्रीव का राज्याभिषेक कर अंगद को युवराज पद दिया जाय।" तब हनुमान ने विनती की– "स्वयं स्वामी श्रीराम किष्किंधा आकर सुग्रीव का राज्याभिषेक करें। आपका स्वयं आकर सुग्रीव का राज्याभिषेक करना हम सबको अच्छा लगेगा। अतः इतनी कृपा अवश्य करें। हनुमान के वचन सुनकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए। तत्पश्चात् राम ने अपना नियम बताते हुए कहा - "श्रीदशरथ की आज्ञा को शिरोधार्य मानकर मैंने चौदह वर्षों तक वन में रहने की प्रतिज्ञा की है इसीलिए ग्राम, पुरी, नगरी इत्यादि में प्रवेश न करने का निश्चय किया है।"

श्रीराम की आज्ञा से तारा का सुग्रीव की पत्नी बनना– श्रीराम द्वारा अपना निश्चय बताये जाने पर हनुमान ने श्रीराम के चरण पकड़ कर विनती की– "आप नहीं तो अपने स्थान पर लक्ष्मण को ही सुग्रीव का राज्याभिषेक करने के लिए भेजें" श्रीराम ने विनती स्वीकार कर लक्ष्मण को आज्ञा दी– "सुग्रीव का राज्याभिषेक तुम करो।" लक्ष्मण ने श्रीराम की आज्ञा शिरोधार्य करते हुए जाने की

तैयारी कर राम की चरण वंदना की और तत्पश्चात् सबके साथ प्रस्थान किया। सुग्रीव का राज्याभिषेक करने हेतु प्रधानादि परिवार के साथ सौमित्र के निकलते ही सबने जयजयकार किया। उसी समय श्रीराम ने तारा को बुलाकर कहा– "तुम सुग्रीव को स्वीकार कर राजपत्नी होकर मेरी आज्ञा से किष्किंधा पर राज्य करो। सभी प्राणियों के प्रति भगवद्भाव मानते हुए तथा सुग्रीव को भी उसी के अनुरूप समझकर उसे पति रूप में स्वीकार करो। मेरी आज्ञा का अनुभव लो तथा देह विषयक संशय मत रखो। देवर से पुत्र-प्राप्ति धर्मशास्त्र ने उचित बताया है। मेरी आज्ञा को प्रमाण मानकर तुम सुग्रीव का ध्यान करो. स्त्री-पुरुष दोनों के शरीर में आत्मा के अतिरिक्त किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है। उस पर ध्यान केन्द्रित करने से सदेह ही विदेहत्व की प्राप्ति होती है। इस आत्मदृष्टि को समझने में भूल होने पर स्वपत्नी का उपभोग भी नरक सदृश है आत्मदृष्टि से प्राप्त संतोष के कारण मेरी आज्ञा मानते हुए अन्तर्द्वन्द्व को सहज रूप से दूर किया जा सकता है।" श्रीराम का यह निवेदन सुनकर सुग्रीव और तारा सन्तुष्ट हुए और श्रीराम की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया।

श्रीराम ने आज्ञा की कि सुग्रीव किष्किंधा का राजा, तारा उसकी पत्नी, तथा तारा का पुत्र अंगद युवराज होगा।" श्रीराम के द्वारा बताये जाने पर सभी वानर और देवता आनन्दित हुए और उन्होंने श्रीराम का जय-जयकार किया। अब किष्किंधा में महोत्सव करने हेतु सभी वानर एकत्रित हुए। सुग्रीव का अभिषेक करने के लिए असंख्य ऋषियों को लाया गया। बाघ का नखसहित चर्म, वराह के दाँत, कछुए की पीठ, सप्त-समुद्र का जल, कामधेनु का दूध, सात प्रकार की मिट्टी, तीर्थों का जल, भूमि तथा जल के अनेक कमल, पुष्प, शुद्ध चन्दन, सागर जल, मणिरत्न, आम्रपत्र, कमलपत्र तथा अशोक के कोमलपत्र इत्यादि सामग्री लायी गई। किष्किंधा नगरी को सजाकर सुशोभित किया गया। यह सम्पूर्ण अपूर्व तैयारी हनुमान ने की। मुकुट, कुंडल, अलंकार, धवल, छत्र और चँवर की जोड़ी, सदाबहार गूलर, पवित्र आसन इत्यादि अभिषेक के लिए लाये गए। सोने और चांदी की कलसी, सजाये हुए सफेद बैल, रत्न से भरा हुआ कलश इत्यादि वानरों के प्रिय राजा के राज्याभिषेक के लिए एकत्र किये गए प्रधानों ने होम कर ब्राह्मणों का पूजन किया। तिल घी, गायें इत्यादि दान में दीं और फिर सुग्रीव का अभिषेक किया. जिस प्रकार उमा और रमा उसी प्रकार तारा और रुमा, अंगद की पत्नी क्षमा इत्यादि महती स्त्रियों से सुशोभित होते हुए राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ। सुवासित, शीतल गंधोदक, सुमनोदक, कुशोदक, श्रीराम के चरणोदक इत्यादि से युक्त जल से ऋषियों ने वेद घोष करते हुए अभिषेक किया। द्विजों को वस्त्र अलंकार, धन, धान्य, भोजन इत्यादि प्रदान किया गया। अंगद को युवराज पद देकर सुग्रीव सुखी हुआ वेदमन्त्रों से अभिषेक करने के लिए अनेक ऋषिवर आये। अनेक बड़े वानर भी आये। उनमें गज, गवाक्ष शरभ, गंधमादन, मैंद, द्विविद, नील ये सभी अभिषेक के लिए आये। इनके अतिरिक्त नल, सुषेण, जाम्बवंत इत्यादि बलवान एवं अन्य सभी वानर सुग्रीव का अभिषेक करने के लिए आये उन्होंने सुग्रीव का राज्याभिषेक व अंगद का युवराज्याभिषेक कर दोनों का अत्यन्त उत्साहपूर्वक पूजन किया। युवराज अंगद एवं राजा सुग्रीव का वानरों ने सम्मान किया। 'श्रीराम ने सुग्रीव को राज्यपद पर स्थापित कर उचित ही किया'- सभी ने ऐसा कहा।

श्रीराम की वंदना– सौमित्र को सर्वप्रथम रथ में बैठाकर फिर सुग्रीवादि वीर अंगदकुमार को लेकर रथ में बैठे। वे शीघ्रता से श्रीराम को नमन करने के लिए निकले। उस समय वीर पनस ने सुग्रीव के मस्तक पर छत्र पकड़ा हुआ था। नल और तार सोने की छड़ीयुक्त चँवर डुला रहे थे। राजा सुग्रीव

को इस प्रकार सम्मानपूर्वक और जय-जयकार करते हुए वानरों का समूह लेकर जा रहा था। यह देख रघुवीर प्रसन्न हुए। वानर वीरों को जय-जयकार करते हुए आते देखकर श्रीराम आनन्दित हुए। श्रीराम के समीप जाते ही सुग्रीव अंगद और सौमित्र ने रथ से उतरकर साष्टांग दंडवत् प्रणाम कर श्रीराम की चरण वंदना की. तत्पश्चात् हनुमान श्रीराम से बोले– "श्रीरघुनाथ, सुग्रीव का राज्याभिषेक कर और अंगद को युवराज-पद देकर आपके चरणों के पास लाया हूँ। अब कर्तव्यों को बताते हुए हमारा मार्ग-दर्शन करें। "वर्षा ऋतु के चार महीने सीता को ढूँढ़ने का कार्य नहीं किया जा सकेगा। अतः सुग्रीव को किष्किधा ले जायें। मैं सौमित्र के साथ प्रस्रवण पर्वत को गुफा में रहूँगा। वर्षा ऋतु के समाप्त होते ही तुरन्त सीता को ढूँढ़ने के लिए आयें।" ऐसा श्रीराम ने हनुमान को बताया। इस पर सुग्रीव श्रीराम से बोला- "हे श्रीराम, वर्षा ऋतु समाप्त होते ही, चार महीनों के पश्चात् मैं वानर सेना सहित आकर सीता को ढूँढ़ने का कार्य करूँगा।" ऐसा कहकर श्रीराम की वंदना कर सभी लोगों के साथ प्रसन्नतापूर्वक सुग्रीव किष्किंधा की ओर वापस लौटा।

अध्याय ८

[सुग्रीव का श्रीराम की सहायतार्थ आगमन]

श्रीराम ने बालि का उद्धार किया। सुग्रीव का राज्याभिषेक करवाया। अंगद को युवराज पद मिलने से तारा सुखी हुई। तारा का पति राजा और पुत्र युवराज होने के कारण वह प्रसन्न थी। यह प्रभु रामचन्द्र का ही प्रसाद था।

सुग्रीव की श्रीराम-कार्य के प्रति उपेक्षा– माल्यवन्त पर्वत की प्रस्रवण नामक गुफा में श्रीराम ने सौमित्र के साथ चार महीनों तक निवास किया। वर्षा ऋतु के चार महीने श्रीराम शान्त बैठे थे। तत्पश्चात् श्रीराम की कार्य सिद्धि हेतु उत्सुक शरदकाल पर्जन्य काल को निगलकर शीघ्र उपस्थित हुआ। श्रीराम स्वयं कालों के भी काल होते हुए अपने निवास पर निश्चिंत थे। वे श्रीराम मानों साधुओं के नित्य, निर्मल, निर्दोष मन के सदृश थे। मेघ दूर होकर आकाश को स्वयं प्रकाशित करें, उसी के सदृश श्रीराम दिखाई दे रहे थे। शरद काल में आकाश निर्मल हो जाता है। सूर्य, चन्द्र की प्रसन्न तेजस्विता दिखाई देती है। साधकों के लिए यह काल सुख का काल होता है क्योंकि इस समय वे चारों पुरुषार्थों [धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष] की साधना कर सकते हैं। शरद-काल में तीर्थाटन, अभ्यास, शत्रुओं पर विजय प्राप्ति के लिए राजाओं का प्रस्थान करने हेतु उचित काल होने के कारण सन्तोष का अनुभव होता है। काल, काल को ग्रसता है परन्तु श्रीरघुनाथ को काल ग्रस नहीं सकता। श्रीराम सीता को ढूँढ़ने के लिए पर्वत की गुहा में बैठकर प्रतीक्षा कर रहे थे। शरद काल प्रारम्भ होने के पश्चात् श्रीराम लक्ष्मण से बोले– "सुग्रीव अब तक यहाँ क्यों नहीं आया। वह स्वयं के वचनों को भूल गया। जो विषयों में लिप्त होते हैं वह परमार्थी नहीं हो सकते। सन्तों का कर्तव्य है कि वे उन्हें सीख देकर हितकार्य के लिए प्रेरित करें. जो अत्यन्त विषयासक्त होता है, वह परमार्थ की ओर कभी ध्यान नहीं देता है। यह निश्चित है कि वह शुद्ध परोपकार के लिए कभी नहीं आयेगा। वर्षा ऋतु के चार महीने व्यतीत होने पर सीता को

ढूँढ़ने जाने का वचन सुग्रीव भूल गया है। उसने मुझे वचन दिया है। अतः तुम किष्किंधा जाकर सुग्रीव को स्मरण कराओ, अगर उसने वचन को स्वीकार नहीं किया तो बाण से उसका वध कर दो।"

श्रीराम लक्ष्मण से बोले– "तारा, रुमा– इन दोनों पत्नियों एवं मद्यपान के कारण उन्मत्त होकर सुग्रीव यदि मेरा वचन नहीं मानेगा तो उसी क्षण उसका वध करो। जिसे मेरे कार्य का स्मरण नहीं, जो मुझे विस्मृत कर देता है, हे सौमित्र ! उसे बाणों से बिद्ध कर मार देना। जिस बाण ने बालि का निर्दलन किया, वही बाण चलाकर क्षणार्द्ध में सुग्रीव के प्राण ले लिये जायँ। यह वानर शठ और कृतघ्न होने के कारण उपकार का बदला उपकार से चुकाना नहीं जानता। वह फल एव पर्ण खाने वाला वानर मिथ्यावादी है, कुमित्र है। अतः हे लक्ष्मण तुम तो मेरे सखा हो और सुग्रीव मात्र कुमित्र है। उसका मनोगत जानकर फिर उसका संहार करो।" यह सुनकर लक्ष्मण अत्यन्त क्रोधित हुआ। उसने हाथों में इन्द्रधनुष सदृश धनुष लिया और क्रोधपूर्वक वहाँ से प्रस्थान किया। उसके क्रोधपूर्वक पग बढ़ाते हुए चलने से शाल, ताल आदि अनेक विशाल वृक्ष टूटकर गिर पड़े। जो पाषाण शिलाएँ उसके पैरों तले आयीं वे चूर चूर हो गईं।

सुग्रीव को समझाना, भय दिखाना; तत्पश्चात् उसका शरण आना– हनुमान पूर्व सूचना देते हुए स्वयं सुग्रीव को बता रहे थे कि 'तुम राम-कार्य को विस्मृत कर उन्मत्त होकर विषयांध हो गए हो, स्त्री, मद्यपान, धन, मान के कारण तुम अपना अहित कर रहे हो। द्रव्य, स्त्री एवं मद्य के कारण तुम अपना हित भूल रहे हो। श्रीराम की भक्ति भूल गए हो। तुम्हारे ऊपर बहुत बड़ा संकट मँडरा रहा है। कितनी अवधि बीत गई इसका तुम्हें संज्ञान नहीं। इस अवधि में मात्र विषयों में लिप्त होकर तुमने अपना जीवन समाप्त कर दिया। चार महीने बीत जाने के पश्चात् भी सीता को ढूँढ़ने के लिए नहीं निकले। अगर तुमने सीता को नहीं ढूँढा तो श्रीराम क्रोधित होकर तुम्हारा घात करेंगे, यह निश्चित है।" हनुमान के ये वचन सुनकर भी सुग्रीव सावधान नहीं हुआ। वह उदासीनतापूर्वक बोला– "कार्य गौण है। शीघ्र वानर सेना को बुलवा लें।" इतना कहकर सुग्रीव रानियों के महल की ओर चला गया। हनुमान ने तुरन्त जाकर सेना-नायकों को दस हजार वानर वीर लाने के लिए शीघ्र भेजा। इधर लक्ष्मण क्रोधपूर्वक कालरुद्र की भाँति किष्किंधा की ओर बढ़ रहा था। उसे देखकर बड़े बड़े वानरवीर विचलित हो गए। लक्ष्मण को पैरों तले आने वाली शिलाओं को चूर-चूर करते हुए किष्किंधा की ओर बढ़ते देखकर सभी वानर-वीर भयभीत हुए। उन वानर वीरों में दस हाथियों के समान बल वाले, दसगुने बल वाले, सहस्र नागों के सदृश बल वाले असंख्य वानरवीर थे। किसी के पास विद्युल्लता के समान बल था तो कोई उससे अधिक बलवान् था। ऐसे एक से बढ़कर एक सबल वीर थे, जो परस्पर अतुलनीय थे। ऐसे बलशाली वानरों के असंख्य समूह किष्किंधा में थे। अत्यन्त भयंकर और बलवान् महावीर किष्किंधा की रक्षा करते थे।

लक्ष्मण धनुषबाण लेकर निकला। वह कृतान्त कालरुद्र के समान दिखाई दे रहा था। उसको देखकर वानर समूह में विद्यमान वीर भयभीत हुए। लक्ष्मण का आगमन होते ही वानर भय से काँपने लगे। सभी भयभीत होने के कारण कोई धीरज बँधाने वाला नहीं था। लक्ष्मण द्वारा धनुष की टंकार करते ही वानर उछल कर एक दूसरे के आगे भागने लगे। नगर मे हाहाकार मच गया। एक मनुष्य के आक्रमण के लिए आते ही हज़ारों वानर भागने लगे। राजगृह में अशांति फैल गई। वानर चिल्लाने लगे। भयभीत होकर वानर बालि के प्रताप का स्मरण कर कहने लगे कि– 'बालि की मृत्यु होते ही यह विपदा आन पड़ी है। कौन इस संकट से मुक्ति दिलायेगा ?' तारा सुग्रीव से बोली– "नगरी में हाहाकार मचा हुआ

है फिर भी तुम अभी तक कामासक्ति में लिप्त हो। हे उन्मत्त, अब तो सावधान हो।" प्रधान राजा सुग्रीव से कहने लगे– "सीता को ढूँढ़ने के लिए जाने की काल-मर्यादा आप भूल गए, जिससे श्रीराम ने अत्यन्त क्षुब्ध होकर आपका वध करने के लिए लक्ष्मण को भेजा है। सभी वानर भाग गए हैं। नगरी में हाहाकार मचा है। हमसे कालमर्यादा का पालन करने में भूल हुई है, जिससे श्रीराम क्रुद्ध हैं और यह उचित भी है। अब लक्ष्मण से हम सब यह कहें कि हम अनन्य भाव से तुम्हारी शरण में हैं।"

लक्ष्मण ने धनुष की प्रत्यंचा खींचकर बाण चढ़ाकर क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखा, जिससे सुग्रीव भयभीत हुआ। तारा और रुमा दोनों पत्नियाँ हाथ जोड़े आगे आयीं। सुग्रीव ने लक्ष्मण को सर्वप्रथम साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया फिर वह हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बोला– "मैं अपराधी हूँ। श्रीराम बाण से मेरा वध कर देंगे। हे लक्ष्मण ! तुम कृपानिधि हो, तुम मेरी रक्षा करो। इस प्रकार सुग्रीव द्वारा अत्यन्त दीन स्वर में विनती करने पर अपने पति की रक्षा के लिए मनःपूर्वक दीन स्वर में तारा ने लक्ष्मण से विनती की– "यद्यपि यह झूठा सिद्ध हुआ है तथापि तुम्हारी शरण आया है, इसका वध न करें क्योंकि इसे मारने से श्रीराम का इस संसार में अपयश फैलेगा। सुग्रीव शरण आया, श्रीराम ने ही उसे राज्य दिलवाया और बाद में श्रीराम ने ही उसका वध किया। यह प्रसिद्ध होकर श्रीराम की कीर्ति का नाश होगा। सूर्यवंश की ये महानता है कि जो उसकी शरण आता है, वह वज्र के समान पिंजरे में सुरक्षित हो जाता है; अतः इस वानर को मारने से श्रीरघुवीर के वंश को अपयश मिलेगा। बालि का अचानक वध करने की अपकीर्ति श्रीराम को मिली ही है। अब अगर सुग्रीव का भी वध किया तो दूसरी बार पुनः अपयश की प्राप्ति होगी। कोई बालक अगर पिता की गोद में लघुशंका करता है तो उसे धोकर साफ़ करना चाहिए अथवा बालक को मारना चाहिए। हे सौमित्र ! यह तुम्हारी शरण आया है अतः इसकी रक्षा करें। तुम्हारा सौमित्र नाम है। शरणागत वानर का अगर तुमने वध किया तो तुम अपने नाम के विपरीत कुमित्र हो जाओगे। अतः अपना नाम अपवित्र न करो। हम दोनों के सौभाग्य की रक्षा करो।" तत्पश्चात् तारा और रुमा दोनों ने लक्ष्मण के चरणों पर अपना मस्तक रख प्रणाम किया।

तारा का सद्भावपूर्ण युक्तिवाद सुनकर लक्ष्मण को प्रसन्नता हुई वह बोला– "सुग्रीव तुम महापापी हो। मैं जो कह रहा हूँ, वह ध्यानपूर्वक सुनो। मिथ्या वचन बोलने से अधोगति प्राप्त होती है और तुमने तो साक्षात् श्रीराम से असत्य बोला है। हे पापमूर्ति, इस विषय में शास्त्रों का निर्णय सुनो। स्वार्थी व्यक्ति जब असत्य बोलता है तब उसके पाँच पूर्वज नरक में चले जाते हैं। चाटुकार स्वार्थी के दस पूर्वज अस्वार्थी के सौ पूर्वज तथा जो पुरुषार्थ के सम्बन्ध में मिथ्या प्रलाप करते हैं उनके हज़ार पूर्वज नरक में जाते हैं। जो धन के लिए असत्य बोलते हैं, उनके कारण उनके जीवित और मृत सम्बन्धियों को अधोगति प्राप्त होती है। भूमि के लिए जो असत्य बोलते हैं, उनका सम्पूर्ण कुल ही नरक में जाता है इसी प्रकार जो सत्पुरुषों के पास आकर निश्चयपूर्वक कर्तव्य के विषय में चर्चा करते हैं और फिर बाद में उस कर्तव्य का पालन नहीं करते, उनकी दुर्गति भी सुनो। वे सम्पूर्ण कुल व स्वजनों सहित आत्मघात करते हैं। मृत्यु के पश्चात् उन्हें नर्क की ही प्राप्ति होती है, शास्त्रों ने यह निश्चयपूर्वक बताया है मित्र के द्वारा जो अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं लेकिन स्वयं मित्र का कार्य नहीं करते हैं, उनका वध [illegible], यही ब्रह्मवाक्य अर्थात् शास्त्रों का निर्णय है। सबका कार्य करने वाले परोपकारी व्यक्ति [illegible] करें परन्तु जो मित्र-कार्य में धोखा देते हैं, ऐसे व्यक्तियों का परित्याग करना चाहिए और [illegible] करना चाहिए। स्वयं का घर, आश्रम, मठ होते हुए जो दूसरे को बिना कारण दोष देकर

पीड़ा देते हैं, उनको नरक में कई बार जाना पड़ता है। इस आवागमन के चक्र की गिनती करना कठिन है. उनको साँप डसते हैं; बाघ, भालू और भेड़िये खाते हैं; धर्मरक्षक मारते हैं। इस प्रकार वे सबके द्वारा वध्य सिद्ध होते हैं।

सुग्रीव का शरण आना; लक्ष्मण का सम्मान– लक्ष्मण का युक्तिवाद सुनकर तारा ने पुनः विनती करते हुए कहा "निश्चित ही सुग्रीव पापी है और उसकी पाप से मुक्ति तुम्हारे द्वारा ही सम्भव है। श्रीराम नाम का स्मरण करने से समस्त पापों का दहन होता है। प्रत्यक्ष श्रीरघुनन्दन के दर्शन करने से, सत्संगति से पापों का नाश होता है। प्रेमपूर्वक राम के विषय में चर्चा करने से कल्पकोटि पाप जलकर भस्म हो जाते हैं। आत्मदृष्टि से श्रीराम के दर्शन करने पर सम्पूर्ण सृष्टि निष्पाप दिखाई देने लगती है। श्रीराम नाम के स्मरण से पाप मुक्ति होती है। उस नाम की महिमा से ही चारों प्रकार की मुक्ति प्राप्त होती है। ब्रह्मादि भी उस नाम की वन्दना करते हैं।" तारा द्वारा राम-नाम की प्रशंसा सुनकर लक्ष्मण आनन्दित हुए तारा उनके चरण पकड़कर बोली– "कृपा कर मुझे पति का दान दें।" तारा और लक्ष्मण का संवाद सुनकर सुग्रीव विलाप करने लगा। वह बोला– "श्रीराम की सेवा से मैं चूक गया। मैं पूर्ण रूप से वध का पात्र हूँ। श्रीराम का बाण लगने से तत्काल मेरे प्राण चले जाएँगे। हे सौमित्र, मैं अनन्यभाव से तुम्हारी शरण आया हूँ, मुझे जीवन दान दो"– इतना कहकर स्वर्ण सिंहासन, राजसम्मान, राज्याभिमान का त्याग कर सुग्रीव ने लक्ष्मण के चरणों की वन्दना की।

श्रीराम की आज्ञा से सीता को ढूँढ़ने का कार्य न करने वाले सुग्रीव से लक्ष्मण क्रोधपूर्वक बोले– "मनमाना व्यवहार करने वाले स्त्रीलंपट, मात्र अपना कार्य सिद्ध करने वाले महाशठ, श्रीराम के कार्य को भूल जाने वाले भ्रष्ट, अतिपापी, मेरा कहा सुनो, मद्यपान करने वाले, ब्रह्मघाती, चोर ठग, भग्नव्रती को भी शास्त्रों में प्रायश्चित बताया है परन्तु जो मित्र के उपकार के प्रति कृतघ्न होता है, उसके लिए कोई प्रायश्चित नहीं है यह बात तुम ध्यान में रखो। तुमने रघुनन्दन से छल किया अतः तुम महान पापी हो "

लक्ष्मण के कठोर वचन सुनकर तारा और सुग्रीव अत्यन्त उद्विग्न हुए। इस संकट को देखकर स्वयं हनुमान वहाँ आये। वे बोले– "सीता को ढूँढ़ने का कार्य त्यागकर श्रीराम से छल किया है। इसीलिए श्रीराम ने तुम्हारा वध करने के लिए लक्ष्मण को भेजा है। तुम पापी और कृतघ्न हो परन्तु अब दोनों का ही कार्य सिद्ध करने के लिए सुग्रीव को न मारकर राम का कार्य सम्पन्न किया जाय यही उचित है। श्रीरघुनाथ की सेवा से चूकने के कारण सुग्रीव के माथे करोड़ों अपराध हैं परन्तु शरणागत मानते हुए उसे क्षमा करें और राम का कार्य सम्पन्न करें।" हनुमान के वचन सुनकर लक्ष्मण सन्तुष्ट हुए। इससे सुग्रीव आनन्दित हुआ और उसने लक्ष्मण को नमन किया। तत्पश्चात् "सीता को ढूँढ़ने का राम का कार्य करने में मुझे आनन्द का अनुभव हो रहा है," उस वनराज ने यह कहते हुए सौमित्र के चरणों पर मस्तक रखा और बोला - "सेना, सेनापति, प्रधान और अंगद सहित श्रीराम की सेवा में मैं अपने प्राण दे दूँगा, ये मेरा सत्य वचन है। हे सौमित्र ! श्रीराम के मन की इच्छा को मैं सम्पन्न करूँगा। मैं यहीं से सेना को बुलाने के लिए दूत भेजता हूँ। मेरे महाबलवान् सेनापति सेना सहित यहाँ आयें, इसके लिए मैं तुरन्त दूत भेजता हूँ।"

इसके पश्चात् सुग्रीव ने अर्घ्य, पाद्यपूजा, चन्दन, धूप, दीप, पुष्पमाला सहित लक्ष्मण का अत्यन्त विनम्रतापूर्वक पूजन किया। लक्ष्मण ने सुग्रीव से कहा– "हम तुरन्त राम के पास प्रस्थान करें। उन्हें अकेला छोड़कर हमारा यहाँ रहना उचित नहीं है।" सुग्रीव ने समस्त प्रधानों को समक्ष खड़ा कर संदेश

देते हुए कहा- 'अब जो किष्किंधा में घर वापस आयेगा, उसे खर पर बैठाकर घुमाया जाएगा। तारा और रुमा उन्हें महापापी सिद्ध करेंगी। सीता को ढूँढ़े बिना तथा श्रीराम को सुखी किये बिना जो पीछे लौटेगा, उसे खौलते तेल में डालने का दण्ड दिया जाएगा' सुग्रीव द्वारा सबको यह सूचना मिलने पर रण-वाद्यों की ध्वनि कर तथा रथ शिविका इत्यादि एकत्र कर सभी ने तुरन्त वहाँ से प्रस्थान किया। महाशूर अंगद, सौमित्र, सुग्रीव रथ पर आरूढ़ हुए। शुभ्र छत्र राजा के मस्तक पर रखकर, चँवर झलते हुए वाद्यों की ध्वनि के साथ भाटों द्वारा गंभीर स्वर में गर्जना करते हुए वानरों का सैन्य संभार लेकर सुग्रीव ने तुरन्त प्रस्थान किया। इस समय राम माल्यवंत पर्वत के प्रस्रवण पर्वत शिखर पर स्थित गुहा के द्वार के पास एक मणिमय शिला पर बैठे थे। श्रीराम को देखकर सभी वानरों ने श्रीराम का जय-जयकार किया। अंगद, सौमित्र और सुग्रीव ने श्रीराम को साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया।

सुग्रीव का आश्वासन और श्रीराम की स्तुति– श्रीराम ने सुग्रीव को अपने आजानुबाहु फैलाकर आलिंगनबद्ध किया, जिससे सुग्रीव सन्तुष्ट हुआ और बोला-- "मैंने शीघ्रता से दूतों को भेजा है। जल्दी ही विविध सेनाओं के सेनानी अपनी-अपनी वानरसेना और सैन्य सम्भार लेकर उपस्थित होंगे। थोड़े ही समय में प्रचंड संख्या में वानरसेना एकत्र होने लगी। वानरसेना अत्यन्त प्रबल और अपार संख्या में थी। आसपास की भूमि को उन्होंने व्याप्त कर लिया था। सारा कुलाचल व्याप्त था। उन वानरों में एक वानर पर्वत के आकार का था। दूसरा वानर तीक्ष्ण नखों एवं विशाल दाँतों से युक्त था। वह सर्वश्रेष्ठ योद्धा था। अपनी पूँछ से फटकार मारते ही हजारों की हानि होती थी। उसके नख, पर्वतों को चूर-चूर कर सकते थे। उसके तीक्ष्ण दाँतों से वीरों को मृत्युदण्ड दिया जाता था। पूर्व की ओर वानरों का समूह, पश्चिम दिशा में वानरों की भीड़ तथा उत्तर और दक्षिण दिशा वानर श्रेष्ठों से व्याप्त थी। इसके अतिरिक्त आग्नेय, वायव्य, नैऋत्य दिशाओं में वानरों की असंख्य भीड़ थी। ईशान की ओर का भाग भी वानरों के कोलाहल से व्याप्त था। सारा आकाश भूमंडल, कुलाचल पर्वत वानरों से भर गया था। इन वानरों में कुछ काजल के सदृश काले, कुछ पीतवर्णी, कुछ गौरवर्ण के, कुछ नीलवर्णी थे। वानरगण में से कोई सिन्दूर की आरक्तता लिए हुए तो कोई विद्युत के सदृश थे; कोई शुद्ध शुभ्रवर्ण के तो कुछ धूम्रवर्ण के थे। कुछ भूरे तो कुछ अनार के पुष्प सदृश, कुछ वैदूर्यरंग की पहाड़ियों के सदृश, कुछ अभ्रक के सदृश शरीर वाले, कुछ चन्द्रमा के समान शुद्ध, कुछ कुमकुम के सदृश लाल रंग के, कुछ केशयुक्त थे और सेना में आगे खड़े रहकर गुनगुना रहे थे। ये भालू, राम का नाम गुनगुना रहे थे। वानर राम के नाम का स्मरण कर रहे थे, जिसके कारण राम के नाम से त्रिभुवन गुंजायमान था। श्रीराम के दर्शन होते ही सबकी चित्तवृत्तियाँ परिवर्तित हो गईं। वानरों को राम भक्ति भाने लगी। वे रात-दिन रामनाम का स्मरण करने लगे। सत्संग की महिमा के कारण वानर सदृश पशुओं को भी राम नाम की धुन सवार हुई। उन्होंने हनुमान को अपना गुरु बना लिया। वानरों के मुख से रामनाम की ध्वनि सुनकर श्रीराम को प्रसन्नता हुई। लक्ष्मण भी आनन्दित हुए। स्वयं श्रीराम सुग्रीव को अपने हृदय से लगाते हुए बोले- "तुम वास्तव में मेरे सखा हो। तुमने कार्य सिद्धि के लिए दृढ़ विश्वास जागृत किया।"

फिर सौमित्र ने पूछा - "सुग्रीव, इस वानर सेना की सीमा ही नहीं दिखाई देती, उनकी संख्या कितनी है- यह श्रीराम से बताओ।" इस पर सुग्रीव बोला "श्रीराम तुम्हारे प्रताप और महानता के समक्ष यह तो बहुत कम सेना है। बाद में असंख्य प्रकार की दशकोटि, शतकोटि, अनगिनत, असंख्य सेनाएँ आयेंगी। समुद्र में स्थित कंकड़ भी कम पड़ जाएँगे, इतनी सेनाएँ आगे आकर मिलेंगी। उनके समक्ष

रावण नगण्य है, उसको निश्चित ही बाँधकर लाऊँगा।"- इतना कहकर सुग्रीव ने अपनी भुजाएँ ठोंकी। श्रीराम के चरण स्पर्श कर उसने बताया कि युद्ध में क्या-क्या कौशल दिखलायेगा। "रण में राक्षसों का निर्दलन करूँगा, लंका की होली जलाऊँगा। त्रिकूट पर्वत समूल उखाड़कर जनक कन्या को लाऊँगा। लंकापति का वध कर सीता को वापस लाकर श्रीरघुनाथ को सुखी करूँगा - उसने ऐसी गर्जना की। सुग्रीव की गर्जना सुनकर रघुनाथ सन्तुष्ट हुए। उन्होंने सुग्रीव को अपने समीप बुलाकर अपना आनन्द व्यक्त किया मानों सीता को सुग्रीव वापस ले ही आया हो। इस अनुभूति से ही श्रीराम को प्रसन्नता हुई। अपने आनन्द में उन्होंने भक्त को ऊपर उठाया। वानरों ने गर्जना की, ऋषियों ने जय जयकार किया। देवताओं ने पुष्प वृष्टि की, श्रीराम सुख सम्पन्न हुए। सुग्रीव को श्रीराम ने उठाया। उस सुख के कारण देव और भक्त एकाकार हुए।

अध्याय ९

[सुग्रीव द्वारा वानरसेना का परिचय तथा वानर सेना को श्रीराम के दर्शन]

सुग्रीव ने श्रीराम से विनती की कि-'सेना, सेनानी, सेनापति और सैन्य पथकों के प्रमुख महावीर सभी आपको नमन करना चाहते हैं। अतः कृपाकर आप सौमित्र के साथ वानरों के सैन्यसंभार का निरीक्षण करें।' सुग्रीव की यह विनती स्वीकार करते हुए श्रीराम ने उसके साथ प्रस्थान किया। सुग्रीव सेना और सेनानियों का परिचय देने लगा।

सुग्रीव द्वारा वानर सेना के सम्बन्ध में निवेदन– सुग्रीव बोला- "मेरी सेना में दस हजार सेनानायक और सेनापति हैं। प्रत्येक के नियन्त्रण में करोड़ों अत्यन्त भयकर रणयोद्धा हैं उदयगिरि से लेकर अस्तगिरि तक के सभी वानर यहाँ आये हैं। नन्दन वन के, सप्तसमुद्रों के नदियों के समीप के, भू स्थल के अनेक महावीर राम का कार्य सम्पन्न करने के लिए यहाँ आये हैं। मेरु, मंदार, विन्ध्याद्रि, वेंकटाद्रि तथा सह्याद्रि इत्यादि स्थानों से वानर वीरों का आगमन हुआ है। वे रामकाज की गर्जना कर रहे हैं राम का कार्य सम्पन्न करने के लिए हिमाचल, अर्बुदाचल, गंधमादन व श्रीशैल पर्वत के वानर भी आये हैं। वे सभी अपनी-अपनी सेनाओं को लेकर नमन करने के लिए आयेंगे। उन वानरवीर रण-योद्धाओं का, स्वामी निरीक्षण करें। शतबली नामक इस वानर के पास दस कोटि वानरवीर हैं उनका नमस्कार श्रीराम स्वीकार करें। यह हनुमान का सौतेला पिता केसरी नामक महावीर है, इसके पास करोड़ों की संख्या में वानरसेना है। उसने श्रीराम को प्रणाम किया। वानर जाति का केसरी, अंजनी का पति होने के कारण हनुमान का पिता है-यह यथार्थ सत्य है वायु हनुमान का वीर्यज पिता और केसरी क्षेत्रज पिता है। हनुमान दोनों का पुत्र है। वाल्मीकि के ग्रंथ का यही सत्यार्थ है। यह नल नामक, अग्नि के समान तेजस्वी वीर मानों आरक्त बालसूर्य के सदृश है। उसकी दस सहस्र सेना है। उसने श्रीराम की वन्दना की असंख्य वानरों को लेकर गवाक्ष आया था, उसने आगे आकर श्रीराम की वन्दना की बादलों के वर्ण का अत्यन्त भयंकर धूम्र नामक महावीर शत सहस्र सेना लेकर आया है, उसने श्रीराम को प्रणाम किया। पनस नामक भयंकर पर्वत सदृश विशाल महावीर ने अपने दशकोटि परिवार के साथ आकर श्रीराम को प्रणाम किया।"

सुग्रीव आगे बताने लगा– "मैंद और द्विविद-दोनों वीर अपने छह करोड और आठ करोड़ वीरों के परिवार सहित श्रीराम को प्रणाम करने के लिए आये हैं। गंधमादन महावीर साठकोटि वानर सैनिकों सहित तथा चन्द्रबिम्ब सदृश अत्यन्त तेजपूर्ण तार नामक वानर अपने साथ शतकोटि वानर वीरों को लेकर अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक यहाँ आया है। उसने श्रीराम के समक्ष आकर उनको वंदना की सुनील शोभा से विभूषित नीलवर्णी नील ऐसा प्रतीत होता है, मानों आकाश से नीली आभा छानकर उससे उसको बनाया गया है। वह श्रीराम को अत्यन्त प्रिय है तथा वह सेतु निर्माण के रचना-कौशल का ज्ञाता है। श्रीराम का उस पर बहुत प्रेम है। ऐसा नीलवर्णी नील, अपने साथ शतसहस्त्र कोटि सैन्य बल लेकर शीघ्र उपस्थित हुआ है सुग्रीव की सेना का सेनापति नील अत्यन्त शक्तिशाली है उसने विनयपूर्वक रघुनाथ की वंदना की यह दधिमुख और वह दुर्धर्ष दोनों ग्यारह करोड़ सैनिकों से युक्त सेना लेकर श्रीराम का अभिवादन कर खड़े हैं। तरु, तरल, कुमुद, कुमुदाक्ष, गज, शरभ, गवय, गवाक्ष, महाहनु इत्यादि प्रमुख वानर और उनकी असंख्य सैन्य शक्ति का निरीक्षण करें। यह तारा का पिता बालि- श्वसुर वानर वैद्यराज सुषेण अपने दस सहस्र वानर वीरों को लेकर पधारे हैं व श्रीराम को प्रणाम कर रहे हैं।"

जाम्बवत का ज्येष्ठ भ्राता नाम से धूम्र होते हुए भी अत्यन्त पराक्रमी है। वह अपनी भालुओं की सेना लेकर तत्परता से रामकार्य सम्पन्न करने के लिए आया है। जाम्बवत स्वयं भी बहत्तर करोड सबल सैन्य लेकर तत्काल दौड़ते हुए यहाँ पहुँचा है। जाम्बवंत नित्य राम का स्मरण करता है। इन भालुओं की राम-नाम की गुनगुनाहट दिन-रात चलती रहती है। राम-नाम की ध्वनि में सम्पूर्ण आकाश व्याप्त हो जाता है और पृथ्वी का जीवन भी पवित्र होता है। जाम्बवंत को देखकर श्रीराम और सौमित्र आनन्दित हुए। श्रीराम ने स्वयं जाम्बवंत से अपने कार्य की विजय के सम्बन्ध में प्रश्न किये। नाम के समीप नित्य-कीर्ति, नित्य शांति, विजय-वृत्ति और भवसागर से मुक्ति होती ही है- यह जानकर श्रीरघुनाथ जाम्बवंत को आप्त स्वकीय मानने लगे। जाम्ववंत से श्रीराम नित्य एकांत में अपनी विजय के सम्बन्ध में चर्चा करते थे। इस प्रकार श्रीराम ने वानरों की सम्पूर्ण सेना का निरीक्षण किया। तुरन्त वाद्यों की ध्वनि बजने लगी

अंगद-श्रीराम भेंट– तुरन्त रणवाद्य बजने लगे, ढोल इत्यादि स्फूर्तिदायक वाद्यों की ध्वनियाँ गूँजने लगीं शंख नाद सम्पूर्ण संसार में फैल गया। रण-भेरी की महाध्वनि गूँज उठी। युवराज अंगद का आगमन हुआ। एक ही समय में गुलेल की डोरियों की आवाज़ और ढालों की ध्वनियाँ सुनाई देने लगीं। रणवाद्यों और फुफकार की ध्वनियों से पर्वत गरज उठे। पद्म, महापद्म व शंख की असंख्य गणना में अंगद की शूर वानर सेना थी। फूलों सहित वृक्ष उखड़ने लगे। वानर सेना श्वेत पीत तथा केतकी के वर्ण की दिखाई देने लगी। शाल, ताल, कदली वृक्ष के पत्ते ध्वज के समान शोभायमान हो रहे थे। पलाश के आरक्त वर्णी फूल, अगस्त्य के सफेद फूल, कांचन वृक्ष के सफेद पीले फूलों ने सेना की शोभा बढ़ा दी थी। ऐसे सेनासभार के मध्य मनोहरी युवराज अंगद सुशोभित हो रहा था। उसके ऊपर रत्नजड़ित श्वेत छत्र था। स्वर्ण-दण्डों से युक्त चँवर उस पर डुलाया जा रहा था। वह रथ पर आरूढ़ था तथा उसके ध्वज पर मोतियों की झालरें लटक रही थीं। निरन्तर उसका जय जयकार हो रहा था। हैंकार थैंकार तथा जैंकार करते हुए और वृक्ष झेलने का चमत्कार करते हुए वानर कूद रहे थे। वानरवीर अत्यन्त सतर्क थे शाल, ताल शिला इत्यादि सहित युद्ध करने वाले महावीरों के होने हुए उनकी सेना तत्पर, सिद्ध और बद्ध थी, घरघराहट की ध्वनि करता हुआ रथ आगे बढ़ा। वानरसेना के वीर भी आगे बढ़े। वाद्यों का

गंभीर नाद तथा वानरों की गर्जना से युक्त भीषण सेना थी। वीर अंगद के अपनी सेना सहित आगमन के कारण उस प्रबल भीषण युद्ध के लिए पराक्रम का भी समावेश हुआ।

अंगद का आगमन होते ही श्रीराम प्रसन्न हुए। सुग्रीव एवं समस्त देवगण भी आनन्दित हुए। अंगद ने रथ से उतरकर श्रीराम के चरणों पर मस्तक रख वंदना की। श्रीराम ने भी उल्लसित हो अंगद को आलिंगन में ले लिया। अंगद का मुख चूमते हुए उसे पुनः भुजाओं में भर लिया। अंगद और राम दोनों सन्तुष्ट हुए अंगद ने सुग्रीव को प्रणाम किया। सुग्रीव ने भी सन्तुष्ट होकर अंगद को भुजाओं में भर लिया। यह देखकर श्रीराम प्रसन्न हुए। सुग्रीव द्वारा बालि का घात कराने का द्वेष-भाव अंगद के मन में न रहकर, इसके विपरीत 'श्रीराम ने मेरे पिता का उद्धार किया, जिसके लिए सुग्रीव कारणीभूत हुआ' ऐसी उसकी भावना हुई। बालि को शत जन्मों के चक्र से सुग्रीव ने मुक्त किया और श्रीराम के सुख की ध्वजा निःशंक रूप से बालि ने ही फहरायी। 'सुग्रीव के धर्म के कारण ही तत्त्वतः हमें श्रीरघुनाथ की प्राप्ति हुई। जिसके द्वारा परमार्थ की प्राप्ति होती है, वह मेरे पिता से भी बढ़कर है। उसने हम सभी का उद्धार किया है। सुग्रीव से बढ़कर सखा, पिता मेरे लिए कोई नहीं है। सुग्रीव ने वंश का उद्धार किया. वानरों के सुख के लिए ही उसका अवतार हुआ है।'– ऐसा कहकर अंगद ने पुनः सुग्रीव के चरणों की वंदना की। अंगद के वचन सुनकर सुग्रीव भाव विह्वल हो उठा। अंगद वंश को सुख देने वाला है। अंगद के कारण ही मुझे सुख की प्राप्ति हुई।'– यह कहकर सुग्रीव ने अंगद को भुजाओं में भर लिया। यह देखकर श्रीराम को सुख की अनुभूति हुई।

वानरों की लीलाएँ; हनुमान के सम्बन्ध में प्रश्न– अंगद की सेना तथा नल, नील इत्यादि प्रधानों ने श्रीराम का जय-जयकार किया। राम के समक्ष किसी ने फल रखा तो दूसरे ने उसे उठाकर छलाँग लगायी, तत्पश्चात् राम के समक्ष फल खाते हुए मुँह चिढ़ाता रहा। लक्ष्मण के आगे आँखें मिचकाते हुए कुछ वानर सामने आये। सुग्रीव को छकाते हुए वे वानर उछलकूद कर रहे थे। श्रीराम 'सीता-सीता' कहकर विलाप करते हुए मूर्च्छित हो गए थे परन्तु वानरों की विविध चेष्टाएँ देखकर राम हँसने लगे। सौमित्र तो उन वानर चेष्टाओं को देखकर हँसते-हँसते अचेत हो गए। वानरों का प्रचंड सैन्य सभार देखकर श्रीरामचन्द्र सुखी हुए। इतने में वायुपुत्र हनुमान ने आगे आकर श्रीराम को प्रणाम किया। सुग्रीव बोला– "सारी सेना एक तरफ रखने पर भी इस हनुमान की तुलना में उसकी योग्यता नहीं है। उसमें अत्यधिक बल है। सारी सेना उसके समक्ष दुर्बल सिद्ध होगी। इसने राहु का मुँह तोड़ दिया था। सूर्य भी इसके समक्ष थर-थर काँपता है।"

सुग्रीव के वचन सुनकर श्रीराम आश्चर्यचकित हुए। हनुमान महापराक्रमी है– यह श्रीराम को मालूम था। "सुग्रीव ! यह हनुमंत तुम्हारा प्रिय मित्र होते हुए भी तुम्हारे कार्य-सिद्धि के लिए इसने बालि का घात क्यों नहीं किया ? उस विषय में मुझे बताओ"। श्रीराम द्वारा सुग्रीव से यह प्रश्न करते ही उसी समय वहाँ अगस्त्य ऋषि आये। सभी वानरों को देखकर उन्होंने श्रीराम से भेंट की। पर्वकाल में स्नान के लिए वे पम्पासरोवर आये थे। वे अत्यन्त प्रसन्न मन से श्रीराम से मिलने के लिए आये। श्रीराम ने ऋषि का सम्मानपूर्वक अभिवादन किया। फिर उन्हें आसन पर बैठा कर श्रीराम ने पूछा– "सुग्रीव का सखा हनुमान इतना पराक्रमी होते हुए भी, उसने बालि का वध क्यों नहीं किया, मुझे विस्तारपूर्वक यह वृत्तान्त बतायें।" इस पर ऋषि बोले– "मुझे हनुमान के जन्म की कथा नारद ने सम्पूर्ण रूप से सुनाई थी, वही मैं अब तुम्हें बताता हूँ। ध्यानपूर्वक सुनो।

'हनुमान की बचपन की उड़ान, रविबिम्ब को ग्रसने के लिए जाना' वह पवित्र कथा अति रम्य और मनोरम है। इस कथा के स्वयं श्रीराम श्रोता और अगस्त्य ऋषि वक्ता थे।

अध्याय १०

[हनुमान की जन्म कथा]

श्रीराम ने अगस्त्य से पूछा था कि हनुमान सुग्रीव का सखा होते हुए और अद्‌भुत शक्तियों का स्वामी होते हुए भी उसने मित्र की मदद करने के लिए वालि का वध क्यों नहीं किया ? इस प्रश्न पर अगस्त्य, आरम्भ से हनुमान के जन्म की कथा बताने का आनन्द व्यक्त करते हुए हनुमान का आत्म सामर्थ्य तथा जन्म रहस्य बताने के लिए सिद्ध हुए।

अगस्त्य द्वारा हनुमान की जन्मकथा का वर्णन— राजा दशरथ ने पुत्र-कामेष्टि-यज्ञ किया। उस समय यज्ञ पुरुष ने थाली भर कर प्रसाद दिया। वसिष्ठ ने उस प्रसाद के तीन भाग कर तीनों रानियों को दिये। उसमें से कैकेयी का हिस्सा चील ले गई। वह शाप के कारण चील हुई। इस घटना को ध्यानपूर्वक सुनो। उसके पेट में यज्ञ का हिस्सा था। श्रीराम के लिए वह सहायक सिद्ध हो, इसके लिए ब्रह्मा ने उसे वानरी बना दिया। वही केसरी की अंजनी है। पेट में स्थित यज्ञभाग की वृद्धि होने के लिए स्वयं यज्ञ-पुरुष के प्राण ने उसमें प्रवेश किया। उस यज्ञभाग ने अत्यन्त बलशाली हनुमान के रूप में जन्म लिया। इसीलिए हनुमान को वायुसुत भी कहते हैं। उसी के साथ ही वानरी अंजनी का पुत्र होने के कारण वह वानर है। बचे हुए दो यज्ञभागों से तुम चारों का जन्म हुआ। हनुमान सम्पूर्ण एक भाग से जन्मा है, इसीलिए वह अत्यन्त प्रतापी और सबल है। अतः राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और हनुमान तुम सभी यज्ञभाग से जन्म लेने के कारण तुममें एकात्मता है। भिन्न दिखाई देने पर भी तुम सब अभिन्न हो " अगस्त्य का यह विवेचन सुनकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए, हनुमान स्वयं हर्षित हुए और सौमित्र को भी अतिआनन्द हुआ।"

फिर अगस्त्य बोले— "श्रीराम ! अब मैं तुम्हें इस हनुमान की, बाल्यावस्था में अद्‌भुत शक्ति के कारण कैसे प्रसिद्धि हुई, यह बताता हूँ। हनुमान को गर्भ में कछोटा आने से उसका ब्रह्मचर्य स्पष्ट हो गया। वह कछोटा केवल अंजनी माता और श्रीराम ही देख सकते थे। प्रत्यक्ष में अंजनी माता होते हुए भी उसे हनुमान का लिंगदर्शन नहीं हुआ फिर अन्य कोई कैसे देख सकता था। यह वानरराज पूर्ण ब्रह्मचारी है। इस हनुमान ने बाल सुलभ भाव से माता से पूछा— "मैं भूख लगने पर क्या खाऊँ ?" इस पर अंजनी माता बोली— "लाल फल देखकर वह खाना।" जन्म से ही हनुमान अग्नि के समान तेजस्वी और दैदीप्यमान था। वह बाल सूर्य के समान तेज पुंज दिखाई देता था। एक बार सूर्योदय से पहले हुनमान को शय्या पर सुलाकर अंजनी माता वन में फल लाने गयी। हनुमान बहुत भूख लगने व माता के समीप न होने के कारण रो रहा था। उतने में ही उसे बाल सूर्य का लाल गोला दिखाई दिया और उसे फल समझ कर मारुति उड़ चला। भूख की प्रबल पीड़ा और बालसूर्य सा गोल फल। इसी कारण वह फल खाने के लिए शीघ्र ही चपलतापूर्वक उड़ चला। हनुमान जैसी उड़ने की शक्ति गरुड़ में भी नहीं होती। वायु पुत्र की तीव्र गति मनोवृत्ति सदृश थी। बाल-सूर्य का भक्षण करने के लिए ऊपर की ओर जाते हुए

हनुमान को देखकर देवता और देवर्षि आश्चर्यचकित हुए। धैर्य, शौर्य, महावीर्य और शीघ्रगति से जाने का गाभीर्य देखकर परम उदार हनुमान का पराक्रम देवताओं के लिए अवर्णनीय था। हनुमान के सदृश शक्तिशाली तीनों लोकों में कोई नहीं है। वह बाल-सुलभ भावना से सूर्य का भक्षण करने के लिए शीघ्र गति से चला जा रहा था।"

"मन की गति को भी पीछे छोड़ते हुए हनुमान ऊपर ही ऊपर चला जा रहा था। वह घातक सूर्य किरणें पड़ने से अपना सर्वांग भस्म कर लेगा, यह ध्यान में आते ही उसका पिता वायु अपने पुत्र की रक्षा करने के लिए शीतल जलकणों को लेकर उसकी गर्मी शान्त करने अपने पुत्र के पीछे चला। वायु ने हनुमान को पकड़ने का प्रयत्न किया परन्तु वह उसके वश में नहीं हो सका और तीव्रगति से सूर्य को फल मानकर उसे खाने पहुँचा। हनुमान सूर्य के पास पहुँचा, उसी समय सूर्य को राहु का ग्रहण लगना था। अत: राहु ने सूर्य को ग्रस लिया। तब हनुमान को क्रोध आया, "मेरा मीठा ग्रास ले लेने वाला कौन मूर्ख यहाँ आया है?" यह कहते हुए हनुमान ने अपनी पूँछ की फटकार से राहु का मुँह तोड़ दिया। पूँछ की फटकार पड़ते ही राहु भयभीत हुआ। उसकी नाक एवं मुख से रक्त की धाराएँ बहने लगीं और वह थर थर काँपने लगा। अंतरिक्ष में थर-थर काँपते हुए गरगर चक्कर लगाते हुए राहु मूर्च्छित होने लगा। इतने में केतु ने दौड़ते हुए आकर राहु को सँभाला। राहु और केतु में अच्छी मैत्री थी, दोनों के देह में एकात्मता थी। केतु राहु की सहायता के लिए आया और उसने क्रोधपूर्वक हनुमान की ओर देखा। हनुमान ने केतु और राहु को एकसाथ देखकर क्रोध से घूँसा मारा। जिससे राहु और केतु वहाँ से भाग निकले और ग्रह चक्र में हाहाकार मच गया।"

राहु द्वारा उलाहना; इन्द्र हनुमान संग्राम– "सिंहिका पुत्र राहु को अन्य ग्रहों ने बताया कि– 'पुच्छकेतु तुम्हारी सहायतार्थ आया, वह भी वापस लौट गया। इन्द्र नियन्ता अधिकारी है अत: आप उसे बतायें।" तत्पश्चात् वानर के घावों से रक्तरंजित राहु तुरन्त इन्द्र के पास आया। राहु बोला "चन्द्र और सूर्य को ग्रहण लगाना मेरी जीवन-वृत्ति है। उसी के अनुसार आज ग्रहण-काल प्रारम्भ होते ही सूर्य को ग्रसने के लिए मैं गया था। उस समय मुझसे बलवान् एक पुच्छराहु वहाँ आया, उसने अपने वार से मुझे रक्तरंजित कर दिया और मैं चिल्लाते हुए आपके पास आया। आप सर्वाधिकारी, नियंता, देवाधिदेव हैं। मेरा कुछ भी अपराध न होते हुए आपने यह पुच्छ राहु भेजा ? उसने मुझे संत्रस्त कर दिया है। मुझसे बताये बिना आपने गुप्त रूप से मेरा घात कराया। अब मैं क्या करूँ, यह तत्वत: आपको ही मुझे बताना चाहिए। पुच्छ राहु ने वहाँ आकर सम्पूर्ण सूर्य को अपने वश में कर लिया और मुझे मारने के लिए भी आया। मैं अपनी व्यथा बताने आपके पास आया हूँ।"

"राहु के वचन सुनकर इन्द्रादि देव अत्यन्त आश्चर्यमग्न हुए। ग्रह चक्र को विपरीत करने वाला वह कौन है ? नया राहु कहाँ से आया ? इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने तथा नये राहु का निर्दलन करने के लिए देवताओं की सेना सहित इन्द्र स्वयं उस स्थान पर आया। सुसज्जित ऐरावत हाथी पर बैठकर हाथ में वज्र लेकर इन्द्र सपरिवार वहाँ आया। राहु को आगे बैठाकर इन्द्र ने उससे कहा "वह नया राहु, जिसने तुम्हें अपने बल से त्रस्त कर दिया, मुझे दिखाओ, मैं उसका संहार करूँगा।" राहु ने हनुमान को दिखाया लेकिन वह स्वयं थर-थर काँपते हुए ऐरावत के पीछे छिपा रहा और उसने दूर से ही इन्द्र को हनुमान दिखा दिया। इधर भूख से पीड़ित हनुमान सूर्य को खाने के लिए दौड़ा तब सूर्य थर-थर काँपने लगा। बहुत बड़ा अनर्थ उत्पन्न हो गया क्योंकि दिन के काम छोड़कर सूर्य भाग भी नहीं पा रहा

था। हनुमान का निवारण भी नहीं कर पा रहा था। अतः वह चिल्लाने लगा। वानर वीर हनुमान राहु को इन्द्र के समीप देखकर उसका वध करने के लिए दौड़ा। "मेरे भूख से पीड़ित होने पर मेरे भोजन के बीच इस राहु ने बाधा डाली और अब इन्द्र के बल पर मुझे खाने के लिए उसे लेकर आया है ?" ऐसा कहकर हनुमान सूर्य को खाने का विचार त्यागकर राहु को मारने के लिए दौड़ा। राहु इन्द्र को पुकारते हुए इन्द्र के पास जाने के लिए भागा। उसी समय वहाँ हनुमान कूद पड़ा। तब राहु आक्रोश करते हुए इन्द्र को बुलाने लगा "हे इन्द्र ! यह हनुमान मुझे मारना चाहता है। इस वानर ने मेरा अन्त समय ला दिया है।" इस प्रकार राहु का आक्रंदन सुनकर इन्द्र ने उसे अभयदान देते हुए कहा– "डरो मत थोड़ा धैर्य रखो। मैं उस हनुमान का वध करूँगा।"– इतना कहकर अमरपति इन्द्र ऐरावत को वेग से आगे ले गया।"

"हनुमान ऐरावत की ओर दौड़ा। उसने हाथों से हाथी को उठाना प्रारम्भ किया। उसने ऐरावत को पकड़कर उसके गंडस्थल पर पूँछ से फटकारा मारा, जिससे हाथी ज़ोर से चिंघाड़ा। वह भय से काँपने लगा। उसे लगा मानों पूँछ का नहीं वरन् वज्र का ही आघात हुआ है। तब वह पीछे घूमकर भागने लगा। इन्द्र ने उसे नियन्त्रित करने का बहुत प्रयत्न किया लेकिन ऐरावत युद्ध के लिए वापस नहीं आ रहा था वानर द्वारा पूँछ का वार करने से हाथी इतना भयभीत था कि इन्द्र को ही भयभीत कर दिया। इन्द्र देवताओं में सबसे बलवान् था। उसके द्वारा हनुमान को छेड़ने पर हनुमान ने इन्द्र का मुकुट उड़ा दिया। इन्द्र के केश बिखर गए हनुमान को बालबुद्धि को मुकुट का महत्त्व न समझ आने के कारण, उसने वह नहीं लिया। मरुद्गणों को मारकर उसने इन्द्र को भयभीत कर दिया। तब वानर द्वारा इन्द्र को संत्रस्त हुआ देखकर इन्द्र की सहायता के लिए यम दौड़कर आया। उसने अपने यमदण्ड से हनुमान पर आघात किया। उसके द्वारा दण्ड मारने पर हनुमान ने अपने शरीर को यम के ऊपर पटक दिया और थप्पड़ मारकर उसे मुँह के बल गिरा दिया। वानर वीर ने प्रचंड प्रहार कर अपने बल से यम को आहत कर दिया। जिस यम ने सम्पूर्ण संसार को त्रस्त किया है, उसको बल राशि हनुमान ने पीड़ित कर धूल में मिला दिया। यम अत्यन्त व्यथित हुआ। वरुण भय से भाग गया, कुबेर चरणों पर गिर पड़ा। सभी कपिराज के चरण पकड़कर उसकी शरण आये। हनुमान ने क्षणार्द्ध में ही सुरसेना भंग कर दी। सबको तितर-बितर कर दिया। देवताओं में भगदड़ मच गई। उसके वेग के समक्ष उन्हें कहाँ भागें, यह समझ में नहीं आ रहा था। वे एक दूसरे के पीछे छिपने लगे। देव संकट में घिर गए। तत्पश्चात् हनुमान, हाथी सहित इन्द्र को पटकने के लिए ऐरावत की पूँछ पकड़कर, उसे आकाश में घुमाने लगा। तब देव और ऋषि घबरा गए।"

"हनुमान का सामर्थ्य देखते हुए, वह इन्द्र को अवश्य धराशायी कर देगा, यह सोचकर संसार में हाहाकार मच गया। इतने में सुरपति इन्द्र ने कुशलतापूर्वक हनुमान पर वज्र से आघात किया। उस आघात से हनुमान मूर्च्छित होकर गिर पड़े। मेरु पर्वत के पठार पर हनुमान को पड़ा हुआ देखकर उसका पिता वायु तुरन्त वहाँ पहुँचा। उसने अपने पुत्र को उठाया। अपने भूखे पुत्र को इन्द्र द्वारा वज्र के आघात से मूर्च्छित कर देने पर वायु को क्रोध आया। वायु ने क्रोधित हो संसार के प्राण अपने वश में कर लिये, जिससे ब्रह्मादिक संकट से घिर गए। ऋषि और प्राणि-मात्र तड़पने लगे। वायु ने अन्तराल में ही प्राणों को अवरुद्ध कर लिया। प्राण और अपान स्तब्ध हो गए। सम्पूर्ण प्राणिमात्र को इस विरोध का अनुभव होने लगा। प्राणवायु के अवरुद्ध होने से प्राणिमात्र की नियमित गति रुक गई और वे अस्वस्थ होकर

तड़पने लगे। अतः यक्ष, राक्षस, देव, गंधर्व, सिद्ध, चारण, मानव सभी सत्यलोक में ब्रह्मदेव के पास जाकर उनकी वन्दना कर अपने प्राण अवरुद्ध होने का कष्ट बताने लगे। ब्रह्मदेव का भी पेट फूल गया। सभी संकट में पड़ गए।" ब्रह्मदेव ने फिर सबको बताया कि "इन्द्र ने वज्र के घाव से हनुमान को मूर्च्छित कर दिया। अतः पुत्र की अवस्था देखकर वायु क्रोधित है। पुत्र के दुःख के कारण उसने प्राणि-मात्र में निहित प्राणों को रोक लिया है। राहु का पक्ष लेते हुए अमरनाथ ने वज्र से आघात किया। हनुमान के मूर्च्छित होने के कारण वायु को क्रोध आ गया और उसने प्राणों को अवरुद्ध किया। वायु हनुमान को लेकर विलाप कर रहा था– 'मेरे शिशु को महामूढ़ इन्द्र ने मारा। मेरे पुत्र की मृत्यु हो गई तो मैं इन्द्रादि देवों का वध कर दूँगा। एक क्षण में सबको प्राण-विहीन कर दूँगा।' वायु की प्राणवृत्ति बिगड़ने से संसार में जीवन नष्ट हो जाएगा। पुत्र के कारण क्रोधित हो वायु ने प्रलय मचा दी और समस्त प्राणिमात्र संत्रस्त हो गए।"

"प्राण-वायु के कारण ही प्राणियों में सुख एवं हर्ष विद्यमान रहता है। उस प्राण-वायु के अभाव में वे दुःखी हो जाते हैं। उस प्राण-वायु के निकल जाने से संसार के प्राणी लकड़ी के सदृश बन जाते हैं। उस स्थिति में प्राणियों को देखकर उनका स्पर्श वर्ज्य मानकर, स्नान करते हैं। अतः प्राण-वायु के कारण ही पवित्रता और प्रेम का अस्तित्व होता है। प्राण चले जाने पर प्रिया भी प्रियकर का स्पर्श नहीं करती। पत्नी सबसे आप्त होती है, साथ में जीवन का उपभोग करती है परन्तु प्राण जाने पर वह भी पति को प्रेत मानने लगती है। प्राणवायु सभी को प्रिय है। वही अगर क्षुब्ध हो गया तो अनर्थ हो जाएगा। यह सोचकर वैकुंठनाथ से प्रार्थना कर हनुमान के प्राण बचाये जायें, यह तय हुआ। प्राण-वायु की पीड़ा से दुःखी होकर महादेव वायु को समझाने के लिए तुरन्त आकर बोले कि हनुमान को बचाना चाहिए। शिव इन्द्र और ब्रह्मदेव ने जनार्दन की प्रार्थना की और हनुमान को जीवन-दान देने की विनती करने उनके पास आये। ब्रह्मा, हरि, हर, स्वयं इन्द्र और देवगण तथा ऋषि और प्रजाजन वहाँ एकत्र हुए। वायु जहाँ हनुमान को लेकर बैठा शोक कर रहा था, सब वहाँ आये। ब्रह्मा, हरि एवं हर को देखकर, हनुमान को उठाकर वायु ने सद्भावनापूर्वक उनकी वन्दना की– "हे प्राणनाथ, एक पुत्र के वध के कारण समस्त संसार का संहार नहीं करना चाहिए।" वायु से यह विनती करते ही वायु क्रोधपूर्वक बोला– "मेरा हनुमान अगर जीवित नहीं बचा तो मैं इन्द्रादिकों का घात करूँगा।"

वायु को देवताओं का उत्तर; हनुमान को वरदान– "वायु के वचन सुनकर जनार्दन हँसने लगे। वे बोले - 'हनुमान पूर्ण भाग्यवान् है। उसे जन्म और मरण नहीं है। श्रीराम के भाग्य से दोगुना भाग्य लेकर हनुमान का जन्म हुआ है। उसे स्वप्न में भी मृत्यु नहीं है, वह चिरंजीव है।' जनार्दन द्वारा ये वरद् वचन सुनने पर महादेव ने वर दिया– 'सभी सावधानीपूर्वक सुनें। मेरे तीसरे नेत्र से निकली हुई अग्नि भी हनुमान को जला नहीं सकेगी तथा मेरा त्रिशूल उसका अंगभेद नहीं कर सकेगा।' विष्णु ने भी उसे वर दिया कि– 'गदा, बाण, चक्र इत्यादि उसके शरीर को छेद न सकेंगे। हनुमान अजरअमर होगा।' ब्रह्मदेव ने वर देते हुए कहा कि– 'इसे ब्रह्मदंड अथवा ब्रह्म-शाप बाधित नहीं करेगा। यह सब द्वन्द्वों से मुक्त रहेगा।' तत्पश्चात् स्वयं इन्द्र ने भी वर दिया– "मेरा वज्र इसकी हनु से लगने के कारण यह हनुमंत नाम से प्रसिद्ध होगा। मेरा वज्र इसकी कुछ भी हानि न कर सकेगा वह वज्रदेही होगा। वह सुरासुरों के वश में न हो सकेगा और इसकी तीनों लोकों में कीर्ति फैलेगी।' यह कहकर कौशिक ऋषि की तेजस्वी कमलमाला हनुमान के गले में पहनायी। वह माला कभी न सूखने वाली थी।"

"अन्य लोगों की तरह सूर्य ने भी आशीर्वाद दिया कि 'हनुमान जैसे जैसे बड़ा होगा, यह मेरी शक्ति की अपेक्षा अधिक सामर्थ्यवान् होगा और राक्षसों का संहार करेगा। अगर इसने ज्ञान प्राप्त करने की आकांक्षा की तो समस्त वेद शास्त्रों का ज्ञान मैं इसे दूँगा तथा उसे परमार्थी के रूप में प्रसिद्धि मिलेगी।' वरुण ने वर देते हुए कहा– 'हनुमान सौ वर्षों तक भी पानी में डूबा रहा तो भी उसकी मृत्यु नहीं होगी। पाश-बन्धन इसे बाँधेंगे नहीं।' यम ने कहा– 'मैं वर देता हूँ कि यह अत्यन्त सुखी होगा, यम का कालदंड भी इसका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा। व्याधि न होने से इसका आरोग्य अखण्ड रहेगा।' कुबेर ने वर देते हुए कहा- 'वर्षों तक युद्ध करने पर भी तुम्हें थकान नहीं होगी और तुम्हें अस्त्रों से हानि न पहुँचेगी।' विश्वकर्मा ने वर देते हुए कहा- 'मेरे द्वारा निर्मित शस्त्रों से युद्ध में हनुमान को तनिक भी बाधा नहीं पहुँचेगी तथा मेरा शिल्पशास्त्र का ज्ञान तुम्हें सम्पूर्ण रूप में प्राप्त होगा।' ऐसा कहकर उसने हनुमान को भुजाओं में भर लिया। जगद्गुरु ब्रह्मा सन्तुष्ट होकर वायु से बोले- "हनुमान तो स्वयं भाग्य की राशि है क्योंकि सभी देव उससे सन्तुष्ट हैं। धीर-वीर, महाशूर, अजेय, वज्र-शरीर से युक्त तथा शस्त्रसभार से बाधित न हो सकने वाला तुम्हारा पुत्र सद्भाग्यशाली है। यह भाग्यशाली हनुमान लंकानाथ को सन्त्रस्त कर, सीता को ढूँढ़कर रघुनाथ को सुखी करेगा। तुम्हारा यह महापराक्रमी पुत्र इन्द्रजित् से युद्ध कर, राक्षसों का मर्दन कर लंका को जलाकर भस्म कर देगा। परम भाग्यशाली हनुमान सीता से भेंट कर, उसे सुखी करेगा तथा उसके विषय में रघुनाथ को बताकर उन्हें भी सुखी करेगा। श्रीराम की सेना का अदम्य साहसी हनुमान, अपने सेवा-भाव के कारण श्रीराम का परम प्रिय बनेगा।" हनुमान की भविष्य में होने वाली ख्याति के विषय में प्रत्यक्ष ब्रह्मदेव से सुनकर, वायु का मन पुत्र की कीर्ति सुनकर प्रसन्न हुआ।

वायु का आनन्द, मारुति की बाल-क्रीड़ाएँ तथा शाप– "हनुमान को अनेक वर मिलने से वायु प्रसन्न हुआ और उसने प्राण वायु को मुक्त कर दिया, जिससे सब आनन्दित हुए। देवता, ऋषि और चराचर प्रसन्न हुए। उन्होंने जय जयकार कर त्रिभुवन को गुंजायमान कर दिया हनुमान को वर देकर सभी देव अपने-अपने स्थान को वापस लौट गये। वायु ने हनुमान को लाकर अंजनी को सौंप दिया. हनुमान की बाल-कीर्ति तीनों लोकों में फैल गई। फल समझ कर बाल सूर्य को ही लेने दौड़ा, जिससे देवताओं ने भी उसकी कीर्ति को स्वीकार किया। हनुमान का स्वयंसिद्ध सामर्थ्य और देवताओं द्वारा दिये गए वरदान के कारण श्रीराम हनुमान के सामर्थ्य और यश से प्रसन्न तथा सन्तुष्ट हुए। श्रीराम के सामर्थ्य और हनुमान की शक्ति की मर्यादा में एकात्मता थी। लोक-व्यवहार में वे मात्र देव और भक्त के रूप में पहचाने गए। श्रीराम भगवान् और हनुमान भक्त हैं, यह भेद लोगों की दृष्टि तक ही सीमित था। श्रीराम और हनुमान का देव-भक्त का नाता लोक दृष्टि से था। जिस प्रकार पहाड़ों में दावानल की ख्याति होती है, घर के दीपक की एक सीमित प्रकाश तेजस्विता होती है, उसी प्रकार श्रीराम और हनुमान की स्थिति थी."

हनुमान जब माता के समीप थे तभी उनमें अद्भुत शक्ति थी। उस समय उनकी बाल सुलभ [illegible]नियां के कारण ऋषियों ने उन्हें हितकारी शाप दिया था। गंगा तट पर ऋषियों का निवास-स्थल था। हनुमान ने वहाँ से ऋषियों के सभी आश्रम हाथों से उठाकर दूर पर्वत पर ले जाकर रख दिए। वहाँ ऋषियों को स्नान तथा पीने का पानी उपलब्ध नहीं था. वे अपने तप सामर्थ्य से पुनः गंगा के किनारे [illegible] हनुमान ने उन्हें पुनः दूर पर्वत पर ले जाकर रख दिया। पुण्य पर्वत पर ऋषियों के अपना निवास [illegible] हनुमान ने वह पर्वत ही हाथ से उठाकर दूर उजाड़ जंगल में रख दिया। ऋषियों को जल और

फल न मिलने से वे तड़पते रहे अपनी बालसुलभ क्रीडाओं से हनुमान ऋषियों के यज्ञ पात्र तोड़ डालता था। दर्भासन मृगचर्म, फाड़ देता था। ब्राह्मणों के जनेऊ तोड़ देता था। छोटे ब्रह्मचारी बटुओं को अपनी पूँछ में लपेट कर स्वयं हनुमान आकाश में उड़ान भरता था। उस समय वे बटु भयभीत हो जाते थे और ऋषि पत्नियाँ व्याकुल हो जाती थीं। मारुति मात्र हाथों के वार से हाथियों को मारकर उनके शव आश्रम में डाल देता था। उन भारी शवों को निकालने में मेरा शिष्यवर्ग परेशान हो जाता था लेकिन कोई उपाय नहीं सूझ रहा था ब्रह्मा के वर के कारण हनुमान को कोई शाप प्रभावित नहीं कर पाता था अतः सब ब्रह्मा के पास आकर इसका उपाय पूछने लगे। ब्रह्मा उनसे बोले "उसे ऐसा शाप दो, जो उसके हित में हो। हनुमान के श्रीराम से मिलने तक उसकी शक्ति लीन रहेगी। जिस प्रकार यौवन का सौभाग्य प्राप्त होने पर कोई कुमारी कन्या गुप्तता बनाये रखती है। उसी प्रकार इसका सामर्थ्य इसमें ही समाहित रहेगा। फिर जिस प्रकार तारुण्य के आगमन से स्त्री का यौवन प्रस्फुटित होता है उसी प्रकार रघुनाथ से भेंट होने पर इसका सामर्थ्य क्रियाशील होगा।" ऋषिवर्यों द्वारा इस प्रकार का शाप दिलाये जाने पर हनुमान की शक्ति विलीन हो गई। फिर वह ऋषियों के समक्ष नम्रतापूर्वक व्यवहार करने लगा।"

द्रव्यमद, तारुण्यमद और शारीरिक बल के कारण शक्तिमद से युक्त होकर पुरुष अभिमानी हो जाता है और निरंकुश हो जाता है। व्यापार अच्छा चलने पर व्यापारी नाना प्रकार के कर्म करता है परन्तु निराधार होने पर पाप एवं पुण्य का विचार करने लगता है। संध्या-वंदन, स्नान दान, आत्म-ज्ञान इन सबको निरर्थक मानने वाले मनुष्य को, अधिकार क्षीण होने हुए विवेक सूझने लगता है। वैसा ही हनुमान का हुआ। उसका बल निस्तेज होने के कारण अब वह परमार्थ-प्राप्ति, साधु सन्तों की सेवा इत्यादि का विचार करने लगा पहले उसे सूर्य का वरदान था कि जब उसे इच्छा होती थी तब सूर्य प्रसन्न होकर उसे ज्ञान सम्पन्न करता था। उस ज्ञान की मारुति ने इच्छा की, उसी के साथ अन्तराल से ज्ञान-सूर्य प्रकट हुआ। ज्ञान विज्ञान से तन्मयता आयी और श्रीराम के चरणों में 'देह में विदेहता' का आगमन हुआ ज्ञान-विज्ञान की परिपूर्णता, देह में विदेहता तथा श्रीराम की भक्ति के कारण हनुमान जग में वन्दनीय हुआ वालि और सुग्रीव में कलह के समय शाप के कारण हनुमान की शक्ति गुप्त थी। इसीलिए उसने बालि का वध नहीं किया। हे श्रीराम, इस सत्य को आप जान लें। हनुमान सुग्रीव का आप्त स्वकीय होते हुए भी शक्तियों के गुप्त होने के कारण बालि का वध न कर सका। हे श्रीराम, यही सत्य है।" इस प्रकार हनुमान की कीर्ति सुनकर श्रीराम प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् श्रीराम से पूछकर अगस्त्य ऋषि अपने आश्रम की ओर गये। श्रीराम ने प्रसन्न होकर हनुमान को आलिंगनबद्ध करते हुए कहा- "यह मुझे सीता को ढूँढ़ने एवं युद्ध में सहायक होगा।"

अध्याय ११

[सीता को ढूँढ़ने के लिए श्रीराम की अनुमति]

श्रीराम सम्पूर्ण वानर सेना और अत्यन्त पराक्रमी हनुमान को देखकर प्रसन्न हुए। फिर सुग्रीव ने श्रीराम की वन्दना करते हुए कहा- "यह कड़कती हुई वानर सेना वेग से वैकुंठ में प्रवेश कर सकती है। कैलास पर्वत अथवा मेरु पर्वत की पीठ पर धावा बोल सकती है हम वानरवीर पाताल में प्रवेश

कर करोड़ों दानवों को मारेंगे अथवा दैत्यों के समूहों को नष्ट करेंगे। गंधर्वगण, किन्नर, सुरवर, राक्षस, यक्ष, नर इत्यादि का वानरवीर निर्दलन करेंगे। चराचर को हिला कर रख देंगे। तीनों लोकों के पार भी अचानक घेराबंदी कर ये वानर नियत कार्य को सम्पन्न करेंगे। अत: हे रघुपति, आप उन्हें शीघ्र आज्ञा दें।" सुग्रीव के वचन सुन प्रसन्न हो श्रीराम, अपने आजानुबाहु फैलाकर सुग्रीव को आलिंगनबद्ध कर बोले– "हे कपिराज ! अब सीता की खोज करें और रावण के निवास स्थल को भी ढूँढ़ें।"

श्रीराम द्वारा आज्ञा करते ही सुग्रीव ने उनके चरणों पर मस्तक रखा और प्रसन्न होकर वानरों को आज्ञा सुनाई। विनतनामा नामक महावीर को शतसहस्र सेना देकर शीघ्र ही सीता की खोज के लिए पूर्व की ओर भेजा। फिर तारा के पिता सुषेण की चरण वंदना कर कहा– "आप सीता के शोध के लिए जाकर सम्पूर्ण पश्चिम दिशा ढूँढ़ें। आप मेरे लिए पितृतुल्य श्वसुर होने के कारण आदरणीय हैं, अत: मेरा दु:ख पूरी तरह समझते हैं। आप जन-विजन में सावधानीपूर्वक सीता को ढूँढ़ें। समस्त राष्ट्र, पुर, पाटण, नगर, ग्राम, गुहा, गिरिकंदराओं व शिखरों में सर्वत्र उनकी खोज करें।" तत्पश्चात् सुग्रीव ने शतबली नामक वानरों में श्रेष्ठ महावीर को शतकोटि सेना संभार देकर उत्तर दिशा में ढूँढ़ने के लिए भेजा। "आप मुख्य रूप से रावण का निवास स्थान ढूँढ़ें तथा रघुनन्दन के सुख के लिए सीता का भी शोध करें। गाँव, शहर, नगर, पर्वत, शिखर, प्रवाह, गिरि गुहा, विवरों, कंदराओं, पर्वतों व पठारों में ढूँढ़ें।" तत्पश्चात्, आग्नेय, वायव्य, ईशान, नैऋत्य दिशाओं में किसे किसे भेजा, ये सावधानीपूर्वक सुनें। पद्म, पद्माक्ष, कुमुद, कुमुदाक्ष ये चारों अति दक्ष वीर थे। उनका सुग्रीव ने सम्मान किया। एक-एक कोटि सेना देकर उन चारों को चारों दिशाओं में भेजा। उन्हें बताया गया कि वे रावण का वध करें तथा सीता की खोज करें। रावण अगर नहीं मिला तो सीता का पता ढूँढ़कर तुरन्त लायें। तत्पश्चात् मैं रावण का वध कर श्रीराम की पत्नी लेकर आऊँगा। चारों ने अपना पराक्रम बताते हुए कहा "रावण बेचारा क्षुद्र कीटक सदृश है, उसे देखते ही एक बार में वार कर उसका वध कर देंगे और सीता को कंधे पर बैठाकर नाचते हुए आयेंगे, हे कपिराज, हम यह सच कह रहे हैं कि हम श्रीरघुनाथ को अवश्य सुखी करेंगे।" तार और सुमन को एककोटि सेना देकर पाताल में ढूँढ़ने के लिए भेजा। वे दोनों वानरों में प्रबल वीरों में से थे

उन्हें यह बताया गया कि वे अतल, वितल, सुतल, रसातल, महातल, तलातल और पाताल– इन सातों में खोज करें " पातालों में ढूँढ़ने की पद्धति मैं बताऊँगा उसके अनुसार ढूँढ़ें। सावधानीपूर्वक सुनें। पाताल लोक में कहाँ कौन रहता है, वह मैं बताता हूँ। सीता को उसी प्रकार ढूँढ़ें अतल में मयपुत्र बल रहता है। वह नामानुसार ही प्रतापवान् बलवान् है। उसका मन्त्री दैत्यबल अत्यन्त भयंकर व रणक्रंदन करने वाला है। वहाँ रावण को ढूँढ़ते समय दैत्यगण अगर बीच में आये तो रावण सहित उनका भी मर्दन कर आप सीता को ले आयें। वितल में हाटकेश्वर रहता है। वह उमाकांत कर्पूरगौर है। वहाँ हाटक नदी है जिसमें स्वर्ण संभार प्रवाहित होता है। रावण शिव का भक्त होने के कारण, वहाँ मिलने की अधिक सम्भावना है। वह अगर वहाँ मिला तो उसका वध कर सीता को ले आयें। सुतल में महावैष्णव बलि का निवास है। उसका द्वारपाल (वामन) वनमाली है। प्रह्लाद उसके पास वैष्णव कुल में रहता है। वहाँ [illegible] व रावण को ढूँढ़कर रावण के मिलते ही उसे मारकर सीता को लायें शिव शंकर ने त्रिपुर का वध करने के पश्चात् मयासुर को रसातल में स्थापित किया। अब वह महावीर सपरिवार वहाँ रहता है, वह रावण का सम्बन्धी है। वहाँ अगर सीता के साथ रावण होगा तो उसका वध कर सीता को ले आयें। महातल में कद्रुपुत्र विषधारी क्रोधी सर्प रहते हैं, वहाँ रावण को ढूँढ़ें तथा दिखाई देते ही उसे मारकर

सीता को लाकर श्रीराम को सुख व सन्तोष प्रदान करें। तलातल में फणी नामक दानव राज है। उनके जो कवचधारी सभी वीर हैं वे इन्द्र के शत्रु हैं। दनु से जन्मे दानव समूह टवटालक नाम से प्रसिद्ध है तथा संख्या में असंख्य हैं। वे इन्द्र के शत्रु हैं। वहाँ रावण मिलने पर उसका वध करते समय अगर राक्षस बीच में आयें तो उनका भी वध करें। दानव अगर असख्य होंगे तो तुम वानर भी करोड़ों की संख्या में हो। अत: राम कार्य का लक्ष्य आँखों के समक्ष रखकर उनका नाश करें रण-भूमि में निर्णायक युद्ध करते हुए दानवों का नाश करें फिर रावण को मारकर सीता को ले आयें। सातवें पाताल में शत और सहस्र फनों से युक्त महानाग हैं। उनमें वासुकी प्रमुख होकर अन्य भी अनेक मुख्य नाग हैं। वे सब पद्मिनी का उपभोग करने में मग्न होते हैं। स्वर्ग की उर्वशी, रंभा इत्यादि सुन्दर अप्सराओं के समान ही, पाताल लोक की ये पद्मिनी स्त्रियाँ होती हैं। उनमें कुछ तो अत्यधिक सुन्दर होती हैं, उनकी चराचर में चर्चा होती है। वहाँ अत्यन्त सावधानीपूर्वक स्वयं लंकानाथ को ढूँढ़कर मिलते ही उसका वध कर शीघ्र सीता को ले आयें।" इस प्रकार सुग्रीव ने वानरवीरों को बताया।

सुग्रीव आगे बताने लगा कि 'उसके तल में तीन सौ योजन पर सहस्र शिरों वाला शेषनाग है, उसके शरीर का भोग करते हुए श्रीरंग उस पर निद्रा करते हैं। वहाँ जानकी व दश शिरों से युक्त रावण को ढूँढ़ें। मिलते ही रावण का वध कर सीता को ले आयें। वहाँ ढूँढ़ने के पश्चात् वानर तुरन्त वापस लौट आयें और आगे जाने पर भयंकर स्थिति में फँस जाएँगे क्योंकि वहाँ नीचे तल में अंधकारयुक्त महानरक है। उसके नीचे कुर्म है, जहाँ आवरणोदक है। पापी नर नरक में जाते हैं। आप वह मार्ग छोड़कर रामनाम का स्मरण करते हुए उनकी भक्ति करें। जिन्हें स्वर्ग भोग अच्छा नहीं लगता, जो भोग की इच्छा रखकर पुण्य करते हैं, वे जीव पातालवासी होकर अपने भोगों का उपभोग करते हैं। जिन्होंने तिलमात्र भी पुण्य नहीं किया है और जो मात्र पापाचारी हैं वे नरक में पड़कर जलते रहते हैं पापों के कारण वे पापाचारी होते हैं। अगर आप रावण को वश में न कर पायें तो शीघ्र आकर उसकी जानकारी मुझे दें। मैं उसका वध करूँगा।" सुग्रीव के वचन सुनकर वानर आवेशपूर्वक बोले- "रावण मात्र दशमुख वाले कीटक सदृश है। उसे बाँधकर सीता सहित निश्चय ही श्रीराम के समक्ष ले आयेंगे।" सुग्रीव ने पाताल लोक ढूँढ़ने की पद्धति व्यवस्थित रूप से बतायी। तत्पश्चात् उसने तार वानर को स्वर्ग की ओर भेजा। उससे सम्बन्धित व्यवस्था सुनें।

सुग्रीव ने तार वानर को जो तेज-राशि था, उसके साथ शतकोटि सेना देकर उसे स्वर्ग की ओर भेजकर सीता की खोज करने के लिए कहा। सुग्रीव तार वानर से बोला - "स्वर्ग में सीता को कैसे ढूँढ़ना है यह मैं तुम्हें बताता हूँ। सावधानीपूर्वक अपने बल पर उसे ढूँढ़ें। पृथ्वी के ऊपर सूर्य मंडल के नीचे, जहाँ यक्ष, रक्ष, गधर्व रहते हैं, वहाँ सीता को ढूँढ़ें। स्वर्ग लोक अनेक हैं। उनके विषय में मैं संक्षेप में बताता हूँ। आप उन स्थानो पर सीता को ढूँढ़ें। सूर्य लोक लक्षांतर पर स्थित है। उससे लक्षयोजन की दूरी पर चन्द्र लोक है, उसके ऊपर स्थित तारा लोक उससे भी लक्षयोजन दूर है। तारा लोक के ऊपर लक्षांतर पर बुधलोक, उसके ऊपर दो लक्षांतर पर भृगु लोक है। दैत्यों का गुरु भृगुपति है। भृगुपति शुक्र और रावण के अत्यन्त प्रेमपूर्ण सम्बन्ध है। वहाँ निश्चित रूप से रावण सीता के साथ होगा। वहाँ सीता दिखाई देते ही तुम लोग बलपूर्वक गर्जना करते हुए अगर उसे लाने का प्रयत्न करोगे तो शुक्र रुकावट पैदा करेगा अत: उसके सम्बन्ध में सुनो। उस ब्राह्मण को न मारें। श्री वामन ने उसकी एक आँख फोड़कर उसे काना बना दिया है, उसकी दूसरी आँख फोड़कर रामपत्नी को ले आयें। वहाँ अगर सीता नहीं होगी

तो तुरन्त शुक्रलोक के दो लक्ष योजन ऊपर भौम लोक में जायें। भौम लोक के ऊपर दो लक्ष योजन के अन्तर पर देवगुरु का निवास है। देवताओं को वे पूजनीय हैं। उस स्थान से दो लक्ष योजन ऊपर सूर्यपुत्र शनि और उससे लक्ष योजन के अन्तर पर सप्तऋषि हैं, वहाँ अरुंधती होगी। उससे सीता के विषय में पूछें। वे श्रीराम के लिए, जो सत्य और उचित होगा, वही बतायेंगी। उससे दस लाख योजन की दूरी पर अमरावती है। वहाँ देवताओं का राजा इन्द्र स्वर्ग सम्पत्ति के साथ निवास करता है। उस स्थान पर सीता रूपी रत्न को ढूँढ़ें। चैत्र रथ गंधर्वों का नन्दन वन, कल्पतरुओं का उद्यान सभी जगह स्वयं ढूँढ़कर देखें।"

"उसके आगे सम्पूर्ण त्रैलोक्य अर्थात् स्वर्ग, मृत्यु और पाताल लोक के ऊपर भी सीता को ढूँढ़ने का एक स्थान है। वह है कैलास पर्वत के पठार पर स्थित कुबेर की अलका नगरी। वहाँ सुगन्धित स्वर्ण कमल सजीव सरोवर में विकसित होते हुए, जिसकी सुगंधि से स्वयं ब्रह्म भी स्तब्ध होते हैं। ऐसे स्थलों पर श्रीराम की पत्नी को ढूँढ़ें। कुबेर रावण का बड़ा भाई है। तीनों लोकों से ऊपर जा पाने की रावण में शक्ति न होते हुए भी सीता साथ में होने के कारण रावण को वह गति प्राप्त होगी क्योंकि 'सीता के हरण के प्रसंग के साथ ही राक्षसों को ऊपर जाने की शक्ति प्राप्त होगी'- ऐसा अनेक ग्रंथों में कहा गया है। इन वचनों का सत्य और मर्म सात्विकों की समझ में आ सकता है। तीनों लोकों के आगे भक्त कृपालु श्रीहरि की कृपा से लक्ष योजन की दूरी पर ध्रुवलोक का निर्माण हुआ है। तीनों लोकों में प्रलय आने पर भी ध्रुवलोक कभी भी उससे बाधित नहीं होता है। वह नित्य ध्रुवपद सदृश अचल और अडिग रहता है। ध्रुव एक शूर और वीर भगवद्भक्त है। अगर उसने सीता का आक्रंदन सुना तो वह रावण के दाँत तोड़कर उसे परास्त कर सीता को निश्चित रूप से मुक्त करायेगा। ध्रुव सीता को माता मानकर विचलित हुए बिना उसका प्रतिपालन करेगा। रघुनाथ को सुख प्रदान करने के लिए उसे भी पूँछें। वहाँ पर भी अगर जानकी का पता नहीं चला तो उससे भी अधिक प्रबल स्थान है जिसके विषय में मैं अब बताता हूँ। आप निश्चल रूप से सुनें। वहाँ जाने के लिए मात्र एक ही गति है। मन में स्थित विकल्पों को त्यागकर ही महावीरों को उस स्थान की प्राप्ति होती है, यह निश्चित है।"

"पृथ्वी से कोटि योजन दूर यह महर्लोक है। वहाँ कल्पायु-जन निवास करते हैं, यह उनका निवास स्थान है। वहाँ सीता को ढूँढ़ें। उसके भी ऊपर कोटि योजनों की दूरी पर जनलोक है, वहाँ ऊर्ध्वरेते योगी, सनकादिक रहते हैं। उनसे सीता के सम्बन्ध में अवश्य पूछें, जिससे वे उचित रीति से बतायेंगे। वहाँ से आगे दो करोड़ योजन की दूरी पर तपोलोक स्थित है। वहाँ पर निवास करने वाले तपस्वी अत्यन्त शान्तवृत्ति के हैं। प्रदीर्घतप से जो तापसी कर्कश, क्रोधी और छोटे-छोटे कारणों से शाप देने वाले होते हैं, वैसे वे नहीं है। वे अत्यन्त शान्त, उपकार के लिए तप करने वाले, सब दीन दुखियों को तारने वाले, भक्ति भावना से भगवान् की उपासना करने वाले हैं। वे दीनों के उद्धार के लिए पूर्ण रूपेण कर्म करने वाले हैं। उन्हें नमन कर सीता के सम्बन्ध में पूछें। आगे ब्रह्मभुवन है, वहाँ खोज करें। तपलोक से चार कोटि ऊपर सत्यलोक है। वहाँ चतुर्मुख ब्रह्मा स्वामी का निवास है। जो ब्रह्मा स्वयं सृष्टि का निर्माण करते हैं। हे वानर श्रेष्ठ, उस लोक की महिमा सुनो। उस स्थान को अन्य किसी को उपमा नहीं दी जा सकती। वहाँ मूर्तिमंत वेद, धर्म, ब्रह्मचर्य, तप इत्यादि का शुद्ध स्वरूप में ज्ञान दिया जाता है। जो गायत्री वेद बीज अत्यन्त गुप्त रूप में होता है, वह यहाँ मूर्तिमान रूप में विद्यमान रहता है। वहाँ वाणी, दया और तीनों यज्ञ मूर्तिमान होकर रहते हैं। मिलजुल कर निवास करते हैं। सत्यलोक ऐसा होता है, जहाँ असत्य का

अस्तित्व ही नहीं होता। वहाँ गायत्री मन्त्र का जाप करने वाले तीर्थोपासक, ब्राह्मण, निष्कामरूप से यज्ञोपासना करने वाले लोग रहते हैं। ब्राह्मणों के हितकार्यार्थ जिन्होंने प्राण दिये, गो रक्षा एवं परोपकारार्थ जिन्होंने अपने प्राण न्योछावर किये, उन्हें सत्यलोक में स्थान प्राप्त हुआ। जिन्होंने निष्काम ही द्विजों की पूजा की, उन्हें भोजन दिया, निरपेक्ष रूप से जिन्होंने यज्ञ किये उन्हें सत्यलोक प्राप्त हुआ जो कृपालु, दीनोद्धारक, दयालु, बंध-विमोचक, सत्यवादी एवं सात्विक हैं, वही सत्यलोक में रहते हैं लोगों की निन्दा करने के सम्बन्ध में जो मूक हैं, परस्त्री के लिए नपुंसक हैं और जिन्हें दूसरों की धन-सम्पत्ति में अरुचि है, वही सत्यलोक में निवास करते हैं, उस सत्यलोक की स्थिति इस प्रकार है तथा ब्रह्मा वहाँ के अधिपति हैं इसके ऊपर निश्चित रूप से ब्रह्म सृष्टि नहीं है। हे महावीर वानर श्रेष्ठ, रावण पुलस्त्य-पुत्र होने के नाते ब्रह्मा का पोता है- अतः वह सीता के साथ सत्यलोक में निवास कर रहा होगा।"

सुग्रीव बोला-- "इन्द्रावर सरोवर अथवा सामसोमवनवृक्ष की क्या महानता है और वह स्थान चराचर में अनुपम क्यों है, यह सुनो। इन्द्रावर सरोवर में स्नान करने से सभी रसों का माधुर्य सम्पूर्ण शरीर को प्राप्त होता है उसके समक्ष अमृत पान भी फीका है। वहाँ सौभाग्य से स्नान करने का अवसर अगर प्राप्त हो गया तो अगाध माधुर्य की प्राप्ति होगी। अतः सीता सहित रावण अगर वहाँ होगा तो उसे अवश्य ढूँढें। सामसोमवृक्ष की छाया में बैठने पर विश्रांति की प्राप्ति होती है ? सुषुप्तिसुख वहाँ की दासी है और स्वर्ग-सुख उस पर न्योछावर हैं, उसकी आरती उतारते हैं। उस छाया के सुख की प्राप्ति के लिए करोड़ों लोग पुण्य संपादन करते हैं फिर भी उस छाया की प्राप्ति नहीं होती। यह समझ से परे अगम्य है। कठिनाई से पुण्य सम्पादन कर बेचारे प्राणी सत्यलोक में आते हैं। उन्हें भी इस माधुर्य की प्राप्ति नहीं होती उसके लिए पुण्य का संचय दुर्लभ है। जिस प्रकार जमाता के साथ घोड़ा आने पर, उसे भी दानापानी दिया जाता है लेकिन उसे पकवान नहीं प्राप्त होता, वैसे ही साधक के साथ होता है। सत्य की खोज करते-करते, असंख्य पुण्य करने के पश्चात् ही मनुष्य उस अवस्था को प्राप्त होता है। यहाँ की मधुरता अथाह है उस स्थान पर जिस सन्तोष की प्राप्ति होती है वह समाधि-सुख के समान है। भगवद्भजन न करने पर भी वहाँ से पुनरागमन का चक्र नहीं है। भगवद्भजन करने पर चारों प्रकार की मुक्तियाँ दासी हो जाती हैं। श्रीरामनाम को छोड़कर कोई साधना शक्ति होती ही नहीं है। वे अभागी जन ही होते हैं, जो श्रीरामनाम छोड़कर तरह-तरह की साधनाएँ करते रहते हैं और फिर जन्म-मृत्यु के चक्र से उनकी मुक्ति होती ही नहीं है। नाम से साधना शक्ति होती है। नाम स्मरण से अनायास ही भक्ति होती है वेद शास्त्रों के अनुसार भक्ति के पास निश्चित रूप से चारों मुक्तियाँ रहती हैं श्रीरामनाम का स्मरण करने से मुख्य रूप से भक्ति होती है- यह संत स्वयं जानते हैं। यह बताने की आवश्यकता नहीं है अतः सामसोमवृक्ष में जानकी सहित महाबली रावण को ढूँढें।"

सुग्रीव ने आगे बताया कि-- 'वहाँ भी रावण के न होने पर उसे कैलास में ढूँढें क्योंकि वह शिवभक्ति करने वाला है अतः शिवलोक में उसे ढूँढें, अगर तुम लोगों में शिवलोक में जाने की शक्ति नहीं है तो राम-नाम का बार-बार स्मरण करने से उसे दोहराने से शिवलोक सुलभ रूप से प्राप्त होता है शिव पूर्णतः श्रीराम के भक्त हैं। श्रीरामनाम स्मरण सुनकर वे स्वयं समक्ष आ खड़े होंगे। वे राम-नाम का सम्मान करने वाले हैं। राम-नाम का अहोरात्र स्मरण करें क्योंकि शिव, राम का सम्मान करते हैं अतः इसी कारण श्रीराम नाम शिवलोक में जाने का सुलभ साधन है। वैकुंठ अथवा कैलास का मर्म वेदों एवं शास्त्रों को भी अगम्य है। सीता को ढूँढ़ने के सम्बन्ध में क्या करना चाहिए, वह मैं बताता हूँ। सात

आवरणों के बाहर माया के आवरण में वैकुंठ एवं कैलास की महानता निहित है। यह भगवान् स्वयं करते हैं। ब्रह्म सृष्टि में प्रलय होती है। वैकुंठ, कैलास अथवा क्षीरसागर इन तीनों में प्रलय नहीं होता- ऐसा याज्ञवल्क्य ऋषि ने बताया है। अतः यह तीनों प्रलय रहित हैं, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता क्योंकि अत्यन्त भीषण प्रलय होने पर वहाँ भी प्रलय होता है। ऐसे कितने प्रलय होते हैं ? यह प्रश्न अगर आपके मन में होगा तो उसका भी उत्तर देता हूँ, साधु-वृत्ति से सुनें। पहला नित्य-प्रलय, दूसरा मरण-प्रलय, तीसरा दैनंदिन-प्रलय, चौथा ब्रह्म-प्रलय, पाँचवाँ प्रलय आत्यंतिक-प्रलय है। लोग इससे अवगत नहीं हैं। उन पाँचों के विषय में मैं स्पष्ट करके बताता हूँ।"

"नित्य-प्रलय का तात्पर्य है गहन निद्रा अथवा सुषुप्तावस्था। मृत्योपरान्त मरण-प्रलय, ब्रह्मा का दिनान्त अर्थात् दैनन्दिन-महाप्रलय। सप्तावरण जीर्ण होकर सम्पूर्ण ब्रह्मांड जीर्ण होता है तब सृष्टिकर्ता (हिरण्यगर्भ) स्वयं मृत्यु को प्राप्त होता है, वह ब्रह्म-प्रलय कहलाता है। इस प्रकार ये चार प्रलय हैं। आत्यंतिक-प्रलय लोगों को दिखाई नहीं देता, वह ब्रह्मज्ञान में समाहित होकर गुरुवाक्य द्वारा ही प्रकाशित होता है। गुरु के वचन एवं दृष्टि का लाभ प्राप्त होते ही छोटे-बड़े का भेद समूल नष्ट हो जाता है। फिर देव और सृष्टि में अंतर नहीं रहता। जीव और शिव एक रूप होते हैं। ज्ञेय-ज्ञाता- ज्ञान, ध्येय-ध्याता- ध्यान, दृश्य-दृष्टा-दर्शन, इन त्रिगुण त्रिपुटियों का निर्दलन होता है। ब्रह्म परिपूर्ण रूप से पूर्णत्व को प्राप्त होने पर जीव, शिव सब समाप्त हो जाते हैं, फिर वैकुंठ, कैलास, क्षीरसागर, आत्म-पर-भाव कुछ भी शेष नहीं बचता। वैकुंठ के नारायण, शेषनाग पर शेषशायी, कैलास के त्रिनेत्रधारी शिव, सब कुछ परब्रह्म में विलीन हो जाता है। गुरु वाक्य के अनुषंग (संदर्भ) से अत्यन्त प्रलय का रूप बताया है। एक ब्रह्म ही अकेले सर्वत्र व्याप्त रहता है।"

श्रीराम, सुग्रीव के वचन सुनकर सन्तुष्ट हुए। दोनों प्रसन्न होकर एक दूसरे से गले मिले दोनों को सुख, आनन्द और सन्तोष की अनुभूति हुई। सुग्रीव अपना वानर रूप और राम अपना राम होना भूल गए। उन दोनों की एकता देखकर लक्ष्मण भी उसमें सहभागी हुए। उनके गले लगते ही तीनों की ज्ञेय-ज्ञाता-ज्ञान रूपी त्रिपुटी मानों एकाकार हुई। सम्पूर्ण सृष्टि हर्षित हुई। श्रीराम सुखी व सन्तुष्ट हुए। आत्यंतिक-प्रलय की परिपूर्णता का तात्पर्य स्वयं श्रीराम ही हैं। उन्हें समक्ष देखकर सगुण रूप में मानों परिपूर्ण ब्रह्म ही है- ऐसे श्रीराम दिखाई देते हैं। सीता को ढूँढ़ने का ज्ञान शुद्ध ब्रह्म श्रीराम को था, अब वानर सुग्रीव को भी पूर्ण ब्रह्म-प्राप्ति हुई, जिससे श्रीराम पूर्ण रूपेण सुखी एवं सन्तुष्ट हुए। श्रीराम की संगति से वानर को ब्रह्म प्राप्ति हुई। सत्संग की ऐसी महत्ता है, जिससे निन्दनीय भी वन्दनीय हो जाते हैं। यह एका (संत एकनाथ) जनार्दन गुरु की शरण में है। श्रीराम स्वयं कारणों का कारण है। उन्हीं के कारण रामायण रम्य है। उनके नाम का स्मरण तारने वाला है। उसके नाम से अहिल्या का उद्धार हुआ, पिंगला गणिका पावन हुई, उनके नाम-स्मरण से भुक्ति व मुक्ति पूर्ण होती हैं। उनका नाम स्मरण परब्रह्म ही है। श्रीराम सगुण स्वरूप में दिखाई देते हुए भी देह में विदेह रूप में विद्यमान हैं। दीनोद्धार के लिए अपने पैरों से चलते हुए स्वयं वन में आये हैं। जो देवताओं को नमन के लिए दुर्लभ है, वेद शास्त्रों के लिए अगम्य है, वह वानरों का सखा बन गया। उस श्रीराम ने वन में विचरने वाले वानरों का उद्धार किया। ऐसे श्रीराम की शरण में एका जनार्दन है। श्रीराम दीनोद्धारक हैं। उनके नाम से लोग तर जाते हैं, उनके नाम से भव बन्धन से मुक्ति मिलती है। उनके नाम से बढ़कर अन्य कोई साधन नहीं है।

❧❧❧❧

अध्याय १२

[सीता को ढूँढ़ने के लिए वानरों का प्रस्थान]

सुग्रीव ने स्वर्ग के विविध स्थानों के विषय में बताते हुए वानर वीर तार को सीता को ढूँढ़ने के लिए भेजा। स्वर्ग, पाताल, उत्तर, पूर्व, पश्चिम- इन सभी स्थानों पर सुग्रीव ने वीरों को भेजा। उस समय वह दक्षिण दिशा भूल गया, ऐसी बात नहीं थी। दक्षिण दिशा की ओर सीता की प्राप्ति निश्चित होगी अतः सुग्रीव ने उस स्थान को सुनिश्चित रूप से सुरक्षित कर रखा था। रामायण-ग्रंथ का सबसे महत्वपूर्ण प्रसग सीता शुद्धि का प्रसंग है। हनुमान उस प्रसंग में महान ख्याति अर्जित करने के लिए लंका जायेंगे। दक्षिण दिशा सीता-प्राप्ति का मुख्य आधार होने के कारण सुग्रीव ने वहाँ सूर्यसदृश प्रतापी महाशूर वीर भेजे।

दक्षिण दिशा की ओर गये हुए वानरवीर– सुग्रीव ने दक्षिण दिशा की ओर ढूँढने के लिए ब्रह्मा के पुत्र भालुओं के राजा महाबली जाम्बवंत की नियुक्ति की। अग्नि पुत्र और सेनापति नील, विश्वकर्मा का पुत्र नल गज गवाक्ष, शरभ नामक वीर उनकी प्रचंड सेना सहित दक्षिण की ओर जाएँगे यह तय हुआ। मैंद एवं द्विविद नामक अत्यन्त प्रसिद्ध वीर तथा सैन्य बल सहित अंगद को उनके साथ भेजा। महावीर अंगद अब अपने साथ श्रेष्ठ वानरों को लेकर दक्षिण दिशा की ओर खोज के लिए निकला तो वानरों ने गर्जना (भुभुःकार) की। पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर दिशाओं में जो वानरवीर चले, उन्होंने भी भुभुःकार किया। उस आवाज से आकाश गूँज उठा। उस नाद की उच्चतम ध्वनि से अंतराल गूँज गया। ध्यानस्थ नीलकंठ विचलित हो उठे। कलिकाल, ब्रह्मांड स्फोट की आशंका से भयभीत हो उठा।

सब वानरवीरों को जाते हुए देखकर हनुमान चिन्ताग्रस्त हो गए। "मुझे सुग्रीव भूल गया, रामचन्द्र भी भूल गए सीता को ढूँढ़ने का कार्य अगर मुझे नहीं सौंपा गया तो मेरा जीवन व्यर्थ है। मेरे पुरुषार्थ पर धिक्कार है" ऐसा हनुमान को अनुभव हुआ। वानर समूहों को जाते हुए देखकर हनुमान मस्तक पीटने लगे। आँखें ढँककर दुःख से लोटने लगे। हनुमान की तीव्र व्यथा, श्रीराम ने अन्तर्मन में अनुभव की और वह हँसकर सुग्रीव से बोले– "सीता को ढूँढ़ने का प्रमुख साधन हनुमान हैं। उनमें बहुत पुरुषार्थ है। उन्हें यह कार्य बताये" श्रीराम के ये वचन सुनकर सुग्रीव ने उनके चरण पर अपना मस्तक रखा। सुग्रीव बोला– "मैं हनुमान को भूल गया था। आप धन्य हैं," श्रीराम से यह कहकर सुग्रीव ने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक हनुमान को बुलाकर उससे कहा– "हे हनुमान, श्रीराम के सुख के लिए सीता को ढूँढने हेतु तुम शीघ्र जाओ। तुम जाकर सीता की खोज कर लौटो। तीनों लोकों में तुम्हारे ज्ञान एवं बल से तुलना रखने वाला कोई नहीं है। देव, मानव, दानव, दैत्य का बल तुमसे बराबरी नहीं कर सकता। जल, स्थल एवं आकाश में रहने वाले प्राणियों में तुमसे तुलनीय कोई नहीं है।" तुम वेगपूर्वक शीघ्र जाकर कार्य सम्पन्न करो यह सुनकर हनुमान ने उड़ान भरी। तभी सुग्रीव ने दौड़कर उन्हें रोककर कहा– "तुम अकेले ही शीघ्र जाकर सीता को ढूँढ़कर आओगे, यह हम मानते हैं परन्तु हे हनुमान, युवराज मानकर तुम अंगद को यश प्रदान करो, उसे सीता के शोधार्थ अपने साथ ले जाओ यही मेरी तुमसे विनती है।" सुग्रीव के वचन सुनकर हनुमान ने उसकी वंदना करते हुए कहा– "तुम राजा हो। मैं तुम्हारे आधीन हूँ, तुम्हारी आज्ञा पूज्य और प्रमाण है।" तत्पश्चात् सुग्रीव ने अंगद को बुलाकर स्वयं हनुमान को सौंपा। हनुमान युवराज अंगद को, वंदना कर सीता को ढूँढ़ने के लिए निकले.

सुग्रीव का वानर वीरों को मार्ग-दर्शन– सुग्रीव ने ढूँढ़ने के कार्य हेतु जिन-जिन वानरों को जिस-जिस स्थान के लिए नियुक्त किया था, उन्होंने उन दिशाओं की ओर प्रस्थान किया। उस समय सुग्रीव उन्हें चारों दिशाओं का गतिमान बनाने लगा। पूर्व दिशा की ओर जो वानराधिपति वीर शार्दूल खोज के लिए जा रहे थे, उन नम्र वानरों को सुग्रीव ने कहा– "हे महावीरो, पूर्व दिशा की ओर जाते समय नाना विधि से ढूँढ़ें। विभिन्न प्रदेशों में और गिरिशिखरों पर किस प्रकार ढूँढ़ना है, यह सुनें। मंदराचल, अरुणाचल और मुख्य रूप से कुलाचल ढूँढ़ें। पूर्व की ओर के सभी पर्वत शिखर ढूँढ़ें। उधर अंग, वंग, कारुष, कलिंग, गौड़, विदेह, पौंड्र, भृंग, कामरूप, कामाक्ष इत्यादि अनेक देश हैं, वहाँ ढूँढ़ें। मंदगिरि के एक भाग में पाप मार्गी लोग रहते हैं। उन लोगों में महामांगी, विकटांगी, विकराल, कर्ण, प्रावरण, किरात, नर्दनालिक, कालमुख, महायवन, कोली, माली, निषाद, हूण, केशकबली, केशावरण, लोमधारी, लोमप्रावरण, विकालवदन, विकटाक्ष इत्यादि पापी लोगों में महापापी रावण होगा, वहाँ आप ढूँढ़ें। सौभाग्य-रत्न सीता की भी खोज करें। रक्तवर्णी कर्कश जलवासियों का सागर प्रदेश ढूँढ़ें। जहाँ मुरारी ने मधु का वध किया, वहाँ सागर में रक्त भर गया। उस लोह समुद्र के किनारे रत्नागिरि पर्वत है। उस स्थान पर गरुड़ निवास करता है। उसने लंकाधीश को संत्रस्त कर, सीता को मुक्त करा कर श्रीराम को अर्पित करने के लिए सँभाल कर रखा होगा। उस स्थल पर जाकर गरुड़ के दर्शन लें। विनयपूर्वक वंदन कर सीता के विषय में जानकारी लें। अगर वहाँ न हुई तो आगे प्रस्थान करें।"

"लोहसमुद्र में गोमंत नामक लाख योजन ऊँचा विशाल पर्वत है। उस पर मंदेहों की बस्ती है मंदेहों की प्रसिद्धि है कि उनकी असंख्य उपजातियाँ सागर में हैं। सूर्योदय होते ही वे शत सहस्र राक्षस सूर्य पर चढ़ाई करने जाते हैं। उस समय सूर्य को अर्घ्य देने के लिए संध्या करने के लिए द्विज जल चढ़ाते हैं। उससे वे राक्षस शांत होते हैं तथा फिर रात्रि में लाखों की संख्या में पैदा हो जाते हैं। धन्य है उन द्विजों का अर्घ्यदान, जिसके कारण दुष्टों का संहार होता है तथा सूर्य का मार्ग प्रशस्त हो वह मार्गस्थ होता है। इसीलिए कहा जाता है कि सूर्य की नित्यप्रतिदिन की गति ब्राह्मणों के हाथ में है, उसकी महिमा का कितना वर्णन किया जाय, भुक्ति व मुक्ति उनके चरणों में निवास करती है। वहाँ ब्राह्मणों के प्रति सेवा वृत्ति धारण करके जाने से आपको वहाँ प्रवेश मिलेगा। तत्पश्चात् श्रीराम की भक्तिरूपी सामर्थ्य से सावधानीपूर्वक सीता को ढूँढ़ें। वालखिल्य नामक अंगूठे जितनी आकृति वाला वैखानस कहलाया जाने वाला सामर्थ्यवान्, उसी पर्वत पर रहता है। उसके सपक्ष नम्र होकर उसे साष्टांग नमन कर अपने आने का कारण बताकर सीता की खोज करें। पूर्व की ओर जगन्नाथ स्थल है। उदार, मंगल, ब्रह्ममूर्ति वहाँ है। वहाँ की प्रबल महिमा है, वह सुनें। ब्रह्मभावयुक्त तीन मूर्तियां वहाँ हैं, कृष्ण, बलभद्र और सुभद्रासती को लोग क्रम से वंदना करते हैं। प्रथम शक्ति के दर्शन करने वाला व्यक्ति भाग्यवान् होता है। प्रथम बलभद्र के दर्शन करने वाला धर्मपरायण पुरुष होता है। जो सर्वप्रथम भगवान् के दर्शन करता है, उसे तत्काल भगवद्प्राप्ति होती है। चारों मुक्तियाँ उसके चरणों में निवास करती हैं, इसके साथ ही भुक्ति और मुक्ति की प्राप्ति होती है। वहाँ जाकर भगवान् के दर्शन कर सावधानीपूर्वक सीता को ढूँढ़ें। अगर सीता वहाँ न मिली तो आगे बढ़ें।"

"कभी किसी समय हरि (ईश्वर) स्वाभाविक रूप से क्रोधित हुए। उन्होंने अपना क्रोध समुद्र में डाल दिया, जिसके कारण समुद्र में अग्नि प्रज्वलित हो उठी। जलचर अत्यन्त दु:खी हो गये क्योंकि समुद्र का पानी खौलने लगा। क्रोध शान्त होने के पश्चात् कृपापूर्ण अनुकम्पा से हरि ने प्रज्वलित अग्नि

को बाहर निकाल कर उससे कनकगिरि की रचना की। सागर के उदर में होने के कारण उस अग्नि को बड़वाग्नि कहते हैं। उस बड़वानल को बारह गाँवों जितना समुद्र का पानी भक्षण के लिए देकर उसे निश्चित रूप से सागर में रखा है। सागर अपने अधिकार से पानी द्वारा उसे बुझा नहीं सकता। प्रलय काल में बड़वानल सम्पूर्ण सागर को सोखकर उसका भक्षण करता है। वहाँ से आगे उड़ान भरने पर महावीर बड़वाग्नि में जल जाएँगे अतः और आगे न जाकर वानर शीघ्र लौट आयें।" वीर सिंह सुग्रीव ने सुषेण को बुलाकर पश्चिम दिशा की ओर किस प्रकार खोज करें, यह बताया। वह बोला– "सौराष्ट्र, सिद्ध, सौवीर, उखा मंडल, द्वारकापुर, त्रिगर्त, गांधार, काश्मीर ये सभी देश ढूँढें। मही, मंधावती, रेवा, साबरमती, मधुमती, वेदवती पंचनद, प्राची, सरस्वती, पृथोदक में सीता को ढूँढें। कुरुक्षेत्र, गीतावट, ज्वालामुखी, नगरकोट, नेपाल, जयपाल, नीलकंठ, काश्मीरघाट में ढूँढें। केतकी खंड, शंखनाल वन, केसर का उत्पादन करने वाले सुगंध स्थान, जांगला देवी, पोतवन इत्यादि स्थानों पर सीता को ढूँढ़कर देखें। प्राग्जोतिष नामक नगर हेममय व मनोहारी है, वहाँ महादुष्ट नरकासुर रहता है। उसकी रावण से मैत्री है। उसी के आश्रय में रावण वहाँ होगा और उसके साथ सीता होगी। उसे ढूँढ़कर जीवित पकड़ कर, बाँधकर यहाँ ले आयें। सागर में मधुकैटभ का स्थान है। उसका नाम दशावर्त है। वह मधु का मर्दन करने वाले मधुसूदन हरि का विजय स्थान है, वहीं पर पंचजन दैत्य का वध कर उन्होंने पांचजन्य शंख निकाला। उस शंख के नाद से त्रिभुवन और सुरासुर कम्पित होते हैं।"

"उसी समुद्र में चक्रगिरि है। वज्र शरीर का स्वामी सुरासुरों द्वारा अविजित वज्र वहीं रहता है। उसका वध कर उसके शरीर का चक्र बनाकर उसे चक्रधर धारण करता है। और इन्द्र के लिए मयासुर कुशलतापूर्वक वज्र का निर्माण करता है, ऐसा वह अत्यन्त दुर्गम स्थान है। राम का नाम लेकर वहाँ प्रवेश कर सावधानीपूर्वक ढूँढ़कर रावण को जीवित पकड़ें। उसके भी आगे अस्तगिरि है, जहाँ सूर्य अपनी प्रदक्षिणा पूर्ण कर अस्त होता है। आगे का मार्ग अंधकार युक्त है अतः आगे न जाकर वानरवीर वहाँ से वापस आयें।" तत्पश्चात् शतवली उत्तर दिशा की ओर जंगल पर्वत पर ढूँढ़ने के लिए निकला। उसको सुग्रीव ने बताया कि विभिन्न देशों में कैसे ढूँढें। "मद्रक, मथुरा, शूरसेन, कुरु, कैकय, मालव, मान, मत्स्य, पुलिंदादि, यवन, चीन, महाचीन इत्यादि स्थानों पर ढूँढें। उत्तर कुरुक्षेत्र में शीतोष्ण बाधा नहीं होती, वृद्धावस्था के रोग नहीं लगते। उस स्थान पर चोर नहीं होते। उन देशों में सीता सहित रावण को ढूँढें। यह शोध अत्यन्त सूक्ष्मतापूर्वक करें। मेरु, मांदार, सोम, हेमाद्रि, भृंग, तुंग, भ्रमरगिरि, क्रौंच तथा कालिंजर आदि पर तथा सुगंध, सुरभि, पीत, पलाक्ष, देवदार इत्यादि तरु, तरक्ष, भूर्जपत्र, बल्कल वृक्ष में सीता को ढूँढें।"

"गंगा, यमुना, सरस्वती, तमसा, कौशिकी, गोमती, प्रयागतीर्थ इत्यादि जो महान् ख्याति के तीर्थ हैं, वहाँ सीता सती को ढूँढें, सरयू नामक नदी जो मानसरोवर के पास से जन्मी और प्रवाहित हुई, वहाँ सीता को ढूँढें, बद्रिकाश्रम जो अत्यन्त पवित्र स्थान है और जहाँ नारायण का मन्दिर है तथा पंचप्रयागादि व केदार में सीता की खोज करें। कनकगिरि शिखर पर देखें। कृत्तिकागर्भ में स्वामी कार्तिक शरविल्वी के वीर्योदक से जन्मा षण्मुख है। उस पर्वत के एकांत में सीता सहित अगर रावण हो तो उसे ढूँढ़ निकालें। मेरु पठार पर मानसरोवर प्रान्त शोभायमान है। तुम सभी बलवान् वानरवीर मिलकर उस स्थान पर सीता को ढूँढ़ो। वहाँ से आगे हिमालय है, जहाँ का मार्ग अत्यन्त ठण्डा होने के कारण तुम लोगों को पीड़ादायक होगा। अतः वहाँ से सभी वापस लौटो।" दक्षिण दिशा की ओर खोज करने के लिए

युवराज अंगद, नल, नील, जाम्बवंत इत्यादि बलवान् वीरों को लेकर निकला। हनुमान भी तुरन्त उनके साथ निकले। दक्षिण दिशा में खोज करने के लिए वहाँ कितने देश, पर्वत हैं- इस सम्बन्ध में सुग्रीव ने उन्हें विस्तृत जानकारी दी।

सुग्रीव बोला- "विंध्याद्रि, सिंहाद्रि, मलयाद्रि, मतंग, श्रीशैल, अंतरगिरि, वेंकटाद्रि, चन्द्रगिरि तथा महेंद्रि में सीता को ढूँढें। नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी, कृष्णा, वेण्या, मलप्रहारी, पातालगंगा के पास के प्रदेश में सीता की खोज करें। अहोबल, महोबल, धूतशकरी, पांडुरंगमहाक्षेत्र में वेणुनाद भीमा के किनारे सीता को देखें। प्रतीची, मैना ताम्रपर्णी, कृतमाला, पयस्विनी, उभयकावेरी, श्रीरंगस्थान में सीता को ढूँढें। अगस्त्याश्रम, कन्याकुमारी, मत्स्यतीर्थ चिदंबरी, कर्दलीवन तथा मंगलगीरी में सीता की खोज करें। कर्नाटक, तेलंगत्रिगुल, ओड्यामल्याल, पंचभर्तारी, चोरमंडल में ढूँढें। पांचाल देश मथुरामान, रमणीय कुमुदवन, चन्द्रहास्य गुप्तार्जुन में सीता को ढूँढें। अहोबलाद्रि, नृसिंहस्थान, चौक मथुरा, दारुकवन, अनंतशयन, कुंभकोण, श्रीरंगपट्टण में ढूँढें। वहाँ से आगे लंकापुर जहाँ महाशूर राक्षस हैं, उसके बीच में भयकर समुद्र है अत: वानर आगे नहीं जा सकेंगे। दक्षिण की ओर सीता का प्राप्ति स्थान स्थूल रूप से मैंने बता दिया। आप सभी बलवान् हैं, सीता को ढूँढकर ले आयें। नल, नील, बुद्धिमान जाम्बवंत, महापराक्रमी हनुमान और राजपुत्र अंगद आपके साथ हैं। आप अगर सीता का पता लगा आये तभी मैं श्रीराम को मुख दिखा पाऊँगा तथा श्रीराम सुखी और सन्तुष्ट होंगे। मैं आपसे विनती करता हूँ कि आप कृपा कर इतना अवश्य करें। आप से मैं यही याचना करता हूँ कि सीता को ढूँढ़कर श्रीराम को सुखी करें। श्रीराम को सुखी करने से हम सभी को सुख की प्राप्ति होगी। अत: शीघ्र ही सीता को ढूँढें"- ऐसा सुग्रीव ने उपरोक्त अनुसार उन्हें बताया।

ढूँढ़ने वाले का सत्कार और ढूँढ़ने की सीमाएँ- सुग्रीव ने खोज के लिए जाने वाले वीरों से कहा- "तुममें से जो कोई भी वीर सीता के विषय में यथोचित खोज करके बतायेगा, उसे मेरे सदृश राजसत्ता देकर मैं राजा बनाऊँगा। मुकुट, कुंडल, कटिसूत्र, कंठी, पदक, हार, श्वेत छत्र, चँवरों की जोड़ी इत्यादि देकर उसे राज्य का स्वामी बनाऊँगा। सीता को खोज कर लाने वाला रघुनाथ का नैकट्य प्राप्त करेगा। श्रीराम भुक्ति एवं मुक्ति के दाता हैं। अपने गले लगाकर वे एकात्मता प्रदान करते हैं। उस आलिंगन से अन्तर्मन में एकात्मता के भाव जागृत होते हैं और बाह्य रूप से देव-भक्त सम्बन्ध स्थापित होते हैं। राजवैभव एवं नित्यमुक्तता सीता की खोज करने वाले को प्राप्त होंगे। सीता की खोज करना- यह यथार्थ रूप से रघुपति द्वारा संतोषपूर्वक प्राणी को दी गई परम मुक्ति ही है, जो सीता को ढूँढ़ने से प्राप्त होने वाली है।" सुग्रीव द्वारा यह बताते ही वानर वीरों का उत्साह बढ़ गया और उन्होंने सुग्रीव से विनती की कि वे बतायें कि शोध की मर्यादा कितनी व किस प्रकार की है। इस पर सुग्रीव बोला- "मैंने जो-जो स्थान बताये हैं, सावधानीपूर्वक उनमें खोज कर आप एक महीने में वापस आयें। जो एक महीने से अधिक काल रहेगा, उसे मैं दण्ड दूँगा। उसका घात करूँगा। इसके अतिरिक्त उसे दण्ड देते समय श्रीराम भजन में विलम्ब, उसके द्वारा हुई विषय लोलुपता के कारण उसके मस्तक पर मूत्र डालकर उसका मुँह काला कर, गले में चप्पलों की माला डालकर उसे गर्दभ पर बैठाकर घुमाऊँगा। अन्य लोग उस पर गोबर की वर्षा करेंगे। श्रीराम के काज में आलस करने पर ऐसे कष्ट भोगने पड़ेंगे। अत: रामकाज के लिए प्रयत्न प्रारम्भ करने हेतु प्रस्थान करें।" सुग्रीव द्वारा यह कहने पर वानरवीर तुरन्त उन्हें बतायी गई दिशा की ओर गर्जना करते हुए निकले।

वानरों का उत्साहपूर्वक प्रयाण– सुग्रीव द्वारा किये गए निवेदन के पश्चात् वानरों ने गर्जना करते हुए अपनी-अपनी दिशा की ओर प्रस्थान किया। उस समय वानरों द्वारा की गई भुभुःकारयुक्त गर्जना के कारण चराचर गूँज उठे। वीरों ने प्रतिज्ञा कर रावण को पकड़ने का निश्चय किया। "कलिकाल का मुख तोड़कर हम जानकी को वापस लायेंगे, उस तुच्छ रावण को देखते ही उसके प्राण ले लेंगे।" एक द्वारा की गई यह प्रतिज्ञा सुनते ही दूसरा बोला– "युद्ध में रावण दिखाई देते ही हाथी जिस प्रकार सिंह से झगड़ता है उसी प्रकार रावण को लेकर आऊँगा।" और एक वीर बोला– "मुझे युद्ध में रावण मिला तो जैसे बिल्ली चूहे को पकड़ती है, उसी प्रकार उसे पकड़कर लाऊँगा।" एक अन्य ने कठिन प्रतिज्ञा की कि जिस प्रकार पारधी हिरन को बाँधकर लाता है, वैसे ही मैं रावण को बाँधकर श्रीराम के पास लाऊँगा। जिस प्रकार बहेलिया चीखती हुई चिड़िया को पकड़कर लाता है, उसी प्रकार मैं रावण को सीता सहित पकड़कर लाऊँगा। जिस प्रकार मछली के गले में काँटा फँसता है, उसी प्रकार रावण को मैं अपनी पूँछ से बाँधकर राघव के पास लाऊँगा, मुझ पर भरोसा रखें। जिस प्रकार शिकारी अपना कुत्ता बाँधकर लाता है, उसी प्रकार रावण को गले से बाँधकर लाऊँगा। श्रीराम मेरे इन वचनों को सत्य मानें। जिस प्रकार किसान होरे को मसलता है, उसी प्रकार रावण के दसों कंठ मसलकर उसे ले आऊँगा।" इस प्रकार वानरवीरों ने विविध प्रकार की प्रतिज्ञाएँ कीं। वे सुनकर श्रीराम आनन्दित हुए। वानरों का वार्तालाप सुनकर राम और लक्ष्मण खिलखिलाकर हँसने लगे। वानरों के बल का उन्हें अनुमान हो गया। वानरों ने श्रीराम की चरण वन्दना की और सीता की खोज के लिए उड़ान भरी। टिड्डीदल जिस प्रकार आकाश आच्छादित कर देता है। उसी प्रकार आकाश में दसों दिशाओं की ओर वानर दौड़े।

महावीर अंगद दक्षिण-दिशा की ओर ढूँढ़ने के लिए निकला। उसके समूह में अत्यन्त भयंकर अनेक महावीर थे। हनुमान ने अंगद को विनतीपूर्वक कहा "श्रीराम से पूछना रह ही गया; उनकी वंदना कर मैं तुरत तुम्हारे पास वापस लौटता हूँ।" श्रीराम ने, सीता को ढूँढ़ने जाने के लिए वानरों को तैयार देखकर सुग्रीव को आलिंगन दिया। लक्ष्मण भी सुखी हुए।

अध्याय १३

[श्रीराम द्वारा हनुमान से सीता के विषय में निवेदन]

वानरों ने अंगद के साथ दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। उस समय सुग्रीव ने हनुमान को बुलाकर अंगद को उसे सौंपा। "सीता को ढूँढ़ने का राम का कार्य सम्पन्न करते हुए तुम्हारी सहायता से वह विजयी होगा।" अंगद वीरता के लिए प्रसिद्ध है। उसके साथ नल, नील, जाम्बवंत और असंख्य वानरवीर थे। वे सभी दक्षिण दिशा जैसे कठिन पंथ को ओर अग्रसर हुए। सीता की खोज होकर राम का कार्य सिद्ध हो, उसके लिए मुख्य रूप से हनुमान को सुग्रीव ने भेजा। सुग्रीव द्वारा सीता की खोज का कार्य हनुमान पर सौंपे जाने के कारण हनुमान श्रीराम की पत्नी को ढूँढ़ने के लिए अत्यन्त उत्साहित थे।

हनुमान-अंगद, हनुमान-श्रीराम संवाद– हनुमान ने अंगद से कहा कि, 'सीता गुण, लक्षण और स्वरूप की दृष्टि से कैसी है, इस विषय में मैं श्रीराम से पूछकर आता हूँ। जिससे अगर वे वन में दिखाई देती हैं, तो उन्हें पहचाना जा सके। सद्गुरु के मुख से सद्भावनापूर्वक अगर स्वरूप का

निश्चय नहीं किया तो उस वस्तु की प्राप्ति नहीं होती। बिनाकारण मात्र वन में भ्रमण ही होगा। कुछ वानर सीता के स्वरूप के विषय में निश्चित जानकारी लिए बिना ही गये, उन्हें वे मिल नहीं पाएँगी और वैसे ही वे वापस लौट आयेंगे। वस्तु का स्वरूप निश्चित किये बिना वस्तु की प्राप्ति नहीं होती। अत: वे सभी दीन-हीन होकर सिर झुकाये वापस आ जाएँगे। वस्तु प्राप्त हुए बिना जो वापस आयेंगे, उनका अपमान होगा। देव और पितर उनसे मुँह फेर लेंगे। सब उन पर हँसेंगे, वैसा आप न करें। पूर्ण निश्चयपूर्वक सभी प्राणिमात्र के विषय में सावधान होकर सीता को ढूँढें।' ऐसा विचार व्यक्त कर हनुमान अंगद से बोले- "श्रीराम की वंदना कर मैं शीघ्र तुम्हारे पास आता हूँ। सुग्रीव द्वारा तुम्हारे साथ भेजे जाने पर मैं इतना प्रसन्न हुआ कि मैं रघुनाथ से पूछना ही भूल गया। उनकी वंदना कर मैं शीघ्र आता हूँ." हनुमान का निवेदन सुनकर अंगद ने उसे साष्टांग दंडवत् प्रणाम कर कहा- "श्रीराम की चरण-वंदना कर तुम शीघ्र गति से वापस लौटो। तुम्हारे कारण ही मेरा पिता वालि मुक्त हुआ। तुम्हारे कारण ही सुग्रीव सनाथ हुआ तुम्हारे कारण ही हमें स्वामी श्रीरघुनाथ प्राप्त हुए। तुम्हारे कारण ही श्रीराम के दर्शन होकर वानरों को संसार तारक प्राप्त हुआ. तुम्हीं ने सुग्रीव को राज्य प्राप्त करवाया। वास्तव में तुम्हारी महिमा अपार है। तुम स्वामी हो, हम तुम्हारे दास हैं। तुम माँ हो, हम तुम्हारी संतान हैं। तुम सद्गुरु हो, हम शिष्य हैं। यह मेरी उक्ति सत्य है। यह होते हुए भी हे हनुमान, तुम स्वयं को सेवक कहते हो। तुम्हारी यह अगाध महिमा वेद शास्त्रों को भी अगम्य है।"

अंगद के वचन सुनने के पश्चात् नल, नील, तथा जाम्बवंत ने अंगद सहित साष्टांग दंडवत् प्रणाम कर हनुमान की चरण-वंदना की। सभी बोले- "हे अंगद धन्य है तुम्हारी वाणी, तुम्हारे कार्य, वानर सेना में तुम धन्य हो।" इन शब्दों में सभी वानरों ने अंगद का गुणगान किया। हनुमान और अंगद की शरणागत भावना से वंदना की। कुमार और विवेक, राजा और विनय तथा यथार्थ रसपूर्ण वक्ता, ऐसे गुणों से युक्त अंगद के कारण हनुमान प्रसन्न हुए। अंगद का मुख चूमकर और उसे आलिंगनबद्ध कर हनुमान ने अपना आनन्द व्यक्त किया। दोनों को सुखी एवं सन्तुष्ट देखकर रघुनंदन भी आनन्दित हुए। गहन और गम्भीर हनुमान स्वयं का निश्चितार्थ लोगों को अवगत न कराकर, 'श्रीराम से गहन बातें पूछता हूँ' ऐसा अंगद को बताकर श्रीराम के पास आये। वहाँ एकांत में बैठकर उन्होंने सीता के सम्बन्ध में पूछा-"दक्षिण की ओर ढूँढ़ते समय हमें सीता दिखाई दीं तो हम उन्हें कैसे पहचानें, यह समझने के लिए उनके स्वरूप के विषय में बतायें। रूपरेखा, शरीरयष्टि, गुण विशेष, लक्षणीय सौन्दर्य चिह्न, उनकी स्थिति, गति, महिमा इत्यादि सब कृपाकर, हे श्रीराम, आप मुझे बतायें।" हनुमान की विनती सुनकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए, शक्ति की महिमा और लक्षण बताने के लिए श्रीराम हनुमान से बोले- "सुनो हनुमान, एकांत में पूछने के लिए आये हो, तुम मुझसे भिन्न नहीं हो अत: सीता के विषय में तुम्हें यथार्थ बताता हूँ."

श्रीराम द्वारा सीता के विषय में निवेदन- श्रीराम हनुमान से बोले- "मेरा स्वरूप चैतन्यरूपी है और सीता पूर्ण चिद्शक्ति है। वह मुझसे अणुमात्र भी अलग नहीं है। श्रीराम अगर मिठास है तो सीता शक्कर है। श्रीराम रस है तो सीता तरल जल रूप है। श्रीराम अगर घृत है तो सीता क्षीर है। राम और सीता चिद्चिन्मात्र हैं, द्रव्यांतर के मिलने से अग्नि भी द्रव्याकार प्रतीत होने लगती है। उसी प्रकार चिन्मात्र सीता साकार रूप में विश्व में दृष्टिगत होती है। शर्करा से निर्मित नारियल में ऊपरी छिलका न होने पर भी जो अभागा व्यक्ति है, वह उसका छिलका निकालने का प्रयत्न करता है। उसी प्रकार सीता भी मानवी न होकर सद्चिदानन्द स्वरूप है। नारियल जिस प्रकार सम्पूर्ण रूप में शर्करा ही है, उसी

प्रकार सीता पूर्णरूपेण चैतन्य स्वरूप ही है, उसका इन्द्रिय व्यापार चिद्‌चिन्मात्र स्वभाव के कारण होता है। जिस प्रकार अर्द्धनारी नटेश्वर दो स्वरूपों से युक्त एक ही शरीर है। उसी प्रकार सीता एवं राम भिन्न होते हुए भी अभिन्न हैं, पुरुष अपने भाव को छिपाते हुए स्वेच्छा से प्रकृति को नचाता है और प्रकृति भाग छिपाकर पुरुष की पदवी प्रकट करता है। भ्रांति का परदा हटा देने पर प्रकृति-पुरुष विचार जिस प्रकार मिथ्या जान पड़ते हैं, उसी प्रकार सीता और राम चैतन्य घन स्वरूप हैं, यह ज्ञात होता है। जब वास्तव में भ्रांति का परदा पड़ा होता है, तब वास्तविकता क्या है, मनुष्य इसे जानने का प्रयत्न नहीं करता यह क्यों और किस प्रकार होता है, उस सम्बन्ध में सुनो।"

"नर और नारी इन दोनों का कार्य व्यापर जिस प्रकार नटेश्वर चलाता है, उसी प्रकार देवताओं के कार्य के लिए श्रीराम एवं सीता ने अवतार लिया है देवताओं की अपने पद पर स्थापना करने के लिए, भक्तों को सच्चा सुख देने के लिए सीता और राम ने अपनी लीला से अवतार धारण किया है। अपनी लीला से लिये हुए अवतार में साकार रूप लेकर जानकी शोभायमान हो रही हैं। हे हनुमान, उसके स्वरूप का वर्णन अब तुम सुनो। सीता आवागमन के चक्र से परे है, यह उनकी प्रमुख निशानी है। पैरों के बिना ही उसकी सर्वत्र गति है। उसके दोनों पद द्वन्द्व रहित हैं। वे सीता के स्वयं के चरण हैं। जिन्होंने जीव-शिव भाव का उच्छेदन किया है। वे ही सीता के चरण हैं। फन एवं पूँछ से युक्त वक्र शरीर स्वरूपी सोने से निर्मित नाग की आकृति होने पर भी लोग उसे स्वर्ण ही कहते हैं उसी प्रकार जानु एवं ऊरु विभाग अति सुन्दर एवं चिन्मात्र हैं। सीता की गुह्येन्द्रियों का विचार करने पर उसके गुह्य स्वयं श्रीराम ही हैं और उसके रति सुख का सार भी स्वयं श्रीराम ही हैं। उसका उदर मल रहित वास्तविक रूप में निर्मल है, तथा जठर में चैतन्याग्नि प्रज्वलित है। वही जीव एवं शिव का मातृगृह है।"

"हे हनुमान, सीता के हृदय-भुवन में श्रीरघुनन्दन का ही वास है। श्रीराम के कारण ही वह सुख सम्पन्न रहती है। यही उसका प्रमुख परिचय है। उसके शरीर पर जो दो स्तन विद्यमान हैं, वे जीव एवं शिव के प्रतीक हैं। उन स्तन का पान कराकर वह सम्पूर्ण जग का पालन करती है. स्तन भार के कारण ही वह कुचकामिनी कहलाती है. जीव शिव स्वरूपी इन स्तनों पर आच्छादन के रूप में विद्या एवं अविद्या रूपी दोनों आवरण त्रिगुणों से कसकर बाँधे हुए हैं, जिन्हें खोलना श्रीराम के बिना किसी के लिए सम्भव नहीं है। जीव-शिव रूपी कुचों का मर्दन करने वाला मात्र एक श्रीराम है। अन्य मात्र तुच्छ कीटक हैं। उस रावण ने भी अभिलाषा की तो वह मृत्यु को प्राप्त होगा। श्रीराम-नाम रूपी अखंड मणियों को लेकर गाँठ युक्त धागे के स्थान पर अखंड धागे में अनुसंधानपूर्वक पिरोया गया है। उसका कल्याणकारी सौभाग्य लोगों की दृष्टि के लिए अतर्क्य है। कंठ में श्रीराम रूपी सौभाग्य-मणि ही उनका श्रेष्ठ अलंकार है। उसकी ठोड़ी पर रामश्याम नाम का गोदना गुदा हुआ है। रावण उसके मुख की ओर देखेगा तो श्याम के नाम से उसमें शंका उत्पन्न होगी साधारण जनों के मुख पर जो होठ होते हैं वे अधर होते हैं परन्तु सीता के मुख पर विद्यमान होठ सधर हैं। श्रीराम द्वारा उनका चुम्बन लेना सीता के लिए सर्वस्व सुखों का सार होता है। सामान्य स्त्रियों की नाक का मोती सोने के तार में फँसकर बँधा रहता है। जानकी की नाक के मोती को जब श्रीराम सहज रूप में निहारते हैं तब वे अधोमुखी होकर लटकने लगते हैं क्योंकि मौक्तिकों को श्रीराम ही मुक्ति देते हैं।"

"संसार में समस्त लोगों की नासिका उसमें श्लेष्म रूपी द्रव पदार्थ के आगमन से दुःख देती है जानकी के मुख मंडल पर विद्यमान नासिका राम के कारण तेजस्वी प्रतीत होती है। जानकी के नेत्र

सुन्दर एवं दर्शनीय हैं उनके नेत्रों का सौन्दर्य श्रीराम की परिपूर्णता देखने में समर्थ है जानकी के सुन्दर नयन, नश्वरता को छोड़कर प्राणि-मात्र में चिद् तत्व के रूप में स्थित सद्चिदानन्द रूपी श्रीराम के ही दर्शन करते हैं। सीता के कर्ण सतत सजग रहकर रघुनन्दन के वचनों को सुनकर सन्तुष्टि का अनुभव करते हैं। सीता का मस्तक धन्य है, जिसने श्रीराम को नित्य नमन कर साफल्य की प्राप्ति की है उस पर उज्ज्वल प्रेम रूपी कुंकुम लगा हुआ है, जिस पर श्रीराम के प्रेम से प्राप्त सुख अठखेलियाँ कर रहा है, सीता की समस्त हस्त क्रियाएँ रघुनाथ रूपी कर्ता द्वारा प्रेरित हैं श्रीराम उन हाथों के हाथ होते हुए समस्त कर्मों से मुक्त हैं। सीता के शीश पर श्रीराम रूपी शिरोमणि विद्यमान है। चिद्रत्नों के अलंकारों पर फरा नामक अलकार सुशोभित होता है, उसी प्रकार उन अलंकारों में श्रीराम शोभायमान हो रहे हैं। परमामृत को छानकर उसमें समस्त सुखों का सम्मिश्रण कर उससे राम प्रिया का अलौकिक श्रीमुख सिद्ध हुआ है।"

"जानकी का मन सुमन के समान है तथा वह श्रीराम के ध्यान में मग्न है श्रीराम के कारण सीता का मन राम-मय होकर निर्मल हो गया है। सीता के चित्त में सतत राम का ही चिन्तन होने के कारण वह चित्त चिन्तामुक्त है। सीता के चित्त में विद्यमान चित्त चैतन्यघन है तथा राम की कृपा से सन्तुष्ट है। जानकी के शरीर का देहाभिमान अहं-भाव से परे है क्योंकि श्रीराम नाम के स्मरण से अहं भाव पूर्ण परब्रह्म हो गया है। जिस प्रकार समुद्र में नमक का विलय होकर वह स्वयं समुद्र ही बन जाता है, उसी प्रकार सीता के अंहभाव ने श्रीराम में एकाकार होकर परिपूर्ण रूप ले लिया है। सीता की देह बुद्धि प्रपच, व्याधि, जन्म-मरण से रहित नित्य श्रीराम की समाधि है। उसकी देह में देहत्व ही नहीं है। देह युक्त होकर भी वह विदेही है, यही उसकी पहचान है; यही सीता के लक्षण हैं। अब उसके गुण सुनो। गुण और अगुण में हमेशा अगुण स्वत: सगुण दिखाई देता है। जानकी का बाह्य स्वरूप देखने पर वह साधारण दिखाई देती है। परन्तु स्वरूप से सामान्य दिखने पर भी, जैसे गगन हमेशा नीचा दिखाई देता है परन्तु वास्तविकता यह नहीं है, सीता की महिमा वेद-शास्त्रों को भी अगम्य है। अत: उसकी महानता के विषय में बताने पर चारों वाणियाँ (परा, पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी) मौन हो जाती हैं हे हनुमान, यहाँ तक तुम्हें सीता की रूपरेखा, उसके गुण, लक्षण इत्यादि के विषय में बताया, अब उसकी स्थिति की महिमा बताता हूँ।"

श्रीराम बोले- "सीता का जहाँ निवास होता है, वहाँ के वृक्ष भी राम का नामस्मरण करते हैं। पशु-पक्षी भी राम का स्मरण करते हैं। यहाँ तक कि पाषाण भी राम का नाम स्मरण करते हैं, जानकी के सम्पर्क में, उनके स्पर्श में जो भी जीवन आता है, वह नित्य रघुनन्दन का स्मरण करने लगता है। जानकी के जीवन में जो निमग्न होता है, उसको श्रीराम की कृपा से संतोष का अनुभव होता है। सीता का जिस धरा पर निवास होता है, वह धरा भी श्रीरामचन्द्र का स्मरण करती है। सीता सती स्वयं राम नाम स्मरण में निमग्न रहती हैं जो वायु सीता के शरीर का स्पर्श कर आती है, वह श्रीराम का स्मरण करती है।" सीता के स्वरूप का वृत्तान्त श्रीरघुनाथ ने आदरपूर्वक बताया। यह सुनकर हनुमान आनन्दातिरेक से गद्गद होकर मूर्च्छित हो गए। तब कृपालु श्रीराम ने उसे आलिंगन देकर हृदय में समाहित कर लिया। श्रीराम द्वारा हनुमान को आलिंगनबद्ध करने पर राम तथा वानर रूप हनुमान दोनों निज अस्तित्व भूल गए। हनुमान स्वयं ब्रह्ममय हो गए। आप-पर भाव विस्मृत हो गया वाचा बन्द हो गई, मौन खंडित हो गया, दोनों चैतन्य घन-स्वरूप हो गए तथा पूर्णत्व की प्राप्ति हुई सीता का स्वरूप

वर्णन कर रघुनाथ तृप्त नहीं हुए। धन्य हो राम-पत्नी सीता। हनुमान का मन उल्लास से परिपूर्ण हुआ। श्रीराम बोले- "सीता को ढूँढ़ते हुए आप ये चिह्न अवश्य देखें।" हनुमान प्रसन्न होकर बोले "ये लक्षण देखकर मैं जनक-कन्या सीता को पहचान लूँगा। सीता मुझे बिलकुल नहीं पहचानतीं। उन्होंने पहले कभी मुझे नहीं देखा और मेरे विषय में सुना भी नहीं। मुझे राम ने भेजा है, कहने पर वे सत्य नहीं मानेंगी। वे यह सोचेंगी कि 'कपटी रावण ऐसे ही सन्यासी के वेश में आया और उसने छल किया, उसके ही जैसा यह वानर भी होगा। राम की मीठी बातें और उनके द्वारा खोज करने के विषय में बता रहा है परन्तु यह वानर भी कपटी ही होगा।' उसके विषय में विश्वास नहीं होगा''। फिर जहाँ मन में विश्वास नहीं होगा वहाँ भेंट होकर भी व्यर्थ सिद्ध होगी। वह सीता सुन्दरी भावपूर्ण बातें कैसे कहेंगी। भेंट नहीं, वार्तालाप नहीं; मात्र दूर से सीता के दर्शन करने जैसा ढूँढने का तरीका व्यर्थ सिद्ध होगा। सीता का मनोगत, वह जहाँ है वह स्थान कौन सा है, रावण का सामर्थ्य कितना है- इन सब बातों का मैं शोध करूँगा। अत: हे रघुनाथ, मेरे मन में ऐसा विचार आ रहा है कि आप ऐसा कुछ दें, जिससे मुझे वह अपना मानें। आप इस दृष्टि से इस कार्य का विचार करें।"- ऐसा कहकर हनुमान ने श्रीराम के चरणों पर अपना मस्तक रखा

श्रीराम द्वारा हनुमान को पहचान के रूप में मुद्रिका देना– श्रीराम हनुमान के वचन सुनकर सुखी हुए। उन्होंने अपनी मुद्रिका हनुमान को देकर आशीर्वाद देते हुए मस्तक पर हाथ रखा "हे हनुमान, यह अंगूठी देख सीता तुम्हें कपटी नहीं समझेंगी और तुम्हें ढूँढ़ने हेतु मैंने ही भेजा है यह सच मानेंगी। श्रीराम-नामांकित मुद्रा देखकर हे हनुमान, वह तुम्हें अपने प्राणों से भी प्रिय रूप में स्वीकार करेंगी और राम कार्य को सिद्ध करेंगी।" मारुति पहले ही बलवान् थे उसके साथ उस पर श्रीराम का वरद हस्त तथा इसके अतिरिक्त श्रीराम की मुद्रिका की प्राप्ति। अत: हनुमान अत्यधिक प्रसन्न हुए। फिर हनुमान श्रीराम से बोले– "त्रिभुवन के समस्त गृहों को ढूँढ़कर जनक कन्या को खोजकर लाऊँगा। राक्षसों का संहार करूँगा।" ऐसा कहकर हनुमान ने आनन्दपूर्वक करतल ध्वनि की श्रीराम की मुद्रिका हाथ में आ जाने से अब मैं लंका को जला दूँगा, लंकानाथ के बल का अनुमान लाऊँगा। इन्द्रजित् राक्षसों में बलवान् है, मैं उसके साथ घोर संग्राम करूँगा। रावण से युद्ध कर राक्षसों का पूर्णरूपेण संहार करूँगा।" ऐसे हर्षपूर्वक उद्‌गार व्यक्त कर, श्रीरघुनाथ को प्रणाम कर, राम कार्य पूर्ण करने के लिए हनुमान ने वेगपूर्वक आकाश में उड़ान भरी। श्रीराम मुद्रिका हाथ में पहनने से वह उड़ान भरते समय पृथ्वी पर गिर जाएगी, वह कपड़ों में गाँठ मारकर रखें तो हनुमान के पास वस्त्र नहीं थे। गिरह में बाँधने पर टीका टिप्पणी की सम्भावना होती। आरोप करने वाला दुष्ट होगा जो चाण्डाल को भी स्मरण नहीं रहेगा। जिसे श्रीराम-नाम से लगाव नहीं है, उसे पाप राशि समझना चाहिए। उसमें सभी दोषों का समावेश होता है और धीरे-धीरे उसका क्षय होता रहता है। जो राम नाम को मानता नहीं है, जो नाम को मात्र शब्दों का वितंडवाद कहता है, वह जीवित रहते हुए भी मृत के समान है। वह स्पर्श करने योग्य भी नहीं है।

तत्पश्चात् हनुमान ने हाथों में स्थित राममुद्रिका को अपने मुख में डालकर स्वय के हृदय का उसे आधार दिया। वानरों का कोई वस्तु रखना अपने गालों में चने भरने के सदृश ही होता है। हनुमान ने भी वही किया और राम-मुद्रिका को मुख में डाल लिया। जिह्वा से लेकर हृदय तक हनुमान ने नाम-स्मरण की अनमोल निधि को संजोया और तुरन्त राम कार्य की सिद्धि हेतु उड़ान भरी। नल, नील, तथा जाम्बवंत के साथ अंगद जहाँ पर हनुमान की राह देखते हुए रुके थे, हनुमान वहाँ पहुँचे। उन्हें आया

देखकर अंगद प्रसन्न हुआ। सभी वानर आनन्दित हुए। तत्पश्चात् वे सभी उत्साहपूर्वक सीता को ढूँढ़ने के लिए दक्षिण-दिशा की ओर बढ़े।

अध्याय १४

[दक्षिण की ओर गये हुए वानर वीरों का वृत्तान्त]

पूर्व, पश्चिम, वायव्य, ईशान, उत्तर, नैऋत्य, आग्नेय कोण, पाताल-दिशा, स्वर्गभवन इत्यादि सभी स्थानों को ढूँढ़कर वानरवीर वापस आ गए। राजा सुग्रीव की यही आज्ञा थी कि सम्पूर्ण महीना सीता को ढूँढ़कर सभी वापस आ जायँ। न आने पर कठोर राजदण्ड प्राप्त होगा। श्रीराम प्रस्रवण पर्वत पर रुके थे। उनकी सेवा के लिए सुग्रीव का वहाँ पर निवास था। श्रीराम ने सुग्रीव से पूछा– "दसों दिशाओं में गये हुए वानरों में से कोई भी ढूँढ़कर वापस कैसे नहीं लौटा ? इस प्रश्न पर उनका विचार विमर्श चल ही रहा था कि सुग्रीव की राजाज्ञा के कठोर परिणाम ध्यान में रखते हुए, उसके भय से वानर वीर एक मास में वापस लौट आये। उन्हें कोई निश्चित शोध न लगने के कारण वे वानरवीर राम के समक्ष आने में लज्जा का अनुभव कर रहे थे। सुग्रीव के पास जाकर उन्होंने उसे प्रणाम किया। जाते समय प्रतिज्ञा कर गये थे और अंत में बिना ढूँढ़े ही वापस आये; इससे लज्जित होकर, बिना कुछ बोले सिर झुका कर वे स्तब्ध खड़े रहे। वानर वीरों को तटस्थ खड़ा देखकर वालि व सुग्रीव के श्वसुर सुषेण आगे आये और उन्होंने खोज के सम्बन्ध में वृत्तान्त निवेदन किया।

सुषेण द्वारा शोध के सम्बन्ध में निवेदन– सुषेण बोले– "क्षीर समुद्र, क्षार समुद्र, दधि समुद्र, मधु समुद्र, घृत समुद्र, इक्षु समुद्र तथा सुरा समुद्र समेत सप्त समुद्र और शाल्मलि द्वीप, शाक द्वीप, कुश-द्वीप, क्रौंचद्वीप पुष्कर द्वीप, प्लक्षद्वीप, जम्बूद्वीप आदि सप्त द्वीप तथा अयोध्या, मथुरा, माया, कांची, काशी, अवंतिका, स्वयं जिस बलिद्वार से लौटे वह सातवीं द्वारका तथा दण्डकारण्य खंडारण्य, चंपकारण्य, वेदारण्य, नैमिषारण्य, ब्रह्मारण्य, धर्मारण्य तत्पश्चात् सरोवर, नदियाँ, गुफाएँ, कंदराएँ, गिरि, छोटे-बड़े गाँव व नगर इत्यादि सभी स्थानों पर ढूँढ़ा। निंद्य, अनिंद्य स्थान, भयानक राक्षस भवनों में जाकर सीता को ढूँढ़ा। महापराक्रमी, महावीर वानरों ने आलस्य त्याग कर समस्त भू-मंडल को ढूँढ़ डाला परन्तु सीता का पता नहीं चल सका। सप्तद्वीप, सप्तसागर, सप्तपुर, सप्तशिखर, सप्तअरण्य, सप्तकंदर आदि सभी स्थानों पर सीता की खोज की। जल, थल, आकाश, सर्वत्र ढूँढ़कर भी जानकी का किंचित मात्र भी शोध न लग सका। अत: एक मास पश्चात् हम वापस लौट आये क्योंकि राजाज्ञा अत्यन्त कठोर थी कि समय से वापस न लौटने पर हमारी दुर्दशा होगी। अत: इस भय से हम सब शीघ्रतापूर्वक एक मास के भीतर वापस लौट आये।"

वानरवीर लज्जित होने के कारण श्रीराम के समक्ष नहीं आये। उन्हें किस प्रकार मुँह दिखायें, सीता के विषय में तो कुछ भी पता नहीं चल सका। श्रीराम ने अगर सीता के विषय में पूछा तो हम क्या कहेंगे ?- वे यह सोचने लगे। श्रीराम ने वानरों का मनोगत जानकर उन्हें स्वत: आश्वासन दिया और कहा– "हमने ही तुम्हारी ढूँढ़ने वाली दिशाओं का निर्धारण किया था। सीता अगर उस भाग में होगी ही नहीं, तो तुम कैसे ढूँढ़ कर लाओगे और सर्वत्र आक्रमण करने का भी कोई उपयोग नहीं था। सीता वहाँ

नहीं है, यह सत्य है। इस सत्य को जो झूठ मानेगा वह मूर्ख है।" श्रीराम के वचन सुनकर वानरों ने उनके चरण पकड़ लिए। श्रीराम ने उन्हें आलिंगनबद्ध किया, तब वानर सन्तुष्ट हुए। श्रीराम के कार्य में सहायता के लिए वानरों ने अपना संकोच त्याग दिया तथा रावण से जूझने के लिए आनन्द में वे नाचने लगे। तत्पश्चात् श्रीराम बोले : "दक्षिण की ओर गये हुए वीर बहुत समय बीत जाने पर भी अभी वापस नहीं लौटे। वे निश्चित ही ढूँढ़कर आयेंगे।"

दक्षिण की ओर गये वीरों का वृत्तान्त– श्रीराम से मुद्रिका मिलने के पश्चात् हनुमान वेगपूर्वक जहाँ नल, नील, जाम्बवंत उनकी राह देख रहे थे, वहाँ आये। इसके आगे दक्षिण की ओर गये पराक्रमी वानरवीरों ने किस प्रकार सीता की खोज की, उसके विषय में श्रोता अब सावधानीपूर्वक सुनें। हनुमान के वहाँ पहुँचते ही अंगद ने दक्षिण दिशा की ओर खोज के लिए उत्साहपूर्वक वानरसेना सहित प्रस्थान किया। गुफाओं गहन जंगलों, पर्वतों विभिन्न स्थानों, बिलों, उजाड़ धरती, शिखरों, गिरिकंदराओं में ढूँढ़ते हुए वे वीर चल रहे थे। नाना प्रकार के फल खाते हुए, नदी का निर्मल जलपान करते हुए नीतिपूर्वक विभिन्न स्थलों को ढूँढ़ते हुए वे वानर अपने बल पर आगे बढ़ रहे थे। वानरवीर महापराक्रमी थे जंगलों में ढूँढ़ते हुए आगे बढ़ते समय अचानक एक भयंकर संकट आ खड़ा हुआ। आगे एक विकट अरण्य आया, जहाँ के वृक्ष सूख गए थे। पत्ते, फूल तथा फल थे ही नहीं। नदियों का पानी सूख गया था। उस वन में चींटियाँ, पशु, पक्षी, कंटक इत्यादि नहीं थे। सूर्य अपनी उष्णता लिये हुए चमक रहा था, जिसके कारण वानर संत्रस्त थे। खाने के लिए फल मूल नहीं थे, पत्ते भी नहीं थे तथा पीने के लिए पानी न था, जिससे वानर व्याकुल थे। उस दुष्ट स्थान से बचने के लिए उड़ान भरने पर भी वहाँ से आगे नहीं बढ़ पा रहे थे क्योंकि छलांग पुनः उसी वन में पड़ जाती थी। वहाँ से निकलने का कोई मार्ग दिखाई नहीं दे रहा था। भूख से वानर तड़प रहे थे, पानी के बिना प्यास से मूर्च्छा आने लगी थी, गरमी से छटपटाहट होने लगी थी. वानर अत्यन्त कष्टप्रद संकट में घिर गये थे। प्राणों पर आये संकट से अब कैसे सीता को ढूँढ़ा जाएगा। अपनी मृत्यु के मुख से निकलने का मार्ग बुद्धि को नहीं सूझ रहा था। अब वानरों को ऐसा लगने लगा कि उनका जीवन यहीं समाप्त हो जायेगा।

हनुमान द्वारा उस शापित वन के विषय में कथन– श्रीराम भक्तों के सहायक हैं, उनके नाम स्मरण से दैन्य, दुःख आदि का निवारण हो जाता है। उस शापदग्ध वन में वे वानर राम नाम के उच्चारण से बच गए। उस वन का समूल वृत्तान्त हनुमान वानरों को बताने लगे– "यह दण्ड ऋषि का वन शापित है। इससे मुक्ति नहीं है। उस शाप का मूल कारण अब सुनें। दण्ड ऋषि का दस वर्ष का अत्यन्त बुद्धिमान पुत्र था। उसे वनदेवता ने मार डाला और उसके मांस का भक्षण किया। उस बालक की खाल और हड्डियाँ पशु-पक्षियों ने खायीं। ऋषि को इस बात का ज्ञान होते ही उन्होंने भयंकर शाप दिया और यह वन उजाड़ हो गया। जो प्राणी इस वन में आयेगा, वह मृत्यु को प्राप्त होगा, ऐसा वह शाप था। जो ऋषिपुत्र मारा गया, वह विद्या सम्पन्न था, वेद शास्त्रों के ज्ञान के कारण उन्मत्त हो गया था ब्राह्मणों से बहस कर, वह उनकी भर्त्सना किया करता था। इसीलिए भूतों ने उसका घात किया। जो वाद-विवाद में ब्राह्मणों का अपमान करता है, वह ब्रह्म राक्षस जाति का होता है और उसकी देह भूतों का खाद्य होती है। इसीलिए भूतों ने उसका नाश किया " हनुमान द्वारा यह कथा बताते ही वानर हाहाकार करने लगे। उसी समय एक दूसरा संकट वन में उपस्थित हुआ। उस ऋषि का पुत्र, जो ब्रह्म-राक्षस हो गया था, वह उस वन में रहकर प्राणिमात्र का भक्षण करता था। वह उन विकल हुए वानरों को खाने

के लिए प्रचंड गर्जना करते हुए उनकी ओर दौड़ा। उसकी आँखें प्रज्वलित नेत्र कुंड के सदृश लाल लाल थीं सभी वानरों को निगलने के लिए वह जीभ चटकारते हुए आगे बढ़ा। उसे आता हुआ देखकर वानर युद्ध के लिए तैयार हुए। अंगद ने आवेशपूर्वक उड़कर राक्षस पर हथेली से प्रहार किया।

अंगद को लगा कि वह राक्षस रावण है और उसने ज़ोर से एक थप्पड़ मारकर उसका घात कर डाला। उस बलवान् के प्रहार से राक्षस के नाक और मुख से रक्त बहने लगा और वह पर्वताकार राक्षस निष्प्राण होकर गिर पड़ा। उस ब्रह्मराक्षस को श्रीराम-भक्त के हाथों से मुक्ति प्राप्त हुई, जिससे ऋषि अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने वह वन शाप से मुक्त कर दिया। वानरों के वन में प्रवेश से वह शापमुक्त हो गया क्योंकि जहाँ-जहाँ भक्तजन जाते हैं, वहाँ-वहाँ उनके कारण वह स्थान मुक्त हो जाता है।

वानरों की भूख प्यास से व्याकुल अवस्था– राजकुमार अंगद ने राक्षस को मारकर विजय प्राप्त की लेकिन वन में अन्न जल न मिलने के कारण वानर व्याकुल थे। सुग्रीव के निर्देशानुसार सीता को शुष्क वन-विवरों में शतावर्त सहित अनेक पर्वतों में ढूँढ़ना था परन्तु इन सभी जगहों में उसका पता नहीं चल सका। अतः अब वानरों को यह चिन्ता थी कि आगे क्या करें ? गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गंधमादन, मैंद, द्विविद, अंगद आदि सभी के समक्ष भूख से प्राण जाने की स्थिति उत्पन्न हो गई थी, प्यास से सभी व्याकुल थे। सभी वानरों को यह लग रहा था कि उनकी मृत्यु निश्चित है वानरवीरों को खाने के लिए पत्ते तक न मिल सके। जब उनको भूख एवं प्यास की पराकाष्ठा हो गई तब उन्होंने हनुमान से प्रार्थना की। वे बोले– "हे हनुमान, हम आपकी शरण आये हैं, हम सभी शरणागतों को आप प्राणदान करें। हमारे प्राणों की रक्षा करने में आप समर्थ हैं। आपको देवताओं का वरदान है अतः हमें आप जीवन-दान दें।" वानरों के इस प्रकार पीड़ित एवं व्याकुल होकर प्रार्थना करने पर उनके प्राणों की रक्षा के लिए हनुमान ने वन का पूरा निरीक्षण किया तब उन्हें वन में एक विवर दिखाई पड़ा, जो वृक्षों के जाल से छिप गया था जल-पक्षी उसमें प्रवेश करते हुए उन्हें दिखाई दिए। भूख और प्यास से व्याकुल वानरों से वह बोले– "यहाँ एक जलस्थान है, सावधानीपूर्वक आप देखें। चोंच में फल लेकर पक्षी अन्दर से बाहर निकल रहे हैं। हंस, सारस, बगुला, चक्रवाक एकदम बाहर निकल रहे हैं, वे अपने मुख में मछली पकड़े हुए हैं, अतः इस विवर में निश्चित रूप से फल और जल विद्यमान है। अब मैं तुम्हें तृप्त करूँगा। हम श्रीराम के भक्त हैं और श्रीराम भक्तों की रक्षा करते हैं। श्रीराम के सन्तुष्ट होने पर भूख से मृत्यु कैसे हो सकती है ? हनुमान के वचन सुनकर वानरों को श्रीरघुनाथ का स्मरण हो आया, जिससे निमिषार्द्ध में उनकी थकान दूर हुई और वे विवर देखने के लिए उस ओर गये। चोंच में फल लेकर असंख्य पक्षी विवर से बाहर आ रहे थे। यह देखकर वानरों का समुदाय हर्षित हुआ। फिर वानर आश्चर्य करते हुए बोले– "धन्य हो हनुमान की दृष्टि जो जाली के अन्दर निहित जल-युक्त गुप्त विवर को देख सकी।" इस प्रकार हनुमान की स्तुति कर सभी वानरों ने उनके चरणों पर मस्तक रखा और बोले– "तुम हमारे प्राणदाता प्राण रक्षक हो। तुम सभी प्रकार से अदम्य पराक्रमी हो। तुम्हारा सत्संग हमारे लिए श्रेष्ठ है। तुम हमारे रक्षणकर्ता होने के कारण, हमें संकटों से बाधा नहीं होती है।"

वानरों का विवर में प्रवेश, विवर का वृत्तान्त– हनुमान वानरों से बोले– "तुम सब लोग इस विवर में प्रवेश करो। फल व जल ग्रहण कर तृप्त हो जाओ। फिर हम जानकी को ढूँढ़ना प्रारम्भ करेंगे।" वानरों ने जब विवर को देखा तो उन्हें कुछ सूझ नहीं रहा था क्योंकि वहाँ पर गहन अंधकार था सूर्य-चन्द्र के प्रकाश का वहाँ अभाव था। अतः विवर में प्रवेश करते हुए वानरों को भय हो रहा

था. हनुमान आगे बढ़कर विवर में ढूँढने लगे। वानरों ने एक दूसरे का हाथ पकड़कर हनुमान की सहायता से विवर में प्रवेश किया। विवर का मार्ग अत्यन्त कठिन था। वहाँ इतना घना अंधेरा था कि कोई किसी को देख नहीं सकता था। उन्हें लग रहा था कि यहीं खडे खड़े उनके प्राण चले जाएँगे। वानरवीर एक महीने से भूखे थे। अन्न एवं पानी के अभाव में वे व्याकुल हो गए थे। इसी कारण वे विवर में कठिनाई का अनुभव कर रहे थे। उनमें आगे बढ़ने की शक्ति नहीं थी और पीछे लौटना असंभव था. उन्हें मार्ग नहीं सूझ रहा था। वे अत्यन्त दु.खी थे। उस एक योजन लम्बे अंधकारमय विवर-मार्ग में उन्होंने किसी तरह प्रवेश किया परन्तु अत्यन्त कष्टपूर्वक वहाँ पहुँचकर वे मूर्च्छित हो गए. अंधकार ने उनकी बुद्धि को अवरुद्ध कर दिया। निराहार रहने से उनकी चेतनता समाप्त हो गई। प्यास से मुख सूख गया। उनके मुख से शब्द भी नहीं निकल पा रहे थे। जिस प्रकार प्रलयकाल में प्राणी गहन अंधकार में डूब जाते हैं, उसी प्रकार सभी वानरवीर सब कुछ भूलकर अचेतन होकर गिर पड़े। बलशाली हनुमान एक-एक को पूँछ में बाँधकर आगे निकले। वानरों की अवस्था देखकर भी वे पीछे नहीं हटे। विवर ढूँढने के लिए सबको लेकर आगे बढ़े। हनुमान की दिव्य दृष्टि को अंधकार रोक न सका। अपनी पूँछ में वानरों का बोझ लेकर वह शीघ्रता से आगे बढ़े।"

वानरों के प्राण बचाने के लिए हनुमान ने एक उपाय किया। अपने पिता वायु को उन्होंने बुलाया। फिर वे पिता से बोले– "राम काज करते हुए मरने में भी वानरों को परमानन्द का अनुभव होगा। अगर आपने उनके प्राण बचाये तो वह पूर्ण रूप से श्रीराम की सेवा होगी।" श्रीराम-सेवा का विचार सुनकर वायु सन्तुष्ट हुए। उन्होंने वानरों के प्राणों की रक्षा की। श्रीराम के परमभक्त अगर मूर्च्छित भी हो गए तो उन्हें काल की ओर से घात होने का भय नहीं रहता क्योंकि श्रीराम स्वयं उनके रक्षक होते हैं। भक्त सावधान हो अथवा असावधान, श्रीराम उन्हें भूलते नहीं हैं। उन्हें जन्म एवं मरण की बाधा नहीं होती। काल भी उनके समक्ष खड़ा नहीं रह सकता। जो अखंड रामनाम स्मरण करते रहते हैं, उनके कारण ब्रह्मांड पवित्र होता है। वे श्रीराम को प्रिय होते हैं। काल से संघर्ष के समय वे नाम-स्मरण की गर्जना से काल को परास्त करते हैं। राम-दूत हनुमान के समक्ष तो कलिकाल थर-थर काँपता है और हरिभक्तों को मारने का सामर्थ्य उसमें शेष नहीं रह जाता है। हनुमान ने अपनी पूँछ से बाँधकर वानरों को तार दिया। सद्गुरु के शिष्य अपने कार्य हेतु अनाथों के तारक सिद्ध होते हैं। यद्यपि वानरों को प्राणहारक मूर्च्छा आ गई थी तथापि सद्गुरु हनुमान के समीप होने के कारण उस सुसंगति से उनकी मृत्यु टल गई। उन्हें समर्थ रक्षक मिल गया था। हनुमान करोड़ों वानरों को पूँछ में बाँधकर आगे बढ़े, उन्हें जब प्रकाश दिखाई दिया तब सभी सन्तुष्ट हुए।

हनुमान की इस कथा का सार यही है कि संकटकाल में अगर नामस्मरण किया गया तो संकट पलायन कर जाते हैं क्योंकि सर्वश्रेष्ठ ईश्वर नामस्मरण के कारण तारक बन जाते हैं। प्रकाश का अनुभव होते ही उस अमृतमय प्रभा से वानर सचेष्ट हुए। वह स्थान देखकर वे चकित हुए "हम पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़े थे। हनुमान की अद्‌भुत शक्ति ने हमारी थकान को दूरकर हमें स्वस्थ कर दिया। हमें मूर्च्छित अवस्था में छोड़कर वह अकेले यहाँ नहीं आये। कृपालु हनुमान करोड़ों वानरवीरों को उठाकर यहाँ आये।" नल, नील, जाम्बवंत एवं अंगद ने हनुमान का गुणगान किया और हनुमान की वंदना कर वे पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गए।

अध्याय १५

[तापसी-हनुमान संवाद]

हनुमान की प्रेरणा से विवर में प्रवेश किये हुए वानर जब सावधान होकर देखने लगे तो उन्हें सुवर्ण भुवन दिखाई दिया। वहाँ शय्या, आसन, छत, भूमि, दीवारें, दिये, पात्र, विमान, वस्त्र, सरोवर, मछलियाँ, नगर, जलचर प्राणी, मोती, रत्न, आभूषण, विविध उपकरण, आभरण, पशु-पक्षी सब कुछ स्वर्णमय था। वह विवर धनधान्य से समृद्ध था। वहाँ से परमामृत की नदी बह रही थी। वहाँ ऋद्धि सिद्धि दोनों ही उपस्थित थीं। वानरों को यह सब देखकर वास्तविक सुख की अनुभूति हुई। वहाँ सूर्य चन्द्र अनुपस्थित होते हुए भी नित्य प्रकाश फैला था। वानर अत्यन्त उल्लसित हो हनुमान की ओर देखने लगे। इस रमणीय स्थल में हनुमान को वानरों ने नेत्र भरकर देखा। उन्होंने सम्पूर्ण विवर ढूँढ़ लिया लेकिन उन्हें वहाँ मानव प्राणी नहीं दिखाई दिया।

तापसी कुमारी का वृत्तान्त– विवर के स्वर्ण मन्दिर में मृग की छाल धारण की हुई एक तापसी कन्या थी। तेज के कारण वह अत्यन्त दैदीप्यमान दिखाई दे रही थी। उसके तप के प्रभाव स्वरूप उसका सम्पूर्ण शरीर तेजमय हो गया था। उसे देखकर वानर समुदाय सशंकित हुआ। हनुमान ने उससे पूछा– "तुम इस भुवन की कौन हो ? अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त मुझे बताओ। तुम एकाकी अबला स्त्री यहाँ पर कैसे निवास कर रही हो ? तप के प्रभाव से तुममें प्रबल तेज विद्यमान है। इस विवर का निर्माण किसने किया ? इस विवर में पूर्ण समृद्धि है। यह शोभायमान भुवन यहाँ पर विद्यमान है, यहाँ का राजा कौन है ? उसने यह स्थान क्यों छोड़ा ? हम यहाँ आश्रय लेने आये हैं, हम तुम्हारे अतिथि हैं। अतः हमें सम्पूर्ण वृत्तान्त बताकर तुम हमारा स्वागत करो।" हनुमान द्वारा ऐसा कहने पर वह आश्चर्यचकित हुई। यह विवर अत्यन्त गुप्त होते हुए भी वानर यहाँ कैसे आये ? उसके मन में यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ। "यक्ष एवं राक्षसों के लिए दुर्गम और देव तथा दानवों से यह विवर गुप्त होते हुए भी आप रामभक्त होने के कारण यहाँ पहुँच पाये।"– ऐसा वह बोली।

तत्पश्चात् उसने श्रीराम-नाम की महत्ता का वर्णन किया। वह बोली– "श्रीरामनाम में जिन्हें विश्वास है, राम-नाम के प्रति जिन्हें लगाव है, उन्हें दुर्गम स्थानों में भी प्रवेश मिल जाता है, यह मैं जानती हूँ। मन में राम के प्रति लगाव होते हुए भी आलस्यवश जो राम का नाम स्मरण नहीं करते उनकी भक्ति बाँझ कपिला गाय के सदृश होती है। जिनका राम-नाम के प्रति लगाव सतही होता है और जो नाम-स्मरण छोड़ व्यर्थ की बातों में ही मग्न होते हैं, उनका लगाव मिथ्या होता है और वह अन्त में काम नहीं आता। खोटे सिक्के जिस प्रकार धोखा देते हैं, वैसे ही इन दांभिक भक्तों की भक्ति भी उन्हें धोखा देती है। उनके पास भक्ति शेष नहीं बचती। भक्ति के सम्बन्ध में विकल्प मन में आते हैं। वह लोभ से भर जाता है फिर उसे आत्म ज्ञान कैसे सम्भव है परन्तु आप सब राम के परम भक्त होने के कारण, इस विवर में प्रवेश कर सके। देहलोभ से मुक्त होने के कारण आप सभी मेरे लिए पूजनीय हैं। जन्म मृत्यु के भय पर विजय प्राप्त कर आपने इस विवर में प्रवेश किया। श्रीराम भक्तों के रक्षक हैं। रात-दिन जो रामनाम का स्मरण करते हैं, उनके विघ्न दूर होते हैं। आप सभी वानरों ने यह पराक्रम कर दिखाया है। अब मैं आपकी दासी हूँ। आप सभी वानरों में प्रमुख भक्त हनुमान हैं, जिनकी राम-भजन के प्रति एकाग्रता आप सबके लिए तारक सिद्ध होगी।"

"मैंने जो अनुष्ठान किया, उस कारण मुझे ज्ञात हुआ कि हनुमान की भक्ति सदृश भक्ति तीनों लोकों में अन्य किसी की नहीं है।" यह कहते हुए उस तापसी के हृदय में प्रेम भाव उत्पन्न हुआ। उसने हनुमान को साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया और विलाप करने लगी। अग्नि और कर्पूर मिलते ही जिस प्रकार एक दूसरे में विलीन हो जाते हैं और ब्रह्म मात्र शेष रहता है, वैसा ही हुआ, हनुमान का रूप निरखते ही तापसी अरूप हो गई तापसी का रूप देखकर हनुमान को सुख की प्राप्ति हुई। दो भक्तों की भेंट होने का लक्षण ही है कि मन में चैतन्य उत्पन्न होकर दोनों को समाधान का अनुभव होना तापसी बोली "मैंने निष्काम बुद्धि से तप किया। उस तप की फल प्राप्ति हुई मेरे अहोभाग्य कि मुझे हनुमान के दर्शन हुए आप भाव-सागर से मुक्ति देने वाले तारक हैं श्रीराम भक्तों की जिनसे भेंट होती है, उन्हें दर्शन, स्पर्श, संवाद, स्थिति एवं भावपूर्वक संसार से मुक्ति मिलती है। इसका मुझे अनुभव हुआ।"-ऐसा कहकर उसने हनुमान के चरणों पर मस्तक रखा और बोली– "हे हनुमान, आपने जो मुझे पूछा, उसकी सम्पूर्ण कथा मैं अब बताती हूँ।"

"मय नामक दानव तेजस्वी एवं मायावी विद्या में कुशल है। यह देखकर दानवों ने उसे अपनी माया विद्या से विश्वकर्मा बनाया। तत्पश्चात् उसने दानवों के नगर, मंदिर, कवच, शस्त्र, यन्त्र, सोने के विमान एवं सुन्दर छत्र-चामरों का निर्माण किया। हीरे, रत्न व सोने के आभूषण एवं उपकरण इत्यादि की उसने अपनी मायावी विद्या से निर्मिति की। मायावी विद्या से अत्यन्त चपलतापूर्वक उसने स्वयं के रहने के लिए इस अतर्क्य, गुप्त, स्वर्ण विवर स्थान का निर्माण किया। यहाँ सूर्य चन्द्र न होते हुए भी नित्य प्रकाश विद्यमान रहता है। उसमें ऐसा कौशल विद्यमान है। यह इतना अतर्क्य है, उसके विषय में कोई भी तर्क नहीं किया जा सकता। यहाँ सब स्वर्णमय है। स्वादिष्ट फल, अमृतमय जल, जलचर, सुगंधित कमल यहाँ उपलब्ध हैं। मय अपनी माया विद्या से मायावी स्थिति का निर्माण कर सकता है, यह तुम ध्यान में रखना। मयासुर ने यहाँ महावन में बैठकर नियमपूर्वक साधना करते हुए अपने तप से ब्रह्मा को प्रसन्न कर लिया। मय ने वर माँगते हुए कहा– "मैं शत्रु को मारूँ लेकिन मुझे मृत्यु न आये, ऐसा मुझे वर दीजिए " मय की इस माँग को सुनकर ब्रह्मा जी को हँसी आ गई क्योंकि जन्म के साथ मृत्यु निश्चित ही है। मय मृत्यु न आने का वर माँग रहा है परन्तु यह वर इसे कैसे प्राप्त हो सकता है हिरण्यकशिपु की इतनी योग्यता होते हुए उसके सजीव एवं निर्जीव के लिए नहीं कहने पर नखाग्र से वह मारा गया। मयासुर भी उसके ही समान मृत्यु न हो, ऐसा वर माँग रहा है। इसका तात्पर्य है- उसकी मृत्यु निकट है। उसे अमरता कैसे प्राप्त हो सकती है। देहाभिमान के साथ सर्वदा मृत्यु का वास होता है। अहम् का त्याग किये बिना अमरता कैसे सम्भव है-यह विचार कर ब्रह्मा बोले- "मेरा वरदान सुनो- इस विवर में रहने तक तुम्हें मृत्यु नहीं आयेगी। यहाँ से बाहर निकलते ही शत्रु तुम्हारे प्राण हर लेंगे। शत्रु अगर विवर में आ गए तो तुम्हारे द्वारा मारे जाएँगे। तुम्हारे बाहर निकलते ही वहीं तुम मारे जाओगे। हे मयासुर, यह निश्चित है कि जो विषयासक्त होता है, उस पर काल का आघात निश्चित होता है। यह ब्रह्मवाणी सत्य है।"

"ब्रह्मा वर तो दे गए परन्तु उसी समय विचार करने लगे कि देवता यदि लोभ पूर्वक यहाँ आये तो इस विवर में ही उनका घात होगा, इसीलिए देवताओं के लिए इस विवर का मार्ग गुप्त कर दिया। मयासुर यहीं रहता था कालांतर में उसकी मृत्यु हो गई।" इस पर हनुमान ने पूछा– "विवर में मृत्यु नहीं होगी, ऐसा ब्रह्मा का वर होते हुए भी मयासुर क्यों मरा ? " तापसी बोली– "विवर में बैठकर

मयासुर इन्द्र के वध के लिए मन्त्र तन्त्र कर दैत्यों एवं दानवों को युक्ति बताता था, उसमें मन्त्र-तन्त्र सम्मोहन इत्यादि का उपयोग करना बताता रहता था। इसीलिए इन्द्र भी मयासुर के वध के लिए सावधानीपूर्वक तत्पर रहता था। वह विवर में जा नहीं सकता था इसलिए द्वार पर खड़ा रहता था। मयासुर के बाहर न निकलने के कारण इन्द्र उसे मार नहीं सकता था। तब इन्द्र ने ब्रह्मा से ही मय को मारने की युक्ति पूछी। ब्रह्मा इन्द्र से बोले– "मयासुर को कामिनी से अत्यन्त लगाव है अतः इसी युक्ति से उसे बाहर लाकर उसका वध किया जाय।" तत्पश्चात् ब्रह्मा ने मेरी सखी हेमा नामक अप्सरा को निश्चयपूर्वक विवर में भेजा। उसके पीछे मय के वध का विचार था। इसी स्त्री लोलुपता के कारण शुंभ-निशुंभ, सुंद-उपसुंद इत्यादि का वध हुआ था। स्त्री के कारण मृत्यु प्रसिद्ध ही है। स्त्री-लोलुपता के कारण पता नहीं कितने लोगों का वध हुआ। आगे भी स्त्री-लोनुपता में अनेक मारे जायेंगे और उनको अधोगति प्राप्ति होगी। अप्सरा सुन्दरी हेमा को विवर में आया हुआ देखकर मयासुर चक्र में फँस गया और "मेरे अहोभाग्य कि तुम मेरे पास आयीं"- ऐसा कहा। हेमा भी चतुर थी। दोनों ने मद्यपान किया। तत्पश्चात् नृत्य एवं गायन करते हुए दोनों विवर से बाहर आये। उस समय मौका देखकर इन्द्र ने उसे वज्र से मार डाला। ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर अप्सरा हेमा को सुवर्णभुवन और यह स्थान दिया और साथ ही इस स्थान को दुर्गम भी बना दिया।"

"मैं सुवर्णमनु की कन्या स्वयंप्रभा हूँ। हेमा से मेरी मैत्री और एकात्मता थी। मैंने उसी समय ब्रह्मा से वरदान माँगा कि मुझे निष्काम अनुष्ठान के लिए पूर्ण मुक्ति दी जाय। मेरी विनती सुन प्रजापति ब्रह्मा सन्तुष्ट हुए। वह स्वयं बोले– धन्य है निष्कामी का मुख, वचन और आगमन। निष्काम भावना से ही जग पवित्र होता है। निष्काम भावना मुझे सराहनीय और सुखप्रद लगती है। निष्कामी के मुख का दर्शन कर हरिहर भी हर्षित होते हैं। इस विवर में हरिहर का स्थान है, वहाँ तुम निष्काम रूप से अनुष्ठान करोगी। हे स्वयंप्रभा, मेरा यह वरदान सत्य है। इस विवर में श्रीराम भक्तों के अतिरिक्त किसी को भी प्रवेश नहीं मिलेगा। उनका आतिथ्य करने से तुम नित्यमुक्त हो जाओगी। हरिदासों का दर्शन, स्पर्श, अभिवंदन एवं उनसे संभाषण इत्यादि विविध प्रकार से आतिथ्य करने पर वदनीय मुक्ति की प्राप्ति होती है। हरिदासों की संगति बिना भाग्य के प्राप्त नहीं होती। हरिदासों की सद्भावनापूर्ण भक्ति ही स्वभावतः नित्यमुक्ति होती है।"- ब्रह्मा ने यह वरदान दिया और चतुरानन अदृश्य हो गए। मेरी सखी हेमा का यह ब्रह्मदत्त भुवन है।"

"हेमा कामासक्त थी और यहाँ पुरुषों का आगमन नहीं होता था। अतः वह मुझे इस भुवन की रक्षा के लिए यहाँ रखकर स्वयं स्वर्ग चली गयी। अब ब्रह्मवाणी सत्य होकर मेरे भाग्य से रामभक्त यहाँ आये हैं, वे मुझे मुक्ति देंगे।"-यह कहकर उस तापसी ने साष्टांग दंडवत् कर हनुमान की चरण-वंदना की। तत्पश्चात् वह बोली– "वानर भूख से पीड़ित हैं अतः यहाँ के वन में जाकर मधुर फल खायें, स्वादिष्ट पानी पियें।" तापसी का कथन सुनकर हनुमान बोले– "भूख से वानर अत्यन्त क्षीण हो गए हैं। उन्हें पेड़ पर चढ़ना संभव नहीं होगा। वानर अगर सचेष्ट होते तो उन्होंने तुमसे पूछे बिना ही वन में उथल-पुथल की होती। क्षुधा से उनकी शक्ति क्षीण हो चुकी है, उन्हें वृक्ष पर चढ़ना संभव नहीं हो सकेगा। आपके लाकर देने से ही उन क्षुधा-पीड़ितों के प्राण बचेंगे। स्वयं लाकर देना ही दानों में उत्तम दान है। जो घर पर बुलाकर दिया जाता है, वह मध्यम दान है। अत्यन्त दयनीय स्थिति को प्राप्त होकर याचक द्वारा दान माँगने पर जो दिया जाता है, वह दान निन्दनीय है। कुछ लोग क्रोधित होकर अथवा

कुछ लोग भर्त्सना करते हुए जो दान देते हैं, वह दान अधमाधम दान है। द्विजों से सेवा ग्रहण कर उनको जो दान दिया जाता है वह दान नहीं होता, वह मज़दूरी होती है। इस प्रकार का दान भी अधम दान है। अतः हे स्वयंप्रभा, अपने धर्म की रक्षा के लिए अतिथियों को फल देकर वानरों के प्राणों की रक्षा करो।" तापसी स्वयंप्रभा ने हनुमान के वचन सुनकर फल लाकर विधियुक्त पूजन कर वानरों को भोजन दिया।

जिस प्रकार चक्रवर्ती पृथु भगवत्पूजन करते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण उत्साहपूर्वक हनुमान आदि वानरगणों का पूजन किया। जिसे जो फल व मूल रुचिकर लग रहा था, वह देकर पानी दिया। फिर सुगंधित शिखरणी दी। उसने वानरों को सोने की थालियाँ देकर उसमें अच्छे फल परोसे। इसके अतिरिक्त नाना प्रकार के रसों की भरी कटोरियाँ दीं। कहीं किसी प्रकार की अपूर्णता का आभास उसने नहीं होने दिया। एक मास के उपवास से पीड़ित वानरों ने आम का रस, मधु-रस, अमृत-रस इत्यादि सुरस उत्साहपूर्वक ग्रहण किये। फल भी भिन्न प्रकार के थे। कुछ सकाम वायु से बिल्कुल गले हुए थे, कुछ हरे व कच्चे थे। कुछ फलों में बहुत बीज थे तो कुछ आधे कच्चे थे। कुछ बहुत कड़े और पुराने थे, कुछ पर सकाम लोभ का आवरण चढ़ा हुआ था। कुछ असमय झड़कर गिरे हुए फल भी थे। कुछ फल वनिता-पाश में पड़कर वहाँ से अंधकार में गिरे हुए थे, कुछ विवादों से युक्त कर्मठ फल थे, जो विधि निषेध से अत्यन्त खट्टे हो गए थे। कुछ तप के तेज से तीखे हुए फल थे। कुछ स्वभाव से कसैले थे। कुछ फल ऊपर से अच्छे लेकिन अन्दर से द्विजद्वेष के कारण काँटों से युक्त थे। कुछ फल दिखने में अच्छे लेकिन परनिन्दा से कडवे हो गए थे। कुछ भेदभाव से कटे हुए, कुछ भेद रूपी कीड़े लगने से सड़े हुए थे, जिन्हें कौवे भी नहीं खा रहे थे। वे धूल में गिरकर मिट्टी में मिल गए थे। उनमें कुछ शीत से ठिठुरे हुए व गिरने के कारण फटे हुए थे वानर उन्हें हाथ भी नहीं लगा रहे थे। उनमें से दुर्गंध आ रही थी। कुछ फलों के गुच्छे पाषाणों पर आ गिरे; उनके फूट कर टुकड़े हो गए, जिसमें से कीड़े रेंगते हुए निकलने लगे। कुछ फल सज्ञानता रूपी शिखर से गिरकर टुकड़े-टुकड़े हो गए, उन्हें वानर नहीं खा रहे थे। उन्हें गर्व रूपी चीलें झपट कर ले गईं। जो फल वनिताओं के हाथों से निकल गए, अहम् भाव रूपी डंठल से टूट गए। संकल्प-विकल्प से टूट गए, उतने ही फल परिपक्वता को प्राप्त हुए निर्विकारतारूपी पाड़ में शान्ति की सहायता से स्वयं पक गए, नैराश्य से बच गए, उतने ही फल वानरों ने खाये। शान्ति प्रदान करने वाले फल जिनके अन्दर न तो बीज था और न बाहर छिलका था, जो स्वयं सुख स्वरूपी दिखाई दे रहे थे, वे फल वानरों ने खाये।

वानरों ने जो फल खाये, वे आत्मबोध से परिपूर्ण थे। नैराश्य का रस उनसे निकल गया था। उन पर हंस और शुक मँडरा रहे थे। अहंविहीन, ब्रह्मतत्त्व में लीन और आत्म-पर-भाव से विहीन परिपूर्ण फलों का वानरों ने सेवन किया। दीर्घ कालावधि तक बुभुक्षित रहे वानरों को श्रीराम कृपा ने तृप्त किया और संकट से भक्तों को बचाया। संकट में घिरे भक्तों के समीप रहकर श्रीराम उन्हें द्वन्द्वों से मुक्त कर निर्द्वन्द्व करते हैं। श्रीराम के कारण भक्त मुक्त होते हैं। इस प्रकार वानरों को उस भोजन से पूर्णत्व की प्राप्ति हुई। कृपालु श्रीराम संकट को दूर कर भक्तों को अवश्य बचाते हैं, ग्रंथों में त्रिशुद्धि बतायी गई है। इस त्रिशुद्धि की कौन सी विधि है ? सद्गुरु के बिना वह शुद्धि नहीं होती, यह सावधानीपूर्वक समझें। शब्दों का निःशब्द होना शब्द शुद्धि है। आशा निराशा से परे जाना मन-शुद्धि है, देह रहते हुए विदेहत्व अनुभव होना देह शुद्धि है और इस त्रिशुद्धि से पवित्र हुआ जा सकता है। ऐसी त्रिशुद्धि से वानर तृप्त होकर स्वानन्दमय हो गए। इस तृप्ति की डकारों के नाद से आकाश गूँजने लगा।

वानरों की तृप्ति, अन्नदान का महत्त्व– वानरों ने भूख से व्याकुल होने के कारण शीघ्रता से फल खाये। चटखारे लेकर जल्दी-जल्दी खाते हुए उनके मुख से लार निकल रही थी। देवताओं और ऋषियों को मुँह चिढ़ाते हुए वे फल खा रहे थे। बड़े संकट से वे बाहर आये थे। वानरों द्वारा तृप्त होकर निकाली गई चटखारों की ध्वनि से आकाश गूँज गया। श्रीरघुनाथ ने वानर समूह को बचाने के लिए तापसी को भेजा, भक्तों की रक्षा के लिए विवर का निर्माण किया-ऐसी भावना उनमें निर्मित हुई। अगर बुभुक्षितों को तृप्त करने वाला भोजन दिया जाय तो उससे भगवान् सुखी होते हैं। अकाल में दिया गया ब्राह्मण-भोजन इतना श्रेष्ठ होता है कि उसके समक्ष राजसूय यज्ञ व अश्वमेध-यज्ञ भी नगण्य हैं। तापसी का अहोभाग्य, जिसने फल लाकर वानरों को भोजन कराया, जिससे वानरों में पुन: चेतना का संचार हुआ।

अध्याय १६

[संपाती का उद्धार]

वानर एक महीने तक भूख से पीड़ित थे इसीलिए तापसी ने फल लाकर उन्हें तृप्त करने वाला भोजन दिया, जिससे वानरों को अत्यन्त उत्साह का अनुभव हुआ। फलमूल खाकर, निर्मल जल पीकर तृप्त हुए वानर अत्यन्त प्रसन्न थे। वानरों का सम्पूर्ण दल पहले की अपेक्षा अधिक प्रबल हो गया था। अब जनक कन्या को ढूँढ़ने के लिए उनका बल सौ गुना बढ़ चुका था। वानर हनुमान से बोले "हम सभी यहाँ मात्र फल खाने हेतु आये हैं अथवा सीता को ढूँढ़ने के लिए आये हैं अत: रामकार्य को पूर्ण करें। यह निश्चित है कि इस विवर में ढूँढ़ने से सीता नहीं मिलेंगी। अब आगे क्या करना है, यह बतायें। अगर दक्षिण पंथ ढूँढ़ें तो इस विवर में सूर्य तथा चन्द्र के बिना नित्य प्रकाश है। दसों दिशाओं में देखकर भी दक्षिण पंथ दिखाई नहीं देता। पूर्व, पश्चिम कौन-सी अथवा उत्तर, दक्षिण कौन-सी, कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है। दिशाओं का ज्ञान हो नहीं रहा है अत: किस ओर जायें।

तापसी का प्रश्न; हनुमान का निवेदन– जिसके मस्तक पर अत्यधिक बोझ होता है, वह तीव्रगति से भागता है। किसी व्यक्ति के अत्यन्त उन्मत्त होने पर उससे कोई कथा अथवा वार्ता पूछनी नहीं चाहिए। जो ज्ञान-गर्व से पीड़ित होता है, जो विषयमद से उन्मत्त होता है, जो भूख से ग्रस्त होता है, उनसे वृत्तान्त नहीं पूछना चाहिए। तापसी बोली– "हे वानरनाथ, भूख-पीड़ितों से वार्ता पूछनी नहीं चाहिए। लेकिन अब फल ग्रहण करने से चैतन्य आ गया है, अत: अपने मन का वृत्तान्त बतायें। यह गूढ़-वन यह गुप्त विवर होते हुए भी सब वानर समूह एकत्र हो यहाँ क्यों आये हैं, यह भी मुझे बतायें आप श्रीराम भक्त मेरे भाग्य से आये और इस गुप्त विवर में प्रवेश किया ऐसा किस प्रयोजन से किया, यह मुझे बतायें। मैं तो मात्र आपकी दासी हूँ अगर आपको मान्य हो तो वह कार्य मुझे बतायें।"

हनुमान तापसी से बोले– "हे तापसी, मैं पूर्व वृत्तान्त बताता हूँ, तुम सुनो। श्रीरघुनाथ पूर्णब्रह्म हैं, जिन्होंने सूर्य कुल में अवतार लिया है। वह दाशरथी कौशल्या के पुत्र हैं, पिता की आज्ञा का पालन करते हुए बंधु लक्ष्मण एवं पत्नी सुकुमारी सीता सहित वन में आकर वे पंचवटी में वनवास के लिए रह रहे थे। गंगा के तट पर रहते हुए राम लक्ष्मण मृग के पीछे गये। इधर पंचवटी में कोई नहीं है यह देखकर कपटी रावण भिक्षुरूप में आया। वह सीता का हरण कर ले गया। सीता को ढूँढ़ते हुए राम

किष्किंधा आये। वहाँ उन्होंने भाई की पत्नी का हरण करने वाले वालि का बाण से वध किया। सुग्रीव को राजा बनाकर अंगद को युवराज पद दिया। राजा सुग्रीव ने हमें सीता को ढूँढ़ने के लिए दक्षिण-दिशा की ओर भेजा। हमने दक्षिण-दिशा में सर्वत्र ढूँढ़ा परन्तु सीता का पता न चल सका। फिर हम विवर के समीप आये, सुग्रीव की कठोर आज्ञा थी कि एक मास के भीतर वापस लौट आयें, जो नहीं लौटेगा उसका अपमान और भर्त्सना होगी। हमने विवर में प्रवेश किया, उसके पश्चात् एक महीना बीत गया। यह विवर गहन एवं दुर्गम है, यहाँ से बाहर निकलने का मार्ग दिखाई नहीं दे रहा था। इस विवर के बिल में प्रवेश करते ही हम मूर्च्छित हो गए। यहाँ हम कैसे आये, यह भी ज्ञात नहीं हो रहा था। इस विवर की विचित्रता यह थी कि यहाँ उत्तर, दक्षिण दिशा कौन-सी या पूर्व, पश्चिम दिशा कौन-सी है, यह समझ में नहीं आता। हमें हमारा आना और जाना भी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हो पा रहा है। अतः हे कृपामूर्ति, हमारे ऊपर कृपा करो।"

विवर के बाहर निकलने में वानरों की सहायता– "हम विवर के बाहर निकल सकें तभी हमारी सीता से भेंट हो सकेगी। अतः तुरन्त कृपा कर हमारा उद्धार करें।" इस प्रकार वानरों की विनती सुनकर तापसी प्रसन्न हुई। विवर में प्रवेश तथा निर्गमन, ज्ञानी, द्विज एवं देवता भी जानते नहीं हैं। ब्रह्मा का वर ही ऐसा था कि विवर में प्रवेश कर बाहर नहीं निकला जा सकता। इस विवर से बाहर जाने की कोई युक्ति नहीं है। तत्पश्चात् वह तापसी बोली– "मुझ पर ब्रह्मा प्रसन्न हैं। विवर में प्रवेश करने तथा निकलने की जानकारी मुझे है। मुझे वह ब्रह्मा द्वारा दिया गया वरदान है। जो श्रीराम का भक्त है, उसका प्रवेश दुर्गम स्थान पर भी हो सकता है। रामनाम की इतनी शक्ति है कि वह हरिभक्तों को संसार से निश्चित रूप से मुक्ति प्रदान करता है। श्रीरामनाम की सहायता से कलिकाल भी आगे भागता है तो उसके समक्ष विवर बहुत तुच्छ है। उसका संकट आपको बाधित नहीं कर सकता। श्रीराम की सेवा जिसका नित्यकर्म हो, हृदय में श्रीराम का प्रेम हो तथा मुख में नित्य राम का नाम हो, ऐसे भक्तों की सर्वत्र सहज-गति होती है। वीर हनुमान भक्ति में सर्वश्रेष्ठ हैं। श्रीराम के नाम से गुण-गभीर वानरों का उद्धार होता है। आज मेरा अनुष्ठान सफल हो गया क्योंकि मुझे हनुमान के दर्शन हुए। आज मैं सुखी हुई। सत्संग की बड़ी महिमा होती है। जप, तप एवं ध्यान स्थिति सत्संग से सार्थक हो जाती है। सत्संगति की महिमा बहुत बड़ी है। इसके कारण भवसागर से मुक्ति मिलती है। श्रीराम भक्तों का समूह आज मेरे भाग्य से यहाँ आया है। उनकी यथाशक्ति सेवा कर वानरों को विवर से बाहर जाने में मैं सहायता करूँगी।"

वानरों का विवर से बाहर निकलकर समुद्र तट पर आगमन– "विवर से बाहर निकलने के लिए मेरे वचनों पर विश्वास रखकर, सभी वानर अपने हाथों से अपनी आँखें बन्द कर लें। देव, दानव, ऋषि महंत को भी आँखें खोलकर कल्पान्त तक भी विवर से बाहर निकलना सम्भव नहीं होगा- ऐसा वह तापसी बोली। इस पर सब वानर अपनी आँखें बंद कर बाहर निकलने की राह देखने लगे। कुछ क्षण उसी स्थिति में रहकर वे आँखें खोलने के लिए कहे जाने की राह देखने लगे। किसी के द्वारा न कहे जाने पर उन्होंने स्वयं ही आँखें खोलीं। आँखें खोलते ही उन्हें सामने भयंकर गर्जना करने वाला समुद्र दिखाई दिया। वानर आश्चर्यचकित हो गए। हम यहाँ कैसे आये, उस तापसी ने यह कैसे किया ? उस तापसी ने हाथ पकड़ कर चलाया भी नहीं तथा गोद में उठाया भी नहीं फिर हमें वह विवर के बाहर कैसे लायी ? इतना कौशल जिसके पास है, वह तापसी कहाँ है ? यह विचार करते हुए वानरों ने चारों तरफ ढूँढ़ा। सम्पूर्ण वन ढूँढ लिया परन्तु तापसी एवं विवर कहीं दिखाई नहीं दिया। वे

आश्चर्यचकित हुए। वास्तव में वानरों का भ्रम दूर करने के लिए तापसी नहीं वरन् रामभक्ति ने ही कृपापूर्वक विवर में आकर वानरों को तारा। मयासुर की मायावी शक्ति ने विवर में वानरों को भ्रम में डाल दिया था परन्तु रामनाम का निरन्तर स्मरण करने वाले वानर उससे बच निकले। श्रीराम नाम का स्मरण करने वाले भक्तों को भ्रम की बाधा नहीं होती। राम-नाम की महत्ता से ही वानर विवर में से निकल सके।

श्रीराम-नाम के भय से माया अपने प्राण बचाकर भागती है फिर कौन भला भक्तों को भ्रमित कर सकता है। क्षुधा के कारण हनुमान ने भक्ति की। तापसी को नित्य-मुक्ति प्राप्त हुई। हरिभक्तों की संगति मिलने से भक्तों को भव-सागर से मुक्ति मिलती है। राम-नाम का जाप करने से तापसी तर गई, इसका जितना वर्णन करें अल्प ही होगा। वानरों ने विवर में जो किया, वह सावधानीपूर्वक सुनें। वानरों ने नाम का स्मरण संकीर्तन किया। वह ध्वनि विवर में व्याप्त हो गई अतः उस विवर का उद्धार हुआ। राम-नाम से संसार का उद्धार होता है। भक्त जिस स्थान पर जाते हैं, वह स्थान मुक्त होता है। राम-नाम का सतत स्मरण करने से जड़, जीवों का उद्धार होता है। वन में वानरों को नाम स्मरण के प्रभाव से विवर से मुक्ति प्राप्त हुई। राम नाम के कारण उन जड़, जीवों का उद्धार हुआ। इस प्रकार वानर विवर का उद्धार कर समुद्र तट पर आये। उन्हें सीता की खोज करनी थी। इससे पूर्व उन्होंने गिरि कन्दराओं में खोजा परन्तु सीता नहीं मिलीं। अब उनके समक्ष भयकर समुद्र था। "सुग्रीव द्वारा दी गई एक मास की अवधि विवर में ही समाप्त हो गई। वहाँ सीता का पता न चलने के कारण कार्यपूर्ण नहीं हुआ। सीता को ढूँढ़ने का कार्य पूर्ण हुए बिना अगर हम लौटे तो राजा की आज्ञा का उल्लंघन करने के लिए सुग्रीव हमें दंडित कर अपमानित करेगा।" ऐसा वानर कहने लगे।

वानरों का समुद्र के समीप रुकने का निर्णय—सीता को ढूँढ़ने के लिए दक्षिण दिशा में सर्वत्र खोज की। अब यह भयंकर समुद्र सामने आने के कारण आगे जाने की गति ही अवरुद्ध हो गई। सीता की खोज के लिए, इस समुद्र के कारण आगे जाना नहीं है और पीछे जाने का तात्पर्य वानरों का प्राण गँवाना है। यह कहते हुए अंगद दुःखी हो गया। "सुग्रीव निश्चित रूप से मुझे उलाहना देते हुए कहेंगे—"अंगद ! तुम युवराज, हो तुम्हारे आधीन वानर समूह है, फिर भी सीता को ढूँढ़े बिना ही वापस लौट आये ? ऐसा कहकर वह मुझे दंडित करेंगे। मुझे खर पर बैठाकर घुमाया जाएगा, गले में चप्पलों की माला पहनायी जाएगी। गोबर के गोलों का अभिषेक किया जाएगा। इस प्रकार मेरी दुर्दशा की जाएगी। यह सब सहन करते हुए लोक लज्जा से मेरी मृत्यु हो जाएगी। इससे तो यही उचित होगा कि मैं प्राण जाने तक यहीं पर रुक जाऊँ। सीता की खोज किये बिना मुझे कोई नहीं पूछेगा तो और लोगों की क्या बिसात, सभी वानरों की दुर्दशा होगी। वह जटायु सचमुच धन्य था। सीता को छुड़ाने के लिए रावण से युद्ध कर रण में उसने अपने प्राण त्याग दिये।" अंगद के ये वचन सुनकर वानरों ने भयभीत होकर विचार किया कि 'आगे होने वाली दुर्दशा सहन करने की अपेक्षा समुद्र तट पर ही प्राण त्याग दिये जायँ। देह का लोभ कर दुर्दशा सहन करने की अपेक्षा यहाँ राम-नाम का स्मरण करते हुए प्राण त्यागे तो परमार्थ की प्राप्ति होगी। अतः हम सभी दर्भासनों पर बैठ कर मृत्यु की राह देखते हुए यहीं रुकें'। सभी का यह विचार होने पर वानरों ने घास लाकर उस पर बैठकर मरने की तैयारी की। उन करोड़ों वानरों ने समुद्र तट पर डेरा डाला। संपाती (गिद्ध पक्षी का नाम) ने उन्हें देखा तो उसने विचार किया कि 'जो समुद्र तट पर आते हैं, वे उसके भक्ष्य होते हैं।' यह विचार कर वह वानरों को खाने के लिए वहाँ आया।

वह अनेक दिनों से भूखा था अतः उसे लगा 'देवताओं ने कृपा कर ये वानर मेरे खाने के लिए ही यहाँ भेजे हैं। यहाँ जो आते हैं, वे मेरे भक्ष्य होते हैं और उनकी मृत्यु हो जाती है।' 'आप कौन हैं ? यहाँ क्यों आये ?'- संपाती ने जिस समय यह प्रश्न पूछा, उस समय वानर निश्चित रूप से घास पर बैठकर श्रीराम के सम्बन्ध में वार्तालाप कर रहे थे। उन्हें मृत्यु का भय लग नहीं रहा था। यह देखकर संपाती उनसे बोला– "मेरे उग्र स्वरूप से प्राणी, प्राणों के भय से भागते हैं परन्तु तुम यहाँ मृत्यु के लिए धरना देकर क्यों बैठे हो ? तुम मरने के लिए क्यों तत्पर हो ? इस स्थान पर तुम मेरा भोजन बनने के लिए ही आये हो, यह सम्पूर्ण वानर समूह मारा जायेगा। तुम जिस रामनाम की बातें कर रहे हो, वह राम इस सृष्टि का कौन है ? तुम्हारी उनसे कहाँ भेंट हुई, मुझे विस्तार पूर्वक बताओ।"

अंगद-संपाती संवाद; हनुमान का प्रश्न– संपाती के वचन सुनकर अंगद उससे बोला- "हम वानर धन्य हैं क्योंकि गिद्ध का भक्ष्य होकर हमें अनायास ही मृत्यु प्राप्त हो रही है। हम तो अन्न जल छोड़कर तड़पते हुए प्राण-त्याग करने वाले थे परन्तु श्रीराम की कृपा से बिना प्रयास के ही हमें मृत्यु प्राप्त हो रही है। हे गिद्ध ! तुम राम कथा क्यों पूछ रहे हो ? आज तुम हमारे अतिथि हो, अतः आनन्दपूर्वक वानरों का भक्षण करो। भूखे को अन्नदान करना यह तो सनातन-धर्म ही है। हमने तुम्हें देह दान किया है अतः वानरों का भक्षण करो।" अंगद के यह कहने पर संपाती बोला– "तुम राम-स्मरण कर रहे हो अतः मुझसे तुम्हें खाया नहीं जाएगा क्योंकि राम नाम भक्तों का रक्षण करता है। जहाँ राम नाम स्मरण किया जाता है, वहाँ मृत्यु प्रवेश नहीं कर सकती। राम नाम भक्तों की रक्षा करता है अतः मैं तुम्हारा भक्षण नहीं कर सकता। राम-नाम का स्मरण करने से जन्म-मृत्यु का चक्र समाप्त हो जाता है. मेरे अहोभाग्य कि तुम रामभक्त यहाँ आये। तुम मुख से राम का नाम जपते हो, हृदय में श्रीराम के प्रति प्रेम विद्यमान है, तुम्हारी देह राम-भक्ति के प्रति समर्पित है। यह मेरा अहोभाग्य है। अतिथि के भोजन के लिए तुम देहदान करने को तत्पर हो। वास्तव में तुम लोग श्रीराम के भाग्य से जन-जन के सौभाग्य हो। त्रिभुवन में धन्य हो। हे सौभाग्यशाली, तुम किस कार्य के लिए यहाँ आये हो, मुझे स्पष्टतापूर्वक बताओ। मैं तुम्हारा कार्य सिद्ध करूँगा। मुझे उसके सम्बन्ध में विशेष लगाव है, इसीलिए मैं यह गुप्त बातें पूछ रहा हूँ। तुमने श्रीराम को आँखों से देखा है, उनकी भेंट तुम्हें कैसे हुई-यह बताओ। श्रीराम राजराजेश्वर हैं। तुम वनचर वानर हो; अतः तुम रामभजन की ओर कैसे उन्मुख हुए, मुझे सविस्तार बताओ।"

संपाती की विनती सुनकर वानर आश्चर्यचकित हुए– "रामनाम का स्मरण करने से गिद्ध भक्षण नहीं कर सकता, यह कैसे सम्भव है ? जो इस समुद्र तट पर आया, वह संपाती का भक्ष्य बन गया परन्तु अब श्रीराम के नाम का स्मरण करने वाले वानरों को वह खा नहीं सकता। राम-नाम का स्मरण करने से उस स्मरण कर्ता को मृत्यु भी मार नहीं सकती। हम पूर्ण रूप से अभागे हैं क्योंकि हम राम-नाम का स्मरण करने वालों की मृत्यु भी चरण-वंदना करती है। हमें यह प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया कि गिद्ध के द्वारा हमारा भक्षण नहीं किया जाता। प्रत्यक्ष मृत्यु भी जहाँ राम नाम जपने से नहीं आ सकती, वहाँ क्षुद्र समुद्र की क्या बिसात ? हम राम-नाम स्मरण की शक्ति मिलने से समुद्र भी लाँघ जाएँगे। राम-नाम का आधार लेने से हम भव सागर भी तर जाएँगे, वहाँ समुद्र का क्या स्थान। हमारे भाग्य से ही इस गिद्ध से हमारी भेंट हुई।" इस प्रकार नाम की महत्ता सुनकर हनुमान के मन में समुद्र लाँघ जाने का उत्साह जागृत हुआ। उसने संपाती से पूछा– "तुम अंडे से जन्म लेने वाले पक्षी होकर, 'रामनाम से मृत्यु नहीं

आती'-यह रहस्य कैसे जानते हो ? अपनी मूल कथा हमें बताओ।" श्रीराम भक्तों की संगति में आने से संपाती का भ्रम दूर होकर उसे अपने पूर्व जन्म का स्मरण हो आया और वह हनुमान को बताने लगा।

संपाती का पूर्ववृत्त कथन– संपाती बोला– "सूर्य के वीर्य से कश्यप के कुल में हम जटायु और संपाती नामक पराक्रमी जुड़वाँ भाइयों का जन्म हुआ। दैत्य, दानव, मानव एवं तैंतीस कोटि देवताओं सहित सभी हमारी दृष्टि में क्षुद्र कीटकों के सदृश थे। हमें अपने बल पर इतना गर्व था। स्वभाव में विद्यमान बल का गर्व और उसमें तारुण्य का आगमन हुआ। हम दोनों शर्त लगाकर सूर्य की चरण-वंदना करने के लिए निकले। पंखों की फड़फड़ाहट करते हुए एक दूसरे के आगे दौड़ते हुए एक दूसरे से अधिक ऊपर चढ़ते हुए, सूर्य की ओर अपना ध्यान केन्द्रित कर हम वेगपूर्वक सूर्य के समीप पहुँचे। उस समय सूर्य मध्याह्न तक आ पहुँचा था। उस समय सूर्य-किरणों के तेज से तपकर जटायु व्याकुल हो उठा। वह मेरी अपेक्षा नीचे उतर आया। मैं घमंडपूर्वक ऊपर बढ़ता गया। मेरे पंख मेरे गर्व के कारण जल कर राख हो गए। जटायु के पंख बच गये और मेरे पंख जल गए। मेरे घमंड का यही परिणाम हुआ। मुझे अत्यधिक दुःख हुआ। मेरे पंख जलने लगे तब मैं जोर से चिल्लाने लगा। यह देखकर अरुण को पुत्र प्रेम उमड़ आया। सूर्य के सारथी अरुण ने सूर्य को बताया कि ये दोनों उसके पुत्र हैं। स्वामी की चरण वंदना करने के लिए आते समय आपके तेज से पंख जल गए।"

सूर्य ने अरुण से कहा– "पृथ्वी-वासी मेरी वंदना करते हैं इसीलिए मैं उनकी देखभाल करता हूँ परन्तु इसके विपरीत पराक्रम का गर्व दिखाने के कारण इसके पंख जल गए हैं। मेरे तेज और प्रकाश से घमंडी व्यक्ति भस्म होते हैं। हे अरुण, तुम्हारी संतान होने के कारण संपाती बच गया। तुम्हारा मन रखने के लिए तुम्हारे पुत्र के रक्षण हेतु मैं वरदान देता हूँ। पुत्र के उद्धार के लिए तुम ध्यानपूर्वक सुनो। तुम मेरे सारथी हो, तुम्हारी और मेरी नित्य एक ही गति है। तुम्हारी संतान का उद्धार करने के लिए मैं वास्तव में यह वरदान दे रहा हूँ। श्रीराम भक्तों की संगति से राम-नाम का स्मरण सुनने के पश्चात् निरभिमानी होकर यह संपाती पुनः पंखों को प्राप्त कर लेगा। रामनाम का स्मरण करने से निरभिमान हुआ संपाती फिर दोनों पंखों की सहायता से उड़ेगा। संपाती गमनागमन की अगम्य गति प्राप्त कर सुख का अनुभव करेगा। रामनाम से दुःख दूर होकर सुख संपत्ति एवं अगम्य गति की प्राप्ति निश्चित है। जहाँ श्रीराम का आगमन होगा, उस स्थान पर जटायु जाएगा और सीताहरण के प्रसंग में उसकी रक्षा करते हुए राम के द्वारा उसका उद्धार होगा।"

संपाती आगे बोला– "दशरथ कौशल्या की गोद में सूर्यवंश में श्रीराम अवतार लेंगे अतः दशरथ से मैत्री कर जटायु विश्वास संपादन कर सकेगा। जनस्थान में जटायु पंख सहित गया और मैं यहाँ दक्षिण समुद्र के तट पर पड़ा हूँ, पंख जले हुए हैं। देह व्यथित है। क्या खाऊँ, इसकी नित्य चिन्ता बनी रहती है। फिर भी श्रीराम का स्मरण नहीं हुआ, वरदान की बात भी भूल गया। जटायु कहाँ गया यह मुझे पता नहीं। उसे भी मेरे विषय में कुछ ज्ञान नहीं। जटायु धन्य है- ऐसा आप कहते हैं। अभी मैंने सुना। हे हनुमान, कृपा कर मुझे जटायु की सम्पूर्ण कथा बतायें," ऐसा कहकर संपाती ने हनुमान के चरणों पर मस्तक रखा। जटायु का नाम सुनकर संपाती का प्रेम भाव उमड़ पड़ा। "धन्य है– जटायु का धर्म, जिसने राम की सेवा की। मैं अभागा, पंखविहीन, राम का स्मरण न करने वाला पापी हूँ। धन्य हैं वानरों के दर्शन, जिसके कारण राम का नाम मेरे कानों में पड़ा। आप मुझे श्रीराम की स्थिति, जटायु की गति और सभी वानर प्राण त्यागने के लिए यहाँ क्यों आये हैं, ये बतायें।"

हनुमान द्वारा जटायु की वार्ता बताना– संपाती बोला– "सात सौ वर्षों के पश्चात् आप वानरों के मुख से जटायु का नाम सुना। मेरे मन में उसके विषय में चिन्ता थी कि जटायु किस अवस्था में है। उसकी स्थिति एवं गति के विषय में अनेक बार चिन्ता का अनुभव होता था। उसका आज निश्चित पता चला। रावण ने सीता का हरण किया तब जटायु ने रावण से युद्ध किया। उसमें उसकी मृत्यु कैसे हुई और श्रीराम ने उसका उद्धार कैसे किया, यह मुझे सुनना है क्योंकि जटायु पूर्ण बलवान् था। रावण उसका वध नहीं कर सकता था फिर जटायु कैसे मरा, यह मुझे विस्तारपूर्वक बतायें।–'' संपाती की यह विनती सुनकर हनुमान को उस पर दया आ गई। अतः जटायु की सम्पूर्ण वार्ता हनुमान ने आनन्दपूर्वक उसे सुनाई। "दशरथ-पुत्र श्रीराम पिता के वचनों के अनुसार वन में सीता और लक्ष्मण सहित जनस्थान में रह रहे थे। उनकी जटायु से भेंट हुई। स्वामी व सेवक की भेंट होने पर, गंगा के तट पर पंचवटी नामक एक रम्य स्थान पर आश्रम बनाया। राम के आश्रम के पास रात दिन जटायु का निवास था। आठों प्रहर वह जानकी की रक्षा करता था। एक बार मृग ने कपट से राम लक्ष्मण को फँसा लिया। इधर रावण भिक्षा के बहाने आया और उसने सीता का हरण कर लिया। उस समय सीता का आक्रंदन सुनकर जटायु दौड़कर आया और उसने रावण से भीषण युद्ध किया। उसकी कथा सुनें।"

"जटायु ने रावण का धनुष्य बाण, पिशाच मुख वाले गर्दभ, रथ सभी झपट्टा मारकर तोड़ दिए रावण के मस्तक का मुकुट गिरा दिया और उसके दस मुखों पर प्रहार किया। रावण का मार्ग रोककर उसके समक्ष प्राणों का संकट खड़ा कर दिया। जटायु ने अपने नखों से प्रहार कर रावण को घायल कर रक्तरंजित कर दिया। बीसों हाथों को मसल डाला। इस प्रकार दशानन को परास्त कर सीता को मुक्त कराया। रावण अत्यन्त दयनीय होकर विनती कर बोला– "जटायु अब युद्ध रोक दो, मेरे प्राण जा रहे हैं।" रावण दाँतों में तिनका धरकर जटायु से प्राणदान माँगने लगा।

रावण के शरण में आने के कारण जटायु ने उसके प्राण नहीं लिये। शरणागत होने के कारण उसकी रक्षा की और उसके बदले में सीता को छुड़ाया। उसके पंख अवश्य घायल हो गए परन्तु रावण की सारी कीर्ति मिट्टी में मिल गई। फिर रावण कपटभाव से युद्ध करने के लिए लौटा। उसने श्रीराम की सौगन्ध देकर जटायु से उसकी मृत्यु के सम्बन्ध में पूछा और स्वयं मिथ्या ही बोला कि उसकी मृत्यु बायें पैर के अँगूठे में है।" अपने भाई के पराक्रम की कथा सुनकर संपाती का मन प्रसन्न हुआ। उसके स्वयं के पंख धीरे-धीरे बसंत के वृक्षों के सदृश बढ़ने लगे। हनुमान आगे बोले– "श्रीराम की शपथ को प्रमाण मानकर जटायु बोला कि उसकी मृत्यु दोनों पंखों में है। रावण ने तत्काल युद्ध प्रारम्भ किया। जटायु ने रावण के बायें पैर का अंगूठा नख सहित छेद डाला। रावण ने जटायु के दोनों पंख तोड़ दिए, जटायु अत्यन्त दु:खी हुआ। पंख टूटने के कारण मृत्यु को निकट जानकर जटायु श्रीराम के दर्शन के लिए कंठ में समस्त शक्ति को एकाग्र कर रामनाम का स्मरण करने लगा। कृपालु श्रीराम ने जटायु के प्राणों की रक्षा की। श्रीराम से भेंट होते ही उनके चरण पकड़कर जटायु ने कहा– "तुम्हारे समक्ष प्राण त्यागने से मैं पूर्ण ब्रह्म में विलीन हो जाऊँगा, और जीवित रहना कोई भाग्य की बात नहीं है। ऐसी मृत्यु मुझे कैसे प्राप्त होगी।" जटायु के वचन सुनकर श्रीराम प्रसन्न हुए। देह से विदेही होकर जटायु पूर्ण ब्रह्ममय हो गया। इस प्रकार जटायु का श्रीराम द्वारा उद्धार हुआ। फिर श्रीराम और लक्ष्मण सीता को ढूँढ़ते हुए किष्किंधा आये। वहाँ बालि का वध कर सुग्रीव को राज्य व बालि-पुत्र अंगद को युवराज पद दिया। फिर श्रीराम ने अंगद के साथ योद्धा देकर दक्षिण दिशा की ओर सीता को ढूँढ़ने के लिए भेजा। उसके

साथ ही एक मास में लौटने के लिए कहा। सम्पूर्ण दक्षिण-दिशा ढूँढ़कर भी सीता का पता नहीं चला। बिवर में ही अधिक समय व्यतीत होने के कारण काल-मर्यादा समाप्त हो गई। अतः सुग्रीव के दण्डित करने के भय से सभी भयभीत हुए। उसी भय से सभी वानर प्राण त्यागने के लिए तत्पर हुए। चूँकि सीता को न ढूँढ़ सकने के कारण हम सभी लज्जित हैं। अतः श्रीराम को अपना मुख दिखाने की अपेक्षा हम लोगों ने प्राण त्यागने का निश्चय किया।" ऐसा हनुमान ने बताया।

संपाती ने हनुमान का निवेदन सुनकर उन्हें साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया। तत्पश्चात् वह बोला– "आप प्राण-त्याग न करें, मैं आपको सीता के विषय में बताता हूँ। आप रामभक्त, मेरे भव-बन्धन को तोड़ने वाले हैं। मैं आपके चरणों का दास हूँ। मैं खोज के विषय में बताता हूँ, वह सुनें। समुद्र में सौ-योजन की दूरी पर लंका-दुर्ग में अशोक वन में सीता हैं, वह नित्य राम-नाम का स्मरण कर रही हैं। राम-स्मरण के कारण मेरी दृष्टि को उस पार विद्यमान सीता दिखाई दे रही हैं। मुझे अगर पंख होते तो मैं रावण को मारकर तत्काल सीता को लाकर श्रीराम को सुखी करता।"- यह कहते हुए संपाती अभिमानरहित हो गया और सूर्य द्वारा दिये गए वरदान के अनुसार उसे उसके पंख पुनः प्राप्त हुए। वानरों ने भी निरभिमान हुए संपाती के पंखों को निकलते हुए देखा। अब निरभिमानी के लक्षण सुनें। लंकापति को मारकर मैं सीता को लाऊँगा और उससे संसार में मेरी ख्याति होगी, ऐसा अहंकार संपाती को न था। सीता को मुक्त कर श्रीराम को सुखी करूँ और मैं उनका प्रिय सेवक बनूँ, ऐसी भी उसकी अहभावना नहीं थी। निरभिमानी व्यक्ति में आप-पर-भाव नहीं रहता है। श्रीराम मुझसे अलग हैं, यह भाव भी मन में नहीं आता। श्रीराम-भक्तों की संगति से संपाती को इसकी प्राप्ति हुई। श्रीराम की कीर्ति सुनकर उसके मन को शान्ति का अनुभव हुआ। निरभिमानी की त्रिभुवन के पार भी गति होती है। भूमंडल का भेद कर वह परिपूर्ण परब्रह्म पद प्राप्त करता है। वैसा ही संपाती के साथ हुआ। श्रीराम को कीर्ति सुनकर पशु-पक्षियों का उद्धार होता है। इसीलिए श्रीराम का वनागमन हुआ और उन्होंने तीनों लोकों का उद्धार किया।

अध्याय १७

[हनुमान की समुद्र के ऊपर उड़ान]

संपाती द्वारा सीता के विषय में निश्चित और यथार्थ वार्ता बताने पर वानर समूह ने ज़ोरों से जय-जयकार की गर्जना की। सभी वानरों का स्वर सिंहनाद से बड़ा था। सीता के विषय में जानकारी मिलने से प्रसन्न होकर वे चिल्लाने लगे। एक दूसरे को आलिंगनबद्ध करने लगे। परस्पर अभिनन्दन करने लगे। सीता के मिलने की प्रसन्नता में वे हर्षपूर्वक उछलने लगे। अपने कष्ट दूर हुए, सीता की खोज हुई अतः वानर समुदाय हर्ष से डोलने लगा। वानर सुलभ भाव-भंगिमाएँ करते हुए सीता के विषय में शंकाएँ समाप्त होने की प्रसन्नता में वे सराबोर हो गए। तत्पश्चात् अंगद ने समस्त वानर परिवार सहित एकत्र बैठकर यह प्रश्न उठाया कि, "यह शतयोजन सागर लाँघकर जाने की किस योद्धा में शक्ति है ? यह सभी बतायें।"

वानरसेना में विद्यमान योद्धाओं का अपने पराक्रम के विषय में कथन– अंगद का प्रश्न सुनकर उसके ग्यारह सेनापतियों ने समुद्र को लाँघकर जाने से सम्बन्धित अपनी शक्ति के विषय में

बताना प्रारम्भ किया। गज बोला– "मैं दस योजन समुद्र उड़ान तो निश्चित ही कर सकता हूँ।" उस पर गवाक्ष बोला "मेरी क्षमता इससे दोगुनी है। शरभ ने अपनी उड़ने की सीमा तीस योजन की बतायी- तब पराक्रमी वृषभ ने चालीस योजन की गति बतायी। इसी प्रकार गंध मादन ने पचास योजन, मैंद ने साठ योजन, और द्विविद ने सत्तर योजन अपनी उड़ने की शक्ति बतायी। वानर समूह में महावीर सुषेण की तुलना तो की ही नहीं जा सकती। तारा का पिता सुषेण जिसे पश्चिम दिशा की ओर भेजा था, उसकी भी क्षमता अस्सी योजन है, ऐसा कुछ वीरों ने कहा। वृद्धत्व के कारण बल-क्षीण जाम्बवंत रघुनाथ को सुखी करने में असमर्थ होने से लज्जित होने के कारण अपने पुरुषार्थ के विषय में बताने में संकोच कर रहा था। वह बोला– "मेरी यदि युवावस्था होती तो मैं सीता को लाकर श्रीराम को अवश्य सुखी करता परन्तु वृद्धावस्था के कारण मेरी शक्ति क्षीण हो चली है मैं अपनी युवावस्था का पराक्रम बताता हूँ, मेरा उपहास न कर उस मूल कथा को सुनें, बलि के यज्ञ में आकर नारायण ने वामन रूप में बलि को फँसाया और स्वयं त्रिविक्रम हो गया। उस समय मैं और सुषेण अपनी युवावस्था में थे। हम त्रिविक्रम प्रदक्षिणा करने के लिए निकले। तीन बार प्रदक्षिणा करते समय सुषेण की शक्ति क्षीण होकर उसका आत्मबल समाप्त हो गया। मूर्च्छित हो गया। उस समय मुझमें इतनी शक्ति थी कि मैंने त्रिविक्रम चरणों का लक्ष्य समक्ष रखकर पृथ्वी, पर्वत, वन तथा अरण्यों की इक्कीस बार प्रदक्षिणा की। एक श्वास में इक्कीस बार पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर भगवान् महेश की वदना करने के लिए मैं कैलास पर्वत पर गया।"

"जिस समय मैंने कैलास पहुँचकर महेश की वन्दना की, उसी समय बलपुत्र स्वर्ग में आया। उसे इन्द्रादि देवताओं का वध करना था। वह बोला–"बल नामक दैत्य मेरा पिता है। इन्द्र ने अचानक उसका वध कर दिया। उस इन्द्र से अब मैं बदला लूँगा। मैं उसका वध कर दूँगा।" ऐसा कहते हुए उस दैत्य पुत्र ने क्रोधित होकर इन्द्र को मारने के लिए जाते हुए एक पर्वत उठाकर हाथ में ले लिया। बलपुत्र द्वारा उठाया हुआ वह पर्वत देखकर स्वर्ग के देवता काँपने लगे तभी मैंने बीच में ही कूदकर वह पर्वत पकड़ लिया, लेकिन वह मेरे हाथों से छूट गया। मैंने शीघ्र ही वह घुटनों पर टिकाकर अमरपुरी को बचा लिया। उस समय क्रोधपूर्वक युद्ध के लिए आये बल-पुत्र से मैंने दृढ़तापूर्वक युद्ध किया, मेरे सामर्थ्य से भयभीत हो बल पुत्र भागने लगा। पर्वत के आघात से पैर टूटने पर भी मैंने शीघ्र उड़कर बल-पुत्र का वध कर दिया। इससे सुरगण आनन्दित हुए। मैं तभी से लंगड़ा हूँ। वृद्धावस्था के कारण मेरी शक्ति क्षीण हो गई है फिर भी मैं नब्बे योजन सागर की उड़ान कर सकूँगा।" नल बोला - "मैं समुद्र पर सत्तानबे योजन उड़ान भर सकूँगा। उससे अधिक मुझमें सामर्थ्य नहीं है।" नील ने एक उड़ान में सौ योजन समुद्र पार करने का अपना सामर्थ्य बताया महावीर अंगद समुद्र लाँघने के विषय में बोला– "सौ योजन एक उड़ान में मैं सहज ही पारकर सकता हूँ परन्तु फिर वापस आने के लिए उतना ही अन्तर पार कर सकने का सामर्थ्य मुझमें है अथवा नहीं, इस विषय में मुझे शंका है। एक ही उड़ान में मैं समुद्र के दूसरे किनारे पर पहुँच जाऊँगा। वहाँ अगर राक्षसों का समूह आ गया तो उनसे मैं बलपूर्वक युद्ध कर सकूँगा अथवा नहीं, यह मैं कह नहीं सकता। मैं बालक हूँ मुझमें कितना पराक्रम है, इसका मैं अनुमान नहीं लगा सकता। फिर भी रामनाम का स्मरण कर सीता को क्षणमात्र में छुड़ा लूँगा। रामनाम का स्मरण करने पर उन बेचारे राक्षसों की क्या बिसात और उस बलशाली रावण का क्या महत्त्व ? निमिषार्द्ध में मैं सीता को ले आऊँगा।" अंगद के वचन सुनकर वानरों ने जयजयकार किया योद्धाओं ने उसकी वंदना की और कहा कि "तुम महापराक्रमी राजकुमार हो। हम सब सेवकों के होते हुए तुम्हारे जैसे बालक राजकुमार को समुद्र लाँघने के बड़े संकट में कैसे डाल सकते हैं ?"

हनुमान की स्तुति; उनके द्वारा निवेदन– अंगद ने आगे कहा– "ऐसा कहते हुए सबको प्राण भी देने पड़ सकते हैं। इसके साथ ही अगर सीता को ढूँढे बिना वापस गये तो भयंकर अपमान होगा।" तब जाम्बवंत बोला– "हनुमान सुविख्यात वीर है। वह क्यों चुप होकर देख रहा है ? वह अत्यन्त प्रतापी है। बचपन में सूर्य को निगलने जाते समय उसने राहु का अभिमान चूर-चूर कर दिया। इसका पिता वायु एवं स्वयं हनुमान, बल के वहनकर्ता हैं। उसे ब्रह्मचर्य का कोपीन गर्भ में ही प्राप्त हो गया था। उसको माता भी उसे नग्नअवस्था में देख नहीं सकी। श्रीराम ही मात्र उसे देखने वाला है। इस प्रकार यह कपिराज पूर्ण रूप से ब्रह्मचारी है। जाम्बवंत द्वारा ये कहने पर हनुमान आनन्दित हुए। रोमांचित होकर उन्होंने अपनी पूँछ ज़मीन पर पटकी। वे उत्साहित होकर उठे और बोले– "सौ योजन सागर लाँघकर जाना मेरे लिए एक पग आगे बढ़ाने के समान है। आप संशंकित न हों। मैं सीता को क्षणार्द्ध में ही लेकर आऊँगा। रावण को सबक सिखाकर, राक्षसों को अपना पराक्रम दिखाकर, अपने प्रताप से सीता को लाकर श्रीरघुपति को सुखी करूँगा। और एक विचार उचित समझकर तुम्हें बताता हूँ, जिससे रघुवीर सुखी होंगे, वही मैं करूँगा। आज्ञा के बिना अगर सीता को लाया तो श्रीराम क्रोधित होंगे अतः लंकानाथ को त्रस्त कर सीता का पता लगाकर मैं वापस आ जाऊँगा।"

हनुमान बोले– "राक्षसों के शत्रु श्रीराम और लक्ष्मण दोनों ही शूरवीर हैं। उन्हें मैं सीता के पास ले जाऊँगा, जिससे वे रावण का कुल सहित नाश करेंगे। उसके लिए ऋष्यमूक पर्वत से उनको लेकर मैं उड़कर लंका जाऊँगा, जिससे वे कुल सहित रावण का वध करेंगे अथवा मैं ही पराक्रम से वहाँ रावण का नाश कर हर्षपूर्वक सीता को राम के पास लाऊँगा। सीता को राम के पास अथवा राम को सीता के पास ले जाऊँगा, या फिर मात्र खोजकर तुम सबको बताने के लिए तुम्हारे पास आऊँगा, यह कार्य मैं अवश्य करूँगा। लंका के द्वार पर रण-मर्दन कर राक्षसों के सिरों से कन्दुक के सदृश खेलूँगा, लंका की होली जला डालूँगा तभी मैं बलवान् हनुमंत कहलाऊँगा। सीता को ढूँढ़ने के लिए संत्रस्त क्यों हो रहे हो ? तुम सभी वानर सुखपूर्वक यहीं रुको मैं लंका की ओर प्रस्थान करता हूँ।" इतना कहकर हनुमान ने सबको दंडवत् प्रणाम किया। तब अंगद ने हनुमान को आलिंगनबद्ध कर लिया। वानरों ने गर्जना कर आकाश को गुंजायमान कर दिया।

हनुमान की उड़ान के परिणाम– हनुमान ने वानर-समूह को अपनी उड़ान के विषय में जानकारी दी। उन्होंने बताया– "मेरी उड़ान से निर्मित होने वाला हवा का झोंका तुम सब से सहन नहीं हो पाएगा। मेरी उड़ान के दबाव से महेन्द्र पृथ्वी में दबने लगेंगे। पर्वत शिखर चूर-चूर हो जाएँगे। द्वार एवं कुंडियाँ टूट जाएँगी।-उस वायु से पर्वत टूटकर पृथ्वी पर गिर पड़ेंगे। शिखर घास के तृण सदृश उड़ जाएँगे। वृक्ष समूल उखड़कर अंतरिक्ष में घूमते रहेंगे। आँधी में सूखे हुए पत्ते जिस प्रकार उड़ते हैं, उसी प्रकार बाँस के वन उखड़कर गिर पड़ेंगे। समुद्र के पानी में इतना उफान आयेगा कि उससे ध्रुवमंडल भीग जाएँगे, दिग्गज थर-थर काँपेंगे और जलचर तड़पने लगेंगे। मेरे उड़ने से शरीर से आने वाली घर घर की आवाज़ से मेघ भयभीत हो जाएँगे और सागर की गर्जना से कलिकाल भी सिहर उठेगा। उस नाद की भयंकरता ऐसी होगी कि उमा भयभीत होकर नीलकंठ के पास चली जायेंगी। रमा विष्णु से कहेंगी कि इस संकट का शीघ्र निवारण करें। मेरी उड़ान की कालावधि अत्यन्त भयंकर होगी। उससे सुर, नर, निशाचर सभी भयभीत होंगे। वहाँ तुम सभी वानर कैसे धैर्य रखोगे। अतः तुम सभी वानरगण एक दूसरे

का हाथ पकड़कर अपनी सम्पूर्ण शक्ति से पर्वत को पकड़े रहो। इसी से तुम्हारे प्राणों की रक्षा होगी। उसमें भी यह ध्यान रखना कि दक्षिण की ओर के पर्वत बह जाएँगे अतः आप उत्तर की ओर झुककर बलपूर्वक पकड़े रहें। जिस प्रकार श्रीराम का बाण सर सर करता हुआ निकल जाता है, उसी प्रकार मैं उड़कर लंका में घुसकर रणक्रंदन मचा दूँगा और यहीं मेरा प्रारम्भ होगा। इन्द्रजित् से लड़कर, रावण के बल का अनुमान लगाकर, राक्षस समूह को संत्रस्त कर दूँगा। लंका के राक्षसों के दाँत निकालकर उसका ढेर रावण के समक्ष लगा दूँगा, जिससे रावण त्रस्त हो जाएगा। सम्पूर्ण लंका में ढूँढ़कर सीता का पता लगाऊँगा। फिर भी यह नहीं मिलीं तो सम्पूर्ण लंका उखाड़ कर राम के समक्ष ले आऊँगा। हनुमान के उत्साहपूर्वक वचन सुनकर वानर गण आनन्दित हुए और जिस प्रकार मरुद्गण इन्द्र की वंदना करते हैं, उसी प्रकार उन्होंने हनुमान की वंदना की। श्रीराम-स्मरण रूपी पुष्पमाला को वानरों ने गले में पहनाया, उससे उनकी शोभा द्विगुणित हुई। इन्द्र के समान जिसकी महत्ता थी और जो वानर समुदाय से घिरा हुआ था, ऐसे वीर हनुमान ने अपना ध्यान लंकापुरी पर केन्द्रित किया और वह महेन्द्र पर्वत पर चढ़े।

हनुमान ने फिर श्रीराम का स्मरण किया। वानरों को आलिंगनबद्ध किया और प्रसन्नतापूर्वक उड़ने के लिए तैयार हुआ। मुख में राम नाम लिखी मुद्रिका और हृदय में श्रीरामचन्द्र को धारण कर वह कपिश्रेष्ठ आनन्दपूर्वक समुद्र लाँघकर जाने के लिए तत्पर हुआ। उसने अपने बाहुओं के सामर्थ्य को तौला तब उसके सम्पूर्ण शरीर में स्फूर्ति का समावेश हुआ। उसने अपनी पूँछ पटकी जिसके साथ ही उसका सम्पूर्ण शरीर रोमांचित हो उठा। उसके द्वारा पूँछ पटकते ही उसके बल से शिलाएँ और शिखर चूर-चूर हो गए, वृक्ष, फल एवं पुष्पों सहित धराशायी हो गए। आकाश में पक्षीगण भयभीत हो उठे। दिग्गजों को महाप्रलय का अनुभव हुआ। लकड़बग्घा, सिंह, शूकर इत्यादि गुफाओं में रहने वाले प्राणी भयभीत हो उठे। उस महाबली हनुमान ने उड़ने के लिए पर्वत को पैरों के नीचे दबाया। जिसके परिणाम स्वरूप वह पर्वत भूमि में धँस गया, सर्प पाताल में दबने लगे, आधे दबे हुए सर्प ने क्रोधित होकर मुँह बाहर निकाल कर क्रोधपूर्वक विषवमन किया। उस विष से शिलाएँ सम्पूर्ण रूप से भस्म हो गईं। दबे हुए सर्प मुख बाहर निकालकर क्रोधपूर्वक फुफकार कर गर्जना करने लगे। वे छत्र के समान दिखाई दे रहे थे। सर्पों द्वारा विष उगलने से अग्नि की लपटें निकलने लगीं। विष समाप्त होने के पश्चात् वे विकल होकर तड़पने लगे। पर्वत पर विद्यमान दिव्य औषधियाँ अमृत सदृश थीं। उनके विष का प्रभाव समाप्त हुआ। भार से धँसे हुए पर्वतों से सफेद, पीले, लाल इत्यादि धातु की धाराएँ निकलने लगीं। उन धाराओं से पर्वत सुशोभित हुए। वामन जिस प्रकार बढ़कर त्रिविक्रम हुए, उसी प्रकार हनुमान बढ़ने लगे। उन्होंने स्वामी के कार्य के लिए पराक्रम करने हेतु विशाल रूप धारण किया। पूर्णिमा एवं अमावास्या को जिस प्रकार समुद्र बढ़ता है, उसी प्रकार वह कपीन्द्र बढ़ने लगा। हनुमान भयंकर दिखाई दे रहे थे, जिसके कारण कालाग्नि-रुद्र चौंक गया।

हनुमान का उड़ान भरना– हनुमान किस प्रकार उड़ान भरते हैं और समुद्र पार करते हैं- यह देखने के लिए ब्रह्मादि सुरवर, सिद्ध, गंधर्व आकाश में एकत्रित हुए। नाना प्रकार के विमानों से आकाश भर गया। हनुमान किस प्रकार उड़ान भरते हैं, यह देखने के लिए और उसका आनन्द अनुभव करने के लिए सभी उत्सुक थे। उमा, रमा, सावित्री इत्यादि नौ नारियाँ वानरवीर की उड़ान देखने के लिए आयीं। हनुमान ने मुट्ठियाँ भींच कर हाथ आगे किये, पूँछ को घुमाकर गोलाकार किया। उसके बल से पर्वतों में दरारें पड़ गईं, किनारे सागर में डूब गए। शिखर आकाश में उड़ गए। हवा के वेग से जड़

सहित उखड़े हुए वृक्ष आकाश में घूमने लगे। जिस प्रकार किसी आप्त को विदा कर सहृदय लोग वापस लौटते हैं, उसी प्रकार पाषाण और वृक्ष सागर में चले गए। हनुमान ने एक विकट गर्जना की, जिससे तीनों लोक गूँज उठे। कलिकाल भयभीत हुआ। देवता संशकित हो विमानों से देखने लगे। वायु की शक्ति को ध्यान में रखकर मन की गति को पीछे छोड़ते हुए, लंका पर लक्ष्य केन्द्रित कर मारुति तीव्र गति से आगे बढ़े।

वानरवीर मारुति के वेगपूर्वक उड़ते ही क्रोध से समुद्र में तूफान मच गया, जिससे उसमें विद्यमान जलचर भ्रमित होकर एक दूसरे से टकराने लगे। मारुति के शरीर के तीव्र वेग से रवि-चन्द्र की गति रुक गई। ग्रह नक्षत्र डगमगाने लगे। उनकी आत्मगति अवरुद्ध हो गई। हनुमान के शरीर के तेज ने आकाश में स्थित चन्द्र एवं सूर्य को ढँक लिया। नक्षत्र जल कर भस्म होने लगे। मारुति तेज से दैदीप्यमान थे। वह मानों बाल-सूर्य के रूप में ढले हुए थे अथवा सेंदुर से निर्मित थे अथवा कुंकुम से रँजित दिखाई दे रहे थे। उनके शरीर की प्रभा से नभ का नभत्व लुप्त हो गया। वे दिव्य तेज के आगर के रूप में सुशोभित हो रहे थे। नभ से जाते हुए हनुमान ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों राम का बाण ही जा रहा है। स्वामी का कार्य सिद्ध करने के लिए मारुति शीघ्रता से जा रहे थे। वानरवीर हनुमन्त तप्त-स्वर्ण के सदृश दिखाई दे रहे थे। उस समय उन्हें विश्राम कराने के लिए सागर ने मैनाद्रि पर्वत से ऊपर आने के लिए कहा– "मैं सूर्यवंश का नित्य अंकित हूँ। हनुमान, राम-कार्य सिद्ध करने के लिए तीव्र गति से जा रहे हैं, सूर्य-वंश मेरे लिए पूजनीय है। हनुमान राम की सहायतार्थ जा रहे हैं अतः हनुमान की सहायता कर उनकी थकान मिटाने के लिए सहायता करनी चाहिए। अतः हे मैनाद्रि, तुम तुरन्त जल से बाहर आकर सामने रहकर कपीन्द्र को विश्राम करने दो। हनुमान अत्यन्त वेगपूर्वक जा रहे हैं, तुम्हारे विलम्ब करने से वे दूर निकल जायेंगे। अतः तुम उनको शीघ्र ही पहले विश्रांति प्रदान करो। उन्हें विश्रांति देने से तुम्हारी सेवा श्रीराम तक पहुँच जाएगी। इसके अतिरिक्त इस विश्राम से आगे लंका में वे क्षण भर में पहुँच जाएँगे। हे मैनाद्रि पर्वतनाथ, हनुमान को विश्राम देने से रघुनाथ को सुख सन्तोष प्राप्त होगा इसीलिए हनुमान को विश्राम कराने का कार्य तुम अवश्य करो।"

सागर द्वारा मैनाद्रि को विनती करने पर वह पर्वतश्रेष्ठ उल्लसित होकर बढ़ा। उस पर रसीले मधुर फल और निर्मल जल था। यह एक प्रकार से हनुमान की पूजा ही थी। मैनाद्रि पर अत्यन्त सुन्दर विश्राम स्थल था। मन्द सुगन्धित मलयानिल, पंचम स्वर में कोयल का कूकना, भँवरों की झनकार करने वाली ध्वनि वहाँ विद्यमान थी। पिछले सभी श्रम भुलाकर हनुमान को परम विश्रांति प्राप्त हो, ऐसा आराम देने के लिए वह पर्वत उल्लसित होकर बढ़ा। पर्वत को बढ़ा देखकर हनुमान और ऊपर चढ़ गए। मैनाक पर्वत हनुमान का मार्ग रोकते हुए बढ़ा तो हनुमान उससे भी ऊँचे हो गए। इस प्रकार जैसे-जैसे पर्वत ऊपर आकाश में चढ़ रहा था। वैसे-वैसे मारुति आकाश में और ऊँचे चढ़ते जा रहे थे। उन्हें थकान अनुभव नहीं हो रही थी। इस प्रक्रिया की ओर उदासीन हो, वह सौ योजन ऊपर चढ़े। उससे दोगुना पर्वत बढ़ गया। तत्पश्चात् हनुमान पाँच सौ योजन बढ़े तो पर्वत सात सौ योजन बढ़ा। हनुमान सहस्र योजन ऊपर चढ़ गए। इस प्रकार दोनों की ऊँचाई बढ़ती गई अन्त में मैनाक पर्वत ने हनुमान के समक्ष हाथ टेक दिये।

मैनाक गिरि और हनुमान का परस्पर संवाद– हनुमान मैनाक पर्वत को लाँघ कर जाने लगे तो मैनाक निराश होकर बोला– "तुम कृपालु राम-दूत हो, तुम मेरी उपेक्षा कर क्यों जा रहे हो। तुम्हारे

चरण स्पर्श से मैं पवित्र होऊँगा। इसीलिए मैं लगातार अपनी ऊँचाई बढ़ा रहा था। उसके पीछे मेरा उद्देश्य अभिमान प्रदर्शन नहीं था। मुझे सागर ने कहा कि हनुमान का अतिथि-रूप से सम्मान कर उसकी पूजा करो। इसीलिए मैं तुम्हारे पास आया। तुम रामभक्त हो अतः तुम्हें विश्राम प्रदान करना था. सगर द्वारा स्थापना करने के कारण सागर नाम पड़ा। तुम उस सूर्यवंश के दास हो अतः हम सब तुम्हारे दास हैं। तुम्हारे पिता ने मुझे स्थापित किया। मैं समुद्र में रहता हूँ। उससे सम्बन्धित वृत्तान्त मैं तुम्हें बताता हूँ, तुम मेरी उपेक्षा मत करो. पहले पर्वत पक्षधर अर्थात् परवों वाले थे। उस समय वे बहुत ऊँची उड़ान भरते थे और पुर नगर चूर-चूर कर डालते थे। उसके कारण अनेक नगर खंडित हो गए। अतः इन्द्र ने वज्र से पर्वतों के पंख काटना प्रारम्भ किया। मैं उस समय भागने लगा। उस परिस्थिति में तुम्हारा पिता वायु मेरी सहायता के लिए आया। वह मुझे समुद्र के पास ले आया और मेरे प्राण बचाये। तुम्हारे पिता द्वारा स्थापित करने पर मैं समुद्र में गुप्त रूप से रहा। अब हे हनुमान, तुम्हें आता हुआ देखकर तुम्हें विश्राम देने के लिए ही बढ़कर ऊपर आया हूँ।"

मैनाक पर्वत का यह वृत्तान्त सुनने के पश्चात् हनुमान ने कृपापूर्वक अपने कार्य के विषय में बताते हुए कहा– "श्रीराम की पत्नी को ढूँढ़ने के लिए मैं शीघ्रतापूर्वक जा रहा हूँ। पहले मन को विश्राम देकर उसके पश्चात् मैं विश्राम करूँगा। श्रीराम के नाम स्मरण के कारण मुझे थकान नहीं आई है जिनका नाम स्मरण में विश्वास नहीं है, उन्हें श्रम, कठिनाई, शोक इत्यादि की बाधा होती है। श्रीराम का दास होने के कारण मुझे लेश मात्र भी थकान का अनुभव नहीं हो रहा है।" हनुमान का यह कथन सुनकर मैनाक रोने लगा। वह बोला "मैं पूर्ण रूप से अभागा हूँ। हनुमान के चरणों का स्पर्श भी मुझे नहीं मिल पा रहा है." मैनाक पर्वत का यह दुःख सुनकर हनुमान बोले "मैं तुमसे फल, मूल, जल, कुछ ग्रहण नहीं करूँगा। उंगलियों से तुम्हारा स्पर्श भी नहीं करूँगा। उस पर पर्वत बोला– "हनुमान तुम केवल मेरे मस्तक पर कृपापूर्वक अपना हाथ रखो। उतने मात्र से ही मैं सनाथ हो जाऊँगा। और मैं कुछ नहीं माँगता।" उन दोनों के विशेष रूप से मैनाक के वचन सुनकर इन्द्र बोला– "हे मैनाक पर्वत, हनुमान के सहायक बनने के कारण अब मैं तुम्हें नहीं मारूँगा। अब तुम सुखपूर्वक समुद्र से बाहर निकल कर कहीं भी जाओ।" फिर हनुमान ने मैनाक के मस्तक पर उँगली रखी। उसके भार से मैनाक समुद्र तल में जा बैठा, जिससे पाताल में सर्वत्र हाहाकार मच गया। सर्प बोले– "पर्वत पर बहुत बड़ा भार है, जिसके कारण सप्त पातालों का चूर्ण हो जाएगा। नव नागों में हाहाकार मच गया है। एक उँगली मात्र रखने से पर्वत सागर में डूब गया। फिर अगर हनुमान स्वयं पर्वत पर बैठे होते तो पर्वत चूर-चूर होकर उसका नाम निशान तक न बच पाता।" ऐसी अपनी प्रसिद्धि कर हनुमान आगे बढ़े। समुद्र लाँघ कर जाने के लिए वे तीव्रगति से आगे बढ़े। उस समय ब्रह्मादिकों को आश्चर्य हुआ। सुरों तथा सिद्धों ने मारुति की जय जयकार की। देव दानव सभी हनुमान का मार्ग रोककर उसमें विघ्न लाने का निश्चय कर उसके प्रयत्न में लग गए।

दानवी सुरसा और हनुमान का संघर्ष; शक्ति-परीक्षा– वायुनंदन हनुमान को सागर के ऊपर से तीव्रगति से जाते हुए देखकर देवताओं ने उसे रोकने के लिए राक्षस रूप में विघ्न उत्पन्न करने का निश्चय किया। हनुमान का सामर्थ्य देखने की देवताओं की रुचि होने के कारण उन्होंने दानवों की माता दनु को विघ्न डालने के लिए भेजा। हनुमान अपनी शक्ति से जा पाने में सफल होता है अथवा उसकी

स्थिति दयनीय हो जाती है, यह देखने का देवताओं ने निश्चय किया। दानवों की माता दनु सुरसा कपट करने में प्रवीण एवं सतेज होने के कारण देवताओं के कहे अनुसार मारुति के मार्ग में बाधा डालने के लिए आयी। समुद्र के पानी का आश्रय लेकर उसने विकराल रूप धारण किया। फिर अपना भयानक मुख फैलाकर वानरवीर को निगलने के लिए वह पानी के बाहर आयी। वह हनुमान से बोली– "इस मार्ग से जो भी जाता है, वह निश्चित रूप से मेरा भक्ष्य बन जाता है। अत: तुम्हें मैं निगल जाऊँगी, इसलिए मेरे मुख में प्रवेश करो।" इस पर हनुमान उससे बोले–"हे माता, मैं सीता को ढूँढ़ने के लिए तीव्र गति से जा रहा हूँ, तुम श्रीराम के कार्य में मेरी सहायता करो। मैं तुम्हारे पैर पड़ता हूँ, तुम विघ्न उत्पन्न मत करो।" सुरसा बोली– "भूखा व्यक्ति अपना भोजन छोड़ दे, यह समझदार व्यक्ति की मूर्खता ही कहलाएगी। कौन राम और कहाँ की सीता ? मैं तुम्हें अवश्य खाऊँगी। तुम अपनी मृत्यु टालने के लिए मुझे ब्रह्मज्ञान बता रहे हो लेकिन अगर भूख से मृत्यु हो गई तो पुण्य कौन भोगेगा।" तत्पश्चात् राक्षसी ने मुख फैलाया तब हनुमान एक योजन बड़े हो गए। अब हनुमान के शरीर बढ़ाने और राक्षसी के मुख फैलाने में स्पर्द्धा शुरू हो गई। हनुमान पचास योजन बढ़ गए। उस समय राक्षसी ने सौ योजन मुख बड़ा किया। उस अवसर को देखकर हनुमान अँगूठे जितने छोटे होकर तुरन्त उसके मुख में प्रवेश कर गये, यह देवताओं ने देखा। देवता बोले "हनुमान को सुरसा ने तत्वत: निगल ही लिया है। अत: सीता को ढूँढ़ने का कार्य रुक गया। यह हमसे मूर्खता हुई है। हनुमान अच्छी गति से जा रहे थे, उसमें हमने यह विघ्न डाला। अब श्रीरघुनन्दन हम पर क्रुद्ध होंगे।" यह विचार कर देवता भयभीत हुए।

हनुमान द्वारा राक्षसी के मुख में प्रवेश करने पर उसे कश्यप की पत्नी, दानवों की माता देवों की सौतेली माँ दिखाई दी। उसने विचार किया– "मेरे पिता वायु की यह सौतेली माँ है अत: इसका घात नहीं करना चाहिए। मुझे ऐसा लगता है कि राम के कार्य के लिए तुरन्त यहाँ से बाहर निकलना चाहिए।" उस वानरवीर को एक युक्ति सूझी। कान के छेद से बाहर निकलना सम्भव है, यह उसके ध्यान में आया। इधर सुरसा जीभ चाट रही थी परन्तु उसे अपने मुख में कहीं हनुमान मिल नहीं रहे थे। मुख के अन्दर ही यह कहीं खो गया कि दाँतों में फँस गया यह देखने के लिए राक्षसी ने मुख में ढूँढ़ना प्रारम्भ किया। उतने में हनुमान कान में से बाहर निकल आये और उन्होंने भीषण भुभु:कार किया। यह देखकर देवता प्रसन्न होकर करतल ध्वनि करने लगे। सुरवरों ने विचार किया कि– "हनुमान परम विवेकी के रूप में विख्यात है। अत: उसने सुरसा का वध न कर कान के द्वारा बाहर आने का मार्ग स्वीकार किया। वह राम नाम के कारण विघ्नो से परे है। रामभक्त, विघ्नों से परे होते हैं। उस पर हनुमान तो परम रामभक्त है श्रीराम-नाम का स्मरण करने वाले तीनों लोकों मे यशस्वी होते हैं।"- यह विचार कर देवताओं ने पुष्प-वृष्टि करते हुए जयजयकार किया। हनुमान का कौशल्य तीनों लोकों में अभूतपूर्व सिद्ध हुआ।

श्रीराम नाम की मुद्रा से युक्त अंगूठी मुख में और अन्तर्मन में श्रीराम का नाम स्मरण होते हुए हनुमान को कैसा विघ्न बाधक हो सकता है ? वह क्षण में समुद्र पार कर लेगा। "मेरा वध न करने वाला हनुमान अपने बल पर मुक्त हो गया।" यह देखकर सुरसा सन्तुष्ट हुई। उसने हनुमान को आशीर्वाद दिया, राक्षसी क्रूरता त्यागकर सुरसा शान्तिरूप हुई– "हनुमान, तुम कार्य में सफल होगे, श्रीराम और सीता का संयोग कराओगे। श्रीराम नाम पर तुम्हारी पकड़ होने के कारण सृष्टि में तुम्हारी बलवान् की

रूप में ख्याति होगी। तुम्हारे कारण राम और सीता की भेंट होकर सृष्टि में राम-राज्य का निर्माण होगा। सीता का पता उचित समय पर लगाकर उसे ढूँढ़ने वाले तुम्हीं होगे। हे सद्बुद्धि कपीन्द्र, तुम निमिष मात्र में सागर लाँघ जाओगे।" ऐसा कहकर सुरसा ने मारुति के चरणों की वंदना की। मारुति तुरन्त समुद्र पार करने के लिए निकले। देवताओं द्वारा विघ्न डालने के लिए भेजी गई सुरसा को हनुमान ने मारा नहीं, यही उसकी अजेयता थी, तत्पश्चात् उस बलशाली ने सागर में अनेक पराक्रम किये

श्रीराम का चरित्र सभी ग्रंथों का मातृगृह है। उस चरित्र को सुनाने वाला मुख और सुनने वाले कान पवित्र होते हैं। जिसने स्वामी-सेवा के लिए प्राण न्योछावर कर दिये, जो ब्रह्मज्ञान का भूषण है, जिसका जीवन नवविधभक्ति से परिपूर्ण है, जो शिव को भी वंदनीय है, ऐसे हनुमान का स्मरण करने से विघ्न भी निर्विघ्न हो जाते हैं। उसकी कथा के स्मरण से ब्रह्मज्ञान सुलभ हो जाता है। उसकी कथा परम पवित्र है।

अध्याय १८

[हनुमान का लंका में प्रवेश]

सुरसा द्वारा देवताओं के विघ्न डालने का प्रयत्न करने के पश्चात् हनुमान ने उसे जीत कर आगे समुद्र को पार करना प्रारम्भ किया। उसी समय सिंहिका नामक राक्षसी उसको निगलने के लिए आयी।

सिंहिका-हनुमान संग्राम– हनुमान जब आकाश मार्ग से समुद्र के ऊपर से जा रहे थे तब समुद्र में उनकी परछाईं पड़ी। अतः सिंहिका के मन में उन्हें निगलने की इच्छा हुई। शिव द्वारा वर प्राप्त सिंहिका परछाई पकड़ कर प्राणी को अपना ग्रास बना लेती थी। इस कारण उसका नाम छायाग्रही भी पड़ा था। वह हनुमान की छाया पकड़कर उन्हें खाने के लिए आयी। उसने हनुमान की छाया को निगल लिया जिससे हनुमान की गति ही रुक गई। उनका शरीर दबने लगा, जिससे वे व्याकुल हो उठे और विचलित हो इधर-उधर देखने लगे। तत्पश्चात् उन्होंने श्रीराम का स्मरण किया। उन्होंने ऊपर-नीचे देखा, तब उन्हें पानी में अद्भुत राक्षसी दिखाई दी। छायाग्रही नामक राक्षसी यही है अर्थात् शत्रु राहु की माता, यह उन्हें ज्ञात हुआ। उन्होंने उसे मारने का निश्चय किया। यह कार्य निर्विघ्न रूप से करने का निश्चय कर उन्होंने प्रयत्न प्रारम्भ किया।

सिंहिका मुँह फैलाकर जैसे ही हनुमान के समीप आयी, उन्होंने अपना आकार अधिकाधिक बढ़ाना प्रारम्भ किया। उसने भी अपना मुँह फैलाना प्रारम्भ किया। उस समय उसका एक जबड़ा पाताल में तथा दूसरा आकाश में था। महाबली हनुमान को निगलने के लिए वह जोर से चीखी। हनुमान तुरन्त उसके मुख में कूद पड़े। वह उन्हें दाँतों के नीचे दबाने लगी। तब उन्होंने उसके गले में प्रवेश किया। पेट में घुसकर उसे फाड़ डाला और आँतें हाथों में लेकर बाहर निकल आये। सिंहिका को अनुभव हुआ कि 'मैं इसे दाँतों में फँसा नहीं सकी। उसको चबाकर चखा तक नहीं, इसने मुझे स्वयं को खाने न देकर मेरे ही प्राण ले लिए मुझे लगा कि यह वानर सामान्य पशु है परन्तु यह वानर अत्यन्त भयंकर सिद्ध हुआ यह मेरा कौर न बनकर, इसने मेरे ही प्राणों का नाश किया। मैं इसकी छाया पकड़ने गई तो छाया

की माया से इसने मेरी ही काया नष्ट कर डाली। इसके कारण मेरा उद्धार हुआ। हे वानरराज, तुम्हारी चरणधूलि से मेरा उद्धार हुआ।' श्रीराम-भक्तों की चरण-धूलि भी जन्म-मरण के चक्र को समाप्त करती है। ध्यान करने वाले को पूर्ण ब्रह्मत्व प्रदान करती है। ये रामभक्त साधु, सज्जन और कृपालु होते हैं। श्रीराम की भक्ति करनी चाहिए, उनकी कीर्ति का गायन करना चाहिए। श्रीराम-नाम को दोहराने से तीनों लोकों के जड़ मूढ़ों का उद्धार होता है। एक चीख़ने की ध्वनि के साथ सिंहिका समुद्र में जा गिरी। तब महापराक्रमी हनुमान के यश से प्रसन्न होकर देवताओं ने तालियाँ बजायीं. राहु से चन्द्रमा की मुक्ति होने के समान ही हनुमान की सिंहिका से मुक्ति हुई। उन्हें देखकर इन्द्र, ब्रह्मा और शंकर उनकी स्तुति करने लगे।

मारुति की चतुराई और पराक्रम का वर्णन– हनुमान ने दुष्ट, कामाचारी, भयानक एवं अत्यन्त क्रूर छायाग्रही नामक राक्षसी को अपने नखाग्रों से मार डाला। सभी देवता कहने लगे कि 'समुद्र पर उड़ान करते समय चार अवसरों पर तुमने अपना पराक्रम और सामर्थ्य दिखलाया, यह तुम्हारी राम भक्ति की दृढ़ता के कारण हुआ। राम-नाम में दृढ़ भक्ति, राम-स्मरण में दृढ़ बुद्धि, राम भक्ति में दक्षता और श्रीराम की शक्ति से बलिष्ठ होकर इस बल से समुद्र को लाँघकर जाते समय तुमने पराक्रम किये। तुम्हारे इस पराक्रम को हम स्वर्ग के देवता स्वीकार करते हैं।' और वे हनुमान के पराक्रम का वर्णन करने लगे– "पहले पराक्रम में उड़ान के समय महाबली मारुति ने महेन्द्र को भूतल में दबा दिया। उसके नीचे सर्प दब गए, पाताल के नागों में खलबली मच गई। दूसरे पराक्रम में मैनाक पर्वत द्वारा दिये गए विश्राम स्थल को स्वीकार न कर, उस पर्वत पर मात्र उँगली के स्पर्श से इतना भार डाला कि वह पर्वत समुद्र-तल में चला गया। इसी कारण अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल इत्यादि सप्त पाताल दब गए। तत्पश्चात् समुद्र को लाँघकर जाते हुए हनुमान ने सुरसा को अपनी शक्ति से जीतकर तीसरा पराक्रम कर दिखाया। कपटमूर्ति सुरसा दनु दानव माता सबका छल करती थी परन्तु उसका यह कपटी छलावा हनुमान के समक्ष चल नहीं पाया। ऋषि, दानव, मानव, देवता इत्यादि सभी को संत्रस्त करने वाली सुरसा के शरीर में प्रवेश कर उसे परास्त किया। इस समय उसके प्राण न लेते हुए उसके कपट का उसे दण्ड दिया। अन्त में शरण आकर हनुमान की वंदना करते हुए उसने यश प्राप्त होने की अपनी सदिच्छा व्यक्त की। हनुमान के इस पराक्रम का तीनों लोकों में सभी ने वर्णन किया। उनका चौथा पराक्रम सिंहिका का निर्दलन करना था। यह सिंहिका एक भयंकर राक्षसी थी। यह छायाग्रही दुष्ट राक्षसी सभी प्राणियों का घात करती थी। हनुमान ने उसका पेट चीरकर उसका वध किया और सभी को सुखी किया "

हनुमान और क्रौंचा का संघर्ष– सिंहिका का नाश करने के पश्चात् हनुमान ने जो उड़ान भरी तो वे पडलंका* पहुँच गए। वहाँ रावण की बहन और घर्घर राक्षस की पत्नी क्रौंचा प्रमुख थी। एक समय रावण एवं इन्द्र का घोर युद्ध हुआ। उस युद्ध में घर्घर मारा गया। इन्द्र ने भयंकर युद्ध करके राक्षसों को पीड़ित कर दिया था। उस युद्ध में राक्षसों की हानि देखकर रावण आक्रन्दन करने लगा। रणभूमि में जब रावण पकड़ा गया, उस समय कोई रक्षक नहीं था। सेना और प्रधान पलायन कर गए। कुंभकर्ण गहन निद्रा में था। तब घर्घर ही उसके लिए सहायक सिद्ध हुआ और उसने इन्द्र से भयंकर संग्राम किया। इन्द्र ने वज्र मारकर उसकी हड्डियों को चूर-चूर कर दिया और उसे मार डाला। ऐसे संकट के समय

* लंका के आगे बिलकुल उसके समीप का एक राज्य।

इन्द्रजित् शिव के वर के प्रभाव से गुप्त रूप से आया और अपनी जारण-मारण विद्या का उपयोग कर उसने इन्द्र को पकड़ लिया। उसके गले में फंदा डालकर इन्द्रजित् उसे लंका में ले आया। उस समय से उसका नाम इन्द्रजित् पड़ा। रावण की सहायता करते हुए घर्घर रण भूमि में धराशायी हुआ। अतः उसके प्रति आदर व्यक्त करने के लिए क्रौंचा को पड्लंका [लंका के समीप का राज्य] दी गयी। उसकी सेवा के लिए चौदह सहस्र राक्षसियों को रखा गया जो अत्यन्त भयंकर जुझारू एवं नभ चारिणी थीं.

हनुमान ने समुद्र पार कर जो छलाँग लगाई, वह लंका के समीप पड्लंका के पास उत्तरस्रोत के किनारे आ पहुँचे। उस भयंकर छलाँग से पड्लंका और लंकात्रिकूट में कड़कड़ाहट की ध्वनि हुई। त्रिकुवन्ता मे अत्यन्त भयंकर चरमराहट की ध्वनि उत्पन्न हुई। लंका में भूकम्प होने से वहाँ के नरनारी भय से काँपने लगे। सीता को हर कर लाने के कारण लंका में अनेक विघ्न उत्पन्न हो गए। हनुमान की छलाँग से उत्पन्न हुई भीषण ध्वनि के कारण पड्लंका की राक्षसियाँ बाहर आयीं। उन्होंने हनुमान को देखा और उन्हें चारों तरफ से घेर लिया। बाल ब्रह्मचारी होने के कारण उन्होंने स्त्रियों के विरुद्ध कोई पराक्रम नहीं दिखाया। राक्षसियाँ हनुमान को बाँधकर पड्लंका के अन्दर ले गईं। उस समय हनुमान सामान्य रूप धारण किये हुए थे। उसका दीन मुख देखकर क्रौंचा ने उसको गले से बाँधकर पूछा - "यह वानर कौन है किसका है ?" तब राक्षसियाँ बोलीं - "इसकी उड़ान से भयंकर ध्वनि उत्पन्न हुई अतः हम शीघ्र उसे पकड़कर भक्ष्य के रूप में आपके पास उपाहार के लिए लेकर आये हैं।" यह सुनकर वानर को मारने के लिए क्रौंचा ने शस्त्र हाथ में उठाया। यह देखकर हनुमान हँसते हँसते बोले "मुझे खाने से कोई लाभ नहीं, यह आप नहीं समझ रही हैं। मेरे शरीर की मोटाई बढ़ाने के लिए इसमें मांस नहीं है। इसीलिए तो मैं पेड़ पर उछल कर बैठ सकता हूँ, उसी प्रकार चिंता रहित (कलेजे से रहित) होने के कारण गिरि-कंदराओं में रहता हूँ। शरीर में मात्र रक्त भरा हुआ है। आपने शरीर काटा तो सारा रक्त ज़मीन सोख लेगी। फिर क्या आप मिट्टी खाएँगी ? अतः वैसा कुछ न करें। मेरे शरीर में मांस नहीं है शरीर को मृत्यु का भय नहीं है। अतः मेरे इस शरीर को परोपकार में लगाने के लिए इसका सम्पूर्ण भक्षण करें मुझे पूरा निगलकर मुँह में उसका स्वाद चखें। उससे ही क्षण भर में मेरी पुष्टता का आपको ज्ञान हो जाएगा।"

हनुमान के इस कथन को सत्य मानते हुए क्रौंचा ने उन्हें निगलने के लिए अपना मुख बढ़ाया। उसका जबड़ा फैलते ही हनुमान वेगपूर्वक अन्दर मुख में कूद पड़े। तब उसने जीभ द्वारा उसे पकड़ने के लिए जीभ को घुमाया। हनुमान ने शीघ्र गले में प्रवेश किया। वह उन्हें जीभ और दाँतों में न पकड़ सकी। उसके मुख में जलन होने लगी। वह व्यर्थ ही जीभ चाटती रह गई। उसे खट्टा, तीखा, मीठा, नमकीन, कसैला कोई भी स्वाद नहीं आया। राक्षसी उसे पकड़ने के लिए अत्यधिक प्रयत्नशील है, यह देखकर हनुमान ने उसका कलेजा मुट्ठी में पकड़ लिया, वह पेट में उठी वेदना से भूमि पर लोटने लगी। हनुमान उसका कलेजा मुट्ठी में पकड़कर चकित होकर देख रहे थे। राक्षसी के अन्दर इतनी जगह थी कि उसमें करोड़ हाथी बाँधे जा सकते थे। उसकी जठराग्नि इतनी प्रज्वलित थी कि उसमें पर्वत डालते ही उसका चूरा हो जाय। क्रौंचा का हृदय कसकर पकड़कर हनुमान ने उसे धराशायी कर दिया। उस समय उसके ध्यान में आया कि उसने वानर को सम्पूर्ण निगलकर भूल की। अब यह वानर उसके लिए कष्टदायक बन गया है। दाँतों तले न आकर यह वानर पेट में जा बैठने के कारण उसे कष्ट हो रहा है। अतः इसके लिए उसने औषधि लेने का विचार किया।

क्रौंचा ने सैंकड़ों नीम के पेड़ों को दाँतों से चबाया। उसके द्वारा निगले हुए रस में हनुमान डूबने लगे। अतः वे उसके पेट में कूदने लगे। उनके कूदने से राक्षसी को परमवेदना होने लगी। हनुमान ने उसे मारने का विचार कर एक योजना बनायी। उन्होंने अपनी पूँछ बढ़ाकर पूँछ का सिरा उसके गले में डाला जिससे उसे खाँसी आकर अन्त में उल्टियाँ होने लगीं, मल विसर्जन होने लगा। उस प्रबल वात से अन्य राक्षसियाँ उड़कर आकाश में घूमते हुए अन्त में समुद्र में गिरकर डूब गईं। मल की दुर्गंध से राक्षसियों को प्राण जाने का भय लगने लगा। क्रौंचा ने वमन के साथ बाहर निकली हुई पूँछ को कष्टपूर्वक बाहर खींचना प्रारम्भ किया। अन्य राक्षसियों को भी उसने जल्दी-जल्दी खींचने का आदेश दिया, दस बीस राक्षसियों ने उसे खींचने का प्रयत्न किया, परन्तु वे तिलमात्र भी उसे खींच न सकीं, तत्पश्चात् सहस्रों राक्षसियाँ उसे खींचने का प्रयत्न करने लगीं फिर भी पूँछ का अन्त ही नहीं हो रहा था, इतनी लम्बी हो गई थी, क्रौंचा का पेट फूलता जा रहा था, पहले सामन्य दिखने वाला वानर क्रौंचा के पेट में बढ़ने लगा था। उसकी पूँछ का छोर नहीं मिल रहा था। अन्त में उसके भाग्य से उल्टी सहित वानर बाहर आ गिरा अन्यथा उसने संहार ही कर दिया होता। अभी भी अनेक राक्षसियाँ उसकी पूँछ खींच रही थीं, हनुमान क्रौंचा का कलेजा हाथ में लेकर बाहर आये थे। कलेजा बाहर निकल आने से क्रौंचा दीर्घ चीत्कार के साथ भूमि पर गिर पड़ी। उसके प्राण निकल गए। क्रौंचा की चीत्कार से गिरि-कन्दराएँ गूँज उठीं। निकुंवल काँप उठा। लंका में भूकंप आ गया। सहस्रों राक्षसियों को पूँछ में लपेटकर हनुमान ने उन्हें समुद्र में फेंक दिया। जलचरों ने उन्हें अपना भक्ष्य बना लिया।

['श्रोताओं को यह ज्ञात हो कि हनुमान की इस पड़लंका में उड़ान को कालिका खंड का आधार है। अतः उसे वृथा कथन न कहा जाय। रामायण की यह कथा सुनाना वृथा है अगर ऐसा कहा जाय फिर भी तत्त्वतः वह तारक ही है। अतः श्रोता क्षमा करें।'- एकनाथ यह विनती करते हैं।]

पडलंका की अनेक स्त्रियों का हनुमान ने नाश कर दिया। मात्र एक वृद्ध स्त्री पड़लंका में शेष बच गई, उस वृद्धा की ओर मारुति ने कृपापूर्वक देखते हुए कहा-"मैं जो पूछता हूँ, सत्य बताना अन्यथा घात कर दूँगा, मुझे बताओ, यहाँ से लंका कितनी दूर है।" वृद्धा बोली - "वह देखें पीछे ही है, जहाँ उन कलशों की कतारें दिख रही हैं।" हनुमान ने पीछे मुड़कर देखा तब उन्हें लंका पुरी दिखाई दी। लंका में रावण के महल का वैभव हनुमान ने देखा। सोने के कलश, रत्नों से सजे हुए गोपुर और भवन, सूर्य की आभा को छिपाने वाली रत्नजटित कलशों की पंक्तियाँ। यह सब देखकर हनुमान प्रसन्न हुए, श्रीराम की पत्नी को ढूँढ़ने के लिए अब घर-घर को ढूँढ़ना, लंकानाथ को सत्रस्त करना, राक्षसों का नाश करना, इन्द्रजित् से युद्ध कर उसे व्याकुल करना, राक्षस-गणों को युद्ध में मारना- ऐसे अनेक संकल्प मन में कर हनुमान उड़ान भर कर लंका पहुँचे।

हनुमान का लंका में आगमन- हनुमान ने लंका में प्रवेश करते ही अपनी पूँछ की फटकार से रावण का विजय-ध्वज गिरा दिया। यह देखकर राक्षस चिल्लाने लगे। शिखरसहित विजयध्वज को लंका में गिरा हुआ देखकर लंकानाथ चौंक गया। लंका पर संकट के आगमन की उसे अनुभूति हुई। हवा का झोंका, मेघों की गड़गड़ाहट कुछ भी न होते हुए शिखर कड़कड़ाहट की ध्वनि के साथ टूट गए और सम्पूर्ण विजय-ध्वज फट गया। इस घटना से लंकावासी कहने लगे, 'रावण राम की पत्नी का हरण कर लाये हैं तब से हमें विजय नहीं प्राप्त हुई है। राजा अधर्म करने लगा है अतः उसकी मृत्यु निश्चित है।' जनता के यह वचन सुनकर हनुमान का मन उल्लसित हुआ। उसने अपनी पूँछ में

शुभ-शगुन की गाँठ बाँधकर करोड़ों राक्षसों का नाश करने का निश्चय किया। सीता को ढूँढ़ने के लिए उन्होंने तरह-तरह के रूप धरे और क्या-क्या कार्य किये, उसके सम्बन्ध में अब सुनें।

हनुमान अत्यन्त विकट वीर थे। सीता को ढूँढ़ने के लिए उन्होंने अपने मन में विचार कर कुछ निश्चित किया और उन्होंने पर्वत जितना अपना आकार बढ़ाया। राम का कार्य पूर्ण करने के लिए स्थूल रूप योग्य नहीं है। अतः सीता को ढूँढ़ने के लिए बिना कारण क्यों कष्ट सहें, यह सोच कर सामान्य वानर न रहकर कभी दृश्य रूप में कभी अदृश्य रूप में, सीता को ढूँढ़ने के लिए लंका में घूमने लगे। जिसकी आत्मा श्रीराम हैं, ऐसे दृढ़निश्चयी हनुमान अनेक विघ्नों के विषय में जानते हुए अपनी लीला दिखाकर समुद्र लाँघकर आ पहुँचे। रावण का विजय केतु तोड़ते हुए सीता को ढूँढ़ने के लिए हनुमान केतकी-वन में आये। पड़लंका को तहस-नहस करने के पश्चात् अब लंका पर धावा बोलकर, राक्षस-समूह का नाश कर उन्हें सीता को ढूँढ़ना था। सीता को ढूँढ़ते समय इन्द्रजित् का पीछा कर राक्षसों का विध्वंस करना, रावण की सभा में जाकर उसे सन्त्रस्त करना तथा अपनी पूँछ की सहायता से लंका दहन करने का हनुमान ने विचार किया। उसके लिए उन्होंने जो कौशल दिखलाये उसके सम्बन्ध में सुनें। रावण के महल में अटारियों पर नारियल और केले के वृक्षों की पंक्तियाँ थीं। उस पर वह सामान्य वानर का रूप धर कर गुप्त रूप से चढ़े। वहाँ से उन्हें लंका के जो दर्शन हुए, उससे उन्हें लगा कि लंकानगरी अमरावती से भी सुन्दर है। तीनों लोकों का सारा वैभव मानों लंका में आ गया हो। अत्यन्त पराक्रम कर समुद्र को लाँघकर हनुमान लंका में आये, यही किष्किंधाकाण्ड का मर्म है। यहाँ यह काण्ड समाप्त होता है।

[सीता को ढूँढ़ने के लिए हनुमान नें कौन-कौन से पराक्रम किये, उसका वर्णन आगे 'सुन्दरकाण्ड' में होगा।]

॥ इति किष्किंधाकाण्ड ॥

सुन्दरकाण्ड

अध्याय १

[लंका का वर्णन]

हनुमान ने सीता को ढूँढने के लिए जो अतुलनीय पराक्रम किया उसका वर्णन सुन्दरकाण्ड में किया गया है। वह त्रिकूट के शिखर पर चढ़कर लका को चारों ओर से निहारने लगे। तब उनको दिखाई दिया कि सोने के कलशों की पंक्तियाँ आकाश के नक्षत्रों के समान चमक रही हैं। ऐसे करोड़ों कलश लंका में दिखाई दे रहे थे। त्रिकूट पर खडे रहकर लंका को निहारते हुए हनुमान आगे के कार्य की योजना के विषय में विचार करने लगे।

लंका की बनावट और अभेद्यता– लंका को अगर अमरावती की उपमा दें तो वह उससे भी अधिक सुन्दर थी। विश्वकर्मा को भेजकर ब्रह्मा ने उसका निर्माण कराया। कुबेर की अलकावती रावण ने छीन ली लेकिन शंकर ने उसे मुक्त कराया। उस समय ब्रह्मदेव ने विश्वकर्मा से दुर्गम किले और सुरासुरों को अगम्य ऐसी सुन्दर लंका का निर्माण करवाया। अमरावती, अलकावती, भोगावती से भी अधिक सुन्दर लंका को देखकर रावण वहाँ बस गया। लंका की महिमा कैलास के सदृश थी। अत्यन्त दुर्गम पर उतनी ही सुन्दर लका की रावण ने राक्षसों के साथ निवास कर रक्षा की। उत्तम, मध्यम, शुद्ध, अशुद्ध नर-नारी लंका के सुवर्ण मन्दिरों में निवास करते थे। ऐसी लंका की महत्ता थी, ऐसी अनुपम सुन्दर लका में करोड़ों राक्षसगण नित्य विहार करते थे। स्वयं रावण उसकी रक्षा करता था। लंका में प्रवेश करने के लिए किसी को अणुमात्र अवसर भी प्राप्त नहीं हो सकता था। लंका दुर्ग अत्यन्त कठिन था, जिसमें प्रवेश करना एक जटिल प्रश्न था क्योंकि वहाँ हवा को भी संचार करना कठिन था। इसके अतिरिक्त रावण का आतंक था। उसने वायु को कूड़ा साफ करने का कार्य सौंपा था। जहाँ कूड़ा करकट एकत्र होकर रास्ते मलिन हो जाते थे, वहाँ कोड़े मारकर वायु को काम पर लगाया जाता था। ऐसी लंका में वानर के रूप में स्वच्छन्द रूप से कैसे घूमे, यह हनुमान के समक्ष समस्या उत्पन्न हुई। अगर वानररूप में लंका में घूमता हूँ तो जो मुझे देखेगा वह उत्सुकतावश मुझे पकड़ लेगा और राम के कार्य में बाधा पहुँचेगी, यह हनुमान के ध्यान में आया। फिर क्या करें। ? राक्षस रूप धारण करें, वे इस पर विचार करने लगे।

"अगर क्रूर राक्षस का रूप धारण किया तो उससे भी अनर्थ ही होगा क्योंकि राक्षस ब्राह्मण का मांस खिलाएँगे, राक्षस जाति की यही परीक्षा थी कि जो स्वेच्छा से द्विजों का मांस खाएगा, वही शुद्ध-राक्षस होगा अन्यथा वह शत्रु पक्ष का समझा जाएगा। अगर मैंने वह मास खाया तो मेरी सागर पार से यहाँ तक की उड़ान व्यर्थ होगी। फिर क्या राम और क्या सीता, मेरा तो सम्पूर्ण रूप से अधःपतन हो जाएगा, इस प्रकार के राक्षस रूप का स्पर्श भी मुझे न हो।" तत्पश्चात् पूँछ समेट कर कुछ विचार करते हुए राम-नाम का स्मरण कर उन्होंने विश्राम किया। "इस लंका में प्रवेश अत्यन्त कठिन है नीति

एवं धर्म का विचार करके भी मुझे ऐसा ही लगता है कि मैं स्वयं मध्यस्थता करने जाता हूँ तो भी घमंडी रावण को यह मान्य नहीं होगा। सीता की मुक्ति हो, ऐसा कोई दान भी नहीं है। अतः सीता दान से भी मुक्त नहीं हो सकती। राक्षसों में अगर फूट डालने का विचार करता हूँ तो यहाँ अपनत्व की भावना का विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि उसमें मांस भक्षण का सम्बन्ध आएगा फिर अपनत्व कैसे उत्पन्न होगा। राक्षसों में फूट डालने का प्रयत्न किया भी तो दशानन तक वार्ता पहुँचेगी। उसके समक्ष भेद नीति चल नहीं सकती। उससे युद्ध करना भी कठिन है। लंका दुर्ग अत्यन्त जटिल है। इन्द्रजित्, कुंभकर्ण जैसे जुझारू योद्धा हैं। चारों ओर सागर है। अतः मनुष्य एवं वानरों का आगमन यहाँ कैसे सम्भव है। श्रीराम जैसा निर्भय वीर रावण का सपरिवार नाश कर सकता है, परन्तु यह भयंकर सागर बीच में उपस्थित है। श्रीराम यहाँ तक पहुँचेंगे कैसे ? नीति शास्त्र में कहा गया साम, दाम, दण्ड, भेद का उपदेश रावण के संदर्भ में उपयोगी नहीं है क्योंकि राक्षस नीति विरुद्ध आचरण करने वाले होते हैं।" ऐसे तरह-तरह के विचार हनुमान ने लंका के शिखर पर बैठकर किये। लंका-दुर्ग एक बहुत बड़ी बाधा है, सीता को कैसे ढूँढें ? हनुमान मन में विचार करने लगे। अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि 'श्रीराम मेरे सहायक हैं। उनकी सहायता से मैं स्वयं सम्पूर्ण लंका ढूँढ़कर सीता का पता लगाऊँगा।'

'राक्षसों की बुद्धि को छकाते हुए लाखों रूपों में जाया जा सकता है। वैसा करते हुए मैं सीता का पता लगाकर श्रीराम का कार्य पूर्ण करूँगा। सुर असुर निशाचर इत्यादि का मेरे जैसे वानर की ओर ध्यान भी नहीं जाएगा अतः मैं नगर का प्रत्येक घर ढूँढकर सीता की खोज करूँगा।'- ऐसा विचार कर हनुमान ने मशक जितना लघु होकर वानर का छोटा स्वरूप धारण किया। चींटी की आँखों को भी न दिखाई दे, इतने छोटे होकर उन्होंने लंका में प्रवेश किया और श्रीराम की पत्नी को ढूँढ़ने लगे। किसी को भी पता न लगने देते हुए, जग को दुःख न देकर हनुमान ने लंका में प्रवेश किया। उन्होंने गहरी खाइयों में, छतों पर, भुवनों की मंज़िलों पर, किलों की चहार दीवारी में, वन, उपवन, मन्दिर, शिवालय, देवालय, मठों, ध्यान-केन्द्रों में, सर्वत्र सीता को ढूँढ़ा। कोने-कोने में, अरण्य जल प्रवाह, पर्वत, गुहा, गिरिकन्दराओं, विवरों इत्यादि स्थानों पर अत्यन्त सूक्ष्मतापूर्वक ढूँढा। विश्रामस्थलों, आश्रमों में ढूँढ़ा, विविध बाग, पर्वत तथा सरोवरों में देखा। वृक्ष, घास, कीचड़, पानी सर्वत्र सीता की खोज की। बाह्य परिसर को ढूँढ़ने के पश्चात् वह नगर में घर घर में घूमकर ढूँढ़ने लगे। साधक जिस प्रकार तत्वों की चर्चा कर आत्मा के विषय में निश्चित ज्ञान प्राप्त करता है, उसी प्रकार हनुमान ने सीता की खोज की।

लंका के राक्षस– लंका के नगर भाग में ब्रह्मराक्षस रहते थे। अब उनके विषय में सुनें। लंका में एक राक्षस गले और बालों में रुद्राक्ष की माला धारण करने वाला तथा शिव-पंथ में दीक्षित एवं मन्त्रोक्त त्रिपुण्डधारी था। भूतों को अन्नदान देकर, काषाय वस्त्र धारण किये हुए कोई संन्यासी मनुष्य दिखाई देते ही उसे निगल लेता था, उसी प्रकार आचमन कर होम हवन में स्वाहाकार कर चामत्कारिक कर्म करने वाले कुछ लोग आहार के लिए ध्यान धरे हुए थे। कोई जटाधारी नग्न थे। वे शरीर में भस्म लगाकर वन में जाकर गायों का भक्षण करने वाले थे। तत्पश्चात् उसी गाय की चमड़ी धारण कर लोगों में घूमते थे। ऐसे मांस-भक्षण का स्वार्थ साधकर उसके पश्चात् झूठी बातें बनाने वाले राक्षस लंका में थे। हनुमान ने वहाँ घूमते हुए ऐसे राक्षसों को देखा। ये राक्षस स्वयं मांस खाते थे पर किसी को उसमें से हिस्सा नहीं देते थे। वे अन्य लोगों से कहते थे- 'सन्यासी से तुमने लिया तो तुम्हें नरकवास होगा।' वहाँ अग्निहोत्री राक्षस थे, जो कुंड, मंडप, वेदिकायुक्त उपासना करने वाले थे। वे दोनों हाथों में कुशतृण

लपेट कर प्रातःकाल एवं सायंकाल होम करते थे। मुट्ठी मुट्ठी कुशतृण हाथों में लेकर मनुष्य दिखाई देते ही उसे कुश तृणों से मारकर उसका मांसभक्षण करने के लिए उनका होम होता था। ऐसे वे सभी पापाचारी राक्षस थे। यज्ञ के भाग को वे स्वयं ही खाते थे, किसी को भी उसका हिस्सा नहीं देते थे। ऐसे वे मांस भक्षक क्रूर और कठोर राक्षस थे।

हनुमान ने अनुभव किया कि जहाँ इतना मिथ्याचार व्याप्त है, वहाँ राम और सीता का क्या महत्व होगा। वहाँ से आगे बढ़ने पर हनुमान को एक आश्चर्यजनक वस्तु दिखाई दी। लंका में वेद पठन करने वाले तथा विजन में रहकर आरण्यक पठन करने वाले राक्षस थे लेकिन वे भी मनुष्य दिखाई देते ही फलाहार के रूप में उन्हें मारकर खाते थे। राक्षसों के घर में अग्निहोत्र था तथा वेदाध्ययन भी होता था। परन्तु दया, सत्य, शुचिता इत्यादि की उन राक्षसों को कोई अनुभूति ही नहीं थी। हनुमान ने सम्पूर्ण ब्रह्मपुरी ढूँढ़ी तब उन्होंने देखा कि वहाँ ब्राह्मणों को डोरी से बाँधकर रखा गया था। राक्षसों के सिर पर कर्माभिमान चढ़ा हुआ था। सीता वहाँ न थी। सभी प्राणियों में ईश्वर का वास है इन विचारों के अनुकूल दया की भावना वहाँ नहीं थी। धन ही उनकी दीक्षा थी। वहाँ के क्षत्रियों को अपने पराक्रम का बहुत गर्व था परन्तु हनुमान का वार पड़ते ही वे धराशायी हो जाते। उनमें वीरवृत्ति नहीं थी मृत्युभय से वे मुक्त नहीं थे। ऐसे डरपोक क्षत्रियों के घर सीता कैसे मिल सकती थी ? मृत्यु से डरने वाले, शक्तिहीन, नपुंसक क्षत्रियों के घर सीता नहीं थी। हनुमान ने सम्पूर्ण क्षत्रियों के आवासों को ढूँढ़ा फिर भी उन्हें वहाँ सीता न मिली। तत्पश्चात् वे वैश्यपुर की ओर बढ़े। वैश्यों का मन व्यापार में लिप्त था तथा वे अत्यन्त द्रव्य लोभी थे। हनुमान ने वैश्यपुरी के घरों में ढूँढ़ा। ये वैश्य अत्यन्त कंजूस थे तथा कौड़ी कौड़ी धन एकत्र करने में लगे थे। उनके घर सीतारूपी निधि मिलना असम्भव था, यह हनुमान समझ गये थे। इसके पश्चात् शूद्र जाति में ढूँढ़ने का उन्होंने निश्चय किया। उनकी अठारह जातियाँ थीं। उन सबके यहाँ हनुमान ने सीता को ढूँढ़ा। साल नामक जाति में देखा, वे अपने घर के पिछवाड़े एक घेरा बनाकर उसमें घुटने टेके बैठे थे। हनुमान उनको अपनी पूँछ की सहायता से जलाकर भस्म कर देंगे। कपड़ों का व्यवसाय करने वाली चाटे नामक जाति अत्यन्त झूठी थी, वे अपनी अंगलू-मंगलू नामक बोली में बातें करते हुए दिखाई पड़े। हनुमान ने लंकादहन के प्रसंग में उन्हें दंडित करने का निश्चय किया। इस चाटे बस्ती में ढूँढ़ने पर भी हनुमान को सीता दिखाई नहीं दीं।

तत्पश्चात् हनुमान ने सुनारों की बस्ती में ढूँढ़ा। सुनारों का कर्म मिथ्यावादी है। वे मूल सोने में घाटा पहुँचाते हैं। आकार ठीक देते हैं परन्तु तराजू में ठग लेते हैं। तराजू की छड़ ठीक होते हुए भी काँटा ठीक नहीं होता। किसी को सोने के स्वरूप में तो किसी का तराजू में ध्यान बँटाकर कम वजन करते हैं। ऐसे स्थान पर जानकी दिखाई ही नहीं दे सकतीं। सुनार ऐसे ही होते हैं, वृत्ति से चोर। दिखाने के लिए ठोंकते बजाते हैं परन्तु लोगों को विश्वास में लेकर ठग लेते हैं। नग मोती की चमक मात्र वे दिखाते हैं परन्तु वे सभी नग दाग़ लगाने से हल्के हो जाते हैं। सुनारों का काम और उनका विवेक मूल रूप में ही विश्वासघात करना होता है। देते समय झूठा वजन कर तौलकर देते हैं परन्तु वही सुनार लेते समय दो दो बार गिन कर लेते हैं। विश्वास की बातें करते हैं, परन्तु आगे पीछे झूठ बोलते हैं। मित्रता की बातें बताकर नुकसान पहुँचाते हैं। सोना हाथ में लेकर इन्होंने कितने ही लोगों को फँसाया है। ऐसी इन सुनारों की ख्याति है अतः सीता वहाँ भी नहीं होंगी। चुड़िहारों की ख्याति ऐसी है कि वहाँ तोलने का काम ही नहीं है। उनके काम की परिपाटी ऐसी कि सब उन्हें टालते रहते हैं। अतः सीता वहाँ नहीं होंगी इसीलिए हनुमान भी वहाँ से निकल आये।

हनुमान ने देखा कि आर्थिक व्यवहार करने वाले उसी देश के हैं उनको अधिक ब्याज की आशा होती है वे मूलधन पर काँटा फँसाकर आम लगाकर लालच करते हैं। धन आगे बढ़ाकर वे सामने वाले से झूठा कागज़ लिखा लेते हैं। अत: इस नीच काम से उनका मुँह काला होता है और उन्हें ये बातें सालती रहती हैं। उन्हें शरीर के घावों की व्यथा की अपेक्षा कागज पर किये गये छल की व्यथा तीव्र होती है। वे व्यथाएँ उन पर बोझ बन जाती हैं और उन्हें दु:खी करती हैं। वे कागज फाड़ डालते हैं। जो मिले उसे गवाह बनाते हैं। स्वप्न में भी उसी व्यवहार की बातें करते हैं और नींद में वही बड़बड़ाते रहते हैं। अपनी सम्पत्ति देखकर प्रसन्न होते रहते हैं। जब वे माँगते हैं तब उन्हें वह नहीं मिलती तो दु:खी होते हैं इन व्यवहारियों की यही गति होती है। उनके धरना देने पर भी उनको मुक्ति नहीं मिलती है क्योंकि धन लोभियों को कैसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है। सीता का वास वहाँ नहीं होगा। हनुमान तत्पश्चात् तेली के घर गये वहाँ नित्य लोग बड़बड़ाते रहते हैं; सब उठते बैठते यही कहते हैं कि श्रीराम से भेंट हो जाय। जब से जानकी को लाये हैं, लंका की चमक ही चली गई है। हनुमान ने सबको धिक्कार कर कहा कि जब लंका जलेगी तब छटपटाओगे हनुमान को लगा कि ये नित्य नये चक्कर खाने वाले तेली हैं, यहाँ भी सीता नहीं होंगी फिर वे आगे बुनकरों की बस्ती में गये। वहाँ मूल तन्तु के टूट जाने पर जुलाहे करघा पीछे करना भूल गए। करघे में धागा लगाने के लिए उन्हें जल्दी करनी पड़ रही थी। करघे के बुनाई के खाचों में तह पर तह लाने में कठिनाई हो रही थी। अत: कपड़ों का स्वरूप ठीक से नहीं बन पा रहा था और व्यर्थ ही वे ताना-बाना बुन रहे थे। निरन्तर कपड़ा बुनने के लिए ढरकी (कपड़ा बुनने का औज़ार) का वार करने पर भी जुलाहों से कपड़े का मनोवांछित स्वरूप नहीं आ पा रहा था। ताना-बाना व्यर्थ हो गया। ऐसे स्थान पर भी सीता का मिलना सम्भव नहीं था।

हनुमान फिर तम्बोली के यहाँ गये। उनका सम्मान पान में निहित था। उनके पान के डंठल झड़ गए थे। वे गोल होकर मुड़ गए थे। उनके रूठने एवं क्रोधित होने का एक ही कारण था कि उनका सम्मान पान में ही निहित था तथा पान सड़ जाने के कारण उनको हानि हुई थी। अपने मान-सम्मान पर उन्हें गर्व था, उनका यह अभिमान चूर हो गया था। मुख मात्र लाल हो गये थे। वहाँ जानकी नहीं थी। दर्ज़ी का कौशल ऐसा था कि वे लाभरूपी कैंची से नाना प्रकार से कपड़ों को लगातार काटते थे और गुप्त रूप से कपड़ों की चोरी करते थे। पहले अखंड को खंडित करना फिर उसे सिलना ऐसा उन दर्जियों का कर्म था। यही कर्म उनको बाधक सिद्ध हुआ। अखंड को टुकड़े करके चोरी करना। उससे कुमारी एवं नारियों का शृंगार करना, उनके गले में गाँठ लगाकर और घर घर में इस प्रकार कपड़े सिल कर देना। ऐसा कर्म करने से दर्ज़ी लोभ से उंगलियाँ चाटते रहते हैं और उस सिलाई से उनका पेट नहीं भरता ऐसे स्थान पर वह पवित्र सीता कैसे हो सकती है ? रंगरेज़ की रंगशाला हनुमान को अलौकिक ही अनुभव हुई। शुद्ध सात्विक रंगों को रंगरेज काला कर रहे थे। उनके हाथ मुख सभी काले हो गए थे। वे रंगसाज़ अपने नाम रूप पर कालिख मल रहे थे। ऐसे रंगसाज़ों के घर सीता नहीं होंगी। तत्पश्चात् हनुमान वेद पाठकों के स्थान पर गये। उनकी विशेषता थी कि उनका स्वाध्याय अनाध्याय घर पर चलता था। लघु ह्रस्व और दीर्घ स्वरों में वर्ण उच्चारण करने में उन्हें अभिमान का अनुभव होता था। अनुनासिक का नाक से उच्चारण करते समय अज्ञानतावश उनका निर्नासिक उच्चारण होता था, ऐसे लोगों पर अन्य वेद पाठक हँसते थे। एक दूसरे का उपहास कर रहे थे। ऐसा वेद पाठ मात्र शब्दों की ध्वनि करने के समान था उन्होंने अपने अभिमान का त्याग नहीं किया था। वहाँ सीता का होना असम्भव था।

अतः चिद्रत्न सीता को ढूँढने के लिए हनुमान आगे शास्त्री-पंडितों के यहाँ गये। वहाँ विद्वानों का व्याख्यान और उनका शास्त्रों का ज्ञान अच्छा था परन्तु उन्होंने अपनी विद्वता के गर्व का त्याग नहीं किया था, जैसे-जैसे उनका शास्त्र ज्ञान बढा, वैसे-वैसे उनका अभिमान और घमंड बढ़ता गया। सीता वहाँ नहीं होंगी। हनुमान ने फिर ज्योतिषियों की स्थिति देखी। वे ग्रहों के चक्र में फँसे हुए थे और सबको ग्रहों की गति में ही फँसाते रहते थे। वहाँ सीता का होना असंभव था। हनुमान आगे सीता को ढूँढ़ते हुए बाज़ार, व्यापार-केन्द्र, चौक को सावधानीपूर्वक देखने लगे।

हनुमान को सीता का आभास सर्वत्र होने लगा। अन्नकणों की राशि देखते हुए उसमें बीज रूप में, फूलवालों द्वारा फूलों को गुंफित करते हुए उन फूलों की महक में, वणिकों के भंडार गृह में, जो राहगीर मिल रहे थे उनमें, हाथी, घोड़ों में, पकवानों में सर्वत्र उन्हें सीता दिखाई देने लगीं। उन्हें भोजन की सुध नहीं थी। सीता का ध्यान लगा हुआ था। उन्होंने घर, पिछवाड़े, आँगन, छत, सर्वत्र सीता को ढूँढ़ा परन्तु सर्वत्र विषमता विद्यमान होने के कारण सीता का वहाँ मिलना असंभव है, यह उन्होंने जान लिया। इस प्रकार लंका में उन्होंने सर्वत्र सीता को ढूँढ़ा। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, वे वहाँ सीता को ही ढूँढ़ते रहते थे। आगे उन्हें फलों से भरे हुए बाग़ दिखाई दिए। वे उन्होंने समूल उखाड़ कर देखे कोने-कोने में गलियों में, नदी, नालों इत्यादि में लंका के सभी स्थानों में ढूँढने पर भी सीता नहीं मिली सीता जहाँ शोक न हो, ऐसे अशोक वन में थीं। यह वार्ता उन्हें किसी ने नहीं बतायी फिर उन्हें कैसे ढूँढे ? विशाल गृह, इन्द्रजित् कुंभकर्ण इत्यादि के स्थान, बड़े सेनानी, प्रधान और रावण का स्थान, उसका शयन गृह इन सभी स्थानों पर हनुमान ने ढूँढ़ा। उन्हें कहीं भी सीता नहीं मिलीं।

अध्याय २

[हनुमान द्वारा सीता को ढूँढ़ना]

महावीर, हनुमान ने लंका के घर-घर में, बाज़ारों हाटों में, चौराहों पर, सभी बस्तियों में, इतना ही नहीं वरन् स्त्रियों के गुप्त ठिकानों पर सीता को ढूँढ़ने के लिए खोज की परन्तु वे नहीं मिलीं तत्पश्चात् हनुमान ने राजकर्मियों के घर में सीता को ढूँढ़ने के लिए प्रवेश किया।

प्रधानों आदि के घरों में हनुमान द्वारा खोज– हनुमान ने उड़ान भरकर प्रहस्त के भवन में प्रवेश किया। वहाँ सर्वत्र ढूँढ़ने पर भी सीता कहीं दिखाई नहीं दीं। प्रहस्त नामक महाबली प्रधान के घर ढूँढ़ने के पश्चात् हनुमान महापार्श्व के अन्तःपुर में ढूँढने के लिए गये। वहाँ भी उन्हें सीता नहीं मिलीं उसके पश्चात् हनुमान ने महोदर के घर, अतिकाय, महाकाय के घर, अक्षय कुमार के निवास पर, वज्रदंष्ट्र, जम्बुमाली, विद्युत जिह्व, महाबली रावण के सभी सगे सम्बन्धी शुक, सारण, विद्युन्माली, सुमाली, विकट शत्रु, बहु शत्रु, सूर्य शत्रु, अमित्र, कुमित्र, शठमित्र, गर्विष्ठ, चित्र विचित्र, धूम्राक्ष, ताम्राक्ष, विरुपाक्ष, मकराक्ष, मृगशावाक्ष आदि के घर सीता के लिए पवन पुत्र हनुमान ने ढूँढे। वैसे ही घस, प्रहस, महघस, विघस, शठ, निशठ महाशठ, भट, उद्भट, महाभट के घरों को भी हनुमान ने धीरे धीरे अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ ढूँढ़ा, तत्पश्चात् युद्धोन्मत्त, म्होन्मत्त, शूर, उन्मत्त, भीम, महाभीम, सभीम, इत्यादि काल को भी भयभीत करने वाले अत्यन्त वीर राक्षसों के दुर्गम घरों में सीता को ढूँढ़ा। वीरजिह्व नामक राक्षस

की वज्र के सदृश तीक्ष्ण जीभ थी। वह अपनी जीभ के आघात से पर्वत को भी चूर-चूर कर सकता था। उसकी जीभ एक योजन लम्बी थी। सुरवर, सर्प इत्यादि उससे भयभीत रहते थे। उसके घर में भी ढूँढ़ते हुए हनुमान आगे बढ़े। विद्युत जिह्व की जीभ विद्युत के तेज से परिपूर्ण थी। उसके कड़कने से लोग काँप उठते थे। ऐसे अनेक वीरों के घरों में हनुमान ने सीता को ढूँढ़ा।

अत्यन्त साहसी वीर विकर्ण नामक राक्षस के कानों के स्थान पर दाढ़ें थीं। वह अपनी दाढ़ों से वृक्षों और पर्वतों का चूरा कर देता था। भय से उसके समक्ष कोई जाता नहीं था। उसकी दाढ़ों के भय से वायु भी अपनी गति रोक देता था। उसी प्रकार एक तीक्ष्ण और तोते की चोंच के सदृश नासिका से युक्त वीर नाक से ही पर्वत को मसल देता था। इसीलिए उसका नाम शुक-नासिक पड़ा था। उसकी नाक के आघात के भय से दैत्य दानव थर-थर काँपते थे। उसके घर में भी हनुमान ने ढूँढ़ा। अश्वमुख, गजमुख, तरसमुख, तथा व्याघ्रमुख नामक राक्षसों के घरों में भी हनुमान ने खोज की। करालाक्ष, विकरालाक्ष, शोणिताक्ष, भीमाक्ष के घरों में ढूँढ़ते हुए हनुमान ने देखा कि उन राक्षसों के मुख सूर्यचक्र के समान थे और इसीकारण उनका चक्रमुख नाम भी था। रणभूमि में उनके मुँह खोलते ही तीनों लोकों में हाहाकार मच जाता था। वे मेरु पर्वत को भी निगल सकते थे। उनके मुख से निकलने वाली भाप से सूर्य आच्छादित हो जाता और आकाश में कोहरा छा जाता था।

इस प्रकार हनुमान ने सभी घरों को अत्यन्त परिश्रमपूर्वक ढूँढ़ा। उस समय उन्हें स्त्री पुरुषों का एकांतवास और वहाँ चलने वाली रतिक्रीड़ा भी देखनी पड़ी। उन स्त्री-पुरुषों की नाना प्रकार की रति-क्रीड़ाएँ देखकर हनुमान उद्विग्न हो उठे। तब वे स्वयं अपने आप से ही बोलने लगे 'सीता को ढूँढ़ते समय यह ग्रहगति मुख्य रूप से ब्रह्मचर्य का नाश करने वाली सिद्ध हुई। परस्त्री-दर्शन एवं उनसे संभाषण भी मैंने कभी नहीं किया। अब मुझे स्त्री-पुरुष का मैथुन व योनिदर्शन हुआ। जो स्त्री-पुरुष को मैथुनरत देखता है, उसका ब्रह्मचर्य बाधित होता है। मैंने उसे देखा है। श्रीराम की सेवा के प्रति अत्यन्त लगाव होने के कारण मैं समुद्र लाँघकर यहाँ आया और यहाँ सीता की खोज करते हुए मेरी अधोगति हुई। नग्न स्त्रियों का दर्शन ब्रह्मचर्य के लिए पाप होता है, उसे छलने वाला होता है। और मुझे तो उनका मैथुन देखना पड़ा अत: मेरा अध:पतन हुआ है। सीता को ढूँढ़ते हुए मेरा ब्रह्मचर्य संकट में पड़ गया है। अगर मैं खोज नहीं करता हूँ तो कपिश्रेष्ठ श्रीराम क्षुब्ध हो जाएँगे। उनके क्षुब्ध होने पर मेरा जन्म और कर्म व्यर्थ सिद्ध होगा। मेरा धर्म व्यर्थ होगा। मेरे समक्ष ऐसा संकट उपस्थित हुआ है। सीता को ढूँढ़ने के लिए अगर मैं नहीं घूमा तो मैं अपयश का भागी बनूँगा। अत: हे रघुनाथ, तुम्हीं अब मेरे बुद्धिदाता बनो। निगमागम में तुम्हारी प्रतिज्ञा ही है 'बुद्धिर्बुद्धिमतास्मि'[1] अत: मेरी इस संकटग्रस्त संभ्रमित अवस्था में तुम्हारी मुझ पर कृपा दृष्टि रहे "न मे भक्त: प्रणश्यति"[2] हे रघुपति, तुम्हारा यही सिद्धान्त है। अत: सीता को ढूँढ़ने के कार्य में कृपया तुम मेरे साथ रहो।

हनुमान की चिंता को श्रीराम ने समझा। वे अपने भक्त के अन्तर्मन में प्रकट हुए। भक्त की सहायता के लिए श्रीराम के प्रकट होते ही मुख में श्रीरामनाम की मुद्रा धारण किये हुए हनुमान में श्रीराम के स्मरण से उत्साह का संचार हुआ और वे सीता को ढूँढ़ने के लिए तत्पर हुए। "श्रीराम का स्मरण करने से और अन्तर्मन में श्रीराम की स्मृति जागृत होने से मैं परस्त्री एवं उनके मैथुन से विचलित नहीं

१. बुद्धिमान में मैं बुद्धि रूप में विद्यमान हूँ।
२. मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता।

हुआ। श्रीराम चरणों के कृपा-प्रसाद से नग्न परस्त्री अथवा उसकी रतिक्रीडा देखने पर भी मेरे मन में लेशमात्र भी काम भावना जागृत नहीं हुई। ज्ञानी-जनों का चित्त राम कृपा से बाधित नहीं होता है। मन में अगर श्रीराम की भक्ति विद्यमान हो तो काम-वासना का निवास नहीं होता है। क्योंकि चित्त चैतन्य स्थिति को प्राप्त होने से सहज ही काम वासना का नाश होता है। जिस प्रकार अँधेरी रात में जुगनू एवं नक्षत्र चमकते हैं परन्तु सूर्य के उदय होते ही वे सभी मलिन हो अस्त हो जाते हैं, उसी प्रकार चित्त में काम, क्रोध, लोभ होने पर उस चित्त में राम की भक्ति उत्पन्न होते ही वे विलुप्त हो जाते हैं मन ही इन्द्रियों को प्रवृत करता है मन में ही स्त्री-पुरुष भेद विद्यमान होता है मन ही काम-वासना की जड़ है। वही बाधक सिद्ध होता है। जिस प्रकार समुद्र के पानी में नमक की डलियाँ घुलकर उसका पानी बन जाता है उसी प्रकार, श्रीराम का स्मरण करते ही मन परिपूर्ण परब्रह्म हो जाता है। मन की मनोवृत्ति शांत हो जाने से स्त्री पुरुष के एकांत स्थल में भी मात्र सीता को ही ढूँढ़ रहा हूँ। मुझे किसी प्रकार की भी बाधा नहीं हो रही है। मन शांत होने से मैं देह सहित ही विदेह हो गया हूँ। अब उस स्थान पर भी जहाँ नग्न स्त्रियाँ विद्यमान हों, मैं विदेह रूप में सीता की खोज करूँगा "

"सुअर अथवा श्वान को नग्नावस्था में देखकर पुरुष में काम-भावना जागृत नहीं होती, उसी प्रकार स्त्री पुरुषों की रति क्रीडा का दर्शन मुझे विचलित नहीं करता। जिस प्रकार शस्त्र शत्रुदल के शरीर में जाने से पुरुष विचलित नहीं होते, मक्खी के ऊपर मक्खी बैठी हुई देखकर जिस प्रकार काम-भावना उत्पन्न नहीं होती; उसी प्रकार मैथुन-दर्शन से मेरे मन में तनिक मात्र भी शंका उत्पन्न नहीं होती। सद्गुरु के वचनों के प्रभाव से काम भावना का समूल नाश होता है। मुझे श्रीराम का आधार प्राप्त होने के कारण मुझमें काम-वासना का निर्माण नहीं होता। मुझे सीता को स्त्रियों के निवास स्थल पर ही ढूँढ़ना चाहिए क्योंकि इन सुअरों और श्वानों के मध्य उनका होना असंभव है। सीता को ढूँढ़ने के लिए वनों में जाकर मृग-समूहों में उन्हें ढूँढ़ने वाला मूर्ख ही कहलायेगा। मैं वैसी मूर्खता कदापि नहीं करूँगा। मैं बुद्धिमत्तापूर्वक उन्हें समस्त भुवनों में स्त्रियों के एकान्त स्थलों में ढूँढ़ूँगा। जो अत्यन्त कठिन स्थल होगा, जहाँ किया हुआ प्रवेश गहन संकट में डाल सकता है, वहाँ-वहाँ जाकर मैं अत्यन्त सूक्ष्मतापूर्वक सीता को ढूँढ़ूँगा." यह निश्चय कर हनुमान ने उड़ान भरकर प्रस्थान किया

हनुमान के उड़ान भरते ही उन्हें इन्द्रजित् का भुवन दिखाई दिया। वह मन्दिर रत्न-जड़ित था। उसका प्रकाश पड़ने से आकाश भी चमक रहा था। वह गृह कलाकृतियों से सजा हुआ था। उसमें अनेक मंजिलें थीं। सबसे ऊपर छत व मीनारें थीं। रावण के गृह की तुलना में इन्द्रजित् का घर अधिक सुंदर था। उस पर सोने का रत्नजड़ित कलश रखा हुआ था। उस घर पर सफेद, पीली एवं लाल पताकाएँ फहरा रही थीं। सर्वत्र दीप प्रज्जवलित थे तथा महाअसुर वहाँ पहरा दे रहे थे। वे प्रहरी एक दूसरे को आवाज़ देते हुए चारों ओर चक्कर लगा रहे थे। वहाँ वायु को भी प्रवेश की अनुमति नहीं थी। हनुमान ने चारों ओर निहारा पाँच, सात, नौ, दालानों के अन्दर जाकर प्रत्यक्ष में महाव्याधि विद्यमान थी, जिसकी कराह नित्य सुनाई देती थी। वह व्याधि लक्ष्मण के बाण से ही दूर होगी। युद्ध में गर्व के ये दालान गिरा दिये जाएँगे। हनुमान को इन्द्रिजत् का भुवन दिखाई देते ही वह क्रोधित हो उठे और अणुरूप होकर उन्होंने अन्दर प्रवेश किया। एक खिड़की से अन्दर प्रवेश कर हनुमान ने कोना-कोना ढूँढ़ डाला

हनुमान द्वारा इन्द्रजित् भवन में सुलोचना के दर्शन– इन्द्रजित् के भवन में अनेक दालानों में घूमकर हनुमान ने सीता को ढूँढ़ा। उस समय उन्हें इन्द्रजित् के साथ एक स्त्री दिखाई दी। मरकत

मोतियों के पलँग पर सुन्दर मोरों की नक्काशी से युक्त शय्या और उस पर कोमल सुगंधित फूलों की पंखुड़ियाँ बिछी हुई थीं। पलंग का शीर्ष भाग उत्तम मोतियों से मढ़ा हुआ था। स्वच्छ कर्पूरयुक्त बातियों का प्रकाश शोभायमान था। वहाँ पीकदान भी रत्नों से जड़ा हुआ था। सोने की दीवारों से सुगंध आ रही थी। भूमि भी रत्नों से सुसज्जित थी। महासती सुलोचना इन्द्रजित् को पान का बीड़ा दे रही थी। सुलोचना पति के वचनों का उल्लंघन न करने वाली पतिव्रता स्त्री थी। उसे देखकर हनुमान को सीता का ही आभास हुआ। नागकन्या कमलनयनी सुन्दरी सुलोचना को देखकर हनुमान को लगा कि वे सीता ही हैं। उस सुन्दर स्त्री के चारों ओर भँवरे गुंजार कर रहे थे, उसका सर्वांग मनोहारी एवं सुगंधित था। ऐसी स्त्री स्वामी श्रीराम की पत्नी ही हो सकती है। हनुमान को निश्चित ही ऐसा लग रहा था; राम-पत्नी रावण के पुत्र के वशीभूत है, इस कल्पना से ही हनुमान क्रोधित हो उठे। उन्होंने इन्द्रजित् सहित उसका नाश करने का निश्चय किया। उस विचार से उनके नेत्र लाल होकर फैल गए। उनकी पूँछ मुड़ गई। उन दोनों के गले दबाने के लिए उनके मस्तक की नसें तन गईं। सीता अधर्मपूर्ण कर्म में रम गई है अतः अब इन दोनों का वध करता हूँ। श्रीराम अगर क्रोधित हुए तो दोनों के शव उन्हें दिखाऊँगा अथवा दोनों को अपनी पूँछ से बाँधकर जीवित ही ले जाऊँगा।" यह विचार कर क्रोध में हुंकारते हुए उन्होंने ऊँची उड़ान भरी।

उस समय पतिव्रता सुलोचना अपने पति के चरणों पर मस्तक रखकर कह रही थी– "मैं आज आपसे कुछ पूछूँगी। आप मुझे क्षमा करें क्योंकि आज तक मैंने आपसे कभी कुछ पूछा नहीं। हे लंकापति, आगे होने वाली दुर्घटना मुझे दिखाई दे रही है, जिससे व्याकुल होकर मैं आप से पूछ रही हूँ। अशोक वन की रक्षा करते समय आपका भयंकर अपमान होगा। अक्षय कुमार की मृत्यु हुई अब सम्पूर्ण राक्षस-कुल का घात होगा, ऐसा मुझे लग रहा है।" इस पर इन्द्रजित ने पत्नी से पूछा– "ऐसा कैसे होगा ?" सुलोचना बोली– "रावण सीता सती को ले आये हैं, इसलिए राक्षस कुल का सर्वनाश होगा। वन में जानकी से छल किया तथा पराक्रमी श्रीराम से भी छल किया। अतः वही श्रीराम लंका की होली जलाएँगे, राक्षस कुल में हाहाकार मच जाएगा। आप पर आने वाले इस संकट को देखकर मेरा मन भयभीत हो रहा है। आप दशानन को समझाने का प्रयत्न करें, आप उनके ज्येष्ठ पुत्र हैं। आप पर उन्हें विश्वास भी है। सीता सुन्दरी श्रीरघुनाथ को देकर उनसे मैत्री सम्बन्ध स्थापित करें। श्रीराम से मैत्री करने से राक्षस-कुल स्वस्थ होगा। फिर आप सभी तीनों लोकों में यशस्वी होंगे। इन्द्रजित् ने यह सुनकर सुलोचना को बताया– 'सीता के प्रति रावण इतना सम्मोहित है कि कोई अगर उस हित की बातें भी बताता है तो वह उसे मारने के लिए दौड़ता है। सीता को मुक्त कर श्रीराम से मैत्री की बात कहते ही वह मुझे मारने के लिए दौड़ेगा।' निष्कारण ही पितृद्रोह का कलंक मेरे मस्तक पर लगेगा। अतः प्रिये ! मेरे वचन सावधानीपूर्वक सुनो– "मृत्यु रोकने से नहीं रुकती है। जो होनी है, वह हो कर रहेगी, इसलिए किसी से कुछ न कहना ही श्रेष्ठ है।"

इन्द्रजित् और सुलोचना का एकान्त में हुआ वार्तालाप सुनकर हनुमान को यह विश्वास हो गया कि सुलोचना सीता नहीं है। परन्तु दोनों के एकांत में चल रहे संभाषण में सीता को कहाँ रखा है, इस बात का उल्लेख हनुमान ने नहीं सुना। लंकानाथ ने सीता को कहाँ रखा है, यह न समझने पर भी सीता लंका में ही है– यह निश्चित हो गया। फिर वह उसे ढूँढ़ने के लिए निकले।

कुंभकर्ण के भवन में हनुमान– मेघों से भी ऊँचे मेघवर्णी शिखरों पर सीता को ढूँढ़ने के लिए हनुमान ने उडान भरी। वहाँ स्थित घरों में अत्यन्त सावधानीपूर्वक ढूँढ़ते हुए वे एकदम चौंक गए। एक स्थान पर अत्यन्त विशालकाय कुंभकर्ण सोया हुआ था। उसके ज़ोर से खर्राटे भरने के कारण सारा आकाश उस ध्वनि से व्याप्त हो गया था। उस कुंभकर्ण के समक्ष शंखध्वनि करने पर भी वह आवाज़ उसके कानों में नहीं जा रही थी। उसके श्वासोच्छ्वास की भँवर में सैंकड़ों हाथी फँस रहे थे और वहाँ से वे निकल नहीं पा रहे थे। अत: वे छटपटा रहे थे। भैंसे चिल्ला रहे थे क्योंकि नाक के दोनों छिद्रों से वे झुंड के झुंड अदर चले जा रहे थे परन्तु बाहर नहीं निकल पा रहे थे। गाय, भैंसे, बैल, घोड़े ये सब प्राणी श्वास के साथ कीड़े के सदृश अन्दर जा रहे थे कुंभकर्ण उस समय नींद में ही नाक रगड़ता था, जिससे वे प्राणी कीड़े के सदृश मर रहे थे। यह सब देखकर हनुमान ने मन में विचार किया कि, 'प्रजापति ने जब कुंभकर्ण की मूर्ति तैयार की तब उसने आलस्य किये बिना भरपूर मिट्टी का प्रयोग किया होगा।" उसके केश अत्यन्त कड़े और विशाल थे और भाले के समान नोंकदार थे। उसके शरीर के रोम मानों काँटे ही थे। उसके विकराल दाँतों मे दरारें थीं। कभी भी साफ न करने के कारण उन दाँतों पर फफूँद लग गई थी। कुंभकर्ण का मुख देखकर हनुमान को वमन होने लगा। श्रीराम यहाँ आने पर जब इसका पराक्रम देखेंगे तब सर्वप्रथम मैं इससे ही युद्ध करूँगा, हनुमान ने ऐसा निश्चय किया, कुंभकर्ण की देह-स्थिति देखकर हनुमान को स्वयं उबकाई आने लगी तब– 'सीता यहाँ कैसे हो सकती है'– इस विचार से वे विचलित हो उठे। उस उद्वेग में उन्होंने अनुभव किया कि 'ब्राह्मण के रूप में इसने जन्म लिया परन्तु नींद ने इसका जीवन व्यर्थ कर दिया। इसका आधा जीवन निद्रा में ही चला गया। कभी नींद खुलने पर स्त्री से रति-क्रीड़ा में व्यस्त होता होगा। कुटुम्ब की चिन्ता प्रारम्भ होने पर वह कल्पान्त तक समाप्त नहीं होती। उसी में जीवन समाप्त हो जाता है। द्रव्य की क्षुधा उत्पन्न होती है और भोजन, शयन एवं द्रव्य की आसक्ति होने पर लोग ठगे जाते हैं परन्तु कुंभकर्ण अपनी निद्रा से ही ठगा गया है। फिर यहाँ सीता कैसे हो सकती है ?"

विभीषण के गृह में हनुमान का प्रवेश– कुंभकर्ण के घर से हनुमान ने उड़ान भरी और विभीषण का घर दिखाई दिया। वहाँ तुलसी का पौधा लगा था। पताकाएँ थीं और श्रीराम का कीर्तन चल रहा था। ताल मृदंगों के नाद में वह निर्भीक वैष्णववीर श्रीराम नाम का भजन करते हुए करतल ध्वनि के साथ आनन्दित होकर डोल रहा था। कीर्तन के सुख में जिन्हें सन्तुष्टि मिलती है, वे स्वयं को भी भूल जाते हैं, परमानन्द से तृप्त होकर वे रामगुणगान करने लगते हैं। वे निरपेक्ष रूप से श्रुतियों में लीन होकर सगुण श्रीराम का निर्गुण रूप जानकर उनका कीर्तन करते हैं। उस कीर्तन में वे कहते हैं 'श्रीराम के कारण यह धरती पवित्र है। श्रीराम ही जीवन, दहन, तपन, गगन हैं, वे परिपूर्ण परब्रह्म हैं। श्रीराम ही मन की उन्मनता चित्त की चैतन्यघनता व बुद्धि का संज्ञान हैं। जंगम, स्थावर, सबाह्य, अभ्यंतर सभी में वह परमात्मा श्रीहरि राम हैं, जो जगत् के उद्धारकर्ता हैं।' उस कीर्तन का माधुर्य अनुभव करने पर हनुमान को वह भा गया। उन्होंने गोल घूमकर मगन होकर एक छलांग लगाई, गुप्त रूप से नृत्य किया। तन्मय होकर नृत्य करने से उन्हें परमार्थ की अनुभूति हुई। विभीषण भी इस कारण मूर्च्छित हो गया क्योंकि वह भी परमार्थी एवं परमभक्त था। हनुमान को आत्मदर्शन होकर उसे देह विदेह का ज्ञान नहीं रहा विभीषण को भी मूर्च्छित होकर आत्मविस्मृति हुई। हनुमान और विभीषण की परस्पर पहचान न होते हुए और उनमें परस्पर संभाषण न होते हुए भी उन दोनों की भेंट हुई। श्रीराम कथा का संकीर्तन ही उनमें एकात्मता होने का कारण बना।

हरिकीर्तन ही अपने कर्म, धर्म, परमात्म और परब्रह्म के विषय में बताने वाला होता है। विभीषण के हाथों पर दिग्विजयी श्रीराम की मूर्ति थी। उसे देखकर हनुमान को विभीषण के विषय में प्रेम का अनुभव होकर वह सुखी हुआ। विभीषण श्रीराम का भक्त है, यह देखकर हनुमान आनन्दपूर्वक नाचने लगे। श्रीरघुनाथ की भक्ति करने वाला विभीषण नित्यमुक्त है, यह उन्होंने अनुभव किया। राक्षस होते हुए श्रीराम की भक्ति करने वाले विभीषण को देखकर हनुमान हर्ष से भर उठे। उनके मन ने यह निश्चय किया कि 'श्रीराम द्वारा रावण का नाश करने पर विभीषण को ही राज्य की प्राप्ति होगी। मेरे श्रीराम की भक्ति करने वाले विभीषण को राज्य करते हुए नित्य-मुक्ति प्राप्त होगी। स्त्री एवं पुत्र संतति के बन्धन में बँधे होने पर भी उसकी मुक्ति भंग नहीं होगी।' तत्पश्चात् हनुमान ने निश्चय किया कि, 'राम द्वारा रावण का वध होने पर विभीषण के लंकापति होने के शुभचिह्न सत्य ही हैं। जहाँ राम-भक्ति होती है, वहाँ राम की शक्ति भी होती है। लंका में राम-राज्य की स्थापना होगी और यह सब सीता के यहाँ आगमन के कारण घटित होने वाला है। जहाँ राम की शक्ति प्रवेश करती है, वहाँ भक्ति और मुक्ति का निवास होता है। राम राज्य की स्थिति ऐसी ही होती है।' हनुमान ने मन ही मन यह निश्चय किया। उसे अनुभव हुआ कि 'सीता के लंका में आगमन का तात्पर्य ही रावण की मृत्यु एवं मुक्ति तथा विभीषण की राज्य-प्राप्ति है।' हनुमान को इन विचारों से अब तक जो श्रम, खेद, दुःख इत्यादि हुए थे, वे समाप्त होकर उन्हें शान्ति मिली। उन्होंने अनुभव किया कि वैष्णवों की संगति महान् होती है। उन संतों की संगति से भ्रम दूर होता है। जड़ जीवों का उद्धार होकर ब्रह्म की प्राप्ति होती है एवं नित्य-मुक्ति मिलती है।' हनुमान ने तत्पश्चात् संत चरण-धूलि की वंदना की। साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया। सन्त चरण रज से स्नान होने पर उसके समक्ष तीर्थ भी तुच्छ सिद्ध होते हैं। संत-चरण-रज से मुक्ति मिलकर ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

विभीषण के गृह में हनुमान को सुख एवं विश्राम मिला। जहाँ भगवद् भक्तों से भेंट होती है, वहाँ भ्रम-निवृत्ति होकर, अर्थ, स्वार्थ एवं परमार्थ की प्राप्ति होने से सुख का अनुभव होता है।

अध्याय ३

[हनुमान द्वारा पूँछ से रावण की सभा में हाहाकार]

विभीषण के भवन में सीता की खोज करते समय एक ओर तो कपिराज हनुमान बहुत सुखी थे परन्तु सीता का पता न लग सकने के कारण दुःखी भी थे। तत्पश्चात् उन्होंने सम्पूर्ण नगर, बाज़ार तथा सभी घरों को ढूँढ़ा फिर भी सीता का पता न चल सका। अतः वे उद्विग्न हो गए। उसकी चिंता से वे कुपित हो उठे। अन्त में उन्होंने अपनी बुद्धि से सीता का निश्चित पता चल सके, ऐसी युक्ति निकाली।

हनुमान द्वारा पूँछ से लोगों में कलह उत्पन्न करना– 'सीता का पता लगाने के लिए लोगों में कलह उत्पन्न करना चाहिए। उनको निष्ठुर आघातों से त्रस्त करने पर वे सीता के विषय में अवश्य बोलेंगे। रावण की कठोर आज्ञा होने के कारण उस विषय में लोग कुछ नहीं बोलते। अतः स्वयं गुप्त रहकर लोगों में लड़ाई लगवाने से वे लोग बोलेंगे।' उनकी बुद्धि ने यह निर्णय लिया। कुछ विचार कर

वह लंका के राजद्वार पर आये और उन्होंने अपना कौशल दिखाना प्रारम्भ किया। स्वयं गुप्त रहकर बन्दर के समान चेष्टाएँ करते हुए लोगों को चिढ़ाना प्रारम्भ किया। पहले उन्होंने अपनी पूँछ को नमन करते हुए कहा– "सीता को ढूँढ़ने के कार्य में आप मेरी सहायता करें" और फिर वह अपनी पूँछ का उपयोग करने लगे। घर में पानी भरी मटकियों को पूँछ फँसा कर तोड़ने लगे। एक के बाद एक छह-छह मटकियों को टूटा हुआ देखकर स्त्रियाँ कहने लगीं– 'न जाने कौन हमारी मटकियों को तोड़ रहा है।' हनुमान द्वारा उनकी नाक में पूँछ डालते ही वे इधर-उधर नाचकर छींकने लगीं, जिससे और मटकियाँ टूटने लगीं, हनुमान ने अपनी पूँछ से नगरी को घेर लिया, जिससे नगरी में पानी की कमी पड़ गई क्योंकि भरी हुई मटकी नगर में आ ही नहीं पा रही थी। यह सब घटित होते समय हनुमान गुप्त रूप से ही थे। "क्या इस नगरी के राजा की मृत्यु हो गई है। ?" यह कहकर स्त्री एवं पुरुषों का राजद्वार में आक्रोश प्रारम्भ हो गया। उनकी कल्पना थी कि सीता के क्रोधित होने के कारण यह सब घटित हो रहा है। "श्रीराम की धर्मपत्नी को चुरा कर लाने के कारण उसने ही रावण-वध के लिए यह अनर्थ प्रारम्भ किया है।" लंका के नागरिक यह कह रहे थे। 'सीता ने क्रोधित होकर राक्षसों का जीवन-जल शोषित कर लिया है, अब हमारे प्राण बच न सकेंगे। पानी के बिना कैसे जीवित रहेंगे ?' ऐसा कहते हुए स्त्री-पुरुष कोसने लगे 'अब राक्षसों की ख़ैर नहीं। सीता के कारण लंका का नाश अवश्य होगा'- सभी ऐसा कहने लगे। राजद्वार पर टूटे हुए मटकों का ढेर लगने से मार्ग अवरुद्ध हो गया। लंका पर महान् संकट उत्पन्न हो गया है, आपस में कलह होने लगा। हनुमान तटस्थ रूप में यह सब देखते हुए सीता को ढूँढ़ने का प्रयत्न कर रहे थे।

राजद्वार पर महावीर घोड़ों पर सवार होकर घूम रहे थे। हनुमान ने घोड़ों के पैरों में पूँछ फँसाकर अनेक वीरों को मुँह के बल गिरा दिया। उनके दाँत लगने से उनके मुख रक्त रंजित हो गए। घोड़ों के पैरों में पूँछ फँसने से गिरने के कारण अनेक वीरों के मुख से रक्त गिरने लगा। वे राजद्वार पर गिरकर कराहने लगे। जो गति घुड़सवारों की हुई, वही गति हाथी पर सवार वीरों की भी हुई। हनुमान की पूँछ ने उन महाशूरों, पैरों में यश-चिह्न के रूप में शृंखला पहने और मस्तक पर छत्र धारण किये हुए, राजद्वार पर खड़े गजारूढ़ योद्धाओं को भी सन्त्रस्त कर दिया। हनुमान ने गजों की गति को पूँछ से अवरुद्ध कर दिया। उन्होंने पीछे वाले हाथी को खींच कर उसके दाँतों से आगे वाले हाथी को मारा। "मेरे हाथी पर तुमने अपने हाथी से प्रहार क्यों किया ?" यह कहते हुए वे वीर आपस में लड़ने लगे। हाथी के दाँतों की एवं शस्त्रों की ध्वनि से राजद्वार पर युद्ध प्रारम्भ हो गया। हाथियों की भी आपस में लड़ाई होने लगी। गज-युद्ध में प्रत्येक वीर, दूसरे पर विजय प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील था। बीच में ही गुप्त रूप से पूँछ की फटकार पड़ने से धराशायी होकर वे वीर कराहने लगते थे। इस प्रकार राजद्वार पर हाथी और वीर धराशायी होकर कराह रहे थे। तत्पश्चात् राजकुमार रथ पर आरूढ़ होकर वहाँ आये। उन पर चँवर ढाले जा रहे थे तथा साथ में वाद्य ध्वनि हो रही थी। हनुमान ने गुप्त रहकर घोड़े रुकवाए, सारथी को अपनी पूँछ से नीचे खींचा, ध्वज गिरा दिया। राजकुमारों को नीचे ज़मीन पर गिरा दिया, उन पर रथ और चारों घोड़े उलटकर गिर पड़े। उसके नीचे वे महावीर दब गए। वाद्य बजाने वाले चिल्लाने लगे, चँवर डुलाने वाले नीचे पड़े हुए थे। ऐसे अनेक रथ पूँछ के आघात से मारुति ने गुप्त रूप से राजद्वार पर गिरा दिए। अनेक वीर गिरकर कराह रहे थे। उन्हें खाट पर ले जाया जा रहा था फिर भी वे गुप्त घात के भय से भयभीत थे। आगे वाला आगे और पीछे वाला पीछे, इस प्रकार सभी लोग भाग रहे थे, परन्तु

यह उपद्रव कौन कर रहा है, यह किसी की समझ में नहीं आ रहा था। 'श्रीराम की पत्नी ने क्षुब्ध होकर यह उत्पात मचाया है। अब वह लंकानाथ सहित सभी राक्षसों का वध करेगी,' उन्हें ऐसा लगने लगा।

तत्पश्चात् राज सम्मान प्राप्त प्रधान मंडल पालकियों में बैठकर आये। पालकी लाने वाले कहारों के कान में पूँछ जाने से वे चौंककर इधर उधर देखने लगे। कहार नाचने लगे, अपने कान, झाड़ने लगे पूँछ के पालकी में फँसते ही वह आगे जा टकराई। उसका बाँस टूटकर प्रधानों एवं कहारों के सिर पर जा गिरा प्रधान मुँह के बल गिर पड़े यह सब घटित होता देखकर सेवक हाहाकार करने लगे कोई पानी डालकर मूर्च्छितों को सावधान करने का प्रयत्न करने लगा। लंका के नागरिकों की यह अवस्था देखकर हनुमान को हँसी आ गई रावण के दरबार में जिन लोगों का सम्मान होता था, वही राजद्वार पर अपमानित होकर लोगों की हँसी के पात्र बन रहे थे। इसी कारण वे अत्यधिक क्रुद्ध हो रहे थे। जिन्हें घर में घृतयुक्त भोजन मिलता था वही राजद्वार पर अपमानित होकर गिरे थे वे कहारों को लात एवं मुष्टिकों से मारने लगे तब कहार बोले "हमें निष्कारण ही क्यों मार रहे हैं ? वह श्रीराम की पत्नी यह सब कर रही है उसी ने आपको अपमानित किया है।" इधर हनुमान ने अपनी पूँछ के प्रहार से पालकियों की कतारें ही उलट डाली थीं। पालकियों के टूट जाने के कारण उनका प्रयोग नहीं किया जा सकता था। अत: खाट पर बैठकर कराहते हुए प्रधानों को घर जाना पड़ा। उस समय हनुमान यह सुनकर प्रसन्न हुए कि सीता लंका में ही हैं। अपना कार्य सिद्ध करने के लिए हनुमान ने और उत्पात मचाना प्रारम्भ किया।

हनुमान लंका में घूमने लगे। उन्हें एक प्रसिद्ध मल्ल जाते हुए दिखाई दिया उसके पीछे कुछ और उन्मत्त मल्ल चले जा रहे थे। हनुमान ने उनमें से एक का पैर उठाकर जोर से आगे वाले को मारा। तब आगे वाला बोला– 'लात क्यों मारी ?' अकस्मात् यह सब घटित होने के कारण पीछे वाला चौंक गया। वह कुछ बोल न पाया। आगे वाला बोला "तुम बहुत उन्मत्त हो गए हो, अब तुम्हें ही मार डालता हूँ '– फिर दाँत पीसकर भौंह चढ़ाकर दोनों मारपीट करने लगे। क्रोधित होकर मुष्टिका प्रहार करते हुए सिर और शरीर को मरोड़कर, हाथ खींचकर, धक्के देकर, घुटनों से आघात करते हुए, एक दूसरे को नीचे दबाचने के लिए उछलते हुए टक्कर देते वे मल्ल एक दूसरे से जूझने लगे। एक के नीचे गिरते ही दूसरा उस पर बैठकर गला दबाने लगता था। उसके पैरों पर प्रहार कर गला छुड़ाकर वे एक दूसरे के हाथ पैर उखाड़ने का प्रयत्न करने लगते थे। एक दूसरे की छाती पर लात मारते हुए वे परस्पर जूझ रहे थे दोनों वीर समान बलशाली होने के कारण दोनों अपनी मल्लविद्या का प्रयोग करते हुए लड़ रहे थे। उन मल्लों में लड़ाई कराकर हनुमान ने घुड़सवार सिपाही वैदज्ञों तथा ब्राह्मणों में कलह उत्पन्न कर दी लेकिन उनमें से सीता के सम्बन्ध में किसी ने भी जानकारी नहीं दी।

रावण की सभा का वृत्तान्त– हनुमान ने नगर में कलह मचाकर सीता के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न किया परन्तु सफल न होने पर रावण-सभा में पता लगाने का निश्चय किया। वहाँ प्रवेश करने पर उन्होंने देखा कि दशानन सिंहासन पर बैठा है। उसी सभा में युद्ध प्रवीण सतर्क प्रधान और असंख्य सभासद तथा सेवक थे। सभा में गुप्तचर आये और उन्होंने रावण को वंदना कर नगरी की परिस्थिति बतायी एक भयंकर विघ्न का आगमन हुआ है। जिधर देखें उधर, सर्वत्र राजद्वार पर विनाशकारी स्थिति निर्मित हो गई है देवताओं के वर का यह परिणाम है- ऐसा जनसामान्य को लग रहा है परमप्रतापी हिरण्यकशिपु का नाश हो गया। जिसके घर आमन्त्रण हो, उसके घर भोजन कर अधर्मपूर्वक द्विजों का धन हरने वाले सहस्रार्जुन का अन्त हो गया। उसकी सहस्र भुजाओं को तोड़कर

उसकी दुर्दशा हुई। द्विज पुत्र द्वारा उसके पुत्रों सहित उसके सैन्य समूह का वध हुआ। ज्योतिषियों ने कहा है कि राजा को बताओ कि अधर्मपूर्वक सीता को लाने के कारण नगरी पर यह संकट उत्पन्न हो गया है। घुड़सवार, गजारूढ़ सवार, अतिरथी, महारथी राजद्वार पर धराशायी होकर गिरे पड़े हैं और शरीर में लगे हुए घावों के कारण कराह रहे हैं। आघात करने वाला किसी को दिखाई नहीं दे रहा है लेकिन वीर कराह रहे हैं, अश्व, गज, तड़प रहे हैं। सभी मूर्च्छित हैं, उनके प्राण संकट में हैं उसके साथ ही भयंकर अनिष्टकारक रूप में राजद्वार पर असंख्य घट टूटे पड़े हैं नारियाँ चिल्लाकर आक्रंदन कर रही हैं। पालकियों में बैठकर आने वाले पराक्रमी वीर मिट्टी में मिला दिये गए हैं। इन सब घटनाओं को देखकर सबका एक ही कहना है कि सीता कुपित है और सम्पूर्ण नगर की होली हो कर रहेगी।

रावण ने गुप्तचरों से वृत्तान्त सुना और वह क्रोधित होकर बोला— "इस दुष्ट ने यह बात बताई है अतः इसका वध कर दो। यही दोमुँहा चालबाज है। इसको हाथ बाँधकर सामने लाओ; इसकी जीभ काटो, दाँत तोड़ो, इसके कान काटकर गधे पर बैठाकर सम्पूर्ण नगरी में घुमाओ " रावण की यह आज्ञा सुनकर हनुमान अत्यन्त क्रोधित हुए। 'यह रावण अगर विघ्न के चिह्नों को असत्य मान रहा है तो अब इसे वही सत्य कर दिखाना पड़ेगा ' ऐसा उन्होंने विचार किया। सब उन विघ्नों को सत्य मान रहे हैं इसीलिए रावण मन ही मन भयभीत हुआ। हनुमान ने निश्चय किया कि 'मेरे द्वारा किये गए दुश्चिह्नों को बताने वाले गुप्तचर को अगर दण्ड भुगतना पड रहा है तो इस सृष्टि में गुप्तचर तो भूमि के लिए भार ही बन जाएगा। अतः अब मेरी इस पूँछ को इतनी शक्ति मिले कि रावण की सभा तो क्या, सभी इससे भयभीत हो जायँ, रावण भी संत्रस्त हो जाय। सभा मे प्रधानों सहित रावण सिंहासन पर बैठा था। सभा में सुगंधित तेलों के अनेक दीप तथा कर्पूर के अठारह लाख दीप प्रज्वलित थे, जिनके प्रकाश में सभा शोभायमान हो रही थी। ऐसे समय अत्यन्त आवेशपूर्वक अपनी पूँछ का आघात कर हनुमान ने सभी दीप बुझा दिए। सभा में अंधकार छा गया।

रावण की सभा में उत्पन्न हाहाकार— हनुमान द्वारा दीपक बुझा देने से सभा में अंधकार छा गया। फिर हनुमान ने गुप्त रूप से अपना कार्य प्रारम्भ किया हनुमान ने सभासदों के मुकुट, कुंडल, छत्र छीन लिए, शस्त्रास्त्र एवं वस्त्र निकाल लिए। एक बोला "मेरे कपड़े ले गया। दूसरा बोला– मेरे शस्त्र ले गया। द्विज बाले हमारी धोती ले गया।" हनुमान ने सभा में हाहाकार मचा दिया। उन्होंने किसी के कानों के कुंडल तोड़ते समय कान तोड़ दिए। वस्त्र निकालते हुए आँखें फोड़ दीं। बाहुभूषण लेते हुए बाहु उखाड़ दिए। राक्षसों की ऐसी दुर्दशा की। मुकुट लेते हुए मस्तक तोड़ दिया। कमर की जंजीर निकालते हुए कमर तोड़ दी। अंगूठियाँ लेते हुए उंगलियाँ उखाड़ लीं, कंठमाला निकालते हुए गले मरोड़ दिए। सब कहने लगे– अरे शीघ्र वस्त्र निकालो नहीं तो नपुंसकता आएगी, जिसे कैसे सहन कर पायेंगे ? हनुमान ने उन वीरों के पैरों के गहने निकालते हुए उनके पैर तोड़ दिये। उस समय जो चिल्ला रहे थे उनकी नाक तोड़ दी और राक्षस फें फें की ध्वनि निकालने लगे। तब सभी एक दूसरे से कहने लगे "अरे चिल्लाओ मत अन्यथा तुम्हारी नाक काट दी जाएगी। तुम लोग चुप रहो।"

हनुमान ने रावण के सिर पर और छाती पर ज़ोरों से वार किया, जिससे रावण को मूर्च्छा आने लगी वह भय से बोल नहीं पा रहा था। चक्कर के साथ ही अंधेरा होने के कारण उसे कुछ दिखाई नहीं दे रहा था लेकिन शरीर पर थप्पड़ पड़ रहे थे। भयभीत होकर रावण थर थर काँपने लगा हनुमान द्वारा अन्धकार निकालने एवं नाकें तोड़ी जाने के कारण सभा में उपस्थित सभी लोग एक दूसरे के

पीछे छिपने लगे। गुप्तचर द्वारा बताया गया विघ्न स्वयं प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करने के कारण सभासद भी कहने लगे- "जानकी ने क्रुद्ध होकर रावण वध के लिए यह पूँछ का यशध्वज छोड़ा होगा। रावण जीवित था कि उसकी मृत्यु हो गई, इस सम्बन्ध में कोई बता नहीं सकता था। अंधेरे में रावण की मृत्यु हो गई, उस पर विघ्न आया है।" सभा में ऐसी चीखपुकार मच गई। राक्षस भयभीत हो उठे। इन्द्रजित् और कुंभकर्ण को मार डाला गया। अब रावण भी चला गया। अब कहाँ भागें ? किसकी शरण में जाएँ ? इस भय से राक्षस काँपने लगे। हनुमान के पिता वायु के क्षुब्ध होने से दीपक बुझ गए। राक्षस संकट ग्रस्त हुए और उनका नाश हुआ। रावण की मृत्यु होने से सभा में राजाज्ञा का सूत्र भी नहीं बचा। अब चोरों का लाभ ही लाभ है। इसीलिए उन चोरों ने सभा में घुस कर लूटपाट मचाई है। राक्षस भाग कर जाने लगे, जो भी सभा के बाहर निकलता था, उसे पूँछ की मार पड़ती थी। "सीता के क्रोधित होने के कारण हमारे ऊपर यह संकट आया है। बाहर भागने का मार्ग भी शेष नहीं बचा। ऐसा भयंकर विघ्न उपस्थित हो गया है।"

हनुमान ने तत्पश्चात् रावण का मुकुट ज़ोर से खींचा जिसके कारण रावण इतना भयभीत हुआ कि उसे लगा कि उसका अंत समीप आ गया है। गुप्तचर जो बता रहे थे, वह ठीक ही था- यह उसे अब समझ में आया। गुप्त रूप से पड़े हुए ये भयंकर आघात अत्यन्त निष्ठुर थे, जिससे प्राणान्त भी हो सकता था। अब हनुमान ने रावण के कान में बीजाक्षर मन्त्र बताने की भाँति फुसफुसाते हुए कहा- "तुम सीता को चुराकर लाये हो इसलिए मैं रामदूत तुम्हारा शिर छेदन करने के लिए आया हूँ।" तत्पश्चात् हनुमान रावण के दस शिरों पर अपने नाखूनों से वार करने लगे। तभी हनुमान को आभास हुआ कि श्री रामचन्द्र ने उन्हें रोकते हुए कहा- "तुम्हारे द्वारा रावण का वध करने से मेरा पुरुषार्थ व्यर्थ जाएगा।" श्रीराम के ये वचन सुनकर हनुमान ने रावण को मारा नहीं परन्तु उनका हाथ लगते ही रावण भ्रमित हो गया अतः उसे उस कानमन्त्र का गूढ़ार्थ समझ में ही नहीं आया। तत्पश्चात् सभा में पुनः दीपक जलने लगे, उस समय सभी नग्नावस्था में थे और काँप रहे थे। परस्पर एक दूसरे को देखते ही लज्जावश उनकी दृष्टि झुक गई। एक से बोला ही नहीं जा रहा था तो दूसरा भय से ग्रस्त था। एक पागल हो गया था तो दूसरा प्रेतवत निश्चेष्ट हो गया था। कोई भय से काँप रहा था। सम्पूर्ण सभा का पुरुषार्थ का घमंड चूर-चूर हो गया था। इस प्रकार रावण की सभा में हाहाकार मचाकर सभाजनों को लज्जित कर, लंकानाथ को अपमानित कर हनुमान चले गए। असंख्य राक्षसों को संत्रस्त कर हनुमान ने रावण की सभा को बलहीन कर दिया तथा रावण को भी संत्रस्त कर उसे लज्जित किया।

[इसके आगे संत एकनाथ ने नम्रतापूर्वक निवेदन करते हुए कहा है- "यह हनुमान की ही महत्ता थी कि उन्होंने रावण की सभा में बैठकर रावण एवं राक्षसों में हाहाकार मचा दिया। मैं बालक, मात्र उनकी चरण रज से इस ग्रंथ में इतना सामर्थ्य ला सका। श्रीराम ही स्वयं मुझसे यह कथा कहलवा रहे हैं। मेरी भावार्थ रामायण का मूल कारण वही हैं। श्रीराम ही मेरी मुख से निकली वाणी हैं। अक्षर-अक्षर में राम विद्यमान हैं। मेरी बुद्धि से जिस गूढ़ ज्ञान का आविष्कार हो रहा है, वह उस चैतन्यघन श्रीराम की कृपा स्वरूप ही है। मेरे हृदय में प्रवेश कर श्रीराम ही इस कथा की रचना स्वयं कर रहे हैं। मैं तो वेद-शास्त्रों का अज्ञानी मूर्ख व्यक्ति हूँ। अतः जो मैं इस ग्रंथ में कह रहा हूँ, वह श्रीराम को प्रिय है। वही मेरे मुख से बुलवा रहे हैं।"]

अध्याय ४

[हनुमान का रावण के भवन में प्रवेश]

हनुमान को रावण की सभा में भी सीता के निवास-स्थल का पता न चल सका। अत: वे अत्यन्त दु:खी हुए। वे चिंतित होकर सोचने लगे "मैंने प्रयत्नों की पराकाष्ठा की, सम्पूर्ण लंकापुरी और वहाँ का प्रत्येक घर ढूँढ़ डाला। विनोद-वाटिका, आराम गृह, नदियाँ, कुएँ, तालाब ढूँढे। राजकुमारों के भवन, नर-नारियों के शयनगृह तथा रावण की सभा इत्यादि सभी स्थानों को ढूँढ़ा परन्तु सीता कहीं नहीं दिखीं। अत: निश्चित ही सीता लंका में नहीं है, उन्हें ऐसा लगने लगा। मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार सर्वत्र ढूँढ़ा परन्तु विधाता ने मुझे सफलता नहीं दी। मैंने गुप्त रूप में इतना ढूँढ़ा कि लंका में चार अंगुल जगह भी नहीं छोड़ी। फिर भी वे दिखाई नहीं दीं। इस पर ऐसा लगता है कि लंका में वह नहीं हैं। सीता को न ढूँढ़ सकने के कारण हनुमान अत्यन्त चिंतित होकर विलाप करने लगे। अब मैं श्रीराम को कैसे मुँह दिखा सकूँगा, यह सोचकर वे दु:खी हो गए।

हनुमान के मन में एक और विचार आया– 'रावण के हाथ लगने पर सीता ने अपने योग-सामर्थ्य से कहीं देह त्याग तो नहीं किया होगा। रामबाण के भय से जब रावण भाग रहा था उस समय गिरकर सीता के टुकड़े टुकड़े तो नहीं हो गए होंगे। भागते हुए रावण द्वारा कसकर पकड़ने के कारण सीता की पीड़ा से मृत्यु तो नहीं हो गई होगी। कहीं रावण से छूटकर सीता समुद्र में गिर तो नहीं पड़ी और जलचरों ने उनका भक्षण तो नहीं कर लिया होगा' इस प्रकार के अनेकों विचार उनके मन में आने लगे। 'परन्तु ये सब विचार जो मेरे मन आ रहे हैं, वे मिथ्या ही होंगे क्योंकि संपाती ने सीता लंका में ही है-यह बताया है। उसके वचन झूठ नहीं होंगे। सीता लंका में ही लायी गई हैं, फिर उस दुष्ट रावण ने उन्हें खा डाला होगा। रावण द्वारा उन्हें एकांत में ले जाने पर वह उनके वश नहीं हुई होंगी और क्रोधित होकर रावण ने उन्हें खा लिया होगा। अत: अब उनका पता कैसे चल सकता है ? रावण की कौन जाने कितनी पत्नियाँ होंगी, सुन्दर सीता को देखकर इस विचार से कि वह सबसे श्रेष्ठ सौत का स्थान ले लेंगी, उन्होंने उन्हें खा लिया होगा।' 'अब उनका पता नहीं लग सकता- मेरे सारे कष्ट व्यर्थ हुए,' ऐसा वे सोचने लगे।

हनुमान का दु:खपूर्ण मनोगत– हनुमान की आँखें आँसुओं से भर गईं, वे दु:खी हो उठे। जानकी को न ढूँढ़ सकने के कारण उनके सारे श्रम व्यर्थ चले गए। "समुद्र लाँघ कर लंका ढूँढ़ डाली पर सीता रूपी चिद्रत्न नहीं मिला। मेरा बड़प्पन व्यर्थ चला गया। मैं राममुद्रा तो ले आया, पर श्रीराम की सीता तो मिली ही नहीं। अब मैं श्रीराम से और कपिश्रेष्ठ सुग्रीव से कैसे मिल सकूँगा ? सीता की मृत्यु हो गई अथवा उन्हें मार दिया गया अथवा श्रीराम के विरह से वह मृत्यु को प्राप्त हुईं अथवा दु:खातिरेक से उनकी मृत्यु हुई। सीता की मृत्यु की वार्ता श्रीराम के पास ले जाने से मेरी अपकीर्ति होगी। सीता-पति श्रीराम, सीता से मिलन की आस में बैठे हैं। उन्होंने उनकी मृत्यु के विषय में सुना तो वे भी जीवित न रह सकेंगे। वेगपूर्वक समुद्र लाँघकर जो श्रीराम को मरणोन्मुख करने वाली शोधवार्ता लाया है, वह वानर अत्यन्त दुर्बुद्धिपूर्ण है- ऐसी मेरी ख्याति होगी। यह सेवक नहीं, अध:पतन करने वाला है। यह आप्त नहीं है, अत्यन्त घातकी है। कुशल न होकर मन्दबुद्धि है। यह हनुमान श्रीराम का घात करने वाला है इसने यह अनर्थ क्यों किया, जिससे श्रीराम की मृत्यु हो गई। इसने कार्य का सम्पूर्ण नाश कर

दिया। सीता की यह वार्ता अगर मैं बताऊँगा तो सारा अपयश मेरे माथे लगेगा और अगर नहीं बताऊँगा तो भी दोषी कहलाऊँगा। जो सेवक स्वामी से सब कुछ न बताये, वह कपटी कहलाएगा। सृष्टि में दोषी सिद्ध होकर नरक में जायेगा। श्री गुरु को सम्पूर्ण मनोगत बताने योग्य आत्मविश्वास जहाँ नहीं होगा, वह नर नरकवास का भागी होगा। समस्त संकल्प-विकल्प मन से मुक्त रूप में कहने योग्य विश्वास जिसमें नहीं होगा, उसे नरक में जाना पड़ेगा। कहने पर अनर्थ और न कहने पर नरक की प्राप्ति होगी।" इन विचारों के द्वन्द्व में फँसे हुए हनुमान को कोई उपाय न सूझने के कारण वह चिंताग्रस्त हो गए। समुद्र लाँघकर लंका आया। यहाँ सीता के विषय में कुछ पता न चल सका। अब आगे क्या करें, इसकी हनुमान को चिंता होने लगी। अब यहाँ रहने से अथवा किष्किंधा जाने से कल्याण होगा, इस विषय में वे सोचने लगे।

विचारमग्न हनुमान, श्रीराम की शरण में– हनुमान ने विचार किया कि- 'मैं किष्किंधा वापस जाकर सीता की मृत्यु के विषय में बताता हूँ तो श्रीराम प्राण त्याग देंगे। लक्ष्मण भी तत्काल चले जाएँगे। राम और लक्ष्मण दोनों की मृत्यु के विषय में सुनकर भरत प्राण-त्याग देंगे। उनके पीछे-पीछे शत्रुघ्न भी जाएँगे। अपने पुत्रों के निधन के विषय में सुनकर तीनों माताएँ, उनके प्रधान तथा अयोध्या निवासी भी प्राण-त्याग देंगे। श्रीराम की मृत्यु देखकर सुग्रीव, अंगद तथा वानरगण दुःख से मृत्यु को प्राप्त होंगे। उनके पश्चात् तारा व रुमा भी प्राण त्याग देंगी। फिर नल, नील, जाम्बवंत एवं सभी वानवीर राम एवं सुग्रीव की मृत्यु से दुःखी होकर आत्महत्या कर लेंगे। इस प्रकार मेरे वहाँ जाने से सूर्यवंश निःसन्तान हो जाएगा। वानर-वंश शून्य रह जाएगा। इसमें मेरा कैसा पुरुषार्थ होगा! अगर मैं यहीं रह जाता हूँ तो श्रीराम जो मेरा परमधर्म हैं, उनको प्रताड़ना करने के सदृश होगा। श्रीरघुनाथ की ऐसी उपेक्षा मैं कैसे कर सकता हूँ! इससे मेरे मस्तक पर गुरु को फँसाने का कलंक लगेगा। श्रीराम की उपेक्षा कर मैं वहाँ नहीं जाता हूँ तो पृथ्वी का समस्त दोष मेरे माथे आयेगा, मेरा अधःपतन हो जाएगा। हनुमान को विविध विचारों ने भ्रमित कर दिया। किष्किंधा लौटने से अनर्थ और लंका में रहने से दोष की प्राप्ति होगी अतः क्या करना चाहिए, इसका वे निर्णय नहीं ले पा रहे थे।

"मैं अगर अपना विचार कर सीता को ढूँढ़ने के लिए यहाँ रहा तो मुझे ढूँढ़ने का संकट श्रीराम के ऊपर आयेगा। मुझे ढूँढने के लिए अथाह और अपार समुद्र की उड़ान कौन करेगा ? सुग्रीव और श्रीराम के समक्ष यह प्रश्न उत्पन्न होगा अतः यहाँ रहना व्यर्थ है। इस संकट से उबरने के लिए प्राण-त्याग करने का विचार भी व्यर्थ है। मुझे मृत्यु आ नहीं सकती क्योंकि मुझे अग्नि जला नहीं सकती, वायु मार नहीं सकती। पर्वत पर से गिरूँ तो वह मेरी नित्य की ही उड़ान होगी। पानी मुझे डुबा नहीं सकता। मृत्यु भी मेरे लिए सम्भव नहीं है। मैं वज्रदेही वीर होते हुए भी सीता की खोज में अभागा ही रहा। हाय, मुझे मृत्यु क्यों नहीं आती"– यह कहते हुए हनुमान भूमि पर गिरकर फूट-फूट कर रोने लगे। "मैं अपना यह कठिन संकट किसे बताऊँ ? मेरा यह आक्रंदन सुनकर हे श्रीराम, अब आप ही मुझे इससे उबारें। मेरी उपेक्षा न करें"– भक्तिभाव से श्रीराम का स्मरण करते ही उनकी चिंता दूर हुई। तत्पश्चात् प्रसन्नता एवं उत्साहपूर्वक वे सीता को ढूँढने के लिए तैयार हुए। "सीता को ढूँढ़ते हुए इन्द्रजित् और कुंभकर्ण सहित रावण एवं अन्य राक्षसों का मैं नाश करूँगा"– हनुमान ने यह निश्चय किया।

"रावण को जीवित ही पूँछ में बाँधकर श्रीराम के पास ले जाऊँगा। राम ही उससे सीता के सम्बन्ध में पूछेंगे। मैं लंका में विलाप क्यों करूँ। स्वामी श्रीराम मेरे मस्तक पर अपना वरदहस्त रखे हुए

हैं। श्रीराम भक्तों के सहायक हैं श्रीपति ही स्वयं अपने सहायक हैं"– यह विचार कर उत्साहित होकर हनुमान पुन: सीता को ढूँढने के लिए प्रवृत्त हुए। आलस्य और संदेह त्याग कर, विषयासक्ति छोड़कर अगर प्रयत्न किया जाता है तो परब्रह्म को भी प्राप्त किया जा सकता है। सतर्क रहकर प्रयत्न करने से वैकुंठ में स्थान प्राप्त हो सकता है। शेषशायी नारायण भी हुआ जा सकता है परन्तु लगनपूर्वक प्रयत्न करना आवश्यक है। मन लगाकर प्रयत्न करने से परममुक्ति की प्राप्ति होती है। "मैं तो राम का सेवक हूँ अत: निश्चित ही सीता को ढूँढ लूँगा।" हनुमान का मन उत्साह से भर गया। उन्होंने आलस्य एवं अन्य विकल्पपूर्ण विचारों को त्याग कर खोज प्रारम्भ की। श्रीराम नाम का बल लगाकर उन्होंने ढूँढने के सम्बन्ध में विचार किया सम्पूर्ण लंका ढूँढकर जो स्थान शेष रह गया था, उसका विचार किया वे रावण के शयन-मन्दिर में प्रवेश करने का प्रयत्न करने लगे। "हे श्रीराम, अनन्य भाव से मैं तुम्हारी शरण में हूँ। हे लक्ष्मण, तुम्हारी मैं वंदना करता हूँ। जानकी। आपको साक्षात् दंडवत् प्रणाम। आप मुझे दर्शन दें। हे जानकी, मैं आपके लिए नन्हें बालक के सदृश हूँ। मुझे श्रीराम ने भेजा है। बछड़े से मिलने के लिए जिस प्रकार गाय दौड़कर आती है, उसी प्रकार आप मुझसे मिलें। आप श्रीराम की शक्ति हैं आपके कारण मुझे चिरंतन गति प्राप्त होगी।" यह कहकर हनुमान ने दंडवत् प्रणाम किया और श्रीराम को मन में वंदना कर जानकी को ढूँढने के लिए प्रस्थान किया

रावण के भवन में हनुमान का प्रवेश– सीता को ढूँढने के लिए सूक्ष्म रूप धारण कर हनुमान ने रावण के भवन में प्रवेश किया। वहाँ रावण के भवन में एक के ऊपर एक इक्कीस मंज़िलें थीं। स्थान स्थान पर गोपुर थे, उन पर रक्षक पहरा दे रहे थे सिंदूरी, श्वेत एवं पीले रंग के चार दाँतों वाले हाथी गर्जना कर रहे थे। सर्वत्र सैनिक विद्यमान थे। सेना में अश्व, गज, सैनिक, सेनापति सभी राजगृह में जागकर पहरा दे रहे थे। वहाँ अपार शस्त्र थे। ढोल, ढोलक, शंख, किंकरी इत्यादि वाद्यों की ध्वनियाँ गूँजती रहती थीं गुप्तचर अत्यन्त सावधानीपूर्वक एवं शोधक दृष्टि से चक्कर लगाते रहते थे वे बारी बारी से एक दूसरे को आवाज़ लगाकर सावधान करते थे राजद्वार पर निशान-भेरी इत्यादि की ध्वनि गूँजती रहती थी। सात मंज़िलों में सर्वत्र सैनिकों की भीड़ थी। वहाँ सुरक्षा व्यवस्था इतनी कड़ी थी कि वायु को मार्ग मिलना भी अत्यन्त दुरूह था। ऐसी व्यवस्था में हनुमान गुप्त रूप में युक्तिपूर्वक सीता को ढूँढ रहे थे। जब रावण की पत्नियाँ डोली में बैठकर जाती थीं तब हनुमान युक्तिपूर्वक गुप्त रूप से उनके घूँघट में प्रवेश कर सीता को ढूँढते थे, अश्वशाला, गजशाला, शस्त्रशाला, पानशाला, चित्रशाला, पाठशाला स्नानशाला शयनशाला, शाकशाला, पाकशाला, टांकशाला, कर्मशाला, लतामृगशाला, रत्नशाला, धर्मशाला, बावन चंदन ईंधन शाला, यंत्र-तंत्रशाला, रंगशाला इत्यादि स्थानों पर गुप्त रहकर हनुमान ने खोज की। इसके अतिरिक्त नाना प्रकार के वातायन, वितान, गोपुर इत्यादि अनेक स्थलों में ढूँढा। इस प्रकार बाहरी भागों में ढूँढने के पश्चात् हनुमान रावण के शयन-गृह में गये तथा उन्होंने कामग विमान में भी ढूँढा।

रावण का शयनगृह दस योजन लम्बा व उसी के अनुरूप चौड़ा था। उस गृह की दीवारें सोने की तथा रत्नजड़ित थीं, ज़मीन पन्ने की थी। सर्वत्र सूर्य प्रकाश के समान प्रकाश प्रदान करने वाली ज्योति रत्न दीपों में प्रज्वलित थी। मोतियों को माला में पिरोकर खिड़कियों पर टाँगा हुआ था। सोने के मंचक पर माणिक जड़कर मोती पिरोई हुई सोने की मालाएँ उन पर लटकाई हुई थीं। सोने की शृंखलाओं से युक्त छत सुशोभित हो रही थी। सर्वत्र सुगंध फैली हुई थी। वसंत ऋतु की कामोद्दीपक बयार बह रही थी छत पर स्थित खिड़की से आने वाली सुगंधित वायु उस स्थान पर विद्यमान कामग नामक दैदीप्यमान

तेजस्वी विमान से आ रही थी। यह विमान विश्वकर्मा ने ब्रह्मदेव के लिए निर्मित किया था। उसमें बैठकर ब्रह्मा सुखपूर्वक भ्रमण करते थे। इस विमान के लिए ही कुबेर ने एक पैर के अँगूठे पर खड़े रहकर एकाग्रता से निराहार रहकर तप किया था। शतकानुशतक यह तप करने के पश्चात् ब्रह्मदेव प्रसन्न हुए और उन्होंने कुबेर को आनन्दपूर्वक यह विमान दिया। कुबेर वह कामग विमान लेकर चैत्रवन तपोवन, नंदनवन इत्यादि स्थानों पर सुखपूर्वक विहार करता था। रावण ने यह देखा तो बंधुभाव त्यागकर उसने कुबेर से युद्धकर विमान छीन लिया। वही विमान रावण के भुवन में विद्यमान था, जिसमें बैठकर रावण स्त्रियों के साथ क्रीड़ा किया करता था। उस विमान को सुन्दरता की सीमा नहीं थी। इन्द्रनील मणियों के खम्भे थे, उस पर महानील होने से विमान की सुनील शोभा सर्वत्र फैल रही थी। विमान में मोतियों की झालरें थीं, स्थान-स्थान पर रत्न जड़े हुए थे। हनुमान उस पर चढ़कर सूक्ष्म रूप से विमान में प्रवेश कर सीता को ढूँढ़ने लगे।

रावण का भवन सुन्दर तो था ही, कामग विमान ने उस सौन्दर्य को द्विगुणित कर दिया था। उस विमान में रावण की अनेक पत्नियाँ विराजमान थीं। इन्द्र, यम, वरुण, इत्यादि के गृहों की अपेक्षा रावण का गृह अधिक सुन्दर था। स्वर्ग में रहने वालों की अपेक्षा एवं कुबेर की तुलना में श्रेष्ठ वैभव रावण के भुवन में विद्यमान था। नित्य नूतन सम्पत्ति रावण के पास थी। उसके शयन स्थान पर दिव्य योगिनी स्त्रियाँ थीं। शुद्ध पद्मिनी की श्रेणी की सम्भ्रांत स्त्रियाँ, असंख्य नाग-कन्या, देवकन्या, राजकन्या, सुरवरकन्या, गंधर्वनायिकाएँ तथा दैत्यदानव स्त्रियाँ रावण द्वारा लायी गई थीं। ये अपूर्व स्त्री-रत्न रावण अपने सुखोपभोग के लिए लाया था। सीता को भी वह इसी उद्देश्य से लेकर आया था परन्तु रावण का यह उद्देश्य सिद्ध नहीं हो पाया और उसे हनुमान से अपमानित होना पड़ा। रावण की शय्या के पास अनेक सुकुमार अलंकृत सुन्दर स्त्रियाँ पंक्तिबद्ध खड़ी थीं। असंख्य स्त्रियाँ नाना प्रकार के साधन हाथों में लेकर गीत गाते एवं नृत्य करते हुए रावण की सेवा कर रही थीं। भिन्न आयु की स्त्रियाँ भिन्न भिन्न प्रकार के गीत-संगीत प्रस्तुत कर रही थीं, उनमें विद्यमान युवा कामासक्त स्त्रियाँ पुरुषों का साथ न मिलने से दुःखी एवं कामातुर थीं। काम-भावना शान्त न होने के कारण रावण के वैभव को धिक्कार रही थीं, आलिंगन मात्र से उनको सन्तुष्टि नहीं मिल रही थी। अतः परस्पर एक दूसरे को सावधान कर रही थीं। उन्मादक अन्न ग्रहण कर उन्मादक पेय प्राशन कर वे परस्पर रममाण थीं। इस प्रकार मद से विह्वल असंख्य स्त्रियाँ रावण के भवन में थीं। कोई माली माला में जैसे फूल पिरोकर रखता है, उसी प्रकार स्त्रियाँ वहाँ पर पंक्तिबद्ध थीं। हनुमान उनके समूह में प्रवेश कर सीता को ढूँढ़ने लगे। उन कामातुर स्त्रियों में सीता का होना सम्भव नहीं था। उस समूह में सीता न मिलने से हनुमान आगे बढ़े।

आगे बढ़कर हनुमान, रावण की रत्नजड़ित शय्या के पास पहुँचे। वहाँ मंचक पर फूलों की शय्या तैयार की हुई थी। रावण के लेटने पर वहाँ वायु की स्वरलहरी और वसंत के पुष्पों की सुगंध निर्मित की जाती थी। उस मंचक पर मंदोदरी अकेले शयन की हुई दिखाई दी। उसका सुन्दर शोभायमान स्वरूप देखकर हनुमान को लगा कि वही सीता हैं। श्रीराम की पत्नी सीता के मिलने की कल्पना से प्रसन्न होकर वे नाचने लगे। "रावण की यह कृति अच्छी है कि पुष्प शय्या पर अकेली शयन की हुई सीता की अभिलाषा न कर उसे निष्पाप रहने दिया। सीता निरुपम पतिव्रता होने के कारण उसकी अभिलाषा करने पर वह भस्म कर देगी। रावण का परमधर्म होने के कारण उसने अपने धर्म से सीता की रक्षा की है। उसके उठते ही वह कपटी है कि रावण-कपटी, यह समझने के लिए हनुमान गुप्त रूप में मंच के

समीप आये। सभा में उत्पन्न विघ्न की शांति के लिए रावण उद्विग्न एवं भयभीत होकर होम करने के लिए गया था। सभा में उत्पन्न विघ्न का स्मरण कर रावण को प्राणान्त का भय सताने लगा था। उस विघ्न की शान्ति के लिए वह पश्चात्तापपूर्वक हवन करने लगा। मन्दोदरी को अकेले ही शय्या पर सोया देखकर उसे सीता समझकर हनुमान रावण एवं मन्दोदरी की गुप्त वार्ता सुनने के लिए तथा सीता से मिलने के लिए उत्सुक होकर वहाँ रुक गये।

अध्याय ५

[हनुमान को अशोक वन में सीता के दर्शन]

रावण के गृह में स्थित विमान में ढूँढते हुए हनुमान को एक मंच पर एकांत कक्ष में रावण की शय्या पर मन्दोदरी सोती हुई दिखाई दी। हनुमान को ऐसा लगा कि वह निश्चित रूप से सीता ही होगी। गुण-लक्षण, रूपरेखा व यौवन में यह सीता के समान अनुपम होने के कारण वही रामपत्नी और अपनी स्वामिनी हैं, यह समझकर हनुमान अत्यधिक प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी भुजाएँ थपथपाईं, पूँछ का चुम्बन लिया तथा प्रसन्न हो तालो बजाने लगे। "जानकी मिल गई, मैंने उन्हें ढूँढ़ लिया, अब संकट दूर हो गए रावण बेचारा क्या कर लेगा ? देवताओं की ओर देखते हुए हनुमान आनन्दित होकर कूदने लगे ? "मेरा स्वार्थ सिद्ध हुआ। श्रीरघुनाथ मुझसे सन्तुष्ट होंगे। वानरों का संकट टल गया। सीता का पता चल गया यह सुनकर श्रीराम आनन्दित होकर उसकी पीठ थपथपायेंगे, इसकी कल्पना मात्र से ही हनुमान सन्तुष्ट हुए। रावण होम-हवन का कार्य पूर्ण कर वापस लौटा। उसकी मन:स्थिति उस समय चिन्ताग्रस्त थी। विघ्न के भय से भयभीत होने के कारण मन्दोदरी को न जगाते हुए वह लेट गया मन्दोदरी रावण की आहट पाकर जाग गई। उसने शीघ्र उठकर रावण के चरणों की वंदना की तत्पश्चात् सोने का पात्र लेकर उसने रावण के पैर धोये यह सब देखकर हनुमान बहुत क्रोधित हुए।

हनुमान का क्रोध– "मेरे स्वामी की पत्नी लंकानाथ रावण का अनुसरण कर रही है, यह सब क्या मैं चुपचाप देखता रहूँ ? असम्भव ! अब मैं इन दोनों का ही वध करता हूँ रावण के दस शीश और सीता का एक इस प्रकार ग्यारह सिरों को नखों से छीलकर रघुनाथ से भेंट करने के लिए ले जाता हूँ। सीता रावण के वशीभूत हो गई, इसलिए मैंने दोनों का वध कर दिया। अत: इस पर अगर श्रीराम क्रुद्ध होते हैं तो उनके चरणों पर मस्तक रख दूँगा। अथवा इन दोनों को जीवित ही पूँछ में बाँधकर श्रीराम के पास ले जाऊँ। वे अपने बाणों से इन्हें दण्ड देंगे। अथवा मंच ही पूँछ से बाँधकर किष्किंधा ले जाऊँगा, दोषी अथवा निर्दोष यह श्रीराम ही तय करेंगे। परन्तु यह सब करने से पूर्व श्रीराम द्वारा बताये गए चिह्न देखकर सीता के नाम की महिमा को परख लेना चाहिए।" वहाँ पर सीता की उपस्थिति मानते हुए हनुमान ने दीवार से कान लगाकर सुनने का प्रयत्न किया परन्तु वहाँ से रामनाम स्मरण सुनाई नहीं दिया। "पाषाण को कान लगाने के कारण नामोच्चारण सुनाई नहीं दिया अथवा पतिव्रता द्वारा पति का त्याग करने के कारण वहाँ से नामशक्ति दूर हो गई होगी। कदाचित् सीता के अनाचार में रममाण होने के कारण नाम का उच्चारण ही नहीं हो रहा होगा। अत: अब मैं इसका प्राण हरता हूँ" हनुमान के क्रोध की सीमा न रही, वे क्रोध से थर थर काँपने लगे, दाँत पीसने लगे। नेत्र गोल-गोल घूमने लगे। क्रोध से उनके शरीर

के रोम काँपने लगे। रावण सहित मन्दोदरी (उसे सीता समझते हुए) का वध करने के लिए उन्होंने अपनी पूँछ लपेटी और क्रोधपूर्वक उठ खड़े हुए। परन्तु तभी अपनी बुद्धि के कारण कुछ शांत हुए क्योंकि सुलोचना का वार्तालाप सुनने के कारण इन्द्रजित् के प्राण बच गये थे उसी प्रकार इस बार भी दोनों के वचन सुनकर उस पर विचार कर कार्य करने का उन्होंने निर्णय किया। हनुमान को उनकी बुद्धि ने क्रोध पर नियन्त्रण रखने के लिए बाध्य कर दिया। अत्यन्त क्रोध की स्थिति में भी जिसकी विचारशक्ति लुप्त नहीं होती उसे स्वर्ग-प्राप्ति हो सकती है वही परम धैर्यवान् होता है। क्रोध आने पर भी जो सतर्क रहता है वही अवतारी पुरुष होता है, उसे ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है और वह संसार को पवित्र करता है। लोभ, क्रोध का कारण होता है परन्तु हनुमान में लोभ न था। इसी कारण रघुनन्दन की गुरु कृपा से हनुमान क्रोध में भी सतर्क रहे ।

मन्दोदरी–रावण संवाद– हनुमान ने अपने क्रोध पर नियन्त्रण रखकर दोनों का वार्तालाप सुनने का निश्चय किया और वे गुप्त रूप में सतर्क हो गए। मन्दोदरी रावण से बोली– "अभी मैंने एक बुरा स्वप्न देखा। उस स्वप्न ने मुझे भयभीत कर दिया है उस स्वप्न को सुनिये पहले लंका में कौंच का वध करके एक पुरुष अशोक वन में राम की पत्नी सीता को ढूँढ़ने गया है। लंका में त्रिविध शोक निर्मित हो गया है। पुत्र शोक पति का अपमान, नगरी का दहन इस प्रकार सर्वत्र हाहाकार मच गया है। अशोक-वन में प्रवेश कर उसने सीता के साथ अत्यन्त आत्मीयतापूर्वक वार्तालाप किया। वहाँ के वन-रक्षकों का वध कर समुद्र में फेंक दिया है। अशोकवन का नाश कर जम्बुमाली को मार डाला है। राक्षस पुत्रों की होली जलाकर अक्षय का वध कर दिया है। सेना का नाश होने पर इन्द्रजित् युद्ध के लिए गया है। वह भी भय से घराशायी हो गया है, उसको ब्रह्मपाश बाँधकर ले आया। उसने क्रोध से अपनी पूँछ जलाकर आपकी दाढ़ी मूँछें जला दीं, इस प्रकार त्राहि-त्राहि मचाते हुए लंका जलाकर नगर को घेर लिया है, किसी को आगे पीछे हिलने नहीं दे रहा है। इस प्रकार चारों तरफ हाहाकार मचा हुआ मैंने स्वप्न में देखा। यह दुःस्वप्न देखकर मैं चौंककर उठ बैठी। मुझे मन में भयंकर भय लग रहा है। नींद उड़ने के कारण पैर धोकर जल पीकर सदाशिव का स्मरण करते हुए बायें करवट लेट कर सो गई, उसके पश्चात् मैंने एक और दुःस्वप्न देखा। मैंने देखा कि सागर पर पत्थर बाँधकर उस पर से नर वानर लंका में आये हैं तथा राक्षसों का नाश कर रहे हैं, इन्द्रजित् और कुम्भकर्ण दोनों को उन्होंने मार डाला है, आपके सिर रामबाण से टूटकर गिद्धों के समक्ष गिरे हुए हैं। रण में दशानन गिर पड़े, मेरे कंगन टूट गए यह देखकर मैं फूट-फूट कर रो पड़ी और तुरन्त निन्द्रा खुल गई।'' यह कहकर मन्दोदरी रावण के समक्ष बैठी और अचानक चिल्लाने लगी कि 'लंका में वार्ता फैल गई कि लंकानाथ युद्ध में मारा गया।' यह कहते हुए वह जोर से विलाप करने लगी। तब रावण भी विचलित हो उठा। उसने उसका हाथ पकड़कर कहा- "मैं तो जीवित हूँ तुम व्यर्थ ही क्यों छटपटा रही हो।"

पूर्ण रूप से जागृत होकर मन्दोदरी रावण से बोली– "हे लंकानाथ, आप सावधान हो जायें, मेरा स्वप्न कभी मिथ्या नहीं होता। अशोक वन में रहने वाली सीता आपका घात कर देगी। श्रीराम से मैत्री कर उसकी सीता उसे आनन्दपूर्वक वापस कर दें। उससे आपका एवं राक्षस कुल का कल्याण होगा। मैं तो आपकी दासी हूँ अतः आपके चरण पकड़कर प्रार्थना करती हूँ, सीता राम को दे देने से आपको मुक्ति और मुक्ति दोनों प्राप्त होंगी।" इधर हनुमान को सीता के अशोक वन में होने का पता लगने पर आनन्द हुआ उनका आनन्द त्रिभुवन में नहीं समा पा रहा था। उन्हें श्रीराम की पत्नी के विषय में पता

चल गया था। सीता अशोक-वन में है, यह ज्ञात होने पर, वह अशोक वन कहाँ पर है, यह जानने के लिए वे गुप्त रूप में सावधानीपूर्वक सुनने लगे। जानकी का नाम सुनते ही रावण की कामवासना जागृत हो गई। अशोक वन में जाकर सीता का उपभोग करने का विचार उसके मन मे कौंध आया। रावण सभा में उत्पन्न विघ्न, मन्दोदरी का स्वप्न सभी कुछ भूल बैठा। सीता से संभोग के लिए उत्पन्न काम वासना से वह उद्विग्न हो उठा। रावण अपने मन में विचार में करने लगा कि 'छह महीने मैंने जनक कन्या को अशोक-वन में क्यों रखा ? अब अपने बल का प्रयोग कर मैं राम पत्नी का उपभोग करता हूँ।' सीता के विषय में उत्पन्न काम-वासना से रावण आतुर हो उठा। उसे अपने स्वार्थ एवं अपने हित-अहित का विस्मरण हो गया। वह सीता के विचारों में मग्न हो गया। उसके मुख में नित्य सीता का ही नाम रहने लगा। उसी का नित्य स्मरण करने लगा। उसके मन में मात्र जानकी के विचार ही शेष रह गए कामुक विचारों से सीता का स्मरण करने पर भी रावण के पाप धुल गए। राम भक्तों को उससे सामर्थ्य की प्राप्ति होती है और उससे रघुनाथ से भेंट होती है। रावण की सकाम वृत्ति देखकर मन्दोदरी ने नमन कर उससे सीता को रघुनाथ को अर्पित कर देने की विनती की परन्तु सीता को राम को वापस करने का विचार रावण को स्वीकार नहीं हुआ। मन्दोदरी रावण के मन के भावों को समझ गई और वह अपने हित का विचार करने लगी। "मैं स्वय ही इन्द्रजित्, कुंभकर्ण, एवं प्रधानों के साथ जाकर सीता श्रीराम को अर्पित कर दूँगी। सीता के सम्बन्ध में काम भावना से भरे हुए रावण को कुछ बताने का कोई लाभ नहीं, मेरे द्वारा सीता को श्रीराम को अर्पित कर देने से मुझे श्रीराम के दर्शन होकर मेरे संसार के संकट दूर होंगे, रघुनाथ से मैत्री करने पर विघ्न अविघ्न हो जाएँगे। चित्त चैतन्यघन होकर दुःख दूर होकर सम्पूर्ण सुख की प्राप्ति होगी मृत्यु के समय श्रीराम के चरणों का स्मरण करने से मृत्यु ही पूर्ण ब्रह्म हो जाती है। श्रीराम सुख रूपी मेघ है अत: मैं अब श्रीरघुनाथ की शरण जाऊँगी और स्वयं ही सीता श्रीराम को अर्पित कर दूँगी, जिससे लंकानाथ का भी कल्याण होगा।"

मन्दोदरी के विचारों से रावण अस्वस्थ– मन्दोदरी के विचार सुनकर रावण अत्यन्त अस्वस्थ हो गया उसके मन में आया कि 'यह मेरी प्रिया न होकर मेरे लिए एक विघ्न के समान है, जो सीता को मुझसे दूर करना चाहती है। मन्दोदरी ने अगर आज्ञा दी तो इन्द्रजित्, कुंभकर्ण, अथवा प्रधान मंडल उस आज्ञा का उल्लंघन नहीं करेंगे। मन्दोदरी द्वारा बताया गया कार्य वे मुझसे पूछे बिना ही पूर्ण करेंगे" मन्दोदरी द्वारा सीता को दूर ले जाने पर रावण को अत्यन्त दुःख होगा। अत: रावण क्रोधित हो उठा। मन्दोदरी को बहलाने के लिए उसने एक उपाय सोचा। वह बोला– "आये हुए सम्पूर्ण विघ्नों का निवारण करने के लिए और श्रीरघुनाथ का अनुसरण करने के लिए हम दोनों प्रथम शंकर की पूजा करेंगे। सदाशिव हमारे कुल देवता हैं। उस सदाशिव की आज्ञा के अनुसार श्रीराम को सीता अर्पित कर देंगे" इस प्रकार कपटयुक्त बातें कर रावण ने मन्दोदरी को अन्य किसी कार्य में व्यस्त कर दिया। रावण ने शंकर की वास्तव में पूजा की, यह देखकर मन्दोदरी आनन्दित हुई परन्तु रावण के मन में कुछ अलग ही विचार था। उसने एक विश्वसनीय दूतिका को बुलवाकर उसे एक गुप्त सन्देश दिया। "तुम शीघ्र ही अशोक वन में जाकर सरमा एवं त्रिजटा से कहो कि सीता को कदापि न छोड़ें। मेरा प्रिय पुत्र इन्द्रजित्, मेरा भ्राता कुंभकर्ण, मेरी प्रिय और पतिव्रता पत्नी मन्दोदरी, बड़े प्रधान अथवा मेरे पूजनीय भट, जोशी, विद्वान लोग, इनमें से कोई भी सीता को मुक्त करने के सम्बन्ध में कहे तो भी वे सीता को न छोड़ें, नहीं तो मैं उनका वध कर दूँगा। उनके प्राण हर लूँगा। स्वर्ग के देवता, स्वयं ब्रह्मदेव अथवा किसी के

भी आने पर सीता को मुक्त न करें यह मेरी आज्ञा है।" रावण के ये वचन सुनकर वह गुप्त सन्देश लेकर दूतिका शीघ्र अशोक-वन की ओर सावधानीपूर्वक चल पड़ी।

हनुमान द्वारा पीछा करना एवं उन्हें सीता दर्शन– रावण की आज्ञा लेकर दूतिका शीघ्र अशोक-वन की ओर चल पड़ी। हनुमान भी उसके पीछे चलने लगे। श्रीराम ने कृपा की और उन्हें बिना प्रयत्न के सीता का पता चल गया। इसका उन्हें अत्यधिक आनन्द हुआ। श्रीशंकर की कृपा मानकर वह हर्षपूर्वक विविध भाव भंगिमाएँ कर रहे थे। स्वयं को चिढ़ा रहे थे। गुदगुदी कर रहे थे। "मेरी सीता माँ, मुझे अनायास ही मिल गई। मंदोदरी से रावण ने कपट किया परन्तु श्रीराम की कृपा से मुझे सीता माता मिल गई, एक प्रकार से रावण ने मुझ पर यह उपकार ही किया है। कठिन शोधकार्य के पश्चात् कभी न मिली सीता अचानक मुझे मिल गई" - यह विचार करते हुए हनुमान उस दूतिका के पीछे गये। उन्हें सुन्दर अशोक वन दिखाई दिया। श्रीराम की पत्नी सीता शोक स्थान पर न होकर अशोक वन में है, यह सत्य उन्हें दिखाई दिया। अशोक वन का मार्ग छोड़कर मैंने शोक में सीता को ढूँढ़ा लेकिन उनका अशोक-वन में होना सत्य भी है और उचित भी-यह उनकी समझ में आ गया। सीता के चरणों में, दर्शन में, नेत्रों में स्मरण में अशोक का होना ही सत्य है। यह उन्होंने मान लिया। सीता के अँगूठे में, उदर में, अशोक ही है सीता के उदर में अशोक होने के कारण सृष्टि शोक रहित हुई। रावण द्वारा हरण कर लाने के पश्चात् किया हुआ शोक न दिखने के कारण रावण ने उसे अशोक-वन में रखा। सीता अशोक ही है, अशोक का वास्तव्य होने से शोक शांत हुआ। इसीलिए उसका नाम अशोक-वन होगा, ऐसा हनुमान को लगा।

हनुमान ने अत्यन्त आनन्दपूर्वक अशोक-वन में प्रवेश किया, वहाँ सीता को देखकर वे हर्षित हुए और उन्होंने साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया। वहाँ पाषाण राम-नाम स्मरण कर रहे थे। अणु, रेणु, तृण सभी राम-नाम जप रहे थे। वृक्ष के पत्ते वायु से हिलते हुए राम-नाम के स्वर से गूँज रहे हैं। पृथ्वी राम-नाम स्मरण कर रही है। इससे यही श्रीराम की पत्नी सीता है, ऐसा उनको विश्वास हुआ। आचमन करने पर वहाँ का जल श्रीराम के कारण स्वादिष्ट लगा। पवन से मन्द-मन्द सुगन्ध आ रही है। सर्वत्र राम नाम का बोलबाला है यह उन्हें अनुभव हुआ। राम-नाम से आकाश गूँज रहा है, सावधानीपूर्वक देखने पर 'यही सीता है' यह सत्य हनुमान को अनुभव हुआ क्योंकि जहाँ हरिभक्तों का निवास होता है, वहाँ पंचभूतों में श्रीराम-नाम की गूँज होती है। राम-नाम से ओत प्रोत होने के कारण अखिल सृष्टि में राम नाम का स्मरण सुनाई देता है और इसी आधार पर यह सीता ही होगी ऐसा हनुमान को विश्वास हो गया। श्रीराम द्वारा बतायी गई निशानी उन्हें मान्य हुई।

अध्याय ६

[मन्दोदरी की जन्मकथा]

सीता श्रीराम की श्रेष्ठ भक्त होने के कारण तृण, पाषाण इत्यादि से नामोच्चार की गर्जना हो रही थी, नाम की गूँज त्रिजगत् में विद्यमान थी। सीता द्वारा राम की परम भक्ति करते हुए कैसी स्थिति होती है, यह देखने पर ही भक्ति की युक्ति समझती है। हृदय में श्रीरघुपति रूपी आत्मा विद्यमान है, वेद

शास्त्रों में इसकी व्युत्पत्ति आत्मानुभव से अनुभव की जाती है और उसे भजन भक्ति की संज्ञा दी जाती है। मन में यह भक्ति होने पर प्राणिमात्र में श्रीराम के दर्शन होंगे। इस भजन स्थिति को वेदों ने इस दृष्टि से निश्चित किया है– 'इस स्थिति में किया गया नामोच्चार निश्चित रूप से वाचिक भजन कहलाता है 'श्रीराम' अक्षर अ-क्षर होने के कारण उनका नामोच्चार श्रीराम ही होता है. श्रीराम जय-राम ये अक्षर क्षराक्षर से परे हैं, जो शंकर ने आदरपूर्वक भवानी को बतलाये हैं। इस स्थिति का श्रवण करने पर पूर्ण अक्षरार्थ श्रीराम ही उसमें दिखाई देता है। यह नाम श्रवण की विद्या रघुनन्दन द्वारा ही बतायी गई है। रसों में स्वाद के रूप में श्रीराम निहित है। जिह्वा को रसज्ञता इन रामनाम के अक्षरों से ही प्राप्ति होती है। इसी के माध्यम से रसों का उपभोग किया जा सकता है। इसी प्रकार श्रीराम की कृपा से नासिका को सुगन्ध की अनुभूति होती है। वही सर्वज्ञ श्रीराम नासिका का जीवन हैं और उसमें सुगंध रूपी भजन के रूप में विद्यमान हैं, त्वचा में स्पर्श की अनुभूति तथा स्वयं त्वचा रूप में श्रीराम विद्यमान हैं। श्रीराम ही त्वचा में अन्तर्बाह्य भजन रूप में विद्यमान हैं। मन में आत्मानुभूति रूप में श्रीराम विद्यमान हैं। चित्त में चैतन्य रूप में श्रीराम विद्यमान हैं। बुद्धि का समाधान श्रीराम हैं। ज्ञान में विवेक श्रीराम हैं। अहम् सोऽहम्, कोऽहम् से परे श्रीराम जानकी में निवास करते हैं, और इसी अनन्य भाव से जानकी श्रीरघुनाथ की भक्ति करती हैं। श्रीराम गति में गति रूप में विद्यमान हैं वह सीता की आत्मशक्ति हैं। श्रीराम अन्तर्बाह्य सभी प्राणियों में विद्यमान हैं और जानकी उनकी स्थिति है।

श्रीराम की ऐसी भजन-भक्ति की तुलना में रावण के तुच्छ भय का कोई अस्तित्व ही नहीं है। वह रावण सीता के समक्ष आ ही नहीं सकता। सीता भी मिथ्या विलाप करती हैं। श्रीराम और सीता एक ही हैं। सीता का अस्तित्व राम से अलग है ही नहीं। श्रीराम भी सीता से अलग नहीं है। अतः वे उनसे दूर हो ही नहीं सकते सीता द्वारा श्रीराम की भक्ति के विषय में हनुमान को वास्तविकता का ज्ञान हुआ। हनुमान को यह भी ज्ञात हुआ कि श्रीराम भक्तों की अवश्य ही रक्षा करते हैं। मन्दोदरी को सीता समझकर उसे रावण के वशीभूत देखकर क्रोध के कारण हनुमान ने उन दोनों का वध कर दिया होता परन्तु राम ने यह अनर्थ होने से बचा लिया। मैं मात्र उन्मत्त वानर हूँ, जो समूल विचार न करते हुए दोनों का वध करने वाला था परन्तु श्रीराम ने उस अनर्थ से बचा लिया मन्दोदरी सीता ही है, ऐसा हनुमान को अनुभव हुआ क्योंकि वह विष्णु संभूता ही है।

मन्दोदरी की जन्म-कथा; रावण माता कैकसी– रावण की माता कैकसी पाँच अनाजों को पीसकर उसका शिवलिंग बनाकर पंचमुखी शंकर के रूप में शिवलिंग की नित्य पूजा करती थी पाँच अनाजों को पीसकर बने शिवलिंग को पंचानन शिव मानकर वह नियमित रूप से पूजा करती थी। पूजा का उसका उद्देश्य था कि उसके पुत्र अक्षय हों। एक शिवरात्रि को समुद्र के तट पर जाकर शिवलिंग निर्मित कर कैकसी उसकी षोडषोपचारयुक्त पूजा कर रही थी। उसने उस पर तीन पर्णों से युक्त लक्ष बेल-पत्र चढ़ाकर अनुपम महापूजा की। एक एक बेल पत्र को शिवनाम का स्मरण कर शिवलिंग पर चढ़ाकर अनन्य भक्तिभाव से श्रीशंकर की मनोहारी पूजा की। उसने दोनों नेत्र मूँदकर ध्यान प्रारम्भ किया। इस बार कुछ अलग ही घटित हुआ। राक्षसद्वेषी इन्द्र ने वह शिवलिंग समुद्र में डाल दिया। सागर ने वह लिंग टूटने नहीं दिया वरन् उस लिंग की घटकेश्वर में स्थापना की। घटकेश्वर में आज भी शिवलिंग की पूजा होती है। शिवरात्रि के अवसर पर गोमती समुद्र के प्रवाह में बेलपत्रों को प्रवाहित होते हुए अनेक लोगों ने देखा है। जब कैकसी ने नेत्र खोले तो उसे पूजा के लिंग को हानि पहुँची हुई दिखाई दी। यह

विघ्न अब पुत्र पौत्र इत्यादि सभी सन्तानों का नाश करेगा इस दुःख से कैकसी विलाप करने लगी; "मेरी पूजा चोर ले गए। इस रावण का बड़ा राज्य किस काम का ? संसार में यह क्या घटित हो रहा है ?" ऐसा कहते हुए वह विलाप कर रही थी।

माता का विलाप सुनकर रावण दौड़ते हुए वहाँ आया। माता उससे बोली– "अरे मेरी पूजा का शिवलिंग संकट में है और तुम मुझे कैसे मुँह दिखा रहे हो ? अगर लिंग का विसर्जन नहीं किया और वही संकट ग्रस्त हो गया तो बहुत अनर्थ होगा है। सतानें मृत्यु को प्राप्त होकर निःसन्तान होना पड़ता है शैवागम शास्त्रों में शिव के यही वचन हैं।" इस पर रावण बोला– "हे माता मेरे वचन सुनो। छह सूत्रों द्वारा रक्षित एक रत्नलिंग है। तुम उसकी पूजा करो।" तब कैकसी बोली - "आगम शास्त्र में विविध प्रकार से उस लिंग की महत्ता बतायी गई है। मैं कैकसी अन्य किसी लिंग को हाथ नही लगाऊँगी। मैं अनाचार नहीं करूँगी, मेरा वह लिंग नहीं मिला तो दूसरे लिंग का मैं स्वीकार नहीं करूँगी। शैवदीक्षा में कहा गया है कि लिंग न मिलने पर प्राण त्याग देने चाहिए। शैवमार्ग में कहा गया है कि दूसरे लिंग का मार्ग छोड़कर लिंग पूजा करने के लिए अपने प्राणों को न्योछावर कर देना चाहिए।

रावण का कैलास की ओर प्रस्थान– रावण ने माता से कहा - "हे माता, मेरी विनती सुनो, तुम व्यर्थ ही प्राण त्याग मत करो। मैं शंकर के पास जाकर तुम्हारा पूजनीय लिंग तुम्हें वापस ला दूँगा। शिव मेरे स्वामी हैं, यह तत्वतः तुम्हें भी ज्ञात है। उस विश्वनाथ को प्रसन्न कर तुम्हारा लिंग तुम्हें वापस ला दूँगा।" इस पर कैकसी बोली - "रावण, मुझे नारद ने बताया है कि शिव के पास आत्म लिंग है अगर तुम वह ले आये तो मैं धन्य हो जाऊँगी।" माता के वचन सुनकर रावण ने शीघ्र ही शिव के पास जाने के लिए प्रस्थान किया शिव के पास स्वयं जाकर उसने शिव को साष्टांग नमन किया रावण के समीप आने पर भी शिव ने उससे यह नहीं पूछा कि तुम क्यों आये हो। उसकी उदासी के विषय में नहीं पूछा बाणासुर और रावण शिव को अत्यन्त प्रिय थे, वे उनके वचन अणु मात्र भी टालते नहीं थे। उसी रावण से इस बार शिव ने कुछ नहीं पूछा। अतः रावण बहुत चिन्तित हुआ। "अब मैं क्या करूँ ? इस विचार में वह मग्न हो गया। जो भक्त निष्काम भावना से आते हैं उनसे शिव प्रसन्न होते हैं वही भक्त अगर सकाम भावना से आये तो शिव उन पर ध्यान नहीं देते। रावण ने शिव की पत्नी जगदमाता पार्वती को देखा। उसके मन में विचार आया मैं इसे ही शिव से माँग लूँ रावण के दो प्रहर खड़े रहने पर भी शिव ने उसे प्रतिसाद नहीं दिया। रावण ने अन्तर्दृष्टि से देखा कि शिव कहाँ व्यस्त हैं। तब उसे ज्ञान हुआ कि वे भृंगी की झनकार एवं नाद में व्यस्त हैं। यह जानने के पश्चात् रावण ने अपने मन में कुछ निश्चय किया।

रावण द्वारा मस्तक समर्पण; वर प्राप्ति– रावण ने अपना मस्तक काटकर इस शरीर की शिराएँ लगाकर उसकी वीणा तैयार की तथा हाथों में लेकर कुशलतापूर्वक बजाने लगा। रावण के वाद्य के मधुर, मंजुल एवं शांत स्वर सुनकर श्रीशंकर सन्तुष्ट हुए। रावण से 'कुछ माँगो' कहने पर भी उसका मस्तक टूटा होने के कारण वह माँग नहीं पाएगा यह सोचकर शिव के मन में कृपा निर्मित हुई। उन्होंने माँगे बिना ही उसे वर दिया– "तुमने स्वयं का मस्तक काटकर मुझे प्रसन्न किया है अतः तुम दशशिर युक्त होकर तीनों लोकों में शूरवीर होंगे।" तत्पश्चात् जिसके ध्वज पर बैल का चिह्न है, उस शंकर ने शीघ्र ही शिरा वहाँ से निकालकर वहाँ तन्तु लगाये। श्री शिव के वर से रावण को दस शिर तथा बीस भुजाएँ निकल आईं। उसे अमृत देकर बलवानों में श्रेष्ठ पराक्रमी बनाया। फिर श्रीशंकर बोले -

"हे लंकानाथ, तुम्हें जो अच्छा लगेगा, वह मैं तुम्हें दूँगा" भोले सदाशिव प्रसन्न होकर बोले वे तीक्ष्ण दृष्टि होते हुए भी राक्षस के मन में निहित विचार नहीं पहचान पाये। उसकी दुष्ट बुद्धि की थाह वे न ले सके।

रावण ने 'स्वयं के उपभोग के लिए लावण्यराशि पार्वती एवं कैकसी माता के लिए आत्मलिंग प्रदान करें' यह मांग की। यह सुनकर शिव की वरदान देते समय की उदारता एवं उत्साह विलुप्त हो गया। पुत्र, माता से रतिभोग की कामना कर रहा है, यह सुनकर वे अत्यन्त क्रोधित हुए। पर क्रोध आने पर भी अगर दिया हुआ वरदान पूर्ण नहीं किया जाता तो असत्यता के कलंक का भागी बनना पड़ेगा। इस विचार से नहीं कहना भी सम्भव नहीं है। माता और पुत्र एक दूसरे के समीप आनन्दमय वातावरण में होने पर अगर पुत्र ने माता से रतिभोग की कामना की तो माता के क्रोध की पराकाष्ठा होगी। वैसी ही स्थिति इस समय शिव की थी। गुरु पत्नी शिष्य की माता के समान होती है। शिष्य अगर उसकी अभिलाषा करता है तो वह मातृगमनी होने के पाप का भागी बनता है, इससे यह रावण कैसे बच सकता है ? पार्वती को रावण के हाथों में सौंपते समय शिव ने कहा- "इसके कारण तुम्हें सर्वशान्ति प्राप्त होगी।" परन्तु इस उद्गार में निहित अर्थ न समझ सकने के कारण रावण उल्लसित हुआ। श्रीशिव, रावण से बोले "यह आत्मलिंग तुम्हारे पास होने पर तुम्हें पवित्रता रखनी होगी। इसे भूमि पर रखने पर पुन: यह तुम्हें नहीं मिल सकेगा " चैतन्य ज्योति आकर्षित कर आत्मशक्ति से तेज एकत्र कर भगवान् शंकर उस आत्मलिंग की पूजा नित्य किया करते थे। वह लिंग रावण के हाथों में देते समय विचार हुआ कि यह लिंग रावण के हाथों से निकल जाएगा। तब तीसरे नेत्र की शक्ति कुपित होगी और रावण को सबक मिल जाएगा.

रावण का पार्वती एवं आत्मलिंग लेकर प्रस्थान- रावण पार्वती सहित आत्मलिंग को हाथों में लेकर आनन्दपूर्वक लंका की ओर चल पड़ा। रावण को देखकर उमा दीन एवं दु:खी हो गई। उसे चिंता लगने लगी। उमा ने अपनी रक्षा के लिए श्रीविष्णु भगवान् को पुकारा- "शिव ने मुझे रावण के हाथों में सौंप दिया है, अब मेरी मुक्ति कैसे सम्भव है ? हे विष्णु ! आप सत्वर आयें हे कृपालु जब गजेन्द्र को ग्राहों ने निगल लिया था, उस समय आपने ही उसका उद्धार किया था। अब रावणग्रस्त इस दीन उमा की रक्षा हेतु शीघ्र आयें। राम नाम लेने पर वेश्या को वैकुंठ ले गए। हे दीन दयाल, जगद्श्रेष्ठ, वैसी ही कृपादृष्टि मुझ पर डालें महापातकी अजामिल का आपके नाम ने उद्धार कर दिया। मैं तो आपकी दासी हूँ, मुझ पर कृपा करें। शिव को सन्त्रस्त करने वाले भस्मासुर से आपने ही बचाया।" उमा की यह विनती सुनते ही श्रीविष्णु तुरन्त आये। "श्रीशिव की पत्नी, यह तो मेरी प्रिय माता है, उसकी अभिलाषा धरने वाले रावण को मैं त्रस्त कर दूँगा। श्रीगणेश एवं कार्तिकेय को, पार्वती को मुक्त कराने में शिव के वरदान के कारण अड़चनें आयेंगी क्योंकि शिव का वर झूठा सिद्ध होगा। शिव को क्रोध आयेगा, मैं रावण के दाँत तोड़कर क्षण-मात्र में माता को मुक्त करा लूँगा। शिव का वरदान मिथ्या होने पर शिव क्रोध से उनका वध कर देंगे।" तत्पश्चात् पार्वती की मुक्ति के लिए श्रीविष्णु दौड़कर आये। उनकी कार्तिकेय और गणेश दोनों से भेंट हुई। उन्होंने एक दूसरे को सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया। रावण को संत्रस्त करने के लिए श्रीविष्णु ने कुशल उपाय की योजना की। गणेश को श्रीविष्णु ने ब्राह्मणों की गायों की रखवाली करने वाले गोपाल का रूप लेने के लिए कहा। स्वयं विष्णु ने ऋषि का रूप लिया और कार्तिकेय को अपना शिष्य बनाया। जब वे रावण के समक्ष आये तो रावण अत्यन्त प्रसन्न दिखाई दिया उसने बताया कि, "कृपा मूर्ति शिव ने मुझे पार्वती तथा आत्मलिंग प्रदान किया है " तब शिष्य

का रूप लिये हुए कार्तिकेय ने उससे कहा "आत्मलिंग तो वास्तविक है परन्तु उमा पार्वती नहीं है शिव ने तुम्हें ठग लिया है। अपनी पत्नी किसी अन्य को देना शिव के लिए सम्भव ही नहीं है। हे रावण, तुम ठगे गए हो, तुम एक बार पार्वती की ओर देख तो लो।"

रावण का शिव के पास प्रस्थान, मन्दोदरी का निर्माण– रावण ने शिष्य के कहने पर जब पार्वती की ओर देखा तब पार्वती उसे अत्यन्त घिनौने स्वरूप में दिखाई दीं। उसे निंद्य कुत्सित, हीन, दीन स्वरूप के दर्शन हुए। नेत्रों से पानी बह रहा था। मुख पर मक्खियाँ भिन-भिना रही थीं, नाक भरी हुई थी, मुख से दुर्गंध आ रही थी तथा शरीर टेढ़ा था- ऐसी पार्वती रावण को दिखाई दी। श्रीविष्णु ने कौशल्यपूर्वक रावण को फँसाकर उसकी दुर्दशा की। ऋषि के रूप में आये विष्णु से रावण बोला- "मेरे भाग्य से मुझे मिली हुई पार्वती मैं अभी शिव के पास जाकर माँगकर लाता हूँ।" इस पर श्रीविष्णु बोले- "यह बिलकुल सत्य है कि शिव ने अपनी पत्नी न देकर कर्कशा स्त्री तुम्हें दे दी। उस महेश को तुम भोला मत समझो। उस उमापति ने उमा को छिपा दिया है। उसकी पहचान मैं तुम्हें बताता हूँ शिव के आसन के नीचे विद्यमान पार्वती तुम उससे माँगना।" विष्णु के कथन के अनुसार रावण अत्यन्त आवेशपूर्वक तुरन्त शिव के पास गया। उस समय तत्परतापूर्वक कुशलता से श्रीविष्णु ने मन्दोदरी की निर्मिति की। रमा ने केशर का उबटन उनके उदर पर लगाया था। एक सुन्दर स्त्री का निर्माण करने के लिए उनके पास कुछ भी नहीं था अतः उदर पर लगे केशर एवं चन्दन के उबटन को निकालकर उस मैल से सुन्दर स्त्री निर्मित की। वही मन्दोदरी कहलाई। श्रीविष्णु के उदर पर के उबटन एवं चन्दन की सुगन्धि से निर्मित विष्णु के मध्यांग से जन्मी स्त्री होने के कारण उसका नाम मन्दोदरी पड़ा उसकी कटि अत्यन्त क्षीण थी, उसमें विषय तृष्णा न होने के कारण भी वह मन्दोदरी कहलाई। श्रीविष्णु द्वारा जन्मने के कारण उसमें संकल्प-विकल्प नहीं था। शोभायमान् सौन्दर्य से युक्त नाक, आँखें, कान, मुख, अत्यन्त सुन्दर, गुण-गम्भीर वह स्त्री लक्ष्मी के सदृश सुन्दर बनायी गई। श्रीविष्णु ने अत्यन्त कौशलपूर्वक ऐसी स्त्री का निर्माण कर श्रीशिव के आसन के नीचे उसकी स्थापना की।

रावण, शिवजी के पास आकर बोला- "तुमने पार्वती को छिपाकर यह अवदशा (बला) मुझे सौंप दी। तुम्हारी वरदान देने की भावना धन्य है।" शिव ने अपने मन में विचार किया- 'इसने पार्वती की अभिलाषा की और इसे अवदशा की प्राप्ति हुई निश्चित रूप से स्वयं जगदम्बा ने ही इसे भ्रमित किया होगा। श्रीविष्णु ने उसकी सहायता की होगी, जिसके कारण रावण की क्षति पहुँची है। अब इस पर कोई उपाय नहीं चल सकता। अतः मैं क्या कर सकता हूँ– रावण मेरा गण है लेकिन उसने पार्वती अर्थात् गुरु पत्नी की अभिलाषा की अतः इसकी मृत्यु समीप आ गई क्योंकि जो उमा है, वही सीता है अतः उसकी अभिलाषा करना साक्षात् मृत्यु का कारण है। श्रीविष्णु इसीलिए उसके वध को उद्यत हुए हैं।" रावण अत्यन्त आवेशपूर्वक शिव से बोला– "हे महेश, इस वृद्धावस्था में तुम्हारे मन में इतना लोभ कहाँ से आ गया ? मुझे दुर्भाग्य दे दिया। इस पर भगवान् शिव ने तथास्तु कहते हुए निश्चय किया कि 'यह जीव अनेक प्रकार की दुर्दशा ही भोगेगा। रावण अत्यन्त विषयान्ध हो गया है तथा वरदान के कारण इसे घमण्ड भी हो गया है।' रावण ने शिव से पुनः कहा– "तुमने उमा को आसन के नीचे छिपा दिया है मुझे वह सोज्ज्वल उमा वहाँ दिखाई दे रही है। अब हे शंकर, मुझे कितना भ्रमित करोगे ? आसन के पास सुन्दर स्त्री देखकर रावण को आश्चर्य हुआ। तत्पश्चात् जगन्माता उमा के स्थान पर रावण को मन्दोदरी दी गई। रावण उसे ही पार्वती समझकर सन्तुष्ट होकर चलते समय क्रोधपूर्वक शिव से

बोला– "अरे, वृद्धावस्था में तुमने स्त्री लोभ किया। मेरी प्रिया, जगन्माता ही तुम्हें अब तारेगी परन्तु तुम उसकी अभिलाषा मत करना।"

आत्मलिंग की कथा– रावण ने मंदोदरी को कंधे पर बिठाया और हाथों में आत्मलिंग लेकर शीघ्र वहाँ से प्रस्थान किया। श्रीविष्णु ने उसे पूरी तरह से छलने का निश्चय किया था रावण अत्यन्त हर्षित होकर लंका की ओर जा रहा था। मार्ग में उसे लघुशंका का अनुभव हुआ। उससे एक पग भी आगे नहीं बढ़ा जा रहा था। अब यह अड़चन किस प्रकार दूर की जाय ? आत्मलिंग को नीचे नहीं रखा जा सकता था अब वह किसके हाथ में दे ? लघु शंका कैसे की जाय ? रावण दुविधा में पड़ गया। उसे कष्ट होने लगा। भगवान् श्रीशिव की पत्नी की उसने अभिलाषा की रावण चराचर में अशुद्ध हो गया उसे शुद्धता का ज्ञान ही नहीं था। मिट्टी का जल के समान उपयोग कर वह शुद्ध होना चाहता था शौच के लिए इसका उपयोग किया जा सकता था। परन्तु हृदय की शुद्धता कैसे सम्भव है।

अपने हाथों में स्थित आत्मलिंग किसके हाथों में दे, यह देखने के लिए रावण ने चारों ओर देखा और उसे ब्राह्मणों की गायों की रखवाली करने वाला गणेश दिखाई दिया। दर्भ के पवित्रक, जनेऊ तथा तिलकधारी गणेश को देखकर रावण ने उससे आत्मलिंग पकड़ने की विनती की– "जब तक मैं लघुशंका करके आता हूँ, तब तक यह लिंग हाथों में पकड़ ले।" इस पर गणेश बोले– "गायें इधर-उधर चली जाएँगी, उनका दूध बछड़े पी लेंगे, फिर द्विज मुझे डाटेंगे। तुम्हारा लिंग मैं नहीं लूँगा।" गणेश के ये बचन सुनकर रावण ने उनके चरण पकड़ लिए। गणेश ने कहा– "मेरी एक शर्त है। तुम अगर शीघ्र नहीं आये तो मैं लिंग भूमि पर रख दूँगा यह मैं त्रिवार कह रहा हूँ।" यह शर्त मानकर रावण लघुशंका के लिए चला गया। रावण को लघुशंका ने इतना व्यस्त कर दिया कि उसका आवेग थम ही नहीं रहा था। मूत्र प्रवाह समाप्त ही नहीं हो रहा था। गणेश ने आवाजें दीं परन्तु रावण नहीं आ सका गणेश भूमि पर लिंग रखकर गायों को लेकर चले गये। इस प्रकार रावण को लघुशंका में उलझाकर उसे निष्क्रिय कर दिया गया। मूत्र विसर्जन के पश्चात् शुद्ध होकर वह शीघ्र वहाँ लौटा तो उसे आत्मलिंग भूमि पर रखा हुआ दिखाई दिया। वह उसे श्रद्धापूर्वक उठाने लगा। उसने एक हाथ से फिर दोनों हाथों से उसे उठाने का प्रयत्न किया। अपनी समस्त शक्ति लगाते हुए बीसों हाथों से उसे उठाने का प्रयत्न किया, परन्तु उसे उठाना सम्भव न हो सका, इतना प्रयास करने के पश्चात् भी रावण उस महाबलवान् लिंग को किंचित मात्र भी भूमि से ऊपर उठा न सका। रावण ने एक बार कैलास पर्वत को अपने हाथों से जोरों से हिलाया था परन्तु उस शक्तिशाली लिंग को वह तिलमात्र भी उठा न सका। गणेश लिंग को ज़मीन पर रख कर चला गया इसीलिए क्रुद्ध होकर उसने गणेश पर वार किया। गणेश वहीं खड़े थे

रावण का शोक; क्षेत्रों की उत्पत्ति– आत्मलिंग किसी भी उपाय से हाथ में न आते हुए देखकर रावण फूट-फूट कर रोने लगा। "अब माता कैकसी को क्या बताऊँ ? यह कहूँ कि लघुशंका में विलम्ब होने से आत्मलिंग हाथों से निकल गया। मैं उसे प्रयत्न करने पर भी हाथों से उठा नहीं पाया। यह सब सुनकर माता कैकसी क्रुद्ध होगी। न ही देव प्राप्त होंगे न पितृ। इस प्रकार विष्णु द्वारा छला गया रावण व्याकुल हो उठा लिंग बंधन में दो मुद्राएँ थीं। शिव ने उसे शिव सूत्र में बाँधा था। रावण के द्वारा इधर से उधर करने पर पांच मुद्रा वाला शिवलिंग तैयार हो गया। उसके ऊपर का वस्त्र मोड़कर हटाते ही मुण्डेश्वर का निर्माण हुआ। पवित्र मुद्रिका डालते ही गुप्तेश्वर का निर्माण हुआ, शिवसूत्र के क्रोधपूर्वक डालते ही गण्केश्वर निर्मित हुआ। इसे ही सर्व सामान्य लोग घनेश्वर कहते हैं। लोक व्यवहार

में ऐसी ही मान्यता प्रचलित है। शिवमेज डालते ही वहाँ पर शेजेश्वर निर्मित हुआ। इस प्रकार पचमुखी श्रीशंकर का निवास हो गया। गोकर्ण अनादि क्षेत्र होने के कारण तथा वहाँ पर महाबली ईश्वर होने के कारण लोक व्यवहार में गोकर्ण महाबलेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुआ। समुद्र के किनारे गौतम पर्वत है, वहीं गोकर्ण महाबलेश्वर स्थित है। वाई के निकट स्थित महाबल भिन्न है। उसके सम्बन्ध में विचार अलग है वह विचार ब्रह्मयाग से सम्बन्धित है। ब्रह्मा ने बड़ा यज्ञ किया तब उस स्थान पर महाबल प्रकट हुआ दोनों महाबलों का अलग अलग स्थान है, यह सभी जानते हैं। ऐसी इस तीर्थ की कथा है। ऐसे असंख्य तीर्थ हैं। इन अगणित तीर्थों की मूल कथा ब्रह्मोत्तर खंड में वर्णित है। विष्णु संभूता मन्दोदरी हनुमान को सीता के समान क्यों प्रतीत हुई, इसकी कथा भी उस खंड में है। स्वयं भगवान् विष्णु ने मन्दोदरी जैसी सुन्दर स्त्री निर्मित की, उसमें स्वाभाविक रूप से सीता से समानता विद्यमान थी, श्रीविष्णु ने जब उसकी ओर देखा तो वह लक्ष्मी के सदृश हो गई। विष्णु निर्मित मन्दोदरी इसीलिए हनुमान को सीता सदृश दिखाई दीं। दोनों ही अयोनिजा व दोनों ही पतिव्रता थीं इसलिए हनुमान ने उसे सीता मान लिया। रावण के एकांत में मन्दोदरी की कथा सुनकर हनुमान को ज्ञात हुआ कि सीता अशोक-वन में मिलेगी, वे सीता से मिलने के लिए अशोक-वन की ओर चल पड़े।

अध्याय ७

[सीता की मनोदशा एवं रावण का अशोक-वन में आगमन]

हनुमान दासी के पीछे पीछे अशोक वन की तरफ जा रहे थे। अशोक-वन पहुँचकर वह सीता की वंदना करने के लिए उत्सुक थे। अशोक-वन दिखाई देते ही उन्होंने दंडवत् प्रणाम किया। श्रीराम का स्मरण कर वे सीता के दर्शन के लिए चल पड़े। सीता रूपी चिद्रत्न को देखने के पूर्व उन्होंने कुछ समय तक ध्यान किया। अशोक-वन आते ही हनुमान में स्फूर्ति का संचार हुआ श्रीराम के बाण सदृश वेग से उड़कर उन्होंने अशोक-वन में प्रवेश किया।

हनुमान को अशोक-वन के दर्शन, उनकी विविध चेष्टाएँ– अशोक वन में फलों से लदे हुए सीधे वृक्ष देखकर हनुमान प्रसन्न हुए। उनके मुँह में पानी भर आया। वहाँ घने वृक्षों को देखकर वे उल्लसित हो उठे और वृक्षों पर कूदते हुए अपनी पूँछ नचाने लगे। श्रीराम की पत्नी मिल जाने से चिंता दूर होने के कारण वे दाँत दिखाते हुए विविध चेष्टाएँ करने लगे, चिढ़ाने लगे। नारियल के गुच्छों की आवाज़ सुनकर हनुमान का ध्यान उस ओर गया। तभी उन्हें पका हुआ खजूर दिखाई दिया उसे खाने के लिए हनुमान वेगपूर्वक उड़ान भरते हुए गये। पके हुए आमों की ओर देखकर उन्होंने आँखें मटकायी। अंगूरों के लटकते हुए गुच्छे वे देखते ही रह गये। महाळुंग* व नारंगी देखते ही वे आनन्दपूर्वक नाचने लगे तथा कहने लगे– "मेरे दाँत भाग्यवान् हैं, जिन्हें ये फल खाने को मिलेंगे।" पके हुए कटहलों को देखकर उसके काँटों को नाखूनों से खरोंचा। पके हुए केलों को उंगलियों से दबाया। ये खट्टे नींबू मैं नहीं लूँगा" ऐसा वे कहने लगे। काले काले जामुन देखकर वे दाँत दिखाने लगे और मानों कार्तिक व्रत

* एक प्रकार का नींबू सदृश का फल।

होने की भाँति आँवला खाना टाल गए। गूलर, भिलावे, बेर, फरेंदे, करौंदे इत्यादि पके हुये फलों को उन्होंने चटखारे लेते हुए देखा। आडू, महुउ, शहद के छने देखकर उनके मुँह में पानी भर आया। खरबूजों के ढेर पके हुए लसोढ़े देखते ही पूँछ आगे कर आनन्द मे नाचने लगे। शक्कर की राशि दिखाई देते ही प्रसन्न होकर खुजलाते हुए बोले– "गुड़ कौन खायेगा, मैं तो मिश्री ही खाऊँगा। गन्ने को देखकर हर्ष से नाचने लगे। मिट्टी के बरतन में रस भरा हुआ देखकर उन्होंने अपनी पूँछ उसमे भिगोई। अपने मन ही मन बोलते हुए वे कहने लगे– "जनककन्या सीता के मिलने पर इस वन में धमा चौकड़ी मचाऊँगा। पहले सीता से भेंट कर फिर सभी फलों का स्वाद लूँगा। तब तक तुम शांत रहो।" अपने मन से यह बोलते हुए मारुति ने वहाँ स्थित प्रासाद पर उड़ान भरी। अशोक-वन में रावण के शृंगार करने हेतु जो भवन था, उसकी छत पर हनुमान चढ़ कर बैठ गए।

हनुमान को दिखने वाली अशोक-वन की शोभा– हनुमान ऊँची छत से अशोक-वन देखने लगे। वसंत ऋतु के समान नित्य शोभायमान वन उसे फलफूलों से सम्पन्न दिखाई दिया। वहाँ के सभी वृक्षों को फलाफूला देखकर वे प्रसन्न हो उठे। शाल, तमाल, तरुवर, असंख्य पुष्प, विश्राम प्रदान करने वाले विशाल अशोक, कैथा, बेल, आम्र, चंपा, नीम, आँवला, शालवृक्ष इत्यादि अनेक वृक्ष वन की शोभा बढ़ा रहे थे। नागचम्पा, मंदार, कल्पतरु, पारिजातक, कटहल, पाटल, नंदानक इत्यादि हरे भरे वृक्ष शोभायमान दिखाई दे रहे थे। रावण शंकर भगवान् की प्रार्थना कर कैलास पर्वत से रजत वृक्ष लाया था, उसके पुष्पों की सुगंधि फैली हुई थी। रजत वृक्ष के समान ही कुबेर से युद्ध कर उसकी नगरी से नाना प्रकार के वृक्ष लाकर रावण ने अशोक-वन में लगाये थे। उनकी सुगंधि सर्वत्र फैली हुई थी यज्ञ के लिए सुगंधित सुवर्ण कमलिनी रावण छीन कर लाया था, उसकी सुगंध से अशोक वन महक रहा था। स्वर्ण एवं रजत वृक्षों के समूह में सफेद पीले सुगंधित पुष्प एवं अलग-अलग प्रकार के स्वाद वाले स्वादिष्ट फल विद्यमान थे, उनमें रत्न रूपी बीज भरे हुए थे। उन बीजों से नये वृक्षों की उपज नहीं होती थी। उनमें एक बार ही फल आते थे। फिर वह सौन्दर्य में वृद्धि का कार्य करते थे। इस प्रकार के अनेक जातियों के असंख्य वृक्ष उस अशोक वन में थे। हनुमान उन शोभायमान वृक्षों पर कूद रहे थे उस वन की शोभा देखने पर मन उसी में मग्न हो जाता था। दृष्टि अन्यत्र जाने पर भी चारों तरफ फैली हुई सुगंध का अनुभव होता रहता था।

अशोक वन की उन वृक्ष मालाओं में हनुमान स्वेच्छा से क्रीड़ाएँ कर रहे थे। उस समय वहाँ उपस्थित रक्षक राक्षसों के बल को तृणवत् मानकर हनुमान उनकी उपेक्षा कर रहे थे। अशोक-वन में रावण ने एक मन्दिर का निर्माण किया था। उसमें सहस्र सबल खम्भे थे, जिन पर रत्न एवं मूँगे जड़े हुए थे। पन्ने, माणिक तथा स्थान स्थान पर हीरे मोतियों की पंक्तियाँ थीं, ऐसा उस मन्दिर का जड़ाऊ कलश था जो आकाश में चमक रहा था। उस कलश पर पताकाएँ थीं। मन्दिर के दोनों तरफ सोने की किनारी थी उन पर भी रत्न लगे हुए थे। स्थान-स्थान पर जलाशय विद्यमान थे, जिनमें भूमि प्रतिबिम्बित हो रही थी। वह अत्यन्त शोभायमान दिखाई दे रहा था तथा नन्दन वन एवं चैत्रवन से भी सुन्दर था। आनन्दवन एवं कैलास भुवन जैसा दिखाई दे रहा था। अशोक-वन एवं प्रासाद के द्वार पर शस्त्रों से सुसज्जित एवं सतर्क राक्षस काम कर रहे थे। वायु भी अन्दर आ नहीं सकती थी। यहाँ सुरासुरों की तो सम्भावना ही नहीं थी। उँगली दिखाते ही हाथ तोड़ने एवं आँखें दिखाते ही आँखें फोड़ने वाले भयंकर राक्षसों के भिन्न समुदाय अत्यन्त सतर्कता से प्रासाद की रक्षा कर रहे थे। लंका में प्रवेश के लिए पहले

सागर, फिर किले का अवरोध था। तत्पश्चात् रावण का महल, जिसमें प्रवेश तो अत्यन्त कठिन था। उसमें निहित स्त्रियों का भवन प्रवेश के लिए अत्यन्त दुर्गम था। उसके अन्दर अशोक वन में सुरासुरों का प्रवेश भी असम्भव था। ऐसे दुर्गम स्थान में प्रवेश करना निपुण और समर्थ हनुमान के लिए ही सहज रूप से सम्भव हो सका। वह निःशंक रूप से स्वर्ण एवं रजत वृक्षों में क्रीड़ा करते रहे अब हनुमान को सीता दर्शन की धुन सवार होने के कारण वह उस पर ध्यान केन्द्रित करते हुए आगे बढ़े

सीता-वर्णन, उसकी मनोदशा, नाम महिमा– सीता इस समय ऊपर से यद्यपि मलिन दिखाई दे रही थीं परन्तु उनका अन्तःकरण राम का ध्यान करने के कारण निर्मल ही था, बाहर से अत्यन्त चिंताग्रस्त एवं व्याकुल दिखाई देते हुए भी अन्तर्मन से वह चिन्मय स्वरूप राम के कारण अविचलित थीं। यद्यपि वे उपवास से व्याप्त थीं फिर भी अन्दर से परमानन्द से तृप्त थीं। बाह्य रूप से बन्दी होते हुए भी अन्दर से निर्मुक्त देह में थीं। बाहर से देखने पर दुर्बल काष्ठवत् दिखने वाली, अन्तर्मन में राम नाम से हृष्ट पुष्ट थीं। बाह्य रूप में राक्षसों को दुष्ट मानते हुए भी अन्तःकरण से उसकी आत्मा उसको दुष्ट नहीं मानती थी। बाहर से वे राम से विलग दिखाई देते हुए भी हृदय से वे नित्य श्रीराम से जुड़ी हुई थीं, बाह्य रूप में दुःख से पीड़ित दिखाई देते हुए भी अन्तर्मन में स्वानंद का अनुभव कर रही थीं। बाहर से हीन दीन एवं खिन्न दिखते हुए भी अन्दर से सुप्रसन्न और चैतन्य चिन्मात्र ज्योति स्वरूप थीं विलग हुई ही नहीं थीं। उनका मुरझाया स्वरूप मात्र बाह्य था, अन्दर से वे खिली हुई थीं। मलिन वस्त्रों में दिखाई देने वाली सीता अन्तर्मन में चिदम्बर से शोभायमान थीं उनके शरीर पर अलंकार नहीं थे फिर भी मन में श्रीराम रूपी सजशृंगार विद्यमान था। श्रीराम से विलग दिखाई देते हुए भी वे अन्तर्बाह्य राममय थीं। ऐसी सीता दिखाई देते ही हनुमान ने प्रसन्न होकर ताली बजायी

हनुमान को ऐसा लगा जैसे सीता लगातार रामचन्द्र के अनुभव में मग्न थीं क्योंकि श्रीराम ने उन्हें नाममुद्रा दी थी तथा सीता के विषय में जो भी चिह्न बताये थे सीता में पूरी तरह से हनुमान को दिखाई दिए, सीता की पूर्णता का मारुति ने अपने हृदय से अनुभव किया परन्तु उन्हें बाह्य रूप में सीता भिन्न अवस्था में दिखाई दीं। जिस प्रकार किसी धनकोष के पास चुड़ैलें बैठी हों वैसी ही वहाँ सीता के चारों ओर राक्षसियाँ बैठी थीं। उन राक्षसियों को देखकर हनुमान को लगा कि उन्हें खा लूँ अथवा निगल जाऊँ अथवा उनका रक्त पी लूँ। हनुमान ने चारों तरफ देखा तो उन्हें ऐसा लगा जैसे कोई हथिनी अपने नेता को छोड़कर संकट में पड़ जाय वैसी उस अशोक-वन में दीन-वदन सीता संकट ग्रस्त दिखाई दीं। अभ्यंग स्नान न होने के कारण उनका सर्वांग मलिन हो गया था उनके वस्त्र जीर्ण हो गए थे। बदलने के लिए दूसरे वस्त्र उनके पास न थे। किसी प्रकार वक्षस्थल ढँककर दोनों घुटने पेट के पास सिकोड़कर वह रामपत्नी मन में रात-दिन राम-नाम का चिन्तन करती हुई बैठी थी राम की भेंट की आस करके किसी प्रकार उसने अपने प्राण कंठ में रोक रखे थे। सीता ऐसी अवस्था में हनुमान को दिखाई दीं। असंख्य विकराल एवं दुष्ट राक्षसियाँ सीता को चारों ओर से घेरे थीं परन्तु सीता उनसे भयभीत नहीं थीं। उनके अन्तर्मन में श्रीराम का निवास होने से वह निर्भय थीं। श्रीराम-नाम का जहाँ स्मरण नहीं होता वहीं पर मन में भयरूपी लट्टू घूमता रहता है अगर श्रीराम का अन्तःकरण से स्मरण किया जाय तो भव भय का कोई महत्त्व नहीं होता। सीता को राक्षसी, वृक्ष, बेल, तृण, पाषाण सभी में श्रीराम ही दिखाई दे रहे थे। सुख सुख के आवर्त से ही प्राप्त होता है। इस निष्ठा से सीता आचरण कर रही थीं यह देखकर हनुमान प्रसन्न हुए। हृदय में श्रीराम के प्रति प्रेम होना, सर्व प्राणिमात्र में राम के

दर्शन करना, भयग्रस्त परिस्थिति में निर्भय रहना इस प्रकार सीता स्वयं आचरण कर रही थीं। सर्वत्र श्रीराम के ही दर्शन करने पर भय समाप्त हो जाता है। भय ब्रह्ममूर्ति होकर श्रीराम के कारण सुख का अनुभव होता है। यह अनुभव होने के लिए श्रीराम का नाम मुख्य साधन है। राम के नाम से जन्म-मरण के कष्ट का अन्त होता है। राम का नाम ही पूर्ण परब्रह्म है। नाम के माध्यम से ही विरक्ति, शांति, श्रेष्ठ भक्ति, चारों मुक्तियां एवं परब्रह्म की प्राप्ति सम्भव है। नाम स्मरण के लिए स्नान, विधि विधान इत्यादि बन्धन अनावश्यक हैं क्योंकि नाम अत्यन्त पवित्र है और यही परिपूर्ण परब्रह्म है। नाम स्मरण से दोष भी गुण हो जाते हैं। पापी प्राणी पवित्र हो जाते हैं। नाम स्मरण से यम भी वश में आ जाता है। नाम को कर्मों का बंधन नहीं होता। अच्युत के नाम से कर्म भी पवित्र हो जाता है। ये स्मृति वचन श्रवणीय हैं। नामस्मरण में अनाध्याय सम्भव नहीं है। नाम का स्वाध्याय नित्य अवश्यम्भावी है। नाम स्वयं ही परब्रह्म है। नाम का निर्वाह सद्भाग्य से ही होता है। नाम में चैतन्य का गढ़ तथा परब्रह्म का निवास है। ब्रह्म नाम के आगे स्वानन्द से नृत्य करता है। राम का नाम स्त्रियों के लिए भूषणों का भूषण एवं सौभाग्य का सौभाग्य होता है। नाम से स्त्री एवं शूद्र पवित्र होते हैं। स्त्रियों के गले में कृष्ण मणि, वैसे ही पुरुषों के गले में नाम-स्मरण मणि। वह टूटने पर वैधव्य में कालक्रमण करना पड़ता है सीता के लिए श्रीराम ही स्वधर्म, नित्यकर्म, पति तथा परब्रह्म थे। श्रीराम का स्मरण करते हुए सीता देह सहित ही विदेही हो जाती थीं। उन्हें रावण का भय नहीं लगता था यह हनुमान समझ गए थे। श्रीराम-नाम से ओत-प्रोत सीता पत्नी के रूप में भूषणों में भी शिरोभूषण होने की योग्यता को प्राप्त कर चुकी थीं। नाम के कारण वह निर्द्वन्द्व होकर अशोक-वन में निःशंक रूप से निवास कर रही थीं।

हनुमान के विचार– सीता को देखने के पश्चात् उनसे मिलने के लिए हनुमान आतुर हो उठे परन्तु सीता के आस-पास बैठी राक्षसियों की चीखों से वे सशंकित हो गए। "जिस प्रकार नारायण की रमा उसी प्रकार राम की सीता थी। उससे मिलने में ये अधम राक्षसियाँ बाधा डालेंगी। उनके सामने सीता से मिलने पर ये राक्षसियाँ निश्चित रूप से मुझसे युद्ध करेंगी। अगर मैं उनको मार डालता हूँ तो निश्चित ही रावण सीता का वध कर देगा। सीता का वध होने से मेरे कष्ट व्यर्थ हो जाएँगे। ऐसा होने पर मेरे द्वारा रावण का वध किये जाने पर भी राम को सुख प्राप्ति नहीं होगी। अतः मुझे इन राक्षसियों के निद्रामग्न होने तक गुप्त रूप से पेड़ पर ही रहना चाहिए। फिर एकान्त में जब सम्भव होगा तब सीता से भेंट करूँगा।" ऐसा मन में विचार कर हनुमान पेड़ पर ही रुक गए। जिस प्रकार चपल वायु आकाश में विलीन हो जाती है, उसी प्रकार हनुमान वृक्षों के झुंड में छिप गए। जिस प्रकार सूर्य बादलों में गुप्त रूप में रहता है, उसी प्रकार हनुमान वृक्षों में सावधान होकर छिप गए। आत्मा हृदय में रहते हुए भी जैसे किसी को दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार पेड़ों में हनुमान छिप गए। जिस प्रकार वेदों में अर्थ छिपा होने पर भी कोई उसे व्यक्त स्वरूप में देख नहीं सकता, वैसे ही हनुमान पेड़ों में रहते हुए भी किसी को दिखाई नहीं दिये। वह जब वृक्षों में बैठे थे तब सूर्योदय हुआ सूर्योदय होते ही ग्वाले दूध दुहते हैं। गोपियाँ दही बिलोती हैं। गंधर्व ललित गायन प्रारम्भ करते हैं। राजद्वार पर मंगलवाद्य बजने लगते हैं देवालयों में जयघोष होने लगता है। अग्निहोत्री होम प्रारम्भ करते हैं। घी की सुगंध समस्त वातावरण में व्याप्त हो जाती है उन्मत्त हाथियों का मदगंध अनुभव किया जा सकता है। शुद्ध सुमनों की सुगंध फैल जाती है। देवालयों में उत्तम गंधयुक्त धूप-दीप जल उठते हैं। इस प्रकार विभिन्न क्रिया कलापों का प्रारम्भ होता है। उषा काल होने पर ऐसा प्रतीत होता है मानों कोई प्रिया काले परिधान पहने थी और पति ने

उस वस्त्र के स्थान पर उसे उत्तम वस्त्र प्रदान किये हैं उसी प्रकार रात्रि ने अंधकार की कालिमा रूपी वस्त्र त्यागकर सूर्य द्वारा दी गई पीत प्रभा का परिधान किया है। सूर्योदय के साथ ही तीनों लोकों में कार्य व्यवहार का प्रारम्भ हो जाता है। निशाचरों के लोप होते ही मनुष्य एवं अन्य प्राणी सुखी हो जाते हैं. हनुमान के मन में सीता से मिलने की उत्सुकता थी। उन्हें ऐसा लग रहा था कि सीता एकांत में शीघ्र उनसे मिले। इसीलिए शीघ्र ही रात्रि के आगमन की कामना करते हुए वे पेड़ पर बैठे थे।

हनुमान मन में विचार कर रहे थे। श्रीराम का कार्य साधने हेतु हनुमान की सीता से भेंट कराने के लिए सूर्य अस्त हो गया। जिस प्रकार श्याम सलोनी बालिका मोतियों की जाली युक्त माला पहन ले, उसी प्रकार आकाश में नक्षत्रों की पंक्तियाँ शोभायमान हो उठीं। रात्रि हनुमान को सखी सदृश प्रतीत हुई क्योंकि राम पत्नी से मिलने के लिए उसका भी आगमन हुआ था। उस सम्बन्ध में मानो मारुति से उसका वार्तालाप हुआ था और एकांत में सीता से मिलने का निश्चय हुआ था सीता को स्वामिनी मानकर रात्रि रूपी सखी उससे मिलने के लिए आयी थी अथवा रात्रि-रूपी जननी संवादरूपी पय पिलाकर सन्तुष्टि प्रदान करने के लिए आयी थी। संवाद रूपी पय पिलाने से हृष्टपुष्ट होकर वे रावणपुत्र अक्षय, इन्द्रजित् एवं असंख्य राक्षसों को सन्त्रस्त कर देंगे। रात्रि न होकर साक्षात् महाकाली हनुमान के पास आयी थी। वह उसे जानकी से मिलवाकर लंका की होली जलवा देगी। वह रात्रि सप्त शती के समान थी, जिसने निशुंभ का नाश कर दिया था। वही हनुमान के पास आकर राक्षसों का संहार कर देगी। रात्रि नहीं यह चामुंडा थी, जो कालिमा रूपी बलदंड हाथों में लेकर रावण का सिर काटने के लिए बाहुबली हनुमान से मिलने के लिए आयी थी। वह रात्रि काल रात्रि थी, जिसने हनुमान के शरीर में प्रवेश कर, लंका में जाकर राक्षसों को समूल नष्ट करने का निश्चय किया था। रावण को रात्रि होते ही विरह ज्वर होकर सीता के सम्बन्ध में उत्पन्न काम-भावना से वह पीड़ित हो उठा। हनुमान रात्रि के आगमन के साथ ही उल्लसित हो उठे।

रावण की मनःस्थिति, अशोक-वन में आगमन– रावण वस्त्र एवं आभूषणों से सुसज्जित होकर और दिव्य चन्दन का लेप कर सीता की कामना से पुष्प शय्या पर छटपटा रहा था पुष्प शय्या उसे अंगारों के समान लग रही थी। फूलों की मालाएँ अग्नि का निर्माण कर रही थीं। चन्दन से उसका शरीर तप्त हो रहा था उसकी भांग, मधुर वीणा वादन, अन्य स्त्रियों की संगत, मधुर रसपान, कुछ भी नहीं भा रहा था। उसकी दृष्टि के सामने स्वयंवर के प्रसंग की सीता दिखाई दे रही थी। सिन्दूर से माँग भरी हुई चंपा के समान सुन्दर, सुकुमार सीता उसे स्मरण हो रही थी। कमल के सदृश नयन व मुख, सुडौल शरीर यष्टि, गुणवान, भरे हुए वक्षस्थल से युक्त सीता का स्मरण होते ही रावण मूर्च्छित हो उठा। उसे अन्य स्त्रियों का सहवास, गायन कुछ भी नहीं भा रहा था। मानो सीता रूपी भूत ने उस पर नियंत्रण कर लिया था. वही सीता नामक भूत महा भूत बनकर रावण का प्राण हरने वाला था। उस पर सब मन्त्र तन्त्र निष्फल होने वाले थे। रावण अपने मन पर नियन्त्रण न कर सका। सीता की कामना से वह धैर्य नहीं धर पा रहा था। वह काम भावना से विह्वल हो उठा। सीता के प्रति कामातुर होकर उसने अन्य स्त्रियों का सहवास एवं शय्या त्याग दी। वह अकारण ही सेवकों पर क्रुद्ध हो उठा। ब्राह्मण वेद-पाठ कर रहे थे। नित्य शांतिपाठ हो रहा था। राजभृत्यों ने उन्हें वह सब बन्द करने की आज्ञा दी तथा स्वामी रावण के लिए सबको मौन धारण के लिए कहा। सेवक बोले "अरे बृहस्पति, व्यर्थ में क्यों सम्भाषण करते हो ? उस इन्द्रसभा में करते हो वैसी वाचालता यहाँ न करो। हे नारद तुम्हारा वीणा वादन, तुम्बरु तुम्हारा

गायन बस करो। रावण महाराज का शरीर स्वस्थ नहीं है। अतः सभी नर्तकियों को दूर हटाओ, भाट कीर्ति गायन बन्द कर शांत रहें। दूतों ने ब्रह्मदेव को नमस्कार कर बताया "स्वामी रावण व्यथित हैं अतः यह अध्ययन का समय नहीं है।" इस पर ब्रह्मदेव ने पूछा- "लंकानाथ की क्या व्यथा है ?" सेवक बोले- "कारण गोपनीय है, जिसे लोगों में प्रकट नहीं होना चाहिए। फिर भी आपको बताता हूँ।"

सेवक बोला- "सीता की सिन्दूर भरी माँग मानों धारदार भाला बनकर रावण के हृदय में चुभ गई है, जिससे रावण अस्वस्थ है। जानकी के विषय में काम-वासना से रावण भ्रमित हो गया है। उसे अपना हित समझ नहीं आ रहा है। कोई उसे हित की बात बताता है तो रावण उसका वध कर देता है। उसे सीता के विचारों ने भ्रमित कर दिया है। यद्यपि रावण ब्रह्म वंशज है फिर भी आप उसे जानकी के सम्बन्ध में अपने विचार न बतायें। वह सीता के सम्बन्ध में अपनी भावना के कारण अनर्थ करने हेतु यहाँ दौड़ा आयेगा।" एकांत में ऐसी गुप्त बातें जब सेवक बता रहे थे, तब रावण उधर कामुकता से ग्रस्त होकर सीता को देखने के लिए निकला। उसका ध्यान अशोक-वन की ओर था। "मैंने चार महीने अकारण ही सीता को अशोक-वन में रखा। अब मैं बलपूर्वक उसका उपभोग करूँगा।" ऐसा कहकर वह कामोत्सुक हो चल पड़ा। कामोन्मत्त होकर अशोक-वन की ओर जाते हुए रावण के साथ सैकड़ों स्त्रियाँ, स्वर्ण-दीप लेकर सुगंधित तेल का छिड़काव करते हुए जा रही थीं। कुछ स्त्रियों के हाथ में स्वर्णदण्ड पर माणिक जड़े हुए तथा चन्द्राकृति छत्र थे। अनेक स्त्रियाँ पंखा डुलाते हुए चल रही थीं। कुछ रावण को (बीड़ा) पान दे रही थीं। रावण ने नीले रंग का परिधान पहना था। कमर पर कमरपट्टा कसा था। गले में छोटी-छोटी घंटियों से युक्त चमकती हुई विचित्र मालाएँ थीं। उसने ब्रह्म सूत्र पहना था। मुकुट, कुंडल, अलंकार, मणि, मोतियों की मालाएँ, नीलमणियों के हार, भुजबन्ध, नूपुर इत्यादि से वह सजा हुआ था, सुगंधित चन्दन उसने माथे पर लगाया था। उसके दसों कंठों में पदक सुशोभित थे। मुट्ठी में खड्ग धारण किया था। इस प्रकार वेशभूषा कर वह सीता से मिलने के लिए चला जा रहा था। अशोक-वन की ओर जाते समय उसके साथ जो असंख्य स्त्रियाँ थीं, उनके पैरों तले अंगूर की बेल दब रही थी। नागवेल्ली और सोनकेली को भी धक्का लग रहा था वह चलते हुए वन की शोभा देख रहा था परन्तु उनके साथ की स्त्रियों के तीव्र गति से चलने के कारण वृक्ष दब रहे थे। उन दुष्ट स्त्रियों का स्पर्श वृक्षों को नहीं भा रहा था। उन स्त्रियों के स्पर्श के कारण वाटिका समूल सूख रही थी, वृक्षों से फूल एवं फल झड़ रहे थे। उन स्त्रियों के हाथों के दीपों के तेज के कारण अमृतबेल तड़प रही थी पौधे झुलस रहे थे। उन स्त्रियों के कारण चंपा टूट गए, स्वर्ण कमल की क्यारियाँ टूट गईं। रावण के साथ अंत में वे सीता के समीप पहुँचीं।

रावण को सीता के पास आया हुआ देखकर हनुमान मन ही मन क्रुद्ध हुए और वृक्ष उखाड़कर रावण को मारने के लिए आगे बढ़े। उनके मन में विचार आया कि 'रावण ने सीता को हाथ लगाया तो अगर मैं राम और सुग्रीव को बताने गया तो मेरा पुरुषार्थ मुझसे लज्जित होगा। वानरों से कहने जाने का तात्पर्य अपनी नपुंसकता बताने के समान होगा। उसकी अपेक्षा श्रीराम से बिना पूछे ही मैं रावण को मार डालूँगा। मेरे जैसे रामभक्त के द्वारा उस राक्षस राज का छल रुक जाएगा। उसके दस सिर एवं बीस भुजाओं पर वार कर मैं उसकी पूजा करूँगा।' परन्तु तुरन्त उनके मन में विचार आया कि 'इसको पहले ही मारने की अपेक्षा सीता से रावण क्या कहता है, यह सुन लूँ। सीता द्वारा रावण का अनुसरण करना तो असम्भव है। अगर रावण ने बलपूर्वक कुछ करना आरम्भ किया तो उसे मारना चाहिए रावण मान,

पान, राज्य, बल और ज्ञान इन पांच कारणों से उन्मत्त हो गया है. इसके अतिरिक्त सीता के विषय में उत्पन्न काम-भावना से भ्रमित हो कर भी यह उन्मत्त है' हनुमान ने यह विचार किया अशोक-वन में रावण और हनुमान दोनों ही अपने अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए एकत्र हुए थे

अध्याय ८

[रावण-सीता संवाद]

रावण अशोक-वन में भोग की इच्छा से आया था। वह सीता की ओर देखने लगा। उसे भय से पीड़ित सीता दिखाई दी। जिस प्रकार वायु के आघात से केले के पत्ते काँपने लगते हैं, उसी प्रकार सीता काँप रही थी। रावण को देखते ही सीता ने अपने जीर्ण-वस्त्रों से किसी प्रकार वक्ष पेट तथा हाथ ढँक लिए। उन जीर्ण-वस्त्रों से किसी प्रकार जितना तन ढँका जा सकता था ढँक कर वह लज्जा से सिर झुका कर बैठ गई. स्नान के अभाव में सर्वांग मलिन, शरीर पर पूरे वस्त्रों का अभाव बिछाने को कुछ नहीं, बैठने को आसन नहीं-ऐसी अवस्था में भूमि कन्या सीता को भूमि पर ही सुख सम्पन्न एवं सावधान होकर बैठा हुआ देखकर रावण लज्जित हो गया। किसी जंग लगे संदूक में भी मूल-सम्पत्ति जिस प्रकार सुरक्षित रहती है, उसी प्रकार बाह्य रूप से मलिन हुई सीता के अन्तर्मन में श्रीराम सुरक्षित थे वह बाहर से भयग्रस्त दिखाई देते हुए भी अन्तर्मन में भय रहित निश्चिंत थी। उसकी यह अवस्था न समझने के कारण रावण उसका उपभोग करने हेतु उससे विनती करने लगा

रावण के वचन; सीता की प्रतिक्रिया– रावण सीता से बोला- "प्रिये, तुम मुझसे भयभीत न हो मुझे देखकर अकारण ही तुम अपना शरीर ढँक क्यों रही हो। मैं दशानन तुमसे विनती करता हूँ कि तुम मुझ पर प्रसन्न होकर अपनी समस्त लज्जा त्यागकर मुझसे रममाण हो। श्रीराम की आशा त्याग दो तथा मेरे वचन सत्य मानो कि अगर तुम मेरे आलिंगनपाश में बँध गई तो पूर्ण राज्य का उपभोग करोगी। मेरी अस्सी सहस्र स्त्रियाँ जिनमें मन्दोदरी प्रमुख है, उसे भी मैं तुम्हारी दासी बना दूँगा। तुम सबमें श्रेष्ठ रहोगी इन्द्रादि समस्त देवताओं को तुम्हारा सेवक बनाकर, शंकर की शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं भी तुम्हारा आज्ञाकारी हो जाऊँगा। मैं स्वर्गलोक, पाताललोक व मृत्युलोक से त्रिभुवन की सम्पत्ति लाया हूँ, यह तुम्हें ही अर्पित कर दूँगा यह मेरी शपथ है। तुम शीघ्र अपने दिव्य-वस्त्रों को फाड़ कर, श्रीराम का आकर्षण त्याग कर, स्वेच्छा से मेरा उपभोग करो तुम्हारा मस्तक मलिन हो गया है। अत: जलादि मिलाकर मंगल स्नान करो। तुम्हारे सुडौल स्तनों को शान्त करने के लिए मैं स्वयं चन्दन का लेप लगाऊँगा रत्न जटित अलंकार, रत्नकुंडल, पदक, हार, कंगन, बाजूबंद, रत्नयुक्त अर्द्धचन्द्र इत्यादि मनोहारी आभूषण मैं तुम्हें प्रदान करूँगा। इसके अतिरिक्त किंकिणीज्वाल माला और मेखला दूँगा। तुम कलिकाल का भी भय मत करो। तुम्हारा रूप एवं यौवन देखकर साक्षात् ब्रह्मदेव भी मूर्च्छित हो जाएँगे। मेरा मन अब उतावला हो रहा है अत: हे जानकी, तुम मुझे आलिंगन दो। मैं देवताओं की शरण जाकर उनके समक्ष भी मस्तक नहीं झुकाऊँगा परन्तु तुम्हारे आगे नत मस्तक होता हूँ, तुम्हारे चरणों में विनती करता हूँ। तुम सत्वर मेरा पाणिग्रहण करो। कुंभकर्ण को मैं तुम्हारा सेवक बनाऊँगा। इन्द्रजित् से चँवर डुलवाऊँगा। अक्षय आदि सभी पुत्र तुम्हारे आज्ञाकारी दास होंगे। स्वयं मन्दोदरी नित्य तुम्हारे चरण धोएगी

मैं उन चरणों को सहलाऊँगा। मात्र तुम्हारा स्पर्श सुख मुझे चाहिए। सहज ही तुम्हारे शरीर का स्पर्श हो सके, ऐसे मेरे भाग्य कहाँ अतः मुझसे लज्जा न कर मेरा उपभोग कर मुझे सुखी करो। हम अपने मनोवांछित स्थल में ले जाने वाले विमान में बैठकर दोनों साथ-साथ नन्दनवन में तथा चैत्रवन में जायेंगे। अशोक वन में क्रीड़ा करेंगे। उस श्रीराम का त्याग कर तुम मुझे स्वीकार करो, वह बेचारा राम मेरे समक्ष क्या आ पाएगा।"

रावण आगे बोला– "उस बेचारे राम के लिए क्यों दुःख कर रही हो। उस राम की स्थिति के विषय में मैं तुम्हें बताता हूँ। वह राम वनवासी वल्कल पहनने वाला, अन्न के अभाव में उपवास करने वाला, उसका तुम क्या उपभोग करोगी? उसकी अपेक्षा मेरे साथ तुम्हें त्रिविध भोगों का सुख मिलेगा। उस राम की स्थिति ऐसी है कि पराक्रम और विजय ने उसका परित्याग कर दिया है। ऐश्वर्य ने उसे छोड़ दिया है, वह वन में घूमता हुआ दिखाई देता है। हे सुन्दरी, तुम उससे किस प्रकार के उपभोग प्राप्त कर सकोगी। अतः तुम मुझसे समस्त उपभोगों को प्राप्त करो। राम के पास शौर्य का अभाव है उसका तप अपर्याप्त पड़ने के कारण उसकी पत्नी छीन ली गई। उसमें कर्म बल एवं धैर्यबल की भी कमी है। राम के पास अगर धैर्य बल होता तो एक स्त्री के लिए 'सीते-सीते' कहकर विलाप करते हुए पेड़ों से क्यों लिपटता ? उसके पास मेरे सदृश धैर्य, राज्य, ऐश्वर्य कुछ भी नहीं है; वह यश, सेना एवं ज्ञान में मेरी बराबरी नहीं कर सकता। अपनी स्त्री खोकर अपयशी हुआ राम दीन हीन होकर वन में रोता हुआ घूम रहा है। उस राम की ऐसी स्थिति है, जो तुमसे सुनी भी न जाएगी। मुझसे तुम मुक्त हो भी गई तो वह राम तुम्हें किस दशा में मिल पायेगा। तुम्हारा यौवन व्यर्थ जा रहा है। वह तो तुम्हें पुनः प्राप्त नहीं हो सकता। अतः मेरे साथ शय्या सुख भोगकर ही तुम सुखी हो सकोगी। तुम्हें अगर ऐसा लग रहा है कि पर स्त्री का भोग करने से मुझे पाप लगेगा तो हम राक्षसों के धर्म के विषय में तुम सुनो। राक्षस परस्त्रियों को भगाकर, बलपूर्वक घर लाकर उनका उपभोग करें, दूसरों के राज्य बलपूर्वक छीन कर लायें, देव, दैत्य, दानव, मानव इत्यादि का पराभव कर उनकी स्त्रियों तथा वैभव का स्वयं उपभोग करें, यही राक्षसों का स्वधर्म है। अतः हे सीते, अपना हठ त्यागकर मेरा कहना सुनो। राम की अत्यन्त दुःख से मृत्यु हो गई। लक्ष्मण ने भी प्राण त्याग कर दिया। अतः राम और लक्ष्मण के विषय में शंका त्याग कर मेरा अनुगमन कर सुखी हो जाओ। मैं तुम्हारे चरण छूकर विनती करता हूँ। हे सीते, मैं तुम्हारा बहुत सम्मान करता हूँ इसीलिए छह मास तक तुम्हें मुक्त छोड़ दिया परन्तु अब सीधे बलप्रयोग कर तुम्हारा उपभोग करूँगा। अतः हे सीते, मेरा निवेदन स्वीकार करो। अरे, पालकी छत्र ले आओ, मंगल वाद्यों की ध्वनि करो, सीता इस दशानन का वरण करेगी।"

सीता रावण के वचन सुनकर उसकी उपेक्षा करती रही जैसे कोई श्वान हाथी पर भौंकता है, वैसे ही रावण भौंक रहा था। अच्छे पकवान देखकर जिस प्रकार कुत्ता आस-पास मँडराने लगता है उसी प्रकार सीता को देखकर रावण कर रहा था। दही, चावल देखकर कौआ जैसे झपट्टा मारने के लिए दौड़ता है वैसे ही जानकी को देखकर रावण रूपी कौआ झपटना चाह रहा था। रावण को देखकर मन में किसी प्रकार भी विचलित न होते हुए, श्रीराम के प्रति अपने अनन्य विश्वास के कारण सीता निःशंक होकर शांत बैठी थीं। वह स्वयं परिपूर्ण पतिव्रता अन्तर्बाह्य श्रीराममय थी। राम-नाम का स्मरण ही उसका एकमात्र उद्देश्य होने के कारण रावण उसे एक तृण की भाँति क्षुद्र प्रतीत हो रहा था। रावण के वचनों में उसे प्रलोभन पूर्ण आशय दिखाई दे रहा था। उसी कारण एक साधु के समक्ष श्वान भौंकने के सदृश

रावण के वचन सीता को प्रतीत हो रहे थे। रावण एवं उसका बोलना दस मुख वाले उलूक के समान लग रहा था। उसके अपवित्र वचन सीता को नहीं भा रहे थे. रावण को यह समझ में नहीं आ रहा था कि परस्त्री के उपभोग की उसकी इच्छा लालच के लिए मछली की छटपटाहट के समान है। श्रीराम का बाण रूपी फाँस उसे नष्ट कर देगा। रावण कामसर्प से पीड़ित था। तत्वतः परस्त्री कटु होती है परन्तु वह उसे ही मीठा समझ रहा था। रामबाण की लहर आते ही क्षणार्द्ध में रावण का अन्त हो जाएगा-इस सम्बन्ध में वह आश्वस्त थी। सीता सावधान थी परन्तु लौकिक रूप में लोक लज्जा का अनुसरण करते हुए वह हाथों से रावण और अपने मध्य परदा कर बैठी थी।

सीता रावण से बोली- "तुमने ब्रह्मदेव के वंश में उत्पन्न होकर भाग्यपूर्वक वेदों का अध्ययन किया परन्तु अब परस्त्री की अभिलाषा कर अधर्मपूर्वक आचरण कर वृथा मरण पाओगे। जिस प्रकार विकल्पयुक्त दोहरे विचारों से अपवित्र होने के कारण ऐसे व्यक्तियों को ऋद्धि सिद्धि नहीं प्राप्त होती, उसी प्रकार मैं राम की पतिव्रता पत्नी तुम्हारे अपवित्र हाथों में नहीं आऊँगी. तोता अपना खाद्य खाये वही उसके लिए उचित होता है। उसे छोड़कर अगर वह नारियल खाने का प्रयत्न करेगा तो चोंच टूटने के कारण उसे छटपटाना पड़ेगा, उसी प्रकार तुम अगर अपनी पत्नी का त्याग कर परस्त्री का उपभोग करने का प्रयत्न करोगे तो श्रीराम के बाणों से दु:खी होंगे। हे रावण, अगर तुम्हारी स्त्रियाँ स्वेच्छा से पर-पुरुषों के साथ रममाण होती हैं तो तुम उन्हें पवित्र न मानकर परपुरुष सहित उनकी हत्या कर दोगे। उसी प्रकार मैं श्रीराम की पत्नी हूँ, तुमसे बोलना भी मेरे लिए अपवित्र है फिर शरीरभोग तो बहुत दूर की बात है। अतः व्यर्थ की तुम्हारी अभिलाषा तुम्हारी मृत्यु का कारण बनेगी। अपने सदृश ही जो सबको मानता है, वही सच्चा ज्ञानी होता है। जिस प्रकार वह अपनी पत्नी की रक्षा करता है, उसी प्रकार दूसरे की पत्नी की भी रक्षा करनी चाहिए। तुम्हारे अनुसार यद्यपि श्रीराम मुझसे दूर हैं परन्तु उनका निवास मुझमें ही है यह तुम्हें अनुभव होगा। उसमें चोरी सम्भव ही नहीं है. भूमि से भयभीत होकर जो इधर उधर भागेगा, उसे सर्वत्र भूमि ही दिखाई देगी उसी प्रकार मेरे राम अन्तर्बाह्य सर्वत्र व्याप्त हैं। श्रीराम से चोरी सम्भव नहीं है। उनकी पत्नी का उपभोग करने वाले का शय्या पर ही कंठ छेद दिया जाएगा। आगे गृहस्थी का उपभोग करने के लिए वह जीवित ही नहीं रह पाएगा। 'मुझसे सीता बचेगी नहीं' ऐसा तुम कह रहे हो, लेकिन वह व्यर्थ है क्योंकि हे रावण, तुम राम का ग्रास बन चुके हो। अपनी पत्नी से किया उपभोग धर्म कहलाता है। परस्त्री से किया उपभोग नरक में ले जाता है। सुअर सुअरी से जैसा भोग करता है, वैसे ही इन्द्र उर्वशी भी उपभोग करते हैं, उसमें समानता होती है परन्तु परस्त्री का भोग करना अधःपतन है अतः हे दशानन, सुखपूर्वक अपनी पत्नी का भोग करने में तुम्हारी भलाई है। तुम मुझे श्रीराम को अर्पित कर अपने कुलगोत्र की रक्षा करो। दूसरों की पत्नी को माता सदृश मानना चाहिए ऐसा वेद, शास्त्रों का मत है। परस्त्री का भोग कर मातृगमनी सिद्ध होकर तुम्हारा अधःपतन हो जाएगा।" यह कहकर उस महापापी को न देखना पड़े अतः सीता मुँह फेरकर बैठ गई। सीता के मुँह फेरने से रावण दुःखी हो गया। वह क्रोध से थर-थर काँप रहा था अपने लोभ एवं क्रोध को शान्त करने के लिए वह आवेशपूर्वक बोलने लगा।

रावण बोला "सीते मैं तो स्वयं राक्षसराज हूँ। देव दानव मेरे प्रजा जन हैं राम-पत्नी होने के कारण क्या तुम मेरा अपमान करोगी ? मुझे देखते ही देव दानव भय से काँपते हैं और तुम इतनी धृष्टतापूर्वक मुझे अपमानास्पद वचन बोल रही हो। मेरी पत्नी व पुत्रों के सामने मेरी भर्त्सना कर रही

हो अतः मुझे तो तुम्हारा वध ही कर डालना चाहिए परन्तु स्त्री का वध निषिद्ध है। इसके अलावा तुम्हारे शरीर सान्निध्य की मेरी तीव्र इच्छा है, इसी से मेरे क्रोध एवं लोभ की शांति होगी। मैं तुमसे प्रेम करता हूँ इसी कारण तुम्हारा वध मुझसे नहीं किया जा रहा है परन्तु अगर तुमने स्वयं को मुझे समर्पित नहीं किया तो मैं तुम्हारे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा। जिस श्रीराम की तुम शक्तिवान् कहकर स्तुति कर रही हो, वह बेचारा सामान्य मानव है, उसे लंका तक पहुँचना कैसे सम्भव हो पाएगा ? तुम इसका विचार नहीं कर रही हो। सीता को लंका में लाया गया है, यह उसे कौन बतायेगा और अगर यह ज्ञात हो भी गया तो समुद्र का कठिन मार्ग वह कैसे पार करेगा ? राम बेचारा पैदल चलने वाला सीता के विरह से भ्रमित स्थिति को प्राप्त, समुद्र की अनन्त गहराई में वह कैसे उतरेगा ? राम हम राक्षसों की खाद्य वस्तु है। मैं अत्यन्त चाव से उसे खाऊँगा। तुम प्रसन्न होकर मेरा भजन करो। तुम राम से कभी नहीं मिल पाओगी। अतः तुम राम की आसक्ति त्यागकर प्रेमपूर्वक मेरा अनुसरण करो राम, पिता द्वारा घर से निकाला हुआ है। अब वह राज्यहीन व स्वधर्महीन हो गया है। उसके पास अब न ही अन्न है और न ही द्रव्य है, वह अत्यन्त दीन हो गया है। वह घास की शय्या पर सोता है। खाने के लिए पान भी नहीं, वनवास में अन्न नहीं, आभूषण नहीं, अभ्यंग स्नान नहीं, तेल के बिना बालों की जटाएँ बनी हुई पहनने के लिए वल्कल ऐसी उसकी दीन अवस्था है। श्रीराम के पास बल होता तो वह वन में विलाप करता हुआ क्यों रहता, वह यहाँ तक नहीं आ पा रहा है; निश्चित ही उसकी दैन्यस्थिति हो गई है। उसके पास मेरे सदृश बल और सेना नहीं है। वह दीन-हीन मुझसे बैर नहीं कर पाएगा। वन में रहकर राक्षसों से जूझने के लिए उसने वानर सेना को एकत्र किया है। वे वानर भी हमारे खाद्य हैं। राम ने वनचर बनकर वानरों को प्राप्त किया है। लेकिन राक्षस उनको निगल जाएँगे। वे तो हमारे भक्ष्य ही हैं।"

तत्पश्चात् रावण ने अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक डमरू पुराण में ऋषि का एक भाष्य जो सुना था, वह सीता को सुनाया। वह बोला- "सीते, अत्यन्त सावधानीपूर्वक ऋषि का श्लोक पर किया गया भाष्य सुनो "केले के वृक्ष के समान अत्यन्त सुकुमार और कोमल तुम्हारा वक्ष है। इसीलिये उसे रंभोरु कहते हैं। जो तीस मुख वाले देवता हैं, वे भी मेरे कारण संकट ग्रस्त हो जाते हैं। उसी प्रकार राम भी रण में धराशायी हो जाएगा। लक्ष्मण भी रण से विमुख हो जाएगा। मेरे रणक्रंदन में रघुनाथ के धराशायी होते ही वानर भी हताहत होकर गिर पड़ेंगे और राक्षस सबका भक्षण करेंगे।" सीता सज्ञानी होने के कारण रावण से बोलीं- "रावण यह श्लोक अच्छा है। इसका सातवाँ अक्षर छोड़कर यह श्लोक कहकर देखो। हे रावण, तुम अत्यन्त नीच वृत्ति के हो दश मुखों को मूर्खतापूर्वक लिए घूमते हो," रावण का भाष्य सुनकर सीता उससे इतना ही बोली कि- 'श्लोक का सातवाँ अक्षर छोड़कर श्लोक पढ़ कर देखो तब उस श्लोक का गूढ़ार्थ इस प्रकार हुआ कि दशवदन रावण मूर्च्छित होगा। रघुनाथ रण में विजयी होगा, उसके साथ लक्ष्मण भी होगा। सर्व वानर सेना राम द्वारा रावण का नाश होते ही विजय का गौरव करेगी। तीनों लोकों में रामराज्य का निर्माण होगा।' सीता द्वारा श्लोक का ऐसा अर्थ बताये जाने पर रावण क्रोधित होकर सीता को मारने के लिए आगे आया। इससे वृक्ष पर बैठे हनुमान क्रोधित हो उठे।

रावण के हाथ उठाते ही सीता ने उसकी भर्त्सना करते हुए कहा- "तुम कामोन्मत्त, मरणोन्मत्त और गर्वोन्मत्त हो गए हो।" रावण क्रोधित हो उठा परन्तु वह उसे क्षुद्र कंटक की भाँति समझ रही थी। नित्य श्रीराम का स्मरण करने के कारण वह समर्थ और निःशंक थी। वर्षा की अखंड धाराओं की मेघों से लगातार वर्षा होते रहने पर भी आकाश गीला नहीं होता। उसी प्रकार रावण की अखंड दुःखदायक

बातों को सुनकर भी सीता विचलित नहीं हुई। रावण के वचनों को वह मृगजल का छलकना मानकर उसके गर्व को समाप्त करने के लिए अनुभवपूर्ण बातें कह रही थीं। उसके वचन ऐसा गूढ़ार्थ अभिव्यक्त कर रहे थे, जिससे स्वहित एवं परहित- दोनों प्रकार के अर्थ व्यक्त हो रहे थे। वह वे अर्थ समर्थतापूर्वक एवं शुद्ध शब्दों में कह रही थीं। जिस प्रकार अपकीर्ति शुद्ध पुण्य कीर्ति को ढँक नहीं सकती, उसी प्रकार रावण के दुष्ट दुर्वचन सीता का स्पर्श भी नहीं कर रहे थे। जिस रावण की देव, दानव सभी सेवा करते हैं, वह यश और कीर्ति प्राप्त कर लंका पर राज्य कर रहा था परन्तु तत्पश्चात् उसने सीता को चुराकर अपकीर्ति अर्जित की। शिव के सेवक के रूप में प्रसिद्ध रावण, श्रीराम की पत्नी चुराने के कारण मंदबुद्धि एवं पाप का भागी बन गया। ऐसी चोरी करके हे लंकाधीश, तुम भाग कर कहाँ जाओगे ? श्रीराम के बाणों के आघात से तुम्हारी कौन रक्षा करेगा। श्रीराम के कुपित होने पर ब्रह्मा, विष्णु, चन्द्र, सूर्य अग्नि यम विधाता, कोई भी रक्षा नहीं कर सकता। शिव की नगरी में छिपने के लिए जाने पर शिव तुम्हारा त्रिशूल से वध कर देंगे क्योंकि शिव कहेंगे- मेरे स्वामी की पत्नी जगत् जननी और विशेष रूप से मेरे गुरु की पत्नी हैं। उसकी अभिलाषा कर तुमने उसे चुराया है। अतः शिव तृतीय नेत्र से तुम्हें भस्म कर देंगे। इस प्रकार हे लंकेश ! श्रीराम की पत्नी चुराने पर कोई तुम्हारा रक्षक नहीं है। अतः तत्वतः तुम्हारा वध निश्चित है। तुम्हें लगता होगा कि तुम्हारे पास सैन्य और सामर्थ्य है तथा श्रीराम एकाकी और निर्बल हैं परन्तु राम का प्रबल बल मैं तुम्हें बताती हूँ वह सुनो– "उन्होंने ताड़का और सुबाहु का वध किया। मारीच और उसके भाई द्वारा गर्वपूर्वक विरोध करते हो उन्हें एक बाण से ही समाप्त कर दिया। श्रीराम ने अकेले एक ही बाण से चौदह सहस्र राक्षस, त्रिशिर खर दूषण आदि को जनस्थान में हुए युद्ध में मार गिराया। तुम्हारी बहन शूर्पणखा के नाक कान काटकर उसकी दुर्दशा कर वापस भेज दिया, उसकी तुम्हें लज्जा नहीं आई। उसका पक्ष लेने के लिए तुमने भिखारी का रूप धारण किया और रामपत्नी लेकर भय में भाग खड़े हुए तब राम को मुँह दिखाये बिना उसके बाणों के भय से भयभीत होकर लंका में आकर छिप गए। अब बड़ी-बड़ी बातें कर रहे हो लेकिन जटायु के साथ युद्ध करते हुए मेरे समक्ष उससे हार कर उसकी शरण में गये तुम क्या अपना पराक्रम बता रहे हो ?"

सीता द्वारा की गई रावण की भर्त्सना को सुनकर हनुमान वृक्ष पर बैठकर हँस रहे थे। सीता का साहस देखकर हनुमान चकित हो गए। उनके मन में आया कि श्रीराम द्वारा खर दूषण को मार आने के पश्चात् दोनों भाइयों ने एकत्र बैठकर बँटवारा किया होगा कि श्रीराम को बड़े हिस्से के रूप में रावण और कुंभकर्ण तथा लक्ष्मण को इन्द्रजित् के रूप में छोटा हिस्सा प्राप्त होगा। अन्य शूर-वीरों का हिस्सा हनुमान को मिलेगा। अंगद को दूत बनाया। नल और नील को सेतु बनाने का कार्य सौंपा। अन्य समस्त सैन्य-बल सुग्रीव को देकर सैन्य-संचालन का कार्य सौंपा होगा। सीता रावण को आगे बताने लगीं "श्रीराम स्वयं सच्चिदानंद है और तुम उन्हें दीन कह रहे हो। श्रीराम की महिमा ध्यान देकर सुनो। शिव राम नाम का नित्य स्मरण करते हैं और उनके चरणों के तीर्थ को वन्दनीय मानते हैं। ब्रह्मा राम को साष्टांग दंडवत् प्रणाम करते हैं। देवता राम को शिरोधार्य मानते हैं। भगवान् शिव एकांत में श्रीराम-नाम का पाठ करते हैं, उन्हीं श्रीराम की तुम मूर्ख सदृश निन्दा कर रहे हो। अतः तुम्हारी मृत्यु निश्चित ही समीप है। जो श्रीराम की निन्दा करता है उसका भगवान् शिव वध करते हैं। तुमने स्वयं अपने स्वामी से ही बैर ले लिया है अतः तुम निश्चित ही मूर्ख हो। श्रीराम की निंदा करने से तुम्हारी जिह्वा गिर जाएगी, तुम नरक में जाकर दुःखों के भागी बनोगे।"

सीता का क्रोध, संयमपूर्ण विवेचन, राम की महिमा– रावण द्वारा श्रीराम की निन्दा सुनकर सीता क्रोधित होकर बोलीं– "हे रावण, मैं, तुम्हें क्षणार्द्ध में ही भस्म कर दूँगी। बलपूर्वक सीता का भोग करने के लिए कहते हो, रघुनाथ की निन्दा करते हो अतः तुम्हें अब तक भस्म कर दिया होता परन्तु सर्वसमर्थ श्रीरघुनाथ की ऐसी आज्ञा है कि बड़े से बड़ा आघात होने पर भी क्रोध न करें अतः रावण को कैसे भस्म किया जाय ? अगर शरीर में क्रोध का प्रवेश होता है तो सर्वांग अपवित्र हो जाते हैं। क्रोध ब्रह्मचर्य को भग करने वाला, तप का नाश करने वाला तथा यज्ञ, दान, व्रत, दक्षिणा, इत्यादि कर्म व्यर्थ करने वाला होता है। जिस प्रकार घट में छिद्र होने से वह टपकने लगता है, उसी प्रकार क्रोधाग्नि से तप भस्म हो जाते हैं। योगी, सन्यासी क्रोध के कारण त्रस्त होकर मलिन हो जाते हैं। बाह्य शरीर की अपवित्रता स्नान करने से धुल जाती है परन्तु क्रोध की अपवित्रता तीर्थ स्नान से भी पवित्र नहीं होती। काशी में रहकर गंगा स्नान करने पर भी क्रोध शान्त नहीं होता। क्रोध के समान पूर्णपापी, संसार में कोई नहीं है। काम, क्रोध, लोभ, नरक के वासी होने के कारण उनका त्याग करना चाहिए, ऐसी ही श्रीराम की आज्ञा है। श्रीराम की आज्ञा होने के कारण उसका पालन करते हुए मैंने अपने को क्रोधित नहीं होने दिया। उसी के कारण हे रावण, तुम अभी तक अपघात से बचे हुए हो। परन्तु तुम बच गये हो यह समझने की भूल मत करो। स्वयं श्रीराम तुम्हारा वध किस प्रकार करेंगे, यह ध्यानपूर्वक सुनो। श्रीराम के धनुष की टंकार-मात्र लंकाभुवन में गूँजने से सभी राक्षस मूर्च्छित होकर गिर जाएँगे। त्रिकूट भय से गिर पड़ेगा समुद्र घट जाएगा। बाणों की वर्षा से प्रभावित होकर वीर धरती पर गिर जाएँगे उनके साथ ही अश्व, गज, रथ सभी उध्वस्त हो जाएँगे। इन्द्रजित् लक्ष्मण का भाग है। वह इन्द्रजित् पर दारुण शस्त्रों का आघात कर उसका प्राण हर लेगा। श्रीराम अपने बाणों से छलनी कर कुंभकर्ण और तुम्हें क्षणार्द्ध में ही नष्ट कर डालेंगे। जिस प्रकार गड्ढे का पानी सोखने में सूर्य को समय नहीं लगता, उसी प्रकार श्रीराम के प्रबल बाणों से तत्काल तुम्हारे प्राण हर लिये जाएँगे। जिस राज्य में राजा कामासक्त और अधर्मी होता है, उस राज्य का नाश हो जाता है और राज्य सम्पत्ति सहित नष्ट हो जाता है। परस्त्री को चुराने के कारण रत्नों से भरी हुई और स्वर्ण पर्वत पर स्थित तुम्हारी लंका तुम्हारे परिवार एवं समस्त पुत्रों सहित क्षण में भस्म हो जाएगी।"

सीता आगे बोलीं "वज्र की धार अथवा कालचक्र का निवारण करना सम्भव है परन्तु श्रीराम के बाण दशशिरों का अनिवार्य रूप से ही वध करेंगे। जिसके हाथ की दर्भशिखा कौए के पीछे लगने पर स्वयं शिवादिकों सहित तीनों लोकों में किसी को भी उसका निवारण करना सम्भव नहीं हो सका, ऐसे राम के क्रोधपूर्वक छोड़े गये बाण को रोक सकने वाला एसा कौन है ? वह बाण राक्षसों एवं मुख्य रूप से रावण का प्राण हर लेगा, तुम कहते हो कि तुम सबल हो, राम तुम्हारे समान नहीं हैं। वस्तुतः श्रीराम सिंह हैं और तुम श्वान हो, इसीलिए तुम चोरों की तरह पलायन करके आये हो। श्वान को भगाने पर वह पत्तल को मुँह में पकड़कर भागता है, उसी प्रकार सीता रूपी चिद्रत्न चोरी कर तुम भग आये हो। श्रीराम गजेन्द्र हैं तुम विषय रूपी काले श्वान हो। घर के लोगों के समक्ष बड़बोलापन दिखाने वाले तुम श्रीराम के समक्ष टिक न सकोगे। हे काले मुख वाले रावण, तुम शूर्पणखा के समान ही हो। चोरी करके भी व्यर्थ ही पराक्रम की बातें कर रहे हो।"

रावण एवं हनुमान की प्रतिक्रिया; मन्दोदरी का आगमन– सीता के वचन सुनकर रावण क्रोधित हो उठा। सीता का वध करने के लिए वह तैयार हो गया सीता के शब्दरूपी बाण रावण के

मर्मस्थल में चुभ गए। वह दाँत पीसते हुए, आँखें क्रोध से लाल कर बोला– "इसकी आँखें फोड़ डालो, इसकी गरदन मरोड़ दो। इसकी आँतें बाहर निकाल दो, इसकी जीभ काट डालो, तुरन्त इसका शरीर विदीर्ण कर उसके अलग-अलग हिस्से कर दो।" रावण सीता का वध करने के लिए शस्त्र लेकर दौड़ा। यह देखकर हनुमान क्रोध से थर-थर काँपने लगे। दोनों हाथ मलते हुए, पूँछ को गोल घुमाते हुए पेड़ पर लटक गए। उनके रोम थर-थर काँप रहे थे। आँखें गोल-गोल घुमाकर, दाँत किटकिटाकर, रोम की थरथराहट से उनका क्रोध प्रकट हो रहा था। रावण ने अगर सीता को हाथ लगाया तो मैं उसका वध कर दूँगा, यह तय कर हनुमान पेड़ पर बैठ गए। हनुमान को क्रोधित हुआ देखकर सभी देवताओं में हाहाकार मच गया। रावण को क्रोधित देखकर सभी स्त्रियाँ भय से काँपने लगीं। जब सीता को संत्रस्त किया जा रहा था, हनुमान के पेड़ पर से नीचे कूदने से पहले उस स्थान पर मन्दोदरी उपस्थित हुई। रावण खड्ग लेकर सीता का घात करने ही वाला था तभी मन्दोदरी ने रावण का खड्ग लिया हुआ हाथ पकड़ लिया। अपना हाथ मन्दोदरी ने पकड़ा हुआ है, यह ज्ञात होते ही रावण चौंक गया। हनुमान पेड़ पर ही गुप्त रूप से बैठे रहे। इसके आगे सीता एवं रावण के संवादों से प्रकट हुई अद्भुत कथा का श्रवण करें।

अध्याय ९

[दशरथ-कौशल्या विवाह की पूर्वकथा]

अगर रावण ने सीता को हाथ लगाया होता तो हनुमान ने उसका वध कर दिया होता परन्तु तभी मन्दोदरी ने वहाँ आकर अनर्थ होने से बचा लिया। अतिकाय की माता एवं रावण की प्रिय पत्नी रावण को आलिंगनबद्ध कर हितपूर्ण वचन बोली।

मन्दोदरी द्वारा रावण को समझाना– "मैं तुम्हारी पत्नी तुमसे स्वेच्छा पूर्वक कहती हूँ कि तुम मुझसे रममाण हो क्योंकि वह स्वधर्म है। सीता के चित्त में कामवासना न होने के कारण वह निष्काम है। उसमें कामभोग का तात्पर्य अधर्म है तथा निश्चित ही तुम्हारा उसमें अध:पतन है। मैं स्वेच्छा पूर्वक कह रही हूँ कि कामवासना रहित सीता का भोग छोड़कर मुझमें रमो। मुझसे तुम्हें सुख की प्राप्ति होगी। सीता के पास दु:ख होगा। सीता श्रीराम की पत्नी एवं पतिव्रता सती है। उसके प्रति कामासक्ति के कारण राक्षसों का एवं उनके वंश का सम्पूर्ण नाश होगा। कुमार, प्रधान, सेनापति, अश्व, गज, रथ, पैदल, इन्द्रजित्, कुम्भकर्ण और स्वयं लंकानाथ सभी सीता के क्रोध से भस्म हो जाएँगे। जिस प्रकार सभी रस चखने वाली मक्खी अगर दिये की ज्योति को चखना चाहेगी तो वह जलकर भस्म हो जाएगी उसी प्रकार स्वयं की पत्नी का त्याग कर सीता के उपभोग की कामना करोगे तो हे लंकानाथ, तुम भी भस्म हो जाओगे। स्वयं के पुत्र का द्वेष करने वाले हिरण्यकशिपु द्वारा खंभे पर शस्त्र द्वारा आघात करते ही नरहरि ने प्रकट होकर अपने नखाग्रों से वार करते हुए उसका परिवार सहित अंत कर दिया। वहाँ पर सीता के कुपित होते ही वन के वनसिंह का निर्माण होकर उसके द्वारा राक्षसों का संहार होगा। जानकी के पास क्या अमृत भरा है ? अथवा हमारे पास विष भरा है जो रावण को कटु लग रहा है। अपनी अथवा पर स्त्री कोई भी स्त्री हो कामवासना से देखने पर दोनों से समान सुख की प्राप्ति होती है परन्तु स्वस्त्री से की गई कामक्रीड़ा परम सन्तोष प्रदान करती है। इसके विपरीत परस्त्री से परम दु:ख प्राप्त होता है।

परस्त्री के प्रति आसक्ति रखने वाला पूर्वजों को अधोगति की ओर अग्रसर करता है और स्वयं नरक में जाता है इस प्रकार वंश की समाप्ति हो जाती है।" मन्दोदरी नाना प्रकार की युक्तियों से रावण को मनाकर उसका हाथ पकडकर उसे एकांत में ले गई।

मन्दोदरी द्वारा रावण को नारद के वचनों का स्मरण कराना– मन्दोदरी ने एकान्त में ले आकर बैठाने के पश्चात् रावण को नारद के वचनों का स्मरण कराया - "तुमने एक बार अपने सामर्थ्य से गर्वित होकर नारद से पूछा था 'तीनों लोकों में ऐसा कौन है, जो मेरा वध कर सके। वह देव है, दैत्य है, अथवा दानव है ?' इस पर नारद ने कहा था– "अरे दशानन, देवताओं को तो तुमने बन्दी बना लिया है। दैत्य तुम्हारे समक्ष क्षुद्र हैं। दानवों के लिए तुम्हारा बल कठिन है परन्तु मानववनर तुम्हें युद्ध में भारी पड़ेगा। रावण, तुम मुझसे अपना भविष्य मत पूछो। उससे मन में संकल्प की भावना आती है तथा अपने भविष्य से बचने के लिए प्राणी अनेक प्रकार की युक्तियाँ एवं उपाय करता है ' नारद के वचन सुनकर रावण ने उनके चरण पकड़ते हुए कहा - "मुझे मेरी मृत्यु के विषय में बतायें " इस पर भविष्य ज्ञाता नारद ने सत्यवचन बोलकर कहा-- "रावण , तुम्हारा वध कौशल्यापुत्र दाशरथी श्रीराम करेंगे। वे लंका में आकर राक्षसों का सर्वनाश कर देंगे।" यह कहकर नारद ने आकाश मार्ग से प्रस्थान किया। तीनों लोकों में उनकी गति विशिष्ट थी; उनकी वीणा से रामनाम की ध्वनि प्रस्फुटित हो रही थी। मुख से राम-नाम का गायन कर रहे थे। नामामृत से तृप्त होकर वे आनन्द से डोल रहे थे। नाम संकीर्तन से सन्तुष्ट होकर, रामस्वरूप का दृष्टि से अनुभव कर अत्यन्त उल्लसित थे। नारद के प्रस्थान करते ही रावण उद्विग्न हो उठा। उसने ब्रह्मदेव को बुलाकर पूछा-"यह कौशल्या कौन है ? दशरथ कौन है ? उसका कुल कौन सा है ? वह किस देश में रहता है ? यह सब मुझे बतायें। " कौशल्या व दशरथ का विवाह नहीं हुआ है। राम का जन्म नहीं हुआ है। ऐसा नारद ने कहा है। रावण के ये वचन सुनकर ब्रह्म देव हँसे। नारद के वचन कौन बदल सकता है। तत्पश्चात् ब्रह्मदेव रावण से बोले– "कौशल्या कौशलराज की कन्या है। दशरथ अयोध्या का सूर्यवंशी राजा है। उन दोनों का विवाह सम्पन्न होने के समय रावण ने अनेक विघ्न उत्पन्न किये। नारद के वचन सत्य होने ही थे। अन्त में उन दोनों का विवाह समुद्र में हुआ। कौशल्या और दशरथ समुद्र में क्यों गये ? वहाँ किस प्रकार विवाह सम्पन्न हुआ ? यह प्रश्न उठते हैं जो गुप्त बातें घटित हुईं, उन्हें नारद ने अपने ज्ञान दृष्टि से देखकर निःशंक रूप से बताया जो कालिका खंड में वर्णित है। सेतुबंधमहात्म्य लघुमहात्म्य इत्यादि में सम्पूर्ण वृत्तान्त लिखा हुआ है, वह इस प्रकार है कि अहिरावण और महिरावण का जीवन मरण कौशल्या एवं दशरथ के विवाह पर निर्भर था। इसकी सम्पूर्ण कथा उसमें है। (**इन प्राचीन ग्रंथों में उल्लिखित कथाएँ जितनी कही जायँ, उतनी कम हैं। मेरे द्वारा तो स्वयं रघुपति ही काव्य के द्वारा कथा अभिव्यक्त करा रहे हैं। मुझ महामूर्ख द्वारा रामायण लिखी गई है, जिसको पढ़ने से पापों का नाश होगा। विभिन्न प्रकार के ग्रंथ हैं, जिनमें भिन्न प्रकारों से कथा का निरूपण हुआ है। मैं भावार्थ रामायण कह रहा हूँ जिसमें बीच में यह प्रसंग जोड़ा है।**)

कौशल्या एवं दशरथ का पूर्ववृत्त वर्णन; विवाह– ब्रह्मदेव रावण से बोले "कौशल्या एवं दशरथ के विवाह हेतु बारात कोशल देश को गयी। पाँचवें दिन विवाह समारंभ था। यह वार्ता रावण को समझते ही वह कौशल्या पर कुपित होकर शीघ्र आक्रमण कर कौशल्या को भगाकर ले आया। रावण मन में भयभीत था अतः उसने कौशल्या को लंका में न रखने का निर्णय किया। 'देवता भी मेरी मृत्यु चाहते हैं। मेरा सेवक बनने के कारण मेरी मृत्यु उन्हें अच्छी लगेगी और वे चालाकी से कौशल्या को

दशरथ के पास ले जाएँगे' ऐसा उसे भय लग रहा था। अतः कौशल्या को लंका में न रखकर एक पेटी में रखकर उसमें अंगूर, आम, लड्डू तथा पकवान ठण्डे पानी के पात्र रख तथा वह पेटी समुद्र की ओर भेज दी। समुद्र ने वह पेटी मीन नामक मछली को दी। मीन मछली वह पेटी अपने मुँह में रखकर समुद्र में विचरण कर रही थी तब किसी प्रसंगवश दूसरी मछली से उसके युद्ध होने की सम्भावना निर्मित हुई। उस युद्ध में पेटी टूट जाने के भय से उसने उस पेटी को समुद्र में स्थित एक द्वीप पर रख दिया और वह युद्ध के लिए वापस लौट आयी। इधर दशरथ विवाह के लिए शीघ्र पहुँचने की इच्छा से दूरस्थ मार्ग त्याग कर समुद्र मार्ग से निकले। उनका विचार था कि ऐसा करने से मात्र तीन रात्रि में वह कोशल देश पहुँच सकेंगे। जिस प्रकार द्वारका पहुँचने के लिए चेउली से पैदल रास्ते से जाने का मार्ग लम्बा है परन्तु नाव से जाने वाले लोग मात्र दो दिनों में वहाँ पहुँच जाते हैं, उसी प्रकार दशरथ भी नाव से शीघ्र पहुँच सकने के कारण बारात को नाव पर चढ़ाकर निकले। नाव पर ध्वज तथा पताकाएँ थीं, वाद्य बज रहे थे इस प्रकार अत्यन्त आनन्द पूर्वक बारात नाव से जा रही थी। ऐसे में रावण ने अवसर देखकर अँधेरे में विमान से आकर रात्रि के समय नौका तोड़ दी। होनी कभी नहीं टलती। दशरथ के पानी में डूबने के पश्चात् अपूर्व घटना घटित हुई। दशरथ डूबते समय राम-नाम का स्मरण कर रहे थे। उन्हें एक टूटी डलिया हाथ लगी। श्रीराम दशरथ के पुत्र के रूप में जन्म लेने वाले थे, इसलिए उन्हें यह नाम सहज ही स्मरण हो आया। डूबते समय वे तनिक मात्र भी भयभीत नहीं हुए। बड़े से बड़े संकट में राम-नाम के स्मरण से मन को आधार मिलता है। नाम स्मरण करते ही तीनों लोकों के सुख एवं सन्तुष्टि की प्राप्ति होती है। दशरथ उस टूटी डलिया के सहारे समुद्र में उठती हुई लहरों के साथ उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ कौशल्या की पेटी रखी थी। उस द्वीप पर पहुँचने के पश्चात् दशरथ शीघ्र उठकर चलने लगे। उसी समय उन्हें समीप ही वह पेटी दिखाई दी। वे आश्चर्य चकित हो गए, चारों ओर समुद्र होने पर यहाँ यह पेटी किसने रखी होगी, और कोई दिखाई नहीं दे रहा था। उन्होंने प्रयत्नपूर्वक उस पेटी को खोलकर देखा। उसमें उन्हें कौशल्या सिमटी हुई बैठी दिखाई दी। उन्होंने परस्पर एक दूसरे के विषय में पूछा। दशरथ ने कौशल्या से पूछा, तुम एक सुन्दर तरुणी हो इस पेटी में किस प्रकार आयीं ? तुम्हें इस द्वीप पर किसने लाकर रखा ? यह समुद्र अतिगहन है, इसमें बड़ी मछलियाँ और भयंकर मगर हैं। यह स्थान अत्यन्त कठिन एवं दुर्गम है। इस पर कौशल्या ने बताया, "मैं कोशलराज की राजकन्या हूँ, राजा ने मेरे लिए दशरथ नामक वर सुनिश्चित किया है। तभी रावण मुझे भगाकर लंका ले आया परन्तु अपना भविष्य सुनकर वह भयभीत हो उठा। भय के कारण उसने मुझे पेटी में डालकर समुद्र को सौंप दिया। समुद्र ने पेटी इस द्वीप पर रख दी"- यह बताते हुए कौशल्या का गला रुँध गया। तत्पश्चात् वह बोली- मेरे दुर्भाग्य से मेरी अब दशरथ से भेंट न हो सकेगी। दशरथ से मेरा विवाह न हो सके, इसलिए रावण ने यह विघ्न उत्पन्न किया है और दशरथ का नाश करने के लिए उसने सेना भी भेजी है। उस दशानन का नाश हो। उससे स्वप्न में भी मेरा सम्भाषण न हो। मैं दशरथ का ध्यान करते हुए आनन्दपूर्वक अपने प्राण त्याग दूँगी।" कौशल्या की बातें सुनकर दशरथ चकित हुए, सप्तसागरों में जाकर भी होनी कभी नहीं टलती, उन्होंने यह अनुभव किया। उसने अपने बारे में कौशल्या को बताते हुए कहा, "रावण ने मुझे मारने की योजना बनाई परन्तु रघुनाथ ने मेरी समुद्र में डूबते हुए रक्षा की। समुद्र उफान पर होते हुए भी मैं दशरथ यहाँ पहुँच गया।" इस पर कौशल्या बोली-- "इसका तात्पर्य आप ही अज के पुत्र और सूर्यवंशी रघु के पोते हैं"

दशरथ-कौशल्या विवाह– दशरथ के निश्चयपूर्ण वचन सुनकर कौशल्या आनन्दित हुई वह बोली– "जनार्दन मुझसे सन्तुष्ट हैं उन्होंने इस एकान्त में मेरा विवाह सम्पन्न कराया लौकिक कर्मकाण्डों के बिना दोष-रहित यह विवाह सम्पन्न हुआ। दोनों के आनन्दपूर्ण बोलों ने ही मंगलगीतों का रूप ले लिया, समस्त वैवाहिक विधियाँ स्वाभाविक रूप से ही सम्पन्न हुईं, एक दूसरे के सम्बन्ध में अज्ञानता समाप्त हुई। परमानन्द की प्राप्ति, विवाह सुख निर्माण करने में कारणीभूत हुई। पुत्र रूप में रघुनाथ की प्राप्ति का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। सूर्य भगवान् स्वयं विवाह का मुहूर्त देख रहे थे। दोनों का परस्पर परिचय होते ही अन्तरपट हट गया। पुण्य वचनों के मध्य दोनों एक सूत्र में बँध गए। समुद्र के मध्य स्थित द्वीप विवाह स्थल बन गया। दोनों की दृष्टियाँ मिलते ही विवाह सम्पन्न हुआ। इस प्रकार कौशल्या ने अपने पति के रूप में दशरथ का वरण किया इसके पश्चात् और आश्चर्यजनक घटना घटित हुई। कौशल्या और दशरथ दोनों पेटी में बैठे, उसमें रखे पकवान एवं फल खाये तथा जल पीकर सन्तुष्ट हुए तत्पश्चात् कौशल्या ने दशरथ से पूछा– "हम यहाँ से कैसे मुक्त हो सकेंगे ?" राजा ने कौशल्या से कहा "रामनाम से हमें मुक्ति मिलेगी। सद्गुरु वसिष्ठ ने कहा है कि रामनाम का स्मरण करने से भव भय समाप्त होते हैं। बन्धनों से मुक्ति मिलती है। हम दोनों मिलकर अब सावधानी एवं एकाग्रता पूर्वक अनन्य भक्ति-भाव से रघुनाथ का स्मरण करेंगे तो संसार के कोई भी भय हमें बाधित नहीं करेंगे, पृथ्वी डूबने लगेगी, आकाश टूट कर गिरने लगेगा फिर भी नामस्मरण से भक्तों का भव-भय समाप्त हो जाता है। राम-नाम के श्रवण से विघ्न कोसों दूर भागते हैं। हे सुन्दरी, तुम भयभीत न हो। श्रीराम अवश्य सुख सन्तोष प्रदान करेंगे।" परम प्रतापी एवं आत्म सामर्थ्यवान् श्रीरघुनाथ ने दशरथ के अन्तर्मन में प्रवेश किया क्योंकि वे दशरथ के पुत्र रूप में जन्म लेने वाले थे। जब दोनों में यह वार्तालाप चल रहा था तब इधर मीन नामक मछली ने दूसरी मछली को युद्ध में हरा दिया और वह शीघ्र ही द्वीप पर आकर पेटी लेकर आगे बढ़ी

रावण की प्रतिक्रिया, मन्दोदरी की सूचना- रावण द्वारा ब्रह्मदेव से कौशल्या के विवाह का समय पूछे जाने पर ब्रह्मदेव ने बताया कि 'विधिविधान के अनुसार दशरथ से उसका विवाह सम्पन्न हो गया है।' ब्रह्मा द्वारा यह बताते ही रावण जोर से हँसा और बोला "देखा, सत्यलोक का स्वामी स्वयं मुझे असत्य बता रहा है।" फिर ब्रह्मा बोले- "हे रावण, मैं सत्यलोक का होते हुए तुम मुझे असत्य कह रहे हो, तब तो ब्रह्मा द्वारा लिखे गए विधिविधान का अर्थ ही तुम्हें ज्ञात नहीं हो पाया है।" इस पर रावण बोला "मैंने दशरथ का घात किया, कौशल्या को समुद्र में फेंक दिया, तब दशरथ का विवाह कैसे सम्भव है ? आपके वचन असत्य क्यों नहीं है। ?" रावण के प्रश्नों का उत्तर देते हुए ब्रह्मा बोले- "हे रावण, जीवन एवं मृत्यु पर ईश्वर की सत्ता है। तुम कह रहे हो कि तुमने दशरथ को मारा, तो वह तत्वत: असत्य है।" ब्रह्मदेव के वचन सुनकर, उसकी वक्रोक्ति सुनकर रावण ने पेटी मँगवाई पेटी खोलकर देखते ही उसके अन्दर कौशल्या और दशरथ दोनों दिखाई दिए। पेटी से बाहर आते ही रावण चकित होकर चौंक गया। फिर उसने उन्हें मारने के लिए अपने शस्त्र हाथ में उठाये, दशरथ अपने समक्ष रावण को देखते ही बोले– "तुम्हारे दस कंठ और बीसों आँखें मात्र हाथों के आघात से धराशायी कर दूँगा"। उस समय रघुनाथ दशरथ के अन्त:करण में शौर्य का निर्माण कर रहे थे। इसी कारण दशरथ रावण को समक्ष देखकर भयभीत हुए बिना नि:शंक रूप से पूर्ण पुरुषार्थयुक्त होकर खड़े रहे। दशरथ को इस नि:शंक अवस्था में देखकर रावण उनका वध करने के लिए उद्यत हुआ। तभी मन्दोदरी ने वहाँ आकर

रावण को रोका। उसने रावण को एकान्त में ले जाकर कहा कि दशरथ का वध करने के लिए बढ़ोगे तो तुम्हारा अपघात सम्भव है हे रावण, पेटी से जिस प्रकार अचानक दशरथ निकला, उसी प्रकार श्रीराम निकलेगा और तब तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। यह सुनकर रावण भयभीत होकर काँपने लगा दशरथ के विवाह का विरोध करते हुए रावण अत्यन्त उद्विग्न हो उठा। भय से उसके मुख दीन-हीन तथा म्लान हो उठे

मन्दोदरी ने रावण को हितप्रद वचन कहे– "होनी को कोई टाल नहीं सकता। दशरथ को कौशल्या सहित अयोध्या भेज दें। उन दोनों को मारना चाहकर भी ये मरेंगे नहीं। उन्हें लंका में न रखकर अयोध्या भेज दें क्योंकि आपके चाहने पर भी इन्हें मृत्यु नहीं आएगी।" अन्त में रावण ने उसका कहना मानकर तुरन्त विमान मँगवाया। दशरथ और कौशल्या को विमान में बैठाकर अयोध्या भेज दिया। उधर अयोध्या में राजा दशरथ के समुद्र में डूबने की वार्ता से हाहाकार मचा था तभी दशरथ कौशल्या सहित अयोध्या में पधारे। उन्हें देखकर सारी नगरी आनन्दित हो उठी मंगलवाद्यों की ध्वनि द्वारा नर नारियों ने अपना आनन्द व्यक्त किया। यह सब पूर्व वृत्तान्त सुनाकर मन्दोदरी ने रावण से कहा-"हे रावण, तुम क्यों भ्रमित होते हो होनी को कोई टाल नहीं सकता।" इतना बताते हुए रावण को सीता की अभिलाषा त्यागने के लिए कहकर मन्दोदरी उसे अपने भवन में ले गई

अध्याय १०

[त्रिजटा का स्वप्न, राक्षसियों का वापस लौटना]

रावण द्वारा सीता को धमकाये जाने पर उसकी सभी पत्नियों ने सीता को आँखों से संकेत देकर आश्वस्त किया रावण सीता से बोला- "तुम पूरी तरह से मेरी पत्नी बनो अन्यथा मैं तुम्हारे प्राण हर लूँगा नाक-कान काट डालूँगा। अरे, इसके दोनों नेत्र फोड डालो, इसका सर काट डालो, इसके वक्षस्थल को काट कर इसकी आँतें बाहर निकाल दो तुम्हारे पतिव्रता धर्म के कारण छह महीनों तक मैंने प्रतीक्षा की अब बलपूर्वक तुम्हारा उपभोग करूँगा। तुम्हारा राम मात्र एक वनवासी भिखारी है।

रावण की पत्नियों द्वारा सीता को सांत्वना; ब्रह्मा का शाप- रावण द्वारा सीता को सताया जाना देखकर सभी पत्नियाँ क्रोधित हो उठीं। उन्होंने सीता को सांत्वना देते हुए उसे आश्वस्त कर कहा "तुम इससे भयभीत न हो। देवी, गंधर्वी इत्यादि सुन्दर स्त्रियाँ, नागकन्या निशाचरी स्त्रियाँ इत्यादि सभी सीता को आश्वासन दे रही थीं। कोई नेत्रों से, कोई होंठों से कोई हाथों एवं उँगलियों से आश्वस्त कर रही थीं। उन्होंने उसे ब्रह्मदेव का शाप सुनाया। वे बोलीं- "रावण को ब्रह्मा का शाप है कि वह पर स्त्री को छेड नहीं सकता। अतः तुम भयभीत न होकर धैर्य धारण करो. एक बार सत्यलोक के वनप्रदेश में रावण उर्वशी को छेडने लगा। उर्वशी उसे रोकते हुए बोली- "तुम नलकूबर की स्त्री को क्यों सता रहे हो" परन्तु रावण नहीं माना। अतः उर्वशी ने शोर मचाया. उस समय ब्रह्मदेव वहाँ आये तथा अत्यन्त क्रोधित होकर बोले-"हे लंकाधीश रावण ! दुष्ट पापी, भविष्य में अगर तुमने परस्त्री से ऐसा व्यवहार किया तो ब्रह्मशाप के परिणामस्वरूप तुम्हारा मस्तक कट कर गिर जाएगा। जिसकी भावना निर्मल होती है, उस पर कृपा की जाती है।" इस प्रकार रावण को मिले शाप का वृत्तान्त सुनाया गया हनुमान देख

रहे थे कि मन्दोदरी रावण को भवन में ले गई। जिस प्रकार अनेक युक्तियाँ कर उसने दशरथ और कौशल्या को अयोध्या भेजा था, उसी प्रकार अब भी रावण को समझा बुझा कर भवन में ले आयी

रावण ने अत्यन्त भयंकर क्रूर एवं विकराल राक्षसियों को बुलाकर उन्हें एकान्त में आज्ञा दी कि 'सीता को वश में करने के लिए उसे भयभीत करो, प्रलोभन दो, साम दाम इत्यादि नीतियों का प्रयोग करो, जिससे वह मेरे वश में हो जाय। अगर तुम ऐसा कर सकीं तो मैं तुम्हारा मित्र बन तुम्हारे आभार मानूँगा।" राक्षसियों को यह निर्देश देने के पश्चात् ही वह मन्दोदरी के साथ भवन में वापस लौटा। वे वक्र दृष्टि एवं विकराल स्वरूपवाली राक्षसियाँ मुँह फैलाकर दौड़ते हुए सीता के सम्मुख जा खड़ी हुई उनमें कोई भयंकर जटाओं से युक्त थी, किसी के कान अत्यन्त लम्बे थे, कोई स्थूल उदरयुक्त, कोई अहिमुखी, हयमुखी, विकट और क्रूर थी। उनके हाथों में विविध प्रकार के शस्त्र थे वे कहने लगीं- "इसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दें, इसका मांस नोच लें। इसका कलेजा भून कर खा लें इसकी हड्डियों की माला बनाकर पहन लें। इससे कैसा भय ? यह जनक कन्या रावण को स्वीकार नहीं करती अतः इसकी आँतें बाहर निकाल लें। इसका गला मरोड़कर बाँट कर खा लें।" सीता के, रावण का वरण करने को तैयार न होने के कारण वे कर्कश स्वर में चीख रही थीं।

उन राक्षसियों के बाद नाक कटी हुई शूर्पणखा फें-फें करती हुई सीता के पास आई और बोली "हे सीते, तुम रावण की उत्पत्ति के विषय में सुनो- "ब्रह्मदेव के कुल में पुलस्त्य, विश्रवा और उसके पश्चात् रावण का जन्म हुआ। सारांश रूप में रावण ब्रह्मा की चौथी पीढ़ी का है; उसकी बुद्धि तीक्ष्ण है, वेदों का पारायण करने वाली है। वह चौदह भुवनों से युक्त राज्य का स्वामी है। हे मूर्ख, तुम ऐसे रावण का वरण करने को तैयार नहीं हो। रावण ब्रह्मवंशी ब्राम्हण है। श्रीराम तुच्छ सूर्यवंशी क्षत्रिय है। उस राम के प्रति तुम्हारी आसक्ति है। रावण श्रेष्ठ वर्णी है। सुर-असुरों पर उसका आधिपत्य है, श्रीराम मात्र भिक्षुक है। रावण के घर ऋद्धि सिद्धि का निवास है परन्तु वनवासी राम मात्र फलमूल खाने वाला है। अतः मेरा कहना मानो, रावण की प्रिय रानी बनकर दिव्य भोगों के उपभोग का अनुभव करो। संसार तुम्हें धन्य एवं सद्भाग्यपूर्ण मानेगा। अगर गर्दभ का वाहन छोड़कर कोई हाथी के वाहन पर घूमे तो संसार उसके सद्भाग्य को सराहता है। अतः तुम रावण का पाणिग्रहण करो।" शूर्पणखा के वचनों को सुनकर सीता ने उसकी उपेक्षा की। जिस प्रकार हंस भोवर की ओर नहीं देखता, उसी प्रकार सीता ने शूर्पणखा की बातों की ओर ध्यान नहीं दिया। सीता द्वारा कोई प्रत्युत्तर न देने के कारण शूर्पणखा क्रोधित होकर बोली "इसकी जीभ और कान काटकर इसका रक्त मैं पीऊँगी।" उसने राक्षसियों को आज्ञा दी- "जाओ मद्य लाओ, हम सब इसके माँस का फलाहार करेंगे। इसके शरीर को सब मिल बाँट कर खा लेंगी। सीता के माँस और चर्बी के साथ मद्य का स्वाद द्विगुणित हो जाएगा आनन्दित होकर निकुंबला में हम सब नृत्य करेंगी।"

सीता की निर्भयता, राक्षसियाँ प्रभावित-- राक्षसियों द्वारा सीता को नाना प्रकार से भयभीत करने के पश्चात् भी रामचन्द्र के आत्मबोध के कारण राक्षसियों से सीता भयभीत नहीं हुई वह दीन होकर विलाप नहीं कर रही थीं अपितु श्रीराम सुख से सुखमय हो गई थीं, उनकी इसी सुखसम्पन्नता के कारण राक्षसियाँ उसे तृण के समान क्षुद्र प्रतीत हो रही थीं। वह उनसे भयग्रस्त नहीं थीं। नित्य रामनाम स्मरण के कारण वह सदेह हो विदेही हो गई थीं। देह नष्ट होने की शंका भी उसके मन में न थी नाम से वैदेही होने के कारण देहभय से ग्रस्त नहीं थीं। श्रीराम के ध्यान में मग्न होने के कारण भय मुक्त

होने से देह की चिन्ता नहीं थी। वह राक्षसियों से बोलीं "तुम मुझे तोड़ो-मोड़ो अथवा सम्पूर्ण खा जाओ परन्तु मैं रावण का नाम भी नहीं देखूँगी। वैसी स्थिति मुझे स्पर्श भी नहीं कर सकती। देह राम को अर्पित करने की मेरी इच्छा है। श्रीराम पूर्ण रूप से तुममें भी व्याप्त हैं। तुम्हारे द्वारा भक्षण करते ही मेरी देह ब्रह्म को अर्पित हो जाएगी। देह को रखने से उसमें कृमि हो जाते हैं। अतः इस देह को परोपकार में लगायें तुम सब मेरा भक्षण करो। श्रीराम सर्व प्राणियों के भोक्ता हैं। मेरी देह छिन्न-भिन्न करो अथवा इसे अग्नि में डालो परन्तु रावण का स्पर्श भी मुझे वर्ज्य है, यह निश्चित है। यही मेरा नियम है विकृत मुख द्वारा कर्कश स्वर में चीखते चिल्लाते मुझे कितनी भी ताड़ना दो परन्तु स्वप्न, सुप्तावस्था अथवा जागृति किसी भी अवस्था में लंकाधीश का वरण मेरे लिए असम्भव है। सीता का साहस एवं धैर्य देखकर राक्षसियाँ थर-थर काँपने लगीं, वे आपस में कहने लगीं "यह सीता अगर कुपित हुई तो हम सभी को मार डालेगी। सीता हमसे द्वेष न कर हम में भी रघुनाथ के दर्शन कर रही है। रावण की आज्ञा से अगर इससे छल किया तो हम सभी की मृत्यु निश्चित है. इसकी अभिलाषा करने के कारण रावण की भी तत्काल मृत्यु हो जाएगी।"

त्रिजटा का स्वप्न, राक्षसियों का वापस लौटना- त्रिजटा क्रुद्ध होकर राक्षसियों से बोली- "मैं त्रिजटा, विभीषण की बहन, सत्वशिरोमणि राक्षसी, तुम क्रूर राक्षसियों को दूर हाने की आज्ञा करती हूँ। मैं जो सत्य वचन कह रही हूँ, वह ध्यान से सुनो। मैंने निद्रावस्था में एक स्वप्न देखा- तुम सीता का विरोध न कर, उसे साष्टांग प्रणाम कर, उसकी शरण में जाओ। तुम सीता का भक्षण करने के लिए उन्मुख होगी तो एक दूसरे का ही भक्षण करोगी। सीता सत्वराशि है, उसके विरोध में मत बोलो क्योंकि सीता सर्व प्राणिमात्र में समान रूप से व्याप्त है। जानकी परिपूर्ण जगदम्बा है, उसके चरणों की वन्दना करो।" त्रिजटा के वचन सुनकर राक्षसियाँ भय से काँपने लगी। उन्होंने त्रिजटा से विनती की कि 'उस स्वप्न में क्या-क्या देखा वह सब बताओ। त्रिजटा बताने लगी- श्वेत चार दाँतों से युक्त हाथी की पीठ पर श्रीरघुनाथ सीता एवं लक्ष्मण के साथ बैठे थे। सुरासुर चँवर डुला रहे थे। नर और वानर उनके गुणगान गा रहे थे। अपार वाद्यों की ध्वनि सहित ऋषि उनका जयजयकार कर रहे थे मैंने स्वप्न में श्रीराम और सीता को अभेद रूप में देखा। मैं इसे उचित रीति से बताती हूँ। जिस प्रकार सूर्य के साथ में प्रकाश, चन्द्रमा के साथ चाँदनी, वायु के साथ गति, गुड़ के साथ मिठास, कपूर के साथ सुगंध, जल के साथ शीतलता होती है, उसी प्रकार पतिव्रता सीता श्रीराम के साथ थीं। ऐसे राम सीता का मुझे स्वप्न में दर्शन हुआ। यह मेरा सौभाग्य था। परन्तु उसके साथ रावण को होने वाली दुर्गति भी मैंने देखी। स्वप्न में देखे हुए रावण के सम्पूर्ण शरीर पर सिन्दूर लगा था, मस्तक सिन्दूर से भरा था। उसके गले में लाल फूलों की मालाएँ थीं, उसके दसों सिर नंगे थे। नाक पर कालिख लगी हुई थी। मगरी रावण को पकड़ कर पाताल लोक ले जाने का प्रयत्न कर रही थी। वह ऊँट पर बैठकर दक्षिण-दिशा की ओर जा रहा था, सुअर पर बैठकर अग्नि से खेल रहा था। गोबर में लोट रहा था। स्वप्न के आगे का हिस्सा बहुत अद्भुत था, इन्द्रजित् और कुंभकर्ण सेना सहित तेल पान कर गोबर में डूब-उतरा रहे थे। तभी मैंने देखा कि रावण के शयन-गृह पर बिजली गिरी। समस्त दुश्चिह्न मुझे स्वप्न में दिखाई दिए सीता अत्यन्त भाग्यवान् एवं पतिव्रता है। अतः तुम सब सद्‌प्रवृत्ति धारण कर उसकी वन्दना करो।" त्रिजटा के वचन सुनकर सारी राक्षसियाँ वापस लौट गईं।

हनुमान मन ही मन कहने लगे- 'त्रिजटा जैसी सात्त्विक राक्षसी देखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। वह सीता के लिए सहायक सिद्ध हुई।' भाग्यवान् सती सीता अशोक-वन में बैठकर लौकिक दृष्टि से दुखी हो रही थीं। वह कह रही थीं "मैं रावण के इस वन रूपी बन्दीगृह में राक्षसियों के आधीन हूँ। मैं अपनी जीवन लीला भी समाप्त नहीं कर सकती क्योंकि राक्षसियाँ मेरी रक्षा कर रही हैं, मुझे कोई विष देगा तो उसे रावण का दण्ड भुगतना पड़ेगा। मैं स्वयं शस्त्र से अपना घात करूँ, तो मुझे शस्त्र लाकर देने वाला कोई नहीं है। श्रीराम मेरा विचार नहीं करते अतः मैं भयंकर संकट में घिर गई हूँ। रावण मुझे वेग पूर्वक भगाकर यहाँ लंका में ले आया है, श्रीराम को यह ज्ञात ही नहीं होगा इसलिए वे मुझे ढूँढने नहीं आये। मुझे लंका में लाकर रखा है, यह श्रीराम को कौन बतायेगा ? जो बतायेगा वह अमित पुण्य का भागी बनेगा। वह पुण्य अतुलनीय होगा। अन्नदान, उदकदान, सामवेद का अध्ययन, द्विजपत्नी की मुक्तता ये सभी उस पुण्य की बराबरी नहीं कर सकते। करोड़ों राजसूय यज्ञ, ग्रहण के समय किया गया करोड़ों गायों का दान, सोने से परिपूर्ण धरादान भी इसके समान नहीं है। सीता को ढूँढने से उसे श्रीराम रूपी परमसुख की प्राप्ति होगी, जिसके समक्ष ब्रह्मज्ञान एवं मोक्ष भी बहुत छोटे हैं। मेरा व्रत, तप, दान, शील, निर्मल पातिव्रत्य राम के बिना निष्फल है। फली में जिस प्रकार दाना होता है परन्तु वह दिखाई नहीं देता, मात्र फली दिखाई देती है, उसी प्रकार रघुनन्दन के बिना व्रत, तप, दान सब निष्फल हो जाते हैं। श्रीराम पुरुष हैं तो सीता प्रकृति है। उन दोनों को मिलाने वाला पुण्यात्मा होता है। उसकी तुलना किसी से नहीं हो सकती, उसके कारण इन्द्रलोक व परलोक सुखी होते हैं। उसके कारण पितरों को मोक्ष-सुख मिलता है। शिवादिक उसके कारण सुखी होते हैं।"

हनुमान की प्रतिक्रिया- "सीता से श्रीराम के सम्बन्ध में बोलने से मुझे पुण्यराशि प्राप्त होगी"- यह कहते हुए हनुमान पेड़ पर नाचने लगे। सीता से मिलने की कल्पना से वे प्रसन्न हो उठे। वे स्वयं से बातें करने लगे 'धन्य हो सीता, जिनके मधुर शब्दों के अमृत से कान तृप्त हो गए " उनके शब्द मात्र कानों में पड़ने से परम आनन्द की प्राप्ति होती है। हनुमान को, प्रबुद्ध होने के कारण सीता के शब्दों का अर्थबोध होने में विलम्ब नहीं लगा। उनके मन में विचार आया- 'अभी सीता से भेंट करने पर उनके मन में विकल्प उत्पन्न होगा कि पुनः रावण आया है। तब संन्यासी वेश में आया था, अब वानर वेश में आया है। सीता के मन में विकल्प आते ही मिलने का कोई अर्थ नहीं रहेगा। अगर सीता से मिले बिना जाता हूँ तो रघुनाथ को क्या बताऊँगा। सीता को दूर से देखने की बात बताना मूर्खता होगी। प्रत्येक व्यक्ति पूछेगा कि सीता क्या बोलीं ? मैं सबको व वानरराज सुग्रीव को क्या बताऊँगा, श्रीराम एकांत में सीता द्वारा दिये गए चिह्न के विषय में पूछेंगे तो क्या कहूँगा ? सभी वानर कहेंगे कि समुद्र लाँघकर हनुमान का जाना और आना व्यर्थ ही हुआ। सीता से मिलकर उसके हाल पूछे बिना जाने से जगत् श्रेष्ठ श्रीराम क्षुब्ध हो जाएँगे। श्रीराम के नेत्रों की क्रोधाग्नि मुझे उसी क्षण जला देगी। सीतामाता से मिले बिना यहाँ से जाना बहुत बड़ी गलती होगी। राक्षसों द्वारा सतायी गई, श्रीराम के विरह से व्याकुल सीता को आश्वस्त किये बिना जाने पर वह प्राण त्याग देंगी। सीता के प्राण त्याग करते ही सम्पूर्ण रामायण वहीं समाप्त हो जाएगी और उसका कलंक मुझे ही लगेगा। श्रीराम क्षुब्ध हो जाएँगे। सीता के प्राण त्याग करने का अपयश भी मुझे ही मिलेगा। शुभ अथवा अशुभ कोई भी वार्ता सद्गुरु को न बताने पर शिष्य परम दोष का भागी बनता है। यह वर्तन गुरु द्रोह कहलाता है।' तब हनुमान को एक उपाय सूझा- 'राक्षसियों को अवगत हुए बिना अगर मैं सीता को कंधे पर बैठाकर राम के पास ले गया तो ......। परन्तु इससे

राम को सुख-प्राप्ति नहीं होगी। क्योंकि वानर सेना लेकर हाथों में सुसज्जित धनुषबाण धारण कर श्रीराम रावण एवं कुंभकर्ण का प्रधानों एवं सेना सहित वध करें; देवताओं का बन्दिवास समाप्त हो, नवग्रहों की बेड़ी टूटे और राम-राज्य की स्थापना हो, इसी में राम की वास्तविक कीर्ति फैलेगी। अगर मैं सीता को वहाँ ले गया तो श्रीराम को मेरे कारण अपयश प्राप्त होगा। अत: यह उपाय उचित नहीं है। इसका उपयोग नहीं करना चाहिए.'

तत्पश्चात् हनुमान ने निश्चय किया कि 'सीता से अवश्य भेंट करूँगा। यह भेंट रावण एवं राक्षसियों को पता चले बिना गुप्त रूप से करनी है। सीता को एकान्त में मिलने से उनके मन में विकल्प आयेगा। पहले संन्यासी वेश में कपट किया अब, वानर के रूप में छलने आया हुआ यह रावण ही है अत: उन्हें आश्वस्त करने के लिए पहले उनके समक्ष श्रीराम की पवित्र राममुद्रा से युक्त अँगूठी डालनी चाहिए। उस मुद्रिका का भावार्थ समझने पर वह वानर से मिलेंगी। हनुमान ने सोचा कि सीता को श्रीराम के मिलने जैसा अनुभव होगा। वह मुद्रिका से बातें करने लगेंगी उस संवाद के माध्यम से जो मधुर बातें सुनने को मिलेंगी, उसके समक्ष अमृत भी फीका पड़ जाएगा।-'

अध्याय ११

[हनुमान एवं सीता की पहली भेंट]

श्रीराम पत्नी सीता से भेंट होने के विचार मात्र से हनुमान अत्यन्त प्रसन्न मन से वहाँ के एक वृक्ष पर गुप्त रूप से बैठे हुए थे, जहाँ सीता एक वृक्ष के नीचे एकान्त में अलिप्त रूप से बैठी हुई थीं। सभी राक्षसियाँ अपने-अपने स्थान पर स्वाभाविक रूप से सो चुकी थीं। सीता सावधानी पूर्वक एक अशोक वृक्ष के नीचे बैठकर विचार कर रही थीं कि 'मैं पापकर्मों से दूर रहते हुए भी दु:ख भोग रही हूँ. मैंने अकारण ही लक्ष्मण को शाप दिया, उसी पाप के कारण रावण के चंगुल में फँस गई. लक्ष्मण द्वारा बतायी गई मर्यादा रेखा का उल्लंघन किया अत: श्रीराम से दूर होना पड़ा। श्रीराम भक्तों से दुर्व्यवहार के कारण मुझे श्रीराम का विरह हुआ। इन्हीं पापों के कारण रावण के हाथों पड़कर दु:ख भोग रही हूँ। मैं अवज्ञा करने वाली पापिनी होने के कारण रावण मुझे पत्नी बनने के लिए बाध्य कर रहा है। मेरे इस मिथ्या आचरण के करण मुझे स्वप्न में भी श्रीराम के दर्शन नहीं होते. पाप के कारण मुझे बहुत हानि उठानी पड़ रही है। श्रीरामनाम भी कानों को सुनाई नहीं पड़ रहा है। स्वप्न में श्रीराम के दर्शन नहीं हो पा रहे हैं. अत: किसी की भी अवज्ञा अथवा छल नहीं करना चाहिए, चाहे प्राणान्त ही क्यों न हो क्योंकि उन पापों के परिणाम अवश्य भोगने पड़ते हैं।" इस प्रकार पापों का विचार करती हुई जानकी अकेली विचारमग्न बैठी पश्चाताप कर रहीं थीं।

सीता द्वारा अपने पूर्वकर्मों के प्रति पश्चाताप– मैंने उस कलिकाल रूपी कंटक को अपनी बुद्धि से निश्चयपूर्वक मृग मान लिया और तीनों के मार्ग विलग करने का कर्म किया। मेरे उस क्षणिक लोभ के कारण मृग रूपी काल की वास्तविकता को न समझते हुए मैंने स्वयं ही अपने को फँसा लिया। मेरी कुबुद्धि जन्य मृग लोभ के कारण मुझ अभागी ने ही श्रीराम को उस मृग के पीछे भेजा। सत्वराशि लक्ष्मण जो कि मेरी रक्षा कर रहे थे, मैंने ही उन्हें बुरा-भला कहकर दूर भेजा. उन्होंने प्रथम मेरे सामान्य

आरोपों की ओर अनदेखा किया परन्तु मेरी पाप बुद्धि की पराकाष्ठा के कारण मेरे यह कहने पर कि तुम अकेले यहाँ रामपत्नी का उपभोग करने के लिए रुके हो और इसीलिए राम द्वारा बुलाये जाने पर भी वहाँ नहीं जा रहे हो, मेरे इन पाप वचनों को सुनना न पड़े इसलिए लक्ष्मण ने शीघ्र वहाँ से प्रस्थान किया। मैं ऐसी पापिनी हूँ श्रीराम की आज्ञा से मेरी रक्षा के लिए रुके हुए लक्ष्मण को मैंने ही अपने छल पूर्ण वचनों द्वारा आज्ञा का उल्लंघन कर दूर जाने लिए बाध्य किया। इसीलिए मेरी राम से भेंट न हो सकी। मेरे ही पापों के कारण रावण द्वारा मेरा हरण होकर मेरी दुर्दशा हुई। लक्ष्मण जो सबका सुमित्र है, छल पूर्वक उसे कुमित्र कहा। मेरे उस पाप के कारण ही दशमुख वाले अपवित्र रावण के चंगुल मे फँसी। धन्य है वह लक्ष्मण, जिसके द्वारा बनायी गई मर्यादा-रेखा का रावण उल्लंघन न कर सका। मेरे द्वारा उसका उल्लंघन करते ही मैं दुःखों में घिर गई। श्रीराम को मृग के पीछे भेजने की मेरी दुर्बुद्धि राम से विरह होने का कारण बनी। उससे ही मुझे दुःख प्राप्त हुआ। पति के पास स्वयं के लिए कुछ माँगना, यही स्त्रियों के निंद्य जीवन का कारण है। मेरी उस निंदनीय कृति के कारण ही रावण द्वारा बन्दिनी बनाकर लंका लायी गई। मैंने लोभवश मृग चर्म की चोली बनाने की माँग कर अपने व्रत की होली जला डाली महाबली श्रीराम मुझसे दूर हो गए और मैंने दुःख प्राप्त किया। आत्मा रूपी राम और निष्काम स्वरूप लक्ष्मण दोनों लाभ-हानि से परे हैं, निर्द्वन्द्व हैं। ऐसे राम और लक्ष्मण को मेरा दण्डवत् प्रणाम, मैं अनन्य भाव से उनकी शरण जाती हूँ।" ऐसा कहकर पश्चाताप करने वाली सीता को देखकर हनुमान को उनकी दयनीय स्थिति पर दया आ गई।

हनुमान द्वारा सीता के पास श्रीराम की मुद्रिका गिराना-- सीता की उस पश्चातापपूर्ण स्थिति से अवगत होने के पश्चात् उनका दुःख कम करने के लिए हनुमान श्रीराम की मुद्रिका सीता के समीप गिराते हैं। उस मुद्रिका की महत्ता ऐसी है कि उसके कारण सब दुःख दूर होते हैं और वह सत्यज्ञान स्वरूप मुद्रिका अपार सुख प्रदान करती है। जिस प्रकार दीपक अंधेरे को दूर करता है उसी प्रकार मुद्रिका दुःखों को दूर करती है। सूर्य चन्द्र जुगनू को आलोकित करते हैं उसी प्रकार राममुद्रा जीवन को प्रकाशित करती है। सीता ने जब यह प्रकाशयुक्त श्रीराम मुद्रिका देखी तो वह आश्चर्यचकित हो उठी। उसने मन ही मन प्रश्न किया- 'यह अचानक यहाँ कैसे आ गई ?" वह स्वर्णमुद्रा श्रीराम के सान्निध्य से शुद्ध स्वर्ण की थी। जानकी स्वयं स्वर्णवर्णा थीं। मुद्रिका में सहस्रनामों का प्रभामंडल था कुछ अक्षरों की पंक्तियाँ थीं। जानकी ने उन अक्षरों को देखा। उनमें दशावतारों का भाष्य था यह मुद्रिका रत्नजटित थी। सीता उसे देखकर प्रसन्न हुई। मुद्रिका का अन्तर्भाग अत्यन्त पवित्र था। उसमें परब्रह्म का सार निहित था। उस मुद्रिका को देखकर सीता भाव-विभोर हो उठीं। उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। मुद्रिका श्रीराम नाम से शोभायमान थी। उस मुद्रिका में सीता को श्रीराम के ही दर्शन हो रहे थे मुद्रिका देखते ही सीता को अनुभव हुआ कि श्रीराम स्वयं ही पधारे हैं। वह अपना आँचल सँवार कर लजाकर नीचे देखने लगीं। उनका सर्वांग हर्ष से परिपूर्ण हो उठा। उनके मन में आया कि 'लक्ष्मण कहाँ है। दुष्ट अपशब्दों से मैंने उसे अपमानित किया है अतः मैं उसके चरणों को अपने केशों से पखारूँगी। उसको साष्टांग दंडवत् प्रणाम करूँगी।

सीता उन पश्चातापपूर्ण विचारों में खो गई थीं। वह जब इन विचारों से मुक्त हुई तब श्रीराम की मुद्रिका देखकर उनका मन प्रेमातुर हो उठा। उन्होंने मुद्रिका मस्तक से स्पर्श कर वंदना की। फिर उसे हृदय से लगाकर तत्पश्चात् उसको चूमकर बोलीं- 'तुम मेरे लिए सुख लेकर आयी हो। हे मुद्रिके,

बैठो तुम्हारे चरण-स्पर्श कर मैं तीर्थ-प्राशन करूँगी। तुम्हारे चरण सहलाऊँगी। श्रीराम की अँगूठी होने के कारण तुम मेरी सखी हो। समुद्र लाँघकर पर्वतों को पार कर तुम थक गई होगी।' मुद्रिका सजीव है अथवा निर्जीव, सीता को इसका भी भान न था। हनुमान को उनकी भक्ति एवं प्रेम का अनुमान हो गया था वृक्ष की ओट से यह सब देखते हुए उनके नेत्रों से आँसू बहने लगे। हम स्वयं को भक्त कहते हैं परन्तु ऐसी प्रेम-भावना हमारे में भी नहीं है। जानकी के इस प्रेम के कारण ही रघुनाथ इनसे प्रसन्न हैं. अचेतन में प्रेम प्रस्फुटित हो, ऐसी भावना किसी में भी नहीं होती। श्रीराम जो सबमें व्याप्त हैं, सबके लिए वन्दनीय हैं, वे इन पर प्रसन्न हैं। सगुण, निर्गुण सद्गुरु भक्त जो उनकी वन्दना करते हैं, वे मुक्त होते हैं। जो निंदा करते हैं, उन्हें नरक प्राप्त होता है। ऐसा वेद शास्त्रों में कहा गया है, हनुमान ऐसा सोचने लगे।

सीता द्वारा मुद्रिका से मनोगत कथन– श्रीराममुद्रिका देखकर सीता को अत्यानन्द की अनुभूति हुई। वह मन ही मन मुद्रिका से प्रश्न करने लगीं- 'श्रीराम और लक्ष्मण कुशल होते हुए भी मुझे यहाँ से मुक्त क्यों नहीं कराते ? उनके पास भीषण बाण होते हुए भी वे पराक्रम क्यों नहीं करते ? श्रीराम का बाण सम्पूर्ण समुद्र को सोखने की शक्ति रखता है फिर वह रावण का कुल-सहित निर्दलन क्यों नहीं करते ? या फिर उन दोनों वीरों ने इस सृष्टि का त्याग कर दिया, यह दुखातिरेक पूर्ण वार्ता होने के कारण तुम कह नहीं पा रही हो, इसीलिए तुम मौन हो ? तुम बहुत ज्ञानी हो श्रीराम परलोक गये, इसीलिए तुम मुझे बुलाने आयी हो क्योंकि अगर वे ठीक होते तो निमिषार्द्ध में ही उन्होंने मुझे यहाँ से मुक्त करा लिया होता। हे मुद्रिके, तुम्हीं मुझे कुछ बताओ। रावण मेरा हरण करने के पश्चात् राम लक्ष्मण जब पंचवटी में वापस आये, तब उस संकटपूर्ण परिस्थिति में उन्होंने क्या किया ? मुझे पर्णकुटी में न पाकर वे दोनों अत्यन्त दुःखी हुए होंगे। तब उन्होंने शस्त्रों द्वारा स्वयं को आहत कर लिया अथवा गले में फाँसी लगा ली ? उन्होंने लोक लज्जा के कारण विषपान कर प्राण-त्याग कर दिये अथवा मेरे दुःख के कारण वे मूर्च्छित हो गए और अंत में दुःख से विह्वल होकर उनके प्राण-पखेरू उड़ गए। क्या उन्होंने 'सीते, सीते' ऐसा आक्रोश करते हुए प्राण त्याग दिये अथवा व्याकुल होकर पानी-पानी कहते हुए उनके प्राण चले गए या फिर मेरे दुःख से भ्रमित होकर उन्होंने प्राण त्याग दिये। पर्वत पर समाधि लगाकर उन्होंने प्राणों का त्याग कर दिया अथवा निर्जन वन में मूर्च्छित अवस्था में भेड़िये बाघ, सिंह, जंगली हाथी इत्यादि हिंस्र श्वापदों का शिकार हो गए, या सागर में डूबने से मगर व मछलियों ने निगल लिया अथवा गुफा में प्रवेश करने पर लकड़बग्घे इत्यादि खा गये ?"

सीता आगे बोलीं "वे दोनों महावीर हैं। उनका सिंह बाघ इत्यादि कुछ नहीं बिगाड़ सकते। कहीं ऐसा तो नहीं कि फलमूल खाते समय अथवा निद्रित अवस्था में रावण ने कपटपूर्वक उनकी हत्या कर दी हो परन्तु राम के समक्ष कपट चल नहीं सकता। श्रीराम का बाण देखते ही रावण भागने लगता है श्रीराम अत्यन्त सजग हैं विश्वामित्र के यज्ञ में उन्होंने रात दिन सावधान रहकर कपट करने वाले सुबाहु को मार गिराया। सुन्दर स्त्री बनकर कपट करने आयी शूर्पणखा की दुर्दशा कर दी। मेरे दुःख में शोकग्रस्त होकर श्रीराम ने प्राण त्याग दिया अन्यथा रावण का वध कर मुझे मुक्त कराने के लिए वे अवश्य आते। श्रीराम के तीक्ष्ण बाणों से दुष्ट राक्षस मारे गए होते. महासागर को सोखकर नर वानर यहाँ अवश्य आते। बाणों की अखंड वर्षा से उन्होंने लंका को होली जला दी होती. रावण का समूल नाश कर जनक-कन्या को मुक्त करा लिया होता विराध द्वारा मेरा स्पर्श करते ही एक बाण से राम ने उसका वध कर दिया। श्रीराम अगर जीवित होते तो उन्होंने रावण को भी मार दिया होता चौदह सहस्र राक्षसों

सहित त्रिशिरा व खर-दूषण का जिसने वध किया, उन्होंने रावण का क्षणार्द्ध में वध कर दिया होता। रावण द्वारा अपनी पत्नी का हरण कर लिए जाने पर दुःख के कारण श्रीराम उदासीन हो गए हैं तथा शस्त्रों का त्याग कर संन्यासी होकर वन में घूम रहे हैं। सन्यासी का सहज लक्षण है देह का मोह न करना, स्त्री की चिन्ता न करना। फिर यहाँ आने का विचार व्यर्थ है। संन्यासी का धर्म होता है कि वह प्राणिमात्र को अभय दान दे। अतः अब रावण का वध न करने का राम ने निश्चय किया होगा। अब लंका आने की सम्भावना ही नहीं है।" फिर सीता विचार करने लगीं 'रावण द्वारा मेरा हरण करते ही श्रीराम समाधिस्थ हो गए होंगे तथा समाधि सुख की स्थिति में राम और सीता का अस्तित्व ही शेष नहीं रह जाता। रावण द्वारा अपनी पत्नी का हरण हो गया है, यह भी उन्हें विस्मृत हो गया होगा। समाधिस्थ अवस्था में प्रपंच मिथ्या हो जाता है। फिर श्रीराम, रावण सभी मिथ्या है तो कौन किसकी चिंता करेगा। हे मुद्रिके, मुझे सच-सच बताओ कि श्रीराम सन्यासी हो गए, समाधिस्थ हो गए अथवा उन्होंने देह त्याग कर दिया। तुम्हारा मौन यही कहता है कि राम और लक्ष्मण मृत्यु को प्राप्त हुए। तुम्हारा मौन इसीलिए है जो मौन होता है, उसका ज्ञान अमर्यादित होता है तुम्हारे गुणों का कितना वर्णन करूँ। मैं वामांगी हूँ परन्तु तुम्हारा निवास दक्षिण भाग है। तुम श्रीराम के पास रहती हो। तुम सर्वज्ञ हो। सीता श्रीराम के शरीर पर स्थित अचेतन वस्तु की भी उपेक्षा एवं अवहेलना नहीं करतीं। श्रीराम की अचेतन मुद्रिका को भी वह उतना ही सम्मान देती हैं। मुद्रिका से मृदु भाषा में विनती करती हुई सीता पूछने लगीं 'इतना लम्बा मार्ग कैसे चलकर आयी। इतना कठिन समुद्र पार कर इस ओर कैसे आयी। क्या श्रीराम ने तुम्हें मुझे साँत्वना देने के लिए भेजा है, इतना कहते-कहते वहाँ जानकी मूर्च्छित हो गई उनके मूर्च्छित होते ही हनुमान सशंकित हो उठे कि सीता, श्रीराम के विरह में व्याकुल हैं; वह निश्चित ही प्राण त्याग कर देंगी। श्रीराम की मुद्रिका देखकर यह सोचकर कि निश्चित ही श्रीराम की वनवास में मृत्यु हो गई है, अगर सीता ने प्राण त्याग किया तो श्रीराम मुझसे ही पूछेंगे -'हनुमान, समुद्र लाँघकर तुमने तत्त्वतः क्या साध्य किया ?' इस प्रकार लंका में आकर न राम ही प्राप्त हुए न सीता, -यह अनर्थ हो रहा है ? इस विचार से हनुमान अत्यन्त दुःखी हुए।

हनुमान द्वारा श्रीराम का गुण वर्णन– सीता को मूर्च्छित हुआ देखकर हनुमान उद्विग्न हो उठे। उन्होंने हृदय में श्रीराम का स्मरण किया। नाम स्मरण के साथ ही विघ्न विनाशक बुद्धि का स्फुरण हुआ। सीता की मूर्च्छा दूर करने के लिए श्रीराम का गुणगान करने का उसने निश्चय किया तथा राम-कथा का गायन प्रारम्भ किया। "कौशल्या के गर्भ में गर्भातीत दाशरथी परब्रह्म श्रीरघुनाथ सूर्यवंश में अवतरित हुए। श्रीराम परब्रह्म सीता प्रकृति, श्रीराम चैतन्य सीता शक्ति, श्रीराम धैर्य सीता धैर्यवती हैं, श्रीराम अनन्य गति पूर्ण अवतारी हैं श्रीराम का आचरण गुरु एवं पिता की आज्ञा के अनुसार है। ब्राह्मणों के भक्त श्रीराम सुरों के सहायक हैं। कैकेयी को दिये गए वर के कारण दशरथ ने श्रीराम को दण्डकारण्य भेजा। श्रीराम के साथ सीता और लक्ष्मण भी वनवास के लिए गये। गंगातट पर पचवटी में श्रीराम ने सीता सहित निवास किया। वहाँ शूर्पणखा का कपट पहचान कर ज्ञानी श्रीराम ने उसके नाक-कान काटकर उसकी दुर्दशा की। उसका प्रतिशोध लेने के लिए आये त्रिशिरा, खर एवं दूषण को मार डाला। फिर जनस्थान पर विजय प्राप्त कर वह ब्राह्मणों को दान में दे दिया। सुवर्णमृग की कंचुकि का लोभ कर सीता ने राम को मृग के पीछे भेजा। विविध आरोप लगाकर लक्ष्मण को भी भेज दिया। रावण ने उसका हरण कर लिया। श्रीराम और लक्ष्मण सीता को ढूँढ़ते हुए उस स्थान पर पहुँचे जहाँ जटायु और रावण का युद्ध हुआ था। रथ और छत्र का नाश कर पक्षिराज जटायु ने रावण को रोका। अन्त में रावण ने जटायु को मार डाला।

उस स्थान पर पहुँचकर श्रीराम ने जटायु का उद्धार किया। आगे कबंध का वध कर श्रीराम और लक्ष्मण किष्किंधा आये। श्रीराम ने बालि का वध कर सुग्रीव को राज्य दिया। अंगद को युवराज बनाया। वानरों से उनके मैत्री सम्बन्ध स्थापित हुए। इसलिए श्रीराम ने आपको ढूँढ़ने के लिए मुझे भेजा है. सागर में शिलाओं से बाँध बनाकर पुत्र, प्रधान एवं समस्त राक्षसों सहित रावण को मारकर सीता का उद्धार करने का श्रीराम ने व्रत धारण किया है। कदाचित् मेरे सदृश वानर पर आपका विश्वास न हो इसलिए चिह्न स्वरूप यह मुद्रिका मैं लाया हूँ अत: इस वानर को रामदूत मानकर दु:ख एवं मूर्च्छा त्यागकर आप भेंट करें." हनुमान द्वारा रामचरित्र सुनकर सीता की मूर्च्छा टूटी। वृक्ष से कथा सुनाई देने का आभास होकर वह चकित हुई।

सीता फिर वृक्ष की ओर देखते हुए बोलीं- "कृपालु रघुनाथ मुझे आश्वस्त करने लिए यहीं पधारे हैं, वृक्ष कथा कह रहा है, जिससे लगता है श्रीराम निश्चित ही आये हैं।" सीता ने वृक्ष की वन्दना करते हुए पूछा "श्रीराम नाम का कीर्तन कौन कर रहा है ? उसके मुख के दर्शन कर मैं उसे दण्डवत् प्रणाम करूँगी। जिसको रामकथा का ज्ञान है, उसकी चरण धूलि को मैं आनन्दपूर्वक वन्दना करूँगी जिसके मुख में श्रीराम नाम सकीर्तन है, उसके दर्शन से मुझे परम सुख एवं समाधान की प्राप्ति होगी। इस सीता के चित्त में प्रेम एव उत्कंठा उत्पन्न हुई है अत: जो कृपालु यह चिह्न स्वरूप मुद्रिका लाया है, वह कृपा कर मुझसे मिले। सीता की भावपूर्ण विनती सुनकर हनुमान वृक्ष से नीचे उतरे। उन्होंने सीता को दण्डवत् प्रणाम किया। उनके चरणों पर मस्तक रखा। सीता को देखकर, उनसे मिलकर हनुमान के आनन्द की सीमा न रही किसी को महानिधि मिल जाय, समुद्र अंजुलि में समा जाय अथवा कलिकाल पर विजय प्राप्त हो जाय, उसके जैसी मनःस्थिति हनुमान की हो गई।

हनुमान का आनन्द; सीता की शंका– हनुमान आनन्दित होकर सीता के चरणों पर लोटने लगे। उनके नेत्रों से आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगे और वे उत्साह पूर्वक नाचने लगे। सीता के मिलते ही यश प्राप्त होकर रघुनाथ का कार्य सम्पन्न हुआ। इस कारण वे उल्लसित हो उठे हनुमान की ऐसी अवस्था देखकर सीता भ्रमित हो उठीं। उनके मन में शंका उत्पन्न हुई- यह स्वयं को श्रीराम का दूत कह रहा है परन्तु श्रीराम के पास हनुमान कैसे आये। श्रीराम और लक्ष्मण दोनों शूर वीर हैं परन्तु पहले तो उनके साथ नर-वानर नहीं थे फिर यह वानर कौन है, जो ऐसी भंगिमाएँ कर रहा है। यह निश्चित ही रावण होगा। पहले संन्यासी बनकर आया था, अब वानर बनकर आया है। अत: इस पर कैसे विश्वास करें ? परन्तु यह तो श्रीराम की कथा सुना रहा है। अत: इसे कपटी कैसे कहा जाय। मैंने जो स्वप्न में देखा, वही यह बना रहा है। श्रीराम का नित्य ध्यान होने के कारण मैंने यह स्वप्न देखा। यहाँ रामदूत का आगमन असंभव है। लंका-दुर्ग दुर्गम है। बीच में भयंकर सागर है। अशोकवन तक का मार्ग कठिन है तब यह वानर यहाँ कैसे आया ? रावण रनिवास में रहता है, अशोक वन उसी में गुप्त रूप से बना है अत: इस रामदूत का यहाँ प्रवेश करना प्रत्यक्ष रूप से सम्भव नहीं है. अगर मैं यह स्वप्न मानूँ तो मैं तो पूरी तरह से सतर्क हूँ। मेरी अवस्था न निद्रा की है न स्वप्न की अत: यह वानर यहाँ पर वास्तव में आया है और वह राम कथा कह रहा है धन्य है यह राम भक्त हनुमान, जो मेरे भाग्य से मुझे ढूँढ़ने के लिए यहाँ आया है।" तत्पश्चात् सीता ने निश्चय किया कि हनुमान को झूठा न मानकर, वह जो कहेगा उसे सच मानूँगी सर्वप्रथम उसका पूर्ववृत्तान्त पूछना चाहिए।

❧❧❧❧

अध्याय १२

[सीता एवं हनुमान का वार्तालाप]

हनुमान को अचानक अशोक-वन में आया हुआ देखकर सीता उससे सम्पूर्ण वृत्तान्त पूछते हुए बोलीं- "मैं जिस समय वनवास में थी, उस समय तुम नहीं थे; तुम कैसे आये ? तुमने राम को कैसे देखा, तुम्हारी उनसे कैसे भेंट हुई ? तुमने क्या-क्या बातें कीं ? जिनमें परस्पर अनन्य प्रेम होता है, उनके विचार भी मिलते हैं। श्रीराम का कार्य करने के लिए तुमने अपने प्राणों की बाज़ी लगा दी- यह रहस्य मुझे बताओ। उनके वचनों में अमृत कैसे होता है। श्रीराम की शरीरयष्टि, रूपरेखा और गुण लक्षण बताओ। लक्ष्मण कैसे हैं ? उनके विषय में कहो। श्रीराम कथा सुनने से दुःख और शोक मन में उत्पन्न नहीं होते। भय समाप्त होता है तथा आनन्द की अनुभूति होती है। आत्म शांति प्राप्त होती है। इसीलिए मैं तुमसे पुनः-पुनः पूछ रही हूँ।"

श्रीराम की कथा का श्रवण करने के साथ मनन व निदिध्यासन न करने पर वैसी ही स्थिति होती है जैसी जल के बिना फसल की होती है। श्रीराम की कथा श्रद्धापूर्वक सुनने से उसकी महिमा बढ़ती है। मनन से मन की उन्मन स्थिति होती है। अहम् सोऽहम् में विलीन हो जाता है। चित्त चैतन्य स्वरूप होता है। बुद्धि में समरसता आती है तथा समाधान की प्राप्ति होती है। कर्म पूर्ण ब्रह्म हो जाता है। इन्द्रियों को आधार प्राप्त होता है। इस प्रकार सीता द्वारा श्रीराम-कथा के स्वरूप का आदरपूर्वक वर्णन करते ही हनुमान तटस्थ हो गए। उन्हें कुछ स्मरण नहीं रहा परन्तु श्रीराम नाम संकीर्तन करते ही वह विस्मरण की अवस्था से मुक्त होकर सावधान हुए।

हनुमान द्वारा श्रीराम के वर्णन सहित राम कथा बताना– सीता के पूछने पर हनुमान श्रीराम के स्वरूप का यथार्थ वर्णन करते हुए श्रीराम कथा सुनाने लगते हैं। लक्ष्मण का आत्मलक्षण, देहस्थिति, गुण-लावण्य यह सब उन्होंने प्रारम्भ से बताना प्रारम्भ किया। मारुति में राम कथा बताते समय मानों उत्साह का संचार हो गया। सीता आदर पूर्वक सुनने लगीं अतः वह आनन्द पूर्वक बताने लगे– "श्रीराम सुखस्वरूप चित्स्वरूप, कमल नेत्र हैं तथा सम्पूर्ण संसार की दृष्टि हैं; नेत्रों के बिना भी देख सकते हैं। उनके कुंडलों का आकार वर्णन करते हुए कोई कहता है कि मकराकार हैं, जिनसे समस्त विकार दूर होते हैं, कोई उन्हें निर्विकार आत्माभूषण भी कहते हैं। श्रीराम के कर्ण-सौन्दर्य के कारण उन कर्णाभूषणों को शोभा प्राप्त होती है। उन श्रवणों के सौन्दर्य को परब्रह्म कह सकते हैं। उनकी निरपेक्ष नासिका परमार्थ के तेज और सौन्दर्य को प्रदर्शित करती है। वह सुख सापेक्ष रूप से कैसे प्राप्त हो सकेगा ? श्रीराम की नासिका-स्थिति सम्पूर्ण प्राणिमात्र को नित्य विश्राम प्रदान करने वाली है। श्रीराम के प्राणों से प्राणि मात्र को गति प्राप्त होती है। श्रीराम का मुखचन्द्र निष्कलंक है और नित्य आनन्द प्रदान करता है। ब्रह्मादि देवों के लिए सुखदायक तथा जीव एवं शिव के लिए सुखकर है। जीव एवं शिव दोनों को श्रीराम के अधरों से आधार प्राप्त होता है। उनका मिलन होकर वे एकाकार होते हैं। शिव का सम्पूर्ण सुख श्रीराम में निहित है। श्रीराम के मुख में विद्यमान दंतपंक्ति मानों, ओंकार की श्रुति है। श्रुति का विश्रांति-स्थल श्रीराम का मुख चन्द्र है श्रीराम के मस्तक की तीन रेखाएँ मानों सत्‌चित् और आनंद हैं। उनके ललाट के भाग्य से सब लोग मिलजुल कर रहते हैं। प्रेमरूपी केशर युक्त पीला तिलक उनके मस्तक पर लगा है और उस पर निश्चय रूपी अक्षत लगे हुए हैं। प्रेम से परिपूर्ण जनों के श्रीराम प्रिय हैं,

"अहम् रूपी मृग को निर्लोभ से मारकर उस मृग की नाभि में स्थित सोऽहम रूपी कस्तूरी को निकालकर श्रीराम के शरीर में उसका लेप किया गया है। स्वधर्म कर्म फल पिरोकर बनी माला श्रीराम के गले में सुशोभित थी। श्रीराम प्रेम से परिपूर्ण, भक्तों को प्रिय हैं। ओंकार ही उनका शंखाकृति कंठ है, वहाँ से वेद प्रकट होते हैं। विधिवादों के माध्यम से त्रिकांडो* में प्रकट होते हैं। उनके हृदयस्थल पर चिद्रत्नजड़ित पदक सुशोभित हो रहा है, जो आत्मतेज से चमक रहा है। उनकी कमर में पीताम्बर है परन्तु वह वास्तव में चिदम्बर हैं। उन्होंने अच्छिद्र दृढ़ कछोटा धारण किया हुआ है वह एक पत्नीव्रती हैं। उनकी कास को पकड़कर भवसागर पार किया जा सकता है। श्रीराम सर्वव्यापी हैं। वे कमर में मेखला धारण किये हुए हैं, जिनमें छोटी छोटी घंटियाँ लगी हैं। वे भक्तिभावना से परिपूर्ण भक्तों को ऋद्धि-सिद्धि प्रदान कर रही है सिंह को अपनी क्षीण कटि पर गर्व था परन्तु श्रीराम की कटि को देखकर वह लज्जित हो वन में चला गया। श्रीराम की कमर देखकर उनकी कटिमेखला पर आकर्षित होकर सिंह वन में जाना भूल गए और जड़वत वहीं खड़े रहे"– हनुमान ने श्रीराम का ऐसा वर्णन किया।

श्रीराम के दर्शन से होने वाले लाभ का वर्णन करते हुए हनुमान बोले - "श्रीराम के चरणों की महत्ता ऐसी है कि वे समस्त गतियों की गति होते हुए भी गति को विश्रांति प्रदान करने वाले हैं। श्रीराम ने चरणों में जो आभूषण पहना हुआ है, उसकी महत्ता वेदों से भी बढ़कर है। इसलिए वेद मौन धारण कर बैठे है और श्रीराम के गुणगान की ही गर्जना होती है। परा, पश्यंति, मध्यमा और वैखरी ये चारों वाचाएँ परात्पर होते हुए इन चरणों में तोडर नामक आभूषण के रूप में समर्पित हैं। श्रीराम स्वयं चिन्मात्र ज्ञान स्वरूप परब्रह्म हैं। श्रीराम की शरीर यष्टि के समक्ष गगन ठिगना दिखाई देता है उनके मन के समक्ष श्रुति-शास्त्र मौन हो जाते हैं। उनके गुणों के कारण वे सगुण प्रतीत होते हैं परन्तु त्रिगुण उनमें समाहित होते हुए भी वे निर्गुण हैं श्रीराम एवं लक्ष्मण लक्ष्य एवं अलक्ष्य से निराले, सभी लक्षणों से परे हैं। श्रीराम के मुख से निसृत होने वाले अक्षर अमृत से भी मधुर है और जो भाग्यवान् उसका श्रवण करते हैं उनके सर्वांग में आनन्द रस का संचार होता है। श्रीराम के मुख के दर्शन के समक्ष समाधि सुख भी फीके पड़ जाते हैं। उनके मुख का दर्शन करने से स्वप्न में भी दु:ख दिखाई नहीं देते हैं और हर्ष की अनुभूति होती है परब्रह्म की व्याप्ति होकर सम्पूर्ण क्रियाकर्म ब्रह्म स्वरूप हो जाते हैं। धर्म-अधर्म भेद वाद श्रीराम की कृपा से विलीन हो जाते हैं। श्रीराम के समान ही उनके भ्राता लक्ष्मण भी हैं वे दोनों भिन्न दिखाई देने पर भी उनमें अभिन्नता विद्यमान है। हे सीते, आपको दंडवत् प्रणाम कर लक्ष्मण ने स्वयं आपकी कुशलता पूछी है। श्रीराम ने भी आपकी कुशलता पूछी है।

हनुमान के निवेदन पर सीता की प्रतिक्रिया– हनुमान का निवेदन सुनकर राम पत्नी सीता स्तब्ध हो गईं उन्हें आत्मविस्मृति हो गई मारुति ने अपने वचनों द्वारा श्रीराम को ही वहाँ उपस्थित कर दिया, जिससे सीता का मनोरथ पूर्ण होने से वे आनन्दित हो उठीं। उनके हृदय में हर्ष समा नहीं रहा था। सुख सन्तोष से परिपूर्ण होकर उन्होंने हनुमान को हृदय से लगा लिया। वानर के मुख से मनुष्यवाणी तथा जिस कथा को सुनकर भवबन्धन से मुक्ति होती है,ऐसी श्रीराम कथा उनके मुख से सुनकर सीता को आनन्द हुआ। श्रीराम से भेंट होने के सदृश अनुभव कर उनके दु:ख समाप्त हो गए। उन्हें लगा मानों सृष्टि सुखमय हो गई है। हर्ष से परिपूर्ण हो आनन्दपूर्वक भुजाएँ फैलाकर जिस प्रकार माता, पुत्र को हृदय

* त्रिकांड का तात्पर्य गद्य, पद्य एवं गीत से है। गद्य अर्थात् यजुर्वेद, पद्य अर्थात् ऋगवेद तथा गीत अर्थात् सामवेद।

से लगाती है, उसी प्रकार हनुमान को हृदय से लगा लिया। सीता को अपार सुख की अनुभूति हुई। हनुमान उनके परमप्रिय बन गए। "पति श्रीराम एवं देवर लक्ष्मण दोनों सुखसम्पन्न वीर हैं, तुम्हारा यह कथन सुनकर तथा श्रीराम की कथा सुनकर ब्रह्मसान्निध्य प्राप्त होकर मुझे जो सुख हुआ, वह अतुलनीय है। राम कथा सुनाकर तुमने मुझे सुख प्रदान किया अतः मैं तुम्हें वरदान देती हूँ।"

सीता हनुमान को वर देते हुए बोलीं– "हनुमान तुम चिरंजीवी हो। तुम्हारा सम्पूर्ण जीवन, ज्ञान एवं अनुभव से सम्पन्न होकर तुम्हें श्रीराम के चरणों में नित्य नये सुखों एवं वैभव की प्राप्ति होगी। तुम्हारे समक्ष कलिकाल भी थर-थर काँपेगा-ऐसा तुम्हारा पराक्रम होगा। भूमंडल में तुम्हें सदा यश की प्राप्ति होगी। प्रापंचिक ज्ञान का निरसन होकर श्रीराम-भक्ति से तुम्हारी बुद्धि प्रबुद्ध होगी। श्रीराम-नाम स्मरण के बल पर तुम्हें मौलिक ज्ञान की प्राप्ति होगी। श्रीराम-नाम स्मरण से अपयश नष्ट होकर, त्रिभुवन में भी न समा पाने वाले अपार यश की प्राप्ति होती है। तुम्हारा चिरजीवत्व तुम सुखपूर्वक अनुभव करोगे। बल, बुद्धि एवं यश से भी अधिक तुम्हारी योग्यता देवों एव दानवों को दिखाई देगी। गोपद उल्लंघन के समान शतयोजन एवं अगाध समुद्र को लाँधकर तुम यहाँ तक आये हो, अतः हे प्रबुद्ध प्रज्ञावान् हनुमान तुम्हारे समक्ष तो मेरा वरदान भी तुच्छ है। सुरासुरों के लिए असम्भव ऐसी लंकापुरी को खोजकर तुमने राक्षसों को पीड़ित कर दिया। अकेले होकर भी रावण की सभा के राक्षसों को पीडित कर रावण को संत्रस्त कर दिया। इतनी त्राहि त्राहि करने के पश्चात् भी तुम्हारे आगमन का किसी को पता तक न चल सका– तुम इतने सामर्थ्यवान् हो। समस्त प्रतापी पुरुषों में तुम श्रेष्ठ हो। तुम अशोक वन में आये हो। तुम मेरे लिए माता–पिता के समान हो। तुम श्रीराम को सत्वर यहाँ ले आओ, मैं तुम्हारी दासी होकर अपनी केश राशि से तुम्हारे चरण पखारूँगी" ऐसा कहते हुए सीता हनुमान के चरणों पर गिर पड़ी।

हनुमान का आश्वासन; सीता की आशंका– सीता द्वारा अभिव्यक्त भावनाओं से उद्वेलित होते हुए हनुमान सीता से बोले- "आप अकारण ही शोक कर रही हैं। मुझे आप शीघ्र अपना कोई चिह्न दें, श्रीराम को अभी यहाँ पर ले आता हूँ। जिस प्रकार आपके लिए चिह्न रूप में मुद्रिका लाने के कारण आपने वानर को पहचाना, उसी प्रकार प्रकार श्रीराम को मुझ पर विश्वास होकर मेरे वचन सत्य प्रतीत हों, इसके लिए अपना कोई चिह्न दें। परन्तु रहने दें, चिह्न देने की कोई आवश्यकता नहीं, मुझे एक दूसरा उपाय सूझ रहा है। आप मेरी पीठ पर बैठें, मैं शीघ्र ही आपकी भेंट श्रीराम से कराता हूँ अतः अब विलम्ब न करें। आपकी खोज की सूचना देने के लिए अगर मैं आपको अकेला छोड़कर जाता हूँ तो राक्षसियाँ आपका वध कर देंगी और यह शोध व्यर्थ हो जाएगा। अभी मेरे समक्ष ही रावण आपका वध करने आया था, वह अनर्थ तो ईश्वर की कृपा से टल गया। अतः मैं आपको छोड़कर नहीं जा सकता श्रीराम द्वारा शूर्पणखा के नाक कान काटे जाने से वह आप पर क्रोधित है। वह राक्षसी आपका वध कर डालेगी अतः आपको छोड़कर जाना असम्भव है। आप शीघ्र मेरी पीठ पर बैठें, मैं आपको श्रीराम के पास ले चलता हूँ। आप अपने मन में किसी प्रकार की शंका धारण न करें अपने बल से लंका त्रिकुट तथा कनकगिरि उखाड़ फेंक कर एक ही उड़ान में समुद्र के उस पार पहुँच जाऊँगा। वहाँ से उड़ान भर कर श्रीराम एवं लक्ष्मण से आपका मिलाप करवाऊँगा। श्रीराम की शपथ लेकर कहता हूँ आप मेरी पीठ पर बैठें, आपको वेगपूर्वक ले जाते समय महाशूर राक्षस वीर भी मेरे समीप न आ सकेंगे। इन्द्रजित्, कुम्भकर्ण इत्यादि से लड़कर रावण को भी परास्त कर आपको श्रीराम से मिलवाऊँगा।"

श्रीराम के वचन सुनकर सीता ने अपने मन की शंकाएँ प्रकट करते हुए कहा "तुम्हारी पीठ पर बैठने पर तुम्हारी उड़ान के वेग से धक्का लगने पर मैं सागर में गिर जाऊँगी तथा मगर, घड़ियाल मछलियाँ इत्यादि समुद्री प्राणी मुझे खा जाएँगे और तुम अकारण ही संकट में पड़ जाओगे। अगर राक्षसों ने पीछा किया तो तुम युद्ध के लिए पीछे मुड़ोगे और उस युद्ध प्रसंग में मैं नीचे गिर पड़ूँगी और राक्षण क्रोध पूर्वक मेरा वध कर डालेंगे अतः मैं कैसे आऊँ। मेरे वध के पश्चात् अगर तुमने करोड़ों राक्षस मार भी दिए तो भी श्रीराम सुखी नहीं होंगे। अतः हनुमान तुम्हारा यह विचार उचित नहीं है।" सीता द्वारा शंका व्यक्त करने पर हनुमान बोले– "हे सीता माता, सावधानीपूर्वक मेरे वचन सुनें। मुझे किसी प्रकार की असुविधा नहीं होगी। मेरे क्रोधित होते ही मेरी पूँछ करोड़ों राक्षसों का वध कर देगी, मैं आपको सुरक्षित रखूँगा अगर असंख्य राक्षस भी आ जायें तो भी मेरी प्रतापी पूँछ सभी राक्षसों का वध कर देगी।" हनुमान के वचन सुनकर सीता बोली- "तुम्हारी इतनी सी पूँछ असंख्य राक्षसों का वध कर सकेगी, मुझे यह बात सत्य नहीं प्रतीत होती।"

पूँछ की सामर्थ्य का दर्शन; सीता की प्रतिक्रिया– हनुमान सीता की शंका का समाधान करते हुए बोले– "इस वानर की और इसकी पूँछ की शक्ति के विषय में अपनी शंका का समाधान आप स्वयं प्रत्यक्ष रूप में स्थिति देखकर करें।" इतना कहकर हनुमान ने अपना शरीर बढ़ाना प्रारम्भ किया विंध्य, मेरु, मन्दार, इत्यादि पर्वतों से भी बड़ा उनका आकार हो गया। उस समय वे प्रलय काल के रुद्र के समान भयंकर प्रतीत हुए, तत्पश्चात् हनुमान बोले - "आप मेरे विषय में अनभिज्ञ हैं। मैं अपने प्रभाव से मानव, दानव, देव, राक्षस सभी को संत्रस्त कर सकता हूँ। मेरी पूँछ भी प्रतापवान् है। मैं सभी राक्षसों का नाश कर निमिषार्द्ध में आपके सहित समस्त लंका को उठाकर ले जा सकता हूँ। अतः आप अपनी शंका त्यागकर मेरी पीठ पर बैठें। आपकी भेंट श्रीराम से कराकर मैं आपको सुख एवं आनन्द का अनुभव कराऊँगा आपको श्रीराम के पास ले जाने के लिए मुझमें असीम शक्ति है अतः आप अपने मन में उत्पन्न शंका को त्याग कर मेरी पीठ पर बैठें।" देवों एवं दानवों को भयभीत करने वाले हनुमान के सामर्थ्य को देखकर निःशंक होकर सीता स्वधर्म बताने लगीं "तुम्हें देखकर मुझे निश्चित ही ऐसा लगता है कि तुम मेरी भेंट श्रीराम से कराने में पूर्णतः समर्थ हो परन्तु श्रीराम के अतिरिक्त किसी पर-पुरुष का स्पर्श करना मेरे लिए पाप है वेद पुराणों में भी यही कहा गया है। पुरुषोत्तम श्रीराम के अतिरिक्त अन्य नर वानर का शरीर स्पर्श पतिव्रता के लिए महादोष सदृश कहा गया है। शरीर स्पर्श कर गुरुपत्नी की रक्षा करने वाला चन्द्रमा पाप का भागी बना तथा उसको पूर्ण प्रायश्चित करना पड़ा, इसी प्रकार मुझे पीठ पर बैठाने से तुम दोषी कहलाओगे, हम दोनों को ही महादोष का भागी बनना पड़ेगा। परपुरुष का अनुसरण करने पर दोनों ही पाप के भागी बनेंगे इस पर तुम विचार करो।" सीता के इन वचनों से हनुमान को हँसी आ गई।

तत्पश्चात् हनुमान बोले "मेरे श्रीराम से निकट सम्बन्ध हैं, उसकी सम्पूर्ण कथा का श्रवण करें। मैंने अंजनी से पूछा था कि इस सृष्टि में मेरा स्वामी कौन है इस पर उसने बताया था कि जिसे सगर्भ कछोटा दिखाई दे, वही तुम्हारा स्वामी है, एक बार श्रीराम एक वृक्ष के नीचे निद्रस्थ थे। मैं वृक्षपर बैठा हुआ था। उस समय उन्होंने सगर्भ ब्रह्मचर्य कछोटा देख लिया। श्रीराम लक्ष्मण से बोले– 'उस वानर को गर्भ से ब्रह्मचर्य है और वह सगर्भ कोपीन धारण किये हुए है' उनका यह आश्चर्यमिश्रित संवाद सुनकर मेरे मन में विचार आया कि इस दीन हीन व्यक्ति को मैं अपना स्वामी कैसे मानूँ ? सेवक सबल और

स्वामी दुर्बल यह कैसे सम्भव है ? तत्पश्चात् श्रीराम का बल देखने हेतु मैंने सैकड़ों वृक्ष उन पर फेंके। अन्त में पांच पर्वत फेंके परन्तु अपनी निद्रस्थ मुद्रा को न त्यागते हुए श्री रघुनाथ ने वे वृक्ष और पर्वत छेद डाले। श्रीराम सच्चे कृपालु थे अतः उन्होंने मुझ वानर को बाण से नहीं मारा। उन्होंने मेरी तरफ बाण रूपी पंखों से वायु प्रवाहित कर मुझे आकाश में उड़ा दिया। उस वायु वेग से मेरे हाथ पैर टेढ़े हो गए। मैं भयभीत हो गया तथा अपनी पूँछ लपेटने लगा तभी मेरे पिता वायु ने वहाँ आकर मुझे ज्ञान दिया 'श्रीराम परिपूर्ण परमात्मा हैं उनके पराक्रम की परीक्षा लेते हुए अपने प्राण गँवा दोगे, अतः तुम स्वयं को श्रीराम को समर्पित करो। राम की आज्ञा का पालन करते हुए अपना जीवन व्यतीत करो अपनी देह को रामसेवा में लगाओ। श्रीराम के सान्निध्य में नित्य, मुक्त, तृप्त एवं द्वन्द्व रहित होगे'। पिता के वचन सुनकर मैंने काया, वाचा एवं मन से श्रीराम की शरण जाकर उनके चरणों की वन्दना की और अपनी देह श्रीराम को समर्पित कर दी।'

ध्यान में मन में नित्य निदिध्यासन में कानों से, नेत्रों से तथा मुख से बैठे, लेटे हुए, गमनागमन के समय, भोजन के समय, जागृति में तथा स्वप्न में मैं नित्य श्रीराम का ही स्मरण करता रहता हूँ मैं श्रीराम का ऐसा अनन्य भक्त हूँ। आपके मन में परपुरुष से सम्बन्धित जो विकल्प उत्पन्न हुआ है, उस विषय में मैं जो कह रहा हूँ वह सावधानी पूर्वक सुनें यह गूढ़ रहस्य है। मुझे गर्भ में ही ब्रह्मचर्य कोपीन प्राप्त हुआ। अजनी माता ने भी मुझे नग्नावस्था में नहीं देखा, ब्रह्मदेव ने भी मुझे नग्न नहीं देखा, मेरी स्थिति इस प्रकार है। अतः श्रीराम ने मुझे मुद्रिका देकर आपके पास भेजा है परन्तु आपके मन में विकल्प विद्यमान है श्रीराम ने एक और चिह्न मुझे बतलाया है कि आपको वल्कल धारण करना नहीं आता था अतः श्रीराम ने स्वयं आपको वल्कल पहनाये थे। हनुमान द्वारा यह चिह्न बताने पर सीता मन में अचम्भित हुई तत्पश्चात् उनकी समस्त शंकाएँ दूर हो गईं। वे हनुमान से एकान्त में पूछने लगीं "श्रीराम की आज्ञा हमारे लिए वन्दनीय है। श्रीराम ने तुमसे क्या कहा है ? तुम सीता की खोज कर आओ कि सीता को लेकर आओ। अगर लेकर आने के लिये कहा है तो मैं तुम्हारे साथ चलूँगी परन्तु अगर खोज कर आने को कहा है तो तुम्हारा यहाँ से शीघ्र जाना ही उचित है।"

हनुमान द्वारा सीता से चिह्न लेकर प्रस्थान– सीता के विचारपूर्ण प्रश्न सुनकर सीता की सज्ञानता एवं निस्पृह वृत्ति देखकर हनुमान को उनके प्रति धन्यता का अनुभव हुआ। वे बोले– "माता मैं असत्य नहीं बोलता। श्रीराम ने मुझे आपको ढूँढ़ने की ही आज्ञा दी थी। इस पर सीता बोलीं - "तो अब विलम्ब न कर, शीघ्र श्रीराम को खोज के सम्बन्ध में सूचना दो। मेरी तुम्हारे ऊपर पूर्ण कृपा है। उनके चरणों पर मस्तक रख उन्हें खोज के विषय में बताओ"- यह कहते हुए सीता के मुख पर दैन्यता छा गई उनकी आँखों से आँसू गिरने लगे। हनुमान वापस जा रहे हैं, यह सोचकर वे दुःखी हो गईं। हनुमान ने सीता को साष्टांग प्रणाम किया। सीता की करुण अवस्था देख वह काँप उठे– "माते, शीघ्र अपने चिह्न मुझे दें, मैं प्रस्थान करता हूँ। श्रीराम ने मुद्रिका देकर जिस प्रकार सन्देश भेजा, उसी प्रकार आप भी संदेश दें। आपके द्वारा डाले गए वस्त्र और आभूषण किष्किन्धा में वानरों ने ले लिये। जब उन्हें श्रीराम को दिखाया तब वह फूट फूट कर रो रहे थे। श्रीराम नित्य आपका स्मरण करते हैं। मेरा लंका आगमन सत्य सिद्ध हो, इस हेतु आप अपने आभूषण एवं संदेश दें, जिससे श्रीराम सुखी हो सकें" हनुमान के वचन सुनकर सीता प्रसन्न हुईं। उन्होंने अपनी वेणी में विद्यमान मणि निशानी के रूप में श्रीराम के पास भेजी। "श्रीराम प्रसन्न होकर उसे अपने मस्तक से लगाएँगे"– ऐसा उन्होंने हनुमान को

बताया और कहा कि उन्हें चिह्न रूप में कहना कि एक बार सीता का कहना सुनकर श्रीराम ने कौए पर ब्रह्मास्त्र चलाया था– यह गुप्त और गंभीर प्रसंग बताने पर श्रीराम सत्य मान लेंगे। वह कौआ तीनों लोकों में सहायतार्थ भागा लेकिन राम का विरोध करने का धैर्य किसी ने नहीं दिखाया। अन्त में वह कौआ स्वयं श्रीराम की ही शरण में आया। उन्होंने मन्त्रोच्चार द्वारा उस दर्भशिखा को शान्त किया परन्तु कौए की बायीं आँख लेकर ही उसके प्राण बच पाये, यह प्रसंग कहते ही श्रीराम प्रसन्न होंगे। हे श्रीराम ऐसे शस्त्रास्त्र आपके पास होने पर भी मृग का पीछा करते हुए क्यों गये ? हे कृपालु पुरुषोत्तम अब मुझे बन्धन से मुक्त करें लक्ष्मण से भी मेरी विनती कहना कि मैंने व्यर्थ ही तुम्हें कष्ट दिया। उस पाप के फलस्वरूप ही रावण मुझे कष्ट दे रहा है।

किसी को भी कष्ट देना भयंकर पाप है इसी के परिणामस्वरूप राम और सीता के मध्य पर्वत एवं सागर बाधा रूप में उपस्थित हो गए। विविध अड़चनों ने उनको वियुक्त कर दिया। कष्ट देने का पाप भी अत्यन्त कष्टदायक होता है। "पापी रावण के हाथों पकड़कर सीता बन्दिनी हो गई, राम और लक्ष्मण दोनों से दूर होना पड़ा राक्षसों द्वारा नित्य कष्ट प्राप्त हुए। अपने इन कष्टों का कारण स्वयं मैं ही हूँ।"

अध्याय १३

[हनुमान द्वारा अशोकवन को तहस-नहस करना]

सीता हनुमान को वह मणि देते हुए बोलीं– "यह मणि देखकर श्रीराम के मन में तीनों की स्मृति जागृत होगी। कौशल्या माता सीता और पिता दशरथ ये तीनों श्रीराम को स्मरण हो जाएँगे। इसका कारण ध्यान पूर्वक सुनो। समुद्र मथन के समय कौस्तुभ मणि निकली थी वह श्रीविष्णु ने ले ली जिसके कारण इन्द्र का मन व्याकुल हो उठा। ब्रह्मा जी के शाप के कारण समस्त सम्पत्ति समुद्र में डूब गई। इन्द्र ने श्रीपति से विनती की कि मेरी कौस्तुभ-मणि मुझे लौटा दें। इन्द्र की विनती सुनकर विष्णु ने उन्हें फणिमणि नामक दूसरी मणि दे दी इन्द्र ने आनन्दपूर्वक उसे गले में धारण कर लिया। एक बार इन्द्र नमुचि नामक दैत्य से युद्ध करने के लिए अपनी सहायतार्थ राजा दशरथ को ले गए। राजा ने दैत्य का वध कर इन्द्र को विजय दिलवाई। इन्द्र ने संतुष्ट होकर वह कंठमणि दशरथ को दे दी। दशरथ ने नगरी में वापस लौटने पर वह मणि अपनी प्रिय पत्नी कौशल्या को दे दी। कौशल्या ने वह मणि प्रेमपूर्वक मुझे (जानकी को) दे दी। मैंने वह वेणी में गूँथ ली और वैसे ही वनवास के लिए आ गई।" वही मणि चिह्न के रूप में सीता ने हनुमान के हाथ में देकर श्रीराम के पास भेजा। "अत: यह मणि देखकर श्रीराम को पिता, माता एवं सीता तीनों की स्मृति हो आयेगी। यह चिह्न देकर श्रीरघुनाथ को यहाँ ले आना, यही तुम्हारे कार्य का प्रमाण होगा।" इस पर हनुमान बोले-"आप चिंता न करें, शीघ्र ही मैं श्रीराम को यहाँ लाऊँगा।" यह कहकर हनुमान ने सीता को साष्टांग प्रणाम किया। सीता ने उन्हें प्रेमपूर्वक आशीर्वाद दिया।

हनुमान द्वारा राक्षसों को पीड़ित करने की इच्छा–सीता से उनके चिह्न लेने के पश्चात् हनुमान के मन में आया कि 'राक्षसों से युद्ध किये बिना श्रीराम के पास जाना उचित नहीं। यहाँ कलह का कारण बने एवं नंदन वन की बराबरी करने वाले रावण के अशोक वन का मैं अपने बल से विध्वंस

कर डालूँगा। वन के विध्वंस की वार्ता सुनकर रावण क्रोधित हो उठेगा। वह अपने वीरों को असंख्य हाथी एवं घोड़ों के साथ युद्ध के लिए भेजेगा। उस सेना से युद्ध कर, मेघनाद को संत्रस्त कर, राक्षसों का निर्दलन कर, लंका में तोड़फोड़ करने के पश्चात् श्रीराम के पास जाना चाहिए।' हनुमान को यह विचार इसलिए अच्छा लगा क्योंकि इससे समस्त वानर समुदाय एवं स्वयं रघुनाथ भी प्रसन्न होंगे, मुझे युद्ध का समाधान एवं सुख प्राप्त होगा। लेकिन इसके लिए सीता की आज्ञा लेनी चाहिए क्योंकि उनकी आज्ञा के बिना यह विध्वंस सम्भव नहीं है।" सीता से अनुमति लेने के लिए हनुमान ने उपाय सोचा। सीता को प्रणाम करने पर सीता हनुमान से बोलीं– "तुम शीघ्र प्रस्थान करो।" इस पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न कर हनुमान शीश झुकाकर खड़े रहे। सीता उनसे बोलीं, "मुझे ढूँढ़ लेने का समाचार बताने का उत्साह नहीं दिखाई दे रहा। तुम्हारी उद्विग्नता का कारण मुझे बताओ।" हनुमान बोले– "आपको खोजते समय मुझे अन्नजल कुछ भी न प्राप्त हो सका, क्षुधा से मेरे प्राण व्याकुल हैं। सागर लाँघकर जाना मेरे लिए सम्भव न हो सकेगा।" हनुमान के ये वचन सुनकर सीता दु:खी होकर रोने लगीं

सीता विचार करने लगीं– 'इसको सन्तुष्ट किये बिना ये कैसे जा पाएगा। इस राम-भक्त का आदरातिथ्य न कर इसे भूखा रखा तो मैं पाप की भागिनी बनूँगी।' अत: वे हनुमान से बोलीं "हे सखा हनुमान, मुझे ढूँढ़ते हुए तुम बहुत थक गये हो अत: मैं जो कह रही हूँ, वह सुनो। मेरे हाथों के कंगन लेकर तुम लंका जाओ। वहाँ विविध प्रकार के खाद्य पदार्थ लेकर इच्छानुसार भोजन करो"। सीता का कहना सुनकर हनुमान ने प्रश्न किया "अन्न का स्वाद कैसा होता है" यह सुनकर सीता आश्चर्यचकित हुईं। उन्होंने पूछा– "हे हनुमान, तुम्हारा भोजन क्या है ? जो लवण अधिक खाते हैं, वे शीघ्र वृद्धावस्था को प्राप्त होते हैं। जो चूना लगाकर पान खाते है, उनके दाँत गिरते हैं।" हनुमान बोले– "हम रामभक्त वानर नित्य वन में निवास करते हैं और वन-फलों का ही आहार ग्रहण करते हैं। यह सुनकर सीता बोलीं "मेरे कंगन देकर तुम लंका में अपनी रुचि अनुसार फल लेकर भोजन करो"। इस पर मारुति पुन: बोले– "हे सीता, आप मेरी मर्यादा सुनें। मैं अपना भोजन स्वयं तैयार करता हूँ। मनुष्य जिन्हें स्पर्श कर लेते हैं, वे फल हम वानर अपवित्र मानते हैं। हम वानर स्वयं अपने हाथों से फल तोड़कर खाते हैं सुर या नरों द्वारा स्पर्श किये फल हम नहीं खाते।" सीता बोलीं "इस अशोक वन में सुन्दर एवं मधुर फल हैं परन्तु तुम उन्हें छुओगे तो रावण तुम्हारा वध कर देगा। हे हनुमान, तुम्हारा मरण मेरे लिए भी प्राणान्त सिद्ध होगा। उधर दु:ख से श्रीराम एवं लक्ष्मण भी मृत्यु को प्राप्त होंगे। श्रीराम के न रहने पर सुग्रीव एवं करोड़ों वानरों का भी अन्त हो जाएगा। भरत, शत्रुघ्न भी उनके पीछे मृत्यु को प्राप्त होंगे। इन फलों को तुम्हारे द्वारा स्पर्श करने पर इतना अनर्थ हो जाएगा।" हनुमान बोले– "तो मैं यहाँ से भूखा ही चला जाता हूँ।"

हनुमान के फलाहार का वर्णन– हनुमान ने अपना मनोगत प्रकट करते हुए कहा– "इस वन में अनेक फल दिखाई दे रहे हैं परन्तु वे मेरे भाग्य में हो नहीं हैं। जानकी मुझे आज्ञा नहीं दे रही हैं। इसलिए मेरे प्राणों के जाने का समय आ गया है। मार्ग में मेरे प्राण चले गए तो श्रीराम को कौन संदेश देगा, आपकी मुक्ति कैसे सम्भव हो सकेगी ? संकट उपस्थित हो गया है, मेरी क्षुधा से मेरा प्राणान्त निश्चित है।" हनुमान के वचन सुनकर सीता के हृदय में करुणा उत्पन्न हुई वे बोलीं– "अपनी क्षुधा शान्त होने तक तुम नीचे गिरे सभी फलों का भक्षण करो परन्तु श्रीराम की तुम्हें शपथ है फल तोड़कर मत खाना" सीता द्वारा दी गई शपथ सुनकर हनुमान अपनी भुजाओं को खुजलाते हुए स्वयं से बोले–

"यह मुझे मान्य है परन्तु अब यहाँ के वृक्षों का अन्त निश्चित है। तत्पश्चात् हनुमान सीता से दूर जाकर मन में फल खाने का विचार करने लगे। उन्होंने प्रलयकालाग्नि का स्मरण किया, जठराग्नि को अभिमंत्रित किया तथा फिर सावधानीपूर्वक फल खाना प्रारम्भ किया। भोजन के समय के अतिथि मुख्य द्विज दाँतों को सर्वप्रथम तृप्त कर धर्मयुक्त भोजन प्रारम्भ हुआ। द्विजों ने अगर प्रथम आहुति नहीं ग्रहण की तो अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिए। अतः सर्वज्ञ मारुति ने सर्व प्रथम द्विजों को भोजन कराया। द्विजों की [दाँतों की] दो पंक्तियाँ सादर उपस्थित थीं। हनुमान ने अपनी पूँछ को आज्ञा देकर शीघ्र स्वादिष्ट फलों की राशि अर्पित की। उन्हें शर्करा राशि दिखाई दी। नींबू का रस पित्त नाशक होता है अतः सर्वप्रथम इसका सेवन कर तत्पश्चात् फल खाने का निश्चय किया। नींबू, नारंगी इत्यादि फल शर्करा में मिलाकर उन्होंने खाये, वे श्रीराम की शपथ का पालन करते हुए वृक्ष उखाड़कर उस पर से गिरे हुए फल सीता की आज्ञानुसार खाते रहे। आम, जामुन, कटहल, अमरूद, केले इत्यादि फलों का भक्षण करते रहे। पिपली, काली मिर्च इत्यादि का अचार के समान भक्षण किया। द्विज दाँतों को वे कहते जा रहे थे कि श्रीराम को भोक्ता मानते हुए फलों का रसास्वादन करें। अंगूरों के गुच्छे व खजूर फलों का रसास्वादन करने के लिए अपनी पूँछ से पेड़ गिराते जा रहे थे। हनुमान एक स्थान पर बैठकर फल खा रहे थे। अपनी पूँछ की लम्बाई बढ़ाकर फल एकत्र कर लेते थे। श्रीराम स्वयं भोक्ता हैं, यह कहते हुए श्रीराम को अर्पण कर उन्होंने बेर आँवले गूलर इत्यादि कई प्रकार के फल खाये। विविध प्रकार के कच्चे एवं पके हुए फल खाते समय वह सुर श्रेष्ठों को मुख की विविध भाव-भंगिमाएँ बनाकर दिखा रहे थे। गन्ने के रस का प्राशन उन्होंने इस प्रकार किया जैसे कोई प्यासा गटागट पानी पीता है, फिर तृप्त होकर डकार ली। वे देवताओं की ओर आँखें मिचकाकर राक्षसों को अँगूठा दिखाकर दानवों को चिढ़ाकर, मानवों को घुड़की देकर विविध प्रकार की चेष्टाएँ कर रहे थे। हनुमान के शरीर के धक्के से जो हवा प्रवाहित हो रही थी, उससे पारिजात चन्दन आदि विविध सुगन्धी पुष्पों के वृक्ष चरमरा कर गिर पड़े। उन पर पूँछ का घेरा पड़ा था। पेड़ों के चरमरा कर टूटने से पक्षी किलबिल कर आकाश में उड़ रहे थे। उन्होंने मुख-शुद्धि के लिए सुपारी के वृक्ष उखाड़ कर अपनी दाढ़ों तले दबा लिए। इस प्रकार हनुमान ने सम्पूर्ण वन को तहस नहस कर डाला। शाल, ताल, तमाल, नारियल इत्यादि वृक्ष उखाड़कर राक्षसों से युद्ध करने के लिए हाथों में धारण कर लिये। इस प्रकार युद्ध-सामग्री एकत्र कर वे स्वयं देवदार के शिखर पर बैठ गए तथा वहाँ से वृक्ष गिराने लगे।

अशोक वन विध्वस्त हो रहा है, यह सुनकर वन रक्षक तथा वहाँ विद्यमान विकराल राक्षसियाँ भय चकित हो गईं, मूल वृक्ष उखाड़ लिये गए। सारणी रहट इत्यादि सिंचाई के साधन टूट गए, वहाँ विद्यमान विचित्र गृह मिट्टी में मिल गए। लताएँ धराशायी हो गईं। हनुमान ने गोपुरों, देवालयों को हाथ भी नहीं लगाया परन्तु अन्तःपुरों को तहस नहस कर दिया। यह सब देखकर राक्षसियाँ आश्चर्य चकित हो गईं। सबल राक्षस रखवाली के लिए वहाँ विद्यमान थे। वे वृक्षों के नीचे सो रहे थे। हनुमान ने जब वे वृक्ष उखाड़ कर दूर फेंक दिये तब वे रक्षक राक्षस जागृत हुए। वहाँ वृक्ष दिखाई न देने से वे आश्चर्यचकित हो गए। 'शंकर ने यह क्या कर डाला, ये उन्हीं के यहाँ से तो माँगकर लाये गए थे। ये उन्हें कैलास वापस ले गए अथवा वे आकाश में उड़ गए ?' ऐसे अनेक प्रश्न राक्षसों के मन में आने लगे। रावण की इतनी कठोर शासन-व्यवस्था होते हुए भी अकारण इतना विध्वंस हो गया। कहीं यह स्वप्न तो नहीं है, यह सोचकर उन्होंने आँखें मूँद लीं। राक्षसियाँ भयभीत होकर बोलीं- "यह वानर नहीं है, यह कृतान्त काल ही वन में घुसकर राक्षसों को मारने के लिए आया है।" यह सुनकर रक्षक दौड़कर

हनुमान को ढूँढते हुए 'पकड़ो-पकड़ो', कहकर उनको पकडकर रावण के समक्ष ले जाने के लिए आगे बढ़े। कुल चौदह हजार राक्षस वानर रूपी हनुमान को पकड़ने के लिए दौड़े। कोई लकड़ी के लट्ठे, कोई गुलेल तो कोई पत्थर वेगपूर्वक हनुमान की ओर फेंकने लगे। वे वन-रक्षक चिल्लाते हुए हनुमान की ओर आगे बढ़े तो वे सावधानी पूर्वक उन रक्षकों का वध करने के लिए तैयार थे। उन्होंने अपनी पूँछ को खुला छोड दिया फिर उस पूँछ के जोरदार आघात से, पूँछ से ही पकड़कर खींचते हुए उनको पटककर मार डाला। हनुमान की पूँछ के प्रहार से राक्षसों के शस्त्र निष्प्रभ हो जाते थे। पूँछ में फँसते ही राक्षसों के हृदय विदीर्ण हो जाते थे। अगर कोई भागने लगता था तो उसे वे पूँछ में फँसा लेते थे, अत: राक्षस अपने स्थान से हिल भी नहीं पा रहे थे और गहन संकट में फँस गए थे। इस प्रकार हनुमान ने अनेक राक्षसों को पूँछ से बाँधकर समुद्र में फेंक दिया था। वे राक्षस मगर एवं मछलियों का खाद्य बन गए। इस कारण भूत दीन हीन होकर कहने लगे-"इन सहस्त्रों राक्षसों को समुद्र की मछलियों को खाद्य-रूप में दे देने से हमें तो अब भूखा ही रहना पड़ेगा।" इस पर महाकाली बोलीं "हनुमान द्वारा अनेक बलवान् राक्षसों को मारने पर भूतों को माँस-चर्बी, रक्त पर्याप्त मात्रा में मिलेगा और वे तृप्त होंगे। समुद्र की मछलियों को जिस प्रकार मीन भोजन मिला है उसी प्रकार भूतों को भूत-भोजन मिलेगा भेड़िये, सियार, गिद्ध, चील एवं काल को तृप्ति भोजन प्राप्त होगा।" यह सुनकर भूतों ने जगदम्बा से पूछा- "यह किस दिन होगा ?" इस पर जगदम्बा बोलीं- "आज इसी क्षण हनुमान सबको तृप्त करेगा।" हनुमान द्वारा चौदह सहस्त्र रक्षक राक्षसों को पूँछ द्वारा वध करने से राक्षसियाँ भयभीत हो गईं।

राक्षसी एवं सीता संवाद; हनुमान का कर्तृत्व- राक्षसियों ने सीता से पूछा- "यह कौन, किसका वानर यहाँ आया है ? तुम्हें प्रणाम कर इसने क्या निश्चय किया है ? तुम्हारी आज्ञा लेकर इसने राक्षसों का वध किया। वन का विध्वंस किया। तुम्हीं ने यह कलह करवाया है।" सीता के चारों ओर एकत्र होकर वे राक्षसियाँ चिल्लाने लगीं- "इसे पकड़ो, मारो; इसके बालों को बाँध दो, इसी ने वानर को उकसाया है" परन्तु सीता मन में शंका-रहित होने के कारण उन्हें राक्षसियों का भय नहीं लगा। उन्हें उचित शब्दों में प्रत्युत्तर देते हुए वे बोलीं-"राक्षसों के पास अनेक प्रकार की मायावी शक्ति होती है। मारीच ने मृगवेश धारण कर श्रीराम को छला और उसे प्राण गँवाने पड़े। शूर्पणखा सुन्दर बनकर लक्ष्मण को छलने आई परन्तु उस कपट के परिणामस्वरूप उसी की नाक कट गई, सीता का कपटपूर्वक हरण करने के लिए रावण संन्यासी बना परन्तु वह भिखारी बन गया। इस प्रकार राक्षसों के पास अपार मायावी शक्ति होती है। अत: यह कौन वानर वेष में यहाँ आया है, मुझसे क्यों पूछती हो ? तुम्हीं उसकी माया को जान सकती हो।" सीता के चारों ओर अनेक राक्षसियों को एकत्र देखकर मारुति ने उन्हें डराया जिससे भयभीत होकर वे भागने लगीं। कोई थर थर काँपने लगीं, कोई भ्रमित तो कोई मूर्च्छित हो गई उनके मुख से भय के कारण शब्द नहीं निकल रहा था अत: वे चिल्ला भी नहीं पा रही थीं भयग्रस्त अवस्था में अस्त व्यस्त होकर उन्हें अपने वस्त्रों को भी सुध न रही। वैसी ही अवस्था में वे रावण के पास पहुँचीं उन्होंने रावण को वन का समाचार कह सुनाया। वन में जो राक्षसियाँ बच गई थीं वे भय से राक्षसों को भागने को लिए कहने लगीं। वन-रक्षक के पूँछ के आघात से मारे जाने पर कुछ राक्षसियाँ सीता के पीछे छिप गईं तो कोई इधर-उधर भागने लगीं। हनुमान को देखकर उन्हें कुछ होश ही नहीं रहा। हनुमान द्वारा गर्जना करते ही सीता बन्धन मुक्त हो गईं। श्रीराम भक्तों के वचनों का श्रवण करते ही तत्काल बंधनों से मुक्ति प्राप्त होती है।

रावण को सूचना मिलना; राक्षसों का विध्वंस-- राक्षसियों ने रावण को बताया कि एक महाप्रतापी वानर वीर ने वन का विध्वंस कर वन राक्षसों को मार डाला। यह वानर वीर कौन है, यह ज्ञात नहीं हो रहा सामर्थ्य में मानो कालाग्नि-रुद्र ही है। सीता को प्रणाम कर उसने वन रक्षकों का वध कर दिया जिस वन-प्रदेश में जानकी है, उसे फल-फूलों सहित सुरक्षित रखकर वन के अन्य भागों को, उसने तहस-नहस कर डाला। सीता से एकांत में कुछ बातें कर फिर वन को उजाड़ डाला।" यह समाचार सुन रावण क्रोधित हो उठा। उसने रक्षकों को बुलाकर कहा--"वन का विध्वंस करने वाले उस वानर को पकड़कर लाओ " यह सुनकर राक्षसियाँ बोलीं "ये बेचारे वन-रक्षक क्या करेंगे, उस वानर की पूँछ में इतनी शक्ति है कि मात्र उससे ही उसने वन-रक्षकों का वध कर दिया। चौदह हजार वन-रक्षकों को उस वानर ने पूँछ में बाँधकर जलचरों के खाने के लिए फेंक दिया। हनुमान ने रण मे अनेक राक्षसों को मारकर उनके माँस से भूतों को तृप्त करने के लिए महाकाली को आमन्त्रित किया है ऐसे वानरवीर का सामना ये वन रक्षक क्या कर पाएँगे अतः इस पर विचार कर भयंकर सैन्यराशि वहाँ भेजें।" राक्षसियाँ यह बताते समय थर थर काँप रही थीं। वे आगे बोलीं " उस मारुति को कई लोग मिलकर भी वश में नहीं कर सकते। उसकी पूँछ की शक्ति पर नियन्त्रण नहीं किया जा सकता सीता के समीप के वन और मन्दिरों को उसने क्षति नहीं पहुँचाई। वह धार्मिक, प्रबल एवं प्रतापी है।" राक्षसियों के वचन सुनकर रावण चौंक गया। बलशाली वानर के विषय में सुनकर रावण के सभासद भी काँपने लगे। वन के विध्वंस के विषय में सुनकर रावण भयभीत हो गया। अपने सदृश बलवान् युद्ध में पीठ न दिखाने वाले, पराक्रमी, युद्धोत्सुक, हठी, रणशूर किंकर नामक प्रसिद्ध अस्सी हजार महावीर, वानर को पकड़ने के लिए रावण ने भेजे, वे वीर बोले- "रावण को हमारी कीर्ति मालूम है फिर भी उस तुच्छ वानर को पकड़ने के लिए हमें भेज रहा है। वह बेचारा वानर हमारे सम्मुख क्या टिक पाएगा ? हमारे हाथों से कैसे बच पाएगा" इस प्रकार गर्जना करते हुए वे राक्षस शस्त्रों से सुसज्जित होकर दौड़ते हुए अशोक वन पहुँचे।"

हनुमान द्वारा राक्षसों का नाश; रावण को सन्देश-- अशोक वन के प्रासाद में आगे की कमानी पर काल सदृश प्रलयाग्नि हनुमान विश्राम कर रहे थे। उनको देखते ही हाथों में शस्त्र लेकर शीघ्र ही समस्त किंकर एक साथ दौड़े। शूल, मुद्गर, गदा, फरसा, त्रिशूल, तोमर, चंद्रचक्र, पट्टय, लहुड़ी इत्यादि शस्त्रों से उन्होंने वार किया। उन्हें लगा -- वानर शस्त्रों के आघात से क्षत विक्षत होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ इस कल्पना से किंकर राक्षस ताली बजाने लगे। "यह वानर बहुत पराक्रमी है, ऐसा बता रहे थे परन्तु वह तो हमसे युद्ध किये बिना ही जलकर भस्म हो गया। जिस प्रकार पर्वत पर पर्जन्य धारा पड़ती है उसी प्रकार अस्सी हजार महावीर राक्षसों ने बलपूर्वक हनुमान पर शस्त्रों की वर्षा की और स्वयं को युद्ध में यशस्वी समझकर तालियाँ बजाने लगे, यह देखकर हनुमान की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी उन्होंने स्वयं अपनी पूँछ ठोंकी और उसे बताया कि करोड़ों राक्षसों को अपने बुद्धि चातुर्य से मारना है। यह गुप्त सन्देश सुनते ही पूँछ फड़क उठी और उसकी प्रतिध्वनि गिरिकन्दराओं तथा सम्पूर्ण लंका में गूँज उठी राक्षसों के प्राण हरण करने वाले हनुमान ने इतनी जोर से भुभुःकार किया कि किंकर राक्षस चौंककर जमीन पर गिर पड़े भय से उनकी आँखें विस्फारित हुईं। हाथों से शस्त्र गिर पड़े। राक्षस भयभीत हो गए लेकिन पूँछ उनका पीछा करने लगी। राक्षस भय से भागने लगे तो हनुमान ने पूँछ में बाँधकर उनका वध कर दिया, किसी को पत्थर से कुचलकर तो किसी को पर्वत खड फेंक कर मार

गिराया। सभी राक्षसों का वध कर हनुमान ने आनन्दपूर्वक गर्जना की। फिर बोले– "मैं श्रीराम का दूत सीता को ढूँढने के लिए यहाँ आया हूँ। मैंने ही इस वन को तहस-नहस किया है। यह रावण को जाकर बता दो। यहाँ आकर स्वामी श्रीराम महावीर लक्ष्मण, वानरराज सुग्रीव रावण का वध करेंगे।

अध्याय १४

[हनुमान द्वारा राक्षसों एवं रावण पुत्र अक्षय का वध]

हनुमान द्वारा अस्सी हजार किंकर और चौदह हजार वन-रक्षक मारे जाने और मनोहारी वन के तहस-नहस होने के कारण रावण क्रोधित हो गया। यह वानर महा बलवान् है, यह उसे समझ में आ गया। तब उसने प्रहस्त के पुत्र जम्बुमाली को बुलवाया। उसे पास बुलाकर मन की बात कहते हुए बोला– "जिस वानर ने किंकर एवं वन रक्षकों का वध कर दिया एवं वन का विध्वंस किया, उससे युद्ध कर उसका तुम वध करो। वानर का वध किये बिना वापस लौटे तो तुम्हारी नाक काट दी जाएगी और राक्षसों में तुम नपुंसक कहलाओगे। तुम वानर का नाश नहीं कर पाये तो तुम्हारा मुँह काला कर, गर्दभ पर बैठाकर, सिर पर मूत्र छिड़ककर बाल मुँड़ा दिये जाएँगे।" इस प्रकार धमकी देते हुए रावण ने जम्बुमाली को युद्ध के लिए भेजा। वह पराक्रमी वीर क्रोध से फुफकारते हुए युद्ध के लिए निकला।

हनुमान और जम्बुमाली का युद्ध– जम्बुमाली ने बड़े गर्दभों को रथ में जोता और रथ में समस्त शस्त्र-सामग्री भर कर अद्भुत धनुष लेकर वह युद्ध के लिए आया। धनुष की टंकार कर क्रोध से गर्जना करते हुए वह बोला "किंकरों एवं वनरक्षकों का बदला लेने के लिए मैं आया हूँ।" इस पर हनुमान मृदु स्वर में बोले–"तुम लोगों ने सीता का हरण किया है इसलिए मैं करोड़ों राक्षसों का वध कर अंत में रावण का वध करूँगा। हे जम्बु, यदि तुम चाहते हो तो तुम्हें किंकरों एवं वन-रक्षकों से मिलने के लिए रथ सहित शीघ्र भेजता हूँ। जम्बु ने अर्द्धचन्द्र बाणों को एक साथ छोड़ा। वे बाण हनुमान के मस्तक से टकराकर वापस जम्बु के मस्तक पर जा लगे बाणों के आघात से जम्बुमाली मूर्च्छित हो गया। ऐसा विपरीत घटित होते ही हनुमान हँसने लगे। जम्बुमाली की मूर्च्छा टूटी। उसने हनुमान पर बाणों की वर्षा की, जिससे आकाश ढँक गया। भूमंडल पर बाणों का जाल फैल गया। रामनाम स्मरण से सामर्थ्यवान् होने के कारण हनुमान के शरीर को बाणों का आघात नहीं लग रहा था। हनुमान ने आस-पास की शिलाएँ बल पूर्वक जम्बुमाली पर फेंकी। उन शिलाओं को जम्बुमाली ने अपने बाणों से चूर्णकर दिया। इससे क्रुद्ध होकर हनुमान ने बड़े बड़े वृक्ष हाथों में लेकर जम्बुमाली पर प्रहार किया। उन वृक्षों को भी जम्बु ने अपने बाणों से छेद डाला। जम्बु ने अत्यन्त वेग से चार बाणों से वृक्ष को वेध कर तिल के समान कर दिया, जिससे हनुमान आश्चर्यचकित हो गए।

अब हनुमान के प्राण लेने के लिए जम्बुमाली ने क्रोधपूर्वक घंटायुक्त धधकता हुआ परिघ नाम शस्त्र निकाला। उस परिघ को हाथों में लेकर उसने गर्जना की, "हे वानर हनुमान तुम्हें मैं भस्म कर दूँगा मेरे इस परिघ के आघात को झेलो। राम तुम्हारी कैसे रक्षा करेंगे। रावण ने तुम्हें मारने के लिए ही मुझे नियुक्त किया है। मेरे इस परिघ का निवारण कर तुम्हारी रक्षा के लिए कौन आयेगा ? यह कहते हुए जंबु ने उस परिघ को वेगपूर्वक छोड़ा। हनुमान को उस शस्त्र के विषय में ज्ञान था अत: उन्होंने

अपने शरीर को झुकाकर उसके आघात को टाल दिया और वे आकाश में उड़ने लगे। उस परिघ के शस्त्र देव अत्यन्त कठोर थे अतः उसने हनुमान का पीछा किया। हनुमान ने उस परिघ को अपनी पूँछ से घेर लिया और उस शस्त्र-देवता का गला दबाने लगे, तब वह बोले– "हे हनुमान, मैं तुम्हारी शरण आया हूँ। सम्पूर्ण शस्त्र शक्ति तुम्हारी शरण में है। शस्त्र-शक्ति, भूत शक्ति, मन्त्र-शक्ति सब तुम्हारी शरण आयेंगे। अगर तुमने मुझे जीवन-दान दिया तभी यह घटित हो सकता है। अतः पूँछ का बन्धन खोलकर शस्त्र देवता को प्राण-दान कर हनुमान ने उस शक्ति मंडल को साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया शरणागत को मारना नहीं चाहिए, इसलिए हनुमान ने शस्त्रदेवता को जीवन-दान दिया। भूत भी श्रीरघुनाथ का भजन करें इस सद्बुद्धि से हनुमान ने सभी शक्तियों का वन्दन किया। इन सभी शक्तियों ने हनुमान से कहा– 'राक्षसों के वध के लिए हम सभी युद्ध में तुम्हारी सहायता करेंगी। सीता हमारी आद्यशक्ति है, रावण उसे संत्रस्त कर रहा है। इसलिए हम राक्षसों का पक्ष छोड़कर रामभक्तों की सहायता करेंगी।' हनुमान अपनी पूँछ से बोले "हे जगजेठी, युद्ध में करोड़ों शक्ति देवता मेरी सहायता करेंगे। तुम्हारे कारण ही वे मेरी सहायता के लिए तैयार हैं" इस प्रकार पूँछ की वन्दना करके हनुमान युद्ध के लिए सुसज्जित हुए। हनुमान को परिघ लेकर आता हुआ देखकर जंबुमाली अत्यन्त चिन्तित हुआ उसका ही शस्त्र उसे मारने के लिए आ रहा है, यह देखकर उसे दुःख हुआ। उसके मन में विचार आया कि 'रावण ने परस्त्री से अधर्म किया, उस पाप पूर्ण कृत्य के कारण शक्तियाँ क्रोधित हो गईं अतः सारे पराक्रमों का नाश होकर राक्षसों की मृत्यु का समय समीप आ गया।'

हनुमान का वध करने के लिए राक्षस द्वारा छोड़ा गया परिघ अब स्वयं जम्बु का मस्तक फोड़ने के लिए हनुमान के हाथों में आ गया था। हनुमान ने क्रोधपूर्ण आवेश में जम्बुमाली के मस्तक का निशाना साध कर परिघ उसकी ओर फेंका। मारुति द्वारा आकाश में उड़ते हुए क्रोधपूर्वक दाँत पीस कर वेगपूर्वक घुमाकर फेंका गया परिघ रथ पर जा गिरा। हनुमान में भीषण शक्ति विद्यमान थी परन्तु वह राक्षस उसे दिखाई ही नहीं दे रहा था। न तो उसका शरीर और न ही अस्थियाँ दिखाई दीं रथ, घोड़ा, धनुष शस्त्र सम्भार कुछ भी दिखाई न देने के कारण उन्होंने अन्दाज से ही वार किया हनुमान के उस भीषण आघात ने राक्षस का वध तो कर दिया परन्तु उसका मृत शरीर कहीं दिखाई न पड़ा। उस वार से राक्षस भस्म हो गया था। महाबली हनुमान के सदृश ही जम्बुमाली भी वीर था लेकिन हनुमान ने अपने वार से उसे धूल में मिला दिया हनुमान द्वारा जम्बु का वध करते ही प्रहस्त विलाप करने लगा जम्बु को मन्त्राग्नि देने के लिए प्रहस्त को जम्बु की अस्थियाँ भी न मिलीं पुत्र शोक से आक्रन्दन करते हुए प्रहस्त रावण से बोला– "मेरे ज्येष्ठ पुत्र जम्बुमाली को वानर ने धूल में मिला दिया।" यह सुनकर रावण ने अन्य प्रधान पुत्रों को तत्काल वानर का वध करने के लिए भेजा

प्रधान पुत्रों द्वारा हनुमान पर आक्रमण– रावण की सभा के प्रधान पुत्र अत्यन्त घमण्डी थे। अपने पराक्रम के बल पर उन्मत्त होकर वे महावीरों की भी परवाह नहीं करते थे वे बल के अभिमान से पूर्ण, शस्त्रों में निपुण तथा युद्ध कुशल थे। उनमें से कुछ युद्ध कुशल प्रधान पुत्रों को छाँटकर रावण ने उन्हें हनुमान से युद्ध करने के लिए भेजा। रावण उनसे बोला "तुम युद्ध निपुण हो, अपने पराक्रम का वर्णन करते रहते हो वन को तहस-नहस करने वाले उस वानर से युद्ध कर उसे बाँधकर लाओ अथवा उसका वध करो सभा में नित्य अपने पराक्रम की बातें सुनाते हो। वही पुरुषार्थ दिखाते हुए हनुमान पर विजय प्राप्त करो।" रावण द्वारा ऐसा कहते ही सभी प्रधान पुत्र शीघ्र रथ लेकर युद्ध के लिए

निकले। उनके गले में सोने में रत्नगुँथी मालाएँ सुशोभित थीं। "उनके सुसज्जित घोड़े जुते हुए रथों पर ध्वज एवं पताकाएँ फहरा रही थीं।'' हनुमान का वध किये बिना जो लौटेगा वह मातृगमनी कहलाएगा" यह शपथ लेकर सभी प्रधान पुत्रों ने युद्ध के लिए प्रस्थान किया। वे रथों में बैठकर हाथों में शस्त्र लेकर जा रहे थे। आगे वाद्य बज रहे थे तथा पीछे पुत्रों का नाश होने के भय से माताएँ विलाप करती हुई जा रही थीं वे कह रही थीं– "प्रहस्त के समान दु:ख देकर प्रधानों को दु:खी करने का रावण ने निश्चय कर लिया है। इसीलिए उसने हमारे पुत्रों को भेजा है। महाबलवान् प्रहस्त पुत्र जम्बुमाली युद्ध में मारा गया, किंकरों एवं वनरक्षकों का जिसने सर्वनाश कर दिया, उस वानर के समक्ष प्रधान पुत्र क्या हैं ? आज हमारा नि:सन्तान होना निश्चित है। वह वानर नहीं महाविघ्न है। राक्षसों का अन्त आ गया है। इस प्रकार प्रधान पुत्रों की स्त्रियाँ एवं माता-पिता तड़पते हुए आक्रोश कर रहे थे। उस हनुमान का वध करने के लिए गये हमारे पुत्रों का ही वध कर वह वानर अन्त कर देगा।"

प्रधान पुत्रों का हनुमान द्वारा नाश–उन प्रधान पुत्रों ने एकत्र होकर भीषण नाद करते हुए हनुमान पर आक्रमण कर दिया। वे हनुमान के पास आये। उस समय वे मन्दिर के महाद्वार पर स्थित तोरण पर निश्चित बैठे हुए थे। प्रधान पुत्रों को देखकर हनुमान प्रसन्न हुए। पतंगा जैसे दीपक की ओर झपटता है, उसी प्रकार प्रधान पुत्र शरवर्षा करते हुए हनुमान की ओर झपटे। तेज़ी से बाण छूटने लगे, शस्त्रों की खनखनाहट प्रारम्भ हो गई। बाण एक दूसरे से टकरा रहे थे। अनेक बाणों की वर्षा होने लगी, हनुमान सावधानी पूर्वक बैठ गए। बाणों का वार टालने के लिए तथा प्रधान पुत्रों का वध करने के लिए वे आगे दौड़े। पर्वत पर बादल बरसने की भाँति, उन पर बाणों की वर्षा हुई। प्रधान पुत्र एक दूसरे से कह रहे थे "हमारा निशाना अचूक है। ऐसे अचूक निशाने को साधते हुए हनुमान का वध किया जाय" कोई मस्तक पर निशाना साधने के लिए कह रहा था कोई हृदय में, कोई पैरों को चूर-चूर करने के लिए कह रहा था तो कोई पेट, पीठ तथा कंठ छेदने के लिए कह रहा था। एक हनुमान की नाक छेदने के लिए तो दूसरा कान छेदने के लिए शरसंधान कर रहा था। कोई पूँछ छेदने की बात कह रहा था।

प्रधान पुत्रों की बातें सुनकर हनुमान को हँसी आ गई। तत्पश्चात् उन्होंने अपनी पूँछ को ज़ोर से पटका। उच्चस्वर में गर्जना की जिससे वे सभी भयभीत हो उठे, फिर हनुमान ने उन सभी को पूँछ में बाँध कर मार डाला। हनुमान द्वारा एक ही छलाँग लगाने से प्राणान्त होकर वे सभी प्रधान पुत्र भूमि पर गिर पड़े। उनके रथ घोड़ों सहित गिर पड़े। उनके शव भूतल अतल, वितल, सुतल इत्यादि स्थानों पर न गिरकर हनुमान के सामर्थ्य से रसातल में चले गए। हनुमान के वार से देहों के शव भी नहीं बच पाते रसातल में स्थान न मिलने पर हनुमान ने उन्हें वैकुंठ भेज दिया, इस प्रकार हनुमान ने उन प्रधान पुत्रों का वध कर दिया। इसकी सूचना देने के लिए भी कोई न बचा। मारुति ने सभी का नाश कर दिया था। उनके सम्बन्धी यह सब दूर से देख रहे थे। उन्होंने प्रधान पुत्रों के रण में मारे जाते ही आक्रोश किया। उनका आक्रोश सुनकर समस्त लंका में हाहाकार मच गया। लोग कहने लगे- "रावण का विनाश-काल समीप आ गया है।" प्रहस्तादि समस्त प्रधान रावण के पास आकर चिल्लाते हुए कहने लगे "तुमने हमें नि:सन्तान कर दिया वह वानर न होकर सीता की क्रोधाग्नि की ज्वाला ही है, जो प्रज्वलित होकर राक्षस-कुल का निर्दलन करने के लिए उपस्थित हुई है

रावण द्वारा पाँच सेनापतियों को वानर पर आक्रमण के लिए भेजना–यूपाक्ष तथा विरुपाक्ष जैसे भयानक एवं प्रघस, दुर्धर और भासकर्ण जैसे वीर श्रेष्ठ इन पाँच सेनानियों को बुलाकर रावण ने

उन्हें युक्ति बताते हुए कहा "तुम वीरों में अतुलनीय पुरुषार्थ है। तुम अपनी समस्त शक्तियों सहित युद्धकर सब मिलकर वानर को पकडो। प्रधान पुत्रों के सामने जाते ही वानर ने उनका वध कर दिया तुम बुद्धिमान और प्रतिभाशाली हो। प्रदीर्घ युद्ध करो। चार चारों दिशाओं में रहो तथा एक आकाश में स्थित होकर अपनी समस्त शक्ति दिखाते हुए हनुमान को युद्ध कर पकड लो। युद्ध मे हाथ में न आने पर उसका नाश करो।" ऐसा बताकर रावण ने उनको भेज दिया। जिनके रथों पर पताकाएँ फहरा रही थीं, ऐसे उन युद्ध प्रवीण सेनानियों ने पाँच स्थानों पर खड़े होकर भीषण युद्ध प्रारम्भ किया। पाँच स्थानों से हनुमान को घेरकर पाँचों युद्ध करने लगे। उनके हाथों में अनेक शस्त्र थे। उन्होंने भीषण पंचमुखी पाँच बाण सामने से हनुमान के मस्तक पर छोड़े। हनुमान के पीछे भासकर्ण था, उसने हनुमान पर गदा प्रहार किया। दायें से यूपाक्ष, बायें से विरूपाक्ष ने हनुमान पर भालों से वार किया। ये वार उन्होंने दोनों भुजाओं के पास किये हनुमान का वध करने के लिए प्रघस ने आकाश में ऊँचाई पर जाकर मेघधाराओं की वर्षा के सदृश बाणों की वर्षा की। अब उन पाँचों ने एकत्र हो अचानक हनुमान पर धावा बोला, उस समय हनुमान की पूँछ ने अपना पराक्रम दिखाया। पूँछ ने पाँचों को घेर कर उनके शस्त्रों का नाश कर उन को पूँछ से बाँध लिया। जिस प्रकार योगी स्वयं अपने पंचप्राणों को रोक लेता है, उसी प्रकार पूँछ में उन पाँचों वीर सेनानियों के प्राण अवरुद्ध हो गए। जिस प्रकार प्रलय के समय काल पंचभूतों को घेर लेता है, उसी प्रकार हनुमान ने पाँचों सेनानियों का वध करने के लिए उनको पूँछ में बाँध लिया जिस प्रकार विवेकी साधुजन पाँचों विषयों का दमन करते हैं, उसी प्रकार वे पाँचों वीर हनुमान की पूँछ में उलझ गए।

हनुमान क्रोध से लाल होकर बाल सूर्य के समान प्रतीत होने लगे। उन्होंने महापर्वत उखाड़कर उन पाँचों पर डाले। उसके आघात से वे पाँचों सेनानी दबकर मृत्यु को प्राप्त हुए। पाँच विषयों का निर्दलन करने के पश्चात् परमार्थी व्यक्ति जिस प्रकार सुख का अनुभव करता है, उसी प्रकार पाँचों सेनापतियों का नाश करने के पश्चात् हनुमान को सुख एवं आनन्द की अनुभूति हुई। श्रीराम भक्त के आघात से अस्थिमांस जैसे गुण धर्म शेष नहीं रह जाते, सुख दायक मृत्यु प्रदान करने वाले होने के कारण हनुमान उन पाँचों को गुणधर्मों से परे ले गए। धन्य हैं रामभक्त हनुमान, जो मृत्यु देकर सुख प्रदान करते हैं, कोटि जन्मों के दुःखों का नाश करते हैं। हनुमान ने उन पाँचों सेनापतियों का अन्त कर जोर से गर्जना की, फिर उड़कर मन्दिर की कमानी पर जा बैठे। पंचभूतों की निवृत्ति से साधक को परमानन्द की अनुभूति होती है, वैसी ही अनुभूति पाँचों सेनापतियों को मारने के पश्चात् हनुमान को हो रही थी। हनुमान द्वारा पाँचों सेनापतियों के वध की वार्ता लंका में पहुँचने पर लंकापति रावण आश्चर्य से चौंक उठा यह वानर तो बहुत पराक्रमी है जिसने अशोकवन मुझसे छीन लिया, वह सीता को सहज ही ले जा सकता है। ऐसा विचार मन में आते ही रावण क्रोध से काँपने लगा तथा अब किसे भेजा जाय, यह सोचने लगा। तभी उसे सामने पुत्र अक्षय दिखाई दिया।

रावण द्वारा अक्षय को हनुमान से युद्ध के लिए भेजना– रावण ने पुत्र अक्षय को समक्ष देखते ही आज्ञा दी– "अपने पराक्रम से उस वानर का वध करने के लिए जाओ," पिता की आज्ञा होते ही अक्षय चल पड़ा उसके रत्न जडित रथ पर ध्वज और मनोहारी पताकाएँ थीं। आठ सर्वोत्तम घोड़ों से जुते हुए रथ में तूणीर में स्वर्ण बाण एवं स्वर्ण-धनुष रखा था। अक्षय कुमार के पीछे उसकी ही श्रेणी के राजकुमार थे, वे निपुण योद्धा थे। अक्षय कुमार को उनके सामर्थ्य का गर्व था। वह रथ में बैठकर जहाँ हनुमान था, वहाँ आया रावण के प्रधान आपस में कह रहे थे– 'रावण ने उस भयंकर बलवान्

वानर के समक्ष अक्षय को मरने के लिए ही भेज दिया है। उस वानर ने चौदह सहस्र वन रक्षकों को पूँछ में बाँधकर मगर एवं मछलियों को खिलाने के लिए डाल दिया। किंकरों को मार डाला गर्वशाली एवं नित्य अपने सामर्थ्य का वर्णन करने वाले प्रधान पुत्रों को मार डाला। जम्बुमाली का वध किया। पूँछ में बाँधकर पाँच सेनापतियों का अन्त कर दिया। ऐसे वानर के समक्ष बेचारा अक्षय क्या टिक पाएगा, हनुमान क्षण-मात्र में उसका वध कर डालेगा। अक्षय रावण का प्रिय पुत्र है, यह जानकर तो हनुमान उसे अवश्य मारेगा। अक्षय को भेजकर रावण ने उचित नहीं किया। हनुमान की दृष्टि के समक्ष उसके पड़ते ही वह वापस लौटकर नहीं आयेगा। अतः महाराज रावण को अक्षय की रक्षा के लिए शूर योद्धा भेजने चाहिए।"

रावण ने युद्धकुशल उत्साही रणवीरों को अक्षय की सहायता के लिए भेजा, वे महायोद्धा अश्व, गज एवं रथों पर आरूढ़ होकर हनुमान के समीप आये। उन वीरों के वहाँ पहुँचने से पहले ही अक्षय कुमार ने हनुमान पर आक्रमण करते हुए उन्हें बाणों की वर्षा कर आच्छादित कर दिया। मस्तक छाती एवं हाथों को बाणों की वर्षा कर ढँक दिया। उसको सहायतार्थ आये वीरों ने भी शस्त्र-वर्षा की। उन शस्त्रों से आच्छादित हनुमान मेघों से आच्छादित सूर्य के समान दिखाई दे रहे थे, जिस प्रकार घोर गर्जना करते हुए बरसती पर्जन्यधाराएँ पर्वत श्रेष्ठ को हानि नहीं पहुँचा सकतीं, उसी प्रकार राक्षसों की शर वर्षा करने पर भी हनुमान को कोई बाधा नहीं पहुँची। हनुमान की शक्ति के समक्ष उन बाणों के टुकड़े-टुकड़े हो जाते थे। युद्ध में मारुति का हारना असम्भव था। शत्रु के शस्त्रों को निष्प्रभ करते हुए हनुमान आकाश में उड़ चले अक्षय भी अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए रथ आकाश में ले गया। हनुमान और अक्षय दोनों ही उस आधार विहीन अंतरिक्ष में संग्राम कर रहे थे। सुरवर उनके बल की स्तुति कर रहे थे। दोनों में ही भीषण शक्ति थी। वे क्षण में भूमि पर आते थे तो दूसरे ही क्षण आकाश में पहुँच जाते थे। अक्षय जब हनुमान को मारने जाता तब उन्हें वार करने के लिए वे दिखाई नहीं देते थे और जब हनुमान अक्षय को मारने जाते तो उन्हें उसका रथ दिखाई नहीं देता था क्षण में रथ भूमि पर तथा क्षण-मात्र में आकाश में, कभी समुद्र में तो कभी पर्वत पर दिखाई देता था। अक्षय जैसे समर्थ योद्धा को देखकर और उसके क्रिया कलापों से हनुमान चकित एवं भ्रमित हो उठे। वे सोचने लगे कि इसका वध कैसे किया जाय ? अक्षय को सहायतार्थ आये राक्षस वीर भी कर रहे थे– "अक्षय कुमार वीर योद्धा है, इसीलिए रावण ने उसे भेजा है यह अकेला ही वानर का वध कर देगा। अगर अक्षय को भ्रमित कर यह वानर भागने लगेगा, तभी हम बाण वर्षा करते हुए उससे युद्ध करेंगे"

हनुमान द्वारा अक्षय का वध– अक्षय को रण में न हारता हुआ देखकर, हनुमान गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगे कि इसका वध कैसे किया जाय ? यह देखकर उनकी पूँछ क्रोधित हो उठी। उस राजपुत्र को मारने का उसने निश्चय किया। इच्छानुसार गति वाला रथ होने के कारण वह वश में नहीं हो रहा था, यह देखकर पूँछ ने उस रथ को चारों ओर से घेर लिया। पूँछ ने स्वर्गलोक, मृत्युलोक एवं कैलास सर्वत्र उसका पीछा किया और उसे कसकर बाँध लिया। तत्पश्चात् हनुमान ने पैरों से छत्र, हाथों से ध्वज एवं तालवृक्ष के आघात से रथ तोड़ डाला। एक ही वार में हनुमान ने रथ का डंडा, धुरी, आठों घोड़ों तथा सारथी का नाश कर दिया। पूँछ द्वारा रथ को उलटते ही अक्षय कूदकर नीचे आ गया तथा ढाल एवं तलवार हाथों में लेकर हनुमान का वध करने के लिए दौड़ा। भीषण नाद करते हुए अक्षय चिल्लाया "हनुमान, अब सावधान हो जाओ, मैं तुम्हारा वध कर दूँगा। रण में मेरा रथ तोड़ने में सफल

होने का अभिमान मत करो।" क्रोध से फुफकारते हुए, अत्यन्त कुशलतापूर्वक तलवार चमकाता वह हनुमान की ओर दौड़ा। दोनों का भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया। क्षण में पृथ्वी तथा क्षण में आकाश में जाते हुए एक दूसरे का वध करने के लिए दोनों आवेश पूर्वक युद्ध करने लगे।

हनुमान से युद्ध करते हुए अक्षय को हनुमान ने वायुवेग से दौड़कर पैरों की ओर से पकड़ लिया और उसे अत्यन्त वेगपूर्वक गोल घुमाया, वह आक्रोश करने लगा। चक्कर आने से वह मूर्च्छित हो गया. उसकी ढाल त्रिकूट पर, तलवार समुद्र में, मुकुट सभा में तथा आभूषण भूमि पर गिर पड़े। हनुमान ने उसकी शक्ति का अनुमान लगाकर उसे बलपूर्वक शिला पर पटका. उस समय लंकादुर्ग काँप उठा, उसकी प्रतिध्वनि पाताल में गूँजी। दिग्गज भयभीत हो उठे। उनके कान तीव्र ध्वनि से बन्द हो गए। पाताल में सर्प इधर-उधर भागने लगे। मेरु टूट कर गिर पड़ा। सम्पूर्ण पृथ्वी इससे कंपायमान हो उठी। रामभक्त हनुमान के परम ज्ञानी एवं कृपालु होने के कारण, अक्षय जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो गया, अक्षय की मृत्यु हो गई। रावण ने अक्षय की रक्षा के लिए करोड़ों राक्षसों की सेना अश्व, गज एवं रथ सहित भेजी थी। उस सेना को पूँछ ने पीछा करते हुए भगा दिया, हनुमान ने उन पर पत्थरों एवं शिलाओं की वर्षा की, वे राक्षस रक्त-रंजित हो भूमि पर गिर पड़े। इस प्रकार हनुमान ने सबका वध कर दिया। सुर, नर, ऋषि मुनि, उनकी कीर्ति का गान करने लगे। देवताओं ने पुष्प-वृष्टि की, ऋषियों ने जय-जयकार किया। वह अंजनी पुत्र धन्य है, जिसकी तीनों लोकों में कीर्ति फैल गई।

अध्याय १५

[इन्द्रजित् का मारुति से परास्त होकर अपमानित होना]

पुत्र अक्षय की रण में मृत्यु का समाचार सुनते ही रावण विलाप करते हुए भूमि पर लोटने लगा सभा स्थान में पड़े हुए अक्षय के मुकुट को देखकर वह आक्रंदन करने लगा "मैंने यह कैसा अनर्थ कर दिया। मेरे बुद्धि-भ्रम के कारण मैंने अक्षय को युद्ध के लिए भेजा। रण में उस वानर ने उसका वध कर दिया,, मैं इसके लिए किसे दोष दूँ ? मेरा अशोक-वन शोक-वन बन गया। उस वानर ने लंका का नाश कर मेरे पुत्र का वध कर दिया। हम सबकी दृष्टि के समक्ष अक्षय का नाश कर उस वानर ने छल किया है। अक्षय को मारने का पुरुषार्थ कर उसने हमें लज्जित किया है।" सभी प्रधान कह रहे थे 'जब हमारे पुत्र रण में मारे गए तब रावण कह रहा था कि संग्राम में मरना श्रेष्ठ-मरण कहलाता है परन्तु पुत्र अक्षय का रण-भूमि में वध होने पर विलाप कर रहा है। अतः रावण के वचन और कृति में कोई समानता नहीं है। यह अभिमानी रावण निंदा का पात्र है।

रावण के मन में शंकाएँ उठ रही थीं - 'मैंने शिवपत्नी उमा के उपभोग की अभिलाषा की। मेरे उस पाप के कारण शंकर मुझसे क्रुद्ध हैं। उमा तो त्रैलोक्य की माँ हैं। मेरे सद्गुरु की पत्नी हैं। उसकी अभिलाषा करने के कारण कुपित रुद्र स्वयं यहाँ आये हैं। रुद्र के क्रुद्ध होने के कारण ही अक्षय का नाश हुआ, राक्षसों का नाश मेरे द्वारा किये गए महापाप के कारण ही हुआ। यह वानर न होकर प्रत्यक्ष कालाग्नि रुद्र ही है। इसके समक्ष राक्षस कुछ भी नहीं है, जिसे भी अशोक वन में भेजा, वह काल का ग्रास बन गया। अब कोई भी जाने को तैयार नहीं होगा।' यह सोचकर रावण ने निश्चय किया अब

और किसी को युद्ध के लिए न भेजकर, मैं स्वयं ही जाता हूँ। यह कहते हुए वह तैयार हो गया। "मेरे द्वारा उस वानर को मारने पर ही लंका संकट-मुक्त हो सकती है। उस वानर ने अगर मुझे मार दिया तो सीता मुक्त हो जाएगी।" रावण इतना लज्जित था कि वह किसी से कहे बिना ही कवच पहनकर युद्ध के लिए निकला।

रावण के स्वयं युद्ध के लिए जाने की वार्ता सुनकर इन्द्रजित् शीघ्र वहाँ आया। उसने वंदन कर रावण को सिंहासन पर बैठाया। वह बोला "उस वनवासी घास पत्ते खाने वाले वानर से युद्ध के लिए स्वयं दशानन का जाना उचित नहीं है। अन्य वीर वानर से भयभीत होने के कारण जाएँगे नहीं, मैं आपका सेवक हूँ, आप मुझे भेजें। वीरों के आत्मश्लाघायुक्त बोल रणभूमि में मिथ्या सिद्ध होते हैं मेरे वचन सत्य एवं गहन हैं। ये सभी सुरगण भी जानते हैं। मेरे शौर्य को हे लंकानाथ, आप भी जानते हैं, मुझे शीघ्र भेजें, मैं क्षण भर में हनुमान को लेकर आऊँगा। उस अकेले वानर के लिए हे लंकाधिपति, आप न जायें, मुझे युद्ध के लिए भेजें," मेघनाद ने साष्टांग दंडवत् कर रावण से विनती की और आज्ञा माँगी। रावण विलाप करने लगा।

रावण की शंका; इन्द्रजित् का आश्वासन– "चौदह हजार वनरक्षक, अस्सी हजार किंकर, जम्बुमाली, प्रधानपुत्र और शूर सेनापति उस वानर ने मारे; देव दानवों के लिए कठिन, बलवानों के लिए महाबली, शूर वीर तुम्हारे भ्राता अक्षय को इस वानर ने मार डाला। इस प्रकार वह वानर महाबली है, युद्ध में उसके समक्ष कोई टिकता नहीं है। उस वानर के समान वीर समस्त भू मंडल में कोई नहीं दिखाई देता। उससे युद्ध के लिए जाने पर वह भीषण युद्ध करेगा। जो गति अक्षय की हुई है, वही मेरे इन्द्रजित् की होगी " यह कहते हुए पुत्र को हृदय से लगाकर रावण विलाप करने लगा। तब इन्द्रजित् रावण से बोला– "उस वानर के लिए आप व्यर्थ में चिन्तित हैं मैं उसे बाँधकर लाता हूँ, युद्ध में मैं इन्द्र को जीत कर बाँधकर ले आया, तभी तो इन्द्रजित् के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अतः मेरे वानर से युद्ध करने के लिए आप सशंक क्यों हैं ? वानर को मैं गले से बाँधकर लाऊँगा, यही मेरी आपके प्रति भक्ति है " इन्द्रजित् के वचन सुनकर दशानन रावण प्रसन्न हुआ। उसने इन्द्रजित् के साथ अपनी भीषण सेना देकर सम्मान पूर्वक उसे भेजने का निश्चय किया।

रावण के मन में अनेक विचार उठने लगे– "निराहारी और ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले व्यक्ति के हाथों ही मेघनाद की मृत्यु है। वानर ने यहाँ फल खाये हैं। अतः वह उसे मार न सकेगा। फिर इन्द्रजित् को युद्ध के लिए भेजने में शंका का कोई कारण नहीं है। रावण ने आनन्दपूर्वक इन्द्रजित् को भेजा। अक्षय के वध से रावण क्रोधित था। वह इन्द्रजित् से बोला– "वह वानर कपटी है, उसका वध करो तुम्हें ब्रह्मा से समस्त विद्याएँ प्राप्त हैं। तुम अस्त्रबल में पारंगत हो, तुम्हारे पास विविध शस्त्र हैं सृष्टि में तुम्हीं एक मात्र बलशाली हो। इन्द्रादि देवों को युद्ध में तुमने परास्त किया है। तैंतीस करोड देवताओं को लंका में तुमने बन्दी बनाया। हे पुत्र, तुम्हारी कीर्ति महान् है। तुमने मेघों को धिक्कार कर उनकी प्रचंड गर्जना को हर लिया इसी कारण तुम्हें मेघनाद नाम प्राप्त हुआ जो तुम पर सुशोभित होता है। हे पुत्र, तुम अस्त्र बल, शस्त्रबल, बुद्धि-बल, शारीरिक बल इन सभी सामर्थ्यों को एकत्र कर उस वानर को तत्काल पकड़ो। बल से वश में न होने पर कपट से वश में करो तुम्हारे पास उस वानर को पकड़ने के लिए अनेक प्रबल विद्याएँ हैं। बल में हनुमान के प्रबल होने पर यदि तुम उसका सामना न

कर सके तो तुम अपने सभी शस्त्रों का प्रसंगानुरूप प्रयोग करो, समय देखकर सावधानी पूर्वक तुम शीघ्र युद्ध के लिए जाओ, तुम्हें अवश्य विजय प्राप्त होगी।"

पिता के वचन सुनकर एवं उनका आशीर्वाद ग्रहण कर अत्यन्त भक्तिपूर्वक पिता की प्रदक्षिणा कर, उनके चरणों पर मस्तक रखकर उनकी वन्दना करने के पश्चात् इन्द्रजित् ने युद्ध के लिए प्रस्थान किया। उसके उत्साह पूर्वक प्रस्थान करते ही एक कुमारी कन्या को उसी समय छींक आ गई। रावण चौंक गया, इन्द्रजित् भी सशंकित हुआ। शंका निवारण के लिए तथा भविष्य के विषय में रावण ने ब्रह्मदेव से पूछा। ब्रह्मदेव रावण को गूढ़ ज्ञान देते हुए बोले– "यश में अपयश तथा अपयश में यश निहित है इन्द्रजित् को मृत्यु नहीं होगी। वह युद्ध में वानर को पकड़कर तुम्हारे समक्ष अवश्य लायेगा।" ब्रह्मदेव का उत्तर सुनकर जयजयकार करते हुए सैन्य संभार सुसज्जित किया गया स्वयं रावण ने सेना को समझाते हुए कहा– "यह वानर साधारण नहीं है, अत्यन्त बलशाली योद्धा है। साक्षात् यम का ही अवतार है। जो भी अशोक वन में गया, काल का ग्रास हो गया। उसने अश्व, गज, रथ तोड़कर वीरों का संहार कर दिया। जो भी हनुमान के समक्ष आया, उसकी मृत्यु हो गई। विलाप करने के लिए वह किसी को भी नहीं छोड़ता। उसके समक्ष कवच नहीं टिक पाता तो ढाल तलवार का टिक पाना सम्भव नहीं है। अपने वार से वह सबका नाश कर डालता है। शस्त्र अथवा बाण उसके शरीर को छेद नहीं सकते। अस्त्रों की प्रेरक-शक्ति उसके समक्ष निस्तेज हो जाती है। अतः हे पुत्र, तुम अपने प्राणों की रक्षा करते हुए रणभूमि में जाओ। एक रहस्य तुम्हें बताता हूँ। उस वानर की पूँछ में असीम शक्ति है। उसकी पूँछ ने ही महावीरों सहित सेना का निर्दलन किया है." रावण के वचन सुनकर इन्द्रजित् बोला– "उस वानर की युक्तियाँ अथवा ब्रह्मदेव के वचन कुछ भी हों, मैं हनुमान को बाँधकर लंका में अवश्य लाऊँगा।" इन्द्रजित् की प्रतिज्ञा सुनकर सभी ने जय-जयकार किया तथा वाद्यों की ध्वनि के साथ सेना आगे बढ़ी।

सेना द्वारा हनुमान पर आक्रमण; सेना का नाश– हनुमान पर चढ़ाई करने के लिए छियासी महाबलवान हाथी, सैकड़ों कोटि रथ, असंख्य घुड़सवार, कुछ ऊँट एवं खरों पर आरूढ़ सवार गर्जना करते हुए निकले। कुछ सवार आकाश में घोड़ों को कैमर के सदृश उड़ा रहे थे, घोड़ों को तीन पैरों पर नचा रहे थे। आवेशपूर्ण गर्जनाएँ कर रहे थे। उन पराक्रमी वीरों की भुजाओं पर भुज बंध थे सिर पर टोप था उन्होंने मोती गुँथी हुई झालरें पहनी हुई थीं। उन वीरों ने हीरे माणिक जड़े हुए सूर्य तेज की तेज राशि के समान तेजस्वी प्रकाश से युक्त कवच धारण कर रखे थे। पैदल सैनिक धनुर्धारी थे तथा अन्य के पास शेली, मावली, शक्ति, तोमर अहाड, चक्राण गँड़ासे इत्यादि विभिन्न प्रकार के शस्त्र-अस्त्र थे। सेना के पास भिंडिपाल, चेंडू, चक्र, गदा, मुद्गर, परिघ इत्यादि के साथ ही मन्त्रित अग्नि-शस्त्र तथा युद्ध में वार करने वाले यन्त्र थे। सेना में बाण धारण किये, ढाल लिये हुए चमकते गड़ाँसे लिए वीर तथा मुष्टिका प्रहार से चूर-चूर करने वाले पहलवान थे, तलवार खेटक, पट्टिश, जमदाढ़ा एवं कटार धारण किये हुए तथा पत्थरों से अचूक निशाना साधने वाले गुलेल चलाने वाले अनेक वीर सेना में विद्यमान थे। युद्ध के लिए जाते समय भाट गज-गम्भीर गर्जना कर रहे थे।

उस सेना में पैदल साहसी वीर सबसे आगे, उनके पीछे घुड़सवार, फिर रथ और राजकुमार चल रहे थे। उनमें से वायु निकलने का मार्ग शेष न था तथा दोनों तरफ मदोन्मत्त हाथियों का समूह चल रहा था। सफेद, पीली तथा लाल रंग की पताकाओं से सेना शोभायमान थी। वे पताकाएँ उनके पुरुषार्थ को प्रोत्साहित करने का कार्य कर रही थीं। सूर्य की प्रभा के समान स्वयं के तेज से प्रकाशित भालाओं से

ध्वज पताकाएँ सुशोभित हो रही थीं। एक ही समय में तड़क कर फूटने वाली भिंडि मालाओं की वृष्टि, रणवाद्यों की ध्वनि एवं वीरों की गर्जना हो रही थी। उसके साथ ही लगातार पड़ने वाले आघातों से रणभेरी गूँज उठी विराणी दुंदुभी सहित बजने लगी। शंख, मृदंग, ताल, मजीरे, नगाड़े, अलगोजा, तालवाद्य, निशाण इत्यादि बज रहे थे; सभी योद्धा युद्ध में मग्न थे। कायर भयभीत थे। हनुमान की कीर्ति सुनकर वे भय से काँप रहे थे। हनुमान अकेले थे पर इतनी बड़ी सेना होते हुए भी उन्हें लग रहा था कि वह वानर उन्हें मार डालेगा। वाद्यों की आवाज़ सुनकर और सेना को समीप आया देखकर हनुमान प्रसन्न हो उठे। हनुमान ने राक्षसों से युद्ध करने तथा युद्ध में इन्द्रजित् का गर्व चूर करने का निश्चय किया। 'मेरा मनोरथ पूर्ण करने के लिए रघुनाथ मुझ पर प्रसन्न हैं। युद्ध में सबका वध कर इन्द्रजित् को संत्रस्त कर दूँगा। अक्षय को मार कर प्रारम्भ किया है। अब तो समक्ष वीरों की पंक्तियाँ ही खड़ी हैं। उन सबका युद्ध में वध करूँगा। अपनी पूँछ से सेना का वध कर चामुंडा-भवानी की पूजा करूँगा क्योंकि माँस से भूत संतुष्ट होते हैं। श्रीराम रणकेसरी आगे बढ़कर पंचधाराओं से सभी को शांत करेंगे।' तत्पश्चात् हनुमान ने अपनी पूँछ को निर्देश देकर कहा- "जो-जो सेना में आया है, वह नगर में वापस न जाए, सभी का वध करो परन्तु जो शरण आयेगा, उसकी निश्चित ही रक्षा करो। यह मेरी आज्ञा है" अपने स्वामी की आज्ञा मानकर लंका नगरी के द्वार पर पहरा देते हुए भागने वाले राक्षस का वध करने के लिए पूँछ तैयार हुई।

रावण की बहन असाली और मारुति का संघर्ष– इन्द्रजित् जिस रथ पर बैठकर हनुमान से युद्ध करने के लिए आया, उस रथ के पहिये मूँगों के चाबुक पन्ने के जुआ और धुरी इन्द्रनील मणियों की तथा अन्य हिस्से नीलम एवं अन्य रत्नों से निर्मित थे। उस रथ में तीक्ष्ण नख एवं दाँतों वाले बाघ और सिंह जुते हुए थे। उनके मुख भयंकर और विकृत थे। उनकी जिह्वा अग्निसदृश, प्रज्वलित थी। महाकपटी सारथी रथ की लगाम हाथ में लिये था। स्वयं इन्द्रजित्, धनुष सजाकर रथ में बैठा था रथ पर नीली पताकाएँ तथा ध्वज थे। उन ध्वज पताकाओं पर रत्न एवं मोतियों की मालाएँ सुशोभित थीं। जिस प्रकार देवताओं में इन्द्र का स्थान था, उसी प्रकार राक्षसों के लिए इन्द्रजित् था। मोतियों की झालरों से सुशोभित स्वर्ण-दण्ड युक्त चँवर उस पर डुलाये जा रहे थे। सेना उसका जय जयकार कर रही थी। वह युद्ध के लिए आगे बढ़ा। जिस प्रकार गरुड़ में उड़ने की शक्ति होती है, उसी प्रकार उसके रथ की गति थी। युद्ध में हनुमान पर विजय प्राप्त करने के लिए वह तेजी से निकला। इन्द्रजित् को सेना सहित आते हुए देखकर पड्लंका की स्वामिनी और रावण की बहन असाली आगे बढ़ी। "जिसने अक्षय को मार डाला, उसका मैं वध करूँगी। उस पत्ते खाने वाले तुच्छ वानर पर राक्षसों का सेना समूह आक्रमण करने जा रहा है। मैं ही इस वानर का वध कर दूँगी।" असाली अशोक वन में आयी तो उसे सामने हनुमान दिखाई पड़े। उसने आँखें फैलायीं, विकराल मुख फैलाया। उसके जबड़े का एक भाग भूतल पर तथा दूसरा भाग आकाश में जा भिड़ा। उसके दाँत अत्यन्त विकृत एवं भयानक थे तथा जिह्वा काली थी। हनुमान यह देखकर बोले- "मैं आनन्दपूर्वक युद्ध करना चाहता था परन्तु बीच में यह राक्षसी आ गयी। जिस प्रकार ख़ज़ाना मिलने से पूर्व डाकिन से सामना होता है, उसी प्रकार युद्ध-निधि मिलने से पूर्व यह विषैली असाली समक्ष आ गयी। अत: अब कालिका चामुंडा इत्यादि को तृप्त करने के लिए असाली की ही पहली बलि देता हूँ। पहली प्राणाहुति छोटी होती है। संग्राम प्रसंग में तृप्ति के लिए सर्वप्रथम असाली की प्राणाहुति देता हूँ। प्रथम समिधा डालकर फिर प्रधान द्रव्य डालते हैं। उसी प्रकार संग्राम यज्ञ

में असाली रूपी समिधा को प्रदान करता हूँ।" यह सोचकर छोटे से कीटक का रूप धारण कर हनुमान असाली के फैले हुए मुख में कूद पड़े उसके दाँतों अथवा जिह्वा को स्पर्श किये बिना एकदम उसके पेट में प्रवेश किया राक्षसी यह समझ ही नहीं पाई। वानर ने मुख में प्रवेश किया, वह मुख में ही खो गया था और दाँतों के नीचे दब गया मुख में खो गया या श्वासोच्छवास के साथ बाहर निकल गया। वानर का क्या हुआ, यह असाली समझ नहीं पा रही थी। उसे खट्टा, तीखा, नमकीन, मीठा, कड़वा, कसैला किसी भी प्रकार का स्वाद नहीं लग रहा था। वह राक्षसी मिथ्या प्रलाप कर रही थी। उसे पेट में भी समाधान नहीं मिल पा रहा था। उसे लग रहा था कि वानर ने उसको भ्रमित किया है

असाली ने हनुमान को निगल लिया। अब इन्द्रजित् का अनर्थ टल गया। यह वार्ता युद्ध के लिए आयी सेना में फैल गई। लोग कहने लगे "उसने प्रारम्भ में ही हनुमान को निगल लिया होता तो अक्षय कुमार का वध न हुआ होता और किंकर वनरक्षक तथा प्रधान पुत्र भी बच गए होते।" लोगों में यह वार्तालाप हो ही रहा था कि असाली के पेट में वेदना होने लगी. हनुमान ने पेट के अन्दर उसके हृदय को मुट्ठी में भींच लिया था अतः असाली भूमि पर छटपटाने लगी। इन्द्रजित् से युद्ध करने के लिए हनुमान उत्सुक थे अतः वह असाली के पेट से बाहर निकलने के लिए कुशलता पूर्वक तत्पर हुए। उन्होंने उसके हृदय को मुट्ठी में ले लिया और नाभि से पेट चीरकर बाहर निकल आये। बाहर आते ही उन्होंने गर्जना की। उस गर्जना को सुनकर राक्षस काँपने लगे। इन्द्रजित् चौंक गया और सेना में खलबली मच गई। रावण के पास असाली द्वारा हनुमान को निगलने की सूचना देने वालों के पीछे-पीछे हनुमान द्वारा असाली को मारने की सूचना देने वाले पहुँच गए। रावण सोचने लगा– 'राक्षसों की मायावी छल विद्या की अपेक्षा वानर की विद्या अधिक प्रभावपूर्ण है क्योंकि वह वानर असाली के पेट में घुसकर फिर पेट फाड़कर बाहर आया है। शूर्पणखा के सदृश ही असाली रावण की बहन होने के कारण उसे अत्यन्त दुःख हुआ। उसके मन में विचार आया– 'वह वानर युद्ध के लिए आतुर है। अब मैं किस किस के दुःख के लिए सोचूँ ? अब इन्द्रजित् का क्या होगा ? इस विचार से रावण भयभीत हो उठा

इन्द्रजित् और हनुमान का संग्राम– असाली के वध का समाचार सुनकर इन्द्रजित् क्रोधित होकर हनुमान को दण्डित करने के लिए आगे बढ़ा। हनुमान को देखते ही सेना का धैर्य समाप्त हो जाता है यह समझते हुए इन्द्रजित् ने अपना रथ आगे कर दिया। विद्युत की गर्जना से आकाश जिस प्रकार गुंजायमान हो जाता है उसी प्रकार उसके धनुष की आवाज गूँज उठी। धनुष की टंकार सुनते ही मारुति ने गर्जना की जिसमें आकाश एवं गिरि कन्दराएँ गूँज उठीं। उस नाद की प्रतिध्वनि पाताल तक पहुँच गई अन्तराल में भूत सिहर उठे, नभोमंडल में पक्षी इधर उधर भटकने लगे। दिग्गज भयभीत हो उठे। इन्द्रजित् ने कड़कड़ाहट की ध्वनि के साथ अपना रथ आगे बढ़ाया। हनुमान ने अपनी पूँछ को ऊपर उठाया और युद्ध के लिए उत्साहपूर्वक तैयार हुए। एक ओर रावण का राजकुमार था तो दूसरी ओर रामदूत वानर। एक ओर राक्षस श्रेष्ठ था तो एक ओर वानर श्रेष्ठ, दोनों ही अत्यन्त प्रबल वीर थे। दोनों का बलशील समान था दोनों ही संग्राम कुशल और वार करने में चपल थे।

दोनों वीरों का परस्पर युद्ध देखने के लिए सुरवर सिद्ध, ऋषि, गंधर्व, किन्नर नर विमानों से आये। इन्द्र शची सहित ब्रह्मदेव सावित्री सहित एवं शंकर उमा सहित संग्राम देखने पधारे। दोनों वीरों ने क्रोधपूर्वक गर्जना की तब ऐसा लगने लगा मानों भयंकर कालकृतान्त अथवा कालाग्निरुद्र युद्ध के लिए आये हों। एक हाथी तो एक सिंह, एक हिरण्यकशिपु तो एक नरहरि अथवा सहस्त्रबाहु एवं परशुधर के

सदृश प्रतीत हो रहे थे। एक सर्प तो दूसरा सर्पशत्रु, एक त्रिपुर तो दूसरा त्रिपुरारी, एक मुर तो दूसरा मुरारी के समान लग रहे थे इन्द्रजित् भयंकर वार कर रहा था। हनुमान आराम से फल खा रहे थे। आँखें मिचका रहे थे। इन्द्रजित् ने भयंकर बाणों की वर्षा की। हनुमान ने रणगर्जना करते हुए पाषाण फेंके। इन्द्रजित् ने हनुमान के मस्तक पर सोने के पंखाकृति वाले बाण फेंके, हनुमान ने बलपूर्वक शिला फेंकी उन्होंने क्रोध पूर्वक उड़ान भरकर पत्थरों, शिलाखण्डों एवं वृक्ष खण्डों से प्रहार किया। इन्द्रजित् के शिवशक्ति बाण छोडते ही हनुमान ने विशाल पर्वत से वार किया। युद्ध में हनुमान को वश में न आता हुआ देख इन्द्रजित् ने चक्र सदृश बाण छोड़ा। प्रत्युत्तर में हनुमान ने बलपूर्वक शिला फेंकी। इस प्रकार इन्द्रजित् के लहुडी व पट्टिश प्रत्येक वार पर हनुमान ने पत्थर और चट्टान से बलशाली प्रहार कर उसका प्रतिकार किया। इस प्रतिकार से इन्द्रजित् का धैर्य समाप्त हो गया और वह पूँछ की चपेट में फँस गया। इन्द्रजित् का रण-कौशल ऐसा था कि अवसर मिलते ही वह रण में ख्याति अर्जित करता था। परन्तु- शत्रु को वश में न आता देख वह पलायन कर जाता था।हनुमान की पूँछ के समक्ष उसका बल टिक नहीं पा रहा था सेना को चारों ओर से पूँछ द्वारा घेरे जाने के कारण सेना आगे पीछे नहीं हो पा रही थी युद्ध में बाणों के पाषाणों से तथा पाषाणों के बाणों से टुकड़े-टुकडे हो रहे थे। मारुति द्वारा भयंकर युद्ध प्रारम्भ किये जाने से इन्द्रजित् दुविधा में फँस गया था। तब उस के मन में विचार आया- 'मारुति शक्ति से वश में नहीं आ रहा अत: इसे कपट से मारना चाहिए। पूँछ पर कपट नहीं चलता क्योंकि पूँछ कपट का नाश करने वाली है। इन्द्रजित् शरवर्षा कर रहा था तो हनुमान द्वारा शिलाओं एवं शिखरों की वर्षा हो रही थी, जिससे सेना का नाश हो रहा था। राक्षसों की दुर्दशा हो रही थी। हनुमान द्वारा किये गए पर्वत के आघात से सेना में कोलाहल मच गया। इन्द्रजित् मारा गया कि जीवित है, इस विषय में राक्षस सशंकित हो उठे। युद्ध में शस्त्र अस्त्र सब निष्प्रभ हो रहे थे। पीछे भागने पर पूँछ के प्रहार का भय था। हनुमान को वश में न आता देखकर इन्द्रजित् चिंतित हो उठा। उसे चिंतामग्न देखकर हनुमान इन्द्रजित् से बोले– "मैं शपथ पूर्वक कहता हूँ कि मैं शिला, पर्वत एवं वृक्षों से तुम्हारा वध नहीं करूँगा, तुमने बाणों से साक्षात् इन्द्र को जीत लिया, अपनी कीर्ति अनुसार उन्हीं बाणों से विद्ध कर मुझ पर विजय प्राप्त करो। जिन बाणों से देवताओं को बन्दी बनाया, उन्हीं बाणों से मुझ पर विजय प्राप्त करो।" हनुमान के इन वचनों से इन्द्रजित् क्रुद्ध हो गया। उसने सभी मन्त्रयुक्त अस्त्रों से हनुमान पर आक्रमण किया। इन्द्रजित् द्वारा मन्त्रयुक्त अस्त्र एवं शरवर्षा करने पर भी हनुमान भयभीत अथवा सशंकित नहीं दिखाई दिए उनके शरीर में बाण की चुभन भी दिखाई नहीं दे रही थी। अत: सुर नर आश्चर्य चकित हो उठे। श्रीराम-नाम की शक्ति से हनुमान नित्य निर्द्वन्द्व स्थिति में रहते थे। दोनों हाथों को फैलाते हुए सभी बाण पकड़कर आकाश में उड़ान भरकर हनुमान उन्हीं बाणों से राक्षसों को मार रहे थे। समूह में बाणों की वर्षा होने से सेना का नाश हो रहा था। राक्षस घावों के कारण कराह रहे थे युद्ध में विपरीत घटित हो रहा था। हनुमान से युद्ध करते हुए इन्द्रजित् बाणों की वर्षा कर रहा था। परन्तु वे बाण उसी की सेना पर गिरकर उसका नाश कर रहे थे। वे बाण हनुमान के लिए होते हुए भी इन्द्रजित् आवेशपूर्वक अपनी सेना को ही मार रहा था। अत: उसने विचार किया कि 'मेरे बाण पकड़कर यह वानर हम पर ही उलट रहा है' इन्द्रजित् के मन्त्रशक्ति से युक्त बाणों को हनुमान ने व्यर्थ कर दिया। उनके विरुद्ध शस्त्र, अस्त्र अथवा कपट कुछ भी असर नहीं कर रहा था। उन्होंने युद्ध में सबको संत्रस्त कर दिया उन दिव्यास्त्रों को हनुमान द्वारा निष्प्रभ किये जाने से इन्द्रजित् भयभीत हो उठा। उसे अपने प्राणों का भय लगने लगा।

हनुमान ने वेगपूर्वक आकर इन्द्रजित् को पकड़ लिया। उन्होंने मुट्ठी से उसका धनुष तोड़ डाला और मल्लयुद्ध के लिए उससे भिड़ गए।

हनुमान और इन्द्रजित् का मल्लयुद्ध प्रारम्भ हो गया। दोनों परस्पर वार करने लगे हाथों को मरोड़कर वे पेट पर वार कर रहे थे। हनुमान की लात के प्रहार से बचकर इन्द्रजित् ने उनके मस्तक पर प्रहार किया दाहिना हाथ रोकने पर बायें से आघात किया। मल्लविद्या का कौशल दिखाने के साथ ही हनुमान ने पूँछ के आघात से रथ एवं सारथी का भी नाश कर दिया। पूँछ का घेरा टूट नहीं पा रहा था तथा युद्ध में हनुमान वश में नहीं हो रहे थे। ध्वज और छत्र टूट गए थे। इन्द्रजित् का मुकुट गिरा कर उन्होंने उसे त्रस्त कर दिया। पृथ्वी पर सभी ऋषिवर और आकाश से सुरवर यह संग्राम देख रहे थे। श्रीराम की कृपा से हनुमान को विजय हुई अतः सभी ने जयजयकार किया। इन्द्रजित् अपमानित हुआ।

अध्याय १६

[इन्द्रजित् का पलायन, राक्षस सेना का संहार]

इन्द्रजित् अपमानित होकर उद्विग्न हो उठा। उसे हनुमान की लीला समझ नहीं आ रही थी। उनका धैर्य, संग्राम शक्ति, उनका वेग, गति सभी कुछ अतर्क्य होने के कारण उसकी समझ से परे था। इन्द्रजित् की बुद्धि कुंठित हो गई। युद्ध में वह वानर वश में नहीं हो रहा था। इन्द्रजित् को लगा कि 'मेरा शौर्य एवं कीर्ति, इस वानर ने निष्प्रभ कर मुझे लज्जित कर दिया। मैंने इन्द्र को जीता अतः मुझे इन्द्रजित् नाम मिला परन्तु इस वानर से युद्ध कर मैं तृण-समान तुच्छ सिद्ध हो गया। मैं सृष्टि का एक श्रेष्ठ योद्धा हूँ, ऐसा मुझे गर्व था परन्तु इस वानर ने मुझे हराकर मेरा गर्व चूर-चूर कर दिया। मेरा धैर्य, मेरी वीरता सब व्यर्थ है क्योंकि मैं युद्ध में वानर को हरा न सका। मेरी कीर्ति मेरा अपयश बन गई। मेरा रथ एवं सारथी नष्ट होने तथा शस्त्र सम्पत्ति भस्म हो जाने के कारण मुझे युद्ध में हनुमान को जीतना सम्भव नहीं है' ये विचार मन में आने से इन्द्रजित् निर्बल हो गया।

इन्द्रजित् का पलायन; हनुमान का विवेक-- इन्द्रजित् का शस्त्रास्त्र-नैपुण्य मल्ल विद्या का ज्ञान तथा कपट का उपयोग हनुमान के सम्बन्ध में यशस्वी न हो सका तो वह चिन्तित होकर बोला--"मेरा यश और कीर्ति निरर्थक है मुझे मिले हुए वर के कारण मारुति मुझे मार नहीं सकता, परन्तु अगर वह मुझे पकड़कर राम के पास ले गया तो वानर मेरी दुर्दशा कर डालेंगे। रावण द्वारा सीता का हरण करने के कारण यह वानर मुझे बाँधकर राम के पास ले गया और अपमान किया तो इन वानरों को कौन रोकेगा। रावण ने भिक्षुक बनकर सीता को चुराया है अतः इस वानर वीर ने अगर युद्ध में पराभूत कर दिया तो यह अवश्य ही मुझे ले जाएगा। जिस तरह से अगद के पालने से दशमुख को बालि द्वारा खिलौने की तरह बाँध दिया था। फिर पुलस्त्य द्वारा उसे छोड़ने की प्रार्थना करने पर रावण की दाढ़ी मूँछों का मुंडन कर मुख में कालिख पोत कर लंका में भेजा था उसी प्रकार मुझे बाँधकर ले जाने पर हनुमान और अन्य वानर वीर मेरी भी वैसी ही अवस्था करेंगे।" यह विचार कर तथा कोई भी उपाय न सूझने के कारण इन्द्रजित् चिन्तित हुआ अगर हनुमान ने मुझे पूँछ में बाँध लिया तो मेरी सहायतार्थ कोई भी नहीं आयेगा। इन्द्रजित् ने यह विचार किया और अत्यन्त भयभीत हो हनुमान से बचने के लिए युद्ध भूमि से भागने

लगा। पूँछ का घेरा पड़ा हुआ होने के कारण वह भाग भी नहीं पा रहा था। अन्त में संत्रस्त होकर वह एक गुहा में छिपकर बैठ गया। अशोक वन में एक गुप्त गुहा थी। भयभीत इन्द्रजित् उसी में जा छिपा।

मारुति का पूँछ से विचार-विमर्श; राक्षसों का संहार– जगत् श्रेष्ठ वीर हनुमान कायर के पीछे नहीं भागे। विवेक दृष्टि से पूर्ण विचार कर वे शान्त रहे। उन्होंने सोचा 'इन्द्रजित् का मरण सर्वथा मेरे आधीन नहीं है अत: मैं अपने सामर्थ्य का व्यर्थ ही उपयोग क्यों करूँ। ब्रह्मदेव के वर को मैं असत्य नहीं करूँगा।' अत: इन्द्रजित् के पीछे न भागकर उन्होंने राक्षस सेना को निहारा और आवेशपूर्वक उनका संहार करने के लिए दौड़े। तब उनको पूँछ बोली– "स्वामी मैंने सबको बाँधकर रखा है आप युद्ध कर थके हैं; अत: मुझे उन्हें मारने की आज्ञा दें। इस पर हनुमान बोले– "तुम्हारे सामर्थ्य के बल पर ही मैंने महावीरों को संत्रस्त किया, अब सेना से युद्ध मैं करूँगा। मैं चक्की के सदृश हूँ और तुम चक्की में सामग्री डालने वाली हो, इन राक्षस रूपी अनाज को हम दोनों मिलकर पीस डालेंगे। जो बच जाएगा उनसे भीषण युद्ध करेंगे।" राक्षसों की सेना का वध करने के लिए पूँछ से ये विचार विमर्श कर हनुमान ने ज़ोर से गर्जना की, जिसे सुनकर राक्षस विचलित हो उठे। महाबली हनुमान से राक्षसों ने युद्ध प्रारम्भ किया। एक ही समय में इतने शस्त्रों से वार किया गया कि वे शस्त्र आकाश अथवा पृथ्वी पर समा नहीं पा रहे थे। उन शस्त्रों के वार के मध्य हनुमान घूम रहे थे तथा उनकी पूँछ उन शस्त्रों का नाश कर रही थी अपने शस्त्रों को नष्ट होता हुआ देखकर राक्षसों में हाहाकार मच गया। सेना का अन्त करने के लिए हनुमान आगे बढ़े और अपनी शक्ति के बल पर सबका निर्दलन किया।

हनुमान द्वारा आरम्भ किये गए रणक्रंदन से युद्धभूमि में कोलाहल मच गया। घोड़े घोड़ों को, हाथी हाथियों को मारने लगे। रथों के आपस में भिड़ने से सारथी मरने लगे। भगदड़ में पैदल एक दूसरे के नीचे दबकर मर रहे थे। वीर वीरों को मार रहे थे। ध्वज एवं छत्र टूटकर रणभूमि में अनेक लोगों पर गिरने से, वे हताहत हो रहे थे। पूँछ में करोड़ों हाथियों को बाँधकर हनुमान उन्हें पटक रहे थे, जिससे हाथी मर रहे थे और उनके गंडस्थल फटकर उसमें से मोती झर रहे थे। पूँछ ने अपने सामर्थ्य से दस लाख सामर्थ्यवान् हाथियों को नष्ट कर दिया और कीर्ति अर्जित की। पूँछ सेना में घुसकर वीरों को बाँधकर, पटककर मारने लगी। खर, ऊँट, घोड़े पूँछ में एकत्र बाँधकर पटके जाने के आघात से मरने लगे। पूँछ के वार से रणभूमि में हाहाकार मच गया। हनुमान स्वयं भी वीरों को मारने लगे, किसी को हाथ से, किसी को पैरों से तो किसी को मुष्टिका प्रहार से मारा। किसी को नखों से फाड़ डाला, किसी को घुटनों से वार कर तो किसी को गले से पकड़कर दबा दिया। किसी को पर्वत फेंककर मारा, किसी को भुजाओं में दबाकर मार डाला। मारुति द्वारा आवेशपूर्वक गर्जना करने से कुछ राक्षस भयभीत होकर मर गए। उनकी गर्जना से त्राहि-त्राहि मच गई। उनकी प्रचंड गर्जना से वाद्य-वादकों की भय से मृत्यु हो गई और रण-वाद्यों का बजना बन्द हो गया। इस प्रकार युद्ध-भूमि में राक्षसों की अपार दुर्दशा हुई चारों ओर पूँछ का घेरा और बीच में हनुमान के वार से सेना का अन्त हो गया।

हनुमान ने पूँछ से राक्षसों का पीछा किया। वे अपने कुटुम्ब से नहीं मिल पा रहे थे। लंका उन्हें दिखाई नहीं दे रही थी। प्राण बच नहीं पा रहे थे। पूँछ नगर में नहीं जाने दे रही थी। प्रत्येक राक्षस सैनिक युद्ध में मूर्च्छित हो रहा था। इस प्रकार इन्द्रजित् का गर्व चूर हो गया। सेना नष्ट हो गई। राम-नाम के प्रति गहन निष्ठा के कारण हनुमान ने अपने सम्पूर्ण सामर्थ्य से युद्ध किया करोड़ों राक्षसों का वध किया अश्व एवं गजों के समूह को मार डाला। छत्र एवं ध्वज ध्वस्त कर दिए। उनके टुकड़े सर्वत्र बिखर गए

रक्त के प्रवाह से रण में रक्त की नदी निर्मित हो गई थी। शवों के ढेर पड़े थे। हाथियों के शव रक्त नदियों में मगर की भाँति लग रहे थे। नदी में तैरने वाले बाण, मछलियों के समान थे। उस नदी के प्रवाह में बहने वाली ढालें कछुओं के सदृश प्रतीत होती थीं। भाले पूँछयुक्त मछलियों के समान थे। इस प्रकार वह रक्त नदी दिखाई दे रही थी। इस नदी में चरबी मांस कीचड़ और काई के सदृश थे। उसमें पड़े हुए वीर मगरों की भाँति दिखाई दे रहे थे। उस नदी में मानों बाढ़ आई थी मोक्ष-सुख के लिए अपने सर्वस्व का त्याग कर जो उसमें कूद पड़ रहा था उसे वह अपने में समा लेती थी। श्रीराम तारने वाले थे, जो उन्हें उनके पापों से दूर ले जा रहे थे और उन्हें तार रहे थे।

भद्रकाली भूतों को ले आयी। वे भूत मांस का भक्षण कर रहे थे। अंजुली में भरकर रक्त पी रहे थे। इस युद्ध का जो प्रेमपूर्वक गायन करते हैं, उन्हें श्रीराम सुख प्रदान करते हैं, आनन्दपूर्वक उनको तारते हैं। क्षेत्रपाल वेताल आनन्दमग्न थे। सभी भूत रणभूमि में कोलाहल कर रहे थे। हनुमान ने उन्हें कृतार्थ किया था। हनुमान के युद्ध में विजयी होने के कारण वे प्रसन्न थे। यक्षिणी, शंखिनी, डाकिनी परस्पर मांस का आदान-प्रदान कर रही थीं। भूत राक्षसों के गिरे हुए दाँत गिन रहे थे। यह समस्त क्रिया-कलाप हनुमान देख रहे थे एवं अत्यन्त कुशलतापूर्वक उस खाद्य को यथायोग्य रूप में सबको बाँट रहे थे। सेना का नाश कर पूँछ का घेरा हटाकर हनुमान पुन: मन्दिर में उसी स्थान पर दृढ़ता पूर्वक जाकर बैठ गये, जहाँ वह पहले बैठे हुए थे। हनुमान के जाने पर राक्षस वीरों की हिम्मत कुछ जागृत हुई। जो घायल थे, वे कराहते हुए नगरी की ओर बढ़े।

उन राक्षसों में कुछ कराह रहे थे; कुछ हुंकार देते हुए, कुछ अत्यन्त विह्वल होकर जा रहे थे। कोई हाथों से इशारा कर पानी माँग रहा था। कोई रो रहा था, कोई गिर रहा था, कोई दुःख से तड़प रहा था और कोई कमर की हड्डी टूटने के कारण घिसटते हुए जा रहा था। युद्ध में आघात से किसी का मस्तक फूट जाने से वह रक्तरंजित हो गया था तो कोई आँतों के घाव के कारण तड़प रहा था। किसी का शरीर पर्वत के नीचे दब गया था। किसी का पैर टूट गया था। मुट्ठी के आघात से किन्हीं राक्षसों के दाँत टूटकर उनके गले में फँस गए थे। कोई नाक टूटने की व्यथा से पीड़ित था। कराहने के साथ ही राक्षस अत्यन्त लज्जा का अनुभव कर रहे थे। पूँछ के भय से युद्ध देखने के लिए कोई अशोक वन की ओर नहीं आ रहा था। सब त्राहि-त्राहि कर इधर-उधर भाग रहे थे। सम्पूर्ण सेना का नाश होने से नर-नारी व्यथित थे। घरों में हाहाकार मच गया। सम्पूर्ण लंका नगरी त्राहि-त्राहि कर उठी। रावण का सम्मान धूल में मिल गया उसके द्वारा सीता को चुराये जाने के कारण वानर ने राक्षसों का सर्वनाश कर दिया। सभी कहने लगे- "रावण दुश्चरित्र वाला है। उसने सीता को चुराया इसीलिए राक्षसों की सेना का वध हुआ और लंका दु:ख में डूब गई। राजा के भिखारी बनकर परस्त्री का हरण करने के निन्दनीय कर्म के कारण ही राक्षसों की यह दुर्दशा हुई।

रावण द्वारा इन्द्रजित् के लिए शोक एवं ब्रह्मा की सूचना— हनुमान से युद्ध करते हुए अगर रावण की मृत्यु हुई होती तो लंका-वासी विचलित न होते। परन्तु उसने इन्द्रजित् को हनुमान से युद्ध के लिए भेजकर उसका घात किया। अक्षयकुमार का पक्ष लेने के लिए भेजकर अपने ज्येष्ठ पुत्र को मरवा दिया- यह कहते हुए राक्षस शोक करने लगे, जिससे रावण विचलित हो उठा। इन्द्रजित् जीवित है कि उसकी मृत्यु हो गई, इस विषय में कोई निश्चय नहीं कर पा रहा था। वानर द्वारा इन्द्रजित् की हत्या की कल्पना से ही वह दु:खी हो उठा। प्रत्यक्ष रणभूमि पर जाकर देखना भी व्यर्थ था क्योंकि भूतों-प्रेतों

के खाये जाने से उन्हें पहचानना कठिन था। अतः वह विवश था। युद्ध में ज्येष्ठ पुत्र के मारे जाने से दशमुख आक्रंदन करने लगा। वह भूमि पर लोटने लगा। उसके केश खुल गए, नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। वह मस्तक पीटते हुए कहने लगा– "मैंने इन्द्रजित् को मरवा दिया, अब मैं क्या करूँ" युद्ध में हनुमान को पकड़ना असम्भव था अतः रावण चिन्तित हो उठा। 'ब्रह्मा ने मुझे बताया था कि इन्द्रजित् वानर को बाँधकर मेरे पास ले आयेगा। उनके वचन असत्य कैसे हो गए ? ब्रह्मवाणी असत्य नहीं हो सकती अतः निश्चित है कि इन्द्रजित् को भय नहीं है।' तत्पश्चात् रावण ने ब्रह्मदेव को आमन्त्रित कर कहा– "इन्द्रजित् वानर को बाँधकर लायेगा, अपने ये वचन आप सत्य करें। इन्द्रजित् के विषय में राक्षसों को कुछ ज्ञात नहीं है और वह राक्षसघाती वानर वन में बैठा हुआ है।" तब ब्रह्मा बोले– "अब मैं स्वयं अशोकवन जाकर इन्द्रजित् के सम्बन्ध में रावण को सूचना देता हूँ," यह कहकर प्रजापति ब्रह्मा अशोक-वन गये। हनुमान ने उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया।

ब्रह्म देव हनुमान से बोले– "राक्षसों का अन्त अब समीप है, अतः तुम अवश्य उनका नाश करो परन्तु लंकाधीश का वध मत करना। कुंभकर्ण और रावण का वध श्रीराम करेंगे। लक्ष्मण इन्द्रजित् को मारेंगे। अन्य राक्षसों का अन्त वानरों के हाथों होगा। इस पर हनुमान बोले– "मेरी इच्छा रावण से मिलने की तथा लका को तहस-नहस करने की है।" ब्रह्मा बोले– "इन्द्रजित् तुम्हारे भय से गुहा में जा छिपा है। उसके पास जा रहा हूँ। मुझे ज्ञात है कि पाश बंधन में तुम नहीं बँध सकते, परन्तु मेरा कहना मानते हुए तुम ब्रह्म-बंधन स्वीकार करो, जिससे इन्द्रजित् ब्रह्म-पाश डालकर तुम्हें पकड़ेगा तब बद्ध होने का स्वाँग कर स्वयं रावण से मिलने लंका जाओ। अपनी इच्छानुसार रावण से भेंट करो। ब्रह्म-पाश तुम्हारे गले में है, यह मानते हुए लंका में जाओ।" इन्द्रजित् के हाथों पाश बंधन मारुति ने स्वीकार किया परन्तु वे ब्रह्मा से बोले "आपके हाथों से आया हुआ ब्रह्मबंधन मैं स्वीकार करूँगा।" ब्रह्मदेव ने कहा "वैसा ही होगा, मेरे हाथों से ही ब्रह्म-पाश आयेगा, जिसके बंधन में बाँधकर तुम्हें रावण के समक्ष ले जाया जाएगा।" इन्द्रजित् हनुमान को पीठ दिखाकर संकट से बचने के लिए गुहा में छिप गया और पश्चाताप से मस्तक पीटने लगा। उसका अपने पराक्रम का अहकार समाप्त हो गया, वह लज्जित होकर गुहा में जा छिपा था।

अध्याय १७

[हनुमान का रावण की सभा में आगमन]

युद्ध में हनुमान को पीठ दिखाकर भागने के पश्चात् इन्द्रजित् लज्जित होकर एक गुहा में छिपकर बैठे हुए सोच रहा था– "अब मैं महावीरों को कैसे मुँह दिखाऊँ ? मेरी वीरता की सर्वत्र कीर्ति फैली हुई थी परन्तु इस वानर की पूँछ ने मुझे युद्ध में संकट में डाल दिया। मैं वीर राजकुमार होकर भी इस पूँछ का भयंकर वार मेरे लिए असहनीय हो गया। मेरी सेना का समूल नाश हो गया। अब मैं महावीरों को किस प्रकार मुँह दिखाऊँ ? राक्षस-राज से कैसे मिलूँ, अब मैं लका नगरी नहीं जाऊँगा। मेरे जैसे वीर के लिए यह लज्जाजनक स्थिति अत्यन्त दुःखदायी है। मैंने सदाशिव की शपथ ली, रावण की चरण-वन्दना की मेरे सारे प्रमाण झूठे सिद्ध हुए। वानर ने मुझे पूरी तरह से संत्रस्त कर दिया। अगर युद्ध

में मेरी मृत्यु हो जाती तो भी मेरा कल्याण होता। अपमानित होकर मेरे प्राण बच गए। ऐसे वरदान का क्या लाभ ? ऐसे अपमानित जीवन की अपेक्षा युद्ध में मृत्यु ही श्रेष्ठ है। इस वरदान ने ही मुझे छला है मैं स्वयं शस्त्र से अपना जीवन समाप्त कर लूँ परन्तु मेरे पास तो शस्त्र भी शेष नहीं हैं। लज्जित होकर मैं मरना चाहता हूँ परन्तु ये वरदान मुझे मरने नहीं देते।" युद्ध में मारुति से परास्त होकर निरुपाय हो, मेघनाद विलाप करने लगा। वह संकट में फँस गया था। लज्जावश किसी को मुँह नहीं दिखा सकता था। वरदान के कारण मृत्यु भी नहीं हो रही थी। इस दुविधापूर्ण स्थिति में अचानक उसे ब्रह्मदेव के वचन स्मरण हो आये। मारुति को बाँधकर इन्द्रजित् उसे सभा में लायेगा। ऐसा ब्रह्मदेव ने कहा था अत: अब उन्हें ही बुलाना चाहिए। उस ब्रह्मा की वाणी असत्य नहीं होती तो मैं रण में परास्त कैसे हुआ ? हनुमान को अगर मैं नहीं बाँध सका तो वह ब्रह्मा सत्य वचनी कैसे हो सकता है ? ब्रह्मदेव को बुलाने के लिए मेरे पास कोई सेवक भी नहीं है। मैं स्वयं बाहर निकलता हूँ तो वह पूँछ मुझे मारेगी। हनुमान मेरा पीछा कर रहा है। ब्रह्मदेव मुझसे मिलने नहीं आ सकते अत: उनसे मेरी भेंट कैसे सम्भव है ? इन्द्रजित् चिन्तामग्न अवस्था में बैठा हुआ था कि अचानक ब्रह्मा वहाँ आ गए।

इन्द्रजित् एवं ब्रह्मदेव का संवाद– ब्रह्मदेव के अचानक आगमन से इन्द्रजित् प्रसन्न हुआ। उसने ब्रह्मदेव की चरण वन्दना की और प्रसन्नतापूर्वक उनसे बोला-- "स्वामी आपने कहा था कि मैं हनुमान को बाँधकर लंका ले आऊँगा फिर मेरा ही नाश क्यों हो गया ?" फिर राक्षस पुत्र ने ब्रह्मदेव से पूछा "हनुमान को मैं किस प्रकार बाँध सकूँगा, यह निश्चय पूर्वक बतायें। हनुमान हरिहर के लिए भी अवध्य है। उसे बाँधना मेरे लिए असम्भव है, मेरे क्रोध का उस वानर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उसे बाँधना असम्भव कहा जाता है। फिर मैं उसे बाँधकर लंका में ले जाऊँगा, अपने ये वचन सत्य करें। वानर ब्रह्म-पाश के बंधन में बँधेगा ये नारद के वचन आपने मुझे बताये थे। उसका मुझे स्मरण हो आया। हे स्वामी, कृपा कर मुझे ब्रह्म-पाश प्रदान करें, जिससे मैं हनुमान को बाँधकर कीर्ति अर्जित कर सकूँ।" ब्रह्मदेव ने सोचा "इसे ब्रह्म-पाश नहीं दिया तो ब्रह्म वाक्य मिथ्या हो जाएगा और देने पर भी हनुमान को बाँधना इसके लिए सम्भव नहीं है। अत: इसे ब्रह्मवाक्य की सत्यता का अनुभव कराने के लिए ब्रह्मपाश देना चाहिए।" इन्द्रजित् ने वह ब्रह्मपाश लेकर मारुति पर लक्ष्य साध कर छोड़ा। मारुति ब्रह्मपाश में फँसने वाले न थे अत: वह उन्हें बाँध न सका। इन्द्र, यम, वरुण, वायु के सदृश ही चन्द्र, सूर्य, अग्नि एवं शंकर से भी हनुमान को वरदान प्राप्त था। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तीनों का हनुमान को वरदान होने के कारण वे ब्रह्मपाश के बन्धन में नहीं बँध पाये। उन्हें कर्मपाश, धर्मपाश, ब्रह्मपाश, जन्मपाश इनमें से कोई भी पाश नहीं बाँध सकता था। वे नित्य एवं दोष-रहित थे। हनुमान के निरपेक्ष एवं हरिहर के दास होने के कारण, उन्हें बन्धन में बाँधना कैसे सम्भव था। मारुति को उस ब्रह्मपाश द्वारा न बँधता देखकर इन्द्रजित् चिन्तित हो गया। उसका ब्रह्मपाश व्यर्थ सिद्ध हुआ था। इन्द्रजित् द्वारा ब्रह्मपाश न लगने पर वह कहने लगा "वानर ने मेरा महाकर्म नष्ट कर मुझे तुच्छ सिद्ध कर दिया है जहाँ मेरी मन्त्रशक्ति ब्रह्मपाश, ब्रह्मशक्ति नहीं चल पा रही है वहाँ मात्र राक्षसी मन्त्र-युक्ति किस प्रकार पूरी पड़ सकती है ? मेरी सर्वशक्तियाँ मारुति ने निष्प्रभ कर दीं तो राक्षस युक्तियाँ तो व्यर्थ सिद्ध होंगी ही। जिसे ब्रह्मपाश नहीं बाँध सकता, उस पर सभी अस्त्र व्यर्थ हैं। यह वानर अत्यन्त जटिल है, इसे वश में करना असम्भव है, या फिर ब्रह्मा ने मुझे मिथ्या शक्ति दी है। सम्भवत: इसीलिए हनुमान नहीं बँध पाया।' इस कल्पना में इन्द्रजित् ब्रह्मदेव पर क्रोधित हो गया। वह बोला– "ब्रह्मा की दुष्ट बुद्धि मेरे विरुद्ध ही उठ खड़ी हुई।

अरे, ब्रह्मदेव तुम तो हमारे मूल पुरुष हो और हम से ही द्वेष कर रहे हो। रणभूमि में राक्षसों को ही मरवाते हो ? यह सुनकर ब्रह्मदेव बोले "तुम अत्यन्त शंकालु हो, तुम्हारे मन में ब्रह्मद्वेष है इसीलिए तुम ब्रह्म शक्ति का उपयोग नहीं कर पा रहे हो। फिर हनुमान को कैसे बाँध सकते हो ? जो निष्कपट, निर्मल वृत्ति का एवं शांत चित्त वाला होगा, उसके द्वारा ब्रह्मशक्ति का प्रयोग करने से विजय की प्राप्ति होती है। मेरी शक्ति मुझे लौटा दो, मैं हनुमान को बाँध दूँगा। तुम्हारी युक्तियाँ हनुमान पर नहीं चलेंगी तुम उसे नहीं बाँध सकते, जो राक्षस प्राणि-मात्र को पीड़ित करते हैं, वे हनुमान को नहीं बाँध सकते नेत्र सबको देख सकते हैं परन्तु स्वयं अपना रूप नहीं देख सकते। उसी प्रकार राक्षसों के पास प्राणि-मात्र को पीड़ित करने की शक्ति होते हुए भी वे हनुमान को पीड़ित नहीं कर सकते।" तत्पश्चात् पाश शक्ति हाथों में लेकर ब्रह्मदेव हनुमान के समीप आये।

ब्रह्मदेव द्वारा हनुमान को बन्धन स्वीकार करने के लिए कहना– ब्रह्मदेव हनुमान से बोले– 'तुम्हें ब्रह्म-पाश में नहीं बाँधा जा सकता- मेरे ये वचन सत्य करने हुए तुम पाश में बँधना स्वयं स्वीकार करो और मुझे असत्य वचनों के दोष से बचाओ। ब्रह्म-वाक्य का बन्धन मानकर तुम यह पाश बन्धन स्वीकार करो। ब्राह्मणों के वचनों का तुम उल्लंघन नहीं करते। अत: मेरे वचन मानकर पाश बन्धन स्वीकार करो'। ब्रह्मवचन सत्य सिद्ध करने हेतु ब्रह्मदेव के समक्ष साष्टांग दंडवत् प्रणाम करते हुए हनुमान बोले– "आपके वचनों के लिए मैं देहत्याग भी कर सकता हूँ, पाशबन्धन तो उसके समक्ष नगण्य है।" यह कहते हुए हनुमान ब्रह्मदेव के समक्ष मूर्च्छित होकर गिर पड़े। यद्यपि हनुमान निश्चेष्ट पड़े हुए थे परन्तु फिर भी वे बन्धन एवं मोक्ष से परे थे। वह रामभक्त नित्य निर्मुक्त था। मात्र ब्रह्माज्ञा को स्वीकार करने के लिए उन्होंने बन्धन स्वीकार किया था किन्तु सामान्य जन उसे बन्धन ही मान रहे थे, जिस प्रकार छोटे से पानी भरे गड्ढे में सूर्य का बिम्ब देखकर अज्ञानी व्यक्ति यह समझ लेता है कि सूर्य उसी गड्ढे में रहता है, उसी प्रकार वे अज्ञानी जन हनुमान को ब्रह्मपाश में बँधा हुआ मान रहे थे, वास्तव में वे मुक्त थे। लंका के घर-घर में यह चर्चा थी कि इन्द्रजित् विजयी वीर है, उसने हनुमान को ब्रह्मपाश में बाँध लिया है। ब्रह्मपाश में बँधकर भी हनुमान ब्रह्मबन्धन से परे हैं," यह जानकर इन्द्रजित् आश्चर्यचकित हुआ।

राक्षसों द्वारा हनुमान की हँसी उड़ाना; लंका में आगमन– हनुमान को भूमि पर निश्चेष्ट पड़ा हुआ देखकर राक्षस दौड़कर आगे आये और उन्होंने हनुमान को बेल रूपी डोरी से बाँधा। कुछ राक्षस घास की डोरी बना रहे थे तो कोई वृक्ष की छाल निकाल रहे थे। ये सारे प्रयत्न हनुमान को बाँधने के लिए चल रहे थे। यह देखकर हँसते हुए हनुमान सोच रहे थे– "यह झूठे बन्धन मेरे लिए व्यर्थ हैं परन्तु राक्षस बेचारे मूर्ख हैं, इसीलिए वे व्यर्थ ही इतना परिश्रम कर रहे हैं। अभी मैं लंका दुर्ग के टुकड़े टुकड़े कर रावण से मिलूँगा तथा शीघ्र ही समस्त लंका जला डालूँगा।" यह मन में निश्चय कर, वृक्ष बेलियों के बन्धन मानकर हनुमान रावण से भेंट करने के लिए लंका गये। हनुमान के समीप जाते ही ब्रह्म-शक्ति भयभीत होकर भाग गई। हनुमान को ब्रह्म पाश से मुक्त देखकर इन्द्रजित् चिन्तित हो उठा। "जो ब्रह्मपाश में नहीं बँध सकता उसे बेलों के पाश से कैसे बाँधा जा सकता है। यह बँधने के बहाने रावण को पीड़ित करने के लिए लंका जा रहा है। हमें इसने अशोक-वन में त्रस्त किया, अब लंका भुवन में रावण को संत्रस्त करेगा।" इन्द्रजित् सशंकित हो उठा। उसे अपयश मिलने का अत्यन्त दुःख हुआ परन्तु लोगों में

यह समाचार फैल गया कि इन्द्रजित् हनुमान को बाँधकर ले आया, हनुमान क्या अनर्थ करेंगे, इसका उन्हें अनुमान न था।

हनुमान का लंका में आगमन; राक्षसों की प्रतिक्रिया– ब्रह्मदेव ने जो हनुमान को बताया था उसे ध्यान में रखते हुए हनुमान ने लंका में प्रवेश किया। इन्द्रजित् भयभीत हो गया। वह राक्षसों से बोला– "अरे, हनुमान को ब्रह्म पाश में बाँधा। ब्रह्मपाश में तो वह बँध नहीं सका, उसे तुम कैसे पकड़ सकोगे ?" इस पर राक्षस बोले– "इस वानर की क्या बिसात, अब हमारे हाथ वह आ ही गया है तो हम उसका नाश कर देंगे, आप व्यर्थ ही चिन्तित हैं। आप भयभीत न हों।" जैसे किसी मदमस्त हाथी को कमल तन्तुओं से बाँधा जाय, उसी प्रकार राक्षसों ने महाबली हनुमान को वृक्ष की लताओं से बाँधा था। किसी ने डोरी से तो किसी ने वृक्ष की छाल से उसे बाँधा। कुछ पूर्व को तो कोई पश्चिम को, कोई दक्षिण की ओर कोई उत्तर की ओर हनुमान को खींच रहे थे। कोई क्रोध से मुक्के मार रहा था परन्तु उसका ही हाथ टूट जाने से वह दु:खी होकर चिल्लाने लगता था। मूसल से वार करने पर मूसल के ही टुकड़े टुकड़े हो रहे थे। मारने वाले का हाथ ही रक्तरंजित हो रहा था। यह सब देखकर हनुमान हँसते हुए राक्षसों के पुरुषार्थ को धिक्कार रहे थे।

हनुमान से खींचातानी कर राक्षस थककर चूर हो गए थे मारुति कराहने का दिखावा कर रहे थे परन्तु मन ही मन उल्लसित होकर सोच रहे थे कि अगर मुझे पकड़कर ये रावण के पास ले गये तो रावण को भी इसी प्रकार सन्त्रस्त करूँगा। राक्षसों द्वारा वध की शंका मात्र भी उनके मन में न थी। राक्षस गर्जना करते हुए कह रहे थे कि "अक्षय का वध करने वाला अब पकड़ में आया है, अब हम उसका वध करेंगे।'' हनुमान को राक्षस आगे ले जा रहे थे और ब्रह्मदेव इन्द्रजित् का हाथ पकड़कर उनके पीछे-पीछे जा रहे थे। ब्रह्मदेव आनन्दपूर्वक कह रहे थे– "हनुमान के लंका में प्रवेश करने पर लंका में रामराज्य आयेगा।" हनुमान को शीघ्र रावण के पास लाया गया। रावण क्रोधित होकर बोला "हे राक्षसो, तुम इसका भक्षण करो।" रावण दाँत पीसते हुए कह रहा था - "मेरे समक्ष धारदार शस्त्र से इसके टुकड़े-टुकड़े कर डालो।" रावण द्वारा आज्ञा देते ही करोड़ों सेवक गदा एवं अन्य हथियार लेकर दौड़े और वानर के टुकड़े-टुकड़े करने के लिए वार करने लगे। सन् सन् की ध्वनि करते हुए बाण छूटने लगे। शस्त्रों की खनखनाहट के साथ हनुमान के वध के प्रयत्न होने लगे। एक शूल से तो दूसरा मूसल से वार करने लगा। कोई धारदार त्रिशूल से तो कोई गदा से एवं कोई मुद्गर से वार करने लगा. गँड़ासे, चेडूचक्र, फरसा, पट्टीश, तोमर, जमदाढ़ा इत्यादि अनेक शस्त्रों से हनुमान पर प्रहार होने लगे। आवेशपूर्वक भाले, लहुड़ी तथा प्रचंड पत्थरों से भी वार हुए। इस प्रकार हनुमान को मारने के लिए राक्षसों ने निष्ठुरतापूर्वक शस्त्रों के वार किये। हनुमान सतत् रामनाम का स्मरण कर रहे थे अत: उनके समक्ष समस्त घातक अस्त्र तृणप्राय सिद्ध हुए इसके विपरीत उन्होंने ही पराक्रमी राक्षसवीरों को मार डाला, शस्त्रों को तोड़ डाला। किसी के हाथ उखाड़ दिये, किसी के दाँत तोड़ दिये। किसी को रक्त की उल्टी होने लगी। एक-एक कर सभी राक्षस वीर मूर्च्छित होकर गिर पड़े परन्तु हनुमान पर किसी भी वार का कोई प्रभाव न पड़ा। इससे रावण क्रुद्ध हो उठा। हनुमान के अन्तर्मन में श्रीराम का निवास होने के कारण उन पर शस्त्रों का तिल-मात्र भी असर नहीं हो रहा था। उन पर प्रहार करते हुए राक्षस वीर ही मूर्च्छित हो गए।

हनुमान एवं रावण का प्रत्यक्ष संवाद–हनुमान के वध के स्थान पर राक्षस वीरों को मूर्च्छित पड़ा हुआ देखकर रावण क्रुद्ध हो उठा। उसने चन्द्रसेन (चन्द्रहास) खड्ग हाथ में लेकर क्रोध से हनुमान

की ओर फेंका। इस पर हनुमान अट्टहास करने लगे। रावण के वार से पूरा ब्रह्मांड गूँज उठा। रावण का बल समाप्त हो गया। उसका मस्तक झुक गया। रावण ने हनुमान से प्रश्न किया– "तुम्हारे हँसने का क्या तात्पर्य है"। हनुमान ने प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा- "हे राक्षस राज लंकानाथ, तुम्हारे बल के विषय में आज तक मैं भ्रम में था। तुमने अभी अपने वार से अपना पुरुषार्थ व्यर्थ एवं मिथ्या सिद्ध कर दिया। तुम्हारे वार का परिणाम अत्यन्त निर्बल था। रावण तुम दीन-हीन एवं दुर्बल हो फिर राम से युद्ध किस प्रकार करोगे। तुम संसार के सबसे निर्लज्ज व्यक्ति हो इसलिए मैं तुम पर हँसा था। सीता के स्वयंवर के प्रसंग में शिव-धनुष देखते ही तुम्हारा मुख मलिन हो गया था। श्रीराम ने धनुष भंग कर दिया। अब तुम यह भीषण युद्ध कैसे कर पाओगे ? तुम श्रीराम से समक्ष खड़े नहीं रह सकते। इसी कारण सीता का हरण कर भाग आये। उस श्रीराम से युद्ध की बात करना तुम्हारी निर्लज्जता ही है। रावण तुम्हारे चिह्न दिखाई दे रहे हैं। तुम्हें सीता का हरण करते समय भिक्षुक बनना पड़ा अतः तुम्हारी राज्यसत्ता निश्चित ही नहीं रह पाएगी। तुम्हारे हाथों में कोई बल नहीं है, इसी कारण तुम्हारे वार से मेरा बाल भी बाका न हो सका।

रावण के समक्ष बैठ कर हनुमान निर्भीक होकर बोल रहे थे परन्तु रावण बहुत चिन्तित था क्योंकि हनुमान अजेय थे। तब रावण ने प्रहस्त के माध्यम से हनुमान से पूछा– "तुम कौन हो ? किसके कारण व कैसे यहाँ आये हो ? तुमने वन का विध्वंस क्यों किया ?" हनुमान बोले– "प्रतापी राजा रावण से भेंट करने के लिए मैंने वन का विध्वंस किया। राक्षस मुझे मारने आये अतः आत्मरक्षा के लिए मैंने उनका नाश किया।" इस प्रकार हनुमान ने प्रहस्त को अपना वृत्तान्त सुनाया। प्रहस्त की ओर देखे बिना राक्षसों की परवाह न करते हुए हनुमान रावण के समक्ष अपनी पूँछ का आसन बनाकर बैठे थे। रावण के विषय में भी उसके मन में कोई भय या शंका न थी। वे सामने बैठकर निर्भयतापूर्ण विभिन्न भंगिमाएँ कर रहे थे, उसे चिढ़ा रहे थे। आँखें मिचका रहे थे। उसे धिक्कारने हेतु अंगूठा दिखा रहे थे तथा प्रधान प्रहस्त की ओर देख भी नहीं रहे थे। रावण ने मनोमन ही यह जानकर स्वयं हनुमान से प्रश्न किया– "अरे तुम किसके वानर हो।"

हनुमान बोले– "हे रावण ! मैं तुम्हें सब बताता हूँ। वन-रक्षक, किंकर, जम्बुमाली एवं प्रधान कुमारों का जिसने रणभूमि में वध किया, मैं वही महावीर वानर हूँ। तुम्हारे पाँच शूर सेनापति, राक्षसों की सेना एवं अक्षय कुमार को जिसने मारा,वह महावीर वानर मैं ही हूँ। तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र इन्द्रजित् को संत्रस्त कर उसकी सेना का निःपात जिस महावीर वानर ने किया, वह मैं ही हूँ। वन को तहस-नहस करने के लिए जिस प्रकार मैंने वृक्षों को उखाड़ फेंका उसी प्रकार राक्षस-कुल का सर्वनाश करने के लिए ही मैं यहाँ आया हूँ। तुम्हारे इस प्रश्न का कि मैं किसका वानर हूँ, मैं अभी उत्तर देता हूँ, वह ध्यानपूर्वक सुनो। सुबाहु और ताड़का का जिसने निर्दलन किया; त्रिशिरा, खर और दूषण को जिसने मारा, उस श्रीराम का मैं दूत हूँ और तुम्हारे प्राण लेने के लिए आया हूँ। चौदह हजार राक्षसों का नाश कर जिसने जनस्थान को जीत लिया,उस श्रीराम का मैं दूत हूँ और तुम्हारा वध करने आया हूँ। जिसने बाणों से बिद्ध कर विराध को मारा, कपटी मारीच का वध किया, उसी श्रीराम का मैं भक्त हूँ और तुम्हें मारने आया हूँ। धनुर्धारी श्रीराम को मैं अपना दीक्षा-गुरु मानता हूँ। सूर्यवंशी श्रीरामचन्द्र का मैं वानरदूत बन कर तुम्हारा संहार करने हेतु आया हूँ। वह कोदण्डधारी मेरे परम गुरु रघुवीर काम-क्रोध का नाश करते हैं। तुम्हारे मन में प्रश्न उठेगा कि रावण का वध करने की इस वानर में सामर्थ्य भी है अथवा नहीं। तो सुनो- मेरा बल

असाधारण है। रण भूमि में मेरे वार की कोई तुलना नहीं है। मेरे हाथों के प्रहार से मेरु, मंदार जैसे पर्वत भी चूर चूर हो जाते हैं। मेरे सम्मुख दशानन एक छोटे से कीटक के समान है और लंका त्रिकूट तुच्छ सी वस्तु है। मैं इन दश मुखों को अपने नखों से छेद सकता हूँ। जिस प्रकार अग्नि से पतंगे की अवस्था होती है उसी प्रकार राक्षसों की स्थिति होगी। तुम्हारे जैसे करोड़ों दशमुख भी हों तो मैं उनका बायें अँगूठे मात्र से निर्दलन कर सकता हूँ।"

हनुमान आगे बोले– "तुम्हारा पुरुषार्थ व्यर्थ है। जो राजा भिखारी बनता है, चोरी जैसा कुकर्म करता है, पतिव्रता परस्त्री का हरण करता है, उसका जीवन ही व्यर्थ है। हे रावण, तुम्हारा कुल, शील बल सब व्यर्थ है तुम मात्र परस्त्री की लालसा के धनी हो। रावण, तुम्हारी राक्षस जाति की कीर्ति को धिक्कार है। तीनों लोकों में तुम्हारा अपयश ही फैला है। तुम्हारी धन-सम्पत्ति, शक्ति सभी को धिक्कार है। तुम्हारे हाथों का खड्ग भी धिक्कार का पात्र है क्योंकि उससे एक वानर का बाल भी बाँका न हो सका। तुम्हारा जन्म, धर्म तथा कर्म तीनों लोकों में निन्दनीय है। तुम्हारे शौर्य एवं धृति को भी धिक्कार है। श्रीराम के बाणों के भय के कारण तुमने उनके परोक्ष में सीता का हरण किया। तुमने मेरे स्वामी की पत्नी को चुराया, तुम मेरे शत्रु हो। मैं सीता का सहायक हूँ अतः तुम्हारा वध करूँगा। तुमसे प्रत्यक्ष मिलने के लिए ही मैंने वन को तहस नहस कर करोड़ों राक्षसों का संहार किया। तुम्हें देखने के उद्देश्य से अपने गले में बन्धन डालने दिया और तुमसे भेंट करने आया हूँ। अब मात्र तुम्हारा वध बाकी है, जिससे श्रीराम का कार्य सिद्ध होगा तथा सीता की मुक्ति हो सकेगी। मैंने अपने विषय में तुम्हें विस्तार से बताया अब मात्र तुम्हारा वध शेष है।"

हनुमान फिर आवेशपूर्वक बोले "हे रावण, तुझमें प्रचंड सामर्थ्य है। तुम्हारे प्रधान, सेनानी तथा सेना प्रबल है। अतः मुझे तत्काल मारकर जनक-कन्या का उपभोग करो। अरे रावण, इन राक्षसों के देखते देखते मैं तुम्हारे दसों कंठ छेद डालूँगा। इसीलिए मैं यहाँ आया हूँ। इन वचनों के साथ हनुमान के केश थरथराने लगे उन्होंने अपनी पूँछ को जमीन पर पटका। पूँछ का विस्तार होने लगा। हनुमान की आँखें फैल गईं। उनकी यह अवस्था देखकर रावण काँपने लगा। वैसी ही अवस्था राक्षसों की हुई। सबका संहार करने के लिए जिस प्रकार प्रलय रुद्र भीषण रूप धारण करता है, वैसे ही मारुति का आकार बढ़ने लगा यह देखकर राक्षस काँपने लगे हनुमान बोले "मैं तो श्रीराम का दास मात्र एक वानर हूँ। तुम अपने करोड़ों जुझारू वीर मेरे समक्ष खड़े करो। वे मेरे लिए छोटे कीटक के समान हैं। मेरे द्वारा रावण का घात करते समय कौन उसकी रक्षा करेगा" ? हनुमान का क्रोध देखकर इन्द्रजित् चिन्ता से काँप उठा, उसे लगा यह वानर निश्चित ही रावण का वध करेगा।

हनुमान आगे बोले– "युद्ध में रावण को मारकर सीता को मुक्त कर श्रीराम के पास ले जाते हुए मुझे कौन रोकेगा ? मैं एक क्षण में यह सब कर सकता हूँ परन्तु श्रीराम ने शपथ ली है कि 'मैं अपने दाहिने हाथ से बाण चलाकर रण में रावण को मारूँगा। दशमुख को मारकर पृथ्वी को भयरहित करूँगा समस्त चराचर को सुखी करूँगा। देवताओं को बन्धनमुक्त कर, नवग्रहों की बेड़ियों को तोड़कर रामराज्य की ध्वजा फहराने का श्रीराम ने निश्चय किया है। श्रीराम की मर्यादा गहन है, वे बलों के बल हैं वे शालीनता एवं पवित्रता की प्रतिमूर्ति हैं। उनकी प्रतिज्ञा अटल है। उनकी प्रतिज्ञा सत्य करने के लिए मैं अन्यथा आचरण नहीं करूँगा। अतः मैं तुम्हें कैसे मार सकता हूँ ? रावण को समक्ष देखकर यह वानर उसका वध किये बिना कैसे रह सकता था परन्तु श्रीराम की प्रतिज्ञा ने रावण को बचा लिया " इन्द्रजित्

ने हनुमान को यह कहते हुए सुन लिया था कि "रावण, अब मैं तुम्हारा वध करूँगा"। हनुमान के ये शब्द सुनकर इन्द्रजित् चिन्तित था। उसने विभीषण से बताया कि 'हनुमान भयंकर क्रोध में है, आज रावण का वध निश्चित है। अब कोई उपाय नहीं चल सकता' मारुति पर अस्त्र-शस्त्र असर नहीं करते। उसके विरुद्ध बल का, कपट विद्या का कोई उपयोग नहीं होता। वह वानर प्रबल सामर्थ्यवान है। मंत्रशक्ति, तन्त्रशक्ति, आक्रमविद्या शक्ति उसके समक्ष निरर्थक है। उस पर माया मोहन शक्ति का कोई परिणाम नहीं होता। युद्ध से उसे जीता नहीं जा सकता। यह वानर, सेना से एवं ब्रह्मपाश से वश में नहीं किया जा सकता तो रावण इसे कैसे हरा पाएगा। प्रत्येक बन्धन उसके लिए तृण के समान क्षुद्र है उसे पाश में बाँधना सम्भव नहीं है फिर उसका वध कैसे किया जा सकता है ?

विभीषण ने इन्द्रजित् के वचन सुनकर रावण को बताया कि 'हे लंकानाथ यह वानर अमर है। तुम इसे मार नहीं सकते। अतः यह समझते हुए तुम सीता, श्रीराम को अर्पित कर उनकी शरण में जाओ। श्रीराम की शरण में जाकर अपनी मुक्ति होगी, यह सत्य है। अतः यह समझते हुए अन्य कोई विचार मत करो अन्यथा हनुमान के द्वारा तुम्हारा वध निश्चित है। उसके समक्ष कोई उपाय नहीं चलेगा। हे लंकानाथ, तुम भ्रम में न रहो। श्रीराम का एक वानर हमारे वश में नहीं हो रहा है। स्वय श्रीराम के क्रोधित होने पर जो भीषण युद्ध होगा, उसे कौन झेल सकेगा। इसकी अपेक्षा जानकी को काया, वाचा, मनसा श्रीराम को अर्पित कर रघुत्तम राम की शरण में जाने से कल्याण होगा।" सात्विक-बुद्धि विभीषण के वचन न मानकर रावण गर्वाभिमान से बोला– "एक वनचारी वानर के भय से अगर मैं राम की शरण में गया तो मुझे और मेरे पराक्रम को कितना अपमान सहना पड़ेगा। हनुमान को 'क्या उसे मरण चाहिए ?' ऐसा प्रश्न पूछ कर मैं उसके ही शब्दों द्वारा उसका घात करूँगा। इसके पूर्व जटायु को उसके शब्दों द्वारा ही कपट कर उसके पंख तोड़कर मार डाला, उसी प्रकार हनुमान का भी वध करूँगा" रावण के मन में ऐसी कुबुद्धि जागृत हुई।

ॐ ॐ ॐ ॐ

अध्याय १८

[हनुमान की पूँछ जलाने के लिए किये गए प्रयत्न]

रावण के ज्येष्ठ पुत्र इन्द्रजित् ने रावण को अनेक प्रकार से समझाते हुए कहा "उस हनुमान को शस्त्रास्त्र में अथवा ब्रह्मपाश में नहीं बाँधा जा सकता। उस पर शस्त्र-शक्ति, मंत्र-शक्ति, तन्त्र-शक्ति, कपट अथवा मायामोहन-शक्ति का कोई परिणाम नहीं होता। युद्ध में उसे बन्दी बनाना असंभव है। कर्म, धर्म इत्यादि सभी पाश उसके समक्ष निष्फल हैं। आपका प्रिय बन्धु विभीषण आपके हित में ही कह रहा है। आप श्रीरघुनाथ की शरण जायें।" यह सुनकर रावण समझ नहीं पा रहा था कि क्या करे, हनुमान सर्वथा अवध्य है, मेघनाद मुख्य रूप से यही बताना चाह रहा था। विभीषण ने भी कुछ और उपाय बताया। रावण चिन्तामग्न हो गया, उसे क्रोध भी आया। उससे हनुमान का वध नहीं हो पा रहा था। वह अवध्य है, यह जानकर रावण चिन्तित हो उठा– 'हनुमान का वध नहीं किया तो वह सम्पूर्ण कुल का नाश कर डालेगा।' रावण चिन्ता मग्न हो गया।

रावण का प्रश्न; हनुमान का उत्तर– रावण ने हनुमान को श्रीराम की शपथ देते हुए पूछा कि उसकी मृत्यु किस में निहित है। उसने सोचा कि एक बार इस विषय में जानकारी होने के पश्चात् फिर हनुमान को मारा जा सकता है। उसने हनुमान से उनकी मृत्यु का उपाय पूछने से पूर्व स्वयं उनकी स्तुति प्रारम्भ की। "हे वीर हनुमान, श्रीराम के परम भक्त, अब मैं तुमसे जो पूछ रहा हूँ, उसका सत्य उत्तर देना हरि भक्तों को असत्य नहीं बोलना चाहिए। तुम्हें श्रीराम की सौगन्ध देकर मैं तुमसे पूछता हूँ कि तुम्हारी मृत्यु किस प्रकार होगी। श्रीराम की सौगन्ध सुनकर हनुमान बोले– "हे रावण, मुझे मरण है ही नहीं। यही सर्वथा सत्य है।" हनुमान का यह उत्तर सुनकर रावण हँसते हुए बोला– "जन्म के साथ मरण आता ही है। हनुमान का अमरत्व असत्य है। देवताओं को बुढ़ापे से रहित एवं अमर कहा जाता है। उन्हें भी मृत्यु से छुटकारा नहीं है फिर तुम्हारी क्या बिसात। अमरत्व के तुम्हारे ये वचन मिथ्या हैं। मारकण्डेय की चौदह कल्प आयु बताकर उसकी महिमा गाते हैं, उसकी भी मृत्यु होती है हर्षण का रोम रोम झड़ता रहता है। युगों युगों से लोम झड़ने के कारण वह लोमहर्षण ऋषि कहलाए। उस लोमहर्षण ऋषि की भी बकदाल्भ के श्वास से मृत्यु हुई। बकदाल्भ की हंस पक्षी द्वारा मृत्यु होती है। हँस के पंख जब झड़ते हैं तो बकदाल्भ की आयु समाप्त होती है। भुशुंडि का नख जब खंडित होता है, तब हंस की मृत्यु होती है। इस प्रकार सभी प्राणियों की मृत्यु निश्चित ही है। फिर रावण आगे बोला कूर्म के निमिष मात्र हिलने से भुशुंडि (इस नाम का कौवा) की मृत्यु होती है। ऐसी ये मरण परम्परा है। जिससे महान से महान व्यक्ति भी बच नहीं पाते तो तुम तो पेड़ों के पत्ते खाने वाले सामान्य वानर हो। तुम कैसे अमर हो सकते हो ?"

महाऋषि तप के तेज से परिपूर्ण होते हैं। काल उनका दास होता है। जिसको श्रीराम नाम से प्रेम होता है, काल उनका भी दास होता है। जागृति, सुषुप्ति एवं स्वप्नावस्था में भी जो अखंड रूप से नाम-स्मरण करते हैं, काल उनके चरणों की वन्दना करता है। हे रावण, उनकी महिमा अपरम्पार है, भक्ति भाव से किये गए भजन को स्वयं भगवान् स्मरण करते हैं। रावण विषयासक्ति के कारण अत्यन्त दीन हीन है। उसे इसका ज्ञान कैसे सम्भव है ? मैं श्रीराम का भक्त हूँ, मेरे अमरत्व का अनुभव अवश्य रावण को कराना चाहिए। मैं श्रीराम भक्त हनुमान मिथ्यावचन कैसे कह सकता हूँ परन्तु वह धूर्त कहता है कि मैं झूठ बोल रहा हूँ।" हनुमान की बुद्धि में स्फुरण होने लगा। उसने रावण को सबक सिखाने के लिए अपने विषय में बताना प्रारम्भ किया। रावण अत्यन्त कपटी है, उसने मेरे सत्य वचनों को भी सत्य नहीं माना। जो अन्तर्बाह्य नित्य असत्य आचरण करता है, वह सत्य को स्वीकार नहीं करता। सत्य में भावना भी सत्य की ही होती है। रावण में वह भाव नहीं है। रावण का संदेह समाप्त होने पर ही उसे मेरे सत्य भाषण पर विश्वास होगा। यह विचार कर हनुमान रावण से बोले–"मुझसे विश्वासपूर्वक तुम मृत्यु के विषय में पूछ रहे हो परन्तु उसी विश्वास से तुमने जटायु का वध किया। मेरे साथ भी तुम वैसा ही करोगे इसी भय से मैंने झूठ बोला।" इस पर रावण ने हनुमान से कहा– "जो मृत्यु से डरता है वह श्रीराम का भक्त कैसे हो सकता है। देह लोभी को श्रीराम कैसे प्राप्त हो सकते हैं ? हनुमान ने रावण से कहा "हे लंकाधीश, दूसरे को उपदेश देने में तुम बहुत योग्य हो परन्तु अपने आचरण में बहुत कपटी हो, तुम कपटपूर्वक सन्यासी होकर सीता को चुराकर लाये। सदाशिव ने तुम्हें मुक्त कराया परन्तु कपट के कारण तुम्हारे कुल का नाश हो जाएगा " हनुमान के वचन रावण को चुभ गए फिर हनुमान बोले "अब मैं अपनी मृत्यु के विषय में तुम्हें बताता हूँ, वह तुम ध्यानपूर्वक सुनो" रावण

उत्सुकता पूर्वक सुनने के लिए तत्पर हुआ। हनुमान ने युक्तिपूर्वक बताना प्रारम्भ किया और रावण सावधानी से सुनने लगा। "मैंने तुम्हें असत्य नहीं कहा था। मेरी देह को वास्तव में मृत्यु नहीं है। मेरी पूँछ को मृत्यु है। मेरी पूँछ को मारने पर मैं मर सकता हूँ।"

हनुमान की पूँछ में वस्त्र लपेटने के प्रयत्न– रावण का ज्येष्ठ पुत्र मेघनाद, श्रेष्ठप्रधान, सेनापति, सैनिक ये सभी, हनुमान के इस कथन कि 'उनकी पूँछ में उनकी मृत्यु है,' को सत्य मानकर कहने लगे– "इस वानर की पूँछ वायु से अधिक चपल है तथा उसमें प्रबल सामर्थ्य है। इस पूँछ ने ही सबका निर्दलन किया है। शक्ति से इस वानर को मारना सम्भव नहीं है। इस पूँछ ने रथ के सारथी को मार दिया, इन्द्रजित् को त्रस्त कर दिया और रणभूमि में पराक्रम करते हुए वीरों का नाश कर दिया इन्द्रजित् ने अपने युद्ध का अनुभव बताते हुए कहा–"यह पूँछ अत्यन्त भयंकर है। अगर उसे मारने जायेंगे तो वह रण में भीषण ताण्डव करेगी। यदि यह क्रोधित हो गई तो सभी वीरों को मार डालेगी। लंका को तहस-नहस कर देगी। फिर लंकानाथ कैसे बचेंगे ? इन्द्रजित्, सेनापति व प्रधान को पूँछ के भय से भयभीत देखकर रावण के कुछ सोचकर हनुमान से पूछा– "यह पूँछ अत्यन्त भयंकर है, यह कैसे मरेगी इस विषय में सत्य बताओ" हनुमान बोले "हे दशानन, पूँछ को मारना अत्यन्त कठिन है। कपड़े को घी व तेल में भिगोकर उसे पूरी पूँछ पर लपेटो। हनुमान का निश्चित रूप में वध करने के लिए पूँछ के सिरे पर आग लगा दो। ज्वालाएँ जैसे ही आकाश तक उठने लगेंगी, मेरी तत्काल मृत्यु हो जाएगी परन्तु पूँछ थोड़ी भी खुली रहने पर उसकी मृत्यु नहीं होगी। इसके विपरीत राक्षसों को ही मृत्यु के मुख में जाना पड़ेगा और पूँछ सम्पूर्ण लंका का नाश कर देगी। मैं तुम्हें सत्य कह रहा हूँ फिर मुझे कपटी होने का दोष मत देना। अगर तुममें शक्ति है तो मेरी पूँछ लपेट डालो। यह पूँछ मैं तुम्हारे हाथ में दे रहा हूँ, अब शीघ्र तेल में भीगे हुए कपड़े लाकर सावधनी पूर्वक इस पर लपेटो " अब मारुति की पूँछ लपेटने के लिए खींचातानी प्रारम्भ हो गई। इस प्रकार पूरी लंका में पूँछ लपेटने के लिए कोलाहल प्रारम्भ हो गया। हनुमान सोच रहे थे कि मैं रात्रि में सभा को तथा दिन में सम्पूर्ण लंका को पूँछ से संत्रस्त कर राक्षसों का नाश करूँगा। पूँछ लपेटने के बहाने लंका का वस्त्रहरण करूँगा और राक्षसों पर चिल्लाऊँगा। उनके कीमती वस्त्र फाड़े जाएँगे तेल के लिए उनमें परस्पर युद्ध करवाऊँगा। तैली को राजा द्वारा दण्ड दिलावाऊँगा।' उनका विचार था कि पूँछ के बहाने सम्पूर्ण नगरी को उजाड़कर लंका में आग लगा दूँगा, समस्त राक्षस उसमें भस्म हो जाएँगे। रावण ने अपने सेवकों से कहा - "हनुमान की पूँछ में आग लगा दो। पुराने कपड़ों को घी एवं तेल में डुबाकर पूँछ पर लपेटो।" रावण की यह आज्ञा सुनकर शूर, वीर, क्रोधी, क्रूर अत्यन्त भयंकर सभी राक्षस पूँछ लपेटने के लिए आगे बढ़े। जब पुराने वस्त्र समाप्त हो गए तब रावण ने नये वस्त्र लपेटने के लिए कहा। नवीन-वस्त्र भी समाप्त हो गए परन्तु पूँछ को पूरा लपेटा न जा सका। सभी प्रकार के वस्त्र सावधानीपूर्वक लपेटे गए। कपड़ों के बड़े-बड़े लट्ठे लाये गए फिर भी पूँछ पूरी तरह से लपेटी नहीं जा सकी। कपड़ों का बाजार खाली हो गया। राजमहल के कीमती वस्त्रों का प्रयोग करने पर भी पूँछ को लपेटना सम्भव न हो सका। हनुमान ने पूँछ को इतना बढाया था कि इतने प्रयत्न करने के बाद भी पूँछ का चौथाई हिस्सा भी न ढँक सका।

हनुमान की पूँछ को बढ़ा हुआ देखकर रावण, इन्द्रजित् एवं सभी राक्षस श्रेष्ठ उनके परिवार मन ही मन भयभीत हो उठे। मारुति की मृत्यु निश्चय ही पूँछ में है- वे परस्पर ऐसा कहने लगे। तत्पश्चात् परदे बैठक में बिछे हुए वस्त्र, छत पर बँधे कपड़ों को लपेटने पर भी पूँछ ढँक न सकी। पूँछ का एक

हिस्सा लपेटना शेष रह ही गया। तब सभी विचार करने लगे कि इस बचे हिस्से को भी अवश्य लपेटना चाहिए। अतः पूँछ में लपेटने के लिए सभा में बिछे वस्त्र भी ले लिये गए। इससे सभा नग्न हो गई। सभा की अवस्था के पश्चात् घोर रावण के वस्त्र भी ले आये फिर भी वे पूरे नहीं पड़े। अतः रावण ने सेवकों को आज्ञा दी कि "नगर में जो भी वस्त्र शेष हों, वे ले आओ और शीघ्र हनुमान की पूँछ ढँक डालो। नगरवासियों के तथा उनके यहाँ पधारे पाहुनों के वस्त्र भी, दूत छीन कर ले आये जिससे चारों ओर त्राहि त्राहि मच गई। सब नगरवासी नग्नअवस्था में इधर उधर भागने लगे। राजदूतों द्वारा पूँछ पर लपेटने के लिए नारियों एवं कुमारियों के वस्त्र भी ले जाने से आवरणरहित हो वे लज्जित हुईं; चारों ओर हाहाकार मच गया। गीले वस्त्र पहनकर राजमार्ग से जाने वाले भट ब्राह्मणों के वस्त्र उनके विरोध करने पर भी, राजदूतों ने बलपूर्वक छीन लिये जिससे क्रोधित होकर वे उनको विभिन्न प्रकार से कोसने लगे और पूछने लगे कि रावण जीवन्त है अथवा उसकी मृत्यु हो गई। अगर वह जीवित है तो हमारी रक्षा क्यों नहीं करता। हमारे चीखने चिल्लाने की आवाज उस तक पहुँच नहीं रही है। इसका तात्पर्य है कि राजा की मृत्यु हो गई है।' उस वीर जगजेठी हनुमान ने पूँछ के लिए सम्पूर्ण लंका को निर्वस्त्र कर दिया। करोड़ों राक्षस थक कर चूर हो गए परन्तु अन्त तक वे पूँछ को पूरी तरह से ढँक नहीं पाये। पूँछ ढँकने के लिए इतने प्रयत्न करने पर भी सफलता नहीं मिली अतः रावण की स्थिति दीन दुर्बलों के समान हो गई। जैसे जैसे पूँछ को लपेटा जाता था, पूँछ बढ़ती ही जाती थी। राक्षस भ्रमित हो गए थे, राक्षसों को मरणान्तक श्रम हुए थे। कपड़ों के व्यापारी राजद्वार पर आकर आक्रन्दन करने लगे। लंका के नर नारियों में, घर-घर में त्राहि-त्राहि मच गई। तेल एवं घी के संग्रह रिक्त हो गए। पूँछ लपेटने के प्रयासों ने रावण को पागल बना दिया। घी, तेल के समाप्त होने पर भोजन के लिए भी वह उपलब्ध न हो सका। घी, तेल के अभाव में दिये बुझकर सर्वत्र अंधकार छा गया। पूँछ ने इस प्रकार ताण्डव मचा दिया। हनुमान ने युक्तिपूर्वक सम्पूर्ण लंका को लूट लिया। ऐसा करते हुए न तो किसी प्रकार का युद्ध हुआ और न लड़ाई ही हुई परन्तु पूँछ लपेटने में सबकी अवस्था दीन हीन हो गई- इस प्रकार का पराक्रम हनुमान ने कर दिखाया।

हनुमान की पूँछ में आग लगाने के लिए किया गया प्रयत्न– रावण ने कहा– "अब मात्र छोर ही शेष बचा है। उस पर यह पीताम्बर लपेट कर आग लगाकर इस वानर को मार डालें।" फिर पीताम्बर, श्वेताम्बर, उच्चकोटि के रेशमी वस्त्र लपेटने पर भी पूँछ ढँकी नहीं गई यह देखकर इन्द्रजित् मन ही मन भयभीत हो उठा वह कहने लगा -"जिस हनुमान की पूँछ वश में नहीं हो पा रही है, उसमें आग लगाने से तो वह लंका में अनर्थ ही मचा देगी।" इन्द्रजित् के यह कहने पर विद्युन्माली बोला– "इस वानर को वश में करने में बहुत समय लग सकता है अतः जानकी को मुक्त करें, जिससे तत्काल यह पूँछ वश में हो जाएगी"। रावण भयग्रस्त हो गया था। वह मन में कहने लगा– "हम जिसकी पूँछ नहीं ढँक पा रहे हैं, उस वानर को कैसे मार सकेंगे। इस पर कोई उपाय दिखाई नहीं देता," रावण का मनोगत सुनते ही हनुमान ने अपनी पूँछ को संकुचित कर लिया। ऐसा करते ही सेवक रावण से कहने लगे– "हमने पूँछ लपेट ली, हम बहुत बलवान् हैं। सम्पूर्ण पूँछ को लपेट लिया गया है।" सभी गर्जना करते हुए तालियाँ बजाने लगे। रावण ने शीघ्र पूँछ में आग लगाने की आज्ञा दी फिर लोहारों को बुला उनके यन्त्रों से अग्नि प्रज्वलित करने का प्रयत्न किया गया। उस समय हनुमान ने अपने पिता वायुदेव से विनती करते हुए कहा– "आप अग्नि के सच्चे मित्र हैं। अतः ज्वाला को प्रज्वलित न होने दें।" वायु

को नमन कर हनुमान राक्षसों को त्रस्त करने लगे। लोहारों के असख्य प्रयत्नों पर भी पूँछ में अग्नि प्रज्वलित नहीं हो रही थी। राक्षसों के थक कर चूर होने पर भी अग्नि पूँछ को स्पर्श नहीं कर रही थी।

तत्पश्चात् हनुमान रावण से बोले– "रावण ! तुम महामूर्ख हो। वेदों का विभाग कर विवरण करने पर भी व्यास के वेद विवरण से समाप्त नहीं होते। संतों-असंतों को भी उनकी स्थिति ज्ञात नहीं होती, तुम गर्व की मूर्ति हो। संत-असंत का विवेक जिसमें तिलमात्र भी न हो,उसे यह राज-पद शोभा नहीं देता। तुम व्यर्थ ही गर्व करते हो। अचेतन धौंकनी से अग्नि प्रज्वलित कर सचेतन को कैसे जलाया जा सकता है, इतना भी विवेक तुममें नहीं है। रावण, तुम अज्ञानी हो" हनुमान का यह कथन रावण को ठीक लगा। उसने अपने विश्वसनीय सेवकों को बुलाकर आज्ञा दी कि फूँक कर अग्नि प्रज्वलित करो। राक्षसों ने पूँछ के चारों ओर से फूँकना प्रारम्भ किया परन्तु अग्नि को हनुमान द्वारा पूँछ से दबा देने के कारण धुआँ नाक में जाने से राक्षस विचलित हो उठे। उसकी गंध इतनी तीव्र थी कि राक्षसों के नेत्रों से अश्रु बहने लगे, मुख से लार टपकने लगी। श्वास में अवरोध उत्पन्न होने से वे खाँसने लगे। घबराकर वे त्राहि-त्राहि करने लगे। तब रावण हनुमान से बोला– "अब फूँकने पर भी पूँछ क्यों नहीं जल रही है।" हनुमान उत्तर देते हुए बोले– "लंकानाथ, तुम्हें तत्वज्ञान की बात कह रहा हूँ वह सुनो– गृहस्थ जब तक आमन्त्रित नहीं करता, अतिथि भोजन के लिए नहीं आता। उसी प्रकार अगर तुमने स्वयं नहीं फूँका तो अग्नि कदापि प्रज्वलित नहीं होगी। गृहस्थ द्वारा ब्रह्मार्पण किये बिना ब्राह्मण भोजन प्रारम्भ करने के लिए आचमन नहीं लेते। उसी प्रकार रावण के स्वयं फूँके बिना अग्नि प्रज्वलित नहीं होगी, ये सब एक मुख से ही फूँक रहे हैं। हे लंकाधीश, तुम्हारे दस मुख हैं, तुम्हारे द्वारा फूँकने से अग्नि अच्छी तरह प्रज्वलित होगी।" हनुमान की यह युक्तिसंगत उक्ति रावण को सत्य प्रतीत हुई।

रावण ने फूँकने से पूर्व यथोचित पूर्व तैयारी की। उसने शुद्धाचमन कर पहले घी की आहुतियाँ दीं। तत्पश्चात् वह दशानन अग्नि प्रज्वलित करने के लिए बैठा। परन्तु रावण में मन में कपट था कि पूँछ सहित वह हनुमान को भी भस्म कर देगा। इसके लिए वह आवेशपूर्वक अग्नि फूँकने के लिए बैठा। उसके मन में विचार चल रहा था कि 'मेरे मुख से पूँछ की अग्नि प्रज्वलित होने पर हनुमान अगर भस्म हो गया तो मेरी सर्वत्र कीर्ति फैल जाएगी'। इस प्रकार अभिमानपूर्वक रावण ने फूँक कर अग्नि को प्रज्वलित किया। ज्वाला भड़कने से रावण की दाढ़ी-मूँछें जल गईं। आरम्भ में ही अपमानित होकर वह लज्जापूर्वक सिंहासन पर जा बैठा। कीर्ति के स्थान पर उसे अपयश ही मिला। हनुमान अब आगे क्या करेगा रावण चिन्तामग्न होकर यह सोचने लगा।

अध्याय १९

[लंका दहन]

हनुमान ने अपने पिता वायु से कहा था कि रावण द्वारा फूँककर अग्नि प्रज्वलित करते ही उस ज्वाला से रावण का अपमान हो। पुत्र का यह कथन मान कर वायु ने अग्नि प्रज्वलित कर रावण का मुख जला दिया, जिससे रावण अपमानित हुआ। होठ जलने से वह आक्रंदन भी नहीं कर पा रहा था। पूँछ की ज्वाला प्रज्वलित होते ही उसका अपमान हुआ परन्तु पूँछ फिर भी नहीं जली,

हनुमान की स्थिति; राक्षसों की प्रतिक्रिया– रावण द्वारा विवेकपूर्वक विचार करने पर उसे लगा– 'हमने अपने हित के लिए पूँछ में आग लगाई परन्तु फिर भी यह वानर पूर्णरूप से शंका रहित है हमने वानर को छलपूर्वक जलाना चाहा परन्तु रामभक्तों के समक्ष छल कपट निरर्थक हो जाते हैं। इसीलिए वानर को जलाने का विपरीत परिणाम होकर मैं ही अपनी दाढ़ी मूँछें जलाकर अपमानित हुआ।" पूँछ के प्रज्वलित होते ही हनुमान बाल-सूर्य के समान सुशोभित हो रहे थे तथा पूँछ का तेज किरण-रूपी आवर्त के सदृश प्रतीत हो रहा था। राक्षसों के मध्य वानर रूपी सूर्य के उदित होते ही राक्षसों का अंधकार अस्त हो गया। रावण की गर्वरूपी अंधेरी रात्रि समाप्त हो गई।

इसके पश्चात् हनुमान ने उड़ान भरी, जिसके कारण डोर, बेलों इत्यादि के बंधन टूट गए। ब्रह्मपाश समाप्त हो गया और नामस्मरण के कारण भवपाश से मुक्ति हो गई। श्रीराम नाम रूपी भँवर में सप्तपाशों की निवृत्ति होने से हनुमान त्रिलोकों में आनन्दपूर्वक गर्जना करने लगे काल-पाश, कर्म पाश, धर्म-पाश ब्रह्म-पाश, माया-पाश, मोह-पाश, जन्म-पाश ये सात पाश हैं, काल पाश आयु को नाश करता है, कर्मपाश अनैश्वर्यवान् है। धर्मपाश आश्रमगत होता है, वेदविहितों के लिए ब्रह्मपाश है। देहममता का तात्पर्य मोहपाश है। किसी वस्तु की आस होना माया-पाश है। कनक और कांता जन्म-पाश हैं। इन सात पाशों में जीव बँधा होता है। हनुमान को इन सात पाशों से मुक्ति रामनाम के कारण मिली। राम-नाम के सम्मुख अन्य किसी की युक्ति नहीं चलती है। वे सब देहपाश में फँसे रहते हैं। आठवाँ वितंड पाश होता है, उसमें अनेक पाश होते हैं। उनका कर्ता महापापी होता है। उन सभी पापों का नाश करने में राम नाम निष्णात है। हनुमान ने उस रामनाम से सम्पन्न होने के कारण सभी पाशों को सहजता से तोड़ दिया, ज्वाला प्रज्वलित होते ही हनुमान इधर-उधर लोटने लगे। अग्नि के भय से पाश पकड़े हुए राक्षस भाग खड़े हुए, जैसे-जैसे पूँछ जलने लगी, हनुमान इधर उधर भागने लगे तब द्वन्द्व दूर करने वाले, भक्तों के सहायक श्रीराम सहायता के लिए आये। वे नित्य सूक्ष्म रूप में भक्तों के पास रहते हैं। वे सर्वत्र व्याप्त हैं। रघुनाथ के सहायक होने पर कोई बाधा समक्ष कैसे आ सकती है। हनुमान इसलिए द्वन्द्व मुक्त थे। पूँछ की आग बढ़ने से हनुमान सन्तुष्ट हुए, मानों अग्नि न होकर अमृत वर्षा करने वाला चन्द्र ही पूँछ में बँधा हो। हनुमान प्रसन्न थे। प्रज्वलित अग्नि के रूप में चन्द्रमा ही आलिंगनबद्ध करने आया हो– ऐसा अनुभव हनुमान को हुआ क्योंकि उनके सहायक श्रीरामचन्द्र थे, श्रीराम नाम की महत्ता ऐसी है, जिसके कारण द्वन्द्वात्मक स्थिति में भी समस्त सृष्टि रामनाम-मय हो जाती है। हनुमान मन ही मन कह रहे थे– "राम का नामस्मरण करने के समान दूसरा कोई साधन नहीं है। इसी के कारण पूँछ में लगी आग से मुझे बाधा नहीं हुई, श्रीरघुनाथ ने ही मुझ पर कृपा की।"

हनुमान की पूँछ जैसे-जैसे जलने लगी, वैसे वैसे हनुमान मिथ्या ही तड़पने लगे क्योंकि उन्हें राक्षसों को शान्त करना था। उन्होने आँखें पलट दीं। उनके मुख से झाग आने लगा। अपनी पूँछ जमीन पर फैलाकर वे मृत के समान लेट गए, राक्षसों ने पास में आकर हनुमान को हिलाकर देखा उनका मुँह खुला था, हाथों व पैरों में कोई हलचल नहीं हो रही थी। राक्षसों ने उन्हें हिलाडुला कर देखा परन्तु पूँछ की ज्वाला से जलकर वे दूर भागे। किसी ने उन्हें चुभा कर तो किसी ने मार कर देखा किन्तु हनुमान शान्त पड़े रहे। उन्होंने पलकों को भी नहीं झपकाया तथा मुख को तनिक मात्र भी नहीं हिलाया। अतः राक्षस कहने लगे–"युद्ध में वीरता दिखाकर अन्त में हनुमान की मृत्यु हो गई। हनुमान ने करोड़ों की संख्या में राक्षसों का नाश किया। रावण एवं इन्द्रजित् चिन्तित थे। अगर इसकी मृत्यु न हुई होती तो इसने

सभी का वध कर दिया होता। रावण के बुद्धि चातुर्य ने ही कपट द्वारा हनुमान को मारा। हमारी सेना में इन्द्रजित् जैसे बलवान् योद्धा को रण में वानर ने हरा दिया। पराक्रमी वीरों को मार डाला। कोई उसका सामना नहीं कर सकता था। स्वयं रावण भी समर्थ न था परन्तु यह छल-कपट जानता था। इसीलिए वानर की पूँछ जलाकर उसे मार सका। यह वानर सत्यवादी था, जिसने श्रीराम की शपथ का पालन करते हुए स्वयं की मृत्यु के विषय में बतलाकर स्वयं को मृत्यु प्रदान की"। वैद्यों ने देखकर कहा– "हृदय में प्राण हैं, परन्तु अत्यन्त क्षीण हैं। अतः क्षणार्द्ध में इसकी मृत्यु हो जाएगी।" हनुमान की मृत्यु का समाचार सुनकर वाद्य बजने लगे। इन्द्रजित् हर्षित हुआ। रावण ने प्रसाद बाँटा। राक्षसियाँ सीता से बोलीं– "तुमने जिससे बातें की थीं, उस वानर की पूँछ में आग लगाकर रावण ने उसे मार डाला।" राक्षसियों द्वारा हनुमान की मृत्यु की वार्ता सुनकर सीता दुःखी हो गई। उसने जठराग्नि को ध्यान से जागृत कर उसकी प्रार्थना करते हुए कहा– "अगर मैंने श्रीराम की भक्ति की हो, श्रीराम की सेवा की सम्पत्ति का सम्पादन किया हो और हनुमान स्वयं श्रीराम का भक्त हो तो रक्षा करो।" सीता की प्रार्थना सुनकर अग्नि ने प्रणाम करते हुए कहा– "श्रीराम की शपथ लेकर कहता हूँ कि हनुमान अमर है। उसकी महानता सुनो। वह समस्त लंका को जलाकर भस्म करेगा। करोड़ों राक्षसों को मारेगा। उसने रावण का मुख भी जलाया है।" हनुमान द्वारा रावण अपमानित हुआ और वह लंका पुरी का दहन करेगा यह सुनकर जानकी प्रसन्न हुईं

जलती हुई पूँछ से हनुमान द्वारा अनर्थ– हनुमान की मृत्यु हो गई, यह विचार कर उसे देखने के लिए अनेक लोग आने लगे। उसका मुख देखने के लिए एक-एक कर एकत्र होने लगे। हनुमान अनेक राक्षसों को एकत्र करने के लिए वैसे ही पड़े रहे और मरने का स्वाँग करते रहे। राक्षसों की भीड़ एकत्र हो जाने पर हनुमान ने जलती हुई पूँछ उन पर डाली, जिससे वे राक्षस जल गए। अकस्मात् इस संकट के आने से राक्षस जब बाहर भागने लगे, तब हनुमान ने जलती हुई पूँछ मार्ग में आड़ी कर बिछा दी उस स्थान पर फँस जाने से राक्षस आक्रंदन करने लगे। पूँछ के कारण उनकी देह जलने लगी। किसी के वस्त्र में आग लग जाने से उसका सर्वांग जलने लगा। किसी के वस्त्र जलने लगे, जिसे बुझाने के प्रयास में हाथ जल गए। किसी का अँगरखा तो किसी का कटिवस्त्र जल गया। द्विजों की धोतियाँ जलकर उनके शरीर जलने लगे। वे रावण के पास जाकर कहने लगे "हनुमान को मारने का आनन्द मनाने के लिए तुमने राजद्वार पर वाद्य बजवाये। हे रावण, तुम्हारी ऐसी महानता व्यर्थ है। तुमने केवल अग्नि में जलाने का कार्य किया। वस्त्रों के लिए सारी लंका को नग्न कर दिया। तेल और घी समाप्त होकर दीप जलने भी बन्द हो गए। अब तो जीवन भी असाध्य हो गया है।"

तत्पश्चात् रावण ने हनुमान से पूछा–"हे हनुमान, तुम लोगों को क्यों जला रहे हो ?" इस पर हनुमान बोले– "हे लंकानाथ, सुनो, मैं तुम्हें इसका कारण बताता हूँ। पूँछ की मृत्यु निश्चित है। मृत्यु के भय से वह छटपटा रही है। भय से लोगों के मध्य छिप रही है। अतः इसके लिए मैं क्या कर सकता हूँ। किसी के पैर पकड़ती है, किसी की पीठ के पीछे छिपती है। किसी के वस्त्रों में लिपटती है, यह सब वह मृत्यु का भय दूर करने के लिए करती है। किसी की शरण जाकर, किसी के गले पड़कर मृत्यु से मुक्त करने की विनती करती है।" रावण ने पूछा– "अरे, वह तो सबको जला रही है, इसे तुम शरणागति कहते हो ? राक्षसों के वध की यह तुम्हारी अच्छी युक्ति है।" हनुमान ने रावण से कहा "पूँछ के क्रोधित होने का कारण तुम्हें बतलाता हूँ। मैंने तुम्हें पहले ही कहा था कि पूँछ तिलभर भी यदि अनावृत रह गई तो वह मरेगी नहीं वरन् राक्षसों का एवं लंका का नाश कर देगी मेरे इस कथन को

उपेक्षा कर तुमने सावधानी नहीं बरती और उसमें आग लगा दी। पूँछ तीन स्थानों पर खुली रह गई थी अतः उसकी मृत्यु नहीं हुई और अग्नि पर क्रोधित होकर वह उल्टा प्रहार करने लगी। वह अब महाबली राक्षसों को मारेगी, लंका की होली जला देगी, खाइयों को पाट देगी, किलों को तोड़ डालेगी। यह पूँछ अब इतनी क्रुद्ध है कि मेरे द्वारा भी नियन्त्रण में नहीं आयेगी। यह सत्य है कि वह तुम्हारा भी घात कर सकती है, तुममें पराक्रम है तो पूँछ से युद्ध करो। पूँछ इतनी अधिक क्रोधित है कि मेरे द्वारा उसका निवारण सम्भव नहीं है।"

हनुमान द्वारा इतना बताने पर जलती हुई पूँछ राक्षसों के सिर पर आ गिरी। पूँछ का बलशाली आघात और उसके साथ ही जलाने वाली अग्नि के कारण राक्षसों का संहार प्रारम्भ हो गया। स्वयं हनुमान रावण के समीप निःशंक रूप से परन्तु सावधान होकर बैठ गए। अग्नि से प्रज्वलित पूँछ ने राक्षसों को व्याकुल कर दिया था, जिससे राक्षसों की सेना में हाहाकार मच गया था, सभी राक्षस महावीर एकत्र होकर आगे आये। जिस प्रकार किसी उन्मत्त हाथी को मारने के लिए सहस्रों शस्त्र लेकर आते हैं, उसी प्रकार हनुमान को मारने के लिए वे आगे बढ़े, अपनी ओर राक्षस वीरों को आते हुए देखकर हनुमान आनन्दपूर्वक नाचने लगे। उन्होंने उड़ान भरकर गर्जना की फिर गिरिशिखर जैसी आकृति वाले राजमहल के पूर्वद्वार पर वह जाकर बैठ गए, उस पूर्वद्वार के समीप शृंखला-युक्त टहनी थी, उसे हाथों में लेकर मारुति युद्ध भूमि में जाकर राक्षसों का नाश करने लगे, पूँछ जला रही थी और हनुमान मार रहे थे, इस प्रकार रणभूमि में हनुमान ने राक्षसों का नाश प्रारम्भ किया। जिस हनुमान की मृत्यु की वार्ता से वाद्यों की ध्वनि के साथ प्रसाद बाँटा गया था, वही अब राक्षसों का वध करते हुए उनमें हाहाकार मचा रही थी। राक्षसों को पलायन करने का अवसर भी नहीं मिल पा रहा था। पूरी लंका अग्नि से घिरी थी। हनुमान ने ऐसा हाहाकार मचा दिया था, उनकी पूँछ अग्नि से तांडव मचा रही थी। लंका की तटबंदी जल गई, राक्षस तड़पने लगे - "पूँछ के समक्ष कोई टिक नहीं पा रहा था। सब रावण के विरोध में कहने लगे "रावण बहुत अन्यायी है, उसने नगरी को निर्वस्त्र कर दिया। घी-तेल का नाश किया। वानर को मारने के लिए उसकी पूँछ में आग लगाई परन्तु उसी पूँछ को हथियार बनाकर उसने लंका एवं राक्षसों को जलाना प्रारम्भ कर दिया।"

हनुमान अपने मन में विचार कर रहे थे कि– "मेरे कछोटे में अग्नि प्रज्वलित है, उसका अच्छा आतिथ्य करना चाहिए, अच्छे खाद्य-पदार्थ देने चाहिए। मूल भूत विचार किया जाय तो वेदानुसार हम दोनों सगे भाई हैं क्योंकि हम दोनों के पिता वायु ही हैं। सगा भाई होने के कारण उसे सहृदयतापूर्वक आप्त भावना से परम आदरपूर्वक तृप्त करना चाहिए। रत्नजटित महल, गोपुर, मणियुक्त स्वर्ण-मंदिर अग्नि को प्रदान कर आदर प्रकट करना चाहिए। ज्येष्ठ भ्राता वरिष्ठ होता है अतः उसे लंका भुवन रूपी थाली में राजभवन रूपी श्रेष्ठ खाद्य भक्ष्य-रूप में देने चाहिए। श्वेत एवं पीत क्षौमांबर*[1] भोजन में दूध शक्कर के रूप में है। मणि मोतियों की राशि घी की धारा है। चन्दन के मन्दिर ओदन*[2] सदृश हैं। और अन्य सामग्री दाल-चावल हैं। फहराने वाली पताकाएँ कढ़िकाएँ हैं, तिलतन्दुल कणों की राशि और घी एवं शक्कर की प्राणाहुति होगी। नगर में विद्यमान गृह ग्रास के रूप में समाधानपूर्वक खाने के लिए देने चाहिए। जो जो उसके लिए रुचिकर होगा, वह मैं उसे निश्चित ही प्रदान करूँगा। घरों में रखे सामानों

*[1] रेशमी वस्त्र। *[2] भात (पके हुए चावल)।

का वह अचार, रायता इत्यादि के समान स्वेच्छापूर्वक सेवन करें। दरवाज़े पापड़ सदृश तथा विचित्र परदे, छत, नाना प्रकार के श्रेष्ठ आसन, चाँदनी इत्यादि विविध पकवानों के समान हैं। गठरी के रूप में बँधा हुआ सामान लड्डू एवं स्त्रियों के थैले तिलवों के सदृश हैं। पलँग एवं आच्छादन फेनी सदृश तथा गद्दियाँ लोढ़ इत्यादि कचरी, मुंगौड़ी इत्यादि के सदृश हैं। विभिन्न प्रकार के बरतन बड़ियों के सदृश हैं। ध्वज स्तम्भ लवण एवं मंडप दही के सदृश हैं। तृण-गृहों का दहन भोजन समाप्ति के पश्चात् उत्तर अपोशणी* के सदृश है" अपने सगे भ्राता अग्नि को भोजन कराने के लिए हनुमान अत्यधिक उल्लसित दिखाई दे रहे थे।

हनुमान, वायु और अग्नि, इन तीनों ने लंका-दहन के लिए प्रस्थान किया। पूँछ की अग्नि अत्यधिक प्रज्वलित थी। हनुमान लंका में घूम-घूम कर आग लगा रहे थे, जिसके कारण लंका में हाहाकार मच गया। सभी घर जल रहे थे। राक्षस नर नारियों की दुर्दशा हो रही थी, वे छटपटा रहे थे। घर, बाज़ार, चौक, दुकानें, गोपुर, सर्वत्र हनुमान ने आग लगा दी। तलघर, मठ, मंडप, चौपाल, पाकशाला पाठशाला, विचित्रशाला, यंत्रशाला, तन्त्रशाला, मृदंगशाला, अश्वशाला, गज शाला, भोग-शाला, संग्रह शाला, रंगशाला, गंधर्व शाला इत्यादि को आग लगाकर जला दिया। लंका दुर्ग के चारों ओर जो रक्षक सेना थी, उन्हें त्रस्त कर बल पूर्वक जलाया। लंका दुर्ग को आग लगाकर उसे होलिका सदृश जला दिया। बुर्जों में आग लग जाने से वे भूमि पर गिर पड़े जिसके नीचे दबकर राक्षसों की मृत्यु हो गई। हनुमान ने भविष्य में होने वाले राम-रावण युद्ध में राम की सेना के आगमन के लिए मार्ग खोल दिया। हनुमान एक स्थान पर बैठ गए थे तथा उनकी पूँछ सर्वत्र जाकर आग लगा रही थी। पूरी लंका ज्वालाओं से घिर गई। हनुमान अपने पिता वायु से बोलें– "ज्येष्ठ बधु मेरे लिए अत्यन्त पूजनीय हैं अतः मैं अपने भाई को भोजन दे रहा हूँ, आप हमारे सहायक हों।" हनुमान की विनती सुनकर वायु देव प्रसन्न हुए। उन्हें दोनों भाई प्रिय थे। अतः वे उनकी सहायता के लिए सिद्ध हुए। वायु के ज्येष्ठ पुत्र अग्नि की, कनिष्ठ बन्धु हनुमान से भेंट होते ही दोनों ने एक दूसरे को आलिंगन बद्ध किया। यह देख वायु देव प्रसन्न हो गए। वायु अग्नि की सहायक होने से लंका चारों ओर से जल उठी। अग्नि की ज्वाला कभी लाल, कभी पीली तो कहीं-कहीं पर काली दिखाई दे रही थी कहीं सुनहरे, कहीं अत्यन्त शुभ्र और कहीं अशोक के फूलों के रंग उस लाल रंग की ज्वाला में मिले हुए दिखाई दे रहे थे। उन ज्वालाओं से सिन्दूरी रंग का प्रकाश दिखाई दे रहा था। वसन्त ऋतु में पलाश के फूलों का आभास हो रहा था। वे ज्वालाएँ कभी प्रदीप्त होकर लाल एवं सफेद रंग का प्रकाश सर्वत्र फैला रही थीं तो कभी नील कमल की नीलवर्णी शोभा दिखाई दे रही थी। ज्वालाओं से घिरी लंका ऊपर विमानों में बैठे लोगों को इस प्रकार आभासित हो रही थी मानों बड़े तालाब में नीले कमल खिले हुए हों। ज्वालाएँ आकाश तक पहुँचकर उन विमानों से जा भिड़ीं। वे विमान धरती पर गिर रहे थे। ऐसा लग रहा था जैसे ज्वालारूपी मालाओं के मोती गिर रहे हों। पुण्य रूपी सम्पत्ति समाप्त होने पर स्वर्गस्थ लोगों का पतन होने के सदृश ज्वाला में घिरे वे विमान भूमि पर आ गिरे। जिस प्रकार प्रलयकाल का अग्नि सत्यलोक तक जा पहुँचता है। उसी प्रकार लंका दहन करने वाली अग्नि की ज्वालाएँ आकाश तक जा भिड़ीं। पशु भय से भागने लगे, पक्षी डर से ध्वनि करते हुए आकाश में घूमने लगे। देवता विमान से भागने लगे, सर्प पाताल की ओर भागे। वायु मारुति और अग्नि तीनों लंका जला

---

* भोजन समाप्ति के पश्चात् आचमन के रूप में की जाने वाली प्रक्रिया।

रहे थे जिसकी आँच से भूमि तप गई। नाग जलने लगे। वे सभी समुद्र के जल में जा छिपे केवल शेषनाग फन पर मणि के कारण एवं उसकी शय्या पर श्रीराम के निद्रामग्न होने के कारण, बच गया। लंका की ज्वाला से तीनों लोक तप गए। लंकावासी संकट में पड़ गए।

राक्षस रावण से बोले– "तुमने पूँछ में आग लगाकर वानर को क्रोधित कर दिया। उसने सब लोगों को पूँछ से मार दिया। पहले ही उसकी पूँछ अत्यन्त विकट थी, उसे अग्नि की सहायता मिलने से उसने लंका, गिरिकंदराएं, दुर्ग सब जला दिए। दुर्ग की किलाबन्दी गिरा दी, खाइयाँ, पाट दीं, और दुर्ग ध्वस्त कर दिया। दुर्ग के चारों ओर तोपें थीं। वानर द्वारा उसमें आग लगाते ही उसमें से गोले छूटने से नगर में हाहाकार मच गया। अनेक वीरों की मृत्यु हो गई। दुर्ग ढह गया, नगर जल गया। वृद्ध संकट में पड़ गए, स्त्रियाँ और बच्चे जल गए। यद्यपि वीर बलवान थे परन्तु अग्नि के समक्ष उनकी न चली। रावण तुमने बहुत बुरा किया, अब तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। इस सर्वत्र लगी आग ने बालक, स्त्रियाँ किसी को भी नहीं छोड़ा। मार्ग में पूँछ को देखते ही लोग छिपने लगते थे। उनके एकत्र होते ही पूँछ उनको जलाती थी। मृत्यु भय से वे इधर-उधर भाग रहे हैं। वस्त्र जलने से स्त्रियों की लज्जा की रक्षा नहीं हो पा रही है। अग्नि से अनेक लोग जलकर कराह रहे हैं, तड़प रहे हैं। चारों ओर भगदड़ मची है। घरों में आग लगी देखकर एक दूसरे को आवाज दे रहे हैं, चीख रहे हैं, चिल्ला रहे हैं। सर्वत्र आक्रोश व्याप्त है

लंका नगरी जलने के कारण नगरी से बाहर निकलने के लिए लोगों की कतारें लगी हैं परन्तु नगर के द्वार पर पूँछ का घेरा दिखाई दे रहा है। जिस द्वार पर भी जायें प्रज्वलित पूँछ दिखाई दे रही है बाहर जा पाना असम्भव होने से लोग भ्रमित एवं दुःखी हैं। जलते हुए घर में रुग्ण माँ को छोड़कर, कोई स्त्रीलोभी अपनी पत्नी को कंधे पर लेकर बाहर निकला तो कोई स्त्री पति को जलते घर में छोड़कर बच्चे को गोद में लेकर बाहर निकली। घर की रखवाली के लिए पति को छोड़कर, बच्चों को अग्नि से बचाने के लिए बच्चों को गोद में लेकर माताएँ भागने लगीं। किसी का पति नहीं मिल रहा था वह भ्रमित होकर दूसरे पुरुष को ही अपना पति समझने लगी। नगर में भगदड़ मची थी। दुःख से विलाप करते हुए नागरिक इधर-उधर भाग रहे थे। हीरे, जवाहरात, मूँगा, मोती, माणिक इत्यादि रत्नों से जड़ित भवन अग्नि का ग्रास बन गए। लंका के भवन जैसे-जैसे जलते जा रहे थे, अग्नि अतृप्त रूप से पूरी लंका को जला रही थी। लंकानगरी जलाकर राक्षसों को तितर-बितर करने के पश्चात् हनुमान रावण के भवन के पास आया, राजभवन को आग लगने से वह प्रज्वलित हो उठा। रनिवास में कोलाहल मच गया। रावण के सात-नौ मंजिलों से युक्त भवन, तलघर, गोपुर, शयन गृह सब जलने लगे। मंदोदरी सहित सभी रानियाँ कोनों-कोनों में छिपने लगी। तत्पश्चात् पूँछ वहाँ पहुँची जहाँ रावण बैठा था। राक्षस चिल्लाने लगे कि रावण को बाहर निकालना चाहिए अन्यथा पूँछ उसका नाश कर देगी. यह विचार कर राक्षसों ने कष्टपूर्वक मार्ग तैयार किया। परन्तु हनुमान की जलती हुई पूँछ द्वार पर थी जिससे बाहर जाने का मार्ग रुक गया। रावण को संकट ग्रस्त देखकर सर्वत्र हाहाकार मच गया। इन्द्रजित् रावण के नाश की कल्पना से भयभीत हो उठा, तब उसने चुने हुए राक्षस वीर लेकर शस्त्रास्त्रों से सिद्ध होकर आक्रमण किया।

राक्षसों द्वारा आक्रमण; हनुमान की प्रतिक्रिया– राक्षसों ने धारदार शूल, ढाल, तलवार, पाश, फरसा एवं बाणों से हनुमान पर आघात किये। राक्षस क्रुद्ध होकर नाना प्रकार के शस्त्रों एवं यन्त्रों से वार करने लगे। रावण के समक्ष भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया। साहसी वीर रणभूमि में उतर पड़े। रण-वाद्यों की ध्वनि के साथ सिंहनाद करते हुए वे हनुमान की ओर बढ़े। इधर वाद्य बज रहे थे, उधर लोगों में

हाहाकार चल रहा था। हनुमान आगे बढ़कर समक्ष वीरों का समूह देखकर पूँछ नचाकर पूर्व किये गए अपने युद्ध की याद दिलाते हुए, अपनी पूँछ से बोले– "तुम पूरी लंका को जलाकर थक गई होगी अब विश्राम करो। राक्षस वीरों का समूह आते ही मैं उनको क्षणार्द्ध में मार डालूँगा" तब पूँछ मारुति के चरणों पर गिरकर बोली– "स्वामी ऐसा न करें। आधा संग्राम करने के पश्चात् मेरे मुख का निवाला न लें। राजधर्म की दृष्टि से विचार करें। मैं आपकी सेविका हूँ। कपिराज मेरा संग्राम देखें। राक्षसों की सेना आते ही रणभूमि में उनका नाश कर दूँगी। थोड़े से राक्षसों के लिए आप कष्ट न करें। आप मेरे रक्षक हैं तब उन राक्षसों की कैसी शक्ति ? पूँछ द्वारा ऐसा कहते ही हनुमान हँसने लगे। प्रेमपूर्वक पूँछ को आलिंगन देकर वे बोले– "तुम मेरी सहायता करो अब मैं स्वयं को रोक नहीं सकता। हम दोनों मिलकर राक्षस वीरों का संहार करेंगे। पूँछ ने विचार किया कि ऐसा करना ही उचित है। स्वामी के वचनों का पालन करना चाहिए। यह विचार कर पूँछ युद्ध के लिए आगे बढ़ी। तब हनुमान एकांत में पूँछ से बोले– "तुम लंकानाथ रावण को न मारना उनका वध श्रीराम करेंगे उसी प्रकार लक्ष्मण इन्द्रजित् को मारेंगे। बचे हुए राक्षसों का वध हम करेंगे।" यह विचार निश्चित कर हनुमान युद्ध के लिए बढ़े। वे पूँछ से बोले– "तुम घेरना, मैं वध करूँगा। इस प्रकार राक्षसों का संहार करेंगे। इस पर पूँछ ने अपनी सहमति प्रकट की।

राक्षस-समूह वाद्यों की ध्वनि के साथ हनुमान के समक्ष आकर अनेक शस्त्रों से प्रहार करने लगे। राक्षसों से आर-पार का युद्ध कर रावण के समक्ष रणभूमि में महासंग्राम मचाकर हनुमान राक्षसों का नाश करेंगे। अत्यन्त क्रूर राक्षस वीरों के गर्जना करते हुए सम्मुख आने पर भी तनिक मात्र विचलित न होते हुए हनुमान शांत बैठे, राक्षसों के प्रहार झेलते रहे। तत्पश्चात् एकाएक वे उठे और सभा-मंडप में लगे रत्नों से जड़े सोने के खंभे को उखाड़कर राक्षसों का वध करने के लिए सिद्ध हुए। राक्षस एकत्र होकर भयानक शस्त्रों से मारुति पर आघात करने लगे। तब हनुमान ने वह अष्टकोणी खम्भा लेकर रणभूमि में प्रवेश किया। "मैं श्रीराम का दूत राक्षसों का नाश करने के लिए आया हूँ" ऐसी गर्जना करते हुए हनुमान उस खंभे को चारों ओर गोल-गोल घुमाते हुए राक्षसों के बाणों को दूर कर रहे थे। शस्त्रास्त्रों के वारों का पूँछ द्वारा परस्पर निवारण कर रहे थे। राक्षस वीरों के सिरों पर खंभे से प्रहार कर उनका नाश कर रहे थे। पूँछ राक्षसों के शरीर को स्पर्श कर उन्हें जला रही थी और हनुमान बलपूर्वक खंभे के प्रहार से राक्षसों का वध कर रहे थे। हनुमान का वध करने के लिए कवच एवं खड्ग धारण किये हुए राक्षस वीर लगातार प्रहार कर रहे थे। पूँछ के वार से बचते हुए, सामने से वार कर हनुमान को मारने का प्रयत्न कर रहे थे उस समय हनुमान ने सोचा कि राक्षस वीर अत्यन्त क्रोध में हैं अत: उनके प्रहार को सहकर उनका पुरुषार्थ देखना चाहिए। इनके शस्त्रों से मेरा रोम भी नहीं टूटता। अत: उन्होंने थोड़ी चेष्टा करने का निर्णय लिया।

हनुमान पर महाबली राक्षस शस्त्रों से प्रहार कर रहे थे। हनुमान उस शस्त्र-राशि के नीचे दब गए। यह देखकर राक्षस हर्ष से चिल्लाने लगे– 'हमने उस महाबली वानर को भूमि पर गिरा दिया।' सामने से किसी ने तोमर से वार किया, पीछे से महावज्र मारा। दाहिनी एवं बायीं ओर से बाणों की वर्षा की। ऊपर से भी शस्त्रों से प्रहार हुआ। हनुमान को स्थिर पड़ा हुआ देखकर राक्षस-गण कहने लगे– "इसका घूमना और उड़ना रुक गया इसके प्राण नि:शेष हो गए। हमने बड़ा पराक्रम कर दिखाया " ऐसा कहते हुए उन्होंने रणवाद्य बजाना प्रारम्भ किया। एक बोला– "मैंने शस्त्रास्त्रों के आघात से हनुमान को

गिरा दिया।" दूसरा बोला "मैंने उसके हृदय में शूल से प्रहार किया।" एक ने बताया- "मैंने तलवार से उसके मस्तक पर वार किया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई।'' एक और राक्षस बोला- ''मैं धनुर्धारी हूँ, मेरे बाणों से उसका सर्वांग आच्छादित हो गया।" इस प्रकार सब अपनी अपनी प्रशंसा कर रहे थे। हर्षपूर्वक शक्कर बाँटी गई। ''अब लंकानगरी की आग बुझाओ। युद्ध में हमने वानर को मार डाला है। इस वानर ने बहुत वीरता दिखलाई परन्तु हमारा पराक्रम ऐसा था कि हमने अपने शस्त्र बल से हनुमान को परास्त कर दिया। शीघ्र रणभूमि में ढूँढकर वानर कहाँ गिरा है, उसे देखो " सभी प्रचड ध्वनि के साथ वेग पूर्वक मारुति उठ खड़े हुए।

हनुमान की गर्जना सुनकर रावण भी चौंक गया। राक्षसों को साक्षात् मृत्यु ही समक्ष दिखाई दी, जिससे वे भयभीत हो उठे। मारुति ने सबको पूँछ में लपेट कर उन पर खंभे से प्रहार किया, जिससे चूर-चूर होकर सबकी मृत्यु हो गई। सबको एकत्र कर हनुमान ने उनको पाताल एवं रसातल में ले जाकर निर्गुणत्व तक पहुँचाया। अव्यक्त देह इन्द्रियों के कारण अलग दिखाई देती है। त्रिगुणात्मकता के कारण उसे नाम एवं स्वरूप प्राप्त होता है। उस देह को नष्ट कर हनुमान ने उन्हें गुणातीत किया। श्रीरामभक्त के हाथों से मृत्यु होने पर सभी गुणातीत अवस्था को प्राप्त होते हैं। यह भक्ति की महिमा है। श्रीराम भक्तों की दृष्टि के समक्ष मरने वाला बड़ा भाग्यशाली होता है। वह मरने वाला त्रिगुणों के संकट पर विजय प्राप्त कर परब्रह्म स्वरूप हो जाता है। श्रीराम का अखंड स्मरण अथवा उसके नाम का श्रवण करता है, उसके कर्म अकर्मों का क्षालन होकर, वह आत्मा निर्गुणत्व को प्राप्त करती है मुख से, ध्यान से, भजन से जो निरन्तर श्रीराम का स्मरण करता है, वह त्रिभुवन में धन्य हो जाता है। हनुमान के पास श्रीराम की ऐसी ही भक्ति होने के कारण उसने युद्ध में राक्षसों का वध कर उनको मुक्ति प्रदान की। हनुमान रावण से बोले- "मैं तुम्हारा वध नहीं करूँगा। मै आज तुम्हें जीवित छोड़ता हूँ क्योंकि तुम्हारा वध स्वयं श्रीराम करेंगे।"

अध्याय २०

[हनुमान द्वारा सीता को आश्वासन]

करोड़ों राक्षसों का नाश कर, लंका भुवन जलाकर, रावण को अपमानित कर हनुमान लंका से वापस लौटे। अनेक राक्षस वीरों को मारने पर भी हनुमान ने अपने चंगुल में फँसे रावण को नहीं मारा। उसे लगा कि ऐसा करने पर श्रीराम क्रोधित होंगे। "श्रीराम ने प्रतिज्ञा की थी कि वे युद्ध में बाणों से रावण का वध करेंगे राम की प्रतिज्ञा को कौन झुठलाता ? स्वामी को असत्य सिद्ध कर मैं शूरता दिखलाऊँ ? छिः ऐसी महानता व्यर्थ है। इसीलिए मैं रावण का वध नहीं करूँगा- यह मन में विचार कर हनुमान ने वहाँ से प्रस्थान किया। उनके मन में विचार चल रहे थे कि अशोक वन को तहस-नहस कर, साहसी वीरों का नाश किया। वीर इन्द्रजित् पलायन कर गया। रावण का वध करने में मुझे क्षण-मात्र भी नहीं लगता परन्तु श्रीरघुनाथ की मर्यादा का उल्लंघन मुझसे नहीं किया गया। अतः मैंने रावण को नहीं मारा " जम्बुमाली एवं अक्षय को मारकर, राक्षसभवन की होली जलाकर, महाबलवान् हनुमान लौटे।

वन उपवनों को ढूँढ़ने पर भाग्य से सीता का पता चल गया। इसकी वार्ता श्रीराम को बताने के लिए हनुमान उत्सुक थे। एक ही उड़ान भरकर श्रीराम के चरणों पर मस्तक रखकर सीता का समाचार बताऊँ, ऐसा उन्हें लग रहा था। श्रीराम के दर्शन के लिए वे आतुर थे अत: उत्साहपूर्वक वे वापस लौटे।

लंका से वापस लौटते समय उन्होंने अपनी पूँछ ऊपर रखी थी। उसको सागर में बुझाने का उनका विचार था। उस समय सागर उनसे बोला- हनुमान ऐसा न करो, तुम्हारे द्वारा पूँछ सागर में डुबोते ही सागर का पानी उबलने लगेगा। जलचर जीव उसके तपने से व्याकुल होंगे अत: हे वानर श्रेष्ठ, ऐसा न करो। इसकी अपेक्षा तुम अपनी पूँछ सागर तट पर फैलाओ। मैं लहरों के द्वारा उस पर पानी डालकर क्षणभर में उसे बुझा दूँगा।" हनुमान को यह युक्ति ठीक लगी। तब हनुमान ने दीर्घ प्रचंड-रूप धारण कर पूँछ को आकाश तक भिड़ने जितना प्रदीर्घ कर रखा था। उस रूप को त्याग कर उसने सामान्य वानर का रूप धारण किया। सामान्य रूप में पूँछ को सागर तट पर फैलाते ही सागर की लहरों ने उसे क्षण-भर में बुझा दिया, जिससे हनुमान को शान्ति का अनुभव हुआ। फिर हनुमान ने अपने शरीर का पसीना पोंछा जिसकी कुछ बूँदें सागर में गिरी। उन बूँदों को मगरी ने निगल लिया, जिससे उसको गर्भ-धारण हुआ। उन स्वेद बिन्दुओं से मकरध्वज नामक हनुमान के पुत्र ने जन्म लिया। वह पुत्र भी हनुमान के समान ही बलशाली हुआ। इस प्रकार हनुमान की पूँछ को सागर ने शांत किया।

राक्षसी द्वारा सीता को हनुमान के जलने की सूचना—राक्षसियों ने सीता को बताया कि रावण ने पूँछ में आग लगाकर हनुमान को जला दिया, जिससे सीता चिंतित हो गई। राक्षसियाँ कहने लगीं "वह वानर वन का विध्वंस कर, राक्षसों से युद्ध कर, राक्षस वीरों को मारकर, खाइयों को पाटकर स्वयं भी मृत्यु को प्राप्त हुआ। उस उन्मत्त वानर से स्वामी का कार्य नहीं सध पाया। वह साग-पात खाने वाला वानर जब लंकानाथ को मारने गया तब पूँछ में आग लगाकर लंकाधीश ने उसे जला दिया। अब सीता की खोज के विषय में सीता के पति को पता नहीं चल पाएगा। वानर ने मूर्खता करते हुए अपनी मृत्यु का उपाय बताकर स्वयं ही अपनी मृत्यु का कारण बना। इस प्रकार वह वानर अभागा था"। "रावण द्वारा हनुमान को मारे जाने से अब रघुनाथ को मेरे विषय में जानकारी नहीं हो सकेगी। यह मेरा दुर्भाग्य ही है, अब मैं क्या करूँ ?" सीता दु:खी होकर शोक करने लगी- "अब इस दुरूह शतयोजन समुद्र को उड़ान भरकर कौन पार कर सकेगा ? श्रीरघुनन्दन को मेरा ठिकाना पता न चल सकेगा,यही मेरा दुर्भाग्य है"। हनुमान की मृत्यु की वार्ता सुनकर सीता के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी. दु:ख से विलाप करती हुई वे मूर्च्छित हो गईं। हनुमान की मृत्यु से सीता को होने वाला दु:ख पुत्र शोक से भी तीव्र था। उस वार्ता का आघात इतना तीव्र था कि वह अन्तर्मन से छटपटाने लगीं। मेरे दु:ख से सहानुभूति रखने वाला हनुमान ही नहीं रहा; अब रघुनाथ से कैसे भेंट होगी-इसकी चिंता जानकी को सताने लगी।

सरमा द्वारा हनुमान के सुरक्षित होने की सूचना— त्रिजटा की सखी सरमा हर्षपूर्वक कह रही थी कि वानर की मृत्यु नहीं हुई है। उसके पराक्रम के विषय में सुनो—"जिस प्रकार कमल तन्तु तोड़ते हुए कष्ट नहीं होता, उसी प्रकार बन्धन तोड़ते हुए हनुमान को कष्ट नहीं हुआ। पाश से मुक्त होने पर उसने मरने का नाटक किया और शान्त पड़ा रहा। परन्तु जब उसकी पूँछ जलायी गई तब उसने रावण के दसों मुखों एवं दाढ़ी मूँछों को जला दिया। रावण को अपमानित किया। तुम्हारा निवास होने के कारण अशोक वन को छोड़कर शेष लंका में सर्वत्र आग लगा दी। प्रत्येक घर को ढूँढ़-ढूँढ़ कर जलाया। पूँछ के प्रज्वलित होने पर उस वीर योद्धा ने करोडों राक्षसों को मारा। उसकी जलती हुई पूँछ ने लंका में इतना

हाहाकार मचाया कि रावण भयभीत हो गया। इतना हाहाकार मचाकर, समुद्र में पूँछ बुझाकर तुम्हारी खोज की वार्ता श्रीराम को देने के लिए वह चला गया। हनुमान अब वहाँ जाकर श्रीराम को लेकर शीघ्र वापस आयेंगे– यह निश्चित समझो"। सरमा का कथन सुनकर सीता प्रसन्न हुई। उसने सरमा को गले से लगाकर अपनी अँगूठी प्रदान की। सरमा बोली– "माता, हम तुम्हारी आज्ञाकारिणी सेविकाएँ हैं। तुम हमारा सम्मान क्यों करती हो ? हमें तुम राक्षसी न कहो।" तब सीता बोली–"तुम दुःख में मेरी संगिनी हो, इस संकट समय में बहनों के समान हुई। तुम मन में भेद की भावना न धारण करो।" इस पर सरमा ने सीता के चरणों को स्पर्श किया। सरमा के निवेदन से सीता को संतुष्टि हुई। परन्तु दूसरी ओर हनुमान मन में अस्वस्थ थे। हनुमान को पूँछ समुद्र से बुझाने के पश्चात् श्रीराम के दर्शन की उत्कंठा थी अतः वे उड़ान भरने के लिए तैयार हुए। परन्तु जब उन्होंने पीछे मुड़कर देखा तो उन्हें प्रज्वलित लंका दिखाई दी और उसके साथ ही 'कहीं सीता तो भस्म नहीं हो गई ?' ऐसी शंका उनके मन में उठी।

हनुमान की शंका, अस्वस्थता, क्रोध एवं विचार– हनुमान विचार करने लगे– "मैंने स्वामी की पत्नी को जला दिया, अब रघुनाथ को उन्हें खोजने के विषय में क्या बताऊँगा ? मैंने वानर स्वभाव से यह अनर्थ किया है। अत्यन्त उत्साह से लंका जलाते समय मैंने स्वामी के कार्य के विषय में तनिक भी नहीं सोचा। करोड़ों राक्षस वीरों को मारकर शीघ्रता में लंका जलाते समय सीता भी जल गई। यह मेरी नष्ट बुद्धि का ही परिणाम है। मैंने जो भी पराक्रम किया वह मेरे लिए निन्दनीय सिद्ध हुआ, अब सीता के जलने के पश्चात् मैं रघुनाथ को मुख किस प्रकार दिखाऊँ ? मेरा बड़प्पन मेरी कीर्ति सब व्यर्थ है, जो मेरे लिए अपकीर्ति सिद्ध हुई। मैं श्रीराम के समक्ष किस मुख से जाऊँ, सीता के विषय में बताते समय यह कहूँ कि उसे मैंने जला दिया। इस पूँछ से मैंने भूमि सहित पूर्ण लंकापुरी जला दी, जहाँ चार अंगुल भूमि भी नहीं बची, वहाँ सीता कैसे बचेगी। मैंने बिना विचार किये जो वानरचेष्टाएं कीं उसके कारण श्रेष्ठ बारह लोगों को क्षति पहुँचेगी। सीता की मृत्यु के विषय में सुनते ही राम प्राण-त्याग कर देंगे। उनके पीछे लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न प्राण त्याग देंगे। तीनों माताएँ, नल नील, जाम्बवंत, वानरराज सुग्रीव, अंगद ये सभी मृत्यु को प्राप्त होंगे। ऐसे श्रेष्ठ लोगों की मेरे कारण मृत्यु होगी, इनके साथ ही श्रेष्ठ एवं कनिष्ठ अनेक लोगों की मृत्यु होगी। अयोध्या के नर-नारी एवं समस्त वानर जाति मृत्यु को प्राप्त होगी, सीता के जलने से मैं इतने बड़े अपयश का पात्र हुआ हूँ। क्रोध एक क्रूर मांग* होता है उससे सर्वांग अपवित्र हो जाता है। मैंने अनेक लोगों का वध किया परन्तु क्रोध ने मुझे लूट लिया, सीता की खोज हुई परन्तु मुझमें क्रोध का संचार हुआ। क्रोध का संचार होने से मैंने लंका नगरी और उसके साथ ही सीता को भी जला दिया।"

क्रोध नामक क्रूर मांग* अत्यन्त चांडाल है मांग की छूत को पानी से धोकर दूर किया जा सकता है लेकिन क्रोध तो उससे प्रबल है, वह तो निर्मल स्नान से भी दूर नहीं होता। इस क्रोध सदृश महावैरी के अन्तर्मन में प्रवेश करने पर जो ज्ञान की महत्ता को स्वीकार करता है,वह संसार में मूर्ख सिद्ध होता है। अतः जो क्रोध को आने ही नहीं देते, वे नरश्रेष्ठ वास्तव में धन्य होते हैं। और अगर उनमें क्रोध उत्पन्न होता भी है तो विवेकपूर्वक वे उसका निर्दलन करते हैं। ऐसी दृष्टि से युक्त नरश्रेष्ठ अपनी ज्ञान-दृष्टि से परब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं। उनके पास परब्रह्म का भंडार होता है। सर्व प्राणि-मात्र में भगवद्भाव मानने वालों में क्रोध का अस्तित्व ही नहीं होता। जो सद्भावपूर्वक आचरण करते हैं, वे स्वयं

* एक शूद्र जाति

परब्रह्म होते हैं मैं पापी ऐसा विचार कर ही नहीं सका और क्रोधवश सर्वस्व गँवा बैठा और सीता को जला दिया. सत्य ही है कि क्रोध आने पर करोड़ों अनर्थ किये जाते हैं और संसार में नीच सिद्ध होकर सर्वत्र निन्दा होती है। ऐसी ही निन्दा मुझे भी मिली। ऐसी स्थिति में श्रीराम की भेंट होने पर सीता की मृत्यु का समाचार सुनते ही सर्वत्र प्रलय हो जाएगा। श्रीराम के पास न जाकर यहीं पर संन्यास ले लेना चाहिए। परन्तु यहाँ तो राक्षस मेरे बैरी हो गए हैं अतः यहाँ रहना भी उचित नहीं है। प्राण-त्याग का विचार करूँ तो मेरी मृत्यु सम्भव ही नहीं है। यह मेरा आत्म लक्षण है"– इस प्रकार मारुति अपने मन में विचार करने लगे।

हनुमान सोचने लगे कि –'अग्नि मुझे जला नहीं सकती, सागर मुझे डुबा नहीं सकता मगर व मछलियाँ मुझे खा नहीं सकतीं। मेरा शरीर वज्र के समान होने के कारण बाघ, सिंह इत्यादि वनचर मेरा भक्षण नहीं कर सकते। इस हनुमान की मृत्यु नहीं, मैं राम से मिलने नहीं जा सकता, संन्यास भी नहीं ले सकता तो अब मैं क्या करूँ ? सीता की मृत्यु हो गई है- यह मानकर हनुमान अत्यन्त व्यथित थे. उन्हें कोई समाधान नहीं मिल पा रहा था। वे कहने लगे– "हे श्रीराम, इस संकट से मुझे उबारें, मेरे कर्तव्य के लिए मुझे बुद्धि प्रदान करें"। ऐसी विनती करते ही उन्हें एक अच्छा उपाय सूझा कि श्रीराम का सबमें निवास होता है। श्रीराम एक पत्नीव्रत पालन करने वाले हैं। श्रीराम की सेवा ही तप सामग्री है। श्रीराम-नाम जिसकी जिह्वा पर सदैव विद्यमान रहता है, उस व्यक्ति को अग्नि कैसे जला सकती है. सीता तो श्रीराम-व्रत पालन करने वाली एवं श्रीराम की अनन्य भक्त व उनसे प्रगाढ़ प्रेम करने वाली हैं। तब अग्नि उन्हें कैसे जला सकती है। रावण द्वारा पूँछ को आग लगाने पर अग्नि पूँछ को तो जला नहीं सकी, फिर श्रीराम की परम् प्रिय सीता को कैसे जला सकेगी। श्रीराम के प्रताप के कारण अग्नि सीता को नहीं जलाएगी। मैं श्रीराम का साधारण सा सेवक हूँ। मैं पत्ते खाने वाला सामान्य सा वानर होने पर भी रावण मेरी पूँछ जला नहीं सका तो वह चिन्मात्र स्वरूपी सीता को कैसे जला पाएगा। इतना होते हुए भी अगर अग्नि ने सीता को जला दिया तो मैं उसे दण्डित करूँगा"। मारुति इस विचार मात्र से अत्यन्त क्रोधित हो उठे, उनके केश थरथराने लगे। वे दाँत पीसने लगे और उनकी पूँछ ऐंठने लगी। वे अग्नि को दण्डित करने के लिए तत्पर हुए।

हनुमान को वायु का आश्वासन; पुनः सीता से भेंट– वायु ने अपने पुत्र मारुति से कान में कहा– "हनुमान, अग्नि तुम्हारा ज्येष्ठ बंधु है अतः उसे तुम दण्डित न करो। सीता सुरक्षित है अग्नि ने सीता की वन्दना कर उसे अशोक-वन में सुरक्षित रखा है। यह सुनते ही हनुमान उल्लसित हो उठे। उन्होंने पिता को दण्डवत् प्रणाम कर वन्दना की। ज्येष्ठ बंधु अग्नि की वन्दना कर, सीता के दर्शन करने के लिए उन्होंने उड़ान भरी। प्रत्यक्ष लंका में आने पर उन्हें हाथियों के टूटे हुए एवं जले हुए दाँत दिखाई दिए। सम्पूर्ण नगरी का विध्वंस दिखाई दिया। विमानाकार मुख्य भवन जले हुए दिखाई दिए। अग्नि की दाहकता से पक्षी एवं मोरों के पंख झड़े हुए दिखाई दिए। पूँछ की आग से जला हुआ लंका-भुवन एवं सुरक्षित अशोक वन में उन्हें सीता दिखाई दीं। उन्हें सुरक्षित देखकर उन्होंने साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। फिर चरण वन्दना कर अपने आँसुओं से उनके चरण धोये। हनुमान प्रयत्नपूर्वक सीता को निरख रहे थे। वे तनिक मात्र भी नहीं जली हैं और सकुशल हैं यह देखकर वे आनन्द से नाचने लगे। उन्होंने कहा– "मेरा पुरुषार्थ सफल हुआ, रामकार्य सिद्ध हुआ। सीता की खोज होकर उनका मनोगत ज्ञात हुआ"। तत्पश्चात् सीता के चरणों पर मस्तक रखकर हनुमान ने उन्हें बताया– "माता चिन्ता न करें। मैं

शपथपूर्वक कहता हूँ कि मैं श्रीराम को लेकर शीघ्र आऊँगा।" सीता मन में कहने लगीं– "मारुति श्रीराम के आप्त और मेरे भी सखा हैं। उन्होंने वन में भेंट कर मेरे भवभय का निरसन किया है। अनेक समर्थ राक्षस मारकर, लंका को तहस नहस कर, लंकानाथ को संत्रस्त कर राम का पराक्रम प्रकट किया है।"

हनुमान के वचन सुनकर सीता को पिता की भेंट के समान अनुभूति हुई। उसे सुख एवं सन्तोष का अनुभव हुआ। हनुमान को अपने समक्ष देखकर उसे लगा "जो संकट में रक्षा करता है, वह हनुमान मेरे माता–पिता के सदृश हैं। हनुमान श्रीरघुनाथ को प्रिय हैं। अतः वेद शास्त्र की दृष्टि से मुझे भी पूजनीय हैं " फिर उन्होंने हनुमान से कहा– "लंका में चारों ओर आग लगाकर एवं युद्ध करके तुम्हें बहुत थकान का अनुभव हो रहा होगा, लेकिन तुम्हारे विश्राम के लिए मेरे पास चारपाई तक नहीं हनुमान मैं ऐसी अभागी हूँ कि तुम्हारी सेवा भी नहीं कर सकती। तुम अब एक तरफ थोड़ा विश्राम करो। तत्पश्चात् प्रातः रघुपति से भेंट के लिए प्रस्थान करो। मेरी इतनी विनती स्वीकार करो।" सीता के वचन सुनकर हनुमान हँसते हुए बोले- "हे माता, सावधानीपूर्वक मेरे विश्रांति स्थल के विषय में सुनो– "जन्म-मृत्यु के चक्र का नाश करने वाले राम-नाम का नित्य स्मरण करना ही मेरे समस्त श्रमों से विश्राम का साधन है। जब मैं रणभूमि में युद्ध करता हूँ तो मेरे पास श्रीराम- नाम का कवच होता है। वैसे ही जब दुर्गम पथ से एकाकी जाता हूँ, तब भी श्रीराम - नाम मेरे साथ होने से मैं निर्भय होता हूँ। बैठे हुए, भोजन करते हुए, शय्या पर, मार्ग में नित्य राम-नाम मेरे साथ होता है। जागृति अथवा स्वप्न में भी वह साथ होता है, यह पूर्ण सत्य है।" हनुमान के यह वचन सुनकर सीता अत्यन्त प्रसन्न हुई। उन्हें लगा कि उस पर अपने प्राण भी न्यौछावर कर दें।" वे बोलीं "हनुमान,तुम अन्तर्बाह्य श्रीराम भक्ति के प्रति समर्पित हो। तुम्हारा जीवन धन्य है।" हनुमान की सहज भक्ति देखकर सीता मन में अत्यन्त प्रसन्न हुईं परन्तु वे इस बात से अस्वस्थ हो गईं कि अब हनुमान जाएँगे तो पुनः उनसे कब भेंट होगी। तब वे हनुमान से बोलीं– "तुम अब यहाँ से प्रस्थान करोगे, इस विचार से ही मेरे प्राण चले जाएँगे–ऐसा मुझे अनुभव हो रहा है। मैं अपने मन पर नियन्त्रण नहीं कर पा रही हूँ। मेरे मन में एक शंका और उठ रही है, वह तुम ध्यानपूर्वक सुनो।"

सीता की शंका; हनुमान का उत्तर– "करोड़ों वानरों का समूह समुद्र को लाँघकर इस तट पर आकर दशानन का वध कैसे करेगा ? समुद्र लाँघने की शक्ति तो केवल गरुड़, वायु और हनुमान इन तीनों में ही है। फिर सब नर-वानर सागर लाँघ कर कैसे आ सकेंगे ? यही चिंता मुझे सता रही है। अतः हे हनुमान, राम कार्य के लिए सागर लाँघने का कार्य तुम्हारे ऊपर ही है। राक्षसों का सर्वनाश एवं रावण तथा इन्द्रजित् का अपने बल से भयभीत करने का तुम्हारा सामर्थ्य अनुपम है।" सीता की शंकायुक्त चिन्ता सुनकर हनुमान बोले– "मैं तो मात्र दास हूँ, सेवक हूँ, परन्तु श्रीराम के प्रताप के विषय में सुनें श्रीराम के तरकश में भयंकर बाण हैं। उन बाणों के माध्यम से श्रीराम नर, वानर को सागर पार करायेंगे। श्रीरामचन्द्र महाप्रतापी है। वानर-सेना की कतारों को बाण की नोंक पर बैठाकर श्रीराम लंका तट पर ले आएँगे। श्रीराम और लक्ष्मण महावीर और धनुर्विद्या में अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। वे प्रभावी बाणों की वर्षा कर रावण के दसों शिरों का छेदन करेंगे। रावण के युद्ध में पराजित होते ही फिर इन्द्रजित्, कुंभकर्ण और अन्य प्रधान एवं राक्षसों सहित सबको परास्त करेंगे। इसके लिए रघुनाथ को शीघ्र यहाँ लाता हूँ। उसमें विलम्ब नहीं होगा, मैं सत्य कह रहा हूँ। श्रीराम की शपथ लेकर एवं तुम्हारे चरण स्पर्श कर कहता हूँ कि मैं शीघ्र ही रघुनन्दन को यहाँ लेकर आऊँगा यह मेरा वचन है " हनुमान ने यह कहकर सीता को आश्वस्त किया। उन्हें नमन कर सागर पर उड़ान भरने के लिए वे तैयार हुए, उनका नमन स्वीकार

करते हुए सीता की आँखें भर आईं। तब हनुमान ने उन्हें अपना निश्चय स्मरण दिलाकर विनती की– "श्रीराम का ध्यान कर समस्त चिन्ताओं का त्याग करें, जिससे श्रीराम से मिलन होकर आनन्द की प्राप्ति होगी। श्रीराम का ध्यान धर कर देह की चिन्ता का त्याग करें, जिससे जीव को ब्रह्मत्व की प्राप्ति होगी। इससे ही मन को विश्राम मिलेगा। चित्त, चिन्ता और चिन्तन का त्याग कर रघुपति का स्मरण करें। इससे जीव को जीवत्व का स्मरण न रहकर वह परब्रह्म से एकाकार होगा। श्रीराम का स्मरण ही परब्रह्म का स्मरण है। यही जीव का विश्राम-स्थल है, इसे सदा स्मरण रखें। हनुमान के ये वचन सुनकर सीता प्रसन्न हुई।

अध्याय २१

[गजेन्द्र की कथा]

श्रीराम के भक्तों की महिमा अथाह गहन और अत्यन्त पवित्र है। हनुमान द्वारा लंकादहन करने के पश्चात् वह पूरी सोने की हो गई। रामभक्त जब रणक्रंदन करते हैं तब उसकी परिणति सुख सम्पन्नता में ही होती है। रामकृपा एवं रामभक्ति की ऐसी महिमा है। हनुमान द्वारा लंका जलाने के पश्चात् वह काले कोयले में परिवर्तित नहीं हुई, इसके विपरीत चारों ओर सोने के पीत प्रकाश से वह शोभायमान हो गई।

गजेन्द्र उद्धार की कथा– ईश्वर के नामस्मरण की इतनी महत्ता है कि उसकी कृपा से गजेन्द्र का उद्धार हुआ। उसी प्रकार स्वर्णमयी लंका का हुआ। इसके सम्बन्ध में योगियों के अग्रणी, ब्रह्मचर्य शिरोमणि, ज्ञानियों के मुकुटमणि श्री शुक मुनि द्वारा कही गई यह कथा है। श्री शुकमुनि वैराग्य निधि हैं ज्ञान-विज्ञान के सागर हैं, सद्बुद्धिवान् हैं, और वे इस कथा को सुना रहे थे. उन्होंने यह कथा पाण्डवकुलदीपक, कौरव-कुल नायक, जिसने जल ग्रहण तक त्याग दिया था, उस कथा को सुनने के लिए जो चातक के समान उत्सुक था ऐसे परीक्षित को सुनाई थी. परीक्षित को गजेन्द्र की कथा सुनाते समय शुकमुनि ने गज के निवास-स्थान का वर्णन किया था।

त्रिकूट पर्वत पर गंडकीगिरि में विद्यमान विशाल सरोवर– त्रिकूट नामक पर्वत दस सहस्र योजन अयुत गंडकी से लेकर क्षीर सागर तक फैला हुआ था। उसका पृथ्वी पर जितना विस्तार था, उतनी ही उसकी ऊँचाई थी। शीर्ष पर त्रिकूट नामक तीन शिखर थे। इस पर्वतीय क्षेत्र में रत्न एवं धातुओं की खानें थीं। स्वच्छ पानी के झरने थे। अनेक सरोवरों एवं तालाबों की वहाँ विपुलता थी। पर्वत की महिमा उसकी विविध रंगछटाओं से अनुभव हो रही थी। काली, सफेद व सुनहरी रंग छटाएँ सम्पूर्ण पर्वत पर फैलकर शोभा बढ़ा रही थीं। वृक्ष, लताएँ, बाघ, सिंह इत्यादि पशु वानर, भिन्न-भिन्न जाति के पक्षी, ऋषि मुनियों के आश्रम, निर्मल सरोवर, विविध पक्षियों की किलबिल एवं वन गायों के निवास के कारण वह पर्वत शोभायमान था. पर्वत के लौह पाषाणों से लोहा प्राप्त होता था। उसी प्रकार नाना धातुओं के प्रवाह उस पर्वत पर थे। उस पर्वत से जुड़ा हुआ गंडकी गिरि था। गंडकी गिरि के समीप एक घाटी थी। वहाँ स्थित वन उपवनों से वह शोभायमान थी। उन उपवनों को देखकर मन को शान्ति प्राप्त होती थी छाया, शीतल सुगन्धित हवा, कोयल की कूक इत्यादि के कारण सुख की अनुभूति होती थी सभी ऋतुओं के फलों-फूलों के सुख के कारण वह अप्सराओं का क्रीडा स्थल था। अमृत सदृश स्वाद युक्त

फल, कस्तूरी से भी सुगन्धित सुगंध, मंजुल ध्वनियुक्त मलय गिरि से आने वाला पवन, इस सबका आस्वाद लेते हुए अप्सराएँ यहाँ क्रीड़ा करते हुए आनन्द लूटती थीं। कृष्ण रंग से साम्य रखने वाले भ्रमर, फूलों में प्रवेश कर केवी केशर, कुचुंब इत्यादि का सुखपूर्वक आस्वादन करते हैं। देवदार के शोभयमान वृक्ष पाटली, पारिजात, मंदार, कल्पतरु चन्दन इत्यादि वृक्ष वहाँ थे। चन्दन, चंपक, हरिचन्दन, आम्रवन, अशोकवन, खर्जुरवन, तालवन, वहाँ नन्दन वन सदृश शोभा ला रहे थे। रायकेली, सोनकेली, सुगन्धी कर्पूर कर्दली, नारिकेली इत्यादि उन वन-फलों की शोभा बढ़ा रहे थे मधुवन, विमलार्जुन, औदुम्बर, अंगूरों के मंडप, जामुन के वृक्ष, ईख, रसीले काँटों से विहीन बेर, आँवले और राय आँवले,*[1] सुगंधयुक्त कटहल के फल, महुए, नीम के शीतल वृक्ष व्याधियों का नाश करने वाले थे, गुग्गुल वृक्ष, बड़ पीपल, पलाश, नीम, नारंगी, सुपारी, कैथा इत्यादि वृक्षों की विशाल पंक्तियाँ वहाँ थीं। ये वृक्ष पके हुए फलों से लदे थे। कांचन वृक्ष सदृश कोरांटो, वट-वृक्ष से भी विशाल, सफेद, पीले फूलों से शोभायमान थे। महालुंग,*[2] सुगंधित देवदार, भिलावा हिंगण्बेट वृक्ष, बहुपुष्पी और अनेक फलों से लदे वृक्ष, उनकी असंख्य जातियाँ पर्वत की शोभा बढ़ा रही थीं। उस पर्वत पर ऋषि-मुनि, सिद्ध आदि का निवास था।

उस गिरि कंदरा पर एक अगाध सरोवर था। वह जल से परिपूर्ण था तथा उसका जल कभी कम नहीं होता था। उस जल में रात्रि कमल, शुभ्र कमल एवं स्वर्ण कमल शोभायमान थे। कुमुद, कल्हार, नीलकमल, मल्लिका, शतपत्र इत्यादि के कारण वहाँ का जल सुगंधित एवं स्वादिष्ट हो गया था, सभी ऋतुओं में पुष्प एवं फलों से सुशोभित उस सरोवर में जलचर आनन्दपूर्वक क्रीड़ा कर रहे थे। उन जलचरों में मछलियाँ, कछुए इत्यादि विशालकाय थे। उनको भी निगलने वाला एक प्रचंड गजवैरी मगर उसमें रहता था। वहाँ वन में एक गजेन्द्र का निवास था और वहाँ सरोवर में यह मगर रहता था। उन दोनों में ब्रह्मशाप के कारण बहुत वैर था।

शापित राजा इन्द्रद्युम्न और हुहु गंधर्व– बहुत पहले राजा इन्द्रद्युम्न, ब्रह्मदेव के शाप से गजेन्द्र हो गया था। भयंकर हुहू गंधर्व ब्रह्मदेव के श्राप से नक्र अर्थात् मगर हो गया था। राजा इन्द्रद्युम्न भगवद्भक्त था। वह इस सरोवर की ओर आया और एकान्त स्थल देखकर वहीं रहने लगा। राजा एकान्त और विश्राम मिलने के कारण प्रसन्न हुआ। वह वहाँ रहकर तापसी व्रत का पालन करने लगा। त्रिकाल स्नान-सन्ध्या करता था बालों की जटाएँ बनाकर वह पूर्ण तापसी बन गया। एक बार वह अपने आराधना काल में सरोवर के जल में स्नान कर पालथी मार कर (आसन लगा कर) बैठा था। उसी समय अगस्त्य मुनि अपने शिष्य परिवार सहित वहाँ आये। राजा ने उठकर अगस्त्य का स्वागत सत्कार नहीं किया वह आसन लगा कर ध्यानस्थ मुद्रा में बैठा रहा। ऋषि को उपेक्षा की और नमन व आदर सत्कार नहीं किया साधु सर्वांग से चैतन्यघन ज्ञान स्वरूप होता है। उसकी भक्ति न कर ध्यानस्थ बैठे रहने से वह ध्यान गर्व कहलाता है और उसके कारण अधःपतन होता है। जिसमें ध्यान-गर्व अथवा ज्ञान गर्व होता है, वह अशिष्ट होता है तथा जिसमें विद्या-गर्व होता है, वह निश्चित ही अधःपाती होता है। साधु साक्षात् सद्चिदानन्द की मूर्ति होता है उस साधु की उपेक्षाकर कोई काल्पनिक मूर्ति का ध्यान करता है तो उसका अधःपतन होता है। जो साधु सज्जन की उपेक्षा कर प्रयत्नपूर्वक ध्यान करता है, वह स्वयं ही अपनी हानि करता है। जिसमें ब्रह्मभाव नहीं, उसके ध्यान धारण करने से कोई लाभ नहीं होता। सर्व प्राणि-मात्र में भगवद्भाव का अनुभव करने की क्षमता न हो तो ऐसा ध्यान व्यर्थ है, उस ध्यान से हानि ही होती है।

---

*[1] आँवले की एक प्रजाति *[2] बिजौरा नींबू

सर्व प्राणियों में भगवद्भाव की अनुभूति नहीं। ब्राह्मणों के लिए ब्रह्मत्व भक्ति नहीं। ऐसी राजा की मिथ्या ध्यान-स्थिति देखकर अगस्त्य मुनि क्रोधित हो गए। भगवद्ध्यान के प्रति राजा सजग था परन्तु साधु सज्जनों की उसने उपेक्षा की इसलिए मुनि क्रोधित हो गए। तत्पश्चात् राजा का ध्यानाभिमान दूर कर उसे पूर्ण भगवद्प्राप्ति होने के लिए परम कृपालु अगस्त्य मुनि ने उसे शाप दिया। वे बोले– "साधु सज्जनों के साथ गर्वयुक्त व्यवहार करने के कारण तुम्हें गजत्व प्राप्त होगा। तुम एक उन्मत्त गज बनोगे " अगस्त्य के इन वचनों के साथ राजा गज बन गया। भक्तिहीनता एवं उन्मत्तता के कारण राजा उस वन का उन्मत्त बलवान् हाथी बन गया। राजा इन्द्रद्युम्न की जो गति हुई, वैसी ही गति हूहू गन्धर्व की हुई। ब्रह्मशाप के कारण वह मकर नक्र हो गया। वहाँ सरोवर में मध्याह्न के समय जब ऋषि स्नान कर रहे थे, उस समय वहाँ हूहू गन्धर्व गुप्त रूप से आया। उसने ऋषि के पैर पकड़ लिए कोई मगर पानी में एकाएक किसी को पकड़ ले, उसी प्रकार वह अविवेकी गंधर्व ऋषि के पैरों से लिपट गया तब ऋषि ने क्रोधित होकर शाप दिया कि तुम गुप्तरूप में जलचर नक्र हो जाओगे। यह शाप सुनते ही गंधर्व एवं इन्द्रद्युम्न राजा उःशाप माँगने के लिए हाथ जोड़कर विनती करने लगे कि 'हमें गर्वोन्मत्त होने के कारण यह ब्रह्मशाप मिला आप कृपालु हैं, कृपा कर हमें शाप-मुक्त करें। हम दोनों अत्यन्त अपराधी हैं आप कृपा-सागर, क्रोध न करने वाले है, अगाध बुद्धि से युक्त हैं अतः हमारा उद्धार करें। आप माता-पिता से भी अधिक आप्त हैं। हम अपराधियों पर कृपा कर हमें शाप मुक्त करें।'

यह प्रार्थना सुनकर ऋषि का अन्तःकरण द्रवित हो गया और उन्होंने उःशाप देते हुए कहा– "एक जल में और एक भूमि पर रहकर दोनों पराक्रमी एवं एक-दूसरे के बैरी हो जाओगे। तुम जल में युद्ध करोगे तब तुम्हें ईश्वर के दर्शन होंगे। युद्ध करते हुए जब तुम्हारे प्राणान्त का समय आयेगा तब भगवान् प्रसन्न होकर तुम्हें मुक्त करेंगे। श्रीहरि तुम्हें शाप-मुक्त, जन्म-मुक्त एवं प्रपंच-मुक्त करेंगे।" ऐसा उन समर्थ, कृपालु ऋषि ने वरदान दिया। ब्रह्मज्ञानी क्रोधपूर्वक शाप देते हैं– यह विचार गलत है। कृपालु एवं दीनोद्धारक होने के कारण ऋषि ने इन वरद् वचनों के द्वारा उनका उद्धार किया। उनकी उद्धार करने की पद्धति भी भिन्न होती है। वे जन्म मृत्यु के चक्र से बाहर निकाल कर उद्धार करते हैं। ऋषियों के क्रोध में भी कृपापूर्ण महानता होती है। जिस प्रकार माँ का क्रोध ऊपर से कठोर परन्तु भीतर से सुखकारक होता है, उसी प्रकार ब्रह्मज्ञानियों का शाप होता है क्योंकि उनके शाप से चिद्रूपता प्राप्त होती है पापों का नाश होकर ब्रह्म-प्राप्ति होती है। वे सन्तुष्ट होने पर कुछ भी प्रदान कर सकते हैं, जो श्रुति, स्मृतियों को भी अगम्य है। ऋषियों ने वर देने के पश्चात् स्नान किया और फिर वे वहाँ से चले गए। ऋषियों के शाप से राजा इन्द्रद्युम्न गजेन्द्र हो गये और हूहू गंधर्व, मगर के रूप में परिवर्तित हो गया। दोनों महापराक्रमी थे। एक जमीन पर तथा एक जल में रहने लगे।

पानी में रहने वाला नक्र महाबलवान् था। तिमिंगल सदृश बड़ी मछली वह पूरी निगल सकता था, सारे जलचर उसके समक्ष भय से काँपते थे। जल के छोटे प्राणी उसके समस्त नगण्य थे वह पर्वतप्राय बड़ी मछलियाँ ही खाता था। इस प्रकार वह पराक्रमी मगर सुख एवं सन्तोष पूर्वक रहता था। शापित होने के पश्चात् गजेन्द्र की स्मृति चली गई थी। फिर भी उसे यह स्मरण रहता था कि उसका बैरी पानी में निवास करता है। इसलिए वह पानी के लिए सरोवर की ओर नहीं जाता था। नक्र को भी यह स्मरण था कि गजेन्द्र नामक उसका शत्रु इस वन में रहता है। इसीलिए वह भोजन के लिए सरोवर के बाहर नहीं आता था। इस प्रकार शाप के कारण महाबली नक्र सरोवर में और बलवान् गजेन्द्र वन

में निवास करते थे। गजेन्द्र गिरिकंदराओं में, वन में अपने परिवार सहित उन्मत्त रूप से क्रीड़ा करता हुआ विचरण करता रहता था।

गजेन्द्र का दुर्घटनाग्रस्त होना– एक बार चैत्र मास में किसी वनस्पति का भक्षण करने से गजेन्द्र के गंडस्थल से मद बहने लगा। उस मद के अतिरेक से उसका उन्माद बढ़ गया। उस उन्माद के कारण वह वन में घूमने लगा। उसने बेतों के वन से बेतों को उखाड़कर उसे तहस नहस कर डाला। बड़े-बड़े गगनस्पर्शी वृक्ष बेलों का अपने दाँतों से समूल नाश कर दिया। दाँतों के आघात से वह पर्वतों को तोड़ने लगा। उसके मद की गंध से सिंह भाग गए। गजेन्द्र के मद की गंध से दिग्गज काँपने लगे। सिंहों को मारने वाला शरभ, बाघ, सुअर, भालू, सियार, गौरवानर, भेड़िया, खरगोश, मृग इत्यादि प्राणी भय से भागने लगे। उन पलायन करने वाले पशुओं को अभय देकर रोका गया. वे सभी पशु मद की तीक्ष्ण गंध को सहन न कर सकने के कारण पानी पीने लगे। पर्वत पर चलते समय बलवान गजेन्द्र पर्वत को पाताल में धँसाने लगा, जिससे फन वाले सर्प दब गए और सर्पकुल में हाहाकार मच गया। इसी प्रकार मद के उन्माद से गजेन्द्र वनों का नाश कर रहा था। चैत्र मास में मध्याह्न की धूप से गजेन्द्र का गंडस्थल जल रहा था। उसकी मादा हथिनी, बच्चे और स्वयं गजेन्द्र धूप के कारण संत्रस्त थे। वे सभी प्यास से व्याकुल होकर पानी के लिए तड़पने लगे।

गजेन्द्र और उसका परिवार प्रारम्भ से ही पाँच योजन दूर गंडक का पानी पीने के लिए जाता था लेकिन नक्र के भय से सरोवर के जल को स्पर्श नहीं करता था। परन्तु इस समय तेज धूप के कारण गंडक तक उनसे जाया नहीं जा रहा था। सूर्य किरणों की प्रखरता से गजेन्द्र का गंडस्थल जलने लगा। सरोवर के पास आने पर प्यास और भय दोनों से ही वह व्याकुल हो गया। गजेन्द्र के मन में भय था कि उसके द्वारा सरोवर में सूँड़ डालते ही उसका शत्रु नक्र उससे भिड़ जाएगा। पानी पीते समय उसे भय लग रहा था। सूँड़ के पानी में डालते ही गज के मद की सुगंध से भ्रमर मद पान करने के लिए गंडस्थल पर मँडराने लगे और गुंजार करने लगे। गजेन्द्र का परिवार प्यास से पीड़ित था। अतः गजेन्द्र सहित सब दौड़ते हुए सरोवर के पास आये। वह सरोवर विशाल था। उसमें नीला स्वच्छ जल विद्यमान था। उसके जल से कमल-पुष्प की सुगंध आ रही थी। उसके शीतल तुषार-कण सर्वत्र उड़ रहे थे।

गजेन्द्र ने जल के बाहर खड़े रहकर सूँड़ द्वारा सरोवर से जल पिया। उसने सूँड़ से जल लेकर अपने मस्तक पर डाला। पानी पीने से उसे शान्ति और सन्तुष्टि मिली। व्याकुलता दूर होने से उसका मद और बढ़ गया। तब वह सरोवर में प्रवेश कर उन्मादपूर्वक जलक्रीड़ा करने लगा। उसने कमलों का विध्वंस कर दिया। उसका परिवार सरोवर जाने से डर रहा था अतः वह स्वयं सूँड़ से जल लेकर सबको पिला रहा था। सर्वप्रथम उसने अपनी प्रिय पत्नी को जल पिलाया फिर पुत्रों को पिलाया। जिस प्रकार एक गृहस्थ अपने परिवार का पोषण करता है, उसी प्रकार गजेन्द्र भी कर रहा था। इन सब में गजेन्द्र नक्र को भूल गया। प्राणी अपनी मृत्यु को भूल जाता है और काल उसे अपना ग्रास बना लेता है, उसी समय नक्र ने गजेन्द्र को पकड़ लिया। जिस प्रकार काल अवसर देखकर प्राणी का घात करता है, उसी प्रकार सरोवर के जल में खड़े गजेन्द्र को नक्र ने आवेशपूर्वक पकड़ लिया। स्त्री व पुत्र के मोह में पड़कर मायावश गजेन्द्र अपनी भ्रमपूर्ण अवस्था में अपने अपघात का कारण बना।

नक्र और गजेन्द्र का परस्पर युद्ध– शरीर में देह लोभ का मद, बल का उन्माद एवं गज-मद के अंहकार से गजेन्द्र मदान्ध हो गया था। जिसे जन्म-मरण की महाबाधा का स्मरण नहीं रहता, मोहांध

होकर उसे नरक में आने का भय भी नहीं रहता और इस कारण वह महामूर्ख सिद्ध होता है। उपरोक्त तीन प्रकार के मद से मोह के वशीभूत होकर और स्त्री-लोभ से उसकी बुद्धि भ्रष्ट होकर गजेन्द्र नक्र द्वारा होने वाले घात के परिणाम को भूल गया और जल में उतरकर क्रीड़ा करने लगा। उस समय नक्र ने तुरन्त आकर गज का पैर पकड़ लिया। गजेन्द्र ने बलपूर्वक नक्र को खींचकर ज़मीन पर लाकर उसे मारने का प्रयत्न किया। नक्र ने भी महाबलवान् होने के कारण झटके से गजेन्द्र को पानी में खींचा। उस समय गजेन्द्र ने युद्ध प्रारम्भ किया। उसने नक्र को सूँड़ में कसा। फिर आवेशपूर्वक सूँड़ को नक्र के मस्तक पर पटका परन्तु सूँड़ का वार व्यर्थ हुआ क्योंकि नक्र जल में नीचे था और नक्र को सूँड़ का भय नहीं लग रहा था। गजेन्द्र की सूँड़ पानी में जाते ही नक्र ने सूँड़ के सिरे को आहत कर दिया। इस कारण गजेन्द्र दु:खी हो गया। मगर के चंगुल से वह छूट नहीं पा रहा था। सूँड़ का सिरा आहत होने से उसमें से रक्त प्रवाहित हो रहा था। गजेन्द्र इस व्यथा से कराहने लगा।

गजेन्द्र अपने बल से नक्र को भूमि की ओर खींच रहा था और नक्र शक्तिपूर्वक गजेन्द्र को जल में खींचने का प्रयत्न कर रहा था। दोनों में शक्ति समान होने के कारण यह युद्ध लगभग हज़ार वर्षों तक चला। यह देखकर देवता आश्चर्यचकित हो गए। नक्र को जल में आहार मिल जाता था परन्तु गजेन्द्र को भूखा ही रहना पड़ा। भूखा रहने के कारण शक्ति क्षीण हो जाने से नक्र को भूमि पर लाना उसके लिए असम्भव हो गया। इसके अतिरिक्त नक्र द्वारा सूँड़ का अग्रभाग कुतरने के कारण गजेन्द्र छटपटाने लगा। तब अपनी स्त्री व पुत्रों से चिल्लाकर कहने लगा– "मेरी पूँछ पकड़कर मुझे पानी से बाहर निकालो।" इस पर उसके स्त्री पुत्र उसकी पूँछ पकड़कर शक्ति लगाकर खींचने लगे परन्तु गजेन्द्र तिल मात्र भी हिल न सका, न ही नक्र को खींचकर वह बाहर ला सका। इसके विपरीत नक्र के ही ज़ोर से झटका देते ही गजेन्द्र स्त्री-पुत्र सहित पानी में गिरकर डूबने लगा। तब नक्र एवं जल के भय से वे गजेन्द्र को छोड़कर जल्दी से किनारे आ गए। स्त्री कहने लगी– "हमारा भाग्य अच्छा था कि पुत्र के आहत हुए बिना हम इस संकट से बाहर आ गए। गजेन्द्र को नक्र ने निगल लिया। उसकी स्त्री पुत्रों से बोली– "गजेन्द्र के विषय में विचार कर जल संकट में न पड़ो।" पुत्रों पर प्रेम करने वाली माता ने पुत्रों के जीवन का विचार कर, पति को सकट में छोड़कर बच्चों को जल पिलाकर पुत्रों सहित वन की ओर प्रस्थान किया।

गजेन्द्र निराहार रहकर सहस्र वर्षों तक नक्र से युद्ध करता रहा। इसके कारण वह क्षीण होता गया। उसके शरीर का बल, मन: शक्ति, प्राण-शक्ति, इन्द्रिय-शक्ति सब क्षीण हो गईं। क्षीण होकर गजेन्द्र स्त्री एवं पुत्रों से विनती करता रहा परन्तु उसके प्राण संकट में होने पर भी उसकी पत्नी उसे छोड़कर चली गई। अन्त में कोई भी काम नहीं आता, यही सत्य है। गजेन्द्र ने ममतापूर्वक सबका पालन-पोषण किया परन्तु अन्त में उसके सहृदयों ने ही उसका त्याग कर दिया। ज्येष्ठ, कनिष्ठ सभी ने उसका त्याग कर दिया, ''मेरे समान ही अपूर्व बलशाली मेरे सैकड़ों पुत्र मुँह फेरकर चले गये। वास्तव में पुत्र, पत्नी कोई भी अपने काम नहीं आता। सुहृद प्रौढ़ पुत्र मेरे दु:ख को न समझ सके तो हथिनियों की क्या कथा। अन्त में प्राणान्त कठिन ही होता है। सब सगे निरुपयोगी सिद्ध होने पर नक्र से मुक्त होने के लिए गजेन्द्र ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी। अन्त: में ईश्वर ही कृपा करता है, उसके नामस्मरण से मोक्ष की प्राप्ति होती है। स्वयं काल भी उसके आधीन होता है। आदरपूर्वक जिसका स्मरण करने से जन्म-मृत्यु का चक्र रुक जाता है, उसकी शरण में जाने से संसार के बन्धन दूर होते हैं। जीव

शिव से परे, चारों वाचाओं में श्रेष्ठ, गुणातीत भगवंत की शरण में जाना ही श्रेयस्कर होता है। श्रीहरि की शरण में जाने से सदेह भी देहातीत अवस्था का अनुभव होता है। कलिकाल के दाँत टूट जाते हैं, विषयों के पट फट जाते हैं। श्रीराम-नाम का गुणगान करने से कर्मबन्धन समूल टूट जाते हैं। अन्त में यम स्वयं शरण आता है। यहाँ नक्र की कैसी शक्ति ? मुझे श्रीहरि का स्मरण हुआ, यह भी स्वयं उन्हीं की कृपा है क्योंकि हरि की कृपा हुए बिना उनका स्मरण नहीं होता।'' गजेन्द्र ने निश्चय किया कि श्रीहरि का स्मरण करना चाहिए। मन बुद्धि एवं हृदय में संतोष का अनुभव कर शांत रहना चाहिए। नक्र ने उसे चिंताग्रस्त कर दिया था। उस चिन्ता को समाप्त कर, धैर्यपूर्वक चिन्तारहित होकर, उसने परात्पर शक्ति का ध्यान धरकर जप किया। जिनके पास धैर्य का अभाव होता है, वे सहज ही जन्म मृत्यु के दास हो जाते हैं। गजेन्द्र के पास पूर्व-जन्म के संस्कारों के कारण धैर्य था। अतः वह हरिस्मरण करने लगा। पूर्व-जन्म की भजनों की परिपाटी एवं हरिस्मरण के कारण मन्त्रों का उच्चारण स्वयं ही उसके होठों पर आ गया, जिसके कारण उसका मन हुल्लसित हो उठा।

अध्याय २२

[गजेन्द्र उद्धार]

गजेन्द्र के हृदय में सर्वज्ञ अन्तरात्मा विद्यमान थी। इसलिए उसकी बुद्धि एवं इन्द्रियाँ सज्ञान हो गई थीं। अतः वह काया, वाचा, मनसा ईश्वर को नमन कर अनन्य भाव से उसकी शरण में गया। इस शरणागति के कारण इन्द्रियों का विपरीत ज्ञान नष्ट हो जाता है। ईश्वर के प्रति अनन्य निष्ठा के कारण मन उन्मन हो जाता है। चित्त चैतन्य स्वरूप हो जाता है। बुद्धि को संतुष्टि प्राप्त होती है और अहम् सोऽहम् से एकाकार हो जाता है। प्राणी स्वयं ब्रह्मस्वरूप होने लगता है। विषय एकाकार हो जाते हैं। अनन्य शरणागति का सूत्र संसार का परब्रह्म स्वरूप होना है अर्थात् अनन्य शरणागति के लिए सत्वसम्पन्न भाग्य होना चाहिए। गजेन्द्र के पास वैसा भाग्य होने के कारण उसने भगवान् को नमन किया।

गजेन्द्र द्वारा भगवान् को नमन– ओंकार पूर्णतः ब्रह्मरूप है वह चैतन्यरूपी प्रकाश से प्रकाशित होता है। ऐसे उस भगवान् को मैं काया, वाचा एवं मन से अनन्य निष्ठापूर्वक नमन करता हूँ 'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म*[1] स्वयं पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण' हैं जो 'ओंकार ब्रह्मवेद बीजत्वे'*[2] कहकर भगवद्गीता का मर्म बताते हैं। ओंकार बीज सनातन है। स्वर वर्ण उच्चार पूर्ण ब्रह्म है तथा प्राणि-मात्र एवं भौतिक जगत् चैतन्य-घन स्वरूप हैं। उस ईश्वर को मेरा नमन है, जो सबका आदि कारण एवं स्वयं कारण-रहित है। ऐसे पुरुषोत्तम की मैं अनन्य भाव से शरण जाता हूँ। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश जिसके अंश हैं, ऐसे परम ईश को मेरा अनन्य भाव से नमन है। उसका ध्यान करने से ध्येय-ध्याता एकाकार होते हैं और ध्यान से ही उस चैतन्य घन की अनुभूति होती है। उसे मेरा नमन है, जिसमें सबकी अनुभूति होती है जिसके कारण सभी प्रकाशित होते हैं, जो सबमें विद्यमान है, जो स्वयं सर्वस्व है, उसे मेरा नमन है। जिस

*[1] ॐ यह एक अक्षर ही ब्रह्म है। इसको अक्षर ब्रह्म भी कहते हैं।

*[2] ओंकार ही मौलिक रूप में ब्रह्मवेद है।

प्रकार से गुड़ से करेला बनाने पर वह मीठा ही लगता है, उसी प्रकार यह निर्मित जगत् ब्रह्मस्वरूप होता है। जिस प्रकार शर्करा से निर्मित नारियल का छिलका निकालने का प्रयत्न करने वाले अभागे कहलाते हैं, उसी प्रकार हमें जो अनुभव होता है उसे चैतन्य-स्वरूप न मानने वाले भी अभागे होते हैं। उस चैतन्य में जो व्यक्ति दोष-गुण देखने लगता है, वह नरक का भागी होता है। मुझ गजेन्द्र को मुनि के शाप से आत्मानुभूति हुई है। जो आत्म-परभाव से परे है, जिसे जन्म एवं मृत्यु नहीं है, उस भगवंत को मैं अनन्य भाव से शरण जाता हूँ।"

ईश्वर का जन्म नहीं होता फिर उसका भाव रूप कैसे हो सकता है ? देह के बिना उसमें गुण-दोष, धर्म अधर्म कैसे सम्भव है। वह ईश्वर अपनी लीला से ब्रह्मा, विष्णु, महेश इत्यादि के गुण-कर्मानुसार अवतार लेता है। उत्पत्ति के समय वह चतुरानन ब्रह्मदेव होता है। स्थिति की अवस्था में विष्णु होता है तथा प्रलय के प्रसंग में त्रिनेत्रधारी महेश होता है। इस प्रकार गुणकर्मों द्वारा उसे नाम प्राप्त होता है। जो बोता है, वही रखवाली करता है और वही फसल काटता है। उसी प्रकार वह श्रीहरि गुण एवं अवतार से त्रिरूप होता है। नर जिस प्रकार नाना प्रकार के वेष धारण कर उसी के अनुरूप भूमिका करता है फिर वह वेष त्याग देता है परन्तु उससे उसका मूल-स्वरूप नष्ट नहीं होता, वैसे ही ईश्वर के साथ भी घटित होता है। नाना प्रकार के अवतार धारण करने पर भी उस श्रीहरि की कोई जन्म-कथा नहीं होती, उसके द्वारा लिया हुआ अवतार त्यागने पर उसे मृत्यु नहीं कहा जाता। ऐसे ईश्वर को मेरा नमन है। मेरे सदृश दीन, स्वार्थी, विमुख, पशुसमान, तुम्हारी शरण आने पर तुम उनके पाश तोड़ते हो। नर्क का पाश तो अत्यन्त क्षुद्र पाश है, उसका कोई भय नहीं परन्तु कर्मपाश अत्यन्त कठिन होता है। अपनी कृपा से तुम उससे मुक्त करते हो। शरणागत के पाश खोलने से वे तुम्हारे स्वरूप में लीन हो जाते हैं। ऐसी कृपा से तुम अपनी मुक्ति उन्हें प्रदान करते हो, उनके भ्रम का समूल नाश कर तुम उन्हें सहज मुक्ति प्रदान करते हो। हे कृपालु श्रीहरि, तुम्हें मेरा अनन्य भाव से नमन है। तुम्हें नमन करने से हमें सभी प्राणियों में आप्तभाव की अनुभूति होती है। अन्तरात्मा रूपी ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय में प्रत्येक शरीर में नित्य निवास करता है। अन्तर्मुखी दृष्टि से देखने पर ईश्वर दृश्य एवं दृष्टा स्थिति में सर्वत्र विद्यमान दिखाई देता है। सनातन ब्रह्म नाम से वह जाना जाता है। पाश बन्धन तोड़ने के लिए उसे अनन्य भाव से नमन है। अगर ईश्वर की कृपा न हुई तो अहम् भाव से मेरी मुक्ति सम्भव नहीं है।"

"मुझे ऐसा लगता है कि गृहस्थी एक फन्दे के सदृश है और मेरी पत्नी उसकी एक कठोर कील है, गृह सामग्री अच्छी तरह से जोड़ने के लिए विविध प्रकार से धन एकत्रित किया जाता है। उस पर पुत्रों की आनन्ददायक पताका उस फन्दे पर बेड़ी के सदृश है। लौकिक कर्म व स्वजनों के प्रति मोह का निर्माण होता है। फन्दा, कील एवं उस पर बेड़ी डालकर कंजूसी की हथकड़ी डाली जाती है। इस प्रकार कुटुम्ब का बन्धन पड़ता जाता है। नित्य विषयों के प्रति आसक्ति बढ़ती जाती है। माता के स्थान पर पत्नी आप्त सम्बन्धी लगने लगती है, मातृ-सेवा का वेद निर्धारित कृत्य त्याग कर पुरुष, पत्नी की काम विषयक आसक्ति के वशीभूत होता जाता है। जिस प्रकार बंदर मदारी के वश में रहता है उसी प्रकार स्त्री, पुरुष को अपने वश में कर लेती है। वह जिस प्रकार नचाती है, वैसे वह नाचता है। वह किसी काम का नहीं रह जाता, पालतू कुत्ते के सदृश वह स्त्री के आधीन होकर रहता है। उसे रुष्ट करने पर वह चिल्लाने लगती है और दूर करने पर मौन धारण कर लेती है। जो पहले यह कहते हैं कि माता की सेवा ही भुक्ति और मुक्ति का साधन है, वही स्त्री के प्रति कामासक्त होकर माता का त्याग करते

हैं। मातृ सेवा भुक्ति मुक्ति तथा स्त्री की आसक्ति नरक प्राप्ति ऐसा कहने वाले ज्ञानी भी भ्रम में पड़कर स्त्री को ही आप्त समझने लगते हैं। भ्रांति में अहं भाव, पत्नी, पुत्र, गृह, धन, स्वजन तथा आशा ये सात पाश होते हैं। जिसके पास सत्संगति नहीं है, उसे राम नाम का स्मरण नहीं रहता। वे कर्मपाश में ही उलझ जाते हैं। इस कारण उन्हें हृदय में विद्यमान भगवान् की अनुभूति नहीं होती। इन सात पाशों का बंधन तोड़ने का एक ही उपाय है- वह है सत्संग। सत्संग की महिमा अपरम्पार है।

श्रीकृष्ण एवं श्रीराम के अवतारों की तुलना– एक अजन्म सोमवंशी तो दूसरा अयोनिज* सूर्यवंशी है। एक ने पूतना का नाश किया तो दूसरे ने ताड़का का। एक ने गुरुपुत्र लाकर दिया तो दूसरे ने अपने गुरु के यज्ञ की रक्षा करते हुए उसे पूर्ण कराया। एक ने गोवर्द्धन उठाया तो दूसरे ने पाषाण का सेतु बनाया। एक माँ को छोड़कर गोकुल चला गया तो दूसरे ने राज्य त्याग कर दण्डकारण्य में वनवास स्वीकार किया। किसी को भनक लगे बिना कृष्ण मथुरा द्वारका ले गए। श्रीराम अपने सामर्थ्य से अयोध्या को वैकुण्ठधाम ले गए। एक मक्खन के लिए माता के समक्ष रोता था तो दूसरा सीता-विरह के शोक से वनवास में विलाप करता था। एक ने छल से कालयवन को मारा तो दूसरे ने छलपूर्वक बालि को मारा। कृष्ण ने शिशुपाल आदि का वध किया तो श्रीराम ने खरदूषण नामक राक्षसों को मारा। कृष्ण ने कंस और चाणूर का निर्दलन किया तो राम ने रावण और कुम्भकर्ण का वध किया। कृष्ण ने उग्रसेन को राजगद्दी पर बिठाया तो श्रीराम ने विभीषण को लंका का राज्य दिया। श्रीराम एक पत्नीव्रती थे तो श्रीकृष्ण स्त्रियों के साथ रहकर भी ब्रह्मचारी रहे। कृष्ण ने पृथ्वी और गोकुल को तारा तो श्रीराम ने जग का उद्धार किया। कृष्ण के कारण हरि कीर्तिन करने वाला जारज पुत्र व्यास पवित्र हुआ तो श्रीराम ने वाल्मीकि नामक डाकू का उद्धार किया। उनकी रामायण शिव के लिए भी वंदनीय हुई। श्रीहरि (दोनों अवतारों का) का वर्णन करने के कारण दोनों कवि महाकवि हुए उनके गौरव-ग्रन्थ के कारण सबकी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हुआ। श्रीहरि की निर्मल कीर्ति अमंगल को मंगल में परिवर्तित करने वाली है। उनका नाम स्मरण मंगलकारी तथा श्रीहरि की कीर्ति सुमंगल है।"

श्रीराम-नाम की महत्ता– "श्रीराम-नाम बार-बार लेते रहने से करोड़ों दोषों का नाश होता है, भुक्ति और मुक्ति अनुसरण करती है और सृष्टि पवित्र हो जाती है। एकादशी के दिन हरिनाम का निरन्तर-जाप करने से पितरों को यमयातना से मुक्ति मिलती है। पुत्र, भाई का पुत्र, कन्या उसका पुत्र इनमें से किसी के द्वारा भी हरिजागर करने से पितर यमप्रहार से बच जाते हैं। नाम स्मरण से नरक में जाने वालों का भी उद्धार होता है। जो स्वर्ग में हैं उनको मुक्ति मिलती है और ब्रह्मादि देव कलियुग में जन्म की इच्छा धारण करते हैं। कलियुग की बहुत ख्याति है। नाम के कारण स्त्रियों एवं निम्न-वर्ग का भी उद्धार होता है, उन्हें मुक्ति मिलती है। ऐसी नाम की श्रेष्ठ कीर्ति है। नामस्मरण के लिए स्नान का, विधिविधान का बन्धन नहीं है। बैठे होने पर, लेटे हुए अथवा भोजन करते समय कभी भी हरिनाम स्मरण पवित्र ही होता है। अर्द्धनिद्रित अवस्था अथवा शय्या पर पड़ा हुआ कोई व्यक्ति अगर नामस्मरण करता है तो ब्रह्मादिक देव उसकी वन्दना करते हैं क्योंकि उसमें मुक्ति का निवास होता है। नाम के साथ जब ताली बजती है तब समस्त पापों का नाश होता है। नाम संकीर्तन के समय हरि भी मग्न होकर डोलते हैं। हरिकीर्तन में भक्तों के अन्तर्मन में भगवान् नृत्य करते हैं और कीर्तन कार की चरण-धूलि से विभूषित होकर आत्मानन्दपूर्वक डोलते रहते हैं।"

---

*जो किसी भी योनि में न जन्मा हो।

ईश्वर का हृदयगत– नामसंकीर्तन के असीम सुख के समक्ष मेरे लिए वैकुंठ भी नगण्य है सूर्य-बिंब भी मुझे सुख नहीं दे सकता अतः मुझे उसकी भी चाह नहीं है। योगियों के मन से मैं कीर्तन की ओर दौड़ पड़ता हूँ वहीं पर रुक कर मैं स्वानन्द में मग्न हो जाता हूँ। मैं भक्तों के प्रेम के कारण हरिकीर्तन की ओर जाता हूँ। मेरी कीर्तन में रुचि होने के कारण मैं वहाँ तल्लीनता से नृत्य करता हूँ यह रहस्य स्वयं भगवान् ने ही नारद मुनि के समक्ष उजागर किया है। इसलिए वे भी नित्य हरिकीर्तन में मग्न रहते हैं। नाम स्मरण से पापी भी नित्य मुक्त होते हैं। इस कारण यमलोक में भीड़ कम हो जाती है। कुछ लोग व्यर्थ ही तीर्थ-स्थलों में उपवास यम-नियम इत्यादि का पालन करते हैं। नाम-स्मरण से मुक्ति मिलने से चित्रगुप्त की बही के पृष्ठ कोरे रह जाते हैं क्योंकि हरिनाम के कारण भक्त कर्म-निर्मुक्त हो जाते हैं। रामनाम की शक्ति गहन होने के कारण चित्रगुप्त की बही स्पष्ट रूप से राम-नाम से खुली रह जाती है आनन्दघन श्रीराम-नाम के कीर्तन से श्रोता एवं वक्ता दोनों ही आनन्दमग्न होते हैं। राम-नाम के पारायण से तीनों लोकों में माया के मिथ्या होने का अनुभव होता है। अखिल विश्व, आदि ब्रह्मा, इन्द्रादि देव, लोकपाल, वेदान्तवाद, रूप, नाम ये सभी राम-नाम के समक्ष मिथ्या हैं। एक राम नाम के समक्ष सभी तुच्छ सिद्ध होते हैं, ऐसी उस नाम में अगाध शक्ति है। हृदय-कमल में राम नाम रूपी प्रेम का निर्माण होने से समस्त संसार तृण के समान तुच्छ होकर नेत्रों में केवल राम ही समाये रहते हैं। जहाँ राम नाम होता है, वहाँ विरक्ति, परम प्राप्ति तथा भुक्ति एवं मुक्ति का निश्चित रूप से निवास होता है।"

राम नाम नित्य स्मरण करने से कल्पांत जितने पाप भी नष्ट हो जाते हैं। अद्‌भुत पुण्य की प्राप्ति होती है। राम नाम नित्य अनित्य का नाश करने वाला है। राम नाम स्मरण पूर्ण वैराग्य का भाव लाता है। फिर इन्द्रलोक ब्रह्म सदन ये स्वप्न के सदृश मिथ्या सिद्ध होते हैं। गहन वैराग्य की प्राप्ति इस नाम से ही होती है। नित्य नामस्मरण से प्राप्त होने वाला पुण्य भोग करने से क्षीण नहीं होता। इसके विपरीत उससे परिपूर्ण ब्रह्म की प्राप्ति होती है। नामस्मरण से विरक्ति आने के पश्चात् सद्‌गुरु ही ब्रह्ममूर्ति प्रतीत होने लगता है, इसी कारण अभेद भक्ति निर्माण होने से सारे प्राणियों में भगवत्-भाव अनुभव होता है अभेद गुरु भक्ति का ज्ञान प्राप्त होने से प्राणियों में भगवद्-भजन का ज्ञान होता है। भौतिक जगत् चैतन्यमय दिखाई देने लगता है और ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति होती है। इस प्रकार ब्रह्म स्थिति उत्पन्न होने पर जन्म मृत्यु का चक्र रुक जाता है। भ्रम नष्ट होता है, उसके परिणामस्वरूप प्रपंच मिथ्या लगने लगता है। यह सहज स्थिति पुरुष को परमानन्द की प्राप्ति करा देती है। उस परमानन्द की प्राप्ति के पश्चात् मनुष्य उससे विमुख नहीं होता। रामनाम के सतत् स्मरण से जड़ को मुक्ति मिलती है राम-नाम स्मरण से परमानन्द से एकात्मता होती है सृष्टि में ब्रह्मरूप प्रकट होकर आनन्द ही आनन्द का निर्माण होता है। जिसके नाम की इतनी महत्ता है, उस स्वामी जनार्दन की काया, वाचा, मनसा अनन्य सद्‌भावपूर्वक शरण जाना चाहिए। शरणागत की दीनवाणी सुनकर वह कृपालु दीनोद्धारक जनार्दन दौड़कर चले आते हैं।

ईश्वर द्वारा गजेन्द्र का उद्धार– श्रीशुक हर्षपूर्वक राजा परीक्षित से बोले - "कृपालु भगवान् दीनोद्धार के लिए शीघ्र आये। सगुण एवं निर्गुण दोनों एक ही हैं। उनके नाम स्मरण से पूर्ण ब्रह्मप्राप्ति होकर जग का उद्धार होता है। गजेन्द्र ने सविशेष निर्विशेष स्थिति में रहकर उस कृपालु कृपामूर्ति श्रीपति की स्तुति एवं प्रार्थना की। इन्द्र ब्रह्मा, शंकर इत्यादि महान् सुरवरों ने अपने सामर्थ्य का अनेक प्रकार से प्रयोग किया फिर भी गजेन्द्र की मुक्ति न हो सकी। उस ऋषिकेशी* के बिना यह सम्भव नहीं हो

* भगवान विष्णु

पा रहा था विभिन्न इन्द्रियों की सत्ता नित्य परमेश्वर के आधीन होने से उसके बिना दीनों का उद्धार करना कभी सम्भव नहीं होता सभी देवता गजेन्द्र का उद्धार नहीं कर पा रहे हैं, यह देखकर स्वयं ऋषिकेशी ने शीघ्र प्रस्थान किया। गजेन्द्र की स्तुति सुनकर, सुदर्शन-चक्र हाथ में लेकर गरुड़ की सवारी कर भगवान् निकले। सभी जीवों के जीव, सभी देव जिसके अभिन्न अंग हैं ऐसे सर्वात्मा श्रीकेशव स्वयं गजेन्द्र की सहायता के लिए निकले तब गजेन्द्र की स्तुति सुनकर, गरुड़ वाहन को आता हुआ देखकर देवताओं ने उस दयालु का दिव्य स्तवन किया। वे बोले- "जयजय दीनों के रक्षक, जयजय दीनों के पालक, जयजय दीनोद्धारक, कृपालु पूर्णत्वरूप, जयजय संसार के निर्माता जयजय संसार भाव के समूल निर्दलनकर्मा, जयजय भगवद् पंचानन, जय जनार्दन, जगद्गुरु" इन शब्दों में जब सुरवर नाना प्रकार की स्तुति कर रहे थे उस समय उन्होंने अपने विमानों से श्रीपति को आते हुए देखा।

मेघश्याम श्रीहरि गरुड़ पर आरूढ़ थे। गरुड़ के दोनों पंख हिल रहे थे। उन पंखों की ऊपर नीचे होने वाली गति से ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों वे रथंतरवृहत्साम,* मनोरम सामगान कर रहे थे। वामरथंतरसाम* दक्षिणपक्षवृहत्साम* गायन के नाद से गरुड़ पर आसीन पुरुषोत्तम आनन्दपूर्वक डोलने लगा इस छन्दमय नाद से गरुड़ोत्तम स्वयं गति के विषय में संभ्रमित हो गया। पीठ पर भगवान् और दोनों हाथों में पैर पकड़कर, मुख से हरिनाम का स्मरण करते हुए वह दोनों पंखों से सामगीत गा रहा था दोनों हाथों में पैर, पीठ पर भगवंत हृदय में श्रीराम, मुख में श्रीहरिनाम और दोनो पंखों में वृहत्साम ऐसी गरुड़ की स्थिति थी। वह अंतर्बाह्य हरिभक्ति से ओत प्रोत था। इसीलिए छंदमय गायन से वेदानुवृत्ति का अनुवाद हो रहा था।

पर्वत सहित सागर की भी यदि हरि से तुलना की जाय तो वह उसके समक्ष तुच्छ है। ऐसे श्रीहरि का गरुड़ रात-दिन पीठ पर वहन करता था। गरुड़ारूढ़ परमेश्वर परमानन्द में डोलते हुए आ रहे थे, उस समय उन्होंने ग्रहग्रस्त आर्त गजेन्द्र को देखा। श्रीहरि हाथ में चक्र का संधान कर गरुड़ से बोले "तुम शीघ्र गति से मुझे गजेन्द्र के उद्धार के लिए ले चलो।" मन के वेग से भी सहस्त्रगुना अधिक गरुड़ की गति थी वह अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग कर वेग से जा रहा था फिर भी उसकी गति श्रीहरि को पर्याप्त नहीं प्रतीत हो रही थी। गजेन्द्र का उद्धार करने के लिए वे तत्पर थे। उनकी कंकणयुक्त भुजाएँ थरथरा रही थीं वे अपनी सुधि भूल गए। उनके केश खुल गए। रोम फड़कने लगे। ऐसे पराक्रमी परमेश्वर गजेन्द्र की ओर जा रहे थे।

भगवान् गरुड़ पर से छलाँग लगाकर गजेन्द्र के पास पहुँचे नक्र द्वारा पकड़े जाने के कारण गजेन्द्र अत्यन्त दीनस्थिति में था गजेन्द्र भगवान् से अत्यन्त करुणास्पद स्वर में बोला- "इस अथाह सरोवर में नक्र ने गर्जना करते हुए मुझ पर आक्रमण किया और जल में मुझे बलपूर्वक पकड़कर पीड़ित कर दिया है मुझे संकटग्रस्त देखकर मेरी पत्नी, पुत्रों तथा स्वजनों ने मेरा त्याग कर दिया है अतः मेरे काम कौन आएगा मुझे इस संकटमय ग्रहग्रस्त स्थिति में छोड़कर सभी जल पीकर स्वयं संकटपूर्ण स्थिति से बचने के आनन्द में प्रसन्नतापूर्वक वन की ओर प्रस्थान कर गये। मुझे उनके द्वारा इस प्रकार त्यागने के कारण मैंने भी उनके प्रति ममता का त्याग कर दिया उस समय मुझे स्मरण हो आया कि प्राणों पर संकट आने पर श्रीहरि ही रक्षा कर सकते हैं क्योंकि वे कृपा निधान हैं। श्रीहरि ही निश्चित रूप से

* सामवेद के गेय प्रकार।

अन्तकाल में अपने निकट होते हैं।" गजेन्द्र के आप्त सम्बन्धियों द्वारा उसका त्याग करने पर गजेन्द्र को इस तथ्य का अनुभव हुआ। मोह ममता पूर्णरूपेण समाप्त होने के कारण नाम-स्मरण में उसकी रुचि जागृत हुई वह उल्लास एवं आनन्दपूर्वक भगवान् का भजन करने लगा। उसे ऐसा लगा कि वह भगवान् को कुछ अर्पित करे परन्तु उसका संचित भी उसके पास न था, उस पर स्त्री-पुत्रों की सत्ता थी। माँगने पर भी उसे नहीं मिल रहा था। अन्तिम क्षणों में कुछ माँगने पर स्त्री पुत्रों ने कहा कि उसे बातभ्रम हो गया है। उसके आप्त सम्बन्धी बोले– "यह तो अब मरेगा परन्तु सारा द्रव्य खर्च कर हमें कंगाल कर देगा अतः इसकी बातें नहीं सुननी चाहिए।" इस प्रकार ये आप्त सम्बन्धी सारा संचित लूट लेते हैं और गृहस्थ तड़पकर मरता है। वही गति गजेन्द्र की भी हुई।

श्रीहरि को अर्पण करने के लिए उसके पास कुछ भी न था। थोड़ा ढूँढ़ने पर उसे सरोवर के जल में कमल दिखाई दिया, अपनी सूँड़ से उसने वह कमल प्राप्त किया, जिससे उसके मन में उत्साह जागृत हुआ। श्रीपति का स्मरण उच्चस्वर में करने का प्रयत्न करने पर उसे यह अनुभव हुआ कि उसकी वाणी क्षीण हो चुकी है। प्राणों के विकल होने के कारण वाणी भी विकल हो चली थी। पशु जन्म होने पर भी गजेन्द्र का स्वभाव प्रेम से परिपूर्ण था, उसमें कृतज्ञता थी। सूँड़ में कमल पकड़कर ऊपर करने पर उसे गरुड़ पर आरुढ़ लक्ष्मीपति विष्णु दिखाई दिए। शंख-चक्र-धारी विष्णु दिखाई देते ही गजेन्द्र प्रेमपूर्ण दृष्टि से उन्हें निहारने लगा। दोनों की दृष्टि भेंट होते ही मन में प्रेम-भाव का निर्माण हुआ तथा सृष्टि सुख से परिपूर्ण होने का अनुभव कर गजेन्द्र के मन में अनन्त उत्साह जागृत हुआ। विकल वाणी हरिदर्शन के पश्चात् मूलस्वरूप में आकर सामर्थ्यपूर्वक स्वाभाविक रूप से बोलने लगी। 'अच्युत, अव्यय, अव्यक्त, व्यक्त, अनंत, स्वयप्रकाशी, नित्य, अजन्मा, अविनाशी परमेश्वर नर का आधार स्थान है। इसीलिए उसका नाम नारायण है। ऐसे परमेश्वर को मेरा नमन हो' गजेन्द्र की यह आर्त्त-भावना अभिव्यक्त होते ही कृपालु भगवान् गरुड़ासन छोड़कर सरोवर में कूद कर गजेन्द्र के पास आये। अपने चक्र से उन्होंने नक्र का मुख फाड़ डाला परन्तु फिर भी नक्र गजेन्द्र को छोड़ नहीं रहा था वह रक्तरंजित नक्र गजेन्द्र को इसीलिए नहीं छोड़ रहा था क्योंकि द्विज के शाप से उनमें कट्टर शत्रुत्व निर्मित हो गया था। अतः कृपालु भगवान् ने दोनों हाथ पानी के तल में डालकर गजेन्द्र को उठाकर पानी के बाहर निकाला। इस समय भगवान् के हाथों के स्पर्श से गजेन्द्र और नक्र दोनों शाप मुक्त हो गए। दोनों भाग्यशाली सिद्ध हुए। गजेन्द्र और नक्र दोनों का उद्धार हो गया। विमानों से देवता पृथ्वी पर ऋषि और आकाश से पक्षी देख रहे थे। परमेश्वर अपनी कृपा से दोनों को ही सरोवर के बाहर ले आये और गजेन्द्र को विमान में बैठाकर जब भगवान् जाने लगे तब नक्र हँसा। श्रीहरि द्वारा हँसने का कारण पूछे जाने पर नक्र ने अपना मनोगत व्यक्त किया।

नक्र की प्रार्थना एवं उसका उद्धार– भगवान् द्वारा हँसने का कारण पूछने पर नक्र बोला– "सभी प्राणियों में ईश्वर समान रूप से विद्यमान है, ऐसा वेद, शास्त्र, पुराण सभी एक स्वर में कहते हैं; परन्तु आज मैंने आपका विषम व्यवहार देखा। गजेन्द्र का आपने उद्धार किया और मेरी उपेक्षा कर दी ? यह अद्भुत विषमता देखकर ही मैं हँसा।" इस पर श्रीहरि ने कहा– "गजेन्द्र ने मेरा स्मरण किया, जिससे उसके पापों का निर्दलन हो गया और उसका उद्धार हुआ " नक्र बोला– "आपके दर्शनों से मेरे पाप क्षीण नहीं हुए। इसका तात्पर्य है कि मैंने पापबल से भगवान् को जीत लिया आपके नाम-स्मरण से पाप नष्ट होते हैं फिर आपके दर्शनों से मेरे पाप क्यों नहीं नष्ट हुए ? इसका तात्पर्य है कि मेरे पापों

के भय से हरि पलायन कर गये अर्थात् मैंने ही उन पर विजय प्राप्त की। श्रीहरि सभी पापों का संहार करते हैं इसीलिए उन्हें हरिनाम दिया गया। मेरे पाप उनसे बढ़कर हैं, जिससे मैंने श्रीहरि को जीत लिया।" नक्र के अत्यन्त वक्रोक्तिपूर्ण वचन सुनकर भगवान् सन्तुष्ट होकर बोले "तुम्हारा आत्मज्ञान देखने के लिए ही मैंने तुम्हारी उपेक्षा की। मेरे दर्शनों के कारण ही तुममें यह ज्ञान स्फूर्ति उत्पन्न हुई है।" यह कहकर श्रीहरि ने गजेन्द्र और नक्र की भेंट करायी। नक्र ने गजेन्द्र के पैर पकड़कर कहा "गजेन्द्र तुम्हारे कारण ही मुझे श्रीपति मिले " इस पर गजेन्द्र ने नक्र के चरणों पर गिरते हुए कहा "हे नक्र तुमने मेरे पैर पकड़े, इसी कारण मुझे परमेश्वर का स्मरण हुआ। तुम्हारे कारण ही मेरा उद्धार हुआ है इस प्रकार दोनों ने एक दूसरे के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। श्रीहरि की भेंट होने से दोनों का पुराना वैर समाप्त हुआ। वे बोले– "हम दोनों पहले सगे ब्राह्मण बन्धु थे परन्तु अपने धन लोभ के कारण हमें शाप मिला और हम गज और नक्र बन गए। उस वैर का आज अन्त होकर हमें पूर्ण शान्ति प्राप्त हुई और ईश्वर की प्राप्ति हुई " दोनों को ही स्वरूप प्राप्त होकर ईश्वर के साथ वे एकाकार हुए।

श्याम वर्ण, कमल नयन, गुण लक्षण, रूपरेखा समान होकर दोनों हरि रूप हो गए। शंख, चक्र गदा एवं पद्म के कारण तीनों समान दिखाई देने लगे। उनमें पुरुषोत्तम को पहचानना, देवताओं के लिए भी कठिन हो गया। उन तीनों को देखकर लक्ष्मी बोली "इसमें किसकी उपासना की जाय ? ब्रह्मादि भी आश्चर्यचकित हो गए, उन्हें भी मूल मूर्ति के सम्बन्ध में भ्रम उत्पन्न हुआ। भगवान् ने सन्तुष्ट होकर दोनों को पूर्णतः हरिरूप कर दिया था परन्तु भगवान् ने उन्हें श्रीवत्स चिह्न नहीं प्रदान किया। वे बोले– 'वह मेरे हाथ में नहीं है " फिर आगे उन्होंने कहा कि "ब्राह्मणों के दूषण तथा उनकी लातों के आघात भी मैंने हृदय पर सहन किये हैं तब मुझे श्रीवत्स प्राप्त हुआ है। वेद भी यही कहते हैं " जिसके पास श्रीवत्स है वही स्वामी श्रीभगवान् है और अन्य जो उनके समान हैं वे उनके भक्त हैं, साधु और ज्ञानी पुरुषों को यह बात ध्यान में आ जाती है। भगवद्भक्त इन्द्रद्युम्न का उद्धार किया। उस समय उस भक्त के चरण पकड़ने के कारण नक्र का भी उद्धार हो गया। जो भक्तों की संगति करते हैं, भगवान् उनका उद्धार करते हैं; भगवत् ग्रंथ में यही बताया गया है। नक्र का भी इसी कारण उद्धार हुआ। कृपालु भगवान् द्वारा भक्तों का उद्धार करने के कारण भक्त उनकी जयजयकार करते हैं और सुर पुष्प-वृष्टि करते हैं

गजेन्द्र एवं नक्र के शवों की व्यवस्था– गजेन्द्र एवं नक्र निष्प्राण पड़ी हुई देहों को देखकर गरुड़ तीव्र गति से उस स्थान पर आया परन्तु वहाँ भगवान् को देखकर लजा गया और उनसे बोला– "हे श्रीपति, आप मुझे बताये बिना आगे कैसे चले आये " इस पर भगवान् बोले - "हे गरुड़ तुम्हारी गति मंद थी अतः मैं गजेन्द्र के लिए शीघ्र गति से यहाँ आ गया।" स्वामी के ये वचन सुनकर लज्जित हो गरुड़ स्वामी के चरणों पर गिर पड़ा और बोला "हे कृपा मूर्ति श्री विष्णु, आप ही मेरी गति हैं, हमारी शक्ति की शक्ति एवं बुद्धि की बुद्धि आप ही हैं। वेगपूर्वक आते हुए मैं क्षुधा से व्याकुल हो गया, आप कृपालु भगवन्त हैं। मुझे कुछ खाने के लिए दें। तब कृपालु भगवान् बोले "गज व नक्र की देह मेरे हाथों पवित्र हो गई हैं तुम उनका भक्षण करो।" यह सुनकर गरुड़ वहाँ आया परन्तु उसे वहाँ विपरीत दृश्य दिखाई दिया भूभग पक्षी (गिद्ध के सदृश मांसाहारी पक्षी) ने वेगपूर्वक वहाँ आकर दोनों देह खाने के लिए पकड़ ली थीं। भूभग पक्षी ने आकाश में भ्रमण करते हुए गजेन्द्र और नक्र को एकत्र देखा, भूभंग द्वारा ऊपर कर उन्हें पकड़ते हुए गरुड़ ने दूर से देखा। गरुड़ को वेगपूर्वक आते देखकर भूभंग दोनों को आकाश में ले उड़ा। नीचे गजेन्द्र, उस पर नक्र तथा उससे बड़ा भूभग इन तीनों को गरुड़ ने

पकड़ लिया। उनकी विचित्र लड़ आकाश में लटकने लगी। गरुड़ के भ्रूभंग से भिड़ते ही उस पक्षी ने गज और नक्र को छोड़ दिया। गरुड़ उन तीनों को अपने नखों से पकड़कर आकाश में ले उड़ा कुछ देर पश्चात् गरुड़ ने भ्रूभंग को मुख से पकड़ा तथा गज और नक्र को नखों से पकड़कर उन्हें खाने के लिए योग्य स्थान ढूँढ़ने लगा।

कनकजांबु की गरुड़ से विनती– गरुड़ को अपनी दिशा में आता हुआ देखकर कनकजांबु ने सोचा कि 'हरि के हाथो के स्पर्श से गज और नक्र पवित्र हुए। गरुड़ स्वयं भगवद्भक्त है अत: उसका स्पर्श होने से मुझे नित्य-मुक्ति प्राप्त होगी। भक्त गजेन्द्र की संगति से घातक नक्र को मुक्ति मिली। मुझे भी इनकी संगति से मुक्ति प्राप्त होगी। जो सत्संगति करते हैं, उन्हें मुक्ति मिलती है ' यह विचार कर कनकजांबु ने गरुड़ से विनती की "शत योजन तक विस्तृत मेरी यह शाखा बहुत बड़ी है। हे पक्षिराज गरुड़, इस शाखा पर बैठकर तीनों का आहार ग्रहण करो।" गरुड़ क्षुधा से पीड़ित था तथा तीनों को लेकर उड़ने से थक गया था, अत: कनकजांबु की विनती सुनते ही वह तुरन्त शाखा पर बैठ गया। गरुड़ को वह वृक्ष मेरु पर्वत के सदृश प्रतीत हुआ। उस वृक्ष की शत सहस्र शाखाएँ चारों ओर फैली हुई थीं। उस वृक्ष का विस्तार शतयोजन क्षेत्र में था। वृक्ष पर सैंकड़ों हजार पक्षियों के घोंसले थे, फल फूल से लदे उस वृक्ष पर पक्षी विश्राम कर रहे थे। गरुड़ की महानता देखने के लिए साठ हजार बालखिल्य ऋषि उन शाखाओं में गुप्त रूप से विद्यमान थे। गरुड़ के बैठते ही वह शाखा चरमरा कर टूट गई। गरुड़ ने शंकित दृष्टि से देखा तो उसे ऋषि उस शाखा से लटके हुए दिखाई दिए ऋषियों के मुख नीचे की ओर थे, उनके आहत होने से मैं नरक में जाऊँगा, यह सोचकर गरुड़ चिन्तित हो उठा। अत: बायें पैर से शाखा पकड़कर दाहिने पैर से गज एवं नक्र को पकड़कर तथा मुख से भ्रूभंग पक्षी को पकड़कर गरुड़ आकाश में उड़ चला। यह सब भार लेकर आकाश में भ्रमण करने वाला गरुड़ शान्ति से कहीं बैठ भी नहीं सकता था क्योंकि नीचे बैठने पर सारा भार ऋषियों पर पड़ने से उन्हें कष्ट होने का भय था। ऋषियों का नाश होने के भय से गरुड़ आकाश में ही भ्रमण करता रहा। वह न तो शान्तिपूर्वक बैठ ही पा रहा था और न खा पा रहा था। तब उसने श्रीहरि का स्मरण किया "मैं भीषण संकट में फँस गया हूँ हे भगवंत, मुझे शीघ्र बतायें अब मैं क्या करूँ ? हे अनाथों के नाथ, अब मेरा उद्धार करें। अभी आपने गजेन्द्र का उद्धार किया, फिर मुझे कैसे भुला दिया ? आपको शीघ्र आना सम्भव है फिर हे गोविंद, आप मुझसे क्यों रुष्ट हैं ? हे जगजीवन जनार्दन, मैं दीन आपका ही हूँ अत: मेरा विघ्न दूर करें " गरुड़ श्रीहरि का परमभक्त था। उसने आनन्दपूर्वक नाम स्मरण किया। नाम में भगवत स्वयं विद्यमान रहते हैं। नाम सुनकर वे आनन्द-पूर्वक डोलते रहते हैं। हरिस्मरण से विघ्न का नाश होता है श्रीहरि ने कुशलतापूर्वक गरुड़ का समाधान किया।

गरुड़ की पिता कश्यप से भेंट– गरुड़ जब आकाश में भ्रमण कर रहा था तब उसे तेज राशि तपस्वी कश्यप के दर्शन हुए। गरुड़ को आकाश से गंधमादन पर्वत पर पिता कश्यप तपस्या करते हुए दिखाई दिए, वह त्वरित कश्यप के पास गया। गरुड़ को देखते ही कश्यप सारा वृत्तान्त समझ गए, बालखिल्य ऋषि को देखकर कश्यप ने दण्डवत् प्रणाम किया और उनसे विनती की कि 'गरुड़ मेरी अकिंचन संतान है, उस पर कृपा करें। गरुड की इच्छा है कि परमामृत लाकर माता को मुक्त करे, इसके लिए आप उसे सामर्थ्य दें'। कश्यप की यह विनती सुनकर ऋषि बोले– "अरे, अनुष्ठान में व्यस्त होने के कारण तुम्हें पता नहीं कि गरुड़ में कितना सामर्थ्य है। वह माता को मुक्त कर चुका है अब वह

श्रीविष्णु का वाहन बन गया है। गरुड़ का सामर्थ्य देखने के लिए ही हम शाखा पर बैठे थे, तब हमें ज्ञात हुआ कि वह बलवानों में श्रेष्ठ है और यह निश्चय ही त्रिलोक में विजय प्राप्त करेगा।" तत्पश्चात् कश्यप को नमन कर, गरुड़ को आशीर्वाद देकर बालखिल्य ऋषि बदरी पर तपस्या करने के लिए चले गये ऋषियों को जाता हुआ देखकर गरुड़ सन्तुष्ट हुआ। पिता को नमन कर वह कश्यप ऋषि से बोला– "बालखिल्य ऋषियों के लिए मैं बहुत चिन्तित था और थक गया हूँ। आपके वचनों के कारण अब मैं मुक्त हो गया हूँ ऋषियों को कष्ट होगा इसीलिए मैं यह शाखा ही ले आया। यह कनकजांबु वृक्ष की शाखा बहुत मजबूत है और इसका शतयोजन विस्तार है। अब मैं इसे कहाँ रखूँ तथा अपना आहार कहाँ ग्रहण करूँ ?" कनकजांबु देखकर अनेक ब्राह्मण धन के लोभवश उसे तोड़ने के लिए दौड़े परन्तु उनका बल पर्याप्त नहीं था। गरुड़ ने पुनः कश्यप ऋषि से पूछा कि 'ऐसा कौन सा स्थान है, जहाँ ब्राह्मण नहीं पहुँच सकते जहाँ शाखा को रखकर अपनी क्षुधा शान्त करने के लिए मैं भोजन कर सकूँ।' गरुड़ को भूख लगी है यह सुनकर कश्यप ऋषि को उस पर दया आ गई। उन्होंने उसे एक दुर्गम स्थान के विषय में बताया वह स्थान मन एवं वाणी को भी अगम्य था। वे बोले "दक्षिण समुद्र में एक सुनसान लंका पर्वत है, वहाँ शाखा रखकर हे पुत्र, शान्तिपूर्वक भोजन करो " कश्यप के वचन सुनकर सुवर्णशाखा, गज, नक्र एवं भ्रूभग पक्षी सहित उड़कर गरुड़ लंका जा पहुँचा।

लंका पठार निर्जन था गरुड़ ने सुवर्णशाखा वहाँ रखकर सावधानीपूर्वक हरिस्मरण कर भोजन किया। भ्रूभग भक्षण करते समय प्रत्येक ग्रास कृष्णार्पण कर, नक्र का भक्षण करते समय हर ग्रास ब्रह्मार्पण कर और गजेन्द्र का भक्षण करते समय प्रत्येक ग्रास ग्रहण करते समय 'भोक्ता ऋषिकेशी' कहते हुए गरुड़ भोजन कर रहा था। भक्त जो भी सेवन करता है, वह हरिस्मरणपूर्वक सावधानी से करता है। गरुड़ क्षुधा से त्रस्त हो गया था परन्तु भोजन कर परम तृप्त हो गया और उसने आनन्दपूर्वक हरिस्मरण किया फल, मूल, जल जो कुछ भी भक्त सेवन करते हैं, वे सब वे ब्रह्मार्पण करते हैं। इस कारण उन्हें पूर्ण तृप्ति मिलती है। अन्न ब्रह्म, अहम् ब्रह्म, हृदय में आत्माराम भोक्ता, कर्म परब्रह्म यह मर्म जिसने जाना वह धन्य है। ऐसे में जब सहस्र लोगों की पंगत बैठती है तब वह पवित्र होती है ऐसा वेदों एवं श्रुतियों में कहा गया है। भाग्यवान् को ही यह पंगत प्राप्त होती है क्योंकि वह हरिभक्त होता है। प्रत्येक ग्रास के साथ वे हरिस्मरण करते हैं; उनका भोक्ता श्री भगवान् होता है, वे स्वयं भोक्ता नहीं होते। इसी प्रकार युक्तिपूर्वक भोजन करने के कारण गरुड़ को परम तृप्ति प्राप्त हुई। तत्पश्चात् उसने विश्राम करने की तैयारी की। भार वहन कर महाबली गरुड़ थक गया था। अतः वह पंखों के नीचे सो गया। विश्राम करने के पश्चात् गरुड़ ने शीघ्र गति से वहाँ से प्रस्थान किया भगवद्भक्त के कारण लंका को भाग्य-प्राप्ति हुई। गरुड़ के तीक्ष्ण नख लंका में गड़े और भीषण वर्षा हुई, जिसके कारण त्रिकूट बहुत बढ़ गया

लंका की निर्मिति; स्वर्णमय होना– कुबेर की अलकावती रावण द्वारा रहने के लिए छीने जाने पर उसे वहाँ से दूर कर प्रजापति ने उसे लंकापति बनाया स्वयं ब्रह्मा ने विश्वकर्मा सहित आकर लंका भुवन का निर्माण किया तथा दुर्गम एवं विकट किला भी बनाया। विश्वकर्मा ने पर्वत के किनारों को तराश कर त्रिकूट सुसज्जित किया। वह इतना गहन था कि उसके आगे से पीछे का सम्बन्ध ही नहीं पता चलता था। चारों तरफ से अत्यन्त कठिन था पीछे की ओर पडलंका, आगे की ओर सुवेला शोभायमान थी। कठिन निकुंबला गढ़ दक्षिण की ओर था। उस लंका के शिखर पर कनक शाखा थी हनुमान द्वारा पूँछ से आग लगाये जाने पर शाखा स्वर्णमय हो गई, हनुमान द्वारा लंका जलाने पर वह

सुवर्णमय हो गई। भगवद्भक्तों के सामर्थ्य से जो दुःखदायक होता है, वह भी सुखपूर्ण हो जाता है, लम्बे समय तक वह शाखा वहाँ पड़ी रहने के कारण उस पर काई जम गई और फिर पत्थर सदृश हो गई। इसके कारण उपेक्षित रहकर किसी का उस ओर ध्यान ही नहीं गया।। वायु, हनुमान एवं प्रलयाग्नि इन तीनों के द्वारा लंका जलाने पर शाखा रसमय होकर लंकाभुवन स्वर्णमय हो गया। हनुमान द्वारा जलाने पर शाखा स्वर्णरसमय हो गई तभी से लोगों में स्वर्णलंका कहने की प्रथा पड़ गई। हनुमान द्वारा लंका दहन करने पर लंका सुनहरी हो गई। फिर हनुमान ने सीता के पास आकर उसे नमन किया और श्रीराम से भेंट के लिए जाने की आज्ञा शीघ्र देने की विनती की। अपने स्वामी से भेंट के लिए हनुमान में स्फूर्ति आ गई। उनकी भुजाएँ उल्लासपूर्वक थरथराने लगीं। उनकी पूँछ आकाश में चमकने लगी। उन्होंने मन ही मन श्रीराम को आलिंगनबद्ध किया। सीता के चरणों में उनकी श्रद्धा थी। उनकी आज्ञा प्राप्त करने के लिए वे एकाग्रता से खड़े थे। यह देखकर जानकी मन ही मन आनन्दित हुईं और उल्लासपूर्वक बोलीं– "हे हनुमान, सुनो। मैं तुम्हें आशीर्वाद देकर कहती हूँ कि लंकानाथ को मारने के लिए तुम रघुनाथ को शीघ्र लाओ। मार्ग में कोई भी संकट अड़चन नहीं उत्पन्न कर सकता। तुम श्रीराम के पास सहज ही जा सकोगे।" सीता के वचन सुनकर हनुमान ने उन्हें दंडवत् प्रणाम किया और उनकी चरण-वंदना कर उड़ान भरी।

अध्याय २३

[सीता को ढूँढ़कर हनुमान का आगमन]

हनुमान ने सम्पूर्ण लंका का दहन किया और जाते समय सीता का दर्शन करने के लिए वापस उनके पास आये। सीता को शरीर व मन से पूर्ण रूप से कुशल देखकर वे आनन्दित हुए। सीता को सांत्वना देकर रघुनाथ से मिलने के लिए वे शीघ्र उड़ान भर कर निकले। सागर को लाँघ कर जाते समय हनुमान चारों ओर देख रहे थे। तब उन्हें अरिष्ट नामक पर्वत एकाएक ऊँचा बढ़कर मार्ग के बीच में आया हुआ दिखाई दिया।

अरिष्ट पर्वत की कथा– यह पर्वत सभी आपत्तियों का आधार होने के कारण उसे ऋषि श्रेष्ठों ने अरिष्ट नाम दिया था, दसों इन्द्रियों को विचलित करने वाला यह पर्वत दस योजन चौड़ा था। वासना के विस्तार के सदृश शतयोजन उसकी ऊँचाई थी। जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्तावस्था में मारुति द्वारा श्रीराम का स्मरण किये जाने से वह निर्भयतापूर्वक अरिष्टगिरि के मस्तक पर चढ़ गए। वहाँ से नामस्मरण के सामर्थ्य के बल पर हनुमान ने पर्वत पर पैरों से प्रहार किया। श्रीरघुनाथ की पूर्ण कृपा प्राप्त होने के कारण हनुमान ने पर्वत को पैरों से दबाकर पृथ्वी में दबा दिया और भूमि की सतह में मिला दिया। श्रीराम भजन में निष्ठा होने के कारण अरिष्ट गिरि को वृक्ष और शिखरों सहित जमीन में गाड़कर हनुमान ने उस पर्वत को चूर चूर कर दिया। रामनाम के बल पर महा पराक्रमी हुए हनुमान ने अरिष्ट गिरि को धूल में मिला दिया।

श्रेष्ठ भाग्य की स्थिति होने पर मनुष्य जन्म प्राप्त होता है। शुद्ध सात्विक गुणों के कारण सत्त्ववृत्ति प्राप्त होने पर ब्राह्मण जन्म मिलता है ऐसी स्थिति में जिस कारण परब्रह्म प्राप्त होता है, उस

वेदशास्त्र से उत्पन्न बुद्धि को त्यागकर जो बुद्धिभ्रष्ट होकर आचरण करते हैं; मुक्ति का मिथ्या अभिमान धारण करने वाले जो मात्र बातें करने में निपुण होते हैं, वे भगवद्भजन नहीं करते और इसीलिए उनका अध:पतन होता है। इस प्रकार ब्रह्मप्राप्ति तक पहुँचकर भी मुक्ति का अभिमान मनुष्य का पतन करता है भगवद्भजन से विमुख होने वाले मनुष्य का अध:पतन होता है। भगवद् भजन से विमुख होने के कारण जन्म-मरण के चक्र में फँसना पड़ता है। करोड़ों योनियों में फँसने के कारण उसका अध:पतन होता है कुछ पृष्ठ पढ़ लेने मात्र जो मे परीक्षा लेने के लिए कहन लगता है, उसे ज्ञान कहा जाएगा अथवा ज्ञानाभिमान ? ऐसे लोगों का अध:पतन ही होता है। जो ज्ञानी भक्त होते हैं, वे अहम् सोऽहम् का अभिमान नहीं करते। इसके कारण उन्हें संकट बाधित नहीं कर सकते श्रीराम-नाम ही विघ्नों का नाश करता है। उस श्रीराम नाम की शक्ति से भक्त ही संकट पर अपना वर्चस्व स्थापित कर संकटों का नाश करते हैं। ऐसे राम नाम से सुख की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार पक्षिणी अपने बच्चे के मुख में दाना डालकर उसका पोषण करती है, उसी प्रकार भगवान् सर्वदा अपने भक्तों की रक्षा करते हैं। विघ्न राम नाम के समीप नहीं फटकते फिर वह भक्तों के समीप कैसे आ सकते हैं ? भगवान् भक्तों की रक्षा कर उन्हें निर्विघ्न बनाता है। विघ्न छल के लिए आने पर भक्तों के लिए यह निर्विघ्न बन जाता है। सभी प्राणियों में भगवद्भाव होने से विघ्नों के लिए आश्रय-स्थल नहीं होता। विघ्नों का विघ्न भाव नष्ट होने पर वह स्वयं ईश्वर स्वरूप हो जाता है। भगवद्भाव-धारी भक्तों के समक्ष विघ्न नतमस्तक हो जाते हैं, श्रीराम-नाम धारण करने वाले भक्त हनुमान ऐसे ही थे।

श्रीराम नाम के कारण हनुमान बलवान् थे। अरिष्ट पर्वत को पैरों के नीचे दबाकर हनुमान ने उसको चूर-चूर कर दिया। उसे धूल में मिला दिया। अरिष्ट बड़भागी होने के कारण हनुमान का अँगूठा लगते ही उसकी मिट्टी विलीन होकर वह परब्रह्म में प्रविष्ट हो गया। हनुमान के पैरों तले अरिष्ट का भाग्योदय होने से वह भूतल एवं पाताल में शेष न रहकर तत्काल परब्रह्म में मिल गया दश शत सहस्र योजन विस्तृत अरिष्ट पर्वत श्रेष्ठ को हनुमान द्वारा लात मारने पर उसका उद्धार हो गया। अरिष्ट का उद्धार श्रीराम-भक्त वीर हनुमान के हाथों हुआ। जो जड़ का उद्धार करता है, वही वास्तव में हरिभक्त होता है। जो धरा अर्थात् पृथ्वी को धारण करता है, उस धराधर अरिष्ट पर्वत को राम भजन के बल पर हनुमान ने पैरों के प्रहार से उसके जड़त्व का नाश कर उसे एकाकार किया। हनुमान जगदुद्धारक थे वे समुद्र को पार करने के लिए अरिष्ट गिरि पर्वत पर चढ़े उनके सामर्थ्य से पर्वत दब गया, जिसके कारण पाताल के सर्प दब गए और वे काला विषैला विष उगलने लगे. पर्वत के दबने से उसमें से सफेद पीत और लाल धातुएँ पिघल कर बहने लगीं। उनके रंगों से वसंत ऋतु के पुष्पों के सदृश शोभा दिखाई देने लगी जिस प्रकार कोई पर्वत पंखों सहित उड़ान भरे, उसी तरह हनुमान आकाश से चले जा रहे थे, उस समय उन्होंने अपने बाहु छाती के समीप रखे थे। उनके उत्तरीय वस्त्र राजवस्त्र के सदृश दिखाई दे रहे थे। वे मेघों के सदृश श्यामलवर्णी हो गए थे। उस समय उनके राम-रूप होने का आभास सभी सुर सिद्धों को हो रहा था। हनुमान को जब महेन्द्र पर्वत दिखाई दिया तो वे हर्षित हो उठे तब उन्होंने प्रलयकाल के मेघों की गर्जना के सदृश भुभु:कार किया श्रीराम के धनुष से छूटे हुए बाण के सदृश हनुमान वेगपूर्वक समुद्र को लाँघते हुए चले जा रहे थे। यह देखकर सुरासुर विस्मित हो उठे। आकाश, सागर एवं जिस पर्वत पर वानर रुके हुए थे वह महेन्द्र पर्वत हनुमान द्वारा किये भुभु-कार से गूँज उठा।

हनुमान का महेन्द्र पर्वत पर आगमन– हनुमान द्वारा किया गया भुभुःकार सुनकर महेन्द्र पर्वत पर रुके हुए वानर सावधान हो गए। हनुमान द्वारा की गई अद्भुत एवं गंभीर गर्जना सुनकर जाम्बवंत वानरों से बोला "हनुमान समुद्र पार कर सीता की खोज कर वापस लौटा है। सीता का पता चलने के कारण ही वह हर्षपूर्वक गर्जना कर रहा है। इसके पश्चात् अंगद आदि वानरों से दूत के चिह्न बताते हुए जाम्बवंत बोला– "दूत के द्वारा अगर कार्य सिद्ध न हो सका तो उसका मुख्य लक्षण होता है उसका मलिन चेहरा। दूत की वाचा भी मौन हो जाती है, फिर इतनी गर्जना कैसे सम्भव है निश्चित ही सीता को ढूँढने का कार्य साध कर ही हनुमान वापस लौटा होगा। इसीलिए वह आनन्दपूर्वक गर्जना कर रहा है। जाम्बवंत यह निश्चित रूप से कहकर आगे बोले- "उनके उरुवेग, बाहुवेग आदि को देखते हुए यह निश्चित है कि हनुमान कार्य करके ही वेग-पूर्वक वापस लौट रहा है। जाम्बवंत द्वारा सीता को ढूँढे जाने का समाचार सुन कर वानर आनन्दपूर्वक नाचने लगे। सीता को ढूँढकर समुद्र के पार आये हनुमान इन्द्रनील पर्वत के सदृश सुशोभित हो रहे थे। हनुमान को आते हुए देखकर आनन्दित वानर हाथ जोड़कर खड़े हो गए। फल और फूलों से सुशोभित महेन्द्र पर्वत पर हनुमान वेगपूर्वक वानरों के पास आये, उन्होंने एक ही उड़ान में समुद्र को लाँघ लिया था। हनुमान के वेग के साथ दौड़ने वाली वायु भी थककर पीछे रह गई थी। मन की गति से भी अधिक गति से हनुमान वापस लौटे थे। चिद्रूप ज्ञानस्वरूप श्रीराम के स्मरण के कारण बिना थके सुख-पूर्वक वापस लौटे थे। जिस प्रकार श्रीराम का बाण कार्य साध कर वापस लौटता है, उसी प्रकार हनुमान महेन्द्र पर्वत पर वापस लौटे थे।

हनुमान ने नल, नील, जाम्बवंत, अंगद आदि वानर वीर दिखाई देते ही आनन्दपूर्वक रामनाम की गर्जना की, 'श्रीराम जयराम' का मारुति द्वारा किया गया उच्चारण आकाश में गूँज गया। तब वानरों ने भी जयजयराम के नामोच्चार के साथ पर्वत को गुंजायमान कर दिया। श्रीराम-जयराम की वानरों द्वारा गर्जना के नाद से आकाश गूँज उठा और हनुमान प्रेमपूर्वक लौट आये। हनुमान के नामोच्चार के नाद से आकाश और गिरिकन्दराएँ गूँज गईं। हनुमान श्रीराम-नाम का स्मरण करते हुए ही वापस लौटे वानरगणों को श्रीराम नाम का स्मरण करते हुए देखकर उन्होंने सबको नमन किया। सीता की खोज कर आने का हनुमान को तनिक मात्र भी गर्व नहीं था। इसीलिए उन्होंने सभी प्राणियों में भगवान् मानकर सबको नमन किया। वृद्ध गुरु जाम्बवंत को सर्वप्रथम नमन किया तदुपरान्त राजकुमार अंगद का अभिवादन किया, योग्यता की परम्परा रखते हुए हनुमान ने सबकी वन्दना की, पवनपुत्र हनुमान को देखकर सभी को आनन्द हुआ। तत्पश्चात् हनुमान का सम्मान कर उन्हें बीच में बैठाकर सभी वानर सीता को ढूँढने की वार्ता सुनने के लिए चारों ओर बैठे, जाम्बवंत और अन्य सभी ने हनुमान का सम्मान किया। हनुमान आनन्दित हुए और वे सीता की खोज के विषय में बताने लगे– "लंकानगरी सागर में बसी हुई है, वहाँ रावण राज्य कर रहा है। नगरी में प्रवेश करते समय अनेक अड़चनें आती हैं, वहाँ जाना सुरासुरों के लिए भी कठिन है। मैंने राम-नाम के प्रभाव से उड़ान भर कर लंका ढूँढ़ ली तथा त्रिकूट और नगर के घरों को ढूँढ़ा रावण के स्वयं के भवन में अशोक वाटिका में देवी सीता मिली सीता ने यह मस्तक मणि चिह्न रूप में देकर मुझे वापस भेजा है।" उस मणियुक्त अलंकार को देखकर सभी वानरवीरों ने राम-नाम का जयजयकार किया। 'यह मस्तक-मणि का अलंकार सीता ने दिया है, इसका तात्पर्य है कि वास्तव में इसकी सीता से भेंट हुई है'- यह विचार कर वानरों ने आनंदपूर्वक गर्जना की।

सीता के मिलने के हर्ष से सभी वानर गण हर्षित हो, इस पेड़ से उस पेड़ पर, एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर कूदने लगे। वानरों की सफेद, लाल, नीली पूँछों से पेड़ की टहनियाँ सुशोभित हो गई। वानरों की पूँछों से आकाश की शोभा बढ़ी। फल फूलों से अच्छादित टहनियों पर से अपनी पूँछ आकाश में नचाते हुए वानरों ने आनन्द व्यक्त किया। सीता की मस्तक-मणि देखने के लिए वानर उछलकूद कर एकत्र हुए, वह मणि देखकर सभी वानर आनन्दित होकर अपनी पूँछ उठाकर नाचने लगे, एक दूसरे को धक्का देते, मारते गिराते हुए वे अपना आनन्द व्यक्त कर रहे थे। ज़मीन पर लोटते हुए एक-दूसरे को गुदगुदी करते, कान खींचते वे नाच रहे थे। वे हर्षपूर्वक गर्जना कर रहे थे, कुछ वानर स्वभावानुसार शोरगुल कर रहे थे, कुछ राम नाम का उच्चार कर रहे थे, कुछ भुभुःकार कर रहे थे, कौन पहले हनुमान की वन्दना करता है, इस दौड़ में असख्य वानर कूदफाँद कर हनुमान के चरणों पर अपना मस्तक रख रहे थे। जगजेठी वीर हनुमान सहज रूप से सीता को ढूँढकर वापस आये इसलिए करोड़ों वानर आनन्दपूर्वक नाच रहे थे। अपनी पूँछ से टहनियाँ लपेट कर पूँछ को आकाश में उठाकर वे आनन्दपूर्वक उद्‌गार व्यक्त कर नाच रहे थे। सब राम-नाम का घोष करते, तालियाँ बजाते हनुमान के पास एकत्रित हुए, वानरों ने हनुमान की प्रशस्ति कर आलिंगन देकर उनकी वन्दना की।

अंगद द्वारा हनुमान से विनती– युवराज अंगद बुद्धिमान नल, नील, पनस, जाम्बवंत, गज, गवय, गवाक्ष इनके सहित समस्त वानर वीर चारों ओर बैठे और मध्यभाग में हनुमान को बैठाया, हनुमान के शरीर पर लगे घावों को देखकर वानर वीरों को आश्चर्य हुआ। "हनुमान वज्रदेही होने पर भी उनके शरीर पर घावों के निशान दिखाई दे रहे हैं। इसका तात्पर्य है कि भीषण युद्ध हुआ होगा, लेकिन हनुमान कुछ बता नहीं रहे हैं।"– उन्हें ऐसा लगा। अन्य वानर वीरों को भी हनुमान के घाव देखकर भयंकर युद्ध की आशंका हुई। अतः हनुमान द्वारा किये गए युद्ध को सुनने के लिए वानर उत्सुक हो उठे, सीता की खोज के विषय में पूछकर उनके द्वारा किये गए युद्ध के बारे में पूछने का उन्होंने निश्चय किया, "यह हनुमान स्वयं बलशाली है, उसके द्वारा किये गए आघात किसने सहन किये होंगे ? किसी कँटीले पौधे द्वारा सिंह पर खरोंचें पड़ने के समान उसके शरीर पर ये खरोंचें दिखाई दे रही हैं। अपना युद्ध में किया पराक्रम यह स्वयं नहीं बतायेगा अतः सीता को ढूँढने के सम्बन्ध में प्रश्न पूछकर, युद्ध की वार्ता पूछना ही योग्य होगा।

इसके पश्चात् युवराज अंगद ने पवन पुत्र हनुमान से पूछा– "तुम्हें श्रीराम की पत्नी किस प्रकार मिलीं, इसके विषय में मुझे विस्तारपूर्वक बताओ। किस भवन में किस स्थान पर तुम्हें सीता देवी मिलीं ? मस्तकमणि किस कारण दी ? इस विषय में भी मुझे बताओ" अंगद के ये प्रश्न सुनकर हनुमान ने सीता की खोज के विषय में विस्तारपूर्वक बताना प्रारम्भ किया।

हनुमान द्वारा संक्षेप में निवेदन– अंगद के शुभवचन सुनकर हनुमान हँसे और सीता के शोध के विषय में बताने लगे। "हे समर्थ युवराज अंगद, नल, नील, जाम्बवंत और समस्त वानर वीर सुनें ! सीता को ढूँढने की वार्ता मैं तुम्हें संक्षेप में बताता हूँ। लंकादुर्ग अत्यन्त कठिन है। उसके चारों ओर भयंकर समुद्र है। उसमें रावण का लंकापुर नामक नगर है, वहाँ प्रवेश करना अत्यन्त कठिन है। मैं स्वयं भी बहुत कठिनाई से वहाँ पहुँच सका क्योंकि राम-नाम से संकट एवं विघ्नों का निरसन होता है। उस नगरी में रावण का राजमहल है। उसमें गहन रनिवास है। उसके अन्दर अशोक वन है। चिद्‌रत्न सीता देवी वहीं हैं, सीता के समीप विकराल दारुण भयंकर राक्षसियाँ उनके संरक्षण के लिए रखी हैं, वहाँ

फिर कौन जा सकता है ? दुष्ट, दुर्मुख, दारुण ब्रह्मराक्षस रक्षक के रूप में सात घेरों में विद्यमान हैं। अत: वहाँ कैसे जाया जा सकता है ? अशोक वन इतना दुर्गम है जहाँ वायु के प्रवेश का मार्ग भी नहीं है वहाँ मैंने बहुत संकट सहकर भयंकर कष्ट से प्रवेश किया। सीता को मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा, उनके चारों ओर राक्षसों का घेरा था। अत: उनसे न मिलकर मैं वृक्षों की गहन झाड़ी में छिप गया। सीता के उस समय के दर्शन बहुत दु:ख दायक थे। उनके पास बिछाने के लिए तथा ओढ़ने के लिए कुछ भी न था। एक मात्र मलिन-वस्त्र उन्होंने धारण किया था। स्नान एवं भोजन के अभाव में वह दीन दिखाई दे रही थीं, मंगल स्नान न करने के कारण उनके जटायुक्त केश सूख गए थे। फिर भी धन्य है वह सीता, जिसे जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति उन सभी अवस्थाओं में प्रेमपूर्वक श्रीराम का भजन करना विस्मृत नहीं हुआ।"

सीता देवी अत्यन्त सतर्कता से श्रीराम-नाम का स्मरण कर रही थीं, उनके साथ वहाँ के वृक्ष, बेल, तृण, तथा पाषाण भी श्रीराम-नाम जप रहे थे। धन्य है सीता की ऐसी रामभक्ति। सभी इन्द्रियों में श्रीराम की स्फूर्ति का अनुभव करना, सभी प्राणि-मात्र में राम के दर्शन करना, तीनों लोकों में श्रीराम नाम का श्रवण करना- ऐसी उनकी सहज स्थिति थी। श्रीराम के मिलन की तीव्र इच्छा के कारण उन्होंने अत्यन्त दयनीय होकर मुझसे राम से मिलाने की विनती की। इस पर मैंने उन्हें बताया कि श्रीराम को आपके प्रति अनन्य प्रेम है। इसीलिए उन्होंने मुझे आपको ढूँढ़ने के लिए लिए भेजा है। आपका पता चलते ही श्रीराम वानरों का समूह लेकर अवश्य आयेंगे मुझे श्रीराम ने निशानी के रूप में यह मुद्रिका दी है ' उस मुद्रिका को देखते ही सीता आनन्दित हो गई उन्होंने मेरी पीठ थपथपा कर शीघ्र श्रीराम से उनका पता चलने के सम्बन्ध में बताने के लिए कहा। तत्पश्चात् ''तुम मेरे सखा हो, प्राणों से प्रिय हो, मैं तुम्हारे चरणों पर अपना मस्तक रखती हूँ'' यह कहते हुए शीघ्र गति से श्रीराम को लेकर आने के लिए कहा। तब मैंने उनसे निशानी माँगी और उनकी मस्तक-मणि लेकर मैं शीघ्र गति से आपके पास आया हूँ। सीता लंका में है, यह निश्चित पता कर मैं आपके पास आया हूँ। अत: मन में शंका न रखकर हम सब श्रीराम से खोज के विषय में बताने जाएँगे।" हनुमान के ये वचन सुनकर वानरों की जिज्ञासा शान्त नहीं हुई क्योंकि हनुमान ने युद्ध के विषय में कुछ भी नहीं बताया, अब इसके लिए कौन सा उपाय किया जाय, इस सम्बन्ध में वे सोचने लगे। हनुमान का निवेदन सुनकर अंगद प्रसन्न होकर बोला "तुमने सीता की खोज कर राम के प्राण बचाये तथा करोड़ों वानरों के संकट में पड़े हुए प्राणों को बचाया। हे हनुमान, तुम्हारा जीवन सार्थक हो गया। श्रीराम को सीता को ढूँढ़ने के विषय में यह अंगद आनन्दपूर्वक बता सकेगा " अंगद द्वारा यह कहने पर जाम्बवंत बोला-यह साहसी वीर है, उसकी लंकानाथ से कैसे भेंट हुई और तब युद्ध क्यों हुआ, यह हनुमान हमें बतायें।"

हनुमान के स्थान पर ब्रह्मदेव द्वारा पराक्रम का बखान– जाम्बवंत बोले "हे हनुमान, तत्वत: वज्रदेही होते हुए भी तुम्हारे शरीर पर शस्त्रों के वार दिखाई दे रहे हैं। अत: तुम उस युद्ध के विषय में हमें बताओ। उस क्रूर, कपटी रावण से तुम्हारी भेंट कैसे हुई, संकट में पडी सीता की तुमसे भेंट कैसे हुई, उस विषय में भी निवेदन करो तुम्हारा पिता पवन कह रहा था कि तुमने इन्द्रजित् को त्रस्त कर दिया। पवन ने नील के पास एकान्त में पुत्र का पुरुषार्थ भी बताया। उस युद्ध की सम्पूर्ण कथा एवं समुद्र लाँघने की वार्ता कृपा कर हमें बताओ। हनुमान को ऐसा लगा कि अपने मुख से अपनी कीर्ति का बखान नहीं करना चाहिए। प्रत्यक्ष स्वामी ही अगर पूछें तो कुछ भी छिपाना नहीं चाहिए अन्यथा दोष का भागी होना पड़ता है। अत: अब क्या करना चाहिए, यह मारुति के समक्ष प्रश्न उपस्थित हुआ। ऐसे संकट में

पड़े हनुमान ने फिर ब्रह्मदेव से विनती की। उन्होंने ब्रह्मदेव से कहा-- "मैं आपकी वंदना करते हुए चरण स्पर्श करता हूँ, लंका में मेरे द्वारा जो घटित हुआ, वह सब आप पत्र पर लिखकर मुझे दें क्योंकि स्वामी के समक्ष जो अपने पराक्रम की प्रशंसा करता है, वह उन्मत्त एवं मूर्ख कहलाता है और स्वामी के समक्ष सत्य कथन न करने पर, वह अधःपतित होता है, ऐसा शास्त्रों में कहा गया है। मेरा ऐसा कोई संगी साथी भी नहीं है जो मेरा पराक्रम बता सके। मेरे समक्ष समस्या उत्पन्न हो गई है अतः आप मुझे पत्र दें। ब्रह्मा द्वारा लिखित को श्रीरघुनाथ निश्चित ही सत्य मानेंगे, ऐसा मुझे लगता है।"

हनुमान की विनती सुन चतुरानन ब्रह्मदेव हँसे और हनुमान को हृदय से लगाकर पत्र लिखकर दिया। हनुमान शूरवीर, गुणगंभीर, शास्त्रवेत्ता, चतुर सन्तुलित विचार करने वाले एवं निर्भीक होने के कारण ब्रह्मदेव ने उल्लसित होकर आदरपूर्वक हनुमान की स्तुति की और उनकी कीर्ति को पत्र में लिखकर प्रेमपूर्वक वह पत्र उन्हें दिया। वह ब्रह्म पत्र हाथ में लेकर उड़ान भरकर सीता की वन्दना कर हनुमान वानरों के समीप आये। जब जाम्बवंत ने पराक्रम के विषय में पूछा तो हनुमान ने वह ब्रह्मलिखित पत्र उनके हाथ में दिया। भालू की जाति के जाम्बवंत को उस पत्र का अर्थ न ज्ञात हो सका अतः पुनः रहस्य वैसे ही बना रहा। शेष का अवतार होने के कारण लक्ष्मण में पढ़ने की शक्ति थी, श्रीरघुपति तो अर्थ के ज्ञाता ही थे परन्तु अन्य लोग उस पत्र का अर्थ न समझ सके। जाम्बवंत बुद्धिमान थे। उन्होंने अपना अज्ञान वानरों को न ज्ञात हो, ऐसी युक्ति की। वे बोले-- "यह पत्र संपूर्ण ब्रह्मलिखित है अतः श्रीराम के बिना पढ़ने पर दोष लगेगा। अतः पत्र लेकर श्रीराम के पास जायें। श्रीराम एवं वानरराज सुग्रीव को बैठाकर, लक्ष्मण को पत्र देकर उनके द्वारा अर्थ सहित उसे पढ़वाना चाहिए;" यह उपाय सबको मान्य हुआ। श्रीराम से भेंट कर सीता को ढूँढ़ने के विषय में बताकर फिर पत्र पढ़ने का उन्होंने निश्चय किया। तत्पश्चात् वानर समूह ने उठकर श्रीराम का जयजयकार किया। श्रीराम के दर्शन से हनुमान को अपार आनन्द की अनुभूति होगी एवं श्रीराम भी सुखी होंगे, ऐसा उन्होंने विचार किया।

अध्याय २४

[वानरों द्वारा मधुवन का विनाश]

हनुमान ने सभी वीरों को बताया-- "श्रीराम पत्नी तपस्विनी सीता ने अपनी कोपाग्नि से राक्षसों की वीर्य-शक्ति को भस्म कर दिया है। रावण की शक्ति तेजराशि है परन्तु उसे भी सीता ने भस्मसात् किया है। अब रावण को रण-संग्राम में मारने के लिए श्रीराम निमित्त मात्र हैं, सीता के क्रोध से दशानन रावण जल कर भस्म हो गया है। सीता द्वारा सम्पूर्ण यश पति को देने के कारण अब श्रीराम, रावण का वध करेंगे, सीता द्वारा जलकर एवं श्रीराम द्वारा मरकर क्षण में लंका में सभी राक्षसों का नाश हो जाएगा।" हनुमान का यह कथन सुनकर अंगद उत्साहित होकर बोला-- "सीता ने रावण को जला दिया है फिर उसे मारने में क्या भय ? मैं अकेला अंगद उस रावण का समूल नाश करूँगा। उसके स्वजन, सुहृद, सखा, बंधु - सभी का सेना सहित वध कर दूँगा। अगर जगजेठी श्रीराम, सखा और सुहृद की भाँति मेरे पीछे खड़े होंगे तो मैं लंका के त्रिकूट पर करोड़ों राक्षसों का वध कर दूँगा। रावण, कुंभकर्ण और इन्द्रजित् सहित सभी राजपुत्रों एवं प्रधानों को मारूँगा, राक्षसों के सेना-सागर को हिला दूँगा। हनुमान ने समर्थ वीरों

को मार दिया है, इन्द्रजित् को अधमरा कर दिया है। रावण का भी सत्यानाश कर दिया है, मात्र उसकी साँस चल रही है। हनुमान सहित हमारे वहाँ जाने से मात्र भय से ही उनकी मृत्यु हो जाएगी, फिर लंकानाथ कितना टिक पाएगा। अत: रण में रावण को मारकर हम सीता को ले आयेंगे। विजयी गर्जना कर आनन्दपूर्वक पताका फहरायेंगे और सीता को आगे कर रघुनाथ से भेंट कराएँगे, जिससे वानरराज सुग्रीव सहित सभी आनन्दित होंगे।"

अंगद आगे बोला "सीता को लिये बिना राम से मिलने के लिए जाकर हम उनसे क्या कहेंगे। सीता को ढूँढ़ने में विलम्ब होने के कारण श्रीराम से मिलने जाने में भी लज्जा का अनुभव हो रहा है खाली हाथ जाने से सभी हम पर हँसेंगे। सुग्रीव क्रोधित होंगे। राम और लक्ष्मण कहेंगे कि 'वानरों को शक्ति ही दुर्भाग्यपूर्ण है.' अत: अगर मेरी विनती नहीं सुनी तो यह लाँछन लगेगा। पहले ही समय की मर्यादा भंग हो चुकी है और अब खाली हाथ जाने से सुग्रीव क्रोधित होकर अपमानित करेंगे। मुँह काला कर, गधे पर बैठाकर, चप्पलों (पादुकाओं) के हार पहना कर गोबर के फूलों की वर्षा करते हुए, गाल बजाकर अपनी स्तुति की जाएगी। इसीलिए मैं सभी वानरों के चरणों में विनती करते हुए कहता हूँ कि सीता को लिये बिना रघुनाथ से मिलने न जाना ही योग्य है। वहाँ जाकर अपमान सहन करने की अपेक्षा लंका जाकर रावण का सेना-सहित नाश कर सीता को शीघ्र ले आयें"– यह कहते हुए अंगद अत्यन्त उत्साहित हो गया। उसका सारा शरीर रोमांचित हो उठा। उसकी पूँछ आकाश में फड़कने लगी। अंगद का आवेश देखकर हनुमान ने उसे आलिंगनबद्ध किया। अंगद का शूरवीरतापूर्ण, पुरुषार्थ-भरा आवेश देखकर जाम्बवंत ने उसकी वंदना की। सभी वानरों ने अंगद के पैर पकड़कर युवराज को शांत किया। फिर जाम्बवंत ने युक्तिपूर्वक अंगद को समझाया।

अंगद के पराक्रम पूर्ण वचन सुनकर जाम्बवंत ने अंगद को समझाने के लिए, पहले जो बातें तय हुई थीं, उन्हें बताना प्रारम्भ किया। "हमें दक्षिण की ओर भेजते समय श्रीराम एवं सुग्रीव ने यह आज्ञा की थी कि एक महीने के अन्दर सीता के शोध का समाचार लायें। रावण का वध कर, सीता को शीघ्र लेकर आने की आज्ञा श्रीराम ने नहीं की थी। राजाज्ञा भी वैसी नहीं है। अत: उनकी आज्ञा के बिना रावण को मारने पर श्रीराम और सुग्रीव रुष्ट हो जाएँगे- यह कारण तुम ध्यान में रखो। रावण को स्वयं युद्ध में मारकर सीता को मुक्त कराने की श्रीराम ने शपथ ली है। अत: हम रावण को मारकर सीता को छुड़ा कर लायेंगे तो राम की प्रतिज्ञा भंग होगी और फिर तीनों अपने ऊपर क्रुद्ध हो जाएँगे। श्रीराम की प्रतिज्ञा मिथ्या सिद्ध होने पर सुग्रीव, लक्ष्मण और स्वयं श्रीराम अत्यन्त क्रुद्ध होंगे। इसके अतिरिक्त रावण को मारना अगर सम्भव होता तो हनुमान ने उसे क्यों छोड़ा ? रावण को मारकर सीता को लेकर हनुमान क्षण में वापस आये होते धन्य हो हनुमान का ज्ञान, वे श्रीराम की मर्यादा का पालन करते हुए रावण को बिना मारे, सीता की खोज कर चले आये।" जाम्बवंत का निश्चित विचार सुनकर अंगद उनकी वंदना करते हुए बोले- "तुमसे बढ़कर शूरवीर, विवेकी एवं ज्ञानी कोई नहीं है।"

वानरों का लौटते हुए मधुवन में जाना– जाम्बवंत के कहने पर वानरों ने श्रीराम को सीता की खोज सम्बन्धी वार्ता देने के लिए शीघ्र प्रस्थान किया। हनुमान को आगे कर अंगदादि वीर श्रीराम-नाम की गर्जना करते हुए चल पड़े। प्रथम श्रीराम की फिर लक्ष्मण एवं सुग्रीव की वंदना कर, सीता की खोज की वार्ता कहने के लिए वानर तैयार हुए। महेन्द्र पर्वत पर से वानरों ने उड़ान भरी। उस समय आकाश जैसे एक से बढ़कर एक वीरों से भरगया। हस्त और चित्रा नक्षत्र में बादल जैसे सूर्य को ढँक लेते हैं,

उसी प्रकार वानरों ने बादलों को ढँक लिया। वे उतावले होकर निकल पड़े, वानर द्वारा उड़ान भरते ही पर्वत भूमि में दब गए, बड़े-बड़े वृक्ष समूल उखड़कर आकाश में लहराने लगे। आनन्द व्यक्त करते हुए वानर-समूह जिस समय जा रहा था, उन्हें मार्ग में मधुवन की सुगंध का अनुभव हुआ वह गंध नाक में घुसते ही वानरों के मुख में पानी भर आया, वे विचलित हो गए। "यह तो सुग्रीव का वन है दधिमुख उसकी रक्षा कर रहा है, अतः यहाँ कौन प्रवेश कर सकता है। अब क्या किया जाय। हमें मधुवन अधिक महत्वपूर्ण लग रहा है। रघुकुलतिलक श्रीराम सर्वात्मा, सर्वज्ञ हैं– पुराणों में यह कहा गया है। अतः अब वे हम पर कृपा करें। अगर हमें मधुपान करने को मिल गया तब हम, श्रीराम सर्वज्ञ हैं, यह सत्य मानेंगे हे श्रीराम, मधु पीने के लिए जीभ लालायित है दोनों होंठ यही माँग कर रहे हैं। यह सुग्रीव का मधुवन सुरों एवं असुरों के लिए भी अगम्य है ऐसे इस वन का मधुपान हमें कैसे प्राप्त हो सकेगा। मन में मधुपान के ही विचार चल रहे हैं, मधुपान किये बिना मन आगे बढ़ने को तैयार नहीं है।" इस प्रकार मधुपान की ओर आसक्त वानरों को श्रद्धा थी कि अगर श्रीराम की कृपा होगी तभी मधुपान करने को मिलेगा। श्रीराम सबके हृदय में वास करते हैं अतः उन्होंने वानरों को यह बुद्धि दी कि हनुमान से विनती कर उसे अंगद से मधु माँगने के लिए कहा जाय। जिस प्रकार सुग्रीव वानर राज हैं, उसी प्रकार अंगद युवराज हैं हनुमान द्वारा मधु माँगने पर वह अवश्य देगा।

फिर जाम्बवंत आदि सभी वानर हनुमान के निकट आकर बोले– "हमें मधु चखने के लिए चाहिए अतः अंगद से उसकी माँग करें।" तब हनुमान अंगद से बोले– "मुझे तुमसे कुछ माँगना है। तुम हमारे युवराज हो, कृपा कर माँगा हुआ हमें प्रदान करो।" अंगद हनुमान से बोले– "आपके लिए मैं अपने प्राण देने के लिए भी तैयार हूँ क्या चाहिए, आप कहें।" इस पर हनुमान बोले– "ये वानर वीर पराये स्थान पर रहकर और वेग-पूर्वक आकर थक गए हैं अतः हे महाराज, वे आपसे मधुपान की आज्ञा माँग रहे हैं।" अंगद ने कहा "यह वन मेरे पिता का है। मेरे पास ही उसका अधिकार है अतः वन में जाकर इच्छापूर्वक मधुपान करें बाल वृद्ध असहाय लोगों को बिना माँगे ही राजा देते रहते हैं इसीलिए उन्हें दीनदयाल आदि उपाधियाँ शोभा देती हैं। आप सभी तो कर्मठ हैं। आपके द्वारा कुछ माँगे बिना ही मुझे आपको अपना जीवन अर्पित करना चाहिए। उसके समक्ष मधुवन तुच्छ है। हे हनुमान, मैं श्रीराम की शपथ लेकर कहता हूँ "वानर वन में ढूँढ़कर अवश्य मधुपान करें।" अंगद की आज्ञा पाकर वानर प्रसन्न हो उठे और वन में प्रवेश कर मधुपान प्रारंभ किया। वानरों ने अंगद की स्तुति करते हुए कहा– "अंगद धैर्यवान, वीर महाशूर एवं उदार राजकुमार हैं। अंगद की उदारता धन्य है अंगद की आज्ञा मिलते ही वन में घुसकर वन रक्षकों को मार-पीट कर वानरों ने उन्हें वन से बाहर कर दिया।

वानरों का उपद्रव; रक्षकों का दधिमुख के पास जाना– वानरों की मार से बचने के लिए रक्षक इधर-उधर भागने लगे वे हाँफते हुए दधिमुख के पास पहुँचे। इधर वानरों ने वन रक्षकों के जाने के पश्चात् वन छान डाला, स्वाद ले लेकर मधुर मधु का प्राशन किया। प्रत्येक वानर ने दोने में भरकर मधुपान किया। मधुपान से तृप्त होकर उन्होंने पूरे वन में भ्रमण किया। कोई पेड़ों पर कूदते हुए टहनियों में छिपते हुए कोई एक दूसरे के सर पर कूदते हुए तो कोई पेड़ पर चढ़कर नाच रहे थे। कोई वृक्ष के नीचे सो रहा था तो दूसरा उस पर मधु डाल रहा था। इस प्रकार वे वानर मधुपान कर उन्मत्त हो गए थे। मनभर कर मधु प्राशन कर तृप्त होने के पश्चात् उन्होंने उससे खेलना प्रारम्भ किया। एक दूसरे पर मधु डालना, किसी को पूँछ से मारना, गिरना, लोटना इत्यादि अनेक प्रकार से वे खेल रहे थे कोई

अभी भी मधुपान कर रहा था एक दूसरे के साथ मधु की छीना-झपटी कर रहे थे। कोई रो रहा था, कोई गिर रहा था। कोई अपनी धुन में नाच रहा था। कोई रामकथा गा रहा था। कोई रूठ कर बैठा था तो कोई मान-मनौवल कर रहा था। कोई मधु से सन्तुष्ट होकर डोल रहा था, कोई बोल रहा था, बातें कर रहा था। तो कोई तोड़ फोड़ करने में व्यस्त था। इस प्रकार सभी वानर विविध प्रकार के क्रिया-कलाप कर रहे थे।

वानरों से त्रस्त होकर, मारपीट से दुःखी व विह्वल होकर वन-रक्षक दधिमुख के समीप आकर कहने लगे "हमारे वानर वीर मधुवन को ध्वस्त कर रहे हैं। हमारे द्वारा उन्हें रोकने पर उन्होंने हमें दुःखी कर भगा दिया। उन्होंने लातों एवं घूसों से प्रहार किया शिला ताल और शाल से प्रहार किया; घुटनों से पृष्ठ भाग पर प्रहार करने से उनके वार से सूजन आ गई" यह कहते हुए उन्होंने पृष्ठ भाग दधिमुख को दिखाया। "आप हमारे स्वामी है, इसलिए आपको सारा दुःख बताया, अब आप इस पर कुछ उपाय करें।" रक्षक-वानरों का कथन सुनकर दधिमुख क्रोधित हुआ। अपनी वानरसेना लेकर वह मधुवन में आया। "अंगद के राजपुत्र होने पर एवं हनुमान के निकट सम्बन्धी होने पर भी जो राजाज्ञा का उल्लंघन करेगा, उन सभी को मैं दण्डित करूँगा। बालि, सुग्रीव के पिता ऋक्षराज के समय से मैं इस वन का रक्षक हूँ, यह सभी वानरों को ज्ञात है तथापि मुझसे पूछे बिना, राजाज्ञा लिये बिना मधुवन में जिसने इस प्रकार का उच्छृंखल आचरण किया, उन सभी को मैं दण्डित करूँगा " इस प्रकार वनरक्षकों को आश्वस्त कर, अपने सेवकों को संत्रस्त करने वालों को दण्डित करने के लिए दधिमुख क्रोधित हो मधुवन आया।

दधिमुख से आश्वस्त होकर वानरवीर वन रक्षक शिला, शाल और ताल लेकर एकत्र हुए। अपनी प्रताड़ना से वे क्रोधित तो थे ही अतः दधिमुख के साथ वन में आते ही उन्होंने वानरों को ललकारा। उस समय जल, स्थल, वृक्ष इन सभी स्थानों पर स्थित वानर सुग्रीव के भय से अंगद के पास दौड़कर एकत्र हुए और उन्होंने दूर से ही दधिमुख को दिखाया। वीर दधिमुख मध्यभाग में हाथों में प्रचंड शालवृक्ष लेकर खड़ा था और उसके चारों ओर वन रक्षक खड़े थे। जाम्बवंत के समान बलशाली दधिमुख पराक्रमी था वह हाथ में वृक्ष लेकर वानरों का नाश करने के लिए खड़ा था।

दधिमुख का वार एवं उसका पराभव– ''सुग्रीव की आज्ञा होने से मधुवन को तहस-नहस करने के कारण दण्डित करने के लिए दधिमुख आया है"– ऐसा वानरों ने अंगद को बताया दधिमुख अविचारी था इसीलिए उसने अंगद, हनुमान इत्यादि बलवान् वीरों का विचार न कर, क्रोधित होकर वृक्ष से वार किया। अंगद ने वह तमालवृक्ष उड़ान भर कर ऊपर ही पकड़ लिया और उससे ही दधिमुख पर वार किया। महावीर अंगद क्रोधित होने पर भयंकर हो उठता था। इसीलिए पिता के मामा पर वार नहीं करना चाहिए, यह विचार भी भूल गया। वानर दधिमुख वृद्ध होने के कारण श्रेष्ठ एवं परमपूज्य हैं, यह भी उसे स्मरण न रहा. क्रोध के उन्माद से उसने दधिमुख पर वृक्ष से प्रहार कर दिया दधिमुख द्वारा बड़ा वृक्ष मारते ही अंगद ने बायें हाथ से पकड़कर और दाहिने हाथ से दधिमुख पर वार कर उसे भूमि पर गिरा दिया। भूमि पर गिरने से दधिमुख के हाथ पैर टेढ़े मेढ़े हो गए, सिर फट गया, आँखें फटी रह गईं और रक्त रंजित होकर उसका मुख विकृत हो उठा। वानरों ने दधिमुख को उठाकर मधुवन के बाहर डाल दिया। वन रक्षक वानरों ने उसके मुख पर जल छिड़का तथा पंखा झला। दधिमुख होश में आकर वन-रक्षकों से बोला "हम सभी सुग्रीव के पास चलें" दधिमुख ने आकाश में उड़ान भरी और निमिष मात्र में सुग्रीव के पास जा पहुँचा उस समय उसके साथ वन रक्षक भी थे।

सुग्रीव से वृत्तान्त कथन; उसे मर्म का ज्ञान होना– स्वामी श्रीराम व लक्ष्मण के समक्ष वानर हाथ जोड़कर खड़े हो गए। वहाँ वानर राज सुग्रीव भी बैठा था। सुग्रीव की आज्ञा कठोर होती थी। उस आज्ञा का उल्लंघन होने पर छोटी सी कृति के लिए वह अत्यन्त कठोर दण्ड देता था नाक, कान, काटकर गधे पर बैठाकर घुमाता था। दधिमुख विलाप करते हुए सुग्रीव के समक्ष गिर पड़ा और बोला- "वानरों ने मेरा अपमान किया है, उन्हें दण्डित करें" दधिमुख की विनती सुनकर सुग्रीव बोला– "मैंने तुम्हें अभयदान दिया है, किस वानर ने कैसे अपमान किया, यह मुझे विस्तार पूर्वक बताओ" फिर दधिमुख अपना दुःख बताने लगा, "अंगद हनुमान आदि मधुवन का विध्वंस कर रहे हैं जो मधु राजा के लिए है, उसका पान कर रहे हैं आपके पिता ऋक्षराज के समय से मैं वन की रक्षा कर रहा हूँ, वन पर मेरा ही अधिकार है। आपके माँगने पर भी मैं नहीं देता। अब आपकी राजाज्ञा लिए बिना और मुझसे पूछे बिना उन्होंने वन को उध्वस्त कर दिया। वे मद्यपान से उन्मत्त हो गए हैं। राजाज्ञा-अनुसार मेरे उन्हें दण्डित करने के लिए जाने पर अंगद ने मुझे अपमानित कर वन में मुझे मूर्च्छित कर दिया वानरों ने पृष्ठ भाग पर आघात कर वनरक्षकों को घायल कर दिया है। वनरक्षक वीर घी एवं तेल से वह स्थान सेंक रहे हैं। वे अपने अपमान से सन्त्रस्त हो गए हैं इसीलिए हम आपकी शरण में आये हैं। आपके जैसा कृपालु स्वामी होते हुए भी हमारी यह दुर्दशा हुई है, अब आप ही हमारा पक्ष लेकर स्वयं अपनी राजाज्ञा का उद्धार करें। आपकी राजाज्ञा के सामर्थ्य से वे अवगत हों और हमारा दुःख दूर हो, ऐसा दण्ड उन्हें दें" इस प्रकार दधिमुख ने विनती की।

दधिमुख का निवेदन सुनने के पश्चात् सुग्रीव एवं लक्ष्मण ने इसके कारण का विश्लेषण किया वानर परदेस में रहकर भूख एवं प्यास से पीड़ित होंगे। उन्होंने सीता को ढूँढने का कार्य कर लिया होगा इसीलिए अंगद ने उन्हें मधुवन में भक्षण की आज्ञा दी होगी। वीरश्रेष्ठ अंगद विचारशील राजपुत्र है उसने बड़प्पन से सीता को ढूँढ़ने में हुए कष्टों का विचार कर मधुपान करने की अनुमति दी होगी। सीता को ढूँढ़ने वाले वानरों का सामर्थ्य बढ़ने के कारण उन्होंने मधुवन में विध्वंस किया होगा। ऐसा सुग्रीव और लक्ष्मण दोनों ने अनुमान लगाया। जिसका कार्य पूरा नहीं होता, वह दीन हीन दिखाई देता है, उसके काले पड़े हुए मुख से शब्द भी नहीं निकलता। जो कार्य नहीं कर पाता उसे मुँह दिखाने में भी लज्जा का अनुभव होता है, उसका मुख म्लान होता है। उसमें सामर्थ्य का अभाव होता है निश्चित ही सीता को ढूँढ़ने का कार्य सम्पन्न हो गया है इसीलिए वानरों ने मधुवन में वन रक्षकों से मारपीट कर उनकी दुर्दशा कर दी वहाँ मंत्री जाम्बवन्त व वीर अंगद भी थे। हनुमान ने निश्चित ही सीता को ढूँढ़ लिया है और कार्य पूरा किया है, इसीलिए महाबली हनुमान एवं विजयी वानरों ने वैसा आचरण किया। हनुमान के अतिरिक्त अन्य कोई सीता रूपी निधिरत्न को ढूँढ़ नहीं सकता। सीता को ढूँढ़ने का कार्य निश्चय ही पूरा हो गया है ऐसा मानकर सुग्रीव एवं लक्ष्मण सन्तुष्ट हुए।

तत्पश्चात् सुग्रीव दधिमुख से बोला– "तुम अत्यन्त मूर्ख हो। हनुमान से पूछे बिना एकाएक तुमने उससे युद्ध क्यों किया हनुमान मद्यपायी नहीं है। वह तुम्हारा आप्त भी है उससे वृत्तान्त पूछे बिना अचानक युद्ध करने का अनर्थ क्यों किया ? सीता को ढूँढ़ने का कार्य सम्पन्न कर वानरगण मधुपान के लिए वन में आये अतः हम प्रसन्न हुए। तुम्हारा जो अपमान हुआ वह तुम मेरे लिए क्षमा कर, अंगद से मिलकर उससे सुलह करो।" सीता को ढूँढ़कर वानरगण वन में आये यह जानकर दधिमुख प्रसन्न हुआ उसने सुग्रीव की वन्दना की। वनरक्षक वानरों को लेकर दधिमुख वापस लौटा और उसने 'मुझसे

हो अपराध हुआ' यह कहते हुए अंगद के चरणों पर गिरकर क्षमा करने की विनती की। अंगद बोला– "उन्माद की अवस्था में हुआ अपमान मुझे स्मरण नहीं। अत:मुझे क्षमा करें।" तब अंगद और दधिमुख दोनों ने एक दूसरे का अभिवादन कर गले मिलकर एक दूसरे को सन्तुष्ट किया। दधिमुख ने अंगद से कहा– "आप सीता को ढूँढ़कर आये हैं इसीलिए सुग्रीव अत्यन्त प्रसन्न हैं। उन्होंने शीघ्र आपको श्रीराम से भेंट करने के लिए बुलाया है।" मधुवन के वानर श्रीराम के प्रेम से ओत-प्रोत थे, मद्यपान से उन्मत्त होने पर भी राम-नाम स्मरण कर रहे थे। एक मद्य के उन्माद में राम-नाम की आवाज़ लगा रहा था। तो दूसरा राम-नाम का स्मरण करते हुए डोल रहा था। कोई राम का नाम लेते हुए लड़खड़ा रहा था तो कोई चिल्ला रहा था। कोई मद की धुन में नाच रहा था तो कोई गा रहा था। वे नाचते गाते हुए राम-नाम का स्मरण कर रहे थें सभी वानर इस प्रकार मद्य के उन्माद में होने पर भी हनुमान, राम के कार्य के लिए उत्सुक थे। अत: श्रीराम का वन्दन करने के लिए उन्होंने शीघ्र प्रस्थान किया।

अध्याय २५

[श्रीराम – अंगद संवाद]

श्रीराम चिन्तित थे कि 'वानरों को दक्षिण की ओर जाकर समय सीमा से भी अधिक काल व्यतीत हो जाने पर भी कोई सीता की वार्ता लेकर वापस नहीं लौटा। मुझसे एकान्त में मिलकर मेरी मुद्रिका लेकर गया हुआ हनुमान भी वापस नहीं लौटा। मुझे पूरा विश्वास था कि हनुमान कार्य करने में समर्थ है फिर वह भी कैसे नहीं आया। श्रीराम की यह चिन्ता हनुमान ने भी अनुभव की और सीता को ढूँढ़ने की वार्ता देने के लिए उसने शीघ्र प्रस्थान किया। हनुमान ने अंगद एवं जाम्बवंत से श्रीराम की चिन्ता के विषय में बताया, तब वे बोले– "हनुमान किसी के भोजन में बाधा नहीं बनना चाहिए। अब हमें तृप्त होने दो। वानरगण दीन और त्रस्त हैं, भाग्य से उन्हें मधुपान करने के लिए मिला है। तुम दीनदयाल हो, ज्ञानी हो अत: उसमें रुकावट मत बनो।" यह सुनने पर हनुमान ने सोचा– "विषय-रस भोगों के समक्ष परमार्थ नष्ट हो जाता है। वानर, मद्यपान के लिए उतावले होने के कारण श्रीराम के पास लौटने के इच्छुक नहीं है। मधुपान से धुंध होने के कारण किसी को परमार्थ का ज्ञान नहीं होगा.'' ऐसा मन में विचार कर हनुमान ने अकेले ही शीघ्र प्रस्थान किया। उधर सुग्रीव निश्चयपूर्वक लक्ष्मण से कह रहे थे कि 'सीता को ढूँढ़ने का कार्य हो जाने पर ही वानरों ने मधुपान किया होगा।' फिर सुग्रीव और लक्ष्मण प्रसन्न होकर सीता के मिलने की वार्ता श्रीराम से कहने लगे। तभी श्रीराम को आकाश-मार्ग से वेगपूर्वक आते हुए हनुमान दिखाई दिए। श्रीराम को उस समय इतना आनन्द हुआ कि वह आकाश की ओर दौड़कर सीता के विषय में पूछेंगे, ऐसा हनुमान को अनुभव हुआ। तब श्रीराम को उठने का कष्ट न देकर हनुमान दूर से ही सीता के शोध के विषय में बताने लगे।

सीता को ढूँढ़ने के विषय में हनुमान का निवेदन– श्रीराम के उठ खड़े होने से पूर्व ही हनुमान ने दूर से ही बताना प्रारम्भ किया– "श्रीराम, आपकी कृपा से मुझे साक्षात् जनककन्या सीता के दर्शन हुए, समुद्र में स्थित एक महापर्वत पर लंकापुरी बसी हुई है। वहाँ रावण के अपने भवन में सीता देवी को सुरक्षित रूप से रखा गया है उसे रावण के निवास पर न रखकर अशोक-वन मे रखा है। उसके

चारों ओर भयंकर राक्षसियाँ हैं। एक वस्त्र पहनकर, भूमि पर शयन कर, मलिनवस्त्र, मलिनदेह, मंगलस्नान से वंचित, केशों की जटाओं से युक्त सीता समय व्यतीत कर रही हैं। आपके सदृश कठिन व्रत का पालन करती हुई वे जीवन बिता रही हैं। जानकी स्नेह नहीं लगातीं, अँजन चंदन का उपयोग नहीं करतीं। भोजन, रसपान, जलप्राशन न करते हुए उपवास कर रही हैं। समाधान प्रदान करने वाले ब्रह्मदान को ब्राह्मणों को दिये बिना वे रह रही हैं। सर्वज्ञ को भी देखे बिना निंद्य मानकर वे स्पर्श नहीं करतीं परपुरुष का अन्नदान लेने वाली परस्त्री होती है। श्रीराम के वियोग के पश्चात् ग्रहण किया अन्न सीता विष्ठा के सदृश निकृष्ट मानती हैं। रस भोग को रुधिर पान सदृश समझती हैं। हे रघुपति, वे जल को स्पर्श भी नहीं करतीं ऐसी पतिव्रता सीता के विषय में जो कहूँ, वह अल्प ही है। जिस प्रकार ग्रहण काल में चन्द्रमा कलाहीन होता है, वैसी दीन हीन जानकी को मैंने स्वयं अपने नेत्रों से देखा है।" इस पर श्रीराम ने विह्वल स्वर में प्रश्न किया– "वह अन्न-जल नहीं ग्रहण करती, तब उसके प्राण कैसे शेष हैं ? मेरी प्रिय पत्नी कैसे जीवित है" ? हनुमान ने इस विषय में उत्तर देते हुए कहा– "हृदय में चिन्मूर्ति श्रीराम मुख में रात-दिन राम-नाम धारण करने वाली सीता प्राणिमात्र में श्रीराम के दर्शन करती हैं और स्वयं के चित्त में श्रीराम को ही धारण किये हुए हैं।"

हनुमान ने पुनः कहा "पृथ्वी को धारण करने वाले, जीवन को जीवन देने वाले, चन्द्र-सूर्य, में तेज-रूप में विद्यमान श्रीराम, उनके मन में विराजमान हैं। श्रीराम वायु के प्राण, गगन के चिद्गगन, बुद्धि की समाधिस्थ अवस्था एवं प्राणों के पोषणकर्ता हैं। श्रीराम अहम् सोऽहम् में निहित, मन की उन्मन अवस्था * चित्त का चैतन्य, जीवों का जीवन हैं। ऐसी आत्मस्थिति से युक्त सीता को आत्म-परभाव से परे श्रीराम-मूर्ति में ही जीवन का अनुभव हो रहा है। मेरी बुद्धि, यही सत्य है ऐसा मानती है। निर्विकल्प भजन विधि काया, वाचा, मनसा बुद्धि के द्वारा मैं सीता को ढूँढ़कर आया हूँ। श्रीराम नाम परमामृत है। अमृत पान कर अमर होने की अपेक्षा जिसे राम नाम प्राप्त है, उसके द्वारा तो मृत्यु को ही मृत्यु आती है। रामनाम पर अटल श्रद्धा रखने वाले को हलाहल सदृश विष भी बाधा नहीं पहुँचा सकता, प्रलयाग्नि उसे जला नहीं सकती। सारे द्वन्द्व उसके समक्ष निर्द्वन्द्व हो जाते हैं ऐसा रामनामामृत ही सीता का जीवन है। हे सर्वज्ञ रघुनाथ, मैं जो कह रहा हूँ वह त्रिवार सत्य है।"

हनुमान के वचन सुनकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए और उन्होंने अपनी दोनों भुजाएँ फैलाकर आनन्दपूर्वक हनुमान को प्रेम-भाव से आलिंगनबद्ध किया। श्रीराम अपना स्वामित्व भूल गए, हनुमान अपना दासत्व भूल गए। दोनों परमानन्द से परिपूर्ण हो गए। अहम् कोऽहम्-सोऽहम् का ज्ञान उनकी समरसता में विलीन हो गया। आत्म-पर भाव समाप्त हो गया। दोनों ही आनन्दमय तथा सुखसम्पन्न हुए ऐसी अवस्था में ज्ञान-अज्ञान समाप्त हो गया। उनकी वाणी मौन हो गई। चैतन्यरूपी मेघ सर्वत्र व्याप्त हो गए। दृश्य दृष्टा-दर्शन, ज्ञेय-ज्ञाता ज्ञान, ध्येय-ध्याता-ध्यान, सभी आनन्द में विलीन हो गए। देव के देवत्व एवं भक्त के भाव में परमानन्द प्रकट हुआ। स्वार्थ का सम्बन्ध समाप्त हुआ। भजन में रुचि एवं उसके भाव से भक्त ने रघुनाथ को प्राप्त किया। श्रीराम नाम ने देव एवं भक्त दोनों को ही आत्मसात् कर लिया इसी का नाम परमार्थ है। ऐसा परमार्थ प्राप्त होकर हनुमान, श्रीराम को भजने लगे और श्रीराम के भजन से यशस्वी होकर हरिभजन के कारण द्वन्द्वमुक्त भी हुए। हनुमान ईश्वर में एकाकार हो गए। जो अखंड सद्गुरु भक्ति करता है, भगवान् भी उसकी कीर्ति का वर्णन करते हैं शिवादि श्रेष्ठ उसकी

---

* हठ योग की पाँच मुद्राओं में से एक।

वंदना करते हैं। भगवद्भक्ति इतनी महान होती है कि चारों मुक्तियाँ उसकी दासी बन जाती हैं। (समीपता, सलोकता, सरूपता, सायुज्य) भगवद्भजन करते हुए हरिनाम लेने से सभी प्राणियों को ब्रह्मप्राप्ति होती है. हनुमान ने विनय वृत्ति से भक्ति व तीनों लोकों में विजय प्राप्त कर श्रीराम कृपा से सूक्ष्म शान्ति प्राप्त होने की स्थिति प्राप्त की।

हनुमान को सूक्ष्म-शान्ति प्राप्त होने का लक्षण यही था कि रण में करोड़ों का वध करने पर भी अणुमात्र मन: शान्ति भंग नहीं होती। शतरंज के खेल में हाथी घोड़ों का वध करने पर हिंसा की अनुभूति नहीं होती, उसी प्रकार युद्ध के अवसर पर भी हिंसा की अनुभूति नहीं होती। साधुजन हनुमान की इस स्थिति को समझ सकते हैं। अन्य लोगों को वह वानर-वृत्ति का अनुभव होने पर भी, श्रीराम कृपा से उसे भीषण शक्ति प्राप्त थी। हनुमान एवं राम ने अनन्य भाव से एक दूसरे को आलिंगनबद्ध किया। देव और भक्त एकरूप होकर उन्हें सन्तोष की प्राप्ति हुई। हनुमान, सीता से प्राप्त मस्तकमणि को श्रीराम के चरणों पर रखकर उन्हें दण्डवत प्रणाम कर, हाथ जोड़कर खड़े हो गए इधर मधु पान किये वानरों को तथा अंगद, नल, नील, जाम्बवंत आदि को हनुमान के जाने का ज्ञान ही नहीं हुआ। हनुमान श्रीराम की वंदना कर, सीता का वृत्तान्त सुनाकर पुनः मधुवन वापस लौटे। उनका जाना-आना स्वयं अंगद व जाम्बवत को भी ज्ञान न हो सका। सुग्रीव लक्ष्मण से बोले, "हमारे समक्ष हनुमान आया। उसके द्वारा सीता का वृतांत कहते ही श्रीराम ने उसे आलिंगनबद्ध किया। दोनों में भिन्नत्व समाप्त होकर वे परस्पर एक दूसरे में लीन हो गए। हनुमान की महिमा धन्य है।"

हनुमान एवं श्रीराम को एकाकार हुआ देखकर सौमित्र मूर्च्छित हो गए। जिस प्रकार हनुमान की राम-भक्ति थी, वैसी ही लक्ष्मण की थी। उन तीनों में अभिन्न एकात्मता थी। यह अनन्य भक्ति देखकर सुग्रीव, श्रीराम के चरणों पर गिर पड़े। श्रीराम ने सुग्रीव को भी आलिंगनबद्ध किया, जिससे सुग्रीव सन्तुष्ट हुए। अनन्य भक्ति से श्रीराम प्रसन्न होते हैं और भजन भाव से भक्त मुक्त होते हैं। महादोषी भी नामस्मरण से निर्दोष हो जाता है। एक राम नाम से ब्रह्म-प्राप्ति होती है। चारों प्रकार की मुक्ति का भ्रम दूर होकर नाम से परम परमार्थ साध्य होता है। सुग्रीव एवं लक्ष्मण परम सुख की प्राप्ति से सन्तुष्ट हुए। उधर युवराज अंगद जहाँ विद्यमान था, दधिमुख ने वहाँ आकर अंगद को प्रणाम किया। वह अंगद से बताने लगा कि 'सुग्रीव ने स्वयं कहा है कि सीता के शोध कार्य के समक्ष मधुवन तृण समान है। वे तो आप पर अपने प्राणों को न्योछावर करने के लिए तैयार हैं। अपने शरीर के चमड़े से जूते बनाने पर भी आपके ऋण से मुक्त नहीं हुआ जा सकता। अंगद का परम सौभाग्य कि उसने वानर-वंश का उद्धार किया अंगद को उन्होंने वानर-वंश का भूषण कहकर गौरवान्वित किया है.' दधिमुख के ये वचन सुनकर वानरों को श्रीराम का स्मरण हो आया और राम-नाम का जयजयकार करते हुए प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने वहाँ से प्रस्थान किया।

श्रीराम का वंदन करने के लिए वानरों ने श्रीराम-नाम का स्मरण कर भुभु:कार करते हुए आकाश में उड़ान भरी। हनुमान की विजय से प्रमुख वीर योद्धा सन्तुष्ट थे। तीनों लोकों को गुंजायमान करती हुई श्रीराम नाम की गर्जना कर वे किष्किंधा पहुँचे। वानरों के स्वर से आकाश गूँज उठा। गिरि, कन्दराएँ एवं पर्वत शिखर गूँज उठे। उन वानर समूहों के नाद के माध्यम से सीता ही मिलने आयी हों ऐसा अनुभव कर श्रीराम प्रसन्न हुए। अंगदादि की गर्जना सुनकर वानरराज सुग्रीव प्रसन्न हुआ। उसने प्रचंड भुभु:कार किया। सुग्रीव का भुभु:कार सुनकर वानर किष्किंधा में उतरे। वहाँ शुभ्र सफेद, नीले,

पीले, लाल खिले हुए पुष्पों एवं वृक्षों की शाखाओं से अंगद की सेना सुशोभित हो रही थी। मनोहर पलाश, शाल, ताल, तमाल इत्यादि की पताकाएँ बनाकर वानर नचा रहे थे। वन वृक्षों के विविध प्रकारों के साथ ही वानरों द्वारा उठाई हुई पूँछें पताकाओं की तरह आकाश में शोभायमान थीं।

सुग्रीव द्वारा अंगद की प्रशंसा– प्रसिद्ध वीर युवराज अंगद, नल, नील, जाम्बवंत एवं प्रमुख नायक हनुमान, जिनके कारण उन्हें विजय प्राप्त हुई इत्यादि लोगों से युक्त अंगद की सेना सुशोभित हो रही थी। वानर राम-नाम का जयजयकार करते हुए आनन्दपूर्वक नाच रहे थे। अंगद को आया हुआ देखकर सुग्रीव सन्तुष्ट हुए। श्रीराम को भी सन्तोष हुआ। लक्ष्मण आनन्दित हुए। श्रीराम से मिलने के लिए अंगद और हनुमान आगे आये तब सुग्रीव और वानर प्रसन्न हो उठे। श्रीराम प्रस्रवण नामक महापर्वत पर निवास कर रहे थे। वहाँ सुन्दर वन विद्यमान थे। वहाँ वानरों का आगमन हुआ। श्रीराम को सम्मुख देखकर सबके नेत्रों से अश्रुधाराएँ प्रवाहित होने लगीं। अंगद और हनुमान ने श्रीराम के चरणों पर गिरकर साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया। श्रीराम द्वारा आलिंगनबद्ध करते ही उनकी थकान दूर हो गई, अंगद और हनुमान ने लक्ष्मण की वन्दना करते हुए उनके चरणों पर मस्तक रखा। लक्ष्मण ने भी दोनों को आलिंगनबद्ध किया, जिससे उनके मन, चित्त, अभिमान एवं बुद्धि का परिष्कार हुआ। उनकी इन्द्रियाँ सुमित्रतापूर्वक राम-भजन के लिए तत्पर हुईं। जिह्वा राम-भजन में एकाग्र हुई और वाणी स्वयं सुमित्र हो गई। हरिदास का आलिंगन अन्तर्बाह्य पवित्र करता है। जो दोष-गुण देखते रहते हैं वे अभागे होते हैं। सद्भाव धारण करने से सद्भाग्य की प्राप्ति होती है।

साधु पुरुषों का दर्शन ही श्रेष्ठ अनुष्ठान है। सज्जनों के वचनों का श्रवण पूर्णत्व प्राप्ति के लिए की गई तपश्चर्या के समान है। साधुओं के चरणस्पर्श के समक्ष कैवल्य भी तृण समान प्रतीत होता है। साधुओं के अगाध चरण महादोषी व्यक्तियों को भी पवित्र करते हैं। सज्जनों के आलिंगन से सर्वांग पवित्र होता है, देह चैतन्यघन स्वरूप हो जाती है। सज्जनों की सहज कृपा से उनकी संगति से सद्भाग्य प्राप्त होता है। संसार से मुक्ति मिलती है, ऐसा वेद शास्त्रों ने भी स्वीकार किया है, सज्जनों के चरण स्पर्श से कर्म एवं अकर्मों का नाश होता है। जन्म-मरण का चक्र समाप्त होता है। ब्रह्म से सामीप्य प्राप्त होता है। लक्ष्मण राम-भक्त होने के कारण अंगद एवं हनुमान द्वारा आलिंगनबद्ध करने से उन्हें आनन्द की अनुभूति हुई, तत्पश्चात् अंगद का हाथ पकड़कर हनुमान उसे सुग्रीव के पास ले गये। दोनों द्वारा उसकी वन्दना करने के पश्चात् सुग्रीव ने उन्हें प्रेमपूर्वक आलिंगनबद्ध किया। सुग्रीव बोला- "हे हनुमान, तुम्हारे कारण अंगद को महत्त्व मिला, तुम सबके प्राण दाता एवं संरक्षक हो," इस पर जाम्बवंत आदि वानर वीरों ने श्रीराम की वन्दना की और सुग्रीव का अभिवादन कर सब सभा के लिए एकत्र बैठे।

श्रीराम द्वारा अंगद से वृत्तान्त कथन की आज्ञा– सीता को ढूँढ़ने का वृत्तान्त सुनने के लिए श्रीराम ने अंगद से कहा- "यहाँ से जाने के पश्चात् तुम लोग जिस मार्ग से गये, उसका सम्पूर्ण वृत्तान्त मुझसे कहो।" श्रीराम द्वारा ऐसा कहने पर हनुमान मौन रहे। फिर अंगद ने स्वयं सीता को ढूँढ़ने की वार्ता कहना आरम्भ किया। वह बोले- "स्वामी की आज्ञा लेकर हमने अनेक बार दक्षिण-दिशा में ढूँढ़ना प्रारम्भ किया परन्तु कहीं अणुमात्र भी सीता के होने के लक्षण दिखाई नहीं दिए। तत्पश्चात् आगे पुनः ढूँढ़ने के उत्साह से वानरों ने उड़ान भरी। वे ब्रह्मशाप से बंजर हुए एक वन में पहुँचे, उस वन में पेड़, पौधे, फल इत्यादि कुछ भी नहीं था। ढूँढ़ने पर भी कहीं जल नहीं मिलता था। वहाँ के वृक्ष सूख गए थे, जिससे वानर क्षुधित रह गए। दंडी नामक एक समर्थ ऋषि थे, उनका पुत्र वेद शास्त्र सम्पन्न होने

पर अत्यन्त घमंडी हो गया था। वन-देवता ने उसका वध कर दिया। विद्या के गर्व से उन्मत होने के कारण वह वाद-विवाद में ब्रह्मज्ञानियों की निर्भर्त्सना किया करता था। वह मानों ब्रह्मराक्षस के रूप में जीवन व्यतीत कर रहा था, इसीलिए उसका वध कर दिया गया। अपने पुत्र के निधन की वार्ता समझने पर ऋषि ने उस वन को शाप दिया कि उस वन में जिसका आगमन होगा, वह वहाँ से जा नहीं सकेगा।"

"उस वन में पदार्पण करते ही उसी क्षण हमारे प्राण चले जाते परन्तु राम-नाम के स्मरण के कारण हमारे प्राण बच गए। श्रीराम, संकट में भक्तों की रक्षा करते हैं। उस वन में चींटी, मक्खी एवं पशु तो थे ही नहीं; घास का तिनका भी कहीं दिखाई नहीं दे रहा था, जिसके कारण वानरों को भूखा रहना पड़ा। उस वन से बाहर निकलने के लिए सारा सामर्थ्य एकत्र कर हमने उड़ान भरी परन्तु जहाँ से उड़ान भरी थी, पुनः वहीं वापस आ गए। ब्रह्मशाप के कारण उस वन से बाहर निकलना असम्भव हो गया। वह ऋषि-पुत्र ब्रह्मराक्षस होकर वानरों को खाने के लिए आया तब हमने उसका नाश का दिया। हनुमान के समक्ष मृत्यु आने से उस ब्रह्मराक्षस का उद्धार हुआ। जड़-जीवों को तारने वाले श्रीराम के नामस्मरण की ऐसी महिमा है। पुत्र का उद्धार होने के कारण दण्डी ऋषि ने सन्तुष्ट होकर वन को शापमुक्त किया। हरि भक्तों की ऐसी महिमा है। हरिभक्त जहाँ जाते हैं, वह वन पुण्याश्रम कहा जाता है।" अंगद द्वारा यह सुनकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए। कृपालु श्रीरघुनाथ के विषय में सुनकर लक्ष्मण आनन्दित हुए। वानर सभा स्तब्ध हुई एवं सुग्रीव चकित हो गए।

अंगद आगे बोला– "ऋषि ने वन को शाप मुक्त तो कर दिया लेकिन भूख से शिथिल होने के कारण उनसे बाहर नहीं निकला जा रहा था। भूख और प्यास के कारण वे मूर्च्छित होने लगे। तभी हनुमान को वन में बेल के वृक्ष के नीचे पानी से भरी हुई एक गुहा दिखाई दी। हमने हनुमान को आगे रखकर उस गुहा में प्रवेश किया। गुहा में प्राणघातक आवर्त में फँसने पर हनुमान ने राम के तेज से हमारी रक्षा की। उस गुहा में गहन अँधेरा था। स्वयं को स्वयं का शरीर नहीं दिख पा रहा था। सभी वानर घबरा कर मूर्च्छित हो गए मैं स्वयं, नल, नील, जाम्बवंत सभी मूर्च्छित हो गए थे। मात्र हनुमान चेतनावस्था में थे। क्षुधा से हमारे प्राण निकलने वाले थे। हम राम-नाम स्मरण करना भूल गए। हनुमान अन्तर्बाह्य राम-नाम मय होने के कारण चेतना से परिपूर्ण थे। हनुमान के प्राण एवं इन्द्रियाँ राम-मय होने के कारण रामतेज से उसे अंधेरे में भी अच्छा दिखाई दे रहा था। अतः धैर्यवान हनुमान अपनी पूँछ में सभी वानरों को लपेटकर गुहा में शत योजन अन्दर गये। अपने पिता वायु को सारा वृत्तान्त बताकर श्रीराम के सुख के लिए वानरों के प्राण बचाने की विनती की। उसके साथ ही वानरों की मूर्च्छा दूर हुई। हम सभी चकित थे क्योंकि तब हम सभी गुहा में एक स्वर्ण मन्दिर में पहुँच गए थे। वहाँ सुरसा नाम की एक तपस्विनी थी।"

'सुरसा ने हनुमान को देखा और वह आश्चर्यपूर्वक उससे बोली–तुम कौन हो ?' इस पर हनुमान ने उत्तर दिया– 'मैं रामभक्त हूँ तथा सीता को ढूँढ़ने के लिए वानरों सहित आया हूँ।' यह सुनते ही सुरसा बोली– "तुम श्रीराम के भक्त होने के कारण ही यहाँ तक आ सके। अन्य कोई इस स्थान तक पहुँच नहीं सकता। मैं तुम्हारे कारण धन्य हुई क्योंकि मुझे ब्रह्मा का वर था कि जब तुम राम-भक्तों से मिलोगी तभी मुक्त होगी। आज मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है।" तत्पश्चात् सुरसा ने सज्जनतापूर्वक हम वानरों की विश्रांति की व्यवस्था की। उसने हमें विश्रांति रसपान प्रदान किया। जल एवं स्वादिष्ट फल दिये। राम-स्मरण करते हुए हमने वे ग्रहण किये। राम-स्मरण एवं हरिचिन्तन करते हुए रसपान करने से

वानरों में फिर चैतन्य का समावेश हुआ और सबने रामनाम की प्रचंड गर्जना की। क्षुधा शांत होने के कारण सब तृप्त हुए। सुखानुभव से निद्रा दूर हुई। स्वानंद सुख से परिपूर्ण होकर वानरों को विश्राम मिला। रामनाम से तृप्त वानरों की राम-गर्जना से गुहा गूँज उठी। उस राम नाम की गर्जना से समस्त चराचर व्याप्त हुआ, ऐसी वानरों की गर्जना थी। उस नामोच्चारण से वैकुंठ पीठ व्याप्त हो गया। नीलकंठ डोलने लगे। सुरसा भाग्यशालिनी थी और हनुमान भी श्रेष्ठ भाग्यवान् थे। हरिभक्तों की संगत मिलने से जड़-मूढ़ सभी का उद्धार होता है। हनुमान के प्रति विश्वस्त सुरसा के भाग्य का क्या वर्णन किया जाय। हनुमान की निष्ठा राम नाम स्मरण के प्रति थी, जिसके कारण कलिकाल को भी वापस जाना पड़ता है एवं जन्म मरण से मुक्ति प्राप्त होती है। राम नाम परिपूर्ण ब्रह्म ही है, जिससे वानरों को आत्म तृप्ति प्राप्त हुई। सुरसा को विश्रांति मिली, हनुमान की संगति से सभी आनन्दपूर्वक डोलने लगे।

अंगद के वचन सुनकर श्रीराम को अपार सुख हुआ। उन्होंने आनन्दपूर्वक अंगद की पीठ थपथपाई। श्रीराम स्वयं आनन्द मे परिपूर्ण हो उठे। भक्तों की आत्मकथा सुनने में श्रीराम को सुख की प्राप्ति होती है। उस पर हनुमान तो सर्वप्रिय भक्त थे, उनकी कथा श्रीराम को अत्यधिक मधुर प्रतीत हुई। रघुवीर फिर अंगद से बोले अब आगे की कथा कहो। श्रीराम को हनुमान का पराक्रम सुनना अच्छा लग रहा था। अंगद बोला "विश्राम करने के पश्चात् वानरों ने सीता को ढूँढ़ने के विषय में हनुमान से पूछा। उस गुहा में सूर्य चन्द्र का प्रकाश न होकर स्वतः सिद्ध प्रकाश था। वहाँ पर दक्षिण दिशा का ज्ञान नहीं हो पा रहा था, फिर खोज करने के लिए धैर्य कहाँ से होता। उस समय सुरसा हनुमान से बोली– "ब्रह्मा के वर से ही यहाँ आवागमन होता है। गुफा की स्थिति से मैं अवगत हूँ। तुम लोग मात्र अपने सामर्थ्य के बल पर यहाँ से न निकल सकोगे। मैं कहती हूँ सती सीता को ढूँढ़ने में तुम लोग अवश्य सफल होगे। यशस्वी होकर महान कीर्ति अर्जित करोगे। ये मेरे वचन अवश्य सत्य होंगे"। हनुमान ने सुरसा से कहा "वानरों को शीघ्र यहाँ से बाहर निकालो।" सुरसा हनुमान का चरण स्पर्श कर बोली– "तुम लोग मेरे कहे अनुसार करो। तुम्हारे नेत्र खुले होने पर गुहा के बाहर निकालना मेरे लिए सम्भव नहीं हो पाएगा तुम लोगों के आँख बंद करने पर क्षणार्द्ध में ही तुम्हें बाहर निकाल दूँगी" सभी वानरों के द्वारा आँखें बंद करते ही उन्हें तत्काल सागर-गर्जना सुनाई देने लगी। नेत्र खोलने पर पीछे विवर दिखाई नहीं दे रहा था। वानर इससे बहुत आश्चर्यचकित हुए।

वानरों की सागर के तट पर संपाती से भेंट– "वानरों द्वारा नेत्र बंद करते ही किसी के पकड़े या उठाये बिना ही वे सभी गुहा के बाहर आकर सागर तट पर खड़े थे। रामनाम का स्मरण करते हुए वानरों को गुहा, सुरसा अथवा अन्य कुछ भी दिखाई नहीं दिया। इतना होने पर भी सीता का पता न लग सका क्योंकि आगे समुद्र मार्ग रोक कर खड़ा था। वानर समूह चिन्तामग्न था कि इतना समय व्यतीत होने पर पीछे लौटने से अपमान होगा तथा सुग्रीव द्वारा दण्डित होने का भी भय था। समुद्र सामने होने के कारण आगे जाना भी सम्भव नहीं था। अन्त में सभी प्राण त्याग करने के लिए तैयार हुए, इतने में संपाती नामक गिद्ध पक्षी वहाँ आया। उसने देखा कि समुद्रतट पर इतने वानर एकत्र हैं अतः उन्हें खाने के लिए वह पक्षी आगे आया। बहुत समय तक उपवास कर प्राण त्यागने का विचार वानर कर ही रहे थे कि श्रीराम ने पूर्ण कृपा की और शीघ्र मरण आने के लिए हम लोगों को पक्षी का भक्ष्य बनाया, ऐसा सभी मानने लगे। समुद्रतट पर व्यर्थ प्राण देने की अपेक्षा शरीर परोपकार के काम आया इस विचार से वानर उल्लसित हुए। उन्होंने श्रीराम नाम का स्मरण किया। तभी संपाती का अज्ञान समाप्त होकर

उसमें ज्ञान का उदय हुआ। जहाँ राम नाम का स्मरण होता है, वहाँ कल्पान्त होने पर भी मरण को प्रवेश नहीं मिलता। यह ज्ञान होते ही संपाती ने वानरों को दण्डवत् प्रणाम कर पूछा- "आप कौन हैं ? जिसके स्मरण में राम का नाम होता है, उसके जन्म एवं कर्म सफल होते हैं उनका देह-धर्म भी सफल होता है। मेरा परम सौभाग्य है कि आप मुझे मिले। यहाँ राम-नाम स्मरण कर रहे हैं। आप किस कारण यहाँ आये और किस कारण अब देह त्याग के लिए सिद्ध हुए हैं यह सब मुझे बतायें।"

संपाती के वचन सुनकर मैंने कहा- 'हमारा भक्षण करो।' संपाती बोला- "रामनाम स्मरण के कारण मृत्यु का प्रवेश नहीं होता,यह सम्पूर्ण सत्य है." फिर हनुमान बोले- "हम श्रीराम के भक्त हैं एवं सीता को ढूँढ़ने के लिए यहाँ आये हैं. हम समग्र दक्षिण-दिशा ढूँढ़कर समुद्र तक पहुँचे हैं परन्तु कहीं भी सीता दिखाई नहीं दीं. अब श्रीराम द्वारा दी गई काल मर्यादा समाप्त होने के कारण हम मृत्यु को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं।" हनुमान द्वारा यह कहते ही संपाती हँसते हुए बोला- "मुझे सीता के विषय में पता है मैं जो कह रहा हूँ, वह सावधानीपूर्वक सुनें। इस शतयोजन समुद्र के उस पार लंका नगरी है। उसमें स्थित अशोक-वन में सीता रूपी चिद्रत्न विद्यमान है। मुझमें पंखों की शक्ति होती तो मैं ही सीता को लेकर आता।" संपाती के यह कहते ही उसे पंख प्राप्त हुए क्योंकि सूर्य ने उसे वर दिया था कि रामभक्तों से उसकी भेंट होते ही, उसे पंख प्राप्त होंगे। तदनुसार संपाती को पंख प्राप्त हुए। गुणातीत होकर उसका जन्म-मरण का चक्र भी समाप्त हुआ। श्रीराम भक्तों की संगति से न जाने कितने ही लोगों का उद्धार हुआ। अब संपाती का भी उद्धार हुआ। संतों की संगति धन्य है। सागर की मर्यादा शत योजन होने के कारण वानरों को उसको लाँघना संभव नहीं था परन्तु हनुमान एक ही उड़ान में सागर पार कर गये। उड़ान के लिए लगाये गए बल के कारण पर्वत समुद्र में धँस गए। कुछ शिखर आकाश में उड़ गये। पक्षी संकटग्रस्त हो गए। हम वानर बलवान् होने के कारण दक्षिण की ओर हमारे रहने पर कुछ अनर्थ होगा, इसीलिए हमें उत्तर भाग में रखा। उसकी उड़ान से सागर का पानी उफनकर आकाश तक जा पहुँचा और विमानों को बाँधा पहुँची। श्रीराम बाण की गति के वेग से हनुमान गये और फिर उन्होंने लंका में जो पराक्रम किया, उसके विषय में रघुवीर उसी से पूछें।" अंगद के द्वारा ऐसा कहने पर श्रीराम प्रसन्न हुए। उन्होंने स्वयं हनुमान को बुलाया। हनुमान अंतर्मन में श्रीराम को धारण कर आगे आये।

अध्याय २६

[हनुमान के प्रताप का वर्णन]

हनुमान स्वयं अपने मुख से अपना पराक्रम वर्णन नहीं करेंगे, यह बात ध्यान में आते ही श्रीराम ने स्वयं ही प्रश्न पूछना प्रारम्भ किया। श्रीरामचन्द्र ने बड़े आदरपूर्वक पूछा- "हनुमान वनचर होते हुए भी तुमने सागर कैसे पार किया, उस विषय में मुझे बताओ।" श्रीराम का प्रश्न सुनते ही हनुमान ने श्रीराम को दंडवत् प्रणाम किया, तत्पश्चात् वह बोले- "श्रीराम-नाम के उच्चारण से जड़-मूढ़ भी भवसागर पर कर जाते हैं। मैं राम-मुद्रिका से युक्त वानर होने के कारण उस पार पहुँच गया। श्रीराम-नाम का उच्चारण करने से भवसागर में भी मार्ग निर्मित हो जाता है और उस मार्ग से वैकुण्ठ में, फिर परब्रह्म में प्रवेश होता है जो रामनामांकित होते हैं, उन्हें सागर डुबा नहीं सकता। मैं भी रामनामांकित वानर होने के कारण

उस पार पहुँच गया। श्रीराम ने जब मेरे हाथ में अपनी मुद्रिका रखी तभी मुझमें विजय-वृत्ति का संचार हुआ। राममुद्रिका की ख्याति श्रुति एवं पुराण भी बताते हैं। श्रीराम-मुद्रिका के कारण ही समुद्र तरण, सीता-दर्शन, रण- क्रंदन, लंका-दहन आदि में विजय प्राप्त हुई। लंका भुवन में मेरे द्वारा पराक्रम किया गया, ऐसा कहा जाता है परन्तु यह पराक्रम उस मुद्रिका का ही है। जहाँ नित्य श्रीराम-नाम का स्मरण होता है, वहाँ वीरता, शौर्य, कीर्ति और कल्याण विद्यमान होता है। उस नाम से ही सनातन की प्राप्ति होती है, ऐसी उस नामस्मरण की महिमा है। जहाँ नामस्मरण नहीं होता वहाँ अपयश, अकीर्ति, अकल्याण, निंद्यत्व एवं पूर्ण पाप विद्यमान होता है तथा महानरक में अधःपतन होता है। इसीलिए प्रयत्नपूर्वक नामस्मरण का विस्मरण नहीं होने देना चाहिए। नित्य नामस्मरण करने के कारण कीर्ति, कल्याण एवं विजय की प्राप्ति होती है। वास्तव में स्वयं श्रीराम की मुद्रिका की प्राप्ति होने पर भी लोग हनुमान का गौरव करते हैं लेकिन जो कुछ भी लंका में घटित हुआ, वह सारी कीर्ति मुद्रिका की ही थी। हनुमान ने अपनी कीर्ति का स्वयं अपने मुख से वर्णन न कर मुद्रिका की स्तुति करते हुए सारी वार्ता श्रीराम को बतायी। मारुति का मनोगत श्रीराम मन ही मन समझ गए थे। श्रीराम ने सद्‌भक्त हनुमान को आनन्दपूर्वक हृदय से लगाया। हनुमान द्वारा राक्षसों से किये गए युद्ध के विषय में सुनने के लिए वानर आतुर थे। यह जानकर श्रीराम ने हनुमान से आगे प्रश्न किया।

श्रीराम हनुमान से बोले– "हे मारुति, समुद्र लाँघने की और लंका में अर्जित ख्याति की, जो यथार्थ वार्ता तुमने बतायी, वह संक्षिप्त और गौण थी। सीता सुरक्षित है, यह सुनकर आनन्द हुआ परन्तु राक्षसों से युद्ध क्यों और किस प्रकार हुआ, यह स्पष्ट रूप से एवं विस्तारपूर्वक बताओ।" श्रीराम द्वारा ऐसी आज्ञा करते ही हनुमान ने उनकी चरण-वंदना की। स्वयं अपने मुख से अपनी कीर्ति का बखान नहीं करना चाहिए तथा स्वामी से झूठ भी नहीं बोलना चाहिए, इस दृष्टि से हनुमान ने ब्रह्मदेव से विनती की थी कि स्वामी, आप मेरे समुद्र लाँघने एवं सीता को ढूँढ़ने के विषय में पत्र पर लिखकर दें क्योंकि आपके हाथों से अर्थात् ब्रह्मलिखित देखकर सीता को ढूँढने की वार्ता श्रीराम सत्य मानेंगे तथा कार्य सिद्ध होगा। मारुति के ये वचन सुनकर चतुरानन ब्रह्म देव सन्तुष्ट हुए और उन्होंने हनुमान की ख्याति के सम्बन्ध में आदि से अन्त तक पत्र लिखकर दिया। वह पत्र बड़े आनंदपूर्वक हनुमान को देकर और उन्हें आलिंगनबद्ध कर ब्रह्मदेव बोले– "तुम सर्वत्र विजयी होंगे"। तत्पश्चात् वह पत्र लेकर स्वयं हनुमान ने श्रीराम से विनती की कि, 'यह पत्र ब्रह्मदेव लिखित है। यह पढ़कर आप विस्तृत जानकारी ग्रहण करें।'

श्रीराम ने वह पत्र हाथों में लेकर उस पत्र की प्रेमपूर्वक वंदना की और पत्र लक्ष्मण को देकर उन्हें पढ़ने के लिए कहा। पत्र लिखने वाले प्रजापति थे। श्रीराम श्रोता थे एवं लक्ष्मण वाचक थे, ऐसा अपूर्व संयोग था। सुग्रीवादि वीर योद्धा और वानरों की पंक्तियाँ सभी हनुमान की ख्याति सुनने को चातक के सदृश उत्सुक होकर राह देख रहे थे। उस पत्र में लिखा था– "ॐ श्रीराम चन्द्रजी को नमन हो, क्षराक्षर से परे, त्रिगुणातीत, चिद्‌चिन्मात्र परात्पर परब्रह्म जहाँ आत्म-पर में भेद न हो, जिसके समक्ष ब्रह्मा को ब्रह्मस्फुरण स्मरण नहीं रहता, ऐसे सगुण राम, पूर्णरूप में अपने पूर्णत्व के कारण आप परब्रह्म ही हैं। ब्रह्मदेव को आपके कारण ही ब्रह्मत्व धर्म को धर्मत्व तथा कर्म को कर्मत्व प्राप्त होता है। आप स्वयं चिन्मात्र हैं वेद आपको निर्विकार कहते हैं परन्तु आपका विश्वमूर्ति के रूप में ही आभास होता है। सम्पूर्ण विश्व में आप ही समाये हैं। अगर यह निश्चित माना जाए तो हे श्रीपति, वास्तव में यह आपकी ही माया है आप साकार भी नहीं और निराकार भी नहीं हैं। आप विश्वनाथ विश्वंभर हैं। आपके स्वरूप के विषय

में श्रुति शास्त्रों को भी यथार्थ ज्ञान नहीं हो पाता। इसीलिए श्रुतियाँ केवल 'नेति नेति' कहती हैं। शास्त्र भी कम पड़ जाते हैं। चारों वाणियाँ मौन धारण करती हैं। हे श्रीराम, आप ऐसे परमात्मा स्वरूप हैं। अतः आप जैसे भी हैं, आपको मेरा नमन है। आपकी ही कृपा से हे श्रीराम, आपकी स्तुति करने का मुझमें सामर्थ्य है। हे रघुनाथ, आप अपरंपार, अनंत अवतारी हैं और हनुमान आपका सेवक है। इसने समुद्र लाँघकर लंका में आकर जो अद्भुत् पराक्रम किया, कीर्ति सम्पादन की अब उसके विषय में सुनें।"

"सामर्थ्यशाली हनुमान ने समुद्र लाँघा, महेन्द्र पर्वत को दबा दिया, सर्प पाताल में दबने से उनके मुख खुल गए. हनुमान के शरीर के धक्के से पर्वत समुद्र में दब गए। उनके शिखर कीटकों के सदृश आकाश में उड़ गए। उनके उड़ते समय निर्मित हवा के कारण मेघ घबरा गए। दिग्गज थर-थर काँपने लगे और कलिकाल भी सिहर उठे। उनके उड़ान भरते ही जो कोलाहल मचा, उससे समुद्र के पानी में उफान आ गया। सत्यलोक में पर्जन्यकाल प्रारम्भ होकर ध्रुव-मंडल भीग गया। वानरराज उड़ते समय बहुत भीषण दिखाई दे रहे थे। सुर, खेचर, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर, नर, किन्नर सभी भय से काँप रहे थे। श्रीराम के बाण सदृश वेग से मारुति उड़ान भर कर जा रहे थे। उस समय उनके भयंकर स्फुरण को कोई नियन्त्रित नहीं कर सकता था तथापि हनुमान की शक्ति की परीक्षा लेने के लिए सभी देवताओं ने मिलकर उनका मार्ग अवरुद्ध करने के लिए सुरसा को भेजा। दनु दानव की माता तथा कश्यप की पत्नी सुरसा कई योजन विकराल जबड़ा खोलकर हनुमान को निगलने के लिए बढ़ी। हनुमान के बढ़ते हुए आकार के अनुसार सुरसा को आकार बढ़ाना पड़ रहा था। तभी हनुमान, अणु जितना लघु रूप बनाकर उनके मुख से निकल गए। उन्हें कश्यप-पत्नी का वध नहीं करना पड़ा क्योंकि वे मुख से प्रवेश कर कान से निकल गए। श्रीराम की कृपा से मारुति हाथ में आकर भी छूट गए इसलिए सुरसा जीभ चाटने लगी तथा देव, दानव, शिव सभी चकित हो गए। सुरसा कश्यप की पत्नी तथा पिता वायु की सौतेली माता थी। इसीलिए विवेकी एवं ज्ञानी हनुमान ने उनका वध न कर राम-नाम के बल पर स्वयं को मुक्त कर लिया। अपना वध किये बिना ही हनुमान के चले जाने के कारण सुरसा ने उन्हें तीनों लोकों में विजयी होने का आशीर्वाद दिया।"

समुद्र लाँघते समय विश्राम के लिए स्थल ढूँढ़ते हुए मारुति जब चारों ओर देख रहे थे, तब मैनाक पर्वत ऊपर की ओर ऊँचाई में बढ़ने लगा। हनुमान को विश्राम देना ही उसका उद्देश्य था। परन्तु हनुमान ने इस पर्वत श्रेष्ठ को स्पर्श किये बिना अपनी ऊँचाई को और अधिक बढ़ाया। तब हनुमान का मार्ग रोकने के लिए पर्वत भी और ऊँचा बढ़ गया। इस प्रकार हनुमान और मैनाक पर्वत ऊँचे बढ़ते चले गए। परन्तु अन्त में जब हनुमान पर्वत को लाँघकर जाने लगे तब पर्वत बहुत दुःखी हुआ। अपने दुर्भाग्य के कारण हरिभक्त का चरण-स्पर्श न हो सका इसलिए वह शोक करने लगा। तब पर्वत के प्रेमपूर्ण वचन सुनकर हनुमान को उस पर दया आ गई। हनुमान ने पर्वत के माथे पर अपनी उंगली टिकाई; इसके साथ ही पर्वत पाताल में दब गया। सुरासुरों ने आनन्द व्यक्त करते हुए तथा हनुमान के पराक्रम की प्रशंसा करते हुए कहा– "मात्र उंगली रखने से पर्वत पाताल में धँस गया, अगर हनुमान उस पर बैठते तब वह चूर-चूर हो जाता।" हनुमान को आगे मार्ग में सिंहिका नामक क्रूर राक्षसी मिली। वह प्राणियों की परछाईं से पकड़कर खा जाती थी। हनुमान ने उसको फाड़ कर उसका वध कर दिया। तत्पश्चात् हनुमान ने इतने आवेश से उड़ान भरी कि वह लंका को पीछे छोड़कर पड़लंका में प्रवेश कर गए। वहाँ उन्होंने क्रौंचा राक्षसी का वध किया; इसके अतिरिक्त चौदह सहस्र राक्षसियों को पूँछ से पकड़कर उन्हें समुद्र में डुबा दिया।"

वहाँ से हनुमान लंका में सीता को ढूँढ़ने का कार्य सिद्ध करने के लिए आये। उन्होंने अत्यन्त बारीकी से और प्रयत्नपूर्वक सारे घरों को ढूँढ़ा। नगरी में हाहाकार मचा दिया। सभा मे सभाजनों को सन्त्रस्त कर दिया। अनेक वस्त्रहीन होकर त्राहि त्राहि करने लगे। अपनी पूँछ की सहायता से लाखों दिये बुझा दिए। अंधकार में रावण के मस्तक पर प्रहार किया। सभा में अधकार के कारण कोलाहल मच गया। वहाँ के प्रधानों एवं अन्य महत्वपूर्ण लोगों के घरों को ढूँढा। इन्द्रजित् के भवन मे कुछ अलग ही घटित हुआ। इन्द्रजित् की पत्नी सुलोचना को ही हनुमान सीता समझ बैठे। उन्हें लगा कि सीता, रावण-पुत्र के वशीभूत हो गई। अत: उन दोनों के वध का विचार करने लगे। तभी सुलोचना बोली- "रावण सीता को चुराकर ले आया है। इन्द्रजित् उसे मुक्त करायें अन्यथा सम्पूर्ण कुल का नाश हो जाएगा।" इस पर इन्द्रजित् ने बताया- "रावण से सीता को मुक्त करने के लिए कहने पर सुहृद भाव भूल कर वह मारने के लिए दौड़ता है। रावण के हृदय में सीता के लिए लोभ उत्पन्न हो गया है, इसीलिए किसी के द्वारा हित की बातें बताने पर भी रावण उल्ट कर घात करने लगता है। अत: हम यह बात न करें। सीता कुल का नाश करवायेंगी" इन्द्रजित् के ये वचन सुनकर, 'सुलोचना सीता नहीं है' यह ज्ञात होने पर हनुमान ने वहाँ से प्रस्थान किया और वेगपूर्वक उड़ान भर कर कुंभकर्ण के भवन के समीप पहुँचे। कुंभकर्ण के खर्राटों की आवाज़ त्रिभुवन में गूँज रही थी। उसके श्वास के साथ हाथी और भैंसे आ जा रहे थे। उसकी नाक के बालों में फँसे ऊँट चिल्ला रहे थे। वहीं पर हाथी परस्पर जूझ रहे थे। सिंह भी मुख में जा रहे थे। उस कुंभकर्ण का सामर्थ्य देखकर हनुमान स्वयं से बोले- "इसका पुरुषार्थ देखने के लिए सर्वप्रथम मैं ही इससे युद्ध करूँगा।" उस राक्षस ने संभवत: मुख एवं दाँतों में कभी जल का स्पर्श भी नहीं किया था। उसके दाँतों में फफूँदी लग गई थी और मुख से नरक की दुर्गंध आ रही थी। हनुमान इन सबसे ऊबकर बिभीषण के भवन में सीता को ढूँढ़ने लगे। वहाँ से कीर्तन की ध्वनि सुनकर हनुमान को सुख की अनुभूति हुई। ताल छंद, गीत, नृत्य के साथ रामचरित्र सुनाई देने के कारण हनुमान आनंदपूर्वक डोलने लगे और गुप्त रूप से नाचने लगे। श्रीराम द्वारा लंका को जीतने के पश्चात् बिभीषण को लंकाधिपति बनाने का हनुमान ने निश्चय किया। इस भवन में पूर्ण विश्राम करने के पश्चात् हनुमान ने सीता को ढूँढ़ने के लिए शीघ्र गति से रावण के भवन के लिए प्रस्थान किया "

रावण के भवन की वार्ता– हनुमान रावण के भवन को ढूँढ़ते हुए रावण के शयनगृह में पहुँचे। वहाँ रावण के साथ शैय्या पर मंदोदरी को देखकर उन्हें लगा कि वही सीता है, जिसके कारण वे मन ही मन बहुत क्रोधित हुए। वे सोचने लगे कि अब श्रीराम को यह अपकीर्ति किस प्रकार बतायें। इसकी अपेक्षा मैं ही दोनों का वध करता हूँ, जिससे 'सीता रावण के वश हुई' यह कहना टाला जा सकता है। तत्पश्चात् हनुमान ने दाँत पीसते हुए, पूँछ को मरोड़ते हुए वध की तैयारी की। वे स्वयं से बोले– अब रावण के दस सिर एवं ग्यारहवाँ सीता का सिर बायें हाथ से तोड़कर श्रीराम से भेंट के लिए ले जाऊँगा अथवा दोनों को पूँछ में बाँधकर श्रीराम के पास ले जाऊँगा, जिससे उनका अधर्माचरण देखकर श्रीराम ही उन्हें दण्डित करेंगे।" जब हनुमान के मन में ये विचार चल रहे थे, उसी समय मन्दोदरी अपने दु:खदायक स्वप्न के विषय में रावण को बता रही थी। मन्दोदरी अपनी दु:खद स्वप्न-वार्ता सुनाते हुए कह रही थी–

"अभी मैंने स्वप्न में देखा कि सीता को अशोक वन में रखा है। उसकी सहायता के लिए स्वयं महारुद्र क्रोधित होकर आया है। आपकी प्रिय बहन क्रौंचा का पद्लंका में वध कर वह लंका में सीता

को ढूँढने के लिए आया है। मैं आपसे विनती करती हूँ कि मेरा पूरा स्वप्न सुनें। सीता की रक्षा के लिए वह अशोक-वन गया। सीता से मिलकर उसने अशोक-वन को उध्वस्त कर दिया। मैंने स्वप्न में देखा कि उसने करोड़ों राक्षसों का वध कर दिया। चौदह हजार वन रक्षक, अस्सी हजार किंकर, प्रधान पुत्र जम्बुमाली, अक्षयकुमार आदि का वध कर दिया। अक्षय को उसने शिला पर पटक दिया। उसके साथ के सैनिकों का वध कर दिया। महाबली इन्द्रजित् को उसने संत्रस्त कर दिया और लंका को होली जला डाली। रणक्रंदन देखकर मैं चौंककर जग गई। फिर शिव जी का स्मरण कर, शुद्ध जल का आचमन कर मैं बायीं करवट लेट गई। उस समय मैंने और भी भयंकर स्वप्न देखा। मैंने देखा कि सागर को शिलाओं से पाटकर वानर सेना लंका में आयी। उन्होंने राक्षसों का संहार किया, श्रीराम ने कुंभकर्ण का वध किया। लक्ष्मण ने इन्द्रजित् का वध किया। आपका अनिष्ट भी मैंने उसी स्वप्न में देखा। श्रीराम के बाणों से आपके दसों सिरों को जमीन पर गिरा हुआ, मैंने अपने स्वप्न में देखा"– इतना कहकर मन्दोदरी पति के लिए शोक करने लगी। रावण के समक्ष बैठकर वह कहने लगी कि मेरे कंगनों का दुर्भाग्य आ गया है। तब रावण ने शीघ्र समीप बैठाते हुए कहा "मेरे जीवित होते हुए तुम व्यर्थ में शोक क्यों कर रही हो ?" उस पर मन्दोदरी बोली "आपके धड़ पर सिर तो दिखाई नहीं दे रहे हैं। तब जीवित होने की क्या बात कर रहे हैं।" रावण द्वारा मन्दोदरी को सान्त्वना देने पर वह बोली– "स्वप्न झूठा नहीं होता निश्चित ही बड़ा विघ्न आया है।"

"हे लंकानाथ, सीता को अशोक वन में रखने पर वह कुल का घात कर देगी। इसकी अपेक्षा स्वयं ही सीता को श्रीराम को अर्पित कर, जन्म मरण के चक्र का निवारण होकर सुख की प्राप्ति होगी अनन्य भाव से श्रीराम की शरण जाने पर जन्म-मरण की बाधा समाप्त होती है। इससे अपना कल्याण होगा–ये मेरे वचन सत्य हैं। अगर आपने मेरा कहना मान्य नहीं किया तो मैं इन्द्रजित्, कुंभकर्ण आदि को बुलाकर सीता, श्रीराम को अर्पित कर दूँगी। हे रावण, आप कुल के हित के लिए सीता को श्रीराम को अर्पित कर दें." मन्दोदरी के ये वचन सुनकर रावण सोचने लगा– 'मन्दोदरी का आदेश कुंभकर्ण मान लेगा और इन्द्रजित् तो वचनों के आधीन होने के कारण सीता, राम को अर्पित कर देगा ' अतः रावण मन्दोदरी से बोला– "स्वप्न के विघ्न का निवारण करने के लिए पहले हम सदाशिव की पूजा करेंगे। तुम पूजा की सामग्री लेकर आओ।" इस प्रकार रावण ने मन्दोदरी को काम में लगाकर दुर्धना नामक विश्वसनीय राक्षसी को बुलवाया और सीता को समझाने के लिए अशोक वन की ओर भेजा। इन्द्रजित्, कुंभकर्ण, मन्दोदरी तथा बिभीषण के कहने पर भी सीता को न छोड़ने का रावण ने निश्चय किया। तत्पश्चात् वह राक्षसी अशोक-वन की ओर चल पड़ी। तब हनुमान भी उसके पीछे चलने लगे। श्रीराम की कृपा से सीता से मिलने का मार्ग मिल गया। हनुमान ने सीता को आँखों से देखा परन्तु उनसे भेंट न कर सके क्योंकि उनकी रक्षा के लिए अनेक राक्षसियाँ थीं। इसीलिए हनुमान पेड़ों में छिप गए। उन्हें सीता से एकांत में भेंट करनी थी। उस समय सीता वृक्ष लताओं सहित श्रीराम का स्मरण कर रही थीं। उनके प्रभाव से अशोक वन के पाषाण, लताकुंज, पक्षी, तृण सभी श्रीराम का स्मरण कर रहे थे। जागृति, स्वप्न, तुर्या, सुषुप्ति और आनन्द की अवस्था में हनुमान सीता को ढूँढते हुए सहज स्थिति को ढूँढ़ रहे थे।"

सीता की स्वरूप स्थिति सुनकर एवं हनुमान की ढूँढने की शक्ति सुनकर श्रीराम सुखी हुए। उनके नेत्र आनन्द अश्रुओं से भर आए। उनकी आँखों से हनुमान पर पूर्णानंद का अभिषेक होने लगा। सीता का मनोगत धन्य है, जो नित्य श्रीराम के प्रति अनुरक्त थीं। धन्य है श्री हनुमान का जीवन, जो

श्रीराम की सेवा में लीन था। धन्य है ब्रह्मा का लिखित पत्र, जिसका अर्थ परमार्थ से परिपूर्ण था। जिसे सुनते समय श्रीराम आनन्दपूर्वक डोल रहे थे। सीता की स्थिति एवं हनुमान का पुरुषार्थ सुन, सन्तुष्ट होकर श्रीराम ने हर्षपूर्वक हनुमान को आलिंगनबद्ध किया। उस समय दोनों के वचन रुद्ध हो गए। मौन भंग हो गया, दोनों ने परस्पर एक दूसरे के सान्निध्य में प्रेम एवं विश्राम का अनुभव किया। उनकी स्थिति श्रुति-शास्त्रों को भी अगम्य थी। भक्ति-भाव का मर्म उन्हें ज्ञात हुआ परन्तु वे उसकी अभिव्यक्ति की स्थिति में न थे।

अध्याय २७

[हनुमान के पराक्रम का वर्णन]

ब्रह्मदेव द्वारा लिखित हनुमान द्वारा लाया गया वह धन्यता व्यक्त करने वाला पत्र, लक्ष्मण सतर्कतापूर्वक आगे पढ़ने लगे। उसका मर्म समझकर श्रीराम प्रसन्न हुए। हनुमान द्वारा सीता को ढूँढ़े जाने तक लंका में उन्होंने जो कुछ भी किया, उसका वर्णन ब्रह्मदेव ने आगे के भाग में लिखा था।

"लंका के प्रवेश द्वार पर हनुमान ने गुप्त रूप से नाना प्रकार की वानर चेष्टाएँ कीं। राक्षसों में आपस में लड़ाई करवाई, नगर की स्त्रियों को अपनी पूँछ में लपेट लिया। उन स्त्रियों के पास की जल से भरी गागरों को राजद्वार पर तोड़ डाला, जिसके कारण नगर में जल का अभाव हो गया। 'राजद्वार पर घट तोड़ने के कारण दशानन राजा रावण की मृत्यु हो गयी है'– ऐसा समझकर स्त्रियाँ दुःखी हो गईं। वे विलाप करने लगीं, आगे चल रहे हाथियों को अचानक रोक लेने के कारण पीछे वाले हाथियों की उनसे टक्कर होने लगी और वे आपस में लड़ने लगे। हाथियों के महावत भी आपस में लड़ने लगे। उस पर हनुमान दोनों को पूँछ में लपेट कर पटक रहे थे। हाथी एक दूसरे पर गिरकर छटपटा रहे थे। हाथियों के नीचे वीर दब रहे थे। इस प्रकार घोड़े और घुड़सवार को भी हनुमान ने संत्रस्त कर दिया। राजद्वार पर हाहाकार मचा रहे हनुमान स्वयं गुप्त रूप में ही थे। उन्होंने वहाँ अतिरथी, महारथी सभी की दयनीय स्थिति बना दी। वे गुप्त रहकर आगे के मल्ल की शिखा खींचते थे तो कभी पीछे के मल्ल को आगे के मल्ल के ऊपर धक्का दे देते थे। जिसके कारण उन बलवान् और उन्मत्त मल्लों में लड़ाई होने लगी। तत्पश्चात् हनुमान ने उन मल्लों को मारा, जिससे वे राजद्वार पर गिरकर कराहने लगे।"

वेद-पठन करने वाले परस्पर सानुनासिक और अनुनासिक पर वाद-विवाद कर रहे थे। उन्हें राम-नाम स्मरण का विवेक नहीं था। अतः मारुति ने उन्हें निर्नासिक सिद्ध किया। अस्मात और कस्मात की सिद्धि के लिए युक्ति पूर्वक प्रमाण देने में विद्वानों की बुद्धि की गति थी परन्तु उनकी नामस्मरण में बुद्धि नहीं थी। जिसके कारण हनुमान को वे विद्वान पृथ्वी पर भार सदृश ही प्रतीत हो रहे थे। प्रधान बड़े गर्वपूर्वक जब पालकी में बैठ कर आ रहे थे उस समय हनुमान ने बड़ी कुशलतापूर्वक पालकी ढोने वाले कहारों के कानों में पूँछ घुमाई, जिसके कारण चौंक कर कहार पीछे हटे और पालकी भूमि पर गिर पड़ी। उनके दाँत टूट गए मुख में धूल भर गई। जिनको राजसभा में सम्मान प्राप्त था, वे प्रधान राजद्वार पर अपमानित हुए। नागरिक उन पर हँसने लगे, जिससे वे क्रोधित हो उठे। 'श्रेष्ठ भोजन करने वाले हम जैसे श्रेष्ठ लोगों को तुमने राज-द्वार पर गिराया'– यह कहते हुए वे कहारों को पीटने लगे। तब कहार

बोले– "हमें व्यर्थ क्यों मार रहे हैं ? कृपा कर हमारी बात सुनें। सीता के कारण ही आपकी ये अवस्था हुई है"– इस प्रकार लोगों के बोलने के माध्यम से मारुति को ज्ञात हुआ कि सीता लंका में हैं परन्तु वे किस स्थान पर हैं, इस विषय में ज्ञात न हो सका। रात्रि होने पर सीता को ढूँढ़ने हेतु रावण की सभा में जाने के लिए उन्होंने प्रस्थान किया, उस विषय में सुनें।"

"रावण की सभा सुन्दर थी। रावण सिंहासन पर बैठा था। सभा में राक्षस-वीर, प्रधान और रावण पुत्र बैठे थे। उस सभा में गश्त लगाने वाले सेवक आकर रावण की वन्दना कर, नगर की वार्ता बताते हुए कहने लगे– 'यह संकट भयंकर है। इस विघ्न के कारण महाद्वार पर कल्पनातीत कलह निर्मित हो गया है। हाथी, रथ एवं महावीर अपमानित हुए हैं। राजसभा में जिनका सम्माननीय स्थान है, ऐसे प्रधानों की पालकियाँ टूट गईं। राजद्वार पर घड़े टूट गए, जिसके कारण नर-नारी छटपटा रहे हैं, नगर में पानी की कमी हो गई है। घर-घर में हाहाकार मच गया है। नागरिक कह रहे हैं कि दशानन की मृत्यु होने के कारण राजद्वार पर घट फोड़े गए हैं। सभी स्त्रियाँ शोक मना रही हैं।' यह वार्ता सुनकर रावण क्रोधित हो उठा। "ये गश्त वाले सेवक अपवित्र बोल रहे हैं। उन्हें पकड़ कर मारो।" रावण के ऐसा कहने पर हनुमान ने स्वयं से विचार किया कि– 'मेरे द्वारा उत्पन्न किये गए विघ्न का वर्णन करने पर अगर ये गश्त वाले मारे गए तो अनर्थ हो जाएगा।' अतः अपनी पूँछ की फटकार से उन्होंने सुगन्धित तेल एवं कपूर के अठारह लाख दिये बुझा दिए। यह देखकर सभा में कोलाहल मच गया। सर्वत्र अंधकार हो गया। गश्त वाले सेवकों को पकड़े हुए राक्षसों को मारकर, सेवकों को मुक्त कर दिया। उनको मुक्त करने के पश्चात् हनुमान ने क्रोधपूर्वक अनेक प्रकार की लीलाएँ कीं।"

"सभा में अंधेरा होने के पश्चात् हनुमान ने सभासदों के वस्त्र, अलंकार, शस्त्रादि निकाल दिए। तब एक बोला– 'तुमने मेरे वस्त्र निकाल दिए,' दूसरा बोला– 'तुमने मेरे शस्त्र ले लिये।' भट ब्राह्मण कहने लगे– 'मेरी धोती ले ली।' इस प्रकार हनुमान ने गुप्त रूप से लूट पाट की। कुंडल लेते हुए कान तोड़ दिए। वस्त्र लेते हुए आखें फोड़ दीं। हाथों के अलंकार निकालते हुए हाथ तोड़ दिए। इस प्रकार हनुमान ने राक्षसों को संत्रस्त कर दिया। मुकुट लेते हुए मस्तक तोड़ दिए। कमरबंद लेते हुए कमर तोड़ दी। अंगूठी लेते समय उंगलियाँ तोड़ दीं। गले का हार लेते हुए गले मोड़ दिए। उनकी छाती पर प्रहार किया। इस प्रकार राक्षसों को पूरी तरह से संत्रस्त कर दिया। पैरों के आभूषण लेते समय पैर तोड़ दिए। इस प्रकार उनके सम्पूर्ण शरीर क्षतिग्रस्त कर दिए। भयभीत होकर वे राक्षस एक दूसरे के पीछे छिपने लगे। हनुमान ने इस प्रकार अद्भुत पराक्रम किया।"

गश्त लगाने वाले जो कह रहे थे, वह विघ्न वास्तव में उपस्थित हो गया है। सीता अत्यन्त क्रोधित हैं। वे रावण का वध अवश्य करेंगी। जानकी का क्रोध अद्भुत है, उसी ने यह पूँछ रूपी झंडा भेजा होगा। रावण जीवित है कि उसकी मृत्यु हो गई, यह भी कोई बता नहीं पा रहा था। सभा में अंधकार है और उसमें ही यह विघ्न उत्पन्न हो गया है-ऐसी बातें सभा में होने लगीं। राक्षस दुःखी हो गए। इन्द्रजित् और कुंभकर्ण का वध किया। उसके पश्चात् यहाँ रावण का वध किया। यह कहते हुए राक्षस गण भय से काँपने लगे। मारुति के पिता वायु ने क्रोधित होकर दीप बुझा दिए। रावण की मृत्यु के साथ राजाज्ञा के सूत्र टूट गए। अनेक राक्षस लूट लिये गए। उस समय जो राक्षस भागकर जाने लगे,उन्हें हनुमान ने पूँछ से मारा। अंधकार में सभी राक्षस फँस गए। सीता के क्रोध के कारण राक्षसों के लिए संकट उपस्थित हुआ। बाहर जाने के लिए मार्ग नहीं मिल रहा था। उसके कारण मृत्यु निश्चित थी। हनुमान

ने अंधेरे में रावण का मुकुट पूँछ से खींचा, तब रावण भयभीत होकर बोला– "मेरी मृत्यु निकट है।" हनुमान ने रावण के सिर पर, छाती पर प्रहार किया, जिससे रावण को मूर्च्छा आने लगी लेकिन भय से उसमें कुछ बोला न गया, अंधेरे में दिखाई नहीं दे रहा था परन्तु शरीर पर वार हो रहे थे, जिसके कारण रावण भय से थर-थर काँप रहा था। गश्त वाला सत्य ही कह रहा था- 'मेरे लिए वास्तव में विघ्न उपस्थित हो गया है। गुप्त रूप से मेरे ऊपर वार हो रहे हैं। उन निष्ठुर आघातों से अवश्य ही मेरे प्राणों का नाश होगा'। तब हनुमान बोले - "हे रावण, तुम्हारे द्वारा सीता को चुराने के कारण मैं राम दूत तुम्हारा सिर काटने के लिए यहाँ आया हूँ"।

हनुमान ने अपने नखों से रावण के दसों सिरों का छेदन कर डाला होता, परन्तु श्रीराम ने उन्हें वैसा नहीं करने दिया। इसीलिए उन्होंने रावण को छोड़ दिया। श्रीराम ने कहा था "तुम्हारे द्वारा रावण का वध कर देने से मेरा पुरुषार्थ व्यर्थ सिद्ध होगा।" अतः रावण को न मारते हुए हनुमान ने राक्षस समूह को लूटा व रावण को संत्रस्त किया और सभा में इस प्रकार का पराक्रम दिखाकर उन्होंने वहाँ से प्रस्थान किया। हनुमान द्वारा रावण को स्पर्श करते ही रावण मूर्च्छित हो गया। उसके कान में हनुमान ने कुछ रहस्य बताया परन्तु भ्रांतिवश रावण उसे समझ न सका। हनुमान का नाम सुनते ही भय से किसी को लघुशंका, किसी को अधोवायु होने लगी"। यह पत्रलिखित पढ़कर लक्ष्मण हँसने लगे। हँसते-हँसते वानरों के पेट में बल पड़ गए। श्रीराम भी हँसने लगे। हनुमान द्वारा सभा में मचायी गई खलबली को सुनते ही श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव एवं वानरगण सभी प्रसन्न हुए। ब्रह्मदेव ने आगे लिखा था– "तत्पश्चात् हनुमान अशोक वन में आये। सीता से एकांत में मिलने हेतु पेड़ पर गुप्त रूप से बैठ गए। तभी सीता के विरह के कारण विषयासक्त रावण, वहाँ आकर सीता से स्वयं बोला– "तुम मुझे स्वीकार करो, तुम्हें मैं सर्वश्रेष्ठ रानी बनाऊँगा। यह मैं भगवान् शिव की शपथ लेकर उन्हें साक्षी मानते हुए कह रहा हूँ। श्रीराम दीन हीन वनवासी है, राज्यभ्रष्ट है। अत्यन्त दैन्य अवस्था में है। उसका ध्यान त्याग कर इस राजा रावण का तुम वरण करो। तुम अत्यन्त बावली हो। मेरा प्रताप और मेरी श्रेष्ठता को देखो। तैंतीस कोटि देवता मेरे बन्दीगृह में हैं। इन्द्र मेरा छत्रधारी है, चन्द्र मेरे स्नानगृह का अधिकारी है। वसन्त को मेरी शय्या सजाने का कार्य सौंपा गया है। तुम्हारे द्वारा इस रावण का वरण करने से सुरासुर तुम्हारी वंदना करेंगे। मन्दोदरी सहित मेरी अस्सी हजार पत्नियाँ हैं, वे सभी तुम्हारी दासियाँ बनकर तुम्हारी आज्ञाधारक सेविकाएँ बन जाएँगी। मैं अनन्यभाव से तुम्हारी शरण आया हूँ। तुम मेरा निवेदन स्वीकार करो। मैं तुम्हारी चरण वन्दना करता हूँ, तुम मेरा पाणिग्रहण करो। सुरासुरों के लिए काल-सदृश यह प्रतापी लंकानाथ, तुम्हारी शरण आया है। अतः रघुनाथ को छोड़कर तुम मेरी भक्त हो।"

रावण के वचन सुनकर सीता हँसकर बोलीं "धिक्कार है तुम्हारा और तुम्हारे इस बड़प्पन का। हे रावण, स्वयंवर के समय शिवधनुष उठाते समय तो तुम्हारा मुख काला पड़ गया था। श्रीराम ने तुम्हें लज्जित कर दिया। अब व्यर्थ में अपने बल की डींग क्यों हाँक रहे हो, श्रीराम ने बालपन में ही ताड़का का वध किया और सुबाहु को मारकर गुरु का यज्ञ पूर्ण कराया। शूर्पणखा की दुर्गत कर, चौदह सहस्त्र राक्षसों को मारकर, त्रिशिरा एवं खर दूषण का वधकर जन-स्थान पुनः ब्राह्मणों को प्रदान किया। रघुनाथ ने रथ के बिना लड़ते हुए भी पराक्रम किया। अब अपने अपयश के विषय में सुनो– "पार्वती सहित शंकर के कैलास पर्वत को आन्दोलित करने वाले तुम्हें अन्त में श्रीराम के भय से भिखारी संन्यासी बनना पड़ा। कपटी संन्यासी होकर अन्त में तुमने परस्त्री को चुराया। तुम्हारे पास तनिक मात्र भी पुरुषार्थ न होते

हुए, व्यर्थ में अपनी बड़ाई क्यों कर रहे हो। श्रीराम परब्रह्म हैं और तुम काले कौए के सदृश हो, यह सीता कल्पांत में भी तुम्हारे स्पर्श से स्वयं को अशुद्ध नहीं करेगी। श्रीराम की पत्नी को चुराने के कारण तुम तीनों लोकों में निन्दनीय सिद्ध हो गए हो। हे रावण, तुम्हारा मुख भी मैं नहीं देखूँगी। अरे, जिस प्रकार चन्द्र चकोर कौए की संगत नहीं करता, वैसे ही श्रीराम को त्याग कर मैं दशानन का स्पर्श भी नहीं करूँगी। लक्ष्मण की मर्यादा - रेखा तक को तुम लाँघ न सके, ऐसे तुम्हारे सदृश तुच्छ व्यक्ति को मैं देखूँगी भी नहीं। जिस प्रकार साधु, सज्जन, सौम्य मन्त कभी विष्ठा को हाथ नहीं लगाते हैं, उसी प्रकार हे अपवित्र रावण, मैं स्वयं को तुम्हारा स्पर्श भी नहीं होने दूँगी।" सीता की प्रतिक्रिया सुनने पर उसके शब्द-बाण रावण के हृदय में चुभ गए। वह क्रुद्ध हो उठा तथा बोला- "सीता की यह निन्दा करने वाली जीभ काट डालो। अब मैं इसका बल पूर्वक उपभोग करूँगा। मैं देखता हूँ कि मुझे कौन रोकता है रघुनाथ इसकी कैसे रक्षा करता है ? अब यह कैसे पतिव्रता रहती है।"

रावण के ये वचन सुनकर हनुमान क्रोधित हो उठे और रावण का वध करने के लिए वृक्ष पर बैठे-बैठे तत्पर हो उठे, उनकी आँखें फैल गईं। पूँछ चाबुक की तरह ऐंठ गई। रावण के दस सिरों को काटने के लिए वह गुर्राने लगे- "मेरे समक्ष यह सीता को सता रहा है। अतः दूत होने के कारण मात्र रोते हुए रघुनाथ को इसकी सूचना देना, कोरी नपुंसकता ही होगी। रावण ने सीता का स्पर्श भी किया तो मैं उसके प्राण हर लूँगा।" बलवान् मारुति यह विचार कर वृक्ष पर बैठे बैठे गुर्राने लगे। गुर्राने का स्वर सुनकर रावण भय से कँपित हो उठा। ऐसा लगता था मानों सीता की रक्षा के लिए श्रीराम ही स्वयं वहाँ उपस्थित हो गए हों। रावण सोच में पड़ा था कि अब क्या करे, तभी मन्दोदरी वहाँ आयी। वह रावण का हाथ पकड़कर भवन में ले गई और बोली- "आपको एक रहस्य बताती हूँ। श्रीराम, सीता के पास अखण्ड निवास करते हैं। आपके द्वारा इसे हाथ लगाते ही अकारण मृत्यु को प्राप्त होंगे"। उसके द्वारा ऐसा कहते ही रावण भयभीत हो उठा। सीता वृक्ष के नीचे बैठकर विलाप करते हुए कहने लगीं - "श्रीराम भक्त लक्ष्मण को यन्त्रणा देने के कारण मुझे श्रीराम का वियोग हुआ, मेरा रावण ने हरण किया। भक्तों को कष्ट देना महापाप है। श्रीराम की आज्ञा से मेरी रक्षा के लिए लक्ष्मण मेरे पास रुके थे। मैंने व्यर्थ ही उन्हें यन्त्रणा दी। इसी कारण रावण मुझे बन्दी बनाने में सफल हो गया। दूसरे को यन्त्रणा देने वाले का मुख रघुनन्दन कभी नहीं देखते। उन्होंने मुझे निंद्य मानकर मेरा त्याग किया। दूसरे को यन्त्रणा देने वाला अवश्य दुःख प्राप्त करता है।"

"श्रीराम के भक्तों को कष्ट देना पंचमहापातकों से भी अधिक भयंकर होता है। (ब्रह्महत्या, सोना चुराना गुरुपत्नी से संभोग इत्यादि का इसमें समावेश है) इसी कारण श्रीराम मुझपर कुपित हैं। अब मुझे कौन मुक्त करेगा। श्रीराम के तूणीर के भयंकर बाणों से लंका का निश्चित नाश होगा। रावण का सपरिवार निर्दलन होगा। श्रीराम के बाणों के समक्ष रावण कीटक सदृश है परन्तु मैंने सखा लक्ष्मण को कष्ट दिया, इसीलिए रघुनन्दन मुझ पर कुपित हैं अन्यथा क्षणमात्र व्यतीत किये बिना राम ने दशानन का वध कर दिया होता। वास्तव में किसी दास को दण्ड उसका सिर मुँड़वाकर दिया जाता है तथा स्त्री को दंड उसकी उपेक्षा कर देते हैं " यह कहते हुए सीता विलाप करने लगीं। "श्रीराम के द्वारा उपेक्षित मैं अभागी जीवित क्यों हूँ, शीघ्र मेरे प्राण चले जायें" ऐसा कहते हुए वह पश्चात्ताप करने लगीं श्रीराम के स्मरण से उनके शरीर पर रोमांच एवं स्वेद उत्पन्न हो गया तथा नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे। सीता को विलाप करते देखकर हनुमान की आँखें भर आईं। उनके मन में सीता के प्रति सहानुभूति उत्पन्न हुई और उन्होंने उनके समक्ष मुद्रिका डाली, वह मुद्रिका देखकर उनकी ग्लानि समाप्त हुई तथा चिन्ता दूर हुई, मन शांत हुआ।

वह आश्चर्यचकित हुई। श्रीराम को मुद्रिका की यही विशेषता है कि वह दुःखों का नाशकर अपार सुख देने वाली है। अंधेरे में दीपक का तेज हरकर सूर्य एवं चन्द्र को जुगनू के सदृश कर, वह चारों ओर अपना प्रकाश फैलाने वाली है। मुद्रिका के ऊपर श्रीराम का नाम देखकर सीता उस मुद्रिका को निहारने लगी, उस अविनाशी मुद्रिका पर अक्षरों में दशावतारों का भाष्य एवं चरित्रमालिका दिखाई दी, जो सीता को अत्यन्त सुखदायक अनुभव हुई। मुद्रिका का अन्तर्भाग अत्यन्त पवित्र था। उस पर विनाश एवं अविनाश से परे श्रीराम-नाम दिखाई दिया। वह मुद्रिका आनंदयुक्त होने के कारण रोमांचित होकर सीता आनंदाश्रु बहाने लगीं। सोने की मुद्रिका पर श्रीराम का स्वर्णिम नाम देखकर उसकी महत्ता से सीता सुखी हुई। वह मुद्रिका न होकर 'स्वयं श्रीराम ही आये हैं', सीता में ऐसा भाव उत्पन्न होकर उन्होंने अपना आँचल सँभाला। अचानक श्रीराम के आगमन का आभास होकर उनका मुख लज्जा से झुक गया। वह हर्षित होकर सुख से डोलने लगीं। वह लक्ष्मण जिसे, मैंने कष्ट दिया, वह कहाँ होगा ? अपने केशों से मैं उसके चरण पखारूँगी, उन्हें साष्टांग प्रणाम करूँगी और साथ ही राम सदृश मिठास भरे शब्दों में कहूँगी– "मेरे लिए आप शीघ्र आयें, आपके चरण अपनी केश राशि से पखारूँगी।" इस प्रकार निरुपम ब्रह्मलिखित सीता-चरित्र सुनकर श्रीराम विचलित हो गए, उनका मन प्रेम भावना से भर गया।

सीता को पुकारते हुए रघुनंदन उठे। उन्हें दूसरी ओर सीता रूपी चिद्रत्न दिखाई दिया, श्रीराम दोनों हाथ फैलाकर उठ खड़े हुए और वेग से आगे बढ़ने लगे। यह देखकर वानरगण चकित हुए। सुग्रीव मूर्च्छित हो गए। पत्र का अर्थ ज्ञात होने के कारण लक्ष्मण भी मूर्च्छित हो गए। रघुनाथ का हर्ष छलक रहा था। वे कह रहे थे– "धन्य हो यह सुदिन हनुमान, मेरी सीता की भेंट मुझसे करवा दी।" यह सुनकर हनुमान बोले– "मैंने बहुत बड़ी भूल की, अगर मैं सीता को यहाँ लाता तो श्रीराम प्रसन्न होते। मुझे पश्चात्ताप हो रहा है, मुझसे भूल हो गई। मुझमें यह कैसी नपुंसकता आ गई है। मैं अभी क्षणमात्र में सीता को लाता हूँ। रघुनाथ एक क्षण भर के लिए धैर्य धारण करें, मैं अभी वेगपूर्वक जाकर सीता को लाता हूँ।" ऐसा कहकर श्रीराम के चरणों पर मस्तक रखकर हनुमान ने उड़ान भरी। हनुमान द्वारा उड़ान भरते ही श्रीराम को परिस्थिति का ज्ञान हुआ। उन्होंने शीघ्र जाकर हनुमान को रोका और बोले– मैं कह रहा हूँ, वह ध्यानपूर्वक सुनो। "ब्रह्मलिखित सुनते ही मेरे हृदय में प्रेम उमड़ पड़ा। अर्द्धचेतन अवस्था में मैं सीता-सीता पुकारने लगा। अतः तुम न जाओ।" इस पर हनुमान श्रीराम को लेकर उड़ान भरने वाले थे, तब अंगद ने हनुमान को रोका। हनुमान राम सहित अंगद को भी ले जाने लगे। तब जाम्बवंत ने उन सभी को रोक लिया। पुनः सुग्रीव ने हनुमान को रोका। सुग्रीव सहित जाते हुए हनुमान को दौड़कर लक्ष्मण ने रोका, अब हनुमान अंगद, सुग्रीव, जाम्बवंत और राम तथा लक्ष्मण को लेकर लंका जाने लगे।

हनुमान का मनोगत था कि श्रीराम रावण को, लक्ष्मण इन्द्रजित् को मारेंगे और हम वानर गण राक्षसों को मारेंगे। तत्पश्चात् सीता को लेकर सुखपूर्वक वापस लौट आयेंगे। मारुति का मनोगत जानकर श्रीराम ने हनुमान से क्षमा माँगी, श्रीराम को ऐसा करते देखकर हनुमान ने राम को साष्टांग प्रणाम करते हुए कहा "आपकी आज्ञा प्रमाण है। प्राणान्त अवस्था में भी मैं उसका उल्लंघन नहीं करूँगा। आपको सीता की अवस्था का ज्ञान हुआ, मैंने शीघ्र उसे यहाँ लाने के लिए यह दुस्साहस किया। आप मुझे क्षमा करें " यह कहकर उन्होंने श्रीराम के चरण पकड़ लिए। श्रीराम ने हनुमान को आलिंगनबद्ध किया। स्वामी और भक्त दोनों सन्तुष्ट हुए, सभी ने हनुमान के अद्भुत सामर्थ्य की प्रशंसा की।

❧❧❧❧

अध्याय २८

[ब्रह्मलिखित सीता-हनुमान संवाद कथन]

हनुमान जब राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, अंगद, जाम्बवंत सहित उड़ान भरने लगे तब देवता गगन में उनकी कीर्ति का बखान करने लगे, भूतल पर वीर योद्धा उनका यशगान करने लगे। तत्पश्चात् श्रीराम ने प्रेमपूर्वक लक्ष्मण से कहा– "सौमित्र, आगे लिखा हुआ ब्रह्मलिखित पढ़ो। मारुति ने मुद्रिका देकर एकांत में सीता से भेंट की धन्य हो ब्रह्म का पत्र, धन्य हैं श्रोता राम, धन्य हैं पत्र के वाचक लक्ष्मण तथा धन्य हैं वे वानरगण। पत्र का वाचन शुरू हुआ।

मुद्रिका देखकर सीता की प्रतिक्रिया– मुद्रिका के दैदीप्यमान तेज के कारण सीता को राम के आगमन का आभास हुआ, जिससे वे लजाते हुए प्रेम से परिपूर्ण हुईं। जब वह कुछ सतर्क हुईं तो उन्हें अपने समक्ष अंगूठी दिखाई दी। वह श्रीराम की मुद्रिका है, यह जानकर वे प्रसन्न हुईं। उन्होंने मुद्रिका को हृदय से लगाया फिर चूमते हुए अत्यन्त सुख का अनुभव करने लगीं– "मैं तुम्हारी वंदना करती हूँ, तुम मुझसे दूर हो गईं। तुम्हारे चरण धोकर मैं उस तीर्थ का प्राशन करूँगी। लक्ष्मण को कष्ट देने के पाप का परिमार्जन होकर मुझे श्रीराम की पूर्ण प्राप्ति हुई। तुम राममुद्रा होने के कारण मेरी सखी के सदृश हो। मैं शय्या बिछा देती हूँ, उस पर तुम विश्राम करो क्योंकि समुद्र पर्वतों को लाँघकर आते-आते तुम थक गई होगी। मैं वामांगी हूँ और तुम दाहिनी ओर स्थित हो, हम सखी ही नहीं वरन् आनन्दपूर्ण भगिनी हैं, मुझ पर दया कर, श्रीराम की सम्पूर्ण कथा मुझे सुनाओ"। सीता को उस अवस्था में सचेतन-अचेतन का कुछ ज्ञान न था। सद्‌गुरु के प्रति वह भक्ति और प्रेम देखकर हनुमान की आँखें भर आईं। "धन्य हो सीता की भक्ति ऐसी भक्ति और प्रेम हममें नहीं है। हम स्वयं को रामभक्त कहते हैं लेकिन सीता का प्रेम नित्य है, इसीलिए श्रीराम इनसे सन्तुष्ट हैं। जो कोई सगुण व निर्गुण श्रीराम भक्त की वंदना करता है, वह नित्यमुक्त हो जाता है और जो रामभक्त की निन्दा करता है, वह नरक में जाता है," हनुमान यह स्वयं से कह रहे थे। इधर सीता मुद्रिका से बातें कर रही थीं– "जगत् ज्येष्ठ श्रीराम क्या करते हैं ? अगर राम और लक्ष्मण उत्तम स्थिति में हैं तो वे दोनों मुझे मुक्त कराने के लिए क्यों नहीं आते ? उनके पास भीषण बाण होते हुए भी वे अपना पराक्रम क्यों नहीं दिखाते ? श्रीराम के तूणीर के भयंकर बाण समुद्र सोख लेंगे। दशानन का नाश कर मुझे मुक्त करेंगे अथवा उन दोनों ने सृष्टि का त्याग कर दिया होगा। उनसे यह दुःख कहा नहीं जाता, इसीलिए उन्होंने मौन धरकर सज्ञान राममुद्रिका भेजी है। यह मौन मुद्रिका यही कहती है कि श्रीराम परलोक में गये क्योंकि अगर वे होते तो निश्चित ही मुझे निमिष मात्र में यहाँ से मुक्त कराते। श्रीराम का एक-एक बाण तीनों लोकों का नाश करने वाला है। उसके समक्ष रावण तुच्छ है। मैंने सखा लक्ष्मण को कष्ट दिये, इसी कारण राम रुष्ट हैं और मुझे इस अवस्था में छोड़कर परलोक चले गये हैं।"

"मुद्रिके, मुझसे सत्य कहो। रावण द्वारा मेरा हरण करने के पश्चात्, पंचवटी में आकर, उस संकट की अवस्था में उन्होंने क्या किया ? तुम्हारे द्वारा कुछ प्रत्युत्तर न देने का कारण सम्भवतः यह होगा कि मेरे विरह से राम और लक्ष्मण दोनों परलोक चले गये होंगे अथवा उन्होंने लोक लज्जा के भय से विषप्राशन किया होगा; मेरे दुःख से वे मूर्च्छित हो गए होंगे। मेरे दुःख से शोक करते हुए उन्होंने फलमूलों का आहार एवं जल त्याग दिया होगा, जिससे वे शक्तिहीन एवं भ्रमित अवस्था में होंगे

सीता-सीता का आक्रोश करते हुए उन्होंने प्राण त्याग दिये अथवा प्यास से व्याकुल होकर पानी-पानी कहते हुए वे चले गये। पर्ण-कुटी में मेरे न दिखाई देने के कारण उन्होंने शस्त्रों से स्वयं को समाप्त किया होगा अथवा गले में फाँसी लगा ली होगी। अथवा प्रचंड पर्वत से छलाँग लगाकर दोनों ने प्राणान्त कर लिया होगा अथवा दुःख से वन में मूर्च्छितावस्था में पड़े होने पर बाघ, सिंह, सियार आदि ने उन्हें नष्ट कर दिया होगा। जंगली हाथियों ने रौंद दिया होगा या फिर रावण ने कपट से उनका वध कर दिया होगा। वास्तव में वे दोनों साहसी वीर हैं। उनके समक्ष तो बाघ, सिंह कुछ भी नहीं है। विश्वामित्र के साथ वन में श्रीराम रात-दिन जागकर पहरा देते थे और यज्ञ में विघ्न डालने वाले सुबाहु को उन्होंने मार दिया। श्रीराम और लक्ष्मण को छलने के लिए आने वाली सुन्दर रूप धारी शूर्पणखा को उन्होंने दुर्गति की। राम के समक्ष छल-कपट नहीं चल सकता।"

"श्रीराम मूल रूप में उदास वृत्ति के हैं और उस पर रावण द्वारा मेरा हरण किये जाने के कारण वे शस्त्र त्याग कर संन्यासी हो गए होंगे। वन में रहने वाले वनवासी हो गए होंगे अथवा एक गूढ़ बात यह हो सकती है कि रावण द्वारा मेरा हरण करते ही उन्होंने समाधि शय्या में प्रवेश कर लिया होगा। जन्म-मरण, व्याधियाँ जहाँ समाप्त होती हैं, उस समाधि को उन्होंने स्वीकार किया होगा। देह एवं देहबुद्धि से परे जाने के कारण वे स्वयं को तथा पत्नी सीता समेत सभी को भूल गए होंगे। वे समाधि-अवस्था में पहुँचने के कारण एकाकार (समपद अवस्था में) हो गए होंगे। उस अवस्था में राम और सीता, सबका उन्हें विस्मरण हो गया होगा। रावण ने अपनी पत्नी का हरण किया है, यह भी स्मरण उन्हें नहीं होगा। समाधि-सुख प्राप्त करने के पश्चात् देह का प्रपंच मिथ्या सिद्ध हो जाता है। अतः सब मिथ्या होने पर मेरे लिए कौन आयेगा।" यह ब्रह्मलिखित सुनते समय श्रीराम समाधिस्थ अवस्था में पहुँच गए। समस्त इन्द्रियाँ शांत हो गईं; उन्हें कर्तव्य का विस्मरण हो गया। जो ब्रह्मलिखित में था, जो सीता ने कहा था, श्रीराम स्वाभाविक रूप से उसी स्थिति में पहुँच गए। उनके नेत्र आधे मुँद गए, प्राण शिथिल हो गए, चित्त चैतन्य से समरस हो गया और वे नित्य परब्रह्म स्थिति को पहुँच गए। ब्रह्म स्थिति का यही लक्षण है कि जहाँ पर 'मैं' और 'तुम' का भेद समाप्त हो जाता है। राम स्वयं को भूल गए। लक्ष्मण की वाणी बन्द हो गई, राम-स्वरूप में लीन हो गए। तब सुग्रीव चिन्तित हो उठे वानरगण विचलित हो गए उस समय हनुमान को लगा कि लक्ष्मण की वाणी अवरुद्ध हो गई तथा श्रीराम समाधिस्थ हो गए। अतः सीता बंदिवास से मुक्त न हो सकेंगी और कार्य पूरी तरह से व्यर्थ हो जाएगा।

हनुमान मौन धारण कर, हाथ जोड़कर कथा सुन रहे थे। राम की समाधि अवस्था देखकर वे विचलित हो गए 'श्रीराम समाधिस्थ अवस्था में हैं, यह निश्चित है। मेरे द्वारा सीता को ढूँढ़ने की वार्ता अब व्यर्थ हो रही है। आगे के कार्य रुक गए हैं। राम की यह समाधि अच्छी नहीं है। मैंने शपथ लेकर सीता से कहा है कि मैं श्रीराम को यहाँ लेकर आऊँगा। उसके समक्ष समाधि सुख नगण्य है मेरी शपथ मिथ्या नहीं हो सकती। श्रीराम स्वयं स्वभावतः समाधि अवस्था के परे हैं। उनको कैसी समाधि अवस्था ? अभी मैं उन्हें सतर्क करता हूँ' श्रीराम की स्वरूप स्थिति से हनुमान पूरी तरह से अवगत थे उन्होंने श्रीराम को सतर्क करने के लिए एक उपाय किया। उन्होंने अपनी देहावस्था से परे जाकर जहाँ 'मैं' 'तुम' का भेद नहीं है, उस अवस्था में प्रवेश किया। महाकारण में प्रवेश कर श्रीराम को सजग करने के लिए वाणी के बिना सम्पर्क और अभिव्यक्ति साधते हुए गुरुवचन कहने लगे। सद्गुरु वसिष्ठ का एक श्लोक पाँचवीं वाणी में (शब्द रहित) श्रीराम की समाधि-अवस्था दूर करने के लिए हनुमान कहने लगे,

पाँचवीं वाणी का तात्पर्य है– शब्द के बिना ही अर्थ प्राप्त होना। श्रीराम समर्थ श्रोता थे, इस कारण उन्हें उसका अर्थ ज्ञात हो गया। वह अर्थ था– "अन्तर्मन से अद्वैत होते हुए भी बाह्य रूप में लोग स्वधर्म का पालन करते हैं। अन्तर्मन में आत्मबोध होता है परन्तु बाह्यतः वेद विवेक का पालन करते हैं। अन्तर्मन से सर्वस्व का त्याग करते हुए बाह्य रूप से विविध भोगों को भोगते हैं। अपना समाधियोग त्यागकर अपनी कीर्ति से जग का उद्धार करो। देवताओं को बन्दिवास से मुक्त कर हे राजा राम, विजय का ध्वज ऊँचा करो।" सद्गुरु वसिष्ठ की यह उक्ति सुनकर रघुनन्दन स्वयं सजग हो गए। उन्होंने हनुमान को आलिंगनबद्ध किया। श्रीराम के हृदय की बात को भगवत्‌भक्त हनुमान जानते थे तथा हनुमान के भावों को हृदयस्थ श्रीराम जानते थे। भक्त और भगवान् की यह अनन्यता श्रुतिशास्त्रों को भी अगम्य है। श्रीराम की अनन्य भक्त सीता और हनुमान हैं। उनकी कथा का श्रवण करने में रघुनाथ को भी आनन्द का अनुभव हो रहा था।

सीता का मूर्च्छित होना; मारुति द्वारा रामचरित्र कथन– उस ब्रह्मलिखित पत्र में अशोक वन में सीता ने आगे क्या कहा- यह बताया था -- "उस अचेतन राम-मुद्रिका को सम्मान देते हुए उसे प्रणाम कर, सीता ने पूछा- तुम यहाँ तक कैसे पहुँचीं, घाट कैसे पार किया ? समुद्र को पार करना अत्यन्त कठिन होते हुए भी तुम इस पार तक कैसे पहुँचीं। तुम्हें श्रीराम लाये हैं या और किसी के साथ आई हो ? यह सब मुझसे बताओ। यह सत्य है कि तुम्हारे ऊपर राम-नाम अंकित होने के कारण तुम्हें चराचर में कहीं भी प्रतिबंध नहीं हो सकता। तुम सुखपूर्वक भवसागर तर जाओगी। संसार में धन्य हो जाओगी। जिसको राममुद्रा प्राप्त होती है, वह संसार में सभी प्रकार से तर जाता है' वास्तव में तुमसे यह प्रश्न करना ही अनुचित है। राम की कृपा से तुम यहाँ आई हो। तुममें मेरे प्रति प्रेम भाव है अतः मुझे सारे रहस्य बताओ। मेरे बाद पंचवटी में उस संकट की घड़ी में राम ने क्या किया ?" मुद्रिका द्वारा कुछ उत्तर न देने पर सीता आगे बोली– "राम लक्ष्मण चले गये, यही तुम्हारे मौन का कारण है। न कह कर भी तुमने यह कह दिया है। श्रीराम निजधाम को चले गये, यह कहने के लिए ही उन्होंने तुम्हें भेजा है। अतः अब मैं भी देह त्याग करती हूँ।" यह कहकर सीता प्राण त्यागने के लिए सिद्ध हुईं। राम मुद्रा को हृदय से लगाकर उसको साक्षी रखकर राम का स्मरण करते हुए सीता मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़ीं। सीता के गिरते ही हनुमान विचलित हो उठे। उन्हें लगा कि राम के विरह से संतप्त सीता वास्तव में प्राण त्याग कर देंगी। सीता द्वारा प्राण-त्याग करने पर राम को मुख कैसे दिखा पाऊँगा ?

"आपकी पत्नी का देहांत हो गया और मैं बड़ा पराक्रमी हूँ इसलिए वापस लौट आया। समुद्र को लाँघकर मैं ही सीता के लिए विघ्न सिद्ध हुआ। श्रीराम की मुद्रिका उनके समक्ष डालकर मैंने उनके प्राण हर लिये। मुद्रिका का चिह्न दिखा कर उन्हें वापस न ले जाकर उस चिह्न से ही उनके प्राण ले लिए। अब मैं रघुनाथ से कैसे भेंट करूँ ? हनुमान संकट में पड़ गए। मैंने मुद्रिका जल्दी डालने की भूल की। श्रीराम की मुद्रिका के कारण विरह से सीता के प्राण चले गए। मैंने लंका आकर सीता और राम, दोनों को खो दिया है। मेरे ऊपर ऐसा अनर्थ आ पड़ा है। मेरे कारण ही सीता के प्राण गए और मुझे अपयश का भागी होना पड़ा। हे रघुनाथ ! अब मैं क्या करूँ। आप ही मेरे बुद्धि दाता हैं, मैं आपका दीन-हीन भक्त हूँ; आप कृपालु हैं। मेरे ऊपर आया हुआ संकट आप दूर करें।" इस प्रकार दुखित हो हनुमान ने श्रीराम का आदरपूर्वक स्मरण किया और तुरन्त उन्हें बुद्धि हुई कि सीता को पुनः चेतनावस्था

में लाने के लिए रामनाम संकीर्तन करें। उसी के साथ उन्होंने श्रीराम की कीर्ति का आदरपूर्वक गायन प्रारम्भ किया. स्वार्थ और परमार्थ, दोनों सिद्ध हो सकें, हनुमान ने ऐसा कीर्तन करना प्रारम्भ किया.

"कौशल्या के गर्भ में गर्भातीत दाशरथी श्रीरघुनाथ मूर्तिमंत परब्रह्म सूर्यवंश में अवतरित हुए। राम पुरुष हैं सीता प्रकृति हैं अर्थात् माया सदृश हैं। राम चैतन्य हैं, सीता चिद्शक्ति हैं, वह धैर्य हैं और ये धीरता हैं। ऐसे वे धन्य हैं, जिन्होंने जग में अवतार लिया। जिस प्रकार मिठास और शक्कर ये दो नामों से एक ही वस्तु है, उसी प्रकार राम और सीता एकात्म अवतार हैं। श्रीराम नित्य अपने पिता एवं गुरु की आज्ञा के आधीन होकर आचरण करते थे। द्विजों के अनन्य भक्त राम, देवताओं की सहायतार्थ अवतरित हुए। कैकेई को दिये वर के कारण दशरथ ने राम को दण्डकारण्य में भेजा। सखा लक्ष्मण ने भी उनके साथ ही वनवास के लिए प्रस्थान किया। वनवास में श्रीराम, गोदावरी के तट पर पंचवटी में रहे। सीता भी उनके साथ में, वहाँ पर थीं। शूर्पणखा की दुर्दशा कर तथा त्रिशिरा एवं खर-दूषण का वध कर राम ने जनस्थान जीत कर वह ब्राह्मणों को दान कर दिया। सीता ने मृगकंचुकी के लोभ-वश श्रीराम को मृग के पीछे भेजा। तत्पश्चात् लक्ष्मण को आरोपों से बाध्य कर सीता ने बाहर भेजा। उस समय रावण ने सीता का हरण कर लिया। श्रीराम और लक्ष्मण सीता को ढूँढते हुए उस स्थान पर आये, जहाँ जटायु और रावण का युद्ध हुआ था। कृपालु श्रीराम ने जटायु का उद्धार किया. आगे कबंध का वध कर, वे दोनों किष्किंधा आये, वहाँ श्रीराम ने बालि का निर्दलन कर सुग्रीव को राज्य दिया और अंगद को युवराज पद दिया, जिसके कारण वानरों से उनकी मैत्री हुई। आपको ढूँढ़ने के लिए रघुनाथ ने ही मुझे भेजा है। हे सीता, आपसे मिलने के लिए राम ने व्रत धारण किया है। आप वानर पर विश्वास करें, इसीलिए उन्होंने मुझे मुद्रिका प्रदान की। अतः आप अपनी निद्रा एवं तन्द्रा त्याग कर इस राम-दूत वानर से भेंट करें।" यह रामकथामृत सुनकर सीता आनन्दपूर्वक उठीं परन्तु उस कथा का निरूपण वृक्ष से होता हुआ देखकर आश्चर्यचकित हुईं।

सीता-हनुमान भेंट; शंका की अभिव्यक्ति– मेरे ऊपर कृपा दृष्टि होने के कारण श्रीराम व्यथित हो उठे और मुझे आश्वस्त करने हेतु वृक्षों के माध्यम से कथा-वर्णन करते हुए श्रीराम निश्चित ही यहाँ आये हैं। हे वृक्षो, मैं तुम्हारी वन्दना करते हुए पूछती हूँ कि राम-कीर्तन कौन कर रहा है, उसके दर्शन कर मैं उसे प्रणाम करूँगी। जो यह राम-कथा इतनी सुन्दर शैली में कह पाया, उस भाग्यवान् की चरण-धूलि की मैं प्रसन्न होकर वन्दना करूँगी। कृपा कर वह मुझे दर्शन दे। जिसके मुख में राम-संकीर्तन है, उसका मुख देखकर मुझे समाधान की प्राप्ति होगी। अतः कृपा कर वह मुझसे भेंट करे। मैं प्रेम सहित अत्यन्त उत्कंठा से उस चिह्न रूपी मुद्रिका लाने वाले से मिलना चाहती हूँ," सीता द्वारा यह कहते ही हनुमान वृक्ष पर से स्वयं नीचे उतरे। उन्होंने सीता के चरणों पर मस्तक रखकर उनकी वन्दना की। उस समय हनुमान को ऐसा आनन्द हुआ मानों उन्होंने अमृतसागर का पान किया हो अथवा कलिकाल पर विजय प्राप्त की हो। उनके नेत्रों से आनन्दाश्रु झरने लगे। वे सीता के चरणों पर गिरकर सुख से भाव विभोर होकर डोलने लगे। आनन्दपूर्वक पूँछ ऊपर कर सीता के समक्ष नाचने लगे।"

सीता के मन में एक शंका उत्पन्न हुई कि यह स्वयं को राम-दूत कह रहा है परन्तु ये राम के साथ कैसे हो सकता है क्योंकि पंचवटी में तो यह नहीं था। क्या पता यह वनचर कौन है, कैसा है? यह नाना प्रकार की चेष्टाएँ कर रहा है। इससे पूर्व जटायु को मैंने देखा था परन्तु इस वानर को कभी देखा नहीं। सम्भव है मुझे छलने के लिए अचानक रावण ही यहाँ आया हो। पहले संन्यासी बनकर आया

था, अब वानर वेष में आया होगा। मैं इस पर क्यों विश्वास करूँ ? फिर उसे लगा– यह रामकथा सुना रहा है यह रामभक्त कपटी निश्चित ही नहीं होगा। इसने सच्ची रामकथा सुनाई है अतः इसे झूठा समझना उचित नहीं है। अब मैं इसका पूर्ववृत्त पूछती हूँ। सीता ने हनुमान से उनका पूर्ववृत्त पूछने के लिए कहा– "मेरे वनवास में रहने पर तुम नहीं थे। तुम्हारा आगमन कैसे हुआ, यह आदि से अन्त तक बताओ, श्रीराम को तुमने कहाँ देखा, उनसे तुम्हारी भेंट कैसे हुई ? तुम्हारी क्या बातें हुईं, जिससे तुम्हारे हृदय में राम के विषय में प्रेम का निर्माण हुआ। श्रीराम का कार्य करने हेतु तुम्हारे मन में उत्साह का संचार कैसे हुआ, यह सब रहस्य मुझे बताओ। श्रीराम की भेंट से तुम्हें सुख का अनुभव कैसे हुआ ? उनकी वाणी का अमृत तथा उनकी संगति का सुख और आनन्द का संयोग कैसे हुआ, यह बताओ तथा राम के रूप एवं गुण-लक्षण के विषय में और सखा लक्ष्मण के विषय में कुछ चिह्न मुझे बताओ। श्रीराम की कथा श्रवण करते समय मन का दुःख दूर होता है भव का भय और चिन्ता दूर होती है और आनन्द का अनुभव होता है। मैं बार-बार तुमसे प्रेम पूर्वक पूछ रही हूँ क्योंकि उनकी कथा सुनने से मन को विश्रांति मिलती है। हे राम-भक्त, इसे तुम ध्यान में रखो। उसके श्रवण से मनन एवं निदिध्यासन नहीं हुआ तो कथा किसी बँझ स्त्री की रतिक्रीड़ा सदृश व्यर्थ है। श्रद्धा पूर्वक जो रामकथा सुनते हैं, वे स्वयं अहम् को विस्मृत कर पूर्ण रूप से ब्रह्म स्वरूप हो जाते हैं। चित्त चैतन्य हो जाता है। बुद्धि समाधि घन के सदृश हो जाती है और कर्म ब्रह्मपूर्ण हो जाता है। इन्द्रियों का आचरण चिन्मात्र हो जाता है "

सीता द्वारा हनुमान से श्रीराम के स्वरूप के विषय में पूछने के कारण हनुमान का मन एकाग्र हो गया और वह रामकथा की वार्ता भूल गए। श्रीराम के स्वरूप का स्मरण कर उसी अवस्था में पहुँच गए। उनकी आँखों से अश्रु धारा बहने लगी। शरीर रोमांचित हो काँपने लगा। स्वेद से शरीर भीग गया और वे मूर्च्छित हो गए। यह देखकर जानकी चकित हो गईं– "यह पर्ण खाने वाला वनचर वानर होते हुए श्रीराम के प्रति अनन्य प्रेम से सागर लाँघ कर यहाँ आया है। इसका तात्पर्य है यह सच्चा रामभक्त है।" यह विचार कर सीता ने प्रेमपूर्वक उनको सावधान किया और आश्वासन देकर राम की वार्ता पूछी।"

अध्याय २९

[हनुमान के प्रताप का ब्रह्मलिखित वर्णन]

सीता द्वारा श्रीराम कथा पूछने पर हनुमान का मन उत्साह से भर उठा और उन्होंने राम-कथा कहना प्रारम्भ किया। श्रोता-रूप में स्वयं सीता होने के कारण वे विशेष प्रसन्न थे। श्रोता द्वारा एकाग्र होकर श्रवण करने पर वक्ता आनन्दित होता है। उसी प्रकार आनन्दित होकर मारुति ने कहना प्रारम्भ किया– "श्रीराम ने सुस्वरूपता में मदन को भी जीत लिया है। राम सुस्वरूप होकर भी अरूप हैं क्योंकि वे चिद्स्वरूप हैं। सम्पूर्ण संसार को वे कमल-नयन के रूप में दिखाई देते हुए भी तत्वत: नेत्र विरहित भी सुस्वरूप दिखाई देते थे, उनके नेत्रों का विस्तार कानों तक था। कुंडलों का वर्णन करते हुए कोई उन्हें मकराकार कहता है परन्तु श्रवणों से विकार नष्ट होने के कारण वे निर्विकार आभूषण हैं। श्रीराम के कर्णों के कारण उन आभूषणों की शोभा बढ़ती है। वे श्रवण स्वयं ही आभूषण हैं तथा परब्रह्म स्वरूप हैं। परमार्थ का मुख्य तेज उनकी नासिका पर है, उसके बिना वह निर्नासिक है; उससे किसी प्रकार की

अपेक्षा करना व्यर्थ है। श्रीराम की नासिका से प्राणियों को प्राण वायु प्राप्त होती है। श्रीराम को ही प्राणों की गति अवगत है। उस गति का विश्रांति स्थल श्रीराम ही हैं। श्रीराम का मुख चन्द्र नित्यानंद के कारण निष्कलंक है। श्रीराम के कारण ही ब्रह्मादि देवताओं को और जीवों को सुख की अनुभूति होती है उनके दोनों होंठ ही जीव और शिव-स्वरूप हैं। श्रीराम के अधरों से उन्हें स्थिरता प्राप्त हुई है। श्रीराम के कारण परस्पर मिलकर एकाकार होते हुए उन्हें शिवसुख की प्राप्ति होती है। श्रीराम के मुख की दंत-पंक्तियाँ मानों ओंकार में निहित श्रुतियाँ हैं। श्रुति और स्मृतियों को श्रीराम के मुखचन्द्र के कारण विश्राम मिला है। सत् चित् और आनन्द की भृकुटि श्रीराम के मस्तक पर है। उसके मस्तक के भाग्य सहित लोक जीवन यापन करते हैं। प्रेम रूपी केशर सहित उनके मस्तक पर पीतवर्णी तिलक लगा हुआ है निश्चय रूप अक्षत मस्तक पर लगाने के कारण राम प्रेमीजनों के प्रिय हैं।"

श्रीराम निर्लोभी होकर अहम् रूपी मृग का वध करते हैं। मृग की नाभि से निकाली गई सोऽहम् रूपी कस्तूरी श्रीराम को अर्पित कर उनके सर्वांग पर उनका लेप किया है। जन विजन को घोलकर निज धैर्य रूपी चन्दन बनाकर उसकी सुगन्धि का श्रीराम को उबटन लगाया है। विद्या-अविद्या की शक्ति का पटल दूर कर उसके मोतियों की माला श्रीराम के कण्ठ में सुशोभित है। उनका शंखाकृति गला ओंकार स्वरूप है, वहीं से वेदों को मार्ग प्राप्त होता है। विधि-वाद जोर से उफन कर त्रिकांड*[1] में प्रकट हुआ है। त्वंपद,*[2] तत्पद*[3] से परे साधुरूपी रत्नजड़ित, आत्मतेज से चमकता हुआ एक पदक उनके हृदय में नित्य होता है। लोग कहते हैं– श्रीराम ने कमर में पीताम्बर धारण किया है परन्तु श्रीराम की कमर में चिदम्बर है, जो अंबर छिद्र को ढँकता है। श्रीराम का कछोटा अछिद्र है, उनका कछोटा अत्यन्त दृढ़ है। वह एकपत्नी व्रती हैं। जो उनके कछोटे का स्पर्श करता है, उसे वह भवसागर से तार देते हैं। श्रीराम को पूर्णरूपेण आत्मसात् करने के लिए भक्तिभाव की कटिमेखला है। उनको छोटी छोटी घंटिकाओं की मालाएँ रिद्धि-सिद्धि हैं। उनकी कमर देखकर सिंह अपनी कटि का अभिमान त्याग कर, लज्जित होकर, वन में चला गया। श्रीराम की कटि को देखने के लिए हिरण का ध्यान आकर्षित होकर उनकी मेखला पर जड़ गया इसीलिए वह वन जाना भूल गया। श्रीराम की कीर्ति ऐसी है कि उनके चरणों से जड़ एवं पाषाणों का भी उद्धार हो जाता है। वे सबकी गति हैं। श्रीराम उस गति की सद्गति हैं। श्रीराम के चरणों के आभूषणों से वेदों में न्यून भाव आ गया। वे मौन हो गए। हरिकीर्तन की गर्जना होती रही श्रीराम चिद्चिन्मात्र परात्पर परब्रह्म हैं। श्रीराम के मन के समक्ष गगन छोटा हो गया है। श्रीराम का मन देखकर श्रुतिशास्त्र मौन हो जाते हैं। श्रीराम के गुणों के कारण वह सगुण दिखाई देते हैं लेकिन वे निर्गुण हैं। श्रीराम नाम से त्रिगुणों का लोप हो जाता है। श्रीराम स्वयं निर्गुण हैं।"

श्रीराम के लक्षण जो देखता है, वह स्वयं सुलक्षण हो जाता है। श्रीराम स्वयं लक्ष एवं लक्षणों से परे हैं। श्रीराम के मुख में निहित अक्षर स्वयं क्षराक्षर से परे हैं। जो भाग्यवान् हैं, वे उनका कानों से श्रवण करते हैं और आनन्द से परिपूर्ण हो जाते हैं। श्रीराम के मुख के दर्शनों से प्राप्त सुख के समक्ष समाधि सुख भी फीका पड़ जाता है। स्वप्न में भी दुःख दिखाई नहीं देता वरन् हर्ष से जीवन भर जाता है, परब्रह्म के व्याप्त होने से समस्त क्रियाएँ एवं कर्म ब्रह्मरूप होते हैं। धर्म अधर्म एवं वेद वादों का उपशमन होता है। सखा-सौमित्र भी उन्हीं के समान हैं। दोनों अभिन्न हैं। आपको प्रणाम कर लक्ष्मण ने

*[1] गद्य, पद्य, गीत अर्थात् क्रमशः यजुर्वेद ऋगवेद व सामवेद। *[2] जीवात्मा, *[3] परमात्मा।

आपकी कुशलता पूछी है। श्रीराम ने आपके कल्याण की कामना की है।" हनुमान द्वारा ऐसा कहने पर सीता तटस्थ हुईं। उनके वचनों को सुनकर उन्हें अपना विस्मरण हो गया। हनुमान के वचनों के माध्यम से मानों साक्षात् राम ही उपस्थित हो गए थे। सीता का मनोरथ पूर्ण हो जाने से वे नित्य आनन्द में मग्न हो गईं। हर्षपूर्ण अवस्था में उन्होंने हनुमान को छोटे बालक के सदृश गले से लगा लिया। वानर मनुष्य-वाणी बोल रहा है और जिस कथा के सुनने से भवबन्धन से मुक्ति मिलती है, ऐसी राम-कथा उसके मुख में है, ऐसे उस वानर के वचनों का श्रवण करने से स्वयं श्रीराम से मिलने का उन्हें आनन्द प्राप्त हुआ। अत: दु:खों को विस्मृत कर उनके लिए सृष्टि सुखमय हुई सीता के इस आनन्द के समक्ष पुत्र-प्रेम का सुख भी छोटा था। हनुमान सीता के प्रिय बन गए। वे बोलीं "पति श्रीराम और देवर लक्ष्मण दोनों की कुशलता सुनकर मुझे अपार सुख की अनुभूति हुई है। छह मास की अवधि व्यतीत होने पर तुम्हारे मुख से श्रीराम के विषय में सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। तुम वास्तव में धन्य हो।"

सीता द्वारा हनुमान की प्रशंसा– "हे हनुमान, मरणासन्न स्थिति में किसी को अमृत पीने को मिले, सूखे से पीड़ित मछली को जल मिले, अकाल-ग्रस्त को मिष्ठान्न मिल जाय, वैसा ही अनुभव तुम्हारे वचनों से हो रहा है। तुमने जब राम स्वरूप का वर्णन किया तब मुझे अनुभव हुआ कि तुम्हारे शब्दों को ब्रह्म-सायुज्य से भी तुलना नहीं हो सकती। तुम्हारे वचनों से मैं सुखी हुई अत. मैं तुम्हें चिरंजीवी होने का वर देती हूँ। तुम्हारा जीवन ज्ञान एवं अनुभव से सम्पन्न होगा। श्रीराम चरणों के वैभव से नित्य नये सुख की प्राप्ति होगी। तुम्हारे समक्ष काल भी थर-थर काँपेगा, इतने महापराक्रमी बनकर भूमंडल में तुम यशस्वी होंगे। रामनाम सहित तुम्हें इन सब की प्राप्ति होगी श्रीराम के भजन से तुम विद्वान और बुद्धिमान होंगे। श्रीराम-स्मरण के प्रभाव से तुम्हें ज्ञानियों का सज्ञान मौन प्राप्त होगा। गाय के पग के जल सदृश लघु अनुभव कर सौ योजन अगाध सागर तुमने लाँघ लिया उसके समक्ष मेरा वरदान बहुत छोटा है। तुम महा बुद्धिमान हो। तुम्हें वानर कैसे कहा जाय। सुरासुरों के लिए भी कठिन ऐसी लंकानगरी को तुमने ढूँढ लिया। राक्षसों को पीड़ित कर दिया। अकेले तुमने रावण की सभा में राक्षसों को पीड़ित कर रावण को संत्रस्त कर दिया। लंका में हाहाकार मचाकर करोड़ों राक्षसों को नग्न कर दिया। इतना हाहाकार मचाकर भी तुम्हारे यहाँ आने के विषय में किसी को पता तक न चला, इतना सामर्थ्य तुममें है। रावण और मन्दोदरी का एकांत में संवाद सुनकर तुम अशोक-वन में आये, तुम वास्तव में धन्य हो। हे प्रतापी, तुम इस प्रकार अशोक-वन में आये अत: अब तुम्हीं जनक एवं जननी बनकर श्रीराम को शीघ्र लेकर आओ। मैं तुम्हारी सेवा करूँगी, अपने केशों से तुम्हारे चरण पखारूँगी।" यह कहते हुए सीता हनुमान के चरणों पर गिर पड़ीं। तब मारुति में स्फूर्ति पैदा हुई और वे बोले– "आपने मेरी चरण वंदना की है, अब मैं शीघ्र आपको श्रीराम से मिलवाऊँगा। आपकी ऐसी अवस्था में विलम्ब उचित नहीं, आप मेरी पीठ पर बैठें, मैं शीघ्र ही श्रीराम से भेंट कराता हूँ।"

हनुमान की सूचना; सीता की शंका और उसका निवारण– "मेरी पीठ पर बैठते ही क्षण-मात्र में मैं श्रीराम से भेंट कराऊँगा। अत: अब विलंब न करें। अगर मैं आपको यहाँ छोड़कर श्रीराम से आपके विषय में बताने गया और इधर राक्षसों ने आपका घात कर दिया तो मेरा ढूँढना ही व्यर्थ हो जाएगा। अभी मेरे देखते हुए रावण आपका वध करने के लिए आया था। ईश्वर ने ही वह अनर्थ होने से बचा लिया। अत: अब आपको यहाँ छोड़कर मैं नहीं जा पाऊँगा। आपको यहाँ छोड़कर जाने की बात अब त्याग दें और शीघ्र मेरी पीठ पर बैठें। मैं श्रीराम से आपको भेंट कराता हूँ। मन में किसी प्रकार

की शंका न रखें। शूर्पणखा की नाक काटने के कारण वह भी आप पर क्रोधित है वह महाझूठी राक्षसी सहज ही आपका वध कर देगी। लंका त्रिकूट महापर्वत बलपूर्वक उखाड़कर एक ही उड़ान में मैं आपको समुद्र के पार ले जाऊँगा और वहाँ से एक ही उड़ान में राम-लक्ष्मण से आपकी भेंट कराता हूँ। श्रीराम को शपथ लेकर यह कह रहा हूँ। आप मेरी पीठ पर बैठें, आपको अत्यन्त वेगपूर्वक ले जाते हुए राक्षस वीर असुर मेरे वेग से आ नहीं सकेंगे। वे मुझे कैसे पकड़ पायेंगे। अगर इन्द्रजित् और कुंभकर्ण भी आ गए तो उनसे युद्ध कर रावण को भी संत्रस्त कर आपकी श्रीराम से भेंट कराऊँगा" इस प्रकार ब्रह्मलिखित वर्णन में सीता-मारुति का संवाद था। श्रीराम को नाना प्रकार से हनुमान के पराक्रम के विषय में बताया गया था। हनुमान के वचन सुनकर सीता ने अनेक शंकाएँ व्यक्त करते हुए कहा "हे हनुमान, अगर मैं तुम्हारी पीठ पर बैठी तो तुम्हारी उड़ान की वेग से मैं समुद्र में गिर पड़ूँगी। मुझे समुद्र की मछलियाँ और मगर निगल जाएँगे, जिससे तुम संकट में पड़ जाओगे। उसी प्रकार अगर शत्रु पीछा करते हुए आ जाएगा और फिर तुम युद्ध के लिए वापस लौटोगे। उस समय युद्ध होते समय मैं रणभूमि में गिर पड़ूँगी और भूमि पर गिरते ही राक्षस मेरा वध कर देंगे। मेरे वध के पश्चात् अगर तुम करोड़ों राक्षसों का भी वध कर दोगे फिर भी श्रीराम को सुख नहीं होगा। अतः मेरा तुम्हारी पीठ पर बैठकर चलने का विचार व्यर्थ है इसलिए मैं कैसे आऊँ ?"

सीता की शंका सुनकर हनुमान उनसे बोले- "आप सावधानीपूर्वक सुनें, मुझे युद्ध का श्रम करना ही नहीं पड़ता। मेरी पूँछ के कुपित होने पर वह करोड़ों राक्षसों का वध कर देगी। मेरी पूँछ महाप्रतापी है कितनी भी संख्या में राक्षस आ जायँ यह उनका वध कर देगी। मैं आपको स्वस्थ एवं सुरक्षित रखूँगा।" इस पर सीता ने पूछा- "तुम व तुम्हारी छोटी सी पूँछ राक्षसों का वध कैसे कर पाएगी यह मुझे सत्य नहीं लगता." सीता के प्रश्न का उत्तर देते हुए हनुमान बोले "आप मुझे वानर कहते हुए मेरी पूँछ की शक्ति के प्रति सशंकित हैं। अतः आप मेरा वास्तविक स्वरूप देखें" ऐसा कहकर मारुति अपना शरीर बढ़ाने लगे। विंध्य मेरु, मंदार आदि पर्वतों से भी ऊपर बढ़ गए उस समय वे प्रलयकालाग्निरुद्र के समान दिखाई दे रहे थे। "मेरी शक्ति के विषय में आप अवगत नहीं हैं, मेरे स्वरूप का प्रभाव आप देखें। देव, दानव, मानव, राक्षस सभी को मैं त्रस्त कर सकता हूँ। मेरी पूँछ प्रतापी है, यह राक्षसों का वध करने में समर्थ है। आपके सहित पूरी लंका निमिषार्द्ध में ले जाऊँगा। आप मन की शंका का त्याग कर मेरी पीठ पर बैठें आपकी श्रीराम से भेंट करा कर आपको सुखी सन्तुष्ट एवं आनन्दित करूँगा" इस पर सीता ने कहा कि "पर पुरुष का स्पर्श पतिव्रता के लिए दूषण है" इस पर मारुति अपना पूर्ववृत्त बताने लगे- 'श्रीराम सर्वज्ञ हैं। गर्भ में ही मुझे ब्रह्मचर्य की कोपीन थी, यह जानने के कारण ही उन्होंने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। मेरी सम्पूर्ण स्थिति को जानकर ही अपनी पत्नी से एकांत में मिलने के लिए रघुपति ने मुझे आपके पास भेजा है। आपके मन की शंका को दूर करने के लिए उन्होंने अपनी मुद्रिका देकर मुझे भेजा मुझे अपने पुत्र के समान समझें। इसके अतिरिक्त मैंने आपको एक और चिह्न बताया कि कैकेयी द्वारा दिये वल्कल वस्त्र न पहन सकने के कारण श्रीराम ने आपको उन्हें पहनाया'। हनुमान द्वारा यह चिह्न बताते ही सीता मन ही मन चकित हुई, फिर उन्होंने शंका त्यागकर उनसे एक रहस्य पूछा।

"श्रीराम ने तुम्हें सीता को ढूँढ़ने के लिए भेजा है अथवा लाने के लिए भेजा है, यह मुझे सच बताओ। मैं उसके अनुसार करूँगी। श्रीराम ने सीता को लाने के लिए भेजा होगा तो मैं अभी तुम्हारे साथ

चलूँगी।" सीता द्वारा यह कहते ही हनुमान भाव विभोर हो गए। अपना पुरुषार्थ दिखाकर सीता को तुरन्त ले जाने के लिए कहने वाले हनुमान, सीता द्वारा आज्ञा का इत्यर्थ पूछने पर सीता की महिमा एवं सामर्थ्य देखकर आश्चर्यचकित हो गए और बोले– "माता, मैं असत्य नहीं बोलूँगा, श्रीराम ने मुझे आपको ढूँढने के लिए भेजा था। यही उनकी आज्ञा थी")। इस पर सीता बोलीं– "हनुमान अब विलम्ब न करते हुए श्रीरघुनाथ को बताओ। मुझ पर कृपा कर मुझे ढूँढने के विषय में उन्हें बताओ" सीता हनुमान के चरणों पर गिर पड़ीं। उनके द्वारा वंदन करते ही हनुमान ने उन्हें साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया और बोले– "मैं आपका सामान्य सेवक हूँ आज्ञाधारक दास हूँ।" सीता उनसे बोली– "जो भी श्रीराम का सेवक है वह मेरे मुकुट मणि के सदृश है। उसके चरणों पर मेरा प्रणाम है।" उनके सद्भावयुक्त वचन सुनकर हनुमान में स्फूर्ति आ गई। ''आप अपना चिह्न दें, मैं शीघ्र प्रस्थान करता हूँ मेरे ऊपर आप विश्वास करें इसके लिए मैं राम-मुद्रा लाया अब आप भी श्रीराम को देने के लिए अपना चिह्न दें, जिससे मेरा कहना उन्हें सत्य प्रतीत हो।" मारुति द्वारा चिह्न माँगते ही उन्होंने अपनी वेणी खोलकर चिह्न के रूप में चूड़ामणि दिया। उसी प्रकार श्रीराम को बताने के लिए सन्देश दिया।"

सीता द्वारा चिह्न बताना– "श्रीराम ने स्वयं अपने हाथों से एक धातु घिसकर उसका तिलक मेरे मस्तक पर लगाया, यह चिह्न तुम उनसे कहना। उसी प्रकार चित्रकूट-पर्वत पर निवास के समय एक कौए ने अपनी चोंच से मेरे वक्षस्थल पर आघात किया, जिससे रक्त प्रवाहित होने लगा। इसके कारण श्रीराम ने क्रोधित होकर ईषिकास्त्र चलाया। कौआ तीनों लोकों में भागते हुए संरक्षण माँगने लगा परन्तु इन्द्र, यम, ब्रह्मा कोई उसका संरक्षण करने को तैयार न था। अन्त में नारद के समझाने पर वह कौआ वापस श्रीराम की शरण में आया। तब राम ने उसकी बायीं आँख पर आघात कर उसकी रक्षा की। श्रीराम के पास इतने दिव्यास्त्र होते हुए भी वह मेरी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं ? हे राम, मैंने आपको मृग के पीछे भेजा, इसीलिए क्या आप मुझसे रुठे हैं। मैं महापापिनी हूँ क्योंकि मैंने स्वामी पर अपनी सत्ता दिखलाई और इसीलिए लंकानाथ के हाथों में पड़ गई। यह मेरा अधर्मी आचरण महादोषपूर्ण है आपने लक्ष्मण को मेरी रक्षा हेतु रखा परन्तु मैंने उसे भी कष्ट दिया। मैं ऐसी पापिनी हूँ। इन्हीं कारणों से क्या आप मुझे मुक्त नहीं कराते हैं। हे कृपालु राम, मेरे समस्त दोष क्षमा करें।" ऐसा कहते हुए उनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई।

हनुमान से बोलते हुए सीता की अत्यन्त दैन्यपूर्ण स्थिति हो गई। यह सुनकर चिंतामणि को हृदय से लगाकर श्रीराम व लक्ष्मण अत्यन्त व्यथित हुए और श्रीराम विलाप करने लगे। उनकी आँखों से अश्रुधाराएँ प्रवाहित होने लगीं मस्तक-मणि को हृदय से लगाकर वे बोले– "यह जल से उत्पन्न समुद्र का मणि दशरथ द्वारा पराक्रम करने पर इन्द्र ने उनको दिया था। उस युद्ध में नमुची नामक दैत्य का पराभव हुआ था। उन्होंने वह महामणि अपनी प्रिय पत्नी कौशल्या को दिया। कौशल्या ने सर्वप्रथम बहू सीता का मुख देखकर वह मणि सीता को दिया। सीता द्वारा वह मणि हनुमान को दिया गया। श्रीराम बोले– "इस मणि से माता पिता एवं प्रिय पत्नी की भेंट हुई, ऐसा अनुभव हो रहा है। उन स्मृतियों से मुझे चिन्ता-युक्त दुःख का अनुभव हो रहा है।" वह मणि हाथों में लेने पर सीता से प्रत्यक्ष मिलने का आनन्द हुआ और उन्होंने हनुमान को आलिंगनबद्ध कर लिया। 'हे हनुमान, सीता ने आगे क्या कहा, वह बताओ'। श्रीराम द्वारा ऐसा कहने पर हनुमान उनके चरणों पर गिर पड़े। लक्ष्मण आगे लिखित ब्रह्मवार्ता पढ़ने लगे।

सीता आगे हनुमान से बोलीं– "हे हनुमान, मेरे मन में एक बड़ी चिन्ता है। समुद्र को लाँघ सकने वाला गरुड़, वायु और हनुमान को छोड़कर चौथा कोई पुरुषार्थी नहीं दिखाई देता। अन्य लोगों के लिए समुद्र लाँघना अत्यन्त कठिन है। अतः रघुनाथ नर वानरों सहित यहाँ कैसे आ सकेंगे ? इस सागर को न लाँघ सकने के कारण, वानरों का समुदाय यहाँ न आ सकेगा। राम लक्ष्मण भी न आ सकेंगे, तब दशानन रावण का वध कैसे सम्भव है ?" सीता की यह शंका सुनकर मारुति हँसते हुए बोले– "श्रीराम की महानता आप नहीं जानती हैं। श्रीराम के तूणीर में भीषण बाण हैं उनकी बाण चलाने की शक्ति असीमित है। वे राम, बाणों द्वारा नर वानरों को समुद्र के इस पार उतारकर राक्षसों का संहार करेंगे तथा राक्षसों सहित लंका नगरी एवं रावण का विध्वंस कर आपका उद्धार करेंगे।" हनुमान का यह उत्तर सुनकर सीता प्रसन्न होकर उत्साहपूर्वक बोलीं– "हे हनुमान अब शीघ्र जाकर श्रीराम को लेकर आओ।" मारुति ने इस समय मन में विचार किया कि युद्ध द्वारा राक्षसों का दमन किये बिना तथा लंकादहन किये बिना मैं यहाँ से नहीं जाऊँगा। मैं कोई सामान्य संदेशवाहक नहीं हूँ, मैं प्रत्युत्तर अवश्य दूँगा। लंका को रणभूमि बनाकर, रावण को संत्रस्त कर, राक्षसों का सामर्थ्य उनकी सेना एवं उनकी शस्त्र-शक्ति का अनुमान लगाकर रण का आरम्भ करने के पश्चात् ही यहाँ से जाऊँगा। राक्षसों से बैर लेने के लिए वन का विध्वंस करना ही प्रमुख साधन है।" हनुमान रुककर यह विचार कर रहे थे कि सीता ने उन्हें प्रस्थान करने के लिए कहा। हनुमान मस्तक झुकाकर लज्जावश कुछ न कहते हुए खड़े रहे। तब सीता उनसे बोलीं– "श्रीराम से मिलने के लिए तुम उत्साहित नहीं हो। तुम किस विषय में चिन्तित हो, मुझसे कहो।"

हनुमान बोले– "मेरी बातें सुनकर आप चिन्तित होंगी। आपको ढूँढ़ते समय मुझे अन्न, जल प्राप्त न हो सका अतः अब क्षुधा से मेरे प्राण कंठ तक आ गए हैं। मुझसे अब समुद्र न लाँघा जा सकेगा। इस कारण मैं उद्विग्न हूँ"। हनुमान का निवेदन सुनकर सीता भावुक हो उठीं। वे बोलीं– "मैं महापापिनी हूँ, तुम्हें भूखा ही वापस भेजने लगी। हनुमान मेरा कर कंकण लेकर लंका में जाकर इच्छानुसार चतुर्विध भोजन करो।" हनुमान ने पूछा अन्न का स्वाद कैसा होता है ? इस पर सीता ने प्रश्न किया– तुम क्या खाते हो ? हनुमान ने बताया– "वनों में रहने के कारण हम नित्य फलों का ही आहार लेते हैं। अन्न को स्पर्श भी नहीं करते" सीता ने कहा "ये मेरे कंगन देकर लंका में जितने फल मिलें, अपनी रुचि के अनुसार लेकर उनका आहार ग्रहण करो।" हनुमान ने उत्तर देते हुए कहा– "हे माता, जिन्हें मनुष्य स्पर्श कर लेता है वे फल अपवित्र मानकर मैं उनको ग्रहण नहीं करता। ब्राह्मण जिस प्रकार बाज़ार में उपलब्ध अन्न ग्रहण नहीं करता, उसी प्रकार विक्रय करने वाले फल मेरी दृष्टि से अपवित्र हैं।" मारुति के वचन सुनकर सीता चिन्तित हुईं। वे सोच में पड़ गईं कि अब हनुमान को आहार के लिए क्या दें। वे बोलीं– "इस अशोक वन में अद्भुत फल हैं परन्तु उन्हें छूते ही राक्षस तुम्हारा वध कर देंगे। इस तरह स्वामी के लिए किये गए तुम्हारे कार्य व्यर्थ सिद्ध होंगे।" इस पर हनुमान बोले– "ठीक है, इसी प्रकार मैं भूखा रह जाऊँगा। यह भूख नहीं कल्पान्त है। लगता है, मेरा प्राणान्त समीप है"– यह कहते-कहते हनुमान मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। दोनों आँखें ऊपर चढ़ गईं। यह देख सीता विचलित हो गईं। थपथपा कर उन्होंने मारुति की मूर्च्छा दूर की। फिर बोलीं– "गुप्त रूप से तुम यहाँ के फलों का सेवन करो, किसी को पता न चलने दो। भूख शान्त होने तक नीचे गिरे फलों का तुम सेवन करो। श्रीराम की शपथ देकर कहती हूँ, पेड़ों के फल तोड़कर मत खाना।" सीता के वचन सुनकर हनुमान ने सहमति व्यक्त करते हुए अपनी बगलें खुजलायीं और फिर वन के वृक्षों के समीप आये।

उन्होंने मन में विचार किया कि श्रीराम की शपथ का पालन करते हुए सीता के वचनों को प्रमाण मानकर वृक्षों को उखाड़ कर पटक कर जो फल स्वयं गिरेंगे, उन्हें खाया जाय।"

हनुमान का यह वृत्तान्त सुनकर राम जोर से हँसे। उन्ही के साथ सुग्रीव, सभी वानर एवं लक्ष्मण भी हँसने लगे। तत्पश्चात् श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा "सौमित्र, हनुमान ने राक्षसों का दमन किया, लंका को रणभूमि बना दिया। इस विषय में ब्रह्मलिखित शीघ्र पढ़ो। वन को किस प्रकार तहस नहस किया, राक्षसों को कैसे मारा ? इन्द्रजित् को किस प्रकार पीड़ित किया ? रावण को कैसे संत्रस्त किया इस विषय में ब्रह्मा द्वारा लिखित वर्णन पढ़ो।"

अध्याय ३०

[हनुमान द्वारा अशोक वन में राक्षसों के वध का वर्णन]

"हनुमान ने सीता की आज्ञा लेकर फल खाना प्रारम्भ किया। श्रीराम की शपथ देकर सीता ने फल तोडकर खाने के लिए मना किया और गिरे हुए फल पेट भर कर खाने को आज्ञा दी। यह ध्यान में रखकर, सीता की आज्ञा शिरोधार्य कर हनुमान ने वन को तहस नहस कर डाला। कुछ गिरे हुए फल लेकर वे दूर जाकर बैठ गए और फल खाने लगे।

हनुमान द्वारा फलाहार– हनुमान ने कालाग्नि को बुलाकर जठराग्नि प्रदीप्त की तथा पूँछ से वृक्ष उखाड़कर उन्हें झाड़कर नीचे गिरे फल खाने के लिये। इस प्रकार सीता की आज्ञा एवं श्रीराम की शपथ दोनों का पालन किया सर्वप्रथम शर्करायुक्त पित्तनाशक फलों को गिराकर खाया, उसके पश्चात् अनेक वृक्ष गिराकर उनके फल खाये। हनुमान एक स्थान पर निश्चित आसन लगाकर बैठे रहे। उनकी पूँछ उन्हें नाना-प्रकार के फल लाकर देती रही। वन के अनेक वृक्ष जड़ से उखड़ कर गिर गए मारुति का भोजन धर्माज्ञानुसार हो रहा था। सर्वप्रथम देवों और द्विजों की पंक्तियाँ बैठायीं और उन्हें प्रेम से फल अर्पित किये। तत्पश्चात् हनुमान ने स्वयं फल खाये और तृप्त होकर सन्तोष पूर्वक डकार ली। उनकी पूँछ ने वन को तहस-नहस कर दिया। हनुमान भगवान् का नाम लिये बिना फल ग्रहण नहीं कर रहे थे। उस वन के फलों का महाभाग्य कि मारुति के मुख के माध्यम से उनको ब्रह्मार्पण किया गया। मारुति प्रत्येक ग्रास ग्रहण करते समय सावधानीपूर्वक पके हुए फल रामार्पण, पाड़ के फल कृष्णार्पण और हरे फल ब्रह्मार्पण करते हुए उसी प्रकार उच्चार कर रहे थे। उन वन के फलों का भाग्य चमक गया। मुख से विभिन्न प्रकार की ध्वनि निकालते हुए वे विभिन्न प्रकार की भाव-भंगिमाएँ कर गटागट फलों का भक्षण कर रहे थे दैत्यों को अंगूठा दिखा रहे थे। पके हुए फल रुचिपूर्वक और हरे तथा पीले फल मुख का स्वाद बदलने के लिए खा रहे थे। नमक की आवश्यकता अनुभव होते ही सामुद्रिक मिलाकर खा रहे थे उनकी पूँछ चारों ओर वृक्ष उखाडकर वन को तहस नहस कर रही थी। ताल, तमाल, खजूर, सुपारी, नारियल इत्यादि वृक्ष उखाड़कर वे उनका ग्रास बना रहे थे और पराक्रमी राक्षस सेना से युद्ध करने तथा युद्ध में उनका वध करने के लिए उन्हें अपने पास रखते जा रहे थे। युद्ध को निश्चित जानकर हनुमान ने शिला, पाषाण वृक्ष, पर्वत इत्यादि युद्ध के लिए एकत्रित कर लिए।"

वन रक्षक एवं किंकरों का हनुमान द्वारा वध– हनुमान को वृक्षों को उखाड़ते हुए देखकर वन-रक्षक सतर्क हो गए और "मारो-मारो, वानर वन का विध्वंस कर रहा है उसे मारो" इस प्रकार एक सुर में चिल्लाते हुए शस्त्र लेकर हनुमान की ओर दौड़े। कोई ढाल-तलवार लेकर आया तो कोई धनुष-बाण चलाने लगा। कोई गुलेल तो कोई पत्थर फेंकने लगा। "एक वानर वन को तहस नहस कर रहा है यह बताने पर राजा विश्वास नहीं करेंगे अतः इसे पकड़ कर राजा के पास ले जायें। इसकी पूँछ लम्बी है, इसे पूँछ से पकड़ लेंगे"– ऐसा किसी ने कहा तो कोई बोला– "इसे झपट कर पकड़ लेंगे।" हनुमान ने उन वन-रक्षकों का इस प्रकार का संवाद सुना। अतः वे कृतान्त सदृश उनका वध करने के लिए सिद्ध हुए। उन्होंने अपनी पूँछ से रक्षकों पर ऐसा वार किया कि उनके शस्त्रास्त्र नष्ट हो गए। उन सभी रक्षकों को एकत्र कर उन चौदह सहस्त्र रक्षकों को गट्ठर की तरह पूँछ से बाँध कर समुद्र में मछलियों एवं मगरों को खाने के लिए दे दिया। इधर कुछ राक्षसियाँ सीता को सताते हुए कहने लगीं– "तुम जिससे वार्तालाप कर रही थीं, उस वानर ने वन को नष्ट किया और वन रक्षकों को मार डाला। वह वानर युद्ध के लिए आतुर है अतः हम तुम्हें पकड़कर मारेंगी और तुम्हारे रक्त का दान करेंगी, तुम्हें सम्पूर्ण निगल जाएँगी।" राक्षसियों द्वारा सीता को सताये जाते देखकर हनुमान क्रोधित होकर उन पर गुर्राने लगे तब वे राक्षसियाँ भयभीत होकर भाग गईं। उनकी अत्यन्त दुर्दशा हो गई, भय से उन्हें अपने शरीर का भान न रहा, उनके वस्त्र अस्तव्यस्त हो गए। उसी अर्धनग्न अवस्था में वे रावण के पास गयीं और वन के विध्वंस की वार्ता कहने लगीं– "कोई वानर आया है, उसने सम्पूर्ण वन का विध्वंस कर दिया है। इसके अतिरिक्त चौदह सहस्त्र वन-रक्षकों को उसने पूँछ से मार डाला है।"

रावण ने तुरन्त अस्सी हजार किंकरों को भेजकर उस वानर को पकड़ लाने के लिए कहा। रणभूमि में तत्पर होकर वे अस्सी हजार किंकर आगे आये। उन्होंने अपार शस्त्रों की वर्षा की। उस शस्त्र संभार के नीचे वानर ढँक गया। हनुमान मन में सोच रहे थे कि मेरे शरीर में तो ये शस्त्र घुसते नहीं है, इस शस्त्र संधान को सहना पड़ा तो ये सब क्या करेंगे ? हनुमान को शस्त्रों के नीचे निश्चेष्ट दबा देखकर किंकरों ने आनन्दपूर्वक ताली बजायी और कहने लगे– "हम महाबली रणवीरों ने वानर का विनाश कर दिया। आघातों से उसे तोड़ दिया। बाणों से तृण प्राय कर दिया।" किंकरों के ये वचन सुनकर मारुति क्रुद्ध हो गए। उन्होंने अपनी पूँछ से विचार विमर्श किया कि आज अभी करोड़ों राक्षसों का वध करेंगे। पूँछ के आघात से किंकरों को मारकर हनुमान ने राम का जय-जयकार किया और कहा– "मैं श्रीराम का दूत हूँ, सीता को ढूँढने के लिए आया हूँ। सीता के यहाँ मिलने से राक्षसों का अन्त निकट आ गया है। राक्षसों का निर्दलन कर इन्द्रजित् का अभिमान दूर करूँगा, रावण को संत्रस्त कर दूँगा, तत्पश्चात् श्रीराम को निश्चिन्त ही लेकर आऊँगा।" हनुमान के वचनों से लंका में भय छा गया, किंकरों के नाश की वार्ता सुनकर लंकानाथ रावण चौंक गया। उसने प्रहस्त पुत्र जम्बुमाली को क्रोधपूर्वक हनुमान पर चढ़ाई करने के लिए भेजा और उसी समय उससे कहा कि "उस वानर के गले में पाश लगाकर मेरे पास लेकर आओ। अगर उस वानर को लाये बिना अथवा मारे बिना वापस आये तो तुम्हारे केशों पर मूत्र का लेप करूँगा, नाक काट दूँगा तथा गर्दभ पर बैठाकर घुमाते हुए तुम्हें अपमानित करूँगा।" रावण के वचनों से संतप्त होकर जम्बुमाली ने हनुमान के ऊपर आक्रमण किया।"

हनुमान द्वारा जम्बुमाली का वध– प्रहस्त-पुत्र जम्बुमाली ने क्रोधित होकर प्रस्थान किया, बाणों से आकाश और पृथ्वी आच्छादित हो जाय, ऐसी भीषण बाणों की वर्षा उसने की। अपने शरीर में बाण

चुभते नहीं इस विश्वास से मारुति निःशंक थे। मुख से राम-नाम का स्मरण करते हुए वे भयरहित होकर घूम रहे थे। उन्होंने पंचक्रोशी में प्रचंडशिलाओं से प्रहार किया परन्तु जम्बुमाली ने धनुर्धारी होने के कारण एक ही बाण से उन शिलाओं के सैकड़ों टुकड़े कर दिए। मारुति द्वारा किया गया वृक्षों का आघात भी जम्बुमाली ने व्यर्थ कर दिया। यह देखकर हनुमान बोले– "धन्य है इसकी माता, यह जगत् श्रेष्ठ महान योद्धा है। मेरे शिलाओं एवं वृक्षों के आघात निष्फल करने वाला यह महाबली जम्बुमाली, राक्षस-कुल का महावीर है''. जम्बुमाली द्वारा फेंका गया अर्द्धचन्द्राकृति बाण मारुति के मस्तक पर लगा परन्तु उससे टकराकर उलटते हुए वह जम्बुमाली के मस्तक पर ही जा लगा, जिससे जम्बुमाली मूर्च्छित हो गया तब हनुमान अट्टहास करते हुए बोले– "तुम्हारे बाण मेरे शरीर में नहीं घुसते, उलट कर वे तुम्हारा ही प्राण लेना चाहते हैं। अतः युद्ध व्यर्थ है। तुम वापस जाओ, मैं तुम्हें नहीं मारूँगा।" हनुमान के वचन सुनकर जम्बुमाली ने विचार किया कि वापस जाने पर रावण दण्डित करेगा ही, उसकी अपेक्षा इससे ही निर्णयकारक युद्ध किया जाए। फिर उसने वन-चामुंडा के वर से प्राप्त घंटायुक्त परिघ से क्रोधपूर्वक वार करते हुए हनुमान का वध करने का प्रयत्न किया। मेरे परिघ के वार से हनुमान की मृत्यु निश्चित ही होगी तब रघुनाथ इसकी रक्षा कैसे कर पायेंगे। अब युद्ध में इसका पुरुषार्थ देखूँ– ऐसा जम्बुमाली बोला

उस परिघ के हनुमान के पास आते ही हनुमान आकाश में ऊँचे उड़ने लगे लेकिन अपनी वरद-शक्ति के कारण वह परिघ हनुमान का पीछा करने लगा मारुति के अत्यन्त वेगपूर्वक जाने पर भी परिघ ने उनका पीछा करना नहीं छोड़, जिससे मारुति चकित हो गए। ऐसी उस शस्त्र की शक्ति थी। हनुमान को विचारमग्न देखकर स्वर्ग में हाहाकार मच गया। सबको लगने लगा कि इस दुर्धर परिघ के वार से हनुमान बच नहीं सकते। परिघ को पीछे आता हुआ देखकर हनुमान ने अपनी पूँछ में उसे कस लिया। ऐसा करते ही वन देवी का गला कसने लगा। तब वे बोलीं– "हे श्रीराम भक्त, मैं तुम्हारी शरण में आयी हूँ अगर तुमने मुझे जीवन दान दिया तो शस्त्र-शक्ति, भूत-शक्ति, मंत्र-तन्त्र-यंत्र शक्ति सभी तुम्हारी शरण आएँगी।" इस पर हनुमान ने पूँछ का बन्धन ढीला कर शस्त्र देवी को मुक्त कर दिया सभी शक्तियों ने भी हनुमान की आरती उतारी। वे बोलीं– "हम सभी राक्षसों से विमुख होकर श्रीराम की युद्ध में सहायता करेंगी। सीता हमारी आदि शक्ति है। लंकापति रावण उसे यातना दे रहा है। इसीलिए युद्ध में राक्षसों के विरुद्ध हम तुम्हारी सहायता कर पराक्रम करेंगी। तत्पश्चात् हनुमान अपनी पूँछ को सम्बोधित करते हुए बोले "तुम्हारे कारण ही करोड़ों शक्तियाँ मेरी सहायता के लिए सिद्ध हुईं।" इस प्रकार अपनी पूँछ की स्तुति कर मारुति युद्ध के लिए लौटे। उस समय हनुमान के हाथों में परिघ देखकर जम्बुमाली भय से काँपने लगा। "मेरा परिघ हनुमान के हाथों में चला गया, इसके लिए रावण की अधर्मता ही कारणभूत हुई। इसी कारण शस्त्र देवी भी क्रोधित हो गई।" जम्बुमाली यह विचार कर ही रहा था कि परिघ उसके मस्तक से जा टकराया। उसका रथ एवं सारथी भी नष्ट हो गए। जम्बुमाली का हृदय भी शेष नहीं बचा. रथ, घोड़े, सारथी, वह स्वयं व उसका सिर अस्थियाँ कुछ भी न बचीं। हनुमान के कारण वह अव्यक्त में लीन हो गया।

अखया कुमार (अक्षय कुमार) का वध– हनुमान ने जम्बुमाली पर आघात कर उसका नाश कर दिया, वह समाचार रावण तक पहुँचा। उस वार्ता को सुनकर वह भयभीत हो गया। क्रोधपूर्वक उसने हनुमान को मारने के लिए दस हजार प्रधान पुत्रों को भेजा। वे सभी महावीर और रण में कुशल योद्धा थे ध्वज पताकाओं एवं वाद्यों सहित उन्होंने युद्ध के लिए प्रस्थान किया। उनकी माताएँ पुत्रों के नष्ट होने

की चिन्ता में दुखी थीं। प्रधान पुत्रों एवं हाथियों के समूह को आया हुआ देखकर, उनकी गर्जना सुनकर हनुमान ने भी भुभुःकार करते हुए गर्जना की। उसकी पूँछ उस समय आकाश में चमक रही थी मारुति ने अपनी पूँछ की सामर्थ्य से जोर से आघात किया। उस पर्वत सदृश आघात से सभी एक साथ मृत्यु को प्राप्त हुए सभी प्रधान पुत्रों की मृत्यु का समाचार सुनकर रावण डर गया। रावण समझ गया कि हनुमान अत्यन्त पराक्रमी एवं युद्धभूमि में काल के सदृश है। हनुमान के वश में न हो पाने के कारण रावण चिन्ताग्रस्त था। रणभूमि में हाथी एवं राक्षस-वीरों का उसने वध कर अपनी वीरता सिद्ध कर दी थी अतः रावण ने अत्यन्त साहसी एवं पराक्रमी पाँच राक्षस सेनानी मारुति का वध करने के लिए भेजे उन सेनानियों में चार चारों दिशाओं में तथा एक आकाश में स्थिर होकर हनुमान को मारने की भव्य योजना बनाकर उन पर शस्त्रों से वार करने लगे। हनुमान की बलवान् पूँछ ने उन शस्त्रों को नष्ट कर जला डाला तथा उन पाँचों को पूँछ से बाँध दिया। हनुमान स्वयं योगी थे। जिस प्रकार योगी अपने पंच प्राणों का निरोध करता है, उसी प्रकार पूँछ से उन पांचों को कस कर पकड़ लिया। विवेकी एवं वैराग्य सम्पन्न लोग जिस प्रकार पाँच विषयों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) का दमन करते हैं, उसी प्रकार उन पाँचों को पूँछ में बाँध दिया। पंचभूतों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश) की निवृत्ति होने पर जिस प्रकार परमार्थी सुखी होता है, वैसे ही उन पाँचों को पर्वत के आघात से मारकर हनुमान सुखी हुए। एक ही आघात में हनुमान ने उन पाँचों का वध कर दिया।"

रावण को जब पाँचों सेनापतियों के वध का समाचार मिला, तब वह चौंक गया प्रधान तथा सेना काँपने लगी रावण के क्रोध की सीमा न थी, उसने हनुमान को मारने के लिए रण चतुर दिव्य योद्धा स्वयं के पुत्र अक्षय कुमार को भेजा। "अक्षय, तुम युद्ध में निपुण, शस्त्रास्त्रों के अचूक निशाने से घात करने में पारंगत हो। तुम रथ को ज़मीन से ऊपर उठाकर चलाते हुए हनुमान का वध करो।" रावण की आज्ञा होते ही रण भेरी बजने लगी। रथ, छत्र, सेना, गज दल सहित अक्षय कुमार अशोक-वन पहुँचा। उसने बाणों की वर्षा कर हनुमान को ढँक लिया। तब अन्य वीर सिंहनाद करते हुए कहने लगे कि वानर का वध हो गया। अक्षय की विजय प्राप्ति का आनन्द विभिन्न वाद्यों की ध्वनि से प्रकट हुआ इधर हनुमान ने सम्पूर्ण सेना को पूँछ से घेर लिया। शस्त्रों को नष्ट कर सम्पूर्ण सेना का एक साथ वध कर दिया अक्षय को पीड़ित कर पूँछ से बाँध दिया। उसका रथ आकाश में फेंक दिया। हनुमान की पकड़ में न आकर वह वीर कुशलता से लड़ रहा था। दोनों वीर किसी अन्य की सहायता के बिना युद्ध करने लगे। देवता युद्ध को देख चकित रह गए। दोनों चक्राकार घूम रहे थे। कभी पृथ्वी पर कभी आकाश में क्षण में रथ सागर में दिखाई देता था। तो क्षण में त्रिकूट पर। इस प्रकार अक्षय युद्ध में अपना पराक्रम दिखा रहा था। मारुति की पूँछ ने दिशांतरों में भागते हुए रथ को रोककर क्रोधपूर्वक ज़मीन पर पटक दिया। रथ के नीचे गिरते ही अक्षय हाथों में ढाल-तलवार लेकर हनुमान को मारने हेतु क्रोधित हो चपलतापूर्वक दौड़ा। ढाल तलवार चमकाते हुए हनुमान का घात करने के लिए वह आकाश में गया। मारुति ने तुरन्त उसके पैर पकड़ कर उसे गोल गोल घुमाना प्रारम्भ किया। तब उसे अपने शरीर की सुधि न रही। उसकी तलवार माता के पास मुकुट रावण के समक्ष और ढाल लंका की सीमा पर जा गिरी। इस प्रकार उसका नाश हो गया। जब हनुमान ने उसे पत्थर पर पटका तब पाताल में उसकी प्रतिध्वनि गूँजी, दिग्गज भयभीत हो गए। उसकी हड्डियों का चूर्ण हो गया। अक्षय के वध के पश्चात्

स्वर्ग में देवताओं ने हनुमान की कीर्ति का गान किया। भूतल पर ऋषियों ने भी उसकी कीर्ति का बखान किया। जिस समय रावण के समक्ष मुकुट गिरा, उस समय अक्षय की मृत्यु से वह विलाप करने लगा।

रावण कहने लगा - "मैंने पुत्र को भेज कर गलती की।" तत्पश्चात् जब उसने प्रत्यक्ष वार्ता सुनी तो वह शोक करते हुए मूर्च्छित हो गया। वह पुत्र शोक से काँपने लगा। मूर्च्छा समाप्त होने पर वह क्रोधित होकर बोला– "मेरा अशोक-वन अब शोक-स्थल बन गया है। युद्ध में वानर ने वीरों पर प्रहार कर उन्हें मार डाला। कोई भी ऐसा दिखाई नहीं देता, जो अक्षय की मृत्यु का प्रतिशोध ले। अतः किसी अन्य को भेजने की अपेक्षा मैं स्वयं वहाँ जाता हूँ। अक्षय के वध का प्रतिशोध लेने के लिए निश्चित ही उस वानर का वध करता हूँ।" ऐसा कहकर वह युद्ध के लिए सुसज्ज हुआ। "अगर मैंने उस वानर का वध किया तो अक्षय की मृत्यु का प्रतिशोध हो जाएगा परन्तु उसने ही अगर मुझे मार डाला तो सीता मुक्त हो जाएगी." यह विचार कर रावण ने युद्ध के लिए प्रस्थान किया। उस समय उसका ज्येष्ठ पुत्र महावीर मेघनाद दौड़ते हुए आगे आया और बोला– "अकेले उस पत्ते खाने वाले वानर से स्वयं लंकाधिपति युद्ध के लिए जायँ, यह योग्य नहीं है। वीरों के भयभीत होने पर क्या स्वयं दशानन युद्ध के लिए जायँ ? मैं आपका सेवक हूँ, अतः मुझे भेजें। मैं सदाशिव की शपथ लेकर कहता हूँ, आपके चरण स्पर्श कर कहता हूँ कि उस वानर को रण-भूमि में न मारकर, उसका गला बाँधकर लाता हूँ." इस पर रावण ने विचार किया कि वह वानर ब्रह्मचारी निराहारी है। वह इन्द्रजित् का वध न कर सकेगा। यह विचार कर रावण ने इन्द्रजित् को आज्ञा दी कि 'वानर को रणभूमि में पीड़ित कर उसे बाँधकर ले आओ.'

इन्द्रजित् का युद्ध के लिए प्रस्थान– इन्द्रजित् जब युद्ध के लिए निकला तब रणभेरी बजने लगी. कंगल, टोप और रक्तवर्णी वस्त्र पहने हुए वीरों ने गर्जना की। दस लाख हाथी, करोड़ों महारथी और असंख्य पैदल वीरों ने प्रस्थान किया। उन वीरों के रत्न जड़ित कवच, चमकते हुए शस्त्र तथा तेजस्वी झूलें थीं। वे वीर सिंहनाद करते हुए गर्जना कर रहे थे। उनके पास गुलेलें थीं। वे वीर रणवाद्य बजाते हुए गर्जना करते निकले। इन्द्रजित् ने भी उत्साहपूर्वक प्रस्थान किया। उसी समय उसके पीछे एक नग्न कुमारी ने छींक दिया. इन्द्रजित् का मन बुरे शगुन से सशंकित हो गया. रावण भी भयभीत हो गया। इसका अर्थ जब ब्रह्मदेव से पूछा गया तब वह भविष्य समझ गए। उन्होंने भी वही गूढ़ार्थ बताया। वे बोले "वानरों से युद्ध कर अपयश में यश और यश में अपयश की प्राप्ति होगी। इन्द्रजित् उस वानर को बाँधकर तुम्हारे समक्ष लाएगा." ब्रह्मदेव के वचन सुनकर इन्द्रजित् ने उन्हें नमन कर जय-जयकार किया। इन्द्रजित् को आते देखकर हनुमान आनन्द-पूर्वक नाचने लगे। उसका युद्ध का मनोरथ पूर्ण करने के लिए हनुमान तत्पर हुए। रण में पूँछ नचाते हुए सेना को चारों ओर से घेरकर वीरों का वध कर रक्त से भूमि का स्नान कराने का हनुमान का मनोगत था। मारुति ने भूतों को, माँस-भक्षण और रक्तपान कर रण भोजन लेने के लिए आमन्त्रित किया. इसके लिए करोड़ों राक्षसों को मारकर उन्हें इच्छानुसार भोजन कराने का मारुति ने निश्चय किया था। वे बोले– "अभी का यह भोजन भाजी भाकरी (मोटी रोटी) की न्याहारी समझें। आगे नर केसरी श्रीराम आकर वे तुम्हें पंच पकवानों से युक्त भोजन कराकर सन्तुष्ट करेंगे।"

असाली का आक्रमण हनुमान द्वारा निष्फल करना– इन्द्रजित् सेना सहित युद्ध के लिए आया. उस समय असाली दौड़ती हुई आगे आयी और "जिसने अक्षय को मारा उसकी मैं होली जला दूँगी" यह कहते हुए वह अशोक-वन पहुँची। वहाँ हनुमान को देखकर उसने चमत्कारिक रूप से नेत्रों को फैलाते हुए अपना विकराल मुख फैलाया। उस समय उसका एक जबड़ा भूतल पर और दूसरा

आकाश में टिक गया। उसकी विकराल दन्त पंक्ति, लपलपाती हुई काली जिह्वा हनुमान ने देखी, तब उन्होंने अणु सदृश सूक्ष्म रूप धारण किया, तत्पश्चात् उन्होंने उसके दाँतों एवं जिह्वा को स्पर्श किये बिना उसके गले में तथा फिर पेट में प्रवेश किया, मुख से अन्दर गये हुए हनुमान जीभ अथवा दाँतों को नहीं मिल पा रहे हैं, इसका उसे आश्चर्य हुआ। खट्टा, तीखा किसी प्रकार का भी स्वाद न मिलने से वह राक्षसी क्रुद्ध हुई। वह वानर अपने हाथ से नहीं मर रहा है। उसका अन्दर जाना भी पता नहीं चल पा रहा है। अतः पता नहीं वह क्या करेगा, इस विचार से असाली भयभीत हो गई। हनुमान, इन्द्रजित् से युद्ध के लिए उत्सुक थे, अतः असाली के पेट में क्षण-भर भी न रुकते हुए वे कुशलतापूर्वक बाहर आ गए। इसके पहले उन्होंने उसका हृदय देह से अलग कर दिया तथा नाभि से पेट को चीर दिया और बाहर आते ही दीर्घ भुभुःकार युक्त गर्जना की।"

इधर असाली ने वानर को निगल लिया, यह वार्ता फैल गई जिससे इन्द्रजित् और उसकी सेना के युद्ध का अनर्थ टल गया ऐसा सबने अनुभव किया। अगर असाली ने वानर को पहले ही निगल लिया होता तो वन रक्षक, किंकर, प्रधान-पुत्र जम्बुमाली और अक्षय कुमार सभी बच गये होते- ऐसा उन्हें लगने लगा। दूत रावण को असाली द्वारा वानर को निगले जाने की वार्ता सुना ही रहा था कि दूसरा समाचार आया कि वानर ने असाली का वध कर दिया है। रावण यह सुनकर स्वयं से ही कहने लगा- "पहले लंका में क्रौंचा का वध किया। शूर्पणखा को पीड़ित किया, अब असाली को मार डाला। मैं और कौन-कौन से दुःख सहन करूँ। जो पेट में प्रवेश कर राक्षसियों को मार डालता है, वह इन्द्रजित् का भी वध कर देगा" इस विचार से रावण थर-थर काँपने लगा।"

अध्याय ३१

[इन्द्रजित् का अपमान]

लक्ष्मण ब्रह्मा द्वारा लिखित पत्र आगे पढ़ने लगे इन्द्रजित् के, युद्ध के लिए आवेश-पूर्वक प्रस्थान करते ही बीच में असाली आ गई परन्तु श्रीराम की कृपा से उसका निरसन हो जाने से हनुमान उत्साहित हो गए। आवेश युक्त गजदल सहित सेना देखकर हनुमान अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्हें लगा कि श्रीराम भी सन्तुष्ट हुए हैं। अच्छे मुहूर्त पर राक्षसों को मारने के लिए वन का विध्वंस किया और 'इन्द्रजित् को ग्रस्त कर उसका गर्व हरूँगा'- यह उक्ति सत्य करने के लिए ही इन्द्रजित् सेना-सहित यहाँ आया है। यह कहते हुए हनुमान आनन्दपूर्वक नाचने लगे। "मेरी पूँछ रणभूमि में नृत्य करती हुई राक्षस समुदाय का नाश करती है। मैं चामुंडा चवँडायणी को पूजा कर भूतों को माँस देकर उन्हें संतुष्ट करूँगा। पहले मैंने अक्षय कुमार को मारा, अब आगे युद्ध में राक्षस वीरों का संहार करूँगा।" हनुमान ने पूँछ से एकांत में संवाद करते हुए कहा- "जो युद्ध के लिए आये वह वापस नगर में न जाने पाये, सभी का वध करना। जो शरण आये उसे न मारना, यही बड़प्पन है।" यह कहने के पश्चात् पूँछ को हृदय से लगाकर आलिंगनबद्ध किया। उन्होंने निश्चय किया कि पूँछ सेना को घेरकर राक्षसों को मारेगी। स्वामी हनुमान की आज्ञा को शिरोधार्य मानकर पूँछ लंका-द्वार पर रक्षा के लिए रुक कर पीछे लौटने वाले राक्षसों को

मारने के लिए सिद्ध हुई। मारुति और पूँछ का वार्तालाप होने के पश्चात् वे युद्धानन्द से ताली बजाते हुए राक्षसों का संहार करने के लिए पराक्रम करने हेतु तत्पर हुए।

हनुमान और उनकी पूँछ का संवाद सुनकर वानर बहुत आनन्दित हुए। वे हनुमान के युद्ध का वर्णन सुनने के लिए आनन्द पूर्वक सावधान होकर बैठ गए। सुग्रीव ने उठकर लक्ष्मण के चरण स्पर्श किये और 'इन्द्रजित् तथा हनुमान का युद्ध कैसे हुआ यह विस्तृत रूप में बतायें' ऐसी लक्ष्मण से विनती की। तब उन्होंने श्रीराम की शपथ देकर सबको शान्त रहने के लिए कहा। सभी वानर गण सतर्क होकर हनुमान के उस भयंकर युद्ध का वर्णन सुनने के लिए तैयार हुए। पूँछ को घुमाकर लक्ष्मण आगे क्या पढ़ रहे हैं, यह सुनने के लिए वे उत्सुक हुए और एकाग्रतापूर्वक उनके मुख की ओर देखने लगे। श्रीराम भी अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक हनुमान के रण संग्राम और पुरुषार्थ की वार्ता सुनने के लिए लक्ष्मण से आगे ब्रह्मलिखित पढ़ने के लिए कहने लगे। सभी वानर ताली बजाने लगे क्योंकि जो उनके मन में था वही श्रीराम के मन में होने से वे प्रसन्न हुए। इस प्रकार सभी हनुमान के युद्ध की वार्ता सुनने के लिए सावधान होकर बैठ गए। सौमित्र ने पत्र का वाचन प्रारम्भ किया।

असाली राक्षसी के घात का समाचार सुनकर इन्द्रजित् क्रुद्ध हो गया। हनुमान का वध करने के लिए वह अपना रथ आगे ले गया। तब नगाड़े बजने लगे; निशाण, भेरी, शिंग इत्यादि रण-वाद्य बजने लगे। उन्होंने इन्द्रजित् के आगमन की सूचना दी। उस अकेले वानर पर असंख्य वीर, वार करने लगे तथा हनुमान की भीषण मार खाकर वे महाशूर राक्षसवीर थर-थर काँपने लगे।

सेना की अवस्था देखकर इन्द्रजित् रथ आगे ले गया। उसने हनुमान का लक्ष्य साधकर बाणों की वर्षा प्रारम्भ की। उसके द्वारा धनुष की टंकार करते ही गिरि, कंदराएँ गूँज उठीं। उसका नाद आकाश में व्याप्त हो गया। इन्द्रजित् भयंकर योद्धा था। हनुमान द्वारा भुभुःकार करते ही सप्त-सागर हिलोरें लेने लगा। महादेव ध्यान में मग्न होते हुए भी चौंक गए। सुरासुर कंपित हो गए। नक्षत्रों के टूटकर नीचे गिरने से रणभूमि में राक्षसों की हानि हुई। भूत काँपने लगे, तब भद्रकाली ने आश्वासन दिया कि 'इस युद्ध में कृपालु हनुमान तुम्हें रक्त मांस का पान कराकर तृप्त करेंगे। तुम्हें निश्चित ही भय की आवश्यकता नहीं। मरणोन्मुख राक्षस उन्मत्त हाथी और रथ तथा वीर भी काँपने लगे, ऐसी प्रचंड गर्जना हनुमान ने की इन्द्रजित् युद्धभूमि में रथ आगे ले गया। हनुमान भी पूँछ खड़ी करके रण संग्राम के लिए उत्सुक होकर नाचने लगे।"

इन्द्रजित् और हनुमान का युद्ध– एक रावण का राजपुत्र तो दूसरा रामदूत वानर। एक राक्षसों का नेता तो दूसरा वानर-समूह में श्रेष्ठ। दोनों अत्यन्त प्रबल वीर, दोनों का समान शील और बल, दोनों युद्ध-प्रवीण, ऐसे वे युद्ध में चपल महावीर जब आपस में भिड़ गए तब उनका युद्ध देखने के लिए सुरवर, किन्नर, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर, नाग, ऋषि सभी उत्सुक हो गए। सावित्री सहित ब्रह्मदेव, उमा सहित शिव, शक्ति सहित षडानन, अग्नि शची सहित इन्द्र, विकटा सहित वीरभद्र, सिद्धि-बुद्धि सहित गणेश उस युद्ध को देखने के लिए आये। दोनों वीर क्रोध से परिपूर्ण थे। वे महावीर भयंकर कृतान्त काल अथवा कालरुद्राग्नि सदृश प्रतीत हो रहे थे। एक त्रिपुर एक शंकर, एक मदन एक शंबर, एक अनिरुद्ध एक बाणासुर, एक हाथी एक सिंह, एक सर्प एक गरुड़, एक वृत्र एक इन्द्र, एक मुर एक मुरारी, एक त्रिपुर एक त्रिपुरारी, सहस्रबाहु और वज्रधारी सदृश परस्पर युद्ध के लिए भिड़ गए। जिस प्रकार नरहरि हिरण्यकशिपु से भिड़े। एक के पास रथ की रथगति तो दूसरे के पास स्वयं की पूँछ सारथी के सदृश

थी। दोनों युद्ध में पराक्रम दिखाने के लिए युद्ध-भूमि में एक-दूसरे से भिड़ गए। उनकी भेंट क्षण में पृथ्वी पर, क्षण में अंतराल में, क्षण में सागर-जल पर, क्षण में कुलाचल पर होती थी। इन्द्रजित् की गति से वेगवान् हनुमान की गति थी। वहाँ शक्ति अथवा कपट किसी का वश नहीं चलता था। रणभूमि में हनुमान पर विजय प्राप्त करना असंभव था। इन्द्रजित् विचार करने लगा– 'इसके वार भयंकर हैं। वास्तव में ये गिरे फल खाने वाला है लेकिन मुझे भ्रमित कर अँगूठा दिखा रहा है ' यह विचार कर इन्द्रजित् क्रुद्ध हो उठा और उसने युद्ध में भीषण बाणों की वर्षा की। हनुमान ने तुरन्त गर्जना करते हुए पाषाणों की वर्षा की।"

"हनुमान द्वारा फेंके गए पाषाणों को इन्द्रजित् ने अपने बाणों से चूर-चूर कर दिया और उसके बाणों का पाषाणों से चूर्ण बन रहा था। दोनों समान होने के कारण बराबरी का युद्ध चल रहा था। इन्द्रजित् ने स्वर्ण पंखों वाला बाण हनुमान के मस्तक पर निशाना साधते हुए मारा। हनुमान ने प्रबल शिला से इन्द्रजित् के मस्तक पर प्रहार किया, जिससे उसका मुकुट भूमि पर गिर पड़ा। इन्द्रजित् अपने खुले केशों से आवेशपूर्वक शस्त्र-प्रहार कर रहा था, जिन्हें पूँछ से तोड़कर हनुमान व्यर्थ कर रहे थे। इन्द्रजित् ने चेंडू चक्र से प्रहार किया, हनुमान ने शिखर शिला मारी, इन्द्रजित् ने चक्रकाण्डों की वर्षा की तो हनुमान ने पर्वत के पत्थर फेंके। एक ने उड़ान भरकर खांडे से प्रहार किया तो दूसरे ने मुख पर मुष्टिका से प्रहार किया। इस प्रकार युद्ध करते हुए इन्द्रजित् पूरी तरह सन्त्रस्त हो गया उसके मुख से रक्त धाराएँ प्रवाहित होने लगीं। अन्त में उसने हनुमान का वध करने के लिए निर्वाण अस्त्र हाथ में लिया। उसने अत्यन्त कुशलतापूर्वक शूल शक्ति मारी लेकिन वह पर्वत के आघात से पीड़ित हो गया और तब इन्द्रजित् मन से निराश हो गया क्योंकि युद्ध में हनुमान वशीभूत नहीं हो पा रहे थे। यंत्र-शस्त्रों के वार को भी हनुमान ने शिलाओं के प्रहार से व्यर्थ कर दिया अतः इन्द्रजित् का धैर्य समाप्त हो गया और उसे पूँछ ने बंधक बना लिया।"

इन्द्रजित् का युद्ध-कौशल ऐसा था कि वह अवसर मिलते ही रण भूमि में ख्याति अर्जित करता था और अगर युद्ध उसके वश में नहीं होता था, तब पीछे हट जाता था। परन्तु पूँछ के कारण यह भी सम्भव नहीं हो पा रहा था। मारुति ने सम्पूर्ण सेना को ही पूँछ से घेर लिया था, जिसके कारण कोई भी आगे पीछे नहीं हो पा रहा था। इन्द्रजित् बादलों पर भी नहीं भाग सकता था क्योंकि आकाश में भी पूँछ विद्यमान थी, जिससे उसे भागने के लिए मार्ग नहीं मिल पा रहा था। इन्द्रजित् ने जब अन्तिम निर्णायक आघात किया तब हनुमान ने भी पर्वतों की वर्षा कर दी। उसके नीचे सेना दब गई तथा महावीरों में हाहाकार मच गया। सेना में शंका फैल गई कि इन्द्रजित् जीवित है अथवा उसकी मृत्यु हो गई। मारुति द्वारा किये गए पर्वतों के आघात से आहत होकर राक्षस कराहने लगे। 'हनुमान को बल से पकड़ा नहीं जा सकता, कपट से पकड़ने पर पूँछ कपट का निवारण करती है। इस वानर ने तो हमें लज्जित कर दिया है। यह शस्त्र के आघात से भी वश में नहीं होता, बल्कि उसके भय से शस्त्र ही गिरने लगते हैं।' रण में हनुमान को वश में न आता देखकर इन्द्रजित् चिन्तित हो गया। 'इस पर शस्त्रास्त्रों की शक्ति चलती नहीं है। पूँछ के कारण पीछे नहीं हट सकते, आगे हनुमान स्वयं अनियंत्रित रूप में खड़ा है ' इन्द्रजित् को चिन्तित देखकर हनुमान उससे बोले– "इन्द्रजित्, मैं तुम्हें शपथपूर्वक कहता हूँ तुम्हें शिला-शिखर नहीं मारेंगे, पर्वत भी तुम्हारा वध नहीं करेंगे। जिसके बाणों ने इन्द्र को जीत लिया, उस नाम की बड़ी महत्ता है। जिस बाण से इन्द्र को मारा, उसी बाण से वानर को मारकर विजय की गर्जना

करो। जिस बाण के सामर्थ्य से देवताओं को बन्दी बना लिया, उसी बाण से मुझे मारकर विजयी बनो।" मारुति के ये व्यंग्यपूर्ण वचन सुनकर इन्द्रजित् अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने विविध निर्णायक शस्त्रों से हनुमान पर वार करना प्रारम्भ किया।"

मारुति को युद्ध में मारने के लिए इन्द्रजित् ने मन्त्रयुक्ति एवं शरण-शक्ति से वार किया। इस पर हनुमान ने निराली शक्ति का प्रयोग प्रारम्भ किया। इन्द्रजित् द्वारा मारक शक्ति से प्रहार करने पर राम-नाम का स्मरण एवं निरन्तर आवर्तन करते हुए हनुमान निःशंक स्थिति में खड़े रहे। इन्द्रजित् द्वारा बाण चलाने पर हनुमान उसे ऊपर ही पकड़ लेते थे। फिर उन्हें पकड़कर अन्तराल में छलाँग लगाते हुए वही बाण पुनः इन्द्रजित् पर चलाकर रण-क्रंदन करते थे। उन बाणों के लगते ही इन्द्रजित् घबराकर त्राहि-त्राहि करने लगता था, उसकी सेना मारी जा रही थी। इस प्रकार युद्ध में विपरीत ही घटित हो रहा था। हनुमान से युद्ध करते हुए इन्द्रजित् पूरी तरह से भ्रमित हो गया था। उसकी सेना उसी के द्वारा चलाये गये बाणों से मरती हुई दिखाई दे रही थी। 'हनुमान के पास धनुषबाण अथवा अन्य कोई शस्त्र सामग्री न होते हुए भी अपनी ही सेना मारी जा रही है, ' यह देखकर इन्द्रजित् चकित हो गया। 'मैं निर्णायक बाण चलाता हूँ, हनुमान उसे पकड़कर हमारे बाण हमारे ऊपर ही चलाकर युद्ध कर रहा है। वास्तव में, मेरे बाण छूटते ही सुरासुर भय से भागने लगते हैं परन्तु यह वानर वीर अत्यन्त निडर और साहसी है। वह सभी आघात झेलकर उलटकर हम पर ही आघात कर रहा है, अब राक्षसों में कहाँ धैर्य शेष होगा। यह श्रेष्ठ वानर वीर वश में नहीं हो पा रहा है। इसकी पूँछ भी वश में नहीं हो रही। धनुष हाथ में ही टूट रहे हैं, रथ उलट कर धरती पर गिरने से सारथी और घोड़े मारे गए हैं।' उसी समय इन्द्रजित् भी रथ से नीचे गिरा। उसके गिरते ही रण-भूमि में हाहाकार मच गया। राजकुमार मारा गया ऐसी वार्ता फैल गई। हनुमान रामनाम रूपी सामर्थ्य से निःशंक होकर रण-भूमि में घूम रहे थे। इन्द्रजित् को रथ से नीचे गिराकर उसे परास्त कर उन्होंने कीर्ति अर्जित की थी।"

"हनुमान ने बाण, मन्त्रयुक्त शक्तियों एवं साधनों को व्यर्थ सिद्ध कर दिया था। सारथी मारा गया रथ टूट गया। जिससे इन्द्रजित् भयभीत हो उठा। कपट इत्यादि का भी पूँछ के समक्ष कोई उपयोग न था बड़े-बड़े वीरों को मारुति ने परास्त किया। शस्त्रों की गति समाप्त हो गई तब मारुति मन में सोचने लगे कि इन्द्रजित् की शरीर शक्ति को मल्लयुद्ध करके देखना चाहिए। इन्द्रजित् अब संकट में घिर गया. हनुमान ने इन्द्रजित् का गला पकड़कर युद्ध प्रारम्भ किया। दोनों एक दूसरे को छाती, मस्तक एवं भुजाओं पर प्रहार करने लगे। मारुति इन्द्रजित् से बोले– "हे पराक्रमी राजकुमार, तुम हमेशा घी, खीर इत्यादि का सेवन करते हो, मैं तो साधारण पत्ते खाने वाला वानर हूँ। तुम मेरे समक्ष खड़े रहो।" यह कहते हुए हनुमान ने मल्ल युद्ध प्रारम्भ कर उस पर लात से प्रहार किया। इन्द्रजित् ने आगे खिसक कर उस वार को व्यर्थ कर दिया, इस पर मारुति ने हाथों से प्रहार किया। वह वार भी उसने व्यर्थ कर दिया। तब छाती, मस्तक एवं सिर पर आवेशपूर्वक आघात किये। इस प्रकार मल्ल युद्ध कर हनुमान ने राक्षस-वीर इन्द्रजित् को पूरी तरह से पीड़ित कर दिया। फिर मारुति ने इन्द्रजित् को चक्राकार घुमाकर छोड़ दिया लेकिन उसके प्राण नहीं लिये। इन्द्रजित् रक्त की उलटी कर मूर्च्छित हो गया परन्तु लक्ष्मण द्वारा उसका वध निश्चित होने के कारण उसे जीवित छोड़ दिया। भूतल के ऋषिवरों ने, आकाश में सुरवरों तथा किन्नरों– सभी ने उनका जय-जयकार किया। इन्द्रजित् की मूर्च्छा जाते ही वह लज्जा से उद्विग्न हो उठा।"

इन्द्रजित् का भयभीत होकर विवर में छिपना– इन्द्रजित् स्वयं से ही बोलने लगा "हनुमान की धैर्यवृत्ति, शौर्य शक्ति एवं संग्रामगति श्रेष्ठ है। युद्ध में इन्द्र को जीतकर मैंने इन्द्रजित् नाम प्राप्त किया, परन्तु वानर से युद्ध करते हुए तृण-समान तुच्छ सिद्ध हो गया। सम्पूर्ण सृष्टि में श्रेष्ठ वीर होने का मुझे घमंड था परन्तु इस वानर की पूँछ ने मुझे तृण-समान बना दिया। मेरी वीरता, मेरा शौर्य सब व्यर्थ है। मारुति मेरे वश में न हो सकने के कारण मेरा यश, अपयश में बदल गया। मारुति के समक्ष कोई भी युक्ति न चल सकी। केवल मुझे मिले हुए वर के कारण हनुमान मुझे मार नहीं सकता। अगर यह मुझे पकड़कर राम के पास ले गया तो वानर मेरी दुर्दशा कर देंगे। रावण द्वारा सीता को लाने के बदले में यह मुझे राम के पास ले जाएगा, तब वहाँ मेरा वानरों द्वारा अपमान होने पर उसका निवारण कैसे हो सकेगा। रावण भिक्षुक बन सीता को चुराकर ले आया, यह वानर युद्ध में मुझे पकड़कर अवश्य ले जाएगा। बहुत पहले अंगद के पालने से खिलौने सदृश रावण को बाँध दिया था। उस समय पुलस्त्य ऋषि द्वारा वापस माँगने पर रावण का अपमान कर उसे छोड़ा था। उसकी दाढ़ी मूँछें काट कर, मुख में कालिख पोतकर, सिर के बालों की दुर्दशा कर, उसे लंका की ओर फेंक दिया था। लंका के मध्य पड़ा रावण सभी की हँसी का पात्र बन गया था, इस प्रकार उसे लज्जित होना पड़ा था। मुझे पकड़कर ले जाने पर मेरी भी वैसी ही अवस्था होगी। यह वानर वीर मेरे वश में नहीं हो रहा है, पूँछ मेरा पीछा कर रही है, अगर यह मुझे अपनी पूँछ में बाँध कर ले जाने लगा तो मेरी रक्षा हेतु भी कोई नहीं आयेगा। अक्षय की सहायता के लिए जिस प्रकार कोई नहीं आया, वैसे ही मुझे पकड़ कर ले जाते समय भी भय के कारण कोई नहीं आयेगा।' इस प्रकार भयभीत होकर इन्द्रजित् हनुमान को पीठ दिखाकर पूँछ के भय से भागने लगा परन्तु पूँछ के घेरे के कारण उसे भागना असंभव हो गया। इसीलिए अशोक-वन में स्थित एक गुप्त विवर में वह जा छिपा।"

"इन्द्रजित् जब भागने लगा तब भागते हुए का पीछा न करने का धर्मयुद्ध का नियम ध्यान में रखकर तथा इन्द्रजित् का वध नहीं करना था, इस कारण हनुमान ने उसका पीछा नहीं किया। तब पूँछ हनुमान से बोली "स्वामी, मैंने सम्पूर्ण सेना को बन्दी बनाया है। आप इन्द्रजित् का दमन कर थक गये होंगे अत: मुझे युद्ध की आज्ञा दें।" हनुमान बोले "तुम्हारे बल पर ही मैंने दुष्ट महावीरों का संहार किया। अब हम विचारपूर्वक युद्ध करेंगे। मैं चक्की सदृश एवं तुम उसमें अनाज डालने वाली बनकर राक्षस सेना को पीस डालेंगे। उससे जो बच जाएगा उनका वध करेंगे " राक्षस सेना का संहार करने के लिए पूँछ से विचार-विमर्श करने के पश्चात् हनुमान ने राक्षस सेना में खलबली मचाने के लिए भुभु:कार किया राक्षस वीरों ने जब हनुमान को आते देखा तब सबने एकत्र होकर शस्त्रों की वर्षा करना प्रारम्भ किया। उन राक्षस वीरों ने गर्जना करते हुए बाण चलाकर पृथ्वी को अपने स्थान पर ही रोक दिया इतने शस्त्रों की वर्षा की कि वे आकाश में समा नहीं पा रहे थे। हनुमान को शस्त्रों से ढँक दिया। हनुमान ऐसे योद्धा थे, जिन पर राक्षसों द्वारा किये गए शस्त्रों एवं बाणों के वार का कोई असर नहीं हो रहा था बल्कि वे शस्त्र ही नष्ट होते जा रहे थे। यह देखकर राक्षस हाहाकार करने लगे उनका संहार करने के लिए हनुमान उत्तेजित होकर युद्ध करने लगे।"

घोड़े-घोड़ों को मार रहे थे। हाथी हाथियों का संहार कर रहे थे। रथ-रथों को उलट रहे थे, सारथियों को किनारे करते हुए पैरों के नीचे पैदलों को रौंदते हुए वीर वीरों को मार रहे थे। ध्वज, शस्त्र, छत्रों को तोड़ते हुए हनुमान रणभूमि में अनेक वीरों को गिरा रहे थे। पूँछ अलग युद्ध में मग्न थी। मत्त

हाथियों को पूँछ में पकडकर हनुमान ने उनकी हड्डियों को चूर्ण बना दिया। इस प्रकार गज-दल समाप्त हो गया हाथियों के गंडस्थल पर वार करने से गजमुक्ता फल अस्त-व्यस्त हो यत्र तत्र बिखर गए। उन रत्नमालाओं से युद्ध भूमि सज गई। पूँछ ने सेना में घुसकर वीरों का गट्ठर बाँधा, फिर उस गट्ठर को जमीन पर पटकने से वीरों का सर्वनाश हो गया। खच्चर, गधे, ऊँट सभी को पूँछ में बाँध कर उनको नीचे खड़े अश्व दल पर पटककर चूर-चूर कर दिया। मारुति की पूँछ का मार असहनीय होने से रण-भूमि में हाहाकार मच गया। दूसरी ओर वीर हनुमार रण में वार कर रहे थे। क्रोधपूर्वक हाथों से थप्पड़ मारकर वे लक्षावधी राक्षसों का संहार कर रहे थे। करोड़ों को पैरों के नीचे कुचल रहे थे। किसी को मुष्टिका-प्रहार से गिरा रहे थे। अनेक राक्षसों को नखाग्र से तो किसी को घुटनों से और किसी को पटककर उनका घात कर रहे थे। उसका भुभुःकार सुनकर रणभूमि में कोलाहल मच गया। उसके भय से अनेकों के प्राण चले गए। इस प्रकार अनेक राक्षस और वीर-श्रेष्ठ युद्ध में मारे गए।"

रणभूमि की स्थिति– "इस प्रकार चारों ओर पूँछ का घेरा तथा बीच में हनुमान की मार से सेना का अंत हो गया। पूँछ ने इस प्रकार पीछा किया कि राक्षस कुटुम्ब से मिल नहीं पाये और लंका को भी न देख पाए। फिर मृत्यु से बचने के लिए कुछ राक्षस मृत राक्षसों के ढेर में छिप गए। मूर्च्छित होने का ढोंग करने लगे। कोई आघातों से अपनी सुध भूलकर अस्त व्यस्त अवस्था में पड़े रहे। इन्द्रजित् के गर्व का नाश हुआ, उसकी सेना का नाश हो गया। रामनाम के सामर्थ्य से समर्थ होकर हनुमान ने अत्यन्त भीषण युद्ध किया। रणभूमि में रक्त की धाराएँ बहने लगीं। वे रण नदी ही बन गईं। पंखयुक्त बाण उस नदी में मछली के सदृश और ढालें कछुओं की तरह तथा भाले पूँछ युक्त साँप की तरह प्रतीत हो रहे थे। माँस के टुकड़े किनारे पर पड़े कीचड़ सदृश तथा विकराल मस्तक घड़ियाल सदृश प्रतीत हो रहे थे। ऐसा लग रहा था मानों उस नदी में बाढ़ आ गई हो। वह नदी मोक्षदायिनी थी। सर्वस्व का त्याग कर जो उस नदी में कूद पड़ता था, वह दूसरे के साथ सम्मिलित हो जाता था। ध्वज युक्त रथ उस नदी में विद्यमान जहाज़ के सदृश थे और सबको तारने वाले श्रीराम सबको उस पार पहुँचा रहे थे। भद्रकाली वहाँ भूतों का समूह लेकर पधारीं। उन्हें भक्षण के लिए माँस तथा पीने के लिए रक्त मिलने से वे आनन्दित हुईं। यक्षिणी जो बहुत समय से व्रतस्थ थीं, उन्होंने लाखों हृदय (कलेजे) हाथ में लेकर शंखिणी, डाकिनी इत्यादि को वायन रूप में दिये और तत्पश्चात् उनका भक्षण किया। क्षेत्र-पाल आनन्द पूर्वक नाचने लगा। बेताल रणवीरों के सिर नारियल के रूप में चढ़ाने लगा। सभी भूत समूह में उस रण-भूमि में युद्ध करने लगे। चिरप्रतीक्षित कार्य हनुमान ने पूर्ण किया। इसीलिए सभी ने हनुमान की चरण वन्दना कर रणभूमि में विजयी होने की कामना की। रणभूमि में राक्षसों के गिरे हुए दाँतों के ढेर की भूत गणना करने लगे। इस सब के कर्ताधर्ता हनुमान ही थे। देव, ब्राह्मण, भैरव और बेताल को उनमें से कुछ अंश का दान, भूतों को खल दान तथा महाकाली को राजभाग प्राप्त हुआ। इस प्रकार प्रथम उपज को मारुति ने सबमें यथोचित प्रकार से विभक्त कर दिया। उर्वरित अनाज की महाख्याति स्वयं श्रीराम विभक्त करेंगे।

यह सब वार्ता सुनकर वानरगण आनन्दित हुए और उन्होंने हर्ष से गर्जना की। "हमारा हनुमान महापराक्रमी है, उसने युद्ध में राक्षसों का नाश किया" यह कहकर वानरगण तालियाँ बजाकर सुख और आनन्द से परिपूर्ण होकर नाचने लगे। उस समय सुग्रीव ने द्रव्य को अंजुलि हनुमान के ऊपर से उतार कर न्योछावर की और उन्हें हृदय से लगा लिया। सुग्रीव बोले "कपिकुल को तुमने आधार दिया, श्रीराम को सुखी किया, वानरों की रक्षा की। तुम्हारे ही कारण हमें यश की प्राप्ति हुई।" अंगद में इतनी

स्फूर्ति पैदा हुई कि उन्होंने हनुमान को कंधे पर उठाकर चारों ओर नाचना प्रारम्भ किया। कलिकाल को चिढ़ाया। "हनुमान के चरणों के समक्ष कलिकाल तुच्छ है। हनुमान का स्मरण कर अब मैं मृत्यु को भी मार सकता हूँ।" ब्रह्मा द्वारा लिखित हनुमान का अगाध चरित्र-वर्णन सुनकर श्रीराम चकित हुए और उन्होंने हनुमान को आलिंगनबद्ध किया। श्रीराम ने अपनी आँखों के माध्यम से स्वयं परमामृत से हनुमान का अभिसिंचन किया। स्वर्ग में सुरगण विस्मय चकित हुए। शंकर ने स्वयं अपने मुख से भेरी और निशाण (वाद्य) की ध्वनि करते हुए कहा– "हनुमान बहुत भाग्य शाली है। उस पर रघुनन्दन ने कृपा की है।" श्रीराम और हनुमान दोनों आलिंगनबद्ध हुए। दोनों को ही अपनी सुधि न रही। वे एकात्म हो गए, स्वयं को विस्मृत कर देव और भक्त का मिलन हुआ। उस मौन अवस्था में श्रीराम सुखदाता प्रतीत हो रहे थे, वह सुख निबिड़, नित्य दृढ़ एवं सघन था। आदि, मध्य, अन्त कुछ भी शेष न बचा। वेदवाद समाप्त हो गया। जहाँ श्रुतियाँ भी मौन हो जाती हैं, मारुति वहाँ तक पहुँच गए। उनकी भक्ति सार्थक हो गई। तीनों लोकों मे उनकी पवित्र कीर्ति फैल गई। स्वयं श्रीराम भी सुख सम्पन्न हुए।

अध्याय ३२

[हनुमान द्वारा रावण का गर्व हरण]

श्रीराम ने पुनः सतर्क होकर लक्ष्मण से कहा– "आगे ब्रह्मलिखित में मारुति का चरित्र-वर्णन किस प्रकार किया है, वह पढ़ो। राक्षसों की दंतराशि रणभूमि में गिराने के पश्चात् हनुमान ने लंका में क्या किया वह मुझे सुनाओ।" श्रीराम की सूचना सुनकर सुग्रीव एवं वानरगण हर्षित हुए। सभा में बैठे असख्य वानर, वानरश्रेष्ठ हनुमान की वीरता की बातें बड़े चाव से सुन रहे थे। लक्ष्मण को भी हनुमान की कीर्ति-गाथा पढ़ते हुए प्रेम की अनुभूति हो रही थी। उसने श्रीराम की ओर देखते हुए पत्र का यथास्थिति वाचन प्रारम्भ किया।

लंकावासियों की प्रतिक्रिया– इन्द्रजित् का गर्व हरण और उसकी सेना का नाश कर अपनी पूँछ का घेरा हटाकर हनुमान सतर्क होकर शांतिपूर्वक बैठ गए। रावण अब युद्ध के लिए किसे भेज रहा है और उसका निर्दलन किस प्रकार करना है, यह एक ही विचार उनके मन में था। हनुमान चले गये, यह देखकर राक्षस-वीर और कराहते हुए घायल सैनिकों ने लंका नगरी की ओर प्रस्थान किया। राक्षस वीर हनुमान के आघातों से भयभीत हो गये थे। वे 'भागो, वानर युद्ध में मारेगा' यह कहते हुए रावण की सभा की ओर दौड़े। 'रावण बेचारा तुच्छ है। युद्ध में हनुमान को जीता नहीं जा सकता। सेनापतियों सहित सेना भस्म हो गई। वह हनुमान लंका का भी नाश कर देगा। समस्त सेना को उसने धूल में मिला दिया है, ऐसी आवाजें घर-घर से उठने लगीं। नगर की स्त्रियों में दैन्यता फैल गई। लंका पुरी में हाहाकार मच गया। समरभूमि में रावण की वीरता की प्रसिद्धि थी, परन्तु परस्त्री को चुराने के कारण, उस वानर ने भीषण युद्ध कर उसकी सेना का नाश कर दिया। रण भूमि में रावण की मृत्यु होती तो लंका-वासी इतने विचलित न होते परन्तु युद्ध में हनुमान को क्रुद्ध कर इन्द्रजित् का वध करवाया। अक्षय कुमार की मृत्यु का बदला लेने में ज्येष्ठ पुत्र को भी मरवा दिया।' राक्षसों के ये वचन सुनकर दशवदन लंकाधीश हड़बड़ा गया। इन्द्रजित् जीवित है कि उसकी मृत्यु हो गई, इस विषय में कोई भी कुछ नहीं बता रहा था। अतः इस कारण रावण अत्यन्त विचलित हो गया।

हनुमान ने युद्ध में अपने आघातों से इन्द्रजित् का वध कर दिया तथा वीर राक्षसों को मार डाला। इन्द्रजित् अगर सतर्क होता तो वानर उसे कैसे मार सकता था ? हनुमान की पूँछ के भय से कोई राक्षस, उसे ढूँढ़ने नहीं जा रहा था। भूतों द्वारा शवों को खाने के कारण कोई शव पहचान में नहीं आ रहा था ज्येष्ठ पुत्र के युद्ध में मारे जाने के कारण रावण अत्यधिक शोकमग्न था। विलाप कर रहा था। छटपटा रहा था, उसके केश खुले हुए थे। आँसू बहाते हुए वह अपना मस्तक पीट रहा था। वानर के भीषण युद्ध के कारण इन्द्रजित् का घात हुआ। ब्रह्मदेव ने तो मुझसे कहा था कि इन्द्रजित् वानर को गले से बाँधकर मेरे सम्मुख ले आयेगा। ब्रह्मा के वचन असत्य कैसे हो गये ? तब रावण ब्रह्मदेव से बोला– "इन्द्रजित्, वानर को बाँधकर लायेगा, अपने ये वचन सत्य कर दिखलाओ। हम तुम्हारी सन्तानें हैं, पृथ्वी पर हमें श्रेष्ठत्व तुम्हारे बरदान के कारण ही प्राप्त हुआ। अतः मेरे पुत्र से मिलाओ, यही तुम्हारे चरणों में विनती है।"

इस पर ब्रह्मदेव बोले– "तुम इन्द्रजित् का सच्चा वृत्तान्त नहीं प्राप्त कर सकते क्योंकि वह वानर राक्षसों का वध कर रहा है, जिससे तुम बच नहीं सकोगे। अतः मैं ही अशोक-वन में जा कर इन्द्रजित् का पता लगाकर समस्त वृत्तान्त ज्ञात कर तुम्हें बताऊँगा।" तब अत्यन्त दुःख से परिपूर्ण हुए रावण ने पूछा– 'लेकिन इन्द्रजित् जीवित है कि उसकी मृत्यु हो गई ? क्योंकि वानर ने उसे बहुत पीड़ा दी थी।' ब्रह्मदेव बोले– "इन्द्रजित् गुप्त है।"

इन्द्रजित् की शोक-मग्नता– ब्रह्मदेव वन में आये। उन्हें देखकर हनुमान ने उन्हें साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया। हनुमान ने कहा "मुझे रावण की शक्ति का अनुमान लगाने की मनःपूर्वक इच्छा है। वह पूर्ण करके लंका में यश प्राप्त करूँ ऐसा मुझे लगता है।" इस पर ब्रह्मदेव ने कहा– "हनुमान, तुम्हारे भय से इन्द्रजित् गुहा में छिपकर बैठा है। मैं उसके पास जा रहा हूँ। तुम इन्द्रजित् द्वारा फेंका गया ब्रह्मपाश गले में डालकर उसकी भेंट के लिए आना। फिर लंका, त्रिकूट का निर्दलन करना।" मारुति ने स्पष्ट किया कि इन्द्रजित् द्वारा आया पाश-बंधन मैं कदापि स्वीकार नहीं करूँगा। हे ब्रह्मदेव, आपके हाथों आये पाश-बंधन को ही मैं स्वीकार करूँगा।" ब्रह्मदेव बोले– "वैसा ही होगा। मेरे द्वारा प्रेमपूर्वक डाले गए पाश में बाँधकर हनुमान को रावण के समक्ष ले जाया जा सकेगा।" उधर इन्द्रजित् चिन्तामग्न था क्योंकि हनुमान को पीठ दिखाकर रणभूमि से भागते हुए बहुत संकटपूर्वक वह विवर में घुस पाया था। वह मन में आशंकित हो, सोच रहा था कि युद्ध में मारुति से पूर्णरूपेण परास्त होने के पश्चात् रावण को किस प्रकार अपना मुख दिखाये। वह विलाप कर रहा था। उस पर बहुत बड़ा संकट आया था, "उसे लग रहा था कि मेरी युद्ध में मृत्यु हो गई होती तो भी मेरा कल्याण हो जाता। उससे बचने का तात्पर्य है तीनों लोकों में घोर अपमान होना। तीनों लोकों में इन्द्रजित् नाम से जो मैंने कीर्ति अर्जित की, वही अब मेरे लिए अपकीर्ति सिद्ध हो रही है, क्योंकि युद्ध में एक वानर को मैं अपने वश में न कर सका। पत्तों का भक्षण करने वाले उस वानर पर हम महावीर युद्ध में विजय न पा सके, इसके लिए मैं लज्जा का अनुभव कर रहा हूँ। मेरी यह अपमानित और लज्जापूर्ण अवस्था भी मेरी मृत्यु नहीं आने देती" चिन्तामग्न अवस्था में वह ये विचार कर ही रहा था, तब उसे अचानक ब्रह्मदेव के वचन स्मरण हो आये।"

इन्द्रजित् व ब्रह्मा की भेंट, मारुति पाश-बंधन में– ब्रह्मदेव ने कहा था कि 'इन्द्रजित् हनुमान को गले से बाँधकर लंका में लायेगा।' ब्रह्मदेव द्वारा स्वयं अपने मुख से कही गई इस उक्ति का मुझे प्रत्यक्ष अनुभव होना चाहिए परन्तु ब्रह्मदेव को आमन्त्रित करने के लिए मेरे पास कोई सेवक नहीं बचा है। मैं किसी तरह प्राण बचाकर, इस गुहा में छिपकर बैठा हूँ, कोई सेवक समीप नहीं है। स्वयं बाहर

निकलता हूँ तो मारुति की पूँछ से मरण निश्चित है' इसी निराशापूर्ण विचार से इन्द्रजित् विलाप करने लगा। 'मेरे परदादा विधाता ब्रह्मदेव की मुझसे भेंट कैसे हो सकेगी।' इन्द्रजित् इस विचार से चिन्तित था इतने में अचानक ब्रह्मदेव का आगमन हुआ। उनको देखते ही इन्द्रजित् के मन में धैर्य उत्पन्न हुआ। उसने ब्रह्मा से युद्ध की समूल वार्ता बताते हुए कहा– "वानर ने मुझे बहुत दुःख दिया है। आपने तो कहा था कि वह युद्ध में मेरे हाथों बाँधा जाएगा।। हे कृपामूर्ति, आप उस उक्ति को सत्य करें। नारद जी ने कहा है कि ब्रह्मा के वचन असत्य नहीं होते। अतः कृपा कर वानर को मेरे द्वारा पाश-बंधन में बँधवायें। मुझे पाश-बंधन में अगर यशस्वी किया तो मैं रणभूमि में गर्जना कर वानर को ब्रह्मपाश में बाँध दूँगा, जिससे मेरे पराक्रम को प्रशंसा मिलेगी।"

ब्रह्मदेव द्वारा दिया गया पाश-बंधन निशाना साध कर इन्द्रजित् ने हनुमान की ओर चलाया। हनुमान को किसी पाश-बंधन से बाँधा नहीं जा सकता। हरि और हर के वरदान के कारण उन्हें पाश में बाँधना सम्भव नहीं है। पाश टूट जाते है और हनुमान बन्धन मुक्त रहते हैं। पाश के कारण मारुति क्रुद्ध हो उठे। इन्द्रजित् इस विचार से चिन्तित हो उठा कि 'अब आगे उसकी मृत्यु निश्चित है.' वह भय से काँप उठा। इन्द्रजित् द्वारा चलाया गया ब्रह्मपाश हनुमान को लगा ही नहीं इससे इन्द्रजित् को ऐसा अनुभव हुआ कि उसका रण धर्म व्यर्थ हो गया, वह तुच्छ सिद्ध हुआ। इन्द्रजित् सोचने लगा "मेरी अस्त्र-शक्ति, शस्त्र-शक्ति, ब्रह्मपाश, ब्रह्मशक्ति सब शक्तियाँ मारुति ने व्यर्थ कर दीं। उसके समक्ष राक्षस कैसे टिक पाएँगे। जहाँ ब्रह्मपाश व्यर्थ सिद्ध हो जाता है, वहाँ अन्य अस्त्र क्या कर सकते हैं। इस मारुति के समक्ष कोई उपाय नहीं चल पा रहा है। इसका तात्पर्य है कि राक्षसों का नाश समीप है। ब्रह्मदेव द्वारा दी गयी यह शक्ति झूठी होगी, तभी मारुति को पकड़ना सम्भव नहीं हो पा रहा है।" ऐसा सोचकर इन्द्रजित् ब्रह्मा पर क्रोधित होते हुए बोला– "तुम्हारी हमारे प्रति दुष्टबुद्धि है। रावण ने वेदों को विभाजित कर दिया, इसके कारण तुम क्रुद्ध हो और तुम्हीं राक्षसों का नाश करने के लिए हनुमान से कह रहे हो। तुम हमारे मूल पुरुष हो। हम तुम्हारी सन्तानें है फिर भी हमें झूठी शक्ति देकर हनुमान से हमारा वध करवा रहे हो।"

इन्द्रजित् की शंका सुनकर ब्रह्मदेव बोले– "इन्द्रजित् तुम संशय करने वाले, ब्रह्म-द्वेषी और ब्रह्मघाती हो। इसीलिए तुम ब्रह्मशक्ति का उपयोग न कर सके, फिर मारुति कैसे बाँधा जा सकता है ?" ब्रह्मदेव का यह उत्तर सुनकर इन्द्रजित् पुनः बोला– "तुम्हीं ने कहा था कि इन्द्रजित् महावीर वानर को गले में बाँधकर ले आयेगा। अतः अपना कथन सत्य कर दिखाओ।" इस पर ब्रह्मा बोले– "मेरा पाश मेरे हाथों में दो, जिससे हनुमान को बाँधकर लंका में ले जाया जा सकेगा।" इन्द्रजित् ने कहा– "मेरे द्वारा छोड़ा गया ब्रह्मपाश हनुमान ने पूँछ में लपेट कर रखा है। अतः तुम्हें कैसे दूँ।" इन्द्रजित् के वचन सुनकर ब्रह्मा हँसे और मारुति से बोले– "हे हनुमान, तुम्हें पाश-बंधन नहीं है परन्तु मेरे वचन सत्य होने के लिए पाश बंधन मान्य करो।" ब्रह्मा के वचन सुनकर उन्हें साष्टांग दंडवत् प्रणाम करते हुए हनुमान बोले– "आपके वचनों के लिए मैं प्राण तक देने को तैयार हूँ, तब पाश-बंधन तो बहुत छोटा है " यह कहकर हनुमान पाश में बँध गए। पृथ्वी पर निश्चेष्ट होकर मूर्च्छित होने की भाँति लेट गए, ब्रह्मपाश में निश्चेष्ट पड़े हुए दिखाई देने पर भी वे बंधन एवं मोक्ष से परे थे। श्रीराम की कृपा से नित्य निर्मुक्त थे। जिस प्रकार सूर्य का बिम्ब गड्ढे के जल में दिखाई पड़ने पर मूर्ख उसका वही स्थान मानने लगते हैं, उसी प्रकार मारुति को ब्रह्मपाश में देखकर राक्षसों ने यह समझा कि उन्होंने ही बाँधा है। इन्द्रजित् को विजयी वीर समझकर वाद्य बजने लगे। रावण भी प्रसन्न हो गया।"

ब्रह्म द्वारा हनुमान को बाँधने पर भी वे ब्रह्मबंधन से परे हैं, यह देखकर इन्द्रजित् मन ही मन भयभीत था यह हनुमान लंका में अनर्थ करेगा, यह सोचकर उसे भय लगने लगा। हनुमान को निश्चेष्ट भूमि पर पड़ा देखकर सभी राक्षस दौड़ते हुए गये और उन्होंने हनुमान को बेलों की रस्सी से बाँध दिया। किसी ने छाल से और किसी ने टहनियों से बाँध दिया। यह सब घटित होते समय हनुमान उन बन्धनों की व्यर्थता के विषय में सोचकर हँस रहे थे। जिसे ब्रह्मपाश नहीं बाँध सकता, उसके लिए अन्य बन्धन निरर्थक हैं। मारुति बंधन के बहाने रावण को संत्रस्त करने के लिए आये थे. उस समय इन्द्रजित् के मन में विचार आया कि "इसने हमें अशोक-वन में पीड़ित किया। अब यह लंका में रावण को पीड़ित करेगा और मुझे लोग अपयशी कहेंगे।" वास्तव में इन्द्रजित् हनुमान को बाँधकर लंका में लाया यही वार्ता मिथ्या थी.। मारुति स्वयं अनर्थ करने के लिए लंका में आये थे। ब्रह्मदेव ने जो कान में कहा था वही मन में रखकर हनुमान लंका-भुवन में गये थे। इन्द्रजित् मन में भयभीत था। एक पत्ते खाने वाले वानर से उसे डर लग रहा था। लेकिन राक्षस कह रहे थे कि 'हम साहसी राक्षस वीर इस वानर को क्षण में मार डालेंगे' और यह कहते हुए उन्हें रस्सी से बाँध रहे थे। तत्पश्चात् अलग अलग दिशाओं में उन्हें खींच रहे थे। हनुमान को संत्रस्त करने का उनका मनोगत था। मारुति मन ही मन हँस रहे थे तथा विचार कर रहे थे कि 'राक्षस मूर्ख हैं, जो व्यर्थ में मुझे खींच रहे हैं। मैं लंका को तहस-नहस कर डालूँगा, किले की दीवारें गिरा दूँगा। मुझे दुर्ग में ले जाने पर महावीरों का वध कर डालूँगा, लंकानाथ को संत्रस्त कर दूँगा। लंका जला दूँगा।' मारुति को बाँधने से राक्षस आनन्दित हुए तथा वे उन्हें रावण के पास ले गये। उस समय वज्रदेही मारुति ने मुष्टिका-प्रहार से कुछ को मूर्च्छित कर दिया और मूसल के सदृश आघात कर किसी के हाथ उखाड़ दिए।"

हनुमान रावण की सभा में– हनुमान को इन्द्रजित् सहित लंका में लाया गया। उस समय ब्रह्मा स्वयं मुख से जाप कर रहे थे जो कि विपरीत अर्थ व्यक्त कर रहा था। 'गृहा वै प्रतिष्ठा' यह सूक्त कहकर लंका में हनुमान के प्रवेश से यहाँ राजराज्य स्थापित होगा, ऐसा उनका मनोगत था। रावण ने मारुति को देखकर क्रोधित हो, दाँत पीसते हुए कहा– "इसने अक्षय कुमार का वध किया अतः इसके तिल सदृश छोटे टुकड़े कर दो।" इसी के साथ सेना ने शस्त्र उठाकर उस पर प्रहार किया। परन्तु वे शस्त्र हनुमान को लगते ही उसके टुकड़े-टुकड़े हो गए। उनसे राक्षसों के हृदय पर आघात हुआ। किसी के हाथ उखड़ गए, किसी के दाँत टूट गए। बहुत से हाँफने लगे, कुछ मूर्च्छित हो गए। हनुमान ने रामनाम स्मरण करते हुए सेना को शस्त्रसहित नष्ट कर दिया। यह देखकर रावण कृतान्त सदृश क्रुद्ध हो गया। रावण ने हनुमान पर खड्ग से वार किया, जिससे रावण का हाथ लचक गया तथा उसमें झुनझुनाहट उत्पन्न हो गई। उसका वह वार इतना प्रचंड था कि उससे ब्रह्मांड गूँज गया। लेकिन रावण का सामर्थ्य कम पड़ गया। लज्जा से उसकी गरदन झुक गई। हनुमान पर किसी वार का कोई असर नहीं है, यह देखकर रावण चिंताग्रस्त हो गया और हनुमान अट्टहास करने लगे। उन्होंने रावण का पुरुषार्थ व्यर्थ कर दिया था। हनुमान बोले– "राक्षसों द्वारा सम्मिलित रूप से किया गया वार मेरे समक्ष मात्र खटमलों के रेंगने सदृश था। तुम्हारे स्वयं का वार इतना निर्बल था, मानों रुई की पूनी हो। लंकानाथ, तुम्हारे लिए मेरे मन में बहुत भ्रम था परन्तु प्रहार करने में तुमने अपना पुरुषार्थ व्यर्थ सिद्ध कर दिया। तुम्हारे वार से मेरे रोम भी नहीं टूटे। अब आगे तुम श्रीराम से युद्ध करते हुए कैसे टक्कर लोगे। सीता स्वयंवर के प्रसंग में शिव धनुष उठाते समय तुम अपमानित हुए। तत्पश्चात् वही धनुष श्रीराम ने तोड़कर उसके दो भाग

कर दिये। अत: तुम उनसे युद्ध कैसे कर पाओगे। तुम्हारी वास्तविकता मुझे समझ में आ गई। तुम स्वयं भिखारी हुए। उसमें भी तुम्हारा कपट ही था। तुमने श्रीराम की पत्नी चुराई। जो गृहस्थ को पत्नी होती है, वह भिक्षुक की माता होती है। तुम माता-गमनी होकर सीता से पाणिग्रहण के लिए उद्यत हो गए। पहले 'भिक्षा दो माता' इस प्रकार कहकर तत्पश्चात् उसी सीता की अभिलाषा करते हो। तुम सभी प्रकार से महापापी हो। अपनी राजा की गरिमा त्यागकर हाथ में झोली लेकर स्वयं भिखारी बन गए। राजा की महानता तो दूर, तुम तो परस्त्री चुराने वाले हो।"

मारुति अमरत्व के कारण अपने हाथों से मारा नहीं जाता। यह सभा की ओर देखकर रावण ने अनुभव किया जिससे उसे चिन्ता होने लगी। मारुति को यहाँ लाकर ही हमारा पुरुषार्थ व्यर्थ हो रहा है। यह तो मेरी ही हत्या कर देगा, इस भय से रावण थर-थर काँपने लगा। रावण के सिंहासन के सामने ही मारुति का पूँछ का आसन था उस पर बैठकर वे रावण की ओर देख रहे थे। रावण के समक्ष मारुति नि:शंक होकर बैठे थे। यह देखकर रावण भयभीत हो गया और उसने मस्तक झुका लिया। इन्द्रजित् वानर को लंका में ले आया और ब्रह्मवाक्य सत्य सिद्ध हुआ, परन्तु मेरी तो जैसे मृत्यु ही समीप आ गई है।" रावण के मन में भय उत्पन्न हो गया। रावण की चिंता हनुमान समझ गए। उन्होंने रावण को चिढ़ाने के लिए अनेक प्रकार की वानर चेष्टाएँ करनी प्रारम्भ कीं। रावण के समक्ष बैठकर मुँह चिढ़ाया, काँख खुजलाई। पूँछ को रावण की नाक से लगाया, जिसके कारण रावण छींकने लगा। इस प्रकार उस सिंहासनाधीश रावण को हनुमान ने संत्रस्त कर दिया। उसका राज-सम्मान, अभिमान सब हनुमान ने उध्वस्त कर दिया। रावण को लज्जित कर दिया। राक्षस, प्रधान, रावण किसी की भी उन्होंने परवाह नहीं की अन्त में रावण ने स्वयं ही मारुति से वार्तालाप प्रारम्भ किया– "अरे, तुम कौन हो ?"

हनुमान द्वारा रावण को प्रत्युत्तर– हनुमान ने रावण के प्रश्न पर तिरस्कारपूर्ण उत्तर देते हुए कहा "वन-रक्षक किंकर, जम्बुमाली, प्रधानपुत्र, पाँच शूर सेनापति जिसने मारे, मैं वही हनुमान हूँ" मैंने वन के वृक्षों को उखाड़ दिया। इन्द्रजित् का गर्व चूर किया, अक्षय कुमार को मारा। मैं वही साहसी वीर हूँ। मैं किसका कौन हूँ, यहाँ कैसे आया ? आने का कारण क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर सावधानीपूर्वक सुनो। जिसने सुबाहु और ताड़का का वध किया, त्रिशिरा, दूषण और खर को मारा, उसी श्रीराम का मैं दूत हूँ। अब तुम्हारे प्राण हरने के लिए यहाँ आया हूँ। धनुर्धरों के दीक्षा गुरु, स्वयं कोदंडधारी सूर्यवंशी श्रीराम चन्द्र का मैं दूत हूँ और तुम्हारे संहार के लिए यहाँ आया हूँ। अगर तुम्हें ऐसा लगता है कि तुम राक्षसों के राजा रावण हो, और तुम्हें मारने का पराक्रम किसी में नहीं है, तो सुनो– मेरा बल भी असाधारण है. मेरे हाथों के एक प्रहार से मेरु मंदार जैसे पर्वत चूर-चूर हो जाते हैं तो दशानन रावण जैसे छोटे से कीटक अथवा लंका त्रिकूट तो कोई महत्व ही नहीं रखते। तुम्हारे जैसे दशमुखी करोड़ों रावण मैं रणभूमि में मार डालूँगा और लंका त्रिकूट का तो बाँयी मुट्ठी से नाश कर दूँगा। तुम्हें लगता है कि मेरे साथ अनेक वानर मेरी रक्षा के लिए होंगे परन्तु ऐसा नहीं है। मैं अकेला अनेक राक्षस वीर और दशानन रावण से लड़कर उन्हें दण्डित कर सकता हूँ तुम्हारे करोड़ों योद्धा मेरे समक्ष क्षुद्र कीटक के समान हैं। मैं अगर दशानन को मारने आऊँगा तो राक्षस सुरासुर, इनमें से कौन उसकी रक्षा करेगा ? वास्तव में सदाशिव तुम्हारे रक्षक हैं परन्तु श्रीराम की पत्नी का हरण करने के कारण स्वयं शिव ही तुम्हारे वध के लिए तैयार हैं। चौर्य कर्म करने वाले की रक्षा कौन करेगा ? ब्रह्मा तुम्हारे सर्वदा सहायक हैं परन्तु तुम उनके वंश के होते हुए भी दुराचारी हो। तुमने पराये घर में चौर्यकर्म किया है अत: वे भी तुमसे

क्रुद्ध हैं। ब्रह्मा, शिव और इन्द्र सभी देवता तुमसे क्रुद्ध होने के कारण मैं अगर तुम्हारा वध करने लगा तो कौन सामने आयेगा ? तुमने सीता सती को चुराया है। जटायु को विश्वासघात कर मारा है। पतिव्रता से शरीर सुख की कामना की इस कारण प्रजापति क्रोधित हैं। अत: अब दशानन, कुमार प्रधान तथा समस्त सेना का युद्ध में सहार कर मैं सीता को ले जाऊँगा।"

श्रीराम की प्रतिज्ञा का पालन– हनुमान की गर्जना सुनकर इन्द्रजित् थर-थर काँपने लगा और वह विभीषण से बोला "अब रावण का घात निश्चित है।" हनुमान का रण-भूमि में पराक्रम देखकर इन्द्रजित् भयभीत था। 'मारुति की पूँछ के आघात नहीं सहे जाते फिर रावण कैसे बचेगा ? हनुमान को लंका में लाकर कौन सा पुरुषार्थ सिद्ध हुआ ? अब राक्षसों सहित रावण का अंत होगा।' इस विचार से इन्द्रजित् चिन्तित हो उठा। उस समय हनुमान बोले- "श्रीराम तो महान पुरुषार्थी हैं मैं ही रावण का वध कर सीता को मुक्त कर ले जाऊँगा। मुझे कौन रोकेगा ? यह मैं क्षण-मात्र में कर सकता हूँ, परन्तु श्रीराम ने ऐसी प्रतिज्ञा की है कि रावण का वध वह स्वयं अपने हाथों से करेंगे। उनकी शपथ को कौन व्यर्थ कर सकता है ? दशानन रावण का वध कर पृथ्वी को पूर्णत: सुख सम्पन्न कर चराचर को सुखी करने की श्रीराम की प्रतिज्ञा है। देवताओं को बन्धन मुक्त कर, नवग्रहों को बंधन से छुड़ाकर, रामराज्य की स्थापना करने का सामर्थ्य श्रीराम में विद्यमान है। तत्पश्चात् हनुमान ने उड़ान भरी। रावण का वध करने की इच्छा होते हुए भी श्रीराम की प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए उन्होंने रावण का वध नहीं किया। केवल उसके दशमुखों पर नखों से खरोंचा। श्रीराम द्वारा डाली गई मर्यादा का पालन करने के लिए हनुमान ने रावण को जीवित रखा और केवल उसकी निर्भत्सना कर उसे छोड़ दिया।"

"हे रावण, तुम्हारी बड़ाई व्यर्थ है। ऐसा राजा जो भिक्षुक बनता है, चौर्यकर्म करता है, दूसरे की पतिव्रता स्त्री का हरण करता है, उसका कुल, शील, बल सब व्यर्थ है। तुम पराकोटि के पापी हो। तुम्हारे पुरुषार्थ को धिक्कार है। तुम्हारे अपने कर्मों से व्रत, स्वार्थ और परमार्थ सभी का नाश हो गया। तुम्हारी जाति तुम्हारी कीर्ति सभी को तीनों लोकों में अपयश प्राप्त हुआ है। तुम्हारा जन्म, तुम्हारे कर्म, तुम्हारा धर्म तीनों लोकों में निन्दनीय है। तुम्हारा ऐश्वर्य तुम्हारी शक्ति सब व्यर्थ है। तुम्हारा खड्ग इस हनुमान का बाल भी बाँका नहीं कर सकता। श्रीराम के बाणों के भय से उनके पीछे तुमने सीता का हरण किया, तुम्हारे शौर्य और शक्ति को धिक्कार है। तुम्हारा पृथ्वी पर जीवित रहना उचित नहीं है। चौर्य कर्म वाला बैरी होता है। अत: मैं तुम्हारा सपरिवार घात करूँगा। मैं तुम्हारी सेना के वीरों के समक्ष तुम्हारे दसों कंठ छेद डालूँगा। मैं इसीलिए राम के स्थान पर यहाँ आया हूँ।" यह कहते हुए महाबली हनुमान ने अपने केश फैला लिए और पूँछ को भूमि पर पटका। उनकी पूँछ बढ़ने लगी, तभी उन्हें स्मरण हो आया कि श्रीराम रावण का वध करने वाले हैं अत: व्यर्थ ही क्रोध न करने का निश्चय कर, उन्होंने अपने क्रोध पर नियन्त्रण किया।"

अध्याय ३३

[हनुमान द्वारा लंकादहन का वर्णन]

"लंकाधीश रावण के सिंहासन के सदृश पूँछ का आसन तैयार कर हनुमान सतर्क होकर बैठ गए एवं रावण की तरफ देखने लगे। जिस प्रकार सिंह के सामने हाथी को तथा गरुड़ के सामने सर्प

को भय लगता है, उसी प्रकार मारुति का शौर्य देखकर रावण भय से काँपने लगा। रावण को भयभीत देखकर इन्द्रजित् और विभीषण उसे समझाने लगे। वे बोले "हनुमान सर्वथा अवध्य हैं। उसका वध करने के लिए जाने पर, उसने महावीरों को संत्रस्त कर दिया और मात्र पूँछ से समस्त सेना का वध कर डाला। वह किसी के वश में नहीं हो सकता। अतः उसे समझाने के लिए सीता, श्रीराम को अर्पित कर दें और श्रीराम की शरण जायें। उसी में हम सबका कल्याण है। श्रीराम का यह अकेला पत्ते खाने वाला वानर इतना भयंकर है। उसे हम वश में नहीं कर पा रहे हैं। तब श्रीराम के स्वयं आने पर उन्हें कौन सह पाएगा" विभीषण के वचन सुनकर और इन्द्रजित् का युद्ध का भय देखकर रावण चिन्तित हो उठा। हनुमान की ओर देखकर वह थर-थर काँपने लगा। इन्द्रजित् के विचार और विभीषण की, राम की शरण जाने की बात सुनकर रावण सोच में पड़ गया कि क्या करना चाहिए। उसे ऐसा लगा कि एक वानर के भय से श्रीराम की शरण जाने पर हमारा सिर झुक जाएगा। अतः उसने विचार किया कि कपट से हनुमान का वध किया जाय।"

रावण द्वारा हनुमान की मृत्यु के विषय में पूछना– "रावण विचार करने लगा कि जब जटायु वश में नहीं हो पा रहा था, तब कपट के द्वारा उसकी मृत्यु के विषय में पूछ कर उसका वध किया। उसी प्रकार हनुमान को श्रीराम की शपथ देकर उसकी मृत्यु के विषय में पूछ कर उसे मारना चाहिए। श्रीराम-भक्त सत्यवादी होते हैं, झूठ नहीं बोलते। अतः श्रीराम की शपथ देने पर यह सत्य बता देगा कि इसकी मृत्यु किसमें है। इस प्रकार कपट से उसे मारना चाहिए विचारपूर्वक यह युक्ति कर रावण, हनुमान से आदरपूर्वक बोला– "वानर श्रेष्ठ, तुम्हें श्रीराम की सौगंध देकर पूछता हूँ कि तुम्हारी मृत्यु कैसे सम्भव है।" श्रीराम की शपथ सुनकर हनुमान ने श्रीराम की वन्दना की। तत्पश्चात् वे बोले "लंकेश, मुझे कभी मृत्यु नहीं आ सकती ये मेरे सत्य वचन हैं।" हनुमान के यह वचन सुनकर रावण अट्टहास करते हुए बोला– "अरे, जन्म लेने से पूर्व गर्भ में ही मृत्यु निश्चित हो जाती है। फिर तुम्हें अमरत्व कैसे मिला ? "हे हनुमान, श्रीरामभक्त होते हुए भी, तुम झूठ कैसे बोल रहे हो ?" इस पर हनुमान बोले "जिस प्रकार जटायु से उसका मरण पूछ कर तुमने कपट से उसे मार डाला, वैसा ही मेरे साथ करोगे, इस भय से मैं झूठ बोला" तब रावण बोला–"अरे, जिसके मन में मृत्यु का भय हो, वह कैसा रामभक्त है ? देह लोभी को श्रीराम भक्ति प्राप्त हो ही नहीं सकती।" इस प्रकार रावण ने ज्ञान और योग्यता इत्यादि के विषय में बातें कहीं। तब मारुति उससे बोले "तुम परस्त्री का हरण करने वाले हो, तुम्हारा ज्ञान निरर्थक है। तुम स्वयं मृत्यु के भय से भयभीत होकर सीता का हरण कर भागे और अब तुम मुझे 'मृत्यु से नहीं डरना चाहिए' यह सिखा रहे हो." ये वचन रावण के मन में चुभ गए। तत्पश्चात् हनुमान उससे बोले– "मेरी मृत्यु किसमें है, यह मैं तुम्हें सत्य बताता हूँ। तुम ध्यान से सुनो।"

पूँछ लपेटने में अपयश प्राप्त होना– हनुमान रावण से बोले "मैंने तुमसे झूठ नहीं कहा, मेरी देह को मृत्यु नहीं है परन्तु मेरी पूँछ को मरण है। मेरी पूँछ को मारने से मेरी भी मृत्यु हो जाएगी " यह सुनकर इन्द्रजित्, प्रधान, सैनिक सब इसे सत्य समझ बैठे। मारुति की पूँछ को जलाने से मारुति अवश्य मर जाएगा, ऐसा उन्होंने निश्चय किया। श्रीराम की सौगंध देने से भयभीत होकर हनुमान ने अपनी मृत्यु के विषय में बता दिया। अतः पूँछ के दहन से इसकी मृत्यु हो जाएगी, इस बात को रावण ने भी सत्य मान लिया। तब रावण ने हनुमान से पूछा कि पूँछ को कैसे जलाया जाय ? तब हनुमान ने लंका जलाने के अपने मनोगत को ध्यान में रखते हुए कपट करने का निश्चय कर कहा "तेल और घी में

भीगे हुए वस्त्र सम्पूर्ण पूँछ पर लपेटो और उसमें अग्नि लगाओ, जिससे मेरी मृत्यु हो जाएगी." यह सुनकर आनन्दित होते हुए रावण ने दूतों को पूँछ को लपेटने की आज्ञा दी। पूँछ लपेटना प्रारम्भ हुआ। पुराने वस्त्र समाप्त हो गए, फिर नवीन वस्त्रों से पूँछ लपेटना प्रारम्भ हुआ फिर भी पूँछ लपेटी न जा सकी। कपड़े के व्यापारियों के कपड़े ले लेने के कारण वे चिल्लाने लगे। पुराने नये सभी वस्त्र लपेटने पर भी पूँछ लपेटी न जा सकी। तत्पश्चात् राजगृह के वस्त्र, नगरवासियों के वस्त्र, सभासदों के वस्त्र, परदे, ओढ़ने-बिछाने के वस्त्र लपेटने पर भी एक चौथाई पूँछ भी ढँकी न जा सकी।

जो व्यक्ति वस्त्र सहित दिखाई देता, उसके वस्त्र दूत ले लेते थे, जिससे नगरी के स्त्री-पुरुष सभी चिन्तित हो गए, चारों ओर कोलाहल मच गया। वे नग्न-अवस्था में लज्जा रक्षण हेतु इधर उधर भागने लगे। दुर्ग में तेल घी के भंडार समाप्त हो गए। नगर का तेल व घी समाप्त होने के कारण दीप बुझ गए, सर्वत्र अंधकार फैल गया। रावण घबरा गया। नगर में तेल घी एवं वस्त्रों का अभाव हो गया फिर भी पूँछ लपेटी न गई। अनावृत लोग हाहाकार करने लगे, मारुति की पूँछ ने सबको भमित कर दिया।

"वानर वीर महापराक्रमी हनुमान ने पूँछ के माध्यम से समस्त लंका को लूट लिया। राक्षस थक कर चूर हो गए परन्तु पूँछ लपेटी न गई, वह बढ़ती ही जा रही थी। राक्षसों की मृत्यु समीप थी। किसी प्रकार का युद्ध न करके भी पूँछ लपेटने के माध्यम से ही रावण को तुच्छ सिद्ध कर दिया। जब पूँछ का एक सिरा बाकी रह गया तब रावण बोला– "पीतांबर लपेट दो।" रावण मन ही मन सन्तोष का अनुभव इसीलिए कर रहा था क्योंकि पूँछके जलने से हनुमान की मृत्यु निश्चित थी. इसी विचार से पूरी पूँछ लपेटने की रावण ने आज्ञा दी। शीघ्र पीताम्बर, श्वेताम्बर, रेशमी वस्त्र, महावस्त्र लपेटे गए परन्तु पूरी पूँछ न ढँक पाई। तब इन्द्रजित् मदमीन हो गया। वह कहने लगा– "अगर हनुमान बच गया तब वह सबको मार डालेगा। अतः उसकी सम्पूर्ण पूँछ जलाकर उसका वध करना चाहिए।" रावण के मन में भी भय था, वह यह सोचकर दुःखी हो रहा था कि अगर इसकी पूँछ हम नहीं लपेट सके, तो हम इसे कैसे मार सकेंगे ? उस समय विद्युन्माली राक्षस बोला– "अगर महाबली वानर वश में नहीं हो रहा है तो जानकी को अनावृत करें, जिससे यह पूँछ शीघ्र नियन्त्रण में आ जाएगी। उस राक्षस के ये शब्द सुनते ही हनुमान ने अपनी पूँछ को समेटा तब दूत रावण को कहने लगा– "हम सेवक अत्यंत पराक्रमी हैं, हमने पूँछ को लपेट लिया" यह कहकर वह तालियाँ बजाकर गर्जना करने लगे।

पूँछ को जलाने का नाटक– रावण ने क्रोध-पूर्वक कहा - "पूँछ को आग लगाओ। लोहारों को उनकी धौंकनी लेकर बुलवाया गया और धौंकनी से अग्नि प्रज्वलित की गई तो रावण प्रसन्न हुआ। पूँछ की होली जलाकर हनुमान को मारने के लिए स्वयं अग्नि के पास आया। उस समय अग्नि के मन में रावण की दुर्गति करने का विचार था। हनुमान के मन में भी वैसा ही विचार था अतः मारुति ने अपने पिता वायु से विनती की कि अग्निवायु का पुत्र है अतः वे ज्वाला न होने दें।" अब चारों ओर से धौंकनी से धौंकने पर भी अग्नि पूँछ को स्पर्श नहीं कर रही थी। राक्षस चिन्तित हो गए, रावण को भी अपमानित होने जैसा अनुभव हुआ। अतः रावण ने हनुमान से पूछा– "ऐसा क्यों हो रहा है ? अग्नि पूँछ को स्पर्श क्यों नहीं कर रही है ? तब हनुमान बोले– "तुम अत्यन्त मूर्ख हो, जिसे सद्-असद् विवेक नहीं होता वह अज्ञानी ही होता है और तुम तो ज्ञान गर्व रूपी पाषाण सदृश हो, तुम धर्म लक्षण नहीं समझते। अरे, अचेतन धौंकनी के फूँकने से ज्वालाएँ सचेतन कैसे हो सकती हैं ? हे लंकाधीश, तुम्हें इतना भी ज्ञान नहीं है तुम निरे अज्ञानी हो" मारुति के इस कथन से सहमत होकर रावण ने राक्षसों को जोर से फूँकने

के लिए कहा। यह कहते ही पूँछ के चारों तरफ एकत्र होकर राक्षस फूँकने लगे। तब हनुमान ने अग्नि को पूँछ से ढँक दिया। इसके साथ ही धूम्र की दुर्गंध राक्षसों के गले में जाने से वे घबरा गए। उनकी आँखों से पानी बहने लगा, श्वास फँसने से वे खाँसने लगे। इस प्रकार उनमें हाहाकार मच गया।"

सर्वत्र धुआँ भर गया था। हनुमान ने सर्वत्र त्राहि-त्राहि उत्पन्न कर दी थी। तब रावण ने हनुमान से पूछा- "इतना फूँकने पर भी पूँछ क्यों नहीं जलती ?" हनुमान बोले- "रावण, मैं जो कह रहा हूँ, वह सुनो। "जिस प्रकार यजमान द्वारा सुपारी प्रदान किये बिना होम नहीं करते, उसी प्रकार स्वत: रावण के फूँके बिना अग्नि ज्वालाएँ पूँछ को स्पर्श नहीं करेंगी। यह तुम्हारे राक्षस एक मुख से कितना फूँक पाएँगे। तुम्हारे दस मुख हैं, उनसे फूँकने पर अग्नि पूँछ को जलाएगी." हनुमान की इस सूचना के पश्चात् शुद्ध आचमन कर सर्वप्रथम घी की आहुति देकर दशमुख रावण स्वयं फूँकने के लिए बैठा। हनुमान द्वारा किया गया विवेकपूर्ण उपाय सफल हुआ। उनके वचन सत्य मानकर रावण तैयारी के साथ अग्नि प्रज्वलित करने के लिए सिद्ध हुआ। उसने हनुमान को मारने हेतु मन में कपट रखकर आवेशपूर्वक फूँकने का निश्चय किया। मेरे मुख से पूँछ के जलते ही हनुमान की मृत्यु होने से संसार में मेरी कीर्ति फैल जाएगी।" हनुमान उसी समय अपने पिता वायु से विनती करते हुए कह रहे थे- "रावण द्वारा अग्नि को फूँकते ही उसका ऐसा अपमान करें कि वह किसी को मुख दिखाने के योग्य न रहे।" रावण आवेशपूर्वक चिल्लाकर अग्नि को फूँकने लगा। तब एकाएक ज्वालाएँ प्रज्वलित हो जाने से रावण की दाढ़ी-मूँछें जल गईं; वह चिल्लाने लगा। उसका मुख जलकर काला हो गया। इस प्रकार राजा रावण पूरी तरह से अपमानित हुआ।"

श्रीराम सहित सबके द्वारा हनुमान की प्रशंसा– हनुमान द्वारा नयी कल्पना से किया गया पराक्रम सुनकर श्रीराम हँसने लगे। सुग्रीवादि वानर वीरों को भी हँसी आ गई। लक्ष्मण भी ब्रह्मा द्वारा लिखित पत्र पढ़ते हुए हँसने लगे। हनुमान ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक रावण को अपमानित किया, इसकी सब प्रशंसा करने लगे। "हमारा हनुमान पराक्रमी है, उसने एक बड़े व्यक्ति को अपमानित किया"– यह कहकर वानर तालियाँ बजाते हुए हर्ष-पूर्वक गर्जना करने लगे और नाचने लगे। विजयी महावीर हनुमान की जयजयकार करने लगे। श्रीराम का भी उन्होंने नामस्मरण किया। तत्पश्चात् अंगद ने उठकर रणवाद्यों की ध्वनि की, आकाश से सुरगणों ने पुष्पवृष्टि की। श्रीराम को अपार सुख एवं सन्तोष का अनुभव हुआ। अपने सेवक एवं भक्त की कीर्ति सुनकर रघुपति आनन्दित होकर बोले– "धन्य है मारुति, जिसने तीनों लोकों में पवित्र कीर्ति अर्जित की।" श्रीराम लक्ष्मण से बोले– "ब्रह्मलिखित को आगे पढ़ो, जिससे हनुमान ने पूँछ जलने के पश्चात् क्या पुरुषार्थ किया, वह ज्ञात होगा।" लक्ष्मण ने श्रीराम की चरण-वन्दना कर ब्रह्मलिखित पत्र को पढ़ना शुरू किया। श्रीराम मन को केन्द्रित कर सुनने लगे।। उस समय हनुमान वहाँ पर हाथ जोड़कर खड़े थे। अपनी स्तुति सुनकर भी उन्हें अभिमान का अनुभव नहीं हुआ। वे बोले– "मैं तुच्छ वानर हूँ। श्रीराम मेरी प्रशंसा कर मेरी कीर्ति को बढ़ाते हैं। परन्तु वास्तव में युद्ध में राम का नाम ही महाशूर और भयंकर है। श्रीराम ही हाथों एवं शस्त्रों का सामर्थ्य हैं। वही राक्षसों का वध करते हैं। वही रणभूमि में रणक्रन्दन करते हैं। श्रीराम प्राणों के प्राण, शस्त्रों की शक्ति हैं। मेरा पुरुषार्थ मैं श्रीराम को ही अर्पित करता हूँ।" हनुमान के वचन सुनकर श्रीराम सुखपूर्वक डोलने लगे। भक्ति के भाव की गहराई श्रीराम के अन्तर्मन तक पहुँच गई।

श्रीराम-नाम की महत्ता का वर्णन– सौमित्र ब्रह्मलिखित पत्र आगे पढ़ने लगे– "रावण अपमानित एवं लज्जित होकर सभा में गया। पूँछ ने त्राहि-त्राहि मचा रखी थी। जली हुई दाढ़ी-मूँछें एवं अपमानित काला मुख लेकर रावण लज्जित होकर सिंहासन पर बैठा। अपयश प्राप्त होने से रावण चिन्तित हो गया। पूँछ का दहन होने पर आगे हनुमान क्या करेगा, इस विषय में वह चिन्तित हो उठा। "वह सोचने लगा कि 'मैं मारुति से कपट करने गया परन्तु श्रीराम भक्तों के समक्ष कपट व्यर्थ हो जाता है। अतः उलटे मुझे ही यन्त्रणा सहकर अपमानित होना पड़ा। हनुमान ने उड़ान भरते समय रामनाम का स्मरण किया और अत्यन्त कठिन सात-पाशों को छेद डाला। वहाँ बेलों, डोरियों एवं यमपाश की क्या योग्यता है ? काल-पाश, कर्म-पाश, ब्रह्मपाश, माया-पाश, मोहपाश, और जन्मपाश ऐसे सात पाशों को हनुमान ने छेद डाला। कालपाश आयुष्य घात से सम्बद्ध होता है। कर्मपाश नैश्वर्यवंत, धर्मपाश आश्रम से सम्बन्धित, ब्रह्मपाश वेद विहितार्थ से सम्बद्ध, मोहपाश देह ममता से सम्बन्धित, मायापाश आशा-आकांक्षाओं से सम्बन्धित और जन्मपाश कनक एवं कांता से सम्बन्धित होता है। इस प्रकार सात पाशों से जीवन बँधा रहता है। राम-नाम धारण कर मारुति ने इन सात पाशों से निवृत्ति साध ली। उसके समक्ष अन्य लोगों की युक्तियाँ निष्फल हो जाती हैं। शास्त्र व्युत्पत्ति भी वहाँ भ्रमित हो जाती है। श्रीराम-नाम रूपी परब्रह्म से कर्म नष्ट हो जाते हैं। धर्म-अधर्म का छेदन किया जाता है। रामनाम स्मरण करते ही अबद्ध वेद सुबद्ध होकर सुश्राव्य हो जाते हैं। अबद्ध मन्त्रों का उच्चारण करने वाले विचलित हो जाते हैं। परन्तु अबद्ध नाम-स्मरण कर असंख्य जड-मूढ़ तर जाते हैं। क्रिया-कर्म अथवा विधिविधानों में चूक हो जाने से उद्धार नहीं होता परन्तु हरिनाम के उच्चारण से शाश्वत स्थिति प्राप्त होती है।

श्रीराम-नाम स्मरण के लिए कर्म बन्धन अथवा विधिविधान नहीं है। बैठे हुए, भोजन के समय, शयन के समय श्रीहरि का नाम पवित्र होता है। स्वप्न में भी श्रीराम-नाम स्मरण करने से फल प्राप्त होता है। श्रीराम का नाम इतना प्रभाव पूर्ण है। श्रीराम नाम प्रत्यक्ष परब्रह्म है। बुधकौशिक ऋषि को स्वप्न-स्थिति में ही राम रक्षा की प्राप्ति हुई। इस राम रक्षा ने तीनों लोकों में उद्धारकर्त्ता के रूप में महत्व प्राप्त किया। जिसके पास राम-रक्षा है, उससे कलिकाल भी काँपता है। यमधर्म उसके शरणागत होता है, तीर्थ उसका चरणतीर्थ माँगते हैं। इस राम-रक्षा का इतना सामर्थ्य है कि मात्र राम-नाम रूपी दो अक्षरों के स्मरण मात्र से ब्रह्मप्राप्ति होती है। श्रीहरि का नाम इतना प्रभावपूर्ण है कि उससे ब्रह्मस्थिति की प्राप्ति होती है। वह कलिकाल को भी रोक लेती है। श्रीराम नाम की पूर्णत्व रूप में प्राप्ति होने के कारण मारुति को विजय प्राप्त होकर तीनों लोकों में उसकी कीर्ति हुई"। इस प्रकार ब्रह्मदेव ने अपने लिखित पत्र में हनुमान की स्थिति का वर्णन किया। उसके आगे पूँछ प्रज्वलित होने के पश्चात् हनुमान ने क्या किया, यह लिखा था।

हनुमान द्वारा मृत्यु का नाटक, उस पर व्यक्त प्रतिक्रिया– पूँछ के प्रज्वलित होते ही, जिस प्रकार अग्नि चन्द्र को आलिंगन देने के लिए आवेशपूर्वक जाती हो, उसी प्रकार आवेशपूर्ण स्थिति हनुमान की भी थी–"रामनाम के अतिरिक्त अन्य कोई श्रेष्ठ साधन नहीं है। रघुनाथ ने मुझ पर कृपा की, इसी कारण अग्नि से मुझे कोई हानि नहीं हुई"– हनुमान यह सोचने लगे। श्रीराम-नाम से यद्यपि हनुमान सातों बन्धनों से मुक्त हो गए थे, फिर भी उनकी पूँछ राक्षसों का नाश करने के लिए लालायित थी। हनुमान ने अपनी आँखें पलट दीं, मुँह से झाग उत्पन्न किया और पूँछ जमीन पर फैलाकर शान्त लेट गए। यह देखकर राक्षस प्रसन्न हुए फिर उन्होंने पास जाकर उन्हें हिलाकर देखा। उस समय हनुमान ने हाथ-पैर

हिलाये बिना केवल मुँह पिचकाया। राक्षस उन्हें उलट पलट कर देखने लगे, ऐसा करते हुए अग्नि से जलने के कारण वे दूर भागे तत्पश्चात् किसी ने उसे छड़ी से कोंचा, किसी ने थप्पड़ मारे परन्तु वे तनिक हिले नहीं। सब कहने लगे कि हनुमान की मृत्यु हो गई। रण-भूमि में पराक्रम कर जगत् श्रेष्ठ हनुमान करोड़ों राक्षसों की मृत्यु के कारण बन गए। इन्द्रजित् और रावण उनसे अत्यन्त भयभीत थे। राक्षस विचार करने लगे कि अगर इसने अपनी मृत्यु के विषय में न बताया होता तो इसने ही सबका वध कर दिया होता परन्तु तीक्ष्ण बुद्धि रावण ने इसे कपट से मार डाला। यह अच्छा हुआ। यह वानर स्वयं ही अपनी मृत्यु का कारण बना। जब राक्षस वैद्य ने हनुमान की परीक्षा की तो वे बोले- "इस वानर के हृदय में प्राण हैं परन्तु वह अत्यन्त क्षीण हो गया है। अत: क्षणार्द्ध में यह मर जाएगा" हनुमान की मृत्यु हो जाएगी। यह सुनकर वाद्य बजने लगे। इन्द्रजित् ने प्रसन्न होकर पचखाद्य (प्रसाद) का वितरण किया। रावण द्वारा हनुमान के वध की वार्ता सुनकर लंका के नागरिक और राक्षस वीरों की भीड़ हनुमान को देखने के लिए एकत्र हो गई।

हनुमान द्वारा प्रज्वलित पूँछ से त्राहि-त्राहि मचाना– मारुति द्वारा मृत्यु का ढोंग करने पर राक्षस समूह उसको देखने के लिए एकत्र था। उन सबका नाश करने का हनुमान को अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने अपनी जलती हुई पूँछ से राक्षस-समूह पर प्रहार किया जिससे जलकर राक्षसों की दुर्दशा हुई। उन्होंने जलती पूँछ को द्वार पर फैला दिया, जिससे कोई बाहर न जा सका। इसके पश्चात् उन्होंने पूँछ से राक्षसों को जलाना प्रारम्भ किया। सभी राक्षसों के शरीर और कपड़े जल गए। सब वैसे ही, अपनी अवस्था दिखाने के लिए रावण के पास आये हनुमान भी तब राज द्वार पर आये प्रजाजन कहने लगे हे रावण, तुम्हारी महानता व्यर्थ है। तुम्हारे ही द्वारा लगायी गई आग से इसने सर्वनाश कर दिया। वस्त्रों के लिए समस्त लंका लूटी गई। तेल घी सब ऐसे समाप्त हो गया कि अब दिये तक नहीं जल पा रहे हैं अब तो प्राणों पर भी संकट आ गया है। पहले ही वह वानर अति बलशाली था, अब तो उसकी पूँछ में अग्नि भी प्रज्वलित है। अब यह वानर समस्त लंका को जला देगा और राक्षसों का संहार करेगा। हे रावण, तुम्हारे मन में ही कपट था। इस कपट से अनर्थ हो रहा है, यह वानर सबको नष्ट कर देगा। इस पर रावण ने हनुमान से पूछा "हनुमान, तुम लंका किस हेतु से जला रहे हो ?"

हनुमान ने रावण से कहा "हे लंकानाथ, मैं तत्वत: जो कह रहा हूँ वह सुनो, 'पूँछ की निश्चित ही मृत्यु आ गई है। इसीलिए मृत्यु के भय से लंका में छिपने के लिए वह छटपटा रही है। अब इसके लिए मैं क्या करूँ ? मृत्यु से बचने के लिए वह किसी के पैर पकड़ रही है किसी के पेट में घुस रही है। किसी के वस्त्रों में छिप रही है, किसी के गले में पड़ते हुए शरण जा रही है। हे लंकाधीश, यह विनती कर रही है कि मुझे मृत्यु से मुक्त करो' रावण मैं भी तुमसे विनती करता हूँ कि प्रज्वलित होने से पूँछ व्याकुल हो गई है, अत: उसे मृत्यु से मुक्त करो, वह शरणागत है तथा मृत्यु से मुक्त होने के लिए कह रही है।" मारुति राक्षसों के नाश के लिए तत्पर थे परन्तु रावण उस प्रज्वलित पूँछ के कारण मचे हुए हाहाकार से भयभीत था। मारुति निश्चिंत अवस्था में बैठे थे और पूँछ ने सबको जलाते हुए त्राहि त्राहि मचाई थी। मारुति यद्यपि शान्त थे परन्तु पूँछ एक एक कर सैनिकों को जला रही थी। राक्षस सेना में खलबली मच गई, सभी सन्त्रस्त थे। पूँछ की अग्नि ने समस्त लंका को घेर लिया था। राक्षस छटपटा रहे थे परन्तु पूँछ के समक्ष किसी का भी बल न चल पा रहा था

मारुति विचार करने लगे कि अग्नि मेरी कमर से लिपटा है, उसे पूर्णरूपेण तृप्त करना चाहिए। इस विचार से वह अत्यन्त आनन्दित हुए। विचार करते हुए उन्हें एक बात ध्यान में आई कि वे स्वयं और अग्नि सगे बंधु हैं। उन दोनों का ही पिता वायु है, यह सर्वविदित है। अतः दोनों आत्मभाव से सुहृद हैं। वायु के ज्येष्ठ पुत्र अग्नि और कनिष्ठ पुत्र हनुमान का मिलन हुआ; वायु बहुत प्रसन्न हैं। अपने इस महान ज्येष्ठ बन्धु को लंका भुवन रूपी थाली भोजन के रूप में प्रदान की जाय। राज मंदिर में श्रेष्ठ भोज्य पदार्थ विद्यमान हैं ? शुद्ध भक्ष्य वहाँ प्राप्त होगा।

"हनुमान द्वारा सर्वत्र हाहाकार मचाना प्रारम्भ हो गया। अग्नि की पहली प्राणाहुति के रूप में रावण का छत्र जलाया। अटारियाँ, गोपुर, गृह इत्यादि का भोज्य दिया गया। चन्दन मन्दिर चावल के रूप में, गृहसामग्री दाल के रूप में, पताका कढ़ी तथा मणिमाला घी के रूप में अग्नि को अर्पित की गई नाना प्रकार के वृक्ष भाजी सदृश दिये, जो अत्यन्त स्वादिष्ट थे। नमक के रूप में समस्त गुप्त धन दिया, तृण-भंडार के रूप में दही तथा तृणघरों का दहन कर उसकी आपोष्णी* प्रदान की। इस प्रकार उन्होंने अपने ज्येष्ठ भ्राता अग्नि को भोजन के रूप में लंका भुवन अर्पित किया। हनुमान पूर्वद्वार पर बैठे और अपनी पूँछ को उन्होंने लंका नगरी में भेजा। घरघर में आग लग गई। सम्पूर्ण नगरी में हाहाकार मच गया। मारुति ने आश्चर्यजनक रूप में पूँछ को चारों ओर घुमाकर सम्पूर्ण नगर को घेर लिया। राक्षस छटपटाने लगे। वे बाहर नहीं जा सकते थे, इस कारण उनकी ऐसी दुर्दशा हुई।"

प्रज्वलित पूँछ से सर्वत्र दहन– मारुति की प्रज्वलित पूँछ द्वारा सर्वप्रथम लोगों के पहने हुए वस्त्र जलाने के कारण नर-नारी, नग्न-अवस्था में इधर-उधर दौड़ रहे थे। राक्षस समूह कोने में छिपकर कराह रहे थे। स्त्रियाँ नग्नअवस्था में लज्जा से संत्रस्त थीं। लोगों की देह जलने से लोग हाहाकार मचा रहे थे। नगर को चारों ओर से पूँछ ने घेर रखा था। लंका नाथ को अपमानित कर, उस प्रज्वलित पूँछ ने चारों ओर त्राहि-त्राहि मचा रखी थी। हनुमान को जलाकर मारने का विचार तो रह ही गया। इसके विपरीत अग्नि तीव्र कर पूँछ द्वारा हनुमान ने सम्पूर्ण लंका-नगरी और राक्षसों को जला दिया। जो नागरिक नगर के बाहर जाना चाह रहे थे, वे पूँछ द्वारा चारों ओर घेरे होने के कारण नहीं जा पा रहे थे। उन्हें बाहर निकलना असम्भव हो गया। इस प्रकार लोग सभ्रमित अवस्था में इधर उधर घूमते रहे। पूँछ के कारण सर्वत्र आग फैल गई। लंकादुर्ग की होली जल रही थी, दुर्ग की दीवारों के ढहने से उसके नीचे दबकर राक्षस मर रहे थे। समस्त राक्षस सेना समाप्त हो गई। दुर्ग की दीवारें ढह गईं, खाइयाँ पट गईं। श्रीराम को सेना सहित आने के लिए मार्ग खुल गया। इस प्रकार जो लंकानगरी अत्यन्त दुर्गम थी, उसके समस्त अवरोध, दरवाजे, देहरी, रक्षक सभी हनुमान ने जलाकर नष्ट कर दिए।"

लंकानगरी के चारों ओर जो गढ़रक्षक सेना थी, उनके ठिकानों पर भी हनुमान ने आग लगा दी, गढ़ के चारों ओर रखी तोपों में आग लगने से उसके गोले फूटने लगे, जिससे अनेक वीर मर गए तथा हाहाकार मच गया। हनुमान अग्नि और वायु तीनों ने एकत्र होकर लंका जला दी। पृथ्वी तपने लगी। पृथ्वी के तपने से उसके आधार शेषनाग के फनों को आँच लगने लगी। गर्मी को मिटाने के लिए उन्हें जल में डुबकी लगानी पड़ी। उस शेष पर श्रीराम ने शयन किया था। (शेषशायी श्रीविष्णु यही श्रीराम हैं, ये कल्पना है।) जिस प्रकार प्रलयकाल की अग्नि सत्यलोक को जलाती है, उसी प्रकार लंका दहन के प्रसंग में अग्नि आकाश तक पहुँच गई। जब हनुमान ने लंका जलाई तब उसकी उष्णता से तीनों जगत्

* आचमन अर्थात् भोजन से पहले व बाद में हाथों में जल लेकर पीना।

तप्त हो गए। लंकावासी संकट में पड़ गए, राक्षस मारे गए, तत्पश्चात् हनुमान ने रावण के रनिवास में पहुँचकर आग लगाई। हनुमान की पूँछ रावण के समीप पहुँची। रावण चिल्लाने लगा। सभी राक्षस भयभीत हो गए। इन्द्रजित् शोक मग्न हो गया और कहने लगा– "लंकानाथ कैसे बच पाएँगे। हनुमान से युद्ध करते हुए सारी शक्तियाँ अवरुद्ध हो गईं, अब लंका नाथ की मृत्यु समीप है, कोई रावण को बाहर निकालो नहीं तो यह भी पूँछ के आवर्त में फँस जाएँगे।" इन्द्रजित् के ये वचन सुनकर राक्षसों ने दीवार गिराकर मार्ग बनाया परन्तु हनुमान ने अपनी प्रज्वलित पूँछ मार्ग में बिछा दी, जिससे बाहर निकलने का मार्ग बन्द हो गया। सर्वत्र हाहाकार मच गया। उस समय कुछ साहसी राक्षस वीरों ने ढाल, तलवार, शूल त्रिशूल, परशु, पट्टिश, गदा, मुद्गर इत्यादि शस्त्र लेकर हनुमान पर चढ़ाई की। पृथ्वी और आकाश बाणों से भर गए, इस प्रकार रावण के समस्त राक्षसों ने आरपार की लड़ाई प्रारम्भ कर दी। हनुमान भी युद्ध के लिए तैयार हुए।"

हनुमान पर आक्रमण एवं उनके द्वारा प्रतिकार– 'इस मारुति ने अनेकों को परास्त किया है, अब इसे ही परास्त किया जाए' ऐसी गर्जना करते हुए तथा शस्त्रों की वर्षा करते हुए राक्षस-वीर युद्ध के लिए आगे बढ़े। कवच-धारी एवं तलवार धारण किए हुए राक्षस वीर आगे होकर चारों ओर से वार कर रहे थे तथा मारुति को पूँछ के आघात से कुशलतापूर्वक बच रहे थे। तब मारुति ने विचार किया कि 'ये राक्षस वीर बहुत क्रुद्ध हैं अतः इनके वार झेलकर इनका पुरुषार्थ देखा जाय। उनके शस्त्रों के वार से मेरा रोम तक टूट न सकेगा।' उनके शस्त्रों के वार के नीचे हनुमान छिप गए, राक्षस वीर चिल्लाने लगे– "हम लोगों ने अपने बल से वानर को भूमि पर गिरा दिया। तत्पश्चात् उन्होंने सामने से तोमर एवं पीछे से वज्र से प्रहार किया। एक ही साथ नाना प्रकार के शस्त्र चलाये, बाणों की वर्षा की। हनुमान उन शस्त्रों के नीचे लेटे रहे। अतः 'महाबली वानर को मार गिराया'– इस कल्पना से सब ताली बजाने लगे। 'यह हिलडुल नहीं रहा है, निश्चित ही इसके प्राण चले गए हैं। हम लोग पराक्रमी वीर हैं, यह कहते हुए राक्षसों ने विजय वाद्य बजाये। इस वानर ने बहुत वीरता-पूर्वक युद्ध किया लेकिन हम भी पराक्रमी वीर हैं, हमने मारुति का युद्ध में अन्त कर दिया। इस प्रकार राक्षस अपनी कीर्ति का गान करने लगे। उन्होंने आनन्दपूर्वक शक्कर बाँटी।* अब लंकापुर को बुझाओ।हमने युद्ध में वानर को मार डाला। अब रणभूमि में ढूँढ कर देखो कि किस घाव से यह मरा है ? 'तभी हनुमान ने भुभुःकार करते हुए छलाँग लगाई।'

हनुमान की गर्जना सुनकर रावण भयभीत हो गया। राक्षसों के तो प्राण ही चले गए। लंका ज्वालाओं के आवर्त में फँस गई। कहीं पलायन के लिए भी मार्ग न रहा। राक्षसों की मृत्यु समीप आ गई। हनुमान सभामंडप के अष्टधातुयुक्त बड़े स्तम्भ उखाड़कर राक्षसों पर वार करते हुए उनका निर्दलन कर रहे थे। इस प्रकार सभी के हाथ, पैर, कलाई, नाड़ियाँ, अस्थि, सिर, कंठ, पीठ, पेट सभी चूर चूर हो रहे थे। इस तरह से राक्षसों को मारकर उन्हें सत्व, रज, तम- इन तीनों गुणों से परे ले जा रहे थे। उनकी इन्द्रियों की त्रिगुण वृत्ति को गुणातीत कर रहे थे। श्रीराम भक्तों के हाथों से मृत्यु प्राप्त करने वाले गुणातीत होते हैं ऐसी रामभक्तों की ख्याति है। उन्हें परब्रह्म की प्राप्ति होती है। इस प्रकार मारुति ने सेना का सर्वनाश किया, यह देखकर रावण आगे आया परन्तु वह भी मृत्यु की कल्पना से भयभीत हो गया"।

* प्रसन्नता व्यक्त की।

रावण भयपूर्वक विचार करने लगा- "मारुति सेना का संहार कर मेरे पास आया है, अब इसका निवारण कौन करेगा ? इसने अक्षय कुमार का और राक्षसों का वध कर दिया है। इन्द्रजित् युद्ध से भयभीत है। अब मारुति का निवारण कौन करेगा ? उसने मारुति से ही मन में उत्पन्न प्रश्न पूछा। तब मारुति बोले- "रावण, तुम्हारे दस सिर मैं अपने हाथों से ही तोड़ता परन्तु श्रीरघुनाथ स्वयं अपने हाथों से तुम्हारा वध करेंगे " श्रीराम की मर्यादा रेखा का उल्लंघन मारुति के लिए सम्भव न था। इसी कारण रावण बच गया, उसकी मृत्यु चूक गई। इस प्रकार रावण को संत्रस्त कर लंका भुवन जलाकर हनुमान वापस लौटे। सीता को दंडवत् प्रणाम कर अनन्य भाव से उनकी शरण में जाकर श्रीराम की चरण वंदना करने के लिए वापस लौटे सीता का मस्तक मणि लेकर एवं मौखिक चिह्न पूछ कर वे वापस लौटे। मुख से श्रीराम-नाम का स्मरण करते हुए हृदय में श्रीराम मूर्ति प्रतिष्ठित कर, श्रीराम की कीर्ति के लिए देह अर्पित कर हनुमान अनन्य भक्तिपूर्वक वापस जाने लगे। हनुमान ने इस प्रकार श्रीराम के प्रति अनन्य भक्ति प्रकट की। हनुमान श्रीराम को गति की गति व सर्वप्राणियों में विद्यमान मानकर परमार्थ भक्त हो गए। उन्हें जागृति, स्वप्न एवं सुषुप्ति में भी श्रीराम दिखाई देते थे।" इस प्रकार वर्णन कर ब्रह्मलिखित पत्र पूर्ण हुआ। अब आगे श्रीराम का आगमन, सेतु-बंधन इत्यादि विषय वर्णित हैं।

अध्याय ३४

[श्रीराम का समुद्रतट पर आगमन]

ब्रह्मदेव बोले "ब्रह्मलिखित पत्र में हनुमान की कीर्ति संक्षेप में वर्णित की है परन्तु हनुमान द्वारा अर्जित की गई कीर्ति इससे कहीं अधिक है। हे श्रीराम, तुम्हारे इस वानर ने लंका में आकर अठारह लाख दीप बुझा दिए। रावण की सभा को नग्न कर उसे संत्रस्त किया। रावण के शयन मंदिर में प्रवेश कर मन्दोदरी का स्वप्न सुनकर उन्होंने सीता को ढूँढ़ा। अशोक वन जाकर सीता को राममुद्रा देकर सुखी किया। तत्पश्चात् राक्षस राज को पीड़ित करने के लिए वन के वृक्षों को तहस नहस कर डाला। वन-रक्षक, किंकर, पांच मुख्य सेनानी, प्रधान पुत्र, जम्बुमाली सभी का राक्षस सेना सहित वध किया। रावण के प्रमुख आधार अक्षय कुमार को मार डाला। इन्द्रजित् को भयग्रस्त कर बलाढ्य राक्षस वीरों का निर्दलन किया। करोड़ों राक्षस सैनिकों को युद्ध में धराशायी कर दिया। रक्त के प्रवाह से उस समय पृथ्वी भीग गई। भूतों को भक्षण हेतु मेद*, माँस दिया, स्नान करने के लिए रक्त की नदी प्रवाहित की। तृप्त होकर भूत प्रेतों, पिशाचों ने रणनर्तन किया। रावण की दाढ़ी एवं लंका की होली जला दी। तत्पश्चात् यह पराक्रमी हनुमान तुम्हारे समीप आया है। मेरे सामर्थ्य के अनुसार मैंने उसकी कीर्ति पत्र में लिखी है। वास्तव में मैं भी उससे पूरी तरह से अवगत नहीं हूँ अत: उसे लिखना मेरे लिए असम्भव है। जिस प्रकार श्रीरामचन्द्र अवतारी पुरुष हैं, उसी प्रकार हनुमान भी वीर धीर, महाशूर गुणगम्भीर हैं। श्रीराम भगवान् हैं तो हनुमान भक्त हैं। श्रुतिशास्त्र भी दोनों के स्वरूप के विषय में नहीं जानते तो मैं उन्हें कैसे जान सकता हूँ श्रीराम जीव हैं तो हनुमान प्राण हैं। श्रीराम शिव हैं तो हनुमान ज्ञान हैं। दोनों परिपूर्ण ब्रह्म हैं।"

---

* चर्बी।

श्रीराम द्वारा हनुमान की स्तुति - ब्रह्मदेव द्वारा लिखित पत्र द्वारा हनुमान के पराक्रम के विषय में सुनकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए। उन्होंने आनन्द से अभिभूत होकर हनुमान को आलिंगनबद्ध किया। दोनों के हृदय परस्पर मिलकर राममय हो गए। श्रीराम एकत्व में अनेक तथा अनेकत्व में एक रूप में प्रकट हुए। हनुमान अन्तर्बाह्य श्रीराम मय हो गए। जिस प्रकार नमक समुद्र में मिलकर एक रूप हो जाता है, उसी प्रकार हनुमान श्रीराम से मिलकर एक रूप हो गए। ईश्वर और भक्त का मिलन हुआ। निर्विकल्प परमानन्द से सृष्टि परिपूर्ण हो गई। यह देखकर सुग्रीव परम आनन्दित हुए। सभी वानर विजयी वीर हनुमान की जयजयकार करने लगे तथा साथ ही श्रीराम नाम का स्मरण करने लगे। हनुमान की कीर्ति सुनकर श्रीराम ने स्वयं प्रेमपूर्वक उनकी स्तुति की। उनकी स्तुति करते हुए श्रीराम तृप्त नहीं हो रहे थे। वे बोले- "सागर लाँघकर लंका जाकर, हनुमान ने अतर्क्य श्रुतिशास्त्रप्रयुक्ति का प्रयोग कर सर्वत्र ख्याति अर्जित की। एक ही उड़ान में समुद्र पार करना, गरुड़ वायु और वायुनन्दन मारुति के लिए ही सम्भव है। अन्य किसी के लिए यह सम्भव नहीं है। गरुड़ का गमन पंखों की गति से सम्भव है, वायु के पास सर्वत्र गमन की शक्ति है परन्तु एक ही उड़ान में सागर को लाँघने की ख्याति अर्जित करने वाले हनुमान ही हैं। सुरसा, सिंहिका तथा मैनाक पर्वत ने जब समुद्र में हनुमान का मार्ग अवरुद्ध किया तब एक को छोड़कर, एक का वध कर तथा एक का स्पर्श कर उनका गर्व हरण किया। उनकी उड़ान की महानता इतनी है कि लंका को पीछे छोड़कर एक दम पड़लका में प्रवेश किया तथा वहाँ पर क्रौंचा का परिवार सहित वध किया।"

श्रीराम आगे बोले- "लंका दुर्ग समुद्र में स्थित है। रावण सपरिवार उसकी रक्षा करता है। अत्यन्त दुर्गम गिरिशिखर पर वह स्थान अत्यन्त कठिन है। उस दुर्ग की विशेषता यह है कि तैंतीस कोटि देवता वहाँ बन्दी हैं। नवग्रहों के पैरों में बेड़ी पड़ी हुई है। देव, दैत्य, दानव, यक्ष, सिद्ध, गंधर्व, पन्नग, ऋषि, मानव सभी रावण से भयभीत रहते हैं। वहाँ अन्य सामान्य प्राणियों का कोई महत्व नहीं है। वे अत्यन्त तुच्छ हैं। ऐसी उस भयानक लंका में बिना किसी की सहायता व साथ के हनुमान अकेले प्रवेश कर गए और असामान्य यश संपादन किया। उसने युद्ध में ऐसा पराक्रम किया कि इन्द्रजित् आश्चर्यचकित रह गया। रावण को संत्रस्त कर, इसने लंका का दहन किया। सीता से भेंट कर उसके रहस्य जानकर जगत् श्रेष्ठ वीर हनुमान मणि लेकर वापस लौटा है।" हनुमान ने सीता को ढूँढ़ने में जो शौर्य सम्पादन किया उससे वानर राज सुग्रीव प्रसन्न हुए। राम, सीता के विषय में श्रवण कर सुखी हुए। सीता के पश्चाताप के कारण लक्ष्मण सन्तुष्ट हुए। वानरों को मारुति के वचन सुनकर अति सुख की अनुभूति हुई। वानर जाति का मान बढ़ाते हुए मारुति ने रण-भूमि में किये पुरुषार्थ के कारण वानर राज सुग्रीव को धन्यता का अनुभव हुआ। वे बोले- "हनुमान ने राक्षसों को मारकर तथा सीता को ढूँढ़कर वानरजाति के पुरुषार्थ एवं अभिमान का संरक्षण किया है।

हनुमान द्वारा लंका-दुर्ग का वर्णन- श्रीराम द्वारा हनुमान की स्तुति करने पर हनुमान ने अत्यन्त विनय पूर्वक श्रीराम को साष्टांग प्रणाम करते हुए कहा- "श्रीराम, आपके नाम की शक्ति प्रबल होने के कारण ही मैं लंका में पराक्रम कर सका। मेरे समान सेवक की आप स्तुति क्यों कर रहे हैं।" हनुमान के ये वचन सुनकर रघुनन्दन सन्तुष्ट होकर मारुति से बोले- "अब लंका दुर्ग के विषय में मुझे बताओ, वह कैसा है ? वहाँ कितनी सेना है ? दुर्ग द्वार पर रखी तोपें कितनी और कैसी हैं, गुप्त मार्ग कैसे हैं ? दुर्ग में किस प्रकार प्रवेश किया जा सकता है ? तुमने सम्पूर्ण दुर्ग को ढूँढ़ा है। घर-घर को

ढूँढ़ा है। रावण के पास कितनी सेना है ? कौन और कितने पराक्रमी योद्धा हैं ? युद्ध करने के लिए आगे कौन आयेगा ? यह सब यथास्थिति मुझे बताओ। तुम स्वयं युद्ध में प्रवीण हो अतः रण लक्षण भी बताओ। निपुण राज-पुत्र होने के कारण श्रीराम ने हनुमान से दुर्ग के विषय में अनेक प्रश्न किये। तब हनुमान ने उन प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा– "लंका-दुर्ग समुद्र की खाई के बीच में स्थित होने के कारण अत्यन्त दुर्गम हो गया है। लंकादुर्ग समुद्र में अत्यन्त गहन स्थान पर होने के कारण दुर्ग में चलने वाली सुरासुरों की गतिविधियों का पता नहीं चलता है। मन्दोन्मत्त हाथियों से मद-स्राव होने के कारण उसकी गंध वायुमंडल में व्याप्त रहती है। मदमत्त भँवरे वहाँ झंकार करते रहते हैं। अश्वरथों की भीड़ से उड़ने वाली धूल आकाश तक व्याप्त हो जाती है। करोड़ों वीर राक्षसों से युक्त सेना वहाँ विद्यमान है. वह लंका दुर्ग अत्यन्त कठिन है। खाई में अपार जल राशि है, जिसमें मछलियाँ, मगर, घड़ियाल इत्यादि असंख्य जलचर प्राणी विद्यमान हैं। शत्रु सेना को देखकर तोपों पर तोपें चढ़ाकर दूर से ही महागोलों की वर्षा कर शत्रुसेना को नष्ट किया जाता है। गुप्त मार्गों की ऐसी व्यवस्था है कि वह कपटी इन्द्रजित् गुप्त रीति से धावा बोलकर रातोरात शत्रुपक्ष के वीरों का वध कर डालता है. उस दुर्ग में शतानुशत द्वार हैं परन्तु आवागमन चार द्वारों से ही होता है। उन स्थानों पर अर्गला एवं जंजीरों की सतत् ध्वनि होती रहती है। वहाँ लोहे की जंजीरों से बद्ध कपाटों की रचना की गई है। श्रीराम से युद्ध करने की कल्पना से प्रसन्न रावण ने सशस्त्र सेना एकत्र की है, जो आगे रहकर युद्ध करेगी "

हनुमान द्वारा लंका निर्मिति एवं संरक्षण-व्यवस्था के विषय में कथन– "लंकाधीश रावण के निवास हेतु विधाता ने समुद्र के मध्यभाग में स्थित पर्वत पर लंका नगरी स्थापित की दुर्ग निर्माण का कार्य विश्वकर्मा ने किया। विश्वकर्मा ने अपनी कुशलता से लंका दुर्ग में प्रवेश अत्यन्त कठिन बनाया है इस विषय में मैंने पहले वर्णन किया ही है। दुर्ग के चारों द्वारों पर रावण ने अत्यन्त पराक्रमी योद्धाओं को रक्षक के रूप में नियुक्त किया है पूर्व दिशा की ओर स्थित द्वार पर शूल और खड्गधारी दस हजार राक्षस वीर नियुक्त हैं। वे अत्यन्त भयंकर और साहसी हैं। पश्चिम द्वार पर महाशूर शस्त्रास्त्र प्रवीण लाखों राक्षसवीर दुर्ग की रक्षा के लिए हैं। दक्षिण द्वार की ओर रथ, हाथी एवं घोड़ों पर सवार लक्षावधी राक्षसों द्वारा दुर्ग की रक्षा की जाती है। दिन रात उनकी गर्जना का स्वर गूँजता रहता है, दुर्ग के प्रमुख द्वार की रक्षा स्वयं दशानन करता है, उसका भयंकर आतंक है. इसी द्वार से रघुकुल तिलक राम अवश्य लंका में प्रवेश करेंगे। विभिन्न स्थानों पर लगायी गई असंख्य चौकियाँ राक्षस-वीरों से भरी हुई हैं। रावण स्वयं अपने परिवार सहित उत्तर द्वार की रक्षा करता है। समुद्र के द्वीप पर त्रिकूट नामक पर्वत पर लंका विद्यमान है। चारों ओर राक्षसों के घर हैं; शत्रु को यह दिखाई नहीं देती लंका दुर्ग गुप्त और कठिन है परन्तु मैंने निश्चयपूर्वक छान-बीन की है।"

हनुमान आगे बोले– "मैंने सम्पूर्ण लंका दुर्ग देखा है। हे रघुपति, आप इस विषय में निश्चिन्त रहें। आप ये न समझें कि मैंने रात्रि के समय चोरी से प्रवेश कर राक्षसों से युद्ध कर ख्याति अर्जित की है. रावण द्वारा मेरी पूँछ में आग लगाते ही मैंने लंका जलाकर उसी समय युद्ध में राक्षसों का वध किया। उस समय ऊँचे शुभ्र गोपुर सात अटारियों से युक्त घर तथा लंका का प्रत्येक घर और मुख्य रूप से राज प्रसाद जलाए। अर्गलाएँ, जंजीरें, दुर्ग के चबूतरे देहरी, लोहे की शृंखलाओं से बँधे स्थान इस हनुमान नामक सेवक वानर ने जला दिए। दुर्ग के चारों ओर मछली, मगर समुदायों से भरी खाइयाँ, दुर्ग के किनारे की दीवारें गिराकर मैंने पाट दी हैं दुर्ग को जलाते समय दुर्ग जिस पर्वत पर निर्मित है, उसे भी अपनी

पूँछ की सहायता से जला दिया है। राक्षसों का संहार कर रावण को दीन हीन बनाकर लंकाभुवन मैंने जला दिया है परन्तु विभीषण पूर्ण रूप से परमार्थी भक्त होने के कारण, उसका घर नहीं जलाया जो कोई श्रीराम का भक्त होता है, उसे हम अपना सगा सम्बन्धी मानते हैं। रावण के घर की समस्त रानियों को भी मैंने छोड़ दिया। श्रीराम की सेना लंका में सहज रूप से प्रवेश कर सके इसीलिए दुर्ग सहित लंका की होली जला डाली। वानर अगर समुद्र लाँघकर आ सके तो वे तत्काल लंका में प्रवेश कर पाएँगे। समुद्र के पार लंका दुर्ग में रावण निवास करता है। समुद्र में बड़ी मछलियाँ हैं और वे नौकाएँ निगल लेती हैं। अतः नावों का कुछ भी उपयोग नहीं है। छोटी बड़ी मछलियाँ, घड़ियाल और नाव निगलने की क्षमता रखने वाले महानक्र* उस समुद्र में होने के कारण यह समुद्र भयंकर कठिन है तब आप उस पार कैसे जाएँगे ? इसके लिए सर्वप्रथम समुद्र लाँघने का क्या उपाय है, इस विषय में सोचना चाहिए " हनुमान द्वारा समुद्र को कठिन बताते ही श्रीराम उत्साहित हो उठे। वे बोले– "मैं अग्निबाण चलाकर समुद्र सोख लूँगा। जल-जन्तुओं के प्राण चले जाएँगे फिर भी मैं ऐसा करूँगा। अपने तीव्र तप एवं सत्यनिष्ठा के बलपर समुद्र में पगडंडी बनाऊँगा, उस पर से वानर वीर सुख एवं सन्तोषपूर्वक उस पार जायेंगे। परन्तु उस तुच्छ से समुद्र को लाँघने के लिए मैं अपनी तप रूपी सम्पत्ति क्यों खर्च करूँ ? समुद्र पर सेतु का निर्माण कर मैं योद्धाओं को उस पार ले जाऊँगा।"

प्रयाण का मुहूर्त एवं सैन्य रचना सम्बन्धी विचार– श्रीराम ने सुग्रीव को सम्बोधित कर कहा- "रावण को युद्ध में मारने के लिए हम आज ही प्रस्थान करेंगे विजया दशमी का सुमुहूर्त है इसी मुहूर्त पर मेरे परदादा चक्रवर्ती राजा रघु को विजय प्राप्त हुई थी। शमी के वृक्ष के नीचे उसी रात्रि को कुबेर ने अपार सम्पत्ति की वर्षा की थी और भूमि पर सर्वत्र धन फैल गया। तभी से आज तक विपुल धन अर्जित कर लाने के लिए विजयादशमी को सीमोल्लंघन किया जाता है। लोग इसी दिन शमी पूजन करते हैं। पूर्वजों का यह सुमुहूर्त आज मुझे प्राप्त है। अतः शीघ्र लंका को प्रस्थान के लिए सेना सिद्ध करें। रण भूमि में लंकाधीश को दंडित करने के लिए मेरी शुभ आँख फड़क रही है। सीता को आलिंगनबद्ध करने के लिए मेरी भुजाओं में आनन्द से स्फुरण हो रहा है। सूर्य के मध्यान्ह में आते ही युद्ध में विजय प्रदान करने वाला अभिजित योग होने के कारण हो हमें प्रस्थान करना चाहिए।" श्रीराम के वचन सुनते ही सुग्रीव में भी उत्साह का संचार हुआ। उसने रण वाद्यों की ध्वनि कर लंका के लिए प्रयाण की सूचक-गर्जना की अंगद भी हर्षित हो उठे। वानर-सेना में उत्साह का संचार हुआ। महाबली रावण का वध कर जनक-कन्या को लाने के लिए सभी उत्सुक हुए। सुग्रीव की राजाज्ञानुसार वानरों को जिन मार्गों से जाने का निर्देश दिया गया, उन्होंने उसी प्रकार जाने का निश्चय किया

सुग्रीव की वानर सेना आज्ञाकारिणी थी। महावीर नील उनका सेनापति था। उसने मार्गक्रमण करते हुए आगे जाने की पद्धति बनायी। उसने शीघ्रगति वाले वानरों को आगे भेजकर फल-मूल और जल उपलब्ध होने वाले स्थलों का पता लगाकर तत्काल वापस आने के लिए कहा तथा उसी मार्ग से सेना आगे ले जाने का निश्चय किया क्योंकि फल, मूल, जल उपलब्ध न होने वाले मार्ग से सेना ले जाने पर उन्हें कष्ट होगा। "मार्ग की स्थिति का पता लगाकर वानरों को बीच में विश्राम देते हुए सेना को ले जाने में सेनापति अपनी सज्ञानता का परिचय दें" श्रीराम द्वारा यह सूचना देने से वानर प्रसन्न हुए और बोले– "श्रीराम रघुनाथ अत्यन्त कृपालु हैं। हम श्रीराम के कारण सनाथ हो गए हैं, हम वानरों को

* बड़े मगर।

रामदूत कहा जाता है।" इस प्रकार आनन्दित होकर वानरों ने हर्षपूर्वक श्रीराम का जय जयकार किया। श्रीराम द्वारा मार्गक्रमण की सूचना देने के पश्चात् सेनापति नील ने साष्टांग दंडवत् प्रणाम कर श्रीराम की चरण वंदना की। तत्पश्चात् नील तथा उसके परिवार के शत सहस्र वानर सबके आगे जय-जयकार करते हुए चलने लगे। गज, गवाक्ष और शरभ नामक वानर वीर नील के पीछे अपने परिवार सहित थे। तीनों का परिवार भी जयजयकार की गर्जना कर रहा था। जिस प्रकार गाय के पीछे बछड़ा चलता है, उसी प्रकार वह सेना संभार नील के पीछे-पीछे चल रहा था। ऋषभ नामक वानर योधी वीर दाहिनी ओर था। गंधहस्त और गंधमादन को बायीं ओर चलने के निर्देश थे। इसके पश्चात् युवराज अंगद ने भी अपने परिवार के करोड़ों वानरों के दल को लेकर प्रस्थान करने से पूर्व श्रीराम को प्रणाम किया। उसके पश्चात् निशान, भेरी, तड़क, ढोल, नगाड़े, रणमोहरी (रणवाद्य) इत्यादि वाद्यों की ध्वनि गूँजने लगी। तत्पश्चात् राजा सुग्रीव ने अपने सैन्य परिवार के साथ प्रस्थान किया। उस समय वानरों ने श्रीराम सहित उसका भी जय जयकार किया।

जिन वानर-वीरों की सेनाओं ने प्रस्थान किया, उस सेनाओं में सैकड़ों काले मुख वाले वानर, शत सहस्र लाल मुख वाले एवं करोड़ों सफेद मुख वाले तथा असंख्य सुनहरे मुख वाले वानर थे। कोई अनार के पुष्प सदृश कोई सिन्दूरवर्णी तो कोई सुनील नीलवर्णी वानर थे। कोई उदयकाल के लाल सूर्य सदृश तो कोई चन्द्रबिम्ब सदृश स्वच्छ, कोई इन्द्रधनुष सदृश झुके हुए तो कोई स्फटिक सदृश वानर सेना में विद्यमान थे। असंख्य वानर वीर श्रीराम-नाम की गर्जना करते हुए चल रहे थे। इस प्रकार राजा सुग्रीव का सेना संभार था। उसके मस्तक पर चन्द्रबिम्ब सदृश छत्र था, चँवर डुलाये जा रहे थे इस प्रकार ठाट-बाट से जाते हुए रणवाद्यों की ध्वनि गूँज रही थी। फलित, पुष्पित वृक्ष और किंशुक फूलों को उछालते हुए वानर चल रहे थे सेना में पताकाएँ थीं, वीर रामनाम की गर्जना कर रहे थे। वानर वीर अत्यन्त प्रसन्न थे। वे सभी रावण का वध कर सीता को वापस लाने की भावना से आनन्दपूर्वक श्रीराम का स्मरण कर रहे थे। कुछ आनन्दपूर्वक नाच रहे थे। श्रीराम-सीता के अभिषेक की कल्पना कर वे उल्लसित थे। "हम श्रीराम के योद्धा हैं, हमारे समक्ष वह तुच्छ रावण क्या टिक पाएगा ? हम सीता को लाकर श्रीराम का अभिषेक करेंगे" यह उनकी महान मनोभावना थी। सुग्रीव का इतना सेना-संभार देख कर श्रीराम सन्तुष्ट थे। तत्पश्चात् शीघ्र प्रस्थान करने के लिए श्रीराम और लक्ष्मण ने एक अलग मार्ग का अनुसरण किया।

श्रीराम और लक्ष्मण सेना सहित दक्षिण की ओर– इन्द्र जिस प्रकार ऐरावत पर चढ़ता है, उसी प्रकार श्रीराम हनुमान के कंधे पर चढ़े। अंगद ने उत्साहपूर्वक लक्ष्मण को उठाया। जिस प्रकार भूतनाथ भूत पर आरूढ़ हों, उसी प्रकार अंगद के कंधे पर उर्मिलाकांत लक्ष्मण को आरूढ़ देखकर श्रीरघुनाथ आनन्दित हो उठे। सुग्रीव भी उल्लसित हुए। वरिष्ठ वीर श्रीराम और लक्ष्मण तथा उनके साथ राजा सुग्रीव - ये सभी वीर योद्धा शीघ्र गति से दक्षिण दिशा की ओर निकले। सुषेण, जाम्बवंत, जाम्बवत के ज्येष्ठ भ्राता धूम्राक्ष ने भी प्रस्थान किया। महापराक्रमी वीर सुषेण तथा उनके निकट जाम्बवंत श्रीराम पर दृष्टि रखकर सावधानी से तथा सुख एवं सन्तोषपूर्वक चल रहे थे। श्रेष्ठ वानर वीरों को चलने के लिए सेना में जगह निश्चित की हुई थी। शतवली नामक श्रेष्ठ वानर अपने दस कोटि सेना परिवार सहित श्रीराम के दक्षिण भाग की रक्षा करते हुए उत्साहपूर्वक चल रहा था। केसरी नामक अंजनी का पूर्व पति एवं हनुमान का सौतेला पिता, सौ कोटि सेना समूह का प्रमुख एवं पराक्रमी वीर था। उसके साथ गज,

गवाक्ष एवं विकराल वानर वीर गवय था। सम्पूर्ण सेना की वे रक्षा कर रहे थे। महावीर उल्कामुख, भयंकर प्रभय तथा वीर इन्द्रजानु सभी श्रीराम की सहायतार्थ आये थे। श्रीराम की सेना का सर्वांग रक्षण दधिमुख, प्रलंघ, जंघ, शरभ, क्षुरभ नामक वानर कर रहे थे। श्रीराम की आज्ञा से भिन्न-भिन्न भागों में नियुक्त करोड़ों वानर समुद्र के तट का लक्ष्य अपने समक्ष रखकर चल रहे थे।

सीता की प्राप्ति के लिए वानर सेना अद्भुत उत्साह के साथ चल रही थी। उस समय वे वानर कूद रहे थे, एक दूसरे पर चढ़ रहे थे। एक दूसरे को खींच रहे थे, गिर रहे थे, परस्पर एक दूसरे को चिढ़ा रहे थे और गुदगुदी कर रहे थे। इस प्रकार विविध चेष्टाएँ करते हुए आगे बढ़ने के साथ ही आकाश को गुंजा देने वाली राम-नाम की गर्जना कर रहे थे, मानों उन पर मद चढ़ा हो। स्वेच्छापूर्वक वानर इधर-उधर जाकर राक्षसों को भ्रमित कर रहे थे। कुछ वानर योद्धाओं को आगे का मार्ग ज्ञात करने के लिए भेजा जा रहा था। नील अत्यन्त पराक्रमी वीर था। राक्षसों का वध कर वह आगे का मार्ग ढूँढ़ता था। पनस नामक वरिष्ठ वीर था, उसे राक्षसों की गति की समझ थी। कुमुद नामक वानरवीर महा बुद्धिमान था। वह राक्षस जाति के लिए घातक था। इसी कारण श्रीराम ने तीनों वीरों को आगे का मार्ग ढूँढ़ने के लिए भेजा था। उन तीनों के साथ सेना भी थी। वानर-सेना समुद्र के जल सदृश तथा नील किनारे तक पहुँचने वाली लहर सदृश था। वह वीर समस्त सेना पर नियन्त्रण रखे हुए था। नील द्वारा निग्रहपूर्वक दी गई आज्ञा का उल्लंघन ऋक्ष, वानर व योद्धा नहीं कर सकते थे। वह ऐसा महावीर सेनानी था।

श्रीराम ने निश्चयपूर्वक कहा कि बीच में कहीं भी रुके बिना आज ही लंका की ओर तुरन्त प्रस्थान करना है। श्रीराम की आज्ञा सुनते ही सभी वानर-वीर हाथों एवं नख से भूमि को पकड़कर आगे बढ़ने लगे। श्रीरामनाम गुणगान करते हुए रीछों ने भी प्रस्थान किया। वानर समूह रामनाम की गर्जना करते हुए चल रहा था। देशविदेश की नद-नदियों, गिरि, कंदराओं एवं गुफाओं को छोड़कर पृथ्वी पर चारों ओर से राम काज के लिए वानर एकत्रित हुए। वे सभी सीता को मुक्त कराने के लिए अत्यन्त तीव्र गति से चल रहे थे। वानर समूह के चलने से उड़ी धूल से आकाश व्याप्त हो गया। मध्याह्न के समय भी सूर्य छिप गया और काल भी भयभीत हो उठा। सूर्य के मध्याह्न में ही छिपते ही गायें वापस आने लगीं। (संध्यासमय समझकर) पक्षी आकाश में चहचहाने लगे। देव विमानों में ही कंपित हो उठे। वानर वीर विश्राम किये बिना दिगन्त चल रहे थे। सीता को मुक्त कराने के लिए वे शीघ्र गति से जा रहे थे। श्रीराम का कार्य करने में उन्हें इतनी प्रसन्नता का अनुभव हो रहा था कि वे भूख, प्यास निद्रा सब भूल गए। वानरों ने क्षणभर में ही विन्ध्याद्रि, मलयाद्रि इत्यादि अनेक वन लाँघ लिए। बड़ी बड़ी नदियों को पार करते हुए वे आगे बढ़ गए। तब उन्हें भयंकर गर्जना करने वाला समुद्र दिखाई दिया। सागर गर्जना सुन वानरों ने श्रीराम-नाम की गर्जना की। उनके भुभुःकार से आकाश गूँज उठा। सागर, चराचर सभी राम-नाम से व्याप्त हो गए। समुद्र की ध्वनि क्षीण होकर जल में भी राम नाम समा गया। उस राम-नाम की ध्वनि से पृथ्वी सहित त्रिभुवन व्याप्त हो गया।

आगे महासागर, पीछे वानर सेना रूपी समुद्र तथा उनके बीच में धैर्य एवं मर्यादा के रूप में श्रीरामचन्द्र शोभायमान थे। गंगा और यमुना के संगम में बीच में ज्यों प्रयाग वट सुशोभित होता है, उसी प्रकार सैन्य एवं जल-सागर के मध्य प्रतापी श्रीरघुनाथ सुशोभित थे। समुद्रतट पर समस्त सेना पहुँच गई और सागर लाँघने के लिए वानर वीर उत्सुक हो उठे। सागर में जिस प्रकार बड़ी मछलियाँ सुशोभित होती हैं, उसी प्रकार सेना में वानर शोभायमान थे। समुद्र में मछलियाँ उछल रही थीं तथा सेना में वानर वीर

छलाँग लगा रहे थे। अत्यन्त कठोर पृष्ठ भाग युक्त कच्छप देखकर वानर पीठ पर शिला बाँधकर नाचने लगे। तीक्ष्ण दाँतों से युक्त मगरों को देखकर वानर अपने दाँत दिखाते हुए उनके समक्ष जा रहे थे, जिस प्रकार समुद्र में मछलियों की गतिविधियाँ चल रही थीं, उसी प्रकार सीता को लाने हेतु वानरों की गतिविधियाँ चल रही थीं। सभी उतावले हो रहे थे। समुद्र में जिस प्रकार लहरें हिलोरें ले रही थीं, उसी प्रकार वानरों के मन में यह इच्छा प्रबल हो रही थी कि अपने शौर्य के बल पर शीघ्र उस पार जाकर दशकंठ रावण का वध कर दें। जिस प्रकार सागर अपनी मर्यादा रेखा का उल्लंघन नहीं कर पाता, उसी प्रकार वानर श्रीराम की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर पा रहे थे। सभी लंकापुरी जाने के लिए समुद्र तट पर आये।

अध्याय ३५

[विभीषण द्वारा रावण व प्रधानों की भर्त्सना]

श्रीराम जगद्आनंदकंर, सच्चिदानन्द, नित्य शुद्ध हैं। उनके स्मरण से भवबंधनों का नाश होता है। वानर सेना समूह रामचन्द्र सहित समुद्र तट पर आ पहुँचा। इधर लंकानगरी को जलाकर हनुमान के लौटने के पश्चात् रावण की माता कैकसी राक्षसों का अंत निश्चित जानकर विलाप करने लगी। लंकादुर्ग में लगी हुई आग को देखकर वह मन ही मन अत्यन्त दुःखी हुई। उसकी आँखों से अश्रुधाराएँ प्रवाहित होने लगीं। तत्पश्चात् उसने विभीषण के पास जाकर अपना दुःख प्रकट किया।

माता कैकसी द्वारा रावण का विरोध– कैकसी विभीषण से बोली- "रावण की मृत्यु निकट है, अब राक्षस कुल का नाश हो जाएगा। इसके लिए तुम्हारा ज्येष्ठ भ्राता रावण ही कारणीभूत है। उसने श्रीराम की पत्नी को चुराया, इसीलिए अब श्रीराम रावण का वध और राक्षस कुल का घात करेगा। सीता श्रीराम को अत्यन्त प्रिय है, उसे ढूँढ़ने के लिए उसने वानर को भेजा। उस वानर ने लंकानगरी जलाई, राक्षसों का वध किया। हमारे मध्य इन्द्रजित् सबसे बलवान् है परन्तु वानर ने उसका भी अहंकार चूर-चूर कर दिया। उस मर्कट ने रण में क्रुद्ध होकर सर्वनाश किया। दशकंठ रावण को भी सन्त्रस्त कर दिया जिस प्रकार विषयुक्त उत्तम पक्वान्न का भक्षण करने से मृत्यु निश्चित होती है। उसी प्रकार सीता की अभिलाषा राक्षस कुल का नाश अवश्य करेगी। सन्तान होते हुए भी निःसंतान होने का अटलविघ्न हमारे ऊपर आया है।" ऐसा कहते हुए माता कैकसी पुत्र विभीषण के पास विलाप करने लगी। कुछ देर बाद वह बोली- "श्रीराम की एक-एक कृति श्रवणीय है। जो वीर भी उसे दिखाई दिया, उसने अपने बाणों की वृष्टि कर उसे मार डाला। वह श्रीराम ऐसा महापराक्रमी है। उसने देखते ही देखते ताड़का का वध कर दिया, यज्ञ के स्थान पर सुबाहु को मार डाला। रणभूमि में विराध का वध कर दिया। कोई भी राक्षस दिखाई देने पर राम उसे नहीं छोड़ता है। अकेले और पैदल चलने वाले श्रीराम ने त्रिशिरा, खर-दूषण और चौदह सहस्त्र राक्षसों का रण भूमि में निर्दलन कर दिया। बलवान् कबंध का वध किया। बालि को एक ही बाण में मार डाला। अब सुग्रीव वानर सेना सहित उसकी सहायता कर रहा है उसी सेना में एक वह हनुमान है, जिसने निर्भय होकर लंका जला दी। रावण को संत्रस्त किया तथा राक्षसों को भयभीत

कर दिया। अब आगे श्रीराम के यहाँ आने पर उसकी शरवृष्टि कौन सह सकेगा। लंका नाथ के अविवेक से सम्पूर्ण राक्षस-कुल का नाश होगा।"

विभीषण से विनती; उसका निश्चय– कैकसी विभीषण से बोली "दशानन रावण अत्यन्त घमंडी है। मेरा कहा वह नहीं सुनता, तुम्हारा कहना वह मानता है। अत: उसे हितपूर्ण बातें समझाओ हे विभीषण, तुम शान्त हो क्रोधी नहीं हो अत: अपमान को मन में न रखते हुए रावण को समझा सकोगे।" इतना कहकर कैकसी पुन: विलाप करने लगी। वह फिर आगे बोली "हे विभीषण, मेरे पुत्र की रक्षा करो। मैं तुम्हारी शरण में आकर विनती कर रही हूँ।" माता के वचन सुनकर विभीषण बोला– "हे माता, मैं अपने प्राणों की शपथ लेकर कहता हूँ कि प्राणान्त तथा अपमान सहकर भी मैं रावण को हित की बातें ही बताऊँगा। रावण का हित इसी में है कि उसे सीता का त्याग करना पड़ेगा। यह कहने पर वह मुझे मारने के लिए दौड़ कर आयेगा। फिर मैं रघुनाथ की शरण चला जाऊँगा।" विभीषण के वचन सुनकर माता कैकसी बोली– "अरे, अगर तुम श्रीराम की शरण गये तो तुम्हारे कारण मैं धन्य हो जाऊँगी। तुम्हारे कारण रावण का कल्याण हुआ तो हमारा वंश बढ़ेगा। श्रीराम की शरण जाने से सम्पूर्ण कुटुम्ब पवित्र होता है, पृथ्वी सुखी होती है। उसके कारण तीर्थ भी पवित्र हो जाते हैं। श्रीरघुनाथ की शरण में जाने पर शरणार्थी की माता भी कृतार्थ होती है, पूर्वज सुखी होते हैं। सबका उद्धार हो जाता है। उसके कारण समस्त संसार, चराचर, सुरासुर, सभी सुखी होते हैं। श्रीराम की शरण जाने पर जन्म-मरण स्वप्न हो जाते हैं। कलिकाल भी शरण आ जाता है, इसीलिए श्रीराम की चरण-वंदना एवं सेवा करनी चाहिए, रावण श्रीराम का शत्रु बन गया। फिर भी उसकी माता का राम के प्रति द्वेषभाव न था। माता के वचनों से विभीषण आनन्दित हुए।

विभीषण का रावण की सभा में जाना– विभीषण अपनी माता के द्वेषरहित वचन सुनकर आनन्दित हुए उन्होंने उसे प्रणाम कर उसकी चरण वंदना की। "माता के वचनों में अत्यन्त सामर्थ्य होता है"– यह कहते हुए उसे प्रणाम कर विभीषण ने आनन्दपूर्वक जानकी को मुक्त कराने के लिए रावण की ओर प्रस्थान किया। उसको जाते हुए देखकर माता ने बलायें लीं और "तुम्हारी कीर्ति होगी, तुम सुखी होगे" यह आशीर्वाद दिया। माता के आशीर्वाद सुनकर विभीषण ने शगुनगाँठ बाँधी और वह शीघ्र रावण की भेंट के लिए निकला। रावण की सभा में इन्द्रजित् और अतिकाय दोनों पुत्र थे। प्रधान मंडली चारों ओर बैठी थी और रावण सिंहासन पर बैठा था। विभीषण के सभा में आते ही सभी उठकर खड़े हो गए। विभीषण ने चित्त एकाग्र कर रावण को प्रणाम किया। रावण ने अत्यन्त प्रेम और सम्मान पूर्वक विभीषण को अपने स्वर्ण सिंहासन के समीप बैठाया। तत्पश्चात् विभीषण रावण से बोले "सभी प्रधान यहाँ एकत्र हैं। उधर राक्षसों पर महासंकट आ गया है। हनुमान ने प्रलय मचा दी है ब्रह्मदेव के ब्रह्मासन को क्षुद्र कीटक व बिच्छुओं के समूह डँस रहे हैं। लंकावासी अस्वस्थ एवं व्याकुल हो गए हैं। हनुमान के पराक्रम से लंकानगरी में हाहाकार मच गया है। अग्निहोत्र में सर्प उत्पन्न हो गए हैं। हवन सामग्री में चीटियाँ लग गई हैं अब भविष्य में क्या होने वाला है ? इस विषय में हे रावण, मैं तुम्हें कुछ हितपूर्ण बातें कहने आया हूँ जब से सीता को यहाँ लाया गया है, तब से विघ्न निरन्तर ही आ रहे हैं हे रावण, मैं छोटा हूँ, तुम मेरे बड़े भाई हो। मुझे स्पष्ट रूप से तुम्हें सिखाना नहीं चाहिये परन्तु अत्यन्त अनिष्टकारक विघ्न उत्पन्न हो गए हैं इसीलिए श्रेष्ठ रूप से मेरे विचारों के सम्बन्ध में विचार करो। श्रीराम के अकेले वानर ने आकर तुम सबकी उपस्थिति में अनेक राक्षसों का वध किया, लंकापुरी जला दी, अक्षय का वध किया।

महापराक्रमी इन्द्रजित् के जीवन के विषय में सन्देह उत्पन्न किया। तुम सब समक्ष रहकर भी उस वानर को पकड़ न सके। फिर श्रीरामचन्द्र पर कैसे विजय प्राप्त कर सकोगे ? भविष्य का विचार करो। श्रीराम से बैर लेने के कारण राक्षस कुल का नाश होने वाला है। अत: मैं उसके सम्बन्ध में स्वार्थ और परमार्थ दोनों सिद्ध हो सके, ऐसा उपाय बताता हूँ"।

उपाय कथन; प्रधानों के प्रति रावण का क्रोध– हे रावण, तुम सीता को चुराकर लाये हो, इस अपराध के लिए प्रायश्चित बताता हूँ। उसके अनुसार करने पर तुम्हें सुख का उपभोग एवं मुक्ति प्राप्त होगी यश और कीर्ति मिलेगी, कुल को विश्रांति मिलेगी। इसे तुम निश्चित मानो। हे रावण, सभी पापों के प्रायश्चित रूप में श्रीराम नाम का स्मरण करो। उस सीताकांत के स्मरण से तुम्हें सुख एवं स्वास्थ्य की प्राप्ति होगी। ये तुम्हारे प्रधान इतना विघ्न आने पर भी कुछ कर न सके, मौन धर कर बैठे रहे। उस अकेले वानर की युद्ध कुशलता के समक्ष इनका सामर्थ्य भाग गया और पराक्रम का गर्व समाप्त हो गया। ये प्रधान मात्र भ्रम में फँसे हुए हैं। मैंने जो सुना और देखा, वह मैं तुम्हें बता रहा हूँ। मेरा तुमसे जो सम्बन्ध है, उस कारण मुझसे बिना बताये रहा नहीं जा रहा था अत: मैंने आकर बताया अब इसके आगे क्या करना है, वह हित-अहित देखते हुए तुम स्वयं निश्चय करो जिससे स्वार्थ और परमार्थ दोनों साधे जा सकें।" विभीषण के वचन सुन कर रावण सन्तुष्ट हुआ फिर उद्विग्न होकर प्रधानों पर क्रोधित होने लगा। राक्षसों का निर्दलन कर लंका का विध्वंस करने वाले उस अकेले वानर को देखकर रावण ने भी मन ही मन स्वीकार किया था कि वह मारुति रणभूमि में धैर्यवान वीर, स्वामीकार्य में महाशूर, श्रेष्ठ वीर है। तत्पश्चात् रावण प्रधान, सेनापति तथा राक्षसों पर क्रोधित होते हुए आँखें लाल कर कठोर शब्दों का उच्चारण करते हुए बोला– "कलिकाल के लिए भी अत्यन्त कठिन ऐसी लंका नगरी है, उसे ढूँढ़कर सीता का पता लगाकर एवं नगरी का विध्वंस कर वह वानर चला गया। अक्षय और सैन्य दल का तुम्हारे समक्ष उसने वध कर दिया. तुम्हारे इस काले मुख को धिक्कार है। अपने शौर्य की झूठी बड़ाई करते हो, तुम्हारे पराक्रम को धिक्कार है। अब जाकर कुएँ में कूदो अथवा अपने पेट में तलवार भोंक लो एक वानर ने समस्त नगरी लूट ली और तुम लोग उसके समक्ष टिक भी न सके। आगे उस राम के आने पर तुम सब पलायन कर जाओगे।"

रावण के प्रधानों पर क्रुद्ध होते ही वे सभी सोलह प्रधान अपने पराक्रम की गाथा गाने लगे। सप्तघ्न यज्ञ, गोपास्य, यज्ञकेतु, दुर्धर्ष, रश्मिकेतु, प्रघस, विरुपाक्ष, वज्रदंष्ट्र, धूम्राक्ष, वज्रनाभी, विद्युन्मुख, विद्युज्जिह्व, त्रिशिख, मेघवर्ण और जिनका बल अनुल्लंघ्य है, वह कुंभ और निकुंभ, ये सभी सोलह प्रधान थे। वे सभी रथ, घोड़े, पैदल, हाथी तथा शस्त्रास्त्रों सहित समूह में आकर रावण के समक्ष स्वयं अपनी बड़ाई और पराक्रम का वर्णन करने लगे। उस समय पतंगे जिस प्रकार दीपक पर कूद पड़ते हैं, उसी प्रकार वे राक्षस श्रीराम पर आक्रमण करने जा रहे हैं– ऐसा अनुभव हुआ। वे गर्वपूर्वक बोले हे रावण, ध्यानपूर्वक सुनो– "आधे क्षण में ही हम श्रीराम का वध कर डालेंगे उनके साथ सुग्रीव और लक्ष्मण का भी वध करेंगे। महान मल्ल, योद्धा, अंगदादि वानर वीर सभी को रणभूमि में मारकर हम पृथ्वी पर रक्त की नदियाँ बहा देंगे। जिसने लंका में आकर नगरी जला दी, राक्षसों का वध किया, उस हनुमान को भी क्षण भर में मार डालेंगे।" आगे भरा हुआ समुद्र है, उनके पास पार करने का उपाय व साधन भी नहीं है। फिर भी वे दुर्बुद्धि से एवं मृत्यु के उन्माद से उन्मत्त होकर दौड़ रहे हैं, यह देखकर विभीषण ने योग्य अयोग्य विचार बताकर उन्हें वापस भेजा।

विभीषण द्वारा धिक्कार; प्रधानों का घमंड— प्रधानों को सम्बोधित करते हुए विभीषण बोले— "तुम सभी युद्ध कुशल महावीर हो फिर अपने बल पर विचार न करते हुए सभी एक साथ युद्ध के लिए कैसे जा रहे हो ? श्रीराम का एक वानर आकर कुमार एवं राक्षसों का वध कर गया। सम्पूर्ण लंका-नगरी जला गया। तब उसका सामना करने के लिए आगे क्यों नहीं आये ? हनुमान को आया हुआ देखकर किसी स्त्री के सदृश छिप गए और अब रावण के समक्ष अपने पुरुषार्थ की डींग हाँक रहे हैं अशोक वन में युद्ध के समय सभी भाग गए। अक्षय को भेजने पर हनुमान ने उसके प्राण ले लिए। अक्षय के वध के पश्चात्, युद्ध के लिए भेजने योग्य कोई राक्षस नहीं दिखाई दे रहा था अतः ज्येष्ठ कुमार इन्द्रजित् को भेजा गया। तुम्हारे बल पर विश्वास करने के कारण कुमार अक्षय को प्राणों से हाथ धोना पड़ा। इन्द्रजित् युद्ध में सन्त्रस्त हो गया। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण लंका जल गई। धिक्कार है तुम्हारे ऐसे पुरुषार्थ को, धिक्कार है तुम्हारे जीवन को। बेचारा रावण इस बात को समझ नहीं पा रहा है। उसने तुम पर विश्वास किया और तुम लोग उसे छल रहे हो। सच तो यह है कि तुम्हारे मन का कपट उसे समझ नहीं आया, विभीषण के ये वचन सुनकर सभी प्रधान लज्जित हुए।

तत्पश्चात् पाँच प्रधान उठकर अपने पराक्रम का वर्णन करने लगे। प्रहस्त, महोदर, महापार्श्व वज्रहन और दुर्मुख नामक पाँच प्रधान अलौकिक सामर्थ्यशाली और पराक्रमी थे। महाबली प्रहस्त रावण के स्वयं के सैन्य दल में था। सर्वप्रथम वह रावण के समक्ष अपने पराक्रम का बखान करने लगा। उसके हाथ युद्ध में शत्रु का पराभव करने में समर्थ होने के कारण ही उसका नाम प्रहस्त था। वह रावण के सर्वाधिक निकट था। प्रहस्त बोला "हम हाथों में खड्ग धनुष, शूल, फरसा तथा गदा धारण करने वाले राक्षस वीर रणयोद्धा हैं। हम उस वानर का वध करेंगे, भूमि बहुत समय से रक्त की तृषा अनुभव कर रही है। अतः वानरों के रक्त से उस तृषा को हम तृप्त करेंगे। उसके लिए उस वानरों के स्वामी का वध कर हम विजयी होंगे। लक्ष्मण सहित राम को भी रण भूमि में परास्त करेंगे। हमसे संग्राम कर सकने वाला पराक्रमी वीर कोई नहीं है। राम लक्ष्मण तथा सुग्रीव एवं अंगद का अंत कर सभी वानरों का वध करूँगा, तभी इस वीर प्रहस्त को तुम अपना आप्त समझना। ताल के फल जिस प्रकार वृक्ष से गिर जाते हैं, उसी प्रकार वानर सेना तथा राम और लक्ष्मण को युद्ध में धराशायी करूँगा। इसमें मात्र क्षणार्द्ध का समय लगेगा।"

प्रहस्त के पश्चात् महोदर उठ खड़ा हुआ। उसने गर्जना की कि नर वानरों को मैं अपने स्वयं के प्रताप से मारूँगा। रावण का परम प्रिय महोदर बहुत पराक्रमी था। वह आवेशपूर्वक बोलने लगा। उसका पेट अत्यन्त भयानक होने के कारण उसका महोदर नाम था वह महाविषैले सर्प सदृश था। वह रावण से बोला— 'हे राजा, ध्यान से सुनो— "मैं शस्त्रास्त्र में प्रवीण हूँ, रणभूमि में राम एवं लक्ष्मण को मार गिराऊँगा अंगद, सुग्रीव, जाम्बवंत जैसे योद्धाओं का वध कर दूँगा समस्त वानर-सेना को धराशायी कर दूँगा, वानरों के रक्त से राक्षसों की प्यास बुझेगी।" यह कहते हुए महोदर युद्ध के लिए खड़ा हुआ। महोदर को जाते हुए देखकर महापार्श्व ने गर्जना की 'मेरा अलौकिक पुरुषार्थ भी लंकाधीश सुनें' सभी पार्षदों का प्रमुख होने के कारण उसे महापार्श्व नाम दिया गया था। वह रावण के अत्यन्त निकट था। रावण उससे एकांत में विचार विनिमय करता था, महापार्श्व रावण के समक्ष खड़े होकर उसके द्वारा युद्ध में किये जाने वाले भीषण पराक्रम के विषय में बताने लगा। बृहस्पति के समान बुद्धिमान, युद्ध में भयंकर धीर वीर परन्तु दुष्टबुद्धि महापार्श्व बोला "मैं अपने पहले ही आघात से राम एवं लक्ष्मण को भूमि

पर गिरा दूँगा तथा सुग्रीवादि वानरों पर आघात कर अपने पैरों तले गिरा दूँगा मेरे हाथ ही पारधी के जाल सदृश वानरों को दृढ़ बन्धन में बाँध देंगे तब उन वानर श्रेष्ठों को कुचल कर रक्त की नदी प्रवाहित कर दूँगा। जिस प्रकार वर्षा काल में महामेरु पर्वत से झरना बहता है, उसी प्रकार वानरों के रक्त का प्रवाह प्रवाहित होगा। जिस प्रकार सिंह के पंजों के प्रहार से हाथी धराशायी होते हैं, उसी प्रकार मेरे प्रहार से वानर यत्र तत्र गिरे हुए दिखाई देंगे। मेरे शस्त्रों के प्रहार से वानरों के गिरने पर राक्षसों का उनके रक्त से स्नान होगा और वे माँसाहार से तृप्त होंगे। हे लंकाधीश, मेरे हाथों राम-लक्ष्मण, सुग्रीव एवं वानरगणों की मृत्यु तुम निश्चित समझो। मेरे निकट रहते हुए किस बात की चिंता ? महावन में तुम सुखपूर्वक सीता का उपभोग करो।"

दुर्मुख महापार्श्व द्वारा की गई आत्मप्रशंसा सुनकर क्रोधपूर्वक उठ खड़ा हुआ। हनुमान द्वारा रावण को संत्रस्त करने का महादुःख उससे सहन न हो सका, वह गरजते हुए बोला– "उस भयंकर हनुमान का मैं वध कर सका तो ही मैं सच्चा वीर दुर्मुख कहलाऊँगा। मेरे सामने आते ही मेरे बल के प्रभाव से वह चपल वानर भागने लगेगा परन्तु मैं उसका अवश्य वध करूँगा, यह मेरा निश्चय है। उसके अतल, वितल, सुतल इत्यादि सप्त पातालों में भागने पर भी वहाँ से उस वानर को पकड़कर उसका तत्काल वध करूँगा। मेरे भय से उसके सागर में छिप जाने पर भी वहाँ से बाहर निकालकर उसे भूमि पर जोर से पटकूँगा। प्रथम हनुमान का वध करने के बाद श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव आदि का वध करूँगा। अगर वानर समुदाय आया तो उसे पैरों तले रौंद डालूँगा। तत्पश्चात् एक पराक्रमी वीर सदृश तुम्हारे समक्ष आऊँगा। दूसरों से मदद की अपेक्षा करने वालों का पुरुषार्थ व्यर्थ है। मेरे द्वारा राम लक्ष्मण, वानर इत्यादि का अकेले ही युद्ध होगा।" दुर्मुख की यह गर्वोक्ति सुनकर वज्रहन क्रोधित होकर उठा और रावण के समक्ष जाकर गर्जना करते हुए आत्म-प्रशंसा करने लगा। यहाँ से अनुच्छेद परिवर्तन होगा। वज्रहन बोला– "पैदल, रथ, घोड़े, हाथी एवं राक्षसों को सुखपूर्वक रहने दो। मेरा भयंकर चक्र नर-वानरों का संहार करने में समर्थ है। प्रहस्त, महोदर, महापार्श्व तथा दुर्मुख रावण के पास आनन्द एवं सुखपूर्वक रहें वानर सेना के पास मैं जाता हूँ। मुझे शस्त्र-अस्त्रों की भीड़ अथवा युद्धभूमि कुछ भी नहीं चाहिए। मात्र मेरे जिह्वाग्र से ही नर वानरों का अन्त हो जाएगा। प्रथम मैं राम को लक्ष्मण सहित निगल जाऊँगा, तत्पश्चात् अंगद, सुग्रीव, जाम्बवंत, हनुमान इत्यादि महावीर और नल, नील, तरस, तरल, सुषेण, मैंद इत्यादि सभी को समाप्त कर दूँगा। मेरे दर्शन से ही वानर सेना का प्रलयकाल आ जाएगा। पर्वत सदृश प्रचंड आकार वाला राक्षस जीभ से मुँह चाट रहा था। दाँत किटकिटा रहा था। उसे नर वानरों का भक्षण करना था। उसकी जिह्वा कँटीली और काली थी। उसका मुख काला एवं विकराल था। वह रावण के समक्ष आकर गरज कर बोला– "कोई लंकानाथ रावण से कहो कि मैंने श्रीराम का वध कर दिया है, सभी वानरों का वध कर दिया है, अब वह सुखपूर्वक सीता का उपभोग करें। आज से लंकानगरी भयमुक्त हो गई, वे अपनी पुष्पशैय्या पर अपनी पत्नी का उपभोग करें।" इस प्रकार अनेक राक्षस अत्यन्त कर्कश स्वर में अपना यशगान कर रहे थे परन्तु उनका अपयश चूकने वाला नहीं था।

राक्षसों द्वारा की गई आत्म-प्रशंसा पर विभीषण की प्रतिक्रिया– राक्षस वीरों के गर्वयुक्त वचन महाबुद्धिमान विभीषण ने सुने। उस पर उनके गर्व का निवारण करते हुए युक्तिपूर्वक विभीषण ने अपना मनोगत व्यक्त किया। वह सबके समक्ष हाथ जोड़कर अपने मृदु, मधुर, मंजुल शब्दों में धर्म एवं स्वधर्म नीति का अनुसरण करते हुए बोले– "आप सभी प्रधान अत्यन्त बुद्धिमान हैं। यहाँ धर्म-अधर्म

विचारों के आधार पर राम एव रावण के वैर का जो विषय है, उसमें अधर्म प्रमुख रूप से विद्यमान है। मुझे लगता है, आप इसे भलीप्रकार समझते हैं। श्रीराम को पत्नी का रावण ने किस कारण हरण किया है ? यही वैर का प्रमुख कारण है। परस्त्री के प्राण हरण जैसा ही यह प्रकार है क्योंकि सीता सृष्टि को परमश्रेष्ठ पतिव्रता सती है। उसकी अभिलाषा करने से ही रावण को दुर्बुद्धि सिद्ध हो जाती है और उसकी गणना सृष्टि के महापापियों में होती है। ऐसे समय में उसका उचित मार्गदर्शन छोड़कर तुम लोग युद्ध में उसके सहायक बन रहे हो। इसी से यह स्पष्ट होता है कि तुम सभी मंद बुद्धि वाले हो। हे प्रधानो, तुम सभी महामूर्ख हो। विष खाने वालों की पंगत में जो बैठता है, वह भी मृत्यु के लिए उतावला होता है। पापी मनुष्य की संगति करने से अधोगति होती है। बल का विचार कर युद्ध करने की दृष्टि से भी तुम मूर्ख सिद्ध होते हो क्योंकि तुम निर्बल हो तथा युद्ध करने के लिए सर्वथा अयोग्य हो। सुबुद्धिपूर्वक अगर तुम्हें कुछ समझाया जाय तो तुम्हें दुःख होता है। सत्यवचन तुम्हें विष के सदृश अनुभव होते हैं। दशानन रावण सहित तुम सभी अविवेकी और महामूर्ख हो। उस अविवेक का लक्षण मैं तुम्हें बताता हूँ। दूसरे पक्ष को अर्थात् शत्रु के पराक्रम का अनुमान लगा कर ही युद्ध का निर्णय लेना चाहिए. रावण बेचारा भोला है तथा प्रधान झूठे मिथ्यावादी हैं। कोई भी उसे फँसा सकता है। उसे हित- अहित समझ नहीं आता। किसी कुष्ठरोगी को उसका रोग बताने पर उसे क्रोध आता है, वेश्या को वेश्या कहने पर वह क्रुद्ध होती है परन्तु मैं रावण के हित के लिए जो योग्य है, वही यथार्थ रूप से मैं बताने वाला हूँ।"

विभीषण आगे कहने लगे– "प्रहस्त स्वयं को बलवान् कहता है परन्तु उसके पुत्र जम्बुमाली को हनुमान ने युद्ध में मार डाला उस समय प्रहस्त पुत्र-शोक के कारण रोते हुए रावण के पास आया था। अतः राम, लक्ष्मण व हनुमान को मारने के उसके वचन मिथ्या हैं। अत्यन्तगर्व पूर्ण वचन बोलने वाला प्रहस्त तो पहले ही अपमानित हो चुका है। उसी प्रकार यह महोदर भी झूठा है जब हनुमान ने कुमार अक्षय का वध किया, उस समय युद्ध में हनुमान का सामना कर, इस महोदर ने हनुमान का वध क्यों नहीं किया ? अक्षय के वध को देखते ही महोदर भागने लगा था अब यह अपने पराक्रम का गुणगान कर रहा है और राम लक्ष्मण के वध की बातें कर रहा है। जिस प्रकार जुगनू अपने तेज से सूर्य को जीतने का व्यर्थ प्रयत्न करता है, वैसा ही महामूर्ख महोदर का मिथ्या प्रलाप है। महापार्षद महापार्श्व भी वैसा ही है। हनुमान से युद्ध कर जब इन्द्रजित् संत्रस्त हो गया तब यह हनुमान से युद्ध न कर पड़लंका में भाग गया। यह सर्वविदित है। अब वही पराक्रम की बातें बता रहा है और राम, लक्ष्मण, अंगद, सुग्रीव इत्यादि वानर-गणों का वध करने के लिए कह रहा है. अतः रावण इन सबके वचन मात्र तुम्हें मोह में डालने का प्रयत्न ही हैं।"

तत्पश्चात् विभीषण बोले "महापार्श्व तो नितान्त मिथ्यावादी और व्यर्थ-प्रलाप करने वाला सभी प्रधानों में अत्यन्त मंदबुद्धि, निद्य तथा नपुंसक है। जिस समय रावण हनुमान से त्रस्त हो उठा उस समय यह दुर्मुख वानर का सामना करते हुए युद्ध कर उसे मार न सका, अब बड़बोलेपन की बातें कर रहा है कि जिसने लंका जलाई उसे सात पातालों से ढूँढ़कर जल में अथवा स्थल में उसका वध करूँगा। अरे, तुम्हारी आँखों के समक्ष लंका जलाई तब तुमने हनुमान का वध नहीं किया और अब उसे मारने की बातें कर रहे हो। तुम्हें लज्जा नहीं आती। नित्य असत्य बोलने के कारण ही इसका नाम दुर्मुख है। हे लंकाधीश, इसका प्रत्येक वचन मिथ्या है। वज्रदंष्ट्र कह रहा है कि राम, लक्ष्मण वानर सभी को निगल जाऊँगा परन्तु जब हनुमान लंका की होली जला रहा था, तब इसने उसे क्यों नहीं निगला ? वानर जब

लंका जला रहा था, तब वज्रहन भयभीत हो उठा तथा भय से जल में छिप गया। राजा की सहायतार्थ भी न रुका। हे लंकानाथ, इन प्रधानों की स्थिति ऐसी है, ये सब मिथ्यावादी हैं। अतः तुम सीता, श्रीराम को अर्पित कर अपने राक्षस-कुल की रक्षा करो।" विभीषण के वचन सुनकर प्रधान सेनापति तथा रावण सभी लज्जित हो गए। लज्जावश उनके मस्तक झुक गए। सबको अपमानित देखकर इन्द्रजित् क्रोधित हो उठा। वह अत्यन्त आवेशपूर्वक विभीषण को प्रत्युत्तर देने लगा।

अध्याय ३६

[विभीषण द्वारा रावण को समझाना, विभीषण का निष्कासन]

'हनुमान के महान पुरुषार्थ के समक्ष राक्षसों का बल व्यर्थ है। मारुति की वीरता के विषय में सुनकर उनके मुख मलिन हो गए। रावण लज्जित हो उठा।' विभीषण द्वारा हनुमान के सामर्थ्य का वर्णन करने पर राक्षस विचलित हो उठे। सेनानी, प्रधान सभी दीन-हीन हो गए। समस्त सभा लज्जित हो गई। दशानन के मुख म्लान हो गए। यह देखकर इन्द्रजित् कुपित हो उठा। उसने विभीषण को अपना पुरुषार्थ बताना आरम्भ किया।

इन्द्रजित् द्वारा विभीषण का निषेध– इन्द्रजित् बोला - "काकाजी, आप धर्म सम्पन्न हैं, बुद्धि, युक्ति एवं ज्ञान से परिपूर्ण हैं तथापि ऐसे शूद्र वचन बोल रहे हैं। सेनानी, राक्षसगण प्रधानों को निंदा एवं भर्त्सना कर राम-लक्ष्मण के भीषण पुरुषार्थ का वर्णन कर रहे हैं। प्रत्येक को सम्बोधित कर आपने हमारी सेना की निंदा की। श्रीराम को हमने छला है, इसका उल्लेख कर रहे हैं। वास्तव में आप श्रेष्ठ गंभीर एवं बुद्धिमान हैं तथा युवराज का पद भी विभूषित कर रहे हैं। अतः जिस कारण राजा का अन्तःकरण व्यथित होता है, ऐसे वचन क्यों बोल रहे हैं ? पीठ थपथपाने पर तो भेड़ भी लात मारने का प्रयत्न करती है। ऐसा ही विचार कर, आपको सैनिकों और सेनापतियों को सम्मान देना चाहिए। उनकी प्रशंसा करने पर संग्राम में अपनी सेना अधिक उत्साह का प्रदर्शन करेगी। परन्तु आप श्रीराम का पराक्रमी कहकर वर्णन कर रहे हैं, जिससे सेना का मनोबल गिर रहा है। आप ऐसा क्यों कर रहे हैं ? राजा रावण आपके ज्येष्ठ भ्राता हैं। आप सबसे कनिष्ठ होकर वाद विवाद कर रहे हैं, इस कारण युवराज की मर्यादा के विरुद्ध आचरण हो रहा है। पिता के समान ही काका का भी मान होता है तथा आपके पास तो युवराज पद का मान भी है। ऐसा होते हुए भी आप अपने ज्येष्ठ भ्राता रावण की निंदा एवं श्रीराम की स्तुति कैसे कर रहे हैं ? राम-लक्ष्मण जैसे तुच्छ मानवों को हमारे राक्षसगण खा लेंगे, उसके लिए युद्ध-भूमि को क्या आवश्यकता है ?"

इन्द्रजित् आगे बोला– "राम-लक्ष्मण बेचारे हमारे समक्ष तृणवत् हैं। अब मेरा पराक्रम देखें। राजागण मेरे चरणों में शरण आते हैं। राजा ही क्या, यज्ञ का भागी जो देवताओं का राजा इन्द्र है, उसे भी पृथ्वी पर लाकर मैंने लंका का सेवक बनाया है। ऐरावत से नीचे खींचकर उस इन्द्र को भूमि पर गिरा दिया और उसका दाँत उखाड़कर मैंने अपने हाथों में ले लिया। मेरे समक्ष तीनों लोक थर-थर काँपते हैं। मेरी गर्जना सुनकर सुरगण अचानक दीन-हीन होकर रंक सदृश मस्तक झुकाकर पलायन कर जाते हैं। इन्द्र सहित करोड़ों देवताओं को मैंने बन्दी बनाया है। अतः राम का पराक्रम और उसके सहायक

वानरों का वर्णन मेरे समक्ष क्यों कर रहे हैं ? अंगद, सुग्रीव, नल, नील और जाम्बवंत को दाँतों का स्पर्श किये बिना ही राक्षसगण निगल लें। मानव तो हमारे आहार हैं, वानर पर्वत के सदृश हैं। उनसे युद्ध करने की क्या आवश्यकता है ? क्षणमात्र में इन सब का वध कर दूँगा। रणभूमि में शौर्य से टक्कर देकर राम को मार डालूँगा। रावण समस्त चिंताओं को छोड़कर निःशंक होकर सीता का उपभोग करें। मैं प्रत्यक्ष युद्ध में श्रीराम एवं लक्ष्मण को मार गिराऊँगा और वानरों का संहार करूँगा। आप मेरा पराक्रम अवश्य देखें।"

विभीषण का इन्द्रजित् को प्रत्युत्तर– श्रीराम की निंदा करने वाले इन्द्रजित् के वचन सुनकर विभीषण क्रोधित होकर बोले– "हे इन्द्रजित्, तुम ध्यानपूर्वक सुनो। तुम अहंकारी एवं बाल-स्वभाव सदृश अपरिपक्व हो, तुम्हारे मस्तक पर लगा कलंक अभी ताजा है। स्वहित का विचार अभी तुम्हारी समझ में नहीं आएगा, अत: अत्यन्त विचारपूर्वक एवं विवेकपूर्वक, मैं जो कह रहा हूँ वह सुनो। तुम अपना हित नहीं जानते हो। तुम जो बोल रहे हो यह सब मिथ्या है, मूलत: तुम्हारे वचनों की वास्तविकता क्या है, वह मुझसे सुनो। तुम कहते हो कि हमारा प्रत्येक राक्षस राम लक्ष्मण का भक्षण कर सकता है। उसी प्रकार मेरे द्वारा किया गया राम के पराक्रम का वर्णन मिथ्या है। अत: आगे और सुनो। राम ने बालपन में ही एक बाण द्वारा ताड़का का वध कर दिया। सुबाहु को सेना सहित युद्ध में मार डाला। राम के बाणों के प्रहार से मारीच आकाश में जा उड़ा। श्रीराम राक्षसों के काल सदृश हैं। तुम अपने उन्माद में अभी सोये हुए हो। सीता के स्वयंवर प्रसंग में धनुष को उठाने में असफल होकर रावण अपमानित हुआ और उसी धनुष को उठाकर श्रीराम ने दो खण्डों में विभक्त कर दिया। वह श्रीराम प्रचंड बलशाली हैं। सीता की अभिलाषा धरने वाले विराध को श्रीराम ने मार डाला। तुम्हारे सदृश मूर्खों के वचनों के कारण रावण की भी वही दुर्गति होगी। शूर्पणखा द्वारा कपट करते ही उसके नाक एवं कान कट गए। उसका पक्ष लेकर युद्ध करने आये खर और दूषण को भी राम ने वध कर दिया। श्रीराम ने अपने भयंकर बाणों की वर्षा से खर दूषण, त्रिशिरा एवं चौदह सहस्र राक्षसों को युद्ध में मार डाला। श्रीराम के पास सेना एवं रथ सम्पत्ति कुछ भी नहीं है। तथापि उन्होंने इतनी कीर्ति सम्पादित की। तुम दुष्ट-बुद्धि से व्यर्थ प्रलाप क्यों कर रहे हो ?"

उस नकटी शूर्पणखा के कहने पर रावण ने पापपूर्ण आचरण किया। सीता का हरण करते समय उसे भिक्षा माँगनी पड़ी। परस्त्री को चुराने के लिए एक राजा को भिखारी होना पड़ा। ऐसे पराक्रम का घमंड व्यर्थ है। तुम अत्यन्त निर्लज्ज हो। लंकानाथ का भी कैसा पराक्रम ? उसने मारीच को मरने के लिए बाध्य किया। सौमित्र का छल किया, सीता को चुराकर भागा। लक्ष्मण द्वारा खींची गई मर्यादा रेखा को भी वह लाँघ न सका। अपने बल की व्यर्थ बड़ाई कर अपने समस्त पुरुषार्थ को काल का ग्रास बनाने सदृश ही सब कुछ घटित हुआ। जटायु से युद्ध के समय पूरी तरह से हारकर रावण को उसकी शरण में जाना पड़ा, तत्पश्चात् उसे कपटपूर्वक मार डाला। तुम सभी पूरी तरह से पापी हो। चोरी, परस्त्री हरण जैसे जघन्य पापों का कलंक रावण के मस्तक पर लगा है। वहाँ तुम्हारी महानता एक सपेरे की विद्या जितनी ही है। तुम्हारे अनुसार तुमने ऐरावत और अमरपति इन्द्र पर विजय प्राप्त की। देवताओं को परास्त कर यश अर्जित किया। परन्तु श्रीराम के समक्ष तुम्हारी यह महानता टिक न सकेगी। अरे, बालबुद्धि इन्द्रजित् ! महेश, ब्रह्मा, इन्द्र इत्यादि देव श्रीराम के सूक्ष्म से अंश हैं, यह तुम नहीं जानते। सम्पूर्ण जगत् के ईश श्रीराम हैं। तुम कहते हो कि तुमने ऐरावत का दमन किया परन्तु श्रीराम ने तो पत्थर की शिला

का अपने चरणों से उद्धार किया। तुम्हारी निम्न बुद्धि श्रीराम की श्रेष्ठ शक्ति को नहीं समझ सकेगी। तुम स्वयं ही अपने पुरुषार्थ का वर्णन करते हुए कह रहे हो कि श्रीरघुनाथ का वध मैं करूँगा। रावण सुख-पूर्वक सीता का उपभोग करें। परस्त्री के विषय में ऐसे वचन बोलने वाले तुम महापापी हो। राजा को ऐसे पापपूर्ण आचरण की सलाह देने वाले को सभा में ही मार डालना चाहिए। हे राजपुत्र, तुम दुर्बुद्धि, महामूर्ख एवं कुलघाती हो। तुम्हारे अकेले के वध से भी कुल का कल्याण संभव है। अगर रावण ने मेरी सलाह नहीं मानी तो सम्पूर्ण राक्षस-कुल का सर्वनाश हो जाएगा।

तत्पश्चात् विभीषण ने कहा– "इन्द्रजित् अपने बल के विषय में जो कह रहा है वह सब समूल रूप से असत्य है। सभी सभा सदस्य एवं स्वयं राजा इसे ध्यान पूर्वक सुनें कि लंकानाथ को सन्तुष्ट करने के लिए इन्द्रजित् श्रीराम को मारने के लिए कह रहा है परन्तु हनुमान से युद्ध करते समय उसका पराक्रम देख लिया। हनुमान के समक्ष उसके समस्त शस्त्र-अस्त्र व्यर्थ हो गए। मारुति द्वारा पूँछ से उसके मस्तक पर किये गए आघात को वह सह न सका। भयंकर शस्त्रों के प्रहार को झेलकर उसने इन्द्रजित् की सेना का नाश कर दिया। सभी सैनिक कराहते हुए भूमि पर पड़े थे। इस विनाश की सूचना लंका तक पहुँचाने के लिए भी कोई जीवित न बचा। मारुति ने इन्द्रजित् के समक्ष ही सबका वध कर दिया. उनकी सहायता करने में भी उसका पुरुषार्थ सहायक न हो सका। मारुति ने पूरी तरह से पीड़ित कर दिया। उसके द्वारा दिये गए घावों से प्राण जाने की स्थिति आ गई। हनुमान ने अपने कौशल से सारथी का वध कर दिया, रथ तोड़ डाला, युद्ध में इन्द्रजित् को रथ-हीन कर दिया। अपनी पूँछ के आघात से छत्र गिरा दिया। उसके मल्ल विद्या के कौशल से छाती पर एवं मस्तक पर प्रहार करने से व्याकुल होकर तुम्हें रक्त की उल्टी हो गई, तुम भाग भी न सके। युद्ध की पद्धति के अनुसार अवसर मिलते ही शत्रु पर वार किया जाता है अन्यथा जाकर बादलों में छिपा जाता है। परन्तु मारुति की पूँछ के समक्ष तुम्हारी कुछ भी युक्ति न चल सकी। पूँछ के घेरे के कारण आगे पीछे खिसकना तक कठिन हो गया। उस समय मारुति से संत्रस्त होकर तुम विलाप करने लगे। गिरते पड़ते पूँछ के भय से दौड़ते हुए भाग कर विवर में जा छिपे। यह तुम्हारा प्रमुख पराक्रम था। अब रावण के समक्ष कहते हो कि मैं अकेले श्रीराम का वध कर दूँगा। सभा के समक्ष बोले गए तुम्हारे ये वचन मिथ्या हैं। तुम अत्यन्त निर्लज्ज हो, तुम वानर को युद्ध में पीठ दिखाकर कायरों के सदृश पलायन कर गए, यही तुम्हारा पराक्रम था। तुम्हारी बुद्धि मूल रूप में मिथ्यावादी है।"

विभीषण ने तत्पश्चात् परिणाम बताते हुए कहा– "अरे, तुम्हारी इस बुद्धि के कारण सर्वप्रथम रावण का घात होगा। तत्पश्चात् समस्त राक्षस समुदाय और कुल का नाश हो जाएगा। राजा के समक्ष सभा में जो मिथ्या वचन बोलता है, उसका मुख काला कर जीभ और कान काटने चाहिए। राजनीति यही कहती है कि कुलघाती पुत्र भी वध के योग्य है। जो उसे सभा में लाया, उसका भी वध करना चाहिए. जिसने उसे द्वार से प्रवेश दिया, निश्चय ही उसका भी वध करना चाहिए। इन्द्रजित् की कैसी महानता? यह तो राक्षस-कुल का घात करने वाला है। रावण का वह ज्येष्ठ पुत्र है इसीलिए मैंने अपने को रोक लिया। वास्तविकता तो यह है कि कुल का नाश रोकने के लिए उसका अवश्य वध किया जाय।"

विभीषण के वचन सुनकर प्रधान सैनिक वीर सभी क्रुद्ध हो उठे। रावण भी कृतान्त सदृश कुपित हो गया। प्रधान और सेनापति आँखें दिखाते हुए दाँत किटकिटाने लगे। कोई हाथ मलने लगा। किसी ने मुट्ठियाँ भींच लीं। किसी ने विभीषण का धिक्कार किया तो कोई विकृत हास्य करने लगा। सभी क्रोध

से काँपने लगे। सभा के सदस्य परस्पर कहने लगे कि 'विभीषण बहुत उन्मत्त हो गया है। रावण के समक्ष इन्द्रजित् का वध करने की बातें कर रहा है।' विभीषण ने बोलते समय रावण के सम्बन्ध में, परस्त्री के लिए पाप बुद्धि रखने वाला पापी, चोरी करने वाला ऐसे शब्दों का उच्चारण किया जो रावण के मर्मस्थल पर चुभने लगे और वह क्रोध से काँप उठा। विभीषण द्वारा इन्द्रजित् के लिए यह कहने पर कि 'वानर के समक्ष तुम टिक न सके और भाग कर गुहा में छिप गए' इन्द्रजित् लज्जित होकर चुपचाप बैठ गया विभीषण के समक्ष रावण भी कुछ बोल न सका। अतः अन्य सामान्य जन भी क्या बोलते? सभी मूक होकर देखने लगे।

महापार्श्व का क्रोध; उस पर दिया गया प्रत्युत्तर– सभा में सभी को स्तब्ध एवं तटस्थ देखकर महापार्श्व गर्जना करते हुए उठकर बोला, "विभीषण अत्यन्त उन्मत्त हो गया है। राजा और राजपुत्र की उसने निंदा की। राजा रावण की निंदा करते हुए उसके समक्ष राम का गुण-गान कर रहा है अरे, इससे कौन डरता है? सभी देख क्या रहे हो? रावण का छोटा भाई प्रतापी युवराज होते हुए भी, इसने सुहृद सम्बन्धों को तोड़ा है। अतः यह वध के योग्य है। लंकानाथ, आपके द्वारा इसके वध की आज्ञा न देने पर भी हम लोग इसका वध करेंगे।" इसके पश्चात् सभा में कोलाहल मच गया सभी कहने लगे कि यह अत्यन्त उन्मत्त हो गया है। महापार्श्व के और सभी सभाजनों के अपने विषय में क्रोधपूर्ण उद्‌गार सुनकर भी विभीषण शान्त बैठे रहे। उन्हें तनिक मात्र भी क्रोध नहीं आया। उनका वध करने के लिए कहने पर भी वे भयभीत न हुए। अगाध सागर के सदृश ही विभीषण को बोध एवं ज्ञान भी अगाध था महापार्श्व के निन्दापूर्ण वचन सुनकर भी विभीषण को लेशमात्र विषाद नहीं हुआ। महापार्श्व विभीषण के समक्ष वैसा ही प्रतीत हो रहा था, मानों किसी सिंह के समक्ष क्षुद्र सा कीटक। अपने विरुद्ध बोले गए वचनों से विभीषण क्रोधित नहीं हुए। विभीषण महापार्श्व से कुछ भी नहीं बोले। इसके विपरीत उसे तृण सदृश तुच्छ समझकर उसकी उपेक्षा करते हुए शांतिपूर्वक मौन धारण कर बैठे रहे।

विभीषण कुछ नहीं बोले परन्तु उनका अत्यन्त निकटस्थ सेवक गंभीर वाणी में महापार्श्व से बोला– "अरे, एक भाई के दूसरे भाई के हित के लिए बोलते समय अर्थात् युवराज राजा के वार्तालाप के मध्य तुम क्यों अकारण ही टाँग अड़ा रहे हो। तुम अत्यन्त महामूर्ख हो। दो आप्त सम्बन्धियों के वार्तालाप के समय अपने हित का विचार किये बिना बीच में नहीं बोलना चाहिए। बीच में बोलने वाला तत्त्वतः महामूर्ख सिद्ध होता है। जिस प्रकार राजा रावण हैं, वैसे ही युवराज विभीषण हैं। उनके लिए कठोर शब्दों का उच्चारण करने पर तुम्हारे प्राण शेष नहीं रहेंगे। राजा रावण के अपने छोटे भाई से संवाद के मध्य तुम बिना कारण निंदास्पद वचन बोलकर अपने प्राण क्यों गँवा रहे हो। राजनीति यही कहती है कि दो प्रमुख व्यक्तियों के वार्तालाप के मध्य तीसरा अगर निंदापूर्ण वचन बोलता है तो उसका राजा द्वारा वध किया जाता है। राजा और युवराज अपने हित के लिए राजनीति के अनुसार वाद-विवाद कर रहे हैं, उनके समक्ष तुम अत्यन्त तुच्छ हो। बंधु-बंधु के हित के लिए बोलते समय क्रोध व्यक्त हो रहा है परन्तु महापार्श्व तुम दुर्बुद्धि से निंदायुक्त वचन क्यों बोल रहे हो? हनुमान के आते ही राजा के सामने से तुम लोग भाग खड़े हुए। अब अत्यन्त निर्लज्जतापूर्वक पराक्रमपूर्ण गर्जना कर रहे हो तुम राक्षस रणभूमि में अत्यन्त दीन और नपुंसक से भी अत्यन्त हीन सिद्ध हो गए तो अब गर्वपूर्वक अपने पुरुषार्थ का वर्णन करते हुए दशानन के मन में झूठी आशा क्यों जागृत कर रहे हो। श्रीराम के एक वानर ने अक्षय का सेना सहित वध कर दिया, ज्येष्ठ पुत्र इन्द्रजित् का दमन किया, लंका को जलाकर भस्म कर दिया।

उस पत्ते खाने वाले वनचर वानर के समक्ष से तुम सभी भाग गये। अब श्रीराम अगर यहाँ आ गए तो उनके भीषण बाण कौन सहन करेगा ? श्रीराम का बाण छूटते ही समस्त राक्षस कुल का नाश हो जाएगा। इसीलिए रावण का हितचिंतक विभीषण उसे समझा रहा है परन्तु रावण नहीं मान रहा है श्रीराम को सीता अर्पित कर सभी सुख-पूर्वक रहें, विभीषण का यही सुझाव है। अतः तुम उनकी निंदा क्यों कर रहे हो ? उस सेवक दूत के ये वचन सुनकर महापार्श्व लज्जित हुआ और मस्तक झुकाकर बैठ गया।

विभीषण द्वारा भविष्य में होने वाले परिणामों का निवेदन– विभीषण सत्वयुक्त, धैर्यवान्, वीर, माधुर्य पूर्ण एवं बुद्धिमान थे। वे क्षमाशील होकर रावण के हित में सलाह दे रहे थे परन्तु बुद्धिपूर्वक बार-बार हित समझाने पर भी रावण की समझ में नहीं आ रहा था। ऐसा होते हुए भी विभीषण सीता, श्रीराम को अर्पित करने के लिए बार-बार समझा रहे थे। उन्होंने कहा "प्रहस्त, महापार्श्व, महोदर, कुमार इन्द्रजित्, शुक, सारण इत्यादि सभी श्रेष्ठ लोग मेरी समग्र बुद्धि से किये गए विचारों को सुनें। जिस प्रकार भूत की बाधा से बाधित व्यक्ति के बालों को खींचते हुए मान्त्रिक उपचार करता है, उसी प्रकार रावण के केशों को खींचकर मैं उसे यही सुबुद्धि बताऊँगा कि सीता श्रीराम को अर्पित कर राक्षस कुल का सर्वनाश होने से बचा लें। सीता अगर रावण के पास रही तो रावण का कुलक्षय निश्चित है। रावण के संकट में फँसे होने पर उसके सभी हित-चिन्तकों को उसे संकट से बचाना चाहिए। सम्पूर्ण कुटुम्ब को घर में सुलाकर कोई घर को आग लगाने के लिए उद्यत हो तो ज्ञानी लोग उसे ऐसा करने से रोकते हैं, वैसी ही इस रावण की अवस्था है। श्रीराम से वैर लेने पर सभी राक्षस मारे जाएँगे। रावण का भी अपने पुत्रों सहित वध निश्चित है। ये मेरे वचन सत्य हैं।"

इसके पश्चात् विभीषण बोले "श्रीराम के एक वानर से भयभीत होकर सभी भाग गए तो श्रीराम के भयंकर बाण कोई कैसे सह पायेगा। श्रीराम के तेल साहाण, खर साहाण, कंक पत्र (बाणों के प्रकार) इत्यादि बाणों का प्रहार कौन सह पाएगा ? श्रीराम के बाण छूटते ही उसके भय मात्र से रावण की मृत्यु हो जाएगी। अतिकाय, इन्द्रजित्, कुंभकर्ण, सेनापति प्रधान सभी मृत्यु को प्राप्त होंगे। प्रहस्त, महोदर, शुक, सारण भयभीत होकर प्राण त्याग देंगे। समस्त सेना मारी जाएगी। श्रीराम के भयंकर बाण समुद्र को सोखकर लंका का सर्वनाश करेंगे। रावण का वध कर देंगे। ये मेरे वचन सत्य हैं। इन्द्रादि करोड़ों देवता श्रीराम के बाणों को सहन नहीं कर सकते, वहाँ ये बेचारे राक्षस क्या करेंगे। अतः हे लंकानाथ ! शीघ्र सीता, श्रीराम को अर्पित कर दो। मैं तुम्हारे चरणों पर मस्तक रखकर विनती करता हूँ। मन में तनिक मात्र भी शंका धारण न करो। मन में अन्य कोई भी विकल्प रखने का कोई लाभ नहीं है क्योंकि तुम श्रीराम पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते।"

"अब श्रीराम का शौर्य बताता हूँ, उसे सुनो। इस प्रकार रावण को सम्बोधित कर विभीषण आगे बोले– "श्रीराम अगर वेग पूर्वक यहाँ आते हैं तो उन्हें सहन करने का पुरुषार्थ तुम्हारे पास नहीं है गर्वपूर्वक आचरण कर व्यर्थ में प्राण गँवाओगे। ये मेरे सत्य वचन हैं। राम के बाणों को तेज-हीन कर सके ऐसा शस्त्र बल तुम्हारे पास नहीं है। श्रीराम से कपट करने पर व्याकुल हो कर रणभूमि में धराशायी होंगे। युद्ध में श्रीराम पर विजय प्राप्त करने के लिए आवश्यक बल भी तुम्हारे पास नहीं है। स्वयंवर सभा में धनुष उठाते समय सब के समक्ष तुम गिर पड़े। तुम्हारे समक्ष लंकादहन करने वाले हनुमान को देखकर तुम्हारे प्रधान एवं वीर सैनिक पलायन कर गए। अतः राम पर रणभूमि में कैसे विजय प्राप्त हो सकेगी ? श्रीराम ने तुम्हारे समक्ष धनुर्भंग किया। तुम बल का व्यर्थ अभिमान करने वाले निर्लज्ज हो।

श्रीराम को अपने समक्ष देखने का धैर्य भी तुम्हारे पास नहीं है। इसीलिए तुमने श्रीराम को मृग के पीछे भेजकर सीता सुन्दरी को चुराया। तुम्हारे इस निकृष्ट मुख को सीता के समक्ष जाने का धैर्य नहीं है। हे दशमुख, तुम व्यर्थ प्रलाप कर रहे हो। तुम्हारे पास थोड़ी भी लज्जा नहीं है। सीता का हरण करने का सामर्थ्य भी तुम्हारे पास न था। अतः तुम्हें भिखारी होना पड़ा। परन्तु लक्ष्मण की मर्यादा रेखा को लाँघकर तुम कुटी में प्रवेश न कर सके। ऐसा होते हुए भी तुम श्रीराम का युद्ध में सामना करने की बातें कर रहे हो। तुम्हारे स्वयं में बल नहीं है। तुम्हारी सेना को भी लंकादहन के प्रसंग में हनुमान ने भयभीत कर दिया है। इन्द्रजित् के अद्‌भुत बल को भी मारुति ने आहत कर दिया है। अब आगे रघुनाथ का सामना करने का सामर्थ्य किसमें है ? अतः हे लंकानाथ, तुम्हें सीता कदापि प्राप्त नहीं हो सकती। इस बात को समझते हुए श्रीराम की शरण जाकर उन्हें जानकी अर्पित कर दो।"

विभीषण द्वारा मार्गदर्शक सूचनाएँ– हे लंकानाथ, मेरे सुविचार सुनो– "श्रीराम को सीता लौटा देने में सभी का कल्याण है। इससे कुल का सर्वनाश होने से बच जाएगा। मैंने नाना प्रकार से विवेकपूर्ण एवं युक्तिसंगत रूप से समझाने का प्रयत्न किया है। अगर अपने हित के अनुकूल आचरण नहीं करोगे तो युद्ध के आवर्त में फँसकर व्यर्थ प्राण गँवाओगे। श्रीराम अवतारी पुरुष हैं, चराचर में विद्यमान पूर्ण ब्रह्म वही हैं। उनकी पत्नी सीता तुम्हें कभी प्राप्त नहीं हो सकती। अगर तुम श्रीराम को दुर्बल मानते हो तो छिपकर, चोरी करके क्यों भागते हो ? यह तुम्हारा मिथ्या आचरण है, त्रिशिरा एवं खर-दूषण का जब श्रीराम ने वध किया तब तुम्हारी सेना उससे युद्ध करने के लिए क्यों नहीं गई ? क्योंकि उसमें उतना पराक्रम है ही नहीं। श्रीराम सशक्त हैं या अशक्त, परन्तु तुम्हारा वध वे निश्चित ही कर सकते हैं। अतः सीता को अर्पित कर रघुनाथ को तुम प्रसन्न करो। मेरे ये सुझाव न मानकर तुमने श्रीराम से बैर किया तो तुम्हारी सेना व पुत्रों सहित निश्चित ही वे तुम्हारा वध कर देंगे। प्रत्यक्ष कलिकाल भी अगर तुम्हारी सहायतार्थ आया तो अपने भयंकर बाणों से काल को भी पीड़ित कर श्रीराम तुम्हारा कंठ-छेदन करेंगे। हे लंकाधीश, कलिकाल को भी परास्त कर वे तुम्हारा निश्चित ही वध कर देंगे। ब्रह्मा एवं इन्द्र के तुम्हारी सहायता के लिए आने पर श्रीराम के बाण उनका भी निवारण करेंगे। शिव तो स्वयं श्रीराम के सेवक होने के कारण उनके समक्ष आयेंगे ही नहीं। श्रीराम शिव की ध्येय-मूर्ति हैं। तुम्हारे द्वारा श्रीराम की पत्नी को चुराने के कारण उमापति शंकर तुमसे क्रुद्ध हैं। अतः तुम्हारे बचने की सम्भावना कदापि नहीं है।" परस्त्री के लिए चौर्यकर्म करने के कारण कपट-वेश से संन्यासी बनने के कारण ब्रह्मा भी तुमसे कुपित हैं अतः तुम्हारे बचने की कोई आशा नहीं है। अधर्म-शील राजा का तो कलिकाल ही सर्व-नाश करता है। अतः काल ने निश्चित ही तुम्हारा सामर्थ्य हर लिया होगा अतः युद्ध में तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। शक्तियों की आदि-शक्ति सीता को तुमने चुराया है, जिसके कारण शस्त्र देवता भी तुमसे क्रुद्ध होकर तुम्हारा वध करने के लिए तत्पर हैं। अतः विवेकपूर्वक विचार करने से तुम्हारा सर्वनाश ही दिखाई देता है, मेरी सलाह न मानने पर युद्ध में तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। अतः हे रावण, मेरे द्वारा कही गई तुम्हारे हित की बातें पुनः सुनो। श्रीराम को शरण जाकर सीता को अर्पित करने से ही सभी प्रकार का कल्याण संभव है। श्रीराम की शरण में जाने से तुम्हें जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति मिलेगी। तुम्हें दुष्ट बुद्धि की बाधा न होकर तुम्हारा कल्याण होगा। हे रावण, गर्व त्याग कर श्रीराम के चरणों पर मस्तक रखकर उन्हें सीता अर्पित कर दो, जिससे तुम स्वार्थ एवं परमार्थ दोनों को ही प्राप्त कर सकोगे।"

रावण का क्रोध; विभीषण का उत्तर– विभीषण के वचन सुनकर रावण संतप्त हो उठा।

क्रोध के कारण लाल हुए उसके नेत्र गुड़हल के पुष्प सदृश प्रतीत हो रहे थे। रावण क्रोधपूर्वक विभीषण से बोला - "अरे दुष्ट चांडाल, दुर्बुद्धि विभीषण, मुझे तुच्छ कहकर रघुनंदन की प्रशंसा कर रहे हो ? मेरी पुत्र एवं प्रधानों सहित रण-भूमि में मृत्यु होगी, ऐसा कहते हो और विजय स्थान पर श्रीराम को स्थापित करते हो ? वाह ! धन्य है, तुम्हारी वाणी। राम बेचारा मनुष्य है। उसका मेरे समक्ष क्या वर्णन कर रहे हो ? मैं एक बार से ही उसकी हड्डियों का चूर्ण कर दूँगा। तुम विलाप करते हुए उसके पास जाओ। जिस प्रकार मार्जार अपने बच्चों का स्वयं भक्षण करती है, उसी प्रकार तुम स्वयं राक्षस होते हुए राक्षस-कुल के नाश की कामना करते हो। शत्रु का पक्ष लेकर हमें डरा रहे हो; मर्कट हमारा वध करेंगे, ऐसा कह रहे हो। अत: तुम दीन-हीन, दुर्बल हो। तुम राम के पास चले जाओ। अब मेरे सत्य वचन सुनो- "आज ही विभीषण से सम्बन्ध तोड़ डालेंगे, वह कुल का कलंक और कुलघाती है। विभीषण आज से हमारे लिए मर गया है।"

विभीषण रावण के वचन सुनकर हँसा और बोला– "अगर प्रमुख व्यक्ति ही मूर्ख हो तो वहाँ शिक्षा देने का कोई उपयोग नहीं होता। जिस प्रकार धतूरा खाया हुआ व्यक्ति अनर्गल प्रलाप करता है, उसी प्रकार सीता की अभिलाषा धरने से हे रावण, तुम्हारी भी स्थिति वैसी ही हो गई है। रावण सीता की प्राप्ति के मद में चूर है और प्रधान गर्व से मदोन्मत्त हैं तब हितपूर्ण एवं विवेकपूर्ण विचार कैसे समझेंगे ? कपट, परस्त्री के प्रति कामासक्ति, अधर्मपूर्ण रति की अभिलाषा धारण करने से हे लंकापति, तुम स्वयं ही सेना एवं पुत्रों सहित मृत्यु आवर्त में फँस जाओगे। दुर्गा की अभिलाषा धारण करने वाले शुंभ और निशुंभ सेना सहित मारे गए। जगदंबा ने रक्तबीज चामुंड के प्राण हर लिए। उसी प्रकार सीता की अभिलाषा धरने वाले हे लंकापति, तुम व्यर्थ मारे जाओगे। विष के भोजन की पंगत में बैठने वाले की मृत्यु जिस प्रकार निश्चित होती है, उसी प्रकार सुबुद्धि का त्याग करने वाले रावण, तुम्हारी स्थिति वैसी ही है। श्रीराम की शरण जाकर प्रेमपूर्वक सीता को उसे अर्पित कर अर्थ, स्वार्थ एवं परमार्थ की प्राप्ति युक्तिसंगत है। हे रावण, मेरी सुबुद्धिपूर्वक बतायी गई युक्ति को नहीं मानोगे तो तुम्हें सीता प्राप्त नहीं होगी और गर्व के कारण व्यर्थ ही तुम मृत्यु को प्राप्त होगे। यह मेरी निश्चित धारणा है। मुझे मृत मानकर मेरा त्याग करने के पश्चात् अब तुम्हारा हितचिंतक कोई नहीं है। तुम्हारे हित की बातें अब कोई नहीं समझा सकता। मैं श्रीराम की शरण आ रहा हूँ अब मेरा अवश्य कल्याण होगा। परन्तु रामबाण के प्रताप से अब तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। श्रीराम की शरण में जाने से चारों मुक्तियाँ दासी हो जाती हैं तथा तीनों लोकों के आनन्द की प्राप्ति होती है। श्रीराम द्वारा तुम्हारा वध किये जाने पर तुम्हारा क्रिया-कर्म करने वाला भी कोई नहीं बचेगा। तब मैं ही तुम्हें आवश्यक तिलांजलि प्रदान करूँगा।" विभीषण के ये वचन सुनकर रावण संतप्त हो उठा। क्रोध से मुट्ठियाँ भींचते हुए उसने खड्ग हाथ में उठा लिया। वह क्रोध से दाँत पीसने लगा। मर्माहत रावण कृतान्त कालाग्नि के समान विभीषण की ओर बढ़ने लगा।

रावण द्वारा विभीषण का अपमान– रावण के रक्तवर्णी नेत्र क्रोध के कारण लाख के सदृश लाल हो उठे। उसके क्रुद्ध नेत्र एवं उसका आवेश देखकर सभी भयभीत हो गए। ऐसा लग रहा था, मानों क्रोध के कारण उसके नेत्रों से लाल रंग की ज्वालाएँ निकल रही हैं। अत: सभा में खलबली मच गई। उसने विभीषण पर प्रहार करने के लिए म्यान से तलवार बाहर निकाली। उस समय विद्युत की तेज सदृश चमक देखकर सभाजनों की आँखें चकाचौंध हो उठीं। प्रलय-काल के मेघों की गड़गड़ाहट सदृश रावण क्रोधपूर्वक गरजा और विभीषण पर प्रहार करने के लिए उसने शस्त्र उठा लिया। रावण की गर्जना से

सभी लोग भयभीत हो उठे परन्तु विभीषण निःशंक होकर शांत बैठे रहे। राम-नाम स्मरण करने के कारण उन्हें भय नहीं लगा। रावण उनसे बोला "मेरे स्वामी शंकर को तुमने राम का सेवक कहा तुम्हारे उस मुख को ही मैं छेद डालूँगा।" यह कहते हुए रावण ने शस्त्र उठाया और उठते हुए उसने प्रहार किया परन्तु तभी उसका हाथ लचक गया श्रीराम अपने भक्तों की रक्षा करते हैं। अत: उस समय चमत्कार होकर रावण का हाथ लचक गया और शस्त्र पर उसकी पकड़ ढीली पड़ गई। शस्त्र ज़मीन पर गिर पड़ा ऐसा होने से रावण घबरा गया, उसका दाँव ही उलट गया था। प्रहार करते हुए रावण सिंहासन से नीचे गिर पड़ा। इस प्रकार राजा रावण का प्रहार व्यर्थ कर श्रीराम ने भक्त की रक्षा की। रावण जब पुनः तलवार उठाने लगा तब प्रहस्त ने दौड़कर उसका हाथ पकड़ लिया। उस समय क्रोध में अनियन्त्रित होकर रावण ने बिभीषण को लात मारी। तब विभीषण ने उसके चरणों पर मस्तक रखकर उसे वंदन करते हुए कहा– "श्रीरघुनाथ की शरण जाने के लिए मुझे सुमुहूर्त मिला है।" प्रहस्त ने संतप्त रावण को शान्त करते हुए उसकी तलवार म्यान में रखकर उसे सिंहासन पर बैठाया

किसी पर्वत पर वज्राघात होने के सदृश रावण की लात विभीषण को लगी और वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। श्रीराम नाम की कृपा से विभीषण सुख-दु:ख से मुक्त हो गया था। उसका चित्त शान्त था, उसमें लेशमात्र भी क्रोध न था। अत: वह दुर्वचन न बोलते हुए मौन रहा। "एक सहृदय होने के नाते सद्बुद्धि की बातें समझाने का अब कोई लाभ नहीं है। हे लंकानाथ, तुम शांत हो जाओ मैं श्रीराम की शरण में आ रहा हूँ। तुमने स्वयं मुझे लातें मारकर निष्कासित कर सन्तुष्ट ही किया है। अब मेरी श्री रघुनाथ से भेंट होगी। हे स्वामी, यह अहोभाग्य मुझे तुम्हारे कारण ही प्राप्त हुआ है।" ऐसा कहते हुए विभीषण ने श्रीराम के पास जाने का निश्चय किया।

अध्याय ३७

[विभीषण का श्रीराम की शरण में आना]

विभीषण का रावण द्वारा अपमान किये जाने पर भी वे क्रुद्ध नहीं हुए, श्रीराम का स्मरण कर शांत रहे। कुछ बोले बिना ही विवेकपूर्ण विचार करते हुए उन्होंने श्रीराम की शरण में जाने का दृढ़ निश्चय किया।

विभीषण का विचार-मंथन एवं परिणाम कथन– विभीषण चार प्रधानों सहित जब जाने के लिए निकले तब उन्होंने रावण से मधुर स्वरों में कहा– "रावण, हम सगे भाई हैं। हमारे मध्य किसी प्रकार की भी वितुष्टि नहीं है। मेरे द्वारा तुम्हारे हित के लिए बोले गए वचनों से तुम व्यर्थ ही क्रोधित हो गए। लंकानाथ की निंदाकर मैंने अपने हित के लिए श्रीराम की स्तुति की अत: मेरा अध:पतन हो गया -तुम यही समझो। हनुमान के समक्ष तुम्हारी सेना तुम्हारे देखते-देखते भाग गई, वही दु:ख पूर्वक एवं शुद्ध अन्त:करण से मैंने तुम्हें बताया। उसके कारण प्रधान एवं समस्त सेना क्रोधित हो गई। लंकानाथ, तुम भी अपना हित न समझते हुए मुझ पर क्रोधित हो उठे। चोरी और परस्त्री-हरण यह तुम्हारा धर्म हो गया। उसके लिए तुम्हारे हृदय में पश्चाताप का निर्माण करने के लिए मैंने स्पष्ट बातें कहीं। यह राक्षसों

की सभा झूठी है। मेरे द्वारा हित की बातें कहने पर सभी मेरे विरुद्ध होकर मुझसे कुपित हैं। जिस प्रकार ज्वर से पीडित प्राणी को दूध भी कडवा लगता है, वैसे ही यहाँ भी घटित हुआ। रावण अपने हित की बातों को तुमने अपने दुःख का कारण मान लिया।"

"हे लंकानाथ, अत्यन्त क्रोधपूर्वक तुमने मुझे लात मारी। क्या उससे रघुनाथ पर विजय प्राप्त हो सकी अथवा क्या तुम्हें शान्ति का अनुभव हुआ ? क्रोध संसार का सबसे बड़ा अहित करने वाला है। तुममें विद्यमान क्रोध के कारण तुम्हारे विवेक का नाश हो गया है और अपने हित से तुम और अधिक दूर चले गये हो क्रोध का अनुसरण करने वाला क्रोधित होकर अन्यायपूर्ण आचरण कर बैठता है। क्रोध अत्यन्त हानिकारक होने के कारण उस पर कोई क्रोध नहीं करता। उन्मत्त हाथी प्राण ले सकता है परन्तु उसे भी सिंह ज़मीन पर गिरा देता है परन्तु क्रोध पर क्रुद्ध होने वाला कोई भी वीर संसार में नहीं दिखाई देता क्रोध एक मात्र ऐसा शत्रु है जो चारों पुरुषार्थों को नष्ट करने वाला है। उस क्रोध के दुष्परिणामों के विषय में सुनो। मन में क्रोध के आते ही वह धर्मयुक्त कर्मों को बाधित करता है। अर्थ एवं स्वार्थ का नाश करता है। क्रोध के कारण मोक्ष कदापि प्राप्त नहीं हो सकता। स्त्री पुरुष के एकान्त में होने पर क्रोध आने से उसमें कलह का निर्माण होता है। उस कलह में ही रात बीत जाती है, इस प्रकार वह क्रोध मूल में काम-घातक है। धर्म के विषय में क्रोध आने पर मुख्य ब्राह्मण को निंदा की जाती है। दूसरे को दोष देने से, क्रोधपूर्ण बोलने से धर्म सिद्धि नहीं होती। क्रोध धर्म का नाश करता है। कर्म की निंदा करता है। क्रोध पापी एवं दुर्बुद्धि होने के कारण निंदायुक्त वचन बोलने के लिए बाध्य करता है। वह पिता की निर्भत्सना कराता है। माता को दासी कहता है। क्रोध अधर्मपूर्ण होकर स्वधर्म का नाश करता है। भाई अपना अत्यन्त निकट का सम्बन्धी होता है परन्तु अपने स्वार्थ के कारण क्रोध के आवेश में एक भाई दूसरे भाई को लात मारने जैसा अनर्थ करता है। उत्तम रूप से अर्थ की प्राप्ति में क्रोध मुख्य रूप से विश्वासघात करने वाला होता है, जिससे अर्थ में वह अनर्थ का कार्य करता है। हे लंकेश, अगर अंधेरे से सूर्य का डूबना सम्भव होगा तभी क्रोध के कारण मोक्ष भी सम्भव होगा परन्तु काम, क्रोध एवं लोभ के समाप्त होने पर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष रूपी चारों पुरुषार्थों को क्रोध नष्ट करता है। हे रावण, ऐसे ही क्रोध का निवास तुम्हारे मन में होने के कारण ही तुम्हारे द्वारा मुझे लात मारी गई

अरे, मुझे लात मारकर तुमने अपना कौन सा स्वार्थ साध लिया अथवा कौन सा परमार्थ प्राप्त किया। श्रीराम से बैर करके तुम्हारा अधःपतन हो जाएगा। श्रीरघुनाथ की कृपा दृष्टि ऐसी है कि तुम्हारे द्वारा मुझे लात मारे जाने पर भी मेरे मन में क्रोध उत्पन्न नहीं हुआ। श्रीराम के कारण आत्म शान्ति प्राप्त होती है। तुम्हारे द्वारा लात मारने पर मैंने परम विरक्ति अनुभव की, स्वराज्य एवं स्वजन छोड़कर अब मैं श्री रघुनाथ की शरण में जा रहा हूँ जिस प्रकार ध्रुव को सौतेली भावना से लात मारे जाने पर वह परम सत्य को प्राप्त हुआ, उसी प्रकार हे रावण, तुम्हारी लात भी मुझे श्रीरघुनाथ की प्राप्ति कराएगी। श्रीराम कृपालु, दयालु एवं भक्त वत्सल हैं परन्तु ये सब बातें तुम्हारी समझ में नहीं आएँगी क्योंकि क्रोध ने तुम्हें अपने वश में कर लिया है। हे लंकानाथ, अभी भी अगर तुमने गर्व का त्याग कर श्रीराम को सीता अर्पित कर दी तब तुम अपना स्वार्थ साध सकोगे अन्यथा व्यर्थ ही मृत्यु को प्राप्त होगे। श्रीराम के प्रहार से कौन तुम्हारी रक्षा कर सकता है। हनुमान के भय से भागे हुए राक्षसों में कहाँ पुरुषार्थ एवं पराक्रम सम्भव है।

माता कैकसी, रावण एवं राक्षसों की प्रतिक्रियाएँ– विभीषण के वचनों से रावण मन ही

मन विचलित हो उठा। क्रोध के कारण भाई के दूर हो जाने से दुःखी हो गया और मन ही मन कहने लगा– 'मेरी बुद्धि पूरी तरह से अपरिपक्व है। मेरे लात मारने से मेरा भाई मेरा सखा विभीषण, मुझसे दूर हो गया और श्रीराम की शरण में चला गया।' उसी समय विभीषण के मन में आया कि सर्वप्रथम माता की चरण-वंदना कर उन्हें सब वृत्तान्त सुनाकर तब श्रीराम की शरण में जाना चाहिए कुलक्षय की संभावना को देखकर रावण को समझाने के लिए माता कैकसी ने ही विभीषण को भेजा था। उसके अनुसार हित की बातें रावण को समझाने पर रावण ने क्रोधित होकर विभीषण को लात मारी। यह सुनकर माता अत्यन्त दुःखित होकर बोली– "हे भाग्यवान् विभीषण, तुम्हें श्रीरघुनाथ प्राप्त हुए और रावण ने समस्त कुल सहित अपने सर्वनाश को आमन्त्रण दिया।" माता विभीषण से सन्तुष्ट होकर बोली– "तुम्हारे कारण मैं धन्य हो गई। श्रीराम से नैकट्य साधकर तुम समस्त कुल के भूषण बन गए। तुम्हारे कारण कुल पवित्र हो गया, वंश सनाथ हो गया। मैं भी तुम्हारी श्रीराम-सेवा के कारण नित्यमुक्त हो गई " माता का यह मनोगत सुनकर विभीषण ने साष्टांग दंडवत् प्रणाम कर उनके चरणों की वंदना की। तत्पश्चात् श्रीराम की शरण में जाने के लिए आकाश मार्ग की ओर प्रस्थान किया कुछ समय तक अन्तराल में स्थिर रहकर वह रावण को सम्बोधित कर बोले "रावण, तुम वास्तव में मेरे सखा हो। मोह और ममता युक्त सगा-सम्बन्ध हीन, दीन और गौण होता है। क्रोध में कृपालुता विद्यमान होने के कारण रावण ही वास्तव में मेरा सखा है। मुझे अपनी लात मारकर रघुनाथ की शरण में भेजा। ऐसा तुम्हारे सदृश सखा तीनों लोकों में नहीं है। करोड़ों जन्म-मृत्यु के बन्धन तुमने लात मारकर तोड़ दिए। इस प्रकार तुम्हारे क्रोध की मुझ पर कृपा हुई, जिससे श्रीराम से मेरे सम्बन्ध जुड़ गए"। इस प्रकार विभीषण द्वारा की गई स्तुति को सुनकर रावण मन ही मन दुःखी हो उठा और उसे पश्चाताप होने लगा। वह सोचने लगा– "मेरी अपरिपक्व बुद्धि के कारण सखा विभीषण मुझसे दूर होकर श्रीराम की शरण में चला गया।" सैनिक, सेनानी प्रधान सभी विभीषण की स्तुति करते हुए कहने लगे "विभीषण का शान्त स्वभाव धन्य है। उसे तनिक मात्र भी क्रोध नहीं आया। रावण अकारण ही सन्तप्त हुआ। विभीषण की कीर्ति धन्य है। अब वह श्रीराम की शरण में गया है। वह राक्षसों के वध की युक्ति श्रीराम को बतायेगा अतः राक्षसों का अन्त निश्चित है।" ऐसा उन्हें लगने लगा।

विभीषण का चार प्रधानों सहित श्रीराम की ओर प्रस्थान– विभीषण ने पुनः एक बार अन्तिम विनती के रूप में रावण से कहा– "तुम्हारे मन में जो इच्छा हो वह मुझे बताओ। श्रीराम ही सम्पूर्ण रूप में सिद्धिदायक हैं। मुझे लात मारकर कृपा कर श्रीराम के पास भेजा, अब मेरा उस उपकार के बदले में किया गया प्रत्युपकार सुनो– "हे दशशिर रावण, मैं ही अन्तकाल में तुम्हारा सगा सम्बन्धी रहूँगा, तुम्हारे द्वारा श्रीराम का द्वेष किये जाने पर भी मैं तुम्हें नर्क में नहीं जाने दूँगा। परम मुक्ति प्रदाता के रूप में श्रीराम की कीर्ति है। श्रीराम की भक्ति करने वाले के वंश का भी उद्धार होता है।" इतना कहकर विभीषण ने रावण को नमन किया और चार प्रधानों को साथ लेकर श्रीराम की शरण जाने के लिए प्रस्थान किया।

चार पुरुषार्थ जिस प्रकार जीव को नित्य मुक्त करने में सहायक होते हैं, उसी प्रकार वे चारों प्रधान विभीषण की सतत् सहायता करते थे। उपनिषदों के माध्यम से जिस प्रकार चारों वेदों का ज्ञान होता है और जीव को परमानन्द की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार वे प्रबुद्ध प्रधान विभीषण के सहायक थे। जिस प्रकार चारों प्रकार की मुक्तियाँ जीव को परब्रह्म प्राप्ति करने में सहायक होती हैं, उसी प्रकार

वे परमार्थी प्रधान विभीषण का अनुसरण करने वाले थे। जिस प्रकार चार वाणियाँ नित्य- अनित्य का विवेक प्रदान कर जीव को ब्रह्म के साक्षात्कार तक ले जाती हैं, वैसे ही वे चारों प्रधान विभीषण के सहायक थे। ऐसे उन चारों प्रधानों के साथ विभीषण को आता हुआ देखकर वानर-गण सशंकित हो उठे।

विभीषण को देखकर वानर सेना में आशंका– मेरु शिखर सदृश आकृति वाले उस राक्षस को आते हुए देखकर भूमि पर विद्यमान वानर शीघ्र उठे। विभीषण इन्द्रियनिग्रही, शांत, विवेकरूपी वैराग्य से विरक्त होकर श्रीराम के प्रति अनुरक्त होने के कारण प्रेम से परिपूर्ण था। जिसके कारण वह लाल रंग का आभासित हो रहा था। रजतम रूपी धूम्र के निकल जाने के पश्चात् जिस प्रकार दैदीप्यमान चैतन्याग्नि का आभास होता है, उसी प्रकार आकाशमार्ग से आता हुआ तेजस्वी विभीषण वानरों को आभासित हो रहा था। 'धैर्यपूर्वक विराजमान यह आगे बैठा हुआ वीर और पीछे स्थित उसके चारों प्रधान अपने शस्त्रों सहित हमें मारने के लिए आ रहे हैं। ढाल, तलवार और गदा धारण किये हुए धनुष्यबाण और पीछे बाणों से युक्त तूणीर धारण कर वे पाँचों राक्षस हमारे वध के लिए भेजे गए हैं। अतः इन पाँचों का यहीं वध कर देने से राम-कार्य सिद्ध किया जा सकता है। जो इनका वध करेगा, वही समर्थ पुरुषार्थी एवं श्रीराम का आप्त स्वकीय कहलाएगा। इन पाँचों का मार्ग में ही वध कर देने से अन्य राक्षस युद्ध के लिए नहीं आयेंगे और युद्ध टल जाएगा।' ऐसा वानरों ने दृढतापूर्वक विचार किया। राक्षसों को देखकर मल्ल योद्धे शीघ्र उठ खड़े हुए और शाल, ताल आदि वृक्ष तथा शिला और पर्वत हाथों में लेकर वध के लिए दौड़े। सभी वानरों ने मिलकर गर्जना की, जिससे सेना सागर उत्साहित हो उठा और सम्पूर्ण आकाश उस नाद से गुंजायमान हो उठा। 'मारो-मारो' कहते हुए एक दूसरे के आगे कूदते उन वानरों को आता हुआ देखकर विभीषण चौंक गया। वह मन में विचार करने लगा कि श्रीराम की शरण जाते हुए बीच में ही ये वानर मेरा वध कर देंगे जिसके कारण मुझे कोई भी साध्य न प्राप्त हो सकेगा। रावण का छोटा भाई होने के नाते मुख्य विरोधी से ही मेरा सम्बन्ध है। अब श्रीराम ही मेरी मृत्यु को टाल सकते हैं, जिससे कि वानर मेरा वध न कर सकें। श्रीराम-नाम का स्मरण करने से मृत्यु की बाधा दूर होती है मेरे श्रीराम का शरणागत भक्त होते हुए, वानरों का यह विघ्न क्यों ? आये अगर यहाँ मेरी हनुमान से भेंट हो जाती तो मेरा आप्त होने के कारण उसने मेरी श्रीराम से भेंट करायी होती, जिससे वानरों द्वारा उत्पन्न यह संकट दूर हो जाता। अब वानरों की शरण जाकर विभीषण उन्हें प्रणाम करते हुए बोले– "मैं रघुपति की शरण में आया हूँ। आप मुझसे युद्ध करने के लिए क्यों तत्पर हो रहे हैं ?" विभीषण ने वानरों के आवेश को देखते हुए आकाश से ही आवाज लगाई, जिससे वानर चौंक गए और उन्होंने यह राक्षस क्या कह रहा है, यह ध्यानपूर्वक सुनने का निश्चय किया। तब विभीषण ने सुग्रीव को सम्बोधित करते हुए कहा– "मैं श्रीरामचन्द्र के चरणों की शरण में आया हूँ। हे वानर राज सुग्रीव, तुम वानरों के स्वामी हो। ये वानर मुझ शरणागत का वध करने के लिए आ रहे हैं। तुम उन्हें रोको। मैं विभीषण नाम से विख्यात रावण का कनिष्ठ भ्राता हूँ परन्तु रावण का भ्राता होने के नाते मेरा वध न करें क्योंकि मैं शुद्ध मन से शरण में आया हूँ। अगर यहाँ पर हनुमान होते तो उन्होंने मेरा वृत्तान्त कहकर मेरी श्रीराम से भेंट करायी होती। उन्होंने श्रीराम से बताया होता कि मैं उनकी शरण में आया हूँ। शरणागत का वध न करने का श्रीराम का नियम है। ये सब वानर मेरा वध करने के लिए तत्पर हैं अतः तुम उन्हें रोको। हे सुग्रीव, मैं तुमसे विनती करता हूँ कि तुम बताओ कि रावण का छोटा भाई विभीषण अपने चार प्रधानों सहित उनकी शरण में आया है। तत्पश्चात् श्रीरघुनाथ के आदेशानुसार कार्रवाई की जाय। कौशल्या पुत्र

कौशलेन्द्र श्रीरघुनाथ की मैं अनन्य भाव से शरण आया हूँ। मेरा नाम विभीषण है।" सुग्रीव को यह अनुभव हुआ कि विभीषण वास्तव में शरण आया है। तत्पश्चात् उसने स्वयं श्रीराम, लक्ष्मण के पास जाकर उनका वन्दन कर विभीषण के आगमन के विषय में बताया। वह बोला– "विभीषण द्वारा लंकानाथ को यह कहने पर कि श्रीराम को सीता अर्पित कर दें, लंकानाथ ने विभीषण को अनाथों के सदृश निकाल दिया। लंका नगरी से विभीषण को निष्कासित करते हुए रावण बोला– 'जाओ, तुम श्रीराम की शरण में चले जाओ।' श्रीराम का पक्षपात पूर्ण व्यवहार होने पर वह किस प्रकार लंका में आयेगा, राक्षसों पर किस प्रकार विजय प्राप्त करेगा, हम इसका अनुभव करेंगे।' विभीषण सद्भावना से श्रीरघुनाथ की शरण में आया है, उसका क्या किया जाए, इस विषय में श्रीराम आज्ञा करें। अपने चार प्रधान लेकर वह शरण में आया है। श्रीराम के चरणों के पास आकर वह काया, वाचा एवं मन से आनन्दित हुआ है।"

विभीषण के आगमन पर प्रतिक्रिया– विभीषण के भेंट के लिए आने का समाचार सुनकर श्रीराम अत्यन्त आनन्दित हुए। उन्होंने सुग्रीव की पीठ थपथपा कर अपने मन का प्रेम एवं आनन्द व्यक्त किया। अन्तर्यामी श्रीराम विभीषण के मन का अनन्य भाव समझते थे क्योंकि श्रीराम प्रत्येक के हृदय में वास करते हैं। श्रीराम यद्यपि जानते थे कि विभीषण अत्यन्त सरलभाव से शरण आये हैं तथापि सुग्रीव को राजधर्मानुसार व्यवहार करने के लिए कहा। हनुमान इत्यादि प्रमुख वानर प्रधानों को बुलाया। उन्हें विभीषण की शरणागति के लक्षण परखने के लिए कहा। तब विभीषण का मनोगत सत्य है अथवा मिथ्या, यह तय करने के लिए उन्हें बुलाने के लिए कहा। सुग्रीव सर्वप्रमुख होने के कारण सर्वप्रथम वह बोला– "यह रावण का भाई है अतः अवश्य ही इसका वध किया जाय।" कुमुद ने भी उसे मारने का विचार व्यक्त किया। नल और नील बोले– 'विषैले के समीप विषैला ही रहता है। यह रावण का कनिष्ठ भ्राता कपटी ही होगा अतः इसका शीघ्र वध कर दिया जाए।' गज और गवय ने कहा– 'यह शत्रु का भाई है। शरण आने में इसकी कोई कपटपूर्ण चाल होगी। इसको स्वीकार न कर इसे लंका वापस भेज दिया जाय।' मैंद ने कहा– 'कपटी रावण का भाई होने के कारण, उसे मार डाला जाय।' द्विविद ने भी वही कहा। सुषेण, पनस, दधिमुख तीनों एक स्वर में बोले कि इसे जीवित रखना संकट से परिपूर्ण है अतः इसे मार डाला जाय। तत्पश्चात् जाम्बवंत बोला– "विभीषण को यहाँ बुलाया जाय। उसका व्यवहार देखकर, उसका मनोगत समझ में आ जाएगा। स्थिति, गति, गमनागमन, आँखें, मुख, वार्तालाप इत्यादि के माध्यम से शत्रु का लक्षण परखा जाता है।" अंगद ने अत्यन्त कौतुकास्पद विचार व्यक्त करते हुए कहा– "विभीषण बेचारा अकेला। क्या उससे ये युद्ध प्रवीण वानर हार जाएँगे ? धन्य हैं ये वानर जो एक शरण आये हुए राक्षस को मारने के लिए कह रहे हैं। क्या यही सच्ची वीरता है ?"

श्रीराम का मनोगत कोई भी समझ नहीं पाया था। वानर व्यर्थ ही बोले जा रहे थे। श्रीराम बोले "हनुमान यहाँ उपस्थित है, उसके विचार सुनें। मारुति ने सम्पूर्ण लंका का निरीक्षण किया है। विभीषण सज्जन है कि दुर्जन, यह मारुति अच्छी तरह से जानता है। लंका में उससे अवगत न हो, ऐसा कुछ भी नहीं है। वही सब कुछ बता सकेगा।" यह कहकर श्रीराम हनुमान से बोले– "हनुमान, शरणागत विभीषण का क्या करना है, मुझसे कहो।" स्वामी के वचन सुनकर श्रीराम की चरण वंदना कर वह उचित क्या होगा, यह बताने लगे।

विभीषण हेतु हनुमान का विनेदन– हनुमान सर्वांगीण रूप से विशेष ज्ञानी थे। परिपक्व एवं योग्य वचन बोलने वाले थे। वे रघुनन्दन को सुख देने वाले थे। इसी कारण श्रीराम को अत्यन्त प्रिय थे

उनके वचन अमृत से भी मधुर थे। वेद शास्त्रों में उनकी रुचि होने के कारण श्रीराम को उनके वचन अत्यन्त प्रिय थे। हनुमान के वचन सुनने के लिए वानरगणों ने अपने कान खड़े कर लिए। सभी हनुमान की ओर एक टक देखने लगे। जिस प्रकार बृहस्पति द्वारा निरूपण करने पर देव समुदाय एकाग्र होकर सुनते हैं, उसी प्रकार हनुमान के वचन वानरगण एकाग्र होकर सुनने लगे। हनुमान के वचनों की वाक्य रचना वानरों को चकित कर देती थी। उनके वचन, सत्य और ज्ञान से परिपूर्ण होने के कारण उन्हें सुनना श्रीराम को अच्छा लगता था। खीर में तथा घी में शक्कर के सदृश हनुमान के वचन अत्यन्त मधुर थे। श्रीराम का अनुचर सत्यवादी होने के कारण श्रीराम को अत्यन्त प्रिय था. हनुमान बोले– "श्रीरघुनाथ, आप सावधानीपूर्वक सुनें। विभीषण के मन की बात न जानने के कारण वानर-प्रधान कुछ भी बोल रहे हैं। उनकी कल्पना मिथ्या है। विभीषण के विचारों से अवगत न होने के कारण ही वे कह रहे हैं कि शरणागत शत्रु का भाई होने के कारण वह हमारा वध करेगा। वानरों के ये वचन सत्य नहीं हैं।"

'त्रिकूट पर लका को ढूँढ़ते समय मैंने स्वयं देखा है कि विभीषण कपटी नहीं है। मेरे ये वचन सत्य हैं ' हनुमान ने सम्पूर्ण लंका को ढूँढ़ते समय राक्षसों के मनोगत को भी समझा था। उसी आधार पर वे बोल रहे थे. उनके वचनों में सत्यता थी। श्रीराम की सेवा एवं तप के बल पर हनुमान की गति सबके अन्तर्मन तक थी जिसके कारण उन्हें सत्य-असत्य का ज्ञान हो जाता था। वे उसी सत्य को मधुर एवं प्रांजलपूर्ण ढग से कहते हैं कि 'वानर प्रधानों का यह कहना कि विभीषण कपटी है, सत्य नहीं है विभीषण की भावना शुद्ध है। मैं सत्य कह रहा हूँ कि वह कुकर्मी एवं अधर्मी नहीं है। विभीषण धर्म की प्रतिमूर्ति होने के कारण उसमें नित्य निवृत्ति, शान्ति एवं शुद्ध भाव विद्यमान है। उसने युवराज पद का तथा अपने भ्राता रावण का त्याग कर दिया है तथा युद्ध के समय वह शरण आया है। अतः आप उसे न मारें उसके मन में पहले से ही श्रीराम के प्रति प्रेम विद्यमान था। रावण द्वारा लात मारने के कारण वह सद्भावपूर्वक एवं आनन्दपूर्वक श्रीराम की शरण आया है। ऐसे सद्भावपूर्ण एवं निष्कपट व्यक्ति के शरण में आने पर उसका वध करने से सूर्यवंश को दोष लगेगा। शिवी, हरिश्चन्द्र, रुक्मांगद-ये सभी सूर्यवंश के धर्मविद् के रूप में शोभायमान हैं। ऐसे में अगर उस शरणागत का वध किया तो तीनों लोकों में वह विपरीत आचरण सिद्ध होगा। स्वर्ग में दशरथ कुपित होकर कहेंगे कि श्रीराम अधर्मी हो गया। अतः हे श्रीराम, मेरा तात्पर्य यही है कि शरणागत का वध न किया जाय।'

हनुमान आगे बोले "उस अकेले विभीषण का हमें कैसा भय ? जो वानरगण उसका वध करने के लिए कह रहे हैं, उनका पराक्रम तुच्छ है। आकाश भी अगर टूट पड़े तो श्रीराम विचलित नहीं होते तो विभीषण का कैसा भय ?" हनुमान के ये वचन सुनकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए। हनुमान फिर बोले– "विभीषण की संगति के कारण राक्षसों के दुर्गम स्थल श्रीराम के वश में होंगे जो विजय प्राप्त करने में सहायक होंगे छल कपट करने वाले, विघ्न उत्पन्न करने वाले, विभीषण के कारण श्रीराम के वश में हो जाने से विजय प्राप्त करवायेंगे। रात्रि के समय अचानक धावा बोलकर मारने वाले जो राक्षसगण हैं, उनका विभीषण की सहायता से नाश कर श्रीराम विजय प्राप्त कर सकेंगे. उनके पास होने से अलक्ष्य, अगम्य, अतर्क्य गति के, पृथ्वी की ओट से मुख्य योद्धे चुराने वाले राक्षस पकड़े जाकर विजय प्राप्त हो सकेगी। जो बड़े संकटपूर्ण दुर्गम स्थल हैं, जहाँ जाते हुए अत्यन्त कष्ट होते हैं, वे सभी स्थल विभीषण की संगति से सुलभ होकर श्रीराम विजय प्राप्त कर सकेंगे। विभीषण अत्यन्त शुद्ध-बुद्धि का

तथा परमार्थी है। उसके विषय में किसी प्रकार की शका मन में न रखते हुए शरणागत के शुद्ध भाव को स्वीकार करें. लका में ढूँढ़ते समय मैंने स्वयं अपनी दृष्टि से जो देखा, उसके आधार पर मैं यह कह रहा हूँ कि विभीषण कपटी नहीं है। आपके चरणों को स्पर्श कर आपकी शपथ लेकर कर रहा हूँ।"

हनुमान के वचनों से श्रीराम को प्रसन्नता– हनुमान द्वारा विभीषण के विषय में किया गया स्पष्टीकरण सुनकर श्रीराम को मनःपूर्वक आनन्द हुआ। ऐसे आनन्द का उन्होंने अनुभव किया, जो सृष्टि में भी नहीं समा सकता था। जो श्रीराम के मन में था, वही मारुति ने अपने शब्दों में व्यक्त किया, इससे श्रीराम अत्यन्त प्रसन्न हुए। श्रीराम मन ही मन बोले कि 'मुझे मारने के लिए अगर कपटी रावण भी मेरी शरण में आया तो भी मैं उसे अभय-दान दूँगा। तब विभीषण का त्याग क्यों किया जाय। विभीषण मेरी आत्मा, मेरा जीवन, मेरा प्राण है। मेरे ही कारण वह चिरंजीव है, उसे जन्म मृत्यु का बन्धन नहीं है। अब उसे शीघ्र बुलवाओ लंका मेरा राज्य हो गई, ऐसा समझकर मैंने तत्वतः उसे लंका प्रदान की। मैंने रावण को मारकर विभीषण को लका का राज्य प्रदान किया। उसकी शरणागति प्रेम से परिपूर्ण है। उसने स्वयं अपने अहम् को विस्मृत कर दिया है।' श्रीराम के ये विचार जानकर हनुमान ने उनके चरणों में दंडवत् प्रणाम किया और विचार करने लगे कि 'जो निश्चय मेरे मन ने किया था, वही निश्चय श्रीराम की वाणी से प्रकट हुआ।' श्रीराम बोले- "मेरे भक्त से मिलने हेतु मेरी भुजाएँ आतुर हैं. हे हनुमान, शरणागत विभीषण को शीघ्र बुलाओ"। श्रीराम द्वारा ऐसा कहने पर सुग्रीव ने अपना मस्तक झुका लिया वानर लज्जा से चूर चूर हो गए। श्रीराम अत्यन्त आनन्दित थे विभीषण का भाग्य महान् था। श्रीराम पूर्णरूप से सन्तुष्ट थे अब दोनों की दृष्टि भेंट कैसे होगी, दोनों किस प्रकार वार्तालाप करेंगे– इस विषय में अनुपम कथा आगे सुनें।

अध्याय ३८

[विभीषण को लंका प्रदान कर राज्याभिषेक]

हनुमान ने विभीषण के विषय में जो वृत्तान्त बताया उससे श्रीराम सन्तुष्ट हुए। उन्होंने सुग्रीवादि वानर-गण को धर्म की बातें बतायीं। सद्भाव से पूरी तरह अथवा कपट से भी शरण आये हुए शरणागत के लिए वध का विधान नहीं है। यह बिलकुल सत्य है। ऐसा कहकर तत्पश्चात् श्रीराम ने यह बताया कि शरणागत के साथ किस प्रकार व्यवहार किया जाता है।

"यदि मेरा वध करने के लिए ही विभीषण मेरी शरण आया है तो भी मेरी ओर से उसे अभयदान ही मिलेगा" श्रीराम ने वानरों को बताया - "यह निश्चित मानिये कि शरणागत से कभी मृत्यु नहीं प्राप्त हो सकती। शरणागत पर क्रुद्ध होकर जो उस पर वार करने का प्रयत्न करेगा, उसका मैं नाश कर दूँगा। उस पर बाणों की वर्षा करूँगा। जो भी मेरे शरणागत को हाथ लगायेगा, उसका मैं वध कर दूँगा।" श्रीराम कृपा-निधान, शरणागत-वत्सल, दीनदयालु एवं प्रेम से परिपूर्ण हैं। तत्पश्चात् वह आनन्दपूर्वक बोले - "शरणागत विभीषण को शीघ्र मुझसे भेंट के लिए ले आयें. उस पर मेरा अभय हस्त है " श्रीराम के यह कहते ही हनुमान ने सुग्रीव सहित आकाश में उड़ान भरी। उनके साथ वानर समूह भी था। श्रीराम उनको सम्बोधित कर बोले– "रावण भी शरण में आये तो उसे भी मेरा वरदहस्त प्राप्त

होगा। उसे मैं विभीषण से अधिक सुख दूँगा। रावण अथवा विभीषण दुष्ट दुर्जन कैसे भी होने पर अगर वे मेरी शरण में आते हैं, तो उन्हें अभयदान मिलेगा। हे सुग्रीव, जो शरणागत से डरता है, जिसके मन में मृत्यु का भय होता है, उसे कभी विजय प्राप्त नहीं हो सकती, जो स्वयं भयभीत है, वह शरणागत को किस प्रकार निर्भय कर सकेगा।" श्रीराम स्वयं निःशंक और निर्भय थे। श्रीराम का कथन सुनकर सभी आश्चर्यचकित हुए। श्रीराम पराक्रमी साहसी एवं निःशंक हैं। उन्हें चिन्ता नहीं है, मृत्यु का भय नहीं है। वे शरणागत की रक्षा करने में समर्थ हैं। आपस में ऐसा वार्तालाप करते हुए वे सभी जहाँ शरणागत विभीषण थे, वहाँ एकत्र हुए।

विभीषण का स्वागत, श्रीराम की आनन्दपूर्ण स्थिति– विभीषण को देखते ही सुग्रीव ने उन्हें आलिंगनबद्ध किया। विभीषण को भाग्यवान् कहते हुए वानरगणों ने उनका स्वागत किया। नल, नील, जाम्बवत आदि ने उन्हें आलिंगनबद्ध किया। हनुमान को देखकर विभीषण अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने भावविभोर होकर प्रेमपूर्वक हनुमान की चरण-वंदना की और कहा अब तुम्हीं मेरे लिए माता पिता, बन्धु, भगिनी और सर्वस्व हो तुम्हारे सिवा त्रिभुवन में मेरा कोई आप्त नहीं है।" तत्पश्चात् विभीषण ने हनुमान को रावण की कथा सुनाई और कहा– "स्वराज्य, आप्त, सुहृद, माता इन सभी का त्याग कर मैं श्रीराम की शरण में आया हूँ," यह कहते हुए आनन्दपूर्वक उसका गला भर आया। सुख और आत्मानद के मिश्रण से वे मूर्च्छित हो गए। उनकी उस अवस्था को देखकर हनुमान हर्षित हो उठे और उन्हें आनन्दपूर्वक उठाकर गले से लगा लिया। आलिंगनबद्ध होते ही विभीषण को सुख एवं सन्तोष की अनुभूति हुई। तब हनुमान कृपापूर्वक बोले– "विभीषण, तुम वास्तव में भाग्यवान् हो। कृपालु श्रीरघुनाथ तुमसे सन्तुष्ट हैं और शीघ्र तुम्हें मिलने के लिए बुलाया है।" हनुमान जब उन्हें पकड़कर श्रीराम से भेंट करने के लिए ले जाने लगे, तब वानर-गण आनन्दित हो उठे। श्रीराम की जय-जयकार से समस्त वातावरण गूँज उठा।

श्रीराम शरणागत विभीषण से भेंट के लिए उत्सुक थे। उन्हें आलिंगनबद्ध करने के लिए उनकी भुजाएँ फड़क रही थीं। उनका चित्त प्रसन्न था। आँखें शुभ चिह्न प्रकट कर रही थीं। उनका शरीर हर्ष से कंपायमान था। शरणागत से मिलने के आनन्द से मन भर उठा था, मन में उत्सुकता थी। शरणागत को देखने के लिए नेत्र पलक झपकाये बिना, एकटक स्थिर हो गए थे। इस प्रकार श्रीराम अत्यन्त उत्कंठापूर्वक विभीषण की राह देख रहे थे। हनुमान विभीषण का हाथ पकड़ कर सुग्रीवादि वानरों सहित श्रीराम नाम की गर्जना करते हुए आ रहे थे। श्रीराम के दर्शन होते ही विभीषण ने दंडवत् प्रणाम कर श्रीराम के चरणों पर अपना मस्तक रखा। उस समय वह स्वयं को भूल गये युवराज, पद, सम्पत्ति, स्त्री, संतति, राक्षस-जाति सभी की विस्मृति हो गई। श्रीराम के दर्शनों से विभीषण जीव-जीवत्व, देह-अहंभाव, शिव-शिवत्व सभी भूल गए। श्रीराम के दर्शनों से सुख-दुःखादि द्वन्द्वों का दुःख, ज्ञेय, ज्ञाता, ज्ञान की त्रिपुटी, स्वदेह और सृष्टि को भूलकर विभीषण आनन्दमय हो गए। ऐसी अवस्था में साष्टांग दंडवत् करते हुए अनन्य भाव से श्रीराम की शरण में जाकर विभीषण सन्तुष्ट हुए। उनके चारों प्रधान मन, बुद्धि, चित्त एवं अभिमानस्वरूप श्रीराम की शरण आये। जिस प्रकार साधक धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को ब्रह्मार्पण करता है, उसी प्रकार वे चारों भी श्रीराम की शरण में गये। साधक चतुष्टय सम्पत्ति (नित्य-अनित्य-वस्तु विवेक, वैराग्य, शमानिषटक शम, दम, उपरति तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान संपत्ति और मुमुक्षुत्व) साधकर जिस प्रकार ब्रह्मार्पण करते हैं, उसी प्रकर चारों मुक्ति रूपी सजीव प्रधान श्रीराम की शरण में आ गए।

विभीषण के द्वारा अनन्य भाव से साष्टांग दंडवत् प्रणाम करने पर श्रीराम ने उन्हें उठाकर आलिंगनबद्ध कर लिया। जल में लवण के मिलन के सदृश उन दोनों की भेंट होकर वे अन्तर्यामी एकरूप हुए। दोनों का आनन्द सृष्टि में समा नहीं रहा था। दो दीपकों की ज्योति को एकत्र करने पर जिस प्रकार दोनों मिलकर एक हो जाती हैं, उसी प्रकार श्रीराम द्वारा आलिंगनबद्ध करने से विभीषण को अद्वैत स्थिति प्राप्त हुई। वे समरूप हो गए। जिस प्रकार आभूषण में स्वर्ण घुलमिल जाता है, उसी प्रकार श्रीराम की भेंट होने पर विभीषण की स्थिति हुई। श्रीराम बोले - "तुम मेरे सखा हो, तुम मेरे जीवन और प्राण सदृश हो।"

विभीषण की प्रसन्नता, आश्वासन एवं उनका अभिषेक– जिस प्रकार पानी में शक्कर घुल जाने से वह पानी का स्वरूप ले लेती है और उस शक्कर के कारण जल मीठा हो जाता है, उसी प्रकार श्रीराम एवं विभीषण के सम्बन्ध निर्मित हुए। श्रीराम का पूर्णत्व भक्त विभीषण में बिम्बित हो गया और विभीषण की भक्तिभाव रूपी माधुरी श्रीराम में प्रतिबिम्बित हुई। इस प्रकार दोनों पूर्णरूप से सन्तुष्ट हुए। तत्पश्चात् आनन्दमग्न विभीषण श्रीराम से बोले– "राक्षसों का वध करने की, मुख्य योद्धाओं को युद्ध में धराशायी करने की युक्ति मैं बताता हूँ। रणभूमि में राक्षसों का अन्त किस प्रकार करना है, यह भी बताता हूँ। मुझे लंका दुर्ग में शीघ्र प्रवेश करने की युक्ति पता है परन्तु उसका वानरों को क्या लाभ ? क्योंकि वे तो कूदकर दुर्ग की दीवारों पर चढ़ जाएँगे। वेग से उड़ान भरकर वानर-गण दुर्ग में प्रवेश कर जाएँगे। वहाँ मेरी युक्ति का क्या महत्व है, वह व्यर्थ है। श्रीराम के बाण छूटते ही मेरुसिन्धु को पार कर रावण का वध कर देंगे। अतः मेरे द्वारा कोई युक्ति बताना मेरी मूर्खता ही कहलाएगी।" विभीषण के वचन सुनकर श्रीराम ने कृपापूर्ण दृष्टि से अपना अभय-हस्त विभीषण के मस्तक पर रखा। पुनः विभीषण को आलिंगनबद्ध कर सन्तुष्ट होकर वे बोले– "हे लक्ष्मण, सिन्धु-जल से सिंचन कर विभीषण का लंकापति के रूप में अभिषेक करो।" श्रीराम द्वारा आज्ञा देते ही उनकी आज्ञा का पालन करने के लिए वानर आवश्यक तीर्थोदक, प्रयागोदक तथा इसके अतिरिक्त चार समुद्र का जल ले आये बाघों का नख सहित चर्म सप्तमुद्रिका, कुशोदक तथा औदुम्बरी, सुचिह्नांकित पीठ विभीषण का लंकाभिषेक करने के लिए ले आये। सोन केलों के गुच्छे नारियल के गुच्छे तथा अभिषेक के लिए फल एवं फूल लाये। दशानन का वध किये बिना विभीषण का अभिषेक करने की श्रीराम की युक्ति की वानरों में चर्चा होने लगी।

श्रीराम द्वारा हनुमान को प्रतिलंका निर्मित करने की आज्ञा– श्रीराम ने हनुमान से कहा कि "तुमने जो लंका देखी है, वह इस समुद्र तट पर यथार्थ रूप में मुझे दिखाओ।" श्रीराम के वचन सुनकर हनुमान ने श्रीराम को दंडवत् प्रणाम किया तथा उन्होंने समुद्र-तट पर लका का निर्माण किया। चारों ओर समुद्र का घेरा, दाहिनी ओर निकुंबला पीछे पड़लंका और मध्यभाग में ध्वज पताकाओं से सुशोभित लंका निर्मित की। इस किले में प्रवेश अत्यन्त कठिन था। उसके गुप्त दरवाजे अत्यन्त गहन थे। दृढ़ और विकराल वार करने वाली तोपें थीं। पानी से भरी हुई खाइयाँ थी। महाद्वार के पास छिपाई गई घातक वार करने वाली तोपें थीं। गुप्त रूप से शत्रु सेना पर वार करने के लिए वे वहाँ रखी गई थीं। उलट कर होने वाले उनके अचूक वार से शत्रु सैनिक धराशायी हो जायें, ऐसा दुर्ग के भीतर से वार होता हुआ हनुमान ने किले में दिखाया था। दुर्ग के परकोटों दीवारों और दुर्गम छोरों से दोनों तरफ से होने वाले वार से आगे अथवा पीछे होकर कोई बच नहीं सकता था। ऐसा हनुमान ने स्पष्ट रूप से दिखाया था। इस प्रकार हनुमान ने लंका की प्रतिकृति निर्मित की। उसके समक्ष अमरावती भी नगण्य थी। राज मन्दिर पताकाओं से सुशोभित था। सात मंज़िल वाले व नौमंज़िल से युक्त भवन एवं गोपुर थे। असंख्य दो

मंजिलयुक्त भवन थे। वहाँ रानियों का महल अत्यन्त सुन्दर था और उससे भी अधिक सुन्दर अशोक-वन था। वहाँ सीता को रखा था और राक्षसियाँ वहाँ पहरा दे रही थीं। वहाँ एक वस्त्र परिधान की हुई अत्यन्त दीन, मलिन, अस्त व्यस्त केशों से युक्त भय से कंपित सीता को देखकर राम मूर्च्छित हो गए। विभीषण भी अचम्भित हो गए। वे मन ही मन आश्चर्यचकित होकर सोचने लगे कि हनुमान क्या लंका को उखाड़ कर यहाँ ले आये हैं ? सामने लंका दिखाई देते ही वानर त्वेष पूर्वक कूदने लगे। परन्तु लंकादुर्ग अत्यन्त भयंकर एवं दुर्गम होने के कारण वे रुक गये और कहने लगे कि सब मिलकर, पराक्रम कर रावण को ढूँढ़ निकालो। हनुमान ने लंका की प्रतिकृति का निर्माण इतनी कुशलतापूर्वक किया था कि वानर उसे वास्तव में लंका समझ बैठे। श्रीराम द्वारा सावधानीपूर्वक देखने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि हनुमान द्वारा लंका के सदृश दिखाई देने वाला लंका-भुवन बालू से बनाया गया है। वह दुर्ग देखकर लक्ष्मण भी विस्मय चकित हुए, अंगद एवं सुग्रीव भी चकित हो गए। हनुमान द्वारा निर्मित लंका को देखकर ब्रह्मादिक आश्चर्यचकित हो गए। ब्रह्मांड को निर्मित करने वाले ब्रह्मा विस्मित होकर देखते ही रह गए। हनुमान की उस रचना को वे सत्य समझने लगे। हनुमान का यह कौशल देखकर श्रीराम प्रसन्न हुए और उनकी पीठ थपथपाकर उन्होंने अपना आनन्द व्यक्त किया।

विभीषण को लंका प्रदान करना, उनका राज्याभिषेक– श्रीराम बोले "रावण एवं कुंभकर्ण का वध कर मैं मुख्य लंका विभीषण को प्रदान करूँगा। यह सत्य है। जब तक मुख्य लंका नहीं दी जाती, तब तक हनुमान द्वारा निर्मित लंका मैं तुम्हारे पास गिरवी रखता हूँ। रावण वध के पश्चात् मैं उसे छुड़ा लूँगा। अधिक दिनों तक इसे गिरवी नहीं रखूँगा। रावण का वध कर मैं उसे छुड़ा लूँगा, यह निश्चित समझो। मेरे लिए लंका से इसका करोड़ गुना मोल अधिक है क्योंकि यह मेरे प्रिय हनुमान की लंका है। हे विभीषण, प्रेम ज्ञान-धन यह सब मैं यथेच्छ तुम्हें प्रदान कर हनुमान की लंका को छुड़ाऊँगा, यह निश्चित समझो।" श्रीराम के वचन सुनकर सन्तुष्ट हुए वानरों ने श्रीराम का जय जयकार किया। लक्ष्मण सन्तुष्ट हुए। हनुमान की वह लंका आज भी समुद्र तट पर विद्यमान है। काल, भय से अभी भी उसकी रक्षा कर रहा है क्योंकि हनुमान का उसे भय है।

तत्पश्चात् वानरों ने जो राज्याभिषेक की सामग्री एकत्र की थी, वह लेकर श्रीराम की आज्ञा ग्रहण कर लक्ष्मण, विभीषण के राज्याभिषेक की तैयारी करने लगे। अंगद एवं सुग्रीव की भाँति श्रीराम के वरदान से विभीषण को सिंहासन प्राप्त हुआ। विभीषण को श्रीराम ने सन्तोषपूर्वक लंका दान दिया, यह देखकर वानरगण प्रसन्न हुए। उन्होंने हर्षित होकर रामनाम का जय जयकार किया। श्रीराम निज भक्त के प्रति कृपालु, शरणागत-वत्सल, प्रेम से परिपूर्ण प्रांजल, दीनदयालु हैं। श्रीराम स्वामी, सज्जन हैं। शरणागत विभीषण एवं स्वामी कार्य-साधक हनुमान भी सज्जन हैं, रघुपति ने अपने सदृश ही सुग्रीव को वानरपति एवं विभीषण को लंकापति बनाया। मन में किसी प्रकार की शंका को धारण किये बिना शरणार्थी रूप में आये हुए शत्रु के भ्राता से समान व्यवहार करने का कर्तव्य श्रीराम जानते थे। अनन्यत्व-भाव से उन्होंने उस पर कृपा की। रावण को जीतने से पहले ही विभीषण को उन्होंने लंका दान कर दी। श्रीराम की कीर्ति अत्यन्त पवित्र एवं दीनोद्धारक की है। सुरगण, ऋषिगण एवं वानरगण उनकी कीर्ति का गान करते हैं। उनकी कीर्ति तीनों लोकों में पवित्र है। विभीषण सत्यनिष्ठ भ्राता है और उद्धार कर्ता श्रीरघुनन्दन हैं। उनकी शरण जाने से जन्म मरण का चक्र कहाँ शेष रह जाता है ?

❊❊❊❊

अध्याय ३९

[सागर का श्रीराम की शरण में आना]

श्रीराम द्वारा विभीषण को लंका का दान देने के पश्चात् समस्त सभा सजग होकर बैठ गई। सभी आनन्दित थे। वानरों की उछलकूद चल रही थी। विभीषण सुखमग्न थे। सुग्रीव समस्त दल को देखकर प्रसन्न थे। वानरों के समूह रामनाम की ध्वनि करते हुए और भुभु:कार करते हुए प्रणाम करने के लिए आ रहे थे। उस समय हनुमान वहाँ आकर सुग्रीव से एकांत में चर्चा कर रहे थे। सीता को मुक्त कराने के लिए रावण का वध अनिवार्य था। समुद्र तट पर वानरों की पंक्तियाँ बैठी थीं। सब यही विचार कर रहे थे कि समुद्र को पार कैसे किया जाय।

सुग्रीव एवं हनुमान द्वारा विचार विनिमय– सुग्रीव ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा– "नदियाँ वर्षा ऋतु में भर जाती हैं परन्तु सागर को उनकी चिन्ता नहीं रहती। ग्रीष्म ऋतु में नदियाँ सूख जाती हैं परन्तु उसके कारण सागर नहीं सूखता। सागर नित्य पूर्णत्व से युक्त गंभीर और अगाध है, हमारी वनचरों की सेना उस पार कैसे पहुँच सकेगी ? हमें समुद्र लाँघने का कोई उपाय नहीं सूझ रहा है। हनुमान तुम वानरों में महाबली हो, तुम्हीं बताओ कि क्या उपाय किया जाय वानर समुद्र तट पर बैठकर बड़ी-बड़ी बातें अवश्य कर रहे हैं परन्तु वे बातें व्यर्थ हैं। उनमें उस पार जाने की शक्ति नहीं है। हे हनुमान, अब समुद्र पार जाने के लिए कौन से उपाय किये जायँ। उपाय न सूझने पर लंकाधीश का वध कर किस प्रकार सीता को वापस लाया जाएगा ? अब ऐसा लगता है कि हम श्रीराम को सुखी नहीं कर पाएँगे। अतः अब मैं क्या करूँ ? सुग्रीव द्वारा यह कहते ही कि अब श्रीराम-कार्य नहीं साधा जा सकेगा, हनुमान में स्फूर्ति उत्पन्न हुई और वे निश्चयपूर्वक उठे।

हनुमान ने प्रलय काल के रुद्र के सदृश अपना शरीर वेगपूर्वक बढ़ाकर भयानक बना लिया, उस आकृति को देखकर देवता भय से काँपने लगे। मारुति के रोम-रोम खड़े हो गए, उनके केश थरथराने लगे। पूँछ बढ़कर गगन का स्पर्श करने लगी। वह महाबली आवेशपूर्वक बोला– "तुम सभी वानरगण मेरी पूँछ को पकड़ो। राम और लक्ष्मण को कंधे पर उठाकर तथा शरणागत विभीषण को हृदय से लगाकर सभी को एक ही बार में लंका ले जाता हूँ।" महापराक्रमी हनुमान की आँखों में क्रोध झलक रहा था। उनकी भुजाएँ फड़क रही थीं। पूँछ वक्राकार हो गई थी। हनुमान के उस स्वरूप को देखकर सुग्रीव चौंक गया। वानर वीर भयभीत हो गए। मारुति किस प्रकार शांत हो सकेंगे, वे इस विषय में विचार करने लगे। हनुमान का आवेश एवं भयंकर रूप देखकर श्रीराम शीघ्र उठे और हनुमान को हृदय से लगाते हुए मधुर शब्दों में बोले– "अरे, उस बेचारे समुद्र को तो अभी अग्निबाण से सुखाकर सभी वानरगणों को पैदल ही लंका ले जाकर लंका में हाहाकार मचा दूँगा। उस रावण का कैसा पुरुषार्थ ? आधे क्षण में ही उसका वध कर दूँगा।" यह कहकर श्रीराम ने हनुमान को शांत किया।

विभीषण की सूचना– श्रीराम के वचन सुनकर विभीषण सन्तुष्ट हुए उन्होंने मूल कारण सहित समुद्र पार करने का उपाय बताया। वे बोले– "श्रीराम के वचन वीरता से परिपूर्ण हैं। अग्निबाण द्वारा समुद्र का शोषण करने में श्रीराम को क्षणमात्र भी नहीं लगेगा, यह सत्य होते हुए भी शोभनीय नहीं

है सूर्यवंश की ख्याति पर इससे दाग लग जाएगा। हे रघुनाथ, उससे सम्बंधित कथा को सावधानीपूर्वक सुनें। समुद्र किस प्रकार तत्वतः आपका पूर्वज है, इस विषय में कथा के माध्यम से जानें, सगर आपके पूर्वज थे उनके कारण ही सागर का निर्माण हुआ। इसीलिए उसे सागर नाम दिया गया। इस कथा को वेद पुराणों का आधार है। पहले समुद्र प्रत्यक्ष रूप में ऐसा नहीं था। सारे संसार को आच्छादित करने वाले जल में वह गुप्त रूप में था। सगर ने उसे प्रकट रूप में उपस्थित किया। तत्वतः सगर से उसे सागरत्व मिलने के कारण वह आपका पूर्वज है अतः अपने ही वंश के समुद्र का घात कैसे करेंगे ? दशरथ को छोड़कर समुद्र आपके सातवें पूर्वज के रूप में है।" इस प्रकार सूर्यवंश की कथा बताकर विभीषण आगे बोले- "आपके पूर्वज होने के नाते उनकी शरण जाने पर वह स्वयं दर्शन देकर सागर लाँघने की युक्ति बतायेंगे, समुद्र आपका पराक्रम जानता है। उसे आपसे मिलने की परम उत्कंठा है। आप प्रतापी रघुराज हैं, सगर वंश के वंश-ध्वज हैं। समुद्र आपका पूर्वज होने के नाते अपने वंश के लिए यह कार्य निश्चित रूप से करेगा। अपने पूर्वज सिंधु की शरण जाने में लज्जा का अनुभव होने का कोई कारण नहीं है। समुद्र को पार करने का आसान उपाय वह स्वयं बतायेगा।" इस प्रकार धर्मशील सज्ञानता सुझाने वाली अपने वंश की कथा विभीषण द्वारा बताये जाने से श्रीराम प्रसन्न हुए। विभीषण की बातें उचित प्रतीत हुईं और उन्होंने लक्ष्मण और सुग्रीव को वह बात बतायी।

राम द्वारा सागर पूजन, तथापि असहयोग– श्रीराम बोले "विभीषण ने सुमधुर शब्दों में सागर की शरण जाने का सुझाव दिया है। क्या यह सुझाव राजा सुग्रीव एवं सखा लक्ष्मण को मान्य है ?" इस पर श्रीराम की चरण वंदना कर सुग्रीव और लक्ष्मण बोले- "विभीषण सत्यवादी है। अपने पूर्वज सिंधु की शरण में जाने पर अनायास ही समुद्र लाँघना सम्भव हो जाएगा।" उन दोनों के वचन सुनकर समुद्र की शरण जाने का निश्चय कर, श्रीराम ने पुष्प, चन्दन, फल, मूल सहित समुद्र की पूजा की। समुद्र के रम्य तट पर दर्भासन फैलाकर श्रीराम बैठ गए और बोले "आप्त सम्बन्धी होने के कारण तुम मेरा कार्य सिद्ध करो। मैं अनन्य भाव से तुम्हारी शरण में आया हूँ" यह कहकर जिस प्रकार अग्नि को दैदीप्यमान अग्निहोत्र में दबाते हैं, उसी प्रकार श्रीराम ने उसी दर्भासन पर शयन किया। इस प्रकार कार्य-सिद्धि के लिए सिंधु की शरण आकर तीन रात्रि तक श्रीराम वहीं रुके रहे। निद्रस्थ अवस्था में भी वे सावधान थे जागृति, स्वप्न एवं सुषुप्ति एवं तुर्या की अवस्थाओं से परे श्रीराम का सागर की शरण जाने का अनुभव सुरनरों ने प्रत्यक्ष रूप में किया। परन्तु सुषुप्त अवस्था में श्रीराम को देखकर वानरगण विचलित हो उठे। रावण-वध के लिए समुद्र पार करने को वे उत्सुक थे। श्रीराम को देखकर हनुमान ने अपना मनोगत प्रकट किया, यहाँ निद्रा करने से पुरुषार्थ व्यर्थ होता हुआ दिखाई दे रहा है। वानर विचार करने लगे कि 'श्रीराम के तूणीर में भयकर बाण होते हुए भी वे शरण क्यों जा रहे हैं मैं इनका सेवक होते हुए समुद्र पार करने में कौन सी बाधा है। पूँछ के अग्र पर समस्त सेना को बैठाकर मैं पार करा दूँगा। अन्तर्यामी श्रीराम ने हनुमान के मन की बात को समझ लिया और वे मनकर्तापूर्वक अपना पुरुषार्थ दिखाने के लिए उठ खड़े हुए।

श्रीराम का सागर के प्रति क्रोध– तीन दिन बीत जाने के पश्चात् भी जब स्वयं समुद्र भेंट हेतु नहीं आया, तब श्रीराम क्रोधित हो गए। उनके नेत्र लाल रंग के आकाश सदृश हो गए, वे साक्षात

कृतान्त काल सदृश दिखाई देने लगे। "सागर हमारा पूर्वज होने के कारण, मैं सद्भावनापूर्वक उसकी शरण गया परन्तु उसकी दुर्जनता ऐसी कि वह भेंट के लिए भी नहीं आया उसका सम्मान करने के लिए उसका अर्घ्य देकर पूजन किया, अनन्य भाव से उसकी शरण में गया परन्तु वह मिलने के लिए नहीं आया। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि वह अत्यन्त गर्वीला है। उसके इस अशोभनीय गर्व के कारण हे लक्ष्मण, अब मैं उसका वध करता हूँ। पुरुषार्थ से युक्त व्यक्ति द्वारा शरण जाने से कीर्ति अपयश में परिवर्तित हो जाती है अतः केवल अशक्तों को ही शरण जाना चाहिए। शरण में जाने से शक्ति लाभ की अपेक्षा पराक्रम का विपरीत परिणाम होता है। अतः तब यश की प्राप्ति कैसे सम्भव है ? इस कारण तुम लोगों को भी निर्बल समझा जाएगा। मैं भक्त होते हुए भी इस अभक्त समुद्र की शरण में गया तथापि तुमने गर्व के कारण मेरी उपेक्षा की। नम्रतापूर्ण व्यवहार करने से यश, कीर्ति, लाभ, विजय नहीं प्राप्त होती यह निश्चित है। हे लक्ष्मण, मृदु व्यवहार से संन्यासी को परमार्थ प्राप्ति हो सकती है परन्तु हम राजाओं को मृदु व्यवहार से अपकीर्ति प्राप्त हो सकती है। राजा विद्रोही को दंडित करते हैं, दुर्व्यवहारी का दमन करते हैं। इसके विपरीत जो राजा शान्त रहते हैं, वे अपयश के भागी बनते हैं। समुद्र में अत्यन्त गर्व है परन्तु मैं क्षण-मात्र भी विलम्ब किये बिना उसका गर्व दूर करूँगा। अब शीघ्र मेरा सर्पसदृश भयंकर धनुष बाण दो। सर्पदंश करने पर उसका विष उतर सकता है परन्तु मेरे तीक्ष्ण बाण सुरासुरों का प्राण हरने वाले हैं। शीघ्र का जीवन लेने वाले हैं।" यह कहते हुए श्रीराम ने धनुष हाथ में उठाया।

श्रीराम ने क्रोधपूर्वक धनुष बाण को सुसज्जित किया। अग्नि-अस्त्र सिद्ध कर उन्होंने धनुष की प्रत्यंचा खींची और त्वेष पूर्वक चल पड़े। श्रीराम के क्रोध को देखकर स्वर्ग में देवता कंपित हुए। सागर में स्थित मगर-मछलियाँ सागर का अन्त समीप जानकर छटपटाने लगे। श्रीराम द्वारा सागर को सोखने के भय से पाताल में रहने वाले दानव, दैत्य, नाग, मानव सभी भयभीत हो उठे। पातालवासी इस भय से कंपित हो उठे कि श्रीराम का बाण समुद्र में गिरते ही सप्त पाताल भस्म हो जाएँगे। श्रीराम द्वारा धनुष पर बाण चढ़ाते ही चन्द्र-सूर्य निष्प्रभ हो गए, नक्षत्र नभ से नीचे गिरने लगे। ऋषि स्वधर्म भूलने लगे। जब राम-बाण की अग्नि समुद्र के जल का शोषण करेगी तब उसका बड़वाग्नि से सम्बन्ध होगा। वे दोनों मिलकर पृथ्वी को भस्म कर देंगे। इस कारण ब्रह्मा चिन्तित हो उठे। ब्रह्मा के चिन्तित होने से ब्रह्म भुवन में हाहाकार मच गया। श्रीराम द्वारा सागर का निर्दलन करते ही सृष्टि का अन्त हो जाएगा— ऐसी चिन्ता सबको सताने लगी। श्रीराम बोले "हे सौमित्र, मैं समुद्र के जल को सोखकर राक्षसों के वध के लिए वानर-सेना को पैदल ही उस पार ले जाऊँगा।"

सागर का सपरिवार श्रीराम की शरण में आना— श्रीराम ने जोर से धनुष की प्रत्यंचा खींची। उनके नेत्र क्रोध से विस्फारित थे। वे कृतान्तकाल सदृश दिखाई दे रहे थे। उनका वह स्वरूप देखकर वानरगण भी काँपने लगे। श्री रघुनाथ को क्रोधित देखकर सागर एवं उसके कुटुम्बीजन स्त्री, पुत्रादि त्राहि-त्राहि करने लगे। उन्हें ऐसा लगने लगा कि अब श्रीराम द्वारा प्राणान्त निश्चित है, श्रीराम का बाण छूटने पर उसका निवारण किसी के लिए भी सम्भव नहीं है। श्रीराम की शरण न जाने पर मृत्यु निश्चित है। यह विचार कर स्त्रियों एवं पुत्रों सहित स्वयं सागर मूर्तिमंत होकर समुद्र में ही प्रकट हुआ। श्रीराम के समीप प्रचंड लहरों के मध्य सागर जल में सागर देव साकार रूप धारण कर प्रकट हुए। श्रीराम ने बारह तिलक एवं गले में जनेऊ धारण किये हुए सागर को स्त्री-पुत्र सहित समुद्र जल में खड़े हुए देखा। स्त्री पुत्रों सहित सागर को अपनी ओर चलकर आता देख श्रीराम आश्चर्यचकित हुए।

ब्रह्मा द्वारा सिंधु का निर्माण करने के कारण वह शुद्ध ब्राह्मण है। कालान्तर में सगर द्वारा उसे प्रकट करने के कारण उसे सागर नाम प्राप्त हुआ। उस ब्राह्मण को समक्ष देखते ही कृपालु रघुनाथ ने शरवृष्टि रोक दी एवं द्विजघात से बच गये। उस ब्राह्मण के बाहर आने के पश्चात् ही बाण चलाने का विचार कर श्रीराम ने धनुष की प्रत्यंचा ढीली की। यह सागर जल का ब्राह्मण श्रीराम से बोला– हे रघुनाथ, मुझे अपनी शरण में लें। मैं आपकी शरण में आया हूँ, मेरा वध न करें।" तत्पश्चात् श्रीराम बोले– "हे द्विजवर्य, क्या आपका किसी ने अपमान किया है या आपकी सम्पत्ति अथवा पत्नी का किसी ने हरण किया है ? मैं आपका पक्ष लेते हुए पहले ब्राह्मण का कार्य साधकर तत्पश्चात् सीता को छुड़वाऊँगा। यह रघुनाथ का त्रिवार सत्य वचन है। मुझे क्या करना है शीघ्र बतायें इस राम की शरण आने पर कल्पान्त तक भी तुम्हें मृत्यु नहीं प्राप्त हो सकती।" श्रीराम ने द्विज की चरण-वंदना करते हुए पुनः पूछा कि मैं क्या सेवा करूँ ? इस पर द्विज बोला "हे रघुनाथ, मैं समुद्र तुम्हारी शरण में आया हूँ। अब बाण चलाकर मेरा वध क्यों कर रहे हैं ?"

श्रीराम समुद्र से बोले - "तुम मेरे पूर्वज हो। अतः तुम्हारा योग्य सम्मान करने के लिए मैंने तीन दिनों तक निर्दोष रहकर दर्भासन पर शयन किया परन्तु तुम्हारे अन्दर गर्व निहित होने के कारण तुमने जान बूझ कर मुझे दर्शन नहीं दिये और अब स्वयं के प्राण बचाने हेतु शरण में आये हो।" इस पर सागर बोला– "तुम्हारे कारण सूर्यवंश की अपकीर्ति हुई है। उस क्रोध के कारण मैं तुमसे मिलने नहीं आया। अब तुम्हारे द्वारा पराक्रम की प्रतिष्ठा दिखाये जाने पर मैं तुम्हारे दर्शन करने के लिए आया हूँ। मैं तुम्हें कुछ रहस्य बताने के लिए आया हूँ, वह सावधानीपूर्वक सुनो। सागर ने मुट्ठी में रत्न लेकर श्रीराम के चरणों पर अर्पित किये, उन चरणों पर मस्तक रखकर चरण वंदना की क्योंकि श्रीराम पूर्णावतार हैं, यह वह जानता था उसके पश्चात् वह कहने लगा– "श्रीराम, तुम्हें एक रहस्य बताना है, वह सावधानी पूर्वक सुनो। सूर्यवंश की कीर्ति बहुत बड़ी है। तुमने उसके विपरीत कार्य किया है। हरिश्चन्द्र की कीर्ति तीनों लोकों में विख्यात है। राजा शिवि ने कबूतर के बदले अपना मांस कबूतर के जितना तौलकर, देकर अपनी नगरी को वैकुंठ सदृश महान बनाया। रुक्मांगद, धर्मांगद के लिए एकादशी का व्रत धारण कर नगरी को वैकुंठ तक ले गए। सम्पूर्ण संसार के लिए ये उपकारकर्ता के रूप में प्रसिद्ध हुए। मेरी सूर्यवंश में उत्पत्ति कैसे हुई, उस विषय में तुम्हें बताता हूँ। सावधानीपूर्वक सुनो।"

सागर द्वारा पूर्ववृत्त निवेदन– सगर से उत्पत्ति होने के करण सागर हुआ ऐसा कथा विस्तार भागवत में है। तीनों लोकों में कपिल मुनि के चरित्र को अति विचित्र माना जाता है कपिल की ओर साठ सहस्र सगर वीरों ने क्षुब्ध-दृष्टि से देखा इसलिए वाणी-रूपी वज्रप्राय दाढ़ों से कपिल ने उन्हें शाप दिया कि 'तुम साठ सहस्र सगर बलोन्मत्त हो। तुममें अणुमात्र भी भूत दया नहीं है। तुम सभी रात दिन जलते रहोगे। कपिल ने इस प्रकार वाग्वज्र का प्रहार किया। वज्र का आघात केवल एक को ही मारता है परन्तु वाग्वज्र की क्षमता उससे कहीं अधिक होती है। उसने साठ सहस्र वीरों को एकत्र कर आग लगा दी। भीषण वज्राघात होने पर शूरवीर बाणों से उसे नष्ट कर सकते हैं परन्तु वाग्वज्र का निवारण किसी से भी सम्भव नहीं है। ब्रह्मशाप में परिवर्तन नहीं हो सकता। उसकी गति आगे पीछे नहीं हो सकती। अतः सगर पुत्र जलने लगे। उन सगर महावीरों को रात दिन जलते हुए देखकर मुनीश्वरों के हृदय में करुणा उत्पन्न हुई। उन्होंने कपिल की प्रार्थना कर उःशाप माँगा। तब वे बोले कि इस वंश में भग से उत्पन्न होकर भगीरथ ने जन्म लिया है, वह प्रयत्नपूर्वक गंगा यहाँ लाकर सभी सगरों का उद्धार

करगा इस प्रकार इसी वंश के भगीरथ ने गंगा यहाँ लाकर सगरों का उद्धार किया। अपने पूर्वजों को तार दिया और संसार को पवित्र किया ऐसी हमारे पूर्वजों की ख्याति है इसी वंश में हे राम, तुमने जन्म लिया है तुम पुण्यवान हो, पूज्य हो, पवित्र हो, यशवान् हो परन्तु तुम्हें अपयश का भागी बनना पड़ा।"

सागर बोला "तुम दोनों भाई धनुर्धारी कलिकाल को अपने चरणों मे रखने वाले हो तथापि तुम्हारी पत्नी का अपहरण हो गया, जिसके कारण तुम्हें अपयश प्राप्त हुआ अनुगामिनी पत्नी को तुमने खो दिया, जिसके कारण वंश का पुरुषार्थ लज्जित हुआ है। इतना बड़ा अपयश का कलंक तुम्हारे मस्तक पर लगा है सूर्यवंश का श्रीराम, सीता के विरह से विलाप कर रहा है- यह वृत्तान्त सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ। तुमने दर्भ शयन किया जिसके कारण मुझे क्रोध आया, मैं क्षुब्ध हो गया। इसीलिए मैं तुम्हें दर्शन देने के लिए नहीं आया, यह सत्य है। हे श्रीराम, तुम्हारे पास अपार शक्ति होते हुए भी तुम निर्धनों की भाँति मेरी शरण आये, इस कारण क्रोधवश मैंने तुम्हारे दर्शन नहीं किये। रावण द्वारा सीता को ले जाने पर वहाँ पराक्रम न दिखाकर, मेरे जैसे पूर्वज के प्राण लेने के लिए तुमने अग्निबाण सज्जित किया ?" समुद्र के ये वचन सुनकर श्रीराम लज्जित हुए। उनके हाथों से धनुष बाण फिसलकर गिर जाएँगे, उनकी ऐसी स्थिति हो गई श्रीराम को उस अवस्था में देखकर समुद्र ने श्रीराम के चरणों पर अपना मस्तक रखा और बोला "धृष्टतापूर्वक मैंने जो कुछ कहा, उसके लिए मुझे क्षमा करें। अत्यन्त आवेशपूर्वक बाण चढ़ाकर मुझ पर क्रोध न करें। सागर को पार करने का कार्य अत्यन्त छोटा और सरल है।"

"मैं तुम्हारे वंश का पक्षपाती हूँ, दशरथ ने भी मुझ पर उपकार किया है, वह कथा ध्यानपूर्वक सुनो। इस प्रकार श्रीराम को सम्बोधित कर सागर ने मूल कथा बताना प्रारम्भ किया। बहुत पहले की बात तारका और यम के युद्ध में, मैं और दशरथ, इन्द्र की सहायता के लिए गये थे। उस समय भीषण युद्ध हुआ। दैत्य मेरा वध करने वाले थे तभी दशरथ ने मेरी सहायता की और सभी दैत्यों का दमन कर मुझे मुक्त किया। शत्रु के समूह को सन्त्रस्त कर दशरथ ने सभी दैत्यों का वध कर दिया। इन्द्र ने अत्यन्त प्रसन्न होकर प्रेमपूर्वक राजा की पूजा की और दशरथ को मुकुटमणि प्रदान किया। हम दोनों का पूजन कर सम्मान देकर हमारा गौरव किया था। वही मणि दशरथ ने प्रेमपूर्वक सीता को प्रदान किया था। वही मणि चिह्न के रूप में सीता ने हनुमान को दिया, जिसके कारण सीता की खोज को निश्चित माना जा सका। इस प्रकार मैं दशरथ का आभारी हूँ। प्रत्युपकार स्वरूप मैं तुम्हारा सहायक बनूँगा और वानर-सेना को सागर पार जाने के लिए उनका मार्ग दर्शन करूँगा।"

सागर द्वारा सेतु-निर्माण सम्बन्धी सूचना– सागर श्रीराम से बोला– "विश्वकर्मा का पुत्र नल नाम से प्रसिद्ध है। वह समुद्र पर सेतु बनायेगा। उसे पिता से वरदान प्राप्त है और सेतु-निर्माण-कार्य में वह निष्णात है। उसे आज्ञा देकर सेतु निर्माण करायें। हे रघुनाथ, तुम मेरे वंश के हो तथा मैं दशरथ का उपकृत हूँ, जिसके कारण हममें सुहृद सम्बन्ध बने हुए हैं। अतः मैं तुम्हारी जिस प्रकार सहायता करूँगा, वह सुनो। महाग्रास मछलियाँ वहाँ नहीं आयेंगी समस्त लहरों को मैं रोक दूँगा प्रतिकूल वायु सेतु बंधन में बाधा नहीं डालेगी। इस प्रकार मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। पिता का वरदान होने के कारण नल सेतु निर्माण करेगा और एक अच्छा चिह्न है, वह सुनो ! समुद्र में उसके द्वारा शालिग्राम डालने के कारण ऋषियों ने क्रोधित होकर उसे शाप भी दिया है। उसकी कथा सुनो ! मेरे तट पर बैठकर ऋषि स्नान, संध्या व अनुष्ठान करते हैं। अपने आगे शालिग्राम रखकर वे ध्यान लगाते हैं। उस समय नल वानर आकर शलिग्राम को समुद्र में डाल देता था। इसीलिए क्रोधित होकर ऋषियों ने उसे शाप दिया - "तुम्हारे

हाथ से समुद्र में डाली गई शिला कभी डूबेगी नहीं। अत: यह भी नल का पुरुषार्थ सेतु बाँधने में सहायक होगा।" सागर का यह कथन सुनकर नल वानर आगे आया। उसने राम की चरण वंदना की और तब वह गर्जना करते हुए बोला "मैं अवश्य सेतु बनाऊँगा। सिंधु ने जो भी कहा, वह सत्य है। मेरे पास सेतु बनाने का सामर्थ्य और कुशलता है, जिसके कारण मैं सत्वर सेतु-निर्माण कर सकूँगा सिंधु अत्यन्त अगाध और बड़ा है। उस पर सेतु निर्माण करते समय स्वामी शीघ्रता से वानरों को पर्वत लाने के लिए भेजें।" नल के वचन और तत्परता देखकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए और उन्होंने नल को सम्मान और प्रेम से गौरवान्वित किया सागर के प्रति भी श्रीराम ने मधुर एवं मंजुल शब्दों में प्रेम व्यक्त किया

रामबाण का विसर्जन, सागर का सम्मान– श्रीराम सागर से बोले– "तुम्हारे ऊपर क्रोध के कारण मैंने धनुष पर अग्निबाण चढ़ाया और उसकी प्रत्यंचा खींची थी। वह बाण मैं वापस निकाल नहीं सकता अत: तुम्हीं बताओ कि मैं इसे किस पर चलाऊँ। मेरा यह बाण निर्णायक होता है, यह सत्य है।" इस पर सागर बोला– "पश्चिम तट पर दुराचारी मरु दैत्य है, वह मुझे नाना प्रकार से पीड़ित करता है। उसका इस बाण से तुम संहार करो।" समुद्र द्वारा यह सूचना मिलते ही श्रीराम ने अग्निबाण चला कर मरु दैत्य का संहार किया। श्रीराम के बाण के प्रभाव से समुद्र का जल भी कम हो गया पृथ्वी अग्नि की ज्वाला से तप्त हो गई और श्रीराम की शरण में आयी। उसकी दयनीय अवस्था देखकर श्रीराम ने उसको वरदान देते हुए कहा "मरुदेश पवित्र हो गया है, पृथ्वी को जल प्राप्त होकर वह उपजाऊ बन जाएगी। अत्यन्त रसीले एवं स्वादिष्ट फल-मूल वहाँ उत्पन्न होंगे। स्त्रियों से जल माँगने पर वे दूध प्रदान करेंगी। गायें पाँच दिन के अंतराल पर जल पीकर भी अत्यधिक दूध देंगी। घी, दूध और श्रेष्ठ अन्न का भोजन घर घर में उपलब्ध होगा। नाना प्रकार की सुगंधित औषधियाँ श्रीराम ने अपने वर के द्वारा उस मरु प्रदेश को प्रदान कीं, उसे सुख सम्पन्न किया। तिल में स्नेह होता है इस विषय में किसी को आश्चर्य नहीं होता उसी प्रकार मरु प्रदेश में प्रत्येक घर में स्नेह विद्यमान होता है। उस प्रदेश को मारवाड़ कहते हैं। श्रीराम के वर के कारण सम्पूर्ण मरुप्रदेश सुखी हो गया। श्रीराम की ख्याति को देखकर सागर मन ही मन आश्चर्यचकित हो गया। उसने प्रसन्न होकर श्रीराम की वंदना की, तत्पश्चात् वह प्रेमपूर्वक बोला– "श्रीराम, तुम कृपालु हो। अपने बाण के द्वारा तुमने मरु दैत्य का वध कर मरु प्रदेश को पवित्र कर दिया। तुम्हारे बल के समक्ष मैं तुच्छ हूँ। तुमने मेरा दु:ख और संकट दूर किया।" श्रीराम ने सन्तुष्ट होकर अत्यन्त प्रेमपूर्वक सागर की पूजा की, तत्पश्चात् आनन्दित होकर उसका सम्मान किया।

श्रीराम बोले- "तुम मेरे लिए पिता दशरथ के सदृश परम पूज्य पूर्वज हो। सेतु बाँधने के लिए तुमने मेरा मार्गदर्शन किया। तुम दशरथ के प्रिय थे परन्तु तुम मुझे उससे भी अधिक प्रिय हो तुम्हारे उपकार के कारण ही तत्वत: मुझे महानता प्राप्त हुई।" श्रीराम के वचन सुनकर सागर ने श्रीराम को साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया। चरण-वंदना की, तत्पश्चात् वह अपने घर वापस लौट गया। अब प्रतापी श्रीराम के कारण पाषाण समुद्र में तैरेंगे और सेतु निर्माण पूर्ण होगा।

अध्याय ४०

[सेतु निर्माण कार्य सम्पन्न होना]

श्रीराम को नल द्वारा सेतु बाँधने का कार्य कराने का सुझाव देकर सागर ने श्रीराम की

चरण-वंदना की और जाने की आज्ञा लेकर वापस लौट गया। समुद्र की सलाह से सन्तुष्ट होकर श्रीराम ने नल को बुलवाया और प्रेम पूर्ण शब्दों में अपना मनोगत बताया।

सेतु बाँधने के सम्बन्ध में श्रीराम का निवेदन– श्रीराम ने नल से प्रेमपूर्वक कहा "हे नल, तुम मेरे प्राण प्रिय सखा हो, तुम सेतु निर्माण का कार्य करो।" तत्पश्चात् स्वयं श्रीराम ने सुग्रीव से बताया कि 'सभी प्रधान योद्धे एवं मुख्य रूप से हनुमान को लेकर समुद्र के कथनानुसार सेना की सहायता से सेतु निर्माण का कार्य प्रारम्भ करें। सेतु निर्माण के लिए आवश्यक सामग्री वानर शीघ्र लाकर नल को प्रदान करें, जिससे सागर में सेतु-निर्माण किया जाए।' श्रीराम द्वारा आनन्दित होकर ऐसा कहने पर सुग्रीव को प्रसन्नता हुई। वह योद्धाओं को लेकर उठा। श्रीराम के वचन सुनकर वानर प्रसन्न हुए और शत सहस्र वानरों ने पर्वत लाने के लिए उड़ान भरी। वानर-गणों को सेतु-निर्माण के लिए सिद्ध होकर प्रस्थान किया हुआ देखकर सुग्रीव ने विचार किया कि अब तनिक भी विलंब नहीं करना चाहिए क्योंकि सेतु बाँधने के लिए विलम्ब होने से रावण को उसकी सूचना मिलते ही वह सेतु घात करने के लिए अतक्र्य प्रयत्न करेगा. राक्षस नभचर हैं और हम पृथ्वी पर विचरण करने वाले हैं। बीच में यह भरा हुआ सागर है। वानर यहाँ युद्ध के लिए एकत्रित हैं अत: सेतु का निर्माण शीघ्र होना चाहिए। मन में यह सोचकर सुग्रीव शीघ्र उठ खड़े हुए क्योंकि नेता के नेतृत्व के बिना मात्र वानरों से सेतु शीघ्र नहीं बाँधा जा सकता था। श्रीराम का भी यही मनोगत था कि शीघ्र सेतु-निर्माण कर रावण का वध कर, आनन्दपूर्वक सीता को वापस लाया जाए। सुग्रीव करोड़ों वानरों सहित सेतु-निर्माण के कार्य के लिए तैयार हुए। सुग्रीव के उठते ही वानरगण शीघ्र उठ खड़े हुए।

सेतु-निर्माण की व्यवस्था और अड़चनें– नल, नील, जाम्बवंत, गज, गवय, गवाक्ष, शरभ, गंधमादन इत्यादि सभी वानर सेतु निर्माण के लिए निकले। युवराज अंगद के उठते ही असंख्य वानर उठ खड़े हुए तर, तरल, मैंद द्विविद ऐसे करोड़ों वानर कार्य करने के लिए आगे आये। जहाँ सेतु बनाना था, उस स्थान पर नल जाकर बैठा। जाम्बवंत को वृद्धावस्था को ध्यान में रखते हुए सुग्रीव ने उसे नल के समीप सम-विषम की सूचना देने के लिए बैठाया। सेतु निर्माण के लिए असंख्य वानरों से गगन आच्छादित हो गया। वानर ताल ठोंककर श्रीराम नाम की गर्जना करते हुए वेगपूर्वक निकले। किल-किल वानर जाति का शब्द है इसका तात्पर्य है वास्तविक निश्चय की स्थिति। श्रीराम नाम स्मरण करने वाले भक्तों के इस शब्द का यही अर्थ है। यह शब्द राम-नाम के प्रभाव से अत्यन्त शुद्ध है इसका तात्पर्य है कि वानर सेतु-बंधन के कार्य में आनन्दपूर्वक सहभागी हुए। पाँच करोड़ वानरों की पंक्तियाँ दक्षिण की ओर से नल के हाथों में पर्वत दे रही थीं। उसी प्रकार बायीं ओर से भी पाँच करोड़ वानरों की पंक्तियाँ शीघ्र गति से पर्वत एवं वृक्ष इत्यादि दे रही थीं। नल ने शुद्ध शिलाएँ बिछाईं। साठ अति कुशल वानर नल के समीप खड़े होकर उसे सामग्री प्रदान कर रहे थे। नल की बहुत प्रसिद्धि थी। वह दोनों हाथों से सेतु बना रहा था परन्तु वहाँ एक विपरीत घटित हुआ। पर्वत समुद्र में डूबने लगे, वह भी स्तब्ध था। सेतु बन नहीं पा रहा था। सुग्रीव, आश्चर्यचकित होकर बोले 'समुद्र ने ही कहा था कि नल के हाथों समुद्र में पर्वत तैरते हैं परन्तु अब उसके हाथों वे डूब रहे हैं' यह विचार कर वह कपिराज खिन्न हो गया। उसने यह वृत्तान्त श्रीराम से बताया। उसका कथन सुनकर श्रीराम हँसते हुए बोले "सेतु बनाने का रहस्य हनुमान जानते हैं उनसे पूछो। जो कहें, वैसा करो।"

हनुमान का कथन; उपाय ज्ञात होना– हनुमान बोले "जिस प्रकार सूर्य–प्रकाश के समक्ष जुगनुओं का प्रकाश खो जाता है, उसी प्रकार श्रीराम के समक्ष नल के वर का प्रभाव क्षीण हो रहा था। श्रीराम के शौर्य के समक्ष समुद्र तुच्छ था तथा नल तो एक छोटे कीटक सदृश था। उसे प्राप्त वर के कारण वह अभिमान से ग्रस्त था परन्तु पर्वत डूबने लगे और सेतु नहीं बन पा रहा था। जिसमें अभिमान होता है, उसकी सारी शक्तियाँ निष्प्रभ हो जाती हैं। अत: सेतु बनाने के लिए अत्यन्त शुद्ध युक्ति मैं तुम्हें बताता हूँ जिनको श्रीराम के चरणों का स्पर्श होगा, वही वृक्ष और पाषाण समुद्र में तैर सकेंगे। सुग्रीव यह निश्चित है कि श्रीराम के कारण ही सेतु बंधन सिद्ध हो सकेगा। हनुमान ने यह रहस्य बताया। उनके वचन सुनकर वानर इससे अवगत हुए और उन्होंने सेतु बनाने से पहले हनुमान की चरण वंदना की। तत्पश्चात् हनुमान बोले– "जिस श्रीराम के चरणों का स्पर्श होते ही शिला बनी हुई अहिल्या का उद्धार हो गया, उसी श्रीराम के चरण स्पर्श से पर्वत शिलाएँ समुद्र में तैरने लगेंगी। श्रीराम के चरणों की महिमा सुनकर सभी प्रसन्न हो गए हनुमान उत्साहपूर्वक यह रहस्य बताकर श्रीराम के चरणों पर नत-मस्तक हो गए।

हनुमान ने स्वयं श्रीराम के चरणों से स्पर्श हुई शिलाएँ समुद्र में डालीं, वानरों ने उन्हें डुबाकर देखा परन्तु वे न डूबते हुए तैरने लगीं। एक-एक पर्वत शिला पर लाखों लाखों वानरों के बैठने पर भी वे डूबी नहीं। वास्तव में स्वयं डूबकर दूसरों को भी डुबाने का पाषाण-धर्म होता है। परन्तु वे पाषाण स्वयं तैरकर दूसरों को तारने के लिए तत्पर थे। इसका कारण, पाषाण का गुण–धर्म समुद्र का लक्षण अथवा ऋषि का वरदान न होकर वह श्रीराम के चरणों की महिमा थी, श्रीराम के चरणों का स्पर्श हुए पाषाण, पुष्पों के सदृश हल्के होकर उठाये जा रहे थे तथा अन्य जडत्व के कारण समुद्र में डूब रहे थे श्रीराम के चरणों की महिमा से सेतु–बन्धन हो सकेगा, यह मारुति का कथन वानरों को मान्य हुआ। हनुमान के वचन सुनकर सुग्रीव ने हनुमान को आलिंगनबद्ध किया। अंगद ने दंडवत् प्रणाम किया। वानरों ने हनुमान की चरण वंदना की। हनुमान के कारण ही विघ्न निवारण हुआ तथा सेतु-निर्माण का कार्य सम्भव हो सका। सभी कहने लगे कि वह भव सागर को तारने वाला है। सुग्रीव सन्तुष्ट होकर बोले– "श्रीराम के चरणों की महिमा अगाध है तथा उसी प्रकार हनुमान को भी सभी रहस्यों का ज्ञान है इस प्रकार श्रीराम एवं हनुमान की स्तुति कर वानर भुभु:कार कर श्रीराम की जय-जयकार करते हुए वेगपूर्वक सेतु–निर्माण कार्य के लिए चल पड़े।

सेतु निर्माण-कार्य को गति प्राप्त होना– सुग्रीव ने कहा "पूर्व, पश्चिम और दक्षिण दिशा से लाये गए पाषाण डूब जाते हैं अत: वे न लायें। उत्तर की ओर के जो पर्वत हैं, वही सेतु बनाने के लिए लाये जायें।" सुग्रीव के इस कथनानुसार सभी वानरों ने उस ओर प्रस्थान किया। सुग्रीव आगे बोले– "उत्तर की ओर पर्वत, वृक्ष, शिला सभी श्रीराम के चरणों से पवित्र हो गए हैं अत: उसी दिशा से लाये जायें।" आकाश में उड़ने वाले टिड्डीदल के सदृश सभी वानरों ने प्रस्थान किया। सेतु–निर्माण कार्य के लिए वह वानर सेना वेग एवं उत्साहपूर्वक निकली। आकाश के नक्षत्रों से भी अधिक, असंख्य वानर कार्य की शीघ्रता को समझते हुए एक दूसरे से आगे निकलने का प्रयत्न करते हुए जा रहे थे और पर्वत ला रहे थे। ये सभी वानर बलवान् और समर्थ थे। वे पर्वत को जड़ सहित उखाड़ कर ला रहे थे। उन

पर्वतों पर खजूर के वृक्ष तथा अर्जुन वृक्ष तो थे ही उसके अतिरिक्त शाल, ताल, तमाल, तिलक इत्यादि के बड़े वृक्ष भी थे। वानर असंख्य शिखरों से युक्त पर्वत ले आये, जिनमें नाना प्रकार के फल फूलों से समृद्ध पर्वत भी थे। उनके मुख से 'श्रीराम जय राम' का स्वर गूँज रहा था। उन पर्वतों की पंक्तियाँ समुद्र में लगाकर विश्वकर्मा पुत्र नल शतयोजन लम्बा और शतयोजन चौड़ा पुल बना रहा था। डोरी पकड़कर (साहुल की सहायता से) नल करोड़ों पर्वतों को जोड़ रहा था। उसे बीच में खाली समय भी प्राप्त नहीं हो रहा था क्योंकि पर्वत लेने के लिए नल के पास साठ अत्यन्त कुशल वानर थे। इसके अतिरिक्त दस कोटि अन्य वानर पर्वत लाने के लिए थे, जो निरन्तर पर्वत लाने के लिए दौड़ रहे थे. पर्वत पर पर्वत गिरते समय बीच में ही कोई पर्वत समुद्र में खो न जाय, इसलिए वानर अपने नखाग्रों से पर्वत पर नाम लिख रहे थे। श्रीराम को पर्वतों की संख्या बताने के लिए वे यह अपूर्व और अभिनव कार्य कर रहे थे। पराक्रमी श्रीराम द्वारा समुद्र के जल में सेतु निर्माण करने के कारण स्वर्गलोक मृत्युलोक और सात पातालों में उनकी जय जयकार हुई।

सेतु-निर्माण का विवरण; वानरों द्वारा किया गया श्रम–पहले दिन सभी पर्वतों के समुद्र में डूबने के कारण सेतु निर्माण कार्य बाधित हुआ और बहुत कम कार्य हो पाया। पहले दिन चौदह योजन पुल बन सका, ऐसा श्रीराम को बताते हुए सुग्रीव बोले– "हनुमान अत्यन्त ज्ञानी हैं, उन्होंने ही पुल-निर्माण कार्य को गति दी। अब आप हमारा पुरुषार्थ देखें। हम अत्यन्त शीघ्र गति से पुल बाँधेंगे-ऐसा कहते हुए सुग्रीव ने अपनी भुजाएँ ठोकते हुए उड़ान भरी। पाँच योजन पर्वत उखाड़कर सुग्रीव ने समुद्र में डाले। आधे योजन बड़े विंध्याद्रि के दीर्घ शिखर को सुषेण ने उखाड़कर समुद्र में डाला। नील ने मलय पर्वत के विशाल शिखर को बल-पूर्वक उखाड़ा। उस पर विद्यमान शत सहस्र वृक्षों सहित नील ने उसे समुद्र में डाला। चंदन एवं सुगन्धित फूलों से युक्त वृक्ष वाले पर्वत को मैंद और द्विविद नामक दो वानर वीरों ने समुद्र में डाला। गज, गवाक्ष, गवय, गंध-मादन, शरभ इन पाँच वानरों ने पाँच पर्वत समुद्र में डाले। इसके अतिरिक्त अन्य वानर वीरों ने बड़े बड़े पर्वत लाकर समुद्र में डाले, जिससे सेतु निर्माण शीघ्र किया जा सके। सभी वानर दूसरे दिन भी सेतु निर्माण-कार्य में लगे रहे।। छब्बीस योजन कार्य पूर्ण होने पर उन्होंने श्रीराम को इससे अवगत कराया। तत्पश्चात् सूर्यास्त होने पर सभी वानरगण वापस लौटे। श्रीराम के पास आकर उन्होंने अपना पुरुषार्थ बताया। हमने बड़े-बड़े पर्वत लाकर उन पर नाम लिखा है, स्वामी स्वयं आकर प्रत्यक्ष सेतु को देखकर हमारे पुरुषार्थ को देखें। सुग्रीव ने इस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा– "श्रीराम सर्वज्ञ हैं, वे सभी कुछ जानते हैं, अतः व्यर्थ ही अपना पुरुषार्थ क्यों बतायें।" तत्पश्चात् श्रीराम बोले– "वानर अत्यन्त वेगपूर्वक जाकर पर्वत लाने के कारण थक गए हैं। अतः उन्हें निद्रा आ रही है उनकी आँखें खुल नहीं रही हैं। वे शिला पर ही सो गए हैं। चालीस योजन सेतु वानरों ने कष्टपूर्वक पूरा किया है। अभी साठ योजन शेष है। अभी किनारे तक पहुँचे नहीं हैं।" श्रीराम के मन के ये विचार हनुमान जानते थे। वे चुपचाप बैठे हुए सूर्योदय होने की राह देख रहे थे तथा मन ही मन कह रहे थे– सेतु-निर्माण करना कोई बड़ी बात नहीं है। उसे मैं आधे घन्टे में ही पूरा करूँगा। परन्तु सूर्योदय होने तक तो रुकना ही पड़ेगा।"

अकेले हनुमान द्वारा किया गया कौशल– अरुणोदय होते ही हनुमान उठे, प्रातः-कर्म से

निवृत्त होकर सेतु निर्माण के लिए उन्होंने उड़ान भरी। श्रीराम से पूछे बिना तथा वानरों एवं सुग्रीव को बताये बिना हनुमान वेगपूर्वक निकले। किसी के द्वारा यह कहते ही कि हनुमान आगे निकल गए, सभी वानर अपने प्रातः कर्म से निवृत्त होकर दसों दिशाओं में दौड़ पड़े। महावीर हनुमान ने एक-एक योजन के सात पर्वतों को उखाड़कर दो हाथों में दो पर्वत तथा काँखों में दो पर्वत धारण किये एक मस्तक पर, एक पूँछ में तथा एक पर्वत हनु के नीचे धारण कर सातों पर्वतों को लेकर गाते नाचते, नामस्मरण करते हुए महाबली हनुमान सेतु के समीप आये। सात पर्वतों को लेकर आते हुए महाबली हनुमान को देखकर श्रीराम आश्चर्यचकित रह गए। मारुति का बल अद्भुत था। प्रभात समय में नल ने अत्यन्त आवेशपूर्वक एक योजन सेतु पूर्ण किया। हनुमान द्वारा लाये गए सात पर्वतों से यह कार्य सहज ही सध गया। बड़े-बड़े पर्वतों को डालने से प्रचण्ड ध्वनि हुई। उस ध्वनि से आकाश और वैकुण्ठ गूँज गए। कैलास पर्वत भी गुंजायमान हो उठा। उस समय वहाँ ध्यानस्थ शंकर भगवान् अपना ध्यान छोड़कर उस ओर देखने लगे। समुद्र में पाषाण तैर रहे थे और रामचन्द्र का सेतु पूर्ण बना हुआ उन्हें दिखाई दिया। सदाशिव आनन्दित होकर डोलने लगे, उन्होंने यह जान लिया कि श्रीरघुनाथ परब्रह्म हैं। सात पर्वतों से सेतु बन्धन पूर्ण करने के कारण रावण का अन्त निकट है, ऐसा भगवान् शिव ने शिवानी से कहा। जब पर्वतों को समुद्र में डाला गया, इसके कारण जो जल उछला, वह आकाश तक पहुँचा। उस जल से ध्रुवमंडल भीग गया तथा जल सत्यलोक में भी जा पहुँचा। बालक मारुति अत्यन्त बलवान् है, उसने स्वर्ग को सचैल स्नान करवाया मानों देवताओं को प्रायश्चित् करवाया। इस कल्पना से सुरवर हँसने लगे। रावण के बन्दीगृह से देवताओं को मुक्त कराने के पश्चात् प्रायश्चित् तो अवश्यम्भावी था। इसीलिए हनुमान ने स्नान करवाया। सात पर्वत समुद्र में डालकर उनचास योजन सेतु हनुमान ने पूरा किया। इससे ब्रह्मदेव आश्चर्यचकित हो उठे। सुरवर, ऋषिवर, नर वानर, श्रीराम, सौमित्र इन सभी को अत्यन्त आश्चर्य हुआ, पुरुषार्थी मारुति के पराक्रम के लिए देव दुंदभी बजने लगी। देवताओं ने पुष्पवृष्टि की। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। स्वर्गांगनाएँ तंत्रीवीणा के स्वर से युक्त नृत्य करने लगीं। वानर भी हर्षित होकर नृत्य करने लगे।

सेतु-निर्माण कार्य संपन्न– श्रीराम की कृपा से सेतु-निर्माण पूर्ण हुआ। सुग्रीव तीसरे दिन का वृत्तान्त श्रीराम से कहने लगे- "आपके प्रिय भक्त हनुमान के कारण सेतु-निर्माण पूर्ण हुआ। हमारा सम्मान बढ़ाने के लिए उसने मात्र दस योजन अपूर्णता रखी है अन्यथा क्षणार्द्ध में उसने उसे भी पूर्ण कर डाला होता तत्पश्चात् वानरों ने पर्वत लाकर नल से बचा हुआ सेतु पूर्ण करने को कहा। नल ने आनन्दपूर्वक सेतु बनाया। सभी वानर आनन्दित हुए। उनचास योजन सेतु हनुमान ने बनाया और आगे दस योजन नल ने बना लिया तब वानर नल से बोले– "जिस प्रकार हनुमान ने सेतु बनाया है, उसी प्रकार तुम भी बनाओ। डोरी पकड़ कर देखते हुए वानर बोले "हनुमान का निर्माण सम है परन्तु तुम्हारे द्वारा बनाये गए पुल में विषमता है, उसे सम कर लो।" नल द्वारा पुल समान करने के पश्चात् सभी वानर गर्जना कर कहने लगे कि 'सेतु निर्माण पूर्ण हो गया। स्वर्ग में सुरवर भी जय-जयकार करने लगे। समुद्र में सेतु-निर्माण कठिन होते हुए भी वानरों ने उसे बनाया।' ऋषीश्वर एवं देव ऋषि यह कहते हुए बोले– 'करोड़ों वानर वीरों ने पर्वत लाकर तथा वानर श्रेष्ठों ने उनको समुचित रूप से व्यवस्थित कर सेतु को दूसरे छोर तक पहुँचा दिया।'

सेतु बंधन पूर्ण होने से वानर सेना के रणवाद्य बजाये गए। उसे सुनते ही समस्त वानर वीरों ने हाथ में उठाये पाषाण और पत्थर नीचे फेंक दिये। सेतु के पास जाने वाले यात्रियों को आज भी वे दिखाई देते हैं।

दस योजन चौड़ा एवं शत योजन लम्बा सेतु श्रीराम की कृपा से नल द्वारा पूर्ण किया गया। सेतु के मूल मलय गिरि से लंका तक का सेतु नल ने अच्छी तरह से बनाया। सेतु दूसरे तट तक पहुँच गया। तब करोड़ों वानर आनन्दित होकर राम नाम स्मरण करने लगे। उनके नाम-स्मरण की ध्वनि गगन में भी नहीं समा पा रही थी। वानर हर्षित होकर परस्पर एक-दूसरे पर कूदते हुए नाच रहे थे। श्रीराम के समीप आकर उन्हें प्रणाम कर रहे थे। वे विविध प्रकार की वानर चेष्टाएँ कर रहे थे तथा कह रहे थे कि श्रीराम सेतु-निर्माण पूर्ण होने से प्रसन्न हो गए हैं। ऐसा कहते हुए वे प्रसन्नतापूर्वक श्रीराम के समीप एकत्र हो रहे थे। सेतु-निर्माण पूर्ण होने पर सुरवर कहने लगे कि 'श्रीराम की अगाध कीर्ति तीनों लोकों में फैल गई है' सेतु पूर्ण होते ही नल ने शीघ्र आकर श्रीराम को प्रणाम किया। श्रीराम ने उसे प्रेमपूर्वक आलिंगनबद्ध किया तथा उसकी पीठ थपथपाई। यह देखकर वानर आनन्दपूर्वक ताली बजाने लगे अंगद ने हर्ष-नाद किया।

अंगद बोला- "सेतु-निर्माण पूर्ण हुआ। अब रावण, इन्द्रजित्, कुंभकर्ण एवं राक्षसों का संहार होगा। नरांतक सुरांतक, अतिकाय इत्यादि कुमारों का मैं रणभूमि में वध करूँगा। दशमुख रावण का भी सामना करूँगा। महोदर, प्रहस्त महापार्श्व, शुक, सारण आदि का रावण के समक्ष वध कर डालूँगा। हे श्रीराम, आप मुझे बालक न समझें। मैं लंकाधीश का वध कर आपकी सीता वापस ले आऊँगा। मैं बालि का पुत्र हूँ। मैं रावण का वध कर सीता का उद्धार करूँगा। अब तक समुद्र बीच में था तब तक वानर वीर रुके हुए थे। अब लंकापुरी जीतने के लिए वे सत्वर तैयार हो जाएँगे। सभी वानर रावण के दस कंठों का छेदन करने के लिए आपकी राह देख रहे हैं। वे वानर अच्छे योद्धा हैं। तत्पश्चात् वानरों ने राम-नाम का जय जयकार और भुभुःकार किया। देवताओं ने पुष्प-वृष्टि की सेतु-निर्माण पूर्ण होने के कारण श्रीराम का लंका में जाना सहज सुलभ हो गया।।

अध्याय ४१

[श्रीराम का सेना सहित सागर पार करना]

नल द्वारा सेतु निर्माण करने के कारण उसे नल सेतु कहा जाता है परन्तु वह श्रीराम के पुरुषार्थ के कारण ही तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। सेतु-निर्माण पूर्ण होने से सन्तुष्ट होकर सुग्रीव, श्रीराम की चरण-वंदना कर आनन्दपूर्वक बोले - "समुद्र में मार्ग निर्माण हो जाने के कारण हमारे कष्ट बच गए हैं। अब हम रावण का वध कर लंका समाप्त कर देंगे। मैं प्रधानों, सेनापतियों को परिवार सहित मारकर, भयंकर राक्षस-वीरों का युद्ध में संहार करूँगा, तभी तुम्हारा सेवक कहलाऊँगा। सेतु के पूर्ण होते ही अब लंका आहत होगी। लंकानाथ का रण-भूमि में वध होने में अब किसी प्रकार का संदेह नहीं है। सुग्रीव

के ये वचन सुनकर एवं पूर्ण निर्मित सेतु को देखकर श्रीराम उल्लसित हुए। उन्होंने शीघ्र सीता को मुक्त करने के लिए लक्ष्मण सहित लंका जाने का निश्चय किया।

जाम्बवंत के मन का भय, श्रीराम से विनती– श्रीराम जब लक्ष्मण सहित लंका जाने लगे, जाम्बवंत ने आवाज देते हुए कहा– "श्रीरघुनंदन के पैदल चलते समय कुछ विपरीत घटित होगा। श्रीराम के चरणों के स्पर्श से शिलाएँ तैरने लगी थीं। अतः राम एवं लक्ष्मण दोनों के जाने से सेतु का उद्धार हो जाएगा और राम लक्ष्मण दोनों लंका पहुँच जाएँगे परन्तु हम सब पछताते हुए इस पार ही रह जाएँगे। श्रीराम अकेले जाकर ही सम्पूर्ण कार्य समाप्त कर लेंगे और हमारी उन्हें युद्ध में कुछ भी सहायता नहीं हो पाएगी। इस प्रकार का अनर्थ घटित होने की आशंका है।" जाम्बवंत की यह शंका सुनकर सबको यह शंका सत्य लगी। सुग्रीव श्रीराम को रोकने के लिए दौड़ते हुए गया। उसने श्रीराम को दंडवत् प्रणाम किया और तब उनके पैरों को कसकर पकड़कर उसके अनुसार जो उचित था, वह बताने लगा। "सभी वानर आपकी शरण में हैं अतः हमें यहाँ छोड़कर अकेले लंका में जाना उचित नहीं है। हे श्रीराम, आपके चरणों के स्पर्श से सेतु का उद्धार हो जाएगा और हम वानर यहीं रह जाएँगे हमारा जाना सम्भव नहीं हो सकेगा। हमने कष्टपूर्वक पर्वत लाकर आनंदपूर्वक सेतु निर्माण किया। हे रघुनाथ, अब आपके अकेले जाने से हमारा जीवन व्यर्थ हो जाएगा आप अकेले कार्य करने में समर्थ हैं हम इसे मानते हैं परन्तु हमारा जन्म व्यर्थ हो जाएगा, हमारा पुरुषार्थ व्यर्थ हो जाएगा। रावण का वध कर श्रीराम सीता को छुडाएँगे तब हम कपिकुल के लिए धिक्कार के योग्य सिद्ध होंगे। अतः सभी वानरों को लेकर ही आप लंका को प्रस्थान करें " इतना कहकर सुग्रीव श्रीराम के चरणों पर मस्तक रखकर शांत हो गया। श्रीराम प्रसन्न हुए। हनुमान आकर श्रीराम के वाहक बने।

मारुति एवं नील के कंधों पर बैठकर श्रीराम एवं लक्ष्मण का प्रस्थान– श्रीराम ने सुग्रीव का कहना मान्य किया श्रीराम हनुमान के कंधे पर बैठे और सौमित्र को नील ने उत्साहपूर्वक अपने कंधे पर बैठाया। जिस प्रकार सज्जन त्रिगुणों के पार जाकर आसीन होते हैं, उसी प्रकार श्रीराम हनुमान के कंधे पर आसीन हुए। जिस प्रकार आत्म-बोध के माथे पर निरपेक्ष रूप से साधु आसीन होते हैं, उसी प्रकार नील के कंधे पर सौमित्र बैठे। उस समय हर्षपूर्वक वानर वीरों ने राम-नाम का जय जयकार किया। देवताओं ने पुष्प वृष्टि की। कुछ वानर आनन्दपूर्वक नाचने लगे। इस प्रकार रघुनाथ ने लंका जाने के लिए प्रस्थान किया। असंख्य वानर उनके साथ चल पड़े। सेतु वानर समुदाय से आच्छादित हो गया। वे राम-नाम की जय-जयकार करते हुए चले जा रहे थे। कुछ नाच रहे थे तो कुछ राम-नाम का स्मरण करते हुए डोल रहे थे। श्रीराम के दोनों ओर सुग्रीव एवं विभीषण चल रहे थे। नल, नील एवं अंगद सबसे आगे थे। पीछे तरस एवं तरल नामक वीर चल रहे थे। श्रीराम के निकट बुद्धिवान् जाम्बवंत चल रहे थे समर्थ वीर वैद्यराज सुषेण, जो सुग्रीव के आप्त थे, वे भी सबके साथ चल पड़े

श्रीराम का वानरों सहित लंका में प्रवेश– वानर सेना ने सफेद पीले एवं लाल पुष्पों से आच्छादित वृक्ष पकड़े हुए थे। कदली के पत्ते डोल रहे थे, जिसके कारण वह सेना अत्यन्त शोभायमान दिखाई दे रही थी। वानरों ने नारियल एवं ताल के वृक्ष महाध्वज के रूप में धारण किये हुए थे। राम नाम की गर्जना के साथ जाते हुए वे वीर विविध प्रकार की चेष्टाएँ कर रहे थे, कोई समुद्र में छलाँग लगा

रहा था तो कोई जल में डुबकी लगा रहा था। कोई पूँछ को ध्वज के रूप में ऊपर कर दौड़ रहे थे। कोई श्रीराम के साथ जाते हुए समुद्र के जल में तैरते हुए विविध प्रकार की क्रीडाएँ कर रहे थे। कुछ सेतु के किनारे से चल रहे थे तो कोई जल में नाच रहे थे। कुछ वानर सेतु का स्पर्श किये बिना आकाश मार्ग से जा रहे थे कुछ श्रीराम के समीप थे। पुल पर वानर वीरों की इतनी भीड़ हो गई थी कि कुछ को मार्ग ही नहीं मिल पा रहा था, कुछ धक्के से समुद्र में गिर रहे थे और तुरन्त उड़ान भर रहे थे, सेतु के किनारे से वानरों की पंक्तियाँ चल रही थीं। कुछ वानर पुल के उस पार लंका तट पर पहुँच गए थे ऐसे वानर वीरों को समुद्र पार कर पहुँचे हुए, श्रीराम ने देखा, शत योजन समुद्र में बीच में कहीं भी रुके बिना वे लंका में मुहूर्त पर पहुँच गए थे। हनुमान श्रीराम को पीठ पर बैठाकर शीघ्र गति से ले आये। उनके साथ-साथ जाते हुए वानरगणों का ध्यान श्रीराम पर केन्द्रित होने के कारण उन्हें श्रम का अनुभव नहीं हुआ। उनको श्रम निवृत्ति होकर उन्हें सुगम गति प्राप्त हुई। परमपद प्राप्त होकर वे आत्मानंद में मग्न थे। उस पार पहुँचते ही उन्हें रत्नकलश से सुशोभित लंका-भुवन दिखाई दिया। वह पूर्ण तेज से चमक रहा था। उसके समक्ष अलकावती, भोगावती व अमरावती तुच्छ थीं। उसका तेज कैलास के सदृश दिखाई दे रहा था। उसके तेज से दसों दिशाएँ चमक रही थीं। ऐसी लंका को देखते ही वानर वीर उड़ान भरकर त्रिकूट पर जाने के लिए उत्सुक हुए।

श्रीराम द्वारा विभीषण को अपने समीप रखना– वानर वीरों की त्रिकूट पर जाने की उत्सुकता को देखकर विभीषण ने उन्हें एक ओर हटाया और स्वयं गदा लेकर सबसे आगे चल पड़े। राक्षस कपटी एवं गुप्त रूप से आघात करने वाले होने के कारण उनके द्वारा वानरों पर आघात करने पर उनका निर्दलन करने की युक्ति विभीषण जानते थे। इसीलिए विभीषण एवं प्रधान, वानरों के आगे चल पड़े गदाधारी विभीषण के समक्ष राक्षस तृण प्राय थे। उनके सामने कोई टिक नहीं सकता था। मात्र उनके भय से, उनके प्राण चले जाते थे। विभीषण को आगे जाते हुए देखकर श्रीराम ने हनुमान से कहा– "विभीषण को आगे नहीं जाने देना चाहिए। इसके पीछे का तात्त्विक कारण सुनो। राक्षसों द्वारा कपटपूर्वक उसका घात करने पर हमारा जीवन एवं पुरुषार्थ व्यर्थ सिद्ध होगा। और उससे भी अनर्थ यह होगा कि शरणागत का घात होने से हम स्वयं भी प्राण त्याग करेंगे तब सीता को कौन मुक्त कराएगा ? इस प्रकार अनर्थ घटित होगा।" अतः अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक विभीषण को रोककर श्रीराम ने उन्हें अपने हाथों से पकड़कर अपने पास बिठा लिया। कृपामूर्ति श्रीराम ऐसे कृपालु थे।

तत्पश्चात् राक्षसों के छलकपट का निवारण करने में समर्थ चारों प्रधानों को आगे भेजा गया, वे अत्यन्त सतर्क समझदार एवं युद्ध-कुशल वीर योद्धा थे। समुद्र के उस पार जहाँ फल, मूल, जल की अपार राशि थी, वहाँ वानर-गणों की पंक्तियाँ आनन्द में मग्न बैठी हुई थीं। समुद्र तट पर सुग्रीव की वानर-सेना सहित बैठे हुए उस जग जेठी राम को देखकर देवताओं ने पुष्प-वृष्टि की। वे बोले– "आप शत्रु पर विजय प्राप्त करने में समर्थ हैं, समुद्र लहरों से युक्त पृथ्वी के प्रतिपालक हैं। दस सहस्र वर्षों में शत्रु विरहित राज्य प्राप्त कर देवताओं को बन्दिवास से मुक्त कर हे श्रीराम, आप अपना पुरुषार्थ प्रदर्शित करें। देवताओं को बन्धन से मुक्त करने पर हम आपके कृतज्ञ होंगे, जन्म जन्मान्तर तक आपका स्मरण करेंगे।" यह कहते हुए उन्होंने श्रीराम का जय-जयकार किया

सिंधु का श्रीराम से भेंट हेतु आना– सेतु निर्माण पूर्ण होकर श्रीराम सेना सहित समुद्र को पार कर गये। वानर समूह भी पार हो गया, यह पता चलते ही सिंधु को पश्चाताप हुआ। वह सोचने लगा– "मैं पहले जब श्रीराम से मिला तो उन्हें सेतु निर्माण का उपाय बताया परन्तु श्रीराम की पूजा नहीं की। मैंने ऐसा मूर्खता-पूर्ण व्यवहार किया। जो स्वयं को ज्येष्ठ और श्रीराम को कनिष्ठ समझता है, वह पापी होता है मैंने अभिमानपूर्वक दुष्टता के कारण श्रीराम की वरिष्ठता को स्वीकार नहीं किया, उनकी पूजा नहीं की। श्रीराम को कनिष्ठ मानकर तीनों लोकों में महापापी सिद्ध हुआ। सेतु-निर्माण से मुझे पाप से मुक्ति नहीं मिलेगी। नल के वरदान सम्बन्धी सूचना देने पर भी नहीं मिलेगी। श्रीराम के चरणों के प्रभाव से पर्वत तैरने लगे। सेतु-सामग्री भी श्रीराम की कृपा से एकत्र हुई। ऐसे श्रीराम को मैंने कनिष्ठ समझा, अत: मुझसे बड़ा पापी और दुष्ट दूसरा कोई नहीं होगा। इस प्रकार पश्चाताप करते हुए श्रद्धा से परिपूर्ण होकर समुद्र श्रीराम के पूजन के लिए अलंकार सामग्री लेकर आया। तट पर श्रीराम को वानरराज सुग्रीव सहित समुद्र ने देखा। सामने लंका की ओर दृष्टि रखकर वानरों की पंक्तियाँ बैठी थीं। रावण का शीघ्र वध करने के लिए वे उत्साहित थे। ऐसे रघुनन्दन को देखकर समुद्र ने दंडवत् प्रणाम कर श्रीराम की चरण वंदना की। तत्पश्चात् वह बोला "आप मेरे लिए ज्येष्ठ हैं। ज्येष्ठ और कनिष्ठ का अभिमान धारण करने के कारण मुझसे दोषपूर्ण व्यवहार हुआ है। श्रीराम की महिमा ऐसी है कि वे अपनी ज्येष्ठता का बखान नहीं करते खंभे से प्रकट हुए नरसिंह को प्रह्लाद से छोटा नहीं माना जा सकता। उसी प्रकार हे श्रीराम, आप ज्येष्ठ हैं। पैरों के स्पर्श से पाषाण को तारने वाले आप परिपूर्ण परमात्मा हो हैं। आप कनिष्ठ न होकर ज्येष्ठों में ज्येष्ठ, हैं। आप परब्रह्म, ब्रह्मस्थिति, परमात्मा, परमज्योति, चिदात्मा, चिन्मूर्ति एवं निर्गुण होकर सगुण स्वरूप में विद्यमान हैं। आप सगुण रूप में दिखाई देते हुए भी पूर्णरूपेण निर्गुण हैं। श्रीराम, आप स्वयं पूर्ण परब्रह्म ही हैं।"

श्रीरघुनाथ ने समुद्र पार किया। स्वयं समुद्र भी वहाँ उपस्थित हुआ। लक्ष्मण, सुग्रीव, जाम्बवंत, विभीषण तथा सभी वानरगणों ने उन दोनों की चरण वंदना की। दोनों ही अत्यन्त श्रेष्ठ और समर्थ थे। समुद्र द्वारा स्तुति करने के पश्चात् श्रीराम ने भी समुद्र की चरण वंदना की तथा उससे बोले– "हमारे लिए तुम सभी प्रकार से श्रेष्ठ ही हो।" इस पर समुद्र बोला– "ज्येष्ठ एवं कनिष्ठ के विषय में यथार्थ सत्य मैं पहले कह चुका हूँ। अब मैं कुछ विनती कर रहा हूँ, हे कृपावंत रघुनाथ उसे आप सुनें। हे श्रीराम, मुनिवेश से रणभूमि में युद्ध नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध में मेरे अनुसार मुनिवेश निवृत्ति, शांति एवं परमार्थ की दृष्टि से आवश्यक होती है परन्तु युद्ध-भूमि में मुनिवेश उपयुक्त नहीं है राजा एवं नरवीर युद्ध के लिए वीर वेश धारण करते थे। युद्ध के लिए अगर कोई मुनिवेश-धारी आ जाता था तो उसे जुझारू वीर नहीं माना जाता था। यद्यपि आपने मुनिवेश में ही त्रिशिरा व खर-दूषण का वध किया तथा मुनिवेश का लक्षण अपनी तरह से निरूपित किया परन्तु उसके कारण संन्यासी और बलाढ्य सवार यह कहावत प्रचलित हो जाएगी। युद्ध क्रन्दन के लिए मुनिवेश शास्त्रों एवं श्रुति की दृष्टि से योग्य नहीं है हे श्रीराम, आप निर्भीक एवं समर्थ वीर हैं अत: मेरी इच्छा है कि अलंकार से युक्त श्रीरघुनाथ की श्रद्धापूर्वक पूजा हो। समस्त अलंकार एवं आभूषण से युक्त श्रीराम को रणभूमि में खड़ा देखकर हमारी आँखें धन्य हो जाएँगी।" यह कहकर समुद्र ने पुन: श्रीराम के चरण स्पर्श किये।

समुद्र ने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक श्रीराम से कहा "अब अलंकारयुक्त श्रीरघुनाथ को देखने के लिए मैं अधीर हो रहा हूँ, मेरा यह मनोरथ पूर्ण करें। सुग्रीव, अंगद इत्यादि वानर योद्धे भी अलंकारयुक्त रघुनाथ को देखने के लिए उत्सुक हुए। उनका मन प्रसन्नता एवं आनन्द से परिपूर्ण हो गया।" श्री रघुनन्दन को रत्न-आभूषण एवं वस्त्र पहने हुए देखकर हमारे नेत्र तृप्त हो जाएँगे। वल्कल-वस्त्र परिवर्तित होकर मुनिवेश की विदाई होगी। हे श्रीराम, आपके मुख के दर्शन करने से सर्वत्र सुख की व्याप्ति का अनुभव होता है। श्रीराम के दर्शन से मन की व्याधियाँ समाप्त हो जाती हैं। अहम्, कोऽहम, सोऽहम् इत्यादि सभी उपाधियाँ समाप्त हो जाती हैं। चिन्चैतन्य स्वरूप हो जाता है। बुद्धि सन्तुष्ट होती है प्रपंच ब्रह्मार्पित हो जाता है यह सब श्रेष्ठ श्रीराम के दर्शन से घटित होता है।" ऐसा सुग्रीवादि वानर कहने लगे।

श्रीराम का वस्त्रालंकारयुक्त दर्शन– समुद्र, सुग्रीव और वानर गणों के श्रीराम का जय जयकार कर विनती करने पर सन्तुष्ट होकर श्रीराम ने कृपापूर्ण दृष्टि से उनकी विनती मान्य की और वे मुनिवेश त्यागने के लिए तैयार हुए। उन्होंने वल्कल वस्त्रों का त्याग कर पीताम्बर धारण किया वह अत्यन्त सुन्दर पीताम्बर स्वयं सागर लेकर आये थे। वह पीताम्बर श्रीराम द्वारा धारण करने पर इतना तेजस्वी एवं देदीप्यमान दिखाई दे रहा था मानों विद्युत अस्त होना भूल गई हो। श्रीराम ने स्वयं अपनी जटाएँ पुष्पों से आच्छादित कर लीं। तब उस पर समुद्र ने मुकुट पहनाया। वह मुकुट रत्नों से जड़ा हुआ था एवं अत्यन्त तेजस्वी था। सबके नेत्रों को सुख देने वाले रघुनन्दन उसमें अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे। आत्मतेज से युक्त श्रीराम मस्तक पर धारण किये हुए विलक्षण मणियों के कारण एवं आभूषणों से सुशोभित होने के कारण अत्यन्त तेजस्वी दिखाई दे रहे थे। लौकिक दृष्टि से उनके कुंडल मकराकार दिखाई दे रहे थे तथापि वे मूल रूप में निर्विकार थे। वे श्रवणों से विकारों का निर्दलन करते थे। दोनों भुजाओं में सुशोभित कंगन श्रेष्ठ मोतियों से निर्मित थे। कंठ में चार लड़ियों से युक्त माला थी परन्तु श्रीराम को एक लड़ी से युक्त माला ही भाती थी, जिसका रहस्य समुद्र नहीं जानता था गुणातीत पदक जो श्रीराम ने अपने हृदय पर धारण किया हुआ था। जीव-शिव दोनों उसका ध्यान किया करते थे उनके अलौकिक सेवक थे। श्रीराम ने कमर पर मेखला धारण की हुई थी उसमें छोटी-छोटी घंटियों की माला जुड़ी हुई थी गले में अनर्घ्य* रत्नों की माला मोतियों सहित गुँथी हुई थी। उनके द्वारा धारण किये हुए बाजूबंद कलिकाल को भी भयभीत करते थे। उनके चरण कमलों के तोड़र (पैर में पहनने वाला आभूषण) देखकर शत्रु थर-थर काँपते थे।

श्रीराम का मुखचन्द्र पूर्णरूपेण निष्कलंक था, चन्द्र भी उनकी उपमा के योग्य नहीं था क्योंकि चन्द्र सकलंक और नित्य क्षय होने वाला था। मुकुट कुंडल, मेखला एवं कमर में पीताम्बर वस्त्र धारण किये हुए उस मेघ श्याम श्रीराम को देखकर नेत्र तृप्त हो रहे थे उनके मस्तक पर पीला तिलक लगा था। कंठ में चरणों तक पहुँचने वाली लम्बी रत्न-मालाएँ थीं। ऐसे तेजस्वी घनश्यामल राम को देखकर नेत्र तृप्त हो गए गले में तेजस्वी कौस्तुभ एवं किंकिणी से गुथी हुई माला, कटिसूत्र के स्थान पर मोती की दो लड़ियों की माला गले में न मुरझाने वाली तप्त कमलों की माला तथा तुलसी की माला धारण किये हुए घनश्याम श्रीराम सुशोभित थे। उनके चरणों के तोड़र ध्वनि कर रहे थे। गले में गंभीर पदक

* पवित्र।

तथा बाहु और कलाइयों में मनोहर अलंकार धारण किये हुए श्रीराम को देखकर नेत्रों में सुख की लहरें हिलोरें भर रही थीं। ऐसे श्रीरघुनन्दन अत्यन्त लावण्यमय थे। माहेश्वरी रूप धारण किये हुए, हाथों में धनुषबाण लिये हुए श्रीराम नेत्रों को सुख प्रदान करने वाले थे। कंकणों के ओजस्वी नाद से युक्त, कर में दशावतारी मुद्रिका धारण किये हुए श्रीराम नेत्रों को सुख प्रदान करने वाले थे। उनके निर्विकार नेत्रों से आँखों को शांति प्राप्त हुई। बुद्धि पुष्ट हुई एवं हृदय आनन्दित हुआ। ऐसी श्रीरघुनन्दन की महिमा थी। अहम्, सोऽहम् एवं कोऽहम् रूपी अभिमान का त्याग कर श्रीराम की चरण-वंदना करने पर आनन्द एवं पूर्ण शांति प्राप्त होती है। वीर शृंगार की हुई श्रीराम-मूर्ति देखते ही इन्द्रियाँ परमानंद में मग्न होकर पूर्ण एवं शाश्वत तृप्ति प्रदान करती हैं। श्रीराम का इस स्वरूप में देखकर समुद्र शांत हो गया। उसे एवं वानरों तथा देवताओं को ऐसा लग रहा था कि श्रीराम को एकटक निहारते रहें।

श्रीराम के दर्शन से समुद्र एवं वानरों को आनन्द का अनुभव होना– वस्त्रालंकार विभूषित श्रीराम के दर्शन करने पर जल प्रवाहित होना भूल गया, वायु अपनी गति भूल गया। सूर्य को दैनिक गति का विस्मरण हो गया। समुद्र, सुग्रीव एवं वानर योद्धा मन ही मन प्रसन्न थे, उन्होंने भुभुःकार कर राम-नाम का जय जयकार किया। उस ध्वनि से नभ गूँज उठा। तत्पश्चात् समुद्र श्रीराम का हाथ पकड़कर वरुणालय ले गया। श्रीराम ने वरुण की वृद्ध मूर्ति देखकर प्रणाम किया। वरुण ने यह जानकर कि श्रीराम अवतारी पूर्ण ब्रह्म हैं, श्रीराम को दंडवत् प्रणाम् किया तथा बोले– "अब शीघ्र लंका गमन करो, तुम निश्चित पूर्ण विजय प्राप्त करोगे।" श्रीराम के समान ही सौमित्र ने भी शृंगार किया। दोनों शूर महावीर आकाश के सूर्य चन्द्र सदृश प्रतीत हो रहे थे। समुद्र ने अंजुलि भर रत्न लाकर उन्हें श्रीराम पर से न्योछावर कर आनन्द की प्राप्ति की। सुग्रीव ने भी धन न्योछावर कर उन्हें बाँटने के लिए समुद्र तट की ओर प्रस्थान किया। श्रीराम संगति से लोभ-भावना लुप्त हो गई। कुछ माँगने की मूल प्रवृत्ति शांत हो गई। सबको सन्तुष्टि का आनन्द प्राप्त हुआ। वानरों ने आगे बढ़ने के लिए प्रस्थान किया और पीछे देखे बिना उड़ान भरी। उन्होंने रावण की सभा के निकट जाकर धन एवं रत्नों की वृष्टि की। उन रत्नों की वृष्टि कहाँ से हुई और किसने की, यह देखने के लिए रावण ने अनेक राक्षसों को भेजा। उसे ज्ञात हुआ कि करोड़ों वानरों की सेना लेकर जगजेठी श्रीराम का लंका में आगमन हुआ है। इस वार्ता से रावण मन ही मन चिन्तित हो उठा। उसने पुनः प्रधानों को भेजकर वार्ता की पुष्टि करायी। उस समय लंका में त्राहि-त्राहि मच गई, पीछे भागने के लिए स्थान नहीं था। आगे से वानरों का आक्रमण था। उसके कारण रावण की बुद्धि कुंठित हो गई। उसे ऐसा लगा कि अब उसके स्त्री-पुरुष बन्दी हो जाएँगे।

अध्याय ४२

[रावण का क्रोध, प्रधानों की गर्वोक्ति एवं अतिकाय का हितोपदेश]

श्रीराम को सेना सहित आया हुआ देखकर रावण भयभीत हो गया। उसके प्रधान और सेना उद्विग्न हो उठी। लंका के नागरिक भय से काँप गए। रणवाद्यों के नाद के साथ श्रीराम के वानर सेना सहित आगमन के समाचार से रावण विचलित हो गया। वानर सेना में विविध वाद्यों की ध्वनि गूँज उठी।

उसमें झाझ, घोल, नगाड मुरंगे, निशाण, बिगणी, गिडबिड (वाद्यों के प्रकार) शख, भरी, ढाल इत्यादि का समावेश था। इन वाद्यों की ध्वनि के साथ वानर दल लेकर श्रीरघुवीर लंका में आये, वानरों ने भुभुःकार की ध्वनि की श्रीराम के आगमन से रावण अत्यन्त भयभीत हो उठा वहाँ प्रधानों का भय तो अकथनीय था। राक्षस दुःखी हो उठे। लंका पुरी में घर घर में हाहाकार मच गया। नर नारी दुःख से त्राहि त्राहि कर उठे। वानर सेना इतनी प्रचंड थी कि उनके बीच में भागने का स्थान ही नहीं मिल पा रहा था वानरों ने दुर्ग के बुर्जों पर भी कब्जा कर लिया था। वानर दल देखकर घर-घर में यह चर्चा होने लगी कि "रावण का कर्म ही खोटा है, उसके कारण सबको मृत्यु समीप आ गई रावण के द्वारा किये गए अपराध के कारण असंख्य राक्षस मारे जा रहे हैं उस पाप बुद्धि रावण ने श्रीराम की पत्नी का हरण किया और लंका का घात कर दिया। अब तो कुछ उपाय ही नहीं बचा है। सीता को लौटाकर श्रीराम को शरण जाने का उपाय बिभीषण द्वारा सुझाया गया था परन्तु पापी रावण ने उसे नहीं माना, इसी कारण अब राक्षसों की मृत्यु समीप आ गई है " परस्पर ऐसी चर्चा होने लगी।

रावण का क्रोध, प्रधानों की निन्दा–श्रीराम के लंका आगमन के विषय में ज्ञात होने पर रावण अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने प्रधानों को बुलवाया और उन्हें सम्बोधित करते हुए बोला "श्रीराम के वानर सेना लेकर लंका में आ जाने पर भी तुम लोगों को पता नहीं चला। मद्य और मैथुन के कारण तुम लोग विषयान्ध हो गए हो श्रीराम ने लक्ष्मण एवं वानर समुदाय सहित लंका पर चढ़ाई कर दी फिर भी तुम विषय-रूपी मद में चूर होकर स्त्रियों की गोद में आलस्यपूर्वक निद्रामग्न हो वैरी के द्वार पर आ पहुँचने पर भी तुम्हें उसका ज्ञान न हो सका। तुम्हारे पास गुप्तचर भी नहीं है, शत्रु ने अगर तुम्हारे घर पर भी कब्जा कर लिया तब भी तुम पामरों को उसका ज्ञान नहीं हो पाएगा पंचभूत एवं पंच विषयों ने निश्चित ही तुम्हें अपने वश में कर लिया है। इसी कारण भ्रान्तिवश श्रीराम का लंका में आना तुम्हें ज्ञात न हो सका। इसके पूर्व तुम अपनी बहुत बड़ाई करते हुए कहा करते थे कि वे घास पत्ते खाने वाले वनचर हमारे समक्ष क्या आयेंगे ? अब वही वानर महावीर समुद्र पर सेतु बनाकर लंका में आ गए हैं वे भयंकर वानर वीर भुभुःकार करते हुए राम-नाम का जयजयकार कर रहे हैं। काल सदृश रावण को तृण के समान तुच्छ समझकर, सेतु निर्माण कर भीषण युद्ध के लिए वे वानरगण यहाँ आये हैं। अन्य सभी वीरों की उपेक्षा कर मुझे अपना निश्चित लक्ष्य बनाकर वे समर्थ रणवीर युद्ध के लिए उत्सुक हैं। तुम लोगों ने वानर कहकर जिनकी अवहेलना की वही अब युद्ध के लिए आये हैं। वे वानर वीर अत्यन्त विलक्षण रण-योद्धा हैं वे निश्चित ही तुम्हारे प्राण हर लेंगे।"

रावण आगे बोला– "श्रीराम के लंका में आने एवं वानरों द्वारा सेतु बनाने के विषय में तुम्हें ज्ञान न हो सका क्योंकि तुम अपने गर्व के कारण असावधान रहे। वानर वीरों द्वारा कड़कड़ाहट की ध्वनि करते हुए पूरा सेतु बना लिया गया, उसके सम्बन्ध में भी तुम जैसे गर्वोन्मत्तों को ज्ञान न हो सका तुम मद्य के नशे में चूर स्त्रियों में मग्न तथा गर्व से उन्मत्त थे। अपने सामर्थ्य के अभिमान में तुम पाँचों उन्मत्त हो गए हो न ही तुमने गुप्तचर भेजे और न ही तुम्हें मेरे कार्य का स्मरण रहा। उन्माद में तुम सब कुछ भूल गए। जिसे सर्वदा राजा के हित का ध्यान रहता है, वह मन्त्री कहलाता है। तुमने वह कार्य नहीं किया। केवल विषय में मग्न रहे। प्रधान ही सम्पूर्ण कार्य करते हैं ऐसी अनादि राजनीति है तुम सभी

स्वार्थी तथा विश्वासघाती हो। मैंने तुम पर विश्वास किया और तुमने उसका घात किया। तुम्हारे कारण ही रघुनाथ सम्पूर्ण कुल-क्षय के लिए लंका में आया है। विभीषण वास्तव में धर्म-मूर्ति है, उसने सत्य ही कहा था कि 'तुम्हारे प्रधान विश्वासघाती हैं।' मुझे वैसा ही अनुभव हो रहा है। उस समय विभीषण ने कहा था कि तुम्हारे प्रधान उन्माद से मदोन्मत्त हैं तथा विश्वास के योग्य नहीं हैं इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मुझे मिल गया। मेरा विभीषण यहाँ होता तो न ही उसने सेतु बनाने दिया होता और न ही राम को आने दिया होता। वह मेरे हित की ही बातें कह रहा था। तुम्हारी कल्पनाओं पर विश्वास रखकर मैंने सखा विभीषण को निकाल दिया। अब श्रीराम मुझ पर चढ़ाई करने आया है। मेरे प्रधान ही कपटी हैं।"

इन्द्रजित् का रावण को आश्वासन– श्रीरघुनन्दन के लंका में आगमन से रावण का मुख क्रोध से लाल हो गया ? उसके क्रोधपूर्ण वचन सुनकर सेना, प्रधान सभी लज्जित हो उठे। श्रीराम के रूप में गर्जना करते हुए विघ्न के आगमन से लज्जित प्रधान भय से काँपने लगे। श्रीराम के आगमन से क्रुद्ध रावण कृतान्त सदृश कठोर हो गया। जिससे प्रधान एवं राक्षस त्राहि-त्राहि करने लगे, उन्हें प्राणों का नाश दिखाई देने लगा। वे सभी सिर झुकाकर स्तब्ध होकर बैठ गए। कोई कुछ भी नहीं बोला। तब मेघनाद इन्द्रजित् अपने पिता को सम्बोधित करते हुए बोला– "श्रीरघुनाथ के आगमन के कारण आप व्यर्थ ही क्यों भयभीत हैं ? मैं इन्द्र को बाँध कर ले आया। देवताओं को मैंने बन्दी बनाया। मेरे समक्ष राम लक्ष्मण नगण्य हैं और वानरों की कैसी चिन्ता ? वे तो घास-पत्ते खाने वाले वनचर हैं और राम तथा लक्ष्मण मानव हैं, वे हमारे नित्य प्रतिदिन के आहार हैं। तब आपको इतना भय क्यों लग रहा है ? स्वामी, सुखपूर्वक रहें, आप मेरा पुरुषार्थ जानते हैं। जो भी यहाँ आये हैं, मैं उन सबका वध करूँगा। अपने विकट बाणों से उनके शूर समुदाय एवं स्वयं राम लक्ष्मण का रण-भूमि में सामना करूँगा। अंगद एवं सुग्रीव को रणभूमि में ढूँढ़ कर मारूँगा। जिसने लंका का विध्वंस कर प्रशंसा अर्जित की, उस हनुमान को मारूँगा। जाम्बवंत का वध करूँगा। नल, नील, गंधमादन, तरस, तरल, पनस, सुषेण इन सभी का इनकी सेना सहित बाणों से वध कर डालूँगा। मेरे असंख्य बाण, राम लक्ष्मण का वध करेंगे। बेचारे वानर तो करोड़ों की संख्या में मुझसे मारे जाएँगे।"

कुछ प्रधानों द्वारा गर्वोक्ति– इन्द्रजित् के आवेशपूर्ण वचन सुनकर प्रहस्त गर्जना करते हुए बोला– "राजन तुम्हारे शत्रु का मैं अकेले ही सामना करूँगा। मेरे मुद्गरों के प्रहार के समक्ष राम-लक्ष्मण टिक नहीं पाएँगे। बलवान् वानरों समेत सभी को रणभूमि में मार डालूँगा। मूसल चक्राकार घूमकर अष्टांगों पर किस प्रकार प्रहार करता है, यह महावीर प्रहस्त दिखा देगा। दशशिर रावण मात्र देखते रहें, राजन, तुम्हारा शत्रु संभार मेरे द्वारा अवश्य ही मारा जाएगा। यह तुम निश्चित समझो। तुम पद्मिनी काम-शय्या का सुखपूर्वक सेवन करो। नानाविध भोग-प्रकारों का तुम उपभोग करो।" इस प्रकार प्रहस्त के वचन सुनकर धूम्राक्ष गर्जना करते हुए उठकर बोला "पराक्रमी वानर-सेना लंका तक आ पहुँची हम सब मिलकर रात्रि के समय जाएँगे और वानर-गणों का निद्रित अवस्था में ही नाश करेंगे। रघुपति सौमित्र, अंगद, सुग्रीव आदि योद्धाओं का रातोंरात वध कर शत्रु को समाप्त कर डालेंगे। ऐसी ख्याति अर्जित कर लंकापति को यश प्राप्त करा देंगे, यही मुझे उचित लग रहा है। धूम्राक्ष ने वीरों को यह युक्ति बतायी, तत्पश्चात् उसकी युक्ति को धिक्कारते हुए महोदर बोला– "श्रीराम और सुग्रीव ने सतत् वानरों की

सपरिवार रक्षा की है। इसके अतिरिक्त निद्रित वानरों पर घात करने में तुम्हारा कैसा पुरुषार्थ है।" सभा में ही इन शब्दों से महोदर ने धूम्राक्ष का उपहास किया। तत्पश्चात् वह आगे बोला "श्रीराम नित्य सावधान रहकर वानरों की रक्षा करते हैं। राजा सुग्रीव स्वयं रक्षा करने में दक्ष हैं। श्रीराम के द्वारा कपटी मारीच मारा गया, शूर्पणखा द्वारा कपट करने से उसकी दुर्दशा हुई। अत: रात्रि के समय वानरों का घात करने के लिए जाने पर श्रीराम की बाण वर्षा से तुम सभी निश्चित ही मारे जाओगे।"

तत्पश्चात् महोदर ने कहा - "श्रीराम की दृष्टि के साथ ही, उनके तूणीर के बाण में भी अंधकार में देखने की शक्ति है, वे ढूंढ़-ढूंढ़ कर प्रत्येक का प्राण हर लेंगे, श्रीराम द्वारा फेंके गये एक दर्भ के तृण ने कौवे का पीछा कर उसे तीनों लोकों में घुमाया और अन्त में उसकी बायी आँख नष्ट कर डाली। ऐसे श्रीराम पर धावा बोलना कैसे सम्भव है ? तुम सभी राक्षस उन्मत्त और पागल हो, श्रीराम के बाण से निश्चित ही मरोगे तुम सभी सावधानीपूर्वक सुनो। वानर अत्यन्त उत्साह में हैं। अत: अपने दुर्ग को पूरी तरह से शक्तिशाली बनाओ, उसे युद्ध के लिए तैयार करो, सुसज्जित करो। दुर्ग के सामर्थ्य से ही हम लोग उनसे युद्ध करेंगे, बुर्ज, अटारियाँ, दीवारें, घुड़साल इन सभी स्थानों को विविध यन्त्रों से सुसज्ज करो सभी वीर एकत्र होकर दुर्ग के द्वारों की रक्षा करें वानरों के भीषण बल को ध्यान में रखकर द्वारों में दृढ़ कीलें एवं शृंखलाएँ लगायें। इस प्रकार इन सबका निरीक्षण करते हुए सेना एकत्र होकर दुर्ग का संरक्षण करे, महोदर के ये वचन सुनकर अतिकाय खिलखिला कर हँसने लगा महोदर का पुरुषार्थ अतिकाय को व्यर्थ प्रतीत हुआ। वह बोला– "वानरों की उड़ान के समक्ष लंकादुर्ग तुच्छ है। शृंखलाओं एवं द्वारों से उन्हें रोका नहीं जा सकता। त्रिकूट के शिखर तक जो वानर उड़ान भर सकते हैं, वहाँ उनके समक्ष तुम्हारा दुर्ग नगण्य है, उसका कोई महत्व नहीं है।"

अतिकाय अपना विचार व्यक्त करते हुए बोला "विभीषण द्वारा हितपूर्ण विचार व्यक्त करते ही जिस प्रकार उसे नगर से बाहर निकाल दिया, उसी प्रकार मैं जब पूर्ण स्वधर्म बताऊँगा तब तुम सभी क्रोधित हो जाओगे। अगर तुम सभी मुझे क्षमादान दो तो मैं अपने यथार्थ विचार व्यक्त करूँगा। श्रीराम सत्य संकल्पधारी हैं, प्रधानों की वल्गनापूर्ण वाचालता व्यर्थ है इन्द्रजित् मेरा ज्येष्ठ भ्राता है परन्तु वह अपने पुरुषार्थ के सम्बन्ध में असम्बद्ध बोल रहा है। जब इसका वानर (हनुमान) के साथ युद्ध हुआ तब उसने इसे संत्रस्त कर दिया था। वही इन्द्रजित् अब अपना पुरुषार्थ निर्लज्जतापूर्वक बढ़चढ़ कर बता रहा है। राजा के समक्ष अपने पराक्रम की असत्य चर्चा कर रहा है। वह कह रहा है कि राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, अंगद, जाम्बवंत और हनुमान का भी वध करूँगा। सभा में इस प्रकार बोलते हुए उसे तनिक भी लज्जा नहीं आ रही है। उसी प्रकार ये प्रहस्त है। जम्बुमाली का वध हुआ तब यह पुत्र-शोक से विलाप करता रहा लेकिन हनुमान से युद्ध नहीं किया। हनुमान के साथ जो युद्ध नहीं कर पाया, उस प्रहस्त द्वारा मुद्गर लेकर सुग्रीवादि वानरों का वध करूँगा यह कहना मात्र असत्यतापूर्ण प्रलाप ही है। महाबलवान वीर धूम्राक्ष वानरों का उनकी निद्रित अवस्था में घात करने की भाषा बोल रहा है। यही उसका पुरुषार्थ है। ऐसे झूठे प्रधानों द्वारा की गई अपने पराक्रम की बातों पर विश्वास करने से रावण को दारुण दु:ख भोगना पड़ेगा "

अतिकाय द्वारा हितोपदेश– अतिकाय ने दाहिना हाथ उठाकर वीरतापूर्ण भाव भंगिमा करते हुए

गरज कर कहा–"राजेन्द्र, मैं स्वधर्म का पालन करते हुए जो कह रहा हूँ, वह सुनें। जो राजा गो, ब्राह्मण की रक्षा करते हुए, दुष्टों का निर्दलन एवं साधुओं की रक्षा करते हैं, स्वधर्म एवं नीति का पालन करते हुए आचरण करते हैं, वे नित्य सुखी रहकर निर्भय हो पृथ्वी का राज्य भोगते हैं। विभीषण द्वारा हित की बातें बताने पर उसे लात मारकर नगरी से बाहर कर दिया। मेरे द्वारा स्वधर्म की बातें बताये जाने पर मुझे दुष्ट दुर्जन न कहें। सुबुद्धिपूर्ण बातें बताने वाला विभीषण पवित्र है। उसे शत्रु मानकर आपने दण्डित किया। हे लंकेश, आप पिता हैं, मैं आपका पुत्र हूँ। मैं आपको धर्म सम्बन्धी विचार बता रहा हूँ, उन्हें सुनें जहाँ नित्य पापानुसार आचरण होता है, वहाँ अकीर्ति, अपयश और अकल्याण का वास होता है तथा अत्यन्त निन्दनीय मृत्यु प्राप्त होती है। हे लंकेश, यह बिलकुल सत्य है। इसके विपरीत जहाँ नित्य धर्मानुसार आचरण होता है, वहाँ यश, कीर्ति और कल्याण होता है। उसके ही कारण तीनों लोकों में विजय प्राप्त होती है। श्रीराम अत्यन्त शुद्ध धर्मात्मा हैं। उन्होंने आपका कुछ भी अपराध नहीं किया तथापि आपने उनकी पत्नी चुरायी आपने निश्चित ही पाप किया है। सीता पूर्ण पतिव्रता है। ऐसी स्त्री का अपहरण करने से आप निन्दनीय एवं पापी सिद्ध हुए हैं। पाप के कारण कुल का नाश ही होता है, अतः जब से सीता को लंका में लाया गया है, तभी से यहाँ पर अनेक उत्पातों का प्रारम्भ हो गया है अक्षय आदि अनेक वीरों का मारुति ने वध कर दिया है। परस्त्री रूपी पाप के संकट के कारण इन्द्रजित् को, वानर को पीठ दिखाकर कायरों की भाँति पलायन करना पड़ा। करोड़ों सैनिक मारे गए। परस्त्री का अपहरण अत्यन्त भीषण पाप है, इसीलिए वानर के कारण रावण को त्रस्त होना पड़ा। लंका भुवन जल कर भस्म हो गया। ऐसे अनुभव आने पर भी बलोन्मत्त होकर क्या उन्हें नगण्य मानना चाहिए। हे लंकाधीश, इस गर्व के कारण सेना और सम्पत्ति सहित नाश होना निश्चित है।"

तत्पश्चात् अतिकाय ने नम्रतापूर्वक कहा– "मैं रावण को साष्टांग नमन करता हूँ। तत्पश्चात् इन्द्रजित एवं प्रधानों को नमन करता हूँ। हम सबका हित किसमें है, वह ध्यानपूर्वक सुनें। जो मुझे उचित प्रतीत हो रहा है, वही कह रहा हूँ, श्रीराम को सीता अर्पित कर लंकेश को बचा लें। सभी राक्षसों को बचायें। श्रीराम की शरण जाकर उन्हें सीता अर्पित करने से रावण एवं कुमारों को अक्षयता प्राप्त होगी। यह विचार सत्य है इससे सेना, प्रधान, राक्षस कुल एवं लंकाभुवन सभी अक्षय हो जाएँगे। भुक्ति-मुक्ति पूर्णरूपेण अक्षय होंगी। अतः सीता को अर्पित कर श्रीराम की शरण जाने से स्वप्न में भी जन्म-मृत्यु का चक्र न रहकर परमकीर्ति एवं कल्याण प्राप्त होगा।" यह हितपूर्ण कथन रावण ने नहीं माना। प्रधान एवं कुमार ने भी नहीं माना। वे सारे उन्मादित होकर मृत्यु के लिए आतुर थे। "मद्य, धन, बल, राज्य और गर्व के कारण वे सभी मृत्यु के मार्ग पर अग्रसर थे। जिस प्रकार पतंगा, दीपक के समीप जाकर जलकर भस्म हो जाता है तथापि दूसरा पतंगा दीपक की ओर बढ़ता है, उसी प्रकार वे सभी उन्मत्त होकर मृत्यु के मार्ग पर अग्रसर थे, सीता की अभिलाषा कर श्रीराम से वैर कर गर्वोन्माद के कारण रावण की मृत्यु होगी सम्पूर्ण सेना एवं सम्पत्ति नष्ट हो जाएगी। रावण के समक्ष मारुति ने लंका में तांडव कर हाहाकार मचा दिया परन्तु अपने गर्व के कारण तुम उसे स्वीकार नहीं कर रहे हो। अतः गर्व के कारण ही तुम्हारी मृत्यु समीप है। मैंने संकोच का त्यागकर कठोर वचन कहे, इसके लिए मैं दंडवत् प्रणाम कर क्षमा माँगता हूँ। यह मुझ बालक के वचन हैं।" अतिकाय के हितपूर्ण वचनों को रावण ने नहीं माना। इसके कारण

अतिकाय दु:खी होकर विलाप करने लगा। माता को दु:खी करने वाले शब्दों का उच्चारण न कर उसने मौन धारण कर लिया। उसके वचन सुनकर सभी लज्जित थे, किसी ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया।

सुन्दरकाण्ड समाप्ति का नाथकृत कथन— एकनाथ, जनार्दन की शरण में हैं। वक्ता और श्रोता सभी मौन हैं। श्री जनार्दन की कृपा से सुन्दरकाण्ड समाप्त हो गया। बालि का विद्रोह शान्त कर सुग्रीव को प्रचंड राज्य प्रदान किया। वानर सैन्य को लाकर सुन्दर काण्ड समाप्त किया। सीता को ढूँढने की इच्छा से वानरों ने वन में, हेम विवर में परिश्रम कर अथक प्रयत्न किया। समुद्र की अड़चन को समक्ष देखकर प्राणत्याग करने का निश्चय किया। उसी समय संयोगवश संपाती की भेंट होने से समुद्र को लाँघकर हनुमान ने शीघ्र सीता को ढूँढा। अशोक वन उजाड़कर राक्षसों का संहार किया। इन्द्रजित् को सन्त्रस्त कर किंकर, वन-रक्षक और कुमार अक्षय का वध किया। लंका भस्म कर वापस लौटकर श्रीराम को सीता की खोज के विषय में सूचना दी। श्रीराम स्वयं समुद्र-तट पर आये, सागर का अभिमान दूर कर अनेक योजन लम्बा सेतु निर्माण कर श्रीराम लंका में आये। इसके आगे युद्ध काण्ड का आरम्भ है। श्रीराम राक्षसों का संहार करेंगे। उस श्रीराम की महिमा का वर्णन अब श्रवण करें।

॥ इति सुन्दरकाण्ड ॥

युद्धकाण्ड

अध्याय १

[वानर सेना की गणना के लिए रावण द्वारा दूतों को भेजना]

ईश स्तवन-- श्रीसंत एकनाथ कहते हैं- "उदार, गंभीर एवं मधुर सुन्दरकाण्ड की समाप्ति के पश्चात् अब आगे अत्यन्त विशाल एवं प्रतापवान युद्धकाण्ड है। युद्धकाण्ड का वर्णन करने के लिए मेरी वाणी सर्वथा अयोग्य है परन्तु मेरे ऊपर सद्गुरु जनार्दन स्वामी की अखण्ड कृपा-दृष्टि होने के कारण उन्होंने मेरे द्वारा इन काण्डों का अर्थ अभिव्यक्त कराया। रामायण का सारगर्भित अर्थ बताने वाले वक्ता समर्थ जनार्दन गुरु ही हैं। इस ग्रंथ का परमार्थ अन्तर्बाह्य परिपूर्ण श्रीरघुनाथ अर्थात् श्रीराम ही हैं रामायण का मूल सार इसके अक्षर-अक्षर में निहित है तथा पदों के द्वारा चिद् चिन्मात्र पवित्र रामकथा अभिव्यक्त है। इस कथा का कथार्थ अन्तर्बाह्य व्याप्त श्रीरघुनाथ हैं। वही ग्रंथ का परमार्थ हैं, जो साधक को आत्म-स्वार्थ साधने में सहायक होते हैं।

एकनाथ का आत्मनिवेदन; निरूपण का फल--श्रीराम का चरित्र कठिन होते हुए भी उनकी चरित्र-कथा चिन्मात्र चैतन्य से परिपूर्ण है। सद्गुरु जनार्दन अत्यन्त उदार होने के कारण यह कथा सुख और आनन्दप्रदायक बन गई। स्वयं श्रीराम ने ही मेरा मुख बनकर मेरे वचनों द्वारा पवित्र राम कथा का निरूपण किया है। श्रीराम कथा का गूढ़ार्थ यथार्थ रुप में बताकर, मेरे हाथों में कलम-दवात देकर श्रीराम ही मुझसे लिखवा रहे हैं। श्रीराम ही मेरी दृष्टि बनकर कथा निरूपण दिखा रहे हैं। मैं उसे जागृति, स्वप्न एवं सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में देख रहा हूँ। जागृति अवस्था में जब मैं कर्म करता हूँ तो उन कर्मों के माध्यम से श्रीराम-कथा प्रकट करते हैं। स्वप्न में श्रीराम ही अपने रहस्य प्रकट करते हैं सुषुप्तावस्था में सुखपूर्वक सोते समय वहाँ जन्म-मृत्यु, कर्म-धर्म, आचरण कुछ भी नहीं होता। तब वह सुषुप्तावस्था ही पूर्णरूपेण श्रीराममय होती है। मेरे भोजन ग्रहण करते समय प्रत्येक ग्रास में श्रीराम अपना अस्तित्व अनुभव कराते हैं। भोजन के रसास्वाद में श्रीरघुनाथ का अस्तित्व होता है। भोजन के अन्त में श्रीराम रामायणार्थ प्रकट करते हैं. रसास्वादन करते समय रसना स्वयं श्रीरघुनन्दन-स्वरूप हो जाती है. श्रीराम की कृपा से रामायणरूपी आनन्द भोजन मधुर लगता है, रामायण के माधुर्य का आस्वाद करते समय रसना, रसत्व का त्याग कर देती है दृश्य अपनी दृश्यता का त्याग कर राम-कथा से तादात्म्य स्थापित करता है शयन करते समय भी रामायण का विस्मरण नहीं होता। मेरी शय्या, मेरा बिछौना स्वयं श्रीराम ही होते हैं। रामायण लिखते समय जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में श्रीराम कभी विश्राम नहीं करते और तब दिवस हो अथवा रात्रि, रामकथा ही शेष रह जाती है।

श्रीराम ने रामायण लिखने के लिए स्वयं मुझे प्रेरित किया, जिसके कारण मेरा अहम् समाप्त हो गया, इस मराठी रामकथा का दर्शन स्वय श्रीराम ही करा रहे हैं। राम-कथा से चारों प्रकार की

मुक्तियाँ* दूर हो जाती हैं, चारों पुरुषार्थ व्यर्थ हो जाते हैं और उस कथार्थ में ही परब्रह्म के दर्शन होते हैं। शुद्ध परमार्थ से युक्त रामकथा श्रीराम स्वयं मेरे द्वारा लिखवा रहे हैं, जिससे मुझ जैसे साधक का स्वार्थ सिद्ध हो सके। श्रीहरिकथा निरूपण एवं नित्य नाम-स्मरण करने से, जिस प्रकार बछड़े के लिए गाय में प्रेम उमड़ता है, उसी प्रकार ब्रह्म में स्वयं प्रेम प्रस्फुटित होता है। रामनाम स्मरण करने से परब्रह्म की भेंट होती है। जो दुर्भाग्यशाली होते हैं, वही राम नाम का त्याग कर यज्ञ कर्मकांड करते हैं। कर्मकांडों के द्वारा पद-प्राप्ति नहीं होती। कर्म ही देह धर्म की स्थिति है। रामनाम के द्वारा परब्रह्म की प्राप्ति सम्भव है। ऐसी रामनाम की ख्याति है। श्रीराम ने लंकाधीश रावण को दण्डित करने के लिए समुद्र पर सेतु निर्माण कर वानर-सेना लेकर रण वाद्यों की ध्वनि करते हुए लंका में प्रवेश किया।

रावण द्वारा दूतों को भेजना– श्रीराम के लंका में आने का समाचार मिलते ही रावण उद्विग्न हो उठा। उसने शुक और सारण को बुला भेजा। उन्हें रावण बहुत दु:खी दिखाई दिया। रावण उनसे बोला "मेरे प्रधान पूर्णरूप से उन्मत्त हो गए हैं, उन्हें अपने हित का भी स्मरण नहीं रहा। वे मद्य एवं स्त्री के उपभोग में मग्न हैं। अत: वे क्या गुप्तचर भेजेंगे ? मुझे मेरी चिन्ता हो रही है कि श्रीराम के लंका में आने के पश्चात् अब मैं क्या करूँ ? अत: तुम ही गुप्तचर की भाँति जाकर, श्रीराम की सेना कितनी है, उसमें जुझारू और वीर वृत्ति के कौन-कौन और कितने हैं ? इसका पता लगाकर मुझे आकर बताओ। श्रीराम, उनके शस्त्रास्त्र उनके दुर्धर बाण तथा उनके सखा सौमित्र लक्ष्मण के पराक्रम के विषय में मुझे बताओ। श्रीराम का सैन्यबल, वानरों का शौर्य, लक्ष्मण की युद्ध निपुणता के विषय में विशद वर्णन करो। तुम्हारे राक्षस रूप में जाने पर वानर तुम्हारा वध कर देंगे, अत: तुम वानर रूप में जाकर सैन्य-स्थिति की गणना करो।" रावण के वचन सुनकर शुक और सारण वानर रूप धारण कर वानर सेना में जाकर घुल मिल गए। उन्होंने वानरों को ध्यान से देखना प्रारम्भ किया। उन्हें पृथ्वी पर सर्वत्र वानर ही वानर दिखाई दे रहे थे। सृष्टि का कोई भाग वानर-रहित दिखाई ही नहीं दे रहा था, आगे पीछे सर्वत्र वानर थे। भूतल पर, आकाश में, जल, स्थल एवं प्रत्यक्ष लंका में वानरों का कोलाहल व्याप्त था। उन अनगिनत वानरों को देखकर शुक और सारण आश्चर्य चकित रह गए। वे वानरों की गणना कर ही नहीं पा रहे थे। नल, नील, अंगद इत्यादि वानर वीर भी गरजते हुए आये थे। श्रीराम के पीछे अर्बुद निर्बुद पद्मानिकर संख्या में युक्त वानर थे। उनके पीछे असंख्य वानरों से युक्त सुग्रीव का सैन्य-समूह था। इसके अतिरिक्त भी अगणित मल्लयोद्धे और अपार वानर-समूह था। उनकी गणना करने में शंख संख्या भी पूरी नहीं पड़ रही थी। शुक तथा सारण द्वारा इस प्रकार वानर-सेना पर दृष्टि रख कर उनके विषय में जानकारी लेते समय उनके लक्षण वानरों के लक्षणों के समान न दिखाई पड़ने के कारण विभीषण ने उन्हें पहचान लिया।

गुप्तचरों को राम के समक्ष लाना; उनकी मुक्ति– विभीषण ने इन दोनों गुप्तचरों के लक्षण अत्यन्त कुशलतापूर्वक निरीक्षण कर पहचान लिए। वे शुक और सारण नामक गुप्तचर राक्षस वानररूप में होने पर भी वे वानरों के समान उछलकूद, कलाबाजी नहीं कर पा रहे थे। सभी उन कपटी गुप्तचरों को पकड़ने के लिए दौड़ पड़े। वे दोनों अत्यन्त कुशलतापूर्वक निकलकर भागने लगे। विभीषण उन राक्षसों को पहचानते थे। अत: उन्होंने ही उन्हें पकड़ा। तत्पश्चात् उन वानर वेशधारी राक्षस गुप्तचरों को बाँधकर श्रीराम के समक्ष लाया गया। श्रीराम की प्राणिमात्र के प्रति कृपा दृष्टि होने के कारण वे गुप्तचरों

* समीपता, सरूपता, सलोकता, सायुज्यता।

से बोले - "रावण चौर्यकर्म करने वाला तथा तुम उसके गुप्तचर हो। अतः शास्त्रों के अनुसार तुम वध के योग्य हो परन्तु मैं तुम्हें नहीं मारूँगा। मेरे इस वानर-समूह को देख लो।" तत्पश्चात् दूसरे वानरों के हाथों से छूट जाने की संभावना के कारण श्रीराम ने उन गुप्तचरों को हनुमान के स्वाधीन कर दिया। क्योंकि राक्षसों की माया एवं छल कपट हनुमान की पूँछ के समक्ष नहीं चल सकता था। हनुमान ने उनको पूँछ से पकड़कर वानर योद्धाओं की समूह निधि से अवगत कराया जिससे वे जाकर रावण को बता सकें। तत्पश्चात् श्रीराम ने कहा "तुम दोनों का वध कर देने से हमारे विषय में रावण को कौन बतायेगा ? अतः मेरे वचन सुनो ! रावण के समक्ष गर्जना करते हुए बताना कि मैं प्रातः ही आक्रमण कर राक्षसों का वध कर दूँगा। बाणों से त्रिकूट को भेद कर दशकंठ रावण को छेद डालूँगा। मेरे बाण छूटते ही तोरण पताकाएँ सब झड जाएँगी, बाणों से लंका का विध्वंस कर दशमुख का वध कर दूँगा " श्रीराम अपराधी निरपराधी सबके साथ न्याय करते हैं। अतः उन्होंने दोनों गुप्तचरों को मुक्त कर दिया। कृपालु श्रीराम ने दोनों को अपने पराक्रम एवं पुरुषार्थ के विषय में बताकर छोड़ दिया। वे दोनों भय से काँपते हुए लंका वापस लौट गये।

गुप्तचरों की रावण से भेंट, गुप्तचरों द्वारा सूचना– श्रीराम ने उन अपराधी गुप्तचरों को वध के योग्य होने पर भी मुक्त कर दिया। श्रीराम के इस पुरुषार्थ से गुप्तचर भयभीत हो गए और वे थर-थर काँपते हुए लंका वापस लौट गये। वहाँ रावण दिखाई देने पर उन्हें कुछ कहना सम्भव नहीं हो पा रहा था। वे अत्यन्त भयभीत थे, उनके मुख से शब्द नहीं निकल रहा था। कुछ समय पश्चात् जब वे शान्त हुए तब रावण के समक्ष निवेदन करते हुए बोले - "वानर सेना असंख्य होने के कारण उनकी गणना करना सम्भव नहीं है। हम जब वहाँ गये तब विभीषण ने हमें पहचान लिया और हमें बाँध कर श्रीराम के पास ले गये। विभीषण तथा वानरगण मारने की सलाह दे रहे थे। परन्तु राम सच्चा धर्मात्मा है उसने एक वीर की भाँति हमें मुक्त कर दिया। वह बोला कि "इन दोनों का वध करने से रावण पर विजय प्राप्ति तो नहीं होगी अतः इन्हें अपनी वानर सेना दिखायें उनकी संख्या बतायें।" तत्पश्चात् श्रीराम ने हमें हनुमान को सौंप दिया। उसने हमें अपनी सम्पूर्ण सेना दिखाई, उसमें वानरों की असंख्य जातियाँ हैं। उनकी गणना करना सम्भव नहीं है। उस सेना का प्रत्येक वानर, दशानन का वध करने के लिए उत्सुक था। वे वानर भी अत्यन्त बलशाली हैं। लंका को वे अत्यनत तुच्छ समझते हैं, किले एवं छत्र सहित लंका भुवन को विध्वस्त करने का पराक्रम उनमें से चार व्यक्तियों के पास है। वे चारों हैं– श्रीराम, लक्ष्मण, घर का भेदी विभीषण तथा वानरराज सुग्रीव। वे क्षणमात्र में रावण का निर्दलन करने की भाषा बोल रहे हैं, सम्पूर्ण लंका को उखाड़ कर समुद्र के जल में फेंकने जैसा पराक्रम उनमें विद्यमान है वे राक्षसों की होली जला देंगे। उनमें से अकेला राम भी बाणों की वर्षा से रावण का वध कर लंका को भस्म करने में सक्षम है उस समय अगर प्रधान, इन्द्रजित्, मकराक्ष, कुंभकर्ण, अतिकाय आदि बीच में आये तो उनका भी निर्दलन कर वह लंका को भस्म कर डालेगा। रणभूमि में वह राक्षसों की सम्पूर्ण जाति को ही नष्ट कर डालेगा। वह रघुपति इतना प्रतापी है कि वह अकेला ही तीनों लोकों का दमन करने में सक्षम है। रघुनन्दन ने स्वयं अपना पराक्रम एवं पुरुषार्थ बताते हुए गरज कर कहा है कि प्रभात समय में ही रण-क्रन्दन कर रावण का वध करूँगा।" सारण ने इस प्रकार निवेदन किया।

सारण के वचन सुनकर रावण उद्विग्न हो उठा। रावण को इस प्रकार उद्विग्न देखकर सारण ने उसे हितपूर्ण सलाह देते हुए कहा– "हे लंकाधीश दशानन, युद्ध करने से रणभूमि में वानरों पर विजय

प्राप्त नहीं की जा सकती। राक्षसों का निर्दलन कर वे लंकापुरी को नष्ट कर देंगे वानरों के समक्ष अपनी सेना टिक न सकेगी उनके समक्ष हमारा बल व्यर्थ है, अत: वानरों के साथ युद्ध कदापि न करें श्रीराम और उसका भाई लक्ष्मण दोनों शस्त्रास्त्र विद्या में निपुण हैं। उनके बाणों से प्राणांत निश्चित है। वे चार योद्धा युद्ध के लिए हर्षपूर्वक तत्पर हैं। श्रीराम शस्त्रास्त्रों से सिद्ध होकर राक्षस-समूह में प्रवेश करेंगे। परन्तु वानरों ने रघुनाथ को रोककर स्वयं युद्ध कर रावण का वध करने की आज्ञा माँगी है। यह विजय-ध्वज फड़काने वाली सेना सुग्रीव के आधीन है तथा रावण का वध करने का पराक्रम उसमें विद्यमान है राजा सुग्रीव सहज ही लंका त्रिकूट पर छलाँग लगा कर असंख्य राक्षसों का वध कर सकता है तथा अन्त में रावण का वध कर देगा। इन महावीरों को अलग कर अकेला हनुमान लंकाघात करने के लिए उत्सुक है। उसके पराक्रम से तो आप अवगत हैं। अत: आप उससे युद्ध न करें, यही उचित है। हे रावण, सीता को वापस लौटा कर श्रीराम की शरण में जाने में ही कल्याण है। मेरी आपके चरणों में विनती है कि युद्ध न करें उससे प्राणों की क्षति की व्यथा होगी। सीता को लौटाकर रघुकुल तिलक राम से संधि करने पर इहलोक और परलोक सार्थक होकर आपको परमसुख की प्राप्ति होगी।" सारण के इन हितपूर्ण एवं सत्य वचनों को सुनकर दुष्ट दुर्जन रावण ने दुराग्रहपूर्ण प्रतिक्रिया की।

रावण की प्रतिक्रिया– रावण बोला "अरे सारण, देव, दानव तथा गंधर्वों सहित सुरेन्द्र भी यदि मेरे चरणों में विनती करेगा तब भी मैं सीता को मुक्त नहीं करूँगा, यह निश्चित है। शिव त्रिशूल लेकर तथा ब्रह्मा शाप देते हुए आ जायें और प्राणों का संहार करने लगें तथापि मैं सीता को नहीं छोड़ूँगा तुम कायर तथा अत्यन्त दीन हो। वानर सेना देखते ही तुम भय से काँपने लगे। इसी भय के कारण सीता, राम को अर्पित करने के लिए कह रहे हो परन्तु तुम्हारी इस भय के कारण दी गई सलाह को मैं कदापि नहीं मानूँगा। राम ने तुम्हारा वध न कर तुम दोनों को जीवित छोड़ दिया, इसी कारण तुम सीता को वापस लौटाने का परामर्श दे रहे हो। तुम श्रीराम के अनुगामी बनकर मुझे भय दिखा रहे हो। तुम जो कह रहे हो,वह सब मिथ्या है। तुम दोनों डरपोक और नपुंसक हो। अगर कोई व्यक्ति किसी के प्राणों की रक्षा करने की बातें करता है इसका तात्पर्य होता है कि वह उसका आप्त हो गया है। इसी दृष्टि से तुम सीता को मुक्त करने के लिए कह रहे हो और मेरे समक्ष कठोरतापूर्वक मेरे अवगुण बता रहे हो।"

तत्पश्चात् रावण क्रोधित होकर बोला– "जो राजदोष बताते हैं, वे अपराधी होते हैं तथा शास्त्रों की नीति के अनुसार मेरे हाथों दण्डित होते हैं। तुम दोनों पापी हो। शत्रु की वीरता, शौर्य, बल एवं गुणों का वर्णन कर रहे हो और मेरे अवगुण बता रहे हो, अत: तुम दोनों पूर्णरूपेण वध के योग्य हो" यह कहकर सत्य असत्य का विवेक न रखते हुए रावण, शुक और सारण का वध करने के लिए शस्त्र लेकर उठ खड़ा हुआ। 'वानर गण रावण का वध कर देंगे' तुम दोनों के ये वचन सिद्ध करते हैं कि तुम राम के पक्षपाती हो गए हो अत: मैं तुम्हारा वध कर दूँगा। रावण इस प्रकार बोला परन्तु उसी समय उसके मन में विचार आया कि 'गुप्तचर अवध्य होते हैं, इसीलिए राम ने इन्हें छोड़ दिया तब मैं इनकी हत्या किस प्रकार करूँ' इस विचार से लज्जित होकर रावण ने शुक और सारण को छोड़ दिया और क्रोधपूर्वक उनसे बोला- "अपना काला मुँह पुन: मुझे न दिखाना"। शुक और सारण ने जाने से पहले रावण का जयजयकार कर स्तुति की रावण रघुपति की सबलता के विषय में विचार कर चिंतामग्न हो गया।

शार्दूल नामक गुप्तचर को भेजना; श्रीराम द्वारा उसकी मुक्ति– शुक और सारण के जाने के पश्चात् रावण चिंतित हो उठा। तब उसने शार्दूल नामक गुप्तचर को वानरसेना की गणना करने के

लिए भेजा। शार्दूल नामक गुप्तचर सभी गुप्तचरों में प्रबल, चतुर और कुशल था। इसी कारण उसका नाम शार्दूल पड़ा था। शार्दूल जब स्वयं गणना करने लगा, तब उस असंख्य वानर सेना को देखकर उसकी वाणी स्तब्ध हो गई। वह भ्रमित हो गया। शार्दूल को देखकर विभीषण ने उसे पहचान लिया। दृढ़ पाश में बाँधकर वे उसे श्रीराम के समक्ष ले गये। तब वानरों ने मुष्टिका एवं पैरों से उस पर प्रहार किया। श्रीराम ने कृपापूर्वक उसे मुक्त कर दिया। अत्यन्त कष्टपूर्वक पकड़ कर लाने पर भी श्रीराम ने उसे छोड़ दिया क्योंकि गुप्तचर का वध करने में कोई पराक्रम नहीं था। गुप्तचर का वध करने की बुद्धि अत्यन्त क्षुद्र एवं दुर्भाग्यपूर्ण कहलाती है। तत्पश्चात् श्रीराम ने शार्दूल को बुलाकर उसे सम्पूर्ण वानरसेना दिखाई तथा उसका सम्मान कर उसे मुक्त कर दिया। श्रीराम द्वारा मुक्त करते ही वानरों से भयभीत होकर शार्दूल शीघ्र लंका में जाकर रावण के समक्ष उपस्थित हुआ। उस रक्तरंजित शार्दूल को आता हुआ देखकर रावण चौंक गया। वानर अत्यन्त बलशाली हैं, ऐसा उसे अनुभव हुआ। शार्दूल की वानरों ने लातों से प्रहार कर दुर्दशा कर दी थी और वह रोते बिलखते कराहते हुए सभा में आया। श्रीराम की सेना में गुप्तचर भेजने का कोई लाभ नहीं था, विभीषण के कारण वह गुप्तचर पकड़ लिया जाता था। उसे बन्दी बनाकर राम के समक्ष ले जाने पर राम उसे मुक्त कर देते थे। लगातार ऐसा ही घटित हो रहा था।

अध्याय २

[शार्दूल द्वारा वानर सेना का वर्णन एवं श्रीराम द्वारा रावण का छत्र भंग]

सभा में शार्दूल को रोते, बिलखते, कराहते हुए रक्तरंजित होकर आया हुआ देखकर, उस दुःखी गुप्तचर से रावण बोला– "शार्दूल, ऐसा लगता है कि तुम भी शत्रु के चंगुल में फँस गये हो क्योंकि तुम रक्त में पूरी तरह से सने हुए हो"। रावण के इन सहानुभूतिपूर्ण वचनों को सुनकर शार्दूल आपबीती सुनाने लगा।

शार्दूल का निवेदन–रावण द्वारा सहानुभूतिपूर्वक पूछने पर शार्दूल कराहते हुए निवेदन करने लगा। वह बोला– "वानरों की सेना असंख्य है। उनकी गणना करना सम्भव नहीं है। उस संख्या के बारे में अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। वानरों से पूछने पर वे भी असंख्य ही बताते हैं। वाचस्पति की वाणी बंद हो जाएगी, वेद बोलने में असमर्थ हो जाएँगे परन्तु श्रीराम की सेना की गणना नहीं हो पाएगी, यही सत्य है। लंकानाथ, श्रीराम की सेना की गणना करना ब्रह्म देव के लिए भी सम्भव नहीं है, वहाँ हमारे सदृश क्षुद्र राक्षस क्या गणना कर पाएँगे। श्रीराम की सेना में जाकर छानबीन करना असम्भव है। वहाँ हमारा प्रमुख शत्रु विभीषण है, जो हमें पहचान कर पकड़ लेता है। छद्म वेश धारण कर गुप्त रूप से जाने पर भी विभीषण के समक्ष हमारी माया नहीं चलती है। उसी ने मुझे पकड़कर वानरों को सौंप दिया। वानरों ने मुझे सेना में धीरे-धीरे घुमाया और रावण को अपना बल दिखाने के लिए सेना दिखाते हुए मुझे प्रताडित करते रहे। उनकी प्रताड़ना ने मुझे व्याकुल कर दिया। तत्पश्चात् वे मुझे श्रीराम के पास ले गये। श्रीराम ने यह कहते हुए कि 'गुप्तचर को मारने में कैसा पुरुषार्थ' ? मुझे छोड़ दिया। उसी कारण मैं जीवित बच पाया। श्रीराम का शौर्य, बल, असंख्य वानर दल, इन सब कारणों से उनसे युद्ध करने की अपेक्षा जानकी को अर्पित करना ही उचित होगा। हे लंकानाथ, सीता को श्रीराम को अर्पित कर देने से आपको मृत्यु से मुक्ति मिलेगी तथा तीनों लोकों में राक्षस निर्भय होकर शान्तिपूर्वक रह पाएँगे।

शार्दूल आगे बोला- "लंकानाथ, वानर वीर उड़ान भर कर सम्पूर्ण लंका ले लेंगे, अतः जो भी विचार करना है, वह शीघ्र करें। युद्ध करना है अथवा सीता, श्रीराम को अर्पित करनी है, इस विषय में निश्चित विचार करने में विलम्ब करने से कुल क्षय होगा।" शार्दूल के ये वचन सुनकर रावण क्रोध से काँप उठा तथा मिथ्या दुरभिमान धारण कर गर्जना करते हुए बोला- "श्रीराम की सहायता के लिए देव, दानव, दैत्य, गंधर्व सभी आ जायें तथापि मैं स्वयं सीता को कदापि नहीं छोड़ूँगा। सभी राक्षसों का वध कर श्रीराम ने कुल का घात किया अथवा मेरे वध के लिए तत्पर हुआ, तब भी मैं सीता को मुक्त नहीं करूँगा। मैं रावण, जीते-जी सीता को कभी नहीं छोड़ूँगा।" रावण जब यह बोल रहा था तब मन में वह अत्यन्त चिन्तित था। वह विचार कर रहा था कि श्रीराम गुप्तचर अथवा दूतों का वध न कर उन्हें मुक्त कर देता है और वे गुप्तचर वापस आकर मुझे सीता, श्रीराम को अर्पित कर देने के लिए कहते हैं, पहले विभीषण ने ऐसा ही कहा और अब ये शुक, सारण व शार्दूल, राम के भय से यही कह रहे हैं। तत्पश्चात् उसने श्रीराम के वानर वीरों में कौन-कौन वीर हैं, उनके मल्ल योद्धे कौन हैं, जुझारू वीर कौन हैं-इस विषय में शार्दूल से पूछताछ की।

शार्दूल द्वारा वानर वीरों के सम्बन्ध में कथन- रावण ने शार्दूल से प्रश्न किया, "वानर सेना में कौन से और कितने वीर हैं ?" इस पर शार्दूल बोला-" नल, नील, रंभ, पनस, पन्नक, मैंद, द्विविद, सुमुख, दुर्मुख, केशरी, शतबली, दधिमुख, गवय, गवाक्ष नामक वानर महावीर हैं। विनीत, प्रमाथी, क्रोधन, ऋषभ, शरभ, गंधमादन, परश, नाग, सुषेण, इन्द्रजानु इत्यादि वीर योद्धा हैं। इनके अतिरिक्त गज, गोरभ, तार, तरल, उन्नाह, सन्नाह, कुमुद, कुशल, क्रकच, विकराल इत्यादि रणकुशल वानर योद्धा हैं। जाम्बवंत का ज्येष्ठ भ्राता धूम्राक्ष नामक प्रसिद्ध योद्धा, रीछों की अपनी सेना सहित उनमें विद्यमान है, श्रीराम की सेना में बुद्धिमान एवं महापराक्रमी जाम्बवंत राक्षसों को क्षुद्र कीटकों के समान तथा कुंभकर्ण को तृण सदृश मानता है, अति भयंकर तथा लंका में हाहाकार मचाने वाला वीर हनुमान उनकी सेना में अग्रणी है। उसका पुरुषार्थ तो आप जानते ही हैं। (सन्त एकनाथ कहते हैं, "ऋषि की रामायण में वीरों की अपार नाम राशियों का उल्लेख है परन्तु कथा का अत्यन्त विस्तार होने की सम्भावना के कारण मैंने उन सबका उल्लेख नहीं किया है।") शार्दूल द्वारा अन्त में हनुमान का नाम सुनकर रावण चौंक गया, अन्य महावीरों का उल्लेख भी रावण से सहन नहीं हो पा रहा था, श्रीराम के शौर्य तथा सबल वानर सेना का वर्णन सुनकर रावण भयभीत हो गया। उसे ऐसा लगने लगा कि सीता उसे न मिल पाएगी।

तत्पश्चात् रावण ने पूछा कि इन अपार वानरवीरों में कौन किसका पुत्र पौत्र है ? वे वानर सत्कुलीन हैं कि वनचर हैं ? इस सम्बन्ध में उसे बताते हुए शार्दूल ने कहा- "उसमें प्रमुख ब्रह्मा का पुत्र, महापराक्रमी, बुद्धिमान, ऋक्षराज जाम्बवंत प्रसिद्ध रणयोद्धा है। सूर्य का पुत्र राजा सुग्रीव वीर योद्धा है, वह राक्षसों का नाश करने हेतु लंका में प्रवेश करने के लिए उत्सुक है। युवराज अंगद स्वयं शक्र का नाती है, जिसमें लंका को उखाड़ फेंकने की शक्ति विद्यमान है। वह कालसदृश भयंकर योद्धा भी है। धर्म पुत्र सुषेण, चन्द्र का पुत्र दधिमुख, ये दोनों वीर रण भूमि में काल के लिए भी कालसदृश हैं। सुमुख एवं दुर्मुख नामक मृत्यु के पुत्र अर्थात् मृत्यु का ही साक्षात् अवतार हैं। रण-भूमि में वे राक्षसों का वध कर देंगे, उनके समक्ष कौन टिक पाएगा। नील नामक अग्निपुत्र वानर दल का सेनापति है तथा स्वयं राक्षस-कुल का घात करने योग्य प्रबल वीर है। देवता अश्विनी के मैंद एवं द्विविद नामक महावीर

पुत्र, यम के गज, गवाक्ष, गवय, शरभ और गंधमादन नामक पाँच पुत्र, वैवस्त के पाँच पुत्र सभी घनघोर युद्ध करने वाले हैं विश्वकर्मा के पुत्र नल ने तो सेतु निर्माण किया है। उसी पर से वानर सेना यहाँ आई है, वह स्वयं भी लंका दहन करने हेतु आया है। इसके अतिरिक्त केशरी का पुत्र क्षेत्रज, वायु पुत्र एवं अत्यन्त विख्यात हनुमान, सेना में विद्यमान है, जिसका पुरुषार्थ तीनों लोकों में गूँज रहा है हनुमान अत्यन्त बलवान वीर है, जो लंका को भस्म करना चाहता है। राक्षसों का रणभूमि में नाश कर, उसके सिरों से गेंद के सदृश क्रीड़ा करने वाला वह वीर है।"

"वानर वीर दशकादि तथा असंख्य श्रेष्ठ प्रमुख सेनानी हैं, जिनकी संख्या बता सकना संभव नहीं है। पृथ्वी के अंकुरों की गणना करना सभव हो सकता है अथवा वर्षा की धाराएँ गिनी जा सकती हैं परन्तु वानर समूह की गणना नहीं की जा सकती है। उन वानरों में परस्पर सबल सद्भाव है। प्रत्येक सेनानी के आधीन करोड़ों, अर्बुद, खर्व सेना-संभार है। (एकनाथ कहते हैं कि प्रत्येक वीर की सैन्य संख्या लिखने से ग्रंथ का विस्तार होगा। अत: केवल राजा सुग्रीव एव युवराज अंगद की सेना के विषय मे संक्षेप में बताता हूँ। श्रीराम की आज्ञा से अंगद को युवराज पद प्राप्त हुआ तथा सुग्रीव का राज्याभिषेक हुआ, यह कार्य मन्त्रयुक्त एव उल्लासपूर्वक सम्पन्न हुआ। वाल्मीकि ऋषि ने अपने ग्रथ में अंगद की जो सैन्य सम्पत्ति बताई है, उसी के अनुरूप वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनें।) सौ हजार को लाख कहते हैं सौ लाख को करोड़, सौ करोड़ को अर्बुद और सौ अर्बुद को निर्बुद कहा जाता है सौ निर्बुद की गणना खर्व सौ खर्व को निखर्व तथा सौ निखर्वों को एक पदम् कहा जाता है, अंगद की बायीं ओर से सहस्र पदम् वीर रणभूमि में चलते हैं दाहिनी ओर से चलने वाले वीरों की संख्या इस प्रकार है– सौ पदम् अर्थात् सौ शंकु सैनिक अंगद की दायीं ओर चल रहे थे। पुरुषार्थी अंगद बोला– "राक्षस सेना एवं प्रधान, क्षुद्र कीटकों के समान हैं। युद्ध में रावण को आने दो, मैं तो उसका ही वध करूँगा।" अंगद के बायीं ओर सहस्र पदम् तथा दाहिनी ओर सौ शकु सेना है जो युद्ध निपुण एवं महाबली है।" अंगद की सेना के विषय में सुनकर राक्षस चिल्लाने लगे। रावण मन ही मन चौंक गया प्रधान चिन्तित हो गए तब शार्दूल रावण से बोला– "हे दशानन, राजचिह्नों की ध्वनि सुनाई दे रही है, लग रहा है कि राजा सुग्रीव की सेना आ गई है, उस सेना की गणना के विषय में सुनें।"

शार्दूल बोला "सुग्रीव, श्रीराम का सेवक हो गया है क्योंकि राम के कारण ही उसे राज्य का अधिकार प्राप्त हुआ है। उसकी सेना संभार के विषय में विस्तृत रूप से सुनें। श्रीराम ने बालि का वध कर सुग्रीव को राज्य प्रदान किया, इस कारण उसके पास राज सेना तैयार है, सहस्र कोटि एवं शत शंकु सेना सुग्रीव के लिए नित्य तत्पर रहती है। उसमें से प्रत्येक रण-योद्धा है, वे वानर-वीर सुग्रीव की बायीं तथा दाहिनी ओर विद्यमान रहते हैं। वे वानर रावण का वध करने हेतु लंका पर दृष्टि गड़ाये हुए हैं। राक्षसों का संहार करने के लिए वानर वीर शिखर पर कूद रहे हैं। उन्हें प्रमुख रूप से रावण का वध करना है। हे दशकंठ, वानर सेना के विषय में मैंने विस्तार पूर्वक बताया है। इस पर आपके मन में जैसी इच्छा हो, उसके अनुरूप करें, परन्तु उसे शीघ्र पूर्ण करें।" शार्दूल द्वारा वानर सेना के विषय में सूचना सुनकर राजा रावण क्रोधित हो उठा, वह स्वयं अपनी आँखों से देखने के लिए सिंहासन से नीचे उतरा। सात मंजिलों के ऊपर बने बुर्ज पर चढ़कर वह सामने फैले हुए वानर समूह को देखने लगा सात ताड़ों से अधिक ऊँचे सफेद रंग के प्रासाद पर चढ़कर वह वहाँ से वानर सेना को देखने लगा। उसके पीछे पीछे गुप्तचर, दूत प्रधान तथा लंकावासी वहाँ चढ़कर वानर सेना समुदाय को देखने लगे।

समुद्र तट पर, लंका के निकट, बालू के किनारे, सर्वत्र वानर सघन रूप से फैले हुए थे। कहीं पर भी ख़ाली ज़मीन दिखाई नहीं दे रही थी। वानरों ने लंका को चारों ओर से दृढ़तापूर्वक घेर कर रखा था, जिसके कारण आगे या पीछे हिलना सम्भव नहीं था। प्रत्येक बुर्ज पर वानर ही वानर दिखाई दे रहे थे। जिस प्रकार चीटियाँ गुड़ से चिपक जाती हैं, उसी प्रकार वानर चारों ओर से लंका को आवेशपूर्वक घेर कर रावण को ढूँढ रहे थे। जल स्थल, कुलाचल दसों दिशाएँ, नभ मंडल, सभी वानरों से व्याप्त हो गए थे। अत्यन्त सापेक्ष रूप से वानर-सेना को देखते हुए रावण की दृष्टि थक गई तथा उसके बीसों नेत्रों में मूर्च्छा आ गई। वानर-सेना को समक्ष देखकर लंका में त्राहि त्राहि मच गई। रावण चकित हो गया वह किंकर्तव्यविमूढ़ स्थिति में था। घर घर में हाहाकार मच गया, राक्षस भय से काँप उठे।

श्रीराम द्वारा रावण के छत्रों का छेदन- प्रासाद पर स्थित गोपुर से जब रावण-वानर सेना का निरीक्षण कर रहा था उस समय उसके मस्तक पर लगे दस छत्रों की छाया वानर-सेना पर पड़ी। उस छाया को देखकर श्रीराम ने विभीषण से पूछा- "ये असमय बादल कैसे ? इस पर विभीषण बोले - "श्रीरघुनाथ, आपका शत्रु आपकी सेना का निरीक्षण कर रहा है तथा उसी के छत्रों की यहाँ सब पर छाया पड़ी है, ये बादल नहीं हैं।" विभीषण द्वारा यह बताते ही श्रीराम क्रोधित हो उठे। उन्होंने धनुष बाण सुसज्जित करते हुए कहा "शत्रु की छाया मेरी सेना पर पड़ना मेरे लिए लज्जास्पद है।" तत्पश्चात् उन्होंने धनुष सुसज्जित कर आवेशपूर्वक उस पर बाण चढ़ाया। मेघश्याम वर्णी श्रीराम पीताम्बर धारण किये हुए सुशोभित थे उनके नेत्र कमल सदृश थे, वे आजानबाहु थे। उन्होंने मुकुट, कुंडल, वनमाला तथा गले में पदक धारण किया हुआ था। उनकी कटि में मेखला तथा पैरों में ध्वनियुक्त तोडर नामक आभूषण था। कलिकाल को भी उनका भय लगता था वीर कंकण एवं मुद्रिका धारण किये हुए, गले में दशावतारी सुन्दर टीका नामक आभूषण धारण किये हुए श्रीराम धनुष सुसज्जित कर लंका की ओर क्रोधपूर्ण दृष्टि से देख रहे थे, वे दाहिने हाथ में बाण धरकर रावण पर वार करने का विचार कर रहे थे। परन्तु असावधान शत्रु को मारना नहीं चाहिए यह विचार कर उन्होंने केवल रावण के छत्रों का छेदन करने का निश्चय किया

श्रीराम ने चमत्कार-बाण चलाकर रावण के दसों छत्र तोड़ डाले। तत्पश्चात् वह बाहर निकला हुआ बाण पुनः तूणीर में प्रवेश कर गया। अपने छत्र गिरे हुए देखकर रावण अपने शत्रु की कुशलता पर विस्मित हो उठा वह मन ही मन बोला- "श्रीराम निश्चय ही धर्मात्मा है, उसने मेरा शिरच्छेदन नहीं किया, अन्यथा जिसने दसों छत्रों को तोड़ डाला, वह दस शिरों को भी काट सकता था। परन्तु रघुवीर ने अधर्मयुक्त आचरण नहीं किया। दशानन श्रीराम के गुणों को पहचान कर मन ही मन उनकी प्रशंसा करने लगा। उसी समय प्रहस्त नामक प्रधान बोला- "अब अगर दूसरा बाण छूटा तो अवश्य घात होगा " प्रहस्त के ये वचन सुनकर श्रीराम के बाणों से भयभीत होकर रावण वहाँ से भागा और उसने अपने प्राण बचाये। श्रीराम के बाण अचूक वार से लक्ष्य को बेधने के पश्चात् तूणीर में वापस लौट आते थे, यह श्रीराम की धनुर्विद्या का अद्‌भुत कौशल था। रावण के टूटे हुए छत्र देखकर लंकावासी कहने लगे-यह भयंकर अशगुन है युद्ध में रावण का अवश्य वध होगा। श्रीराम के शर-संधान से जब रावण के छत्र काट डाले गए तब वानर सेना में भी यही प्रतिक्रिया होने लगी कि यह रावण के लिए अशुभ लक्षण है, उसका अन्त अब निश्चित है।

अध्याय ३

[रावण द्वारा कपट का आश्रय लेना]

श्रीराम से प्रत्यक्ष युद्ध आरम्भ होने के पहले ही रावण को छत्रों के टूटने का अशगुन हो गया जिसके कारण रावण उद्विग्न हो उठा। उसने प्रधानों को भेज दिया तथा स्वयं अपने भवन में वापस लौट आया। श्रीराम सबल समर्थ है, उसकी वानर सेना भी असंख्य है। अत: 'अब मुझे क्या करना चाहिए' इसकी चिन्ता उसे सताने लगी तथा वह सोचने लगा कि क्या उपाय करना चाहिए।

रावण द्वारा बदला लेने के लिए कपट का आश्रय लेना– रावण के मन में विचारों का द्वन्द्व चल रहा था। वह सोच रहा था कि- 'सीता का बलपूर्वक उपभोग करना संभव नहीं है क्योंकि वह उससे अधिक शक्तिशाली है, उसका वध भी कर सकती है. मैं उसका वध नहीं कर सकता क्योंकि श्रीराम की सेवा करने के कारण उसका अस्तित्व जन्म मृत्यु से परे है। अत: निश्चित ही उसका वध नहीं किया जा सकता। श्रीरामनाम का स्मरण करने से मृत्यु का ही अन्त हो जाता है। सीता पूर्णरूपेण विदेही है। अत: उसे मारा नहीं जा सकता। उसका उपभोग भी नहीं किया जा सकता। राम को युद्ध में जीता नहीं जा सकता। अब क्या किया जाए ? श्रीराम का वध सम्भव नहीं है। अत: अब कपट से ही सीता को वश में करना चाहिए'। कपटी रावण ने इस प्रकार निश्चय किया। रावण स्वयं कपटी था ही परन्तु विद्युज्जिह्व अत्यन्त कपटी राक्षस था। सीता से कपट करने का विचार रावण ने उसे बताया। रावण ने उससे कहा "श्रीराम का शीश मायावी रूप से धनुष बाण सहित तैयार करें।" रावण के ऐसा कहते ही वह राक्षस बोला– "अब मैं शीघ्र सिर का निर्माण करता हूँ।" रावण ने सन्तुष्ट होकर अपने सोने के कंगन उसे प्रदान किये परन्तु श्रीराम का मायावी शीश विद्युज्जिह्व नहीं बना पा रहा था वह चिन्तित हो उठा। राम के शीश का निर्माण करते समय उसके औजार काम नहीं कर रहे थे। उनकी धार ठीक नहीं रह पा रही थी, जिससे आकृति तैयार नहीं हो पा रही थी। श्रीराम का रंग भी नहीं सध पा रहा था सभी रंग बहे जा रहे थे रावण के क्रोध के भय से विद्युज्जिह्व दुःखी हो गया। माया के ज्ञाता श्रीराम के समक्ष कपट नहीं चल सकता। अत: विद्युज्जिह्व चिन्तित हो उठा। भय से व्याकुल होकर वह शीघ्र विश्वकर्मा के पास गया।

विश्वकर्मा की प्रतिक्रिया; ध्यानमूर्त्ति का वरदान– विद्युज्जिह्व विश्वकर्मा की चरण-वंदना कर बोला "आप श्रीराम का मायावी शीश निश्चयपूर्वक बना दें." इस पर विश्वकर्मा बोले– "श्रीराम का मायावी शीश- ऐसा वाणी से उच्चारण करने मात्र से वाणी को कुष्ठ रोग लग जाएगा। ये वचन कुलनाश का कारण बन जाएँगे; जहाँ कपट होता है, वहाँ सर्वनाश होता है, ऐसा वेदों में कहा गया है। रावण अपने भ्रम में फँसकर कुल सहित मारा जाएगा। श्रीराम स्वयं सत्य का सत्यत्व हैं। माया पूर्णरूपेण असत्य है। अत: श्रीराम का मायावी शीश मैं कदापि नहीं बना पाऊँगा तुम्हारा सर्वनाश समीप है, इसीलिए ऐसा कपट कर रहे हो। सीता के समक्ष कपट नहीं चल पाएगा तथा रणभूमि में तुम सभी मारे जाओगे।" विश्वकर्मा के ये वचन सुनकर विद्युज्जिह्व विलाप करने लगा। वह बोला– "श्रीराम का मायावी शीश न बनाने पर रावण मेरा वध कर देगा। उसे सीता की अभिलाषा के कारण स्वार्थ परमार्थ कुछ भी समझ नहीं आ रहा है। वह निश्चित ही मेरा वध कर देगा। कृपा कर इस अनर्थ को रोकें। मैं आपके

चरणों पर मस्तक रखता हूँ। मैं आपका शिष्य हूँ अत: मेरे प्राण बचायें। आपने ही मुझे मायावी-विद्या सिखाई है परन्तु श्रीराम के सम्बन्ध में वह काम नहीं कर रही है। अत: आप कृपा कर मुझे बचायें, ऐसा कहते हुए विद्युज्जिह्व विश्वकर्मा के चरणों पर गिर पड़ा। इस विनती से कृपालु विश्वकर्मा द्रवित हो उठे।

विश्वकर्मा ने संत चरण रज की वंदना कर, द्विज-चरण-तीर्थ का प्राशन कर, स्वयं श्रीराम का ध्यान करना प्रारम्भ किया। जब द्विज-चरणों की वंदना होती है, तब सभी प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त होती है। समस्त संकटों का निर्दलन होकर स्वयं श्रीराम से भेंट होती है द्विज-चरण-रज की महत्ता ऐसी है, जो वांछित होता है वह सार्थ एवं सम्पूर्ण रूप से प्राप्त होता है। भुक्ति और मुक्ति उसे प्राप्त होती है, श्रीराम प्रसन्न होते हैं। विश्वकर्मा की ध्यानस्थिति में श्रीराम मूर्ति प्रकट हुई। मायिक रामशीश की प्राप्ति का वरदान उन्होंने माँगा। विश्वकर्मा की ध्यानमूर्ति उनसे बोली– "तुमने जो वरदान माँगा है वह प्राप्त होना कठिन है। ध्यानपूर्वक सुनो, शीश बनाना सम्भव नहीं है, वह स्वयं नहीं निर्मित किया जा सकता काल्पनिक शीश मैं तुम्हें वरदान में दूँगा। शीशा जिस प्रकार प्रतिबिम्ब प्रदर्शित करता है, रूपरेखा उसमें समान दिखाई देती है, उसी प्रकार सम्पूर्ण कल्पित सिर तुम योग्य समय पर पाओगे हे विद्युज्जिह्व जब रावण शीश माँगेगा तब काल्पनिक सम्पूर्ण शीश उसे प्राप्त हो जाएगा। दर्पण में प्रतिमुख दिखाई देता है परन्तु वह मुख उसमें विद्यमान नहीं होता। मनःकल्पित शीश उसी प्रकार उसे प्राप्त हो जाएगा। वह शीश अचेतन होगा। उसी प्रकार कल्पित धनुष बाण भी उचित समय पर तुम्हें प्राप्त हो जाएगा, यह तुम निश्चित समझो।" यह वरदान पाकर विद्युज्जिह्व के वापस लौटते ही रावण ने अत्यन्त आवेशपूर्वक अशोक-वन की ओर प्रस्थान किया।

रावण सीता से भेंट के लिए अशोक-वन में– रावण स्वयं आनंदपूर्वक गर्जना करते हुए सीता को प्रलोभन देने के लिए अशोक-वन में आया। सीता उस समय बाह्य रूप से अत्यन्त दीन एवं मलिन दिखाई दे रही थीं। अन्तर्मन से वह शान्तिपूर्वक श्रीराम का ध्यान कर रही थीं सीता को देखकर रावण बोला– "श्रीराम के सामर्थ्य का गर्व धारण कर मेरे वचनों की उपेक्षा करती हो। रात दिन राम की महानता के विषय में बताती रहती हो, यह सच है न ? श्रीराम बहुत बलवान् है। उसने त्रिशिरा तथा खर का वध कर दिया। परन्तु कुमार इन्द्रजित् राम का वध कर उसका शीश लेकर आया है। जिस राम को तुम शूर, श्रेष्ठ, वीर योद्धा कहती हो उसे रणश्रेष्ठ मानते हुए मुझे क्षुद्र तिनके के सदृश समझती हो। जिसके बल पर हमेशा मुझे दुःख पहुँचाती हो, उस राम का मैंने निर्मूलन कर दिया है। अत: अब तत्काल मेरा वरण करो रण में रघुनाथ का वध कर दिया है। अब तुम्हें कौन मुक्त करायेगा ? अब उसके विषय में चिंता करना छोड़कर इस लंकानाथ का उत्साहपूर्वक वरण करो गर्वपूर्वक स्वयं को पतिव्रता कहती हो। अब नृप लंकानाथ को प्राप्त होगी। मैं तुम्हें कभी भी मुक्त नहीं करूँगा। अत: उत्साहपूर्वक मुझे स्वीकार कर वरण करो, अब रावण को वरण करने के अतिरिक्त तुम्हारे पास कोई अन्य मार्ग नहीं है इसीलिए मूर्खता छोड़कर लंकाधीश की पत्नी बन जाओ युद्ध में राम एवं लक्ष्मण का वध हो गया। वानर सेना का संहार हो गया। अब तुम्हारा हठ किसलिए ? तुम इस रावण को अपने प्रिय पति के रूप में स्वीकार करो। श्रीराम के रणभूमि में धराशायी होते ही सौमित्र सहित वानरगणों ने रणवाद्य बजाकर यह स्वीकार कर लिया है कि सीता रावण की रानी बन गई सीते, राम की मृत्यु के विषय में सुनकर भी तुम विलाप नहीं कर रही हो मेरे वचनों को मिथ्या मान रही हो। युद्ध कैसे हुआ, इस विषय में सुनो "
रावण के ऐसा कहने पर भी सीता कुछ नहीं बोली।

रावण, सीता से बोला- "इन्द्रजित् ने धावा बोलकर रणभूमि में रघुनाथ का वध किया। इसे तुम सत्य नहीं मानती हो तो रण वृत्तान्त सुनो। जिस प्रकार इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया, उसी प्रकार राक्षसों ने श्रीराम का वध किया। तुम्हारा पति किस स्थान पर मारा गया, यह भी तुम्हें बताता हूँ। पुल का निर्माण कर श्रीराम, वानरों के समुदाय सहित गर्जना करते हुए दक्षिण तट पर आया। सूर्यास्त होने के पश्चात् चलने के श्रम से थके हुए वानर राम लक्ष्मण सहित सुखपूर्वक निद्रामग्न हो गए। हमें विभीषण का विशेष भय था परन्तु वह भी सो गया। इस सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर प्रधान प्रहस्त ने प्रस्थान किया। इन्द्रजित् भी सेना सहित प्रहस्त के साथ गया। उन्होंने रात में ही आक्रमण किया तथा निद्रित अवस्था में ही राम का लक्ष्मण सहित वध कर दिया। सुग्रीवादि वानरों को भी प्रहस्त ने धावा बोलकर मार डाला। परशु, पट्टिश, तोमर, गदा, मुद्गर, बाण-चक्र इत्यादि शस्त्रों का प्रयोग कर वानरों को रणभूमि में मार डाला, निष्ठुर प्रहस्त अपने हाथों से श्रीराम का वध कर उनका शीश यहाँ ले आया है। यह सच है, उनका धनुष बाण भी ले आये हैं।" रावण द्वारा ऐसा कहने पर भी सीता नहीं रोई रणभूमि में श्रीराम का वध हुआ, यह सीता को सत्य नहीं लग रहा था। उसे वैसा मान्य नहीं हो रहा था। अतः क्रोधित होकर रावण ने रणभूमि के महाघात का वर्णन किया।

रावण बोला- "राम तथा लक्ष्मण का निद्रित अवस्था में ही वध कर दिया। सुग्रीव की गर्दन तोड़ दी। हनुमान की आघात से मृत्यु हो गई। जाम्बवंत की कमर टूट गई। इन्द्रजानु के घुटने तोड़कर रणभूमि में धराशायी कर दिया। सुषेण को शूल से फाड़ डाला। गंधमादन का पट्टिश से वध कर दिया। नल, नील, मैंद, द्विविद नामक प्रबल वानरों के मस्तक तलवार से छेद डाले। तार, तरल कुमुद तथा गवाक्ष नामक वीरों को विविध शस्त्रों की वर्षा कर मार डाला जिस प्रकार पका हुआ कटहल पेड़ से झड़ कर गिर जाता है, इसी प्रकार पनस का सिर धड़ से झड़कर गिर गया। इस प्रकार अनेक वानर महावीर रणभूमि में मारे गए। हरिमुख, दधिमुख, सुमुख, दुर्मुख इत्यादि एक एक वानर वीर को ढूँढ कर मार डाला। अंगद के हाथों को कंधे से तोड़कर उसे रण-भूमि में धराशायी कर दिया। निशाचर (राक्षस) रात में विशेष रूप से जगे रहते हैं, जिसके कारण उन्होंने रात्रि में वानरों को मार डाला। घोड़ों तथा हाथियों को कुचल डाला। इस प्रकार सम्पूर्ण वानर सेना को मार डाला, दिन में वानर प्रबल होते हैं तो रात में निशाचर प्रबल होते हैं। इसी कारण उन्होंने विशेष रूप से रात्रि में धावा बोलकर नर वानरों को मार डाला। मेरी सेना तथा सेनापति सभी निशाचर ही हैं, अतः वे रात में ही आकर, सोये हुए श्रीराम को मारकर उनका मस्तक ले आये हैं। सीते, ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मेरे वचन तुम्हें सत्य नहीं लग रहे हैं। अतः मैं राम का मस्तक ही तुम्हारे हाथों में देता हूँ। तुम जी भर कर आनन्दपूर्वक अपने पति से मिल लो।' सज्ञानी सीता रावण के वचन सुनकर भ्रमित नहीं हुई। उसने अपने आँचल में शुभ-शगुन की गाँठ बाँधी हुई थी। शत्रु के मुख से श्रीराम से भेंट करने से सम्बन्धित वचन सुनकर उसे ऐसा अनुभव हुआ, मानों वे शब्द राम से परिपूर्ण मिलन के संकेत दे रहे हों।" शीघ्र ही तुम्हें राम से मिलवाऊँगा" रावण के उपहास भरे इन शब्दों को भी सीता ने शुभ ही माना। रावण ने कपट बुद्धि से विद्युज्जिह्व को शीघ्र ही सीता को राम का मस्तक दिखाने की आज्ञा दी।

श्रीराम का मिथ्या मायावी मस्तक देखकर सीता की प्रतिक्रिया- श्रीराम का मायावी मस्तक सीता को देते हुए विद्युज्जिह्व भय से काँप रहा था। सिर न देने पर रावण दण्डित करेगा तथा देने पर वह पतिव्रता क्रोधित होकर शाप दे देगी, इस भय से वह भयभीत था। अतः वह वहाँ से बिना कहे ही

भाग गया। राम मस्तक मिथ्या है, यह समझते हुए भी सीता ने रावण के समक्ष भक्तिपूर्वक उसे साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया। श्रीराम के धनुषबाण को भी प्रणाम किया। रावण यह सब देख रहा था। श्रीराम का कटा हुआ सिर मिथ्या है, यह जानकर भी सीता मिथ्या विलाप करने लगी तथा रावण को सुनाने के लिए रोते हुए श्रीराम के महात्म्य का वर्णन करना प्रारम्भ किया। "श्रीराम तो जन्म मृत्यु से परे, नित्य हैं तब उनका राक्षसों ने किस प्रकार वध कर दिया। यह कैसे घटित हो गया। जुगनू अपने बल पर सूर्य का वध करे, यह तो एक बार सम्भव हो सकता है परन्तु राक्षसों द्वारा युद्ध में राम को मारना सम्भव नहीं हो सकता। श्रीराम नित्य सावधान रहते हैं। वे जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति विहीन होने के कारण राक्षसों द्वारा निद्रित अवस्था में उनका वध किया जाना असम्भव है। धुएँ से आकाश में चन्द्रमा का धूसरित होना जिस प्रकार सम्भव नहीं है, उसी प्रकार निद्रा से परे होने के कारण निद्रित अवस्था में श्रीराम के वध को कैसे स्वीकार किया जा सकता है। जल में आकाश का प्रतिबिम्ब पड़ने से आकाश गीला नहीं होता। उसी प्रकार श्रीराम द्वंद्व विहीन होने के कारण उनकी मृत्यु को सत्य कैसे माना जाय। पर्जन्य धाराएँ जिस प्रकार समुद्र को कभी भी आच्छादित नहीं करतीं (क्योंकि वे उसी से उत्पन्न होती हैं अत: उसमें घुलमिल जाती हैं उसको आच्छादित कैसे कर सकती हैं ?), उसी प्रकार शस्त्रास्त्र श्रीराम के शरीर को नहीं लग सकते। चूहे द्वारा चन्द्र को कुतरना सम्भव हो सकता है परन्तु मन्दबुद्धि राक्षस श्रीराम का शिरच्छेदन नहीं कर सकते। अत: इस असम्बद्ध बातों को मैं कैसे सत्य मान लूँ।" इस प्रकार श्रीराम की महत्ता का वर्णन करते हुए सीता विलाप कर रही थीं। रावण मन ही मन क्रोधित हो रहा था। सीता के समक्ष उसका कपट नहीं चल पाया था। सीता आगे बोली "स्वयंवर के प्रसंग में शिव धनुष न उठा पाने के कारण रावण लज्जित हुआ था, (उसकी दुर्दशा हुई परन्तु राम विजयी हुए) अत: श्रीराम का प्रचंड धनुष ये क्षुद्र कीटक कैसे ला सकेंगे। श्रीराम के बाण रणभूमि में शत्रु का नाश कर स्वयं ही तूणीर में वापस लौट जाते हैं, ऐसे बाणों को उनसे विलग कौन कर सकता है।" सीता के ये वचन एवं विलाप सुनकर रावण अपना मस्तक पीट रहा था। सीता के समक्ष कपट नहीं चल सकता, यह समझ कर उसकी अभिलाषा में वह छटपटा रहा था, उसी समय कुछ विपरीत घटित हुआ। सीता को श्रीराम के विषय में ज्ञान होकर वह उसे शुभ चिह्न मानने लगी।

सीता को श्रीराम के मस्तक की कृत्रिमता का ज्ञान– सीता ने श्रीराम के उस सुन्दर मस्तक को देखा। श्रीराम के सदृश होते हुए भी वह सत्य नहीं है, इसका सीता को पूर्ण विश्वास था। अत: गंभीर होकर उसने एक श्लोक कहा। वह (संस्कृत) श्लोक इस प्रकार है–

"सा सीता तच्छिरो दृष्ट्वा तच्च कार्मुकमुत्तमम्।
नयने मुखवर्णं च भर्तुस्तत्सदृशं भवेत्॥"

इस सुरस श्लोक में राम के शीश से सादृश्य का गंभीर अर्थ अभिव्यक्त हुआ है, जिससे वह अवगत थीं। वह शीश श्रीराम का नहीं है, यह उन्हें पूर्ण रूप से ज्ञात था। नेत्र, मुख, कान, नाक, होंठ, दाँत, भौंहें, इत्यादि सभी श्रीराम के मुख के समान थे परन्तु उन्हें कृत्रिम रूप से बनाया गया है यह सीता ने जान लिया था। श्रीराम के वध के विषय में उसे मिथ्या ही बताया गया परन्तु सीता उसके कारण विचलित नहीं हुई क्योंकि राक्षसों के लिए श्रीराम को मारना सम्भव नहीं था, इसका उसे पूर्ण विश्वास था। सतेज धारदार शस्त्र भी गगन को छेद नहीं सकते, उसी प्रकार श्रीराम का मस्तक राक्षस नहीं काट सकते। दुधारी शस्त्रों के वार से मुख से घायल चूहा मर सकता है, राक्षसों के लिए श्रीराम का मस्तक

काटना सम्भव नहीं है। इसके विपरीत राम ही राक्षसों का वध कर देंगे। मक्खी सभी रसों को चखती है परन्तु दीपक को चखने के लिए जाने से उसका मुख जल जाता है। उसी प्रकार राक्षस श्रीराम का वध करने के लिए जाएँगे तो श्रीराम ही उनका वध कर देंगे। श्रीरघुनाथ का कृत्रिम मस्तक बनाना ही सम्भव नहीं हो पा रहा था तथा सीता जब उसे आदरपूर्वक देखने लगी तब वह अदृश्य हो गया विधुज्जिह्व जैसे ही सीता को शीश देकर बाहर भागा, तभी सीता द्वारा उसे देखते ही वह क्षण मात्र में अदृश्य हो गया।

किसी गड्ढे में भरे हुए पानी में सूर्य का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है परन्तु उसे वहाँ से बाहर निकालने का प्रयत्न करने पर भी निकाला नहीं जा सकता क्योंकि उसका अस्तित्व वहाँ होता ही नहीं है। उसी प्रकार उस कल्पित मस्तक की विशेषता थी कि वह अपने स्थान पर से अदृश्य हो गया. उस कृत्रिम मस्तक के सदृश ही, सीता जब निश्चयपूर्वक धनुष बाण की ओर देखने लगी तब वह भी अदृश्य हो गया क्योंकि वह पूरी तरह से असत्य था। सीता की दृष्टि के समक्ष असत्य टिक नहीं सकता, वह समूल नष्ट हो जाता है। सीता के चारों ओर श्रीराम का अस्तित्व होता है। सीता निरन्तर राम का भजन करती रहती हैं। उनके नेत्रों में, मुख में, निद्रा में, जागृति में, सर्वत्र श्रीराम विद्यमान रहते हैं. इसी कारण उनके समक्ष भ्रम टिक नहीं सकता है। उनकी स्मृति में, कृति में, पंचभूतों की धरणी में तथा क्षराक्षर वाणी में राम ही निवास करते हैं। अतः उनके समक्ष भ्रम कैसे टिक सकता है ? उनका कर्म, धर्म, आश्रम, विश्राम राम हैं। गति, स्थिति, वृत्ति राम-मय है तथा सभी प्राणियों में राम का निवास होने पर वहाँ भ्रम कैसे टिक सकता है। ऐसी राम-भक्ति से परिपूर्ण पतिव्रता सीता के समक्ष कपट नहीं चल सकता, यह बात उस मूर्ख लंकाधिपति रावण की समझ में ही नहीं आई

उसी समय उत्तर दिशा की ओर के द्वार का द्वारपाल वहाँ आया. वह बहुत घबराया हुआ था। वह भयभीत अवस्था में रावण से बोला-- "राम-लक्ष्मण भयंकर बाणों से सुसज्जित होकर वानरगणों के सम्पूर्ण परिवार सहित रणभेरी बजाते हुए लंका पर चढ़ाई करने के लिए आ रहे हैं। लंका भुवन को तहस-नहस कर राक्षसों एवं दशानन का वध करने के लिए राम-लक्ष्मण स्वयं आये हैं। इस समय आप सीता को पीड़ित करने के लिए यहाँ क्यों रुके हैं, शीघ्र युद्ध के लिए प्रस्थान करें अथवा जानकी श्रीराम को अर्पित कर उनकी शरण में चले आयें।" द्वारपाल के ये वचन सुनकर सीता को छोड, रावण शीघ्र राज सभा में गया। अशोक वन में जिस स्थान पर सीता थीं, उस स्थान की रखवाली करने के लिए रावण ने सरमा नामक राक्षसी को नियुक्त किया था। राक्षसी सरमा की सीता से मैत्री हो गई थी। वह अत्यन्त आप्त भावना से सीता से व्यवहार करती थी। रावण द्वारा कपटपूर्वक सीता को छलने के विषय में ज्ञात होने पर सीता को धीरज बँधाते हुए तथा आश्वासन देते हुए बोली- "तुम्हें छलने के लिए ही उस झूठे एवं कपटी रावण ने 'राम का वध हुआ है' ऐसा बताया परन्तु श्रीराम का वध नहीं हुआ है। हे जानकी, तुम सर्वथा निश्चिंत रहो।" सरमा आगे बोली- "हे सीते, राम तथा लक्ष्मण बिल्कुल ठीक हैं। प्रिय हनुमान तथा सभी वानर गण स्वस्थ और सुखी हैं। तुम्हें छलने के लिए रावण ने मायावी शीश तथा धनुष बाण तुम्हें दिखाया। वह पूर्ण कपटी तथा महापापी है। श्रीराम के साथ वानर सेना, अंगद तथा सुग्रीव भी रावण वध के लिए लका के निकट पहुँच गए हैं। दूसरी ओर वानर समूह गर्जना करते हुए आ पहुँचा है।" सरमा के ये वचन सुनकर जानकी प्रसन्न हुईं। उन्होंने सरमा को आलिंगनबद्ध कर आनंदपूर्वक उसे अपने कंगन भी प्रदान किये।

❦❦❦❦

अध्याय ४

[राक्षसों एवं वानरों का युद्ध]

श्रीरघुनन्दन के दल बल सहित आने का समाचार सुनकर चिन्तित रावण म्लान मुख से सभा में आया तभी वाद्यों की ध्वनि तथा साथ ही वानरों का भुभुःकार सुनाई दिया इसके कारण रावण चौंक गया तथा कुछ क्षणों के लिए स्तब्ध रह गया। कार्य कारण-कर्तव्य उसे कुछ भी समझ नहीं आ रहा था। तब माल्यवंत कुछ हितपूर्ण बातें कहने के लिए आगे आया।

माल्यवंत का कथन, सूचनाएँ उसका धिक्कार– रावण का निकट सम्बन्धी वृद्ध राक्षस माल्यवंत बहुश्रुत, बुद्धिमान, धर्मात्मा एवं नीतिवान् था। वह रावण को सम्बोधित कर बोला "हे लंकानाथ, स्वर्ग में भूमि पर तथा अंतरिक्ष में होने वाले विविध उत्पात लंका को घेरे हुए हैं, जिसके माध्यम से राक्षसों का कुलाघात सूचित हो रहा है। मध्याह्न के समय उल्कापात हो रहा है। राजद्वार पर जमीन चिटख कर उसमें गड्ढे पड़ रहे हैं। उल्लू बलपूर्वक झपट कर घर में घुस रहे हैं। नगरी पर रक्त धाराओं की वृष्टि हो रही है। चारों ओर से सियारों की आवाजें आ रही हैं। चीलें पात्रों सहित अन्न को झपट कर ले जा रही हैं। इन चिह्नों से राक्षसों का सर्वनाश निकट है, ऐसा दिखाई दे रहा है। इसलिए हे लंकानाथ, श्रीराम को सीता अर्पित कर शीघ्र राम के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करो। वर्तमान कलह का मुख्य कारण सीता हरण ही है। उसे अगर राम को दे दिया, तो सभी का कल्याण होगा। सीता श्रीराम की पत्नी है उसे राम को अर्पित करते हुए अकारण ही तुम्हें व्यथित नहीं होना चाहिए। कुल के घात का वही प्रमुख कारण है। श्रीराम बड़े प्रतापी हैं। उन्होंने समुद्र में पाषाणों को तैराया तथा वानर सेना को लंका में ले आये। उस राम के समक्ष कौन टिक सकता है। हाथी के समक्ष क्षुद्र कीटक तथा सिंह पर भौंकने वाले कुत्ते के सदृश स्थिति होकर श्रीराम से युद्ध करने वाला रावण नष्ट हो जाएगा। सूर्य से युद्ध करने वाले घी के कणों के सदृश रावण की स्थिति होकर श्रीराम से युद्ध करते हुए वह रणभूमि में मारा जाएगा। पतंग के अग्नि से जूझने पर उसके पंख झड़ जाते हैं। उसी प्रकार श्रीराम से युद्ध करने वाले रावण की स्थिति होकर, वह एक ही बाण से निश्चित ही मारा जाएगा अतः मेरे द्वारा बताई गई सुबुद्धि मानकर सीता राम को अर्पित कर, कुल का कल्याण साधें।

माल्यवंत के हितपूर्ण वचन रावण को सड़ी हुई खीर अथवा कड़वे विष के सदृश प्रतीत हुए। उन हितपूर्ण वचनों से सुखी न होकर, रावण अत्यन्त दुःखी हो गया। अत्यन्त क्रोधपूर्वक आँखें तरेरते हुए वह माल्यवंत से बोला– "तुम दुष्ट स्वामिनिन्दक हो। अरे शठ माल्यवंत, वह बेचारा मानव राम बन्दरों को लेकर आया है उसकी महानता का तुम वर्णन कर रहे हो और मैं तुम्हारा स्वामी हूँ फिर भी तुम मेरी निन्दा कर रहे हो। शत्रुपक्ष का अभिमान धारण कर राम की महिमा का गान कर रहे हो। राम के द्वारा कुल का नाश होगा, ऐसा कह रहे हो। राक्षसों का नाश होगा और मुख्य रूप से रावण का वध होगा, इस प्रकार कठोर भाषण कर रहे हो। तुम्हें उस राम ने डरा दिया होगा परन्तु मुझे उस राम से कैसा भय ? रण-भूमि में मैं वानर सेना सहित राम लक्ष्मण का निश्चित ही वध करूँगा। तुम मेरे विरुद्ध बोल रहे हो, वास्तव में तो तुम्हारा वध ही कर देना चाहिए। परन्तु तुम अत्यन्त वृद्ध और मेरे निकट सम्बन्धी हो, इसीलिए मैं अपना हाथ रोक रहा हूँ " रावण को क्रोधित देखकर माल्यवंत स्वयं ही दूर होकर शीघ्र

वहाँ से चला गया। उसने पीछे मुड़कर भी नहीं देखा। माल्यवंत द्वारा सीता को रघुनाथ को अर्पित करने की सलाह देने पर रावण उसका वध करने का प्रयत्न करेगा, यह जानते हुए माल्यवंत अदृश्य होकर वहाँ से चला गया।

रावण द्वारा सैन्य-रचना सम्बन्धी आदेश– माल्यवंत के चले जाने पर रावण ने प्रधानों को बताया "दुर्ग की सुरक्षा के कड़े प्रबन्ध करें तथा समस्त वीरों को सावधान रहने के लिए कहें।" तत्पश्चात् रावण ने स्वयं ही दुर्ग की व्यवस्था सम्बन्धी योजना की। पूर्व की ओर के द्वार पर प्रहस्त की नियुक्ति की। महोदर तथा महापार्श्व को दक्षिण की ओर के द्वार पर भेजा। पश्चिम द्वार पर पुत्र इन्द्रजित् को नियुक्त करने का निश्चय किया। उनमें से प्रत्येक के साथ करोड़ों की संख्या में राक्षस सेना नियुक्त की थी। शुक तथा सारण को उत्तर की ओर के द्वार पर रखा इसके अतिरिक्त रावण स्वयं सपरिवार उस उत्तर द्वार पर ही रहा। श्रीराम निश्चित ही उत्तर की ओर स्थित द्वार पर आयेंगे, इस कल्पना से स्वयं रावण वहाँ पर अत्यन्त सावधानीपूर्वक विद्यमान था। विरुपाक्ष को अगणित सैन्य देकर मध्य भाग में रहने के लिए कहा तथा किसी द्वार पर यदि कोई कमी हो तो विरुपाक्ष को वहाँ शीघ्र पहुँचने के आदेश दिये श्रीराम की सेना के वानरों ने लंका भुवन देखा तथा दुर्ग को जीतने की उत्सुकता प्रदर्शित की। वे सभी वानरगण श्रीराम के चारों ओर हाथ जोड़कर खड़े हो गए। सभी ने श्रीराम की वंदना करते हुए कहा "हमें लंका पर विजय प्राप्त करने के लिए शीघ्र आज्ञा दें, स्वामी।" योद्धाओं के आज्ञा माँगने पर विभीषण ने उन्हें रोका तथा श्रीराम को दुर्ग के सम्बन्ध में जानकारी दी।

विभीषण का लंका-दुर्ग की सुरक्षा के विषय में कथन– विभीषण बोले– "दुर्ग की विशिष्टता इस प्रकार है कि अगर शत्रु युद्ध करने जाता है तो उसकी सेना ही मारी जाती है। गुप्त गोल शतघ्नी तोपें, अग्निगोल, प्रबल पाषाण इत्यादि सामग्री से उस दुर्ग को सशक्त किया गया है, जिससे शत्रुसेना का निर्दलन किया जा सके। मेरे चारों प्रधान लंकाभुवन की छानबीन कर दुर्ग की वार करने की कुशलता एवं रक्षण व्यवस्था सम्बन्धी सूचना लेकर आये हैं।" इस पर श्रीराम ने विभीषण से पूछा– "तुम्हारे चारों प्रधानों को सभी पहचानते हैं तब वे सूचनाएँ कैसे लाये ?" विभीषण बोले– "मेरे चार प्रधानों के नाम अनल, हर, प्रघस तथा संपाती हैं। वे चारों अत्यन्त बुद्धिमान तथा अपनी इच्छानुसार रूप बदल सकने की क्षमता रखने वाले हैं। अत: उन्होंने पक्षी के रूप में लंका में प्रवेश कर दुर्ग की संरक्षण व्यवस्था की जानकारी प्राप्त की और शीघ्र यहाँ वापस लौट आये। पूर्व की ओर प्रहस्त, दक्षिण की ओर महोदर अथवा महापार्श्व तथा पश्चिम की ओर इन्द्रजित् अपनी सशस्त्र सेना के साथ विद्यमान हैं। उत्तर की ओर द्वार पर नाम मात्र के लिए शुक-सारण हैं तथा रावण स्वयं सेना सहित वहाँ विद्यमान है मध्य भाग में सेना समुदाय खड़ा है, जिसका प्रमुख विरुपाक्ष है। जिस द्वार पर भी कमी होगी, उस द्वार पर वह सहायतार्थ जायेगा, ऐसा निश्चय हुआ है। वानरों के समूह का वध करने के लिए उस क्रोधी रावण ने प्रत्येक बुर्ज पर गुप्त रूप से अनेक तोपें लगाकर रखी हैं। वानरों द्वारा दुर्ग पर आक्रमण करते ही गुप्त रूप से उनका वध करने के लिए अलग अलग प्रकार के अस्त्र-शस्त्र रावण ने प्रहार करने हेतु लगाकर रखे हैं। दुर्ग के चारों ओर से सुरक्षा के कड़े उपाय किये हैं। दुर्ग से भिड़ते ही विविध यन्त्रों से वानर मारे जाएँगे। अत: आप ऐसा न करें। प्रत्येक तोप पर सफेद, पीले, लाल इत्यादि रंगों की ध्वजाएँ हैं, जो दुर्ग के चारों ओर समान रूप से शोभायमान हैं प्रत्येक बड़े बुर्ज के मुख्य दर्शनीय हैं तथा उसके किनारे अलग-अलग पद्धतियों से तराशे हुए हैं। सर्वत्र ध्वज एवं पताकाएँ सुसज्जित हैं तथा राक्षस दृढ़ता पूर्वक उसकी रक्षा कर रहे हैं।"

वानरों की प्रतिक्रिया, राम द्वारा सैन्य व्यूह की रचना– विभीषण का निवेदन सुनकर वानर बोले "हमारी उड़ान के समक्ष दुर्ग और यन्त्रों की क्या बिसात ? वानरों द्वारा सीधे लंका के शिखर पर उड़ान भरने पर दुर्ग के शस्त्रों के वार कैसे पहुंचेंगे ?" वानरों के वचन सुनकर विभीषण आश्चर्यचकित हो गए। वानरों का पुरुषार्थ सुनकर श्रीराम आनन्दित होकर हँसने लगे। "दुर्ग के तल पर जो लोग रहेंगे वे तोपों के प्रहार से मारे जाएँगे, वानर दुर्ग के ऊपर उड़ान भर सकते हैं तथा यान्त्रिक हथियार सामने वेगपूर्वक वार करते हैं। विभीषण द्वारा दी गई इस जानकारी तथा दुर्ग की रचना का विचार कर श्रीराम ने सुग्रीव को सूचना देते हुए कहा– "दुर्ग के द्वार को रोक कर रखें, दुर्ग को भेदने की व्यवस्था की जाय। दुर्ग को चारों ओर से घेर लिया जाय। किसी को भी आगे पीछे न जाने दिया जाय। दुर्ग की घेराबंदी इस प्रकार की जाय कि अन्दर बाहर आवागमन सम्भव न हो सके। दुर्ग के पूर्व द्वार पर प्रहस्त है, नील अपने श्रेष्ठ वानर दल सहित जाकर उससे टक्कर लेगा। दक्षिण दिशा की ओर स्थित द्वार पर महापार्श्व, महोदर नामक महावीर हैं, बालिपुत्र अंगद उन पर आक्रमण कर युद्ध करेगा पश्चिम द्वार की रक्षा इन्द्रजित् कर रहा है, उसका वध करने के लिए तथा राक्षसों का संहार करने के लिए महाबली हनुमान को नियुक्त करें तथा सर्वप्रमुख एवं कपटी रावण उत्तर द्वार पर है, उसका कुल सहित निर्दलन करने के लिए हम राम लक्ष्मण दोनों हैं। राजा सुग्रीव, शरणागत विभीषण सहित समस्त सेना पर ध्यान रखने के लिए मध्यभाग में रहेंगे। किस द्वार पर कैसा युद्ध चल रहा है ? युद्ध में वानर वीरों की आवश्यकता का ध्यान रखते हुए वे उनकी सहायता के लिए जायेंगे।"

श्रीराम द्वारा दुर्ग के प्रतिबंध एवं सैन्य रचना के विषय में बताये जाने के बाद वानरों ने उनकी सूचनानुसार बताये गए द्वारों पर जाकर भीषण पराक्रम करने का निश्चय किया। वानर वीरों द्वारा की गई अद्भुत बातें लक्षणीय थीं। उन वीरों ने यह समझते हुए कि दुर्ग में नीचे तल पर रहने पर तोपों का वार झेलना पड़ेगा, एक अलग योजना बनायी लंका से ऊँचे-ऊँचे पर्वत लाकर उन्होंने उन्हें द्वार के आगे रख दिया उन पर्वतों पर वानर वीर चढ़ गए इस प्रकार लंका-दुर्ग उनसे नीचा हो गया। तत्पश्चात् राक्षस-सेना दुर्ग की दीवार के बीच में फँस गई वानर-वीर उन पर शिलाओं से प्रहार करने लगे। राक्षस दबकर मरने लगे। वानरों के इस भीषण वार के कारण दुर्ग रक्षक भाग गये। नित्य दुर्ग की रक्षा करने वाले राक्षस वानरों को अपने से ऊपर चढ़ा हुआ देखकर विचलित हो गए, राक्षस नीचे एवं वानर ऊपर ऐसी विपरीत स्थिति निर्मित हो गई थी। भीषण पर्वत लाकर वानरों को उस पर चढ़ा हुआ देखकर राक्षस आश्चर्य करने लगे। क़िले के प्रत्येक बुर्ज पर असंख्य राक्षस वीर थे। उन पर वानर वीर पर्वतों से आघात कर रहे थे। सहस्रों वीर उन आघातों से चूर-चूर हो रहे थे, साथ ही क़िले के बुर्ज भी टूट रहे थे। इस प्रकार भीषण युद्ध करने के साथ ही वानरों ने दुर्ग पर स्थित तोपों को उठाकर समुद्र में फेंक दिया, दुर्ग के चारों ओर विद्यमान बुर्ज पर नियुक्त रक्षक-राक्षसों की वानरों के आघात के कारण दुर्दशा हो गई। किसी की मृत्यु हो गई थी तो कोई घायल होकर कराह रहा था। जो बच गए थे, वह भयभीत होकर भाग गये वानरों के भय से दुर्ग खाली हो गया। दुर्ग की दीवारों पर स्थित राक्षस नष्ट हो गए। वानर वीरों ने अपने पराक्रम से दुर्ग के भीतर स्थित लंकानगरी में भी त्राहि-त्राहि मचा दी। किसी का मुकुट छीन लिया तो किसी के शस्त्र छीन लिए। वानर वीरों द्वारा ऐसा करते हुए यदि कोई उन पर प्रहार करता भी था तो वानर उछल कर आकाश में पहुँच जाते थे। बाज़ार में स्थित रत्नों एवं मोतियों को वानर स्पर्श भी नहीं कर रहे थे परन्तु बाज़ार में बिक रहे फलों को छीनकर आनन्दपूर्वक खा रहे थे, गुड़ की भेलियाँ

खा रहे थे। दुकान में विद्यमान शहद को गटागट पी रहे थे। चने एवं बेर खाते हुए उछल-कूद मचा रहे थे. वानरों द्वारा इस प्रकार धावा बोलने पर राक्षस भयभीत होकर छिपकर बैठ गए। घर-घर में तोड़ फोड़ कर वानरों ने राक्षसों की स्थिति दयनीय कर दी थी।

श्रीराम द्वारा सुवेलगिरि पर चढ़कर युद्ध का निरीक्षण– श्रीराम ने सोचा कि 'सुवेलगिरि पर चढ़कर वहाँ से वानर वीरों द्वारा लंका में किये जाने वाले युद्ध का निरीक्षण किया जाय।' तब उन्होंने लक्ष्मण से सलाह ली, राजा सुग्रीव को इस विषय में बताया तथा विभीषण से अनुमति लेने के पश्चात् ही उन्होंने प्रस्थान किया. इस प्रकार सबको सूचित करने के पश्चात् शीघ्र प्रस्थान किया। श्रीराम के विचार सुनकर वानरों ने शीघ्र जाकर सुवेलगिरि पर्वत की शिलाओं को सुव्यवस्थित कर बिछाया। सुवेलगिरि पर से लंका के भीतर तक दिखाई देने के कारण ही श्रीराम ने वहाँ निवास किया। रण-वाद्यों की ध्वनि एवं वानर समूह के साथ श्रीराम उस पर्वत पर आरूढ़ हुए। उन्होंने वहाँ से लंका का निरीक्षण करने के पश्चात् वानरों को सूचनाएँ दीं। "लंकाधीश को संत्रस्त कर शीघ्र दुर्ग पर विजय प्राप्त करें राक्षस भयभीत हैं। कोई लंका के बाहर नहीं निकल रहा है अतः आप ही अपने परिवार सहित दुर्ग में प्रवेश कर दुर्ग को जीत लें।" यह सूचना सुनकर सुग्रीव ने वानरों को आज्ञा दी– "राक्षसों का वध कर दुर्ग में प्रवेश करें।"

विभीषण श्रीराम के समीप जाकर बोले - "लंका दुर्ग के तल पर जो आते हैं, उनका नाश हो जाता है। इसके लिए रावण ने गुप्त स्थानों पर तोपें रखी हुई हैं। लंका में वायु भी प्रवाहित होने से डरती है, पक्षी वहाँ विचरण नहीं कर सकते परन्तु वानरों ने तो चमत्कार कर दिखाया तथा विपरीत ही घटित हो गया। लंका से भी ऊँचे पर्वत लाकर उस पर चढ़कर वानर वीर युद्ध के लिए तैयार हुए। श्रीराम-प्रताप के चमत्कार के ही कारण लंका दुर्ग नीचे रह गया। वानर वीरों ने पर्वत पर चढ़कर अपने पराक्रम से राक्षसों का सर्वनाश कर दिया। उन वानरों को श्रीराम से ही सामर्थ्य प्राप्त हुआ, जिसके बल पर वे यह चमत्कार कर सके। पर्वत से पर्वत जोड़कर उन्होंने सम्पूर्ण लंका को ही घेर लिया है। दुर्ग की दीवारें गिराकर तोपों को जड़ सहित उखाड़ कर उसके गोलों से समुद्र भर दिया है। वानर वास्तव में महापराक्रमी हैं। वानरों के भय से लंका के बाज़ार, मार्ग निर्जन हो गए हैं। कोई बाहर नहीं निकल पा रहा है, इस प्रकार राक्षसों की दुर्दशा हो गई है।" ऐसा कहकर विभीषण वानरों को सम्बोधित करते हुए बोले "अब युद्ध करते हुए लंकाभुवन पर अधिकार कर लें। श्रीराम के रक्षक होने पर उस दशमुख की क्या बिसात ? अतः मन में किसी प्रकार की शंका न रखते हुए लंका पर अवश्य विजय प्राप्त करें।" यह सुनकर वानरों ने श्रीराम का जय-जयकार किया तथा भुभुःकार करते हुए लंका की ओर प्रस्थान किया।

लंका को घेर कर वानरों द्वारा लंका में प्रवेश– श्रीराम की आज्ञा के अनुसार वानरों ने लंका को घेर लिया। जिस प्रकार गुड़ को चींटियाँ घेर लेती हैं, उसी प्रकार वानरों ने लंका दुर्ग को घेर लिया. उन्हें अरगलाएँ (बाधाएँ) नहीं हटानी पड़ीं, शृंखलाएँ नहीं तोड़नी पड़ीं, द्वार नहीं खोलने पड़े वानरों ने उड़ान भरकर दुर्ग में प्रवेश कर लिया। राक्षस वानरों पर शस्त्र से वार नहीं कर पा रहे थे क्योंकि वानर ऊँचे पर्वत पर थे। यंत्रों से वार नहीं कर सकते थे क्योंकि वानरों ने उन्हें समुद्र में डुबा दिया था। वानर-वीरों ने पर्वतों की सहायता से मानों दूसरी लंका का निर्माण कर लिया था, जिस पर चढ़कर उन्होंने

लंका दुर्ग मे प्रवेश कर लिया। लंका त्रिकूट पर असंख्य वानरों ने जाकर करोड़ों राक्षसों को मार डाला उस समय सुग्रीव उनके पीछे संरक्षक के रूप में खड़े थे। वानरों द्वारा लंका में प्रवेश कर राक्षसों का वध करने के कारण लंका के घरों में त्राहि त्राहि मच गई। इस प्रकार वानरों ने राक्षसों को तहस-नहस कर डाला श्रीराम के आज्ञाकारी लाखों करोड़ों वानरों के समूह के समूह लंका में विद्यमान मठों मंडपों का आवेशपूर्वक विनाश करने लगे। पताकाएँ फाड़ना, तोरण तोड़ना, सात मंजिलों के राजभवन और भवन गिराने जैसे विध्वंसकारी कार्य वानर कर रहे थे खाइयों में मिट्टी, पर्वत-शिखर तथा लकड़ियाँ डालकर उन्होंने खाइयाँ पार कर लीं। दुर्ग की दीवारें गिराकर राक्षसों का घात करते हुए पराक्रमी वानर विजयी होने का आनन्द मना रहे थे। "हम श्रीराम के दूत लंका में प्रवेश कर गये, श्रीराम यशस्वी हुए। उन्हें नित्य विजय प्राप्त होती है। लक्ष्मण भी सदा यशस्वी होते हैं। श्रीराम के कारण सुग्रीव को राज्य प्राप्त हुआ।" वे इस प्रकार की हर्षपूर्ण गर्जनाएँ कर रहे थे। "श्रीराम-नाम का जय जयकार करते हुए हमने शीघ्रतापूर्वक लंका पर विजय प्राप्त की। श्रीराम नित्य विजयी हैं। सम्पूर्ण लंका का राज्य बिभीषण को प्राप्त हुआ।" वानरों द्वारा स्वानंदपूर्वक हर्षयुक्त उद्गार प्रस्फुटित हो रहे थे। इस प्रकार नाचते हुए एवं गरजते हुए वानर लंका में हर्षपूर्वक विचरण कर रहे थे। राक्षसों ने संत्रस्त होकर रावण से अपनी व्यथा कही। पर्वत शिलाओं एवं शिखरों से प्रहार करते हुए वानर आये हैं; दुर्ग से योजन भर दूरी में लंका के चारों ओर पर्वत रखकर उस पर चढ़कर वे राक्षसों का संहार कर रहे हैं। वे महाबलवान् वानर पर्वत पर चढ़े हुए हैं और लंका-दुर्ग उन पर्वतों के तल पर है। अतः ऊपर से पर्वत शिला एवं शिखरों की वर्षा करने के कारण राक्षस उनके नीचे दबकर मारे जा रहे हैं। वानरों पर हथियार न चला सकने के कारण राक्षस तिलमिला रहे हैं। पर्वत शिखर पर होने के कारण वानरों पर यन्त्रों के वार भी नहीं चल पा रहे हैं। राक्षस पूरी तरह से असहाय हो गए हैं। वानरों को न तो दुर्ग गिराने पड़ रहे हैं, न ही द्वार खोलने पड़ रहे हैं। अपनी छलाँगों से वे त्रिकूट तक पहुँच गए हैं। वानरों के वार के भय से राक्षस प्राण बचाकर भाग रहे हैं तथा दुर्ग की रक्षा सम्भव नहीं हो पा रही है।'

इस प्रकार लंका को मुक्त कर रामदूत वानरों ने वहाँ प्रवेश कर लिया है। वे राम नाम की जयजयकार कर रहे हैं। प्रधान व्यर्थ ही आत्म-प्रशंसा में कह रहे हैं कि हम करोड़ों वानरों का वध कर देंगे परन्तु प्रत्यक्ष रूप से वानरों द्वारा आक्रमण करते ही वे छिप गए हैं वानरों ने वेग पूर्वक प्रहार कर दुर्ग की तटबंदी और दीवारें गिरा दी हैं। खाइयाँ पट दी हैं और लंका को तहस-नहस कर रहे हैं " राक्षसों द्वारा यह समाचार सुनते ही रावण विचलित हो उठा। वह लंका-भुवन की छत पर चढ़कर लंका में प्रविष्ट वानरों को देखने लगा। अन्दर बाहर, वन-उपवन में सर्वत्र वानरों के समूह व्याप्त हैं। वानर सेना असंख्य होने के कारण वह लंका में समा नहीं पा रही थी। इसीलिए वे दुर्ग की तटबंदी पर, दीवारों पर वृक्षों पर सर्वत्र व्याप्त थे। वानरों से व्याप्त दुर्ग की चहार दीवारी पीली दिखाई दे रही थी, वृक्ष और वन भी पीले दिख रहे थे। यह वानरों के रंग की आभा का परिणाम था। लंका परिसर में अन्दर बाहर, सर्वत्र वानरों की भीड़ देखकर रावण भयभीत हो उठा। वानर इतने समीप कैसे पहुँच गए ? इस विचार से वह चिन्तित हो उठा गोपुर पर चढ़े हुए रावण को देखकर वानर बार बार उसे युद्ध के लिए आमन्त्रित कर रहे थे। 'हे नपुंसक, बाहर आओ' कहते हुए उसका उपहास कर रहे थे। यह सब प्रतिक्रियाएँ देखकर रावण उद्विग्न हो उठा। 'ये तृण, पर्ण खाने वाले वानर, मेरे समक्ष युद्ध का आह्वान कर रहे हैं अतः वे

निश्चित ही महापराक्रमी होंगे' यह विचार कर वानरों के निर्दलन के लिए वह गोपुर से नीचे उतरा तथा शीघ्र सेना भेजने का निश्चय किया।

राक्षस सेना तथा वानर-सेना का युद्ध– वानर सेना के लंका में प्रवेश के कारण रावण क्रुद्ध हो उठा तथा उसने अपनी सेना वानरों के निर्दलन के लिए भेजी। राक्षस-सेना तथा वानर-सेना में भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया। एक दूसरे को परास्त करने के लिए दोनों सेनाएँ उत्साहपूर्वक युद्ध करने लगीं। राक्षस चीखते हुए आये तो वानरों ने श्रीराम-नाम का भुभुःकार किया। दोनों परस्पर एक दूसरे को परास्त करने के लिए निष्ठुरतापूर्वक वार करते हुए परस्पर भिड़ गए। राक्षसों द्वारा शस्त्रों की वर्षा होती थी तथा वानर तत्परता पूर्वक सहज ही उससे बच निकलते थे। वानरों द्वारा पर्वतों का आघात करने पर राक्षस कराहने लगते थे। राक्षस जब वानरों की पूँछ पकड़कर आवेशपूर्वक उसे उखाड़ने का प्रयत्न करते थे तब वानर राक्षस की आँखें नोंचकर उन्हें अंधा बना देते थे। बायें हाथ से आँखें फोड़कर तथा दायें हाथ से थप्पड़ मारकर वानर राक्षसों को नीचे गिरा देते थे, इस पर क्रोधित होकर राक्षस वानरों के नाक कान कुतरते हुए उनके पैर पकड़कर, उखाड़ने का प्रयत्न करते थे। तब वानर अपनी पूँछ से राक्षसों की गरदन मरोड़ते हुए उन्हें धराशायी कर देते थे। इस प्रकार राक्षस तथा वानरों को रणभूमि में झड़पें हो रही थीं। वानर राक्षसों के केश पकड़कर उन्हें नीचे गिरा देते थे तथा फिर निष्ठुरता पूर्वक मुष्टियों से प्रहार करते थे। राक्षसों द्वारा आवेश-पूर्वक गदा, मुद्गर, शूल, शक्ति आदि से प्रहार किया जाता था तो वानर शाल, ताल वृक्ष, शिला पर्वत आदि से वार करते थे। छाती पर, सिर पर वानरों द्वारा आघात होते थे। इसके अतिरिक्त पूँछ से राक्षसों की छाती पर वार कर उन्हें गिरा रहे थे, जिसके कारण राक्षसों की पंक्तियाँ धराशायी हो रही थीं।

राक्षस जब शस्त्रास्त्रों की ध्वनि करते हुए रथ में बैठकर आते थे तो उन्हें देखकर वानर स्वयं उनके पास जाते थे। राक्षसों द्वारा शस्त्रों से वार करने पर वानर उछलकर आकाश में चले जाते थे। फिर पर्वतों की वर्षा कर वानर रथों को चूर-चूर कर देते थे। वानर वेग-पूर्वक आकर क्षणभर में ही रथों का मकराकृति मुख पकड़कर जमीन पर पटककर उन्हें तहस नहस कर डालते थे। उन्होंने ऐसे असंख्य रथों को नष्ट कर दिया। अतः राक्षस रणभूमि एवं लंका, त्रिकुट पर हाहाकार मचाने लगे। जब कुछ वानर रणभूमि में गिर पड़ते थे तब श्रीरामनाम के स्मरण से उनकी सारी व्यथाएँ दूर होकर वे पुनः युद्ध के लिए तैयार हो जाते थे। नाम स्मरण मात्र से प्रह्लाद के शरीर को शस्त्र, क्षति न पहुँचा सके। यहाँ पर तो प्रत्यक्ष श्रीराम साथ होने पर वानरों को कैसा भय ? श्रीराम के दूत होने के कारण वानर गज, घोड़े, रथ एवं राक्षसों का नाश कर सके। राक्षस एवं वानरों के इस युद्ध के कारण रणभूमि रक्त एवं मांस से सन गई। पर्वत एवं पाषाणों के ढेर लग गए; वानरों द्वारा पर्वत के आघात से राक्षसों को प्राणान्त समक्ष दिखाई देने लगा। वार से बचने के लिए जब राक्षस ढाल हाथ में लेते थे तब ढाल सहित मारे जाते थे। पर्वत के आघात से राक्षसों की मृत्यु निश्चित होती थी। पर्वतों पर शस्त्रों के आघात निरुपयोगी सिद्ध होते थे। बाणों के वार व्यर्थ हो रहे थे अतः राक्षस हाहाकार करते हुए लंका में भागने लगे। दोनों सेनाएँ समान रूप से शूर तथा समान बलशाली होने के कारण उनमें घनघोर युद्ध हुआ। परस्पर एक दूसरे पर गरजते हुए, वार करते हुए रणोन्मत्त होकर वे सेनाएँ लड़ीं। राक्षस वानरों के पर्वताघात से त्रस्त होकर भागे। राक्षसों द्वारा पलायन कर पीछे हटने के कारण वानर सेना विजयी हुई। यह देखकर श्रीराम एवं सुग्रीव आनन्दित हो उठे।

अध्याय ५

[रावण एवं सुग्रीव का युद्ध]

सुवेल गिरि पर बैठकर श्रीराम मनोहारी लंका को देख रहे थे। उनके समीप सुग्रीव वानर-समूह सहित बैठे हुए थे। दो योजन दूर स्थित सुवेल गिरि के शिखर पर वानरों की सभा शोभायमान थी, वहाँ से उन्हें लंकानगरी, वहाँ के सुन्दर वन, रावण के भवन के गोपुर इत्यादि सब रमणीय दिखाई दे रहे थे। श्रीराम की सेना के वानर-समूह का लंका में आने का समाचार सुनकर उसे देखने के लिए रावण शीघ्र गोपुर (छत) पर गया। रावण काजल सदृश काले वर्ण का था। उसने उज्ज्वल स्वर्णालंकार धारण किये हुए थे। वह लाल वस्त्र धारण किये हुए था उसके साथ राक्षस-समूह भी था उसके ऊपर दो चँवरें ढल रही थीं। मस्तक पर छत्र लगा हुआ था। रावण के ऐसे ठाटबाट देखकर सुग्रीव का क्रोध उफन आया। वह आवेशपूर्वक बोला- "मेरे स्वामी की पत्नी चुराने वाला अपने मस्तक पर छत्र कैसे धारण किये हुए है, मैं इसका वध कर दूँगा।" क्रोध से वह अपनी पूँछ उमेठने लगा, उसका रोम-रोम काँप रहा था, वह स्वयं को रोक न सका। श्रीराम से पूछे बिना तथा किसी को भी अपना विचार बताये बिना वह अचानक गोपुर पर रावण के समक्ष जा खड़ा हुआ।

सुग्रीव का रावण से युद्ध– सुग्रीव द्वारा गोपुर पर छलाँग लगाते ही राक्षस चौंक गए, रावण सशंकित हो उठा सब भयभीत थे। क्या करना चाहिए, ये राक्षसों की समझ में नहीं आ रहा था। तब सुग्रीव रावण को सम्बोधित कर गरजते हुए बोला "मैं श्रीराम का सखा, साथी और सेवक, सुग्रीव नाम से विख्यात हूँ, यहाँ तुम्हारा वध करने के लिए आया हूँ मेरे हाथों से अब लंकानाथ बच नहीं पाएगा"। इस प्रकार कठोरतापूर्वक बोलते हुए सुग्रीव निःशंक रूप से खड़ा हो गया। इस पर किसी ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। सभी राक्षस नीचे मुख करके स्तब्ध होकर खड़े रहे। सुग्रीव क्षण भर के लिए खड़ा रहा, तब भी रावण कुछ नहीं बोला। तब सुग्रीव ने छलाँग लगाकर रावण की छाती पर लात मारी, मुकुट खींचने लगा; मुकुट की छीना झपटी में दोनों पराक्रमी महावीर भूमि पर गिर पड़े उस समय रावण मूर्च्छित हो गया। सुग्रीव ने मुकुट लेकर शीघ्रतापूर्वक वहाँ से प्रस्थान किया तभी रावण की मूर्च्छा दूर हुई। मुकुट लेकर सुग्रीव को जाते देखकर, वह उससे बोला- "रुको, मैं मूर्च्छित हो गया था परन्तु तुम युद्ध किये बिना कैसे जा रहे हो ? मेरे ऊपर छलाँग लगाकर अब पलायन कर रहे हो मैं अपने मात्र एक थप्पड़ से तुम्हारी गरदन निश्चित ही तोड़ डालूँगा। अगर तुम्हारे पास पराक्रम एवं पुरुषार्थ हो तो पुनः युद्ध करने आओ। युद्ध के बिना वापस लौटने पर तुम कायर कहलाओगे" रावण इस प्रकार क्रोधित होकर सुग्रीव से बोला और छलाँग लगाकर उसने सुग्रीव को गिराने का प्रयत्न किया तब सुग्रीव अट्टहास करते हुए बोला "बस तुम्हारा पराक्रम इतना ही था" ? तत्पश्चात् सुग्रीव ने रावण को खींचा और वह मुँह के बल गिरा। अपने बीस हाथ टेकते हुए रावण सँभल कर उठ खड़ा हुआ।

रावण अत्यन्त क्रुद्ध था। शस्त्रास्त्र से युद्ध करने का विचार त्याग कर वह सुग्रीव पर झपट पड़ा। वह सोच रहा था कि 'वानर को दो हाथ हैं, मैं बीस हाथों से समर्थ हूँ इससे वानर को दबाने पर पीड़ा से उसकी मृत्यु हो जाएगी। इस पत्ते खाने वाले वानर में क्या शक्ति होगी; मैं सबल लंकापति, इस वानर को हाथों-हाथ मार डालूँगा।' रावण ऐसा सोच ही रहा था कि उस महावीर सुग्रीव ने रावण के बीसों हाथ

अपनी पूँछ से बाँध डाले। ऐसा होने से रावण विचलित हो उठा। वह पूँछ को काटने लगा तब सुग्रीव ने हँसकर उसकी उपेक्षा करते हुए उसे छोड़ दिया। तत्पश्चात् दोनों मल्लयुद्ध करते हुए परस्पर भिड़ गए तथा पलटी, लोट, गुप्त थप्पड़ इत्यादि अनेक दाँव पेंचों की सहायता से एक दूसरे पर आघात करने लगे। उनका यह अद्भुत युद्ध दीर्घकाल तक चल रहा था। दोनों पसीने से तर थे। मर्मस्थल पर वार लगते ही पीड़ा से वे कुछ क्षण के लिए मूर्च्छित हो जाते थे। नखों के वार से दोनों के शरीर रक्त-रंजित थे। ऐसे वे महावीर वसंत ऋतु में पुष्पित किंशुक वृक्ष सदृश दिखाई दे रहे थे। एक के द्वारा मुष्टिका प्रहार करते ही दूसरा उससे बचने का प्रयास करता था। उस वार से बचते ही वे आवेशपूर्वक लात मारते थे। लात से बचते ही हाथों से प्रहार करते हुए एक दूसरे को भूमि पर गिरा देते थे। तत्पश्चात् कोहनी से प्रहार करते थे। लातों से वार करते थे। परस्पर धक्के देकर धराशायी करते हुए एक दूसरे की छाती पर बैठ जाते थे। मस्तक पर हाथों से प्रहार करने लगते थे। इस प्रकार चलने वाले उन दोनों के घनघोर युद्ध को देखने के लिए सुरवर, वानर तथा राक्षस एकत्र हो गए।

गोपुर की भूमि पर उन दोनों का युद्ध बहुत समय तक चला। उनका वह युद्ध देखकर कलिकाल भी थर-थर काँप रहा था। उनके युद्ध के समय दोनों ओर के प्रमुख वीर उन पर नियन्त्रण के लिए दौड़ कर जाते थे। उस समय उन्हें भी मल्ल विद्या का प्रयोग करना पड़ता था। एक दूसरे को नीचे गिराकर जब वे पराक्रमी वीर उन्हें किनारे करने लगते थे तब दूसरा उसे पकड़कर एक ओर धकेल देता था। इस प्रकार एक दूसरे से भिड़ते हुए वे वीर कभी-कभी निश्चेष्ट गिर जाते थे। तभी पुन: दोनों का युद्ध प्रारम्भ हो जाता था। दायीं-बायीं तरफ से विचित्र वार होने लगते थे। कोहनियों से पेट पर वार किया जाता था। मुख पर थप्पड़ों से वार कर एक दूसरे को गोल गोल घुमाते थे। ऐसा करते हुए वे गोपुर से सभा-स्थान की भूमि पर जा गिरे। तब भूमि को स्पर्श किये बिना वे आकाश में उड़ान भर कर एक दूसरे से जा भिड़े। वानर (सुग्रीव) स्वयं आकाश में उछल-कूद करने वाला तथा दूसरा (रावण) स्वयं आकाश में संचार करने वाला होने के कारण निराधार आकाश में परस्पर जूझ रहे थे। उनका वह युद्ध देखकर सुरासुर आश्चर्यचकित हो उठे।

सुग्रीव और रावण महावीर बीच में क्षण भर रुककर, अपनी साँसों को स्थिर कर पुन: एक दूसरे को ललकार कर भीषण युद्ध के लिए भिड़ गए। हाथों के घेरे में फँसाते हुए जोर लगाकर वे प्रतिस्पर्धी को जमीन पर गिरा देते थे। दोनों में कोई भी कम नहीं पड़ रहा था क्योंकि दोनों ही मल्लयुद्ध में निष्णात थे. रावण द्वारा बीस हाथों से वार करते ही सुग्रीव ने जोर से धक्का दिया, जिससे रावण के दसों मस्तकों में झुनझुनी फैल गई और उसे वेदना होने लगी। रावण यह समझ गया कि वानर को वश में कर पाना असंभव है। उससे युद्ध का आवेश भी छोड़ा नहीं जा रहा था। वह पुन: युद्ध के लिए सुसज्जित हुआ। पुन: एक दूसरे पर वेगपूर्वक आक्रमण करते हुए वे अपना युद्ध-कौशल दिखाने लगे। हाथ पैरों से आघात करते हुए मल्लविद्या के संकेतानुसार दोनों जूझने लगे। परस्पर एक दूसरे की हड्डियों को चूर-चूर करने के लिए उत्सुक होकर भिड़ने लगे। रावण द्वारा बीस हाथों से लगाये गए बंधन को दो हाथों से छुड़ाते समय सुग्रीव ने ऐसा वार किया कि रावण छटपटाने लगा। सुग्रीव का वार इतना तीव्र था कि रावण को ऐसा लगा कि उसके प्राण नहीं बच पाएँगे परन्तु सुग्रीव ने उसे छोड़ दिया। तब रावण पुन: युद्ध के लिए आया। छाती पर वार, मस्तक पर मस्तक से वार, दंडी, मुंडपी, ढाका (मल्ल युद्ध के वार) और पैरों से धक्का देते हुए उनका युद्ध चल रहा था। पैरों से कुशल पैंतरा लेकर वे परस्पर भिड़ गए और गोपुर

की भूमि पर जा गिरे। उँगलियाँ मोड़कर, चकमा देते हुए झकझोर कर, मुष्टिका प्रहार कर उल्टे-सीधे घुमाते हुए ऐसे अनेक प्रकार के वार करते हुए, दाँवपेंच करते वे दोनों कुशलतापूर्वक परस्पर जूझते रहे

सुग्रीव और रावण दोनों राजा मल्लयुद्ध की कला में प्रशिक्षित एवं निष्णात थे। इसी कारण अन्तराल में निरन्तर चक्राकार घूमने पर भी उन्हें चक्कर नहीं आ रहे थे। युद्ध विषयक ज्ञान का उपयोग करने के कारण युद्ध से वे क्षुब्ध नहीं थे अपितु रण के मद में वे अत्यन्त आनन्द का अनुभव कर रहे थे। जिस प्रकार हाथी अपने दाँतों का उपयोग करते हुए प्रतिस्पर्धी से युद्ध करता रहता है, उसी प्रकार वे दोनों वीर अपने हाथों के बल से युद्ध कर रहे थे। दीर्घ काल तक युद्ध करने पर भी उन्हें श्रम का अनुभव नहीं हो रहा था। क्रौंचाकार मंडल, चक्राकार फिरकी, सुरगाकार ऊपर उठाकर पटकना ऐसे विविध प्रकारों से उनका मल्लयुद्ध चल रहा था वे युद्ध में मृग-गति, मेंढा गति, बाज की गति, गज-गति, कुक्कुट-गति इत्यादि का प्रयोग कर रहे थे। वे युद्ध में पीछे हटने को तैयार न थे। वे सिंह सदृश आवेशपूर्वक एक दूसरे पर छलाँग लगाते हुए वार कर रहे थे। उन दोनों को ही युद्ध-शास्त्र का सम्पूर्ण ज्ञान था नाना प्रकार के मंडल तथा विविध गतियों का ज्ञान था। इसीलिए दोनों ही विजय प्राप्ति के लिए उन्मत्त होकर वार कर रहे थे मल्ल विद्या की कुशलता से दोनों ही एक दूसरे को युद्ध में मारने के लिए निर्णायक वार कर रहे थे। कभी तिरछे कभी चक्राकृति, ऐसे पैरों के पैंतरे (आसन) बदलकर एक दूसरे के वार से बचने का प्रयास कर रहे थे, बिल्लियों के सदृश एक दूसरे पर गुर्रा रहे थे बकरे के सदृश प्रथम थोड़ा पीछे हटकर, फिर दौड़ते हुए एक दूसरे से भिड़ जाते थे नाना प्रकार की गतियों का प्रयोग कर वार कर रहे थे। बैल के मूत्र सदृश वक्रगति, स्थान, मान, मंडल इत्यादि का प्रयोग कर एक दूसरे को मात देने के लिए जूझ रहे थे। पैरों के पैंतरे से धराशायी करने के पश्चात् रणभूमि में मृत पड़े हुए वीर को जिस प्रकार पैरों से लथाड़ते हैं, उसी प्रकार वे परस्पर एक दूसरे को लथाड रहे थे एक दूसरे से भिड़ कर वह मर्मस्थल पर वार करने का प्रयत्न करते थे अवसर पाकर उछल कर दूसरे को पटकते हुए छाती एवं सर्वांग पर प्रहार करने लगते थे। इस प्रकार पकड़कर, मारकर, गिराकर तथा भीषण स्वर के साथ उनका युद्ध चल रहा था, ऐसा लगते हुए भी कि अब युद्ध समाप्त होगा, युद्ध समाप्त नहीं हो रहा था।

सुग्रीव तथा रावण वेगपूर्वक दौड़ते हुए एक दूसरे पर प्रहार कर रहे थे तथा पटककर बलपूर्वक बैठा कर रखते थे बैठने पर सीधे उठना उनके लिए संभव नहीं हो पाता था। तब वे अपनी आत्म शक्ति का प्रयोग कर बलपूर्वक उठते थे कभी पीठ की ओर से तथा कभी सामने से भिड़कर भूमि पर गिराते थे। भूमि पर गिरते ही छलाँग लगाकर अन्तराल में पहुँच जाते थे। इस प्रकार नाना प्रकार से वे युद्ध कर रहे थे। घुटने, कोहनी तथा मुट्ठियों से आघात कर, गरदन मरोड़कर विविध प्रकार से प्रतिस्पर्धी पर प्रहार कर तथा शरीर सूक्ष्म कर एक दूसरे के प्रहार से बचते हुए, वे दोनों कुशल, प्रवीण योद्धा परस्पर जूझ रहे थे। अन्त में सुग्रीव ने रावण को थका दिया। रावण अपनी माया शक्ति से कपट पूर्वक सुग्रीव को पकड़ने का विचार करने लगा। रावण की इस योजना को समझते ही सुग्रीव ने एक युक्ति अपनाई रावण के हाथ अपने हाथों से पकड़कर, पैरों में पैर फँसाकर, सिर पर सिर पटकते हुए उसने अपनी पूँछ रावण के नाक में डाल दी, जिसके कारण लगातार छींकें आने से रावण अस्वस्थ हो उठा। तभी सुग्रीव ने मुट्ठियों से प्रहार कर रावण को नीचे गिरा दिया तथा उसके दस कंठों पर अपनी पूँछ लपेट कर उसे विकल कर दिया। इस प्रकार सुग्रीव द्वारा अचेत होकर रावण गिर पड़ा।

सुग्रीव द्वारा रावण का वध न करते हुए उसका मुकुट ले जाना-- अपने समक्ष मूर्च्छित पड़े हुए रावण को देखकर सुग्रीव के मन में विचार आया कि इसका वध करने में क्षण-मात्र भी समय नहीं लगेगा परन्तु ऐसा करने से श्रीराम क्रुद्ध होंगे क्योंकि श्रीराम ने रावण का वध करने की शपथ ली है। श्रीराम की प्रतिज्ञा को मिथ्या करने से उनकी अवज्ञा होगी रावण को मारने का तात्पर्य श्रीराम से विद्रोह करना है तथा अकारण ही श्रीराम की सेवा से वंचित होना पड़ेगा अत: रावण का वध नहीं करना चाहिए। सर्वज्ञ सुग्रीव ने इस बात को समझते हुए रावण का वध-नहीं किया। तत्पश्चात् वह गर्जना युक्त स्वरों में बोला-- "मैं सुग्रीव, रावण को युद्ध में संत्रस्त कर उसका मुकुट लेकर जा रहा हूँ, इन्द्रजित्, कुंभकर्ण अन्य कोई साहसी वीर, प्रधान इनमें से जिसमें भी मुझसे युद्ध करने का पुरुषार्थ हो, वह आगे आये।" सुग्रीव जिस समय यह गर्जना कर रहा था, इन्द्रजित् भयभीत होकर काँपने लगा, प्रधान सेना सहित छिपकर बैठ गए। सभी राक्षसवीर चुप्पी साधकर बैठ गए। अपनी गर्जना से लंका के लोगों का आह्वान कर सुग्रीव रावण का मुकुट लेकर आकाश मार्ग से जाने लगा सुग्रीव इतना शूर वीर तथा साहसी था कि इतनी अवधि तक संग्राम करने के पश्चात् भी उसे थकान का अनुभव नहीं हुआ। अपार आकाश लाँघकर वह श्रीराम के पास आया 'रावण को मूर्च्छित कर उसका मुकुट लाने के विजय का भाव उसके मन में था

वानर राज्य के स्वामी सुग्रीव ने दशमुख रावण पर भीषण युद्ध कर विजय प्राप्त की जो रावण सुरासुरों, यक्ष-किन्नरों, नृप नरवरों, घोर दानवों तथा भयंकर दैत्यों के लिए अजेय है, जिसका भय तीनों लोकों में व्याप्त है, उस रावण को सुग्रीव ने हरा दिया। सुर, असुर, नर, सभी सुग्रीव द्वारा लड़े गए संग्राम की कीर्ति का गायन कर रहे हैं। ऐसी विजयकीर्ति सम्पादित कर वानरराज सुग्रीव आकाश मार्ग से श्रीराम के समीप आये। रावण-विजय से आनन्दित सूर्य-पुत्र सुग्रीव वानर सेना में विद्यमान श्रीराम की वन्दना करने के लिए अत्यन्त उत्सुक था. रावण का मुकुट श्रीराम के चरणों पर रखकर अत्यन्त उल्लसित होकर उसने श्रीराम की चरण-वंदना की. सुग्रीव द्वारा अकेले ही रावण पर विजय प्राप्त करने के यश सम्पादन से वानर अत्यन्त आनन्दित थे। सुग्रीव के चरणों पर गिरकर उन्होंने उसका जय जयकार किया। सुग्रीव की विजय से राम भी प्रसन्न हुए। श्रीराम की कृपा दृष्टि से सुग्रीव की विजय को सहमति प्राप्त हुई और उसने असीमित आत्मानन्द का अनुभव किया। रघुनाथ को सुखी करने के लिए सुग्रीव ने रावण पर विजय प्राप्त की, इसीलिए वानरों ने वानर राज की पूजा की।

श्रीराम द्वारा सुग्रीव की भूल के विषय में बताया जाना; क्षमा याचना-- श्रीराम ने युद्ध में विजयी हुए सुग्रीव को प्रेमपूर्वक आलिंगनबद्ध किया तथा बोले "सुग्रीव तुम राजा हो। मुझे पूछे बिना तुमने अकेले जाकर युद्ध किया, यह सत्य है परन्तु एक नेता के लिए शोभास्पद नहीं है। मेरे भाग्य अच्छे थे कि तुम जीवित वापस लौट आये परन्तु अगर रावण ने तुम्हारा ही वध कर दिया होता तो मेरा प्राणान्त निश्चित था। विभीषण को भी कल्पान्त स्मरण हो आता। अकारण ही संग्राम में तुमने पुरुषार्थ प्रदर्शित किया। अकेले संग्राम में जाने की तुम्हारी यह बुद्धि उचित नहीं है। करोड़ों की संख्या में सेना होते हुए तुमने यह प्रयास क्यों किया ? सुग्रीव मेरा शरणागत है। अगर उसकी मृत्यु हो जाती तो भरत, शत्रुघ्न, तीनों माताएँ तथा अगर सीता प्राप्त हो जाती तो वह भी, जीवित न रहते। शरणागत की मृत्यु अर्थात् मेरी मृत्यु है। लक्ष्मण सखा होते हुए भी मेरे प्राण बचा न पाता। अगर मैंने प्राण त्याग दिये होते तो सीता एवं लक्ष्मण की मृत्यु निश्चित थी। भरत तथा शत्रुघ्न ने भी प्राण त्याग दिये होते तथा इसके कारण सूर्यवंश ही समाप्त हो जाता रावण द्वारा सुग्रीव का वध करते ही सूर्यवंश समाप्त हो जाता, ईश्वर ने ही यह अनर्थ

होने से रोक लिया। अब भविष्य में कभी ऐसा न करना। सुग्रीव, तुम युद्ध में समर्थ हो। तुम्हारे पुरुषार्थ से मैं अवगत हूँ, परन्तु जिससे कुल पर संकट आये, ऐसा अनर्थ भविष्य में मत करना।"

श्रीराम के वचन सुनते ही सुग्रीव उनके चरणों पर गिर पड़ा तथा बोला- "आपकी पत्नी चुराने वाले लंकानाथ को देखकर मैं स्वयं को रोक न सका। अतः क्रोध के कारण उसका वध करने के लिए उसके पास चला गया। मेरा पुरुषार्थ उफन पड़ा तथा आपकी अनुमति लेने का स्मरण न रहा; रावण का वध करने के लिए शीघ्र चला गया। हे श्रीराम, पुरुषार्थ का सच्चा लक्षण यही है कि पराक्रम करने की क्षमता होने पर क्षणमात्र भी धैर्य धारण नहीं किया जाता।" पुरुषार्थ सम्बन्धी सुग्रीव के वचन सुनकर श्रीरघुनन्दन सन्तुष्ट हुए और उन्होंने सुग्रीव को आलिंगनबद्ध किया। तत्पश्चात् श्रीराम ने लक्ष्मण से अति उत्तम पुष्प तथा फल मँगवा कर सुग्रीव को विजय के लिए उसका अभिसिंचन किया।

अध्याय ६

[मध्यस्थता के लिए दूत के रूप में अंगद का प्रस्थान]

श्रीराम ने देखा कि पूर्व की ओर के युद्ध प्रसंग में वानरों ने अनेक राक्षस वीरों का वध किया, उनका रक्त एक प्रवाह की भाँति बह रहा है। इस दृश्य से राम व्यथित हो उठे। उनके मन में दया उत्पन्न हुई। किसी एक द्वारा किये गए अपकार के कारण सबका वध नहीं करना चाहिए क्योंकि वह राजधर्म नहीं है। यह विचार उन्होंने राजा सुग्रीव, जाम्बवंत, अंगदादि सभी वानरवीर तथा नल, नील, हनुमान तथा शरणागत विभीषण को बताया। दुर्ग का घेरा तथा बन्द द्वार खोलने के लिए तथा राक्षसों का वध करने के लिए पराक्रमी वानरों की सेना तैयार थी। आगे क्या करना है, इसके सम्बन्ध में श्रीराम द्वारा सबसे पूछने पर वे बोले- "हे रघुनाथ, अब तत्वतः युद्ध ही करना चाहिए। सेतु बाँधकर, वानर संभार लेकर हम लंका में आये हैं। लंकानाथ का सेना-सहित वध करना चाहिए, अब कोई अन्य विचार क्यों किया जाए ? परन्तु सबके द्वारा दिये गए ये विचार श्रीराम को मान्य नहीं हुए।

श्रीराम तथा वानर वीरों में मतभेद- श्रीराम ने यह कहते हुए कि जो वेदों में निरूपित राजधर्म है, उसका पालन करने से ही परमार्थ सिद्ध होता है, शास्त्रोक्त धर्म निरूपित किया। जब उन्होंने किसी समर्थ दूत को प्रतिनिधि बनाकर मध्यस्थता करने के लिए लंका में भेजने का प्रस्ताव रखा, तब वानरों ने कहा- "हमारी सीता उन्होंने चुराई है और हम ही मध्यस्थता के लिए अपना प्रतिनिधि भेजें, यह विचार अनुचित है। हे श्रीराम, युद्ध में भय किस बात का ? हम न तो युद्ध में दुर्बल सिद्ध हुए हैं और न ही युद्ध में पीछे हटे हैं। ऐसा होते हुए भी हम ही बीच बचाव के लिए दूत भेजें, यह बात अत्यन्त लज्जास्पद है। वानरों का यह विचार सुनकर श्रीराम ने राजधर्म का मूलार्थ भूत, दया एवं परमार्थ के विषय में सन्तुलित निरूपण प्रस्तुत किया। वे बोले- "युद्ध-धर्म चार प्रकार का होता है, साम, दाम, दण्ड व भेद- ये चारों प्रकार अनादिकाल से प्रसिद्ध हैं। उनका मैं अर्थ स्पष्ट करता हूँ, उसे सुनें। शत्रु अगर प्रबल है तो उससे युद्ध कौन करेगा ? अतः उन्हें हाथी, घोड़े, रथ, धन इत्यादि देकर शत्रुत्व समाप्त करें। उससे भी आगे देश, दुर्ग इत्यादि देकर अपने शत्रु के पराक्रम से बचें। इसे दाम प्रयोग कहते हैं। अब भेद के विषय में सुनें। अगर अन्त में दारुण युद्ध करना ही पड़े और अपनी सेना तथा सेनानी तैयार न हों तब

शत्रु सेना में फूट डालकर तदनुसार युद्ध करें भेदनीति का अनुसरण कर किये गए युद्ध में पराक्रम के साथ भेद की गति भी पद्धति में समाहित है।"

अब साम स्थिति के विषय में सुनें। "युद्ध प्रसंग में साम का अनुसरण ही मुख्य राज-धर्म है। साम में भूत दया और श्रेष्ठ परमार्थ है. अगर साम का प्रयोग न कर भीषण युद्ध किया तो उसमें असंख्य प्राणी मारे जाते हैं। उस हत्या को कौन वहन करेगा ? स्वयं साम का प्रयोग न करने पर उसके मस्तक पर भूत हत्या का दोष लगेगा. यही राजधर्म की सुनीति है. श्रीराम ने स्वयं परब्रह्म होकर राजधर्म बतलाया- "संग्राम में नि:सीम भूत दया परम परमार्थ है। ऐसे युद्ध में परमार्थ की प्राप्ति होती है। श्रीराम द्वारा ऐसा कहते ही वेद व विधाता विस्मित हो उठे। श्रीरघुपति द्वारा स्वधर्म बताते ही बृहस्पति विस्मित हो गए. वेद, श्रुतियाँ चकित हो गईं। (गीता में भगवान् ने युद्ध के प्रसंग में जो परमार्थ बताया वही परमार्थ श्रीराम ने भी बताया) जिसको रणाभिमान नहीं है, कर्म में कर्माभिमान नहीं है, देह में देहाभिमान नहीं है उसे नित्यमुक्त समझना चाहिए। ऐसे व्यक्ति द्वारा जो कर्म किया जाता है. वह कर्म ही पूर्णब्रह्म होता है चैतन्य व आत्म-दृष्टि से उसे दोष नहीं लगता। जिनमें देह और देही दोनों का अभिमान नहीं होता, उन्हें कर्म की बाधा नहीं होती। वे पुरुष देहयुक्त होकर भी विदेही होते हैं। ऐसे पुरुषों द्वारा युद्ध किये जाने पर भी वे मरने अथवा मारने वाले नहीं कहलाते। वे आवेशपूर्वक प्रहार करते हुए युद्ध करते हैं। ब्रह्मप्राप्ति होकर. जो तटस्थ होता है, वह सत्वगुणों से परिपूर्ण होता है। त्रिगुणों को जीतकर जो पुरुष श्रेष्ठ युद्ध में टिकता है, वही सच्चा शूर होता है।" श्रीराम द्वारा स्वधर्म की समूल कथा सुनकर हनुमान चकित हो गए और जाम्बवंत तटस्थ हो गए। मारुति, अंगद, सुग्रीव, विभीषण ने वानर-गणों सहित श्रीराम को दडवत् प्रणाम किया। तत्पश्चात् वे बोले- "श्रीरघुनाथ, हमारी बुद्धि कुंठित हो गई, अब आप जैसा योग्य समझें वैसा तय करें।"

मध्यस्थता करने के लिए कौन और कैसा होना चाहिए- (इस सम्बन्ध में विचार-विमर्श)- श्रीराम ने वानरों के वचन सुनकर स्वयं सर्वज्ञ होते हुए भी उनसे पूछा- "मध्यस्थता के लिए किसे भेजा जाए, इस सम्बन्ध मे आप मुझे बतायें। आप जिसे मध्यस्थ के रूप में चुनें उसे साहसी होना चाहिए. निडर होना चाहिए। वह वाक्पटु तथा धैर्यवान हो, सामर्थ्यवान हो। लजीला अथवा गर्वीला न होकर स्नेहशील हो, ज्ञान-मूढ़ और घमंडी न हो। वह अति चतुर, उत्तर का प्रत्युत्तर देने में निपुण, नेता के समक्ष खड़े रहकर स्पष्ट बोलने में निपुण, तथा स्पष्टवादिता के कारण संतप्त सभा की परवाह न करने वाला पुरुषार्थी होना चाहिए। स्वामी का कार्य सिद्ध करने में सक्षम वीर दूत होना चाहिए तथा संतप्त होने पर दशकंठ को पीड़ित कर उसकी सभा का गर्व और उन्माद अपने पराक्रम से नष्ट कर सकने वाला पराक्रमी होना चाहिए." श्रीराम के इस मत प्रदर्शन का सम्मान करते हुए वानर बोले- "श्रीरामचन्द्र शुद्ध सर्वज्ञ हैं। हम तो सामान्य वानर और मर्कट हैं। आपके सामने सूर्य के समक्ष जुगनू के सदृश हैं। जो दूत के गुण आपने बताये, वैसा दूत हमारी दृष्टि में नहीं आ रहा है। अत: हे रघुनाथ. जो आपको मान्य हो, वही दूत आप भेजें।"

योग्य दूत सम्बन्धी विचार; अंगद का चुनाव- श्रीराम और वानर वीरों के मध्य योग्य दूत के लिए एक-एक वानर वीर के विषय में विचारविमर्श प्रारम्भ हुआ। हनुमान को मध्यस्थता के लिए भेजें तो उसने पहले ही रावण को संत्रस्त कर रखा है तथा लंकादहन किया है अत: उसे नहीं भेजना चाहिए। नील चिकित्सक है। सुलक्षणी वक्ता है, परन्तु उसमें एक अवगुण है। उसे अपने बल पर अत्यधिक गर्व

है। अतः अगर रावण को समझौता मान्य नहीं हुआ तो वह शीघ्र रावण से युद्ध करने के लिए तत्पर हो उठेगा। नल भी उसी के सदृश है। स्वामी-कार्य की मर्यादा न समझते हुए तुरन्त रावण से भिड़ जाएगा और अपने बाहुबल से उसका वध करने का प्रयत्न करेगा। दूत के रूप में दधिमुख का चुनाव करने पर अगर रावण ने संधि स्वीकार नहीं की तो वह अत्यन्त दुःखी होकर लंका का नाश करने की अविवेकी कृति करेगा। जाम्बवंत वृद्ध और पैरों से अशक्त है। वह बुद्धिमान है, उचित सलाह देने वाला मन्त्री होने के कारण उसे श्रीराम के समीप ही होना चाहिए। पनस अत्यन्त कर्कश स्वभाव का है। मृदु बोलकर किसी का अन्तर्मन जीतना, उसे नहीं आता। वह व्यर्थ में ही रावण से उलझेगा। कुमुद दूत बन कर जाने पर व्यर्थ ही रावण से वाद-विवाद करेगा तथा बोलते बोलते क्रोधित होकर रावण का अपमान करेगा। सुषेण सुलक्षणी चतुर वक्ता है परन्तु अगर रावण ने संधि मान्य नहीं की तो यह सीता के लिए प्राण दे देगा। श्रेष्ठत्व से युक्त केसरी को दूत बनाकर भेजें तो रावण के प्रति उसके मन में अत्यन्त क्रोध है। वे दोनों सर्प और नेवले सदृश परस्पर लड़ने लगेंगे। ऋषभ, शरभ, गवय, गवाक्ष, मैंद, द्विविद, रभ, पद्माक्ष इत्यादि की युद्ध दक्षता लक्षणीय होने पर भी उन्हें संधि के सम्बन्ध में ज्ञान नहीं है। इसके अतिरिक्त अन्य जो वानर वीर हैं, उन्हें भी मध्यस्थता करनी नहीं आती। वे रावण-वध के लिए ही उत्सुक हो उठेंगे। सुग्रीव वानरराज होने के कारण, उसे दूत कार्य के लिए भेजना उचित नहीं है। इस प्रकार श्रीराम ने वानर-समूह में से दूत ढूँढ़ने का प्रयत्न किया। विभीषण को दूत रूप में भेजने से वह रावण के द्वारा अवश्य मारा जाएगा तब मुझे भी प्राण देने होंगे। अतः ऐसा भी नहीं किया जा सकता।" यह विचार कर श्रीराम मौन हो गए तब हनुमान बोले - "श्रीराम मेरी विनती सुनें। युवराज दूत का कार्य निश्चित ही कर सकेगा।"

तत्पश्चात् अंगद की योग्यता के सम्बन्ध में हनुमान श्रीराम से बोले- "मुख्य मुख्य लोगों की बीस पद्म संख्या में अनेक महा पराक्रमी हैं, उनमें बालि-पुत्र अंगद बलवान् के रूप में विशेष प्रसिद्ध है। रावण की सभा में जाकर बोलने के लिए वह अत्यन्त योग्य और समर्थ है। उसके वचनों से राक्षस सभा के सतर्क होने पर भी अंगद उससे प्रभावित नहीं होगा। शत्रु के वचनों का वह अपने वचनों से ही निषेध करेगा। वह अत्यन्त वाक्पटु और सुबुद्ध है। वह धैर्यवान योद्धा है, रावण को परास्त कर सकने वाला शूरवीर है। अंगद की आत्म-शक्ति क्षीरसागर सदृश गंभीर है। रावण की कपटी युक्ति के लिए अंगद के पास अनेक युक्तियाँ हैं। राक्षसों से युद्ध के लिए भी वह अकेला पराक्रमी पर्याप्त है। वह साहसी वीर है। स्वामी का कार्य सम्पन्न करनेके लिए अंगद के पास अनेक युक्तियाँ हैं। अगाध शक्ति है। बालि-पुत्र अंगद दूत के रूप में अत्यन्त योग्य है।" मारुति का सुझाव सुनकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए।

श्रीराम द्वारा अंगद को रावण के लिए संदेश देना– श्रीराम ने हनुमान का सुझाव स्वीकार करते हुए अंगद को समीप बुलाकर प्रेम से आलिंगनबद्ध किया। तत्पश्चात् श्रीराम बोले, "हे अंगद, तुम मध्यस्थ दूत के रूप में रावण के पास जाकर मेरा महत्वपूर्ण संदेश उसे देना। उससे कहना- चोर को दंडित किया जाता है, तुमने मेरी पत्नी चुराई है अतः तुम्हें दण्डित करने का निश्चय कर मैं सीता पति राम, धनुष-बाण लेकर आया हूँ। परस्त्री का अपहरण तुम्हारी मृत्यु का मुख्य कारण है। मेरे भीषण बाण चलने पर तुम्हारी रक्षा कौन करेगा ? हे दशमुख, सावधान होकर सुनो, मैं अपने बाणों से तुम्हारे भाई पुत्र, सेना के सहित सम्पूर्ण लंका राक्षसविहीन कर दूँगा। मेरी पत्नी को लंका ले आये और श्रीराम उसे मुक्त नहीं करायेंगे, ये कह रहे हो। तो अब मैं तुम्हारे वध के लिए आया हूँ। कहाँ भागकर जाओगे ?

बहुत पहले सीता की अभिलाषा करने वाले एक कौए की ओर मैंने एक दर्भ का तिनका फेंका था, तब उसे भागते हुए तीनों लोकों में भी आश्रय न मिल सका। अन्त में वह मेरी शरण में आया। उस समय मैंने उसकी बायीं आँख लेकर प्राण बचाये। एक दर्भ के तिनके का कौशल कितना भीषण था यह देखो। अब अगर मेरे भीषण बाण चल गए तो पक्षी होकर भागने वाले रावण का मैं निश्चित वध करूँगा उस रावण के तीनों लोकों में, दसों दिशाओं में, कहीं भी भागने पर मेरे बाण उसका पीछा नहीं छोड़ेंगे। मेरी दृष्टि में पड़ते ही रावण का वध निश्चित है। उस कौए ने अपराध किया था परन्तु वह अनन्य भाव से मेरी शरण में आया। शरणागत का वध नहीं किया जाता इसीलिए मैंने उसके प्राण बचाये। रावण, तुम भी सीता मुझे वापस कर मेरी शरण में आये तो तुम्हारी लंका के राज्य पर स्थापना कर तुम्हें जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त करूँगा।"

श्रीराम आगे बोले - "रावण से यह भी कहना कि विभीषण को लंका दान दे दी। इसलिए सावधानीपूर्वक सुनो– मैं नयी लंका का निर्माण कर विभीषण की वहाँ स्थापना करूँगा। जिस सागर में मैंने पाषाणों को तैरते हुए रखा, उसमें मुझे नयी लंका का निर्माण करने में क्षणार्द्ध भी न लगेगा। श्रीराम को सीता अर्पित कर देने से रावण तथा उसके लंका राज्य को शान्ति की प्राप्ति होगी यह सभी श्रीराम के धर्मानुसार होगा।" अंगद को श्रीराम ने स्वयं इस प्रकार का संदेश दिया। तत्पश्चात् अमृत-फल देकर अंगद को लंका भेजा। श्रीराम जब अमृत फल का शुभ शगुन कर किसी को भेजते हैं तो वह दूसरे का अभिमान चूर चूर कर विजयी होता है। श्रीराम ने अंगद को बताया कि 'हे अंगद, तुम्हारा शौर्य, शक्ति, धैर्य सहनशक्ति, शांति, कीर्ति और परम पुरुषार्थ की ख्याति के विषय में हनुमान ने मुझे बताया है.' इस पर अंगद बोला– "श्रीरघुनाथ, आपकी आज्ञा मुझे स्वीकार है। अपने पुरुषार्थ के विषय में स्वयं कहना मूर्खता ही होगी। हे श्रीराम, आपकी आज्ञा ही कार्य-सिद्धिदात्री है, उसी से हमें विजय प्राप्त होती है. हम पर्ण खाने वाले वानर अब श्रीराम के सेवक बन गए हैं। इसीलिए हमारे पराक्रम को महत्ता-प्राप्त होकर सुरासुरों द्वारा उसका वर्णन किया जाता है। श्रीराम, आपकी आज्ञा के समक्ष उस रावण की क्या बिसात ? मैं भाग्यवान् हूँ जो मुझे यह कार्य सौंपा गया है। आज मेरा मनोरथ सफल हुआ, श्रीराम ने स्वयं अपने मुख से मुझे यह कार्य सौंपा। मैं निश्चय ही भाग्यवान् हूँ। सद्गुरु हनुमान ने धर्म-बुद्धि से मुझे संतोष की प्राप्ति कराई।" अंगद को श्रीराम द्वारा आज्ञा मिलने से वह अत्यन्त आनन्दित हुआ और लंका की ओर प्रस्थान के लिए तैयार हुआ। उसने श्रीराम की प्रदक्षिणा की उनकी चरण-वंदना कर चरण-तीर्थ का प्राशन किया। उन्हें साष्टांग दंडवत् प्रणाम कर लक्ष्मण तथा विभीषण की चरण-वन्दना की। इसके पश्चात् सुग्रीव के चरण स्पर्श किये।

सुग्रीव ने अंगद को आशीर्वाद देते हुए कहा– "श्रीराम की आज्ञा शिरोधार्य मानकर तुमने अपना जीवन श्रीराम को अर्पित कर वानर वंश को श्रेष्ठता प्राप्त कराई है। अब श्रीराम का कार्य शीघ्र सम्पन्न करो '' अंगद ने नल नील, जाम्बवंत, सुषेण सभी को दंडवत् प्रणाम कर उनकी आज्ञा माँगी, उस समय सबने कहा– "हे वालिपुत्र अंगद ! तुमने अपने मृदु, मंजुल, विनम्र आचरण से हम सभी को सुखी किया है। तुम निश्चित ही विजय प्राप्त करोगे.'' तत्पश्चात् अंगद ने हनुमान को देखकर उत्साहपूर्वक उनके चरणों पर अपना मस्तक रखा। उस समय वह प्रेम-भाव से विभोर था। हनुमान के सम्बन्ध में उसकी विशेष प्रेमभावना थी। हनुमान ने अंगद को शीघ्र लंका जाने की आज्ञा दी। हनुमान ने अंगद के मस्तक पर वरद हस्त रखकर उसे आश्वस्त करते हुए कहा– "लंकाधीश को संत्रस्त करने हेतु लंका की ओर

प्रस्थान करो" अंगद ने पुनः श्रीराम को साष्टांग प्रणाम कर लंकानगरी की ओर देखते हुए रामनाम की ध्वनि के साथ छलाँग लगाई।

अंगद का लंका की ओर प्रस्थान– वीर अंगद द्वारा आकाश में उड़ान भरते ही सुग्रीवादि वानर वीरों ने जय जयकार करते हुए श्रीरामनाम की ध्वनि की। श्रीराम के बाण की गति के सदृश ही अंगद की उड़ान थी। आकाश-मार्ग से तीव्र गति से जाते हुए अंगद लंका में पहुँचा। आकाश के शून्य को धारण कर निराधार निरालंब आकाश में ऊपर चढ़ते हुए वह लंका में पहुँचा था, उस समय अंगद इस प्रकार शोभायमान हो रहा था, मानों बाल सूर्य का रस अपने ऊपर उंडेल कर तैयार हुआ हो अथवा अग्नितेज को धारण किये हुए हो। इस प्रकार अंगद उड़ान भर कर लंका में जा पहुँचा

अध्याय ७

[अंगद द्वारा रावण की निन्दा]

अंगद शीघ्र गति से आकाश मार्ग से लंका में पहुँचकर अत्यन्त चतुराई से रावण की सभा में पहुँच गया अचानक रावण की सभा में ही अंगद द्वारा छलाँग लगाकर कूदने से रावण चौंक कर काँप गया। लंका में खलबली मच गई। राक्षस वीर भयभीत होकर छिपकर बैठ गए। सबका वध करने के लिए पुनः हनुमान के आने की आशंका से लंकावासी भयभीत होकर हाहाकार करने लगे, वानर के भय से समस्त रावण सभा किसी चित्र की भाँति स्तब्ध और तटस्थ हो गई अंगद के सामने अत्यन्त निकट होते हुए भी दशमुख रावण बोल न सका तब अन्य सामान्य राक्षसों का कैसा साहस ? वे मात्र अपलक देखते रह गए। अंगद के आगमन से राक्षस मौन हो गए, रावण चौंक गया। तब अंगद ने स्वयं ही बोलना प्रारम्भ किया।

अंगद का प्रारम्भिक भाषण– अंगद बोला– "मैं तुम्हारी सभा में अतिथि के रूप में आया हूँ परन्तु तुममें से किसी ने मेरा स्वागत नहीं किया, इससे ऐसा लगता है या तो तुम लोग भय से भ्रमित हो गये हो अथवा निश्चित ही महामूर्ख हो। तुम सभी ने मौन धारण कर लिया है। इसका कारण मुझे ज्ञात हो गया है। मैं जो कह रहा हूँ, उसे सावधानीपूर्वक सुनो। वानरों की सेना में महावीर पराक्रमी श्रीराम आये हैं, जिनके भय से भयभीत होकर तुम्हें बोल पाना असम्भव हो रहा है। श्रीराम द्वारा अचूक शरसंधान कर छत्र गिरा देने के कारण रावण भ्रमित हो गया है। योग्य-अयोग्य का उसे विस्मरण हो गया है। श्रीरघुनन्दन के आने का समाचार सुनकर प्रधान एवं राक्षस सभा के सभासदों की बोलती बन्द हो गई है, यह तो श्रीराम की ख्याति है। तुम्हें जिसने पूरी तरह से संत्रस्त कर दिया था, उस वीर हनुमान के स्मरण-मात्र से ही तुम्हारी वाणी अवरुद्ध हो गई है। उस महाबली हनुमान ने अशोक-वन में राक्षसों को तहस नहस कर डाला, उसकी पूँछ की ज्वाला से लंका भस्म हो गई। रावण द्वारा उस अग्निज्वाला को बुझाने के लिए फूँकने पर उसकी मूँछें जल गईं। राक्षसों को पीड़ित कर दिया उसी हनुमान के स्मरण मात्र से राक्षस वीरों की वाचा बन्द हो गई है। कोई किसी से कुछ भी नहीं बोल रहा है। इस प्रकार लंका में हाहाकार मचाने वाले उस पराक्रमी हनुमान की सेना में स्थिति के विषय में बताता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनें जिस हनुमान ने अशोक-वन उद्ध्वस्त कर दिया, अक्षय कुमार का वध कर राक्षसों

का संहार किया, वनरक्षक किंकर, प्रधान पुत्रों का वध किया। रावण के ज्येष्ठ पुत्र इन्द्रजित् को पीड़ित कर उसकी सेना का निर्दलन किया। रावण का अपमान कर लंका जला कर असंख्य राक्षसों को मारा और राक्षसों के दाँतों के ढेर को गिन रहा था, वह हनुमान श्रीराम की सेना में महावीर नहीं कहलाता। वह मात्र सन्देशवाहक के रूप में एक सामान्य सेवक है। उस सामान्य हनुमान को लंका में भेजा था।"

रावण द्वारा दुरुत्तर देना; अंगद की प्रतिक्रिया– अंगद को छलने के लिए रावण ने कौशलपूर्वक उत्तर देते हुए कहा- "दुर्ग के द्वार से आने वाले भू-मार्ग को छोड़कर चोर रास्ते से आने के कारण तुमसे हम लोग नहीं बोले क्योंकि छिपे-मार्ग से आने वालों से वार्तालाप हम उचित नहीं समझते" रावण के ये उद्गार सुनते ही अंगद हँसने लगा और बोला– "हे रावण, ध्यानपूर्वक सुनो। जो दूसरों के अवगुण देखते हैं तथा अपने दोष नहीं देखते, वे महामूर्ख कहलाते हैं उनके पास स्वधर्म विवेक नहीं होता, वे नर भूमि के लिए भार-सदृश होते हैं। हम वानरों के लिए आकाश गमन तो हमारा स्वाभाविक धर्म है। जो अपने धर्म को ही दोष लगने वाला आचरण करते हैं, वे शूकर अथवा श्वान् सदृश होते हैं। सबसे मुख्य अधर्म चोरी करना है; उसमें भी परस्त्री का अपहरण विशेष अधर्म है रावण, तुम वास्तव में महापापी हो, तीनों लोकों में तुम्हारा अपयश फैल गया है. तुमने वेदों के विपरीत कर्म किया है जिसका पाप तुम्हारे मस्तक पर लगा है, तुम ऐसे पापी हो।" रावण को समीप देखकर उसका निर्दलन करने के लिए अंगद की भुजाओं में स्फुरण होने लगा। उसका रोम-रोम कंपायमान होने लगा। 'रावण का मैं वध कर दूँगा परन्तु उसको मारने से दूत कार्य बाधित होगा' ऐसा सोचकर अंगद ने स्वयं को नियन्त्रित किया।

रावण ने अंगद को क्रुद्ध होते हुए देखा और वह भयभीत हो गया। दूसरा विघ्न आया है, ऐसा सोचकर राक्षस काँपने लगे। 'पहला सब भस्म कर गया, अब दूसरा उससे भी बलवान् आ गया यह सोचकर, सब भयभीत हो उठे। श्रीराम लंका को घेरे हुए हैं। यह अकेला रामदूत बिना किसी भय के हमारा अन्त करने के लिए आया है.' यह विचार कर राक्षस भयग्रस्त हो गए। अंगद को ओर देखते ही रावण विचलित हो गया। राक्षस सैनिकों की दयनीय स्थिति हो गयी। वे एक दूसरे के पीछे छिपने लगे। अंगद सोचने लगा– 'श्रीराम ही रावण का वध करेंगे इसलिए हनुमान ने रावण को नहीं मारा। मैं उन्मत्त होकर रावण का वध करने की मूर्खता करने वाला था।' फिर अंगद ने रामनाम का स्मरण किया, जिसके कारण उसके मूर्खतापूर्ण विचार समाप्त होकर उसके मन की क्रोध की भावना समाप्त हुई और अंगद शान्त हो गया। श्रीराम ने स्वयं ही कहा था कि अंगद में शौर्य और शान्ति दोनों विद्यमान हैं तद्नुरूप उसने क्रोध पर नियन्त्रण किया तथा रावण की सभा में शान्त होकर बैठ गया.

रावण के समक्ष अंगद का व्यवहार और कथन– अंगद ने देखा कि रावण का सिंहासन चौरासी योजन ऊँचा है। तब उसने भी निश्चय किया कि वह भी वैसा ही आसन बनायेगा। जिस प्रकार हनुमान ने लंका दहन से पूर्व अपनी पूँछ का विस्तार किया था, उसी प्रकार अंगद ने रावण सदृश आसन बनाने के लिए पूँछ का विस्तार किया। उसने अपनी पूँछ बढ़ाकर उसका आसन बनाया तथा उस आसन पर रावण के समक्ष निःशंक रूप से बैठ गया। रावण ने अंगद को अपने समक्ष बैठे देखा। राक्षस भी सशंकित होकर देखने लगे। अंगद को वहाँ से हटाने की रावण की हिम्मत नहीं हुई। वह वानरवीर अंगद अत्यन्त कठोर दिखाई दे रहा था। रावण के समक्ष बैठकर अंगद विविध प्रकार की भाव भंगिमाएँ कर रहा था। श्रीराम के अकेले अंगद नामक दूत के आने से रावण एवं राक्षस भयभीत थे। अंगद को निश्चिन्त

बैठे हुए देखकर रावण ने उससे धीरे से पूछा- हनुमान नहीं हो, तब तुम कौन हो ? यहाँ क्यों आये हो ? रावण द्वारा ऐसा पूछने पर श्रीराम नाम का स्मरण कर अंगद ने अपना वृत्तान्त कहना प्रारम्भ किया।

अंगद बोला- "जिसके पुरुषार्थ में दुष्टता नहीं है, जिसने खर और दूषण का वध किया है, मैं बालि पुत्र अंगद उस श्रीराम का दूत हूँ, वन में मारिच का वध किया जिसके समक्ष जाने से लंकानाथ डरते हैं, उस श्रीराम का मैं दूत हूँ। कौशल्या के उदर से जन्मा हुआ तथा उसका आनन्द द्विगुणित करने वाला सिंह सदृश जो श्रीराम है, उसका मैं बालिनन्दन अंगद दूत हूँ। देवता, दैत्य, सुर, असुर, व दानवों को जिसका भय है, उस बालि का मैं बलवान् पुत्र अंगद हूँ। आज मैं तुम्हारे यहाँ आया हूँ। हे रावण, तुम्हें बगल में दबाकर सात समुद्रों का स्नान करने वाले बालि का मैं अंगद नामक बलवान पुत्र हूँ। मुझे श्रीराम ने तुम्हारे पास भेजा है। जिस बालि ने किष्किंधा के समीप गुहा में दुंदुभी तथा उसके पुत्र का युद्ध में वध किया था, उस बालि का मैं अंगद पुत्र हूँ। जिस बालि ने छह महीनों तक अन्नजल के बिना रहकर गुहा में अनेक राक्षसों का वध किया उस बालि पुत्र अंगद को श्रीराम ने भेजा है. अगर सीता को लौटाकर अभी भी तुम श्रीराम की शरण में आओगे तो बच सकोगे अन्यथा तुम्हारा श्रीराम द्वारा वध निश्चित है।" ऐसा श्रीराम ने संदेश भेजा है।

रावण द्वारा अंगद का उपहास; उसकी प्रतिक्रिया– अंगद की स्पष्टोक्ति सुनकर रावण क्रुद्ध हो उठा उसने भेदनीति का प्रयोग करते हुए कपटपूर्ण वचन बोलते हुए कहा- "हे अंगद, तुम्हारे पुरुषार्थ को धिक्कार है। अरे जिसने तुम्हारे पिता का वध किया तुम स्वयं को उसका दूत कहते हो ? संग्राम में सामने न आकर छल पूर्वक तुम्हारे पिता का वध किया, ऐसे दुष्ट रघुनाथ का तुम स्वयं को दूत कह रहे हो। मुझे नारद द्वारा और एक विचित्र वार्ता ज्ञात हुई है। उस राम ने तुम्हारी माता को छीन कर उसे सुग्रीव की पत्नी बनाया। वह दुष्ट राम, जो धोखे से तुम्हारे पिता की हत्या करता है, तुम्हारी माता को दूसरे व्यक्ति को सौंप देता है, उसका दूत बनना तुम स्वीकार करते हो। हे अंगद, तुम वास्तव में मूर्तिमंत निर्लज्ज हो हमारी सभा में आकर स्वयं को रामदूत बताते हुए तुम्हें तनिक भी लज्जा नहीं आई। तुम्हारे पुरुषार्थ को धिक्कार है। अरे, पुत्र को तो अपने पिता के वध का बदला लेने का यश सम्पादन करना चाहिए। तुम तो बिल्कुल पत्थर हो। व्यर्थ ही स्वयं को वानर कहलाते हो। हे अंगद, तुम्हारे सदृश निर्लज्ज दूसरा कोई न होगा तुम अपना मुँह दिखाने के योग्य भी नहीं हो। तुम्हें समुद्र में प्रवेश कर अपने प्राण दे देने चाहिए अथवा किसी कुएँ में कूदकर या फिर अपने पेट में छुरी भोंक कर तुम्हें अपना जीवन समाप्त कर देना चाहिए। तुम्हारा पराक्रम व्यर्थ है, तुम इस संसार में अत्यन्त निन्दनीय सिद्ध हो गये हो "

इसके पश्चात् रावण ने कपटपूर्ण वचन बोलते हुए कहा- "अंगद तुम सच्चे भाग्यवान् हो इस रावण की शरण में आने पर तुम्हें अवश्य अभय-हस्त प्राप्त होगा। मुझे यह बात समझ में आ गई कि अपने पिता की हत्या का बदला लेकर पितृकार्य साधने के लिए तुम मिथ्या ही रामदूत बनकर मेरी शरण में आये हो। अतः यह पराक्रमी रावण, तुम्हारी पूरी तरह से रक्षा करेगा। अरे, राम लक्ष्मण का वध कर सुग्रीव से युद्ध कर मैं अंगद को किष्किंधा का राज्य प्रदान करूँगा। ये मेरा सत्य वचन और वरदान है।" दशानन रावण का यह कपटी भाषण सुनकर अंगद हँसने लगा। तत्पश्चात् वह बोला- "स्वयंवर प्रसंग में धनुष पर डोरी चढ़ाने में ही तुम सभा में गिर पड़े थे, मैं ऐसे नपुंसक की शरण जाऊँगा ? उसी स्वयंवर प्रसंग में श्रीराम ने धनुष तोड़कर तुम्हारे मुख पर अपमान की कालिख पोती; तुम्हारी उस रघुनाथ के समक्ष जाने की हिम्मत नहीं थी इसलिए तुमने उस मारीच को मृत्यु का भागी बनाया तथा स्वयं सीता

को चुराकर भाग गए। तुम्हारी शरण में आने पर मेरी रक्षा कौन करेगा ? अरे रावण, तुम्हारे सदृश हीन, दीन तथा नपुंसक की शरण में, मैं कैसे आऊँ ? तुम्हें तो एक थप्पड़ मारने से भय के कारण ही तुम प्राण त्याग दोगे। ऐसा कहते हुए अंगद ने हाथ उठाया। उस समय रावण विचलित हो उठा तत्पश्चात् अंगद ने अपना क्रोध शान्त कर रामाज्ञा बतानी प्रारम्भ की।

अंगद द्वारा रावण के अपमान का वर्णन– अंगद बोला– "मैंने अनेक रावणों के विषय में सुना है, उनमें से तुम कौन से हो ? इस प्रश्न से आरम्भ कर अंगद ने अनेक प्रसंगों में हुए रावण के पराभव की चर्चा प्रारम्भ की। वह बोला– "एक रावण की महानता ऐसी कि उसने सहस्रार्जुन से युद्ध किया। उस युद्ध में सहस्रार्जुन ने रावण को बायें हाथ से कसकर पकड़ लिया। सहस्रार्जुन कृपालु था अतः उसने उस हीन, दीन, अशक्त रावण को कारागृह में न डालकर नगर में ही सुरक्षित बन्दी बनाकर रखा। द्वारपालों को उसने आज्ञा दी कि इस दसमुख के रावण को बाहर न जाने दे। नगर के दुर्ग में बन्दी बनाकर पैरों में जंजीरें डालकर रावण को सुरक्षित कर उसे नर्मदा नदी से पानी भरकर लाने का काम सौंपा गया। रावण के दस शिरों पर दस गागरें दी गई तथा घर घर में पानी पहुँचाने को कहा गया राजगृह में दिया जाने वाला अन्न रावण के लिए पर्याप्त न था, जिसके कारण उसके दसों मुख दुःखी रहते थे। इसके लिए रावण चक्की पर आटा पीसने बैठता था तथा अपने मुखों से भिन्न भिन्न स्वर में गाता था। आटा पीसने के पश्चात् उसके सिरों पर प्रहार किया जाता था। भोजन के लिए मोटी रोटी दी जाती थी। चावल माँगने के लिए वह घर घर हाथ फैलाता घूमता था। घर घर नाचते हुए चने माँगता फिरता था मट्ठा माँगने के लिए घर-घर श्वान सदृश घूमता था, गर्दभ की तरह चिल्लाता था, उसके दसों मुखों से श्वान के विलाप की ध्वनि सुनाई देती थी।"

अंगद इसके आगे वर्णन करते हुए बोला "सहस्रार्जुन ने नगर की रक्षा के लिए कानड्देवता को नियुक्त किया था। वह देवता चारों ओर दृष्टि रखते हुए दिन-रात सावधानीपूर्वक रक्षा किया करता था। रावण ने आकाश मार्ग से भागने का प्रयत्न किया तब कान्ड्देवता ने उसके मस्तक पर बेंत से वार कर मूर्च्छित कर उसे भूमि पर गिरा दिया। इस प्रकार छह महीनों तक रावण को उस नगरी से मुक्ति न मिल सकी। उसके वस्त्र फट गए, सिर में जुएँ पड़ गई। अन्त में पुत्र प्रेमवश पुलस्त्य ऋषि आये। उन्होंने सहस्रार्जुन से रावण को मुक्त करने की विनती की। उसे कुछ स्मरण नहीं आ रहा था, तब उसने ऋषि को कारागृह भेजा। वहाँ रावण को देखकर वे चकित हो गए वह पहचानने में नहीं आ रहा था। सिर पर गगरी रखकर घूमने वाले, चने माँगने के लिए दर-दर भटकने वाले रावण को देखकर पुलस्त्य दूर हट गए। उन्होंने रावण का हाथ पकडकर लंका की ओर ले जाने का निश्चय किया। तब द्वारपाल ने रोकते हुए कहा– "शरीर पर कोई चिह्न किये बिना नहीं जा सकते।" पुलस्त्य ऋषि ने चिह्नों के बारे में पूछा। द्वार रक्षक बोला– "मुख काला कर, नाक पर चूना लगाकर बंधन से मुक्ति मिल सकती है, राजमुद्रा लेकर शीघ्र नगरी से जाया जा सकता है। हे ऋषि, बिना कष्ट के मुक्ति इसी प्रकार प्राप्त हो सकती है" पुलस्त्य राजमुद्रा लाने गए, रावण मुख में काला तथा नाक पर सफेद चूना लगाकर बाहर निकला। हे लंकाधीश, ऐसी उस रावण की गति हुई। अब दूसरे रावण की वार्ता कहता हूँ, वह सुनो।"

"एक रावण उन्मत्त होकर सुतल नामक पाताल में गया। क्रोध से परिपूर्ण होकर राजा बलि को युद्ध में जीतने के लिए वह आतुर था। बलि के द्वार पर वामन द्वार की रक्षा कर रहा था। वह यह समझता था कि रावण बलि के समक्ष तृण-सदृश है। रावण बलि के समक्ष भी लज्जित हुआ। उस समय बलि

तथा विध्यावली चौपड खेल रहे थे। रावण के समीप आने पर भी एक कीटक की भाँति क्षुद्र समझ कर बलि ने उस पर ध्यान नहीं दिया। वह खेल में मग्न था। रावण मन ही मन समझ गया कि बलि उसे कुछ भी महत्व नहीं दे रहा है। बलि को छल से मारने का विचार कर रावण धैर्य धारण कर खड़ा रहा। आवेशपूर्वक खेलते हुए बलि के हाथ से एक पासा गिर पड़ा। उसने रावण को उसे देने के लिए कहा लेकिन रावण उसे उठा न सका। रावण, अपने दस हाथों की शक्ति लगाने पर भी पासा उठा नहीं पा रहा था क्योंकि वामन ने अपनी शक्ति से उसे दबा रखा था। बीस हाथों द्वारा भी जब पासा उठाया नहीं गया, तब रावण लज्जित हुआ। उसके द्वारा अन्तिम प्रयत्न करते ही पासा उठकर उसके माथे पर जा लगा। एक दीर्घ चीख के साथ रावण भूमि पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। उसके दसों मुख में धूल भर गई। यह देखकर विंध्यावली हँसने लगी। सेवक आनन्दपूर्वक तालो बजाने लगे। रावण के माथे से रक्त बहने लगा। रक्त से लाल रावण किसी सुहागिन के शव सदृश दिखाई दे रहा था विंध्यावली बोली– "दस सिर और बीस हाथों वाले इस अभागे को यहाँ कौन लाया ? इसे यहाँ से ले जाओ। इसका रक्त यहीं गिरने न पाये।" तत्पश्चात् उसके एक एक अलंकार, वस्त्र, शस्त्र निकालकर रावण को दूर ले जाया गया। रावण आते समय बल का घमंड धारण कर युद्ध के लिए आया था परन्तु उसके पुरुषार्थ का नाश होकर उसकी दुर्गति हुई। उसे लज्जित होना पड़ा। समर्थ राजा होते हुए भी बाल काटने की सुविधा तक उसे उपलब्ध नहीं हुई। उसके बाल दस हाथ लम्बे हो गए थे। सब उसका उपहास कर रहे थे तथा रावण दहाड़ मारकर विलाप कर रहा था।"

वामन द्वारा रावण का अपमान– रावण की जड़ तक पहुँचकर उसके गर्व को चूर-चूर कर रावण को धूल में मिला दिया। रावण लज्जित हो गया। उसे लगा कि अब इसके प्राण चले जाएँगे। वामन ने दरवाज़ा पकड़कर रावण को अन्दर बन्द कर दिया। रावण बोला– "तुम मुझे शत्रु की भाँति क्यों कष्ट दे रहे हो, मुझे जाने दो।" वामन बोला "मैं राजा बलि का सेवक हूँ, राजाज्ञा के बिना मैं किसी को नहीं जाने दूँगा, चाहे वह राजा हो अथवा रंक। यह मेरा निश्चित नियम है। रावण वामन से बचकर आकाश मार्ग से जाने लगा परन्तु वामन द्वारा उसे देखते ही वह शीघ्र वापस लौट आया। रावण द्वारा पाताल मार्ग से जाने पर वामन उसे पकड़कर अन्दर बन्द कर देता था। रावण भी भयभीत होकर वापस आ जाता था। राक्षस अदृश्य होकर जा सकते हैं परन्तु वामन में अदृश्य को देखने की भी क्षमता होने के कारण रावण उसके भय से लौट कर वापस आ जाता था। पूर्व, पश्चिम, उत्तर अथवा दक्षिण दिशा से भागने का विचार करते ही रावण को दसों दिशाओं में सर्वत्र वामन दिखाई दे रहे थे। रावण त्रस्त होकर भय से हाहाकार करने लगा वामन द्वारा इस प्रकार पीछा करने के कारण रावण का मुक्त होना असंभव था। वह निराश और दुःखी हो गया। यही रावण भविष्य में राम को धोखा देकर सीता को चुराकर लाएगा इस क्रोध के कारण वामन ने उसे संकट भोगने के लिए बाध्य किया।"

"रावण मुक्त नहीं हो पा रहा था। वह क्षुधा से त्रस्त था। अन्त में वह चने माँगने के लिए अश्वशाला गया वहाँ घोड़ों की व्यवस्था देखने वाले सेवक ने उससे कहा "अगर तुम मस्तक पर यह घोड़े की लीद वहन कर ले गए तो हम तुम्हें मुट्ठी भर चने देंगे।" रावण ने वह शर्त मान्य की क्योंकि वह क्षुधा से संत्रस्त था। जब तक भूख नहीं लगी थी तब तब वह दशमुख रावण राजा था परन्तु वामन द्वारा उसकी भूख जागृत करते ही वही रावण भीख माँगने के लिए भी तैयार हो गया। दसों शिरों पर लीद ढोकर मिलने वाले चनों से उसकी भूख शान्त नहीं हुई, वह व्यथित हो उठा। तब वह कपास से

सूत कातने वाले जुलाहे के पास आकर बोला "मेरे बीस हाथ हैं, मैं दस चरखों पर तुम्हारा सूत कातकर देता हूँ। तुम मुझे भोजन दो।" कपास धुनते हुए वह मुँह के बल गिर पड़ा और कपास के बीज उसकी नाक में चले गए। उस प्रसंग से वह लज्जित हो उठा। जब वह सूत कातने बैठा, तब स्वधर्म रूपी चरखा टूट गया। सूक्ष्मत्व रूपी सूत टूट गया। तकली फैल गई। इस पर जुलाहा बोला- "यह दशमुख वाला झूठा है। इसने सत्कर्म रूपी चरखा तोड़ डाला, धुनी हुई रुई नष्ट कर डाली। ऐसा कहते हुए वहाँ स्थित नर नारी उसे मारने लगे। इस प्रकार रावण द्वारा किया गया उपाय, अपाय बन गया तथा उसे खाने हेतु कुछ भी न मिला। वामन द्वारा उत्पन्न इन संकटों के कारण रावण रुआँसा हो गया लंकाधीश दशानन के समक्ष इस प्रकार सकट उत्पन्न कर अन्न के बिना उसे दुर्बल बना दिया। आरम्भ में दशमुख रावण को वामन दीन-हीन दिखाई दिया। अब वही वामन उसे महाप्रतापी लग रहा था, जो समस्त त्रिभुवन में व्याप्त था। रात्रि को रावण को भागते हुए वामन ने देख लिया क्योंकि वह अंधेरे में भी देख सकता था। उसने अन्त में रावण को संत्रस्त कर रुआँसा कर डाला। तब स्वयं पुलस्त्य बलि के पास रावण की मुक्ति के लिए गए। बलि ने उनका सम्मान कर उनकी पूजा की और आगमन का कारण पूछा।"

"पुलस्त्य द्वारा यह पूछे जाने पर कि 'रावण को क्यों बन्दी बना रखा है' ? बलि अत्यन्त दुःखी हुआ। उसने शपथपूर्वक कहा "मेरे राज्य में कोई बन्धन नहीं तब बन्दीगृह कहाँ सम्भव है ? किस स्थान पर, किस देश में, किसने रावण को बन्दी बनाया, इसकी जानकारी कर रावण को मेरे पास लायें, जिससे मैं सम्मानपूर्वक उसे मुक्त कर दूँगा।" पुलस्त्य उसे ढूँढने के लिए गये तब उन्होंने देखा कि रावण के दस सिरों पर लीद की टोकरियाँ हैं तथा चनों से पेट न भरने के कारण वह भीख माँग रहा है। रावण श्वान सदृश भौंक रहा है और लोग उसे भगा रहे हैं। ऐसा दिखाई देने के कारण पुलस्त्य लज्जित हो गए, रावण ने भी पुलस्त्य को देखा तब वह लज्जित होकर सिर झुकाकर खड़ा हो गया। पुलस्त्य ने रावण से पूछा– "बलि ने तुम्हें बन्दी बनाकर इतने घोर सकट में क्यों डाला है ? इस पर रावण लज्जित होकर बोला– "मुझे वामन ने बन्दिस्थ कर कष्ट देते हुए, भूख प्यास से व्याकुल कर मुझे निर्बल बना दिया है। मैं दुःख से त्रस्त हो गया हूँ। वामन के सभी विद्याओं से अवगत होने के कारण, उसके समक्ष मेरा बल चल नहीं पा रहा है। मैंने बहुत उपाय किये। वामन के समक्ष कपट चल नहीं पाता है। बलि से मुझे कोई काम नहीं है। वामन से आज्ञा मिलने पर अपनी मुक्ति यहाँ से सम्भव है।" रावण द्वारा ऐसा कहते ही पुलस्त्य उसे लेकर वामन के पास गये। उन्होंने वामन से कहा "आप रावण को अपनी नगरी जाने की आज्ञा दें।"

वामन ने पुलस्त्य को देखते ही दंडवत् प्रणाम किया। उनके चरणों पर मस्तक रखकर वे बोले– "मैं बलि का सेवक हूँ। द्वारपाल प्रतिहारी हूँ। राजाज्ञा लाने पर आप सुखपूर्वक जा सकते हैं। अगर वैसा नहीं होगा तो चिह्न निकाल कर जाने की राजाज्ञा है।" पुलस्त्य द्वारा यह पूछने पर कि वे चिह्न कौन से हैं, वामन बोले– "दसों सिरों का तथा, दसों मूँछों का मुंडन, मुख काला करना, नाक में नकेल बाँधना तथा चेहरे पर काले पीले पट्टे बनाना, इन चिह्नों से मुक्ति मिल सकती है। यह सुनने पर पुलस्त्य रावण से बोले कि चलो राजा बलि के पास चलें। वह सम्मानपूर्वक आज्ञा देकर अपनी नगरी वापस भेज देगा। इस पर रावण बोला "ये वामन द्वारा बताया गया चिह्न मुझे स्वीकार है। बलि के समक्ष जाने का साहस मुझमें नहीं है। एक पासा उठाते हुए उसके समक्ष मैं मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। अतः उसके समक्ष जाने में मुझे लज्जा का अनुभव हो रहा है और मुझे अपने प्राण जाने का भी भय लग रहा है। अतः हे पिता,

मैं उसके समक्ष नहीं जाऊँगा। मैं अत्यन्त गर्वपूर्वक उससे युद्ध करने गया परन्तु लज्जित हुआ। बलि के समक्ष जाने की अपेक्षा यहीं मेरे प्राण जाना अधिक उचित है।" पुलस्त्य बोले– "राजा के लिए यह मुण्डन निषिद्ध है।" तब रावण बोला "कैसा राजलक्षण ? यहाँ प्राणों पर संकट उत्पन्न हो गया है तब मुंडन से कैसा भय ? बन्दी को मुक्त होने के लिए प्रायश्चित्त करना ही चाहिए। मुझे आज ही सिंहस्थ लगा है अत: मुंडन को निषिद्ध न कहें। वामन के पाश से कल्पान्त तक भी मुक्ति सम्भव नहीं है। अत: मेरे भाग्य से उसने केश वपन का जो मार्ग बताया है, वही मेरे लिए ठीक है।" यह कहकर रावण ने सिर के केश तथा दाढ़ी व मूँछों का मुंडन करवा लिया। मुख को काला लगाकर वह शीघ्र आगे आया। लोगों ने उस पर गोबर फेंक कर उसे अपमानित किया। तत्पश्चात् वामन ने उसे छोड़ दिया।" इस प्रकार अंगद ने रावण के समक्ष ही उसकी भर्त्सना की।

अध्याय ८

[अंगद द्वारा मध्यस्थता का वर्णन]

इस प्रकार इस दूसरे प्रसंग में वामन ने रावण को किस प्रकार पीड़ित किया यह बताने के पश्चात् अंगद ने तीसरे प्रसंग में रावण किस प्रकार सताया गया, इसका वर्णन किया. अंगद बोला "लंकेश, अब एक और रावण की कथा सुनाता हूँ"। अंगद के वचनों से रावण मन ही मन दु:खी हो गया था। अंगद के वाग्बाण उसके हृदय में चुभ रहे थे परन्तु वह कुछ नहीं कर पा रहा था।

अंगद बोला - "एक रावण ने आवेश में आकर श्वेत द्वीप जाने की मूर्खता की। वहाँ विमान का उपयोग न होने के कारण तथा सेवकों को वह स्थान अगम्य होने के कारण विमान और सेवकों को पीछे छोड़कर रावण अकेले ही मूर्खतापूर्ण अभिमान धारण कर द्वीप की ओर जाने के लिए निकला। श्वेत द्वीप का सम्पूर्ण राज्य अपने आधीन करने की अभिलाषा धरकर रावण वहाँ गया। जिस श्वेतद्वीप में नारद का भी जाना सम्भव नहीं था, वहाँ रावण का प्रवेश कर पाना असम्भव था. रावण छह महीनों तक चलता रहा फिर भी वह श्वेतद्वीप नहीं पहुँच सका। पैदल चलते चलते अपार श्रम के कारण वह थक गया उसे न सूर्योदय का ज्ञान था, न सूर्यास्त का। अन्न एवं जल मिल नहीं पा रहा था। रुकने के लिए कोई उपयुक्त स्थान नहीं दिख रहा था इस प्रकार रावण की दुर्दशा हो रही थी। आगे का स्पष्ट दिखाई नहीं दे रहा था। वापस लौटने का मार्ग नहीं सूझ रहा था रावण भ्रमित अवस्था में दु:खी होकर उस अज्ञात स्थान पर भटकता रहा। वह विलाप करने लगा। परन्तु उस परदेस में एकाकी अवस्था में उससे हाल पूछने वाला कोई नहीं था।

नगर में पानी ले जाने के लिए दासियाँ गंगा के श्वेत प्रवाह के निकट एकत्र होकर आपस में वार्तालाप कर रही थीं। रावण निश्चिन्त होकर उनकी बातें सुनने लगा. दासियों को पानी ले जाते हुए देखकर रावण उल्लसित हो उठा। वह श्वेत द्वीप पहुँचने के कारण बहुत प्रसन्न हुआ। वह दासियों को पूछने के लिए आगे बढ़ा। दासियों ने रावण को देखकर एक खिलौना समझते हुए उसे हाथों में उठा लिया। उसे वे कौतुकपूर्ण दृष्टि से देखने लगीं। दस मुख बीस हाथ तथा मुकुटों से युक्त दस शिरों वाले रावण को विचित्र कीड़ा समझकर दासियों ने रावण को कसकर पकड़ लिया। उनकी पकड़ से छूटना

रावण की शक्ति से परे था। जिस प्रकार बहेलिया चिड़िया पकड़ता है, उसी प्रकार दासियों ने रावण को पकड़ा था। बहेलिये के हाथ की चिड़िया केवल चूँ चूँ करती रहती हैं, उसी प्रकार रावण भी दासियों के हाथों में केवल कराहता रहा क्योंकि उसका सामर्थ्य वहाँ चल नहीं पा रहा था। दशानन को पकड़ा हुआ देखकर लोगों ने उसके चारों ओर एकत्र होकर उसे सताना प्रारम्भ किया वे सभी रावण का मज़ाक उड़ा रहे थे। कोई नाक में तीली डाल रहा था तो कोई चिढ़ा रहा था। कोई सिर पर टपली मार रहा था तो कोई लात मार रहा था। इस तरह अनेक भाव-भंगिमाओं से उसे चिढ़ा रहे थे। कुछ बच्चे, कौए, कुत्ते गधे, सियार तथा उल्लू की आवाजें कर रावण को चिढ़ा रहे थे। उनमें से कुछ ने रावण से कलाबाज़ी तक करवाई। इन सबसे दुःखी होकर रावण कहने लगा- 'मैं कहाँ पर आ गया'।

सभी दासियाँ एक-एक आकर, रावण के साथ गेंद के सदृश खेलने लगीं। वे उसे एक-दूसरी की ओर उछालने लगीं। कोई तो बीच में ही उसे पकड़कर उछाल देती थी। उनके इस खेल से रावण दुःखी हो उठा। वह स्वयं को कोसते हुए बोला "मेरा शौर्य, प्रताप, यश, कीर्ति सब व्यर्थ है। ये दासियाँ मुझे तृण-सदृश समझकर उछाल रही हैं। इन्होंने तो मेरी बुद्धि, मेरी चेतना नष्ट कर दी है। मुझे यहाँ आने की दुर्बुद्धि क्यों हुई ? मैं इन दासियों के चंगुल में फँस गया हूँ।" जब वे दासियाँ एक-दूसरी की ओर रावण को फेंक रही थीं। तब रावण ने एक के हाथ में काट लिया। उसके काटते ही 'यह तो कटखन्ना है'- कहते हुए उन्होंने रावण को फेंक दिया। रावण सीधे- लंकापुरी में जा गिरा, मुँह के बल गिरने के कारण उसके होंठ फट गए, दाँत टूट गए, नाक से रक्त बहने लगा यह देखकर राज दरबार में हाहाकार मच गया। लोग कहने लगे– "ऐसा कौन साहसी वीर है, जिसने आकाश में संग्राम कर रावण को लंका में लाकर पटक दिया" इन्द्रजित् सहित सभी रावण पुत्र, प्रधान, रावण से वृत्तान्त पूछने लगे रावण लज्जित हो गया उसने कोई उत्तर नहीं दिया। हे लंकेश, यह तीसरे रावण की ख्याति मैंने तुम्हें बतायी।"

तत्पश्चात् अंगद आगे बोला "अब चौथे रावण की स्थिति एवं अभिनव अगाध कीर्ति के विषय में तुम्हें बताता हूँ, वह सुनो– यह चौथा रावण अत्यन्त पराक्रमी था एक बार बालि को ध्यानस्थ मुद्रा में देखकर उसे छलपूर्वक पकड़ने का निश्चय कर रावण वहाँ गया। तब बालि ने उसे अपनी काँख में दबोच लिया। रावण को काँख में दबाकर बालि ने वेगपूर्वक उड़कर सात समुद्रों का स्नान किया तथा पुनः ध्यान मुद्रा में बैठ गया। रावण को तीव्र वेदना हो रही थी, वह छटपटा रहा था परन्तु वहाँ से मुक्ति के लिए उसका बल पर्याप्त नहीं पड़ रहा था। बालि की काँख का पसीना रावण की नाक एवं मुख में जाने के कारण वह अत्यन्त व्याकुल हो गया था। तदुपरान्त बालि ने घर आकर अपने पुत्र अंगद को गोद में उठाया उस समय उसकी काँख से रावण नीचे गिर पड़ा। सभी वानरों ने उसे देखा बीस हाथ, दस शीश, मनोहर कुंडल, मुकुट, गले में भाँति-भाँति के विचित्र हार, अत्यन्त सुन्दर अंगकांति, पन्ने का हार हृदय पर धारण किये हुए मोतियों की लड़ी पहने तथा कमर में छोटी छोटी घंटियों से युक्त कमर पट्टा धारण किये हुए रावण को देखकर वानरों ने अंगद के पालने पर खिलौने के सदृश सोने की जंजीरों से बाँध दिया। शिशु अंगद बाल सुलभ चेष्टाएँ करते हुए जब अपने पैर हिला रहा था, तब उसके पैर रावण के मुख पर पड़ रहे थे। मूत्र की धारा सीधे रावण के मुख में जा रही थी। वानर गण रावण को चिकोटी काट रहे थे, उसके मस्तक पर हाथों से वार कर रहे थे। उस समय वह दाँत भींच रहा था, आँखें मिचका रहा था। उसके मुख पर पड़ने वाले पैरों के आघात से उसे घाव हो गए अंगद ने चतुराई से रावण को पहचान लिया और वह रावण से बोला "मेरे द्वारा बनाये गए रावणों में तुम कौन से हो,

यह पूछने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि मेरी लातों के चिह्न तुम्हारे मुख पर दिखाई दे रहे हैं मेरे मूत्र की धारा तुम्हारे मुख में लगातार पड़ने के कारण उसके चिह्न तुम्हारे होंठों पर विद्यमान हैं ऐसे दीन हीन रावण, आज तुम सिंहासन पर बैठे हो परन्तु श्रीराम से युद्ध करने का पराक्रम तुममें है ही कहाँ ?"

रावण की प्रतिक्रिया– अंगद के वाग्बाण रावण के हृदय में चुभ गए, वह तिलमिला उठा। अंगद की कठोर वाणी रावण के हृदय को भेद रही थी वानर पर नियन्त्रण न कर सकने के कारण रावण विह्वल हो उठा। उस पराक्रमी वानर को समक्ष बैठे देखकर रावण थर-थर काँप रहा था। अंगद से युद्ध करने का साहस उसमें नहीं था। कुमार, प्रधान तथा राक्षस सभी भयभीत थे इससे पहले हनुमान ने भयभीत किया था। अंगद तो उससे भी अधिक निःशंक था। उसके भय से सेना, सेनानी, सेवक सभी को डरा हुआ देखकर बुद्धिमान रावण क्रोधित हो उठा। उसने मुख पर हास्य लाते हुए अंगद से कहा– "हे वानर, इस सभा में बैठकर तुम अनियन्त्रित रूप से बोले जा रहे हो। तुम्हारे वचन अमर्यादित हो रहे हैं। तुमने इस दशानन को नहीं पहचाना। मेरा पुरुषार्थ और पराक्रम सुनो। मैंने देवताओं को बन्दी बनाया है। मेरे समक्ष श्रीराम कुछ भी नहीं। वह क्या मुझसे युद्ध करेगा ? मेरी मात्र गर्जना सुनकर सुरासुर भयभीत होते हैं तब वह राम जैसा क्षुद्र कीटक मेरे समक्ष क्या खड़ा रह पायेगा ? मैंने भीषण युद्ध कर देवताओं को बन्दी बना लिया तथा सबको अपना दास बना लिया। उस विषय में अब सुनो "

रावण आगे बोला– "वसंत को बुलाकर मैंने उसे चित्रमय शय्या व घर बनाने के लिए बाध्य किया। उन हारों को शीघ्र लाने के लिए इन्द्र को माली बनाकर भेजा। सहस्र किरणों से युक्त सूर्य निरंतर मेरा द्वारपाल बना हुआ है मलय गिरि पर प्रवाहित होने वाली वायु मुझ पर चँवर डुलाती है तथा चन्द्र छत्र पकड़ता है वायु की स्थिति ऐसी है कि वह सर्वत्र झाड़-बुहार कर सफाई करता है। वरुण स्वयं जल छिड़कता है अग्नि ईंधन का प्रयोग किये बिना स्वयं पाक शास्त्र-विधान का प्रयोग कर भोजन पक्वान्न तैयार करता है। भोजन बनाने का काम करने के पश्चात् स्वयं कपड़ों के रंगों को क्षति पहुँचाये बिना कपड़े धोता है। पानी का प्रयोग किये बिना तथा कपड़ों की नवीनता नष्ट किये बिना, वस्त्रों की मलिनता एवं दाग दूर कर उन्हें अन्तर्बाह्य स्वच्छ करने के लिए कुशल धोने वाले अधिकारी के रूप में उसकी नियुक्ति है, विधि पीसने कूटने का कार्य करता है। मेरी नगरी में चंडी मेरी सेविका है इस प्रकार मेरा सामर्थ्य सर्वविदित है। बृहस्पति मेरा यश गान करने वाला भाट है, ब्रह्मा मेरे लिए नित्य शान्तिपाठ करता है, मेरे सामर्थ्य को तीनों लोकों में श्रेष्ठ माना जाता है। बेचारा राम एक सामान्य मानव है, जो हमारे एक ग्रास (कौर) के बराबर है। पत्ते खाने वाले वानर तो मात्र मेरे भय से ही समाप्त हो जाएँगे मेरे लिए राम-लक्ष्मण मुख्य भक्ष्य है तथा वानर चटनी, रायते के सदृश हैं। कुंभकर्ण तो मात्र एक कौर में पल भर में सबका भक्षण कर लेगा। जब शंभु गौरी सहित कैलास पर्वत पर विराजमान थे, उस समय मैंने कैलास पर्वत को हिला दिया था। मेरी महानता चराचर में अतुलनीय है। मेरे समक्ष उस मानव श्रीराम की स्तुति, व्यर्थ की बड़ाई कर रहे हो। उस श्रीराम ने कहाँ युद्ध किया है ? किस भीषण वीर का दमन किया है ? उस त्रिशिरा व खर-दूषण को मारने का स्मरण मुझे बार-बार करा रहे हो।" रावण द्वारा इस प्रकार बोलने पर सज्ञानी वक्ता अंगद गरजते हुए श्रीराम के गुण बताने लगा

अंगद द्वारा श्रीराम स्तुति; रावण को धिक्कार– अंगद रावण से बोला– "हे रावण, तुम्हें धिक्कार है। श्रीरघुनाथ के समक्ष आने की तुम्हारी हिम्मत नहीं थी अतः तुम सीता को चुराकर भागे। अब अपने पुरुषार्थ की व्यर्थ कल्पनाएँ क्या कर रहे हो ? जिसने तुम्हें काँख में दबाकर सप्त समुद्रों का स्नान

कराया, उस बालि का श्रीराम ने वध कर दिया, अब श्रीराम तुम्हें सपरिवार मारने के लिए आये हैं। जिनके विरोध के भय से रावण सर्वदा भागता रहता है, वही श्रीराम रावण का वध कर राक्षसों का संहार करने के लिए आये हैं। स्वयंवर के समय जो धनुष तुम उठा नहीं पाये, उसे श्रीराम ने तोड़ डाला। उस श्रीराम के समक्ष विद्रोह करने की व्यर्थ डींग क्यों मार रहे हो ? समुद्र जिसकी शरण में आया, जिसने सागर में पाषाणों को तैरा दिया, उस श्रीराम को मूर्खतापूर्वक तुम मानव कहकर सम्बोधित कर रहे हो ? रावण तुम कुमति, दुर्मति और दुष्टबुद्धि हो। श्रीराम स्वयं देहधारी चैतन्य स्वरूप हैं। तुम उन्हें साधारण मानव समझ रहे हो।"

"अरे, जिस रामनाम से मानवों का उद्धार होता है, उस राम को तुम मनुष्य कह रहे हो। रावण तुम अपनी दुर्गति से, द्वेष से व्यर्थ मृत्यु को प्राप्त होगे। गंगा के जल को अन्य प्रवाहों के जल सदृश नहीं समझना चाहिए, क्योंकि गंगा के जल में स्नान करने से जड़ जीव पवित्र होते हैं समुद्र के मंथन से निकले हुए ऐरावत को जंगली हाथी नहीं समझना चाहिए; उच्चै:श्रवा अश्वजाति का होते हुए भी उसे सामान्य अश्व पशु नहीं मानना चाहिए। कपूरकर्दली जन्मस्थान वाली रंभा नामक स्वर्गभूषण युवती को जड़मूढ़ स्त्रियों के सदृश नहीं समझना चाहिए। कृत युग की महिमा ऐसी है कि वहाँ के लोग सत्यवादी एवं सात्विक होते हैं। इस युग की अन्य युगों से समानता हो ही नहीं सकती। शरीर पर घाव के निशान किये बिना मदन का बाण स्त्री पुरुष में भेद कर लेता है, उसे मात्र स्थूल धुनर्धर नहीं मानना चाहिए। समुद्र को लाँघकर राक्षसों का संहार कर लंकादहन करने वाले हनुमान के प्रताप की तीनों लोकों में प्रशंसा हुई तथा वह वंदनीय सिद्ध हुआ। ऐसा वानर श्रेष्ठ, जिसे स्वयं श्रीरामचन्द्र भी अपना आत्मीय मानते हैं, हे महामूर्ख रावण, उसे तुम सामान्य वानर कह रहे हो। गंगा को साधारण नदी के समकक्ष नहीं रखा जा सकता। ऐरावत सामान्य हाथी तथा उच्चै:श्रवा साधारण घोड़ा नहीं है। सत्य युग को अन्य युगों की भाँति नहीं माना जाता। इसी प्रकार रंभा को अन्य स्त्रियों के समान अथवा हनुमान को वानर देहधारी समझना अनुचित है। श्रीराम भी मात्र मनुष्य देह धारी न होकर, अवतारी परब्रह्म हैं। वह तीनों लोकों को तारने वाला परमात्मा, पूर्ण परब्रह्म है। हे दशानन, रघुनाथ को मनुष्य मानकर उसे अपना बल दिखा रहे हो, परन्तु तुम्हारा यह बल कैसे व्यर्थ है, वह सुनो।"

अंगद द्वारा रावण का उपहास— कैलास पर्वत पर जिस समय गौरी सहित शंभु विराज मान थे तब तुमने कैलास पर्वत को हिला दिया, ऐसा तुम कह रहे हो परन्तु तुम्हारे उस पराक्रम का कोई भी महत्व नहीं रहा क्योंकि तुम्हारा वह बल सीता को चुराने के कारण तत्काल निष्फल हो गया। आज तुम निर्बल और नपुंसक हो। श्रीराम से युद्ध करने की तुम्हारी बातें भी अनुचित और अमर्यादित हैं। तुम श्रीराम के भय से भागते हो तो उनसे युद्ध कैसे कर सकोगे ? श्रीराम से युद्ध करने के लिए तुम्हारे में पुरुषार्थ ही नहीं है, लक्ष्मण-रेखा को तो तुम लाँघ न सके, उसके समक्ष तुम्हें अपमानित होना पड़ा। हे रावण, अब व्यर्थ ही अपने बल का गर्व क्यों कर रहे हो। तुम राम सेवक के बल को न समझ सके तथा सरल-सी धनुष-रेखा तुम लाँघ न सके। रामभक्त हनुमान समुद्र पार कर यहाँ आकर लंका का विध्वंस कर गया। वनरक्षक, किंकर, प्रधानपुत्र, जंबुमाली, कुमार अक्षय तथा अन्य राक्षसों का वध कर उसने लंकानगरी को जला दिया। तुम्हारे वीर इन्द्रजित् का उसने सत्यानाश कर दिया; उसे भागने के लिए भी स्थान नहीं मिल पा रहा था और वह गुहा में जा छिपा। श्रीराम के सेवक हनुमान ने अकेले आकर तुम्हारी

सेना का संहार कर दिया और तुम्हारे दस मुख जला दिये। उन जले हुए काले मुखों को लेकर सभा में बैठते हो और अपने पराक्रम की डींग हाँकते हो? अरे अकिंचन ! तुम्हें हितपूर्ण सलाह देता हूँ, उसे सुनो।"

अंगद शक्ति की झलक मिलना; रावण का भयभीत होना– अंगद बोला, श्रीराम को सीता अर्पित कर उनकी शरण में आने से ही तुम्हारे प्राण बच पाएँगे अन्यथा कुल सहित तुम मारे जाओगे श्रीराम को सीता न लौटाने पर कौन तुम्हारे प्राण बचयेगा ? मैं ही अभी तुम्हारा वध करता हूँ। तुम मेरा पराक्रम और पुरुषार्थ देख लो। तुम्हारे दसों सिर मैं नखाग्र से फाड़ डालूँगा परन्तु वह शिव का निर्माल्य होने के कारण मैं उनका स्पर्श नहीं करूँगा। यह सिर तुमने शिव को अर्पित किये तथा पुन: उन्हें अपने कंधे पर धारण कर लिया, तुम ऐसे पूर्ण पापी हो। तुम्हें मारने का मुझे कोई दोष नहीं लगेगा। श्रीरघुनाथ का स्मरण कर तुम्हारा वध करने पर पाप की बाधा नहीं होगी। तुम्हारे दस शिरों पर लात से प्रहार कर अभी तुम्हें धराशायी करता हूँ, तुमसे मुझे कोई भय नहीं। तुम एक क्षुद्र से कीटक सदृश हो, तुम्हारा वध करते समय तुम्हारी रक्षा कौन करेगा ? तत्पश्चात् बलवान् अंगद रावण से जा भिड़ा, जिससे रावण सकपका गया। 'यह वानर मेरे बारे में कठोर वचन कह रहा है आकर भिड़ रहा है, यह मेरा वध भी कर देगा'– ऐसा विचार कर रावण संत्रस्त हो उठा। उसके मन में विभिन्न विचार एवं विकार उठने लगे। कभी भय तो कभी क्रोधपूर्ण विचारों से वह विचलित हो उठा। उसके लिए यह कहना भी सम्भव नहीं हो पा रहा था कि 'अंगद को पकड़ो'। अन्त में अपने प्राण बचाने के लिए वह चिल्लाकर बोला– "प्रधानो ! इस वानर को पकड़ कर मारो। मेरी सभा में मेरी ही निन्दा करने में इसे तनिक मात्र भी भय का अनुभव नहीं हो रहा है। कहता है कि मेरा मुख काला हो गया, इसके टुकड़े टुकड़े कर डालो, मेरे लिए यह अनेक कटुवचन बोल रहा है अत: तुम सब मिलकर इसका अवश्य वध करो।"

रावण की आज्ञा सुनकर प्रधान, सेनानी एवं सैनिक गर्जना करते हुए अंगद को पकड़ने के लिए दौड़े। अंगद ने मन में विचार किया कि रावण का वध न कर, रावण के सैन्य बल का अनुमान लगाया जाय। अंगद ने थोड़ी उड़ान भरी। राक्षस सेना उसे पकड़ने के लिए आवेशपूर्वक दौड़ने लगी। उन्होंने गदा, मुद्गर, परिघ, पाषाण, शिला, एवं शिखरों से वार किया। उस समय 'पकड़ो, मारो, गिराओ' की गर्जना करते हुए करोड़ों राक्षस आये। अंगद तनिक मात्र भी भयभीत नहीं हुआ। उसका कोई बाल भी बाँका न कर सका, उसने अपनी पूँछ को लम्बा लटकाया, राक्षस उस पूँछ को पकड़कर लटकने लगे। एक ने उसका पैर पकड़ा तो दूसरे ने गला पकड़ लिया। पक्षी जिस प्रकार आकाश में उड़कर पेड़ को पकड़ लेते हैं, उसी प्रकार चार वीरों ने पक्षी के सदृश अंगद को पकड़ लिया। वे चारों वीर अति बलशाली थे, उन्होंने अंगद को दोनों ओर से पकड़ लिया। अंगद रामनाम स्मरण करने के कारण निश्शंक था, जिस प्रकार गुड़ पर मक्खियाँ बैठती हैं, उसी प्रकार उन्होंने अंगद को घेर लिया। वे अंगद को कमर, पीठ, हाथ इत्यादि से चारों ओर से पकड़े हुए थे, तभी अंगद ने तत्काल उड़ान भरी।

लंका में रावण का भवन शिखर सदृश ऊँचा था। अंगद सीधे उड़ान भर कर वहाँ पहुँचा, अंगद द्वारा वहाँ से नीचे देखने पर उसे जमीन अत्यन्त निकट अनुभव हुई, उसने वेगपूर्वक अंतरिक्ष में उड़ान भरी। जोर से अपने शरीर को झटकने के कारण जो राक्षस उसे पकड़े हुए थे, वे भूमि पर जा गिरे तथा उनकी मृत्यु हो गई, उन्हें पानी माँगने तक का अवसर न मिल सका, यह देखकर अन्य राक्षस अंगद के पास जाने का साहस नहीं जुटा पा रहे थे। तत्पश्चात् अंगद उड़ान भरकर रावण के समीप आया। उसने रावण को नीचे गिरा दिया और उसके मस्तक पर पैर रखा, अंगद द्वारा रावण को लात मारने पर रावण

मुँह के बल आ गिरा। उसमें सीधा खड़े रहने का सामर्थ्य न बचा रावण को वैसे ही पैरों तले दबाकर अंगद गरजते हुए बोला- "इसे छुड़ाने वाला इस समय राक्षस कुल में कौन है ? इन्द्रजित्, कुंभकर्ण, प्रधान, सेनापति, सेना इनमें से किसी में भी (मुखिया) रावण को छुडाने लायक पराक्रम नहीं है। कुंभकर्ण निद्रिस्थ है, इन्द्रजित् वानरों के भय से कंपित है और प्रधान भी डरे हुए हैं।"

अंगद द्वारा रावण का मुकुट सभा-मंडप में लाना– अंगद ने सभा में रावण को झकझोरा। अंगद की गर्जना के आगे राक्षसों का पराक्रम टिक नहीं पा रहा था। अंगद बोला "मैं बालिपुत्र अंगद नाम से विख्यात हूँ। श्रीराम के दूत के रूप में, राक्षसों का पुरुषार्थ नष्ट करने के लिए लंका में आया हूँ, जिस किसी के शरीर में बल हो, जिसे मुझे सबक सिखाने की इच्छा हो वह शीघ्र आकर युद्ध करे। मेरे पैरों तले फँसे हुए रावण को छुड़ाने की शक्ति जिसमें हो, वह आगे आये। अंगद ने सभा मंडप में इस प्रकार गर्जना करते हुए राक्षसों का युद्ध हेतु आह्वान किया परन्तु राक्षसों ने भय के कारण यह स्वीकार नहीं किया। "अगर मैं लंका भुवन विध्वंस करूँ तो उसे श्रीराम ने शरणागत (विभीषण) को दान में दिया है, अतः श्रीराम कुपित हो जाएँगे। इसलिए ऐसा नहीं करना चाहिए। लंका उध्वस्त करने पर भी ऐसा हो होने की सम्भावना है।" यह विचार कर अंगद शान्त बैठ गया। रावण का वध भी नहीं करना है, यह ध्यान में रखते हुए अंगद ने रावण को पैरों तले दबोचा और उसका मुकुट निकाल लिया। मुकुट लेकर सम्पूर्ण शक्ति सहित उड़ान भरते समय अंगद के सिर से सभा-मंडप उखड़ गया और उसके सिर पर अटक गया। इस बात का उसे ज्ञान ही नहीं था। अंगद इतना महान पराक्रमी था कि उसके द्वारा सहस्त्र खंभों से युक्त सभा मंडप ही उखड़ गया। अंगद इतना पराक्रम कर सिर पर मंडप और हाथों में मुकुट लेकर वापस उड़ चला। वानर उसे देखने लगे। इधर लंका में राक्षस छटपटा रहे थे।

राक्षस कह रहे थे कि 'अंगद सभा मंडप तो ले गया परन्तु भाग्य से रावण बच गया। अंगद वास्तव में महावीर है, जिसने रावण को झकझोर दिया और मुकुट छीनकर ले गया। यह तो रावण का भाग्य ही था कि वह बच गया। रावण की अंगद से मुक्ति हुई, उसके प्राण बच गए इसलिए चलो, उत्सव मनायें।' रावण स्वयं से कह रहा था कि "अंगद की लातों के वार से मेरे प्राण ही चले जाते परन्तु भाग्य से मैं बच गया। वह हनुमान तो महापराक्रमी था ही, यह अंगद तो उससे भी बढ़कर है। वानर अंगद का पुरुषार्थ देखकर रावण शंकित और चकित हो गया।

अंगद द्वारा रामाज्ञा से मंडप की पुनः लंका में स्थापना– वानरों ने अत्यन्त उत्साहपूर्वक श्रीराम को बताया कि 'अंगद के मस्तक पर मंडप है। रत्नयुक्त कलश, मोतियों की झालरें तथा रंग-बिरंगी पताकाएँ उस पर दिखाई दे रही हैं। सम्पूर्ण लंका ही सिर पर रखकर वह आकाश मार्ग से आते हुए दिखाई दे रहा है। उसका पुरुषार्थ देखने योग्य है।' श्रीराम ने अंगद के मस्तक पर मंडप देखा उसके इस कार्य से वे क्रुद्ध हो गए। "अंगद द्वारा अधर्म कृत्य किये जाने के कारण मैं उसका वध करूँगा। मेरे द्वारा शरणागत को लंका दिये जाने पर, वहाँ का ऐश्वर्य यहाँ लाने से मैंने अधर्मपूर्ण कार्य किया, यह कहा जायेगा अतः मैं तुम्हें दण्डित करूँगा " श्रीराम के ये वचन सुनकर अंगद उनसे बोला- "हे रघुनाथ, मेरे द्वारा बलपूर्वक उड़ान भरने पर मंडप मेरे मस्तक पर कब आ गया मुझे ज्ञात ही नहीं हुआ। मेरे मस्तक के बल से मंडप उखड़ गया और मेरे साथ यहाँ आ गया; मैं आपकी शपथ लेकर कहता हूँ मुझे इसका तनिक मात्र भी ज्ञान न हुआ।" अंगद का स्पष्टीकरण सुनकर श्रीराम प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् अंगद ने श्रीराम का स्मरण कर वापस उड़ान भरकर मंडप को उसके स्थान पर स्थापित किया।

अंगद अत्यन्त कुशल था। उसने सभा मंडप के खम्भे त्रुटि किये बिना उनके मूल स्थान पर स्थापित कर मंडप को उसके स्थान पर पुनः रख दिया। मंडप को पुनः उस स्थान पर स्थापित करने से जो ध्वनि हुई, उससे राक्षस भयभीत हो उठे, दशकंठ रावण चिल्लाने लगा। उसे लगा कि नया संकट उपस्थित हो गया है। अंगद मंडप ले गया और श्रीराम ने उसे वापस भेज दिया, रावण को यह ज्ञात होते ही वह मन ही मन घबरा गया, उस समय अंगद रावण से बोला- "श्रीराम द्वारा मंडप को वापस भेजे जाने का कारण यह है कि रावण का युद्ध में वध कर लंका विभीषण को प्रदान की जायेगी।" रावण को इतना मात्र कहकर अंगद आनन्द एवं उत्साहपूर्वक श्रीराम से मिलने के लिए वापस लौट गया।

अंगद का राम के पास वापस लौटना; अंगद के शौर्य का गौरवगान- अंगद मंडप को लंका में रखकर पुनः उड़ान भरकर वेगपूर्वक वापस लौटा और उसने श्रीराम की चरण वंदना की। तत्पश्चात् सौमित्र, सुग्रीव, विभीषण, हनुमान तथा अन्य वानर श्रेष्ठों की भी उसने वंदना की। तब श्रीराम नाम का जयजयकार किया, महावीर अंगद ने शीघ्र श्रीराम के समक्ष आकर अपने पुरुषार्थ का निवेदन किया। तत्पश्चात् अमूल्य रत्नों के तेज से चमकते रावण के मुकुट को श्रीराम के समक्ष रखकर अंगद श्रीराम के चरण स्पर्श करते हुए बोला- "हे रघुनाथ, आपकी कृपा से मैं लंका में गया। रावण से सीता को माँगा तब रावण अत्यन्त गर्वीले स्वर में बोला। मेरे द्वारा की गई कठोर प्रतिक्रिया से वह अपना मस्तक पीटने लगा परन्तु महाहठी होने के कारण उसने सीता को वापस देने से मना कर दिया 'तुम सीधा* माँगने के सदृश माँग रहे हो परन्तु मैं सीता रूपी चिद्रत्न को कभी वापस नहीं दूँगा।' दशानन के ऐसे वचन सुनकर मुझे भयंकर क्रोध आया। उस समय रावण सदृश बलशाली वीर को मैंने एक ही वार में धराशायी कर दिया, उसे पैर के नीचे दबाकर उसका मुकुट छीन लिया। तब अनेक राक्षस मुझे पकड़ने के लिए दौड़े। मैंने उन्हें भूमि पर पटक दिया। भूमि पर रक्त का प्रवाह बहने लगा। मेरे द्वारा रावण को संत्रस्त कर देने पर राक्षस भागने लगे। उन्होंने युद्ध का विचार त्याग दिया। कोई समक्ष नहीं आ रहा था। तब मैं वहाँ से वेगपूर्वक उड़ान भर कर चल पड़ा, मुझे ज्ञात ही नहीं हुआ और मंडप मेरे मस्तक के साथ निकल कर आ गया। वह मैंने पुनः जाकर वहाँ रख दिया, हे रघुनाथ, मेरी समस्त बातें सत्य हैं।" अंगद के वचन सुनकर तथा वह मुकुट देखकर श्रीराम प्रसन्न हुए और उन्होंने अंगद को आलिंगनबद्ध कर लिया।

श्रीराम ने अनुभव किया कि अंगद का पुरुषार्थ धन्य है क्योंकि रावण को संत्रस्त कर वह उसका मुकुट ले आया था। श्रीराम अंगद के पराक्रम से चकित थे। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक उसे हृदय से लगाकर उसके मुख को चूम लिया। अंगद धन्य हुए। श्रीराम ने मुकुट लेकर विभीषण को बुलाया तथा स्वयं आनन्दपूर्वक मुकुट उसके मस्तक पर पहनाया। विभीषण के राजमुकुट पहनते ही वानरों ने जय-जयकार कर रामनाम की गर्जना से आकाश गुंजायमान कर दिया। विभीषण के मस्तक पर मुकुट चढ़ा हुआ देखकर वानर हर्षपूर्वक ताली बजाकर नाचने लगे। नल, नील, जाम्बवंत, सुग्रीव, सुषेण, हनुमान सभी ने आनन्दपूर्वक अंगद के पुरुषार्थ का वर्णन किया। अंगद वीर श्रेष्ठ योद्धा है, वह रावण को संत्रस्त कर प्रत्यक्ष उसका मुकुट ले आया, ऐसा उसका पराक्रम है। इन शब्दों में वानर उसका वर्णन कर रहे थे, अंगद के मन में श्रीराम का निवास है। वह अत्यन्त भाग्यवान् है। उसके द्वारा भेजा गया संदेश रावण ने स्वीकार नहीं किया, इसके कारण श्रीरघुनन्दन क्रोधित हो गए हैं, अब वे अपने भीषण बाण चलाकर

*दान में दिया जाने वाला कच्चा अन्न

रणक्रंदन करेंगे– ऐसा सभी को लगने लगा। इसके पश्चात् अब वानर और राक्षस परस्पर भिड़ जाएँगे। युद्ध कर रक्त की नदियाँ बहायेंगे और बारी बारी से एक दूसरे से युद्ध करेंगे।

अध्याय ९

[दोनों सेनाओं के युद्ध का वर्णन]

अंगद द्वारा रावण को सत्रस्त कर लाया गया मुकुट श्रीराम ने अपने हाथों से विभीषण को अर्पित कर दिया। विभीषण को मुकुट प्राप्त होते ही वानर प्रसन्न हुए। विभीषण को राज शोभा प्राप्त होने से श्रीराम आनन्दित हो उठे। मुकुट पहनने पर विभीषण की शोभा मंदार पर्वत के रत्नशिखरों की शोभा के समान प्रतीत हो रही थी। विभीषण के मस्तक पर मुकुट चढ़ते ही उसे राज्यपट मिल गया, वह वैसे ही श्रेष्ठ और तेजस्वी दिखाई दे रहे थे। विभीषण द्वारा राजमुद्रा मस्तक पर धारण करने पर वानरों को कुछ नया अनुभव हो रहा था, वे कुछ भयभीत भी थे। तत्पश्चात् सब वानरों ने राम की आज्ञा को शिरोधार्य मानकर विभीषण पर छत्र धर कर उनका जय-जयकार किया। रावण का नया छत्र छीनकर उसे विभीषण पर धरकर उन्होंने जयकार किया। विभीषण को राजचिह्नयुक्त छत्र मिला देखकर श्रीराम प्रसन्न हुए। श्रीराम का संकल्प सत्य हुआ, विभीषण को राजपद प्राप्त हुआ। वानर श्रीराम-नाम की गर्जना कर नाचते हुए अपना आनन्द व्यक्त कर रहे थे।

विभीषण द्वारा छत्र अस्वीकार करना; अंगद का गौरव– विभीषण ज्ञानी तथा स्वामी की मर्यादा का पालन करने वाले थे। अत: वे बोले "जब तक श्रीराम पर छत्र नहीं है, तब तक मुझ पर छत्र न धरा जाय." तत्पश्चात् छत्र दूर रखकर, गदा हाथ में धारण कर वह सुग्रीवादि के समूह में जाकर खड़े हो गए और श्रीराम को नमन किया तथा अंगद की शौर्य शक्ति व अगाध ख्याति का गुणगान किया। जिसने सुरगणों को बंदी बनाया, उस रावण पर आक्रमण कर, उसे पैरों तले दबोच कर उसका मुकुट छीन कर लाने जैसी ख्याति करने की तीनों लोकों में किसी के पास शक्ति नहीं है। इन शब्दों में स्वर्ग के सुरगण प्रशंसा कर रहे थे। अंगद की वीरता एवं पराक्रम का वे वर्णन कर रहे थे। अंगद इतना भाग्यशाली था कि श्रीराम उसका गुण-वर्णन कर रहे थे। रावण द्वारा अंगद का बीच बचाव का प्रस्ताव स्वीकार न करने के कारण श्रीराम क्रोधित हो गए तथा शत्रु का निर्दलन करने के लिए रण-गर्जना करते हुए चल पड़े।

श्रीराम का सुग्रीव सहित लंका के उत्तरद्वार पर आगमन– महाबली श्रीराम लंका के उत्तर की ओर स्थित द्वार पर आये। उनके पीछे शस्त्रों से सुसज्जित होकर लक्ष्मण भी आये। श्रीरघुनाथ को जाते देखकर वानरराज सुग्रीव भी वानर समुदाय सहित तत्काल वहाँ आये और रणभूमि में शत्रु से भिड़ने के लिए श्रीराम की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे। श्रीराम को देखकर नल, नील, जाम्बवंत, अंगद, हनुमान तथा समस्त वानरवीर योद्धा शीघ्र युद्ध के उत्साह से उत्साहित होकर सुसज्ज हो वहाँ आये। गज, गवय, गवाक्ष, शरभ, ऋषभ, गंधमादन, भीम, दधिमुख, सुषेण, केसरी इत्यादि भीषण योद्धा तथा वीर पनस सदृश वीर योद्धा सभी राक्षसों का नाश करने के लिए उत्सुक होकर आये। ये वीर युद्ध में भीषण पराक्रम करने वाले थे, जिन्होंने आगे युद्ध में अपना कौशल दिखलाया।

राक्षसों से युद्ध का प्रारम्भ- वानर तुरन्त लंकादुर्ग से भी ऊँचे पर्वत ले आये, ग्यारह वीर उस पर चढ़ गए तथा वहाँ से राक्षसों का संहार करने लगे. उनको देखकर अन्य वानर भी पर्वत लाकर उस पर चढ़कर राक्षसों का संहार करने लगे। लंका में चारों ओर वानर, राम नाम की गर्जना करते हुए भीषण युद्ध कर रहे थे। लंका में हाहाकार मचा हुआ देखकर रावण ने वानरों का अन्त करने के लिए अपने योद्धाओं को भेजा. वानरों द्वारा लंका भुवन घेरे जाने के विषय में सुनने के पश्चात् रावण ने जो सेना वानरों से युद्ध करने के लिए भेजी, उनकी गणना प्रबल वानर सैनिकों से दुगनी थी, उस राक्षस-सेना में नामी योद्धा थे। स्वर्णलंकारों से सुसज्ज अश्वदल को आगे ले जाते हुए वीर हो हो, या-या, जी-जी ऐसी ध्वनि कर रहे थे। गज सेना के ठाट निराले थे। उसमें मदोन्मत्त विशाल हाथियों के दाँतों में मोतियों के अलंकार पहनाये हुए थे, वह गज-समूह आगे बढ़ रहा था। शस्त्रास्त्रों से सुसज्ज रथों की पंक्तियाँ चल रही थीं, इन रथों पर ध्वज पताकाएँ, मोतियों की झालरों से सुशोभित थीं, अढाउ, चक्राग, कोयते वाले, सैली सावली, धनुर्धर इत्यादि शस्त्रधारी विभिन्न वीर तथा पैदल सैनिक गरजते हुए आगे बढ़े। राक्षस महावीरों ने कवच धारण किये हुए थे, घोड़ों पर पलानें थीं तथा वे वीर चमकते हुए शस्त्रों से सुसज्जित थे, उन वीरों द्वारा सिंहनाद करते ही आकाश तथा पाताल में उसकी ध्वनि एवं प्रतिध्वनि गूँज उठी। राक्षसों के ऐसे सैन्य समूह को देखकर वानर भी युद्ध के लिए आतुर हो उठे और भुभुःकार करते हुए उन्होंने राम-नाम की ध्वनि की, लंका के द्वार पर असंख्य राक्षस एकत्र हुए, दोनों सेनाओं ने परस्पर एक दूसरे को देखते ही शस्त्रों की वर्षा प्रारम्भ की। उस समय यमराज भी भय से काँपने लगा।

राक्षसवीर 'लंकापति की जय हो'- ऐसी गर्जना कर रहे थे, वानर वीर भी राम नाम का स्मरण कर श्रीराम का जय-जयकार कर रहे थे। राक्षस वीर तथा वानरवीर जब एक दूसरे से टकराये तब रणभूमि गूँज उठी। रणवेताल क्रोधित होकर नाचने लगा। एक ओर से शक्तिशूल से वार हो रहा था तो दूसरी ओर से शाल, ताल फेंके जा रहे थे, एक ओर से शरवर्षा हो रही थी तो दूसरी ओर अन्तराल से महाशिलाओं की वर्षा हो रही थी। एक ओर से चेंडू चक्र तो दूसरी ओर से शिला-शिखर, एक ओर से तोमर तो दूसरी ओर से वृक्षों से प्रहार हो रहा था। राक्षसवीर विचित्र बाण चला रहे थे तो वानरवीर पाषाण वर्षा कर रहे थे, भयंकर परिघ से वार करते ही तत्काल राक्षस मरणासन्न हो जाते थे। राक्षसों द्वारा उनका शस्त्रास्त्रों से घात करने का प्रयत्न करते ही वानर पर्वतों से वर्षा करते थे, जिससे हाथी, घोड़े दबने लगते थे, रथ ध्वजाओं सहित टूट जाते थे। वानरवीर उत्तम प्रकार के योद्धा थे। वे हाथियों को पूँछ से बाँधकर उन्हें उठाकर भूमि पर पटक देते थे, उनके नीचे दबकर अनेक पैदल सैनिक मर जाते थे। राक्षसों के अनेक साहसी वीर धराशायी हो गए, हाथियों के पैरों तले दब गए। वानर वीर पृथ्वी की अपेक्षा आकाश से वार कर रहे थे। उन्होंने कूद-कूद कर असंख्य रथ तोड़ डाले। रणभूमि में अनेक घोड़ों व हाथियों को गिरा दिया। राक्षस जैसे ही वानरों का वध करने जाते थे, वानर उछल कर गगन में चले जाते थे और वहाँ से पर्वत वर्षा कर असंख्य राक्षसों को मार डालते थे। वानर जब घायल हो जाते तब वे श्रीराम के चरणतीर्थ का सेवन कर तुरन्त युद्ध-भूमि में आकर शत्रुओं का संहार करते थे।

श्रीराम-नाम स्मरण के कारण वानर वीर रण-भूमि में धराशायी होने पर भी मृत्यु उनसे दूर भागती थी। वे युद्ध के लिए पुनः उठ खड़े होते थे। श्रीराम का सम्बल होने के कारण वानरों को कोई भी भय न था। इसीलिए वे रणभूमि में राक्षसों का संहार कर रहे थे। श्रीराम-नाम का स्मरण करने पर वहाँ मृत्यु का प्रवेश हो नहीं सकता। श्रीराम का सहारा होने के कारण वानरों का वध नहीं होता था।

राक्षसों द्वारा शारीरिक बल प्रयोग तथा नानाविध शस्त्रों का प्रयोग होने पर भी वानर वीर श्रेष्ठ सिद्ध हुए परन्तु राक्षस दल छिन्न विच्छिन्न हो गया। राक्षसों के वध से भूमि पर रक्त की नदी बहने लगी, मांस का ढेर लग गया। जो राक्षस बच गए थे, वे रणभूमि से भागने लगे। अपनी सेना का नाश होते देख इन्द्रजित् क्रोधित हो उठा और आवेशपूर्वक युद्ध के लिए सुसज्जित होकर निकल पडा।

तत्पश्चात् चौबीस वानर वीर और चौबीस राक्षस योद्धाओं का भीषण द्वंद्वयुद्ध शुरू हो गया। इन्द्रजित् और अंगद का द्वन्द्व-युद्ध प्रारंभ हुआ। अत्यन्त क्रोधित प्रजंघ का संपाती से रावणपुत्र अतिकाय का, विनीत और रंभुवानर से द्वन्द्व-युद्ध होने लगा उनके दाँवपेंच प्रारम्भ हो गए। महोदर सुषेण से जा भिड़ा, मकराक्ष सीधे जाम्बवंत से युद्ध करने लगा। विद्युज्जिह्व और शतबली द्वंद्व-युद्ध करने लगे। जाम्बवंत का भाई धूम्र कुंभकर्ण के पुत्र के साथ तथा रावण-पुत्र देवांतक गवाक्ष के साथ युद्ध करने लगा। सारण और ऋषभ, त्रिशिरा और शरभ तथा नरांतक पुत्र प्रगल्भ स्वयभू पनस से युद्ध करने लगे। अकंपन और कुमुदहारी, धूम्राक्ष और केसरी महापार्श्व और गंध मादन परस्पर द्वन्द्वयुद्ध करने लगे, शुकर ग्राणी व वेगदर्शी युद्ध करने लगे। जम्बुमाली से स्वयं हनुमान, मित्रघ्न से विभीषण, निकुंब से नील तथा तपन से नल युद्ध कर रहे थे, सुग्रीव से प्रघस, लक्ष्मण से विरुपाक्ष, द्विविद से अशनिप्रभा, मैंद से वज्रमुष्टि का युद्ध होने लगा। इन चौबीस जोड़ियों ने युद्ध की पराकाष्ठा कर दी। रण वाद्यों की ध्वनि में ढोल, निशान, टमकी, भेरी इत्यादि की गूँज में वीरों ने सिंहनाद कर परस्पर युद्ध का प्रारम्भ किया।

इन्द्रजित्, अंगद व अन्यवीरों का द्वंद्व युद्ध– इन्द्रजित् ने अंगद को देखकर अत्यन्त कुशलतापूर्वक शस्त्रास्त्र एवं बाणों की वर्षा की लेकिन अंगद ने वे सभी वार विफल कर दिए। इन्द्रजित् ने अंगद के हृदय पर गदा फेंक कर वार किया। उस समय अंगद ने अंतराल में उड़ान भरी, जिसके कारण गदा का वार भूमि पर पड़कर व्यर्थ हो गया। अंगद ने अंतराल से कूदकर सारथी, घोड़े, रथ सभी का नाश कर दिया तथा पूँछ लपेटकर उससे ध्वज, छत्र इत्यादि तोड़ कर गिरा दिए। इन्द्रजित् ने घबराकर छलाँग लगायी, तब उसका मुकुट अंगद ने छीन लिया और हाथों से प्रहार कर उसे मरणासन्न स्थिति तक पहुँचा दिया। इससे पूर्व हनुमान के आघातों से इन्द्रजित् भयभीत था ही, पुनः अंगद के आघातों से उसे ऐसा लगा कि उसका प्राणान्त समीप है। अंगद ने इन्द्रजित् की दुर्दशा कर दी, खुले केश व रथहीन अवस्था में लज्जित होकर वह लंका की ओर भागने लगा। तब अंगद ने जाकर उसे केश पकड़कर खींचा, उसके केश काटे और वह स्वयं अंतर्धान हो गया। युद्ध में वानरों के समक्ष टिक न पाने से दुःखी होकर इन्द्रजित् ने विचार किया कि अब निर्णायक युद्ध कर राम-लक्ष्मण सहित सभी वानरों को शरबद्ध कर दूँगा, दूसरी ओर वानर वीर भी सम्पूर्ण शक्ति सहित द्वंद्वयुद्ध कर रहे थे। प्रजंघ ने तीन बाण चलाकर संपाती को निशाना बनाया परन्तु उन बाणों से बचकर संपाती ने अश्वकर्ण से प्रहार किया जिसके पत्ते घोड़े के कान सदृश होते हैं, उन वृक्षों को अश्वकर्ण कहते हैं। उस वृक्ष से प्रहार कर संपाती ने प्रजंघ को मूर्च्छित कर दिया।

रावणसुत अतिकाय ने रंभु व विनीत नामक दो वानर वीरों का आह्वान कर रणभूमि में बुलाया और उन पर असंख्य बाणों की वर्षा की। उन बाणों से बचते हुए अत्यन्त क्रोधित होकर उन वानरवीरों ने शिला पर्वत इत्यादि की वर्षा की तथा राक्षसों का नाश किया। पर्वतों के वार से तथा वानरों की लातों के प्रहार से अतिकाय का धनुष टूट गया। रथ टूट गया तथा सारथी भूमि पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। महोदर ने पाँच बाण सुषेण के हृदय की ओर साध कर चलाये परन्तु श्रीराम-नाम स्मरण से उसके प्राण

बच गए तथा इसके अतिरिक्त राम नाम स्मरण से, उसमें चौगुनी स्फूर्ति का संचार हुआ। तत्पश्चात् उसने पाँच योजन शिला लाकर महोदर पर दारुण प्रहार किया। उसी समय महोदर ने शीघ्र लंका में छलाँग लगाई परन्तु उसका रथ, सारथी, घोड़े, सेना, शिला के नीचे दबकर नष्ट हो गए। राक्षस खर के पुत्र मकराक्ष एवं ऋक्षराज जाम्बवंत को परस्पर एक दूसरे के साथ युद्ध करना था। जाम्बवंत ने वृक्ष से मकराक्ष पर प्रहार किये और मकराक्ष ने उसका वध करने के लिए असंख्य बाण छोड़े। जाम्बवंत द्वारा हाथों के प्रहार से पीटने से, वह सभामंडप में रावण के चरणों के पास मूर्च्छित होकर जा गिरा। जाम्बवंत ने मात्र हाथों से राक्षस सेना का मर्दन किया। रथ, सारथी व घोड़ों सहित मकराक्ष को धूल में मिला दिया। विद्युज्जिह्व नामक बलिष्ठ राक्षस ने शतबली को बाणों से बेधा पर उस वानर वीर ने अश्वकर्ण नामक वृक्ष से मस्तक पर प्रहार कर उस राक्षस को भूमि पर लिटा दिया। गज और प्रतपन ने भीषण युद्ध किया। प्रतपन ने गज को बायीं ओर से तथा पीछे शूल से विद्ध कर दिया। इस पर महाशक्तिशाली गज क्रुद्ध हो उठा और उसने शालवृक्ष हाथों में लेकर बड़े कौशलपूर्वक और तीव्र गति से आघात कर प्रतपन को धराशायी कर दिया।

कुंभकर्ण पुत्र कुंभ और जाम्बवंत के भाई वीरधूम्र द्वंद्व युद्ध के लिए भिड़ गए। दोनों ही पराक्रमी वीर होने के कारण परस्पर एक दूसरे के वश में नहीं हो रहे थे। कुंभ गदा, पट्टिश, तोमर तथा त्रिशूल लेकर और धूम्र शाल, ताल वृक्ष लेकर एक दूसरे पर वार कर रहे थे। धूम्र द्वारा कुंभ के पैरों पर प्रहार करते ही कुंभ लड़खड़ा कर मूर्च्छित हो गया। उसके सेवक उसे लंका में ले गये। उस समय राक्षसों की बहुत क्षति हुई। रावण पुत्र देवांतक पाँच बाणों से गवाक्ष नामक वानर को मारना चाहता था। गवाक्ष ने उन बाणों को पाषाणों से कुचल दिया। तत्पश्चात् क्रोधित होकर गवाक्ष ने बड़ा शालवृक्ष उखाड़कर रावण पुत्र पर फेंका। उसने उसे बाणों से छेद डाला तथा नये बाणों से देवांतक ने गवाक्ष पर वार किये, गवाक्ष ने उन बाणों को हवा में ही पकड़ लिया और देवांतक पर शिलाओं, शिखरों की वर्षा की, जिसके कारण देवांतक के धनुषबाण, शस्त्र, सारथी, रथ, घोड़े सभी नष्ट होकर भूमि पर गिर पड़े; देवांतक भूमि पर उतर आया। दोनों वीर परस्पर एक दूसरे की छाती पर, मस्तक पर, कंधे पर, भुजाओं पर, जंघाओं पर प्रहार कर रहे थे तथा मात देने के प्रयत्न कर रहे थे। दोनों पुरुषार्थी योद्धा होने के कारण सामने से टक्कर दे रहे थे। अन्त में दोनों श्रम के कारण पसीने से भीग गए और मूर्च्छित होकर गिर पड़े। सारण ने ऋषभ को युद्ध का आह्वान देकर रणभूमि में बुलाया तब ऋषभ ने अकस्मात् शालवृक्ष से उसकी छाती पर वार किया। सारण की छाती पर वृक्ष से प्रहार होते ही, उसकी आँखों के समक्ष अंधेरा छा गया, वह लड़खड़ाते हुए गिर पड़ा। त्रिशिरा ने मेघवर्ण हाथी पर बैठकर गर्जना करते हुए शरभ पर चढ़ाई की। उसने शरभ के मस्तक पर तोमर से प्रहार किया परन्तु उस वार को शरभ ने कुशलतापूर्वक निष्फल कर दिया। तत्पश्चात् शरभ ने सप्तपर्ण नामक वृक्ष गजकुंभ पर फेंके; वे वृक्ष त्रिशिरा को भी जा लगे, जिसके कारण हाथी व त्रिशिरा दोनों ही लड़खड़ाते हुए भूमि पर गिर पड़े।

रावणपुत्र नरांतक ने विख्यात वानरवीर पनस से युद्ध करते हुए बाणों की वर्षा की। बाण आते देखकर पनस आकाश में उड़ गया और वहाँ से उसने पर्वत फेंके, जिसके कारण नरांतक घबरा गया। शिलाओं की वर्षा से उसका मुकुट नीचे गिर गया। रथ का सारथी मर गया, जिसके कारण घोड़े रथ लेकर भागने लगे। घोड़े रथ को लंका की ओर ले गए तथा नरांतक रथ से वंचित रह गया। उस समय सेना में उठे कोलाहल से नरांतक दुःखी हो गया। अकंपन ने कुमुद नामक वानर के मस्तक पर परिघ से वार किया। वानर का मस्तक चकरा गया, वह नीचे बैठ गया परन्तु शीघ्र ही उठकर अकंपन को सामने देखकर

कुमुद वानर ने मुट्ठी से प्रहार किया और अकंपन गतप्राण हो भूमि पर गिर पड़ा. धूम्राक्ष व केसरी में चक्राकार युद्ध होने लगा। एक शरवर्षा कर रहा था तो दूसरा शिला शिखरों से वार कर रहा था केसरी उड़ान भर कर ऊपर गया और उसने धूम्राक्ष को पैरों से पकड़ लिया और बलपूर्वक उसे गोल-चक्राकार घुमाया, जिससे उसे चक्कर आने लगे। अन्त में धूम्राक्ष औंधे मुँह नीचे गिर पड़ा। महापार्श्व व गंधमादन में भीषण युद्ध हुआ। शस्त्रास्त्र, बाण, पाषाण इत्यादि से उन्होंने भयंकर युद्ध किया। तब गंधमादन ने चपलतापूर्वक महापार्श्व पर छलांग लगाई। अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर उससे भिड़ गया। उसे पूँछ में कसकर नखों से पेट फाड़ डाला, दांतों से गला कुतर डाला। इस प्रकार गंधमादन ने महापार्श्व को पीड़ित कर दिया वेगदर्शी वानर वीर और कुशल राक्षस शुक में भयंकर युद्ध हुआ। वेगदर्शी ने उड़ान भरकर रथ उलटकर तोड़ डाला। उस समय सारथी और घोड़े मारे गए। शुक स्वयं भाग गया तपन और नल दोनों ने घमासान युद्ध किया। नल ने जोर से थप्पड़ मारकर तपन की आँखें फोड़ दीं, इस प्रकार दृष्टिविहीन होकर तपन युद्ध किये बिना भागने लगा। वह रणभूमि में गिर पड़ा, नल ने उसकी उपेक्षा करते हुए उसे छोड़ दिया

हनुमान ने इससे पूर्व जंबुमाली का वध किया था। उसका बदला लेने के लिए दूसरा जंबु स्वयं आया था वह रथ में बैठकर आया। उसने अनेक कौशल दिखलाये। उसने तीन बाण हनुमान के हृदय की ओर चलाये। हनुमान वज्रदेही होने के कारण बाण लगने पर भी उन्हें कुछ नहीं हुआ, वही बाण उलट कर जंबु के शरीर में चुभ गए। हनुमान रथ के पास पहुँचे। उन्होंने अपने तलुवे से वार कर जंबु का मस्तक उड़ा दिया और उसे रणभूमि में गिरा दिया। बाण विद्या में कुशल मित्रघ्न ने विभीषण को बाणों से विद्ध कर दिया। विभीषण ने गदा से प्रहार कर उसका नाश कर दिया। अत्यन्त बलवान् राक्षसवीर प्रघस सेना को पीछे हटाते हुए सुग्रीव को युद्ध में जीतने के लिए आवेशपूर्वक आगे आया प्रघस द्वारा बाण चलाते ही सुग्रीव ने सप्तपर्ण वृक्ष से प्रघस के प्राण हर लिये। सुग्रीव के वार के समक्ष प्रघस कैसे टिक सकता था। उस वार से प्रघस की हड्डियों का चूरा हो गया और रक्त आकाश में छिटक गया। उसी समय विरुपाक्ष और लक्ष्मण का कौतुकास्पद युद्ध चल रहा था। लक्ष्मण ने एक ही विकट बाण से विरुपाक्ष के प्राण हर लिए। वज्रमुष्टि और मैंद नामक वानरवीर में भीषण युद्ध हो रहा था। विविध प्रकार के दाँव पेंच चल रहे थे। वज्रमुष्टि जब शून्य दृष्टि से देख रहा था तब मैंद ने मुष्टि प्रहार किया। जिस प्रकार शिव ने त्रिपुरासुर का वध कर उसे धराशायी कर दिया था, उसी प्रकार मैंद ने अपने वार से वज्रमुष्टि को भूमि पर गिरा दिया। द्विविद और अशनी नामक तुल्य बल योद्धाओं का द्वंद्व युद्ध हुआ तब द्विविद ने घोड़े मार डाले, रथ तोड़ डाला और अशनी की गरदन मरोड़ दी। निकुंभ और नील में भीषण युद्ध हुआ। निकुंभ ने शरजाल छोड़कर नील का उपहास करते हुए कहा "तुम एक तुच्छ वानर हो। मेरे समक्ष कैसे टिक पाओगे, मैं तुम्हें रणभूमि में अवश्य ही मार डालूँगा." इतना कहकर निकुंभ ने तुरन्त बाण चलाया। उसके समस्त सतेज बाण पूँछ से बाँधकर उसका ही रथ चक्र लेकर नील ने शत्रु का शिरच्छेदन कर उसे रणभूमि में धराशायी कर दिया।

रावण की सेना में चार प्रसिद्ध वीर थे। वे रावण की भी परवाह न करने वाले अद्भुत बली योद्धा थे। वे अपने पराक्रम एवं बल के समक्ष वानर वीरों को तृण समान समझकर श्रीराम से युद्ध के लिए आये यज्ञकेतु, शतघ्न, रश्मिकेतु, यज्ञकोपन नामक चारों वीर श्रीराम से युद्ध करने के लिए आगे बढ़े उन्हें देखते ही हनुमान बोले "मुझ राम सेवक के यहाँ उपस्थित होने पर ये क्षुद्र कीटक सीधे

स्वामी के समक्ष कैसे आ सकते हैं ?" उन चारों का वध करने का पुरुषार्थ हनुमान में विद्यमान था। उन्होंने वेगपूर्वक उड़ान भरी। वह उड़ान सीधे सत्यलोक पहुँची। उसी समय उन चारों कुशल योद्धाओं ने अपना विकट एवं विचित्र कौशल दिखलाते हुए श्रीराम पर बाण चलाकर रण गर्जना की। श्रीराम श्रेष्ठ धनुर्धारी थे। उन्होंने उन चारों के बाणों का निवारण करते हुए उन चारों का शिरच्छेदन कर वध कर दिया। तब एक आश्चर्यजनक घटना घटित हुई। श्रीराम द्वारा आवेशपूर्वक काटे हुए सिर वेगपूर्वक आकाश में उड़े। उस समय उन शिरों की हनुमान से भेंट हुई। उन्होंने हनुमान को यह रहस्य बतलाते हुए कहा– "श्रीराम ने वेगपूर्वक वार कर शिरों को काटकर मुक्त कर दिया। तुम्हारा पुरुषार्थ व्यर्थ है। अब तुम व्यर्थ में क्यों दौड़ रहे हो ?" उनके यह वचन सुनकर आकाश में विद्यमान हनुमान लज्जित हुए। उन्होंने श्रीराम की चरण-वन्दना कर अपने प्राणों को न्योछावर करते हुए कहा– "मुझे शीघ्रगति का गर्व था परन्तु श्रीराम की गति उससे कहीं बढ़कर है, उनके पुरुषार्थ का जितना वर्णन किया जाय उतना कम है।"

श्रीराम की वानर सेना तथा रावण की राक्षस सेना में प्रारम्भ हुए युद्ध में खड्ग, भाले, शूल, शक्ति, गदा, तोमर, बाण, गुप्ती इत्यादि शस्त्रों का प्रयोग हुआ। कितने ही रथ टूटे, असंख्य हाथी मारे गए। रथ टूटने की कड़कड़ाहट गूँजती रही। सारथी और घोड़े मारे गए। रक्त की नदी बह चली। रक्त और मांसयुक्त कीचड़ सा सर्वत्र फैल गया। भेड़िये, बाघ, गिद्ध इत्यादि को सुखपूर्वक मांस-भक्षण करने को मिला। सिरों से विरहित धड़ भी शस्त्रों से सुसज्जित होकर रणभूमि में बेतहाशा दौड़ रहे थे। इस प्रकार का भीषण युद्ध हुआ।

अध्याय १०

[इन्द्रजित् को मान्त्रिक रथ की प्राप्ति]

इन्द्रजित् द्वंद्व युद्ध करते समय अत्यन्त संत्रस्त हुआ था। अतः विशेष भावना से ही मन ही मन उसने रात्रि में शरबंध करने का निश्चय किया। पहले उसे हनुमान ने पीड़ित किया था, जिसका तीव्र दुःख उसके मन में था। अब यहाँ अंगद द्वारा पीड़ित करने के कारण इन्द्रजित् को अत्यन्त लज्जा का अनुभव हुआ। उस अपमान के विरोधस्वरूप राम लक्ष्मण आदि विभिन्न वीरों को युद्ध में शरबंध करने के लिए, उसने रात्रि का युद्ध प्रारम्भ किया।

इन्द्रजित् द्वारा रात्रियुद्ध आरम्भ– वानर वीर युद्ध में भिड़ गए और उन्होंने बड़े-बड़े राक्षसों को त्रस्त कर दिया। राक्षस निशाचर होने के कारण रात्रि में घनघोर अंधकार हो, ऐसी उनकी इच्छा थी। निशाचर रात्रि में प्रबल और वानर रात्रि में निर्बल होते हैं। यह विचार करते-करते सूर्यास्त हो गया। रात्रि अपने बल से सबल प्राणियों की सुषुप्ति-अवस्था में प्राण हरण करने वाली थी। रणभूमि में गहन अँधेरा छा गया था। कोई किसी को दिखाई नहीं दे रहा था। 'अरे क्या, तुम वानर हो'– ऐसा राक्षस वानरों से पूछ रहे थे और उन्हें उठाकर एक दूसरे का वध कर रहे थे। राक्षस और वानरों में हमेशा से बैर था, राक्षसों को अंधकार सहायक था। और वानरों के श्रीराम सहायक थे। उन्होंने भीषण युद्ध प्रारम्भ कर दिया, 'मारो, काटो, गिराओ, खींचो, ऐसी घोरों की गर्जनाएँ हो रही थीं। हमारा बल अधिक है, हमारे समक्ष सभी क्षुद्र कीटक सदृश हैं। इस प्रकार गर्जनाएँ कर वे एक दूसरे का वध कर रहे थे। कोई भी पीछे नहीं हट

रहा था। जहाँ स्वयं को ही देख पाना संभव नहीं हो रहा था, वहाँ दूसरे को कोई किस प्रकार देख सकता था। निशाचर राक्षस अंधकार के बल पर भीषण युद्ध के लिए उद्यत हो उठे थे।

रात्रि के गहन अंधकार में निशाचर राक्षस नगाड़े एवं रणभेरी बजाते हुए धैर्यपूर्वक चढ़ाई करने के लिए आगे बढ़े। यह नाद सुनकर वानर भी राक्षस-समूह में जा मिले। उस समय राक्षसों ने अंधेरे में वानरों को पकड़कर मुख में डालकर खाने का प्रयत्न किया, तब वानरों ने दाँतों से काटते हुए नखाग्रों से राक्षसों की जिह्वा फाड़नी प्रारम्भ कर दी। राक्षसों द्वारा वानर को मुख में डालते ही कान के छिद्र में प्रवेश कर वानर, राक्षसों के सिर पर लातों से प्रहार कर उन्हें धराशायी कर देते थे। राक्षसों ने अगर वानरों को निगल लिया तो वे पेट पर छलाँग लगाकर, मस्तक फोड़कर राक्षसों को गिरा देते थे। सोने के वस्त्राभूषणों से सुसज्ज राक्षसों को युद्ध के घोड़े समझकर वानर उनकी पीठ पर कूदकर उन्हें भूमि पर गिरा देते थे। नाखून से उनका पेट फाड़कर, मुख को नोचकर राक्षसों के प्रमुखों को वे धराशायी कर देते थे, हाथियों के दाँत उखाड़कर, महावत को खींचकर अनेक हाथियों को रणभूमि में गिरा दिया। उसी प्रकार रथों पर कूदकर पताकाओं को दाँतों से फाड़कर सारथी और घोड़ों सहित वानरों ने रथों को तहस नहस कर दिया। राक्षसों द्वारा शस्त्रों से वार करते ही वानर आकाश में छलाँग लगाते, जिससे राक्षसों के वार व्यर्थ चले जाते। इस प्रकार वानरों ने राक्षसों को छकाया।

श्रीराम वानरों के सहायक थे। उनके तेज के कारण वानरों को अंधेरे में भी दिखाई दे रहा था। अतः इस कारण वे राक्षसों का संहार कर पाये। उस समय वे भुभुःकार करते हुए राम नाम का उच्चार कर रहे थे। दूसरी ओर स्वयं महान योद्धा श्रीराम और लक्ष्मण राक्षसों का वध कर ही रहे थे। उन्होंने सुवर्णपत्री कंकपत्री जैसे नाना प्रकार के बाणों का प्रयोग कर राक्षस समूहों का नाश किया। रथ नष्ट कर दिए, घोड़ों के कंठ छेद डाले और अनेक राक्षस महारथियों का वध कर दिया, हाथियों के समूहों के दाँत सूँड़ सहित तोड़ दिए। राक्षस वीरों की आँखें फोड़ दीं तथा अनेक राक्षसों का वध कर दिया। श्रीराम अंधेरे में भी देख सकते थे अतः राक्षसों के प्रमुख वीरों को उन्होंने बाणों की वर्षा कर मार डाला। उस समय रावण प्रधानों से बोले "तुम सभी राम का वध करने की बातें करते हो, फिर युद्ध के लिए क्यों नहीं जाते ? उधर राम ने रणभूमि में त्राहि त्राहि मचा रखी है। विभीषण ने सत्य ही कहा था। उसके वचन सत्य सिद्ध हुए। राम से युद्ध करने का पराक्रम तुम्हारे पास है ही नहीं, यही इसका प्रमाण है।" रावण द्वारा ऐसा कहते ही प्रधान लज्जित हुए। "आपकी आज्ञा न मिलने के कारण हम युद्ध के लिए नहीं गये" यह कहकर छह नामी प्रधान अपना युद्ध कौशल दिखाने के लिए निकले, उनमें महापार्श्व, महोदर, वज्रदंष्ट्र, महाकाय, शुक, सारण आदि चतुर युद्ध कुशल महावीर थे।

श्रीराम द्वारा महावीरों की दुर्दशा– अपने महारथों की घरघराहट और सेना की कड़कड़ाहट की ध्वनि करते हुए वे छह धैर्यवान् व रणकुशलवीर श्रीराम के समक्ष आये, उस समय उनका नाश करने के लिए श्रीराम ने छह वेगवान् बाणों की योजना की। उन छह राक्षसवीरों ने भी अपने धनुष्यों पर निर्वाण बाणों की योजना कर श्रीराम पर चलाये। वे बाण श्रीराम के छह बाणों ने बीच में ही तोड़ दिए। तत्पश्चात् श्रीराम ने राक्षसों के धनुष बाण, रथ, सारथी, सभी का नाश कर उन छह प्रधानों के मुकुट भूमि पर गिरा दिये। तब अगर वे लोग रणभूमि की ओर पीठ करके भागे न होते तो श्रीराम द्वारा उनका वध हो गया होता। उनके जीवन के दिन अभी शेष थे, इसीलिए उन्होंने भाग कर अपने प्राण बचा लिए। श्रीराम भागने

वाले पर वार नहीं करते, यह उन्होंने पहले सुन रखा था। इसीलिए उन्होंने रणभूमि से पलायन किया। प्रधानों को भागते हुए देखकर वानरगण हँसने लगे फिर भी वे प्रधान लज्जित हो, रामबाण के भय से भागते रहे उन प्रधानों के पलायन के पश्चात् श्रीराम ने युद्ध कर प्रधानों की सेना पर शरवर्षा कर उसे समूल नष्ट कर दिया। स्वर्ण कवच धारण करने वाले सेनानी राक्षस वीरों को श्रीराम ने युद्ध में उनका सिर काटकर धराशायी कर दिया। जो रणभूमि में युद्ध कर रहे थे, उनके सिर कट गए; जो गर्जना कर रहे थे उनकी जीभें कट गई, दाँत गिर गए। इस प्रकार श्रीराम ने युद्ध भूमि धड़ों एवं मस्तकों से भर डाली। जो अपना प्राण बचाकर भाग गये वे ही लंका में पहुँच सके।

अंगद द्वारा इन्द्रजित् को खदेड़ना– प्रधानों का पलायन एवं सम्पूर्ण सेना का नाश देखकर इन्द्रजित् अंगद की सेना में घुस गया। इन्द्रजित् चपल धनुर्धर था। उसने क्रोधपूर्वक बाणों का जाल चलाकर अंगद की सेना में हाहाकार मचा दिया। अपनी सेना पर संकट को देखकर अंगद क्रुद्ध हो गया। उसने इन्द्रजित् को मारने की ठानी उसने महान पुरुषार्थ करते हुए पाँच योजन लम्बी व भारी शिला हाथ में उठाई और इन्द्रजित् के बाणों को रोकते हुए वेगपूर्वक फेंकी। इन्द्रजित् ने उस शिला पर असंख्य बाण चलाये लेकिन उस शिला का वार तो होना ही था। अन्त में इन्द्रजित् अपना रथ छोड़कर भागने लगा। वह अत्यन्त भयभीत था। अंगद द्वारा फेंकी गई शिला के आघात से रथ, घोड़े, सारथी सब नष्ट हो गए और इन्द्रजित् विरथ हो गया। इस प्रकार अंगद ने रणभूमि में ख्याति अर्जित की। वास्तविकता तो यह थी कि उस शिला के आघात से इन्द्रजित् का वध हो जाता परन्तु वह राक्षस बुद्धिमान था इसीलिए शीघ्र वहाँ से भाग खड़ा हुआ। इन्द्रजित् के रथ, घोड़े, सारथी सब नष्ट हो गए थे अत: उसे रथ के बिना पैदल ही भागना पड़ा। उसके धनुष बाण व अन्य शस्त्र भी शिला गिरने से नष्ट हो गए थे। अंगद ने भागते हुए इन्द्रजित् को बालों से पकड़ लिया। उसके बाल काट दिये। वह पुनः भागने लगा। अंगद ने पुनः उड़ान भरकर इन्द्रजित् को हाथों से पकड़ लिया परन्तु वह अन्तर्धान होकर आकाश मार्ग से भाग खड़ा हुआ। तत्पश्चात् अंगद ने गर्जना करते हुए राक्षस सेना का संहार किया और वापस लौट गया।

पहले और अब दोनों ही द्वंद्व युद्धों में अंगद से बचकर भागने के कारण इन्द्रजित् उद्विग्न हो उठा। 'सर्वप्रथम हनुमान ने और अब दो बार अंगद ने मुझे संत्रस्त कर दिया, मेरा पुरुषार्थ व्यर्थ है। वानरों ने मुझे हतबल कर दिया। मैं युद्ध में वानरों को जीत नहीं सकता तो रामचन्द्र को कैसे जीत पाऊँगा ?' इस विचार से वह चिंताग्रस्त हो गया। तब उसने स्वयं जारण-मारण तन्त्र का प्रयोग करने का निश्चय किया। इन्द्रजित् को भगवान् शिव से वरदान मिला था कि, "जो शिव का सर्पभूषण है, वह बाण बनकर वीरों का शरबंधन करेगा। उसे विधिपूर्वक प्रयोग करने पर ही वह युद्ध में फलदायी होगा अन्यथा निरर्थक होगा. अत: इन्द्रजित् ने विधिपूर्वक प्रयोग के लिए यज्ञ करने की तैयारी की।

इन्द्रजित् की यज्ञ-साधना और विधि विधान– इन्द्रजित् ने लाल वस्त्र, लाल माला धारण की। सिंदूर का टीका लगाया। गोरोचन मणि की पीली माला गले में पहनी। इस प्रकार यज्ञ सिद्धि की पूर्व तैयारी की प्रयोग-यज्ञ को विधि अनुसार शस्त्र मथ कर अग्नि प्रज्वलित की। रक्तचन्दन का ईंधन प्रयोग में लाकर तेजस्वी अग्नि प्रदीप्त की। इस अग्नि को प्रज्वलित करते समय अगर धुआँ निकलता है तो यज्ञकर्ता को अपयश की प्राप्ति होती है और अगर धूम्ररहित अग्नि ज्वालाएँ वेगपूर्वक निकलती हैं तो यज्ञकर्ता को रण में सुयश प्राप्त होता है। आगे का यज्ञ विधान करने हेतु इन्द्रजित् ने यज्ञ कुंड के चारों

और उल्लू के रक्त को जल सदृश छिड़का, शस्त्रों को दर्भ सदृश कुंड के चारों ओर फैलाया। राक्षसों द्वारा शस्त्र संभार लाये जाने पर इन्द्रजित् ने मन्त्रों का जाप कर उस पर प्रोक्षण किया। शतपत्रा, शतघ्नी, खड्ग, त्रिशूल, तोमर, बाण, गदा, मुद्गर, गुप्तघ्नी इत्यादि अनेक शस्त्र कुंड के चारों ओर फैलाये गए। लोहा तप्त कर उसे छानकर उसमें से फौलाद निकालकर, उससे होम के लिए साधन बनाये। उन्हें हाथों में लेकर बकरे के रक्त से होम का प्रारम्भ किया। सफेद तिलक वाले बकरे का प्रयोग करने से यजमान को दण्ड मिलता है, कृष्णवर्णी बकरे का प्रयोग करना चाहिए। बकरे को मारने पर अगर उसमें से रक्त निकलता है तो होम की सिद्धि विपरीत हो जाती है। शस्त्रास्त्र निर्जीव होकर युद्ध में वे सामर्थ्यहीन हो जाते हैं, इसीलिए बकरे को जीवित रखकर उसके गले के समीप से रक्त लेकर इन्द्रजित् स्वयं होम करने लगा। उस समय एक विपरीत घटना घटित हुई। इन्द्रजित् ने जैसे ही मन्त्रजाप प्रारम्भ किया, उसके दाँत जम गए। 'श्रीरघुनाथ का युद्ध में वध करो'- इस अर्थ का मंत्र उच्चारते ही अत्यन्त उग्र वाग्देवी कंकाली क्रोध से थर-थर काँपने लगी, जिसके कारण इन्द्रजित् की वाणी ही बन्द हो गई।

श्रीराम सम्पूर्ण जगत् के जीवन, परमात्मा, चिद्घन तथा जन्म-मृत्यु से परे होने के कारण मन्त्रोच्चारण अवरुद्ध हो गया। श्रीराम का वध हो ही नहीं सकता, इसीलिए मन्त्र का मन्त्रार्थ ही रुक गया। मन्त्र शक्ति कंकाली तथा शिववरदान शक्ति शूली दोनों क्षुब्ध हो गईं, उनकी क्रोधाग्नि से मन्त्रशैली अवरुद्ध हो गई इन्द्रजित् को हृदय से मन्त्र ही स्मरण नहीं हो रहे थे। जीभ से वह शब्दों का उच्चारण नहीं कर पा रहा था। होम की सिद्धि के समय ही उसकी वाणी बन्द हो गई। इन्द्रजित् मन्त्र एवं मन्त्रार्थ भूल गया, उसके मुख से अक्षर ही नहीं निकल रहे थे। तब वह रावण का ज्येष्ठ पुत्र अत्यन्त दुःखी हुआ। 'शिव के वरदान से समर्थ होकर श्रीरघुनाथ को शरबन्धन में बाँधने के लिए मैंने जो पुरुषार्थ किये, वे सभी व्यर्थ हो गए। होम की सिद्धि के समय ही मेरी वाणी बन्द हो गई और रघुनाथ को जीतने का प्रयत्न विफल हो गया। इस विचार से इन्द्रजित् दुःखी हो गया। श्रीराम को जीतना सम्भव नहीं है, यह समझ में आने पर अत्यन्त दुःखी होकर इन्द्रजित् गरदन झुकाकर शंखध्वनि करते हुए विलाप करने लगा।

श्रीराम की प्रतिक्रिया; इन्द्रजित् को रथप्राप्ति– श्रीराम को सम्पूर्ण वृत्तान्त ज्ञात हुआ। परन्तु उन्होंने इन्द्रजित् का पुरुषार्थ, उसका शरबंध कौशल तथा युद्ध का कौशल देखने का निश्चय किया श्रीराम ने स्वयं से विचार किया कि 'मैं तो जन्म मरण से परे हूँ, लक्ष्मण भी मृत्यु से मुक्त है तब शरबंध का कैसा भय ? इन्द्रजित् को शिव का वरदान मिला है तो उस वरदान को मिथ्या नहीं होने दूँगा। स्वयं शरबंध सहन कर शिववरदान को सत्य सिद्ध करूँगा। भले ही मेरे प्राण चले जायँ, पर मैं शिववरदान को मिथ्या नहीं होने दूँगा। शरबंध सहन करना मेरे लिए संभव है तब मुझे उसका कैसा भय ? सामान्य-जनों का शरबंध से भय ठीक है, हमें उसका भय नहीं।' ऐसा विचार कर वाग्देवता के भी देव श्रीराम ने इन्द्रजित् को वाणी से मन्त्रों के उच्चारण के लिए वाग्देवता को मुक्त कर दिया। इन्द्रजित् की वाणी मुक्त होते ही वह प्रसन्न हो गया। उसके हृदय से मन्त्र एवं मन्त्रबीजार्थ प्रकट होने लगे तब कृष्ण वर्णी बकरे का रक्त लेकर उग्रमन्त्रों से मन्त्रबीजार्थ कहते हुए उसने विधि-युक्त होम किया। उस समय अश्वों सहित रथ प्रकट हुआ। उस रथ में शस्त्र-सामग्री भी थी। यह सब देखकर इन्द्रजित् प्रसन्न होकर श्रीराम से युद्ध करने के लिए चल पड़ा। उस समय उसका आवेश लक्षणीय था।

रथ होम से प्रकट नहीं हुआ, तब वहाँ कहाँ से व कैसे आया, यह इन्द्रजित् को समझ में नहीं आ रहा था। रथ अकस्मात एवं अभंग आया था। उस अभंग, अमर, घोड़ों एवं उसमें दिव्य शस्त्रों के

समूह युक्त रथ के दर्शन होते ही रावण पुत्र अपार उत्साहित हो उठा। उस रथ में सहस्र शतघ्नी शक्ति भाले, परिघ, अर्द्धचन्द्रबाण, तूणीर, शूलशक्ति इत्यादि सर्व शस्त्र सम्पत्ति होने के कारण उसे नपथ्य नामक शास्त्रयुक्त नाम दिया जाता है। वह रथ प्राप्त हो जाने पर इन्द्रजित् ने होम समाप्त किया। तत्पश्चात् अत्यन्त हर्षपूर्वक वह रथ में बैठा। स्वर्णाभूषणों से सुशोभित तेजस्वी इन्द्रजित् वैदूर्यालंकृत होने से रथ में शोभायमान हो रहा था। जारण-मारण विधि का पुरुषार्थ सिद्ध कर अभंग रथ प्राप्त होने के कारण प्रसन्न इन्द्रजित् ने आनन्दपूर्वक गर्जना की। उस रथ की अन्तर्धान गति दूसरों को दिखाई देने वाली न थी। उस रथ ने आकाश मार्ग से अतर्क्य वेग शक्ति से प्रस्थान किया।

इन्द्रजित् का गर्व और आकाशवाणी का परिणाम– राक्षसों का विजय प्राप्ति के लिए नित्य का तन्त्र मन्त्र यही था कि जारण मारण विधि से होम करना। इन्द्रजित् ने उसी के द्वारा अभंग रथश्रेष्ठ प्राप्त कर लिया था। उसके गर्वपूर्ण विचार प्रारम्भ हो गए। 'मैं अकेला सर्वत्र विजयी होऊँगा। मुझे अभंग रथ प्राप्त होने के कारण अब मैं करोड़ों वानरों का वध करूँगा। सुग्रीव को सहज ही धराशायी करूँगा। सम्पूर्ण सृष्टि को वानर रहित कर दूँगा। मैं ऐसा हठी योद्धा हूँ कि जिसके प्रताप के समक्ष श्रीराम बेचारा क्या टिक पाएगा। उसका युद्ध में वध करूँगा। सौमित्र की हड्डियाँ तोड़ दूँगा। वल्कल परिधान किये हुए जटाधारी राम और लक्ष्मण को शरत्राण के निशाने से नष्ट कर दूँगा। घर के बैरी विभीषण के नाक-कान छेदकर उसे अपमानित करने के पश्चात् ही लंकाभुवन वापस लौटूँगा। रावण की श्रीराम से युद्ध की मानसिक चिंता दूर करने के लिए राम लक्ष्मण को रणभूमि में मारकर पिता की व्यथा समाप्त कर उसे सुखी करूँगा। अभिचार से मिले वरदान के कारण मैं तीनों लोकों में अजेय हूँ।' इस प्रकार इन्द्रजित् के आनन्दायक विचार चल रहे थे कि तभी आकाशवाणी हुई।

"भगवान् शिव के सर्प-बाणों से श्रीराम शरबंधन में जकड़े तो जाएँगे परन्तु वे तुम्हें भीषण बाणों की वर्षा कर मारेंगे। श्रीराम को भगवान् शंकर की सहायता प्राप्त है और वह राम-नाम का निरन्तर जाप करते हैं। अतः अपने सर्पबाणों का स्वयं शंकर ही उच्छेदन करेंगे। श्रीराम और सौमित्र बंधनमुक्त होकर भीषण बाणों की वर्षा कर दशकंठ रावण को रणभूमि में धराशायी कर देंगे। राक्षसों का नाश करेंगे। विकट बाण चलाकर कुंभकर्ण का वध कर देंगे। लक्ष्मण तुम्हें मारेंगे और श्रीराम राक्षसकुल का निर्दलन करेंगे। उसी के साथ ही पुनः पुत्र, प्रधान एवं चतुरंगिणी सेना नष्ट हो जाएगी। लंका के राज सिंहासन पर श्रीराम द्वारा विभीषण की स्थापना की जाएगी। इस प्रकार श्रीराम के कारण सीता सुखी होगी। इस आकाशवाणी को सत्य मानो।"

आकाशवाणी सुनकर इन्द्रजित् मन ही मन घबरा गया और तुरन्त अदृश्य स्थिति में छिप गया। "रघुनाथ मुझे कैसे देख सकते हैं। शिव वरदान से मुझे प्रत्यक्ष रथ की प्राप्ति हुई है। तब इस झूठी आकाशवाणी से कौन डरता है? इस आकाशवाणी को शरीर नहीं है, जीभ नहीं है। यह मिथ्या बोलती है, इसे सत्य कौन समझेगा? शिव वरदान से प्राप्त सर्पबाण व्यर्थ हो ही नहीं सकते। मैं वानरगणों सहित राम लक्ष्मण का वध करूँगा। क्षण में भयपूर्ण क्षण में वैरयुक्त विचारों का संकट इन्द्रजित् के समक्ष उपस्थित हुआ। इसके आगे हुआ युद्ध बड़ा ही रंजनकारी है। श्रीराम का कौशल व शिव को प्रिय पवित्रता की महत्ता ऐसी कि शिववरदान का शरबंधन सहकर भी श्रीराम राक्षसों का सर्वनाश करेंगे।

अध्याय ११

[इन्द्रजित् द्वारा श्रीराम को शरबंधन]

इन्द्रजित् को होम करने के पश्चात् रथ श्रेष्ठ और शस्त्रों की प्राप्ति होने पर वह अत्यन्त आवेशपूर्वक रथ में बैठकर अदृश्य रूप में रणभूमि में आया। वहाँ उसे नरवानर योद्धा दिखाई दिये। वहाँ राम और लक्ष्मण वीर वानर समूह के साथ राक्षसों का वध कर रहे थे। इन्द्रजित् वहाँ अदृश्य स्थिति में रथ से आया और उसने राम और लक्ष्मण पर अपने बाण चलाये। उसने उन्हें अपने बाणों से घेर लिया। भीषण बाण वर्षा कर आकाश और पृथ्वी को पाट दिया। आकाश से भीषण बाणों को आते देखकर श्रीराम और लक्ष्मण सतर्क हो उठे और उन्होंने शीघ्र धनुष सुसज्ज किया परन्तु वे दुविधा में थे क्योंकि कहाँ लक्ष्य साध कर बाण चलायें, ऐसा कोई लक्ष्य उन्हें दिखाई नहीं दे रहा था। तभी श्रीराम ने राक्षसों की फुसफुसाहट सुनी। आकाश में अदृश्य रूप में रहने की श्रेष्ठ शक्ति इन्द्रजित् के पास है, ऐसा राक्षस कह रहे थे। वे श्रीराम को बाणों के जाल में फँसाने के विषय में बोल रहे थे।

श्रीराम का शब्दवेधी शरसंधान– श्रीराम शब्दों की ध्वनि की दिशा में अचूक शर-संधान करने में निपुण थे। अतः जिस मुख से वचन बोले जाते थे, उस मुख का लक्ष्य साधना श्रीराम के लिए सहज साध्य था। अपने साथ उपस्थित पराक्रमी वीरों की महानता का वर्णन करने वाले राक्षसों की दिशा में बाण चलाने से, बोलने वाले का कंठ छेदन होकर राक्षस रणभूमि में धराशायी हो जाते थे। इस दृश्य को देखकर अन्य राक्षस भयभीत होकर चिल्लाने लगते थे। उस ध्वनि की दिशा में बाण चलाकर श्रीराम राक्षसों का संहार करते थे। इस प्रकार राक्षसों का हाहाकार और उस दिशा में श्रीराम की शरवर्षा से असंख्य सैन्य समूह का पूरी तरह से निर्दलन हो गया। अन्त में श्रीराम ने इन्द्रजित् के धनुष का टंकार नाद सुनकर उस ध्वनि की दिशा में बाण चलाकर उसका धनुष तोड़ डाला। यह देखकर इन्द्रजित् ने स्वीकार कर लिया कि श्रीराम शब्दवेधी धनुर्धर हैं। अतः उसने अपनी सेना के सभी सैनिकों, सेनापतियों तथा प्रधानों को पूर्णतः मौन धारण करने की आज्ञा दी तथापि घोड़ों के हिनहिनाने की दिशा में बाण चलाकर श्रीराम सेना का संहार कर रहे थे। तब राक्षसों ने घोड़ों का मुख बाँधकर रथ चक्रों एवं खुरों पर कुछ बाँध कर उनकी आवाज बंद कर धोखे को टालने का प्रयत्न किया। श्रीराम अंधेरे में भी देख सकते थे। उन्होंने कोहरे से स्वयं को ढँक लिया था। अतः इन्द्रजित् ने भी कपटविद्या से गहन कोहरे का निर्माण किया तथा उसकी ओट में रहकर वह सर्वत्र संचार करने लगा। आकाश से राम एवं लक्ष्मण पर भयंकर शर वर्षा करने लगा।

जिस प्रकार पर्जन्य धाराओं से पर्वत ढँक जाते हैं, उसी प्रकार श्रीराम तथा लक्ष्मण ने राक्षसों पर बाणों की वर्षा कर उन्हें ढँक दिया। शत्रु पक्ष से होने वाली बाणों की वर्षा पर दृष्टि रखकर वे दोनों महावीर धनुष सुसज्ज कर बाणों की ओर निशाना साध रहे थे। इन्द्रजित् द्वारा चलाये गए असंख्य बाणों को श्रीराम ने सतर्कतापूर्वक तोड़ डाला। अपनी सूक्ष्मदृष्टि कौशल से कपटयुक्त बाणों का श्रीराम ने नाश कर डाला। श्रीराम को युद्ध में जीता नहीं जा सकता, यह देखकर इन्द्रजित् शिवजी के पास जाकर शीघ्र शिव वरदान वाला सर्पबाण ले आया। श्रीराम ने शिवजी के वरद बाणों का सम्मान करते हुए उन्हें नष्ट नहीं किया स्वयं पर बाणों का प्रहार होने पर भी शिव वचन को मिथ्या नहीं होने दिया। इसके लिए

अपने प्राणों की भी चिन्ता नहीं की। रण-भूमि में मूर्च्छित होकर गिरने पर भी वानर वीर, राम कार्य के लिए प्राण त्यागने को तैयार हो गए और उन्होंने रणभूमि से पलायन नहीं किया।

शिवजी के वरद् बाणों के संदर्भ में श्रीराम की भूमिका– श्रीराम-कार्य के लिए प्राण त्यागने से तत्काल ब्रह्मप्राप्ति होगी। पलायन करने से अधोगति होकर नरक की प्राप्ति होगी। भागने से श्रीराम की सेवा से वंचित होना पड़ेगा। मुक्ति न मिलकर निरंतर नरक में रहना होगा, यह विचारकर वानरगणों ने धैर्यपूर्वक श्रीराम के कार्य लिए प्राण न्योछावर करने का निश्चय किया। 'हमें जन्म मरण का दोष नहीं है क्योंकि सहज ही हमें ब्रह्मप्राप्ति हो गई है।' यही विचार कर वानर वीर श्रीराम में अपना ध्यान केन्द्रित कर बाणों की वृष्टि सहन कर रहे थे। वानर गणों को बाणों से घायल हो गिरा हुआ देखकर लक्ष्मण क्रुद्ध हो उठे उनके स्वयं के शरीर में अनेक बाण चुभे हुए थे। वे श्रीराम से बोले– "अपने वानर वीरों के शरीर में भीषण बाण चुभकर वे धराशायी हो रहे हैं फिर आप शांत मुद्रा में कैसे देख रहे हैं ? राक्षसों का संहार करने के लिए मेरे पास ब्रह्मास्त्र है।" इस पर श्रीराम लक्ष्मण से बोले– "इससे सम्पूर्ण सृष्टि का अन्त हो जाएगा। इन्द्रजित् के अपराध के लिए सम्पूर्ण सृष्टि का विध्वंस करना उचित नहीं होगा। इस दुर्बल संसार में करोड़ों की संख्या में वृद्ध, बाल, पक्षी, प्राणी विद्यमान हैं, इन सब प्राणियों का संहार होगा। स्त्रियाँ एवं बालक उस अस्त्र के कारण मारे जाएँगे। सर्वत्र प्रलय होगा। उस अस्त्र की ऐसी विशेषता होने के कारण प्राणान्त निकट होने पर भी उसके प्रयोग का विचार नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त एक और बात तुम्हें बताना है, उसे सुनो। शिव वरदान-युक्त सर्प-बाणों को कभी काटना नहीं चाहिए। हम शिवभक्त हैं अतः उनका वरदान मिथ्या नहीं होने देना चाहिए, यही हमारा परमार्थ और पुरुषार्थ है। मूलतः तुम और मैं मृत्यु से परे हैं, अतः शिववरद्-बाण अपनी देह में चुभने पर उसे सहन कर लें तो उसका भय कैसा ? अतः शिववरद् बाणों को हमें सहन करना चाहिए तथा शरबंधन को भी स्वीकार करना चाहिए।" श्रीराम द्वारा ऐसा कहते ही लक्ष्मण उनका संकेत समझ गए तथा शिव वरदान का पालन करने के सम्बन्ध में दोनों का मत एकरूप हो गया।

इन्द्रजित् द्वारा शरसंधान; राम एवं लक्ष्मण बन्दी– इन्द्रजित् श्रीराम एवं लक्ष्मण के मर्मस्थल पर शर-संधान कर रहा था। वे सभी बाण श्रीराम के निःश्वास से उड़ जाते थे। किसी आँधी में जिस प्रकार तिनके उड़ जाते हैं उसी प्रकार वे बाण उड़ जाते थे। इससे श्रीराम की असामान्यता प्रकट हो रही थी। इन्द्रजित् इस असामान्यता का अनुभव कर विचार करने लगा– "मेरे द्वारा चलाये गए शक्ति बाण जिसकी श्वास वायु से उड़ जा रहे हैं और उसके द्वारा बाणों से प्रहार होने लगा तब राक्षसों का संहार हो जाएगा।" तत्पश्चात् इन्द्रजित् ने अत्यन्त क्रोधपूर्वक आवेश में शिव वरद्-बाण चलाये, शिववरद् ने स्पष्ट रूप से बतलाया कि रघुकुलतिलक राम को शरबंधन में रखने पर भी राक्षस समक्ष आते ही वे उनका मस्तक क्षण-मात्र में काट डालेंगे। शरबंधन में भी सर्पबाण श्रीराम की स्तुति करते हैं। श्रीराम शरबंधन में रहते हुए भी सजग हैं, यह सत्य इन्द्रजित् को ज्ञात था। शिववरद् बाणों से राम एवं लक्ष्मण के शरीर छलनी हो गए, उनका रुधिर पृथ्वी पर बहने लगा। राम और लक्ष्मण पराक्रम होते हुए भी अपने शरीर में चुभे बाणों का निवारण नहीं कर रहे थे। वसंत-ऋतु में पुष्पित पलाश वृक्ष जिस प्रकार दिखाई देता है, वैसे ही राम लक्ष्मण अत्यन्त रक्त रंजित होकर सिंदूर की आकृति सदृश दिखाई दे रहे थे। वरद्बाण मर्मस्थल पर लगने के कारण दोनों मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

शरबंध से सर्वप्रथम राम तथा उनके साथ ही लक्ष्मण भूमि पर गिर पड़े इन्द्रजित् कपटी राक्षस था। उसने वरद् बाणों का पिंजरा बनाकर राम व लक्ष्मण को बन्दी बना लिया। उनके शरीर को बाणों की सहायता से एक स्थान पर गाड़ दिया। कोहनी तक के नालीक बाण, बित्ते भर अर्द्ध नालीक बाण, इसके अतिरिक्त अन्य बाणों की सतत वर्षा की। विद्युत सदृश प्रज्वलित अग्नि से मस्तक पर प्रहार कर राम-लक्ष्मण को बन्दी बनाया। बछड़े के दाँतों सदृश दो पंक्तियाँ मस्तक पर कुशलतापूर्वक बनाकर, उसने यह शरबंध किया था। अर्द्धचन्द्र एवं सिंह के दाँतों के सदृश तीक्ष्ण बाणों से श्रीराम को बंधन में बाँधने के लिए उसने अनेक बाण चलाये थे।

इन्द्रजित् की प्रसन्नता; लक्ष्मण का क्रोध; सान्त्वना– श्रीराम एवं लक्ष्मण के इस प्रकार निश्चेष्ट होकर शरबंधन में बँध जाने पर इन्द्रजित् आनन्दपूर्वक गर्जना करते हुए बोला– "सुरगण जिसके चरणों में नतमस्तक होते हैं और जिसकी युद्ध महिमा श्रेष्ठ है, ऐसे अमरेन्द्र को मैंने अपने बाणों से बन्दी बना लिया। मेरे युद्ध की गुप्त पद्धति अमरपति भी नहीं जानते, वहाँ तुम दोनों मानव क्या कर सकते हो ? व्यर्थ में मरने के लिए चले आये हो।" इन्द्रजित् के गर्वपूर्वक बोले गए वचन सुनकर लक्ष्मण क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने श्रीराम से शरबंधन तोड़ने के लिए पूछा– "मैं तो शेषनाग का पूर्ण अवतार हूँ। मैं इन अद्‌भुत् सर्पबाणों का निवारण करूँगा। एक क्षण में नर एवं वानरों को बंधन मुक्त करता हूँ। मैं फुफकार कर इन्द्रजित् एवं राक्षसों का वध करूँगा, लंकापुरी का नाशकर दशानन का वध कर डालूँगा। राक्षसों के सिरों से गेंद की भाँति खेलूँगा। रणक्रंदन कर सभी राक्षसों का संहार कर दूँगा, रक्त की नदियाँ बहाऊँगा, जिससे भूतों को रक्त व मांस भक्षण करने को मिलेगा, चील और गिद्ध तृप्त हो जाएँगे। अतः हे रामचन्द्र, मुझे आप आज्ञा दें।" लक्ष्मण के क्रोधयुक्त वचन सुनकर श्रीराम को हँसी आ गई और वे अपना निश्चय बताते हुए बोले– "अगर तुमने अपना शेषावतार प्रकट किया तो वेदशास्त्रों एवं पुराणों की अवहेलना होगी तथा आगे का चरित्र, धर्मनीति, लोक स्थिति तथा भगवद्‌भक्ति की अवहेलना करने की अपकीर्ति होगी। बहुरूपिया द्वारा धारण किये गए राजा रानी के रूप झूठे हैं, यह जानते हुए भी स्त्री-पुरुष उसे सच मानते हैं। उसी प्रकार अवतार चरित्र वेद-शास्त्र और स्वधर्म लौकिक की रक्षा करने के लिए उसका प्रतिपालन आवश्यक है, उसकी हमें तत्परतापूर्वक रक्षा करनी चाहिए। मूल लक्षण हमारा यह है कि हमारी मृत्यु नहीं हो सकती; अतः शिववरद् बाण सहन करने में हमें कैसी कठिनाई ? हे सौमित्र, शिववरदान-युक्त शर-बन्धन की हमें लेशमात्र भी बाधा नहीं है क्योंकि शिव जी हम पर प्रसन्न हैं।"

श्रीराम के वचन सुनकर लक्ष्मण ने दंडवत् प्रणाम कर श्रीराम की चरण-वंदना की और बोले– "श्रीराम, आपके अथाह शांत-चित्त को मैं समझने में असमर्थ हूँ, जहाँ वेद भी मौन रह जाते हैं। आपके समक्ष कोई शास्त्रानुवाद टिक नहीं सकता, ऐसी आपकी महिमा है। उस विषय में मैं अज्ञानी क्या कह सकता हूँ। श्रीराम निरभिमानी हैं। सगुण दिखाई देते हुए भी निर्गुण हैं, देह धारण करने पर भी विदेही तथा परिपूर्ण हैं।"– इन शब्दों में अपना मनोगत कथन करते हुए श्रीराम की स्तुति कर, लक्ष्मण रामाज्ञा शिरोधार्य कर आनन्दपूर्वक शरबन्धन में पड़े रहे। श्रीराम ने लक्ष्मण का क्रोध शांत किया और दोनों ही निश्चेष्ट होकर शरबंधन में बँधे पड़े रहे। हाथों में धनुष, पीठ पर तूणीर तथा उसमें स्वर्णपत्री बाण, इस प्रकार श्रीराम व लक्ष्मण को पड़ा हुआ देखकर इन्द्रजित् आनन्दित हो उठा। श्रीराम और लक्ष्मण को मैंने शरबंधन में बाँध दिया, यह सत्य मानकर, वह अपनी बड़ाई करने लगा तथा अपने पराक्रम के विषय में अभिमानपूर्वक बोलने लगा।

अध्याय १२

[सुग्रीव का शोक एवं सीता को श्रीराम के दर्शन]

श्रीराम को शरबंधन में फँसा देखकर तथा राम व लक्ष्मण की अचेतन अवस्था देखकर इन्द्रजित् आत्मस्तुति करते हुए कहने लगा "जिसने खर दूषण एवं त्रिशिरा के प्राण हरे, चौदह हजार राक्षसों का बाणों से संहार किया। अकेले एवं पैदल होते हुए इतना पराक्रम किया, जिसे सुनकर लंकापति रात-दिन थर थर काँपता था। श्रीराम के प्रताप से भयभीत होकर रावण को भयंकर स्वप्न पड़ते थे। ऐसे राम और लक्ष्मण को मैंने शरबंधन में बाँध लिया है। मेरे इस शरबंधन को अट्ठासी सहस्र ऋषिगण, शिव, इन्द्र, ब्रह्मदेव अथवा अन्य सभी सुर गण एकत्र होकर भी इसे खोल नहीं सकते, अत: राम लक्ष्मण की अब मृत्यु हो गई इस जगज्जेता वीर इन्द्रजित् ने शरबंधन से वानर वीरों को रणभूमि में धराशायी कर दिया, जिससे लंकानाथ भयभीत थे, जिनके कारण लंका में त्राहि-त्राहि मच गई थी, उस रघुनाथ को लक्ष्मण एवं वानरगणों सहित मैंने मार डाला। राक्षस वैरियों को जो जड़ थे, उन राम एवं लक्ष्मण को प्राणान्त के शरजाल में कसकर वैरियों को निर्मूल कर दिया। अब युद्ध का जंजाल समाप्त हो गया, युद्ध की वार्ता समाप्त हो गई उस वीर राम और लक्ष्मण को मैंने शरबंध के संकट में डाल दिया है। इन्द्रजित् ने वानरगणों सहित राम पर युद्ध में विजय प्राप्त कर ली है।" इन्द्रजित् इस प्रकार रणभूमि में विजय सम्पादन कर आनन्दपूर्वक लंकानगरी में वापस लौट गया। विजय प्रदर्शित करने वाले रणवाद्यों की ध्वनि के साथ उसने लंका में प्रवेश किया उसके सैनिक उसका जय जयकार कर रहे थे। उनकी विजय के उपलक्ष्य में लंका सजायी गई थी। स्वागत चिह्न, ध्वज, पताकाएँ, रंगोली, रंग बिरंगी सजावट कर नगरवासी इन्द्रजित् की विजय के उपलक्ष्य में स्वागत करने के लिए सिद्ध हुए।

इन्द्रजित् का कथन, सभा में उसका सम्मान– इन्द्रजित् महाकपटी था उसने सेना सहित लंका में प्रवेश किया। गहन बादलों के पीछे जिस प्रकार सूर्य छिप जाता है, वैसे ही इन्द्रजित् वाद्यों, छत्र-चामरों और सेना की भीड़ के पीछे छिप गया था। लंका में प्रवेश कर वह सभा में आया। उसने सिंहासन पर बैठे रावण का अभिवादन किया। सखा, बंधु, सुहृद व प्रधानों को आलिंगनबद्ध किया। तत्पश्चात् उसने अपने विजयी संग्राम के सम्बन्ध में बताया। "मैंने सर्वप्रथम राम को शरबंधन में बाँधा, तत्पश्चात् लक्ष्मण को, तब एक-एक कर वानरगणों को गिराया। अंगद सुग्रीव जाम्बवंत, हनुमान और अन्य समर्थ वानर वीरों को शरबंध से मार गिराया" इन्द्रजित् का कथन सुनने के पश्चात् रावण ने आनन्दपूर्वक गर्जना की हर्ष से परिपूर्ण होकर इन्द्रजित् को आलिंगनबद्ध किया। बीस हाथों से आलिंगनबद्ध करके भी वह तृप्त नहीं हुआ। उसने बार-बार इन्द्रजित् के मुख का चुम्बन लिया, मस्तक सहलाया, उसके ऊपर अप्रतिम रत्नों का अभिषेक किया। युद्ध में उसकी विजय से रावण को परमसुख की प्राप्ति हुई थी, श्रीराम से युद्ध के पहले रावण को जो क्षय-व्याधि हुई थी, इन्द्रजित् ने उसे समूल नष्ट कर दिया। इन्द्रजित् द्वारा युद्ध में राम एवं लक्ष्मण के मारे जाने का समाचार सुनकर रावण पूर्ण रूप से भय रहित हो गया। युद्ध में राम, लक्ष्मण, वानरवीर सभी के मारे जाने पर अपने शत्रु समाप्त हो गए,- रावण अब निश्चयपूर्वक ऐसा सोचने लगा कि संसार में कोई भी उसका वैरी नहीं बचा है।

इन्द्रजित् ने विजय ध्वनि के साथ नगर में प्रवेश किया। श्रीराम जब शरबंध में थे तब वानर वीर अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक उनकी रक्षा कर रहे थे। राम और लक्ष्मण की रक्षा के लिए मुख्य-मुख्य वानर वीर

आगे आये, जिनमें हनुमान, अंगद, नील, सुषेण, कुमुद तथा नल आदि प्रबल वीरों का समावेश था। गज, गवाक्ष, पनस, रभ, जाम्बवंत, ऋषभ, शरभ तथा पृथु भी अपनी सेना तैयार कर सज्ज हुए। श्रीराम शरबंध में थे और उनके चारों ओर हाथ में बड़े-बड़े वृक्ष लिए हुए वानर वीर घेरा बनाये हुए थे। राम और लक्ष्मण को उस शरपंजर में विकल अवस्था में गिरा हुआ देखकर शिला शिखरों को लेकर सज्ज हुए श्रेष्ठ वानर वीरों ने श्रीराम की रक्षा के लिए, वायु भी प्रवेश न कर सके, ऐसा व्यूह रचा था।

सुग्रीव दु:खी, विभीषण द्वारा सांत्वना– श्रीराम और सौमित्र शर-बंधन में पड़े थे। उनके शरीर में इस प्रकार बाण घुसे हुए थे कि तिलमात्र भी स्थान शेष न था। इस प्रकार वे दोनों निश्चेष्ट पड़े थे। उन्हें उस अवस्था में देखकर सुग्रीव भयभीत होकर विचलित हो उठे उनके नेत्रों से अश्रुधाराएँ बहने लगीं वे फूट-फूट कर रोने लगे और विभीषण से बोले- "अपने दोनों ही मुख्य आधार चले गए। अब कार्य सिद्ध होना असम्भव हो गया है। मेरा पुरुषार्थ व्यर्थ सिद्ध हुआ। श्रीराम रणभूमि में धराशायी हो गए "तत्पश्चात् दु:खातिरेक से वे कहने लगे "मैंने श्रीराम के चरणों की सौगन्ध खाकर कहा था कि सीता को बन्दिवास से मुक्त कराकर लाऊँगा। अब श्रीराम शरबंधन में जकड़े हुए हैं। मैं उनका ऋणी ही रह गया। श्रीराम लक्ष्मण को लेकर परलोक सिधार गये, अब मैं अपने ऋण से कैसे मुक्त हो पाऊँगा। युद्ध में रावण का वध कर सीता को मुक्त कर लाने पर उन्होंने श्रीराम के विषय में पूछा तो मैं उन्हें क्या मुँह दिखाऊँगा ? यह रोता बिलखता अभागा सुग्रीव नपुंसक कहलाएगा। मेरे जीवन के प्राण श्रीराम ही मुझसे दूर चले गये; अब मैं अपना पराक्रम किसे दिखाऊँ ? मुझमें अत्यन्त पराक्रम है, जिसके कारण मैं क्षणमात्र में रावण को मार डालूँगा। इन्द्रजित् को युद्ध में धराशायी कर दूँगा परन्तु मुझसे रघुनाथ की कैसे भेंट होगी ?'' श्रीराम का रणभूमि में प्राणान्त हो गया, ऐसा मन में विचार कर श्रीराम के दु:ख से दु:खी सुग्रीव प्राणान्त करने का विचार करने लगा।

सुग्रीव ने विभीषण से कहा "श्रीराम के चले जाने के पश्चात् जीवित रहना अत्यन्त निन्दनीय है। श्रीराम के विरह के पश्चात् मैंने प्राण त्यागने का निश्चय कर लिया है।" यह सुनकर विभीषण सुग्रीव से बोले- "अरे, श्रीराम हमें छोड़कर नहीं गये हैं। पूरा वृत्तान्त समझे बिना व्यर्थ प्राण नाश क्यों करते हो ? चलो हम जाकर देखें कि शरबंधन में श्रीराम जीवित हैं अथवा नहीं ? सब अच्छी तरह से देखकर तब निर्णय करें कि क्या करना चाहिए।" सुग्रीव से यह कहते हुए उसके नेत्र पोंछकर, विभीषण उसे हित की बातें बताने लगे- "सुग्रीव, तुम वानरों के राजा हो, तुम्हें इस प्रकार रोते-बिलखते देखकर इन्द्रजित् शीघ्र आकर सबका वध कर देगा। श्रीराम के हित के लिए हमें उनका कार्य सम्पन्न करने के लिए तत्पर होना चाहिए और विकल न होकर श्रीराम की रक्षा करनी चाहिए। श्रीराम निश्चित ही मूर्च्छा से बाहर आयेंगे, मेरे ये वचन त्रिवार सत्य हैं अतः उस सम्बन्ध में मन में विकल्प न रखें, ये वाल्मीकि के ही वचन हैं। सेनापति प्रधान वानरगणों को सेना एकत्र कर श्रीराम को मूर्च्छा जाने तक उनकी रक्षा करनी चाहिए। मूर्च्छा दूर होते ही वे रावण का वध करेंगे। इन्द्रजित्, कुंभकर्ण तथा अन्य राक्षसों का उनके द्वारा वध होगा श्रीराम राक्षस-जाति को शेष नहीं बचने देंगे। इस प्रकार श्रीराम, भय का नाश करेंगे "विभीषण और सुग्रीव का वार्तालाप सुनकर अंगद को हँसी आ गई। उसे श्रीराम की महिमा ज्ञात थी।

"जिस श्रीराम के नाम स्मरण के जन्म मृत्यु के भय दूर होते हैं, ऐसे श्रीराम शरबंधन में पड़े हैं, ऐसा मानने वाले मूर्ख ही कहलाएँगे। स्वप्न में शस्त्रों का आघात होने पर जागृत अवस्था में कोई मरता नहीं है। उसी प्रकार राक्षसों के शरबंधन में पड़कर श्रीराम कैसे रणभूमि में धराशायी हो सकते हैं ? श्रीराम

स्वयं काल के लिए भी कृतान्तकाल सदृश हैं। वे जन्म-मृत्यु से परे हैं। राम नित्य परब्रह्म हैं अत: रणभूमि में उनका वध कैसे सम्भव है ? श्रीराम इस संसार के आधार हैं। उनका सर्वांग चैतन्यघन स्वरूप है वे स्वयं शस्त्रों की धार हैं, अत: उन पर बाणों का आघात कैसे सम्भव है। ऐसा घटित हो ही नहीं सकता राम पूर्ण ब्रह्म के अवतार हैं, वे जन्म मृत्यु से परे हैं अत: बाणों के चुभने से उनकी मृत्यु कैसे हो सकती है ? यह असत्य है श्रीराम चैतन्य विग्रही अर्थात् केवल स्वरूप हैं। सदेह होते हुए भी विदेही हैं। उन्हें द्वन्द्व की बाधा नहीं है, अत: धराशायी होना ही मिथ्या है श्रीराम-नाम स्मरण करने से साक्षात मृत्यु को भी मृत्यु आती है, तब उन्हें बाण लगकर उनकी मृत्यु हो गई, यह असत्य है. शरबंधन में होते हुए भी चित्स्वरूपी श्रीराम मूर्छित नहीं होंगे। वे बन्धन में भी बन्धन रहित होंगे, यही उनका मुख्य लक्षण है। अत: शरबंधन में भी वे मुक्त होंगे, तथापि वे इस प्रकार पड़े हुए क्यों है ? शिव वरदान मिथ्या न होने पाये, इसके लिए श्रीराम उन्हें स्वयं सहन कर शरबंध में बँधकर शिववरदान का पालन कर रहे हैं।" अंगद द्वारा बतायी गई श्रीराम की मूल कथा सुनकर हनुमान प्रसन्न हो उठे। उन्होंने प्रेम से परिपूर्ण होकर अंगद को आलिंगनबद्ध किया और उसकी पीठ थपथपाई श्रीराम की स्वरूप स्थिति के विषय में, अंगद की मधुर वाणी सुनकर सबको आनन्द एवं उत्साह का अनुभव हुआ। हनुमान बोले– "श्रीराम मृत्यु से परे हैं। वे विकल नहीं हैं। मुझ हनुमान के यहाँ रहते हुए इन्द्रजित् की कैसी योग्यता ? उसकी कौन चिन्ता करता है ?'' हनुमान का यह उत्तर सुनकर वानर उल्लसित हो उठे और जयजयकार करने लगे, जिसके कारण सुग्रीवादि भी आनन्दित हो उठे।

रावण द्वारा सीता को राम दिखलाना; उसका अविश्वास सीता को वश में करने के लिए रावण ने स्वयं उसे राम तथा लक्ष्मण के निधन की वार्ता सुनाई है। कपटी रावण ने त्रिजटा नामक राक्षसी को बुलाकर बड़े गर्व से कहा– "इन्द्रजित् ने युद्धकर राम और लक्ष्मण दोनों का वध कर दिया, यह सीता को बताकर उसे दोनों के दर्शन कराओ। पुष्पक विमान से सीता को ले जाकर उसे रणभूमि में बाणों से विद्ध, शरबंधन में पड़े राम और लक्ष्मण दिखाओ। श्रीराम के सामर्थ्य का स्मरण कर सीता मुझे देखती भी नहीं थी, अब राम का उसके भाई लक्ष्मण सहित वध कर दिया है अत: किसी प्रकार की शंका मन में न रखते हुए सीता आनन्दपूर्वक लंकाधीश रावण का वरण करे और समस्त सुखों का उपभोग करे, इसके लिए उसे तैयार करो।" रावण की आज्ञानुसार त्रिजटा ने सीता को लेकर प्रस्थान किया। इधर रावण लंका में हर्षपूर्वक ध्वजा-पताकाएँ फहराकर आनन्द व्यक्त करने लगा इन्द्रजित् द्वारा बाणों से राम एवं लक्ष्मण को धराशायी कर दिया गया, इसीलिए लंकावासी राक्षस रणवाद्यों के मध्य जय-जयकार कर रहे थे। राक्षसों ने राम तथा वानरसमूह का वध कर दिया, इस प्रकार लंका में नर-नारी आपस में वार्तालाप कर रहे थे। सीता ने विमान से वानरों का निवास स्थान देखा, साथ ही रणभूमि में पड़े हुए राम व लक्ष्मण को भी देखा।

श्रीराम और लक्ष्मण बाणों से विद्ध हैं तथा उनके सर्वांग से रक्त प्रवाह हो रहा है, वे भूमि पर पड़े हुए हैं; ऐसी अवस्था में वे सीता को दिखाई दिए। श्रीराम के दर्शन होने के कारण सीता आनन्दित होकर बोलीं– ''रावण का छलकपट धन्य है, उसके कारण ही श्रीराम रूपी अमूल्य निधि के मुझे दर्शन हुए रावण ने मुझ पर उपकार ही किया है। यह दशानन कृपालु है। उसके कारण ही मुझे श्रीराम के दर्शन हुए," सीता ने विमान से ही श्रीराम की वंदना की। श्रीराम और लक्ष्मण के दर्शन से सीता को पूर्ण सुख की प्राप्ति हुई। श्रीराम की अवस्था देखकर उसे ज्ञात हो गया कि यह राक्षसों की मायावी कृति

है तथा सब मिथ्या है क्योंकि श्रीराम मृत्यु से परे हैं, यह वह जानती थीं. श्रीराम नाम की ध्वनि से ही मृत्यु दूर भागती है। वह राम के समक्ष नहीं आती, तब वह राम को कैसे मार सकती है। राम काल को अपने वश में रखने वाले हैं। उन्हें मृत्यु की बाधा ही नहीं है। अतः रणभूमि में राम को मारने की वार्ता मायावी और असत्य है। श्रीराम स्वयं शस्त्रों की आत्म-शक्ति तथा गति की आत्मगति हैं। वे ही त्रिजगत् की आत्मा हैं। वे शस्त्रों के आघात से परे हैं। शस्त्र अगर आकाश भेदने का प्रयत्न करते हैं, तो वे व्यर्थ हो जाते हैं। उसी प्रकार श्रीराम पर आघात करने वाले शस्त्र भी व्यर्थ हो जाते हैं। श्रीराम स्वयं शस्त्रों की धार हैं उनके शरीर में बाण चुभने की कल्पना भी मायावी कौशल है। उस श्रीराम के स्वरूप को जन्म-मृत्यु का स्पर्श ही नहीं होगा। ऐसे श्रीराम को मारने का समाचार राक्षसों की मात्र झूठी कल्पना है। श्रीराम की मृत्यु असम्भव है, इस विषय में अवगत सीता को इस घटना का अणुमात्र भी दुःख नहीं हुआ।

सीता का बाह्य रूप में दुःख व्यक्त करना; त्रिजटा द्वारा सांत्वना देना– श्रीराम शिव तथा सीता शक्ति-स्वरूपा होने के कारण उन्हें परस्पर एक दूसरे के विषय में सम्पूर्ण ज्ञान था। वे दोनों मात्र लोक-रक्षण के लिए लीला कर रहे थे। उनका दुःख भी बाह्यरूप ही था। सीता बोलीं– "मेरे सर्वांग पर शुभ लक्षण होते हुए मुझे वैधव्य आ ही नहीं सकता। रघुनन्दन को अगर रण भूमि में मृत्यु आ गई तो मेरे लक्षण अशुभ लक्षण सिद्ध होंगे। हाथों व पैरों पर कमल, मस्तक व तालु पर सौभाग्य कमल, रणभूमि में श्रीराम के मारे जाने पर अमंगल कमल सिद्ध हो जाएँगे।" अपने लक्षणों के विषय में ऐसा कहते हुए सीता अत्यन्त दुःखपूर्वक विलाप करने लगीं। श्रीरघुपति से वियोग हुआ है, यह मानकर वह विलाप कर रही थीं। "तुम सौभाग्यवती हो," ये वशिष्ठ के वचन राम की मृत्यु से व्यर्थ सिद्ध हो गए। मेरा व श्रीराम का राज्याभिषेक होगा, ये अगस्त्य मुनि के वचन, राम के जाने से मिथ्या हो जाएँगे। श्रीराम की मृत्यु से पूर्ण पतिव्रता अनुसूया ने जो अपने सौभाग्य-वचन मुझे दिये, वे झूठे होकर उसका सतीत्व व्यर्थ सिद्ध होगा। श्रेष्ठ सती अरुंधती ने मुझे अपनी गले की माला (गलेसरी) दी थी, श्रीराम की मृत्यु से उसकी श्रेष्ठता व्यर्थ हो जाएगी। रणभूमि में राम की मृत्यु से महर्षि विश्वामित्र का 'सीता सौभाग्यवती रहेगी'– ऐसा उनका परम आशीर्वाद- वचन मिथ्या सिद्ध हो जाएगा। हे राम ! हे लक्ष्मण ! ऐसे दीर्घ स्वर में आक्रोश करते हुए सीता विलाप कर रही थीं। दिव्यास्त्र होते हुए भी सर्वांग में बाण कैसे चुभ गए, यह प्रश्न करते हुए तथा सर्वांग में बाण चुभकर भूमि पर पड़े हुए राम और लक्ष्मण को देखकर सीता फूट-फूट कर विलाप कर रही थीं। तत्पश्चात् वह बोलीं– "राम और लक्ष्मण के युद्ध में मारे जाने पर रावण मुझे संत्रस्त करेगा, यह सत्य है। अतः मैं भी अभी प्राण त्याग करती हूँ।" यह कहकर ध्यान करते हुए वज्रासन बनाकर, आँखें अर्द्धमीलित कर श्रीराम का चिंतन करते हुए, सीता प्राण त्यागने के लिए तत्पर हुईं।

त्रिजटा उस समय सीता से बोली– "क्या तुम बावली हो गई हो ? तुम श्रीराम के समीप निश्चिन्त होते हुए तुम्हें प्राण त्याग करने का क्या कारण ? राम लक्ष्मण मृत नहीं हैं, मेरे ये वचन सत्य हैं। शरबंधन में रहते हुए भी वे दोनों आत्मबोध से सजग हैं। उनके पास दिव्यास्त्र होते हुए वे शरबंधन में कैसे बँध सकते हैं।" उस सम्बन्ध में मैं जो कह रही हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो– "इन्द्रजित् ने अभिचारपूर्वक श्रीशंकर भगवान् को प्रसन्न किया। उनसे शिववरद् सर्पबाण माँगे। वह शिववरद् इस प्रकार था कि 'श्रीराम के समीप जाने पर वह तुम्हारा मस्तक काट डालेगा। इसके लिए अँधेरे में अचूक शरबंध आवश्यक है। मेरे वरद् बाणों के लिए वे दोनों शरबंधन में बँध जाएँगे। अगर तुम उनके सामने अथवा समीप गये, तो वे क्षणार्द्ध में तुम्हारा प्राण हर लेंगे यह बात ध्यान में रखना।' ऐसा शिववरद् होने के

कारण इन्द्रजित्, रावण अथवा राक्षस गण कोई उनके सामने नहीं गया। सात प्रहर बीत जाने पर शरबंधन की गाँठे खुल जाएँगी और दोनों कड़कड़ाहट की ध्वनि के साथ उठ जाएँगे। श्रीराम अजेय तथा जगत्श्रेष्ठ हैं। इसके अतिरिक्त एक रहस्यमय बात यह है कि श्रीराम से मिलने के लिए गरुड़ के आते ही सर्पबाण शीघ्रगति से भाग जायेंगे और दोनों जगत्जेता वीर मुक्त हो जाएँगे। मेरे मुख से असत्य कभी नहीं बोला जा सकता। असत्य वचनों से पहले भी कभी मैंने अपने मुख को भ्रष्ट नहीं किया और भविष्य में भी कभी असत्य नहीं बोलूँगी, जो सत्य है, वही बोलूँगी।" सीता के सान्निध्य में त्रिजटा में ज्ञान की स्फूर्ति पैदा हुई तथा श्रीराम के दर्शन होते ही उसे विशेष ज्ञानावस्था प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त एक और प्रत्यक्ष दृष्टान्त हुआ कि विधवा के स्पर्श से विमान का गिरना भी घटित नहीं हुआ क्योंकि सीता श्रीराम की सौभाग्यशालिनी पत्नी थीं। त्रिजटा बोली "अगर श्रीराम की मृत्यु हुई होती तो यह विमान गिर जाता परन्तु तुम सौभागयवान् हो, श्रीराम शरबन्धन में भी स्वस्थ हैं। यह विमान जिसे स्वयं प्राप्त होता है, वह तीनों लोकों में विजयी होता है। ऐसा यह विमान लंकानाथ ने तुम्हें दिया है। इसका तात्पर्य तुम भाग्यवान् सौभाग्यशालिनी हो। यह विमान अत्यन्त प्रयत्नों से प्राप्त होता है, ऐसी इसकी महिमा है। तुम श्रीराम के कारण भाग्यशालिनी हो, उस भाग्य की गणना नहीं की जा सकती। हे जानकी, श्रीराम शरपंजर में स्वस्थ हैं। मेरा कहना तुम सत्य मानो तथा शोक, दैन्य व दुःख को त्याग दो " सीता के साथ उसके संरक्षण के लिए त्रिजटा को आने का अवसर प्राप्त हुआ, जिसके कारण उसे ज्ञान की स्फूर्ति प्राप्त हुई। संतों की संगति इसीलिए धन्य मानी जाती है त्रिजटा सत्यवादी थी, असत्य का अनुकरण वह नहीं करती थी। इसी कारण 'सत्संगति फलदायी' सिद्ध हुई और वह ज्ञानपूर्ण वचन बोल सकी।

सीता की प्रतिक्रिया और प्रसन्नता— "हे सखी त्रिजटा, तुमने जो कहा वह सत्य हो"— यह कहते हुए सीता श्रीराम के दर्शन करने के लिए सिद्ध हुई विमान वापस जाते हुए उसे श्रीराम के दूर से दर्शन हुए। सीता सावधानीपूर्वक देख रही थी, उसके प्राण मानों नेत्रों में समा गये थे। बाह्यरूप से राम व लक्ष्मण का स्वरूप व गुणलक्षण वह निहार रही थी। वह अत्यन्त सावधानीपूर्वक अपने पति के स्वरूप को देख रही थी उसे बाह्यरूप में श्रीराम मूर्च्छित दिखाई देने पर भी अन्तर्मन से वे सजग थे। बाह्यरूप में यद्यपि उनके नेत्र अर्धोन्मीलित दिखाई दे रहे थे तथापि पूर्ण रूप में वे सर्वांग सुन्दर दिख रहे थे। श्रीराम बाह्य रूप में शरबंधन में होने पर भी आन्तरिक रूप से बन्धन मोक्ष विहीन थे। बाह्य रूप में रक्तरंजित व मलिन दिखाई देने पर भी आन्तरिक रूप से निर्गुणत्व के कारण वे निर्मल थे बाह्य रूप में मूर्च्छित होते हुए अन्तर्मन से वे सजग थे। यद्यपि वे भूमि पर पड़े हुए दिखाई दे रहे थे तथापि वह गुणातीत विश्रांति की अवस्था में ही थे।

श्रीराम के स्वरूप का दर्शन करते ही वेदशास्त्र भी मौन हो जाते हैं। जिसमें गगन की गहनता भी समाहित हो जाय, ऐसे श्रीराम की महत्ता का कौन वर्णन कर सकता है। ऐसे श्रीरघुनाथ का दर्शन होते ही सीता स्वयं की सुधि भूल गईं। परमार्थ रूपी पति के स्वरूप में सीता विलीन हो गई। रावण द्वारा छल करने का निश्चय करने पर भी श्रीराम प्रसन्न चित्त थे, उन्होंने मुझे आत्मस्वरूप दर्शन दिए और सुखी किया। रावण को कपटी नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसने मेरी श्रीराम से भेंट कराई। मुझे सन्तुष्ट कर शान्ति दी, उसके मेरे ऊपर करोड़ों उपकार हैं।

सीता आगे बोलीं "श्रीराम के वचन स्वप्न में भी सुनने को नहीं मिले थे, उस श्रीराम के प्रत्यक्ष दर्शन रावण के कारण घटित हुए"। रणभूमि में आकर राम और लक्ष्मण की भेंट कर सीता सहित

त्रिजटा विमान से वापस लौट गई। अब सीता के मन में शोक नहीं था। अतः अशोक वन में आने पर वह राम पत्नी सुखी थी। त्रिजटा ने लंकाभुवन लाँघकर विमान सीधे अशोक वन में ले जाकर सीता को वहाँ उतारा। रावण द्वारा छल-कपट करने पर भी सीता प्रसन्न थीं। श्रीराम भी शरबंधन में प्रसन्न और सुरक्षित थे। इस प्रकार यह रम्य रामायण घटित हुआ।

अध्याय १३

[श्रीराम की शरबंधन से मुक्ति]

सीता के अशोक वन में जाने के कुछ समय पश्चात् ही शरबंधन में बद्ध श्रीराम को चेतना प्राप्त हुई। उन्होंने अपनी ओर देखा। उनके सम्पूर्ण शरीर में बाण चुभे हुए थे तथा रक्त से शरीर भीगा हुआ था। उन्होंने लक्ष्मण की ओर देखा। वे धराशायी अवस्था में उन्हें दिखाई दिये तब उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि लक्ष्मण में प्राण नहीं है श्रीराम ज्ञानी होते हुए भी अज्ञानी व्यक्ति की तरह मिथ्या विलाप करने लगे। लक्ष्मण को मृत्यु का भय नहीं है, यह जानते हुए भी वानरों की स्थिति का अनुमान लगाने के लिए दुःखपूर्वक आक्रंदन करने लगे, उनका स्वर विकल था। यह दृश्य देखकर वानर समझ गये कि श्रीराम का सखा लक्ष्मण रणभूमि में मृत्यु को प्राप्त हुआ इसीलिए राम दुःख से विलाप कर रहे हैं। राम कह रहे थे- "अब रावण, इन्द्रजित्, कुंभकर्ण को मारकर भी मुझे क्या सुख मिलेगा ? सखा लक्ष्मण से अब मेरी भेंट न हो सकेगी। अतः मैं भी प्राण त्याग करता हूँ।"

श्रीराम द्वारा दुःख से वैराग्यपूर्ण वचन बोलना- श्रीराम लक्ष्मण के दुःख में अत्यन्त दुःखी होकर कह रहे थे- "राक्षसों का संहार कर लंकाभुवन लेने पर भी मेरी सखा लक्ष्मण से भेंट नहीं होगी अतः मैं प्राण त्याग दूँगा। मुझे सीता सदृश स्त्रियाँ असंख्य मिल जाएँगी, संतति भी प्राप्त होगी परन्तु लक्ष्मण की प्राप्ति तीनों लोकों में भी न हो सकेगी अयोध्या में प्रवेश करने पर भरत, शत्रुघ्न, कौशल्या, सुमित्रा को मैं क्या मुँह दिखाऊँगा ? हम दोनों वन में आये थे अकेले लौटने पर 'लक्ष्मण कहाँ है' प्रश्न के उत्तर में मेरा यह काला मुख उन्हें क्या बतायेगा ? अतः मैं प्राण त्याग दूँगा। लक्ष्मण के बिना मैं एक पग भी आगे नहीं बढ़ा सकता, अब मैं प्राण त्याग दूँगा, ये मेरे सत्य वचन हैं।' असहनीय दुःख के कारण श्रीराम के नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे। अपने कर्मों को दोष देते हुए वे विलाप करने लगे।

तत्पश्चात् वे बोले- "युद्ध में रावण का वध कर विभीषण का राज्याभिषेक करना मेरे लिए संभव न हो सका मेरे ऊपर वह ऋण शेष है। लंका मैंने विभीषण को दान में दी परन्तु उसमें मैं यशस्वी न हुआ। अब भरत को पत्र लिखकर, रावण का संहार कर विभीषण को राजा बनाओ, ऐसा करने पर ही मैं ऋण से मुक्त हो सकूँगा। हमारी मृत्यु के विषय में सुनकर भरत, शत्रुघ्न और तीनों माताएँ प्राण त्याग देंगी, तब ऋणमुक्तता कैसे सम्भव होगी ? अन्त काल के ऋण के रूप में विभीषण को चरण-वन्दना कर धनुष बाण उसे देकर मैं ऋण मुक्त होऊँगा। दिव्यास्त्रों सहित मेरे धनुष्य बाण विभीषण को प्राप्त होने पर वह तीनों लोकों में पूजनीय होगा ऐसा उसे मेरा वरदान है।" श्रीराम के वचन सुनकर विभीषण को मूर्च्छा आ गई। "मैं पूर्ण अभागा हूँ" ऐसा कहते हुए वे रोने लगे। श्रीराम बोले- "मैं जो बता रहा हूँ वह सुनें हम दोनों के प्राण जाने पर रावण गरजते हुए आकर वानरों का संहार कर देगा।

अत: मेरे समक्ष युद्ध कर वानर राक्षसों का वध करें। मेरे पश्चात् आपको मरण न आये इसलिए शीघ्र आप यहाँ से प्रस्थान करें। वानरवीर योद्धाओं को मेरा दंडवत् प्रणाम है। रावण वेगपूर्वक यहाँ आये उससे पहले आप शीघ्र जायें मेरे समक्ष युद्ध कर राक्षसों को मारकर यशस्वी हो शीघ्र यहाँ से प्रस्थान करें।"

तत्पश्चात् श्रीराम सुग्रीव से बोले- "सुग्रीव, मैं जो कह रहा हूँ, उसे मानो इसी समय अंधेरा होने पर तुम सपरिवार यहाँ से प्रस्थान करो। सभी सुहृद वानर वीर सेनानी सैनिक सभी को इकट्ठा कर किष्किंधा की ओर गमन करो। वानर वीरों सहित सुग्रीव राजा जीवित है, यह सुनकर लंकाधीश रावण वानरों का वध करने के लिए आयेगा। हे वानर राज, तुम वानरों के अधिपति हो। तुम्हारे बिना वानर रह नहीं सकते इसलिए तुम किष्किंधा की ओर प्रस्थान करो। अंगद रावण का मुकुट ले आया अत: रावण क्रोधित है इसलिए अंगद को आगे रखते हुए समस्त वानर वीरों सहित तुम निकलो। सेतु बनाकर हम लंका में आये उसी मार्ग से जाकर किष्किंधा पहुँचो" इस प्रकार श्रीराम का शोक पूर्ण आदेश सुनकर वानरगण अश्रु बहाते हुए विलाप करने लगे परन्तु सुग्रीव दृढ़ थे।

श्रीराम आगे बोले- "हमारी तुम्हारी मित्रता तुम्हारे कार्यों के कारण संपादित हुई है यह मैं पूरी तरह से जानता हूँ। मित्रता निभाने के लिए तुम प्रसिद्ध हो। तुम्हारे कार्यों से मैं सुखी हुआ तुम मेरे आप्त ही बन गये हो असंख्य वानर वीरों की सेना एकत्र कर सेतु बाँधकर तुम मेरे कार्य के लिए यहाँ आये हे सखा सुग्रीव, मेरी बात सुनो। इस परदेस में आकर वानरों को बहुत कष्ट हुआ है। उन्हें स्वगृह ले जाकर उनकी पत्नी बच्चों से भेंट कराओ। तुम भी किष्किंधा जाकर रुमा और तारा इन दो पत्नियों सहित नित्य सुख का उपभोग करो। आनन्दपूर्वक सिंहासन पर आरूढ़ होओ। युवराज अंगद शूरवीर और श्रेष्ठ योद्धा है, उसे प्रेम से पालपोस कर सुखी करो। मेरे कार्य के लिए अनेक वानर वीरों ने अपने प्राण न्योछावर किये हैं, उन सभी को मेरा दंडवत् प्रणाम। अब तुम शीघ्र यहाँ से प्रस्थान करो तुम्हारे यहाँ से शीघ्र वापस न लौटने पर रावण यहाँ आकर वानरों का घात करेगा। इसका मुझे अत्यन्त दुख होगा। मुझे मेरा दु:ख उतना कष्ट नहीं देगा परन्तु सुग्रीव की चिन्ता मुझे सहन न हो सकेगी। अत: सभी वानर वीरों को लेकर सत्वर यहाँ से गमन करो। लक्ष्मण के दु:ख में मैं प्राण त्याग दूँगा तत्पश्चात् स्वयं सीता प्राण त्याग देगी, तुम शीघ्र यहाँ से प्रस्थान करो।" श्रीराम के वचन सुनकर वानरगण दु:ख से विलाप करने लगे।

श्रीराम के वचन सुनकर सुग्रीव गर्जना करते हुए बोला- "श्रीराम के चरण छोड़कर हम पीछे नहीं हटेंगे। प्राणान्त समीप आने पर अथवा कल्पान्त संकट से घिरने पर भी श्रीराम को छोड़कर नहीं जाऊँगा, यह मेरा निश्चय है। मैं अपने राज्य, छत्र, पुत्र आदि के लिए भी सखा राम को छोड़कर नहीं जाऊँगा। जो श्रीराम का त्याग कर स्त्री आदि भोगों का स्मरण करता है, वह अपयश का भागी बनकर पतनोन्मुख होता है।"

जल के स्पर्श से श्रीराम व लक्ष्मण की चेतना का वापस आना- श्रीराम और लक्ष्मण के सर्वांग में बाण चुभे हुए हैं और वे रणभूमि में पड़े हुए हैं, यह देखकर विभीषण विलाप कर रहे थे। सुग्रीव के निकट बैठकर आक्रोश करते हुए वे बोले- "राक्षसों ने छल कपट कर राम को रणभूमि में धराशायी कर दिया है।" तत्पश्चात् विभीषण ने अपने हाथ जल से भिगोकर राम व लक्ष्मण के शरीर में जहाँ पर बाण चुभे हुए थे, वहाँ पर स्पर्श किया। विभीषण के हाथों के जल से श्रीराम और लक्ष्मण की शारीरिक वेदना दूर होकर वे क्षणभर उस शरबंधन में ही सुखी हुए। विभीषण के हाथों के गुण से राम लक्ष्मण की चेतना वापस लौटी परन्तु शारीरीक अशक्तता के कारण वे थोड़ी देर भी बैठ न सके।

यह देखकर विभीषण और सुग्रीव उद्विग्न हो उठे। उस समय अंगद गर्जना करते हुए बोला– "श्रीराम और लक्ष्मण तथा सुग्रीवादि समस्त वानर गणों को पूर्ण रूप से सुखी करने के लिए मैं जो करूँगा उसे ध्यान से सुनो।" इस पर सुग्रीव अंगद से बोला– "वीर सुषेण को बुलाओ तथा समस्त सेना समुदाय व श्रीराम और लक्ष्मण को किष्किंधा ले जाओ, ऐसा उससे कहो।" सुग्रीव की यह युक्ति सुनकर अंगद ने अत्यन्त नम्रतापूर्वक सुग्रीवादि वानर श्रेष्ठों की अभिवंदना की और बोला– "वानर-राज सुग्रीव स्वयं श्रीराम और लक्ष्मण सहित अगर किष्किधा नहीं गये तो ये वानर गण भी यहाँ से नहीं जायेंगे। स्वामी सुग्रीव को छोड़कर वानरगण नहीं रह पायेंगे। अत: श्रीराम और लक्ष्मण को लेकर सुग्रीव राज आप ही किष्किंधा की ओर प्रस्थान करें।" इसके पश्चात् अंगद ने पुन: सभी वानर श्रेष्ठों को दंडवत् प्रणाम कर विनती की कि श्रीराम और लक्ष्मण दोनों की चेतना अब वापस लौट आई है। यद्यपि वे शारिरिक रूप से अभी दुर्बल हैं परन्तु उनकी मृत्यु टल गई है। जब तक वे अशक्त हैं, तब तक सुग्रीवादि वानरगण उन दोनों को किष्किंधा ले जायें।"

अंगद, सुग्रीव तथा हनुमान की प्रतिक्रिया– अंगद ने तत्पश्चात् अपनी योजना बताते हुए कहा– "मैं अकेला पीछे रुककर इन्द्रजित् एवं कुंभकर्ण का वध कर रावण का उसके पुत्र प्रधान सेना आदि के सहित युद्ध में निर्दलन कर दूँगा। मेरे ऊपर विश्वास रखकर आप सब निश्चिन्त होकर वापस लौटें। मात्र एक हनुमान को युद्ध में मेरी सहायता के लिए यहाँ रख दें। उसकी सहायता से युद्ध में रावण को मैं धूल में मिला दूँगा। राक्षस समुदाय का नाश करूँगा और सीता को छुड़ा कर लाऊँगा। जिस प्रकार इन्द्र ने समुद्र मथन कर लक्ष्मी को ढूँढ़ निकाला, उसी प्रकार राक्षसों का दमन कर सीता रूपी चिद्रत्न मैं ले आऊँगा। विभीषण को लंका देने का जो श्रीराम का वाचा ऋण है, उसे भी मैं पूरा करूँगा। उसके लिए विभीषण को यहाँ रहने दें। युद्ध में रावण का वध कर सीता को छुड़ाऊँगा। विभीषण को राज्य देकर राम ऋण से मुक्त होऊँगा। लंका में यह सब कर सीता को पालकी में बैठाकर गर्जना करते हुए किष्किंधा वापस लौटूँगा। ये मेरे वचन आप सत्य मानें।"

अंगद के वीरतापूर्ण वचन सुनकर सुग्रीव प्रसन्न हुआ। उसने हर्षपूर्वक अंगद के मुख का चुम्बन लिया और सन्तुष्ट होकर डोलने लगा। तत्पश्चात् वह बोला– "हे अंगद, तुम्हारी वाणी धन्य है और तुम्हारा विश्वास भी धन्य है। वानरकुल में तुम अत्यन्त शूरवीर और पराक्रमी हो। तुमने जो कहा, उसे करना भी तुम्हारे लिए सम्भव है- ऐसी तुम्हारी ख्याति है। तुम तीनों लोकों में अत्यन्त साहसी वीर हो। तुम्हारी जितनी प्रशंसा की जाय, कम ही है। हे अंगद, तुम्हें अकेले युद्ध के लिए छोड़कर, हम राम-लक्ष्मण को लेकर किष्किंधा चले जायँ, यह अत्यन्त निन्दनीय बात होगी। किष्किंधा की स्त्रियाँ, स्वर्ग के देवता, ऋषिवर हम पर हँसेंगे। सम्पूर्ण चराचर जगत् में हम निन्दनीय सिद्ध होंगे। इन्द्रजित्, कुंभकर्ण तथा रावण यहाँ अपनी सेना लेकर आ जायँ तब भी पीछे नहीं हटूँगा, यह मेरा निश्चय है।" सुग्रीव ने अपना निर्णय बताया। हनुमान को भी अंगद के वचन सुनकर अत्यन्त आनन्द का अनुभव हुआ। वे गर्जना करते हुए बोले "अंगद मेरा सखा है, मैं उसका रक्षक हूँ। उस दशमुख को मारने के लिए इतना विचार क्यों ? राक्षसों का अन्त करने वाले हनुमान के ये विचार सुनकर सबका उत्साह बढ़ गया और सभी वानर श्रेष्ठ श्रीराम को शरबंधन से मुक्त कराने के लिए गंभीरतापूर्वक विचार-विमर्श करने लगे।

नारद का आगमन, उनके द्वारा राम-स्तुति– सुग्रीव आदि वानर श्रेष्ठ जब श्रीराम के सम्बन्ध में विचार कर रहे थे, तब वहाँ तप के तेज से युक्त मुनीश्वर नारद नामस्मरण करते हुए आये. महर्षि

कैसे करूँ ? मेरे स्वामी भगवान् शंकर ही इस शरपंजर का निवारण करेंगे।" श्रीराम का यह उत्तर सुनकर भगवान् शंकर वेगपूर्वक आये।

गरुड़ का आगमन, सर्पों का पलायन– भगवान् शिव गरुड़ से बोले– "तुम निरे मूर्ख हो। श्रीराम शरबंधन में बद्ध हैं। अतः तुम शीघ्र उनके पास जाओ। मेरे वरदानयुक्त बाण श्रीराम स्वयं नहीं काटेंगे। अतः तुम स्वयं जाकर श्रीराम के शरबंधन को काटो। मेरे वरदानयुक्त सर्पबाणों ने श्रीराम को बाँध लिया है। अतः इसे समझते हुए तुम शीघ्र उन सर्पबाणों का छेदन करो।'' शिवजी द्वारा ऐसी आज्ञा करते ही गरुड़ को अत्यन्त प्रसन्नता हुई और श्रीराम की चरण-वंदना करने के लिए उसने शीघ्र प्रस्थान किया। गरुड़ द्वारा उड़ान भरते ही उसके दोनों पंखों की हवा के कारण पर्वत, वृक्ष उखड़कर समुद्र में गिरने लगे। पक्षी चहचहाने लगे। समुद्र का जल उछल कर गगन तक पहुँचने लगा। पखों की फड़फड़ाहट से उत्पन्न वायु को मेघों ने धारण किया और समुद्र के उछलते हुए जल की वर्षा होने लगी। गरुड़ के स्वर्णिम पंख विद्युत के सदृश आकाश में चमक रहे थे। उस दैदीप्यमान तेजराशि गरुड़ को आते हुए वानरों ने देखा और क्षणमात्र में ही गरुड़ उड़कर शरबंध के समीप जा पहुँचा। गरुड़ द्वारा उड़ान भरते ही सर्पों से निर्मित शरबंधन खुल गया क्योंकि गरुड़ के भय से सर्प भाग गये और भागकर शिवजी के कंठ का आभूषण बन गए। सर्पों द्वारा बनाया गया शरबंधन उनके भाग जाने से खुल गया तथा तत्पश्चात् श्रीराम और लक्ष्मण की चेतना पूरी तरह से लौट आई।

गरुड ने श्रीराम को दंडवत् प्रणाम करते हुए कहा "मैंने बहुत बड़ा अपराध किया है परन्तु आप मुझे क्षमा करें। 'मुझे शरबंधन होने पर तुमने मेरी उपेक्षा की' ऐसा न कहें। शरबंधन के संकट के विषय में मैंने सुना ही नहीं था। भगवान् शिव द्वारा मुझे बताये जाते ही मैं शीघ्र आया। मेरे आते ही शरबंधन खुल गया अतः मैं दोष मुक्त हुआ। मेरी ये सेवा मान्य करें। मैं आपका आप्त हूँ। आप दोनों को मैंने शरबंधन से मुक्त कर दिया है। मेरी ये सेवा श्रीराम के सुख के लिए ही हुई है। सर्पशरबंधन अत्यन्त कठिन होता है। सुर, असुर, गज, सिद्ध व चारण एकत्र होने पर भी शरबंधन खोल नहीं सकते। ब्रह्मा, इन्द्र, कुबेर, वरुण तथा करोड़ों सुरगणों के आने पर भी सर्प से निर्मित शरबंधन छूटता नहीं है। अट्ठासी ऋषियों की तपस्वी तेजमूर्ति भी अपने सामर्थ्य से सर्प शरबंधन खोल नहीं सकती। ब्रह्मादिकों के लिए भी अगम्य, ऐसे कठिन शरबंध का निवारण कर, मैंने श्रीराम की सेवा की। स्वयं श्रीराम व लक्ष्मण के पास दिव्यास्त्र होते हुए भी उन दोनों के लिए शरबंध कठिन सिद्ध हो गया था, उसका मैंने निवारण किया है। आपके शरीर में चुभे हुए बाणों से उत्पन्न घावों को मैं ठीक करने का प्रत्यन्त करता हूँ।'' गरुड़ यह कार्य करने गया और लज्जित हुआ।

श्रीराम और लक्ष्मण के शरीर में चुभे हुए बाणों के घावों को भरने के लिए गया हुआ गरुड़ अत्यन्त लज्जित हुआ क्योंकि उनके शरीर में बाण चुभे ही नहीं थे। घाव भी नहीं हुए थे। तब गरुड़ के परिमार्जन की कोई आवश्यकता न थी। शरबंधन के सर्प, शिवजी का आभूषण होने के कारण श्रीराम की स्तुति कर रहे थे। श्रीराम शरबन्धन में भी आनन्द से परिपूर्ण थे। शरबंधन किये हुए सर्प निरंतर सत्व ढूँढ़ रहे थे। श्रीराम तो नित्य मुक्त थे ही। लक्ष्मण स्वयं शेष थे तथा श्रीराम शेषशायी होने के कारण आनन्दपूर्वक निद्रस्थ थे। गरुड़ ने सर्प बंधन से मुक्त किया, यह कहना उचित नहीं है क्योंकि श्रीराम चिद्घन एवं नित्यमुक्त थे। 'श्रीराम की महिमा ऐसी है कि स्वयं चन्द्रचूड़ शिवजी भी राम की सेवा करते हैं। वहाँ गरुड़ जैसा निरीह प्राणी क्या श्रीराम को शरबंधन से मुक्त कर सकता है ? श्रीराम के सामर्थ्य

के समक्ष मेरा गर्व चूर चूर हो गया। उस श्रीराम के समक्ष कलिकाल तक खड़ा नहीं रह सकता तो मैं तो अत्यन्त तुच्छ हूँ,' यह कहते हुए गरुड़ श्रीराम के चरणों पर गिर पड़ा।

गरुड़ द्वारा वंदना, अस्त्र-प्रवेश; सभी को आनन्द की अनुभूति– गरुड़ श्रीराम के चरणों पर गिर पड़ा व हर्षपूर्वक उनकी परिक्रमा व वन्दना की। वानर पूर्णरूप से श्रीराम भक्त हैं, ऐसा अनुभव कर वानरगणों की वंदना की। उसने श्रीराम व वानरगणों का अभिवादन किया। वह बारम्बार उन्हें दण्डवत् प्रणाम कर रहा था। गरुड़ का यह प्रेम देखकर श्रीराम प्रसन्न हुए। उन्होंने गरुड़ को आलिंगनबद्ध कर सुखी किया। तत्पश्चात् उसे वापस लौटने की अनुमति दी। गरुड़ ने जाते हुए कहा– "रावण को युद्ध में मारकर, विभीषण को राज्य प्रदान कर, आनन्दपूर्वक सीता को वापस लाकर आप सुखी होंगे।" इतना कहकर श्रीराम को प्रणाम कर गरुड़ ने वेगपूर्वक आकाश में उड़ान भरी। जिस प्रकार वायु आकाश में प्रवेश करती है, उसी प्रकार वेग से गरुड़ ने भी प्रस्थान किया। राम-रावण युद्ध देखने के लिए गरुड़ बहुत उत्साहित था। अतः इसी कारण उसने श्रीराम के तूणीर में रखे गरुड़ास्त्र में प्रवेश किया। अद्‌भुत अस्त्र देवता श्रीराम को यशस्वी करने के लिए उनके तूणीर में प्रविष्ट हुए। श्रीराम अस्त्रों की गति-स्वरूप थे। वे स्वयं अस्त्र देवता की आत्म-शक्ति थे। श्रीराम तीनों लोकों की आत्मा व पूर्ण परब्रह्म थे। गरुड़ वापस लौट गया। श्रीराम की मूर्च्छा दूर हुई, यह देखकर वानरगण उत्साहित हो उठे। उन्होंने राम-नाम की जय-जयकार की रण-वाद्य एवं शंखों की ध्वनि करते हुए वानर अपना आनन्द व्यक्त करने लगे।

श्रीराम नित्य सचेतन रहते हैं, इस मर्म को जानकर वानर-गण युद्ध में रावण को मारने के लिए उत्सुक हो उठे। झंडे फहराते हुए वाद्यों की ध्वनि के साथ भुभुःकार करते हुए वानरों ने श्रीराम-नाम का जय-जयकार किया। उस जय-जयकार से आकाश गूँज गया। त्रिभुवन में आनन्द भर गया। राक्षस-समूह चौंक गए। उस ध्वनि से वे काँप उठे। उस ध्वनि को सुनकर सिंहासन पर बैठा रावण चौंक गया। इन्द्रजित् भी समझ गया कि शरबंधन खुल कर श्रीराम को चेतना वापस लौट आई है। देवताओं ने प्रसन्न होकर पुष्प-वृष्टि की। श्रीराम नित्य चेतनायुक्त ही हैं। तत्पश्चात् नर, वानर, राक्षस, तीनों भयंकर युद्ध के लिए सिद्ध हुए। यह युद्ध मानों स्वयं मोक्ष का ही निवास-स्थान था।

अध्याय १४

[धूम्राक्ष का वध]

श्रीराम व लक्ष्मण सर्पशरबंधन से मुक्त हुए। अपने मूल स्वरूप को धारण करते हुए दोनों ने धनुषबाण सुसज्जित किये। श्रीराम ने सुग्रीवादि श्रेष्ठ वानरवीरों को एक-एक कर आलिंगनबद्ध किया। सभी वानर वीरों ने भुभुःकार करते हुए श्रीराम का जय-जयकार किया। उस जय-जयकार से सम्पूर्ण आकाश गूँज उठा। उस जयजयकार को सुनकर रावण चौंक गया। उसने भयभीत होकर अपने आस-पास के राक्षसों को बुलाया और उनसे बोला– "राम और लक्ष्मण को शरबंधन में बाँधने पर वे मूर्च्छित अवस्था में पड़े हुए थे, तब वानर अत्यन्त शोक में डूब गए थे। उन वानरों को एकाएक यह किस कारण आनन्द हो रहा है ? तुम जाकर यह देखो कि राम और लक्ष्मण शरबंधन में हैं कि नहीं ? और वानर

किस कारण हर्षित हैं ? सम्पूर्ण वृत्तान्त लेकर आओ।" वानरों की स्फूर्ति दायक गर्जना सुनकर बाहर आये हुए राक्षस भय से काँप रहे थे। उन्हें लगा कि अब भय से उनके प्राण चले जाएँगे।

दूतों द्वारा निरीक्षण एवं वृत्तान्त कथन– रावण के दूत वानर सेना के विषय में जानने के लिए गोपुर पर चढ़कर वहाँ से देखने लगे। उन्हें अद्भुत दृश्य दिखाई पड़ा। श्रीराम और लक्ष्मण शर बंधन तोड़कर धनुषबाण सज्ज कर भीषण संग्राम करने के लिए तैयार हैं। उनके दोनों ओर वानरगण हैं, जो राम-नाम का जय-जयकार कर रहे हैं। वानर वीर शिला, शिखर व वृक्ष हाथों में लेकर शीघ्र गति से युद्ध के लिए आ रहे हैं। श्रीराम की चेतना वापस लौटी हुई देखकर दूत दुःखी हो गए। उन्हें लगा कि उनके प्राण-पखेरू अब उड़ जायेंगे। वे वापस लौटकर सभा में आये। दूतों ने श्रीराम को शरबंधन से मुक्त होकर युद्ध के लिए आते देखा तो उनकी घिग्घी बँध गई, उनका मुख सूखने लगा। अत्यन्त विकल स्वर में वे बोले– "श्रीराम शरबंधन से मुक्त होकर युद्ध के लिए आ रहे हैं।"

दूतों द्वारा श्रीराम के शरबंधन से मुक्त होने का समाचार सुनते ही रावण मन ही मन भयभीत हो उठा। इन्द्रजित् चिन्तित हो गया। श्रीराम के उठने से राक्षस-कुल का समूल अन्त होगा, इस विचार से वह भयग्रस्त हो गया। वह सोचने लगा कि वानर सेना स्वयं ही अत्यन्त विकट है और उन्हें राम की सहायता मिलने पर तो छोटा-बड़ा कोई राक्षस युद्ध में बच नहीं पाएगा। दूतों द्वारा राम-लक्ष्मण के शरबंधन से मुक्त होने का समाचार सुनते ही रावण का मुख चिन्ता से मलिन हो उठा। कुछ समय बाद उसका क्रोध उफन उठा। उसने धूम्राक्ष नामक राक्षस श्रेष्ठ को बुलाकर उसे वानरों का वध करने के लिए भेजा। वह बोला– "तुम साहसी राक्षसवीर, ध्वज, रथ, घोड़े, हाथी, इत्यादि सम्पूर्ण सैन्यदल लेकर युद्ध के लिए शीघ्र प्रस्थान करो।'' रावण की आज्ञा सुनकर धूम्राक्ष ने रावण की वन्दना की व युद्ध के लिए चल पड़ा।

धूम्राक्ष का युद्ध के लिए प्रस्थान, प्रारम्भ में ही अपशगुन– धूम्राक्ष सहित निकले हुए वीर, वीर-वेश में सुसज्ज थे, वे गर्जना करते हुए आनन्दपूर्वक जा रहे थे। फरश, पट्टिश, तोमर, शूल, परिघ, गदा, मुद्गर, लहुड़ी, भिंडी माला, खड्ग, चक्र, धनुष-बाण इत्यादि शस्त्र उनके पास थे। घोड़ों के मुख में सुन्दर नकेल, दोनों तरफ शीशे लगी हुई झूल पहने हुए फुर्तीले घोड़ों पर पराक्रमी सवार आरूढ़ थे। वे अपने घोड़ों को रणभूमि में दौड़ा रहे थे। मदमस्त हाथी घंटी, घुंघरू इत्यादि अलंकारों से सुसज्ज थे। उन पर तरह-तरह की ध्वजाएँ फड़क रही थीं हाथियों के दाँतों में लोहे के तीक्ष्ण आवरण (शॅम्बा) थे। हाथियों की पीठ पर वीर बैठे हुए थे। घरघराहट की ध्वनि के साथ रथ उत्तम वीरों को लेकर जा रहे थे। धूम्राक्ष ने जब सेना लेकर प्रस्थान किया तब सिंह के मुख वाले वृक, जंबूक, गर्दभ इत्यादि प्राणी रथ में जुते हुए थे। उन पर सोने की झूल डाली हुई थी, रथ अलंकारों से सुशोभित था। रथ पर विचित्र ध्वजाएँ तथा शुभ्र-छत्र शोभायमान हो रहा था। ऐसे रथ में धूम्राक्ष बैठा हुआ था। कुछ समय पश्चात् रथ के ध्वज पर गिद्ध आकर बैठ गया। वह गिद्ध मांस खा रहा था, जिससे बहने वाले रक्त ने उस शुभ्र छत्र को लाल कर दिया। धूम्राक्ष ने उस गिद्ध को ध्वज से उड़ाने का प्रयत्न किया तब गिद्ध के पंख की हवा उसके माथे पर लगी। उसका छत्र नीचे गिर गया और गिद्ध आकाश में उड़ गया। आगे भी अनेक अरिष्ट आये, राजद्वार में विस्फोट होकर ज़मीन थरथरा गई। वज्राघात हुआ, जिसकी ध्वनि से नभ गूँज गया। भीषण प्रतिकूल हवा के प्रवाहित होने से आँखों में धूल भर गई। आकाश से रक्त की वर्षा हुई। ऐसे अनेक उत्पात व दुश्चिह्न दिखाई देने के कारण धूम्राक्ष भयभीत व चिन्तित हो उठा। वह विचार करने लगा कि 'इन अपशगुनों के भय से भयमीत होकर वापस लौटने पर रावण दुर्दशा करते हुए

नाक-कान काटने का दण्ड देगा। पीछे लौटने पर दुर्दशा होगी, परन्तु युद्ध करने से मुक्ति मिलेगी।' यह विचार कर वह उत्साहपूर्वक युद्ध के लिए चल पड़ा। 'पीछे लौटकर नरक में आने की अपेक्षा, रणभूमि में मृत्यु आने से मुक्ति मिलेगी, श्रीराम के चरणों में प्राण त्यागने से ब्रह्मस्वरूपता सुलभ होगी।' इन विचारों से उसके निश्चय को बल मिला और अपशगुन की परवाह किये बिना वह युद्ध के लिए तैयार हुआ। वह पश्चिम द्वार से बाहर निकला। वहाँ वानर-समूह सहित कृतान्त काल रूपी हनुमान सेना प्रमुख के रूप में बैठे हुए थे।

राक्षस व वानरों का युद्ध– धूम्राक्ष नामक महाराक्षस को हाथी, घोड़े, रथ इत्यादि समूह के साथ आते देखकर वानर आनन्दित होकर नाचने लगे। राक्षस सेना को देखकर वानरों ने शिला, वृक्ष, पर्वत शिखर इत्यादि से वार करना प्रारम्भ किया, जिससे राक्षस क्रुद्ध हो उठे। वानर और राक्षस आपस में भिड़ गए और परस्पर निष्ठुरतापूर्वक प्रहार करने लगे। वानरों पर शूल, शक्ति, गदा, मुद्गर, मूसल इत्यादि से वार होने पर वानरों द्वारा गुलेल से वार होते थे। अपने ऊपर होने वाले वारों से बचते हुए पूँछ की सहायता से वे शस्त्रों का निवारण करते थे। वानरों ने अपने नखों से राक्षसों को विदीर्ण किया, जिससे रक्त प्रवाहित होने लगा और मुष्टिका प्रहार से उन्हें मूर्च्छित कर दिया। राक्षस जब वानरों पर वार करने के लिए बढ़ते तो वानर उछल कर आकाश में पहुँच जाते थे। तब राक्षस उन पर बाणों का प्रहार करते थे परन्तु वानर रणोन्मत्त होकर नाचते हुए उनसे भी बच निकलते थे। राक्षसों का वध करने के लिए वानर एकत्र होकर गगन में उछल कर वहाँ से शिलाओं तथा पर्वतों की वर्षा करते थे। उस वर्षा से राक्षसों के शस्त्र चूर-चूर हो जाते थे तथा अनेक राक्षस भी मारे जाते थे। वानर निरन्तर हरिनाम का स्मरण करते रहते थे। राक्षस घायल होकर भूमि पर कराहते हुए प्राण त्याग देते थे। सोने और मोती से मढ़े कवच पहने हुए प्रमुख वीरों की छाती पर पर्वत गिरने से उनके मुकुट गिर पड़े। पर्वतों के भीषण प्रहार से घोड़े, सारथी, रथ, सभी कुचले गए तथा रणभूमि में धराशायी हो गए। 'हम राम के पवित्र वानरवीर हैं,' गर्जनापूर्वक ऐसी अपनी ख्याति बताते हुए वानरवीर युद्ध कर रहे थे। राक्षसों का लगभग नाश हो गया। असंख्य घोड़े, बड़े-बड़े रथ, गज दल सभी युद्ध में स्वाहा हो गए। रणभूमि में यत्र-तत्र शस्त्र बिखरे पड़े थे। छत्र-भूमि पर गिरे थे। राक्षसों का संहार होकर रक्त की नदियाँ बहने लगीं। वानर आकाश में तथा राक्षस भूमि पर होने के कारण पर्वत पाषाणों से राक्षस मारे गए। ऐसा युद्ध देखकर राक्षस भागने लगे। कुछ घायल होकर भूमि पर गिर पड़े। राक्षसों को इस प्रकार पलायन करते देखकर धूम्राक्ष क्रोधित हो गया। वह धनुष-बाण सज्ज कर शत्रु-पक्ष का नाश करने के लिए युद्ध करने लगा।

धूम्राक्ष तथा हनुमान का युद्ध– धूम्राक्ष स्वयं धनुष बाण लेकर वानरों का नाश करने लगा, उसके बाण अत्यन्त तीक्ष्ण थे। वर्षा की धाराएँ जिस प्रकार पर्वत पर गिरती हैं, उसी प्रकार बाण-वर्षा से वानरों पर प्रहार किया। किसी के शरीर से रक्त प्रवाहित होने लगा। कोई आकाश में उड़ गया तो कोई घायल हो गया। कोई मूर्च्छित हो गया तो कोई बार-बार युद्ध के लिए खड़ा होता परन्तु बाण लगने से पुनः गिरकर कराहने लगता। वानर रक्तरंजित होकर भी युद्ध कर रहे थे। किसी के हृदय में बाण चुभने पर वह वानर श्रीराम-नाम का स्मरण कर पुनः बल अर्जित करता था। श्रीराम-नाम के स्मरण से बाण नष्ट हो जाते थे। किसी के बायीं ओर, किसी की पीठ में बाण लगकर वानर संत्रस्त हो गए। यह देखकर हनुमान क्रोधित हो उठे। वे कृतान्तकाल सदृश क्रोधपूर्वक धूम्राक्ष का वध करने के लिए आगे बढ़े। उन्होंने सात योजन लम्बी शिला धूम्राक्ष के रथ पर पटकी और गर्जना करते हुए धूम्राक्ष का वध करने के लिए बढ़े। उनके नेत्र रक्तरंजित थे। उन्होंने शत्रुपक्ष का नाश करने पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। हनुमान द्वारा फेंकी

गई शिला बाणों से न टूट सकी। शस्त्र व अस्त्रों का कोई भी वार उसका निवारण न कर सका। अतः असफल होकर धूम्राक्ष निश्चयपूर्वक गदा लेकर दूर भागा। तत्पश्चात् उस महाशिला के आघात से घोड़े, सारथी, रथ, हाथी, ध्वज, धनुषबाण, छत्र सभी चूर चूर हो गए।

धूम्राक्ष को अपने प्राण बचाकर गदा लेकर भागते देख हनुमान क्रुद्ध हो उठे। क्रोध से अग्नि सदृश लाल होकर हनुमान ने राक्षस सेना में प्रवेश किया। अपने पिता वायु के सदृश ही हनुमान भी पराक्रमी थे। उन्होंने राक्षसों को भस्म करने का निश्चय कर युद्ध प्रारम्भ किया। अपनी पूँछ में सेना को बाँधकर प्रत्येक का सिर तोड़ने के लिए हाथों से प्रहार किया। उस समय उनका बाल भी बाँका न हुआ। राक्षसों के शस्त्र का उन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। महापराक्रमी हनुमान के हाथों में वृक्ष था। उन्होंने राक्षसों को तहस-नहस कर दिया, जिससे उनमें हाहाकार मच गया। राक्षसों ने हनुमान का नाम सुनते ही अपने प्राणों की आशा छोड़ दी। उन्हें युद्ध के लिए आया हुआ देखकर राक्षस भयभीत हो गए। हनुमान से युद्ध करने के विचार मात्र से राक्षस काँप उठे। हनुमान द्वारा क्रोधपूर्वक गर्जना करते ही राक्षसों की वाचा बन्द हो गई। हनुमान राक्षस-सेना के व्यूह को तोड़ते हुए धूम्राक्ष के समीप पहुँचे। धूम्राक्ष राक्षस भी महापराक्रमी था। वह भी उत्तेजित होकर युद्ध के लिए उठ खड़ा हुआ। हनुमान ने राक्षस सेना को नष्ट कर दिया। वे हाथ में शिखर लेकर धूम्राक्ष की ओर दौड़े।

धूम्राक्ष का वध, वानर-सेना में आनन्द— हनुमान को समीप आया हुआ देखकर धूम्राक्ष की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उसने हनुमान का वध करने के लिए उसके हृदय पर गदा से प्रहार किया। उस वार से गदा ही चूर-चूर हो गई। यह देखकर धूम्राक्ष चकित हुआ। वह गदा शक्ति के वरदान से सम्पन्न व कँटीली थी। उससे काल भी भय खाता था। इस प्रकार वरिष्ठ गुणों से सम्पन्न उस गदा से वानर पर प्रहार करते ही वह गदा ही चूर-चूर हो गई, ऐसा उस वानर का पराक्रम था। धूम्राक्ष इस पर विचार करने लगा। तभी हनुमान ने एक प्रचंड शिखर शिला वेगपूर्वक धूम्राक्ष के मस्तक पर फेंकी, जिससे वह लड़खड़ाते हुए भूमि पर जा गिरा। उसने पीने के लिए जल भी नहीं माँगा और शीघ्र प्राण त्याग दिए। युद्ध में अपने नेता के धराशायी होते ही राक्षसों का धैर्य समाप्त हो गया और जितने राक्षस जीवित थे, वे शीघ्र भाग गये। कौंखते-कराहते किसी तरह लंका में पहुँचे। पेट को नखों से फाड़कर राक्षसों को वानरों ने रक्तरंजित कर दिया। राक्षस घायल होकर लंका में भाग गए, परन्तु वानर वीरों ने उनका पीछा नहीं किया। इस प्रकार वानर वीरों ने अपना युद्ध-कौशल दिखलाया। हनुमान ने धूम्राक्ष का वध कर दिया और राक्षसों में त्राहि-त्राहि मचा दी, यह वार्ता सुनते ही रावण संतप्त हो उठा। उसने वज्रदंष्ट्र नामक राक्षस को बुलाकर युद्ध के लिए भेजा।

'हम श्रीराम के दूत हैं, हमारी नित्य विजय होती है'— ऐसा कहते हुए वानर वीर राम-नाम का जय-जयकार कर रहे थे। श्रीराम-नाम के स्मरण से वानरों को नित्य-विजय की प्राप्ति होती है। उस नाम के सामर्थ्य व भय से अपयश नष्ट हो जाता है। जागृति अथवा स्वप्न में भी अपयश के दर्शन नहीं होते। नाम-स्मरण से विजय, यश, कीर्ति और परब्रह्म की प्राप्ति होती है, ऐसी उस नाम स्मरण की ख्याति थी। इसके विपरीत नाम की विस्मरण से अपयश, अपकीर्ति और स्वयं इस पाप का भागी होने से नरक प्राप्ति होती है। यहाँ हनुमान ने स्वयं धूम्राक्ष को मोक्ष प्राप्त करा दिया। हनुमान द्वारा धूम्राक्ष का वध करने के कारण करोड़ों जन्म-मृत्यु के चक्र से छूट कर भाग्यशाली धूम्राक्ष नित्यमुक्त हुआ।

अध्याय १५

[वज्रदंष्ट्र एवं अकंपन का वध]

हनुमान द्वारा बलशाली धूम्राक्ष राक्षस का वध किये जाने की वार्ता सुनते ही रावण दुःख और क्रोध से व्यग्र हो उठा। वह सर्प सदृश फुफकारने लगा। उसके प्राण जाने की स्थिति निर्मित हो गई। तब उसने धैर्यवान, शूर, महावीर, वज्रदंष्ट्र राक्षस से कहा– "तुम शीघ्र युद्ध के लिए प्रस्थान करो। वहाँ जाकर राम, लक्ष्मण, अंगद, सुग्रीव, हनुमान तथा अन्य वानर गणों को पकड़ो। राक्षसों की भीषण एवं प्रबल सेना ले जाकर श्रीराम सहित सभी छोटे बड़े वानरों को पकड़कर उनका वध करो।" रावण के ये वचन सुनकर वज्रदंष्ट्र उल्लसित हुआ। उसने रावण की वंदना कर युद्ध के लिए प्रस्थान की तैयारी प्रारम्भ की। मुकुट, कुंडल, बाहुभूषण, केयूर के कंकण, शरीर पर कवच, शिरस्त्राण, करत्राण, धनुष की डोर के गट्टे न पड़ें, इसलिए हाथों में आवरण इत्यादि धारण कर वह राक्षस वीर वज्रदंष्ट्र युद्ध का वेश धारण कर, धनुषबाण सुसज्जित कर युद्ध के लिए निकला।

वज्रदंष्ट्र के साथ घोड़ों, गर्दभ, ऊँट इत्यादि विविध वाहनों पर बैठकर राक्षसों ने प्रस्थान किया। राक्षसों का सेना-संभार ध्वजयुक्त रथ एवं मदमस्त हाथियों से सुसज्ज था। विचित्र पताकाओं की कड़कड़ाहट रथों की घर घराहट के बीच विचित्र ध्वज सहित अनेक श्रेष्ठ वीर योद्धा आगे बढ़ रहे थे। सोने के अलंकारों से अलंकृत तथा ध्वज और पताकाओं से सुशोभित रथारूढ़ वज्रदंष्ट्र ने दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया। राक्षसों के पास गदा, परिघ, बाण इत्यादि शस्त्र थे। खड्ग, तोमर, शूल इत्यादि शस्त्र उन्होंने धारण किये थे। उस सेना में कोई मूसल लेकर तो कोई मुद्गर लेकर, कोई ढाल तलवार लेकर, पैदल चलने वाले धनुर्धरों का समूह, पैदल सैनिकों का समूह इत्यादि विविध जुझारू वीर थे, जो गर्जनाएँ कर रहे थे। वीरों में पराक्रम था। वे युद्ध के लिए कमर कसकर तत्पर थे। उनके अंग-प्रत्यंग पर युद्ध का वेश था। युद्ध के उत्साह से वे परिपूर्ण थे। दोनों ओर हाथियों का समूह था। उन पर योद्धा थे। वे वीर शूल, त्रिशूल, तोमर अपने पास रखकर गजदल चला रहे थे। गज युद्ध की गति विगति दिखाते हुए वे योद्धा सीधे शत्रु सेना पर वार कर रहे थे। घोड़े, हाथी तथा रथों की घरघराहट तथा वीरों की कड़कड़ाहट की ध्वनि युक्त सेना-संभार साथ में लेकर वज्रदंष्ट्र दक्षिण द्वार से रणभूमि की ओर निकला। उस द्वार पर अंगद सेना प्रमुख था। राक्षस-सेना द्वार के बाहर आते ही वहाँ उन्हें अनेक अशुभ बातें दिखाई दीं। एक उल्लू आकाश में दिखाई दिया जो वज्रदंष्ट्र के सिर पर आ बैठा। सियार ऊँचे स्वर में चिल्लाने लगे। इन अशुभ चिह्नों पर ध्यान न देकर महापराक्रमी वज्रदंष्ट्र युद्ध के लिए आगे बढ़ा।

वानर और राक्षसों का युद्ध– अंगद के वानरवीर शीघ्र युद्ध के लिए राक्षस सेना में घुस गए। राक्षसों ने वानरों पर अनेक प्रकार के शस्त्रों से वार किया। इस समय मृदंग, शंख, भेरी, काहला, वीणा, थिशाण, निशाण इत्यादि अनेक रणवाद्यों की ध्वनि बजने लगी और दोनों सेनाओं में उत्साह का संचार हुआ। वानर राक्षसों के शस्त्रों के वार से बचते हुए अपने बाहुबल से उन्हें उठाकर पटक रहे थे। राक्षस और वानर भीषण युद्ध करने लगे। एक दूसरे को धिक्कारते हुए वे परस्पर निष्ठुरतापूर्वक वार कर रहे थे। राक्षसों द्वारा शस्त्रों से वार करते ही वानर उछल कर उस वार से बच निकलते। वानर राक्षसों के धनुष की डोरी तोड़ डालते थे। शस्त्र छीन कर उन्हें निःशस्त्र कर मुष्टियों से आघात करते थे। बाहुबल से एक दूसरे से भिड़ते हुए मल्लयुद्ध करते थे। मुट्ठी, तलवे, पैर, घुटने, कंधे तथा कोहनी से वार कर

रहे थे। छातियों पर प्रहार करते हुए वानरों ने राक्षसों को मारा। युद्ध में वानरों के हाथों में वृक्ष थे। उन वृक्षों से रथों पर, सारथियों पर, उन रथों के घोड़ों पर आघात किया। अनेक राक्षस वीर रणभूमि में कराहने लगे। वानर उछल कर आकाश में जाते, वहाँ से शिला पाषाण व पर्वतों के प्रहार से राक्षसों का दलन करते। अपने राक्षस वीरों के घुटने, कमर टूटकर उन्हें युद्ध क्षेत्र में कराहते पड़े हुए देखकर वज्रदंष्ट्र अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। वानरों द्वारा मारे गए राक्षसों के रक्त की नदियाँ देखकर उसने अपना रथ आगे बढ़ाया।

वज्रदंष्ट्र स्वयं धनुष बाण सज्ज कर रणभूमि में वानरों पर वार करने लगा परन्तु रणोन्मत्त वानरों ने उस बाण-वर्षा की चिन्ता किये बिना वज्रदंष्ट्र को घेर लिया। उन्होंने उस पर शिखरों से तथा वृक्ष हाथों में लेकर वार किया। युद्ध में वानरों को वश में न आता देखकर वज्रदंष्ट्र चिन्तित हुआ। तब उसने सर्वसंहारक अस्त्र चलाने की योजना बनाई। उसने वानरों का वध करने के लिए आवेशपूर्वक मन्त्र सहित अस्त्र चलाया। वज्रदंष्ट्र बलवान् व अस्त्रवेत्ता था। उसके पास अस्त्रविद्या का बल था। उसने अस्त्र से आगे पीछे जहाँ के तहाँ वानरों को घेर कर उनके समक्ष संकट उपस्थित किया। वानरों पर चारों ओर से वार प्रारम्भ हो गए। वानर अस्त्र विद्या से प्रेरित बाणों के कारण युद्ध में धराशायी होने लगे। अगर कोई वानर उछलकर आकाश में गया तो उसे बाण का निशाना बनाया जाता था। जिस प्रकार प्रलय काल में काल, प्राणी का घात करता है, उसी प्रकार वज्रदंष्ट्र के बाणों ने वानरों के चारों ओर आवर्त का निर्माण कर दिया। वानरों का समूह देखकर क्रोध से थर-थर काँपने वाला वज्रदंष्ट्र बाण सुसज्जित कर उसकी वर्षा से वानरों को निशाना बना रहा था। अस्त्रविद्या से युक्त उन बाणों से वानरों का नाश होते हुए अंगद ने दूर से देखा। वह आवेश से गर्जना करते हुए आया। वानर सेना की दुर्दशा को देखकर वह अत्यन्त संतप्त हुआ और वृक्ष उखाड़कर राक्षस सेना का संहार करने लगा।

अंगद का आवेशयुक्त पराक्रम– जिस प्रकार सिंह दिखाई देते ही हिरन भागने लगते हैं, उसी प्रकार अंगद के वृक्षों के आघात से बचने के लिए राक्षस भागने लगे। अंगद आवेशपूर्वक अपनी पूरी शक्ति से वार कर रहा था, जिससे राक्षसों के सिर धड़ से अलग होकर भूमि पर गिर रहे थे। रक्त का प्रवाह बह रहा था। इस प्रकार अंगद ने पराक्रम किया। युद्ध के लिए सामने आने वाले को वृक्ष के वार से वह गिरा देता था। जिस प्रकार प्रलयकाल अग्नि पानी को दूर करते हुए आगे बढ़ता जाता है, उसी प्रकार राक्षसों का निर्दलन कर क्रुद्ध अंगद रणभूमि में विचरण कर रहा था। जिस प्रकार जड़ काटने से वृक्ष धराशायी हो जाते हैं, उसी प्रकार राक्षसों को धराशायी कर हाथी, रथ, घोड़े, सारथी इत्यादि को वृक्षों के आघात से अंगद ने चूर चूर कर दिया। रथों के ध्वज, छत्र धारी, अलंकार, हार, बाहुभूषण, मुकुट तथा कुंडल भी वीरों के साथ भूमि पर बिखरे पड़े थे। राक्षस वीरों के टूटे हुए सर्पाकृति कंकण युक्त हाथ तथा शस्त्र व वस्त्र भूमि पर पड़े होने के कारण वह भूमि कुछ अलग ही दिखाई पड़ रही थी। शरद्-काल के नक्षत्रों सदृश अथवा रात्रि जिस प्रकार चन्द्रमा सहित सुशोभित होती है, वैसा वह दृश्य दिखाई दे रहा था। टूट कर, दूर जाकर गिरे हुए राक्षसों व हाथियों के सिर अंगद द्वारा रणभूमि में रक्त की नदी के बीच गिराये गए थे। अंगद के इस प्रकार संहार से राक्षस थर-थर काँपने लगे और उनका धैर्य टूट गया। जिस प्रकार मेघ हवा के झोंकों से बिखर जाते हैं, उसी प्रकार अंगद के वार से राक्षस-दल बिखर कर भागने लगा।

राक्षस-सेना की दुर्दशा– अंगद द्वारा राक्षस-दल का संहार देखकर महाबलवान् वज्रदंष्ट्र अत्यन्त कुपित हुआ और आगे बढ़ा। इन्द्रधनुष सदृश अपने धनुष की टंकार कर उसकी ध्वनि से चराचर

कंपित किये। इन्द्रधनुष के भयंकर नाद सदृश वह टंकार ध्वनि थी। तत्पश्चात् वज्रदंष्ट्र ने वानर सेना को निशाना बनाकर भयंकर बाण चलाये। वज्रदंष्ट्र के आगे बढ़ते ही उसके साथ उसके साहसी एवं विश्वसनीय राक्षस वीर रथ में बैठकर युद्ध के लिए आगे बढ़े। राक्षसों को युद्ध के लिए आया हुआ देखकर वानर सेना के वीर भी युद्ध के लिए आवेशपूर्वक आगे आये और उन्होंने घोड़ों सहित रथ उठाकर फेंक दिये। उस वानर सेना ने चढ़ाई करते हुए राक्षस सेना से भिड़कर युद्ध प्रारम्भ किया। राक्षसों के उन साहसी वीरों की अपेक्षा वानर, बल में अधिक थे। उन्होंने भीषण युद्ध कर अनेक राक्षस योद्धाओं को मार डाला। राक्षस जब वानरों से भिड़ते थे, तब पीछे हटे बिना अपने पैरों से प्रहार कर वानर उन्हें धराशायी कर देते थे। राक्षसों की ओर से बाण, त्रिशूल, शूल व वानरों की ओर से वृक्ष, शिला व पर्वत से परस्पर वार हो रहे थे, जिससे वे वीर रक्त से सन गए थे। दृढ़, धैर्यवान व साहसी वानरों के द्वारा जब राक्षसों के सिर और हाथ तोड़े जाते तब रणभूमि में रक्त की नदियाँ बहने लगती थीं। इसके विपरीत वानर रणभूमि में गिरते ही श्रीराम के चरणों की धूल अपने मस्तक पर लगाते थे, जिससे उनके घाव भर जाते व वे पुनः उठकर गर्जना करते हुए युद्ध करने लगते थे।

वानर वीरों द्वारा पर्वतों की वर्षा कर राक्षसों के शस्त्र तोड़ने के कारण राक्षस त्रस्त हो गए। शिला, शिखर व पर्वतों की वर्षा से उनका प्राणान्त समीप आ गया। राक्षस सेना में हाहाकार मच गया। रणभूमि में पड़े हुए राक्षसों पर सियार, भेड़िये, कुत्ते व सुअर टूट पड़कर, उनका रक्त और मांस खा रहे थे। राक्षसों के मस्तक टूटकर नीचे गिरने पर भी उनके धड़ रणभूमि में दौड़ रहे थे। इससे भूत तृप्त होकर गर्जना करते हुए नाचने लगे और मांस भक्षण करने लगे। राक्षसों के टूटकर गिरे हुए सिर और हाथों के कारण रणभूमि अत्यन्त भयंकर दिखाई दे रही थी। उस युद्ध में क्रुद्ध वानरों ने राक्षसों को गिराया और राक्षसों ने भी वार से वानरों को धराशायी किया, परन्तु इस निर्णायक युद्ध में गिरे हुए वानर श्रीराम के चरणों की धूलि से तत्काल खड़े हो जाते थे। राक्षस गिरते ही उनका प्राणान्त हो जाता था। श्रीराम के सामर्थ्य से वनचर वानर युद्ध-प्रवीण हो गए थे। उनके भय से राक्षस भागने लगते थे, जिससे राक्षस-सेना में भगदड़ मच गई। रणभूमि में वानरों के भय से राक्षस थर-थर काँपते हुए वज्रदंष्ट्र के पीछे जा छिपे। उन्होंने वज्रदंष्ट्र को बताया– "वानर प्रबल सामर्थ्यवान हैं, आप यहाँ से शीघ्र प्रस्थान करें अन्यथा शिला से मस्तक छिन्नभिन्न हो जाएगा। वानरों द्वारा पर्वतों के प्रहार से शस्त्र चूर-चूर हो जाते हैं। उनके समक्ष ढाल भी काम नहीं आती। आप व्यर्थ ही क्यों प्राण दे रहे हैं ?

वज्रदंष्ट्र की ओर से क्रोधयुक्त प्रतिकार– अपने राक्षस-सैनिकों के दयनीय मुख और विनष्ट हुई सेना को देखकर वज्रदंष्ट्र क्रुद्ध हो गया। उसने धनुष बाण सुसज्जित किया। वानरों द्वारा राक्षसों का संहार देखकर उसके नेत्र क्रोध से लाल हो गए। उसने धनुष लेकर तेजयुक्त कंकपत्री बाण धनुष पर चढ़ाया और वानरों के सम्पूर्ण शरीर पर बाण चुभाकर उनका निर्दलन करने लगा। वानरों द्वारा फेंके हुए वृक्ष, शिलाओं और पर्वतों को उसने बाणों से तोड़ डाला। बाणों के वार से अनेक वानरों को घायल कर धराशायी कर दिया। उसके बाण मायावी विद्या से परिपूर्ण थे। वे एक ही समय में पाँच, सात, नौ की संख्या में होकर अपने वार से आठ वानरों को गिरा देते थे। इस प्रकार वह वानरों का नाश करने लगा। बाणों का वार होते हुए भी वानर सामने से आकर भिड़ जाते थे। राम नाम के कारण उनका बल द्विगुणित हो जाता था, जिससे वज्रदंष्ट्र चकित हो जाता था। बाणों के प्रभावी वार से जब वानर आहत होने लगे, तब वे शीघ्र अंगद के समीप आये। जिस प्रकार संकटग्रस्त पुत्र अपने पिता के पास आता है, उसी प्रकार

वे वानर अंगद के पास दौड़ते हुए आये। बालि-सुत अंगद ने वानर सेना का नाश होते देखा तो वह क्रोधित हो उठा। क्रोध से उसके नेत्र लाल हो उठे। वह वज्रदंष्ट्र का वध करने के लिए उसके सामने आ खड़ा हुआ। राक्षसों द्वारा मारे जाने का भय उसके मन में किंचित मात्र भी न था। वह पराक्रमी वीर राक्षसों का नाश करने के लिए आवेशपूर्वक आगे आया। 'यह अगद वही वानर है, जो दूत बनकर आया था तथा जिसने प्रत्यक्ष रावण को भी सन्त्रस्त कर दिया', यह देखकर राक्षस भय से काँपने लगे।

अंगद और वज्रदंष्ट्र का भीषण युद्ध– अंगद को देखकर राक्षस-सेना विचलित हो गई है, ऐसा देखकर स्वयं वज्रदंष्ट्र आगे आया। जिस प्रकार मदोन्मत्त हाथी और सिंह एक-दूसरे पर चढ़ाई करते हैं, उसी प्रकार अंगद और वज्रदंष्ट्र दोनों परस्पर युद्ध करने लगे। वे दोनों आवेशपूर्वक सिर और छाती पर वार करने लगे। वज्रदंष्ट्र दौड़ते हुए अंगद पर वार करने के लिए आगे आया परन्तु वह भूमि पर जा गिरा क्योंकि उस समय तक अंगद आकाश में उछलकर शत्रु पर कूदकर उसे मारने की तैयारी में था। वज्रदष्ट्र ने तब अंगद के मर्मस्थल पर सहस्र बाणों से वर्षा की। अंगद रक्तरंजित स्थिति में रण-भैरव सदृश रणोन्मत्त होकर रणभूमि में संचार करते हुए राक्षसों का नाश कर रहा था। अंगद के लिए वज्रदंष्ट्र के बाण तृणवत् थे। वह वज्रदंष्ट्र का वध करने के लिए आवेशपूर्वक आगे बढ़ा। राक्षसों को चूर-चूर करने के लिए अंगद ने अनेक शाखाओं से युक्त एक वृक्ष को उखाड़कर राक्षसों पर फेंका। स्वयं पर वृक्ष गिरने के भय से राक्षस विचलित हो उठे। वृक्ष राक्षसों पर गिरने से उनकी अस्थियाँ टूट गईं रावण-सेना में त्राहि त्राहि मच गई। वज्रदंष्ट्र सतर्क होकर वृक्ष का निवारण करने के लिए रथ से कूदकर, गदा लेकर आगे बढ़ा उसने गदा से वृक्ष तोड़ डाला। राक्षस आनन्दित हुए।

अंगद ने अब अंतरिक्ष में उड़ान भरी और वज्रदंष्ट्र पर एक प्रचंड शिला से वार किया। वज्रदंष्ट्र अपने पराक्रम से प्रसन्न होकर रथ में बैठा हुआ था। तभी उसके मस्तक पर शिला आ गिरी। वह भयभीत होकर बड़ी कठिनाई से वहाँ से भागा। वह शिला तब रथ पर आ गिरी, जिसके कारण सारथी, शस्त्र-सामग्री, रथ के चक्र, उसका ढांचा, धुरी सब चकनाचूर हो गए। शिला के नीचे से स्वयं का शरीर बचाते हुए वज्रदंष्ट्र के जीवित निकल जाने से अंगद क्रुद्ध हो गया। उसने एक बड़ा पर्वत उठाया, जिस पर नाना प्रकार के वृक्ष सुशोभित थे। अंगद ने क्रोधपूर्वक उसे वज्रदंष्ट्र पर फेंका। वार पर वार होने से वज्रदंष्ट्र भयभीत हो गया था। उसे बचने का उपाय सूझ नहीं रहा था। तभी एक पर्वत उसके मस्तक पर पड़ा। उस सबल आघात से उसका मस्तक फूट गया वह रक्त रंजित होकर मूर्च्छित हो गया। दोनों हाथों में गदा पकड़कर वह भूमि पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। क्षणभर के लिए उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था। वज्रदंष्ट्र के धराशायी होते ही राक्षस-सेना में हाहाकार मच गया। वानर आनन्दित होकर रणभूमि में नाचने लगे। दोनों सेनाओं में एक ओर हाहाकार और दूसरी ओर उल्लास जैसी विरोधी भावनाएँ दिखाई देने लगीं। कुछ समय पश्चात् मूर्च्छा हटने पर वज्रदंष्ट्र की चेतना लौटी। वह तुरन्त गदा लेकर अंगद को निशाना बनाकर क्रोधपूर्वक उसके वध के लिए दौड़ने लगा। उसने आवेशपूर्वक गदा से अंगद की छाती पर प्रहार किया। पर्वत पर वर्षा के आघात सदृश उस आघात से अंगद तिल मात्र भी विचलित नहीं हुआ और वह गदा का आघात व्यर्थ चला गया। तत्पश्चात् अंगद उछलकर वज्रदंष्ट्र पर प्रहार कर उसका वध करने के लिए सिद्ध हुआ।

अंगद व वज्रदंष्ट्र का मल्ल-युद्ध– अंगद जैसे ही हाथों की मुट्ठी भींच कर वज्रदंष्ट्र पर प्रहार करने के लिए उद्यत हुआ तब मल्लविद्या में पारंगत वज्रदंष्ट्र संतप्त होकर अंगद को मारने के लिए आगे

बढ़ा। वे दोनों एक दूसरे का गला पकड़कर दबाने लगे। परस्पर प्रहार से वे वेदनाग्रस्त हो जाते थे। हृदय पर पैरों से आघात करने पर उनकी आँखों के आगे अंधेरा छाने लगा परन्तु शीघ्र चैतन्य होकर एक दूसरे पर आघात-प्रतिघात करते हुए भिड़ गये व मर्मस्थल पर वार करने लगे। दोनों घावों से जर्जर हो गए थे, फिर भी वे पीछे नहीं हटे। जिस प्रकार वसन्त ऋतु में पलाश खिलता है, उसी प्रकार वे दोनों रणभूमि में दिखाई दे रहे थे। युद्ध करते हुए थकने के पश्चात् भी आवेश से परस्पर जूझ रहे थे। उसी समय अंगद ने उड़ान भरी तथा फल-फूलों से सुशोभित वृक्ष उखाड़कर रणभूमि में ले आया। अंगद का असीम सामर्थ्य व उस प्रचंड वृक्ष को देखकर राक्षसों का सामर्थ्य खंड-खंड हो गया। वज्रदंष्ट्र सतर्क था, उसने ढाल व तलवार हाथ में ली और एक विशिष्ट पवित्रा लेकर अंगद को मारने के लिए आगे आया। अर्द्धचन्द्र की आकृति जैसी ढाल हाथों में बलपूर्वक पकड़कर व छलाँग लगाते हुए अपना पराक्रम दिखाने लगा। उसके हाथों में ढाल तलवार तथा अंगद के हाथों में वृक्ष था। वे दोनों विजय प्राप्ति के लिए एक-दूसरे पर तीक्ष्ण प्रहार कर रहे थे। रक्त से रंजित वे दोनों सिन्दूर लेप किये हुए भैरव सदृश दिखाई दे रहे थे। दोनों एक दूसरे पर सामने से निष्ठुरतापूर्वक आघात कर रहे थे। अंगद द्वारा किये गए वृक्षाघात के कारण तथा वज्रदंष्ट्र द्वारा किये गए तलवार के आघात के कारण दोनों ही अर्द्धमूर्च्छित अवस्था में पड़े थे। वे दोनों वीर महाहठी थे। वे घुटने टेक कर बैठे थे, मन में आवेश था पर गला रुधा था। नेत्र निस्तेज हो गए थे। ऐसी ग्लानिपूर्ण अवस्था में भी रामनाम के कारण अंगद चैतन्य था और उसने वज्रदंष्ट्र का वध कर दिया।

अंगद द्वारा किये गए वृक्ष के वार के निष्फल हो जाने से वह अत्यन्त संतप्त था। किसी लाठी से आहत सर्प सदृश वह वज्रदंष्ट्र की ओर दौड़ा। अंगद साहसी वीर होने के कारण उसने स्वयं वज्रदंष्ट्र को सावधान किया तथा तत्पश्चात् गर्जना करते हुए प्रहार किया। वज्रदंष्ट्र का प्रचंड, सतेज व धारदार खड्ग अंगद ने छीन लिया और उससे ही उसका सिर काट डाला। शत्रु के शस्त्र से ही शत्रु का वध करने वाले के रूप में अंगद प्रसिद्ध हुआ। शत्रु का सिर काटकर वह हरिनाम की गर्जना करने लगा। उस साहसी वीर द्वारा वज्रदंष्ट्र का वध करने से रक्त प्रवाहित होने लगा। वज्रदंष्ट्र का वध होने से राक्षस-सेना भयभीत होकर भागने लगी। अंगद उनका संहार करने लगा। उस समय राक्षस वीरों के मुकुट, कुंडल, शस्त्र, विविध अलंकार गिरने लगे। राक्षस वीर उन्हें वहीं छोड़कर भागने लगे। लंका में त्राहि-त्राहि मच गई। राक्षस भागते हुए गिरते-पड़ते हाथों के संकेत से पानी माँग रहे थे, कराह रहे थे। उनमें से कुछ की आँतें बाहर लटक रही थीं। वे सब लंकाधीश की निंदा करते हुए उसे दोष देकर कह रहे थे– "सीता को चुराकर हमें संकट में डाल दिया तथा लंका व राक्षसों का नाश करा दिया।"

सम्पूर्ण राक्षस-सेना लंका में भाग गई। बालि-सुत अंगद श्रीरघुनाथ की कृपा से विजयी हुआ। उसने वज्रदंष्ट्र का वध किया, इससे वानर आनन्दित हुए। जिस प्रकार वृत्रासुर का वध करने के पश्चात् इन्द्र शोभायमान हो रहा था, उसी प्रकार अंगद वानर सेना में सुशोभित हो रहा था। अंगद के सामर्थ्य की सभी प्रशंसा कर रहे थे। तत्पश्चात् अंगद अपनी सेना के साथ श्रीराम के दर्शनों के लिए आया। श्रीराम को सामने देखते ही सबने जय-जयकार किया और प्रणाम किया। श्रीराम के चरणों की वंदना करने के पश्चात् अंगद ने लक्ष्मण, सुग्रीव तथा विभीषण की वंदना की। तत्पश्चात् उसने हनुमान आदि वानर-समुदाय का वंदन किया। श्रीराम ने स्वयं अंगद की प्रशंसा करते हुए कहा– "राजकुमार अंगद बलवान्, सत्वगुणी तथा अत्यन्त सामर्थ्यशाली वीर के रूप में प्रसिद्ध है।" सुग्रीव की सेना के वीर अंगद द्वारा वज्रदंष्ट्र का वध किये जाने की वार्ता राक्षसों द्वारा सुनकर रावण क्रोधित हो उठा।

अंकंपन का युद्ध के लिए आगमन; उसे अपशगुन होना– क्रोध से परिपूर्ण रावण ने अकंपन राक्षस को बुलवाया। रावण उससे बोला– "तुम सिंह सदृश वीर व रण प्रवीण योद्धा हो। श्रीराम का लक्ष्मण व वानरों सहित युद्ध में वध कर मेरे मस्तक पर लगा घाव पोंछ डालो। इतना मुझे प्रिय ऐसा कार्य करो।" रावण के वचन सुनकर अकंपन गर्जना करते हुए बोला– "क्षण मात्र का भी विलम्ब न कर वानरों सहित राम और लक्ष्मण का वध करता हूँ। सुरासुरगणों के आने पर भी यह अकंपन पीछे नहीं हटेगा। राम और लक्ष्मण तो मेरे समक्ष कुछ भी नहीं हैं। वानर मेरे आगे तृण सदृश हैं। मेरे भय मात्र से वीर प्राण त्याग देते हैं।" तत्पश्चात् उसने अत्यन्त उग्र सेना सुसज्जित की, जिसे देखकर शत्रु सेना मूर्च्छित हो जाती थी। ऐसी भीषण सेना लेकर अकंपन ने प्रस्थान किया। कात्या, तोमर, त्रिशूल, गदा, मुद्‌गर, परिघ-जैसे भयंकर शस्त्रों को हाथों में लेकर राक्षस-सेना चलने लगी। अकंपन पराक्रमी था। उसे अपने बल पर गर्व था। यही देखकर रावण ने उसे सम्मानपूर्वक युद्ध करने के लिए भेजा।

अकंपन शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित रथ में बैठा। उसने तप्त सुवर्ण सदृश कवच-कुंडल धारण किये हुए थे। अकंपन स्वभाव से क्रूर व उग्र था। राक्षस सेना समुदाय लेकर वह शीघ्रतापूर्वक युद्ध के लिए निकला। अकंपन का रथ समतल मार्ग से जाते हुए भी घरघराहट की ध्वनि करने लगा। रथ के चारों घोड़े भूमि पर बैठ गए। चाबुक से प्रहार करने पर भी वे न उठे। कहारों द्वारा उनका मुख पकड़ कर उठाने पर भी वे न उठे। अकंपन डर गया। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे ? प्रमुख सेनानी के चिन्तित हो जाने से तथा राक्षसों की बायीं आँख फड़कने के बुरे चिह्नों से वे भयभीत हो गए। तब धैर्यपूर्वक अकंपन ने घोड़ों को उठाया। उनकी पीठ थपथपा कर उत्साहपूर्वक रथ सुसज्जित किया। घोड़ों के प्रसन्न होने पर वह रथ में बैठा। उसका रथ वेग से आगे बढ़ा तभी सियार, भेड़िये, बाघ, सिंह सब मुँह उठाकर हमेशा से अलग उग्र सुर में चिल्लाने लगे। पक्षी भी मधुर स्वर के स्थान पर कर्कश स्वर में बोलने लगे। इन सब बातों की ओर ध्यान न देकर, वह शूर पुरुषार्थी साहसी वीर युद्ध के लिए चल पड़ा। जो बाधाओं को देखकर सशंकित होता है, उसमें पुरुषार्थ का अभाव होता है। वह युद्ध में यशस्वी नहीं होता। अपशगुन से डरने वाला यशस्वी कैसे हो सकता है। वीर योद्धा अकंपन ने पराक्रम करने का निश्चय कर घरघराहट की ध्वनि के साथ रथ को आगे बढ़ाते हुए युद्ध के लिए प्रस्थान किया।

वानर और राक्षसों का युद्ध; राक्षसों की दुर्दशा– राक्षसों के वीर मुकुट व कुंडलकवच धारण कर युद्ध के लिए सुसज्जित हुए। अकंपन सहित उन वीरों ने रणभूमि की ओर प्रस्थान किया। चीखते चिल्लाते सिंहनाद करते हुए राक्षस समूह आगे आया। उन्हें देखकर वानर श्रेष्ठ भी युद्ध के लिए शीघ्र आगे बढ़े। शिला, शिखर, वृक्ष, पर्वत इत्यादि से वार करते हुए वे राक्षसों का नाश करने लगे। राक्षस त्रिशूल, कात्या, शक्ति, तोमर इत्यादि शस्त्र लेकर वानरों को घायल करने लगे। दोनों पक्षों के वीरों का रक्त प्रवाहित होने लगा। रावण का कार्य सम्पन्न करने के लिए राक्षस प्राणों की बाज़ी लगाकर लड़ने लगे। वानरों द्वारा श्रीराम के कार्य के लिए अपने प्राणों की बाज़ी लगाने के कारण वे जन्म-मृत्यु की बाधा से परे हो गए। उन्होंने पर्वतों के वार कर असंख्य राक्षसों को मार डाला। वे राम-नाम का स्मरण करते हुए युद्ध कर रहे थे। वानर, राक्षसों द्वारा घायल होते ही श्रीराम के चरणों की धूल लगा लेते थे, जिससे उनके घाव भर जाते थे और वे व्यथा रहित हो जाते थे। रामनाम का स्मरण करने से वानरों में पूर्ण बल का संचार होकर वे गर्जना करते हुए राक्षसों का संहार करते थे। वानरवीरों द्वारा युद्ध प्रारम्भ करते ही

रणभूमि में धूल उड़ने लगती थी, जिसके कारण सूर्य किरणें ढँक जाने से उन्हें एक दूसरे को देखना असंभव हो जाता था। ध्वज, पताकाएँ लगे हुए रथ तथा सारथी, घोड़े, वीर कुछ भी दिखाई न दे सकने के कारण अकंपन शांति-पूर्वक बैठा हुआ था। राक्षसों के विषय में ऐसा कहा जाता है कि रात में भी उन्हें दिखाई देता है, परन्तु इस समय सामान्य शक्ति के वानर जो देख पा रहे थे, वह भी राक्षस नहीं देख पा रहे थे। श्रीराम के तेज के प्रकाश में वानर योद्धे देख पाने में समर्थ थे। यह शक्ति वानरों को श्रीराम के कारण मिली, क्योंकि वह स्वयं तेज-मूर्ति थे। वानरों के पास उड़ने की शक्ति तो होती है। अब उन्हें दृष्टि की शक्ति मिलने से, उन्होंने राक्षसों की दुर्दशा कर दी। रणभूमि भयंकर धूल से व्याप्त हो गई। उस अवसर का उपयोग करते हुए वानरों ने राक्षसों पर भीषण प्रहार किया। इसके लिए उन्होंने शिला, शिखर, वृक्ष इत्यादि का उपयोग किया। राक्षसों की दृष्टि के समक्ष मात्र शून्य था। वानर वीरों ने मुट्ठियाँ भींचते हुए, राक्षसों पर गर्जना करते हुए प्रहार किया। अत्यन्त आवेश व क्रोध से भरे वानरों ने राक्षसों को शिलाओं व पर्वतों से मारा। राक्षसों के शस्त्र पर्वत के नीचे दबकर चूर-चूर हो गए। राक्षसों का नाश हो गया। रणभूमि में राक्षसों का नाश होते समय वायु भी उनके लिए प्रतिकूल सिद्ध हुई। वही वायु श्रीरघुनाथ की सहायता से वानरों के लिए अनुकूल सिद्ध हुई। वानर व राक्षसों के युद्ध करते समय जो धूल उड़ी वह रक्त के प्रवाह के कारण नीचे बैठ गई। जिस प्रकार मंदार पर्वत द्वारा मथा गया सागर क्रोधित होकर भीषण गर्जना करने लगा था, उसी प्रकार वानरों द्वारा मथा हुआ राक्षस-समूह कराहते हुए चिल्ला रहा था। अपने राक्षस वीरों का वध होते देखकर अकंपन क्रोधित हो गया और धनुष बाण सुसज्जित कर अपने रथ के सारथी से बोला– "राक्षस-समूह का वध कर वानर गर्जना कर रहे हैं, अतः उनका संहार करने के लिए मेरा रथ शीघ्र आगे ले चलो।"

अकंपन और हनुमान का युद्ध– अकंपन की आज्ञानुसार सारथी, उसका रथ वानरों के समीप ले गया। महावीर अकंपन ने बाणों की वृष्टि से आकाश आच्छादित कर दिया। वानरों द्वारा उड़ान भरते ही उन पर बाणों की वर्षा कर उनका वध कर दिया। शिला, शिखर, पाषाण तथा वृक्षों को बाणों की नोंक से चूर-चूर कर दिया। पंखयुक्त बाणों से अकंपन ने वानरों को संत्रस्त कर दिया। बायें-दायें, किसी भी दिशा में, वानरों के जाने पर पंखयुक्त बाणों से उनका वध होने लगा। उनके लिए रणभूमि में रहना असंभव हो गया। पर्जन्यवृष्टि सदृश वेगवान् बाणों की वृष्टि होने से वानर आहत होकर भागने लगे। अकंपन रावण की सेना के प्रसिद्ध वीरों में से एक था। उसके समक्ष वानरों की क्या बिसात ? वह अकंपन गर्वपूर्वक रणभूमि में खड़ा रहकर गर्जना करते हुए कह रहा था कि 'मैं राम का भी वध कर दूँगा।' वानर सेना में मची भगदड़ को देखकर हनुमान स्वयं श्रीराम-नाम की गर्जना करते हुए आगे आये। वानरों से भयभीत न होने के लिए कहते हुए वे अकंपन का वध करने के लिए आवेशपूर्वक आगे बढ़े। हनुमान को आगे आते देखकर भागने वाले वानर वीर, वापस लौट कर पुनः युद्ध के लिए तैयार हुए।

मेरुशिखर सदृश हनुमान को आगे आते देखकर अकंपन भयभीत हुआ। अपने समक्ष भयंकर विघ्न को खड़ा देखकर वह रुका। तुरन्त उसने राक्षसों के लिए काल सदृश महाबली हनुमान को भीषण युद्धकर वानरों सहित मारने का निश्चय किया। मारने अथवा मरने का निश्चय कर निर्णायक युद्ध के लिए रणभूमि में गर्जना करते हुए उसने निर्वाण बाण चलाना प्रारम्भ किया। मेरु पर्वत के शिखर पर मेघों द्वारा मूसलाधार वृष्टि करने के सदृश अकंपन ने हनुमान पर बाणों की प्रचंड वृष्टि की। वे बाण हनुमान

के सम्पूर्ण शरीर में प्रवेश कर गए परन्तु अकंपन की यह शरवृष्टि हनुमान को पुष्पवृष्टि सदृश ही लगी। उसे बाणों की कोई चिन्ता व दुविधा नहीं थी। गिरिशिखर सदृश विशाल शालवृक्ष को उखाड़कर अकंपन को मारने के लिए वह आगे बढ़ा। उसने शक्तिपूर्वक शालवृक्ष का आघात किया। उस समय अकंपन सतर्क था। उसने वह वृक्ष हाथों में पकड़कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए। लक्ष्य साधकर अत्यन्त शक्तिपूर्वक मारे गए वृक्ष को अकंपन ने हाथों से पकड़कर तोड़ डाला। यह देखकर महावीर हनुमान चकित रह गए। शालवृक्ष को तोड़ने वाला अकंपन महावीर है, ये वह समझ गए। अकंपन के युद्ध कौशल की स्वर्ग के देवी-देवताओं ने भी प्रशंसा की। तत्पश्चात् अकंपन का प्राण हरने के लिए गिरिशिखर हाथों में लेकर हनुमान उसकी ओर दौड़े। शिखर अकंपन पर फेंकते ही अकंपन ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक बाणों से शिखर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। अर्द्धचन्द्र बाण चलाकर शिखर तोड़ते ही राक्षसों ने अकंपन का जय-जयकार किया। हनुमान पुनः चकित हुए। इसके बाद अश्वकर्ण और उसके अतिरिक्त अनेक वृक्ष हनुमान ने अकंपन पर फेंके परन्तु बाणों के कौशल से अकंपन ने वे वृक्ष तोड़ डाले।

अकंपन का वध– अकंपन ने हनुमान के तीनों प्रयत्न विफल करने के पश्चात् गर्जना की। राक्षसों की सेना में आनन्द व्याप्त हो गया। सुरासुर, नर, वानर सभी ने अकंपन की साहसी वीर, रणकुशल योद्धा के रूप में प्रशंसा की। हनुमान भी उसके युद्ध कौशल से सुखी हुए। उन्हें युद्ध की पूर्ण सन्तुष्टि प्राप्त हुई अतः हनुमान अकंपन से बोले– "हे अकंपन, तुम्हारा युद्ध कौशल देखकर मैं पूर्ण सन्तुष्ट हुआ। मैं तुम्हारा युद्ध में वध नहीं करूँगा। तुम विजयी योद्धा के रूप में लंका में वापस जाओ।" हनुमान के वचन सुनकर अकंपन हँसते हुए बोला –"तुम्हारा प्राण लिये बिना मैं विजयी योद्धा कैसे होऊँगा। हे हनुमान, पहले तुम्हें मारूँगा तत्पश्चात् राम व लक्ष्मण का वध करूँगा। तब अंगद, सुग्रीव, जाम्बवंत को सभी वानरों सहित मारूँगा। इतना रणक्रंदन करने के पश्चात् ही मैं पूर्ण विजयी होऊँगा।" अकपन के ये उद्‌गार सुनकर हनुमान अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उन्होंने राक्षसों पर आक्रमण कर दिया। राक्षस सेना को पैरों तले रौंद डाला। अपनी पूँछ के वार से अनेक राक्षसों को मार डाला। यह देखकर अकंपन ने क्षुब्ध होकर चौदह बाणों से हनुमान को बिद्ध कर दिया। उन बाणों के हनुमान के हृदय को स्पर्श करते ही वे क्रोध में अधिक उन्मत्त हो गए। उन्होंने आवेशपूर्वक एक वृक्ष उखाड़कर उससे अकंपन के मस्तक पर प्रहार किया, जिससे रथ व सारथी सहित अकंपन भी मारा गया।

राक्षसों का पलायन; रावण का क्रोध– अकंपन द्वारा प्राण त्यागते ही राक्षस भागने लगे। वानरों ने उनका संहार किया। ढाल, तलवार, धनुषबाण, अलंकार, वस्त्र सभी रण-भूमि में छोड़कर राक्षस अपने प्राण बचाने के लिए भाग रहे थे। राक्षस भयभीत होकर आगे पीछे देखते हुए भागे और किसी तरह लंका में पहुँचे। उन्होंने रावण को अकंपन के वध की सूचना दी। वे घायल राक्षस बता रहे थे कि 'हनुमान ने अकेले आकर सबका नाश कर दिया।' यह सुनकर रावण को लगा– "राक्षसों का वध करने की हनुमान ने ठान ली है। इस विचार से रावण चिन्तित हो उठा। उधर राक्षस-सेना का नाश कर वानरगण श्रीराम-नाम का जयजयकार करते हुए वापस लौट गये। अपनी विजय के कारण वे आनन्दित थे। सभी वानरों ने मिलकर हनुमान को दंडवत् प्रणाम किया। हनुमान ने रणभूमि में विजयी होकर भी गर्वरहित रहकर श्रीराम, लक्ष्मण सभी प्रमुख वानर श्रेष्ठ एवं जाम्बवंत को साक्षात् दंडवत् प्रणाम कर उनकी वंदना की। हनुमान की जय-जयकार से आकाश गूँज उठा।

अध्याय १६

[प्रहस्त का वध]

हनुमान द्वारा युद्ध में अकंपन के मारे जाने की वार्ता सुनकर रावण अत्यन्त क्रोधित हुआ। वह बहुत दु:खी था। अकेले हनुमान ने अकंपन का वध कर दिया। अनेक राक्षसों को मार डाला। रावण यह समझ गया कि हनुमान के समक्ष कोई टिक नहीं सकता। उसे पूरा विश्वास था कि अकंपन श्रीराम, लक्ष्मण और अन्य सभी वानरगणों का वध कर देगा परन्तु सब कुछ विपरीत ही घटित हुआ, जिससे रावण अत्यन्त दु:खी हुआ। राक्षस त्राहि-त्राहि करने लगे। रावण मन में विचार कर भयभीत हुआ कि अकंपन के समान दूसरा योद्धा अब मिल नहीं सकता और उसने लंका की युद्ध की दृष्टि से व्यवस्था की। रावण ने स्वयं चारों ओर घूमकर लंका दुर्ग का तथा राक्षस सेना का संरक्षण की दृष्टि से निरीक्षण किया। सारे मार्ग मजबूती से बन्द किये। लंका दुर्ग के चारों ओर की खाईं को गहरा किया। तोपों से वार करने के लिए पत्थर रखवाये। इस प्रकार रावण ने दुर्ग की सिद्धता की तथा उसे बाहरी लोगों के लिए जटिल बनाया परन्तु वानरों के लिए दुर्ग की जटिलता निरर्थक थी। शिखरों से उड़ान भर कर खाइयाँ, बाधाएँ तथा तोपों को लाँघते हुए वानरों ने दुर्ग में प्रवेश किया। उन्होंने राक्षसों का निर्दलन किया तथा लंका भुवन को घेर लिया। दशानन रावण इससे भयभीत हो उठा तथा युद्ध के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने के लिए प्रधान प्रहस्त को बुलाया।

प्रहस्त को भेजना; उसका मनोगत एवं प्रस्थान– रावण, प्रहस्त से बोला– "हे प्रहस्त, वानर ध्वज पताकाएँ विध्वंस करते हुए राक्षसों का संहार कर रहे हैं। सम्पूर्ण लंका भुवन में भीषण युद्ध चल रहा है। अकंपन के रणभूमि में धराशायी होने के पश्चात् वानरों से युद्ध करने के लिए युद्ध-कुशल व युद्ध के ज्ञाता मुख्य रूप से हम पाँच लोग ही शेष हैं। मैं स्वयं, कुंभकर्ण, प्रधान सेनानी प्रहस्त, पराक्रमी इन्द्रजित् और पाँचवाँ निकुंभ। जिस प्रकार मैं राजा रावण हूँ, उसी प्रकार तुम प्रधान प्रहस्त हो। हम दोनों का पराक्रम समान ही है तथा हम रणनीति में भी कुशल हैं। अत: पैदल, सेनापति, महावीर तथा घोड़े, हाथी सब सुसज्ज कर अपने श्रेष्ठ रथ से शीघ्र युद्ध के लिए प्रस्थान करो। राम व लक्ष्मण को रणभूमि में धराशायी कर, एक भी वानर को शेष न रखकर, समस्त शत्रुपक्ष का युद्ध में संहार कर मुझे सुखी करो। हे प्रहस्त, युद्ध में जाकर इतना पराक्रम करो कि यह लंकाधीश रावण, तुम्हें कंठमालाएँ प्रदान करे। तुम विजयी होकर वापस लौटो। इन्द्रजित् का शरबंधन व्यर्थ होने से वह अपमानित हुआ। तुम राम और लक्ष्मण का अवश्य वध करो।" इस पर प्रहस्त बोला– "हे लंकाधीश, विभीषण द्वारा की गई विनती के अनुसार श्रीराम को सीता अर्पण करने से सभी सुखी होंगे। उसकी विनती न मानते हुए आपने निर्णायक युद्ध प्रारम्भ कर दिया। उसने सत्य ही कहा था परन्तु आपने मेरे सारे हठ पूर्ण किये हैं। मुझे पाला पोसा है। अत: आपके कार्य के लिए मैं प्राण देने को भी तैयार हूँ। अब आप मेरा रण-कौशल देखें।"

रावण के समक्ष अपने पराक्रम का बखान करते हुए प्रहस्त बोला– "सर्वप्रथम बाण चलाकर मैं राम और लक्ष्मण का वध करूँगा। तत्पश्चात् अंगद, सुग्रीव, हनुमान, अन्य वानरश्रेष्ठ तथा सभी वानरों को ढूँढ़कर उन्हें मारूँगा। रक्त की नदियाँ बहा दूँगा। भेड़िये, सियार, कुत्ते, चील इन सभी को मांस भक्षण करने को मिलेगा, मैं रणभूमि में ऐसा संहार करूँगा। मैं अपने प्राणों की आशा एवं भोग विलास सब कुछ त्याग कर रणभूमि में जाने के लिए तैयार हूँ। अत: स्वामी का कार्य निश्चित ही पूरा करूँगा।'' तत्पश्चात्

एक सुमुहूर्त पर प्रयाण करने का निश्चय कर प्रहस्त ने घृतप्लुतादि* होम-द्रव्य अर्पित कर सर्वप्रथम अग्निपूजा की। तत्पश्चात ब्राह्मणों का विधिपूर्वक पूजन किया। अन्न, धन सम्मान देकर उन्हें दंडवत् प्रणाम किया। उनके द्वारा रणभूमि में विजय प्राप्ति का आशीर्वाद लिया। तब प्रहस्त ने मुकुट, कुंडल कवच, रणकंकण इत्यादि रत्नांकित् आभूषण धारण किये। धनुषबाण सुसज्जित कर उसने प्रस्थान किया। इस समय उसने बाहुभूषण, कंठा, हीरे व रत्न इत्यादि से जड़ित मोती की माला धारण कर अपने शरीर को रणभूमि में जाने के लिए सुसज्जित किया। वह रावण के पास आकर बोला– "जो भी युद्ध के लिए गया, वह वापस राजा के पास नहीं लौटा। अतः यही मेरी व आपकी अन्तिम भेंट है।" ऐसा कहते हुए उसने रावण के पैर पकड़ लिए। प्रहस्त के वचन सुनकर रावण की आँखों में आँसू आ गए। उसने शीघ्र प्रहस्त को आलिंगनबद्ध कर लिया। दोनों का गला रुँध गया। उस समय सभा के ज्ञानी सदस्य बोले– "दोनों के लिए ही ये अशुभ चिह्न है क्योंकि युद्ध के लिए जाते समय रोने से अपशगुन होता है।" रावण के समान ही प्रधान प्रहस्त भी महत्वपूर्ण था। वह ध्वज-पताकाओं से सुसज्जित कर राक्षसों की सेना लेकर आया व स्वयं मालाओं एवं रत्नों से सुशोभित एक रथ में बैठा। उस रथ पर चमकता हुआ ध्वज था। मोतियों की मालाएँ तथा गुच्छे लटक रहे थे। प्रहस्त ने रावण की वंदना की। धनुषबाण सुसज्जित किया। रणवाद्य बजने लगे। उस ध्वनि के साथ गर्जना करते हुए राक्षस वीर बहुत बड़ी संख्या में द्वार खोलकर बाहर निकले। सिंहनाद करते हुए, रणगर्जना करते वे राक्षस-वीर प्रहस्त के रथ के आगे चल रहे थे।

प्रहस्त को अपशगुन और उसका आवाहन– प्रहस्त ने जिस समय रणभूमि की ओर प्रस्थान किया, उस समय आकाश स्वच्छ था परन्तु एकाएक उसके रथ पर रक्त की लालधाराओं की वृष्टि होने लगी। चारों ओर उल्कापात होने लगा। रथ के घोड़ों की आँखों से आँसू बहने लगे। रथ में जुते हुए घोड़ों में से दाहिनी ओर का घोड़ा ठिठककर गिर पड़ा। सारथी जब उसे ठीक से खड़ा करने का प्रयत्न कर रहा था, उसका चाबुक रथ के पहियों में फँसकर टूट गया। घोड़े पर नियन्त्रण रखने वाला चाबुक ही टूट जाने से सारथी का मन चिन्तित हो उठा। प्रारम्भ में ही इस प्रकार अपशगुन हुए। तत्पश्चात् सारथी ने घोड़े व रथ सुसज्जित कर आगे प्रस्थान किया। इस समय चारों घोड़े एक ही समय में ठिठक गए और सारथी गिर पड़ा अतः सैन्य समूह में गिरे हुए घोड़ों को वैसे ही छोड़कर दूसरे घोड़े लगाकर रथ को तैयार कर सारथी ने रथ में बैठकर प्रस्थान किया। उस समय ध्वज पर एक गिद्ध आकर दक्षिण की ओर मुख कर बैठ गया। सियार बोलने लगे। इन सब घटनाओं के कारण प्रहस्त दुःखी हो गया। उसे अपने आगे एक सिरविहीन धड़ की परछाई दिखाई पड़ी। "मेरी मृत्यु अब निश्चित है। ऐसे लक्षण मुझे दिखाई दे रहे हैं परन्तु इस कारण वापस लौटने पर रावण अपमानित कर दण्डित करेगा। इसके विपरीत श्रीराम के समक्ष मृत्यु होने पर मैं परिपूर्ण ब्रह्म होऊँगा।" यह विचार कर उसने युद्ध में जाने का निश्चय किया। तत्पश्चात् उत्साहित होकर उसने एक बार अपनी सेना पर दृष्टि घुमाई। सेना और सेनानी आरम्भ में हुए अपशगुनों से उद्विग्न थे। उनके मनोरथ भग्न हो गए थे। यह देखकर अपना पराक्रम दिखाकर सेना उत्साहित करने के उद्देश्य से प्रहस्त ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक गर्जना की।

"मैं अब रणभूमि में आया हूँ। मैं काल का निर्दलन कर डालूँगा। अंतकाल को बन्दी बना लूँगा। अपने पराक्रम से मैं अग्नि को भी जला दूँगा। राम-लक्ष्मण नामक दोनों मानवों को मार डालूँगा, वहीं

---

* अग्नि की पूजा के लिए प्रयुक्त होम की सामग्री।

वानरों की क्या बिसात ? मृत्यु को ही रणभूमि में मार डालूँगा और विजय प्राप्ति के पश्चात् रणवाद्यों की गर्जना करूँगा।" प्रहस्त का आह्वान देने वाला गर्व से ओतप्रोत भाषण सुनने के पश्चात् उसकी सेना उत्साहित हो उठी। राक्षस वीरों ने सिंह सदृश गर्जना की। तत्पश्चात् सेना ने युद्ध के लिए प्रस्थान किया। प्रहस्त को सेना सहित आते हुए देखकर वानर समूह भी आनन्दित हो उठा। राक्षसों के संहार की लालसा से वे गर्जना करते हुए आगे आये। एक ओर राक्षस चिल्लाते हुए सिंहनाद कर रहे थे तो दूसरी ओर वानर भुभुःकार करते हुए रामनाम की गर्जना कर रहे थे।

राक्षस-वानर युद्धः चार प्रमुख वीरों का आगमन— वानर और राक्षस भीषण युद्ध करने लगे। वे परस्पर एक दूसरे को धिक्कार रहे थे। एक दूसरे पर निष्ठुर आघात कर रहे थे। धैर्यवान् वीर निश्चल खड़े रहकर पीछे न हटते हुए घाव सहन कर रहे थे। दूसरे के मस्तक पर प्रहार कर रहे थे जिसके कारण रक्त प्रवाहित हो रहा था। राक्षस शूल चुभा रहे थे तथा वानर शिला एवं पर्वतों की वर्षा कर रहे थे। राक्षस तोमर से वार कर रहे थे, तो वानर वृक्षों से उसका प्रत्युत्तर दे रहे थे। राक्षसों द्वारा बाणों से विद्ध करने पर वानर पाषाणों की वर्षा कर रहे थे। राक्षसों द्वारा शक्ति बाण चलाने पर वानर पर्वतों की वर्षा कर राक्षसों के प्राण ले लेते थे। किसी घाव के लगने से धराशायी होने पर वानर श्रीराम-नाम का स्मरण करते थे, जिससे उनकी व्यथा तत्काल समाप्त होकर वे पुनः युद्ध के लिए तैयार हो जाते थे। वानर वीर अत्यन्त प्रतापी थे। वे शिला व शिखरों के प्रहार से राक्षसों को चूर-चूर कर रहे थे। राक्षस रणभूमि में धराशायी हो जाते थे। वानरों के वार से राक्षसों का नाश होने के कारण युद्ध भूमि में हाहाकार मच गया। तब प्रहस्त के चार प्रधान करंधम, महानाद, कुंभहनु और समुन्नद्ध, जो युद्ध प्रवीण और महाजुझारू थे, वानरों का संहार करने के लिए युद्ध-क्षेत्र में आये। उन्होंने असंख्य बाणों की वर्षा से वृक्ष, पर्वत व शिलाओं को तहस-नहस कर दिया। वक्षस्थल पर चलाये गए बाणों से युद्ध में वानर दल का नाश होने लगा। चारों दिशाओं से वानरों को बाणों के जाल में घेरकर बाणों से वानरों का वध करने लगे। वानरों द्वारा आकाश में उड़ान भरते ही पंखबाण चलाकर वानरों को तुरन्त भूमि पर गिरा देते थे। उनके उड़ान भरते ही उनकी छाती व मस्तक पर बाणों से प्रहार कर उन्हें मार दिया जाता था। वानरों द्वारा फेंके हुए पर्वत, पाषाण राक्षस वीर तोड़कर गिरा देते थे। इस प्रकार वे चारों मिलकर वानरों का नाश कर रहे थे।

उन चार प्रधानों द्वारा वानरों का संहार होते देखकर वानर पक्ष के चार वीर उन प्रधानों का वध करने के लिए दौड़कर आगे आये। क्रोधित द्विविद, दुर्मुख, तार व जाम्बवंत नामक चारों वीर युद्ध में सम्मिलित हुए। द्विविद ने गर्जना करते हुए करंधम को ललकारा और पूँछ से धनुष-बाण छेदकर उस पर पर्वत शिखरों से प्रहार किया। उन आघातों से करंधम के मुख से रक्त बहने लगा। और रणभूमि में गिरकर उसने क्षणभर में अपने प्राण त्याग दिए। दुर्मुख ने समुन्नद्ध को ललकारते हुए मल्लयुद्ध आरम्भ किया। विविध दाँवपेंच करते हुए उसे वह प्रहस्त के समक्ष ले आया। तत्पश्चात् एक तमाल वृक्ष उखाड़ कर उससे समुन्नद्ध पर वार किया, जिससे तत्काल उसकी मृत्यु हो गई। उसे पानी माँगने का भी अवसर नहीं मिला। जाम्बवंत इतना क्रुद्ध था कि उसने महानाद को सामने लाकर शिलाघात से उसका वध कर डाला। कुंभहनु नामक राक्षस से तार नामक वानर भिड़ गया। तार ने थप्पड़ों से आघात किया तब कुंभहनु ने उसे पैरों से पकड़ लिया। इस पर क्रोधित होकर तार ने उलट कर उसके गले में पूँछ लपेट दी। कुंभहनु घबरा गया। वानर के समक्ष उसका बल नहीं चल पा रहा था। अंत में वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। तार उसकी पकड़ से छूट गया। शाल वृक्ष लाकर उसके आघात से उसने कुंभहनु का वध कर दिया। इस प्रकार वे चारों युद्ध कुशल प्रधान योद्धा वानरों द्वारा मार डाले गए। राक्षस-सेना में हाहाकार

मच गया कि चारों प्रधानों को वानरों ने मार डाला। इसके साथ ही राक्षस भागने लगे। राक्षस सेना त्राहि-त्राहि करने लगी।।

वानरों द्वारा चारों प्रधानों का वध एवं राक्षस-सेना का संहार होते देखकर प्रहस्त स्वयं धनुष-बाण सुसज्जित कर आगे आया। वानर समुदाय का निर्दलन करने के लिए प्रहस्त क्रोध से दाँत भींचते हुए रथ में बैठ कर आगे बढ़ा। उसके नेत्रों से ज्वालाएँ निकल रही थीं। वानरों द्वारा होने वाले पर्वत, शिला, वृक्ष इत्यादि के आघात बाणों से काटते हुए वह वानरों को हटा रहा था। चैत्र वैशाख महीने में खिले हुए पलाश की तरह रक्तरंजित वानर दिखाई दे रहे थे। रण-भूमि में रक्त की नदियाँ बहने लगीं। प्रहस्त भीषण धनुर्धारी था। चतुर योद्धा था। उसने वानरों को बाणों से बिद्धकर सर्वत्र रक्त की नदियाँ बहा दीं। वानर व राक्षस परस्पर भीषण युद्ध कर रक्तरंजित हो गए। प्रहस्त के युद्ध कौशल से वानरों का संहार होने लगा। समस्त रणभूमि रक्त से भर गई, चार अंगुल स्थान भी शेष न बचा। गिद्ध, बगुले, चील, भेड़िये, सियार, भालू, जंगली सुअर सभी को पर्याप्त मांस भक्षण के लिए तथा यथेच्छ रक्त पीने को मिला। राक्षसों की भी हानि हो रही थी। युद्ध-क्षेत्र में श्रीराम के होते हुए भी रक्त की नदी में बाढ़ आ गई थी। वह प्रवाह मानों वीरों को यम के द्वार तक ले जाने वाला मार्ग ही था परन्तु श्रीराम के कारण युद्ध में महान ख्याति प्राप्त करने वाले राक्षस वीरों को परब्रह्म की प्राप्ति हुई। श्रीराम कृपालु होने के कारण उन्होंने शत्रु को सायुज्य मुक्ति दिलवाई (अर्थात् स्वयं में समाविष्ट कर लिया), इस प्रकार वह युद्ध चल रहा था। रणभूमि में प्रवाहित होने वाले रक्त प्रवाह से एक प्रकार का सुखवाद निर्मित होकर हंस व सारस अत्यन्त अगाध अक्षोभ अवस्था में ध्वनि कर रहे थे। ऐसी उस भीषण रणनदी में भीरुओं का उतरना, वास्तव में असंभव था। प्रहस्त को वानर-समूह का संहार करते देखकर नील क्रोधित हो उठा।

नील एवं प्रहस्त का युद्ध– रथारूढ़ कुशल योद्धा प्रहस्त बाणों का जाल निर्मित करने वाले बाणों की वर्षा कर रहा था, जिसके कारण वानर दल संत्रस्त हो उठा। इस कारण नील को क्रोध आ गया। उसने एक बड़ा वृक्ष उखाड़ कर प्रहस्त पर वार किया। प्रहस्त ने बाणों के जाल से उस वृक्ष को तहस-नहस कर डाला। तत्पश्चात् प्रहस्त ने हस्तकौशल का प्रयोग करते हुए नील पर बाण चलाया। प्रहस्त के बाण चलाते ही वानरों की आँखों के आगे अँधेरा छाने लगा। वे बाणों की कड़कड़ाहट सुनकर घबरा गए। बाण नील को निशाना बनाने के लिए आगे बढ़ा। उस कठिन प्रसंग में नील ने अपनी पूँछ व पाषाणों की सहायता से बाणों का निवारण किया। उसने तुरन्त शाल वृक्ष उखाड़ कर प्रहस्त पर उससे वार किया, जिससे प्रहस्त के घोड़े, ध्वज, रथ, सारथी सभी चूर-चूर होकर भूमि पर बिखर गए। उस वृक्ष के आघात से प्रहस्त भयभीत हो उठा। वह रथ छोड़कर भागने लगा। अपने धनुष बाण भी उसने छोड़ दिए। नील उस समय कृतान्त सदृश दिखाई दे रहा था। क्रोधित होकर उसने रथ सहित सारथी को धूल में मिला दिया तथा रणभूमि में भीषण युद्ध करने लगा। नील वानरों का सेनापति था तो प्रहस्त रावण का, राक्षसों का सेनापति था। वे दोनों सेनापति युद्ध करते हुए एक दूसरे पर टूट पड़े।

शरत्काल के उन्मत्त बैलों अथवा बाघ और सिंह के सदृश वे दोनों सेनानी प्रबल सामर्थ्यवान् तथा युद्ध कौशल में प्रवीण थे। एक प्रभावशाली बाण चलाता था तो दूसरा पाषाण से बाण के टुकड़े टुकड़े कर देता था। एक के कुशलतापूर्वक गदा से वार करते ही दूसरा वृक्ष से प्रहार करता था। रथ, सारथी, सहित नष्ट हो जाने के कारण प्रहस्त पैदल ही था। मूसल हाथ में लेकर वह कुशल योद्धा रणभूमि में डटा रहा। प्रहस्त मूसल से युद्ध करने में अत्यन्त प्रवीण था। उसने शीघ्र मूसल से आघात कर नील का

मस्तक रक्तरंजित कर दिया। रक्त से सना वह वानरवीर नरसिंह सदृश सुशोभित हो रहा था। प्रहस्त पर उलटकर वार करने के लिए नील शीघ्र आकाश में उड़ चला और वहाँ से गर्जना करते हुए आकर नील ने प्रहस्त की छाती पर तीव्र आघात किया, जिसके कारण प्रहस्त को चक्कर आ गया। वह गिरने लगा। अपनी मूर्च्छा पर नियन्त्रण करते हुए वीर प्रहस्त वानरवीर के आघात की ओर अनदेखी करते हुए अपना मूसल लेकर नील का वध करने के लिए दौड़ा। प्रहस्त को हाथों में मूसल लेकर आते देखकर नील आनन्दपूर्वक नाचते हुए शीघ्र प्रहस्त का वध करने के लिए उत्सुक हुआ। प्रहस्त द्वारा मूसल पकड़ते ही नील उसे मारने के लिए वेगपूर्वक आगे बढ़ा। नील ने एक शिला लेकर प्रहस्त के मस्तक पर प्रहार किया। उस शिला के बलशाली आघात से मस्तक पर घाव हो गए और उनसे तीव्रगति से रक्त बहने लगा और प्रहस्त भूमि पर आ गिरा। उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गई। प्राणों ने इन्द्रिय-वृत्ति त्याग दी; देह से चेतना चली गई। प्रहस्त की कीर्ति, शौर्य, सामर्थ्य, यश, सम्मान, महत्त्व सब समाप्त हो गए। वह लड़खड़ाकर भूमि पर गिर पड़ा। कोई फलों, फूलों व पत्तों से लदा वृक्ष जड़ टूटते ही जिस प्रकार भूमि पर गिर पड़ता है, उसी प्रकार वह बलवान् वीर प्रहस्त मृत होकर भूमि पर पड़ा था।

राक्षसों का पलायन; नील का सम्मान-- नील द्वारा प्रहस्त का वध करते ही राक्षस-सेना में कोलाहल मच गया। मुख्य सेनापति की मृत्यु होने से लंका में हाहाकार होने लगा। अब वानर-सेना के समक्ष खड़े रहने का साहस कोई नहीं कर पा रहा था। भयभीत होकर भागने वाले राक्षस लंका तक भी नहीं पहुँच पा रहे थे। भागते समय उनके पैर दुखने लगे, टेढ़े पड़ने लगे। भय के कारण राक्षस पीछे देखते हुए भाग रहे थे। प्रहस्त के रणभूमि में गिरते ही राक्षसों में हाहाकार मच गया। उसकी मृत्यु देखकर कोई गूँगा हो गया, कोई भय से मूर्च्छित हो गया। किसी को कुछ समझ नहीं आ रहा था। जिस प्रकार घड़ा फूटने पर जल सर्वत्र फैल जाता है, उसी प्रकार प्रहस्त और प्रधानों की मृत्यु के पश्चात् राक्षस-सेना इधर-उधर भागने लगी। सुग्रीव का सेनापति नील प्रहस्त का वध कर विजयी हुआ। वानर आनन्दित होकर उसकी स्तुति करने लगे। सभी वानर योद्धा तथा स्वयं श्रीराम और लक्ष्मण नील की विजय की प्रशंसा करने लगे। नील ने आकर श्रीराम को साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया। श्रीराम ने सन्तोष व्यक्त करते हुए उसे आलिंगनबद्ध किया। तत्पश्चात् नील ने लक्ष्मण की भी चरण वंदना की। लक्ष्मण ने भी उसे गले से लगाया। नील के महाभाग्य की सुर-श्रेष्ठों ने भी स्तुति की। नील ने सुग्रीव, अंगद, जाम्बवंत और हनुमान की वंदना की तथा नल, कुमुद इत्यादि सभी वानर योद्धाओं की भी नील ने वंदना की। सुग्रीव ने उसकी पीठ थपथपाई। अंगद ने उसे गले से लगाकर आनन्द व्यक्त किया। वानर भी आपस में चर्चा कर रहे थे कि महान योद्धा नील ने कैसे विजय प्राप्त की। श्रीराम के रक्षक के रूप में होने पर वानरों को युद्ध के प्रति कोई भय नहीं था। दशानन रावण पर विजय प्राप्त करने के लिए सभी पराक्रम कर रहे थे। श्रीराम के समक्ष वह युद्ध नहीं पूर्ण ब्रह्म था। भाव महाबोध के रूप में थे। जनार्दन की शरणागति थी।

अध्याय १७

[युद्ध में सुग्रीव का मूर्च्छित होना]

नील द्वारा युद्ध में प्रहस्त के वध की वार्ता सुनकर रावण ने आक्रोश किया। प्रहस्त रावण का अत्यन्त प्रिय प्रधान सेनापति था। नील द्वारा उसका वध करने से लंका शोक में डूब कर आक्रोश करने

लगी। उस आक्रोश को सुनकर रावण दुःखी हो गया। 'इन्द्र के समान सामर्थ्य व बल रखने वाला प्रहस्त प्रधान मारा गया। शत्रु हमसे बढ़कर ही है। मैं उसका निर्दलन करूँगा। राम-लक्ष्मण और वानरों का मैं अभी अन्त करता हूँ।' यह कहकर रावण ने युद्ध के लिए प्रस्थान किया। उसने लंका के प्रमुख वीरों को हाथी घोड़े एवं रथ सहित चलने को कहा। वानरों ने स्वयं विरुपाक्ष, अकंपन, प्रहस्त प्रधान का वध कर दिया अतः शत्रु को सामान्य समझकर उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए- इस विचार से रावण ने स्वयं युद्ध के लिए प्रस्थान किया। "अग्नि जैसे सूखी हुई घास को जला देती है, उसी प्रकार मैं वानर दल का संहार करूँगा। श्रीराम एक धनुष धारण करता है तो मेरे हाथों में दस धनुष्य हैं। दोनों भाइयों को बाणों की भँवर में फँसाकर मैं धराशायी कर दूँगा।" ऐसी गर्जना करते हुए अपनी सेना सुसज्जित कर रावण रणभूमि की ओर चल पड़ा।

रावण सहित राक्षस-सेना का प्रस्थान– रावण के रणभूमि की ओर प्रस्थान करते ही उसके साथ अतिरथी, महारथी, अश्वपति, गजपति, नरपति सभी अपनी-अपनी सेना लेकर निकले। शिरस्त्राण धारण किये हुए तथा चमकती हुई जालीदार झूल पहने हुए घोड़ों के मुख में नकेल डाले हुए तलवार बहादुर वीर भी उसमें थे। वे मुख से विभिन्न प्रकार की हो-हो मा-मा जी-जी ऐसी ध्वनि करते हुए अपने घोड़े दौड़ा रहे थे। उनमें से कुछ अपने घोड़ों को ऊँची छलाँग लगवा रहे थे। कुछ भूमि पर ही उन्हें दौड़ा रहे थे। वे घोड़ों पर सवार होकर सिंह जैसी गर्जना करते हुए अपनी अकड़ दिखाते हुए चमकते हुए शस्त्र लेकर आये थे। रथ में श्रेष्ठ घोड़ों को जोतकर श्रेष्ठवीर रथ में बैठे हुए थे। ध्वज-पताकाओं से सुसज्जित घरघराहट की ध्वनि करने वाले रथों में वे वीर सुशोभित हो रहे थे। इसके अतिरिक्त आढ़ाक,* चव्हाण,* अलंगाइत,* सेली,* सांबली,* बाणाइत* इत्यादि विभिन्न प्रकार के उनके साथ चलने वाले पैदल सैनिक शूल, कटार, फरसा इत्यादि शस्त्र हाथों में लेकर चल रहे थे। वे शस्त्र चमचमा रहे थे। योद्धे हुंकार ध्वनि के साथ चल रहे थे। उन वीरों की गर्जना गूँज रही थी। एक-एक के पास मूसल, लाठी, खट्वांग जैसे हथियार थे। उन पैदल सैनिकों ने समूह में प्रस्थान किया।

रावण के दोनों ओर असंख्य हाथी थे। उन मदोन्मत्त, अलंकारों से सुसज्जित हाथियों पर अत्यन्त पराक्रमी रणकुशल वीर बैठे थे। मुख्य रथ विमान के सदृश चल रहा था। उसे ध्वज एवं रथ चिह्नों से सुशोभित किया गया था। उस पर पताकाएँ फहरा रही थीं। रत्न जड़ित मालाओं तथा लटकती हुई मोतियों की मालाओं से सुशोभित रथ में स्वयं रावण बैठा था। उसकी वंदना करने के लिए वीर आ रहे थे। उसके सेवक आगे खड़े रहकर उसकी स्तुति कर रहे थे। पर्वत सदृश विशालकाय राक्षस, मेघों जैसे काले महावीर, अग्नि जैसे प्रज्वलित नेत्रों वाले, भयंकर आकृति वाले, विकराल दाँतों वाले राक्षस वीरों के समूह के साथ महापराक्रमी रावण रणसंग्राम में भाग लेने के लिए जा रहा था। दशशिर रावण प्रचंड सेना संभार लेकर जाते हुए ऐसा दिखाई दे रहा था, मानों साठ सहस्र गणों को लेकर महारुद्र जा रहा हो। उसके मस्तक पर चन्द्रांकित छत्र था। छत्र पर बारीक किरणों के सदृश मोतियों की मंजरी, झालरें और पन्ने की पंक्तियाँ सजी हुई थीं। निशाण की ध्वनि होने लगी, साथ ही शंख, रणभेरी एवं मृदंग की आवाज़ भी गूँजने लगी। ढोल, टिमकी, किंकिणी सदृश रणवाद्य बजने लगे। गिड़बिड़ी थाप से बजने लगी। तुरही और वेणु के स्वर भरे हुए थे। रणवाद्य गरज रहे थे। भाट गुणगान गा रहे थे। नगाड़ों, चिनकाहला व बुरुंग का अलग ही सुर निकल रहा था। रणभूमि में तुरही जैसे मुख-वाद्य गूँजने से राक्षस सेना में उत्साह का

* सैनिकों के विविध प्रकार।

संचार हुआ। ऐसी सेना के साथ वाद्यों की ध्वनि में रावण स्वयं नर वानरों से युद्ध करने के लिए बाहर आया। राक्षसों की सेना में सफेद, लाल, नीली, पीली, इत्यादि विभिन्न रंगों की असंख्य पताकाएँ थी। अनार के पुष्पों से सुशोभित तथा सिन्दूर से सुसज्ज अनेक पताकाएँ थीं। राक्षस सेना को देखकर वानर आनन्दित हुए। वे वानर वीर वृक्ष, शिलाएँ तथा शिखर लेकर युद्ध के लिए चल पड़े। प्रशांत सागर सदृश वह वानर समुदाय था। उस समुदाय को देखकर ही रावण व राक्षस कंपायमान हुए।

श्रीराम-विभीषण संवाद– श्रीराम सुवेल पर्वत के शिखर से अपार सेना को आगे आते हुए देख रहे थे। उनमें अनेक भयंकर वीर योद्धा थे। तब उन्होंने विभीषण से पूछा– "नाना तरह की पताकाओं तथा चित्र-विचित्र ध्वजों से युक्त अत्यन्त मन्द गति से आगे आने वाला सेना समूह किसका है ? रावण एवं राक्षस-सेना दोनों के भयग्रस्त होने पर उत्साहपूर्वक गर्जना करते हुए शंका रहित होकर यह सेना आगे कैसे बढ़ रही है ? उनके पास शूल, शक्ति, खड्ग, गदा, मुद्‌गर, लहुड़ी, चक्र इत्यादि नाना प्रकार के शस्त्र हैं। उनमें श्रेष्ठ कोटि के योद्धा भी दिखाई दे रहे हैं।" श्रीराम यह बोल ही रहे थे कि तभी उन्हें लंकानाथ रावण दिखाई दिया। उसे देखते ही शत्रु का नाश करने के लिए युद्ध का उत्साह उनमें जाग उठा। आजानुबाहु तथा वासुकी के समान सामर्थ्य वाले श्रीरघुनाथ ने उत्साहवश अपना धनुष सुसज्जित कर हाथ में पकड़ लिया। वे पुनः विभीषण से बोले– "इस सेना में युद्ध कुशल, साहसी व निःशंक वीर कौन-कौन से हैं ? उनके सुचिह्न क्या हैं, मुझे बताओ, जिससे मैं उन्हें ढूँढ कर मार सकूँ।" श्रीराम द्वारा यह पूछने पर शुक्राचार्य सदृश बुद्धिमान विभीषण राक्षस सेना के साहसी वीरों के विषय में बताने लगा।

"श्रीरामचन्द्र, आप सतर्क रहें। इस सेना में प्रमुख दशानन रावण तथा रण-प्रवीण बारह अन्य अत्यन्त विकट मुख्य वीर हैं। वे कौन हैं, इस विषय में सुनें– बालसूर्य के तेज के समान तेजयुक्त, हाथी पर आरूढ़ भयविहीन होकर हाथी के सदृश डोलने वाला; इसके पूर्व जिस अकंपन नामक राक्षस का वध किया, उसके समान बलयुक्त अत्यन्त युद्धकुशल, साहसी, निडर, रणवीर यह योद्धा है। जिसके ध्वज पर सिंह केतु है, हाथी के समान जो बल से उन्मत्त है, इन्द्र को बन्दी बनाकर लाने के पश्चात् से वह इन्द्रजित् नाम से जाना जाता है। धनुष की टंकार कर रथ में बैठा हुआ विचित्र रणयोद्धा, जिसे सुर वीरों के लिए भी वश में करना कठिन है, महावीर अतिकाय है। सालंकृत तथा घंटिका नाद करने वाले खर पर बैठकर उसी के सदृश स्वर में गर्जना करने वाला लाल नेत्रों वाला योद्धा महोदर है। सुनहरी झूल से युक्त घोड़े पर सवार रावण-पुत्र महावीर नरांतक है। वह युद्ध में भयंकर खड्ग से भीषण संहार करने वाला है। टिमटिमाती हुई ज्वाल-मालाओं से विभूषित हाथी पर आरूढ़ होकर हाथों में शूल धारण किये हुए त्रिशिरा, गज-योद्धा नाम से प्रसिद्ध है तथा देवताओं का पराभव करने वाला है। जिसके रथ पर सर्प के चिह्न से युक्त ध्वज है, वह रथ-युद्ध में कीर्ति प्राप्त, धनुषबाण लेकर युद्ध के लिए आया हुआ उन्मत्त और शत्रु का घातकर्ता कुंभ है। स्वर्ण की रत्नजड़ित माला कंठ में धारण किये हुए, आठ घंटिकाओं से युक्त परिघ धारण किये हुए, युद्ध में शत्रु का पराभव करने वाला, शत्रु को संकट में डालने वाला श्रेष्ठ कुंभ है। ध्वज पताकाओं से सुशोभित रथ में बैठा अत्यन्त पराक्रमी धनुर्धर रावण-पुत्र देवांतक है। वह उन्मत्त होकर रणभूमि में संहार करने वाला है। शुभ्र हाथी पर आरूढ़ होकर किरीट-कुंडल धारण कर कवच से सुसज्जित महावीर खर-पुत्र मकराक्ष है। इसके अतिरिक्त व्याघ्रमुख, उष्ट्रमुख, तरस, तगर, सिंहमुख इत्यादि हैं, जिनकी विचित्र सेना है और उनका प्रचंड विस्तार है। इनके दूसरी ओर राजा रावण है। उसके ऊपर चन्द्रप्रभा सदृश श्वेत-छत्र, स्वर्ण-दंडयुक्त चामर है। उसके दोनों ओर महावीर विद्यमान हैं।"

रावण तथा वानरवीरों का युद्ध– राक्षसों का सैन्य समूह देखकर स्वयं श्रीराम बोले– "रावण अत्यन्त उग्र स्वभाव वाला है। उससे सुरासुर डरते हैं। अब वह मेरे दृष्टिपथ में आया है उसे बाणों के जाल में घेरकर मैं उसे चूर-चूर कर देता हूँ, जिससे उसका गर्व दूर होगा।" रावण का उग्र स्वरूप, उग्र प्रताप तथा उसका अहंकार नष्ट करने का सामर्थ्य निश्चित ही श्रीराम में विद्यमान था। रण-भूमि में रावण को आया हुआ देखकर श्रीराम और लक्ष्मण ने धनुष पर बाण चढ़ाकर सुसज्ज किया। दूसरी ओर दशानन वानरों का सैन्य-संभार देखकर क्षीर-सागर के मंथन सदृश वानर वीरों का मर्दन करने लगा। मगरों द्वारा समुद्र में खलबली निर्माण करने के सदृश रावण ने बाणों की वर्षा कर वानर-दल में खलबली मचा थी। रावण के उग्रबाण वानरों को चुभने लगे। उन घावों से वानरवीर छटपटाने लगे और वानर-सेना में खलबली मच गई।

सुग्रीव और रावण का युद्ध– रावण को युद्ध के लिए आया हुआ देखकर सुग्रीव उत्साहित हो उठा। रावण से युद्ध करने के लिए उसने वेगपूर्वक उड़ान भरी। वह बोला– "अरे रावण, रुको मेरे वार को सहन करो। मेरा वार आ रहा है, अब तुम्हारी रक्षा कौन करेगा ? एक ही वार में तुम्हारा वध कर दूँगा। तुम श्रीराम की पत्नी चुराकर लंका में छिपे बैठे थे। आज बाहर आये हो, अतः भीषण वार से युद्ध में आज मैं तुम्हारा वध करता हूँ। तत्पश्चात् असंख्य शिखरों से युक्त प्रचंड पर्वत उखाड़कर सुग्रीव ने क्रोधपूर्वक रावण की ओर फेंका। रावण ने अनेक बाणों से पर्वत को छेद डाला परन्तु वह पर्वत टूटा नहीं, जिससे रावण विचलित हो उठा। उस प्रचंड पर्वत को अपनी ओर आते देखकर राक्षस सेना में हाहाकार मच गया। यह पर्वत अवश्य दशानन का वध कर देगा, इससे वह बच नहीं पाएगा– सभी को ऐसा लगने लगा। अन्त में रावण ने सतर्क होकर ब्रह्मा जी के वरदान से मिला हुआ बाण चलाकर उस पर्वत को सौ स्थानों पर छेदकर तोड़ डाला। पर्वत का आघात व्यर्थ गया देखकर, सुग्रीव ने रावण के रथ को जोर से लात मारी, जिससे रथ का सारथी व घोड़े युद्धभूमि पर गिर पड़े। रथ भी गोल-गोल घूमने लगा। रावण अत्यन्त चकित हुआ। सुग्रीव वानर कुल का अत्यन्त बलशाली और पराक्रमी वानर था। सुग्रीव ने पुनः आकाश में उड़ान भरकर रावण पर पर्वत से प्रहार किया। रावण ने क्रोधित होकर उस पर्वत को वरद् बाण से तोड़ डाला। वरद् बाण अत्यन्त प्रभावकारी था। इस बाण के सुग्रीव के हृदय पर आघात करते ही, वह रामनाम की पुकार करते हुए भूमि पर गिर पड़ा। राजा सुग्रीव के भूमि पर गिरते ही राक्षस गर्जना करने लगे कि 'हमारा लंकापति विजयी हुआ।' वे रावण की जयजयकार करने लगे और आनन्दपूर्वक स्वागत की तैयारी करने लगे। अपना नेता धराशायी हुआ, अब रावण उसे ले जायेगा– यह सोचकर वानर चारों ओर से दौड़े।

वानर-सेना द्वारा रावण को घेरना– वानरों ने शिला, शिखर, वृक्ष, पर्वत इत्यादि से सामर्थ्यशाली आघात करना प्रारम्भ किया, जिससे रावण पीड़ित हुआ। वानरों ने उसका रथ घेर लिया। जिस प्रकार गुड़ से चींटियाँ चिपकती हैं, उसी प्रकार वानर रावण से चिपकने लगे। आगे-पीछे व चारों ओर से रावण पर वार करने लगे। आगे से होने वाले आघात से बचने का प्रयत्न करने पर पीछे से वानर वार करते और पीछे का निवारण करने पर आगे एवं दायीं-बायीं ओर से वार होने लगते थे। इस प्रकार रावण पर वानर वार कर रहे थे। रावण को वनचर वानरों ने संत्रस्त कर दिया। उनके समक्ष उसका सामर्थ्य नहीं चल पा रहा था। जिस प्रकार से साँप को चींटियाँ चिपक जाने पर उनके समक्ष साँप का बल नहीं चल पाता, उसी प्रकार रावण की वानर-दल के कारण अवस्था हुई। रावण जब धनुष से बाण

जोड़ना चाहता था तब एक वानर धनुष की डोरी खींच लेता था। एक बाण खींचता तो दूसरा धनुष। सुग्रीव को निश्चेष्ट पड़ा देखकर उसके लिए वानर गण अपने प्राणों की बाजी लगाकर रावण को घेर रहे थे। सुग्रीव को लंका ले जाने के लिए रावण उसे उठाकर रथ में डाल रहा था तभी वानरगणों ने रावण को घेर लिया। रावण चकित हो गया।

रावण अपने बीस हाथ फैलाकर वानरों को पकड़कर मारने लगा। तब वानरों ने शीघ्र आकाश में उड़ान भरी। अपने शरीर को छोटा-बड़ा किया तथा रावण के चंगुल से बच निकले। अपने नायक को मूर्च्छित पड़ा देखकर हाथी सदृश बलशाली वानर वीर राम-नाम का स्मरण करते हुए वेगपूर्वक आगे आये। गज, गवाक्ष, गवय, तथा मैंद और द्विविद वीर निर्णायक युद्ध करने के लिए क्रोधित होकर वेगपूर्वक आगे आये। बलवान् वीर सुंदष्ट्र, नल, नील, तार, तरल सभी हाथों में वृक्ष, शिला व विशाल पर्वत लेकर आये। रावण को लक्ष्य बनाकर वानर वीरों ने शिला, शिखर, पाषाण व वृक्षों सहित युद्ध प्रारंभ किया. वे रावण से भीषण युद्ध करने लगे। तब दशमुख रावण ने क्रोधित होकर धनुर्बाण सुसज्जित कर वृक्ष, शिला, पाषाण इत्यादि को तोड़ते हुए वानरों से युद्ध प्रारम्भ किया। वानरों के वेगपूर्वक आने पर उनके हथियारों को तोड़कर पंखयुक्त बाणों का प्रयोग करते हुए रावण ने रणभूमि में वानरों को धराशायी कर दिया। अपने निर्णायक बाणों से विद्ध कर उसने वानर वीरों के प्रमुखों को भूमि पर गिरा दिया और वानरों को संत्रस्त कर दिया। रावण के बाणों के कारण वानर युद्ध में संत्रस्त होकर रणभूमि छोड़कर श्रीराम की शरण में गये। स्वर्णपत्र के धारदार बाण मस्तक पर लगने से त्रस्त वानर युद्ध छोड़कर श्रीराम की शरण में आये क्योंकि श्रीराम ही वानरों के जीवन का आधार थे।

श्रीराम की आज्ञा से लक्ष्मण का युद्ध के लिए प्रस्थान– श्रीराम ने देखा कि रावण के बाणों से वानर दु:खी हो गए हैं तब वे स्वयं धनुष बाण सुसज्जित कर युद्ध के लिए बढ़े। तब लक्ष्मण ने दौड़कर श्रीराम के चरण पकड़ लिए। वह बोला– "हे श्रीराम, आज का युद्ध कृपा कर मुझे करने दें। उस बेचारे तुच्छ रावण से युद्ध के लिए आप न जायें। इस रावण को युद्ध में मैं पराजित करूँगा। आप मेरा रणकौशल देखें।" लक्ष्मण के वचनों से श्रीराम सन्तुष्ट हुए। रावण से युद्ध कैसे करना है, इस सम्बन्ध में उन्होंने लक्ष्मण को योग्य सुझाव दिए। "रावण दुर्बुद्धि है। वह अत्यन्त कपटी है। रण में संकट उत्पन्न करने के लिए उसके पास मायावी शक्ति है। उससे युद्ध करते समय सावधान रहकर दृढ़तापूर्वक चारों ओर ध्यान रखना। अलक्ष्यलक्षी बाण चलाना। अपने शरीर को बाण मत लगने देना तथा शत्रु का संहार करना। यही निश्चय कर उससे युद्ध करना, ब्रह्मरूप पर ध्यान केन्द्रित कर ब्रह्मरूपी बाणों से निशाना साध कर स्वयं ब्रह्मरूप होकर युद्ध करना। इस प्रकार युद्ध पर लक्ष्य केन्द्रित कर, शरीर की अभिलाषा त्यागकर, कलिकाल को माध्यम बनाकर युद्ध क्षेत्र में शांति से विचरण करना। जिसे मृत्यु का भय होता है, वह संसार में वीर नहीं कहलाता। उसके मन में निहित संदेह एवं भय से अन्त में वह मृत्यु को प्राप्त होता है। चैतन्यरूपी तेज से चमकते शरीर में विदेहत्व के बल से युक्त धैर्यवान योद्धा ही संग्राम में श्रेष्ठ सिद्ध होता है। उस पर कपट नहीं चल सकता। माया उसे बाधित नहीं कर सकती। जो शत्रु पक्ष के संकट का निर्दलन कर सकता है, उसके समक्ष पाप-पुण्य व्यर्थ है।" श्रीराम के ये वचन सुनकर लक्ष्मण अत्यन्त आनन्दित हुए।

अध्याय १८

[नील व रावण का युद्ध]

श्रीराम ने लक्ष्मण से जो कहा, उससे लक्ष्मण ने अपनी वास्तविकता को पहचाना। उसने श्रीराम को सांष्टांग दंडवत् प्रणाम कर उनकी चरण वंदना की। श्रीराम की चरण वंदना करते ही लक्ष्मण में स्फूर्ति का संचार हुआ। श्रीराम ने उसे आलिंगनबद्ध कर युद्ध के लिए भेजा। इधर रावण ने अत्यन्त उग्र स्वरूप धारण कर उग्र धनुषबाण लेकर अनिवार बाण-वर्षा की, जिससे वानरों का गर्व चूर-चूर हो गया। रावण के बाणों से वानरों का नाश होने लगा। उनका कोई रक्षक न होने के कारण वे युद्ध में होने वाले नाश से संत्रस्त हो गए।

हनुमान व रावण का युद्ध– श्रीराम और लक्ष्मण धर्मयुद्ध का विचार कर रहे थे और युद्ध में रावण ने वानरों को संत्रस्त कर रखा था। यह देखकर हनुमान गर्जना करते हुए तुरन्त रण-क्षेत्र में उपस्थित हुए। हनुमान को आते देखकर रावण धनुषबाण सुसज्जित करने लगा परन्तु तभी हनुमान रावण के रथ से जा भिड़े। हनुमान ने खींचकर रथ के सारथी को जर्जर कर दिया। हनुमान रावण से बोले– "मैं दाहिने हाथ की पाँच उंगलियों व तलवे से तुम्हारी भूतात्मा को मार डालूँगा। तुम्हारी देह में जो अधर्मयुक्त भूतात्मा वास कर रही है, उसे मैं दाहिने हाथ के आघात से नष्ट कर डालूँगा।" इस पर रावण हनुमान से बोला– "शीघ्र मुझे परास्त करो, तुम्हारा पराक्रम देखने के पश्चात् ही मैं तुम्हारा वध करूँगा। जब तुमने मेरे पुत्र अक्षय को मारा तभी तुम्हारा प्राणान्त होना था। अब तुम जीवित नहीं बचोगे। व्यर्थ ही अपने मिथ्या पराक्रम की बड़ाई कर रहे हो।" हनुमान के वचनों से क्रोधित रावण ने मारुति की छाती पर निष्ठुरतापूर्वक आघात किया। रावण की हथेली का छाती पर आघात होते ही हनुमान उल्लसित हो उठे और रावण का वध करने के लिए उन्होंने भी हथेली से रावण पर वार किया। हनुमान की हथेली के वार से रावण विकल हो उठा और जिस प्रकार भूकम्प से पर्वत उलट जाते हैं, वह उसी प्रकार लेट गया। उसके बीस नेत्र चकरा गए, दसों मुख से झाग निकलने लगा। वह भूमि पर गिर पड़ा। राक्षस सेना में हाहाकार मच गया। 'हनुमान अत्यन्त वीर योद्धा है, यह जानते हुए भी रावण उससे युद्ध करने के लिए क्यों गया ? उसने अंत में अपनी हथेली से लंका के राजा का घात कर दिया।' राक्षस सेना में ऐसी बातें शुरू हो गईं। लंका में भी हनुमान द्वारा नाश करने का समाचार फैल गया।

वायुनंदन हनुमान महापराक्रमी योद्धा है। उसने पहले लंकाभुवन जलाया, अब दशानन रावण को मार डाला, राक्षसों का संहार किया। ऐसी हनुमान की ख्याति देखकर सुरवरों ने उसका जय-जयकार किया। असुर उसके पराक्रम का बखान करने लगे। ऋषि जयकार कर उसकी स्तुति करने लगे। सिद्ध, गंधर्व, चारण उस वानर वीर हनुमान के पराक्रम का वर्णन करने लगे। रणभूमि में रावण को हनुमान ने निर्बल कर दिया, वह महाबलवान् है परन्तु नियति कुछ अलग ही थी। वानर के हाथों रावण की मृत्यु नहीं होनी थी। इसीलिए रावण के प्राण वापस आ गए और वह स्वयं सचेतन हो गया। तत्पश्चात् वह हनुमान से बोला– "हनुमान, तुम धन्य हो, तुम्हारे अतुलनीय पुरुषार्थ और शौर्य का तीनों लोकों में गौरव हो रहा है। तुम्हारे समान सामर्थ्य और बल इन्द्रादि देवों के पास भी नहीं है। तब दानव और मानव तुम्हारे समक्ष क्या हैं ? तुम्हारे जैसा पराक्रम उनमें नहीं है। दैत्य स्वयं को अतुलनीय मानते हैं परन्तु वे भी तुम्हारे पराक्रम की स्तुति करते हैं। तुम वीरों में श्रेष्ठ वीर हो। मैं तुम्हारा शौर्य श्रेष्ठ मानता हूँ।" रावण के ये

वचन सुनकर हनुमान लज्जित होकर बोले– "मेरा पराक्रम व्यर्थ है। मैं अपने वार से रावण का वध न कर सका। सत्य तो यह है कि मेरे द्वारा किये गये आघातों से निश्चित ही रावण को मरना चाहिए था परन्तु तुम तो सचेष्ट होकर बोल रहे हो। अतः मेरे पुरुषार्थ को धिक्कार है।" हनुमान के ये वचन सुनकर रावण क्रोधित हो गया। उसने क्रोधपूर्वक वज्रमुष्टि भींच कर दौड़ते हुए हनुमान पर प्रहार किया। हृदय पर प्रहार होने के कारण हनुमान क्षण भर के लिए मूर्च्छित हुए। रावण का हाथ भी झुनझुनाने लगा। वह व्यथित होकर रथ पर बैठ गया।

रावण व नील का युद्ध– 'हनुमान पर मुष्टि से प्रहार करने पर हाथों में इतनी पीड़ा है यदि उसकी चेतना लौट आई तो वह निमिषार्द्ध में ही मेरा वध कर डालेगा।' ऐसा रावण को भय लगने लगा। वह भय से वापस लौटने लगा परन्तु युद्ध में पीछे हटने पर अपना उपहास होगा, इस विचार से उसने हनुमान से बचने के लिए अपना रथ, नील की दिशा में आगे बढ़ाया। हनुमान से युद्ध करने के संकट से बचने के लिए रावण ने अपना रथ घड़घड़ाहट की ध्वनि के साथ नील की ओर कर बाणों की वर्षा प्रारम्भ की। रावण द्वारा वर्षा किये गए बाणों को नील ने पाषाण से चूर-चूर कर दिया। तत्पश्चात् दोनों अपना युद्धकौशल दिखाने लगे। रावण द्वारा चलाये गए बाणों का नील द्वारा वर्षा किये गए पाषाणों से चूरा हो जाता था, जिससे रावण को क्रोध आ गया। उसने युद्ध में योग्य विचार कर यम सदृश बाण लेकर नील के पाषाण तोड़ डाले। तत्पश्चात् पुनः बाण वर्षा आरम्भ की। नील के मर्मस्थल पर बाण लगने से वह अत्यन्त क्षुब्ध हुआ। मलय पर्वत सदृश पर्वत उसने उखाड़े। वे पर्वत जिन्हें संभालना और उठाना कठिन था, उन्हें उसने रावण पर फेंका। उन पर्वतों का आघात देखकर रावण चकित हो गया। वह सोचने लगा– 'श्रीराम की सेना का प्रत्येक वानर पराक्रमी है, पर्वतों को जड़ सहित उखाड़कर युद्ध करता है।' रावण नील से बोला– "मेरे प्रहस्त को तुमने मारा है, मैं तुमसे उसका बदला लूँगा।"

नील रावण से बोला– "मैं ही तुम्हें प्रहस्त से मिलवाता हूँ। उससे भेंट होने पर वह तुमसे गुप्त बातें बतायेगा।" नील के वचनों से रावण क्रोधित हो गया व शर-वर्षा करने लगा। इधर मूर्च्छा हटते ही हनुमान की चेतना वापस लौटी और लंकानाथ को युद्ध में मारने का अवसर ढूँढ़ने लगा। तभी हनुमान ने देखा कि रावण नील के साथ युद्ध में व्यस्त है। यह देखकर धर्मयुक्त विवेक से हनुमान ने स्वयं युद्ध न करने का निर्णय लिया। एक के साथ दो लोगों द्वारा युद्ध किया जाना पाप की राशि एकत्र करने सदृश है। यह विचारकर हनुमान रावण को छोड़कर श्रीराम के पास आये। उधर नील और रावण दोनों प्रबल योद्धा रणकल्लोल करते हुए एक दूसरे पर प्रबल वार कर रहे थे। नील ने एक प्रचंड पर्वत रावण पर फेंका। रावण ने नौ बाणों की सहायता से वह पर्वत सैकड़ों टुकड़े कर भूमि पर गिरा दिया। पर्वत को टूटा हुआ देखकर नील क्रोधित हो गया और रावण के वार को विफल करने के लिए उसने अनेक शाखाओं से युक्त वृक्ष को हाथों में लेकर रावण की दिशा में वेगपूर्वक फेंका। तत्पश्चात् अश्वकर्ण, शाल्मली, शाल, आम, चंपा, तमाल, ताल, खजूर, सुपारी, पीपल, इत्यादि अनेक वृक्ष बड़ी कुशलता से रावण की दिशा में फेंके। जामुन, बहेड़ा व बबूल जैसे वृक्ष फेंककर रावण को संत्रस्त किया। उन भयंकर वृक्षों के प्रहार से रावण का धैर्य समाप्त हो रहा था। एक वृक्ष तोड़ते ही पीछे से अनेक वृक्ष आ गिरते थे, जिससे रावण हैरान हो गया। उसे युद्ध में समय ही नहीं मिल पा रहा था। वे वृक्ष मस्तक पर, छाती पर, हाथों पर लगातार गिरने के कारण, वह हाथों में धनुष पकड़ ही नहीं पा रहा था। घोड़ों के मुख पर वृक्ष गिरने से वे बिदकने लगे। सारथी रथ पर नियन्त्रण नहीं कर पा रहा था, जिससे रथ चक्राकार घूमने

लगा। अन्त में सारथी रथ में गिर पड़ा। रावण समझ नहीं पा रहा था कि क्या करे। सारथी के मूर्च्छित हो जाने से घोड़ों की लगाम पकड़ने वाला कोई नहीं था। रथ अनियन्त्रित होकर घूमने लगा। रावण की दुर्दशा हो गई। इस प्रकार नील ने वृक्षों से रावण को त्रस्त कर दिया। तभी अत्यन्त धैर्यपूर्वक और कुशलता से रावण ने नील पर बाणों की वर्षा की।

रावण महादक्ष धनुर्धर था। उसने दक्षतापूर्वक एक के पश्चात् दूसरा– इस प्रकार अनेक वृक्ष तोड़ डाले। नील पर सामने से लक्ष्य साधा। रावण के बाण चलाने के कौशल को ध्यान में रखते हुए नील ने सूक्ष्म रूप धारण किया। वह सूक्ष्म रूप धारण करने में कुशल था। नील सूक्ष्म रूप धारण कर रावण के ध्वज पर जा बैठा। रावण द्वारा ध्वज पर निशाना साधते ही नील धनुष की नोंक पर जा बैठा। वहाँ से जब रावण उसे पकड़ने गया तब नील मुकुट पर जा बैठा, वहाँ से उसे पकड़ने के लिए जाने पर वह ध्वज की नोंक पर जा बैठा। नील की इस कृति को देखकर लक्ष्मण ज़ोर से हँसने लगे। सुग्रीव, हनुमान, श्रीराम, वानरवीर सभी हँसने लगे। नील कभी ध्वज पर, धनुष पर, मुकुट पर, बाण की नोंक पर तो कभी रथ के किनारे पर दिखाई देता था। बैठे होने के कारण वह दिखाई नहीं दे रहा था। श्रीराम, हनुमान, लक्ष्मण व सभी वानर चकित हुए परन्तु लंकानाथ इससे अत्यन्त त्रस्त हो गया। बीस नेत्रों वाले रावण को नील ने एकाग्र कर दिया। युद्ध किस प्रकार करें, यही उसे समझ में नहीं आ रहा था। रावण भ्रम में पड़कर निष्क्रिय हो गया। उस समय वानर उसकी मूँछों को पकड़कर-लटकने लगे। कोई रावण के गले से माला निकालने लगा। कोई उसे अपने गले में पहनने लगा। रावण भ्रम की स्थिति में ही था। कुछ वानर उसके कंगन छीनने लगे तो किसी ने उसके बाहुभूषण निकाल लिए। नील ने उसे भ्रमित कर दिया था। वह युद्ध के लिए आया है, इसका रावण को विस्मरण हो गया था। इस प्रकार युद्ध में रावण की दुर्दशा कर नील ने भुभु:कार किया। वानरों ने भी जय-जयकार करते हुए हरिनाम का स्मरण किया। वानरों की जय-जयकार सुनकर रावण क्षुब्ध हो गया। उसने नील को मारने के लिए भयकर बाण चलाये परन्तु रावण की बाण-वर्षा में सेनापति नील लक्ष्य नहीं बन पा रहा था। अपने बाण व्यर्थ हो रहे हैं, इसका स्मरण होते ही रावण अत्यधिक क्रुद्ध हुआ। सेनापति नील शस्त्रों के घेरे में नहीं फँस रहा है, यह देखकर रावण ने नील का वध करने के लिए दिव्यास्त्रों की योजना करने का निश्चय किया।

नील का वध करने का निश्चय कर रावण ने अग्नि-अस्त्र सुसज्जित किया। वह प्रज्वलित बाण क्रोधपूर्वक नील पर चलाया। तब नील अणु सदृश सूक्ष्म होकर उड़ान भर कर ध्वज की नोंक पर जा बैठा। बाण को नील दिखाई ही नहीं दे रहा था। उसे अपना लक्ष्य समझ में नहीं आ रहा था। इस प्रकार अग्नि-अस्त्र नील को लगा ही नहीं तब रावण क्रोध से बड़बड़ाने लगा। तत्पश्चात् उसने नील की सूक्ष्म होने की कुशलता रोककर उसका दमन करने के लिए दमन की अस्त्र-युक्ति का प्रयोग कर नील पर वार किया। उस अस्त्र के प्रयोग से नील की समस्त शक्तियाँ कुंठित हो गईं। तब अग्नि अस्त्र हाथों में लेकर रावण ने गर्जना की– "सूक्ष्म होने का जो कौशल तुम दिखा रहे थे, वह तुम्हारी मायावी कृति मैंने बन्द कर दी। अब तुम्हें युद्ध में मारने के लिए मैं यह अग्निबाण छोड़ रहा हूँ। अब मैं तुम्हारा पराक्रम देखता हूँ कि तुम स्वयं को कैसे बचाते हो।" ऐसा कहकर ध्वज पर बैठे नील की ओर निशाना साधकर गर्जना करते हुए निश्चयपूर्वक रावण ने अग्निबाण चलाया। अग्नि बाण को आते हुए देखकर नील उड़ान भरना चाह रहा था परन्तु मन्त्रास्त्र से उसकी शक्तियाँ क्षीण हो गई थीं। अतः वह उड़ न सका और अग्निबाण उसके हृदय पर जा लगा। हृदय पर बाण लगते ही नील ने श्रीराम का स्मरण किया, जिससे

मृत्यु पलायन कर गई। मात्र बाण द्वारा ऊपर-ऊपर थोड़ी सी खरोंचें आईं। जहाँ श्रीराम-नाम का स्मरण किया जाता है, वहाँ कल्पान्त तक भी मृत्यु का प्रवेश नहीं होता। नील के प्राण बच गए थे क्योंकि बाण द्वारा हुए घाव ऊपरी ही थे।

नील सुरक्षित; लक्ष्मण का आगमन– अग्नि-अस्त्र के आघात से नील मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। तब एक चमत्कार हुआ। अग्नि नील का पिता होने के कारण, उसने नील के प्राण नहीं लिये। अग्निअस्त्र बाण के लगते ही नील ने राम-नाम स्मरण किया। तत्पश्चात् वीरासन मुद्रा बनाकर वह मूर्च्छित हो गया। अग्नि-अस्त्र के ताप का शमन हो गया। श्रीराम-कृपा से सुख सम्पन्न होकर वह मूर्च्छित अवस्था में पड़ा रहा। वानर राम-भक्त होने के कारण श्रीराम युद्ध में भी अपने भक्तों की आनन्दपूर्वक रक्षा करते हैं। श्रीराम अन्तकाल के सहायक हैं। शस्त्रों के घाव को सुसह्य बनाकर श्रीराम युद्ध में अपने भक्तों की रक्षा करते हैं। श्रीराम के कारण युद्ध सुसह्य होकर जन्म-मृत्यु का स्मरण नहीं रह जाता, सन्तुष्टि की प्राप्ति होती है। श्रीराम के सान्निध्य में वानरों को आनन्द और सुख की प्राप्ति होती है। रघुपति सदृश कृपालु पिता, युद्ध के प्रसंग में भी आनन्द प्रदान करता है। "महान योद्धा सेनापति नील को युद्ध में धराशायी कर रथ में डाल कर घड़घड़ाते हुए लंका में ले जाऊँ, जिससे 'रावण युद्ध में पराक्रम कर, सेनापति को बन्दी बनाकर ले आया', लंका में मेरी विजय की इस प्रकार चर्चा होगी'' ऐसा विचार कर रावण ने नील सहित प्रस्थान किया। तभी लक्ष्मण वहाँ आये। रावण अपने मन में सोचने लगा– 'मेरा भाग्य ही ठीक नहीं है, यशस्वी होने का अवसर ही मुझे नहीं प्राप्त होता। अब यह लक्ष्मण युद्ध के लिए आया है। यह तो निर्णायक युद्ध ही करेगा। अब लंका जाना तो असंभव है। युद्ध करना ही उचित होगा।' ऐसा विचार कर रावण रथ घुमाकर घरघराहट की ध्वनि के साथ क्रोधपूर्वक वापस लौटा। शंबर से प्रद्युम्न अथवा वृत्रासुर से इन्द्र भिड़ा था, उसी के सदृश रावण से लक्ष्मण युद्ध के लिए जा भिड़े। लक्ष्मण और रावण का युद्ध अर्थात् विविध भीषण शस्त्रास्त्रों का युद्ध होने वाला था।

अध्याय १९

[रावण की पराजय]

नील मूर्च्छित होकर भूमि पर पड़ा था और रावण गर्वपूर्वक स्वयं को विजयी अनुभव कर प्रसन्न हो रहा था। नील श्रीराम-नाम-स्मरण के कारण मूर्च्छित अवस्था में सुख सम्पन्न और आत्मसुख का अनुभव कर रहा था। उसे मूर्च्छित अवस्था में देखकर रावण ने विचार किया– 'अपना पराक्रम प्रदर्शित करने के लिए इस वानर सेनापति नील को स्वयं ही लंका में ले जाया जाये'। उसका यह विचार चल ही रहा था कि नील को मुक्त कराने के लिए लक्ष्मण धनुषबाण सुसज्जित कर रावण को लक्ष्य बनाकर उसके सामने गये। उन्हें देखकर रावण के मन में आया– 'राम की सेना में अनेक उत्तम श्रेणी के वीर हैं। मुझे यश और कीर्ति मिल ही नहीं पा रही है। अब स्वयं उर्मिलापति लक्ष्मण आया है। अब लक्ष्मण से निर्णायक युद्ध करना ही चाहिए।' ऐसा निश्चय कर रावण युद्ध-क्षेत्र की ओर वापस आया।

लक्ष्मण द्वारा रावण की उपहासपूर्वक भर्त्सना– मेघों की गर्जना सदृश रथ की घड़घड़ाहट की ध्वनि के साथ रावण, लक्ष्मण के निकट युद्ध के लिए आया। तब सौमित्र रावण से बोले– "तुम

तो दशशिरों से युक्त लंकाधिपति हो। तुम्हारे मस्तक पर छत्र है और चँवर ढलाये जा रहे हैं और तुम्हें वानरों ने त्रस्त कर दिया। अगर तुम्हारे अन्दर थोड़ा भी पराक्रम है तो मुझसे युद्ध करो।" इतना कहकर लक्ष्मण ने रण भूमि में युद्ध की मुद्रा बनाते हुए धनुष बाण सज्ज किया। धनुष की प्रत्यंचा की टंकार-ध्वनि से रावण विचलित हो गया। उसके मन को उस ध्वनि से क्लेश पहुँचा। सौमित्र शत्रु को त्रस्त करने वाला था। धनुष की टंकार व लक्ष्मण के वचन सुनकर रावण क्रुद्ध होकर गरजते हुए बोला– "आज यहाँ पर भगवान् शिव ने मेरा मनोरथ ही पूर्ण कर दिया है। लक्ष्मण ने शूर्पणखा के नाक-कान काटे थे। अब लक्ष्मण रणभूमि में आया है तो उसका एक ही बाण से वध कर मैं बहन शूर्पणखा के ऋण से मुक्त होऊँगा। लक्ष्मण का बाणों से निर्दलन कर उसे मृत्यु मुख में पहुँचाता हूँ।" रावण की ये गर्जना सुनकर लक्ष्मण ने हँसते हुए उपहासयुक्त स्वरों में कहा– "व्यर्थ बड़बड़ करने से क्या होगा ? तुम्हारा युद्ध कौशल कैसा है, यह मुझे दिखाओ।"

सौमित्र रावण से बोले– "अरे दशानन, तुम्हारा शौर्य, वीरता, प्रताप सभी मुझे पूरी तरह से मालूम है। सुनो, स्वयंवर प्रसंग में शिवधनुष उठाते समय तुम्हें अपयश मिला तथापि तुम अपने बल की बड़ाई करते हो। तुम अत्यन्त निर्लज्ज हो। बालि ने तुम्हें बगल में दबाकर सात समुद्रों का स्नान किया और तुम स्वयं को बलवान् समझते हो ? राक्षसकुल में तुम निर्लज्जता की राशि हो। राजा होकर भीख माँगते हो। वह भी कपटपूर्वक कपट वेश धारण कर परस्त्री का अपहरण करने के लिए। राजा होकर स्वयं चोरी करते हो, यह तो तुम्हारे पराक्रम की कीर्ति है, जो चारों दिशाओं में फैली है। ऐसे निर्लज्ज, संसार में तुम अकेले ही होगे। दूसरे की पत्नी चुराकर भाग कर लंका में छिप गए और फिर भी अपने बल का वर्णन कर रहे हो ? वास्तव में तुम अत्यन्त निर्लज्ज हो। श्वेतदीप में दासियाँ तुम्हें लातों से मारकर नचाती हैं, ऐसी तुम्हारी परमकीर्ति है। तुम महा निर्लज्ज हो। अरे, कपट वेष में भीख माँगते हुए, जिस सीता को स्वयं तुमने माता कहा, उसी को तुम अब अपनी पत्नी बनाना चाहते हो, अर्थात् तुम महापातकी मातृगामी हो। तुम्हारे मस्तक पर चोरी, पर-स्त्री गमन, मातृगामी, दुराचारी इतने विशेषण हैं, उसकी तुम्हें लज्जा नहीं है। तुम्हारा निंद्य वृतान्त रहने दो। मेरा वध करना हो तो मैं धनुषबाण सहित रणक्षेत्र में खड़ा हूँ। जो युद्ध में पराक्रम कर दिखाता है, उसे शूर, वीर, प्रतापी कहते हैं। इसके विपरीत जो व्यर्थ की बड़बड़ करता है, वह अधम कहलाता है तथा उसकी निंदा होती है। मैं धनुष बाण सज्ज कर रणभूमि में युद्ध के लिए तैयार खड़ा हूँ। अगर तुम मेरा प्राण लेना चाहते हो, तो युद्ध के लिए आओ। शूर्पणखा के नाक-कान काटना तो अत्यन्त सामान्य कृत्य था, अब दशानन के नाक-कान संग्राम में काटूँगा। रावण, मेरा कहा मानो। युद्ध में पीठ मत दिखाओ, मैं तुम्हारे पीछे नहीं भागूँगा। सीधे युद्ध के लिए आओ."

लक्ष्मण और रावण का युद्ध– सौमित्र के वचन रावण के हृदय में चुभ गए। उसने स्वर्णपंखी निर्वाण बाण निकाल कर एक दम सात बाण चलाये। रावण के सातों बाण लक्ष्मण ने लीला दिखलाते हुए क्षण-मात्र में तोड़ डाले। तब रावण ने चिढ़कर सैकड़ों बाणों की वर्षा की, जिन बाणों से उसने सुरासुरों को कुशलतापूर्वक धराशायी कर दिया था। जिस प्रकार गरुड़ सर्पों का नाश करता है उसी प्रकार लक्ष्मण ने उन भीषण बाणों को टुकड़े-टुकड़े कर दिया। उन बाणों के टुकड़े रणभूमि में बिखरे हुए देखकर रावण विचलित हो उठा। तभी लक्ष्मण ने दशशिर रावण का निर्दलन करने के लिए उत्तम प्रकार के सोनपंखी असंख्य बाण चलाये। उनमें सुरूप, सतेज, नाराच, नालीक, अर्द्धचन्द्र-ऐसे अनेक प्रकार के बाण थे। वे बाण अत्यन्त वेगपूर्वक चलाकर लक्ष्मण ने रावण को घायल कर दिया। बली रावण ने

लक्ष्मण के उन बाणों का निवारण किया। तत्पश्चात् उसने लक्ष्मण का प्राण हरने के लिए निर्णायक अस्त्रों की योजना की। काली, कराली, कंकालास्त्र, देहदमनी दाहकास्त्र, अखंडास्त्र, विखंडास्त्र, दंडास्त्र, चंडास्त्र, प्रचंडास्त्र, वितंडास्त्र, घातनास्त्र, पातनास्त्र इत्यादि नाना प्रकार के अस्त्र थे। इन अस्त्रों का लक्ष्मण ने क्षणार्द्ध में निवारण कर दिया। तत्पश्चात् जिस अस्त्र से सबका संहार होता है, ऐसा अत्यन्त क्रूर निर्वाणास्त्र अत्यन्त क्रोधपूर्वक रावण ने चलाया। लक्ष्मण ने उसका भी निवारण कर दिया। निर्वाण-अस्त्र सौमित्र ने व्यर्थ कर दिये, इसीलिए क्रोधपूर्वक हाथ मलते हुए रावण दाँत किटकिटाने लगा। तभी एकाएक उसे ब्रह्मप्रदत्त वरद् बाणों का स्मरण हो आया। उसने क्रोधपूर्वक वे बाण लक्ष्मण का वध करने के लिए चलाये।

रावण द्वारा युद्ध में ब्रह्म-प्रदत्त वरद् बाणों की योजना करने पर लक्ष्मण ने उनका निवारण किये बिना ब्रह्माज्ञा शिरोधार्य कर उनकी वंदना की। श्रीराम और लक्ष्मण ब्रह्मा के वचन व्यर्थ नहीं जाने देते थे। इसीलिए लक्ष्मण ने ब्रह्मा वरद् बाणों को मस्तक पर लेकर उन्हें प्रणाम किया। वह बाण ऐसा दिखाई दे रहा था, मानों वहीं चुभ गया हो। ब्रह्मावर के उस वरद् बाण ने चन्दन और अक्षत बनकर स्वयं आनन्दपूर्वक सौमित्र का रणाभिषेक किया। वह बाण मस्तक पर लगते ही उससे आने वाली मूर्च्छा पर लक्ष्मण ने नियन्त्रण किया। अपने धनुष को मस्तक पर लगाते हुए वेगपूर्वक उठकर वह, शरवृष्टि करने के लिए सुसज्ज हुए। उनके द्वारा उस समय किया गया पराक्रम शत्रु का धनुष, गर्व तथा युद्ध के प्रयत्न को शिथिल करने वाला था। सौमित्र का पराक्रम इतना प्रचंड था कि उनके द्वारा रावण पर की गई शर-वर्षा से छाती पर, मस्तक में, धनुष धारण किये हुए हाथ में बाण घुस गए। रावण को भय से पसीना आ गया, वह थर-थर काँपने लगा। उसके शरीर से रक्त बहने लगा। लक्ष्मण ने बाण-वर्षा से रावण को जर्जर कर दिया। धनुष-हीन रावण बाणों का आघात होते ही मूर्च्छित होने की स्थिति में आ गया परन्तु गिरते गिरते किसी तरह से उसने स्वयं पर नियन्त्रण किया। अपना वरद् बाण व्यर्थ हो गया तथा लक्ष्मण युद्ध में मरा नहीं, इस कारण क्रोधित होकर रावण ने भयंकर शक्ति-बाण सुसज्जित किया। अत्यन्त निर्णायक प्रसंग में प्रयोग करने के लिए ब्रह्मा द्वारा प्रदत्त तथा तीनों लोकों में अनिवार्य ब्रह्मा की ब्रह्म-शक्ति का इस समय उसने लक्ष्मण के वध के लिए प्रयोग किया। रावण द्वारा उस शक्ति को चलाते ही करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाश से युक्त शक्ति आकाश में चमकी, उसका तेज सहन करना असम्भव हो रहा था। उस तेज से वानर व राक्षसों की आँखें मुँदने लगीं। दोनों पक्ष की सेना विचलित होने लगी। उस शक्ति की कड़कड़ाहट से सेना भ्रमित होने लगी। शक्ति के दैदीप्यमान तेज व नाद से आकाश गूँजने लगा। इस समय लक्ष्मण सतर्क होकर धनुष बाण सुसज्ज कर खड़े थे। उस प्रचंड शक्ति को आते देखकर प्रचंड बलयुक्त लक्ष्मण ने बाण चलाकर वह शक्ति तोड़ डाली। उसका मुख कुचल दिया। शक्ति पीछे नहीं हट रही थी परन्तु बाण के कारण वह आगे भी नहीं जा पा रही थी। अतः रणक्षेत्र के आवर्त में फँसकर वह भ्रमित हो गई। उसका बचना असंभव हो गया। शक्ति की अपेक्षा पुरुषार्थ सम्पन्न होने के कारण लक्ष्मण का वध करना उसके लिए सम्भव नहीं हो पा रहा था। उस प्रसिद्ध वीर सौमित्र के कारण शक्ति की प्राण जाने की स्थिति आ गई।

शक्ति का लक्ष्मण की शरण आना; लक्ष्मण द्वारा उसे स्वयं पर धारण कर मूर्च्छित होना– लक्ष्मण के अचूक बाणों से न बच सकने के कारण शक्ति लक्ष्मण की शरण में आकर बोली– "मेरे प्राण बचायें, शरणागत का वध न करना ही आपका धर्म है।" अपने प्राण बचाने के लिए शक्ति ने लक्ष्मण को साष्टांग प्रणाम किया और बोली "आप दृढ़ निश्चयी ब्रह्मचारी हैं, मैं ब्रह्म की ही

ब्रह्म-शक्ति हूँ। अतः अपने हृदय में कन्या के रूप में मुझे स्थान दें। आप ही मेरी माँ हैं, आप ही पिता हैं। मैं आपकी कन्या सदृश हूँ। हे कृपालु लक्ष्मण, आप मेरा प्राण नाश न करें।" शक्ति के शरण में आते ही लक्ष्मण ने बाण चलाना रोककर उसे अपने हृदय में स्थान दिया क्योंकि वे शरणागत के प्रति कृपालु थे। शक्ति द्वारा आलिंगन दिये जाने पर वह पर-स्त्री का स्पर्श कहलाता, अतः लक्ष्मण परिपूर्ण ब्रह्मस्वरूप हुए। उन्होंने देहाभिमान त्याग दिया। जहाँ पुरुष प्रकृति का तथा शिव शक्ति का अस्तित्व न हो, ऐसी अद्वैत की सहज आनन्दपूर्ण स्थिति को उन्होंने धारण किया। पूर्ण विश्रांति प्राप्त कर ब्रह्मशक्ति को उन्होंने मुक्त किया। श्रीराम-भजन की ऐसी ही ख्याति है। श्रीराम के कारण सर्वार्थ में विश्रांति प्राप्त होती है। श्रीराम ने जो धर्म-युद्ध की मूल-नीति सिखाई थी, उसी पद्धति से लक्ष्मण स्वानन्दपूर्ण सहज स्थिति में गए। ब्रह्म-शक्ति उनका वध करने के लिए आयी थी परन्तु उसे ही लक्ष्मण ने मुक्ति प्रदान की। धन्य है संतों की संगति, जो घात करने वाले को भी सुख का अनुभव कराती है। यह घटना बाह्य रूप से देखने वाले को ऐसी अनुभव हुई, जैसे रावण ने लक्ष्मण को शक्ति से वार कर मूर्च्छित कर धराशायी कर दिया है।

लक्ष्मण को मूर्च्छित होकर गिरा हुआ देखकर रावण रथ से कूदकर वेगपूर्वक लक्ष्मण के समीप आया। उसने मुट्ठी से लक्ष्मण पर वार किये, जिससे रावण के हाथ में ही झटके लगे और वह स्वयं गिरते-गिरते बचा तथा हाँफने लगा। 'लक्ष्मण पर मुट्ठी से प्रहार करने पर मेरे ही प्राण व्याकुल हो रहे हैं। अतः अब इसे लंका ले जाकर अपना पराक्रम प्रदर्शित करना चाहिए'- रावण ऐसा विचार करने लगा। उसने वीर लक्ष्मण को उठाकर रथ में डालने का प्रयत्न किया परन्तु वह लक्ष्मण को तनिक मात्र भी उठा न सका। उसकी समस्त शक्ति निष्फल होकर वह थक गया। एक, दो, चार हाथ लगाकर भी वह लक्ष्मण को उठा न सका। तत्पश्चात् पाँच, सात, दस हाथों से, फिर बीसों हाथों का प्रयोग कर भी वह असफल ही रहा। रावण अपने भाग्य को कोसते हुए कहने लगा– "प्रमुख वीर योद्धा मिला था परन्तु मैं उसे लंका नहीं ले जा सकता। मैं निश्चित ही दुर्दैवी हूँ। लक्ष्मण मुट्ठी के प्रहार से मरता नहीं, मैं उसे लंका में नहीं ले जा पा रहा हूँ। उस पर शस्त्रों के आघात नहीं हो पा रहे हैं और ये शस्त्र व्यर्थ हो रहे हैं। जिस प्रकार आकाश में मारे गए शस्त्र आकाश को नहीं चुभते, उसी प्रकार लक्ष्मण को मारे गए शस्त्र उसे चुभते हुए दिखाई नहीं पड़ रहे हैं क्योंकि लक्ष्मण की देह पर कहीं भी घाव नहीं है।" जिस प्रकार आकाश को बाँधने का प्रयत्न करने पर हाथ में केवल चार तहों वाली झोली ही आती है, उसी प्रकार लक्ष्मण को उठाने के लिए जाने पर रावण को लज्जित ही होना पड़ा। "इतने भाग्य से लक्ष्मण जैसा महान योद्धा वश में हुआ परन्तु उस पर न तो मुट्ठियों के प्रहार का और न ही शस्त्रों के प्रहार का परिणाम हो रहा है। उसे लंका में ले जाना भी मेरे लिए सम्भव नहीं हो पा रहा है।" इन विचारों से रावण छटपटाता रहा।

लक्ष्मण के लिए मारुति का आगमन– लक्ष्मण द्वारा देहाभिमान त्यागते ही उनकी देह ब्रह्म स्वरूप हो गई। इसीलिए शक्तिशाली होते हुए भी उठाने में उसे अपयश ही मिला। रावण चकित होकर मन ही मन विचार करने लगा– 'मैंने अपने बल से शिव सहित कैलास पर्वत को हिला दिया। पर्वत श्रेष्ठ मेरु व मन्दार को मैं क्षण-मात्र में उठा सकता हूँ, परन्तु यह राम का अनुचर इतना बलवान् है कि मुझ जैसा बलशाली भी उसे नहीं उठा सकता। मूर्च्छित होकर गिरे हुए लक्ष्मण के समक्ष भी मेरा सामर्थ्य निष्फल हो रहा है; मेरा रावण होना ही व्यर्थ है।' इस प्रकार वह स्वयं को कोसने लगा। लक्ष्मण मूर्च्छित है और रावण उसे लंका ले जाने का प्रयत्न कर रहा है, यह देखकर हनुमान क्रोधित हुए। उन्होंने वहाँ

आकर रावण पर मुट्ठी से प्रहार किया। उस आघात से रावण के घुटने जमीन पर पटके गए और वह मुँह के बल जा गिरा। उसके केश खुल गए, उसे मूर्च्छा आ गई। बलवान् लंकानाथ जिससे सुरासुर डरा करते हैं, वह रावण एक वानर के तड़ाके से मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। वानरों ने रामनाम का जयजयकार किया। सुरासुर भी जयजयकार करने लगे और ऋषि पुरुषार्थ देखकर बखान करने लगे। हनुमान का सामर्थ्य देखकर स्वर्ग, मृत्यु, पाताल सभी स्थान से जयजयकार होने लगा। राक्षसों को ऐसा लगने लगा कि जो-जो वीर आगे आयेगा, उसका यह वानर संहार कर देगा। यह ऐसा योद्धा है।

मारुति का लक्ष्मण सहित राम के पास जाना, लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर होना– रावण को मूर्च्छित करने के पश्चात् हनुमान लक्ष्मण के समीप गये। लक्ष्मण को धीरे से उठाकर वे उन्हें राम के पास ले आये। श्रीराम के दर्शन होते ही ब्रह्म-शक्ति का उद्धार होकर लक्ष्मण की चेतना लौट आई। भक्ति की महिमा अथाह होती है। भक्ति के पास यश, कीर्ति, शांति, विरक्ति और ब्रह्मस्थिति आनन्दित होकर विद्यमान रहती हैं। यह सब कर्म के रूप में घटित होता है। भगवान् भक्ति के प्रति समर्पित रहते हैं। वह भक्त का जूठन उठाते हैं। रणभूमि में घोड़े धोते हैं और अन्त में द्वारपाल भी बनते हैं। भक्त पर आने वाले संकट स्वयं भगवान् झेलते हैं। ऐसी भक्ति हनुमान में प्रेम एवं आनन्दपूर्वक विद्यमान रहती थी। जिस लक्ष्मण को बीस हाथों से रावण न उठा सका, उसे हनुमान ने फूल के सदृश उठा लिया। जो अभक्तों के लिए कठिन होता है, वह भगवद् भक्तों के लिए कठिन नहीं होता। इसीलिए मारुति, सौमित्र को पुष्प के सदृश सहजता से उठा सके। श्रीराम के दर्शन होते ही लक्ष्मण चैतन्य हो गए। ऐसा होने से वानर गण प्रसन्न हो उठे और रामनाम का जयजयकार करने लगे। उधर हनुमान का हाथ लगने से मूर्च्छित रावण की भी मूर्च्छा दूर हुई और धनुष-बाण लेकर रथ में बैठा।

चेतना वापस लौटते ही लक्ष्मण ने धनुषबाण सुसज्जित कर युद्ध के लिए रावण की ओर देखा। "रावण ने मुझ पर ब्रह्म-शक्ति से वार किया। अब वह कहाँ गया ? उसे बाणों की वर्षा से मारकर युद्ध में ख्याति प्राप्त करूँगा। मेरे बाण लगने पर भी रावण युद्ध में जीवित रहा, यह मेरे लिए लज्जास्पद है। अब एक ही बाण से उसके प्राण हरूँगा। बाणों की वर्षा से रणभूमि में रावण का वध करूँगा।" ऐसी गर्जना करते हुए लक्ष्मण धनुषबाण लेकर आवेशपूर्वक निकले। उसे उत्साहपूर्वक जाते देखकर श्रीराम ने अत्यन्त प्रेमपूर्वक उसे हृदय से लगाते हुए कुछ रहस्यपूर्ण बातें कहीं। श्रीराम बोले– "युद्ध में दशानन का वध करने की मेरी प्रतिज्ञा प्रमाण है, अतः उसका पालन करते हुए रावण का वध मैं करूँगा। तुमने युद्ध किया तो निमिष मात्र में तुम रावण का वध करोगे। अतः तुम मेरी प्रतिज्ञा व्यर्थ न होने दो। तुम तो मेरे सखा हो। उस रावण का कितना बल है, उसकी युद्ध सामग्री का सामर्थ्य क्या है ? उसका युद्ध कौशल कितना है, यह सब एक बार मुझे देख लेने दो।" श्रीराम के वचन सुनकर लक्ष्मण ने उनकी चरण-वंदना की और रावण उन्हें सौंपकर वे वापस लौटे। इस प्रकार सौमित्र को शांत कर श्रीराम को युद्ध करने के लिए प्रस्थान करते देखकर वानर उत्साहित हो उठे। जो वानर घावों से जर्जर हो गए थे, उन्होंने श्रीराम के चरणों की धूल का लेप किया और वे व्याधि-रहित होकर रणभूमि में आनन्दपूर्वक नाचने लगे। श्रीराम-नाम का स्मरण करने से वानर जन्म-मृत्यु की बाधा से रहित हो गए और निःशंक होकर युद्ध के लिए उत्सुक हो उठे।

राम का युद्ध-क्षेत्र में हनुमान की पीठ पर बैठना– श्रीराम ने धनुषबाण सुसज्जित किया। रावण को सामने देखते ही उन्होंने युद्ध के लिए प्रस्थान किया। उनके द्वारा रणगर्जना करते ही त्रिभुवन

काँप उठा। रावण विचलित हो गया। राक्षस सेना में खलबली मच गई। रावण को रथ में तथा श्रीराम को रथ के बिना देखकर हनुमान को क्रोध आ गया। उन्होंने श्रीराम के समीप आकर नम्रतापूर्वक विनती की– "युद्ध में रावण का मर्दन करने के लिए स्वामी, कृपा कर मेरी पीठ पर बैठें।" ऐसी विनती करते हुए हनुमान ने श्रीराम के चरण कसकर पकड़ लिये। तब उनकी विनती सुनकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए और शौर्य शक्तिवान् श्रीराम हनुमान की पीठ पर आरूढ़ हुए। गरुड़ासन, वृषभासन, इन्द्र जिस पर आरूढ़ होते हैं, वह ऐरावत- ये सभी, श्रीराम को जो वानर की पीठ का आसन मिला था, उसके समक्ष तृण सदृश तुच्छ दिखाई देते थे। परम शूर हनुमान, श्रीराम के रथश्रेष्ठ थे, उन पर श्रीराम के आरूढ़ होते ही मानों राक्षसों का संहार और रावण का वध समीप आ गया हो। अश्व के रथ में जोतने पर उसे सारथी की आवश्यकता होती है परन्तु श्रीराम के रथ के लिए सारथी की आवश्यकता नहीं थी। अकेले हनुमान रथ और सारथी दोनों के स्थान पर थे।

श्रीराम युद्ध में रावण का वध करने के लिए संतप्त होकर गंभीरतापूर्वक गर्जना करते हुए बोले– "सीता सुन्दरी का हरण कर लंका में आकर छिप गए, अब मेरी दृष्टि के समक्ष आने पर कैसे बच पाओगे ? मेरे वारों से तुम्हें बचाने के लिए अब कौन आयेगा ? सुरासुरों के तुम्हारी सहायता के लिए आने पर भी, मैं तुम्हें छोड़ूँगा नहीं। मेरे भीषण बाणों को देखकर इन्द्र, चन्द्र, वरुण, कुबेर, यम, वायु, अग्नि, सुरासुर सभी काँपने लगते हैं। तुम्हारे दसों दिशाओं में भागने पर भी मेरे बाणों से तुम्हारा प्राण कोई नहीं बचा सकता। आज तुम अपनी मृत्यु निश्चित समझो। ब्रह्मवंश में जन्म लेकर भी तुम महापापी हुए अतः ब्रह्मा निश्चित ही तुमसे क्रुद्ध होंगे। अब राक्षसों का सर्वनाश होना निश्चित है। पर-स्त्री को चुराने का पाप तुम्हारे सिर पर है, इस कारण से ब्रह्मा तुम्हारे ऊपर कुपित हैं। इसलिए राक्षसों का अवश्य ही सर्वनाश होगा क्योंकि मेरे बाणों का निवारण ब्रह्मा भी नहीं करेंगे। अतः तुम्हारी मृत्यु अटल है। रावण, तुम तो स्वयं पाप की मूर्ति हो। अत्यन्त गर्वपूर्वक और विषयासक्त होकर तुमने पार्वती को ही उपभोग हेतु माँग लिया। अतः भगवान् शिव भी तुमसे क्षुब्ध हैं। स्वामी की पत्नी सेवक की माता सदृश होती है और तुम उमा को ही शिव से माँगकर मातृगमनी सिद्ध हुए हो अतः अब तुम्हारे लिए प्रलय निश्चित है। श्रीराम की पत्नी चुराने के कारण भी भगवान् शंकर तुमसे रुष्ट हैं और उन्होंने राक्षसों का निर्दलन करने के लिए प्रलय रुद्र को भेजा है।" श्रीराम के वचन सुनकर रावण मन ही मन भयभीत हो गया। उसने क्रोधपूर्वक हनुमान पर भयंकर बाण चलाया। श्रीराम के वचन उसके अन्तःकरण तक चुभ गये थे। इसीलिए हनुमान का वध करने के लिए आवेशपूर्वक घातक बाण चलाया। हनुमान की ओर देखकर रावण बोला– "मेरी रथगति तोड़ते हुए यह हनुमान चक्राकृति से रणभूमि में घूम रहा है। इस वानर की शक्ति भयंकर है। इसने अक्षय कुमार का वध किया, इन्द्रजित् को आहत कर दिया। मेरा मुख्य प्रतिद्वन्द्वी यह हनुमान ही है। मैं उसी का वध करता हूँ। मेरे रथ के समान रथ होकर यह श्रीराम को लाया है। अतः इसके मर्मस्थल पर ही बाणों से वार करता हूँ। श्रीराम के नीचे दबे होने के कारण यह उड़ान भी नहीं भर पाएगा अतः बाणों की वर्षा से मैं इसकी ही होली जलाता हूँ।" ऐसा कहते हुए वानर को लक्ष्य बनाकर रावण ने सत्वर भीषण बाण चलाया।

श्रीराम और रावण का युद्ध– रावण का बाण हनुमान को लगा परन्तु हनुमान सर्वार्थ से निर्द्वन्द्व था। वह रावण को चिढ़ाते हुए बोला– "ये बाण न होकर फूलों की माला ही तुमने मेरे गले में पहनाई है," ऐसा कहकर हनुमान राक्षस दल में उपद्रव मचाने लगे। रावण पुनः भीषण बाणों की वर्षा करने लगा।

हनुमान यद्यपि राम का रथ बने थे तथापि पूँछ से वे राक्षसों का वध करने लगे। मुख्य राक्षसवीरों को झकझोरते हुए मारुति ने पूँछ से राक्षसों का वध प्रारम्भ कर दिया। यह देखकर रावण चौंक गया और मन ही मन कहने लगा कि 'यह वानर युद्ध में वश में नहीं हो पा रहा है।' हनुमान को बाण लगने से रक्त रंजितहुआ देखकर श्रीरघुनाथ क्रोधित होकर रावण को दण्डित करने के लिए आगे बढ़े। उन्होंने अत्यन्त कुशलता से विविध प्रकार के बाण चलाये, जिससे रावण भ्रमित हो गया। श्रीराम के पंखयुक्त बाणों से तेज हवा बही। जिस प्रकार बवंडर में फँसकर कोई पत्ता घूमने लगता है, उसी प्रकार रावण रथ सहित उड़कर चक्राकार घूमने लगा। रावण थरथर काँपने लगा, श्रीराम के युद्ध से रावण को मूर्च्छा आने लगी। वह अत्यधिक भयभीत हो गया और भ्रम की अवस्था में वह भूल गया कि उसे क्या करना है ? श्रीराम कुशल योद्धा थे, उन्होंने घोड़े, रथ, सारथी, ध्वज सब आकाश में ही छिन्नभिन्न कर दिए। छत्र व चक्र तोड़ दिए तथा उसी कौशल्य से रावण का धनुष भी ऊपर ही छिन्नभिन्न कर दिया। रावण का मुकुट तोड़कर भूमि पर गिरा दिया। रथ टूटने से रावण औंधे मुँह भूमि पर आ गिरा। ऐसा प्रतीत हुआ मानों कोई पर्वत आ गिरा हो। श्रीराम ने अर्द्धचन्द्र बाणों से उसका मुकुट कुंडल सहित छेद डाला। इस प्रकार श्रेष्ठ श्रीराम ने दशशिरयुक्त रावण को युद्ध में संत्रस्त कर दिया। जिस प्रकार दाँत गिर जाने से सर्प की विषाक्तता समाप्त हो जाती है, उसी प्रकार युद्ध में रावण का बल समाप्त हो गया। जिस प्रकार अग्नि शान्त हो जाती है, बादल सूर्य को ढँक लेते हैं, उसी प्रकार रावण दीन-हीन दिखाई दे रहा था। मुकुट-कुंडल से विहीन, केश फैले हुए, रथ से नीचे गिरा हुआ रावण, सामने श्रीराम को देखकर भयभीत हो गया। श्रीराम से प्रत्यक्ष युद्ध करने का उसे धैर्य नहीं हो पा रहा था। वह मन ही मन सोच रहा था– 'श्रीराम से युद्ध करने के लिए मेरा पराक्रम पर्याप्त नहीं होगा। अब अगर उसने बाण चलाये तो मेरे प्राण ही चले जायेंगे; अन्य किसी के युद्ध में सहायतार्थ आने की सम्भावना नहीं है क्योंकि हनुमान की पूँछ द्वारा प्रमुख वीरों को धराशायी किये जाने से राक्षसों के मन में भय बैठ गया है। हनुमान, श्रीराम का रथ बनकर अपनी पूँछ से राक्षसों पर वार करता रहा, जिससे भयभीत होकर प्रत्येक राक्षस अपने-अपने स्थान पर छिप कर बैठा है। तब मेरी ओर कौन देखेगा।' हनुमान की पूँछ द्वारा त्रस्त होने के कारण कोई भी राक्षस रावण की सहायता के लिए नहीं आया। श्रीराम के भीषण बाणों से रावण भी पूर्णरूप से पीड़ित हो गया था।

दयनीय स्थिति में रावण का लंका वापस लौटना; श्रीराम का शिविर में जाना– रावण का छत्र, शस्त्र, रथ और धैर्य सभी समाप्त होने पर दीन-हीन रावण को आश्वासन देते हुए श्रीराम बोले– "हे दशानन, सावधानीपूर्वक सुनो ! मैंने तुम्हें जीवन-दान दिया है। आज मैं तुम्हारे प्राण नहीं लूँगा, तुम लंका वापस जाओ। तुम्हारे पुत्र और प्रधान वानर वीरों को दीन-हीन कहते हैं। उन्होंने अपने सम्पूर्ण पराक्रम से तुमसे युद्ध किया। उन वानर वीरों से युद्ध करते हुए तुम बहुत थक गये हो, इसके अतिरिक्त मेरे भीषण बाणों से भी थक गये हो, दुर्बल हो गए हो। ऐसे दुर्बल का वध करने में कोई पुरुषार्थ नहीं है। इसीलिए आज तुम्हारे प्राण बच गए हैं। अत: शीघ्र लंका जाओ। वहाँ जाकर बहन, पत्नी, पौत्रों से सुखपूर्वक वार्तालाप करो तथा सभी आप्त और मित्र सुखी हैं कि नहीं, यह देखो। हे रावण, मेरे बाणों की वर्षा का तात्पर्य है तुम्हारा प्राणान्त। अत: एक बार लंका जाकर अपनी प्रिय पत्नी के साथ सुखोपभोग करो। तुम्हें मैंने जीवन दान दिया है।" श्रीराम के ये वचन सुनकर रावण दीन-हीन एवं लज्जित हो गया। उसके मुख की चमक लुप्त हो गई और वह कांतिहीन हो गया। युद्ध में शौर्य, वीरता तथा बल में श्रेष्ठ

राम ने रावण को पूरी तरह से लज्जित कर दिया। रावण को अपने बाने पर बहुत गर्व था। वह स्वयं को शत्रु का गर्वहरण करने वाला मानता था परन्तु श्रीराम तो घमंडियों का गर्व चूर करने वाले थे। उन्होंने रावण का गर्व हर कर उसे दंडित कर, यह सिद्ध कर दिया। रावण के शरीर का बल, गर्व से भरा हुआ मन, मात्र पंखयुक्त बाणों की हवा से ही चूर-चूर हो गया। श्रीरघुनाथ ने युद्ध में क्रोध से रावण को आहत कर दिया। तत्पश्चात् रावण ने दूसरा रथ मँगवाकर लंका में प्रवेश किया। श्रीराम ने रावण के सभी प्रबल निर्वाण शस्त्र, धनुषबाण, त्रिशूल, शूल, परिघ, पट्टिश, शक्ति सभी निष्प्रभ कर दिए। इसके अतिरिक्त मस्तक पर मुकुट व कुंडल से विहीन, खुली केश-राशि से अत्यन्त लज्जित अवस्था में रावण ने रथ में बैठकर लंका में प्रवेश किया। परास्त होने के कारण मलिन हुआ मुख किसी को दिखाई न पड़े, इसीलिए उसे सिर झुकाकर जाना पड़ा। युद्ध में अपयश मिलने के कारण उसकी आँखों से अश्रुधाराएँ प्रवाहित हो रही थीं, उसने विलाप करते हुए लंका में प्रवेश किया।

श्रीराम अपने शिविर में वापस लौटे। लक्ष्मण को जो शक्ति लगी थी, उस शक्ति को आलिंगन देकर श्रीराम ने व्यर्थ कर दिया। लक्ष्मण का शल्य दूर हो गया। जो सखा, मित्र, योद्धा, घायल होकर रणभूमि में पड़े थे, उन्हें सुखपूर्ण विश्राम देने के लिए स्वयं श्रीराम ने रणभूमि की ओर देखा। घायल होकर गिरते समय वानरों के हाथ श्रीराम की चरणधूलि पर पड़े। इस कारण उनकी व्यथा दूर होकर वे आनन्दपूर्वक नाचने लगे। वानर वीरों में से कोई भी वीर रणभूमि में धराशायी नहीं हुआ क्योंकि वे उत्साहपूर्वक श्रीराम-नाम की गर्जना कर रहे थे। युद्ध में रावण पराभूत होकर श्रीराम विजयी हुए, इसीलिए वानर राम नाम का जयजयकार कर रहे थे। विजय वाद्य एवं रणवाद्यों का नाद करते हुए वानर नाचने लगे। श्रीराम के विजयी होने से रावण का गर्व चूर-चूर हो गया। इस कारण विभीषण को भी आनन्द हुआ।

अध्याय २०

[कुंभकर्ण को निद्रा से जगाना]

श्रीराम से युद्ध में परास्त होने के कारण लज्जित एवं उद्विग्न होकर रावण लंका में वापस लौटा। दीन-हीन रावण ने लंका भुवन में प्रवेश किया। श्रीराम के बाणों के स्मरण-मात्र से उसे ऐसा भय लगता था कि उसके प्राण निकल जाएँगे। बिजली की गड़गड़ाहट के सदृश बाणों की कड़कड़ाहट का स्मरण कर श्रीराम के बाणों से वह भयभीत हो रहा था। ब्रह्मदंड का निवारण जिस प्रकार असंभव था, उसी प्रकार राम-बाणों से बचना भी असभव था। उन बाणों से भयभीत रावण आक्रोश कर रहा था। जिस प्रकार सिंह मदमस्त गज का निर्दलन करता है अथवा गरुड़ सर्प को मार डालता है, उसी प्रकार श्रीराम के बाणों की वर्षा से रावण संत्रस्त था और कराहते हुए छटपटा रहा था। रावण में वीरता, शौर्य, रणआवेश बहुत था परन्तु श्रीराम के प्रताप से उसका गर्व भंग हो गया था। रात्रि के समय निद्रा में भी रावण का भय विद्यमान था। उसे अन्य कुछ भी स्मरण नहीं आ रहा था। उसे पुष्प शय्या भी सुख नहीं दे रही थी। पत्नी के साथ भी सुख का उपभोग नहीं कर पा रहा था। राम के भय से वह दिन-रात त्रस्त रहता था।

रावण स्वर्ण सिंहासन पर बैठकर मन ही मन लज्जित था क्योंकि जिस सिंहासन की महत्ता के कारण सुरवर चरणों में नतमस्तक होते थे, उसी महत्ता को राम ने पूरी तरह से हताहत कर दिया था।

गए और घूमने लगे। जो भी उसके मुख के समीप जाता था, उसे कष्ट होता था। अतः उसे जगाने के लिए कोई तैयार नहीं था। तत्पश्चात् अत्यन्त प्रयत्नों के बाद उसकी श्वास से बचते हुए कुछ राक्षसों ने घर में प्रवेश कर, उसे जगाने का प्रयत्न किया। कुंभकर्ण के शरीर पर तीक्ष्ण शस्त्रों के सदृश खड़े बालों में हाथ लगते ही हाथ कटने के कारण कोई उसके पास जाने को तैयार नहीं था। भयानक श्वासोच्छ्वास, भयानक शरीर-भार तथा भयानक और उग्र चेहरे के कारण वह सभी को अत्यन्त क्रूर दिखाई पड़ा। कुंभकर्ण की भूख इतनी भयंकर थी कि अगर अन्न तैयार न हो तो वह सम्पूर्ण लंका भुवन ही निगल डाले। रावण यह जानता था, इसीलिए उसने अन्न भेजा था। कुंभकर्ण की भयंकर भूख को ध्यान में रखते हुए रावण ने पक्वान्नों और अन्न के पर्वत भेजे। अन्न से उसकी सन्तुष्टि नहीं होगी, इसलिए हिरन, सुअर, भेड़ों व भैंसों के झुंड भी भेजे। मद्य के असंख्य पात्र, रक्तों से भरे घड़े, कुंभकर्ण की संतुष्टि के लिए रावण ने शीघ्र भेजे। कुंभकर्ण को सन्तुष्ट करने के लिए रावण ने पान, पुष्प, चन्दन इत्यादि सुखदायक पदार्थ भी भेजे। सभी खाने पीने के पदार्थों को लेकर प्रधानों ने डरते हुए कुंभकर्ण के घर में प्रवेश किया। वे सभी भय से काँप रहे थे।

कुंभकर्ण अत्यन्त गहरी निद्रा में सो रहा था। उसको जगाने के लिए राक्षसों ने मिलकर बादलों की गड़गड़ाहट की तरह प्रचंड गर्जना से महानाद किया। करताल, मंजीरे, मृदंग, भेरी, गिड़बिड़ा, शंख, ढोल इत्यादि वाद्यों की ध्वनि की और जोर से चीखने-चिल्लाने लगे। हाथियों को अंकुश चुभाकर और ऊँटों को डंडों से मारकर चिल्लाने के लिए प्रेरित किया। गर्दभ और घोड़े भी चिल्ला रहे थे। इन सब से भी कुंभकर्ण की नींद नहीं टूटी। इससे राक्षस क्रोधित हो गए और उन्होंने डंडे, तरट, मूसल, गदा, इत्यादि से कुंभकर्ण पर आघात किया। किसी ने घुटनों से, कोहिनयों से वार किया तो किसी ने लात मारी। किसी ने मुद्गर से मारा तो किसी ने मुक्कों से वार किया। एक तो अपनी सम्पूर्ण शक्ति एकत्रित कर उसके ऊपर कूद पड़ा। किसी ने उसके शरीर के नीचे लकड़ियाँ डालकर उसे उठाने का प्रयत्न किया। यह सब करने पर तथा सहस्र रणवाद्यों की ध्वनि एक साथ करने पर भी ब्रह्मशाप से लगी उसकी निद्रा तनिक मात्र भी दूर नहीं हुई। इसलिए राक्षस क्रोधित हो गए। वे बड़े मुद्गर लेकर जोर से प्रहार करने लगे। छाती पर, मस्तक पर, सर्वत्र प्रहार करने पर भी कुंभकर्ण की गहरी निद्रा नहीं टूटी। राक्षसों के वार उसके लिए बिस्तर पर पिस्सुओं के रेंगने के सदृश थे। कुंभकर्ण ने राक्षसों के वार पर कोई प्रतिक्रिया नहीं की। वह शांति से सोता रहा। कोई राक्षस उसकी चोटी खींचता, कोई बाल खींचता तो कोई क्रोध से कान को काट रहा था। फिर भी कुंभकर्ण की नींद नहीं टूट रही थी। तत्पश्चात् दस हजार प्रसिद्ध वीरों ने सम्पूर्ण शक्ति से कुंभकर्ण के शरीर को धक्का देना प्रारम्भ किया। तब उसे पेट में गुदगुदी का अनुभव हुआ फिर भी वह सोता रहा। अन्त में राक्षसों ने रावण से जाकर बताया कि 'अंनत प्रयत्न करके भी कुंभकर्ण नहीं जाग रहा है।' यह सुनकर रावण को क्रोध आ गया।

रावण ने विचार किया कि कुंभकर्ण का शरीर कुचलने से वह जाग जाएगा। इसके लिए उसने हजार हाथियों को भेजने का निश्चय किया। निद्रा से जागृत करने का तन्त्र जानने वाले अत्यन्त चतुर एवं विश्वसनीय सहस्र वीरों को भी उसने भेजा। उन हाथियों व वीरों को कुंभकर्ण के शरीर पर दौड़ाकर उसे जागृत करने का रावण का विचार था परन्तु इससे भी कुंभकर्ण जागृत नहीं हुआ तो रावण अत्यन्त असहाय सा हो गया। उसके भेजे हुए हाथी व राक्षसवीर जब कुंभकर्ण के शरीर पर दौड़ रहे थे। तभी एक विचित्र घटना हुई। कुंभकर्ण के शरीर पर विद्यमान बालों में हाथी, महावत सहित खो गए। उन्हें उदय

व अस्त का पता ही नहीं चल पा रहा था। बालों के उस गहन वन में वे मात्र घूमते रहे। आगे वाले को पीछे वाला तथा पीछे वाले को आगे वाला दिखाई नहीं दे रहा था, इस कारण वे भ्रमित हो गए। मार्ग स्पष्ट न होने के कारण वापस लौटने का मार्ग महावतों को दिखाई नहीं दे रहा था। अत: हाथियों के समूह को चलाने में उन्हें बहुत कष्ट हो रहा था। त्रस्त होकर हाथी चलने में आनाकानी कर रहे थे। महावत चिल्ला रहे थे परन्तु उनकी मदद के लिए कोई नहीं आ रहा था। अत: वे अत्यन्त दु:खी होकर घूमते रहे। घूमते हुए लड़खड़ाकर वे कुंभकर्ण की नाभि के गड्ढे में गिर पड़े। उस गर्त में गिरकर असंख्य हाथियों का प्राणान्त हो गया। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों कोई चतुराईपूर्वक उनका मर्दन कर रहा हो। जो लेट गए थे, उनके मुखपर फटकारों से वार हो रहे थे। गज दल के चिल्लाने पर भी उन्हें वापस निकलने का मार्ग नहीं दिखाई दिया। घबराये हुए हाथी एक एक कर मृत्यु को प्राप्त होने लगे। कुंभकर्ण के शरीर पर अनेक हाथियों का नाश होने लगा। उसकी नाभि में भी स्थान शेष न बचा। राक्षस त्राहि-त्राहि करने लगे। सहस्त्र वीर उसके शरीर में लटक गए। कुछ भ्रमित स्थिति में इधर उधर दौड़ने लगे। उनमें से कुछ राक्षस उसकी काँख में घिरकर मृत्यु को प्राप्त हुए। जो सामने हृदय के पास आये, वह नाक से आने वाली श्वासोच्छ्वास की वायु से बार-बार नाक के छिद्रों मे आ जा रहे थे। उनकी स्थिति वातचक्र में फँसने के सदृश हो गई थी। राक्षस थक कर चूर हो गए परन्तु कुंभकर्ण की निद्रा भंग नहीं हुई, तब स्त्रियों के संगीत के द्वारा उसे जगाने का निश्चय किया गया।

जगाने के लिए अप्सराओं की योजना– कुंभकर्ण को जगाने के लिए संगीत में निपुण नागकन्या, गंधर्व कन्या व राजकन्याओं को बुलाया गया। कुशलतापूर्वक नाना प्रकार का संगीत प्रस्तुत करने वाली खेंचरी व किन्नरियों को कुंभकर्ण के भवन में लाया गया। अलंकारों से सुसज्जित वे कन्याएँ सोने की भूमि से युक्त स्वर्णमन्दिर में, जहाँ कुंभकर्ण खर्राटे भर रहा था, उस स्थान पर आयीं परन्तु उसके खर्राटों के आगे संगीत निष्प्रभ हो गया। यह देखकर रावण ने दूसरे उपाय की योजना की। घृताची, रंभा, मेनका, नारायण दत्त उर्वशी को प्रमुखता प्रदान करते हुए अष्ट नायिकाएँ बुलवाईं। रावण ने उनसे कहा– "तुम लोग कुंभकर्ण को जगाओ अन्यथा तुम्हारे नाक कान काटकर, गर्दभ पर बैठाकर तुम्हें घुमाऊँगा। रावण के वचन सुनकर अप्सराएँ काँपने लगीं तथा शीघ्र कुंभकर्ण को जगाने के लिए उसके भवन पहुँची। उन्होंने अपनी वीणा में सुरों को साधकर रागानुराग में स्वर छेड़ा। विविध प्रकार की बोधप्रद रचनाएँ गाकर देखीं परन्तु कुंभकर्ण न जाग सका। जिस प्रकार सूर्य के समक्ष जुगनू निष्प्रभ हो जाता है, उसी प्रकार उन भीषण खर्राटों के समक्ष विविध कला से परिपूर्ण गायकों का गायन निष्प्रभ सिद्ध हुआ। समस्त कलाएँ क्षीण हो गईं परन्तु कुंभकर्ण नहीं जगा। इस कारण घृताची, मेनका व रंभा अत्यन्त भयभीत और उद्विग्न हो गईं। वे सोचने लगीं कि अगर वे कुंभकर्ण को नहीं जगा पाईं तो रावण नाक-कान काटकर स्त्री देह की दुर्गत करेगा तथा गर्दभ पर बैठाकर अपमानित करेगा। इस विघ्न का ध्यान आते ही उर्वशी सतर्क हुई। उसने अपने आत्ममूल नारायण का स्तवन प्रारम्भ किया।

उर्वशी ने अपनी आत्म-शक्ति को नारायण के पास स्वर्ग में भेजा। वह नारायण की स्तुति करते हुए कह रही थी– "प्राणियों में भूतात्मा तुम्हारी ही परात्पर सत्ता से प्राण धारण करता है, निमेष व उन्मेष अर्थात् नेत्रों के खुलने व बन्द होने का कार्य व्यापार तुम्हारे ही कारण होता है। भूत मात्र में वेदोक्त जो भूतात्मा है, हे भगवन् ! वह तुम्हीं हो। तुम्हारे ही कारण प्राणी नित्य विधियुक्त अपने कर्मों को करते हैं। तुम ही मन की उन्मन अवस्था हो। तुम ही बुद्धि का समाधि धन हो। तुम अभिमान में निरभिमान

हो। चित्त में तुम्हारा ही चिन्तन होता है। तुम प्राणों के आत्म प्राण, जीवों के जीव हो। कुंभकर्ण को निद्रा से जागृत करने के लिए कृपा करो। उसे जगाकर मेरा संकट दूर करो।" यह विनती सुनकर नारायण सन्तुष्ट हुए। अन्तर्यामी नारायण ने उर्वशी का गायन सुना। उन्होंने राक्षस के प्राणों में चेतना का संचार किया। तीव्र स्वर में खर्राटे भरते समय जो प्राणों की चंचलता थी उसे नियन्त्रित कर, हृदय में एकाग्रकर स्थापित किया। प्राणों की एकाग्रता ने चेतना की चिद्शक्ति से इन्द्रियवृत्ति को जागृत किया और देहस्फूर्ति का स्मरण दिलाया। देहस्फूर्ति के प्रभाव से नेत्र खुल गए, कान सुनने लगे, वाचा स्पष्ट बोलने लगी। प्राण नासिका से वापस आने पर समस्त कृतियों में सतर्कता आई। बुद्धि सक्रिय हुई। मन में संकल्प निर्मित हुए। एक निःशंक सुन्दरी कुंभकर्ण को चन्दन लगा रही थी। एक पखा झल रही थी। एक राक्षस को थपकियाँ दे रही थी। गीत वाद्यों के सुस्वर व स्त्रियों का मधुर गायन सुनकर कुंभकर्ण जागृत हुआ। वह अत्यन्त भयानक, क्रूर व उग्र दिखाई दे रहा था। उसकी दृष्टि अत्यन्त भयानक थी। कलिकाल भी उसके समक्ष थर-थर काँपता था। उसे जागृत देखकर स्त्रियाँ भाग गईं, सेना भी भागने लगी। कुंभकर्ण के जम्हाई लेते ही उसका फैला हुआ मुख पाताल विवर की भाँति दिखाई दिया। चमकती हुई विद्युत सदृश उसकी लाल जीभ थी। उसके दाँत विकराल थे। उसकी सतेज दृष्टि प्रलयाग्नि सदृश थी। उसकी रूप-दृष्टि, शरीर-यष्टि सभी भयानक थी। उस भयानक कुंभकर्ण को देखकर सुर और सिद्ध मन ही मन भयभीत हो गए। कुंभकर्ण के जागने का समाचार सुनाने के लिए राक्षसों ने लंकाभुवन जाकर रावण के सभास्थान में प्रवेश किया। रावण को दंडवत् प्रणाम कर हाथ जोड़कर "कुंभकर्ण जग गया है।" यह वार्ता सुनाई। उसी के साथ उर्वशी द्वारा किये गए चमत्कार के बारे में बताया कि "उसने वीणा सुसज्जित कर अपने सुस्वर गायन से महावीर कुंभकर्ण को जगा दिया।"

कुंभकर्ण की भूख— कुंभकर्ण के जागने की खबर सुनकर रावण दूतों से बोला— "कुंभकर्ण की भूख तीव्र होती है अतः उसे तृप्त होने तक भोजन कराने के बाद मेरे पास लाना।" अन्न का आहार शीघ्र नहीं भेजा जा सकता था, अतः अन्य आहार पहले भेज दिये गए। उसमें भेड़, सुअर, सियार, और ऊँट के झुंड थे। कुंभकर्ण वह झुंड निगलने लगा। भेड़ों को मुँह में डालते ही वे 'में-में' की ध्वनि करती हुई कान के मार्ग से बाहर निकल आती थीं। नाक में जाने से छींक आने लगती थी। छींक से पड़ने वाले छींटे सभा तक पहुँच गए। इतना खाकर भी वह तृप्त नहीं हुआ तत्पश्चात् उसने मृग और चीतल खाये। ऊँट और सुअर गले में जाते-जाते चिल्ला रहे थे, उन्हें निगला। जंगली भैंसों को निगल लिया, हाथी हाथ में आने पर ध्वज पताकाओं एवं महावत सहित उन्हें निगल लेता था। रावण को शंका हुई कि वह लंका को ही न उजाड़ दे। दूत ने कुंभकर्ण को दूर से ही बताया कि 'लंकाधीश रावण भेंट के लिए राह देख रहे हैं।' तब ज्येष्ठ भ्राता की आज्ञा पाकर कुंभकर्ण शीघ्र उठा। अत्यन्त उग्र दिखाई देने वाला कुंभकर्ण सभा को क्रूर लगने पर भी वह अपने भाई की आज्ञा का दास-सदृश पालन करता था।

कुंभकर्ण की भूख शान्त होना; निद्रा भंग करने पर क्रोध आना— कुंभकर्ण को असंख्य पशुओं का भक्षण करने पर उसे प्यास लगी। उसने मद्य के अनेकों घट जल्दी जल्दी पीकर समाप्त किये। सहस्र घट उसके लिए एक घूँट के सदृश होते थे। उसे पीते समय उसके गले से घड़घड़ाहट की ध्वनि निकलती थी। उस आवाज़ से ही राक्षसों के हृदय धड़कने लगते थे। उस समय ही नाना प्रकार के पक्वान्न रावण ने शीघ्र भेजे। करोड़ों राक्षस दौड़कर उन्हें ला रहे थे। उसमें चावल के पर्वत सदृश ढेर थे। उन्हें सीढ़ी पर चढ़कर राक्षसों ने कुंभकर्ण के मुँह में डाला। उसी प्रकार पक्वान्नों के पहाड़ भी

कुंभकर्ण के मुख में डाले। कुंभकर्ण उन्हें एक कौर में ही निगल डालता था। उसकी अभी तृप्ति नहीं हुई है, ऐसा देखकर राक्षस व रावण भयभीत हो गए। तब रावण ने सोचा कि इसे मांस का भोजन देना चाहिए। भूख से कुंभकर्ण का मुख फैला हुआ था। उसकी आँखें व जीभ अत्यन्त लाल थे। उसकी भूख तृप्त नहीं हुई थी। तब रावण ने मांस का भोजन तथा श्रेष्ठ मैरेयक नामक मद्य के करोड़ों हंडे भेजे। कुंभकर्ण को प्रसन्न करने के लिए उत्तम प्रकार के पदार्थ भेजता रहा। मांस के पदार्थ तथा मद्य के हंडे गटकने के बाद भी उसकी भूख शान्त नहीं हो रही थी, वह होंठ चाट रहा था।

रावण स्वयं आकर कुंभकर्ण से बोला– "रणभूमि में वानरगण एकत्रित हैं, उन्हें तथा राम-लक्ष्मण को खाकर तुम्हें पूर्ण तृप्ति मिलेगी।" रावण ने जानबूझ कर कुंभकर्ण को मैरेयक मद्य का प्राशन कराया था, जिससे वह पूर्ण तृप्त होकर डोल रहा था। सन्तुष्ट होने के कारण उसे अति आनन्द प्राप्त हुआ और वह शांत होकर बैठ गया। तब सेवक और प्रधान ने उसे साष्टांग प्रणाम किया। भूखे होने पर जो भी उसके पास जाता उसे वह निगल लेता था। उसे शांत बैठा देखकर उसका परिवार उसके पास गया। सेवक और प्रधान को देखकर कुंभकर्ण ने पूछा– "मुझे नींद से जगाने का क्या कारण है ? रावण तो स्वस्थ है, लंका राज्य के सम्बन्धी मेरे ज्येष्ठ बंधु सभी स्वस्थ हैं, तो फिर मुझे क्यों उठाया है ? मुझे कारण स्पष्ट बतायें। छोटे से कार्य के लिए लिए रावण मुझे नहीं उठायेगा। अतः किस कार्य के लिए मुझे उठाया, यह बतायें। अत्यन्त बड़ा संकट आने के कारण ही रावण ने मुझे उठाया होगा। रावण के शत्रु इन्द्र, चन्द्र, वरुण, कुबेर इत्यादि वीरों का रावण के सुख के लिए मैं संहार करूँगा। रावण के शत्रु की युद्ध में मैं होली जला दूँगा। तभी मैं सच्चा पराक्रमी व रावण का भाई कहलाऊँगा। रावण के हित के लिए प्रलयाग्नि को भी निगल जाऊँगा। शत्रुओं का समूह नष्ट कर दूँगा, तभी सच्चा भाई कहलाऊँगा।

प्रधान यूपाक्ष का निवेदन; कुंभकर्ण का क्रोध– कुंभकर्ण को क्रोधित देखकर उसका यूपाक्ष नामक प्रधान हाथ जोड़कर उससे संकट के सम्बन्ध में विनती करते हुए बोला– "देव, दानव, गंधर्व, गरुड़ादि पक्षी, सर्प, यक्ष आदि का हमें भय नहीं।, मनुष्यावतारी श्रीराम वानरों का समूह लेकर आया है। उसने रावण को युद्ध में अत्यन्त त्रस्त कर क्षीण कर दिया है। राघव द्वारा बाण चलाते ही रावण के प्राण चले जाते परन्तु राम ने उसे जीवनदान देकर छोड़ा है। रावण द्वारा रामपत्नी सीता का हरण करने के कारण क्रोधित होकर रघुनन्दन भीषण बाण सज्जकर रावण का वध करना चाह रहे थे परन्तु उस कृपालु रघुनाथ ने रावण को जीवित छोड़ दिया, उसे नहीं मारा। श्रीराम के अतिरिक्त किसी का भी रावण को भय नहीं है।" यह सुनते ही कुंभकर्ण क्रोधित होकर गर्जना करने लगा। श्रीराम से युद्ध करते हुए रावण दुःखी हो गया है, यह सुनकर कुंभकर्ण उत्तेजित होकर उठते हुए बोला– "राम और लक्ष्मण को मारकर तथा वानर गणों का निर्दलन करने के पश्चात् ही मैं स्वयं रावण की वंदना करने के लिए आऊँगा। वानरों का मांस और रक्त राक्षसों को देकर तृप्त करूँगा। राम व लक्ष्मण का मांस तथा रक्त मैं खाऊँगा। रावण के शत्रु का मर्दन कर, युद्ध को समाप्त कर, रावण को सुखी करने के पश्चात् ही मैं रावण को प्रणाम करने के लिए आऊँगा। कुंभकर्ण की यह गर्जना सुनकर मुख्य प्रधान महोदर हाथ जोड़कर उचित सलाह देते हुए बोला– "दशानन भेंट करने के लिए उत्सुक हैं अतः आप उनसे मिलकर, उनकी आज्ञा लेकर आनन्दपूर्वक युद्ध करें।" महोदर की सलाह सुनकर कुंभकर्ण सन्तुष्ट हुआ और प्रसन्नतापूर्वक रावण से मिलने के लिए निकला।

कुंभकर्ण और रावण की भेंट– रावण से भेंट करने के पश्चात् निश्चित ही युद्ध करना पड़ेगा, यह सोचकर कुंभकर्ण ने स्वयं महामद्य प्राशन किया। सहस्रों घड़े मद्य वह पी गया। इसके अतिरिक्त विविध पदार्थों से युक्त पर्याप्त भोजन वह कर चुका था, आठ सौ भैंसे, इक्कीस सहस्र पशु उसने खाये थे। दावाग्नि में जिस प्रकार घास जलने में क्षण-मात्र भी नहीं लगता, उसी प्रकार वह जो भी खाता था तुरन्त भस्म हो जाता था। महाबाहु कुंभकर्ण पूरी तरह तृप्त होकर स्वयं गर्वपूर्वक रावण से मिलने के लिए चल पड़ा। मद से, बल से तथा गर्व से उन्मत्त होकर उसने राजगृह में प्रवेश किया। रावण को समक्ष देखकर उसने दंडवत् प्रणाम किया। दोनों भाइयों की भेंट हुई और वे दोनों गहन विषय पर विचार-विमर्श करते रहे.

अध्याय २१

[रावण एवं कुंभकर्ण का वार्तालाप]

कुंभकर्ण जागृत होकर जब रावण से मिलने के लिए गया, तब उसकी उग्रता देखकर वानर भयभीत हो उठे। मेघों की मेघ मालाएँ कुंभकर्ण के गले में सुशोभित हो रही थीं। उसका मुकुट गगन को छू रहा था। उसके कारण सूर्य की तेजस्वी किरणें छिप रही थीं। विकराल भयानक मुख; प्रलय के तेज से युक्त अत्यन्त उग्र नेत्र, इस प्रकार उसका भयंकर रूप देखकर वानर-गण त्रस्त हो गए। कुंभकर्ण की उग्रता को देखकर वानरगण श्रीराम की शरण में आये। कोई मूर्च्छित हो गया तो कोई भयभीत हुआ। किसी वानर से कुछ बोला नहीं जा रहा था। कोई डर से कोने में छिपा जा रहा था। कोई वानर गिर पड़ा तो किसी का भय से मुख सूखने लगा। कोई समुद्र की ओर भागा तो कोई जंगल की ओर। जो प्रसिद्ध योद्धा थे, उन्होंने कुंभकर्ण से युद्ध करने के लिए श्रीराम की आज्ञा माँगी।

श्रीराम का प्रश्न; विभीषण का निवेदन– कुंभकर्ण का दीर्घ मुकुट और उसका भयंकर मुख देखते ही श्रीराम ने धनुष पर बाण चढ़ाया। पहले जिसके बारे में पुराणों में भी नहीं सुना था, ऐसा विशालकाय वीर अचानक श्रीराम को दिखाई पड़ा अतः आश्चर्यचकित होकर श्रीराम ने विभीषण से पूछा– "लंका में कोई अत्यन्त विशालकाय विकराल स्वरूप वाला दिखाई पड़ रहा है, जिसकी उग्रता देखकर मेरे वानर गण भाग गए। मुकुट, कुंडल धारण किया हुआ लाल नेत्रों वाला यह कौन है, मुझे बताओ।" श्रीरघुनाथ द्वारा ऐसा पूछने पर बुद्धिमान विभीषण ने कुंभकर्ण का पूर्ववृत्तान्त श्रीराम को बताया– "यह विश्रवा का पुत्र कुंभकर्ण नाम से प्रसिद्ध है। पैदा होते ही इसने प्रजा का भक्षण किया। तब भी इसे तृप्ति नहीं हुई। इस महापराक्रमी की जीभ फिर भी खाने के लिए आतुर थी। स्वर्ग के देवता, मृत्युलोक के मनुष्यगण, सभी पक्षीगण, सिद्ध, चारण, सम्पूर्ण प्राणिमात्र का इसने भक्षण किया। प्राणि-मात्र पर आया हुआ संकट देखकर प्रजा इन्द्र सहित ब्रह्मदेव के पास गई और उन्हें अपना दुखड़ा सुनाया। 'कुंभकर्ण सभी प्राणियों को खा रहा है। प्राणि-मात्र का घात करने के लिए आपने कुंभकर्ण के रूप में अच्छा पोता बनाया। ब्रह्म-सृष्टि का क्षय होने के लिए ही तो यह कुंभकर्ण का भोजन संकट नहीं है ? कुंभकर्ण भोजन कर इक्कीस रातों में ही सारी सृष्टि शून्य कर देगा।' इन्द्र ऐसी प्रार्थना करते हुए आगे बोला– 'नित्य करोड़ों प्राणियों को खाकर भी यह तृप्त नहीं होता। अतः अपनी भूख के लिए यह समस्त सृष्टि का नाश कर देगा।'

कुंभकर्ण को ब्रह्मदेव का शाप– इन्द्र का निवेदन सुनकर परमइष्ट ब्रह्मदेव सावधान हो गए। उन्होंने शीघ्र कुंभकर्ण को देखने के लिए बुलाया। विकराल एवं भयंकर उग्र कुंभकर्ण को देखकर चतुरानन ब्रह्मा आश्चर्यचकित हुए। पेट के लिए प्राणियों का वध करने वाले कुंभकर्ण का पुलस्त्य ने निर्माण किया। अतः स्वयं प्रजापति ब्रह्मा ने कुंभकर्ण को शाप दिया। 'तुम्हारी देह अत्यन्त लालसापूर्ण है। तुम छह महीनों तक निद्रिस्थ रहोगे तत्पश्चात् एक दिन के लिए जागोगे, तभी तुम्हें भूख की अनुभूति होगी.' ब्रह्मा के इस शाप के कारण वह सुप्तावस्था में ही रहता है। आपसे युद्ध करने के लिए रावण ने कुंभकर्ण को जगाया है। उसे देखते ही वानर भाग खड़े हुए, इसका तात्पर्य है कि उसके समक्ष युद्ध करने का पराक्रम वानरों में नहीं है। आज तक इन्द्र, चन्द्र, कुबेर, वरुण, विद्याधर, सिद्ध व चारणों से युद्ध कर कुंभकर्ण ने सुर-गणों पर विजय प्राप्त की है। इसने दैत्य, भयंकर दानव, यक्ष, राक्षस, गंधर्वगण, पाताल के सर्प, मानव इत्यादि सभी पर विजय प्राप्त की है। आज तक इस कुंभकर्ण को किसी ने भागते हुए नहीं देखा। देव, दैत्य एवं कोटि-कोटि दानवों को इसने युद्ध में संकट में डाल दिया है। ऐसा यह भीषण कुंभकर्ण भूख से पीड़ित है। अतः वह गरजते हुए वानरों को खाने के लिए आयेगा। वह युद्ध भी करेगा।" विभीषण का निवेदन सुनकर श्रीराम हँसते हुए बोले– "मेरे होते हुए कुंभकर्ण वानरगणों को कैसे खाएगा ? "

श्रीराम आगे बोले - "एक-एक वानर वीर कुंभकर्ण को संत्रस्त कर सकता है। युद्ध करने पर ही उसका पराक्रम समझ में आयेगा। हे विभीषण, कुंभकर्ण स्थूल रूप में मांस-हाड़ से बना दिखाई दे रहा है, इसीलिए तुम इसे पराक्रमी कहते हो, परन्तु वानरों के एक ही प्रहार से वह शिथिल हो जायेगा।" तत्पश्चात् श्रीराम ने सेनापति नील को बुलाकर बताया कि वानर सेना के सभी वीर योद्धाओं को सतर्क कर युद्ध के लिए तैयार करें। शिला, पर्वत, शिखर, वृक्ष और पाषाण को हाथों में लेकर सुसज्जित होकर सतर्क रहें। ऐसा सभी को बतायें। वे लंकाभुवन को घेर लें। उसमें से रावण, कुंभकर्ण तथा सेना सहित इन्द्रजित् के आने पर मैं सबसे युद्ध करूँगा।" श्रीराम ने गरजते हुए ऐसा कहा, फिर भागते हुए वानर वीरों को अभय देते हुए दृढ़तापूर्वक वानर सेना सुसज्जित की। वे बोले– "मेरे होते हुए वानरों को कौन मार सकता है ?" नील ने श्रीराम के वचन सुने। भागकर जाने वाले वानरों में भी उत्साह का संचार हुआ। भयभीत वानरों का सामर्थ्य सौ गुना बढ़कर वे युद्ध में रावण को संत्रस्त करने के लिए तैयार हुए। श्रीराम का भाषण सुनकर सेनापति नील ने गर्जना की, जिससे वानरगण आनन्दित हुए। वानर उड़ान भरकर त्रिकूट पर चढ़ गए।

कुंभकर्ण व रावण की भेंट– दूसरी ओर लंका में रावण से मिलने के लिए कुंभकर्ण आनन्दपूर्वक चल पड़ा। वह अपने भ्राता से मिलने के लिए उतावला हो रहा था। दशानन रावण उस समय विमान सदृश सिंहासन पर बैठा था। कुंभकर्ण ने उसे देखते ही दंडवत् प्रणाम किया। रावण ने उठकर कुंभकर्ण को हाथों से पकड़कर आलिंगनबद्ध किया। रावण सिंहासन पर आरूढ़ हुआ तब कुंभकर्ण ने स्वयं रावण के चरणों पर मस्तक रखकर वंदना की। दोनों भाइयों में परस्पर अनन्य प्रेम था। रावण ने पुनः सिंहासन से उठकर कुंभकर्ण को आलिंगनबद्ध किया। दोनों ने ही अत्यन्त समाधान एवं सुख का अनुभव किया। रावण ने प्रसन्न होकर अपने समान श्रेष्ठ आसन कुंभकर्ण को बैठने के लिए दिया। उस आसन पर बैठकर रावण की ओर देखते हुए कुंभकर्ण ने पूछा - "मुझे उठाने का क्या कारण है ? ऐसा कौन सा भीषण संकट आन पड़ा, वह मुझे बताओ। लंकानाथ, तुम्हारे लिए मैं सुरासुरों का नाश

करूँगा। पर्वतों को चूर चूर कर दूँगा, पृथ्वी को विदीर्ण कर डालूँगा। किसी ने एक भी अपराध किया हो तो उसे मरा हुआ समझो। मेरे हाथों उसका युद्ध में अन्त निश्चित है। किसी प्रकार की भी शंका मन में न रखो। देव, दानव, मानव, यक्ष, किन्नर, गंधर्व और समस्त प्राणियों को मैं निगल जाऊँगा। तुम मेरा पराक्रम अवश्य देखो। यहाँ सुरासुरों को खाकर मैं तृप्त नहीं हूँ। अत: आगे मैं क्या करूँगा, उसे ध्यानपूर्वक सुनो। तुम्हारे सभी शत्रुओं को खाने के लिए मैं क्षुधित हूँ। जिसे भी तुम कहोगे, उसे मैं निगल जाऊँगा" कुंभकर्ण के वचन सुनकर रावण प्रसन्न हुआ। वह बोला– "मैं मरते-मरते बचा हूँ। कुंभकर्ण, मानों यह मेरा नया जन्म हुआ है।"

रावण का कुंभकर्ण को युद्ध स्थिति बताना– रावण बोला– "कुंभकर्ण सुनो। तुम्हारे सोने के पश्चात् मुझे श्रीराम का भय लगने लगा। जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति सभी अवस्थाओं में मैं भयभीत रहता था। श्रीराम के बाणों ने युद्ध में मुझे संत्रस्त कर दिया। दिवस-रात्रि मैं भय से ग्रस्त रहता था। श्रीराम मेरे प्राणों का अन्त कर देगा, कुंभकर्ण तुम यह निश्चित समझो। अश्व, रथ, सारथी, ध्वज सभी का नाश कर उसने मेरा मुकुट भूमि पर गिरा दिया। मुझे विरथ कर दिया, मेरी शक्ति क्षीण कर दी परन्तु श्रीराम ने युद्ध में मुझे मारा नहीं। उसके चंगुल में फँसने पर भी उसने मुझ पर कृपा कर मेरे प्राण नहीं लिए। मुझे जीवनदान देकर छोड़ दिया। मैं लंकाधीश रावण, मुझे स्वयं पर बहुत गर्व था परन्तु राम ने मुझे विरथ कर खुले बालों से नग्नावस्था में मुझे लंका वापस भेजा। इससे पहले दानव, मानव, सुरगण अथवा उनसे भी शूर किसी व्यक्ति ने मेरा ऐसा अपमान नहीं किया था परन्तु श्रीराम ने मुझे तृणवत् तुच्छ कर दिया। और एक आश्चर्य सुनो– श्रीराम ने समुद्र में पाषाणों को तैरा दिया। उसका पुल बना कर वह लंका में आया है। उसके उस सेतु-मार्ग से उसके पीछे करोड़ों वानर लंका में आये हैं। उन वानरों ने लंका दुर्ग घेर लिया है, यह तुम समक्ष स्वयं ही देखना।

वन, उपवन, सर्वत्र वानरों का समूह विद्यमान है। दुर्ग को करोड़ों वानर घेरे हुए हैं। दूसरी ओर लंका त्रिकुट पर अनेक वानर वीर योद्धा चढ़े हुए हैं। इन वानरों से युद्ध करते हुए विरुपाक्ष, अकंपन एवं प्रधान प्रहस्त को वानरों ने क्षण भर में मार डाला। युद्ध में अति भयंकर सिद्ध होने वाले मेरे राक्षस वीरों का वध करने के लिए राम और लक्ष्मण अपने स्थान से उठे भी नहीं, समस्त रणक्रंदन वानरों ने किया। सुग्रीव अंगद इत्यादि वानर श्रेष्ठ भी युद्ध के लिए नहीं आये। वानरों ने ही तीन पराक्रमी राक्षस वीरों का वध करने की ख्याति अर्जित की। विरुपाक्ष और अकंपन को तो अकेले हनुमान ने ही मार डाला। नील ने क्षण-मात्र का भी विलम्ब न करते हुए प्रहस्त प्रधान को मार डाला। उसी नील ने मुझसे युद्ध कर मुझे तृणवत् तुच्छ बना दिया। उन वानरों के पराक्रम की इतनी लम्बी गाथा है। वे वानर अत्यन्त धैर्य व साहसपूर्वक युद्ध करते हैं। मेरे प्रमुख राक्षस सेनानियों को वानरों ने मार डाला परन्तु एक भी वानर नहीं मरा। इनसे भीषण युद्ध करने पर भी वे नहीं मरते। घावों से जर्जर हुए वानर अपने हाथों से श्रीराम की चरण धूल लगाते हैं तथा उसी के साथ ही सारा वानर-समूह उठकर तुरन्त हर्षपूर्वक नाचने लगता है। अपार राक्षस मर जाते हैं परन्तु एक भी वानर नहीं मरता, इसी का मुझे आश्चर्य होता है। अब श्रीराम से वैर होने का क्या कारण हुआ, अगर यह प्रश्न तुम करते हो तो उस विषय में पूरी कथा तुम्हें सुनाता हूँ, तुम उसे सुनो"।

रावण द्वारा मदद की विनती करना– रावण बोला– "तुम्हारे निद्रिस्थ होने के पश्चात् मैं पंचवटी गया। वहाँ मारीच द्वारा मृग का कपट कर मैंने सीता का हरण किया। उससे क्रोधित होकर

रघुनंदन वानर सेना एकत्र कर, सेतु-बंधन कर लंका आया। पराक्रम ही जिसका वाहन है, ऐसे रघुनंदन को लंका में लाने वाला जो मुख्य योद्धा है, वह है वायुनंदन हनुमान। उसने अशोक वन का विध्वंस कर रणक्रंदन किया। वनपाल, किंकर, पाँच सेनापति, प्रधान-पुत्र, महावीर जम्बुमाली और प्रमुख रूप से अक्षय कुमार का वध कर दिया। अक्षय कुमार का बदला लेने के लिए इन्द्रजित् जब युद्ध के लिए गया, तब उसे भी युद्ध में आहत कर हनुमान ने सेना का भी नाश कर दिया। अन्त में ब्रह्मपाश की सहायता से हनुमान को बाँध कर लंका लाया गया। भ्राता कुंभकर्ण ! आगे इस मारुति ने किस प्रकार पराक्रम किया, उसके विषय में जितना वर्णन किया जाय, कम ही है। लंकाभवन जलाकर मुझे अपमानित कर, असंख्य राक्षस मारकर, वह किष्किंधा वापस लौट गया। किष्किंधा जाकर स्वयं रघुनंदन को लेकर आया है और लंकाभुवन को घेरकर अब मेरा वध करने के लिए उद्यत है। इसके पहले कभी मेरी इतनी दयनीय अवस्था नहीं हुई। तुम मेरे सखा हो, बंधु हो, युद्ध में सहायता करने वाले हो, इसीलिए तुम्हें मैंने यह सब बताया है।"

तत्पश्चात् रावण कुंभकर्ण से विनती करते हुए बोला– "हे सुबंधु, सेतु मार्ग से वानर-वीर आये हैं और उन्होंने अपने लोगों को घेर लिया है। लंका नगरी का विध्वंस कर प्रत्येक द्वार को घेर लिया है। लंकाभवन भी तहस नहस कर दिया है। युद्ध में अपने सुहृद आप्तजनों को मार डाला है। अपने भंडार वानरों के कारण क्षीण हो गए हैं। इतना भयंकर संकट आन पड़ा है। अब तुम्हीं हमारी व लंका के आबाल वृद्धों सहित कुल की रक्षा करो। तुमसे मुझे बहुत आशाएँ हैं। तुम्हारे ऊपर विश्वास भी है, अतः शत्रु समुदाय को अपना ग्रास बनाकर तुम हमारे दुःख व क्लेश का निवारण करो। मैं युद्ध में पूरी तरह से पीड़ित हो गया हूँ अतः अब तुम मेरी सहायता करो।" यह कहते-कहते रावण विलाप करने लगा। वह बोला– "तुम तो महापराक्रमी हो अतः मेरे श्रम का निवारण कर उत्तम प्रकार से मेरी सहायता करो, जिससे मैं सुखी हो सकूँ। सम्पूर्ण कथा इस प्रकार है। वैर का मुख्य कारण सीता है। हे सुबंधु, यह मूल तात्त्विक बात ध्यान में रखो"। रावण के ये वचन सुनकर कुंभकर्ण ने उससे पूछा– "क्या उस सीता का तुमने उपभोग किया ?" इस पर रावण ने नकारात्मक उत्तर दिया।

रावण का स्पष्टीकरण; कुंभकर्ण की सूचना– कुंभकर्ण रावण से बोला– "हे लंकानाथ, मुझे किस कार्य के लिए उठाया ? सीता का हरण करने से जो संकट उत्पन्न हुआ है, उसे बताने के लिए ? जो सीता तुम हरण कर लाये, उसका उपभोग किया ? राम के अतिरिक्त सीता अन्य किसी के साथ नहीं रमती।" कुंभकर्ण और रावण के इस प्रकार प्रश्नोत्तर चल रहे थे। तब कुंभकर्ण रावण से बोला– "रूपरेखा, लक्षण, हावभाव, कटाक्ष, सुसज्जित धनुष, गहन गंभीर शरीर रचना वाले श्यामसुन्दर कमलनयन श्रीराम का स्वरूप धारण कर स्वयं श्रीराम बनकर सीता का उपभोग न करने का क्या कारण है ? हे रावण, तुम नाना प्रकार की कपट विद्या जानते हो, तब स्वयं श्रीराम बनकर सीता का उपभोग करने में विलम्ब क्यों किया ?" इस प्रश्न पर स्पष्टीकरण देते हुए रावण बोला– "कुंभकर्ण, मैं तुम्हें जो तात्त्विक बात कह रहा हूँ, वह ध्यानपूर्वक सुनो। श्रीराम के समक्ष कपट नहीं चलता। कपट द्वारा सीता का उपभोग नहीं किया जा सकता। मेरे स्वयं श्रीराम बनने पर रावण का वहाँ स्थान ही नहीं रहा। वहाँ भोग्य-भोक्ता, ध्येय-ध्याता, कर्म-कर्ता ये सब अवस्थाएँ ही नष्ट हो जाती हैं। मूलतः वहाँ सीता और भोक्ता रावण का अस्तित्व ही नहीं रह जाता। वह अवस्था ऐसी होती है, जहाँ दृष्टा, दृश्य, दर्शन कुछ भी शेष नहीं रह जाता। धर्म-अधर्म लक्षण, कर्म-क्रिया आचरण, आत्म-पर भाव सभी अस्तित्व हीन हो जाते हैं। यथार्थ रूप से श्रीराम बनने पर जन, विजन, भूत, महाभूत सब राम-मय हो जाते हैं। श्रीराम ही

पवित्र जल, अग्नि, दशदिशा बन जाते हैं। श्रीराम बनने पर मूलत: वहाँ सीता का अस्तित्व नहीं रह जाता अत: मैं किसका उपभोग करूँ, वहाँ भोक्ता रावण भी नहीं रह जाता।"

रावण का स्पष्टीकरण सुनकर कुंभकर्ण विलाप करने लगा। श्रीराम परिपूर्ण परब्रह्म है, उसके विरुद्ध जाने पर कुल का नाश निश्चित है। श्रीराम से कपट नहीं चलता, सीता का कपट से उपभोग नहीं किया जा सकता, यह वह समझ गया। तब रावण को सलाह देते हुए कुंभकर्ण बोला– "लंकानाथ रावण, तुम सब जानते हुए वृथा विरोध क्यों कर रहे हो ? कपट से स्वयं श्रीराम बनकर भी तुम उसकी थाह नहीं पा सकते। जब तुम स्वयं उसका प्रेमपूर्वक ध्यान करोगे, तो तुम्हें आनन्द और सुख की प्राप्ति होगी। जिसने समुद्र में पाषाण को तैरा दिया, उसकी शरण में अवश्य जाना चाहिए। श्रीरघुनंदन को अपना सखा बनाकर, सुख सम्पन्नतापूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहिए। हे लंकापति, श्रीराम के स्वरूप का अनुभव तुम्हें हो चुका है। अत: चित्त का विरोध-भाव त्याग कर उसकी शरण में जाओ। श्रीराम की शरण में जाने पर स्वप्न में भी जन्म-मृत्यु का चक्र नहीं रहेगा। समस्त विघ्नों को निर्विघ्न कर सुख-सम्पन्नता का उपभोग करो। श्रीरघुनाथ की शरण में जाने पर भय से निर्भयता की प्राप्ति होती है। काकुत्स्थवंशी श्रीराम से मैत्री करने पर तीनों लोकों में कीर्ति फैलती है।" रावण द्वारा कुंभकर्ण को जगाने के पीछे उद्देश्य यह था कि कुंभकर्ण शत्रु का मर्दन करेगा, परन्तु उसके द्वारा श्रीराम की शरण में जाने की सलाह देने पर रावण उद्विग्न हो उठा।

रावण का क्रोध; कुंभकर्ण की दूरदर्शिता– पहले विभीषण ने निश्चयपूर्वक कहा था कि 'श्रीराम की शरण में जायँ' उसी प्रकार अब कुंभकर्ण ने भी यही कहा, जिससे रावण अत्यन्त दु:खी हो गया। कुंभकर्ण का उत्तर सुनकर रावण को अत्यन्त क्रोध आया। आँखें गोल-आकृति में नँचाते हुए विकराल भौंहों को चढ़ाते हुए उसने क्रोधपूर्ण दृष्टि से कुंभकर्ण की ओर देखा। उसके मन में क्रोध उफन रहा था परन्तु कुछ बोलने के विषय में वह संशकित था। क्रोधपूर्ण वचन बोलने पर विभीषण की तरह ही अगर कुंभकर्ण भी श्रीराम की शरण में गया तो मेरी रक्षा कैसे होगी ? इसीलिए अपने क्रोध पर नियन्त्रण करते हुए कुंभकर्ण से वह मृदु शब्दों में बोला– "कोई गुरु, शिष्य को जिस प्रकार आज्ञा देता है, उसी प्रकार तुम मुझे स्वयं से छोटा मानते हुए आज्ञा दे रहे हो। मैं ज्येष्ठ हूँ तुम कनिष्ठ हो, इसका ध्यान न रखते हुए अपने ज्ञान का गर्व धारण कर गुरु के सदृश मुझे तुम कार्य कैसे किया जाय, यह बता रहे हो। तुम शत्रु से युद्ध कर उसका निर्दलन करोगे, ऐसा मुझे तुम पर पूरा भरोसा था। अन्त में तुम भी श्रीराम की शरण में जाने के लिए कह रहे हो ? क्यों व्यर्थ में अधिक बोल रहे हो ? उचित समय देखकर मेरी सहायता के लिए तुम राम से युद्ध करो। तुम कई दिन से बुभुक्षित हो, निद्रा से अभी जागे हो। अत: श्रीराम व वानरों का पूर्णरूप से संहार कर अपनी भूख शांत करो।"

कुंभकर्ण अत्यन्त ज्ञानी था। रावण को क्रोधित देखकर उसका समाधान करने के लिए वह बोला– "हे दशशिर रावण, श्रीराम व नर वानरों को देखकर मैं भी थर-थर काँप रहा हूँ, वास्तव में हमारी मृत्यु का समय समीप है। नारद के वचन त्रिवार सत्य हैं कि श्रीराम के बाण चलने पर रावण, इन्द्रजित, कुंभकर्ण और राक्षस-कुल का सर्वनाश होगा।" कुंभकर्ण द्वारा ऐसा कहने पर रावण ने उससे पूछा– "नारद के वचन त्रिवार सत्य हैं, यह सच है परन्तु नारद से तुम्हारी भेंट कहाँ हुई ? उससे तुमने वार्तालाप कब किया ?"

अध्याय २२

[रावण-कुंभकर्ण संवाद]

नारद संवाद-लक्षण मूल कथा (वाल्मीकि) रामायण में है, जो कुंभकर्ण रावण को बता रहा है। "शत्रु का दमन करने में अत्यन्त समर्थ हे रावण, जो कथा मैंने नारद मुख से सुनी, वह तुम ध्यानपूर्वक सुनो। एक बार नित्य की तरह छह महीनों बाद मैं जागा। तत्पश्चात् तुरन्त मैंने उत्तमोत्तम अन्न-पक्वान्न का भोजन किया; परन्तु फिर भी मेरी तृप्ति नहीं हुई, तब मैं वन में गया। वन में मुझे नाना प्रकार के प्राणी खाने को मिले, जिनसे मैं सन्तुष्ट हुआ। मुझे अत्यन्त विश्रान्ति प्राप्त हुई। फिर वहीं एक विस्तीर्ण चट्टान पर ठंडीछाँवयुक्त स्थान मुझे दिखाई दिया। मैं शान्ति से वहाँ लेटकर आकाश की ओर देखता रहा। तभी ब्रह्मवीणा की झंकार करते हुए, रामनाम का उच्चारण करते हुए, आकाश मार्ग से आते नारद मुनीश्वर मुझे दिखाई दिए। दिव्य चन्दन का लेप किये हुए, मस्तक पर त्रिपुंड बना हुआ, दिव्य वनमाला गले में डाले हुए, आत्मानन्द से परिपूर्ण वे डोलते हुए आ रहे थे। चन्द्र-सूर्य भी जिसके तप के तेज से ढके जा रहे थे, ऐसे नारद मुनि आकाश से आते दिखाई दिए।"

नारद द्वारा देव सभा का वृत्तान्त कथन– नारद ने जब मुझे देखा तब वे आकाश में ही क्षणभर के लिए ठिठके और फिर तुरन्त पृथ्वी पर उतर कर मेरे समीप आये। मैंने शीघ्र साष्टांग दंडवत् प्रणाम कर उनकी चरण-वंदना की और उन्हें चट्टान पर बैठाया। उनके स्थानापन्न होने के पश्चात् मैंने उनसे पूछा- "आप कहाँ से आ रहे हैं और इसके पश्चात् कहाँ जायेंगे ?" मेरे द्वारा ऐसा प्रश्न पूछे जाने पर नारद खिलखिला कर हँसे। उन्होंने सकारण उसका रहस्य बताया। वे बोले– "मेरु पर्वत पर देवताओं की सभा में आपके भय से भयभीत हुआ सारा समाज एकत्र था और रावण-वध का उपाय पूछने के लिए आने वालों में देवता, दानव, मानव, यक्ष, सर्प, ऋषि, गंधर्व, ब्रह्मा, विष्णु, सदाशिव इत्यादि सभी लोग थे।" नारद ने उसके आगे यह भी बताया कि "रावण वध का उपाय तथा रावण द्वारा हुए अन्याय के बारे में वहाँ एकत्र देव समुदाय में जो चर्चा चल रही थी, वह इस प्रकार थी उसने इन्द्र को बन्दी बनाया तथा तैंतीस कोटि देवताओं को भी बन्दी बना लिया। रावण ने युद्ध में कुबेर को जीत लिया, यम और वरुण की दयनीय स्थिति कर दी। उसने याज्ञिक और यज्ञ का विध्वंस किया। धार्मिकजनों व अग्निहोत्री ब्राह्मणों का वध कर दिया। इस प्रकार ऐसे अनेक अन्याय लंकेश ने किये हैं।"

'चैत्रवन, नन्दनवन जैसे देवताओं के उद्यानों का विध्वस कर स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करने के लिए अशोक वन को विस्तृत किया। देव स्त्रियाँ, असुर स्त्रियाँ, नागकन्या, पद्मिनी प्रिया आदि को बलपूर्वक पकड़ कर लाया, उसके अत्याचार की मुख्य जड़ यही है। परस्त्री का हरण अत्यन्त कठोर अन्याय है। इसीलिए सभी रावण का मरण चाहते हैं।' उस समय ब्रह्म देव बोले– "मेरे वचनों का तात्पर्य यह है कि अगर सुरासुरों का पूरा समुदाय भी एकत्र हो गया तब भी दशकंठ रावण को नहीं मार सकता, वह अवध्य है परन्तु स्त्रीहरण होने पर नर-वानर अगर उस स्त्री का पक्ष लेकर आये तो दशानन रावण की तत्काल मृत्यु होगी।" ब्रह्मवाणी सत्य है, सुरासुरों द्वारा रावण अवध्य है। ऐसा उसे ब्रह्मा का वर है। अब ब्रह्मदेव ही कह रहे हैं कि नर वानर ही इसका वध करेंगे। इसके अतिरिक्त यह भी कहा कि पद्मनाभ विष्णु दशरथ के पुत्र होंगे। चार पुरुषार्थों का व्यूह अर्थात् राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न हैं। युद्ध में रावण को संत्रस्त करने के लिए सभी सुरवर भयंकर वानर समूह बनकर राक्षसों का वध करेंगे।

वानर श्रीराम के सहायक और श्रीराम वानरों के रक्षक हैं। ब्रह्म देव ने फिर देवताओं को निश्चित नियम बताते हुए कहा– ''वानर गण एकत्रित होकर युद्ध में राक्षसों का संहार करेंगे। श्रीराम रावण का बंधु, पुत्र व सेना सहित वध करेगा। रावण-पुत्र इन्द्रजित् अत्यन्त कपटी है। जब वह निकुंबला में जारण-मारण विधि कर रहा होगा, तब सौमित्र लक्ष्मण अपने पुरुषार्थ प्रताप से इन्द्रजित् का वध कर देगा। नर वानर दोनों मिलकर राक्षसों को निःसंतान कर देंगे।'' ऐसा विरंचि (ब्रह्म) का वरदान है। ब्रह्मवचन मिथ्या नहीं हो सकता। ब्रह्मदेव वरदान को स्पष्ट शब्दों में बताकर स्वयं अदृश्य हो गए। वही नर वानर योद्धा लंका आये हैं। कुंभकर्ण ने नारद-मुनि द्वारा बताया गया सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तारपूर्वक बताकर ब्रह्मदेव का वरदान भी रावण को सुनाया।

सीता लौटाकर शरणागति की सलाह देना– तत्पश्चात् कुंभकर्ण रावण से बोला– ''हमारा नाश होना है, इसीलिए पाषाण समुद्र में तैर गए। हे रावण ! हमारी मृत्यु आ गई है, यह निश्चित समझो। नारद के वचन मिथ्या नहीं हो सकते। उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि ये वानर गरजते हुए लंका पर चढाई करने आये हैं। राक्षस मर रहे हैं और वानर नहीं मरते, यह तुम्हीं ने मुझे अभी बताया। इसका तात्पर्य है कि काल भी रघुनाथ की सहायता कर रहा है। हे रावण, यह निश्चित है कि श्रीराम परब्रह्म परमात्मा स्वरूप है; अतः उससे वैर न करो। श्रीराम को सीता अर्पित कर हम सुख का अनुभव करें। राक्षस मरते हैं, वानर नहीं मरते- यह आत्मत्व का अनुभव है। समुद्र में पाषाण तैर रहे हैं, यह ईश्वरत्व का दूसरा अनुभव है। जिसने शिव धनुष तोड़ दिया, उसके समक्ष कोई भी पराक्रम नहीं चलता। श्रीराम की ओर विरोधी दृष्टि से देखने पर सर्वांग थर-थर काँपता है। तुम श्रीराम से युद्ध करते हुए प्राणान्त होने सदृश क्षीण हो गए; उस श्रीराम ने तुम्हें युद्ध के प्रसंग में जीवन-दान दिया है अतः तुम्हें उसकी शरण में जाना चाहिए। आत्मसत्ता, ईश्वरसत्ता उस नित्य श्रीराम के आधीन है। उससे विरोध नहीं किया जा सकता। अतः सीता उसे अर्पित कर उससे मैत्री कर लो। उसे दंडवत् प्रणाम कर सीता अर्पित करते हुए श्रीराम की शरण में जाने से सदैव सुख सम्पन्न रहोगे। श्रीराम की शरण में जाकर मुख्य रूप से अपने प्राण बचाओ। उसके द्वारा ही सम्पूर्ण कुल की रक्षा होगी हम भी मृत्यु मुख में जाने से बच जाएँगे। श्रीराम की शरण में जाने से स्वप्न में भी जन्म-मृत्यु का चक्र नहीं रहता। विघ्न-निर्विघ्न के रूप में परिवर्तित होकर सुख-सम्पन्नता प्राप्त होगी। सीता सती, श्रीराम की ही है अतः तुम्हें स्वयं उसे श्रीराम को अर्पित करने में कैसा संदेह है। हे लंकानाथ, निष्कारण विरोध क्यों करते हो ?'' कुंभकर्ण की ये सलाह सुनकर रावण कुछ न कहते हुए चुप रहा। वह महादुःखी होकर दुविधा में पड़ गया। वह अत्यन्त उद्विग्न तथा चिन्ताग्रस्त था।

रावण का मनोगत व उसकी गर्वोक्ति– रावण मन ही मन विचार करने लगा। उसने सोचा– 'जिसके सामर्थ्य के बल पर युद्ध करना है, वही कुंभकर्ण मुझसे कह रहा है कि सीता, राम को अर्पित कर, उसकी शरण में जाऊँ। विभीषण ने भी इसी उद्देश्य से नाना प्रकार की बातें कहकर, अनेक उपायों की योजना कर श्रीराम की शरण में जाने के लिए ही कहा।' ऐसा मन में विचार कर रावण क्रोधपूर्वक सामने बैठे कुंभकर्ण से बोला– ''तुम निद्रा के कारण ज्ञानी होकर बड़ी चपलता से बोलने लगे हो। अरे, विष्णु, विष्णुरूप में होने पर भी मेरे समक्ष युद्ध के लिए नहीं आता तो विष्णु के अपने तुच्छ मनुष्य रूप में आने पर उसका भय कैसा ? यह मनुष्य विष्णु है, ऐसा स्वयं ही कहता है। मात्र ऐसा कहने पर ही तुम स्वयं भी डर रहे हो और मुझे भी डरा रहे हो। तुम बड़े पुरुषार्थी हो गए हो। अरे, मनुष्य तो अपना भोजन है। हम इच्छानुसार उनका भक्षण करेंगे परन्तु तुम तो उनके डराने से भयभीत हो, इससे

विष्णु रूप में था, तब भी उसने मुझसे युद्ध नहीं किया। अब वह मनुष्य रूप में है तो कुंभकर्ण उससे भयभीत हो रहा है। श्रीराम से युद्ध न कर पाने के कारण अपने प्राण बचाने के लिए उसकी शरण जाने की सलाह दे रहा है। तुम मुझे भयभीत कर रहे हो। तुम देखने में बड़े और पराक्रमी दिखाई देते हो परन्तु वास्तव में नपुंसक हो। किसी कौवे के सदृश व्यर्थ में बढ़ रहे हो। मात्र मांस बढ़ने से तुम मोटे हो गए हो परन्तु वास्तव में अत्यन्त दीन-हीन हो। अत्यन्त अभागे और नपुंसक हो। अपनी मृत्यु के भय से राम की शरण में जाने के लिए कह रहे हो। तुम्हारा भय, मुझे समझ में आ रहा है। जब भीषण युद्ध का प्रसंग आया है, तब तुमने पराक्रम का त्याग कर दिया है। अतः अब जाओ और उद्विग्नता त्याग कर शान्त चित्तपूर्वक सो जाओ। तुम्हारे निद्रामग्न होने पर राम-लक्ष्मण तुम्हारा वध नहीं करेंगे क्योंकि सोये हुए को वे नहीं मारते। तुम शांत मन से सो जाओ। तुम्हारे प्रति मेरे मन में बहुत अपेक्षाएँ व आशाएँ थीं परन्तु अब मैंने उन्हें तिलांजलि दे दी है। अपना काला मुख अब मुझे मत दिखाना। जाओ और निद्रा-मग्न हो जाओ। ब्रह्मा ने मुझे दीर्घ आयु दी तो मैंने सम्पूर्ण पृथ्वी पर विजय प्राप्त की और तुमने दीर्घकाल सो कर अपने जीवन को व्यर्थ कर अपनी हानि की। हे कुंभकर्ण ! तुम थके हुए होगे। अधूरी निद्रा होने के कारण तुम्हें नींद आ रही होगी। अतः अब जाकर अपनी निद्रा पूर्ण करो। श्रीराम के साथ मैं युद्ध करूँगा।'' रावण बोला– ''युद्ध कर मुख्य रूप से मैं श्रीराम का वध करूँगा। लक्ष्मण सहित सुग्रीव का वध करूँगा और वानर गणों को युद्ध में संत्रस्त कर दूँगा। देवताओं की सहायता के लिए राम, मृत्युलोक में आया है। अतः राम, लक्ष्मण व देवताओं को मृत्यु के पास पहुँचा दूँगा। युद्ध में सुरवरों के समूह मार डालूँगा। तब उस विष्णु का पीछा कर वैकुंठ में प्रवेश कर उसका वध कर दूँगा। उस विष्णु के जो उपासक और सेवक हैं, सबको ढूँढ़ कर उनका वध करूँगा। यह कथा यहीं समाप्त करता हूँ। श्रीराम और सीता कौन हैं, यह तत्वतः मुझे ज्ञात हो गया है। उस सम्बन्ध में ध्यानपूर्वक सुनो। धरणी से जन्मी अयोनिजा सीता है। रघुनाथ का परब्रह्मत्व भी तत्वतः मुझे समझ में आ गया है। श्रीराम के स्वबोध रूपी बाणों को मैं अपने प्राण अर्पित कर दूँगा परन्तु सीता उसे अर्पित कर उसकी शरण नहीं जाऊँगा। जनक-कन्या सीता की अभिलाषा करने के कारण श्रीराम मेरा वध करेगा तब भी मैं राम को सीता अर्पित कर, उसकी शरण नहीं जाऊँगा। सीता की अभिलाषा करने पर मेरा अन्त होगा यह समझते हुए ही मैंने सीता का हरण किया। राज्य लोभ की इच्छा से मैं जनक-कन्या को नहीं छोड़ूँगा। श्रीराम के क्रोधित होकर आने पर भी सीता को नहीं छोड़ूँगा। देह का लोभ कर भयपूर्वक अथवा मृत्यु के भय के कारण भी स्वयं के परमार्थ के लोभ के कारण सीता को नहीं छोड़ूँगा। कुंभकर्ण यह बात तुम ध्यान में रखो। तुम डरपोक हो, अतः स्वयं के प्राण बचाने के लिए तुम श्रीराम की शरण में जाओ। श्रीराम की चरण-सेवा करने पर तुम जन्म-मृत्यु की बाधा से मुक्त हो जाओगे। नित्य निर्भय होने के लिए तुम श्रीराम की शरण में जाओ। श्रीराम की चरण सेवा में विभीषण तुम्हारा सहायक होगा अतः तुम शीघ्र श्रीराम की शरण में जाओ। तुम अब निद्रिस्थ होओगे अथवा श्रीराम की शरण में जाओगे ?'' रावण के ये वचन सुनकर कुंभकर्ण क्रोधित हो गया।

कुंभकर्ण का रावण को संयमपूर्वक प्रत्युत्तर– रावण का कठोर भाषण सुनकर कुंभकर्ण क्रोधित हो उठा। उसकी आँखों में आँसू आ गए, तब भी शान्त रहकर वह रावण से बोला– ''हे सुबंधु, दूसरे को दोष देने वाले वचन कहकर तुम्हें कौन से सुख की प्राप्ति होती है, मुझे नहीं पता। हे दशमुख, अन्य लोगों की बात छोड़ो। मुझे, अपने सगे भाई को गरजते हुए भयंकर क्रोधपूर्वक हृदय में चुभने वाले

वाग्बाणों से विदग्ध किया अतः मेरी विनती पुनः सावधानीपूर्वक सुनो। मन के क्रोध पर नियन्त्रण कर शांतमन से बैठकर मेरा कहना सुनकर कार्यकारण का विचार करो। हे राजा, भाई को भाई के पूछे बिना ही उसके लिए हितपूर्ण बातें बतानी चाहिए। बंधु-स्नेह की यही रीति है। अतः इसके लिए तुम इतना क्रोध क्यों कर रहे हो। भाई अपने भाई के हित के लिए स्वयं कालोचित आत्मीयता से, निग्रहपूर्वक, निश्चित रूप से, बंधुभाव से हितपूर्ण बातें कहता है। विभीषण द्वारा हितपूर्ण सुझाव देने पर भी तुम निष्कारण क्रोधित हुए। उसे लात मारकर श्रीराम की शरण में जाने के लिए भेजा। हे दसानन, उसी विभीषण के वचनों का तुम्हें प्रत्यक्ष अनुभव हुआ, अब क्यों विलाप करते हो। तुम स्वयं का हित नहीं समझते। मेरा विभीषण अगर यहाँ होता तो वह अनर्थ होने से बचा लेता। हे लंकानाथ, तुम कहते हो परन्तु तुम्हें अपना हित समझ में नहीं आता, यही सत्य है। हे राजा रावण, तुमने अपने बंधु के अपराध को क्षमा न कर, हितपूर्ण बातों को विरोधी बातें मानकर अपने भाई को निष्कासित कर दिया।''

कुंभकर्ण आगे बोला– ''तुम राजा होकर भी अज्ञानी हो। तुम्हारे प्रधानों की बुद्धि पशु समान है। राम जब समुद्र पर सेतु बाँध रहा था, तभी इन प्रधानों ने उसमें विघ्न क्यों नहीं डाला ? श्रीरघुनाथ का सेतु बाँधना लंकानाथ को गर्व के कारण ज्ञात नहीं हो सका। प्रधान भी अत्यन्त उन्मादपूर्वक शांत बैठे रहे। तब हित की ओर कौन ध्यान दे। रणवाद्यों का नाद करते हुए श्री रघुनंदन के लंका में आ जाने पर वानर सेना देखकर अब क्यों विचलित हो रहे हो ? वस्त्र में अग्नि बाँधकर शरीर पर धारण करने के सदृश इन पापराशि प्रधानों ने रावण की दुर्दशा कर दी। श्रीराम की पत्नी सीता को हरण कर लाने का, किसी ने निषेध नहीं किया वरन् दशानन का समर्थन कर उसे पाप-पूर्ण आचरण की ओर प्रवृत्त किया। सीता की कोपाग्नि में राक्षसों की शौर्य-शक्ति भस्म हो गई और कायरता शेष रह गई। सीता की अभिलाषा करने के कारण रावण की यश व कीर्ति, अपकीर्ति में परिवर्तित हो गई। संसार उसकी निन्दा कर रहा है। रावण सीता का उपभोग करे, हम राम से युद्ध करेंगे- ऐसा उन दुष्ट प्रधानों ने कहा। तुम्हारा यश, कीर्ति, शौर्य सीता की क्रोधाग्नि में जलने के कारण सबकी शक्ति क्षीण हो गई। इसी कारण तुम हनुमान को जीत न सके। अकेले हनुमान ने कुमार अक्षय को मार डाला, इन्द्रजित् को आहत कर दिया। सेना का सम्पूर्ण नाश किया। उस समय उन वानरों से युद्ध करने का पराक्रम किसी के पास शेष न था। तुम्हारे प्रधान तब सेना सहित अपने प्राण बचाकर भागे। हे लंकेश, जब तुम सीता को यहाँ लाये, तभी तुम्हारी शक्ति भस्म हो गई। अतः युद्ध में यश व कीर्ति कदापि नहीं मिलेगी। हे लंकेश, इसे निश्चित समझो।''

रावण की विनती, कुंभकर्ण युद्ध के लिए तैयार– रावण कुंभकर्ण से बोला– ''भाई, पहले किये गए अपराधों के लिए कितनी बार दूषण दोगे ? अब युद्ध प्रसंग आ पड़ा है, वानर समुदाय समीप आ गया है।'' रावण के वचन सुनकर कुंभकर्ण में स्फूर्ति पैदा हुई। युद्ध करने का निश्चय कर उसने गर्जना की। नारद वचन त्रिवार सत्य होंगे, श्रीराम के बाणों से हमें मृत्यु अवश्य आयेगी, ऐसा कहने से रावण दुःखी हो गया। 'हमारी मृत्यु निश्चित ही समीप है अतः रावण को दुःखी न कर उसे प्रसन्नता हो, ऐसे वचन बोलने चाहिए।' ऐसा अपने मन में विचार कर कुंभकर्ण रावण से बोला– ''रावण, मेरे प्राण चले जायें तब भी मैं तुम्हें युद्ध के लिए नहीं जाने दूँगा। राम के साथ युद्ध नहीं करने दूँगा। मेरे सदृश घर का सेवक, तुम्हारे बंधु के होते हुए स्वामी को अगर युद्ध के लिए भेज दिया तो वह सेवक मंद बुद्धि का कहलायेगा तथा सेवाकार्य में अयोग्य होगा। लंकेश, तुम स्वयं युद्ध में जाने के लिए न कहो, तुम्हारे शत्रु का मैं नाश करूँगा। जिनका भय दिन-रात तुम्हारे मन में विद्यमान है, उन्हें निश्चित ही मैंने

युद्ध में मार दिया, ऐसा समझो। राम और लक्ष्मण इन दो साहसी वीरों को मैं रणभूमि में अवश्य मार दूँगा। वानर समुदाय को मारूँगा। युद्ध में उन्हें परास्त कर दूँगा। रण-भूमि में राम और सौमित्र का वध कर तुम्हारे विश्वास के लिए उनके शीश ले आऊँगा तभी मैं तुम्हारा सच्चा सेवक कहलाऊँगा। श्रीराम का शीश लाने पर रावण सुखी व सीता दुःखी होगी, मैं रणभूमि में ऐसा ही पराक्रम दिखलाऊँगा। रणभूमि में मैंने राम-लक्ष्मण को धराशायी कर दिया, यह स्वर्ग के सुरवर देखेंगे, भूतल पर नर-किन्नर देखेंगे। रणभूमि में ऐसा शौर्य मैं करूँगा।''

कुंभकर्ण द्वारा आत्मप्रशंसा– कुंभकर्ण ने गर्जना करते हुए कहा– ''आज का मेरा ही युद्ध प्रमुख होगा। शत्रु को पूर्ण रूप से समाप्त कर, मैं अपना पराक्रम दिखाऊँगा। श्रीराम व लक्ष्मण तथा अंगद, सुग्रीव, हनुमान इत्यादि वानर वीरों को मैं अकेले ही मार डालूँगा। रघुनाथ व सौमित्र दोनों रणकुशल हैं। उनसे भिड़कर युद्ध में पुरुषार्थ की समाप्ति तक उनसे युद्ध करूँगा। उन दोनों का युद्ध में वध कर सभी वानरों को खा जाऊँगा। सुग्रीव, अंगद व हनुमान को अचार सदृश खाऊँगा। मैं अकेला ही ऐसा भीषण युद्ध करूँगा। हे रावण, यह मैं तुम्हारी शपथ लेकर कहता हूँ, यह मेरी प्रतिज्ञा है। तुम पूछोगे कि यह सब कब होगा, तो आज, अभी, इसी समय शत्रु की सेना का संहार कर तुम्हारे पास वापस आऊँगा।'' ऐसा कहकर कुंभकर्ण ने हथियारों से सज्ज होकर शीघ्र युद्ध के लिए प्रस्थान किया। उस समय मन्दोदरी आगे का युद्ध टालने के लिए वहाँ आयी। कुंभकर्ण के युद्ध में जाने पर राम क्षणार्द्ध में उसका प्राण ले लेंगे। कुंभकर्ण के युद्ध में मारे जाने पर मध्यस्थता नहीं हो सकेगी। श्रीराम से युद्ध में कुंभकर्ण अवश्य मारा जायेगा, उसके पश्चात् जाने वाले रावण को परावृत्त करने के लिए मन्दोदरी स्वयं वहाँ आयी।

अध्याय १३

[रावण-मन्दोदरी संवाद]

कुंभकर्ण युद्ध के लिए जाते समय गर्जना करते हुए बोला– ''मैं अकेले सबका वध करूँगा, श्रीराम व लक्ष्मण को मारूँगा। सभी वानरगणों को खा जाऊँगा। अंगद, सुग्रीव व हनुमान को फल-भाजी सदृश निगल जाऊँगा।'' कुंभकर्ण की गर्जना सुनकर रावण में उत्साह का संचार हुआ। उसने रणवाद्य बजवाये तथा स्वयं भी युद्ध के लिए प्रस्थान किया। दशानन रावण युद्ध के लिए जा रहा है, यह सुनकर मन्दोदरी शीघ्र वहाँ आयी। मन्दोदरी सालंकृत व सुन्दर थी। उसके मस्तक पर चन्द्र सदृश शुभ्र छत्र था। उस पर चँवर ढाली जा रही थीं। वह सुन्दर गज-गति से चल रही थी। उसके साथ माल्यवंत, यूपाक्ष तथा अन्य योग्य सलाहकार, विचारवान् मन्त्री भी आये। सभी सगे सम्बन्धियों का समुदाय तथा पीछे शोभायमान पुष्पध्वज –इस प्रकार राजपत्नी सहजगति से चलती हुई आ रही थी। राह की भीड़ को दूर करने के लिए भाला बरदार वीर ध्वनि कर रहे थे, जिससे रास्ते के सभी लोग दूर हुए। रावण-पुत्र अतिकाय ने छत्र पकड़ा, देवांतक व नरांतक नामक दोनों कुमार चँवर ढल रहे थे। सतीत्व जिसका आभूषण था और जो राजा रावण की शोभा थी, ऐसी मन्दोदरी वहाँ सभास्थान पर आयी।

रावण का उसके आगमन के सम्बन्ध में प्रश्न, उसके द्वारा विनती करना– सुशोभित मन्दोदरी को सभा-स्थान पर आया हुआ देखकर रावण ने प्रेमपूर्वक उसे बुलाकर रत्न-सिंहासन पर अपने समीप बैठाया। अपनी प्रिया से उसने पूछा– ''तुम किस कार्य के लिए आयी हो, मुझे शीघ्र बताओ। पुत्रों

और प्रधानों सहित त्वरित गति से तुम यहाँ आयी हो अतः यथायोग्य तुम्हारा जो विचार हो, मुझे बताओ। किस कार्य अथवा उद्देश्य से तुम मुझे मिलने के लिए आयी हो, बताओ । तुमसे मैं प्रेम करता हूँ अतः मुझे रहस्य बताओ।'' रावण द्वारा ऐसा पूछने पर अत्यन्त आदरपूर्वक मन्दोदरी बोली– ''आपके समक्ष हाथ जोड़कर मैं अनेक दिनों से विनती कर रही हूँ। हे राजन् । उसे मान्य कर मेरे कहे अनुसार आप करें। स्त्री के वचन, मात्र ममत्वपूर्ण वचन ही नहीं होते, हे लंकानाथ । वे अर्थपूर्ण व परमार्थ को पावन करने वाले होते हैं।''

मन्दोदरी आगे बोली– ''समुद्र में पाषाणों को तैराकर राम व लक्ष्मण लंका आये हैं और वानरों ने लंका भुवन घेर लिया है। इस अपूर्व घटना को देखकर मैं आयी हूँ। वानरों से लंका भवन भर गया है। युद्ध में बड़े बलवान् राक्षस मारे गए। धूम्राक्ष, अकंपन, मुख्य प्रधान प्रहस्त को वानरों ने मार डाला। उनके साथ ही अन्य बड़े राक्षस भी मारे गए। भीषण युद्ध करने के पश्चात् भी, एक भी वानर नहीं मरता है। प्रहस्तादि वीर भीषण युद्ध कर रहे थे फिर भी राम-लक्ष्मण नहीं उठे। वानरों ने ही उनसे टक्कर लेकर उन्हें मार डाला। महावीर योद्धा प्रहस्त को नील ने क्षण-मात्र में मार डाला। अन्य राक्षसों का वानरों ने वध कर दिया। राक्षसों का वध करने के लिए हनुमान आया है; जो राक्षस वीर उससे युद्ध के लिए आ रहा है, वह उसका संहार कर रहा है। यह सब जानते हुए भी आप श्रीराम से युद्ध करने के लिए-अर्थात् अपने प्राण देने के लिए कैसे जा रहे हैं ? कल श्रीराम ने रणभूमि में जीवन-दान देकर छोड़ दिया। यह आप भूल गए और पुनः प्राण गँवाने के लिए युद्ध में जा रहे हैं।''

मन्दोदरी द्वारा राम-पराक्रम का वर्णन– ''श्रीराम के समक्ष दशमुख खड़ा नहीं रह सकता। श्रीराम का प्रताप अलौकिक है, वह राक्षसों का अन्त करने वाला है। उसने बाल्यावस्था में ही ताटिका का वध कर डाला। मारीच को बाणों से विद्ध कर दिया। यज्ञस्थान पर सुबाहु को राक्षस-समूह सहित मार डाला। श्रीराम ने शिवधनुष तोड़ा, उस सभा में दशानन को अपमानित होना पड़ा। युद्ध में श्रीराम के समक्ष आप टिक न सकेंगे। इसी सीता की अभिलाषा के कारण महापराक्रमी विराध एक ही बाण से श्रीराम द्वारा वन में मार डाला गया। शूर्पणखा द्वारा कपट करते ही उसके नाक-कान काट लिये गए। उसका पक्ष लेकर लड़ने आये राक्षसों का संहार कर डाला। अकेले पैदल चलने वाले श्रीराम ने त्रिशिरा, खर-दूषण तथा चौदह सहस्र राक्षसों को मार डाला। मारीच मृग रूप में मारा गया। कबंध हाथ तोड़कर मारा गया। एक ही बाण से बालि का वध हो गया। वह बालि तीनों लोकों में श्रेष्ठ पराक्रमी योद्धा था। आप भी बालि के भय से उद्विग्न थे, उस बालि के श्रीराम ने प्राण हर लिए। ऐसे पराक्रमी श्रीराम से युद्ध करने योग्य पराक्रम आपमें कहाँ है ? समुद्र में पाषाणों को तैराया, वानरगणों को लंका में ले आये। श्रीराम साधारण मानव न होकर परिपूर्ण परब्रह्म का अवतार हैं, इसे समझें। सीता, श्रीराम को प्रदान कर उनसे मैत्री करें। श्रीराम को रण-सिद्धि है। आपको विजय सिद्धि नहीं है।''

मन्दोदरी युक्तिवाद करते हुए आगे बोली– ''रावण सदृश बल से युक्त प्रसिद्ध वीरों की सेना लेकर गये हुए प्रधानों ने युद्ध में क्या पराक्रम किया ? वे एक भी वानर नहीं मार पाये। इसके विपरीत वानरों ने ही समस्त सेना का संहार कर प्रहस्त का वध कर दिया। प्रहस्त की ऐसी गत हुई। युद्ध के सम्बन्ध में अत्यन्त गर्व रखने वाला, हमेशा रणोन्मत्त होकर बोलने वाला, वानरों द्वारा मारा गया। महाकाय स्वयं को युद्ध कुशल कहा करता था परन्तु वानरों के वार से वह भी आक्रंदन करता हुआ मारा गया। जिसके सामर्थ्य के बल पर दशानन कलिकाल को भी नहीं मानता था, ऐसा भीषण वीर अकंपन, शत्रु

का नाश करने वाला योद्धा, वह भी वानरों से युद्ध करते हुए पानी माँगे बिना ही मारा गया। हे लंकानाथ, कोई राक्षस वीर विजयी होकर वापस नहीं लौटा। हे राजा रावण, ये तो आपके अतिवीर योद्धा थे, जो वीरतापूर्वक युद्ध करने वाले थे। उनके लिए राम व लक्ष्मण अपने स्थान से उठे भी नहीं, वानरों ने ही उन राक्षस वीरों को मार डाला। परन्तु एक भी वानर नहीं मरा क्योंकि वानरों की रक्षा राम कर रहे थे। श्रीराम पूर्ण अवतार मूर्ति हैं। वे वानरों के रक्षक हैं। वानरों से वैर करने का राक्षसों के पास सामर्थ्य नहीं है। युद्ध में राक्षसों से भिड़कर वानर राक्षस-सेना को मार डालते हैं परन्तु वानर नहीं मरते क्योंकि श्रीरामचन्द्र पूर्णावतार परब्रह्म हैं तथा वे वानरों के रक्षक हैं। सुग्रीव वानरों के पालनकर्ता हैं तथा सुग्रीव के पालनकर्ता स्वयं श्रीराम हैं। श्रीराम के सामर्थ्य से वानर अजर अमर तथा नित्य विजयी हैं। जिसके कारण वानर नित्य विजयी होते हैं, उससे नित्य मैत्री करनी चाहिए। इसीलिए श्रीराम से मैत्री करनी चाहिए। इसके लिए सीता उन्हें अर्पित कर दें। वहाँ विभीषण है, वह पूर्ण मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करने में मदद करेंगे। अतः आप सीता श्रीराम को अर्पित कर, उनकी शरण में जायें। उनकी शरण में जाने से सम्पूर्ण कुल का कल्याण होगा; आप मृत्यु से बच जाएँगे, कुंभकर्ण भी बच जाएँगे।''

रावण का मन्दोदरी को प्रत्युत्तर– मन्दोदरी के वचन सुनकर रावण चुप रहा। कुछ समय तक वह स्तब्ध बैठा रहा, उद्विग्न होकर पश्चाताप करता रहा। तत्पश्चात् वह बोला– ''मैंने सुरासुर व दानवों पर विजय प्राप्त की है। समस्त सृष्टि को पदाक्रांत कर दिया। राम के युद्ध कुशल होने पर भी मैं उसकी वंदना नहीं करूँगा। श्रीराम साहसी वीर नहीं हैं। वह वानरों का आश्रित है। मैं लंकानाथ उसकी वंदना करने गया तो संसार में निन्दनीय सिद्ध हो जाऊँगा। युद्ध में मेरे प्राण जाने पर भी मैं राम को सीता लौटाकर उसकी शरण में नहीं जाऊँगा। ये मेरे वचन सत्य हैं।'' तत्पश्चात् रावण मन्दोदरी का हाथ पकड़कर उसे एकान्त में ले गया। वहाँ अपने जीवन से सम्बन्धित गुप्त बातें स्वयं उससे बताते हुए बोला– ''विभीषण शरण में जाने के लिए कह रहा था। वही कुंभकर्ण भी कह रहा है। अन्य अनेक लोग तथा स्वयं तुम भी शरण जाने के लिए कह रही हो। तथापि मैं किसी की नहीं सुन रहा हूँ, उसका कारण क्या है, उस विषय में तुम ध्यानपूर्वक सुनो। यह मेरा हृदयस्थ ज्ञान है। मैंने सीता की अभिलाषा की क्योंकि अन्य प्रकार की मृत्यु से नरक प्राप्ति होती है परन्तु श्रीराम के हाथों मृत्यु प्राप्त होने पर सायुज्य मुक्ति सहज ही प्राप्त होती है। श्रीराम के बाण लगकर रणभूमि में मेरे प्राण जाने पर ब्रह्म में विलीन होने पर जन्म-मृत्यु का चक्र समाप्त हो जाएगा। पंचवटी में अगर मैं राम के समक्ष जाता तो अकेले मुझको ही सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती परन्तु सम्पूर्ण कुल का उद्धार करने के लिए मैं सीता को चुराकर ले आया। अन्त समय में राम का स्मरण करने से रंक भी सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है। तब स्वयं श्रीराम के हाथों मृत्यु आने पर मुझे पूर्ण ब्रह्मत्व की प्राप्ति होगी। श्रीराम के बाण लगकर जब तक मेरे प्राण नहीं चले जाते, तब तक मैं सीता को नहीं छोड़ूँगा। यह मैं सत्य ही कह रहा हूँ। श्रीराम का बाण लगने से मेरे जन्म-मृत्यु की ही मृत्यु होगी और मैं परिपूर्ण ब्रह्म में समा जाऊँगा, यह ज्ञान मुझे स्वयं नारद ने ही बताया है। इसीलिए मैं श्रीराम की शरण में नहीं जाता, उनकी चरण वंदना नहीं करता। अतः इस विषय में तुम मन में सशंकित न हो। नारद के वचनों पर विश्वास रखो। अगर तुम पतिव्रता स्त्री होगी, तो मेरे इस रहस्य को कहीं भी व्यक्त नहीं करोगी। उसे अपने अन्तर्मन में ही रखना। यह सुनकर मन्दोदरी सुखी हुई। उसने रावण के चरणों की वंदना की तथा अपने भवन की ओर प्रस्थान किया।

अध्याय २४

[नारद-रावण संवाद]

श्रीराम के चरण कमलों के समीप निवास करने वाले श्रीराम की अखंड कीर्ति का गायन करने वाले, श्रीराम रूप में नित्य मन को रमाने वाले तथा श्रीराम के प्रति तल्लीन धर्म-ऋषि स्वाभाविक रूप से मन्दोदरी के भवन में आये। उसने उनकी पूजा कर अत्यन्त आदरपूर्वक पूछा– ''नारद मुनि के वचनों पर रावण का अत्यन्त विश्वास है। यह पूर्वकथा किस प्रकार घटित हुई, अगर आपको ज्ञात हो तो बतायें'' इस पर ऋषि बोले– मैं स्वधर्म से भूत व भविष्य का ज्ञान रखता हूँ। तुम्हारे प्रश्न से सम्बन्धित मूल कथा बताता हूँ, उसे सुनो। ''पहले सनत्कुमार से रावण की भेंट हुई। उनके वचनों के प्रति उसकी श्रद्धा थी। उसके सम्बन्ध में नारद से पूछने पर उनके परमार्थ विषय से सम्बन्धित विचार सुनकर उसे विश्वास हो गया परन्तु विरोध से मुक्ति प्राप्त करने में ही रावण की रुचि थी। इस विरोध करने की स्थिति के विषय में मैं तुम्हें बताता हूँ।''

रावण की सनत्कुमार से भेंट– रावण विमान में बैठकर अपनी इच्छा से गगन-मार्ग से आ रहा था तब उसे सनत्कुमार दिखाई दिये। उनके शरीर के तेज के समक्ष चन्द्र व सूर्य का तेज भी मन्द था। रात्रि व दिन की शोभा विलुप्त हो रही थी। उनकी सत्‌चित् आभा तेजस्वी थी। ऐसे तेजयुक्त ब्रह्मा के मानस-पुत्र सनत्कुमार को रावण ने अचानक देखा और वह मन ही मन चकित हुआ। सत्-युग के अन्त में तेजमूर्ति सनत्कुमार से लंकापति की भेंट हुई। उस विषय में सुनो ! ''रावण स्वयं श्रद्धायुक्त होकर उन्हें दंडवत् प्रणाम कर उनकी चरण वंदना करते हुए नम्रतापूर्वक उनसे बोला– 'मैं ब्रह्मदेव का पोता हूँ, मेरा नाम रावण है। मैं आपसे प्रश्न पूछ रहा हूँ, कृपा कर मुझे पूरा उत्तर दें। द्विज किसके हेतु यज्ञ करते हैं ? योगी किसका ध्यान करते हैं ? भक्त किसका भजन करते हैं ? आप किसका चिन्तन करते हैं ? किसके बल पर देवता, शत्रु का दमन करते हैं ? ऐसा बलवान् कौन है, कृपा कर मुझे बतायें। आपके पास तपोधन है। सनातन भगवद् भाव है। उसकी महिमा श्रेष्ठ है। आपकी शरण में सुर श्रेष्ठ आते हैं। शिव, विष्णु, इन्द्र, ब्रह्मा, त्रिपदा, गायत्री, उमा, रमा, इत्यादि सभी आपके चरणों में आपकी शरण में आते हैं। आपके तप की महिमा अगाध है। तपोधन से सुरासुर भयभीत रहते हैं। यक्ष-किन्नर भी डरते हैं। उस तपोधन की हरि, हर सभी वंदना करते हैं।'

रावण के मनोगत व समस्त ध्यान-दृष्टि से अवगत होकर, संत उत्तर देते हुए बोले– ''जिसे आदि, मध्य व अन्त नहीं है, जो सनातन है, वह स्वामी श्री नारायण हैं। त्रिभुवन उनके वश में रहते हैं। जिसकी सुरासुर सभी वंदना करते हैं, योगी जिसका ध्यान धरते हैं, द्विज यज्ञ में जिसका यजन करते हैं, वह नारायण सबके स्वामी हैं। जो सम्पूर्ण विश्व की निर्मिति करता है, जो स्वयं ही विश्व रूप है, जिसके बल पर सुरगण अमृतपान करते हैं, जिसकी आत्म-स्थिति सर्वत्र व्याप्त है, तिलमात्र भी स्थान शेष नहीं है; जो तीनों लोकों में विद्यमान है, जो समस्त प्राणियों में अन्तर्बाह्य निवास करता है, ऐसा वह जगत्-स्वामी जो वेद शास्त्रों के लिए वंदनीय है, जिसके बल पर देवताओं ने युद्ध में शत्रुओं का निर्दलन किया, जिसकी सहायता से देवता नर, यक्ष, राक्षस, किन्नर इत्यादि पर विजय प्राप्त करते हैं, वह स्वामी सत्यतः स्वयं विष्णु ही हैं। जो उसके नामस्मरण में मग्न रहते हैं, वे स्वप्न में भी अपयश के भागी नहीं होते। उस ऋषिकेष को अपना स्वामी मानने वालों का यश त्रिभुवन में नहीं समाता। इन्द्रियों को प्रेरित करने वाला

तथा उन पर नियन्त्रण रखने वाला वही है। ऐसी उसकी आत्मसत्ता है। वह ऋषिकेष तत्वतः अपने भक्तों के सभी कार्यों में सहायक होता है। जनार्दन ही सब लोगों में व्याप्त है, आत्मतत्त्व वही है, भजनों में भज्य है। सभी दृष्टियों से पूजनीय है, वही जनार्दन है।'' उस ऋषि द्वारा उत्तर के रूप दिये गए इन वचनों को सुनकर अत्यन्त नम्रता व प्रेमपूर्वक उनकी चरण-वंदना कर रावण ने अगला प्रश्न किया।

सायुज्य मुक्ति देने वाले देवता के सम्बन्ध में प्रश्न; उत्तर– रावण ने परम श्रद्धा व प्रेम प्रकट करते हुए मुनि से पूछा कि देवताओं द्वारा असुरों को मारने पर उन्हें कौन सी गति प्राप्त होती है, मुझे बतायें। जो कोई साहसी वीर युद्ध में विष्णु के हाथों मारे जाते हैं, उन्हें कौन सी गति प्राप्त होती है, कृपा कर मुझे आप बतायें। रावण का प्रश्न सुनकर सनत्कुमार स्वयं उस गति के विषय में बताने लगे- ''देवताओं के हाथों जिनकी मृत्यु होती है, उन्हें स्वर्ग-पंथ की ऊर्ध्व गति मिलती है परन्तु पुण्य के क्षीण होते ही वहाँ से नीचे गिरकर पुनः गर्भवास में वापस आ जाते हैं।'' गर्भवास का संकट दारुण दुःखदायी होता है, मैं तुम्हें विस्तारपूर्वक उसके विषय में बताता हूँ, ध्यान से सुनो। यह शरीर अत्यन्त अपवित्र और निंद्य होता है। माता की उदर रूपी गुहा में, विष्ठा और मूत्र की उष्णता में, जठराग्नि में नौ महीनों तक यह तपता रहता है। गर्भवास का दुःख भयंकर होता है। उस शरीर पर चारों ओर विष्ठा का लेप रहता है। नाक और मुख में कीड़े प्रविष्ट करते हैं परन्तु दुःख किसी से कहा नहीं जा सकता। गर्भ के बन्दिवास में जीव पश्चाताप करता रहता है। विषय सुख का परिणाम गर्भ का दुःख है, जिसे भोगते हुए जीवन आक्रंदन करता रहता है। विषयों से जन्म-मृत्यु जुड़े हुए हैं। विषयों के कारण भयंकर गर्भ-दुःख की प्राप्ति होती है, विषय-सुख पूर्णरूप से छलावा है। विषय अत्यन्त दुष्ट होते हैं। विषय देह रूपी कंदरा में बाघ सदृश, संहारक क्रूर चांडाल सदृश, सर्वांग जलाने वाली अग्नि सदृश है। विषय सभी दृष्टियों से महावैरी है। गर्भवास के आगे अंधकारयुक्त महानरक भी क्षुद्र कीटक सदृश तुच्छ होता है। ऐसा परम दुःख गर्भवास में होता है। जो देवताओं के हाथों से मरते हैं, वे सभी दुःख के आवर्त में फँसकर, स्वर्ग और संसार के चक्र में पड़कर अविरत जन्म-मृत्यु भोगते रहते हैं।''

''श्री विष्णु के हाथों जो मरते हैं, उन्हें तुरन्त ब्रह्म प्राप्ति होती है। सायुज्यादि चारों मुक्तियाँ* उसकी शरण में आती हैं। चक्रधारी जनार्दन के हाथों भाग्यवानों की ही मृत्यु होती है। अन्य अभागों को नामस्मरण की भी सुधि नहीं रहती, तब उन्हें दर्शन कहाँ से उपलब्ध होंगे। श्री विष्णु के पास क्रोध और प्रसन्नता दोनों का समान रूप से वास रहता है। भक्त और बैरी को जिसका समान रूप से दान प्राप्त होता है, वह ब्रह्म सायुज्यता का दान है।'' रावण यह सुनकर आश्चर्यचकित हो उठा। उसने अत्यन्त श्रद्धा व उल्लासपूर्वक आगे का प्रश्न पूछा। विष्णु के हाथों मृत्यु होने से ब्रह्म-सायुज्यता की प्राप्ति होकर कल्याण होता है– ऐसा मुनि द्वारा सुनकर रावण प्रसन्न हो गया। रावण स्वयं इच्छा करने लगा कि ''वह भाग्यपूर्ण समय कौन सा होगा, जब मेरा विष्णु से युद्ध होगा, विष्णु के हाथों मेरी मृत्यु होगी'' उसमें युद्ध की रुचि निर्मित हुई। मुनि बोले– ''श्रीविष्णु के साथ स्वयं रावण का महायुद्ध होगा। मात्र काल, उसमें विलंब करेगा। यथाकाल ही युद्ध होगा, तब तक आप राह देखें। आगे अत्यन्त भीषण युद्ध होगा, इस सम्बन्ध में निश्चिन्त रहें। आपके मनोरथ के अनुरूप ही श्रीराम युद्ध करेंगे।'' यह सुनकर लंकानाथ प्रसन्न हो गया। मुनि की प्रदक्षिणा कर चरण-स्पर्श करते हुए उनकी वंदना कर रावण ने ब्रह्म-सदन की ओर

* समीपता, सरूपता, सलोकता, सायुज्यता।

प्रस्थान किया। मुनि अनुष्ठान के लिए गये। श्रीविष्णु से महायुद्ध मैं कब करूँगा, रावण इसी विषय में दिन रात ध्यान करता रहा।

रावण-नारद भेंट; उनके प्रश्न व उत्तर– ब्रह्मभवन की ओर से वापस आते समय, रावण को नारद के दर्शन हुए। रावण प्रसन्न हुआ। वह बोला– ''नारद मुनि की भेंट हुई, मैं कृतार्थ हुआ। मुनि के कथनानुसार इनके द्वारा मेरे मनोरथ पूर्ण होंगे।'' ऐसा विचार करते हुए रावण ने साष्टांग प्रणाम करते हुए नारद की चरण-वंदना की और अत्यन्त आदरपूर्वक उनसे पूछा– ''आपने ब्रह्मभुवन तक समस्त लोक देखे हैं। स्वामी, मुझसे युद्ध करे, ऐसा कौन सा बलवान् पुरुष है। मेरी भुजाओं का सामर्थ्य जो सहन करे, ऐसा कौन है ? उसके लक्षण मुझे बतायें। उसकी स्थिति, गति, आकृति कैसी है, मुझे उचित प्रकार से बतायें,'' रावण द्वारा ऐसा पूछने पर नारद ने स्वयं के अन्तर्यामी, हृदयस्थ के विषय में पूरी तरह से अनुभव कर उनके लक्षण बताये- ''हे रावण, तुम्हारी रुचि पूरी तरह से मुख्य देवता से युद्ध करने की दिखाई दे रही है। उसके सगुण व निर्गुण ऐसे दो प्रकार के लक्षण हैं। उन सगुण व निर्गुण दोनों प्रकार के लक्षणों को मैं तुम्हें अलग-अलग बताता हूँ। तुम उसे चित्त को एकाग्र कर सुनो, जिससे तुम्हारा कल्याण होगा।''

नारद बोले– ''जहाँ से नाना अवतार सबल रूप में सत्यतः निर्मित होते हैं, वह मूलस्वरूप निराकार व निर्विकार है। प्राणि-मात्र में वह ईश्वर अन्तर्बाह्य रूप से नित्य व्याप्त है। वह अत्यन्त सूक्ष्म रूप से स्थित है, व्यक्त रूप में नहीं। जिस प्रकार गुड़ में मिठास होती है परन्तु दिखाई नहीं देती, उसी प्रकार वह भी अव्यक्त है। गुड़ जैसे अन्तर्बाह्य मिठास युक्त है, उसी प्रकार प्राणि-मात्र में चित्सत्ता अर्थात् परब्रह्म का अन्तर्बाह्य रूप से वास है। जिस प्रकार सूक्ष्म तन्तु की ओर ध्यान केन्द्रित करने पर वस्त्र की सत्ता अनुभव नहीं होती, उसी प्रकार परमेश्वर की ओर ध्यान देने पर प्रपंच, मिथ्या व व्यर्थ लगने लगता है। डोरी में सर्पत्व न होते हुए भी भ्रांति के कारण डोरी के स्थान पर सर्पत्व का आभास होने लगता है। उसी प्रकार परमेश्वर में प्रपंच न होते हुए भी मूर्ख को व्यर्थ में ही उसका अनुभव होने लगता है। उस स्वरूप का अनुभव करने पर फिर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र ये अवतार मिथ्या लगने लगते हैं। वहाँ चराचर का अस्तित्व नहीं रहता। उस चिन्मात्र तत्व में आकार, विकार का अस्तित्व नहीं रहता। जिसकी आयु ही नहीं है, उसका नाश कैसा ? इसीलिए उसे परमेश्वर, परमात्मा इत्यादि कहते हैं। वहाँ दिवस, रात्रि, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र, वरुण, यम, कुबेर इत्यादि किसी का भी अस्तित्व नहीं रहता। भयंकर काल भी मिथ्या है। ऐसा अविनाशी तत्व ही इस सृष्टि में व्याप्त है। उस तत्व के कारण ही इन्द्रियों को गति प्राप्त होती है और प्राणों को प्राणत्व मिलता है। उसके कारण ही दिवस-रात्रि प्रकाशित होते हैं, रवि और चन्द्र का अस्तित्व है। पंचभूत और चराचर में वही व्याप्त है। वही ओंकार है, वही सत्य में सत्यत्व है। उसके कारण ही गायत्री पवित्र तथा ब्राह्मण उसके तेज से वंदनीय सिद्ध होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश उसी तत्व के गुणावतार हैं। वह तत्व निर्गुण है, निराकार है और समस्त चराचरों में व्याप्त है। आड़े-टेढ़े धागे बुनकर जो वस्तु तैयार होती है, उसे वस्त्र कहते हैं। उसी प्रकार जो परमेश्वर व्यापक रूप धारण करता है, उसे प्रपंच कहते हैं। वह परमेश्वर ही पृथ्वी, पृथ्वी को धारण करने वाला, वही विश्व एवं विश्व का आधार, वही जीव एवं जीवात्मा भी वही है परन्तु मूर्ख लोग उसे ही संसार मानते हैं।''

नारद के निवेदन से सन्तुष्ट न होकर रावण अत्यन्त उद्विग्न हुआ। उसने पुनः नारद की वंदना करते हुए पूछा कि आपने जिस निर्गुण स्वरूप के विषय में बताया, मैं उससे युद्ध न कर सकूँगा। मेरी भुजाओं के सामर्थ्य को सहन करने की जिसमें शक्ति हो, ऐसे किसी बलशाली के विषय में बतायें। इस

पर नारद बोले– "हे दशानन, तुमसे युद्ध करने का पराक्रम देव, दानव, मानव किसी में भी नहीं है। मैंने तीनों लोक देखे परन्तु ऐसा कोई बलवान् मुझे दिखाई नहीं दिया– यह सत्य है।" तब रावण बोला– "दिग्विजय करते समय मैंने भी ऐसा अनुभव किया था कि मेरी बराबरी का कोई योद्धा नहीं है। मुझसे युद्ध करने का पराक्रम मात्र परम परमेश्वर में ही है। अन्य योद्धा मेरे समक्ष तृण सदृश हैं। अतः उसका लक्षण मुझे बतायें। परम परमेश्वर में इतना पराक्रम है, तो वह मुझसे युद्ध करने के लिए क्यों नहीं आते ? वह भी मेरे भय से छिप जाते हैं। इससे भीरुता दिखाई देती है।" रावण के वचन सुनकर चकित होकर नारद ने हँसते हुए रावण से पूछा– "परम परमेश्वर से युद्ध करने का तुम्हारा क्या प्रयोजन है, मुझे बताओ।" इस पर रावण ने बताया– "देवताओं से युद्ध करते हुए मृत्यु होने पर जन्म-मरण से मुक्ति नहीं मिलती। परन्तु परब्रह्म परमेश्वर द्वारा मृत्यु होने पर परिपूर्ण ब्रह्मत्व की प्राप्ति होती है, ऐसा मुझे सनत्कुमार ने बताया है। इसीलिए उनसे युद्ध करने के लिए मेरा मन आतुर है।" रावण का यह स्पष्टीकरण सुन कर नारद के मन में सन्तोष हुआ। तब उन्होंने जिसके द्वारा ब्रह्म प्राप्ति होती है, ऐसे श्रीराम के स्वरूप का वर्णन किया।

नारद द्वारा किया गया श्रीराम के स्वरूप का वर्णन– "श्रीराम नीलकमलदल सदृश साँवले हैं, उनके कमलनयन हैं। उनकी श्यामलता सम्पूर्ण आकाश में व्याप्त है। ऐसी वह राममूर्ति घनश्याम सदृश सुन्दर है। उनके समक्ष मेघों की श्यामलता तृणवत् है। उनकी श्यामलता के दर्शन कर मन अन्तर्बाह्य रूपसे सुख सम्पन्न हो जाता है। आँखों को कमल दल की उपमा देते हैं। कमलदल तो नष्ट हो जाते हैं परन्तु श्रीराम के दर्शनीय नेत्र शाश्वत सद्रूप हैं। श्रीराम के पीतवर्णी पीताम्बर की विद्युत-सदृश आभा इस प्रकार दिखाई दे रही है, मानों श्रीराम की कमर का स्पर्श कर विद्युत अस्त होना भूल गई है तथा अपने दिव्य तेज से चमकती हुई वहाँ विराजमान है। मुकुट, कुंडल, मेखला, स्वर्णिम आभायुक्त पीताम्बर, गले में तुलसी-दल युक्त मनोहारी माला, बाजुओं में रत्नों के आभूषण, अँगूठियाँ, हाथों में कड़े इन सभी अलंकारों को अलंकृत करने वाले श्रीराम हैं। उनका वर्णन कोई कैसे कर सकता है, वे अवर्णनीय हैं। लक्ष्मी को दूर कर अपनी दाहिनी भुजा पर वह विप्रचरण धारण करते हैं। जिस प्रकार आकाश में चन्द्रचिह्न सुशोभित होता है, उसी प्रकार श्रीराम सुशोभित हो रहे हैं। श्रीराम के चरणों का भविष्य चतुरानन, पंचमुख व षड्मुख वर्णन न कर सके। सहस्रमुख ने भी मौन धारण कर लिया। बस, चरणों में धारण किये आभूषणों की ध्वनि होती रहती है। श्रीराम बलवानों में बलवान् हैं। सुरासुर उनके समक्ष काँपते हैं। माहेश्वरी सज्जा में धनुष बाण सुसज्जित कर खड़े हुए श्रीराम से युद्ध करने के लिए कौन सामने आयेगा ? उस श्रीराम से युद्ध करने की योग्यता रावण में नहीं है। एक ही बाण में वह उनके प्राण हर सकते हैं। इस सत्य को हे लंकेश, तुम समझ लो।"

नारद का कथन सुनकर रावण आनन्दपूर्वक नाचने लगा। "श्रीराम से युद्ध किस समय होगा ? रावण द्वारा इस सम्बन्ध में पूछने पर भूत, भविष्य व वर्तमान के ज्ञाता नारद श्रीराम का आत्म-लक्षण बताने लगे तब युद्ध करने की दृष्टि से रावण ध्यानपूर्वक सुनने लगा।

श्रीराम का आत्म-लक्षण; दर्शन का मार्ग– नारद ने बताया कि– "सत्युग का अन्त होकर त्रेता-युग के आरम्भ में राजा दशरथ होंगे। उनके पुत्र श्रीराम देवताओं को उनके स्थान पर पुनःस्थापित करने के लिए, भक्तों को मोक्ष प्रदान करने के लिए, मनुष्यों को सुबुद्धि देने के लिए अवतार लेंगे। सूर्यवंश के भूषण के रूप में काकुत्स्थ कुल में जन्म लेने वाले श्रीराम चैतन्यघन विग्रही अवतार हैं। आदि

कारणों के कारण जिसे श्रुति अर्थात् वेद, नारायण कहते हैं, वही श्रीराम स्वरूप हैं, वही सबके स्वामी हैं। जिसके तेज के प्रताप से चन्द्र सूर्य की प्रभा भी छिप जाती है, आकाश-शून्य में विलीन हो जाती है, ऐसे श्रीराम रूपी तेजस्वी दीप हैं। धन्य हैं वे श्रीराम, जो शत्रुओं को भी सायुज्य मुक्ति देते हैं, किसी का अहित नहीं करते, उनकी बुद्धि सुबुद्धि है। श्रीराम के बल की सिद्धि से देह बुद्धि समूल नष्ट होती है। आत्म-पर भाव को समाप्त करने वाले हैं। आजानुबाहु श्रीराम द्वैत का नाश करने के लिए अपना पुरुषार्थ प्रदर्शित करेंगे। संसार से भयभीत व्यक्ति को वे अभय प्रदान करते हैं। वरदहस्त से अपने भक्तों की रक्षा करते हैं। श्रीराम की शक्ति अथाह है। वे संहार नहीं करते वरन् संसार को जन्म-मृत्यु के विकार से रहित कर सम्पूर्ण विश्व का पालन करते हैं। श्रीराम शान्ति के आगर हैं। अपकार अपने ऊपर लेकर वे अपकारकर्ता का उपकार करते हैं। उनकी शांति की महत्ता अथाह है। श्रीराम की शान्तिमय स्थिति के कारण प्राणिमात्र की उद्दण्डता सहकर पृथ्वी पर परमशान्ति की स्थापना हुई और आत्म-शान्ति की सहज स्थिति स्थापित हुई। जिस प्रकार मध्याह्नकाल के सूर्य की ओर देखने से आँखें चकाचौंध हो जाती हैं और कुछ नहीं सूझता, उसी प्रकार श्रीराम के समक्ष कोई खड़ा नहीं रह सकता। श्रीराम के बाणों को देखने मात्र से ही वीरों के भय से प्राण चले जाते हैं, तो उनके समक्ष युद्ध करने के लिए युद्ध भूमि में कौन खड़ा रहेगा ?''

तत्पश्चात् नारद बोले– ''ऐसे उस श्रीराम के स्वरूप के दर्शन किसे होते हैं, मैं उसका भी वर्णन करता हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो। जिस पर श्रीराम प्रसन्न होते हैं, वे उसे ही दर्शन देते हैं। अन्य लोगों की वैराग्य-रहित ध्यान, ज्ञान की श्रेष्ठता तृणवत् तुच्छ है। श्रीराम के दर्शन करने के लिए सुरवरों की शक्ति भी पर्याप्त नहीं है। जिनके हृदय में पूर्ण वैराग्य होता है, उन पर ही श्रीराम प्रसन्न होते हैं। असुर, सर्प इत्यादि को भी श्रीराम के दर्शन कठिन हैं। तप से परिपूर्ण तपस्वी देह से तप-सम्पत्ति अर्जित करते हैं। तप की स्वर्ग तक गति है, तब भी राम उन्हें दर्शन नहीं देते। पशु की हत्या कर यज्ञ में यजन करते हैं। वहाँ हिंसा होती है अतः श्रीराम दर्शन नहीं देते। यज्ञ, दान, तप रूपी सम्पत्ति अथवा योग से मिलने वाली सामर्थ्य-शक्ति के बल पर भी श्रीराम प्राप्त नहीं होते। हे लंकेश, इसे तुम निश्चित मानो। श्रीराम की प्राप्ति होने के लिए दृढ़ वैर अथवा अनन्य भक्ति होनी चाहिए। हे रावण, अब मैं सर्वप्रथम अनन्य भक्ति के लक्षण बताता हूँ। तत्पश्चात् वैर के कारण बताता हूँ, जिससे मोक्ष-प्राप्ति सम्भव है।''

श्रीराम से वैर उत्पन्न होने का मार्ग– ''प्रपंच त्याग कर देह रामार्पण करने पर; श्वासोच्छ्वास में श्रीराम की सेवा करने पर, उसमें निहित प्राण वास्तविक रूप से प्राण हैं। परब्रह्म-परमेश्वर का ध्यान करते हुए जिसकी प्राणवृत्ति विचरण करती है, ऐसे व्यक्ति में निहित प्राण सच्चे प्राण हैं। ऐसी योग-स्थिति अत्यन्त गहन व गुह्य है। प्रपंच की चिन्ता त्यागकर नित्य अपनी आत्मा का चिन्तन करने पर चित्त जब परमेश्वर में रममाण होता है तो उसे सत्‌चित्तता नाम दिया जाता है। विविध चिन्ताओं का समाधान होने पर भी चित्त भगवान् को नहीं भूलता है। उत्तम, मध्यम, अधम् प्राणिमात्र में नित्य भगवद्भाव विद्यमान रहता है। इसे मुख्यतः भगवद्भक्ति कहते हैं। स्वप्न में सुषुप्ति में भगवान् का वास रहता है। किसी भी अवस्था में देह-स्फूर्ति का स्फुरण नहीं होता– ऐसा वेदों में कहा गया है। वह आत्माभिमान से परे है। अत्यन्त निपुण सद्‌गुरु के वचनों को आत्मसात् करने पर देह की नश्वरता व मिथ्यात्व व परिपूर्ण चिद्रूप आत्मा की अमरता का ज्ञान होता है। उसे ही तब मत्परायण नाम दिया जाता है। देह रहते हुए भी जिसमें देह का स्फुरण नहीं होता, वेदों के अनुसार जिसका आचरण होता है, जिसमें आत्माभिमान नहीं होता,

वही भक्त मत्परायण कहलाता है। नित्य भगवद्भजन करने से संकल्प-विकल्प समाप्त हो जाते हैं। ऐसे ही भक्तों से रघुनन्दन की भेंट होती है। इसको अनन्य भजन कहते हैं। अगर तुम्हारी वैर में रुचि होगी, तुम्हारे अन्दर पुरुषार्थ विद्यमान होगा, तभी वैर का पूर्ण कारण सांगोपांग बताऊँगा। वैर का प्रमुख कारण स्त्री का हरण करना है।'' तत्पश्चात् उस सम्बन्ध में नारद ने निवेदन किया।

सीता-हरण के सम्बन्ध में नारद-रावण संवाद– ''श्रीराम की पत्नी अत्यन्त सुन्दर है, पतिव्रता सीता के सदृश स्त्री तीनों लोकों में नहीं है। रंभा, उर्वशी, तिलोत्तमा की उपमा दें तो ये तीनों उसके समक्ष तृणसदृश तुच्छ हैं। उमा, रमा उसके समक्ष जुगनू सदृश हैं। उनकी सीता से कोई समता नहीं है। जिस प्रकार परछाईं स्वरूप से विलग नहीं होती, उसी प्रकार सीता, श्रीराम से विलग नहीं हो सकतीं। वह दिवस-रात्रि श्रीराम के साथ होती हैं। जिस प्रकार चन्द्र से प्रकाश को विलग नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार तत्वतः सीता, श्रीराम से विलग नहीं हो सकतीं। जनक-कन्या सीता नित्य श्रीराम के अनुकूल होती हैं। शीलवान्, साध्वी, पतिव्रता, सती सीता अत्यन्त सत्वशील हैं।'' नारद रावण से सावधानीपूर्वक सुनने के लिए कहकर आगे बोले– ''तुमसे इससे पूर्व ही मैंने श्रीराम का स्वरूप लक्षण बताया है। सगुण व निर्गुण दोनों अवस्थाओं में श्रीराम पूर्ण परब्रह्म हैं, यह मैंने तुम्हें पहले ही स्पष्ट किया है। उसी प्रकार सीता का स्वरूप, लक्षण भी अभी स्पष्ट किया है। देवाधिदेव रघुनाथ अजन्मा, अव्यय तथा अच्युत हैं। उसका वृत्तान्त मैंने अभी स्पष्ट किया। यह समूल साद्यन्त वृत्तान्त सुनने के पश्चात् तुम्हें जो योग्य लगे, जिसमें तुम्हारा हित हो, उस मार्ग को तुम अपने लिए निश्चित करो।'' नारद के ये वचन सुनकर रावण बोला– ''युद्ध में मेरे प्राण चले जायें, ऐसा श्रीराम मुझसे युद्ध करें। ऐसा वैर का कारण मुझे बतायें। आप भूत, भविष्य और वर्तमान के ज्ञाता हैं। आप मेरे स्वामी हैं। अतः श्रीराम से वैर करने का कारण मुझे बतायें। श्रीराम से भीषण युद्ध करने की मेरी इच्छा है; स्वामी, उसे पूरा करें। श्रीराम के हाथों मृत्यु होने पर मुझे पूर्ण ब्रह्म की प्राप्ति होगी। इसीलिए युद्ध के लिए मेरा मन उत्सुक है।'' रावण के वचन सुनकर नारद मुनि हँसे व आगे बोलने लगे।

''वैर का मूल प्रमुख कारण श्रीराम का वनगमन है। दशरथ की आज्ञा से श्रीराम सीता व लक्ष्मण सहित वनवास के लिए दण्डकारण्य में आयेंगे। वे निश्चित ही जनस्थान में आयेंगे। यहाँ कपटपूर्वक उनकी पत्नी सीता का हरण करने से वह वैर का कारण बनकर, युद्ध में रावण के वध का कारण बनेगा। श्रीराम के बाणों के आघात से तुम्हारी देह भूमि पर गिरेगी। तुम सायुज्य मुक्ति प्राप्त करने के लिए सीता को मत छोड़ना।'' नारद द्वारा ऐसा बताते ही दशानन आनन्दपूर्वक नाचने लगा। श्रीराम से युद्ध करने का विचार कर, उसे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। इस प्रकार मुनीश्वर ने बहुत सी बातें कहीं। उन पर विश्वास रखकर आगे श्रीराम के हाथों मुक्ति प्राप्त करने के लिए रावण ने सीता को मुक्त नहीं किया। यह सब पूर्व वृत्तान्त धर्मऋषि ने मन्दोदरी को बताया और अपने आश्रम की ओर प्रस्थान किया।

अध्याय २५

[कुंभकर्ण का युद्ध के लिए प्रस्थान]

रावण ने मन्दोदरी से एकान्त में रहस्य बताया। इससे सन्तुष्ट होकर उसने अन्तःपुर की ओर प्रस्थान किया। चिन्ता मुक्त होकर पुत्र व बहुओं के साथ सुखपूर्वक दिन बिताने के लिए गयी। रावण

को प्रणाम कर मन्दोदरी के अपने भवन में जाने के पश्चात् रावण ने सेना व प्रधानों को बुलाया तथा रथ मँगवाते हुए युद्ध करने की गर्जना दी। यह गर्जना सुनकर कृतान्तकाल सदृश कुंभकर्ण आवेशपूर्वक शूल लेकर उठ खड़ा हुआ। शत्रु के रक्त से रंजित मांस से लथपथ शूल हाथ में लेकर कुंभकर्ण ने गर्जना की– "मेरे होते हुए रावण युद्ध के लिए क्यों जा रहा है। अकेला मैं स्वयं, शत्रु का नाश करूँगा। शत्रु बेचारा मेरे सामने ठहर नहीं पाएगा। अकेला मैं, रणभूमि में शत्रु का अन्त कर दूँगा।" कुंभकर्ण की गर्जना सुनकर महोदर कुंभकर्ण से बोला– "कुंभकर्ण, तुम उत्तम कुल के हो। लंकाधिपति दशानन तुम्हारा सम्मान करता है। तुम्हारे शरीर में बहुत बल है, पर तुम्हारी मूर्खता भी विशेष है। श्रीराम राक्षसों के लिए कुदाल सदृश है। वह राक्षसों का काल है। उससे अकेले लड़ना मूर्खता है। अकेले राम ने पैदल ही युद्ध कर चौदह सहस्र राक्षस, त्रिशिरा व खर-दूषण को बाणों से मार डाला। एक ही बाण से उस महापराक्रमी बालि को धराशायी कर दिया। तुमसे युद्ध करते हुए एक ही बाण से वह तुम्हारा भी वध कर देगा। तुम्हारा शरीर स्थूल होने के कारण तुम भयंकर दिखाई देते हो, परन्तु श्रीराम के बाण लगते ही पानी माँगे बिना ही मृत्यु को प्राप्त होगे।"

कुंभकर्ण द्वारा महोदर की निन्दा– महोदर का वक्तव्य सुनकर कुंभकर्ण को क्रोध आ गया। वह महोदर का उपहास करते हुए बोला– "तुम अत्यन्त हीन-दीन हो। युद्ध से तुम भागकर आये हो। तुम अकेले युद्ध नहीं कर सकते। तुम्हारे अन्दर नपुंसकता विद्यमान है। युद्ध में जाने पर मृत्यु होगी, ऐसा डर तुम दिखा रहे हो; परन्तु यह तुम ध्यान में रखो कि युद्ध में जाते हुए देह, घर, मृत्यु इत्यादि का जिसे स्मरण नहीं आता, वही सच्चा शूर है और उसे ही विजय प्राप्त होती है। तुम डरपोक, हीन-दीन हो। रावण के प्रधान होने के कारण सभा में सम्मान पाते हो। तुम्हारे इस काले मुख में आग लगे। तुम्हारी बुद्धि के प्रभाव ने ही रावण को अधर्मी बना दिया। तुम्हारे कारण ही वह निन्दास्पद बना। तुम्हारी अगर सद्बुद्धि होती तो सीता राम को प्रदान कर उससे मैत्री करते परन्तु तुम्हारी कुबुद्धि ने वैसा नहीं किया। तुम्हारे कारण रावण को भी दुर्बुद्धि हुई। मुझे भी तुम कह रहे हो कि युद्ध में न जाऊँ क्योंकि तुम स्वयं डरपोक हो, यही सत्य है। अतः तुम्हारा सभा में रहना उचित नहीं है। उठो और सभा के बाहर जाओ अन्यथा तुम्हें थप्पड़ मारूँगा।" इस तरह नाना प्रकार से कुंभकर्ण ने महोदर की निंदा की। तत्पश्चात् शूल लेकर गर्जना करते हुए कुंभकर्ण ने युद्ध के लिए प्रस्थान किया। उसका शूल शतधारयुक्त, सोने से मढ़ा हुआ था। उसमें विद्युत सदृश तेज विद्यमान था। शत्रु के रक्त व माँस से सना हुआ था। शूल लेकर कुंभकर्ण को युद्ध के लिए जाते देखकर रावण अत्यन्त आनन्दित हुआ और उसने कुंभकर्ण का सम्मान किया।

रावण ने आवेशपूर्वक सिंहासन से उतर कर कुंभकर्ण का स्वयं सम्मान किया। कुंभकर्ण को मुकुट तथा जिसके दिव्य तेज के समक्ष सूर्य छिप जाय, ऐसा महामणि मस्तक पर पहनाया। रत्नजड़ित बाहुभूषण कंकण और मुद्रिका दी। मूल्यवान कुंडल अर्पित किये। रावण ने इस प्रकार प्रेमपूर्वक उसका सम्मान किया। अमूल्य कुंडल, भारी कवच, शुभ्र व लाल सुशोभित अलौकिक मालाएँ दीं; शरीर में चन्दन का लेप लगाया। दिव्य चन्दन का टीका वीर कुंभकर्ण के मस्तक पर सुशोभित हो रहा था। रावण ने कुंभकर्ण के गले में फूलों की मालाएँ पहनायीं। इसके अतिरिक्त पदकयुक्त रत्न-जड़ित तेजस्वी माला जिसके दोनों ओर मोती थे तथा जिस माला में इन्द्रनील मणियों की आभा थी, रावण ने कुंभकर्ण के गले में पहनायी। अपार रत्न-जड़ित अलंकार धारण करने के कारण कुंभकर्ण प्रज्वलित अग्निसदृश दिखाई देने लगा।

रावण की वंदना कर कुंभकर्ण का प्रस्थान– कुंभकर्ण ने प्रदक्षिणा कर रावण के पैर छुए। वह बोला– "रावण, अब आगे हम दोनों की भेंट नहीं होगी। रघुनाथ से युद्ध करते हुए वापस आना सम्भव नहीं होगा। लंकानाथ, यह सत्य है। तुम्हारे कार्य के लिए युद्ध करते हुए रणभूमि में मैं अपने प्राण तक दे दूँगा, ये मेरे वचन सत्य हैं।" कुंभकर्ण के वचनों से दोनों भाइयों की आँखें भर आयीं। तत्पश्चात् आवेशपूर्वक गर्जना करते हुए कुंभकर्ण ने सारथी से अपना रथ मँगवाया। सहस्र खर उसमें जुते हुए थे। रथ ध्वजों से सुशोभित था। पाँच-पाँच हाथ चौड़े उस रथ में पाँच हाथ चौड़ा कुंभकर्ण बैठा। उसने शीघ्र युद्धक्षेत्र की ओर प्रस्थान किया। प्रलय-मेघों की ध्वनि सदृश उस रथ की घरघराहट हो रही थी। कैलास शिखर सदृश भव्य रथ के पहिए तेजी से जा रहे थे। कुंभकर्ण ने गर्जना करते हुए रथ आगे निकाला। रावण ने सन्तुष्ट होकर सेना को भी उसके साथ भेजा। रावण ने कुंभकर्ण को आशीर्वाद देकर युद्ध के लिए भेजा। चार दाँतों वाले हाथियों के समूह अलंकृत होकर चलने लगे। अश्व, गज, रथ इत्यादि के चलने से भीषण ध्वनि होने लगी। शंख, भेरी, मृदंग, रणनिशान इत्यादि रणवाद्य बजने लगे, जिससे कुंभकर्ण में स्फूर्ति पैदा हुई और वह गर्जना करते हुए आगे बढ़ा। कुंभकर्ण के पीछे चतुरंगिणी सेना की भीड़ चल रही थी। सामने उसे देखते हुए, उसके पीछे सेना युद्ध के लिए चल रही थी। महावीर कुंभकर्ण ने शीघ्र रथ आगे बढ़ाया और वह नगर के द्वार तक पहुँचा। उसके रथ पर छत्र सुशोभित था।

कुंभकर्ण की रण गर्जना; मार्ग में अपशगुन– कुंभकर्ण ने जब युद्ध के लिए प्रस्थान किया तब रावण ने उस पर पुष्पवृष्टि की। कुंभकर्ण छत्र-चामरों से सुशोभित होकर उत्साहपूर्वक युद्ध के लिए चल पड़ा। वह रक्त का प्राशन करने के कारण रक्त से उन्मत्त, मद्यपान से मदोन्मत्त, व बल से उन्मत्त होकर अपनी सेना सहित युद्ध के लिए निकला। कुंभकर्ण अपने विकराल मुख से गर्जना करते हुए अपने पुरुषार्थ के विषय में बताने लगा– "रणकर्कश व रणोन्मत्त वानर सेना के प्रमुखों को मैं इस प्रकार मारूँगा, जैसे आग में पतंगे मरते हैं। मैं अंगद, सुग्रीव, जाम्बवंत, नल, नील, हनुमान इत्यादि प्रमुख वानरों को ढूँढ़-ढूँढकर मारूँगा। वानर बेचारे वनचर हैं, उनसे मेरा वैर नहीं है। मेरा प्रमुख वैरी श्रीराम है। वानर युद्ध में उनकी सहायता कर रहे हैं। लक्ष्मण सहित रघुनाथ को युद्ध में मारने से सभी वानर भी मर जायेंगे, ऐसा युद्ध मैं करूँगा। श्रीराम और सौमित्र ये दोनों भाई मनुष्य हैं। उन्हें मैं सर्व-प्रथम निगलूँगा, उसके बाद फिर वानरों को खाऊँगा।" कुंभकर्ण की ये गर्जना सुनकर पर्वत-सागर काँपने लगे। युद्ध के लिए जाते हुए अन्य राक्षस भी गर्जना कर रहे थे। इस प्रकार जब कुंभकर्ण अत्यन्त उत्साहपूर्वक युद्ध के लिए जा रहा था तब चारों ओर से अपशगुन होने लगे। दुश्चिह्न दिखाई देने लगे।

कुंभकर्ण ने जब रणवाद्यों की ध्वनि के साथ प्रस्थान किया, तभी उसके ध्वज पर उल्लू आ बैठा। उसके स्वयं के सिर पर गिद्ध बैठ गया। सियार, कुत्ते, गर्दभ सभी चिल्लाने लगे। नगर के द्वार पर भूकंप का स्फोट हुआ। निरभ्र आकाश से बिजली गिरी, जिसने कड़कड़ाहट के साथ अनेक प्राण हर लिए। अशुभ पक्षियों की ध्वनि और विपरीत दिशा में उनका भ्रमण शुरू हो गया। क्रूर उल्कापात होने लगा। कुंभकर्ण की बायीं आँख फड़कने लगी। बायें हाथों में अशुभ सूचक स्फुरण होने लगा। सूर्य निस्तेज हो गया, वायु प्रतिकूल रूप से प्रवाहित होने लगी। राक्षसों को ऐसा लगने लगा कि आज के युद्ध में प्राण नहीं बच पाएँगे, मृत्यु निश्चित ही है। कुंभकर्ण ने अपशगुनों की ओर ध्यान नहीं दिया। अन्त समय निकट आने पर जिस प्रकार मनुष्य स्वयं उस ओर आकर्षित होता है, उसी प्रकार वह सेना लेकर रणभूमि में आया।

वानर सेना में भगदड़, अंगद द्वारा नियन्त्रण– नगर के बाहर आकर वानर-सेना देखकर कुंभकर्ण ने मोटे स्वर में प्रचंड गर्जना की। उस गर्जना को सुनते ही उस ध्वनि से देव, दानव मूर्च्छित

हो जाते थे। उस गर्जना को सुनकर वानर भयभीत होकर भागने लगे। उस नाद को सुनते ही छोटे-छोटे वानर समूह भय से ही गिरने लगे। सभी वानरगण मूर्च्छित हो गए। उस भयानक कुंभकर्ण को देखते ही वानरों का युद्ध करने का धैर्य ही समाप्त हो गया। वानर,दसों दिशाओं में भागने लगे, कुछ वानरों ने आकाश में उडान भरी। वानरगणों को भागते देखकर कुंभकर्ण हर्षित हो उठा। उसने पुनः गर्जना की, जिससे वनचर वानर भयभीत हो उठे। कुछ समुद्र तट की ओर भागे, कुछ विवर में घुस गए। कुछ विक्षिप्त होकर चारों ओर दौड़ने लगे। वानरों की ऐसी दशा देखकर, अंगद उन्हें धीरज बँधाने लगा। वृक्षों की जड़ तोड़ देने से लताएँ व टहनियाँ भी मुरझा जाती हैं, उसी प्रकार वानर दल की दशा हो गई।

राजकुमार अंगद भागते हुए वानरों को देखकर बोला– ''श्रीराम के समक्ष गर्जना करते हुए कहा था कि युद्ध में दशानन का वध करोगे; परन्तु अब बिना युद्ध के ही भाग रहे हो। भागकर घर वापस जाने पर तुम्हारी स्त्रियाँ तुम्हारी निन्दा करते हुए कहेंगी कि 'संग्राम में पीठ दिखाकर अपना अपमानित मुख लेकर लौट आये।' अतः मृत्यु से भी गहन दुःख के भागी बनोगे। तुम दीन-हीन कहलाओगे। युद्ध में श्रीराम को छोड़कर, कैसे भाग रहे हो ? हे वानरो, भागकर क्या तुम अजर-अमर हो जाओगे ? अतः भागने का विचार त्यागकर वापस लौटो। हम अच्छे कुल के वानर हैं। जन्म से ही शूर वीर हैं। भागने के विचार मात्र से अपनी कीर्ति मिट्टी में मिल जाएगी। पूर्वजों के यश पर धब्बा लगेगा और भागकर स्वयं नरक में जाओगे। अतः इसकी अपेक्षा पुरुषार्थ दिखाते हुए युद्ध के लिए वापस लौटो। देह का लोभ धरकर रघुनाथ को युद्ध में छोड़ कर जाने से नरक में जाओगे। कुंभकर्ण का मांसयुक्त शरीर मात्र दिखने में ही बड़ा है, परन्तु शक्तिहीन है। उसके भय से तुम अभागे भाग रहे हो ? अरे, श्रीराम का स्मरण करने से हमें मृत्यु की बाधा नहीं होगी। मैं ही कुंभकर्ण से युद्ध करता हूँ। मेरा पराक्रम देखो।'' अंगद के वचन सुनकर परस्पर एक दूसरे को आश्वासन देते हुए वानरगण वापस लौट आये परन्तु वे अपने पराक्रम के विषय में सशंकित थे। तब अंगद ने कहा– ''मैं विचारपूर्वक तुमसे कह रहा हूँ, देह-लोभ छोड़कर सब कुछ भूल जाओ। श्रीराम का स्मरण करने से तुम्हें पराक्रम की प्राप्ति होगी।''

अंगद के कथनानुसार वानरों ने श्रीराम-नाम का स्मरण किया, जिससे वानरों में उत्साह का संचार हुआ। उनकी शक्ति सौ गुना बढ़ गई। वे कुंभकर्ण से युद्ध के लिए तैयार हुए। राम-नाम की गर्जना करते हुए वे वानर किसी मदोन्मत्त हाथी के सदृश राक्षसों से युद्ध के लिए सिद्ध हुए। शिला, शिखर व वृक्ष इत्यादि हथियार उन्होंने सुसज्जित किये। अंगद के कहने पर वापस लौट आये करोड़ों वानर, युद्ध में पुरुषार्थ दिखाने के लिए सुसज्ज थे। उन्होंने कुंभकर्ण को आह्वान देते हुए, उसके समक्ष गर्जना करते हुए शिलाओं, पाषाणों व पर्वतों से प्रहार किया। सहस्र कोटि वानर योद्धे अचानक कुंभकर्ण से जा भिड़े। वानरों से भूतल व नभ मंडल व्याप्त हो गया था और वे मिलकर वृक्षों से प्रहार कर रहे थे। जिस प्रकार मधुमक्खियाँ छत्ते से लगी रहती हैं, उसी प्रकार वानर कुंभकर्ण को चारों ओर से घेरकर आवेश से वार कर रहे थे परन्तु वानरों के वार कुंभकर्ण को तृणवत् प्रतीत हो रहे थे। वानर उसके समक्ष नगण्य थे; वह उन्हें देख भी नहीं रहा था। कुंभकर्ण पर गिरकर पर्वतों का चूर्ण हो रहा था, शिलाओं के टुकड़े हो रहे थे और शाल-ताल इत्यादि वृक्ष टूट रहे थे। जिस प्रकार शय्या पर स्थित खटमल शरीर पर चढ़ते हैं, उसी प्रकार वानर चारों ओर से उस पर चढ़ रहे थे परन्तु कुंभकर्ण उनकी ओर ध्यान नहीं दे रहा था। कुंभकर्ण पर असर न होता देखकर वानरों ने राक्षस सेना का संहार प्रारम्भ किया। वानरों ने क्रोधित होकर पर्वतों के वार से शतसहस्र सैनिक, हाथी, ऊँट, गर्दभ, व रथों का नाश कर डाला। उनके द्वारा घोड़े,

सारथी, उत्तम रथ, हाथी एवं राक्षसों का अपार संहार किये जाने से रणभूमि में रक्त की नदियाँ प्रवाहित होने लगीं। मांस गिरने के कारण कीचड़ हो गया। वानरों द्वारा किये गए भीषण संग्राम से युद्ध में राक्षसों का संहार हो गया। राक्षसों को युद्ध करना कठिन हो गया। राक्षसों का वध कर वानर रण-भूमि में गर्जना करने लगे, जय-जय कार करने लगे, राम नाम का उद्घोष करने लगे। अपने सैनिकों को मरते हुए देखकर कुंभकर्ण क्रोधित हो गया। वह पराक्रमी वीर वानरों का वध करने के लिए आगे बढ़ा। वे वानर-गण कुंभकर्ण से युद्ध करने के लिए श्रीराम की शरण में गये।

अध्याय २६

[हनुमान-कुंभकर्ण युद्ध]

कुंभकर्ण क्रोधपूर्वक वानरों को निगलने के लिए दौड़ा। वह वानरों के सामने आया फिर भी वानर पीछे नहीं हटे। अंगद द्वारा आश्वासन दिये जाने के कारण वे युद्ध के लिए तैयार थे। अंगद ने श्रीराम-नाम का धैर्य प्रदान करते हुए वानरों के पराक्रम की प्रशंसा की; अतः वे धैर्यपूर्वक कुंभकर्ण के सामने आये। शरीर की आशा न कर मृत्यु की परवाह न करते हुए वानर वीर संग्राम के लिए उल्लसित थे। श्रीरामनाम का जय-जयकार करते हुए उन्होंने युद्ध प्रारम्भ किया जब कुंभकर्ण आवेशपूर्वक आगे बढ़ा तब वानर वीरों ने उस पर शिला, शिखर, पर्वत इत्यादि से प्रभावपूर्ण वार करना प्रारम्भ किया। उस समय कुंभकर्ण क्रोधपूर्वक वानरों का नाश करने के लिए दोनों हाथों से उन्हें पकड़कर मुँह में डालने लगा। वानर मुँह से अन्दर जाकर कानों से बाहर निकल आते थे। कुछ उसकी नाक पर बैठकर भुभुःकार कर रहे थे। कुछ वानर कान से बाहर निकल कर मुकुट पर चढ़ गए तो कुछ ध्वजा पर और कोई छत्र पर चढ़ गए। वानर इस प्रकार निकल जाने से कुंभकर्ण का मुख अतृप्त ही रहा। उसे स्वाद ही नहीं मिला होंठ और जिह्वा अतृप्त ही रही। दाँतों की लालसा का शमन नहीं हुआ। मुख में कुछ न रहने के कारण वह झल्लाता रहा। वानरों को अपना ग्रास न बना सकने के कारण उसे क्रोध आ गया। वह आवेशपूर्वक वानरों का समूल नाश करने के लिए, उनका वध करने के लिए बढ़ा। तब अंगद अपने साथी योद्धाओं के साथ आगे बढ़ा।

वानर श्रेष्ठ व कुंभकर्ण का युद्ध– कुंभकर्ण के क्रोध से आगे बढ़ते ही अंगद सहित दस वानर श्रेष्ठ आगे आये। उनमें अंगद, नील, कुमुद, गवाक्ष, गवय, विनत, मैंद, द्विविद, जाम्बवंत, हरि इत्यादि महावीर थे। इन दस वीरों ने उत्साहपूर्वक कुंभकर्ण पर शिला, शिखर, पर्वत, वृक्ष इत्यादि की वर्षा की। कुंभकर्ण के शरीर पर गिरने से शिला, शिखर, वृक्ष सभी का चूर्ण हो गया। अंगद द्वारा मारी गई शिला से कुंभकर्ण का शूल नहीं टूटा परन्तु उसका रथ टूट गया, जिससे वह घबरा गया। अंगद ने कुंभकर्ण का रथ सारथी, सहस्र खर तथा ध्वज पताका व छत्र को चूर-चूर कर डाला। अंगद ने जब ऐसा पराक्रम दिखाते हुए कुंभकर्ण को रथहीन कर दिया, तब वह गदा हाथों में लेकर क्रोधपूर्वक वानरों की ओर दौड़ा। वह गदा व शूल से वानरों पर वार करने लगा। उस समय अंगद के समझाने के कारण वानर पीठ न दिखाते हुए युद्ध में डटे रहे। कुंभकर्ण ने शूल हाथों में लेकर एक-एक वार में सात-आठ सौ वानरों को मार डाला। वह हाथ फैलाकर सोलह सौ, अठारह सौ, दस सहस्र- इस प्रकार वानर मारने लगा।

उसने असंख्य वानरों को अपनी भुजाओं में दबा कर उनको मसलकर रणभूमि में गिरा दिया, जिससे रणभूमि में रक्त की नदियाँ बहने लगीं, मांस की राशि एकत्र हो गई। उस समय वैद्य श्रेष्ठ सुषेण ने श्रीराम की चरण धूलि लगाकर वानर-समूह को उठाया। कुंभकर्ण उन गिरे हुए वानरों को खाने की बात सोच रहा था, परन्तु उन वानरों को फिर से उठा हुआ देखकर वह चकित रह गया। श्री रघुनाथ भक्तों की सहायता करते हैं। वे अपने भक्तों को मरने नहीं देते। श्रीराम-नाम का जय-जयकार करते हुए सभी वानर उठ बैठे। युद्ध में जब कुंभकर्ण वश में नहीं हो पा रहा था, तब पाँच वानर वीर योद्धा शिला, पाषाण व वृक्ष लेकर कुंभकर्ण से युद्ध के लिए आगे आये।

ऋषभ, शरभ, नील, गवाक्ष व गवय नामक पांच युद्ध-निपुण, प्रबल वानर वीर युद्ध के लिए आगे बढ़े। नील स्वयं पर्वत, पाषाण लेकर युद्ध में गर्जना करते हुए सामने आया और सामने से कुंभकर्ण पर वार किया। कुंभकर्ण पर्वत के वार से रक्तरंजित हो गया। क्रोधित होकर उसने नील पर मुट्ठियों से वार किया। उस वार के कारण नील के मुख से रक्त बहने लगा। पर्वत पर वज्राघात होने के सदृश नील उस आघात से मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। नील मूर्च्छित होकर गिरते ही, श्रीराम-नाम स्मरण से तुरन्त चेतनापूर्ण होकर युद्ध के लिए तैयार हुआ। शिला, शिखर, प्रचंड पर्वत, शाल वृक्ष लेकर हाथों से मर्मस्थल पर आघात करते हुए मुष्टिका प्रहार करने वाले वानर वीर एकत्र होकर आवेशपूर्वक कुंभकर्ण से जा भिड़े। उनके प्रहारों से कुंभकर्ण शिथिल हो गया तथापि उन घावों की ओर ध्यान न देते हुए वह क्रोधित हो उठ खड़ा हुआ। महापराक्रमी ऋषभ को कुंभकर्ण ने हाथों में पकड़कर भुजाओं में कसकर दबाया, जिसके कारण प्रबल व बलवान् ऋषभ को रक्त की उल्टी हुई और वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। ऋषभ को मूर्च्छित करने के पश्चात् कुंभकर्ण शेष चारों वानर वीरों की ओर आवेशपूर्वक गर्जना करते हुए दौड़ा। शरभ ने कुंभकर्ण पर पर्वत फेंका। कुंभकर्ण ने अपनी मुट्ठी के प्रहार से पर्वत को चूर-चूर कर ऋषभ को मूर्च्छित कर धराशायी किया। नल द्वारा शिखर से वार करते ही कुंभकर्ण ने क्रोध से लात मारकर शिला को चूर-चूर कर महावीर नील को भी गिरा दिया। गवाक्ष अत्यन्त प्रख्यात वीर था, उसने कुंभकर्ण के दाँत गिरा दिए। तब कुंभकर्ण ने हाथों से वार कर गवाक्ष को रणभूमि में गिरा दिया। महावीर गंधमादन ने शाल, ताल इत्यादि वृक्षों से वार कर कुंभकर्ण को घायल कर दिया, उसके रक्त बहने लगा। कुंभकर्ण द्वारा शूल से प्रहार करने पर गंधमादन ने आकाश में उड़ान भरी। कुंभकर्ण ने भी आकाश में जाकर उसे पकड़ लिया। गंधमादन के शरीर की सुगंध लेकर उसे भी कुंभकर्ण ने धराशायी कर दिया। इस प्रकार पाँचों वीरों को गिराकर उसने प्रचंड गर्जना की।

वानर वीरों को भगाने के लिए कुंभकर्ण अब उनकी ओर बढ़ा। तब वे निडर महावीर युद्ध के लिए तैयार हुए। राम-नाम स्मरण कर उन्होंने आकाश में उड़ान भरी और वहाँ से कुंभकर्ण पर शिला, पर्वत, पाषाण इत्यादि से वार किया था शाल, ताल इत्यादि वृक्ष भी फेंके। महापराक्रमी वीर कुंभकर्ण ने शिला-वृक्ष तथा पर्वतों को अपने शूल से तोड़ कर गिरा दिया। वानरों के वध के लिए वह दौड़ा, शूर-वीर वानर उसके गले एवं मुकुट से लटकने लगे। असंख्य वानर उसके शरीर पर चलने लगे। कोई उसे नखों से नोंच रहा था तो कोई दाँतों से काट रहा था। कोई घूसों से, तो कोई थप्पड़ों से उस पर प्रहार कर रहा था। इस प्रकार एकत्रित होकर कुंभकर्ण पर प्रहार कर वानरों ने उसे रक्तरंजित कर दिया। अन्त में वानरों पर क्रोधित होकर कुंभकर्ण ने वानरों का संहार करना प्रारम्भ किया। जिस समय कुंभकर्ण शूल से आघात करता, वानर आकाश में उड़ जाते। तब कुंभकर्ण हाथ बढ़ा कर उन्हें बीच में ही पकड़ लेता था।

वह एक को हाथों से पकड़ कर खाता था तो दूसरे को सम्पूर्ण निगल जाता था। किसी को शिला पर पटककर मार डालता था। किसी को दाँतों से दबा देता था। इस प्रकार वानरों के मरने से रक्त व मांस रण-भूमि में चारों ओर फैल गया और रणभूमि अत्यन्त प्रलयकारी दिखाई देने लगी। जिस प्रकार इन्द्र वज्राघात से पर्वत तोड़ देता है, यम अपने पाश से प्राण हरण करता है, उसी प्रकार शूल के आघात से कुंभकर्ण वानरों का संहार कर रहा था। जिस प्रकार शुष्क घास ग्रीष्म की अग्नि से जल जाती है उसी प्रकार कुंभकर्ण वानरों को संत्रस्त कर रहा था।

वानरों का श्रीराम के पास आना; हनुमान-कुंभकर्ण युद्ध– कुंभकर्ण द्वारा वानरों का वध प्रारम्भ करने पर वानर दुःखी होकर श्रीराम की शरण में आये। श्रीराम ने देखा कि कुंभकर्ण के कारण करोड़ों वानर युद्ध में संकट ग्रस्त हो गए हैं। वानर सेना की दुर्दशा देखकर हनुमान क्रोधित होकर उठ खड़े हुए और कुंभकर्ण का वध करने के लिए चल पड़े। सीता को ढूँढ़ते समय कुंभकर्ण का प्रचंड आकार देखा ही हुआ था। अतः उससे युद्ध करने का हनुमान ने निश्चय किया। अत्यन्त बलवान् के रूप में प्रसिद्ध कुंभकर्ण से युद्ध कर उसका पराक्रम देखने के लिए हनुमान उत्साहित थे। 'आज मेरे महाभाग्य से रघुनाथ मुझ पर प्रसन्न हैं अतः युद्ध में पराक्रम प्रदर्शित करने के लिए कुंभकर्ण से युद्ध करना है। सर्वप्रथम पूँछ से युद्ध कर कुंभकर्ण की शक्ति का अनुमान लगाया जाय। अगर उससे काम न हो सका तो उड़ान भर कर उसका संहार किया जाय'- ऐसा हनुमान सोचने लगे। फिर वे पूँछ के सिरे से पर्वत उठाकर फेंकने लगे। पूँछ द्वारा असंख्य पर्वत फेंकने के कारण कुंभकर्ण भ्रमित हो गया। शूल हाथों में लेकर उसने उन पर्वतों को तोड़ा। इन सहस्र पर्वतों को तोड़ने के कारण वह अत्यधिक थक गया। हनुमान की पूँछ में ऐसा भीषण पराक्रम था। उनकी इसी पूँछ ने पहले राक्षसों का संहार किया था। लंका जलायी थी। उनकी पराक्रमी पूँछ ने युद्ध में इन्द्रजित् को परास्त कर दिया। उस पूँछ से लंका में सब डरे हुए थे और हनुमान की निडरता व वीरता से आतंकित थे। कुंभकर्ण भी भयभीत हो गया था।

तत्पश्चात् हनुमान ने आह्वान करते हुए गर्जना की और आवेशपूर्वक कुंभकर्ण के समक्ष आ खड़े हुए। किसी अचल पर्वत श्रेष्ठ सदृश पर्वत शिखर हाथों में लेकर हनुमान कुंभकर्ण के समक्ष खड़े थे। मदोन्मत्त कुंभकर्ण जब शूल लेकर दौड़ रहा था, उसे समक्ष हनुमान खड़े दिखाई दिए, जिससे वह विचलित हो उठा। हनुमान द्वारा पूँछ से प्रहार करने के कारण कुंभकर्ण का मस्तक चकराने लगा। उसके हाथों से शूल रणभूमि में गिर पड़ा। शूल गिरने के कारण कुंभकर्ण सन्तप्त हो गया व शूल उठा कर हनुमान को मारने के लिए दौड़ा। उस समय कुंभकर्ण का पराक्रम देखने के लिए हनुमान सतर्क हो कर उसकी शक्ति व वार का अनुमान करने के लिए खड़े हो गए। हनुमान का वध करने के लिए कुंभकर्ण क्रोध से गर्जना करते हुए आवेशपूर्वक दौड़ा। वह शूल प्रज्वलित विद्युत सदृश था, उस पर सिंदूर लगा था। शूल दैदीप्यमान पर्वत सदृश दिखाई दे रहा था। कुंभकर्ण ने हनुमान पर शूल से प्रहार किया। हनुमान को तो वह शूल नहीं लगा अपितु कुंभकर्ण को चक्कर आकर वह पीछे की ओर गिर पड़ा, उसके मुख से रक्त निकलने लगा। परन्तु हनुमान को मूर्च्छित समझकर कुंभकर्ण उनका वध करने के लिए दौड़ा। हनुमान महाकुशल थे। उन्होंने कुंभकर्ण के पैर पकड़कर गर्जना करते हुए उसे गोल-गोल घुमा दिया। उसे कभी भूमि पर तो कभी आकाश में घुमाया। महाबलवान् हनुमान ने उसे चक्राकार घुमाया। तत्पश्चात् हनुमान ये सोचने लगे कि उसका क्या करें ? इसे समुद्र में डालने से उसका पानी उफनकर श्रीविष्णु की नाभि से जा भिड़ेगा; इसे भूमि पर पटकने से पाताल चूर-चूर हो जाएगा। आकाश में इसे फेंकने पर

यह विमानों की पंक्तियाँ निगल जाएगा। अब इसे किस प्रकार मारा जाय ? कुंभकर्ण जैसे विशालकाय को सहजता से उठा लेने के कारण सभी हनुमान की प्रशंसा करते हुए नाचने लगे। श्रीराम भी सन्तुष्ट होकर सुग्रीव को हनुमान के पराक्रमी पुरुषार्थ व रणकौशल के विषय में बताने लगे।

सुग्रीव का युद्ध में आना, मारुति का क्रोध– मारुति के युद्ध कौशल सम्बन्धी श्रीराम के वचन सुनकर सुग्रीव में उत्साह जागृत हुआ और उसने उड़ान भर कर कुंभकर्ण को ललकारा। एक योद्धा से दो योद्धाओं के युद्ध करने में कोई पुरुषार्थ नहीं है, ऐसा सोचकर हनुमान ने कुंभकर्ण से युद्ध रोक दिया। हनुमान ने कुंभकर्ण को ऊपर उठाया हुआ था, उसे वैसे ही लाकर नीचे खड़ा कर दिया। महावीर हनुमान उड़ान भरकर श्रीराम के समीप आये। उन्होंने श्रीराम की चरण वन्दना की और तत्पश्चात् क्रोधपूर्वक बोले– "हे श्रीराम, नेता के लक्षण आपमें तनिक भी नहीं है। मुझमें आपने क्या कमी देखी, जो सुग्रीव को भेजा ? मैंने वीरता व धैर्य का त्याग नहीं किया, मुझमें कोई कमी न होते हुए भी आपने सुग्रीव को युद्ध के लिए क्यों भेजा ? युद्ध करने के लिए आपने किसी दूसरे को भेजा, यह उलाहना मैं किसके पास कहूँ ?" यह कहते हुए हनुमान विलाप करने लगे। हनुमान की व्यथा सुनकर श्रीराम को उन पर दया आई; उन्होंने हनुमान को आलिंगनबद्ध करते हुए आश्वासन दिया। श्रीराम हनुमान से विनती करते हुए बोले– "मेरे सारे अपराध क्षमा करो। मैंने सुग्रीव से बस इतना कहा कि 'हनुमान का युद्ध-कौशल देखो," उसके साथ ही उसमें उत्साह का संचार हुआ और मुझसे पूछे बिना वह उड़ चला। हे हनुमान, तुम्हारी सौगंध, सुग्रीव मेरी अनुमति के बिना आवेशपूर्वक युद्ध-क्षेत्र में आया है। मैं सत्य कह रहा हूँ।" श्रीराम के मृदु वचनों से प्रभावित होकर हनुमान श्रीराम के चरणों पर गिर पड़े और बोले- "आपकी वाणी निश्चित ही सत्य है क्योंकि वह वेद पुराणों को भी वंदनीय है।" तत्पश्चात् हनुमान, श्रीराम के चरणों पर मस्तक रखकर बोले "श्रीरघुनाथ मैं सुखी हुआ। अब मेरे दुःख का पश्चाताप न करें।"

अध्याय २७

[कुंभकर्ण पर सुग्रीव की विजय]

वानरराज सुग्रीव ने कुंभकर्ण को अपना लक्ष्य बना कर शाल वृक्ष हाथों में लेकर वेगपूर्वक उड़ान भरते हुए गर्जना की। कुंभकर्ण आश्चर्यचकित होकर सोचने लगा– "मुझे उठाकर हनुमान वेगपूर्वक चक्राकार घुमा रहा था और वह इस प्रकार मुझे मारे बिना ही चला गया। मेरी शक्ति को क्षणमात्र में क्षीण करने वाला वह बलाढ्य मारुति धर्मपूर्वक युद्ध करने वाला वीर है। एक से दो श्रेष्ठ योद्धाओं को युद्ध नहीं करना चाहिए। ऐसा धर्मयुद्ध के नियम का पालन करते हुए सुग्रीव को आते देखकर मुझे घुमाना रोककर भूमि पर खड़ा कर दिया और स्वयं श्रीराम के पास वापस लौट गया। यह तो हनुमान नहीं प्रसिद्ध वानरराज सुग्रीव है। इसका तो मैं क्षण-मात्र में युद्ध में नाश कर दूँगा।"

सुग्रीव और कुंभकर्ण का युद्ध– कुंभकर्ण सुग्रीव पर ध्यान केन्द्रित करते हुए शूल लेकर आवेशपूर्वक सुग्रीव के सामने आ खड़ा हुआ। वे दोनों उत्तम योद्धा जिनमें से एक हाथों में शूल लेकर तो दूसरा शालवृक्ष हाथों में लेकर आमने-सामने खड़े रहकर एक दूसरे की निर्भत्सना करने लगे। सुग्रीव बोला– "अरे नीच कुंभकर्ण, वानरों का वध कर अपना बड़प्पन दिखा रहे हो। अब मैं शालवृक्ष हाथों

में लेकर आया हूँ, अब तुम विचारपूर्वक युद्ध कर मुझे अपनी शक्ति दिखाओ। मैं अकेला शालधारी श्रीराम का सेवक भीषण युद्ध कर तुम्हारा नाश कर दूँगा।'' सुग्रीव के ये वचन सुनकर कुंभकर्ण उपहासपूर्वक हँसते हुए बोला– ''जो सच्चे वीर होते हैं, वह अपना पराक्रम बोलकर नहीं दिखाते बल्कि वह पराक्रम युद्ध में दिखाते हैं। ज्यादा बोलने वाले निष्ठापूर्वक युद्ध नहीं कर सकते। अगर तुम वास्तव में पुरुषार्थी हो तो मुझे वह पुरुषार्थ दिखाओ।'' सुग्रीव के साथ युद्ध करने के लिए कुंभकर्ण बहुत उत्साहित था। दोनों आगे बढ़कर निर्णायक युद्ध करने लगे।

कुंभकर्ण के वचन सुनकर सुग्रीव क्रोधित हो उठा। कुंभकर्ण द्वारा शूल से आघात करते ही शाल-वृक्ष से सुग्रीव ने कुंभकर्ण के हाथ पर प्रहार किया। शाल के हाथों पर गिरते ही शूल भूमि पर गिर पड़ा। कुंभकर्ण को चक्कर आ गया। विकलता व भय के कारण आई मूर्च्छा पर नियन्त्रण करते हुए वह शूल उठाकर सुग्रीव की ओर दौड़ा। कुंभकर्ण ने क्षणार्द्ध में वानरराज को रणभूमि में धराशायी कर दिया। यह देखकर राक्षस-सेना ने प्रसन्न होकर गर्जना की। सुग्रीव पर शूल से प्रहार होते ही उसने क्रोधपूर्वक उछलकर शूलको पकड़ लिया। जिस प्रकार गन्ने को घुटनों पर रखकर तोड़ते हैं, उसी प्रकार सुग्रीव ने उस प्रचंड शूल के दो टुकड़े कर दिए, इतना बल उसमें विद्यमान था। तीन सौ व्यक्तियों के ज़ोर लगाने पर भी जो शूल उठता नहीं है, उस शूल को सुग्रीव ने बीच में ही पकड़ कर घुटनों पर रखकर तोड़ डाला। अत्यन्त तीक्ष्ण धार से युक्त, भारी, रत्न जड़ित, चमकता हुआ वह अद्भुत महाशूल सुग्रीव ने हवा में ही पकड़ कर तोड़ डाला। अतः वानर सेना के महावीरों ने श्रीराम नाम का आनन्दपूर्वक जय जयकार करते हुए गर्जना की। शूल के टूटते ही स्वर्ग के देवता नाचने लगे और बोले– ''राजा सुग्रीव महान हैं, उसने अत्यन्त दुष्कर कार्य कर दिखाया है।'' कुंभकर्ण सोचने लगा– ''जिस शूल ने सुरवर, गंधर्व, यक्ष तथा प्रत्यक्ष युद्ध में अमरेन्द्र को परास्त किया, ऐसे अद्भुत शूल को इसने अंतराल में झेलकर सत्वर तोड़ डाला; धन्य हो, सुग्रीव का पुरुषार्थ।'' कुंभकर्ण आश्चर्यचकित था परन्तु अपने महाशूल के टूटने के कारण वह क्रोधित हो उठा। उसने एक गिरि शिखर सुग्रीव पर फेंका। सुग्रीव ने उड़ान भरी परन्तु वह शिखर उसकी छाती से जा टकराया। वह मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। इस प्रकार कुंभकर्ण ने क्षणार्द्ध में वानर राजा को भूमि पर गिरा दिया। यह देखते ही राक्षस वीरों ने जय-जयकार करते हुए गर्जना की।

कुंभकर्ण मन ही मन सोचने लगा– 'वानरराज युद्ध में मेरे वश में हो गया है। मुझे अद्भुत यश प्राप्त हो गया है।' इन विचारों से वह अति प्रसन्न हो उठा। उसने सोचा– 'मैंने युद्ध में सुग्रीव का वध किया। वानर सैन्य हताहत हुए। अब राम, लक्ष्मण व हनुमान को भी मारूँगा। मुझसे रणभूमि में भिड़कर बेचारा मानव रघुनाथ क्या कर लेगा ? मुख्य रूप से हनुमान का वध करने पर युद्ध का उपयोग समाप्त हो जाएगा।' तत्पश्चात् रावण के समक्ष अपनी सफलता प्रदर्शित करने के लिए कुंभकर्ण ने महावीर सुग्रीव को बगल में दबाकर लंका की ओर प्रस्थान किया। उस समय राक्षस रणवाद्य बजा रहे थे। भाट उसकी स्तुति कर रहे थे। इस प्रकार वह गर्वपूर्वक लंका की ओर जा रहा था।

कुंभकर्ण द्वारा युद्ध के आवेश में सुग्रीव को पकड़कर ले जाते हुए देखकर वानरों में हाहाकार मच गया। वानर असमंजस में पड़कर इधर-उधर दौड़ने लगे। यह देखकर हनुमान सामर्थ्यपूर्वक उठ खड़े हुए। उन्होंने वानरराज को छुड़ाने के लिए आवेशपूर्वक गर्जना की। 'अपने नेता को कुंभकर्ण द्वारा ले जाया जाना वानर चुपचाप देख रहे हैं, परन्तु मैं सेवक हूँ, मैं ऐसा नहीं कर सकता। मैं स्वामी के कार्य के लिए कुंभकर्ण पर मुट्ठी से प्रहार कर वानरराज को छुड़ाऊँगा। कुंभकर्ण का वध कर डालूँगा। अगर

कुंभकर्ण का वध कर मैंने राजा सुग्रीव को नहीं छुड़ाया तो राजा को अपयश प्राप्त होगा और वह लज्जा से अपना प्राण त्याग देगा। युद्ध में कुंभकर्ण का वध करने के लिए मुझे क्षणार्द्ध भी नहीं लगेगा।' इस पर श्रीराम ने कहा कि, 'सुग्रीव स्वयं ही अपने को मुक्त करायेगा। तुम्हें पराक्रम करने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे द्वारा पुरुषार्थ के लिए जाने पर राक्षस उसका वध कर देंगे व अनर्थ हो जाएगा। अतः तुम शांत रहो' श्रीराम द्वारा ऐसा करने पर वानर वीर हनुमान शांत खड़े हो गए।

कुंभकर्ण को लंका जाते समय अनेक अपशगुन हुए। बिल्ली म्यॉव-म्यॉव के स्वर में विलाप करती रही तथा उसका रास्ता काट गई। सुग्रीव को बन्दी बनाने के महायश में मदोन्मत्त कुंभकर्ण उल्लसित होकर आगे बढ़ता रहा। उस समय विमान के आकार वाले लंका के भवनों पर खड़े रहकर स्त्री-पुरुष उस पर पुष्प-वृष्टि कर रहे थे। स्त्रियाँ उल्लसित होकर घरों में से उसके मस्तक पर अक्षत डाल रही थीं, उसकी आरती उतार रही थीं। वह विजयी मुद्रा में आगे बढ़ रहा था। श्रेष्ठ पतिव्रता विभीषण की पत्नी जब कुंभकर्ण की आरती उतारने आयी तब विपरीत घटना घटित हुई। कुंभकर्ण की लम्बाई अधिक होने के कारण वे चावल उसके मस्तक पर न गिरकर सुग्रीव के मस्तक पर जा गिरे। उस पतिव्रता द्वारा कहे गए वचन 'विजयी हो' सुग्रीव के लिए सत्य सिद्ध हुए तथा उसकी मूर्च्छा जाकर, चेतना पुनः लौट आई और कुंभकर्ण के बन्धन से किस प्रकार मुक्त हुआ जाय, इस सम्बन्ध में वह विचार करने लगा। श्रीराम-नाम के बार-बार स्मरण करने से श्रम की थकान दूर होकर बन्धन से मुक्ति मिलती है, इस बात का उसे स्मरण हो आया। सुग्रीव ने मन ही मन राम नाम का स्मरण किया और वह मुक्त हो गया। तत्पश्चात् वह उसकी काँख से निकल कर उसकी छाती पर बैठ गया। परन्तु मदोन्मत्त, बलोन्मत्त, गर्वोन्मत्त, विजयोन्मत्त तथा राजोन्मत्त हुए पंचोन्मत्त कुंभकर्ण को अपनी उन्मत्तता के भ्रम में यह भी पता न चला कि सुग्रीव उसके बन्धन से मुक्त हो गया है।

सुग्रीव कुंभकर्ण की छाती पर बैठा था। उसने अपने नखों से कुंभकर्ण की नाक छेद डाली। दाँतों से कान काट दिए तथा उसने आकाश में उड़ान भरी। उस समय कुंभकर्ण पाँच प्रकार के उन्मादों में मग्न था, उसे अपनी देह की सुध भी नहीं थी। सुग्रीव ने नाक-कान काट कर अपनी दुर्गति कर दी है, यह भी वह नहीं समझ सका। नाक-कान काट कर सुग्रीव ने आकाश में छलाँग लगा दी है, यह भी उसे ज्ञात नहीं हुआ। जिस प्रकार मद्यपान करने वालों को शरीर की सुध नहीं रहती है। उसी प्रकार कुंभकर्ण अपनी देह की सुध-भूल गया था। वानर ने क्या किया यह वह समझ न सका। कुंभकर्ण यश के उन्माद में लंका पहुँचा। कुंभ अर्थात् घड़े के सदृश कान होने के कारण ही उसका नाम कुंभकर्ण था। वानर राज द्वारा कान काटने के कारण वह विकर्ण हो गया था। स्वर्ग में देवताओं ने ताली बजाकर आनन्द व्यक्त करते हुए कहा- "सुग्रीव सच्चा पराक्रमी है, जिसने कुंभकर्ण के नाक व कान नष्ट कर दिए।" सुग्रीव ने आकाश में छलाँग लगाकर वहाँ से कुंभकर्ण के नाक और कान नीचे डाल दिए। उसके नीचे दबकर राक्षस सेना मर गई। घर-घर में हाहाकार मच गया। इस प्रकार यश-संपादन कर वानर राजा सुग्रीव, श्रीराम के पास आया।

श्रीराम के पास आकर सुग्रीव ने दंडवत् प्रणाम किया। श्रीराम की चरण-वंदना की। सभी वानरों ने आनन्दपूर्वक गर्जना की। रणवाद्यों का घोष किया। पताका फहरायी और श्री राम-नाम का जय-जयकार करते हुए कहा- "हमारा राजा बलशाली है। उसने बलोन्मत्त कुंभकर्ण के नाक व कान नष्ट कर दिए व विजय प्राप्त की।" स्वयं सुग्रीव बताने लगा- "श्रीराम, आपके बिना हमारा पराक्रम व्यर्थ है। कुंभकर्ण

के द्वारा मुझे पकड़ने पर निश्चित ही मेरे प्राण चले जाते परन्तु राम-नाम का मुझे स्मरण हो आया और मेरी चेतना वापस लौटी। श्रीराम-नाम के बल के समक्ष बेचारे राक्षसों का बल क्षुद्र कीटकों के सदृश है। श्रीराम-नाम के बल के कारण ही मैं उसके नाक-कान काट सका और आपके चरणों में वापस लौट सका। श्रीराम-नाम के पास ही यश, कीर्ति, विजय-वृत्ति तथा भुक्ति व मुक्ति निवास करते हैं। जो राम-नाम का स्मरण करते हैं, वे धन्य हो जाते हैं। धन्य हैं श्रीराम के चरण, उनके दर्शन व उनका स्मरण धन्य है। श्रीराम-नाम के कारण बन्धनों से मुक्ति प्राप्त होती है। धन्य है श्रीराम की कीर्ति, धन्य है राम-भजन-भक्ति। धन्य है श्रीराम की नित्य अनुसरण-वृत्ति। जो नाम स्मरण करते हैं, वे धन्य हैं। उस नाम में विधि-विधान नहीं है, कर्मबन्धन नहीं है। यह नाम ही दास के लिए अनुष्ठान सदृश तथा परिपूर्ण परब्रह्म है। नाम को छुआछूत का भय नहीं है। राम-नाम से सुख प्राप्ति होती है। राम-नाम कभी अनाध्यायी नहीं होता। नाम नित्य स्वाध्याय के योग्य रहता है। जो नामस्मरण करते हैं, वे वास्तव में भाग्यवान् हैं। नाम स्वयं ही परब्रह्म है।" सुग्रीव के वचनों को सुनकर श्रीराम के हृदय में प्रेम उमड़ आया। उन्होंने उसे आलिंगनबद्ध करते हुए हृदय से लगा लिया और अपने पास बैठाया। श्रीराम सुग्रीव को अपने प्राणों से प्रिय आप्त के रूप में मानते थे।

सुग्रीव ने शीघ्र उठकर हनुमान के चरण पकड़ लिए। वे हनुमान से बोले— "मेरे समस्त अपराधों को तुम क्षमा करो। मैं अपनी उद्दंडता के विषय में बताता हूँ। मैं महामूर्ख, तुम्हारे युद्ध के बीच में आ गया। मैंने कोई विचार नहीं किया। युद्ध की अपनी इच्छा को रोक न सका। तुम्हारे युद्ध के सम्बन्ध में अभक्ति दिखाने के कारण बन्धन में फँस गया। श्रीराम-नाम के स्मरण के कारण ही उससे मुक्त हो सका। हे मारुति, मुझे क्षमा करो। इतना पराक्रमी होते हुए भी कुंभकर्ण के चंगुल में फँस गया क्योंकि मैं तुम्हारे युद्ध के बीच में बाधा बनकर आया। उस समय मुझे श्रीराम का स्मरण हुआ, वह हनुमान जैसे सद्गुरु की कृपा के कारण ही हुआ और उसी के कारण मैं मुक्त हो सका। तुम्हीं ने मुझे श्रीराम से मिलवाया। तुम गुरु हो और हम शिष्य हैं। मैंने उद्दंडतापूर्वक जो भी किया, उसके लिए तुम मुझे क्षमा करो।" सुग्रीव के वचन सुनकर हनुमान चरणों पर गिर पड़े। तब सुग्रीव ने उन्हें आलिंगनबद्ध किया। यह देखकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए। दोनों के गुण-अवगुण समाप्त होकर वे एकाकार हुए।

अध्याय २८

[कुंभकर्ण वध]

कुंभकर्ण पर विजय प्राप्त करने का यश सम्पादन कर सुग्रीव श्रीराम के पास वापस लौटा, इसलिए वानरों ने उत्साहपूर्वक गर्जना की। दूसरी ओर कुंभकर्ण विजय के उल्लास में मग्न रावण को वंदन करने के लिए लंका की ओर जा रहा था। लंका-जन उस पर हँस रहे थे क्योंकि नाक-कान खोकर, अपमानित होकर भी वह अपनी विजय का उल्लास मना रहा था। वह अत्यन्त उन्मत्त था अतः कोई उसे नाक-कान कटने की वार्ता कहने का साहस नहीं जुटा पा रहा था। कुंभकर्ण निश्चित ही शत्रु का नाश करेगा, ऐसा रावण को पूर्ण विश्वास था परन्तु नाक-कान गँवाकर कुंभकर्ण को वापस आया देखकर लंकानाथ अत्यन्त दुःखी हुआ। कुंभकर्ण इस बात से अवगत हो कि सुग्रीव ने उसकी नाक और कान

काट लिये हैं, रावण ने उसे शीशा दिखाया। शीशा सामने देखकर वह उससे ही लड़ने लगा कि 'अपने काले मुख से मुझे नाक विरहित दिखा रहे हो।' परन्तु तत्पश्चात् हाथों से टटोलने पर उसे ज्ञात हुआ कि उसके नाक और कान नहीं है। सुग्रीव ने ही यह सब किया है, ऐसा सोचकर क्रोधित हो वह सुग्रीव को अपनी काँख में ढूँढ़ने लगा परन्तु वह तो नाक-कान काटने का पराक्रम कर श्रीराम के पास वापस लौट चुका था। वह स्वयं को कोसते हुए बोला– ''मेरा रण-कौशल व्यर्थ है। विजय और कीर्ति मेरे समीप आने पर भी मैंने अपयश ही प्राप्त किया। अब मैं लंकापति को किस प्रकार मुख दिखाऊँ ? नाक-कान गँवाकर कैसे उसकी चरण वंदना करूँ ?'' क्रोधपूर्वक ऐसा कहते हुए वह पुनः वानर-सेना का संहार करने के लिए रणभूमि में वापस लौटा। सुग्रीव द्वारा नाक-कान काटने से अपमानित होकर वह क्रोधपूर्वक वानरों को मारने के लिए आया। नाक-कान कटने से प्रवाहित होने वाली रक्त की धाराओं से रक्तरंजित वह ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों किसी ने पर्वत को रंग दिया हो।

लंका भुवन त्यागकर कुंभकर्ण ने उड़ान भरी और वानरगणों को मारकर स्वयं उनका भक्षण करने लगा। आँखें फैलाकर तथा मुख को खोलकर वह वानरों को खा रहा था। गर्जना करते हुए वह वानरों के साथ ही राक्षसों को भी खा रहा था। रणभूमि में वह इतना उन्मत्त हो गया था कि उसे अपने-पराये का भी ज्ञान नहीं रहा था। जिस प्रकार प्रलयकाल की अग्नि सभी को जला देती है, उसी प्रकार कुंभकर्ण वानर और राक्षस सभी का भक्षण कर रहा था। मांस खाने आये हुए भूत, पिशाच, कंकाल, भालू, सभी को वह निगलता जा रहा था। वृक्ष, शिला, पर्वत तथा पाषाण लेकर वानर निर्णायक युद्ध करने में जुटे थे परन्तु कुंभकर्ण उनके वश में नहीं हो रहा था। अतः वे सभी श्रीराम के पास गये। श्रीराम ने देखा कि नासिका विरहित कुंभकर्ण वानरों का संहार कर रहा है। शीघ्र ही श्रीराम ने धनुष बाण सुसज्जित किया। उनका स्वर्णमंडित रत्न, मणियों से जड़ा हुआ तथा पन्नों से आवृत गुण गंभीर धनुष अत्यन्त सुशोभित हो रहा था। इस प्रकार सुसज्जित धनुष को लेकर वानरगणों की अगुवाई करते हुए युद्ध के लिए तैयार होकर श्रीराम आवेशपूर्वक कुंभकर्ण का वध करने के लिए चल पड़े।

विभीषण की कुंभकर्ण से भेंट– श्रीराम ने धनुष सुसज्जित कर कुंभकर्ण को आगे-पीछे हिलने तक का अवसर नहीं दिया। दोनों ओर वानरगण तथा समीप ही लक्ष्मण खड़े थे। इस प्रकार आवेशपूर्वक श्रीराम को युद्ध के लिए जाते देखकर विभीषण दौड़ते हुए वहाँ आये। उन्होंने श्रीराम के चरणों पर गिरकर उनकी चरण-वंदना करते हुए मधुर शब्दों में श्रीराम से विनती की– ''कुंभकर्ण को मुझसे प्रेम है। उससे भेंट कर मैं जब तक उससे आत्मीयतापूर्वक बातें करूँ, तब तक कृपा कर आप शरवृष्टि न करें। वानरगणों को भी कुछ समय तक युद्ध करने से रोककर मुझे कुंभकर्ण से भेंट करने की आज्ञा दें।'' इस पर श्रीराम बोले– ''कुंभकर्ण अत्यन्त उन्मत्त हो गया है। क्रोधवश वह तुम्हारा भी वध कर देगा तथा व्यर्थ ही कुल क्षय होगा।'' श्रीराम के वचन सुनकर विभीषण विलाप करने लगा। उनका प्रेम देखकर श्रीराम ने उन्हें कुंभकर्ण से भेंट करने की आज्ञा दी।

कुंभकर्ण को सामने विभीषण दिखाई देते ही उसकी आँखें भर आई क्योंकि बालपन से ही उसने इसका पालन किया था। माता, पिता, धाय, पालन-पोषण करने वाला सब वही था। उनसे भी अधिक उसका प्रेम था। विभीषण को रावण द्वारा लातों से मारे जाने के कारण वह व्यथित होकर विलाप करने लगा। कुंभकर्ण को व्यथित देखकर विभीषण बोला– ''कुल की रक्षा के लिए मैंने उसे हित की सारी बातें बतायी। प्रपंच हित के लिए विवेकपूर्ण बातें समझाईं।

हितपूर्ण परमार्थ की बातें बतायीं तो रावण ने मुझे लात मारी।'' वह रुँधे हुए स्वर में आगे बोला– ''ये मेरी हितपूर्ण बातें इन्द्रजित् लंकानाथ, समस्त प्रधान एवं प्रहस्त किसी ने भी नहीं सुनी। सभा में ही मुझे लातों से मारा, फिर भी मैं क्रुद्ध नहीं हुआ। तत्पश्चात् बलपूर्वक हाथों से पकड़कर मुझे निकालकर श्रीराम के पास भेज दिया। मैंने श्रीराम की शरण में आकर प्रार्थना की– मेरे सभी कठोर अपराध क्षमा करें।'' विभीषण के ये वचन सुनकर कुंभकर्ण विलाप करने लगा। दोनों ने एक दूसरे को आलिंगनबद्ध किया। उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। तत्पश्चात् विभीषण ने कुंभकर्ण को एकान्त में ले जाकर कहा– ''रघुपति से बैर करने पर कुलक्षय होकर कुल समाप्त हो जाएगा।'' एकांत देखकर कुंभकर्ण ने अपने भाव प्रकट करते हुए कहा– ''विभीषण, तुम्हारे भाग्य सामर्थ्यवान् थे अतः तुम्हें रघुनाथ प्राप्त हुए। जप, तप, ध्यान, योग तथा अनुष्ठान करने पर भी रघुनन्दन स्वप्न में भी दर्शन नहीं देते; वही रघुनन्दन तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं।''

उन दोनों भाइयों की एकान्त में भेंट होने के कारण कुंभकर्ण ने भी अपने भाव प्रकट करते हुए कहा- ''श्रीरघुनाथ निश्चित ही पूर्णावतार हैं, यह मैं जानता हूँ। नारद ने उनके लिए कहा था कि श्रीराम अवतारों के अवतार हैं। उनसे शत्रुता करने पर वे कुल का नाश कर देंगे। श्रीराम से वैर करने पर पुत्र, सेना व प्रधान सहित रावण का नाश हो जाएगा, यह मैं पूरी तरह से जानता हूँ। तुमने उचित ही किया कि श्रीराम की शरण में आकर कुल को तार दिया, जिससे हम सभी का उद्धार हुआ। तुम राक्षस-कुल के उद्धारकर्ता हो। हे विभीषण, तुम्हारे पास श्रीराम की भक्ति है। तुम एक महान परमार्थ साधक हो। राक्षस-कुल में तुम धर्म-भूषण व सत्य का आचरण करने वाले हो। तुम्हारे धर्म-पूर्ण आचरण की पताका वैकुंठ में फहरा रही है। जिसके पास श्रीराम की भक्ति है, उसे किसी प्रकार का भय नहीं है। कलिकाल उसकी शरण आता है और विघ्न भी उसकी शरण में आते हैं। श्रीरघुनाथ क्रोधित होने पर युद्ध में राक्षसों का नाश कर देंगे। श्रीराम की शरण में जाने पर ही राक्षस-कुल को संरक्षण प्राप्त होगा। हे विभीषण, तुम तिलांजलि व पिंडदान करने के लिए शेष बचोगे, तुम अत्यन्त भाग्यशाली हो। श्रीराम रघुनाथ तुमसे सन्तुष्ट हैं। हे विभीषण, तुम्हें निश्चित ही लंका का राज्य प्राप्त होगा। वे प्रतापी रघुनन्दन धन्य हैं, जिन्होंने दशानन पर विजय प्राप्त करने से पहले ही लंका का राज्य दान में दे दिया। उसे मिथ्या कौन कर सकता है ? हमने केवल लौकिक जीवन ही व्यतीत किया परन्तु तुमने जीवन में धैर्य एवं पुरुषार्थ के स्वामी रघुनाथ को प्राप्त किया। राक्षसों को मुक्ति प्राप्त होने के लिए यह सब घटित हुआ। श्रीराम के बाण मुझे लगने पर मैं पूर्ण ब्रह्म को प्राप्त करूँगा।'' अत्यन्त उत्साहपूर्वक यह बोलकर कुंभकर्ण ने विभीषण को दंडवत् प्रणाम किया और उसकी चरण वंदना की। तत्पश्चात् वह बोला– ''श्रीराम से युद्ध करने की मुझे तुम अनुमति दो।''

कुंभकर्ण बोला– ''अत्यन्त क्रोध आने पर मुझे अपने पराये का स्मरण नहीं रहता। अतः तुम यहाँ से वापस जाओ क्योंकि हम राक्षस अत्यन्त अविवेकी और उन्मत्त हैं। तुम्हें यहाँ समक्ष देख कर अचानक अनर्थ हो सकता है। अतः हे सुबंधु, तुम यहाँ से निश्चित ही निकल जाओ। तुम श्रीराम के शरणागत हो। तुम्हारे वध की इच्छा नहीं है परन्तु तुम्हारे समीप रहने पर अनर्थ हो सकता है। अतः हे भाग्यवन्त, तुम यहाँ से चले जाओ। श्रीराम के पास जाओ, वहाँ तुम पर निश्चित ही वार नहीं होगा।'' इतना कहकर कुंभकर्ण रण-क्षेत्र की ओर बढ़ा। जिस प्रकार काल प्राणिमात्र को अपने पाश में रखता है अथवा यम यमपाश में बाँधता है, अंतक सभी को निगल जाता है, जिस प्रकार अग्नि वन को भस्म कर देती है, उसी प्रकार कुंभकर्ण वानरों का संहार कर रहा था। कुंभकर्ण द्वारा वानरों का नाश होते

देखकर रघुनन्दन क्रोधित हो उठे और उन्होंने धनुष बाण सुसज्जित किया। धनुष की टंकार करते ही उसकी ध्वनि सम्पूर्ण गगन में व्याप्त हो गई। कुंभकर्ण चौंक गया। उस धनुष की गर्जना से कुंभकर्ण सन्तप्त हो उठा। वह आवेशपूर्वक वेग से श्रीराम की ओर बढ़ा। उसको आते देखकर लक्ष्मण आगे आये। उन्होंने धनुष सुसज्जित कर सात बाण चलाये, वे बाण लगने पर भी कुंभकर्ण विचलित नहीं हुआ। यह देखकर लक्ष्मण ने और कठोर बाण चलाये। कुंभकर्ण उन सभी बाणों की अवहेलना करते हुए लक्ष्मण की उपेक्षा कर श्रीराम को लक्ष्य बनाकर उनकी ओर दौड़ा।

श्रीराम व कुंभकर्ण का युद्ध– श्रीराम के पराक्रम को धिक्कारते हुए, उनके द्वारा मारे गए राक्षसों की उपेक्षा करते हुए कुंभकर्ण बोला– "मैं कोई वन में विचरण करने वाला विराध नहीं हूँ। त्रिशिरा, दूषण अथवा खर भी नहीं हूँ तथा वानर बालि भी नहीं हूँ कि जिस पर असावधान रहने पर बाण चलाकर प्राण हर लिये जायँ। मैं पैरों से विरहित कबंध भी नहीं हूँ और न ही सुवर्ण-मृग बना हुआ मारीच हूँ, मेरा नाम कुंभकर्ण है। मैं राम और लक्ष्मण दोनों का निर्दलन करूँगा। मेरे हाथों का मुद्‌गर अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाला व कठोर है। इस मुद्‌गर ने सुरासुर, यक्ष, किन्नर, सर्प, दैत्य, दानव, मानव सभी पर विजय प्राप्त की है। अब युद्ध में राघव का वध करने के लिए आया हूँ। इन्द्र को मैंने जीवित बन्दी बनाया था; मैं ब्रह्मा का नाती हूँ। कान-नाक कटने पर भी कोई मेरी उपेक्षा नहीं कर सकता। कान-नाक कटने पर मेरा मन तनिक भी व्यथित नहीं है। मेरे पुरुषार्थ में उसके कारण किसी प्रकार की भी कमी नहीं आई है। युद्ध में मैं रघुनाथ का निश्चित ही वध करूँगा।" कुंभकर्ण के ये आत्मस्तुतिपरक वचन सुनकर श्रीराम ने अनेक कठोर बाण चलाये परन्तु कुंभकर्ण विचलित नहीं हुआ। तब श्रीराम ने निर्णायक युद्ध प्रारम्भ किया।

श्रीराम ने रुद्रास्त्र चलाया और बाण कुंभकर्ण के हृदय में जा लगा, जिससे वह घबरा गया और उसके हाथों से मुद्‌गर छूट कर गिर पड़ा। मुद्‌गर के भूमि पर गिरते ही वह वीर योद्धा सन्तप्त हो उठा। वही मुद्‌गर पुनः हाथों में लेकर कुंभकर्ण श्रीराम की ओर दौड़ा। मार्ग में आये वानरों का वध करते हुए अपने ही राक्षस समूहों का भक्षण करते हुए तथा घोड़े, गर्दभ और हाथियों को निगलते हुए वह आगे बढ़ रहा था। उस उन्मत्त राक्षस वीर को अपने व विपक्ष के सैनिकों की पहचान भी नहीं रही। वह सीधे श्रीराम के समीप आ पहुँचा। वह वार करने ही वाला था कि श्रीराम ने कुशलतापूर्वक वायव्यास्त्र का संधान कर निर्णायक आवेश में बाण चलाया। धन्य था वह बाण, जिसने मुद्‌गर पकड़े हुए कुंभकर्ण के उस बाहु को समूल छेद डाला और मुद्‌गर को भूमि पर गिरा दिया। कुंभकर्ण भी इतना महान पराक्रमी था कि एक हाथ समूल कट जाने पर भी वह तनिक मात्र भी भयभीत अथवा विचलित नहीं हुआ। वह पुनः गर्जना करते हुए बोला "मेरा एक हाथ कट जाने पर भी मेरा पुरुषार्थ अभी समाप्त नहीं हुआ है। अपने दाहिने हाथ के सामर्थ्य से मैं युद्ध में श्रीराम का वध करूँगा।" श्रीराम को लक्ष्य बनाते हुए एक बड़ा शाल वृक्ष उखाड़कर वह शीघ्र दौड़ा। रणभूमि में हलचल मच गई। शाल वृक्ष हाथों से लेकर श्रीराम को मारने के लिए वह आवेशपूर्वक आगे बढ़ा। उस समय श्रीराम की ओर से आने वाले बाण उसने शाल वृक्ष के प्रहार से तोड़ डाले। वह भव्य आजानुबाहु भुजगाकार शोभायमान शाल वृक्ष हाथों में लेकर श्रीराम के पास आया। श्रीराम ने शीघ्र इन्द्रास्त्र सुसज्जित कर शाल वृक्ष पकड़ा हुआ उसका दाहिना हाथ समूल तोड़ डाला। स्वर्ण से निर्मित शोभायमान श्रीराम का बाण कुंभकर्ण का हाथ तोड़कर पुनः लौटकर तूणीर में प्रवेश कर गया। श्रीरघुनाथ का ऐसा प्रताप था कि कुंभकर्ण के दोनों हाथ काट डाले और धनुष

हाथों में लेकर शांत मुद्रा में खड़े रहे। श्रीराम धर्म-प्रवीण थे। दोनों हाथ टूटे हुए, क्षीण, नि:शस्त्र कुंभकर्ण पर वार करना उन्हें उचित नहीं लगा।

श्रीराम द्वारा युद्ध रोक देने पर कुंभकर्ण उससे बोला– "श्रीराम, तुम युद्ध क्यों नहीं करते ? तुम दोनों का वध करने के लिए पर्याप्त प्रलय शक्ति मेरे पास है। मुझे तुम नि:शस्त्र व क्षीण मत मानो। मैं उड़ान भरकर तुम दोनों को वानर सेनासहित चूर्ण कर दूँगा।" ऐसा कहकर कुंभकर्ण राम और लक्ष्मण को मारने के लिए आवेशपूर्वक वेग से दौड़कर आगे आया। श्रीराम ने उस पर असंख्य बाण चलाये फिर भी कुंभकर्ण पीछे नहीं हटा। उसने दोनों को चूर-चूर करने के लिए प्रचंड उड़ान भरी। दोनों हाथ कट जाने पर भी श्रीराम को मारने के लिए उड़ान भर कर वह बोला– "राम, अब सहन करो। वहीं खड़े रहकर मेरे वार को देखो। तुम्हारी कौन रक्षा करेगा ?" यह बोलकर गर्जना करते हुए वह उड़ चला। उसे आते देखकर श्रीराम ने अर्द्ध चन्द्राकृति बाण निकाला। इस बाण की धार वायु को भी छेद सकती थी। श्रीराम पूरी तरह से निष्णात धनुर्धर थे। उन्होंने अर्धचन्द्र बाण से वार कर उड़ते हुए कुंभकर्ण के दोनों पैर काट डाले और उसे धराशायी कर दिया। यद्यपि कान, नाक, दोनों हाथ, दोनों पैर कट गए और युद्ध भूमि में धराशायी हो गया तथापि कुंभकर्ण का पराक्रम समाप्त नहीं हुआ। अपना विशाल मुख फैलाकर वह राम की ओर झपटा। इन्द्रादि देवों को वह अलौकिक कृत्य देखकर आश्चर्य हुआ। नाक, कान, हाथ एवं पैरों से रहित कुंभकर्ण को देखकर वानरगण हँस रहे थे। श्रीराम अत्यन्त उदार हैं, वे कुंभकर्ण की दरिद्र कुबुद्धि का छेदन कर उसे ब्रह्मप्राप्ति करायेंगे। इसीलिए वेद श्रीराम का गौरवगान करते हैं।

जिस प्रकार आकाश में राहु चन्द्रमा को पूरी तरह से ग्रस लेने के लिये दौड़ता है, उसी प्रकार श्रीराम को ग्रसने के लिए कुंभकर्ण वेगपूर्वक आया। श्रीराम के सुवर्णपत्री बाण कुंभकर्ण मुख में डाल रहा था। श्रीराम जो बाण चला रहे थे, कुंभकर्ण उन बाणों को मुख से ग्रस रहा था। यह देखकर श्रीराम क्षुब्ध हो गए और उन्होंने उस राक्षस के प्राण हरने के लिए सूर्यकिरण सदृश निर्णायक बाणों को सुसज्जित किया। वे बाण ऐसे थे, जिनका निवारण सम्भव नहीं था। श्रीराम ने धनुष सुसज्जित कर काल दंड, यम दंड, अनिवार्य ब्रह्म दंड तथा प्रचंड शरविधि और अरिघ्नास्त्र तथा रुद्रास्त्र नामक दोनों अस्त्र मन्त्रों से सुसज्जित कर चलाये। ऐसे निर्वाण बाण चलने पर उन्होंने कुंभकर्ण का हृदय छेद डाला। वह घायल होकर मूर्च्छित हो गिर पड़ा। श्रीराम के बाण भूमि में छेद कर गए। बाण कुंभकर्ण के हृदय को छेद कर निकल जाने पर भी कुंभकर्ण मरा नहीं, इसके विपरीत श्रीराम से युद्ध करने का आवेश जागृत हो गया। यह देखकर श्रीराम ने अत्यन्त निर्णायक दिव्यास्त्रों से बाण को सुसज्जित किया। कुंभकर्ण का वध करने के लिए अत्यन्त तीक्ष्ण सुवर्णपत्री बाण श्रीराम ने अभिमन्त्रित कर चलाया। श्रीराम का अचूक शर संधान होने के कारण उस बाण से कुंभकर्ण का पर्वत सदृश सिर टूट कर भूमि पर गिर पड़ा। फिर भी वह राक्षस मरा नहीं। उसका सिर आकाश में उछल कर श्रीराम का ग्रास करने के लिए बढ़ा तथा कुंभकर्ण का धड़ वेगपूर्वक लुढ़कते हुए राम को कुचलने के लिए आगे बढ़ा।

कुंभकर्ण की मृत्यु का रहस्य– श्रीराम ने अपनी ओर आने वाला कुंभकर्ण का सिर, बाणों की धार से आकाश में उड़ाया और धड़ को बाणों से विद्ध कर लंका में गिरा दिया। धड़ के लंका में गिरते ही हाहाकार मच गया। वह धड़ घरों एवं भवनों को गिराते हुए श्रीराम को कुचलने हेतु उनकी दिशा में दौड़ने लगा। श्रीराम उस धड़ को बाणों से दूर करते थे तथा ग्रसने के लिए आये हुए सिर को बाणों से आकाश में उड़ाते थे। इस प्रकार धड़ भूमिपर तथा सिर आकाश में दौड़ रहा था। कुंभकर्ण को वरदान प्राप्त था, जिसकी महत्ता इस प्रकार थी कि शरीर के दो भाग हो जाने पर भी जब तक शत्रु पीछे नहीं

घूमेगा, तब तक कुंभकर्ण धराशायी नहीं होगा। शिव जी के वरदान की विशेषता यह थी कि युद्ध में शत्रु के पीछे मुड़ते ही कुंभकर्ण निर्जीव होकर भूमि पर गिर पड़ेगा। ऐसा होने के कारण विभीषण श्रीराम से बोले- ''आप क्षण मात्र के लिए उसकी ओर पीठ करें तभी कुंभकर्ण की मृत्यु होगी अन्यथा कल्पान्त तक भी उसकी मृत्यु नहीं हो सकती।'' श्रीराम विभीषण के वचन सुनकर क्रोधित होकर बोले- ''मैं कल्पान्त तक युद्ध करूँगा परन्तु अपनी पीठ नहीं दिखाऊँगा। मैं तिल भर भी पीछे हटा तो सूर्यवंश अपमानित होगा। पूर्वजों को लज्जित कर क्षत्रियों का जीवित रहना निन्दनीय है।'' श्रीराम का पीछे न हटने का निश्चय होने के कारण विभीषण चिन्तित हो उठे। उन्होंने वानरों को बताया- ''श्रीराम द्वारा कल्पान्त तक भी युद्ध करने पर कुंभकर्ण नहीं मरेगा। यह एक बड़ी बाधा उत्पन्न हो गई है।'' यह सुनकर अंगद सुग्रीव इत्यादि योद्धा सोच में पड़ गए। श्रीराम को कौन, किस तरह समझाए, सभी को यह चिन्ता होने लगी। बलशाली हनुमान ही इसका उपाय ढूँढ़ने के योग्य थे।

श्रीराम जिस स्थल पर कुंभकर्ण के धड़ व सिर से युद्ध कर रहे थे, वहाँ हनुमान उनके पीछे जाकर खड़े हो गए। उन्होंने अपनी पूँछ से श्रीराम को स्पर्श किया। श्रीराम घूमकर हनुमानसे पूछने लगे, उसी समय कुंभकर्ण का धड़ व सिर भूमि पर जा गिरा। देवता जय-जयकार करने लगे। वाद्य बजने लगे। सभी वानर मिलकर जय-जयकार करते हुए गर्जना करने लगे। श्रीरामचन्द्र विजयी हुए। उन्होंने कुंभकर्ण को रणभूमि में धराशायी कर दिया। श्रीराम को क्रोधित किये बिना हनुमान ने कार्य सिद्ध कर लिया। सभी वानर आनन्दित होकर हरिनाम की गर्जना करने लगे। सत्यव्रत का पालने करते हुए किसी के जाने बिना ही हनुमान ने कार्य कर दिखाया, जिससे रघुनाथ सन्तुष्ट हुए। हुनमान बलशाली, विवेकवान्, भक्ति, वैराग्य तथा ज्ञान से युक्त तथा सर्वार्थ साधक हैं- यह कहते हुए श्रीराम ने हनुमान को आलिंगनबद्ध कर सुख प्रदान किया। कुंभकर्ण के युद्ध में मारे जाने से सुरगण, सिद्ध, चारण, वानरगण सभी सुखी हुए।

कुंभकर्ण की मृत्यु, राक्षस सेना का पीछे हटना- कुंभकर्ण के मुकुट, कुंडल, अलंकार, विकराल दाँत, प्रचंड शरीर सभी को श्रीराम ने छेद डाला। श्रीराम ने जब बाण से कुंभकर्ण का सिर काटा तो वह वेगपूर्वक धरती पर जा गिरा और उसके नीचे दो सहस्र राक्षस दब गए और उनका अन्त हो गया। श्रीराम को कुचलकर मारने के लिए लुढ़ककर आने वाले धड़ के युद्ध के आवेश से असंख्य राक्षस दब कर मर गए। अब वह शरीर रणवेग से लुढ़कते हुए समुद्र में जा गिरा। वहाँ उसने अनेक जलचरों को मार डाला, जिसमें तिमि, तिमिंगल आदि मछलियाँ, मगर, कछुए इत्यादि जलचर थे, वे सभी दबकर पाताल चले गए। कुंभकर्ण के नीचे गिरते ही भूकम्प आ गया। लंका की दीवारें हिल गईं। समुद्र का जल छलकने लगा। उसका शरीर रसातल में पहुँच गया। वहाँ महासर्पों पर गिरने से अनेक सर्प उसके नीचे दबकर मर गए। वहाँ कुंभकर्ण की देह पर्वत श्रेष्ठ हिमालय के सदृश महाप्रचंड थी। उसके नीचे अनेक जलचर दबकर रसातल चले गए, वह देह भी रसातल में चला गया।

उधर युद्ध में वानरों द्वारा मारे जाने के पश्चात् जितने बचे हुए राक्षस थे, वे चिल्लाते हुए भागने लगे। युद्ध में लगे वारों से अत्यन्त जर्जर संत्रस्त हुए ये राक्षस, कराहते काँपते हुए लंका की ओर भागे। जिस प्रकार इन्द्र ने वृत्रासुर को मारा, उसी प्रकार श्रीराम ने महावीर कुंभकर्ण को मार डाला। उस समय देवताओं ने श्रीराम का जय-जयकार करते हुए पुष्पवृष्टि की। श्रीराम कुंभकर्ण को मार कर विजयी हुए और इसके कारण वानरगण आनन्दित हुए।

अध्याय २९

[नरांतक का वध]

श्रीराम द्वारा कुंभकर्ण के वध का समाचार सुनकर रावण आक्रोश करने लगा। उसे लगने लगा कि दुःख से उसके प्राण चले जाएँगे। उसी समय घायल राक्षस, कुंभकर्ण के वध की वार्ता सुनाते हुए बोले– "सुग्रीव ने कुंभकर्ण के नाक और कान काट दिये। श्रीराम ने उसके हाथ और पैर तोड़ डाले। इस प्रकार दुर्दशा कर उसका वध कर दिया। श्रीराम का पराक्रम अद्वितीय है। क्षणमात्र में उन्होंने अर्द्धचन्द्र बाण चलाकर कुंभकर्ण का वध कर दिया। कुंभकर्ण के वरदान को भी श्रीराम ने व्यर्थ कर दिया। युद्ध में कुंभकर्ण का सिर तोड़ दिया। कुंभकर्ण की दुर्दशा कर उसे मारने की वार्ता सुनकर बन्धु प्रेम से विकल होकर रावण मूर्च्छित हो गया परन्तु कुछ ही क्षणों में सुध लौटने पर वह विलाप करने लगा। उस समय आक्रोश करते हुए वह बोला– "कुंभकर्ण की मृत्यु होने पर मुझे अब राज्य की कोई आवश्यकता नहीं है, न ही सीता की तथा अपने जीवन की कोई आवश्यकता है। देव, दैत्य, दानवों से युद्ध में जो कुंभकर्ण वश में नहीं हो पाता था, उसने श्रीराम जैसे मानव का बाण लगने से प्राण त्याग दिया। विभीषण ने जो भी कहा था, वह सब सत्य होने का प्रमाण मिल रहा है। उस समय मैं गर्व से चूर था, अब अन्त में उसका फल प्राप्त हो रहा है। युद्ध में कुंभकर्ण शत्रु का सम्पूर्ण नाश कर देगा, ऐसा लग रहा था, लेकिन वह स्वयं ही युद्ध में मारा गया। अब मैं भी जीवित नहीं रहूँगा।" बंधु स्नेह के कारण वह अत्यन्त दुःखी हुआ तथा दुःख से विलाप करते हुए मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

रावण के मूर्च्छित होने पर अपने पिता को मूर्च्छित पड़ा देखकर अतिकाय इत्यादि रावण के सभी पुत्र तथा महोदर व महापार्श्व आक्रोश करते हुए वहाँ आये। अपने पिता के दुःख से दुःखी होकर पुत्र विलाप करने लगे। देवांतक, नरांतक, त्रिशिरा और अतिकाय रावण के पास आये। रावण का विलाप सुनकर त्रिशिरा नामक पुत्र आगे आया और बोला– "विलाप करना सिंहासनारूढ़ राजा का लक्षण नहीं है।" शोक सन्तप्त रावण को देखकर त्रिशिरा बोला– "मैं नेतृत्वकर्ता राजा के लक्षण बताता हूँ। हे रावण, आप तीनों लोकों के स्वामी हैं, जिसने सुरगणों को बन्दी बना लिया था। इस प्रकार विलाप करना राज-लक्षण नहीं है। शरीर के दो टुकड़े होने पर भी महावीर अणुमात्र भी दुःख नहीं करते हैं। अतः दशानन को विलाप करते देखकर लोग निंदा करेंगे। विलाप करने से शौर्य शक्ति, धैर्यवृत्ति तथा यश व कीर्ति समाप्त होकर अपयश की प्राप्ति होती है। विलाप करने से पराक्रम तथा राजा की महत्ता क्षीण हो जाती है। हे रावण, आप स्वयं वही कर रहे हैं। एक कुंभकर्ण के युद्ध में मारे जाने से क्या हमारे सभी वीर समाप्त हो गए। मैं अकेला युद्ध करके रघुनन्दन का वध करूँगा। मैं राम व लक्ष्मण को मारूँगा, वानरगणों का विध्वंस कर दूँगा। आप मुझे आज्ञा दें।" ऐसा कहते हुए त्रिशिरा ने रावण के पैर पकड़ लिए।

त्रिशिरा के वचन सुनकर रावण प्रसन्न हो गया। जिस प्रकार अचेतन पड़े प्राणी में फिर प्राण लौट आयें, उसी प्रकार त्रिशिरा के वचनों से रावण को ऐसा लगा मानों उसका पुनर्जन्म हो गया है। उसे सन्तुष्ट देखकर देवांतक, नरांतक और अतिकाय भी प्रसन्न हुए। रावण अपने इन्द्र सदृश बलशाली चार पुत्रों को युद्ध के लिए उत्सुक देखकर प्रसन्न हुआ। उसने चारों पुत्रों को मुकुट, कुंडल, वीरकंकण इत्यादि आभूषण दिये तथा उन्हें आलिंगनबद्ध कर युद्ध के लिए भेजा। उनकी रक्षा एवं सहायता के लिए महोदर एवं महापार्श्व को भी भेजा। पैदल, रथ, घोड़े, हाथी इत्यादि के साथ अजेय एवं बलशाली सेना संभार

लेकर राजकुमारों ने युद्ध के लिए प्रस्थान किया। रणवाद्यों की प्रचंड ध्वनि गूँजने लगी। शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित उन चारों पुत्रों को अपने युद्ध के विषय में अभिमान था। उनके साथ जाने वाले महोदर व महापार्श्व नामक दोनों भाई भी प्रसिद्ध योद्धा थे। इस प्रकार रावण ने उन छह वीरों को युद्ध प्रवीण होने के कारण श्रीराम व लक्ष्मण के वध के लिए भेजा।

महोदर ने ऐरावत कुल के हाथी पर सवार होकर शीघ्र युद्ध के लिए प्रस्थान किया। वह मेघों पर बैठे हुए सूर्य के सदृश दिखाई दे रहा था। त्रिशिरा के तीनों सिरों पर तीन मुकुट थे। उसके हाथों में स्थित धनुष, इन्द्रधनुष सदृश दिखाई दे रहा था। उसने रथ पर आरूढ़ होकर युद्ध के लिए प्रस्थान किया। महारथी अतिकाय ने पन्नों की धुरी एवं चक्र से युक्त तथा रत्नों से मंडित बैठक वाले एवं विचित्र घोड़े जुते रथ में बैठकर प्रस्थान किया। रथ में बैठकर युद्ध के लिए निकला हुआ अतिकाय सुरासुरों के लिए अत्यन्त पराक्रमी सिद्ध हुआ था। उसके वार असहनीय थे। उच्चै:श्रवा के सदृश सुन्दर, अत्यन्त बलवान, शुभ्र घोड़ों पर वीर नरांतक सवार था। वह युद्ध में अजेय था। उसके हाथों में विद्युत सदृश खड्ग था। उसकी संग्राम शक्ति अतुलनीय थी। उसे रणभूमि में देखकर स्वर्ग के देवता व सिद्धगण भी काँप उठते थे। अंतकों का अंतक महावीर देवांतक अकेले ही रथ में बैठकर नि:शंक रूप से युद्ध के लिए निकला। क्षीर-सागर का मंथन करने के लिए जिस प्रकार विष्णु ने मंदार पर्वत को हाथों में लिया था, उसी प्रकार परिघ हाथों में लेकर देवांतक ने रणभूमि की ओर प्रस्थान किया। महापार्श्व ने हाथों में गदा लेकर संग्राम करने के लिए रथ में बैठकर रणभूमि की ओर प्रस्थान किया। इस प्रकार चार रथों पर एक हाथी तथा एक घोड़े पर बैठकर वे छह वीर भीषण युद्ध करने के लिए शीघ्र युद्ध भूमि में आये।

जिस प्रकार आकाश में हंसों की पंक्तियाँ उड़ती हुई दिखाई देती हैं, उसी प्रकार रणभूमि में राजकुमारों पर सफेद छत्रों की पंक्तियाँ भी शोभायमान हो रही थीं। उन पर चँवरें ढली जा रही थीं। मरने अथवा मारने का निश्चय कर वे श्रीराम से युद्ध करने के लिए आये थे। वे युद्ध के लिए घोड़े, हाथी, रथ, दृढ़ निश्चयी पैदल सैनिक इत्यादि चतुरंग सेना-संभार लाये थे। युद्ध के लिए प्रस्थान करते समय राजकुमारों के साथ विविध रंगों के ध्वज और पताकाएँ, छोटे घंटों की मनोहर ज्वालमालाएँ तथा सजे हुए रथ और हाथी भी दिये गए थे। उन राजकुमारों के मस्तक पर मोतियों की झालरों से युक्त छत्र थे। रणवाद्य बजाये जा रहे थे। सभी वीर मिलकर सिंहनाद करते हुए ऐसी भीषण ध्वनि उत्पन्न कर रहे थे, जिससे आकाश फट जाय, भूमि और पर्वत भी काँप जायँ। उन छत्रपतियों का समुदाय देखकर रणभूमि के वानर नाच रहे थे। उनके द्वारा किया गया राक्षसों का नाश, श्रीराम प्रशंसा भरी दृष्टि से देख रहे थे। वानर आनन्दपूर्वक शिला, शिखर और पर्वत लिये हुए थे। कुछ वानर राक्षसों को मारने के लिए वृक्षों को तैयार कर रहे थे। उन वानरों का सामर्थ्य देखकर राक्षस सेना क्रुद्ध हो उठी। उन्होंने प्रबल वार करते हुए घमासान युद्ध प्रारम्भ किया। राक्षस गदा, मुद्गर, पट्टीश, शक्ति, शूल, परिघ, फरसा इत्यादि अस्त्रों से वार कर रहे थे, जिसके कारण वानर आवेश में आ गए और युद्ध करने के लिए तेजी से आगे बढ़े।

राक्षस-सेना और वानर-सेना में युद्ध– वानर युद्ध के लिए उत्सुक होकर तैयार हुए। उन्होंने पर्वतों सहित आकाश में उडान भरी। वे बार-बार रामनाम की अत्यन्त आवेशपूर्वक गर्जना कर रहे थे। वानरवीर आकाश में और राक्षस सैनिक भूमि पर थे। वानरों ने आकाश से पर्वत शिला आदि की वर्षा की, जिसके कारण राक्षस दबकर मरने लगे। राक्षसों ने बाणों की सहायता से पर्वतों का निवारण किया। तत्पश्चात् वानरों ने पृथ्वी पर आकर अद्भुत रीति से राक्षस वीरों का नाश किया। राक्षसों द्वारा किये गए

शस्त्रों के वार को वानर उछल कर व्यर्थ कर देते थे, परन्तु वे स्वयं शिला, वृक्ष, पर्वत इत्यादि हाथों में लेकर रणभूमि में घूम रहे थे और वार कर रहे थे। वानरों में से कोई आकाश से शिला और पर्वतों की वर्षा करता था, जिससे राक्षसों के शरीर के टुकड़े हो जाते थे, कमर टूट जाती थी। इसके अतिरिक्त वानर आकाश में भी उनका संहार कर रहे थे। पृथ्वी पर रहकर भी उनका संहार कर रहे थे। वानर अपना युद्ध-कौशल दिखा रहे थे। मुट्ठी के आघात से वे किसी की आँखें फोड़ देते थे तो किसी के दाँत तोड़ देते थे। कोई राक्षस वानरों के प्रहार से रक्त की उल्टी करने लगता था। इस प्रकार वानरों ने राक्षसों को संत्रस्त कर दिया। तो कोई आक्रोश कर रहा था। कोई 'पानी-पानी' कहकर चिल्ला रहा था तो कोई रण-भूमि से पलायन कर रहा था। इस प्रकार वानरों ने राक्षसों से युद्ध करते हुए रथों, गजों व घोड़ों पर सवार अनेक सैनिकों का वध कर दिया था।

वानरों से युद्ध करते हुए राक्षसों की शस्त्र सामग्री चूर-चूर हो गई। पर्वत, पाषाणों का चूरा इधर-उधर फैल गया। हथियारों के बिना लड़ते हुए राक्षसों की स्थिति दयनीय हो गई। वानर वानरों को ही उठाकर राक्षसों पर फैंककर उनको मार रहे थे। राक्षस भी राक्षसों को उठाकर वानरों पर फेंककर उन्हें मार रहे थे। इस प्रकार दोनों पक्षों के वीर रण-मद से उन्मत्त होकर भयंकर युद्ध करते हुए एक दूसरे का वध कर रहे थे। वे परस्पर एक दूसरे को आह्वान कर बुलाते थे। एक दूसरे के बालों को खींचकर रणभूमि में भिड़ रहे थे। वानरों ने पर्वतपाषाणों के आघात से राक्षसों की ढालें तोड़ डालीं, कवच को तोड़कर राक्षस का वध कर दिया। किसी पर्वत से लाल रंग का झरना फूट पड़े, इस तरह रक्त की नदियाँ बहने लगीं क्योंकि क्रुद्ध वानर-राक्षसों का वध कर रहे थे। युद्ध भूमि दुर्गम बन गई। माँस और रक्त का वहाँ कीचड़ तैयार हो गया। वानरों ने राक्षसों को संत्रस्त कर दिया था। वानरों के असहनीय प्रहार से रणभूमि में हाहाकार मच गया। राक्षसों की शक्ति क्षीण हो गई। घावों से जर्जर हुए राक्षस कराहने लगे। वानरों को ऐसा युद्ध देखकर वीर नरांतक क्रोधित हो उठा। वह घोड़े पर सवार होकर वानरों से युद्ध करने लगा। वानरों द्वारा फेंके गए, शिला, शिखर, वृक्ष एवं पर्वतों को उसने अपने खड्ग से नष्ट कर दिया और वानरों का संहार करने लगा।

अंगद व नरांतक में युद्ध– वीर नरांतक शुभ्र रंग के सुन्दर तथा वायु से अधिक वेगवान् घोड़े पर बैठकर रणभूमि में आया तथा वानरों का संहार करने लगा। घोड़े पर सवार, हाथों में खड्ग लिये इस नरांतक वीर ने सैकड़ों वानर मार डाले। अतः वानर सेना में हाहाकार मच गया। उसने वानरों द्वारा मारी गई शिलाएँ, शिखर, वृक्ष, पर्वत सभी हाथों में लिए खड्ग से नष्ट कर डाले तथा इस कारण वानरों में प्रलय मच गया। वानरों द्वारा प्रहार करने के लिए बड़े पर्वतों को उखाड़ना प्रारम्भ करते ही नरांतक खड्ग के वार से उनका वध कर देता था तथा उन्हें रणभूमि में धराशायी कर देता था। जब वानर छलाँग लगाकर आकाश में जाते थे तो नरांतक भी अपना घोड़ा आकाश में उड़ाकर अंतरिक्ष में ही उन्हें मार डालता था। इस प्रकार उसने वानरों में प्रलय मचा रखा था। उसके नरांतक नाम के स्थान पर अब वानरांतक नाम उचित प्रतीत हो रहा था। उसके युद्ध से भयभीत होकर वानर भागने लगे। जिस प्रकार कोई उन्मत्त मगर सागर में खलबली मचा देता है, उसी प्रकार नरांतक ने वानर सेना में खलबली मचा दी। नरांतक के समक्ष वानर टिक नहीं पा रहे थे। अतः वे हाहाकार करते हुए सुग्रीव के पास एकत्र हुए। सुग्रीव अपना राजा है, वही उन्हें संरक्षण देगा– यह सोचकर वानर सुग्रीव के पास गये। जो वानर निश्चेष्ट पड़े हुए थे उन्हें सुषेण वैद्य श्रीराम का चरण-तीर्थ देकर उठा रहे थे। श्रीराम की चरण-रजकण लगाने पर वानरों

के घाव ठीक हो गए तथा श्रीराम-नाम स्मरण करने से वानरगण उठ बैठे। श्रीराम के चरण-तीर्थ का प्राशन करने पर वानर स्वस्थ हो गए। नरांतक द्वारा वानरों को संत्रस्त किया हुआ देखकर सुग्रीव अत्यन्त क्षुब्ध हुआ और उसने नरांतक का वध करने के लिए अंगद को भेजा। सुग्रीव अंगद से बोला- "अश्वारूढ़ नरांतक ने घोर विनाश करते हुए वानरों का घात किया है। अतः तुम उसका घात करो।"

सुग्रीव की आज्ञा सुनकर इन्द्र के सदृश बल वाला पराक्रमी अंगद उत्साहित हो उठा। उसने श्रीराम को दंडवत् प्रणाम किया। हनुमान की चरणवंदना की तथा सुग्रीव का अभिवादन कर वह चला। नरांतक को टक्कर देने के लिए वीर अंगद समर्थ था। वह मेरु पर्वत सदृश सीधे नरांतक के समक्ष आ खड़ा हुआ। उदार, धीर, गंभीर, निःशंक, शूर और प्रतापी अंगद ने तुरन्त नरांतक को गर्जना कर ललकारते हुए कहा- "पत्ते खाने वाले वनचर वानर, सेवकों को क्यों मार रहे हो ? अब मैं तुम्हारे सामने आया हूँ, मेरे ऊपर शस्त्र चलाओ।" अंगद के इन कठोर वचनों से संतप्त होकर नरांतक ने अपने हाथों में लिए हुए धारदार खड्ग से अंगद के हृदय पर वार किया। नरांतक द्वारा दाँत किटकिटाते हुए, खड्ग को ज़ोरों से घुमाते हुए अंगद के हृदय पर प्रहार करते ही अंगद में विद्यमान प्रचंड बल के कारण खड्ग के दो टुकड़े हो गए। इससे नरांतक के बल का गर्व चूर-चूर हो गया। अखंड राम-नाम स्मरण करने के कारण अंगद का हृदय अभेद्य हो गया। खड्ग के टुकड़े होने का कारण प्रेमपूर्वक किया गया नाम स्मरण ही था। जो व्यक्ति श्रीरघुनाथ से प्रेम करते हैं, वे सभी सुख दुःख एवं द्वन्द्वों से नित्य मुक्त होते हैं। खड्ग का आघात उसके समक्ष नगण्य है। इसीलिए खड्ग का हृदय पर वार होते ही उसके दो टुकड़े होकर खड्ग भूमि पर गिर पड़ा। अब गर्जना करते हुए अंगद ने युद्ध प्रारम्भ किया।

जिस प्रकार गरुड़ सर्प के टुकड़े-टुकड़े कर देता है, उसी प्रकार अंगद ने खड्ग के टुकड़े कर दिए। अंगद क्रुद्ध होकर नरांतक का वध करने के लिए आगे बढ़ा। रणभूमि में नरांतक का घोड़ा विद्युत के सदृश चमक रहा था। अंगद ने उस घोड़े पर मुट्ठी से प्रहार कर उसके दाँत तोड़ दिये और उसे रणभूमि में गिरा दिया। घोड़े के मरकर गिरने से नरांतक दूर आ गिरा। पास में शस्त्र सामग्री न होते हुए भी नरांतक में युद्ध करने का धैर्य विद्यमान था। उसने मुट्ठी भींच कर क्रोधपूर्वक अंगद की छाती पर आघात किया। अंगद लड़खड़ाते हुए स्वयं को मूर्च्छित होने से बचाने लगा। नरांतक के मुष्टिका के आघात से ब्रह्मांड हिल गया, वह आघात इतना सामर्थ्यवान् था। उस आघात से नाक मुँह से रक्त बहकर अंगद मूर्च्छित हो गया। उसने श्रीरघुनाथ का स्मरण किया, जिससे उसकी थकान दूर हो कर वह पुनः युद्ध के लिए सिद्ध हुआ। श्रीराम-नाम के स्मरण से श्रम तो दूर हुए, साथ ही राक्षस से युद्ध करने के लिए सौ गुनी शक्ति भी बढ़ गई। कष्ट में जो श्रीरघुनाथ का स्मरण करता है उसे किसी प्रकार के अनर्थ की बाधा नहीं होती। वह तीनों लोकों में विजयी होता है। श्रीराम-नाम के स्मरण के समक्ष समस्त विघ्न व्यर्थ हो जाते हैं। अंगद में अत्यधिक बल था। उसने कुशलतापूर्वक युद्ध प्रारम्भ किया।

अंगद सतर्क होकर नरांतक का वध करने का निश्चय कर उठ खड़ा हुआ। उसने अत्यन्त क्रोधपूर्वक मुट्ठी भींचकर नरांतक की छाती पर वेगपूर्वक प्रहार किया, जिससे हड्डियाँ चूर-चूर होकर नरांतक भूमि पर गिर पड़ा, उसके नाक व मुख से रक्त की धाराएँ प्रवाहित होने लगीं। वीर नरांतक को अंगद ने एक बार में ही मार डाला। महाबलवान् नरांतक को अंगद द्वारा धराशायी किया हुआ देखकर वानरों ने नाचकर अपना आनन्द व्यक्त किया। देवता व सिद्ध करतल ध्वनि से आनन्द व्यक्त करने लगे। एक रावण का राजकुमार तो दूसरा बालि का राजपुत्र दोनों ने भीषण युद्ध किया। रामनाम की ध्वनि करते

हुए वानर हर्षपूर्वक नाच रहे थे। स्वर्ग में सुरासुर नृत्य कर वीर अंगद की विजय का आनन्द व्यक्त कर रहे थे। अंगद ने श्रीराम की चरण वंदना की श्रीराम ने उसे आलिंगन बद्ध कर लिया। अंगद ने लक्ष्मण की चरण-वंदना की, हनुमान का अभिवादन किया सुग्रीव को साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया। वानर-वीर, अंगद के चरणों पर गिरकर उसकी स्तुति करने लगे। वीर शूर प्रतापी एवं नम्र राजपुत्र की स्तुति करते हुए वानर हरिनाम की गर्जना कर रहे थे।

अध्याय ३०

[देवांतक एवं त्रिशिरा का वध]

अंगद द्वारा नरांतक का वध करने के कारण राक्षस सेना उससे अत्यन्त भयभीत हो उठी। वे राक्षस वीर लंका की ओर भागने लगे। उन्हें भागते देखकर राजकुमार क्रोधित हो गया। तब वे सभी वापस लौटने लगे। वीर शिरोमणि अंगद द्वारा नरांतक को धराशायी करते ही पाचों वीर गर्जना करते हुए संग्राम के लिए आये। उनमें से त्रिशिरा, देवांतक और महोदर, अंगद को मारने के लिए तेजी से दौड़े। हाथी पर सवार महोदर युद्ध में अंगद को मारने के लिए भीषण वार करने हेतु वेगपूर्वक आगे आया। देवांतक बन्धु प्रेम के कारण अत्यधिक क्रोधित होकर अपने परिघ से वार करने के लिए गरजकर आह्वान करते हुए सामने आया। उसके पीछे अमूल्य घोड़े व रथ पर सवार होकर वीर त्रिशिरा अंगद का वध करने के लिए आया। अंगद को युद्ध में मारने के लिए एक हाथी पर तथा दो रथ में बैठकर आये हुए उन श्रेष्ठ योद्धाओं को अंगद ने युद्ध कौशल दिखलाया और यश संपादन किया। रावण-पुत्र युद्ध निपुण थे, साथ ही संख्या में वे तीन थे। उन्हें आते देखकर अंगद उत्साहित हो उठा। उन तीनों अतिरथियों को गर्जना करते हुए अपने ऊपर आक्रमण के लिए आता देखकर अंगद में विशेष स्फूर्ति का संचार हुआ। जिस प्रकार शनीश्वर तीन राशियाँ स्वयं भोगता है, वसी प्रकार रण-प्रवीण अंगद तीन लोगों को मारने के लिए सिद्ध था। मेघगर्जना सदृश वे तीनों वीर गर्जना कर रहे थे। अंगद भी राम-नाम की गर्जना कर रहा था। उन्होंने शस्त्र चलाते हुए भयंकर युद्ध प्रारम्भ किया।

रावण-पुत्रों व अंगद का युद्ध- महाबलशाली महोदर व अन्य दो रावण-पुत्रों का वध करने के लिए बालि-पुत्र अंगद आगे बढ़ा। अत्यन्त विशाल पर्वत व बड़े-बड़े शाल वृक्ष उखाड़कर अंगद ने देवांतक पर आवेशपूर्वक फेंके। अंगद की गर्जना सुनाई देते ही उसे अचानक सामने खड़ा देखकर देवांतक भयभीत हो उठा। उसे क्या करना चाहिए, यह समझ में नहीं आ रहा था। तभी 'इस अंगद ने नरांतक को मारा, वैसे ही देवांतक का भी वध कर देगा'- यह सोचकर त्रिशिरा वेगपूर्वक वहाँ आया। उसने शाल-वृक्ष को काट डाला। वृक्ष को कटा हुआ देखकर अंगद ने अपनी पूँछ से उसे धकेल दिया। त्रिशिरा राक्षस-समूह पर जा गिरा। इससे सहस्रों राक्षसों का प्राणान्त हो गया। राक्षस-सेना में प्रचंड हाहाकार मच गया। अंगद द्वारा किये गए संहार से त्रिशिरा आश्चर्यचकित हो गया। वह प्रतापी अंगद धन्य है, जो तीनों से आमने-सामने युद्ध कर रहा था और पूँछ से राक्षस-समूह को मार रहा था। उसका वीरतापूर्ण युद्ध देखकर सुरासुर उसकी प्रशंसा करने लगे। उसके द्वारा किया गया वृक्ष का प्रहार तीनों ने मिलकर व्यर्थ कर दिया, इसके कारण अंगद क्रोधित हो उठा। उसने भीषण युद्ध करने का निश्चय किया। उन

राक्षसों को मारने के लिए अंगद ने अपने वानर वीरों को बुलाकर कहा– "मुझे शिला, पर्वत व शिखर शीघ्र उपलब्ध कराओ"। तत्पश्चात् अंगद उछलकर आकाश में गया और बड़े आवेश एवं त्वेषपूर्वक उसने युद्ध आरम्भ किया। उसने गर्जना करते हुए अत्यन्त अद्‌भुत शिला, शिखर, वृक्ष, पाषाण, पर्वत इत्यादि की वर्षा करते हुए राक्षसों का प्राणान्त किया। वह बोला– "शिला एवं शिखर का अद्‌भुत तरह से वार करते हुए रणभूमि में ख्याति अर्जित कर तीनों राक्षस वीरों को समाप्त कर दूँगा, आप मेरी युद्ध की कुशलता देखें।"

"जिस प्रकार योगीजन सत्व, रज, तम-इन तीनों गुणों का उपमर्द करते हैं तभी वे सुखी होते हैं, उसी प्रकार तुम तीनों को मारे बिना मेरा रण-कल्याण नहीं होगा। इस प्रकार गर्जना करते हुए अंगद ने राक्षसों का संहार करने के लिए बड़ी शिलाओं, शिखर, पर्वत एवं वृक्षों की वर्षा की। जिसके नीचे राक्षसों के समूह दब गए। रणभूमि में हाहाकार मच गया। राजकुमार आश्चर्यचकित रह गये।" युद्ध में हमारे समक्ष रहकर युद्ध करते हुए पीछे राक्षसों को भी पूरी तरह से संत्रस्त कर दिया। अंगद वीर अत्यन्त अचूक युद्ध करता है। तीनों आश्चर्य करते हुए यह विचार कर रहे थे। वे तीनों जब तक बाणों से पर्वतों का निवारण करते, तब तक और असंख्य पर्वत आ जाते। वे भी जब तक तोड़े जाते, तब तक वृक्षों के आघात होने लगते। वृक्षों का निवारण करते समय सिर पर पाषाण आकर गिरने लगते। इस कारण वे तीनों घबरा गए। यह सब युद्ध निपुण अंगद ही कर रहा था। उन तीनों ने बाण, तोमर एवं परिघ की सहायता से पर्वतों का निवारण किया। अंगद ने पुनः शीघ्रता से शिला, शिखर, पर्वत इत्यादि की वर्षा की। जिस प्रकार वर्षा की धाराएँ बरसती हैं, उसी प्रकार क्षण-भर का विश्राम किये बिना गिरि वृक्षों की वर्षा होती रही और इस कारण तीनों ही वीरों को विश्राम का समय न मिल सका। अतः वे राजकुमार त्रस्त हो गए। जिनके पुरुषार्थ का यश चारों ओर फैला था, ऐसे वे महारथी वीर थे परन्तु अंगद ने अपने रण कौशल से, महान् पराक्रम से, उन्हें पूरी तरह से संत्रस्त कर दिया। त्रिशिरा रण-प्रवीण था। उसने वज्रास्त्र सहित अनेक बाण चलाकर पर्वत व वृक्षों को तोड़ डाला तथा रणभूमि में उन्हें चूर-चूर कर दिया। उसके साथ ही जो वानर पर्वत ला-ला कर दे रहे थे, उन्हें भी वह बाणों से बिद्ध कर रहा था। उसके आवेशपूर्ण प्रहारों को सहन न कर पाने के कारण वानर भाग कर, सुग्रीव के पास गये तथा देवांतक के बड़े परिघ, महोदर के तोमर तथा त्रिशिरा के तीव्र बाणों के एक-साथ प्रहार से अंगद मूर्च्छित हो गया।

उस समय राजकुमार विचार करने लगे कि 'अंगद वानरों का युवराज है, वह अब हम राक्षसों के चंगुल में फँस गया है। अतः उसे बाँधकर विजयध्वज के रूप में आनन्दपूर्वक लंका ले जाएँगे परन्तु उनके लिए अंगद को बाँधना सम्भव नहीं हो पा रहा था। उसके शरीर में इतनी शक्ति थी कि उसने पहले मंडप सहित उड़ने का अप्रतिम पराक्रम किया था, इसे कैसे बाँधा जा सकता है अतः राजकुमारों ने अंगद का वध करने का निश्चय किया। अंगद ने मूर्च्छित होते हुए भी राम-नाम का स्मरण किया, जिससे उसकी मूर्च्छा दूर होकर चेतना पुनः वापस लौट आई। उसमें पुनः स्फूर्ति का संचार हुआ। उसने महोदर को लात मारकर रथ में ही गिरा दिया। त्रिशिरा के धनुष की डोरी को तोड़कर उसके बाणों को व्यर्थ कर दिया। अंगद रण-भूमि में गरजते हुए युद्ध कर रहा था। तीनों महावीर मिलकर अंगद से युद्ध कर रहे थे तथापि अंगद उनके वश में नहीं हो पा रहा था। धन्य है, उस अंगद का पराक्रम। रण-प्रवीण अंगद को वश में न आते देखकर अत्यन्त सन्तप्त होकर त्रिशिरा ने निर्वाण बाण निकाला और युद्ध के लिए आया। महोदर हाथी से कूद पड़ा और तेजी से अंगद पर तोमर से वार किया। उसी समय देवांतक

ने परिघ हाथों में लेकर गर्जना करते हुए अंगद के हृदय पर आघात किया। परिघ को आवेशपूर्वक चमकाते हुए युद्ध में लगातार उससे वार किये। वे तीनों सामर्थ्यवान्, बलवान्, विख्यात वीर वेगपूर्वक अंगद पर वार कर रहे थे परन्तु अंगद उन वारों को तृणवत् मानकर तनिक भी विचलित नहीं हुआ।

अंगद ने अपने युद्ध कौशल से उछलकर महोदर के हाथी को थप्पड़ मारकर उसकी आँखें फोड़ दीं और रणभूमि में गिरा दिया। उसके भूमि पर गिरते ही उसके दाँत उखाड़कर हाथों में लेकर देवांतक की ओर दौड़ा। क्रोधपूर्वक उस हाथी के दाँत से देवांतक की छाती पर प्रहार कर उसे नीचे गिरा दिया। देवांतक की नाक और मुँह से रक्त प्रवाहित होकर वह मूर्च्छित होने लगा। उसने तड़पते हुए अपने हाथ-पैरों को ऐंठते हुए अत्यन्त कष्टपूर्वक स्वयं को नियन्त्रित करते हुए मूर्च्छित होने से रोका। तब उसने कठोर परिघ लेकर अंगद पर प्रहार किया। परिघ का बलपूर्वक किया गया प्रहार अंगद के हृदय पर जा लगा। वह असह्य वेदना से कुछ क्षण घुटने टेक कर बैठ गया। तत्पश्चात् मूर्च्छा पर नियन्त्रण करते हुए उसने उड़ान भरी। तब त्रिशिरा ने दारुण बाण चलाया। महोदर ने स्वयं तोमर से निर्णायक आघात किया। सर्प सदृश त्रिशिरा का बाण अंगद के मस्तक पर वेगपूर्वक जा लगा परन्तु अंगद अपनी शक्ति के कारण अणु-मात्र भी विचलित नहीं हुआ। दोनों सेनाएँ चिल्लाने लगीं परन्तु अंगद अत्यधिक बलवान् था। हनुमान उसकी शक्ति से प्रसन्न हो गए। नील, क्रोधित हो उठे। तीनों से अकेले ही युद्ध करने वाला अंगद थक गया होगा, यह सोचकर हनुमान उसकी सहायता के लिए चल पड़े। तब नील ने भी प्रस्थान किया।

हनुमान तथा नील का युद्ध के लिए आगमन– त्रिशिरा जब अंगद पर बाण चला रहा था, उस समय नील ने त्रिशिरा का आह्वान कर बुलाया और गर्जना करते हुए एक विशाल पर्वत से उसके मस्तक पर प्रहार किया। निपुण धनुर्धारी होने के कारण त्रिशिरा ने लक्ष्य पर अचूक बाण चलाकर पर्वत को चूर-चूर कर दिया और शिखर को भूमि पर गिरा दिया। त्रिशिरा द्वारा पर्वत तोड़ने से आनन्दित देवांतक ने गर्जना करते हुए अपने परिघ से हनुमान पर प्रहार किया। हनुमान ने युद्ध में धैर्यपूर्वक उस परिघ के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। तत्पश्चात् देवांतक पर पूँछ से प्रहार किया। उस पूँछ का आघात इतना प्रबल था कि देवांतक का मस्तक फूट कर उससे रक्त की धारा बहने लगी। वह भूमि पर गिर पड़ा, उसकी आँखें, दाँत, जीभ बाहर निकल आईं। हनुमान ने अपनी पूँछ के एकमात्र प्रहार से रावण-पुत्र देवांतक को रणभूमि में धराशायी कर उसका प्राणान्त कर दिया।

दूसरी ओर नील व महोदर भयंकर युद्ध करने लगे। सेनापति नील भीषण संहार करने लगा। नील ने छलाँग लगाकर महोदर का तोमर निकाल लिया। वृक्ष और शिखर से युक्त पर्वत को उखाड़कर नील ने महोदर को ललकारते हुए उस पर फेंका। उस प्रहार से महोदर चकरा गया। नील का पराक्रम देखकर महोदर उससे इतना भयभीत हुआ कि भय से उसके प्राण चले गए। पर्वत का निवारण करने के लिए नील ने उसे महोदर पर डाल दिया, जिससे उसकी हड्डियाँ चूर्ण हो गईं। इस प्रकार हनुमान ने देवांतक का तथा नील ने महोदर का संहार किया। रावण के पुत्रों के वध से राक्षसों की दुर्दशा होने लगी। अंगद द्वारा नरांतक, हनुमान द्वारा देवांतक तथा नील द्वारा महोदर के मारे जाने से त्रिशिरा अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और हनुमान पर बाणों की वर्षा करने लगा।

हनुमान व त्रिशिरा का युद्ध; त्रिशिरा का वध– त्रिशिरा ने क्रोधपूर्वक हनुमान पर बाण चलाये तो हनुमान ने पूँछ से उन बाणों के टुकड़े कर दिए और आकाश में उड़ान भरकर जिस प्रकार सिंह हाथी को विदीर्ण कर देता है, उसी प्रकार त्रिशिरा के रथ के घोड़ों को नखों से विदीर्ण कर दिया। रथ को

चूर-चूर करते हुए प्रचंड गर्जना कर राक्षसों का संहार करने लगे। क्रुद्ध त्रिशिरा ने एक अतुलनीय शक्ति हनुमान को मारने के लिए निकाली। उल्का की कड़कड़ाहट तथा काल-रात्रि सदृश भीषण महाशक्ति हनुमान का वध करने के लिए त्रिशिरा ने उस पर चलायी। वह शक्ति अत्यन्त भयंकर थी। उसका तेज आकाश में समा नहीं पा रहा था। वह कड़कड़ाहट की ध्वनि के साथ प्रलयकारी नाद करते हुए हनुमान के पास आयी। धन्य है वह बलवान् हनुमान, जिसने अपनी पूँछ से शक्ति का नाश कर उसे रणभूमि में गिरा दिया। तब वानरों ने आनन्दपूर्वक गर्जना की। धनुष बाण युद्ध में व्यर्थ हो गया। भीषण शक्ति का भी नाश कर दिया गया, जिसके कारण क्रोधित होकर त्रिशिरा ने आवेशपूर्वक खड्ग हाथों में लिया तथा उससे हनुमान के हृदय पर वार किया। तब रण प्रवीण हनुमान ने त्रिशिरा पर हथेली से आघात किया। उसका खड्ग छीन कर उसे मूर्च्छित कर भूमि पर गिरा दिया। उस खड्गधारी वीर हनुमान को देखकर वानरों ने आनन्दपूर्वक गर्जना की। हनुमान भयंकर योद्धा है, यह देखकर राक्षस थर थर काँपने लगे।

त्रिशिरा की मूर्च्छा टूटने के बाद जब चेतना वापस लौटी तब हनुमान के हाथों में उसने खड्ग देखा। यह देखकर त्रिशिरा मन ही मन अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने दाँत किटकिटाते हुए अपनी सम्पूर्ण शक्ति एकत्र कर हनुमान पर मुष्टिका से प्रहार किया, जिसके परिणामस्वरूप उसके हाथों में चोट लगी और वह लड़खड़ाने लगा। वेदना से विह्वल होकर वह स्वयं को सँभालने का प्रयत्न करने लगा। त्रिशिरा की मुट्ठी के आघात से हनुमान तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने अपने हाथों में स्थित खड्ग से त्रिशिरा के तीनों सिर तोड़ डाले। मुकुट कुंडलों से सुसज्जित शीश रणभूमि में गिर पड़े। जिस प्रकार इन्द्र ने विरूप के महाशीश तोड़कर गिराये, उसी प्रकार वीर हनुमान ने त्रिशिरा के शीश रणभूमि में गिरा दिये। वे शीश, पर्वत शिखर सदृश भीषण गर्जना करते हुए भूमि पर गिर पड़े। उस समय उसके नेत्र क्रोध से फैले हुए थे। देवताओं के शत्रु त्रिशिरा का, हनुमान द्वारा वध कर उसे धराशायी करने के कारण देवताओं ने जय जयकार किया। वानर श्रीराम-नाम की गर्जना करने लगे। महाशूर राक्षसों के युद्ध में मारे जाने के कारण राक्षस भयभीत होकर भागने लगे।

महापार्श्व का आगमन; ऋषभ द्वारा वध— महाशूर बंधु त्रिशिरा मारा गया, महोदर तथा राजकुमार देवांतक तथा वीर नरांतक भी मारे गए। अत: स्वजनों के मारे जाने के कारण दु:ख से अत्यन्त विह्वल होकर महापार्श्व शोक करने लगा। कुछ समय तक चुपचाप बैठे रहने पर उसे कर्तव्य का स्मरण हो गया। वह विचार करने लगा कि- 'अगर मैं भागकर लंका गया तो पुत्र शोक से दु:खी लंकानाथ रावण निश्चित ही मेरा वध कर देगा अथवा अपमानित करेगा। मुख में कालिख पोतकर, गधे पर बैठा कर गोबर का लेप करेगा। गले में चप्पलों की माला पहनाएगा। इस प्रकार अपमान सहन कर जीवित रहने की अपेक्षा युद्ध में मृत्यु होना अधिक श्रेष्ठ है। मरने पर मोक्ष-प्राप्ति होगी। अगर विजय प्राप्त हुई तो संसार में प्रशंसा होगी।' इस प्रकार मन ही मन विचार कर महापार्श्व वानरों से युद्ध करने के लिए रणभूमि में वापस लौटा। अपने स्वजनों को मृत देखकर वह वानरों से युद्ध करने के लिए गदा लेकर दौड़ा। अत्यन्त तेजयुक्त, तीक्ष्ण अग्नि सदृश प्रज्वलित, स्वर्ण में रत्न जड़ित वह गदा शोभायमान थी। शत्रु के रक्त से स्नात, शत्रु के शीश रूपी कमलों से पूजी हुई, शत्रु के मांस से तृप्त उस गदा को लेकर वह आवेशपूर्वक आया। प्रलयाग्नि जिस प्रकार प्राणिमात्र का नाश करने के लिए आता है, उसी प्रकार हाथों में गदा लेकर महापार्श्व वानरों का संहार करने के लिए आया।

महापार्श्व को आते देखकर वरुण पुत्र ऋषभ नामक वानरवीर छलाँग लगाकर अत्यन्त आवेशपूर्वक युद्ध के लिए सामने आ खड़ा हुआ। उस पर्वत सदृश वानर वीर को सामने देखकर महापार्श्व को क्रोध आ गया. वह गदा लेकर आगे बढ़ा। उसने गदा से ऋषभ की छाती पर जोरदार आघात कर उसे भूमि पर गिरा दिया। वह रक्त से सना हुआ मूर्च्छित पड़ा था। कुछ समय पश्चात् उसकी चेतना वापस लौटी। अपने ऊपर किये गए वार का प्रत्युत्तर किस प्रकार दें, इसका उसने निश्चित विचार किया। ऋषभ युद्ध-कुशल वीर था। उसने महापार्श्व का गला दबाकर उसे विह्वल कर दिया तथा उसकी गदा लेकर आकाश की ओर उड़ चला। गदा छीनकर ले जाने से महापार्श्व आश्चर्य चकित हुआ। फिर दूसरा शस्त्र हाथ में लेने का विचार करने लगा तभी ऋषभ ने उस पर गदा से प्रहार किया। उस समय ऋषभ क्रोध से काँप रहा था। दाँत किटकिटाते हुए गदा को घुमाकर उससे महापार्श्व पर अनेकों प्रहार किये। गदा से मस्तक पर आघात होते ही उसके दाँत टूट गए, आँखें बाहर आ गईं और महापार्श्व भूमि पर आ गिरा। युद्ध करने के लिए उसने गदा हाथों में ली परन्तु परिणाम विपरीत ही हुआ। उसी गदा के वार से वह धराशायी हो गया। जिस प्रकार प्रद्युम्न ने शंबर का मस्तक काटने का पराक्रम किया, उसी प्रकार ऋषभ ने युद्ध में महापार्श्व का वध कर दिया। महापार्श्व रावण का भाई तथा प्रिय प्रधान था। उसका युद्ध में प्राणान्त होने से राक्षस भागने लगे। प्रलय के समय समुद्र का जल जिस प्रकार अनियन्त्रित हो जाता है, उसी प्रकार पाँचों वीरों की मृत्यु से राक्षस-सेना अनियन्त्रित हो गई। देवांतक, महोदर, नरांतक, त्रिशिरा तथा महापार्श्व नामक पाँचों शूर वीरों का वध हो जाने पर राक्षसगण भागने लगे। चार वीरों के द्वारा पाँचों वीर मारे जाने पर अतिकाय निर्णायक युद्ध के लिए आया।

अध्याय ३१

[राक्षस अतिकाय का वध]

चारों वानर वीरों ने मिलकर तीनों रावण पुत्र राजकुमारों तथा महापार्श्व और महोदर इन पाँचों महाशूर योद्धाओं का वध कर दिया। हम इन्हें पत्ते खाने वाले वनचर कहते थे परन्तु ये तो साहसी शूर वीर हैं। इन्होंने हमारे वीरों को मार डाला है। तीनों सगे भाइयों, दो चचेरे भाइयों को इन्होंने मार डाला- यह सब देखकर स्वजनों के मारे जाने के कारण सूर्य के तेज सदृश दैदीप्यमान और तेजस्वी अतिकाय अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसमें अत्यन्त तेज विद्यमान था, इसका कारण ब्रह्मदेव से प्राप्त वर था। ब्रह्मदेव से वरदान मिलने के कारण अतिकाय अत्यधिक बलशाली हो गया था। अपने पुरुषार्थ का प्रदर्शन करते हुए वह युद्ध में देव, दानव, दैत्य आदि का वध किया करता था। सारथी को वह बता रहा था कि वानरों को हाथ नहीं लगाना है। जहाँ रघुनाथ हैं, वहाँ पर ले चलो क्योंकि उनका वध करना है। अतिकाय सोच रहा था कि श्रीरघुनाथ के रक्षक के रूप में विद्यमान होने के कारण युद्ध में वानरों पर विजय नहीं प्राप्त की जा सकती अत: श्रीराम का वध करने के लिए वे जहाँ पर हों, वहाँ रथ ले चलो। श्रीराम और लक्ष्मण वानरों की प्रमुख शक्ति हैं। उन दोनों का वध करने पर वानर स्वयं मर जाएँगे। अक्षय का वध कर लंका जला दी। देवांतक, नरांतक, त्रिशिरा, महापार्श्व एवं महोदर का वध कर दिया। इन सबका बदला लेने के लिए तथा रावण को सुखी करने के लिए मैं राम व लक्ष्मण का वध करूँगा तभी मेरा अतिकाय नाम सार्थक होगा।

"युद्ध में रामचन्द्र का वध करने पर वानरों को मारना ही नहीं पड़ेगा क्योंकि श्रीराम वृक्ष के सदृश हैं। लक्ष्मण तना है। हनुमान वृक्ष के मध्यभाग के समान हैं। सुग्रीवादि प्रचंड शाखाओं के सदृश हैं और उस वृक्ष का विषद विस्तार वानर सेना है। सीता सुन्दर सुमन फल है। रावण तत्काल उस पर मोहित हो गया। सबके द्वारा समझाये जाने पर भी उसे उसका हित समझ में नहीं आया। युद्ध में श्रीराम का वध करने पर हनुमान, लक्ष्मण व सुग्रीवादि वानरों के मारे जाने पर सीता स्वयं ही वश में हो जाएगी। ऐसी ख्याति अर्जित करने के लिए ही मैं अतिकाय युद्ध के लिए आया हूँ। मैं रघुपति को बाणों के आवर्त से वार कर मारूँगा। मैं रघुपति का वध करने के लिए ही युद्ध में आया हूँ" ऐसा विचार कर धनुष हाथों में पकड़कर अतिकाय आवेशपूर्वक गर्जना कर रहा था। उसके द्वारा धनुष की टंकार करने से गिरि कंदराएँ गूँज उठीं। भूकंप आने से सागर में हिलोरें उठने लगीं। वानर डर कर भागे। अतिकाय को देखते ही वानर भयभीत हो गए और रणभूमि से भागते हुए श्रीराम के पास आये। श्रीराम शरणागत के रक्षक होने के कारण ही वानर उनके पास आये थे। श्रीराम द्वारा अभयदान करने पर वे शान्त हुए। अतिकाय अत्यन्त कठोर दिखता था, वह रथ में बैठकर अत्यन्त उग्र दिखाई दे रहा था। उसे देखकर श्रीराम को आश्चर्य हुआ। उन्होंने बिभीषण को पास बुलाकर पूछा– "वह दूसरी ओर से आने वाला वीर कौन है?"

बिभीषण द्वारा अतिकाय के विषय में बताना– श्रीराम बोले– "वह आने वाला वीर निश्चय ही रणप्रवीण होगा। वह पर्वत सदृश अत्यन्त कठोर दिख रहा है। लाल आँखों वाला धनुर्धारी रथ में अत्यन्त दक्षतापूर्वक बैठा हुआ है। वह रणप्रवीण प्रतापी वीर हमारी ओर ही बढ़ रहा है। उसके रथ में सहस्रों घोड़े जुते हैं। रथ में दो सौ बीस तूणीर, खड्ग, धनुष, गदा, मुद्गर, त्रिशूल, तोमर इत्यादि शस्त्र हैं। छत्र है, पताकाएँ हैं दो चँवरें ढली जा रही हैं। ध्वज पर मालाएँ हैं, रथ पर झालरें लगी हैं। उसके ध्वज पर राहु का शीस बना है। भीषण युद्ध करने की उसकी भंगिमा दिखाई दे रही है। वह बाजूबंद, सिर पर मुकुट तथा तेजस्वी कुंडल धारण किये हुए है। कुंडलों का तेज उसके मुख को प्रकाशित कर रहा है, मानों वे सूर्य की किरणें हों। उसका धनुष बाण सोने से मढ़ा हुआ है। ऐसा वह वीर निःशंक रूप से रथ में बैठा हुआ है। मेरे सामने आने योग्य पराक्रम और पुरुषार्थ उसमें किस प्रकार है ?" श्रीराम का यह प्रश्न सुनकर उसके सम्बन्ध में बिभीषण निवेदन करने लगा। उसने बताया कि अतिकाय का बल और पराक्रम उसे प्राप्त वरदान के कारण है।

बिभीषण निवेदन करते हुए बोले– "रावण लंकापति होने के पश्चात् महामालिनी के गर्भ से इसकी उत्पत्ति हुई। इसका नाम अतिकाय रखने का निश्चय हुआ। अतिकाय विख्यात वीर है। वह रावण सदृश ही बलवान् है परन्तु अत्यन्त नम्र व साधुओं की सेवा करने वाला है। वह रथपति है और चक्रभ्रमण, हाथी तथा घोड़ों पर आरोहण में निपुण है। खड्ग लेकर पैदल युद्ध करने के लिए अतिकाय में पर्याप्त पराक्रम विद्यमान है। वह शूल, मुद्गर, फरश, पट्टिश, तोमर इत्यादि शस्त्रों का प्रयोग करने में कुशल है तथा अचूक निशाना साधने वाला धनुर्धारी एवं प्रवीण योद्धा है। उसमें भेद-भाव तथा लोभ-दंभ विद्यमान नहीं है। दान देने में अत्यधिक उदार है। सबसे नम्रतापूर्वक व्यवहार करता है। अनीति का निर्दलन कर नीतिपूर्ण आचरण करता है। विचारों के विषय में बृहस्पति सदृश तथा सुख संवाद करने वाला है। इस प्रकार समस्त दृष्टियों से निपुण है। सुरगणों को क्षुद्र कीटक सदृश निष्प्रभ कर युद्ध में उन पर विजय प्राप्त की है। इन्द्र को भी संत्रस्त कर दिया है। प्रताप और तेज में रुद्र सदृश रावण-पुत्र अतिकाय युद्ध में प्रखर तथा पूर्णरूपेण अतुलनीय है। इसने अन्न त्याग कर ब्रह्मदेव की आराधना की।

ब्रह्मा के प्रसन्न होने पर अतिकाय को ब्रह्मवरदान प्राप्त हुआ कि 'शत्रुसमुदाय को परास्त कर उसे नित्य विजय प्राप्त होगी।' ब्रह्मा ने इस दृष्टि से शस्त्र-अस्त्र स्वयं दिये हैं। इसी कारण सुरासुरों से युद्ध करते हुए अतिकाय का वध नहीं हो सकता क्योंकि ब्रह्मा ने उसे वध न होने का वरदान दिया है। ब्रह्मा द्वारा अभेद्य कवच तथा अभेद्य रथ आनन्दपूर्वक दिये जाने के कारण अतिकाय देव व दानवों को युद्ध में संत्रस्त कर देता है। वर के सामर्थ्य से बलोन्मत्त अतिकाय गर्जना करते हुए आ रहा है। उसके वध के लिए शीघ्र प्रयत्न करें, हे श्रीराम, अभेद्य कवच व अनिवार्य बाणों के बल पर अतिकाय आपसे युद्ध के लिए आ रहा है। यह उस वर का ही पराक्रम है। उसके बाण चल न पायें ऐसा कुछ प्रयत्न आप करें।" विभीषण का यह निवेदन सुनकर श्रीराम हँसकर बोले– "ब्रह्मा का वर क्या है ? क्षुद्र कीटक सदृश अतिकाय का इतना भय क्यों व्यक्त कर रहे हो। अरे विभीषण, मेरे बाण तो कलिकाल का प्राण लेने में भी समर्थ हैं। अतिकाय की क्या बिसात है, वह तो निमिषार्द्ध में ही मृत्यु को प्राप्त होगा।"

अतिकाय की टंकार एवं गर्वयुक्त वचन– अतिकाय ने अपना रथ आगे बढ़ाया और वानर सेना के मध्य ले आया। वहाँ उसने धनुष की टंकार करते हुए गर्जना की। वह बार-बार सिंहनाद करते हुए आह्वान कर रहा था अतः चिढ़कर वानर वीर शीघ्र युद्ध के लिए आगे बढ़े। अतिकाय की अतिभयंकर शरीरयष्टि देखकर श्रेष्ठ वानर वीर हाथों में शिला, शिखर, वृक्ष इत्यादि लेकर युद्ध के लिए आगे आये। वानरों द्वारा वार करने पर भी अतिकाय ने उन पर बाण नहीं चलाये। वह विचार कर रहा था– 'इन दीन-हीन वानरों को मारने में कैसा पुरुषार्थ! इन पत्तियाँ खाने वाले वानरों को मारकर कैसी ख्याति अर्जित की जा सकती है ? मैं युद्ध कर श्रीराम का ही वध करूँगा। वानरों से युद्ध करना मेरे लिए लज्जास्पद होगा। श्रीराम चन्द्र जो प्रमुख हैं, उन्हें ही मैं युद्ध में मारूँगा।' वानरों द्वारा फेंके गये वृक्षों व पाषाणों को तृणवत् मानकर अतिकाय श्रीराम से युद्ध करने के लिए आवेशपूर्वक आगे बढ़ा। 'इन बेचारे वानरों के लिए मैं हाथ में धनुष नहीं उठाऊँगा। श्रीराम को युद्ध में मारने जितनी संग्राम-शक्ति मुझमें है।' ऐसा विचार कर वृक्ष पाषाणों का निवारण कर वानरों की उपेक्षा करते हुए अतिकाय श्रीराम से युद्ध करने के लिए गरजते हुए आया। वह बोला– "मैं धनुषबाण लेकर युद्ध के लिए आया हूँ; जिसमें पराक्रम हो, वह मुझसे युद्ध करे। तुममें से किसी के पास भी संग्राम-शक्ति हो वह युद्ध भूमि में आकर मुझसे टक्कर ले।" अतिकाय के गर्वपूर्ण वचन सुनकर लक्ष्मण उत्साहपूर्वक उठे। उन्होंने श्रीराम की चरण-वंदना की। धनुष बाण सुसज्जित किया तथा प्रसन्नतापूर्वक गर्जना करते हुए चल पड़े। लक्ष्मण सामर्थ्यवान् थे। धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा कर ही वे अतिकाय के सामने आये। उन्होंने अपने धनुष की टंकार की जिससे पृथ्वी, पर्वत व सागर काँप उठे। गगन नाद से भर गया। गिरिकंदराएँ गूँज उठीं। दिग्गज स्तब्ध हो गए। दसों दिशाएँ नाद से गूँज उठीं। उस टंकार से राक्षस भयभीत हो उठे। उस भयंकर नाद से अतिकाय भी काँप गया। सौमित्र की वीरता एवं साहस ऐसा था।

अतिकाय एवं लक्ष्मण का शब्द-युद्ध– अतिकाय ने अपने समक्ष लक्ष्मण को देखकर क्रोधित हो धनुष पर बाण सज्ज करते हुए कहा– "रघुपति को पीछे छोड़कर हे बालक, तुम आगे आये हो, परन्तु मात्र मेरा सिंहनाद सुनकर वार के बिना ही निश्चित ही मृत्यु को प्राप्त होगे। व्यर्थ में गर्वपूर्वक मुझसे युद्ध करने के लिए आओगे परन्तु मेरे बाणों को सहन करने का पुरुषार्थ तुममें नहीं है। मेरे बाणों की विशेषता ऐसी है कि वे तुम्हें रणभूमि से भगायेंगे और फिर तुम पाताल अथवा आकाश कहीं भी छिप कर बैठोगे तो तुम्हें ढूँढ़कर तुम्हारा नाश कर देंगे। सुनहले पंखयुक्त मेरे तीक्ष्ण बाण चलने पर वे तुम्हारा

धन्य हैं योद्धा लक्ष्मण, जिन्होंने अतिकाय के अनिवार्य वरद्-बाण का निवारण कर शरणागत की रक्षा की। लक्ष्मण ने अतिकाय के समस्त बाणों का निवारण कर शरणागत को सुरक्षित रखते हुए उसे आघात न लगने देकर अतिकाय को मूर्च्छित कर दिया। नारद, समान बलशाली योद्धाओं का युद्ध लंका में रुककर प्रशंसायुक्त दृष्टि से देख रहे थे। स्वर्ग में देवता गर्जना कर रहे थे। ऋषि जय-जयकार कर रहे थे। वानर राम-नाम की गर्जना कर रहे थे। ऐसा सौमित्र वीर धन्य है। अतिकाय के नेत्र खोलने पर उसे बाण वापस लौटे हुए दिखाई दिए। अत: अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसने निर्णायक युद्ध प्रारम्भ कर दिया लक्ष्मण के पंचप्राणों को हरने के लिए उसने पाँच बाण चलाये। अतिकाय अत्यन्त दृढ़ निश्चयी और युद्ध प्रवीण था। जिस प्रकार गरुड़ अपने नखाग्रों से सर्प को विदीर्ण कर देता है, उसी प्रकार अतिकाय के पाँचों बाणों को लक्ष्मण ने काट कर गिरा दिया। अतिकाय का शर संधान निष्फल कर, लक्ष्मण ने स्वयं अपना तेजस्वी बाण धनुष पर चढ़ा कर प्रत्यंचा खींचते हुए अतिकाय की ओर चलाया। वह बाण वेगपूर्वक उसके मस्तक पर जा लगा। जिस प्रकार सर्प बाँबी में घुसता है, उसी प्रकार वह बाण उसके मस्तक में प्रवेश कर गया। अतिकाय काँप गया तथा रक्त की धाराओं से भीग गया। घाव से महावीर थर-थर काँपने लगा। जिस प्रकार त्रिपुरासुर का त्रिपुर रुद्र के बाणों से जर्जर हो गया, उसी प्रकार अतिकाय को लक्ष्मण के बाणों ने संत्रस्त कर दिया। उस बाण के प्रहार से अतिकाय रथ के नीचे गिरकर धूसरित हो गया। सौमित्र महापराक्रमी सिद्ध हुआ। अपनी मूर्च्छा पर नियन्त्रण कर महाबली अतिकाय सतर्क हुआ। वह लक्ष्मण से बोला– "मेरी बाणों की वर्षा का निवारण कर तुमने मेरे मस्तक पर बाण मारा, धनुर्धारी तुम धन्य हो। तुम श्रेष्ठ वीर हो, यह मैं स्वीकार करता हूँ। देव, दानव, दैत्य, सर्प सब मुझसे युद्ध करते समय भय से पलायन कर जाते हैं परन्तु तुमने तो मुझे भयभीत कर दिया अत: मैं तुम्हें श्रेष्ठ योद्धा स्वीकार करता हूँ।" शत्रु के गुणों को मान्य करने के साथ ही अतिकाय क्रोधित भी था। उसने आवेशपूर्वक बाण चलाना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम एक बाण चलाया जिसे लक्ष्मण ने तोड़ डाला, तत्पश्चात् एक साथ तीन, पाँच तथ अन्त में सात बाण चलाये परन्तु लक्ष्मण ने उन्हें भी तोड़ डाला, जिससे अतिकाय क्रोधित हो दाँत भींचने लगा।

अतिकाय के सभी बाणों को लक्ष्मण ने तोड़ दिया, जिससे वह रावण-पुत्र कुपित हो उठा और तब उसने एक अत्यन्त भीषण बाण सुसज्जित किया तथा उस बाण से लक्ष्मण के हृदय पर आघात किया। यद्यपि लक्ष्मण के शरीर से रक्त की धाराएँ प्रवाहित होने लगीं तथापि वे तनिक भी विचलित नहीं हुए। वे रणभूमि में पूर्ववत् गर्जना करते रहे। राक्षस हाहाकार करने लगे। जिस प्रकार मद बहने वाला हाथी वन में घूमता रहता है, उसी प्रकार रक्तस्राव होने पर भी लक्ष्मण रणभूमि में स्वानन्द मग्न हो विचरण कर रहे थे। अपने हृदय में लगे बाण को स्वयं ही उखाड़कर उन्होंने हृदय को व्यथा रहित कर दिया। लक्ष्मण ऐसे रण-प्रवीण योद्धा थे। जो हृदय का शल्य दूर करता है, अनेक विघ्नों को पैरों तले रौंद देता है, प्रपंच और परमार्थ दोनों पर विजय प्राप्त करता है। तीनों लोकों में यश सम्पादन करता है, उसे रणभूमि में परमार्थ की प्राप्ति होती है, वह संग्राम में विजयी होकर अहंकार का नाश करता है। उसी प्रकार धैर्यवान् वीर लक्ष्मण ने हृदय का शल्य निकाल दिया तथा अतिकाय का प्राण हरने के लिए अस्त्रों की योजना की। लक्ष्मण साहसी धनुर्धारी एवं युद्ध निपुण वीर थे। उन्होंने अस्त्र के बीजाक्षर मन्त्र का जाप कर सतेज बाण सुसज्जित किया।

ब्रह्मा के वरदान के कारण लक्ष्मण के बाण व्यर्थ होना– लक्ष्मण सतर्कतापूर्वक युद्ध कर रहे थे। उन्होंने अतिकाय के प्राण हरने के लिए अग्नि-अस्त्र सिद्ध कर बाण सुसज्जित किया और आवेशपूर्वक चला दिया। वह तेजराशि बाण ऐसा था, जिसका तेज आकाश में नहीं समा रहा था। वह बाण देखकर अतिकाय ने सूर्यास्त्र की योजना कर बाण चलाया। अग्नि और सूर्य दोनों ही तेजराशि होने के कारण दोनों बाण आकाश में एक दूसरे से भिड़ते ही तेज में तेज समाहित होकर अस्त्रों का निवारण हो गया। देखते ही देखते सहज रूप से दोनों बाण शक्तिहीन होकर टूटकर गिर गए। दोनों अस्त्र निराकार हो गए। दोनों वीर कुछ क्षण शान्त खड़े रहे। तत्पश्चात् अतिकाय ने क्रोधपूर्वक दर्भास्त्र चलाया। धनुर्धारी लक्ष्मण ने उस अस्त्र को इन्द्रास्त्र से तोड़ डाला। दर्भास्त्र टूटने के कारण रावण-पुत्र ने क्रोधित होकर लक्ष्मण को लक्ष्य बनाकर याम्यास्त्र की योजना कर बाण चलाया। याम्यास्त्र को आते देखकर अस्त्रकुशल लक्ष्मण ने वायव्यास्त्र से उसे तोड़ डाला। अब लक्ष्मण क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने बाणों की सहायता से वर्षा प्रारम्भ कर दी। अतिकाय उस वर्षा में भीग गया, उसके सभी बाण बह गए। अतिकाय को ब्रह्मा के वर से अभेद्य कवच प्राप्त होने के कारण उसके शरीर में बाण प्रवेश नहीं कर रहे थे। अतः लक्ष्मण द्वारा आवेशपूर्वक बाण चलाये जाने पर भी ब्रह्मकवच के कारण अतिकाय को अणुमात्र भी व्यथा नहीं हो रही थी। अपने तीक्ष्ण बाणों को व्यर्थ जाते देखकर लक्ष्मण विचार करने लगे कि अब क्या करना चाहिए ?

वायु की सूचना; अतिकाय का वध– लक्ष्मण विचार कर ही रहे थे कि वायु ने गुप्त रूप से आकर लक्ष्मण के कान में बताया कि- 'अतिकाय को ब्रह्मदेव से मिले कवच के आवरण के कारण बाणों से उस पर आघात नहीं किया जा सकता। ब्रह्म देव का वरदान होने से ब्रह्मास्त्र से ही बाण को सुसज्जित कर उसका शीघ्र वध करें। यह अतिकाय अत्यन्त दुष्ट, देवताओं का शत्रु, प्राणि-मात्र का शत्रु, धर्म द्रोही तथा दुःखप्रदान करने वाला है। अतः इसका अवश्य वध करें।' वायु द्वारा यह सूचना प्राप्त होते ही लक्ष्मण प्रसन्न हो उठे। उन्होंने तुरन्त ब्रह्मास्त्र से बाण सुसज्जित किया। अचूक शर-संधान करने के लिए उन्होंने स्वर्ण-पंखों से युक्त, शुभ, पीला बाण चुनकर उसपर ब्रह्मास्त्र की योजना कर बाण चलाया। ब्रह्मास्त्र के तेज से सर्वत्र प्रकाश फैल गया; बाण के सामर्थ्य से कड़कड़ाहट की ध्वनि हुई। पंखयुक्त बाणों से चलने वाली हवा ने सुरासुरों को हिला दिया। दैत्य, दानव, सुरगण, चन्द्र, सूर्यादि ग्रह तथा राक्षसगण कंपित हो उठे। समुद्र में उफान आ गया। पर्वत थरथराने लगे। बाण के चलते ही चराचर विचलित हो उठे। ऐसे उस बाण को आते देखकर स्वयं अतिकाय ने रणभूमि में दृढ़ पवित्रा लेकर अपने धनुष पर डोर चढ़ाई तथा कुशलतापूर्वक बाणों की वर्षा प्रारम्भ की। उन सब बाणों को भेदते हुए ब्रह्मास्त्र आगे बढ़ा। ब्रह्मास्त्र को आता देखकर महावीर अतिकाय ने अनेक बाण चलाये परन्तु उन बाणों को व्यर्थ करते हुए ब्रह्मास्त्र अतिकाय के शरीर में जा लगा। जिस प्रकार गरुड़ अजगर के टुकड़े कर देता है, उसी प्रकार बाणों के टुकड़े करते हुए ब्रह्मास्त्र अतिकाय का मस्तक काटने के लिए उसके समीप आ पहुँचा। अपने शस्त्रों को व्यर्थ हुआ जानकर अतिकाय ने पर्वत से प्रहार किया तब भी ब्रह्मास्त्र पर नियन्त्रण न हो सका, जिससे हाहाकार मच गया। अनेक निर्णायक बाण चलाने पर भी ब्रह्मास्त्र ने सभी को चूर-चूर कर दिया तथा अतिकाय का प्राण लेने के लिए वह उसके समीप आया। अतिकाय ने शक्ति, शूल, गदा, तोमर, फरसा, पट्टिश, खड्ग, कुल्हाड़, परिघ, मुद्गर इत्यादि से भी वार किया परन्तु ब्रह्मास्त्र अपने स्थान से हिला नहीं। सभी शस्त्रों को निष्फल कर ब्रह्मास्त्र ने अतिकाय का गला काटकर उसका सिर रणभूमि में गिरा दिया। मुकुट-कुंडलों से सुशोभित, तेज से देदीप्यमान सिर कटकर भूमि पर गिरा था।

कुंभकर्ण ख्यातिप्राप्त महारथी योद्धा कहलाता था तो अतिकाय अतिरथी नाम से जाना जाता था। उस अतिरथी योद्धा को लक्ष्मण ने धराशायी कर दिया। धन्य है वह समर्थ सौमित्र, जिसने मुकुट, कुंडल, शिरस्त्राण सहित अतिकाय का सिर काटकर भूमि पर गिरा दिया। हिम पर्वत के शिखर सदृश उस टूटे हुए शीश को देखकर राक्षस-सेना लंका की ओर भागने लगी। बची हुई राक्षस-सेना लंका-भुवन पहुँचकर दशानन को वृत्तान्त सुनाने लगी- ''देवांतक, नरांतक, त्रिशिरा, महोदर तथा महापार्श्व को मारने के पश्चात् अतुलनीय अतिकाय का भी वध कर दिया। ये छह वीर युद्ध में मृत्यु को प्राप्त हुए।'' युद्ध में अतिकाय लक्ष्मण के हाथों मारा जाने के कारण, उसे ब्रह्म-प्राप्ति हुई। श्रीराम द्वारा युद्ध-स्थिति देखने के कारण राक्षसों को परम मुक्ति प्राप्त हुई।

अध्याय ३२

[श्री राम-लक्ष्मण एवं सेना का शर-बंधन में बँधना]

अतिकाय अतिरथी था। लक्ष्मण पैदल ही युद्ध कर रहे थे परन्तु लक्ष्मण ने अतिकाय को धराशायी कर दिया। यह देखकर वानरों ने हरिनाम की गर्जना की। लक्ष्मण द्वारा अतिकाय के मारे जाने पर वानरों के निर्मल आनन्दित मुख खिले हुए कमल सदृश दिखाई दे रहे थे। श्रीराम ने लक्ष्मण की आनन्दपूर्वक प्रशंसा की। लक्ष्मण के संग्राम में विजयी होने पर स्वर्ग में सुरवर जय-जयकार कर रहे थे। वानरों ने श्रीराम-नाम की गर्जना की। ऋषि भी जय-जयकार कर रहे थे। युद्ध में राक्षस-समूह को मारने पर भी जो राक्षस शेष बचे थे, वे भयभीत होकर लंका भाग गये। वे घावों से जर्जर राक्षस रोते कराहते हुए किसी तरह रावण की सभा में पहुँचे तथा रावण को सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया।

रावण का शोक; इन्द्रजित् का आश्वासन– रणक्षेत्र से जर्जर होकर लंका में सभा-स्थान पर आकर राक्षस सैनिक रावण को रणभूमि का वृत्तान्त बताते हुए बोले– ''इससे पहले के वीरों की कथा तो आपने सुनी ही है। हे लंकानाथ, अब लक्ष्मण ने हमारे सामने अतिकाय को मार डाला।" अतिकाय को लक्ष्मण ने मार डाला, यह सुनकर अत्यन्त व्यथित होकर पहले की घटनाओं को स्मरण करते हुए रावण दु:खपूर्वक बोला– "मेरे सभी स्वजन व रण-प्रवीण वीर युद्ध में मारे गए। धूम्राक्ष, वज्रदंष्ट्र, अकंपन, प्रहस्त आदि सेनानी, बंधु कुंभकर्ण, महोदर, महापार्श्व तथा मेरे महावीर पुत्र, जिनसे सुरासुर भी भयभीत होते थे, इन्द्रादि देवता भी जिन्हें वश में नहीं कर पाते थे, ऐसे महाशूरों को भी मार डाला। देवांतक, त्रिशिरा एवं नरांतक जैसे वीर पुत्र मारे गए। इस प्रकार दु:खी होकर दशानन विलाप करने लगा। तत्पश्चात् वह आगे बोला– "कुंभकर्ण, कुमार, प्रधान इत्यादि वीर जिन पर भरोसा था, वे सभी मारे गए। अब इस राम से युद्ध कौन करेगा ? सुग्रीव ने सेना एकत्र की। श्रीराम ने सबको आश्वस्त किया। अब उन वानरों ने मेरे प्रमुख वीरों को ही मार डाला। हम पर किस स्थान पर आघात किया जाय, उन मर्मस्थलों को बताने के लिए वहाँ विभीषण विद्यमान है, वही कुलक्षय करवा रहा है। अतिकाय का वध उसने ही करवाया। अतिकाय की ब्रह्मास्त्र से मृत्यु हो सकती है, यह रहस्य विभीषण ने ही बताया होगा और इसीलिए युद्ध में लक्ष्मण को पूर्णविजय प्राप्त हुई। राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, अंगद, हनुमान इत्यादि से अब कौन युद्ध करेगा ?" यह कहते हुए रावण आक्रोश करते हुए विलाप करने लगा।

रावण का आक्रोश सुनकर इन्द्रजित् दौड़ता हुआ आया और स्वयं अपने पुरुषार्थ के विषय में बताने लगा। वह बोला "हे लंकानाथ, इस इन्द्रजित् के जीवन्त रहते आपको दुःख करने का क्या कारण है। मैं राम लक्ष्मण एवं सभी वानरों का वध कर डालूँगा। आप सभी प्रकार से प्रबल राजा हैं। इसके अतिरिक्त दुःख करते हुए बैठने का यह समय नहीं है। आज मेरा बल देखें। संग्राम में मेरा रण-कौशल देखें। मेरे निर्वाण-बाण चलने पर अपने बाणों से सर्वांग बिद्ध कर मैं राम-लक्ष्मण को मार डालूँगा, यह मेरी प्रत्यक्ष प्रतिज्ञा है। वानर बेचारों की क्या बिसात, मैं बाणों से सबको छलनी कर दूँगा। उनमें से करोड़ों को भीषण युद्ध कर संग्राम में मार डालूँगा।" इस प्रकार अपना पुरुषार्थ बताकर रावण से आज्ञा लेकर उसकी चरण वंदना कर इन्द्रजित् रथ पर आरूढ हुआ।

इन्द्रजित् का प्रयाण; रावण का आदेश– रथ में बड़े खरों को जोतकर, ध्वज, पताका, छत्र, चामर व शस्त्र संभार सहित इन्द्रजित् रथ में बैठा। वायुवेग से चलने वाले अद्भुत सबल रथ को सजाकर, उसमें बैठकर गर्जना करते हुए इन्द्रजित् ने युद्ध के लिए प्रस्थान किया। जिस रथ में वह बैठा था, उसमें उसे समाधि सुख से अधिक संग्राम में सुख का अनुभव होता था। इसी कारण वह युद्ध के लिए उपस्थित हुआ। इन्द्रजित् ने जब युद्ध के लिए प्रस्थान किया, तब उसके साथ अद्भुत सेना भी चल पड़ी। अश्व, रथ व गज पर सवार होकर वह सेना गर्जना करती हुई आगे बढ़ी। उस सेना में फरश, पट्टिश, तोमर, शूल, त्रिशूल, मुद्गर इत्यादि शस्त्र चलाने वाले तथा अचूक शर संधान करने वाले धनुर्धारी थे। जिस प्रकार अंधेरे में से स्वयं तेजाकार सूर्य बाहर निकलता है, उसी प्रकार महावीर इन्द्रजित् लंका से बाहर निकला। रण वाद्यों की ध्वनि में तेज से परिपूर्ण मानों प्रतिसूर्य ही युद्ध के लिए चल पड़ा हो। जिस प्रकार सूर्य का तेज आकाश में फैल जाता है, उसी प्रकार इन्द्रजित् का तेज युद्ध-भूमि में दिखाई देता था। वह रणभूमि में इन्द्र पर विजय प्राप्त कर उसे बाँधकर ले आया था।

सेना सिद्ध कर रावण पुत्र इन्द्रजित् ने जब युद्ध के लिए प्रस्थान किया तब रावण प्रसन्न होकर बोला "जिस प्रकार युद्ध में इन्द्र पर विजय प्राप्त कर उसे बन्दी बनाकर लाये थे, उसी प्रकार राम लक्ष्मण को बाँधकर मेरे पास लाना। अगर राम को बाँध नहीं सके तो दोनों का रणभूमि में कुशलतापूर्वक वध कर देना। तुम महारथी योद्धा हो, संग्राम में अवश्य ही ख्याति अर्जित करना।" पिता के वचन सुनकर इन्द्रजित् ने उन्हें प्रणाम किया तथा प्रदक्षिणा कर सेना-संभार लेकर प्रस्थान किया। राम व लक्ष्मण दोनों अत्यन्त साहसी वीर होने के कारण इन्द्रजित् उनसे भयभीत था। अतः उनके लिए तन्त्र-मन्त्र का, जारण मारण का उपाय करने के लिए उसने शीघ्र निकुंबला की ओर प्रस्थान किया। निकुंबला ऐसा स्थान था, जहाँ तान्त्रिक विधियों की सामग्री रखी हुई थी। इन्द्रजित् दुष्ट और दुराचारी होने के कारण इन विधियों का उपयोग करता रहता था। इन्द्रजित् साहसी वीर नहीं था, कपट एवं तन्त्र-मन्त्र से युद्ध में सुरासुरों पर विजय प्राप्त करता था परन्तु श्रीराम को उस उपाय से भी नहीं जीता जा सकता था।

इन्द्रजित् का तन्त्र-मन्त्र प्रयोग– इन्द्रजित् जारण मारण का तान्त्रिक प्रयोग करने का निश्चय कर निकुंबला में आया। वह मन ही मन भयभीत था कि राम को इसका पता चलने पर वे यहाँ तक पहुँच सकते हैं। अतः उसने निकुंबला के प्रत्येक प्रवेश द्वार पर तथा मार्ग में अनेक स्थानों पर राक्षसों को पहरा देने के लिए नियुक्त किया था। वह स्वयं भी सेना सहित सावधान था। उसे यह भी भय था कि राम को इसकी भनक लगते ही, वानर सेना यहाँ आ धमकेगी। अतः वायु भी प्रवेश न कर सके,

वानरों पर वीरता का प्रदर्शन कर रहा था। वानर सोच रहे थे कि सामने तो योद्धा दिखाई नहीं देता, फिर किस पर वृक्षों एवं पाषाणों से वार किया जाए? ऐसा कौन है, जिस पर पराक्रम दिखाया जाय। इस प्रकार इन्द्रजित् ने बाणों के जाल से वानरों की प्रबल सेना को रणभूमि में बन्दी बना दिया। वानर विकल होकर रणभूमि में गिर पड़े। उसी अदृश्य अवस्था में इन्द्रजित्, परशु, पट्टिश, गदा, मुद्गर, शूल, परिघ, तोमर इत्यादि शस्त्रों से वार कर रहा था। अदृश्य रूप में वानरों को निशाना बनाकर मेघनाद इन्द्रजित् उन्हें भयभीत कर रहा था। उसने वानर वीरों के प्रमुखों को घायल कर दिया। इन्द्रजित् का अदृश्य रहकर अद्‌भुत रीति से मुख्य वानरों का घात करना, यह सब रहस्यमय और अकस्मात् घटित हो रहा था।

रथ, घोड़े, सारथी तथा स्वयं महारथी इन्द्रजित् सभी अदृश्य होने के कारण, बाण कहाँ से तथा कब आ रहे हैं, यह दिखाई नहीं दे रहा था परन्तु शरीर में घुस रहे थे; यह अनाकलनीय था। राजा सुग्रीव, हनुमान, अंगद, नल, नील, जाम्बवंत इत्यादि को इन्द्रजित् ने मूर्च्छित कर दिया। उन महावीरों को आश्चर्य में डाल दिया। बाण आते हुए दिखाई न देने के कारण, उनका निवारण सम्भव नहीं हो पा रहा था। योद्धा सामने दिखाई न देने के कारण पराक्रम करना भी संभव नहीं हो पा रहा था। मैंद, द्विविद, गंधमादन, केसरी, दधिमुख, सुषेण, कुमुद, कुमुदाक्ष, गज, गवय, गवाक्ष, हरिलोमा, पावकाक्ष, विद्युज्जिह्व, उल्कामुख ऐसे अनेक वानरवीरों को इन्द्रजित् ने मूर्च्छित कर दिया। उसी प्रकार असंग, वेगवंत, पनस, धूम्र, शतबली, ज्योतिर्मुख, सूर्यानल, सुमुख, को भी उसने मूर्च्छित कर दिया। रावणपुत्र इन्द्रजित् का संहार करने के लिए तार, तरल, हरि इत्यादि वानर आकाश में उड़कर गये परन्तु उनके हृदय में बाण लगने से वे भी घायल होकर कराहते हुए नीचे जा गिरे। इस प्रकार अतर्क्य बाणों के वार से इन्द्रजित् ने अनेक वानरों को शरबंधन में बाँध दिया। इससे वह हर्षित हो उठा तथा राम व लक्ष्मण को मारने के लिए आवेश से उठा। सामने रघुनाथ के दिखाई देते ही अकाट्य ब्रह्मवरदान से निमिषार्द्ध में उसका घात कर अपने पुरुषार्थ के लिए प्रशंसा प्राप्त की जा सकती है, ऐसा उसे लग रहा था।

श्रीराम व लक्ष्मण शरबन्धन में– इन्द्रजित् ने ब्रह्मा के वरदान से होम के द्वारा ब्रह्मास्त्र प्राप्तकर उसके बल पर वानरवीरों को धराशायी कर दिया। यह देखकर श्रीराम लक्ष्मण से बोले– "पहले की ही भाँति शरबंधन करने के लिए इन्द्रजित् वरद्-बाणों की वर्षा कर रहा है। वानर वीर मेरे कारण वीर, धैर्यवान् तथा प्रतापी हो गए थे परन्तु ब्रह्मा के वरदान के कारण वे सब रणभूमि में पड़े हैं। वरद् बाण गुप्त रूप से अचानक आकर शरीर में घुस जाते हैं। उन्हीं घावों के कारण, सभी वानर रणभूमि में पड़े कराह रहे हैं। उस वरदान का वैशिष्ट्य यह है कि योद्धा अथवा बाण दिखाई नहीं देते, इसीलिए उसने अदृश्य शस्त्रों से वानरगणों को शरबंधन में बाँध दिया। मंत्र, अस्त्र, तथा ब्रह्मास्त्र इन तीनों के एकत्र होने से ही वानरवीर शरबंधन में बँध गए; अब हम दो प्रमुख बचे हैं। इसीलिए हम दोनों को शरबंधन में बाँधने के लिए इन्द्रजित् शरवर्षा कर रहा है। हमारे खड़े रहने पर वह अपने अतुलनीय बाणों से हमें निशाना बनाएगा। यह टालने के लिए भूमि पर लेटकर शरबंधन में बँधेंगे। इससे पहले जैसे शिवजी का वरदान हमने झेला, उसी प्रकार ब्रह्मवरदान भी सहन करेंगे क्योंकि ब्रह्म-वरदान को व्यर्थ करने से दोष लगेगा। हे लक्ष्मण, ब्रह्म वचन झूठा नहीं किया जा सकता। ऐसा करने पर ब्रह्म हत्या सदृश पाप लगता है। अत: हम ब्रह्मवरदान का पालन करेंगे। ब्रह्मा की अवमानना करने पर भगवंत क्रुद्ध हो जाएँगे। ब्रह्मवरदान को मिथ्या करने से दोष का भागी बनना होगा। मूलत: मूल लक्षण ये है कि हम दोनों को ही मृत्यु नहीं है, तब ब्रह्मशरबंधन सहन करने में कैसा संशय ? तत्पश्चात् श्रीराम के कहने पर लक्ष्मण शरबंधन में लेट गए।

इन्द्रजित् का हर्षपूर्वक लंका वापस आना– इन्द्रजित् धनुष-बाण हाथों में लेकर देख रहा था कि राम व लक्ष्मण मूर्च्छित होकर शरबंधन में पड़े हैं। वह अत्यन्त हर्षित हुआ। उसने रण-वाद्य बजाने की आज्ञा दी। राक्षस, वाद्यों की ध्वनि के साथ नाचने लगे। युद्ध में राम व लक्ष्मण पर विजय प्राप्त की, यह बताने के लिए इन्द्रजित् लंका वापस लौटा। शरबंधन में शत्रु को बाँधकर इन्द्रजित् ने जब लंका में प्रवेश किया, तब भाटों व राक्षसों ने उसकी स्तुति की। शरबंधन में राम, लक्ष्मण व वानरों को बन्दी करने के विषय में इन्द्रजित् हर्षित होकर रावण से बताने लगा। वह बोला– "शरबंधन में बंदी होने के कारण सबकी वीरता, धैर्य एवं शौर्य क्षीण हो गए हैं। शरबंधन का लक्षण यह है कि सूर्य किरणों के स्पर्श होते ही सबके प्राण चले जाएँगे। तब कौन किसे मुक्त करायेगा। श्रीराम की सेना के चारों ओर बाणों का पिंजरा निर्मित हो गया है तथा सभी वानर उसमें बन्दी हो गए हैं।" इन्द्रजित् द्वारा यह बताने पर, उसकी स्तुति करते हुए रावण बोला– "इन्द्रजित् विजयी महावीर है।" परन्तु वास्तव में प्रत्यक्ष रूप से राम व लक्ष्मण स्वयं शरबंधन में पड़कर ब्रह्मा का वरदान व्यर्थ न होने पाये, इसका पालन कर रहे थे।

अध्याय ३३

[श्रीराम-लक्ष्मण एवं वानरों की शरबंधन से मुक्ति]

ब्रह्म-वरदान का पालन करने के लिए ही श्रीराम व लक्ष्मण शरबंधन में बँधकर अपने को मूर्च्छित रूप में प्रकट कर रहे थे। कोई बहुरूपिया जिस प्रकार मृत होने का नाटक करता है, परन्तु वह वास्तव में जीवित होता है, उसी प्रकार श्रीराम और लक्ष्मण बाणों के उस पिंजरे में भी पूर्ण चैतन्य अवस्था में थे। बाहर से वे दोनों यद्यपि विकल दिखाई दे रहे थे तथापि आन्तरिक रूप से वे शौर्य से परिपूर्ण पुरुषार्थी थे। ब्रह्मदेव का वर होने पर भी इन्द्रजित् अथवा रावण उस शरबंधन के समक्ष आने पर श्रीराम उनका मस्तक छेद डालेंगे। इसीलिए शरबंधन के समक्ष कोई भी राक्षस नहीं आया। वे विजय की गर्जना करते हुए सीधे लंका में गये। शरबंध के बाण लगने पर वास्तव में वानरों के प्राण चले जाते परन्तु श्रीराम-नाम का स्मरण करने के कारण सभी बच गए। श्रीराम, लक्ष्मण एवं वानरों को शरबंध में देखकर विभीषण वहाँ आये।

विभीषण द्वारा सुग्रीव व मारुति से वार्तालाप– शरबंधन में वानर-सेना बाणों से बिद्ध होकर पड़ी हुई है। महावीर राम व लक्ष्मण मूर्च्छित पड़े हैं, यह देखकर विभीषण शरबंध के समीप आये। उन्होंने देखा कि पड़े हुए वानर-गणों में कोई भी चेतनावस्था में नहीं है। कपट बुद्धि के अधम राक्षस ने राघव को बंदी बना लिया है। राक्षस होते हुए भी विभीषण धर्मात्मा एवं शुद्ध सात्विक था। विभीषण ने तब वानरराज सुग्रीव को सावधान किया और उचित सलाह देते हुए बोले– "ब्रह्मपाश के वरदान का श्रीराम पालन कर रहे हैं। शरबंधन में होते हुए भी वे मूर्च्छित न होकर चैतन्य अवस्था में है। उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं है। अतः तुम सभी प्रकार के दुःख व शोक का त्याग करो। यह कठोर ब्रह्मास्त्र, ब्रह्मा द्वारा दिया गया वरदान है। इस ब्रह्मवरदान को श्रीराम ने मिथ्या नहीं होने दिया। जो हृदय पर पड़ी लात को सहन करते हुए वत्सलांछन कहलाता है, वही ये स्वयं श्रीरघुनाथ हैं। वे वरदान को व्यर्थ नहीं होने देंगे। उस वरदान के कारण ही वानर वीरों के समूह बाणों से बिद्ध होकर पड़े हुए हैं परन्तु उन्हें भी

प्राणों का भय नहीं है। ब्रह्मास्त्र का मान रखते हुए जिस प्रकार राम व लक्ष्मण शरबंधन में हैं, उसी प्रकार हनुमान भी ब्रह्मास्त्र को सम्मान दे रहे हैं। उन्हें भी शरबंधन बाधित नहीं कर सकता।" विभीषण के वचन सुनकर हनुमान हँसे और उन्होंने विभीषण से पूछा- हमें ब्रह्मास्त्र की बाधा नहीं होती, यह आप कैसे जानते हैं ? इस पर विभीषण बोले- "इसके पूर्व भी ब्रह्मा के ब्रह्मपाश के वश में तुम नहीं हो सके थे, तब ब्रह्मास्त्र के वश में किस प्रकार हो सकते हो ? " यह सुनकर हनुमान प्रसन्न हुए।

हनुमान ने वानर सेना को शरबंधन में बँधा हुआ देखकर विभीषण से कहा- "वानर वीर रणभूमि में पड़े हुए हैं। उनकी अवस्था से अवगत होने के लिए हम दोनों मशालें लेकर रणभूमि में जाएँगे।" हनुमान के वचन सुनकर विभीषण सन्तुष्ट हुए। तत्पश्चात् वे दोनों देदीप्यमान मशालें लेकर रणभूमि की ओर चल पड़े। वानर वीरों के समूह शरबंधन में पड़े हुए थे। वहाँ रक्त प्रवाहित हो रहा था तथा मांस का कीचड़ बन गया था। वानरों के प्रमुख पराक्रमी वीर भी शरजाल में पड़े थे। सुग्रीव व अंगद जैसे योद्धाओं को भूमि पर पड़ा हुआ देखकर हनुमान दुःखी हो गए। इतने असंख्य वानरों की गणना करना कठिन था परन्तु हनुमान ने उनकी गणना कर विभीषण से कहा- "सूर्यास्त होने तक सरसठ करोड़ महाशूर वानर ब्रह्मास्त्र द्वारा रणभूमि में धराशायी किये गए। श्रीराम की ऐसी कीर्ति है कि उनके भक्तों का नाश नहीं हो सकता" अतः इन वानर वीरों की मृत्यु नहीं हो सकती।

हनुमान रणभूमि में पड़े हुए वानरों के कानों में अत्यन्त कृपा दृष्टि से श्रीराम नाम कहने लगे। वानरों के कानों में श्रीराम का नाम पड़ते ही उन्हें व्यथा से मुक्ति मिली किन्तु ब्रह्मवरदान में बँधे होने के कारण वे अपने बल पर वहाँ से उठ नहीं सकते थे। राम-नाम स्मरण के कारण शरबंधन में पड़े वानर स्वस्थ और सतर्क हो गए। उन्हें तिलमात्र भी शारीरिक वेदना नहीं हो रही थी, तथापि वे शरबंधन से स्वयं को मुक्त नहीं करा सके। धन्य है ब्रह्मा की महिमा, जिनका उल्लंघन स्वयं श्रीराम भी नहीं कर रहे थे। स्वयं शरबंधन में बँधकर ब्रह्मा के वचनों का पालन कर रहे थे। ऐसी उस वरदान की ख्याति थी। तब वानर उस ब्रह्मवरद् शर बंधन से कैसे मुक्त हो सकते थे। धन्य हैं वे कृपालु हनुमंत, जिन्होंने वानरों के कान में श्रीरघुनाथ के नाम का जाप कर सभी वानरों की मूर्च्छा दूर कर दी। सभी वानरों को शरबंध में बँधा हुआ देखकर विभीषण और हनुमान जाम्बवंत को ढूँढ़ने के लिए स्वयं तत्परतापूर्वक निकले। उन्हें लगा कि जाम्बवंत अतिशय बुद्धिमान होने के कारण वानरों को मुक्त करने का उपाय, उन्हें बता सकेगा। वृद्धत्व से जर्जर शरीर में बाण घुसे हुए ऐसे वीर जाम्बवंत को देखकर विभीषण ने आगे बढ़कर उससे पूछा- "तुम्हारे सम्पूर्ण शरीर में बाण चुभे होने पर भी तुम्हारे प्राण कैसे बचे, यह मुझे बताओ।" इस पर जाम्बवंत बोला- "इन बाणों के शरीर में घुसने पर मेरे प्राण चले जाते परन्तु श्रीराम का स्मरण करने के कारण मैं बच गया।" विभीषण के प्रश्न का उत्तर देकर बाण चुभने से अत्यन्त विह्वल हुआ जाम्बवंत अत्यन्त कष्टपूर्वक आगे बताने लगा।

जाम्बवंत बोला- "आप विभीषण हैं, यह मैंने शब्द-ज्ञान से पहचान लिया अन्यथा इन बाणों से मैं पूर्ण विकल हो गया हूँ। आँखें खोलकर देखा भी नहीं जाता। अच्छा, मेरी विकलता के विषय में रहने दें। मुझे बतायें कि विख्यात अंजनीसुत हनुमान तो स्वस्थ हैं ? उनके विषय में मुझे बतायें। धन्य है उस हनुमान की भक्ति और भजन। धन्य है उनका आचरण, धन्य है उनका पराक्रम, जिन्होंने लंका जला दी। उन्होंने चौदह हजार वन-रक्षक, अस्सी हजार किंकर, जंबुमाली, प्रधानपुत्र, कुमार अक्षय इत्यादि को मार डाला। ससैन्य इन्द्रजित् को संत्रस्त कर दिया। लंकानाथ रावण को पीड़ित किया। ऐसे पराक्रमी हनुमान

का वृत्तान्त मुझे बतायें। जाम्बवंत के वचन सुनकर विभीषण चकित हो गए। यह श्रीराम के विषय में न पूछ कर, हनुमान के विषय में क्यों पूछ रहा है, यह सोचकर विभीषण को आश्चर्य हुआ। तब जाम्बवंत का मनोगत जानने के लिए विभीषण ने प्रश्न किया कि "सेतु बाँधकर जिनके लिए लंका में आये, उन राम-लक्ष्मण को छोड़कर, तुम हनुमान के विषय में क्यों पूछ रहे हो ? वानरनाथ राजा सुग्रीव, विख्यात युवराज अंगद एवं अन्य योद्धाओं के विषय में न पूछकर तुम हनुमान के विषय में क्यों प्रश्न कर रहे हो ? ज्येष्ठ भ्राता धूम्र को एवं श्रेष्ठ वानर वीरों को छोड़कर केवल मारुति के विषय में ही क्यों पूछ रहे हो ? श्रीराम की भक्ति तथा सुग्रीव के प्रति प्रेम को छोड़कर हनुमान के प्रति तुम्हारा इतना प्रेम क्यों है ? इसका रहस्य मुझे स्पष्ट करो। विभीषण के प्रश्नों का उत्तर देते हुए जाम्बवंत बोला– "अगर हनुमान जीवित होंगे तो सभी वानर यदि मृत भी होंगे, तो वे पुनः जीवित हो उठेंगे। उस प्रतापी हनुमंत के कारण वानर सेना को निश्चित ही पुनः जीवन प्राप्त होगा। अगर हनुमान की जीवन-लीला समाप्त हो जाएगी तो हम सभी वानर जीवित होते हुए मृत सदृश हो जाएँगे। शरबंध में बँधे सभी वानरों की मूर्च्छा कौन दूर करेगा ? सूर्योदय की किरणों के स्पर्श से शरबंध के कारण वानरगण एवं श्रीराम व लक्ष्मण के प्राण चले जाएँगे। हनुमान जीवित होंगे तो वे द्रोण-पर्वत लाकर सबके प्राण बचा लेंगे। मैंने इसीलिए हनुमान के विषय में पूछा।" जाम्बवंत के इन मधुर एवं उत्साहवर्धन करने वाले वचनों को सुनकर विभीषण सन्तुष्ट हो गए और स्वय हनुमान के विषय में बताने लगे– "हनुमान स्वयं वज्रदेही हैं। उनके शरीर में बाण नहीं चुभते। उन्हें शरबंधन भी बाँध नहीं सकता, वे पूर्ण चैतन्य हैं। वह महावीर हनुमान मेरे साथ ही तुम्हें ढूँढ़ते हुए यहाँ आये हैं। प्रलय तेज से विभूषित, वायु के सदृश बलशाली हनुमान स्वयं तुम्हारे दर्शनों के लिए आये हैं। विभीषण द्वारा यह बताने के पश्चात् हनुमान ने जाम्बवंत को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। तत्पश्चात् दोनों ने एक दूसरे को आलिंगनबद्ध किया। हनुमान के आगमन से प्रसन्न जाम्बवंत बोला– "अब हमारे प्राण बच गए, हमारा पुनर्जन्म होगा। तत्पश्चात् प्रसन्नचित्त जाम्बवंत हनुमान से बोले– "ध्यानपूर्वक सुनो।"

हनुमान को दिव्य-औषधि हेतु भेजना– जाम्बवंत बोला– "हे हनुमान, वानर सेना को बचाने का पराक्रम तुममें विद्यमान है। श्रीराम और लक्ष्मण को शरबंधन से मुक्ति कराने का पराक्रम तुम्हारे अतिरिक्त तीनों लोकों में किसी के पास नहीं है। वानर सेना समुदाय शरबंधन में पड़ा है। तुम दिव्य-औषधि लाकर उन्हें बचाओ। सभी वानर शरबंधन में विकल होकर पड़े हैं। यही तुम्हारे पराक्रम का उचित समय है। तुम बलवान् प्रबल पुरुषार्थी हो। तुम्हारे बल की महिमा अगाध है। शीघ्र दिव्य-औषधि लाकर वानर समूह को उठाओ तथा श्रीराम के उपकारकर्ता बनो। हमारे भाग्य से शरबंधन के समय तुम सावधान थे। वानरगणों को बचाने का पराक्रम भी तुममें है। औषधि स्थल के विषय में तुम्हें पूछना हो तो वह स्थान मैं तुम्हें बताता हूँ क्योंकि सूर्य किरणों के स्पर्श होते ही श्रीराम व लक्ष्मण, वानरगणों सहित अपनी जीवन लीला समाप्त कर देंगे। अतः सूर्योदय के पूर्व रात्रि में ही दिव्य-औषधि लाकर स्वयं श्रीराम का उपचार करो।" जाम्बवंत के इन वचनों से हनुमान में स्फूर्ति उत्पन्न हुई और वह शीघ्र उड़ान भरने के लिए तैयार हुए। उन्होंने जाम्बवंत से औषधि के स्थान के विषय में पूछा। जाम्बवंत ने प्रसन्नतापूर्वक उस स्थान के सम्बन्ध में बताते हुए कहा - "दिव्य औषधि का स्थान सागर के उस पार है। अतः समुद्र लाँघकर आगे जाओ। विजन वन को पारकर हिमालय पर्वत तक पहुँचो। उसके स्वर्ण शिखरों में तुम्हें द्रोणागिरि मिलेगा। वह पर्वत चतुष्कोणी व विशाल है। वहाँ दिव्यऔषधियाँ तेजयुक्त हैं।

उनके तेज से दसों दिशाएँ प्रकाशित होती हैं। वह तेज नभ में भी नहीं समा पाता। तत्पश्चात् और अधिक जानकारी देते हुए जाम्बवंत बोला– "हे हनुमान, इस प्रकार आत्मतेज से परिपूर्ण कौन-कौन सी औषधियाँ हैं तथा उनके गुण लक्षण क्या हैं, ध्यानपूर्वक सुनो। मरणासन्न को वायुस्पर्श से बचाती है, उसका नाम है अमृत संजीवनी। हृदय के शल्य दूर करने वाली औषधि है- विशल्य करणी। फटे हुए घाव जिससे भर जाते हैं और शरीर पर वे घाव अथवा उनका चिह्न भी नहीं दिखता, वह औषधि है- सुवर्णकारिणी; टूटी हुई छिन्नभिन्न हड्डियाँ पुनः जुड़ जाती हैं और उनके निशान भी समाप्त हो जाते हैं, उस औषधि का नाम है-संधिणी। इन चारों औषधियों को लेकर रात्रि में ही शीघ्र गति से वापस लौटो। सभी वानरों को बचाकर श्रीराम को प्रसन्न करो। जिस प्रकार चन्द्रोदय होने पर समुद्र में उफान आता है, उसी प्रकार जाम्बवंत के इन वचनों से हनुमान में स्फूर्ति उत्पन्न हुई। जाम्बवंत द्वारा बतायी गई औषधियाँ लाने के लिए पराक्रमी हनुमान ने आवेशपूर्वक गर्जना की। उस गर्जना से लंका में सभी भयभीत हो उठे। हनुमान की गर्जना से रावण तथा इन्द्रजित् भी भयभीत हो गए। राक्षस हाहाकार करने लगे। लंका में मानों प्रलय होने लगी। श्रीराम की सेना को देखने आये राक्षस डर कर लंका में जाकर छिप गए।

हनुमान की उड़ान; द्रोणागिरि पर पहुँचना– हनुमान ने उड़ान भरते समय पैरों से लंकागिरि को दबाया जिसके कारण लंका के घर, छतें, गोपुर ढह कर सागर में जा गिरे। उस समय हनुमान का मुख लाल एवं विकराल दिखाई दे रहा था। उनकी पूँछ सर्पसदृश थी। दोनों कान खड़े हो गए थे। इस प्रकार वेगवान उनकी उड़ान थी। अपनी पीठ को झुकाकर भौंहों में गांठ देकर अपने लक्ष्य की ओर वे शीघ्र उड़ चले। पर्वत पाताल में दबने से पाताल लोक के सर्प विचलित हो-उठे, वृक्ष उखड़ कर आँधी में जिस प्रकार तृण उड़ते हैं, उन्हीं के सदृश आकाश में उड़ गए। समुद्र का एवं नदियों का जल उड़ने से ध्रुव-मंडल भीग गया। उनकी प्रबल उड़ान इतनी शक्तिशाली थी। उन्होंने प्रदक्षिणा उड़ान भरी तथा इन्द्र, चन्द्र और ग्रहों के स्थान तथा सूर्य, वरुण आदि तथा यमसदन को लाँघते हुए आगे बढ़े। सूर्य की गति जानने के लिए उन्होंने पूर्व की ओर उड़ान भरी तथा गहन रात्रि देखकर उत्तर की ओर प्रस्थान किया। जन-लोक, तप-लोक तथा सत्य-लोक लाँघकर अचानक वे मेरुशिखर पर पहुँच गए। वहाँ पर कैलासगिरि, आगे हेम गिरि और उनके बीच में द्रोणागिरि था। उसी पर दिव्य औषधियाँ थीं। ये औषधियाँ दीप्तिमान थीं। उनके तेज से आकाश दीप्तिमान हो रहा था। यह देखकर हनुमान आश्चर्यचकित हो गए। वायु रुद्र के दूत हैं तथा मारुति उनके पुत्र, इसी कारण वेगपूर्वक उड़कर औषधि लेने के लिए वे स्वयं आये।

मारुति द्वारा द्रोणागिरि को उखाड़कर लाना– द्रोणागिरि पर दिव्य औषधियाँ थीं, जिन्हें लेने हनुमान आये थे परन्तु वे अदृश्य हो रही थीं, जिससे हनुमान असमंजस में पड़ गए। चमकती हुई औषधियाँ आगे दिखाई देते ही मारुति वेगपूर्वक उन्हें लेने जाते थे परन्तु पास पहुँचते ही वे अदृश्य हो जाती थीं। पुनः आगे औषधि देखकर हनुमान उनके पास पहुँचते, तभी उन्हें लगता कि वे पीछे हैं फिर वे भी तुरन्त अदृश्य हो जाती थीं। तब औषधियाँ प्राप्त न हो सकने के कारण हनुमान क्रोधित हो गए और गर्जना करते हुए पर्वत से बोले– "मैं श्रीराम का दूत हूँ। श्रीराम शरबंधन में पड़े हैं। उन्हें शल्य मुक्त करने के लिए मैं औषधि लेने आया हूँ, तुमने औषधियों को अदृश्य कर दिया। अब तुम्हारा पुरुषार्थ देखता हूँ।" यह कहते हुए हनुमान ने पर्वत में पूँछ लपेटकर उसे औषधि सहित उखाड़ लिया। हनुमान में विलक्षण शक्ति विद्यमान थी। पर्वत उखाड़ते समय जो कड़कड़ाहट की ध्वनि हुई, उससे स्वर्ग में सुरवर घबरा गए, प्रौढ़ दिग्गज काँप उठे। हनुमान का पराक्रम देखकर सुरासुर चौंक गए। विद्याधर, सिद्ध,

चारण, शेष सभी काँप उठे। जिस प्रकार सूर्य वेगपूर्वक पूर्व दिशा की ओर आता है, उसी प्रकार हनुमान दिव्य औषधियों सहित पर्वत को उखाड़कर वेगपूर्वक आने लगे। हनुमान द्वारा द्रोणागिरि को उखाड़कर लाने का पराक्रम करने के कारण सुर व सिद्ध उसकी स्तुति करते हुए कहने लगे– "यह सच्चा महान् श्रीराम भक्त है। अपने स्वामी की चेतना वापस लाने के लिए पूरा पर्वत ही उखाड़ लिया। वायुनन्दन का यह पराक्रम अतुलनीय है। स्वामी का संकट निवारण करने के लिए इतना विशालकाय पर्वत उखाड़ लिया, इसका तात्पर्य है कि इसमें श्रेष्ठ सामर्थ्य है; यह मारुति वरिष्ठ वीर है।" विष्णु-चक्र के वेग से भी अधिक वेगपूर्वक जाकर हनुमान स्वामीकार्य हेतु पर्वत उखाड़ लाये। पर्वत लेकर आते हुए वे चक्र-युक्त विष्णु सदृश सुशोभित हो रहे थे।

औषधि का परिणाम, हनुमान का सम्मान– हनुमान द्वारा औषधियुक्त पर्वत लाते ही उसके ऊपर से आने वाली वायु के स्पर्श से वानरों का समुदाय शरबंधन से मुक्त हो गया। दिव्य औषधि की गंध आते ही राम व लक्ष्मण दोनों भ्राताओं की मूर्च्छा जाकर, चेतना वापस लौट आई। शरबंध खुल गया। वानरों के शरीर के घाव भर गए। शरीर पर पड़े निशान भी ठीक हो गए। शत खंडों में विभक्त हड्डियाँ जुड़ गईं। औषधि द्वारा सबको सचेतन कर देने के कारण श्रीराम ने हनुमान का सम्मान किया। अंगद, जाम्बवंत, विभीषण आदि ने भी उनकी स्तुति कर सम्मानित किया। वानर सेना को स्वयं मारुति ने कष्टों से मुक्ति दिलाई अतः सभी ने मारुति का अभिवादन किया, उनकी स्तुति की। श्रीराम के शरबन्धन से मुक्त होने के कारण वानरों द्वारा किये गए राम-नाम के जय-जयकार से आकाश गूँज उठा। हनुमान ऐसे सामर्थ्यवान एवं बलवान् थे, जिन्होंने लाया हुआ औषधियुक्त पर्वत पुनः उसके स्थान पर ले जाकर रख दिया तथा शीघ्र श्रीराम के पास वापस लौट आये।

अध्याय ३४

[कुंभ का वध]

विभीषण बोले– हनुमान अत्यन्त वीर हैं। उन्होंने श्रीराम को वानर सेना सहित शरबंध से मुक्त कर दिया तथा अंगद सुग्रीव इत्यादि राजपुरुषों को तथा अन्य प्रमुख योद्धाओं को मुक्ति दिलाई। हनुमान स्वामिभक्त तथा शूरवीर हैं। हनुमान को सुग्रीव श्रीराम एवं सभी वानर अत्यन्त सम्मान देते हैं। यह उचित भी है क्योंकि वास्तव में उन्होंने अभिनव एवं अपूर्व कीर्ति की है। निमिष मात्र में पर्वत लाकर उन्होंने सभी वानरों को उठा दिया तथा पुनः पर्वत को उसके स्थान पर रखकर श्रीराम-भक्त वापस आ गए। विभीषण द्वारा की गई हनुमान की प्रशंसा सुनकर सुग्रीव सन्तुष्ट हुआ। वह बोला– "धन्य है प्रतापी मारुति। हे पवन पुत्र, तुमने उन रावण-पुत्रों को परिवार सहित मार दिया, जिन पर रावण को पूर्ण विश्वास था। वीर देवांतक तथा नरांतक एवं वीर त्रिशिरा को भी मार डाला, इस प्रकार रावण-पुत्रों का युद्ध में पूर्ण नाश हुआ। इस दुःख से रावण नाना प्रकार के कपट करेगा अतः उसके पूर्व ही उत्तम वीर वानर जाकर लंका-त्रिकूट को जलाकर भस्म कर दें।" सुग्रीव द्वारा यह कहते ही करोड़ों वानरगणों ने रात में ही हाथों में जलती हुई मशालें लेकर लंका-दहन आरम्भ कर दिया।

लंका दहन के कारण लंका तथा नागरिकों की दुर्दशा-- वानर जब जलती हुई मशालें लेकर लंका नगरी को जलाने के लिए पहुँचे तब उन्हें देखकर नगरी की रक्षा करने वाले राक्षस भाग गए। राक्षस सेना लेकर नगरी की रक्षा विरुपाक्ष करता था परन्तु वानरों को आते देखकर भय के कारण वह भी भाग गया। राक्षसों को भागते देखकर वानर उनका पीछा करने लगे। जो रक्षक मार्ग में मिले, उन्हें वानरों ने जला दिया अथवा उनका वध कर दिया। वानर घर-घर में आग लगाते हुए आ रहे थे, जिसके कारण जो अन्दर थे, वे बाहर नहीं आ पा रहे थे। इस प्रकार वानरों ने सर्वत्र आग लगा दी। घर, मन्दिर, बड़े-बड़े महल, गोपुर, तटबंदी, शिखर सर्वत्र वानर क्रोधपूर्वक आग लगा रहे थे। श्रीराम को शरबंधन में बाँधने वाले दुष्ट राक्षसों को, इन्द्रजित् को, रावण को जलाने के लिए वानरों ने लंकापुर जला दिया। घरों में आग लगाकर लाखों घरों को जला दिया। माणिक से निर्मित भूमि, रत्नजड़ित खंभे, मोतियों से सजे मंडपयुक्त उत्तम घर आग से घिर गए। छोटे घरों को वानर नहीं जला रहे थे परन्तु सुन्दर घरों में वे अवश्य आग लगा रहे थे। अत्यन्त क्रोधित एवं चिढ़े हुए होने के कारण वे सर्वत्र आग लगा रहे थे। हनुमान ने जब लंकानगरी को जलाया, तब दिवस का समय था परन्तु इस बार रात्रि का समय होने के कारण माताएँ, बच्चे तड़पने लगे। चारों ओर आग लगने से राक्षस समुदाय भागने लगे। नगरी में हाहाकार मच गया। स्त्री पुरुष व सभी नागरिकों की दुर्दशा हो गई।

नगर में कुछ घरों में लोग निद्रिस्थ अवस्था में ही भस्म हो गए। अनेक प्रकार की सामग्री, वस्तुएँ, शस्त्रास्त्र, कवच, धनुष-बाण, ढाल, वस्त्र, आभूषण इत्यादि जल गए। सभी चिल्लाते हुए आक्रोश कर रहे थे। अग्नि से जल रहे थे। कौन किसकी रक्षा करता ? इस अग्नि में दस सहस्र महायोद्धा हाहाकार करते हुए जलकर भस्म हो गए। चारों ओर अग्नि की लपटें उठी हुई थीं। लंका में कोई मार्ग शेष नहीं बचा था। राक्षस हाहाकार कर रहे थे। श्रीराम को कपटपूर्वक शरबंधन में बाँधने का अनिष्ट फल प्राप्त होकर राक्षसों का सत्यानाश हो गया। घरों में स्त्री-पुरुष जब निश्चिन्त होकर सो रहे थे, तब अग्नि ने वहाँ पहुँचकर, उन्हें जला दिया। तब स्त्रियों एवं बच्चों को लेकर पुरुष हाहाकार करते हुए भागने लगे। धुएँ से घिरे हुए वे चिल्ला रहे थे। धुएँ के कारण, उन्हें मार्ग दिखाई नहीं दे रहा था। अग्नि जला रही थी। राक्षस एवं स्त्रियों तथा बच्चों को अत्यन्त कष्ट हो रहा था। अग्नि में फँसे हुए राक्षस ज्वालाओं से घिर गए। उस स्थिति में न बच सकने के कारण वे आक्रोश कर रहे थे।

श्रीराम को शरबंधन में बाँधने के कारण क्रोधित वानर छोटे-बड़े सभी राक्षसों को जलाने लगे। श्रीराम परब्रह्म के अवतार हैं। उनसे राक्षसों ने कपट किया। अतः वानर राक्षसों का सर्वनाश करने के लिए उत्सुक थे। जो राक्षस बाहर निकलते थे, उन्हें अग्नि में फेंक दिया जाता था। इस प्रकार राक्षस त्राहि-त्राहि करने लगे। उनके चीखने एवं आक्रोश करने से कोलाहल मच गया। लंकानगरी में प्रलय मच गया। अग्नि की ज्वालाएँ देखकर हाथी, घोड़े, ऊँट इधर-उधर भागने लगे, प्यास से व्याकुल होकर पानी पीने के लिए वे जलाशय के समीप जाते थे परन्तु पानी में अग्नि ज्वालाओं का प्रतिबिम्ब देखकर उसे अग्नि समझकर पानी पिये बिना ही भय से पीछे लौट जाते थे। इस प्रकार लंकाभुवन में अग्नि ने सबको भयाक्रांत कर दिया। लक्ष्मण ने अग्निबाण चलाकर राक्षसों का संहार किया, जिससे लंकावासी छटपटा उठे। लक्ष्मण के बाणों से डरे हुए स्त्री पुरुष चिल्लाकर आक्रोश कर रहे थे। इस प्रकार लंका की सम्पूर्ण दुर्दशा हो गई।

श्रीराम द्वारा लंकादहन रोकना– लंका में चल रहे भीषण हाहाकार को देखकर श्रीरघुनन्दन कृपा से द्रवित हो उठे। उन्होंने इस भीषण संहार को रोक दिया। "निद्रिस्थ लोगों को बाणों से बिद्ध कर उन्हें मारने में हमारा कैसा पुरुषार्थ है।" इस प्रकार सुग्रीव से कहते हुए उन्होंने लक्ष्मण को बाण चलाने से रोका। तत्पश्चात् श्रीराम बोले–"निद्रिस्थ लोगों का दहन करना क्षत्रियधर्म का निंद्य-लक्षण है। लंकाभुवन जलाकर, सोये हुओं का वध करने से दशानन रावण का वध तो नहीं होगा। रात में युद्ध करना, चुपचाप आग लगाना, अधर्म के लक्षण हैं तथा क्षत्रिय धर्म के लिए यह लज्जास्पद है। बाहर रणभूमि में आये हुए वीर-समूहों का मैं वध करूँगा, सम्पूर्ण पृथ्वी क्षणार्द्ध में धड़ों एवं मस्तकों से भर दूँगा। मेरे होते हुए राक्षसों का भय कैसा ? बाणों की वर्षा कर मैं राक्षसों को मार डालूँगा। अतः लक्ष्मण रुक जायें, वानर गणों को हटा लें तथा सोये हुए लोगों को न जलायें। लंकाभुवन न जलायें। निद्रिस्थ लोगों का वध करने से महापाप लगता है।" यह सब टालकर श्रीराम आमने-सामने युद्ध करना चाह रहे थे। उन्होंने निर्णायक युद्ध करने के लिए वानर सेना सुसज्जित करने की तथा उसे रावण से युद्ध करने की आज्ञा दी। श्रीराम की आज्ञा सुनकर सुग्रीव ने उन्हें दंडवत् प्रणाम किया तथा आनन्दपूर्वक गर्जना करते हुए वानर गणों को युद्ध के लिए नियुक्त किया। रावण से युद्ध करने की श्रीराम की आज्ञा तथा सुग्रीव द्वारा अपनी नियुक्ति की कठोर आज्ञा से वानरों को स्थिति की गंभीरता का अनुभव हुआ। "आज रणभूमि में युद्ध के समय श्रीराम के कार्य के लिए प्राण भी न्यौछावर कर दें। जो युद्ध से पलायन करेगा, अंगद उसका वध कर दें। मामा, मौसा, बहनोई, नाती, चाचा, भतीजा, भाई, पुत्र, साला अथवा अन्य निकट सम्बन्धियों में से कोई भी पीछे हटा कि उसका वध कर दिया जाएगा। श्रीराम-कार्य में जो कपट करेगा, उसको मार दिया जाएगा। उसके वध का कोई भी दोष नहीं लगेगा।" यह आज्ञा सुनकर अंगद हँसकर बोला– "भागने वाले को अभयदान देकर मैं रावण का वध करूँगा, मेरा युद्ध कौशल तो देखें।" अंगद के वचन सुनकर रघुनाथ सन्तुष्ट हुए। वानरों ने आनन्दपूर्वक करतल ध्वनि की। युद्ध में लंकाधीश का वध करने का निश्चय हुआ।

रावण द्वारा कुंभ व निकुंभ को युद्ध के लिए भेजना– दिन निकलने पर रावण को लंका की होली जली हुई दिखाई दी। लंकादहन देखकर रावण क्रुद्ध होकर दाँत किटकिटाने लगा। उसने कुंभकर्ण के पुत्रों कुंभ व निकुंभ नामक महाशूर योद्धाओं को शीघ्र रणभूमि में भेजा। उन्हें नर व वानरों को मारने की आज्ञा दी। कुंभ व निकुंभ शौर्य के गर्व से आवेशपूर्वक बोले– "तुच्छ वानरों को मारकर क्या होगा, हम राम व लक्ष्मण को ही मारेंगे।" उन दोनों वीरों ने अपनी सेना सुसज्जित की तथा वीरतापूर्वक गर्जना करते हुए लंका से बाहर प्रस्थान किया। उनके साथ रथ, अश्व, मदमस्त हाथियों से युक्त चतुरंगिणी सेना थी। कुंभकर्ण के पुत्र अत्यन्त समर्थ, दोष-रहित एवं युद्धोत्सुक वीर थे। कुंभ व निकुंभ को, रावण की आज्ञा से नाना प्रकार के वाद्यों की ध्वनि सहित लंका से बाहर निकलते हुए वानर वीरों ने देखा। राक्षसों की सेना देखकर रणभूमि में विद्यमान वानरवीर क्रुद्ध हो उठे तथा युद्ध के लिए तत्पर होकर गर्जना करने लगे। वानरों ने राम-नाम की जय-जयकार करते हुए भुभुःकार किया तो राक्षसों ने सिंहनाद करते हुए भयंकर गर्जना की। हँसिये, तोमर, त्रिशूल, भाले इत्यादि शस्त्र लेकर राक्षस युद्ध के लिए आगे बढ़े, तो शाल, ताल इत्यादि वृक्ष तथा पर्वत लेकर वानर युद्ध के लिए निकले। दोनों ओर की सेनाएँ भीषण युद्ध करने लगीं। वे एक दूसरे पर भीषण वार करने लगे। पराक्रम के अनुसार राक्षस

व वानर परस्पर एक दूसरे से युद्ध करने लगे। रण-प्रवीण राक्षस तथा वानर योद्धा अपने-अपने योद्धाओं की रक्षा करते हुए युद्ध कर रहे थे।

राक्षस व वानरों में युद्ध– राक्षस-सेना ने अत्यन्त वीरता एवं बुद्धिपूर्वक व्यूह रचना की थी। वानर भी अत्यन्त सावधानीपूर्वक एवं सुव्यवस्थित रूप से राक्षसों से द्वंद्व युद्ध कर रहे थे। रणप्रवीण एवं पराक्रमी महावीर परस्पर एक दूसरे का नाम लेकर उन्हें ललकारते हुए युद्ध कर रहे थे। वानर वीर श्रीराम के दूत होने की अनुभूति के साथ राम-नाम का स्मरण कर वार कर रहे थे तो युद्ध में विख्यात राक्षस भी उन वारों का प्रत्युत्तर वार से दे रहे थे। यदि कोई एक दूसरे को धराशायी करता था तो उसे भी तुरन्त धराशायी कर दिया जाता था। राक्षस कहते थे– "तुम पत्ते खाने वाले दुर्बल वानर हो। तुम कहाँ युद्ध में टिक सकोगे ?" इस पर वानर उत्तर देते हुए कहते– 'तुम राक्षस महापापी हो, तुम्हारा स्वामी दूसरों के घर चोरी करने वाला है। उसके दस सिरों पर जितने पाप हैं, उसमें तुम सब सहयोगी हो। तुम पापपूर्ण आचरण करने वाले शक्तिहीन प्राणी हो। तुम्हारे पापों के कारण तुम्हारा स्वयं ही नाश हो जाएगा, हमें तुम्हें मारने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी।' इस प्रकार राक्षसों की भर्त्सना करते हुए वानर वीर आवेशपूर्वक युद्ध कर रहे थे। वे कह रहे थे– 'श्रीराम स्वयं उज्ज्वल चरित्र वाले निष्पाप एवं निर्मल हैं। तुम्हारा स्वामी कलंकित, पापी, परस्त्री-गमन करने वाला है। उस पापी के दूत बनकर तुम यहाँ युद्ध के लिए आये हो। तुम्हें कभी विजय प्राप्त नहीं हो सकती। तुम सभी निश्चित ही मरोगे।'

राक्षस वानरों को तथा वानर राक्षसों को काट रहे थे। वानर अपनी पूँछ से पटककर राक्षसों पर वार कर उन्हें घायल कर रहे थे। उनके दाँत तोड़ रहे थे। राक्षसों का संहार कर वानर गर्जना कर रहे थे। एक दूसरे से कह रहे थे– 'लो मेरा वार सहन करो।' तत्पश्चात् मस्तक पर वार कर रहे थे, जिससे रक्त प्रवाहित होने लगता था। इस प्रकार भीषण युद्ध चल रहा था। धैर्यपूर्वक घाव सहन करने वाले महावीर एक-एक को चुन-चुन कर युद्ध कर रहे थे। इस प्रकार राक्षस व वानरों का घमासान युद्ध चल रहा था। ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों रणवेताल युद्ध में क्रुद्ध होकर रणभूमि में कोलाहल मचा गया हो। वानर वीर रणोन्मत्त होकर युद्ध में एक साथ कई राक्षसों का घात कर रहे थे। राक्षस-वीर भी एक-साथ आठ-दस वानरों का वध करते हुए गर्जना कर रहे थे। इस प्रकार युद्ध में होने वाली वानर-वीरों की क्षति को देखकर अंगद गरजते हुए आया।

कुंभ-निकुंभ के प्रमुख प्रधान अकंपन को अंगद ने युद्ध के लिए बुलाया। अंगद को, गरजकर आह्वान करते हुए आया देखकर अकंपन ने गदा से प्रहार किया। जिस प्रकार किसी पर्वत को वज्रप्रहार से गिराया जाय, उसी प्रकार अंगद को मूर्च्छित कर गिरा दिया। अंगद ने अपनी मूर्च्छा पर नियन्त्रण करते हुए शीघ्र उठकर क्रोधपूर्वक शिला शिखर से प्रहार कर अकंपन को चूर-चूर कर दिया। पानी माँगे बिना ही अकंपन रणभूमि में धराशायी हो गया। उसके धराशायी होते ही राक्षस-सेना की बहुत क्षति हुई। तब वे कुंभ के पास भागते हुए आये। उन्होंने अकंपन के वध की वार्ता सुनाई। इस पर कुंभ क्रोधित होकर धनुष बाण लेकर निकला। कुंभ राक्षस सेना को धीरज बंधाते हुए युद्ध के लिए बढ़ा। कुंभ महाशूर योद्धा था। उसने श्रेष्ठ वानर वीर ढूँढकर शर-संधान प्रारम्भ किया। अन्य लोगों को न मारकर जो श्रेष्ठ योद्धा थे, कुंभ ने उन पर बाण चलाये। उसने धनुषबाण सुसज्जित कर कानों तक प्रत्यंचा खींचकर बाण चलाया, जिससे वानर वीर द्विविद मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। शूरवीर रणकुशल कुंभ आनन्दित हो उठा। अपने बंधु द्विविद को मूर्च्छित पड़ा हुआ देखकर महामैंद क्रोधित हो गया। वह आवेशपूर्वक कुंभ से युद्ध के लिए

आया। उसने वृक्ष सहित पर्वत उखाड़कर कुंभ के मस्तक पर मारा। उसे कुंभ ने तत्काल छेद दिया। उसने पाँच बाण चलाकर पर्वत शिला को शतचूर्ण कर दिया। तत्पश्चात् प्रखर बाण चलाकर कुंभ ने मैंद पर निशाना साधा। मैंद की शिला चूर-चूर कर कुंभ ने सुवर्ण पंखी बाण चलाकर मैंद के हृदय पर वार किया, जिसके कारण वानरवीर मैंद रणभूमि में मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

अंगद व कुंभ में युद्ध– द्विविद तथा मैंद अंगद के मामा थे। उन्हें रणभूमि में मूर्च्छित पड़ा हुआ देखकर अंगद क्रोधित हो गया तथा तत्काल कुंभ का वध करने के लिए दौड़ा। अंगद ने एक पर्वत उखाड़कर गर्जना की, तब कुंभ ने उसकी ओर आने वाले पर्वत को पाँच बाण चलाकर तोड़ डाला। पर्वत चूर-चूर करने के पश्चात् कुंभ ने अंगद पर तीन बाण चलाये। महापराक्रमी वीर अंगद बाणों से जर्जर होकर भी वृक्ष हाथों में लेकर कुंभ का घात करने के लिए आया। उसके द्वारा एक के पश्चात् एक फेंके गए वृक्ष और पर्वत कुंभ ने अत्यन्त सतर्कतापूर्वक अस्तव्यस्त कर दिए तथा अत्यन्त आवेशपूर्वक उन्हें तोड़ डाला। उसने अंगद के मस्तक पर बाण मारा, जिससे रक्त प्रवाहित होने लगा। जिस प्रकार हाथी को अंकुश से नियन्त्रित करते हैं, उसी प्रकार उन्होंने अंगद को बाणों से जकड़ डाला; परन्तु युद्ध के आवेश में अंगद शालवृक्ष ले आया। उसके मस्तक पर लगे बाणों से रक्त की धारा प्रवाहित हो रही थी। आँखों पर आया रक्त पोंछते हुए अंगद दौड़ा। इन्द्र का इन्द्रध्वज जिस प्रकार सुशोभित होता है, उसी प्रकार शाल वृक्ष पकड़े हुए अंगद का हाथ सुशोभित हो रहा था। अंगद ने लात मारकर सारथी और रथ को मार गिराया। "हमें पत्तियाँ खाने वाले हीन-दीन वानर् कहकर स्वयं को महाशूर जुझारू वीर समझते हैं।" ऐसा कहते हुए अंगद ने शाल वृक्ष का प्रहार किया। कुंभ ने तुरन्त सतेज बाण चलाकर शालवृक्ष को तोड़ दिया। तब अत्यन्त प्रज्वलित, तेजस्वी, वज्रधार से युक्त सुवर्णपंखी बाण चलाकर कुंभ ने अंगद को निशाना बनाया। अंगद ने सबल उड़ान भरी परन्तु हृदय में बाण लगने से वह रणभूमि में मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। उसकी सुध-बुध खो गई। अपने युवराज को भूमि पर पड़ा हुआ देखकर क्रोध से भरे करोड़ों वानर योद्धा कुंभ से युद्ध करने के लिए तेज़ी से आगे बढ़े।

प्रख्यात वीर युवराज अंगद को रणभूमि में पड़ा देखकर कुंभ को अत्यन्त आनन्द हुआ। उसे अंगद को लंका नगरी ले जाना था। परन्तु रथ व सारथी के नष्ट हो जाने के कारण अंगद को किस प्रकार लंका ले जाय, यह सोचने लगा। तभी अचानक धूम्र नामक वानर वीर वहाँ कूद कर उपस्थित हुआ। धूम्र की आँखें क्रोध से लाल थीं; वह हाथों में पर्वत लेकर कुंभ के पास आ पहुँचा। कुंभ ने पंखबाणों से उत्पन्न वायु से धूम्र को आकाश में उड़ा दिया जिससे वानरों में हाहाकार मच गया। राक्षस प्रसन्न हो उठे। धूम्र जाम्बवंत का ज्येष्ठ भ्राता था। कुंभ ने उसे संत्रस्त कर दिया, जिसके कारण अंगद का कोई रक्षक नहीं बचा। अतः जाम्बवंत ने क्रोधपूर्वक स्वयं युद्ध के लिए प्रस्थान किया। उसके साथ वेगवान वानर सुषेण भी युद्ध के लिए आया। उन दोनों को आते देखकर रणप्रवीण युद्धोत्सुक कुंभ ने उनका मार्ग बाणों से अवरुद्ध कर दिया, जिससे वे अंगद के समीप न आ सकें। बाणों की वर्षा कर उसने वानर वीरों का प्रताप व्यर्थ कर दिया। उसके बाणों से सर्वांग बिद्ध होने के कारण वानर पराक्रम नहीं कर पा रहे थे। जिस प्रकार वायु आकाश में मेघ जाल को तोड़ देती है, उसी प्रकार कुंभ ने बाणों से वानरों को दूर कर दिया। राजपुत्र अंगद के बंदिस्थ हो जाने के कारण वानर रणभूमि में हाहाकार करने लगे, यह देखकर सुग्रीव अत्यन्त क्रुद्ध होकर आगे बढ़े।

कुंभ व सुग्रीव का युद्ध– कुंभ द्वारा निर्मित बाणों के अवरोध से बचते हुए सुग्रीव ने आकाश में उड़ान भरी और वह कुंभ के ऊपर जा गिरा। उसने अंगद को अपना संरक्षण देते हुए छलाँग लगाकर कुंभ का धनुष छीन लिया और क्रोधपूर्वक तोड़ डाला। कुंभ का धनुष आकाश में विद्यमान इन्द्रधनुष सदृश था। उसे तोड़ते हुए कुंभ को धक्का देकर सुग्रीव आवेशपूर्वक बोला– "तुमने धनुष बाण लेकर युद्ध में वानरों को संत्रस्त कर दिया। अब मैंने तुम्हारा धनुष ही तोड़ डाला है; अतः अब तुम्हारा पराक्रम किस प्रकार चल पाएगा। सींग टूटा बैल युद्ध नहीं कर सकता, उसी प्रकार तुम्हारा धनुष टूटने पर तुम क्या युद्ध का घमंड दिखाओगे ? आज तक मैंने किसी वीर को रणभूमि में नहीं मारा। अब तुम्हारा नाश कर मैं श्रीगणेश करता हूँ। तत्पश्चात् अन्य वीरों को मारूँगा।" सुग्रीव के वचन सुनकर कुंभ क्रुद्ध हो उठा। उसने सुग्रीव की छाती पर मुट्ठी से प्रहार किया। वह वज्र सदृश प्रहार हड्डी तक जा पहुँचा। इस मुष्टिका प्रहार को तृणवत् मानकर सुग्रीव ने उस पर ध्यान नहीं दिया। सुग्रीव रक्तरंजित होने पर भी युद्ध भूमि में संतोषपूर्वक विचरण करता रहा। जिस प्रकार गेरू से मेरु पर्वत रँग जाता है, अथवा बड़वानल से सागर रँग जाता है, उसी प्रकार रक्तरंजित सुग्रीव शोभायमान हो रहा था।

यद्यपि कुंभ महाबलवान् वीर था तथापि उसकी मुट्ठी के प्रहार से प्रतापी वानर राज सुग्रीव विचलित नहीं हुआ। सुग्रीव द्वारा वज्रमुट्ठी से कुंभ पर प्रहार करते ही उसका मस्तक फट गया और वह निष्प्राण हो भूमि पर जा गिरा। महावीर कुंभ रण-भूमि में धराशायी हो गया तथा वानरेश्वर सुग्रीव की विजय हुई। वानरों की जय-जयकार से आकाश गूँज गया। श्रीराम ने स्वयं आकर सुग्रीव को आलिंगनबद्ध किया। सुग्रीव लज्जापूर्वक संकोच करते हुए बोले– "मैंने युद्ध में कुंभ सदृश क्षुद्र कीटक को मारा है, उस यश का गुणगान आपके समक्ष उचित नहीं है। यह तो अत्यन्त क्षुद्र सा कार्य था। मैं रावण के दसों सिर काटकर आपके चरणों में ले आऊँगा, तभी आपकी सच्ची सेवा होकर मेरा पुरुषार्थ सिद्ध होगा।" सुग्रीव के वचन सुनकर श्रीराम मन ही मन सन्तुष्ट हुए।

अध्याय ३५

[राक्षस निकुंभ एवं मकराक्ष का वध]

सुग्रीव से युद्ध करते हुए कुंभ को रणभूमि में धराशायी हुआ देखकर निकुंभ क्षुब्ध हो उठा। सुग्रीव की ओर ज्वलंत कटाक्ष डालकर क्रोधपूर्वक आवेश से वह सुग्रीव की ओर देखने लगा। पहले रणभूमि में संग्राम कर धैर्यपूर्वक शत्रु का निर्दलन करने वाला निडर निकुंभ परिघ लेकर आगे आया। वह पाँच पंखुड़ियों से युक्त नोंक वाले परिघ को अपनी पाँचों उँगलियों में कसकर पकड़े हुए था। महाबलवान निकुंभ मुकुट, कुंडल, पदक, कंठमाला, बाहुभूषण व सुगन्धित लेप से सुसज्जित होकर चमकदार कवच पहन कर परिघ लेकर घूम रहा था। यह परिघ प्रतिघात करने का साधन था, जिससे उसने अमरावती व अलकावती को भी निष्प्रभ कर दिया था। गंधर्वों के नगर को घुमा दिया था। चन्द्र सहित समस्त तारक एवं ग्रह परिघ की नोकों से घूम जाने के कारण कालचक्र भी भ्रमित हो गया था। निकुंभ प्रबल सामर्थ्यवान् था तथा वह कुशलतापूर्वक परिघ धारण किया करता था। उसे घुमाने से ऐसा प्रतीत होता था, मानों नभ-मंडल व भू-मंडल परिभ्रमण कर रहे हों। परिघ को घुमाकर उसने वृक्ष, शिला,

शिखर इत्यादि को छेद डाला। उस परिघ के धारदार महावार के कारण वानर आगे नहीं बढ़ पा रहे थे। चारों ओर परिघ का आवर्त होने के कारण वानरों का पराक्रम व्यर्थ जा रहा था। उनका शौर्य व्यर्थ होकर वे युद्ध नहीं कर पा रहे थे। अतः वानरवीर लज्जित हो गए। यह देखकर हनुमान निकुंभ का पुरुषार्थ आजमाने के लिए उससे युद्ध करने उसके समक्ष आये।

हनुमान का निकुंभ से युद्ध, उसका वध– हनुमान निकुंभ के समक्ष जाकर बोले– "हे वीर निकुंभ, तुम्हारे परिघ का बहुत आतंक है अतः पहले मुझ वानर का वध करो तब आगे और संग्राम करना। तुमने सुर, नर, दैत्य, दानव सभी का वध किया; अब मुझ हनुमान का वध करने पर ही तुम्हारा सच्चा पुरुषार्थ सिद्ध होगा। पहले किये हुए पराक्रम की बड़ाई करने वाले तुम्हारे इन बोलों को आज मैं व्यर्थ सिद्ध करता हूँ। तुम अपने परिघ का प्रबल प्रहार मुझ पर करो; मैं देखूँ तो कि तुममें कितना बल है ?" हनुमान का यह आह्वान सुनकर निकुंभ दाँत पीसकर परिघ को गोल-गोल घुमाते हुए हनुमान को मारने के लिए दौड़ा। उसका परिघ ढले हुये लोहे का था। वह सोने, रत्न एवं पन्नों से मढा हुआ होने के कारण चमक रहा था। परिघ नर-मांस एवं सिन्दूर से सना हुआ था। निकुंभ ने हाथों में लिये हुए परिघ को गोल-गोल घुमाकर हनुमान की छाती पर उससे वार किया तो उस परिघ के टुकड़े-टुकड़े हो गए। वज्रदेह वाले बलशाली हनुमान को परिघ लगते ही वह चूर-चूर हो गया। इस पर निकुंभ बड़बड़ाने लगा। तब हनुमान उसे डांटते हुए बोले– 'हे निकुंभ, तुम बलहीन हो, तुम्हारे वार भी निर्बल हैं। तुम्हारा परिघ रेंडी के पेड़* सदृश सीधा होने के कारण तत्काल टूट गया। अत्यन्त तीखे परन्तु व्यर्थ एवं निर्बल तुम्हारे बोल हैं। तुम व्यर्थ ही युद्ध करने का कष्ट कर रहे हो। आज तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। जिस प्रकार धरणीधर शेष कभी कंपित नहीं होता। आकाश कभी थर-थर काँपता नहीं है। उसी प्रकार मुझ हनुमान को परिघ का भय नहीं है। हाथी के लिए जिस प्रकार फलों का वार होता है, उसी प्रकार हनुमान के लिए परिघ है। इसी कारण उस वार से न तो मैं मूर्च्छित हुआ न ही विचलित।'

गगन से उल्कापात होने के सदृश परिघ के प्रज्वलित टुकड़े उड़कर सर्वत्र बिखरकर गिरने के कारण भूमि चमकने लगी। तत्पश्चात् हनुमान निकुंभ से बोले– "तुम्हारे परिघ के प्रहार के कारण मैं तुम्हारा ऋणी हो गया हूँ, अब उस ऋण से मुक्त होने के लिए तुम मेरी मुट्ठी का प्रहार सहन करो।" यह कहकर हनुमान निकुंभ पर मुष्टिका-प्रहार के लिए उद्यत हुए। अंगूठे व उँगलियों को मोड़कर बनी हुई वज्र मुट्ठी से निकुंभ पर हनुमान ने ऐसा दृढ़ प्रहार किया कि निकुंभ तड़पते हुए भूमि पर गिर पड़ा। धन्य है हनुमान का पराक्रम, जिसकी मुट्ठी का प्रहार निकुंभ के शरीर के कवच व त्वचा को भेदकर अंदर चला गया। हनुमान की मुट्ठी के प्रहार से निकुंभ के हृदय से ज्वालाएँ निकलीं, जो आकाश में बिजली के सदृश दिखाई दे रही थीं। हनुमान द्वारा निकुंभ को धराशायी करने पर भी वह मरा नहीं अथवा उसका पराक्रम भी समाप्त नहीं हुआ। हनुमान की मुट्ठी के प्रहार से यद्यपि निकुंभ मूर्च्छित होकर गिर पड़ा तथापि वह जम्हाइयाँ ले रहा था। उसका प्राणान्त नहीं हुआ। रणभूमि में पड़े हुए निकुंभ की कुछ समय पश्चात् भ्रमरहित होकर चेतना वापस लौट आई और उसने हनुमान को जकड़ लिया। निकुंभ को मृत समझकर हनुमान ने उसकी उपेक्षा करते हुए उसे वैसे ही पड़ा रहने दिया। निकुंभ ने चेतना वापस

* रेंडी के पेड़ के लिए मराठी में एक कहावत है कि वह चाहे जितना बड़ा हो जाय गन्ने की बराबरी नहीं कर सकता अर्थात् जिस व्यक्ति में स्वाभाविक बड़प्पन न हो उसके केवल बढ़ जाने से उसे श्रेष्ठत्व नहीं मिल सकता। (उंच वाढला एरंड तरि का होईल इक्षुदंड)।

आते ही हनुमान को पकड़ लिया। यह देखते ही राक्षस सेना उल्लसित हो उठी। उनमें से एक राक्षस शीघ्र लंका में जाकर रावण को सूचना देते हुए बोला– "अपना अनेक प्रकार से दोषी शत्रु हनुमान युद्ध में पकड़ लिया गया है।" यह सुनकर रावण भयभीत होकर बोला– "हनुमान को बन्दी बना लेने पर भी उसका वध नहीं किया जा सकता। उसे लंका में लाने पर राक्षसों में हाहाकार मचा देगा। इसके पूर्व उसे ब्रह्म-पाश में बाँधा था, उस समय हम उसका वध नहीं कर सके अपितु उसने ही अनेक राक्षसों को मार डाला। लंका जला दी और चला गया।" रावण यह समझता था कि हनुमान को युद्ध में बन्दी नहीं बनाया जा सकता।

दूसरी ओर हनुमान निकुंभ का वध करने का प्रयास कर रहे थे। निकुंभ द्वारा उन्हें पकड़ते ही उन्होंने निकुंभ पर वेगपूर्वक मुट्ठी का प्रहार किया। उस आघात के कारण हनुमान को छोड़े बिना निकुंभ रणभूमि में गिर पड़ा। उसकी पकड छुडाने के लिए हनुमान ने निकुंभ का गला दबाया, तब अत्यन्त कष्ट के पश्चात् वह पकड़ ढीली पड़ी। उसके साथ ही हनुमान ने आकाश में उड़ान भरी और रणगर्जना करते हुए निकुंभ पर छलाँग लगाई तथा उसके दोनों हाथ मरोड़ते हुए अपने नखों से नोंचकर सिर तोड़ डाला। निकुंभ का सिर तोड़ने के पश्चात् हनुमान ने रामनाम की गर्जना करते हुए भुभुःकार किया। हनुमान ने अपने बल के सामर्थ्य से निकुंभ से महायुद्ध करते हुए उसका वध कर दिया यह देखकर वानरों ने जयजयकार कर नाचते हुए आनन्द व्यक्त किया, हनुमान द्वारा पराक्रमपूर्वक निकुंभ का वध होता देखकर क्षत्रिय धर्मानुसार श्रीराम में स्फूर्ति का संचार हुआ। वे पुरुषार्थपूर्वक बोले– "इन छोटे-छोटे राक्षसों को मारकर युद्ध समाप्त नहीं होगा। लंकानाथ का ही वध करना चाहिए। ऐसा कहते हुए उन्होंने धनुष हाथ में उठाया। रावण का वध करने के लिए उनकी भुजाएँ थरथराने लगीं। रावण को मारने के लिए धनुष की प्रत्यंचा खींचते हुए वे आगे बढ़े। तभी सुग्रीव, बिभीषण व हनुमान शीघ्र वहाँ आये। उन्होंने श्रीराम का क्रोध शान्त किया। निकुंभ के वध के पश्चात् वानरों ने रामनाम का जयजयकार करते हुए नाचकर आनन्द व्यक्त किया। हनुमान का अद्‌भुत पराक्रम देखकर पृथ्वी कंपित हो उठी। स्वर्ग के सुरगण स्तब्ध रह गए। राक्षस भयभीत होकर काँप रहे थे। रावण समझ गया कि रणभूमि में हनुमान को वश में नहीं किया जा सकता। विजय के आनन्द में वानर हरिनाम की गर्जना कर रहे थे। उस ध्वनि से दसों दिशाएँ गूँज उठीं। मारुति ने महान बलशाली निकुंभ, जिससे सुरासुर भयभीत रहते थे, का कुछ क्षणों में वध कर दिया। इस पर राक्षसों में भगदड़ मच गई। वे लंका की ओर भागने लगे। जो घायल थे, वे रणभूमि में पड़े कराह रहे थे। हनुमान ने ऐसा अद्‌भुत पराक्रम किया था।

रावण का दु:खी होकर मकराक्ष को भेजना– कुंभ व निकुंभ इन दोनों वानर वीरों के युद्ध में मारे जाने का समाचार सुनकर रावण को अत्यन्त दुःख हुआ। तत्पश्चात् उसने आजानुबाहु, विशाल नेत्रों वाले, युद्ध में निपुण, शत्रु-पक्ष का नाश करने वाले वीर पुत्र मकराक्ष को बुलाया। रावण ने उससे कहा– "तुम अपने पुरुषार्थ से, पूर्ण सामर्थ्य से युद्ध कर वानरों सहित राम व लक्ष्मण का वध करो। राम व लक्ष्मण मेरे लिए शल्य सदृश हैं। तुम उन्हें मारकर मेरा शल्य दूर करो। तुम्हारे पुरुषार्थ की महत्ता ऐसी है कि उससे सुरासुर भी काँपते हैं। अतः तुम्हारे पिता का वध करने वाले जो प्रमुख शत्रु राम व लक्ष्मण हैं, उन्हें तुम मारो।" ऐसा कहकर रावण ने स्वयं सिंहासन से नीचे उतरकर युद्ध के लिए मकराक्ष का सत्कार किया। दिव्य सुगंधित लेप, पुष्प माला, मुकुट, कुंडल, कटि मेखला, कवच व मोती लगे हुए पदक, मकराक्ष को अर्पित कर गौरवान्वित किया। रावण के वचन सुनकर शूर अभिमानी मर्दमनंदन

मकराक्ष बोला– हे लंकेश, मैं तुम्हारे शल्य राम व लक्ष्मण का निश्चित रूप से वध कर तुम्हारा शल्य दूर करूँगा।'' तत्पश्चात् उसने रावण को प्रणाम कर प्रदक्षिणा लगाकर गर्जना की– ''शीघ्र रथ व सेना तैयार करो, राम व लक्ष्मण मनुष्य मात्र हैं। मनुष्य तो हमारा नित्य प्रतिदिन का भोजन हैं। वानर तो मात्र पत्तियाँ खाने वाले हैं। उन सबको मैं सहज रूप से युद्ध कर मार डालूँगा।'' मकराक्ष की समर्थ आज्ञा अनुसार सेना सहित रथ लाये जाने पर उसने रथ की प्रदक्षिणा कर आवेशपूर्वक रथ पर आरोहण किया।

मकराक्ष रथ के सारथी से बोला– ''जहाँ रघुनाथ है, वहाँ तक मेरे रथ को ले चलो। मैं उससे संग्राम करूँगा। अन्य छोटों को रणभूमि में हाथ न लगाकर मैं स्वयं रघुनाथ का वध करूँगा, यही मेरा निश्चय है। तत्पश्चात् गर्जना करते हुए वह राक्षस वीरों से बोला– "युद्ध में राम व लक्ष्मण का वध करने के लिए स्वयं रावण ने मुझे आज्ञा दी है। मैं आज के युद्ध में राम, लक्ष्मण तथा सुग्रीव का वध करूँगा और साथ ही वानर-सेना का भी निर्दलन करूँगा।'' मकराक्ष की सेना बलवान् थी। उसमें विकराल मुख और दाढ़ें तथा शरीर पर प्रचंड बालों वाले राक्षस थे। वह व्याघ्रमुख, लकड़बग्घे के सदृश मुख, बड़वाग्नि सदृश मुख तथा तगर* मुख वाले राक्षसों की सेना थी। वह भयानक राक्षस सेना प्रचंड गर्जना कर रही थी। वे उन्मत्त बैलों की तरह दहाड़ते हुए बड़ी संख्या में युद्ध के लिए आ रहे थे। मकराक्ष उनका प्रमुख था। उस सेनाकी गर्जना के साथ ही निशान, शंख, भेरी तथा नगाड़ों की ध्वनि भी सम्मिलित हो रही थी।

मकराक्ष की सेना ने गर्जना करते हुए युद्ध के लिए प्रयाण किया। तभी सारथी के हाथ से चाबुक छूट कर नीचे गिर पड़ा। वीरों की गर्जना और गजदल के चलने से उत्पन्न ध्वनि वातावरण में गूँज रही थी। गिरा हुआ चाबुक रथ के चक्रों के नीचे आकर रगड़ा गया। घोड़ों की शक्ति क्षीण होने से उनके पैर लड़खड़ाते हुए एक दूसरे में फँसकर गिर रहे थे। उसके कारण रथी की गति अवरुद्ध हो रही थी। रथों के घोड़ों को उठाकर पुनः रथ को सुसज्जित करते समय, चमकती हुई विद्युत नीचे गिरने के सदृश रथ का ध्वज नीचे गिर पड़ा। उस समय प्रतिकूल वायु बहने से धूल उड़कर आँखों में आने लगी। सभी लोग आँखें मलने लगे। हाथी और घोड़ों की आँखों से पानी बहने लगा। वाद्यों की ध्वनि के साथ आती हुई राक्षस सेना को देखकर वानर वीर युद्ध के लिए भिड़ पड़े। इतने अपशगुन होने पर भी उनकी उपेक्षा कर मकराक्ष जिस स्थान पर राम व लक्ष्मण थे, वहाँ पर तीव्र गति से आया। उधर वानर छलाँग लगा कर राक्षसों से भिड़ने लगे। उसी प्रकार राक्षस रणभूमि में वानरों का मर्दन करने लगे। उस समय मानों वेताल क्रुद्ध हो गया था। वानरों एवं राक्षसों में लोमहर्षक घमासान युद्ध से रणभूमि गूँज उठी।

उस युद्ध में राक्षसों की ओर से शूल व बाणों से वार हो रहे थे तो वानर वृक्ष, शिला व पाषाणों से प्रहार कर रहे थे, जिससे राक्षसों के कवच व धनुष बाण टूट रहे थे। जिस प्रकार सुरासुर दानवों से भीषण युद्ध करते थे, उसी प्रकार वानर एवं राक्षसों का भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया। राक्षस सेना की क्षति होती देखकर मकराक्ष ने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा कर पंख बाण चलाकर वानरगणों को संत्रस्त कर दिया। पंख बाण से संत्रस्त होकर भय से वे श्रीराम के पास एकत्र हुए। कृपालु श्रीराम ने मकराक्ष के बाण का निवारण कर वानरगणों को आश्वस्त करते हुए अभय दान दिया। वानरों को आश्वस्त एवं राक्षस सेना को त्रस्त किया हुआ देखकर मकराक्ष चिढ़कर गर्वपूर्वक बोला– ''वह राम कौन है ? यहाँ कैसे विद्यमान है ? जिसने जनस्थान पर विजय प्राप्त कर मेरे पिता का बन्धु सहित वध कर दिया। उस राम को आज

* एक प्रकार का पुष्प जिसकी कई पंखुड़ियाँ होती हैं।

मैं समाप्त कर देता हूँ। तुम निरीह मानव मेरी शरवर्षा के पश्चात् क्या शेष बचोगे। जनस्थान पर मेरे न होने के कारण तुम्हें यश प्राप्त हुआ। अब यहाँ युद्ध में तुम्हारा पुरुषार्थ ज्ञात होगा। मैं अपने पुरुषार्थ से राम व लक्ष्मण की जोड़ी का वध कर दूँगा। वनचर वानरों का संहार करूँगा। प्राचीन काल में इन्होंने युद्ध में मेरे पितरों का वध कर दिया था, उस वैर का बदला मैं आज निश्चित ही लूँगा। दोनों महाबली राम व लक्ष्मण को मारकर उनका रक्त अंजुलि में भरकर पितरों को तिलांजलि दूँगा, तभी मैं उनके क़र्ज से मुक्त होऊँगा। उन दोनों का रक्त लेकर युद्ध में मेरे जो सुहृद व आप्त मारे गए हैं, उन सबका तर्पण कर मैं पितृऋण से मुक्त होऊँगा। लक्ष्मण का रक्त प्राशन करने का शूर्पणखा का मनोरथ भी इन दोनों का वध कर पूरा करूँगा।" इस प्रकार स्वयं की बड़ाई करने वाले वचन बोलकर वह गर्दभ-पुत्र मेघों की गड़गड़ाहट सदृश गर्जना करने वाले रथ में बैठकर शीघ्र युद्ध के लिए आया। उस समय वानर वीरों ने अत्यन्त आवेशपूर्वक मकराक्ष का युद्ध के लिए आह्वान किया। उन सभी की ओर ध्यान न देकर मकराक्ष श्रीराम को युद्ध के लिए ढूँढ़ने लगा। श्रीराम के अतिरिक्त अन्य किसी से भी युद्ध न करने का निश्चय कर वह आवेशपूर्वक श्रीराम को ढूँढ़ रहा था। वह मन ही मन में सोचने लगा कि राम धीर-वीर के रूप में प्रख्यात हैं, तब वे वानरों के बीच में छिप कर क्यों रहते हैं। युद्ध के लिए सामने क्यों नहीं आते। स्वयं में श्रीराम से युद्ध करने का सामर्थ्य मानते हुए, उसने वानर दल को टालते हुए श्रीराम से युद्ध करने का निश्चय किया। श्रीराम को ढूँढ़ने के लिए जब वह रणभूमि में घूम रहा था, तब उसे दूर खड़े हुए श्रीराम दिखाई दिए। तब बाण हाथों में लेकर मकराक्ष ने इशारे से श्रीराम को बुलाया।

मकराक्ष एवं श्रीराम के मध्य उत्तर-प्रत्युत्तर– मकराक्ष बोला– "हे श्रीराम, सावधानीपूर्वक सुनो। तुम मुझसे द्वन्द्व युद्ध करो। युद्ध केवल तुम्हारे व मेरे बीच होगा। अन्य लोग केवल उस युद्ध का आनन्द उठायें। हम दोनों के मध्य अगर कोई तीसरा आयेगा तो उसका वहीं पर घात कर दिया जाएगा, यह निश्चित निर्णय कर लें। वानरगण तथा लक्ष्मण को बीच में आने की आवश्यकता नहीं है। मैंने तुमसे लड़ने का संकल्प लिया है। तुमने त्रिशिरा, खर तथा दूषण का वध किया है, उससे मैं क्रोधित हूँ। इसीलिए आज युद्ध में तुम्हारे प्राणों का नाश करने की मेरी इच्छा है। मेरी इच्छा मानों पूरी हो गई। मेरे भाग्य से तुम आज यहाँ मिल गए। जिस प्रकार भूखे सिंह को अचानक भेड़िये, हिरन इत्यादि मिल जायँ, उसी प्रकार यहाँ हुआ है। जिस प्रकार सिंह क्षुद्र हिरन को अपना ग्रास बना लेता है, उसी प्रकार मैं तुम्हें अपना ग्रास बना लूँगा; व्यर्थ में युद्ध का झंझट क्यों करें ? मुझ सिंह को श्रीराम रूपी पशु प्राप्त हो गया है। अगर तुम्हें अपना पुरुषार्थ दिखाना है तो मुझसे युद्ध करो और उस युद्ध के लक्षण ध्यानपूर्वक सुनो। तुम प्रबल प्रतापी राम व मैं युद्ध के लिए उत्सुक मकराक्ष, सभी लोगों के समक्ष युद्ध करेंगे। शस्त्रास्त्र, धनुष-बाण, शूल, मुद्गर, गदा अथवा मल्लविद्या का कौशल एवं भुजाओं के प्रहार से एक दूसरे से भिड़ेंगे। तुमने जो अभ्यास किया होगा, उन कुशलताओं के साथ मुझसे युद्ध करो। श्रीराम के यश व कीर्ति को आज के युद्ध में मैं समाप्त कर दूँगा। श्रीराम की जो प्रसिद्धि है, उसका पूरा कुल आज मेरे साथ हो रहा युद्ध देखेगा; उससे दोनों का पराक्रम समझ में आ जाएगा। तुम्हारे पुरुषार्थ को देखने के लिए ही निश्चित रूप से मैं यहाँ आया हूँ। हे श्रीराम, युद्ध में वानरों के मध्य छिप कर रहना, तुम्हारे लिए निन्दनीय है।"

मकराक्ष के गर्व पूर्ण वचन सुनकर श्रीराम हँसते हुए बोले– "जो व्यर्थ में बोलते रहते हैं, उनमें पराक्रम नहीं होता और जो महाशूर होते हैं, वे युद्ध में ख्याति कर दिखाते हैं। अनियन्त्रित प्रलाप करने

वाले भाँड़ होते हैं। तुम भी अति वितंडकारी प्रलाप करने वाले हो। अनर्गल प्रलाप के बल पर कोई शत्रु पर विजय नहीं प्राप्त कर सका है। तुम एक अकर्मण्य, निर्लज्ज प्राणी हो। तुममें यदि कुछ पराक्रम है, तो उसे युद्ध में प्रदर्शित करो, व्यर्थ की बातें क्यों कर रहे हो।" श्रीराम के ये वचन मकराक्ष के हृदय में चुभ गए। 'बातों के बल पर शत्रु को जीता नहीं जा सकता' ये शब्द उसके हृदय को जला गए। अतः उसने क्रोधपूर्वक श्रीराम पर अपने धनुष से सहस्र बाणों की वर्षा की। सुवर्णपंखी, रत्नों से मंडित, दृढ़ तीव्र बाणों को श्रीराम ने काट दिया। श्रीराम ने उँगलियों पर घाव न हो, इसके लिए अंगुलित्राण पहन कर धनुष की प्रत्यंचा खींच कर टंकार की ध्वनि की। वह आवाज़ आकाश में व्याप्त हो गई। उससे त्रिभुवन गूँज उठा। मकराक्ष और श्रीराम दोनों महाशूर वीर परस्पर युद्ध करने लगे। सुरवर युद्ध को देखने के लिए अपने विमानों में बैठकर आये। देव, दानव, ऋषि, सर्प, नर, किन्नर, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर सभी युद्ध देख रहे थे। मकराक्ष व श्रीराम एक दूसरे पर बाण चलाने लगे। उन बाणों ने सूर्य चन्द्र को ढँक दिया। दिशाएँ भर गईं, बाणों से धरणी छलनी हो गई। वायु थम गई। समस्त गगन बाणों से भर गया।

श्रीराम-मकराक्ष युद्ध; मकराक्ष का वध– मकराक्ष द्वारा चलाये गए बाण श्रीराम तोड़ते जा रहे थे। उसी प्रकार श्रीराम के बाण मकराक्ष तोड़ रहा था। इस प्रकार दोनों के बाण टूट रहे थे। यह देखकर श्रीराम क्रोधित हो गए। उन्होंने आवेशपूर्वक अनिवार, कठोर बाण चलाये। मकराक्ष ने अपने बाण चलाकर उन बाणों का निवारण किया। तब श्रीराम ने मकराक्ष का धनुष तोड़कर गिरा दिया। उसके सारथी का वध कर दिया। रथ के घोड़ों को मार डाला। इस प्रकार श्रीराम द्वारा आवेशपूर्वक संग्राम करने से मकराक्ष रथ-विहीन हो गया। वह क्रोधित होकर शूल हाथों में लेकर श्रीराम की ओर दौड़ा। वह शूल अग्नि की ज्वालाओं सदृश चमक रहा था। प्राणि-मात्र का घात करने के लिए दंड हाथों में धारण कर जिस प्रकार अंतक दौड़ता है, उसी प्रकार शूल हाथों में धारण कर मकराक्ष श्रीराम के समीप आया। उस समय उसके नेत्रों से ज्वालाएँ निकल रही थीं। वह दाँत किटकिटा रहा था। उसने शूल को घुमाते हुए श्रीराम पर प्रहार किया। उस शूल की ध्वनि से प्राणी मूर्च्छित होने लगे, सुरवर विचलित हो उठे; परन्तु श्रीराम ने निश्चयपूर्वक उस शूल को तोड़ डाला। उस शूल को आते देखकर सावधान रणयोद्धा श्रीराम ने तीन बाणों से आकाश में ही शूल को तोड़कर नीचे गिरा दिया। उस शूल में विद्यमान शिव की वरद्-शक्ति, श्रीराम अर्थात् शिव की ध्येय मूर्ति को अपने समक्ष देख वापस लौट गई तथा वह शूल टूट गया।

श्रीराम धनुर्धारी थे। आकाश से उल्कापात होने की तरह वह प्रज्वलित शूल श्रीराम ने रणभूमि में गिरा दिया। शूल के प्रहार को निष्फल हुआ देखकर मकराक्ष छटपटाने लगा। वह यह समझ गया कि मन्त्रों की सिद्धि का श्रीराम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। तब मकराक्ष श्रीराम से बोला– "हे श्रीराम, मेरी मुट्ठी का प्रहार सहन करके दिखाओ।" यह कहते हुए हाथ उठाकर मकराक्ष तेज़ी से आगे आया। उस भीषण राक्षस को आते देखकर श्रीराम ने अग्निबाण सुसज्जित कर चलाया। उस बाण ने मकराक्ष के हृदय को विद्ध कर दिया और वह प्राणरहित हो भूमि पर गिर पड़ा। उसके साथ ही राक्षस-सेना चिल्लाने लगी। वानर प्रसन्न हो उठे। महाबलवान् योद्धा मकराक्ष के श्रीराम द्वारा मारे जाने से भयभीत हुए राक्षस लंका की ओर भागे। महा भयंकर राक्षस मकराक्ष का वध कर, श्रीराम के विजयी होने के कारण, वानरों ने उनका जय-जयकार किया। श्रीराम नित्य विजयी हैं।

अध्याय ३६

[इन्द्रजित् द्वारा मायावी सीता का वध]

महाकपटी मकराक्ष का युद्ध में वध हुआ देखकर इन्दजित् संकट में पड़ गया। जिन राक्षस वीरों पर भरोसा किया जा सकता था, वे साहसी एवं महापराक्रमी होते हुए भी पत्तियाँ खाने वाले पशुजाति के वानरों द्वारा मारे गए। महावीर कुंभकर्ण का उन्होंने वध कर दिया। देवांतक, नरांतक, त्रिशिरा, भयंकर योद्धा अतिकाय, महोदर, महापार्श्व इत्यादि वीरों को मार डाला। प्रहस्त भी युद्ध में मारा गया। कुंभ, निकुंभ तथा मकराक्ष का श्रीराम ने अपने बाणों से प्राण हर लिया। इन सभी वीरों के युद्ध मे मारे जाने पर इन्द्रजित् विचार करने लगा कि अब क्या करना चाहिए। "मकराक्ष के रक्षक के रूप में रावण ने मुझे भेजा था परन्तु यहाँ तो सब विपरीत ही घटित हो गया। मकराक्ष मारा गया। अत्यन्त कष्टपूर्वक वानरों का वध करने पर श्रीराम के तीर्थ का प्राशन कर वे पुनः जीवित हो उठते हैं। वे भयंकर योद्धा भी हैं। राक्षसों के करोड़ों शव युद्ध-भूमि में दिखाई देते हैं परन्तु वानरों के शव भी दिखाई नहीं देते। यह निश्चित ही श्रीराम की कृपा-दृष्टि है। वह अन्तकाल में वानरों के प्राणों की रक्षा करता है। राम व लक्ष्मण महाशूर हैं। वानर साहसी हैं। हनुमान तो महापराक्रमी तथा सर्वथा अजेय है। उसके समक्ष कोई पराक्रम नहीं चल पाता। अब क्या करना चाहिए ? व्यर्थ ही साहस दिखाते हुए युद्ध करने के लिए जाने पर वे मेरे भी प्राण ले लेंगे। उनके समक्ष वरदान भी टिक नहीं पाते क्योंकि रावण के पापों के कारण वरदान व्यर्थ हो जाते हैं। श्रीराम के क्षुब्ध होते ही राक्षसों का अन्त हो जाएगा। अगर लंका वापस जाता हूँ तो लंकानाथ मुझ पर क्रुद्ध होंगे।" इस प्रकार चिन्ता मग्न होकर मेघनाद उपाय सोच रहा था, जिससे राम, लक्ष्मण, हनुमान, अंगद, सुग्रीव, जाम्बवंत सभी का घात होकर वह कार्य में सफल हो सके।

मायावी सीता के वध की इन्द्रजित् की कल्पना– श्रीराम व लक्ष्मण दोनों को युद्ध के लिए उत्सुक देखकर इन्द्रजित् ने जारण-मारण के अभिचार-यज्ञ का होम प्रारम्भ किया। इन्द्रजित् सर्वदा कपट का अनुसरण करता था। स्वप्न में भी उसके मन में अच्छे विचार नहीं आते थे। उसने एक कपट करने का निश्चय किया। उसने सोचा– 'मायावी सीता बनाकर युद्ध में उसका वध कर दूँगा। उसे मृत देखकर सभी तत्काल प्राण त्याग देंगे। श्रीराम, लक्ष्मण व वानरगण सभी मर जाएँगे। मायिक सीता का दर्शन उन सभी की मृत्यु का कारण बन जाएगा।' ऐसा विचार कर वह दुर्बुद्धि, सीता के लिए हवन करने लगा। इस प्रकार हर्षित होकर अभिचार होम और उसके लिए मन्त्रोच्चारण करने पर भी मिथ्या मायावी सीता बन नहीं पा रही थी। उसका आकार तैयार नहीं हो रहा था। इस प्रकार मन्त्र एवं अभिचार द्वारा सीता की निर्मिति असंभव देखकर इन्द्रजित् चिन्तित हो उठा। जारण, मारण, उच्चाटन, मोहन, स्तंभन इत्यादि से सीता को वश में करना संभव नहीं था क्योंकि उसके पास श्रीराम रूपी कवच था। श्रीराम का नाम स्मरण करने के जारण मारण, उच्चाटन इत्यादि तन्त्र-मन्त्र भाग जाते हैं। सीता चित्शक्ति होने के कारण उस पर माया के बंधन प्रभाव नहीं डालते। कितना भी सबल अंधकार हो, जिस प्रकार सूर्य के समक्ष टिक नहीं सकता, उसी प्रकार मायावी व्यवहार सीता के समक्ष निष्प्रभ हो जाता है।

मायावी सीता तैयार न कर सकने के कारण इन्द्रजित् चिन्तित हो गया। श्रीरघुनाथ को मारने के लिए अब क्या किया जाय ? वह सोचने लगा– "मुझे वास्तव में शिव का वरदान प्राप्त है। अभिचारिका करने की सिद्धि भी मेरे पास है, तब आज की विधि निष्फल क्यों हुई, इसका कारण व उपाय सदाशिव

से ही पूछना चाहिए।'' अतः इन्द्रजित् शिवसभा में जाकर जोर से विलाप करते हुये कहने लगा– "तुम्हारा वर मिथ्या हो गया, यह मैं किससे कहूँ। मायिक सीता की प्राप्ति नहीं हुई। तुम्हारा वर मिथ्या सिद्ध हो गया।" इस पर शिव स्वयं बोले– "श्रीराम व सीता माया के आधीन नहीं हैं। उनके समक्ष अभिचार नहीं चलता है, इसीलिए मायिक सीता की प्राप्ति नहीं हुई।" शिवजी का यह स्पष्टीकरण सुनकर इन्द्रजित् विलाप करने लगा। वह बोला– "सीता की प्राप्ति नहीं हुई तो मैं सन्तुष्ट नहीं होऊँगा।" यह कहते हुए इन्द्रजित् ने शिवजी के पैर पकड़ लिए। तब शिवजी ने बताया कि 'मायिक सीता की प्राप्ति के लिए पार्वती की प्रार्थना करो।'

इन्द्रजित् व पार्वती का संवाद– शिव के कथनानुसार इन्द्रजित् ने पार्वती की प्रार्थना की। वे बोलीं– "बहुत पहले श्रीराम को छलने का विचार कर मैंने मायिक सीता का रूप धारण किया था, परन्तु शिव उसका भी वध करने लगे।" महान पूर्वजों के साथ छल करने से छल करने वाला ही मरता है। इन्द्रजित् स्वयं मरने के लिए ही मानों उसके पास मायावी सीता माँग रहा था। पार्वती इन्द्रजित् से बोलीं– "तुम मायावी सीता माँग रहे हो, इसका तात्पर्य है कि तुम्हारी मृत्यु समीप आ गई है। अरे, श्रीराम अथवा सीता को मायावी नहीं बनाया जा सकता। श्रीराम पर माया का प्रभाव नहीं चलता क्योंकि वे स्वयं ही माया का नाश करने वाले हैं। तत्वतः मायिक सीता के स्वरूप की छाया भेजूँगी। हे इन्द्रजित्, उसका घात करते ही तुम स्वयं मर जाओगे। मायिक सीता क्यों माँग रहे हो ? अशोक वन में सीता हैं, वहाँ जाकर उसका वध करो, जिससे तुम्हारा पुरुषार्थ सिद्ध होगा।" इस पर इन्द्रजित् बोला– "अशोक वन में सीता को मारने के लिए जाने पर सीता भस्म कर मेरा अन्त कर देगी।" यह सुनकर पार्वती को हँसी आ गई। वह बोलीं "तुम्हारे कपटी पुरुषार्थ को धिक्कार है। तुम्हारे द्वारा मायावी सीता को माँगने का तात्पर्य मृत्यु के लिए धरना देकर बैठना है। निष्कारण ही तुम मृत्यु को प्राप्त होगे।" पार्वती के ये क्रोधपूर्ण वचन सुनकर इन्द्रजित् बोला– "मुझे कभी मृत्यु नहीं आ सकती। तत्पश्चात् उसने अपनी मृत्यु के लक्षण बताते हुए कहा– "बारह वर्ष तक निराहार रहने वाला कोई बाल ब्रह्मचारी पुरुष इस संसार में नहीं है, तब मैं कैसे मरूँगा।" ऐसा निश्चयपूर्वक बोलकर इन्द्रजित् पुनः अपनी सेना में वापस लौटा। उसने प्रचंड गर्जना करते हुए सीता की मायावी मूर्ति निकाली। तत्पश्चात् प्रचंड रण वाद्यों की गर्जना के साथ वह उसे रणभूमि में ले आया। यह सीता पार्वती के वर से प्राप्त मायावी सीता थी। वह रथ में बैठी थी। राक्षस सेना का परिवार उसके चारों ओर विद्यमान था। इन्द्रजित् ने उसे युद्ध में मारने का निश्चय किया था।

शिव द्वारा वायु को मारुति सम्बन्धी रहस्य-कथन– शिव ने वायु को मायिक सीता के सम्बन्ध में रहस्य बताकर वह रहस्य मारुति को बताने के लिए भेजा। शिव बोले– "इस सीता का पक्ष लेकर कुछ भी प्रतिक्रिया न करने को मारुति से कहना। इस सीता का वध होता देखकर हनुमान अत्यन्त अनर्थ करेगा। सभी राक्षसों का वध कर सीता को मुक्त करायेगा। परन्तु पार्वती का वर तथा सभी सिद्धियाँ होने के लिए इस रहस्य का पालन करे, ऐसा तुम हनुमान से कहना।" तत्पश्चात् वायु का कहना मानकर मारुति ने शिव के वचनों का आदर करते हुए पार्वती के वर को मान्य किया। वध करने के लिए रथ से लायी गई मायिक सीता को वानरों ने देखा। इन्द्रजित के रथ पर बैठी हुई मायिक सीता वानरों को अत्यन्त भयभीत प्रतीत हो रही थी। उसके सिर के बालों की जटा बंधन से युक्त वेणी बनी थी। वह एकवस्त्रा थी और धरणी पर शय्या करती थी। उनका अत्यन्त दीन मुख दिखाई दे रहा था। वह ओढ़ने तथा बिछाने के लिए कुछ नहीं लेती। अभ्यंग स्नान न करने के कारण उनका सम्पूर्ण शरीर मलिन हो

गया है। उन्होंने आभूषण, सुमन तथा चंदन भी धारण नहीं किया है। प्यास बुझाने के लिए जल भी न ग्रहण कर, वे श्रीराम का ध्यान कर रही हैं। राक्षसों द्वारा रणभूमि में लायी जाने के कारण, वह स्त्री स्वभावानुसार भयभीत हो गई हैं। रथ से उड़ी हुई धूल से उसका सम्पूर्ण शरीर भर गया है। उस भयभीत जानकी को देखकर हनुमान शिव के सन्देश के अनुसार अपने पुरुषार्थ का प्रयोग न कर ध्यानस्थ मुद्रा में तटस्थ बैठे हुए थे।

इन्द्रजित् द्वारा सीता पर दोषारोपण एवं उसका शिरच्छेदन– इन्द्रजित् को मिली हुई मायिक सीता रथ में आक्रोश कर रही थी। उसे देखकर हनुमान की आँखों से अश्रु प्रवाहित हो रहे थे। सीता की वह मरणावस्था देखकर हनुमान अत्यन्त दुःखी हुए। वे विलाप कर रहे थे। उधर सीता का घात देखकर हनुमान अनर्थ कर देगा, इस विचार से इन्द्रजित् भयभीत था। जब उसने हनुमान को विलाप करते हुए देखा तो सीता के केश पकड़ कर गर्जना की– "मैं अब इसका वध करूँगा। यह कुलक्षणी है, अशुभ है। उससे विवाह कर राम दुःखी हो गया है। इससे विवाह करने पर तुरन्त राम को परशुराम से युद्ध करने का दुर्भाग्य सहना पड़ा। अपने भाग्य से ही वह उस समय बच सका। यह मूल रूप से अभागी ही है। श्रीराम के अयोध्या में प्रवेश करते ही इसके कारण देश से बाहर निकलकर रघुनाथ को वनवास के लिए जाना पड़ा और दशरथ की मृत्यु हो गई। यही सब अनर्थों का मूल कारण है। इसके कारण दुःखों का आगमन होता है। इस सीता से विवाह होते ही राम का राज्य चला गया। राम के वनवास के लिए जाते समय सेवा के लिए साथ में जाकर राम को वन-उपवनों में घुमाया। उस भ्रमण में राम को न ही अन्न तथा न ही रसपान करने के लिए मिला। तृणशय्या पर सोना पड़ा, ऐसी यह सीता अभागी है।"

इन्द्रजित् आगे बोला - "यह सीता दुःख राशि है। श्रीराम को दुःखी करने के लिए ही वह वन में आयी। इसने अनेकों को दुःखी किया है। मार्ग में विराध ने इसे पकड़ लिया, जिससे राम को दुःखी होना पड़ा। उस समय विराध ने राम को मार डाला होता परन्तु वह विराध ही अचानक मर गया। सीता का स्वरूप ही पापमय है। सखा लक्ष्मण निष्पाप होते हुए भी, उस पर इसने दोषारोपण किया। ऐसी ये दुःखरूपिणी है। यह अत्यन्त अनर्थकारिणी है। राम इसके सहित जब पंचवटी में सुखपूर्वक रह रहे थे, तब इसने पति को मृग के पीछे भेजकर तीनों को ही दुःखी कर दिया। इसका मुख देखकर लंकेश भिखारी हो गया। इसकी अभिलाषा करने के कारण दशानन अत्यन्त दुःखी हुआ। इसे लंका लाने से सम्पूर्ण लंका जल गई। कुमार, अनेक वीर, कुंभकर्ण, महोदर, प्रहस्त, सभी मारे गए। अतः आप्त, सुहृद, बन्धु इत्यादि का सान्निध्य समाप्त करने वाली इस दुःखदायिनी सीता को मैं रणभूमि में ही मार डालूँगा।'' ऐसा कहते हुए इन्द्रजित् ने तुरन्त खड्ग उठाया। उसे म्यान से बाहर निकाल कर उसकी धार को पोंछते हुए सीता का वध करने के लिए वह आवेशपूर्वक तैयार हुआ। उसके पुरुषार्थी हाथों की मुट्ठी में पकड़ा हुआ वह षड्रत्नों से मढ़ा हुआ खड्ग सीता का वध करने के लिए उठाया गया। राम-नाम का स्मरण करते हुए आक्रंदन करने वाली सती सीता को क्रोधपूर्वक थरथराते हाथों से केश पकड़कर इन्द्रजित् ने खींचा।

उस समय हनुमान को उसका पिता वायु शिव की आज्ञा के विषय में बता रहा था कि 'यह मायावी सीता है, अतः इन्द्रजित् द्वारा इसका वध कर दिये जाने पर भी तुम विचलित न होना। वास्तविक सीता जन्म-मृत्यु से परे है। उसका वध कौन कर सकता है ? अतः मायिक सीता का वध होने पर तुम अनर्थ मत करना।' शिवजी की यह आज्ञा मान्य कर मायिक सीता का वध देखकर मारुति मिथ्या विलाप करने लगे। सच्ची सीता का वध होने पर उन्होंने हाहाकार किया होता। इन्द्रजित्, रावण तथा राक्षसों का

वध कर दिया होता; परन्तु सीता के मायावी होने का ज्ञान होने के कारण वह मिथ्या विलाप करने लगे। उसके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे। सीता का वध देखकर हनुमान हाहाकार मचा देंगे, इन्द्रजित् को ऐसा भय लग रहा था परन्तु उसे हनुमान विलाप करते हुए दिखाई दिए। हनुमान को रोते देखकर इन्द्रजित् प्रसन्न हो उठा। फिर वह रणभूमि में गर्जना करते हुए स्वयं का पुरुषार्थ बताने लगा।

"जिस सीता को मुक्त कराने के लिए पत्थरों से सेतु बनाकर रघुनाथ, सुग्रीव सहित वानर सेना लेकर आये, यह वही जानकी है। तुम इसे पहचानो। अब तुम्हारे समक्ष रणभूमि में मैं इसका वध करता हूँ। इसे मारने के पश्चात् सर्वप्रथम मैं तुम्हें मारूँगा, व्यर्थ विलाप मत करो। तुम्हारी मृत्यु का संकट समीप आ खड़ा है। सर्वप्रथम तुम्हारे प्राण हरूँगा तत्पश्चात् राम व लक्ष्मण का वध करूँगा। उसके पश्चात् अंगद, राजा सुग्रीव व वानरगणों को मारूँगा। विभीषण हमारे काका होकर हमारा ही वध करने के लिए उद्यत हैं, यह उनका कैसा साधुत्व है। अत: मैं अब उनका भी वध करूँगा।" इन्द्रजित् जब हनुमान की निर्भर्त्सनायुक्त गर्जना कर रहा था, उस समय हनुमान शिवजी के वचनों का पालन करने के लिए मौन बैठे थे। अपने पिता वायु के आदेश का हनुमान तत्वत: पालन कर रहे थे।

हनुमान को शान्त बैठे देखकर इन्द्रजित् बार बार गर्जना कर रहा था। उसने मायावी सीता का वध करने के लिए खड्ग हाथ में उठाया। सीता राम-नाम लेती हुई बिलख रही थी। इन्द्रजित् ने मायावी सीता के केश पकड़कर खड्ग की धार तेज की। मायिक सीता का वध करने में इन्द्रजित् प्रसन्नता का अनुभव कर रहा था। उसने खड्ग से सीता का सिर काट डाला। जिस प्रकार द्विज जनेऊ धारण करते हैं, उसी प्रकार इन्द्रजित् ने बायीं ओर से दाहिनी ओर खड्ग का प्रहार किया। मायावी सीता का शव रणभूमि में, रथ पर, भूमि पर, कहीं भी दिखाई नहीं दे रहा था। वह निराकार हो गया। जिसे देखकर सुर व सिद्ध आश्चर्य करने लगे। रस्सी को साँप समझ कर मारने पर साँप का शव दिखाई नहीं देता। उसी प्रकार मायावी सीता के शरीर में शरीरत्व था ही नहीं। उस सीता का शव कहीं भी दिखाई न पड़ने पर स्वयं इन्द्रजित् भयभीत हो उठा। तभी आकाशवाणी हुई कि 'तुम लंका में वापस नहीं जा सकोगे, युद्ध में तुम्हारा प्राणान्त होगा। तुमने जितना कपट किया है, उन सभी का अन्त अब समीप है। तुमसे युद्ध करते हुए अब लक्ष्मण तुम्हारा कंठ छेद डालेगा।" मायिक सीता का वध होने के पश्चात् हनुमान ने क्रोधपूर्वक इन्द्रजित् का वध करने के लिए शिला उठाई।

इन्द्रजित् का पलायन, मारुति के उद्गार— हनुमान ने एक प्रचंड शिला इन्द्रजित् के मस्तक पर मारने के लिए क्रोधपूर्वक फेंकी। इन्द्रजित् ने वह शिला आती हुई देखकर बाणों की वर्षा की। उसके द्वारा करोड़ों बाण चलाने पर भी वह कठोर शिला नहीं टूटी, वज्र बाण चलाने पर भी नहीं टूटी। इन्द्रजित् ने वहाँ एक खोह खोली और वह रथ सहित उसके अन्दर भाग गया। इन्द्रजित् का वार चूक गया परन्तु शिला सेना पर गिरने से राक्षसों का प्राणान्त हो गया। शिला के नीचे राक्षस समुदाय को दबकर मरा हुआ देखकर वानरगण शिला, शिखर तथा वृक्ष हाथों में लेकर गरजते हुए आये। कोई शिला एवं शिखर की वर्षा करने लगे, तो कोई वृक्षों से आघात करने लगे। इस प्रकार वानर राक्षस सेना का नाश करने लगे। इन्द्रजित् खोह में था तथा हनुमान वहाँ पहरा देते हुए बैठे थे। इन्द्रजित् को इस बात का भय लग रहा था कि बाहर निकलते ही हनुमान उसका वध कर देगा। दूसरी ओर वानर समूह में यह वार्ता फैल गई कि इन्द्रजित् ने खड्ग की धार से सीता को मार दिया। यह वार्ता सुनकर हनुमान इस बात से भयभीत हो उठे कि यह वार्ता सुनते ही श्रीराम, सीता के विरह से प्राण-त्याग कर देंगे। तब इन्द्रजित् को खोह

में उसी प्रकार छोड़कर हनुमान वानर सेना के पास आये व युद्ध से वानरों को परावृत कर श्रीराम को यह वृत्तान्त बताने के लिए शीघ्र प्रस्थान किया कि श्रीराम जिसके लिए युद्ध कर रहे हैं, उस सीता का इन्द्रजित् ने वध कर दिया।

हनुमान ने सोचा– 'हमारे प्रमुख श्रीरामचन्द्र हैं। सुग्रीव हमारा राजा है। अतः सीता वध का समग्र वृत्तान्त उन्हें बताना चाहिए क्योंकि वे ही इस सम्बन्ध में विचार कर सकते हैं। वे विचार करने के पश्चात् जैसा कहेंगे, हम निश्चित ही वैसा ही करेंगे। इन्द्रजित् ने सीता का वध कर दिया है, इसे श्रीराम सत्य नहीं मानेंगे क्योंकि सीता जन्म-मृत्यु से परे है।' तत्पश्चात् वानर वीरों को युद्ध से दूर कर स्वयं आगे बढ़कर वानर वीरों सहित हनुमान श्रीराम के पास आये। श्रीशिव के वरदान का पालन करते हुए हनुमान विलाप करते हुए श्रीराम के पास आये। उन्हें देखकर श्रीराम को वरदान की सत्यता का पता चला। 'इन्द्रजित् ने सीता का वध कर दिया' ऐसा हनुमान द्वारा बताते ही उसका मिथ्यात्व समझते हुए भी श्रीराम मूर्च्छित हो गए।

श्रीराम का मूर्च्छित होना; विभीषण द्वारा सांत्वना– मायावी सीता, मायावी वार्ता तथा सीता का वध भी मिथ्या यह जानकर भी श्रीराम मूर्च्छित हो गए। यह मूर्च्छा भी शिव के वरदान का पालन करने के उद्देश्य से ही थी। जिस प्रकार नदी के तट पर स्थित कोई बड़ा वृक्ष टूटकर नीचे गिर जाए, उसी प्रकार सीता के तीव्र दुःख में दुःखी होकर श्रीराम नीचे गिर पड़े। श्रीराम के मूर्च्छित होने के कारण लक्ष्मण भी दुःखी हो गए। बंधु प्रेम से श्रीराम को आलिंगनबद्ध कर उन्होंने श्रीराम को अपनी गोद में लिटाया। तत्पश्चात् लक्ष्मण बोले– "इन्द्रजित् द्वारा सीता का वध करने पर अब क्या उपाय करें, यह समझ में नहीं आता। सीता के वध का महापाप करने के पश्चात् भी इन्द्रजित् सुखी है तथा हम धर्मानुसार आचरण करने के पश्चात् भी दुःख भोग रहे हैं।" धर्म अधर्म का विश्लेषण अज्ञानी वानरों को समझ में नहीं आ रहा था परन्तु श्रीराम के मूर्च्छित होते ही उन्होंने दुःख की वेदना का अनुभव किया। वानरों ने नीले कमल से सुगंधित-जल श्रीराम के मुख कमल पर छिड़का तब धीरे-धीरे चेतना वापस लौटी। हनुमान के सदृश ही शिव वरदान के कारण श्रीराम मूर्च्छित हो गए थे। उनका सम्पूर्ण शरीर विकल व शिथिल हो गया। श्रीराम की स्थिति देखकर लक्ष्मण अत्यन्त दुःखी हुए उन्हें लगा कि इन्द्रजित् द्वारा सीता का वध करने के पश्चात् अब श्रीराम बच नहीं पाएँगे।

लक्ष्मण कहने लगे– "श्रीराम द्वारा प्राण त्यागते ही हम सभी की मृत्यु हो जाएगी। भरत, शत्रुघ्न व तीनों माताएँ प्राण त्याग देंगी। श्रीराम के जाते ही अयोध्यावासी तथा किष्किंधा के वानरगण भी प्राण त्याग देंगे। इस प्रकार प्रलय हो जाएगा। शरीर से प्राण निकल जाने पर जिस प्रकार इन्द्रियाँ हिलना-डुलना बन्द कर देती हैं, उसी प्रकार श्रीराम के निधन के पश्चात् हमारा भी निधन हो जाएगा। देह से आत्मा के चले जाने पर केवल प्रेत रूपी प्रतिमा शेष रहती है। उसी प्रकार श्रीराम की मृत्यु के पश्चात् हम भी प्राण विरहित हो जाएँगे क्योंकि हम देह हैं व श्रीराम हमारे प्राण हैं। श्रीराम हम प्राणियों की आत्मा हैं। श्रीराम चैतन्यरूप हैं तो हम चित्त स्वरूप हैं। इनसे अलग कुछ भी नहीं है। सीता का वध कर इन्द्रजित् ने पुरुषार्थ कर दिखाया। वध करने के पश्चात् श्रीराम के प्राण कैसे बचेंगे ?" इस पर कोई उपाय ही नहीं है, यह सोचकर सब चिन्तित हो गए परन्तु श्रीराम के हृदय की बात हनुमान जानते थे तथा हनुमान का मनोगत स्वयं श्रीराम जानते थे। लक्ष्मण विलाप कर रहे थे। सभी चिन्ताग्रस्त थे। उस समय विभीषण ने लंका में दूत भेजकर पता लगाया। दूत अशोक वन जाकर सीता के स्वस्थ होने तथा

इन्द्रजित् द्वारा मायावी सीता का वध करने का समाचार लेकर वापस लौटा। विभीषण शीघ्र वानर सेना के पास आये। उस समय वानर सेना में हाहाकार मचा था। सीता-वध की वार्ता सुनकर श्रीराम मूर्च्छित हो गए थे। अत्यन्त मोह के कारण रघुनाथ को मूर्च्छित हुआ देखकर उस दुःख से विभीषण दुःखी हो गए।

लक्ष्मण की गोद में श्रीराम को अत्यन्त व्याकुल अवस्था में देखकर विभीषण ने आदरपूर्वक पूछा– स्वामी श्रीराम किस कारण मूर्च्छित हो गए ? उन्हें किस बात का आघात लगा ? इस पर लक्ष्मण बोले– "इन्द्रजित् ने सीता का वध कर दिया है, ऐसी वार्ता हनुमान द्वारा दिये जाने पर श्रीराम मूर्च्छित हो गए। अब कुछ उपाय नहीं सूझ रहा है। हनुमान के वचन मिथ्या न मानने के कारण हनुमान द्वारा सीता-वध की वार्ता सुनाते ही श्रीराम मूर्च्छित हो गए।" लक्ष्मण के वचन सुनकर विभीषण हँसते हुए बोले– "सीता जन्म-मृत्यु से परे हैं। आप व्यर्थ ही क्यों विलाप कर रहे हैं। महाकपटी इन्द्रजित् ने मायावी सीता का वध किया है। उसका शव भी शेष नहीं बचा। ऐसा होते हुए हनुमान ने इसे सत्य कैसे मान लिया। अशोक वन में सीता स्वस्थ व सुरक्षित हैं। मेरे दूत उन्हें देखकर आये हैं। आप अत्यन्त दुःखी होकर विलाप न करें।'' रघुनाथ की चेतना तब भी वापस नहीं लौटी अतः विभीषण, अंगद, सुग्रीव, जाम्बवंत एवं सभी वानरगण अत्यन्त दुःखी हो गए।

हनुमान द्वारा मायावी सीता का रहस्य बताना– यह सब देखकर हनुमान गर्जना करते हुए बोले– "इन्द्रजित्, रावण एवं अन्य सभी राक्षसों का मैं वध कर डालूँगा। मायावी सीता का वध हुआ है। उसका शव भी कहीं दिखाई नहीं दिया। यह सब बताने के लिए ही मैं यहाँ आया हूँ। जिस प्रकार सीता का वध मिथ्या था, उसी प्रकार रघुनन्दन की मूर्च्छा भी मिथ्या है।" हनुमान की गर्जना सुनकर श्रीराम की चेतना वापस लौट आई। श्रीराम व हनुमान दोनों समर्थ थे। वरदान के विषय में उन्हें ज्ञात था। हनुमान के समीप आते ही श्रीराम की चेतना वापस लौट आई। स्वामी व सेवक का यह गूढ़ सम्बन्ध वेदों की समझ से भी परे है। श्रीराम की मूर्च्छा जाते ही वानरों ने श्रीराम नाम का जय-जयकार किया। आनन्द में मग्न होकर भुभुःकार किया। सीता अशोक वन में सुरक्षित है, ऐसा विभीषण का कथन श्रीराम ने सत्य माना तथा विभीषण को आलिंगनबद्ध कर लिया। वे सजग होकर बैठ गए। मोह, शोक इत्यादि का त्याग कर लक्ष्मण व सुग्रीवादि वानर प्रसन्न हो उठे। उन्होंने राम-नाम का जय-जयकार किया। सत्य तो यह है कि श्रीराम नित्य सचेतन हैं, वे जग के जीवन हैं। उन्हें मोह ममता का बन्धन नहीं है। वे स्वयं आनन्दपूर्ण हैं। उनका नाम स्मरण करने से माया मोह दूर होता है। वे स्वयं कभी भी मोह के वशीभूत नहीं होते।

अध्याय ३७

[इन्द्रजित् का निकुंबला प्रवेश]

इन्द्रजित् भयभीत होकर हनुमान द्वारा किये गए पर्वत के आघात से बचने के लिए खोह में छिपकर बैठा था। मायावी सीता के वध का समाचार मिलने पर हनुमान उसे मार डालेंगे, इस विचार से वह भयभीत था। जब इन्द्रजित् को यह ज्ञात हुआ कि हनुमान रणक्षेत्र की वार्ता बताने के लिए श्रीराम के पास गये हैं, तब वह निकुंबला की ओर भाग गया।

इन्द्रजित् द्वारा अभिचार-यज्ञ का प्रारम्भ– हनुमान से अपने प्राण बचाने के लिए इन्द्रजित् भाग कर निकुंबला में गया। वहाँ उसने तुरन्त जारण-मारण विधि से यज्ञ प्रारम्भ किया। इन्द्रजित् ने श्रीराम लक्ष्मण हनुमान आदि वीरों को मारने के लिए निर्णायक यज्ञ-विधि प्रारम्भ की। यक्षिणी के वट के नीचे उस खोह में यज्ञकुंड बनाये हुए थे। बहाबली इन्द्रजित् ने वहाँ जाकर यज्ञविधि प्रारम्भ की। कुंड, मंडप विधिपूर्वक अग्नि की स्थापना, शस्त्रों को चारों ओर बिछाना, मद्य का चारों ओर छिड़काव इत्यादि तैयारी की गई। नर-कपाल व नर-शिर से बने हुए घृत पात्र काले बकरे के रक्त से भरे गए तथा जीवित काले बकरे के सम्पूर्ण शरीर की रक्त वाहिनियाँ पकड़कर उनके रक्त को अलग-अलग पात्रों में भरा गया। तत्पश्चात् धनुषबाण, खड्ग, तोमर इत्यादि शस्त्रों की राशि यज्ञकुंड के चारों ओर रखी गई। मन्त्रों सहित उन सभी शस्त्रों को अभिसिंचित कर तन्त्रों के अनुसार उन्हें रखा गया। ये तन्त्र इन्द्रजित् को ज्ञात थे। जारण-मारण अभिव्यक्ति के तन्त्रों का प्रयोग कर शस्त्रों में पूर्ण शक्ति का संचार होने के लिए इन्द्रजित् मन्त्रों सहित उनका विभाग करते हुए विधियुक्त पद्धति से वे शस्त्र बिछा रहा था। सभी शस्त्रों में मन्त्र सामर्थ्य से शक्ति का संचार कर उस यज्ञ में रक्तवर्णी होठों से युक्त क्रूर स्त्रियाँ लायी गई। लोहे का स्रुक-स्रुवा बनाकर उनके द्वारा होम-द्रव्यों की राशि का यज्ञ में होम किया गया। यह विधि करते समय नमक, राई व मिलावाँ मातंगी के रक्त में मिलाकर उसमें मद्य डालकर मन्त्रोच्चारण सहित विधियुक्त होम में हवन किया गया।

जिस प्रकार बाल सूर्य शोभायमान होता है, उसी प्रकार होम की प्रज्वलित अग्नि शोभायमान हो रही थी। परिस्तरण से यह सुशोभित थी तथा इन्द्रजित् उसमें होम हवन कर रहा था। काली चिड़िया, चील और उल्लू कील पर टाँगे हुए थे। काले सर्प का आधा मस्तक होम पर बाँधा हुआ था। उस सर्प का विष बह रहा था। उसी को वसोधारा मानकर अमंगल, पापी इन्द्रजित् अभिचार कर रहा था। इन्द्रजित् प्राणियों को मारकर उनके रक्त में ब्राह्मण का रक्त मिलाकर होम कर रहा था। ससार में अपवित्र समझी जाने वाली बहेड़ा की समिधा होम में डाली जा रही थी। कड़वे काशीफल के पात्र में मद्य भरकर होम के लिए प्रयुक्त किया जा रहा था। लाल रंग के वस्त्र, मस्तक पर रक्त का टीका तथा गले में लाल रंग की माला धारण कर अभिचार युक्त इन्द्रजित् शोभायमान हो रहा था। उसने होम के लिए मन्त्रजाप करते समय कहीं भी विकलता नहीं आने दी। इन्द्रजित् स्वयं आवेशपूर्वक अभिचार के लिए होम कर रहा था। गिरगिट, मेंढक, मछली, मगर, उल्लू, गिद्ध, चील इत्यादि असंख्य प्राणी होम में जल रहे थे। इस प्रकार वह महापापी इन्द्रजित् राक्षस निकुंबला में होम कर रहा था। इसका समाचार विभीषण को प्राप्त हुआ।

विभीषण द्वारा श्रीराम से यज्ञ रोकने की विनती– विभीषण ने श्रीराम से बताया कि "दुष्टबुद्धि, कपटी, दुरात्मा, इन्द्रजित् जारण-मारण के लिए अभिचार होम करने हेतु निकुंबला में गया है। ब्रह्मवरदान व शिव वरदान से अभिचार होम-विधि करने पर इन्द्रजित् को तत्काल सिद्धि प्राप्त होगी, ऐसा स्पष्ट वर उसे मिला है। इस होम के पूरा हुए बिना, अगर बीच में ही विध्वंस हो गया तो इन्द्रजित् की मृत्यु निश्चित है। ऐसा शिव का वरदान उसे मिला है। यज्ञ की समाप्ति हुए बिना बीच में ही कोई विघ्न आने पर इन्द्रजित् की युद्ध में मृत्यु होगी, ये ब्रह्मा के वचन हैं। साथ ही ब्रह्म-वरदान के कारण उसे ब्रह्मशिर-अस्त्र भी प्राप्त हुआ है। इन्द्रजित् की इच्छानुसार विभिन्न स्थानों पर जाने वाले घोड़े, रथ, प्राप्त होकर वह तीनों लोकों में विख्यात होगा। उसे प्राप्त वर के श्रेष्ठ प्रताप से इन्द्रजित् को अपार सामर्थ्य की प्राप्ति हुई जिससे तैंतीस करोड़ देवों को उसने बन्दी बनाया हुआ है। इसी सामर्थ्य के कारण

उसने इन्द्र को युद्ध में जीवित ही बन्दी बना लिया था। इसी के कारण उसे इन्द्रजित् नाम प्राप्त हुआ। यह सब शिव-वर के कारण घटित हुआ है।" शिव के वरदान से प्राप्त घोड़ों व रथ से रघुनाथ को युद्ध में जीता नहीं जा सकता। प्रतापी श्रीराम ने दोनों बार शरबंध का नाश किया है तथा इन्द्रजित् के पराक्रम को विफल कर दिया है, इस कारण इन्द्रजित् छटपटा रहा है। इसी क्रोध के कारण राम व लक्ष्मण का वध करने के लिए इन्द्रजित् अभिचार का अत्यन्त निर्णायक व कठोर यज्ञ स्वयं समस्त विधि-विधान द्वारा सम्पूर्ण कर रहा है। वह युद्ध में शरबंध से पुन: कभी पुरुषार्थ नहीं कर सकेगा क्योंकि श्रीराम ने वर को ही निष्फल कर दिया था, इसी कारण इन्द्रजित् छटपटा रहा था।

इन्द्रजित् का यज्ञ सम्पन्न न हो सके, इसीलिए उसमें विघ्न डालने के उद्देश्य से विभीषण स्वयं चल पड़े। वे श्रीराम से बोले- "प्रतापी लक्ष्मण को मेरे साथ दें। लक्ष्मण धैर्यवान् व शूरवीर हैं। वे इन्द्रजित् का नाश कर देंगे। इन्द्रजित् ने अत्यन्त गुप्त स्थान पर यज्ञ प्रारम्भ किया है। वह अन्य किसी को नहीं मिल सकता। मैं निश्चित स्थान बताऊँगा, जिससे इन्द्रजित् का वध करना सम्भव होगा। अगर इन्द्रजित् का यज्ञ सम्पन्न हो गया, तब वह तीनों लोकों में अजेय हो जाएगा तथा सबका वध कर देगा। यही शिव का वर है। अत: हे श्रीराम, हमें शीघ्र प्रस्थान की आज्ञा दें। यज्ञ में विघ्न लाने के लिए लक्ष्मण को मेरे साथ भेजें। लक्ष्मण का बाण चलते ही यज्ञ-स्थान का विध्वंस हो जाएगा। वहाँ से इन्द्रजित् के उठते ही युद्ध कर लक्ष्मण उसका वध कर देंगे। इन्द्रजित् के यज्ञ में विघ्न होते ही रण-भूमि में उसका वध होगा, ऐसा ही शिव का वर है। अत: शीघ्र वहाँ जाने की आज्ञा दें।"

श्रीराम द्वारा उपदेश व आज्ञा- विभीषण के वचन सुनकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए ! उन्होंने लक्ष्मण को पास बुलाकर बताया कि "सौमित्र, तुम निर्भीक हो, सिंह सदृश वीर हो, युद्ध में प्रवीण हो; परन्तु इन्द्रजित् अत्यन्त कपटी है, वह छल करने वाला है। वह भूमि पर रहकर युद्ध नहीं करता वरन् अत्यन्त वेगपूर्वक आकाश में चला जाता है। उसके रथ, घोड़े व सारथी भी गुप्त रूप से आकाश में पहुँच जाते हैं। जिस प्रकार आकाश में विद्यमान सूर्य बादलों से ढँकने के कारण दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार इन्द्रजित् गुप्त रूप से जाने के कारण युद्ध क्षेत्र में दिखाई नहीं देता। जिस प्रकार कपोत पक्षी आकाश से जल में सहज रूप से दिखाई न देने वाली मछलियों को देख लेता है, उसी प्रकार गुप्त रूप से युद्ध में विद्यमान इन्द्रजित् को सूक्ष्म रूप से तुम देखना। नाम, रूप, गुण, लक्षण इत्यादि का विचार स्वयं करके कारण-अकारण ढूँढ़कर सूक्ष्म दृष्टि से उसे देखना। ऐसा करने पर युद्ध किये बिना ही अल्पसा बाण चलाकर इन्द्रजित् को मारा जा सकता है। इस प्रकार रण-भूमि में शत्रु का पूर्ण रूप से संहार करना। युद्ध में इस बात का ध्यान रखना कि दूसरे के आधीन कदापि न होना।" इन शब्दों में लक्ष्मण को सूचना देकर श्रीराम ने उन्हें इन्द्रजित् से युद्ध के लिए भेजा। उनके साथ साहसी वानर वीरों को भी भेजा। उनमें बलवान तथा बुद्धिमान युवराज अंगद भी था। जाम्बवंत ने भी सेना सहित प्रस्थान किया। अत्यन्त विश्वसनीय वानर वीर हनुमान को भी साथ में भेजा। हनुमान के बल पर श्रीरघुनाथ स्वयं सभी प्रकार से निश्चिन्त थे। प्रबल सामर्थ्यवान नल, नील को भी भेजा। ऐसे वानर वीरों का समूह देखकर लक्ष्मण प्रसन्न हो गए। निकुंबला जाकर इन्द्रजित् से युद्ध करने के लिए लक्ष्मण उत्साहित हो उठे। उनकी भुजाएँ फड़कने लगीं।

तत्पश्चात् श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- "निकुंबला जाने पर तुम्हें यज्ञ-स्थल का मार्ग नहीं दिखाई देगा क्योंकि वह अत्यन्त गुप्त और महागूढ़ है। उस गूढ़, गुप्त, गहन प्रवेश एवं निर्गमन के मार्गों का मार्ग-दर्शन विभीषण करेगा। अत: इसके लिए मैं विभीषण को भी तुम्हारे साथ भेज रहा हूँ। जिस प्रकार

जीव, जीवात्मा की रक्षा करता है।, उसी प्रकार तुम विभीषण की रक्षा करना। मेरा जीव, आत्मा व प्राण मूर्तिमान विभीषण है अतः सब मिलकर इसकी रक्षा करना। वह इन्द्रजित् महाकपटी है, वह छलपूर्वक विभीषण का वध कर देगा। उसके अर्थात् शरणागत् के वध से हमारे ऊपर लाँछन लगेगा। विभीषण द्वारा इन्द्रजित् का रहस्य बताये जाने के कारण इन्द्रजित् का विभीषण से अत्यन्त द्वेष होगा। इसीलिए वह पापात्मा इन्द्रजित् छलपूर्वक विभीषण का वध कर देगा।" तत्पश्चात् श्रीराम ने हनुमान से कहा– "विभीषण की रक्षा करो व लक्ष्मण की सहायता करो। इन दोनों को तुम्हें सौंप रहा हूँ।" श्रीराम के वचन सुनकर हनुमान उत्साहित हो उठे। वे श्रीराम से बोले– "आपका नाम ही सर्वार्थपूर्वक सर्वदा रक्षणकारी है। आपके नाम का हमारे पास वज्रकवच है, जिसके कारण हमें कलिकाल का भी भय नहीं है। तब इन्द्रजित् का कैसा भय ?" हनुमान के ये वचन सुनकर लक्ष्मण उत्साहित हो उठे। धनुष-बाण सुसज्जित कर वे युद्ध के लिए तैयार हुए। कवच, खड्ग व सोने की माला धारण कर लक्ष्मण, श्रीराम के पास आये। उनकी चरण-वन्दना की। तीन बार प्रदक्षिणा कर, अपना पुरुषार्थ बताते हुए बोले– "आज मेरे बाण छूटते ही इन्द्रजित् का प्राण ले लेंगे। उसका दाहिना हाथ तोड़कर लंका भेज दूँगा। हंस जिस प्रकार पुष्करणी में डुबकी लगाते हैं, उसी प्रकार मेरे बाण राक्षसों में प्रवेश करेंगे" श्रीराम को यह बताकर लक्ष्मण ने संग्राम के लिए प्रस्थान किया।

जिस प्रकार वृत्रासुर का वध करने के लिए जाते समय इन्द्र को कल्याणकारी आशीर्वाद दिया गया था, उसी प्रकार लक्ष्मण को भी श्रीराम ने उस समय अत्यन्त आदरपूर्वक कल्याणकारी आशीर्वाद दिया। त्रिपुरासुर का वध करने के लिए जाते समय भगवान् शंकर के लिए जिन स्वस्ति वचनों का उच्चारण किया गया था, वही स्वस्ति वचनें श्रीरामं ने आस्थापूर्वक लक्ष्मण के लिए कहे। मूर दैत्य के मर्दन के लिए जाते हुए श्रीकृष्ण को जिन स्वस्तिवचनों द्वारा आशीर्वाद दिया था, वैसा ही आशीर्वाद श्रीराम ने लक्ष्मण को दिया। आशीर्वाद देकर हनुमान विभीषण तथा वानर सेना को साथ देकर श्रीराम ने लक्ष्मण को निकुंबला भेजा। काले बादलों के सदृश दिखाई देने वाली जाम्बवंत की सेना रामनाम गुण गाते हुए निकुंबला की ओर चल पड़ी। नल, नील, अंगद, जाम्बवंत, महाबली हनुमान, विचारवान् विभीषण सभी लक्ष्मण के साथ चल रहे थे। इसके अतिरिक्त विभीषण के चार चतुर प्रधान सबसे आगे कुछ दूरी पर मार्ग दिखाने के लिए चल रहे थे। वानर वीर छलाँग लगाते हुए जब निकुंबला पर चढ़े तो उन्हें आगे एक महाघोर, दुर्गम घना जंगल दिखाई दिया।

अनेक बाधाओं का निराकरण– उस महावन के वृक्ष कँटीले थे। वानरों के छलाँग लगाते ही उनके शरीर काँटों से छिल रहे थे। उन कँटीले वन वृक्षों को लाँघकर आगे बढ़ना वानरों के लिए भी असंभव हो रहा था। वहाँ राजकुमार कैसे प्रवेश कर सकते थे। इस प्रकार बड़ा अवरोध निर्मित हो गया। था। आगे का मार्ग ढूँढ़ते हुए दिखाई दिया कि दसों दिशाओं में रक्षक, मार्ग को रोके हुए हैं। उसमें से वायु का प्रवेश करना भी कठिन है। अतः कोई भी आगे नहीं बढ़ पा रहा था। विभीषण से पूछने पर भी चारों ओर देखने पर कहीं मार्ग नहीं दिखाई दे रहा था। उन्हें भी भ्रमित देखकर लक्ष्मण ने पहला आघात किया। बाणों की वर्षा कर उस जंगल को समूल नष्ट कर डाला। वन को नष्ट करते ही वन-देवता दुःखी होकर अपने प्राण बचाने के लिए हनुमान की शरण में आये।

वन-देवता इन्द्रजित् के वध के विषय में हनुमान को बताते हुए बोले– "हमें यहाँ बन्दी बनाया हुआ है। हम कुछ बोल नहीं सकते।" यह सुनकर हनुमान स्वयं रामनाम की गर्जना करते हुए वन

देवताओं से बोले– "तुम सभी मिलकर श्रीराम-नाम का स्मरण करो।" हनुमान द्वारा यह बताते ही सभी वन-देवता मुक्त हो गए। राम नाम स्मरण करने के प्रभाव से उनके बंधन नष्ट हो गए। अभिचार का समूल उच्चाटन होकर सभी वन देवियाँ उल्लसित होकर हनुमान के चरणों पर गिरकर बोलीं– "तुम हमारे प्राणदाता हो। तुम्हारे कारण ही हम बंधन से मुक्त हुए। अब इन्द्रजित् के वध के लिए क्या करना चाहिए, उसके विषय में हम तुम्हें बताते हैं। उसके अनुसार शीघ्र करें। जो कंटक वन को काटेगा, उसके हाथों इन्द्रजित् की तत्काल मृत्यु होगी, ये भगवान् शिव के वचन हैं। पहला अवरोध यह कंटकवन है। दूसरा अवरोध भीषण पर्जन्य है। तीसरा अवरोध है प्रचंड झंझावात, चौथा सर्प का बंधन है। पाँचवीं बाधा क्रूर पिशाच हैं। छठी बाधा गुप्त हथियार हैं। सातवाँ अवरोध राक्षस दल व महावीर योद्धा राक्षस हैं। उन सबके अतिरिक्त वट की प्रबल यक्षिणी है और उसके आगे अत्यन्त गुप्त महाविवर है। उस विवर में ही होमशाला व यज्ञ स्थल है। वह स्थान सहज रूप से दिखाई नहीं देता। इस प्रकार का अभिचार यज्ञ करके ही इन्द्रजित् तीनों लोकों में अजेय हुआ है। यह यज्ञ साधकर ही उसने इन्द्र को जीवित ही बन्दी बना लिया। वन देवियों के बताने पर हनुमान को सारा वृत्तान्त समझ में आ गया। उसने अत्यन्त आदरपूर्वक वनदेवताओं को प्रणाम कर आश्वस्त किया।

लक्ष्मण व हनुमान द्वारा अवरोधों को नष्ट करना– कंटक वन पर विजय प्राप्त कर लक्ष्मण सभी के साथ आगे बढ़े। तब भीषण व कठिन पर्जन्य मार्ग में आया। पर्वतों को उलट दे, ऐसी विद्युत की कड़कड़ाहट होने लगी। अत्यन्त भीषण वर्षा की धाराएँ बरसने लगीं मानों प्रलय हो रहा हो। मेघों का शब्द जीतकर मेघों पर विजय प्राप्त करने के कारण ही इन्द्रजित् का नाम मेघनाद पड़ा था। इसीलिए मार्ग अवरुद्ध करने के लिए बादलों से सतत वर्षा की धारा गिर रही थी। वर्षा की धाराओं से वानर ठंड से काँपने लगे। क्रोधित होकर लक्ष्मण ने धनुष पर बाण चढ़ाया। मेघों की गड़गड़ाहट से होने वाली गर्जना को लक्ष्मण ने बाणों से रोक लिया तथा वर्षा को भी रोक दिया। मार्ग सूखने पर सभी चलने लगे। लक्ष्मण का सामर्थ्य देखकर मेघों ने अवरोध करने के स्थान को मुक्त कर दिया। शरीर में बाणों का जाल घुसते ही मेघों ने मार्ग खाली कर दिया।

वहाँ से सभी आगे बढ़े, झंझावात सदृश हवा बहने लगी। जिस प्रकार आँधी तिनकों को उड़ा देती है, उसी प्रकार हवा ने वानरों को आकाश में उड़ा दिया। लक्ष्मण तत्वतः शेषावतार थे। अपने सहस्र मुखों से वायु का भक्षण करने वाले थे। उन्होंने उस झंझावात सदृश वायु का निवारण किया तथा महाशस्त्र सुसज्जित किया। तत्पश्चात् हनुमान ने अपने पिता वायु से पूछा– "रामदूत का मार्ग अवरुद्ध करने का कार्य तुम क्यों कर रहे हो ? यह इन्द्रजित् की मन्त्रवायु है। उसने मन्त्र से रोककर मार्ग अवरुद्ध किया है। वह मन्त्र वायु भी तुम्हारा ही अंश है। अतः उसे दूर करो।" हनुमान का कहना मानकर वायु ने मन्त्रवायु का प्राशन किया और मार्ग अवरुद्ध करने का कार्य बन्द कर मार्ग मुक्त कर दिया। सभी प्रसन्न होकर आगे जाने लगे। उन्हें आगे असंख्य कालिया नाग तथा अत्यन्त विषैले अद्भुत सर्प दिखाई दिए। उनके द्वारा मार्ग को रोका हुआ देखकर हनुमान लक्ष्मण से बोले– "सौमित्र, तुम गरुड़ास्त्र, नकुलास्त्र, पिपीलिकास्त्र का प्रयोग कर सभी सर्पों का संहार कर दो। लक्ष्मण मूलतः शेष होने के कारण सर्प संहार करने में हिचकिचा रहे थे। वे सर्पों से बोले– "मेरे जाने का मार्ग रोककर अड़चन क्यों कर रहे हो ?" इस पर सर्पों ने लक्ष्मण की चरण-वंदना कर कहा– "हमें महामन्त्र से रोककर हमारे द्वारा मार्ग रोकने

का कार्य कराया गया है।'' सर्पों का निवेदन सुनकर राम-नाम की गर्जना की गई जिसके कारण रोककर रखने वाली शक्ति थर-थर काँपते हुए भागी और महासर्प मुक्त हो गए।

लक्ष्मण हनुमान व अन्य वानर श्रेष्ठ आगे जाने लगे। तभी कंकाल, वेताल, नग्न भैरव, झोटिंग, पिशाच सभी दौड़कर उन्हें संत्रस्त करने के लिए आये। बलदेवता, शुकी, मैली, महाकंकाली, प्रेतों का जूठन खाने वाली चांडालिनी चीखते चिल्लाते हुए दौड़कर आने लगी। भूत संत्रस्त करने के लिए आये। उन्हें देखकर हनुमान ने उड़ान भरी व सबको पकड़कर मारने लगे। तब वे हनुमान की शरण आये। उन्होंने हनुमान से बताया कि "इन्द्रजित् अत्यन्त पापी व कपटी है। यज्ञ-स्थल पर कोई जा न सके, इसीलिए उसने हमें मन्त्र से बाँधकर मार्ग रोकने के लिए रखा है।" उनके वचन सुनकर हनुमान सन्तुष्ट हुए। उन्होंने राम-नाम की गर्जना की, जिससे भूतों के समूह को मुक्ति प्राप्त हुई। तब वे भूत हनुमान से बोले– "अब हमें जाने की आज्ञा दें। सभी राक्षसों का वध कर आप सर्वथा विजयी होंगे।" हनुमान भूतों से बोले– "स्वेच्छा से सुखपूर्वक रहो, हम राक्षसों का वध करेंगे, तुम उनके शवों का भक्षण करना।" तत्पश्चात् भूतों ने बताया कि यहाँ चारों ओर गुप्त शस्त्र घूम रहे हैं। आपके आगे जाने पर वे सबको मार डालेंगे। यह सुनकर हनुमान ने वध करने वाले शस्त्रास्त्र देवताओं को पूँछ में कसकर पकड़ लिया। हनुमान द्वारा मारे जाने के भय से शस्त्र देवता गिड़गिड़ाते हुए बोले– "हे वानर श्रेष्ठ, आप हमें न मारें। वह इन्द्रजित् महाकपटी है। उसने अपने मन्त्र से सम्मोहित कर मार्ग रोकने के लिए हमें यहाँ रोककर रखा है। हम अत्यन्त दुःखी हैं।" देवताओं के वचन सुनकर हनुमान ने श्रीरामनाम का स्मरण कर सभी शस्त्र देवताओं को मुक्त कर दिया। वे शस्त्रदेवता हनुमान को प्रणाम कर बोले– "आप इन्द्रजित् का वध कर यशस्वी होंगे।" तब लक्ष्मण वानरवीरों के साथ वेगपूर्वक आगे बढ़े। उन्होंने आगे भयंकर राक्षसों के समुदाय को देखा।

राक्षस समुदाय को देखकर लक्ष्मण उल्लसित हो उठे। विभीषण ने तुरन्त वहाँ आकर युद्ध के विषय में बताते हुए कहा– "यह राक्षस समूह यहाँ दिखाई दे रहा है परन्तु इन्द्रजित् गुप्त होकर विवर में होम कर रहा है। उसे होम पूर्ण करना है। उसका वध करने के लिए सर्वप्रथम इन राक्षसों का वध करना होगा, जिससे इन्द्रजित् निश्चित ही प्रकट होगा।" विभीषण के वचन सुनकर उत्साहित होकर लक्ष्मण ने धनुषबाण सुसज्जित कर राक्षस समूहों का संहार प्रारम्भ किया। वानर भी दृढ़तापूर्वक युद्ध करते हुए राक्षसों का वध करने लगे। राक्षस वानरों से भिड़कर युद्ध करने लगे। रीछ एवं वानरों के समुदाय पर्वत, शिला, वृक्ष इत्यादि राक्षसों पर फेंकने लगे और भुभुःकार करते हुए रामनाम की जय-जयकार करने लगे। राक्षसों की ओर से शूल, त्रिशूल, धनुषबाण, तलवार, पट्टिश, परिघ, तोमर इत्यादि शस्त्रों की वानरों पर वर्षा होने लगी। वानर उछल कर शस्त्रों के मार को व्यर्थ करने लगे। वानरों ने पर्वत, शिखरों की वर्षा कर राक्षसों को धराशायी कर दिया। पर्वतों के आघात से भयभीत होकर राक्षस भागे। यक्षिणी वट को निर्मुक्त कर सब लोग उस स्थान पर पहुँचे। यक्षिणी वट अति भीषण, भयंकर, सिन्दूर से चमकता हुआ, अत्यन्त क्रूर दिखाई दे रहा था, जिससे नरवानर भयभीत हो रहे थे। उसकी असंख्य शाखाएँ सहस्त्र योजन लम्बी थीं। उनसे धु-धु शब्द की गर्जना सुनाई दे रही थी। उस वृक्ष का भयानक विस्तार था। उस वट वृक्ष के नीचे गुप्त विवर था, जिसमें इन्द्रजित् अभिचार यज्ञ कर रहा था। वानरों ने वहाँ घूम कर देखा परन्तु उन्हें वह गुहा कहीं दिखाई नहीं दी। वह वट मूल गुप्त एवं सबको भ्रमित करने वाला था। स्वयं विभीषण ने आकर देखा परन्तु उन्हें भी होम स्थान कहीं दिखाई नहीं दे रहा था। सभी लोग चिन्तित

हो गए। यज्ञ पूर्ण होने से पहले वहाँ पहुँचना अनिवार्य था परन्तु उसका प्रवेश मार्ग ही दिखाई नहीं दे रहा था। इस पर हनुमान क्रोधित होकर बोले– "मैं इस वट वृक्ष को ही उखाड़ देता हूँ। मैं इस गुहा का गुप्त द्वार ढूँढूँगा तभी सच्चा रामदूत कहलाऊँगा।"

वन-देवता द्वारा हनुमान को रहस्य कथन– हनुमान ने जिन वन देवताओं एवं शस्त्र देवताओं को मुक्त किया था, वे सभी आकर उसे रहस्य बताते हुए कहते हैं- "यक्ष वट की यक्षिणी हमारी मुख्य स्वामिनी है। इन्द्रजित् ने मन्त्रों से उसे सम्मोहित कर विवर की रक्षा के लिए नियुक्त किया है। उसे मुक्त करते ही विवर का द्वार दिखाई देगा।" यह सुनकर हनुमान प्रसन्न होकर उछल पड़े। यक्षिणी वट वृक्ष के अग्रभाग में थी। हनुमान ने उड़ान भर श्रीराम-नाम का स्मरण कर क्षणार्द्ध में उसे मुक्त कर दिया। वह यक्षिणी मुक्त होते ही हनुमान के चरणों पर गिर पड़ी। उसने वट-मूल के पास जाकर विवर का द्वार खोल कर दिखाया। द्वार खुलते ही वानरों ने श्रीराम-नाम का जय-जयकार किया। सभी प्रसन्न थे। यक्षिणी ने गुहा का बाह्य द्वार तो खोल दिया परन्तु अन्दर का द्वार नहीं खोल पाई। अनेक प्रयत्न किये गए परन्तु द्वार नहीं खुला। इन्द्रजित् ने द्वार पर वज्र की अर्गला तथा अनेक अर्गलाएँ मोटी जंजीरें व शिलाएँ लगाई थीं जिन्हें हिलाया भी नहीं जा सकता था। होम के स्थान पर कोई प्रवेश न कर सके, ऐसी व्यवस्था इन्द्रजित् ने की हुई थी। उसके पश्चात् ही वह होम के लिए बैठा था। यक्षिणी ने हनुमान से कहा कि द्वार किस प्रकार खोला जाय, इसका विचार आप करें। यक्षिणी के वचन सुनकर हनुमान क्रोधित हो गए। विभीषण व वानरगण सभी चिन्तित हो उठे। लक्ष्मण क्रोधित होकर बोले– "वज्रबाण से मैं कपाट को चूर-चूर कर दूँगा। उसमें कैसा संदेह है ?" यह कहते हुए लक्ष्मण ने धनुष बाण सुसज्जित किया तभी हनुमान उनका हाथ पकड़ कर बोले– "इस तुच्छ से द्वार की आपको चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।"

हनुमान द्वारा द्वार तोड़ना; यज्ञ के दर्शन– हनुमान बोले– "मैं आपका सेवक हूँ। अब आप मेरा चमत्कार देखें।" तत्पश्चात् मारुति ने इतनी जोर से गर्जना की कि तीनों लोक गूँज गए। दिग्गजों की वाणी बन्द हो गई। नक्षत्र, भूमि पर गिर पड़े। हनुमान की गर्जना सुनकर होम में मग्न इन्द्रजित् चौंक गया। 'यह हनुमान यहाँ तक कैसे पहुँचा' इस विचार से वह चिन्तित हो गया। उसका जप-होम में मन नहीं लग रहा था और वह पूर्णाहुति भूल गया। 'इस हनुमान का यहाँ आगमन हुआ होगा तो' इस विचार से इन्द्रजित् का मन दुश्चिंता में पड़ गया। उसे विधि विधान का स्मरण न आने से यज्ञसिद्धि में विघ्न पड़ गया। तब यह विचार कर कि बाहर कितनी अड़चनें हैं, हनुमान कैसे आ सकेगा ? इन्द्रजित् यज्ञ विधि पर ध्यान केन्द्रित करने लगा। दूसरी ओर हनुमान ने अपने सामर्थ्य से गुहा का द्वार तोड़ डाला और कृतान्त काल सदृश क्रुद्ध होकर वे यज्ञ का नाश करने के लिए उपस्थित हुए। मारुति ने द्वार की ओर एकाग्र दृष्टि की फिर अपनी वज्र मुट्ठी से उस पर आघात किया। तब कड़कड़ाहट की ध्वनि के साथ वट गरजा। मारुति के आघात से द्वार का चूर्ण हो गया। वज्र अर्गलाएँ टूट गईं। शिलाएँ व जंजीरें चूर-चूर हो गईं और यज्ञ स्थान का मार्ग दिखाई देने लगा।

उस यज्ञ के स्थान पर होम करने का निश्चय कर बैठा हुआ इन्द्रजित् दिखाई दिया। वह जारण-मारण अभिचार के ध्यान में मग्न था। उसका शरीर मनुष्य के रक्त से सना हुआ था। वह लाल रंग के वस्त्र पहने था। उसके मस्तक पर रक्त चन्दन था, गले में लाल फूलों की मालाएँ थीं। उस समय वह प्रेत पर आसन जमाये बैठा था। मनुष्य के रक्त का हवन, धूप-दीप, अग्नि ये सभी यजमान के लिए

विघ्नसूचक थे। उस यज्ञ के द्वार खुलते ही वानरों का समुदाय रामनाम की गर्जना व जय-जयकार करते हुए अन्दर घुस गया। विभीषण, सौमित्र व वानरवीरों को महाक्रूर इन्द्रजित् होम में मग्न ध्यानस्थ अवस्था में दिखाई दिया। छठे दिन मृत तीन बालकों को लाकर उनके शीश से पात्र बनाकर इन्द्रजित् होम कर रहा था। उनकी आँतें निकाल कर कंकाली व कराली की पूजा कर रहा था। नवजात शिशुओं सहित माताओं को पकड़ कर लाया। रजस्वला मातंग स्त्री को धोबिन के कपड़े धोने के पानी से नहलाया। वह काली भेड़ें तथा अनेक प्राणियों को अभिमन्त्रित कर अभिचार होम में हवन करने के लिए ले आया। श्रीराम नाम की गर्जना होते ही अभिमन्त्रित जीवों की श्रेणियाँ मुक्त हो गईं। इस प्रकार हनुमान ने उन पर कृपा की। इन्द्रजित् ध्यानस्थ अवस्था में एकाग्रचित्त होकर होम कर रहा था। उसका होम समाप्त हुए बिना ही हनुमान उसे बीच में ही उठा देंगे। इन्द्रजित् को उठाये जाते ही वीर लक्ष्मण उससे युद्ध करने के लिए तैयार होंगे। उनका अत्यन्त भीषण युद्ध होगा। दोनों ही विलक्षण रणकुशल वीर होने के कारण, उनका भीषण संग्राम होगा। मुख से राम-नाम का स्मरण करने से श्रीराम कार्य पूर्ण करने की क्षमता प्रदान करते हैं।

अध्याय ३८

[इन्द्रजित् व लक्ष्मण का युद्ध]

वानर वीरों को विवर में प्रवेश करने पर इन्द्रजित् दिखाई दिया। उस समय वह ध्यानस्थ मुद्रा में बैठा था। जप करते हुए निष्ठापूर्वक होम कर रहा था। वानरों द्वारा उसे खींचे जाने पर भी उसने प्रेतासन नहीं छोड़ा। उसका ध्यान भंग नहीं हुआ। वह निष्ठापूर्वक जप की आवृत्ति व होम कार्य करता रहा। वानरों के द्वारा जोर से वार करने पर भी उसका ध्यान नहीं बँटा। उसका यज्ञ, हवन, जप, सब चल रहा था। वानरों के उसके कान में जोरों से चिल्लाने पर भी उसका ध्यान विचलित नहीं हुआ। वह होम के विधि-विधान में व्यस्त था। वानरों द्वारा अनेक प्रयत्न करने पर भी इन्द्रजित् का ध्यान तनिक मात्र भी नहीं बँटा। उसने आहुति देने का कार्य रोका नहीं, उसका होम बाधित नहीं हुआ।

इन्द्रजित् का ध्यान भंग नहीं हो रहा है, यह देखकर विभीषण ने मायिक मन्दोदरी निर्मित की। वह विलाप करती हुई होमशाला में, जहाँ इन्द्रजित् बैठा था, वहाँ आई। वह दीर्घस्वर में विलाप करती हुई कह रही थी– "दशानन युद्ध में मारा गया, अब क्यों ध्यानस्थ मुद्रा में बैठे हो ? अपने नेत्र खोलकर पिता के दर्शन करो। मेरे लिए रावण की हत्या का बदला अवश्य लेना। यही कहने के लिए मैं यहाँ आई हूँ और तुम मूर्खों की तरह ध्यानमग्न होकर अभिचार कर रहे हो। उधर रावण का शव पड़ा है। देखो, ये दस सिर तुम्हारे सामने हैं।" यह कहकर वह जोर से विलाप करते हुए कहने लगी– "मैं अत्यन्त दुःखी हूँ। तुम महामूर्खों की तरह अब यह अभिचार यज्ञ क्यों कर रहे हो ? उधर रावण का शरीर चील, गिद्ध आदि विदीर्ण कर रहे हैं। तुम केवल उनके बड़े पुत्र शेष बचे हो परन्तु तुम उनका अन्तिम संस्कार नहीं कर रहे हो। यह अभिचार विधान बन्द कर पिता का पिंडदान करो।" यह कहने पर भी इन्द्रजित् का ध्यान भंग नहीं हुआ। उसका होम-हवन चलता रहा।

होम द्वारा रथ-प्राप्ति; हनुमान द्वारा नाश– होमकुंड से अर्जित रथ, घोड़ों सहित ऊपर आया तब विभीषण तिलमिला उठा। वह बोला– "यह इन्द्रजित् विचलित नहीं हो रहा, उसके कर्मों का विध्वंस

नहीं किया जा सकता। अब होम से घोड़ों सहित रथ प्रकट हुआ है। वह सबके प्राण हर लेगा। इतनी सात अड़चनें पार कर यक्षिणी का वटमूल खोल कर हम सब यहाँ आये हैं। वह सब परिश्रम व्यर्थ गया। अब होम से रथ भी प्रकट हो गया है।'' यह कहते हुए विभीषण आक्रोश करने लगे। वे आगे बोले– ''श्रीराम को वचन देकर मैं सौमित्र को यहाँ ले आया, परन्तु अब होम से रथ प्रकट होने पर इन्द्रजित् की मृत्यु संभव नहीं है। उलटे इन्द्रजित् ही अब रथ में बैठकर सौमित्र का घात करेगा। अब उसका प्राणान्त समीप है।'' ऐसा कहते हुए विभीषण दुःख प्रकट करने लगा। इतनी देर तक हनुमान शान्त बैठे थे परन्तु शरणागत विभीषण के दुःखी होते ही हनुमान कृतान्त काल सदृश क्रोधित हो उठे। वह बोले– ''हे विभीषण, श्रीराम ने तुम्हें मुझे सौंपा है। तुम्हारा यहाँ कौन वध कर सकता है। व्यर्थ में ही क्यों भयभीत हो रहे हो ? अरे शरणागत का वध हो जाए तो हमारे जीवन एवं पुरुषार्थ को धिक्कार है।' इतना कहकर हनुमान कृतान्त काल सदृश क्रुद्ध हो उठे। उनके केश थरथराने लगे। उन्होंने अपनी पूँछ को गोल घुमाया तथा होमकुंड में छलाँग लगाई। उस समय यज्ञ कुंड से घोड़ों एवं शस्त्र समेत रथ बाहर आ रहा था। यह देखकर हनुमान ने लात मारकर रथ को पाताल भेज दिया। तत्पश्चात् शीघ्र गति से छलाँग लगाकर क्रोधपूर्वक इन्द्रजित् को प्रताड़ित किया। इन्द्रजित् घबरा गया। उसका यज्ञ कर्म भंग हो गया। हनुमान ने स्रुवा हाथ से छीन ली। रक्त पात्र पलट दिये। यह देखकर राक्षस-गण घबरा गए। कर्म पूर्ण होने के बीच में ही मारुति कैसे आ गया, यह सोचते हुए इन्द्रजित् ने उस विवर की ओर दृष्टि डाली। वहाँ उसे अद्‌भुत दृश्य दिखाई दिया। निडर वीर, धैर्यवान् एवं अचूक शर संधान करने वाला योद्धा सौमित्र विवर में वानर-वीरों के समूह के साथ विद्यमान था। अत्यन्त कठिन मार्ग तथा सात अवरोधों को पार कर ये सभी विवर में कैसे आये, इसका वह विचार करने लगा। तभी उसे विभीषण दिखाई दिये। 'हमारे इस गुप्त स्थान को इसी ने दिखाया होगा। यह हमारे कुल का नाश करने वाला है।' तभी हनुमान ने इन्द्रजित् से कहा– ''युद्ध में इन्द्र को जीवित पकड़ने का तुम्हें गर्व है तो आज तुम अपना पुरुषार्थ दिखाओ। इतना घमंड होकर भी अन्त में गुहा में छिप जाते हो, इससे तुम्हारा पुरुषार्थ पता चलता है। अभिचार करने के कारण तुम कपटी हो, यह भी ज्ञात होता है। तुमसे युद्ध करने के लिए वीर लक्ष्मण आये हैं। धनुष पर बाण सुसज्जित कर तुम अपना पराक्रम दिखाओ।''

यज्ञकर्म सम्पूर्ण हुए बिना उठने के लिए बाध्य होना पड़ा, इस कारण इन्द्रजित् छटपटा रहा था। इसके अतिरिक्त होमकुंड से प्रकट हुए रथ को भी हनुमान ने हताहत कर दिया। 'हनुमान के समान शत्रु इस संसार में नहीं मिलेगा। राक्षसों का नाना प्रकार से वध करते हुए यहाँ तक आ पहुँचा। उसके कारण यज्ञ भंग हो गया। मेरी मृत्यु अब अटल है। अतः अब लक्ष्मण से निर्णायक युद्ध करूँगा।' ऐसा मन ही मन कहते हुए इन्द्रजित् होम विवर की अर्गलाओं को, शृंखलाओं को दूर करते हुए शीघ्र युद्ध के लिए वट-मूल के पास लक्ष्मण के समीप आ खड़ा हुआ। इन्द्रजित् वापस विवर में न जा सके, इसके लिए हनुमान विवर के प्रवेश द्वार पर खड़े हो गए। इन्द्रजित् ने अपने पहले रथ का उपयोग करने का निश्चय किया। यह रथ उसकी इच्छानुसार चलता था। सूर्यतेज सदृश चमकता हुआ, घोड़े जुते हुए तथा अलंकृत ध्वज से युक्त वह रथ था। स्वयं इन्द्रजित् ने मुकुट, कुंडल, मेखला, वीरकंकण, कंठ माला, कवच इत्यादि परिधान किया था। वह हाथों में खड्‌ग लिये हुए था। सारथी ध्वजा, छत्र तथा पताकाओं से सुशोभित रथ, आगे ले आया। इन्द्रजित् उस रथ पर आरूढ़ हुआ। उसने आवेशपूर्वक रणगर्जना की। सामने लक्ष्मण को देखकर मेघनाद बोला– ''तुम और मैं दोनों आज निर्णायक युद्ध करेंगे। आज या तो तुम्हारे

हाथों मेरा वध होगा या मेरे हाथों तुम्हारा वध होगा, यह निश्चित है।" इतना कहकर इन्द्रजित् जब यह सोच रहा था कि इतने अवरोध पार कर ये सब वीर यहाँ तक आये कैसे, तब उसे विभीषण दिखाई दिया।

इन्द्रजित् द्वारा विभीषण पर दोषारोपण— विभीषण को देखते ही इन्द्रजित् क्रोध से लाल हो गया। वह अपने चाचा की अनेक प्रकार से निर्भर्त्सना करने लगा। वह बोला— "साधु, सुहृद व सज्जन समझ कर रावण ने तुम्हें युवराज पद दिया। सभी में ज्येष्ठत्व का सम्मान दिया। राक्षस तुम्हारी वन्दना करने लगे। प्रधान व कुमार सेना सहित तुम्हारे आधीन हो गए। इतना करने के पश्चात् भी तुम रावण को छोड़कर राम की शरण में चले गये। चाचा, पिता सदृश होता है परन्तु तुमने रघुनाथ से मिलकर अपने अपत्य का अर्थात् मेरा वध करने के लिए गुप्त स्थान दिखाया। हमारी सहृदयता का त्याग कर श्रीराम की शरण जाकर सम्पूर्ण कुल का सर्वनाश करने के लिए हमारे मर्मस्थल उन्हें बताते हो। किसी वृक्ष से जन्म लिया डंडा, कुल्हाड़ी से लगकर अपने ही कुल अर्थात् वृक्ष को काट डालता है। उसी प्रकार तुमने किया है। तुमने जाति के धर्म की रक्षा नहीं की, कुल की रूढ़ि का पालन नहीं किया; तुम अत्यन्त पापी हो, तुम्हारा जीवन निन्दनीय है। युवराज पद त्याग कर तुम राम के सेवक बन गए। तुम ऐसे शठ, दुष्ट व नपुंसक हो तथा दंभपूर्वक अपने साधुत्व का प्रदर्शन करने वाले हो।

विभीषण का प्रत्युत्तर; इन्द्रजित् का आह्वान— इन्द्रजित् के निन्दापरक वचन सुनकर धर्मात्मा विभीषण धर्मपूर्ण वचन कहते हुए बोले— "हे इन्द्रजित्, तुम्हें मेरी विचारसरणी ज्ञात होने पर भी अकारण मेरी निंदा कर रहे हो। तुम मदांध व दुरभिमानी हो। तुम्हारे अन्दर संग्राम का सामर्थ्य नहीं है। तुम केवल कपटी हो। जारण-मारण ही तुम्हारा शील है। तुम पापी हो। जारण-मारण के द्वारा तुम रघुनाथ को मारना चाहते हो। अतः तुम्हारा वध करने से पाप नहीं लगेगा। जो दूसरे का द्रव्य अपहरण करने में, परस्त्री की अभिलाषा करने में और सुहृदों से द्वेष करने में पूर्णता का अनुभव करते हैं, उन्हें मृत्यु का भागी बनना पड़ता है। सीता की अभिलाषा करने के कारण सभी पापी नष्ट हो गए। तुमने परमात्मा रघुनाथ से द्वेष कर अपना सर्वनाश किया। सखा व बंधु अगर अनहित कर रहे हों तो उन्हें अपना शत्रु समझना चाहिए और जो हितकारी हो, निरपराधी हो, उसे अपना निकट सम्बन्धी व सखा समझना चाहिए। अहित देह की, देह के साथ जन्मी व्याधि होती है और उसकी बाधा स्वयं को ही होती है। हित औषधि सदृश होता है, जो समस्त आधि व व्याधियों का नाश करता है। तुम सब मेरे सगे सम्बन्धी हो। मुझे लात मारकर मेरा भला ही किया, जिससे मैं रघुनाथ की शरण में आया। परस्त्री और परद्रव्य का अपहरण कर रावण पाप में डूबा हुआ है। तुम सभी पूर्ण पापी हो, उसी पाप के कारण तुम्हारी मृत्यु होगी।"

विभीषण के वचन धर्म पर आधारित व अति तीक्ष्ण थे। उन्हें सुनकर इन्द्रजित् क्रोधित होकर बोला— "लंकाधीश त्रिभुवन की सम्पत्ति हर कर लाता था व तुम उसमें से अपना हिस्सा ले लेते थे और प्रसन्नता का अनुभव करते थे। ऐसा करते समय पर-द्रव्य के हरण को पापाचरण नहीं कहते थे। तुम पूर्ण शठ हो। जिस प्रकार वालि का वध कर राम ने सुग्रीव को राज्य दे दिया। उसी प्रकार राज्य के लोभ से तुम कपटी व दुष्ट, श्रीराम की शरण में चले गये। सर्वत्र विभीषण की साधु-संत के रूप में ख्याति है परन्तु अन्त में राज्य के लोभ से तुम श्रीराम की शरण में गये।" इन्द्रजित् जब विभीषण की निंदा कर रहा था, तब लक्ष्मण आवेशपूर्वक वहाँ आये। धनुषबाण सज्ज कर इन्द्रजित् का प्राणान्त करने के लिए वे आगे बढ़े। इन्द्रजित् ने सामने लक्ष्मण को देखकर गर्जना की— "मुझसे युद्ध करने के लिए तुम्हारे अन्दर पर्याप्त पराक्रम है ही कहाँ ?" फिर धनुष को हाथों में लेकर गर्जना करते हुए बोला— "तुम

जो-जो लोग यहाँ आये हो, उन सभी का प्राणान्त मेरे हाथों होने वाला है। सर्वप्रथम मैं लक्ष्मण व विभीषण का वध करूँगा। वज्रदेही हनुमान को मारूँगा। निर्णायक बाण चलाकर अंगद, नल, नील, जाम्बवंत एवं अन्य वानर वीरों को बाणों से क्षत-विक्षत कर दूँगा। संग्राम में सबको मार डालूँगा। मेरा धनुष-बाण कभी व्यर्थ नहीं जाता। यह मेरा निर्णायक युद्ध है। मैंने राम व लक्ष्मण दोनों को दो बार शर बँधन में बाँधा है; उसे भूलकर ये पुनः युद्ध करने आये हैं।''

लक्ष्मण द्वारा इन्द्रजित् का उपहास– इन्द्रजित् के गर्वीले वचन सुनकर उसका गर्वहरण करने के लिए लक्ष्मण उसका उपहास करते हुए बोले– ''मात्र शब्द रूपी बाणों के आघात से कोई शत्रु को नहीं मार सका है। तुम्हारा पराक्रम केवल तुम्हारे मुख तक सीमित है। शूर का मुख्य लक्षण प्रत्यक्ष युद्ध करना है। तुम तो मात्र बोलने में शूर हो। तुम्हारे शब्द ही तुम्हारा घमंड हैं, व्यर्थ बोलने का तुम्हारे पास अत्यधिक पराक्रम है। प्रत्यक्ष युद्ध करना तुम्हें नहीं आता। इसीलिए कपट कर भाग जाते हो। अँधेरे में छिपकर तुमने हमारे ऊपर बाणों से वार किया, वह तो चोरी का मार्ग था। वे वीरता के लक्षण नहीं थे। सामने खड़े रहकर युद्ध करने का सामर्थ्य तुम्हारे पास नहीं है। मायावी सीता का वध कर तुम विवर में छिप गए। अतिकाय व मकराक्ष ने सामने खड़े होकर युद्ध किया व क्षत्रिय धर्म का पालनकर मृत्यु स्वीकार की। तुम पूर्ण कपटी हो। जिसे तुमने शरबन्धन में बाँधा था, वह लक्ष्मण तुम्हारे सामने खड़ा है। अब अपना पराक्रम दिखाओ, व्यर्थ की बड़बड़ किस काम की ?'' लक्ष्मण के वचन सुनकर इन्द्रजित् अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा।

इन्द्रजित् व लक्ष्मण का युद्ध– जिस प्रकार सर्प विष उगलता है, उसी प्रकार इन्द्रजित् ने अनेक उग्र बाण धनुष पर चढ़ाकर लक्ष्मण पर चलाये। उनके शरीर से रक्त बहने लगा। लक्ष्मण को अभेद्य कवच का संरक्षण होने के कारण उसे बाण विद्ध नहीं कर सकते थे। रक्तरंजित लक्ष्मण शोभायमान हो रहे थे। उन्होंने रण गर्जना की। लक्ष्मण के सर्वांग से रक्त बहने के कारण वे अग्नि सदृश तेजस्वी दिखाई दे रहे थे। उन्होंने राक्षसों को पैरों तले कुचल दिया। लक्ष्मण के शरीर से रक्त बहता हुआ देखकर इन्द्रजित् कहने लगा– ''मैं महान योद्धा हूँ। मैंने लक्ष्मण को बाणों से विद्ध कर दिया है। उसी प्रकार तुम जो लोग यहाँ आये हो, उन सभी को बाणों से विद्ध कर लक्ष्मण सहित सबका प्राणान्त कर दूँगा। मेरे स्वर्ण-पत्र से बने बाण सबका प्राण हर लेंगे।'' इन्द्रजित् सिंह-सदृश गर्जना करते हुए यह बोला। उसकी गर्जना सुनकर लक्ष्मण बोले– ''तुम्हारे अन्दर पराक्रम नहीं वरन् मात्र घमंड विद्यमान है। तुमने युद्ध में ऐसी कौन सी विजय प्राप्त की है, जिसके लिए गर्वपूर्वक इतना गरज रहे हो।'' इन्द्रजित् द्वारा घमंडपूर्वक की गई गर्जना सुनकर लक्ष्मण ने पंचपर्वी बाण लेकर आवेशपूर्वक चलाये। लक्ष्मण ने धनुष पर बाण चढ़ाने व धनुष की प्रत्यंचा कानों तक खींचने में जो गति दिखाई, उससे उनका प्रताप व आवेश अभिव्यक्त हुआ।

लक्ष्मण के बाणों ने अभेद्य कवच भेद कर इन्द्रजित् को घायल करने वाला वार किया, जिससे छटपटाते हुए उसने लक्ष्मण पर असंख्य बाणों की वर्षा की। इन्द्रजित् के बाणों के प्रत्युत्तर में लक्ष्मण ने भी असंख्य अकाट्य बाण चलाये। दोनों ही महाशूर योद्धा संग्राम-कुशल थे। वे परस्पर चपलतापूर्वक बाणों की वर्षा कर रहे थे। दोनों ही एक दूसरे का वध करने के लिए आतुर थे।

लक्ष्मण व इन्द्रजित् दोनों ही बलवान्, विख्यात वीर, प्रतापी, संग्राम करने में समर्थ, धनुर्विद्या निपुण, शस्त्रास्त्र प्रवीण, अत्यन्त कुशल योद्धा थे, जिसके कारण उनका भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया। वे दोनों ही महावीर, महाशूर तथा परम धैर्यवान् थे। दोनों का पुरुषार्थ प्रसिद्ध था। उन्हें युद्ध की थकान नहीं

होती थी। दोनों रण-मद में चूर व संग्राम के लिए तत्पर थे। उनमें से एक सत्यशील था तो दूसरा कपट मूर्ति, एक में अगाध शान्ति थी तो एक कपट करने में निपुण था। दोनों का भीषण युद्ध देखने के लिए सुरवर, यक्ष, गंधर्व, किन्नर, विद्याधर, दैत्य, दानव, मानव, पितर, देव, ऋषि, सनत्कुमार इत्यादि एकत्र हुए। इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम व सोम भी युद्ध देखने हेतु आये। ब्रह्मा भी शीघ्र उपस्थित हुए। शंकर उमा एवं भूतगणों के परिवार सहित उपस्थित हुए। युद्ध में लक्ष्मण की रक्षा करने के लिए सभी के आगमन से, उनके विमानों से आकाश भर गया। ऋषियों ने विजय मन्त्र का पाठ किया। लक्ष्मण भीषण योद्धा है, यह समझते हुए क्रोधित होकर लक्ष्मण पर निशाना साधते हुए उसने सात बाण चलाये। हनुमान पर अत्यन्त भीषण दस बाणों से वार किया। इन्द्रजित् बिभीषण पर अत्यन्त क्रुद्ध था अतः उसे मारने के लिए सैकड़ों बाण चलाये। तब बिभीषण की रक्षा के लिए उसकी ओर आने वाले सभी बाण लक्ष्मण ने ऊपर ही तोड़ डाले। इन बाणों को काटने पर उन्होंने तनिक भी गर्व का अनुभव नहीं किया। वे गंभीरतापूर्वक युद्ध करते रहे। बिभीषण शरणागत होने के कारण उनकी रक्षा के लिए लक्ष्मण अत्यन्त सतर्क थे। इन्द्रजित् को लक्ष्मण कह रहे थे कि "तुम्हारे बाण फूलों सदृश हैं। तुम्हारे अन्दर तनिक मात्र भी पराक्रम नहीं है। तुम्हारा शौर्य कपट के कारण भस्म हो गया है। तुममें न तो सामर्थ्य है, न ही शक्ति; फिर भी व्यर्थ में अपनी बड़ाई करते हो। तुम निश्चित ही अत्यन्त निर्लज्ज हो।" ऐसा कहते हुए इन्द्रजित् का वध करने के लिए लक्ष्मण ने अत्यन्त रण-कौशल से भीषण बाणों की वर्षा की।

इन्द्रजित् रथ पर आरूढ़ था। लक्ष्मण ने उस पर बाण चलाकर उसका सुन्दर स्वर्ण कवच नीचे गिरा दिया। उस पर पुनः बाणों की वर्षा कर उसके कवच को तोड़ डाला। वे टूटे हुए स्वर्ण कण भूमि पर आकाश के तारों के सदृश प्रतीत हो रहे थे। कवच तोड़ लक्ष्मण ने इन्द्रजित् को घायल कर दिया। उसके शरीर से रक्त प्रवाहित होने लगा। वज्र सदृश कठोर बाण लक्ष्मण ने इन्द्रजित् के मर्मस्थल पर चलाये, जिससे वह मूर्च्छित हो गया। उसके प्राण शरीर में शिथिल हो गए, इन्द्रियाँ तटस्थ हो गई और वह भूमि पर गिर पड़ा। वह अचेतन हो गया, उसकी स्मृति क्षीण हो गई। वह भूमि पर चार घण्टे मूर्च्छित पड़ा रहा। जब उसकी चेतना वापस लौटी, तब रणभूमि में अपने समक्ष सौमित्र को खड़े देखा। हाथों में धनुष बाण धारण किये हुए निडर, अंतक एवं महाकाल के साथी के सदृश वह उसके सामने खड़े थे। लक्ष्मण का उत्साह एवं युद्ध का आवेश देखकर इन्द्रजित् भय से काँपने लगा। उसका युद्ध का घमंड चूर-चूर हो गया। लक्ष्मण का धैर्य देखकर कंपित इन्द्रजित् गुप्त हो गया व कपट का विचार करने लगा। लक्ष्मण को भ्रमित करने के लिए उसने असंख्य बाणों की वर्षा की। लक्ष्मण ने भी बाण वर्षा की। आकाश बाणों से भर गया। वे दोनों महावीर बाणों की वर्षा करते हुए युद्ध करने लगे। रण-क्षेत्र में धूल उड़ने लगी। आकाश व पृथ्वी बाणों से व्याप्त हो गई, सर्वत्र बाण दिखाई देने लगे; चन्द्र, सूर्य बाणों से आच्छादित हो गए। वे दोनों वीर युद्ध की अनेक युक्तियों-प्रयुक्तियों का प्रयोग करते हुए धनुर्विद्या के कौशल का प्रयोग कर निःशंक रूप से युद्ध कर रहे थे। वे दोनों वीर एक दूसरे का वध करने के लिए व शस्त्रास्त्रों का निःपात करने के लिए शस्त्रास्त्र चला रहे थे।

इन्द्रजित् का कपट; मेघों की ओट से युद्ध— लक्ष्मण रणोन्मत्त, साहसी, पुरुषार्थ से परिपूर्ण महावीर है, यह जानकर इन्द्रजित् ने कपट करने का निश्चय किया। उसने बाणों से सूर्य किरणों को ढँक लिया और रणभूमि में अंधेरा हो गया। तब उसने रथ, घोड़े सारथी को अदृश्य कर दिया। अनेक मेघों की पीठ पर आरूढ़ होकर वह वहाँ से भीषण बाण चलाने लगा। इन्द्रजित् गर्जना करते हुए बोला— "अब

मैं शीघ्र ही-वानरगणों सहित लक्ष्मण का वध करूँगा। जिस मार्ग से तुम लोग आये हो, वह मार्ग अर्थात् लंकापथ मैंने बाणों से आच्छादित कर दिया है। अब तुम रघुनाथ के पास नहीं पहुँच पाओगे। तुम्हारा प्राणान्त मेरे हाथों से होगा। श्रीराम से भेंट का अवसर भी तुम्हें नहीं मिलेगा, तुम मेरी बाण-वृष्टि से मर जाओगे।" इन्द्रजित् की गर्जना सुनकर विभीषण भयभीत होकर कहने लगे– "यह राक्षस कपट कर रहा है। वह मेघों की पीठ पर चढ़ गया है। वीर लक्ष्मण उसका वध कर देता परन्तु इन्द्रजित् कपटपूर्वक युद्ध रोककर मेघों पर चला गया। अब उसका सामना होना कठिन है। उसके बाण हमें लगेंगे। लक्ष्मण अब कैसे बच पाएँगे ? इन्द्रजित्, सौमित्र का युद्ध में वध कर देगा। सभी वानरों को मार डालेगा। अब हमारा प्राणान्त निकट है।''

विभीषण का आक्रोश सुनकर हनुमान की स्फूर्ति जागृत हुई। वह बोले– "अगर शरणागत की मृत्यु हो जाय तो मेरा जीवन् व्यर्थ है। मेरा पराक्रम व्यर्थ है। श्रीराम ने मेरे भरोसे पर शरणागत विभीषण और लक्ष्मण को भेजा है। मेरे जीवित होते हुए कौन वध कर सकता है।'' इस प्रकार शरणागत विभीषण को आश्वस्त करते हुए मारुति ने आवेशपूर्वक गर्जना की। तत्पश्चात् वे विभीषण से बोले– ''इन्द्रजित् मात्र कपट मूर्ति है, उसका बल मात्र कपट ही है। उसके लिए क्यों दुःख करते हो। मैं क्षणभर में उसका वध कर दूँगा।" हनुमान ने शीघ्र ही इन्द्रजित् का वध करने के लिए लक्ष्मण को हाथ पर उठाकर वेगपूर्वक अपना आकार बढ़ाया। उस समय वे अत्यन्त उग्र व कठोर दिखाई दे रहे थे। हनुमान, लक्ष्मण को वहाँ ले गए, जहाँ से इन्द्रजित् बाण चला रहा था। तत्पश्चात् उन्होंने प्रचंड गर्जना की। वह गर्जना सुनकर एवं प्रत्यक्ष मारुति एवं लक्ष्मण को वहाँ देखकर इन्द्रजित् चौंक गया। अब इन्द्रजित् व लक्ष्मण का निर्णायक युद्ध पुनः प्रारम्भ हो गया।

अध्याय ३९

[लक्ष्मण द्वारा इन्द्रजित् का वध]

इन्द्रजित् के मेघों की पीठ पर जाने पर भी हनुमान ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। उस महाकपटी को मारने के लिए वे तत्परतापूर्वक वहाँ पहुँच गए। इन्द्रजित् का वध करने के लिए हनुमान लक्ष्मण को हाथों में उठाकर स्वयं के शरीर को मेघों तक बढ़ा लिया। वानर सेना समेत शरणागत विभीषण नीचे खड़े थे। इन्द्रजित् कपटपूर्वक उनका वध न कर सके, इसीलिए हनुमान ने उनकी रक्षा के लिए उन्हें तनिक भी कष्ट दिये बिना अपनी पूँछ के घेरे में बैठाकर उस वज्रचक्र द्वारा उन्हें रक्षा प्रदान की। अब वे इन्द्रजित् का वध करने के लिए उत्सुक हो उठे।

लक्ष्मण व इन्द्रजित् आमने-सामने– लक्ष्मण धनुष बाण लेकर युद्ध की मुद्रा में हनुमान के हाथ में खड़े थे। हनुमान लक्ष्मण सहित इन्द्रजित् पर कूद पड़े। उन्हें देखकर इन्द्रजित् चकरा गया। वह सोचने लगा– 'यह लक्ष्मण यहाँ कैसे आ पहुँचा ?' हनुमान उसे लेकर आये हैं, यह देखकर इन्द्रजित् भय से काँपने लगा उसने सोचा– ''यह सब मारुति का ही पराक्रम है। मुझसे युद्ध करने के लिए वह ही लक्ष्मण को ले आया है। सुरवरों को पूर्णत: अगम्य मेरे इस गुप्त स्थाने पर लक्ष्मण को मारुति लाया है। मारुति मेरा कट्टर शत्रु है।" लक्ष्मण, इन्द्रजित् से बोले– "युद्ध छोड़कर भाग आये, तुम्हारे पास मात्र

छलकपट का ही पराक्रम है। तुम कहते हो कि तुमने इन्द्र पर विजय प्राप्त की है और यहाँ तो युद्ध से भाग जाते हो। तुम्हें तनिक भी लज्जा नहीं है। तुम भाग कर दुर्गम स्थल में छिप जाते हो परन्तु हनुमान का यह स्वभाव धर्म है कि जो भी दुर्गम है, उसे सरल व सुगम कर हमें दिखाना। अब उठो और युद्ध करो," इन्द्रजित् का इस प्रकार उपहास करते हुए लक्ष्मण ने उसके मर्मस्थल पर चोट की। इन्द्रजित् कुछ बोल न सका। वह तुरन्त धनुष बाण सज्जकर युद्ध के लिए तैयार हुआ। लक्ष्मण भी उससे युद्ध करने के लिए धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर निर्वाण बाण चलाने के लिए तैयार हुआ। उन दोनों की ओर देखकर ऐसा लग रहा था, मानों एक हाथी दूसरा सिंह हो, एक नर दूसरा नरहरि अथवा एक मुर हो तो दूसरा मुरारी हो। अथवा एक सर्प हो एक सपेरा हो, एक त्रिपुर एक त्रिपुरारी अथवा एक शंबर एक शंबरारि- इस प्रकार वे दोनों प्रतीत हो रहे थे। उन दोनों का युद्ध प्रारम्भ हुआ।

लक्ष्मण व इन्द्रजित् द्वारा चलाये गए बाणों से आकाश व्याप्त हो गया। पृथ्वी पर बाण वृष्टि के कारण बाणों का ढेर हो गया। वे दोनों वीर अत्यन्त चपल व कुशल योद्धा थे। एक दूसरे का प्राणान्त करने के लिए वे अत्यन्त अद्भुत रीति से घात-प्रतिघात कर रहे थे। दोनों वीर संग्राम में निपुण थे, शस्त्रास्त्रों में पारंगत थे। वे दोनों आवेशपूर्वक युद्ध कर रहे थे। इन्द्रजित् के भीषण बाणों को लक्ष्मण ने तृणवत् कर दिया। लक्ष्मण के भयंकर बाणों से इन्द्रजित् का सम्पूर्ण शरीर घायल हो गया। जिस प्रकार पर्वत की पीठ पर तृण दिखाई देते हैं। उसके शरीर से रक्त प्रवाहित हो रहा था। वह संत्रस्त हो चुका था। उसका शौर्य, शक्ति, शस्त्रास्त्रविषयक ज्ञान, युद्ध-कौशल, सबको लक्ष्मण ने व्यर्थ कर दिया और युद्ध में ख्याति अर्जित की। 'सौमित्र वीर योद्धा है। सामने युद्ध करने पर वह प्राण हर लेगा।' यह विचार कर इन्द्रजित् ने लक्ष्मण को वश में करने के लिए कपट-कौशल का प्रयोग करने का निश्चय किया। उसने रथ व सारथी को आकाश में छोड़ दिया। स्वयं गुप्त रहकर अदृश्य रूप से बाण चलाकर युद्ध में अकाट्य वार करने लगा।

हनुमान द्वारा इन्द्रजित् का कपट व्यर्थ करना– इन्द्रजित् विभीषण का वध करने के लिए गुप्त रूप से बाण चला रहा था परन्तु हनुमान सतर्क थे। उन्होंने अपनी पूँछ से वे बाण काट डाले। पूँछ के वज्रकवच में उन्होंने विभीषण को सुरक्षित रखा हुआ था। विभीषण का वध न कर पाने के कारण इन्द्रजित् अस्वस्थ होकर छटपटा रहा था। हनुमान को प्रमुख शत्रु मानकर उसका अन्त करने के लिए इन्द्रजित् का सारथी गुप्त रूप से दौड़ा। वह गदा प्रहार करने वाला ही था कि तभी हनुमान ने लात मारकर गदा को चूर-चूर कर दिया। सारथी भूमि पर गिर पड़ा परन्तु शीघ्र ही वह गुप्त होकर भागा और रथ में जा छिपा। अतः उसके प्राण बच गए। हनुमान का वध करने के लिए आने वाला सारथी गुप्त हो जाने के कारण लक्ष्मण उसका वध करने के लिए युद्ध में व्यस्त हो गए। हनुमान व लक्ष्मण दोनों युद्ध में व्यस्त थे, तभी इन्द्रजित् ने पुनः कपट करना प्रारम्भ किया। उसके रथ की घरघराहट की आवाज पश्चिम से आती थी और घोड़ों की हिनहिनाहट उत्तर दिशा से सुनाई देती थी। बाण दक्षिण की ओर से छूटते थे तो सिंहनाद पूर्व की ओर से सुनाई देता था। इसके कारण वह कपटी इन्द्रजित् किस स्थान पर है, यह दिखाई नहीं दे रहा था। लक्ष्मण चिन्तित हो उठे। हनुमान को क्रोध आ गया। वे अपनी पूँछ को आकाश तक ले गए तथा घोड़ों सहित रथ का पता लगा लिया। उसके समक्ष कपट, धोखा, पलायन इत्यादि कुछ भी नहीं चल पा रहा था। अत्यन्त गुप्त रूप से आकाश में विद्युत सदृश चमकता हुआ रथ पूँछ की छोर से बाँध कर हनुमान ने युद्ध में उसे प्रकट कर दिया। जिससे इन्द्रजित् का कपट रुक गया, रथ की गति

अवरुद्ध हो गई। उसके अभिचारिक टोने-टोटके सब व्यर्थ हो गए। यज्ञ की ओर जाने वाला मार्ग रुक गया। रावण के दर्शन, लंका जाना, प्राण बचाना, ये सब उसके लिए असंभव हो गया। यह समस्त पराक्रम हनुमान की पूँछ का था।

इन्द्रजित् के प्रमुख शत्रु हनुमान थे। इन्द्रजित् जब हनुमान पर वज्र से वार करता था तब वज्र टूट जाता था, हाथ लचक जाता था और इन्द्रजित् कराहने लगता था। वज्र के आघात का हनुमान पर असर न होता देख इन्द्रजित् दुःखी हो गया। वह चिन्तित होकर सोचने लगा– 'यहाँ से यज्ञ के मार्ग पर, लंका अथवा रावण के पास जाना असम्भव हो गया है। पूँछ से मैं स्पष्ट रूप से बाँधा गया हूँ। मेरा रथ अगर होता तो मैं चला जाता परन्तु हनुमान ने मुझे यहाँ बाँधकर रखा है। उसकी पूँछ के कारण युद्ध में मेरा प्राणान्त निश्चित है।' दूसरी ओर लक्ष्मण धनुष-बाण सज्ज कर युद्ध के लिए आये। इन्द्रजित् को सम्बोधित करते हुए युद्धोत्सुक गंभीर सौमित्र उपहासपूर्ण कठोर वचन कहते हुए इन्द्रजित् से बोले– "स्वयं को शूरवीर कहते हो और गुप्त स्थान पर जाकर छिपते हो। संग्राम करना छोड़कर कपट करते हो। तुम महापापी कपटमूर्ति हो।" यह कहते हुए लक्ष्मण ने रथ को तोड़ने के लिए अत्यन्त कठोर एवं अचूक बाण चढ़ाया।

लक्ष्मण द्वारा सारथी एवं घोड़ों का वध– इन्द्रजित् का रथ तोड़ने के लिए लक्ष्मण ने कनकपत्री बाण जो शौर्य के तेज से दैदीप्यमान था, धनुष पर चढ़ाया। उस बाण का निवारण करने के लिए इन्द्रजित् ने असंख्य बाण चलाये परन्तु वह भीषण अचूक बाण तनिक भी डिगा नहीं। चारों ओर से बाण वर्षा करने पर भी लक्ष्मण के बाण को अकाट्य देखकर इन्द्रजित् ने रथ का त्याग कर दिया। उसी क्षण बाणों से चारों घोड़े मारे गए। उन घोड़ों के मरकर भूमि पर गिरते ही तुरन्त सारथी को मारने के लिए लक्ष्मण ने धनुष पर बाण चढाया तथा उसे चलाने के लिए अत्यन्त आवेशपूर्वक प्रत्यंचा खींची। इन्द्रधनुष सदृश धनुष पर कालकल्पसदृश बाण को सुसज्जित देखकर सारथी काँपने लगा क्योंकि उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही कपट-मय था। सारथी ने मायावी कुशलता से भाग जाने का विचार किया परन्तु हनुमान की पूँछ से बाँधे जाने के कारण उसके लिए हिलना भी असंभव हो गया था। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से पूँछ द्वारा उसके हाथ पैर बँधे हुए नहीं दिखाई दे रहे थे तथापि उसे अपने स्थान से हिलना असंभव हो रहा था। यह कैसे हो रहा था, वह समझ नहीं पा रहा था। सारथी पाताल में जाने लगता तो वह पूँछ से ऊपर खींचा जाता, वेगपूर्वक आकाश में जाने लगता तो पूँछ से उसके सिर पर प्रहार होते। उसी समय लक्ष्मण के बाण से उसके प्राण हर लिये गए। उस बाण से सारथी के मारे जाने पर इन्द्रजित् शोक करने लगा। वह बोला– "सारथी का वध होने का तात्पर्य है मेरा पुरुषार्थ समाप्त हो जाना।" वह दुःखी होकर छटपटाते हुए बोला– "मेरा बड़प्पन, वीरता, शक्ति, शौर्य, औदार्य, सब समाप्त हो गया; अब युद्ध करने का धैर्य भी शेष नहीं बचा है।" अत्यन्त दुःखी होने के कारण दैन्यवश उसके नेत्रों से आँसू प्रवाहित होने लगे। उसका रथ टूटते ही वानर आनन्दपूर्वक राम-नाम की गर्जना करते हुए नाचने लगे। वानरों को गरजते देखकर अत्यन्त क्रुद्ध होकर इन्द्रजित् ने युद्ध में लक्ष्मण का वध करने के लिए भीषण बाणों की वर्षा की। लक्ष्मण ने भी उसका प्रत्युत्तर देते हुए क्रूर एवं भयंकर बाणों की वर्षा की। दोनों ही वीर अत्यन्त पराक्रमी थे, वे एक दूसरे के वश में नहीं हो रहे थे।

लक्ष्मण व इन्द्रजित् का युद्ध– लक्ष्मण व इन्द्रजित् दोनों वीर परस्पर एक दूसरे के प्राण लेने के लिए ज्वलंत बाण चला रहे थे तथा बाणों के साथ ही दौड़ते हुए वज्र मुष्टिका से प्रहार कर रहे थे।

एक दूसरे के द्वारा वज्रमुष्टिका से वार करने पर दूसरा कोहनी से प्रहार कर शत्रु को भूमि पर गिरा देता था। इस प्रकार उन वीरों का युद्ध चल रहा था। दोनों महाबली एक दूसरे से भिड़ जाते थे और पुनः भूमि से बाणों की वर्षा करने लगते थे। बाणों की भीषण वर्षा से रणभूमि बाण-मय हो गई। लक्ष्मण को युद्ध में वश में न होते देखकर इन्द्रजित् सोचने लगा-- 'लक्ष्मण वज्रकवच में सुरक्षित होने के कारण उसे बाणों से भेदा नहीं जा सकता' अतः इन्द्रजित् ने मस्तक मर्मस्थल होने के कारण, वहीं पर बाणों से प्रहार करने का निश्चय किया। उसके द्वारा मस्तक पर बाण मारते ही लक्ष्मण मूर्च्छित होकर गिर पड़े। उनकी स्मृति, स्फूर्ति सबका लोप हो गया। लक्ष्मण को इस प्रकार विकल पड़ा हुआ देखकर शीघ्र ही उसका वध करने के लिए इन्द्रजित् ने आवेशपूर्वक असंख्य बाण चलाये। वीर महाबली सौमित्र की केश-राशि में वे बाण जा घुसे। बाणों से समस्त शरीर विद्ध हो गया। वे हनुमान के हाथों पर जा गिरे; इन्द्रजित् यह देखकर गर्जना करते हुए बोला– "मैंने लक्ष्मण को रण-भूमि में धराशायी कर दिया है। अब मैं विभीषण को मारूँगा तब उसकी प्राण-रक्षा कौन करेगा ? इन्द्रजित् द्वारा विभीषण का वध करने की गर्जना सुनते ही लक्ष्मण में तुरन्त स्फूर्ति का संचार हुआ। उनके शरीर की विकलता समाप्त होकर सत्वावस्था प्राप्त हुई और वे शरणागत (अर्थात् विभीषण) के प्राणों की रक्षा के लिए उठ खड़े हुए।

श्रीराम-नाम का स्मरण करते ही लक्ष्मण के शरीर की विकलता दूर हो गई। एकाग्रमन से राम-नाम का स्मरण करने से देह सहित ही विदेहता की अनुभूति होती है। लक्ष्मण, विभीषण की रक्षा करने के लिए वज्र-पंजर में ही धनुष बाण लेकर सत्वर खड़े हो गए। वे हनुमान से बोले– "मेरी विकलता देखकर भयभीत न हो। हमें युद्ध में पीछे नहीं हटना है। यही मेरी तुमसे विनती है। युद्ध में पीछे हटने से सूर्यवंश की अपकीर्ति होगी। मेरा शौर्य श्रीराम का यश व कीर्ति सभी समाप्त हो जाएगी। तिलभर भी पीछे हटना, हमें दुर्बल सिद्ध करेगा। पीछे हट कर जीवित रहने की अपेक्षा मृत्यु श्रेष्ठ है।" लक्ष्मण के वचन सुनकर, उनके शौर्य से हनुमान सन्तुष्ट हुए। उन्होंने अत्यन्त आत्मीयतापूर्वक लक्ष्मण की नजर उतारी। घावों से जर्जर होते हुए भी लक्ष्मण ने धैर्य नहीं छोड़ा, जिससे वानर व हनुमान चकित हो गए। शरणागत विभीषण को अपनी ओट में लेते हुए इन्द्रजित् का वध करने के लिए लक्ष्मण कृतान्त काल सदृश क्रुद्ध होकर निर्णायक युद्ध के लिए तैयार हुए। तभी तीन बाण उनके मस्तक पर आ लगे और लक्ष्मण मूर्च्छित हो गए परन्तु तुरन्त सजग हो गए। उन बाणों के चिह्न मस्तक पर दिखाई दे रहे थे। उस पीड़ा को नगण्य मानते हुए तीन शिखरयुक्त पर्वत सदृश लक्ष्मण रणभूमि में सुशोभित हो रहे थे। रावण-पुत्र इन्द्रजित् मदोन्मत्त होकर आवेशपूर्वक युद्ध कर रहा था। सौमित्र ने उस पर मोरपंखों वाले बाण से वार किया। किसी ऊँचे पर्वत पर पुष्पों से लदा वृक्ष जिस प्रकार सुशोभित होता है, उसी प्रकार सुवर्णपंखी बाण लक्ष्मण के मस्तक पर सुशोभित हो रहे थे। इन्द्रजित् के शरीर में अनेक मोरपंखी बाण चुभे हुए थे, जिसके कारण वह पंख पसार कर नाचने वाले मोर के सदृश दिखाई दे रहा था। सौमित्र के बाण लगने से सन्तप्त होकर इन्द्रजित् ने पाँच अचूक बाण लेकर लक्ष्मण पर चलाये। इस प्रकार एक दूसरे पर वार करने, एक दूसरे के वार से बचने में वे दोनों उन्मत्त और व्यस्त थे। दोनों ही रक्तरंजित होकर वसंत-ऋतु के पलाश के वृक्ष सदृश शोभायमान हो रहे थे। दोनों एक दूसरे का वध करने के लिए वरद् बाण का प्रयोग कर निर्णायक युद्ध करने का प्रयत्न कर रहे थे।

लक्ष्मण व इन्द्रजित् का वरद् - बाणों से युद्ध– लक्ष्मण के प्राण लेने के लिए इन्द्रजित् ने यम द्वारा दिया गया वरद्-बाण जोड़कर अपना धनुष सुसज्जित किया व अपना प्राणान्त निकट जानकर

निर्णायक युद्ध प्रारम्भ किया। वरद्-बाण युद्ध में शत्रु का वध कर देगा ऐसा ही वरदान था। इस बाण का निवारण सम्भव नहीं था। इन्द्रजित् ने जब इस अत्यन्त कठिन बाण को सुसज्ज किया, उस समय लक्ष्मण सजग थे। उन्होंने स्वप्नदत्त कुबेर-बाण आवेशपूर्वक तैयार किया। लक्ष्मण की दृष्टि के समक्ष नग्न सीता पड़ने पर भी उनके चित्त में विकल्प का निर्माण नहीं हुआ। अतः कामदेव व कुबेर ने एकत्र आकर स्वप्न में उन्हें वर दिया। कामदेव बोले- "यह निष्काय-बाण स्थूलता का नाश करेगा।" कुबेर ने वर देते हुए कहा- "तुम्हें सम्पूर्ण विजय प्राप्त होगी। जिस पर तुम यह बाण चलाओगे, यह बाण उसका निर्दलन करेगा।" लक्ष्मण यह वर सुनकर निद्रा से जाग्रत हुए। वर उन्हें स्वप्न की स्थिति में मिला था परन्तु बाण जाग्रत अवस्था में भी विद्यमान था। इन्द्रजित् को पराक्रम दिखाने के लिए लक्ष्मण ने वही बाण धनुष पर चढ़ाया। दोनों वीर कुशलता में एक दूसरे के टक्कर के थे। इन्द्रजित् ने धनुष की प्रत्यंचा कानों तक खींची तब सुरवरों में यह सोचकर खलबली मच गई कि अब लक्ष्मण का बचना मुश्किल है। यम वरद् बाण निश्चित ही लक्ष्मण के प्राण हर लेगा। वह कैसे बचेंगे, सबको ये चिन्ता होने लगी। पृथ्वी पर ऋषि और सिद्ध, चारण और विद्याधर- सभी हाहाकार करने लगे।

इन्द्रजित् बाण चलाने वाला ही था कि तभी रणकुशल सौमित्र ने इन्द्रजित् का हाथ तोड़ डाला। इन्द्रजित् धनुष सहित नीचे गिर पड़ा। हाथ टूटने से वह आक्रोश करने लगा। तब देवताओं ने लक्ष्मण की जय-जयकार की।

धन्य है धनुर्धर सौमित्र, जिसने इन्द्रजित् का भयंकर बाण आने से पहले ही अपना बाण चलाकर उसका हाथ तोड़ दिया। प्रत्यक्ष यमप्रदत्त बाण ने स्वयं मूल रहस्य बताते हुए कहा- "इन्द्रजित् के हाथों पापाचरण हुआ है तो लक्ष्मण द्वारा उस पाप का निराकरण हुआ। लक्ष्मण श्रीराम का सहोदर है, हमारा भी सुमित्र है।" यह कहकर बाण ने प्रणाम किया व शीघ्र ही वह तूणीर में प्रवेश कर गया। सौमित्र को यश प्रदान करने हेतु व श्रीराम की सेवा उसके द्वारा हो सके, इसलिए वह बाण लक्ष्मण के तूणीर में प्रवेश कर गया। उसका उद्देश्य इन्द्रजित् का वध करना ही था। धनुष-बाण सहित हाथ के टूटने से इन्द्रजित् क्रोधित हो गया। हाथ में भयंकर खड्ग लेकर वह लक्ष्मण को मारने के लिए दौड़ा। उसके शरीर से रक्त प्रवाहित हो रहा था। ऐसी अवस्था में ही वह खड्ग से लक्ष्मण के बाणों को काटते हुए आवेशपूर्वक लक्ष्मण का वध करने के लिए आया। वह बोला- "मेरा हाथ टूट कर गिरने पर भी मैं तनिक मात्र भी विचलित व शंकित नहीं हुआ हूँ। तुम स्वयं पर गर्व मत करो। मैं निमिषार्द्ध में तुम्हारा वध कर दूँगा।" अपने टूटे हाथ पर ध्यान न देते हुए, हाथों में खड्ग लेकर चिल्लाते हुए उछल कर इन्द्रजित् सौमित्र का वध करने के लिए आया। थरक-चमक इत्यादि खड्ग के वार दिखाते हुए अपने शौर्य की पराकाष्ठा कर वह सौमित्र के सामने आया। उसे खड्ग से लक्ष्मण का मस्तक काटना था। लक्ष्मण द्वारा चलाये गए बाण खड्ग की धार से तोड़ते हुए लक्ष्मण का वध करने के लिए गर्जना करते हुए वह आया।

इन्द्रजित् भयंकर योद्धा है, यह समझकर सौमित्र भी क्रुद्ध होकर उसका वध करने के लिए अस्त्रों को तैयार करने लगा। सर्वप्रथम उसने सबीज मन्त्र से अभिमन्त्रित कर वेगपूर्वक रुद्रास्त्र चलाया। उस अस्त्र को अपनी ओर आता हुआ देखकर इन्द्रजित् ने उस पर खड्ग धार से प्रहार किया उनके टकराने से चिनगारियाँ निकलीं व चमकती हुई आकाश में पहुँची। रुद्रास्त्र के वार से बचने के लिए इन्द्रजित् भाग कर गुप्त स्थान पर जाने लगा। रुद्रास्त्र ने उसका पीछा किया। इन्द्रजित् हनुमान की पूँछ के कारण भाग नहीं पा रहा था। छिपकर, वार से बच नहीं पा रहा था। वह निरीह होकर देखने लगा।

सौमित्र का शस्त्राघात ऐसा था कि उसने खड्ग सहित इन्द्रजित् का हाथ तोड़कर लंका में गिरा दिया। देवताओं ने आनन्दपूर्वक गर्जना की। दोनों हाथ टूटने से निःशस्त्र हुआ इन्द्रजित् संतप्त होकर बोला– "हम मनुष्यों का भक्षण करते हैं, वे हमारा प्रमुख भोजन है अतः अब मैं निमिष मात्र में तुम्हें निगल जाता हूँ।" यह कहते हुए वह आवेशपूर्वक दौड़ा। उसकी दोनों भुजाओं से रक्त बह रहा था। वह सौमित्र को निगलने के लिए मुख फैलाकर आगे बढ़ा। उस पर अनेक बाणों की वर्षा होने पर भी वह पीछे नहीं हटा वरन् लक्ष्मण को निगलने के लिए मुख खोलकर दौड़ते हुए आगे आया। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों ग्रहण समय में राहु चन्द्रमा को निगलने के लिए बढ़ रहा हो। लक्ष्मण समझ गए थे कि साधारण बाण से इन्द्रजित् का वध नहीं हो सकता अतः उसने इन्द्रजित् का शिरच्छेदन करने के लिए अचूक बाण चुनकर निकाला।

लक्ष्मण द्वारा इन्द्रजित् का सिर काटना– इन्द्रजित् का वध करने के लिए लक्ष्मण ने इन्द्रदत्त शरद्बाण लेकर धनुष पर चढ़ाया। इस बाण का निवारण सम्भव नहीं था। उस श्रेष्ठ बाण को वीर श्रेष्ठ लक्ष्मण ने अपने अतिश्रेष्ठ धनुष पर चढ़ाकर उसकी प्रत्यंचा यथासम्भव कानों तक खींची। अनेक शस्त्रों के आघात पर भी इन्द्रजित् का शिरच्छेद संभव नहीं हो पा रहा था। इसीलिए लक्ष्मण ने अत्यन्त अद्भुत इस निर्णायक बाण को स्वयं सुसज्जित किया तथा निर्णायक युद्ध करने का निश्चय कर श्रीराम की सौगंध देकर उस बाण को चलाया। श्रीराम की शपथ कैसी थी, वह श्रवणीय है "अगर श्रीराम धर्म-अधर्म से परे हैं, तो निश्चित ही वे धर्मात्मा हैं। यह यदि सत्य है तो युद्ध में शत्रु का अवश्य शिरच्छेद हो। श्रीराम सत्य-असत्य से परे हैं, वे सत्य-स्वरूप हैं अतः श्रीराम यदि सत्यव्रती हैं तो शत्रु का मस्तक टूट जाए। श्रीराम स्त्री व पुरुष के भेदों से परे हैं। वे ही स्वयं स्त्री पुरुषों में विद्यमान हैं। यही श्रीराम का आत्म व्रत है। अगर यह सत्य है तो शत्रु का सिर भूमि पर गिर जाय। श्रीराम दशरथ पुत्र स्वयं ब्रह्म हैं। यह सत्य है तो इस बाण के कारण इन्द्रजित् रण-भूमि में धराशायी हो जाए। श्रीराम स्त्री पुत्र युक्त कुटुंब में सर्वस्वरूप में निवास करते हैं। वह श्रीराम द्वैत से परे सत्य स्वरूप हैं। यदि ऐसा है, तो इस बाण से शिरच्छेद संभव हो जाए। श्रीराम किसी भी द्वन्द्व से सम्बद्ध नहीं हैं, उनका सर्वांग परिपूर्ण चैतन्य घन है। यह शपथ देकर मैं कहता हूँ कि इस बाण से इन्द्रजित् का सिर कटकर नीचे गिर जाए। अगर श्रीराम ही सम्पूर्ण प्राणिमात्र हैं, यह वेद शास्त्रों को सत्य प्रतीत होता है तो इन्द्रजित् का सिर इस बाण से कट जाय। मेरी आत्मा श्रीरघुनाथ है। यही मेरा नित्य प्रतिदिन का व्रत है तो इन्द्रजित् का शिरच्छेद संभव हो जाय।" इस प्रकार श्रीराम की शपथ देकर लक्ष्मण ने बाण चलाकर इन्द्रजित् का सिर काटकर उसका वध कर दिया। वह धैर्यशाली सौमित्र धन्य हैं। उन्होंने इन्द्रजित् पर भीषण बाण चलाकर उसका मस्तक आकाश में उड़ा दिया और उसे रणभूमि में धराशायी कर दिया।

मुकुट, कुंडल, शिरस्त्राण व कवच धारण किये हुए तथा हाथों में खड्ग लेने वाला धनुर्धारी वीर शिरच्छेदन होकर रणभूमि में गिर पड़ा। भूमि पर गिरने के पश्चात् उसने लक्ष्मण की स्तुति करते हुए कहा– "तुम परमात्मा ब्रह्ममूर्ति हो। मुझे परम मुक्ति प्राप्त हुई है। मेरा हनुमान को प्रणाम। सभी वानरों को प्रणाम। श्रीराम को मेरा प्रणाम, मैं परम मुक्त हुआ।" इन्द्रजित् के भूमि पर गिरते ही वानर वीरों को अत्यन्त हर्ष हुआ और उन्होंने श्रीराम-नाम की जय-जयकार करते हुए गर्जना की। 'लक्ष्मण विजयी हुए' इस आनन्द से विभीषण नाचने लगे, स्वर्ग से सुरगण उल्लसित हो उठे। वे वाद्य बजाने लगे, गंधर्व गीत गाने लगे। अप्सराएँ आनन्दपूर्वक नाचने लगीं। सुरगणों ने दिव्य सुमनों की वर्षा की। वे भी स्वानन्द मग्न

होकर नाचने लगे। इन्द्र, चन्द्र, वरुण, कुबेर इत्यादि हर्ष से नृत्य करने लगे। सुर व सिद्ध वृत्रासुर के वध से भी अधिक हर्षित हो उठे। आनन्द व सुख में मग्न होकर स्वर्ग से जय-जयकार की गर्जना होने लगी। वैसी ही गर्जना सिद्ध चारण व ऋषियों ने भी की। धन्य है श्रीराम बन्धु सौमित्र, जिन्होंने इन्द्रजित् का वध किया।

अध्याय ४०

[मूर्च्छित लक्ष्मण की दिव्यौषधि से चेतना लौटना]

शूर सौमित्र इन्द्रजित् को रणभूमि में धराशायी कर विजयी हुए। वानरों ने आनन्दित होकर उनकी जय-जयकार की। इन्द्रजित् के रणभूमि में गिरते ही विभीषण हर्षित हो उठे। वीर इन्द्रजित् का वध होते ही वानरों से त्रस्त होकर करोड़ों राक्षस भयभीत होकर भागने लगे। कुछ समुद्र के तट पर गये, कोई लंका पर्वत पर जा छिपे। इन्द्रजित् के युद्ध में मारे जाने पर इन्द्र अति प्रसन्न हुए। सुर, नर, सिद्ध भी आनन्दित हो उठे। महापापी इन्द्रजित् का लक्ष्मण ने वध कर दिया, जिससे सदाशिव को परमसुख का अनुभव हुआ। ब्रह्मा भी प्रसन्न हुए क्योंकि उनका दुष्ट वंशज मारा गया। दसों दिशाओं को धूम्ररहित कर प्रसन्न सूर्य उदित हुआ। नदियों से निर्मल जल प्रवाहित होने लगा। सभी को सौमित्र ने सुखी किया। शिवगण, सुरगण तथा वानरगणों ने लक्ष्मण के शौर्य की प्रशंसा की। अपनी पूँछ को ऊपर उठाकर वानर आनन्दित होकर नाचने लगे तथा हाथ उठाकर रामनाम की गर्जना करने लगे। विजय के सुख में गीत गाते हुए वे आनन्दपूर्वक डोल रहे थे। हरिनाम की गर्जना कर रहे थे। रणभूमि में वानरों का विजय उत्साह देखकर महाबाहु लक्ष्मण कहने लगे - "मेरे प्राण विकल होने पर भी मैंने रणभूमि छोड़े बिना शत्रु का पूर्णरूप से निर्दलन किया, इसे आप मेरा शुभ लक्षण मान रहे होंगे तो मेरा कथन सावधानीपूर्वक ध्यान से सुनें– "श्रीराम के प्रताप के बल पर ही मैंने युद्ध में इन्द्रजित् का वध किया। मैंने उसे अपने शौर्य बल से मारा, ऐसा दिखाई देने पर भी वास्तव में वह मेरी शक्ति नहीं थी। वह श्रीराम के प्रताप की युक्ति ही थी। मैंने श्रीराम का स्मरण कर उसका निर्दलन किया। श्रीराम मेरे बल का संबल हैं। उस बल से ही मैं शौर्यवान् हूँ। श्रीराम के सत्य से ही इन्द्रजित् का शीश समूल कट सका। श्रीराम की शपथ देकर मैंने बाण चलाया व इन्द्रजित् को मारा।" ऐसा कहते हुए ही विकल होकर लड़खड़ाते हुए लक्ष्मण को मूर्च्छा आने लगी। प्रत्यक्ष इन्द्रजित् से युद्ध करते हुए इन्द्रजित् ने भी लक्ष्मण को बाणों से छलनी कर डाला था। उनके सम्पूर्ण शरीर से रक्त की धाराएँ प्रवाहित हो रही थीं, जिसके कारण उनका शरीर दुर्बल हो गया था। तीन बाण उसके मस्तक पर लगने के कारण उनके ब्रह्मांडमूल का छेदन हो गया, उनके रोम-रोम खड़े हो गए। महाबली लक्ष्मण को विकलता आ गई। उन्होंने शरभ, जाम्बवंत तथा वानरगणों को युद्ध के लिए भेजा तथा विभीषण को बुलाकर कहा– "मेरे सम्पूर्ण शरीर में घाव होने से मैं घायल हो गया हूँ। मेरे सर्वांग से रक्त बह रहा है। मुझे इस अवस्था में देखकर मेरा प्राणान्त होने की कल्पना से श्रीराम स्वयं को छुरी मार लेंगे। अतः उन्हें पूर्व सूचना दिये बिना सुग्रीव से कहकर राम के समीप के शस्त्र दूर कर दें। वानर आगे जाकर यह सब करें। श्रीराम को सन्तोष प्रदान करने के लिए वानरों के साथ इन्द्रजित् का शीश भेज दें। चतुर वानर मेरे पराक्रम का वर्णन करेंगे। भाटों के सदृश वे मेरी

प्रशंसा करेंगे। इस प्रकार श्रीराम के सन्तुष्ट होने पर ही सुग्रीव पुनः शस्त्र निकाल कर रखें। मैंने जो बताया है, उसे सावधानीपूर्वक करें।" इतना कहकर लक्ष्मण मूर्च्छित हो गए। दोनों नेत्र बन्द हो गए। मुख बन्द हो गया और वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

लक्ष्मण को मूर्च्छित होकर गिरा हुआ देखकर विभीषण व वानरगण अत्यन्त दुःखी हुए। सखा सौमित्र के वियोग से वानर हाहाकार करने लगे। विभीषण का दु:ख के कारण हृदय विदीर्ण हो गया। सभी दुःखी थे। कौन किसको सांत्वना करता। वानर दु:ख से छटपटा रहे थे। जाम्बवंत बोले- "सौमित्र ने अपना कार्य पूर्ण किया परन्तु तभी यह अनर्थ हो गया। इस दुःख से सब व्यर्थ हो गया।" तत्पश्चात् हनुमान ने सबको सम्बोधित करते हुए कहा- "सभी लक्ष्मण की आज्ञा का पालन करें। इन्हें वहाँ ले जायें परन्तु मैं श्रीराम के पास नहीं जाऊँगा। श्रीराम ने सौमित्र को मुझे सौंपा था। उस लक्ष्मण का युद्ध में प्राणान्त होने पर अब श्रीराम को कैसे मुख दिखाऊँ ? लक्ष्मण की बलि देकर रणभूमि में इन्द्रजित् का वध हुआ। इसका तात्पर्य है कि मुझे पूर्ण अपयश प्राप्त हुआ। अब श्रीराम को कैसे मुख दिखाऊँ ? मैं अपना प्राणान्त भी कैसे करूँ ? मेरी तो मृत्यु भी नहीं होती। अग्नि मुझे जला नहीं सकती, समुद्र अपने में समा नहीं सकता। मेरे चिरंजीव होने को धिक्कार है। पर्वत अथवा शस्त्रों के आघात या विषपान करने से भी मेरी मृत्यु नहीं होती, मैं ऐसा अपयशी हूँ। मैं अभागा यहीं पड़ा रहूँगा और पड़े पड़े सूख जाऊँगा परन्तु मैं श्रीराम के पास नहीं आऊँगा।"

विभीषण बोले- "शपथ देकर भी लक्ष्मण का यहाँ आकर प्राणान्त हो गया, मैं पूर्ण अपयश का भागी हुआ। अब क्या करूँ ? श्रीराम को कैसे मुख दिखाऊँ ? मेरी तो मृत्यु ही समीप आ गई है। अब जीवित रहने से क्या लाभ मैं अपने प्राण त्याग दूँगा। "विभीषण के वचन सुनकर हनुमान क्रोधित होकर बोले- "यहाँ शरणागत विभीषण के मरते ही श्रीराम प्राण त्याग देंगे। ऐसा अनर्थ न करें। जिस प्रकार सौमित्र के प्राण जाने से श्रीराम नहीं बचेंगे, उसी प्रकार विभीषण के मरते ही श्रीराम प्राण त्याग देंगे। अतः लक्ष्मण की आज्ञानुसार हम सभी चलें। मैं भी स्वयं रघुनाथ को प्रणाम करने के लिए आता हूँ। इन्द्रजित् का मस्तक देकर विजय पताकाओं के साथ कुछ बुद्धिमान वानरों को आगे भेजें।" तब विभीषण बोले- "इन्द्रजित् का सिर लेकर मैं आगे जाऊँगा व श्रीराम को उत्साहित करूँगा।" तत्पश्चात् राक्षस कुलीन विभीषण ने इन्द्रजित् के शीश के साथ शीघ्र प्रस्थान किया। शेष वानरवीर लक्ष्मण को उठाकर चुभे हुए बाणों से पीड़ा न हो, इसका ध्यान रखते हुए उन्हें धीरे-धीरे ले जाने लगे।

श्रीराम को विभीषण द्वारा वार्ता बताना- विभीषण आगे आये। उन्होंने सर्वप्रथम श्रीराम की चरण-वंदना की। तत्पश्चात् उन्होंने लक्ष्मण की युद्ध-क्षेत्र की वार्ता कहना प्रारम्भ किया। ''सात अवरोधों से युक्त दुर्गम मार्ग सौमित्र ने सुगम बनाकर यज्ञ-स्थल का मार्ग मुक्त कर यज्ञ-स्थल के होम स्थान में प्रवेश किया। इन्द्रजित् के होम करने पर होमकुंड से घोड़ों सहित रथ निकला। हनुमान ने छलाँग लगाकर इन्द्रजित् को झकझोर दिया। होमकर्म पूर्ण हुए बिना ही इन्द्रजित् को वहाँ से उठा दिया। लक्ष्मण को मैं वहाँ तक ले आया, इसीलिए वह मेरा वध करने के लिए दौड़ा। तब सौमित्र मुझ शरणागत को अपनी ओट में कर युद्ध के लिए आगे बढ़े। लक्ष्मण को वहाँ देखकर इन्द्रजित् सशंकित हो उठा। वह उस विवर को छोड़कर कपट बुद्धि से शीघ्र मेघों के ऊपर भाग गया। हनुमान तुरन्त महावीर सौमित्र को वहाँ ले गये। साहसी शूरवीर सौमित्र ने अचूक शरसंधान कर भीषण बाणों से इन्द्रजित् के घोड़े, सारथी, रथ सभी को नष्ट कर दिया। लक्ष्मण व इन्द्रजित् दोनों ही अत्यन्त चतुर और रणकुशल योद्धा होने के कारण बाणों से बाण का निवारण तथा शस्त्रों से शस्त्रों का निराकरण करते हुए कुछ देर तक दोनों का युद्ध चला।

तत्पश्चात् सौमित्र के हस्तकौशल से इन्द्रजित् की दोनों भुजाएँ तोड़ डाली गईं तथा इन्द्रजित् का सिर काट डाला। वह सिर यहाँ पर लेकर आया हूँ।" इस चतुराईपूर्ण भाषण के पश्चात् विभीषण ने श्रीराम के समक्ष इन्द्रजित् का सिर रखा। वह सिर देखकर वानर भयभीत हो उठे। धन्य है महावीर लक्ष्मण, जिसने मस्तक पर बाण मारकर सुवर्णपंख की माला रणभूमि में इन्द्रजित् के सिर पर बाँध दी। इन्द्रजित् की मूँछें अत्यन्त विशाल थीं। विकराल दाँत थे, मस्तक पर बाण घुसे हुए थे। मस्तक पर गोरोचन का तिलक था। वह सिर देखकर राघव हर्षित हो गए। विभीषण द्वारा संकेत करते ही सुग्रीव ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक श्रीराम के समीप स्थित शस्त्र-सामग्री दूर की। इन्द्रजित् का मस्तक देखकर और विभीषण के वचन सुनकर लक्ष्मण के भीषण बल का अनुभव कर श्रीराम को आनन्द हुआ।

लक्ष्मण की स्थिति सुनकर श्रीराम मूर्च्छित– श्रीराम लक्ष्मण का पराक्रम सुनकर हर्षित हुए। लक्ष्मण अत्यन्त वीर योद्धा हैं, यह सुनकर श्रीराम हर्षमग्न हो उठे। कृपालु रघुनाथ ने विभीषण, हनुमान व जाम्बवंत को आलिंगनबद्ध किया। सभी वानरगण आल्हादित हो उठे। सभी ने श्रीराम को प्रणाम किया तत्पश्चात् श्रीराम ने पूछा– "सौमित्र अभी क्यों नहीं आया ?" इस पर वानरों ने कुछ भी कहे बिना बाणों से जर्जर लक्ष्मण की देह उठाकर श्रीराम की गोद में रखी। लक्ष्मण के शरीर में चेतना नहीं थी। जिसके सामर्थ्य की इन्द्र भी वन्दना करते हैं, उस बलवान् सौमित्र के सम्पूर्ण शरीर में बाण घुसे हुए थे, ऐसा श्रीराम को दिखाई दिया। तीन बाण तो मस्तक पर ब्रह्मांड की जड़ तक घुसे हुए थे। बाणों से केश बिंधे हुए थे। लक्ष्मण बाणों के जाल में जकड़े हुए थे। युद्ध में बाणों से विद्ध लक्ष्मण के शरीर पर तिल मात्र स्थान शेष नहीं बचा था। इन्द्रजित् के वध से प्रसन्न हुए राम, लक्ष्मण की स्थिति से दुःखी होकर, सुख दुख की स्थिति से बोझिल होकर, मूर्च्छित होकर गिर पड़े। श्रीराम के मूर्च्छित होते ही विभीषण विचलित हो उठे। वानरगण भयभीत हो गए और सभी दुःख से विलाप करने लगे। राम व लक्ष्मण दोनों एक दूसरे के प्राणों से प्रिय थे। वे एक दूसरे के प्राण थे। 'सौमित्र के दुःख से कदाचित् श्रीराम भी प्राण त्याग देंगे।' श्रीराम के मूर्च्छित होते ही सुग्रीव वानरगण व विभीषण दुःख से विलाप करने लगे। एक की रणभूमि में मृत्यु हुई व दूसरा उसके लिए प्राण त्याग कर रहा है। अतः अब क्या करना चाहिए, इस प्रश्न से वानरगण चिन्तित हो उठे। लक्ष्मण को आलिंगनबद्ध कर मूर्च्छित हुए श्रीराम की कुछ समय पश्चात् चेतना वापस लौट आयी।

श्रीराम का शोक व प्राण त्याग करने की तैयारी– श्रीराम की चेतना वापस लौटने पर उन्हें घावों से जर्जर लक्ष्मण दिखाई दिये। उन्हें ऐसा लग रहा था कि प्राण बच नहीं पाएँगे। वे शोक व्यक्त करते हुए कहने लगे– "निकुंबला जाकर इन्द्रजित् का वध कर स्वयं अपने प्राण गँवा दिए। तुम्हारे बिना मुझे कल्याण ही अकल्याण दिखाई दे रहा है। अब इन्द्रजित् की मृत्यु की वार्ता सुनकर स्वयं रावण युद्ध करने के लिए आयेगा, उससे युद्ध कौन करेगा ? बारह वर्ष अन्न के बिना रहकर ब्रह्मचर्य का पालन कर मेरे शत्रु का वध भी किया; फिर मुझ पर ही क्यों रूठे हो ? बारह वर्षों तक वनवास में मैंने तुमसे आहार के लिए नहीं पूछा, यदि इस कारण रूठे हो तो मैं तुम्हारे पैर पकड़ता हूँ। इन्द्रजित् के साथ युद्ध कर तुमने रणभूमि में त्राहि-त्राहि मचा दी। हे महावीर लक्ष्मण, मैं तुम्हारे बिना इस सृष्टि में जीवित नहीं रह सकता। तुम्हें अकेले निकुंबला भेज दिया, क्या इसीलिए मुझसे नहीं बोल रहे हो।" ऐसा कहते हुए बन्धु प्रेम-वश श्रीराम आक्रोश करने लगे। वे बोले– "इन्द्रजित् का वध कठिन था, वह तुमने युद्ध कर, साध्य कर दिखाया परन्तु रणभूमि में प्राण देकर मेरा अकल्याण कर दिया।"

श्रीराम आगे बोले– "इन्द्रजित् का वध कर तुमने सीता को मुक्त किया। वसुधा मेरे वश में की, यह तत्वतः सत्य है। हे सुबन्धु लक्ष्मण, सीता सुन्दरी महासती है। उस वसुमति का उपभोग कौन कर सकता है ? हे उर्मिलापति लक्ष्मण, तुम्हारे बिना मैं जीवित नहीं रहूँगा। मुझसे अनन्त अपराध हुए हैं, जिससे तुम मुझसे रुष्ट हो। मैं अपने केशों से तुम्हारे चरण पखारूँगा।" यह कहते हुए श्रीराम विलाप करने लगे। वे फिर बोले– "हे सौमित्र, तुम मुझे कुछ प्रतिउत्तर क्यों नहीं देते। हे महावीर, मेरे तीव्र दुःख का निवारण करो। हे सुबंधु, तुम कहाँ हो ? अरे, श्रीराम को दुःखी करने पर उस दुःख की बाधा सबको होती है, हे सौमित्र, तुम्हारे बिना मैं अनाथ हूँ, हताहत हूँ, तुम्हारे बिना मैं अपने प्राणों को निश्चित ही त्याग दूँगा। तुम्हारे बिना मैं तेजहीन, दीन व दुर्बल हूँ। तुम्हारे लिए मैं अवश्य प्राण त्याग करूँगा। हे सौमित्र, राजा दशरथ की सौगन्ध, तुम्हारे बिना जीवित रहने की अपेक्षा मैं प्राण त्याग कर दूँगा।'' यह कहकर रघुनन्दन ने प्राणान्त करने के लिए आसन बनाया। उससे पूर्व उन्होंने लक्ष्मण को आलिंगनबद्ध किया। उनके मुख का चुम्बन लिया व प्राणान्त करने के लिए सिद्ध हुए।

हनुमान द्वारा वीरतापूर्ण गर्जना– श्रीराम का दुःख देखकर हनुमान क्रोधित हो गए। कृतान्तकाल सदृश गर्जना करते हुए वे श्रीराम से बोले- "मैं आपका सेवक वहाँ उपस्थित होते हुए लक्ष्मण को कौन मार सकता है ? अकारण ही आप प्राण त्याग कर रहे हैं। मेरा पुरुषार्थ देखें। अगर यम भी लक्ष्मण को ले गया तो मैं उसे धूल में मिला दूँगा। कलिकाल को भी दण्डित करूँगा। इन्द्र, चन्द्र, वरुण, कुबेर और सूर्य के द्वारा लक्ष्मण मारे नहीं जा सकते और अगर यह संभव हो गया तो उन सब का मैं निर्दलन कर दूँगा। सौमित्र को अगर कैलास पर्वत पर ले गये होंगे तो वहाँ से उसे मैं वापस ले आऊँगा। वैकुंठ में ले गये होंगे तो मैं भगवंत को खड़ा करके सारे वैकुठ में ढूँढ़ निकालूँगा और लक्ष्मण को आपके समक्ष खड़ा कर दूँगा। क्षीर सागर में ले गये होंगे तो नारायण को हटाकर शेष के पास ढूँढ कर लक्ष्मण को ले आऊँगा। सौमित्र बलवान् शेषावतार हैं परन्तु अगर वे विष्णु के नीचे दब गये होंगे तो उन्हें निकाल कर तत्काल आपके पास ले आऊँगा। अगर आप कहेंगे कि उनके पाँचों तत्त्व पंचतत्त्व में विलीन हो गए होंगे अर्थात् पृथ्वी पृथ्वी में समा गई होगी, पानी पानी में, तेज तेज में, प्राण वायु में, आकाश आकाश में, तथा चैतन्य चैतन्य में, जा मिले होंगे। अब यह मूर्ख वानर सौमित्र को कैसे लायेगा, तथापि मैं लक्ष्मण को लाकर आपके समक्ष खड़ा करूँगा, तभी आपका सेवक कहलाऊँगा। आपका नाम स्मरण करने पर मुझे कौन रोक सकता है।"

तत्पश्चात् हनुमान बोले– ''हे श्रीराम, आपके नाम की शक्ति के समक्ष कलिकाल की शक्ति भी प्रभावहीन हो जाती है। संसार भय से भागता है मोक्ष मिथ्या हो जाता है। नाम-स्मरण ही परम धर्म है। नाम कर्म अकर्म का निर्दलन करता है। नाम केवल परब्रह्म है, हरि की कीर्ति है। आपका नाम स्मरण करते हुए, उस नाम के बल से आपका लक्ष्यण, मैं आपके पास ले आऊँगा। उसके सम्बन्ध में सुनें। जिस प्रकार पृथु ने पृथ्वी का दमन कर दिया, मैं भी मेदिनी (पृथ्वी) का दमन करूँगा। पृथ्वी जब तक सौमित्र का शरीर लाकर मुझे अर्पित नहीं कर देती, मैं उसको नहीं छोड़ूँगा। उसके द्वारा शरीर अर्पित करने पर मैं प्राणियों का जीवन ढूँढूँगा। जब तक सौमित्र का नवजीवन लाकर वे मुझे अर्पित नहीं कर देते, मैं आत्मतेज के आवेश में तेज का दमन करूँगा; जब तक कि वह सौमित्र का आत्मतेज मुझे लाकर नहीं दे देते। लक्ष्मण का आत्मप्राण जब तक मुझे अर्पित नहीं किया जाएगा तब तक मैं अपने पिता अर्थात् वायु का शोषण करता रहूँगा। आकाश को दण्डित करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वहाँ सहज ही

प्रवेश मिल जाता है। मैं चैतन्य को ध्यानस्थ अवस्था में पकड़कर चेतना को ले आऊँगा, उस चेतना को लाकर लक्ष्मण के शरीर में उसका संचार करूँगा। तत्पश्चात् देह का जड़त्व दूर करने के लिए तेज प्राणों को चैतन्य करेगा। इस प्रकार प्राण देह में प्रवेश करेगा, जिससे देही, देहवान् और सचेतन जीव बन जायेगा।''

सुषेण का आगमन; दिव्यौषधि से लक्ष्मण की चेतना लौटना– लक्ष्मण को बचाने के लिए हनुमान उड़ान भरने ही वाले थे, तभी सुषेण वहाँ आये। वे बोले– ''हनुमान, तुम अत्यन्त परोपकारी हो। तुम दिव्यऔषधि से युक्त जिस द्रोणागिरि को कुछ कालावधि पूर्व लेकर आये थे, उस पर स्थित औषधियों का मैंने घर में संचय कर लिया है। वास्तविक रूप से पर्वत के बिना वे औषधियाँ क्षण भर के लिए भी नहीं टिकती, परन्तु उसमें श्रीराम की चरण धूल पड़ने से वे औषधियाँ पूर्ण रूप से ठीक हैं। उनका रस देते ही लक्ष्मण सचेत हो जाएँगे।'' सुषेण के वचन सुनकर श्रीराम प्रसन्न हुए। उन्होंने सुषेण को आलिंगनबद्ध कर लिया। हनुमान के वचन सुनकर श्रीराम अत्यन्त सन्तुष्ट हुए थे। उन्होंने अत्यन्त आत्मीयतापूर्वक हनुमान को भी आलिंगनबद्ध किया। लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर श्रीराम ने दुःखपूर्वक जो अश्रु बहाये थे, उससे अमृत की प्राप्ति हुई, संत्रस्तों को स्वानंद की प्राप्ति हुई। श्रीराम के अश्रु अमृत सदृश हैं, आलिंगन शल्य दूर करने का साधन है। उनका कर-स्पर्श घावों को भर देता है। ऐसे कृपालु श्रीराम अपने भक्तों की व्यथाओं व नाना प्रकार के कष्टों का निवारण करते हैं।

लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर करने के लिए श्रीराम ने सुषेण को शल्य अर्थात् घाव नष्ट करने वाली विशल्या औषधि देने को कहा। शल्या औषधि शल्य दूर करती है, विशल्या औषधि घावों को भर देती है। उसके चिह्न मिटा देती है। ऐसी वह सुवर्ण दिव्य औषधि है। सुषेण द्वारा सौमित्र को विशल्या औषधि देते ही उनके समस्त घाव भर गए। अन्तःकरण हर्षित हुआ और लक्ष्मण की चेतना वापस लौट आई। सुवर्ण औषधि देने से शरीर पर स्थित घावों के चिह्न भी दूर हो गए। शरीर पूर्णरूप से सुवर्णवर्णी हो गया। लक्ष्मण प्रसन्न चित्त हो उठ बैठे। पहले की अपेक्षा सौ गुनी अधिक शक्ति प्राप्त कर लक्ष्मण युद्ध में रावण को दंडित करने के लिए आवेशपूर्वक उठ बैठे।

लक्ष्मण के ठीक होते ही श्रीराम ने विभीषण व सुग्रीव को सुषेण सहित बुलवा कर कहा– ''लक्ष्मण के साथ अनेक वानर वीर घावों से जर्जर हो गए हैं, उन्हें शीघ्र औषधि देकर सबका उपचार करें।'' श्रीराम द्वारा ऐसा कहते ही सुषेण ने असंख्य वानर एवं रीछ वीरों को ठीक किया तथा विभीषण के घायल राक्षसों को भी सुषेण ने ठीक कर दिया। धन्य हैं वैद्यराज सुषेण, जिन्होंने औषधियों के प्रयोग से घाव एवं उनके चिह्नों को दूर कर समस्त वीरों को सुखी किया। उनके कष्ट, श्रम तथा शल्यबाधा से होने वाले दुःख दूर हो जाने के कारण सभी वीर आनन्दित हो उठे। श्रीराम के कारण सबको परमानन्द की प्राप्ति हुई।

श्रीराम की कृपा व सुषेण की औषधि के कारण सभी वीर पहले की अपेक्षा चौगुना बल और प्रताप होने का अनुभव करने लगे। सभी ने हरिनाम की गर्जना की। वानरों ने भुभुःकार कर रामनाम का जय-जयकार किया। उस समय सभी वीरों को शल्यरहित देखकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए। अमर देवताओं को अमृत-पान मिलने के सदृश वानरवीरों को औषधियाँ प्राप्त हुईं। लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव व वानरगण सुखी हुए। सौमित्र को सुखी देखकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए। वानर हर्षित होकर नाचने लगे। वे पलाश के वृक्ष हाथों में लेकर अपनी पूँछ उठाकर नाच रहे थे। सर्वत्र आनन्द ही आनन्द दिखाई दे रहा था।

अध्याय ४१

[सुलोचना का अग्निप्रवेश]

सौमित्र युद्ध में इन्द्रजित् का वध कर विजयी हुए। अत्यन्त हठी, दुष्ट व कपटी इन्द्रजित् सृष्टि में अत्यन्त विकट हो गया था। शस्त्रों की वृष्टि से उसका वध करने पर सभी सुखी हुए। यह सब सौमित्र के कारण सम्भव हुआ।

ध्यानस्थ इन्द्रजित् की पत्नी के समक्ष इन्द्रजित् की भुजा आना– लंका में इन्द्रजित् की पत्नी सुलोचना स्वयं के महल में अन्तःकरण में शिवस्वरूप लाकर शिव का ध्यान कर रही थी। उसकी अनेक सखियाँ भी शिव की पूजा के लिए एकत्रित थीं। उस समय अचानक इन्द्रजित् की खड्गधारी भुजा प्रचंड ध्वनि करती हुई सुलोचना के आँगन में आ गिरी। वह ध्वनि सुनकर सुलोचना अपनी सखियों के साथ आँगन में आयी। वहाँ उन्होंने भुजा गिरी हुई देखी। सखियाँ बोलीं– ''सुलोचना, ऐसा लगता है कि स्वर्ग में देवों व दानवों का भीषण युद्ध हो रहा है। यह हाथ वहीं से गिरा होगा।'' उनका यह कथन सुनकर सुलोचना भयभीत होकर उस हाथ के पास आकर देखने लगी। उसने अपने पति का हाथ पहचान लिया। इन्द्रजित् का हाथ पहचानते ही सुलोचना भूमि पर गिर पड़ी। उसने वह हाथ हृदय से लगाते हुए उससे पूछा– ''हे भुजा, तुम मुझे आमन्त्रण देने क्यों आयी हो ? मेरे पति रणभूमि में होने पर तुम उन्हें छोड़कर कैसे आई ?'' तत्पश्चात् उसने उस हाथ को उबटन लगाकर अभ्यस्न स्नान कराकर उसकी आरती उतारी फिर प्रणाम करते हुए उसने उस हाथ से पूछा ''निकुंबला जाने के पश्चात् युद्ध में कैसा संकट हुआ है ? तुम किसलिए आयी हो, इसका रहस्य मुझे बताओ। मेरे पास से इन्द्रजित् के युद्ध में जाने के पश्चात् क्या क्या घटित हुआ, सब आदि से अन्त तक सच सच बताओ। हे सखी, तुम और मैं –हम दोनों एकांगभगिनी हैं जो कुछ भी रणभूमि में घटित हुआ, वह समून बताओ। अगर मैं सत्यव्रती पतिव्रता हूँ यह निश्चित है, तो तुम मुझे वहाँ का वृतान्त सच सच बताओ।'' तब सुलोचना के ध्यान में आया कि यह भुजा अचेतन है, तब उसने कैलासनाथ भगवान् शिव का स्मरण किया।

सुलोचना शिव जी से बोली ''हे स्वामी, मैं आपकी शरण में हूँ'' तत्पश्चात् उसने विचार किया कि, 'पति का हाथ चेतना विरहित होकर आँगन में आ गिरा है, अतः शीघ्र अपनी आत्मशक्ति को जागृत कर हाथ को सजीव करना चाहिए।'' यह विचार कर उसने शिवजी की स्तुति करना आरम्भ किया। भगवान् शिव भक्तों के प्रति दयालु होने के कारण उन्होंने इन्द्र को आज्ञा दी कि तुम उस हाथ में प्रवेश कर इन्द्रजित् के युद्ध का समूल वृत्तान्त बताओ, उसमें असावधानी न हो। शिव की आज्ञा होते ही इन्द्र ने उस भुजा में प्रवेश किया तथा उस हाथ को सचेतन किया। सुलोचना की इच्छानुसार हाथ में चेतना व स्फूर्ति का संचार होने का प्रमाण देने के लिए उसने लिखने की सामग्री माँगी। उसने शीघ्र भूमि पर दवात लेखनी लाकर रख दी और शीघ्र लिखने के लिए कहा। वह भूमि पन्ने से निर्मित थी। उस हाथ ने दवात व लेखनी लेकर ऐसे अक्षर युक्त पंक्तियाँ लिखनी प्रारम्भ कीं, जो कुशलतापूर्वक अर्थ अभिव्यक्त कर सकें. भूमि पन्ने से बनी होने के कारण उस पर अक्षर स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। सुलोचना ने अर्थ समझते हुए उन अक्षरों को पढ़ा।

''हे पतिव्रता सुलोचना, तुमसे पूछ कर जाने के पश्चात् रावण की आज्ञा हुई व मैंने भीषण युद्ध प्रारम्भ किया। वानरगणों को जीतकर, निकुंबला जाकर होम आरम्भ किया और अग्नि को प्रसन्न किया।

अग्नि प्रसन्न होकर उसकी ज्वालाओं से रथ प्रकट हुआ। उस चार अंगुल मोटे पहियों वाले रथ को मैंने अपनी आँखों से देखा। रथ प्रकट होते ही मैंने भीषण युद्ध करने का संकल्प किया परन्तु दुर्भाग्य से वह निष्फल हो गया। तभी वानर सेना लेकर विभीषण और वीर हनुमान सौमित्र के साथ आये। उन्होंने तुरन्त आक्रमण कर दिया। हनुमान ने उतावलेपन से प्रचंड शिला उठाकर रथ के ऊपर फेंक दी, जिससे वह रथ भूमि में मिल गया। मेरा हाथ पकड़कर अंगद ने जोर से खींचा तब मैंने आँखें खोलकर देखा तो सामने वानर वीर दिखाई दिए। तत्पश्चात् मैं सतर्क हो गया और सारथी को रथ लेकर बुलाया; रथ पर आरूढ़ होकर उन वानर वीरों से युद्ध करने लगा। महावीर योद्धा लक्ष्मण ने उसी समय यज्ञ स्थल में प्रवेश किया। उसका युद्ध का आवेश देखकर मैंने उससे कपटपूर्वक युद्ध करने की ठानी और मैं मेघों की पीठ पर चला गया। हनुमान सौमित्र को मेरे सामने ले आया। तत्पश्चात् लक्ष्मण और मैं युद्ध करने लगे। लक्ष्मण ने शर वर्षा कर मुझे भूमि पर गिरा दिया। तत्पश्चात् बाण चलाकर दोनों हाथ तोड़ दिए। उसमें से एक हाथ भूमि पर गिरा और दूसरा लंका में गिरा। श्रीराम की शपथ देकर लक्ष्मण द्वारा चलाये गए बाण का सामर्थ्य इतना था कि उस बाण ने मेरा शिरच्छेद कर दिया। एक हाथ तुम्हें बुलाने के लिए आया है क्योंकि मेरा शीश श्रीरामचन्द्र को नमन करने के लिए गया है। मेरा धड़ निकुंवला में पड़ा है। अब तुम अपना सतीत्व लोगों के समक्ष प्रकट करो। लक्ष्मण की ओर देखो। श्रीराम की चरण वंदना कर, उनसे मेरा मस्तक माँगो। मैं लक्ष्मण को प्राण अर्पित कर भवसागर के पार चला गया हूँ। हे सुलोचना, मैं तुम्हारी राह देख रहा हूँ, शीघ्र आओ।" इस प्रकार ये पंक्तियाँ पन्ने की भूमि पर लिखी गईं।

सुलोचना की प्रतिक्रिया एवं अन्तिम व्यवस्था– सुलोचना ने उस पन्ने की भूमि पर लिखी पंक्तियाँ पढ़ीं और अपना शरीर भूमि पर गिरा दिया। वह कहने लगी "तुम्हारे बिना मुझे दसों दिशाएँ शून्य लग रही हैं। अब मैं किसे आलिंगन दूँ ? शुभ वचन किससे बोलूँ ? मुझसे क्षण भर दूर नहीं रह पाते थे, मेरा वियोग नहीं सह पाते थे; अब तुम्हीं मुझे छोड़कर अकेले सायुज्य पद-प्राप्ति के लिए जा रहे हो। तुम्हारे बिना मैं अनाथ हो गई हूँ। मेरा जीवन किस काम का ? मैं शीघ्र तुम्हारे पास आ रही हूँ," पूँछ कटी ब्राह्मनी* अथवा जल के बिना मछली जिस प्रकार तड़पती है, उसी प्रकार सुलोचना तड़प रही थी। उसे अपने शरीर की सुध नहीं रही, वह शोक करती हुई भूमि पर लोट रही थी। बार-बार अपनी सुध खो देती थी। तब शांतिमती नामक सखी तथा विवेक नामक सखा ने परस्पर विचार विमर्श कर सुलोचना से कहा– "माता अब पति समवेत गमन करने से सायुज्य पद सुगम होगा तथा उत्तम धाम की प्राप्ति होगी। इस प्रकार अब सहगमन के अन्तिम उपाय के अनुसार आचरण करें।'' ये वचन सुनकर स्वयं सुलोचना ने उस पर विचार किया और निश्चय किया कि वैराग्य-प्राप्ति के बिना राम के चरणों की प्राप्ति संभव नहीं है।

तत्पश्चात् सुलोचना ने प्रपंच विलास का त्याग किया। गृह, धन इत्यादि सब उपभोगों से वह विरक्त हो गई। इन्द्रजित् ने तीनों लोकों की सम्पत्ति प्राप्त की थी। सम्पत्ति का सागर ही उसके पास था। अत्यन्त मूल्यवान वस्त्र व आभूषण उसके पास थे, जिनकी गणना असंभव थी। सुलोचना को उन सबसे घृणा होने लगी। इस प्रकार आशा, तृष्णा व कामना का त्याग कर वह विरक्त हो गई। उसने दान-धर्म करना प्रारम्भ कर दिया। जड़ाऊ अलंकार, मोतियों के उत्तम हार तथा इन्द्रजित् का समस्त भण्डार उसने

* सांपसुरळी अर्थात् सर्प जैसा दिखाई देने वाला छोटा-सा जन्तु

ब्राह्मणों को दान कर दिया। ऋषि, द्विज तथा सुहागिनों को बुलाकर अपार धन बाँटा। लोभ का त्याग कर, कृपणता मन से निकालकर उसने सर्वस्व वितरित कर दिया। कुछ लोग लोभ-वश धन गाड़ देते हैं परन्तु वह धन मिट्टी सदृश हो जाता है। परन्तु सुलोचना वैसी न थी। उसने सम्पूर्ण सम्पत्ति दान कर दी, जिसे देते समय उसे अत्यन्त आनन्द की अनुभूति हो रही थी। दास, दासी व सेवकों को यथेच्छ स्वर्ण दिया। याचक को विमुख नहीं किया। वह सच्ची सती थी। आप्त, याचक सभी तृप्त हो गए; तथापि अपार धन शेष रह गया। तत्पश्चात् सुलोचना ने अपने गृह को साष्टांग दडवत् प्रणाम किया और अपनी सखियों को लेकर सास से मिलने जाने के लिए प्रस्थान किया।

सुलोचना ने उस समय सती के अलंकार धारण किये हुए थे। मंगल-सूत्र एवं हल्दी, कुंकुम व सिन्दूर धारण करने के कारण वह तेजस्विनी दिखाई दे रही थी। शुभ्र कंचुकी एवं साड़ी धारण कर तथा सफेद फूलों का शृंगार कर वह मनोहारी एवं प्रतिव्रता सदृश सुशोभित हो रही थी। किसी वाहन में बैठकर जाने पर श्रीराम के दर्शन न हो सकेंगे, इस विचार से वह दृढ़ निश्चय कर पैदल ही जा रही थी। आदरपूर्वक भुजा का पूजन कर, मनःपूर्वक प्रणाम एवं प्रदक्षिणा कर, उस भुजा को सुखासन पर रखकर सुलोचना ने प्रस्थान किया। वह मुख से राम नाम का स्मरण कर रही थी। बार-बार पति का स्मरण कर रही थी। सुलोचना सभा मंडप के समीप आयी। वहाँ उसे मन्दोदरी सहित रावण दिखाई दिया। उसने उन्हें साष्टांग प्रणाम कर सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया। सास मन्दोदरी को जब प्रणाम करने लगी तो वह आक्रोश करते हुए बोली– "मेरा ज्येष्ठ पुत्र मारा गया, इसका दुःख मैं सह नहीं पाऊँगी। मेरे पुत्र, तुम वापस लौट आओ। पराक्रमी इन्द्रजित्, लक्ष्मण ने तुम्हारा घात कर दिया, तुम्हारा मुख भी मैं न देख सकी। तुम्हारे कारण मैं अत्यन्त सुखी थी परन्तु अब अंतिम क्षणों में मैं तुम्हारा मुख भी देख न सकी। तुम्हारे दुःख में मुझे यह संसार भी दुःखदायक लग रहा है। तुम वहाँ शत्रु द्वारा निर्मित बाणों की शय्या पर सोये हो और मैं तुम्हारे सबसे निकट होने पर भी अत्यन्त दूर हूँ। लंकानाथ को तुम्हारा ही आधार था। युद्ध में तुम्हारा घात होने का दुःख असहनीय है।" यह कहकर आक्रोश करती हुई मन्दोदरी भूमि पर छटपटा रही थी। तब सुलोचना उससे बोली– "आप शोक न करें। सतीत्व के कारण अति सत्य आपसे कह रही हूँ। आज से सातवें दिन रावण का प्राणान्त होगा।" सुलोचना द्वारा यह रहस्य कहते ही मन्दोदरी बोली– "मुझे भी यह मालूम है, परन्तु रावण को समझाने पर भी वे सुनते नहीं हैं, जिसके कारण अब कुल का निर्दलन निश्चित है।"

रावण की प्रतिक्रिया; मन्दोदरी का उपदेश– मन्दोदरी को सांत्वना व आश्वासन देकर सुलोचना के बाहर आते ही रावण आक्रोश करते हुए जोर से विलाप करने लगा। "जो तीनों लोकों में भीषण योद्धा था, जिसका प्रताप अतुलनीय था, वह अचानक मारा गया। वह भी लक्ष्मण नामक मानवी कीटक के हाथों।" पुत्र की मृत्यु के दुःख से तड़पते हुए रावण मूर्च्छित हो गया। तब सुलोचना ने उसको सांत्वना देकर ज्ञानपूर्ण बातें बताते हुए कहा– "सामने से हुए वार से प्राण जाने पर वीरों का कल्याण होता है। मेरे पति को पूर्ण ब्रह्मपद प्राप्त हुआ है। आप दुःख न करें। बाण में श्रीराम की शपथ देकर सौमित्र द्वारा अपने हाथों से बाण मारे जाने के कारण इन्द्रजित् श्रेष्ठ गति को प्राप्त हुए हैं। उसके लिए दुःख व शोक न करें, धैर्य धारण करें। हे स्वामी लंकानाथ ! आप मेरी विनती सावधानीपूर्वक सुनें। आप मेरे श्वसुर हैं, मेरे माता पिता हैं। इन्द्रजित् का शिरकमल वानर ले गए हैं, उसे अगर इस समय आप ला दें, तो आपकी अतिकृपा होगी।" सुलोचना द्वारा ऐसा कहते ही रावण आवेशपूर्वक बोला– "सेना तैयार करो। सुलोचना तुम निश्चिंत रहो। मैं इन्द्रजित् का शीश शीघ्र लेकर आता हूँ। मैं सौमित्र व रघुनाथ

पर विजय प्राप्त कर, सभी वानरगणों का वध कर, इन्द्रजित् के शीश सहित शीघ्र तुमसे भेंट करने के लिए आता हूँ। तब तक अपना अन्तःकरण शान्त कर, तुम यहीं रुको। मैं युद्ध के लिए प्रस्थान करता हूँ।"

रावण के वचनों की वास्तविकता को समझते हुए मन्दोदरी ने सुलोचना को एकान्त में ले जाकर कहा कि ''रावण जो बातें कह रहे हैं, वे सब झूठ हैं। तुम स्वयं जाकर श्रीराम से भेंट करो। श्रीराम-चरणों में नमन कर उनकी शरण जाकर, शिर लाकर, अपना हित करो तथा अपना उद्धार करो। शरणागत हुए बिना कार्य साधा नहीं जा सकता। अपने हित के लिए स्वयं ही कार्य करना उचित है। यह बात ध्यान में रखकर विचारपूर्वक मन में दृढ़ निश्चय कर रघुनाथ की सेवा करो। जो दूसरे के भरोसे रहता है, उसका कार्य कभी पूरा नहीं होता। अतः अपना कार्य स्वयं करके अपना हित साधना चाहिए।" मन्दोदरी का उपदेश सुनकर सुलोचना ने उसके चरण स्पर्श किये। तत्पश्चात् रावण के पास जाकर उसे नमन कर उसकी आज्ञा माँगते हुए कहा- "पति का शीश माँगने के लिए श्रीरामचन्द्र के पास जा रही हूँ। आप मुझे आज्ञा दें।" इस पर दशानन रावण संतप्त होकर बोला– "सीता के विरह से विरहातुर राम तुम्हारे सदृश सुन्दर स्त्री को छोड़ेगा नहीं।" रावण के वचन सुनकर सुलोचना को हँसी आ गई। वह बोली "दशानन अत्यन्त भ्रांत अवस्था में है। उन्हें श्रीराम की महिमा ज्ञात नहीं। श्रीराम परस्त्री को भगिनी सदृश मानते हैं। जिसका नाम परम पवित्र है, जिस नाम से चराचर पावन होते हैं, ऐसे श्रीराम स्वय परब्रह्म हैं। रावण में विकल्प है, श्रीराम के पास विकल्प नहीं है। पाप श्रीराम का स्पर्श तक नहीं करते हैं। उनका नाम ससार को तारने वाला है।" सुलोचना द्वारा ऐसा कहते ही मन्दोदरी ने आकर श्रीराम से मिलने की आज्ञा दिलवाई। रावण ने भी भविष्य समझते हुए आज्ञा प्रदान की।

सुलोचना द्वारा श्रीराम के पास जाकर विनती करना– सुलोचना ने श्रीराम को नमन करने के लिए प्रस्थान किया। वह मन में सोचने लगी "करोड़ों योग, जप-तप करने पर भी, स्वप्न में भी श्रीराम की भेंट नहीं होती। उस श्रीराम को आज मैं अपनी आँखों से देखूँगी" इस विचार से आनन्दित होकर वह चल पड़ी। उसने इन्द्रजित् की भुजा हृदय से लगाकर रखी थी। वह पैदल चल रही थी। राम-नाम स्मरण करती हुई श्रीराम का अखंड ध्यान कर रही थी। उसके चलते समय वाद्य बज रहे थे। उस सत्व शिरोमणि की आरती उतारी जा रही थी। नारियाँ उसका अखड जय-जयकार कर रही थीं। सुलोचना अपनी सखियों को साथ लेकर, श्रीराम के स्वरूप का ध्यान करते हुए एक निष्ठापूर्वक राम-नाम स्मरण करती हुई चली जा रही थी। श्रीराम की सेना दिखाई देते ही सुलोचना हर्षित होकर बोली– "मेरे अहोभाग्य कि आज मुझे श्रीराम के दर्शन होंगे।" श्रीराम की जय-जयकार करते हुए वह उनके चरणों पर गिर पड़ी। उनकी चरण-वंदना कर श्रीराम के समक्ष हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। वानरों ने सुलोचना को देखा। तब उन्हें ऐसा लगा कि रावण ने सीता को वापस भेज दिया है। सबने श्रीराम-नाम की गर्जना करते हुए श्रीराम को नमन किया। वानर बोले– "श्रीराम आदिमाया जानकी को रावण ने भेज दिया है। वह युद्ध से डर गया होगा।" वानरों के वचन सुनकर रघुनन्दन बोले– "रावण के जीवित रहते हुए हमें सीता नहीं दिखाई देंगी। पूरा वृत्तान्त समझकर कौन आ रहा है, यह पूछकर, शान्त रहकर अवलोकन करें।" राम-भक्तों में पाप वासना नहीं होती। सुलोचना राम का नाम स्मरण करती हुई पैदल आ रही थी। वानरों ने गर्दन झुका ली थी। सुलोचना आगे आयी, उसने श्रीराम की प्रदक्षिणा की व मस्तक भूमि पर टिका दिया।

पास में ही खड़े हनुमान बोले– "हे रघुनाथ, इन्द्रजित् की पत्नी पतिव्रता सुलोचना आपकी चरण-वंदना करने के लिए आयी है। आप कृपालु हैं। उसका मनोगत पूछकर उसका मनोरथ पूर्ण करें।"

श्रीराम बोले "हे माता, उठो। अपनी इच्छा कहो, जिसे मैं पूर्ण करूँ फिर अपने घर के लिए प्रस्थान करो।" श्रीराम के त्रिवार ऐसा कहने पर सुलोचना उठी व भुजा को हृदय से लगाकर श्रीराम की स्तुति करते हुए बोली- "हे श्रीराम, भक्तों की इच्छापूर्ण करने वाले कल्पवृक्ष, मैं आपकी शरण में आयी हूँ। हे मेघश्याम, तुम्हारे चरणों की महिमा कौन जान सकता है। मैं आपकी शरण आयी हूँ। वानर इन्द्रजित् का शीश लेकर आये हैं, वह मुझे देकर आप मुझे सनाथ करें। सौमित्र से मेरी भेंट करायें, वह मेरे लिए आप्त हैं। इन्द्रजित् का शीश मुझे देने पर मैं सती हो जाऊँगी। मैं आपकी कन्या हूँ। जामाता का शीश देकर हे रघुनाथ, आप मुझे विदा करें। मेरी और कुछ याचना नहीं है।" सुलोचना के वचन सुनकर श्रीराम का हृदय द्रवित हो उठा। वानर सेना की ओर देखते हुए वे बोले- "सुग्रीव, जाम्बवंत, नल, नील, अगद आदि सभी बतायें कि इन्द्रजित् की पत्नी ने जो कहा, वह आप सबको मान्य है अथवा नहीं। यह रावण की पुत्रवधू हमारी शरण में आयी है। इन्द्रजित् का शीश देकर इसे विदा करना चाहिए।" रघुनाथ के वचन सुनकर वानरराज सुग्रीव बोले- "हे सुलोचना, तुम्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त इतनी अल्पावधि में कैसे ज्ञात हुआ। वानरों द्वारा शिर यहाँ लाया गया है, यह तुम्हें कैसे पता चला ?" इस पर सुलोचना ने हृदय से लगाया हुआ भुजदंड दिखाते हुए कहा- "वानरराज सुग्रीव आप सुनें, मेरे घर के आँगन की भूमि पर यह भुजदंड आ गिरा तब मैंने उससे विनती की। उसने पन्ने से निर्मित भूमि पर विस्तारपूर्वक सम्पूर्ण घटना लिखी। वही यह भुजा है।" यह कहते हुए उसने निश्चयपूर्वक वह भुजा दिखाई।

सुलोचना के वचनों पर सुग्रीव का आह्वान- सुलोचना के वचन सुनकर सुग्रीव बोला- "इन वचनों को कौन सत्य मानेगा ? अगर यह सिर प्रत्यक्ष बोलकर तुम्हारे पातिव्रत्य का साक्ष्य देगा, तभी हम इन वचनों को स्वीकार करेंगे अन्यथा वे व्यर्थ सिद्ध होंगे।" तत्पश्चात् श्रीराम की आज्ञा से शीश वहाँ लाया गया, उसे देखकर सुलोचना मन ही मन प्रसन्न हो उठी। उसने उस शीश को लेकर अपने आँचल से पोंछा, उसे अपने मस्तक से लगाया। तत्पश्चात् सहज रूप से पद्मासन लगाकर भुजा व शीश को अपनी गोद में लेकर बोली "हे स्वामी इन्द्रजित् ! वानर आपका शीश रणभूमि से उठाकर यहाँ लाये हैं, स्वामी उसका क्रोध न करें। मैं आपकी दासी हूँ। मुझसे छल न कर वानरों को साक्ष्य देकर मेरा पातिव्रत्य सिद्ध करें। वानर मुझे त्रस्त कर रहे हैं। यह आपके अतिरिक्त किससे कहूँ ?" यह कहकर उसने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। नाना प्रकार से विनती करते हुए वह प्रार्थना कर रही थी परन्तु सिर कुछ बोल नहीं रहा था। शीश का निर्धार देखकर उसने मन ही मन विचार किया कि अब अपना सतीत्व ही इन्हें दिखाना चाहिए।" वह बोली- "मैं अगर सच्ची पतिव्रता हूँ तो मेरे पति श्रीरघुनाथ के समक्ष साक्ष्य दें। मैं अगर पतिव्रता हूँ तो हे इन्द्रजित्, तुम्हारे अतिरिक्त मेरे लिए सब शेष समान हैं। अतः यह अचेतन सिर 'सुलोचना सत्यतः पतिव्रता है,' यह बोलकर दिखाये।"

सुलोचना सती की प्रतिज्ञा सुनकर उस अचेतन सिर में कंपन हुआ। श्रीराम के समक्ष साक्ष्य देते हुए वह बोला- "जिस प्रकार श्रीरामचन्द्र सत्य हैं, उसी प्रकार सुलोचना का पातिव्रत्य सत्य है, यह पूर्ण रूप से स्वीकार करते हुए ही स्वामी कोई निश्चित निर्णय दें।" उस सिर द्वारा यह कहने पर वानरों ने जय-जयकार किया। श्रीराम प्रसन्न हुए। लक्ष्मण चिन्तातुर होकर सोचने लगे- "यह शीश अचेतन होते हुए भी इसने सत्य साक्ष्य दिया ?" श्रीराम सन्तुष्ट होकर बोले- "सुलोचना, तुम अपनी इच्छा कहो। जो मांगोगी, वह तुम्हें प्रदान करूँगा" इस पर सुलोचना ने कहा- "हे श्रीराम, भक्तों की इच्छा पूर्ण करने वाले कल्पवृक्ष, मुझे पति का शीश दें तथा हम दोनों को पुनर्जन्म न दें। आपके चरणों में नित्यवास तथा

आपमें दृढ़ विश्वास देकर हमें निज-धाम भेज दें।" सुलोचना की इच्छा सुनकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए। वे बोले- "तुम अपने निजधाम को प्राप्त करोगे ऐसा मेरा तुम्हें आशीर्वाद है।" तत्पश्चात् अधिक हर्षित होकर- 'अभी इन्द्रजित् को उठाता हूँ'- यह कहते हुए श्रीराम ने हाथ उठाया। तभी वीर हनुमान बोले- "स्वामी इस परोपकार को रोकें और सभी दृष्टियों से विचार करें। अधिक उदार न हों।'' तभी लक्ष्मण ने कहा- "हनुमान के वचनों को प्रमाण मानकर स्वामी, सुलोचना को प्रस्थान की आज्ञा दें।" तत्पश्चात् सुग्रीव सुलोचना से बोला- "माता शीश लेकर शीघ्र प्रस्थान करो, अधिक विलंब न करो।" सुग्रीव के वचन सुनकर सिर और भुजा को हृदय से लगाकर, श्रीराम को प्रणाम कर उनकी प्रदक्षिण कर, विनती करते हुए वह बोली- "स्वामी रघुनाथ, आज के दिन आप युद्ध न करें, अपने वानरों को रोक लें"। इस पर 'अवश्य' कहते हुए श्रीराम ने उसकी विनती मान्य की। श्रीराम ने सुग्रीव को आज्ञा दी कि आज वानर प्रत्यक्ष युद्ध के लिए न आयें"।

सती सुलोचना द्वारा सहगमन– श्रीराम की कृपा होते ही भुजा और शीश को लेकर युद्ध भूमि छोड़कर सुलोचना सभी सखियों के साथ रामनाम स्मरण करते हुए पैदल चलते हुए निकुंबला में इन्द्रजित् का धड़ जहाँ था, वहाँ गयी। धड़ में सिर को जोड़कर दोनों भुजाएँ समीप रखकर अग्नि प्रवेश की सामग्री को उसने स्वयं सजाया। इसकी सूचना रावण के दूतों ने जब रावण को दी तब वह मन्दोदरी और परिवार सहित शीघ्र निकुंबला पहुँचा। वहाँ पहुँचकर रावण ने स्वयं चौकोर कुंड बनाया, उसमें चन्दन की लकड़ियाँ डालकर अग्नि प्रज्वलित की। सुलोचना सती का रूप लेकर स्वयं कुंड के समीप आ खड़ी हुई। अग्नि के समीप खड़े रहकर इन्द्रजित् का सम्पूर्ण शरीर शीघ्र चिता में रखकर उसे अग्नि दी। स्वयं कुंड के समीप रुककर सतीत्व के वायन दिये। उस समय सभी सखियाँ एकत्र थीं। विमान से आये सुरगण स्वर्ग से जय जयकार करने लगे। अग्नि चारों ओर से प्रज्वलित हुई, कुंड अग्निमय हो गया। उसने रंगशिला का पूजन किया, कुंड की प्रदक्षिणा की, रंगशिला पर खड़ी होकर वहाँ एकत्र स्त्रियों की ओर देखा। सुलोचना ने मन को एकाग्र किया। इन्द्रजित् के स्वरूप पर ध्यान केन्द्रित किया। तब उसकी देह-भावना आत्मस्वरूप में विलीन हो गई। वह इन्द्रजित् के स्वरूप में एकाकार हो गई और अग्नि में प्रविष्ट हुई। उस समय दैदीप्यमान विमान में बैठा इन्द्रजित् उसे दिखाई दिया। तब दोनों एकाकार होकर सायुज्य सदन में प्रविष्ट हो गए। क्षण भर में सब कुछ परिवर्तित हो गया। वह अलग ही सृष्टि थी। देवताओं ने पुष्पवृष्टि की। सर्वत्र जय जयकार होने लगा। तत्पश्चात् देवता अपने-अपने स्थान पर लौट गये। लंकावासी जन सुलोचना का स्मरण करते हुए अपने घरों को लौट गये।

लंकानाथ रावण व मन्दोदरी आक्रोश करते हुए विलाप कर रहे थे। रावण निश्चयपूर्वक बोला– "हे प्रिये मन्दोदरी, आज ज्येष्ठ पुत्र व पुत्रवधू का प्रस्थान हुआ। अब हम भी शीघ्र ही प्रयाण करेंगे। शोक क्यों करें। हम भी अब अधिक समय तक नहीं रहेंगे।" यह कहते हुए रावण सपरिवार अपने भवन में वापस लौटा। जिस रावण की सम्पत्ति अगणित है, जिसकी बच्चे, नाती, पोते इत्यादि अत्यधिक संतति हैं, जिसकी नगरी स्वर्णनिर्मित है, सभी देव जिसकी सेवा करते हैं, उसका यह विपरीत समय आ गया है। एक मात्र रावण शेष बचा है, वह भी श्रीराम के बाणों से मारा जाएगा। अन्त में बिभीषण ही शेष बचेगा। काल की गति को कोई नहीं जान सकता है।

❦❦❦❦

अध्याय ४२

[रावण का युद्ध के लिए आगमन]

सौमित्र द्वारा इन्द्रजित् का वध कर विजयी होने का समाचार सुनकर लंकानाथ रावण अत्यन्त दु:खी था। प्रधानों ने उसे बताया कि 'निकुंबला की गुहा में प्रवेश कर, लक्ष्मण ने इन्द्रजित् का वध किया। हनुमान लक्ष्मण के सहायक थे। अत्यन्त धीरतापूर्वक विवर में प्रवेश कर इन्द्रजित् को बाहर निकालने पर हनुमान ने स्वयं को मेघों तक बढ़ाया क्योंकि इन्द्रजित् मेघ पृष्ठ पर सवार होकर गर्जना कर रहा था। हनुमान ने अपने हाथों पर लक्ष्मण को वहाँ पहुँचाकर उनसे इन्द्रजित् का वध करवाया। हनुमान ही सर्वार्थपूर्वक वध में सहायक हुआ।'

रावण द्वारा शोक, क्रोध एवं युद्ध के लिए प्रयाण– इन्द्रजित् के वध का समाचार सुनकर रावण मोहवश मूर्च्छित होकर सिंहासन के नीचे गिर पड़ा। मूर्च्छा दूर होने पर वह दसों मुखों से आक्रोश करने लगा। तीव्र स्वर में विलाप करते हुए– 'मेरा पुत्र मुझे छोड़ कर चला गया' कहते हुए भूमि पर गिरकर छटपटाने लगा। उसके केश खुल गए थे। नेत्रों से अश्रुधाराएँ प्रवाहित हो रही थीं। पुत्र के शोक से दु:खी होने के साथ ही वह सन्तप्त भी था। जब दु:ख से उसके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित हो रहे थे, तभी क्रोध भी उसके नेत्रों से दिखाई दे रहा था। उसका यह रूप देखकर सभी भयाक्रांत थे। उसके नेत्रों से मानों अग्निवर्षा हो रही थी। वह क्रोध से थर-थर काँप रहा था। वह क्या करे, यह उसे सूझ नहीं रहा था। वह मुख से कहता जा रहा था कि 'हे इन्द्रजित्, तुम्हारे जाने के बाद अब मेरी रक्षा करने वाला कोई नहीं है।' आक्रोश कर विलाप करते-करते उसका गला सूख गया। पुत्र शोक से वह अत्यन्त दु:खी था। तत्पश्चात् वह गर्जना करते हुए बोला– "मैं युद्ध में राम व लक्ष्मण को मारकर इन्द्रजित् के वध का बदला लूँगा। अब मेरा पराक्रम देखना। मेरे बड़े धैर्यवान् महावीर योद्धाओं को मार डाला। मेरे आप्त सम्बन्धी, भाई व प्रिय पुत्रों को मार डाला।" यही वह बार-बार कह रहा था।

दशकंठ रावण दु:खपूर्वक कह रहा था– "मेरे उत्तम योद्धा, बलवान् बंधु, छोटे-बड़े सभी पुत्रों को मार डाला। मैं इन सबका कितना भीषण दु:ख सहन करूँ। महापार्श्व, महोदर, वीर कुंभकर्ण, प्रहस्त प्रधान, महावीर अकंपन, वज्रदंष्ट्र, विरुपाक्ष, कुंभ, निकुंभ, धूम्राक्ष, अतिकाय, त्रिशिरा, मकराक्ष, देवांतक, नरांतक इत्यादि असंख्य वीरों का संहार किया। ज्येष्ठ पुत्र इन्द्रजित् का भी वध कर दिया। अब ऐसा लगता है कि मेरा प्राणान्त हो जाएगा"। लंकानाथ दु:ख से छटपटा रहा था। वह पूँछ टूटी हुई ब्राह्मनी* (साप सुरळी) अथवा जल रहित मछली की भाँति छटपटा रहा था। राक्षस-कुल का निर्दलन हो रहा था। युद्ध में कितनी सेना मारी गई, इसका कोई हिसाब नहीं था। बची हुई सैन्य सम्पत्ति दसों दिशाओं में पलायन कर गई। इसके कारण भी रावण दु:खी हो गया था। रावण गरज कर आक्रोश करते हुए कह रहा था कि 'राम व लक्ष्मण ने मिलकर मेरे स्नेहियों को मार डाला। अब मैं भी उन दोनों के प्राण ले लूँगा।' सैना की आशा छोड़कर संग्राम के लिए तैयार होकर उसने सारथी को बुलाकर कहा– "वानर एवं नरों ने मिलकर मेरे सम्बन्धियों को मार डाला है। मेरे नगर को घेरे हुए हैं। राक्षसों को त्रस्त कर दिया है। अत: उन दोनों का नाश करने के लिए मैं स्वयं युद्ध के लिए जा रहा हूँ। शीघ्र रथ सुसज्जित कर ले आओ।"।

---

* साँप की तरह दिखने वाला छोटा-सा जन्तु

रावण द्वारा रणभूमि में राम की सेना का वर्णन– रावण सारथी से बोला– "संग्राम रूपी वृक्ष की जड़ मुख्य रूप से श्रीराम व लक्ष्मण हैं। वृक्ष का बलवान् तना सुग्रीव है। सभी वानर प्रमुख शाखाएँ हैं। वानर योद्धे भी शाखाएँ हैं तथा जानकी उसका पुण्य फल है। संग्राम बढ़ाने वाले बलशील हनुमान हैं। हनुमान के बल के संयोग से संग्राम का बल, शील बढ़ा है। मेरे कुल का निर्दलन करने वाला प्रमुख योद्धा हनुमान ही है। जहाँ-जहाँ राम व लक्ष्मण को सहायता की आवश्यकता होने लगती है, उनका बल कम पड़ने लगता है, हनुमान उनकी सहायता करता है तथा कठिन कार्य सुगम कर देता है। अब मैं स्वयं जाकर राम व लक्ष्मण का वध करूँगा। जड़ काट देने से सभी नष्ट हो जाएँगे। राम व सौमित्र की मृत्यु हो जाएगी। तत्पश्चात् करोड़ों वानर मर जायेंगे। इस प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि मैं शत्रु-रहित कर दूँगा।" इतना कहकर रावण स्वयं रथ में बैठ गया। वह अत्यन्त क्रोधित होकर गर्जना कर रहा था।

रावण के रथ की घरघराहट की ध्वनि से दसों दिशाएँ गूँज उठीं। वह अपने नाम की स्वयं ही गर्जना करते हुए आ रहा था। मुकुट, कुंडल, मेखला, कंकण, कंठमाला धारण कर, धनुष को सुसज्जित कर अपार सामर्थ्यवान् रावण, रथ में बैठकर गर्जना कर रहा था। ध्वज पताका, छत्र, चामर, कवच, इत्यादि के साथ खड्ग व धनुष बाण धारण किया हुआ रावण सामने रामचन्द्र पर ध्यान केन्द्रित कर आगे बढ़ रहा था। वानर सेना समुदाय को रावण ने अपने बाणों से त्रस्त कर दिया। करोड़ों वानर इधर-उधर भागने लगे। वे सभी श्रीराम के पीछे जा छिपे। वानर हाँफ रहे थे व थर-थर काँप रहे थे। उन्हें श्रीराम ने शरण दी। तभी उन्हें रावण दिखाई दिया। तब श्रीराम ने विभीषण को बुलाकर पूछा– "मेरे वानर वीरों को संत्रस्त करने वाला कवच खड्ग व धनुष धारण किये हुए वह कौन सा राक्षस आ रहा है। हे विभीषण मुझे शीघ्र बताओ।"

विभीषण ने बताया कि ''वही लंका का राजा दशानन है और पुत्र के वध से शोक संतप्त होकर स्वयं युद्ध के लिए आया है। वह वानरों का वध कर रहा है। निर्णायक युद्ध के लिए अब रावण स्वयं आया है। हे श्रीराम, आप अब बाण सुसज्जित करें। विभीषण के वचन सुनकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए। उन्होंने दशानन रावण का वध करने के लिए अपना धनुष बाण सज्जित किया। रावण को समक्ष देखकर धनुष पर बाण चढ़ाकर श्रीराम बोले– "अपने दृढ़ बाणों के वार से मैं रावण का वध कर दूँगा। विभीषण का राज्याभिषेक करूँगा और युद्ध को समाप्त कर दूँगा। मेरी दृष्टि लंकेश पर पड़ते ही उसके प्राण नहीं बचेंगे। रावण को युद्ध में मारने की मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण होगी।" रण समाप्ति कर तीनों लोकों में रामराज्य स्थापित करने के लिए श्रीराम ने धनुष पर बाण चढ़ाया। धनुष की प्रत्यंचा सहित बाण को कानों तक खींचकर कड़कड़ाहट की ध्वनि के साथ श्रीराम ने बाण चलाया। रावण ने अपने युद्ध कौशल से वह बाण तोड़ डाला। श्रीराम द्वारा बाण चलाते ही रावण उसे तोड़ डालता था। यह देखकर सौमित्र को क्रोध आ गया। उन्होंने शीघ्र धनुष सुसज्जित किया। लक्ष्मण द्वारा धनुष की टंकार करते ही उस ध्वनि से रावण स्तब्ध हो गया। सेना व सेनानी रुक गए। राक्षस भयभीत हो गए। लक्ष्मण द्वारा बाण चलाते ही रावण चौंक गया। राक्षस काँपने लगे व सेना में खलबली मच गई।

लक्ष्मण से रावण का युद्ध– सौमित्र का बाण लगते ही रावण क्रोधित हो गया। अपने सामने लक्ष्मण को देखकर वह बोला– "सौमित्र, तुमने इन्द्रजित् के प्राण लिये हैं, अतः तुम मेरे पूर्ण शत्रु हो। अब मैं निर्वाण बाण चलाकर तुम्हें यमलोक भेज दूँगा।" सौमित्र का वध करने के लिए रावण क्रोध से थर-थर काँप रहा था। आँखें नचाते हुए दाँत किटकिटा रहा था। तब सौमित्र रावण से बोला– "व्यर्थ की

बड़-बड़ करते हुए दाँत क्यों किटकिटा रहे हो ? कुछ पराक्रम कर दिखाओ। तुम तो प्रतापी लंकानाथ हो। बकवास करने वाले तुम अनेक मुखों से युक्त दशानन हो परन्तु तुम्हारे अन्दर कुछ पराक्रम दिखाई नहीं देता। हे रावण, तुम युद्ध में नपुंसक हो। मेरे बाण छूटने पर हे रावण वे तुम्हारा सेना सहित वध कर देंगे। लक्ष्मण के वचन सुनकर रावण क्रोधित हो उठा। सामने दिखाई देने वाले लक्ष्मण पर रावण ने भयंकर बाण चलाये। उन बाणों को तीन-तीन स्थानों से तोड़कर लक्ष्मण ने कुशलतापूर्वक उन्हें गिरा दिया। अपने बाणों को टूटा हुआ देखकर रावण संतप्त हो गया। उसने लक्ष्मण पर करोड़ों बाणों की वर्षा की। इधर लक्ष्मण जब रावण के बाणों का निवारण कर रहा था तब दूसरी ओर विभीषण, सुग्रीव इत्यादि को रावण के बाणों ने विद्ध कर दिया। वानरगणों को भी त्रस्त कर दिया।

श्रीराम से रावण का युद्ध–रावण ने बीच में ही अग्नि व सूर्य जैसे तेजस्वी बाणों को लेकर क्रोधपूर्वक दहाड़ते हुए श्रीराम पर वार किया। श्रीराम ने उन्हें तोड़ दिया। दोनों निर्णायक युद्ध करने लगे। दोनों ही निष्णात वीर होने के कारण एक दूसरे के प्राण लेने के लिए अपना हस्तकौशल दिखाते हुए कुशलतापूर्वक बाण चला रहे थे। श्रीराम तथा रावण एक दूसरे पर नियन्त्रण करने के लिए प्राणों की बाज़ी लगाकर युद्ध कर रहे थे। एक दूसरे से भिड़कर, तरह-तरह से मंडल कर, कुशलतापूर्वक बाणों से वार कर एक दूसरे का घात करने के लिए उन्मत्त होकर युद्ध कर रहे थे। रावण का वध करने के लिए श्रीराम अवसर देख रहे थे। श्रीराम की आत्मगति स्वयं मन, बुद्धि व चित्तवृत्ति को ही समझ नहीं आती, तो उनके समक्ष तुच्छ रावण की क्या बिसात। वह उनकी गति कैसे जान सकता है ? श्रीराम पैदल व रावण रथारूढ़ होते हुए भी युद्ध करते समय दायीं तथा बायीं ओर मंडलाकार घूमते हुए रथ में बैठा रावण थक गया। श्रीरघुनन्दन उसके वश में नहीं हो पा रहे थे। राम व लक्ष्मण के बाणों से सूर्य आच्छादित हो गया। युद्ध क्षेत्र में अंधकार हो गया। वे एक दूसरे को दिखाई नहीं दे रहे थे। श्रीराम के हाथों की अँगूठी के तेज के प्रकाश के बल पर वे युद्ध कर रहे थे। एक दूसरे का वध करने के लिए दोनों अवसर देख रहे थे।

राम रावण दोनों ही रण-प्रवीण धनुर्धर थे। दोनों धनुर्विद्या प्रवीण, शस्त्रास्त्र निपुण थे। दोनों शस्त्र-प्रेरण व शस्त्र निवारण के ज्ञाता थे। राम व रावण एक बाण से एक बाण, तीन बाणों से तीन बाण, दस बाणों से दस बाण तोड़ रहे थे। दोनों ही लघुवेधी थे। पीछे न हटने वाले, साहसी एवं धैर्यवान् वे दोनों वीर चपलतापूर्वक रणभूमि में बाण चला रहे थे। युद्ध में दोनों ही पीछे नहीं हट रहे थे। दोनों गरज रहे थे। राजा रावण भीषण बाण सज्ज कर श्रीराम का लक्ष्य साधते हुए आवेशपूर्वक बाण चला रहा था। उसके बाणों का निवारण कर श्रीराम ने भी दारुण-बाण चलाया। श्रीराम ने रावण को रथ सहित आकाश में उड़ा दिया। पंखयुक्त बाणों की हवा से रथ गोल-गोल घूमने लगा। जब रावण ने बाण का निवारण कर रथ को घूमने से रोका तब श्रीराम ने बाण चलाकर रावण को ही रथ से उड़ा दिया। इस पर रावण क्रोधित हो गया और उसने मन्त्र जाप कर असुरास्त्र का आवाहन किया। उससे अनेक क्रूर, भयंकर जीव निकलने लगे। सियार, भेड़िये, सिंह, बाघ, कौए, कंक, चील, गिद्ध, वराह, महागर्दभ, विषैले सर्प, नेवले, मुर्गियाँ एवं क्रूर श्वापदों के समूह इत्यादि रावण ने श्रीराम पर अस्त्रों की सहायता से छोड़े। राम का वध करने के लिए रावण ने क्रोधपूर्वक कालिया सर्प सदृश बाण आवेशपूर्ण पराक्रम से चलाया। महाघोर असुरास्त्र को आते देखकर, श्रीराम ने अग्नि-अस्त्र चलाकर सभी प्राणियों को भस्म कर दिया।

अध्याय ४३

[रावण द्वारा लक्ष्मण पर शक्ति प्रयोग, श्रीराम द्वारा उसका निवारण]

लग रहा था कि वह विभीषण को मारकर उसका रक्त पी जाएगा। एक ही वार में उसका वध करने के लिए रावण ने शक्ति अभिमन्त्रित कर विभीषण की ओर चलायी। रावण द्वारा वह शक्ति चलाते ही लक्ष्मण ने बाणों की वर्षा कर तीन स्थानों पर उसको काटते हुए भूमि पर गिरा दिया और शरणागत विभीषण की रक्षा की। विभीषण की रक्षा करने वाले लक्ष्मण, रावण को दिखाई नहीं दिये परन्तु शक्ति काट दी गई है, यह उसने देखा। लक्ष्मण द्वारा शक्ति को काटते ही रावण ने दूसरी शक्ति सज्ज कर विभीषण का वध करने के लिए चलायी। इस दूसरी शक्ति का निवारण करने का प्रयत्न करने पर दोनों का ही उसके द्वारा वध होता, ऐसी वह शक्ति अचूक व भीषण थी; जिसको रावण ने स्वयं परीक्षण कर विभीषण को देखते हुए क्रोधपूर्वक उस पर चलायी थी। इसके अतिरिक्त अपने बंधु के नाश के लिए बीस हाथों से विभीषण पर प्रहार किया। रावण की वह शक्ति प्रलय-काल की विद्युत सदृश तेजस्विनी थी। आकाश में वह अत्यन्त तेजपूर्वक चमकी। उस शक्ति की भीषणता व अचूकता को समझते हुए विभीषण बोले– "अब मेरी मृत्यु निश्चित है, अब मेरे प्राण बच नहीं सकते।" विभीषण को चिन्तित देखकर लक्ष्मण वहाँ आये और उन्होंने शरणागत विभीषण को अपनी ओट में अभय देकर उनकी रक्षा की। वे बोले-- "हे विभीषण, स्वयं रघुनाथ का स्मरण करो। राम-नाम से मृत्यु टल जाती है, भय दूर होता है।" राम नाम का स्मरण कर लक्ष्मण व विभीषण दोनों आनन्दपूर्वक नाचने लगे। यह देखकर रावण आश्चर्यचकित हुआ। वह सोचने लगा– "मैंने भीषण शक्ति का वार किया था परन्तु इन्हें तो मृत्यु का तनिक भी भय नहीं है वरन् दोनों आनन्दपूर्वक नाच रहे हैं। सौमित्र अत्यन्त निर्भय स्थिति में है। नर व वानर राम-नाम के कवच के कारण मृत्यु से भयभीत नहीं होते।"

लक्ष्मण पर रावण द्वारा ब्रह्मशक्ति से वार– रावण द्वारा विभीषण का वध करने के लिए छोड़ी गई शक्ति को लक्ष्मण ने भस्म कर दिया। यह लक्ष्मण द्वारा साध्य हो सका क्योंकि यक्षिणी वट की मुख्य शक्ति लक्ष्मण के वश में थी। जिसके कारण शक्ति ने शक्ति का निवारण किया। उसे दो टुकड़े कर भूमि पर गिरा दिया। शरणागत विभीषण की रक्षा के लिए लक्ष्मण को सतर्क देखकर रावण क्रोधित हो गया। वह कहने लगा– "इसके कारण बंधु का वध न हो सका अन्यथा मेरी इस शक्ति के प्रहार से विभीषण की मृत्यु निश्चित थी। उस शक्ति के बीच में आकर लक्ष्मण ने उसे काट डाला। अतः अब मैं पहले लक्ष्मण को मारूँगा, तत्पश्चात् विभीषण का वध करूँगा।" यह कहते हुए रावण ने निर्वाण-शक्ति निकाली। इस शक्ति का नाम ब्रह्मशक्ति था। जिसका निवारण रघुपति कदापि नहीं करेंगे। अतः उस शक्ति को लक्ष्मण का वध करने के लिए चलाया। रावण की ख्याति को चूर-चूर करके पहली दोनों शक्तियों को निष्फल करने के कारण रावण लक्ष्मण पर क्रुद्ध था। उसने ब्रह्मशक्ति चलायी। नाना प्रकार की युक्तियों का प्रयोग कर मायावी शक्ति रावण के श्वसुर अर्थात् मयासुर ने सिद्ध की थी। वह श्रेष्ठ सुरवरों के लिए प्रभावशाली नहीं थी। अतः रावण चिन्तित था। तब रावण ने प्रजापति की प्रार्थना कर उस ब्रह्मशक्ति को माँगा था। वह ब्रह्म वरदान के कारण तीनों लोकों में अकाट्य और भीषण शक्ति के रूप में प्रसिद्ध थी।

ब्रह्मा ने कहा था– "यह शक्ति सबके प्राण हर लेगी परन्तु अवतारी पुरुषों के लिए बाधक नहीं होगी। उसके द्वार उनके प्राण नहीं लिये जाएँगे और उनके कारण यह शक्ति समाप्त हो जाएगी। जिस पर यह शक्ति चलायी जाएगी, उसके प्राण बच नहीं पाएँगे।" ऐसी ब्रह्म-शक्ति को रावण ने लक्ष्मण के लिए सुसज्जित किया। शक्ति से विभीषण को मारने के लिए प्रहार करने पर लक्ष्मण ने उसे बचा लिया

अतः सामने लक्ष्मण को देखकर रावण उससे बोला– "शक्ति का निवारण कर तुमने विभीषण को बचाया अब मैं तुम्हारे ही प्राण ले लेता हूँ। अब मैं जो शक्ति चलाऊँगा, उसका निवारण नहीं होता। हृदय को भेदती हुई प्राण लेकर ही यह मेरे पास वापस आयेगी। मेरी इस शक्ति के आघात से बचो, तब तुम्हारा पुरुषार्थ ज्ञात हो। यह कहकर उसने शक्ति चलायी। उस शक्ति के तेज व कड़कड़ाहट की ध्वनि के कारण दोनों सेनाओं की आँखों के आगे अँधेरा छा गया। उस शक्ति में प्रलय विद्युत का सामर्थ्य था। उसकी ध्वनि से सम्पूर्ण गगन व्याप्त हो गया। उस समय श्रीराम, लक्ष्मण व हनुमान ही आँखें खोलकर सजग रह सके। अन्य सभी उस शक्ति के तेज से मूर्च्छित हो गए। उस शक्ति को देखकर भी धैर्यशाली वीर योद्धा लक्ष्मण अणुमात्र भी विचलित नहीं हुए। इसके विपरीत उन्होंने बाण सुसज्जित कर उस शक्ति को काट दिया। लक्ष्मण ने अन्तराल में ही उसे काटते हुए निष्फल कर दिया। लक्ष्मण की रक्षा के लिए उस शक्ति के आने पर श्रीराम ने भी कृपालुपूर्ण वचन कहे।

श्रीराम द्वारा ब्रह्म-शक्ति को क्षीण करना, लक्ष्मण पर शक्ति प्रयोग– श्रीराम की दृष्टि द्वारा अवलोकन किये जाने पर ब्रह्मशक्ति का सामर्थ्य क्षीण हो जाता है परन्तु श्रीराम ब्रह्मशक्ति को सम्मान देते हैं। श्रीराम द्वारा शक्ति क्षीण कर देने पर लक्ष्मण ने बाण चलाया। उस समय वह शक्ति भूमि पर गिरने लगी, जिसे रावण ने तत्परतापूर्वक झेल लिया। रावण शक्ति से बोला– ''तुम ब्रह्मा की शक्ति होते हुए भी भूमि पर किस प्रकार गिर रही हो ? रावण ने फिर हाथ में झेली हुई शक्ति को पुनः लक्ष्मण पर फेंका। समीप से शक्ति बाण चलाने पर लक्ष्मण तीव्र बाण से वार करेगा, इस भय से रावण ने दूर से ही प्रहार किया। उसने शक्ति को हाथों में पकड़कर क्रोधपूर्वक अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर आवेशपूर्वक उसे लक्ष्मण की ओर फेंका। अपने अंगबल, बाहुबल, जाँघबल से रावण ने उस शक्ति से प्रहार किया। शक्ति कड़कड़ाहट की ध्वनि के साथ आकाश में उछली। धैर्यवान् वीर लक्ष्मण विचलित हुए बिना स्थिर खड़े रहे। उसने कुल्हाड़ी से उस शक्ति को तोड़ दिया। वह शक्ति मयासुर द्वारा निर्मित थी। उसे बाण वर्षा से काट डाला। उसके पश्चात् केवल ब्रह्मशक्ति शेष बची। ब्रह्म वरदान के कारण उसका वार अनिवार्य था। शक्ति आते ही लक्ष्मण ने बाणों से बिद्धकर अपने सामर्थ्य से उसे सत्यलोक तक उछाल दिया। शक्ति अपने बल से बार-बार उसकी ओर आती थी और लक्ष्मण अपने बाणों से उसे वापस भेज देते थे। शक्ति को समय दिये बिना वह भीषण प्रहार करते थे। शक्ति गुप्त गति से चमकती हुई लक्ष्मण के शरीर पर लगने के लिए अवसर देख रही थी। लक्ष्मण खड्ग हाथों में लेकर पुनः उसे सत्यलोक में भेज देता था। उसने खड्ग के वार से शक्ति को काटा तब रणभूमि में उसकी चिनगारियाँ उड़कर उछलते हुए आकाश में तारों के सदृश फैल गईं।

लक्ष्मण के सतर्क होने पर शक्ति का उस पर वार सम्भव नहीं है, यह समझकर रावण ने कपट करने का निश्चय किया। लक्ष्मण महावीर तथा धैर्यपूर्वक अचूक शर संधान करने वाले थे। अतः वह शक्ति को अपनी ओर आने ही नहीं दे रहे थे। यह देखकर रावण भ्रमित हो उठा। लक्ष्मण का ध्यान बँटाने के लिए रावण ने कपटपूर्वक राक्षसों से यह गर्जना करवाई कि रावण के बाण से श्रीराम युद्ध में मारे गए, वे धराशायी हो गए। लक्ष्मण ने वह गर्जना सुनी और वह काया, वाचा तथा मन से विह्वल हो उठा। उसका मन चिन्तित हो गया तथा धनुष पर उसकी पकड़ ढीली हो गई। राम के विरह के विचार से वह चिन्तित हो उठा। तभी उस पर शक्ति से आघात हुआ। शक्ति द्वारा उसके हृदय को भेदते ही सौमित्र को श्रीराम का स्मरण हो आया। इसके कारण शक्ति का प्रहार हृदय पर ऊपर से हुआ, गहराई

तक नहीं पहुँचा क्योंकि जहाँ श्रीराम का स्मरण होता है; वहाँ मृत्यु प्रवेश नहीं कर सकती। शक्ति भी क्या प्रभाव कर सकती थी, उसका प्रहार ऊपर तक ही सीमित रह गया। हृदय पर शक्ति लगते ही लक्ष्मण विह्वल होकर भूमि पर गिर पड़े। यह देखकर कृपालु श्रीराम का मन भर आया।

श्रीराम द्वारा शरवर्षा, रावण का पलायन– लक्ष्मण की अवस्था देखकर श्रीराम के नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे। वे दुःखी हो गए और सोचने लगे कि लक्ष्मण ने प्राण त्याग दिया तो मैं क्या करूँगा ? रघुनाथ कुछ क्षण ध्यानस्थ रहे। तब उन्हें ज्ञात हुआ कि लक्ष्मण के प्राणों पर आघात नहीं हुआ है। यह समझते ही उन्होंने युद्ध प्रारम्भ किया। रावण का वध करने के लिए श्रीराम कृतान्तकाल अथवा प्रलयाग्नि सदृश क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने धनुष बाण सुसज्जित किया। उनके बाण चलने लगे। श्रीराम के बाणों का निवारण न कर पाने के कारण, रावण घबरा गया और भागने लगा। लक्ष्मण के दुःख से क्षुब्ध राम, बाण चलाकर प्राण ले लेगा, इस भय से रावण भागकर सेना के समूह में जाकर छिप गया। फिर भी उसे श्रीराम की असहनीय शर वृष्टि का भय लग रहा था। जिस प्रकार प्रचंडवायु मेघों को हताहत कर देती है, उसी प्रकार भयभीत हो रावण सेना के मध्य भाग रहा था। श्रीराम पीठ पर प्रहार नहीं करते इस लिए रावण भागकर अपनी सेना में संकट से बचा रहा। श्रीराम ने युद्ध में रावण को मारने का निश्चय किया था परन्तु वह अपनी सेना में छिपा रहा। इस प्रकार उसने अपने प्राण बचाये। रणभूमि में अगर रहता तो विषाद के लिए समय न रहता परन्तु वहाँ रावण के न रहने पर, श्रीराम ने तय किया कि लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर की जाय, यही अपना पुरुषार्थ है।

लक्ष्मण की शक्ति का निवारण तथा शिविर में प्रस्थान; राम-रावण युद्ध– रावण सेना में छिपकर बैठा था। श्रीराम लक्ष्मण के समीप आये। शक्ति लक्ष्मण के हृदय को भेद कर भूमि में प्रवेश कर गई थी, जिस प्रकार सर्प बाँबी में प्रवेश कर जाता है। यह देखकर श्रीराम बंधु-स्नेह से द्रवित हो उठे। श्रीराम पूर्ण कृपालु थे। लक्ष्मण को बचाने के लिए शक्ति को निकालने के लिए, उन्होंने अपने अमृतसदृश हाथों से उसे स्पर्श किया। शक्ति हृदय में प्रवेश कर गई थी जिसे श्रीराम अपने हाथों से निकालना चाह रहे थे। उसके लिए वे अनेक उपाय कर रहे थे। कोई बोला– ''शक्ति को निकालते ही लक्ष्मण के प्राण चले जाएँगे, अतः ऐसा कदापि न करें।'' श्रीराम कृपालु थे। उन्होंने अपने हाथों से शक्ति को खींचकर निकाल लिया। उनके हाथों के स्पर्श से शक्ति वीरता से रहित व निष्प्रभ हो गई। उसका लक्ष्मण को मारने का सामर्थ्य नष्ट हो गया। ब्रह्मा के वर को पूर्ण करने के लिए वह शक्ति हृदय में चुभी थी। उस शक्ति को अपने हाथों से पकड़ कर श्रीराम ने कुशलतापूर्वक उसे काट डाला। श्रीराम जब शक्ति निकालने में मग्न थे तब अवसर देखकर रावण ने श्रीराम पर आवेशपूर्वक भीषण बाणों की वर्षा की। रावण द्वारा चलाये गए बाणों को तृण सदृश मानकर श्रीराम अपने कार्य में मग्न रहे। उन्होंने लक्ष्मण को अपने हाथों से उठाकर प्रेमपूर्वक आलिंगनबद्ध कर लिया। तत्पश्चात् हनुमान, सुग्रीवादि वानरगणों को बुलाकर श्रीराम ने उन्हें बताया कि 'लक्ष्मण को अपने स्थान पर ले जायँ। ग्रीष्म ऋतु के अन्त में मेघ चातक को मेघ-जल देकर शान्त करता है। उसी प्रकार लक्ष्मण को स्वस्थ और शान्त करें। तब तक मैं रावण का वध करूँगा।

श्रीराम द्वारा रावण की दुर्दशा; उसका लंका में पलायन– ''आज मेरा प्रतिज्ञापूर्ण युद्ध है। या तो यह पृथ्वी रावण रहित होगी अथवा राम रहित होगी। सम्पूर्ण संसार इसे देखेगा।'' राम नाम स्मरण करने वाले को मृत्यु नहीं आती तो स्वयं राम किस प्रकार मर सकते हैं ? युद्ध में रावण का वध हुआ,

यह सभी लोग देखेंगे। श्रीराम सम्पूर्ण संसार की आत्मा है। वे जन्म-मृत्यु से परे हैं। रावण की मृत्यु निश्चित है, अटल है। श्रीराम स्वयं चैतन्य विग्रही, देह होते हुए भी विदेह एवं द्वन्द्वातीत हैं। परब्रह्म हैं। श्रीराम सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हैं। तिलभर स्थान भी उनके अस्तित्व से रिक्त नहीं है। उनके सम्बन्ध में जन्म व मृत्यु के विचार व्यर्थ हैं। (ऐसा सन्त एकनाथ का भाष्य है।)

लक्ष्मण को शिविर में भेजने के पश्चात् 'रावण ने लक्ष्मण को बाण से मारा', इस कारण क्रोधित होकर उन्होंने रावण पर वर्षा की। ''जिसके लिए सुग्रीव को राज्य दिया, जिसके लिए वानरगणों को लंका में लाया गया, उस रावण का मैं वध करूँगा। जिसके लिये पाषाण लाकर समुद्र में सेतु निर्माण किया, उस रावण को मैं मारूँगा। उसके ऊपर निर्णायक बाण चलाऊँगा। मेरे युद्ध का चमत्कार सुर, नर, किन्नर, सिद्ध, चारण, विद्याधर इत्यादि सभी लोग देखें। राम ने भीषण युद्ध कर घमंडी रावण को मार डाला, ऐसा पुराण पृथ्वी पर सुर सिद्ध भविष्य में पढ़ेंगे।'' श्रीराम ने ऐसा कहते हुए सुवर्णपंखी प्रज्वलित सतेज बाण हाथ में लेकर रावण की ओर चलाया। रावण ने भी बाण सज्ज कर रघुनन्दन पर चलाया। नाराच बाण उसने कुशलतापूर्वक वेग से श्रीराम पर चलाया। दोनों के बाणों से भूतल, अन्तरिक्ष, दिग्मंडल व कुलाचल व्याप्त हो गए। दोनों ही वीर उत्तम योद्धा होने के कारण, उन्होंने वायु को भी प्रवाहित नहीं होने दिया। शस्त्रों की खनखनाहट से अग्नि उत्पन्न हुई। बलपूर्वक शस्त्र प्रहार करने से चिंगारियाँ उड़ने लगीं। अग्नि प्रज्वलित होने से बाण अन्तरिक्ष में ही जलने लगते थे। ऐसे वे पराक्रमी रणयोद्धा थे। श्रीराम के भीषण बाणों का रावण, निवारण नहीं कर पा रहा था। उसके कवच को भेदते हुए बाण उसके शरीर में चुभ रहे थे। श्रीराम द्वारा उसका धनुष उसके हाथों में ही तोड़ डाला गया। उसके रथ का सारथी मारा गया। रथ के घोड़े धराशायी हो गए। रावण को विरथ कर दिया। छत्र, मुकुट, ध्वज, रथ ये चारों गिर पड़े। इनके गिरने के साथ ही रावण का तेज भी मिट्टी में मिल गया। इस प्रकार रणभूमि में क्रोध से परिपूर्ण होकर श्रीराम ने भीषण युद्ध किया। तत्पश्चात् रावण के दस कंठों का छेदन करने के लिए श्रीराम ने दृढ़तापूर्वक धनुष को सुसज्जित किया। तब रावण पीठ दिखाकर तुरन्त भागने लगा। युद्ध में लंकानाथ का वध करने का निश्चय कर श्रीराम रणभूमि में आये थे परन्तु बुद्धिमान रावण ने भागकर अपने प्राण बचा लिये।

श्रीराम, रावण का वध करते परन्तु रावण ने बुद्धि का प्रयोग कर रणभूमि से पलायन कर अपने प्राण बचाये। श्रीराम पीठ दिखाकर भागने वालों को नहीं मारते, यह रावण को ज्ञात था। इसीलिए उसने भागकर अपने प्राण बचा लिये। श्रीराम के बाणों से जर्जर होकर रावण आहत हो गया। उसका पुरुषार्थ चल नहीं पाया। तब भयभीत होकर वह युद्ध से पलायन कर गया। लंका के स्वामी को युद्ध में अपमानित होना पड़ा। खुले बालों से पैदल, घावों के कारण कराहते हुए अत्यन्त दुःखी होकर वह भागा। जिस प्रकार मेघ प्रचंड वायु से उड़ जाते हैं, हाथी सिंह के भय से भाग जाते हैं, गरुड़ सर्पों को भगा देता है, उसी प्रकार श्रीराम के कारण रावण भागने लगा। रणभूमि छोड़कर वह पलायन कर गया।

अध्याय ४४

[औषधि लाने के लिए हनुमान से प्रार्थना]

रावण को दण्डित करने के पश्चात् जीवों को जीवन प्रदान करने वाले श्रीराम, प्रेम से परिपूर्ण होकर लक्ष्मण की चेतना वापस लाने के लिए आये। सम्पूर्ण जग के जीवन, चिद्घन, आत्मरूप, परिपूर्ण

परब्रह्म रूपी श्रीराम कृपालु होकर लक्ष्मण को बचाने के लिए आये। जिसे कल्पान्त तक भी मृत्यु नहीं है, ऐसे आत्मज्ञानी अति समर्थ राम, जो भूत, भविष्य, वर्तमान के ज्ञाता हैं, वे वानरों के विचारों का अनुसरण करते हुए, लक्ष्मण की विकलता देखकर भविष्य के चिह्नों को समझते हुए भी झूठा विलाप करने लगे। (यह सन्त एकनाथ का, श्रीराम के प्रति- वे सर्वज्ञाता हैं, परमात्मा हैं, यह भाष्य है।)

लक्ष्मण की अवस्था देखकर श्रीराम का शोक-- लक्ष्मण को रक्त से सना हुआ देखकर श्रीराम ने सुषेण का हाथ पकड़कर बन्धु के प्रेम से दुःखी होकर शोक करते हुए कहा- "मेरा प्रिय बंधु लक्ष्मण मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है। वह मुझे अकेला छोड़कर जा रहा है। हम दोनों सगे भाई एक दूसरे का आश्रय लेकर पिता के वचनों का पालन करने के लिए वनवास के लिए आये। हे सुषेण, मेरे वचन सुनो। अगर लक्ष्मण ने प्राण त्याग दिये तो मुझे स्वयं भी जीवित रहने की इच्छा नहीं है। बन्धु लक्ष्मण का वियोग होने पर मेरा धैर्य, वीरता, शौर्य, यश सब कुछ समाप्त हो जाएगा। मेरा बंधु निश्चित ही मुझे छोड़ कर जा रहा है। मेरी आँखों के आगे अँधेरा छा रहा है। शरीर थर-थर काँप रहा है। धनुष हाथों में पकड़ा नहीं जा रहा है। मैं अब धीरज नहीं धारण कर पा रहा हूँ। मेरे प्राण विकल हो रहे हैं। बुद्धि काम नहीं कर रही है। स्मरण शक्ति क्षीण हो गई है, वाणी लटपटा रही है। शरीर काँप रहा है, अब मैं युद्ध किसके लिए करूँ ? किसके लिए यश सम्पादन करूँ ? रावण वध से कौन सा कार्य सिद्ध होगा, जब मेरा भाई ही मुझसे विलग हो रहा है। मुझे अब विजय, धैर्य, यश किसी की भी इच्छा नहीं रही। मुझे अपने जीवन की भी इच्छा नहीं है। अब मैं इसी प्रकार खड़े-खड़े अपने प्राण त्याग दूँगा, अब जीवित रहने का कोई अर्थ नहीं है।"

श्रीराम अपना मनोगत कहते हुए बोले- "हे लक्ष्मण, तुम वापस आओ। मुझे छोड़कर क्यों जा रहे हो ? मुझे दीन हीन कर तुम कहाँ जा रहे हो ? वनवास में मेरे कारण तुम्हें भूखा रहना पड़ा, क्या इसलिए मुझसे क्षुब्ध होकर जा रहे हो ? युद्ध करके थकने के कारण क्या विश्राम करने के लिए जा रहे हो ? इन्द्रजित् सदृश वीर योद्धा से युद्ध कर थक गये हो अथवा सीता ने तुम्हें अपशब्द बोले, इसलिए रुष्ट होकर जा रहे हो। हे लक्ष्मण, तुम वापस लौट आओ। मुझसे क्यों रूठे हो ? हम दोनों वनमें एक दूसरे के साथी हैं, सोबती हैं। तुम्हारे बिना मैं अन्न जल कुछ ग्रहण नहीं करूँगा। अयोध्या वापस नहीं जाऊँगा, यहीं पर प्राण त्याग दूँगा। मुझे सीता नहीं चाहिए। मैं भरत को क्या मुँह दिखाऊँगा, तीनों माताओं को क्या उत्तर दूँगा, भाई छोड़कर गया, यह कैसे बताऊँगा। जब शत्रुघ्न मुझसे मुझसे पूछेगा, तब उसे क्या बताऊँगा, कैसे मुख दिखाऊँगा ? सब सुख अब समाप्त हो गए। जीवन में दुःख ही शेष रह गए हैं" यह कहते हुए श्रीराम भूमि पर गिर पड़े। वे बोले- "लक्ष्मण को रणभूमि में मैंने भेजा था अब मेरे जीवित रहने का क्या अर्थ है।" यह कहते हुए श्रीराम छाती पीटने लगे, मस्तक को भूमि पर पटकने लगे। उनका सामर्थ्य समाप्त हो गया। वे विकल हो गए। तब सुषेण ने उन्हें सँभाला। उस महामेरु के टूटते ही धैर्य का स्तम्भ गिरते ही, नाव के समुद्र में डूबते लगते ही सुषेण ने उनकी रक्षा की। जिस प्रकार मरने वाले को अमृत मिल जाय, अकालग्रस्त को मिष्ठान्न मिल जाय, सूखा पड़ने पर मेघ वृष्टि हो जाय, उसी प्रकार उस प्रसंग में सुषेण ने श्रीराम को समझाया।

सुषेण द्वारा सांत्वनादायक वचन कहना-- सुषेण बोले- "हे स्वामी रघुनन्दन, आप नित्य सजग रहने वाले, बन्धु की मृत्यु की कल्पना भी कैसे कर रहे हैं ? सेना के अग्रभाग में खड़े रहकर आप सम्पूर्ण चिन्ता रूपी बाणों को अपने हृदय पर धारण करते हैं। आप दुःख की कल्पना भी अपने

मन में न लायें। लक्ष्मण की मृत्यु नहीं हुई है, वह चैतन्य से परिपूर्ण है। उनका मुखमंडल निस्तेज नहीं है तथा देह चिह्न भी विकृत नहीं हुए हैं, उस पर अभी कालिमा नहीं चढ़ी है। आप सावधानीपूर्वक देखें, लक्ष्मण जीवित हैं। उनका मुख प्रसन्न दिखाई दे रहा है, मुख कमलदल- सदृश दिख रहा है। कर कमल सुकुमार हैं। चरण तल ठण्डे नहीं पड़े हैं। दोनों नेत्र तेजपूर्ण हैं। लक्ष्मण विकल नहीं है। उनका शरीर निश्चित रूप से प्राणहीन नहीं है। उनके अंग, मुख सब चैतन्य हैं। वे शेषावतार हैं।

सुषेण आगे बोले– ''हे श्रीराम, शत्रु की गजरूपी सेना पर विजय प्राप्त करने वाले सिंह, राक्षस कुल का निर्दलन करने वाले श्रीराम, तुम्हारे बन्धु को मृत्यु का भय नहीं है। शक्ति लगने से धराशायी होने पर भी मूलत: उनकी सुध गई नहीं है। उसके चिह्न के विषय में सुनो– ''यद्यपि वे विकल हैं तथापि उनका शरीर चपल व स्फूर्तियुक्त है। उनकी आँखें शान्त हैं, उनमें लेशमात्र भी भय नहीं है। मैं वैद्य हूँ, मृत्यु के लक्षण जानता हूँ। उनके हृदय में शक्ति लगी है। उसका उपाय मैं बताता हूँ। हे श्रीराम, कृपानिधि! यह दिव्य औषधि लाकर सुबुद्धिपूर्वक अपने बन्धु को बचा लें। अब इस औषधि को लाने का उपाय भी बताता हूँ। वायुपुत्र हनुमान से विनती कर औषधि मँगवायें। सूर्योदय से पूर्व ही औषधि मँगवाने का प्रयत्न करें। सूर्योदय के पश्चात् कार्य सिद्ध नहीं हो सकेगा। सूर्य उदित होने पर औषधि प्राप्त नहीं हो सकेगी। तब अनियन्त्रित ब्रह्मशक्ति के कारण उर्मिलापति लक्ष्मण बच नहीं सकेंगे। इस कार्य को करने के लिए केवल हनुमान समर्थ हैं। अन्य लोगों की गति लक्ष्मण को नहीं बचा पाएगी। श्रीराम से यह बताकर सुषेण हनुमान से बोले– ''सौमित्र को बचाने के लिए तुम्हीं प्राणदाता हो सकते हो।'' तब हनुमान को पास बुलाकर सुषेण ने उन्हें रहस्य समझाया।

सुषेण द्वारा मारुति से विनती– सुषेण बोले ''वायुनन्दन मारुति, लक्ष्मण बेसुध हैं, उन्हें तुम जीवनदान दो। लक्ष्मण के बचने से श्रीराम सुखी व सन्तुष्ट होंगे। सुग्रीव अंगद व वानरगण भी प्रसन्न होंगे। तुम श्रीराम के भक्त हो। तुम्हारे अन्तर्बाह्य श्रीराम का निवास है। तुम नित्य श्रीराम के प्रेम में मग्न होकर डोलते रहते हो। निरन्तर श्रीराम नाम का स्मरण करते रहते हो। तुम्हें प्राणिमात्र में समानता दिखाई देती है व श्रीराम के अखंड दर्शन होते हैं। तुम दृश्य, दृष्टा व दर्शन तीनों में ही चिद्घन श्रीराम को देखते हो। सुग्रीव, अंगद, जाम्बवंत, नल, नील एवं सभी वानर तुम्हारे ही कारण रामभक्त हुए हैं। तुम नित्य श्रीराम की सेवा में मग्न रहते हो। तुम्हारे कारण ही हमारी श्रीराम से भेंट हुई, उनके दर्शन हुए, उनसे वार्तालाप का अवसर प्राप्त हुआ। इस सृष्टि में तुम्हारे ही कारण हम धन्य हुए। तुम्हारे कारण वनचर, वानर राम-सेवक बने। तुम्हारे कारण ही दुस्तर भव-सागर वश में हुआ अन्यथा हम तो जन्म-मृत्यु के भँवर में फँसकर डूब रहे थे। हे मारुति, तुमने वानरों को राम भक्ति के प्रति प्रेरित कर उनका उद्धार किया। तुम्हारी महानता का जितना वर्णन किया जाय, कम ही है। तुमने तीनों लोकों का उद्धार किया। तुम्हारे कारण ही पापी, पाप-निर्मुक्त होकर उनका उद्धार होता है। वानर-समूह जब उपवास एवं क्षुधा से पीड़ित हो गया था, तब तुम्हीं ने गुहा में ले जाकर उन्हें फल व जल देकर तृप्त किया। उस गुहा सहित हेमा का उद्धार किया। समुद्र तट पर वानरों को मृत्यु से परावृत किया। पंखविरहित मात्र मांस का गोला बने सम्पाती (गिद्ध पक्षी) का क्षण मात्र में उद्धार किया। सीता को ढूँढ़ने के लिए समुद्र को पार किया। छायाग्रही राक्षसी ने तुम्हें सम्पूर्ण निगल लिया था, तुमने उस दुष्ट राक्षसी का हृदय फाड़कर उसका वध किया। दानवों की माता सुरसा का वध किये बिना तुम आगे बढ़ गए। तुमने पर्वत के मस्तक पर पैर

रखकर उसका उद्धार किया। भीषण समुद्र को लाँघकर पराक्रम किया और उस पार पहुँच गए। वहाँ भी अनेक बड़े कार्य साध्य किये।" इस प्रकार सुषेण ने हनुमान की गौरवपूर्वक प्रशंसा की।

तत्पश्चात् सुषेण बोले– "मध्य-रात्रि में तुमने सम्पूर्ण लंका को ढूँढ़ डाला। रावण की सभा को उलटपलट कर सीता का पता लगाया। चौदह सहस्र वनधरों को एक साथ मार डाला। वृक्षों को तोड़कर वन का विध्वंस कर दिया। जंबुमाली, प्रधान पुत्र व अक्षय कुमार का वध कर दिया। इन्द्रजित् से युद्ध कर रणभूमि में उसे सन्त्रस्त कर दिया। रावण के समक्ष जाकर पूँछ का आसन बनाकर तुमने तीक्ष्ण शब्द-बाणों से दशानन के हृदय को विदीर्ण कर दिया। पूँछ में आग लगाकर उसके दश मुख व लंका को जला कर सीता को ढूँढ़ निकाला। तुमने अकेले अर्द्धरात्रि में महापाषाण लाकर सेतु का निर्माण पूरा किया। अत्यन्त बड़े संकट में (विवर व मेघ में) प्रवेश कर लक्ष्मण को कंधे पर बैठा कर वीर इन्द्रजित् का वध करवाया। हे मारुति, जो कार्य तुमने किये, वे अकल्पनीय हैं। अत: हे भक्तोत्तम्, कपिश्रेष्ठ, तुम श्रीराम के सुख के लिए बंधु लक्ष्मण को उठाओ स्वयं शीघ्र जाकर सूर्योदय से पूर्व त्वरित दिव्य औषधि लाकर श्रीराम - बंधु लक्ष्मण को बचाओ। पहले जाम्बवंत द्वारा बताये हुए द्रोणाचल पर्वत पर जाकर दिव्यऔषधि लाओ। उस पर्वत के दक्षिण शिखर पर अनेक महान दिव्य औषधियाँ हैं। उनके नाम, मैं उनका वर्णन कर बताऊँगा। जिस औषधि से शल्य दूर हो जाते हैं, उसे विशल्यकारिणी कहते हैं। उस औषधि को अत्यन्त वेगपूर्वक जाकर युक्तिपूर्वक ढूँढ़कर लाओ- यह तुमसे विनती है।"

सुषेण द्वारा औषधि का गुण-विशेष वर्णन– जिस औषधि से शरीर के घाव ठीक हो जाते हैं, शरीर पर उसके निशान भी नहीं बचते। ऐसी उस औषधि का नाम सुवर्णा है। जिसके शीतल सुकुमार पत्ते हैं, चन्द्रकिरणें जिसमें चुभती नहीं हैं। सुन्दर हरे फलों एवं रक्तवर्णी फूलों से युक्त औषधि लक्ष्मण को बचाने के लिए वेगपूर्वक जाकर लाओ। मैं तुम्हारे चरण छूकर तुमसे विनती करता हूँ। तुम हमारे जीवन-दाता हो। हमारी भव-व्यथा को दूर करने वाले हो। अधिक क्या कहूँ, तुम्हीं तत्वत: हमारे सद्गुरु हो। तुम्हारे कारण भव-भ्रम दूर हुआ। हमें श्रीराम का प्रेम प्राप्त हुआ। हम वानरों का प्रिय बनने के लिए हे कपि श्रेष्ठ, शीघ्र उठो। मन में श्री रघुनन्दन का ध्यान कर वेगपूर्वक प्रयाण करो, जिससे कार्य सम्पादन कर विजयी होकर वापस लौटोगे। मेरे कारण ही जिन्हें श्रीराम के दर्शन हुए, मेरे कारण ही वानरों को भक्ति-सुख प्राप्त हुआ और वे ही मुझे श्री रामनाम स्मरण करने के लिए कह रहे हैं, यह विचार मन में भी मत लाना क्योंकि प्रेम की जाति ही ऐसी होती है। प्रेमवश बोलते हुए मनुष्य कुछ सोचकर नहीं बोलता है। यह ऐसी ही स्थिति होती है, जिसे तुम जानते हो। नाम स्मरण में द्वन्द्वबाधा नहीं है। स्मरण से सभी संकट नष्ट हो जाते हैं एवं परमानन्द की प्राप्ति होती है। ऐसा रामनाम स्मरण कर वेगपूर्वक उड़ान भरो, मार्ग के चिह्नों को समझकर सावधानीपूर्वक जाओ" सुषेण ने मारुति से ऐसी विनती की।

सुषेण ने मारुति को जानकारी देते हुए कहा– "लवणादि सभी समुद्रों को लाँघकर जाने के पश्चात् आगे सुन्दर कुशद्वीप है। क्षीर-सागर को लाँघकर पर्वत श्रेष्ठ लेकर आओ। उस पर्वत के उत्तर भाग में कई दिव्य औषधियाँ हैं, जो संसार में दिखाई नहीं देती। उनके विषय में सुनो। दैदीप्यमान, न सूखने वाले पुष्प व सूर्य के तेज सदृश नित्य नूतन रहने वाले पर्णों से युक्त उन औषधियों में उत्तम सुगंध है। समुद्र मंथन के प्रसंग में निकले हुए अमृत के लिए देवता व दैत्य आपस में लड़े, तब उसमें से कुछ अमृत इस पर्वत पर छलक पड़ा और शीघ्र वहाँ पर इन औषधियों का निर्माण हुआ। वहाँ गंधर्वों का राज्य है, जो अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक औषधियों की रक्षा करते हैं। वे अत्यन्त सतर्क होने के कारण

औषधि लाना कठिन है। तुम्हारे औषधि लेने पर गंधर्व युद्ध के लिए आयेंगे। उस समय किसी उपाय से बचते हुए तुम दिव्य औषधि ले आना। राक्षस भी दुष्ट व मायावी होने के कारण कपटपूर्वक छल करते हैं, मार्ग में बाधाएँ लाते हैं, अतः अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक उनसे बचने का प्रयास करना।

राक्षसों के कपट से बचते हुए तुम शीघ्र गति से वापस आना। तुम मार्ग की दूरी व कठिनाई को निमिषार्द्ध में पार कर लोगे क्योंकि तुम्हारी गति मनोवेग की तरह है, यह हमें ज्ञात है। तथापि मार्ग का गणित मैं तुम्हें बताता हूँ। उसकी संख्या ध्यान में रखना। तीन लाख एक हजार दस योजन यहाँ जाने और आने की द्विगणित दूरी है। मध्य-रात्रि तक मार्ग निश्चित ही पूरा करो। सूर्योदय होने से पूर्ण सम्पूर्ण औषधि लेकर शीघ्र यहाँ आओ। औषधियाँ सूर्योदय से पहले ही प्राप्त होती हैं, हे मारुति, तुम इसका अवश्य ध्यान रखना। सूर्योदय होने पर औषधियों का तेज मंद हो जाता है। इसमें क्षण-भर का समय भी नहीं लगता। तब वे दिखाई भी नहीं देती। हे कपिश्रेष्ठ, एक बात और मैं तुम्हें बताता हूँ। सूर्योदय होने पर सभी कार्यों का नाश हो जाएगा। ब्रह्म शक्ति को ऐसा ही वर प्राप्त है कि सहस्र रश्मियुक्त सूर्य के उदित होने पर, जिस पर इस शक्ति का प्रयोग किया गया है, उसके प्राण नहीं बचेंगे। इसीलिए हे कपिश्रेष्ठ मारुति, वेगपूर्वक गमन कर सौमित्र के प्राण बचाकर सुख प्रदान करो।"

श्रीराम व अन्य वानर श्रेष्ठों की विनती– वानरराज सुग्रीव ने स्वयं वायु-पुत्र हनुमान से विनती की– "शीघ्र प्रयाण कर रामवधु लक्ष्मण को उठाओ।" बिभीषण हनुमान के चरणों पर गिरकर बोले– "शीघ्र जाकर वेगपूर्वक औषधि लाकर लक्ष्मण को उठायें।" सभी वानरों के लिए ज्येष्ठ जाम्बवंत ने मीठे शब्दों में कहा कि– 'द्रोण-पर्वत लाकर सौमित्र को बचाओ'। युवराज अंगद ने अत्यन्त आदरपूर्वक विनती की– "हे कपि नायक, तुम्हारे कारण हम सभी वानर अनेक कठिनाइयों से तर गए। तुम्हारे हमारे ऊपर अनेकों उपकार हैं। अत्यन्त दुर्गम संकटों से तुमने ही हमें बचाया है। हम सब के स्वामी तुम्हीं हो, यह सब शब्दों में कहना कठिन है। हे हनुमान, हमारी विनती का सारभूत अर्थ सुनो– "सौमित्र के प्राण जाने पर सर्व संहार हो जाएगा। लक्ष्मण के जीवित न रहने पर श्रीराम तत्काल प्राण त्याग देंगे। उसके साथ ही तत्वतः सुग्रीव प्राण त्याग देंगे। राम व सुग्रीव के जाने पर विभीषण भी संसार में नहीं रहेंगे, तब अन्य वानर कैसे शेष रहेंगे। सम्पूर्ण सृष्टि में हाहाकार मच जाएगा। सीता द्वारा यह सब सुनने पर वह निमिष मात्र में देह त्याग करेगी और घोर अनर्थ हो जाएगा। भरत-शत्रुघ्न प्राण त्याग देंगे। उन्हें मृत देखकर तीनों माताएँ जीवित नहीं रह सकेंगी। इस प्रकार अयोध्या में, सभी लोकों में, देव दानवों में, अखिल सृष्टि में हाहाकार मच जाएगा तब देवताओं को कौन मुक्त करेगा, रावण का वध कौन करेगा ? कई समस्याएं खड़ी होंगी। अतः हे वानरनंदन, शूरवीर, सर्वज्ञ ! तुम औषधि लाकर लक्ष्मण के प्राण बचाओ।"

वीर अंगद एवं वानर श्रेष्ठों की यह विनती सुनकर श्रीराम हनुमान से बोले– "हे कपिकुल के सिंह, सर्वज्ञ हनुमान, मेरा कहना मानो, मुझे बंधु के प्राणों की भिक्षा तुमसे चाहिए। इसलिए मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। लक्ष्मण का जीवनदान तुमसे माँग रहा हूँ। अतः मुझे निराश न करो। बंधु का जीवनदान मुझे दो। वन में लक्ष्मण के बिना मैं अकेला हो गया हूँ। हे वानर श्रेष्ठ, तुम हमारे जीवन दाता हो, हमें सनाथ करो। लक्ष्मण के जीवित रहने पर हम चारों बंधु और पाँचवें तुम, हमारे साथ रहोगे, मैं निश्चयपूर्वक इसकी शपथ लेता हूँ। हम पाँचों के एकत्र होने पर युद्ध शीघ्र समाप्त हो जाएगा। तब रावण का भय नहीं रहेगा। उसका शीघ्र अन्त हो जाएगा। तुम्हें एक आश्चर्य की बात कहता हूँ। अगर पाँच एक हो जाते हैं तो उनसे महत्वपूर्ण कार्य साधा जा सकता है। पंच भूत– पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश एकत्र

होते ही उनका अलग अस्तित्व समाप्त होकर वे एक दूसरे में समाहित हो जाते हैं। पाँच इन्द्रियाँ एकत्र आकर एक क्षण में एक हो जाती हैं। पाँच विषयों की (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद) विषयस्थिति निमिषार्द्ध में भस्म हो जाती है। तब वहाँ चिद् शक्ति सुशोभित होती है। यह सब उन पाँचों के एकत्र आने पर ही घटित होता है। वे जब इधर उधर भटकते हैं, तब पंचप्राण उन्हें एकत्र करने में जुट जाते हैं तथा उन्हें एकत्र कर फिर शान्त हो जाते हैं। एक अन्य चारों को नियन्त्रित कर पाँचों की एकरूपता सिद्ध करता है। अहंकार, चित्त, बुद्धि, मानस स्वयं सहज समरस हो जाते हैं। पाँचों की एकात्मता से कलिकाल पर भी प्रहार किया जा सकता है। तब काल नियंता न रहकर ब्रह्म सायुज्यता प्राप्त होती है। जीव, ब्रह्म में विलीन हो जाता है, पंचऐक्य भाव की यह विशेषता है अत: हे कपिनन्दन, शीघ्र प्रयाण कर बंधु लक्ष्मण के प्राण बचालो।"

श्रीराम एवं अन्य सभी योद्धाओं के वचन सुनकर हनुमान आल्हादित हुए। हनुमान, जिन्होंने समुद्र को लाँघकर लंका को तहस-नहस कर दशमुख को भयभीत कर दिया था, कार्य सम्पन्न करने के लिए तत्पर हुए तब देवताओं ने दुंदुभी बजायी। पुष्पवृष्टि कर हनुमान को गौरवान्वित किया। मारुति शीघ्र जाकर निश्चित ही औषधि ले आएँगे व सौमित्र की मूर्च्छा दूर कर देंगे। यह सब वे सूर्य उदित होने से पूर्व ही करेंगे, लक्ष्मण के उठते ही स्वयं श्रीराम निमिषार्द्ध में रावण का वध कर देंगे और विभीषण को राज सिंहासन पर स्थापित करेंगे, जिससे सबके संकट समाप्त हो जाएँगे। देवताओं को कैद से मुक्ति मिलेगी, अमरकोटि लाकर स्वर्ग में विजय की पताका फहरायेंगे। हनुमान आगे बढ़े और राम नाम का भुभु:कार कर श्रीराम को दंडवत् प्रणाम कर वे उनसे बोले- "हे रघुनन्दन मेरी विनती सुनें "स्वामी इतनी चिन्ता क्यों कर रहे हैं, दिव्य औषधियाँ समर्थ है। मेरे सदृश दूत होने पर वह उसे क्षणार्द्ध में ले आयेगा। हे नर वीर सिंह श्रीराम, आप इतने विकल क्यों हो रहे हैं ? आपके नाम से दीन जन धैर्य धारण करते हैं उन्हें यश व कीर्ति प्राप्त होती है। आपके नाम स्मरण से प्राणियों को अगाध शान्ति प्राप्त होती है। हे रघुनाथ, आपके नाम के कारण जन्म-मृत्यु से मुक्ति प्राप्त होती है। नाम से आत्मपतन नहीं वरन् पूर्ण आनन्द की प्राप्ति होती है। हे रघुवीर, आपका नाम चिद्घन है। अत्यन्त जड़-मूढ़ एवं पाषाणों का भी आपके नाम-स्मरण से पूर्ण उद्धार हुआ। वहाँ बेचारी मृत्यु क्या लक्ष्मण पर विजय प्राप्त करेगी ? मुख्य औषधि जो सभी लोकों में है, वह है नामामृत संजीवनी, जिससे भवबंधन से मुक्ति प्राप्त होती है।"

हनुमान द्वारा आश्वासन- हनुमान श्रीराम से बोले "हे चूड़ामणि, नरवीर श्रीराम ! ब्रह्मास्त्र का कैसा बल ? बेचारा काल क्या है ? मृत्यु का मारक और बलशाली केवल एक श्रीराम ही है। ऐसा होते हुए भी हे स्वामी, अगर आप मुझे आज्ञा दें तो तीनों लोकों में दुर्गम दिव्य औषधियों को मैं ले आऊँगा। श्रीरघुनाथ आप चिन्ता न करें, दु:ख न करें। चिन्तारूपी बाण हृदय में चुभने पर अत्यन्त कष्ट होता है। एक बार चिन्ता का शरीर में प्रवेश करने पर वह तिलभर भी सुख का अनुभव नहीं होने देती सुरासुर भी चिन्ता की लहर से काँपते हैं। तब राजभवन, उपभोग के साधन, स्त्री पुत्रादि आप्तजनों से भी सुख प्राप्त नहीं होता। चिन्ता के चित्त में समाने पर धन, सम्पत्ति, यश, कीर्ति किसी वस्तु से सुख की प्राप्ति नहीं होती। चिन्ता से योग सुख भी नहीं साध्य होता। अत: चिन्ता दाह हितकारी नहीं होता। परमानंद रूपी वन को चिन्ता जला देती है। चिन्ता के कारण परमार्थ भी साध्य नहीं होता। इसी चिन्ता ने परमात्मा श्रीराम को दीन बना दिया वहाँ औरों की क्या गति ? हे श्रीराम, चिन्ता अत्यन्त कठोर है परन्तु आपके नाम का ही प्रभाव है कि वह चिन्ता को जला देता है। ऐसी नाम की महिमा है। हे महाबाहु

श्रीराम, अब चिन्ता को जड़ से त्याग दें, व सजग हों। सौमित्र को तनिक मात्र भी भय नहीं है, यह मेरी प्रतिज्ञा है। अब मैं शीघ्र जाकर उन दिव्य औषधियों के संभर को लाकर क्षण भर में सौमित्र की मूर्च्छा दूर कर उन्हें उठा दूँगा। यह मेरी प्रतिज्ञा है।" यह कहकर वानर श्रेष्ठ हनुमान ने अपनी पूँछ को भूमि पर पटका।

नोट– यहाँ पर सन्त श्रेष्ठ एकनाथ द्वारा स्वयं लिखा गया 'भावार्थ रामायण' का यह भाग अर्थात् युद्धकाण्ड के चवालीस अध्याय पूर्ण हुए। इसके पश्चात् उनकी कृपा से उनके गावबा नामक शिष्य ने आगे का भाग पूर्ण किया, ऐसा कहा जाता है।

अध्याय ४५

[हनुमान द्वारा अप्सरा का उद्धार]

हनुमान के वचनों से सन्तुष्ट होकर श्रीराम आनन्दमग्न हो गए। तत्पश्चात् हनुमान की पीठ थपथपाते हुए उन्हें आशीर्वाद देकर आज्ञा देते हुए बोले "हे वायुसुत, शीघ्र कार्य सम्पन्न कर लक्ष्मण को उठाओ तुम्हारा मन, जीवन, अंगप्रत्यंग सब स्वस्थ रहें। तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारा सुदृढ़ शरीर सदैव विजयी रहेगा। तुम चिरंजीवी होगे। तुम्हारा ज्ञानानुभव सम्पन्न जीवन संसार का मार्ग-दर्शन करेगा। तुम्हें ज्ञान-विज्ञान की श्रेष्ठ पदवी प्राप्त होगी, मैं तुम्हें ऐसा आशीर्वाद देता हूँ।" तत्पश्चात् हनुमान के पूर्ण चरित्र का उल्लेख कर उनके हनुमंत, वज्रदेह इत्यादि नाम क्यों प्रसिद्ध हुए इसका निवेदन किया। अन्त में पुनः उन्हें उड़ान भरने के लिए कहा।

हनुमान द्वारा उड़ान भरना; उसका परिणाम– हनुमान ने उड़ान भरने से पूर्व अपने रूप को विकराल बनाया भुभुःकार की तीव्र ध्वनि की, जिसके कारण कैलास में शिव, ब्रह्मांड, इन्द्रलोक, पृथ्वी, सुरासुर सभी में खलबली मच गई। उधर रावण चिन्ताग्रस्त होकर सोचने लगा कि 'यह वानर श्रेष्ठ निश्चित ही औषधि लाकर लक्ष्मण को उठायेगा और तब बड़ी समस्या खड़ी होगी।' वह भूख, प्यास, निद्रा इत्यादि सब भूल गया। वह अस्वस्थ होकर चक्कर लगाने लगा। तभी उसे कालनेमि दिखाई दिया. रावण ने उसके चरण पकड़कर विनती की कि 'तुम हनुमान के कार्य में विघ्न डालो।'

कालनेमि से रावण की विनती– कालनेमि का शरीर भयानक था। उसके चार मुखों से लार टपक रही थी। विकराल दाँत, अंगारों के सदृश प्रज्वलित लाल आँखें, लपलप करती जीभ, चार लम्बे हाथ, पेड़ों के तनों के सदृश पैर, नीले रंग के कड़े बाल, पर्वत में स्थित घाटी जैसा मुख, खप्पर सदृश भयानक काले रंग से युक्त उसका शरीर था। यम एवं काल भी भयभीत हो जायें, ऐसे उसके भयानक दर्शन थे ऐसे उस कालनेमि से दशशिर रावण ने अपना कार्य करने की विनती की। रावण बोला– "हे कालनेमि, तुम आकाश-मार्ग से वेगपूर्वक जा सकते हो इसलिए मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। हनुमान जिस पर्वत पर गया है, वहाँ जाकर तुम उसके कार्य में विघ्न डालो। मेरी विनती तुम ध्यान देकर सुनो– "लक्ष्मण शक्ति लगने के कारण आहत पड़ा है। कल सूर्योदय होते ही उसकी मृत्यु हो जाएगी। वायु-पुत्र हनुमान वेगपूर्वक उड़ान भरकर दिव्य औषधि लाकर लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर करेगा। उसने वैसी प्रतिज्ञा

की है. लक्ष्मण के उठने पर उससे कौन युद्ध करेगा ? महावीर राम व लक्ष्मण अत्यन्त पराक्रमी हैं हनुमान तो अत्यन्त बलवान् है वह कलिकाल के भी वश में आने वाला नहीं है।"

रावण आगे बोला- "जिस पर्वत पर हनुमान गया है, वह पर्वत चन्द्रामृत से परिपूर्ण होता है उसे चन्द्राचल कहते हैं। वह द्रोणगिरि पर्वत के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ चन्द्रामृत युक्त औषधियों को अमृत संजीवनी कहा जाता है। उस पर्वत पर ऐसी अनेक औषधियाँ हैं। उनके लिए ही हनुमान वहाँ गया। है अत: जब तक सूर्योदय नहीं हो जाता, तब तक हमें मायावी रूप में हनुमान के कार्य में विघ्न डालना चाहिए। तुम इसके लिए जटाधारी, सर्वांग पर भस्म का लेप किये हुए ऋषि का वेश धारण करो। आश्रम का निर्माण कर, वहाँ पर अच्छे पके हुए फल तथा शीतल जल उपस्थित कर हनुमान को उसमें व्यस्त रखो ब्रह्मज्ञान में अपनी निष्ठा दिखाना, राम का गुण-गान करना तथा अन्य जो कुछ भी सम्भव हो, उसे करके हनुमान को रोक लेना। उसका आतिथ्य उत्तम प्रकार से करना। प्राणियों का भक्षण करने वाली किसी राक्षसी का निर्माण करना। औषधियों के समीप कमलों से युक्त सरोवर का निर्माण कर हनुमान को वहाँ उलझाये रखना।"

"हे कालनेमि, तुम्हारे पास सभी प्रकार की शक्ति है। अत: जिससे मारुति की मृत्यु सम्भव हो, ऐसी युक्ति तुम करना। तुम साक्षात कपट-मूर्ति हो। तुम्हें कपट के विषय में मैं क्या बता पाऊँगा। कुछ भी करके मारुति को मारो। उसके मरते ही तुरन्त सौमित्र की मृत्यु हो जाएगी। उन दोनों को मृत देखकर रघुनाथ की मृत्यु होगी। राम के मरते ही विभीषण भी नहीं बचेगा तथा सुग्रीवादि सभी वानर वीर भी मृत्यु को प्राप्त होंगे। यह सम्पूर्ण कार्य मारुति की मृत्यु से साध्य होने वाला है, अत: उसका वध करो।" यह कहते हुए रावण ने कालनेमि के पैर पकड़ लिए। वह बोला- "हे कालनेमि, इसके लिए मैं तुम्हें आधा राज्य भी दूँगा। मेरा प्राणान्त समीप आने जैसी, मेरी अवस्था हो गई है, तुम मेरे जीवन दाता बनो।"

कालनेमि के अनिच्छापूर्ण विचार- रावण की विनती सुनते ही कालनेमि चौंका। उसके मन में विचार आया कि यह कपट कृति अच्छी नहीं है। उस समय उसे प्रह्लाद, हिरण्यकशिपु और नरसिंह की कथा स्मरण हो आई। सहस्रार्जुन का कपट भी अन्त में उसकी मृत्यु का कारण बना। रावण भी राज-चिह्न त्यागकर भिक्षुक बना। उस समय माता कहकर भिक्षा माँगने वाला रावण, अब उसके उपभोग की इच्छा कर रहा है। रावण के इस कपट के कारण उसे अपने पुत्रों की तथा सेना की बलि चढ़ानी पड़ी। वामन व बलि की कथा में अन्त में वामन को द्वारपाल होना पड़ा. इन पुराण कथाओं का स्मरण होने पर कालनेमि को कपटपूर्वक हनुमान का घात करना उचित नहीं लग रहा था। "श्रीराम के भक्तों से कपट करने वाले स्वयं ही मृत्यु को प्राप्त होते है। अगर रावण का कहना मानकर मैंने कपट किया, तो मेरा भी वध होगा। तब रावण द्वारा प्रदान किये गए आधे राज्य का क्या उपयोग होगा परन्तु अगर रावण की आज्ञा नहीं मानी तो रावण मेरा वध कर देगा। उसकी अपेक्षा हनुमान द्वारा वध होने पर मैं कृतार्थ हो जाऊँगा।" यह विचार कर कालनेमि शीघ्र गति से उस पर्वत पर जा पहुँचा, जहाँ पर हनुमान पहुँचने वाले थे।

कालनेमि द्वारा मायावी कृति करना- कालनेमि ने पर्वत पर पहुँचते ही अपनी मायावी शक्ति से पर्वत पर एक सुन्दर आश्रम का निर्माण किया। तत्पश्चात् उसने स्वयं एक अग्निहोत्र करने वाले महान तपस्वी का रूप धारण किया। जटा, दाढ़ी, वल्कल एवं जपमाला से युक्त कृश तपस्वी का उसका रूप

था। वह सच्चे सात्विक तपस्वी सदृश दिखाई दे रहा था, परन्तु मन ही मन वह हनुमान के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था। मछलियों को पकड़ने के लिए घात लगाये बगुले के सदृश उसका ध्यान था।

हनुमान व कालनेमि की भेंट– हनुमान पर्वत के दक्षिण भाग में पहुँचे। उस समय वे नक्षत्र के पुंज, शेषनाग के मस्तक में स्थित मणि अथवा उदित होते हुए बाल सूर्य सदृश दिखाई दे रहे थे। उनके दर्शन होते ही कालनेमि भयभीत हो उठा। उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया और वह चक्कर खाकर कुछ काल के लिए अर्द्धमूर्च्छित-सा हो गया। जब उसकी चेतना वापस लौटी तब वह अपना कार्य भूल चुका था, यह सोचकर उसे आश्चर्य हुआ। कुछ समय पश्चात् उसे स्वामिकार्य का स्मरण हो आया तथा वानरश्रेष्ठ द्वारा उसकी मृत्यु होनी है, यह भी स्मरण हो आया। तब वह पुनः अपने तपस्वी वेश में शान्त बैठ गया। हनुमान को उस तपस्वी के दर्शन से आनन्द हुआ। उस ऋषि को नमन करने के लिए हनुमान आगे आये। मारुति श्रीराम के दास होने के कारण, उन्हें समस्त चराचर रामरूप ही दिखाई देता था। इसीलिए कालनेमि का कपट भी उसे ध्यान में नहीं आया। स्वयं हनुमान साधु एवं सज्जन होने के कारण, वह साधु रूप में बैठे कालनेमि की चरण वंदना करने के लिए आगे बढ़े। तभी कपटी कालनेमि ने हनुमान को साष्टांग दंडवत् प्रणाम कर उनकी चरण वंदना की। तत्पश्चात् श्रीराम दूत के रूप में हनुमान का परिचय पाकर कालनेमि ने उन्हें श्रीराम का पूर्ववृत्त बताकर इस भेंट को सुयोग बताते हुए हनुमान का विश्वास संपादन किया। श्रीराम व वानरों की मैत्री के विषय में उसे अन्य ऋषियों से ज्ञात हुआ, यह भी बताया। श्रीराम की चरित्रकथा सुनकर हनुमान आनन्दित हुए। कालनेमि ने हनुमान की यथासांग पूजा भी की।

तत्पश्चात् हनुमान ने भी उसे ज्ञात जनस्थान की कथा से लेकर लंका में चल रहे युद्ध तक का सम्पूर्ण वृत्तान्त कालनेमि को सुनाया। युद्ध की वार्ता बताते समय रावण ने सौमित्र को ब्रह्मशक्ति के प्रयोग से किस प्रकार विकल कर दिया यह भी बताया। हनुमान बोले "अब मैं सूर्योदय से पूर्व दिव्य औषधि ले जाकर सौमित्र के प्राण बचाने के लिए यहाँ आया हूँ। अतः हे तपस्वी ऋषिवर्य, आप मुझे शीघ्र औषधियाँ कहाँ हैं, यह बताकर कार्य सम्पादन करने में मेरी सहायता करें। सूर्योदय होने से पूर्व ही मुझे यहाँ से जाना चाहिए।" हनुमान ने तपस्वी (कालनेमि) के अतिथि सत्कार के लिए सद्भावनापूर्वक आभार माना। हनुमान आगे बोले– "श्रीराम का कार्य करने के लिए मैं आया हूँ। मुझे शीघ्र वापस लौटना है। अतः आप मुझे फलमूल खाने का आग्रह न करें। मैं आपका मान रखने के लिए जलपान कर लेता हूँ।" हनुमान के वचन सुनकर कालनेमि मन ही मन आनन्दित हुआ। हनुमान को सरोवर का पानी पीने के लिए भेजूँ, जिससे अनायास ही उसकी मृत्यु हो जाएगी। ऐसा विचार कर कालनेमि बोला– "इस आश्रम के बगल में सरोवर है। उसके पवित्र जल का प्राशन करते ही तुम्हें दिव्य औषधि दिखाई देगी। निष्कपट हनुमान कालनेमि की बातों पर विश्वास करते हुए सरोवर पर पानी पीने के लिए गये।

मगरी का संकट, शापमुक्त अप्सरा का पूर्ववृत्त– पानी पीने के लिए सरोवर में उतरते ही एक मगरी ने हनुमान का दाहिना पैर पकड़ लिया। वह ब्रह्मशाप से मगरी बनी हुई एक अप्सरा थी। धैर्यवान् होने के कारण हनुमान ने बिना घबराये श्रीराम नाम का स्मरण कर भुभुःकार किया। फिर उन्होंने पैर को ज़ोर से झटका। उनके पैर झटकने पर मगरी एकदम सरोवर के बाहर किनारे पर आ गिरी। तब उसे दिव्य शरीर प्राप्त हुआ। हनुमान के सत्संग से सुन्दर स्त्री के रूप में आयी अप्सरा शीघ्र गति से आकाश की ओर बढ़ी। वह बोली तुम्हें निरन्तर श्रीराम का प्रेम प्राप्त रहेगा तुम विजयी होगे।" हनुमान

द्वारा उसे नमन करते ही वह आगे बोली– मैं विद्युन्मालिनी अप्सरा हूँ। एक बार मैं सूर्य सदृश तेजस्वी विमान लेकर आकाश में विहार कर रही थी। तभी सूर्य क्रोधित हो गए। उन्होंने मेरा विमान ऋषि के आश्रम में गिरा दिया। ऋषि क्रोधित होकर बोले - "तुम पात्र-अपात्र का विचार किये बिना कामातुर होकर विहार कर रही हो। जिस प्रकार कोई महाग्रह आकर भिड़ जाता है, उसी प्रकार तुम यहाँ आश्रम देखकर दौड़कर आयी हो। अतः तुम महाग्राही बन जाओगी।" ऋषि द्वारा श्राप देने के कारण मैं महाग्राही बन गई, तब ऋषि की शरण में आकर मैंने कहा– "सूर्य से धृष्टता करने का दण्ड मुझे मिल गया। जो साधुओं को त्रस्त करता है, उसका पतन हो जाता है। साधु संतों की उपेक्षा करने पर उसे निश्चित ही दुःख भोगना पड़ता है।" मेरे उन पश्चाताप पूर्ण वचनों को सुनकर ऋषि प्रसन्न हुए। उन्होंने मुझे वर दिया कि "तुम जल में रहोगी, भविष्य में हनुमान के चरणों का स्पर्श होने से उस सज्जन के सत्संग से तुम्हारा उद्धार होगा।" तुम्हारे सत्संग की राह देखते हुए मैं अनेक वर्षों से जल में मगरी बन कर रही, अब तुम्हारे स्पर्श के कारण मैं शापमुक्त हो गई हूँ तुम्हीं मेरे उद्धार कर्ता हो।" हनुमान द्वारा उस अप्सरा का उद्धार कर उसके ऊपर किये गए उपकार का बदला चुकाने के लिए अप्सरा उससे बोली - "तुम नित्य श्रीराम का स्मरण करते हो। तुम साहसी दृढ़ वीर हो परन्तु तुम्हें सर्वत्र राम ही दिखाई देते हैं। और स्वयं निष्कपट होने के कारण तुम्हें कपट की बातें समझ नहीं आती हैं। वह ऋषि एक महाकपटी राक्षस है। तुम अपने स्वामी का कार्य करने के लिए इतनी दूर से यहाँ आये हो; परन्तु वह कालनेमि राक्षस तुमसे कपट कर रहा है। सूर्योदय होने तक तुम्हें यहीं रोककर रखने अथवा तुम्हारा वध करने का निश्चय कर, वह तपस्वी के वेश में यहाँ आया है।"

अध्याय ४६

[कालनेमि राक्षस का वध]

विद्युन्मालिनी अप्सरा आगे बोली– "मेरे वचन सत्य मानकर तुम उस राक्षस का वध करो अन्यथा वह तुम्हारे कार्य में विघ्न डालेगा।" इतना कहकर वह अप्सरा आकाश मार्ग से चली गयी। हनुमान चकित हुए। तत्पश्चात् हनुमान ने श्रीराम का स्मरण किया। उसी के साथ ही तपस्वी बना कपटी राक्षस कालनेमि के रूप में प्रकट हुआ। श्रीराम के समक्ष कपट टिक नहीं सकता है। हनुमान ने राक्षस रूप में कालनेमि को देखा। वे क्रोधपूर्वक राक्षस से जाकर बोले– "अरे पापी निशाचर, ऋषिरूप में तपस्वी बनकर कपट-रूप में क्या मेरा वध करने आये हो ? मैं बलवान रामदूत हूँ, मुझसे सीधे युद्ध करो। अपना पराक्रम दिखलाओ।" हनुमान का आह्वान सुनकर कालनेमि राक्षस क्रोधित होकर आया। उसकी अजस्र देह, विद्रूप चेहरा और मेघों के सदृश गड़गड़ाहट करने वाली आवाज़ थी। वह प्रज्वलित मशाल लेकर हनुमान की ओर बढ़ा। तब हनुमान अपनी देह बढ़ाकर आकाश में उड़ गये।

कालनेमि का वध; गंधर्वों से वार्तालाप– हनुमान उड़ान भरकर आकाश में दूर तक गये। तत्पश्चात् तप्त लोहे के गोले के सदृश वहाँ से लौटकर राक्षस के शरीर पर आ गिरे, जिससे कालनेमि राक्षस का शरीर दबकर चूर-चूर हो गया। तथापि वह शक्तिशाली राक्षस चिल्लाकर हनुमान को आह्वान देते हुए कह रहा था "मैं युद्ध में तुम्हें धराशायी कर दूँगा।" कालनेमि के ये शब्द सुनकर हनुमान ने उस

राक्षस को इतनी जोर से भूमि पर पटका कि उसकी ध्वनि से पर्वत गूँज गया। गंधर्व, निद्रा से जागृत होकर शस्त्र लेकर ध्वनि की दिशा में दौड़ने लगे। तब उन्हें हनुमान दिखाई दिये। उन्होंने हनुमान को घेरकर शस्त्र-वर्षा की। रात्रि में आकर चोरी करते हो, तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? मध्यरात्रि में पर्वत पर किसकी आज्ञा से घूम रहे हो ? तुम पर्वत सदृश देह लेकर घूम रहे हो तो वहाँ कौन गिरा हुआ है ?" गंधर्व ऐसे अनेक प्रश्न पूछते हुए हनुमान को घेर कर खड़े हो गए।

हनुमान ने शान्तिपूर्वक मधुर शब्दों में अपना परिचय दिया। जंबुद्वीप, किष्किंधा नगरी, राजा सुग्रीव, श्रीराम व सुग्रीव की मैत्री, राम-रावण युद्ध, लक्ष्मण को रावण द्वारा मूर्च्छित किया जाना इत्यादि के सम्बन्ध में बताते हुए उन्होंने आगे कहा- "सूर्योदय से पूर्व दिव्य औषधि न ले जाने पर लक्ष्मण के प्राण चले जाएँगे। इसीलिए मैं रात्रि में ही यहाँ आया हूँ। मैं आपको नमन कर विनती करता हूँ कि आप इस कार्य में विघ्न न करें। सुग्रीव सहित हम सभी वानर श्रीराम के सेवक व भक्त हैं। मैं हनुमान उन्हीं में से एक हूँ। अतः मुझे शीघ्र औषधि लेकर जाने दें। विघ्न न डालें अन्यथा श्रीराम कुपित हो जाएँगे।''

हनुमान के वचनों की ओर ध्यान न देकर गंधर्वों ने सोचा- "उस राम और सुग्रीव की कैसी महानता, यह रात्रि में औषधि लेने क्यों आया ?" तत्पश्चात् गंधर्वों ने शस्त्रों से वार करते हुए हनुमान से युद्ध प्रारम्भ किया। एक ओर चौदह सहस्र गंधर्व थे तो दूसरी ओर अकेले हनुमान थे। ऐसा वह युद्ध हो रहा था। उस समय हनुमान ने अपना शरीर बढ़ाया और क्रोधपूर्वक संहार आरंभ किया। मुट्ठी से, दाँतों से, नखों से तो किसी को पूँछ से जर्जर करते हुए हनुमान ने सबका वध कर दिया। राम नाम का भुभु:कार करते हुए उन्होंने अपनी विजय प्रकट की। तत्पश्चात् वे पर्वत पर औषधि ढूँढ़ने लगे। परन्तु पर्वत ने उन्हें संत्रस्त करने के लिए औषधियों का खिलवाड़ आरम्भ किया। हनुमान को पर्वत पर एक दिशा में औषधि दिखाई देते ही वे वहाँ दौड़कर उन्हें लेने पहुँच जाते, परन्तु औषधियाँ वहाँ से गुप्त होकर अन्य स्थान पर दिखाई देने लगती थीं। ऐसा निरंतर घटित होता रहा। पर्वतेन्द्र उन्हें पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण प्रत्येक दिशा में घुमाता रहा, इस पर हनुमान खिन्न हो गए। औषधि लिये बिना जाकर सुग्रीव, अंगद व श्रीराम को कैसे मुख दिखाऊँगा ? मैं निश्चित ही औषधि ले आऊँगा ऐसी अहं से परिपूर्ण गर्वोक्ति मैंने श्रीराम के समक्ष की परन्तु इतने साहसिक कृत्य करने के पश्चात् भी अन्त में सारे प्रयत्न निष्फल हुए। यह विचार कर हनुमान निराश हो गए। उन्होंने मन ही मन श्रीराम से क्षमा माँगी। श्रीराम की स्मृति उनके चित्त में जागृत हुई। मैं श्रीराम का अखंड नाम स्मरण करता हूँ अतः भक्त कृपालु राम ही मुझे कुछ बुद्धि प्रदान करेंगे, यह विचार उनके मन में आया। उसी समय वास्तव में उन्हें मार्ग सूझ पड़ा।

मारुति की पर्वत-सहित उड़ान- मारुति के मन में अब स्फूर्ति जागृत हुई, वे सोचने लगे- ''मैं व्यर्थ ही चिन्ता कर रहा हूँ ? मैं भ्रम में किस प्रकार उलझ गया। सम्पूर्ण पर्वत ही उठाकर ले चलूँ, जिससे वैद्यराज सुषेण वांछित औषधि स्वयं ही पहचान लेंगे व सौमित्र की मूर्च्छा दूर करेंगे। यहाँ रुककर व्यर्थ में समय नहीं व्यतीत करना चाहिए। पर्वत मुझसे छल कर रहा है। यह औषधि छिपा कर मुझे यहाँ उलझाकर रख रहा है। कदाचित् यह भी रावण से मिला हुआ होगा।'' यह विचार कर हनुमान ने राम-नाम का भुभु:कार कर पर्वत उखाड़ने का निश्चय किया। अपने पूँछ से पर्वत को बाँध लिया। शिखर को हाथों से पकड़कर द्रोणागिरि पर्वत को हिला हिलाकर उखाड़ लिया, जिसके कारण प्राणी आक्रोश करने लगे। यमलोक चौंक गया। हनुमान ने पर्वत सहित आकाश में उड़ान भरी। नीचे अँधेरा एवं ऊपर प्रकाश ऐसी स्थिति उस समय उत्पन्न हो गई थी। आकाश से ऐसी विचित्र वस्तु चली आ रही थी।

आकाश मार्ग से जाते हुए हनुमान अयोध्या प्रदेश के ऊपर से जा रहे थे। जब भरत ने यह दृश्य देखा उसे लगा कि इन्द्र विमान में बैठकर अप्सराओं सहित काम क्रीड़ा करते हुए जा रहा है। भरत को लगा कि इन्द्र यह उचित नहीं कर रहा है। खुले स्थान पर इन्द्र का यह वर्तन अत्यन्त घिनौना है। इससे साधु सज्जनों का उपमर्द होता है, ऐसा भरत को अनुभव हुआ। 'सूर्यवंश का धर्म ही है उद्धतों को दण्डित कर उचित मार्ग पर लाना-' यह विचार कर भरत ने रामनामांकित बाण लिया और राम-नाम का स्मरण कर उसे धनुष पर चढ़ाकर आकाश में चलाया।

रामनामांकित बाण व हनुमान की स्थिति– श्रीराम नामांकित बाण और हनुमान भी श्रीराम के 'भक्त', तब बाण की स्थिति अत्यन्त चमत्कार पूर्ण हो गई। बाण के समक्ष कोई अभक्त नहीं दिखाई दे रहा था। तब वह किस पर बरसे यही बाण को समझ में नहीं आ रहा था। भरत रामभक्त और हनुमान रामनाम स्मरण करने वाले थे तब बाण अपना पुरुषार्थ किस पर दिखाये यही निर्णय नहीं कर पा रहा था दुष्ट का निर्दलन करने की भरत की आज्ञा है परन्तु रामनाम स्मरण करते हुए डोलने वाला हनुमान दुष्ट कैसे कहा जा सकता है ? अन्त में बाण ने स्वामी की आज्ञा पालन करने का, साथ ही सज्जनों की चरण वंदना करने का निर्णय किया। तत्पश्चात् बाण हनुमान के चरणों से जा लगा। हनुमान चकित हो गए बाण किसने चलाया है, यह जानने के लिए वे बाण का निरीक्षण करने लगे उन्हें वह बाण रामनाम के चिह्न से अंकित दिखाई दिया। वह श्रीराम का बाण है, उसकी अवमानना नहीं करनी चाहिए, इस भावना से मारुति ने उसको नमन किया। हनुमान ने बाण का मनोगत जानने का प्रयास किया परन्तु बाण उन्हें नीचे खींच रहा था।

हनुमान के मन में विचार आया कि, ''सूर्योदय होने की आशंका से श्रीराम लक्ष्मण को लेकर मेरे समक्ष आ गये होंगे रावण-वध तथा विभीषण का राज्याभिषेक कर श्रीराम आये होंगे परन्तु मैं स्वामी का कार्य करने में असफल रहा। मेरे द्वारा कार्य पूरा नहीं हो सका अतः मैं देहत्याग करूँगा। इसीलिए श्रीराम ने त्वरित गति से यह बाण भेजा होगा।'' यह विचार मन में आने से हनुमान की बुद्धि क्षीण हो गई वह नीचे खींचने वाले बाण को अपना शरीर समर्पित कर बाण के साथ जाने लगे।

हनुमान नन्दिग्राम में– हनुमान बाण के वेग के साथ चले जा रहे थे, श्रीराम की आज्ञा का उल्लंघन करना सम्भव ही नहीं था, इसी भावना से वे बाण के साथ चले जा रहे थे वे अयोध्या के परिसर में आ पहुँचे। सामने उन्हें नन्दिग्राम दिखाई दिया। उस मनोरम नन्दिग्राम में राम-भक्त भरत थे। वहाँ उन दोनों प्रिय राम-भक्तों की भेंट हुई। (यहाँ से आगे कुछ ओवी छन्द, गुरु उनसे किस प्रकार रामायण का वर्णन करवा रहे हैं, इसे माता बालक के मुख में किस प्रकार निवाला डालती है, इस दृष्टान्त से स्पष्ट करते हैं।)

अध्याय ४७

[भरत-हनुमान भेंट]

भरत जिस नन्दिग्राम में रहते थे, बाण के बल पर हनुमान वहाँ आ पहुँचे। भरत श्रेष्ठ राम-भक्त थे। आदर्श-भक्ति उनमें विद्यमान थी। विरक्ति, आत्म शांति एवं स्वानन्द स्थिति का वे उपभोग कर रहे थे

उन्होंने उस स्थान को चन्दनमय कर दिया; उसकी सुगंधि सर्वत्र फैली हुई थी। भरत पूर्णरूपेण श्रीराममय हो गए हैं, ऐसा हनुमान ने अनुभव किया। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध सब राममय है, ऐसा हनुमान को ज्ञात हुआ. ऐसे राममय भरत के दर्शन से हनुमान प्रसन्न हुए. भरत के सान्निध्य में वहाँ निसर्ग, परिसर, प्राणी, पक्षी, नागरिक, व्यापारी सब श्रीराम में एकाकार हो गए थे।

हनुमान का भरत को श्रीराम समझना– भरत के जटाधारी वल्कल परिधान किये हुए तापस वेश के दर्शन हनुमान के मन को चकित कर रहे थे। भरत को देखकर श्रीराम का आभास होने के कारण हनुमान कुछ भ्रमित हो गए. हनुमान सोचने लगे कि श्रीराम यहाँ क्यों आये ? उन्होंने मन ही मन श्रीराम को नमन किया और उसी समय पुरुषार्थपूर्ण विचारों के कारण क्रोधित होकर वे बोले– ''आपके समक्ष कौन सा विघ्न आ पड़ा है ? आत्मा राम कहलाते हैं और दुःखी दिखाई दे रहे हैं ? युद्ध-धर्म छोड़कर रणभूमि से आपका यहाँ आना ही बहुत बड़ा अधर्म है। पुराण तो आपको रणप्रवीण महाशूर वीर कहते हैं परन्तु ऐसा लग रहा है कि वे सब मिथ्या हैं। आपका सम्पूर्ण पराक्रम व्यर्थ हो गया है। आपने क्षत्रिय धर्म को दूषित कर दिया। आप सौमित्र को रणभूमि में छोड़कर आ गए ? शरणागत विभीषण, सुग्रीव व वानरवीरों को रावण के हाथों मरने के लिए छोड़कर यहाँ भागकर आ गए। एक मुहूर्त तक वहाँ रुक गये होते तो दिव्य औषधियाँ लाकर मैंने सौमित्र की मूर्च्छा दूर कर दी होती तथा रावण का वध किया होता। श्रीराम आपने विकल बन्धु लक्ष्मण को रणभूमि में अकेला छोड़, यहाँ आकर घोर अन्याय किया है।''

भरत द्वारा वस्तुस्थिति पूछना– हनुमान के क्रोधपूर्ण वचन सुनकर भरत चकित हुए। वे आकाश की ओर देखने लगे। पूँछ में पर्वत बाँधे हुए, राम-नाम की गर्जना करने वाला पर्वताकार बलशाली हनुमान, बाण पर श्रीराम-नाम देखकर यहाँ आया है। इसे श्रीराम ने ही यहाँ भेजा है। चौदह वर्षों पश्चात् ऐसी भेंट हो रही है। अब इससे मैं श्रीराम का वृत्तान्त पूछ लेता हूँ, मन में ऐसा विचार कर भरत ने मारुति से प्रश्न किया - ''तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? तुमने पूँछ में पर्वत क्यों बाँधकर रखा है ? राम से तुम्हारी भेंट कैसे हुई ? तुम किस कारण क्रोधित हो रहे हो ? लक्ष्मण कहाँ पड़े हुए है ? वानरगण, विभीषण, रावण से युद्ध यह सब क्या है ? यह पर्वत तुम किसके लिए ले जा रहे हो। तुम निरन्तर रामनाम का स्मरण कर रहे हो। श्रीराम से तुम्हारी मैत्री किस कारण हुई ? मेरे इन सब प्रश्नों का तुम निवारण करो. तुम्हारे मुख में रामनाम होने के कारण मैं तुम्हें दंडवत् प्रणाम कर तुम्हारी शरण आया हूँ। तुम मुझे श्रीराम के विषय में बताओ।'' भरत के वचन सुनने पर भी हनुमान का क्रोध शान्त न हुआ. अभी भी भरत को राम समझते हुए हनुमान उपहासपूर्वक बोलने लगे।

हनुमान द्वारा भरत को राम समझते हुए डाँटना– ''हे श्रीराम, आप संसार को धोखा दे सकते हैं परन्तु मेरे साथ धोखा नहीं चल सकता। आप सर्वत्र विद्यमान हैं परन्तु संसार को दिखाई नहीं देते। लोग आपको देखने का अनेक प्रकार से प्रयत्न करते हैं। उनमें तपस्वी, व्रती, निराहारी, निर्जली ऐसे अनेक प्रकार के लोग होते हैं। उनके सर्वांग में आप विद्यमान होते हुए भी उन्हें दिखाई नहीं देते। परन्तु यह प्रकार मेरे समक्ष चल नहीं सकता क्योंकि मैं सब जानता हूँ। आप कहाँ छिपते हैं, यह भी मुझे ज्ञात है। मत्स्य, कच्छ, वराह, नृसिंह, वामन ऐसे अनेक अवतारों एवं रूपों में आप जाने जाते हैं। आपने कितने वानर एकत्र किये। पत्थरों को समुद्र पर तैराकर सेतु-निर्माण कर उस मार्ग से लंका पहुँचे। वहाँ भीषण युद्ध किया, लक्ष्मण को शक्ति लगी, विभीषण को अकेला छोड़कर आये, इतना सब होते हुए भी आप

राम हैं, मैं मारुति हूँ। मुझसे कैसे छिप सकते हैं ? अत: अब मुझसे लुकाछिपी न खेलते हुए शीघ्र उर्मिला-पति लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर करने के लिए चलें। अब एक रावण शेष बचा है, उसका वध करने में क्षण भर का समय भी न लगेगा। लक्ष्मण को उठाकर रावण का वध करूँगा व विभीषण का राज्याभिषेक करवाऊँगा, तभी मैं श्रीराम का दूत कहलाऊँगा। सीता एवं सुरवरों को मुक्त कराकर अयोध्या में जय-जयकार करते हुए आपका प्रवेश कराकर दिखाऊँगा तब तक मैं आपको अपनी दृष्टि के सामने से टलने नहीं दूँगा। 'राम, रावण का वध करेंगे'- ऐसी वाल्मीकि की भविष्यवाणी को सत्य कर दिखायें। मेरे धैर्य की कितनी परीक्षा लेंगे। मैं आपके बिना एक पग आगे नहीं बढ़ाऊँगा। आपने मौन क्यों धारण किया है ? मैं यहीं प्राण त्याग दूँगा। मैं आपके चरणों में विनती करता हूँ।''- हनुमान अत्यन्त विह्वल होकर बोल रहे थे।

भरत द्वारा वास्तविकता बताना– हनुमान का श्रीराम के प्रति गहन प्रेम देखकर भरत प्रेम-भाव से मूर्च्छित हो गए। उन्हें देह, गृह, वर्णाश्रम, जाति, स्वजन, क्रिया कर्म, धर्म इत्यादिका विस्मरण हो गया। भरत को मूर्च्छित हुआ देखकर मारुति आश्चर्यचकित हो गए। मारुति विचार करने लगे- ''यह रूप, गुण, चाल-ढाल सभी में श्रीराम के सदृश दिखाई दे रहे हैं। अंशमात्र भी श्रीराम से भिन्न नहीं है।'' तभी भरत की चेतना वापस लौटी। हनुमान को दडवत् प्रणाम कर उनसे विनती करते हुए वे बोले– ''आप श्रीराम के आत्मभक्त, सखा, प्राणप्रिय हनुमंत हैं, नित्य राम की आज्ञा में रहकर उनकी सेवा करते हैं। मैं श्रीराम का छोटा भाई भरत हूँ, मुझे राम का नाम श्रवण करने को नहीं मिलता, ऐसा मैं अभागा हूँ। आप भाग्यवान् हैं, नित्य श्रीराम के सान्निध्य में रहते हैं। आपके अन्तर्मन में ही श्रीराम का वास है। आज चौदह वर्षों के पश्चात् आपसे मुझे श्रीराम कथा श्रवण करने को मिली है, अत: मुझे विस्तारपूर्वक बतायें। अगर मुझे कथा सुनाये बिना, मेरी विनती स्वीकार किये बिना आप गये तो मेरा प्राणान्त हो जाएगा। तब श्रीराम क्रोधित होकर कहेंगे कि भरत की उपेक्षा क्यों की ?''

मारुति को सूर्योदय की चिन्ता, भरत का आश्वासन– भरत ने हनुमान से पुन: कहा ''मेरी उपेक्षा कर आपके जाने से मेरे प्राण चले जाएँगे। उधर श्रीराम क्षुब्ध होंगे। इस प्रकार आप दोहरे संकट में पड़ जाएँगे। लोग भी दोषारोपण करेंगे ?'' भरत की विनती सुनकर हनुमान उन्हें नम्रतापूर्वक बोले– ''मैं यहाँ वृत्तांत सुनाने लगूँगा तो सूर्योदय हो जाएगा और तब सौमित्र की मृत्यु हो जाएगी। ब्रह्मशक्ति अत्यन्त भयंकर है, उस पर सूर्य किरण पड़ते ही सौमित्र के प्राण चले जाएँगे। अत: अगर आपको लक्ष्मण से प्रेम है एवं श्रीराम के दर्शनों की इच्छा है तो मुझे यहाँ न रोकें। मैं आपको प्रणामकर आज्ञा चाहता हूँ।''

हनुमान की विनती सुनकर भरत बोले– ''अगर सूर्य उदित होने लगा तो मैं उसका वध कर दूँगा श्रीराम की शपथ लेकर कहता हूँ कि अगर श्रीराम का वृतान्त मैं न सुन सका तो मेरे प्राण चले जाएँगे। एक को बचाने में दूसरे के प्राण जाएँगे, मेरे प्राण चले जाने पर शत्रुघ्न व तीनों माताएँ प्राण त्याग देंगी।'' भरत के वचन सुनकर मारुति को आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा– ''भरत को सन्तुष्ट किये बिना नहीं जाना चाहिए अन्यथा श्रीराम कुपित होंगे, मैं अपयशी सिद्ध होऊँगा। अत: भरत को सन्तुष्ट कर अपकीर्ति टालनी चाहिए। सूर्य मेरी शक्ति से अवगत है, अगर वह उदित होने लगा तो मैं उसे मार दूँगा।'' तत्पश्चात् मारुति ने भरत से मिथ्या भयभीत होते हुए पूछा– 'सूर्योदय होने पर अकारण ही अनर्थ हो जाएगा।' इस पर भरत बोले ''श्रीराम का कार्य पूर्ण हुए बिना अगर सूर्य उदित होने लगेगा। तो मैं बाण

से उसे समूल छेद डालूँगा। अगर विलम्ब होने लगा तो आपको रामबाण की नोंक पर बैठाकर क्षण भर में श्रीराम के पास पहुँचाऊँगा।''

[इसके आगे के ओवी छन्दों में एकनाथ जनार्दन सद्गुरु की कृपा के लिए कृतज्ञता व्यक्त कर, उस सद्गुरु द्वारा ही रामकथा बतायी जा रही है; ऐसा कहते हैं।]

अध्याय ४८

[श्रीराम का क्रोध एवं उसका शमन]

भरत का श्रीराम के प्रति प्रेम देखकर हनुमान ने सोचा ''मैं श्रीराम को निश्चयपूर्वक, मन:पूर्वक नित्य अनुभव करता हूँ। संसार में सर्वत्र श्रीराम के दर्शन करता हूँ। तब भरत की विनती को क्यों टालूँ? वे तो श्रीराम के छोटे भाई हैं। अत: मेरे लिए तो वे रामस्वरूप ही हैं। मुझे उनके प्रश्न को टालना नहीं चाहिए।'' तब हनुमान ने श्रीराम कथा कहनी प्रारम्भ की।

हनुमान द्वारा श्रीराम-कथा निवेदन– भरत को वंदन कर मारुति ने कथा प्रारम्भ की– ''आपको सांत्वना देकर चित्रकूट से श्रीराम ने आगे प्रस्थान किया। वे अगस्त्य एवं शरभंग ऋषि से मिले आगे उन्होंने विराध का वध किया। जटायु से मैत्री की और पंचवटी में निवास किया। सौमित्र ने शंबर राक्षस का वध किया, तब उसकी माता शूर्पणखा बदला लेने के लिए आयी। उसके नाक व कान काट डाले। उसकी दुर्दशा से चिढ़कर आये हुए खर-दूषण व त्रिशिरा नामक राक्षस वीरों का चौदह सहस्र राक्षस सेना सहित वध कर दिया। लंकाधीश रावण को यह ज्ञात होते ही सीता-हरण के लिए आया। मारीच को मायावी कांचनमृग का रूप देकर भेजा। सीता द्वारा उस मृग का चर्म माँगने पर श्रीराम मृग के पीछे गये। उनके पीछे लक्ष्मण भी गये। सीता पर्णकुटी में अकेली रह गई। तब रावण ने कपटपूर्वक उनका हरण कर लिया। जटायु ने रावण को रोककर युद्ध किया परन्तु श्रीराम के वापस आने तक रावण जटायु का वध कर सीता को लेकर चला गया।''

"श्रीराम ने सीता को ढूँढ़ना प्रारम्भ किया। जटायु का उद्धार किया। कबंध राक्षस का वध किया। तत्पश्चात् पंपासरोवर के समीप हमारे भाग्य से हमारी श्रीराम से भेंट हुई। सुग्रीव से मैत्री होने पर श्रीराम ने बालि का वध किया। सुग्रीव को राजा व अंगद को युवराज बनाया। तत्पश्चात् वानर सेना सीता को ढूँढ़ने के लिए निकली। अंगद के साथ दक्षिण की ओर ढूँढ़ने के लिए गये हुए वानरों में मैं भी सम्मिलित था। सीता का पता चलने पर श्रीराम व लक्ष्मण वानर सेना सहित समुद्र तट पर आये। रावण ने बिभीषण की सलाह न मानकर उसे लंका से बाहर निकाल दिया। बिभीषण श्रीराम की शरण में आये। तत्पश्चात् सागर पर सेतु का निर्माण कर वानर सेना श्रीराम व लक्ष्मण के साथ लंका पहुँची। वहाँ वानरों ने राक्षसों का संहार किया। आग लगाकर लंका को जला दिया। एक के अपराध के लिए अनेकों का संहार टालने के लिए कृपालु श्रीराम ने अंगद को मध्यस्थता के लिए रावण के पास भेजा। रावण ने उसकी सलाह को भी नहीं माना। तब युद्ध प्रारम्भ हुआ।''

मारुति आगे बोले - "तत्पश्चात् भीषण युद्ध प्रारम्भ हुआ। उसमें रावण के पुत्र प्रधान विशेष रूप से महावीर इन्द्रजित्, महाबाहु कुंभकर्ण इत्यादि मारे गए, जिससे रावण अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा। उसने

शरणागत विभीषण पर ब्रह्मशक्ति का प्रहार किया। तब सौमित्र ने दौड़कर विभीषण को अपनी ओट में लिया और शक्ति को काट दिया परन्तु शक्ति अभिमन्त्रित थी, मन्त्र के कारण वह वापस नहीं लौट सकती थी अतः वह सौमित्र को लग गई, जिससे लक्ष्मण का पराक्रम क्षीण हो गया। लक्ष्मण को शक्ति लगी हुई देखकर श्रीराम रावण-वध के लिए आगे बढ़े। रावण वहाँ से भाग गया। तत्पश्चात् जब श्रीराम लक्ष्मण के समीप आये, तब उन्होंने देखा कि लक्ष्मण मूर्च्छित हैं। तब सुषेण वैद्य को बुलाकर उपाय पूछा गया। उन्होने सूर्योदय से पूर्व औषधि लाने के लिए कहा। मेरी गति को ध्यान में रखकर श्रीराम ने मुझे औषधि लाने के लिए भेजा।''

श्रीराम-कथा सुनते-सुनाते दोनों का एकाग्रचित्त होना— ''मैं अत्यन्त वेगपूर्वक यहाँ आया परन्तु औषधि ढूँढ़ना अत्यन्त कठिन है, यह अनुभव कर मैं पर्वत को उखाड़कर ही ले जा रहा था, तब मुझे रामनामांकित बाण दिखाई दिया। उस समय ऐसा अद्‌भुत घटित हुआ कि मुझे रामरूप का ही भ्रम हुआ आपको राम समझकर जो मैंने धृष्टता की, उसके लिए क्षमा करें। श्रीराम का गुण वर्णन करते हुए मैं आगे जाने का कार्य भूल गया।'' यह कहते हुए हनुमान श्रीराम नाम के कारण एकाग्रचित्त होकर देह-भान भूलकर मूर्च्छित हो गए। उनकी उस अवस्था को देखकर भरत भी राममय अन्तःकरण से अभिभूत होकर मूर्च्छित हो गए। हनुमान व भरत दोनों ही स्वयं को विस्मृत कर बैठे, तब कार्य की सुध कैसे रहती ? कुछ समय पश्चात् हनुमान सजग हुए तथा स्वामीकार्य भूलकर वहाँ रुकने का उन्हें खेद हुआ। वे उड़ान भरने की तैयारी में ही थे कि भरत को चेतना वापस लौटी। उन्होंने मारुति के चरण पकड़ लिए। उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। भरत बोले ''रामभक्त घर आने पर उसकी पूजा किये बिना उसे कौन जाने देगा अतः मेरी पूजा स्वीकार करें। मारुति ने विचारपूर्वक भरत की विनती को अस्वीकार कर दिया उन्हें लगा कि भरत का बारम्बार उनका चरण-स्पर्श करना भी उचित नहीं है क्योंकि जैसे राम हैं, वैसे ही भरत हैं। हनुमान के विचार समझने पर वे बोले ''हे हनुमान, आप श्रीराम के भजन में मग्न रहते हैं। भजन भक्ति के कारण श्रीराम के हृदय सदृश हैं। आपके सदृश महाभक्त से मेरी भेंट हुई, मैं कितना भाग्यशाली हूँ।'' भरत के वचन सुनकर हनुमान चिन्तित हो गए और बोले - ''हे रामबंधु, आपकी आज्ञा का मैं कैसे उल्लंघन कर सकता हूँ ? सौमित्र के मूर्च्छित होने के पश्चात् मैंने जल भी ग्रहण नहीं किया है तब भोजन कैसे करूँ ? भोजन करने से राम-भक्ति को कलंक लगेगा। श्रीराम चिन्तित हैं, वानर समुदाय शोकाकुल है; शरणागत विभीषण दुःखी हैं, ऐसी परिस्थिति में मैं यहाँ भोजन कैसे करूँ ? अतः हे भरत आप मेरी विनती सुनें। मुझे चरणतीर्थ दें, जिससे मैं विजयी होऊँगा। सौमित्र की मूर्च्छा दूर कर रावण का वध करूँगा राम-राज्य की पताका फहराकर सीता को मुक्त कराऊँगा।''

मारुति को भेजना— भरत बोले- ''श्रीराम के दर्शन के लिए हमारा चित्त उत्कंठित है परन्तु उन्हीं की आज्ञा से मैं यहाँ हूँ। अब मैं तुम्हें बाण देता हूँ, जिस पर आरूढ़ होकर मेरे स्थान पर आप ही राम के समक्ष दण्डवत् प्रणाम करें।'' भरत के वचन सुनकर हनुमान प्रसन्न हुए और हाथ जोड़कर खड़े रह गए। भरत ने बाण सुसज्जित किया उस पर पर्वत सहित हनुमान को बैठाया। श्रीराम का स्मरण करते हुए भरत ने बाण चलाया। मारुति ने भी श्रीराम का स्मरण करते हुए आकाश में उड़ान भरी। उनकी उड़ान से सर्वत्र आनन्द फैल गया।

मारुति को विलम्ब होना, श्रीराम चिन्तित - श्रीराम मारुति की उत्कण्ठापूर्वक राह देख रहे थे। जैसे-जैसे मारुति को विलम्ब हो रहा था, श्रीराम की चिन्ता बढ़ती जा रही थी। उनके मन में अनेक

शंकाएँ उठ रही थीं। राक्षसों ने गंधर्वों के माध्यम से उसका मार्ग रोक लिया, मारुति को नींद लग गई अथवा वह औषधियुक्त पर्वत का मार्ग भूल गया, या वह उन औषधियों को पहचान न सका। ऐसे अनेक विचार उनके मन में उठ रहे थे। अगर समय पर औषधियाँ न मिलकर लक्ष्मण के प्राण नहीं बचे तो उन औषधियों का क्या उपयोग ? इन विचारों से श्रीराम दुःखी हो गए। वे लक्ष्मण के समीप बैठकर शोक करने लगे। वे बोले– ''लक्ष्मण, तुम्हारा पुरुशार्थ महान् है। शरणागत की रक्षा के लिए तुमने सामने आकर शक्ति क्षीण कर दी। उस शक्ति के शरण में आने पर तुमने उसे अपने हृदय पर झेलकर महान ख्याति अर्जित की। शरणागत की रक्षा के लिए तुम अपने प्राण देने के लिए तत्पर हो गए। तुम्हारा पुरुषार्थ धन्य है।'' तत्पश्चात् लक्ष्मण द्वारा अपने लिए उठाये गए कष्टों का स्मरण कर श्रीराम दुःखी हो गए। अचानक उनमें स्फूर्ति जागृत हुई। वे आवेशपूर्वक सौमित्र को उनसे विलग करने वालों का आह्वान करने लगे।

श्रीराम का क्रोध– श्रीराम कहने लगे– ''जो सौमित्र को मुझ से दूर ले गया, मैं सभी का पूर्ण दमन कर दूँगा। पृथ्वी, समुद्र, तेज सभी का वध कर दूँगा; वायु का प्राशन करूँगा, आकाश को निगल जाऊँगा। देव, दिशा, सूर्य, अश्विनि देव, वरुण, इन्द्र, यम, ब्रह्मा, उपेन्द्र इत्यादि की समस्त शक्तियाँ लेकर उनके पास से सौमित्र के प्राण ले आऊँगा। सौमित्र को त्रस्त करने वाले चन्द्र को, ब्रह्मा को स्थान-भ्रष्ट कर दूँगा, विष्णु को पद्च्युत करूँगा।'' श्रीराम क्रोधपर्वूक सबका संहार करने के लिए सौमित्र के प्राण लौटाने के लिए, उन्हें बाध्य करने हेतु धनुष सुसज्जित कर खड़े हो गए। श्रीराम के भीषण क्रोध को देखकर आगे होने वाले प्रलय के विषय में सब चिन्तित हो उठे। ब्रह्मदेव पुनः ब्रह्माण्ड की सृष्टि कैसे करेंगे, इस विषय में सभी चिन्तित हो गए। वानरगण भागने लगे। श्रेष्ठ वानर वीर एवं विभीषण श्रीराम से विनती कर प्रार्थना करने लगे– ''हे श्रीराम, आप पूर्णावतार हैं। अतः असमय प्रलय न करें। ऐसा करने पर आपको दोष लगेगा। आप तो सबके पालनकर्ता हैं। अतः निरपराधों का वध न करें। एक के अपराध के लिए अनेकों का संहार करने से प्रतिपालन कैसे होगा ? आप कृपालु हैं। हे रघुनन्दन, बाण न चलायें क्रोध त्याग दें।'' ऐसा कहते हुए सभी ने श्रीराम के चरण पकड़ लिये व उन्हें शान्त करने के लिए विनती करने लगे. श्रीराम भक्तजनों पर कृपा करने वाले, दीनदयालु पालनकर्ता होने के कारण वे शीघ्र शान्त हुए। भक्तों के वचनों का उल्लंघन न कर क्रोध त्याग कर श्रीराम शान्त हुए।

अध्याय ४९

[लक्ष्मण की चेतना वापस लौटना]

ब्रह्मदेव, वानर श्रेष्ठ, विभीषण आदि सभी के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर श्रीराम का क्रोध शान्त हुआ। तत्पश्चात् उन्होंने सुग्रीव को बुलाकर अपना मनोगत व्यक्त करना आरम्भ किया। उनके मन की गहन निराशा उनके वचनों से अभिव्यक्त हुई।

श्रीराम द्वारा निराश होकर अन्तिम व्यवस्था करना– श्रीराम सुग्रीव से बोले– ''सुग्रीव, मेरी विनती सुनो, तुमने मित्र के रूप में जो कुछ किया, उस उपकार को शब्दों में व्यक्त करना कठिन है. शरणागत विभीषण को संरक्षण देने का वचन व्यर्थ हुआ, अब मैं किसी को क्या मुख दिखाऊँ ? मेरी यह अन्तिम विनती है, उसका उल्लंघन मत करना। सभी वानरगणों को लेकर तुम किष्किंधा वापस

जाओ। विभीषण को भी साथ ले जाकर, उसकी रावण से रक्षा करो। रावण को मारकर विभीषण का राज्याभिषेक करने के मेरे वचन व्यर्थ हो गए। सौमित्र मेरा सर्वस्व है, मैं सौमित्र के बिना जीवित न रह सकूँगा हे सुग्रीव, अगर तुम्हारे अन्दर सामर्थ्य हो तो रावण का वध कर विभीषण का अभिषेक करना और मुझे ऋणमुक्त करना। मैं तुम्हारा उपकृत और ऋणी रहूँगा।" इतना कहकर श्रीराम ने सुग्रीव के चरणों में विनती की - "तुम विभीषण सहित किष्किंधा जाओ, वानरों को सुखी करो व राज्य का उपभोग करो। सौमित्र के चले जाने पर मैं भी योगाग्नि प्रज्वलित कर देह का दहन करूँगा व लक्ष्मण के पास मैं भी गमन करूँगा।"

सुग्रीव द्वारा सांत्वना; मारुति की आहट– सुग्रीव श्रीराम से बोले– "श्रीराम आपके वचन सर्वथा व्यर्थ हैं। आपके बिना राज्य का उपभोग करने का महादोष मेरे मस्तक पर लगेगा। मैं मातृगमनी सिद्ध होऊँगा। आपके बिना कोई भी भोग नारक भोग है। आपका साथ छोड़ते ही हमारी शक्ति क्षीण हो जाएगी। तत्काल रावण आकर हमारा वध कर देगा। रावण द्वारा मारे जाने की अपेक्षा, हम यहीं प्राण त्याग देंगे हे श्रीराम, आप अचानक ऐसे निराशापूर्ण वचन क्यों बोल रहे हैं ? आप ज्ञानी हैं। मन में निश्चित विचार न कर, ऐसा अचानक कोई निर्णय न लें। अभी एक-प्रहर रात्रि शेष है। हनुमान अभी आता होगा, वह औषधि लेकर आयेगा। विलम्ब होते हुए भी वह महावीर समस्त संकट पार कर आयेगा। उसके मुख में निरन्तर राम-नाम होता है, अतः उसके लिए कठिन कुछ भी नहीं है। वह निश्चित ही कार्य सिद्ध कर शीघ्र वापस लौटेगा।"

सुग्रीव जिस समय बोल रहे थे, तभी उत्तर दिशा की ओर प्रज्वलित अग्नि सदृश कुछ दिखाई दिया। मारुति स्वयं प्रचंड देह वाले थे। उस पर उन्होंने पूँछ में पर्वत धारण किया हुआ था अतः उन्हें न पहचानकर वानर-गण युद्ध के लिए आगे बढ़े। पर्वत, वृक्ष, सागर के तट पर, सर्वत्र वानर फैल गए। वे अन्तराल से आने वाली वस्तु के प्रति भयभीत व सशंकित थे। तब श्रीराम ने क्रोधपूर्वक धनुष-बाण सज्ज किया। वे बोले– "सुग्रीव, विभीषण अंगदादि वानर वीरो ! मेरे वचन सुनो– तुम सभी वानरों की रक्षा करो। अगर कोई मायावी राक्षस आकाश मार्ग से आ रहा होगा तो उसका तुरन्त वध कर दूँगा।" यह कहते हुए श्रीराम ने धनुष पर बाण चढ़ाया परन्तु तभी उन्होंने हनुमान को पहचान लिया, मारुति बाण सहित, पूँछ में पर्वत लिये, काल रुद्राग्नि सदृश भयंकर रूप धारण किए हुए शीघ्र वहाँ आये।

मारुति द्वारा क्षमा याचना एवं वृत्तान्त कथन– मारुति ने सेना के मध्यभाग में पर्वत रखा और बाण को सम्बोधित कर बोले– "भरत को कुशलता का समाचार दें। सौमित्र की चेतना लौटा कर रावण का वध कर शीघ्र अयोध्या लौटेंगे, ऐसा कहते हुए हनुमान ने बाण को विदा किया" भरत के आज्ञाधारी बाण ने हनुमान के वचन सुनकर उन्हें नमन किया व आकाश की ओर तेजी से बढ़ा। तत्पश्चात् मारुति ने श्रीराम के समीप आकर दंडवत् प्रणाम किया, सुग्रीवादि को नमन किया। हनुमान बोले - "मुझे विलंब हुआ क्योंकि मार्ग में अनेक विघ्न आये। पर्वत ने औषधियों को आच्छादित कर लिया। मैं भ्रमित हो गया था। मुझे कुछ भी स्मरण नहीं आ रहा था। उस समय मैंने राम-नाम स्मरण किया। तुरन्त ही अन्तरात्मा राम ने मुझे बुद्धि प्रदान की। मैंने पर्वत ही उखाड़ लिया एवं यहाँ आने के लिए प्रस्थान किया। तब एक आश्चर्य घटित हुआ। मेरी ओर एक सुन्दर वेगवान् बाण आया, उस पर राम नाम अंकित था। मैं उस बाण का अनुसरण करते हुए उसके साथ गया।"

इतना बताने के पश्चात् हनुमान का नन्दिग्राम जाना, भरत से भेंट होना, उन्हें श्रीराम समझना और इसके कारण राम के विषय में भ्रम होकर क्रोध आना इत्यादि बातें बतायीं. उस समय हनुमान ने श्रीराम के लिए जो कठोर वचन कहे थे, उन्हें प्रामाणिक रूप से बताया व श्रीराम से क्षमा याचना की। तत्पश्चात् उन्होंने राम बंधु भरत की राम भक्ति की गौरवपूर्ण गाथा कही और बताया कि 'राम भक्त के सत्संग से मेरी बुद्धि आकर्षित हुई और मुझे स्वयं के विषय में कुछ स्मरण नहीं रहा' उन्हें विलम्ब होने का कारण भी मारुति ने स्पष्ट किया। तत्पश्चात् श्रीराम की चरण-वंदना कर उनसे क्षमा-याचना की.

श्रीराम की भरत के सम्बन्ध में प्रेम भावना हनुमान के भरत-वर्णन से जागृत हुई। वे उस प्रेम भावना में मग्न हो गए। भरत द्वारा श्रीराम की अनुपस्थिति में किये व्रत-पालन को सुनकर श्रीराम पूर्णरूप से तन्मय हो गए। भरत समझकर वे मारुति को ही आलिंगनबद्ध करने लगे। श्रीराम की उस अवस्था से सब चिन्तित हो गए। अन्त में विभीषण ने श्रीराम को सतर्क कर उन्हें कार्य का स्मरण कराया। हनुमान ने भी श्रीराम से कहा– "हे श्रीराम, मैं यहाँ औषधियुक्त पर्वत ले आया हूँ। सौमित्र यहाँ पर शक्ति के आघात से बेसुध पड़े हैं। सर्वप्रथम उनकी मूर्च्छा दूर करनी चाहिए।" तत्पश्चात् श्रीराम ने उनकी यह अवस्था क्यों हुई, इसे स्पष्ट करते हुए कहा– "हे हनुमान, भरत की बातें सुनकर मेरे मन में प्रेमभाव जागृत हो उठा और भरत समझ कर मैंने तुम्हें ही आलिंगनबद्ध कर लिया। तुमने ब्रह्मादिकों के लिए भी असाध्य कार्य निमिष-मात्र में कर दिखाया। तुम्हारे उपकार के कारण मैं तुम्हारा ऋणी हो गया हूँ।" श्रीराम और हनुमान का एक दूसरे के प्रति व्यवहार देखकर सुषेण वैद्य चकित हो गए।

सुग्रीव की विनती; सुषेण द्वारा औषधि प्रयोग– सुग्रीव सुषेण से बोले– "सुषेण, श्रीराम व हनुमान दोनों एक दूसरे के प्रेम में निमग्न हैं, अतः आप अब स्वयं ही औषधि ढूँढ़कर लायें।" इतना कहकर सुग्रीव सुषेण के चरणों पर गिर पड़े। तत्पश्चात् सुषेण तुरंत वानरों सहित पर्वत पर चढ़ गये व औषधि ढूँढ़ने लगे। सुषेण द्वारा मन में श्रीराम का चिन्तन करते ही उन्हें औषधियाँ दिखाई पड़ीं। सुषेण प्रसन्न हुए, उन्होंने औषधियाँ एकत्र कीं। उन्हें पर्वत से नीचे लाकर पत्थर से उसका चूर्ण कर रस निकाल लिया उस रस को सुषेण ने लक्ष्मण को जहाँ ब्रह्मशक्ति से घाव हो गया था, उसमें डाल दिया, परन्तु औषधियों का असर होकर सौमित्र की मूर्च्छा दूर नहीं हुई अतः सुषेण चिन्तातुर हो गए।

सुषेण सोचने लगे– "इतना कठोर प्रयत्न करने के बाद भी लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर नहीं हुई, यह कैसे हुआ ? मैंने सुग्रीव के समक्ष स्वामी रघुनाथ से कहा था कि मैं सौमित्र को निश्चित ही उठाऊँगा। हनुमान जाकर पर्वत उठा लाये। समस्त औषधियाँ प्राप्त हो गईं, उनका रसायन तैयार कर घाव में डाल दिया परन्तु सब व्यर्थ हो रहा था। वैद्य-शास्त्र मिथ्या सिद्ध हो रहा है। कोई भूल किये बिना यथाशास्त्र सब करने के पश्चात् भी ऐसा क्यों हुआ ? कुछ समझ में नहीं आ रहा है। हे श्रीराम, अब आप ही शास्त्र का रक्षण करें।" सुषेण के वचन सुनकर हनुमान हँसने लगे। वे बोले– "सुषेण, आपसे भूल हो रही है। अरे, जिसके कारण शास्त्र, वेद, चिकित्सा इत्यादि को अर्थ प्राप्त होता है, उस रघुनाथ का विस्मरण कर मात्र अपनी बुद्धि से उपचार किया तथा अपने श्रम व्यर्थ कर दिये। अब मैं कहता हूँ, उस प्रकार करो।"

श्रीराम-चरण तीर्थ से सौमित्र की चेतना लौटना– हनुमान सुषेण से बोले– "हम श्रीराम की प्रार्थना कर उनसे चरण तीर्थ माँग लें। औषधि के रसायन में उस तीर्थ को मिलाकर देने से सब दुःखों का नाश होगा व सौमित्र बच जाएँगे। लोग यह समझते नहीं हैं कि श्रीराम नाम ही एक अमृत संजीवनी है। वैद्य अपनी चिकित्सा का, सिद्ध अपनी सिद्धि का अभिमान छोड़ दें। केवल जिसके नाम-मात्र से

दु:खों की बाधा नष्ट हो जाती है, ऐसे श्रीराम के प्रत्यक्ष यहाँ उपस्थित होते हुए आपने अभिमान किया। अब श्रीराम के चरण स्पर्शकर उसका तीर्थ ले उसे औषधि में मिलाकर घाव में डालें, जिससे सौमित्र उठ बैठेंगे। यह मेरा सरल सा विचार है।" हनुमान के वचन सुनकर सुषेण ने आनन्दपूर्वक वैसा किया। उसके साथ ही लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर हुई। तत्पश्चात् श्रीराम का चरण तीर्थ सौमित्र के शरीर पर छिड़कते ही वे तुरन्त उठकर बैठ गए। तब वानरों ने श्रीराम-नाम का भुभु:कार किया। श्रीराम ने आश्चर्य चकित हो, लक्ष्मण को आलिंगनबद्ध किया। सभी वानर श्रेष्ठ भी सन्तुष्ट हुए।

अध्याय ५०

[हनुमान द्वारा पर्वत को उसके स्थान पर रखना]

लक्ष्मण की चेतना वापस लौटते ही श्रीराम, बिभीषण, सुग्रीव, अंगद एवं सभी वानर वीरों का उन्होंने अभिवादन किया। लक्ष्मण के ठीक होते ही राम आनन्दित हो उठे। उन्होंने सुषेण को आलिंगनबद्ध करते हुए कहा- "तुम्हारे उपकार से मैं कभी उऋण नहीं हो सकता, लक्ष्मण के तुम जीवनदाता हो।" सुषेण से ऐसा कहने के पश्चात् उन्होंने लक्ष्मण को समीप लेकर अपने अमृत रूपी हाथों से सहलाया, जिससे लक्ष्मण के शरीर पर स्थित घावों के चिह्न समाप्त हो गए। हड्डियाँ व्यवस्थित बैठ गईं तत्पश्चात् श्रीराम ने हनुमान व सुषेण के उपकारों के लिए कृतज्ञता व्यक्त की। लक्ष्मण ने भी श्रीराम की तरह सुषेण व हनुमान की स्तुति कर कृतज्ञता व्यक्त की। इस पर मारुति बोले- "हे श्रीराम, आप स्वयं का सामर्थ्य छिपाकर हम सामान्य वानरों को महत्व दे रहे हैं परन्तु वास्तव में यह सब आपके चरण-तीर्थ का प्रभाव है। आप कृपालु हैं अतः इसका श्रेय हम भक्तों को दे रहे हैं।" सुग्रीव ने हनुमान द्वारा लाये गए पर्वत को देखने की श्रीराम से आज्ञा ली। श्रीराम द्वारा आज्ञा देते ही सुग्रीव विनती कर श्रीराम को पर्वत पर ले गये।

सुषेण द्वारा औषधियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में निवेदन- श्रीराम सहित सभी वानर वीर पर्वत पर चढ़े। पर्वत नाना प्रकार के रत्न, धातु, जल प्रवाह, सरोवर, कमल, वृक्ष, बेलों, एवं अनन्त औषधियों से सुशोभित था। उन्हें देखकर आश्चर्यपूर्वक सुग्रीव ने सुषेण से पर्वत पर स्थित दिव्य औषधियों की उत्पत्ति का वृत्तान्त पूछा। तब सुषेण ने मूल वृत्तान्त कहना प्रारम्भ किया। वह बोला- "इन्द्र को ब्रम्हा ने श्राप दिया और रत्न सागर में गिर गए, तत्पश्चात् देव व दैत्यों ने एकत्र होकर समुद्र मंथन करने का निश्चय किया। लोकपाल, यक्ष, किन्नर, राक्षस, ऋषि सब वहाँ एकत्र हुए। उन्हें मंथन की क्रिया देखनी थी देवांगनाओं का नृत्य, गंधर्वों का गायन प्रारम्भ हुआ। मंदार पर्वत को मथानी व वासुकि नाग की डोरी बनायी गई। मंदार सागर के तल में न चला जाय, इसीलिए कूर्म कछुए तल में रहकर मंदार को आधार देने लगे। देवताओं ने पूँछ व दैत्यों ने वासुकि का मुख पकड़ कर मंथन प्रारम्भ किया।

सर्वप्रथम हलाहल विष निकला। वह पृथ्वी को जलाने लगा। इसीलिए भगवान् शंकर की प्रार्थना की गई शिवजी ने हलाहल निगल लिया, जिससे वे व्याकुल हो गए तब उन्होंने भगवान् का स्मरण करते हुए श्रीराम-नाम का उच्चारण किया। तब विष की दाहकता शान्त हुई, इसके पश्चात् मंथन से रत्न समूह निकला। उसका बँटवारा होते समय लड़ाई होने लगी। दैत्यों को मद्य, लक्ष्मी व कौस्तुभ विष्णु

को तथा अमृत सहित सभी रत्न अन्य स्वर्ग में भेज दिये गए, जिससे दैत्य क्रोधित हो उठे। "हम मंथन करने का कष्ट उठा रहे हैं व अमृत देवता ले जा रहे हैं।" यह कहकर दैत्यों ने युद्ध प्रारम्भ कर दिया। मंथन के श्रम से क्षीण देवताओं को परास्त होना पड़ा। तब देवता भागने लगे तथा 'हे श्रीपति, संकट में हमारी रक्षा करें' ऐसा कहने लगे। श्रीविष्णु भगवान् को देवताओं पर दया आ गई। उन्होंने दैत्यों के संहार के लिए मोहिनी रूप धारण किया। उस सुन्दर रूप पर मोहित होकर दैत्य उनके चारों ओर एकत्र हुए। अनेक दैत्यों ने मोहिनी उन्हें प्राप्त हो, इसके लिए मोहिनी की विनती की। तब वह बोली– "आप दैत्य व देवता आपस में लड़ रहे हैं, उसका कारण मुझे बतायें, मैं उसका निराकरण करूँगी " यह सुनकर दैत्यों ने युद्ध का कारण बताते हुए कहा– "सागर मथन से निकला हुआ अमृत देवता ले जा रहे हैं। इसीलिए हमारा युद्ध हो रहा है। अब तुम जैसा कहोगी, वैसा हम करेंगे।'' मोहिनी बोली– "अगर तुम मेरे कथनानुसार करोगे तो मैं दोनों का समाधान कर दूँगी। मद्य व अमृत समान रूप से वितरित करने के लिए दोनों की सेनाएँ अलग-अलग पंक्ति में बैठयें। अगर कोई दूसरे की पंक्ति में गया तो मैं निश्चित ही दण्डित करूँगी।" मोहिनी का कहना मानकर देव और दैत्यों ने अलग अलग पंक्तियाँ बनायीं।

मोहिनी (विष्णु) ने एक मायावी घट का निर्माण किया। उसके अन्दर दो भाग थे, मद्य व अमृत घट के अलग अलग भागों में डाल दिया। उसमें से दैत्यों को मद्य व देवताओं को अमृत परोसा। इसका रहस्य धूर्त राहु ने समझ लिया। वह गुप्त रूप से देवताओं की पंक्ति में जा बैठा उसके मुख में अमृत जाते हुए चन्द्रमा ने देख लिया और मोहिनी को बताया। तब मोहिनी (विष्णु) ने सुदर्शन चक्र से राहु का कंठ काट दिया। अपना रहस्य चन्द्रमा द्वारा बताये जाने के कारण राहु चिढ़ कर चन्द्रमा से भिड़ गया। (अभी भी चन्द्रमा को पूर्णिमा पर राहु-पर्व (ग्रहण) होता है) राहु का धड़ भूमि पर गिरकर बढ़ने लगा वह धनवट कहलाया। राहु का सिर आकाश में जाकर ग्रह चक्र में बैठ गया वही समय-समय पर सूर्य, चन्द्र को ग्रसता है। देवता अमृत पान से हृष्ट पुष्ट हो गए। उन्होंने मद्य के मद से धुंध दैत्यों को परास्त कर दिया। इस सब धाँधली में राहु द्वारा निगला हुआ अमृत धरती पर गिर पड़ा। उस स्थान पर यह औषधि संभार निर्मित होकर पर्वत उससे आच्छादित हो गया।" यह वृत्तान्त सुनकर सब चकित रह गए

वानरों द्वारा पर्वत पर स्थित फलों का भक्षण– वानरों ने सुग्रीव से कहा- "यहाँ अमृत संजीवनी है, अतः ये फल खाने चाहिए।" इस पर सुग्रीव ने हनुमान से विनती कर श्रीराम की आज्ञा प्राप्त करने के लिए कहा "वानर वीर युद्ध कर थक गए हैं, अतः उन्हें तृप्त होने दें।" हनुमान ने श्रीराम से आज्ञा प्राप्त की। वानरों ने पर्वत पर मुक्त भ्रमण कर, वृक्ष हिलाकर फल खाये। वे फल अनेक प्रकार के थे। कुछ सकाम, कुछ क्रोधाग्नि से जले हुए, कुछ लोभ की बेल में फँसकर न बढ़े हुए फल थे सोऽहं में लिप्त, तृष्णारूपी जल में गिरे हुए, आशा से युक्त, वृक्ष पर ही फूटे हुए, विकल्प पक्षियों द्वारा खाये हुए, छिलके निकले हुए, अभाववायु से उड़े हुए, आकल्प भ्रमण करने वाले, विषय वृक्ष से झड़े हुए, स्त्री रूपी कीचड़ में फँसकर अधोगतिप्राप्त, कर्मकांड में फँसकर स्वर्ग की दरार में फँसे हुए, सुअवसर खोकर घटी में प्रवेश किये हुए इत्यादि उन फलों की अनेक जातियाँ थीं। उन फलों को वानरों ने स्पर्श भी नहीं किया, श्रीराम की कृपा से उनमें उतना विवेक विद्यमान था। वानरों द्वारा विवेकपूर्वक चुने गए फल अच्छे थे। उनमें स्नेह-रूप डंठल से टूटे हुए, स्त्री के हाथों से छूटे हुए, शान्ति के तेज में डूबे हुए, निर्विकार रूप से पके हुए, आशा से युक्त, शान्तिदायक व सौम्यतापूर्वक सुख स्वरूप में साकार हुए अनेक फल वानरों ने खाये।

निजात्मबोध रूपी सुगंध से सुगंधित, जिनसे निराशा का रस बह गया हो और जिस पर हंस व शुक उड़ान भर रहे थे, ऐसे ही फल वानरों ने खाये। अहं, कोऽहं, सोऽहं, विरहित, ब्रह्मलवलीन, जिनका अपना-पराया भाव समाप्त हो गया हो, ऐसे फल वानरों ने खाये। अनेक दिवस स्वयं पर नियन्त्रण करने के पश्चात्, श्रीराम ने वानरों को पर्वत पर मुक्त छोड़ दिया, जिसके कारण वानरों ने नाना प्रकार के रसों का आस्वादन किया। वानर सुर, सिद्धों को मुँह चिढ़काने लगे। विचित्र फलों एवं जल का सेवन करते हुए वानर, श्रीराम के प्रेम में डोलते हुए अपनी देह का भान भूल गए। वानरों ने नाना प्रकार की औषधियों के रस का भी सेवन किया। सब तृप्त होकर ही पर्वत के नीचे उतरे। श्रीराम सुग्रीवादि वानर-वीरों सहित पर्वत से नीचे उतर कर आने के पश्चात् बोले- "महावीर हनुमान, अब पर्वत मूल स्थान पर रखकर शीघ्र वापस लौटो। यहाँ पर्वत रहने देना शिष्टाचार के विरुद्ध है। ब्रह्मा ने जैसी सृष्टि निर्मित की है, उसे वैसा ही रहने देना चाहिए।" श्रीराम की आज्ञा पाकर मारुति पर्वत उठाने के लिए सिद्ध होकर आगे बढ़े।

मारुति द्वारा पर्वत ले जाना, रावण का तिलमिलाना– हनुमान ने दोनों हाथों से पकड़ कर श्रीराम नाम का स्मरण कर पर्वत उठाया व शीघ्र गगन में उड़ चले, उस समय सूर्योदय हो गया था। सभी ने अपनी आँखों से हनुमान को उड़ते हुए देखा। मारुति द्वारा पर्वत सहित उड़ान भरते ही राक्षस हाहाकार करने लगे लंकानाथ रावण भी तिलमिलाकर बोला- "यह वानर समर्थ है और वश में आने वाला नहीं है। यह कलिकाल से भी नहीं डरता। इसने कालनेमि को मार डाला। यह पर्वत उठाकर ले आया तथा सौमित्र को मूर्च्छा दूर की, अब यह पर्वत वापस ले जा रहा है। हे राक्षस वीरो, उसे पकड़कर, मारकर उससे पर्वत छीन कर ले आओ। हे स्थूलजंघ, महानाद, महावक्त्र, महोरस, उल्कामुख, महावीर्य, चतुर्मुख, शंकुकर्ण, विचित्र, मेघचित्र । तुम सभी सावधानीपूर्वक मैं जो कह रहा हूँ, उसे ध्यान से सुनो। इस वानर श्रेष्ठ को पर्वत सहित पकड़कर जो मेरे सामने ले आयेगा, उसे मैं राज्य दूँगा, मेरे सम तुल्य राजा बनाऊँगा।"

रावण द्वारा राज्य पद का लालच देते ही राक्षस समूह तत्परतापूर्वक हनुमान को पकड़ने के लिए उत्सुक हुआ। धनलोभ की माया अत्यन्त विचित्र होती है। उसके लिए वे लोभी मरने को भी तैयार रहते हैं। अपने आगे मृत्यु दिखाई देने पर भी वे राक्षसवीर हनुमान को पकड़ने के लिए चल पड़े। वे शिरस्त्राण, कवच, वस्त्रालंकार धारण कर दौड़ने लगे। हनुमान के दृष्टिपथ में आते ही उन्होंने हनुमान को घेर लिया। हनुमान से वे राक्षस बोले– "हे वानर, तुम कौन हो ? पर्वत लेकर वेगपूर्वक आकाश मार्ग से कहाँ जा रहे हो ? देव, दानव व राक्षसों का भय मन में न रखकर निश्चित होकर आकाश मार्ग से वेगपूर्वक कैसे जा रहे हो ? उस पर्वत को छोड़ो उसे नीचे फेंको अन्यथा व्यर्थ में मारे जाओगे। तुम युद्ध करने के लिए आओ।" राक्षसों के वचन सुनकर हनुमान क्रोधपूर्वक बोले– "तीनों लोकों के समस्त वीर, सुर, असुर, दानव, मानव सभी आ जाएँ तब भी वे मेरे समक्ष टिक नहीं सकते। ब्रह्मा एवं हरिहर भी मेरे समक्ष आ नहीं सकते। मैं श्रीराम का दूत हूँ। यही इसका कारण है। तुम बेचारे व्यर्थ में क्यों दौड़ते हुए आ रहे हो। क्षणार्द्ध लगे बिना ही व्यर्थ में मारे जाओगे।"

हनुमान द्वारा राक्षसों का संहार कर पर्वत ले जाना - हनुमान ने अधिक न बोलते हुए अपनी पूँछ बढ़ाई और अचानक आकर, कालपाश जिस प्रकार जीवों को जकड़ लेता है, उसी प्रकार मारुति ने पर्वत हाथों में पकड़े हुए ही, पूँछ से राक्षसों का संहार करना प्रारम्भ किया। तब राक्षसों ने विचार किया कि यह मारुति महाबली है, इससे अकेले न लड़कर सब मिलकर इससे युद्ध करें। तभी हनुमान की

पूँछ ने उन पर प्रहार किया। राक्षसों ने शस्त्रों से वार किया परन्तु पूँछ के सिरे से वे शस्त्र टूट गए। राक्षसों ने शस्त्र, अस्त्र व महाशक्ति का अभिमन्त्रित कर प्रयोग किया परन्तु हनुमान ने उन सबका नाश कर डाला। श्रीराम का नाम-स्मरण करने पर कुछ भी कठिन नहीं होता। उनके शरीर में स्फूर्ति का संचार हुआ और उन्होंने पूँछ से ही राक्षसों का संहार कर दिया. हनुमान द्वारा पर्वत हाथों में पकड़े हुए ही राक्षसों का मर्दन करने पर सुरासुरों ने उन पर पुष्प-वृष्टि की, उनका जय-जयकार किया। तत्पश्चात् हनुमान पर्वत को उसके नियत स्थान पर रखकर वापस लौट आये। वापस लौटने पर उन्होंने श्रीराम, सुग्रीव, अंगद व बिभीषण की वंदना की। लक्ष्मण की भी वंदना की। लक्ष्मण ने हनुमान को आलिंगनबद्ध कर लिया।

लक्ष्मण की कृतज्ञता; मारुति का प्रत्युत्तर– हनुमान को आलिंगनबद्ध कर लक्ष्मण बोले– "तुम हमारे जीवन दाता हो। तुमने रघुनाथ को सुखी किया। हे वीरोत्तम हनुमान, तुम्हारे एक-एक कार्य का स्मरण कर मन अचम्भित हो उठता है। तुमने इन्द्रजित् का वध कर मुझे यश प्रदान किया। तुम तीनों लोकों मे एकमात्र राम-दूत हो" इन शब्दों में लक्ष्मण द्वारा मारुति की स्तुति करने पर वे शीघ्र लक्ष्मण के चरण पकड़ कर बोले "हे सौमित्र, मेरी एक विनती सुनें, रामनाम की ख्याति ही मेरी शक्ति है। उस राम-नाम के अतिरिक्त मैं कुछ भी नहीं जानता। जब मैं संकट ग्रस्त होता हूँ तब राम नाम का स्मरण करता हूँ उस नाम से विघ्न भस्म हो जाते हैं। मेरी विजय तो मात्र एक मिथ्या कल्पना है। उस राम-नाम में ही सच्चा सामर्थ्य है." यह कहकर पर्वत लाने के लिए जाते समय कैसे संकट आये और हर बार राम-नाम का स्मरण कर कैसे संकटमुक्त हुए, हनुमान ने उसका बखान किया। तत्पश्चात् वे बोले– "मैं जब पर्वत को उसके मूल स्थान पर रखने गया तब भी राक्षसों ने मुझे रोका परन्तु राम-नाम के स्मरण ने उस समय भी मुझे तार दिया। मैं सभी राक्षसों का संहार कर पर्वत को उसके स्थान पर रखकर वापस लौट आया।" यह वृत्तान्त सुनकर सभी प्रसन्न हुए।

अध्याय ५१

[रावण द्वारा अहिरावण-महिरावण के पास दूत भेजना]

हनुमान द्वारा समस्त वृत्तान्त सुनने के पश्चात् श्रीराम आनन्दममग्न हो गए। सभी कहने लगे कि 'हनुमान सौमित्र के जीवनदाता हैं।' वानर सेना में आनन्द एवं उत्साह का संचार हो गया। वानर वीर आवेशपूर्वक कहने लगे– "लंकानाथ लज्जित हुआ, उसकी ब्रह्म-शक्ति व्यर्थ हो गई, वह रण भूमि से भाग गया। हे श्रीराम, अब हमें आज्ञा दें, हम रावण का वध कर देंगे। त्रिकुट व लंका का विध्वंस कर देंगे। श्रीराम आप मौन क्यों हैं।" वानरों के प्रश्न पर श्रीराम बोले– "रावण पीठ दिखा कर भागा है और भागने वाले का वध नहीं करना चाहिए, यही क्षत्रियधर्म है। समक्ष युद्ध करने के लिए आने पर ही किसी का वध किया जा सकता है। शास्त्र यही बतलाता है। तब रावण के समक्ष आये बिना, उसका वध कैसे किया जा सकता है। उसी प्रकार मैंने विभीषण को लंका प्रदान की है तब उसका विध्वंस कैसे किया जा सकता है। यह महादोष सिद्ध होगा।"

रावण नये उपाय ढूंढ़ने में मग्न– लंका में बैठकर जब रावण यह विचार कर रहा था कि 'अब आगे क्या करना चाहिए' तब उसे अपने राक्षस वीरों का वध स्मरण हो आया। वह सोचने लगा–

'काल को भी ग्रास बनाने वाला कुंभकर्ण एक ही बाण से मार डाला गया। प्रहस्तादि शूर प्रधानों का वध हो गया। प्रचंड राक्षस सेना मारी गई और विशेष रूप से ब्रह्मादि भी जिससे भयभीत रहते थे, शस्त्रास्त्र एवं मन्त्र-तन्त्र करने में जो निपुण था, जिसने इन्द्र को भी परास्त कर दिया था, ऐसा महावीर इन्द्रजित् एक वानर द्वारा सन्त्रस्त कर दिया गया। इन्द्रजित् ने होम कर विविध शक्तियाँ प्राप्त कीं परन्तु वे सब व्यर्थ हो गई और वह लक्ष्मण द्वारा मारा गया। सौमित्र को शक्ति लगी तब भी वह औषधि प्रयोग से स्वस्थ हो गया। वानर दल में अनेक रणयोद्धा हैं श्रीराम व लक्ष्मण तो अतुलनीय योद्धा हैं। मैं अब क्या करूँ? यह हनुमान तो अत्यन्त सामर्थ्यशाली वीर है। हाथ में पर्वत पकड़े होने पर, उसने मात्र पूँछ के बल पर राक्षसों को मार डाला'। यह विचार करते-करते रावण भयभीत हो उठा उसे अपने प्राणों की चिन्ता होने लगी

भयग्रस्त रावण को सर्वत्र श्रीराम के दर्शन– रावण श्रीराम के भय से इतना चिन्तित था कि उसे किसी प्रकार के उपभोग सूझ नहीं रहे थे। वह अपने नित्यकर्म भी भूल गया था। निरन्तर उसे राम का ही स्मरण हो रहा था आसन पर बैठे हुए, स्नान से पूर्व तेल लगाते समय, भोजन की थाली में, निवाला खाते समय, कलश में लाये गए जल में, भोजन के उपरान्त बीड़ा खाते समय, सर्वत्र उसे राम का आभास होने लगा। शीशे में देखने पर स्वयं के स्थान पर राम ही दिखने लगे, भूमि पर पैर रखते समय राम दिखाई देते व उसका चलना रुक जाता। निद्रास्थान पर राम दिखाई देने लगे, निकट बैठी मन्दोदरी को वह राम कहकर बुलाने लगा। सर्वत्र उसे राम ही दिख रहे थे। उसकी प्रत्येक कृति में उसे राम दिखाई देने लगे। उसके प्राण राममय हो गए। इस प्रकार वह रावण सब तरह से राम से व्याप्त हो गया उस समय मन्दोदरी उसके समीप आकर उसका भ्रम दूर करने के लिए बोली– "आपको भ्रम हो रहा है, आपने निश्चयपूर्वक धैर्य का त्याग कर दिया है।"

स्त्री के सान्निध्य से योगी, तपस्वी, कर्मठ, व्रती, याज्ञिक, उपासक, ज्ञानी इत्यादि सभी का चित्त विचलित हो जाता है, वहाँ रावण की क्या बिसात। शीघ्र ही उसकी सुध लौट आई। वह आगे क्या किया जाय, इस विषय में सोचने लगा- 'मुझे क्या करना चाहिए ? मेरे प्राण कैसे बचेंगे। राम मेरा वध करने के लिए आया है। मैं मन्त्र का विचार भी नहीं कर सकता।' इस प्रकार रावण छटपटा रहा था। तभी अचानक उसे एक विचार सूझा वह प्रसन्न हो उठा वह विचार करने लगा कि 'पाताल की महिकावती नगरी में दूत भेजकर अहिरावण को सम्पूर्ण वृत्तान्त बताना चाहिए। अहिरावण व महिरावण दोनों सगे भाई भयंकर महायोद्धा हैं। वे राम व लक्ष्मण का वध कर देंगे।' इस विचार से आनन्दित रावण "जीविताशा बलीयसी"* की नीति से उत्साहित हुआ। उसने पाताल में दूत भेजने का निश्चय किया। उसने दूत को सम्पूर्ण वृत्तान्त यथार्थ रूप से बताने की आज्ञा दी– एकमात्र रावण के अतिरिक्त सभी प्रधान, पुत्र, बंधु इत्यादि मारे गये हैं, यह अहिरावण से कहना।" दूत ने तदनुसार पाताल में आकर वृत्तान्त निवेदन किया। तब अहिरावण ने पूछा– "राम व रावण में युद्ध किस कारण से प्रारम्भ हुआ ?"

दूत-अहिरावण संवाद– अहिरावण के प्रश्न का उत्तर देते हुए दूत ने सीता-स्वयंवर-प्रसंग, रावण का वहाँ गमन, जनक का प्रण, रावण की धनुष उठाते समय होने वाली दीन अवस्था, श्रीराम द्वारा धनुर्भंग करना, सीता का राम से विवाह, यहाँ से लेकर पंचवटी से रावण द्वारा सीता का हरण, उसे लंका

---

*जीवन की आशा बलवती होती है

में लाकर अशोक वन में रखना, पर्वताकार वानर (हनुमान) द्वारा किया गया हाहाकार, आगे रावण व विभीषण में अनबन, अंगद की मध्यस्थता विफल होकर युद्ध का प्रारम्भ, युद्ध में वानर वीरों द्वारा किया गया राक्षसों का संहार, प्रधान, रावणपुत्र, कुंभकर्ण आदि बांधवों का वध, राम द्वारा रावण का पलायन, हनुमान द्वारा पर्वत सहित आना, शक्ति लगने से घायल सौमित्र की चेतना वापस लौटने तक का वृत्तान्त बताया और कहा– "रावण कुछ करने में असमर्थ हैं। उन्होंने अत्यन्त दुःखी होकर आपसे विनती की है कि आप राम व लक्ष्मण का वध करें। रावण की रक्षा करें अन्यथा राक्षस-कुल का संहार हो जाएगा। आज आप यहाँ शान्तिपूर्वक हैं परन्तु यहाँ भी राम हाहाकार मचा सकते हैं।"

दूत द्वारा समस्त वृत्तान्त सुनकर अहिरावण मन ही मन क्रोधित हो उठा, वह दूत से बोला– "आज तक तुम सब शान्त कैसे रहे ? पुत्र, प्रधान, कुंभकर्ण इत्यादि मार डाले गए, अब हमें वृत्तान्त बता रहे हैं, यह तो मूर्खता का अतिरेक ही है। इसके लिए क्या कहा जाए ? वानर-सेना लेकर आये हुए दो मानवों के लिए कितनी घबराहट ? मनुष्य तो राक्षसों का खाद्य हैं तथा वानर तो राक्षसों के लिए कचूमर के लिए भी पर्याप्त नहीं है। मैं सबका अन्त कर दूँगा। रावण से कहें कि चिन्ता न कर शान्त रहें।" यह कहकर अहिरावण ने दूत को लंका वापस भेज दिया।

दोनों रावणों द्वारा अम्बिका की प्रार्थना; मतभेद– अहिरावण व महिरावण दोनों ने लंकाधीश रावण को आश्वासन देकर दूत को वापस भेजा और तब उन्होंने अम्बिका की प्रार्थना आरम्भ की। वे मनःपूर्वक अंबिका से विनती करते हुए बोले– "हे माता अंबिका, तुम कृपा करो। तुम्हारा प्रसाद प्राप्त होने पर हम कलिकाल से भी भयभीत नहीं होंगे। राम और लक्ष्मण का वध कर देंगे।" परन्तु जगदंबा अंबिका यह जानती थीं कि श्रीराम विश्वात्मा हैं। उनका वध करने के लिए ये दुष्ट दुरात्मा राक्षस प्रार्थना कर रहे हैं। ये पाताल में रहने वाले कपटी राक्षस हैं। श्रीराम इन दुष्टों का घात करें, इसके लिए मैं उनकी ही सहायक बनूँगी। इनका वध होने से भूमि का भार कम होगा। श्रीराम के सुख के लिए मैं उनकी दासी बनूँगी, ऐसा विचार करने पर राक्षसों को विश्वास हो जाय, इसके लिए अंबिका ने बायीं ओर की माला गिराकर संकेत दिया।

अंबिका द्वारा संकेत मिलने पर महिरावण विचलित हो गया और वह बोला– "बायीं ओर का संकेतरूपी प्रसाद शुभ नहीं है। इस पर अहिरावण बोला– "प्रसाद के विषय में तुम कुछ नहीं समझते देवताओं को वाम सव्य*[1] भाव अथवा संकल्प विकल्प*[2] इत्यादि नहीं होता क्योंकि उन्हें देह नहीं होती, तब हम अवयवों का विचार क्यों करें ? शर्करा से निर्मित नारियल अच्छे एवं अन्तर्बाह्य मीठे ही होते हैं। उसका ऊपरी भाग निकालने वाले हम ही अभागे कहलायेंगे। देवता की मूर्ति निर्मित करने पर भी सगुण एवं निर्गुण के भेद का मूल रूप में अस्तित्व ही नहीं होता। अतः बायीं-दायीं पर ध्यान न देकर, प्रसाद हमें प्राप्त हुआ है; इसका तात्पर्य है कि हमें अचूक फल निश्चित ही प्राप्त होगा।" इस प्रकार महिरावण को बोध होने के पश्चात् वह श्रीराम का वध करने के लिए युक्ति का विचार करने लगा। उसकी युक्ति सुनकर अहिरावण उसके विषय में सोचने लगा।

---

*[1] बाँया अर्थात् प्रतिकूल *[2] अनिश्चय की स्थिति

अध्याय ५२

[हनुमान-मकरध्वज भेंट]

अहिरावण एवं महिरावण श्रीराम को पकड़कर लाने का विचार कर पाताल छोड़कर रणभूमि में आये। वे उचित अवसर की प्रतीक्षा में दिन-रात अत्यन्त सतर्क रहते थे। इधर राम- भक्त हनुमान अपने प्राणों की बाजी लगाकर स्वामी की रक्षा के लिए दिन-रात जुटे रहते थे। राक्षस मायावी होते हैं, युद्ध में अपयश आने के कारण वे स्वामी को हर कर ले जाने के लिए अनके अतर्क्य उपाय करेंगे। यह ध्यान में रखकर हनुमान रक्षा के लिए तत्पर थे। दिन-रात समय-असमय की परवाह किये बिना हनुमान स्वयं राममय होकर श्रीराम की रक्षा में व्यस्त थे। उन्होंने अपनी पूँछ का घेरा बनाते हुए श्रीराम के चारों ओर मानों एक किला ही बना लिया था, यहाँ वायु का प्रवेश तक कठिन था तब राक्षस बेचारे क्या कर सकते थे।

दोनों रावणों द्वारा देवता का आह्वान; श्रीराम प्रसन्न– अनन्त चक्कर करने पर भी श्रीराम की प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि भजन के बिना वह सम्भव नहीं है। अत: अहिरावण व महिरावण दोनों खिन्न हो गए उन्होंने पुन: कुल देवी कामाक्षी का स्तवन प्रारम्भ किया। वह कामना पूर्ण करने वाली है अत: उसका कामाक्षी नाम है। वह स्वयं बुद्धि की बुद्धि है। उसकी स्तुति से परमात्मा रघुनन्दन उन दोनों राक्षसों को अनुकूल हुए। श्रीराम की शरण में गये बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। दु:ख के आवर्त में फँसकर वे दोनों राक्षस चिन्तित होकर छटपटा रहे थे। श्रीराम ने यह जानकर कामाक्षी की स्तुति करने वाले उन राक्षसों को बुद्धि प्रदान की क्योंकि वही बुद्धि के प्रेरक थे। कामाक्षी के भी प्रेरक व प्रकाशक शक्तिरूपी श्रीराम सन्तुष्ट होकर राक्षसों पर प्रसन्न हुए।

श्रीराम ने राक्षसों की करुणास्पद अवस्था देखकर कुछ विचार किया उन्होंने अत्यन्त मृदु स्वरों में हनुमान की प्रशंसा करते हुए कहा– "हनुमान, तुम्हारे नाम मात्र से विघ्न नष्ट हो जाते हैं। सुरासुर काँपते हैं। ऐसा होते हुए अगर भय से तुमने वानर सेना को चारों ओर पूँछ से घेर कर रखा तो तुम्हारी तीनों लोकों में अपकीर्ति होगी। अत: तुम अपनी पूँछ का घेरा हटा लो। श्रीराम की सेना में प्रवेश पर प्रतिबंध क्षत्रिय धर्म के लिए बाधक कृति सिद्ध होगी। देह का भय सब प्रकार से दु:खदायक होता है। श्रीराम को देह का भय है, तब उनमें वीरता क्या होगी- ऐसा लोकापवाद अपने ऊपर आयेगा। हे हनुमान, ऐसा घटित न हो इसीलिए तुम पूँछ का घेरा हटा लो।" श्रीराम की आज्ञा मानकर हनुमान ने श्रीराम की चरण-वंदना कर घेरा हटा लिया। मारुति सोचने लगे– 'श्रीराम तो सभी के रक्षक हैं, तब मेरे द्वारा उनकी रक्षा करना मेरी उद्दण्डता है।' तत्पश्चात् वे विश्राम करने के लिए चले गए। इसी प्रकार श्रीराम की आज्ञा से सभी वानर सोने के लिए गये। श्रीराम भी आगे का कार्यार्थ समझते हुए सो गए।

राम-लक्ष्मण का अपहरण; मारुति चिन्ताग्रस्त– मध्यरात्रि के अंधकार में राक्षसों ने आकर श्रीराम व लक्ष्मण का अपहरण कर लिया। निद्रिस्थ वानरों को पता लगे बिना, वे राम लक्ष्मण को उठाकर पाताल ले गये। इधर श्रीराम द्वारा पूँछ का घेरा हटाने के लिए कहने के पश्चात् भी हनुमान बीच-बीच में आकर श्रीराम व लक्ष्मण को देख जाते थे। ऐसे ही एक बार जब वे वहाँ पर आये तो उन्हें अपने दोनों नेता अपने स्थान पर नहीं दिखाई दिये। श्रीराम इधर उधर कहाँ गये होंगे, यह सोचकर उन्होंने वहाँ आस-पास ढूँढ़ा। उनका मन चिन्तित हुआ। श्रीराम हमें छोड़कर कैसे जा सकते हैं ? शरणागतों पर कृपा करने वाले अपने वचन को तोड़कर नहीं जायेंगे, यह विचार उनके मन में आया, उन्होंने तय किया कि

केवल विभीषण व सुग्रीव को ही यह बात बतायी जाय क्योंकि सबको पता चलने पर हाहाकार मच जाएगा। यह बात लंका में पहुँचते ही रावण आकर सबका वध कर देगा। अतः मारुति ने विभीषण व सुग्रीव को यह बात बतायी। उन्होंने भी चुपचाप उन्हें ढूँढ़ा परन्तु श्रीराम कहीं भी दिखाई नहीं पड़े। विभीषण बोले– ''श्रीराम ने अवश्य ही कोई कार्य निश्चित किया होगा। वे व्यर्थ ही कहीं किसी को बताये बिना नहीं जायेंगे। हनुमान की पूँछ का घेरा निकलवाकर वे स्वयं ही कुछ कार्य हेतु गये होंगे।'' अब आगे क्या किया जाय, इस सम्बन्ध में तीनों विचार करने लगे। तब हनुमान बोले– ''आप दोनों यहीं सजग रहकर सेना की रक्षा करें। मैं वेगपूर्वक जाकर सप्त पाताल, इक्कीस-स्वर्ग, वैकुंठ, कैलास, लंका, त्रिकूट, गिरिकन्दराओं, गुफाओं इत्यादि सभी स्थानों पर ढूँढ़ता हूँ।'' ऐसा कहकर हनुमान दूर जाकर श्रीराम का स्मरण करने लगे। श्रीराम ने उन्हें बुद्धि प्रदान की और हनुमान यक्षिणी वट के समीप गये।

आदिशक्ति की प्रार्थना, गिद्धों द्वारा मार्ग-दर्शन– हनुमान यक्षिणी वट के नीचे आकर आदि शक्ति की प्रार्थना करने लगे– "हे देवी, आपका तीनों लोकों में गमन होता है अतः राम लक्ष्मण कहाँ हैं, यह आप मुझे बतायें। आप मुझ पर प्रसन्न हैं अतः मैं आपकी शरण आया हूँ। मुझे शीघ्र बतायें कि श्रीराम कहाँ गये हैं ?" मारुति के वचन सुनकर देवी के मन में आया– 'इसे राम का वृत्तान्त नहीं बताया तो यह सबका संहार करेगा तथा न बताने पर भी यह कार्य सम्पन्न कर ही लेगा, तब मैं ही वह यश क्यों न लूँ ? परन्तु मेरे द्वारा स्पष्ट वार्ता देने पर दुष्ट रावण क्रुद्ध होकर सबको मार डालेगा'। ऐसा विचार करते हुए उसे अलग प्रकार से कार्य पूर्ण करने की युक्ति सूझी। उसने पेड़ पर बैठी मादा गिद्ध के अन्दर संचार किया और मारुति को श्रीराम का समाचार उसके मुख से सुनाया।

मादा एवं नर गिद्ध पेड़ पर बैठे हुए थे तब मादा नर से बोली– "मेरे मन में ऐसी इच्छा हो रही है कि मुझे भोजन के लिए नर मांस प्राप्त हो। वह कहाँ से प्राप्त हो सकेगा। तुम मेरे पति हो, मैं तुम्हारी अर्धांग शक्ति हूँ, तुम उदास क्यों हो ? मेरी इच्छा पूर्ण करो।" इस पर नर गिद्ध उससे बोला– "तुम व्यर्थ ही शीघ्रता मत करो। तुम्हें निश्चित ही नर माँस की प्राप्ति होगी। अहिरावण व महिरावण दोनों भाई राम व लक्ष्मण को चुराकर पाताल में ले गये हैं। अब वानरश्रेष्ठ हनुमान राम व लक्ष्मण की सहायतार्थ जाकर पाताल में अनेक वध करेगा। अतः तुम्हें बहुत नर माँस खाने को मिलेगा।"

हनुमान का साधुवेश में पाताल में जाना– गिद्ध पक्षी के वचन सुनकर हनुमान उल्लसित हुए। उन्होंने राम-नाम की गर्जना कर पृथ्वी पर लात मारी। उसके साथ ही वहाँ पर छिद्र हो गया, वहाँ से हनुमान पाताल में जहाँ राक्षस थे, वहाँ पहुँचे। उनके पूर्व ही राक्षस बंधु श्रीराम व लक्ष्मण को लेकर वहाँ पहुँचे थे। इसके लिए उन्होंने देवी से कही गई मनौती पूर्ण की, उल्लासपूर्वक देवी की पूजा की। उनके मन में भय था कि हनुमान महापराक्रमी है, वह श्रीराम व लक्ष्मण को मुक्त कराने के लिए अवश्य आयेगा। घनघोर युद्ध कर वह दोनों को छुड़ा लेगा। उसकी शक्ति अद्भुत है। अतः उन राक्षसों ने श्रीराम व लक्ष्मण को नगर के बाहर रक्षकों के घेरे में रखा। उस स्थान के मुख्य द्वार पर भयंकर शक्ति वाले मकरध्वज को रक्षक के रूप में रखा और उसके साथ ही चौदह सहस्र राक्षसों को भी रखा। ये राक्षस अद्भुत शक्ति से युक्त, अजेय व पलक झपके बिना रखवाली करने वाले थे।

हनुमान श्रीराम को ढूँढ़ते हुए वहाँ आये। उन्होंने सोचा "अगर मैं इस वेश में अन्दर गया तो राक्षस मुझे पहचान लेंगे और श्रीराम को छिपाकर युद्ध प्रारम्भ कर देंगे। यद्यपि मैं युद्ध से नहीं डरता हूँ तथापि युद्ध होने से स्वामी कार्य पूर्ण न होकर श्रीराम की प्राप्ति नहीं हो पाएगी" यह विचार कर उन्होंने

तीर्थ-क्षेत्र में रहने वाले तपस्वी का वेश धारण किया। श्रीराम की कृपा के प्रभाव से उन्हें शक्ति व चातुर्य प्राप्त होकर उनकी माया से रक्षक निद्रिस्थ हो गए। परन्तु स्वामी के कार्य के लिए सजग और तत्पर मकरध्वज पर माया का असर नहीं हुआ। उसे मध्य रात्रि में एक तापसी दिखाई दिया। उस तापसी के अन्दर जाने का प्रयत्न करने पर मकरध्वज ने उसे रोककर पूछा- "तुम इतनी रात में अन्दर कहाँ जा रहे हो ? मध्य रात्रि में बिना पूछे तापसव्रत धारण कर स्वेच्छापूर्वक नगर में कैसे भ्रमण कर रहे हो ? भिक्षुक का धर्म होता है दिन में मध्याह्न के समय गृहस्थ के घर में उसका भोजन होने के पश्चात् भिक्षा माँगने जाना। तब सभी यजमान तृप्त रहते हैं, घर की अग्नि शान्त हो जाती है यही समय भिक्षा के लिए सबसे अधिक उपयुक्त होता है।"

तत्पश्चात् मकरध्वज ने तापस वेशधारी हनुमान को असमय नगर में जाने पर कैसा अनर्थ होगा, यह बताते हुए कहा 'तुम्हारे भिक्षुक धर्म का दोष लगेगा हमारे स्वामी क्रोधित होकर हमसे पूछेंगे अतः आप यहाँ से वापस अपने आश्रम को जायें।' मकरध्वज के वचन सुनकर तापसी क्रोधित हो गया और बोला- "हम विरक्त तापसी कभी भी, कहीं भी अपनी इच्छा से जायेंगे। हमें कोई बंधन नहीं है ऐसा होते हुए धर्म और अधर्म को जाने बिना क्यों ऐसा आचरण कर रहे हो। तुम्हें यहाँ किसने नियुक्त किया है साधु को रोककर तुम स्वयं का अधःपतन कर रहे हो। तुम्हारा यह व्यवहार मूर्खता पूर्ण है।" तपस्वी के ये वचन सुनकर मकरध्वज चिढ़ गया और तापसी को धमकाते हुए बोला "असमय घूमने का साधुत्व तुम्हें किसने सिखाया ? तुम्हें अगर अपने प्राण बचाने हों तो वापस लौटो।" मकरध्वज की धमकी से तापस वेशधारी हनुमान क्रोधित हो गए और मकरध्वज से उनका युद्ध प्रारम्भ हो गया, उस युद्ध में मारुति के आघात से मकरध्वज पर कोई परिणाम नहीं हुआ। मेरे वारों से तो पर्वत का भी चूर्ण हो जाता है परन्तु यह तो बच गया यह विचार कर मारुति ने मकरध्वज से उसका वृत्तान्त पूछा

मकरध्वज का आत्मकथन– 'युद्ध करते हुए थक जाने के कारण, मेरा वृत्तान्त पूछ रहा है– यह सोचकर मकरध्वज ने अत्यन्त घमंडपूर्वक अपना वृत्तान्त सुनाते हुए कहा "वायुपुत्र वानर श्रेष्ठ हनुमान का मैं पुत्र हूँ। मेरा नाम मकरध्वज है। मुझमें मेरे पिता समान ही बल विद्यमान है इसीलिए अहिरावण व महिरावण इन दोनों भाइयों ने मुझे द्वार की रक्षा के लिए नियुक्त किया है। वे दो मानवों को कामाक्षी यक्षिणी को बलि चढ़ाने के लिए ले आये हैं। उन मानवों को छुड़ाने के लिए कोई अवश्य आयेगा, इसीलिए मुझे द्वार की रक्षा के लिए नियुक्त किया है। अतः तुम अपने मार्ग से वापस जाओ' मकरध्वज का यह कथन सुनकर हनुमान का क्रोध अनियन्त्रित हो गया और उन्होंने मकरध्वज की भर्त्सना की

हनुमान बोले- "तुम निश्चित ही कपट वेशधारी हो। अब वानर वेश धारण कर स्वयं को हनुमान-पुत्र कह रहे हो। परन्तु स्वयं का पिता न बताकर, दूसरे का पुत्र कहलाने में तुम्हें लज्जा क्यों नहीं आई ? अपने माता पिता तथा पूर्वजों को लांछित कर तुम स्वयं को जिनका पुत्र कह रहे हो, वह हनुमान मैं ही हूँ ? तब इसके पूर्व मेरी भेंट क्यों नहीं हुई ? इसके अतिरिक्त श्रीराम की कृपा से मुझे गर्भ से ही कोपीन प्राप्त हुई है अतः मैंने स्वप्न में भी कभी स्त्री-सान्निध्य का विचार नहीं किया पत्नी का भोग नहीं किया तब तुम मेरे पुत्र कैसे हो सकते हो ? तुमने अपनी माता को कलंकित किया है अन्य किसी का पुत्र होते हुए हनुमान का पुत्र कहलाकर तुमने अपनी माता को व्यभिचारिणी सिद्ध किया है। इसके लिए तुम्हें प्रायश्चित करना होगा। अब कपट त्याग कर युद्ध करने के लिए आओ। अपना

पुरुषार्थ प्रदर्शित करो। मैं हनुमान पुत्र का घात करने वाला होऊँगा।" हनुमान का कथन सुनकर भ्रमित होकर मकरध्वज ने अपनी माता को ही वृत्तान्त कथन की विनती कर 'मेरा पिता कौन है ?' यह बताने के लिए कहा।

मकरध्वज की माता द्वारा पूर्ववृत्त कथन– माता बोली– "हे मकरध्वज, तुमने पवनपुत्र को नहीं पहचाना ? तुम्हें यह भ्रम क्यों हुआ ? बाल ब्रह्मचारी हनुमान के स्त्री व पुत्र कैसे सम्भव है ? अब तुम्हारे जन्म की वार्ता विस्तारपूर्वक सुनो "सीता को ढूँढ़ने के लिए हनुमान जब लंका में आये थे, उस समय उन्होंने लंका में हाहाकार मचा दिया था। अपनी प्रज्वलित पूँछ से लंका जलाने के पश्चात् वह जलती हुई पूँछ बुझाने के लिए सागर तट पर आये। तब सागर ने हनुमान से विनती की कि "जलती पूँछ समुद्र में डूबोने से सभी जलचर प्राणी मर जाएँगे, अत: पूँछ को समुद्र में न डूबोयें," समुद्र की विनती मान्य कर हनुमान ने सागर तट पर पूँछ रखकर लहरों द्वारा धीरे धीरे उसे शान्त किया। तब हनुमान ने अपना पसीना पोंछकर झटका, उस पसीने को मैंने निगल लिया। हनुमान का व्यर्थ न होने वाला वीर्य और उनकी श्रीराम के प्रति भक्ति के कारण मुझमें गर्भधारणा हुई। उसी के द्वारा तुम्हारा जन्म हुआ है आज बड़े भाग्य से तुम पिता-पुत्र की भेंट हुई। अब वैर-भाव त्यागकर, युद्ध रोककर परस्पर एक दूसरे को आलिंगनबद्ध करो।" माता द्वारा सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनने के पश्चात् मकरध्वज ने हनुमान को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। हनुमान ने उसे आलिंगनबद्ध किया। इस प्रकार दोनों सन्तुष्ट हुए।

ॐॐॐॐ

अध्याय ५३

[महिरावण का वध]

हनुमान मकरी का कथन सुनकर सन्तुष्ट हुए। तब उन्होंने मकरध्वज को समीप बैठाकर श्रीराम के सम्बन्ध में अपनी चिन्ता बतायी- "हमारे स्वामी रघुनाथ जिस समय वानर सेना सहित निद्रिस्थ अवस्था में थे, इन कपटी राक्षसों ने सब पर मोहनास्त्र का वार किया और श्रीराम व लक्ष्मण को चुराकर पाताल में ले आये। मैंने समस्त पृथ्वी पर श्रीराम को ढूँढ़ा परन्तु वे कहीं नहीं मिले, इसलिए अब पाताल में आया हूँ। यहाँ पर श्रीराम का पता चला व तुमसे भी भेंट हुई। अब तुम्हीं श्रीराम की प्राप्ति की युक्ति बताओ। अपने सम्बन्धों का सबसे बड़ा सुख यही होगा कि मेरी श्रीराम से भेंट कराओ। मुझे श्रीराम से मिलवाने पर तुम्हारी तीनों ऋणों से मुक्ति हो जाएगी। इस कृति से देव ऋण से मुक्ति मिलेगी क्योंकि श्रीराम देवों के भी देव हैं। जो सबके जनक ब्रह्मा हैं, उनके भी जनक श्रीराम हैं। उनके मिलने पर तुम्हारे करोड़ों पूर्वजों का उद्धार होगा। श्रीराम मनुष्य रूप में अवतरित होने के कारण मानव-धर्म के ऋण से भी मुक्ति मिलेगी। अत: तुम्हारी यह कृति अपने आप्त सम्बन्ध व प्रेम को अखण्ड रखेगी। अत: श्रीराम से मेरी भेंट कराओ।"

हनुमान के वचन सुनकर मकरध्वज सकोच करते हुए बोला– "आप मेरे पिता हैं, अत: आप ही बतायें कि मेरा धर्म कौन सा है ? आज तक जिन राक्षसों के अन्न से मैं पाला पोसा गया, उनकी मृत्यु मैं कैसे बताऊँ ? अब जिस तरह से मेरा अध:पतन न हो, ऐसा कोई मार्ग बतायें। मुझसे स्वामी द्रोह न हो, पिता की अवज्ञा न हो, ऐसा कोई मार्ग बतायें। मैं शीघ्र आज्ञा का पालन करता हूँ पुत्र के

वचन सुनकर हनुमान प्रसन्न हुए क्योंकि श्रीराम यहीं है, यह उन्हें ज्ञात हो गया। अब इस बेचारे को धर्म संकट में क्यों डालूँ ? यह विचार कर हनुमान ने श्रीराम का स्मरण किया। उन्हें तुरन्त युक्ति सूझी। वे अदृश्य हो गए।

हनुमान किसी को दिखाई दिये बिना अदृश्य रूप में देवालय में गये। वहाँ उन्हें शक्ति के (देवी के) दर्शन हुए। हाथ जोड़कर वे देवी से बोले– "हे देवी, इसके पूर्व गिद्ध द्वारा तुम्हीं ने श्रीराम का पता कहाँ चलेगा, यह बतलाया था। उसके अनुसार मैं यहाँ तुम्हारे पास आया हूँ, अब तुम्हीं मेरी श्रीराम से भेंट कराओ"। यह कहकर हनुमान ने उसके चरणों पर मस्तक रखा। देवी ने प्रसन्न होकर उसका कार्य सम्पन्न हो इसलिए उसे अपने स्थान पर बैठाया और 'यह श्रीराम का भक्त अपने स्वामी के कार्य हेतु आया है यह राक्षस बंधुओं का वध कर श्रीराम को ले जाएगा।' ऐसा आशीर्वाद देकर स्वयं आकाश में प्रस्थान किया।

राक्षसों द्वारा देवी की पूजा व नैवेद्य– मध्यरात्रि में राक्षसों का समय होते ही अहिरावण-महिरावण देवी की पूजा की सामग्री व नाना प्रकार के पदार्थों को नैवेद्य के रूप में लेकर देवालय में आये। उन्होंने यथाशास्त्र देवी की पूजा की, तत्पश्चात् भिन्न-भिन्न पदार्थों का नैवेद्य देवी को अर्पित किया। उस समय एक आश्चर्य घटित हुआ कि देवी ने (उनके स्थान पर बैठे मारुति ने) मुख खोलकर नैवेद्य मुख में रखने के लिए हाथों से संकेत किया। देवी आज प्रसन्न हुई, इस भावना से सन्तुष्ट होकर अहिरावण ने राक्षसों से अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थ मँगवाकर उन्हें देवी के मुख में डाला। अनेक थाली भर-भर कर नैवेद्य, देवी ने खाया। अन्न फल सभी को समाप्त कर दिया। यह देखकर अहिरावण को लगा कि 'अनेक दिनों से क्षुधित देवी राम के आगमन से सुखी होकर तृप्त हो गई है। इसीलिए आज नैवेद्य ग्रहण कर रही है।' अहिरावण के वचन सुनकर राक्षसों ने कहा "अम्बा को तृप्त करने के लिए श्रीराम को देवी के समक्ष लायें।" यह सुनकर अहिरावण सन्तुष्ट होकर बोला 'जिसके लिए अत्यन्त कष्ट किये, उस कार्य को सिद्ध करने के लिए श्रीराम को शीघ्र लेकर आओ। हम देवी जगदम्बा को तृप्त करें।"

श्रीराम को बलि के लिए तैयार करना– अहिरावण को आज्ञा प्राप्त होते ही राक्षसगणों ने श्रीराम को लाने के लिए प्रस्थान किया। उन्होंने कारागृह में जाकर श्रीराम को अभ्यंग-स्नान कराया, हल्दी के लेप व फूलों की माला से सजाया। लक्ष्मण को भी वैसे ही सजाया। तत्पश्चात् वाद्यों की ध्वनि के साथ दोनों को घुमाते हुए मन्दिर में लाये। मार्ग में श्रीराम को देखकर लोगों ने मन ही मन उन्हें प्रणाम किया। वे राक्षसों के नाश से भयभीत हो उठे। श्रीराम जब वाद्यों की ध्वनि के साथ देवी (हनुमान) के समक्ष लाये गए तब हनुमान आश्चर्य चकित होकर मन ही मन कहने लगे– 'इन मूर्ख राक्षसों को मोक्ष प्राप्त कराने के लिए ही श्रीराम सारा अपमान सह रहे होंगे। मैं प्रकट रूप से श्रीराम की वन्दना नहीं कर सकता क्योंकि मैं देवी रूप में हूँ और प्रकट होने पर कार्य सिद्ध नहीं हो पाएगा।' तब मारुति ने मन ही मन श्रीराम को नमन किया।

तत्पश्चात् उस राक्षस ने श्रीराम का वध करने के लिए खड्ग की धार तेज कर कहा– "अब मैं तुम्हारा वध करने वाला हूँ अतः अपने आराध्य का शीघ्र स्मरण करो। हे राम, तुम कहते हो कि विश्व तुम्हारा स्मरण करता है, परन्तु अभी तो तुम यहाँ पर बँधे हुए हो। तुम विश्वात्मा हो। वेदों को तुम्हारी महिमा ज्ञात है। तुम्हारा स्वरूप नाम से परे है, ऐसा तुम कहते हो। परन्तु अभी तो तुम मेरे बन्धन में हो, तुम्हें व तुम्हारे भ्राता लक्ष्मण को मैंने देवी के समक्ष बाँध दिया है। अब तुम्हारा वध करना है अतः समय

मत गँवाओ। देवी जगदम्बा क्षुधा से व्याकुल है। अपने कुल देवता का स्मरण करो, उसके पश्चात् तुम्हारा सिर काट डाला जाएगा।"

श्रीराम द्वारा मारुति का चिन्तन, मारुति का प्रकट होना– राक्षसराज के वचन सुनकर श्रीराम विचार मग्न हो गये कि 'विश्व उनका चिन्तन करता है, तब उसके मनोरथ पूर्ण होते हैं, जग को मुक्ति मिलती है।' अब श्रीराम के समक्ष प्रश्न उपस्थित हुआ कि वे किसका स्मरण करें। वे कहने लगे– "भक्त मेरा स्मरण कर सुखी होते हैं, मैं भी कृपापूर्वक उनको संकट से मुक्त करता हूँ मैं स्वयं दीनोद्धारक होते हुए राक्षसों ने मुझे ही दीन कर दिया है। अब मैं किसे त्वरित स्मरण कर राक्षसों का नाश करूँ ।" यह विचार करते हुए श्रीराम ने मारुति का अर्थात् प्रत्यक्ष रुद्रावतार का स्मरण किया।

श्रीराम का स्मरण सुनते ही वानरश्रेष्ठ वेगपूर्वक प्रकट हुए और उन्होंने श्रीराम व लक्ष्मण के पाश-बन्धन खोल कर उन्हें मुक्त किया। जो श्रीराम संसार के संकट का निवारण करते हैं उनके भक्त ने उनको पाशबंधन से मुक्त किया। इसीलिए कहा जाता है कि श्रीराम (विष्णु) भक्तों के आधीन होते हैं। ऐसी उनकी अनेक कथाएँ हैं. अंबरीश, गज, प्रह्लाद आदि भक्तों की रक्षा करने वाली कथाएँ सर्वश्रुत हैं। ऐसे भक्तरक्षक भगवान् श्रीराम को समक्ष देखकर हनुमान अपनी भावनाओं को रोक न सके। वे विह्वल होकर श्रीराम के चरणों पर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। उस भक्त शिरोमणि हनुमान को उठाकर श्रीराम ने आलिंगनबद्ध कर लिया। इस प्रकार हनुमान को चिदानंद की अनुभूति हुई।

हनुमान ने रामनाम का भुभुःकार एवं जय जयकारयुक्त गर्जना कर श्रीराम की स्तुति की। तत्पश्चात् वे बोले– "हे श्रीराम, रावण वध करने पर भी पाताल के राक्षस प्रबल रहेंगे, क्या इसीलिए आप यहाँ आये हैं ? हम दीन वानरों को बताये बिना आप यहाँ क्यों आये ? वास्तव में आप अजेय हैं परन्तु फिर भी आप को पाशबंधन में बाँधकर यहाँ लाया गया, इसका आश्चर्य है। आपके गुप्त रूप से यहाँ आने पर आपको कहाँ ढूँढें, यह प्रश्न उत्पन्न हो गया। परन्तु जब हताश होकर हमने आपका स्मरण किया तब हमें मार्ग दिखाई दिया और आपको ढूँढ़ा। अब आप मुझे राक्षस-वध की आज्ञा दें।" हनुमान के वचन सुनकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए और उन्होंने हनुमान को राक्षस वध की आज्ञा दे दी।

हनुमान द्वारा महिरावण का वध– श्रीराम की आज्ञा प्राप्त होते ही हनुमान ने पूँछ से नगर को घेर लिया। राक्षसों ने जब देखा कि श्रीराम के समस्त बन्धन खुल गए हैं और सामने हनुमान खड़े हैं, तब वे भय से काँपने लगे। वे चिल्लाने लगे, कुछ भागने लगे। इसे देखकर महिरावण आगे बढ़ा। उसने हनुमान को युद्ध के लिए ललकारा। मारुति ने तत्काल द्वंद्वयुद्ध आरम्भ किया। उन्होंने अपने तीक्ष्ण नखों से महिरावण का शरीर फाड़ दिया। तत्पश्चात् उसके शरीर पर जोर से आघात किया। उसके साथ ही रक्त की उल्टी कर महिरावण ने प्राण त्याग दिये। हनुमान के हाथों मारे जाने एवं उसी क्षण श्रीराम के दर्शन होने से, वह मुक्त हुआ।

अध्याय ५४

[अहिरावण का वध]

हनुमान ने महिरावण का वध कर दिया व अपनी पूँछ से अनेकों राक्षसों को रणभूमि में धराशायी कर दिया। यह देखकर अहिरावण क्रोधित हो उठा। 'हमारे पास अपार सेना व अनेक महावीरों के होते

हुए हमारे समक्ष एक वानर और दो नर क्या टिक पाएँगे, हम उनको चूर चूर कर देंगे।' ऐसी गर्जना करते हुए अहिरावण युद्ध के लिए आया। हनुमान ने तुरन्त उसके वध के लिए श्रीराम की आज्ञा माँगी, तब श्रीराम हनुमान के पहले किये हुए अनेक पराक्रमों की प्रशंसा करते हुए बोले- "अरे, वायुपुत्र ! तुमने सीता के शोध से लेकर जो जो पराक्रम किये हैं, उसका भार अब मुझसे सहा नहीं जाता अब इस समय तुम मेरा कहना मानो। तुमने महिरावण को मारा, अब अहिरावण को मुझे मारने दो।"

राम-लक्ष्मण युद्ध के लिए मारुति के कंधों पर आरूढ़- श्रीराम द्वारा स्वयं युद्ध की इच्छा प्रकट करते ही हनुमान ने उन्हें प्रणाम किया तथा त्वरित श्रीराम व लक्ष्मण को कंधों पर बैठाकर भुभु:कार करते हुए उड़ान भरी। उनकी भुभु:कारयुक्त गर्जना से ही कुछ राक्षस मृत्यु को प्राप्त हुए। अहिरावण भी मन ही मन भयभीत हुआ। श्रीराम, सौमित्र व हनुमान जब एकत्र हुए तब ऐसा लग रहा था जैसे विष्णु, शेष व शंकर एकत्र हुए हों। तत्पश्चात् राक्षसों ने उनसे युद्ध प्रारम्भ किया। उस समय मारुति क्षण में भूमि पर तो क्षण में आकाश में जाकर अपनी पूँछ से राक्षसों का संहार कर रहे थे। यह देखकर श्रीराम चकित हुए।

राक्षसों का संहार देखकर अहिरावण क्रोधपूर्वक दाँत किटकिटाते हुए आगे आया। किसी मद्यप्राशन किये हुए अथवा भ्रमित हुए व्यक्ति की तरह अनर्गल प्रलाप करते हुए, श्रीराम को युद्ध के लिए ललकारने लगा। इस पर श्रीराम ने उसे प्रत्युत्तर दिया। दोनों का युद्ध प्रारम्भ हुआ। बाणों की वर्षा होने लगी। एक बार अहिरावण ने शक्ति-वरदयुक्त बाण चलाया। श्रीराम ने उस बाण का मान रखने के लिए उसका आघात सहन किया। तब श्रीराम ने अपने बाण से अहिरावण के मस्तक पर आघात किया। बाण लगते ही अहिरावण के मस्तक से रक्त प्रवाहित होने लगा। रक्त की उन बूदों से असंख्य अहिरावण उत्पन्न हो गए। उन्होंने श्रीराम पर असंख्य बाणों की वर्षा की। ऐसा शिवजी के वरदान के कारण घटित हुआ है, यह श्रीराम की समझ में आया और उन्होंने केवल अपना संरक्षण करते हुए शिव जी के वरदान का आदर किया। अनेक अहिरावणों के आघातों से बचते हुए श्रीराम अपनी रक्षा करते रहे।

यह देखकर हनुमान चिन्तित हुए व श्रीराम को बचाने के लिए कैसी युक्ति की जाय इसका विचार करने लगे। श्रीराम की प्रताप शक्ति व्यर्थ हो रही है, असंख्य अहिरावण तैयार हो रहे हैं, अब क्या करें। यह विचार करते हुए हनुमान को एक उपाय सूझा। अपने पुत्र मकरध्वज से ही इस सम्बन्ध में पूछने का निश्चय कर, उन्होंने श्रीराम का स्मरण कर उड़ान भरी और वे मकरध्वज के सदन में पहुँच गये। पुत्र ने पिता को प्रणाम करते हुए उनका स्वागत किया। हनुमान ने मकरध्वज को युद्ध-भूमि का वृत्तान्त बताया। तब मकरध्वज ने अपनी माता मकरी को बुलाकर उसे मारुति द्वारा सुनाया गया वृत्तान्त बताकर उस पर उपाय पूछा

मकरी ने कहा- "हे प्रतापी रुद्र, मैं श्रीराम के ऊपर आये संकट के निवारण का उपाय बताती हूँ।" अहिरावण की धर्मपत्नी चन्द्रसेना सत्यवचनी, साध्वी एवं तपस्विनी है। उसके पास जाकर उससे अहिरावण की मृत्यु के सम्बन्ध में पूछें, वह आपको बतायेगी। आपके मन में ऐसी शंका उत्पन्न होगी कि चन्द्रसेना अपने पति की मृत्यु के विषय में कैसे बतायेगी ? परन्तु उस शंका का निराकरण सुनें- "श्रीराम को नागपाश में बाँधकर जब राजसदन में लाया गया, उस समय चन्द्रसेना ने मनमोहन श्रीराम को देखा, श्रीराम का मोहक रूप देखकर चन्द्रसेना के मन में 'मुझे ऐसा पति प्राप्त हो' ऐसा विचार आया अपना प्रपंच भूलकर उसका तन मन श्रीराम में मग्न हो गया। उसकी दासी होने के कारण मुझे उसके

द्वारा उसकी इच्छा ज्ञात हुई। वह श्रीराम की ओर आकर्षित होने के कारण अपने पति की मृत्यु के विषय में अवश्य बतायेगी। आप इस विषय में शंका न करें।"

हनुमान द्वारा चन्द्रसेना के सदन में गमन– मकरी द्वारा बताया गया वृत्तान्त सुनकर हनुमान उल्लसित हुए और उन्होंने श्रीराम का स्मरण कर उड़ान भरी। वे चन्द्रसेना के सदन में आये तब उन्हें वह ध्यानस्थ बैठी हुई दिखाई दी। जिस प्रकार कोई साधक अपने अन्तर्मन में आत्मस्वरूप पर ध्यान केन्द्रित किये रहता है, उसी प्रकार चन्द्रसेना अपने अन्तर्मन में श्रीराम के स्वरूप पर ध्यान केन्द्रित किये हुए थी, यह देखकर हनुमान सन्तुष्ट हुए। उनकी ध्यान-स्थिति श्रीराम में ही होने के कारण उन्हें चन्द्रसेना की ध्यान-स्थिति का निश्चित अनुभव हुआ। अतः हनुमान स्वयं श्रीराम की ध्यानावस्था में जाकर समाधिस्थ हुए। उस समय श्रीराम ने स्वरूप में मग्न हनुमान को उनके कार्य का स्मरण कराया हनुमान को सजग होते ही उन्हें कार्य का स्मरण हो आया।

हनुमान के ध्यानावस्था से जागृत अवस्था में आने पर उन्हें ध्यानस्थ चन्द्रसेना दिखाई दी। तब हनुमान ने श्रीराम-नाम की गर्जना करते हुए ताली बजाई जिससे चन्द्रसेना जागृत हुई। उसने सामने देखा और वह चकित रह गई। यह वानर यहाँ कैसे आया ? वह विचार करने लगी। तभी हनुमान ने उसे नमन किया। तब चन्द्रसेना ने सूर्यसदृश तेजवान् उस वानर श्रेष्ठ से पूछा "हे वानर श्रेष्ठ तुम यहाँ किसलिए आये हो। उसके प्रश्न का उत्तर देते समय सर्वप्रथम चन्द्रसेना के रूप और गुण की प्रशंसा करते हुए श्रीराम के विषय में बताया। उसमें श्रीराम के कुल, अवतार लेना, वनवास, सीताहरण, वानरसेना सहित रावण के आप्त सम्बन्धियों का वध इत्यादि वृत्तान्त सुनाया। आगे रावण की विनती पर अहिरावण, महिरावण द्वारा निद्रिस्थ अवस्था में श्रीराम व लक्ष्मण की बलि देने के लिए उन्हें पाताल में लाये जाने की घटना बतायी। तत्पश्चात् हनुमान बोले- "मैं हनुमान हूँ। इस घटना से अवगत होते ही मैंने शीघ्र यहाँ आकर राम व लक्ष्मण को मुक्त कराया। तब अहिरावण ने आवेश में आकर युद्ध किया। श्रीराम ने युद्ध में अहिरावण को घायल कर दिया परन्तु अहिरावण के शरीर से जो रक्त प्रवाहित हुआ, उसकी बूँदों से अनेक अहिरावण निर्मित हो रहे हैं। श्रीराम कुशल योद्धा हैं परन्तु यह संकट कैसे दूर हो सकेगा, इस चिन्ता से मैं सत्यवचनी चन्द्रसेना के पास आया हूँ। अतः यह पुनर्निर्माण कैसे हो रहा है ? और शत्रु के निवारण के लिए क्या करना चाहिए, यह कृपा कर मुझे बताओ।"

चन्द्रसेना द्वारा शर्त सहित उपाय कथन– हनुमान द्वारा ज्ञात हुए वृत्तान्त के कारण चन्द्रसेना श्रीराम के विषय में चिन्तित हो उठी। वह मन ही मन श्रीराम का आदर एवं उनसे प्रेम करती थी। इतना ही नहीं, श्रीराम जैसा पति उसे मिले, यह इच्छा भी धारण किये हुए थी। अतः वह हनुमान से बोली– "हे श्रीरामदूत, मेरा मनोरथ तुम पूर्ण करोगे तो मैं अहिरावण के वध का उपाय बताऊँगी। इस पर हनुमान ने अपना कार्य सम्पन्न करने के लिए शपथपूर्वक उसे आश्वासन देकर कहा– "उपाय शीघ्र बताओ " चन्द्रसेना प्रसन्न होकर बोली– "हे वायुसुत, श्रीराम मेरे पति हों, यह मेरी इच्छा है। तुम उसे पूर्ण करो।" मारुति ने कहा– "अवश्य; परन्तु अहिरावण की मृत्यु का रहस्य मुझे पहले बताओ।" चन्द्रसेना बोली– "अहिरावण ने शंकर को प्रसन्न करने के लिए लोहे की कील में अँगूठा गाड़कर भीषण तप किया। श्रीशंकर भगवान् ने प्रसन्न होकर वर दिया– "तुम्हारे रक्त की प्रत्येक बूँद से अहिरावण जन्म लेंगे। भगवान् शिव के मस्तक पर स्थित भ्रमरों की पंक्तियाँ शीघ्रगति से दौड़कर पाताल का अमृत उन रक्त बिन्दुओं में डाल देती हैं, जिससे अहिरावण निर्मित होते हैं। मैं यह सत्य कह रही हूँ मैं असत्य नहीं

बोलती। चन्द्रसेना ने अपने पति के विषय में रहस्य बताया। चन्द्रसेना के निवेदन से हनुमान आनन्दित हुए। उन्होंने चन्द्रसेना को नमन किया, श्रीराम का स्मरण कर उडान भरी और पाताल में जहाँ अमृत रखा था, वहाँ पहुँच गए। वहाँ उन्होंने देखा कि अमृत, भ्रमरों से आच्छादित था, जिससे उन्हें विश्वास हो गया कि चन्द्रसेना ने सत्य ही बतलाया है।

हनुमान द्वारा रक्षक व भ्रमरों का वध– मारुति ने देखा कि अमृत-कुंभ की रक्षा के लिए लोकपाल नियुक्त हैं। उन्होंने सर्वप्रथम उन लोकपालों का वध किया। आगे जाने पर उन्होंने देखा कि भ्रमर अमृत ले जा रहे हैं उन्होंने अपने हाथों के वार से भ्रमरों का नाश प्रारम्भ किया। उन भ्रमरों में से जो पाँच-सात भ्रमर बच गए थे, वे भागने लगे। उन्होंने अपने प्रमुख को हनुमान का वृत्तान्त सुनाया। तब वह स्थूल शरीर वाला उग्र भ्रमर प्रमुख गरुड़ सदृश पंख फड़फड़ाते हुए वहाँ आया। उसने वज्रसदृश चोंच से हनुमान पर वार किया। हनुमान ने उस भ्रमरनाथ के दोनों पंख पकड़कर उसे भूमि पर गिरा दिया। फिर उसकी छाती पर पैर रखकर हनुमान उसके पंख उखाड़ने लगे। तब वह भ्रमर प्रमुख दयनीय होकर बोला– "हे हनुमान, तुम मुझे जीवन-दान दो, मैं तुम्हारे उपकार अवश्य चुकाऊँगा। तुम जब मुझे स्मरण करोगे, मैं प्रकट होऊँगा। तुम सोच रहे हो कि यह हीन-दीन भ्रमर कैसे उपकार को चुकायेगा तो यह ध्यान में रखो कि कीटक भी समुद्र पार कर जाते हैं।" भ्रमर प्रमुख के दयनीय वचन सुनकर मारुति को उस पर दया आई। उन्होंने उसे छोड़ दिया। तब हनुमान ने सन्तुष्ट होने तक अमृत-प्राशन किया

श्रीराम द्वारा अहिरावण का वध– श्रीराम भयंकर युद्ध करते हुए धनुष बाण सज्ज कर राक्षसों का संहार कर रहे थे। तभी आकाशवाणी हुई- ''हे धनुर्धर श्रीराम, इसी क्षण तुम्हारे शत्रु का नाश होगा। अहिरावण के रक्त बिन्दु से उत्पन्न होने का कारण अब समाप्त हो चुका है। उन्हें अब अमृत प्राप्त नहीं हो सकेगा अतः शीघ्र बाण सज्जकर शत्रु का नाश करो।" यह आकाशवाणी सुनकर श्रीराम ने अग्निबाण सज्जकर मन्त्र सहित शत्रु पर प्रहार किया। उस बाण ने रक्त सोखकर सभी का शिरच्छेद कर दिया जितने अहिरावण निर्मित हुए थे. उन सबका संहार कर श्रीराम का बाण पुनः उनके तूणीर में वापस आ गया। वास्तविक अहिरावण का भी शिरच्छेद हो गया। बचे हुए राक्षस भयपूर्वक भागने लगे। तभी मारुति उड़ान भर कर वहाँ आये। उन्होंने अपनी पूँछ में लपेट कर उन राक्षसों का नाश कर दिया। उस समय कुछ राक्षसों ने आकर चन्द्रसेना से भेंट की। उन्होंने चन्द्रसेना को युद्ध का वृत्तान्त सुनाया। तब उसने राक्षसों को बताया– "मारुति की पूँछ निकट आते ही उसे जानकी की शपथ दें।" इस युक्ति से कुछ राक्षस बच गए।

मारुति द्वारा श्रीराम से चन्द्रसेना की वार्ता बताना– हनुमान ने पराक्रम कर श्रीराम व लक्ष्मण के पास जाने के लिए प्रस्थान किया। उस समय श्रीराम व लक्ष्मण हनुमान के विषय में ही वार्तालाप कर रहे थे। श्रीराम लक्ष्मण से बोले– "सौमित्र, अभी हमने जो युद्ध समाप्त किया वह युद्ध कुछ निराले ढंग का ही था। इतने शत्रु कहाँ से आये, उनका नाश किस प्रकार हुआ, यह सब अत्यन्त आश्चर्यजनक है। यह सब किसने किया, यह समझ में नहीं आ रहा है।" इस पर लक्ष्मण बोले- "हनुमान बहुत देर से कहीं गये हैं, उनके अतिरिक्त यह कार्य अन्य किसी के द्वारा किया जाना सम्भव नहीं है।" वे दोनों जब इस प्रकार बोल रहे थे तभी आकाशमार्ग से हनुमान आये और शीघ्र वहाँ उतर कर, उन्होंने श्रीराम को प्रणाम किया। श्रीराम ने उनसे पूछा- "हमें छोड़कर तुम कहाँ गये थे, शीघ्र कहो।'' श्रीराम के वचन सुनकर मारुति मस्तक झुकाकर विनम्रतापूर्वक श्रीराम से बोले- "जब अहिरावण को जीतना असम्भव

दिखाई देने लगा तब मैं चन्द्रसेना के पास गया। उसे आपका पत्नीत्व प्राप्त कराने का आश्वासन देकर उसके बदले में विजय प्राप्त की। आपके एक पत्नीव्रती होने के कारण यह सम्भव नहीं है, अत: मेरे भाग्य से कुछ विपरीत घटित होने वाला है। मात्र आपके नामस्मरण के कारण पापीजन वैकुंठ प्राप्त कर लेते हैं परन्तु मेरे पूर्वज आपके कारण नरक में जायेंगे।" हनुमान के ये दीन वचन सुनकर कृपालु श्रीराम कृपापूर्वक बोले– "अरे, तुम तो मेरे परम आप्त हो। तुमने अच्छा कार्य सिद्ध किया है, उस संकट का जिस प्रकार तुमने निवारण किया, उसी प्रकार इस संकट का निवारण करो। तुम अपनी चतुराई से यह कार्य सिद्ध करोगे, हमें तनिक भी प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है। यह निश्चित है।"

चन्द्रसेना के सम्बन्ध में मारुति का उपाय– श्रीराम के वचन सुनकर मारुति उड़ान भरकर चन्द्रसेना के भवन में पहुँचे व उससे बोले– "तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करने के लिए मैं श्रीराम को यहाँ लेकर आता हूँ परन्तु श्रीराम की महत्ता को ध्यान में रखना। उनका स्वागत सामान्य रूप से होने पर वह महादोष सिद्ध होगा। तुम भाग्यवान् हो, श्रीराम के लिए मजबूत शय्या तैयार करना। उस सेज के थोड़ा सा भी टूटने पर रघुनाथ शीघ्र उठकर चले आएँगे।" मारुति के वचन सुनकर 'ठीक है' ऐसा कहते हुए चन्द्रसेना तुरन्त सेज तैयार करने लगी। उसी समय हनुमान ने मन ही मन भ्रमर-नाथ का स्मरण किया। वह भ्रमर शीघ्र ही वहाँ पर उपस्थित हुआ। उसने हनुमान को नमन करते हुए 'क्या आज्ञा है-' यह पूछा। इस पर हनुमान ने उन्हें उत्तर देते हुए कहा– "तुम्हें चन्द्रसेना के भवन में गुप्त रूप से जाकर मंचक को कुरेद कर उसे खोखला बनाना है। मंचक को इतना दुर्बल करना है कि श्रीराम के उस पर बैठते ही मंचक टूट जाना चाहिए।" इस पर जो आज्ञा कहते हुए भ्रमर भवन में गया और उसने मंचक को पूर्ण रूप से कुरेद डाला तब हनुमान से भेंट कर भ्रमर बोला - "तुमने मुझे जीवनदान दिया है, उसका बदला तो मैं नहीं चुका सकता परन्तु यह अल्प सी सेवा मैंने तुम्हें अर्पित की है।" हनुमान ने तत्पश्चात् भ्रमर की श्रीराम से भेंट करायी। श्रीराम ने भ्रमर को आलिंगनबद्ध कर गौरवान्वित किया। भ्रमरनाथ बोला "हे पवनसुत ! तुमने मेरा उद्धार किया, मेरी श्रीराम से भेंट करायी, यह तुम्हारा उपकार है।" ऐसा कहकर भ्रमर चला गया। हनुमान श्रीराम को राजगृह की ओर ले गये।

श्रीराम द्वारा चन्द्रसेना के मन्दिर में प्रवेश करते ही वह दौड़कर आगे आयी। श्रीराम को प्रणाम कर उन्हें अन्दर ले गई। श्रीराम को मंचक पर बैठाते ही मंचक टूट गया और तुरन्त श्रीराम वहाँ से बाहर निकल गये। चन्द्रसेना को इसका कपट ज्ञात होते ही उसने हनुमान पर दोषारोपण करते हुए कहा– "मेरे पति का वध करवाकर तुमने अपना कार्य साधा है, तुमने यह घातक कर्म कर अत्यन्त अधर्मपूर्ण कार्य किया है। अब तुम मेरा श्राप सुनो।"

श्रीराम द्वारा चन्द्रसेना को उपदेश एवं आश्वासन– श्रीराम को हनुमान पर दया आ गई और उन्होंने चन्द्रसेना से कहा "मेरे कार्य हेतु उसने यह सब किया है, अत: उसे क्यों शाप दिया जाय " यह स्पष्टीकरण देकर श्रीराम ने चन्द्रसेना को आत्म-ज्ञान का उपदेश दिया। उन्होंने बताया कि श्रीराम सर्वगत, सर्वात्मा, सर्वव्यापी व चैतन्यघन है। उस चेतना को अन्तर्मन से भोगना चाहिए। निजात्मज्ञान से द्वन्द्वभाव त्यागकर अन्तरात्मा श्रीराम का उपभोग करना चाहिए। चन्द्रसेना को यह उपदेश देते हुए श्रीराम बोले– "परन्तु प्रेम से परिपूर्ण होकर श्रीराम का शरीर से उपभोग करना चाहती हो तो वह इस अवतार में सम्भव नहीं हो सकता तथापि भक्तों की भावना के लिए मैं अवतार ग्रहण करता रहता हूँ तब तुम्हारी प्रेम भावना के लिए मैं यादव कुल में कृष्ण-रूप में जन्म लूँगा और राजा सत्राजित के यहाँ सत्यभामा

के रूप में तुम जन्म लोगी। तब मैं तुमसे विवाह करूँगा। मेरे प्रति तुम्हारा भाव अति शुद्ध होने के कारण मैं तुम्हारा अंकित होकर रहूँगा।" श्रीराम के वचन सुनकर चन्द्रसेना आत्म-पर-भाव भूल गई। वह श्रीराम का वंदन कर बोली– "मारुति मेरे सद्गुरु हैं, उनकी कृपा से मेरी श्रीराम से भेंट हुई। वह मारुति धन्य है। श्रीराम की भेंट से मेरा उद्धार हुआ।" तत्पश्चात् श्रीराम ने हनुमान-पुत्र मकरध्वज को महिकावती राज्य प्रदान किया। उसका राज्याभिषेक करते हुए श्रीराम बोले– "जब तक बिभीषण लंका में राज्य करेंगे तब तक तुम पाताल में राज्य करोगे।"

राम-लक्ष्मण का वानर-सेना में आगमन– श्रीराम व लक्ष्मण ने हनुमान सहित वेगपूर्वक लंका के लिए प्रस्थान किया। वे हनुमान के कंधों पर बैठकर जा रहे थे। सर्वत्र अन्धकार था परन्तु श्रीराम कृपा से प्रकाश फैल गया और वे बाहर जाने वाले विवर तक पहुँचे। वहाँ से उड़ान भरकर मारुति श्रीराम व लक्ष्मण सहित वानर-सेना में आये। तीन दिवस व तीन रात्रि वानरगणों को श्रीराम व लक्ष्मण से भेंट नहीं हुई थी। अतः उनका सेना में आगमन होते ही वानर सेना में प्रसन्नता व्याप्त हो गई। वानरों ने श्रीराम को नमन किया तथा लक्ष्मण व हनुमान को भी नमन किया। सबने जय-जयकार की ध्वनि की। तत्पश्चात् वानरराज सुग्रीव तथा बिभीषण इत्यादि उन्हें शिविर में ले गए।

[यह अध्याय प्रचलित ग्रंथों में न होने के कारण जयराम सुत ने 'श्रीराम कृपा से उन्हें यह अध्याय लिखने की इच्छा हुई' यह कहते हुए उसका सन्दर्भ 'अग्निपुराण' एवं 'सेतुबन्धन महात्म्य' में प्राप्त हुआ" ऐसा कहा है। प्रस्तुत ग्रंथ की प्रस्तावना में उस सम्बन्ध में किये गए संशोधन की जानकारी दी गई है।]

अध्याय ५५

[सीता-मन्दोदरी संवाद]

"हे श्रीराम, अब हम प्रसन्न हैं परन्तु आप हम अनाथ वानरों को अकेले छोड़कर क्यों गये ? अगर आपका जाने का विचार था तो हम वानरों में किसी एक से कहकर जाते। बिना बताये जाना अनुचित है।" वानरों द्वारा इस प्रकार अपनी भावना व्यक्त करने पर हनुमान ने उन्हें श्रीराम के जाने का कारण समझाया। अहिरावण, महिरावण के वध के विषय में बताया। वे बोले– "श्रीराम अगर किसी से कहकर जाते तो कोई उन्हें अकेले जाने न देता। इसीलिए वे चले गये। श्रीराम अनेक शत्रुओं से अकेले ही लड़ने वाले वीर हैं।" अन्त में हनुमान द्वारा ऐसा कहने पर उन्होंने प्रश्न किया कि तब हनुमान उनके साथ क्यों गये ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए स्वयं श्रीराम बोले– "वानर सेना जब निद्रिस्थ अवस्था में थी तब अहिरावण अपहरण कर मुझे व लक्ष्मण को पाताल में ले गया। हनुमान हमें ढूँढ़ते हुए वहाँ आये। उस समय उनका पुत्र मकरध्वज वहाँ रक्षणार्थ नियुक्त था। सर्वप्रथम उनका युद्ध हुआ। तत्पश्चात् मकरध्वज मारुति के स्वेद कणों से निर्मित पुत्र है, यह अवगत होने पर उन दोनों ने मिलकर हमें मुक्त कराया व राक्षसों का वध किया। मकरध्वज को राज्य प्रदान कर पाताल को मुक्त कर हम तुमसे मिलने आये हैं।" श्रीराम के वचन सुनकर वानर प्रसन्न हुए। उन्होंने नाचते हुए श्रीराम का जय-जयकार कर गर्जना की।

श्रीराम के वचन व वानर सेना द्वारा की गई गर्जना रावण के दूतों ने सुनी और उन्होंने शीघ्र रावण के पास जाकर इसकी सूचना दी। अहिरावण व महिरावण के वध की वार्ता सुनकर रावण अत्यन्त दुःखी

हुआ. उसके द्वारा किये गए समस्त प्रयत्न व्यर्थ हो रहे हैं, इस विचार से वह चिन्तित हो उठा। 'कितना कष्ट कर सीता जैसा चिद्रत्न लाया हूँ परन्तु उसका उपभोग नहीं कर सकता अत: अब क्या उपाय किया जाए' इस प्रकार वह विचार करने लगा। उसने सोचा कि 'अब मन्दोदरी से प्रार्थना कर उसके माध्यम से सीता को वश में किया जाय। सीता का उपभोग करने को मिलते ही सभी कष्टों का परिहार हो जाएगा।' यह विचार निश्चित कर रावण ने मन्दोदरी को बुलवाया।

रावण-मन्दोदरी संवाद; उसकी प्रतिक्रिया– मन्दोदरी के आते ही रावण ने अत्यन्त प्रेम से नम्रतापूर्वक उससे कहा– "तुम पतिव्रता हो अत: पति के वचनों की उपेक्षा मत करो। वेद शास्त्रों व पुराणों ने भी यह कहा है कि पतिव्रता को पति के वचनों का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। मैं विनतीपूर्वक जो कह रहा हूँ, वह कार्य तुम पूर्ण करो। मेरे मन में सीता के उपभोग की भावना अत्यन्त तीव्र हो उठी है। अगर मेरी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी तो मेरा प्राणान्त हो जाएगा। इसके लिए आज तक मैंने भाई, पुत्र, प्रधान एवं असंख्य राक्षस वीरों की बलि दे दी। इसके लिए मुझे विशेष दु:ख नहीं है परन्तु मेरी सीता के उपभोग की इच्छा तीव्र हो रही है। मुझे अन्न, जल, कुछ नहीं भाता, निद्रा नहीं आती। सतत् एक ही इच्छा बलवती होती रहती है। अब तुम ही मेरी इच्छा की पूर्ति के लिए सीता का हृदय परिवर्तन करो। मैं तुम्हारे चरणों में यह विनती कर रहा हूँ।" रावण ने ऐसा कहते हुए मन्दोदरी के चरण पकड़ लिए। मन्दोदरी ने रावण की यह विनती सुनकर, मानों उसके भाग्य खुल गये हों इस भावना से उसे 'हाँ' कह दिया क्योंकि सीता से मिलने की उसे भी उत्कंठा थी। श्रीराम के रूप, रंग, गुण इत्यादि के विषय में सीता से पूछूँ, श्रीराम व सीता के सम्बन्ध कैसे हैं ? सविकल्प या निर्विकल्प मन्दोदरी के मन में ऐसे अनेक कौतूहल थे। इसका समाधान सीता की भेंट से मिल जाएगा इसीलिए मन्दोदरी को सीता से मिलने की उत्कंठा थी. अत: रावण की आज्ञा होते ही मन्दोदरी ने तत्काल वह आज्ञा मान्य की.

अशोक-वन में मन्दोदरी सीता संवाद– सीता से भेंट होने के आनन्द में आनन्दित होकर मन्दोदरी अशोक वन में सीता जिस स्थान पर थी, वहाँ गयी। उस समय सीता श्रीराम के ध्यान में मग्न दिखाई दी। सीता की समस्त इन्द्रियाँ राम-मय थीं और सीता निग्रहपूर्वक श्रीराम से एकाकार हो गई थीं। अपनी देह की सुधबुध भुलाकर अहम्‌भाव का त्याग कर सीता ने पूर्ण स्वानन्दानुभव प्राप्त कर लिया था। उस अवस्था में ही मन्दोदरी ने सीता से चातुर्यपूर्वक प्रश्न किया– "प्रिये, जानकी ! तुम श्रीराम का अनुभव किस प्रकार करती हो ? राम एक स्थान पर स्थित हैं अथवा व्यापक हैं ? अगर श्रीराम सबकी देह में विद्यमान हैं तो उनकी वास्तव्य स्थिति कैसी है ? अगर उन्हें मर्यादित माना जाय तो उनका व्यापकत्व का गुण मिथ्या हो जाता है। तब उन्हें आत्माराम नहीं कहा जा सकता। अगर वह व्यापक हैं, तो प्राणिमात्र में उनका निवास है। अगर यह सत्य है तो रावण की उपेक्षा क्यों की जाय ? ब्रह्म से लेकर चींटी तक में वह विद्यमान हैं तो वे रावण की देह में भी अवश्य विद्यमान होंगे। तब रावण की भक्ति करने में कैसी हानि हो सकती है ? सखी सीते, प्रेमपूर्वक यह मुझे बताओ।"

मन्दोदरी के चतुराईपूर्वक पूछे गए प्रश्नों से सीता को हँसी आ गई। सीता ने भी उतनी ही चतुराई से मन्दोदरी को उत्तर देते हुए कहा– "सखी मन्दोदरी ! जिसे श्रीराम का ज्ञान होता है, उसका मन स्वयं को विस्मृत कर आत्मज्ञान में रम जाता है। श्रीराम से भी व्यापक कोई है ? द्रष्टा, दृश्य, दर्शन की त्रिपुटी के नष्ट होने पर वहाँ व्याप्य और व्यापक का भाव कैसे शेष रह सकता है ? तुम कहती हो कि राम सबके अन्तर्मन में विराजमान हैं। इसीलिए वे रावण के अन्तर्मन में भी विद्यमान होंगे। राम सबके हृदय

में हैं, उस हृदयस्थ की कसौटी पर तो राम व रावण का भी अस्तित्व नहीं रह जाता. उस हृदयस्थ का अनुभव एवं भोग करने वाला अन्य किसी का विचार कैसे कर सकता है ? तब रावण को उसके मध्य क्यों लाती हो और उसे भोगने के लिए कैसे कह सकती हो ? सीता का यह उत्तर सुनकर मन्दोदरी को पूर्णावस्था प्राप्त हुई। शरीर में कंपन एवं आनन्दलहरी का निर्माण होकर मन्दोदरी मूर्च्छित हो गई। सीता के मात्र वचनों से ही उसकी शक्ति क्षीण हो गई।

मन्दोदरी ने कपटपूर्ण प्रश्न पूछे परन्तु उसके उत्तर में उसे समाधि अवस्था प्राप्त हुई। इस प्रकार सीता ने मन्दोदरी की कपटवृत्ति का अन्त कर उसे समाधिस्थ कर दिया। तत्पश्चात् मन्दोदरी के सजग होने पर भी उसकी सहज स्थिति भंग नहीं हुई। वह सीता से बोली– "हे सीते, तुम्हारे चरण देखने पर मुझे जिस सुख की प्राप्ति हुई है, उसे शब्दों में व्यक्त करना सम्भव नहीं है. मुझ पर श्रीराम की कृपा हुई।" यह कहते हुए मन्दोदरी का गला भर आया। उसने जानकी के चरण पकड़ लिए। उस समय सीता एवं मन्दोदरी दोनों के नेत्र श्रीराम रूप में मग्न हो गए। दोनों का अहम् भाव समाप्त होकर वे दोनों एक रूप हो गईं।

रावण ने जब मन्दोदरी को सीता से भेंट करने के लिए भेजा था, तभी उसने कुछ दासियों को गुप्तचर के रूप में उसके साथ भेजा था। उन दासियों ने मन्दोदरी के सम्बन्ध में रावण को सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। वह वृत्तान्त सुनकर रावण छटपटाने लगा, उसे कुछ भी सूझ नहीं रहा था।

अध्याय ५६

[रावण-वध हेतु श्रीराम से विनती]

श्रीराम द्वारा अहिरावण-वध की वार्ता सुनकर रावण दु:खी था ही। तत्पश्चात् उसने मन्दोदरी द्वारा सीता का हृदय परिवर्तन करने का प्रयत्न किया परन्तु उसमें भी असफल हुआ अत: सीता किसी भी तरह वश में नहीं होती यह जानकर उसका मन चिन्ताग्रस्त हो गया। युद्ध भूमि में युद्ध करने पर श्रीराम को जीता नहीं जा सकता। क्या किया जाय, यह समझ में न आने के कारण रावण सिर धुनने लगा। परन्तु उसे तभी अचानक पहले का महामन्त्र स्मरण हो आया, जिस मन्त्र से प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने रावण को वरदान दिया था। अत: रावण ने पुन: होम करने का निश्चय किया।

रावण द्वारा भगवान् शिव की प्रार्थना– "हे श्रीशंकर, त्रिपुरासुर का वध करने वाले त्रिनेत्रधारी, गौरीहर आप शीघ्र मुझ पर प्रसन्न हों। मुझे सर्वत्र, समस्त क्रिया-कलापों में राम दिखाई दे रहा है। एक क्षण भी उसके बिना व्यतीत नहीं होता। हे स्वामी शंकर, आप मेरी विनती सुनें, मेरे समस्त कुल का संहार हो गया है। अब राम और सौमित्र मेरा भी अन्त करने को आतुर हैं। मुझे सर्वत्र सर्वकाल राम दिखाई दे रहा है। श्रीराम के बाण मुझे सर्वत्र भयभीत कर रहे हैं। अत: हे शंकर, मुझ पर प्रसन्न होकर मुझे इस भय से मुक्त करें।" रावण द्वारा दयनीय होकर की गई प्रार्थना से भगवान् शंकर को रावण पर दया आ गई और उन्होंने प्रकट होकर रावण को दर्शन दिये। रावण द्वारा सतत राम का नाम लिये जाने के कारण ही रावण को शिव के दर्शन हुए। तत्पश्चात् भगवान् शिव ने रावण को आश्वस्त करते हुए प्रसन्न होकर वर दिया।

श्रीशंकर बोले– "हे दशानन, इससे पूर्व तुमने शरीर व मस्तक मुझे अर्पित कर सामगायन से मुझे प्रसन्न कर वर प्राप्त किया था। युद्ध में शत्रु पर विजय प्राप्त कर त्रिभुवन में विजयी होने का वर तुमने माँगा था। उस समय मैंने तुम्हें वर दिया था, उसका स्मरण कर एकाग्रता से यज्ञ करो। मेरे लिए होम करने पर तुम्हारे मनोरथ पूर्ण होंगे। उस समय तुम्हारे एकाग्र एवं अविकल रहने पर तुम्हारे कार्य पूर्ण होंगे। उसके लिए दिव्य घोड़ों से सज्ज रथ की तुम्हें प्राप्ति होगी। यह अलौकिक रथ अग्निकुंड से प्राप्त होगा। वह रथ हर प्रकार के शस्त्रों से परिपूर्ण होगा। दिव्य माहेश्वर धनुष तुम्हें प्राप्त होगा। उस रथ में बैठकर युद्ध करने पर शत्रु परास्त होंगे। तुम्हारा होम निर्विघ्न रूप से पूर्ण होने पर तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा। परन्तु इसमें थोड़ी भी चूक होने पर होमकर्ता अर्थात् तुम्हारी हानि होगी।" इतना कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गए। रावण ने शिव को नमन किया व यज्ञ की तैयारी में लग गया।

रावण का यज्ञ– रावण ने निश्चय किया कि अब मैं यज्ञ कर रथ एवं शस्त्रास्त्र प्राप्त करूँगा। कोई कल्पना भी नहीं कर सकता, ऐसा भीषण युद्ध कर श्रीराम को परास्त कर दूँगा। तत्पश्चात् रावण ने विधिपूर्वक स्नान कर अनेक लोगों को दान देकर अपना अन्तःकरण स्वस्थ किया। मोह, मान, शोक इत्यादि का त्याग कर वह मात्र श्रीराम का ही विचार करने लगा। भगवान् शिव के देवालय में उसने होम विधि का प्रारम्भ किया उसने अपने चारों ओर आनन्द का आवरण, माया-मोह का आवरण, संकल्प का आवरण, झंझावात का आवरण और बाह्य आवरण, ऐसे पाँच आवरण निर्मित किये। उसने बाहर मन्त्रावरण, शस्त्रावरण, सर्पावरण, भूत, प्रेत, बेताल इत्यादि का गुप्त आवरण निर्मित करने के अतिरिक्त कवचधारी शस्त्र-सज्ज राक्षसों को नियुक्त किया। श्रीराम पर विजय प्राप्त करने के लिए रावण ने इस प्रकार अन्तर्बाह्य निश्चित योजना कर, एकाग्रतापूर्वक होम प्रारम्भ किया।

वानर-सेना द्वारा श्रीराम से युद्ध की विनती– वानर-सेना में श्रीराम का जय-जयकार हो रहा था। उसी के साथ हनुमान का भी गौरव हो रहा था। श्रीराम को युद्ध के लिए उत्तेजना दी जा रही थी। 'श्रीराम आलस्य एवं उदासीनता का त्याग करें' ऐसी विनती की जा रही थी। वानर वीरों का उत्साह देखकर लक्ष्मण भी उत्तेजित हुए और उन्होंने भी नम्रतापूर्वक श्रीराम की प्रार्थना की।

लक्ष्मण बोले "हे राघव, आप भक्तों के रक्षक हैं। ये वानरगण आपके भक्त ही हैं। राक्षसों द्वारा युद्ध में कपटपूर्वक मारे जाने पर आपकी चरण-धूलि से उन्हें पुनः चेतना प्राप्त होती है। वे जीवित हो जाते हैं परन्तु लगातार ऐसा घटित होने पर वानरगण दुःखी हो गए हैं। उनमें से प्रत्येक वानर ब्रह्मांड निगल सकता है, वह इतना पराक्रमी है। उसके समक्ष रावण का बल तुच्छ है, परन्तु वह युद्ध में कपट से वानरों का छल किये हुए है। वह प्रत्यक्ष युद्ध नहीं वरन् मन्त्र-तन्त्र का प्रयोग करता है। ऐसे दुष्ट, दुरात्मा का संहार करना आपका धर्म ही है।" यह कहकर तत्पश्चात् लक्ष्मण ने, श्रीराम को उनकी प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाने के लिए कहा– "हे श्रीराम, दुष्ट अधर्मी, एवं अहंकारियों का नाश करने के लिए आपने व्रत लिया है। उसके लिए प्रत्येक युग में अवतार लेते हैं। इन अहंरोग से पीड़ितों को आप मुक्त करते हैं। यहाँ रावण इस रोग से ग्रस्त है, उसे मुक्त करने के लिए अपना धनुष-बाण सज्ज करें। इस रावण ने सभी देवों को बन्दी बनाया हुआ है। नवग्रहों की मानहानि की है अतः उनकी रक्षा के लिए आप रावण का वध करें इसके अतिरिक्त अब तो प्रत्यक्ष माँ सीता को चुराकर अशोक वन में छिपा कर रखा है। वह हनुमान से, श्रीराम से मिलाने की विनती कर रही हैं, उनकी यह करुण वाणी सुनकर हृदय विदीर्ण हो रहा है। अतः मुझे आज्ञा दें, मैं स्वयं रावण का वध करता हूँ अन्यथा आप पुरुषार्थपूर्वक

रावण का निर्दलन करें। युग युग में अवतार लेकर दुष्टों का संहार कर भक्तों की रक्षा करना आपकी प्रतिज्ञा है। अतः इन वेदतुल्य वचनों के अनुसार रावण का वध कर भक्तों को मुक्त करायें, ऐसी मेरी विनती है. रावण को अपने हाथों से मारने की शपथपूर्वक की गई प्रतिज्ञा का स्मरण कर आप रावण का वध करें।"

तत्पश्चात् लक्ष्मण ने श्रीराम को सत्यप्रतिज्ञ कुछ राजाओं के उदाहरण देकर और प्रत्यक्ष श्रीराम द्वारा किये गए वन-गमन का तत्त्वार्थ स्मरण कराकर उन्हें रावण-वध हेतु प्रेरित एवं उत्तेजित किया। लक्ष्मण के पश्चात् विभीषण ने भी श्रीराम से रावण-वध की विनती की। वे बोले सौमित्र के वचन योग्य हैं। श्रीराम, आप सत्य प्रतिज्ञ हैं। अतः धनुष बाण सुसज्जित कर दुरात्मा, धर्मरोधक रावण का वध करें। इस प्रकार लक्ष्मण तथा रावण-बन्धु विभीषण ने श्रीराम से युद्ध की विनती की। वानर प्रमुखों ने भी विनती की, जिससे श्रीराम उत्तेजित हो गए।

अध्याय ५७

[रावण के यज्ञ को विफल करने हेतु वानरों का प्रस्थान]

श्रीराम ने बंधु लक्ष्मण, विभीषण व वानर श्रेष्ठों की विनती को स्वीकार किया। रावण के प्रति उनका क्रोध जागृत हो उठा। अत्यन्त कुपित होकर श्रीराम ने विभीषण से कहा- "वह दशानन कहाँ है ? त्वरित ढूँढकर मुझे बतायें. इसके पूर्व युद्ध में वह पीठ दिखा कर भागा था, वह पुनः युद्ध हेतु नहीं आया। अतः उसे मारने से धर्मयुद्ध पर दोष लगेगा। हे विभीषण ! आप अपने विश्वसनीय दूतों को भेज कर रावण का पूर्ण वृत्तान्त ज्ञात करें।"

दूतों द्वारा रावण की खोज; विभीषण की सूचना– विभीषण ने दूत भेजकर रावण कहाँ है, क्या कर रहा है- इस विषय में सम्पूर्ण वृत्तान्त एकत्र किया। श्रीराम द्वारा की गई आज्ञा से विभीषण सन्तुष्ट थे। उन्होंने श्रीराम से सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तारपूर्वक बताया। वे बोले "हे श्रीराम, इसके पूर्व लक्ष्मण को शक्ति से घायल कर युद्ध किये बिना रावण पलायन कर गया था परन्तु तब से सतत उसे आपका ही ध्यान है। उसे जल, अन्न, सेवक सभी में श्रीराम के दर्शन हो रहे हैं शयन कक्ष में भी श्रीराम दिखाई दे रहे हैं। श्रीराम के भय से उसके प्राण निकलने ही वाले थे कि तभी उसे भगवान् शिव का स्मरण हो आया। पहले उग्र तप कर रावण ने शंकर को प्रसन्न कर उनसे वरदान प्राप्त किये थे, वही वर भगवान् शिव ने उसे दिये और रावण ने होम आरम्भ कर दिया। परन्तु शिवजी ने वर देते समय जो शर्त रखी थी, उसका अर्थ मूर्ख रावण समझ नहीं सका। सर्वज्ञ होने के कारण श्री शंकर ने कहा था कि "तुम्हारा होम निर्विघ्न रूप से सम्पन्न होने पर ही शत्रु का नाश होगा। इसके विपरीत होम में कुछ विघ्न आने पर होमकर्ता का ही घात होगा।" इतना कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गए। तत्पश्चात् अहंकारी रावण ने निर्विघ्न होम कर राम-लक्ष्मण का वध करने के लिए युद्ध करने का निश्चय किया। इस निश्चय के अनुसार रावण ने एकाग्रतापूर्वक यज्ञ-सामग्री लेकर होम प्रारम्भ कर दिया है। होम में बाधाएँ व विघ्न न आने पायें इसके लिए उसने सात उग्र आवरणों की रचना की है। इसके अतिरिक्त अनेक भीषण शक्तियाँ उसके यज्ञ की रक्षा कर रही हैं। अतः हे श्रीराम, रावण के होम में विघ्न डालना

चाहिए क्योंकि उसका होम निर्विघ्न रूप से सम्पन्न हो जाने पर घोड़ों सहित रथ व शस्त्रास्त्र उसे प्राप्त हो जाएँगे। तब रावण अवध्य हो जाएगा, अत: शीघ्र ही होम में विघ्न उत्पन्न करना चाहिए।"

विभीषण द्वारा सम्पूर्ण वृत्तान्त बताने पर श्रीराम में स्फूर्ति का संचार हुआ। उस अधर्मी रावण को अपनी भुजाओं का शौर्य दिखाने का उन्होंने निश्चय किया। रावण को बाहर निकालने का निश्चय कर श्रीराम ने विभीषण के साथ माल्यवंत, सुषेण, गवाक्ष, गवय, युवराज अंगद, शरभ, नील, जाम्बवंत इत्यादि पराक्रमी वानर वीर और हनुमान को लंका भेजा। वे वानर वीर श्रीराम-नाम की जय-जयकार करते हुए उड़ानें भरकर लंका पहुँचे।

रावण की लंका भगवान् शिव की कृपा से व विश्वकर्मा की कल्पनाशीलता से निर्मित हुई थी। स्वर्ण, रत्न, मोती इत्यादि से यह शोभायमान थी और अमरावती, अलकावती के सौन्दर्य को भी उसने पीछे कर दिया था। लंकाधीश रावण भगवान् शंकर से वरदान प्राप्त होने के कारण उन्मत्त हो गया था, इस कारण भगवान् शंकर भी क्रोधित थे। श्रीराम को अपना स्वामी मानने वाले भगवान् शिव, रावण द्वारा श्रीराम की पत्नी सीता को चुराकर लाने के कारण उससे क्रुद्ध थे अत: उन्होंने रावण वध की योजना की। वानरों ने लंका में जाकर उपद्रव मचा दिया, उन्होंने राक्षसों का संहार किया, भवनों की तोड़-फोड़ की। राक्षसों के सशस्त्र आघात का प्रत्युत्तर देने के लिए वानरों ने वृक्ष, पाषाण इत्यादि का उपयोग किया। मल्ल-युद्ध कर उन्होंने राक्षसों को हैरान कर दिया। इस प्रकार श्रीराम-नाम की गर्जना करते हुए वानर-वीरों ने राक्षसगणों के आवरण काट दिये।

अध्याय ५८

[रावण के यज्ञ का विध्वंस]

रावण ने होम निर्विघ्न रूप से सम्पन्न होने के लिए जिन आवरणों की योजना की थी, उनमें से राक्षसगणों का रक्षक-आवरण, वानर वीरों ने उद्ध्वस्त कर दिया। तत्पश्चात् अत्यन्त कठिन संकल्प-आवरण को वानर वीरों ने लाँघा, तत्पश्चात् उन्हें मोहावरण ने रोका। वानर वीर मोह के वशीभूत हो गए। उन्हें विस्मृति के कारण अपना-पराया पहचान में नहीं आ रहा था। उन्हें भ्रम हो गया था। वे किस कार्य के लिए आये हैं, इसका भी विस्मरण हो गया। आलस, जम्हाइयाँ, निद्रा एवं असन्तुलन के वशीभूत होकर असंबद्ध बड़बड़ करने लगे। हनुमान वैरागी, विवेकी व निर्मोही थे। उन्होंने राम नाम की ध्वनि की और तत्काल मोह जलकर भस्म हो गया। नरदेह विषयों का दास होने पर मोह बन्धन में बँध जाता है। वानर श्रीराम-भक्त थे, हनुमान उनके सद्गुरु थे। हनुमान द्वारा उन राम-भक्तों की मोहवशता का समाधान मिलने पर, वे पुन: राम कार्य करने के लिए तत्पर हुए। उन्होंने आगे बढ़कर देखा तो उन्हें रावण होम करते हुए दिखाई दिया। तब रावण द्वारा निर्मित सभी आवरणों को नष्ट कर, वानर आनन्द आवरण को काटते हुए आगे बढ़े। यद्यपि बाह्य रूप में रावण द्वारा आनन्द आवरण निर्मित किया गया था परन्तु उसके अन्दर कपट ही भरा था। जिस प्रकार घी डालने पर अग्नि प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार वानर वीर रावण को होम करते देखकर क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने यज्ञ कुंड में जल डालकर उसे बुझा दिया। होम के लिए एकत्र किये हुए दर्भ पात्रों इत्यादि का विध्वंस प्रारम्भ किया।

मन्त्र देवता का असहयोग– रावण अपने कार्य में सतर्क था। वह अपनी बाह्य वृत्तियों पर नियन्त्रण कर रात दिन श्रीराम का वध करने के लिए मन्त्र का जाप कर रहा था। इस मन्त्र-देवता को भय लग रहा था। वह विचार कर रहा था कि मन्त्र जपने वाला, अपना कार्य सिद्ध हो इसके लिए जाप करता है, परन्तु रावण का कार्य विचित्र ही है। वह तो श्रीराम के वध के लिए जप कर रहा है। श्रीराम तो इस संसार की उत्पत्ति के, स्थिति के तथा गति के साक्षी हैं। उनका वध करने की कल्पना यह मूर्ख रावण कर रहा है। इसमें रावण का ही घात होगा। श्रीराम का वध करने के लिए हम कैसे प्रवृत्त हो सकते हैं। श्रीराम जग के जनक हैं और रावण ऐसे पिता का ही घात करने के लिए प्रवृत्त हुआ है अतः उसे प्रायश्चित कराने के लिए, उसका ही वध करने के लिए हमें प्रवृत्त होना चाहिए, यही उचित होगा। मन्त्र-देवता ने अपनी शक्ति रावण के लिए प्रदान न करने का निश्चय किया, जिसके कारण उसकी मन्त्रोच्चार की गति ही अवरुद्ध हो गई। उसके दाँत भिंच गए, वाचा बन्द हो गई। रावण इस विघ्न के कारण अस्वस्थ हो गया। वानरों ने होम-कुंड, यज्ञ-पात्र, दर्भ, सबका विध्वंस करते हुए श्रीराम नाम की गर्जना की। तब भी रावण अपने स्थान से नहीं हिला। तब वानरों ने उसे इधर उधर से खींचना आरम्भ कर दिया परन्तु रावण बाह्य स्थिति की एवं विघ्नों की परवाह किये बिना स्तब्ध बैठा रहा क्योंकि लंका दुर्ग, पंचावरण कोश एवं राक्षस वीरों की रक्षा के कारण वानर उस तक पहुँच पाएँगे, यह विचार ही उसे स्वीकार नहीं हो पा रहा था। उसने नेत्र खोलकर देखा तब उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया। वह यज्ञ में रामदूतों द्वारा लाये गए विघ्न को मान्य नहीं कर रहा था क्योंकि रावण ने अत्यन्त कपटपूर्वक तपस्या की थी, जिसका उसे बहुत गर्व था।

अंगद की युक्ति; मन्दोदरी का आक्रोश– रावण का होम तहस-नहस हो जाने पर भी उसे निश्चल देखकर अंगद को आश्चर्य हुआ। अब इसे श्रीराम के समक्ष कैसे ले जायें ? अंगद ने इसके लिए एक अलग ही उपाय करने का निश्चय किया ? समीप में ही स्थित मन्दोदरी को पीड़ित करने पर रावण का ध्यान विचलित होगा और वह दौड़कर वहाँ आयेगा, ऐसा अंगद ने विचार किया। उसने मन्दोदरी के केश पकड़कर खींचे और रावण को ललकारते हुए कहा– "दशानन, तुम सीता को चुराकर ले गये परन्तु मैं तो तुम्हारे समक्ष तुम्हारी पत्नी श्रीराम के पास ले जा रहा हूँ, अगर तुम सच्चे वीर हो तो उसे छुड़ा लो" यह कहकर अंगद, मन्दोदरी को पीड़ित करने लगा।

अंगद द्वारा मंदोदरी के केश पकड़कर खींचते ही वह आक्रोश करते रावण से बोली– "वानरों द्वारा संत्रस्त किये जाने पर मेरे प्राण जा रहे हैं और हे रावण, आप शान्त बैठे हैं। समस्त स्वजनों को मृत्यु के मुख में डाल दिया है। श्रीराम, तुम्हें अपने भीषण बाण से क्षण भर में मार डालेगा। अब यज्ञ का विध्वंस हो जाने पर कैसा होम हवन कर रहे हैं। पति के समक्ष वानर पत्नी को त्रस्त कर रहे हैं, ऐसे पति का जीवन व्यर्थ है। इस प्रकार मन्दोदरी आक्रोश करने लगी, तब वानरों ने श्रीराम का जय-जयकार किया, जिससे रावण के दाँत खुल गए एवं वाणी मुक्त हुई।

रावण-अंगद संवाद; रावण का मूर्च्छित होना– मन्दोदरी के वचनों से सन्तप्त रावण दाँत किटकिटाते हुए अंगद से बोला– "अरे अधम, स्त्री के केश पकड़ कर खींचते हो ? तुम्हें कौन वीर कहेगा ? तुम्हारा धिक्कार है" इस पर अंगद उससे बोला– "अरे निर्लज्ज, भिक्षुक बनकर सीता को चुराकर कर ले आये, उससे लज्जित न होकर उलटे घमंडपूर्वक बोल रहे हो।" अंगद का प्रत्युत्तर सुनकर रावण अत्यन्त क्रोधित हुआ। उसने दौड़कर अंगद के मस्तक पर प्रहार कर उसे मूर्च्छित कर दिया, वह

देखकर मारुति उड़ान भर कर आये और उन्होंने हाथ के आघात से रावण पर वार किया, जिससे रावण की आँखों के समक्ष अँधेरा छा गया और वह चक्कर खा कर गिर पड़ा। तभी अंगद की मूर्च्छा दूर हुई और सभी वानरगण प्रसन्न हो गए। रावण के यज्ञ का विध्वंस हो गया। रावण को वहाँ से उठा दिया। अब उसे भी राम के समक्ष ले जाने पर वे क्षणभर में रावण का वध कर देंगे। अतः वानर गणों ने श्रीराम-नाम की गर्जना करते हुए अपना आनन्द व्यक्त किया व रावण को युद्ध के लिए उन्मुख किया।

अध्याय ५९

[रावण का युद्ध के लिए आगमन]

रावण की मूर्च्छा दूर होने पर उसे विध्वंस किया हुआ यज्ञ दिखाई पड़ा। वानरों ने सम्पूर्ण यज्ञ-सामग्री को तहस-नहस कर दिया था अतः उनके प्रति उसका क्रोध अनियन्त्रित हो उठा। मन्दोदरी को विलाप करते हुए देखकर उसको सान्त्वना करते हुए, अपने पुरुषार्थ का वर्णन करते हुए वह मन्दोदरी से बोला- "हे मन्दोदरी, तुम विलाप न करो, वानरों ने तुम्हें पीड़ित किया है अतः मैं उनका नाश कर दूँगा। मेरे समक्ष रणभूमि में कोई टिक नहीं सकता। समस्त देवता मेरी सेवा में हैं। मेरे बन्दी बनकर वे मेरी सेवा कर रहे हैं। उनके समक्ष वानर एवं मानवों की क्या बिसात ? उन नर एवं वानरों के शवों को मैं रण-भूमि में बिछा दूँगा। उनके रक्त का टीका तुम्हें लगाऊँगा। जिन हाथों ने तुम्हें संत्रस्त किया है, मैं उन हाथों को उखाड़कर और राम-लक्ष्मण का रक्त प्रवाहित कर तुम्हारे दुःख का परिमार्जन करूँगा। तुम दुःखी न हो।"

रावण की प्रतिज्ञा; सेना की सिद्धता; प्रजा का दुःखी होना– मन्दोदरी की सान्त्वना के लिए रावण ने प्रतिज्ञा की "आज पृथ्वी राम-रहित होगी अथवा रावण-रहित होगी। मैं रणभूमि में बाणों से राम का वध कर दूँगा। मेरे पराक्रम को देखकर सभी भयभीत हो जाएँगे।" तत्पश्चात् रावण ने ढिंढोरा पिटवाकर अपनी सेना को तैयार होने को कहा। जिस प्रकार बुझने से पूर्व दिये की लौ बढ़ जाती है, उसी प्रकार रावण का आवेश बढ़ गया था। सेना सिद्ध होते ही रावण ने गर्जना करते हुए शीघ्र रण-भूमि की ओर प्रस्थान किया। उसके दूतों ने सेना को युद्ध के लिए इस प्रकार खदेड़ा, जिस प्रकार डंडे मारकर पशुओं को खदेड़ा जाता है। प्रजा-जनों में हाहाकार मच गया। अपने प्रिय व्यक्ति के जाने से प्रजा दुःखी हो गई। प्रजा जन अपने आप्त सम्बन्धियों के चरणों पर गिरकर दीन स्वर में कह रहे थे कि 'अब हमारी रक्षा कौन करेगा ? तुम्हारी हमसे पुनः भेंट होगी कि नहीं ? तुम मत जाओ '

परन्तु दूसरी ओर वानर-सेना में युद्ध का आनन्द व्याप्त हो गया था। अब रावण के श्रीराम के समक्ष आते ही श्रीराम उसका वध कर देंगे, इस विचार से उत्साहित होकर वे उछल कूद कर रहे थे। राक्षस-सेना विविध वाद्यों की ध्वनि करती हुई, विविध शस्त्रों को लेकर युद्ध के लिए आ रही थी। रथ, घोड़े व हाथियों के चलने की ध्वनि से प्रचड नाद निर्मित हो रहा था। उस नाद से स्वर्ग एवं पृथ्वी के मध्य का अन्तरिक्ष पूर्णरूप से व्याप्त हो गया था। उस सेना व रावण के मार्ग में अनेक अपशगुन घटित हुए।

रावण अपशगुनों से विचलित, परन्तु धैर्यपूर्वक गमन– रावण ने सेना सहित प्रस्थान किया। तब दिन में ही अन्धकार फैल गया। आँखों में धूल उड़कर पड़ने लगी। आकाश में शिखाकेतु, अग्निकेतु,

धूमकेतु इत्यादि के समूह दिखाई देने लगे। उल्कापात होने लगा, नक्षत्र गिरने लगे, भूकंप हुआ, सियार बोलने लगे। आंधी आने के कारण वेगपूर्वक चलने वाली हवा में राक्षस उड़ने लगे। उन्हें श्वास लेना भी कठिन हो रहा था। आँखों में धूल के कण जाने से अपने एवं शत्रु के सैनिक पहचानना कठिन हो रहा था आगे बढ़ना असम्भव-सा हो गया था। उसके मन में विचार आया कि 'शंकर ने कहा था कि यज्ञ में विघ्न उत्पन्न होने पर यज्ञकर्ता का घात होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि यह कथन आज सत्य सिद्ध होगा। उन दुष्ट अपशगुनों से सारी सेना व्याप्त हो गई है।' इन विचारों से रावण कुछ समय तक चिन्ताग्रस्त हो गया व भ्रमित होकर उलझन में पड़ गया।

रावण को इस भ्रम-पूर्ण स्थिति से उबरने में थोडा समय लगा। तुरन्त वह स्वयं से विचार करने लगा– 'युद्ध में जाने वाले वीर को दुश्चिह्नों से भयभीत नहीं होना चाहिये। शुभचिह्नों में विद्यमान रहने वाले शंकर क्या दुश्चिह्नों में दूर चले जाएँगे ? ऐसा विचार तो कोई पामर ही कर सकता है। मैं व्यर्थ ही चिन्ता कर रहा हूँ।' तत्पश्चात् वह सेना को सम्बोधित करते हुए बोला- "युद्ध के विषय में दुःख मत करो वर्तमान में जो दुश्चिह्न विद्यमान हैं, वे भगवान् शिव ने अपनी परीक्षा लेने के लिए ही बनाये हैं। हम उनका किस प्रकार सामना करते हैं, यह कृपालु शंकर देख रहे हैं। अतः भयभीत न होकर शीघ्र आगे बढ़ो। नर वानरों का संहार करो।" सेना को इस प्रकार आश्वासन देकर रावण ने रणभूमि की ओर प्रस्थान किया। रणभूमि के समीप जाते ही रथ लड़खड़ाने लगा। सब कुछ ठीक होते हुए रथ व घोड़ों के गिरने से रावण चिन्तित हो गया परन्तु धैर्य एकत्र कर वह आगे बढ़ा। रथ को सभालते हुए अपना सम्पूर्ण सामर्थ्य एकत्रित कर वह रणभूमि में आया व श्रीराम को ललकारते हुए गरज कर बोलने लगा।

रावण का घमंड; लक्ष्मण का उत्तर; रावण संतप्त– "हे राम, तुम युद्ध ही करना चाहते हो तो आज कर लो। पीठ दिखा कर पलायन मत करना। मेरी कई दिनों की इच्छा आज पूर्ण होगी। पूर्ण पराक्रम से मैं युद्ध करूँगा पहले मैंने पलायन किया था वैसा आज भी करूँगा, इस भ्रम में मत रहना. उस समय सारथी व घोडों की मृत्यु के कारण मुझे भागना पड़ा था। मैं देव तथा दानवों से भी नहीं डरता, वहाँ तुम्हारे जैसे, वानरों के बल पर युद्ध करने वालों से कैसा भय ? आज तुम अपना पराक्रम दिखाओ।"

दशानन रावण के इस दंभ से परिपूर्ण वचनों की उपेक्षा करते हुए श्रीराम ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। उन वचनों को उन्होंने हँसी में उड़ा दिया यह देखकर लक्ष्मण कुपित हो उठे। वे रावण की भर्त्सना करते हुए बोले- "काले मुख वाले निर्लज्ज, अधर्मी, दुराचारी ! तुम्हारे ये वचन व्यर्थ हैं. तुम युद्ध में कुछ पराक्रम कर अपना शस्त्रास्त्र का कौशल दिखलाओ। शूरवीर, व्यर्थ में बोलते नहीं हैं, पराक्रम करके दिखाते हैं." लक्ष्मण के वचन सुनकर रावण सन्तप्त हो उठा। उसने धनुष पर बाण चढ़ाकर ललकारपूर्ण गर्जना करते हुए कहा "राम, तुम अब मेरा वार सहन करो " इसके पश्चात् राक्षस और वानरों का घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया।

राक्षसों की क्षति; श्रीराम की कृपा से वानर सुरक्षित– रावण की गर्जना से उत्साहित होकर राक्षसों ने वानरों पर विभिन्न शस्त्रास्त्रों से वार करना प्रारम्भ कर दिया वानर शस्त्रों के आघात से घायल होने लगे उनके शरीर में हुए घावों से रक्त प्रवाहित होने लगा उस समय उन घावों पर वानर श्रीराम की चरण धूलि लगा लेते थे, जिससे घाव ठीक होकर वानर पुनः उत्साहपूर्वक युद्ध में जुट जाते थे. राक्षस शस्त्रास्त्रों से वार कर रहे थे तो वानर पत्थर एवं पर्वतशिखरों से राक्षसों पर प्रहार कर रहे थे। वानरवीर श्रीराम कृपा से पुनः उठ खड़े होते थे परन्तु राक्षसों को कौन उठाता ? अतः अनेक राक्षस वीर रण-भूमि

में धराशायी हो गए, कुछ राक्षसों के मस्तक कट कर आकाश में उछले व भूमि पर जा गिरे। मानों उन्हें स्वर्ग, सत्यलोक, ब्रह्मभुवन अथवा वैकुंठ से भी अधिक श्रीराम के चरणों का आकर्षण था, जिसके कारण वे मस्तक श्रीराम के चरणों पर आ गिरते थे श्रीराम शत्रुओं को भी तारने वाले होने के कारण उन्होंने राक्षसों का उद्धार किया।

इन्द्र द्वारा श्रीराम के लिए रथ भेजना– श्रीराम एवं वानरों द्वारा राक्षस-सेना का नाश हुआ। हाथी घोड़ों एवं रथ सहित सेना का संहार देखकर लंकाधीश रावण को क्रोध आ गया। वह आवेशपूर्वक रथ बढ़ाकर श्रीराम से युद्ध के लिए आया। शस्त्रास्त्र से सुसज्जित घमंडी रावण का आवेश देखकर सुरवर चिन्तित हो गए क्योंकि रावण रथ पर सवार था व राम पैदल युद्ध कर रहे थे। श्रीराम अकेले ही रावण से युद्ध करने वाले थे। उन्होंने लक्ष्मण को भी अपने साथ नहीं लिया था परन्तु ऐसा होते हुए भी श्रीराम, रावण का वध कर सुरगणों को मुक्त करेंगे, यह पूर्ण विश्वास था, तथापि देवताओं को लगा कि अपने हित के लिए श्रीराम की सहायता करनी चाहिए। देवेन्द्र ने सोचा 'मैंने आज तक श्रीराम की कोई भी सेवा नहीं की, इसी कारण रावण ने मुझे पकड़ कर अपना दास बनाया। रावण से इसका बदला लेना चाहिए।' यह विचार कर इन्द्र ने सारथी को बुलाकर रथ सुसज्जित कराया और उसे आज्ञा दी– "तुम रथ में घोड़े जोतकर श्रीराम के पास जाओ, जिससे श्रीराम रथ में बैठकर रावण का वध करेंगे।"

अध्याय ६०

[श्रीराम एवं रावण के युद्ध का प्रारम्भ]

इन्द्र का सारथी मातलि अत्यन्त बुद्धिमान था। उसने इन्द्र को साष्टांग दंडवत् प्रणाम कर इन्द्र की आज्ञानुसार रथ सिद्ध किया। मातलि के मन में भी रावण के प्रति क्रोध भरा था। उस दुरात्मा रावण ने देवताओं को बन्दी बनाया। उसके स्वामी इन्द्र को सेवक बनाया था, अतः उसने शीघ्र रथ तैयार किया। उसमें शस्त्रास्त्र भरे, युद्धोपयोगी सामग्री ली और जहाँ रणभूमि में श्रीराम खड़े थे, वहाँ वेगपूर्वक रथ को ले आया श्रीराम को नमन कर उसने श्रीराम को उनके अवतार के कार्य का स्मरण दिलाया। तत्पश्चात् श्रीराम की सहायता करने की इच्छा प्रदर्शित कर रथ को स्वीकार करने की विनती की। फिर वह बोला– "यह कवच धारण कर इन्द्र का धनुष व बाण लेकर सत्वर रावण का वध करने की कृपा करें। इसके अतिरिक्त शत्रु का वध करने के लिए युद्धोपयोगी शक्तियाँ भी इन्द्र ने भेजी हैं अतः अब मेरे साथ रथ में बैठकर राक्षसों व रावण का संहार करें।"

श्रीराम को विभीषण व वानर श्रेष्ठों की विनती– मातलि की विनती पर श्रीराम हँसते हुए बोले– "रावण दसमुख वाला क्षुद्र कीटक सदृश है। उसके लिए रथ व सारथी की क्या आवश्यकता है ? क्षण मात्र में मैं उसका वध कर दूँगा।" इस पर विभीषण आगे बढ़कर बोले– "मेरी आपके चरणों में एक विनती है, उसे स्वीकार करें। अनेक लोगों की इच्छा है कि श्रीराम रथ पर आरूढ़ होकर युद्ध में ख्याति अर्जित करें। आपका स्वरूप वेदों की समझ से भी परे है। आपके कारण ही सब घटित होता है तथापि हमारे लिए आप सगुण रूप धारण कर भक्तों का संकल्प पूर्ण करते हैं। भक्तों का मनोगत पूर्ण करने का आपका व्रत ही है। आप भक्तों द्वारा अर्पित की गई वस्तुओं को प्रेमपूर्वक स्वीकार करते

है, अत: उसी भावना से इस रथ को भी स्वीकार करें।" विभीषण की विनती सुनकर श्रीराम ने हँसते हुए उन्हें आलिंगनबद्ध कर लिया, तब वे रथ पर आरूढ़ होने के लिए आगे बढ़े, तभी सुग्रीव ने आगे बढ़कर सागर द्वारा प्रदत्त अलंकार श्रीराम को देते हुए कहा "पहले इसे ग्रहण करें।" अंगद ने भी आगे बढ़कर श्रीराम से इसकी विनती की "सभी योद्धा विनती कर रहे हैं, अत: श्रीराम उनकी सुन लें" ऐसा हनुमान बोले। सभी की इच्छा का सम्मान करते हुए श्रीराम ने अलंकार स्वीकार कर रथ की प्रदक्षिणा की, फिर नमन करते हुए रथ पर आरूढ़ हुए।

श्रीराम ने वानर श्रेष्ठ व विभीषण की विनती मान्य की और रथ में बैठकर प्रस्थान किया। सभी वानर वीर प्रसन्न हो गए। हनुमान ने श्रीराम पर अपने प्राण न्यौछावर कर, विभीषण व अंगद ने नजर उतारते हुए अपनी शुभेच्छाएँ प्रकट की, सुग्रीव ने आकर श्रीराम की चरण-वंदना की। अन्य वानर वीर भी युद्ध के लिए तत्पर हुए, श्रीराम शांत, कल्याणकारी और विकारवश न होते हुए भी इस समय क्रोध-वश होकर रावण के वध के लिए आगे बढ़े।

राम-रावण युद्ध का अस्त्र प्रयोग से प्रारम्भ– श्रीराम के सदृश ही रावण भी क्रोधित होकर गर्जना करते हुए रथ में बैठ कर रणभूमि में आया। उसने श्रीराम को ललकारते हुए इतनी बाण-वर्षा की कि श्रीराम उसके नीचे ढँक गए। श्रीराम भी कुशल धनुर्धर थे। उन्होंने सभी बाण अपने बाणों से नष्ट कर दिये। इससे चकित होकर रावण झुँझला गया। श्रीराम के समक्ष अपना कौशल सामान्य रूप से टिक नहीं सकता, यह उसे ज्ञात हो गया। अत: उसने मन्त्र सहित अस्त्र प्रयोग करने का निश्चय किया। उसने सर्पास्त्र बाण अभिमंत्रित कर चलाया। यह देखकर श्रीराम ने गरुड़ास्त्र की योजना की। इस प्रकार रावण के अग्निअस्त्र का श्रीराम ने पर्जन्यअस्त्र के उपाय से निवारण किया। उस पर्जन्य-अस्त्र को चलाते समय श्रीराम ने इस प्रकार कुशलता प्रदर्शित की कि राक्षस उससे गिरने वाली धाराओं से त्रस्त हो गए और वानरों के लिए वह अमृत धाराओं के सदृश सिद्ध हुई। श्रीराम का नाम स्मरण करते हुए वानर आनन्दित हो उठे, रावण ने जब देखा कि उन वज्रसदृश पर्जन्य धाराओं से राक्षस मर रहे हैं तो उस पर्जन्यास्त्र का निवारण करने के लिए उसने वायु अस्त्र की योजना की।

वायु-अस्त्र का रावण पर ही उलट जाना; श्रीराम के अस्त्र प्रयोग– रावण ने देखा कि श्रीराम ने उसके प्रत्येक शस्त्रास्त्र को व्यर्थ कर दिया और अब श्रीराम के पर्जन्यास्त्र से राक्षसों की भयंकर हानि हो रही है तो उस पर्जन्यास्त्र से बचाव के लिए रावण ने वायु अस्त्र की योजना की, जिसके कारण वेगपूर्वक वायु प्रवाहित होकर मेघ दूर हट गए। वायु वानर दल को उड़ाने लगी, वानर धूल एवं ठंड से त्रस्त हो गए, तब वायु पुत्र मारुति आगे बढ़कर पिता से बोले– "श्रीराम की महानता को स्वीकार नहीं किया तो तुम्हारा वध हो जाएगा। श्रीराम के बाणों से तुम्हें कौन बचा सकेगा ? श्रीराम युद्ध के लिए यहाँ राक्षसों के समक्ष खड़े हैं, तब ऐसे समय उनकी सेवा का अवसर प्राप्त करो।" हनुमान के वचन सुनकर वायु अस्त्र के मन्त्र देवता ने शीघ्र आकर श्रीराम की वंदना की और वह रावण और राक्षसों पर उलट गए। वायु वास्तव में प्राणदाता है परन्तु उस समय वह राक्षसों का संहार करने लगा। यह देखकर रावण चिन्तित हो गया। वह विचार करने लगा कि मेरे शस्त्र मुझ पर ही उलट रहे हैं। यह सब देखकर श्रीराम प्रसन्न होकर हँसने लगे। हनुमान की उस अतर्क्य युक्ति की प्रशंसा करते हुए उन्होंने हनुमान को आलिंगनबद्ध कर लिया।

श्रीराम द्वारा प्रयुक्त पर्जन्यास्त्र को नष्ट करने के लिए रावण ने वायु अस्त्र की योजना की और वह अस्त्र उलट कर राक्षसों का ही संहार करने लगा। यह देखकर रावण ने उस अस्त्र का प्रतिरोध करने के लिए पर्वतास्त्र की योजना कर वायु को रोका। श्रीराम ने विषूचिकास्त्र सहित वज्रास्त्र से प्रहार किया। वज्रास्त्र के कारण पर्वत चूर-चूर हो गए। विषूचिकास्त्र द्वारा निर्मित महामारियों से राक्षस उल्टी, दस्त जैसे विभिन्न विकारों से ग्रस्त हो गए। उनको देखकर वानर वीर, विभीषण व लक्ष्मण हँसने लगे। रावण भी इस महामारी से ग्रस्त हो गया। अत्यन्त व्याकुल होकर रावण ने भगवान् शंकर का स्मरण किया। तब उन्होंने अस्त्र का निरसन कर रावण को शान्त किया।

ठीक होते ही रावण अत्यन्त क्रोधपूर्वक युद्ध के लिए तत्पर हुआ। उसने एक ही समय अनेक अस्त्रों की योजना कर, श्रीराम पर उन अस्त्रों से प्रहार किया। दंडास्त्र, खंडास्त्र, त्रितंडास्त्र, प्रचंडास्त्र, घातनास्त्र, पातनास्त्र जैसे अनेक अस्त्रों से वार होने पर वानर सेना में हाहाकार मच गया। उनका धैर्य समाप्त होकर वे भागने लगे। तब श्रीराम ने क्रोधित होकर अस्त्रों से अस्त्र भिड़ाकर रावण के सभी अस्त्र विफल कर दिये। तत्पश्चात् श्रीराम ने रावण के हाथों में स्थित धनुष तोड़ डाला। रावण जो भी धनुष हाथ में लेता था, श्रीराम उसे तोड़ डालते थे, जिससे रावण विचलित हो उठा। श्रीराम व रावण दोनों ही कुशल योद्धा थे। स्वर्ग में देवादिक उनका युद्ध देखने के लिए एकत्र हुए थे। वानर सेना में श्रीराम के युद्ध कौशल से आनन्द व्याप्त हो गया। वानर वीर श्रीराम-नाम की गर्जना करने लगे, जिससे रावण का क्रोध और बढ़ गया।

रावण द्वारा सन्तप्त होकर गुरुदत्त परिघ चलाना– रावण ने क्रोधपूर्वक दाँत किटकिटाते हुए श्रीराम पर गुरुदत्त परिघ से वार किया। श्रीराम गुरु के भी गुरु हैं, मूर्ख रावण को यह ज्ञात न था। रावण द्वारा परिघ चलाते ही त्रिभुवन गूँज उठा। सुरगण घबरा गए। उमा घबरा कर शंकर के समीप आ गईं। श्रीराम यह सब जानते हुए भी गुरु की अवज्ञा न हो, इसलिए शान्त रहे। परिघ को श्रीराम का सम्पूर्ण ज्ञान था। अतः उसने श्रीराम की परिक्रमा कर इन्द्र के रथ का ध्वज गिरा दिया और स्वयं भूमि पर जा गिरा। उसे गुरु व राम दोनों की आज्ञा का पालन करना था परन्तु उस परिघ को श्रीराम की दिशा में जाते हुए देखकर सुरगण भयभीत हो गए। उन्होंने श्रीराम के प्राणों की रक्षा के लिए अपने सम्पूर्ण पुण्य अर्पित कर दिये। परिघ ने श्रीराम का वंदन किया। श्रीराम रथ में होने पर उनके समक्ष रावण कैसे टिक सकता था। श्रीराम भक्तों के प्रति कृपालु हैं, वे रावण के साथ लीला कर रहे हैं। कुछ काल बीत जाने पर वह रावण का अन्त कर देंगे। यह परिघ को ज्ञात था। परिघ द्वारा श्रीराम का वंदन करना, रावण को ज्ञात न हो सका और श्रीराम के रथ का ध्वज उसने परिघ की सहायता से तोड़ डाला, इससे उसने गर्व का अनुभव किया।

अध्याय ६१

[श्रीराम-रावण युद्ध]

रावण को इतना गर्व हुआ कि वह गर्जना करते हुए श्रीराम की निन्दा करने लगा। वह बोला - 'इस दशानन को देखकर ही तुम पलायन कर जाओगे। वानरों के बल पर ही तुम मुझसे युद्ध करने के

लिए आये हो, परन्तु मैं क्षण-मात्र में तुम सबका नाश कर दूँगा। तुम अपनी वीरता का ढिंढोरा किस लिए पीटते हो ? ताड़का नामक स्त्री और मारीच जैसे मृग का वध किया है। सीता स्वयंवर के प्रसंग में कीड़ा लगे धनुष को तोड़ दिया और परशुराम सदृश ब्राह्मण के समक्ष अपना पराक्रम दिखाया। कपटपूर्वक बालि का वध किया, बालि द्वारा तुम्हारी भर्त्सना करने पर भी तुम्हें लज्जा नहीं आई। नल के हाथों से शिलाएँ तैरने लगीं परन्तु उस सेतु का निर्माण राम ने किया, ऐसा मूर्खों द्वारा कहने पर तुम्हें गर्व चढ़ा है। अब तुम अपना सामर्थ्य दिखाओ।" इस प्रकार रावण जब राम की भर्त्सना कर रहा था, तब श्रीराम शान्त रहकर निश्चयपूर्वक रथ से उतरे। रथ में बैठकर रावण को मारने का आरोप न हो, इसीलिए वे रथ से उतरे थे। यह देखकर रावण अत्यधिक सन्तुष्ट हुआ क्योंकि उसे लगा कि उसने ही श्रीराम को विरथ कर दिया है। अतः अब निर्वाण अस्त्रों की योजना कर उसने श्रीराम पर वार किया।

रावण की गर्जना, उसका पराक्रम, आवेश, उसके शस्त्रास्त्र, उसका शारीरिक सामर्थ्य देखकर तथा उसे श्रीराम की ओर जाते देखकर स्वर्ग में खलबली मच गई। सुरसिद्ध गण सभी भगवान् विष्णु की प्रार्थना करते हुए कहने लगे– "हे भक्तवत्सल, अच्युत ! देवकार्य के लिए श्रीराम की सहायता कर रावण का संहार करें।" उनकी यह प्रार्थना श्रीराम को ज्ञात हुई तब देवताओं को प्रसन्न करने के लिए धनुष बाण सुसज्जित कर रावण के वध के लिए वे रणभूमि में खड़े हो गए.

श्रीराम रावण युद्ध पर आध्यात्मिक रूपक– श्रीराम रूपी आत्माराम, अहं रूपी रावण से भीषण युद्ध करने लगा। महामाया की कुशलता से रावण ने इन्द्रादि देवों को बन्दी बना लिया व उनसे अपनी सेवा करवाने लगा। बारम्बार विषय सेवन करते हुए वह उसी में मग्न रहने लगा। दश इन्द्रिय रूपी रावण के दस मुखों को कभी तृप्ति का अनुभव नहीं होता था। उसने तीनों लोकों का स्वाद चखा, उसके लिए वासना रूपी बाहुदंडों का उपयोग किया। ममता रूपी दाँत, लोभ रूपी जीभ तथा विकल्प रूपी निवाला उसके पास था। श्रीराम काम रूपी धनुष और संकल्प-रूपी बाण लेकर अहं रूपी रावण को मारने के लिए तेजी से आगे बढ़े।

[यहाँ कविकृत निवेदन इस प्रकार है– "श्रीराम व रावण के युद्ध का शब्दों में वर्णन करने का सामर्थ्य मेरे मुख के पास कहाँ है ? मेरा शरीर पंगु व दीन है। मुझे जनार्दन गुरु ने आत्म-गुण गाने की आज्ञा दी। अगर भगवान् की कृपा होगी तो लंगड़ा व्यक्ति भी पर्वत चढ़ जाएगा, गूँगे को वाणी प्राप्त होगी। उसकी कृपा से रंक भी राजा हो जाएगा। सद्गुरु जनार्दन ने मेरे विषय में भी वैसी ही कृपा की और मेरे मुख से श्रीराम-चरित्र कहलवाया। चतुर कलाकार सूखी लकड़ी को आकार देकर उसमें तार जोड़कर उससे सुस्वर राग प्रस्फुटित कर सज्जनों को रिझाते हैं। इन सबका श्रेय उस कलाकार को होता है। वैसा ही कुछ मेरे द्वारा राम-कथा गायन के साथ है। श्रीगुरुनाथ ही इस रसपूर्ण राम कथा के वक्ता हैं। मैं तो बस जो कुछ उन्होंने सिखाया- बताया, वही बोल रहा हूँ।]

लंकानाथ रावण श्रीराम पर आघात करने के लिए विषय रूपी धनुष सुसज्जित कर सन्तुष्ट हो गया है। उसका संकल्प विचित्र है। ममता रूपी भाले से रावण ने जोर से वार किया। श्रीराम ने वीर वृत्ति से परिपूर्ण बाण चलाया और ममता की शान्ति की। चराचर में श्रीराम का निवास होने के कारण, ममता के अन्तर्मन में भी वह निहित था, अतः ममता अपनी पृथकता भूल गई. यह एक रूपता रावण में विद्यमान न थी। उसमें अहंभाव विद्यमान था। इसीलिए उसके द्वारा धारण किया हुआ धनुष विवेक रूपी अग्नि में जलकर भस्म हो गया। विवेक व ममता की भेंट होने पर वैराग्य रूपी ज्वाला उठी, जिसमें विषय

रूपी धनुष जल गया। रावण इससे दु:खी होकर उद्विग्न हो गया। उसके पास विषय रूपी जो सामग्री थी, वह श्रीराम ने नष्ट कर दी। अब रथ में कुछ भी न बचने के कारण रावण नीचे उतरकर भाला लेकर श्रीराम को मारने के लिए दौड़ा। शान्ति एवं कल्याण रूपी श्रीराम शान्त थे क्योंकि उन पर क्रोधपूर्ण आचरणों का कोई असर नहीं होता। रावण की राम-वध की क्रोध से परिपूर्ण इच्छा, श्रीराम के चारों ओर स्थित शान्ति के आच्छादन के कारण अतृप्त रह गई। अतृप्ति से क्रोध निर्मित होता है। श्रीराम के दर्शन होते ही क्रोध व अतृप्ति दोनों नष्ट हो जाते हैं। इसलिए रावण स्तब्ध व कुंठित हो गया।

रावण तब प्रपंच कोष में स्थित तीक्ष्ण आशा रूपी धार से युक्त छुरी से आवेशपूर्वक वार करने वाला था। परन्तु श्रीराम द्वारा नैराश्य रूपी बाण चला देने से आशारूपी छुरी व सम्पूर्ण कामना नष्ट हो गई। तब रावण ने अत्यन्त उग्र अविद्यारूपी निज शस्त्र का प्रयोग कर श्रीराम को मारने के लिए वासनारूपी वज्र से प्रहार किया। श्रीराम ने वासना रूपी वज्र को तोड़ने के लिए निर्वासना रूपी तोमर चलाया। वज्र के टूट जाने से रावण चकित व तटस्थ हो गया। रावण ने अन्तर्बाह्य जितने भी शस्त्र चलाये, वे सब राम ने क्षणार्द्ध में तोड़ डाले। रावण के पास बाह्य रूप से शस्त्रास्त्रों का व आन्तरिक रूप से काम-क्रोधादि का सामर्थ्य था, जिसे श्रीराम ने नष्ट कर दिया। द्वेष बुद्धि से रावण ने श्रीराम का चिन्तन किया, जिससे उसके अन्तर्मन से कामक्रोधादि दूर हो गए। निंदा के लिए ही रावण द्वारा अन्त:करण से श्रीराम की स्तुति की गई। तब भी उसके दोष व विकार नष्ट हो गए।

रावण द्वारा निन्दायुक्त रामस्तुति करना– रावण को मोक्ष प्राप्ति की उत्कंठा थी। रावण वेद शास्त्र का ज्ञाता था। वह अत्यन्त बुद्धिमान भी था। वह निंदा के माध्यम से श्रीराम की स्तुति करने के लिए शब्दों का प्रत्यक्ष अर्थ छोड़कर लक्ष्यार्थ से श्रीराम स्वरूप का वर्णन करने लगा। तत्पद रावण तत्पर श्रीराम के शुद्ध एवं पूर्ण स्वरूप का वर्णन करते हुए गर्जना करने लगा। वह बोला– "तुम कितने कपटी हो, पहले तुमने बालि का छलपूर्वक वध कर दिया, परन्तु अब मेरे साथ यह नहीं चल सकता। तुमने पहले और कितने लोगों से कपट किया है ? किससे कपट किया है, उस बारे में सुनो– "तुम्हारा मन ही मन ध्यान कर कुछ साध्य करने का प्रयत्न करने वालों से कपट कर तुमने दृश्य-स्वरूप धारण नहीं किया। तुम सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहे, पर जगत् को दर्शन नहीं दिये साधकों के अत्यन्त प्रयत्न करने पर भी उन्हें दर्शन नहीं दिये। अनेक लोगों के मन में अपनी धुन जागृत की परन्तु स्वयं कपटपूर्वक अदृश्य ही रहे। चारों मुक्ति प्राप्त करने का विचार उत्पन्न कर स्वयं को आत्मा कहलाते हो। दुर्गम साधनों द्वारा तुम्हारा भजन-पूजन करने वाले मन्त्र लेने वाले पुरश्चरण करने वालों से भी छल कर उन्हें अपेक्षित आत्मप्राप्ति से वंचित रखते हो। मेरे साथ यह सब नहीं चल सकता क्योंकि मैं सब कुछ जानता हूँ।"

"हे श्रीराम, मुझे यह ज्ञात है कि मन्त्रों का अर्थ मन्त्रों के अक्षर ॐ नमो इत्यादि का उच्चारण एवं अक्षरों के अक्षरत्व तुम्हीं हो। यह भी मैं जानता हूँ कि तुम्हीं पाठकों को वेद पठन रूपी साधना के लिए प्रेरित करते हो परन्तु अब वे मात्र मुख से उच्चारण करने में व्यस्त हो गए हैं। दशग्रंथों का पाठ करने वाले मात्र तार व मन्द्र के स्वर-वाद में उलझ गए हैं। उन्हें तुमने इस प्रकार धोखा दे दिया परन्तु मुझे तुम धोखा नहीं दे सकते। तुम्हारे छिपने का स्थान मैं जानता हूँ, वेदों का मूल जो ॐकार है, वहीं तुम अधिकांशत: छिपे रहते हो। अकार, उकार, मकार ये त्रिमात्रा स्वर त्रिगुणातीत है– यह आभास कराकर तुमने पाठकों एवं पंडितों को पीड़ित कर दिया। वे बेचारे इसका मर्म न समझ सके और उन्होंने व्यर्थ के वाद में स्वयं को उलझा लिया। शास्त्रों का श्रवण एक शुद्ध साधन होते हुए भी अनेक युक्तियों

से तुमने उनमें उसके विपरीत अभिमान उत्पन्न कर दिया। मेरे समक्ष तुम्हारी यह कुशलता उपयोगी नहीं होगी क्योंकि शास्त्रों का मैं पूर्ण ज्ञाता हूँ। तुम्हारे छिपने के विषय में भी मैं पूर्ण अवगत हूँ, तुमने शास्त्रों का अध्ययन करने वालों को टेढ़े मार्ग पर ले जाकर उनमें स्वयं को ज्ञानी समझने का गर्व निर्मित कर दिया परन्तु पंडित इसे समझ नहीं पाये। शास्त्रों के अध्ययन में जहाँ-जहाँ तुम्हारा आभास होता है, वहाँ तुम निवास करते हो, ऐसा वे अन्य लोगों को उपदेश देते हैं परन्तु शास्त्रों की उस चैतन्य स्फूर्ति में धोखा कर तुमने उन्हें स्वयं को अहंकार से व्याप्त कर दिया। भोले यज्ञकर्ता यज्ञ करने में ही मग्न हो गए। तुमने उन्हें स्वर्ग-सुख का लालच देकर उसमें ही लीन कर दिया। यजमान और याज्ञिक यज्ञ-सामग्री एकत्र करने में अपार कष्ट करते हैं और स्वर्ग प्राप्ति की आशा से 'न मम' कहते हुए आहुति डालते हैं, आगे पुण्य क्षय होने पर स्वर्ग से उनकी अधोगति होती है। इस प्रकार हे राम, तुमने न जाने कितने लोगों को ठगा है परन्तु मेरे साथ तुम्हारी यह चालाकी नहीं चलेगी।"

"हे राम, अरे तुमने जैसे याज्ञिकों को ठगा है, वैसे ही संन्यासी भी तुमसे छले गए हैं, वे महावाक्य व पंचीकरण भूलकर मात्र पूज्यत्व की भावना से छले गए। यती-योगी भी तुम्हारे द्वारा छले जाकर विचित्र क्रियाकलापों में फँस गए। तुम्हारा छिपना वे समझ न सके। कोई प्रयत्नपूर्वक तुम्हें ढूँढ़ता भी है तो तुम वैकुंठ के पहाड़ पर चढ़ जाते हो अथवा निद्रा के बहाने शेषनाग के फन के नीचे छिप जाते हो, वहाँ से निश्चयपूर्वक तुम्हें बाहर निकालने पर डरकर दशावतारों में छिप जाते हो। अवतार लेते समय भी सिंह सुअर इत्यादि के स्वरूप धारण करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती। अनेक लोगों द्वारा विविध प्रकार के प्रयत्न करने पर भी प्राप्त न होने वाले तुम अब मुझे प्राप्त हुए हो। मैं क्षण भर में तुम्हारी चेतना हर कर तुम्हें यहाँ से हिलने नहीं दूँगा।" इस प्रकार गर्जना करते हुए रावण युद्ध का आह्वान देकर श्रीराम को अपने समक्ष बुलाने लगा। रावण का सारथी अत्यन्त चतुर था, जिस समय श्रीराम ने रावण के धनुष तोड़े उस समय सारथी ने सोऽहभाव रूपी एक धनुष छिपाकर रख दिया था। उसने वह रावण को लाकर दिया। उस धनुष के हाथ में आते ही वीर रावण कपट रहित युद्ध करने के लिए बोला- "इस राम ने युद्ध में पराक्रम कर सबको मुक्ति प्रदान की है। अब जो शेष बचे हैं, वे मेरे वचन सुनें।"

रावण व श्रीराम की सेना के बिना लड़ने की इच्छा- रावण ने अपनी सेना को सम्बोधित करते हुए कहा- "आज तक मैंने कपट किया, परन्तु श्रीराम ने उसे व्यर्थ कर दिया, अब यह दशकंठ रावण शुद्ध हो गया है। सेना सहित युद्ध कर वशीभूत न होने वाले श्रीराम को मैं अकेले लड़कर मारूँगा इसलिए तुम सभी राक्षसों को मैं नम्रतापूर्वक विनती करता हूँ कि हाथ में खड्ग लेने पर शिव की पूजा भंग होने के सदृश होगा। अतः तुम्हें भगवान् शिव की शपथ देकर कहता हूँ कि तुममें से कोई भी युद्ध न करना। केवल मेरे पराक्रम के साक्षी बनकर देखते रहना। रावण व श्रीराम निर्णायक बाणों से युद्ध करेंगे फिर जय-पराजय किसी की भी हो," रावण ने अपने सैनिकों से इस प्रकार विनती की।

रावण की विनती सुनकर श्रीराम अपने सैनिक वीरों को सम्बोधित करते हुए बोले- "बहुत पहले से रावण के मन में यह था कि वह राम से अकेले युद्ध करे। उसका मनोरथ आज पूर्ण हो रहा है। अब उसको रणभूमि में मुझसे भेंट होते ही वह प्रसन्न होगा। मेरी भी इच्छा थी कि रावण के मनोरथ के अनुसार युद्ध कर उसे रणभूमि में ही मुक्ति प्रदान की जाय। अतः सभी वानर-वीर युद्ध किये बिना निश्चित होकर राम-रावण का युद्ध देखें। इस पर भी जो युद्ध करेगा उसे शपथ है, मैं उसे दंडित

करूँगा।" श्रीराम के वचन सुनकर सभी बोले- "आपकी वेदतुल्य आज्ञा का पालन होगा। आपकी अवज्ञा कौन कर सकता है ? " तत्पश्चात् सभी वानर-वीरों ने श्रीराम के चरणों में प्रणाम किया

रावण गर्जना करते हुए ललकार कर श्रीराम पर बाणों की वर्षा करने लगा। श्रीराम से युद्ध करने की उसकी प्रबल इच्छा थी। ब्रह्मांड का भेद कर रावण ने विश्वात्मक रूपी श्रीराम के दर्शन किये और आनन्दित हो गया। अहम् भूलकर उसका रावणत्व विलीन हो गया और वह श्रीराम स्वरूप हो गया।

अध्याय ६२

[श्रीराम द्वारा रावण का शिरच्छेदन]

रावण ने सोऽहम्-भाव रूपी धनुष पर अनुसंधान रूपी तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर श्रीराम पर चलाने के लिए सुसज्जित किया। तब उसे समस्त ब्रह्मांड श्रीराम-रूप से व्याप्त दिखाई दिया। पृथ्वीतल पर स्थित श्रीराम का इतना विस्तार हुआ कि उसे सप्त पाताल तक श्रीराम के चरण दिखाई देने लगे।

रावण को श्रीराम का स्वरूप दिखाई दिया– श्रीराम के चरण शेष के फन पर आत्म धैर्य एवं निश्चयपूर्वक टिके हुए थे। उन चरणों पर सुचिह्न सुशोभित थे। श्रीराम के चरण-कमल सायुज्य रूपी ध्वज सदृश थे। उसकी ऊर्ध्वरेखा ऊर्ध्वगति का तेज प्रदर्शित कर रही थी। वज्र एवं अंकुश रूपी शस्त्रों से शत्रु का नाश किया जा रहा था। बालसूर्य की किरणों का तेज फीका पड़ जाय, ऐसा उन चरणों का तेज था। श्रीराम की उँगलियाँ मानों नभ की कलियों के सदृश थीं। वे सुशोभित उँगलियाँ रसातल तक विद्यमान थीं। श्रीराम के चरणरूपी अमृत में रमा रममाण हो गई थीं। उनके पास सभी लोगों का उद्धार करने वाली गंगा का उद्गम स्थल था। उनके नखों में चन्द्ररेखा का अनुभव हो रहा था। टखनों का सौन्दर्य एवं उसकी कलात्मकता निर्गुणात्मक गुण रूप में सुशोभित हो रही थी। उनके चरणों में धारण किये हुए तोडर एवं हाथों में पहने बाजूबंदों पर यम-नियमों का कला-कौशल दिखाई दे रहा था। मन को सोऽहम् भाव की ओर उन्मुख करने की ध्वनि उन आभूषणों से प्रस्फुटित हो रही थी। भव स्वर्ग के प्रलयकाल सदृश गरजने वाले तोडर सायुज्यदान* के विषय में बता रहे थे। श्रीराम के घुटने सूर्य तेज से सुशोभित थे, मानों वे पृथ्वी तल का सारतत्त्व हों। उनकी सुन्दर जंघाओं में सुतललोक का वास था। जहाँ राजा बलि का राज्य था। उस बलि राजा ने ऊर्ध्व लोक को ठुकराकर सुतल में श्रीराम का चिन्तन करते हुए रहना श्रेष्ठ समझा था। कटि प्रदेश वितल लोक सदृश था, वहाँ पर तेज फैला हुआ था। श्रीराम को देखकर विद्युत उदयास्त भूल गई और श्रीराम द्वारा धारण किये हुए पीताम्बर के रूप में सुशोभित हो गई। भक्ति-भाव रूपी मेखला में श्रीराम उलझे हुए थे और उपनिषद उस मेखला की घंटिका के रूप में उसमें विद्यमान थे। उनकी करधनी में चिद्रत्न पिरोये थे; अनाहत नाद रूपी मंजुल ध्वनि घंटिकाओं से निसृत हो रही थी। उस स्वरूप की भेंट होने से श्रुति लज्जा के कारण टेढ़ी होकर अधोमुख होने के सदृश वे घंटिकाएँ अधोमुख थीं। वे श्रीराम की कमर से लिपटी थीं क्योंकि वे सबको मुक्ति प्रदान करते हैं। उनका पेट संसार सदृश था, जिस पर त्रिलोक रूपी त्रिवली विद्यमान थी तथा मनोहारी रोम-रेखा उस पर

---

* एकरूपता अर्थात् मुक्ति का एक प्रकार

सुशोभित हो रही थी। उनकी गहन नभि रत्रिकमल के रंग की थी; वह सृष्टिकर्ता ब्रह्मा का जन्म स्थान थी। उनका हृदय शुद्ध व्यग रहित तथा संकल्प-विकल्पों से मुक्त था। उन्होंने छाती पर विप्र के चरणों का चिह्न प्रेमपूर्वक धारण किया हुआ था। समस्त सुखों का सार-रूपी हार उनके हृदय पर विद्यमान था उन्होंने वैजयन्ती माला धारण की हुई थी। रावण को श्रीराम का ऐसा रूप दिखाई दे रहा था।

श्रीराम के दीर्घ हाथ सप्त आवरणों से भी दीर्घ थे। उनके पास तन्मयता रूपी प्रचंड धनुष था। दूसरे हाथ में चारों पुरुषार्थ रूपी बाण थे। ये बाण देह के अहंकार-रूपी रावण का वध करने के लिए उन्होंने धारण किये हुए थे। इसके अतिरिक्त उनके हाथों मे दशानन के वध के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के आयुध थे। उनका शंखाकृति कंठ ही ॐकार था। वही तीनों मात्राओं का मूल पीठ तथा वेदों का उद्गम स्थल था। उन्होंने ही महालोकों की रचना की। उनके कान महान् हैं, उनके विशाल नेत्र चैतन्य का निवास स्थल हैं। पूर्व एवं उत्तर मीमांसा उनको नित्य भजती हैं। श्रीराम के कानों के कुंडल अधिकार प्राप्त किये हुए हैं। वे स्वयं अलंकारों के अलंकार हैं। उनके कारण ही विश्व मुक्त है। नारद द्वारा ऐसा वर्णन रावण ने सुना था। श्रीराम का मुख मानों आनंद का विश्रांति स्थल है, अथवा ऐसा प्रतीत होता है मानों सम्पूर्ण सुख वहाँ एकत्र हो गया हो। उनकी दंत पंक्तियाँ मानों आनन्दरूपी सागर की तरंगें हैं। दोनों होंठ ऐसा प्रतीत होते थे मानों जीव व शिव एकत्र आ गये हों। श्रीराम का प्रसन्न मुख लोगों को गहन शान्ति प्रदान करता है। इसीलिए स्वर्गस्थ-जन भी श्रीराम का ही ध्यान करते हैं। उनकी सुन्दर नासिका देखकर ऐसा लगता है, जैसे वह अखंड तैलधार अथवा एकनिष्ठ मुनिवर्य हैं। उनके नेत्रों के प्रकाश से तपोलोक स्थापित हुआ है। उनके दोनों नेत्र, दोनों कानों के दर्शन द्वैत-दृष्टि से सम्भव नहीं हैं।

श्रीराम की भौंहें आकाश के धनुष सदृश थीं अथवा वे भौंहें श्रीराम के मुखामृत का प्राशन करने वाले आर्त चकोर की भाँति हैं। उनका मस्तक निर्मल अधिष्ठान है। उस पर अखंड त्रिवली बनी है। संकल्प मृग लोभपूर्वक मारा गया। और सोऽहम् मृग रूपी पद्म नाभि को अर्पित किया गया उनके निर्मल मस्तक पर सत्यलोक का वास है। आकाश शून्यत्व से ऊब कर श्रीराम की शरण में आ गया और उनके नीले केशों के रूप में उनके मस्तक पर विराजमान हो गया। श्रीराम ने अपने घुँघराले बालों को सँवार कर उसमें वीर गाँठ बाँधी थी। उन पर शुद्ध मनरूपी पुष्पों को गूँथ कर बाँधा था। उनके मुकुट की शोभा वैकुंठ व कैलास से रमणीय थी। श्रीराम द्वारा वैकुंठ कैलास आदि चौदह भुवन प्रकाशित होते देख रावण स्तब्ध रह गया। रावण ने चारों ओर श्रीराम को देखा और आवेश में आकर धनुष पर बाण चढ़ाया। अखिल ब्रह्माडों की पंक्तियाँ जिसकी छाया में हैं, ऐसा आभास हो रहा था; ऐसे श्रीराम को मारने के लिए रावण ने प्रचंड ध्वनि कर युद्ध-भूमि में धनुष की डोर को कानों तक खींचा तभी वहाँ कुछ विपरीत घटित हुआ।

रावण को सर्वत्र श्रीराम दिखाई पड़ना– रावण श्रीराम को बाण मारना चाह रहा था परन्तु उसे सभी प्राणियों में श्रीराम दिखाई देने लगे। वानर-सेना में प्रत्येक व्यक्ति राम रूप, महावत सहित हाथी राम रूप में तथा रथ, घोड़े, सारथी, शस्त्रास्त्र सभी राम रूप हुए दिखाई दिये। उसकी स्वयं की सेना के राक्षस भी अपना मूल रूप त्याग कर राम रूप हुए दिखाई दिए, लंका, लंका-दुर्ग, तोपें उसका स्वयं का रथ इत्यादि देखने पर उसे सर्वत्र श्रीराम दिखाई दिये, जिससे रावण चकित हो उठा। पृथ्वी जल, तेज, वायु, आकाश और तीनों लोक रामरूप दिखने लगे। इस पर रावण ने स्वयं को देखा तब उसे अपने समस्त अवयव, मन के संकल्प, बुद्धि इत्यादि राम रूप धारण किये अनुभव हुए। जिसके कारण वह

स्वयं चैतन्य घन होकर, उसका अभिमान नष्ट होकर राममय हो गया। इसके कारण होने वाली तद्रूपता उसे भ्रम में डालने लगी।

श्रीराम के दो हाथों का संवाद– श्रीराम से तद्रूप होकर भ्रमित हुआ रावण विचलित हो गया। परन्तु श्रीराम तन्मयता रूपी धनुष एवं सायुज्यता रूपी बाण सिद्ध किये हुए थे। उन्होंने एक हाथ में धनुष लेकर दूसरे हाथ से उसकी डोर कानों तक खींचते हुए बाण चलाया। उस समय श्रीराम के दोनों हाथों ने उनका पुरुषार्थ बताना आरंभ किया। श्रीराम द्वारा आवेश-पूर्वक बाण चलाते समय उनका दाहिना हाथ कानों तक डोर खींचते समय पीछे की ओर गया। तब बायें हाथ ने कहा– "युद्ध में पीछे हटना वीर वृत्ति नहीं है। दान देने का श्रेय लेते समय, भोजन का निवाला लेते समय आगे होते हो; उसी प्रकार रण-भूमि में आगे होकर पुरुषार्थ दिखाओ!" बायें हाथ के वचन सुनकर दाहिना हाथ बोला– "तुम्हारे हाथ में धनुष दिया है तब दयनीय होकर युद्ध न करके स्तब्ध खड़े हो। तुमसे शरसंधान किया नहीं गया, व्यर्थ प्रलाप क्यों कर रहे हो। मैंने युद्ध में पीठ नहीं दिखाई तुम कपटपूर्वक वैसा कर रहे हो। मैंने पीछे होकर स्वामी के कान में पूछा कि 'अब रावण से किस प्रकार निपटूँ यह बतायें।' दस सिरों को एक साथ काटूँ अथवा एक-एक कंठ काटूँ ? तुम्हारे सदृश नीच लोगों का स्वभाव ही दोष देने वाला होता है। अरे, तुमने आगे जाकर कौन-सा कार्य सिद्ध किया है ?'' अपने दोनों हाथों का संवाद सुनकर श्रीराम प्रसन्न हो गए।

सर्वत्र श्रीराम दिखाई देने से रावण का संभ्रमित होना– श्रीराम व रावण के युद्ध को कोई भी उपमा नहीं दी जा सकती, ऐसा वह अतुलनीय युद्ध हुआ। सर्वत्र कोदण्डधारी श्रीराम के दर्शन होने से आनन्दित रावण को श्रीराम की पूजा करने की इच्छा हुई। रणभूमि में पूजा सामग्री न होने के कारण रावण श्रीराम पर बाण चलाकर ही अपनी पूजा अर्पित करने लगा। परन्तु श्रीराम की पूजा के लिए चलाये गए बाण अन्यत्र ही जाने लगे, वह परसैन्य और स्वसैन्य में भी पहचान नहीं कर पा रहा था। श्रीराम को आगे देखकर उन पर बाण चलाने पर वे धनुषबाण लेकर पीछे खड़े हुए दिखाई देते थे। कभी बायीं ओर, तो कभी दाहिनी ओर, श्रीराम को देखकर रावण चकरा जाता था। अत: रावण चारों ओर बाण चलाते हुए उनका पूजन करने लगा। यह देखकर स्वर्ग में विद्यमान सुर और सिद्ध हँसने लगे। रावण राम समझकर राक्षसों पर ही बाण चलाने लगता था, जिससे राक्षस सेना भी विचलित हो उठी। वानर हँसने लगे। अपने पराये का भेद न कर रावण सर्वत्र बाण वर्षा कर रहा था। रावण को सर्वत्र श्रीराम ही दिखाई पड़ने के कारण वह ऐसा कर रहा था परन्तु अन्य लोगों को यह रहस्य ज्ञात न था। वहाँ रावण के मन:पूर्वक राम भक्त होने के विषय में किसी को पता नहीं चल सका। रावण सर्वत्र बाण चलाकर राम की पूजा कर रहा था और अन्य लोग उसे भ्रमित समझ रहे थे।

श्रीराम द्वारा कृपा कर रावण का शिरच्छेद करना– श्रीराम को रावण की मन: स्थिति का अनुभव हुआ और उन्होंने रावण पर कृपा करने का निश्चय किया। देह-दोष से पीड़ित अहरूपी रावण को श्रीराम ने स्व-स्वरूप देने का निश्चय किया। इसलिए सायुज्यता के कृपा रूपी निर्वाण-बाण कृपा का संधान कर श्रीराम ने रावण का कंठ छेदन दिया। उस समय वहाँ एक अद्भुत घटना हुई। श्रीराम ने रावण के दसों सिर भूमि पर गिरा दिये तब वैसे ही दस सिर पुन: उत्पन्न हो गए। श्रीराम उन सिरों को काटते थे और पुन: वे सिर निर्मित हो जाते थे। ऐसा निरन्तर घटित होने से श्रीराम के चरणों के पास सिरों का ढेर निर्मित हो गया। रावण आनन्दित हो उठा क्योंकि उसने राम की पूजा शीश रूपी कमलों से की। सर्वत्र राममय देखकर रावण ने प्रेम से परिपूर्ण होकर अपने सिरों को श्रीराम पर न्योछावर कर

दिया। इस प्रकार उसने पूर्ण सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए अपने सिरों द्वारा श्रीराम की लक्षपूजा की और जिसके लिए देह धारण किया वह कार्य उसने सिद्ध किया। सिर अर्पण करने के पश्चात् रावण ने श्रीराम की आत्म-शक्ति की स्तुति की।

अध्याय ६३

[रावण का वध]

श्रीराम ने आत्मबोध रूपी बाण से रावण का शिरच्छेदन कर दिया तब रावण बोला- "सैनिको, नर, वानर, राक्षसों व दोनों सेनाओं के लोगो ! मेरे वचन ध्यानपूर्वक सुनो। देव, दानव, यक्ष, गंधर्व, सिद्ध, चारण आदि सभी लोग, मैं जो कह रहा हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो."

रावण द्वारा रामस्तुति, रावण का स्पष्टीकरण– रावण बोला "श्रीराम मनुष्य नहीं हैं, वे अन्तर्यामी हैं। श्रीराम चिद्घन, चिन्मूर्ति, सर्वातीत व सनातन हैं। वही सकल लोकों के निर्माता एवं ब्रह्मादिकों के पालन कर्ता हैं। काल भी उनके वश में है, वे जगदोत्पत्ति के मूल कारण हैं। श्रीराम विश्रांति व गति के प्रेरक हैं। राम की आज्ञा से ही, वेद बोलते हैं, वायुचलती है, प्राण हलते हैं; राम द्वारा ही सूर्य को प्रकाश, चन्द्र को शीतलता, पृथ्वी को स्थैर्य, जीवन को जीवत्व, अग्नि को तेज की प्राप्ति होती है। ऐसे श्रीराम का विस्मरण होने पर देह बुद्धि व अंहकार बढ़ने लगते हैं। श्रीराम की कृपा से ही चित्त चेतना को धारण करते हैं। वह स्वयं इन्द्र, नरेन्द्र, यम का संहार हस्त और ईश्वरों का ईश्वर है. वही बुद्धि का बोध है। श्रीराम के कारण ही मन के संकल्प अल्प होते हैं। ऐसे श्रीराम का वाणी से वर्णन कैसे सम्भव है ? श्रीराम रण भूमि में रणमर्दन करने वाले होने पर भी वे कृपालु, दीनदयाल व प्रणतपाल हैं।"

रावण द्वारा स्वीकार करना– "मेरे उद्धार के लिए राम का आगमन"– रावण बताने लगा "मैं देह रूपी दारिद्र्य से पीड़ित हो गया, इसीलिए श्रीराम के मन में मेरे लिए कृपा उत्पन्न हुई। कैकेई ने कपटपूर्वक राम को वन में भेजा। रावण का उद्धार करने के लिए ही कृपालु राम, वन में आये। श्रीराम व मेरा इष्ट-अनिष्ट गुरु वसिष्ठ को स्पष्ट रूप से ज्ञात था इसीलिए उन्होंने सबको समझाकर राम के साथ सीता को भी वन में भेजा। यह सर्वसामान्य जनों को ज्ञात न हो सका कि रावण के प्रति द्रवित होकर उसका उद्धार करने के लिए ही श्री गुरु ने सीता को राम सहित वन में भेजा श्रीराम की आत्म-शक्ति, पतिव्रता, महासती जानकी स्वयं लंका आयीं। तुच्छ रावण का सीता-हरण करने का सामर्थ्य नहीं था उसने स्वयं आकर रावण का उद्धार किया। जानकी को यह ज्ञात था कि श्रीराम निरपराधी का वध कभी नहीं करेंगे। इसके लिए उन्होंने मुझे अपराधी बनाकर श्रीराम द्वारा मेरा वध कराने के लिए वह आयीं। वह कृपालु, विश्वमाता सीता यद्यपि बाह्य रूप से क्रोध प्रदर्शित कर रही थीं परन्तु अन्तर्मन से रावण का सपरिवार उद्धार करने का उनका मनोगत था। उस श्रीराम के बाण सायुज्यता का निमन्त्रण देने वाले दूत हैं। मेरे दस मुख छेदकर श्रीराम ने मुझे विश्वमुखी बना दिया। उनके बाण लगते ही मेरी व्याप्ति भी स्वयं श्रीराम सदृश हो गई। अनन्त ब्रह्माण्ड जिसमें समा जाते हैं, उतनी पूर्णता मुझमें आ गई। मुझमें राम ही समा गए।"

रावण का श्रीराम से एकरूप होना, सीता के कारण राम की प्राप्ति– श्रीराम ने रावण का वध किया कि रावण ने श्रीराम को आत्मसात् किया। वास्तव में दोनों की पृथकता समाप्त होकर वे दोनों एकाकार हो गए, विश्वात्मक श्रीराम व रावण एकात्म हो गए। सुख के निर्माता राम का प्रकाशक रावण हो गया। उसके द्वारा जग में राम सुख का प्रकटीकरण हुआ। आगे रावण बोला– "मैंने श्रीराम का विरोध नहीं किया अपितु मेरे सम्पूर्ण कुल का उद्धार करने के लिए मैंने सीता-हरण किया। जिस स्थान पर भी राम का अधिष्ठान होता है, उस स्थान का निरोधन कर श्रीराम की प्राप्ति करने का मेरा विचार था। सीता हरण का यही रहस्य है। इसीलिए देवताओं को बन्दी बनाया। श्रीराम की शक्ति सीता को ले आया। उद्देश्य यही था कि श्रीराम शीघ्र आकर मेरे सम्पूर्ण कुल को मुक्ति प्रदान करेंगे, मैंने सीता के माध्यम से कुल का उद्धार किया क्योंकि सीता की दया आकर श्रीराम उन्हें निश्चित ही छुड़ाने के लिए आयेंगे अपनी माँग पूर्ण करने के लिए बुद्धिमान लोग कुछ गिरवी रखवाते हैं, वही मैंने भी किया। राम मेरा उद्धार करने के लिए दौड़कर आये। श्रीराम का बाण लगते ही मेरा देह-ज्ञान नष्ट होकर मैं चैतन्य घन हो गया, मेरे में पूर्णब्रह्म राम समा गए। इस प्रकार आत्मविश्वासपूर्वक रावण ने राम की स्तुति करते हुए आत्म-निवेदन कर विनती की।

रावण द्वारा विकारों से विनती; उनका प्रत्युत्तर– रावण ने पश्चाताप करते हुए मन के विकारों से श्रीराम का स्मरण करने की विनती कर कहा– "काम क्रोधादि विकारो, मैं तुम्हारी विनती करता हूँ कि आज तक तुम्हारी संगति से मैंने अनेक भोगों को भोगा है परन्तु अब उस निष्कपट राम ने मुझ पर अनुग्रह किया है। मुझे वे आत्म-समाधान प्रदान कर रहे हैं। मेरे कुल के सभी लोगों का उद्धार कर अब मेरा भी उद्धार करने के लिए वे रण-भूमि में खड़े हैं। अत: मेरी तुमसे विनती है कि विकारों से भिन्न मोक्ष प्राप्त करते समय मुझे चिन्ता हो रही है अब तुम भी पूर्ण भाव से श्रीराम का भजन करो। काम-निष्काम राम को, द्वेष निर्द्वेष राम को, वासना-निर्वासना राम को भजो, जिससे आत्म सुख की प्राप्ति होगी"

रावण की विनती सुनकर काम, क्रोधादि विकार हँसते हुए बोले– "रावण, तुम्हारा चिह्न तुम्हें ही समझ में नहीं आया। तुम कहते हो कि तुम्हारे ऊपर श्रीराम की कृपा हुई है, परन्तु उसके पूर्व ही उनका अनुग्रह हमें प्राप्त हुआ है। हमने पहले ही अन्तर्यामी श्रीराम का सम्पूर्ण भावपूर्वक भजन व अनुसरण किया है, श्रीराम हमारे सदृश अन्तर्मन में निवास करते हैं। अत: उन्होंने हम पर कृपाकर हमें अंगीकार किया। हे रावण, अगर हमने उनका अनुसरण न किया होता तो राम तुम्हारे ऊपर कृपा न करते। तुम हमारे सखा हो, तुम्हारे धर्म से हम विकारों की श्रीराम से भेंट हुई; हमें अनन्त सुख की प्राप्ति हुई।"

राम-बाण की स्थिति-गति व ज्ञान– श्रीराम के बाण ने रावण के शिरों का छेदन कर दिया तथापि रावण धराशायी न होकर उसके नये सिरों का निर्माण हो रहा है, यह देखकर रामबाण चकित हुआ। उसकी यह स्थिति देखकर रावण उससे बोला– "श्रीरामामृत अखंड रूप से मेरे हृदय में विद्यमान है, वही नये सिर उत्पन्न कर रहा है। इसका कारण है कि श्रीराम का मुझ पर पूर्ण अनुग्रह हो गया है, तुम्हारी समझ व पराक्रम का सामर्थ्य छोटा है। तुम नित्य राम के सान्निध्य में रहने वाले, उनके प्राणप्रिय होकर भी तुम्हें उनकी महिमा का ज्ञान नहीं हुआ। तुम्हें इससे अवगत कराने के लिए ही श्रीराम नये सिर उत्पन्न कर रहे हैं। रामामृत अकाट्य होता है। यह तुम्हें ज्ञात नहीं हो सका।"

रावण के वचन सुनकर रामबाण लज्जित हुआ। उसे संकोच होने लगा। वह बोला– "राम-नाम की महिमा अगाध है। नित्य राम के सान्निध्य में रहकर मैं उस महिमा से अनभिज्ञ रहा। मेरा जीवन व्यर्थ है। श्रीराम के वैभव को जाने बिना ही मैं व्यर्थ में गर्व करता रहा। उनके समक्ष मेरा सामर्थ्य क्षीण है।" यह कहकर उस बाण ने युद्ध बंद कर दिया। यह देखकर रावण ने उस बाण को नमन किया और उससे बोला– "अरे, तुम्हारे कारण ही मुझे राम का सामर्थ्य ज्ञात हुआ, तुम्हारा वार कंठ में लगते ही हृदय में विद्यमान सर्वसाक्षी राम का अद्वितीयत्व ज्ञात हुआ। इसके ही कारण पहले का मैं अभागा रावण, अब राम-स्वरूप-मय हो गया सज्जनों की ऐसी ही महिमा होती है कि उनका सान्निध्य होते ही द्वन्द्व एवं पापों का नाश होकर निजधाम की प्राप्ति होती है। तुम्हारे कारण ही मुझे श्रीराम प्राप्त हुए हैं।" रावण एवं रामबाण दोनों द्वारा परस्पर एक-दूसरे की स्तुति दोनों को ही सन्तुष्टि दे गई। तत्पश्चात् ज्ञान प्राप्त होकर व श्रीराम का स्मरण करते ही रावण की देह भूमि पर गिर पड़ी और वह स्वयं पंच महाभूतों में विलीन हो गया

रावण के भूमि पर गिरते ही रामबाण को आनन्द प्राप्त हुआ। अपना कार्य साध्य करने का अनुभव कर बाण ने श्रीराम की वंदना की और वह तूणीर में जाकर स्थिर हो गया। इधर रावण के भूमि पर गिरते ही रक्त की नदी बहने लगी और युद्ध समाप्त हो गया।

रावण की मृत देह के मांस का भक्षण– रावण भूमि पर निष्प्राण होकर गिर पड़ा। तब त्रिभुवन गूँज उठा। कैलास डोलने लगा उसका स्वर्ण मंडित कार्मुक धनुष भूमि पर गिर पड़ा। बाण व शस्त्र इधर-उधर बिखर गए। आभूषणों से जड़ा हुआ मुकुट भूमि पर गिर पड़ा। रावण के सदृश अन्य भीषण योद्धा भी रणभूमि में धराशायी हो गए। उन योद्धाओं के शस्त्र व आभूषण भूमि पर गिर पड़े। उन असंख्य योद्धाओं के शरीर पर अनेक प्रकार के पक्षियों ने मांस भक्षण के लिए झपट्टा मारा। भूत भी एकत्र हो गए कात्यायनी, चामुंडा, कंकाली भी अपने अनुयायियों के साथ वहाँ उपस्थित हुईं। उनमें पहले कौन आया तथा कौन कहाँ का व कितना मांस खाएगा, इस सम्बन्ध में झगड़ा होने लगा। अन्त में सबसे ज्येष्ठ व श्रेष्ठ चामुंडा ने उस झगड़े को निपटाया। झगड़े का कारण समझते हुए चामुंडा बोली - "तुम्हारी लड़ाई व्यर्थ है श्रीराम के युद्ध भूमि में विद्यमान होने के कारण रणभूमि में अत्यधिक खाद्य है इसके पूर्व मारुति ने उचित बँटवारा कर समझा-बुझाकर भूतों को तृप्त किया था। उसकी अपेक्षा इस समय अधिक तृप्ति का अनुभव होगा। अतः मन में शंका न करें। जिसके केवल नाम मात्र से पापियों का उद्धार हो जाता है, ऐसे श्रीराम के स्वयं ही रणभूमि में विद्यमान होने पर कौन अतृप्त रह सकता है।" चामुंडा द्वारा यह बताने पर भूत आनन्दित हो गए। श्रीराम योग्य विचार करने वाले थे। उन्होंने बाण को आज्ञा देकर मांस का विभाजन करने को कहा। बाण ने हृदय, मज्जा, अंग, रक्त, अस्थियाँ, मस्तक इत्यादि भागों का उचित प्रकार से विभाजन कर सबको सुखी किया। रावण के शरीर का मेद, मांस, रक्त इत्यादि का प्रेमपूर्वक भक्षण कर भूत आनन्दित होकर नाचने लगे। उन्होंने प्रेमपूर्वक श्रीराम का जय-जयकार किया। भूतों की भूत योनि समाप्त होकर वे चैतन्य स्वरूप हो गए। इस प्रकार अहं रूपी रावण का वध कर श्रीराम विजयी हुए।

अध्याय ६४

[रावण की पत्नियों का विलाप]

श्रीराम द्वारा रावण का वध करने पर राक्षस सेना हतबल हो गई। वह भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगी, उनका अपने शरीर पर से नियन्त्रण हट गया व रणभूमि में गिरकर वे कराहने लगे। कुछ ने लंका में भागकर आश्रय लिया। कुछ लोग 'हे राम, हमारा वध न करें'– यह कहते हुए श्रीराम की शरण में आये। कुछ राक्षस-वीर भूमि पर लोटते हुए श्रीराम से जीवन-दान माँगने लगे। राक्षस-सेना को त्राहि-त्राहि करते हुए देखकर वानर सेना में आनन्द छा गया। वे राम-नाम का जय-जयकार करते हुए नाचने लगे। जिस रावण ने तीनों लोकों को लूटा था, जिसके समक्ष यम व काल भी काँपते थे, जो भगवान् शंकर से भयभीत न होकर कैलास को हिला देता था, जिसने लोकपाल व देवताओं को बन्दी बना लिया था, उस रावण का श्रीराम द्वारा वध करने पर वे अति प्रसन्न थे। शरणागत विभीषण का मनोरथ पूर्ण हुआ। सुग्रीव की रावण-वध के बिना किष्किंधा वापस न लौटने की प्रतिज्ञा पूर्ण हुई। रावण-वध के पश्चात् अब राम व सीता का मिलन होगा और अपने श्रम सार्थक होंगे, इस विचार से हनुमान सन्तुष्ट हुए। उन्होंने श्रीराम की वंदना की। अंगदादि सभी श्रेष्ठ वानरवीर रावण वध से आनन्दित हुए। उन सभी ने भुभुःकार करते, रामनाम की गर्जना करते हुए, श्रीराम को कंधे पर बैठाकर नाचते हुए अपना आनन्द व्यक्त किया।

श्रीराम द्वारा रावण वध करने का आनन्दोत्सव– रावण वध से स्वर्गस्थ देवता आनन्दित हो उठे और उन्होंने श्रीराम पर पुष्प-वृष्टि की। मलयपर्वत से आयी सुगंधित शीतल वायु ने सबके श्रम दूर कर दिए। रावण के बन्दीगृह में पड़े देवताओं को श्रीराम ने रावण वध कर मुक्त किया। इसीलिए गंधर्वगण, नारद, तुंबर इत्यादि ने सुस्वर गायन किया। पाँच गंधर्वों द्वारा वीणा की धुन पर राग अलापना शुरू करते ही स्वर्ग की अप्सराएँ आकर नृत्य करने लगीं। रावण के तेज से ढका हुआ सूर्य, श्रीराम के तेज से तत्काल चमकते हुए सर्वत्र प्रकाश किरणें बिखेरने लगा। तेजहीन चन्द्रमा रामतेज से प्रकाशित हो उठा। इन्द्र, वरुण आदि हर्षित हो उठे। इन सबके द्वारा किये जाने वाले श्रीराम नाम के जय-जयकार से सम्पूर्ण विश्व व्याप्त हो गया। वानर सेना के ज्येष्ठ सदस्यों ने श्रीराम की पूजा आरम्भ कर दी। हनुमान सिंहासन बने, श्रीराम उस पर आरूढ़ हुए। सौमित्र ने पूजा की। नेत्रों से प्रवाहित होने वाले अश्रु-जल से पैर धुल रहे थे। ये अश्रु विभीषण के थे। सुग्रीव ने भावार्थ रूपी पीताम्बर श्रीराम को पहनाया। अपने शुद्ध प्रेम रूपी चन्दन को सौमित्र ने श्रीराम के मस्तक पर लगाया। शरीर पर उसका लेप किया। उसी समय जाम्बवंत अष्ट सात्विक भाव-रूपी पदक लेकर आया। उस पदक को श्रीराम के गले में पहना दिया। अंगद ने शुद्ध प्रेम-भाव रूपी मुकुट श्रीराम को अर्पित किया। इस प्रकार हृदयपूर्वक श्रीराम की, वानर सेना द्वारा पूजा की गई। तत्पश्चात् सबने श्रीराम की चरण-वंदना की।

रावण वध से विभीषण को शोक, गिद्धों का आगमन– बंधु प्रेम के कारण विभीषण को रावण की मृत्यु से अपार शोक हुआ। उसने रावण के शव से लिपट कर दुःख प्रकट किया। वे बोले– "तुम्हें कितना समझाया परन्तु मेरा कहना न मानकर तुमने श्रीराम के प्रति विरोध भाव ही धारण किया। भाग्यानुसार ही बुद्धि होती है। उसी के अनुसार प्राणी आचरण करता है। जिस रावण ने अपने स्वयं के हाथों से अपना सिर काटकर भगवान् शिव को अर्पित किया, वे सिर आज रणभूमि में बिखरे पड़े हैं। उन्हें गिद्ध नोंच रहे हैं। कर्म सूत्र वास्तव में अतर्क्य है। भगवान् विष्णु एवं भगवान् शंकर में मैत्री को

ध्यान में न रखकर, रावण ने विष्णु भगवान् से शत्रुता की। इस भेद भाव के कारण ही उसकी दुर्दशा हुई। विष्णु की आत्मशक्ति सीता की ही रावण ने, अभिलाषा की। उसका यह दुष्कर्म ही उसके नाश का कारण बना। जो रावण ऐश्वर्य से परिपूर्ण था, वही आज गिद्धों के समक्ष पड़ा हुआ है। गिद्ध उसके शरीर को नोंचकर विदीर्ण कर रहे हैं।"

"बंधु रावण, तुमने किसी का भी उपदेश नहीं माना। शुक, सारण, प्रहस्त, इन्द्रजित्, कुंभकर्ण इत्यादि सभी की तुमने भर्त्सना की। इतना ही नहीं तुमने अपनी प्रिय पत्नी मन्दोदरी का भी कहा नहीं माना, तब मेरा कहा कैसे मानते ? तुमने मुझे लातों से झटकार दिया। उस दु:ख के कारण मैं तुम्हारा मनोगत उस समय न समझ सका। तुम्हें अद्वैत भक्त बनकर आत्मानंद की प्राप्ति हुई। श्रीराम से वैर करने के पीछे तुम्हारा क्या मनोगत था, वह मुझे आज पता चला। सम्पूर्ण कुल को मुक्ति दिलाने के लिए तुमने श्रीराम से बैर किया तथा स्वयं मुक्ति प्राप्त करने के लिए पूरी तरह से मुक्त होकर तुमने रणभूमि में श्रीराम को अपनी देह अर्पित की। श्रीराम सन्तुष्ट हुए।"

विभीषण को सांत्वना देना एवं रावण की उत्तर-क्रिया– विभीषण रावण के शव के समीप बैठकर दुःख प्रकट करने लगे। यह देखकर श्रीराम विभीषण को सांत्वना देते हुए बोले, "हे विभीषण, व्यर्थ शोक न करो, मोह को त्यागो। यह सत्य है कि जो नहीं होना चाहिए था, वह घटित हुआ है परन्तु शोक करके भी रावण से अब तुम्हारी भेंट होना असम्भव है। तुम विवेक सम्पन्न राजा हो, तुम्हें सबको समझाना चाहिए। तुम ही किस प्रकार मोह वश हो रहे हो। रावण ने रणभूमि में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर ख्याति अर्जित की एवं देह को तुच्छ मानकर ब्रह्म स्थिति प्राप्त की है। अपने विकारों पर विजय प्राप्त कर योग्यतापूर्वक आत्म पद प्राप्त किया है। तुम सर्वज्ञ हो। दशमुख रावण अब विश्वमुख हो गया है। तुम दु:ख का त्याग कर अब रावण की उत्तर क्रिया करो। अन्य कोई भी उत्तर क्रिया करने के लिए शेष नहीं बचा है। देवद्रोही एवं ब्रह्मद्रोही के लिए शोक नहीं करना चाहिए, यही शास्त्र बताते हैं।" श्रीराम के समझाने पर विभीषण का मोह दूर हुआ और वह रावण की उत्तर क्रिया करने की तैयारी में लग गए। यह वार्ता जब लंका के अन्त:पुर में पहुँची तब रावण की स्त्रियाँ शोक करते हुए वहाँ आयीं।

रावण की स्त्रियों द्वारा शोक करना– रावण के निधन से दु:खी स्त्रियाँ अनेक प्रकार से दु:ख व्यक्त करने लगीं। पति के बिना जीवन व्यर्थ है, यही भाव उनके मन में था। रणभूमि की मिट्टी में रावण की देह को पड़ा हुआ देखकर वे विलाप करने लगीं। वे स्त्रियाँ रावण के शव से विलग मस्तक को हाथ में लेकर, मुख का चुंबन कर, पैरों को पकड़कर अनेक प्रकार से शोक प्रगट करते हुए कहने लगीं– "हमें पीछे छोड़कर, रणभूमि में ख्याति करते हुए श्रीराम में एकाकार होकर तुमने मुक्ति प्राप्त की परन्तु हमें वैधव्य का दु:ख भोगने के लिए पीछे छोड़ दिया।" रावण की स्त्रियाँ जब इस प्रकार शोक व्यक्त कर रही थीं, मन्दोदरी वहाँ आयी।

अध्याय ६५

[मन्दोदरी का सती होना]

मन्दोदरी भगवान् द्वारा स्वयं अपने हाथों से निर्मित की हुई रावण की स्वरूप सुन्दरी ज्येष्ठ पत्नी थीं। वह रणभूमि पर निष्प्राण पड़े हुए रावण को देखकर शोक करने लगी। उसके साथ ही वह रावण

के अतुलनीय सामर्थ्य का वर्णन करते हुए कहने लगी- "कुबेर का छोटा भाई, भगवान् शिव का प्रिय शिष्य, कैलास पर्वत को आन्दोलित करने वाला, देवताओं को बन्दी बनाने वाला, तीनों लोकों में जिसके पराक्रम की धाक जमी हुई थी, वह रावण, श्रीराम के बाण से रणभूमि में धराशायी पड़ा है। जिसके शौर्य के आगे देवता व ऋषि भी हार मानते थे, वह रावण विश्वमाता जानकी के हरण के कारण संसार में निन्दनीय सिद्ध हुआ। बंधु, पुत्र, प्रधान एवं स्वयं मेरी भी सलाह नहीं मानी, बंधु विभीषण द्वारा हितपूर्ण उपदेश देने पर उसे लात से मारकर निकाल दिया। यह उसके लिए हितपूर्ण सिद्ध हुआ। वह श्रीराम की शरण में गया। श्रीराम ने प्रेमपूर्वक आश्वासन देकर उसे लंका का राजा घोषित किया। जो कैलास मंदार व मेरु पर्वत के शिखर पर क्रीड़ा किया करता था, उसे आज गिद्ध और चीलें नोंच रही हैं। अब मुझे दुःखी कर तुम मोक्ष प्राप्त करोगे तो यह मुझसे छल होगा। तुम मेरे पति, गुरु ईश्वर सब कुछ हो। तुम्हारे कारण हमें मोक्ष प्राप्त होगा।" इस प्रकार शोक करते हुए मन्दोदरी विलाप करने लगी।

विभीषण द्वारा मन्दोदरी को उपदेश एवं सांत्वना– मन्दोदरी का विलाप सुनकर श्रीराम को उस पर दया आ गई। उन्होंने विभीषण को मन्दोदरी की सांत्वना कर समझाने के लिए कहा। श्रीराम की आज्ञा का प्रमाण मानते हुए विभीषण मन्दोदरी से बोले- "हे विष्णु संभूता, पतिव्रता, सती मन्दोदरी व्यर्थ शोक न करो। ज्ञानी लोग होने व न होने वालों के प्रति शोक व्यक्त नहीं करते। तुम्हारे सतीत्व की ख्याति तीनों लोकों में फैली होने पर तुम्हारा पति के शव को लेकर दुःख में मग्न होना उचित नहीं है। तुम्हारे कितना भी दुःख करने पर क्या रावण अब वापस आयेगा ? अगर देह को तुम पति कहती हो तब वह देह वैसा ही पड़ा हुआ है, परन्तु देह की सीमा के बाहर अगर चैतन्य का अनुभव करती हो तब तुम्हें ज्ञात होगा कि वह परब्रह्म में विलीन हो गया है। श्रीराम द्वारा रावण का वध करने पर उसे सायुज्यता प्राप्त हुई है और कुल सहित उसका उद्धार हो गया है। अगर तुम्हें चार देहों (स्थूल, सूक्ष्म कारण, महाकारण) के परे विद्यमान चालक का ज्ञान नहीं होगा, तो तुम्हें दुःख ही होगा। क्या उस चालक श्रीराम की महिमा तुम्हें ज्ञात नहीं है ? तुम व्यर्थ में ही शोक कर रही हो। परमात्मा श्रीराम ही सबको चेतना प्रदान करने वाले हैं। उसी के कारण चराचरों का अस्तित्व है। यह न जानते हुए तुम मोहवश शोक कर रही हो।" विभीषण के इस सांत्वनादायक उपदेश से मन्दोदरी को पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ। उसने विभीषण को प्रणाम किया।

मन्दोदरी बोली- "मुझे राम भक्त विभीषण ने स्मरण करा दिया। इसके पूर्व इसी प्रकार से जानकी ने मुझे श्रीराम के विषय में बताया था। परन्तु मोह के वश में होने के कारण मेरी स्मृति नष्ट हो गई थी। अब तुम्हारे उपदेश से मुझे स्मरण हो आया। श्रीराम परमात्मा हैं, चिद्घन है। यह समझते हुए रावण ने अपने शीश अर्पण कर श्रीराम की पूजा की। लाख शीशों की पूजा अर्पित कर रावण ने सायुज्य मुक्ति प्राप्त की।" यह कहकर स्वयं भी पति के मार्ग पर जाकर श्रीराम को देह अर्पित करने का मन्दोदरी ने निश्चय किया।

मन्दोदरी सहगमन के लिए सिद्ध, श्रीराम की स्तुति– 'रावण से अब भेंट होना सम्भव नहीं है। श्रीराम की प्राप्ति भी मृत्यु के पश्चात् ही सम्भव है। श्रीराम के समक्ष मृत्यु प्राप्त होने के आगे ब्रह्म सदन भी तुच्छ है। उनके समक्ष मृत्यु का तात्पर्य है पूर्ण सायुज्य में देह का त्यागकर पति से भेंट करूँगी।' यह विचार कर मन्दोदरी आगे बढ़ी। उसने श्रीराम को दडवत् प्रणाम किया। सामान्य जनों को ज्ञात नहीं होता है इसीलिए श्रीराम प्रकट हुए हैं। वे चिन्मूर्ति अवतार हैं, यह विचार कर मन्दोदरी ने श्रीराम

की प्रदक्षिणा कर उन्हें नमन करते हुए श्रीराम से सती हो जाने की आज्ञा प्राप्त की। उस समय श्रीराम के तेज से रावण में प्राणों का संचार हुआ, उसने पत्नी मन्दोदरी से कहा– "श्रीराम के रूप में शुद्ध परमात्मा प्राप्त हुए हैं, उनसे अविलम्ब अपने हित की माँग करो। बन्धु विभीषण के उनकी शरण में जाने से उसे सोने की लंका प्राप्त हुई। मैंने विरोध कर उनको सायुज्यता प्राप्त की तुम तो निष्कपट पतिव्रता हो, तुम्हारे अन्दर भगवद्-बुद्धि विद्यमान है। अतः देहत्याग कर सायुज्यता प्राप्त करो" यह सुनकर मन्दोदरी सहगमन की तैयारी करने लगी। वह प्रसन्न थी। चन्दन व तुलसी की लकड़ी लाकर, सती के वायन देकर श्रीराम का मनःपूर्वक ध्यान कर उसने दहन के लिए चिता तैयार करवाई। चिता पर बीस हाथ, बिखरे हुए सिर एकत्र कर उसने रखे परन्तु जिन लाख सिरों द्वारा रावण ने श्रीराम की पूजा की थी, वे कहीं दिखाई नहीं दिये, जिससे घबराकर वह उन सिरों का विचार करने लगी।

विभीषण ने उसकी यह अवस्था देखकर कहा– "श्रीराम की महिमा तुमने अभी समझी ही नहीं। जो श्रीराम को अर्पित कर दिया, वह जलने के लिए पुनः कैसे आ सकता है। जो उन्हें अर्पण कर दिया वह उसी से एक रूप हो गया। उसका नाम, रूप सब समाप्त हो गया। अब उसे ढूँढ़ने पर वह कैसे दिखाई देगा।" यह स्पष्टीकरण सुनकर मन्दोदरी ने विभीषण को नमन किया। श्रीराम का स्मरण किया तथा पति के समीप चिता में जाकर लेट गई। उसने अन्तर्मन की चैतन्याग्नि प्रदीप्त की। उपासना रूपी बाह्य अग्नि प्रदीप्त करने के पश्चात् उसने श्रीराम की नम्रतापूर्वक स्तुति की। जो जानकी ने कहा था वही विभीषण ने बताया। श्रीराम मानव नहीं वरन् परमात्मा, चिन्मूर्ति, चिद्घन हैं। श्रीराम सभी को चेतना प्रदान करने वाले हैं। वे संसार के सभी व्यवहारों का मूल हैं।" इस प्रकार मन्दोदरी ने श्रीराम की स्तुति की। श्रीराम की महानता एवं असीम शक्ति का वर्णन कर यह कहते हुए कि श्रीराम सुखदाता हैं, दुःखों का नाश करने वाले हैं, अचानक उसे शरीर का विस्मरण हो गया। तत्पश्चात् उस महासती ने मौन रहकर श्रीराम को प्रणाम किया एवं देहत्याग कर श्रीराम स्वरूप में विलीन हो गई। सभी ने जय जयकार करते हुए अपना आदर प्रकट किया। उसके पीछे-पीछे अन्य स्त्रियाँ भी चिता में प्रविष्ट हुईं।

रामभक्त धर्मात्मा विभीषण ने पूर्ण विरक्त होकर सबकी विधि अनुसार उत्तरक्रिया की इस प्रकार सबके मनोगत सिद्ध हुए। आनन्द का निर्माण हुआ। राम नाम की गर्जना की गई। अब देवकार्य पूर्ण हुआ। साधु सन्तों का विरोध करने वाले रावण का वध हो गया। मन्दोदरी ने सतीत्व का आदर्श प्रस्तुत किया सभी का मन आनन्द से भर गया।

ॐ ॐ ॐ ॐ

अध्याय ६६

[विभीषण का राज्याभिषेक]

श्रीराम ने लोक घातक, धर्म अवरोधक, सत्कर्म-विच्छेदक रावण का वध कर दिया। सभी लोगों का भय दूर हो गया। श्रीराम द्वारा रणरूपी यज्ञ में रावणरूपी आहुति देने के पश्चात् श्रीराम ने धनुष बाण नीचे रख दिया। अनेक लोगों को सुख की प्राप्ति हुई। कोई अश्वमेध करते हैं, कोई नरमेध करते हैं, श्रीराम ने राक्षसमेध किया। लंकाधीश रावण का वध करने के लिए श्रीराम को परशुराम द्वारा क्रोध की प्राप्ति हुई थी। क्रोध समझ रहा था कि उसी ने श्रीराम का कार्य सिद्ध किया है। इसलिए उसने नम्रतापूर्वक

श्रीराम से पूछा– क्या कोई और कार्य करना है ? परन्तु श्रीराम की कृपा से उसे ज्ञात हुआ कि श्रीराम के सामर्थ्य से ही ब्रह्मांड का निर्माण होता है। तब वह लज्जित हो गया। उसे आत्मशांति प्राप्त होकर वह शांत हो गया। स्वर्गस्थ देवताओं ने श्रीराम का जय-जयकार किया। श्रीराम ने देवताओं के बंधन को तोड़ डाला। उसी प्रकार चौदह वर्षों तक श्रीराम की अनन्य भाव व निष्ठा से सेवा कर जो सामर्थ्य प्राप्त किया गया, उसी के कारण लक्ष्मण द्वारा इन्द्रजित् का वध संभव हुआ।

श्रीराम-भक्त हनुमान का चरित्र भी गौरवपूर्ण था। लंका जाकर रावण को पीड़ित करना, सीता को आश्वस्त करना, द्रोणागिरि पर्वत लाकर लक्ष्मण के प्राण बचाना, अहिरावण का वध करना इत्यादि अनेक सत्कार्य उन्होंने किये। सीता तो महान पतिव्रता थीं। श्रीराम- वियोग के कारण व्रतस्थ रहकर नित्य श्रीराम का भजन करते हुए उसने राक्षसियों एवं वृक्ष-लताओं को भी राम भजन के लिए प्रवृत्त किया। ऐसे अनेक रामभक्तों की सुरवरों द्वारा प्रशंसा की गई।

इन्द्र के सारथी मातलि द्वारा श्रीराम से विदा लेना– श्रीराम के लिए इन्द्र का रथ लेकर आया हुआ सारथी मातलि वापस जाने के लिए श्रीराम से आज्ञा लेने हेतु रथ से नीचे उतरा। उसने श्रीराम का नमन कर आज्ञा माँगी। तब श्रीराम ने अत्यन्त मधुर वाणी में उसकी प्रशंसा की, उसे सम्मानित किया तथा इन्द्र के लिए संदेश भेजते हुए कहा– "हे इन्द्र, तुम लोकपालों के राजा हो। तुम्हारे कारण ही प्रजा सुखी है। राक्षसराज रावण को मारने के लिए तुमने मेरी सुविधा का ध्यान रखा, तुमने शस्त्रास्त्र युक्त रथ को भेजा इसीलिए मैं क्षणभर में रावण का वध कर सका। मैं तुम्हारे आभार किस प्रकार व्यक्त करूँ अतः मैं मौन रहकर ही तुम्हारी वंदना करता हूँ।" मातलि ने सन्देश सुना तथा पुनः श्रीराम के चरणों की वंदना की। तत्पश्चात् सभी वानर वीरों को भी नमन किया। श्रीराम के नाम का जय-जयकार कर वह रथ पर आरूढ़ हुआ। इन्द्र द्वारा श्रीराम के लिए रथ भेजने पर वानर वीरों को आश्चर्य हुआ। श्रीराम द्वारा रावण वध करने के कारण वानर सेना में उत्साह व्याप्त हो गया। अब उन्होंने लंका-भुवन का विध्वंस करने का विचार किया। तब श्रीराम ने उन्हें रोका तथा अंगद द्वारा मध्यस्थता करने के प्रसंग में लाया गया मंडप भी वापस लंका में भेज दिया। श्रीराम की आज्ञा को अस्वीकार करने का साहस किसी में भी नहीं था।

सौमित्र को विभीषण का राज्याभिषेक करने की आज्ञा– तत्पश्चात् श्रीराम ने लक्ष्मण को लंका जाकर विभीषण का राज्याभिषेक करने की आज्ञा दी। श्रीराम बोले– "बंधु लक्ष्मण, सत्वसम्पन्न विभीषण को मंगल स्नान कराकर उसका राज्याभिषेक करो। विभीषण ने अपनी मैत्री के लिए स्वकुल तथा अहंमन्य रावण का वध करने में अपनी सहायता की है। हमारे लिए उसने अपना सर्वस्व न्योछावर किया है। अतः हमें उसका अभिषेक करना चाहिए। हे लक्ष्मण, विभीषण का राज्याभिषेक होकर, उसके सिंहासनारूढ़ होने पर मुझे शांति मिलेगी।" श्रीराम की आज्ञा का पालन करने के लिए लक्ष्मण आनन्दपूर्वक तैयार हुए।

श्रीराम स्वयं न आकर लक्ष्मण को भेज रहे हैं, इसके लिए विभीषण दुःखी हुए। इसके पीछे क्या कारण है, इस विषय में वे चिन्तित हो गए। श्रीराम के रुष्ट होने का क्या कारण होगा, यह विचार करते हुए वे दुःखी हो गए। "श्रीराम के बिना मैं लंका में नहीं जाऊँगा, राज नहीं करूँगा, ऐसे अभिषेक का क्या सुख।" यह विचार करते हुए उनका मुख मलिन हो गया। उनकी यह स्थिति देखकर हनुमान ने उनसे पूछा– "हे विभीषण, राज्याभिषेक का समय आ गया है, तब आप इतने दुःखी क्यों हैं ?" इस पर विभीषण ने हनुमान को सद्गुरु मान कर प्रणाम करते हुए कहा– "श्रीराम के मन में प्रेम भाव होते

हुए भी उन्होंने स्वयं न आकर लक्ष्मण को राज्याभिषेक करने के लिए क्यों कहा ? इसीलिए मैं चिन्तित हूँ " श्रीराम ने सौमित्र से पुनः पूछा– "हे सौमित्र, अब विलम्ब कैसा ?" यह सुनकर पूर्णभक्त, श्रीराम के प्रिय, आज्ञाधारी, श्रीराम में एकाकार हनुमान निष्ठुरतापूर्वक श्रीराम से बोले– "आपको ही मन में राज्य की अभिलाषा है। तभी अचानक सौमित्र को अभिषेक का कार्य बता रहे हैं। यह संसार को मान्य नहीं होगा। आपके हृदय में लोभ तथा बाह्यरूप में विरक्ति विद्यमान है। विभीषण को तनिक भी राज्य का लोभ नहीं है। हे श्रीराम, आप ही लंकाभुवन में सिंहासन पर बैठें।" यह कहकर हनुमान ने उन्हें दंडवत् प्रणाम् किया।

हनुमान के वचन सुनकर श्रीराम आश्चर्यचकित होते हुए बोले– "हे हनुमान, तुम सम्पूर्ण वृत्तान्त जाने बिना ही क्यों रुष्ट हो। मैंने विभीषण की अवहेलना की, ऐसा तुम्हारा आरोप मुझे सहन नहीं होता। मैंने अपने प्राणों की चिन्ता किये बिना विभीषण को सुखी करने के अनेक प्रयत्न किये। मैं प्रतिक्षण यही कामना करता था कि उसे सिंहासन पर बैठा हुआ देखूँ। यह दिन आज आ गया है, इसलिए मैं प्रसन्न हूँ। हे हनुमंत, मैंने लंका प्राप्त होने से पूर्व ही विभीषण का अभिषेक कर दिया था। उस वचन को मैं कैसे त्याग सकता हूँ। अगर मेरी प्रतिज्ञा मिथ्या हुई तो जग में मेरी निन्दा होगी। सूर्यवंशी राजा सत्यप्रतिज्ञ व धर्म-भूषण के रूप में प्रसिद्ध हैं। उसी वंश का मैं दाशरथी रघुपति हूँ। तुम्हारे मन में यही शंका है न, कि मैं स्वयं न आकर सौमित्र को क्यों भेज रहा हूँ ? तुम्हारे मन का यह भाव मैं जानता हूँ परन्तु इसमें न तो मेरा स्वार्थ है, न परमार्थ। मैंने विभीषण को लंका का दान दिया है अतः दान किये हुए स्थान पर दाता का जाना अनुचित सिद्ध होगा, इसीलिए मैं वहाँ नहीं जा रहा हूँ, इसके अतिरिक्त दर्शन होते ही मैंने विभीषण का अभिसिंचन कर दिया है।" श्रीराम ने इस स्पष्टीकरण के पश्चात् सभी को शीघ्र राज्याभिषेक करने के लिए कहा तथा मारुति को समझाते हुए बोले– "यह सब विचार जाने बिना ही तुम व विभीषण व्यर्थ में ही रुष्ट हो गए।

विभीषण के राज्यभिषेक की तैयारी व पूर्णता– श्रीराम का स्पष्टीकरण सुनने के पश्चात् लक्ष्मण ने प्रसन्नतापूर्वक अभिषेक की तैयारी प्रारम्भ की। उन्होंने हनुमान को भी सामग्री एकत्र करने के लिए कहा। हनुमान प्रसन्न हो उठे। लंका नगरी का शृंगार किया गया। सात समुद्रों का जल, सोने के कलश, व्याघ्र चर्म इत्यादि सामग्री लायी गई। विभीषण को मंगल स्नान कराकर अलंकारों से सुसज्जित कर सिंहासन पर बैठाया गया। तत्पश्चात् मारुति ने नज़र उतारी। आनन्दित होकर वानरों ने आरती उतारी। सभी ने राम-नाम की गर्जना की। राक्षस गणों ने विभीषण के नाम की गर्जना की। श्रीराम की कृपा से विभीषण को लंका का राज्य प्राप्त हुआ। विभीषण को राक्षस स्त्रियों ने भी आरती उतारी। लंकाधीश विभीषण की रामभक्ति फलीभूत हुई।

अध्याय ६७

[जानकी का आगमन]

विभीषण का राज्याभिषेक होने से वानर एवं राक्षस दोनों को ही आनन्द हुआ। उनके द्वारा की गई राम नाम की गर्जना से आकाश गूँज गया। श्रीराम द्वारा प्रदत्त तेजस्वी मुकुट एवं छत्र सुग्रीव ने लाकर

विभीषण को अर्पित किया, जिससे उस राजपद की शोभा अवर्णनीय हो गई। तत्पश्चात् सुग्रीव, हनुमान, राक्षसवीर, वानरवीर एवं सौमित्र विभीषण को श्रीराम की चरण वंदना के लिए लेकर आये, जिससे विभीषण को परमानन्द की प्राप्ति हुई। वानरसेना एवं राक्षस-सेना लेकर उसने राज वैभवपूर्वक प्रस्थान किया।

श्रीराम-विभीषण भेंट– लंकाधीश विभीषण हाथी पर बैठे थे। ध्वज पताकाओं से मंडित रथ, हाथी, घोड़ों पर बैठे असंख्य वीर साथ थे। सौमित्र विभीषण के पीछे हाथी पर बैठे थे। दाहिनी ओर सुग्रीव राजदंड लेकर चल रहे थे। बायीं ओर रामभक्त हनुमान थे। योद्धे सबसे आगे चल रहे थे। वाद्यों की ध्वनि, भाटों के गायन की ध्वनि एवं श्रीराम राम-नाम की गर्जना से आकाश व्याप्त हो गया था। इस प्रकार विभीषण को आते देखकर श्रीराम को अपार आनन्द की अनुभूति हुई। सौमित्र विभीषण का हाथ पकड़कर उन्हें श्रीराम के समीप ले गए। विभीषण ने अत्यन्त आदरपूर्वक श्रीराम के चरण स्पर्श कर वंदना की। श्रीराम ने प्रसन्न होकर विभीषण को वेदोक्त आशीर्वाद देते हुए कहा– "विभीषण, अक्षय सुखपूर्वक राज्य करो।" ऐसा कहकर उन्होंने विभीषण को तृप्त कर दिया।

तत्पश्चात् श्रीराम ने हनुमान से कहा– "हे वायुनन्दन, अब सुशोभित लंकाभुवन में विभीषण को सम्मानपूर्वक ले जाओ। तत्पश्चात् रावण वध और विभीषण के राज्याभिषेक की वार्ता जानकी को बताना." श्रीराम की आज्ञा सुनकर आनन्दित हुए हनुमान ने तदनुसार किया। विभीषण को वाद्यों की ध्वनि के साथ लंका ले गये। विभीषण ने लंकाभुवन में प्रवेश किया। तत्पश्चात् वे जानकी की चरण वंदना करने के लिए हनुमान के साथ अशोक-वन में आये। उस समय विभीषण के साथ आये सभी लोग आनन्दित व उत्साहित हो गए। हनुमान, सामने जानकी दिखाई देते ही उनके चरणों पर गिर पड़े। सीता ने भी हनुमान को हृदयपूर्वक आशीर्वाद दिया। सीता की मारुति से भेंट होने पर उन्हें माता को पुत्र से भेंट होने के सदृश आनन्द का अनुभव हुआ। उन्होंने अपने प्रेमाश्रुओं द्वारा मारुति को अभिसिंचित कर अपना आनन्द व्यक्त किया।

हनुमान द्वारा सम्पूर्ण वृत्तान्त कथन– सीता के प्रेम से अभिभूत हनुमान ने उनकी चरण वंदना की तथा दोनों हाथ जोड़कर सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाते हुए बोले– "रावण का निर्दलन करने के लिए श्रीराम की शरण में आकर गूढ़ मारक युक्तियाँ बताकर जिसने श्रीराम द्वारा रावण वध होने में सहायता की, यह वही राजा विभीषण हैं। श्रीराम ने उनका अभिषेक कर राजपद प्रदान कर आपको प्रणाम करने हेतु भेजा है। विभीषण की सहायता से ही श्रीराम और हम सभी वानर वीर यशस्वी हुए हैं।" इतना कहकर हनुमान हाथ पकड़कर विभीषण को जानकी की चरण वंदना के लिए आगे ले आये। विभीषण द्वारा सीता को नमन करते ही सीता के नेत्रों से आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगे। तत्पश्चात् अंगदादि अन्य वानर वीरों ने भी जानकी को प्रणाम किया। उन्होंने सभी को कृपापूर्वक आशीर्वाद दिया।

सीता ने मारुति से कहा– "श्रीराम की कृपा से विभीषण को राज्य प्राप्ति हुई है, अतः शीघ्र उन्हें लंकाभुवन में प्रवेश करने के लिए ले जायँ।" वानर श्रेष्ठों ने मारुति से कहा कि समस्त कार्य पूर्ण हो गए हैं अतः सती सीता को अब हम श्रीराम के पास ले जाएँगे।' इस पर मारुति द्वारा प्रतिसाद न देने पर वानर श्रेष्ठ क्रोधित होकर बोले– "अपने सभी सुखों का त्याग कर जानकी श्रीराम सहित वन में आयीं, अतः अब उन्हें शीघ्र श्रीराम से मिलवाना चाहिए। हमारी यह विनती सुनकर तुम प्रतिसाद नहीं देते; तुम्हारी क्या इच्छा है ?

सीता को श्रीराम के पास ले जाने के सम्बन्ध में विभिन्न मत– हनुमान वानर श्रेष्ठों से बोले– "श्रीराम ने अपने मुख से अथवा संकेत से जानकी को यहाँ लाने के लिए कुछ भी नहीं कहा, इसलिए मैं असमंजस में हूँ. इसके लिए श्रीराम के मन में कोई निश्चित योजना होगी इसीलिए मैं शान्त रहा। इससे आप क्रोधित हो गए।" हनुमान का प्रत्युत्तर सुनकर जाम्बवंत आगे आकर बोले– "हे हनुमान, समस्त विषयों का तुम्हें उत्तम ज्ञान है परन्तु स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों के रहस्य से तुम अनभिज्ञ हो। श्रीराम स्वयं अपने मुख से यह कैसे बतायेंगे कि 'मेरी जानकी से भेंट कराओ।" अत: हमें ही अपने मन से विचार करना चाहिए। सीता के विरह में वे कृशगात हो गए हैं। श्रीराम ने जिसके लिए अनेक क्रूर एवं मायावी राक्षसों को मारा, उस प्रिय पत्नी को वे कैसे भूल सकते हैं। श्रीराम ने सुग्रीवादि सभी वानर व हमें जिसके लिए अपना मित्र बनाया, उस सीता का वे कैसे त्याग कर सकते हैं। हे हनुमान, जिसे ढूँढ़ने के लिए तुम्हें भेजा, सागर पर सेतु का निर्माण किया और रावण का वध किया, उस जानकी को श्रीराम कैसे छोड़ सकते हैं ? यह असंभव है। अत: हे हनुमान, शीघ्र सीता की श्रीराम से भेंट कराओ। श्रीराम ने जब तुमसे कहा कि 'रावण वध होने के विषय में सीता को बताओ' उसमें ही सीता से भेंट हो, यह अर्थ ध्वनित था। जो तुम समझ न सके।" जाम्बवंत के ये वचन सुनकर हनुमान ने सीता को श्रीराम से भेंट के लिए ले जाने का विचार मान्य किया जिससे सभी प्रसन्न हो गए।

श्रीराम से भेंट के लिए सीता से विनती; उसकी शर्त– श्रीराम से दूर होने पर वियोग का दु:ख सीता ने व्रतस्थ रहकर सहा था। देह भावना को जलाकर, अन्न-जल एवं फलों का त्याग कर, अभ्यंग स्नान का त्याग कर, वह केवल श्रीराम-नाम का स्मरण करती रहीं। वल्कल एवं जटा धारण कर वह व्रतस्थ रहीं, जिसके कारण उनका रक्त व मांस क्षीण हो गया, त्वचा क्षीण होकर अस्थियों से चिपक गई। उनकी इस उग्र तपश्चर्या के तेज से श्रीराम संतप्त हो उठे और उन्होंने रावण का वध कर दिया। वानर राज सुग्रीव ने सीता की स्थिति को देखते हुए आगे बढ़कर उन्हें नमन करते हुए कहा– "श्रीराम ने रावण-वध कर रामभक्त विभीषण को लंका का राजा बना दिया है। इतना करने पर भी आपके बिना श्रीराम को सुख- शान्ति का अनुभव नहीं होता। 'मेरे लिए सीता ने अनेक कष्ट उठाये, मेरे वियोग में वह पीड़ित हो गई' यह कहकर श्रीराम ने हमें आपके पास, आपको लाने के लिए भेजा है। अत: अब विलंब किये बिना श्रीराम के दर्शन हेतु चलें।" यह कहते हुए सुग्रीव ने सीता के चरण पकड़ लिए। तत्पश्चात् वह बोला– "अभ्यंग स्नान कर, वस्त्रालंकारों का परिधान कर श्रीराम के दर्शन के लिए चलें।"

सुग्रीव की विनती सुनकर सीता हँसते हुए सोचने लगी– "रात-दिन श्रीराम के समीप रहकर भी सुग्रीव को रामभक्ति का उचित ज्ञान नहीं हुआ।" तत्पश्चात् वह उससे बोलीं– "हे सुग्रीव, ध्यानपूर्वक सुनो। श्रीराम के बिना अन्न-ग्रहण करने का तात्पर्य है विष्ठा ग्रहण करना, ताम्बूल सेवन रक्त-प्राशन सदृश है तथा उदक पान विषग्रहण सदृश है। उसे जीवित रहना कैसे कहा जा सकता है ? श्रीराम के वस्त्रों के बिना अन्य वस्त्र परिधान करना व्यभिचार है। श्रीराम-तेज के बिना अन्य अलंकार शरीर पर भार सदृश हैं। चन्दन का लेप विष्ठा सदृश लगता है।" जानकी के ये वचन सुनकर सबने अनुभव किया कि सीता सर्वश्रेष्ठ रामभक्त हैं। उनकी निष्ठा अलौकिक है। उनकी निश्चय-वृत्ति देखकर सभी ने उन्हें दंडवत् प्रणाम किया। उन्होंने उनकी इच्छानुसार श्रीराम के दर्शनों के लिए आने की विनती की सभी विभीषण पालकी लेकर आये व सीता से बोले– "माता पालकी में आरोहण करें।" तब सीता उनसे बोलीं– "अरे, आप तो भजन-धर्म के ज्ञाता हैं। मेरा व्रत आपने देखा है। अगर किसी अन्य के

चरणों से चलकर श्रीराम की भेंट हो जाती, तो साधक इतना कष्ट क्यों करते ? वाहन से यात्रा करने वालों को वह श्रेय नहीं मिलता। इसीलिए मुनि-जन भी वाहनों का प्रयोग नहीं करते।" इतना कहकर सीता ने पैदल ही प्रस्थान किया। वह शीघ्र सुवेल के पास उस स्थान पर पहुँची, जहाँ श्रीराम विद्यमान थे।

सीता द्वारा राम-दर्शन; श्रीराम द्वारा मुख फेरना– श्रीराम के चरणों के दर्शन होते ही सीता के शरीर में स्फूर्ति का संचार हुआ। रोमांचित होकर उनके शरीर में सुख की लहरें उठने लगीं। श्रीराम को देखकर जानकी उल्लसित हो उठीं। उनका मुखमंडल प्रसन्न हो गया। शरीर स्वस्थ एवं तेजयुक्त दिखाई देने लगा। सामने श्रीराम को देखकर वह बोलीं– "मैं सर्वभाव श्रीराम को अर्पित करूँगी। छह महीनों का वियोग अब समाप्त हो गया है। मेरे भाग्य फलीभूत हुए।" उन्होंने श्रीराम को दंडवत् प्रणाम किया परन्तु श्रीराम ने उस समय अपना मुख दूसरी ओर कर लिया था। अतः जब वह उठकर देखने लगीं तब उन्हें श्रीराम के मुख के दर्शन नहीं हुए। वह बार-बार नमन कर रही थीं। दिशा परिवर्तित कर देख रही थीं परन्तु फिर भी उन्हें श्रीराम के मुख के दर्शन नहीं हुए। अन्त में श्रीराम उनसे विमुख हो गए हैं, यह सोचकर वह विलाप करने लगीं। नेत्रों से अश्रु व रक्त प्रवाहित होने लगे। वह अत्यन्त दुःखपूर्वक कहने लगीं– "श्रीराम मेरी ओर नहीं देखते। वे मुझसे विमुख हो गए हैं तो मेरा जीवन व्यर्थ है। पापी व्यक्ति का मुख श्रीराम नहीं देखते। मुझसे महापाप हुआ है। मैंने सौमित्र को शाप दिया। मेरे उस पाप के कारणं श्रीराम मेरा मुख नहीं देखते।" ऐसा कहकर विलाप करती हुई जानकी मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ीं। यह देखकर वानरों में हाहाकार मच गया। जिसके लिए सारे प्रयत्न किये, उसे मूर्च्छित पड़ा हुआ देखकर भी श्रीराम उसकी ओर नहीं देखते, इसका सबको आश्चर्य हुआ। क्या श्रीराम इतने निष्ठुर हैं ? यह सोचते हुए सभी भ्रम में पड़ गए।

सीता की अवस्था देखकर लक्ष्मण को अत्यन्त दुःख हुआ। वे विलाप करने लगे। श्रीराम के मन में क्या है, यह न जानकर सौमित्र विचलित हो उठे। श्रीराम के द्वारा कुछ भी न बोलने पर, सब उनकी विनती करने के लिए आगे बढ़े। स्वर्ग से देवगण आये। सीता को देखकर श्रीराम उदासीन क्यों हो गए ? इस विषय में उनके मौन के कारण कोई कुछ भी समझ नहीं पा रहा था।

अध्याय ६८

[सीता की अग्नि-परीक्षा]

श्रीराम के मन में जानकी के प्रति क्या विचार हैं, कोई समझ नहीं पा रहा था। अतः जानकी की सांत्वना करने के लिए तथा श्रीराम से विनती करने के लिए स्वर्ग से देवता आये। उन्होंने अपनी-अपनी पद्धति से श्रीराम की विनती की। रावण के स्वर्ग में जाने पर उसकी दशरथ से भेंट हुई, तब उसने श्रीराम की ख्याति का वर्णन करते हुए दशरथ को लंका का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया। अतः दशरथ भी देवताओं के साथ आये थे। ब्रह्मा ने श्रीराम से कहा– "हे श्रीराम, जिस सीता के लिए इतना पराक्रम किया, उस के मिलन पर इस प्रकार की उपेक्षा क्यों कर रहे हो ? तुम तो भक्त-वत्सल के रूप में प्रसिद्ध हो और सीता तो तुम्हारी अर्द्धांगिनी है, तब ऐसी उपेक्षा किसलिए ? अब कृपा कर उसके मस्तक पर हाथ रखकर उसे मूर्च्छा से उबारो।" प्रत्यक्ष ब्रह्मा द्वारा ऐसा कहने पर भी श्रीराम स्तब्ध रहे.

वे कुछ भी न बोले। यह देखकर सभी वानरगणों ने चिन्तित होकर श्रीराम से पूछा– "जानकी की ऐसी उपेक्षा क्यों हो रही है। जिसके कारण हमारे श्रीराम से सम्बन्ध बने, हम उनके भक्त हुए उस सीता के आज निकट आने पर, देवताओं द्वारा विनती किये जाने पर भी श्रीराम उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। अपनी पत्नी की उपेक्षा करने वाले ऐसे श्रीराम की भक्ति किस प्रकार की जाय ? हम भक्त सेवकों को वे सेवा योग्य कैसे लगेंगे।" वानरों के मन में श्रीराम-भक्ति के सम्बन्ध में प्रश्न उठने के कारण चिन्तित बिभीषण विनती करते हुए बोले– "श्रीराम द्वारा जानकी की उपेक्षा होने के कारण वानरों के मन में भय उत्पन्न हो गया है। अत: सबके प्रति कृपालु श्रीराम सीता पर कृपा करें।" तत्पश्चात् लक्ष्मण भी श्रीराम से विनती करते हुए बोले– "सबके द्वारा प्रार्थना करने पर भी हे श्रीराम, आप तटस्थ क्यों हैं ? सभी लोगों के दु:खी होने पर आप शान्त क्यों हैं ? सीता मूर्च्छित हैं, इस अवस्था में उनके प्राण भी जा सकते हैं अब क्या किया जाय ? सबके द्वारा विनती किये जाने के पश्चात् मारुति ने आगे आकर श्रीराम को अनेक कठोर वचन कहे।

मारुति बोले– "देवगण, नर, वानर सभी ने नमन करते हुए आपसे प्रार्थना की। उन सब की विनती को न मानते हुए जानकी की उपेक्षा की तो अपने धर्म पर आक्षेप होगा। जो श्रीराम अन्तर्यामी है, जो शत्रु-मित्र सभी को समान मानता है, उसने स्वधर्म त्याग कर अधर्म का अनुसरण किया– ये कहा जाएगा। जिस पतिव्रता जानकी को तीनों लोक निष्पाप मानते हैं, उसकी श्रीराम ने उपेक्षा की, ऐसी आपकी निन्दा होगी। जिसके वियोग के समय में श्रीराम वन-पर्वत सभी जगह ढूँढ़ते हुए भटकते रहे, उसी सीता के सामने आते ही वे उदास क्यों हैं ? इन वानरों की विनती सुनकर उन्हें कुछ उत्तर क्यों नहीं देते ? अत: हमें ऐसा भय लग रहा है कि आपकी कृपालुता पर तमोगुण का वर्चस्व हो गया है। अत: आज श्रीराम हमारे सदृश सामान्य हैं, ऐसा लग रहा है। हम यह सोचते थे कि भव बाधा को पार करने के लिए श्रीराम की सेवा व भक्ति की जाय परन्तु अब वह विचार दूर हो गया है। हे श्रीराम, जो अपनी पत्नी की उपेक्षा कर रहा है, वह सामान्य-जनों को पूज्य कैसे लगेगा ? अत: अब पराकाष्ठा न कर, जानकी को आश्वस्त करें। मैं आपके चरणों में विनती करता हूँ।" यह कहकर मारुति ने श्रीराम के चरण पकड़ लिए। मारुति के वचन सुनकर श्रीराम को आश्चर्य हुआ। उन्होंने मारुति को उत्तर दिया।

श्रीराम द्वारा अपनी कृति के लिए स्पष्टीकरण– श्रीराम बोले– "हे हनुमान, तुम शीघ्र क्रुद्ध हो जाते हो और नमन भी करते हो। तुम्हीं ने जो मुझे पूर्ववृत्तान्त सुनाया था, उसे क्रोध त्यागकर स्मरण करो। उस समय तुमने सीता का जैसा वर्णन किया था, वह अब वैसी दिखाई नहीं देती। अत: स्त्रियों के शालीनतापूर्वक बोलने पर भी उनका विश्वास नहीं करना चाहिए। ऐसा करने पर अनर्थ सम्भव है. स्त्री को मात्र देखने से सुरासुर मोह के वशीभूत होते हैं तब एकांत में मिलने पर कौन विरक्त रह सकता है ? तब काम-भावना उत्पन्न होगी ही। विरक्त शंकर भिल्लनी के मोह के वशीभूत हो गए। पाराशर ने नाव में अकेली स्त्री को देखकर उसे तप से अर्जित वैराग्य समर्पित कर दिया। अन्य अनेक ऐसे उदाहरण हैं। रावण काम-भावना से सीता को ले गया था। वह रूपवान, सुकुमार तथा लावण्यवान् थी। अत: उसे शुद्ध कैसे माना जाय। हे कपि श्रेष्ठ, तुमने पहले इसका वर्णन करते हुए कहा था कि सीता क्षीण-काय होकर मात्र अस्थिपंजर शेष रह गए हैं, राम-नाम स्मरण के कारण वह जीवित है। परन्तु अब वह वैसी नहीं दिखाई दे रही है वरन् पूरी तरह से स्वस्थ दिखाई दे रही हैं। इसीलिए मुझे संशय है। मैं ही तुम्हें प्रणाम कर तुम्हारे क्रोध को दूर करने के लिए कुछ कह रहा हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो।"

श्रीराम बोले– "हे हनुमान, जनापवाद अत्यन्त कठिन होता है। वह आरोप मुझ पर आ सकता है। लोग कहेंगे कि अविचारी राम ने काम, लोभ से सीता को अपना लिया। इस लोकोपवाद से बचने के लिए मैंने सीता की उपेक्षा की। आप सर्वज्ञ रूप से अपने मन में इसका विचार करें।" मुख्य सीता अग्निमुख में है, यह जानकर श्रीराम ने जानकी से भेंट करने के लिए यह युक्ति की थी। उन्होंने मारुति से कहा– "जनापवाद टाल कर लोगों की स्वीकृति कैसे मिल सकती है, यह वानरगणों से पूछकर मुझे बताओ सब अगर 'सीता पर कृपा दृष्टि हो' ऐसा चाहते हैं, तो सीता को अग्नि-परीक्षा देने के लिए कहें। सबके समक्ष अग्नि-परीक्षा देने पर ही मैं उसे अंगीकार करूँगा।" श्रीराम के ये कठोर वचन सुनकर सभी काँप उठे।

तब मारुति श्रीराम से बोले– "स्वामी, आप सीता की उपेक्षा कर रहे हैं, उस पतिव्रता के प्रति अपने मन में विकल्प धारण करने के कारण आपकी निन्दा होगी। सीता के आत्मतेज के कारण ही रावण व राक्षस सेना भस्म हुई। यह सब आपके पराक्रम के कारण घटित हुआ है, ऐसा न समझें क्योंकि आपकी शौर्यशक्ति जानकी के ही कारण है। वह चिद्शक्ति हैं। आप अपनी पत्नी की ही उपेक्षा कर रहे हैं तो अन्य लोगों की क्या स्थिति होगी। पहले की अपेक्षा सीता का सुन्दर दिखना स्वाभाविक है क्योंकि श्रीराम-मूर्ति को समक्ष देखकर उनका चित्त उल्लसित हो गया है। आपके दर्शनों से वह स्वस्थ हो गई हैं। इसके कारण आपके मन में विकल्प उत्पन्न हुआ, परन्तु आपने उनके अन्तर्मन को नहीं जाना। अब इसकी चर्चा समाप्त करें। क्योंकि बोलते हुए कोई वाग्बाण आपके हृदय में चुभने पर आपको कष्ट होगा। स्वामी की इच्छानुसार ही हमें आचरण करना चाहिए। हम सीता से अग्नि-परीक्षा का अनुरोध करेंगे।" इतना कहकर मारुति सबको सम्बोधित करते हुए बोले– "सीता के अग्नि-परीक्षा देने के पश्चात् भी अगर श्रीराम ने उनको स्वीकार नहीं किया तो हम सब देह त्याग करेंगे। अन्य कोई उपाय नहीं है।" तत्पश्चात् क्रोध में ही वे सीता के पास आकर बोले– "इस प्रकार मूर्च्छित क्यों पड़ी हैं ? राम के समक्ष अग्नि परीक्षा दें।"

सीता अग्निपरीक्षा के लिए तैयार; अग्निकुंड में प्रवेश– मारुति के वचन सुनकर सीता आनन्दित हुईं। वह मनःपूर्वक अग्निपरीक्षा के लिए तैयार हुईं। वह मारुति से बोली– "मुझ पर श्रीराम ने कृपा की और मुझे अग्नि-परीक्षा देने के लिए कहा। इसके बिना अगर वे मुझे स्वीकार करते तो लोक निन्दा होती। श्रीराम की निर्विषयता तुम्हारे कारण प्रकट हुई। अब तुम्हारे ही कारण जानकी का निष्पाप होना भी सिद्ध होगा। अग्नि-परीक्षा से मैं पवित्र हो जाऊँगी। अतः अविलम्ब अग्नि की सिद्धता करो।" सीता के वचन सुनकर हनुमान प्रसन्न हुए। उन्हें प्रणाम कर अग्निकुंड तैयार कर अग्नि प्रज्वलित की, जिसकी ज्वालाएँ आकाश तक पहुँचने लगीं।

सीता को अग्निकुंड के समीप आते ही, कुंड के राममय होने का आभास हुआ। वह आनन्दित होकर विचार करने लगीं– "मेरी अग्निपरीक्षा लेने के लिए जब स्वयं श्रीराम ही कुंड में विद्यमान हैं तब विलम्ब कैसा ? शुद्ध भाव का प्रमाण देने के लिए अग्नि में प्रवेश कर श्रीराम के चरणों की सेवा करूँ। यह विचार कर अग्नि के समक्ष आकर वह बोलीं– "हे तेजोराशि, तुम सभी कर्मों के साक्षी हो, अन्तर्मन के ज्ञाता हो। जहाँ मनोवृत्ति जाती है, वहाँ श्रीराम का वास होता है। अब तुम्हीं निर्णय करो। श्रीराम के अतिरिक्त मेरे मन में अगर अन्य कोई भी विषय आया हो तो मेरी देह का दहन करो। मैंने अपनी वाचा से राम के अतिरिक्त अन्य कोई उच्चार नहीं किया। मेरी देह में राम का ही वास है। मेरा

राममय शरीर, वाचा और मन तुम्हारे समक्ष उपस्थित है।" प्रतिज्ञापूर्वक ऐसा कहकर सीता ने श्रीराम की प्रदक्षिणा की तथा देवताओं की वंदना कर अग्निकुंड में प्रवेश किया।

सीता का निष्पाप सिद्ध होना; श्रीराम से मिलन– देवता व वानरगण आश्चर्यपूर्वक एवं भयभीत होकर उस दृश्य को देखने लगे। तब उन्होंने देखा कि अग्नि की तेजस्वी ज्वालाएँ लुप्त हो गई हैं तथा जानकी आत्मतेज से परिपूर्ण वहाँ खड़ी हैं। अग्नि द्वारा सीता को पतिव्रता व निर्दोष सिद्ध करने पर सभी ने उनका जय-जयकार किया। श्रीराम ने आनन्दित होकर आगे बढ़कर उन्हें आलिंगनबद्ध किया। यह प्रकृति व पुरुष का मिलन था। सीता राम एकाकार हुए। एक दिव्य कार्य सम्पन्न हुआ।

अध्याय ६९

[दशरथ का समाधान]

सती सीता अग्नि-परीक्षा से शुद्ध होकर श्रीराम से मिलीं। श्रीराम के निकट उन्हें देखकर सभी आनन्दित हो गए। वानरगण नाचकर अपना आनन्द व्यक्त करने लगे। वानर-श्रेष्ठों ने आगे बढ़कर श्रीराम की चरण-वंदना की। सुरवरों ने श्रीराम तथा सीता पर पुष्प वृष्टि की। श्रीराम ने देवताओं को नमन किया। दशरथ की भी वंदना की। तत्पश्चात् श्रीराम ने स्त्रियों के गुण-दोषों का विवरण करते हुए, सीता के लिए अग्नि-परीक्षा का निर्णय क्यों लिया, इस विषय में देवताओं को स्पष्टीकरण दिया। उन्होंने वही किया जो परमात्मा की इच्छा थी, ऐसा कहते हुए उन्होंने क्षमा माँगी। श्रीराम का निवेदन सुनकर सभी देवता सन्तुष्ट हुए परन्तु इसके साथ ही वे आश्चर्यचकित भी हुए क्योंकि श्रीराम ही विश्वातीत, विश्वेश, विश्वात्मा हैं, यह उन्हें ज्ञात था। श्रीराम ने जनापवाद को शान्त किया, यह भी उन्हें ज्ञात था। जिसका नाम स्मरण कर विश्व मुक्त होता है, जो नित्य श्रीराम से एकाकार है, ऐसी जानकी का निर्मल भाव भी उन्हें ज्ञात हुआ। वे राम व सीता की स्तुति करने लगे।

देवता बोले– "हमने अपना कार्य सिद्ध करने के लिए आपकी प्रार्थना की थी। इसीलिए आप दोनों ने अवतार लिया। लक्ष्मी ही सीता हैं, यह निश्चित है। हमारे लिए उन्होंने अत्यन्त कष्ट सहे। हे श्रीराम, आप भी परमात्मा श्रीविष्णु ही हैं। आपने अवतार लेकर राक्षसों का संहार किया। स्वयं कष्ट सहन कर, राज्य भोग त्याग कर, वनवासी होकर, धरती पावन कर देवताओं के संकट का निवारण किया। आप ही सबके प्रतिपालक हैं, लोक उद्धारक हैं, जगत् में वंदनीय हैं। आप साक्षात् लक्ष्मी-नारायण हैं।" इन शब्दों में देवताओं ने सीता व राम की स्तुति की।

श्रीराम एवं अग्नि द्वारा परस्पर एक दूसरे की स्तुति– श्रीराम अग्नि से बोले– "हे स्वामी अग्नि, सभी के जठर में निवास करने वाले हे हुताशन, जानकी पतिव्रता है, जितेन्द्रिय है, यह मैं जानता हूँ। उसके विषय में मेरे मन में सन्देह नहीं है परन्तु लोग इसे जानें इसीलिए मैंने यह सब किया। तुमने उसकी रक्षा की, जिससे मेरा उससे मिलन हुआ। तुमने मुझ पर उपकार किया है। इसके लिए मैं तुम्हें साष्टांग दंडवत् प्रणाम करता हूँ।" श्रीराम के वचनों एवं व्यवहार से प्रसन्न अग्नि श्रीराम को प्रणाम कर बोला– "हे स्वामी रघुनाथ, तुम्हारी आत्मशक्ति सीता निष्पाप है। उसके स्पर्श से मेरे त्रिविध ताप दूर हुए। मैं नित्य-मुक्त हुआ। मुझे अनन्त सुख की प्राप्ति हुई। उसके चरण-स्पर्श से मेरी मलिनता समाप्त होकर

में प्रकाशित हुआ। मुझे शान्ति प्राप्त हुई।" अग्नि ने इस प्रकार जानकी की स्तुति कर उसे गौरवान्वित किया और श्रीराम की वंदना की।

भगवान् शंकर द्वारा श्रीराम की स्तुति और विनती– भगवान् शिव ने श्रीराम से कहा– "तुम्हारे द्वारा रावण-वध करने से देवता मुक्त हुए, भाग्य फलीभूत हुआ। दुरात्मा, दुर्बुद्धि रावण ने सभी देवों को बन्दी बनाया हुआ था परन्तु तुम्हारे शौर्य के कारण उनकी मुक्ति हुई अपनी लीला दिखाते हुए सीता की अग्नि-परीक्षा लेकर उसे अपना लिया। विचार करने पर अन्त में यही ज्ञान होता है कि अग्नि भी तुम ही हो, यह निश्चित है। तुमने अद्भुत लीला दिखाते हुए ब्रह्मांड में अपूर्व यश सम्पादन किया है। अब यहाँ न रहते हुए शीघ्र अयोध्या के लिए प्रस्थान करो। तुम्हारे लिए व्रतस्थ रहकर भरत ने अत्यन्त कष्ट उठाये हैं। तुम्हारी पादुकाएँ मस्तक से लगाकर वह निरन्तर तुम्हारे चिन्तन में मग्न रहता है। भक्त भरत मुख से रामनाम का जाप करते हुए तुम्हारी भेंट के लिए आतुर है। शत्रुघ्न भी भरत के अनुसार ही आचरण कर रहा है। अतः उन्हें सन्तुष्ट करो। कौशल्या, कैकेयी तथा सुमित्रा तीनों माताओं से भेंट कर उन्हें सुखी करो। तत्पश्चात् सीता सहित राजसिंहासन पर आरूढ़ होकर राज्य का कामकाज संभालो। अयोध्यावासी तुम्हारे वियोग में दुःखी हैं उन्हें सन्तुष्ट करो। तत्पश्चात् दिग्विजय कर अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न करो। दान-धर्म कर याचकों को सुखी करो। तत्पश्चात् अयोध्या नगरी के साथ विमान से निजधाम को प्रस्थान करो।" इस प्रकार श्रीराम से विनती करने के पश्चात् भगवान् शंकर ने श्रीराम को उनके पिता दशरथ के आगमन की सूचना देते हुए कहा– "उनको तुमसे मिलने की इच्छा है। वस्तुतः दशरथ को उत्तम लोक प्राप्त हुआ है तथापि तुम्हारी कीर्ति सुन कर वे वहाँ से आये हैं। अतः उन्हें प्रणाम कर सन्तुष्ट करो।"

दशरथ की प्रसन्नता एवं पश्चाताप व्यक्त करना– भगवान् शंकर के कथनानुसार अंतरिक्ष में पिता दशरथ को देखकर श्रीराम ने सीता सहित उन्हें प्रणाम किया। लक्ष्मण ने भी साष्टांग प्रणाम किया। दशरथ प्रसन्न हो उठे। उन्होंने अपना विमान अंतरिक्ष में रोककर सबको आँख भरकर देखा। जिसके नाम मात्र से मुक्ति प्राप्त होती है, वह अपने घर में पुत्र के रूप में विद्यमान है। यह मेरा परम भाग्य ही है, यह विचार कर दशरथ आत्मानंद में लीन हो गए। तत्पश्चात् उन्हें पूर्ववृत्त स्मरण हो आया।

दशरथ पश्चातापपूर्वक बोले– "मुझसे कितनी अशिष्टता हुई। पुत्र समझकर मैंने राम को वन में भेजा। एक स्त्री को दिये गए वचन के लिए यह अन्याय कर जगत् में निन्दनीय हो गया। परन्तु मेरे उस निन्दनीय कृत्य के कारण देवताओं का कार्य सम्पन्न हुआ। जनस्थान विघ्न-रहित हो गया। देवद्रोही रावण का वध हुआ। श्रीराम ने तीनों लोकों को सुखी किया। कैकेयी के निष्ठुर वचन सबके लिए सुखप्रद सिद्ध हुए। अभी तक मेरे हृदय में एक बात चुभ रही थी कि कैकेयी दुराचारी है। उसने राम सीता को इधर-उधर भटकने के लिए बाध्य किया। मेरे हृदय का यह शल्य तुम तीनों को देखकर आज नष्ट हो गया। मुझे परम आनंद की प्राप्ति हुई। सौमित्र ने श्रीराम की सेवा कर तीनों लोकों में ख्याति अर्जित की। पतिव्रता सीता श्रीराम की दासी बनकर जगन्माता हो गई। अब सौमित्र श्रीराम को अयोध्या वापस ले जायें, अयोध्या के प्रजाजन नित्य श्रीराम की राह देख रहे हैं।"

श्रीराम की कृतज्ञता; दशरथ सन्तुष्ट– दशरथ के वचन सुनकर श्रीराम, सीता व लक्ष्मण सुखी हुए। उन्होंने दशरथ को प्रणाम किया। श्रीराम बोले– "पिताश्री ! आपके धर्म एवं पुण्याचरण के कारण ही हमारा कल्याण हुआ है। हमारा उज्ज्वल चरित्र, शौर्य सब आपके आशीर्वाद के फलस्वरूप ही है।

आप हमारे सद्गुरु हैं। आपकी आज्ञानुसार ही मैं समस्त कार्य करूँगा। बंधु भरत, शत्रुघ्न एवं तीनों माताओं को सन्तुष्ट करूँगा। आप चिन्ता न करें। आपकी इच्छानुसार ही समस्त कार्य सम्पन्न होंगे।"

श्रीराम के कृतज्ञतापूर्ण वचन सुनकर दशरथ सुखी व सन्तुष्ट हुए। उनके द्वारा ममत्व का त्याग करते ही श्रीराम के पूर्ण ब्रह्मत्व का उन्हें अनुभव हुआ। वे श्रीराम से बोले– "श्रीराम, पुत्र-वियोग के कारण मेरा मन तुम्हारा ही स्मरण कर रहा था। देहान्त के समय मैंने श्रीराम-नाम का ही स्मरण किया। उसके फल-स्वरूप ही मुझे उत्तम लोक की प्राप्ति हुई। तुम्हारा नाम मैं कभी नहीं भूला। उसके साक्षात्कार के रूप में तुम्हारी प्रत्यक्ष भेंट हुई। मेरे सम्पूर्ण ताप नष्ट हो गए। उत्तम लोक में रहने पर भी पुत्र भेंट की मुझे तीव्र इच्छा थी। वह ममता आज शान्त हुई। तुम्हारे दर्शन के पश्चात् मुझे चैतन्य स्थिति प्राप्त हुई। मुझमें विद्यमान दशरथ एवं राम की ममत्वपूर्ण भावना का लोप हो गया। तुम्हीं अद्वैत परिपूर्ण ब्रह्म हो, इसका निःसंशय अनुभव हुआ।

अध्याय ७०

[देवताओं द्वारा श्रीराम की स्तुति]

श्रीराम द्वारा दशरथ की विनती करने पर वे कृतार्थ और पूर्ण रूप से विरक्त हुए। श्रीराम नाम, रूप, वर्णाश्रम, कुल, गोत्र, श्रुति, शास्त्र इन सबके परे पूर्ण-ब्रह्म हैं- इसका उन्हें अनुभव हुआ। वे मुक्त हुए, श्रीराम ने दशरथ को ब्रह्ममय कर दिया।

दशरथ द्वारा लक्ष्मण एवं सीता को उपदेश– श्रीराम की सेवा कर अमर्यादित कीर्ति प्राप्त करने वाले लक्ष्मण को दशरथ ने परमार्थ का उपदेश दिया। वे बोले– "श्रीराम से तुम्हारी उत्तम मैत्री है। सुरवरों ने कीर्ति का बखान किया है। भक्ति में श्रेष्ठ सिद्ध हुए हो, इससे सर्वस्व प्राप्त हो गया, मैं कृतार्थ हो गया – ऐसा भाव मत धारण करना। मेरे अतिरिक्त श्रीराम का कोई आप्त नहीं है। ऐसा भाव मन में उत्पन्न होते ही भक्ति शान्त हो जाती है। ऐसे अहंकार से अधः पात होता है। इसीलिए भक्ति से तृप्त न होकर श्रीराम की निरन्तर सेवा करना। श्रीराम की अखंड सेवा करने से स्वयं ही ब्रह्मत्व की प्राप्ति होती है।"

तत्पश्चात् दशरथ ने सीता को उपदेश देते हुए कहा– "श्रीराम द्वारा अग्नि-परीक्षा लेने पर रुष्ट मत होना। तुम विदेही हो इसीलिए तुम्हें वैदेही कहते हैं। तुममें देह-भावना नहीं है। तुमने श्रीराम की अखंड सेवा की है, जिसके कारण तुम्हारा यश फैलकर तुम्हें जगत्-वंद्यत्व प्राप्त हुआ है। जिसे देह, कर्म, ममता इत्यादि का अभिमान नहीं है, उसका अग्नि क्या बिगाड़ सकता है। विदेह होकर श्रीराम से भेंट करने पर उसे अग्नि भी जला नहीं सकती, इसको लोग जानें, इसीलिए श्रीराम ने तुम्हारी अग्नि-परीक्षा ली। उसके प्रति मन में क्रोध न करना। तुम तो श्रीराम की आत्मशक्ति हो। अपनी स्वरूप स्थिति का अनुभव करने के लिए श्रीराम ने तुमसे यह दिव्य कृत्य करवाया। इसके आगे श्रीराम से तुम्हारे चरित्र को महत्ता प्राप्त होगी। तुम्हारे द्वारा नित्य श्रीराम की सेवा घटित हो।"

दशरथ द्वारा दिये गए उपदेश को सीता व लक्ष्मण ने शिरोधार्य मानकर उन्हें साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया। सौमित्र सहित सीता दोनों हाथ जोड़कर दशरथ की विनती करते हुए बोलीं– "स्वामी को

आज्ञा के अनुसार आचरण करने में ही हमारा सामर्थ्य है। समस्त कार्यों को कराने वाले श्रीराम ही हैं। हमारे पास कोई शक्ति विद्यमान नहीं है। अन्तर्यामी श्रीराम ही हमसे उचित आचरण करवायेंगे।" जानकी के ये वचन सुनकर दशरथ प्रसन्न हो गए। तत्पश्चात् उन तीनों को आशीर्वाद देकर उन्होंने प्रस्थान किया। इस समय वे स्वयं ब्रह्ममय होकर ब्रह्मानन्द में मग्न हो विमान से जा रहे थे।

देवताओं द्वारा श्रीराम की स्तुति; श्रीराम द्वारा विनती करना– स्वर्गस्थ देवताओं ने श्रीराम को नमन कर नम्रतापूर्वक कहा– "हे श्रीराम, आपने देवताओं को बन्धन से मुक्ति दिलाई, आपके उपकारों का ऋण चुकाने के लिए आप ही हमें उचित आज्ञा करें। जिससे आपको सुख प्राप्त हो, ऐसा कार्य बतायें।" ऐसा कहते हुए देवताओं ने श्रीराम की चरण-वंदना कर उनसे विनती की। इस पर श्रीराम ने भी देवताओं को वंदना करते हुए कहा - "आपकी कृपा से ही दुष्ट दशानन मारा गया। आपके नाम से ही यम व काल शरण आते हैं। आपको छुड़ाने के लिए कौन सहायता कर सकता है। आपने कुशलतापूर्वक मेरे द्वारा रावण का वध करवाया। आप व्यर्थ ही मेरी स्तुति कर रहे हैं, मेरा उपकार मान रहे हैं।" श्रीराम स्वयं अनंत कोटि ब्रह्मांड के रचयिता हैं। वानरों को जीवित करना उनके लिए असंभव नहीं था परन्तु इन्द्रादि देवों को महत्त्व देने के लिए उन्होंने विनती करते हुए कहा– "आप सभी देव मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरी विनती सुनें। रावण से युद्ध करते हुए वानरों ने अपने प्राणों की बलि दी है, उन्हें आप जीवित करें। युद्ध के समय वानरों के अवयव कटकर इधर-उधर बिखरे पड़े हैं। उन वानरों को जीवित कर मुझसे भेंट करायें। आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे लिए इतना करें। ऐसा करने पर मुझे सर्वस्व प्राप्त हो जाएगा।"

श्रीराम की विनती सुनकर सुरगण चकित रह गए, "जिस श्रीराम में पूर्ण ब्रह्म व्याप्त है, जिसके भक्त हनुमान ने अद्‌भुत लीला की है, राम का ध्यान करते ही जिसकी दृष्टि से अमृत-वर्षा होकर क्षण मात्र में वानर-गण जीवित हो उठे। वह श्रीराम स्वयं प्रत्यक्ष रूप से यहाँ उपस्थित होते हुए सुरगणों से वानरों को जीवित करने की विनती कर रहे हैं। यह देवताओं का परम सौभाग्य ही है।" यह विचार कर इन्द्र सहित सभी देवताओं ने श्रीराम के हाथ जोड़ कर विनती करते हुए कहा– "हे सुरवर संस्थापक, सकल जन-चालक श्रीराम, आपका नाम जहाँ सुनाई देता है, यम उधर दृष्टि भी नहीं डालता तब नित्य आपके नाम का जाप करने वालों के समीप यम क्यों जायेगा। ऐसी आपके नाम की महिमा है। ऐसा होते हुए भी आप हमसे विनती कर रहे हैं ? परन्तु आपकी आज्ञा है अतः हम यह कार्य अवश्य करेंगे।"

देवताओं द्वारा जीवित किये गए वानरों की चेष्टाएँ– श्रीराम की आज्ञा को मानते हुए देवताओं ने वानरों को पुनः जीवित कर दिया। वानरों के छिन्न-भिन्न होकर बिखरे हुए अंग पुनः जुड़ने लगे। परन्तु ऐसा होते समय गड़बड़ होने लगी। एक पूँछ एक वानर को जोड़ी जाते ही दूसरा उसके लिए लड़ने लगा। यही गड़बड़ पैर, मस्तक, धड़, कान, सिर, इत्यादि के सम्बन्ध में भी होने लगी। वानरों की यह लड़ाई देखकर राम, सीता, सौमित्र और वानरश्रेष्ठ हँसने लगे। श्रीराम का चरित्र अगम्य है, ऐसा ही सबको अनुभव होने लगा। सुरवरों ने वानरों को जीवित कर दिया। कुछ समय पश्चात् समस्त गड़बड़ी समाप्त होकर वानरों के अवयव सध गए। उनके शरीर पर घाव और उनके निशान दिखाई नहीं दे रहे थे। इस प्रकार व्यंग रहित शरीर प्राप्त होने का आनन्द व्यक्त करते हुए वानर उछल-कूद करने लगे, उन्हें घाव, निशान किसी भी बात का स्मरण नहीं रहा। रावण-वध कैसे व कब हुआ ? राम ने उन्हें कब उठाया ? कुछ भी स्मरण नहीं रहा।

देवताओं एवं लोकपालों ने श्रीराम से विनती की कि 'हमें रावण के बन्दीगृह से मुक्त कराकर, हमारी पीड़ा दूर कर जिस प्रकार सुखी किया, उसी प्रकार हे श्रीराम, शीघ्र अयोध्या जाकर वहाँ सबको सुख प्रदान करें। अपनी आत्म-शक्ति महासती सीता को तथा बंधु लक्ष्मण को प्रेम व सुख प्रदान करें। इन दोनों ने अत्यन्त कष्ट सहन किये हैं। उसी प्रकार भरत व शत्रुघ्न ने भी आपके प्रति प्रेम के कारण दृढ़ व्रतस्थ जीवन व्यतीत किया है। उन्हें भी सुखी करें। अयोध्यावासी, तीनों माताएँ, प्रधान, प्रजा-जन सभी आपके लिए चिन्तित हैं। उनकी चिन्ता दूर करें।" इस प्रकार श्रीराम से विनती कर देवताओं ने विमानों में बैठकर अपने स्थान पर जाने के लिए प्रस्थान किया।

श्रीराम व सीता का मिलन, उनका वार्तालाप— सीता को समीप बुलाकर उसे सान्त्वना देते हुए श्रीराम बोले— "हे सुन्दरी, तुम दुःखी न हो। तुम्हारा चरित्र व भक्ति सम्पूर्ण संसार का उद्धार करेगी। तुम्हारी अग्नि-परीक्षा लेना हम दोनों की दृष्टि से निन्दनीय ही था। परन्तु वह बिना कष्ट हुए सम्पन्न हो गया। अतः उसके लिए मन में क्रोध न करो। तुम्हारा वियोग होने के पश्चात् मेरी देह कार्य करने में अक्षम हो गई। अन्न व जल ग्रहण करते समय जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं में सर्वत्र सीता ही दिखाई देती थी। और अधिक क्या कहूँ ? ऐसा कहते हुए श्रीराम ने सीता को अपने निकट बैठा लिया। उस समय श्रीराम की आत्मस्थिति सीता में विलीन हो गई। उसी क्षण सीता भी श्रीराम में एक रूप हो गई। तत्पश्चात् सीता श्रीराम के चरणों पर मस्तक रखते हुए मधुर शब्दों में बोलीं— "आप अन्तर्यामी हैं, समस्त क्रिया-कलापों के करने एवं कराने वाले हैं। समस्त इन्द्रियों की गति आपके ही कारण है। सर्वत्र आपकी ही सत्ता है।" सीता के पश्चात् वानरगणों ने श्रीरामनाम का जय-जयकार किया। सीता ने पुनः श्रीराम की चरण-वंदना की।

श्रीराम व सीता का मिलन आनन्द से परिपूर्ण हो उठा। सभी को अत्यन्त आनन्द का अनुभव हुआ। वानर गण एवं वानर श्रेष्ठों ने श्रीराम-नाम का जय-जयकार किया। राक्षस-राज विभीषण अपनी स्त्रियों सहित आनन्दपूर्वक श्रीराम की पूजा करने के लिए पूजा-सामग्री लेकर आये।

श्रीराम से व्रत छोड़ने की विभीषण द्वारा विनती— विभीषण श्रीराम से बोले— "हे स्वामी रघुनाथ, देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए आपने वनवास का जो कठिन व्रत धारण किया था, वह कार्य सम्पन्न हुआ। रावण-वध कर देवताओं को बन्दीगृह से मुक्त कराया है। अतः अब व्रत छोड़ दें। सौमित्र ने उपवास कर अत्यन्त कष्ट उठाये हैं तथा महासती सीता भी क्षीण हो गई हैं। अतः अपना व्रत समाप्त कर जटाबंधन खोल दें।" तत्पश्चात् विभीषण व उनकी स्त्रियों ने चरण-वंदना कर श्रीराम की पूजा की। तब श्रीराम उन्हें उठाते हुए बोले— "लंका का अलौकिक राज्य अब विघ्न रहित हो गया है। अब पति सहित उस राज्य का उपभोग करें।" श्रीराम ने उनके मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। तब स्त्रियाँ बोलीं— "हे स्वामी श्रीराम, विभीषण आपकी शरण में आये तभी हमें अक्षय राज्य व परम सौभाग्य की प्राप्ति हो गई। सीता को अत्यन्त कष्ट हुए हैं। अतः अब उन्हें अभ्यंग स्नान की आज्ञा दें। आप भी अपना व्रत समाप्त करें।" विभीषण ने भी पुनः श्रीराम से विनती की तब श्रीराम ने सन्तोष प्रकट करते हुए उन्हें धर्मशास्त्र एवं नीतिविचार बताकर विभीषण को शान्तिपूर्वक लंका जाने के लिए प्रवृत्त किया।

अध्याय ७१

[त्रिजटा से भेंट]

विभीषण स्त्रियों सहित आते समय श्रीराम की पूजा हेतु अलंकार, रत्न, वस्त्र तथा सभी प्रकार की पूजा की सामग्री लेकर आये थे। उन्होंने श्रीराम से कहा– "मेरे प्रेम के लिए जानकी सहित मेरी पूजा को स्वीकार करें। मुझ पर कृपा करें। मुनिवेश त्याग कर राजचिह्न धारण करें, जिससे हमें सुख की प्राप्ति होगी, भक्तों के मनोरथ को पूर्ण करने के अपने धर्म का पालन करें।" इस पर श्रीराम ने विभीषण को मधुर शब्दों में लौकिक नीतिशास्त्र समझाया तथा अपने मन के विचार बताते हुए उनके अनुरोध को अस्वीकार कर दिया।

श्रीराम बोले– "लंकाधिपति विभीषण, तुम मेरे आप्त हो। तुम्हारे कारण ही रावण का वध सम्भव हो सका। मैं तुम्हारा कहना किस प्रकार टाल सकता हूँ परन्तु तुम्हीं विचार करो कि भरत को अयोध्या में वैसे ही छोड़कर व्रतसमाप्ति करना क्या उचित होगा ? भरत वल्कल धारण कर, भूमि पर शयन कर, राज्य-उपभोगों का त्याग कर घोर व्रत का आचरण कर रहा है। उसने प्रतिज्ञा की है कि राम के बिना मैं राजभवन नहीं देखूँगा। वह मेरी पादुकाएँ अपने मस्तक से लगाकर मेरे समान वनवासी-व्रत का आचरण कर रहा है। शत्रुघ्न भी वैसे ही व्रतों का पालन कर रहा है। उन दोनों की उपेक्षा कर मेरे द्वारा राज्य भोग को स्वीकार कर लेना, धर्म की नीति नहीं है, संसार में मेरी निंदा होगी। अतः अपना आग्रह छोड़ें तथा लंका जाकर सुखपूर्वक राज्य करें। रुष्ट न हों। मेरे मन में भी बंधु, माता सुहृद तथा गुरुवर्य से भेंट की उत्कंठा है। मुझे अयोध्या-प्रस्थान की आज्ञा दें, जिससे मुझे सर्वस्व प्राप्त होगा।"

विभीषण द्वारा अयोध्या ले जाने की विनती– श्रीराम ने पुनः विभीषण से लंका जाने का अनुरोध किया। सीता की सखी बनी त्रिजटा से आदरपूर्वक व्यवहार करने की सूचना दी। वे बोले कि अगर त्रिजटा को मुझसे भेंट करने की इच्छा हो तो उसे ले आयें। श्रीराम के सभी आदेश मान्य हैं, ऐसा कहते हुए विभीषण बोले– "स्वामी, आपकी आज्ञा शिरोधार्य है परन्तु मुझे भरत से भेंट हेतु अपने साथ चलने दें। त्रिजटा की भक्ति अनन्य है, उसे शीघ्र ही आपसे भेंट के लिये लाता हूँ। श्रीराम को वन में छोड़कर मेरा राजभवन में प्रवेश करना पाप है। सेवक धर्म यह है कि स्वामी के राजभवन में प्रवेश करने के पश्चात् उसे आज्ञा-स्वरूप मानकर स्वयं राजभवन में लौटे। अतः मेरी विनती को अस्वीकार किये बिना मुझे अपने साथ अयोध्या ले जायें।" विभीषण की विनती श्रीराम ने स्वीकार की अतः विभीषण प्रसन्न हो गए।

त्रिजटा-श्रीराम भेंट का वृत्तान्त– श्रीराम के साथ अयोध्या जाने की विनती स्वीकार हो जाने से सन्तुष्ट विभीषण ने अपने सेवकों को आज्ञा दी कि "लंका जाकर त्रिजटा से भेंट करो तथा उसे बताओ कि श्रीराम उससे भेंट करने के इच्छुक हैं। उसे शीघ्र विमान से यहाँ ले आओ।" दूतों ने लंका जाकर त्रिजटा से भेंट की। उन्होंने उसे नम्रतापूर्वक नमन कर कहा– "हे माता, विभीषण ने हमें यहाँ आप विनती करने के लिए भेजा है। श्रीराम आपसे मिलना चाहते हैं, यदि सम्भव हो तो तुरन्त विमान पर आरूढ़ होकर चलें।" त्रिजटा यह सुनकर आनन्दित होते हुए बोली– "श्रीराम ने मुझे स्मरण किया है, मेरे अहोभाग्य। मुझे विमान नहीं चाहिए, मैं पैदल ही चलूँगी। सीता मेरी गुरु हैं, वह विमान को स्पर्श किये बिना पैदल ही श्रीराम के पास गईं। अतः मैं भी उनके सदृश पैदल ही जाकर श्रीराम के दर्शन करूँगी।"

सीता का स्मरण व अनुसरण करती हुई त्रिजटा श्रीराम से भेंट करने के लिए चल पड़ी। सीता की कृपा से त्रिजटा का मन श्रीराम में लगा हुआ था, जिसके कारण उसे सर्वत्र श्रीराम ही दिखाई दे रहे थे। ऐसी मनःस्थिति में वह चली जा रही थी। अन्त में उसे सीता सहित श्रीराम के दर्शन हुए। उसे अपार आनन्द की अनुभूति हुई। जानकी व श्रीराम के एकत्र दर्शन से वह आनन्द मग्न हो गई। कोई माता उसका खोया बालक मिल जाने पर जिस प्रकार उसे प्रेमपूर्वक आलिंगनबद्ध करती है, उसी प्रकार श्रीराम ने त्रिजटा को आलिंगनबद्ध कर एकरूपता दी। त्रिजटा ने श्रीराम की चरण-वंदना कर उनसे कहा- "स्वामी श्रीराम, आप मेरी विनती सुनें। आपकी संगत की अपेक्षा आपके भक्तों की संगत श्रेष्ठ है अन्यथा आपसे मिलने के लिए कितने भी प्रयत्न किये जायँ, परन्तु आपसे मिलना अत्यन्त कठिन है। आप सत्संगति में विद्यमान रहते हैं, इस सम्बन्ध में अपना ही अनुभव बताती हूँ। जानकी से भेंट हुई इसीलिए श्रीराम से भेंट हुई। उनकी संगति के कारण मैंने श्रीराम-नाम का स्मरण किया व मैं निष्काम हो गई। मूल रूप से मैं राक्षसी हूँ। हम मानवों का भक्षण करने वाले हैं, परन्तु जानकी की संगति से यह सब भूलकर मैंने श्रीराम-नाम स्मरण किया और श्रीराम से प्रत्यक्ष भेंट हुई।" इस प्रकार सत्संगति की महिमा बताने के पश्चात् त्रिजटा ने संत-लक्षण तथा गुरु की महिमा के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये। अपने मनोभावों को व्यक्त करते करते अन्त में भक्ति व प्रेम से उसका जी भर आया और वह मूर्च्छित हो गई।

त्रिजटा की सीता व श्रीराम के प्रति भक्ति व सद्भावना देखकर सभी वानरगण, सौमित्र, विभीषण, सुग्रीव व हनुमान इत्यादि ने उसकी जय-जयकार की। श्रीराम की कृपा से त्रिजटा श्रीराममय होकर श्रीराम से एकरूप हुई। तत्पश्चात् त्रिजटा ने सीता, लक्ष्मण, विभीषण, हनुमान इत्यादि का गौरव करते हुए उनकी वंदना की। हनुमान ने भी दंडवत् प्रणाम करते हुए उसे भी महान भक्त के रूप में गौरवान्वित किया। उन सभी के वचनों से श्रीराम के प्रति भक्ति प्रकट हो रही थी।

विमान ले जाने के लिए विभीषण की विनती; श्रीराम द्वारा अस्वीकार करना— रावण द्वारा कुबेर से हरण किया हुआ कामग विमान* श्रीराम अयोध्या जाने के लिए प्रयोग करें, ऐसी विनती करते हुए विभीषण बोले— "आप, सीता व सौमित्र सहित इस विमान में बैठकर अयोध्या जायँ। यह रमणीय विमान वेगपूर्वक आपको गतव्य स्थान तक ले जाएगा। इसकी रत्न जड़ित मोतियों से सजी हुई नक्काशी अत्यन्त सुन्दर है।" इस पर श्रीराम ने विभीषण से कहा— "रावण-वध के पश्चात् उनकी सारी सम्पत्ति मैंने तुम्हें प्रदान की है। उसका उपभोग तुम करो। 'श्रीराम उपयोग नहीं कर रहे हैं अतः मैं भी नहीं लूँगा', ऐसा मन में भी मत लाना। मेरे द्वारा इस विमान का उपयोग उचित नहीं होगा।"

अध्याय ७२

[विभीषण की माता कैकसी से श्रीराम की भेंट]

विभीषण यह देखकर दुःखी हो गया कि उसके द्वारा प्रदत्त विमान श्रीराम स्वीकार नहीं कर रहे हैं। इस प्रकार बाह्य साधनों द्वारा की गई सेवा श्रीराम ग्रहण नहीं कर रहे हैं, यह अनुभव कर विभीषण

* पुष्पक विमान।

श्रीराम की वंदना कर मौन हो गए। तभी एक आश्चर्यजनक घटना घटित हुई। विश्वकर्मा अचानक प्रकट हुए वे श्रीराम को दंडवत् प्रणाम कर बोले– "श्रीराम को अयोध्या जाने के लिए मैं नया विमान बनाता हूँ।" उसके द्वारा श्रीराम की सेवा हो सके, यही उसका उद्देश्य था।

विश्वकर्मा द्वारा तैयार किया गया नया विमान– अपनी इच्छानुसार ले जाने वाला कामग विमान विश्वकर्मा बनाने लगे। वह विमान पर्वताकार व प्रचंड था। उस विमान में अनेक मंजिलें थीं। उनकी ऊँचाई तक दृष्टि नहीं पहुँच पा रही थी। उस विमान में सात सुन्दर परकोटे, दस खिड़कियाँ, किंकिण जैसी मधुर ध्वनि करने वाली घंटिकाएँ थी। नाना प्रकार की मालाओं से उसे सुशोभित किया गया था। नौ लाख दीपकों से वह प्रकाशित था। अग्नि उसमें क्रिया शक्ति का निर्माण कर रहा था। अश्विनी कुमार वैद्य उसमें सेवा हेतु उपस्थित थे। हनुमान उसके चालक थे, जो श्रीराम के मतानुसार संकल्प कर विमान को गति प्रदान कर रहे थे। आकाश में संचार के नेतृत्व का कार्य सौमित्र का था तथा विमान का नेतृत्व करने का कार्य विभीषण का था। सुग्रीव की भूमिका सहायक की थी। इस प्रकार कुशलतापूर्वक विमान तैयार कर विश्वकर्मा ने श्रीराम की चरण वंदना की।

विभीषण की माता कैकसी का श्रीराम से भेंट करने के लिए आगमन– विभीषण की माता कैकसी, उसे दर्शन दिये बिना श्रीराम के अयोध्या के लिए प्रस्थान का समाचार सुनकर दुःखी हो गई। 'श्रीराम जब लंका आयेंगे तब मैं उनकी पूजा करूँगी' ऐसा उसने मन में सोचा था। वह सोच रही थी कि 'उसके पूर्व जन्म के पाप श्रीराम की भेंट से धुल जाएँगे।' इसीलिए वह श्रीराम के लंका आने की राह देख रही थी। ऐसा संभव नहीं हो पा रहा है, यह ज्ञात होते ही वह दुःखी होकर अपने भाग्य को कोसने लगी। 'रावण, राम की पत्नी को चुराकर लाया तब भी श्रीराम ने उसका उद्धार किया, मन्दोदरी की भी श्रीराम से भेंट हुई। मैं ही अभागन हूँ' यह सोचकर वह दुःखी हो गई।

अन्तर्यामी होने के कारण श्रीराम ने उसकी व्यथा को अनुभव किया। उन्होंने स्वयं विभीषण को उनकी माता से भेंट करने हेतु उन्हें लाने की आज्ञा दी। विभीषण ने तुरन्त सेवकों को कैकसी को लाने की आज्ञा दी। दूतों ने कैकसी से जाकर निवेदन किया कि श्रीराम अयोध्या जाने से पूर्व उससे भेंट करने की राह देख रहे हैं, अतः शीघ्र विमान में बैठें। उसने पैदल ही श्रीराम के दर्शन के लिए जाने का निश्चय किया। जब उसकी श्रीराम से प्रत्यक्ष भेंट हुई, तब दोनों ने आलिंगनबद्ध होकर परस्पर एक दूसरे के प्रति प्रेमभाव व्यक्त किया। उस समय कैकसी समस्त ऐहिक व्यवहार भूल गई। वह अपने शरीर की सुध भूल कर श्रीराम के स्वरूप में एकाकार हो गई।

श्रीराम द्वारा सांत्वना व उपदेश– श्रीराम ने माता कैकसी को उसके पुत्र के वध के विषय में समझाते हुए कहा– "रावण कुंभकर्ण का वध राम ने किया है ऐसा न मानें, पतिव्रता सीता की अभिलाषा करने के कारण, रावण का वध हुआ; मैं तो निमित्त मात्र था। जो पतिव्रता परनारी की अभिलाषा करता है, उसे भूमि आश्रय नहीं देती है। सीता भूमिकन्या होने के कारण भूमि ने रावण पर क्रोधित होकर कुल सहित उसका नाश करवाया। केवल जानकी का दुःख यही एकमात्र कारण नहीं था, वरन् रावण ने स्वधर्म द्विजवृत्ति सुरगण एवं सम्पूर्ण विश्व से द्वेष किया। इस सब कारणों से उसका वध तो निश्चित ही था। इन सबके अतिरिक्त रावण ने गुरु सदृश भगवान् शिव की पत्नी को अभिलाषा कर अपने सर्वनाश को स्वयं आमन्त्रण दिया। इस प्रकार रावण के स्वयं के पापाचरण ने उसका अधःपतन किया।"

"विभीषण शुद्ध धर्मात्मा है। तुमने उसे जन्म देकर अपनी कोख धन्य की है। यही कुल का उद्धार करेगा। पुत्र की कृति से माता संसार में पहचानी जाती है। विभीषण जैसा ब्रह्म सम्पन्न हरिभक्त, पुत्र के रूप में तुम्हें प्राप्त होने से तुम तीनों लोकों में वन्दनीय होगी। माता कैकसी, तुम्हारे भाग्य महान् हैं कि तुम्हारा पुत्र भक्तों की पंक्ति में बैठा हुआ है।" इस प्रकार कैकसी को सांत्वना देने पर उसने श्रीराम की स्तुति की और उनके चरणों पर गिर पड़ी। तब श्रीराम ने उन्हें उठाकर धन्य किया।

[श्रीराम व कैकसी की भेंट की यह कथा क्रौंच रामायण से ली गई है, ऐसा यहाँ उल्लेख किया गया है।]

सीता व लक्ष्मण की आदर भावना– श्रीराम से आज्ञा लेकर सीता, लक्ष्मण के पास गयीं और उनसे क्षमा-याचना करते हुए बोलीं– "मैंने तुम्हारा महत्त्व जाने बिना तुमसे कटुवचन कहे। तुम श्रीराम के प्राणप्रिय भक्त हो तथापि मैंने तुम्हें कष्ट दिये। उसी पाप के कारण ही मेरा श्रीराम से विरह हुआ। रावण द्वारा मुझे कष्ट प्राप्त हुए। मुझे क्षमा करो। श्रीराम के भक्त को मेरे कारण कष्ट हुए, मैं राम-भक्त का द्वेष करने वाली पापिनी सिद्ध हुई। इसीलिए श्रीराम मुझ पर कुपित हुए"- ऐसा कहते हुए सीता विलाप करने लगीं। यह देखकर लक्ष्मण, सीता के चरणों पर गिरकर बोले– "आपके वियोग के कारण श्रीराम को वन-वन भटकना पड़ा। इस विघ्न के लिए वास्तव में मेरा अधैर्य ही कारणीभूत हुआ। मैं आपका एक भी वचन सह न सका। इसीलिए सीता-हरण हुआ। श्रीराम संकट में पड़ गए, रावण द्वारा आपको कष्ट प्राप्त हुआ। राम, शरबंधन में पड़ गए। इन सब का मूल कारण निश्चित रूप से मैं पापी ही हूँ।" इस प्रकार सीता व लक्ष्मण दोनों स्वयं को अपराधी कहते हुए परस्पर एक दूसरे को समझाने लगे। तत्पश्चात् सौमित्र, सीता को सांत्वना देते हुए बोले– "यह सब श्रीराम द्वारा ही घटित है। उन्होंने ही आपके व मेरे मन में प्रत्येक प्रसंग में जो विचार उत्पन्न किये, उसी के अनुरूप घटित हुआ। आपके द्वारा कहे गए वचन व मेरा अधैर्य सब उन्हीं की लीला थी। वे सर्व-अन्तर्यामी हैं। राक्षसों के संहार तथा रावण-वध के लिए ही उन्होंने यह सब घटित करवाया। वही सबके मूलकर्ता हैं।" इतना कहकर लक्ष्मण ने सीता की चरण-वंदना करते हुए कहा– "मुझ पर कृपा दृष्टि रखें।"

सीता एवं लक्ष्मण की परस्पर एक दूसरे के प्रति आदर-भावना देखकर विभीषण व वानरगण सभी आश्चर्य चकित हुए। श्रीराम द्वारा ही सब घटित हुआ। सीता व लक्ष्मण दोनों को परस्पर क्षमा याचना करते हुए वे शान्त भाव से देख रहे थे, यह देखकर सब विस्मित हुए।

अध्याय ७३

[श्रीराम द्वारा पुष्पक विमान पर आरोहण]

विश्वकर्मा द्वारा नवनिर्मित विमान देखकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए। उस विमान पर श्रीराम की दृष्टि पड़ते ही वह विमान प्रकाशित हो उठा। उस दैदीप्यमान विमान को देखकर श्रीराम व लक्ष्मण मन ही मन आनन्दित हो गए। तत्पश्चात् श्रीराम ने सुग्रीव व विभीषण को समीप बुलाकर कहा– "दुर्जय युद्ध कर सभी बहुत थके हैं, अतः विश्राम के लिए अपने-अपने नगरों की ओर प्रस्थान करें।" सभी वानरगणों का उस विमान में बैठ सकना संभव नहीं है, यह देखकर विभीषण ने विनती की– "श्रीराम विमान में

बैठें, वानरगण रुक जायें।" विभीषण की इस सूचना पर वानरगण बोले - "स्वामी रघुत्तम, आप विश्वात्मा हैं। वानरों को सम्मान देकर आप भक्तों की महिमा को बढ़ा रहे हैं। हमें विमान की क्या आवश्यकता है ? आपके नाम के स्मरण मात्र से, हमें आकाश मार्ग से जाने की गति प्राप्त होती है। वानर गणों के वचन सुनकर श्रीराम को अति आनन्द हुआ। वे अकेले विमान में बैठना नहीं चाह रहे थे, इसीलिए विचारमग्न थे।

विमान में जाने के सम्बन्ध में योजना– श्रीराम ने सुझाया कि 'वानरगण सुग्रीव, युवराज अंगद सहित दस वानर श्रेष्ठों को अपने साथ विमान में बैठायेंगे। अन्य वानरगण पैदल मार्ग से जायेंगे। श्रीराम की सूचनानुसार विमान में जाने के लिए नल, जाम्बवंत, नील, सुषेण, दधिमुख, गंधमादन, तरल, गय तथा गवाक्ष को रोककर अन्य सभी को सेतु पर से जाने की आज्ञा दी गई। सभी वानर गणों ने आज्ञा मान्य की व श्रीराम को दंडवत् प्रणाम किया। उन्होंने श्रीराम- नाम की गर्जना की। श्रीराम के विमान में बैठने के पश्चात् प्रस्थान करने का वानरगणों ने निश्चय किया।

श्रीराम द्वारा विदा लेने से पूर्व व्यवस्था करना– श्रीराम ने विमान में बैठने से पूर्व माता, कैकसी, त्रिजटा, लंका निवासी तथा सभी उपस्थित लोगों के हालचाल पूछ कर उनसे विदा ली। तब वे विमान के पास गये। उन्होंने विमान का विधि-युक्त पूजन किया, प्रदक्षिणा की तथा नमन करने के पश्चात् ही विमान में आरोहण किया। उस समय आकाश से देवताओं ने और पृथ्वी पर ऋषियों एवं वानरगणों ने श्रीराम का जय-जयकार किया। श्रीराम सहित सीता भी विमान में बैठी थीं। सुमित्रा-नन्दन लक्ष्मण भी विमान में आरूढ़ हुए तथा सुग्रीव व अंगद सहित चुने हुए वानर श्रेष्ठ भी विमान पर चढ़े।

तत्पश्चात् श्रीराम ने विभीषण को समीप बुलाकर कहा– "हे विभीषण, अब नगर वासियों को वापस भेजो। माता को किसी प्रतिनिधि के साथ उसके भुवन भेजो तथा त्रिजटा व सरमा को उसे सौंप कर सभी को सुखी करो। अपने सेनापति को सैन्य सम्पत्ति सहित वापस भेजो"। विभीषण ने श्रीराम की आज्ञा का पालन करते हुए सभी कार्य किये। तत्पश्चात् श्रीराम की आज्ञानुसार अपने चार प्रधान लेकर विमान में आरूढ़ हुए। श्रीराम ने हनुमान को गौरवान्वित करते हुए विमान में बैठने के लिए कहा। तभी श्रीराम को नमन करने के लिए आगे आये विश्वकर्मा प्रेम के अतिरेक के कारण भाव विभोर हो उठे। उनकी यह स्थिति देखकर श्रीराम ने उन्हें कृपापूर्वक आलिंगनबद्ध किया। उन्हें श्रीराम ने सुख सम्पन्न होने का आशीर्वाद दिया।

विमान द्वारा यात्रा का प्रारम्भ; श्रीराम का कथन– श्रीराम के विमान में बैठते ही वानरों के भुभुःकार सुरवरों की जय-जयकार व श्रीराम-नाम की ध्वनि से आकाश गूँज उठा। सम्पूर्ण त्रिभुवन आनन्द से परिपूर्ण हो उठा। तत्पश्चात् विमान आकाश में उड़ चला। श्रीराम सन्तुष्ट हुए। उन्होंने सीता को समीप बैठाकर बीच की कालावधि में घटित घटनाओं को बताना प्रारम्भ किया।

"जानकी, तुम्हारे लिए वानरों ने अत्यन्त पराक्रम किया। त्रिकुट पर राक्षसों का संहार किया। लंका का दहन किया। यह सब अकेले हनुमान ने किया। रावण, कुंभकर्ण, इन्द्रजित् अक्षय, सेनानी प्रधान सबका वध कर डाला। यह सब तुम्हारे लिए किया। तत्पश्चात् विभीषण को राज्य प्रदान किया व तुम्हें मुक्त कराया।" श्रीराम जब यह बता रहे थे, उस समय विमान अत्यन्त वेगपूर्वक आगे बढ़ रहा था।

विमान के सागर के ऊपर से जाते समय श्रीराम बोले– "यह सागर हमारा परम मित्र है। इसने हम पर अत्यन्त उपकार किये हैं। हमारे पूर्वजों ने इसकी स्थापना की थी। उन उपकारों को स्मरण करते

हुए इसने सेतु निर्माण के विषय में सुझाव देते हुए कहा– सुग्रीव के सेनापति नल के कारण पाषाण तैरेंगे, जिससे पुल का निर्माण कर सुखपूर्वक लंका जायें।" श्रीराम जिस समय यह बता रहे थे, लक्ष्मण को हँसी आ गई श्रीराम अपनी महिमा को गौण कर बता रहे हैं, यह विचार कर वे सीता से बोले "माता जानकी ! सत्य तो यह है कि सागर ने सर्वप्रथम मार्ग देना अस्वीकार कर दिया था परन्तु श्रीराम द्वारा सागर को सोखने के लिए अग्निबाण को धनुष पर चढ़ाते ही सागर भयभीत होकर स्त्री पुत्रों सहित शरण में आया। पूजोपचार से श्रीराम को सन्तुष्ट कर उसने क्षमा माँगी। श्रीराम ने उस पर कृपा की व सुसज्ज किया हुआ अग्निबाण मरुभूमि (मारवाड़) में डाल दिया। लक्ष्मण जब यह बता रहे थे, विमान ने सागर पार कर लिया था। इसके पश्चात् जहाँ विभीषण ने श्रीराम से भेंट की थी, वे उस स्थान पर पहुँचे। उस समय रावण-विभीषण संवाद, विभीषण की शरणागति इत्यादि वृत्तान्त श्रीराम ने सीता को बताया। सेतु निर्माण में अकेले हनुमान ने सेतु का कितना भाग पूर्ण किया, यह भी श्रीराम ने बताया।

[श्रीराम का विमान जब श्री-क्षेत्र रामेश्वर के समीप आया तब पहले क्या घटित हुआ था, यह एकनाथ के शिष्य गावबा बताने लगे। वे नम्रतापूर्वक इसका सम्पूर्ण श्रेय एकनाथ व जनार्दन को देते हैं।]

अध्याय ७४

[भगवान् शंकर एवं हनुमान की श्रीक्षेत्रकाशी में भेंट]

[प्रस्तुत अध्याय के आरम्भ में लेखक गावबा श्रीराम की महत्ता के विषय में लिखते हैं। साथ ही सेतु माहात्म्य में आये उल्लेखों के आधार पर रामेश्वर के सम्बन्ध में भी निवेदन करते हैं।]

रामेश्वर स्थापना की पूर्वकथा– किष्किंधा से श्रीराम मारुति के कंधे पर बैठकर समुद्र के तट पर आये। उस समय ऐसा घटित हुआ कि शिव-दर्शन के बिना श्रीराम फलाहार नहीं करते थे। परन्तु सम्पूर्ण सागर तट पर ढूँढ़कर भी कहीं भी किसी को शिवलिंग नहीं मिला अतः सभी वानर चिन्तित हो गए। अन्त में सभी ने हनुमान को इस बाधा को दूर करने के लिए श्रीराम के पास भेजा। उन्होंने श्रीराम से कहा– "यहाँ कहीं भी शिवलिंग नहीं है, अतः वानर चिन्तित हैं। अब आप ही कुछ मार्ग दर्शन करें।" इस पर सन्तुष्ट होकर श्रीराम मारुति से बोले– "शिवलिंग की प्राप्ति कठिन है। इसके अतिरिक्त स्थापित शिवलिंग को हिलाना भी नहीं चाहिए। अतः मैं जाकर शिव की पूजा करके आता हूँ, तुम सब यहीं रुको।" श्रीराम के ये वचन सुनकर हनुमान सहित सभी वानरगण मूर्च्छित हो गए। यह देखकर श्रीराम को उन पर दया आ गई। उन्होंने अपने अमृत सदृश हाथों के स्पर्श से मारुति की मूर्च्छा दूर की। श्रीराम मारुति से बोले– "लिंग प्राप्ति का एक उपाय मुझे सूझा है, परन्तु उसमें पुनः तुम्हें ही कष्ट उठाने पड़ेंगे तुम अभी सीता को ढूँढ़ने में हुए कष्टों के कारण थके हुए हो। अतः तुम्हें पुनः दूसरे संकट में क्यों डालूँ, यह सोचकर वह उपाय मैंने तुमसे नहीं कहा।"

श्रीराम का मनोगत सुनते ही मारुति श्रीराम के चरणों पर गिर पड़े। वे श्रीराम से बोले– "मेरी यह देह आपकी कृपा से ही है। आपका नाम स्मरण करने से कोई संकट कैसे बच सकता है। आपका उपाय सफल करने के लिए मैं सत्यलोक तक भेद कर जा सकता हूँ। वह उपाय क्या है, मुझे बतायें,

जिससे मैं वैसा ही करूँगा व शिवलिंग प्राप्त करूँगा।" मारुति के इस आश्वासन से सन्तुष्ट होकर श्रीराम ने उन्हें आलिंगनबद्ध कर अपना मनोगत बताया।

श्रीकाशी विश्वेश्वर का माहात्म्य कथन– श्रीक्षेत्र काशी में त्रिपुरारि नामक कृपालु राजा शिव एवं ब्रह्म का उपासक था। शिव कृपा से उसे मोक्ष प्राप्त हुआ। महापापी भी यदि काशी में प्राण त्यागते हैं, तो उन्हें भी मुक्ति प्राप्त होती है। ऐसी उस वाराणसी की महत्ता है। उस वाराणसी को भगवान् शिव ने त्रिशूल पर धारण किया है तथा वह पृथ्वी पर टिकी हुई है, तथापि वह अलिप्त ही है। ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्रादि समस्त देवगण यहाँ पर भगवान् शंकर की शरण में आये। इस स्थल की रक्षा क्षेत्रपाल करते हैं। इसकी शोभा कैलास व वैकुंठ से भी बढ़कर है। विघ्नों का यहाँ प्रवेश नहीं होता।

हनुमान को काशी भेजना– तत्पश्चात् श्रीराम ने मारुति से कहा– "तुम काशी-क्षेत्र जाकर भगवान् शिव को दंडवत् प्रणाम कर नमन करते हुए मेरी विनती बताओ कि 'सीता की खोज के कार्य में रघुनाथ समुद्र तट पर आये हैं। शिव दर्शन के बिना वे अन्न ग्रहण नहीं करते हैं। कहीं शिवलिंग नहीं मिल रहा है। अतः आपके यहाँ से शिवलिंग लाने के लिए मुझे भेजा है। तुम्हारे ऐसा कहते ही भगवान् शिव तुरन्त लिंग प्रदान करेंगे अन्यथा शिवलिंग प्राप्त नहीं होगा व तुम्हारे श्रम व्यर्थ जायेंगे।" श्रीराम के वचन सुनकर मारुति ने उनकी वंदना करते हुए कहा - "आपके प्रताप के समक्ष कोई भी कार्य असाध्य नहीं है। मैं क्षण में वहाँ पहुँच जाऊँगा। अतः काशी कहाँ है, यह बताकर मुझे जाने की आज्ञा दें।" इस पर सन्तुष्ट होकर रघुनाथ मारुति को प्रेमपूर्वक आलिंगनबद्ध करते हुए बोले– "यहाँ से उत्तर दिशा की ओर विंध्याद्रि पर्वत के पार अयोध्या से बीस योजन की दूरी पर विशाल काशी नगरी स्थित है, वहीं विश्वेश्वर का निवास है।"

मारुति की उड़ान एवं काशी में आगमन– हनुमान ने आवेशपूर्वक उड़ान भरी तब प्रकृति में हलचल मच गई। अनेक पर्वतों को लाँघकर अन्त में हनुमान काशी पहुँचे। मुख से वे रामनाम का स्मरण कर रहे थे। वहाँ के रक्षक चकित होकर सोचने लगे कि यह दिखने में तो वानर जैसा है, परन्तु मुख में श्रीराम नाम है। श्रीराम के नाम के कारण सभी स्तब्ध हो गए व विचार करने लगे– 'यह वानर महावीर कालरुद्राग्नि सदृश दिखाई दे रहा है और हमारे स्वामी के ध्येय श्रीराम के नाम का उच्चारण कर रहा है। अतः इसका विरोध करने पर शिव क्रोधित होंगे'। यह सोचकर सब तटस्थ खड़े रहे। मारुति ने श्रीविश्वनाथ के दर्शनों के लिए नगरी में प्रवेश किया।

काशी-वर्णन; शिवजी की राम भक्ति– भगवान् शंकर के त्रिशूल पर टिकी हुई काशी नगरी बाजार, घर इत्यादि विविध भवनों की रचना से सजी हुई थी। यहाँ के नवद्वार युक्त देवालय, दुधारु कामधेनु से भरे हुए घर व कल्पतरु से सजे हुए वन एवं उद्यानों के कारण नगरी की शोभा द्विगुणित हो रही थी। नगरवासी अखंड रूप से भगवान् शंकर के ध्यान में मग्न थे। रुद्राक्ष धारण किये हुए, सर्वांग भस्म लगाये हुए तथा निरन्तर शिव-नाम का जाप करने वाले नागरिकों का वहाँ निवास था। ऐसी उस काशी नगरी में भगवान् शंकर श्रुति, उपनिषद् आदि का मंथन कर श्रीराम-नाम रूपी घृत निर्माण कर जीवों को परमामृत प्रदान कर रहे थे। भगवान् शंकर ने श्रीराम के प्रति अपने प्रेम का पाठ नगरी के लोगों को भी पढ़ाया था। "श्रीराम पूर्ण ब्रह्म हैं, चैतन्यस्वरूप हैं। वही पूर्ण रहस्य एवं उसका समाधान हैं। राम-नाम तारने वाला है, उससे चित्त चैतन्यस्वरूप होता है, यही वे सबको उपदेश देते थे।

श्रीशंकर भगवान् को राम-नाम के प्रति आदर होने के कारण राम-नाम का उद्घोष करने वाले वानर को काशी में आया हुआ देखकर, वे उसके दर्शनों के लिए निकले। स्वयं शंकर राम-नाम के प्रभावस्वरूप कर्पूर बन गए। पंचानन, जटाधारी, त्रिनेत्रधारी सर्पभूषणों से सुशोभित श्रीशंकर, श्रीराम के अनन्य भक्त थे। अतः राम-नाम का जाप करने वाले हनुमान से भेंट करने के लिए वे स्वयं चल पड़े। हनुमान को देखकर उन्हें आनन्द हुआ। दोनों आलिंगनबद्ध हुए, जिसके कारण वे आत्मरूप में मग्न हो गए। रामदूत होने के कारण भगवान् शिव की हनुमान के प्रति आदर की भावना जागृत हुई। मारुति रुद्र के अवतार, भगवान् शिव स्वयं रुद्र, दोनों ही राम भक्त, उनका अपूर्व मिलन होकर दोनों ही सुखी हुए।

मारुति द्वारा पूर्ववृत्तान्त कथन– भगवान् शंकर ने मारुति का सत्कार किया। तत्पश्चात् उनसे प्रश्न करते हुए बोले– "आप कहाँ से आये हैं ? कहाँ के निवासी हैं ? कौन हैं ? किस प्रयोजन से आये हैं ? आपका शरीर तो वानर का दिखाई दे रहा है परन्तु आपके मुख में राम-नाम है। आप वनचर होते हुए भी रामनाम का उच्चारण किस प्रकार कर रहे हैं ? श्री शंकर के प्रश्न सुनकर उनकी वंदना कर हनुमान उत्तर देते हुए बोले– "सनातन युग में सृष्टि की निर्मिति से पूर्व नाम रूपातीत अवस्था में विद्यमान पूर्णब्रह्म ही श्रीराम के रूप में मूर्तिमंत अवस्था में प्रकट हुए हैं। क्योंकि पुलस्त्य का पुत्र लंकापति रावण राक्षसी प्रवृत्ति का था। वह अत्यन्त उन्मत्त था। उसने पृथ्वी पर अनेक दुष्कर्म किये, उसने सुरगणों को भी बन्दी बना लिया। तब वैकुंठ में रमा सहित निवास करने वाले श्रीविष्णु से पृथ्वी एवं सुरगणों ने विनती की कि रावण का संहार करें। तब सच्चिदानन्द को उन पर दया आ गई। उन्होंने आश्वासन देकर कहा कि– 'मैं रावण का वध करूँगा। इसके लिए सूर्यवंशी दशरथ के पुत्र राम के रूप में मैं अवतार लूँगा। रावण सीता का हरण करेगा, तब मैं उसका निर्दलन करूँगा। आप सुरगण वानर रूप में आयें। मूल माया जानकी बनकर कलह का कारण बनेगी।' इस आश्वासन से सुरगणादि सुखी हुए।

आगे यथाकाल सूर्यवंश में दशरथ-पुत्र के रूप में उस पूर्ण ब्रह्म ने श्रीराम के रूप में अवतार लिया। तत्पश्चात् विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा, ताड़का वध, सीता स्वयंवर के लिए जाते समय अहिल्या का उद्धार इत्यादि अनेक कल्याणकारी लीलाएँ श्रीराम ने कीं। हे शंकर, परशुराम ने आपका धनुष राजा जनक के यहाँ रखा था। वही सीता के स्वयंवर के लिए प्रण के रूप में रखा गया था कि जो उस पर प्रत्यंचा चढ़ायेगा, उसे सीता वरण करेगी। उस प्रसंग में रावण भी आया था यद्यपि वह प्रण पूर्ण करने में असफल हुआ तथापि उसके मन में सीता की अभिलाषा बनी रही। श्रीराम ने धनुर्भंग कर सीता को प्राप्त किया।

श्रीराम पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए सीता व लक्ष्मण सहित वनवास के लिए गये। उन्होंने जनस्थान को राक्षसों से मुक्त किया। रावण ने कपट वेश में आकर सीता का हरण किया। तत्पश्चात् सुग्रीव से मैत्री होने पर श्रीराम ने बालि का वध किया, जिससे हम सभी वानर श्रीराम के सेवक बन गए। मैं हनुमान उन्हीं में से एक हूँ। हम सीता को ढूँढ़ते हुए समुद्र तट पर आये। उस समय सागर ने शरण में आकर लंका में जाने के लिए सेतु-निर्माण का सुझाव दिया। तत्पश्चात् फलाहार कर हम प्रस्थान करने ही वाले थे कि श्रीराम शिव की पूजा के लिए शिवलिंग ढूँढ़ने लगे क्योंकि वे शिवदर्शन के बिना फलाहार नहीं करते थे। वहाँ कहीं शिवलिंग दिखाई नहीं दिया अतः श्रीराम स्वयं शिवदर्शन के लिए चल पड़े, जिससे वानरगण विभीषण सभी दुःखी हो गये। तब हमने प्रार्थना की कि शिवलिंग प्राप्ति के लिए कुछ उपाय बतायें।"

हमारी दीन अवस्था देखकर कृपालु श्रीराम ने बताया कि वाराणसी जाकर श्रीविश्वेश्वर से भेंट करूँ। वानर होते हुए भी मुझे श्रीराम कृपा से शिवचरणों के दर्शन हुए। अत:अब आप शीघ्र विचार करें कि क्या करना है और मुझे आज्ञा प्रदान करें क्योंकि श्रीराम फलाहार के लिए राह देख रहे होंगे।

हनुमान का निवेदन सुनकर भगवान् शिव को अत्यधिक आनन्द हुआ और उन्होंने प्रेमपूर्वक मारुति को आलिंगनबद्ध कर लिया। मैं जिसका नित्य स्मरण करता हूँ, उसके ही दूत से भेंट हो गई। यह विचार कर वे सुध-बुध भूलकर नाचने लगे। यह देखकर उमा व शिवगण भी आनन्दपूर्वक नाचते हुए राम की कीर्ति का गान करने लगे।

अध्याय ७५

[शिवलिंग सहित हनुमान का आगमन]

श्रीराम के पूर्ववृत्त को सुनकर भगवान् शिव सन्तुष्ट हुए। वे भी पूर्ववृत्त कथन करते हुए विध्यपर्वत की कथा सुनाने लगे। वे बोले– "एक बार जब नारद मुनि त्रिभुवन में घूम रहे थे तब उनकी विंध्याद्रि से भेंट हुई। उसने मुनि की वंदना करते हुए कहा– "आप तो सर्वत्र संचार करते हैं, तब आपको कौन सी अपूर्व भूमि दिखाई पड़ी। लक्ष्मी की समृद्धि से परिपूर्ण स्थान कौन से थे। कौन से ऐश्वर्य सम्पन्न पर्वत आपको दिखाई दिये, यह सब कृपा कर मुझे बतायें।" विंध्याद्रि की विनती सुनकर नारद ने पहचान लिया था इसके मन में अपने लिए गर्व उत्पन्न हो गया है। अत: उसके गर्व हरण का निश्चय कर नारद ने मेरु पर्वत की स्तुति आरम्भ की।

विंध्याद्रि कथा; अगस्त्य का दक्षिण की ओर गमन– नारद बोले– "मेरु पर्वत के पास तुमसे करोड़ों गुना अधिक समृद्धि है। उसे सप्तर्षि व सुरासुर अत्यधिक सम्मान देते हैं। उसकी आज्ञा का सभी पालन करते हैं। इन्द्र उससे स्वयं समृद्धि की माँग करते हैं। वास्तव में इस ब्रह्मांड मे मेरु सदृश महान कोई नहीं है।" इतना कहकर नारद ने ब्रह्मवीणा की झंकार करते हुए वहाँ से प्रस्थान किया। नारद के वचन सुनकर विंध्याद्रि के अभिमान को ठेस पहुँची और वह आकाश तक ऊँचाई में बढ़ता ही चला गया, जिसके कारण चन्द्र, सूर्य, ग्रह नक्षत्र इत्यादि की गति अवरुद्ध हो गई। सर्वत्र अंधकार फैल गया। सुरगण चिन्तित हो गए। ऋषियों के यज्ञ रुक गए। अन्त में सबने काशी आकर भगवान् शंकर की प्रार्थना कर, यह संकट दूर करने की विनती की।"

उस समय नारद आकर बोले– "अगस्त्य ऋषि को दक्षिण की ओर भेजें, जिससे वे विंध्याद्रि का गर्व हरण करेंगे तथा राक्षसों के भय से बंजर हुए दण्डकारण्य का भी पुनर्वसन करेंगे।" नारद की सूचना के अनुसार मैंने अगस्त्य से विनती की परन्तु वे काशी नगरी छोड़ने को तैयार नहीं थे। उन्होंने कहा कि मेरे नित्य के विश्वेश्वर के दर्शन में बाधा आयेगी। मैंने स्वयं उन्हें समझाने का प्रयत्न किया परन्तु वे शिव-दर्शन से वंचित रहने को तैयार नहीं हुए। अन्त में मैंने उन्हें आश्वासन देकर कहा कि 'श्रीराम के दर्शन की मेरी तीव्र इच्छा है, उसके लिए मैं स्वयं दक्षिण आऊँगा। उस समय आपको मेरे दर्शन होंगे। श्रीराम रावण-वध हेतु दक्षिण की ओर आने वाले हैं, तब मैं अवश्य आऊँगा।" तत्पश्चात्

मैंने अगस्त्य ऋषि को श्रीराम की महत्ता बतायी। तब परब्रह्म के अवतार श्रीराम व भगवान् शिव दोनों के दर्शन उन्हें होंगे, यह विचार कर अगस्त्य दक्षिण को ओर जाने के लिए तैयार हुए।

भगवान् शिव द्वारा मारुति को शिवलिंग की प्राप्ति– शंकर जी ने विंध्याद्रि का गर्वहरण और अगस्त्य ऋषि को दक्षिण की ओर भेजने का पूर्ववृत्तान्त बताया एवं स्वयं के लिंग रूप में दक्षिण की ओर आगमन की सूचना देते हुए कहा "मेरे स्वयं वहाँ आने पर काशी में हाहाकार मच जाएगा। नगरी उजाड़ हो जाएगी। इसीलिए मैं शिवलिंग प्रदान कर रहा हूँ, उसे ले जायें।" मारुति यह सुनकर प्रसन्न हुए और उन्होंने शीघ्र लिंग प्रदान करने की विनती की। भगवान् शिव ने आत्मतेज आकर्षित कर लिंग निर्मित किया तथा उसे मारुति को दे दिया।

मारुति ने शंकर जी को नमन किया और तब राम-नाम का स्मरण कर उड़ान भरी। उनकी उड़ान की गति देखकर सभी चकित रह गए।

अध्याय ७६

[श्रीरामेश्वर महिमा वर्णन]

हनुमान को विलम्ब होता देखकर श्रीराम चिन्ताग्रस्त हो गए। उन्होंने देखा कि वे शिवलिंग को पूजा किये बिना फलाहार नहीं कर रहे हैं, इसलिए वानर भी फलाहार नहीं कर रहे हैं। इन वानरों की, उनके कारण दुर्दशा हो रही है।

श्रीराम का मनोगत– श्रीराम सोचने लगे– "उनके कारण वानरों की यह अवस्था, मात्र वानरों की उनके प्रति अनन्य भक्ति के कारण हो रही है। ये वानर मन ही मन उनको दोष दे रहे होंगे। ये सोच रहे होंगे कि 'संकट का निवारण हो सके, इसीलिए हम श्रीराम की सेवा कर रहे हैं परन्तु वे ही हमें क्षुधा के कारण कष्ट दे रहे हैं।' अतः वानर ही नहीं वरन् अन्य लोग भी मुझे दोष देंगे। गुरु वशिष्ठ ने मुझे शिवपूजा का महत्व बताते हुए कहा था कि शिव की पूजा से प्राणिमात्र को सुख की प्राप्ति होती है परन्तु यहाँ तो उस पूजा के कारण वानर क्षुधा से पीड़ित हो रहे हैं। अतः भगवान् शंकर भी रुष्ट हो जाएँगे। सर्वत्र ईश्वर का अनुभव करना ज्ञान का प्रधान लक्षण है। सभी प्राणिमात्र को सुख प्रदान करना ही सच्चा भजन है। अतः वानरों की उपेक्षा करते हुए शिव की प्रतिमा का पूजन करने से शिवशंकर को सुख का अनुभव नहीं होगा। प्रतिमापूजन तो मात्र लौकिक आचार है। अतः वानरों को सन्तुष्ट करना ही सच्ची भक्ति है।"

श्रीराम द्वारा बालू का शिवलिंग बनाना, उसमें शिव जी का प्रवेश– श्रीराम ने वानरों को सन्तुष्ट करने के लिए समुद्र के तट पर बालू का शिवलिंग बनाकर उसकी पूजा करने का निश्चय किया। उसके अनुसार उन्होंने लिंग निर्माण कर पूजा प्रारम्भ की। स्वयं श्रीराम द्वारा प्रतिमा का आवाहन करते ही भगवान् शंकर की स्थिति कठिन हो गई। वे सोचने लगे– "मारुति से बोलने में समय नष्ट करने के कारण ही श्रीराम के दर्शन में विलम्ब हुआ। मैं व्यर्थ ही विंध्याद्रि की कथा सुनाने लगा और श्रीराम से भेंट करने में देर कर दी, जिससे श्रीराम रुष्ट हो गए।"

अब शीघ्र श्रीराम के दर्शन कर उनका क्रोध दूर करने का विचार कर उन्होंने मारुति को पीछे छोड़कर, शीघ्र जाकर बालू से बने शिवलिंग में प्रवेश किया। श्रीराम ने प्राण-प्रतिष्ठा कर उनकी पूजा की। तत्पश्चात् स्वयं फलाहार कर वानरों की भी क्षुधा शान्त की। यह सब होने के पश्चात् हनुमान वहाँ पहुँचे।

मारुति का क्रोध, अभिमान का परिणाम– 'बालू का शिवलिंग निर्मित कर श्रीराम ने अपना कार्य सिद्ध किया परन्तु मुझे काशी भेजकर व्यर्थ ही कष्ट दिया, इस विचार से मारुति अस्वस्थ हो गए। उन्होंने क्रोधित होकर अभिमानपूर्वक कहा "मैं श्रीराम द्वारा स्थापित शिवलिंग को उखाड़कर स्वयं लाया हुआ शिवलिंग स्थापित करूँगा।" उनका यह अभिमान व अहंकार श्रीराम को सहन नहीं हुआ परन्तु वे चुप रहे। मारुति की अभिमान-ग्रस्त आँखों के समक्ष अँधेरा छा गया। उन्हें श्रीराम भी नहीं दिखाई दे रहे थे। मारुति ने अपनी पूँछ से लिंग उखाड़ने का प्रयास किया। तब उनकी पूँछ टूट गई और वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े। उनके घमंड का यह फल प्राप्त हुआ। अभिमान और गर्व हमेशा विफल होते हैं। इन्द्र व दुर्वासा की कथाएँ यही बताती हैं। यहाँ तो श्रीराम के समक्ष मारुति ने गर्व किया इसीलिए उनकी दुर्दशा हुई। तब स्वयं शंकर ने प्रत्यक्ष उपस्थित होकर श्रीराम से विनती की कि 'हे श्रीराम, हनुमान तुम्हारा भक्त है। तुम तो भक्तों के हितैषी हो। यह सब होने का कारण मैं ही हूँ। मेरे मन के अभिमान व हनुमान के बल के अभिमान को उचित दण्ड प्राप्त हुआ है। मैं व हनुमान तुम्हारे ही अंशावतार हैं। अत: हमारी उद्दण्डता को क्षमा करें तथा हनुमान की मूर्च्छा दूर करें।'

श्रीराम का समाधि अवस्था में जाना, भगवान् शिव की विनती– श्रीराम 'शिव-शिव' ऐसा जाप करते हुए भगवान् शिव में एकाकार हो गए तथा समाधि अवस्था में बैठे रहे। श्रीराम को ध्यानस्थ मुद्रा में देखकर वानर गण चिन्तित हो गए। अब आगे का कार्य कैसे सम्भव हो सकेगा, इस विचार से वे अस्वस्थ हो गए। श्रीशिव के दर्शन के कारण यह कैसा अनर्थ उत्पन्न हो गया है। 'श्रीराम समाधि अवस्था में हैं। हनुमान की पूँछ टूटकर वे मूर्च्छित पड़े हुए हैं। साक्षात् शिव जी के समीप होते हुए भी यह सब घटित होकर कार्य अवरुद्ध हो गया।' ऐसा सभी वानरगण कहने लगे। शंकर जी भी चिन्तित हो गए। उनके मन में आया कि 'श्रीराम की समाधि नहीं टूटी तो हाहाकार मच जाएगा। हनुमान की मूर्च्छा दूर करना, रावण वध करना, सीता मुक्त करना, ये सभी कार्य अधूरे रह जाएँगे। उसके कारण मेरा भी उपहास होगा ' यह विचार कर शंकर भगवान् श्रीराम की समाधि दूर करने का प्रयास करने लगे। उन्होंने श्रीराम के अन्तर्मन में प्रवेश किया। उनकी चेतना को सजग किया तथा प्राणशक्ति जागृत कर इन्द्रियों को सक्रिय किया। श्रीराम की समाधि टूटी। शिवजी उनसे बोले– "हे श्रीराम, तुम्हारे असमय इस प्रकार समाधिस्थ होने से कितना अनर्थ हो जाएगा। देवताओं एवं नवग्रहों की मुक्ति कैसे होगी ? परमात्मा ही अगर समाधिस्थ हो गया तो भक्ति भाव से तुम्हारी शरण में आये भक्तों का कल्याण कैसे होगा व कौन करेगा ? अत: समाधि त्याग कर सावधान हों। सभी अपराधों के लिए क्षमा प्रदान कर वायुनंदन हनुमान को उठायें।"

श्रीराम का सजग होना, उनके द्वारा रामेश्वर महिमा बताया जाना– शंकर जी की विनती सुनकर श्रीराम ने समाधि अवस्था का त्याग किया। शिव की वंदना कर श्रीराम बोले– "आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। हनुमान अपराधी नहीं है। उसने तो इस क्षेत्र की कीर्ति में वृद्धि कर पतितोद्धार किया है। हे विश्वनाथ, सेतुबन्धन की कथा साधारण रूप से बताता हूँ, उसे सुनें- 'इस सेतु के किनारे यह दो अभिनव लिंग हैं। कपिश्रेष्ठ हनुमान जो लिंग लाये हैं, वह निश्चित ही स्वयं आप ही हैं। हनुमान ने सभी

को मोक्षप्राप्ति का साधन उपलब्ध कराया है। यह तपस्थिति कुछ कम नहीं है।' तत्पश्चात् स्वयं श्रीराम ने भगवान् शंकर को रामेश्वर क्षेत्र की महत्ता बतायी।

श्रीराम बोले- "इस सेतु के तट पर दोनों लिंगों का अभिनव महत्व है। जिसे हनुमान लाये हैं, वह निश्चित ही विश्वनाथ हैं। आप स्वयं ज्योति रूप में प्रकाशित हुए, वहाँ पूर्ण ज्योतिलिंग है। विश्व के उद्धार के लिए आप कृपापूर्वक प्रगट हुए यह वही ज्योतिलिंग है। यही मेरा ध्येय व अधिष्ठान है, शिव राममय एवं राम शिवमय, ऐसी यहाँ स्थिति है। हनुमान द्वारा विश्वेश्वर को प्रार्थनापूर्वक लाये जाने के कारण, यह शिवरामात्मक-क्षेत्र अब सेतुबंध रामेश्वर के नाम से प्रसिद्ध होगा। यह प्राणिमात्र का उद्धार करेगा। महापातकी, चारों वर्णों के लोगों द्वारा इसका दर्शन करने पर उनका उद्धार होगा। इसके पश्चात् श्रीराम ने महापातकियों के पाँच लक्षण, द्रव्य लोभी, मातृगमनी की स्थिति, दुर्जनों की व सज्जनों की संगति तथा उनका परिणाम बताते हुए श्रीरामेश्वर दर्शन से होने वाली मुक्ति के लाभ का वर्णन किया।

मारुति की चेतना लौटना; उनका पश्चाताप, क्षमा याचना- श्रीराम ने मारुति के समीप जाकर उसे अपने समीप लेकर उसके सर्वांग पर से अपना अमृत रूपी हाथ घुमाया। हनुमान की चेतना लौट आयी व उनकी टूटी हुई पूँछ पुनः जुड़ गई। तब मारुति को श्रीराम के समक्ष लज्जा का अनुभव हुआ। वह पश्चाताप करते हुए स्वयं से ही बोला- 'मैंने राम की अवज्ञा की, जिसका मुझे दण्ड मिला। मुझे अपनी भक्ति का, वज्र देही होने का अभिमान हो गया था, इसीलिए मेरा पतन हुआ। श्रीराम कृपालु हैं, उन्होंने मुझे उबार लिया।' ऐसा विचार करते हुए मारुति श्रीराम के चरणों पर गिर पड़े और उनकी वंदना की। श्रीराम सन्तुष्ट होकर बोले "हनुमान तुम चिन्तित न हो तुमसे अनुचित कुछ घटित नहीं होगा। अरे, क्षेत्र महिमा को बढ़ाने के लिए स्वयं विश्वेश्वर ने ही यह सब करवाया है। तुम्हारी अवस्था से तुम्हें उबारने की, उन्होंने ही विनती की है। यह सब घटित होने से ही क्षेत्र की महिमा बढ़ी है।" श्रीराम ज्योतिर्लिंग नाम रखने का कारण बताते हुए बोले- "विश्वनाथ ने चैतन्य ज्योति मेरे हाथों से स्थापित करायी, इसीलिए उसे 'ज्योतिर्लिंग' नाम दिया है। यह 'ज्योतिर्लिंग' शिव एवं राम से युक्त होने के कारण उसे 'रामेश्वर' कहते हैं। जो व्यक्ति मणिकर्णिका का जल लाकर सेतु बंध के समीप स्थित 'रामेश्वर' का अभिषेक करेगा। वह राम रूप होगा।" तत्पश्चात् मारुति एवं विश्वेश्वर ने श्रीराम द्वारा किये गए कार्यों का, सेतुबंध का तथा रामेश्वर की महत्ता का वर्णन किया। श्रीराम के वनवास एवं समुद्र तट पर आगमन के पीछे विश्वोद्धार का उद्देश्य होने का विभीषण सहित सभी ने गौरवगान किया।

अध्याय ७७

[अगस्त ऋषि की श्रीराम से भेंट]

श्रीराम ने सीता सहित विमान से जाते हुए 'रामेश्वर' के समीप विमान को उतरवाया। वहाँ अनेक ऋषि श्रीराम के दर्शनों के लिए आये। उनमें अगस्त्य ऋषि भी थे। उनके साथ लोपामुद्रा भी आयी थी।

अगस्त्य एवं श्रीराम द्वारा परस्पर एक दूसरे की स्तुति करना- अगस्त्य बोले- "हे श्रीराम, आपने सकल विश्व के कल्याण के लिए अवतार लेकर वाल्मीकि की वाणी को प्रत्यक्ष रूप दिया। दुष्टों का निर्दलन कर दक्षिण क्षेत्र को सुखी किया। भगवान् शंकर ने जब मुझे दक्षिण की ओर भेजा

तब उन्होंने कहा था कि मुझे श्रीराम के दर्शन होंगे। आज वास्तव में उस निर्गुण परब्रह्म के राम रूप में मैंने दर्शन किये।"

अगस्त्य के वचन सुनकर श्रीराम प्रसन्न होकर बोले- "ऋषिवर्य, आपकी कृपा से दण्डकारण्य की पुनर्स्थापना हुई। इसीलिए आगे के कार्य सिद्ध हो सके।"

लोपामुद्रा-सीता संवाद- श्रीराम ऋषि समुदाय सहित श्रीरामेश्वर-तीर्थ में विधि विधान हेतु गये, तब लोपामुद्रा प्रेम-पूर्वक सीता से बातें करने लगी। लोपामुद्रा ने श्रीराम के वनवास से लेकर घटित घटनाओं के सम्बन्ध में पूछा। सीता ने श्रीराम द्वारा घटित घटनाओं का गौरवपूर्वक कथन किया। उसमें बालि-वध, सुग्रीव को राज्य प्रदान करना, रावण-वध इत्यादि उल्लेखों के साथ विशेष रूप से सेतुबंधन तथा पाषाणों के पानी पर तैरने इत्यादि श्रीराम के कार्यों की प्रशंसा सीता द्वारा की गई। इस पर लोपामुद्रा हँसते हुए बोली- "तुम विचार किये बिना ही श्रीराम की कीर्ति का वर्णन कर रही हो। अरी, स्त्री एवं राज्य के लोभ के कारण बालि का घात हुआ तथा तुम्हारे आत्मक्रोध से रावण भस्म हुआ, इसमें श्रीराम ने क्या विशेष किया। तुम सेतुबंध व सागर पर पाषाण तैराने का गौरवपूर्वक उल्लेख कर रही हो परन्तु इसे करते हुए राम को स्वयं कष्ट उठाने पड़े, परन्तु अगस्त्य ने तो सागर को आचमन मात्र से समाप्त कर दिया था। तत्पचात् पृथ्वी एवं जलचरों को असुविधा होने लगी। अतः सुरवरों एवं ऋषियों द्वारा विनती करने पर ऋषि अगस्त्य ने प्राशन किया हुआ जल मूत्र के द्वारा छोड़ दिया। इसीलिए सागर का जल खारा हो गया।"

लोपामुद्रा के वचनों में राम के लिए व्यक्त भावना ज्ञात होने पर सीता ने उपहासपूर्वक कहा "ऋषि का कृत्य, विश्व के लिए क्लेशकारक सिद्ध हुआ। उन्होंने सागर को खारा बनाकर सेवन के लिए अयोग्य कर दिया है, ऐसा ऋषि का कृत्य है, जिसके लिए उन्हें अपनी तपसम्पत्ति खर्च करनी पड़ी। उदार होने के कारण श्रीराम ने ऋषि के मूत्र को सेतुबंधी रामतीर्थ के स्नान से मुक्ति प्राप्त होने के योग्य कर पवित्र कर दिया है।" यह सुनकर लोपामुद्रा चकित हुई।

श्रीराम द्वारा सज्जनों एवं अगस्त्य का गौरव- सीता के वचन सुनकर श्रीराम ने उसे समझाने के लिए सज्जनों की महिमा का वर्णन किया। वे बोले- "सीते, तुम राम की महिमा का वर्णन कर रही हो परन्तु यह सब सज्जनों की कृपा है। पहले मुझे कोई नहीं पहचानता था। मेरा कोई स्वरूप अथवा नाम नहीं था, मैं सत्कृपा से सगुण हुआ। अतः हे जानकी, जिनकी चरण-धूलि भी पवित्र होती है, ऐसे सज्जनों के समक्ष अपनी कीर्ति का बखान नहीं करना चाहिए।" श्रीराम के ये वचन सुनकर लोपामुद्रा सन्तुष्ट हुई। तब श्रीराम ने अगस्त्य ऋषि को साक्षात् दंडवत् प्रणाम कर उनकी वंदना करते हुए कहा- "हे ऋषिवर्य, आपके कारण ही श्री विश्वनाथ दक्षिण की ओर आये, जिससे संसार को ज्योतिर्लिंग का दर्शन हुआ स्वयं भगवान् शंकर ने ही जगत् के उद्धार के लिए उसे प्रकट किया। आपने दण्डकारण्य को बसाया। राक्षसों से उसे मुक्त किया। आपकी कृपा से ही यह सब हो सका।" अगस्त्य ऋषि ने श्रीराम को वंदन कर अपने मन के भाव प्रकट करते हुए कहा- "श्रीराम, तुम्हारे कारण ही हमारा उद्धार हुआ। दण्डकारण्य पवित्र हुआ। यह शिवलिंग भी तुम्हारे प्रयत्नों से ही निर्मित हुआ है। तुम्हारे कारण जग का उद्धार होता है। तुम्हारा पवित्र नाम मुक्ति प्रदान करने वाला है। आज तुम्हारे प्रत्यक्ष दर्शन होकर मेरे भाग्य फलीभूत हुए।"

[इसके पश्चात् श्रीराम ने जनस्थान में मुनि, साधु, ऋषिगण आदि के प्रति आदर-भाव के कारण उन्हें वहाँ पर बसाने के लिए रामपुर गाँव स्थापित किया। उन्हें एक शिलापत्र भी प्रदान किया। आगे कलियुग में एक राजा की वृत्ति बदल गई। उन्होंने गाँव के लोगों को दण्ड भरने के लिए कहा परन्तु हनुमान के माध्यम से श्रीराम ने उन लोगों को बचाया, ऐसी एक कथा प्रसिद्ध है।]

अगस्त्य ऋषि ने श्रीराम की स्तुति की, ज्योतिर्लिंग की प्रदक्षिणा की तथा आगे की यात्रा के लिए प्रस्थान करने के हेतु विमान पर आरूढ़ हुए।

आगे विमान से जाते हुए श्रीराम ने सीता को सुग्रीव से भेंट, किष्किंधा वर्णन, बालि-वध, वानरों से मैत्री, शबरी की भेंट तथा जहाँ से सीता-हरण हुआ था, वह पंचवटी इत्यादि स्थान दिखाये। उनका विमान चित्रकूट पर से जाते हुए श्रीराम ने सीता को भरत-भेंट, पितरों के लिए पिंड-दान इत्यादि घटनाओं का स्मरण दिलाया। तत्पश्चात् उनका विमान अयोध्या की दिशा में आगे बढ़ा।

अध्याय ७८

[भरद्वाज-श्रीराम भेंट]

अयोध्या की दिशा में जब विमान आगे बढ़ रहा था, तब श्रीराम को भरद्वाज ऋषि का आश्रम दिखाई दिया। उनके विमान के तेज के कारण भरद्वाज ऋषि ने आश्चर्यपूर्वक विमान की ओर देखा। तब उन्हें वानर एवं राक्षस समुदाय सहित श्रीराम विमान में बैठे दिखाई दिए। उनके समीप जानकी भी बैठी थीं। तब उन्हें यह भी ध्यान आया कि श्रीराम का चौदह वर्ष का वनवास अब समाप्त हो चुका है। उन्होंने श्रीराम व सौमित्र को प्रणाम कर विनती करते हुए कहा कि– "श्रीराम, आज तुम्हारे दर्शनों से मेरे भाग्य खुल गए। हमारे धर्म एवं अनुष्ठान को आज पूर्ण फल की प्राप्ति हुई है। मेरी एक ही विनती है कि आप आश्रम में आकर हमारा आतिथ्य स्वीकार करें।" भक्तवत्सल श्रीराम ऋषि की विनती को स्वीकार कर आश्रम में आये।

भरद्वाज-श्रीराम भेंट– श्रीराम का विमान नीचे उतरते ही भरद्वाज ऋषि ने श्रीराम को साष्टांग प्रणाम किया। श्रीराम ने उन्हें उठाते हुए प्रेम-पूर्वक आलिंगनबद्ध कर लिया। ऋषि को अपनी देह चैतन्य स्वरूप होने का आभास हुआ। जीव-शिव का भेद वे भूल गए। श्रीराम भी देव भक्त भेद भूलकर सन्तुष्ट हुए। तत्पश्चात् ऋषिवर विभीषण सहित सबसे मिले। उस समय सभी श्रीराम-रूप होने का उन्हें आभास हुआ। इस आनन्द का अनुभव करने के पश्चात् ऋषि ने श्रीराम की षोडषोपचारों सहित पूजा की। अन्य लोगों को भी पूजा। तब भरद्वाज ने श्रीराम से भोजन के लिए विनती की। इस पर श्रीराम बोले– "ऋषिवर्य, मुझे क्षमा करें, उधर भरत ने व्रत पालन करते हुए चौदह वर्षों से वल्कल परिधान, भूमि शय्या तथा जटाबंधन व आहार-त्याग का व्रत धारण किया है। जब तक उसके व्रत की पूर्णता नहीं होती, मैं भोजन कैसे कर सकता हूँ ? आप सर्वज्ञ हैं, अतः आप ही विचार कर मुझे आज्ञा दें।" श्रीराम द्वारा ऐसा कहते ही भरद्वाज ऋषि ने उन्हें फलाहार करने की विनती की। श्रीराम ने उसे मान्य किया।

भरद्वाज ऋषि ने श्रीराम को विदा करते हुए अपना आनन्द व्यक्त किया। श्रीराम ने भी सन्तुष्ट होकर उन्हें वर माँगने के लिए कहा। तब भरद्वाज बोले– "हे श्रीराम, आपके नाम का हमें सतत स्मरण

हो। आपकी कृपा से आश्रम में सब प्रकार की सिद्धियाँ हैं। हमारे मन विषय-रहित हों। आपके दर्शन होना ही परम सौभाग्य की बात है। उसके पश्चात् कुछ माँगने के लिए शेष नहीं बचता। उनके ये वचन सुनकर श्रीराम ने उन्हें आलिंगनबद्ध कर सुखी किया। तत्पश्चात् श्रीराम अयोध्या प्रस्थान के लिए तैयार हुए।

हनुमान को भेजना– श्रीराम ने मन में सोचा कि 'मैं चौदह वर्ष दूर था। भरत मेरे वियोग से चिन्तित होगा। कदाचित् उसने देह त्याग तो नहीं किया होगा ? अतः वहाँ जाने से पूर्व वहाँ के समाचार ज्ञात कर लेने चाहिए। उन्होंने हनुमान को बुलाकर कहा "हे हनुमान, तुम अयोध्या जाकर मेरे आगमन की सूचना दो। वनवास एवं रावण-वध का वृत्तान्त विस्तार सहित निवेदन करो। मार्ग में मेरे मित्र गुह का शृंगवेरपुर पड़ेगा। उससे भेंट करके ही आगे जाना। नन्दिग्राम जाकर भरत से भेंट करना। उसकी स्थिति देखना। भरत को मेरे प्रति आदर व प्रेम है, इसमें शंका नहीं है, परन्तु राजनीति एवं लौकिक दृष्टि से उसकी वृत्ति समझना अनिवार्य है क्योंकि राज्य-लोभ के कारण धर्म-अधर्म का स्मरण नहीं रहता। मन भ्रमित हो जाता है। भरत का अयोध्या का राज्य पिता द्वारा प्राप्त किया हुआ तथा पिता द्वारा प्रदान किया हुआ होने के कारण, हम आनन्दपूर्वक वह उसे प्रदान करेंगे। जिसे जो प्रिय हो, वह उसे प्रदान करना ही श्रेष्ठ धर्म है। अतः तुम वहाँ जाकर वहाँ की स्थिति का निरीक्षण करो। हमारे आगमन की सूचना भरत को दो। इस पर उसकी प्रतिक्रिया देखकर शीघ्र वापस लौटो। तत्पश्चात् ही अयोध्या जाने के विषय में निश्चित करेंगे।

हनुमान-गुह भेंट; तत्पश्चात् नन्दिग्राम के लिए प्रस्थान– हनुमान ने श्रीराम की वंदना कर उड़ान भरी। श्रीराम की आज्ञा का पालन करने के लिए अमर्याद गति से वे जाने लगे। वे मुख से राम-नाम की गर्जना कर रहे थे। जब वे शृंगवेरपुर के ऊपर आकाश में पहुँचे तब उनके द्वारा किया जाने वाला रामनाम का उच्चारण सुनकर गुह अपने घर से बाहर आया। हनुमान को देखते ही उसने आश्चर्यचकित होकर प्रश्न पूछा- आप कौन हैं ? कहाँ से आये हैं ? आपका शरीर तो वानर का है परन्तु मुख से राम-नाम का उच्चारण कर रहे हैं। उसके प्रेमपूर्वक पूछे गए प्रश्न सुनकर मारुति प्रसन्न हुए। उन्होंने श्रीराम के विषय में गुह से विस्तारपूर्वक निवेदन किया। वे बोले–"श्रीराम ने ही मुझे आपके पास उनके आगमन की सूचना देने के लिए भेजा है।" यह सुनकर गुह ने मारुति को प्रणाम कर उनकी वंदना की। मारुति ने भी गुह का वंदन कर वहाँ से प्रस्थान किया।

हनुमान उड़ान भरकर शीघ्र नन्दिग्राम पहुँचे। भरत नन्दिग्राम में ही थे। वे नन्दिग्राम का दृश्य देखकर सन्तुष्ट हुए। सर्वत्र राम-नाम का उच्चारण हो रहा था। ऐसा लग रहा था मानों वहाँ राम भक्तों का समूह एकत्रित हो गया हो। तत्पश्चात् वे भरत के घर गए।

अध्याय ७९

[हनुमान-भरत भेंट]

भरत के गृह में हनुमान ने देखा कि कृशगात, तापस वेशधारी, व्रतस्थ वसिष्ठादि अनेक ऋषिवर्य भरत के चारों ओर बैठे हैं। उन व्रतस्थ ऋषियों की अस्थिपंजर हुई देह की तुलना में भरत की देह श्रीराम-नाम के स्मरण के कारण पुष्ट है, ऐसा मारुति को प्रतीत हुआ। इस कारण भरत दैदीप्यमान दिखाई

दे रहे थे। मारुति ने देखा कि उस समय श्रीराम के दर्शनों के लिए उत्सुक नगरवासी भरत को वंदन करने के लिए आये थे।

श्रीराम के आगमन में विलम्ब; सभी का चिन्ताग्रस्त होना– श्रीराम की पादुका का पूजन कर भरत ने ऋषियों से कहा– "चौदह वर्ष समाप्त होकर ऊपर दो दिन अधिक हो गए। श्रीराम अभी तक क्यों नहीं आये वे तो मूल रूप से ही विरक्त थे। उन्हें राज्य-भोग की चाह ही नहीं थी। उसमें वनवास प्राप्त हो गया इस कारण कहीं वे वहीं तो नहीं रम गए अथवा सौतेले भाई होने के नाते राम हमारी उपेक्षा कर रहे हैं ? पहले माता व ननिहाल के मोह में पड़कर श्रीराम से दूर हो गया। श्रीराम से भेंट के लिए जाने पर लोगों ने आरोप लगाया कि मैं श्रीराम को मारने के लिए गया हूँ। सभी ने मेरी निन्दा की। मुझे श्राप दिये। श्रीराम भी मेरा राज्याभिषेक करने के लिए ही तैयार थे। तभी मेरे प्राण चले जाते तो अच्छा होता। राम की आज्ञा से मैं वापस लौट आया परन्तु लोगों ने विपरीत अर्थ निकालकर मुझे दोषी ठहराया। कुछ समय पूर्व रामभक्त हनुमान औषधि सहित जाते हुए दिखाई दिये तब उन पर शरसंधान करने की धृष्टता की मैं ऐसा महापापी हूँ। हम राम के भाई कहलाते हैं, परन्तु वे हमें छोड़कर चले गये।" यह कहते हुए भरत दुःख के अतिरेक से मूर्च्छित हो गए। शत्रुघ्न भी श्रीराम के विरह से व्याकुल हो उठे।

दशरथ की पत्नियाँ वहाँ आयीं। उन्होंने भरत को ही श्रीराम समझा और भरत के दिखाई न देने से वे शोक करने लगीं। भरत सदृश राम, लक्ष्मण, सीता के वियोग में भी दुःखी होकर वे आक्रोश कर रही थीं तभी भरत की मूर्च्छा दूर हुई। वे दुःख प्रकट करते हुए बोले– "रघुनाथ क्यों नहीं आ रहे हैं ? रामायण में वाल्मीकि का कथन मिथ्या क्यों हो रहा है। स्वयं हनुमान ने भी कहा था कि वे श्रीराम को लेकर आयेंगे, वह भी क्या मिथ्या ही था ? साक्षात् श्रीराम ने भी कहा था कि 'पिता की आज्ञानुसार चौदह वर्ष का वनवास पूर्ण कर निश्चित लौट आऊँगा।' श्रीराम के वचन भी अगर व्यर्थ होंगे तो देह किसके लिए रखूँ, अब मेरा प्राण-त्याग करना ही उचित है।

हनुमान द्वारा श्रीराम के आगमन की सूचना देना– भरत का प्राण-त्याग करने का निर्णय सुनकर हनुमान भयभीत हो गए। श्रीराम के आगमन को सूचना अगर भरत को न दी गई तो वे वास्तव में प्राण त्याग करेंगे। यह सोचकर हनुमान ने तुरन्त राम-नाम की गर्जना की। हनुमान बोले– "हे भरत, आप जीवन समाप्त न करें। मैं श्रीराम को सौमित्र व सीता सहित लेकर आया हूँ। समस्त कार्य पूर्ण कर वे विमान से आ रहे हैं। मार्ग में भरद्वाज ऋषि की विनती पर उनके आश्रम में रुकना पड़ा। आप चिन्तित होंगे यह सोचकर श्रीराम व्याकुल हुए। इसीलिए उन्होंने मुझे आगे भेजकर आगमन की सूचना देने के लिए कहा है।"

हनुमान द्वारा श्रीराम के आगमन की सूचना देते ही भरत ने उन्हें दृढ़तापूर्वक आलिंगनबद्ध कर लिया। अन्य लोगों ने भी हनुमान की वंदना की। श्रीराम के स्वागत की तैयारी प्रारम्भ हो गई। वाद्यों की ध्वनि गूँजने लगी। घरों की व परिवार की सजावट प्रारम्भ हो गई। सर्वत्र आनन्द व उत्साह व्याप्त हो गया यह देखकर मारुति को अपार सन्तोष हुआ। मारुति ने प्रधान सुमंत्र से कहा– "आप सभी केवल आनन्द में मग्न रहे तो श्रीराम का स्वागत कैसे होगा ? अतः स्वागत की सामग्री व सेना तैयार करिये।" हनुमान द्वारा ऐसा कहते ही भरत उन्हें कौतुकपूर्ण दृष्टि से देखने लगे। उन्होंने हनुमान को धन्यवाद दिया। इस पर हनुमान ने नम्रतापूर्वक कहा कि 'मैं श्रीराम की भाँति ही भरत का भी सेवक हूँ।'

भरत को मारुति की नम्रता देखकर अपार सन्तोष का अनुभव हुआ उन्होंने मारुति की प्रशंसा

करते हुए कहा - "हे हनुमंत, हमें अत्यन्त प्रिय राम-कथा और उनकी विजय यात्रा सुनाकर तुमने अपार आनन्द प्रदान किया है। अतः मैं तुम्हें क्या दूँ ?" इस पर मारुति ने विनती करते हुए कहा "मुझ राम-भक्त को श्रीराम के चरणों में अखंड सेवा करने की अनुकंपा चाहिए। उसके अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की इच्छा नहीं है।" यह सुनकर सन्तुष्ट हुए भरत ने उनका सत्कार किया। श्रीराम के आगमन का आनन्द भरत ने अनेक प्रकार का दान, धर्म कर व्यक्त किया। तत्पश्चात् उन्होंने श्रीराम का स्वागत करने के लिए प्रस्थान किया।

अध्याय ८०

[अयोध्या नगरी में श्रीराम के स्वागत की तैयारी]

श्रीराम के स्वागत एवं दर्शनों की सभी को उत्कंठा थी। इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति उसे सौंपा गया कार्य अत्यन्त तत्परतापूर्वक मन लगाकर कर रहा था। सुमंत्र सेना सज्ज करने के कार्य में तो शत्रुघ्न नगरी को सजाने में मगन थे।

नगरी का सौन्दर्य– नगरी के प्रमुख सदन व नागरिकों के घरों को सजाने की धूम मच गई नक्षत्र माला, सुमनमाला, इत्यादि से सभामंडप, स्त्रीशाला, चित्रशाला, भांडार को सजाया गया। गजशाला, अश्वशाला एवं शस्त्रशाला को भी सजाया गया। घरों में स्वागत चिह्न पताकाएँ, ध्वज इत्यादि लगाकर घर सजाये गए। छिड़काव कर रंगोलियाँ बनाकर रास्तों को सुसज्जित किया गया। इन सबकी देखरेख एवं निरीक्षण स्वयं शत्रुघ्न कर रहे थे।

श्रीराम के दर्शनों की सभी को उत्कंठा– भरत उत्साहपूर्वक आगे बढ़े। उनकी शीघ्रता देखकर अन्य सभी ने उतनी ही शीघ्रता से जाने का प्रयत्न किया। कौशल्या, सुमित्रा व कैकेयी तीनों राजमाताएँ, प्रधान, सेनापति, ऋषिगण सभी ने शीघ्र प्रस्थान किया। नागरिकों का उत्साह भी असीमित था। वे एक दूसरे के आगे दौड़ रहे थे। स्त्रियाँ, बालक, दास-दासियाँ, संन्यासी सभी भरत के पीछे तेजी से चलने लगे। ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों कोई शोभायात्रा निकल रही हो।

शोभायात्रा का वर्णन– उस शोभायात्रा में पीठ पर हौदे बँधे हुए हाथी थे। उनके ऊपर पताकाएँ फहरा रही थीं। घोड़ों की टापों की ध्वनि उत्पन्न हो रही थी, ध्वज पताकाओं से सजे हुए रथ, घुड़सवार, शस्त्रों से सुसज्जित सैनिक विभिन्न प्रकार के वाद्यों की ध्वनियाँ-ऐसी वह शोभायात्रा आगे बढ़ रही थी। श्रीराम की चरण-पादुकाओं को अपने शीश पर धारण कर शत्रुघ्न भी उसमें सम्मिलित हो गए। अन्त में पालकियाँ थीं परन्तु उनमें कोई बैठा नहीं था। श्रीराम अब दिखाई दे जाएँगे, थोड़ा आगे बढ़कर दिखाई देंगे, इस उत्कंठा से नगरी पीछे छोड़कर सभी शीघ्रता से आगे बढ़ रहे थे।

भरत की निराशा; मारुति का आश्वासन– श्रीराम को देखने की उत्कंठा से दसों दिशाओं को निहारते हुए भरत, विमान न दिखाई देने के कारण उद्विग्न हो उठे। मारुति के कथनानुसार विमान दिखाई न देने के कारण वे स्वयं को अभागा कहने लगे। अन्त में उन्होंने हनुमान से ही पूछा कि 'श्रीराम का विमान अभी तक कैसे नहीं आया।' इस पर हनुमान बोले– "श्रीराम निश्चित ही आ गये हैं। आपके

अति उत्साह के कारण आपको निराशा हो रही है। आपके पास आने से पूर्व मार्ग में मैंने ही रुककर गुह को श्रीराम के आगमन की वार्ता बतायी है।"

दूसरी ओर श्रीराम ने भरद्वाज ऋषि के आश्रम में रात्रि व्यतीत कर शीघ्रतापूर्वक प्रस्थान किया था। विमान के वानरगण रामनाम का जय-जयकार कर रहे थे तब गुह ने विमान को आकाश मार्ग से आते हुए देखा था। गुह ने भी रामनाम की गर्जना की, प्रणाम किया। तब श्रीराम ने उससे भी भेंट की। गुह को श्रीराम ने प्रेमपूर्वक आलिंगनबद्ध किया, जिससे गुह को पूर्ण सन्तोष की प्राप्ति हुई।

अध्याय ८१

[श्रीराम की भरत एवं अयोध्या-वासियों से भेंट]

हनुमान द्वारा बताये जाने पर भी भरत को सन्तोष नहीं हो रहा था। श्रीराम के आगमन में जैसे जैसे विलम्ब हो रहा था, वैसे वैसे भरत की अस्वस्थता बढ़ती जा रही थी। उनका मन विचलित हो रहा था। वे विलाप करते हुए भूमि पर गिरते हुए अपना दुःख व्यक्त कर रहे थे। स्वयं को दोष दे रहे थे, अन्त में उन्होंने निराश होकर हनुमान से पूछा- "अब मैं क्या करूँ। श्रीराम से कैसे भेंट होगी ? मैं निन्दनीय हूँ, राज्य का लोभी हूँ, यह सोचकर श्रीराम वापस लौट गये हैं, तब मैं भी क्यों जीवित रहूँ ? मैं तत्काल देह त्याग देता हूँ।" इस पर हनुमान ने भरत को धीरज बँधाते हुए कहा कि वे देह-त्याग न करें। वे बोले- "हे भरत, आप यह दुर्बुद्धि त्याग कर स्वयं को सम्हालें। यह देखें, उस ओर से श्रीराम का आगमन हो रहा है।"

श्रीराम का विमान आते ही आनन्दमय वातावरण हो जाना- श्रीराम का विमान आ पहुँचा। सीता व लक्ष्मण सहित श्रीराम के साथ लंकापति विभीषण, सुग्रीव, अंगद, वानर एवं भालुओं का भी आगमन हुआ। विमान में सभी श्रीराम नाम की गर्जना कर रहे थे। अयोध्या के समीप आते ही वानरगण वहाँ के वन में छलाँग लगाने लगे। वे एक दूसरे को चिढ़ाते हुए वहाँ के फलों का आस्वाद ले रहे थे। उनका आनन्दोत्सव देखकर भरत प्रसन्न हुए। श्रीराम के दर्शन से उनका मन हर्ष एवं आनन्द से भर आया। वे वेगपूर्वक जाकर श्रीराम के चरणों से लिपट गए। श्रीराम द्वारा भरत को आलिंगनबद्ध करते ही उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि वे राममय हो गए हैं। वही अवस्था शत्रुघ्न व अन्य सभी की थी। श्रीराम ने सभी को सुखी किया।

[इस प्रसंग का वर्णन करते हुए सन्त एकनाथ के शिष्य गावबा नम्रतापूर्वक बोले- "इस रामकथा का मर्म ज्ञान बताने की मेरी क्षमता नहीं है। वे एक जनार्दन ही मुझसे यह सब वर्णन करवा रहे हैं। इस ग्रंथ की रचना का श्रेय वे ही मुझे प्रदान कर रहे हैं।"]

श्रीराम की सबसे भेंट; राम द्वारा आदर व्यक्त करना- श्रीराम से मिलने के लिए उत्सुक सुमंत्र आदि प्रधान, वसिष्ठादि ऋषि सभी उनसे भेंट के लिए आगे बढे। श्रीराम के दर्शन से सभी को आत्म सन्तुष्टि प्राप्त हुई। अपने नित्य प्रतिदिन के व्यवहार भूलकर वे सभी श्रीराम के दर्शनों से तृप्त हो गए। श्रीराम भी अपना परब्रह्म स्वरूप त्याग कर साधारण मानव की भाँति सभी लोगों में सम्मिलित हुए उन्होंने गुरु वसिष्ठ को नम्रतापूर्वक नमन किया। वे परस्पर आलिंगनबद्ध होकर सन्तुष्ट हुए। वे अद्वैत

स्वरूप हो गए। तत्पश्चात् श्रीराम ने सर्वप्रथम भरत की माता कैकेयी से मिलकर उनकी चरण-वंदना की कैकेयी बोली– "हे राम, मेरे प्रति तुम अपने मन में क्रोध मत धारण करो। तुम मनःपूर्वक मुझसे क्रोधित नहीं हो, अतः मुझे अत्यन्त सुख का अनुभव हो रहा है। राम, तुम सर्वज्ञ हो, ज्ञाता हो, तुम परिपूर्ण परमात्मा हो। कर्म, कार्य, कर्तव्य सब तुम्हारे ही आधीन हैं। तुम्हें मैंने राज्य से वंचित कर वनवास के लिए भेजा, इसके लिए सम्पूर्ण संसार मेरी निन्दा करता है। परन्तु वास्तव में तुम्हीं इन सब घटनाओं को घटित करने वाले हो। तुम्हीं सबसे कार्य करवाते हो। मेरे भाग्य में अपराध आया परन्तु उससे तुम्हें विजय व कीर्ति की प्राप्ति हुई। कर्त्ता व करवाने वाले सब तुम्हीं हो।"

कैकेयी द्वारा कहे गए इन वचनों को स्वयं श्रीराम ने भी अनुभव किया। माता कैकेयी के चरणों पर गिरकर उन्हें साष्टांग दंडवत् प्रणाम करते हुए श्रीराम बोले– "आप मेरी माता हैं। आपके कारण ही मुझे यश प्राप्त हुआ। मेरे द्वारा घटित जगत्उद्धार आपके कारण ही साकार हुआ। मुझे सबसे प्राप्त सम्मान आपकी कृपा का ही फल है।" तत्पश्चात् श्रीराम ने माता कौशल्या, माता सुमित्रा को आदरपूर्वक नमन किया तथा समस्त अयोध्या-वासियों को गले लगाकर सुखी किया। सबयें प्रवेश कर सकल रूप होकर अपनी अनुभूति कराते हुए सबको सन्तुष्ट किया।

अध्याय ८२

[श्रीराम के राज्याभिषेक का निर्णय]

भरत श्रीराम के पास जाकर साष्टांग नमन करते हुए बोले– "हे श्रीराम, आपके बिना हम सभी अत्यन्त दीन-हीन हो गए थे। सर्व भोगों का त्याग कर अनेक कष्ट सहन किये। जीवित रहने की इच्छा भी शेष नहीं रही थी परन्तु आज आपके दर्शनों से समस्त दुःखों का परिहार हो गया। हमारा जन्म सफल हुआ। व्रत की सिद्धि प्राप्त हुई। अब हम नगरी में चलें।" श्रीराम भी भरत से भेंट कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् श्रीराम ने गुरु वसिष्ठ, माता, बंधु सभी को विमान में बैठाकर भरत के आश्रम की ओर प्रस्थान किया।

भरत का आश्रम, कुबेर द्वारा विमान माँगना– श्रीराम भरत के आश्रम में आये। वहाँ उन्हें बैठने के लिए दर्भासन, शयन के लिए तृण-शय्या, मृगाजिन व वल्कल वस्त्र दिखाई दिए। वहाँ अनेक ऋषि, भरत से रामकथा का श्रवण करने एवं फलाहार करने के लिए एकत्र थे। श्रीराम ने वनवास में जिन व्रतों का पालन किया था, उन्हीं व्रतों का पालन भरत भी कर रहे थे। श्रीराम की पादुकाओं का पूजन करते हुए भरत व्रतस्थ जीवन व्यतीत कर रहे थे– यह देखकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए।

श्रीराम द्वारा रावण का वध करने के पश्चात् देवताओं को अपना सब कुछ प्राप्त हो गया था। परन्तु रावण द्वारा हरण किया गया कुबेर का कामग विमान कुबेर को प्राप्त नहीं हुआ था। श्रीराम ने लोभवश उसे स्वयं अपने पास रख लिया है, ऐसा सोचकर कुबेर दुःखी था। वास्तव में वह विमान श्रीराम ने लंकाधीश का समस्त सामान शरणागत विभीषण को दान करते समय दान में दे दिया था। कुबेर की इस सम्बन्ध में की गई इच्छा को योग्य मानकर श्रीराम ने अपना कामग विमान कुबेर के यहाँ भेजने

की भरत को आज्ञा दी। तदनुसार भरत ने दूत के साथ वह विमान कुबेर के पास भेजा। कुबेर को श्रीराम का बड़प्पन ज्ञात हुआ। उसने रामदूत का सत्कार कर श्रीराम की स्तुति की।

श्रीराम का राजभवन में प्रवेश, राज्याभिषेक की सूचना– श्रीराम ने अपने भवन में प्रवेश किया। उन्होंने सर्वप्रथम पिता दशरथ के सिंहासन की वंदना की। वहाँ एकत्र नागरिकों ने वाद्यों की ध्वनि के साथ श्रीराम की आरती उतार कर उनका स्वागत किया। सीता व लक्ष्मण सहित श्रीराम ने तीनों माताओं को प्रणाम किया। तत्पश्चात् भरत ने नागरिकों के मन की श्रीराम के राज्याभिषेक की इच्छा को श्रीराम से निवेदन करते हुए कहा– "हे श्रीराम, अब आप वनवास में स्वीकार किये गए व्रतों का त्याग कर, मंगल स्नान कर राजसिंहासन को स्वीकार करें। सब की यही इच्छा है। मैं भी आपसे यही विनती कर रहा हूँ।"

भरत आगे बोले– "श्रीराम की आज्ञानुसार मैंने चौदह वर्ष तक राज्य के शासन को सम्हाला। पिता की आज्ञा को व्रत सदृश मानकर आप वन में रहे। उस कालावधि में आपने अगाध कीर्ति अर्जित की। आपको राज्य की लालसा सर्वथा नहीं है तथापि अब हम पर कृपा करने के लिए राज्य का शासन सम्हालें। आपको सिंहासन पर बैठा हुआ देखने के लिए हम आतुर हैं। हमारे नेत्रों को सन्तुष्ट करें " यह कहते हुए भाव-विभोर होकर भरत की आँखें भर आईं। भरत की यह अवस्था प्रेम एवं आदर के अतिरेक से हुई थी। ऐसी ही अवस्था शत्रुघ्न, सौमित्र, सीता एवं तीनों माताओं की थी। बिभीषण, सुग्रीवादि वानरगण, सुमन्त्रादि प्रधान, ऋषिवर्य सभी भाव-विभोर हो गए। सभी राम की ओर आशा से परिपूर्ण दृष्टि से देखने लगे।

श्रीराम का मौन; मारुति की विनती; वसिष्ठ द्वारा आज्ञा देना– श्रीराम भरत के वचनों को सुनकर कुछ बोले बिना मौन खड़े रहे। कुछ काल ऐसे ही बीता। तब हनुमान में स्फूर्ति जागृत हुई। उन्होंने श्रीराम को प्रणाम करते हुए कहा– "श्रीराम आपके वनवास की कालावधि में भरत ने आपके सदृश ही समस्त व्रतों का पालन किया। जटा व वल्कल धारण किये, भोगों का त्याग किया तथा निराहार रहकर व्रत का पालन किया। आपकी पादुकाओं की पूजा करते हुए अखंड रामनाम स्मरण किया। अब आप उन्हें सन्तुष्ट करें। उनकी विनती का आप कुछ भी उत्तर नहीं दे रहे हैं, यह अनुचित है।" मारुति के वचन सुनकर सन्तुष्ट होकर उन्होंने भरत को हृदय से लगा लिया।

श्रीराम ने भरत के प्रति प्रेम प्रकट किया परन्तु प्रत्युत्तर नहीं दिया। इसका मर्म गुरु वसिष्ठ ने समझ लिया। वे सोचने लगे– 'श्रीराम मेरी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे मर्यादा में रहने वाले सद्शिष्य हैं। गुरु का मान रखने वाले हैं।' यह विचार कर गुरु वसिष्ठ श्रीराम से बोले– "हे श्रीराम, तुमने व भरत ने पिता की आज्ञा का उत्तम प्रकार से पालन किया है। तुम दोनों का नियम अब पूर्ण हो गया है। अतः अब भरत के कथनानुसार राज्य को स्वीकार करो। गो ब्राह्मण की रक्षा करो, स्वधर्मानुसार प्रजा का पालन करो। अश्वमेधादि यज्ञ कर देवताओं को सन्तुष्ट करो।" सद्गुरु की आज्ञा सुनकर श्रीराम उनकी वंदना करते हुए बोले "सद्गुरु की आज्ञा का उल्लंघन कौन कर सकता है ?" श्रीराम के वचन सुनकर भरत के साथ ही सभी को अति आनंद हुआ।

अध्याय ८३

[श्रीराम का राज्याभिषेक]

भरत द्वारा श्रीराम के राज्याभिषेक की तैयारी प्रारम्भ करने की वार्ता त्रिभुवन में फैल गई। भरत द्वारा आयोजित इस समारोह में भाग लेने के लिए ऋषिगण उत्साहपूर्वक आने लगे। सुरगण भी आये। इनमें इन्द्र, बृहस्पति, सनकादिक मुनि, नारद, दत्त, ध्रुव आदि भक्त ब्रह्मा, महेश, विष्णु तथा यक्ष, गंधर्व आदि भी आये। दशानन रावण के बन्दीगृह से मुक्त हुए, ग्रह-गण, सुरगण सभी आये। अयोध्या के आकाश में उनके विमान स्थिर खड़े थे। अयोध्या नगरी में अत्यन्त उत्साह का वातावरण था। मार्ग, गृह, बाज़ार को बन्दनवारों से सजाने में कोई कमी नहीं रखी गई थी। मंगलार्चन दीपोत्सव, कथा-कीर्तन इत्यादि के साथ राम नाम का जय-जयकार हो रहा था। दसों दिशाओं से राजा-महाराजा पधारे थे।

भरत का वसिष्ठ की सूचना लेकर सुग्रीव के पास जाना– भरत श्रीराम के प्रति प्रेम से विभोर थे। उन्होंने गुरु वसिष्ठ से कहा– "स्वामी, मुझे बतायें कि श्रीराम के अभिषेक के लिए क्या-क्या सामग्री चाहिए। भरत का प्रेम व उत्साह देखकर वसिष्ठ सन्तुष्ट होकर बोले– "भरत, तुम महाभाग्यशाली हो। तुम्हारी भक्ति धन्य है। मैंने तुम्हें जो सामग्री बताई थी, वह आ गई है। बस, अब प्रत्यक्ष रूप से अभिषेक होना शेष रह गया है।" सद्गुरु की आज्ञा पाकर भरत तुरन्त सुग्रीव व विभीषण जिस भवन में ठहरे थे, वहाँ पर गये। वे उनसे बोले– "आप श्रीराम को प्रिय हैं। वे आपके वचनों का पालन करते हैं। अतः आप ही सुमुहूर्त साधकर अभिषेक के लिए पधारें। श्रीराम का राज्याभिषेक करने के लिए प्रभात काल का गुरुपुष्य अमृतसिद्धियोग उत्तम मुहूर्त है। उसके लिए अन्य सामग्रियों की अड़चन नहीं है। केवल चार समुद्रों का जल चाहिए। उसे आप मँगवाएँ।" भरत के वचन सुनते ही चार योद्धाओं को चार दिशाएँ बताकर भरत ने रत्नजटित कुंभ उन्हें प्रदान किये। उत्तर की ओर हनुमान, दक्षिण की ओर ऋषभ, पश्चिम की ओर नल तथा पूर्व की ओर अंगद- इन वीरों ने चार दिशाओं में वेगपूर्वक उड़ान भरी तथा सूर्योदय के पहले ही समुद्रों का जल लाकर गुरु वसिष्ठ के समक्ष रख दिया। गुरु वसिष्ठ को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। वे वानर वीरों की प्रशंसा करने लगे।

अभिषेक की विधियों का प्रारम्भ– श्रीराम ने पहले दिन उपवास रखा था। सौमित्र व जानकी सहित जटाबंधन मुक्त कर, श्रीराम ने मंगल-स्नान किया। तत्पश्चात् गुरु वसिष्ठ ने उनका विधिवधपूर्वक अभिषेक किया। श्रीराम को राजवस्त्रों तथा मुकुट कुंडलादि अलंकारों से सुशोभित किया गया। वामदेव, जाबालि, कश्यप, भरद्वाज,कात्यायन इत्यादि महान ऋषि भी अभिषेक करने के लिए पधारे थे। श्रीराम व जानकी को रत्नमंडित मंडप में बैठाया गया। वेद मन्त्रों का घोष हुआ। श्रीराम को राज्याभिषेक हेतु सिंहासन पर बैठाकर पुनः मन्त्रोच्चारण किया गया। शुभ्र, शुद्ध छत्र श्रीराम के मस्तक पर पकड़कर शत्रुघ्न खड़े हो गए। सुग्रीव व विभीषण आनन्दपूर्वक चामर झुलाने लगे। तत्पश्चात् अनेक लोगों द्वारा उनका सत्कार किया गया। स्वयं क्षीरसागर ने आकर उन्हें रत्नों की भेंट दी, जानकी को रत्नहार से सुशोभित किया। तीनों लोकों से पधारे अतिथियों ने श्रीराम के राज्याभिषेक का समारंभ देखा तथा श्रीराम का यथोचित पूजन किया। सिंहासनरूढ़ श्रीराम को देखकर सभी सन्तुष्ट हुए।

अध्याय ८४

[श्रीराम-स्वरूप वर्णन]

श्रीराम सिंहासनारूढ़ हुए। वे जन समुदाय में होते हुए भी अभिन्न तथा अलिप्त थे। वे आत्मतेज से सुशोभित हो रहे थे। सबके मन में उनके प्रति प्रेम-भाव था। दृश्य, दृष्टा, दर्शन अथवा ज्ञेय, ज्ञाता व ज्ञान की त्रिपुटि से वे परे थे। उन्हें देखकर नेत्रों को तृप्ति मिल रही थी। श्रीराम अपने ॐतत्सत स्वरूप में पहचाने जाने के कारण उनकी सर्वात्मकता का आभास हो रहा था। उनकी माताओं को जैसे वे जन्म के समय चैतन्य स्वरूप में दिखाई दिये थे, वैसे ही अब भी दिख रहे थे। सीता उस चैतन्य घन मदनमोहन को देखकर सलज्ज हो गईं। भरत उन्हें आत्मप्रकाश युक्त स्वानंदकंद स्वरूप में देखकर सन्तुष्ट हुए। श्रीराम सगुण निर्गुण परमात्मा तथा विश्वविश्राम कारक थे। सनकादिक महासज्जन उनके चरण कमलों में भ्रमर बनकर आनन्द का सेवन कर रहे थे।

श्रीराम का राज्याभिषेक होने पर गंधर्व आनन्दपूर्वक गायन करने लगे। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। धरणी के प्राणियों में वैर रहित भावना उत्पन्न हो जाने से धरणी प्रसन्न हो उठी। इस प्रकार श्रीराम सबको सन्तोष प्रदान कर रहे थे।

—ॐ—ॐ—ॐ—ॐ—

अध्याय ८५

[लक्ष्मण की युवराज पद के प्रति विरक्ति]

श्रीराम द्वारा राजा का पद स्वीकार करने का आनंद लोगों ने अनेक प्रकार से व्यक्त किया। तत्पश्चात् श्रीराम ने वहाँ एकत्र राजाओं, विभीषण तथा सुग्रीवादि आप्त लोगों का सत्कार किया। विशेष रूप से गुरु वसिष्ठ का श्रीराम ने पूजन किया और उनका आशीर्वाद ग्रहण किया। वहाँ उपस्थित अन्य ऋषियों का सम्मान किया। याचकों को दान देकर श्रीराम ने सभी को तृप्त किया।

लक्ष्मण का युवराज्याभिषेक करने की सूचना– भरत श्रीराम से बोले– "पितृआज्ञा पूर्ण करने का आपका व्रत अब पूर्ण हो गया है। आपने जैसे राज्याभिषेक को स्वीकार किया, उसी प्रकार आप लक्ष्मण का युवराज पद के लिए अभिषेक करें। उनके त्याग की कोई सीमा नहीं है। उन्होंने निद्रा, आहार इत्यादि का त्यागकर रात-दिन आपकी सेवा की है। उनके आदर्श जीवन का गौरव अखिल विश्व में हो रहा है अतः उनका अभिषेक करने पर सभी सन्तुष्ट होंगे।" भरत के इस प्रस्ताव से सभी सहमत हुए। तब श्रीराम ने सौमित्र को बुलाया।

श्रीराम लक्ष्मण से बोले– "हे सुमित्रा नन्दन, तुम्हारे द्वारा भ्रातृत्व की कभी अवज्ञा नहीं हुई अभिमान त्याग कर किसी दास के सदृश तुमने निरन्तर सेवा की है। मेरे सुख के लिए रात-दिन कष्ट उठाये हैं। बाणों के आघात भी सहे हैं। तुम्हारी सेवा के एक-एक प्रसंग का स्मरण कर मन काँप जाता है तुम्हारे विषय में और क्या बोलूँ ? अब हम दोनों को पिता का राज्य चलाना है चौदह वर्ष तक पिता की आज्ञानुसार भरत ने राज्य को सम्हाला। उसी आज्ञानुसार गुरु वसिष्ठ ने मेरा अभिषेक किया है। अब तुम युवराज पद का अभिषेक स्वीकार करो।"

लक्ष्मण की प्रतिक्रिया; उनका नकार– सौमित्र ने श्रीराम के वचन सुने। वे प्रत्युत्तर देकर उनका अपमान नहीं करना चाहते थे, अतः सकुचाते हुए विलाप करने लगे। उनका गला रुँध गया। श्रीराम का राज्य सभी के लिए सुख लेकर आया परन्तु मुझे उसने दुःखी कर दिया। मेरे हाथों अनजाने में क्या कोई अपराध हो गया है, यह विचार उनके मन में आया। उन्होंने तात्विक विचार करते हुए स्वयं को समझाया कि "अगर मुझमें राज्यमद चढ़ गया तो मुझे श्रीराम का स्मरण नहीं रहेगा। राज्यभोग विषयों से परिपूर्ण होता है। विषय विष के समान होते हैं, उनसे अधःपतन ही होता है। विषयों से ग्रसित मन को श्रीराम भक्ति तथा राम नाम स्मरण का विस्मरण हो जाएगा। वनवास के समय मैंने श्रीराम का ध्यान नहीं त्यागा। अब अगर मैं राज्यभोग में लिप्त हो गया तो विषय-विलास से परिपूर्ण हो जाऊँगा। मैं राम सेवा से वंचित रह जाऊँगा। अतः राज्य मेरे मन को नहीं भा रहा है। मुझे श्रीराम की सौगन्ध है। मुझे राज्याधिकार नहीं चाहिए।" लक्ष्मण अपना मनोगत प्रकट करते हुए बोले– 'भरत को ही यह सम्मान प्राप्त होना चाहिए।'

लक्ष्मण बोले– "भरत को राज्य प्राप्त होकर भी वे राज्य भोगों से विरक्त रहकर अत्यन्त कष्ट सहते हुए श्रीराम की सेवा में मग्न रहे। ऐसे भरत को युवराज पद दिये जाने पर मुझे भी सुख का अनुभव होगा। भरत ही राज्य का उपभोग करने के लिए योग्य है। उसने अलिप्त रहकर गुणवत्ता प्रदर्शित करते हुए प्रजा का पालन किया है, अतः उसे ही युवराज पद प्रदान करें।"

भरत के अभिषेक को वसिष्ठ द्वारा मान्यता– लक्ष्मण की राज्यभोग के प्रति विरक्ति देखकर सुरगणों सहित सभी ने उनकी प्रशंसा की। उनका जय-जयकार किया। श्रीराम भी सन्तुष्ट हुए। सौमित्र की भक्ति, नीति व त्याग वृत्ति देखकर श्रीराम को प्रसन्नता का अनुभव हुआ। तत्पश्चात् श्रीराम ने सद्गुरु वसिष्ठ से कहा– "सौमित्र युवराज्याभिषेक के लिए तैयार नहीं है। अतः अब क्या करना चाहिए ? किसका अभिषेक करना चाहिए ?" इस पर वसिष्ठ बोले– 'श्रीराम तुम अन्तर्यामी हो तथापि मुझे सम्मान देने के लिए मुझसे पूछ रहे हो। यह तुम्हारी महानता है। जो तुम्हारे चरणों में रहकर भक्ति करना चाहता है, उसकी इच्छा को दुःखी करना उचित नहीं है।' यह सुनकर श्रीराम ने लक्ष्मण को प्रेमपूर्वक आलिंगनबद्ध कर लिया।

लक्ष्मण ने अपनी इच्छा पूर्ण होने के आनन्द में श्रीराम को नमन कर कहा– "आज मेरा भाग्य फलीभूत हुआ है। राज्यभ्रम से बचकर आपकी अखंड सेवा का मुझे अवसर प्राप्त हुआ, अधिकार मिला। मैं धन्य हो गया।"

अध्याय ८६

[भरत को युवराज पद प्रदान करना]

श्रीराम, वसिष्ठ तथा अन्य सभी के द्वारा विनती करने पर भी सौमित्र ने युवराज पद लेना अस्वीकार कर दिया। तत्पश्चात् सभी ने भरत से विनती की। भरत ने विचार किया कि 'सौमित्र ने कुशलतापूर्वक अपनी अस्वीकृति दे दी। राज्य की प्राप्ति से श्रीराम के स्मरण से विमुख होने का भय उन्होंने व्यक्त किया। वास्तव में लक्ष्मण महाज्ञानी व निर्लोभी है। यह विचार करते हुए भरत कुछ कहे बिना मौन खड़े रहे।

वसिष्ठ का उपदेश; भरत द्वारा मान्यता– भरत कुछ बोले बिना स्तब्ध खड़े रहे। तब गुरु वसिष्ठ उनसे बोले- "भरत तुम्हारे न बोलने पर भी तुम्हारा मनोगत हमें ज्ञात हो गया है। इस पर मेरे विचार सुनो श्रीराम के ही वचन हैं कि मुझ में मन लगाकर कोई भी कर्म करने पर मैं क्षणभर में प्राप्त होता हूँ। जो भी मुझ में लीन होकर मेरी भक्ति करते हैं, उन्हें मेरी प्राप्ति होने में विलम्ब नहीं होता।" श्रीराम के ये मनोगत प्रत्यक्ष सद्गुरु द्वारा श्रवण करने पर भरत शांत हुए और उन्होंने युवराज्याभिषेक करने की अनुमति दे दी।

जिस प्रकार अलौकिक विधानों से श्रीराम का अभिषेक किया गया था, उसी वैभव एवं परिपूर्णता से भरत का अभिषेक किया गया। देवताओं को अत्यन्त आनन्द की अनुभूति हुई। लोगों ने वाद्यों की ध्वनि से तथा वानरों ने भुभुःकार कर अपना आनन्द व्यक्त किया। उस समय कुछ लोगों ने श्रीराम के प्रताप का स्तवन किया। भरत ने आदरपूर्वक श्रीराम के चरणों में साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया। तत्पश्चात् भरत बोले– "हे श्रीराम , आपके वन-गमन करने पर मैंने व्रत ग्रहण किया व शत्रुघ्न ने ही राज्य का प्रतिपालन किया। वह रामभक्त कुशलतापूर्वक भक्ति व कार्य करने वाला है। अतः उसे सेनापति नियुक्त करें, सुमंत्र को प्रधान पद दें।" श्रीराम ने भरत की सूचनाओं के अनुसार नियुक्तियाँ कीं। शत्रुघ्न, सुमंत्र तथा अन्य सभी का उचित सम्मान किया। श्रीराम की उदारता से सभी सन्तुष्ट हुए।

अध्याय ८७

[हनुमान की लीला]

तत्पश्चात् श्रीराम ने वानरराज सुग्रीव व लंकाधीश विभीषण को वस्त्र एवं आभूषण प्रदान कर उनका यथोचित सम्मान किया। अन्य वानर वीरों का भी उन्होंने सम्मान किया। उनमें प्रमुख तथा सामान्य सभी वानरवीर सम्मिलित थे। परन्तु श्रीराम ने हनुमान तथा अंगद को उनके साथ सत्कार के लिए आमन्त्रित नहीं किया। श्रीराम ने इसका कारण स्पष्ट करते हुए कहा– "मैंने हनुमान व अंगद को इसीलिए आमन्त्रित नहीं किया क्योंकि मेरे मन में इनके लिए कुछ अलग करने की इच्छा है। उनके उपकार के अत्यन्त ऋण मुझ पर हैं। अतः उन दोनों को प्रेमपूर्वक अपनी गोद में बैठाने की मेरी इच्छा है। अगर आपकी अनुमति होगी तो मैं ऐसा करूँगा।" श्रीराम के ऐसा कहते ही सभी प्रसन्न हुए। हनुमान के प्रति श्रीराम के प्रेम से सन्तुष्ट हुए वानरों ने हनुमान का गुण-गान किया तथा अंगद की भी स्तुति करते हुए अपनी मान्यता प्रदर्शित की।

हनुमान को गोद में बायीं ओर तथा अंगद को दाहिनी ओर बैठाना– श्रीराम के प्रस्ताव पर सहमति प्रदान करते हुए गर्जना होने लगी। अंगद को श्रीराम ने दाहिनी गोद में बैठाया, यह देखकर बायीं गोद में बैठी जानकी वहाँ से उतर गईं। तत्पश्चात् श्रीराम ने हनुमान को बायीं गोद में बिठाया। दोनों को गले से लगाकर श्रीराम ने स्वयं उन्हें वस्त्र व अलंकार प्रदान किये। कुबेर द्वारा दी गई रत्नमाला तथा स्वयं के हाथों में पहने हुए रत्न कंगन अंगद के गले में व हाथों में पहनाये। यह देखकर सीता के मन की वात्सल्य भावना भी जागृत हुई। उन्होंने अपने गले की रत्नमाला निकाल कर श्रीराम की ओर देखा। उसका मनोगत भाँपकर अन्तरात्मा श्रीराम बोले– "तुमने गले का हार निकाला है अतः तुम्हारी जिसके

प्रति प्रेम-भावना होगी, उसे यह हार निःशंक होकर अर्पित करो।" सीता ने श्रीराम की आज्ञा से आनन्दित होकर यह रत्नहार हनुमान को प्रदान किया। श्रीराम सहित सभी लोग आनन्दित हो उठे।

हनुमान की निराली प्रतिक्रिया; उसका स्पष्टीकरण– हनुमान को हार मिलने पर भी वे निराश ही थे। माला से मात्र बाह्यपूजा हुई 'यह मेरे हेतु अनिष्ट कारक है क्योंकि इससे उत्पन्न अभिमान घातक है।' यह विचार उसके मन में आया। वे वानर स्वभावानुसार वेगपूर्वक उछलकर वृक्ष पर जा बैठे। वहाँ से सीता लक्ष्मण आदि की ओर देखते हुए वे वानर चेष्टाएँ करने लगे। तत्पश्चात् उस रत्न माला का एक-एक मोती तोड़कर मुँह में डालकर उसे थूकने लगे। उनकी चेष्टाओं को देखकर वानरगण भी उछलकूद मचाने लगे। राम सहित सभी को वानरों की ये चेष्टाएँ देखकर हँसी आ गई। वे आश्चर्य करने लगे।

हनुमान की ऐसी प्रतिक्रिया देखकर सौमित्र ने उन्हें आदरपूर्वक पूछा– "अरे हनुमान, तुम श्रीराम के भक्त होकर यह क्या कर रहे हो ? राम की भक्ति व प्रेम के लिए सभी तुमसे दीक्षा लेते हैं। राम भी तुम्हारी भक्ति के ऋणी हैं परन्तु इसके कुछ भी चिह्न तुम्हारी कृति में नहीं दिखाई दे रहे हैं। इतने अनमोल रत्नों की माला पहनाकर उससे तुम्हारा सत्कार किया और उसका एक-एक रत्नमणि तुम तोड़ रहे हो। ऐसा करने का उद्देश्य स्पष्ट करो।"

लक्ष्मण को सम्बोधित कर मारुति ने स्पष्टीकरण देते हुए कहा– "हमारी ऐसी कल्पना थी कि अत्यन्त प्रेमपूर्वक हमें गोद में बिठाने पर हमें पेट भर कर कुछ खाने को मिलेगा परन्तु हमें निराशा हुई। अन्दर की क्षुधा बाह्य पूजा से कैसे शान्त होगी। सर्वांग पर खीर का लेप लगाने से पेट की भूख कैसे शान्त हो सकती है ? मुझे रत्न दिये तब मुझे लगा कि ये तेजस्वी रत्न मीठे होंगे, इसलिए उन्हें तोड़कर प्रेमपूर्वक मुख में डाला परन्तु वे सब तो पत्थर के सदृश थे, इसलिए मैंने उन्हें फेंक दिया। आपके रत्न मूल्यवान होंगे पर हम वनचर वानरों के लिए वे पत्थर ही हैं। मेरी इस उच्छृंखलता के लिए मुझे क्षमा करें।"

श्रीराम, हनुमान के वचनों एवं कृति से अस्वस्थ हो गए। वे बोले– "हे हनुमान, तुम्हारा सत्कार करने में मुझसे भूल हो गई। परन्तु तुम मेरे प्रिय हो, मेरी आत्मभावना को तुम समझ लो।" श्रीराम के वचनों से मारुति सन्तुष्ट हुए।

मारुति की इच्छा, श्रीराम द्वारा मान्य– श्रीराम बोले– "हनुमान, तुम अपनी इच्छा बताओ, मैं उसे पूरी करूँगा।" इस पर हनुमान बोले– "हे श्रीराम,वन में रहते हुए फलाहार ही करते रहे। अब व्रत के उद्यापन का अन्न दिखाई देने पर हमें सर्वस्व प्राप्त हो जाएगा। हम उसमें से शेष बचा हुआ खाकर ही तृप्त हो जाएँगे। नैवेद्य का शेष भाग प्राप्त होने पर हमारी इच्छा पूर्ण होगी।" इस अपूर्व इच्छा को सुनकर श्रीराम सन्तुष्ट हुए।

अध्याय ८८

[हनुमान द्वारा प्रसाद भक्षण]

श्रीराम समझ गये कि वनवास के उपवास के पश्चात् उसका उद्यापन अवश्य होना चाहिए। मारुति की इच्छा में यही सूचित करने का उद्देश्य छिपा है। उद्यापन की विधि सम्पन्न कर सभी को सुखी करने की मारुति की यह युक्ति श्रीराम को समझ में आ गई।

उद्यापन हेतु भोजन तैयार करने की विनती– श्रीराम ने सभी को अन्न का प्रसाद देने का निश्चय किया। उन्होंने माता से भोजन तैयार करवाने की विनती की। उन्होंने आनन्दपूर्वक षट्रसयुक्त अन्न तैयार करवाया। अनेक पंगत बैठीं। भोजन में नाना प्रकार के पदार्थ थे। कौशल्या माता सभी को आनन्दपूर्वक परोस रही थीं। सबकी इच्छा पूर्ण होकर उन्होंने तृप्त होकर डकार ली। श्रीराम ने मारुति से कहा– "उद्यापन की विधि सम्पन्न करने के पश्चात् जो शेष बचेगा, तुमने उसकी इच्छा की थी। अतः अब हम साथ बैठकर भोजन करेंगे।" अतः मारुति श्रीराम के साथ खाना खाने बैठे।

मारुति की विलक्षण कृति– श्रीराम, मारुति सहित खाना खाने बैठने पर प्रेमपूर्वक मारुति को कौर खिलाने लगे। मारुति बोले– "स्वामी, कृपा कर मेरी विनती सुनें– सर्वप्रथम आप कौर खायें तत्पश्चात् आपके भाई व देवी सीता खाएँगे तत्पश्चात् ही मेरा अधिकार है।" हनुमान के वचन सुनकर श्रीराम आश्चर्यचकित हुए। ऐसा किये बिना मारुति खाना नहीं खाएँगे, ऐसा श्रीराम को विश्वास था। अतः मारुति के कथनानुसार सभी ने कौर मुँह में डाला। श्रीराम ने एक कौर खाने पर हनुमान से कौर खाने के लिए कहा। इस पर हनुमान ने श्रीराम की थाली उठाई व छलाँग लगाकर थाली सहित पेड़ पर जाकर बैठ गए। श्रीराम ने प्रश्न किया– ''यह क्या कर रहे हो ?"

मारुति का स्पष्टीकारण; सबके द्वारा प्रशंसा– मारुति बोले– "हे रघुनंदन, तुम्हारे द्वारा कौर खाने के पश्चात् शेष भाग मेरा हुआ। उसमें से अगर पुनः आप खाएँगे, तो भक्त की थाली से श्रीराम ने खा लिया, ऐसा उलटा प्रकार घटित हो जाता। इसीलिए मैंने ऐसा किया।" तत्पश्चात् वानर चेष्टाएँ करते हुए हनुमान थाली में से चटखारे लेते हुए भोजन करने लगे। हनुमान की ऐसी भाव-भंगिमा देखकर सभी हँसने लगे। हनुमान की तीक्ष्ण बुद्धि, युक्ति, व्यवहार कुशलता तथा श्रीराम के प्रति अपार प्रेम एवं भक्ति-भावना से सभी उनकी प्रशंसा करने लगे।

अध्याय ८९

[श्रीराम द्वारा हनुमान को वरदान देना]

श्रीराम को हनुमान की भक्ति व प्रेम देखकर आनन्द प्राप्त हुआ। वे हनुमान से बोले– "तुम्हारे महान कार्यों एवं तुम्हारी भक्ति से मैं तुम्हारा ऋणी हूँ। तुम्हारे मन में जो इच्छा हो वह माँगो।" श्रीराम की कृपा का स्मरण कर हनुमान के नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगे। उन्होंने श्रीराम के चरण पकड़कर कहा– "स्वामी, मेरे भाग्य अच्छे थे कि आपकी कृपा प्राप्त हुई। अतः मेरी एक ही याचना है कि जब तक पृथ्वी पर रामकथा हो, तब तक मेरे प्राण विद्यमान रहें।" तत्पश्चात् हनुमान ने रामनाम कितना समर्थ है, कितना कल्याणकारी है, इस विषय में निवेदन करते हुए कहा– "सभी राम-नाम का स्मरण कर अपना कल्याण करें। श्रीराम द्वारा उनका उद्धार हो।"

हनुमान को श्रीराम द्वारा वरदान-प्राप्ति– हनुमान ने जो माँगा, उसे प्रदान करते हुए श्रीराम बोले– "हे हनुमान, तुमने जो माँगा है, उसमें कहीं भी तुम्हारा स्वार्थ नहीं है। उसमें जग के उद्धार की ही भावना है। मैं आश्वासन देता हूँ कि मेरा अवतार कार्य तुमने पूर्ण किया है। अतः तुम्हारा नाम सभी के लिए कल्याणकारी होगा। तुम्हारे कारण ही मुझे ख्याति प्राप्त होगी। तुम्हारे कारण परमानन्द की निर्मिति होगी। हनुमान के नाम के कारण ही संसार को राम-नाम की महत्ता ज्ञात होगी।" तत्पश्चात् श्रीराम हनुमान के नाम की महिमा को समझाते हुए बोले– "हनुमान व श्रीराम ये दोनों नाम भिन्न होते हुए भी उनमें

एकरूपता है। मैं नित्य तुम्हारे में ही समाया हुआ हूँ। जो तुम्हारे नाम का स्मरण करेंगे, उनमें श्रीराम का वास होगा। तुम्हारी भक्ति जो करेगा, वह मुझे सुख प्रदान करेगा।" यह वरदान देकर श्रीराम ने मारुति को महत्ता प्रदान की।

अध्याय १०

[श्रीराम द्वारा विभीषण को लंका वापस भेजना]

श्रीराम अपने भवन में बैठे हुए थे। उन्होंने विभीषण को बुलवाया। विभीषण के आने पर श्रीराम उनसे बोले– "हे विभीषण, तुम्हें मन से अयोध्या में ही निवास करने की इच्छा हो रही है यह मैं समझ रहा हूँ, परन्तु लौकिक दृष्टि से यह उचित नहीं होगा। इससे सूर्यवंश को दोष लगेगा। रावण-वध के लिए मेरे क्रोध के कारण तीनों लोक जल जाते। केवल तुम्हारे लिए वे बचे हुए हैं। भगवान् शिव से लक्ष्मण ने विनती की है कि 'श्रीराम ने शरणागत को लंका का राज्य प्रदान किया है।' ये वचन असत्य हो जाएँगे। विश्व में प्रलय होने पर न तो लंका और न ही विभीषण, कुछ भी शेष नहीं रह जाएगा। अत: मेरा वचन, लक्ष्मण की विनती एवं भगवान् शिव के संयम को सार्थक करने के लिए तुम लंका को प्रस्थान करो।"

विभीषण को भेजना; उपदेश देना– विभीषण द्वारा स्वीकृति प्रदान करते ही श्रीराम ने विश्वकर्मा को लंका पहले जैसी थी, उसी के सदृश करने की आज्ञा दी। लोकपाल लंका की समृद्धि को देखें। ऋषिगण आशीर्वाद प्रदान करें, क्षेत्रपाल, देवता, तथा ब्रह्मा विभीषण की सहायता करें, ऐसी सूचनाएँ उन्होंने आदरपूर्वक सभी को प्रदान कीं।

तत्पश्चात् श्रीराम विभीषण को उपदेश देते हुए बोले– "शास्त्र-समस्त आचरण करें, राक्षस-वृत्ति का त्याग करें, हिंसा न करें, राज-धर्म पालन करते हुए वीरतापूर्वक राज्य चलायें। प्रतिवर्ष यात्रा करें, प्रत्येक सोमवार को रामेश्वर का दर्शन करें तथा समस्त व्रतों का पालन करें।" यह कहते हुए आलिंगनबद्ध कर सुमुहूर्त पर विभीषण को वापस भेजते समय सीता को विभीषण की पत्नी का सत्कार करने के लिए कहा। तत्पश्चात् विभीषण को वापस भेजा। विभीषण ने श्रीराम की माताओं सहित सभी को नमन कर आशीर्वाद प्राप्त किया।

श्रीराम ने ऋषियों से पूछा– "मेरे द्वारा ब्राह्मण कुलोत्पन्न रावण का वध हुआ है। इसके लिए मैं कौन सा प्रायश्चित करूँ ?'' ऋषि बोले– "इसमें वास्तविक रूप से क्षत्रियधर्म का पालन करते हुए रणभूमि में तुमने रावण का वध किया है, अत: कोई दोष नहीं है। तथापि तुम पूछ रहे हो तो सुनो– सभी स्थानों पर शिवलिंग की स्थापना कर तुम तीर्थ-क्षेत्रों की स्थापना करो। कृष्णा, गोदावरी तथा भागीरथी के दोनों तटों पर लिंगों की स्थापना हो।" श्रीराम ने ऋषिवर्य की आज्ञा का पालन करते हुए उसके अनुसार स्थापना की।

अध्याय ११

[सुग्रीव एवं वानर गणों का वापस लौटना]

अगले दिन प्रात: काल शिवार्चन करने के पश्चात् सभा में आने पर वे वानरगणों से बोले– "तुम्हारे उपकारों के ऋण से मैं इतना बँध गया हूँ कि उससे उऋण होने के लिए पुन: अवतार लेकर

हो आना पड़ेगा। तुमने शरीर, वाणी व मन से मेरी सहायता करते हुए स्त्री, पुत्र अथवा अपने जीवन का भी लोभ नहीं किया।" श्रीराम के वचन सुनकर वानर सन्तुष्ट होकर बोले– "आपके चरणों के अतिरिक्त हमारा मन कहीं भी न लगेगा परन्तु अपने प्रारब्ध को भोगे बिना हम यहाँ कैसे रह सकते हैं ? आपके वियोग का भीषण दुःख हम नहीं सह पाएँगे।" इस पर श्रीराम बोले– "मैं सदैव तुम्हारे पास ही हूँ।"

सुग्रीव द्वारा श्रीराम से विनती करना; श्रीराम द्वारा इच्छा-दान– सुग्रीव बोला– "स्वामी, हमें अपने राज्य को वापस जाने की आज्ञा दें।" इस पर श्रीराम ने उससे कहा– "दध्योदन* भोजन करने के पश्चात् ही सभी वापस जायें।" तत्पश्चात् सभी वानरगणों ने भोजन किया। श्रीराम ने उन्हें उनकी इच्छा व्यक्त करने के लिए कहा। इस पर वानरगण बोले– "यद्यपि आज भोजन कर अनन्त तृप्ति प्राप्त हुई है। तथापि एक इच्छा मन में शेष बची है। स्वामी, उसे सुनें। द्वापर-युग में कृष्णावतार के समय यमुना तट पर हमारी इच्छा के अनुरूप आप हमें दही-भात का भोजन करायें।" उनके ये वचन सुनकर श्रीराम हँसने लगे। 'स्वामी चरवाहा बनकर गायें चराएँगे।' यह कल्पनाकर सीता को भी हँसी आ गई परन्तु श्रीराम ने तथास्तु कहकर वानरों की इच्छा मान्य की।

तत्पश्चात् श्रीराम ने सुग्रीवादि सभी वानरों का सम्मान कर सभी को अनमोल भेंट प्रदान कर किष्किंधा के लिए विदा किया।

❀❀❀❀

अध्याय १२

[हनुमान द्वारा श्रीराम स्वरूप वर्णन]

श्रीराम का सभा में आगमन अब प्रतिदिन की दिनचर्या में सम्मिलित हो गया था। सीता को वामांक में धारण कर वे सिंहासन पर बैठते थे। भरत, श्रीराम के चरणों के समीप धनुष-बाण लेकर खड़े रहते थे। दाहिनी ओर लक्ष्मण विद्यमान रहते थे। शत्रुघ्न राजदंड सम्हालते थे। श्रीराम के चरणों के समीप वायुनंदन हनुमान विद्यमान रहते थे। उस समय सबके मन में श्रीराम के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न उठा करते थे। 'श्रीराम सगुण हैं कि निर्गुण' ? वे प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं अतः उन्हें सुगण ही कहना चाहिए। दूसरा मत था कि श्रीराम यद्यपि अपना मूल रूप त्यागकर सगुण हो गए हैं, तथापि वे मूलतः अरूप, अविकारी, अद्वयानन्द एवं निर्गुण ही हैं।

ऐसे भिन्न मतों पर जब चर्चा हो रही थी, तब हनुमान ने अपना मत स्पष्ट करते हुए कहा– "आपने जो कहा, वह शुद्ध परमार्थ ही था। अब मेरे वचन सुनें। ये सगुण साँवले श्रीराम ही मेरे अद्वय ब्रह्म है। श्रीराम, ज्ञान और ध्यान का मूल रूप हैं। वे समाधि का समाधान हैं। चैतन्य घन हैं तथा भक्तों के मातृनिवास सदृश हैं। श्रीराम के अतिरिक्त हमारे लिए अन्य कोई ब्रह्म ज्ञान नहीं है। हमारा ब्रह्म श्रीरघुनन्दन ही हैं।" हनुमान के वचन सुनकर सभी आनन्दित हुए। अपना आनन्द उन्होंने श्रीराम की जय-जयकार कर व्यक्त किया।

[यहाँ युद्धकाण्ड की समाप्ति हुई। श्रीराम कथा परम गहन है। महापापी भी इस कथा से पावन हो जाता है। इस कथा का प्रत्येक अक्षर पुण्यदायक एवं पवित्र करने वाला है।]

❀❀❀❀

* दही-भात।